

भारतेन्दु ग्रंथावली

भारतेन्दु समग्र

सम्पादन : हेमन्त शर्मा

सभी खण्ड और अनेक अलभ्य
सामग्री एक जिल्द में

891-43
BHA



प्रचारक ग्रंथावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक संस्थान

पौ. सं. ११०६, पिसाटनीचन, वाचाणली-२२१००१

भारतेन्दु ग्रंथावली

भारतेन्दु सभरा

सम्पादन : हेमन्त शर्मा

सभी खण्ड और अनेक अलभ्य
सामग्री एक जिल्द में



प्रचारक ग्रंथावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक संस्थान

पॉ. बॉ. ११०६, पिशाचनोचन, वाराणसी-२२१००१

Date

6-7-89

P. 504



प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना

हिन्दी प्रचारक संस्थान

पो. बॉ. ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१ के लिए विजय प्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित
तथा रत्ना ऑफसेट, सी-१०१, डी. डी. ए. शैड, इन्डस्ट्रियल एरिया, ओखला फेज I, नई
दिल्ली-११००२० में मुद्रित ।

१९८७

मूल्य

Rs. 40/-

परिवहन ध्ययः १०.००

प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना — १

891.43

BHA

N 87

PA

भारतेन्दु समग्र

BHARTENDU SAMAGRA

Collected works of Bhartendu Harishchandra,
Edited by Hemant Sharma

प्रकाशकीय,

आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु का रचना संसार जितना विराट है, उतना ही क्रान्तिकारी और बहुआयामी भी। उनकी प्रतिभा ने साहित्य की किसी विधा को अछूता नहीं छोड़ा। उन्होंने अपने संक्षिप्त जीवन में वह सब कुछ कर डाला, जिसके करने की सामर्थ्य व्यक्ति क्या संस्थाओं में भी आज दिखाई नहीं पड़ती।

ऐसे युग पुरुष के कर्तृत्व की समग्रता को एक जिल्द में समेट कर अत्यल्प मूल्य में देने का संकल्प भारतेन्दु पुण्यशती वर्ष में हमने किया था। प्रस्तुत ग्रंथ उसी संकल्प का परिणाम है।

इसी क्रम में हम शरत्, बंकिम, देवकी नंदन खत्री, प्रसाद, प्रेमचन्द आदि की ग्रंथावलियाँ भी प्रकाशित करेंगे और इतनी कम कीमत पर ग्राहकों को उपलब्ध करायेंगे कि पुस्तकों का मूल्य आम आदमियों की जेब के बाहर होने की आम शिकायत समाप्त हो जायेगी।

यह सारस्वत अनुष्ठान तभी पूरा होगा जब आपका सक्रिय सहयोग हमें मिलेगा।

प्रकाशक

विषय-सूची

पहला खण्ड

(काव्य)

१. भक्त सर्वस्व	१
२. प्रेम मालिका	१२
३. कर्तिक स्नान	२३
४. वैशाख-माहात्म्य	२६
५. प्रेमसरोवर	२९
६. प्रेमाशु वर्षण	३१
७. जैन कौतूहल	३७
८. प्रेम माधुरी	४०
९. प्रेम तरंग	५३
१०. उत्तरार्द्ध भक्तमाल	६७
११. प्रेम प्रलाप	८२
१२. गीत गोविंदानन्द	९२
१३. सतसई सिंगार	१००
१४. होली	१०१
१५. मधु मुकुल	११८
१६. राग संग्रह	१३२
१७. वर्षा विनोद	१४८
१८. विनय प्रेम पचासा	१६४
१९. फूलों का गुच्छ	१७०
२०. प्रेम फुलवारी	१७४
२१. कृष्ण चरित्र	१८२

छोटे प्रबन्ध तथा मुक्तक रचनायें

२२. श्री अलवरत वर्णन	१८८
२३. श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र	१८४
२४. सुमनांजलि	१९०
२५. श्रीमान प्रिंस आफ वेल्स केपीडित होने पर कविता	१९२
२६. श्री जीवन जी महाराज	१९३
२७. चतुरंग	१९३
२८. देवीछा लीला	१९४
२९. प्रातः स्मरण मंगल पाठ	१९७
३०. दैन्य प्रलाप	१९९

३१. उरहना	२०१
३२. तन्मय लीला	२०२
३३. दान लीला	२०३
३४. रानी छत्र लीला	२०३
३५. संस्कृत लावनी	२०५
३६. बसंत होली	२०६
३७. स्फुट समस्या	२०६
३८. मुँह दिखावनी	२०८
३९. उर्दू का स्थापा	२०९
४०. प्रबोधिनी	२१०
४१. प्रातः स्मरण	२१२
४२. बकरी विलाप	२१३
४३. स्वरूप चिंतन	२१४
४४. श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन	२१६
४५. भारत भिक्षा	२१७
४६. श्री पंचमी	२१८
४७. श्री सर्वोत्तम स्तोत्र	२२१
४८. निवेदन पंचक	२२३
४९. मानसोपायन	२२४
५०. प्रातः स्मरण स्तोत्र	२२६
५१. हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान	२२८
५२. अपवर्गदाष्टक	२३०
५३. मनोमुकुल माला	२३१
५४. भाषा सहज	२३२
५५. राजराजेश्वरी स्तुति	२३३
५६. वेणु गीति	२३४
५७. श्रीनाथ स्तुति	२३६
५८. मूक प्रश्न	२३६
५९. अपवर्ग पंचक	२३७
६०. पुरुषोत्तम पंचक	२३८
६१. भारत वीरत्व	२३८
६२. श्रीसीता वल्लभ स्तोत्र	२४०
६३. श्री राम लीला	२४२
६४. भीष्मस्तवराज	२४६
६५. मान लीला फूल गुप्तौजल	२४७
६६. बंदर सभा	२४९
६७. विजय वल्लरी	२५०
६८. विजयिनी विजय वैजयन्ती	२५२
६९. नये जमाने की मुकरी	२५६
७०. जातीय संगीत	२५७
७१. रिपनाष्टक	२५७

७२. स्फुट कविताएँ
जिनमें ढेरों अप्रकाशित कविताएँ, गजल,
सवैया कवित्त, समस्यापूर्ति आदि
७३. दशरथ विलाप

२५९-२७७

२७८

दूसरा खण्ड

(नाटक)

१. विद्या सुन्दर	२८३
२. रत्नावली	३००
३. पाखण्डविडम्बन	३०३
४. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति	३०९
५. धनंजयविजय	३१९
६. मुद्राराक्षस	३२६
७. सत्यहरिश्चन्द्र	३८०
८. प्रेमजोगिनी	४०६
९. विषस्य विषमौषधम	४१९
१०. कर्पूरमंजरी	४२३
११. श्री चंद्रावली	४३९
१२. भारततुर्दशा	४६०
१३. भारत जननी	४७१
१४. नीलदेवी	४७८
१५. दुर्लभबन्धु	४८८
१६. अंधेरनगरी	५२९
१७. सती प्रताप	५३६
१८. सबै जाति नेपाल की	५४२
१९. बंसत पूजा	५४४
२०. ज्ञाति विवेकिनी सभा	५४५
२१. संडु भड़यो: संवाद	५४७
२२. रणधीर प्रेममोहिनी	५५०
२३. श्री रामलीला	५५१
२४. नाटक	५५५

तीसरा खण्ड

(गाद्य)

क — ऐतिहासिक रचनाएं	५८३ से ८०३
१. अगरवालों की उत्पत्ति	५८३
२. चरितावली	५८८
विक्रम	
कालिदास	
रामानुजाचार्य	

शंकराचार्य
 जयदेव
 पुष्पदत्ताचार्य
 बल्लभाचार्य
 सूरदास
 सुकरात
 नेपालियन तृतीय
 जंगबहादुर
 द्वारिकानाथ मिश्र, जज्ज
 राजाराम शास्त्री
 लार्डम्यो (भायो)
 लार्ड लॉरेस
 महाराजाधिराज जार
 कुंडलियां

३. पुरावृत्त संग्रह
- अकबर और औरंगजेब
 कन्नौज के राजा का दान पत्र
 क्वींस कालेज के फाटकों के लेख
 इंडियन मूजियम अशोक
 चारदिवाली तथा बोध गया
 के लेख
 राजा जन्मेजय का दान पत्र
 मंगलीश्वर का दान पत्र
 मणिकर्णिका
 काशी
 शिवपुर का द्रौपदी कुंड
 पंपापुर का दान पत्र
 कन्नौज का दान पत्र
 नाममंगला का दान पत्र
 चित्रकूटस्थ रमाकुंड
 गोविंददेवजी की प्रशस्ति
 सारनाथ आदि के लेख
 प्राचीन काल का संवत् निर्णय
४. महाराष्ट्र देश का इतिहास
 ५. दिल्ली का दरबार दर्पण
 ६. उदयपुरोदय
 ७. खत्रियों की उत्पत्ति

६३८

६६३
 ६६७
 ६८१
 ६९५

८. बूंदी का राजवंश	७०३
९. काश्मीर कुसुम	७०७
१०. बादशाह दर्पण	६३१
११. कालचक्र	७७०
१२. रामायण का समय	७८४
१३. पंचपवित्रात्मा	७९०
मुहम्मद	
बीबी फ़तिमा	
अली	
इमान हसन और इमाम हुसैन	
तालिका	

ख— धार्मिक रचनाएं	८०४ से ९७६
१४. कार्तिक नैमित्तिक कृत्य	८०४
१५. कार्तिक कर्म विधि	८१५
१६. मार्गशीर्ष महिमा	८३२
१७. माघस्नान विधि	८४२
१८. पुरुषोत्तम मास विधान	८४४
१९. भक्ति सूत्र वैजयंती	८५०
२०. वैष्णव सर्वस्व	८६३
२१. श्री वल्लभीय सर्वस्व	८७१
२२. तदीय सर्वस्व	८७७
२३. श्री युगुल सर्वस्व	९०५
२४. दूषणमालिका	९२९
२५. तहकीकात पुरी की तहकीकात	९३३
२६. अष्टादश पुराण की उपक्रमणिका	९३८
२७. उत्सवावली	९५५
२८. हिंदी कुरान शरीफ	९६०
२९. चतुश्लोकी	९६५
३०. श्रुतिरहस्य	९६६
३१. ईशु खूष्ट वा ईश कृष्ण	९६८
३२. वैष्णवता और भारतवर्ष	९७१
ग— आख्यान	९७७ से ९८२
३३. मदालसोपाख्यान	९७७
३४. एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती	९८१

घ — ग्रहसनात्मक

१८३ से १००३

२५. स्वर्ग में विचार सभा

१८३

३६. स्तोत्र पंचरत्न

१८६

वेश्यास्तवराजः

स्त्रीसेवा पद्धति

मदिरास्तवराजः

ईश्वर बड़ा विलक्षण है

३७. मुशायरा

१९५

३८. पांचवें (चूसा) पैगंबर

१०००

३९. कानून ताजीरात शौहर

१००३

४०. भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ?

१००९

४१. संगीत सार

१०१४

४२. खुशी

१०२०

४३. जातीय संगीत

१०२८

४४. लेवी प्राण लेवी

१०३०

४५. हरिद्वार (दो पत्र)

१०३३

४६. लखनऊ

१०३४

४७. जबलपुर

१०३६

४८. सरयूपार की यात्रा

१०३८

४९. वैद्यनाथ की यात्रा

१०४२

५०. जनकपुर की यात्रा

१०४६

१०४७

५१. सन्पादक के नाम पत्र
(रसों के सन्दर्भ में)

५२. हिन्दी भाषा (१)

१०४८

५३. ग्रीष्मऋतु

१०५२

५४. एजूकेशन कमीशन एबीडेन्स
आफ बाबू हरिश्चंद्र

१०५३

५५. लेखक और नागरी लेखक

१०६०

५६. परिहासिनी

१०६६

५७. भारतेन्दु बाबू के महत्व के पत्र	१०७३
५८. पत्रकार कर्म	१०८७ से ११०२
सम्पादकीय लेख	
विज्ञापन, सूचनाएँ और खबरें	
हिन्दी कविता और हिन्दी भाषा	
विविध	११०२ से ११०७
५९. गुरु सारणी की भूमिका	११०२
६०. कवितावलिनी सभा द्वारा दिया जाने वाला प्रशंसा पत्र	११०४
६१. तदीय समाज के समक्ष दिया गया शपथ पत्र	११०५
६२. वैष्णव परीक्षा	११०६
परिशिष्ट	११०८ से १११५
६३. चन्द्रास्त	११०८
६४. भारतेन्दु की जीवनी	१११०
(प. रामशंकर व्यास द्वारा लिखी)	
६५. मृत्यु पर हुई शोक सभा का निमन्त्रण पत्र	१११०
६६. वंश वृक्ष	१११४
६७. चित्रावली	१११७



भारतेन्दु को पढ़ने के बाद

भारतेन्दु अपने वक्त की बेमिसाल अभिव्यक्ति थे। शायद ही हिन्दी का कोई ऐसा रचनाकार हो जिसने अपने युग की चेतना को इतनी सशक्त वाणी दी हो। भारतेन्दु का व्यक्तित्व लगभग उस सूरज जैसा है, जो शीत से ठिठुरते कुहरे भरे भोर में तह पर तह ढके बादलों को चीरता हुआ निकलता है, जिससे धरती अपना अंधेरा भी पोछती है और अपना बदन भी सेकती है। जिससे हजारों धरती पुत्र उस जान लेवा शीत से जूझने और अंधेरे से लड़ने के लिए कमर कसने में समर्थ होते हैं।

भारतेन्दु के आविर्भाव के समय देश का राजनीतिक क्षितिज कुछ ऐसा ही था। आर्थिक घुंघलका और सामाजिक रुढ़िअंधता की छटपटाहट का परिणाम था भारतेन्दु और उनका प्रभा मंडल, जिसने उस व्यग्रता को वाणी दी थी, तत्कालीन राजनीतिक समझ और राजनीतिक चेतना को स्वर दिया था और जातीय स्तर पर घर कर गये पराधीनता बोध को झकझोरा था।

भारतेन्दु ने अपने ७ वर्षों की मासूम आँखों से भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम देखा था और अपनी उन्हीं आँखों से उसका कातिलाना दमन भी देखा था। कम्पनी बहादुर के जालिमाने राज्य की समाप्ति और महारानी विक्टोरिया के मधुर आश्वासनों तथा लुभावने सपनों से भरे घोषणा पत्र को भी सुना था। एक ओर जुल्म सितम का अन्त और दूसरी ओर सुखचैन की बहाली। इतना जुल्म की जान ब्राइट को भी इस काल को "ए हंड्रेड यीअर्स आफ क्राइम" कहना पड़ा। इसी अनाचार युग के सम्बन्ध में सरजार्ज कार्नवस लीविस ने हाउस आफ कामन्स में १२ फरवरी १८५८ को कहा था, "मैं पूरे विश्वास के साथ कहता हूँ कि धरती पर आज तक कोई भी संभ्य सरकार इतनी भ्रष्ट, इतनी विश्वासघाती और इतनी लुटेरी नहीं पाई गयी।"

ऐसे शासन के अंत में भारतवासियों का सुख की सांस लेना और महारानी विक्टोरिया की सराहना करना स्वाभाविक था। परिणामतः भारतेन्दु के कवि दरबार में 'पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवौ सदा विक्टोरिया रानी।' जैसी समस्याओं की पूर्तियाँ की गयीं। यातायात में रेलों की शुरुआत पर लिखा गया —

धन्य सहबा जौन चलाइस रेल।

मानो जादू किहिस दिखाइस खेल।

किन्तु शीघ्र ही यह सुख स्वप्न टूट गया। महारानी के आश्वासन कोरे वादे निकले। लोगों ने देखा कि रेले अकाल पीड़ितों को अन्न पहुँचाने के लिए नहीं वरन् बन्दरगाहों तक कच्चा माल ढोने के

लिए हैं। कच्चा माल इंग्लैंड जाने लगा। देश के उद्योग और शिल्प को नष्ट करने का षडयंत्र आरम्भ हुआ। भारत को महज कृषि पर निर्भर रहने की विवशता के हाथों सौंप दिया गया जब कि १८४० में ही **माटगोमरी मार्टिन** संसदीय जांच समिति की रिपोर्ट इस खतरे की चेतावनी दे गयी थी —

"मैं यह नहीं मानता कि भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत जितना कृषि प्रधान देश है, उतना उद्योग प्रधान भी है, और जो उसे कृषि प्रधान देश की स्थिति तक लाना चाहते हैं, वे सम्यता के पैमाने पर उसका स्थान नीचे लाने की कोशिश करते हैं।"

यह चेतावनी आज तक हमें झकझोरती है। हम आज तक अपने को कृषि प्रधान मानते हैं। आखिर क्या हुआ कि हमारी मान्यता में इतना परिवर्तन हो गया। . . . हमें मात्र कृषिकर्म पर निर्भर रहने के लिए छोड़ दिया गया। आकाशी कृपा पर जीवित रहने वाली खेती हमारा साथ न दे सकी। परिणामतः अकाल पर अकाल पड़े। महामारी के हम शिकार हुए।

"मौटे तौर पर कहा जाय तो १९वीं सदी के अन्तिम तीस वर्षों में अकेले खाद्यान्नों की जितनी कमी हुई, वह सौ वर्ष पहले की तुलना में चार गुना अधिक और चार गुना ज्यादा व्यापक थी।" — **डब्लू. डिग्वी** — फ्रांस परस विट्रिश इंडिया १९०१।

डब्लू. एस. लिली ने अपनी पुस्तक "इंडिया ऐंड इट्स प्राबलम्स" में अकाल से होने वाली मौतों की संख्या — सन् १८५०-७५ के बीच ५० लाख तथा १८७५-१९०० के बीच १.५० करोड़ बतायी।

मार्टिन संसदीय आयोग की रिपोर्ट के ४० वर्ष के भीतर ही यह परिवर्तन हो गया। सन् १८८० में प्रकाशित अकाल आयोग की रिपोर्ट के निष्कर्ष के सम्बन्ध में रजनी पामदत्त ने "इंडिया टूडे" में लिखा। —

"१८८० में प्रकाशित आयोग की रिपोर्ट का निष्कर्ष यह था कि अकालों के विनाशकारी परिणामों का मुख्य कारण और राहत पहुंचाने के काम में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि यहां की विशाल जनता प्रत्यक्षरूप से कृषि पर निर्भर है और कोई ऐसा उद्योग नहीं है, जिसके सहारे आबादी का उल्लेखनीय हिस्सा काम चला सके।"

एक ओर देश दुर्भिक्ष और महामारी से जूझ रहा था और दूसरी ओर सरकार की विदेश नीति और साम्राज्यवादी दृष्टिकोण ने हमें और आर्थिक संकट में डाल दिया। विट्रिश राजद्रुत के अपमान के कारण भूदान को सबक सिखाया गया। उसकी चाय बगान लायक भूमि ले ली गयी। बर्मा के भी कुछ अंश को भारत में मिला लिया गया फिर भी बर्मा ने व्यापार की सुविधा नहीं दी, जबकि बर्मा, फ्रांस जर्मनी और इटली से व्यापार के सम्बंध में बातें आरम्भ कर चुका था। इस स्थिति का जायजा लेते हुए लार्ड डफरिन ने भारत सचिव को लिखा कि फ्रांसीसियों से बर्मियों की बात बने इसके पहले ही मैं बर्मा को हथियाने में संकोच न करूंगा। उधर रूसी भालू ने पंख फटकने का बहाना लेकर अफगानिस्तान से भी लड़ाई मोल ले ली।

भीतर अकाल और महामारी। बाहर-युद्ध। इस सबका खर्च भारत पर ही थोपा गया।

"... कोई आश्चर्य नहीं कि शाही प्रशासन के शुरु में १३ वर्षों के दौरान भारतीय राजस्व में ३ करोड़ ३० लाख पौंड से ५ करोड़ २० लाख पौंड प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई और सन् १८६६ से १८७० तक घाटे के रूप में एक करोड़ १५

लाख पौण्ड की राशि दर्ज की गयी । १८५७ से १८६० के बीच घरेलू ऋण के रूप में ३ करोड़ पौंड की राशि अंकित की गयी और इसमें तेजी से वृद्धि हुई, जबकि ब्रिटिश राजनेताओं को मितव्ययिता के लिए भारतीय हिसाब-किताब में विवेकपूर्ण जोड़तोड़ के जरिए वित्तीय मामले में कुशल होने के लिए ख्याति मिली ।" (एल. एच. जेक्स — "दि माइग्रेशन ऑफ ब्रिटिश कैपिटल" पृष्ठ २२३)

परिणाम स्पष्ट था, टैक्स बढ़ता चला गया । अकाल के बावजूद लगान में बढ़ोत्तरी हुई । इसके विरोध में उठे स्वर का गला घोट देने के लिए सन् १८७८ में बर्नार्डूलर प्रेस एक्ट आया । दूसरी ओर सामाजिक स्थिति इससे भी विषम थी । धार्मिक असहिष्णुता और भी कठोर हो गयी । विदेश यात्रा करने पर धर्म समुद्री पानी में नमक की पुतली की तरह गलने लगा । विधवा विवाह का वर्जन और बाल विवाह तथा बेमेल विवाह पारिवारिक संतुलन के लिए अभिशाप हो गया । धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक मत-मतान्तरों का प्रचार और उनका खण्डन-मण्डन ही प्रधान हो गया ।

इस विपत्ति और रुढ़िग्रस्त सामाजिक स्थिति के साथ ही भारतेन्दु जी की वैयक्तिक एवं पारिवारिक स्थिति पर भी एक नजर डाले बिना भारतेन्दु के मूल्यांकन के प्रति न्याय नहीं होगा ।

भारतेन्दु जी उस सेठ अमीचन्द की पांचवी पीढ़ी में पैदा हुए थे, जिसने अपनी सम्पत्ति और बुद्धि का इस्तेमाल बंगाल में अंग्रेजों का पैर जमाने के लिए किया था । उसने देशद्रोह के पैसे से अपनी तिजोरियाँ भरी, किन्तु क्लाइव ऐसे धूर्त ने अंत में उन्हें निराश ही किया । फिर भी अंग्रेज भारतेन्दु के परिवार पर भरोसा करते थे । १८५७ के विद्रोह के समय बनारस रेजीडेंसी का बहुत सा सामान भारतेन्दु के पिता बाबू गोपाल चन्द्र के पास अंग्रेजों ने सुरक्षा की दृष्टि से रखा था । ऐसे में भारतेन्दु का परिवार अंग्रेजों का कृपापात्र भी था और विश्वासपात्र भी ।

भारतेन्दु की विषम स्थिति थी, पारिवारिक स्तर पर वे "क्राउन" के विश्वास पात्र थे । परम वैष्णव कभी विश्वासघाती नहीं हो सकता । उनकी नैतिकता क्राउन के समक्ष नतमस्तक थी, पर वे देख रहे थे कि अंग्रेज देश के साथ विश्वासघात कर रहे हैं । यह स्थिति भी उनके लिए पीड़ाजनक थी ! भारतेन्दु को दोनों परिस्थितियों से जूझना पड़ा । उनके सम्पूर्ण कर्तृत्व को सरकस के खिलाड़ी की तरह सन्तुलन की कसी हुई डोर पर चलना पड़ा । एक साथ ही वे राजभक्ति और देशभक्ति दोनों का निर्वाह करते दिखायी पड़ते हैं । एक ही छन्द की पहली पंक्ति में वे "क्राउन" के वफादार दिखायी पड़ते हैं तो दूसरी पंक्ति में देश की आर्थिक स्थिति उन्हें सताती है ।

अंग्रेज राज सुख साज, सबै विधि भारी ।

पै धन विदेश चलि जात, यहै है ख़वारी ।

महारानी विक्टोरिया के पौत्र प्रिंस फ्रैडरिक के भारत आगमन पर जो कविता उन्होंने लिखी थी वह अंग्रेजों के प्रति वफादारी से सराबोर जरूर है, किन्तु राष्ट्र की पीड़ा और छटपटाहट की भी उसमें ध्वनि है ।

"दृष्टि नृपति बलदल दली दीना भारतभूमि

लाहि है आज अनंद अति तुव पद पंकज चूमि ।

सांचहु भारत में बढ़यो अचरज सहित अनन्द

निरखत पश्चिम में उदित आबु अपूरब चन्द ।

जैसे आतप तपित को छाया सुखद गुनात ।

जवन राज के अन्त तुव आगम तिमि दरसात

समजिद लखि विसनाथ दिंग परेहिऐ जो घाव ।

ता कहं मरहम सहस है तुव दरसन नरराव ॥

इतना होने पर भी इसी स्वागत गान में वह पुलिस और अदालत को नहीं भूले ।

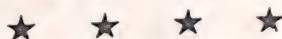
पहरु नहि कोउ लखि परै, होम अदालत बन्द ।

ऐसी निरुपद्रव करौ, राजकुंवर सुख चन्द ।

उनकी राजभक्ति अंग्रेज और अंग्रेजियत का हर स्थिति में विरोध करती है ।

भीतर-भीतर सब रस चूसै, बाहर से तनमन धन मूसै ।

जाहिर बातन में अतितेज, क्यों सखि साजन, नहिं अंग्रेज ।



सब गुरुजन को बुरो बतावै, खिचड़ी अलग पकावै ।

भीतर तत्व न, झूठी तेजी, क्यों सखि सजिन नहि अंग्रेजी ।

अपने देश के अतीत पर उन्हें गर्व था । वे बड़े गौरव के साथ कहते हैं: —

सबसे पहले जेहि ईश्वर धन बल दीनों ।

सबसे पहले जेहि सम्य विघाता कीनों ॥

सबसे पहले जो रुप रंग रस मीनों ।

सबसे पहले विद्या-फल जिन गहिलीनों ॥

इस स्वर्णित अतीत के बाद जब उनकी देश भक्ति वर्तमान को देखती है तो वह तिलमिला उठती है —

जो भारत जग में रहयो सबसे उत्तम देस

ताही भारत में रहयों अब नहि सुख को लेस ।

उनकी देशभक्ति असहाय और निरुपाय होकर भगवान के चरणों में चली जाती है —

सब विधि नासी भारत प्रजा, कहुँ न रहयों अवलम्ब अब

जागो-जागो करुनायतन फेर जागिहौ नाथ कब ?

(२)

चांदी के पालने में भूलने वाला भारतेन्दु का बचपन सामन्ती वातावरण में ही फूला फला था । कहते हैं कि उनके विवाह में कुंए में चीनी धोलकर बारात का स्वागत किया गया था । बारात तीन मील लम्बी थी । ऐसी सम्पन्नता और सामन्ती वृत्ति राष्ट्रीय चेतना को समझने में कहीं भी भारतेन्दु के आड़े नहीं आयी । वैभव की दीवारें उनकी समझ को घेर नहीं पायीं । आम आदमी से परिचित होने और देश दर्शन की लालसा उनकी बचपन से बनी रही । ग्यारह वर्ष की अवस्था से ही उन्होंने देशाटन आरम्भ कर दिया था । चुनार, कानपुर, लखनऊ, सहारनपुर, हरिद्वार, अमृतसर, लाहौर, दिल्ली, आगरा आदि की उन्होंने आँखें खोलकर यात्राएँ की थी । जन जीवन को उन्होंने करीब से देखा था । उनके यात्रा वर्णनों में ऐसा हंसमुख और प्रसन्न गद्य दिखायी देता है जो उनके मस्त लेकिन

जागरूक व्यक्तित्व का परिचायक है। काशी नरेश के साथ वैद्यनाथ धाम की यात्रा की एक छवि देखिए: —

“श्रीकाशी नरेश के साथ वैद्यनाथ को चले। चारों ओर हरी घास का ऊपर रंग-रंग का बादल, बगसर के आगे बड़ा भारी मैदान पर सब्ज काशनी मखबल से चढ़ा हुआ। सांझ होने से बादल के छोटे-छोटे टुकड़े लाल पीले नीले बनारस कालेज की रंगीन शीशे की खिड़कियों के समान थे... पटना पहुंचते पहुंचते पानी बरसने लगा बस पृथ्वी आकाश सब नीर ब्रह्ममय हो गये। इस धूमधाम में भी रेल कृष्णाभिसारिका-सी अपनी धुन में चली ही जाती थी। सच है, सावन की नदी और दृढ़ प्रतिज्ञा उपयोगी और जिनका मन प्रीतम के पास है वे कहीं रुकते हैं? राह में बाजे पेड़ों में इतने जुगनू थे कि पेड़ शवेचिरागां बन रहे थे।... सेकेंड क्लास की गाड़ी ऐसी टूटी फूटी कि जैसी हिन्दुओं की किस्मत और हिम्मत। दानापुर से दो चार नीम अंग्रेज “लेडी नहीं सिफ लैड” मिले, उनको बेतकल्लुफ उसमें बैठा दिया था। सचमुच अब तो तपस्या करके गोरी कोख से जन्म लें तो संसार में सुख मिले। खैर इसी सात पांच में रात कट गयी। बादल के परदों को फाड़-फाड़ कर उषादेवी ने ताकड़ाक आरम्भ कर दी। परलोक गत सज्जनों की कीर्ति की भाति सूर्यनारायण का प्रकाश पिशून मेघों के बागाडम्बर से घिरा हुआ दिखलाई पड़ने लगा। प्रकृति का नाम काली से सरस्वती हुआ। ठंडी ठंडी हवा मन की काली को खिलाती हुई बहने लगी।

मुझे तो लगता है कि कविता की अपेक्षा भारतेन्दु के गद्य में उनके व्यक्तित्व की रेखाएं अधिक उभरी हैं। उनकी सैलानी मस्त तबीयत तथा गहरी मानवता और प्रकृति प्रेम के साथ ही उनके फक्कड़ मिजाज का बनारसी अंदाज जितना गद्य में दिखायी देता है। उस सीमा तक कविता में नहीं।

जनकपुर की यात्रा के समय उनका साथ अंग्रेजों से हो गया। उस समय अंग्रेज हौवा समझे जाते थे, पर भारतेन्दु बाबू कब दबने वाले? वे लिखते हैं।

“राह में रेल पे कुछ कष्ट हुआ, क्योंकि सैकेंड क्लास में तीन चार अंग्रेज थे। बस इसमें अकेला, “जिमि दसनन मह जीम बिचारी,” को कष्ट हुआ ही चाहे। जैसे उनको पान सुपारी की पचापच से नफरत वैसे ही, इधर चुरट के धूम से। मगर बाजे तो बड़े सभ्य और दिल्लीगीबाज मिलते हैं। अब की बरसात में एक साहब सोये हुए थे, मैं भी था। रात में पानी की बौछार भीतर आयी। साहब ने जानबूझकर पूछा, “यह पानी क्या आपने बहाया है। (पेशाब किया) (हैब यू मेड वाटर) मैंने कहा —मैंने नहीं भगवान ने (नाट आई बट गाड)

भारतेन्दु की जिन्दादिली और दिलफेंक मिजाज जैसा गद्य में उभरा है, वैसा पद्य में नहीं, सरयूपार की यात्रा का एक दिलचस्प वर्णन देखिए: —

“बाहरे बस्ती। अगर यही बस्ती है तो उजाड़ किसे कहेंगे। बैसवारे के पुरुष सब पुरुष, सब भीम, सब अर्जुन, सब सूत पौराणिक सब बाजिद अली शाह —नई सभ्यता अभी उधर नहीं आई है। रूप कुछ ऐसा नहीं, पर स्त्रियाँ नेत्र नचाने में बड़ी चतुर। यहां के पुरुषों की रसिकता, मोटीचाल, सूरती और खड़ी मोछ में छिपी है और स्त्रियों की रसिकता मैले वस्त्र और सुप ऐसे नय में। मुझे उनके सब गीतों में —बोलो प्यारी सखियां सीताराम राम राम —यही अच्छा मालूम हुआ। बैलगाड़ी की डाक में बैठे सोचते थे कि काशी में रहते तो बहुत दिन हुए पर शिव आज ही हुए।”

पत्र जीवन के अत्यन्त आत्मीय क्षणों की उपलब्धि होते हैं। भारतेन्दु का पत्र साहित्य भी उनकी आत्मीयता, सरलता निष्कलता और उनके मौजी स्वभाव को बड़े सहज भाव से उदघाटित करता है। अपने निकट मित्रों से लेकर भारतेन्दु जी ने देशी विदेशी अनेक विद्वानों को पत्र लिखे हैं। इनमें से कुछ ही अब उपलब्ध हैं।

जिन लोगों को वे बहुधा लिखा करते थे उनमें हैं:—सर्वश्री गोस्वामी राधाचरण, प्रेमधन जी, कविराज श्यामलदास, काशिराज ईश्वरीप्रसाद सिंह, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजेन्द्रपाल मिश्र, केशवचन्द्र सेन, कृष्णदास पाल, बंकिम बाबू आदि।

भारतेन्दु ऐसा व्यक्ति तो अंध रुढ़ियों के खिलाफ खड़गहस्त था, परम्पराएं खुद उससे किस प्रकार चिपकी थी, यह कहानी इन पत्रों के "श्रीनामों" और इनमें व्यवहृत कागजों से स्पष्ट हो जाती है।

ग्रह नक्षत्रों के अनुसार ही वह प्रतिदिन कागजों का व्यवहार करते थे रविवार को गुलाबी कागज पर लिखते थे और उसपर यह मुद्रित रहता था:—

भक्त कमल दिवाकराय नमः, सूर्यवंशविकासाय श्री रामायनमः

मित्र पत्र बिन हिय लहत छिनहूँ नहि विश्राम।

प्रफुलित होत कमल जिस नित रवि उदय ललाम ॥

सोमवार को ग्रह के अनुसार सफेद कागज व्यवहार में लाया जाता था उस पर छपा रहता था:—

श्री कृष्णचन्द्राय नमः, श्री चन्द्रचूडाय नमः

ससि कुल कैरव सोम जय कलानाथ द्विजराज।

श्रीमुखचन्द्र चकोर, श्री कृष्ण चन्द्र महाराज।

बंधुन के पत्रहि कहत अर्घ मिलन सब कोय।

आपहु उत्तर भेजहु पूरो मिलनौ होय ॥

मंगल ग्रह के अनुसार मंगलवार को लाल कागज पर वे लिखते थे। उस पर छपा रहता था:—

मंगल भगवान विष्णु, मंगल गुरुध्वजः

मंगल पुण्डरीकाक्ष, मंगलायतानों हरिः

बुधवार को कागज हरा होता था और उस पर छपा रहता था:

बुधजन दर्पणा में लखत दृष्टि वस्तु को मित्र।

मन अनदेखी वस्तु को यह प्रतिबिम्ब विचित्र ॥

गुरुवार को हलके पीतवर्णी कागज पर यह शीर्षक रहता था।

श्री गुरुगोविन्दाय नमः श्री गुरुवे नमः

आशा अमृत पात्र प्रिय विरहातम हिय छत्र

बचन चित्र अवलंबप्रद कारज साधक पत्र।

शुक्रवार का कागज फिर सफेद होता था और उस पर अंकित रहता था:—

कवि कीर्ति यशसे नमः

दूर रखत कर लेत आवरन हस्त रखि पास ।
जानत अन्तरभेद जिप पत्रअधिक रसराज ॥
उकदा कशाये हाले दिले दोस्तद्वार है ।
तकरिर की है सूरत हैरत में यार है ॥

शनिवार को जो कागज प्रयोग किया जाता था उसका रंग नीला होता था और उस पर छपा रहता था: —

आनंद कन्दाय नमः श्याम श्यामाम्यं नमः
और काज सनि लिखन में, होय न लेखनि मंद
मिले पत्र उत्तर अवसि, यह विनवत हरिचन्द्र ।

इन पत्रों में भारतेन्दु की संघर्ष शील मानसिकता, उनके निजी जीवन की उदापोहात्मकता और साहित्य निर्माण के प्रति उनकी व्यापक जिज्ञासा के परिचय मिलते हैं। कुछ पत्र तो उनके इतने आत्मीय हैं कि वे उनकी संक्षिप्त आत्मकथा ही बन गये हैं। ऐसीही एक पत्र उन्होंने अपने अनुज गोकुल चन्द्र को लिखा था।

भारतेन्दु के ही अनुसार इस अंतरंग पत्र को लिखने में उन्हें चार दिन लग गये थे। पेन्सिल से लिखे इस पत्र को उन्होंने कलेजा फाड़कर लिखा। पूरा पत्र उपलब्ध नहीं है। समय की धूल से दबते-दबते लिखावट भी मद्धिम हो गयी है। इसकी कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं: —

... विदेश से लौटकर हम न आवें तो इस बात का जो हम लिखते हैं ध्यान रखना। ध्यान क्या अपने पर फर्ज समझना। पर हम जीते-जागते फिरंगे चिन्ता न करना केवल संयोग के बश होकर यह लिखा है। यदि ऐसा हो तो दो चार बातों का अवश्य ध्यान रखना। यह तुम जानते हों कि तुम्हारी भाभी की हमें कुछ चिन्ता नहीं, क्योंकि तुम्हारे जैसा देवर जिनका वर्तमान है उसको और क्या चाहिए। दो बात की हमको चिन्ता है। एक कर्ज, दूसरी मल्लिका की रक्षा। थोड़ी सी डिगरी जो बच गयी है, उसे चुका देना और जीवन भर दीन हीन मल्लिका की जिसको हमने धर्मपूर्वक अपनाया है रक्षा करना। कृष्ण की ऊँची शिक्षा संस्कृति, अंग्रेजी और बंगला की है। जो हमारे या बाबू जी के ग्रंथ बेछपे रह जायें वे छापें।"

भारतेन्दु जी का यह पत्र उनकी वसीयत है, उनकी व्यथा कथा है, मल्लिका के प्रति उनके लगाव और आत्मीयता की स्वीकारोक्ति है, संस्कृत-अंग्रेजी के साथ बंगला के प्रति उनके प्रेम का भी द्योतक है।

एक दूसरा पत्र उन्होंने अपने भतीजे कृष्णचन्द्र को लिखा था। पुत्र के अभाव में यह भतीजा ही उनका सबकुछ था। सारी आत्मीयता एवं हार्दिकता उन्होंने इसमें उड़ेल दी है।

"चिरंजीव कृष्ण, प्यारे कृष्ण राजा कृष्ण, बाबू कृष्ण, आँखों की पुतली तुम्हारा जी कैसा है। सर्वो मत खाना रसोई रोज खाते रहना। तुमको छोड़कर यदि हमारा अख्तियार होता तो क्षण भर बाहर नहीं आते, क्या करें लाचारी है, झक मारते हैं। कृष्ण तुम्हारा अभी कोमल स्वच्छ चित्त है। तुम हमारे चित्त को ध्यान से जान सकते, किन्तु बुद्धि और वाणी अभी स्फुर्तित नहीं है। इससे तुम और किसी पर उसे प्रकट नहीं कर सकते हों।"

जो पत्र उन्होंने अपने मित्रों और विद्वानों को लिखे हैं, उनमें उनके विद्या व्यसनीस्वभाव की झलक मिलती है। अपने लेखन के लिए सामग्री जुटाने की प्रयत्नशीलता के साथ साथ उनकी जिज्ञासुवृत्ति भी इन पत्रों में दिखाई देती है।

वे महाप्रभु श्री चैतन्य देव के जीवन पर एक नाटक लिखना चाहते थे शायद लिखा भी हो। पर

उसकी पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं है । . . . महाप्रभु के जीवन के प्रति कुछ जिज्ञासाएं इस पत्र में की गयी हैं । पत्र गोस्वामी राधाचरण को लिखा गया था ।

"पूज्य चरणेषु,

श्री रुप सनातन गोस्वामी जी की जाति क्या थी ? श्री महाप्रभु का जीवन चरित्र बंगला से हिन्दी किया है । उसमें यवन लिखा है । मैंने कायस्य सुना है । हमारे निज सम्प्रदाय के ग्रंथों में भी कायस्य लिखा है । इसका उत्तर अतिशीघ्र दीजिए । श्री शचिदेवी और विष्णुप्रिया कब तक जीवित रहें यह भी लिखिएगा ।

दासानुदास

हरिश्चन्द्र

इस सन्दर्भ में एक दूसरा पत्र और है ।

शतकोटि दण्डवत प्रणामानंतर निवेदयति, बाबू राजेन्द्रपाल मित्र ने एक प्रबन्ध में इस बात का खंडन किया है कि महाप्रभु जी मध्वयतावलंबी थे । इनमें प्रमाण उन्होंने यह दिया है कि यत् श्रीधर विरुद्ध तन्नास्माकमादणीयं । कहते हैं कि मध्व मत के ग्रंथ ही श्रीधर के विरुद्ध हैं । इसका क्या उत्तर है ? वैष्णवदीक्षा आपने कब और किससे लिया था ? मैं इन दिनों महाप्रभु के चरित्र का नाटक लिखता हूँ, इसी के लिए इन बातों के जानने की जल्दी है ।"

यह पत्र वस्तुतः भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व की आड़ी तिरछी रेखाओं में रंग भरते हैं । उनका बहुआयामी रचनाकार उन पत्रों में दिखायी पड़ता है ।

(8)

उनका अध्ययन केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित नहीं था । समाज को बहुत दूर तक देखने की उनमें ललक थी । इसी का परिणाम थी वे यात्राएं जिन्हें उन्होंने रेल के सेकेण्ड क्लास से लेकर बैलगाड़ी तक से की थी । (फर्स्ट क्लास का टिकट उन दिनों राजाओं नवाबों और अंग्रेजों के लिए ही रिजर्व रहता था) ।।

बैलगाड़ी की यात्रा में खाये हिचकोरे उन्हें बहुत दिनों तक याद रहे । उन्होंने लिखा था: —

हिलत हुलत चलत गाड़ी आवै,

झुलत सिर टुटत रीढ़ कमर झोका खावै ।

इन यात्राओं का परिणाम यह था कि उनकी अभिजात्य रुचि लोकरुचि की ओर आकृष्टि हुई । वे मूलतः कवि थे । उनका कवि कभी यह मानने को तैयार नहीं था कि ब्रजभाषा के अतिरिक्त भी किसी और भाषा में कविता हो सकती है । उनकी काव्य प्रतिभा प्राचीन परम्परा में आकण्ठमग्न थी । कहीं वह सूर के स्वर में स्वर मिलाकर गाती थी: —

उधौ जो अनेक मन होते ।

तो इक श्याम सुन्दर कौ देते, इक लै जोग संजोते ?

हंया लो हुलौ एक ही मन सो, हरि लै गये चुराई

हरी चन्द कोऊ और खोजि के, जोग सिखावहु जाई ।

★

★

★

सखी यह नैना बहुत बुरे ।
 तब सो भय पराए हरि सों जब सों जाई जुरे ॥
 मोहन के रस बस है डोलत तलफत तनिक दुरे ।
 मेरी सीख प्रीत सब छाड़ी ऐसे ये निगुरे ॥
 जग खीभयों बरज्यों पै ए नहि हठ सों तनिक मुरे ।
 "हरिश्चन्द्र देखत कमलन से विष के बुते छुरे ॥

कहीं रसखानि जैसा ब्रजभूमि के प्रति आकर्षण है, मोह है, लगाव है । छन्द भले ही दूसरा हो पर भावव्यक्ति वैसी ही है: —

ब्रज की लता पता मोहि कीजै ।
 गोपी पद पंकज पावन की रस जामैं सिर भीजै ॥
 आवत जातकुंज की गलियन रुप सुधा नित पीजै ।
 श्री राधे-राधे मुख यह बर हरीश्चन्द्र को दीजै ॥

कहीं एक समर्पित पुष्टिमार्गी की तरह — "पोषणै तदनुग्रह" में विश्वास करते हुए भारतेन्दु भगवान की लीला में प्रवेश पाते हैं । वहां अहंकार उनसे छूट जाता है और रह जाती है दीनता ।

श्री बल्लभ बल्लभ कहौ, छोड़ उपाय अनेक ।
 जानि आपनो राखि है, दीनबन्धु को टेक ।
 साधन छाडि अनेक विधि, परिहु द्वारे आये ।
 आपनो जानि निबाहि है, करिकै कोऊ उपाय ।
 श्री जमुना जलपान करु, वसु वृन्दावन धाम ।
 मुख में महाप्रसाद रखूं, लै श्री बल्लभ नाम ।
 वृजरज में लोटत रहा, छाड़ि सकल जंजाल ।
 चरन राखि विश्वास दृढ भजु राधा गोपाल ।

कहीं धनानन्द के प्रेम की टीस और छटपटाहट भारतेन्दु की अपनी हुई दिखाई देती है । वियोगजन्य पीड़ा और तड़फती वेदना ऐसी जो सही नहीं जाती । प्रेमिका के दर्शन की लालसा मात्र स्वप्न रह जाती है ।

काले परे कोस चलि थक गये पाय
 सुख के कसाले परे, ताले परे नस के ।
 रोय-रोय नैनन में हाले परे, जाले परे
 मदन के पाले परे प्राण पर-बस के ।
 "हरिश्चन्द्र" अंगहू हवाले परे रोगन के
 सोगन के भाले परे तन बल खसके ।
 पगन में छाले पर नाँधिबे को नाले परे,
 तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के ।

★ ★ ★

इन दुखियान को न चैन सपनेहु मिल्यौ,
 तासों सदा व्याकुल विकल अकुलायेगी ।
 प्यारे हरिश्चन्द्र जू की बीती जानि औध प्राण,
 चाहत चले पै ये तो संग ना समायगी ।

देख्यों एक बारहु न मैं भरि तोहि यातें
 जौन-जौन ज्यैहों ताहां पछतायेगी ।
 बिना प्रान प्यारे भये दरस तुम्हारे हाय
 मरेहु पै आंखे ये खुली ही रह जायेगी ।

(५)

रीतिबद्ध काव्य रचना को छोड़कर मध्ययुगीन सभी काव्य प्रवृत्तियों को अपनी रचना प्रक्रिया में समेटते हुए भी भारतेन्दु की उन्मुक्त प्रकृति उस कविता संसार से भाग निकलना चाहती थी, क्योंकि ऐसी काव्य परम्परा की पप्पड़ छोड़ती बीमारों उनकी काव्य प्रतिभा को लोक साहित्य और लोक गीत के खुले वातावरण में जाने से रोकने में सर्वथा असमर्थ थीं । दूसरी ओर उनकी मानसिकता जन जीवन से अलग थलग पड़े साहित्य को जनता से जोड़ना चाहती थी । वह जंगल में उगे कैक्टस को लाकर साहित्य के झाड़ूंग रुम को सजाना चाहते थे । ज्यादा सही यह कहना होगा कि साहित्य के झाड़ूंग रुम को वे विलास भवन से निकालकर गांव गिराव की उस खुरदुरी धरती पर लाना चाहते थे जहां लोक रस की धारा स्वतः प्रवाहित होती है । इसके लिए उन्होंने मई १८७९ ई. की कविवचन सुधा में एक लम्बी विज्ञप्ति प्रकाशित करायी थी । शिवनन्दन सहाय कृत भारतेन्दु के जीवन चरित्र से यहाँ उसका कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है ।

“भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आवकल सोच रहे हैं, उनमें एक और उपाय होने की आवश्यकता है । इस विषय के बड़े-बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किन्तु वे जन साधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते । इसके हेतु मैंने यह सोचा है कि जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बने और वे सारे देश गांव गांव में साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना शीघ्र ग्राम गीत फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है, उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता । इससे साधारण लोगों के चित्त पर भी इन बातों का अंकुर जमाने को इस प्रकार से जो संगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ संस्कार बदल जाने की आशा है । इसी हेतु मेरी इच्छा है कि मैं ऐसे गीतों का संग्रह करूं और उसको छोटी-छोटी पुस्तक में मुद्रित करूं ।”

इस विज्ञप्ति से साफ जाहिर है कि अच्छा से अच्छा साहित्य जो जन साधारण में दृष्टिगोचर नहीं होता, देश के लिए सम्प्रति बेकार है । आम आदमी को छूने वाला साहित्य लिखा जाना चाहिए । लिखना ही पर्याप्त नहीं है, उसका प्रचार भी होना चाहिए ।

भारतेन्दु सुदृढ़ और प्रौढ़ साहित्यिक परम्परा से जुड़े व्यक्ति थे । संगीत का अभिजात्य शास्त्रीय स्तर उनकी रुचि में रचा बसा था । फिर भी उन्होंने लोक साहित्य की शक्ति और उसकी अनिवार्यता को पहचाना ।

उन्होंने “पक्के गाने” सुनने वालों को सलाह दी कि वे लोक धुनों में भी रस लें । उनमें लोक साहित्य को जन जागरण का माध्यम बनाने की व्यग्रता दिखायी दी । उन्होंने इस साहित्य के प्रचार एवं प्रसार के सम्बन्ध में लिखा है —

“जिन लोगों का ग्रामीणों में सम्बन्ध है, वे गांव में ऐसी पुस्तक भेज दें । जहां कहीं ऐसे गीत सुने उसका अभिनन्दन करें । इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे-छोटे छन्दों में और साधारण भाषा में बने, वरंच गंवारी भाषा में और स्त्रियों की

भाषा में विशेष हों। कजली, ठुमरी, खेमका, कहरवा, अद्दा, चैती, होली, सांझी, लम्बे लावनी, जाँते के गीत, बिरहा, चनेनी, गजल इत्यादि ग्राम गीतों में इनका प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो-अर्थात् पंजाब में पंजाबी, बुन्देलखण्ड में बुन्देल खंडी, बिहार में बिहारी-ऐसे देशों में जिस भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बनें।''

इस प्रकार जन साहित्य के लेखन के लिए भारतेन्दु अपने युग के लेखकों को ही नहीं प्रोत्साहित करते, वरन् आगे आने वाली पीढ़ी के लिए भी एक नया आयाम खोलते हैं। पाठकों की तलाश के लिए भी वे व्यग्र मालूम होते हैं। वे लोक गायकों की बोली ही बनाने के लिए व्याकुल नहीं दिखायी देते। वरन् श्रोताओं की तैयारी की भी चेष्टा करते हैं। उन्हें खुद ऐसा भान हो गया था कि जो हमारी साहित्यिक परम्परा है, वह दमतोड़ रही है। वह आम आदमी के लिए निरर्थक हो जा रही है। इसलिए साहित्य को जनता में जाना चाहिए। क्या ऐसा हो सकेगा? या जनता के बीच लहरा रही जन साहित्य की धारा में से नयी ऊर्जा के साथ नयी साहित्यिक परम्परा का जन्म होना चाहिए।

एक सूखता हुआ वृक्ष किसी नये वृक्ष को जन्म नहीं दे सकता। नये स्वस्थ वृक्ष के लिए आवश्यक है कि उसका शोषित बीज धरती में डाला जाये। धरती में ही उस बीज को वृक्ष बनाने की ताकत होती है। इस सत्य को भारतेन्दु ने अच्छी तरह पहचाना था। एक मरी हुई साहित्यिक परम्परा के नये बीज को शोषित भी किया उसे धरती में बोकर उगाया भी उसके अनुकूल नयी भाषा भी दी।

परिणामतः भारतेन्दु और भारतेन्दु मंडल के सभी लोगों ने लोक साहित्य की रचना आरम्भ की। जीवन से अधिक जुड़े होने के कारण लोक साहित्य में लोक समस्याओं की धारदार अभिव्यक्ति स्वाभाविक है।

यही कारण है कि उस युग की सभी समस्याएं लोकगीतों का विषय बनीं। सामाजिक अन्धरुद्धियों से लेकर राजनीतिक कुस्थितियों तक पर इनके माध्यम से निर्मम प्रहार किये गये। 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित यह होली काफी मशहूर है:—

डफ बाज्यो भारत भिखारी को ।
केशर रंग गुलाल भूलि गयो,
कोऊ पृच्छत नहिं पिचकारी को ।
बिन धन अन्न लोग सब व्याकुल ।
भई कठिन विपत्त नर नारी को ।
चहुं दिसि काल प्रसो भारत में
भय उपन्यो महामारी को ।

एक होली स्वयं भारतेन्दु की देखिए। एक ओर साम्राज्यवाद का वैभव और विलास में डूबा रूप है, तो दूसरी ओर निरीह जनता की बरबादी का चित्र है।

भारत में मची है होरी ।
इक ओर भाग-अभाग एक दिसि, होय रही झकझोरी ।
अपनी अपनी जय सब चाहत, होइ परी दुहं ओरी ।
दुन्द सखि बहुत बढ़ोरी ॥
धूर उड़त सोई अन्न उड़ावत, सबको नयन मरोरी ।
दीन दसा अंसुवन पिचकारिन सब खिलार भिजयो री ॥
भीञि रहे भूमि लटोरी ।

भारतेन्दु जी ने केवल लोकगीतों की रचना ही नहीं की, लावानी बाजों के बीच बैठकर वे गाते भी थे। इससे लोगों का आकर्षण बढ़ा और लोक-साहित्य को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

(६)

काव्य भाषा के लिए ब्रजभाषा का चमत्कार भारतेन्दु काल तक और उसके बाद भी हिन्दी रचनाकारों पर छाया था। भारतेन्दु ने खड़ी बोली में नई चाल की रचनाएं तो लिखी थी, पर उन्हें खड़ी बोली में काव्य रचना की सफलता पर खुद विश्वास नहीं था। इसके लिए लगता है, उन्हें प्रोत्साहन नहीं मिला।

भारत मित्र में प्रकाशनार्थ उन्होंने खड़ी बोली की अपनी कुछ रचनाएं भेजी थी। सितम्बर सन् १८८१ के भारत मित्र के अंक में वे छपीं थी। साथ में उनका यह पत्र भी छपा कि "प्रचलित साधु भाषा में कुछ कविता भेजी है। देखिएगा कि इसमें क्या कसर है और किस उपाय के आलम्बन करने से इसमें काव्य सौन्दर्य बन सकता है। इस सम्बन्ध में सर्व साधारण की सम्मति ज्ञात होने से आगे से वैसा परिश्रम किया जायेगा।"

इस मन्तव्य से स्पष्ट है कि वह कविता के लिए साधुभाषा और जन भाषा के हिमायती थे। इस जन भाषा के लिए वे प्रयत्न करने के लिए भी तैयार थे, जब कि कविता के लिए उन्हें किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ता था। वे आशुकवि थे। जब मौज आयी, कविता हो गयी। घनानन्द की यह उक्ति कि लोग हैं लाग कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।" — भारतेन्दु पर बिल्कुल चरितार्थ होती है। . . . भारतेन्दु का निर्माण ही भारतेन्दु की कविता कर रही थी। . . . ऐसा व्यक्ति भी साधुभाषा में रचना के लिए व्यग्र था।

वस्तुतः भाषा के मामले में भारतेन्दु की अवधारणा काफी साफ थी। वे निज भाषा के विकास के हिमायती थे। उनका नारा था —

निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल॥

उनकी "निजभाषा" केवल हिन्दी नहीं थी। वह बंगालियों के लिए बंगला, मराठियों के लिए मराठी, पंजाबियों के लिए पंजाबी थी तो दूसरे के लिए दूसरी थी। भाषा सन्दर्भ में उनका दिमाग बहुत साफ था: —

प्रचलित करहु अहान में, निज भाषा करिजल।

राजकाज दरबार में, फैलावहु यह रत्न।



भाषा सोघहु आपनी, होई सबै एकत्र।

पढ़तु पढ़वहु लिखहु मिलि, छपवावहु कछु पत्र।

सभी भाषा की उन्नति चाहते हुए भी वे उर्दू के कुछ खिलाफ लगते हैं। इसके दो मुख्य कारण एक तो भाषाई सन्दर्भ में उनके परम विरोधी शिवप्रसाद "सितारे हिन्द" का उर्दू के प्रति लगाव। उनका व्यक्तिगत विरोध उर्दू के दुराव का कारण बना। दूसरे उर्दू भाषी लोगों की साम्प्रदायिकता भी उन्हें उर्दू से दूर खींच ले गयी। यद्यपि वे स्वयं उर्दू में कविताएं लिखते थे। उनका उपनाम "रसा"

था। इन उर्दू रचनाओं में भी उनकी हार्दिकता और गम्भीरता किस हद तक थी, इसका एक ही उदाहरण काफी है।

तेरी रहमत का उम्मीदवार आया हूँ,
सर ढाये कफन से शर्मसार आया हूँ
आने न दिया बारे गुनह ने पैदल,
ताबूत में कांधे पर सवार आया हूँ।

उर्दू के प्रति इतना व्यक्तिगत लगाव होने के बाद भी वह उर्दू की मौत पर स्यापा पड़ते हैं। अरबी, फारसी, पश्तो, पंजाबी आदि कई भाषाएँ उर्दू को रो रही हैं: —

हे हे उर्दू हाय-हाय। कहाँ सिधारी हाय-हाय ॥
मेरी प्यारी हाय-हाय। मुंशी मुल्ला हाय-हाय ॥
बल्ला बिल्ला हाय-हाय। रोयें पीरे हाय-हाय ॥
डाढ़ी नोचे हाय-हाय। दुनिया उल्टी हाय-हाय ॥
रोजी बिल्टी हाय-हाय। सब मुख्तारी हाय-हाय ॥
किसने मारी हाय-हाय। खबरनसीबी हाय-हाय ॥
दांत पीसी हाय-हाय। एडिटर पौसी हाय-हाय ॥
बात फरोशी हाय-हाय। वह लस्सानी हाय-हाय ॥
चरब जबानी हाय-हाय। शोख बयानी हाय-हाय ॥
फिर नहीं आनी हाय-हाय ॥

भारतेन्दु उर्दू वालों की साम्प्रदायिकता से बेहद दुखी थे। वे इसे देश हित के विरुद्ध समझते थे। उन्होंने मुसलमान भाइयों को सलाह दी थी: —

"मुसलमान भाइयों को भी उचित है कि इस हिन्दुस्तान में बसकर वे लोग हिन्दुओं को नीचा समझना छोड़ दें। ठीक भाइयों की भाँति हिन्दुओं से बरताव करें, ऐसी बात जो हिन्दुओं का जो दुखाने वाली हो, न करें। घर में आग लगे तब जिठानी-दयोरानी को आपस में डाह छोड़कर वह आग बुझानी चाहिए। जो बात हिन्दुओं को नहीं मयस्सर है कर्म के प्रभाव से मुसलमानों का सहज प्राप्त है। उनमें जाति नहीं, खाने पीने में चौका चूल्हा नहीं, विलायत जाने में रोक टोक नहीं। फिर भी बड़े सोच की बात है कि मुसलमानों ने अभी तक अपनी दशा नहीं सुधारी। अभी तक बहुतों को यही ज्ञात है कि दिल्ली लखनऊ की बादशाहत कायम है। यारों वे दिन गये। अब आलस हठधर्मी यह सब छोड़ो। चलो हिन्दुओं के साथ तुम भी दौड़ोगे। एक-एक दो होंगे। पुरानी बातें दूर करो। ... अपने लड़कों को ... अच्छी से अच्छी तालीम दो। पिनशिन और वजीफा या नौकरी का भरोसा छोड़ो। लड़कों को रोजगार सिखलाओं। विलायत भेजो। छोटपन से मेहनत करने की आदत दिलाओं। सौ महलों के लाड़प्यार, दुनिया से बेखबर रहने की राह मत दिखलाओ।"

इतना होने पर भी वे हिन्दू मुस्लिम का रिश्ता "दयोरानी जेठानी का ही मानते थे। वे हिन्दू मुसलमानों को आपस में लड़ाने की अग्रजों की नीति को अच्छी तरह समझते थे। अन्त तक वे जातीय एकता के लिए प्रयत्नशील रहे। इस जातीय एकता की भावना का आधार उनकी व्यापक राष्ट्रीयता थी, जो सर्वधर्म सम भाव पर आधारित थी। किसी भी धर्म की अच्छाई को वे नजरअंदाज नहीं करते थे। उन्होंने कुरान का भी हिन्दी में अनुवाद किया था। उनकी धार्मिक सहिष्णुता कबीर, दादू, नानक रैदास आदि को भी परम वैष्णव मानती थी।

वस्तुतः साहित्य साधना से अधिक समाज हित साधना की ओर उनका ध्यान था। उनकी अधिकांश साहित्य साधना समाजहितसाधना का माध्यम बनी। उनके लेखन का मुश्किल से दस प्रतिशत स्वयं सुखाय होगा, शेष तो देशजन हिताय था। उनकी यही प्रकृति उनके नाटकों के निर्माण के मूल में थी। सामाजिक कुरीतियों और पश्चिमी सभ्यता की भौड़ी नकल करने वाले उनके नाटकों के विषय बनें। उन्होंने विधवा विवाह के समर्थन, बेमेल विवाह का विरोध, मांस खाने के निषेध आदि पर नाटक लिखे। जिनमें नई रोशनी के बाबुओं की मिट्टी पलीद की, पोगा पंथियों की भद्द उड़ायी।

नाटक एक ऐसी विधा है जिसमें सभी ललित कलाओं का समावेश हो जाता है, इसीलिए उसमें मनोरंजकता और सभी सामाजिक संदर्भों को छूने की ताकत अधिक होती है। दूसरे नाटक के माध्यम से हम अतीत को वर्तमान में देखते हैं। हम देखते हैं कि हरिश्चंद्र शैब्या से कफन मांग रहे हैं। अतीत की गौरवगाथा का प्रत्यक्ष दर्शन कराने और वर्तमान की उद्पीड़क स्थिति पर उत्तेजना पैदा कराने के लिए नाटक से बढ़कर साहित्य की कोई दूसरी विधा नहीं है। इसलिए एक ओर उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से बीते गौरव को दिखा एक मरी हुई जाति में प्राण फूँका और दूसरी ओर "भारतदुर्दशा की तस्वीर दिखाकर कुछ करने की प्रेरणा दी।

और वह भी ऐसे समय में जब लोगों को मालूम ही नहीं था कि नाटक किसे कहते हैं। सत्य हरिश्चंद्र नाटक में वे लिखते हैं कि "यहां के लोग यह नहीं जानते कि नाटक किस चिड़िया का नाम है।" इसी से उन्होंने यह बताना आवश्यक समझा कि हमारे यहां कैसे-कैसे नाटक थे। उनके इस प्रयत्न ने संस्कृत और प्राकृत के अच्छे नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया। मुद्राराक्षस, रत्नावली, धनंजय विजय, पाखण्ड विडम्बन संस्कृत से और कर्पूर मंजरी प्राकृत से अनूदित किये गये। दुर्लभबन्धु के नाम से सेक्सपीयर के "मर्चेन्ट आफ बेनिस" का रुपान्तरण उन्होंने प्रस्तुत किया। यतीन्द्रमोहन ठाकुर के नाटक के आधार पर "विद्यासुन्दर" और भारत माता के आधार पर "भारतजननी" नाटक लिखा।

अनेक मौलिक नाटकों के बाद अनुवाद की ओर उनका झुकाव मात्र इसलिए था कि वे हिन्दी के नाटकों के लिए व्यग्र देखते हैं उतने ही हिन्दी में नाटकों के लिए लगते हैं। यही कारण है कि वे अपने समय के सभी हिन्दी लेखकों को मौलिक नाटक लेखन के साथ-साथ अनुवाद के लिए भी प्रोत्साहित करते रहे थे। बाबू कृष्णादास, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र बाबू कृष्णवर्मा, पण्डित बालकृष्ण भट्ट पण्डित बदरीनाथ चौधरी 'प्रेमघन' आदि ने मौलिक नाटकों के साथ अनूदित नाटक भी प्रस्तुत किये।

निश्चित रूप से नाटकों के निर्माण में भारतेन्दुबंगला से अधिक प्रभावित जान पड़ते थे। सोचना पड़ेगा कि उनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक नीलदेवी पर क्या बंगला के "नील दर्पण" की छाया नहीं। मानसिकता वही है, विद्रोह की ललक वही है। इस नाटक में राजा सूर्यदेव से प्रत्यक्ष युद्ध करने में असमर्थ होने के कारण नवाब धोखे से राजा को बन्दी बनाता है। नवाब के प्रपंच से अभिज्ञ होते हुए भी सूर्य देव धर्म युद्ध करने का निर्णय लेता है। . . . किन्तु उसका धर्मयुद्ध निरर्थक होता। अंत में नील देवी छलछद्म से ही काम लेती है।

इस नाटक का कथ्य है "शठ प्रति शार्दूय कुर्यात्।" नील दर्पण" के नीलहा साहबों के अत्याचार से जागती जन चेतना का ही विग्रह है नीलदेवी। व्याकुल भारत माता की छटपटाहट का प्रत्यय है नीलदेवी।

दस दृश्यों के इस गीति रूपक के आरंभ में भारतेन्दु लिखते हैं: —

“जब मुझे अंग्रेजी रमणी लोग भेद सिचितकेश राशि, कृतूम (त्रि) कुन्तल जूट मिथ्या रत्ना मरण और विविध वर्ण वसन से भूषित क्षीण कटिदेश कसे निजनिज पतिगण के साथ, प्रसन्न वदन इधर से उधर फर फर कल की पुतली की भांति फिरती हुई दिखायी पड़ती है तब इस देश की सीधी-सीधी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझकों स्मरण आती है और यहीं बात मेरे दुख का कारण होती है। इसमें यह शंका किसी को नहीं हो कि मैं स्वपन्न में भी यह इच्छा करता हूँ कि इन गौरांगी युवती समूह की भांति हमारी कुल लक्ष्मीगण भी लज्जा को तिलांजलि देकर अपने पति के साथ घूमें, किन्तु और बातों में जिस भांति अंग्रेजी स्त्रियों सावधान होती है . . . अपना स्वत्व पहचानती हैं, अपनी जाति और अपने देश की सम्पत्ति विपत्ति को समझती है, उसमें सहायता देती हैं . . . उसी भांति हमारी गृह देवियाँ भी वर्तमान हीनावस्था को उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें यही लालसा है।”

“यही लालसा” इस नाटक के बनावट और बुनावट के मूल में है। एक ओर आधुनिकता की भोड़ी नकल का तिरस्कार है और दूसरी ओर सदा से दबायी गयी पादाक्रांत भारतीय नारी अस्मिता के लिए सशक्त उद्बोधन।

भारतेन्दु केवल एक नाटककार ही नहीं थे, अभिनेता भी थे। उनका रंगकर्मी उनके नाटककार से किसी प्रकार भी दुर्बल नहीं था। उन्होंने परसियन थियेटर के चकाचौंध से हिन्दी मंच को निकालकर उसे साहित्यिकता, सार्थकता और उपयोगिता प्रदान की और हिन्दी रंगमंच के संस्थापक होने का श्रेय प्राप्त किया।

उन्हीं की प्रेरणा और प्रयत्न से सन् १९६८ में पण्डित शीतला प्रसाद त्रिपाठी लिखित नाटक जानकी मंगल बनारस थियेटर में खेला गया। रंगसज्जा से लेकर अभिनय तक में उनकी रुचि समान रूप में थी वे महिला पात्र का अभिनय करने से हिचकते नहीं थे। महिला अभिनय करने के लिए एक दिन उन्होंने अपने पिताश्री से मूँछ मुड़ने की अनुमति मांगी थी। पिता के जीवित रहते मूँछें मुड़ाना हिन्दू शरीरत के खिलाफ था। इस रुढ़ि को तोड़ने की इच्छा जाहिर कर उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व ने अंध विश्वास की उस दीवार को ध्वस्त करना आरम्भ कर दिया था जिसने अपनी उपयोगिता खो दी थी।

भारतेन्दु का नाम निराशा के समुद्र में आशा का टापू था। भारतेन्दु नाम था, गुजरती अंधेरी रात में भोर की एक ताजा किरण का। भारतेन्दु नाम था, राष्ट्र की सुप्त चेतना में नवीन स्पन्दन का। भारतेन्दु नाम था इस देश के नवजागरण का। वे भारत के नवजागरण के अग्रदूत हुए। राजाराम मोहन राय आचार्य केशवचंद्र सेन, स्वामी दयानंद ऐसे भारत के नव निर्माताओं से उनकी निकटता थी। वे इन सभी से प्रभावित होकर भी इनसे अलग थे। पौराणिक वाङ्मय और मूर्तिपूजा के विरोध के कारण वे स्वामी दयानंद के कट्टर विरोधी थे, पर अंध विश्वासों पर कुठाराघात करने और पश्चिमी ज्ञान की अच्छाई के समर्थन और उनके समाज सुधारक दृष्टि के कारण वे उनके प्रशंसक भी। ईसाइयत परस्त होने के कारण वे केशवचन्द्र सेन की पंक्ति में भी बैठने को तैयार नहीं थे। स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन करवा कर उन्होंने स्वामी दयानंद और केशव चन्द्र सेन के प्रति अपनी धारणा को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। इन महानुभावों की देश सेवा और समाज सुधार की भावना के वे मुक्त कंठ से प्रशंसक थे। स्व. राय कृष्ण दास जी ने एक साक्षात्कार के दौरान बताया था कि जब दयानंद जी पहले पहल बनारस आये थे तब इस नगर का कोई पोंगा पण्डित उनकी अगुआई करने स्टेशन पर नहीं गया था। यदि गये थे तो केवल दो सज्जन एक वे स्वयं और दूसरे स्व. डा. भगवान दास जी के पूज्य पिताश्री माधवदास जी।

वे परम वैष्णव थे, पर वैष्णवता की व्याख्या उन्होंने धार्मिक कूप मंडूकता से बाहर निकल कर की थी। वे यथार्थ की धरती पर थे, "जब पेट भर खाने को ही नहीं मिलेगा, तब धर्म कहाँ बाकी रहेगा ? उनकी आकांक्षा थी —

"शैव, शाक्त, सिक्ख, जो हो, सबसे मिलो। उपासना एक हृदय की रत्न वस्तु है। उसके कार्य क्षेत्र में फैलाने की कोई आवश्यकता नहीं। वैष्णव शैव ब्राह्मण, आर्य समाजी, सब अलग-अलग पतली डोरी हो रहे हैं। इसी से ऐश्वर्यरूपी मस्त हाथी उनसे नहीं बंधता। इन सब डोरियों को एक में बांधकर मोटा रस्सा बनाओ, तब यह हाथी दिगदिगन्त भागने से रुकेगा। अर्थात् अब वह काल नहीं है कि हम लोग भिन्न-भिन्न अपनी खिचड़ी अलग पकाया करें। अब महाघोर कालिकाल उपस्थिति है। चारों ओर आग लगी हुई है। दरिद्रता के मारे देश जला जाता है। . . . सब लोग एकत्र हो। हिन्दू नामधारी वेद से लेकर तंत्र वरंच भाषा ग्रंथ मानने वाले तक सब एक होकर अब अपना परमधर्म यह रक्खों कि आर्य जाति में एका हो। इसी में धर्म की रक्षा है। भीतर तुम्हारे चाहे जो भाव और जैसी उपासना हो, ऊपर से सब आर्य मात्र एक रहो। धन सम्बन्धी उपाधियों को छोड़कर प्रकृत धर्म की उन्नति करो।"

वैष्णव धर्म को प्राकृत धर्म से जोड़कर भारतेन्दु ने पूरी वैष्णव अवधारणा को एक नया आयाम दिया। उसकी अनेक बन्द खिड़किया खोली। ताजी हवा में वैष्णव धर्म ने सांस ली और एक ऐसी वैष्णवता तैयार हुई जो गांधी को भी रास आयी।

(९)

"वैष्णवजन तो तेने कहिए जो पीर परायी जाणो रे।" इस दृष्टि से भारतेन्दु निश्चित रूप में श्रेष्ठ वैष्णव थे। दूसरे की पीर को अपनी पीर समझते थे। कोई भी दीन दुखी उनके दरबार से असन्तुष्ट नहीं लौटा। जो गया उसी ने कुछ न कुछ पाया। वे दोनों हाथों से लुटाते थे, "जो लूट सके सो लूट। . . . और जब लूटनेवाला नहीं होता था, तो लोगों ने उन्हें लक्ष्मी को जलाते हुए भी देखा था।

एक बार एकान्त में बैठकर भारतेन्दु जी बड़े शान्त भाव से मोमबत्ती में एक सौ का नोट जला रहे थे। उन दिनों के सौ के नोट के भीतर एक चमड़े की झिल्ली होती थी। जिसके जलने पर दुर्गन्ध निकलती थी। उनके एक चाकर अभिभावक ने जब यह दृश्य देखा तो चकित हो बोला, "बबुआ यह क्या ?"

बबुआ बड़े ही निस्पृह भाव से मुस्कराये और बोले, "मैं यह देख रहा हूँ कि लक्ष्मी में कितनी दुर्गन्ध है।"

उन्हें घन से कभी भी किसी सुगन्ध का भास नहीं हुआ। एक वितृष्णा सी थी। उसे वे अपने परिवार का विनाशक भी मानते रहे। इसी से वे अपने घन के विनाश में सदैव तत्पर दिखे। एक समय ऐसा भी आया जब वे कर्जदार हो गये थे।

ऐसा व्यक्ति यदि लोगों से घिरा रहे, तो आश्चर्य क्या ? आज जब सड़क छाप नेता एक प्याली चाय पर अपना दरबार लंगवाते हो तो, दोनों हाथों लुटाने वाले व्यक्ति के यहाँ लोग जमे रहें हो, तो आश्चर्य क्या ? इसी स्थिति को देखकर भारतेन्दु की दरबारी प्रकृति पर लोग अंगुली उठाते हैं। पर मैं नहीं समझता कि वे दरबारी प्रकृति के व्यक्ति थे।

एक ऐसा व्यक्ति जो परम्परा से चली आयी सामन्ती मर्यादाओं को तोड़कर कजली और लावनी बाजों के बीच बैठकर कजली भी गाता हो, जिसके दोस्तों में काशी नरेश से लेकर गली का आम आदमी तक हो। जो सबसे मिलता जुलता हो, सबके दुख सुख में शरीक होता हो जिसके परायी पीर की दाह सड़क के किनारे सर्वों से ठिठुरते भिखमंगे पर अपना कश्मीरी दुशाला डाल देती हो, क्या वह दरबारी प्रवृत्ति का हो सकता है? वस्तुतः उनका व्यक्तित्व उन सभी अवरोधों को लांघकर बाहर निकल रहा था, जो उन्हें सामन्ती जीवन में बांधने की असफल चेष्टा कर रहे थे वह दरबार जुटाकर भी दरबार के कितने बाहर थे, यह उनके पौत्र डा. मोती चन्द्र जी के कथन से स्पष्ट होता है: —

“भारतेन्दु का हंसता हुआ व्यक्तित्व बनारस की कहावत बन गया है। भारतेन्दु शायद ही किसी से अप्रसन्न हुए हों, अपने निकट विरोधियों को भी वह अपनी सरलता और हास्य प्रियता से अपने बस में कर लेते थे। हिन्दी को लेकर राजा शिवप्रसाद ‘सितारे हिन्द’ से जो उनका विवाद हुआ था, वह इतिहास प्रसिद्ध घटना है। पर जहाँ तक राजासाहब के साथ उनके पारस्परिक सम्बन्ध का प्रश्न था, उसमें कटुता नहीं आई और वह राजा साहब को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। उनके खुले विचारों के कारण बनारस के वैष्णव अप्रसन्न रहते थे। पर वे बराबर उनके विरोध को हंस कर टाल देते थे। इसी जिन्दा दिली के फलस्वरूप उन्होंने रईसी को ताक पर रखकर बनारस के सर्वसाधारण से अपना परिचय बढ़ाया और बराबर उनके साथ हंसे हस्राये। प्रेम योगिनी का यथार्थ वाद इस बात का परिचायक है कि भारतेन्दु ने अपने युग के बनारस की डूबकर झांकी ली और उसकी बुराइयों और भलाइयों को हंसकर हमारे सामने रखा।”

‘परायीपीर’ के प्रति भारतेन्दु की अत्यधिक संवेदनशीलता ही उन्हें जनहित समाजहित और देशहित के प्रति सोचने के लिए विवश करती थी। अपनी सोच को वाणी देने के लिए ही उन्होंने तीन पत्रों का प्रकाशन किया था। “कवि वचन सुधा”, “हरिश्चन्द्र चन्द्रिका” (“हरिश्चन्द्र मैगजीन” ही आठ अंकों के बाद हरिश्चन्द्र चन्द्रिका हो गयी थी) और “बाला बोधिनी”। कहते हैं कि अपनी धार्मिक भावना को अभिव्यक्ति देने के लिए भी उन्होंने भक्ति की एक मैगजीन निकाली थी। इनके अलावा अपने समय की अनेक पत्र पत्रिकाओं के वे प्रेरक थे, वे मानते थे कि जन जागृति के लिए पत्र पत्रिकाएँ ही सबसे अच्छे माध्यम हैं। पर पत्र-पत्रिकाओं की उत्पत्ति के लिए उस युग में मौसम अनुकूल नहीं था। ग्राहक बनाने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। कोई कहता था — “अखबार पढ़कर सुना जाया कीजिए”। कोई कहता था — “दाम ले लीजिए, पिण्ड छोड़िए। अखबार भेजिए चाहे न भेजिए।”

ऐसे माहौल में पत्र पत्रिकाएं निकालना स्वयं में एक साधना थी। पढ़ने की रुचि नहीं थी। खरीदने की इच्छा नहीं थी। जिन्हें इच्छा थी, उनके पास पैसा नहीं था। इन सभी परिस्थितियों का सामना भारतेन्दु मंडल के अनेक सदस्यों ने सेवा और समर्पण की भावना से किया, क्योंकि वे जानते थे कि जिन विचारों के लिए वे संघर्ष कर रहे हैं, ये समाचार पत्र उनकी किलेबन्दी हैं। इसी किलेबन्दी के लिए “हिन्दी प्रदीप” निकालने में पं. बालकृष्णभट्ट को क्या नहीं झेलना पड़ा। कहते हैं, वे अपने पत्र के लिए स्वयं मीटर लिखते थे, कम्पोज करते थे और आवश्यकता हुई तो ग्राहकों के यहां पहुँचाते भी थे।

आरम्भिक युग होते हुए भी इस युग की पत्रकारिता में भटकाव नहीं था। उनके सामने लक्ष्य था, स्पष्ट उद्देश्य था। “हरिश्चन्द्र मैगजीन” का टाइटिल पेज अंग्रेजी में छपता था। उस पर एक उद्घोषणा छपती थी: —

"A monthly journal published in connection with the Kavivachansutha containing articles on literary, scientific, political and religious subjects, antiquities reviews, dramas, history, novels, poetical selections gossip, humour and wit."

इस घोषणा से ही स्पष्ट है कि भारतेन्दु का साहित्यिक विषयों के प्रति जितना लगाव था, साहित्येतर विषयों में भी उनकी चिन्ता कम नहीं थी। वे विज्ञान, पुरातत्व राजनीति ऐसे विषयों को हिन्दी में लिखना लिखाना चाहते थे। समस्त राष्ट्रीय चिन्तन को आधुनिक परिवेश में लाना चाहते थे। इतना ही नहीं वे एक विधि पत्रिका भी "नीतिप्रकाश" के नाम से निकालना चाहते थे। उन्होंने सन् १८७५ के अप्रैल की "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में एक विज्ञापन प्रकाशित किया था: —

"हिन्दी में बहुत से अखबार हैं, पर हमारे हिन्दुस्तानी लोगों को उनसे कानूनी खबर कुछ नहीं मिलती और न हिन्दी में कानूनों का तर्जुमा है, जिसे देखकर और पढ़कर वे अदालत की बातें समझ सकें। आदलत वह चीज है जिससे छोटे बड़े किसी को छुट्टी नहीं। इससे सब गृहस्थों को इसका जानना बहुत जरूरी है। बहुत से बेचारे कानून जाने बिना लोगों के जाल में पड़कर खराब हो जाते हैं। तो इस आपत्ति से लोगों को बचाने के लिए एक माहवारी पत्र 'नीति प्रकाश' नाम का बनारस से जारी होगा। इसमें अंग्रेजी और उर्दू कानूनों का तर्जुमा छपा करेगा। और इसके सिवाय विलायत और हाई कोर्ट के फैसले छपेंगे। मुन्शी ज्वालाप्रसाद गवर्नमेंट प्लीडर हाईकोर्ट, बाबू तोताराम हाईकोर्ट प्लीडर इत्यादि लायक दोस्त इसके मददगार होंगे।"

इस विज्ञापन में दस विभिन्न कालमों के नामों की भी घोषणा की गयी थी। साथ एक शर्त भी लगायी गयी थी "बिना ५०० ग्राहक ठहरे इसका काम शुरू न होगा और ग्राहक ज्यादा होंगे तो इसके पन्ने बढ़ा दिये जायेंगे।" मूल्य भी निश्चित कर दिया गया था। ६ रुपये वार्षिक और डाक व्यय था मात्र ६ आने वार्षिक।

अब पत्रों की बिक्री का हाल सुनिए। "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" की सौ प्रतियां सरकार खरीदती थी। सरकार उसकी नीतियों से नाराज थी। कोई न कोई बहाना ढूँढ ही रही थी कि इसमें "यतो वैश्या संवाद" छपा। सरकार ने उसे अश्लील करार दिया। पत्रिका की सरकारी खरीद बन्द हो गयी। . . . उस समय बहुत सी ऐसी भी पत्रिकाएं थी जिनकी ग्राहक संख्या दस-बीस से अधिक नहीं थी। खुद "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" ऐसी पत्रिका भी १५० से अधिक लोगों के यहां नहीं पहुंचती थी।

महान स्वप्नदुष्ट के बहुत से स्वप्न साकार नहीं होते। भारतेन्दु का विधि पत्रिका निकालने का स्वप्न भी साकार नहीं हो सका। न पांच सौ ग्राहक बने और न पत्रिका प्रकाशित हुई। फिर भी हिन्दी वाङ्मय को विविध विषयों से भरने की उनकी लालसा बनी रही। उन्होंने बनारस कालेज के गणिताध्यापक पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र से त्रिकोणमिति पर एक पुस्तक लिखवायी थी। उसकी समीक्षा जून १८७४ की चन्द्रिका में करते हुए उन्होंने लिखा था: —

"हिन्दी भाषा में विज्ञान, दर्शन, अंकादि के ग्रंथ बहुत थोड़े हैं और जो १०-पांच छोटे मोटे हैं भी, वे पुरानी चाल के हैं और उनके परिभाषिक शब्द ठीक नहीं हैं। इस ग्रंथ के अन्त में एक नियंदू भी है। जिसमें परिभाषिक शब्दों के पर्यायवाचक अंग्रेजी शब्द भी दिये हैं। यह इस विधा के नये-नये ग्रंथ बनाने वालों को बहुत उपयोगी होंगे, पर हम यह कहना चाहते हैं कि लोग त्रिकोणमिति के नये

ग्रंथ रचे, वे इन्हीं शब्दों का प्रयोग करे क्यों कि वे बहुत से परिभाषिक शब्द होने से भ्रम होता है। इसके सिवाय जब सब लोग यही शब्द लिखने लगेंगे तो हिन्दी में इसका प्रचार भी हो सकेगा।"

कैसी अद्भुत आकांक्षा है भारतेन्दु की हिन्दी शब्द भण्डार के समृद्धि की। ध्यातव्य है कि भारतेन्दु ही पहले पत्रकार थे जिन्होंने बुक रिब्यू की परम्परा हिन्दी में चलाई। समीक्षा के लिए पुस्तक मिलते ही वह उसकी प्राप्ति स्वीकृति बड़े विस्तार के साथ छापते थे। एक उदाहरण १३ अक्टूबर १८७३ के कवि वचन सुधा से:—

व्यामोड विद्रावण —श्रीयुक्त रंगाचारी स्वामी प्रणीत दिल्ली से श्री निवासदास जी ने भेजा धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत होकर अद्भुत वस्तु संग्रहालय के पुस्तक संग्रह से संग्रीहत हुआ। पदार्थ दर्शन सुरेन्द्रनाथ भाट्टाचार्य एम. ए. एल. एल. बी —स्कूल कलकत्ते की बनायी और श्री सदानन्द मिश्र की भेजी पहुँची। इस विधा में पुस्तकें बनती निस्संदेह बहुत श्रेयस्कर है, तथापि हिन्दी और परिष्कृत होती तो उत्तम होता। बीजगणित पण्डित पालीराम पाठक मेरठ स्कूल का भाषान्तरित धन्यवाद।"

भारतेन्दु जी की पत्रकारिता हिन्दी शब्द भण्डार का विस्तार तथा हिन्दी वाङ्मय की वृद्धि के लिए सदा प्रयत्नशील रही। किन्तु वह सामाजिक संदर्भ में भारत की दुर्दशा को कभी भूल नहीं पाती थी। फैलन के शब्दकोश पर उनहत्तर हजार के स्वाहा हो जाने पर वे कितने दुखी दिखायी देते हैं और अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए लिखते हैं:—

"बड़े पुन्य का फल

उनहत्तर हजार स्वाहा।

बड़ा पुन्य करें तब अंग्रेज के घर जन्म लें। गौरवर्ण होने में ही सब बातों में गौरव। हिन्दू लोग लाख किताब बनावे, इससे क्या होता है। अंग्रेज होने ही से किताब बनाया नहीं कि उसमें सब गुण हो जाते हैं। आप लोगों ने कभी श्रीयुत सा, फैलन साहब की डिक्शनरी देखी है? न देखी हो तो जरूर देख लीजिए। उसमें आप लोगों से टिक्कस बसूल कर-करके सरकार ने उनहत्तर हजार छः सौ रुपये दिये हैं। सब मिलाकर तेरह सौ बानबे कापी इसकी पचास पचास रुपये में सरकार ने खरीदी है, जिसमें छः सौ कापी तो सिर्फ बंगाल कवर्नमेंट ने ली हैं। . . . इसकी अच्छी छपाई, कागज, कटाई, बंधाई यदि बीस रुपये फार्म रखिए तो अठठाइस सौ रुपये हुए। बाकी बासठ हजार आठ सौ पचास रुपये क्या हुए? फैलनाय समर्पयन्ति अंगरेजत्वात्। हाय . . . "

भारतेन्दु की पत्रकारिता कई मोरचे पर एक साथ लड़ रही थी, पर उसकी प्रकृति निर्माणात्मक थी, वह नये समाज के निर्माण में लगी थी, वह साहित्य निर्माण में लगी थी। उसकी क्रियमाण शक्ति में नये भारत का स्वप्न था।

आज की पत्रकारिता को कोई ऐसा रूप नहीं जिसका बीज भारतेन्दु में न हो। इस क्षेत्र में व्यंग विधा के तो वे प्रणेता थे। उनका व्यंग भी बहुआयामी था, कहीं भाषा के माध्यम से कहीं कथा के माध्यम से और कभी ऐसी खबर छापकर कि लोग लोटपोट हो जायें।

कभी-कभी हरिश्चन्द्र मैगजीन में वे अंग्रेजी में भी छापते थे। ऐसी अंग्रेजी जो अंग्रेजी भाषा की भी खिल्ली उड़ाती थी और अंग्रेजी की भी। एक बहु उदघृत अंश:

When I go Sir, molakat ko, these chaprasis
 Trouble me much.
 How can I give daily Inam, ever they ask
 Me I say such
 Some time they give me gardaniya
 And tell bahar niklo tum;
 Dena na lena muft ke aye yaha hain
 Bane Darban Ki dum.

(११)

हास्य व्यंग्य भारतेन्दु के खून में था। वे बनारसी की मौजमस्ती के प्रतीक थे। भरत ने हास्य रस को शृंगार की अनुकृति कहा है। अनुकृति यदि मनोरंजन में समर्थ है तो वह अवश्य ही हास्य का उत्पादन करेगी। विकृत आकार, वाणी वेष-भूषा आदि हास्य का कारण बनेंगे। भारतेन्दु इन सब में माहिर थे।

हास्य के व्यञ्जनात्मक पत्र पर जोर देने वाले पश्चिम के साहित्य शास्त्री उनके पांच भेद मानते हैं। १-हयूमर (शुद्ध हास्य) २-विट (हाजिर जवाबी) ३-सेटायर (व्यंग्य) ४-आइरनी (वक्रोक्ति) ५-फार्स (प्रहसन)। इनके अतिरिक्त सरकास्टिक रिमार्क, फैटेसी और पैरोडी को भी लोग व्यंग्य की एक शैली के रूप में ही मानते हैं।

हास्य भारतेन्दु की जीवन शैली थी विनोदी ऐसे कि राजा और रंक किसी को नहीं छोड़ते थे। उनके व्यंग्य विनोद के अनेक किस्से आज तक असंग्रहित हैं। वे कामदानी टोपी और बनारसी रंगीन कपड़े का अंगरखा पहनते थे। उनका राजसी पहनावा उनके मौजी व्यक्तित्व को रेखांकित करता था।

वे काशी नरेश के परम आत्मीय थे। उन दिनों काशी नरेश और महाराज विजयानगरम में चलती थी। भारतेन्दु जी काशी नरेश के साथ महाराज विजयानगरम के यहां गये थे। भारतेन्दु की वेशभूषा पर व्यंग्य करते हुए महाराज विजयानगरम ने कहा, "आज तो बलि के बकरा की तरह बने हो बबुआ।"

भारतेन्दु ने तुरन्त कहा, "तो चढ़ा तो न अपनी मैया पर।" यह उक्ति अश्लीलता की परिधि का भले ही स्पर्श करती हो, पर इतनी जीवंत हाजिर जवाबी किसी बनारसी के ही मुख से निकल सकती है। शिवप्रसाद "सितारे हिन्द" और भारतेन्दु का सम्बंध जगजाहिर था, फिर भी उसमें खटास नहीं थी एक प्यारी मिठास थी वे विश्वास करते थे:—

"दुश्मनी लाख हो, खत्म न हो रिश्ता,
 दिल मिले न मिले हाथ मिलाते रहिए।"

एक दिन उन्होंने "सितारे हिन्द" से उनका फोटो अपनी विनोद प्रियता के कारण यह लिखते हुए मांगा था:—

"कमाल शौके मुलाकात उसने लिखा है,
 चलू मैं आये ही कासिद जवाब के बदले।"

मजा यह कि राजा साहब ने भी चलू को काटकर "चाला" बना दिया और फोटो के साथ जबाब के रूप में वह खत लौटा दिया।

उन दिनों रामकटोरा मुहल्ला बनारस के बाहरी अलंग में आता था । भारतेन्दु की हर शाम वही रंगीन होती थी । पंचरत्नी की तरंग में वहाँ बैठे कुछ लोगों पर उन्होंने कविताएँ सुनायी । एक वेश्या के मुख पर चेचक का दाग था जब उसने अपने पर कविता सुनाने को कहा तो उन्होंने झट से एक शोर गढ़ दिया: —

सूखे आइना पै दिल जो जा जा के फिसलता है
खुदाई दाग चेचक से जरा ठहराव मिलता है ।

हास्य व्यंग्य के क्षेत्र में पैरोडी के शायद वह जन्मदाता थे । उन्होंने उर्दू के नाटक इन्दर सभा के आधार पर बन्दर सभा लिखी थी । भाषा का तेवर भी "इन्दर सभा" वाला ही । श्रुतुर्मुर्ग परी की जबानी: —

आई हूँ मैं सभा में छोड़ के घर ।
लेना है मुखे इन आग में जर ।
दुनिया में है जो कुछ सब जर है ।
बिना जर के आदमी बन्दर है ।
बन्दर, जर हो तो इन्दर है ।
जर ही के लिए सब को हुनर है ।

अमीर खुसरो की शैली पर भारतेन्दु ने नये जमाने की मुकरी लिखी थी । वस्तुतः यह 'पैरोडी' साहित्य ही है । इस युग में 'पैटेसिया' भी खूब लिखी गयी, क्योंकि सीधे-सीधे कहना अंग्रेजों का कोपभाजन बनाना था । इन अतिकल्पनाओं ने ऐसी किलेबन्दिया की जिनके भीतर से करारा प्रहार करते हुए भी सुरक्षित रहा जा सकता था । एक अद्भुत स्वप्न यमलोक की यात्रा स्वर्ग में केशवचन्द्र सेन और स्वामी दयानंद आदि ऐसी ही पैटेसिया है ।

अंधेरी नगरी और चौपट राजा से अच्छा और प्रभावशाली हिन्दी साहित्य में दूसरा फार्स नहीं । भारतेन्दु युग की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति पर चोट करते हुए भी इसने आज भी न तो अपनी प्रासंगिकता खोयी है और न इसका संदर्भ ही बासी पड़ा है । यह आज भी तरोताजा है ।

(१२)

ऐसे थे भारतेन्दु, अपने जमाने के सबसे शानदार और जानदार रचनाकार । वे मात्र एक साहित्यकार ही नहीं थे, वरन् एक ऐसा व्यक्तित्व था, जिसमें अपने युग की चेतना ने अंगड़ाई ली थी । जिसने युग को वाणी दी थी । जिसने लोक चेतना को समझा था । जो पुरातनता का विरोधी न होते हुए भी नवीनता की ओर बढ़ा था । उसके एक ओर गलितरुढ़ियों और अन्ध विश्वासों की ध्वस्त होती दीवार थी और दूसरी ओर नये भारत के सपने थे ।

उसके व्यक्तित्व की विसंगतियों में भी एक संगति थी । वह गुणियों का सेवक था । चतुरों का चाकर था । कवियों का मित्र था । सीधों के लिए सीधा था, बाकों के लिए महा बांका था । वह निहायत विनम्र होकर भी अभिमानियों से पैर पुजवाता था । वह चाह और परवाह से दूर था । वह प्रेम का दिवाना था । रसिकों का सरबस था और राधारानी का गुलाम था । वह परम वैष्णव था और दूसरों की पीर को अपनी पीर समझता था ।

भारतेन्दु समग्र क्यों ?

भारतेन्दु ग्रंथावली तीन खण्डों में, इसके पूर्व प्रकाशित है । यह सही है कि उसमें भारतेन्दु की बहुत सी रचनाएँ आ नहीं पायी हैं । कुछ बीनने-बटोरने में छूट गयी होंगी । कुछ मिली ही नहीं होगी ।

इस ग्रंथ में उन तीनों खण्डों में संकलित रचनाएँ तो है हीं, साथ ही भारतेन्दुकालीन पत्र-

पत्रिकाओं की फाइलों में दबी पड़ी कुछ ऐसी अलभ्य कृतियाँ भी हैं, जो अबतक किसी संग्रह में नहीं आयी, और यदि आयी भी हैं, तो किसी कोने अतरे में ।

यह मात्र ग्रंथावली ही नहीं है, वरन् भारतेन्दु समग्र है । इसमें वह सब उपलब्ध सामग्री दी गयी है जो भारतेन्दु की है और भारतेन्दु के रचना कौशल से कहीं ज्यादा उनके व्यक्तित्व से नयी है । इनमें कविताएँ हैं, पत्र हैं, सम्पादकीय टिप्पणियाँ हैं, सम्पादक के नाम पत्र हैं, एजुकेशन कमीशन के समक्ष भारतेन्दु की गवाही है । भारतेन्दु द्वारा दिये और प्रकाशित विज्ञापन हैं तथा कुछ सूचनाएँ और खबरे हैं । अन्त में चन्द्रास्त और भारतेन्दु की संक्षिप्त जीवनी भी है ।

चन्द्रास्त वह व्यथा भरा भवोद्गार है, जिसे भारतेन्दु जी के अनन्य मित्र पं. रामशंकर व्यास ने भारतेन्दु के निधन की दुःख सूचना काशीवासियों को देने के लिए छपवाकर मुफ्त बटवाया था । व्यास जी भारतेन्दु की टूटती साँसों के चश्मदीद गवाह थे । उन्होंने भारतेन्दु को बड़े करीब से देखा था । इसीसे उनकी लिखी भारतेन्दु की जीवनी भी इस 'समग्र' में आ गयी है ।

भारतेन्दु जी अपनी पत्रिकाओं के मूल्य आदि की विज्ञप्ति भी कविता में ही छापते थे । बुढ़वा मंगल का निर्मंत्रण भी कविता में होता था । दोनों की बानगियाँ भी यहाँ इकट्ठी हैं । घोड़े की चाल के विषय में भी तीन छप्परा दिये गये हैं । जब पहली बार इस देश में आकर लगा था, उसी समय विलियम म्योर का काशी आगमन हुआ था । गंगा तट पर रोशनी की गयी थी । भारतेन्दु ने एक नाव पर 'Oh Tax' और दूसरी पर एक दोहा लिखवाया था । वह दोहा भी दिया गया है । ऐसी कई फुटकल काव्य रचनाएँ उनके सन्दर्भों के साथ दी गयी हैं जिन्हें भारतेन्दु ने किसी प्रसंग में लिखी या कही हैं । 'दशरथ विलाप' नाम की लम्बी कविता किसी ग्रंथावली में नहीं है, वह इस ग्रंथ में मिलेगी ।

भारतेन्दु के पूरे पत्र बहुत कम उपलब्ध हैं । ज्यादातर अधूरे ही मिलते हैं, उनमें भी पेन्सिल से लिखे हुए । कुछ पत्रों का प्रसंगवश कहीं जिक्र आया है । उन सबको इस 'समग्र' में लेने की चेष्टा की गयी है, क्योंकि ये पत्र भारतेन्दु के जीवन के बहुत से अनखुले पृष्ठ खोलते हैं । मिसाल के तौर पर भोपाल की बेगम साहिबा से भारतेन्दु की घनिष्टता थी । उनकी कविताएँ प्रकाशित करने के लिए "भारत मित्र" के सम्पादक को उन्होंने एक सिफारिश पत्र भी लिखा था ।

किन्हीं सन्तोष सिंह को लिखे पत्र से पता चलता है कि बंगला में उपन्यास साहित्य की प्रगति देखकर भारतेन्दु जी का ध्यान उधर भी गया था । वे हिन्दी में भी उपन्यास लिखना चाहते थे ।

अपने भाई को लिखे पत्र में अपनी प्रेयसि मल्लिका के सम्बन्ध में शायद दो-एक ही वाक्य हैं, पर बड़ी ईमानदारी से उस पत्र में उसके वरण को स्वीकारा गया है । एक पत्र में कलकत्ता के अपने किसी मित्र को भारतेन्दु जी ने खंग विलास प्रेस के श्री रामदीन सिंह का जिक्र बड़ी आत्मीयता से किया है । यह पत्र इस बात का भी प्रमाण है कि भारतेन्दु जी का शाह खर्च अन्तिम दिनों में आर्थिक दृष्टि से कितना लाचार हो गया था ।

आली जान वेश्या से भारतेन्दु का लगाव था । आलीजान किन्हीं किसुन सिंह की लड़की थी और कभी हिन्दू थी । भारतेन्दु जी ने उसका शुद्धीकरण कर हिन्दू बना उसका नाम माधवी रखा । वह उसके लिए एक मकान भी खरीदना चाहते थे । पैसे का प्रश्न था । इसी बीच उनके एक मित्र ने उन्हें धोखा दिया । लाचार होकर उन्हें पं. बदरीनाथ चौधरी 'प्रेमघन' को लिखना पड़ा ।

सन् १८८२-८३ में ब्रिटिश नेशनल ऐंथम का अनुवाद करने के लिए एक कमेटी बनी । बीस भाषाओं में उसका अनुवाद अपेक्षित था । संस्कृत में अनुवाद प्रो. मैक्समूलर ने किया था और बंगला अनुवाद श्री यतीन्द्रनाथ ठाकुर ने । हिन्दी अनुवाद का काम भारतेन्दु जी को दिया गया । वे उस समय बीमार थे । फिर भी उन्होंने अनुवाद कितनी सावधानी से किया इसकी जानकारी फेडरिक कं. हेन फोर्ड

को लिखे उनके पत्र से मिलती है। इस अनुवाद की पाँच सौ प्रतियाँ हिन्दी जानकारों के बीच वितरित कराकर अनुवाद की प्रामाणिकता जाँचने के लिए भारतेन्दु ने हेन फोर्ड को खुद भेजा था।

साधु भाषा (खड़ी बोली) में लिखी कविताओं के प्रकाशन के सम्बन्ध में भारतेन्दु के सम्पादक को लिखे पत्र की चर्चा तो काफी हुई है।

ये सभी पत्र या उनके अंश इस संग्रह में हैं।

इस ग्रंथ में सम्मिलित भारतेन्दु की विज्ञप्तियाँ भी बड़े ममत्व की हैं। बिट्टेन के किसी उपनिवेश के गवर्नर पोप हेन्सी ने इल्वर्ट बिल के सम्बन्ध में भारतेन्दु जी को एक पत्र लिखा था कि लार्ड रिपन की सुनीति के सम्बन्ध में क्या आप अपनी लेखनी नहीं उठावेंगे। इस सन्दर्भ में उनके मौन का लाभ लेकर एक कर्नल साहब ने कहा था कि भारतेन्दु "जुरिजडिकशन बिल" के विरोधी है। भारतेन्दु जी ने तत्काल इस गलतफहमी को दूर करने के लिए हिन्दी और अंग्रेजी के अखबारों में एक विज्ञप्ति प्रकाशित कर अपनी स्थिति स्पष्ट की।

अधिकांश विज्ञप्तियाँ कविवचन सुधा में प्रकाशित हैं। एक विज्ञप्ति के द्वारा उन्होंने सर्वसाधारण को सूचित किया था कि १ जनवरी से ३१ दिसम्बर १८७१ तक हिन्दी और संस्कृत में जितनी पुस्तकें छपें उनकी एक प्रति भेजकर मूल्य मंगवा लें। दूसरी विज्ञप्ति के द्वारा किन्हीं शीतला प्रसाद जी के पुस्तकालय की जर्जर अवस्था को सुधारने के लिए अर्धदान का आग्रह किया गया है। एक विज्ञप्ति में गोवध निवारण विषय पर काव्य रचना को पुरस्कृत करने की घोषणा है, तो दूसरी में कुरानशरीफ के हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन के सम्बन्ध में कहा गया है कि यदि सौ ग्राहक बन जायें तो इस विराट ग्रंथ का मुद्रण आरम्भ किया जाय। एक विज्ञप्ति से यह भी ज्ञात होता है कि वे 'कासिद' नामक एक उर्दू साप्ताहिक निकालना चाहते थे, जिसका मूल्य भी उन्होंने दस रुपया वार्षिक रखा था, पर जो किसी कारणवश न निकल सका। इन संग्रहीत विज्ञप्तियों में कुछ व्यापारिक भी हैं। इनसे व्यापार की ओर भारतेन्दु के अस्थायी रुझान का पता चलता है। पर वे व्यापार भी अपनी शान के अनुसार ही करना चाहते थे। जैसे बनारसी माल, लेवेन्डर एवं इत्र आदि का। पर उनके अलमस्त कवि को मूलतः इसके लिए फुरसत कहाँ थी?

कुछ विज्ञप्तियाँ "कवितावद्दिनी सभा" के सम्बन्ध में भी हैं। एक विज्ञप्ति में काशी में "चौक से गुँदेलिया जो नई सड़क निकली है, उसके बीच में एक शिवाला है, ईश्वर उसको खुदने से बचावै" की प्रार्थना की गयी है। कुछ विज्ञप्तियाँ भारतेन्दु की अस्वस्थता का उल्लेख करती हुई इस सम्बन्ध की भी हैं कि मैं जैसा चाहता था, वैसा अंक निकल नहीं पाया।

भारतेन्दु के सम्पादकीय नोट और सम्पादक के नाम पत्र भी उनको समझने के लिए बड़े काम के हैं। 'शृंगार रत्नाकार' नामक एक ग्रंथ काशिराज ने स. १९१९ में प्रकाशित कराया था। इस ग्रंथ के लेखक थे तारा चरण तर्करत्न। भारतेन्दु ने इस में स्थापित मान्यताओं पर एक सम्पादक के नाम पत्र लिखा है। इनमें उनकी इस मीमांसा पर गम्भीर प्रकाश पड़ता है।

हरिश्चन्द्र मैगजीन के पहले ही अंक में एक सम्पादकीय टिप्पणी इस प्रकार है: — "अंग्रेजों को घूस, सलाम, बंदगी एंड्रेस सब कुछ मिलता है। धन विद्या कौशल सब उनके पास है। उन्हीं के आवभगत के लिए सभाएँ होती हैं। एक और बल उनके पास है। हिन्दुस्तानियों के हिस्से में मूर्खता है, कायरता, धक्के खाना पड़ा है। जो भाग्यशाली हैं, वे दरबार में कुर्सी पाते हैं, कौंसिल मेम्बरी और सितारे हिन्द का खिताब पाते हैं।" — ऐसे ही तीखी और चोट करनेवाली उनकी टिप्पणियाँ हैं।

इनके अतिरिक्त दो लेख और एक पुस्तक परिहासिनी और दिये गये हैं। ये न तो भारतेन्दु ग्रंथावली में ही हैं और न भारतेन्दु के पिछले किसी संग्रह में। लेख हैं — "लेखक और नागरी लेखक तथा 'हिन्दी भाषा'। 'परिहासिनी' उनके व्यंग्य और चुटकुले का संग्रह है।

भारतेन्दु समग्र में उनके कविकर्म के अलावा पत्रकार कर्म पर भी प्रकाश डालने वाली सामग्री संग्रहीत है जिनसे भारतेन्दु के व्यक्तित्व और कर्तृत्व को समझना कहीं ज्यादा आसान हो जायेगा ।

हम इनके आभारी हैं

जिनके सहयोग के बिना इस ग्रन्थ का पूरा हो पाना कठिन था ।

श्री कृष्णचन्द्र बेरी जिनकी परिकल्पना इस ग्रन्थ के निर्माण का कारण बनीं । डॉ० त्रिभुवन सिंह, डॉ. वच्चन सिंह, डॉ. रघुनाथ सिंह, डॉ. राय आनन्दकृष्ण, पं. मनुशर्मा, डॉ. युगेश्वर तथा डॉ. गिरीन्द्र नाथ शर्मा इनके कुशल निदेशन में यह कार्य पूरा हुआ । सामग्री संकलन में भारतेन्दु परिवार के डॉ. गिरीश चन्द्र चौधरी और भारतेन्दु बाबू के दौहित्रपुत्र डॉ. वृजकिशोर अग्रवाल ने भरपूर मदद की । बिखरे भारतेन्दु साहित्य को बीनने बटोरने में कारमाइकेल लाइब्रेरी वाराणसी, सयाजीराव गायकवाड़ ग्रन्थालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, और डी. ए. वी. डिग्री कालेज ग्रन्थालय मददगार बनें । इन ग्रन्थालयों में खासतौर से श्री दिलीप नारायण सिंह श्री प्रियानाथ शर्मा और श्री अनिरुद्र प्रसाद के हम आभारी हैं । श्री ओ. प्र. टण्डन (भारत कला भवन) और डॉ. धीरेन्द्र नाथ सिंह का विशेष सहयोग रहा है । कवर — श्री योगेश उपाध्याय, किताब को संवरने में श्री प्रमोदसहाय, श्री अवनीधर, श्री रामप्रसाद सिंह, श्री योगेश उपाध्याय, मुद्रण — श्री करन सचदेवा (रत्ना ऑफसेट नई दिल्ली) पाण्डुलिपि टंकण — श्री रामप्रकाश शर्मा, और श्री नारायण प्रसाद जायसवाल, प्रूफ रीडिंग — डॉ. लालमणि तिवारी, श्री सुभाष डोबरियाल, श्री प्रकाश श्रीवास्तव, श्री रामायण सिंह, श्री राम आसरे मिश्र, श्री दीनानाथ तिवारी, श्री ब. ल. पावगी और श्री यमुना प्रसाद गुप्त, फोटो कम्पोजिंग — श्री राजेन्द्र सिंह रावत, श्री रवीन्द्र शर्मा, छपाई के कुशल संचालन और प्रबन्धन के लिए श्री रतनमणि बहुगुणा और श्री अ. प्र. यादव, सम्पादकीय सहयोग के लिए श्री सुधांशु भूषण मिश्र, श्री राजीव सिंह और श्री नवेन्दु सिंह का आभारी हैं ।

ग्रंथ और ग्रंथकार जो सहायक बने

"भारतेन्दु नाटकावली" सं. — बाबू बृजरतन दास, "भारतेन्दु ग्रन्थावली" सं. — शिव प्रसाद मिश्र 'रुद्र' । "हरिश्चन्द्र कला" — (खंग विलास प्रेस) 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 'बाला बोधिनी' की फाइलें, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' — लेखक बृजरतन दास, 'हरिश्चन्द्र' — श्री शिवनन्दन सहाय, 'हरिश्चन्द्र' — श्री राधा कृष्ण दास, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' — डॉ. मदन गोपाल ।

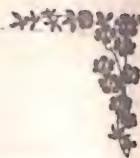
हेमन्त शर्मा

३८२ सी बड़ी पियरी

वाराणसी-२२१००१



पहला खण्ड
(काव्य)



भक्त-सर्वस्व

अर्थात्
श्रीचरण-चिन्ह-वर्णन
(रचना-काल — १८७०)

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः

मेडिकल हाल के छापेखाने में
१८७० में छपा

प्रस्तावना

इस छोटे से ग्रंथ में श्रीयुगल स्वरूप के श्रीचरण के अगाध चिन्हों के मति अनुसार कुछ भाव लिखे हैं। यद्यपि इसकी कविता काव्य के सब गुणों से (सत्य ही) हीन है, तथापि इसका मुझे शोच नहीं है, क्योंकि यह ग्रंथ मैंने अपनी कविता प्रगट करने और कवियों को प्रसन्न करने को नहीं लिखा है, केवल (अपनी) वाणी पवित्र करने और प्रेम-रंग में रंगे हुए वैष्णवों के आनन्द के हेतु लिखा है।

इसमें श्री भागवत के अनुसार बहुत से भाव लिखे हैं, इस कारण से श्री भागवत जाननेवालों को इसका स्वाद विशेष मिलेगा।

अनुप्रासों की संकीर्णता से इसमें पुनरुक्ति बहुत है, जिसको रसिक लोग (भगवन्नामांकित जान कर) क्षमा करेंगे। मैं आशा करता हूँ कि जो रसिक भगवदीय जन इसको पाठ करें, वह मेरे (इस) बाल-चापल्य को क्षमा करें और (जहाँ तक हो सके) इस पुस्तक को कुरसियों से बचावें और अनुग्रहपूर्वक सर्वदा मुझ से दीन को (अपना दास जान कर) स्मरण रखें।

श्रीहरिश्चन्द्र

भक्त-सर्वस्व

अथ चरण-चिन्ह-वर्णन दोहा

जयति जयति श्री राधिका चरण जुगल करि नेम ।
जाकी छटा प्रकास तैं पावत पामर प्रेम । १
जयति जयति तैलंग-कुल रत्नद्वीप-द्विजराज ।
श्री बल्लभ जग-अध-हरन तारन पतित-समाज । २
नमो नमो श्री हरि-चरण शिव-मन-मंदिर रूप ।
वास हमारे उर करौ जानि परयो भव-कूप । ३
प्रगटित जसुमति-सीप तैं मधि ब्रज-रतनागार ।
जयति अलौकिक मुक्त-मणि ब्रज-तिय को शृंगार । ४
दक्षिण दिसि चंद्रावली श्री राधा दिसि वाम ।
तिन के मधि नट रूप धर जै जै श्री घनश्याम । ५
हरि-मन-कुमुद-प्रमोद-कर ब्रज-प्रकासिनी वाम ।
जयति कापिसा-चंद्रिका राधा जाको नाम । ६

चंद्रमानु नृप-नंदिनी चंद्राननि सुकुवॉरि ।
कृष्णचंद्र-मन-हारिनी जय चंद्रावलि नारि । ७
जै जै ब्रज-जुवती सबै जिन सम जग नहिं कोइ ।
मगन भई हरि-रूप मैं लोक-लाज-भव खोई । ८
जसुदा लालित लालनवर कीरति-प्राण-अधार ।
श्याम गौर द्वै रूप धर जै जै नंद-कुमार । ९
जै जै श्री बल्लभ विमल तैलंग कुल द्विजराज ।
भुव प्रगटित आनन्दमय विष्णु स्वामि पथ-काज । १०
तम पाखंडहि हरत करि जन-मन-जलज-विकास ।
जयति अलौकिक रवि कोऊ श्रुति-पथ करन प्रकास । ११
मायावाद-मतंग-मद हरत गरजि हरि-नाम ।
जयति कोऊ सो केसरी बृन्दावन बन धाम । १२
गोपीनाथ अनाथ-गति जग-गुरु विठ्ठलनाथ ।
जयति जुगल बल्लभ-तनुज गावत श्रुति गुन-गाथ । १३

श्री गिरिधर गोविंद पुनि बालकृष्ण सुख-धाम ।
गोकुलापति रघुपति जयति जटुपति श्री घनश्याम ॥१४॥
जे जे श्री शुकदेव जिन समुक्ति सकल श्रुति-पंथ ।
हम से कलिमल प्रसति हित कष्ट्यौ भागवत ग्रंथ ॥१५॥
बदौ पितृ-पद जुग जलज हरन हृदय-तम घोर ।
सकल नेह-भाजन विमल मंगलकरन अयोर ॥१६॥
कावजन-उडुगन-मोद-कर पूरन परम अमंद ।
सुत-हिय-कुमुद-अनंद-भर जयति अपूरव चंद ॥१७॥
जुगल चरन जग-तम-हरन भक्तन-जीवन-प्राण ।
वरनत तिन के चिन्ह के भाव अनेक विधान ॥१८॥
वरनन श्री हरिराय किय तिनको आयस पाई ।
चरन-चिन्ह हरिचंद कछु कहत प्रेम सों गाइ ॥१९॥
भक्तन को सर्वस्व लखि वरनन या थल कीन ।
प्रेम-साहन अवलोकिहैं जे जन रांसक प्रवीन ॥२०॥
कहैं हरि-चरन अगाध अति कहैं मोरी मति थोर ।
तदपि कृपा-बल लहि कहत छमिय दिठाई मोर ॥२१॥

छरथ

स्वास्तिक स्यंदन संख सक्ति सिंहासन सुंदर ।
अंकुस ऊरध रेख अब्ज अठकोन अमलतर ।
वाजी वारन वेनु बारिचर बज्र विमलवर ।
कुं कुमुद कलाधौत कुंभ कोदंड कलाधर ।
आस गदा छत्र नवकोन जब तिल त्रिकोन तरु तीर गृह ।
हरिचरन चिन्ह बसिस लखे अनिकुंड अहि सैल सह ॥१॥

स्वस्तिक चिन्ह भाव वर्णन

दोहा

जे निज उर मैं पद धरत असुम तिन्हें कहु नाहिं ।
या हित स्वस्तिक चिन्ह प्रभु धारत निज पद माँहिं ॥१॥

रथ को चिन्ह वर्णन

निज भक्तन के हेतु जिन सारथिपन हैं कीन ।
प्रगाटित दीन-दयालुता रथ को चिन्ह नवीन ॥१॥
माया को रन जय करन बैठहु यापैं आइ ।
यह दरसावन हेत रथ चिन्ह चरन दरसाइ ॥२॥

शंख चिन्ह के भाव वर्णन

भक्तन की जय सर्वदा यह दरसावन हेतु ।
शंख चिन्ह निज चरन मैं धारत भव-जल-सेतु ॥१॥
परम अभय पद पाइहो याकी सरनन आइ ।
मनहुं चरण यह कहत है शंख बजाइ सुनाइ ॥२॥

जग-पावनि गंगा प्रगट याही सों इहि हेत ।
चिन्ह सुजल के तत्व को धारत रमा-निकेत ॥३॥

शक्ति चिन्ह भाव वर्णन

बिना मोल की दासिका शक्ति स्वतंत्रा नाहिं ।
शक्तिमान हरि, याहि तें शक्ति चिन्ह पद माँहिं ॥१॥
भक्तन के दुख दलन की विधि की लीक मिटाइ ।
परम शक्ति यामें अहै सोई चिन्ह लखाइ ॥२॥

सिंहासन चिन्ह भाव वर्णन

श्री गोपीजन के सुमन यापैं करै निवास ।
या हित सिंहासन धरत हरि निज चरनन पास ॥१॥
जे आवै याकी शरण सो जग राजा होइ ।
या हित सिंहासन सुभग चिन्ह रह्यो दुख छोइ ॥२॥

अंकुश चिन्ह भाव वर्णन

मन-मलग निज जनन के नेकु न इत उत जाहिं ।
एहि हित अंकुस धरत हरि निजपद कमलन माँहिं ॥१॥
याको सेवक चतुरतर गननायक सम होइ ।
या हित अंकुस चिन्ह हरि चरनन सोहत सोइ ॥२॥

ऊरध रेखा चिन्ह भाव वर्णन

कबहुं न तिनकी अधोगति जे सेवत पद-पद्म ।
ऊरध रेखा चिन्ह पद येहि हित कीनो सब ॥१॥
ऊरधरेता जे भये ते या पद को सेइ ।
ऊरध रेखा चिन्ह यों प्रगट दिखाई देइ ॥२॥
यातें ऊरध और कछु ब्रह्म अंड मैं नाहिं ।
ऊरध रेखा चिन्ह है या हित हरि-पद माँहिं ॥३॥

कमल के चिन्ह को भाव वर्णन

सजल नयन अरु हृदय मैं यह पद रहिवे जोग ।
या हित रेखा कमल की करत कृष्ण-पद भोग ॥१॥
श्री लक्ष्मी को वास है याही चरनन-तीर ।
या हित रेखा कमल की धारत पद बलबीर ॥२॥
विधि सों जग, विधि कमल सों, सो हरि सों प्रगटाइ ।
राधावर-पद-कमल मैं या हित कमल लखाइ ॥३॥
फूलत सात्विक दिन लखे सकुचत लखि तम रात ।
या हित श्री गोपाल-पद जलज चिन्ह दरसात ॥४॥
श्री गोपीजन-मन-भ्रमर के ठहरन की ठौर ।
या हित जल-सुत-चिन्ह श्री हरिपद जन सिरमौर ॥५॥
बद्धत प्रेम-जल के बड़े घटे नाहिं घटि जात ।
यह दयालुता प्रगट करि पंकज चिन्ह लखात ॥६॥
काठ ज्ञान वैराज मैं बँध्यो वेधि उड़ि जात ।
याहि न बेघत मन-भ्रमर या हित कमल लखात ॥७॥

अष्टकोण के चिन्ह को भाव वर्णन

आठो दिसि भूलोक को राज न दुर्लभ ताहि ।
अष्टकोन को चिन्ह यह कहत जु सेवै याहि ।
अनायास ही देत है अष्ट सिद्धि सुख-धाम ।
अष्टकोन को चिन्ह पद धारत येहि हित स्याम ।

घोड़ा के चिन्ह को भाव वर्णन

हयमेघादिक जग्य के हम ही हैं इक देव ।
अश्व-चिन्ह पद धरत हरि प्रगट करन यह भेव ।
याही सों अवतार सब हयग्रीवादिक देख ।
अवतारी हरि के चरन याही तें हय-रेख ।
बैरहु जे हरि सों करहिं पावहिं पद निर्वाण ।
या हित केशी-दमन-पद हय को चिन्ह महान ।

हाथी के चिन्ह को भाव वर्णन

जाहि उधारत आपु हरि राखत तेहि पद पास ।
या हित गज को चिन्ह पद धारत रमा-निवास ।
सब को पद गज-चरन में १ सो गज हरि-पग माहिं ।
यह महत्व सूचन करत गज के चिन्ह देखाहिं ।
सब कवि कविता में कहत गजगति राधानाथ ।
ताहि प्रगट जग में करन धरयो चिन्ह गज साथ ।

वेणु के चिन्ह को भाव वर्णन

सुर नर मुनि नरनाह के बंस यहीं सों होत ।
या हित बंसी चिन्ह हरि पद में प्रगट उदोत ।
गाँठ नहीं जिनके हृदय ते या पद के जोग ।
या हित बंसी चिन्ह पद जानहु सेवक लोग ।
जे जन हरि-गुन गावहीं राखत तिनको पास ।
या हित बंसी चिन्ह हरि पद में करत निवास ।
प्रेम भाव सों जे बिंधे छेद करेजे माहिं ।
तेई या पद में बसैं आइ सकै कोउ नाहिं ।
मनहुं घोर तप करति है बंसी हरि-पद पास ।
गोपी सह त्रैलोक के जीतन की धरि आस ।
श्री गोपिन की सौति लखि पद-तर दीनि डारि ।
यातैं बंसी चिन्ह निज पद में धरत मुरारि ।
आई केवल ब्रज-बधू क्यों नहिं सब सुर-नारि ।
या हित कोपित होइ हरि दीनी पट तर डारि ।
मन चोर्यो बहु त्रियन को पुन श्रवनन मग पैठि ।
ता प्राखित को तप करत मनु हरि-पद-सर बैठि ।
वेणु सरिस हू पातकी शरण गये रखि लेत ।
वेणु -धरन के कमल-पद वेणु चिन्ह यहि हेत ।

मीन चिन्ह को भाव वर्णन

अति चंचल बहु ध्यान सों आवत हृदय मैझार ।

या हित चिन्ह सुमीन को हरि-पद में निरधार ।
जब लौं हिय में सजलता तब लौं याको वास ।
सुष्क भए पुनि नहिं रहत भय यह करत प्रकास ।
जाके देखत ही बढ़ै ब्रज-तिय-मन में काम ।
रति-पति-ध्वज को चिन्ह पद यातैं धारत स्याम ।
हरि मनमय कौं जीति कै ध्वज राख्यो पद लाइ ।
यातैं रेखा मीन की हरि-पद में दरसाइ ।
महा प्रलय में मीन बनि जिमि मनु रक्षा कीन ।
तिमि भवसागर कों चरन या हित रेखा मीन ।

वज्र के चिन्ह को भाव वर्णन

चरण परस नित जे करत इन्द्र-तुल्य ते होत ।
वज्र-चिन्ह हरि-पद-कमल येहि हित करत उदोत ।
पर्वत से निज जनन के पापहिं काटन काज ।
वज्र-चिन्ह पद में धरत कृष्णचंद्र महाराज ।
वज्रनाभ यासों प्रगट जादव सेस लखाहिं ।
थापन-हित निज वंश मुवि वज्र चिन्ह पद माहिं ।

बरछी के चिन्ह को भाव वर्णन

मनु हरिहू अघ सों डरत मति कहूं आवे पास ।
या हित बरछी धारि पग करत दूर सों नास ।

कुमुद के फूल के चिन्ह को भाव वर्णन

श्री राधा-मुखचंद्र लखि अति अनंद श्रीगात ।
कुमुद-चिन्ह श्रीकृष्ण-पद या हित प्रगट लखात ।
सीतल निसि लखि फूलई तेज दिवस लखि बंद ।

यह सुभाव प्रगटित करत कुमुद चरण नंदनंद ।

सोने के पूर्ण कुंभ के चिन्ह को भाव वर्णन

नीरस यामैं नहिं बसैं बसैं जे रस भरपूर ।
पूर्ण कुंभ को चिन्ह मनु या हित धारत सुर ।
गोपीजन-विरहागि पुनि निज जन के त्रयताप ।
मेटन के हित चरन में कुंभ धरत हरि आप ।
सुरसरि श्री हरि-चरन सों प्रगटी परम पवित्र ।
या हित पूरन कुंभ को धारत चिन्ह विचित्र ।
कबहुं अमंगल होत नहिं नित मंगल सुख-साज ।
निज भक्तन के हेत पद कुंभ धरत ब्रजराज ।
श्री गोपीजन-वाक्य के पूरन करिजे हेत ।
सुकुच कुंभ को चिन्ह पग धारत रामानिकेत २ ।

धनुष के चिन्ह को भाव वर्णन

इहाँ स्तब्ध नहिं आवहीं आवहिं जे नइ जाहिं ।
धनुष चिन्ह एहि हेतु है कृष्ण-चरन के माहिं ।
जुरत प्रेम के धन जहाँ दुग बरसा बरसात ।
मन संध्या फूलत जहाँ तहैं यह धनुष लखात ।

चन्द्रमा के चिन्ह को भाव वर्णन

श्री शिव सों निज चरण सों प्रगट करन हित हत ।
चंद्र-चिन्ह हरि-पद बसत निज जन कों सुख देत ॥१॥
जे या चरनहिं सिर धरें ते नर रुद्र समान ।
चंद्र-चिन्ह यहि हेतु निज पद राखत भगवान ॥२॥
निज जन पै बरखत सुधा हरत सकल त्रयताप ।
चंद्र-चिन्ह येहि हेतु हरि धारत निज पद आप ॥३॥
भक्त जनन के मन सदा यामैं करत निवास ।
यातें मन को देवता चंद्र-चिन्ह हरि पास ॥४॥
बहु तारन को एक पति जिमि ससि तिमि ब्रजनाथ ।
दक्षिणा प्रगटित करन चंद्र-चिन्ह पद साथ ॥५॥
याकी छटा प्रकाश तें हरत हृदय-तम धोर ।
या हित ससि को चिन्ह पद धारत नंदकिसोर ॥६॥
निज भगिनी श्री देखि कै चंद्र बस्यौ मनु आइ ।
चंद्र-चिन्ह ब्रजचंद्र-पद यातें प्रगट लखाइ ॥७॥

तरवार के चिन्ह को भाव वर्णन

निज जन के अघ-पसुन कों बधत सदा करि रोस ।
एहि हित असि पग मै धरत दूर दूरत जन-दोस ॥१॥

गदा के चिन्ह को भाव वर्णन

काम-कलुख-कुंजर-कदन समरथ जो सब भाँति ।
गदा-चिन्ह येहि हेतु हरि धरत चरन जुत क्रांति ॥१॥
भक्त-नांद मोहिं प्रिय अतिहि मन महँ प्रगट करत ।
गदा-चिन्ह निज कमल पद धारत राधाकंत ॥२॥

छत्र के चिन्ह को भाव वर्णन

भय दुख आतप सों तपे तिनका अति प्रिय एह ।
छत्र-चिन्ह येहि हेत पग धारत साँवल देह ॥१॥
ब्रज राख्यो सुर-कोप तें भव-जल तें निज दास ।
छत्र-चिन्ह पद मै धरत या हित रमानिवास ॥२॥
याकी छाया में बसत महाराज सम होय ।
छत्र-चिन्ह श्रीकृष्ण पद यातें सोहत सोय ॥३॥

नवकोण चिन्ह को भाव वर्णन

नवो खंड पति होत है मेवत जे पद-कांजु ।
चिन्ह धरत नवकोन को या हित हरि-पद मंजु ॥१॥
नवधा भक्ति प्रकार करि तब पावत येहि लोग ।
या हित है नवकोन को चिन्ह चरन गत-सोग ॥२॥
नव जोगेश्वर जगत तजि यामें करत निवास ।
या हित चिन्ह सुकोन नव हरि-पद करत प्रकास ॥३॥
नव प्रह नहिं बाधा करत जो एहि सेवत नेक ।
याही तें नवकोन को चिन्ह धरत सविवेक ॥४॥
अष्ट सखिन के संग श्री राधा करत निवास ।

याही हित नवकोन को चिन्ह कृष्ण-पद पास ॥५॥
यामैं नव रस रहत है यह अनंद की खानि ।
याही तें नवकोन को चिन्ह कृष्ण-पद जानि ॥६॥
नव को नव-गुन लागि गिनी नव अंक सब होत ।
तातें रेखा कहत जग यामैं ओत न प्रोत ॥७॥

यव के चिन्ह को भाव वर्णन

जीवन जीवन के यहै अन्न एक तिमि येह ।
या हित जब को चिन्ह पद धारत साँवल देह ॥१॥

तिल के चिन्ह को भाव वर्णन

याके शरण गए बिना पित्रन कौ गति नाहिं ।
या हित तिल को चिन्ह हरि राखत निज पद माँहिं ॥१॥

त्रिकोण के चिन्ह को भाव वर्णन

स्त्रीया परकीया बहुरि गनिका तीनहु नारि ।
सबके पति प्रगटित करत मनमथ-मथन मुरारि ॥१॥
तीनहु गुन के भक्त कों यह उद्धरण समर्थ ।
सम त्रिकोन को चिन्ह पद धारत याके अर्थ ॥२॥
ब्रह्मा-हरि-हर तीन सुर याही ते प्रगटत ।
या हित चिन्ह त्रिकोन को धारत राधाकंत ॥३॥
श्री-भू-लीला तीनहु दासी याकी जान ।
तातें चिन्ह त्रिकोन को पद धारत भगवान ॥४॥
स्वर्ग-भूमि-पाताल मै विक्रम हुवै गए धाइ ।
याहि जनावन हेत त्रय कोन चिन्ह दरसाइ ॥५॥
जो याके शरणहि गए मिटे तीनहु ताप ।
या हित चिन्ह त्रिकोन को धरत हरत जो पाप ॥६॥
भक्ति-ज्ञान-वैराग हैं याके साधन तीन ।
यातें चिन्ह त्रिकोन को कृष्ण-चरन लखि लीन ॥७॥
त्रयी सांख्य आराधि कै पावत जोगी जौन ।
सो पद है येहि हेत यह चिन्ह त्रिश्रुति को भौन ॥८॥
बृन्दावन द्वारावती मधुपुर तषि नहिं जाहिं ।
यातें चिन्ह त्रिकोन है कृष्ण-चरन के माहिं ॥९॥
का सुर का नर असुर का सब पै दृष्टि समान ।
एक भक्ति तें होत बस या हित रेखा जान ॥१०॥
नित शिव जू बंदन करत तिन नैनिकी रेख ।
या हित चिन्ह त्रिकोन को कृष्ण-चरन मै देख ॥११॥

वृक्ष के चिन्ह को भाव वर्णन

वृक्ष-रूप सब जग अहै बीज-रूप हरि आप ।
यातें तरु को चिन्ह पग प्रगटत परम प्रताप ॥१॥
जे भव आतप सो तपे तिनहीं के सुख हेतु ।
वृक्ष-चिन्ह निज चरन मै धारत खगपति-केतु ॥२॥
जहँ पग धरै निकुंजमय भूमि तहाँ की होय ।

या हित तरु को चिन्ह पद पुरवत रस कों सोय ।
 यहाँ कल्पतरु सों अधिक भक्त मनोरथ दान ।
 वृक्ष चिन्ह निज पद धरत यातें श्री भगवान् ।
 श्री गोपीजन-मन-बिहंग इहाँ करै विश्राम ।
 या हित तरु को चिन्ह पद धारत हैं धनश्याम ।
 केवल पर-उपकार-हित वृक्ष-सरिस जग कौन ।
 तातें ताको चिन्ह पद धारत राधा-रौन ।
 प्रेम-नयन-जल सों सिंचे सुद चित के खेत ।
 बनमाली के चरन में वृक्ष चिन्ह येहि हेत ।
 पाहन मारेहु देत फल सोइ गुन यामैं जान ।
 वृक्ष-चिन्ह श्रीकृष्ण-पद पर-उपकार-प्रमान ।

बाण के चिन्ह को भाव वर्णन

सब कटाक्ष ब्रज-जुवति के बसत एक ही ठौर ।
 सोई बान को चिन्ह है कारन नहिं कछु और ।

गृह के चिन्ह को भाव वर्णन

केवल जोगी पावहीं नहिं यामैं कछु नेम ।
 या हित गृह को चिन्ह जिहि गृही लाहैं करि प्रेम ।
 मति इबौ भव-सिंधु में यामैं करौ निवास ।
 मानहु गृह को चिन्ह पद जनन बोलान्त पास ।
 शिव जू के मन को मनहुँ महल बनाये स्याम ।
 चिन्ह होय दरसत सोई हरि-पद कांज ललाम ।
 गृही जानि मन बुद्धि को दंपति निवसन हेत ।
 अपने पद कमलान दियो दयानिकेत निकेत ।

अग्निकुंड के चिन्ह को भाव वर्णन

श्री वल्लभ हैं अनल-वपु तहाँ सरन जे जात ।
 ते मम पद पावत सदा येहि हित कुंड लखात ।
 श्री गोपीजन को बिरह रह्यौ जौन श्री गात ।
 एक देस में सिमित सोइ अग्निकुंड दरसात ।
 मत तपि कै मम चरन में क्वथित धान सम होइ ।
 नव न और कछु जन चहै अग्निकुंड है सोइ ।
 जग-पुरुष तबि और कों को सेवै मतिमंद ।
 अग्निकुंड को चिन्ह येहि हित राख्यौ ब्रजचन्द ।

सर्प चिन्ह को भाव वर्णन

निज पद चिन्हित तेहि कियो ताको निज पद राखि ।
 काली-मर्दन-चरन यह भक्त-अनुग्रह-साखि ।
 नाग-चिन्ह मत जानियो यह प्रभु-पद के पास ।
 भक्तन के मन बाँधिये हित राखी अहि पास ।
 श्री राधा के बिरह में मति त्रि-अनल दुख देइ ।

सर्प-चिन्ह प्रभु सर्वदा राखत हैं पद सेइ ।
 याकी सरनन दोन जन सर्पहि आवहु धाय ।
 सर्प-चिन्ह एहि हेतु पद राखत श्री ब्रजराय ।

सैल चिन्ह को भाव वर्णन

सत्य-करन हरिदास वर श्री गिरिवर को नाम ।
 सैल-चिन्ह निज चरन में राख्यौ श्री धनस्याम ।
 श्री राधा के बिरह में पग पग लगत पहार ।
 सैल-चिन्ह निज चरन में राख्यौ यह विचार ।

श्री गोपालतापिनी श्रुति के मत से चरण-चिन्ह वर्णन

परम ब्रह्म के चरन में मुख्य चिन्ह ध्वज-छत्र ।
 ऊरध अध अज लोक सों सोई द्वै पद अत्र ।
 ध्वजा दंड सो मेरु है बन्यो स्वर्णमय सोय ।
 सूर्य-चंद्र की काति जो ध्वज पताक सो होय ।
 आत पत्र को चिन्ह जोइ ब्रह्मलोक सो जान ।
 येहि बिधि श्रुति निरनै करत चरन-चिन्ह परमान ।
 रघु बिनु अश्व लखात है मीन चिन्ह द्वै जान ।
 धनुष बिना परतंच को यह कोउ करत प्रमान ।

मिलि कै चिन्हन को भाव वर्णन

दो चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ हाथी के और अंकुश के चिन्ह को भाव वर्णन

काम करत सब आपु ही पुनि प्रेरकह आप ।
 या हित अंकुश-हस्ति दोउ चिन्ह चरन गत पाप ।

तिल और यव के चिन्ह को भाव वर्णन

देव-काज अरु पितर दोउ याही सों सिधि होइ ।
 याके बिन कोउ गति नहीं येहि हित तिल-यव दोइ ।
 देव-पितर दोउ रिनन सों मुक्त होत सो जीव ।
 जो या पद को सेवई सकल सुखन को सीव ।

कुमुद और कमल के चिन्ह को भाव वर्णन

राति दिवस दोउ सम अहै यह तौ स्वयं प्रकास ।
 या हित निसि दिन के दोऊ चिन्ह कृष्ण-पद पास ।

तीनि चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ पर्वत, कमल और वृक्ष के चिन्ह को भाव वर्णन

श्री कालिंदी कमल सों गिरि सों श्री गिरिराज ।
 श्री वृन्दावन वृक्ष सों प्रगटत सह सुख साज ।

जहाँ जहाँ प्रभु पद धरत तहाँ तीन प्रगटत ।
या हित तीनहु चिन्ह ए धारत राधाकंत । १२
त्रिकोण नवकोन और अष्टकोन के चिन्ह
को भाव वर्णन

तीन आठ नव मिलि सबै बीस अंक पद जान ।
जीत्यौ बिस्वै बीस सोइ जो सेवत करि ध्यान । १३

चारि चिन्ह को मिलि कै वर्णन
तहाँ अमृत-कुंभ, धनु, वंशी और
गृह के चिन्ह को भाव वर्णन

वैद्यक अमृत-कुंभ सों धनु सों धनु को वेद ।
गान वेद वंशी प्रगट शिल्प वेद गृह भेद । १४
रिग यजु साम अथर्व के ये चारहु उपवेद ।
सो या पद सों प्रगट एहि हेतु चिन्ह गत खेद । १५

सर्प, कमल, अग्निकुंड और गदा के
चिन्ह को भाव वर्णन

रामानुज मत सर्प सों शेष अचारज मानि ।
निंबारक मत कमल सों रविहि पद्म प्रिय जानि । १६
विष्णुस्वामि मत कुंड सों श्रीवल्लभ वपु जान ।
गदा चिन्ह सों माध्य मत आचारज हनुमान । १७
इन चारहु मत में रहै तिनहि मिलै भगवत ।
कुंड गदा अहि कमल येहि हित जानहु सब संत । १८
शक्ति, सर्प, बरछी, अंकुश
को भाव वर्णन

सर्प चिन्ह श्री शंभु को शक्ति सु गिरिजा मेस ।
कुंत कारतिक आपु है अंकुश अहै गणेश । १९
प्रिया-पुत्र संग नित्य शिव चरन बसत हैं आप ।
तिनके आयुध चिन्ह सब प्रगटित प्रबल प्रताप । २०

पाँच चिन्हन को मिलि कै वर्णन
तहाँ गदा, सर्प, कमल, अंकुश
शक्ति के चिन्ह को भाव वर्णन

गदा विष्णु को जानिए अहि शिव जू के साथ ।
दिवसनाथ को कमल है अंकुश है गणनाथ । २१
शक्ति रूप तहाँ शक्ति है ईई पाँचौ देव ।
चिन्ह रूप श्रीकृष्ण-पद करत सदा शुभ सेव । २२
जिमि सब जल मिलि नदिन में अंत समुद्र समात ।
तिमि चाहौ जाकौ भजौ कृष्ण चरन सब जात । २३

छ चिन्हन को मिलि कै वर्णन

तहाँ छत्र, सिंहासन, रथ, घोड़ा,

हाथी और धनुष के चिन्ह को भाव वर्णन

छत्र सिंहासन बाजि गज रथ धनु ए पट जान ।
राज-चिन्ह में मुख्य हैं करत राज-पद दान । २४
जो या पद को नित भजै सेवै करि करि ध्यान ।

महाराज तिनको करत सह स्यामा भगवान । १२

सात चिन्ह को मिलि कै वर्णन
तहाँ वेणु, मत्स्य, चंद्र, वृक्ष, कमल,
कुमुद, गिरि के चिन्ह को भाव वर्णन

आवाहन हित वेणु भय काम बढ़वन हेत ।
चंद्र बिरह-बरधन करन तरु सुगंधि रस देत । २५
कमल हृदय प्रफुलित-करन कुमुद प्रेम-दृष्टान्त ।
गिरिवर सेवा करन हित धारत राधा-कांत । २६
राग-बिलास-सिंगार के ये उद्दीपन सात ।
आलंबन हरि संग ही राखत पद-जलजात । २७

आठ चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ वज्र, अग्निकुंड, तिल, तलवार, मच्छ,
गदा, अष्टकोण और सर्प को भाव वर्णन

वज्र इन्द्र वपु, अनल है अग्निकुंड वपु आप ।
जम तिल वपु, तरवार वपु नैरित प्रगट प्रताप । २८
वरुन मच्छ वपु, गदा वपु वायु जानि पुनि लेहु ।
अष्टकोन वपु धनद है, अहि इसान कहि देहु । २९
आयुध बाहन सिद्धि भय आदिक को संबंध ।
इन चिन्हन सों देव सों जानहु करि मन संघ । ३०
सोइ आठौ दिगपाल मनु सेवत हरि-पद आइ ।
अथवा दिगपति होइ जो रहै चरन सिरु नाइ । ३१

पुनः

अंकुश, बरछी, शक्ति, पवि, गदा, धनुष, असि तीर ।
आठ शस्त्र को चिन्ह यह धारत पद बलवीर । ३२
आठहु दिसि सों जनन की मनु-इच्छा के हेत ।
निज पद में ये शस्त्र सब धारत रमा-निकेत । ३३

नव चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ वेनु, चंद्र, पर्वत, रथ, अग्नि, वज्र, मीन,

गज, स्वस्तिक चिन्ह को भाव वर्णन

वेनु-चंद्र-गिरि-रथ-अनल-वज्र-मीन-गज-रेख ।
आठौ रस प्रगट सदा नवम स्वस्तिकहु देख । ३४
वेनु प्रगट शृंगार रस जो बिहार को मूल ।
चरन कमल में चंद्रमा यह अद्भुत गत सुल । ३५
कोमल पद कहैं गिरि प्रगट यहै हास्य की बात ।
रन उद्यम आगे रहै रथ रस वीर लखात । ३६
निसिचर-तूलहि दहन हित अग्निकुंड भय-रूप ।
रोद्र सर्प को चिन्ह है दुष्टन-काल-सरूप । ३७
गज करुणा रस रूप है जिन अति करी पुकार ।
मीन चिन्ह वीभत्स है बंगाली-व्यवहार । ३८
नाटक के ये आठ रस आठ चिन्ह सों होत ।

स्वास्तिक सों पुनि शांति को रस नित करत उदोत । १६
कर-पद-मुख आनंदमय प्रभु सब रस की खान ।
ताते नव रस चिन्ह यह धारत पद भगवान । १७

दस चिन्ह को मिलि कै वर्णन

**तहाँ वेणु, शंख, गज, कमल, यव, रथ,
गिरि, गदा, वृक्ष, मीन को भाव वर्णन**

वेनु बड़ावत श्रवन को, शंख सुकीर्तन जान ।
गज सुमिरन को कमल पद, पूजन कमल बखान । १
भोग रूप यव अरचनहि, बंदन गिरि गिरिराज ।
गदा दास्य हनुमान को, सख्य सारथी-साज । २
तरु तन मन अरपन सबै, प्रेम लक्षणा मीन ।
दस विधि उद्दीपन करहिं भक्ति चिन्ह सत तीन । ३

**मत्स्य, अमृत-कुंभ, पर्वत, वज्र, छत्र, धनुष,
बान, वेणु, अग्निकुंड और तरवार के
चिन्ह को एक में वर्णन**

प्रगट मत्स्य के चिन्ह सों विष्णु मत्स्य अवतार ।
अमृत-कुंभ सो कच्छ है भयो जो मथती बार । १
पर्वत सो बाराह मे धरनि-उधारन-रूप ।
वज्र चिन्ह नरसिंह के त्रे नख वज्र-सरूप । २
वामन वृ हैं छत्र सों जो हैं बटु को अंग ।
परशुराम धनु चिन्ह है गण जो धनु के संग । ३
बान चिन्ह सों प्रगट श्री रामचंद्र महाराज ।
वेनु-चिन्ह हलधर प्रगट व्यूह रूप सह साज । ४
अग्निकुंड सों वृक्ष भण जिन मख निदा कीन ।
कलकी असि सों जानिये मलैच्छ-हरन-परवीन । ५
भीर परत जब भक्त पर तब अवतारहिं लेत ।
अवतारी श्रीकृष्ण पद दसौ चिन्ह एहि हेत । ६

ग्यारह चिन्ह को मिलि कै वर्णन

**तहाँ शक्ति, अग्निकुंड, हाथी, कुंभ, धनुष
चंद्र, जव, वृक्ष, त्रिकोण, पर्वत,**

सर्प को भाव वर्णन

श्री शिव वृ हरि-चरन में करत सर्वदा वास ।
आयुध भूषण आदि सह ग्यारह रूप प्रकास । १
शक्ति जानि गिरि-नर्दासी परम शक्ति जो आप ।
अग्निकुंड तीजो नयन अथवा धुनी थाप । २
गज जानौ गज को चरम धरत जाहि भगवान ।
कुंभ गंग-जल को कहौ रहत सीस अस्थान । ३
धनुष पिनाकाहि मानिये सब आयुध को इस ।
चंद्र जानि चूड़ारतन जेहि धारन शिव सीस । ४

श्रीतनु नवधा भक्तिमय सोइ नवकोन लखाइ ।
वृक्ष महावट वृक्ष है रहत जहाँ सुरराइ । ५
नेत्र रूप वा शूल को रूप त्रिकोणहि जान ।
पर्वत सोइ कैलास है जहाँ बिहरत भगवान । ६
सर्प अभुखन अंग के कंकन में वा सेस ।
एहि विधि श्री शिव बसहिं नित चरन माँहि सुभ वेस । ७
को इनकी सम कारि सकै भक्तन के सिरताज ।
आसुतोष जो रीति कै देहिं भक्ति सह साज । ८
जिन निज प्रभु को जा दिवस आत्म-समर्पन कीन ।
चंदन-भूषण-बसन-भष-सेज आदि तजि दीन । ९
भस्म-सर्प-गज-छाल विष परबत माँहि निवास ।
तबसों अंगीकृत कियो तज्यौ सबै सुखरास । १०

अन्य मत से चिन्हन को रंग वर्णन

स्वास्तिक पीवर वर्ण को, पाटल है अठ-कोन ।
स्वत रंग को छत्र है, हरित कल्पतरु जौन । १
स्वर्ण वर्ण को चक्र है, पाटल जब की माल ।
ऊरध रेखा अरुण है, लोहित ध्वजा विसाल । २
वज्र बीजुरी रंग को, अंकुश है पुनि स्याम ।
सायक त्रय चित्रित बरन, पद्म अरुण अठ-धाम । ३
अस्व चित्र रंग को बन्यौ, मुकुट स्वर्ण के रंग ।
सिंहासन चित्रित बरन, सोभित सुभग सुदंग । ४
व्योम चँवर को चिन्ह है नील वर्ण अति स्वच्छ ।
जब अंगुष्ठ के मूल में पाटल वर्ण प्रतच्छ । ५
रेखा पुरुषाकार है पाटल रंग प्रमान ।
ये अष्टादश चिन्ह श्री हरि दहिने पद जान । ६
जे हरि के दक्षिन चरन ते राधा-पद वाम ।
कृष्ण वाम पद चिन्ह अब सुनहु विचित्र ललाम । ७
स्वत रंग को मत्स्य है, कलश चिन्ह है लाल ।
अर्ध चंद्र पुनि स्वत है, अरुण त्रिकोण विसाल । ८
स्याम वरन पुनि जंबु फल, काही धनु की रेख ।
गोखुर पाटल रंग को शंख श्वेत रंग देख । ९
गदा स्याम रंग जानिये, बिंदु चिन्ह है पीत ।
खंग अरुण षटकोन, जम दंड श्याम की रीत । १०
त्रिवली पाटल रंग की पूर्ण चंद्र घृत रंग ।
पीत रंग चौकोन है पृथ्वी चिन्ह सुदंग । ११
तलवा पाटल रंग के दोउ चरन के जान ।
कृष्ण वाम पद चिन्ह सो राधा दक्षिन मान । १२
या विधि चौतिस चिन्ह है जुगल चरन जलजात ।
छाँडि सकल भव-जाल को भजौ याहि हे तात । १३

**श्री स्वामिनी जी के चरण चिन्ह के
भाव वर्णन**

छत्रप

छत्र चक्र ध्वज लता पुष्प कंकण अंबुज पुनि ।
अंकुश ऊरध रेख अर्ध ससि यव बाएँ गुनि ।
पाश गदा रथ यज्ञवेदि अरु कुंडल ज्ञानी ।
बहुरि मत्स्य गिरिराज शंख दहिने पद मानौ ।
श्रीकृष्ण प्राणप्रिय राधिका चरण चिन्ह उन्नीसवर ।
'हरिचंद' सीस राजत सदा कलमल-हर कल्याणकर ॥ ११

छत्र के चिन्ह को भाव वर्णन

दोहा

सब गोपिन की स्वामिनी प्रगट करन यह अत्र ।
गोप-छत्रपति-कामिनी धर्यौ कमल-पद छत्र ॥ १
प्रीतम-विरहातप-शमन हेत सकल सुखधाम ।
छत्र चिन्ह निज कंज पद धरत राधिका बाम ॥ २
यदुपति ब्रजपति गोपपति त्रिभुवनपति भगवान ।
तिनहुँ की यह स्वामिनी छत्र चिन्ह यह जान ॥ ३

चक्र के चिन्ह को भाव वर्णन

एक-चक्र ब्रजभूमि में श्रीराधा को राज ।
चक्र चिन्ह प्रगट करन यह गुन चरन विराज ॥ १
मान समै हरि आप ही चरन पलोत्त आय ।
कृष्ण कमल कर चिन्ह सो राधा-चरन लखाय ॥ २
दहन पाप निज जनन के हरन हृदय-तम घोर ।
तेज तत्व को चिन्ह पद मोहन चित को चोर ॥ ३

ध्वज के चिन्ह को भाव वर्णन

परम विजय सब नियत सों श्रीराधा पद जान ।
यह दरसावन हेतु पद ध्वज को चिन्ह महान ॥ १

लता चिन्ह को भाव वर्णन

पिया मनोरथ की लता चरन बसी मनु आय ।
लता चिन्ह हवै प्रगट सोइ राधा-चरन दिखाय ॥ १
करि आश्रय श्रीकृष्ण को रहत सदा निरधार ।
लता-चिन्ह एहि हेत सो रहत न बिनु आधार ॥ २
देवी वृंदा विपिन की प्रगट करन यह बात ।
लता चिन्ह श्रीराधिका धारत पद-जलजात ॥ ३
सकल महोषधि गगन की परम देवता आप ।
सोइ भव रोग महोषधी चरन लता की छाप ॥ ४
लता चिन्ह पद आपुके वृक्ष चिन्ह पद श्याम ।
मनहुँ रेख प्रगट करत यह संबंध ललाम ॥ ५
चरन धरत जा भूमि पर तहाँ कुंजमय होत ।
लता चिन्ह श्री कमल पद या हित करत उद्योत ॥ ६
पाग चिन्ह मानहुँ रहयो लपटि लता आकार ।
मानिनि के पद-पद्म में बुधजन लेहु विचार ॥ ७

पुष्प के चिन्ह को भाव वर्णन

कीरतिमय सौरभ सदा या सों प्रगटित होय ।
या हित चिन्ह सुपुष्प को रह्यौ चरन-तल सोय ॥ १
पाय पलोत्त मान में चरन न होय कठोर ।
कुसुम चिन्ह श्रीराधिका धारत यह मति मोर ॥ २
सब फल याही सों प्रगट सेओ यहि चित लाय ।
पुष्प चिन्ह श्रीराधिका पद यहि हेत लखाय ॥ ३
कोमल पद लखि कै पिया कुसुम पाँवड़े कीन ।
सोइ श्रीराधा कमल पद कुसुमित चिन्ह नवीन ॥ ४

कंकण के चिन्ह को भाव वर्णन

पिय-विहार में मुखर लखि पद तर दीनो डारि ।
कंकन को पद चिन्ह सोइ धारत पद सुकुमारि ॥ १
पिय कर को निज चरन को प्रगट करन अति हेत ।
मानिनि-पद में बलय को चिन्ह दिखाई देत ॥ २

कमल के चिन्ह को भाव वर्णन

कमलादिक देवी सदा सेवत पद दै चित ।
कमल चिन्ह श्रीकमल पद धारत एहि हित नित ॥ १
अति कोमल सुकुमार श्री चरन कमल हैं आप ।
नेत्र कमल के दृष्टि की सोई मानौ छाप ॥ २
कमल रूप वृंदा विपिन बसत चरन में सोइ ।
अधिपतित्व सूचित करत कमल कमल पद होइ ॥ ३
नित्य चरन सेवन करत विष्णु जानि सुख-सदा ।
पद्मादिक आयुधन के चिन्ह सोई पद-पद्म ॥ ४
पद्मादिक सब निधिन को करत पद्म-पद दान ।
यातें पद्म-चरन में पद्म चिन्ह पहिचान ॥ ५

ऊर्ध्व रेखा के चिन्ह को भाव वर्णन

अति सूधो श्री चरन को यह मारग निरुपाधि ।
ऊरध रेखा चरन में ताहि लेहु आराधि ॥ १
शरन गए ते तरहिगे यहै लीक कहि दीन ।
ऊरध रेखा चिन्ह है सोई चरन नवीन ॥ २

अंकुश के चिन्ह को भाव वर्णन

बहु-नायक पिय-मन-सुगज मति औरन पै जाय ।
या हित अंकुश चिन्ह श्री राधा-पद दरसाय ॥ १

अर्ध-चंद्र के चिन्ह को भाव वर्णन

पूरन दस ससि-नखन सों मनहुँ अनादर पाय ।
सूखि चंद्र आधो भयो सोई चिन्ह लखाय ॥ १
जे अ-भक्त कु-रसिक कुटिल तेन सकहिं इत आय ।
अर्ध-चंद्र को चिन्ह यहि हेत चरन दरसाय ॥ २
निष्कलंक जग-बंध पुनि दिन दिन याकी वृद्धि ।
अर्ध-चंद्र को चिन्ह है या हित करत समृद्धि ॥ ३
राहु ग्रसे पूरन ससिहिं ग्रसे न यहि लखि वक्र ।
अर्ध-चंद्र को चिन्ह पद देखत जेहि शिव-सक्र ॥ ४

यव के चिन्ह को भाव वर्णन

परम प्रथित निज यश-करन नर को जीवन प्राण ।
राजस यव को चिन्ह पद राधा धरत सुजान ॥
भोजन को मत सोच करु भजु पद तजु जंजाल ।
जव को चिन्ह लखात पद हरन पाप को जाल ॥

इति श्री वाम पद चिन्हम्

—:ॐ:—

पाश के चिन्ह को भाव वर्णन

भव-बंधन तिनके कटैं जै आवैं करि आस ।
यह आशय प्रगटित करत पास प्रिया-पद पास ॥
जै आवैं याकी सरन कबहुँ न ते छुटि जाहिं ।
पास-चिन्ह श्री राधिका येहि कारन पद माहिं ॥
पिय मन बंधन हेत मनु पास-चिन्ह पद सोभ ।
सेवत जाको शंभु अज भक्ति दान के लोभ ॥

गदा के चिन्ह को भाव वर्णन

जै आवत याकी शरन पितर सबै तरि जात ।
गया गदाधर चिन्ह पद या हित गदा लखात ॥

रथ के चिन्ह को भाव वर्णन

जामैं श्रम कछु होय नहिं चलत समय बन-कुंज ।
या हित रथ कों चिन्ह पग सोभित सब-सुख-पुंज ॥
यह जग सब रथ रूप है सारथि प्रेक आप ।
या हित रथ को चिन्ह है पग में प्रगट प्रताप ॥

वेदी के चिन्ह को भाव वर्णन

अग्नि रूप हवै जगत को कियो पुष्टि रस दान ।
या हित वेदी चिन्ह है प्यारी-चरन महान ॥
यग्य रूप श्रीकृष्ण हैं स्वधा रूप हैं आप ।
यातें वेदी चिन्ह है चरन हरन सब पाप ॥

कुंडल के चिन्ह को भाव वर्णन

प्यारी पग नूपुर मधुर धुनि सुनिबे के हेत ।
मनहुँ करन पिय के बसे चरन सरन सुख देत ॥
सांख्य योग प्रतिपाद्य हैं ये दोउ पद जलजात ।
या हित कुंडल चिन्ह श्री राधा-चरन लखात ॥

मत्स्य के चिन्ह को भाव वर्णन

जल विनु मीन रहै नहीं तिम पिय विनु हम नाहिं ।
यह प्रगटावन हेत हैं मीन चिन्ह पद माहिं ॥

पर्वत के चिन्ह को भाव वर्णन

सब ब्रज पूजत गिरिवरहि सो सेवत है पाय ।
यह महात्म्य प्रगटित करन गिरिवर चिन्ह लखाय ॥

शंख के चिन्ह को भाव वर्णन

कबहुँ पिय को होइ नहिं विरह ज्वाल की ताप ।
नीर तत्व को चिन्ह पद या सों धारत आप ॥

इति श्री दक्षिण पद चिन्हम् ।

—:ॐ:—

भक्त, मंजूषा आदिक ग्रन्थ सो अन्य वर्णन

जव बंड़ो अंगुष्ठ मध ऊपर मुख को छत्र ।
दक्षिण दिसि को फरहरे ध्वज ऊपर मुख तत्र ॥
पुनि पताक ताके तले कल्पलता के रेख ।
जो ऊपर दिसि कों बढ़ी देत सकल फल लेख ॥
ऊरध रेखा कमल पुनि चक्र आदि अति स्वच्छ ।
दक्षिण श्री हरि के चरण इतने चिन्ह प्रतच्छ ॥
श्री राधा के वाम पद अष्ट पत्र को पत्र ।
पुनि कनिष्ठिका के तले चक्र चिन्ह को सब ॥
अग्र शृंग अंकुश करौ ताही के दिग ध्यान ।
नीचे मुख को अर्ध ससि एड़ी मध्य प्रमान ॥
ताके दिग है बलाय को चिन्ह परम सुख-मूल ।
दक्षिण पद के चिन्ह अब सुनहु हरन भव-सूल ॥
शंख रह्यो अंगुष्ठ में ताको मुख अति हीन ।
चार अंगुरियन के तले गिरिवर चिन्ह नवीन ॥
ऊपर सिर सब अंग-जुत रथ है ताके पास ।
दक्षिण दिसि ताके गदा बाएँ शक्ति विलास ॥
एड़ी पै ताके तले ऊपर मुख को मीन ।
चरन-चिन्ह तेहि भाँति श्री राधा-पद लखि लीन ॥

अन्य मत सों श्री स्वामिनी जू के चरन चिन्ह

वाम चरन अंगुष्ठ तल जव को चिन्ह लखाइ ।
अर्ध चरन लौ घूमि कै ऊरध रेखा जाइ ॥
चरन-मध्य ध्वज अब्ज है पुष्प-लता पुनि सोह ।
पुनि कनिष्ठिका के तले अंकुश नासन मोह ॥
चक्र मूल में चिन्ह द्वै कंकन है अरु छत्र ।
एड़ी में पुनि अर्ध ससि सुनो अबै अन्यत्र ॥
एड़ी में सुभ सैल अरु स्थंदन ऊपर राज ।
शक्ति गदा दोउ ओर दर अँगुठा मूल बिराज ॥
कर्नाष्ठिका अँगुरी तले वेदी सुंदर जान ।
कुण्डल है ताके तले दक्षिण पद पहिचान ॥

तुलसी शब्दार्थ प्रकाश के मत सों युगल स्वरूप के चिन्ह

छप्पय

ऊरध रेखा छत्र चक्र जव कमल ध्वजावर ।
अंकुश कुलिस सुचारि सथीये चारि जंबुधर ।
अष्टकोन दश एक लखन दहिने पग जानौ ।

वाम पाद आकास शंखवर धनुष पिछानौ ।
 गोपद त्रिकोन घट चारि ससि मीन आठ ए चिन्हवर ।
 श्रीराधा-रमन उदार पद ध्यान सकल कल्याणकर ।
 पुष्प लता जब वलय ध्वजा ऊरध रेखा वर ।
 छत्र चक्र बिधु कलस चारु अंकुश दहिने धर ।
 कुंडल वेदी शंख गदा वरछी रथ मीना ।
 वाम चरन के चिन्ह सप्त ए कहत प्रवीना ।
 ऐसे सत्रह चिन्ह-जुत राधा-पद बंदत अमर ।
 सुमिरत अघहर अनघवर नंद-सुअन आनंदकर ।

गर्ग-संहिता के मत सों चरण-चिन्ह वर्णन

दोहा

चक्रांकुश यव छत्र ध्वज स्वस्तिक बिंदु नवीन ।
 अष्टकोन पवि कमल तिल शंख कुंभ पुनि मीन ।
 ऊरधर रेख त्रिकोन धनु गोखुर आधो चंद ।
 ए उनीस सुभ चिन्ह निज चरन धरत नंद-नंद ।

अन्य मत सों श्रीमती जू के

चरण-चिन्ह वर्णन

केतु छत्र स्यंदन कमल ऊरध रेखा चक्र ।
 अर्ध चंद्र कुश बिन्दु गिरि शंख शक्ति-अति वक्र ।
 लानी लता लवंग की गदा बिन्दु द्वै जान ।
 सिंहासन पाठीन पुनि सोभित चरन बिमान ।
 ए अष्टादश चिन्ह श्री राधा-पद में जान ।
 जा कहैं गावत रैन दिन अष्टादसौ पुरान ।
 जग्य श्रुवा को चिन्ह है काहू के मत सोइ ।
 पुनि लक्ष्मी को चिन्हहु मानत हरि-पद कोइ ।
 श्रीराधा-पद मोर को चिन्ह कहत कोउ संत ।
 द्वै फल की वरछी कोऊ मानत पद कुश अंत ।

श्री मद्भागवत के अनेक टीकाकारन के मत सों

श्री चरण-चिन्ह को वर्णन

लौंघे प्रभु को श्री चरण चौदह अंगुल जान ।
 पट अंगुल बिस्तार में याको अहै प्रमान ।
 दक्षिन पद के मध्य में ध्वजा-चिन्ह सुभ जान ।
 अंगुरी नीचे पद्म है, पवि दक्षिण दिसि जान ।
 अंकुश वाके अग्र है, जब अंगुष्ठ के मूल ।
 स्वस्तिक काहू ठौर है हरन भक्त-जन-सूल ।
 तल सों जहैं लौं मध्यमा सोभित ऊरध रेख ।
 ऊरध गति तेहि देत है जो वाको लखि लेख ।
 आठ अंगुल तत्रि अग्र सों तर्जनि अंगुठा बीच ।
 अष्टकोन को चिन्ह लखि सुभ गति पावत नीच ।

वाम चरन में अग्र सों तत्रि कै अंगुल चार ।
 बिना प्रतंचा को धनुष सोभित अतिहि उदार ।
 मध्य चरन त्रैकोन है अमृत कलश कहैं देख ।
 द्वै मंडल को बिंदु नभ चिन्ह अग्र पै लेख ।
 अर्ध चंद्र त्रैकोन के नीचे परत लखाय ।
 गो-पद नीचे धनुष के तीरथ को समुदाय ।
 एड़ी पै पाठीन है दोउ पद जबू-रेख ।
 दक्षिन पद अंगुष्ठ मधि चक्र चिन्ह को लेख ।
 छत्र चिन्ह ताकें तले शोभित अतिहि पुनीत ।
 वाम अंगुठा शंख है यह चिन्हन की रीत ।
 जहैं पूरन प्रागदय तहैं उनिस् परत लखाइ ।
 अंश कला में एक द्वै तीन कहैं दरसाइ ।
 बाल-बोधिनी तोषिना चक्र-वर्तिनी जान ।
 वैष्णव-जन-आनदिनी तिनको यहै प्रमान ।
 चरण-चिन्ह निज ग्रन्थ में यही लिख्यो हरिराय ।
 विष्णु पुरान प्रमान पुनि पद्म-वचन को पाय ।
 स्कंध-मत्स्य के वाक्य सों याको अहै प्रमान ।
 हयग्रीव की संहिता वाहू में यह जान ।

श्री राधिका-सहस्रनाम के मत सों

चिन्ह को वर्णन

कमल गुलाब अटा सु-रथ कुंडल कुंजर छत्र ।
 फूल माल अरु बीजुरी दंड मुकुट पुनि तत्र ।
 पूरन ससि को चिन्ह है बहुरि ओढ़नी जान ।
 नारदीय के वचन को जानहु लिखित प्रमान ।

श्री महाप्रभु श्री आचार्य जी के

चरण-चिन्ह वर्णन

छप्पय

कमल पताका गदा वज्र तोरन अति सुंदर ।
 कुसुमलता पुनि धनुष धरत दक्षिन पद में वर ।
 ध्वज अंकुश भ्रम चक्र अष्टदल अबुद मानौ ।
 अमृत-कुंभ यव चिन्ह वाम पद में पुनि जानौ ।
 तैलंग वंश शोभित-करन विष्णु स्वामि पथ प्रगट कर ।
 श्री श्री वल्लभ-पद-चिन्ह ये हृदय नित्य 'हरिचंद' धर ।

श्री रामचन्द्र जी के चरण-चिन्ह वर्णन

स्वस्तिक ऊरध रेख कोन अठ श्रीहल-मूसल ।
 अहि वाणावर वज्र सु-रथ यव कंज अष्टदल ।
 कल्पवृक्ष ध्वज चक्र मुकुट अंकुश सिंहासन ।
 छत्र चंबर यम-दंड माल यव की नर को तन ।
 चौबीस चिन्ह ये राम-पद प्रथम सुलच्छन जानिए ।
 'हरिचंद' साई सिय वाम पद जानि ध्यान उर आनिए ।
 सरयू गोपद महि जम्बू घट जय पताक दर ।

गदा अर्ध ससि तिल त्रिकोन पटकोन जीव वर ।
 शक्ति सुधा सर त्रिवलि मीन पूरन ससि बीना ।
 बंशी धनु पुनि हंस तून चन्द्रिका नवीना ।
 श्री राम-वाम पद चिन्ह सुभ ए चौबिस शिव उक्त सब ।
 सोइ जनकनदिनी दक्ष पद भजु सब तजु 'हरिचंद' अब १२
 रसिकन के हित ये कहे चरन-चिन्ह सब गाय ।
 मति देखै यहि और कोउ करियो वही उपाय १३
 चरन-चिन्ह ब्रजराय के जो गावहि मन लाय ।
 सो निहचै भव-सिंधु कों गोपद सम करि जाय १४
 लोक वेद कुल-धर्म बल सब प्रकार अति हीन ।
 पै पद-बल ब्रजराज के परम ठिठाई कीन १५
 यह माला पद-चिन्ह की गुही अमोलक रत्न ।
 निज सुकंठ में धारियो अहो रसिक करि जल १६
 भटक्यो बहु विधि जग विपिन मिल्यो न कैहु विश्राम ।
 अब आनंदित हवै रह्यो पाइ चरन घनस्याम १७
 दोऊ हाथ उठाइ कै कहत पुकारि पुकारि ।
 जो अपनो चाहौ भलौ तौ भजि लेहु मुरारि १८
 सुत तिय गृह धन राज्य हू या मैं सुख कछु नाहिं ।
 परमानंद प्रकास इक कृष्ण-चरन के माहिं १९
 वेद भेद पायो नहीं भए पुरान पुरान ।
 स्मृतिह्व की सब स्मृति गई पै न मिले भगवान २०
 मोरौ मुख घर ओर सों तोरौ भव के जाल ।
 छोरो सब साधन सुनौ भजौ एक नंदलाल २१
 अहो नाथ ब्रजनाथ जू कित त्यागौ निज दास ।
 बेगहि दरसन दीजिये व्यर्थ जात सब साँस २२
 मरै नैन जो नहिं लखै मरै श्रवन बिनु कान ।
 मरै नासिका करहिं नहिं जे तुलसी-रस घ्रान २३
 जीवन तुम बिनु व्यर्थ है प्यारे चतुर सुजान ।
 यासों तो मरिबो भलौ तपत ताप तें प्रान २४
 निज अंगीकृत जीव को दसा देखि अति दीन ।
 क्यौं न द्रवत हरि बेगहीं करुना-करन प्रवीन २५
 निठुराई मत कीजिये नाहीं तौ प्रन जाय ।
 दया-समुद्र कृपायतन करुना-सीव कहाय २६
 तुमरे तुमरे सब कहें भे प्रसिद्ध जग माहिं ।

कहो सु तुम कहैं छाँड़ि कै कृपासिन्धु कहैं जाहिं १२५
 जद्यपि हम सब भाँति ही कूटिल कर मतिमंद ।
 तदपि उधारहु देखि कै अपनी दिसि नंद-नंद १२६
 कहैं हँसै नहिं दीन लखि मोहिं जग के नंदलाल ।
 दीन-बंधु के दास को देखहु ऐसे हाल १२७
 श्रीराधे बृषभानुजा तुम तौ दीन-दयाल ।
 केहि हित निठुराई धरी देखि दीन को हाल १२८
 मान समै करि कै दया देहु विलम्ब लगाय ।
 तौ हरि को मालुम परै आरत जन की हाय १२९
 जौ हमरे दोसन लखौ तौ नहिं कछु अवलंब ।
 अपुनी दीन-दयालता केवल देखहु अब १३०
 श्री वल्लभ वल्लभ कहौ छोड़ि उपाय अनेक ।
 जानि आपनो राखिहैं दीनबंधु की टेक १३१
 साधन छाँड़ि अनेक विधि परि रहु द्वारे आय ।
 अपनो जानि निबाहिहैं करि कै कोउ उपाय १३२
 श्री जमुना-जल पान करु बसु वृंदावन धाम ।
 मुख में महाप्रसाद रखु लै श्री वल्लभ नाम १३३
 तन पुलकित रोमांच करि नैनन नीर बहाव ।
 प्रेम-मगन उन्मत्त हवै राधा राधा गाव १३४
 ब्रज-रज मैं लोटत रहौ छोड़ि सकल जंजाल ।
 चरन राखि विश्वास दृढ़ भजु राधा-गोपाल १३५
 सब दीनन की दीनता सब पापिन को पाप ।
 सिमिति आइ मो में रह्यो यह मन समझहु आप १३६
 ताहू पै निस्तारिये अपनी ओर निहारि ।
 अंगीकृत रच्छहिं बड़े यह जिय धर्म विचारि १३७
 प्राननाथ ब्रजनाथ जू आरति-हर नंद-नंद ।
 धाइ भुजा भरि राखिये डूबत भव 'हरिचंद' १३८
 मरौ ज्ञान वेदान्त को जरौ कर्म को जाल ।
 दया-दृष्टि हम पै करौ एक नन्द के लाल १३९
 साधुन को संग पाइ कै हरि-जस गाह बजाइ ।
 नृत्य करत हरि-प्रेम मैं ऐसे जनम बिहाइ १४०
 अहो सहो नहिं जात अब बहुत भई नंद-नंद ।
 करुना करि करुनायतन राखहु जन 'हरिचंद' १४१

इति



प्रेम-मालिका

रचनाकाल - १८७१ ई.

"सचिन्तयेद्भगवत्शचरणारविन्दं,
वज्राकुशध्वजसरोरुहलांछनाद्वयम् ।
उत्तुंगरक्तविलाससन्निखचक्रवाल,
ज्योत्स्नाभिराहरमहद्दयान्धकारम् । १
यच्छौचनिस्तसर्तिप्रवरोदकेन,
तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोभूत ।
ध्यातुर्मनश्शमलशैलानिस्पृष्टवज्रं,
ध्यायेच्चिरं भगवत्शचरणारविन्दम् । २"

TO
THE LOVE
THESE
Few Pages are Affectionately
DEDICATED
WITH THE GOOD WISHES
OF
HARISH CHANDRA
BENARES

विजयते जीवितेशः

इस छोटे से ग्रंथ में मेरे बनाए कीर्तनों में से कतिपय कीर्तन एकत्र किए गए हैं । इसमें कीर्तन तीन भाँति के हैं—एक तो लीला संबंधी, दूसरे दैन्य भाव के और तीसरे परम प्रेममय अनुभव के हैं । इसको एकत्र करना और छपवाना अप्रयोजन था, क्योंकि एक तो संसार में प्रायः अनधिकारी लोग हैं, दूसरे इसके द्वारा लोगों में अपनी प्रसिद्धि की इच्छा नहीं । तथापि परम प्रीति से यह प्रेम-पुष्प-ग्रथित मालिका उसी के श्रीकंठ में समर्पित है जो इसमें गाया गया है ।

हरिश्चंद्र

प्रेम-मालिका

राग यथा-रुचि

प्यारी छवि की रासि बनी ।

जाहि बिलोकि निमेष न लागत श्री वृषभानु-जनी ॥

नंद-नंदन सो बाहु मिथुन करि ठाढ़ी जमुना-तीर ।

करक होत सौतिन के छवि लखि सिंह कमर पर जीर ॥

कीर्ति की कन्या जग-धन्या अन्या तुला न बाकी ।

वृश्चिक सी कसकत मो इन-हिय भौह छबीली जाकी ।

धन धन रूप देखि जेहि प्रति छिन मकरध्वज-तिय लाजै ।

जुग कुच-कुंभ बढ़ावत सोभा मीन नयन लखि भाजै ॥

वैस-संधि-संक्रीन-समय तन जाके बसत सदाई ।

'हरिचंद' मोहन बढ़भागी जिन अंकम करि पाई ॥ १

आबु तन नीलाम्बर अति सोहै ।

तैसे ही केश खुले मुख ऊपर देखत ही मन मोहै ॥

मनु तन-गन लियो जीति चंद्रमा सौतिन मध्य बंध्यो है ।

कै कवि निज जिजमान जूथ में सुंदर आइ बस्यो है । ॥

श्री जमुना जल कमल खिल्यो

कोड लखि मन अलि ललच्यौ है ।
जीति तमोगुन को ताके सिर मनु सतगुन निवस्यौ है ।
सघन तमाल कुंज मै मनु कोड कुंद फूल प्रगट्यो है ।
'हरीचंद' मोहन-मोहन छवि बरनै सा कवि को है । १२।

राग सारंग

अहो पिय पलकन पै धरि पाँव ।
ठीक दुपहरी तपत भूमि मै नागै पद मत आव ॥
करुना करि मेरो कह्यौ मानिकै धूपहि मै मत धाव ।
मुरभानो लागत मुख-पंकज चलत चहुँ दिसि दाव ।
जा पद को निज कुच अरु कर पै धरत करत सकुचाव ।
जाको कमला राखत है नित कर मैं करि करि चाव ।
जामै कलौ चुभत कुसुमन की कोमल अतिहि सुभाव ।
जो मन हृदय कमल पै विहरत निसि दिन प्रेम-प्रभाव ।
सोइ कोमल चरनन सों मो हित धावत हो ब्रजराव ।
'हरीचंद' ऐसी मति कीजै सट्यौ न जात बनाव । १३।
नैना मानत नाहीं, मेरे नैना मानत नाहीं ।
लोक-लाज-सीकर मैं जकरे तऊ उतै खिंच जाहीं ॥
पचि हारे गुरुजन सिख दै कै सुनत नहीं कछु कान ।
मानत कह्यौ नाहिं काहू को जानत भए अजान ॥
निज चबात्र सुनि औरहु हरखत उलटी रीति चलाई ॥
मदिरा प्रेम पिये पागल हवै इत उत डोलत धाई ॥
पर-वस भए मदनमोहन के रंग रंग सब त्यागी ।
'हरीचंद' तजि मुख-कमलान अलि रहै कितै अनुरागी । १४।
नैन भरि देखि लेहु यह जोरी ।
मनमोहन सुन्दर नट-नागर श्री वृषभानु-किसोरी ॥
कहा कहूँ छवि कहि नहि आवै वे साँवर यह गोरी ।
ये नीलाम्बर सारी पहिने उनको पीत पिछौरी ॥
एक रूप एक बेष एक वय बरनि सकै कवि को री ।
'हरीचंद' दोउ कुंजन ठाढ़े हँसत करत चित-चोरी । १५।
सखी री देखहु बाल-विनोद ।

खेलत राम-कृष्ण दोउ आँगन किलकत हँसत प्रमोद ॥
कबहुँ घुटुरन दौरत दोउ मिलि धूर धूसरित गात ।
देखि देखि यह बाल-चरित-छवि

जननी बलि बलि जात ॥

भगरत कबहुँ दोउ आनंद भरि कबहुँ चलत हैं धाय ।
कबहुँ गहत माता की चोटी माखन माँगत आय ।
घर घर तें आवत बृजनारी देखन यह आनंद ।
बाल रूप क्रीड़त हरि आँगन

छलि लखि बलि 'हरिचंद' । १६।

राग केदारा चौताल

अरी हरि या मग निकसे आइ अचानक,

हों तो भरोखे ठाढ़ी ।
देखत रूप ठगौरी सी लागी,

विरह-बलि उर दाढ़ी ।

गुरुजन के भय संग गई नहिं,

रहि गई मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी ।

'हरीचंद' बलि ऐसी लाज मै लागी री,

आग, हों विरहा दुख दाढ़ी । १७

अरी रखी गाज परौ ऐसी लोक-लाज पै,

मदनमोहन सँग जान न पाई ।

हों तो भरोखे ठाढ़ी देखत ही कछु,

आए इतै मैं कन्हाई ।

औचक दीठ परी मेरे तन,

हँसि कछु बंसी बजाई ।

'हरीचंद' मोहिं विवस छोड़ि कै,

तन मन धन प्रान लीनौ सँग लाई । १८

राग बिहगरा

सखी मोरे सैया नहिं आये वीति गई सारी रात ।
दीपक-जोति मलिन भई सजनी होय गयो परभात ।
देखत बाट भई यह विरियाँ बात कही नहिं जात ।
'हरीचंद' बिन विकल विरहिनी ठाढ़ी हवै पछितात । १९
सखी मोहिं पिया सों मिला दे दैहों गले को हार ।
मग जोहत सारी रैन गँवाई मिले न नंद-कुमार ।
उन पीतम सों यों जा कहियो तुम विनु ब्याकुल नार ।
'हरीचंद' क्यों सुरति विसारी तुम तो चतुर खिलार । २०

नैन भरि देखौ गोकुल-चंद ।

श्याम वरन तन खौर विराजत अति सुन्दर नंद-नंद ।

विधुरी अलकैं मुख पै भलकैं मनु दोउ मन के फंद ।

मुकुट लटक निरखत रवि लाजत छवि लखि होत अनंद ।

सँग सोहत वृषभानु-नंदिनी प्रमुदित आनंद-कंद ।

'हरीचंद' मन लुब्ध मधुप तहँ पीवत रस मकरंद । २१

नैन भरि देखो श्री राधा बाल ।

मुख छवि लखि पूरन ससि लाजत सोभा अतिहि रसाल ।

मृग से नैन कोकिल सी बानी अरु गयंद सी चाल ।

नख सिख लौं सब सहजहिं सुन्दर मनहुँ रूप की जाल ।

बृंदावन की कुंज-गलिन मैं सँग लीने नंदलाल ।

'हरीचंद' बलि बलि या छवि

पर राधा-रसिक गोपाल । २२

सखी हम कहा करै कित जायँ ।

विनु देखे वह मोहनि मूरति नैना नाहिं अघायँ ।

कछु न सुहात धाम धन पति सुत मात पिता परिवार ।

वसति एक हिय मैं उनकी छवि नैननि वही निहार ।
 बैठन उठत सयन सोवत निस चलत फिरत सब ठौर ।
 नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न एक पल और ।
 हमरे तन धन सरवस मोहन मन बच क्रम चित माहिं ।
 पै उनके मन की गति सजनी जानि परत कछु नाहिं ।
 सुमिरन वही ध्यान उनको ही मुख में उनको नाम ।
 दूजी और नाहिं गति मेरी विनु मोहन धनश्याम ।
 नैना दरसन विनु नित तलफै बचन सुनन को कान ।
 बात करन को रसना तलफै मिलबे को ए प्रान ।
 हम उनकी सब भाँति कहावहिं जगत-वेद सरनाम ।
 लोक-लाज पति गुरुजन तजिकै एक भज्यौ धनश्याम ।
 सब वृज बरजौ परिजन स्त्रीभौ हमरे तौ हरि प्रान ।
 'हरीचंद' हम मगन प्रेम-रस सुभक्त नाहिंन आन ॥ १६ ॥

ठुमरी

तू मिलि जा मेरे प्यारे ।
 तेरे बिना मनमोहन प्यारे व्याकुल प्रान हमारे ।
 'हरीचंद' मुखड़ा दिखला जा इन नैनन के तारे ॥ १४ ॥

राग रामकली

ऐसी नाहिं कीजै लाल, देखत सब सँग को बाल,
 काहे हरि गए आजु बहुते इतराई ।
 सूधे क्यों न दान लेहु, अँचरा मेरो छाँड़ि देहु,
 जामैं मेरी लाज रहै करौ सो उपाई ।
 जानत ब्रज प्रीत सबै, औरहूँ हँसैंगे अबै,
 गोकुल के लोग होत बड़े ही चवाई ।
 'हरीचंद' गुप्त प्रीति, बरसत अति रस की रीति,
 नेकहूँ जो जाने कोउ प्रगटत रस जाई ॥ १५ ॥
 छाँड़ौ मेरी बहियाँ लाल, सीखी यह कौन चाल,
 हा हा तुम परसत तन औरन की नारी ।
 अँगुरी मेरी मुरुक गई, परसत तन पीर भई,
 भीर भई देखत सब ठाढ़ी वृज-नारी ।
 बाट परौ ऐसी बात, मोहिं तौ नहीं सुहात,
 काहे इतरात करत अपनो हठ भारी ।
 'हरीचंद' लेहु दान, नाहीं तौ परैगो जान,
 नेक करौ लाज छाँड़ौ अंचल गिरिधारी ॥ १६ ॥

राग सारंग

हमारे घर आओ आजु प्रीतम प्यारे ।
 फूलन ही की सेज बिछाई फूलन के चौबारे ।
 कोमल चरनन-हित फूलन के रचि पाँवड़े सँवारे ।
 'हरीचंद' मेरो मन फूल्यौ आउ भँवर मतवारे ॥ १७ ॥

राग विभास

आजु उठि भोर वृषभानु की नदिनी,
 फूल के महल तें निकसि ठाढ़ी भई ।
 खसित सुभ सीस तें कलित कुसुमावली,
 मधुप की मंडली मत रस ह्वै गई ।
 कछुक अलसात सरसात सकुचात अति,
 फूल की बास चहुँ ओर मोदित छई ।
 दास 'हरिचंद' छवि देखि गिरिधर लाल,
 पीत पट लकुट सुधि भूति आनंद-मई ॥ १८ ॥
 अहो हरि ऐसी तौ नाहिं कीजै ।
 अपनी दिसि विलोकि करुनानिधि हमरे दोस न लीजै ।
 तुव माया मोहित कहैं जानै कैसे मति रस भीजै ।
 'हरीचंद' पहिँ आपनो करि फिरि काहें तजि दीजै ॥ १९ ॥

राग सोरठ

बनी यह सोभा आजु भली ।
 नय मैं पोही प्रान-पियारे निज कर कुसुम-कली ।
 भीने बसन विधुरि रहीं अलकै श्री वृषभानु-लली ।
 यह छवि लखि तन मन धन बाएयो
 तहैं 'हरिचंद' अलौ ॥ २० ॥

फवी छवि थोरै ही सिंगार ।
 बिना कंचुकी विनु कर कंकन सोभा बढ़ी अपार ।
 खसि रहि तन तें तनसुख सारी खुलि रहे सोंधे वार ।
 'हरीचंद' मन-मोहन प्यारो रिक्तयो है रिक्तवार ॥ २१ ॥

आजु सिर चूड़ामनि अति सो है ।
 जूड़ो कसि बाँध्यो है प्यारी पीतम को मन मोहै ।
 मानहुँ तम के तुंग सिखर पै बाल चंद उदयो है ।
 'हरीचंद' ऐसी या छवि को बरनि सकै सो को है ॥ २२ ॥

राग विभास

भोर भये जागे गिरिधारी ।
 सगरी निसि रस बस करि बितई कुंज-महल सुखकारी ।
 पट उतारि तिय-मुख अवलोकत चंद-बदन छवि भारी ।
 बिलुलित केस पीक अरु अंजन फैली बदन उज्यारी ।
 नाहिं जगावत जानि नींद बहु समुझि सुरति-श्रम भारी ।
 छवि लखि मुदित पीत पट कर लै रहे भँवर निरुवारी ।
 संगम गुन मधुरे सुर गावत चौकि उठी तब प्यारी ।
 रही लपटाइ जँभाइ पिया उर 'हरीचंद' बलिहारी ॥ २३ ॥
 जागे माई सुंदर स्यामा-स्याम ।

कछु अलसात जँभात परस्पर टूटि रही मोतिन की दाम ।
 अधखुले नैन प्रेम की चितवनि आधे आधेबचन ललाम ।
 बिलुलित अलक मरगजे बागे नख-छत उरसि मुदाम ।
 संगम गुन गावत ललितादिक

वाजत बोन तीन सुर ग्राम ।

'हरीचंद' यह आवे लखि प्रमुदित

तून तोरत ब्रज-वाम । १४

राग देस

वेगाँ आवो प्यारा बनवारी म्हारी ओर ।

दीन बचन सुनताँ उठि धावौ नेकु न करहु अवारी ।
कृपासिंधु छाँड़ौ निठुराई अपनो विरद सँभारी ।
थाने जग दीनदयाल कहै छे क्यौँ म्हारी सुरत विसारी ।
प्राण दान दीजै मोहि प्यारा हौढ़ै दासी थारी ।
क्यौँ नहिँ दीन बैण सुनो लालन कौन चूक छे म्हारी ।
तलफैँ प्रान रहै नहिँ तन मैँ विरह-विधा बढ़ी भारी ।
'हरीचंद' गहि बाँह उबारौ तुम तौ चतुर बिहारी । १५

राग सारंग

जयति वेणुधर चक्रधर शंखधर,
पद्मधर गदाधर शृंगधर वेत्रधारी ।
मुकुटधर क्रीटधर पीतपट-कटिनधर,
कंठ-कौस्तुभ-धरन दुःखहारी ।
मत्स को रूप धरि वेद प्रगटित करन,
कच्छ को रूप जल मथनकारी ।
दलन हिरनाच्छ बाराह को रूप धरि,
दन्त के अग्र धर पृथ्वि भारी ।
रूप नरसिंह धर भक्त रच्छा-करन,
हिरनकश्यप-उदर नख बिदारी ।
रूप बावन धरन छलन बलिराज को,
परसुधर रूप छत्री सँहारी ।
राम को रूप धर नास रावन करन,
धनुषधर तीरधर जित सुरारी ।
मुशलधर हलाधरन नीलपट सुभगधर,
उलटि करपन करन जमुन-वारी ।
बुद्ध को रूप धर वेद निंदा करन,
रूप धर कलिक कलजुग-सँघारी ।
जयति दश रूपधर कृष्ण कमलानाथ,
अतिहि अज्ञात लीला बिहारी ।
गोपधर गोपिधर जयति गिरराजधर,
राधिका का बाहु पर बाहु धारी ।
भक्तधर संतधर सोइ 'हरिचंद' धर,
वल्लभाधीप द्विज वेपकारी । १६

राग कान्हवा

बेउ कर जोरे ठाढ़े बिहारी ।

मान कट्यौ तजि मान मया करि सुनि चन्द्रावलि प्यारी ।

ये बहु-नायक मिलत भाग्य सों यह लै चित्र बिचारी ।

'हरीचंद' ब्रजचंद पिया वे तू चन्द्रावलि नारी । १७

राग विहाग

आबु नव कुंज बिहरत दोअ रस भरे
प्रिया ब्रजचंद सँग चतुर चन्द्रावली ।
सुरति श्रम स्वेद मुख परस्पर बढ़्यौ सुख
टूटि रही उरसि मुकुतानि हारावली ।
गिरत तन बसन नहिँ धिरत बेसरि तनिक
खसित सुभ सीस ते कलित कुसुमावली ।
सखी 'हरिचंद' लखि मूँद दृग दोउ रही
पाइ आनंद परम बुद्धि भई बावली । १८
जयति राधिकानाथ चंद्रावली-प्रानपति
घोष-कुल-सकल-संताप-हारी ।
गोपिका-कुमुद-वन-चंद्र सौवर बरन
हरन बाहु विरह आनंदकारी ।
त्रिखित लोचन जुगल पान हित अमृतवपु
विमल-बुन्दविपिन-भूमिचारी ।
गाय गिरिराज के हृदय आनंद करन
नित्य विहवल-करन जमुन-वारी ।
नंद के हृदय आनंद वर्धित-करन
भरनि जसुदा-मनसि मोद भारी ।
बाल क्रीड़ा-करन नंद-मन्दिर सदा
कुंज मैँ प्रौढ़ लीला बिहारी ।
गोप-सागर-रतन सकल गुन-गन भरे
क्वनिन स्वर सप्त मुख मुरलिधारी ।
मंजु मंजीर पद कलित कटि किकिनी
उरसि बनमाल सुन्दर सँवारी ।
सदा निज भक्त संताप आरति-हरन
करन रस-दान अपनो बिचारी ।
दास 'हरिचंद' कलि बल्लभाधीश ह्वै
प्रगत अज्ञात लीला बिहारी । १९

राग देव

स्यामा जो देखो आवे छे थारो रसियो ।
कल्लु गातो कल्लु सैन बतातो कल्लु लखिकै हँसियो ।
मोर मुकुट वाके सीस सोहणों पीतांबर कटि कसियो ।
'हरीचंद' पिय प्रेम रँगिलो थाके मन बसियो । २०
म्हारी सेजाँ आवो जू लाल बिहारी ।
रंग रँगिली सेज सँवारी लागी छे आशा थारी ।
विरह-विधा बाढ़ी घणी ही मैँसों नहिँ जात सँभारी ।
'हरीचंद' सो जाय कहो कोउ
तलफैँ छे थारे बिन प्यारी । २१

राग असवारी

सुन्दर श्याम कमलदल लोचन

कोटिन जुग बीते विनु देखे ।

तलफत प्रान विकल निसि बासर

नैनन हूँ नहिं लगत निमिखे ।

कोउ मोहिं हँसत करत कोउ निंद

नहिं समुझत कोउ प्रेम परेखे ।

मेरे लेखे जगत बावरो

मै बावरी जगत के लेखे ।

तापै ऊधव ज्ञान सुनावत

कहत करह जोगिन के भेखे ।

बलिहारी यह रीम रावरी

प्रोमन लिखत जाने के लेखे ।

बहुत सुने कपटी या जग में

पै तुमसे तो तुमही पेखे ।

'हरीचंद' कहा दोष तुम्हारे

मेटे कौन करम की रेखे । ३२

राग बिहाग

हम तो श्री बल्लभ ही को जानै ।

सवन बल्लभ-पद-पंकज को बल्लभ ही को ध्यानै ।

हमरे मान पिता गुरु बल्लभ और नहीं उर आनै ।

'हरीचन्द' बल्लभ-पद-बल सों

इन्द्रहू को नहिं मानै । ३३

अहो प्रभु अपनी ओर निहारी ।

करिकें सुरति अजामिल गज की हमरे करम विसारी ।

'हरीचंद' इवत भव-सागर गहि कर धाइ उबारौ । ३४

हम तो मोल लिए या घर के ।

दास दास श्री बल्लभ-कुल के चाकर राधा-वर के ।

माता श्री राधिका पिता हरि बंधु दास गुन-कर के ।

'हरीचंद' तुम्हरे ही कहावत

नहिं बिधि के नहिं हर के । ३५

राग परज

तुम क्यों नाथ सुनत नहिं मेरी ।

हमसे पतित अनेकन तार पावन की बिरुदावलि तेरी ।

दीना नाथ दयाल जगतपति सुनिये बिनती दीनहु केरी ।

'हरीचंद' को सरनाहिं राखौ

अब तौ नाथ करहु मत देरी । ३६

राग बिहाग

अहो हरि वेहू दिन कब ऐहै ।

आ दिन में तजि और संग सब हम ब्रज-बास कसैहै ।

संग करत नित हरि-भक्तन को हम नेकहु न अपैहै ।

सुनत श्रवन हरि-कथा सुधारस महामत्त ह्वै जैहै ।

कब इन दोउ नैनन सों निसि दिन नीर निरंतर बहिहै ।

'हरीचंद' श्री राधे राधे कृष्ण कृष्ण कब कहिहै । ३७

अहो हरि वह दिन बेगि दिखाओ ।

दै अनुराग चरन-पंकज को सुत-पितु-मोह मिटाओ ।

और छोड़ाइ सबै जग-वैभव नित ब्रज-बास बसाओ ।

जुगल-रूप-रस अमृत-माधुरी निस दिन नैन पिआओ ।

प्रेम-मत्त ह्वै डोलत चहुँ दिंसि तन की सुधि बिसराओ ।

निस दिन मेरे जुगल नैन सों प्रेम-प्रवाह बहाओ ।

श्री बल्लभ-पद-कमल अमल मैं मेरी भक्ति दूहाओ ।

'हरीचंद' को राधा-माधव अपनो करि अपनाओ । ३८

रसने, रटु सुन्दर हरि नाम ।

मंगल-करन हरन सब असगुन करन कल्पतरु काम ।

तू तौ मधुर सलोनो चाहत प्राकृत स्वाद मुदाम ।

'हरीचंद' नहिं पान करत क्यों

कृष्ण-अमृत अभिराम । ३९

उधारौ दीनबंधु महाराज ।

जैसे हैं तैसे तुमरे ही नाहिं और सों काज ।

जौ बालक कपूत घर जनमत करत अनेक विगार ।

तौ माता कहा वाहि न पृछत भोजन समय पुकार ।

कपटहु भेष किए जो जाँचत राजा के दरबार ।

तौ दाता कहा वाहि देत नहिं निज प्रन जान उदार ।

जौ सेवक सब भाँति कुचाली करत न एकौ काज ।

तऊ न स्वाँम सयाने नजत तेहि बाँह गहे की लाज ।

विधि-निषेध कछु हम नहिं जानत एक आस विश्वास ।

अब तौ तारे ही बनिहै नहिं ह्वैहै जग उपहास ।

हमरो गुन कोऊ नहिं जानत तुमरो प्रन विख्यात ।

'हरीचंद' गहि लीजै भुज भरि नाहीं तो प्रन जात । ४०

राग भैरव

लाल यह बोहनियाँ की बेरा ।

हीं अबहीं गोरस लै निकसी बेचन काज सवेरा ।

तुम तौ याही ताक रहत हौ करत फिरत मग फेरा ।

'हरीचंद' भगुरौ मति ठानो ह्वैहै आबु निबेरा । ४१

रागिनी अहीरी

अरी यह को है साँवरो सो लँगर छोटा ऐंड़ोई ऐंड़ो डोलै ।

काहू को कोहनी काहू को चुटकी काहू सो हँसि बोले ।

काह की गहि कंचुकि छोरत काह को घूँचट खौले ।
'हरीचंद' सब लाज गँवाई बात कहै अनमोले ॥४२॥

राग गौरी ताल चर्चरी

आजु नंदलाल पिय कुंज ठाढ़े भए
श्रवत सुभ सीस पै कलित कुसुमावली ।
मनहु निज नाथ ससि भूमि-गत देखिकै
खसित आकास तै तरल तारावली ।
बहत सौरभ मिलित सुभग त्रैविधि पवन
गुंजरत महारस मत मधुपावली ।
दास 'हरीचंद' ब्रजचंद ठाढ़े मध्य,
राधिका वाम दक्षिण सुचन्द्रावली ॥४३॥

राग केदारा

फूलन के सब साज सजि गोरी
कित वदन दुराए जात ।
फूलन की तन सारी फूलनि की
छवि भारी फूली न हृदय समात ।
फूल्यौ श्री वृंदावन फूलै तेदे
अंग अंग काहे को सकुचात ।
'हरीचंद' हम जानि पिय जू सों रति
मानी प्रीति छिपे न छिपात ॥४४॥

राग सारंग चर्चरी

आजु ब्रजचन्द्र तन लेप चन्दन किए,
ठाढ़े अति रस-भरे जमुना तीरे ।
फूल के आभरन बसन भीने बने,
खौर चन्दन दिए सीरे सीरे ।
तैसही संग वृषभानु-नृपनंदिनी,
धारि चन्दन के तन चोली चोरे ।
दास 'हरीचंद' बलि जात छवि देखि कै,
जयति बृजराज-सुत गोप चोरे ॥४५॥

राग सारंग

नटवर रूप निहार सखी री नटवर रूप निहार ।
गोहन लगी फिरत जाके हित कुल की लाज बिसार ।
ललित त्रिमंग काछनी काछे अमल कमल से नैन ।
कर लै फूल फिरावत गावत मोहत कोटिक में ।
जग उपहास सहे बहु भाँतिन जा दरसन के हेत ।
सो हरि नीके नैननि भरि के काहे देखि न लेत ।
तुमरी प्रीति अलौकिक सजनी लाखन न परै कछु ख्याल ।
'हरीचन्द' धनि धनि तुम दोऊ राधा अरु गोपाल ॥४६॥

राग हमीर

ठाढ़े हरि तरनि-तनैया-तीर ।
संग श्री कीरति-कुमारी पहिनि भीने चौर ।

उरनि फूलन माल जा पै भँवर-गन की भार ।
हाथ कमल लिए फिरावत राधिका बलाचौर ।
सौंफ समय सोहावनी तहँ बहन त्रिविध समार ।
बारने 'हरिचन्द' छवि लखि श्याम गौर सरार ॥४७॥

राग केदारा

मेरेई पौरि रहत ठाढ़े तरत न टारे
नन्दराय जू को टोटा ।
पाग रही भुव टरकि छवीली
जामै बाँध्यौ है मंजुल चोटा ।
चितवत मो तन फिरि फिरि
हेरत कर लै बेनु बजावत ।
धरि अधरन वह ललन छबौलो
नाम हमाराई गावत ।
सुन्दर कमल फिरावत चहुँ दिसि
मो तन दृष्टि न टारै ।
'हरीचंद' मन हरत हमारे
हँस हँस पाग सँवारै ॥४८॥
मारग रोकि भयो ठाढ़े जान न देत
मोहि पृछन है नु को री ।
कौन गाँव कहा नाँव तिहारो
ठाढ़ि रहि नेक गोरी ।
कित चली जात तू वदन दुराए
एरी मनि की भोग ।
सौंफ भई अब कहाँ जायगी
नीकी है यह साँकरी खोर ।
बहुत जतन करि हारी ग्वालिनी
जान दियो नहिँ तोह घर ओरी ।
'हरीचंद' मिलि बिहरत दोऊ रैननि
नंदकुँवर वृषभानु किशोरी ॥४९॥

राग गौरी

नैना वह छवि नाहिँन भूले ।
दया भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल-दल फूले ।
वह आवनि वह हँसनि छबौली वह मुसकनि चित चोरै ।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह वह देखन चहुँ कोरै ।
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछे ।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे ।
पर-वस भए फिरत हैं नैना एक छन तरत न टारे ।
'हरीचंद' ऐसी छवि निरखत तन मन धन सब हारे ॥५०॥
बैठे लाल नवल निकुंजन माहीं ।
अति रस भरे दोऊ अंग जोरि कै हिलि मिलि दै गलबाहीं ।
तैसे श्री गिरिराज शिला में फूले कुसुम अनेकन भाँती ।
तैसी वै जमुना अति सोभित

लहकि रही कमलनि की पाँती ।
 तेसेई भँवर गुंजार करत हैं तेसोइ त्रिविध बयार ।
 तेसेई सौरभ भरत अनेकन वृन्दावन तरु डार ।
 कर ले कमल गिरावत दोऊ उर फूलन की माल ।
 'हरीचंद' बलि बलि यह छवि लखि राधा और गोपाल । १५१

राग ईमन

तू तो मेरी प्रान-प्यारी नैन में निवास करै
 तू ही जो करैगो मान कैसे के मनाइहैं ।
 तू ही तो जीवन-प्रान तोहि देखि जीव राखे
 तूही जो रहेगी रुसि हम कहाँ जाइहैं ।
 कियो मान राधे महारानी आजु पीतम सों
 ऐसी जो खबरि कहूँ सौति सुनि पाइहैं ।
 'हरीचंद' देखि लीजो सुनतहि दौरि दौरि
 निज निज द्वार पै बधाई बजवाइहैं । १५२

प्यारे जू तिहारी प्यारी अति ही गरब भरी
 हठ को हठीली ताहि आपु ही मनाइए ।
 नेकहू न मानै सब भाँति हों मनाय हारी
 आपुहि चलिए ताहि बात बहराइए ।
 रिस भरि बैठि रही नेकहू न बोले वैन
 ऐसी जो मानिनि तेहि काहे को रिसाइए ।
 'हरीचंद' जामे मानै करिए उपाय सोई
 जैसे बने तेसे ताहि पग परि लाइये । १५३

आजु मैं देखे री आली री दोऊ
 मिलि पौढ़े ऊँची अटारी ।
 मुख सों मुख मिलाइ बीरी खात
 रंग भरि नवल पिया प्रानप्यारी ।
 चाँदनी प्रकास चारु ओर छिरकाव भयो
 सीतल चहुँ दिसि चलत बयारी ।
 'हरीचंद' सखीगन करत बिंजन
 जानि सुरति-श्रम भारी । १५४

राग बिहाग

पौढ़े दोउ बातन के रस भीने ।
 नींद न लेत अरुभि रहे दोऊ केलि-कथा चित दीने ।
 तेसइ सीतल सेज बिछाई सखि बिंजन कर लीने ।
 'हरीचंद' आलस भरि सोए ओढ़िके पट भीने । १५५

राग सारंग

मेरे प्यारे सों सँदेसवा कौन कहे जाय ।
 उर की बेदन हरे बचन सुनाय ।
 कोऊ सखी देह मोरी पाती पहुँचाय ।
 जाइ के बुलाय लावे बहुत मनाय ।

मिलि 'हरीचंद' मोरा जियरा जुड़ाय । १५६

जमुना जू की तिवारी चलु सखी ।
 तेरो मग जोहत मनमोहन सुंदर गिरिवर-धारी ।
 तेरे हित छिरकाव कियो है सुंदर सेज सँवारी ।
 बिंजन चलत फुहारे छूटत खस परदे रुचिकारी ।
 मृगमद चन्दन घोरि धरे हैं फूल-माल छवि भारी ।
 मिलि बिहरो दोऊ आनंद भरि 'हरीचंद' बलिहारी । १५७
 सौम के गए दुपहरी आए ।
 साँची बात कहो नंद-नंदन भले बने मन-भाए ।
 अब लों बाट रही तुव हेरत साजि धरे सब साज ।
 बैठो हों बींजना डुलाऊँ अब न जाहु ब्रजराज ।
 आए मेरे नैन सिराए सीतल जल ले पीजे ।
 रेंनि नाहिं तो दुपहरिया मैं 'हरीचंद' सुख दीजे । १५८
 अरी कोऊ करिके दया नेक ठाँव मोहिं
 दीजो धूप लागे मोहि भारी ।

पाँव तपे मेरो गो चारत में
 यह बोलत गिरिधारी ।
 सुनि यह वचन उसीर महल में
 ले आई सुकुमारी ।
 'हरीचंद' येहि मिसि मिलि बिहरे
 नवल पिया अरु प्यारी । १५९

अरी हों वरजि रही वरज्यो नहिं मानत
 दौरि दौरि बार बार धूप ही मैं जाय ।
 सीरे खसखाने साजि सेजहू बिछाय राखी
 भयो छिड़काव आइ नेकु तो जुड़ाय ।
 छूटत फुहारो चारु देखि तो कौतुक आइ
 मोतिन सी बूँद भरै चित ललचाय ।
 'हरीचंद' मातु के वचन सुनि आइ पौढ़े
 बिंजन करत सब सखि हरखाय । १६०

राग केदार

फूलि रही द्वै बेली श्री वृन्दावन ।
 नव तमाल घनश्याम पिया श्री राधा पीत चमेली ।
 और फूल फूली सब सखियाँ फूलनि पहिरि नवेली ।
 'हरीचंद' मन फूल्यो सब साज देखि
 भँवर भयो है हेली । १६१

राग सोरठ

सखी मोहिं ले चलि जमुना-तीर ।
 जहाँ मिले नटवर मनमोहन सुंदर श्याम शरीर ।
 नंद-द्वार सब बड़े गोप मैं हों कैसे धँसि जाऊँ ।
 भौन माहिं जमुना जू के भय नीके लखन न पाऊँ ।
 मुरुजन की भय अटा भरोखाइ नहिं बैठन पावै ।

राह बाट मैं लाज निगोड़ी कैसे नैन मिलावै ।
तू सब जिय की जाननिहारी तो सों कहा दुराऊँ ।
'हरीचंद' जीवन-धन दै मोहि नैना निरखि सिराऊँ । ६२

राग सोरठ

नाव हरि अवघट घाट लगाई ।
हम ब्रज-बाल कहो कित जैहैं करिहैं कौन उपाई ।
साँझ भई सँग मैं कोउ नाहीं देहु हमैं पहुँचाई ।
'हरीचन्द' तन मन धन जीवन सब दैहैं उतराई । ६३

हमैं तुम देहो का उतराई ।
पार उतार देहिं जो तुम को करि कै बहुत खेवाई ।
जीवन धन बहु है तुम्हरे दिग सो हम लेहिं छोड़ाई ।
हम तुम्हरे बस हैं मन-मोहन जो चाहौ सो करौ कन्हाई ।
निरजन बन मैं नाव लगाई करी केलि मन-भाई ।
'हरीचंद' प्रभु गोपी-नायक जग-जीवन ब्रजराई । ६४

राग सारंग

आजु श्री राधिका प्रानपति-काज निज,
हाथ सों कुंज मैं कुसुम सज्जा सजी ।
परम सीतल पवन चलत सुंदर भवन,
देखि छवि उष्णता दूर कोसन भजी ।
मोद भरि बिहरहीं दोउ अति सुख पगे,
काम की बाम लखि ललित सोभा लजी ।
दास 'हरीचंद' धुनि करत किकिनि चुरी,
मदन के सदन मनु नवल नौबत बजी । ६५

आजु दुपहरी मैं श्याम के काम तू
बाम, छवि-धाम भई नवल अभिसारिका ।
अतिहि कोमल चरन तपित धरनी धरन,
गयो कुम्हलाय मुख-कमल सुकुमारिका ।

उरसि नुक्ताहार स्वेत सारी बनी,
कहत कोमल बचन मनहुँ पिक सारिका ।
बदत 'हरिचंद' छल-छन्द एतो कियो,

कहाँ सीखी नई कोक की कारिका । ६६

वृज के लता-पता मोहि कीजै ।
गोपी-पद-पंकज पावन की रज जा मैं सिर भीजै ।
आवत जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै ।
श्री राधे राधे मुख यह बर 'हरीचंद' को दीजै । ६७

राग आसावरी वा सारंग

ऊधो जौ अनेक मन होते ।
तो इक श्याम-सुंदर कों देते इक लै जोग सँजोते ।
एक सों सब गृह-कारज करते एक सों धरते ध्यान ।

एक सों श्याम रंग रंगते तजि लोक-लाज कुल-कान ।
को जप करै जोग को साधै को पुनि मूँद नैन ।
हिये एक रस श्याम मनोहर मोहन कोटिक मैं ।
हवाँ तो हूँ तो एक ही मन सो हरि लै गए चुराई ।
'हरीचंद' कोउ और खोजि कै जोग सिखावहु जाई । ६८

राग भैरव (खंडिता)

श्याम पियारे आजु हमारे मोरहि क्यौं पगु धारे ।
बिनु मादक हो आज कहो क्यौं धूमत नैन तुम्हारे ।
दीपक जोति मलिन भई देखो पच्छिम चन्द सिधार्यो ।
सूरज किरिन उदित उदयाचल पच्छिम शब्द उचार्यो ।
कुमुदिनि सकुचो कमल प्रफुल्लित चक्रवाक सुख पायो ।
सीतल मरुत चलत उठि मुनियन

निज निज ध्यान लगायो ।

कहा कहौं कछु कहि नहिं आवै

आज बनी जो सोभा ।

पेंच खुले लटपटी पाग के

देखत ही मन लोभा ।

ऐसी को है सुघर सुनरिया

जिन यह हार बनायो ।

बिन नग जड़्यो हेम बिन निरमित

बिन गुन दाम पोहायो ।

मोहन तिलक महावर को सिर

लीलाम्बर कटि धारे ।

कौन सी चूक परी हरि हम सों

नैन लाल क्यौं प्यारे ।

लै आरसी सामुहें राखी

जल लाई भरि भारी ।

'हरीचंद' उठि कंठ लगाई

हंसि कै गिरिवरधारी । ६९

राग सारंग

सखी ए नैना बहुन बुरे ।

तब सौ भए पराए हरि सों जब सों जाइ बुरे ।

मोहन के रस-बस हवै डोलत तलफत तनिक दुरे ।

मेरी सीख प्रीत सब छाँड़ी ऐसे ये निगुरे ।

जग खोभ्यौ बरज्यो पै ए नहीं उठ सों तनिक मुरे ।

'हरीचंद' देखत कमलन से बिष के बुते छुरे । ७०

राधिका पौढ़ी ऊँची अटारी ।

पूरन चंद उयो नभ-मंडल फैली बदन उजारी ।

बोझ जोति मिलि एक भई है भूमि गगन लौ भारी ।

सो छवि देखि सखा तून तोरत 'हरीचंद' बलिहारी । ७१

देखु सखी देखु आजु कुंजन में नवल केलि,

करत कृष्ण संग विविध भाँति राधिका ।

तैसोई वहै त्रिविध पौन तैसोई नभ चंद उगयो,

तैसी परछाहीं परत लाज बाधिका ।

किंकिनि की धुनि सुनात पातन की खरखरात,

तैसी निसि सनसनात सुखहि साधिका ।

तहँ अलि 'हरिचंद' आय विनवत ससि कों, मनाय

आजु रहो धिर हवै रथ यह अराधिका ॥७२॥

तुम्हें तो पतितन ही सों प्रीति ।

लोकल वेद-विरुद्ध चलाई क्यौं यह उलटी रीति ।

सब विधि जानत हौ निश्चय करि तुम सों छिप्यौ न नेक ।

वेद-पुरान-प्रमान तज्न को मेरो यह अबिवेक ।

महा पतित सब धर्म-विवर्जित श्रुतिनिंदक अघ-खान ।

मरजादा तें रहित मनस्वी मानत कछु न प्रमान ।

जानत भए अजान कहो क्यौं रहे तेल दै कान ।

तुम्हें छोड़ि जग को नहिं जो मोहिं बिगार्यो करत बखान ।

बलिहारी यह रीति रावरी कहाँ खुटानी आय ।

'हरिचंद' सों नेय निबाहत हरि कछु कही न जाय ॥७३॥

रावरी रीति की बलि जैये ।

महा पतित सों प्रीति पियारे एक तुमहिं में पैये ।

नेमन जानिन दूर राखि कै हम से पास बिठैये ।

'हरिचंद' यह जग उलटी गति केवल कहा कहैये ॥७४॥

नाथ तुम प्रीति निबाहत साँची ।

करत इकंगी नेह जनन सों यह उलटी गति खाँची ।

जहि अपनायो तेहि न तज्यो फिर अहो कठिन यह नेम ।

जहि पकर्यौ छोड़त नहिं ताकों परम निबाहत प्रेम ।

सो भूले पे तुम नहिं भूलत सदा सँवारत काज ।

'हरिचंद' कों राखत हौ बलि बाँह गहे की लाज ॥७५॥

तुम्हारी साँची हम में नेह ।

कबहूँ नाहिं छाँड़िहौ हमको दृढ़ व्रत लीनो एह ।

प्रेम सत्य तुमरो जग मिथ्या यामें कछु न सँदेह ।

'हरिचंद' जो याहि न मानै तिन के मुख में खेह ॥७६॥

नाथ तुम उलटी रीति चलाई ।

सब शास्त्रन की बात बिगारी पतितन पास बिठाई ।

विधि-निषेध तामें नहिं राख्यो जाहि लियो अपनाई ।

नाहीं तो क्यौं 'हरिचंद' सों इतनी प्रीति बढ़ाई ॥७७॥

बलिहारी या दरबार की ।

विधि-निषेध मरजाद शास्त्र की गति नहिं जहाँ पुकार की ।

नेमी धरमी ज्ञानी जोगी दूर किये जिमि नारकी ।

पूछ होत जहँ 'हरिचंद' से पतितन के सरदार की ॥७८॥

हम तो दोसह तुमपै धरिहैं ।

व्यापक प्रेरक भाँखि भाँखि कै बुरे कर्म सब कारिहैं ।

भलो करम जो कछु बनि जैहैं सो कडिहैं हम कीनो ।

निसि दिन बुरे करम को फल सब तुम्हारे माये दीनो ।

पतित-पवित्र-करन तब तुमरो साँचो हवैहैं नाम ।

जब तारिहौ हठी कोउ जैसे 'हरिचंद' अघ-धाम ॥७९॥

प्यारे अब तो तारिहै बनिहै ।

नाहीं तो तुमकों का कहिहै जो मेरी गति सुनिहै ।

लोक वेद में कहत सब हरि अभय-दान के दानी ।

तेहि करिहौ साँचो कै भूठो सो मोहिं भाषो बानी ।

भले बुरे जैसे हैं तैसे तुम्हारे ही जग जानै ।

'हरिचंद' कों तारिहै बनिहैं को अब औरिहै मानै ॥८०॥

छिपाए छिपत न नैन लगे ।

उधरि परत सब जानि जात हैं धूँघट में न खगे ।

कितनो करी दुराव दुरत नहिं जब ये प्रेम पगे ।

'हरिचंद' उधरे से डोलत मोहन रंग रंगे ॥८१॥

लगीहैं चितबनि औरिहै होति ।

दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम भलक की जोति ।

निज पीतम कों खोजि लेत हैं भीरुह में भरि रंगे ।

रूप-सुधा छिपि छिपि कै पीयत गुरु-जनहूँ के संग ।

धूँघट में नहिं थिरत तनिकहूँ अति ललचौहैं बानि ।

छिपत न क्यौंहूँ 'हरिचंद' ये अंत जात सब जानि ॥८२॥

आजु हम देखत हैं को हारत ।

हम अघ करत कि तुम मोहि तारत

को निज वान बिसारत ।

होइ पड़ी है तुम सों हम सों देखैं को प्रन पारत ।

'हरिचंद' अब जात नरक में कै तुम धाइ उबारत ॥८३॥

कै तो निज परतिज्ञा टारौ ।

गीतादिक में जौन कही है ताकों तुरत बिसारौ ।

दीनबन्धु प्रनतारति-नासन अपनो बिरत बिगारौ ।

कै भट धाइ उठाइ भुजा भरि 'हरिचंद' को तारौ ॥८४॥

लगाओ वेदन पै हरताल ।

जिन तुमको गायो करुनानिधि भक्तन के प्रतिपाल ।

पतित-उधारन आरति-नासन दीनानाथ दयाल ।

इन नामन को भूठ करौ पिय छाँड़ो सब जंजाल ।

देहु बहाइ लोक-मरजादा तोरि आपुनी चाल ।

नाहीं तो 'हरिचंद' तारौ बेगहि धाइ गुपाल ॥८५॥

कहौ तुम व्यापक हौ की नाहीं ।

जौ तुम व्यापक हौ तो अघ करि क्यौं हम नरकहिं जाहीं ।

जो नहिं पूरन घट घट तो क्यौं लिख्यो पुरानन माहीं ।

तासों राखो 'हरिचंद' को चरन-छत्र की छाहीं ॥८६॥

वही मैं ठाम न नेकु रही ।

भरि गई लिखत लिखत अघ मेरे बाकी नबह रही ।
चित्रगुप्त हारे अति थकि कै बेसुध गिरे मही ।
जमपुर मैं हरताल परी है कछु नहिं जात कही ।
जम भागे कछु खोज मिलत नहिं सबही वही वही ।
'हरीचंद' ऐसे को तारौ तौ तुव नाम सही । ८७

पियारे हम तो भवत इकंगी ।
सब छोड़्यौ तुमरे हित मोहन लोक-लाज कूल संगी ।
विधि-निपेध अरु वेद छाँड़ि कै होइ गई मनु नंगी ।
'हरीचन्द' चाहै मात मानो हम तौ तुव रँग रंगी । ८८

छूट नहिं तुमको कोउ विधि प्यारे ।
हम सब पाप करेंगे बनिहै ताहूँ पै पुनि तारे ।
वेदन मैं निज क्यौं कह बायो पतित-उधारन नाम ।
'क्यौं परतिज्ञा यह कीनौ कै तारहिंगे अघ-धाम ।
सुवरन-चोर ब्रह्म-हत्यारो गुरुतल्पगहु सुरापी ।
अबकी बेर निवाहि लेहु पिय 'हरिचंद' सों पापी । ८९

हम नहिं अपुने कों पछितात ।
यह सोचत कै बिनु मोहिं तारे बात तुम्हारी जात ।
अजामिलादिक के तारन सों भई अतिहि बिख्यात ।
सो काहू विधि अब लौं निबही जानी जगत जगात ।
'हरीचंद' तुमरो औ पापी यह दोऊ अति ख्यात ।
तासों ताकहैं तारि कोऊ विधि राखौ अपनी बात । ९०

राग आसावरी

जे जन अन्य आसरो तजि श्री बिडुलनाथहि गावैं ।
ते बिनु श्रम थोरहि साधन मैं भव-सागर तरि जावैं ।
जिनके मात पिता गुरु बिडुल और कतहुं कोउ नाहीं ।
ते जन यह संसार समुद्रहि बत्सचरन करि जाहीं ।
जिनकों श्रवन कीर्तन सुमिरन बिडुल ही को भावै ।
ते जन जीवनमुक्त कहावहिं मुख देखे अघ जावै ।
जिनके इष्ट सखा श्री बिडुल और बात नहिं प्यारी ।
जिनके बस में सदा सर्वदा रहत गोवर्दनधारी ।
तिनके मन क्रम बच सब भाँतिन श्री बिडुल-पद पूजो ।
ते कृतकृत्य धन्य ते कलि मैं तिन सम और न दूजो ।
जे निस-दिन श्री बिडुल बिडुल बिडुल ही मुख भाखैं ।
'हरीचंद' तिनके पद की रज हम अपुने सिर राखैं । ९१

राग आसावरी (चीर-हरण)

जमुना-तट ठाढ़ नंद-नंदन कोउ न्हान न पावै हो ।
जो कोउ जल पैठत मज्जन-हित ताको चीर चुरावै हो ।
तोरेत हार कंचुकी फारत चढ़त कदम पै धाई ।
पुनि पाछे तें पीठ मलत है ऐसो दीठ कन्हाई ।

गारी देत कह्यौ नहिं मानत हाथ नचावत आई ।
हम जल मैं नाँगी सकुचाहीं सुनहुं जसोदा माई ।
तुम निज सुत के गुन नहिं जानत कहत लाज अति आवै ।
'हरीचंद' बरजति नहि काहे नित नित धूम मचावै । ९२

राग टोड़ी

बिनती सुन नंद-बाल बरजो क्यौं न अपनो बाल
प्रातकाल आई आई अम्बर लै भागै ।
भोर होत जमुन तीर जुरि जुरि सब गोपी भीर
न्हात जबै विमल नीर शीत अतिहि जागै ।
लेत बसन मन चुराई कदम चढ़त तुरत धाई
ठाढ़ी हम नीर माहिं नाँगी सकुचाहीं ।
'हरीचंद' ऐसो हाल करत नित्य प्रति गोपाल
ब्रज में कहो कैसे बसैं अब निवाह नाहीं । ९३
चलो सखी मिल देखन जैये दुर्गाहिन राधा गोरी जू ।
कोटि रमा मुख छाँव पै वारों मेरी नवल-कसोरी जू ।
घँघरी लाल जरकसी सारी सोंधे भीनी चोली जू ।
मरवट मुख मैं सिर पै मौरी मेरी दुलहिया भोली जू ।
नकबेसर कनफूल बन्यौ है छवि का पै कहि आवै जू ।
अनवट वाँछिया मुँदरी पहुँची दुलह के मन भावै जू ।
ऐसे बना बनी पै री सखि अपनो तन मन वारी जू ।
सब सखियाँ मिलि मंगल

गावत 'हरीचंद' बालहारी जू । ९४

राग सारंग (रथ-यात्रा)

अटा पै मग जोवत है ठाढ़ी ।
यहि मारग हरि को रथ ऐहे प्रेम-पुलक तन बाढ़ी ।
कोउ खिरकिन छज्जन पै ठाढ़ी कोउ द्वारे मग जोहैं ।
करि शृंगार श्यामसुंदर-हित प्रेम भरी अति सोहैं ।
यह आयो वह आयो सजनी कहति सबै ब्रजनारी ।
लै लै भेंट सामुहै आई भरि कै कंचन धारी ।
बीरी देत करति न्योछावरि लै आरती उतारै ।
'हरीचंद' ब्रजचंद पिया पै अपनो तन मन वारै । ९५
निविड़ तम-पुंज अति श्याम गहवर कुंज
राधिका-श्याम तहैं केलि सुंदर रची ।
परम अंधियार मधि उदय मुख-चंद को
करत तम दूर सब भाँति सोभा सची ।
हार हिय चमकि उडुगनन की छवि हरत
करत किंकिनि चुरी शब्द मनिगन खची ।
लखत 'हरिचंद' सखि ओट हवै सुरति-सुख
काम-कामिनि-काम-गरब गति नहिं बची । ९६

दुमरी

सजन तेरी हो मुख देखे की प्रीत ।
तुस अपने जीवन मदमाते कठिन बिरह की रीत ।
जहाँ मिलत तहँ हैंसि हँसि बोलत गावत रस के गीत ।
'हरीचन्द' घर घर के भौरा तुम मतलब के मीत । १९७

राग आसावरी

अरे कोऊ कहौ संदेसो श्याम को ।
हमारे प्रान-पिया प्यारे को अरु भैया बलराम को ।
बहुत पथिक आवत हैं या मग नित प्रति वाही गाम को ।
कोऊ न लायो पिय को संदेसो 'हरीचंद' के नाम को । १९८

राग सारंग

हम तो मदिरा प्रेम लिए ।
अब कवहुँ न उतरिहै यह रंग ऐसो नेम लिए ।
भई मतवार निडर डोलत नहिँ कुल-भय तनिक हिये ।
डगमग पग कछु गैल न सुभक्त निज मन मान किए ।
रहत चूर अपुने प्रीतम पै तिन पै प्रान दिए ।
'हरीचंद' मोहन छेला बिनु कैसे बनत जिए । १९९
बैठी ही वह गुरुजन के दिग पाती एक तहाँ लै आई ।
पाती लाय हाथ में दीनी कही श्याम यह तोहिँ पठाई ।
सुनतहि अति चकृत सी ह्यै रही
मात-पितहि लखि बहुत लजाई ।

नैन नचाइ भौह टेढ़ी करि

बोली तासों बुद्धि उपाई ।
अरी बाबरी सी क्यों डोलत
यह घर नाहीं क्यों घुसि आई ।
सो तो आगे दूर रहत है
जाके हित तू पाती लाई ।
वै तू नाम भूलि कै वाको
ताहि पढ़ावन में दिग धाई ।
औरहु ब्रज में बाँचनहारें तिन सों
क्यों न पढ़ावत जाई ।
जानि परी हमकों याही मिस
भेद लेन घर की तू आई ।
जी चाहैं सो करैं डरै नहिँ या
ब्रज की अति कठिन लुगाई ।
बे-बातहि बदनाम करन की
इनकी टेव परी मै पाई ।
इन बैरिन पाछे या ब्रज में
कैसे के बसिये री माई ।
दूती समुझि बहुत पछितानी
कहि भूली मैं भौन दुहाई ।
'हरीचंद' अति चतुर राधिका
यो मोहन की प्रीति छिपाई । १९००



कार्तिक-स्नान

(रचनाकाल — १८७२ ई.)

अथ कार्तिक-स्नान

नील-हीर-दुति अति मधुर सब ब्रज-जन-चित-चोर ।
जय जय विरहातप-समन राधा-नंदकिशोर । १
जुगल जलद केकी जुगल दोऊ चंद चकोर ।
उभय रसिक रस-रास जय राधा-नंदकिशोर । २
जल तरंग बुधि प्रान पुनि दीप प्रकाश समान ।
जुगल अभिन्नहु दोय वपु जय राधा-भगवान । ३
नलिन-नयन अमृत-वयन वेनु-वाद्य-रत धीर ।
राधा-मुख-मधु-पान-रत जय जय जय बलवीर । ४
बिनु हरि-पद-राधा-भजन नाहिंन और उपाय ।
क्यों मन तु भटकत ब्या जगत-जाल फँसि धाय । ५
मथिके वेद पुरान बहु यहै लक्ष्यौ एक सार ।
राधा-माधव-चरन मजु तजु जप जोग हजार । ६
भ्रमि मत तु वेदान्त-वन ब्या अरे मन मोर ।
चलु कलिंदजा-कुंज-तट लखु घनश्याम किशोर । ७
शास्त्र एक गीता परम मंत्र एक हरि-नाम ।
कर्म एक हरि-पद-भजन देव एक घनश्याम । ८
विधि-निषेध जग के जिते तिनको यह सिरमौर ।
भजनो इक नंदलाल-पद तजनो साधन और । ९
साधकगन सों तुम सदा छिपत फिरत ब्रजराय ।
अति अंधियारो मम हृदय तहाँ छिपत किन आय । १०
वेद कहत जग विरचि हरि व्यापि रहत ता माँहि ।
मम हिय जग बाहर कहा जो इत व्यापत नाहिं । ११
तुमहिं रिभावन हित सज्यो लख चौरासी रूप ।
रीफि देहु गति खीफि कै बरजहु मोहिं ब्रज-भूप । १२
कोऊ जप संजम करौ करौ कोउ तप ध्यान ।
मेरे साधन एक हरि सपनेहु रुचत न आन । १३
नर्क स्वर्ग कै ब्रह्म-पद कै चौरासी माँहिं ।
जहाँ रहौ निज कर्म बस छुटे कृष्ण-रति नाहिं । १४
कृष्ण नाम मुख सों कटौ सुनौ कृष्ण-जस कान ।
मन में कृष्ण सदा बसौ नयन लखौं हरि ध्यान । १५
चोरि चीर दधि दूध मन दुरन चहत ब्रजराय ।
मेरे हिय अंधियार मैं तौ न छिपत क्यों आय । १६
सुनत दूध दधि चीर मन हरत फिरत ब्रजराय ।
तौ अघ मेरे किन हरत यह मोहिं देहु बताय । १७

कृष्ण-नाम मनि-दीप जो हिय-घर मैं न प्रकाश ।
दीप बहुत वारे कहा हिय-तम भयो न नाश । १८
जय जय श्रुति-पद-बंदिनी कीर्तिनदिनी बाल ।
हरि-मन परमानदिनी कंदिनि भव-मय-जाल । १९

सोरठा

जय जय परमानंद कृपाकंद गोविंद हरि ।
जय जय जसुदा-नंद नंदानंदन दुंद-हर । २०

सवैया

पूजि कै कालिहि सनु हतौ कोऊ
लक्ष्मी पूजि महा धन पाओ ।
सेइ सरस्वति पंडित होउ
गनेसहि पूजिकै बिघ्न नसाओ ।
त्यो 'हरिचंद जू' ध्याइ शिवै कोऊ
चार पदारथ हाथही लाओ ।
मेरे तो राधिका-नायक ही,
गति लोक दोऊ रहौ कै नसि जाओ । १
संध्या जु आपु रहौ घर नीकी नहान
तुम्हें है प्रणाम हमारी ।
देवता पित्र छमौ मिलि मोहिं अराधना
होइ सकै न तुम्हारी ।
वेद पुरान सिधारी तहाँ
'हरिचंद' जहाँ तुम्हरी पतियारी ।
मेरे तो साधन एक ही है
जग नंदलला वृषभानु-डुलारी । २

भजन

जय वृषभानु-नंदिनी राधा ।
शिव ब्रह्मादि जसु पद-पंकज हरि बस हेतु अराधा ।
करुनामयी प्रसन्न चंदमुख हैसत हरति भव-बाधा ।
'हरीचंद' ते क्यों जग जीवत जिन नहिं इनहिं अराधा । १
जय जय हरि नंद-नंद पूर्ण ब्रह्म दुख-निकंद,
परमानंद जगतबंद सेवक सुखदाई ।
परम जस पवित्र गाय दीनबंधु दीनानाथ,
सवन दरस ध्यान सुखद गोवर्दन-राई । २

गोप गोपिकादि-पाल सतत असुर-वंस-काल,
सकल कला-गुन-निधान कीरति जग छाई ।
'हरीचंद' प्राननाथ कीर्तिमुता लिए साथ,
पावनगुन अवलि विमल श्रुतिगन नित गाई ।२

मेरी गति होउ सोई महरानी ।
जासु मौह की हिलानि बिलोकत निमु दिन सारंगपानी ।
खेलन मै कबहुँ जो आंचर उड़त बात-वस जाकी ।
रिसि मुनि बौदत हँ हरि मानत परम धन्य करि ताकी ।
परम पुरुष जो जोग जग्य जप क्योंह लख्यौ न जाई ।
सो जा पद-रज बस निसि-बासर तुरतहि प्रगटत आई ।
ग्राम बधूटी जा कटाच्छ-बल उमा रमाहि लजावै ।
'हरीचंद' ते महामूढ जे इनाहँ न अनुछिन ध्यावै ।३
जय जय श्री वृंदावन देवी ।

अखिल विश्वनायक पुरुषोत्तम जा पद-पंकज-सेवी ।
जो निज दृष्टि कोर सों जग के जीवहिं नितहि जि आवै ।
परमानंद-धनहुँ पै जो निज आनंद-कन बरसावै ।
जगत-आधार भूत परमात्म जिय आधार सां ताकी ।
'हरीचंद' स्यामनि अभिरामनि तुल न जगत मै जाकी ।४
विपुल बृन्दा विपिन चक्रवर्ती-चतुर

रसिक-बूझा-रतन जयति राधा-रमन ।

गोप-गोपी सुखद भक्त नयनानंद
विरहिजन कोटि संताप संतत समन ।

जयति गिरिराज धृत बास अंगुरि खन
जयति कृत बेनु-रव मत्त गज-गति-गमन ।

अब बकी बक सकट पूतनादिक काल जयति
'हरीचंद' हित-करन कालिय-दमन ।५
जय जय गोवर्धन-धर देव ।

जय जय देव राजमद-मदन करत सकल सुर सेव ।
जय जय श्रुतिजस गावत निसि-दिन पावत तऊ न भेव ।
जय जय 'हरीचंद' रक्षण कृत दीन-उधारन देव ।६
बाजी नैनन में लागी ।

रसिक राज इत उत श्री राधा परम प्रेम-रस-पागी ।
दोऊ हारे दोऊ जाँत आपुस के अनुरागी ।
'हरीचंद' निज जन-सुखदायक रहे केलि निसि जागी ।७
हम में कौन बड़ो री प्यारी ।

ठाढ़ी होउ बराबर नापै बिहँसि कइयो गिरिधारी ।
सुनत उठी बृषभानु-नंदिनी खरी भई समुहाई ।
पद-अंगुरी-बल उचकि पिया सों बढवन चहत उँचाई ।
सुंदर मुख आपुहि दिग आवत लखि चूम्यो पिय प्यारे ।
'हरीचंद' लाज हाँस भुव निरखत पिया कइयो हम हारे ।८

राग बिहाग (दीपावली)

करत मिलि दीप-दान ब्रज-बाला ।

जमुना सों कर जोरि मनावत मिलें पिया नंदलाला ।
स्नान दान जप जोग ध्यान तप संजम नियम बिसाला ।
इनके फल में 'हरीचंद' गल लागै कृष्ण गुनबाला ।९
अरी तू हठ नहिं छाड़ित प्यारी ।

दीप-दान में मगन हवै रही भूलि गई गिरिधारी ।
तेरे बिनु उत बिनहीं दीपक बिरह-अग्नि संचारी ।
'हरीचंद' पीतम गर लागि के करु त्यौहार दिवारी ।१०
हमारे ब्रज के है मनि दीप ।

पुष्पराग श्रीराधा मरकत गोविंद गोप महीप ।
सदा प्रकाश करत ब्रज-मंडल वृंदावन अवनीप ।
'हरीचंद' सुमिरत बियोग-तम कहूँ नहिं रहत समीप ।११

राग बिहाग चौताल

अरी हौं बरजि रही बरज्यौ नहीं मानत,
सवै छोरि कृष्ण-प्रेम दीप जोरि ।
भरि अखंड है सनेह एक लौ लगाइ बासों,

मन वाली राखु तामें नित्य बोरि ।
बिरह प्रगट करि जोति सों मिलाइ जोति,
करि पतंग नेम धरम लाज ओट डारि छोरि ।
'हरीचंद' कइयो मानि देखिहै तू प्रीति-पंथ,
भाजैगो बियोग-तम मुख मोरि ।१२

राग बिहाग (दीपावली)

आजु गिरिराज के उच्चतर शिखर पर,
परम शोभित भई दिव्य दीपावली ।
मनहुँ नगराज निज नाम नग सत्य किय,
बिबिध मनि-जटित तन धारि हारावली ।
औषधी-गन मनहुँ परम प्रज्वलित भई,

किधौं ब्रज-वास हित बसी तारावली ।
दास 'हरीचंद' मन मुदित छवि देखिके,
करत जै जै वरपि देव कुसुमावली ।१३

आजु तरनि-तनया निकट परम परमा प्रगट,
ब्रज-बधुन मिलि रची दीप-माला ।
जोति-जाल जगमगत दृष्टि थिर नहिं लागत,
छूट छवि को परत अति बिसाला ।

खड़ीं नवल वनिता बनी चार दिसि,
छवि-सनी हँसहिं गावहिं बिबिध ख्याला ।
निरखि सखी 'हरीचंद' अति चकित सी हवै,
कहत जयति राधे जयति नंद-लाला ।१४

आजु ब्रजछवि की छूट परै ।
इत नंदलाल लाडिली उत इत दीपक ज्योति बरै ।
उत सहचरी ललित ललितादिक मुर झल चँवर हारै ।
इत जरतार तास बागो उत भूषण फलक भारै ।

इत नवखंड सीसमहला उत दुगनित विंव परे ।
 इत बादलन लपेटी भालार भलाबोर भलारै ।
 उत सारी कोरन सों मुकुता मानिक-होर भरै ।
 जमुना-जल प्रतिविंव सुहायो जल-छवि मिलि लहरै ।
 'हरीचंद' मुख चंद मिलो सब रवि ससि गरब हरै । १४
 आजु सैकेनन दीपक बारै ।
 निकट जानि गोवर्द्धन घटियाँ अपने हाथ सँवारै ।
 किए प्रकासित गहवर गिरि थल कुंज पुंज ब्रज सारै ।
 'हरीचंद' अपनी प्यारी की बाट निहारत प्यारै । १६
 अरी तू हठि चलि प्यारी दीप मंडल तें

क्यों शोभा हरि लैत ।

तेरे मुख-प्रकास दीपक-गन मंद दिखाई देत ।
 मंद परे आभा सब मेटी फिलमिलि भोने सेत । १७
 'हरीचंद' तू दूरि बैठि कै कर त्योहार सहेत । १७

ईमन

कविन सो सौंचहि चूक परी ।
 दीप-सिखा की उपमा जिन तुलि प्यारी हेत धरी ।
 वह बाहत यह अंग जुड़ावति वह चंचल थिर येह ।
 वह निज प्रेमिन परम दुखत यह सदा सुखद पिय-देह ।
 वा में धूम स्वच्छ अति ही यह रैन दिना इक रास ।
 वह परिछिन्न बात-बस यह निज-बस सर्वत्र प्रकास ।
 वह सनेह-आधीन और यह है सनेह भरपूर ।
 'हरीचंद' दीपक प्यारी की नाँह कोउ विधि सम तूर । १८
 जमुना-जल बढ़ी दीप-छवि भारी ।
 प्रतिविंबित प्रतिविंब लहरि प्रति तहाँ राजत पिय प्यारी ।
 तैसेही नभतर तारावलि तरल वायु गुन होई ।
 तैसेहि उठत गगन गुब्बारे छुटत दारुगति जोई ।
 अर्वा नौर आकास प्रकाशमन दीपहि दीप लखाई ।
 मनु ब्रजमंडल ज्योति-रूपता अपनी प्रगट दिखाई ।
 मुख प्रकास रोजत सबही थल सोभा नहिं कहि आई ।
 'हरीचंद' राधे मनमोहन रहे त्योहार मनाई । १९
 तुव बिनु पिय को घर अंधियारो ।
 जदीप चहुँ दिसि प्रगाटि श्वास मद विरहानल संचारो ।
 कछु न लखात ताहि अति व्याकुल दुःग-भर लावत भारो ।
 प्रिये प्रिये कहि प्रति कानन में द्रिंदि रहित धर सारो ।
 तू इत बैठी बदन बनाए उत वह बिकल बिचारो ।
 'हरीचंद' उठि चली री प्यारी लाउ गरे पिय प्यारो । २०
 दीपन उलटी करी सहाय ।
 चली गई पिय पास प्रगाट मग काह न परी लखाय ।

अंधियारी मैं तो भय भारी मुख-साँस नाहिं दुराय ।
 इत प्रकाश में मिलि अलबेली एक भई चमकाय ।
 जगमगे बसन कनक-मनि-भूषन एक भए सब आय ।
 'हरीचंद' मिलि कै वियोग में दीनो तुरत नसाय । २१
 दीपति दिव्य दीपावली, आजु दीपति दिव्य दीपावली ।
 मनु तम-नाश करन को प्रगटी कश्यप-सुत-बंसावली ।
 मनु ब्रजमंडल-कृष्ण चंद्रमा तहँ तारन की मंडली ।
 जीवन को मनु राह-सेन को अति सुवरन किरनावली ।
 विगत भई सब रैन-कालिमा सोभा लागति है भली ।
 'हरीचंद' मनु रतन-रासि की

उज्ज्वल ज्योति जुगावली । २२

नेकु चलु पिय पै बेगहि प्यारी ।
 रेखु करी तेरे हित कैसी मोहन आजु तयारी ।
 रड़े पाँवड़े मग मखमल के दल गुलाब रुचिकारी ।
 छिरक्यो नीर गुलाब अतर भृगमद चंदन घनसारी ।
 परदे परे भालारै भ्रमकैं तने वितान सुतारी ।
 फरश गलीचन को अति राजत कोमल बहरंग डारी ।
 धरे साज ढिग अतर पान मधु फूल-माल जल भारी ।
 लगी मिठाई रासि दुई दिसि दीपक धरे कतारी ।
 बिछी पलंग पय-फेनु मैनु-सम पास परयो रुचिकारी ।
 पास साज पालन के सोहन कहैं मनरंज सँवारी ।
 ठौर ठौर आरसी लगाई इनी द्युति करि डारी ।
 प्रति खूँटन हारावलि माला फूल बसन लै धारी ।
 प्रति आले सुगंध सों पूरे पान मिठाई डारी ।
 जहँ तहँ अदब किये सब सखियाँ ठाढ़ी साज सँवारी ।
 मूरछल चँवर रुमाल अड़ानो पीकदान लै वारी ।
 चौकि चौकि पिय उठत बिना तुव अगम संक बनवारी ।
 'हरीचंद' प्रीतम गर लागि कै करु त्योहार दिवारी । २३
 रच्यो यह तेरेहि हित त्योहार ।
 दीप-दिवारी युक्ति निकारी तब हिन नंदकुमार ।
 तब महलन की सुरति करन हित हठरी छाँवर बनाई ।
 तुव मुख-चंद्रप्रकाश लखन हित दीपावली सुहाई ।
 हाट लगाई तुव आवन हित और न कछु सदेह ।
 'हरीचंद' बिहरै किन भूज भरि प्रीतम सों करि नेह । २४
कार्तिक में साँझ के गाइबे को पद
 साँचहि दीपासिखा सी प्यारी ।
 धूमकेश तन जगमगाति द्युति दीपति भई दिवारी ।
 स्वयं प्रकाश अकुंठ सुहाई बिनु असार छाँबि छाई ।
 सदा एक रस नित्य अधिक यह वासों चाल लखाई ।
 भरत सुगंधन ब्रज कुंजन मग शीतल तन कर वारी ।
 प्रीतम-तन को विरह मिटावत 'हरीचंद' दुख जारी । २५



वैशाख-माहात्म्य

(रचनाकाल — १८७२ ई.)

अथ वैशाख-माहात्म्य

दोहा

भरति नेह नव नीर सों वरसत सुरस अथोर ।
जयति अलौकिक धन कौल लखि नाचत मनमोर ॥

—: * :—

नित्य उमाधव जेहि नवत माधव अनुज मुरारि ।
श्यामाधव माधव भजौ माधव मास विचारि ।
रमत माधवी कुंज करि प्रेम माधवी पान ॥
माधव रितु सँग माधवी ले माधव भगवान ॥
वैशाखा-पति नहिं भजहिं जे वैशाख-मैभार ।
ते वै शाषामुग अहैं वा वैशाख-कुमार ॥
गुरु-आयसु निज सीस धरि सुमिरि पिया नंदनंद ।
माधव की कछु विधि लिखत ग्रंथन लखि हरिचंद ॥
चैत्र कृष्ण एकादशी अथवा पूनो मान ।
मेघ संक्रमन सों करै वा अरंभ अश्नान ॥
ब्राह्मण-गन सों पूछि कै नियम शास्त्र को मान ।
हरिहि नौमि संकल्प करि न्याय समेत विधान ॥

(मंत्र)

सकल मास वैशाख में मेघ रांस राखे मान ।
मधुसूदन प्रिय होहिं लखि सनियम माधव-न्धान ॥
मधु-रिपु के परसाद सों द्विज अनुग्रहहि जोय ।
नित वैशाख नहान यह विघ्न-रहित मम होय ॥
माधव मेघग भानु मैं हे मधु-सनु मुरारि ।
प्रात-न्धान फल दीजिए नाथ पाप निरुवारि ॥

इति

जा तीरथ में न्हाइये लीजै ताको नाम ।
जहँ न जानिए नाम तहँ विशु-तीर्थ सुखधाम ॥
तुलसी श्यामा ऊजरी जो मधु-रिपु को देत ।
सो नारायण होत है माधव मैं करि हेत ॥
तुलसी-वल वैशाख में अरपहिं तीनों काल ।
जनम मरन सो मुक्त तेहिं करत नंद के लाल ॥
जो सींचत पीपर तरुहि प्रात न्हाइ हरि मानि ।
करत प्रदक्षिण भाँति बहु सर्व्व देवमय जानि ॥
तरपन करि सुर पित्र नर स-वराचर तरु मूल ।

मेटे अपने पित्र की नरक-कुंड की सूल ॥
जें सींचहिं जल भक्ति सों पीपर तरु जड़ माहिं ।
तिन तारयो निज अयुत कुल यामैं संशै नाहिं ॥
गऊ-पीठ सुहराइ कै न्हाइ तरुहि जल देइ ।
कृष्ण पूजि तजि दुर्गतिहिं देवन की गति लेइ ॥
एक बेर भोजन करै कै तारा लखि खाइं ।
कै चिन माँगो पाइकै दै निसि नींद बिहाइ ॥
ब्रह्मचर्य्य धरनी-शयन अशन हविश्य न आन ।
श्रीगंगादिक मैं करै विधि-विधान असनान ॥
पुन्य मास वैशाख में हरि सों राखि सनेह ।
मन भायो ताको मिलै यामैं कछु न संदेह ॥
मधुसूदन पूजन करै तप व्रत सह दै दान ।
पाप अनेकन जनम के दाहैं तूल-समान ॥
माधव थापै पौंसरा करै चटाई दान ।
छत्र व्यजन जूता छरी अरु सूक्ष्म परिधान ॥
चंदन जल-घट पुष्प ग्रह चित्र वस्तु अंगूर ।
देवहिं दीजै प्रीति सों केला फल करपूर ॥
माधव में जो पित्र-हित करत अंबु-घट-दान ।
सकु व्यजन मधु फल सहित प्रीति करत भगवान ॥
माधव-हित जे देत घट या माधव के माहिं ।
भोजन के सह विप्र कों ते बैकुण्ठहि जाहिं ॥
होइ सकै नहिं मास भर सौ विधिवत् असनान ।
करै अंत के तीन दिन तो फल होइ समान ॥
(अथ अक्षय तृतीया)

रोहिनि माधव शुक्ल पख तीज सोम बुध होय ।
अति पवित्र दुरलभ बहुरि पाप नसावत सोय ॥
माधी पूनो भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशि जान ।
माधव तृतीया कार्तिक नवमी युग परमान ॥
इन चारह युगादि में श्राद्ध करत जो कोय ।
द्वै सहस्र संवत दिनन तृप्ति पित्र की होय ॥
तिथि युगादि में न्हाइ कै करै दान जप ध्यान ।
ताकों शुभ फल देत श्री कृष्णचंद भगवान ॥
माधव शुक्ला तीज को श्री गंगाजल न्हाय ।
सर्व्व पाप सों छुटिकै विष्णु-लोक सो जाय ॥
जव ही को होमादि करि हरि को जव हि चढ़ाइ ।
दान देई जव द्विजन कों पुनि आपहु जव खाइ ॥

दान करे जल कुंभ को रस अन्नादिक साथ ।
चना और गोधूम को सक्तु देह द्विज-हाथ । ३२
दधि ओदन आदिक सबै ग्रीषम रितु के भोग ।
देह तीज दिन विप्र को नासै भव-भय रोग । ३३
शिवहिं पूजिके तीज दिन शिव-हित दे घट-दान ।
शिवपुर सो नर पावई भाषत शिव भगवान । ३४

(मंत्र)

ब्रह्म विष्णु शिव रूप यह दियो धर्म घट-दान ।
पिता-पितामह आदि सब तृप्ति होहिं परमान । ३५
गंध उदक तिल फल सहित पित्रन जल-घट देत ।
अक्षय पावै तृप्ति सब दान कियो एहि हेत । ३६
ब्रह्म-विष्णु-शिव-रूप यह देत धर्म घट दान ।
या सों मेरे काम सब पुरवौ श्री भगवान । ३७
वायु देवता को व्यंजन नासन आतप-ताप ।
तासों याके दान सों प्रीति होहिं हरि आप । ३८
सक्तु प्रजापति देवता मख-हित किय निरमान ।
होहिं मनोरथ पूर्ण सब या सक्तुआ के दान । ३९

इति

चार युगादिक तिथिन में करि समुद्र असनान ।
सो फल पावत मनुज जो करिके पृथ्वी-दान । ४०
इन चारिह्र युगादि में कछु नहिं खैये रात ।
रात खान सों दिवस को पुन्य नास हवै जात । ४१
माधव शुक्ला तीज को श्रीमाधव को जौन ।
चंदन चरचहिं पावहीं महा पुन्य नर तौन । ४२
करपूरादि सुगंध सों सुंदर चंदन बासि ।
कृष्णहिं देत जो पुन्य नर रहत पाप सो नासि । ४३
चंदन तन धारन किए कृष्णहिं सो लखि लेत ।
तीज दिवस सो मुक्त हवै पावत कृष्ण-निकेत । ४४
शीतल जल नव घटन भरि माल-विजन बहु भाति ।
देत हरिह सो पावई पुन्य फलन की पाति । ४५
पुष्पमाल बहु भाति अरु ग्रीषम के उपचार ।
जल यंत्रादि अनेक बिधि करै बुद्धि-अनुसार । ४६
कृष्ण-हेत जो कछु करै माधव तृतिया पाइ ।
सो अखंड हवैके रहै पुन्य न कबहुं नसाइ । ४७
परशुराम को जन्म-दिन पुनि याही दिन जान ।
तिनके हित हू कीजिये दान बरत असमान । ४८
छाता जूता आदि सब ग्रीषम सुख की वस्तु ।
द्विजन देइ या तीज को कहि कृष्णार्पणमस्तु । ४९
सुकृत जौन यामें करै सो सब अक्षय होय ।
तासों अक्षय तीज यह नाम कहै सब कोय । ५०
चंदन को बागो करै चंदन ही की माल ।

चंदन ही के भौन में बैठावै नंदलाल । ५१
फूलन को मंदिर रचे फूलन सेज बनाय ।
तामें थापै कृष्ण को फूल-माल पहिराय । ५२
रितु-फल बहु सब भाति के दधि-ओदन सुखधाम ।
पना धरै सब वस्तु को कहै लेहु घनश्याम । ५३
दीपादिक की मुख्यता कातिक में जिमि जान ।
तैसेई माधव मास में सीत वस्तु को मान । ५४
चार बरन को दीजिए माधव में जल-दान ।
अंत्यज पशु पक्षीन को नीर-दान सुख-खान । ५५
जे पशु-पक्षिन देत है ग्रीषम में जल-पान ।
ते नर सुरपुर जात है सुंदर बैठि बिमान । ५६
जे अति आतप सों तपे देहु तिन्है विश्राम ।
छाया-जल बहु भाति सों हवैहै पूरन काम । ५७
गरमी के हित जे करत बापी कूप तड़ाग ।
तिनको पुन्य अखंड ते करत न सुरपुर त्याग । ५८
साधुन को अरु द्विजन-गृह नदी-तीर हरि-धाम ।
जे छावत छाया तिन्है मिलत श्याम अभिराम । ५९

अथ श्री गंगा सप्तमी

माधव सुदि सप्तमि कियो क्रुद जन्हु जल-पान ।
छोड़्यो दक्षिण कर्ण तें तातें पर्व महान । ६०
ताही सों जान्हवि भई ता दिन सों श्री गंग ।
तिनको उत्सव कीजिए ता दिन धारि उमंग । ६१
तामें गंगा न्हाय कै पूजन कीजै चारु ।
गंगा नाम सहस्र जपि लीजै पुन्य अपार । ६२

अथ वैशाख शुद्ध द्वादशी

सिंह राशि-गत होहिं जो मंगल गुरु इक ठौर ।
मेष राशि-गत दिवसपति शुक्ल पक्ष-जुत और । ६३
द्वादशि तिथि में होइ पुनि बितीपात संयोग ।
हस्त होय नक्षत्र तौ होय महा यह जोग । ६४
प्रात स्नान यामें करै सहित विवेक बिधान ।
गो सुवरन अवनी बसन देइ द्विजन कहै दान । ६५
देव होइ सुरपति बने नरपतिहू जग माहिं ।
जो मन इच्छित सो मिलै यामें संशय नाहिं । ६६

अथ नृसिंह चतुर्दशी

माधव शुक्ल चतुर्दशी स्वाती पुनि शनिवार ।
वनिज करन सिध जोग में नरहरि लिय अवतार । ६७
जो सब जोग कहू मिले तौ पूरन सौभाग ।
बिना जोगहू व्रत करै करि हरि सों अनुराग । ६८
सब लोगन को व्रत उचित चौदस माधव मास ।
पै वैष्णव जन तो कर निश्चय व्रत उपवास । ६९
साँझ समै हरि को करै पंचामृत असनान ।

शीतल भोग लगावई करि आनंद विधान ॥७०
वा मुद गोमय आँवलिनि करि मध्यान्ह स्नान ।
पूछि द्विजन सों यह करे सुभ संकल्प विधान ॥७१

(मंत्र)

देव देव नरसिंह जू जानि जनम को जोग ।
आजु करै उपवास हम त्यागि सकल जग भोग ॥७२

इति

यह पढ़ि नदी नहाइ के साँभ समै घर आइ ।
लक्ष्मी सहित नृसिंह की सुवरन मूर्ति बनाइ ॥७३
रात पूजि जागरन करि प्रात पूजि पुनि श्याम ।
पीठक विप्रहि दै करै यह विनती सुखधाम ॥७४

(मंत्र)

नरहरि अच्युत जगतपति लक्ष्मीपति देवेस ।
पूजौ पीठक-दान सों मन-कामना अशेष ॥७५
जे मम कुल में होयगे होय गए जे साथ ।
या भव-सागर दुसह तेँ तिनहिँ उधारौ नाथ ॥७६
इब्यौ पातक-सिंधु मैं महादुःख, के बारि ।
दुखित जानि मोहि राखिए नरहरि भुजा पसारि ॥७७
श्री नरसिंह रमेश जू भक्तन को भय दारि ।
क्षीर समुद्र निवास तुव चक्रपाणि दनुजारि ॥७८
जय जय कृष्ण गुविन्द हरि राम जनार्दन नाथ ।
या व्रत सों मोहिँ दीजिए भक्ति मुक्ति दोड साथ ॥७९

इति

या विधि सों व्रत जे करै कृष्ण-जन्म दिन जानि ।
ते चारहु फल पावहीं यह उर निश्चय मानि ॥८०
जिमि निकसे प्रभु खंभ ते राख्यौ जन प्रहलाद ।
तिमि तिनकी रक्षा करत जे राखत व्रत स्वाद ॥८१

अथ पूर्णिमा

माधव कातिक माघ की पूनो परम पुनीत ।
ता दिन गंगा न्हाइये करि केशव सों प्रति ॥८२
एक मास जो नहिँ बने श्रीगंगा-असनान ।
तौ पूनो दिन न्हाइये अरु करिये जल-दान ॥८३
व्रत समाप्त या दिन करै देह द्विजन को दान ।
हाथ जोड़ि कै यह कहै लखि कै श्री भगवान ॥८४

(मंत्र)

हे मधुसूदन, कृष्ण हरि राधा-जीवन-प्राण ।
तव प्रताप पूजन भयो माधव विधिवत स्नान ॥८५

इति

श्याम मृगा के चर्म पै श्याम तिलहि दै दान ।
सुवरन सह कहि होहि प्रिय मधुसूदन भगवान ॥८६
ब्राह्मण बहुत खवावई करि अनेक पकवान ।
जो बहु द्विज नहिँ होइ तौ बारह सहित विधान ॥८७
एहि विधि माधव में करै प्रेम सहित असनान ।
ताकों सब कछु देहिँ श्री मधुसूदन भगवान ॥८८
लखि कै निरनयसिंधु अरु भगवदभक्ति-विलास ।
माधव की यह विधि लिखी 'हरीचंद' हरिदास ॥८९
एक दिवस मैं यह लिखी माधव-विधि अभिराम ।
जेहिँ पढ़ि कै सुख पाइहैं कृष्ण-भक्त सुखधाम ॥९०
लीजौ चूक सुधारि के कविमन सहित अनंद ।
हौं नहिँ जानत रचन-विधि नहिँ पिंगल नहिँ छंद ॥९१
माधव-विधि माधव सुमिरि उर अति धारि अनंद ।
परम प्रेमनिधि रसिकवर विरच्यौ श्रीहरिचंद ॥९२
प्राण-पियारे, प्रेमनिधि प्रेमिन-जीवन-प्राण ।
तिनके पद अरपन कियो यह वैशाख-विधान ॥९३



प्रेम सरोवर

हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खण्ड २ सं. १८७४ अक्टूबर में प्रकाशित

समर्पण

अक्षय तृतीया है, देखो जल-दान की आज कैसी महिमा है। क्या तुम मुझे फिर भी जल-दान दोगे? कहाँ! दरंघ जलांजलि दोगे; देखो मैं कैसा प्यासा हूँ और प्यास में भी चातकाभिमानी हूँ। हाँ! जिस चातक ने एक श्याम घन की आशा पर परिपूर्ण समुद्र और नदियों तथा अनेक उत्तम मीठे-मीठे सोते, झील, कूप, कुंड, बावली औ भरनों को तुच्छ करके छोड़ दिया, उसे पानी बरसना तो दूर रहे, जो मधुर घन की ध्वनि भी न सुन पड़े तो कैसे प्रान बचे? देखो यह कैसी अनीति है, वही आनंदघन जी का कहना 'सब छोड़ि अहो हन पायो तुम्है हमैं छोड़ि कहो तुम पायो कहा।' यह देखो कैसे संशय की बात है कि मैं तो दोनों लोक के यावत् पदार्थ छोड़ बैठ, उस पर भी आप न पिघले तो इससे तुम्हारे ही विषय में संशय होते हैं जो चित्त के धैर्यों को हिलाते हैं। पर चाहे तुम कुछ कहो; मैं तो व्रत नहीं छोड़ने का। यह बड़ा हठ कौन मिटा सकता है? जो कहो कि 'तुम कच्चे हो, घर बैठे ही यह संपत्त लूटा चाहते हो और संसार की वासनाओं से दूषित होकर भी हमें खोजते हो' तो हम कैसे भी हों, तुम तो अच्छे हो और हम कहते तो तुम्हारे हैं, तो फिर तुमको इससे क्या? भले आदमी ही बने 'सतां सप्तपदौ मैत्री' इसी का निवाह करो, किसी भाँति समझो। ऐ मेरे प्यारे, कुछ तो मानो। जो कहो धर्म तो तुम फल रूप हो। अब धर्म फिर कैसा? जो कहो कलंक, तो प्रथम तुमको कलंक ही नहीं, और जो होता भी हो तो हम तुमको ढिंढोरा पीटने तो कहते नहीं। केवल इस अपने दीन को आश्वासन दे दो कि निराश न हो और इन अनिवार्य अशुओं को अपने अंचल से निवारण करो और भव-ताप से परम तापित इस दीन-हीन दुखी को अपने चरण-कल्पतरु की छाया में विश्राम दो, क्योंकि वैशाख में छायादान का बड़ा पुण्य है। जो कहो कि वैशाख बड़ा पुण्य मास है, इसमें तुमने क्या किया? तो मैंने देखी यह कैसा उत्तम तीर्थ प्रेम-सरोवर बनाया है। जो इस तीर्थ का स्नान करेंगे, जो इस तीर्थ की विधि करेंगे, जो इस तीर्थ का ध्यान धरेंगे, वे आप पुण्य-स्वरूप पावन होकर अपने शरीर के वायु से तथा हवा से लोक को पवित्र करेंगे, क्योंकि सत्य प्रेम ऐसी ही वस्तु है। तो क्या इस सीतल सरोवर में तुम न नहाओगे? अवश्य नहाना होगा, आप नहाओ और अपने जनों को कहो कि इसमें स्नान करें। प्यारे, यह अक्षय सरोवर नित्य भरा रहेगा और इसमें नित्य नए कमल फूलेंगे और कभी मल न आवेगा और इस पर प्रेमियों की भीड़ नित्य लगी रहेगी और प्रेम शब्द को विषय का पूजादिक कहनेवाले वा प्रेमाधिकारी के अतिरिक्त कोई भी इस तीर्थ पर कभी न आवेंगे (एवमस्तु-एवमस्तु)। तो तुम तो स्नान करो कि मेरा परिश्रम सार्थक हो

और इसका तीर्थपना पक्का हो जाय, क्योंकि तुम्हारे वा हमारे वा तुम्हारे किर्सि सेवक के नहाने से जल मात्र गंगा हो जाते हैं। तो आओ, इधर आओ इस उत्तम तीर्थ का मार्ग दिलानेवाला तुम्हारे आगे चलता है, जिसका नाम—

अक्षय तृतीया, वैशाख शुक्ल ३

सं. १९३० मंगल

केवल तुम्हारा

* * * * है

प्रेम-सरोवर

जिहि लहि फिर कछु लहन की आस न चित में होय ।
जयति जगत पावन-करन प्रेम बरन यह दोय । १
प्रेम प्रेम सब ही कहत प्रेम न जान्यौ कोय ।
जो पै जानहि प्रेम तो मरे जगत क्यों रोय । २
प्राणनाथ के न्हान हित धारि हृदय आनंद ।
प्रेम-सरोवर यह रचत रुचि सों श्री हरिचंद । ३
प्रेम-सरोवर यह अगम यहाँ न आवत कोय ।
आवत सों फिर जात नहि रहत वहाँ के होय । ४
प्रेम-सरोवर मैं कोऊ जाहु नहाय बिचारि ।
कछु के कछु ह्वै जाहुगे अपनेहि आप बिसारि । ५
प्रेम-सरोवर नीर को यह मत जानेहु कोय ।
यह मदिरा को कुण्ड है नहातहि बौरो होय । ६
प्रेम-सरोवर नीर है यह मत कीजौ छयाल ।
पर रहै प्यासे मरे उलटी ह्याँ की चाल । ७
प्रेम-सरोवर-पंथ मैं चलिहै कौन प्रवीन ।
कमल-तंतु की नाल सों जाको मारग छीन । ८
प्रेम-सरोवर के लग्यौ चम्पावन, चहुँ ओर ।
भँवर बिलच्छन चाहिए जो आवै या ठौर । ९
लोक-लाज की गाँठरी पहिले देई डुबाय ।
प्रेम-सरोवर पंथ मैं पाछे राखै पाय । १०
प्रेम-सरोवर की लखी उलटी गति जग माँहि ।
जे डूबे तेई भले तरे तरे ते नौहि । ११
प्रेम-सरोवर की यहै तीरथ विधि परमान ।
लोक वेद को प्रथम ही देहु तिलाजलि-दान । १२
जिन पाँवन सों चलत तुम लोक वेद की गैल ।
सो न पाँव या सर धरो जल ह्वै जेहै मैल । १३
प्रेम-सरोवर पंथ मैं कीचड़ छीलर एक ।
तहाँ इनारु के लगे तट पै वृक्ष अनेक । १४
लोक नाम है पंक को वृच्छ वेद को नाम ।
ताहि देखि मत भूलियो प्रेमी सुजन सुजान । १५
गहवर बन कुल वेद को जहँ छायो चहुँ ओर ।
तहँ पहुँचे केहि भाँति कोउ जाको मारग घोर । १६
तीछन बिरह दवागि सों भसम करत तरुवृंद ।

प्रेमीजन इत आवहीं न्हान हेत सानंद । १७
या सरवर की हौं कहा सोभा करौ बखान ।
मत्त मुदित मन भौर जहँ करत रहत नित गान । १८
कबहुँ होत नहिं भ्रम निंसा इक रस सदा प्रकास ।
चक्रवाक बिछुरत न जहँ रमत एक रस रास । १९
नारद शिव शुक सनक से रहत जहाँ बहु मीन ।
सदा अमृत पीके मगन रहत होत नहिं दीन । २०
नंददास, आनंदघन, सूर, नागरीदास ।
कृष्णदास, चैतन्य, हरिवंस, गदाधर, व्यास । २१
इन आदिक जग के जिते प्रेमी परम प्रसंस ।
तेई या सर के सदा सोभित सुंदर हंस । २२
तिन बिनु को इत आवई प्रेम-सरोवर न्हान ।
फँस्यौ जगत मरजाद में बूधा करत जप ध्यान । २३
अरे बूधा क्यों पवि मरो ज्ञान-गरुड बढ़ाय ।
बिना प्रेम फीको सबै लाखन करहु उपाय । २४
प्रेम सकल श्रुति-सार है प्रेम सकल स्मृति-मूल ।
प्रेम पुरान-प्रमाण है कोउ न प्रेम के तूल । २५
बूधा नेम, तीरथ, धरम, दान, तपस्या आदि ।
कोऊ काम न आवई करत जगत सब बादि । २६
करत देखावन हेत सब जप तप पूजा पाठ ।
काम कछु इन सों नहीं यह सब सूखे काठ । २७
बिना प्रेम जिय ऊपजे आनंद अनुभव नौहि ।
ता बिनु सब फीको लगे समुझि लखहु जिय माँहि । २८
ज्ञान करम सों औरहु उपजत जिय अभिमान ।
दूढ़ निहचै उपजै नहीं बिना प्रेम पहिचान । २९
परम चतुर पुनि रसिकवर कैसोहू नर होय ।
बिना प्रेम रूखी लगै बादि चतुरई सोय । ३०
जान्यौ वेद पुरान मे सकल गुनन की खानि ।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं कहा कियो सब जानि । ३१
काम क्रोध भय लोभ मद सबन करत लय जौन ।
महा मोहहू सों परे प्रेम भाखियत तौन । ३२
बिनु गुन जोबन रूप धन बिनु स्वारथ हित जानि ।
शुद्ध कामना तें रहित प्रेम सकल रस-खानि । ३३
अति सूछम कोमल अतिहि अति पतरो अति दूर ।
प्रेम कठिन सब तें सदा नित इक रस भरपूर । ३४

जग में सब कथनीय है सब कुछ जान्यो जात ।
 पै श्री हरि अरु प्रेम यह उभय अकथ अलखात ।३५
 बंध्यो सकल जग प्रेम में भयो सकल करि प्रेम ।
 चलत सकल लहि प्रेम को बिना प्रेम नहि छेम ।३६
 पै पर प्रेम न जानहीं जग के ओछे नीच ।
 प्रेम जानि कछु जानिबो बचत न या जग बीच ।३७
 दंपति-सुख अरु विषय-रस पूजा निष्ठा ध्यान ।
 इनसों परे बखानिए शुद्ध प्रेम रस-खान ।३८
 जदपि मित्र सुत बंधु तिय इनमें सहज सनेह ।

पै इन में पर प्रेम नहिं गरे परे को एह ।३९
 एकंगी बिनु कारने इक रस सदा समान ।
 पियहि गनै सर्वस्व जो सोई प्रेम प्रमान ।४०
 डरै सदा चाहै न कछु सहै सबै जो होय ।
 रहै एक रस चाहि के प्रेम बखानौ सोय ।४१
 इक्कीस तोप सलामी की औअल दर्जे का काम सभी ।
 क्रास बाध इस्टार हुए महाराज बहादुर नाम सभी ।
 जग जस पाया मुलक कमाया किया ऐश-आराम सभी ।
 सार न जाना रहा भुलाना राम बिना वे काम सभी ।

प्रेमाश्रु-वर्षण

(रचनाकाल — सन् १८७३)

समर्पण

कितव*

यह प्रेमाश्रु की वर्षा है । इससे नहाके तब मुझे छुओ, क्योंकि वह धूर्तता करने से तुम अशुद्ध हो गए हो । क्या कहूँ, बहुत कुछ कहने को जी चाहता है और लेखनी कहनी-अनकहनी सभा कहना चाहती है, पर क्या करे, अदब का स्थान है, इससे चुप है और चुप रहेगी । हाय हाय, कभी मैं इस दुष्ट लेखनी को अपने प्रान-प्यारे जीवितेश, मेरे सर्वस्व की कुछ निंदा कैसे लिखने दूँगा । और जो लिखा भी हो तो क्षमा करना ।

यह बखेड़ा जाने दो, आज क्यों नहीं मिले ?
 ले इन्हीं लक्षणों से तो कुछ कहने को जी चाहता है,
 न कहूँगा, रुठने का डर तो सबसे बड़ा है न
 जैसा कुछ हूँ, बुरा भला तुम्हारा हूँ
 लो इस वर्षा से जी बहलाओ
 पर प्यारे, तुम भी कभी बरसो ।
 बरसि नदी नद सर समुद्र पूरे करुना-भौन ।
 हम चातक लघु चंचु-पुट पूरन में श्रम कौन ॥

सावन हरिआरी अमावस
 गुरु पुष्य सं. १९३०

तुम्हारा चातक
 हरिश्चंद्र

प्रेमाश्रु-वर्षण

भइ सखि साँझ फूलि रहि बन
 द्रुम बेली चले किन कुंज कुटीर ।

हरे सरोवर भए सुनहरे छिरकी मनहुँ अबीर ।
 भुकि रहे रंग रंग के बादर मनु सुखए बहु चीर ।
 जानि बसेरा-समय कुलाहल करत कोकिला कीर ।

* धूर्त, छली

तन्यो बितान गगन अक्की लौ भयो सुहावन तीर ।
 जमुना-जल झलकत आभा मिलि लहरत रंग भरि नीर ।
 धीर समीर बहत अंग सहरत सोभित धीर समीर ।
 'हरीचंद' इक तुव विनु फीको सब मानत बलबीर । १
 सखी री सौभ सहायक आई ।
 मेट्यो भय बैरो प्रकास को सब कछु दीन दुराई ।
 अक्कि अक्कास एक भयो मारग कहूँ नहिं परत दिखाई ।
 सुने भए सबै थल ब्रजजन घर में रहे दुराई ।
 गरजि बुलावति तोहि चंचला चमकत राह दिखाई ।
 औरन के चकचौंधा लावत तेरी करत सहाई ।
 तैसेहि भींगुर भनकत नूपुर जासो नहिं सुनाई ।
 वायु सुखदा तै दिसि तोहि भेजत तरु हिलि रहत बुलाई ।
 बरसत नान्ही बूँद हरन श्रम कोकिल करत बघाई ।
 'हरीचंद' चलि उत किन भामिनि रह पिय अंकम लाई । २
 सौभ भई री परम सुहावनि धारि नम कीन बितान ।
 भए अंधेर कुंज लता-नरु दुर्यौ दुखद सो भान ।
 घर गए गोप गाय गई गोहर सुनभये मग धान ।
 पावस समय जानि सब बेगाह सोप नर-नारी पट नान ।
 अक्कि अक्कास एक भयो दीखयत परत नाहिं कछु जान ।
 भनकत भिल्ली रट रहे दादुर कियो जात नाहिं कान ।
 नारे चंद मंद भए सारे लाखहैं कोउ न प्रयान ।
 'हरीचंद' उठि चला निधरक तू मति चूकै करि मान । ३
 जगावन ही मनु पावस आयो ।
 भयो भोर पिय उठ्यो उठ्यो काह मधुरं गरजि सुनायो ।
 बोले मोर कोकिला कृहके दादुर रोर मचायो ।
 दामिनि दमकी मंगल बंदी-जन मनु नाच्यो गायो ।
 छोटी बूँद बरसि चौकाए आलस सबै मिटायो ।
 'हरीचंद' पिय प्यारी को इन बेगाह आज जगायो । ४
 आजु प्रानप्यारी प्राननाथ सो मिलन चली
 लाखि कै पावस दास साजी है सवारी ।
 तन के पाँवरे बिछाय घन धुनि मंगल सुनाय
 दामिनि दमकि आगे करै उँजियारी ।
 ठोर ठोर राह बतावत भिल्ली
 बूँद बरसि हरै श्रम सुखकारी ।
 'हरीचंद' समे को उचित उपचार करि
 पावत न्यौछावर पिय जनहारी । ५
 आजु तन भोजे बसनन सोहैं ।
 देखि लेहु भरि लोचन सोभा जुगल अरी मन मोहैं ।
 उधरे तन अनुरागहु उर के छिपे न जदाप लजौहैं ।
 रति के चिन्ह जुगल तन बसनन ढँकेहु उधरि उलटौहैं ।
 अंग प्रभा मनु बसन रुको नहिं प्राति खुली सब सोहैं ।
 'हरीचंद' दुग भोजि रहे रुकि उडि न सकत ललचौहैं । ६

बात विनु करत पिया बदनान ।
 कौन हेतु यह लाज हरै मम बिना बात बे-काम ।
 आजु गई हौ प्रात जमून-नट आयो तहँ घनम्याम ।
 पकरि मोहिं जल बीच हलोरयो तोरयो गर को दाम ।
 लरि कंकन को दियो खरीटा मेरे मुख सुनु वाम ।
 'हरीचंद' जाते जामैं सब छिपे न प्राति मुदाम । ७
 बिहरत रस भरि लाल बिहारी ।
 ज्यौं ज्यौं घन गरजत हैं त्यों त्यों लपटि रहत पिय प्यारी ।
 होड़ा-होड़ा घन दामिनि सो कौल करन सुखकारी ।
 बोलत मोर दामिनी चमकत लाखि उमगत रस भारी ।
 रहे सिहराइ भुजा भुज दीने राधा भानु-दुलारी ।
 'हरीचंद' काँध गन किए पावन काँवता दोस निवारी । ८
 दामिनि बैर करै विनु बात ।
 बिघन बनत विनु बात कुंज में जब कबहूँ चमकात ।
 निधरक जुगल रहन नहिं पावत प्रगटावत रस-वान ।
 'हरीचंद' आखिर तो चपला सहि नहिं सकत सिहात । ९
 दामिनि बैरिनि बैर परी ।
 जान न बैत पिया प्यारे ढिग प्रगटत बात दुरी ।
 रैन अंधेरी स्याम बसन तन जयाप रहत धरी ।
 उँज चमकि विनु बात बैरिनी मेरी लाज हरी ।
 घन गरजत बूँदन लाखि घर नहिं रहियै धीर धरी ।
 'हरीचंद' नात्र संक अक्की पिय-मारग निकरी । १०
 मंगलमय सखि जुगल-बिहार ।
 बड़े प्रात ही कुंज ओट तें क्यो चुपके नहिं लेत निहार ।
 मंगल सेस भवन रस मंगल तहाँ जुगल मंगल की खानि ।
 मंगल बाह बाह में दीने मंगल बाल अलसौहैं जानि ।
 मंगल जागत आलस पागत मंगल नौद भरे जुग नैन ।
 मंगल लपटि लपटि कै पुनि पुनि
 कबहूँ उठत करि कबहूँ सैन ।
 मंगल परिरंभन आलिंगन मंगल तोतरे शब्द उचार ।
 'हरीचंद' मंगल बल्लभ-पद जा
 बल बिहरत बिना बिकार । ११
 आजु कछु मंगल घन उनए ।
 गरजत मंद मंद सोई मंगल मनवत कुंज छए ।
 बरसत बूँदन मनु अभिसेचत मंगल कलास लए ।
 चमकि मंगलामुखी दामिनी मंगल करत नए ।
 मंगल बैरख बग की पंगत मंगल दादुर गान गए ।
 मंगल नाचन मोर मोरनी मंगल कुंज बितान टए ।
 मंगल ब्रज बृंदावन जमुना मंगल गिरिवर नाम लए ।
 'हरीचंद' मंगल बल्लभ-पद जा बल जुगल बिहार भए । १२
 सखि ये बदरा बरसन लागै री ।
 मोहिं मोहन पिय विनु जानि जानि,

भुक्ति भुक्ति कै सरसन लागै री ।
 हम उन बिनु अति व्याकुल डोलै ।
 मुख सों हाय पिया कहि बोलै ।
 प्रान आइ अटकै नैनन में तेरे दरसन लागै री ।
 सुनि सुनि कै सँजोग कुबिजा को ।
 करि कै याद बहुरिबो बाको ।
 लाखि भूमकनि बूँदनि की मेरे जियरा हरसन लागै री ।
 'हरीचंद' नहिं बरसत पानी ।
 बिरह अंगिन को घृत सम जानी ।
 कहा करै कित जाई सेज सुनी लाखि तरसन लागै री । १३
 सखी मन-मोहन मेरे मोत ।
 लोक वेद कूल-कानि छाँड़ हम करी उनहिं सों प्रीत ।
 बिगरी जग के कारज सगरे उलटौ सबही नीत ।
 अब तो हम कबहुँ नहिं तजिहैं पिय की प्रेम प्रतीत ।
 यह वाह-बल आस यह इक यह हमारी रीत ।
 'हरीचंद' निधरक बिहरैगी पिय-बल दोउ जग जीत । १४
 अरी सोहागिन तेरे ही सिर राजतिलक बिधि दोनो ।
 नोही को फबै सेंदूर को टीको जिन पिय मन हरि लीनो ।
 नास्यो दरप सुन्दरीगन को भोग-भाग सब छीनो ।
 'हरीचंद' भय मेटि काम को राज अचल ब्रज कीनो । १५
 श्रीराधे सबको मान हर्यौ ।
 अरी सुहागिन मेरी तू अब सेंदूर तिलक धर्यौ ।
 गिर गरव-परवत जूवाँतन के रूप गरूर बर्यौ ।
 रीती सिद्धि भई रिपिगन की देविन दरप दर्यौ ।
 शिव समाधि छूटी शुक्र डोल्यौ रवि ससि तेज छर्यौ ।
 फूलन रूप-रंग तजि दीनौ जग आनंद भर्यौ ।
 सबको भाग रूप अधरामृत इकलौ पान कर्यौ ।
 'हरीचंद' हरि तोहि अंक लै हवै निसंक बिहर्यौ । १६
 सुरत-श्रम-जल बिहरत पिय-प्यारी ।
 घाव भरे दोउ सेज नाव पै बाहु बाहु में धारी ।
 करि आसरो पियारी को पिय पावत कोउ बिधि पारी ।
 'हरीचंद' तहँ मौन बाँधि गल डूबे भयो सुखारी । १७
 प्यारी-रूप-नदी छवि देत ।
 सुखमा-जल भरि नेह-तरंगनि बाढ़ी पिय के हेत ।
 नैन-मीन कर-पद-पंकज से सोभित केस-सिबार ।
 चक्रवाक जुग उरज सुहाए लहर लेत गल-हार ।
 रहत एक-रस भरी सदा यह जदपि तऊ पिय भेटि ।
 'हरीचंद' बरसै साँवल घन बढ़त कूल कूल भेटि । १८
 आजु तन आनंद-सरिता बाढ़ी ।
 निरखत मुख प्रीतम प्यारे को प्रीति तरंगनि काढ़ी ।
 लोक वेद दोउ कूल तरावर गिरे न रहे सम्हारे ।

हाव भाव के भरे सरोवर बहे होइ कै नारे ।
 बुझे दवानल परम बिरह के प्रेम-परब भी भारी ।
 मीन-वान के जे प्रेमी जन जल लाहि भए सुखारी ।
 भई अपार न छोर दिखावै नीति-नाव नहिं चाली ।
 'हरीचंद' बल्लभ-पद-बल अंगणाहत सोई आली । १९
 हमारे नैन बहीं नदियाँ ।
 बीती जानि औधि सब पिय की जे हम सों बाँदियाँ ।
 अंगणाहयौ इन सकल अंग ब्रज अंजन को धोयो ।
 लोक वेद कूल-कानि बहाई सुख न रहयो खोयो ।
 डूबत हीं अकुलाइ अथाहन यहै रीति कैसी ।
 'हरीचंद' पिय महाबाहु तुम आछत गति ऐसी । २०

खेमटा

ए री मेरी प्यारी आजु पौढ़ि तू हिंडोरें ।
 ललित लतान में सेज फँसाई भरत फूल चहुँ ओरें ।
 मंद पवन लागिहैं हालन में पीतम सों भुज जोरें ।
 'हरीचंद' सुख नींद सोइ तू अपने पिय के कोरें । २१
 पिय की अँकोर रच्यो है हिंडोरें ।
 खंभ जाँचै अंक पटुली मंद भुलानि भुकोर ।
 हार भूमर पीत पट भालार लगी चहुँ ओर ।
 सुक मोर पिक किंकिनि बंदत तन स्वेद बरसत जोर ।
 तहाँ रमकि भूलत प्रान-प्यारी उमगि थोरहिं थोर ।
 'हरीचंद' सखि श्रम-हरन बीजन रहत है तून तोर । २२
 दोऊ मिलि भूलत कुंज बितान ।
 चहुँ ओर एकन एक सों लगे सघन बिटप कतार ।
 तापें लता रहिं लपट घेरे मूल सों प्रांत डार ।
 बहु फूल तिन में फूलि सोहत बिबिध बरन अपार ।
 तिमि अवनि तून अंकुर-मई

भयो दसो दिसि इक सार । दोऊ
 इक सबल लाखि कै डार डार्यो तहाँ ललित हिंडोल ।
 तापें लता चहुँया लपेटें भूमि भूमर लोल ।
 तहँभमकि भूलत होइ बदि बदि उमगि करहिं कलोल ।
 खेलैं हँसै गेंदक चलावै गाइ मीठे बोल । दोऊ
 भोटो बढ़्यो रमकत दोऊ दिसि डार परमत धाइ ।
 फरहरत चंचल खुलत बेनी अंग परत दिखाइ ।
 टूटि मोती-माल मुक्ता गिरत भू पै आइ ।
 मनु मुक्त जन अधिकार
 गत लाखि देत धरनि गिराइ । दोऊ
 कसी कंचुकी होत ढीली खुलि तनी के बंद ।
 सिधिल कबरी उड़त सारी गिरत करके छंद ।
 प्रगट बदन दुरात भूलत मैं तहाँ सानंद ।
 मनु प्रेम-सागर मथत

इत उत तरत कढ़ि बहु चंद । दोऊ
 इक डार परकि हिलाइ बरसावत कुसुम बहु रंग ।
 इक नचत गावत इक बजावत बीन मधुर मृदंग ।
 इक खींचि भाजत एक को पट हैसत भरी उमंग ।
 इक लपट डोरी खात भँवरी प्रगटि अंग अनंग । दोऊ
 इक रीफि भूलनि पै रही इक रही विरछन ओर ।
 इक होइ दै भोटन बढ़ावत सौह देत निहोर ।
 इक थकित उतरत सिथिल बैठत नटत धूमरि घोर ।
 इक चढ़त भूलन हेत बढिकै दाँव लाख करोर । दोऊ
 इक भजत तेहि गहि रहत दूजी हैसत भगरत बात ।
 इक कहत हम नहिं भूलिहैं भई सिथिल सगरे गात ।
 तेहि खेचि कोऊ आपुनो बल डोल पै लै जात ।
 इक श्रमित बैठत ताहि दूजी करत अंचल बात । दोऊ
 कोउ अंचल छोर कटि में बाँधि कसिकै देत ।
 कोउ किए लावन की कछोटी चढ़त भोटा हेत ।
 कोउ दाबि अंचल दाँत सों मुख सों भकोरे लेत ।
 कोउ बाँधि गाती हार सगरे भिरत रति रन-खेत । दोऊ
 इक श्रमित मुख करि अरुन स्वेदित लेत विविध उसास ।
 भए हाथ डोरी गहत राते मनहुँ राग प्रकास ।
 पिंडुरि काँपत अंग थहरत लहरि कच मुख पास ।
 तन स्वेद-कन फलकत रहत

कोउ चाहि मंद बतास । दोऊ
 इक डरत भोटा देत पिय के गल रहत लपटाइ ।
 इक बीनि सबके आभरन पोहत तहाँ मन लाइ ।
 इक गिरत रपटत धन गरज सुनि डरि छिपत इक जाइ ।
 इक बसन डारन सों छुड़ावत रहे जे लपटाइ । दोऊ
 गए भीजि सबके बसन लपटे विविध अंबर गात ।
 तन द्रुति अभूखन सहित भई तहँ सबन को प्रगटात ।
 मनु प्रान-प्रिय के मिलन अंतर-पट दुरायो जात ।
 खुलि गई कलाई दुरयो फल

भयो प्रगट प्रेम लखात । दोऊ
 इत बढत सुक पिक भँवर चातक भेक मोर चकोर ।
 इत डार हहरनि होत प्रतिधुनि मचकि डोल भकोर ।
 इत हैसनि हाहा सी सराहनि किकिनी की रोर ।
 उत गान तान बंधान बाजन

मिलि तुमुल कल घोर । दोऊ
 रंग रंग सारी रंग रंग के बहु अभूखन अंग ।
 रंग रंग फूले फूल चहुँ दिसि भालरै रंग रंग ।
 रंग रंग बादर छए नभ तन रंग रंग अनंग ।
 मनु श्याम ससि लखि रंग

सागर चढ़ि चलयो इक संग । दोऊ

जर- तार सारी बादला ले करत मोती पात ।
 तन स्वेद-कन धनश्याम जल हरि-प्रेम बरसत जात ।
 तरु सों पराग अमोद मधु-मद फूल बरसत पात ।
 मनु श्याम धन लखि उमंगि

चहुँ दिसि तें चली बरसात । दोऊ
 तरु फूल फल महि रहि गमकि तपि धूप ठौरहिं ठौर ।
 मिहदी सुगंध कुसुम सारी अतर वासित छोर ।
 मिलि केस सोधे अरगजा कुच लेप मृगमद जोर ।
 सुख मोद मधु तंबोल स्वेद सुगंध लेत भकोर । दोऊ
 धन लड़ित चमकनि तासु आभा पाइ जल चमकात ।
 तन विविध भूखन बसन चमकनि हैसनि में द्विजपाँत ।
 चौकि चमकनि नारि की मुख-चंद चमकनि गात ।
 मिलि पीत पट के चमक में इक रंग सबै दिखात । दोऊ
 तन भीजि सारी रंग रंग के बारि बहत उदोत ।
 सब रंग मिलि के बसन छापित में प्रगट मुख जोत ।
 पिय के निचोरत चूनरी में रंग इनो होत ।
 मनु बहे मिलि रंग-समुद में इक संग बहु रंग सोत ।
 मुख पै कसूँभी रंग सारी भीजि रही चुचाय ।
 लट सगवगी ह्वै तिमि रही गल कुचन में लपटाय ।
 मनु बाल ससि ढिग लाल बादर सुधा बरसत आय ।
 तेहि पान करि अहि-पुच्छ सों

शिव-सीस देत बहाय । दोऊ
 तिनमें छबीली ललित श्री वृषभानुराय-कुमारि ।
 जायें रमा रति उरवसी सी कोटि फेकिय बारि ।
 जगस्वामिनी जन-काम-पूरनि सहज ही सुकुँवारि ।
 कीरति-जसोमति-लाडली ब्रजराज-प्रान-पियारि । दोऊ
 तन नील सारी में किनारी चंद-मुख परिवेख ।
 सिद्धर सिर दोउ नैन काजर पान की मुख रेख ।
 बड़े नैना चपल चितवनि श्याम हित अनमेख ।
 गोरी किसोरी परम भोरी सहज सुंदर मेख । दोऊ
 ढिग बाँह जोरे जासु बैठे नंदराय-कुमार ।
 प्रति रमक चितवनि हैसनि लखि जीवन करत मनुहार ।
 परिवेख । अंचल केस हारन करत मधुर बयार ।
 रहे रीफि आपाभूलि बारंवार कहि बलिहार । दोऊ
 सिर मोर-मुकुट सोहावनो गल गुंज-माल अनुप ।
 तन श्यमसुंदर पीत पट कटि सहजहीं नट रूप ।
 मनु नीलगिरि पें बाल रवि की ललित लपटी धूप ।
 प्रेमिन महा सुख देत अतिहि उदार श्री ब्रज-भूप । दोऊ
 मुरछल चँवर बिजना अड़ानी लिए हाथ रुमाल ।
 पिकवान फूल चँवर भूखन बसन कुसुमन माल ।
 भारी भरी जल डबा बीरा विविध बिजन थाल ।

ललितार्ति ठाढ़ी अनुचरी दिग रूप की सी जाल । दोऊ,
इक करत आरति इक निछावरि करत मनगन छोरि ।
इक आइ राई लोन वारत इक रहत वृन तोरि ।
इक भौर निरवारत खरी इक रहत भूखन जोरि ।
इक बूंद आइत आइ इक पद पोछि रहत निहोरि । दोऊ,
आनंद-सागर बढ़ो ताको कहूँ वार न पार ।

इवे करम कुल ज्ञान नेम विवेक काम-विकार ।
पायो न क्यौहूँ थाह शिव शुक रहे हारि विचार ।
'हरीचंद' तेहि अवगाह किय बल्लभ-कृपा-आधार । १२३

सखी लखि यह रितु वन की शोभा ।
कहकत कुंज कुंज में कोकिल लखि कै सब मन लोभा ।
नए नए वृक्ष नए नए पल्लव नए नए सब गोभा ।
नए नए पात फूल फल नए नए देत हिये में चोभा ।
सीतल चहत समीर सुहायो लेत सुगंध भकोर ।
तैसोइ सुख घन उमार्इ रह्यो है जमुना जू लेत हलोर ।
नाचत मोर सोर चहुँ ओरन गुंजत अलि बहु भाँति ।
बोलत चातक सुक पिक चहुँ दिंस

लखि कै घन की पाँति ।

हरी हरी भूमि भरी सोभा सों देखत ही बनि आवै ।
जहँ राधा अरु माधव बिहरत कुंजन छिपि छिपि जावै ।
वह सौदामिनि वह स्यामल घन बृंद-विपिन-बिहारी ।
जुगल चरन कमलन के नख पै 'हरीचंद' बलिहारी । १२४

आजु ब्रज-बधू फूली फूलन के साज सजि,
प्यारी को भुलावत फूल के हिंडोरें ।
फूली ब्रज भूमि सब द्रुम लता रहे फूलि,
तैसोई पवन बहै फूल के भकोरें ।

फूली सखी एक आई साँवरें सगोने गान,
फूली प्यारी कंठ लगी प्रेम के हलोरें ।
'हरीचंद' बलिहारी फूल फूलि जात वारी,
संगम गुन गावत सुर थोरें । १२५

परज

सखी री मोरा बोलन लागे ।
मनु पावस को टेरि बोलावत तासों अति अनुरागे ।
किधौँ स्याम घन देखि देखि कै नाचि रहे मद पागे ।
'हरीचंद' वृजचंद पिया तुम आइ मिलौ बड़-भागे । १२६

देखि सखि चंदा उदय भयो ।
कबहुँ प्रगट लखात कबहुँ बदरी को ओट भयो ।
करत प्रकास कबहुँ कुंजन में छन छन छिपि छिपि जाय ।
मनु प्यारी मुख-चंद देखि के घूँघट करत लजाय ।

अहो अलौकिक वह रितु-सोभा कछु बरनी नहिं जात ।
'हरीचंद' हरि सों मिलिबे को मन मेरो ललचात । १२७

सखी अब आनंद को रितु ऐहै ।

वह दिन ग्रीसम तप्यो सखी री सब तन-ताप नसैहै ।
ऐ हैं री भूँक के बादर चालिहैं सीतल पौन ।
कोइलि कुहूँकि कुहूँकि बोलैगी बैठि कुंज के मौन ।
बोलैगे पपिहा पिउ पिउ बन अरु बोलैगे मोर ।
'हरीचंद' यह रितु-छवि लखि कै

मिलिहैं नरंदाकिसोर । १२८

सखी री कछु लौ तपन जुड़ानी ।
जब सों सीरी पवन चली है तब सों कछु मन-मानी ।
कछु रितु बदलि गई आली री मनु बरसैगे पानी ।
'हरीचंद' नम दौरन लागे बरसा के अंगवानी । १२९

भोजन कीजै प्रान-पिआरी ।
भइ बड़ी बार हिंडोले भूलत आज भयो श्रम भारी ।
बिंजन मोठे दूध सुहातो लीजे भानु-दुलारी ।
स्यामा-स्याम-चरन-कमलन पर

'हरीचंद' बलिहारी । १३०

एरी आजु भूलै छे जी श्याम हिंडोरें ।
वृन्दावन री सघन कुंज में जमुना जी लेती हलोरें ।
संग थारे वृषभानु-नदिनी सोहै छे रंग गोरे ।
'हरीचंद' जीवन-धन वारी मुख लखतीं चित चोरे । १३१

आजु फूली साँझ तैसी ही फूली राधा प्यारी ।
तैसी ही जमुना फूली, भौरन की भीर भूली,
तैसी ही समय भयो तैसी ही फूलीं फुलवारी ।

तैसे ही भोटा बढ़े, अति ही अनंद मढ़े,
तैसोई अड़ानो राग गावैं सुकुंवारी ।
तैसोई बृंदावन, तैसोई आनंद मन, तैसोही,

मोहन बनै 'हरीचंद' तहाँ बलिहारी । १३२

कहूँ मोर बोलै री घन को गरज सुनि
दामिनी दमकै छाँनया धरकै ।
पिय बिन बिकल अकेली तड़पूँ
बिरह-अंगनि उठि भरकै ।

वह सुख की रतियाँ नहिं भूलै
सोई बात जिय करकै ।
'हरीचंद' पिय से कैसे मिलूँ छतियाँ सों
बिरह बोभ मेरे सरकै । १३३

चौखंडा

हिंडोरें भूलत कुंज कटीर ।
हिंडोरें राधा औ बलबीर ।।
हिंडोरें सब गोपिन की भीर ।
हिंडोरें कालिंदी के तीर ।

कालिंदी के तीर गहवर कुंज रच्यो है हिंडोर ।
नव द्रुम लतन मै ग्रंथि दे दे फूल हैं चहुँ ओर ।।

तहँ निबिड़ में शोभा भई अति ही सुगंध भकोर ।
 लखि हंस सारस भँवर गुंजत नचत बहु बिधि मोर ।
 सोभा अति भूलत भई आजु बृंदावन माँह ।
 एक उतरहिँ एक चढ़ाहिँ पुनि एक आवाहिँ एक जाँह ॥

तैसी भूमि सबै हरियारी ।

तैसी सीतल चलत बयारी ॥

डोलत कीर कतारी ।

तैसी दादुर की धुनि न्यारी ।

दादुर की धुनि चहँ ओर तैसी वीर-बधु छाबि दन ।

बग-पाँत तैसी श्याम घन में इंद्रधनुष समेत ॥

जल बरसि नान्हीं नान्हीं बूँदन जिय बढ़ावत हेत ।

कहँ पंथ नाहिँ सुभक्त तनन सों जल हलोरा लेत ॥

जब चमकत घन दामिनी प्यारी तबै तुरंत ।

पिय के कंठन लागई बाढ़यो मोद अनंत ॥

तैसी भुकी रही लतारी ।

तैसे सोभित नवल पतारी ॥

तामैं अँटकि रहे सारी ।

तेहि आप छुड़ावत प्यारी ॥

प्यारी छोड़ावत आपु सारी फूल सखि खसि कै गिरै ।

मन हिलन द्रम अरु डार सोभा लखत ही मन को हरै ॥

बेला चमेली कुंद मरुआ अरु गुलाबन के तरै ।

बहु रंग फूले फूल तापै भँवर बहु बिधि गुंजरै ॥

अति आनंद बाढ़यो तहाँ भूलत हैं वृजचंद ।

सब वृजनारि भुलावहीं कबहुँ तरल कहँ मंद ॥

सिर मोर मुकुट छाबि छाजे ।

उनके सुरंग चूनी राजै ॥

विष्ट्रा किँकनि सब बाजे ।

मनु काम नृपति-दल गाजे ॥

मनु काम नृप की सैन गाजे जाति सब संसार को ।

कियो अचल पूरन प्रेम पंथाहि नासि ग्यान-बिकार को ।

नित एक रस यह ब्रज बसौ श्री श्याम नंदकुमार को ।

'हरीचंद' का बरने कहो या नित्य नवल बिहार को ॥३४

राग मलार

बोलै भाई गोवर्दन पर मोर ।

सावन मास घटा जुरि आई करत पपीहा सोर ।

बृंदावन तरु पुंज कुंज में ठाढ़े नंदकिसोर ।

तैसाहि सँग वृषभानु-नंदिनी तन जोरन को जोर ।

सीतल चलत समीर सुहायो भरत सुगंधि अथोर ।

या वृज माहिँ सदा चिरजीवै 'हरीचंद' चित-चोर ॥३५

सासि री कुंजन बोलत मोर ।

दामिनि दमकि दसो निस दावन छूटि छूटत छित छोर ।

मंद मंद मारत मन मोहत मत्त मधुपगन सोर ।

'हरीचंद' वृजचंद पिया चिनु मारत मदन मरोर ॥३६

जैवत भीजत हैं पिय प्यारी ।

सावन मास घटा जुरि आई बैठे मोर कतारी ।

मुरछल चँवर करत लालितानिक बैठे कंचन धारी ।

स्यामा-स्याम-बदन के ऊपर 'हरीचंद' बलिहारी ॥३७

घिरि घिरि घोर घमक घन धाए ।

बरसत बारि बड़ी बड़ी बूँदन वृज-मंडल पर छाए ।

दादुर बक पिक मोर पपीहा चातक सोर मचाए ।

दामिनि दमकति दसहुँ दिसा सों बहु खद्योत चमकाए ।

कृष्मिन कुंज कुंद की कालिका केनाकि कदम सुहाए ।

'हरीचंद' हरिचंद-नंदन-छवि

लखि रति-काम लजाए ॥३८

चौताला

स्याम घटा स्यामही हिंडोरो बन्यो,

स्यामा स्याम भूलै जामे अतिही आनंद सों ।

तैसोई तमाल कुंज स्याम रंग सोहत गोपी,

सब मिलि गावैं आनंद के कंद सों ।

अलि पिक मोर नीलकंठ स्याम रंग सोहैं,

स्याम श्री यमुना बहैं गाति अति मंद सों ।

'हरीचंद' हरि की निरखि छवि महादेव,

स्याम गज-खाल ओढ़ि नाचै गावैं छंद सों ॥३९

सखी री ठाढ़े नंद-कुमार ।

सुभग स्याम घन मुख रस बरसत चितवन माँह अपार ।

नटवर नवल टिपारो सिर पर लाखि छाबि लाजत मार ।

'हरीचंद' बलि बूँद निवारत जब बरसत घन-धार ॥४०

हिंडोला

भूलत हैं राधिका स्याम सँग नव रंग सुखद हिंडोरे ।

गावत मालव राग रस भरे तान मान मधुरे सुर जोरे ।

उमांग रही ब्रजनारि नवेली पंचरंग चीर

पहिरि चित चोरे ।

पंचरंग छाबि रस जुगल माधुरी

कहि न जाइ श्यामल रंग गोरे ।

बरसत मंद मंद घन तेहि छन

पंच-रंग बादर सब सुख-बोरे ।

'हरीचंद' वृषभानुनंदनी कोटिन

ससि-छवि छिन महैं छोरे ॥४१

वृषभानु-कुमारी लाडिली प्यारी फूलत हैं संकेत हो ।

सँग सुंदर सखी सुहावनी जिन कीनो हरि सों हेत हो ।

सुंदर साज सिंगार किए सब पहिरे बिबिध रंग चीर हो ।

हिलि मिलि भुलबहिँ लाडिली हो नव रस जमुना तीर हो ।

सबै सोहाई नवल बधू मिलि गावन गौरी राग हो ।

'हरीचंद' सुख को धन बरसन

बाढ़यो सर्गिल सोहाग हो ।४२

कलेऊ कीजै नंद-कुमार ।

गई धात धार बाढ़ कमना- १० बाढ़ सखा सब द्वार ।

आव प्रात ही घेर रह्यो है बरसैगो बड़ी धार ।

'हरीचंद' बर्गिल बेगाहि ऐयो भीजोगे सुकुमार ।४३

धुम धुम धन भग बरसन धुम धुम पाव

प्यारी रंग-भौन भोजन रस भीने ।

फुह फुह फुह बूंद परै छजन सो नीर भरै,

बानन रंग-भरे दोड़ भरस-परस कीने ।

नागार बागबाग बाढ़ा पवन यह भाँति दान

सीनल जल भारी भार बीड़ादिक लीने ।

'हरीचंद' हँसै गावै भोजन को सुख पावै,

बारि फेरि सखी नून तोरि तोरि दीने ।४४

लाल यह सुंदर बीरी लीजै ।

हँसि हँसि कै नंदलाल अरोगी मुख ओगार मोहि दीजै ।

रंग रह्यो बाढ़ी की चन में चनार नसिय कीजै ।

रस बाढ़यो नय की बानन में 'हरीचंद' पिय भीजै ।४५

नाचन ब्रजराज आज मात्र नंदराज-मात्र,

पावस सों बंदि बंदि कै होइ सी लगाई ।

कोकिल कल बंसी-धुनि नृत्य कला मोर नर्तन,

पीत बसन चपला दुति छीनत चमकाई ।

ज्यों ज्यों बरसत सुवेस त्यों त्यों रस बरसत,

हार धन गरजत उत इत रहे मृदंग बजाई ।

'हरीचंद' जीति रंग रह्यो आबु ब्रज अखारै,

हारे धन रीति देव कुसुमन भर लाई ।४६



जैन-कौतूहल

अहंनित्यपि जैन शासन रता :

(रचना-काल : सन् १८७३)

समर्पण

प्यारे!

तुम तो मेरा मत जानते ही हो, इस पचड़े से तुम्हे क्या! यह देखो यह नया तमाशा ।
वृ जैन-कुतूहल नाम का तुम्हे दिखाता हूँ । तुम्हे सौगंद, वाह वाह अवश्य कहना ।

केवल तुम्हारा

हरिश्चंद्र

जैन-कौतूहल

पियारे दुजो को अरहत ?

पूजा जोग मानिकै जग में जाको पूजै संत ।

अपुनी अपुनी रुचि सब गावत पावत कोउ नहिं अंत ।

'हरीचंद' परिनाम तुही है तासों नाम अनंत ।१

त्रय त्रय त्रयति ऋषभ भगवान ।

जगत ऋषभ बुध ऋषभ धरम के ऋषभ पुरान प्रमान ।

प्रगाटित-करन धरम पथ धारत नाना बेश सुजान ।

'हरीचंद' कोउ भेद न पायो कियो यथारुचि गान ।२

तुमहि तो पार्श्वनाथ हो प्यारे ।

तलापन लागै प्रान बगल तें छिनहु होहु जो न्यारे ।

तुमसों और पास नहिं कोऊ मानहु करि पतियारे ।

'हरीचंद' खोजत तुमहीं को वेद पुरान पुकारे १३

अहो तुम बहु विधि रूप धरो ।

जब जब जैसो काम परं तब तैसो भेख करो ।

कहुं ईश्वर कहुं वनत अनीश्वर नाम अनेक परो ।

सत पंथहि प्रगटावन कारन लै सरूप विचरो ।

जैन धरम में प्रगट कियो तुम दया धर्म सगरो ।

'हरीचंद' तुमकों बिनु पाए लरि लरि जगत मरो १४

बात कोउ मूरख की यह मानो ।

हाथी मारै तोड़ु नहीं जिन-मदिर में जानो ।

जग में तेरे बिना और है दूजो कौन ठिकानो ।

जहाँ लखो तहँ रूप तुम्हारी नैनन माहिं समानो ।

एक प्रेम है एकहि प्रन है हमरो एकहि वानो ।

'हरीचंद' तब जग में दूजो भाव कहाँ प्रगटानो १५

नाहिं ईश्वरता अंतकी वेद में ।

तुम तो अगम अनादि अगोचर सों कैसे मत-भेद में ।

तुम्हरी अनित अपार अहै गति जाको वार न पारो ।

ताकों इति करि गाड़ सकै क्यों बहुरो वेद विचारो ।

वेद लिखी ही होय तुम्हारी जो पै महिमा स्वामी ।

तौ परिमिति गुन भए तिहारे नेति नेति के नामी ।

वेद-मारगहि वारो प्यारे जो इक तुमकों पावै ।

तौ जग स्वामी जग-जीवन क्यों तुमरो नाम कहावै ।

जो तुव पद-रज-अंजन नैनन लागै तौ यह सूझै ।

'हरीचंद' बिनु नाथ-कृपा क्यों यह अभेद गाँत बूझै १६

जैन को नास्तिक भाखै कौन ?

परम धरम जो दया अहिंसा सोई आचरत जौन ।

सत कर्मन को फल नित मानत अति बिबेक के भौन ।

तिन के मतहि विरुद्ध कहत जो महा मूढ़ है तौन ।

सब पहुँचत एक हि थल चाहौ करौ जौन पथ गौन ।

इन आँखिन सों तो सब ही थल सूझत गोपी-रौन ।

कौन ठाम जहँ प्यारे नाहीं भूमि अनल जल पौन ।

'हरीचंद' ए मतवारे तुम रहत न क्यों गहि मौन १७

पियारे तुव गति अगम अपार ।

यामैं खोलै जीह जौन सो मूरख कूर गंवार ।

तेरे हित बकनो बिन बातहिं ठानि अनेकन रार ।

यासों बढ़िके और जगत नहिं मूरखता-व्यवहार ।

कहँ मन बुद्धि वेद अरु जिह्वा कहँ महिमा-विस्तार ।

'हरीचंद' बिनु मौन भए नहिं और उपाय बिचार १८

कहाँ लौ बकिह वेद विचारे ।

जिनसों कछु नातो नहिं तोसों तिनके का पतियारे ।

कागज अक्षर शब्द अर्थ हिय धारण मुख उच्चार ।

इन सों बढ़ि जा मैं कछु नाहीं ते पावहिं क्यों पार ।

तेरी महिमा अमित इतै हैं गिनती की सब बात ।

'हरीचंद' बपुरे कहिहै का यह नहिं मोहिं लखात १९

युक्ति सों हरि सों का संबंध ?

बिना बात ही तरक करै क्यों चारहु दृग के अंध ।

युक्तिन को परमान कहा है ये कबहुँ बढ़ि जात ।

जाकी बात फुरे सों जीते यामैं कहा लखात ।

अगम अगोचर रूपहि मूरख युक्तिन मैं क्यों साने ।

'हरीचंद' कोउ सुनत न मेरी करत जोई मन माने १२०

जो पै भगरेन मैं हरि होते ।

तौ फिर श्रम करिके उनके मिलिबे हित क्यों सब रोते ।

घर-घर मैं नर नारिन मैं नित उठिके भगरो होत ।

वहाँ क्यों न हरि प्रगट होत हैं भव-वारिधि के पोत ।

पसुगन मैं पच्छिन मैं नितही कलह होत है भारी ।

तौ क्यों नहिं तहँ प्रगट होत है आसुहि गिरवरधारी ।

भगइहु मैं कछु पूँछ लगी है याहि होत का बार ।

तनिक बात पै भगारि मरत हैं जग के फोरि कपार ।

रे पंडितो करत भगरो क्यों चुप हवै बैठा भौन ।

'हरीचंद' याही मैं मिलिहैं प्यारे राधा-रौन १२१

खंडन जग मैं काको कीजै ।

सब मत तो अपने ही हैं इनको कहा उत्तर दीजै ।

तासों बाहर होइ कोऊ जब तब कछु भेद बतावै ।

ह्यों तो वही सबै मत ताके तहँ दूजो क्यों आवै ।

अपुने ही पै क्रोधि बावरे अपुनो काटै अंग ।

'हरीचंद' ऐसे मतवारेन कों कहा कीजै संग १२२

पियारो पेये केवल प्रेम मैं ।

नाहिं ज्ञान मैं नाहिं ध्यान मैं नाहिं करम-कुल-नेम मैं ।

नहिं भारत मैं नहिं रामायन नहिं मनु मैं नहिं वेद मैं ।

नहिं भगरे मैं नाहिं युक्ति मैं नाहिं मतन के भेद मैं ।

नहिं मंदिर मैं नहिं पूजा मैं नहिं घंटा की घोर मैं ।

'हरीचंद' वह बाँधो डोलत एक प्रीति के डोर मैं १२३

धरम सब अटक्यो याही बीच ।

अपुनी आपु प्रसंसा करनी दूजेन कहनो नीच ।

यहै बात सबने सीखी है का वैदिक का जैन ।

अपनी-अपनी ओर खींचनो एक लैन नहिं देन ।

आग्रह भर्यो सबन के तन मैं तासों तत्व न पावै ।

'हरीचंद' उलटी की पुलटी अपुनी रुचि सों गावै १२४

जै जै पदमावति महारानी ।

सब देविन मैं तुमरी मूरति हम कहँ प्रगट लखानी ।

तुमहि लच्छमी काली तारा दुरगा शिवा भवानी ।
 'हरीचंद' हमको तो नैनन दूजी कहूँ न दिखानी । १५
 कंत है बहुरूपया हमारो ।
 टगन फिरन है भेम बर्दाल जग आप रहन है न्यारो ।
 बूढ़ो-ज्वान-वृत्ती-जोगिन को स्वांग अनेकन लावै ।
 कबहुँ हिंदू जैन कबहुँ अरु कबहुँ तुरुक वनि आवै ।
 भरमत वाके भेदन मैं सब भूले धोखा खात ।
 'हरीचंद' जानत नहिं एकै ह्वै बहुरूप लखात । १६-

लगाओ चसमा सबै सफेद ।
 तब सब ज्यों का त्यों सुभैगो जैसो जाको भेद ।
 हरो लाल पीरो अरु लीलो जो जो रंग लगायो ।
 सोइ सोइ रंग सबै कछु सुभत वासों तत्व न पायो ।
 आग्रह छोड़ि सबै मिलि खोजहु तब वह रूप लखैहैं ।
 'हरीचंद' जो भेद भूलिहै सोई पिय को पैहै । १७

कहो अद्वैत कहाँ सों आयो ।
 हमैं छोड़ि दूजो है को जेहि सब थल पिया लखायो ।
 बिनु त्रैसो चित पाएँ भूठो यह क्यों जाल बनायो ।
 'हरीचंद' बिनु परम प्रेम के यह अभेद नहिं पायो । १८
 यह पहिले ही समुझ लियो ।
 हम हिंदू हिंदू के बेटा हिंदूहि को पय पान कियो ।
 तब तोहि तत्व सुझिहै कहैं लौं

पहिलेहि सो बनि आपु रहे ।
 जनम करम मैं हारिह मानिके छोए जे जग-तत्व लहे ।
 मंग मंग क्रांति के भूले अपुनो हठाह भूलान नहीं ।
 'हरीचंद' जो यह गति है

तौ फिर वह नहीं दिखाय कहीं । १९

इतनोही तौ फरक रह्यो ।
 हमरो हमरो कहत सबै जग हम ही हम काहु न कह्यो ।
 जौ हम हम भाखैं तो जग में और दिखाई कौन परे ।
 'हरीचंद' यह भेद मिटावै तबै तत्व जिय मैं उछरै । २०

चहिण इन बातन को प्रेम ।
 कोरो 'हम' सों काम चले नहिं मरौ बूधा करि नेम ।
 जब लौं मूर्ति प्राननाथ की आँखिन मैं न समाय ।
 तब लौं सब थल प्रीतम प्यारो कैसे सर्वाह लखाय ।
 'अहं ब्रह्म' सब मूर्ख भाखैं ज्ञान गरु बढाय ।
 तनिक चोट के लगे उठत हैं रोइ रोइ करि हाय ।
 जो तुम ब्रह्म चोट केहि लागी रोइ तजौ क्यों प्रान ।
 'हरीचंद' हाँसी नहीं है करनो ज्ञान-विधान । २१

'शिवोह' भाखत सब ही लोग ।

कहैं शिव कहैं तुम कीट अन्न के यह कैसे संजोग ।

अरु अंग मैं पारवती हू शिवाह न काम जगावै ।

तुमको तो नारी के देखत अंग गुदगुदी आवै ।
 तुमसों कहा संबंध ब्रह्म सों क्यों छाँटत हो ज्ञान ।

'हरीचंद' मनमथ जागैगो तबै पढ़ैगी जान । २२
 जो पै सबै ब्रह्म ही होय ।

तो तुम जोरु जननी मानो एक भाव सों दोय ।
 ब्रह्म ब्रह्म कहि काज न सरनो वृथा मरौ क्यों रोय ।

'हरीचंद' इन बातन सों नहिं ब्रह्महि पैहो कोय । २३
 जो पै ईश्वर साँचो जान ।

तौ क्यों जग को सगरे मूर्ख भूठो करत बखान ।
 जो करता साँचो है तो सब कारजहु है साँच ।
 जो भूठो है ईश्वर तौ सब जगहु जानौ काँच ।
 जो हरि एक अहै तो माया यह दूजी है कौन ।
 'हरीचंद' कछु भेद मिल्यो न बक्यो जिय आयो जौन । २४
 कहौ रे इक-मत ह्वै मतवारो ।

क्यों इतनो पाखंड रचि रहे बिनु पाए पिय प्यारो ।
 कहा समुझ्यो, सिद्धांत कहा कियो, का पारनाम निकारो ।
 कैसे मान्यो केहि मान्यो क्यों कौन उपाय बिचारो ।
 सब कीन्हों पै सिद्ध कहा भयो तप करि क्यों तन जारो ।
 'हरीचंद' जो परम सुलभ पथ तापै कंटक डारो । २५
 भये सब मतवारो मतवारो ।

अपुनो अपुनो मत लै-लै सब भगरत ज्यों भठिहारे ।
 कोउ कछु कहत ताहि कोउ दूजो खंडत निज हठ धारे ।
 कह भगड़े ही मैं तेहि मान्यो पागल भए बिचारो ।
 आपुस में पहिले सब मिलि निश्चै करि होई न न्यारो ।
 'हरीचंद' आयो तो भाखैं जामैं मिलैं पियारो । २६
 मत को नाहीं अर्थ अहै ।

तो सब कोई मत मत कहिके फिर क्यों कछु कहै ।
 इन बातन में जानि परे नहिं सब कोउ कहा लहै ।
 'हरीचंद' चुप ह्वै सगरो जग यामैं क्यों न रहै । २७
 नाहं इन भगइन में कछु सार ।

क्यों लारि लारिकें मरौ वावरं वादन फोरि कपार ।
 कोइ पायो के तुमही पैहो सां भाखौ निरधार ।
 'हरीचंद' इन सब भगइन सां बारह है यह यार । २८
 अरे क्यों घर घर भटकत डोलौ ।

कहा धर्यो तेहि कहैं पाइहौ क्यों बिन बातन छोलौ ।
 क्यों इन थोथिन पोथिन लै के बिना बात ही बोलौ ।
 'हरीचंद' चुप ह्वै घर बैठो यामैं जीभ न खोलौ । २९

खराबी देखहु हो भगवान की ।

कहाँ कहाँ भटकत डोलत है सुधि न ताहि कछु प्रान की ।

तीन ताग मैं कहूँ अँटक्यो कहूँ वेदन मैं यह डोलै ।

कहूँ पानी मैं कहूँ उपवासन मैं कहूँ स्वाहा मैं बोलै ।

कहूँ पथरा बनि बनि बैठो कहूँ बिना सरूप कहायो ।
मंदिर महाजिद गिरजा देहरन डोलत धायो धायो ।
बादन में पोथिन में बैठयो बचन बिषय बनि आय ।
'हरीचंद' ऐसे को खोजै केहि थल देहु बताय । ३०

लखौ हरि तीन लाग में लटक्यौ ।
रीफि रह्यो पानी चाटन पै करम-जाल में अटक्यौ ।
हाथ नचावत सोर मचावत अगिन-कुंड दै पटक्यौ ।
'हरीचंद' हरजाई बनि कै फिरत लखहु यह भटक्यौ । ३१

माया तुम सों बड़ी अहै ।
तुम्हरो केवल नाम बड़ो है वेद पुरान कहै ।
बस कछु नाहि तुम्हरो या जग में यह जन साँच कहै ।
नाहीं तो 'हरिचंद' तुम्हरो ह्वै क्यों काम दहै । ३२
न जाने तुम कछु हो की नाहीं ।
भूठहि वेद पुरान बकत सब भेद जान नहिं जाहीं ।
तुम साँच हो के सपना हो के हो भूठ कहानों ।

पतित-उधारन दीन-नेवाउन यह सब कैसी बानी ।
जो साँच हो तुम अरु सगरें वेदादिक सब साँच ।
'हरीचंद' तो हमहूँ पतित ह्वै उधारन सो क्यों बाँच । ३३

अहो यह अति अचरज की बात ।
जानि वृष्णि के बिष के फल को क्यों भूल्यो जग खात ।
सब जानत मरनो है जग में भूठे सुत पितु मात ।
'हरीचंद' तो फिर क्यों नित नित याही मैं लापटात । ३४

कहाँ तोहिं खोजिए ए राम ।
मंदिर वेद पुरान जज्ञ जप तप मैं तो नहिं ठाम ।
जहँ जहँ भाखत तहँ तहँ धावत मिलत न कहूँ बिसराम ।
'हरीचंद' इन सों कहा बाहर अहै तिहारो धाम । ३५
देखै पावत कौन सोहाग ।
बहुत सोहागिन एक पियरवा सब ही को अनुराग ।
सोअन सब पावन नहिं कोऊ धावन कारि कारि लाग ।
'हरीचंद' देखै पहिले हम काको लागत भाग । ३६



प्रेम-माधुरी

(अक्टूबर १८७५ में कविवचन सुधा में प्रकाशित ।
चन्द्र-प्रभा प्रेस में सन् १८८२ में दूसरी
आवृत्ति हुई ।)

प्रेम-माधुरी

दोहा

बार बार पिय आरसी मत देखहु चित लाय ।
सुन्दर कोमल रूप में दीठ न कहूँ लगि जाय ॥
देखन देहु न आरसी सुंदर नंदकुमार ।
कहूँ मोहित ह्वै रूप निज, मति मोहिं देहु बिसार ॥

सवैया

राखत नैनन मैं हिय मैं भरि
इर भए छिन होत अचेत है ।
सौतिन की कहे कौन कथा तसवीर

इ सों सतराति सहेत है ।
लाग भरी अनुराग भरी 'हरीचंद'

सबै रस आपुहिं लेत है ।

रूप-सुधा इकली ही पियै पियहु
को न आरसी देखन देत है । १

कूके लगिं कोइलैं कदंबन पै बैठि फेरि
धोए धोए पात हिलि-हिलि सरसै लगे ।
बोलै लगे दादुर मयूर लगे नाचै फेरि
देखि कै सँजोगी जन हिय हरसै लगे ।

हरी भई भूमि सीरी पवन चलन लागी
लखि 'हरिचंद' फेर प्राण तरसै लगे ।

फेरि भूमि भूमि बरपा की रितु आई फेरि
बादर निगोरे भुकि भुकि बरसै लगे । २

पहिले ही जाय मिले गुन में श्रवन फेरि
रूप-सुध मधि कीनो नैनहु पयान है । ३

हैसनि नटनि चितवनि मुसुकानि सुचराई
 रसिकाई मिलि मति पय पान है ।
 मोहि मोहि मोहन-मई री मन मेरो भयो
 'हरीचंद' भेद ना परत कछु जान है ।
 कान्ह भये प्रानमय प्रान भये कान्हमय ।
 हिय में न जानो परै कान्ह है कि प्रान है १३
 करि कै अकेली मोहिं जात प्राननाथ अबै
 कौन जानै आय कब फेर दुख हरिहो ।
 औध को न काम कछु प्यारे धनध्याम बिना
 आप कै न जीहैं हम जो पै इतै धरिहो ।
 'हरीचंद' साथ नाथ लेन मैं न मोहिं कहा
 लाभ निज जीअ मैं बताओ तो विचरिहो ।
 देह संग लेते तो टहलहु करत जातो
 एहो प्रान-प्यारे प्रान लाइ कहा करिहो १४
 गुरु-जन बरजि रहे री बहु भाँति मोहिं
 संक तिनहुँ की छाँड़ि प्रेम-रंग राँची मैं ।
 त्यों ही बदनामी लाई कुलटा कहाई हों
 कलाकिनिहु बनी ऐसी प्रेम-लीक छाँची मैं ।
 कहै 'हरिचंद' सबै छोड़्यो प्रान-प्यारे काज
 यातैं जग भूठ्यो रह्यो एक भई साँची मैं ।
 नेह के बजाय बाज छोड़ि सब लाज आज
 धूँत उचारि ब्रजराज-हेतु नाची मैं १५
 बाढ़्यो करै दिन ही छिन ही छिन
 कोटि उपाय करौ न बुझाई ।
 दाहत लाज समाज सुखै गुरु की
 भय नींद सबै संग लाई ।
 छीजत देह के साथ में प्रानहु
 हा 'हरिचंद' करौ का उपाई ।
 क्योंह बुझे नाहिं आँसू के नीरन
 लालन कैसी दवारि लगाई १६
 छाँड़ि कै मोहिं गए मथुरा
 कवर्ग तहैं जाय भई पदगानो ।
 जो सार्ध लीनी तो जाग मिथ्यायो
 भाग 'हरिचंद' अनुपम जानी ।
 गोप सों जो पै भाग रजपूत लड़ी
 किन जाइ को आपने जानी ।
 मारन हौ अन्नगागन को नम
 याही मैं वीरना आय खुदानी १७
 बाजी करै बंसी धूनि बाजि बाजि श्रवनन
 जोरा-जोरी मुख-छवि चितहि चुराए लेत ।
 हैसनि हैसावति जग सों तिहारी मुरि
 मुरनि पियारी मन सब सों मुराए लेत ।

'हरिचंद' बोलनि चलनि बतरानि पीत-
 पद फहरानि मालि धोरज मिटाए लेत ।
 जुलफैं तिहारी लाज-कुलफन तोरै प्रान,
 प्यारे नैन-सैन प्रान संग ही लगाए लेत १८
 हों तो तिहारे दिखाइवे के हित
 जागत ही रही नैन उजार सी ।
 आए न राति पिया 'हरिचंद' लिए
 कर भोर लौं हों रही भार सी ।
 है यह हीरन सों जड़ी रंगन
 तापै करी कछु चित्र चितार सी ।
 देखो जू लालन कैसी बनी है नई
 यह सुंदर कंचन-आरसी १९
 सोइ तिया अरसाय कै सेज पै
 सो छवि लाल बिचारत ही रहे ।
 पोछि रुमालन सों श्रम-सीकर
 भौरन को निरुवारत ही रहे ।
 त्यों छवि देखिबे को मुख तैं
 अलकैं 'हरिचंद' जू टारत ही रहे ।
 द्रैक घरी लौं जके से खरे
 बृषभानुकुमार निहारत ही रहे २०
 बोल्यो करै नूपुर श्रवन के निकट सदा,
 पद-तल लाल मन मेरे बिहर्यो करै ।
 बाजी करै बंसी धूनि पाँर रोम-रोम मुख,
 मन मुसुकानि मंद मनहि हैस्यो करै ।
 'हरिचंद' चलनि मुरनि बतरानि चित,
 छाई रहै छाँव जग दगन भर्यो करै ।
 प्रानहु ते प्यारो रहै प्यारो तू सदाई तेरो,
 पीरो पद सदा जिय बीच फहर्यो करै २१
 बृजवासी बियोगिन के घर में
 जग छाँड़ि कै क्यों जनमाई हमैं ।
 मिलिबो बड़ी दूर रह्यो 'हरीचंद'
 दई इक नाम-धराई हमैं ।
 जग के सगरे सुख सों ठगि कै
 साहब को यही है त्रिवाई हमैं ।
 कहि बैर सों हाय दई बिधिना
 दुख देखिबेही को बनाई हमैं २२
 कहा कहौ प्यारे जे बियोग में तिहारे चित,
 बिरह-अनल लूक भरकि भरकि उठै ।
 कैसे के बिताऊँ दिन जोबन के हा-हा काम,
 कर लै कमान मोपै तरकि तरकि उठै ।
 भूलै नाहिं हैसनि तिहारी 'हरिचंद' नैसी,
 बाँकी चितवनि हिय फरकि फरकि उठै

बेधि बेधि उठत बिसीले नैन-वान मेरे,
हिय मैं कंटीली भौह करकि करकि उठे । १३

कुवजा जग के कहा बाहर है नंदलाल
ने जा उर हाथ धर्यो ।

मथुरा कहा भूमि की भूमि नहीं जहँ
जाय कै प्यारे निवास कर्यो ।

'हरिचंद' न काहू को दोष कछ
मिलिहैं सोई भाग मैं जो उतर्यो ।

सबको जहाँ भोग मिल्यो वहाँ हाथ
वियोग हमारे ही बाँट पर्यो । १४
रोकहिं जो तो अमंगल होय ओ

प्रेम नसे जो कहैं पिय जाइए ।
जो कहैं जाहु न तो प्रभुता जो

कछ न कहैं तो सनेह नसाइए ।
जो 'हरिचंद' कहैं तुमरे बिन जीहै

न तो यह क्यौं पति आइए ।
तासौं पयान समै तुमरे हम का

कहैं आपै हमें समझाइए । १५
आजु सिंगार के केलि के माँदर

बेटी न साथ मैं कोऊ सहेली ।
घाय के चूमै कबौं प्रतिबिंब

कबौं कहै आपुहि प्रेम-पहेली ।
अंक में आपुने आपै लागै 'हरिचंद' जू'

सौं करै आपु नवेली ।
प्रीतम के सुख मैं प्रिय-मैं भई आए

तैं लाल के जान्यो अकेली । १६
सोई बने सब मंजुल कुंज

अंगीन की भीर जहाँ आत हेली ।
साज अनेक सजे सुख के 'हरिचंद' जू'

त्यो ही खरी है सहेली ।
सोई नई रतियाँ रति की पिय

सोई कहै ढिग प्रेम-पहेली ।
सोचत सो सुख सोई भई तिय आए

तैं लाल के जान्यो अकेली । १७
तब तो बखानी निज वीरता प्रमानो के कै

प्रेम के निबाह भारे गरब गरुरे हो ।
जान सों पिया के कथ्यो प्रथम पयान 'हरि-

चंद' अब बैठे कित दुरि दुरि दूरे हो ।
हाथ प्राननाथ-बिनु भोगत अनेक बिथा

खोई सुख आसा लागि अब लौं मजुरे हो ।

अजौ तन तजिकै न जाओ लज्बाओ मोहिं
हा हा मेरे प्रान निरलज्ज तुम पूरे हो । १८

जा दिन लाल बजावत बेनु अचानक आय कटु मम द्वारे ।
हौं रही ठाढ़ी अटा अपने लखि के हँसै मो तन नंद-दुलारे ।

लाजि के भाजि गई 'हरिचंद' हौं
भौन के भीतर भीति के मारे ।

ताही दिना तैं चवाइनहैं मिलि
हाथ चवाय के चौचंद पारे । १९

बृज में अब कौन कला बसिये
बिनु वान ही चौगुनो चाव करै ।

अपराध बिना 'हरिचंद' जू' हाथ
चवाइनैं घात कदाव करै ।

पीन मों गीन करे हौं गरी परै
हाथ बड़ोई हियाव करै ।

जौ सपनेहुं मिलै नंदलाल तो
सौतुख मैं ये चवाव करै । २०

आजु कुंज मंदिर मैं छके रंग दोऊ बैठे,
केलि करै लाज छोड़ि रंग सों जहकि जहकि ।

सखीजन कहत कहानी 'हरीचंद' तहाँ
नेह भरी केकी कीर पिक सी चहकि चहकि ।

एक टक बदन निहारें बलिहार लै लै,
गाढ़े भुज भरि लेत नेह सों लहकि लहकि ।

गरें लपटाय प्यारी बार बार चूमि मुख,
प्रेम भरि बातें करै मद सों बहकि बहकि । २१

आजु कुंज-मंदिर अनंद भरि बैठे श्याम,
श्याम-संग रंगन उमंग अनुरागे हैं ।

घन घहरात बरसात होत जात ज्यों ज्यों,
त्योही त्यो अधिक दोऊ प्रेम-पुंज पागे हैं ।

'हरिचंद' अलकैं कपोल पैं सिमिति रहों,
बारि बुंद चूअत अतिहि नीके लागे हैं ।

भीजि भीजि लपटि लपटि सतराई दोऊ,
नील पीत मिलि भए एकै रंग बागे हैं । २२

बृज के सब नाँव धरै मिलि ज्यों त्यो
बढ़ाइकैं त्यो दोऊ चाव करै ।

'हरीचंद' हँसैं जितनो सबही
तितनी डढ़ दोऊ निभाव करै ।

सुनि कै चहुँघा चरचा रिसि सों
परतच्छ ये प्रेम-प्रभाव करै ।

इत दोऊ निसक मिलैं बिहारे उत
चौगुनो लोग चवाव करै । २३

मिलि गाँव के नाँव धरौ सबही

चहुँवा लखि चौगुनो चाव करो ।
 सब भाँति हमें वदनाम करो
 कढ़ि कोटिन कोटि कुदावें करो ।
 'हरिचंद' जू जीवन को फल पाय
 चुकीं अब लाख उपाय करो ।
 हम सोवत हैं पियअंक निसंक
 चवाइनै आओ चवाव करो । १२४
 व्याकुल हों तड़पौ विनु पीतम
 कोऊ तौ नेकु दया उर लायो ।
 प्यासी तजौं तन रूप-सुधा विनु
 पापिन पी को पपीहै पिआओ ।
 जीअ मैं होस कहूँ रहि जाय न
 हा 'हरिचंद' दोऊ उठि धाओ ।
 आवै न आवै पियारो अरे कोऊ हाल
 तो जाइ के मेरी सुनाओ १२५
 जानत हों नहीं ऐसी सखी इन
 मोहन जैसी करी हम सों दई ।
 होत न आपुने पीअ पराए कबौ यह
 बोलनि साँची अरी भई ।
 हा हा कहा 'हरिचंद' करौं बिपरीत
 सबै बिधि नै हम सों ठई ।
 मोहन हवैं निरमोही महा भए नेह
 बढ़ाय कै हाय दगा दई । १२६
 जानि कै मोहन के निरमोहहि
 नाहक बैर विसाहि वरें परी ।
 त्यों 'हरिचंद' बिगारि कै लोक
 सो बेद की लोक भले निदरें परी ।
 आपुनि ही करनी को मिल्यो फल
 तासों सबै सहते ही सरे परी ।
 यामैं न और को दोष कछूँ सखि
 चूक हमारी हमारे गरें परी । १२७
 नेह लगाय लुभाय लई पहिले
 बृज की सब ही सुकुमारियाँ ।
 बेनु बजाय बुलाय रमाय हँसाय
 खिलाय करी मनुहारियाँ ।
 सो 'हरिचंद' जुदा हवैं बसे बधि कै
 छलसों ब्रज-बाल बिचारियाँ ।
 वाह जू प्रेम निबाह्यो भलें
 बलिहारियाँ लालन वे बलिहारियाँ । १२८
 मेरी गलीन न आइए लालन
 यासों सबै तुमहीं लखि जाइहै ।
 प्रेम तो सोई छिप्यो जो रहे प्रगटे

रसइ सब भाँति नसाइहै ॥
 आइहौं होहो उते 'हरिचंद'
 मनोरथ आपको कुंज पुराइहै ।
 अंक न वाट में लाइए जू कोउ देखि
 जो लैहै कलंक लगाइहै । १२९
 मारग प्रेम को को समुमै 'हरिचंद'
 यथारथ होत यथा है ।
 लाभ कछूँ न पुकारन में वदनाम ही
 होन की सारी कथा है ।
 जानत है जिय मरो भली बिधि
 और उपाय सबै बिरथा है ।
 बावरे हैं बृज के सगरे मोहिं
 नाहक पृथक कौन बिथा है । १३०
 जिय पै जु होइ अधिकार तो विचार कौजै
 लोक-लाज भलो बुरो भले निरधारिए ।
 नैन श्रौन कर पग सबै पर-वस भए
 उते चलि जात इन्है कैसे कै समहारिये ।
 'हरिचंद' भई सब भाँति सों पराई हम
 इन्हैं ज्ञान कहि कहो कैसे कै निवारिए ।
 मन मैं रहै जो ताहि दीजिये बिसारि मन
 आपे बसे जामैं ताहि कैसे कै बिसारिए । १३१
 होते न लाल कठोर इते जु पै
 होते कहूँ तुमहूँ वरसानियाँ ।
 गोकुल गाँव के लोग कठोर करै
 छत हीय मैं मारि निसानियाँ ।
 यों तरसावत हौ अबलागन को मुख
 देखिबे को दधि-दानियाँ ।
 दीनता की हमरे तुमरे निरदेपनइ
 की चलैगी कहानियाँ । १३२
 बेनी सी बखानै कवि ब्याली काली काली आली
 तिन सबइ कों प्रतिपाली अहो काली है ।
 ताही सों उताल नैदलाल बाल कृदि जल
 नाथ्यो जाय ताहि चाहि उपमा न चाली है ।
 तहाँ 'हरिचंद' सबै गाँव के तमासे लागे
 तिन के अछत तुहूँ कीनी खूब ख्याली है ।
 ज्योंही ज्यों नचत प्यारी राधे तेरे दृग दोग
 त्यों ही त्यों नचत फन पर बनमाली है । १३३
 नैन लाल कुसुम पलास से रहे हैं फूलि
 फूल-माल गरें बन भालरि सी लाई है ।
 भँवर गुंजार हरि-नाम जो उचार तिमि
 कोकिला सों कुहुकि बियोग राग गाई है ।
 'हरिचंद' तजि पतभार घर-बार सबै

बोरी बनि बौरि जारु पीन ऐसी धाई है ।
 तेरे बिछुरे ते प्रान कंत के हिमंत अंत
 तेरी प्रेम-जोगिनी बसंत बनि आई है । ३४
 पीरो तन परयो फूली सरसा सरस सोई
 मन मुरझानो पतभार मनी लाई है ।
 सीरी स्वांस त्रिविध समीर सी बहति सदा
 अँखियाँ बरसि मधु भरि सी लगाई है ।
 'हरिचंद' फूले मन मैन के मसूसन सो
 ताही सो रसाल बाल बदि के बौराई है ।
 तेरे बिछुरे तें प्रान कंत के हिमंत अंत
 तेरी प्रेम-जोगिनी बसंत बनि आई है । ३५
 एरी प्रानप्यारी बिन देखे मुख तेरो मेरे
 जिय मैं विरह-घटा घहरि घहरि उठै ।
 त्योंही 'हरिचंद' सुधि भूलत न क्योंहू तेरो
 लाँचो कंस रैन दिन छहरि छहरि उठै ।
 गड़ि गड़ि उठत कँटीले कुच कोर तेरी ।
 सारी सो लहरदार लहरि लहरि उठै ।
 सारल सारल जात आधे आधे नैन-वान तेरे ।
 घूँचट की फहरानि फहरि फहरि उठै । ३६
 बैठे सबै गुरु लोग जहाँ तहाँ
 आई बधू लखि सास भई खरी ।
 देन उराहनो लागी तबै निसि को अलि
 भोरी न जानत रीत री ।
 डीठ तिहारो बड़ो 'हरिचंद' न देखत
 मेरी सु ऐसी दसा करी ।
 आँवर चीनो सखी मुख मैं कहि सारी
 फटी तो बनाइहै दूसरी । ३७
 प्रानपियारे तिहारे लिये सखि
 बैठे हैं देर सो मालती के तर ।
 तू रही वालें बनाय बनाय मिलै
 न बूधा गहिके कर सो कर ।
 तोहि घरी छिन बीतत है 'हरिचंद'
 उतै जुग सो पलह भर ।
 तेरी तो हाँसी उतै नहिं धीरज
 नौ घरी भद्रा घरी में जरै घर । ३८
 दीनदयाल कहाइ के धाइ के दीनन
 सो क्यों सनेह बढ़ायो ।
 त्यों 'हरिचंद' जू वेदन में करुनानिधि
 नाम कही क्यों गनायो ।
 एती रुखाई न चाहिए तापें कृपा
 करिके जेहि को अपनायो ।

ऐसी ही जो पै सुभाव रह्यो तो
 गरीब-नेवाज क्यों नाम धरायो । ३९
 क्यों इन कोमल गोल कपोलन
 देखि गुलाब को फूल लाजाये ।
 त्यों 'हरिचंद' जू पंकज के दल सो
 सुकुमार सबै अँग भायो ।
 अमृत से जुग ओठ लसे नव पल्लव
 सो कर क्यों है सुहायो ।
 पाहन सो मन होते सबै अँग
 कोमल क्यों करतार बनायो । ४०
 आओ सबै जुरि के बूज गाँव के
 देखन को जे रहे अकुलात हैं ।
 चार चबाइनै लै दुरबीनन धाओ
 न आज तमासे लखात हैं ।
 सास-जेठानी-सखी संग की 'हरिचंद'
 करी मिलि भेद की बात हैं ।
 घूँचट टारि निवारि भये पिय की
 हम आजु निहारन जात हैं । ४१
 एक ही गाँव में बास सदा घर
 पास इहो नहिं जानती है ।
 पुनि पाँचपै सातपै आवत जात की
 आस न चित्त में आनती हैं ।
 हम कौन उपाय करै इनको
 'हरिचंद' महा हठ ठानती हैं ।
 पिय प्यारे तिहारे बिना अँखियाँ
 दुखियाँ नहिं मानती हैं । ४२
 यह संग में लागिये डोलैं सदा
 बिन देखे न धीरज आनती हैं ।
 छिनहु जो बियोग परै 'हरिचंद'
 तो चाल प्रले की सु ठानती हैं ।
 बरुनी में थिरै न मफै उभपै
 पल मैं न समाइबो जानती है ।
 पिय प्यारे तिहारें निहारे बिना
 अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं । ४३
 व्यापक ब्रह्म सबै धल पूरन
 हैं हमहुँ पहिचानती हैं ।
 पै बिना नंदलाल बिहाल सदा
 'हरिचंद' न जानहि ठानती हैं ।
 तुम ऊधो यह कहियो उन सो
 हम और कछु नहिं जानती हैं ।
 पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना
 अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं । ४४

जिनको लरकाई सो संग कियो
 अब सोऊ न साथहि साजती हैं ।
 'हरिचंद' जू जानि हमें बदनाम
 चवाव घने उपराजती हैं ।
 हय हाय कलकिनि ऐसी भई सखियाँ
 लखि कै मोहि भाजती हैं ।
 निसि-बासर संग मैं जे रहतीं मुख
 बोलिवे सों अब लाजती हैं । १४५
 पहिले बहुत भाँति भरोसो दियो
 अब ही हम लाइ मिलावती हैं ।
 'हरिचंद' भरोसे रही उनके सखियाँ
 जे हमारी कहावती हैं ।
 अब वेई जुदा हवै रहीं हम सों
 उलटो मिलि कै समुभावती हैं ।
 पहिले तो लगाई कै आग अरी जल कों
 अब आपुहि धावतीं हैं । १४६
 सब आस तो छूटी पिया मिलबे की
 न जानें मनोरथ कौन सजै ।
 'हरिचंद' जू दुःख अनेक सहै पै
 अइ हैं टरै न कहूँ कौ भजै ।
 सब सों निरसक हवै बैठि रहै सो
 निरादर हूँ सों कछु न लजै ।
 नहिं जान परै कछु या तन को कहि
 मोह तें पापी न प्रान तजै । १४७
 मोहन सों जबै नैन लगे तब
 तो मिलिकै समुभावन धाई ।
 प्रीति की रीति औ नीति कही
 मिलिवे को अनेकन बात सुनाई ।
 वेऊ दगा दै जुदा हवै गई 'हरिचंद'
 जू एकइ काम न आई ।
 हाय मैं कौन उपाय करौ सखियाँ
 अपुनी हवै गई जु पराई । १४८
 हाय दशा यह कासों कहौ कोउ
 नाहिं सुनै जौ करे हूँ निहोरन ।
 कोऊ बचावनहारो नहीं 'हरिचंद'
 जू यों तो हितु हैं करोरन ।
 सो सुधि कै गिरिधारन की अब
 धाई कै दूर करी इन चोरन ।
 प्यारे तिहारे निवास की ठौर कों
 बोरत हैं अँसुआ बरजोरन । १४९
 दित की हम सों सब बात कही
 सुख-मूल सबै बतरावती हो ।

पै पिया 'हरिचंद' सों नैन लगे केहि
 हेत ये बातें बनावती हो ।
 यहाँ कौन जो मानै तिहारो कष्ट्यो
 हमें बातन क्यों बहरावती हो ।
 सजनी मन पास नहीं हमरे तुम
 कौन को का समुभावती हो । १५०
 जब सों हम नेह कियो उन सों तब
 सों तुम बातें सुनावती हो ।
 हम औरन के बस में हैं परी
 'हरिचंद' कहा समुभावती हो ।
 कोउ आपुन भूलिहै बूझहु तो
 तुम क्यों इतनी बतरावती हो ।
 इन नैनन को सखी दोष सबै हमें
 भूठहि दोष लगावती हो । १५१
 जिनके हित त्यागिकै लोक की लाज
 कों संगही संग में फेरो कियो ।
 'हरिचंद' जू त्यों मग आवत जात में
 साथ घरी घरी घेरो कियो ।
 जिनके हित मैं बदनाम भई तिन
 नेकु कष्ट्यो नहिं मेरो कियो ।
 हमें व्याकुल छोड़िकै हाय सखी
 कोउ और के जाइ बसेरो कियो । १५२
 पिय रुसिवे लायक होय जो रूसनो
 वाही सों चाहिए मान किये ।
 'हरिचन्द' तो दास सदा बिन मोल कों
 बोलै सदा रुख तेरो लिये ।
 रहै तेरे सुख सों सुखी नित ही मुख
 तेरो ही प्यारी बिलोकि जिये ।
 इतने हूँ पै जानै न क्या तू रहै
 सदा पीय सो भौह तनेनी किये । १५३
 पहिले बिनु जाने पिछाने बिना मिलीं
 धाई कै आगे बिचारे बिना ।
 अपुने सों जुदा हवै गई तुरतै निज
 लाभ औ हानि सम्भारे बिना ।
 'हरिचंद' जू दोष सबै इनको
 जो कियो सब पूछे हमारे बिना ।
 बरिआई लखो इनकी उलटी अब
 रोवहि आपु निहारे बिना । १५४
 आय कै जगत बीच काहूँ सों न करै बैर
 कोऊ कछु काम करै इच्छा जौ न जोई की ।
 ब्राह्मण की क्षत्रिन की वैसनि की सुद्रन की
 अन्त्यज मलेछ की न ग्वाल की न भोई की ।

भले की बुरे की 'हरिचंद' से पतितह की
 थोरे की बहुत की न एक की न दोई की ।
 चाहे जो चुनिन्दा भयो जग बीच मेरे मन
 तो न तू कबहुँ कहूँ निंदा करु कोई की । १५५
 मैं वृषभानुपुरा की निवासिनि मेरी
 रहे वृज-वीथिन भाँवरी ।
 एक सैंदेसो कहौं तुम सों पै सुनो जो
 करो कछु ताको उपावरी ।
 जो 'हरिचंद' जू कुंजन मैं मिलि जाहि
 करो लखि के तुम बावरी ।
 वृषि है वाने दया करिकै कहिये
 परसों कब होयगी रावरी । १५६
 केहि पाप सों पापी न प्रान चलै
 अटके कित कौन बिचार लयो ।
 नहिं जानि परै 'हरिचंद' कछु
 बिधि ने हमसों हठ कौन ठयो ।
 निसि आजहू की गई हाय बिहाय
 बिना पिय कैसे न जीव गयो ।
 हत-भागिनि आँखिन को नित के
 दुख देखिबे को फिर भोर भयो । १५७
 हम तो सब भाँति तिहारी भई तुम्हें
 छाँड़ि न और सों नेह करौं ।
 'हरिचंद' जू छाँड़यो सबै कछु
 एक तिहारोई ध्यान सदा ही धरौं ।
 अपने को परायो बनाइ के लाजहू
 छाँड़ि खरी विरहागि जरौं ।
 सब ही सहौं नाहिं कहौं कछु पै तुव
 लेखे नहीं या परेखे मरौं । १५८
 आजु लों जौ न मिले तो कहा हम
 तो तुमरे सब भाँति कहावैं ।
 मेरो उराहनो है कछु नाहिं
 सबै फल आपुने भाग को पावैं ।
 जो 'हरिचंद' भई सो भई अब
 प्रान चले चैहैं तासों सुनावैं ।
 प्यारे जू है जग की यह रीति
 बिदा की समै सब कंठ लगावैं । १५९
 जान दे री जान दे बिचार कुल-कानहू को
 गवन दे मेरे कुलटापन के गाथ को ।
 मैं तो रही भूलि बिन बात को बिचारै जौन
 प्रेम को बिगारै छाँड़ु ऐसे सब साथ को ।
 देखो 'हरिचंद' कौन लाभ पायो जामै पछि-
 लाय रहि गई धन प्राय खोयो हाथ को ।

जरी ऐसी लाज आवै कौन काज जाने आज
 लखन न दीनों भरि नैन प्राननाथ को । १६०
 सदा व्याकुल ही रहैं आपु बिना
 इनको हू कछु काह जाइयें तो ।
 इक बारहू तोहिं न देख्यो कभू
 तिनको मुखचंद दिखाइये तो ।
 'हरिचंद' जू ये अँखियाँ नित की हैं
 त्रियोगी इन्हें समुझाइये तो ।
 दुखियान को प्रीतम प्यारे कबौं
 बहराइ के धीर धराइये तो । १६१
 रोवैं सदा नित की दुखिया बनि ये
 अँखियाँ जिहि दौस सों लागीं ।
 रूप दिखाओ इन्हें कबहुँ 'हरिचंद'
 जू जानि महा अनुरागी ।
 मानिहैं औरन सों नहिं ये तुव रंग
 रंगी कुल लार्जह त्यागी ।
 आँसुन को अपने अँचरान सों
 लालन पोछि करी बड़-भागी । १६२
 घर-बाहर-केन को काम कछु नहिं
 को यह रार निवारि सकै ।
 'हरिचंद' जू जो विगरी बढिकै
 तिन्हें कौन है जौन सँवारि सकै ।
 समुझाइ प्रबोध के नीति-कथा इन्हें
 धीरज कोऊ न पारि सकै ।
 तुम्हरे बिनु लालन कौन है जो
 यह प्रेम के आँसु निवारि सकै । १६३
 संग में निसि-बासर ही रहते
 जिनते कछु बातें न मैंने छिपाई ।
 जे हितकारिनी मेरी हुतीं 'हरिचंद' जू
 होय गई सो पराई ।
 सो सब नेह गयो कित को
 मिलिबे की न एकहू बात बताई ।
 और चबाव करै उलाटो हरि
 हाय ये एकहू काम न आई । १६४
 हौं कुलटा हौं कलकिनी हौं हमने
 सब छाँड़ि दयो कहा खोलौ ।
 आखी रहौ अपने घर में तुम
 क्यों यहाँ आई करेजहि खोलौ ।
 लागि न जाय कलक तुम्हें कहैं
 दूर रहौ संग लागि न डोलौ ।
 बावरी हौं जो भई सजनी तो हटो
 हम सों मति आइ के बोलौ । १६५

आयो सखी सावन बिदेश मन-भावन जू
 कैसे करि मेरो चित हाय धीर धारिहै ।
 ऐहै कौन भूलन हिंडोरे बैठि संग मेरे
 कौन मनुहारि कार भुजा कंठ पारि है ।
 'हरीचंद' भीजत बचैहै कौन भीजि आप
 कौन उर लाई काम-ताप निरवारिहै ।
 मान समै पग परि कौन समुझैहै हाय
 कौन मेरी प्रानप्यारी कहि कै पुकारिहै । १६६
 चोर चोर घन आए छाये रहे चहँ और
 कौन हेत प्राननाथ सुरति विसारी है ।
 दामिनी दमक जैसी जुगनूँ चमक तैसी
 नभ मैं विशाल बग-पंगति संचारी है ।
 ऐसी समै 'हरिचंद' धीर न धरत नेकु
 बिरह-बिथा तें होत व्याकुल पियारी है ।
 प्रीतम पियारे नंदलाल बिनु हाय यह
 सावन की रात किधौँ द्रौपदी की सारी है । १६७
 लै मन फेरिबो जानौ नहीं बलि
 नेह निवाह कियो नहिँ आवत ।
 हेरि कै फेरि मुखै 'हरीचंद' जू
 देखनइ को हमैं तरसावत ।
 प्रीत-पपीहन कों घन-साँवरे
 पानिप-रूप कबौँ न पिआवत ।
 जानौ न नेक बिथा पर की बलिहारी
 तऊ हौ सुजान कहावत । १६८
 आई गुरु लोग संग न्योते ब्रज गाँव नई
 दुलही सुहाई शोभा अंगन सनी रही ।
 पूछे मन-मोहन बतायो सखियन यह
 सोई राधा प्यारी बृषभानु की जनी रही ।
 'हरीचंद' पास जाय प्यारो ललचायो दीठ
 लाज की धँसी सो मानो हीर की अनी रही ।
 देखो अन-देखो देख्यो आधो मुख हाय तऊ
 आधो मुख देखिबे की हौस की बनी रही । १६९
 भूली सी भ्रमी सी चौकी जकी सी थकी सी गोपी
 दुखी सी रहत कछु नाहीं सुधि देह की ।
 मोही सी लुभाई कछु मोदक सों खाए सदा
 बिसरी सी रहै नेक खबर न गेह की ।
 रिस भरी रहे कबौँ फूलि न समात अंग
 हँसि हँसि कहै बात अधिक उमेह की ।
 पूछे ते खिसानी हाय उतर न आवै ताहि
 जानी हम जानी है निसानी या सनेह की । १७०
 आई प्रात सोवत जगाई मैं सखीन साथ
 ननद बिलोकिबे को करै अभिलाख है ।

'हरीचंद' हँसि हँसि पोछै मुख अंचल सों
 आरसी लै दूजी ठाँदी कहै कछु माख है ।
 एक मोती बीनै एक गूथै बेनी एक हँसे
 साँसत हमारी एक करै मिल लाख है ।
 बसन के दाग धोवै नख-छत एक टोवै
 चुरि लै चुरी को खेलै एक जूस-ताख है । १७१
 आई आज कित अकुलाई अलसाई प्रात
 रीसै मति पूछे बात रंग कित ढरिगो ।
 सोने से या गात छुवै सोनो भयो आप कै वा
 आतप प्रभात ही को प्रगट पसरिगो ।
 'हरीचंद' सौतिन की मुख-वृति छीनी कै वा
 आपनो बरन कहँ पाय धाय ररिगो ।
 नील पट तेरो आज और रंग भयो काह ।
 मेरे जान बिछारि पिया तें पीरो पारिगो । १७२
 कैमे सखी बसिए समुसारि मैं लाज को
 लेइबो क्यों साह जावै ।
 ऐसी सहैलनैं ऊधमी हैं नख-दंत
 के दाग लै कोऊ गनावै ।
 त्यों 'हरिचंद' खरी दिग सास के
 छीठ जिठानी पिया को हँसावै ।
 ओढ़ि कै चादर रात के सेज की
 सामने ही ननदी चलि आवै । १७३
 हम तो निहारे सब भाँत सों कहावै सदा
 हम सों दुराव कौन सो है सो सुनाइ दै ।
 द्वार पै खड़े हैं बड़ी देर सों अड़े हैं यह
 आशा है हमारी ताहि नेक तो पुराइ दै ।
 'हरीचंद' जोरि कर बिनती बखाने यही
 देखि मेरी ओर नेक मंद मुसुकाइ दै ।
 एरी प्रान-प्यारी बार बार बलिहारी नेक
 घूँघट उघारि मोहिं बदन दिखाइ दै । १७४
 सास जेठानिन सों दबती रहै
 लीने रहै रुख त्यों ननदी को ।
 दासिन सों सतरात नहीं 'हरीचंद'
 करै सनमान सखी को ।
 पीय कों दँच्छन जानि न दसत
 चौगुनो चाउ बढ़ै या लली को ।
 सौतिनइ को असीसै सुहाग करै
 कर आपुने सेंदुर टीको । १७५
 कहो कौन मिलाप की बातें कहै कही
 औरन की तो कछु न पतीजिये ।
 चित चाहै जहाँ बसिए मिलिए न कभू
 जिय आवै सोई सोई कीजिये ।

अब प्रान चले चहैं तासो कहैं

'हरीचंद' की सो बिनती सुनि लोजिये ।

भरि नैन हमैं डक बेरहू तो अपुनो

मुख मोहन जोहन दीजिये ।७६

लाई केलि-मंदिर तमासा को बताइ छल

बाला ससि सूर के कला पै किये दावा सी ।

धाइ ताहि गहन चहत 'हरिचंद' जू के

धूमि रही घर में चढ़ा करि कावा सी ।

घोखा दै के अकम भरत अकुलानी अति

चंचल चखन सों लखानी मृग छाया सी ।

आहि करि सिसक सकोरि तन मोहि पिये

कर ते छटक छूटी छलकि छलाया सी ।७७

तू रंगी रंग पिया के सखी कछू

बात न तेरी लखाई परी है ।

जद्यपि हौं नित पास रहौं तऊ

मेरी यहै मति सोच भरी है ।

जानी अहो 'हरिचंद' अबै यह

प्रीत प्रतीत तिहारी खरी है ।

श्याम बसे उर मैं नित ताही सों

पीतहू कंचुकी होत हरी है ।७८

जाहु जू जाहु जू दूर हटो सो बकै

बिन बात ही को अब यासों ।

या छलिया नै वनाय के खासो

पठायो है याहि न जानै कहा सों ।

काहि करे उपदेस खरो 'हरिचंद'

कहै कित जाइ के तासों ।

सो बनि पडित ज्ञान सिखावत

कृबरीहू नहि ऊवरी जासों ।७९

सिसुताई अजौं न गई तन तें तऊ

जोवन-जोति बटोरे लगी ।

सुनि कै चरचा 'हरिचंद' की कान

कलक दै भौह मरोरै लगी ।

बचि सासु जेठानिन सों पिय तें दुरि

धूँचट में दूग जोरै लगी ।

दुलही उलही सब अंगन तें दिन द्वै

तें पियूष निचोरै लगी ।८०

इत उत जग में दिवानी सी फिरत रही

कोन बदनामी जौन सिर पै लई नहीं ।

त्रास गुरु लोगन की आस के अनेक सही

कब बहु मौलिन के ताप सों तई नहीं ।

'हरिचंद' गिरि बन कुंज जहाँ जहाँ सुन्यो

तहाँ तहाँ कब उठि धाइ के गई नहीं ।

होनी अनहोनी कीनी सब ही तिहारे हेतु

तऊ प्रान-प्यारे भेंट तुम सों भई नहीं ।८१

एक बेर नैन भरि देखै जाहि मोहैं तोन

माच्यो ब्रज गाँव ठाँव ठाँव में कहर है ।

संग लगी डोलैं कोऊ घर ही कराहैं परी

छूटयो खान-पान रैन चैन बन घर है ।

'हरिचंद' जहाँ सुनो तहाँ चर्चा है यही

इक प्रेम-डोर नाथ्यो सगरो शहर है ।

यामैं संदेह कछू दैया हों पुकारे कहौं

मैया की सौं मैया री कन्हैया जादुगर है ।८२

जौन गली कट्टे तहाँ मोहैं नर-नारी सब

भीरन के मारे बंद होइ जात राह है ।

जकी सी थकी सी सबै इत उत ठाढ़ी रहैं

घायल सी धूमै कंती किए हिए चाह हैं ।

'हरीचंद' जासों जोई कहै तोन सोई करै

बरबस तजै सब पतिव्रत राह है ।

यामैं न संदेह कछू सहजहि मोहै मन

साँवरो सलोना जानैं टोना खामखाह है ।८३

सुखद समीर रूखी ह्यै कै चलन लागी

घटि चली रैन कछू सिसिर हिमंत की ।

फूले लागे फूल फेरि बौर बन आम लागे

कोकिले कुड़के लागीं माती मदमंत की ।

'हरीचंद' काम की दुहाई सौ फिरन लागी

आवै लागी छन छन सुधि प्यारे कंत की ।

जानी परै आयु विरहीन की सिरानी अब

आयो चहैं रातें फेर दुखद बसंत की ।८४

बन बन आग सी लगाइ के पलास फूले

सरसों गुलाब गुललाला कचनारो हाय ।

आइ गयो सिर पै चढ़ाय मैन बान निज

बिरहिन दौरि दौरि प्रानन सम्हारो हाय ।

'हरीचंद' कोइलैं कुड़कि फिरै बन बन

बाजै लाग्यो जग फेरि काम को नगारो हाय ।

दूर प्रान-प्यारो काको लीजिये सम्हारो अब

आयो फेरि सिर पै बसंत बजमारो हाय ।८५

रूप दिखाई के मोल लियो मन

बाल-गुड़ी बहु रंगन जोरी ।

चाहत-माँभो दियो 'हरीचंद' जू

लै अपने गुन की रस डोरी ।

फेरि कै नैन परे तन पै

बदनामी की तापै लगाइ पुँछोरी ।

प्रीति की चंग उमंग बढ़ाय कै

सो हरि हाय बढ़ाय के तोरी ।८६

जानत ही नहिं हौं जग में किहि को
 सबरे मिलि भाखत है सुख ।
 चौकत चैन को नाम सुने सपनेहु
 न जानत भोगन को रुख ।
 ऐसन सों 'हरिचंद' जू दूर ही
 बैठनो का लखनो न भलो मुख ।
 मो दुखिया के न पास रहौ उड़ि कै
 न लगे तुमहु को कहैं दुख । ८७
 गरजे घन दौरि रहैं लपटाइ
 भुजा भरि कै सुख पागो रहैं ।
 'हरिचंद' जू भीजि रहैं हिय में
 मिलि पौन चलो मद जागी रहैं ।
 नभ दामिनी के दमके सतराइ
 छिपी पिय अंग सुहागी रहैं ।
 बड़ भागिनी वेई अहैं बरसात में
 जे पिय-कंठ सो लागी रहैं । ८८
 ऊधो जू सूधो गहो यह मारग
 ज्ञान की तेरे जहाँ गुदरी है ।
 कोऊ नहीं सिख मानिहैं ह्यौं इक
 श्याम की प्रीति प्रतीति खरी है ।
 ये बृजबाला सवै इक सी
 'हरिचंद' जू मंडली ही विगरी है ।
 एक जो होय तो ज्ञान सिखाइए
 कृप ही में यहाँ भांग परी है । ८९
 महाकृज पुंजन में मिलि कै बिहार कीने
 तहाँ बाँधि आसन समाधि समुभावै जिनि ।
 जौन अंग लाग्यो पिया अंगन में बार बार
 तापै कूर धूर को रमाइबो बतावै जिनि ।
 'हरिचंद' जाही चख नित ही बिलोके श्याम
 ताहि मूँद योग को अयोग ध्यान लावै जिनि ।
 जाही कान सुनो प्यार हरि की मधुर बातें
 हाहा ऊधो ताही काम अलख सुनावै जिनि । ९०
 कौन कहे इत आइए लालन
 पावस में तो दया उर लीजिए ।
 को हम हैं कहा जोर हमारो है
 क्यों 'हरिचंद' बृथा हठ कीजिए ।
 जो जिय में रुचै मेंटिए ताहि
 दया करि कै तेहि को सुख दीजिए ।
 कोरि ही कोरी भली हम हैं पिय
 भीजिए जू उनके रस भीजिए । ९१
 सखि आयो वसंत रितून को कंत
 चढ़ैं दिसि फूलि रही सरसों ।

वर सीतल मंद सुगंध समीर
 सतावन हार भयो गर सों ।
 अब सुंदर साँवरो नंदकिसोर
 कहैं 'हरिचंद' गयो घर सो ।
 परसों को बिताय दियो अरसों
 तरसों कब पाँय पिया परसों । ९२
 आजु केलि-मंदिर सों निकसि नवेली छाट्य
 भौर चारों ओर रहे गंध लोभि धार के ।
 नैन अलसाने धूमै पटहु परे हैं भू में
 उर में प्रगट चिन्ह पिय कंठहार के ।
 'हरिचंद' सखिन सों केलि की कहानी कहैं
 रस में मसूसी रही आलस निवार के ।
 साँचे में खरी सी परी सीसी उतरी सी खरी
 बाजूबंद बाँधै बाजू पकारि किवार के । ९३
 साज्यौ साज गाँव मिलि तीज के हिंडारना को
 तानि कै बितान खासो फरस बिछायो री ।
 आवैं मिलि गोपी तापैं भीजि भुंड झुंड काम
 छाप सी लगावैं गावैं गीत मन-भायो री ।
 मोहिं जान पाछे परी देरी तै दया कै
 'हरीचंद' अंक लौकै लाल छिपि पहुँचायो री ।
 जानि गई ताहु पै चवाइनै गजब देखे
 पाँय बिनु पंक के कलांक मोहिं लायो री । ९४
 खोरि साँकरी में आजु छिपि कै बिहारी लाल
 तरु पै बिराजे छल जिय अति कीनो है ।
 ग्वाल-बाल साथ केहु इत उत घाटिन में
 छिपे 'हरिचंद' दान हेतु चित दीनो है ।
 ताही समै गोपिन बिलोकि कूँद धाए सब
 ऊधम मचायो ह्म दधि घृत छीनो है ।
 दही जो गिरायो सो तो फेरहु जमाय लैहैं
 मन कहाँ पैहैं दान-मिस जौन लीनो है । ९५
 लाज समाज निवारि सबै प्रन
 प्रेम को प्यारे पसारन दीजिये ।
 जानन दीजिये लोगन को कुलटा
 करि मोहि पुकारन दीजिये ।
 त्यों 'हरिचंद' सबै भय टारि कै
 लालन धूँधट टारन दीजिये ।
 छाँड़ि संकोचन चंदमुखै भरि
 लोचन आजु निहारन दीजिये । ९६
 पूरन पियूष प्रेम आसव छकी हौं रोम
 रोम रस भीन्यो सुधि भूल गेह गान की ।
 लोक परलोक छाँड़ि लाज सों बदन मोड़ि
 उधरि नची हौं तजि संक तात मात की ।

'हरीचंद' एतोह पै दरस दिखावे क्यों न
 तरसत रैन दिना प्यासे प्रान पातकी ।
 एरे बृजचंद तेरे मुख की चकोरी हूँ मैं
 एरे घनश्याम तेरे रूप की हों चातकी १९७
 छाँड़ि कुल बेद तेरी चेरी भई चाह भरी
 गुरुजन परिजन लोक-लाज नासी हों ।
 चातकी तृपित तुव रूप-सुधा हेत नित
 पल पल दुसह बियोग दुख गाँसी हों ।
 'हरीचंद' एक ब्रत नेम प्रेम ही को लीनो
 रूप की तिहारे ब्रज-भूप हों उपासी हों ।
 ज्याय लै रे प्रानन बचाय लै लगाय कंठ
 एरे नंदलाल तेरी मोल लई दासी हों १९८
 तरसत स्रोन बिना सुने मीठे बैन तेरे
 क्यों न तिन माँहि सुधा-बचन सुनाइ जाय ।
 तेरे बिन मिले भाइ भाँफरि सी देह प्रान
 राखि लै रे मेरो धाइ कंठ लपटाइ जाय ।
 'हरीचंद' बहुत भई न सहि जाय अब
 हा हा निरमोही मेरे प्रानन बचाइ जाय ।
 प्रीति निरवाहि दया जिय मैं बसाय आय
 एरे निरदई नेकु दरस दिखाय जाय १९९
 वोरि उठि प्यारी गरलावे गिरधारी किन
 ऐसे पियहूँ सों किन बोलै कलवादिनी ।
 देखु 'हरिचंद' ठीक दुपहर तेरे हेतु
 आयो चलि दूर सों पियारो री प्रमादनी ।
 तेरे गूह चलत न दुख सुख जान गिन्यो
 सीतल बनाउ ताहि सुरत सवादनी ।
 मखमल भूमल भो लूह सीरी पास
 दूरी भई तेरे यह धूप भई चाँदनी १९००
 हे हरि जू बिछुरे तुम्हरे नहिं
 धारि सकी सो कोऊ बिधि धीरहिं ।
 आखिर प्रान तजे दुख सों न
 सम्हारि सकी वा बियोग की पीरहिं ।
 पे 'हरिचंद' महा कलकानि कहानी
 सुनाऊँ कहा बलबीरहिं ।
 जानि महा गुन रूप की रासि न
 प्रान तज्यो चहै वाके सरीरहिं १९०१
 साजि सेज रंग के महल मैं उमंग भरी
 पिय गर लागी काम-कसक मिटाएँ लेत ।
 ठानि विपरीत पूरी मेन के मसूसन सों
 सुरत समर जयपत्रहिं लिखाएँ लेत ।
 'हरीचंद' उभकि उभकि रति गाढ़ी करि
 जेम भरि पियहि भुकोरन हराएँ लेत ।

याद करि पी की सब निरदय घालें आबु
 प्रथम समागम को बदलो चुकाएँ लेत १९०२
 कबहुँक बारिन में कुंजन निवारिन में
 इत उत बेलिन कों चौकि चितवत है ।
 कासन कपासन पै फिरत उदास कबों
 पल्लवन बैठि बैठि दिन रितवत है ।
 'हरीचंद' बागन कछारन पहारन में
 जित तित परयो गुनि नह हितवत है ।
 सूखे सूखे फूलन पै तरुगन मूलन पै
 मालती-बिरह भौरि दिन बितवत है १९०३
 काले परे कोस चलि चलि थक गये पाय
 सुख के कसाले परे ताले परे नस के ।
 रोय रोय नैनन में हाले परे जाले परे
 मदन के पाले परे प्रान पर-बस के ।
 'हरीचंद' अंगह हवाले परे रोगन के
 सोगन के भाले परे तन बल खसके ।
 पगन छाले परे नाँघवे को नाले परे
 तऊ लाल लाले परे राखे दरस के १९०४
 थाकी गति अंगन की मति पर गई मंद
 सुख भाँफरी सी हवै कै देह लागी पियरान ।
 बाबरी सी बुद्धि भई हँसी काहू छीन लई
 सुख के समाज जित तित लागे दूर जान ।
 'हरीचंद' राखे-बिरह जग दुखमय
 भयो कइ और होनहार लागे दिखरान ।
 नैन कर्मलान लागे बैनह अथान लागे
 आओ प्राननाथ अब प्रान लागे मुरभान १९०५
 लाई लियाय तमासो बताय
 भुराय कै इतिका कुंजन माँहीं ।
 धाय गही 'हरिचंद' जबै न
 छपी वह चंदमुखी परछाँहीं ।
 अंक मैं लेत छल्यो छलकै बलकै
 तब आप छोड़ाय कै बाँहीं ।
 हाथन सों गहि नीबी कह्यो पिय नाँहीं
 जू नाँहीं जू नाँहीं जू नाँहीं १९०६
 नव कुंजन बैठे पिया नंदलाल
 जू जानत हैं सब कोक-कला ।
 दिन मैं तहाँ इती भुराय कै लाई
 महा छाँब-धाम नई अबला ।
 जब धाय गही 'हरिचंद' पिया तब
 बोली अजू तुम मोही छला ।
 मोहिं लाज लागे बलि पाँव परों
 दिन हीं हहा ऐसी न कीजै लला १९०७

जानि सुजान मैं प्रीति करी सहिके
 जग की बहु भाँति हँसाई ।
 त्यों 'हरिचंद' जू जो जो कह्यो सो कर्यो
 चुप ह्वै करि कोटि उपाई ।
 सोऊ नहीं निवहौ उनसों उन
 तोरत बार कष्ट न लगाई ।
 साँची भई कहनावति वा अरी
 ऊँची दुकान की फीकी मिठाई ॥१०८॥
 जानति हो सब मोहन के गुन
 तो प्रीति प्रेम कहा लागि कीनो ।
 त्यों 'हरिचंद' जू त्यागि सबै चित
 मोहन के रस रूप में भीनो ।
 तोरि दई उन प्रीति उनै अपवाद
 इतै जग को हम लीनो ।
 हाय सखी इन हाथन सों
 अपने पग आप कुठार में दीनो ॥१०९॥
 इन नैनन में वह साँवरि मूरति
 दखति आनि लरी सो अरी ।
 अब तो है निर्वाहको याको भलो
 'हरिचंद' जू प्रीति करी सो करी ।
 उन खंजन के मद-गंजन सों
 अँखियाँ ये हमारी लरी सो लरी ।
 अब लोग चवाव करो तो करो हम
 प्रेम के फंद परी सो परी ॥११०॥
 अब तो बदनाम भई भले ब्रज में
 घरहाई चवाव करौ तो करौ ।
 अपकीरति होऊ भले 'हरिचंद' जू
 सासु जेठानी लरी तो लरी ।
 नित देखनो है वह रूप मनोहर
 लाज पै गाज परी तो परी ।
 मोहि अपने काम सों काम अली
 कुल के कुल नाम धरौ तो धरौ ॥१११॥
 नाम धरो सिंगरो बृज तो अब
 कौन सो बात को सोच रहा है ।
 त्यों 'हरिचंद' जू और हू लोगन
 मान्यो बुरो अरी सोऊ रहा है ।
 होनी हुती सु तो होय चुकी इन
 बातन तें अब लाभ कहा है ।
 लागे कलंक हू अंक लगे नहिं
 तो सखि भूलि हमारी महा है ॥११२॥
 वह सुन्दर रूप बिलोकि सखी मन
 हाथ तें मेरे भग्यो सो भग्यो ।

चित माधुरी मूरति देखत ही
 'हरिचंद' जू जाय पग्यो सो पग्यो ।
 मोहि औरन सो कष्ट काम नहीं अब
 तो जो कलंक लग्यो सो लग्यो ।
 रंगी हमरो चढ़ेगो नहीं अलि
 साँवरो रंग रँग्यो सो लग्यो ॥११३॥
 हमहूँ सब जानतीं लोक की चालाहिं
 क्यों इतनो बतरावती हो ।
 हित जामैं हमारो बनै सो करो
 सखियाँ तूम मेरी कहावती हो ।
 'हरिचंद' जू यामैं न लाभ कष्ट
 हमैं बातन क्यों बहरावती हो ।
 सजनी मन पास नहीं हमरें तूम
 कौन को का समुझावती हो ॥११४॥
 बिछूरे बलवीर पिया सजनी
 तिहि हेन सबै बिछूरावने हैं ।
 'हरिचंद' जू त्यों सुनकैं अपवाद न
 औरह सोच बढ़ावने हैं ।
 करिकैं उनके गुन-गान सदा
 अपने दुख को बिसरावने हैं ।
 जेहि भाँति सो दौस ए बीतै सखी
 तेहि भाँति सों बैठि बितावने हैं ॥११५॥
 मन-मोहन तें बिछूरीं जब सों
 तन आँसुन सों सदा धोवती हैं ।
 'हरिचंद' जू प्रेम के फंद परी
 कुल की कुल लाजहि खोवती हैं ।
 दुख के दिन कों कोऊ भाँति बितै
 बिरहागम रैन सँजोवती हैं ।
 हम हीं अपनी सदा जानैं सखी
 निसि सोवती हैं किधों रोवती हैं ॥११६॥
 धिक देह औ गेह सबै सजनी
 जिहि के बस नेह को टूटनो है ।
 उन प्रान-पियारे बिना इहि जीवाह
 राखि कहा सुख लूटनो है ।
 'हरिचंद' जू बात ठनी सो ठनी
 नित के कलकानि ते छूटनो है ।
 तजि और उपाव अनेक अरी अब
 तो हमकों बिष घूँटनो है ॥११७॥
 सुनी है पुरानन में द्विज के मुखन बात
 तोहि देखैं अपजस होत ही अचूक है ।
 तासों 'हरिचंद' करि दरसन तेरो जिय

भेट्यो चाहे कठिन मनोभव की टूक है ।
 ऐसे करि मोहिं सबै प्यारे नंदनंद जू सो
 मिली कहै लावै मुख सौतिन के लूक है ।
 गोकुल के चंद जू सो लागे जो कलंक तो तू
 साँचो चौध-चंद ना तो बादर को टूक है ११८
 आई केलि-मंदिर में प्रथम नवेली बाल
 जेरा-जेरी पिय मन-मानिक छुड़ाएँ लेति ।
 सो सौ बार पूछे एक उत्तर मरु कै देति
 चूँचट के ओट जोति मुख की दुराएँ लेति ।
 चूमन न देति 'हरिचंद' भरि लाज अति
 सकुचि सकुचि गोरे अंगहिं चुराएँ लेति ।
 गहतहि हाथ नैन नीचे किए आँचर में
 छवि सों छबीली छोटी छातिन छिपाएँ लेति ११९
 यह सावन सोक-नसावन है
 मन-भावन यामैं न लाजै भरो ।
 जमुना पे चलो सु सबै मिलि कै
 अरु गाढ़-बजाइ कै सोक हरो ।
 इमि भाषत हैं 'हरिचंद' पिया
 अहो लाडिली देर न यामैं करो ।
 बलि भूलो भुलावो भुको उभको
 यह पाथैं पतिव्रत ताथैं धरो १२०
 उमड़ि उमड़ि हृग रोअत अवीर भए
 मुख-दुति पीरि परी बिरह महा भरी ।
 'हरिचंद' प्रेम-माती मनहुँ गुलाबी छकीं
 काम भर भाँकरी सी दुति तन की करी ।
 प्रेम-कारीगर के अनेक रंग देखौ यह
 जोगिआ सजाए बाल बिरछि तरे खरी ।
 आँखिन में साँवरी हिए में बसे लाल यह
 बार बार मुख तें पुकारत हरी हरी १२१
 जिय सुधी चितौन की साथै रही
 सदा बातन में अनखाय रहे ।
 हँसि कै 'हरिचंद' न बोले कबौं मन
 दूर ही सौं ललचाय रहे ।
 नहिं नेक दया उर आवत क्यौं
 करिकै कहा ऐसे सुभाय रहे ।
 सुख कौन सो प्यारे दियो पहिले
 जेहि के बदले यौ सताय रहे १२२
 जानत कौन है प्रेम-बिया केहिसों
 चरचा या वियोग की कीजिये ।

को कहि माने कहा समुझे कौऊ

क्यौं बिन बात की रारहि लीजिये ।
 कर चवाइन में पड़िके 'हरिचंद' जू

क्यौं इन बातन कीजिये
 पूछत मोन क्यौं बैठि रही सब प्यारे
 कहा इन्हें उत्तर दीजिये १२३
 तुमरे तुमरे सब कोऊ कहै तुम्हें
 सो कहा प्यारे सुनात नहीं ।
 बिरुदावलि आपनी राखो मिलो
 मोहि सोचिये की कछु बात नहीं ।
 'हरिचंद' जू होनी हुती सो भई
 इन बातन सों कछु हात नहीं ।
 अपनावते सोच बिचारि तबै
 जल-पान के पूछनी जात नहीं १२४
 पिया प्यारे बिना यह माधुरी
 मूरति औरन को अब देखिये का ।
 सुख छाँड़ि कै संगम को तुमरे
 इन तुच्छन को अब लेखिये का ।
 'हरिचंद' जू हीरन को बेवहार कै
 काँचन को लो परेखिये का ।
 जिन आँखिन में तुव रूप बस्यो उन
 आँखिन सों अब देखिये का १२५
 कित को दुरिगो वह प्यार सबै क्यौं
 रुखाई नई यह साजत हो ।
 'हरिचंद' भये हो कहा के कहा
 अनबोलिबे ते नहिं छाजत हो ।
 नित को मिलानो तो किनारे रह्यो
 मुख देखत हो दुरि भाजत हो ।
 पहिले अपनाय बढ़ाय कै नेह
 रुसिये मैं अब लाजत हो १२६
 पहिले मुसुकाइ लजाइ कछु क्यौं
 चितै मुरि मो तन छाम कियो ।
 पुनि नैन लगाइ बढ़ाइ कै प्रीति
 निवाहन को क्यौं कलाम कियो ।
 'हरिचंद' कहा के कहा ह्वै गए
 कपटीन सों क्यौं यह काम कियो ।
 मन माँहि जौ छोड़न हो की हुती
 अपनाइ कै क्यौं बदनाम कियो १२७
 धाइ कै आगे मिली पहिले तुम कौन
 सों पूछि कै सो मोहिं भाखो ।
 त्यों तुम ने सब लाज तजी केहि के
 कहे एतो कियो अभिलाखो ।
 काज बिगारी सबै अपुनो 'हरिचंद' जू
 धीरज क्यौं नहिं राखो ।
 क्यौं अब रोइ कै प्रान तजौ अपुने

किये को फल क्यों नहिं चाखो ॥२८॥
इन दुखियान को न चैन सपनेहुं मिल्यो

तासों सदा व्याकुल विकल अकुलायंगी ।
प्यारे 'हरिचंद जू' की बीती जानि औध प्राण
चाहत चलो पै ये तो संग ना समायंगी ।
देख्यो एक बारह न नैन भरि तोहिं यातें
जौन जौन लोक जैहैं तहाँ पछतायंगी ।
बिना प्राण-प्यारे भये दरस तुम्हारे हाय
मरेहु पै आँखें ये खुली ही रहि जायंगी ॥२९॥
हों तो तिहारे सुखी सों सुखी सुख
सों जहाँ चाहिये रैन बिताइये ।
पै बिनती इतनी 'हरिचंद' न रुठि
गरीब पै भौह चढ़ाइये ।

एक मतो क्यों कियो तुम सों तिन

सोउ न आवै न आप जो आइये ।
रुसिवे सों पिय प्यारे तिहारे
दियाकर रुसत है क्यों बताइये ॥३०॥
धारन दीजिये धीर हिए कुल-कानि
कों आजु विगारन दीजिए ।
मारन दीजिए लाज सबै
'हरिचंद कलंक पसारन दीजिए ।
चार चवाइन कों चहुँ ओर सों
सोर मचाई पुकारन दीजिए ।
छाँडि सँकोचन चंदमुखे भरि
लोचन आजु निहारन दीजिए ॥३१॥

प्रेम-तरंग

भक्त-हृदय-वारिधि अगम भलकत श्यामहि रंग ।
विरह-पवन-हिल्लोर लहि उमग्यी प्रेमतरंग ॥

| ९ अप्रैल, १८७७ की 'कविचचन सुधा' में
प्रकाशित । मल्लिक चंद्र और कंपनी में तृतीय
आवृत्ति छपी । |

प्रेम-तरंग

खेमटा

राधा जी हो वृषभानु-कुमारी ।
कोटि कोटि ससि नख पर वारौ कीरति-झग-उँजियारी ।
सब ब्रज की रानी सुखदानी जसुदानंद-दुलारी ।
'हरीचंद' के हिये विराजो मोहन-प्राण-पियारी ॥१॥
विरह की पीर सही नहिं जाय ।
कहा करौ कष्ट बस नहिं मेरो कीजे कौन उपाय ।
'हरीचंद' मेरी बाँह पकरि कै लीजै आय उठाय ॥२॥
अकेली फूल बिनन में आई ।
संग नहीं कोउ सखी सहेली फूल देख बिमलाई ।
या बन के काँटन सों मेरी सारी गइ उरभाई ।
'हरीचंद' पिया आय दया करि अपने हाथ छुड़ाई ॥३॥

खेमटा, साँझी का

श्याम सलोने गात मलिनियाँ ।
बड़े बड़े नैन भौह दोउ बाँकी जोवन सों इठलात ।
सुनत नहीं कछु बात कोऊ की राधे के दिग जात
'हरीचंद' कछु जान परै नहिं घूँघट में मुसकात ॥४॥
लगत इन पुलवारिन में चोर ।
इन सों चौकत रहियो सजनी छिप रहे चारों ओर ।
जबहिं निकसि अइहैं गहबर सों लैहैं भूषन छोर ।
'हरीचंद' इनसों बच रहिये ए ठगिया बरजोर ॥५॥
मुख पर तेरे लट्ठी लट लटकी ।
काली घूँघरवाली प्यारी चुरचुरी मेरे जिअ खटकी ।
छल्लेदार छबीली लाँबी लखि
नागिन सब राँह सिर पटकी ॥

'हरीचंद' जंजीरन जकड़ी ये

अँखियाँ अब छुटाईं न अटकती ।६

कैसे नेया लागे मोरी पार खिचैया तोरे रुसे हो ।

औड़ी नदिया नावरि भँभरी जाय परी मँभधार ।

देई चुकीं तन मन उतराई छोड़ि चुकीं घर-बार ।

कहि 'हरिचंद' चढ़ाई नेवरिया करो दगा मति यार ।७

सखी बंसी बजी नंद-नंदन की ।

श्री वृन्दावन की कुंज-गलिन में

सुधि आई साँवर घन की ।

मगर भई गोपी 'हरि' के रस

बिसरि गई सुधि तन मन की ।८

काफी

काठन भई आजु की रतियाँ ।

पिया परदेस बहुत दिन बीते नहीं आई पतियाँ ।

बिरह सतावत दिन दिन हमको कैसे करौं बतियाँ ।

आय मिलौ पिय 'हरीचंद' तुम लागूँ मैं तोरी छतियाँ ।९

वजन लागी बंसी लाल की ।

हों बरसाने जात रही री सुधि आई वनमाल की ।

बिसरत नाहिं सखी वह चितवनि सुन्दर स्याम तमाल की ।

हरीचंद हँसि कंठ लगायो बिसरि गई सुधि बाल की ।१०

किंभोटी

रँगोले रँग दे मेरी चुनरी ।

स्याम रंग से रँग दे चुनरिया 'हरीचंद' उनरी ।११

होली खेमटा

छबीले आ जा मोरी नगरी हो ।

साँवरे रंग मनोहर मूरति बाँधे सुरुख पगरी हो ।

'हरीचंद' पिय तुम बिनु कैसे रैन कटे सगरी हो ।१२

चलो सोय रहो जानी, अँखियाँ खुमारी से लाल भई ।

सगरी रैन छतिया पर राखा अधरन का रस लीना ।

'हरीचंद' तेरी याद न भूले ना जानों कहा कीना ।१३

दादरा

सैयाँ बेदरदी दरद नहिं जाने ।

प्राप्त दिए वदनाम भए पर नेक प्रीति नहिं माने ।

'हरीचंद' अलगरजी प्यारा दया नहीं जिय आने ।१४

सोरठ

जवनियाँ मोरी मुफुत गई बरबाद ।

सपन्याँ में सखियाँ नाहिं जान्यो मैयाँ-मुगु मोँग्या-सबाद ।

बारी बँस सैयाँ दूर सिधारे दे गए बिरह-बिछाद ।

'हरीचंद' जियरे में रहि गई लाखन मोरी मुराद ।१५

सखी राधा-वर कैसा सजीला ।

देखो री गोइयाँ नजर नहिं लागे

कैसा खुला सिर चोरा छबीला ।

बार-फेर जल पीयो मेरी सजनी

मति देखो भर नैना रंगीला ।

'हरीचंद' मिलि लोहु बलैया

अँगुरिन करि चटकारि चुटीला ।१६

पीलू

का करौं गोइयाँ अरुभि गई अँखियाँ ।

कैसे छिपाऊँ छियन नाहिं सजनी

छेला मद-मानी भई मधु-माँखियाँ ।

साँवरो रूप देख परचम भई

इन कुल-लाज नानक नाहिं राँखियाँ ।

'हरीचंद' वदनाम भई मैं तो

नाना मारन सब सँग की माँखियाँ ।१७

नयन की मन मारो नरवरिया ।

मैं तो घायल बिनु चोट भई रे कहर करेजे करिया ।

काहे को सान देत भौहन की काजर नयनन भरिया ।

'हरीचंद' बिन मारें मरत हम मत लाओ तीर कटरिया ।१८

जिय लेके यार करो मत हाँसी ।

तुमरी हँसी मरन है मेरो यह कैसी रीत निकासी ।

आइ मिलौ गल लागी पिअरवा अँखियाँ दरसन-प्यासी ।

'हरीचंद' नहिं तो जुलफन की मरिहैं दै गल-फाँसी ।१९

दुमरी, सहाना

आज तोहिं मिल्यो गोरी कुंजन पियरवा ।

काहे बोले भूठे बैन कहे देत तेरे नैन

देखु न बिधुरि रहे मुख पर बरवा ।

अँगिया के बँद टूटे कर सों कँकन छूटे

अपने पीतम जी के लागी है तू गरवा ।

'हरीचंद' लाज मेटी गाढ़े भुज भर भेंटी

द्वे द्वे के उपटि भये चार चार हरवा ।२०

काहूँ सों न लागें गोरी काहूँ के नयनवाँ ।

हँसैं सुनि सब लोग मिटै ना बिरह-सोग

पूछे ते न आवै कछ मुख सों बयनवाँ ।

'हरीचंद' घबराय बिपति कही न जाय

छूटै खान-पान मिटै चित के चयनवाँ ।२१

दुमरी

भए हो तुम कैसे दीक कुँअर कन्हाई ।

मदकी मोरी सिर सों पटाक तापै हैसन हो आदे

देखो किन ऐसी बान सिखाई ।

भोर भई देखो ठाढ़ी हैसै बृजबाल सब लाँछि मुख में
'हरीचंद' तुम बृज कैसी यह नई रीति चलाई ॥२२॥
हाँ दूर रहो ठाढ़े हो कन्हाई ।

जिन पकरो बहियाँ मेरी हटो लँगर

करो न लँगराई इठलाई ।

काहे इत आओ अरराने रहो दूर

'हरीचंद' कैसी रीत चलाई मन-भाई ॥२३॥

डुमरी, सोरठ

बे परवाह मोहन मीन, हौं तो पाछिताई हो दिग देक ।

बरबस आय फँसी इन फंदन छोड़ सकल कल-रीत ।

कीनी चाल पतंग-दीप की मानी तनक न नीत ।

'हरीचंद' कछु हाथ न आयो करि ओछे सों प्रीत ॥२४॥

तू मिल जा मेरे प्यारे ।

मेरे बिन मन-मोहन प्यारे व्याकुल प्रान हमारे ।

'हरीचंद' मुखड़ा दिखला जा इन नयनन के तारे ॥२५॥

बहियाँ जिन पकरो मोरी, पिया तुम साँवरे हम गोरी ।

तुम तो ढोटा नंद महर के, हम वृषभानु-किशोरी ।

'हरीचंद' तुम कमरी ओछे, हम पै नील पिछोरी ॥२६॥

सेजिया जिन आओ मोरी, मैं पड़्याँ लागीं तोरी ।

तुम सौतिन घर रात रहत हौ आवत हौ उठ भोरी ।

'हरीचंद' हम सों मत बोलो भूठ कहत क्यों जेरी ॥२७॥

भूठी सब बृज की गोरी, ये देत उलहने जेरी ।

मड़्या मैं नाहीं दधि खायो मैं नहिं मडुकी फोरी ।

'हरीचंद' मोहिं निबल जान ये नाहक लावत चोरी ॥२८॥

कलिंगड़ा

आओ रे मोरे रूठे पियरवा, धाय लागो प्यारी के गरवा ।

रूठ रहे क्यों मुख सो बोलो,

हिय की गाँठें हैंस हैंस खोलो,

'हरीचंद' अपनी प्यारी को

मान राख राखौ अपने कोरवा ॥२९॥

छतियाँ लेहु लगाय सजन अब मत तरसाओ रे ।

तुम बिन तलफत प्रान हमारे,

नयनन सों बहे जल की धारें,

बाढ़ी है तन बिरह-पीर सूरत दिखलाओ रे ।

'हरीचंद' पिय गरिवरधारी, पैयाँ परौं जाओं बलिहारी,

अब जिय नाहीं धरत धीर जलदी उठ धाओ रे ॥३०॥

मुकूट लटक भौंहन की मटक मोहन दिखला जा रे ।

कुंडल की लटक, तानन की खटक,

मुख तनक हैंसन, कटि कछनी कसन,

इन दरसन प्यासे नयनन कों प्यारे दरसा जा रे ।

भूक भूक के चलन, कलागी की हलन,

'हारचंद' नाम मेरो लै लै नई तान सुना जा रे ॥३१॥

पीलू

सजन तोरी हो मुख देखे की प्रीत ।

तुम अपने जोवन मदमाते कठिन बिरह की रीत ।

जहाँ मिलत तहाँ हैंसि हैंसि बोलत गावत रस के गीत ।

'हरीचंद' घर घर के भौरा तुम मतलब के मीत ॥३२॥

हिंडोला

जमुना-तट कुंजन बोन रहीं

सब सखियाँ फूलों की कलियाँ ।

एक गावत एक ताल बजावत हैं

करती मिल के एक रँग-रलियाँ ।

मृगनेनी आय अनेक जुरीं छवि

छाय रही बृज की गलियाँ ।

'हरीचंद' तहाँ मनमोहन जू

सखि बन आए लखि यों अलियाँ ॥३३॥

यह कैसी बान लिहारी मेरे प्यारे गिरवरधारी हो ।

मारग रोकि रहे सुने बन घेरि लई पर-नारी ।

करि बरजोरी मोरी बहियाँ मरोरी,

लीनी मटुकीहु सिर सों उतारी ।

ऐसी चपलाई कहा करत कन्हाई,

देखो लोक-लाज सब टारी ।

पड़्याँ परौ दूर रहौ अंग न छुओ

हमारे 'हरीचंद' तोपै बलिहारी ॥३४॥

सजन छतियाँ लपटा जा रे ।

दोउ नैन जोरि कछु भौह मोरि भुकि

भूमि चूमि सुख वै भुकोरि

अधरन पै धरके अपनो अधर

रस मोहिं पिला जा रे ।

दोउ भुज-बिलास गलबाँही डाल मेरे

गालन पै धर अपनो गाल,

उर छाया अंग संग में सबै

रस-रँग बरसा जा रे ।

मेरो खोल कंचुकी-बँद हैंसि के

रस लै जोवन को कसि-कसि कै,

'हरिचंद' रंगीली सेजन पै सब

कसक मिटा जा रे ॥३५॥

सजन गलियों बिच आ जा रे ।

तेरे बिन बाढ़ी बिरह-पीर गलियों-बिच आ जा रे ।

तेरे बिना मोहिं नौदन आवे, घर-अँगना कछु नाहि सुहावे,

इन नयनन सों बहत नीर सूरत दिखला जा रे ।
'हरीचंद' तू मिला जा प्यारे, तेरे बिन तलाफत प्रान हमारे,
निकल जाय सब जिय की कसक गरवाँ लिपटा जा रे । ३६

सारंग

मेरे प्यारे सों संदेसा कौन कहै जाय ।
जिय की वेदन हरे बचन सुनाय राम
कोई सखी देय मोरी पाती पहुँचाय ।
जाय के बुलाय लावै बहुत मनाय राम
मिलै 'हरीचंद' मोरा जियरा जुड़ाय । ३७
क्यों गले न लगत रसिया वे ।
तू तो मेरे दिल बिच बसिया वे ।।
तेरी घूँघरवाली अलकैं मेरो तन मन डसिया वे ।
'हरीचंद' नहिं मिलै करै तू सीतलिन
सँग रँग-हसिया वे । ३८

मेरे रुठे सैयाँ हो अरज मेरी सुनि लीजै ।
कापै इतनी भौह चढ़ाओ क्यों न सजा मोहिं दीजै ।
'हरीचंद' मैं तो तुमरी ही जो चाहे सो कीजै । ३९
किन वे रुठाय मेरा यार ।
कहाँ गया क्यों छोड़ गया मोहिं तोड़ गया क्यों प्यार ।
बन-बन पात-पात करि पूछैं कोई न सुनै पुकार ।
'हरीचंद' गल-लगन-हौस मैं

विरहिन जरि भई छार । ४०

किन बिलमायो मेरो प्रान ।
पाटी कर पटकत निसि बीली रोवत भयो है बिहान ।
कहाँ रैन बसे को मन भाई किन तोर्यौ मेरो मान ।
'हरीचंद' बिन विकल भई कछु करतब परत न जान । ४१

भैरवी

सैयाँ तुम हमसे बोलेो ना ।
कब के गए कहाँ रैन गँवाई मत घूँघट पट खोलो । ४२

कफ़ी

तेरी छवि मन मानी मेरे प्यारे दिल-जानी ।
प्रात समय जमुना-तट पै हौं जात रही पानी ।
घूँघट उलटि बदन दिसि हेर्यौ कहि मीठी बानी ।
'हरीचंद' के चित में चुभि गई सूरति सेलानी । ४३

छयल तोरी रे तिरछी नजर मोहिं मारी ।
जब तें लगी तनक सुधि नाहीं तन की दसा बिसारी । ४४
आजु की रात न जाओ सैयाँ मोरी बतियाँ मानो ।
तुम सीतलिन के रात रहत हो हम सों छल मत जानो । ४५

बल खात गुजरिया बिरह भरी ।

भूलि गई सब सुध तन मन की
लागी हरि की तिरछी नजरिया ।
'हरीचंद' पिया आय मिलो अब
मारत है मोहिं बिरह कटरिया । ४६

न जाय मोसों सेजरिया चढ़िलो न जाय ।
जागत सब सास ननद मोरी
बाजेगी पायल, मोसों सेजरिया । ४७
तुम अपने मद चूर गिनत नहिं
मुख मेरो चूमो गर लाय हाय ।
'हरीचंद' न ऐसी मोसों बनैगी पियारे कैसे
लाज छाँड़ि दौरि आऊँ तोहि मिलूँ धाय । ४८

भैरवी

नजरहा छैला रे नजर लगाए चला जाय ।
नजर लगी बेहोस भई मैं जिया मोरा अकुलाय ।
ब्याकुल तड़पूँ नजर न उतरै हाय न और उपाय ।
'हरीचंद' प्यारे को कोई लाओ जाय मनाय । ४८
नशीला आँखोंवाले सोए रहो अभी है बड़ी रात ।
सगरी रैन मेरे सँग जागत रहे करत रँगौली बात ।
चिड़िया नहीं बोली मेरी चूरी खनकत काहेँ अकुलात ।
'हरीचंद' मत उठो पियरवा गल लगि करौ रस-घात ।
नशीली आँखोंवाले सोए रहो अभी है बड़ी रात । ४९

पीलू

हमसे प्रीति न करना प्यारी हम परदेसी लोगवा ।
प्रीत लगाय दूर चलि जैहैं रहि जैहैं जिय सोगवा ।
परदेसी की प्रीति बुरी है कठिन बिरह को रोगवा ।
'हरीचंद' फिर दुख बढ़ि जैहैं कटि है नाहिं बियोगवा । ५०

भैरवी

पियारे गर लागो रैन के जागे हो ।
रैन के जागे प्यारी-रस-पागे जिया अनुरागे हो ।
घुमत नैन पीक रँग दागे रसमगे बागे हो ।
'हरीचंद' प्यारी मुख चूमत हँसि गर लागे हो ।
पियारे गर लागो लागो रैन के जागे हो । ५१
रैन के जागे पिया हो भोरहि मुख दिखलाओ ।
रँगौली नसीली छबीली अँखियन अँखियाँ यार मिलाओ ।
घूँघरवाली अलकैं बिथुरि रहौं जुलफैं यार बनाओ ।
'हरीचंद' मेरे गलबहियाँ दै आलस रैन मिटाओ । ५२

न जाय मोसों सेजरिया चढ़िलो न जाय ।
बिरह बाढ़्यो पिय बिन कैसे कटे रैन सखी
मोसों सेजरिया चढ़िलो न जाय ।।

'हरीचंद' पिया बिनु नींद न आवै साँपिन सो
लगे सेज हाय मोरी तड़पत रैन बिहाय ।
न जाय मोसों सेजरिया चढ़िलो न जाय ।५३

पूरबी

अजगुत कीन्ही रे रामा ।
लगाय काँची प्रीति गए परदेसवा
अजगुत कीन्हीं रे रामा ।
बारी रे उभिरि मोरी नरम करेजवा
बिपति नई दीन्हीं रे रामा ।
अजगुत कीन्ही० ।
'हरीचंद' बिन रोई मरौं रे खबरिया न लीन्ही रे रामा ।
अजगुत कीन्हीं ।५४

आवन की कछु आज पिया की
सुरति लागि मेरी सखियाँ ।
उड़ि उड़ि अंचल जेवन उमगत
फरकत मोरी बाई अँखियाँ ।
'हरीचंद' पिय कंठ लागि कै
होइहैं ये छतियाँ सुखियाँ ।५५

भैरवी

रैन की हो पिय की खुमारी न टूटे ।
बहुत जगाय हारी मोरी सजनी नींदड़िया नहीं छूटे ।
भोर भए गर लगत न प्यारो अधर-सुधा नहिं छूटे ।
'हरीचंद' पिया नींद को मातो सेज को सुख नहिं लूटे ।५६
शिकारी मियाँ वे जुलफों का फन्दा न डारो ।
जुलफों के फंदे फँसाय पियरवा नैन-बान मत मारो ।
पलक कटारिन मार भँवन की मत तरवार निकारो ।
'हरीचंद' मेरे जुलामी घायल छोड़ि न हमै सिधारो ।५७

पूरबी

अरे प्यारे हम तुम बिनु व्याकुल आ जा रे प्यारे ।
तड़पत प्रान हमारे तुम बिन हो दरस दिखला जा रे प्यारे ।
'हरीचंद' तुम बिना तलाफत गर लपटा जा रे प्यारे ।
अरे प्यारे जल बिन मरत मछरिया
इनहिं खिला जा रे प्यारे ।५८

पूरबी वा गौरी

पिअरवा रे मिलि जा मत तरसाओ ।
तुम बिन व्याकुल कल न परत
छिन जलदी दरस दिखाओ ।
'हरीचंद' पिया अब न सहौगी
धाइके गरवाँ लगाओ ।५९

प्यारी तोरी बाँकी रे नजरिया

बड़े तोरे नैना रे प्यारी ।
प्यारी तोरा रस भरा जेवन जोर मोठे मुख
बैना रे प्यारी ।

तड़पत छेला काहे छोड़ चली रे प्यारी
मार गई सैना रे प्यारी ।६०

साँवरे छेला रे नैन की ओट न जाओ ।
तुम बिन देखे मोरे नैना अति व्याकुल
इक छिन मुख न छिपाओ ।

सदा रहो मोरे नयनन आगे बंसी मधुर बजाओ ।
'हरीचंद' पिय प्यासी अँखियन सुंदर रूप दिखाओ ।६१
ना बोलौ मोसों मीत पियरवा जानि गए सब लोगवा ।
तुमरी प्रीत छिपी न छिपाए, अब निबहौंगी बहुत बचाये,
इन दइमारे नयनन पीछे यह भोगन पर्यो भोगवा ।
'हरीचंद' ब्रज बड़े चवाई, कहत एक की लाख लगाई,
कठिन भयो अब घाट-बाट मै हमरो तुमरो सँजोगवा ।६२

एरी सखी ऐसी मोहिं परी लचारी रे ।
का करौं मीत मोहन सों मोलत हि बनि आयो,
पैयाँ परत बिनती करत हा हा खात

बलि बलि जात गिरिधारी रे ।
'हरीचंद' पियरवा निकट आय मेरे पग सों,
रहत मुकुट छुवाय ऐसे छोट लंगरवा सों हारी रे ।६३

राग सिंदूर

भौरा रे रस के लोभी तेरो का फरमान ।
तूरस-मस्त फिरत फूलन पर करि अपने मुख गान ।
इत सों उल डोलत बौरानो किए मधुर मधु-पान ।
'हरीचंद' तेरे फंद न भूलूँ बाल परी पहिचान ।६४

खयाल

न जाय मोसों ऐसो भोका सहीलो ना जाय ।
भुलाओ धीरे डर लगे भारी बलिहारी हो बिहारी,
मोसों ऐसो भोका सहीलो न जाय ।
देखो कर घर मेरी छाती घर घर करै

पग दोड़ रहे थहराय हाय ।
'हरीचंद' निपट मै तो डरि गई प्यारे
मोहिं लेहु भट गरवाँ लगाय ।

न जाय मोसों ऐसो भोका सहीलो ना जाय ।६५

सोरठ

नींदड़िया नहिं आवै, मै कैसी कहूँ एरी सखियाँ ।
'हरीचंद' पिय बिनु अति तड़पै
खुली रहैं दुखियाँ अँखियाँ ।६६

खयाल

सखियाँ री अपने सैयाँ के कारनवाँ हरवा गूँथि गूँथि लाई ।

बाग गई कालियाँ चूनि लाई राँच राँच माल बनाई ।
'हरीचंद' पिय गल पहिराई हँसि हँसि कंठ लगाई । ६७

बिहाग

जागत रहियो वे सोवनवालियो ऐहै कारो चोर ।
आधी रात निखंड गए मैं सुंदर नंद-किशोर ।
लूटन लगिहै जोवन जब तब चलिहै कछु न जोर ।
'हरीचंद' रीती करि जेहै तन-मन-धन सब छोर । ६८

असावरी

एरी लाज निछावर करिहौं जो पिय मिालिहै आज ।
गहि कर सोँ कर गर लपटैहौं करिहौं मन को काज ।
लोक-संक, एकौ नहिं मानौं सब बाधक पर डरिहौं गाज ।
'हरीचंद' फिर जान न देहौं जो ऐहै बृजराज । ६९

ईमन कल्याण

चतुर केवटवा लाओ नैया ।
साँझ भई घर दूर उतरनो नदिया गहिरी मेरो जिय डरपै
अब मैं तेरी लेहूँ बलीया ।
देहौं जोवन-धन उतराई 'हरीचंद' रति करि मन भाई
पैयाँ लागूँ तोरी रे बलदाऊ के भैया ।
गर लगो मेरे पीतम सुवर खिचैया । ७०

पूरबी

प्रानेर बिना की करी रे आमी कोथाय जाई ।
आमी की सहिते पारी बिरह-जंत्रना भारी
आहा मरी मरी बिष खाई ।
बिरहे व्याकुल अति जल-हीन मीन गति
हारि बिना आमि ना बचाई । ७१
बंदरदी वे लड़िवे लगी तेंडे नाल ।
बे-परवाही वारी जी तू मेरा साहवा
असी इत्थों बिरह-बिहाल ।
चाहनेवाले दी फिकर न तुम नूँ
गल्लौं दा ज्वाब न स्वाल ।
'हरीचंद' ततबीर ना सुफदी
आशक बैतुल-माल । ७२

बिहाग वा कलिंगड़ा

मैं तो राह देखत ही खड़ी रह गई
हाय बीत गई सब रतियाँ ।
पिया साँझ के कह गए भयो भोर,
नहिं आए मदन को बाढ़यो जोर,
'हरीचंद' रही पछिताय सीस धुनि
करिके बजर सी छतियाँ । ७३
पिया बिनु मोहिं जारत हाय सखी
देखो कैसी खुली उजियारियाँ ।

चंदा तन लायत बिरह लाय,

कर पाटी पटकत करत हाय,
दुख बाढ़यो सखी नहिं पास कोऊ
व्याकुल बिरहिन सुकुमारियाँ ।
तलफत जल बिनु मछरी सी सेज,
रहि जात पकरि कर सोँ करेज,
'हरीचंद' पिया की याद परै जब
बातें प्यारा प्यारियाँ । ७४

काफी पीलू

क्यों फकीर बनि आया वे, मेरे बारे जोगी ।
नई बैस कोमल अंगन पर काहेँ भभूत
रमाया वे, मेरे बारे जोगी ।
को वे मात-पिता तेरे जोगी
जिन तोहिं नाहिं मनाया वे ।
कांचे जिय कहु काके कारन प्यारे
जोग कमाया वे, मेरे बारे जोगी ।
बड़े बड़े नैन छके मद-रंग सोँ
मुख पर लट लटकाया वे ।
'हरीचंद' बरसाने में चल घर घर
अलख जगाया वे, मेरे बारे जोगी । ७५

गौरी

मोहन मीत हो मधुबनियाँ ।
मतवारो प्यारो रसवादी रसिया छेल चिकनियाँ ।
बटपारो लंगर लड़वारी भरन देत नहिं पनियाँ ।
घाट बाट रोकत 'हरीचंद' नयो बन्यो दधि-दनियाँ । ७६
मोहन प्यारो हो नंद-गैयाँ ।
नित नई अट-पट चाल चलावत देखी सुनी जो नैयाँ ।
लकुट लिए रोकत मग जुवतिन मानत परेहूँ न पैयाँ ।
'हरीचंद' छेला ब्रज-जीवन वाको कोउ न गोसैयाँ । ७७
मोहन बाँको हो गोकुलिया ।
चलत न देत पंथ रोकत गहि चंचल अंचल चुलिया ।
नैन नचावत दधि मटुकिन की करिके ठाला-ठुलिया ।
'हरीचंद' टोना कछु जानत जासों सब बृज भुलिया । ७८

लावनी

बिना उसके जल्वा के दिखाती कोई परी या हर नहीं ।
सिवा यार के, दूसरे का इस दुनिया में नूर नहीं ।
जहाँ मैं देखो जिसे खूब वहाँ हुस्न उसका समझो ।
भलक उसी की सभी माशूकों में यारो मानो ।
जहाँ कोई खुशगुलु मिले तुम वहाँ उसी का बोल सुनो ।
जुलफों को भी उसी का पेंच समझ कर आके फँसो ।
नशीली आँखें वहाँ नहीं हैं जहाँ मेरा मखमूर नहीं ।

सिवा यार के० १२

जहाँ पै देखो नाज गुज़र का उसके सब नखरे जानो ।
देख करिश्मा, उसी सींगे में उसको गरवानो ।
जहाँ हो भोलापन तुम उस भोले को वहाँ पै पहिचानो ।
जुलम जो देखो, तो इस जालिम की बेरहमी मानो ।
बिना उसके इस शीशए-दिल को करता कोई चूर नहीं ।

सिवा यार के० १२

बिना मिले उस मह के भलक माशुकपना आता ही नहीं ।
बगैर उसके, निवानी शक्ल कोई पाता ही नहीं ।
मजाल क्या है दिल छीने उस बिना दिया जाता ही नहीं ।
उसको छोड़ कर, दूसरा आँखों को भाता ही नहीं ।
जितने खूबरू जहाँ में हैं वो कोई उससे दूर नहीं ।

सिवा यार के० १३

वही मेरा माशुक भलक इन बुतों में भी दिखलाता है ।
वही इश्क में, आशिकों को हर तरह फँसाता है ।
कहीं मेहरवाँ बनता है और कहीं जुलम फैलाता है ।
गरज कि हर जा, मुझे वो यार ही नजर आता है ।
'हरीचंद' जो और देखते वो आशिक भरपूर नहीं ।

सिवा यार के० १४ १७९

करि निरुर श्याम सों नेह सखी पछताई ।
उस निरमोही की प्रीति काम नहीं आई ।
उन पहिले आकर हमसे आँख लगाई ।
करि हाव-भाव बहु भाँति प्रीति दिखलाई ।
ले नाम हमारा बंसी मधुर बजाई ।
अब हमें छोड़ के दूर बसे जदुराई ।
कुबरी ने मोहा रहे वहीं बिलमाई ।
उस निरमोही की प्रीत काम नहीं आई १४
हमने जिसके हित लोक-लाज सब छोड़ी ।
सब छोड़ रहे एक प्रीत उसी से जोड़ी ।
रही लोक-बेद घर-बाहर से मुख मोड़ी ।
पर उन नहीं मानी सो तिनका सी तोड़ी ।
इक हाथ लगी मेरे जग बीच हँसाई ।
उस निरमोही की प्रीत काम नहीं आई १२
हम उन बिन सखियाँ बन बन द्रैदत डोलैं ।
पिय प्यारे प्यारे मुख से सब छिन बोलैं ।
जिन कुंजन में हरि हँसि हँसि करी कलोलैं ।
वहाँ ब्याकुल हो हम मूँद मूँद दग खोलैं ।
दे दगा जुदा भए मोहन विपति बढ़ाई ।
उस निरमोही की प्रीत काम नहीं आई १३
क्या करे कोई तदबीर न और दिखाती ।
दिन रोते कटता रात जागते जाती ।

विरहा से सब छिन हाय दहकती छाती ।
कोई उनसे जा यह मेरी बिधा सुनाती ।
'हरिचंद' उपाय न चले रही पछताई ।
उस निरमोही की प्रीत काम नहीं आई १४ १८०

तुम सुनो सहेली सँग की सखी सयानी ।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौ कहौ कहानी ।
एक दिन मैं अँधेरी रात रही घर सोई ।
पलंगों पै इकली और पास नहीं कोई ।
हारि आय अचानक सोए पास भय खोई ।
मुख चूम कस्यो मेरे भुज सों भुज सोई ।
मैं चौंकि उठी लियो गल लगाय सुखदानी ।
पिय यार की मैं कहँ लौ कहौ कहानी १४

एक साँभ अकेली मैं थी गलियों आती ।
लिए अंचल नीचे घर-हित दीआ-बाती ।
आए इतने में सखि मेरे बाल-सँघाती ।
उन दीप बुझाय लगाय लई मोहिं छाती ।
मैं औचक रह गई कियो जोई मनमानी ।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौ कहौ कहानी १२

एक दिन मेरे घर जोगी बन कर आये ।
सिर जटा बढ़ाये अंग भभूत लगाये ।
चड़ सिद्धी नाम ले हर को अलख जगाए ।
मैं भिच्छा ले गई तब मुख चूमि लुभाए ।
बोले भिच्छा थी मुझे यही मेरी रानी ।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौ कहौ कहानी १३

जब मिले जहाँ हँसि लीनो चित्त चुराई ।
मुख चूमि भए बलिहार कंठ रहे लाई ।
बिनती कर बोले सदा प्रीति दिखलाई ।
सपने में भी नहीं देखी कभी रुखाई ।
रहे सदा हाथ पर लिये मुझे दिल-जानी ।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौ कहौ कहानी १४

एक दिन कुंजों में साथ दूसरी नारी ।
अपने सुख बैठे थे मिलकर गिरिधारी ।
मैं गई तो सकुचे भट यह बुद्धि बिचारी ।
बोले यह आई तुमहिं मिलावन प्यारी ।
तुम घर भेजन को बिनती करि यहि आनी ।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौ कहौ कहानी १५
मेरे मुख में पिय ने सब दिन सुख माना ।
मुझे अपना जीवन प्रान सदा कर जाना ।
मेरे हित सब सखियों का सहते ताना ।
मुरभाए जो मुख मेरा कुछ मुरभांना ।
गुन लाख एक मुख कैसे बोलौ बानी ।

पिय प्यारे की मैं कहूँ लौं कहाँ कहानी । ६

वह बन बन बिरहन कुंज-कुंजतरु पाते ।

वह गल भुज डालन प्रीत-रीत की बातें ।

वह चंद चाँदनी और निराली रातें ।

एक एक की सौ सौ जी में खटकती बातें ।

'हरीचंद' बिना भई रो रो हाय दिवानी ।

पिय प्यारे की मैं कहूँ लौं कहाँ कहानी । ७ । ८१

दुख किस्से कहूँ कोई साथ न सखी सहेली ।

मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली ।

मैं पिय बिनु तड़पूँ हाय पास नहीं कोई ।

रही सपने की सपन सी सब मुँह खोई ।

जो मैं पिय बिनु नहीं कभी पलंग पर सोई ।

सोइ आज सेज सूनी लाख दुख सों रोई ।

जंगल सी मुझको लगती हाय हवेली ।

मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली । ११

मेरे बाल-सनेही मुझको छोड़ सिधारे ।

तड़पूँ व्याकुल मैं विन वृज के रखवारे ।

कहाँ बिलामि रहे किन मोहे पीय हमारे ।

नहीं खबर मिली भये निपट निटुर पिय प्यारे ।

यह बिरह-विधा नहीं जाती है अब भेली ।

मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली । १२

मेरा बाला जीवन पड़ी विपति सिर भारी ।

दिन कैसे काटूँ भई उमर की खवारी ।

यह नई आपदा सिर से जात न टारी ।

कहाँ गए हाय मुझे छोड़ पिया गिरधारी ।

भई उन विन मैं मुरझाय जली ज्यों वेली ।

मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली । १३

गए सुरत भूल नहीं पाती भी भिजवाई ।

कर याद पिया की हाय आँख भरि आई ।

साँपन सी सेज घर बन सों परत दिखाई ।

बीना भया भारी दामोदर दुखवाई ।

'हरिचंद' बिना भई जोगिन दे गल सेली ।

मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली । १४ । ८२

वही तुम्हें जाने प्यारे जिसको तुम आप ही बतलाओ ।

देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ ।

क्या मजाल है मेरे नूर की तरफ आँख कोई खोले ।

क्या समझे कोई, जो इस भगड़े के बीच आकर बोले ।

खयाल के बाहर की बातें भला कोई क्योंकर तोले ।

लौकिक क्या है, मु'अम्मा तेरा कोई हल कर जो ले ।

कहाँ खाक यह कहाँ पाक तुम भला ध्यान में क्यों आओ ।

देखे वही बस जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ । १५

गरचे आज तक तेरी जुस्तजू खासो आम सब किया किये ।

लिखीं किताबें हज़ारों लोगों ने तेरे ही लिये ।

बड़े बड़े भगड़े में पड़े हर शस्त्र ज्ञान रहते थे दिये ।

उम्र गुजारी, रहे गलतों पेचाँ जब तक कि जिये ।

परम तुम ही वह शै कि किसीके हाथ कभी क्यों कर आओ ।

देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ । १६

पाँहले तो लाखों में कोई बिरला ही भुक्ता है इधर ।

अपने ध्यान में, रहा वह चूर भुका भी कोई अगर ।

पास छोड़कर मजहब का खोजा न किसी ने तुम्हें मगर ॥

तुमको हाज़िर, न पाया कभी किसी ने हर ज़ा पर ।

दूर भागते फिरते तो कोई कहाँ से पाए बनलाओ ।

देखे वही बस जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ । १७

कोई छोट कर ज्ञान फूल के ज्ञानी जी कहलाते हैं ।

कोई आप ही, ब्रह्म बन करके भूले जाते हैं ।

मिला अलग निरगुन व सगुन कोई तेरा भेद बताते हैं ।

गरज कि तुमको, ढूँढ़ते हैं सब पर नहीं पाते हैं ।

'हरीचंद' आपनों के सिया तुम नजर किसीके क्यों आओ ।

देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ । १८ । ८३

चाहे कुछ हो जाय उम्र भर तुमको प्यारे चाहेंगे ।

सहेंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निबाहेंगे ।

तेरी नजर की तरह फिरंगी कभी न मेरी यार नजर ।

अब तो यों ही, निर्भेगी यों ही जिन्दगी होगी बसर ।

लाख उठाओ कौन उठे है अब न छुटेगा तेरा दर ।

जो गुजरेंगी, सहेंगे करेंगे यों ही यार गुजर ।

करोगे जो जो जुलम न उनको दिलबर कभी उलाहेंगे ।

सहेंगे सब कुछ मुहब्बत दम तक यार निबाहेंगे । १९

आह करेंगे तरसों गम खायेंगे चिल्लायेंगे ।

दीन व ईमाँ बिगाड़ेंगे घर-बार डुबायेंगे ।

फिरेंगे दर दर बे-इज्जत हो आवारे कहलायेंगे ।

रोएंगे हम हाल कह औरों को भी रुलायेंगे ।

हाय हाय कर सिर पीटेंगे तड़पेंगे कि कराहेंगे ।

सहेंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निबाहेंगे । २०

रुख फेरो मत मिलो देखने को भी दूर से तरसाओ ।

इधर न देखो, रकीबों के घर में प्यारे जाओ ।

गाली दो कोसो फिड़की दो खफा हो घर से निकलवाओ ।

कल्ल करो या नीम-बिस्मिल कर प्यारे तड़पाओ ।

जितना करोगे जुलम हम उतना उलटा तुम्हें सराहेंगे ।

सहेंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निबाहेंगे । २१

होके तुम्हारे कहाँ जाँय अब इसी शर्म से मरते हैं ।

अब तो यों ही, जिन्दगी के बाकी दिन भरते हैं ।

मिलो न तुम या कत्तल करो मरने से नहीं हम डरते हैं ।
मिलोगे तुमको, बाद मरने के कौल यह करते हैं ।
'हरीचंद' दो दिन के लिये घबरा के न दिल को डायेंगे ।
सहेंगे सब कुछ मुहब्बत दम तक यार निवाहेंगे । १४।८४

बाल या दिल के बवाल दिलबर ने मुखड़े पर डाले हैं ।
जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं ।
छल्लेदार छलीले लम्बे लम्बे यह छहराते हैं ।
बल खा खा कर, फंद में अपने दिल को फँसाते हैं ।
चिलकदार चुनवारे गिंदुरी से होकर रह जाते हैं ।
हिल हिल करके कभी यह अपनी तरफ बुलाते हैं ।
पेचदार खम खाये उलभे सुलभे घूँचरवाले हैं ।
जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं । ११
कहूँ इश्क-पेचाँ आशिक को पेच में भी यह लाते हैं ।
फाँसी भी हैं, मुसाफिर को बेतरह फँसाते हैं ।
जाल हैं यह जंजाल से सबको जाल में कर जाते हैं ।
जादू की यह, गिरह हैं दिलको अजब भुलाते हैं ।
काले काले गुज़ब निकाले पाले क्या यह काले हैं ।
जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं । १२
देख इनको तलवार ने खम दम म्यान में

मुँह को छिपा दिया ।

भौरो ने भी, न इन सा हो के गूँजना शुरू किया ।
हजार सिर बुलबुल ने पटका हुई न ऐसी साँवलिया ।
सिवार ने भी शर्म से पानी में मुँह डुबा लिया ।
मुश्क से खुशबू में रेशम से चमक में ये चौकाले हैं ।
जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं । १३
बंसी हैं दिल के शिकार को लालच देके फँसाने के ।
छींके हैं यह, लटकते दोनों दिल लटकाने के ।
आँकुस की है नोक ज़िगर से खींच के दिल को लाने के ।
जंजीरों से यह बड़ कर दिल को कैद कर जाने के ।
दिल के दुखाने को बीछ के डंक से भी जहरीले हैं ।
जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं । १४
तुम्हें नूर की शमा कहूँ तो धुआँ इन्हें कहना है बजा ।
रुखसारों पर यः दोनों चँवर दला करते हैं सदा ।
यह वह उक्ता है जो किसी से अब तक प्यारे नहीं खुला ।
कहूँ मुआम्मा, तो इसमें नहीं बाल भर फर्क जरा ।
दिल के पहुँचने को गालों तक कर्मद दोनों डाले हैं ।
जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं । १५
इनमें जो आकर फँसा वह फिर न उग्र भर कभी छुटा ।
बला हैं बस ये हमेशा इनसे बचाये दिलको खुदा ।
जंत्र मंत्र कुछ लगा न उसको जिसको इन साँपों ने डँसा ।
'हरीचंद' के, जुल्फ में दिल अब तो बेतरह फँसा ।

भूल-भुलैयाँ से उलभे चिकने महीन चमकीले हैं ।
जुल्फ के फंदे, तुम्हारे सबसे यार निराले हैं । १६।८५
आँखों में लाल डोर शराब के बदले ।
हैं जुल्फ छुटीं रुख पर निकाब के बदले ।
नित नया जुल्म करना सबाब के बदले ।
फिड़की देना हर दम जवाब के बदले ।
त्योरी में बल बालों के ताब के बदले ।
खून में रँगना कपड़ा शहाब के बदले ।
सब ढंग आज-कल हैं जनाब के बदले ।
हैं जुल्म छुटीं रुख पर निकाब के बदले । ११
पीते हैं ज़िगर का खून आब के बदले ।
खाते हैं सदा हम गम कबाब के बदले ।
खुशबू तेरी सूँधी गुलाब के बदले ।
लेते हैं नाम तेरा किताब के बदले ।
तब रूपोशी यह किस हिसाब के बदले ।
हैं जुल्फ छुटीं रुख पर निकाब के बदले । १२

ह्याँ सदा जईफी है शबाब के बदले ।
मस्तों से मिले बस शेखों शाब के बदले ।
रातों जो जागते रहे छाब के बदले ।
नागिन जिस पर अब है सहाब के बदले ।
मुँह तेरा देखा माहताब के बदले ।
हैं जुल्म छुटीं रुख पर निकाब के बदले । १३
दिन कभी न इस खान खराब के बदले ।
मरना बेहतर इस इजतिराब के बदले ।
हो 'हरीचंद' पर खुश अताब के बदले ।
कर अब तो रहम अज़ाब के बदले ।
क्यों नए चोचले हैं हिजाब के बदले ।
हैं जुल्फ छुटीं रुख पर निकाब के बदले । १४।८६

(सपने में बनाई हुई)

मोहिं छोड़ि प्राण-पिय कहूँ अनत अनुरागे ।
अब उन बिनु छिन छिन प्राण दहन दुख लागे ।
रहे एक दिन वे जो हरि ही के सँग जाते ।
वृन्दावन कुंजन रमत फिरत मदमाते ।
दिन रैन श्याम सुख मेरे ही सँग पाते ।
मुफे देखे बिन इक छन प्यारे अकुलाते ।
सोइ गोपीपति कुबरी के रस पागे ।
अब उन बिनु छिन छिन प्राण दहन दुख लागे । ११
कहाँ गई श्यामा की वे मनहरनी बातें ।
वह हैमि हैसि कंठ-लगावनि करि रस-घातें ।
वह जमुना-तट नव कुंज कुंज हुम पातें ।
सपने सी भई अब वे बिहरन की रातें ।

सहि सकत न काँठन बियोग-अग्नि तन दागे ।
 अब उन विनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे । १२
 पहिले तो सुंदर मोहन प्रीति बढ़ाई ।
 सब ही विधि प्यारे अपनी करि अपनाई ।
 सुख है बहु भाँतिन नित नव लाइ लाइ ।
 अब तोड़ि प्रीति मोहिं छोड़ि गए ब्रजराई ।
 संजोग-रैन बीतत बियोग-दुख जागे ।
 अब उन विनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे । १३
 क्या कहै सखी कुछ और उपाय बताओ ।
 मेरे पीतम प्यारे मुझसे आन मिलाओ ।
 जिय लगी विरह की भारी अग्नि बुझाओ ।
 मैं बुरी मौत मर रही मिलाइ जिलाओ ।
 'हरीचंद' श्याम-संग जीवन-सुख सब भागे ।
 अब उन विनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे । १४ । ८७

जबतक फँसे थे इसमें तबतक दुख पाया औ बहुत रोए ।
 मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए ।
 बिना बात इसमें फँस कर रंज सहा हैरान रहे ।
 मजा बिगाड़ा, अपना नाहक ही को परेशान रहे ।
 इधर उधर भगाड़े में पड़े फिरते बस सर-गरदान रहे ।
 अपना खोकर, कहाते बेवकूफो नादान रहे ।
 बोफ फिक्र का नाहक को फिरते थे गरदन पर छेए ।
 मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए । १२
 मतलब की दुनिया है कोई काम नहीं कुछ आता है ।
 अपने हित को, मुहब्बत सब से सभी बढ़ता है ।
 कोई आज औ कल कोई सब छोड़ के आखिर जाता है ।
 गरज कि अपनी गरज को सभी मोह फैलाता है ।
 जब तक इसे जमा समझे थे तब तक थे सब कुछ खोए ।
 मुँह काला कर बखेड़े का हम भी सुख से सोए । १२
 जिसको अमृत समझे थे हम वह तो जहर हलाहल था ।
 मीठा जिसको जानते थे वह इनारु का फल था ।
 जिसको सुख का घर समझे थे वह तो दुख का जंगल था ।
 जिनको सच्चा समझते थे वह भूठों का दल था ।
 जीवन फल की आशा में उलटे हमने थे विष बोए ।
 मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए । १३
 जहाँ देखो वही दगा और फरेव और मक्कारी है ।
 दुख ही दुख से, बनाई यह सब दुनिया सारी है ।
 आदि मध्य ओ अंत एक रस दुख ही इसमें जारी है ।
 कृष्ण-भजन विनु, और जो कुछ है वह खारी है ।
 'हरीचंद' भय पंक छूटे नहीं बिना भजन रस के धोए ।
 मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए । १४ । ८८

पिय प्राननाथ मनमोहन सुंदर प्यारे ?

छिनहैं मत मेरे होहु दृगन सो न्यारे
 वनश्याम गोप-गोपी-पति गोकूल-राई
 निज प्रेमीजन-हित नित नित नव सुखदाई ।
 वृन्दावन-रच्छक ब्रज-सरबस बलभाई ।
 प्रानहैं ते प्यारे प्रियतम मौत कन्हाई ।
 श्री राधानाथक जसुदानंद दुलारे ।
 छिनहैं मत मेरे होहु दृगन सो न्यारे ।
 तुव दरसन विन तन रोम रोम दुख पागे ।
 तुव सुमिरन विनु यह जीवन बिष सम लागे ।
 तुमरे संयोग विनु तन बियोग दुख दागे ।
 अकुलात प्रान जब काँठन मदन मन जागे ।
 मम दुख जीवन के तुम हो इक रखवारे ।
 छिनहैं मत मेरे होहु दृगन सो न्यारे ।
 तुमहीं मम जीवन के अवलंब कन्हाई ।
 तुम विनु सब सुख के साज परम दुखदाई ।
 तुव देखे ही सुख होत न और उपाई ।
 तुमरे विनु सब जग सूनों परत लखाई ।
 हे जीवनधन मेरे नैनों के तारे ।
 छिनहैं मत मेरे होहु दृगन सो न्यारे ।
 तुमरे-विनु इकछन कोटि कलाप सम भारी ।
 तुमरे-विनु स्वरगहु महा नरक दुखकारी ।
 तुमरे संग बनहु घर सो बड़ बनवारी ।
 हमरे तो सब कुछ तुमही हो गिरधारी ।
 'हरिचंद' हमारे राखो मान दुलारे ।
 छिनहैं मत मेरे होहु दृगन ते न्यारे । ८९

बरवा

(धुन-‘मोरि तो जीवन राधे’ इस चाल पर)

मोहन दरस दिखा जा ।
 ब्याकुल अति प्रान-प्यारे दरस दिखा जा ।
 बिछुरी मैं जनम जनम की फिरी सब जग छान ।
 अबकी न छोड़ों प्यारे यही राखो है ठान ।
 'हरीचंद' बिलम न कीजै दीजै दरसम दान । ९०

दरस मोहिं दीजै हो पिय प्रान ।
 दरस दीजै अघर पीजे कीजै परस सुजान ।
 तुम विनु ब्याकुल धीर न आवत लीजै अरज यह मान ।
 'हरीचंद' मोहिं जानि आपनी करिये जीवन दान । ९१

पूरबी रेखता

हमें दरसन दिखा जाओ हमारे प्रान के प्यारे ।
 तेरे दरसन को ऐ प्यारे तरस रहीं आँख बरसों से ।
 इन्हें आकर के समझाओ हमारे आँखों के तारे ।

सिथिल भई हाथ यह काया है जीवन ओठ पर आया ।
भला अब तो करो माया मेरे प्रानों के रखवारे ।
अरज 'हरिचंद' की मानो लड़कपन अभी भी मत ठानो ।
बचालो प्रान दरसन दो अजी ब्रजराज के बारे १९२

तुम्हारी

पियारे सैयाँ कौने देस रहे रूसि
जोवना को सब रँग चुसि ।
'हरीचंद' भये निठुर श्याम
अब पहिले तो मन मूसि १९३

पियारे पिया कौन देश रहे छाया ।
का पर रहे बिलामाय ।
मेरी सुध बिसराय प्रेम सब जिय सों दूर भुलाय ।
'हरीचंद' पिय निठुर बसे कित जोगिन हमहि बनाय १९४
पिया प्यारे तोहि बिनु रह्यो नहि जाय ।
कौन सो करौ मैं उपाय ।
कहत 'चंद्रिका' धाड़ मिलो अब लेहु गये लपटाय १९५
आओ पिया प्यारे गये लागि जाओ ।
काहें बिअ तरसाओ, कहत 'चंद्रिका' धाड़ मिलो
अब जिय की जरनि जुड़ाओ १९६

खेमटा

अब ना आओ पिया मोरि सेजरिया ।
जात बिदेस छोड़ि तुम हमकों
हनि हनि हिय मैं विरह कटरिया ।
कहत 'चंद्रिका' हरीचंद पिय जाओ
वहीं जहाँ लाए नजरिया १९७

रेखता

मोहन पिय प्यारे टुक मेरे ढिग आव ।
बारी गई सूरत के बदन तौ दिखाव ।
तरस गए अंग अंग गर मैं लपटाव ।
तेरी मैं चेरी मुझे मरत सों जिलाव ।
वही रूप वही अदा दीने निज घाव ।
प्यारे ! 'हरिचंदहि' फिर आज भी दरसाव १९८
दिलदार यार प्यारे गलियों में मेरे आ जा ।
आँखें तरस रही हैं सूरत इन्हें दिखा जा ।
चेरी हूँ तेरी प्यारे इतना तो मत सता रे ।
लाखों ही दुख सहा रे टुक अब तो रहम खा जा ।
तेरे ही हेत मोहन छानी है खाक बन बन ।
दुख भेले सर प : अनगन अब तो गले लगा जा ।
मन को रहूँ मैं मारे कब तक बता दे प्यारे ।

सूखे विरह में तारे पानी इन्हें पिला जा ।
सब लोक-लाज छोई दिन-रैन बैठ गई ।
बिसका कहीं न कोई उसका नो जी बचा जा ।
मुझको न यों भुलाओ न उ शर्म जी में लाओ ।
अपनों को मत सताओ ए प्रान-प्यारे राजा ।
'हरिचंद' नाम प्यारी दासी है जो तुम्हारी ।
मरती है वह बिचारी आकर उसे जिला जा १९९
बंसी बजा के हम को बुलाना नहीं अच्छा ।
घर-बार को यों हमसे छुड़ाना नहीं अच्छा ।
घर-बार छुड़ाने हो तो फिर हमको न छोड़ो ।
अपनों को यों दामन से छुड़ाना नहीं अच्छा ।
करना किसी पै रहम इक अदना सी बात पर ।
मुतलक किसी पै ध्यान न लाना नहीं अच्छा ।
हम तो उसी में खुश हैं खुशी हो जो तुम्हारी ।
फिर हम से छिपा कर कहीं जाना नहीं अच्छा ।
गाओ जो चाहो बंसी में हैं राग हजारों ।
रट नाम की मेरे ही लगाना नहीं अच्छा ।
मिल जायेंगे हम कूज में मौका जो मिलेगा ।
गलियों में हमारे सदा आना नहीं अच्छा ।
'हरिचंद' तुम्हारे ही हैं हम तो सभी तरह ।
यों अपने गुलामों को सताना नहीं अच्छा १९००

अथ बंगला गान

प्रानप्रिव शशि-मुख बिदाय दाओ आमारे ।
शून्य देह लोए जाओ प्रान दिये तोमारे ।
करि हे बिनय हइया सदय आमारे
बिदाय दाओ जाई देशांतरे ११
प्राननाथ निदय हय बिदाय चेओ ना ।
तोमा बिन प्रान, नाहिं रवे प्रान ।
किसे पाव व्रान आमाय बलो ना ।
आमि हे अबला, ताहा ते सरला,
बिरह-ज्वाला, प्राने सबे ना १२
जाई जाई करे नाथ दिओ नाहे जातना ।
तोमार बिच्छेदे ए जीवन रवे ना ।
पुनः ए नयन शशांक-बदन करिबे
दर्शन कबे ओहे बलो ना ।
तोमारे ना हेरे प्रान जेकी करे कि कब
तोमारे, तुमि किये भावना १३
प्राननाथ बिदेशे त जेते दिबना ।
जाबे जाओ कांत किंतु हे नितान्त,
आमारे एकांत, आर कांत पाबे ना ।
तोमार विहन, ए छार जीवन,

ओ प्रानधन आर रवे ना १४

आर जातना प्रान सहे ना ।

सदा मन उचाटन, भरिछे दु नयन,
कांत बुझिण जीवन, आमार आर रवे ना ।
हाए एमन समय, कोथा ओहे रसमय,
हइया अति सदय, आछ प्रान बलो ना १५

प्राननाथ देखा दाओ आसि अबलाय ।
जे दुःख पेटेछि आमि, मन जाने आर,
आमि जानि आरि जानेन ईश ।
जिनि के मने आमि जानाव तोमाय १६

आमार जे दशा माय आसिया हे देख ना ।
हरिश्चंद्र नाथ जार, केन हेन दशा तार,
बल ओहे गुनि-मनि, आमार हे बलो ना ।
सदा मन उचाटन, दहिते छे जीवन मन,
असह्य 'चंद्रिका' जीवने सहेना यातना १७

कोथाय रहिल सखि से गुन-मान ।
विच्छेद यातना, आर जे सहेना ।

कि करि बल न ओ प्रान सजनी ।
केमने एखन, धरिब जीवन ।

से कांत विहन बल ओ धनी १८
हाय विधि एत मोरे केन निर्दय ।
अमूल्य रतन करिया अर्पन,

केन गो हरन ताहारे कराय ।
मम प्रान-धन, हृदय-रतन

रमनी-मोहन कोथाय गो जाय १९
तुमि कर के तोमार कारे बल रे मन आपन ।
मिछा ए संसार माया जुड़े आछे त्रिभुवन ।
बारा सुल परिवार संगे कि जावे तोमार ।
जखन तुमि मुँदवे दु नयन १२०
ओरे हरि दयामय !

ए भव-जंत्रना, आर जे सहे ना ।
करिया करुना, उधारो आमाय १२१
ओहे नाथ करुनामय !

प्रभु हरि दयामय, दया करो ए जनाय,
नामे ना कलंक रय उद्धारो तराय ।
आमि अति मूढ़ मति, न जानी भक्ति स्तुति,
कि हवे आमार गति, बल गो आमाय १२२

मन केन रे भाव एत ।
ओई जे दिवा-निशि भावछ बसी,
जेन बुधि हुए छे हत ।
एतेक, भावना, किसेर कारन,

हवे बूझि पागलेर मत १२३

आमार नाथ बड़ दयामय ।

करुना-आकर दयार सागर

दयामय नाम जगत भीतर ।
एक मुखे गुन वर्णना जे भार,
कहि छे 'चन्द्रिका' भाविया हृदये १२४

कलिंगड़ा एक-ताला

ओ प्रान नयन-कोने चाईले एरे क्षति कि आछे ।
आमार केदे सोहाग जेचे मान तोमार काछे ।
जया इच्छा तथा जावो, सदत हृदय रओ ।
तोमार विहन कओ, आमार के आछे १२५

सिंधु धीमा तिताला

ए सोहाग आर आमार काज नाई ।
सदत हृदय जे ज्वाला पाई ।
हृदय दहन जायगो जीवन ।
कि करि एखन बल गोसाई १२६

प्राननाथ कि बले छिले ।
ए दारुण ज्वाला हृदये केन गो दिले ।
हृदय माफे त राखिब तोमाय ।
सदत बलिते नाथ हे अमाय ।
से सब कथन रहिल कोथाय ।
भेवे देख प्रान कि करिले १२७

कोथाय रहिले प्रान एमन बरखा ते ।
देख घन घन, बरिये नयन, अबलारे भिजाते ।
बल ओरे प्रान, तोमाय कोन जन,

शिखाले एमन आमार केदिते ।
'चंद्रिका' जे बले नाथ कि करिले ।
अबला बघिले बुझि हे प्रानेते १२८

आदरे आदरे भालो तो छिले ।
जे तोमार अनुगत तार कि करिले ।
नव जलाधर तुमि तृपित चार्ताक आमी,
ओहे प्राननाथ कोथा वारि बिन्दु बरपिले ।
प्रान-प्रिय प्रान-धन, बल जातना एमन,
'चंद्रिका' हृदये केन गो दिले १२९

ओहे हरि जगतेर पति ।
दया कर दयामय आमि दीन हीन अति ।
लाए छे शरण चरणे जे जन,

रूपट कि कारण ताहार प्रति ।
नाम दयाकर जगत भीतर कि

हवे आमार बल गो गति १२०

आशाय आशाय भालो जातना दिले ।
जाओ तथा गुन-मनि जथा निश पोहाईले ।
से धनि तोमार धनि तुमि तार प्रेमे रिणौ,
बाँधा आछ गुनमनी तवे हेथा केन आसिले । ११

तोमाय भुलिब केमने ।
हृदय अकिंत छवि अति यतने ।
दिवा निश मुख देखि हृदय आदरे राखि,
प्राण सदा एई वासना मने । १२

एक बार भाव ओरे मन ।
शेषर से दिन तव निकट एखन ।
दिन दिन हीन बल मन हणछे दुखल,
गेगेर अति प्रबल भये भीत हणछे जीवन । १३

एतेक जीवने केन मरन वासना ।
बुझि कपालेर दोषे विधर विडम्बना ।
केन रे अवोध मन कर कामना एमन,
से दुःख तव कारन बुझि ताहा जान ना । १४
एखनि एमन हवे स्वपने छिल ना ज्ञान ।
ना होते मिलने सुख आगे ते जाइवे प्राण ।
जन्म जन्मांतरे जेन पाई प्राणनाथ हेन ।
विधर काछे एई मोर शेष अकिंचन । १५

किछु सुख होलो जीवने ।
प्राणनाथ भुलाएछे सेई नवीने ।
आमार अभाव काले विरह वेदना ज्वाले,
आघात हवे ना तार कोमल हृदय-
स्थाने एई भवे सुखमने । १६
नव प्रेमे प्रेमी होते कर वासना ।
बल बल ओरे प्राण मोरे बल ना ।
एई प्रेमे प्रेमी होले मम चिंता जावे चले,
ईहा तेई जावे मोर हृदि-वेदना ।
तोमाय पाब जन्मान्तरे एई आशा हृदे कोरे ।
प्राण जावे आर जावे हृदि जातना । १७

सेई जे आमाय तोमाय छिल कथा मने आछे कि ना बल ।
सेई जे छिल जत भाल बासा मने आगे कि ना आछे बल ।
कत कत छिल मने आशा कत छिल हृदे भालो बासा ।
शेषे होली आशा नैराशा मने आछे कि या आछे बल ।
हृदये दिए छ कतेक व्यथा मने आछे कि ना आछे बल ।
तुमि हे कि कछु किछुई जान ना मम मने आछे सब वेदना ।
आमि हृदये पेयेछि व्यथा नाना मने आछे कि ना आछे बल ।
दिए छिल-तक 'चंद्रिका' बाजा ओहे चंद्र तव प्रेमे बाधा ।
आछे मन प्राण सब साधा मने आछे कि ना आछे बल । १८

हेरिब सतत सखी कालई बरन ।

मने पड़े जेन सदा से नील रतन ।
मृगमः सिरे कज्जल नयन तीरे,
नित्य नील वर्ण चीरे आच्छादित तन ।
'हरिश्चंद्र' मुख सदा कृष्ण नामे आछे साधा
से पमे अंतर बाधा कृष्ण पदे आछे मन । १९
जाओ ओहे गुनिमनि ऐ कि काज करिले ।
आमार प्राणेरे छवि काड़िते बसिले ।
मर्माधिक प्राण-प्रिय के आछे तोमार प्रिय ।
आमार भाल बासा छवि कारे दिते निए छिले ।
'चंद्रिका' बले बल ना केन करहे छलना ।
रक्षित छवि ते मम तुमि केन हाथ दिले । २०

राखो हे प्राणेश ए प्रेम करिया जतन ।
तोमाय करेछि समर्पन ।
जत दिन रवे प्राण श्रीचरने दिओ स्थान,
हरिश्चंद्र प्राण-धन एई अकिंचन ।
'चंद्रिका' हृदय-धन नाहिक तोमा बिहन,
नव करे ते आपने करेछि जीवन मन । २१
धाकिते जीवन मन नाथ ए कि करिले ।
आमार आशार प्रेम कारे तुमि दान दिले ।
'चंद्रिका' हृदय-मन तव करे समर्पन ।
तार हृदि हरिधन कारे प्राण दिते निले । २२

आमाय भालो बेशे आर तोमार काज नाई ।
तुम अन्य प्राण ज्वले आमाय भालो बास बोले ।
सदा भासि आँख जले हृदे नाना दुःख पाई ।
विदाय दाओ गुनमनी सजब एबे सन्यासिनी ।
हव नाथ विदेशिनी सुख पथे दिया छाई ।
हरिश्चंद्र प्राण-धन 'चंद्रिकार' निवेदन,
वासना एमन मन विदेशे ते प्राण जाई । २३

ऐ प्रेम राखिते केन करिछ जतनो रे ।
सेई प्रेम राखा गया जथा बाँधा मनो रे ।
सेई विनोदिनी धनि तुमि तार प्रेमे रिणी,
बाँधा आछो गुनमनि ताहारई प्रेम-होरे ।
छाड़ो एई प्रेम आशा जाना गेल भालो बासा,
हृदय सब नैराशा 'चंद्रिकार' एखनो रे । २४
मिछा केन दिते आश प्रेमेरे परिचय ।
सतिनेर छवि आँकि आपन हृदय ।
प्रेम कथा बलि प्राण कोरो ना आर जालातन,
राख गया प्राणधन ताहार जा आज्ञा हय ।
हरिश्चंद्र प्राण-पति तुमिरे निर्दय अति,
'चंद्रिकार' नाहे गति जानिनु निश्चय । २५

आज आमार होलो सुप्रभात ।

नवीन वत्सरे पद दिल प्राननाथ ।
ओ वत्सरे दिन हेन विधि पुनः देन जेन ।
घरे ए बासना मन पूर्ण करे जगन्नाथ ॥३६॥

आज किया सुख होलो जीवन ।
बेचे छिले ताई जीवन पाईले दिन ऐमन ।
प्राननाथेर जन्म दिन दिल दरसन ।
देख 'चंद्रिकार' आज किया सुख हृदि माफे,
आनंदेर आज साज सेजे छे मन ॥३७॥
कि आनंदेर दिन आज हेरिनु नयने ।
इहार समान दिन नहिक ए भुवने ।
हरिश्चंद्र प्रानपति आज तारे जन्म-तिथि,
विधि सुख दिल अति आजि 'चंद्रिका' मने ॥३८॥

एई दिन पुनः हेरि मने बासना ।
नवीन वत्सरे आई पद दिले हृदिराज,
तारे सुखे राखुन प्रभु एई कामना ।
पुनः एई दिन हेरी एकांत बासना करी,
'चंद्रिका' हृदय आज सुख उपजिल नाना ॥३९॥

शुनियाछि तव कृपा पतित-गामिनी ।
पाइवे कोयाये तवे पतित आमार तुल्य,
पाप मात्र कर्म जार दिवस-यामिनी ।
सर्वस्व स्वरूप जार मिथ्याचार व्यवहार,
हिंसा छल दूत मद्य मांस ओ कामिनी ॥४०॥
निभूत निशीथे सई ओ बांशी बाजिल ।
पूरित करिया बन भेदिया गगन घन,
जे कांपाईया समीरन मधुर रवे गाजिल ।
स्तमित प्रवाह नीर ताड़ित मयूर कीर,
भँकारिया तरुगन एक तान साजिल ।
'हरिश्चंद्र' श्याम-बांशी-स्वर कामदेव फांसी,
कुलबधु सुनियाई आर्यपथ त्याजिल ॥४१॥
कोथाय आछ ओहे प्रिय अबला-जीवन ।

प्रानधन श्याम-धन ।
नव-नील-वर्ण-तन पूर्ण-चंद्र-निमानन ।
कृजित वंशिकास्वन प्रसन्न-बदन ।
कर दुःख बिनाशन ओहे गोपिका-रमन ।
आशिया श्रीबृंदावन दाओ दर्शन ।
'हरिश्चन्द्र' निवेदन सुन दिया किछु मन ।
आई पदे समर्पण आछे गो जीवन ॥४२॥

सई मजाले मजाले श्याम मजाले आमाय ।
सतत बांशीर ध्वनि करे मोरे पागलिनी,
सई काँदाले काँदाले श्याम काँदाले आमाय ।
बांशी ते गहन बने डाके काला घने घने,

सई मताले मताले श्याम मताले आमाय ॥४३॥

केह जाओ गो जाओ मधुपुरि ते ।
बुभाईए सई प्रानेर श्यामे आनिते ।
बल पिया प्रानधने राधा जे बाँचे ना प्राने ।
तोमार विच्छेद-बान नाहिं पारे सहिते ॥४४॥

मदन-मोहन मधु-सूदन दयामय ।
बालि शुन गुनमनि सेथा राधा विनोदिनी ।
विरहे व्याकुल धनि चल गो तराय ॥४५॥
ओहे श्याम आछे कि आर आमाय मने ।
सुन हे श्याम त्रिभंग दिया ए प्रनय भंग ।
सेयाय कुबजा संग भूले ए दुःखिनी जने ।
सुन हरि प्रानधन आमार ए निवेदन ।
आर कि ओहे दर्शन दिबे नाए बृन्दाबने ॥४६॥

गजल

तेरी सूरत मुझे भाई मेरा जी जानता है ।
जो भलक तूने दिखाई मेरा जी जानता है ।
अरे जालिम तेरे इस तीरे निगह से हमने ।
चोट जैसी कि है खाई मेरा जी जानता है ।
खायँ जहर नहीं डूब मरेंगे जाकर ।
जो है कुछ जी में समाई मेरा जी जानता है ।
कत्त करके न खबर ली मेरे कातिल अफसोस ।
जाँ इसी दुख में गँवाई मेरा जी जानता है ।
प्यार की वह तेरी चितवन व नशीली आँखें ।
दिल को किस तरह हैं भाई मेरा जी जानता है ।
दे के जी और पै जीने का मजा खो बैठे ।
जीते जी जी पै बन आई मेरा जी जानता है ।
सब्र की फौज के बा उठ गए दिल हार गया ।
आँख तूने जो लड़ाई मेरा जी जानता है ।
ख्वाब सा हो गया शब को तेरी सुहवत का खयाल ।
रात वह फेर न आई मेरा जी जानता है ।
दाग दिल पर य होगा कि तेरे कूचे तक ।
थी 'रसा' की न रसाई मेरा जी जानता है ॥१॥
दिल मेरा ले गया दगा करके ।
बेवफा हो गया वफा करके ।
हिज्र की शब घटा ही दी हमने ।
दास्ताँ जुल्फ की बढ़ा करके ।
शुअलारू कह तो क्या मिला तुझको ।
दिलजलों को जला जला करके ।
वक्ते रेहलत जो आए बालीं पर ।
खूब रोए गले लगा करके ।
सर्व कामत गजब की चाल से तुम ।

क्यों क्यामत चले बपा करके ।
 खुद वखुद आज जो वो बुत आया ।
 मैं भी दौड़ा खुदा खुदा करके ।
 क्यों न दावा करे मसीहा का ।
 मुदे' ठोकर से वह जिला करके ।

क्या हुआ यार छिप गया किस तर्फ ।
 इक भलक सी मुझे दिखा करके ।
 दोस्तो कौन मेरी तुरबत पर ।
 रो रहा है 'रसा रसा' कर के ।२



उतरार्द्ध भक्तमाल

|"कवि-वचन सुधा" २७ मार्च १८७६ में
 सूचना और 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' सन
 १८७६-७७ में ग्रंथ प्रकाशित |

उत्तरार्द्ध-भक्तमाल

दोहा

राधावल्लभ वल्लभो वल्लभ वल्लभताइ ।
 चार नाम बपु एक पद बंदत सीस नवाइ ।१
 हवै प्रतच्छ बसि गृह निकट दियो प्रेम को दान ।
 जय जय जय हरि मधुर बपु गुरु रस-रीति-निधान ।२
 जग के विषय छुड़ाइ सब सुद प्रेम दिखाइ ।
 बसे दूर हवै सहज पुनि, जै जै जादवराइ ।३
 धन जन हरि निर्वचंत करि, फिर डार्यौ भव-जाल ।
 सोचि जुगति कछु मोहिं जिन जै जै सो नंदलाल ।४
 कछु गीता मैं भाखि कै शुक्र हवै करना धारि ।
 कही भागवत मैं प्रगट प्रेम-रीति निरुवारि ।५
 पुनि वल्लभ हवै सो कही कबहुं कही जु नाहिं ।
 शुद्ध प्रेम-रस-रीति सब निज ग्रंथन के माहिं ।६
 वंश रूप करि कै द्विविध थापी पुनि जग सोय ।
 अब लौं जाके लेस सों पामर प्रेमी होय ।७
 व्यास कृष्ण चैतन्य हरि दास सु हित हरिवंस ।
 विविध गुप्त रस पुनि कहे धरि बपु परम प्रसंस ।८
 भाति भाति अनुभव सरस जिन दिखायाओ आप ।
 अधमहुं को सो नित जयति समन समन पुर दाप ।९
 अतिहि अधी अति हीन निज अपराधी लखि दीन ।
 जदपि छमाके जोग नहिं तरु दया अति कीन ।१०

छत्रानी सों यों कह्यौ या कहें जानहु संत ।
 अहो कृपाल कृपालुता तुमरी को नहिं अंत ।११
 ज्वर-तापित हिय में प्रगट जुगल हंसत आसीन ।
 स्वर्ण सिंहासन पर लिए कर जुग कंज नवीन ।१२
 अर्गनि वरत चारहुं दिसा पै मधि सीतल नीर ।
 ताहि उजारत चरन सों देत दास कहैं धीर ।१३
 बहु नट बपु हवै आपुही कसरत करत अनेक ।
 कबहुं पीढ़े महल मैं तानि भीन पट एक ।१४
 कबहुं सेत पाखान की कोच जुगल छवि धाम ।
 बैठे बाग बहार मैं गल भुज दिए ललाम ।१५
 सौंभ समय आरति करत सब मिलि गोपी ग्वाल ।
 कबहुं अकेले ही मिलत पिय नंदलाल दयाल ।१६
 कबहुं गौर दुति बाल बपु रजत अभूषन अंग ।
 पंच नदी पौसाक तन धरे किए सोइ ढंग ।१७
 कबहुं जुगल आवत चले सौंभ समय बरसात ।
 कै बसंत जैह हरित धर चारहु ओर दिखात ।१८
 देखि दीन भुव मैं लुठत फूल-छरी सिर मारि ।
 हंसत परसपर रस भरे जिय अति दया विचारि ।१९
 कबहुं प्रगट कबहुं सुपन कबहुं अचेतन माहिं ।
 निज जय दृढ़ता हेत जो बारंबार दिखाहिं ।२०
 होत विमुख रोकत तुरत करत विविध उपदेश ।
 जै जै जै हरि-राधिका बितरन नेह बिसेस ।२१
 मायावाद-मतंग-मद हरत गरजि हरि-नाम ।

जयाति कोऊ सो केसरी वृन्दावन बन धाम ॥२२॥
तम-पाखंडहि हरत करि जन-मन-जलज विकास ।
जयाति अलौकिक राव कोऊ, श्रुत-पथ करन प्रकास ॥२३॥

अथ परम्परा

तन्मार्ग निज परम गुरु कृष्ण कमल-दल-नैन ।
जाको मत श्री राधिके नाम जपत दिन रैन ॥२४॥
श्रीगोपीजन-पद जुगल बंदत करि पुनि नेम ।
जिन जग मैं प्रगाटित कियो परम गुप्त रस प्रेम ॥२५॥
श्रीशिव-पद निज जानि गुरु बंदत प्रेम-प्रमान ।
परम गुप्त निज प्रगाट किय भक्ति-पंथ अभिधान ॥२६॥
बंदौ श्री नारद-चरन भव पारद अभिराम ।
परम विसारद कृष्ण-गुन-गान सदा गतकाम ॥२७॥
पुनि बंदत श्री व्यास-पद वेद-भाग जिन कीन ।
कृष्ण तत्व को ज्ञान सब सूत्र विरचि कहि दीन ॥२८॥
बंदत श्री शुकदेव जिन सोध प्रेम को पंथ ।
हमसे कलि-मल प्रसित-हित कष्टयो भागवत ग्रंथ ॥२९॥
विष्णुस्वामि-पद जुगल पुनि प्रनवत वारंवार ।
जिन प्रगाटयो प्रेम-पथ बहत जानि संसार ॥३०॥
गोपीनाथ आरंभ जे देवादिक मध धामि ।
विल्वमंगल लौ सप्त सत गुरु-अवली प्रनमामि ॥३१॥
नमो विल्वमंगल-चरन भक्ति-बीज उत्कर्ष ।
सूक्ष्म रूप सौ तरु रहे जो अनेक सत वर्ष ॥३२॥
यह मारग इवत निरखि जिन प्रगाटयो रूप ।
नमो नमो गुरुवर-चरन श्री वल्लभ द्विजभूप ॥३३॥
जुगल सुअन तिनके तनय जिनहि आठ निरधारि ।
भक्ति रूप दसधा प्रगाट बंदत तिनहि विचारि ॥३४॥
एक भक्ति के दान हित थापत परम प्रसंस ।
भयो अहै अरु होइगो जे श्री वल्लभ बंस ॥३५॥
प्रगाट न प्रेम प्रभाव नित नासन सोग कुरोग ।
जे जे जग-आरति-हरन विदित बल्लभ लोग ॥३६॥
जे प्रेमी-जन कोउ पथ हरि-पद नित अनुरक्त ।
बंदत तिनके चरन हम करहु कृपा सब भक्त ॥३७॥

अथ उपक्रम

नामा जी महाराज ने भक्तमाल रस जाल ।
आलवाल हरि-प्रेम की विरची होई दयाल ॥३८॥
ता पाछें अब लौ भये जे हरि-पद-रत-संत ।
तिनके जस बरनन करत सोइ हरि कहैं अति कंत ॥३९॥
कवहुँ कवहुँ प्रसंग-बस फिर सौं प्रेमी नाम ।
ऐहैं या नव ग्रंथ मैं पूरव-कथित ललाम ॥४०॥
भक्तमाल जो ग्रंथ है नामा-रचित विचित्र ।
ताही को एहि जानियो उत्तर भाग पवित्र ॥४१॥

भक्त-माल उत्तर-अर्ध याही सौ सुभ नाम ।
गुथी प्रेम की डोर मैं सन्त-रत्न अभिराम ॥४२॥
नव माला हरि-गल दई नामा जी राव जौन ।
दुगुन आबु करि कृष्ण कों पहिरावन हौं नौन ॥४३॥
लिखे कृष्ण-हिय मैं सदा जर्दाप नवल कोउ नाहं ।
नाम धाम हरि-भक्त के आदि समय हूँ माहं ॥४४॥
तदपि सदा निज प्रेम-पथ दीपक प्रगाटन काव ।
समय समय पठवत अर्वाणि निज भक्तन ब्रजराज ॥४५॥
ताही सौं जब आवहीं भुव तब जानाहं लोग ।
भक्त नाम गुन आदि सब नासन भव-भय-रोग ॥४६॥
तिनहीं भक्त-दयाल की परम दया बल पाइ ।
तिनको चरित पवित्र यह कहत अहौं कछु गाइ ॥४७॥

स्ववंश-वर्णन

वैश्य अग्रकुल मैं प्रगाट बालकृष्ण कुल-पाल ।
ता सुत गिरिधर-चरन-रत वर गिरधारीलाल ॥४८॥
अमीचंद तिनके तनय फतेचंद ता नंद ।
हरखचंद जिनके भये निज कुल-सागर-चंद ॥४९॥
श्री गिरिधर गुरु सेइ कै घर सेवा पधराइ ।
तारे निज कुल जीव सब हरि-पद भक्ति दूढ़ाइ ॥५०॥
तिनके सुत गोपाल-संसि प्रगाटित गिरिधरदास ।
काठिन करम-गति मेरि जिन कीनी भक्ति प्रकास ॥५१॥
मेरि देव-देवी सकल छोड़ि काठिन कुल-गीति ।
थाप्यी गृह मैं प्रेम जिन प्रगाट कृष्ण-पद-प्रीति ॥५२॥
पारवती की कृष्ण सौं तिनसौं प्रगाट अमंद ।
गोकुलचंद्राग्रज भयो भक्त दास हरिचंद ॥५३॥
तिन श्री वल्लभ वर कृपा विरची माल बनाइ ।
रही जौन हरिकंठ मैं नित नव हवै लपटाइ ॥५४॥
लहिहैं भक्त अनंद अति, हवैहैं पतित पवित्र ।
पढ़ि पढ़ि कै हरि-भक्त को चित्र विचित्र चरित्र ॥५५॥
श्री विष्णु स्वामि संसार मैं प्रगाट राजसेवा करी ।
श्री शुक सौं लहि ज्ञान आंध्र भुव पावन कीनी ।
नृप-प्रधानता जगत-जाल गुनि कै तजि दीनी ।
हठ करि हरि कों अपुने कर नित भोग लगायो ।
भक्ति-प्रचारन द्विविध वंश भुव माहं चलायो ।
जग मैं अनेक सत बरस बांस नाम दान भुव उदरी ।
श्री विष्णु स्वामि संसार मैं प्रगाट राजसेवा करी ॥५६॥
श्री निंबादित्य स्वरूप धरि आपु तुंग विद्या भई ।
द्रावड़ि भुव मैं अरुण गेह द्विज हवै प्रगाट ॥५७॥
तम पखंड दलमलन सुदर्शन बपु कहवाए ।
सकल वेद को सार कष्टयो दस ही छंदन महं ।
शुक-मुख सौं भागवत सुनी नृप देवराज जहं ॥५८॥

बनि अरक वृच्छ चढ़ि दरस दै अतिथि संक सब हरि लई ।
 श्री निवादिन्य सरूप धरि आपु तुंग विद्या भई । १५७
 मायावादी घननाद मद रामानुज मईन कियो ।
 अगनित तम पाखंड प्रगट हवै धूरि मिलायो ।
 वीर वनक सों सुदृढ़ भक्ति को पंथ चलायो ।
 वादी-गगन प्रतच्छ सेस बनि दरसन दीनो ।
 गुरु को चार मनोरथ पन करि पूरन कीनो ।
 जा सरन जाइ निरदुंद हवै जीव नरक-भय तबि जियो ।
 मायावादी घननाद मद रामानुज मईन कियो । १५८
 दृढ़ भेद भगति जग मै करन मध्य अचारज भुव प्रगट ।
 प्रथम शास्त्र पढ़ि सकल अरभन खंडन ठान्यो ।
 द्वैतवाद प्रगटाइ दास-भावहि दृढ़ मान्यो ।
 थापि देव गोपाल धरनि निज विजय प्रचार्यो ।
 मतिमंडित पंडितगन-बल खंडित करि डार्यो ।
 दै संख चक्र की छाप भुज दई मुक्ति सारूप्य भट ।
 दृढ़ भेद भगति जग मै करन मध्य अचारज भुव प्रगट । १५९
 श्री विष्णु स्वामि-पथ-उदरन जै जै वल्लभ राजवर ।
 तिलग वंस द्विजराज उदित पावन वसुधा-तल ।
 भारद्वाज सुगोत्र यजुर् साखा तैत्तिर कल ।
 यज्ञनरायन कुलमनि लक्ष्मणभट-तनूभव ।
 इलामगारु-गर्म-रत्नसम श्रीलक्ष्मी धव ।
 श्री गोपनाथ-विठ्ठल-पिता भाष्यादिक बहु ग्रंथकर ।
 श्री विष्णु स्वामि-पथ-उदरन जै जै वल्लभ राजवर । १६०
 निज प्रेम-पंथ सिद्धांत हरि विठ्ठल वपु धरि कै कह्यो ।
 श्री श्री वल्लभ-सुअन विप्रकुल-तिलक जगत-वर ।
 माया-मत-तम-तोम-विमर्दन ग्रीष्म-दिवाकर ।
 जन-चकोर हित-चंद भक्ति-पथ भुव प्रगटावन ।
 अंतरंग सखि-भाव स्वामिनी-दास्य दृढ़ावन ।
 देवी-जन मिलि अवलंब हित इक जा पद दृढ़ करि गह्यो ।
 निज प्रेम-पंथ सिद्धांत हरि विठ्ठल वपु धरि कै कह्यो । १६१
 निज फलित प्रफुल्लित जगत मै
 जय वल्लभ-कुल-कलपतर ।
 गुरुवर गोपीनाथ प्रगट पुरुषोत्तम प्यारे ।
 श्री गिरिधर गोविंद राय रुक्मिणी दुलारे ।
 बालकृष्ण श्री वल्लभ माला विजय प्रकासन ।
 श्री रघुपति जदुनाथ स्याम-घन भव-भय-नासन ।
 मुरलीधर दामोदर सुकल्यानराय आदिक कुँवर ।
 निज फलित प्रफुल्लित जगत मै
 जय वल्लभ-कुल-कलपतर । १६२
 जग कठिन सृंखला सिथिल कर प्रगटि प्रेम चैतन्य को ।
 श्री गोपीजन-सम हरि-हित सब सों मुख मोर्यो ।
 लोक-लाज भव-जाल सकल तिनका सो तोर्यो ।

वेद-सार हरिनाम दान करि प्रगट चलायो ।
 अनुदिन हरि-रस निरतत जुग दृग नीर बहायो ।
 नित मत्त कृष्ण मधुपान करि समनेहु ध्यान न अन्य को ।
 जग कठिन सृंखला सिथिल कर
 प्रगटि प्रेम चैतन्य को । १६३
 ये मध्य संप्रदा के परम प्रेमी पंडित जग-विदित ।
 विजय-ध्वज अति निपुन बहुत वादी जिन जीते ।
 माधवेन्द्र नरसिंह भारती हरि-पद प्रीते ।
 ईश्वरपुरी प्रकाशभट्ट रघुनाथ अचारज ।
 त्रिपुर गंग श्रीजीव प्रबोधानंद सु आरज ।
 अद्वैत सुनित्यानंद प्रभु प्रेम-सूर-सांस से उदित ।
 ये मध्य संप्रदा के परम प्रेमी पंडित जगविदित । १६४
 जान्यो वृंदावन रूप हरिदास व्यास हरिवंस मिलि ।
 निवारक मत विदित प्रेम को सारहिं जान्यो ।
 जुगल-कौल-रस-रीति भलों करि इन पहिचान्यो ।
 सखी-भाव अति चाव महल के नित अधिकारी ।
 पियहू सों बढि हेत करत जिन पै निज प्यारी ।
 जग दान चलायो भक्ति को
 ब्रज-सरवर-जल जलज खिलि ।
 जान्यो वृंदावन रूप हरिदास व्यास हरिवंस मिलि । १६५
 ये वृंदावन के संत सब जुगल भाव के रंग रंगे ।
 मौनीदास गुविंददास निवारकसरन जू ।
 ललितमोहिनी चतुरमोहिनी आसकरन जू ।
 सखी-चरन राधाप्रसाद गोवर्दन देवा ।
 कंबल ललित गरीबदास भीमा सखि-सेवा ।
 श्री वल्लभदास अनन्य लघु विठ्ठल मोहन रस पगे ।
 ये वृंदावन के संत सब जुगल भाव के रंग रंगे । १६६
 रघुनाथ-सुअन पंडित-रतन श्री देवकिनंदन प्रगट ।
 किय रसाब्धि नव काव्य कृष्ण-रस रास मनोहर ।
 श्री गोकुल-सांस सेइ लहे अनुभव बहु सुंदर ।
 पिता पितामह प्रपितामह की पंडितताई ।
 भक्ति रीति हरि प्रीति भलों करि आपु निभाई ।
 जानकी-उदर-अंबुधि-रतन पितु-गुन जिन मै विदित खट ।
 रघुनाथ-सुअन पंडित-रतन श्री देवकिनंदन प्रगट । १६७
 पीतांबर-सुत विद्या-निपुन पुरुषोत्तम वादीर्वाजित ।
 श्री वल्लभ पाछें बुधि-बल आचार्य कहाए ।
 निरनय बाद-बिबाद अनेकन ग्रंथ बनाए ।
 गाड़ा पै धुज रोपि जयाति वल्लभ लिखि तापर ।
 ग्रंथ साथ सब लिए फिरे जीतत चहुँ दिसि घर ।
 श्री बालकृष्ण-सेवा-निरत निज बल प्रगटायो अमित ।
 पीतांबर-सुत-विद्या-निपुन पुरुषोत्तम वादीर्वाजित । १६८
 श्री द्वारकेश ब्रजपति ब्रजाधीश भए निज कुल-कमल ।

सेवा भाव अनेक गुण इन प्रगट दिखाए ।

श्री युगल नित्य रस-रस कीरतन बहुत बनाए ।

शुद्धि पुष्टि अनुभवत उच्छलित रस हिय माहीं ।

समनेहु जिनकी वृत्ति कबहुँ लौकिक-मय नाही ।

श्री वल्लभ को सिद्धांत सब थित

जिनके चित नित विमल ।

श्री द्वारकेश ब्रजपति ब्रजाधोष भए निज कुल-कमल ॥६९॥

श्री श्री हरिराय स्व-भक्ति-बल धानिह फिर बोलवाइयो ।

रसिक नाम सौ ग्रंथ रचे भाषा के भारे ।

नाम राखि हरिदास तथा संस्कृत के न्यारे ।

परम गुण रस प्रगट विरह अनुभव जिन कीनो ।

सेवा महँ सब त्यागि सदा हरि के चित दीनो ।

हरि-इच्छा लखि विनु समयहु मंदिर इन खुलवाइयो ।

श्री श्री हरिराय स्व-भक्ति-बल

नार्थि फिर बोलवाइयो ॥७०॥

जो अनुभव श्री विठ्ठल कियो सोइ दोऊ जी मैं उघट ।

सात सरूपहि फिर श्री जी पासहिं पधराए ।

पहिले ही की भाँति अन्नकुट भोग लगाए ।

सब रिपु उच्छ्व प्रगट एक रिनु माहिं दिखाए ।

इन परस करि सो कर फिर नहिं प्रभुहि दृष्टाए ।

करि लाखन व्यय सेवा करि किय गोकुल मेवाइ अट ।

जो अनुभव श्री विठ्ठल कियो सोइ दोऊ जी मैं उघट ॥७१॥

लाखि कठिन काल फिर आपुही आचारज गिरिधर भए ।

बालकपन खेलत ही मैं पाखान तरायो ।

बादी दक्षिण जीति पंथ निज सुदृढ़ दृढ़ायो ।

श्री मुकुंद भव-दुंद-हरन काशी पधराए ।

थापी कुल-मरजादा अनुभव प्रगट दिखाए ।

पूरे करि ग्रंथ अनेक पुनि आपहु बहु विरचे नए ।

लाखि कठिन काल फिर आपुही

आचारज गिरिधर भए ॥७२॥

बारानसि प्रगट प्रभाव श्री स्यामा बेटी को भयो ।

श्री गिरिधर की सुता सतोगुन-मय सब अंग ।

हरि-सेवा मैं चतुर पतित-पार्वनि जिमि गंगा ।

खट ऋतु छप्पन भोग मनोरथ करि मन-भायो ।

बुंदावन को अनुभव कासो प्रगटि दिखायो ।

धिर थापी करि सब रीति निज

सुत्रस दसहु दिसि मैं छयो ।

बारानसि प्रगट प्रभाव श्री स्यामा बेटी को भयो ॥७३॥

ये वल्लभ कुल के रत्न-मनि बालक सब भुव मैं भए ।

मोम विरया रचि के श्री रनछोर उड़ाई ।

पुरुषोत्तम प्रभु-पद रचि लीला ललित सुनाई ।

विठ्ठलनाथ दयाल सतोगुन-मय वपु धारे ।

तैसेहि गोविंदलाल गोकुलाधोस पियार ॥

जीवन जी जनि-जीवन-करन विविध ग्रंथ विरचे नए ।

ये वल्लभ कुल के रत्न-मनि बालक सब भुव मैं भए ॥७४॥

अघ-निकर सूर-कर सूर-पथ सूर-सूर जग मैं उयो ।

वल्लभ सागर विठ्ठल जाहि जहाज बखान्यो ।

जन-कवि-कुल-मद हरयो प्रेम नीके पहिचान्यो ।

एक वृत्ति नित सवा लाख हरि-पद रच गाए ।

श्री वल्लभ वल्लभ अभेद करि प्रगट जनाए ।

जा पद-बल अब लौं नर सकल गाइ गाइ हरि गुनि जियो ।

अघ-निकर सूर-कर सूर-पथ सूर-सूर जग मैं उयो ॥७५॥

श्री कुंभनदास कृपाल अति मूरति धारें प्रेम मनु ।

राधा-मानव विनु कोउ पद जिन कबहुँ न गायो ।

विरह-रीति हारि-प्रीति-पंथ करि प्रगट दिखायो ।

सुनत कृष्ण को नाम सवन हियरो भरि आवत ।

प्रेम-गमन नित नव पद रचि हरि सनमुख गावत ।

श्री वल्लभ-गुरुपद-जुग-पदुम प्रगट सरस मकरंद जनु ।

श्री कुंभनदास कृपाल अति मूरति धारें प्रेम मनु ॥७६॥

परमानंददास उदार अति परमानंद ब्रज बस लह्यो ।

हिय हरि-रस उच्छलित निरखि गुरु कर धरि रोख्यो ।

जिनके दृग जुग जुगल रूप रसिकन अवलोच्यो ।

लाखन पद रचि कहे विरह व्यापी अनुछिन गति ।

सखी सखा वात्सल्य महातम भाव सिद्ध श्रुति ।

श्री वल्लभ प्रभु-पद प्रेम जों जागरूक जग जस लह्यो ।

परमानंददास उदार अति परमानंद ब्रज बसि लह्यो ॥७७॥

श्री कृष्णदास अधिकार करि कृष्ण-दास्य अधिकार लह ।

अंतरंग हरि-सखा स्वामिनी के एकंगी ।

जासु गान मुनि नचत मुदित ह्वै ललित तृभंगी ।

जगत प्रीति अभिमान द्वेष हरि को अपनावन ।

इनके गुन औगुन प्रगटे तनहु तजि पावन ।

नव बार-बहु हरि भेंट करि वल्लभ-पद कर सुदृढ़ गह ।

श्री कृष्णदास अधिकार करि

कृष्ण-दास्य अधिकार लह ॥७८॥

गोविंद स्वामी श्रीदाम-वपु सखा अंतरंगी भए ।

हरि संग खेलत फिरत तुरंग बनि कबहुँ धावत ।

भूख लगत वन छाक लेन तब इन्हि पढ़ावत ।

अनुछिन साथहि रहत केलि परतच्छ निहारत ।

गाइ रिभावत हरिहि प्रेम जग में बिस्तारत ।

द्वै सै बावन पद जुगल रस-केलि-मए विरचे नए ।

गोविंद स्वामी श्रीदाम-वपु सखा अंतरंगी भए ॥७९॥

श्री नंददास रस-रस-रत प्रान तज्यो सुधि सो करत ।

तुलसिदास के अनुज सदा विठ्ठल-पद-चारी ।

अंतरंग हरि-सखा नित्य जेहि प्रिय गिरिधारी ।
भाषा मैं भागवत रची अति सरस सुहाई ।
गुरु आगैं द्विज कथन सुनत जल माहिं हुवाई ।
पंचाध्यायी हाँठ करि रखि तब गुरुवर द्विज भए हरत ।
श्री नंददास रस-रास-रत प्रान तज्यौ सुधि सो करत । ८०

श्री दास चतुर्भुज तोक वपु सख्य दास्य दोऊ निरत ।
निज मुख कुंभनदास पुत्र पुरो जेहि भाख्यौ ।
गाइ गाइ पद नवल कृष्ण-रस नित जिन चाख्यौ ।
विछुरि विरह अनुभयो संग रहि जुगल केलि रस ।
सब छिन सोइ रग रंगे बल्लामी-जन के सरवस ।
सेयो श्री विठ्ठल भाव करि जगत-वासना सों विरत ।
श्री दास चतुर्भुज तोक वपु सख्य दास दोऊ निरत । ८१
श्री छीत स्वामि हरि और गुरु प्रगट करि कै लखै ।
गुरुहि परिच्छिन हेत प्रथम सनमुख जब आए ।
पोलो नरियर खोटे रुपया भेंट चढ़ाए ।
श्री विठ्ठल तेहि साचो किय लखि अवरज धारी ।
शरन गए काहि छमहु नाथ यह चूक हमारी ।
पद विरचि सेइ श्रीनाथ कहैं विविध गुण अनुभव वखे ।
श्री छीत स्वामि हरि और गुरु प्रगट एक करि कै लखे ८२
चौरासी परसंग मैं मम आयसु धरि सीस ।
छंद रचे ब्रजचंद कछु सुमिरि गोकुलाधीस ॥

अथ चौरासी वैष्णव प्रसंग

दामोदरदास दयाल भे सूत्र रूप यह माल के ।
जिन कहैं श्री प्रभु *कह्यौ कियो तेरे हित मारग ।
एक मात्र ये रहे रहस्यन के नित पारग ।
वल्लभ पथ के खंभ समर्पन प्रथम किए जिन ।
अनुदिन छाया सरिस संग रहि भेद लहे इन ।
रहिहैं जब लौ भूव पंथ यह अंतरंग नंदलाल के ।
दामोदर दास दयाल भे सूत्र रूप यह माल के । ८३
दूढ़ दास्य परम विस्वास के कृष्ण-दास मेघन भये ।
जब गुरु वल्लभ वेदव्यास-ढिग मिलन पधारे ।
तीनि दिवस लौ जल बिनु ठाढ़े रहे दुआरे ।
निसि मैं गंगा तरि गुरु के हित चूड़ा लाए ।
करि प्रसन्न श्री प्रभुहि परम उत्तम बर पाए ।
गिरि-सिला हाथ रोकी गिरत भूमि परिक्रम सँग गये ।
दूढ़ दास्य परम विस्वास के कृष्णदास मेघन भये । ८४
दामोदरदास कन्नौज के सैमलवार खत्री रहे ।
हरि सेयो दर्ज लाज सबै भय लीक मिटाई ।
नारी सिर घट धारि प्रगट गागरी भराई ।

तून सम धन के मोह तजे सेवा हित धारी ।
अन्याश्रय को त्याग सदा भक्तन हितकारी ।
नित सेवत मथुरानाथ को प्रकट संप्रदा फल लहे ।
दामोदरदास कन्नौज के सैमलवार खत्री रहे । ८५

पद्मानाभदास कन्नौज कों श्री मथुरानाथ न तजे ।
नाम दास लै व्यास वृत्त प्रभु रूप लै त्यागी ।
भीषी अनुचित जानि पुष्टि मारग अनुरागी ।
कौड़ी लकड़ी बेंचि भागवत कृत निरवाहे ।
छोला ही तें तोषि इष्ट ऐश्वर्य न चाहे ।
सर्वज्ञ भक्त अरु दीन-हित जानि एक कृष्णहि भजे ।
पद्मानाभदास कन्नौज कों श्री मथुरानाथ न तजे । ८६

तनया पद्मानाभ-दास की तुलसा वैष्णव रुचि रपी ।
सपड़ी महाप्रसाद जाति-भय भगत न लीनी ।
जिय में यही विचारि वैष्णवी पूरी कीनी ।
पै दोउन कों श्री मथुरापति कही सपन में ।
सपड़िहि महाप्रसाद जाति-भय करौ न मन में ।
श्री गोस्वामी हू मुदित भे सानुभावता अति लपी ।
तनया पद्मानाभ-दास की तुलसा वैष्णव रुचि रपी । ८७

पद्मानाभदास की बहू की ग्लानि गई सब जीय की ।
लिख्यौ कृष्ट-विरतांत महाप्रभु निकट पठायो ।
सेवक दुख सुनि कै प्रभुह कछु जिय दुख पायो ।
दूढ़ विश्वास सुहेत दई अज्ञा प्रभु सेवहु ।
वर पुरुषोत्तमदास कथा को समभयो भेवहु ।
सेवत ही चारहि मास के भई पूर्वं गति पीय की ।
पद्मानाभदास की बहू की ग्लानि गई सब जीय की । ८८

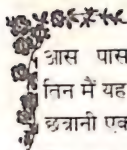
नाती पद्मानाभदास के रघुनाथदास सास्त्री रहे ।
श्रीगोस्वामी-चरन-कमल बंदे गोकुल मैं ।
पाई सुगम सुराह तिगुन-मय या वपु कुल मैं ।
श्री मथुरापति प्रगट भाव-वस विहरत भूले ।
या कुल की मरजाद जान जापै अनुकले ।
परमानंद सोनी संग तें परम भागवत पद लहे ।
नाती पद्मानाभदास के रघुनाथदास सास्त्री रहे । ८९

छत्रानी रजो अडेल की परम भागवत रूप ही ।
श्राद्ध लक्ष्मन भट्ट सरपि कछु थोरो हो तहैं ।
महाप्रभुन घूत हेत पठाए सेवक तेहि पहैं ।
दिए नहीं बहु भाँति माँगि थकि पारिष लीने ।
इन ठाकुर धी देनो अति अनुचित दूढ़ कीने ।
साधुहुदिन प्रभुहि जिवाँइकै लोकमेदि हरि-गति लही ।
छत्रानी रजो अडेल की परम भागवत रूप ही । ९०

* चौरासी वार्ता प्रसंग में प्रभु शब्द से श्री महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी का नाम जानना ।

पुरुषोत्तमदास सुसेठ-वर छत्री श्री काशी रहे ।
 नाम दान सनमान जासु गिरिजापति कीने ।
 निसि दिन भैरो द्वारपाल सिव सासन दीने ।
 अन्याश्रय गत विरज मदनमोहन अनुरागी ।
 महाप्रभुन की कृपापात्रता जिन सिर जागी ।
 जिन घर नंदादिक कृप सों प्रगटि जनम उत्सव लहे ।
 पुरुषोत्तमदास सुसेठ-वर छत्री श्री काशी रहे । १९१
 जाई पुरुषोत्तमदास की रुकमिनि मोहन-मदन-रत ।
 गंगा-स्नानहु सों बढि जिन सेवा गुनि लोनी ।
 श्री गोस्वामी श्री मुख जासु बड़ाई कीनी ।
 गहन नहानी एक बार चौबीस वरष में ।
 सेठों सुनि भे मगन भजन सुख-सिंधु हरष में ।
 सेवक स्वामी एकै अहैं यातैं नित एकतै रहत ।
 जाई पुरुषोत्तमदास की रुकमिनि मोहन-मदन-रत । १९२
 गोपालदास तिन ननय कों सुमिरत श्री मोहन-मदन ।
 भगवद नामस्मरन हुँकारी प्रगट आप भर ।
 श्री गोस्वामी श्री मुख जिनहिं सराहत निरभर ।
 भगवद-लीला सदा नित नव अनुभव करते ।
 तिलक सुबोधनि पाठ कीरतन चित हित धरते ।
 पुरुषोत्तमदास सुबंस में अति अनुपम अवतंस मन ।
 गोपालदास तिन तनय कों सुमिरत श्री मोहन-मदन । १९३
 सारस्वत ब्राह्मण रामदास ठाकुर-हित चाकर भये ।
 देनो दियो चुकाइ जासु नवनीत पियारे ।
 श्री आचारज महाप्रभुन धनि धन्य उचारै ।
 बाल-भाव निज इष्टहि सेवत बालक पाये ।
 सेवा में बसु जाम लीन तन धन बिसराये ।
 नित सकल काम-पूरन परम इष्ट बिसवास सरूप ये ।
 सारस्वत ब्राह्मण रामदास ठाकुर-हित चाकर भये । १९४
 गदाधरदास द्विज सारस्वत अतिहि कठिन पन चित धरे ।
 जजमानाश्रय भोग मदन-मोहन के रोषे ।
 जो आवै सो सकल तुरत अपने अभिलाषे ।
 जा दिन नहिं कछु मिले छानि जल अर्पन करते ।
 भूषे ही रहि आप वैष्णवनि हित अनुसरते ।
 सागो स्वादित अति जासु घर भक्त भाव सों नहिं टरे ।
 गदाधरदास द्विज सारस्वत अतिहि
 कठिन पन चित धरे । १९५
 बेनीदास माधवदास दोउ श्री नवनीत-प्रिया निरत ।
 बेनीदास महान भागवत बड़े भ्रात हे ।
 बिषई माधवदास अनुज पै नहिं रिसात हे ।
 बाँटे सकल धन भए बिलग कामिनि अनुकूले ।
 मुक्तमाल लिय मोल इष्ट हित आपुहि भूले ।

प्रगटे ठाकुर औरन लगे भये विषय तें तब विरत ।
 बेनीदास माधवदास दोउ श्री नवनीत-प्रिया निरत । १९६
 हरिवंस पाठक सारस्वत ब्राह्मण श्री कासी निवस ।
 द्वै दिन पटने रहे तहाँ हाकिम चित ऐसी ।
 अनुसरिहैं हम तुरत करैं ये आज्ञा जैसी ।
 सपने ठाकुर कही डोल भलन हम चाहत ।
 हाकिम तें ह्वै विदा तयारी करी बचन रत ।
 श्री काशी में आए तुरत डोल भुलाए प्रेम-वस ।
 हरिवंस पाठक सारस्वत ब्राह्मण श्री काशी निवस । १९७
 गोविंददास भल्ला तज्यौ प्रानहु प्रिय निज इष्ट हित ।
 चारि भाग निज द्रव्य प्रभुन आज्ञा तें कीने ।
 एक भाग श्री नाथै इक निज गुरु कहैं दीने ।
 एक भाग दै तजी नारि एक आपुहि लोने ।
 सोउ वैष्णवन हेत कियो सब व्यय भय हीने ।
 तजि देव अंस गुरु अंस लहि सेवा केसराय नित ।
 गोविंददास भल्ला तज्यौ प्रानहु प्रिय निज इष्ट हित । १९८
 अम्मा पै नित अनुकूल श्री बालकृष्ण ठाकुर प्रगट ।
 अम्मा बालक दोय ताहि करि प्यार पुकारैं ।
 मरे एक के ता रोवत हरि दुख जिय धारैं ।
 रोवत रोवत मरो सोऊ सुत बहु विलाप कर ।
 श्री गोस्वामी समुभावन हित आये तेहि घर ।
 मंदिर को टेरा खोलि कै देपे पय पीवत निकट ।
 अम्मा पै नित अनुकूल श्री बालकृष्ण ठाकुर प्रगट । १९९
 गंजन धावन क्षत्री हुते श्री नवनीत-प्रिया सुखद ।
 जिन बिन ठाकुर महाप्रभू घरहु नहिं रहते ।
 जे ठाकुर बिन अतिहि दुसह दुख सहत न कहते ।
 छन बिछुरत इन देह दहत जर वे न अरोगत ।
 इन दोउन की प्रीति परस्पर कौन कहि सकत ।
 सब भावहि बस नित ही रहे दिये जिनहिं निज परम पद ।
 गंजन धावन छत्री हुते श्री नवनीत-प्रिया सुखद । १९००
 ब्रह्मचारी नरायनदास जू बसत महावन भजत-रत ।
 धन कहैं गुन्यौ विगार देखि निज सेज चहैं कित ।
 दिय वोहारि फेंकवाइ बहुरि लिपवायो हंसि हित ।
 श्री गोकुल चन्द्रमा पीर खाई जिनके घर ।
 आरोगाई प्रभुन कही मति डरौ जाति-डर ।
 तबहीं तै सपड़ी खीर नहिं यहै रीति या पुष्टि मत ।
 ब्रह्मचारि नरायनदास जू बसत महावन भजन रत । १९०१
 छत्रानी एक महावनहि सेवत नित नवनीत-प्रिय ।
 पृथ्वि-परिक्रम करत महाप्रभु तहाँ पधारे ।
 पाये श्रुति-सरवस्य आपने प्रान अधारे ।
 चार वेद के सार चार हरि विग्रह रूरे ।



आस पास ही बसन मनोरथ निज-जन पूरे ।
 तिन मैं यह प्रेम-सुरंग रँग रही धरे अति भक्ति हिय ।
 छत्राणी एक महाबर्नाह सेवत नित नवनीत-प्रिय । १०२
 त्रियदास भजन-रत जाम चहुँ श्री लाडिले सुजान के ।
 उभय तनय पुरुषोत्तमदास छत्रीलदास जिन ।
 सेवा कीनी कष्टक दिवस इन पै संतति बिन ।
 तिनके मामा कृष्णदास पुनि सेवा कीनी ।
 तिन पीछे तिन मित्र सोई सेवा सिर लीनी ।
 तहुँ डेढ़ बरस रहि पुनि गए मंदिर निज प्रिय प्रान के ।
 त्रियदास भजन-रत जाम चहुँ श्री लाडिले सुजान के । १०३
 श्री ललित त्रिभंगी लाल की सेवा देवा सिर रही ।
 देवा पत्नी सहित सरस सेवा चित दीन्ही ।
 तिनहीं लौं तहँ रहे ठाकुरौ भावहि चीन्ही ।
 रहे तनय तिन चारि लई नहिं तिनतें सेवा ।
 भाव-बस्य भगवान जासु कर्मादि कलेवा ।
 अंतरध्यान भे सु भौन तें निज इच्छा विचरन मही ।
 श्री ललित त्रिभंगी लाल की सेवा देवा सिर रही । १०४
 रसिकाई दिनकरदास की कथा सुनिनि में अकथ ही ।
 तुरतहि धावत सुनत महाप्रभु-कथा कहत अब ।
 काचिहि लोटी पाइ लेत सुधि रहति न तन तब ।
 जानि कही प्रभु अति अनुचित तुम करी कथा-हित ।
 भोग लगाइ प्रसाद पाइ अब तें ऐहौ नित ।
 येई श्रोता अब आहु तें श्री मुख यह आपै कही ।
 रसिकाई दिनकरदास की कथा सुनिनि में अकथ ही । १०५
 मुकुन्ददास कायस्थ हे जिन मुकुंद-सागर किये ।
 श्री आचारज महाप्रभुन-पद प्रीति जिनहिं अति ।
 याही तें प्रभु तिलक सुबोधनि भै तिन की मति ।
 निज मुख श्री भागवत कहै नहिं सुनै सु अपर मुख ।
 कर्म सुभासुभ जनित पंडितनि सुलभ न वह सुष ।
 बरनाश्रम धर्मनि बंचकनि सहजहि में इन ठगि लिये ।
 मुकुंददास कायस्थ हे जिन मुकुंद-सागर किये । १०६
 छत्री प्रभुदास जलोटिया टका मुक्ति दै दधि लई ।
 यह मारग अति विषम कृष्ण चइतन्य सुनत ही ।
 मुछित हवै हवै जाहिं सु जिन कहै सुलभ सुपद ही ।
 वृंदावन प्रति वृच्छ पत्र ब्रज प्रगत दिखाये ।
 अवगाहन नहिं दीन प्रभुन परसाद पवाये ।
 सेवा श्री मोहन-मदन की जिनहिं सावधानी दई ।
 छत्री प्रभुदास जलोटिया टका मुक्ति दै दधि लई । १०७
 प्रभुदास भाट सिंहनंद के तीर्थ प्रथोदिक निदियो ।
 सेवत नीकी भाँति ठाकुरहिं बृद्ध भये अति ।
 तीर्थ प्रथोदिक पहुँचाये सब अन्याश्रित मति ।

अन्याश्रय लषि सावधान आये निज घर कहैं ।
 करि सेवा निज सेव्य ललन की तजी देह तह ।
 निंदा करि कीरति चौधरी मार पाइ पद बंदियो ।
 प्रभुदास भाट सिंहनंद के तीर्थ प्रथोदिक निदियो । १०८
 पुरुषोत्तम दास जु आगरे राजघाट पै रहत हे ।
 श्री गोस्वामी एक समै आये तिनके घर ।
 भई रसोई भोग समर्थी किए अनौसर ।
 पुनि सादर निज सेव्य ठाकुरै के भाजन में ।
 आरोगाये जस आरोगे नंद-भवन में ।
 श्री ठाकुर ही की सेब पै पौढ़ाए सेवत रहे ।
 पुरुषोत्तमदास जु आगरे राजघाट पै रहत हे । १०९
 धर तिपुरदास को सेरगढ़ हुते सुकायथ जाता के ।
 श्री हरिकें रंग रंगे प्रभुन-पद-पदुम प्रीति आति ।
 सही कंद दइ जिनहिं तुरुक बहु मार मंद मति ।
 बिन चरनोदक महाप्रसाद लिए न पियत जल ।
 इन कहैं खोद जानि ठाकुरहु परत न छन कल ।
 गज्जी की फरगुल इनहिं की हरे सीत श्रीनाथ के ।
 धर तिपुरदास को सेरगढ़ हुते सुकायथ जात के । ११०

पूरनमल छत्री प्रभुन के कृपापात्र अति ही रहे ।
 आयसु लहि श्रीनाथ-हेतु मंदिर समराए ।
 सुभ मुहूर्त में जहाँ श्रीनाथहि प्रभु पधराए ।
 अति सुगंध अरगजा समर्पे जिन अपने कर ।
 दिय ओढ़ाय आपने उपरना गोस्वामी बर ।
 गढ़ल परसादी नाथ के बरस बरस पावत रहे ।
 पूरनमल छत्री प्रभुन के कृपापात्र अति ही रहे । १११

यादवेन्द्रदास कुम्हार श्री गोस्वामी-आयसु-निरत ।
 श्री गोस्वामी संग कहैं परदेस चलत जब ।
 एक दिवस की सामग्री के भार बहत सब ।
 सेवा करहि रसोई निसि में पहरा देते ।
 मास दिवस के काम एक ही दिन करि लेते ।
 जो कृप खोदि निज कर-कमल सारो जल मीठो करत ।
 यादवेन्द्रदास कुम्हार श्री गोस्वामी-आयसु-निरत । ११२

गोसाँईदास सारस्वत देह तजी बदरी बनैं ।
 ठाकुर-सेवा महाप्रभुन इन सिर पधराए ।
 सेये नीकी भाँति ठाकुरहि अतिहि रिझाए ।
 ठाकुर आयसु पाइ बदरिकाश्रमहि पधारे ।
 ठाकुर सेवा काहु भागवत माथे धारे ।
 जिन यह इनसों निरधार किय ठाकुर देव न इहि तनै ।
 गोसाँईदास सारस्वत देह तजी बदरी बनैं । ११३

माधवभट कसमीर के मरे बालकहि ज्याइयो ।
 अतिहि दोन हवै लिपी सुबोधनि महाप्रभुन पै ।
 सेवा में अपराध पर्यौ अनजाने उनपै ।
 लघु बाधा में तजी चोरनि सर लागे ।
 श्री आचारज महाप्रभुन-पद रति-रस पागे ।
 श्रीनाथी जिनकी कानि तें निज पासहि पधराइयो ।
 माधवभट कसमीर के मरे बालकहि ज्याइयो ॥११४॥
 गोपालदास पै सदन बहु पथिकनि के विस्राम हित ।
 आवत श्री द्वारिका पद्मरावल निवसे जहँ ।
 सुनि गोपालदास सेवा सो पहुँचि गए तहँ ।
 पूछि कुसल लपि द्वारिकेस दरसन अभिलाषी ।
 कही प्रगट रनछोर अडेल लपौ निज औषी ।
 सुनि बिरजो माव पटेल लै आई दरस लहि भे मुदित ।
 गोपालदास पै सदन बहु पथिकनि के विस्राम हित ॥११५॥

दुज साँचोरे रावल पदुम श्री रनछोर कही करी ।
 परमारथी गुपालदास सिपये ये आये ।
 महाप्रभुन दरसन करि निज अभिमत फल पाये ।
 लै प्रभु-पद चंदन चरनामृत भे विद्याधर ।
 श्री ठाकुर आयसु तें गये कोऊ सेवक घर ।
 पथ बहु रोटी अरपन करी थी चुप्री न रुपी परी ।
 दुज साँचोरे रावल पदुम श्री रनछोर कही करी ॥११६॥

पुरुषोत्तम जोसी दुज हुते कृष्णभट्ट पै अति मुदित ।
 आये ये उज्जैन पद्मरावल के सुत-घर ।
 रहे तहाँ पै तिन सब इनको कीन अनादर ।
 बड़े पुत्र तिन कृष्ण भट्ट निज घर पधराये ।
 राखे तहँ दिन चारि प्रसादहु भले लिवाये ।
 सुनि सतसंगी हरिवंस के गोस्वामी मुख भगत हित ।
 पुरुषोत्तम जोसी दुज हुते कृष्णभट्ट पै अति मुदित ॥११७॥

ऐसे भूले रजपूत कों जगन्नाथ लीने सरन ।
 श्री ठाकुर अपित अशुद्ध गुनि अति दुख पाये ।
 ताती घोर समर्पि सिपे जो प्रभुन सिपाये ।
 ज्वार भोग अनकुट पै पेट कुपीर उपाई ।
 इरपा सों दुरजन इन पै तरवार चलाई ।
 तेहि श्री कर सों गहि कै कही मारै मति ये महत जन ।
 ऐसे भूले रजपूत कों जगन्नाथ लीने सरन ॥११८॥
 जननी नरहर जगनाथ की गहा प्रभुन-छवि छकि रहौ ।
 इक इक मुहर भेंट हित दै पठये दोड भाइन ।
 नाम निवेदन हेतु प्रभुन पै अति चित चाइन ।
 मिले कृपा करि दियो दरस पुरुषोत्तम नगरी ।

भई स्वरूपासक्ति तुरत भूली सुधि सगरी ।
 पुनि माँगि भेंट की मुहर प्रभु लिए सरन दोउन तहीं ।
 जननी नरहर जगनाथ की महाप्रभुन-छवि छकि रहौ ॥११९॥

नरहर जोसी जगनाथ के भाई बड़े महान हे ।
 भोग अरोगन आये सिसु हवै अपन विसारी ।
 पै इन प्रभु की कानि रंचकौ चित न विचारी ।
 सावधान भे सुनत अनुज सों प्रभु की करनी ।
 गोस्वामी के सरन किये जजमान स-धरनी ।
 तेहि जरत बचाये आगि तें ऐसे ये सुपदान हे ।
 नरहर जोसी जगनाथ के भाई बड़े महान हे ॥१२०॥

साँचोरा राना व्यास दुज सिद्धपूर निवसत रहे ।
 जगन्नाथ जोसी गर मुद्गर तपित लाइके ।
 हाकित पै अविकारी इनकों किये जाइके ।
 जिनकी मति लहि राजपुतानी सती भई नहि ।
 शुद्ध होइ आई ताकों तिन दिये नाम तहि ।
 पुनि सरनागत करि प्रभुन के पर-उपकारी पद लहे ।
 साँचोरा राना व्यास दुज सिद्धपूर निवसत रहे ॥१२१॥
 धनि राजनगर-बासी हुते रामदास दुज सारस्वत ।
 श्री नटवर गोपाल पादुका गुरु सेयौ इन ।
 श्री रनछोर सु कहे ग्रहन किय निज नारिहु जिन ।
 ठाकुर ही आयसु तें तिय कों नामहु दीने ।
 तब ताके कर महाप्रसाद मुदित मन लीने ।
 पुनि नाम निवेदन प्रभुन पै करवाये कहि कानि सत ।
 धनि राजनगर-बासी हुते रामदास दुज सारस्वत ॥१२२॥

गोविंद दूबे साँचोर द्विज नवरत्नहि नित पाठ किय ।
 श्री गोस्वामी-पत्र पाइ मीरहि द्रुत त्यागी ।
 श्री ठाकुर रनछोर-वार्ता-रस-अनुरागी ।
 प्रभुन थार के महाप्रसाद दिये नहि इक दिन ।
 सकल वैष्णवनि सहित उपास किये तिहि दिन तिन ।
 सुनि भूखे श्री रनछोर सो थार महाप्रसाद दिय ।
 गोविंद दूबे साँचोर द्विज नवरत्नहि नित पाठ किय ॥१२३॥

राजा माधौ दूबे हुते दोड भाई साँचोर दुज ।
 रामकृष्ण हरिकृष्ण बड़े छोटे दोड भाई ।
 बड़े पढ़े बहु कथा कहै लघु मूढ़ सदाई ।
 भावज की कटु सुनि दूबे के सरनहि आये ।
 अष्टोत्तर सतनाम बार द्वै जपि सब पाये ।
 पुनि पाइ नाम श्रीप्रभुन पै भे निज कुलके कलस-धुज ।
 राजा माधौ दूबे हुते दोड भाई साँचोर दुज ॥१२४॥

जननी श्लोकोत्तम दास को नाथ सेवकनि मिलि कह्यौ ।
करै रसोई प्रीति समेत परोसि लिवावै ।
याही तें श्रीनाथ सेवकनि को अति भावै ।
श्री गोस्वामी रोझि रहे लपि शुद्ध प्रेम पन ।
रस वात्सल्य अलौकिक जानि सिहाहिं मनहिं मन ।
मन शुद्धाद्वैत सरूप मति कृष्णमक्ति तजि तन लह्यौ ।
जननी श्लोकोत्तमदास को नाथ

सेवकनि मिलि कह्यौ ॥१२५॥

ईश्वर द्वे सांचोर के मुखिया भे श्रीनाथ के ।
श्लोकोत्तम जन नाम धन्य येऊ पुनि पाये ।
नाथ सेवकनि अधिक धीय दै मातु कहाये ।
अविरल भक्ति विशुद्ध गुसाईं सों इन लीन्हीं ।
महाप्रभुन पथ प्रीति रीति इन दृढ़ करि चीन्हीं ।
पाई सेवा श्रीअंग की सरन अनाथनि नाथ के ।
ईश्वर द्वे सांचोर के मुखिया भे श्रीनाथ के ॥१२६॥

वासुदेव जन जन्मस्थली काजी मर-मरदन किये ।
श्री गोपीपति मुहर गुसाईं पै पहुँचाई ।
करी दंडवत लाइ पहुँच पत्रिका सुहाई ।
मथुरा तें आगरे गए आये जुग जामैं ।
सीहनंद वैष्णवनि उछाहनि में अभिरामैं ।
मन डेढ़ नित ये खात है द्वाल गुरज इक कर लिये ।
वासुदेव जन जन्मस्थली काजी मद-मरदन किये ॥१२७॥

बाबा बेनू के अनुजवर कृष्णदास घघरी रहे ।
श्री केसव के कीर्तनिया ये अरु जादव जन ।
कृष्णदास तहँ गिरिवरधर ध्यावत त्यागे तन ।
नाथ दरस करि गिरि नीचे बेनु तन त्यागे ।
जादवदासी सर रचि नाथ धूजा के आगे ।
कहि नाथ देह तजि आगि धरि बायु बहे तिन तन वहे ।
बाबा बेनू के अनुजवर कृष्णदास घघरी रहे ॥१२८॥

जगतानंद दुज सारस्वत थानेसर निवसत रहे ।
एक श्लोक के अर्थ प्रभुन त्रै जाम बिताये ।
कही मास द्वै तीनि बीतिहै सुनि सिर नाये ।
देहु नाम इन बिनय करी तब प्रभु अपनाये ।
पुनि महाप्रभुन को नित निज घर पधराये ।
तहँ नित सेवा बिधि तिनहिं कहि सावधान सेवन कहे ।
जगतानंद दुज सारस्वत थानेसर निवसत रहे ॥१२९॥

बोऊ भाई छत्री हुते महाप्रभु-रस रंग रये ।
आनंददास बड़े भाई नित बैठि अनुज सँग ।
महाप्रभुन के चरित कृष्ण गुन कहत पुलकि अँग ।

सोइ जात जब दास बिसम्भर भरत हुंकारी ।
भरत आप तब श्री हरिजू निज जन-हितकारी ।
कहि कथा पूछि अनुजहि मुदित जानि ठाकुरहि ठगि गये ।
बोऊ भाई छत्री हुते महाप्रभुन-रस रंग रये ॥१३०॥

इकं निपट अकिंचन ब्राह्मनी जिन हरि कहैं निज कर लहे ।
माटी के सब पात्र सदन साँकरो सुहायो ।
बृद्धि भई निज ठाकुर रत अपरस बिसरायो ।
लपि वैष्णव श्री महाप्रभुन पधराये तेहि घर ।
प्रीति भाव लखि भे प्रसन्न अति ही जिय प्रभुवर ।
सेवकन कहौ मरजाद तजि इन प्रभु-पद दृढ़ करि गहे ।
इक निपट अकिंचन ब्राह्मनी जिन

हरि कहैं निज कर लहे ॥१३१॥

छत्रानी इक हरि-नेह-रत वत्सलता की खानि ही ।
दिन दस के लड़ुआ इक ही दिन करिकै राखे ।
सो प्रभु आप उठाइ अंक लै तुरतहि चाखे ।
यह मरजादा भंग देखि रोई भय होई ।
आरति के हित कियो कह्यौ तब प्रभु दुख जोई ।
तब नित सामग्री नव करति ऐसी चतुर सुजानि हो ।
छत्रानी इक हरि-नेह-रत वत्सलता की खानि ही ॥१३२॥

समराई हठ करि प्रभुन को निज कर भोग लगाइयो ।
सास गोरजा महाप्रभुन के दरस पधारी ।
तब यह हरि सनमुख लाई रच रुचि कै थारी ।
जब न अरोगे तब इन कछु आपहु नहिं छायो ।
ऐसे ही हठ करि जल बिनु दिन कछुक बितायो ।
तब आपु प्रगत ह्वै प्रेम सों जाल लैं याहि पिवाइयो ।
समराई हठ करि प्रभुन को

निज कर भोग लगाइयो ॥१३३॥

दासी कृष्ण मति रुचि भरी गुरु-सेवा मैं अति निरत ।
जब गोस्वामी कहैं चतुर्थ बालक प्रगटाए ।
तब श्री बल्लभ गोस्वामी वर नाम धराए ।
कृष्ण भाख्यो इनकों गोकुलनाथ पुकारो ।
तासों जग में यहै नाम सब लेत हैंकारो ।
गोस्वामी हू जा कानि सों यहै नाम भाखे तुरत ।
दासी कृष्णा मति रुचि भरी

गुरु-सेवा मैं अति निरत ॥१३४॥

श्री बूला मिश्र उदार अति बिनु रितुह बालक दियो ।
जिजमानहि बरवस एक ही छंद सुनाई ।
करम लिखी हू उलटन पतनी गोद भराई ।
छत्री को इन सकल मनोरथ पूरन कीनो ।
करुना चित मैं धारि दान बालक को दीनो ।
हरि-गुरु-बल जो मुख सों

कह्यौ सोई हठ करि कै कियो ।

श्री बूला मिश्र उदार अति विनु रिनुह बालक दियो । १३५

मीराबाई की प्रोहिती रामदास जू तजि दई ।

हरि-गुरु परम अमेद भाव हिय रहत सदाई ।

याही तें गुरु-कीरति इन हरि-सनमुख गाई ।

मीरा भाख्यौ हरि-चरित्र गाओ द्विजराई ।

सुनि अति कोपे इन जाने नहिं बल्लभराई ।

लाखि द्वैध भाव तजि गाँव सों दूर बसे मति गुरु भई ।

मीराबाई की प्रोहिती रामदास जू तजि दई । १३६

सेवक गोवर्दननाथ के रामदास चौहान हे ।

जब प्रगटे प्रभु प्रथम गोवर्धन गिरि के ऊपर ।

नाम नवल गोपाललाल त्रय-दमन मनोहर ।

तब श्री बल्लभ इनको सेवा हरि की दीनी ।

रहै मैझैया छाड़ परम रति मैं मति भीनी ।

नित ब्रज को गारस अरपि के सेवत हरि सुख-खान हे ।

सेवत गोवर्दननाथ के रामदास चौहान हे । १३७

द्विज रामानंद विच्छिन्न बनि जगहि सिखाई प्रेम-विधि ।

गुरु रसि करि कै तज्यौ तऊ हरि जेहि नहिं त्याग्यौ ।

दरसायो सिद्धांत यहै पथ को अनुराग्यौ ।

बिकल पथहि पथ फिरत खात तन की सुधि नाहीं ।

निरखि जलेवी हरिहि समर्पि अति चित-चाही ।

ताको रस हरि के बसन मैं देख्यौ गुरुवर भावनिधि ।

द्विज रामानंद विच्छिन्न बनि

जगहि सिखाई प्रेम-विधि । १३८

छोपा-कुल-पावन भे प्रगट विष्णुदास वादीन्द्र-जित ।

हरि-सेवक विन लेत न जलहु प्रेम बढ़ायन ।

मट्टनहु के परस लेत नहिं जानि अपावन ।

श्री गोस्वामी-चरन-कमल-मधुकर ये ऐसे ।

स्वाती-अंबर कों चालक चाहत है जैसे ।

धनि धनि जिनके प्रेम-पन अन्याश्रय गत धीर-चित ।

छोपा-कुल-पावन भे प्रगट विष्णुदास वादीन्द्र-जित । १३९

जन-जीवन प्रभु की आनि दै मेघनि नहिं बरसन दये ।

एक समै श्री महाप्रभु दरसन करिबे हित ।

आवत हे सब सीहनंद के वैष्णव इक चित ।

लागे करन रसोई मग में घन घिरि आये ।

निहचै जानि अकाज अनन्यनि अति अकुलाये ।

चढ़ि आई गुरु की कानि चित मघवा-मद जिन हरि लये ।

जन-जीवन प्रभु की आनि दै मेघनि नहिं बरसन दये । १४०

भगवानदास सारस्वत दई प्रभुन श्री पाँवरी ।

श्री आचारज जाइ विराजे इनके घर जहँ ।

नित उठि प्रातहि करहि दंडवत ये सादर तहँ ।

तातें कोउ नहिं धरत पाय तेहि पूजित ठौरहि ।

ठाकुर जिन सों सानुभाव कहिए का औरहि ।

सेये जिन अपन विसारि कै भरी निरंतर भाँवरी ।

भगवानदास सारस्वत दई प्रभुन श्री पाँवरी । १४१

भगवानदास श्रीनाथ के हुते भितरिया सुखद अति ।

कष्ट सामग्री दाँभ गई इक दिन अनजाने ।

गोस्वामी सेवा तें बाहिर किए रिसाने ।

सुनि जन अच्युत गोस्वामी सों रोइ विनय की ।

नाथ हाथ गति प्रभु संबंधी जीय निचय की ।

सुनि कर गहि लै गिरिराज पै कही सेइ अवतें सुमति ।

भगवानदास श्रीनाथ के हुते भितरिया सुखद अति । १४२

दुज अच्युतदास सनोड़िया चक्रतीर्थ पै रहत हे ।

आबै नित सिंगार समै श्रीनाथ-दरस हित ।

पुनि निज थल कों जात हुते ऐसो साहस चित ।

नाथ-परिक्रम दंडवती इन तीन करी जब ।

श्री गोस्वामी श्री-मुख करी बड़ाई बहु तब ।

हे गुनातीत ये भगवदी प्रभुन-भगति रस बहत हे ।

दुज अच्युतदास सनोड़िया चक्रतीर्थ पै रहत हे । १४३

दुज गौड़ दास अच्युत तहीं प्रभु विरहानल तन दहे ।

सेवा पधराई श्री मोहन मदन लाल की ।

आपहु बैठे पाट प्रगटि तन छवि रसाल की ।

सेये नीकी भाँति मदन-मोहन रिभवारो ।

श्री गोस्वामी जिनहिं नमत लपि अपन विसारो ।

प्रभु-असुर-विमोहन-चरित लपि बद्रिनाथ दरसन लहे ।

दुज गौड़ दास अच्युत तहीं प्रभु विरहानल तन दहे । १४४

श्री प्रभुन सरूप सुजान सुभ अच्युत अच्युतदास द्विज ।

प्रभु सँग पृथ्वी-परिक्रम करि पद-पाँवरी पूजत ।

प्रभु के लौकिक करम धरम तिन कहँ नहिं सूफत ।

जिन लपि नर सुर असुर विमोह परत भव-सागर ।

गुनातीत प्रभु-चरित-मगन मन जन नव नागर ।

मोहित जन लपि प्रभु दरस दै कहे सगुन प्रागट्य निज ।

श्री प्रभुन सरूप सुजान सुभ

अच्युत अच्युतदास द्विज । १४५

नरायनदास प्रभु-पद-निरत अंबालय में बसत हे ।

नुप-नौकर अवसर न पावते प्रभु दरसन कों ।

उत्कठित दिन राति धन्य धनि जिनके मन कों ।

कब जेहौ भैया श्री बल्लभ के दरसन हित ।

चाकर राषे सुरति देन कों यों छन छन तिन ।

बहु भेंट पठावत हे प्रभुहि ऐसे ये भागवत हे ।

नरायनदास प्रभु-पद-निरत अंबालय में बसत हे । १४६

नरायनदास भाट जाति मथुरा में निवसत रहे ।

जिनकों आयुस दई मदनमोहन गुनि प्रभु-जन ।
बाहिर मुहिं पधारउ काढ़िहों गुन इतै वन ।
मथुरा तें निकसाइ तुरत बाहिर पधराये ।
पुनि श्री गोपीनाथ सिंहासन पै बैठाए ।
तातें दरसन करि सबै सहजहि अभिमत फल लहे ।
नरायनदास भाट जाति मथुरा में निवसत रहे ॥१४७॥

नारिया नरायनदास भे सरन प्रभुन के अनुसरे ।
पातसाह ठठा के ये दीवान हेत हे ।
दुसह दंड में परि नित पाँच हजार देत हे ।
रुपये लाख पचास भरन लौ कैद किये तिन ।
इक दिन के द्वै गुर-भाइन को देइ दिये जिन ।
छुटि पातसाह सों साँच कहि सहस मुहर प्रभु-पद धरे ।
नारिया नरायनदास भे सरन प्रभुन के अनुसरे ॥१४८॥

छत्रानी एक अकेलियै सीहनंद में वसत ही ।
श्री नवनीत-प्रिया की करति अकिंचन सेवा ।
तरकारी हित सिसु लौ भगरत जासों देवा ।
माया विद्या अन-सपड़ी सपड़ी के त्यागी ।
भावहि भूषे धी चुपरी रोदिहि अनुरागी ।
माया विसिष्ट प्रगटत सदा प्रेमहि तें प्रभु तुरत ही ।
छत्रानी एक अकेलियै सीहनंद में वसत ही ॥१४९॥

कायथ दामोदरदास जिन श्री कपूररायहि भज्यौ ।
जिनकी जुवती हुती वीरवाई प्रसूतिका ।
श्री ठाकुर-सेवा की सोई सुचि विभूतिका ।
लाई सूतकौ में सेवा जासो प्रभु पावन ।
सेवक प्रभुन स्वरूप होत नहिं कबहुं अपावन ।
नहिं आतम सुदासुद कहुं सोइ प्रभु सोइ सेवक सज्यौ ।
कायथ दामोदरदास जिन श्री कपूररायहि भज्यौ ॥१५०॥

छत्री दोउ स्त्री पुरुष हे रहे आइ सिहनंद में ।
निपटै लघु घर हुतो मेइ ठाकुर पौढ़ाए ।
जिनके डर सों सोयत निसि आँगन सचुपाए ।
पावस रितु में भीजत जानि पुकारि कही सुनि ।
घर में सोवहु भीजौ मति न करौ ऐसो पुनि ।
तौऊ साँस न पावै वजन सोये जा आनंद में ।
छत्री दोउ स्त्री पुरुष हे रहे आइ सिहनंद में ॥१५१॥

श्री महाप्रभुन सूतार घर श्रम पिछानि पग धारते ।
प्रभुन दरस बिन किये रहे नहिं जे एकौ दिन ।
छुटे सकल गृह-काज भये घर के सब सुष बिन ।
याही तें प्रभु आपै आवत हुते सदन जिन ।
बहुत बारता करत हुते धनि जिनसों अनुदिन ।
पै दिन चौथे पचयें कछु जननी रिस जिय धारते ।
श्री महाप्रभुन सूतार घर श्रम पिछानि पग धारते ॥१५२॥

अन्य मारगी मित्र इक छत्री सेवक अति विमल ।
अन्य मारगी भवन नेह बस गए एक दिन ।
किये पाक तेहि ठाकुर आगे नाथ अरपि तिन ।
भोग सराये ताहि लिवाये लिय आपो पुनि ।
भूषे ठाकुर ताहि जगाय कही सब सों सुनि ।
परभाव जानि या पंथ को भयो सरन सोऊ विकल ।

अन्य मारगी मित्र इक छत्री सेवक अति विमल ॥१५३॥
चित लघु पुरुषोत्तमदास के गुरु ठाकुर में भेद नहिं ।
श्री आचारज महाप्रभुन-पद रति रस-भाने ।
आपै के गुन श्रवन कीरतन सुमिरन कीने ।
आपै कहैं आतम अरपे सेध पूजे जन ।
सपा दास आपहि के बंदे आपहि को इन ।
आपहु जिनकों अति ही चहे भक्ति भाव धरि जीय महिं ।
चित लघु पुरुषोत्तमदास के

गुरु ठाकुर में भेद नहिं ॥१५४॥

कविराज भाट श्रीनाथ कों नित नव कवित सुनावते ।
तीनों भाई नाम पाइकें किये निवेदन ।
नाथ निकट बहु कवित पढे पभु भये मुदित मन ।
धनि धनि धनि धे कवित धन्य वे धन्य भगति जिन ।
धनि धनि धनि श्री प्रभुन नाम उद्धारन अगतिन ।
किय कवित अनेकनि प्रभुन के सदा प्रभुन मन भावते ।
कविराज भाट श्रीनाथ कों नित नव कवित सुनावते ॥१५५॥

गोपालदास टोरा हुते अति आसक्त प्रभुन पै ।
मार्कण्डे पूजत हे प्रभु निज जन्मोत्सव दिन ।
इक दिन आगे आये हे गाये पद तेहि छिन ।
सुनि माधव में वल्लभ हरि अवतरे दास मुष ।
कृष्ण-भगति मुद मगन भये तकि ज्ञानादिक सुष ।
बहु छंद प्रबंध प्रवीन ये बारें रसिक दुइन पै ।
गोपालदास टोरा हुते अति आसक्त प्रभुन पै ॥१५६॥

जनार्दनदास छत्री भये सरन पूर्ण विस्वास तें ।
दरसन करत प्रभुन पूरन पुरुषोत्तम जाने ।
करी विनय कर जेरि सरन मोहिं लेहु सुजाने ।
आपौ आज्ञा दई न्हाइ आवौ ते आये ।
पाइ नाम पुनि किये समर्पन अति चित चाये ।
ये सन्निधान श्रीनाथ के न्यारे ह्वै भव-पास तें ।
जनार्दनदास छत्री भये सरन पूर्ण विस्वास तें ॥१५७॥

गुडुस्वामी ब्रह्म सनोड़िया प्रभुन सरन भे प्रभु कहे ।
गये प्रभुन पै न्हाइ दंडवत करी विनय कै ।
कही सरन मोहिं लेहु नाथ अब देहु अभय कै ।
कही आप मुसिकाय कही स्वामी किमि सेवक ।
पुनि तिन बन्दन करी कही आज्ञा मुहिं देवक ॥१५८॥

लाहि नाम सेवकनि सहित निज किये निवेदन मुद लहे ।
गडुस्वामी ब्रह्म सनोडिया प्रभुन सरन मे प्रभु कहे । १५८

कन्हैया साल छत्री जिन्है प्रभुन पढ़ाए ग्रंथ निज ।
श्रीमद्गोस्वामी जू जिन सों पढ़े ग्रंथ बहु ।
इनकी कहा बड़ाई करिये मुख अति ही लहु ।
प्रेम दास्य विस्वास रूप ये नीकै जानत ।
श्री हरि गुरु की भगति भाव करिकै पहिचानत ।
निज गमन समय राख्यो इन्है थापन को भुवपंथ निज ।
कन्हैया साल छत्री जिन्है प्रभुन पढ़ाए ग्रंथ निज । १५९

गोडिया सु नरहरदास जू प्रभु-न-कृपा पाये सुपद ।
जिन घर बैठे पाट मदन-मोहन पिय प्यारे ।
सोये सहित सनेह जानि प्रेमहिं पर वारे ।
पुनि पधराये श्री गोस्वामी पै यह गुनि जिय ।
ये सुप पेहैं यहीं लाल हैं इनहीं के प्रिय ।
पुनि गोस्वामी पधराये श्रीरघुनाथ-सदन सुपद ।
गोडिया सु नरहरदास जू प्रभु न कृपा पाये सुपद । १६०

बादा श्रीप्रभु की कृपा तें दास बादरायन भये ।
आछे भट तें सुने भागवत नाम पाइ कै ।
जाते श्री रनछोर प्रभु न तहैं टिके आइ कै ।
पाये प्रभु पै नाम समर्पन किये गए संग ।
दरसन करि पुनि आइ मोरवी रंगे प्रभुन रंग ।
पुनि रहे तहैं आयसु प्रभुन आपुन श्रीगोकुल गये ।
बादा श्रीप्रभु की कृपा तें दास बादरायन भये । १६१
नरो सुता तिय आदि सब सदृ मानिकचंद की ।
देवदमन जिन सदन पियत पय नरो पियावति ।
जात कटोरो भूलि ताहि मुषियहि दै आवति ।
माँगि प्रभुन सों गाय नाम गोपाल धराये ।
निज प्रागट्य जनाइ प्रभुन तिन गृह पधराये ।
प्रभु कृपापात्र सुचि भगवदी मूरति ब्रह्मानंद की ।
नरो सुता तिय आदि सब सदृ मानिकचंद की । १६२

सन्यासी नरहरदास पै सुगुरु-कृपा अतिसय हुती ।
एक समे श्री महाप्रभू द्वारिका पधारे ।
वेना कोठारिहु लै एऊ संग सिधारे ।
तहाँ विनय करि किये सुसेवक सरन प्रभुन के ।
जिनके सरनागत पै बस नहिं चलत तिगुन के ।
सेवा अपराधौ तिगुन सिर भेद भगति यह दृढमती ।
सन्यासी नरहरदास पै सुगुरु-कृपा अतिसय हुती । १६३

गोपालदास जटाधारी नाथ खवासी करत हे ।
ग्रीष्म भोग अरोगि जामिनी जगमोहन में ।
पौद्ध जहँ श्रीनाथ स्वामिनी के गोहन में ।
आँखि मीचि चहुँ जाम करत बीजन तहैं ठाढ़े ।

प्रभु आयसु तें आरस-गत अति आनंद बाढ़े ।
ठाकुर सेवक कहैं दंड दै बादि विरह में तन दहे ।
गोपालदास जटाधारी नाथ खवासी करत हे । १६४
सति धर्म मूल तिय बनिक-गृह कृष्णदास पहुँचाइयो ।
वैष्णव धर्म अकिंचनता तेहि प्रगटहि दिखाई ।
जिनकी तिय करि कौल बनिक सों सीधो लाई ।
करी रसोई भोग अरुणि पुनि भोग सराये ।
बहुरि अनौसर करके सब वैष्णवनि जिवाये ।
लापि ज्ञानचन्द पै प्रभु-कृपा आपुहि कौल चिताइयो ।
सति धर्म मूल तिय बनिक-गृह

कृष्णदास पहुँचाइयो । १६५

श्री गोस्वामी के प्रान-प्रिय संतदास छत्री रहे ।
श्री हरि-पद अरविंद मरंद मते मिलिंद में ।
गावन में हरि-चरित मौन में अति अमंद ये ।
अन-आश्रय अरु वैष्णव-धन विप जिनहिं विपहु तें ।
याही तें ये हुते नियारे दंद दुपहु तें ।
कौड़ी बेंचत हे छाड़्ये पैसनि हित अधिक न चहे ।
श्रीगोस्वामी के प्रान-प्रिय संतदास छत्री रहे । १६६
सुंदरदासहि के संग तें वैष्णव माधवदास भे ।
माधवदास कृष्ण चैतन्य-सुसेवक दृढमति ।
जाको भोग समर्पित पावत प्रेत दुष्ट अति ।
पै तिहि दृढ विस्वास जु श्री ठाकुरे अरोगत ।
श्री आचारज प्रभुन निदि सो लह्यो दंड द्रुत ।
अपराध आपनो जानि कै महाप्रभुन की आस भे ।
सुंदरदासहि के संग तें वैष्णव माधवदास भे । १६७
विरजो मावजी पटेल दोउ वैष्णव ही हित अवतरे ।
श्री गोकुल द्वै वेर साल में सदा आवते ।
गाड़ा गाड़ा गुड़ घृत सौजनि सहित लावते ।
एक पाष श्री गोकुल इक श्रीनाथद्वार रह ।
खिरक लिवावत भोग समर्पित सब ग्वालिन कहैं ।
पुरुषोत्तम खेतहि वैष्णवनि सबै लिवाए मुद भरे ।
विरजो मावजी पटेल दोउ वैष्णव ही हित अवतरे । १६८
गोपालदास रोड़ा दिये नाम दान प्रभु के कहे ।
एक समै गोपालदास श्रीनाथहिं आये ।
आयो ज्वर द्वै चारि भये लंघन दुष पाये ।
लागी प्यास कही सेवक सों सोइ गयो सो ।
आपुहि भारी प्याये जल दुष बिसरो सो ।
श्री गोस्वामी की सीष सों प्रभुता मद रंच न रहे ।
गोपालदास रोड़ा दिए नाम दान प्रभु के कहे । १६९
काका हरिबंस प्रसंस मति धरम परम के हंस भे ।
श्री बिठ्ठल-सुत जेहि काका सम आदर करहीं ।

कैष्णव पर अति नेह सुअन सम नित अनुसरहीं ।
नाम-दान दै जगत जीव फिर फिर के तारे ।
और और हरि सुजस भक्ति हित बहु विस्तारे ।
प्रिय कंस धंस के होइ के छत्रिहु वल्लभ बस मे ।
काका हरिवंस प्रसंस मति धरम परम के हंस मे । १७०

गंगा बाई श्रीनाथ की अतिहि अंतरंगिनि भई ।
जवन-उपद्रव जब श्रीप्रभु मेवाड़ पधारे ।
माराग मैं यह साथ रहीं हिय भगति विचारे ।
जब रथ कहूँ अड़ि जात तबै सब इतहि बुलावै ।
श्री जी के ढिग भेजि नाथ-इच्छा पुछवावै ।
श्री विठ्ठल गिरिधर नाम सों पद रचि हरि-लीला गई ।
गंगा बाई श्रीनाथ की अतिहि अंतरंगिनि भई । १७१

श्रीतुलसिदास-परताप तें नीच ऊँच सब हरि भजे ।
नंददास अग्रज द्विज-कुल मति गुन-गन-मंडित ।
कवि हरि-जस-गायक प्रेमी परमारथ पंडित ।
रामायन रचि राम-भक्ति जग धिर करि राखी ।
धोरे मैं बहु कह्यो जगत सब याको साखी ।
जग-लीन दीनहु जा कृपा-बल न राम-चरितार्हा तजे ।
श्रीतुलसिदास-परताप तें नीच ऊँच सब हरि भजे । १७२

गोस्वामी विठ्ठलनाथ के ये सेवक जग में प्रगत ।
भट्ट नाग जी कृष्णभट्ट पक्षा रावल-सुत ।
माधोदास हिसार बास कायथ निज पितु सुत ।
विठ्ठलदास निहालचंद श्रीरूपमुरारी ।
रूपचंद नंदा खत्री भाइला कुठारी ।
राजा लाखा हरिदास भाई जलौट हरि नाम रट ।
गोस्वामी विठ्ठलनाथ के ये सेवक जग में प्रगत । १७३

गोस्वामी विठ्ठलनाथ के ये सेवक हरि-चरन-रत ।
कृष्णदास कायस्थ नरायनदास निहाला ।
ज्ञानचंद्र ब्रह्माणी सहारनपुर के लाला ।
जन-अर्दन परसाद गोपालदास पाथी गनि ।
मानिकचंद मधुसूदनदास गनेस व्यास पुनि ।
जदुनाथ दास कान्हो अजब गोपीनाथ गुआल सत ।
गोस्वामी विठ्ठलनाथ के ये सेवक हरि-चरन-रत । १७४

हित रामराय भगवान बलि हठी अली जगनाथ जन ।
कहौ जुगल रस-केलि माधुरीदास मनोहर ।
विठ्ठल बिपुल विनोद बिहारिनि लिमि अति सुंदर ।
रसिक-बिहारी त्योंही पद बहु सरस बनाए ।
तिमि श्री भट्ट कृष्ण-चरित गुप्तहु बहु गाए ।
कल्याणदेव हित कमल-दुग नरबाहन आनंदधन ।
हित रामराय भगवान बलि हठी अली जगनाथ जन । १७५

श्री ललितकिशोरी भाव सों नित नव गायो कृष्ण-जस ।

भट्ट गदाधर मिश्र गदाधर गंग गुआला ।
कृष्ण-जिवन हरि लछीराम पद रचत रसाला ।
जन हरिया धनश्याम गोविंदा प्रभु कल्याना ।
विचित्र-बिहारी प्रेम-सखी हरि सुजस बखाना ।
रस रसिकबिहारी गिरिधरन प्रभु मुकुंद माधव सरस ।
श्री ललितकिशोरी भाव सों

नित नव गायो कृष्ण-जस । १७६

श्री वल्लभ आचारज अनुज रामकृष्ण कवि मुकुटमनि ।
वसत अजुध्या नगर कृष्ण सों नेह बढ़ावत ।
कृष्ण-कुतूहल कहि गुपाल लीला नित गावत ।
बोऊ कुल की वृति तिनूका सी तजि दीनी ।
ब्याह कियो नहिं जानि सुखद हरि-पद मद भीनी ।
करि बाद पंथ थापन कियो ग्रंथ रचे नव तीन गनि ।
श्री वल्लभ आचारज अनुज

रामकृष्ण कवि मुकुटमनि । १७७

हरि-प्रेम-माल रस-जाल के नागरिदास सुमेर मे ।
वल्लभ पथहि दृढ़ाइ कृष्णगढ़ राजहि छोड़यो ।
धन जन मान कुटुम्बाहि बाधक लाखि मुख मोड़यो ।
केवल अनुभव सिद्ध गुप्त रस चरित बखाने ।
हिय सँजोग उच्छलित और सपनेहुँ नहिं जाने ।
करि कूटी रमन-रंती वसत संपद भक्ति कुवेर मे ।
हरि-प्रेम-माल रस-जाल के नागरिदास सुमेर मे । १७८

हिय गुप्त बियोगहि अनुभवत बड़े नागरीदास हे ।
बार-बधू ढिग वसत सबै कछ पीयो खायो ।
पै छनहुँ हिय सों नहिं सो अनुभव विसरायो ।
सुनतहि विठ्ठल नाम भक्त-मुख श्रवन मैंभारी ।
प्राण तज्यो कहि अहो तिनहिं सुधि अजहुँ हमारी ।
दरसन ही दै हरिभक्त अपराध कुष्ट जन दुख दहे ।
हिय गुप्त बियोगहि अनुभवत बड़े नागरीदास हे । १७९

श्री वृंदावन के सूर-ससि उभय नागरीदास जन ।
निज गुरु हित हरिवंस कृष्ण-चैतन्य चरन-रत ।
हरि-सेवा में सुदृढ़ काम क्रोधादि दोषगत ।
अद्भुत पद बहु किये दीन जन दै रस पोषे ।
प्रभु-पद-रति विस्तारि भक्तजन मन संतोषे ।
दृढ़ सखी भाव जिय में बसत समनेहुँ नहिं कहूँ और मन ।
श्री वृंदावन के सूर-ससि उभय नागरीदास जन । १८०

इन मुसलमान हरि-जनन पै कोटिन हिंदुन वारिये ।
आलीखान पठान सुता सह ब्रज रखवारे ।
सेख नबी रसखान मीर अहमद हरि-प्यारे ।
निरमलदास कबीर ताजखाँ बेगम बारी ।
तानसेन कृष्णदास बिजापुर नृपति-दुलारी ।

पिरजादी बीबी रास्ती पद-रज नित सिर धारिये ।
 इन मुसलमान हरि-जनन पै कोटिन हिंदुन वारिये । १८१
 बाबा नानन हरि-नाम दे पंचन वहि उदार किय ।
 बार बार निज सौज साधुजन लखत लुटाई ।
 वेदी बंस प्रसंस प्रगटि रस-रोति दूढ़ाई ।
 गुप्त भाव हरि प्रियतम को निज निज हिये पुरायो ।
 गाइ गाइ प्रभु-सुजस जगत अघ दूरि बहायो ।
 जग ऊँच नीच जन करि कृपा एक भाव अपनाइ लिय ।
 बाबा नानक हरिनाम दे पंचनदहि उदार किय । १८२
 कवि करनपूर हरि-गुरु-चरित करनपूर सबको कियो ।
 सेन बंस श्री शिवानंद सुत बंग उजागर ।
 सुर-बानी मैं निपुन सकल रस के मनु सागर ।
 अति छोटे तन गुरु महिमा करि छंद बखानी ।
 जननि गोद सों किलकि हँसे निज गुरु पहिचानि ।
 परमानंद सों चैतन्य ससि नाम पलटि दूजो दियो ।
 कवि करनपूर हरि-गुरु-चरित करनपूर सबको कियो । १८३
 बनमाली के माली भए नाभा जी गुन-गन-गथित ।
 नाम नरायनदास विदित हनुमत कुल जायो ।।
 अग्र कीलह गुरु-कृपा नयन खोयोह पायो ।
 गुरु आयसु धरि सीस भक्त-कीरति जिन गाई ।
 भक्तमाल रस-जाल प्रेम सों गूथि बनाई ।
 नित ही नव-रूप सुवास सम सुमन-संत करनी कथित ।
 बनमाली के माली भए नाभा जी गुन-गन-गथित । १८४
 ये भक्तमाल रस-जाल के टीकाकार उदार-मति ।
 कृष्णदास बंगाल कृष्ण-पद-पदुम रत ।
 प्रियादास सुखदास प्रिया जुग चरन कुमुद नत ।
 ललितलालजी दास एक औरहु कोउ लाला ।
 लाल गुमानी तुलसिराम पुनि अगगरवाला ।
 परतापसिंह सिधुआपती भूपति जेहि हरि-चरन-रति ।
 ये भक्तमाल रस-जाल के टीका उदार-मति । १८५
 लाला बाबू बंगाल के बंदावन निवसत रहे ।
 छोड़ि सकल धन-धाम वास ब्रज को जिन लीनो ।
 माँगि माँगि मधुकरी उदर पूरन नित कीनो ।

हरि-मंदिर अति रुचिर बहुत धन दे बनवायो ।
 साधु-संत के हेत अन्न को सत्र चलायो ।
 जिनकी मृत देहु सब लखत ब्रज-रज लोटन फल लहे ।
 लाला बाबू बंगाल के बंदावन निवसत रहे । १८६
 कुल अग्रवाल पावन-करन कुंदनलाल प्रगट भये ।
 प्रथम लखनऊ बसि श्री पन सों नेह बढ़ायो ।
 तहाँ श्री युगल सरूप थापि मंदिर बनवायो ।
 द्वार को सुखरास कलियुग में कीनी ।
 सोइ भजन आनंद भाव सहचरि रंग भीनी ।
 लाखन पद ललित किशोरिका नाम प्रगटि बिरचे नए ।
 कुल अग्रवाल पावन-करन कुंदनलाल प्रगट भए । १८७
 गिरिधरनदास कवि-कुल-कमल वैश्य वंश भूपन प्रगट ।
 भापा करि-करि रचे बहुत हरि-चरित सुभाषित ।
 दान मान करि साधु भक्त मन मोद बढ़ायो ।
 सब कुल-देवन मेदि एक हरि-पंथ दूढ़ायो
 लक्षावधि ग्रंथन निरमये श्री वल्लभ विश्वास अट ।
 गिरिधरनदास कवि-कुल-कमल

वैश्य वंश-भूपन प्रगट । १८८

यह चार भक्त पंजाब में चार वेद पावन भए ।
 श्री रामानुज बृद्ध हरिचरन विनु सब त्यागी ।
 भाई सिंह दयाल भजन में अति अनुरागी ।
 कविवर दास अमीर कृष्ण-पद मैं अति पागी ।
 मयाराम रसरस ललित प्रेमी वैरागी ।
 श्री हरि के प्रम प्रचार-हित जिन उपदेस बहुत दये ।
 यह चार भक्त पंजाब में चार वेद पावन भए । १८९

श्रीभक्त रत्नहरिदास जू पावन अमृतसर कियो ।
 क्षत्रिय वंश गुलाबसिंह-सुत मत रामानुज ।
 रामकुमारी-गर्भ-रत्न त्यागी-मंडल-धुज ।
 सुवसु वेद वसु चंद आठ कातिक प्रगटाए ।
 श्री हरि-महिमा ग्रंथ ललित बत्तीस * बनाए ।
 रणजीत सिंह नृप बहु कष्ट्यौ तदपि नाहिं दरसन दियो ।
 श्री भक्त रत्नहरिदास जू पावन अमृतसर कियो । १९०

* श्री रघुनाथ के परम भक्त अति रसिक विद्वज्जन मान्य महानुभाव श्री रत्नहरिदास जी ने ३२ ग्रंथ नवीन बनाये हैं । तिन ग्रंथों में प्रति पद जमक अनुप्रासादि अलंकार भरे हैं और वर्णमैत्री की तो प्रतिज्ञा है कि एक पद वर्णमैत्री बिना नहीं होगा । तथा उनके पढ़ने से अत्यानंद प्रगट होता है कि कबन में, नहीं आता । जो पुरुष सुनते हैं, वही मोहित हो जाते हैं । १. रामरहस्य । चौपाई दोहादि, छंदों में बाल्यलीला रघुनाथजी की श्लोक ५००० । २. प्रणोत्तरी । दोहा ४० शुरु-प्रोक्तप्रणोत्तरी की भाषा है । ३. रामललाम-ललित पद छंदों में रामायण है । श्लोक ६००० राम कलेवा ग्रंथवत् । ४. सार संगीत — उक्त छंदों में श्लोक ६००० भागवत की कथा । ५. नानक-चंद्र-चंद्रिका — चौपाई दोहादि छंदों में श्री नानक शाह का जीवन चरित वर्णन । ६. दाशरथी दोहावली — दोहा ११०० रामायण है अति चमत्कार युत । ७. जगदमक दोहावली — दोहा १२५ प्रति दोहा में ४ जमक हैं । ८. गूढार्थ दोहावली — दोहा १०० फुटकर हैं । ९. एकादशस्कंध-भागवत का चौपाई दोहा में । १०. कौशलेश कवितावली — कवित्त १०८ रामायण क्रम से । ११. गुरु-कीरति कवितावली — १०८ नानक शाह का चरित्र है । १२. कुसुमव्यारी — कवित्त ३६.

नेता में जो लछिमन करी सो इन कलियुग माहिं किय ।
अग्रज कुंदनलाल सदा दैवत सम मान्यो ।
परम गुप्त हरि-विरह अमृत सों हियरो सान्यो ।
अंतरंग सखि भाव कबहु काहु न लखायो ।
करम-जाल विध्वंसि प्रेम-पथ सुदृढ़ चलायो ।
श्री कुंदनलाल उदार मनि बंधु-भगति अति धारि हिय ।
नेता में जो लछिमन करी सो

इन कलियुग माहिं किय । १९१
नित श्याम सखी सम नेह नव श्याम सखा हरि सुजस कवि ।
नित्य पाँच पद विरचि कृष्ण अचरन तब आनत ।
गान तान बंधान बाँध हरि सुजस बखानत ।
देस देस प्रति घूमि घूमि नर पावन कीनो ।
निज नयनन के प्रेम-वारि हियरो नित भीनो ।
घर त्यागि फिरत इत उत भ्रमत

भक्त-वनज-वन प्रगट रवि ।
नित श्याम सखी सम नेह नव श्याम

सखा हरि सुजस कवि । १९२
दक्षिण के ये सब भक्तवर संत मामलेदार सह ।
तुकाराम चोखा महार सावंता माली ।
नामदेव गोरा कुम्हार पंढरी सुचाली ।
रामदास पुनि एक नाथ मायूर कन्हाई ।
कृष्णा साबू और कृष्ण अर्पन रत बाई ।
दामाजी दत्त बधूत ज्ञानेश्वर अमृतराव कह ।
दक्षिण के ये सब भक्तवर संत मामलेदार सह । १९३
नारायण शालग्राम हरिभक्त प्रगट यहि काल के ।
गङ्गाजी महाराज काठजिभ कृष्णदास धरि ।
तुलाराम रघुनाथदास रघुनाथसिंह हरि ।
युगलानन्ध सुप्रियादास राधिकादास कहि ।
हरिविलास नवनीत गोप जै श्रीकृष्णा लहि ।
मथुरा ससि हरख अजीत हरि रामगुलाम गुपाल के ।
नारायण शालग्राम हरिभक्त प्रगट यहि काल के । १९४

द्विज ब्रह्मदत्त सह प्रगट एहि समय भक्त हरि के भये ।
रामसखा हरिहरप्रसाद लक्ष्मीनारायण ।
अवधदास चौपाई उमादत्त जन रामायण ।
रामचरन सुक लोटा गट्ट रामप्रसाद ।
सेवक सीताराम पौहरी गल्लू दादा ।
बलि रामनिरंजन जुगल जुगराज परम हंसादि ये ।

द्विज ब्रह्मदत्त सह प्रगट एहि

समय भक्त हरि के भये । १९५

ये चार भक्त एहि काल के औरहु हरि-पद-पंकज-रत ।
राम नाम रत रामदास हापड़ के वासी ।
त्यागि संपदा भए सुनत सप्ताह उदासी ।
जागो भट्ट प्रसिद्ध भजन-प्रिय सेवत कासी ।
राम-नाम-रत माजी नागर बंस प्रकासी ।
श्री हरिभाऊ हरिभाव-रत धूलटंक सिव ढिग बसत ।
ये चार भक्त एहि काल के

औरहु हरि-पद-कंज-रत । १९६

उनइस सै तैंतीस वर संवत भादों मास ।
पूनों सुभ ससि दिन कियो भक्त-चरित्र प्रकास ।
जे या संवत लौं भए जिनको सुन्यौ चरित्र ।
ते राखे या ग्रंथ में हरि-जन परम पवित्र ।
प्राननाथ आरति-हरन सुमिरि पिया नंद-नंद ।
भक्तमाल उत्तर अरध लिखी दास हरिचंद ।
जो जग नर हवै अवतर्यौ प्रेम प्रगट जिन कीन ।
तिनहीं उत्तर अरध यह भक्तमाल रचि दीन ।
जब वल्लभ विठ्ठल जयति जै जै पिय नंदलाल ।
जिन विरची यह प्रेम-गुन गुथी भक्ति की माल ।
नहिं तो समरथ यह कहाँ हरिजन गुन सक गाय ।
ताहु मैं हरिचंद सो पामर हँ केहि भाय ।
जगत-जाल मैं नित बँध्यो पर्यो नारि के जद ।
मिथ्या अभिमानी पतित भूठो कवि हरिचंद ।
धोत्री बच सों सिय तजन ब्रज तजि मथुरा गौन ।
यह द्वै संका जा हिये करत सदा ही भौन ।
दुखी जगत-गति नरक कहँ देखि क्रूर अन्याय ।
हरि-दयालुता मैं उठत संका जा जिय आय ।
ऐसे संकित जीअ सों हरि हरि-भक्त चरित्र ।
कवहँ गायो जाइ नहिं यह बिनु संक पवित्र ।
हरि-चरित्र हरि ही कह्यो हरिहि सुनत चितलाय ।
हरिहि बड़ाई करत हरि ही समुभक्त मन भाय ।
हम तो श्री वल्लभ-कृपा इतनो जान्यौ सार ।
सत्य एक नंदनंद है भूठो सब संसार ।
तासों सब सों बिनय करि कहत पुकार पुकार ।
कान खोलि सबही सुनौ जो चाहौ निस्तार ।
मोरो मुख घर ओर सों तोरो भव के जाल ।

दशस्कंध का समास से । १३. दशमस्कंध कावेतावली — कवित १६७ अति विचित्र है । १४. महिम्न कवितावली — कवित २७ । १५. नानक नवक — कवित ९ नानक शाह की स्तुति । १६. रासपंचाध्यायी — कवित ६० । १७. ब्रजयात्रा — कवित १५० ब्रज के यात्रा का वर्णन । १८. कवित कादंबिनी — भागवत क्रम से कवित १५० । १९. रघूत्सहस्र नाम — श्लोक २५ वाल्मीकि रामायण की कथा भी क्रम से । २०. पद रत्नावली — विष्णु पदों में रामायण । इसी प्रकार और भी उत्तम ग्रंथ हैं ।

छोरो जग साधन सबै भजौ एक नैदलाल ।
हरिश्चन्द्रो माली हरिपदगतानां सुमनसां

सदाऽम्लानां भक्ति प्रकटतर गंधां च सुगुणां ।
अगुंफत्सन्मालां कूरुत हृदयस्यां रस-पदा ।
यतोन्मेषां स्वस्य प्रणय सुखदात्रीयमतुला ॥



प्रेम-प्रलाप

[हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका में १८७७ ई. में प्रकाशित]

प्रेम-प्रलाप

नखरा राह राह को नीको ।

इत तो प्रान जात हैं तुम बिनु

तुम न लखत दुख जी को ।

धावहु बेग नाथ करुना करि

करहु मान मत फीको ।

'हरीचंद' अठलानि-पने को

दियो तुमहिं बिधि टीको ।१

खुटाई पोरहि पोर भरी ।

हमहि छाँड़ि मधुवन में बैठे बरी क्रूर कुवरी ।

स्वारथ लोभी मुँह-देखे की हमसों प्रीति करी ।

'हरीचंद' दूजेन के ह्वै कै हा हा हम निदरी ।२

चरित सब निरदय नाथ तुम्हारे ।

देखि दुखी-जन उठि किन धावत

लावत कितहि अबारे ।

मानो हम सब भाँति पतित अति तुम दयाल तौ प्यारे ।

'हरीचंद' ऐसिहि करनी ही तौ क्यों अधम उधारे ।३

प्रभु हो ऐसी तो न बिसारो ।

कहत पुकार नाथ तब रूठे कहूँ न निवाह हमारो ।

जो हम बुरे होइ नहिं चूकत नित ही करत बुराई ।

तो फिर भले होइ तुम छाँड़त काहे नाथ भलाई ।

जो बालक अरुभाइ खेल मै जननी-सुधि बिसरावे ।

तो कहा माला ताहि कुपित ह्वै ता दिन दूध न प्यावे ।

मात पिता गुरु स्वामी राजा जो न छमा उर लावै ।

तो सिसु सेवक प्रजा न कोउ बिधि जग में निबहन पावै ।

दयानिधान कृपानिधि केशव करुण भक्त-भयहारी ।
नाथ न्याय तजते ही बनिहै 'हरीचंद' की बारी ।४

नाथ तुम अपनी ओर निहारो ।

हमरी ओर न देखहु प्यारे निज गुन-गनन बिचारो ।

जो लखते अब लौं जन-औगुन अपने गुन बिसराई ।

तौ करते किमि अजामेल से पापी देहु बताई ।

अब लौं तो कबहुँ नहिं देख्यौ जन के औगुन प्यारे ।

तौ अब नाथ नई क्यों ठानत भाखहु बार हमारे ।

तुव गुन छमा दया सों मेरे अघ नहिं बड़े कन्हाई ।

तासों तारि लेहु नैद-नंदन 'हरीचंद' को धाई ।५

मेरी देखहु नाथ कुचाली ।

लोक वेद दोउन सों न्यारी हम निज रीति निकाली ।

जैसो करम करै जग मैं जो सो तैसो फल पावै ।

यह मरजाद मिटावन की नित मेरे मन में आवै ।

न्याय सहज गुन तुमरो जग के सब मतवारे जानै ।

नाथ डिठाई लखहु ताहि हम निहचय भूठो जानै ।

पुन्यहि हेम हथकड़ी समभक्त तासों नहिं बिस्वासा ।

दयानिधान नाम की केवल या 'हरिचंदहि' आसा ।६

लाल यह नई निकाली चाल ।

तुम तो ऐसे निठुर रहे नहिं कबहुँ पिया नैदलाल ।

हमरिहि बारी और भए कह तुम तौ सहज दयाल ।

'हरीचंद' ऐसी नहिं कीजै सरनागत प्रतिपाल ।७

अनीतैं कहौ कहाँ लौं सहिए ।

जग-ब्योहारन देखि देखि के कब लौं यह जिय देहिए ।८

तुम कछु ध्यानहि मैं नहिं लावत तौ अब कासों कहिए ।
'हरीचंद' कहवाइ तुम्हारे मौन कहाँ लौं रहिए । ८

अहो इन भूठन मोहिं भुलाओ ।
कबहुं जगत के कबहुं स्वर्ग के स्वादन मोहिं ललचायो ।
मलें होइ किन लोह-हेम की पाप पुन्य दोउ बेरी ।
लोभ मूल परमारथ स्वारथ नामहिं मैं कछु फेरी ।
इनमें भूलि कृपानिधि तुमरो चरन-कमल विसरायो ।
तेहि सों भटकत फिर्यो जगत मैं नाहक जनम गँवायो ।
हाय-हाय करि मोह छाँड़ि कै कबहुं न धीरज धार्यो ।
या जग जगती जोर अगिनि मैं आयसु-दिन सब जार्यो ।
करहु कृपा करुनानिधि केशव जग के जाल छुड़ाई ।
दीन हीन 'हरिचंद' दास कों बेग लेहु अपनाई । ९

दीन पै काहे लाल खिस्याने ।
अपुनी दिसि देखहु करुनानिधि हमपै कहाँ रिसाने ।
माछर मारे हाथ जलहि इक कहत बात परमाने ।
महा तुच्छ 'हरिचंद' हीन सों नाहक भौंहहिं ताने । १०
हमहुं कबहुं सुख सों रहते ।

छाँड़ि जाल सब निसि-दिन
मुख सों केवल कृष्णहि कहते ।
सदा मगन लीला अनुभव मैं
दृग दोऊ अविचल बहते ।
'हरीचंद' धनस्याम-बिरह इक
जग-दुख तून सम दहते । ११

कहौ किमि छूटै नाथ सुभाव ।
काम क्रोध अभिमान मोह सँग तन को बन्यो बनाव ।
ताहुं मैं तुव माया सिर पै औरहु करन कुदाँव ।
'हरीचंद' बिनु नाथ कृपा के नाहिंन और उपाव । १२
वेदन उलटी सबहि कही ।

स्वर्ग लोभ दै जगहि भुलायो दुनिया भूलि रही ।
सुद प्रेम तुव कहूँ नहिं गायो जो श्रुति-सार सही ।
'हरीचंद' इनके फाँदन परि तुव छवि जिय न गही । १३
सूरता अपुनी सबै डुलाई ।

हमसे महा हीन किकर सों करि कै नाथ लराई ।
दयानिधान क्षमासागर प्रभु विदित नाम कहवाई ।
हमरे अवहिं देखि तुम प्यारे कीरति लौन मिटाई ।
कबहुं न नाथ-कृपा सों मेरे अघ ह्वैहैं अधिकाई ।
तौ किन तारि हीन 'हरिचंदहि' मेटत जगत हैसाई । १४

कुदत हम देखि देखि तुव रीतें ।

सब पै इक सी दया न राखत नई निकाली नीतें ।
अजामेल पापी पै कीनी जौन कृपा करि प्रीतें ।

सो 'हरिचंद' हमारी बारी कहाँ विसारी जी तै । १५

बड़े को होत बड़ी सब बात ।

बड़ो क्रोध पुनि बड़ी दयाह तुम मैं नाथ लखात ।
मोसे दीन हीन पै नहिं तौ काहे कुपित जनात ।
पै 'हरिचंद' दया-रस उमड़े दरतेहि बनि है तात । १६

हमारे जिय यह सालत बात ।

दयानिधान नाम तुव आछत हम ऐसेहिं रहि जात ।
और अधी तो तरत पाप करि यह श्रुति-कथा सुनात ।
हम मैं कौन कसर नैद-नंदन यह कछु नाहिं जनात ।
जहँ लौं सोचे सुने किये अघ बदि बदि संभा प्रात ।
तऊ तरन को कारन दूजो 'हरिचंदहि' न लखात । १७

अहो हरि अपुने विरुदहि देखौ ।

जीवन की करनी करुनानिधि सपनेहु जनि अवरेशौ ।
कहूँ न निवाह हमारो जौ तुम मम दोसन कहँ पेखौ ।
अवगुन अमित अपार तुम्हारे गाइ सकत नहिं सेखौ ।
करि करुना करुनामय माधव हरहु दुखाहिं लाखि भेखौ ।
'हरिचंद' मम अवगुन तुव गुन दोउन को नहिं लेखौ । १८

करुना करि करुनाकर बेगाहि सुध लीजिए ।
सहि न सकत जगत-दाव तुरत दया कीजिए ।
हमरे अवगुनहिं नाथ सपनेहुं जनि देखौ ।
अपुनी दिसि प्राननाथ प्यारे अवरेशौ ।
हम तो सच भाँति हीन कुटिल कूर कामी ।
करत रहत धन-जन के चरन की गुलामी ।
महा पाप पुष्ट दुष्ट धरमहिं नहिं जानौ ।
साधन नहिं करत एक तुमहीं सरन मानौ ।
जैसे है तैसे तुव तुमहीं गति प्यारे ।
कोऊ बिधि राखि लेहु हम तो सबहि हारे ।
दुपद-सुता अजामिल गज की सुधि कीजे ।
दीन जानि 'हरिचंद' बाहँ पकारि लीजे । १९

जोड़ को खोजि लाल लरिए ।

हम अबलन पै बिना बात ही रोस नहीं करिए ।
मधुसूदन हरि कंस-निकंदन रावन-हरन मुरारि ।
इन नाँवन की सुरत करो क्यों ठानत हमसों रारि ।
निबलन कों बधि जस नहिं पैहौं साँचो कहत गुपाल ।
'हरीचंद' ब्रज ही पै इतने कहा खिसाने लाल । २०

पियारे बहु बिधि नाच नचायो ।

यह नहिं जानि परी केहि सुख के बदले इतौ दुखायो ।
ब्रज बसि कै सब लाज गँवाई घर घर चाव चलायो ।
हम कुल-बधुन कलकिनि कुलदा उपारै उपार कहायो ।
हम जानी बदनामी दै हरि कोरिहैं सब मन-भायो ।

ताको फल यों उलटो दीनो भलो निवाह निभायो ।
ऐसी नहिं आसा ही तुम सों जो तुम करि दिखायो ।
'हरीचंद' जेहि मीत कइयो सोइ
निदुर बैरि बनि आयो ॥२१॥

जिनके देव गुबर-धन-धारी ते औरहि क्यों मानै हो ।
निरभय सब रहत इनके बल जगतहि तून करि जानै हो ।
देवी देव नाग नर मुनि बहु तिनहिं नाहिं उर आनै हो ।
'हरीचंद' गरजत निधरक नित
कृष्ण कृष्ण बल साने हो ॥२२॥

हमारे ब्रज के सरबस माधो ।
किन ब्रत जोग नेम जप संजम बृथा गोरि तनु साधो ।
अष्ट-सिद्धि नव-निधि को सब फल यहै न और अराधो ।
'हरीचंद' इनहीं के पद-जुग-पंकज मन-अलि बाँधो ॥२३॥

पिय तोहिं राखीगी हिय मैं छिपाय ।
देखन न देखौं काहु पियारे रहौगी कंठ निज लाय ।
पल की ओट होन नहिं देखौं लूटौगी सुख-समुदाय ।
'हरीचंद' निधरक पीओंगी अधरामृतहि अघाय ॥२४॥

तुम सम कौन गरीब-नेवाज ।
तुम साँचै साहेब करुनानिधि पूरन जन-मन-काज ।
सहि न सकत लखि दुखी दीन जन उठि धावत ब्रजराज ।
बिह्वल होइ सँवारत निज कर निज भक्तन के काज ।
स्वामी ठाकुर देव साँच तुम वृन्दावन-महाराज ।
'हरीचंद' तजि तुमहिं और जो जाँचत ते बिनु-काज ॥२५॥

तो तेरे मुख पर वारी रे ।
इन अँखियन को प्रान-पिया छवि तेरी लागत प्यारी रे ।
तुम बिनु कल न परत पिय प्यारे बिरह वेदना भारी रे ।
'हरीचंद' पिय गरे लगाओ पैयाँ परौं गिरधारी रे ॥२६॥

तुमरी भक्त-बल्ललता साँची ।
कहत पुकारि कृपानिधि तुम बिनु,
और प्रभुन की प्रभुता काँची ।
सुनत भक्त-दुख रहि न सकत तुम,
बिनु धाए एकहु छिन बाँची ।
द्रवत दयानिधि आरत लखतहि,
साँच भूठ कछु लेत न जाँची ।
दुखी देखि प्रहलाद भक्त निज,
प्रगटे जग जे जे धुनि माँची ।
'हरीचंद' गहि बाँह उपायौ,
कीरति नदी दसहुं दिसि नाँची ॥२७॥

नेम धरम ब्रत जप तप सबही जाके मिलन असाधो ।
जो कछु करौं सबै इनके हित इन तजि और न साधो ।
'हरीचंद' मेरे यह सरबस भजौं कोटि तजि बाधो ॥२८॥

हौं जमुना जलन भरन जात ही
मारग माहिं मिले री कान्ह ।
करि मुठ-भेर अंक वरबस भरि
रोक्यौ मोहिं अंचल तान ।
भौह नचाई प्रेम चितवन लखि
हँसि मुसुकाइ नैन रह्यौ जोरि ।
घट गिराह करि और अचगरी
दूर खरो भयो अंचर छोरि ।
कहा कहाँ कछु कहि नहिं आवत
करिकै हिये काम की चोट ।
मन लै तन लै नैन-चैन लै प्रानहुं
लै भयो अँखियन ओट ।
कहा करौं कित जाऊँ सखी री
वा बिन मो कहँ कछु न सुहाय ।
हियो भर्यौ आवत छिनही छिन
हाय कहा करौं कछु न बसाय ।
कित पाऊँ कित अंक लगाऊँ
कित देखूँ वह सुंदर रूप ।
हाथ मिले बिन किमि जिय राखो
कहाँ मिले मेरे गोकुल-भूप ।
रोअत बीतत रैन दिवस मोहिं
वेवस हवै हौं रहौं करि हाय ।
जौ तन तजै मिलै मोहि निहचै
तौ जिअ त्यागीं कोटि उपाय ।
हाय कहा करौं करि न सकत कछु
रोवत ही जैहै सखि जीय ।
'हरीचंद' बिनु मिले स्याम घन
सुंदर मोहन प्यारे पीय ॥२९॥

जनन सों कबहुँ नाहिं चली ।
सदा सर्वदा हारत आए जानत भाँति भली ।
कहा कियो तुम बलि राजा सों चतुराई न चली ।
बाँधन गए बंधाए आपुहि व्यर्थहि बने छली ।
भीषम नै परतिज्ञा टारी चक्र गहायो हाथ ।
अरजुन को रथ हाँकत डोले रन मैं लीने साथ ।
जसुदा जू सों हाथ बंधायो नाचे माखन काज ।
मैं रिनियाँ तुम्हरो गोपिन सों कइयो छोड़ि कै लाज ।

रिन बहु जानि छोड़ि कै गोकुल भागे मथुरा जाय ।
सदा सर्वदा हारत आए भक्तन सों ब्रजराय ।
हम सोहैं हारत ही बनिहैं कबहूँ न जैही जीत ।
तासों तारी 'हरीचंद' को मानि पुरानी प्रीति । ३०

श्री राधे कहा अजगुत कियो ।

अखिल लोक-निकुंज-नायक सहज निज करि लियो ।
जासु माया जगत मोहत लखि तनिक दुःग-कोर ।
सोई प्रभु तुव मोह मोहे नचत भौह मरोर ।
रसन को अवलंब जेहि आनंदधन सृति कहत ।
सोई रसिक कहावत तो सों तोहि सों सुख लहत ।
जासु रुठे जगत में कछु सेस नहिं रहि जात ।
सोई तव रुठे विकल ह्वै दीन बने लखात ।
जगत-स्वामी नाम के करि भेद जौन कहात ।
सो कहत तोहिं स्वामिनी यह अतिहि अचरज बात ।
रिखिन जो रस नहिं लख्यौ करि थके कोटि प्रसंस ।
सहज किय 'हरिचंद' सो करि प्रगत वल्लभ-वंस । ३१

तुम बिनु तलपत हाय विपति बढ़ी भारी हो ।
तुम बिनु कोऊ नहिं मोर पिया गिरधारी हो ।
तुम बिनु व्याकुल प्रान धरौ कैसे धीर हो ।
आइ मिलौ गर लागी पिया बलवीर हो ।
तुम बिनु सुनी सेज देखि जिय जारई ।
काम अकेली जानि बान कसि मारई ।
तुम बिनु अति अकुलाय बैन नहिं कहि सकौ ।
मिलौ पिया 'हरिचंद' भई बौरी बकौ । ३२

करनी करुनासिंधु की कासों कहि जाई ।
अति उदार गुन-गन भरे गोबरधन-राई ।
तनिक तुलसी दल कें दिये तेहि बहु करि मानै ।
सेवां लघु निज दास की परबत सी जानै ।
अजामेल सुत आपनो तुव नाम पुकार्यो ।
ताके अघ सब दूर कै तुम तुरत उबार्यो ।
कहा व्याध गजराज सों करनी बनि आई ।
कहा गीध गनिका कियो तारयो तुम धाई ।
कहा कपिन को रूप है का गुन बड़िआई ।
तिन सों बोले बन्धु से ऐसी करुनाई ।
कहाँ सुदामा बापुरो कहैं त्रिभुवन स्वामी ।
ताकी अग्रज सारखी किय चरन-गुलामी ।
कहाँ ग्वाल और ग्वालिनी करनी की पूरी ।
जिनके संग वन में फिरै हरि करत मजूरी ।
ब्रज के मृग पसु भीलनी तून वीरुध जेते ।
बंधु सरिस माने सबै करुनानिधि तेते ।
कहाँ अधम अघ सों भर्यौ 'हरिचंद' भिखारी ।
जेहि माधो सहजहि लियो गहि बाँह उबारी । ३३

मेरी तुमरी प्रीति पिया अब जानि गए सब लोगवा ।
लाख छिपाए छिपे नहिं नैना इन प्रगट्यौ संजोगवा ।
हंसत सबै मारत मिलि ताना सुनि सुनि बाढ़त सोगवा ।
ताहू पर 'हरिचंद' मिलत नहिं

कठिन भयो यह रोगवा । ३४

प्राननाथ मन-मोहन प्यारे बेगहि मुख दिखराओ ।
तलफत प्रान मिले बिनु तुमसों क्यौ न अबहिं उठि धाओ ।
केहि विधि कहौ कहत नहिं आवै जिय के भाव पियारे ।
अपनो नेह हमहिं पहिचानत हे ब्रजराज-दुलारे ।
जग में जा कहैं प्रीति-रीति सब भाषत हैं नर-नारी ।
तासों अधिक बिलच्छन हमरी प्रेम-चाल कछु न्यारी ।
मोह कहत कोउ भक्ति बखानत नेह प्रेम कोउ भाखै ।
तिन सब सों बढ़ि प्रीति हमारी कडो नाम कह राखै ।
समुझत कोउ न बात हमारी पागल सबहि बखानै ।
तुमरे नेह अलौकिक की गति कहौ कोऊ किमि जानै ।
जाके कहे-सुने जग रीभत सो कछु और कहानी ।
हम जिमि पागल बकत सुनत नहिं तासों कोउ मम बानी ।
जानत नहिं परिनाम आपनो केवल रोअन जानै ।
अति विचित्र मेरी गति प्यारे कैसे कहो बखानै ।
छुटत जग न धरम कछु निबहत रहत जीअ अकुलाई ।
होत न कछु निरनै का ह्वै है तुम बिन कुंवर कन्हाई ।
कहा करै कित जाँय पियारे कछुक उपाव बताओं ।
'हरीचंद' ऐसे नेहिन कों क्यौ न धाई गर लाओ । ३५

तुम बिन प्यारे कहैं सुख नाही ।

भटक्यौ बहुत स्वाद-रस-लंपट ठौर-ठौर जग माँही ।
प्रथम चाव करि बहुत पियारे जाइ जहाँ ललचाने ।
तहँ ते फिर ऐसी जिय उचटत आवत उलटि ठिकाने ।
जित देखो तित स्वारथ ही की निरस पुरानी बातें ।
अतिहि मलिन व्यवहार देखि कै घिन आवत है तातें ।
हीरा जेहि समझत सो निकरत काँचो काँच पियारे ।
या व्यवहार नफा पाछें पछतानो कहत पुकारे ।
सुंदर चतुर रसिक अरु नेही जानि प्रीति जित कीनो ।
तिन स्वारथ अरु कारो चित हम भले सबहि लख लीनो ।
सब गुन होई जुपै तुम नाही तौ बिनु लोन रसोई ।
ताही सों जहाज-पच्छी-सम गयो अहो मन होई ।
अपने और पराए सब ही जदपि नेह अति लावैं ।
पै तिन सों संतोख होत नहिं बहु अचरज जिय आवैं ।
जानत भलें तुम्हारे बिनु सब बादहि बीतत साँसैं ।
'हरीचंद' नहिं छुटत तऊ यह कठिन मोह की फाँसैं । ३६

भूलि भव-भोगन भूमत फिर्यौ ।

खर कूकर सूकर लौं इत उत डोलत रमत फिर्यौ ।
जहँ जहँ छुद्र लख्यौ इंद्री-सुख तहँ तहँ भ्रमत फिर्यौ ।

छन भर सुख नित दुखमय जे रस तिन में जमत फिर्यौ ।
कबहुँ न दुष्ट मनहि करि निज बस कामहि दमत फिर्यौ ।
'हरीचंद' हरि-पद-पंकज गहि कबहुँ न नमत फिर्यौ । १३६

जो पै ऐसहि करन रही ।

तो क्यों इतनी प्रीत बढ़ाई जो न अंत निबही ।
मीठे मीठे बचन बोलि कै दीनी क्यों परतीति ।
अब क्यों छाँड़ि पराए ह्वै गए कहो कहो कौन यह नीति ।
जौ मधुपुरी गमन तुम पहिलेहि बदि राखी मन माहीं ।
क्यों बृंदावन सरद-बाँदनी विहारे दै गल-बाहीं ।
कहाँ गई वह बात तुम्हारी कहाँ गयो वह प्यार ।
कित गई प्रेम भरी वह चितवनि जिहि लाख लाजत मार ।
पहिले कहि देते हम सो नहि निबहैगो यह प्रेम ।
'हरीचंद' यह दगा दई क्यों आनि प्रीति को नेम । १३८

प्राननाथ भई सब भाँति तिहारी ।
बिगरी सबही भाँति कोऊ नाहिन रखवारी ।
कहा करै कित जायँ ठौर नहिं कतहुँ लखाई ।
सब भाँतिन सो दीन भई दोउ लोक गँवाई ।
माने धरम न एक रही तुव पद अनुरागी ।
कठिन करम अरु ज्ञान लखत दूरहि तैं भागी ।
तुव पद-बल अभिमान न कोउ कहैं तून सम जान्यो ।
हित अनहित नहिं लख्यौ जगत काहुँ न मान्यो ।
काहू की नहिं होइ रही कोउ कियो न अपनो ।
ऐसी बेसुध जगत बसी मनु देखत सपनो ।
भली बात जेहि जगत कहत सो एक न कीनी ।
रही कुचालन सनी सदा गति अपजस पीनी ।
काहू सो नहिं डरीं रहीं बहु बैर बढ़ाई ।
अनहित जगहि बनायो नहि सीखी चतुराई ।
महामोद मैं वही सदा दुख ही दुख पायो ।
रोअत ही करि हाय हाय सब जनम गँवायो ।
सुख केहि कहत न हाय कबौ सपनेहुँ जान्यो ।
जग के स्वादन हूँ कहैं नहिं कबहुँ पहिचान्यो ।
उमगि उमगि कै सीदा रहीं रोअत दुख मानी ।
कोउ सो मरम न कह्यौ रहीं मन फिरत दिवानी ।
'हरीचंद' कोउ भाँति निबाही प्रीति तुम्हारी ।
पै अब सो नहिं चलत हहा प्यारे बनवारी । १३९

खोजहु न लीनो फेरि नैन-बान मारि कै ।
तड़पत ही छोड़ि गयो घायल करि डारि कै ।
मोह की कमान तान गुन-अंजन छाकि कै ।
काम जहर सो बुझाई मार्यौ मोहि ताकि कै ।
व्याकुल हौं तलपत तेहि दया नाहि आवई ।
पानिप पानिप पिआइ मोहि ना जिआवई ।
प्रानहु अवसाने तन व्याकुल भई भारी ।

'हरीचंद' निरदै मन-मोहना सिकारी । १४०

जहाँ तहाँ सुनियत अति प्यारो ।

प्यारे हरि को सुखद बिसद बस ।
करन रंघ मैं खवत सुधा सम

सीतल होय हियो सुनि अति रस ।
अजामेल गज सो जो कीनी ।

दीन सुदामा को जु कियो हित ।
सवरी कपि गनिका की करनी

नाथ-कृपा गावत सब जित तित ।
वधिक विराध व्याध जवनानिक

तारे छिनक बार लागी नहिं ।
पावन कियो पुलिंदी-गन को दै

कुच-कुंकुम-जुत-पद-रज महिं ।
भाँति अनेक बिबिध विधि बरनि

अर्गनित गुनगन गथित मथित श्रुति ।
जहाँ तहाँ सुनियत सबके मुख

अवन सुखद संतत हिय हित अति ।
कोउ जस कोऊ गरीब-नेवाजी

कोऊ पतित-पावनता गावत ।
दीन-बन्धु-ताई हितकारी

सरस सुभाव नेह बरसावत ।
नृप नारी द्रौपदी आदि सम

गावत ग्राम नगर नारी-नर ।
हियो भर्यौ आवत सुनि सुनि कै

गोविंद नामांकित जस सुंदर ।
कहैं लौं कहाँ कहत नहिं आवत

जो हरि करत पतित-हित कारन ।
'हरीचंद' सरनागत-वत्सल,

दीन-दयानिधि पतित-उधारन । १४१
मनवत मनवत ह्वै गयो भोर ।

खसित निसा-नायक पच्छिम दिसि सोर करत तमचोर ।
पियहि सबै निसि जागत चौती खरे खरे कर जोर ।

आलस बस अब लरखरात पग निरखत तुव दूग कोर ।
क्यों सखि प्रेमहि लाज लगावति करिकै बृथा मरोर ।

'हरीचंद' गर लग उठि पिय के हौं तोहिं कहत निहोर । १४२
आजु मेरे मोरहि जागे भाग ।

आए पिया तिया-रस-भीने खेलत दूग जुग फाग ।
भलौ हमैं भूलै तौ नाहीं राख्यौ जिय अनुराग ।

साँझ भोर एक ही हमारे तुव आवन की लाग ।
मंगल भयो भोर मुख निरखत मिटे सकल निसि दाग ।

'हरीचंद' आओ गर लागो साँचो करौ सोहाग । १४३
हम तुम पिया एक से दोऊ ।

मानौ विलग न नेक साँवरे घट बढ़िकै नहिं दोऊ ।

तुम जागे हमहँ निसि जागे तिय सँग जोहत बात ।
 खरे बिताई निसि हम दोउन मनवत पकरि कपाट ।
 सिधिल बसन तुमरे औ हमरे भोगत पछरा खात ।
 थाकी गति दोउन की आलस इत उत आवत जात ।
 अरुनारे दूग अंजन फैल्यौ बिलसत होइ हरास ।
 टूटे बन्द कहा कंचुकि के लपटत लैत उसास ।
 हम तुम एक प्राण मन दोऊ यामै कछु न भेद ।
 'हरीचंद' देखहु बिन श्रम सों दोऊ के मुख स्वेद ॥४४॥

ईमन

गोरी-गोरी गुजरिया भोरी कान्हर नट के संग
 ललित जमुन-तट-नव बसंत करि होरी ।
 सोभा सिन्धु बहार अंग प्रति दिपति देह
 दीपक सी छवि अति मुख सुदेस ससि सोरी ।
 आसा करि लागी पिय सों रट पंचप सुर गावत ईमन
 हट मेघ बरन 'हरिचंद' वदन अभिराम करी वरजोरी ।
 सारंगनैनि पहिरि सुहा सारी भयो कल्याण
 मिले श्री गिरिधारी छवि पर जन तून तोरी ॥४५॥
 प्यारे की छवि मनमानी सिर मोर मुकुट
 नट भेख धरे मेरे घर आए दिलजानी ।
 चतुर खिलारी गिरिधारी हँसि हँसि गर लाए
 मन भाए 'हरिचंद' न सुरत भुलानी ॥४६॥
 प्यारी जू के तिल पर बलि बलिहारी ।
 जा मिस बसत कपोल न अनुखिन लघु बनि पिय गिरिधारी ।
 पिय की दीधौ चीन्ह मनु सोहत लागत अति ही प्यारी ।
 'हरीचंद' सिंगार तत्व सी लखि मोहन मनवारी ॥४७॥
 कहू रे श्रीवल्लभ-राजकुमार ।
 दीन-उधारन आरति-नासन प्रगत कृष्ण अवतार ।
 काहें तू भरमायो डोलत साधन करत हजार ।
 यह भव-रुज क्योंह नहिं जैहै बिना चरन-उपचार ।
 कौन पतित सो प्रेम निबहिहै जो बहु अघ-आगार ।
 श्रुति-पुरान कछु काम न ऐहैं यह तोहिं कहत पुकार ।
 बुरे दिनन को साथी नहिं कोउ मात-पिता-परिवार ।
 'हरीचंद' तासों बिडल भजु अरे यहै श्रुति-सार ॥४८॥
 जौ पै श्रीवल्लभ-सुतहिं न जान्यौ ।
 कहाँ भयो साधन अनेक मै परिकै बृथा भुलान्यौ ।
 बादि रसिकता अरु चतुराई जौ यह जीअ न आन्यौ ।
 मर्यौ बृथा विषया रस लंपट कठिन करम मै सान्यौ ।
 सोई पुनीत प्रीति जेहि इनसों बृथा बेद मथि छान्यौ ।
 'हरीचंद' श्रीबिडल बिनु सब जगत भूठ करि मान्यौ ॥४९॥
 पतित-उधारन नाम सही ।

श्रीवल्लभ-बिडल बिनु दूजो नेह निवाहन हार नहीं ।
 साधन बृथा न करु मन लंपट भूलि बुद्धि क्यों जात बही ।
 कोऊ कछु काम नहिं ऐहै क्यों डोलत करि मही-मही ।
 दीनन के हित नाहिंन दूजो यहै बात करि सपथ कही ।
 'हरीचंद' ये अधम-उधारन अरे यही इक यही-यही ॥५०॥

चिर जीयो मेरो श्रीवल्लभ-कुल ।
 माया मत खर तिमिर दिवाकर
 प्रेम अमृत पय रस सागर-पुल ।
 कलि खल-गन-उदरन रसिक-जन
 सरन-करन विरहिन विरहाकुल ।
 'हरीचंद' देवी जन प्रियतम
 पतित-उदरन महिमा अन-तुल ॥५१॥
 श्रीवल्लभ प्रभु मेरे सरबस ।
 पचौ बृथा करि जोग जाय कोउ
 हमको तो इक यहै परम रस ।
 हमरे मात पिता पति बंधू
 हरि गुरु मित्र धरम धन कुल जस ।
 'हरीचंद' एकहि श्रीवल्लभ
 तजि सब साधन भए इनके बस ॥५२॥

गीत

बना मेरा ब्याहन आया बे ।
 बना मेरा सब मन-भाया बे ।
 बना मेरा छैल छबीला बे ।
 बना मेरा रंग-रंगीला बे ।
 बनरा रंगीला रंगन मेरा सबन के दूग छावना ।
 सुंदर सलोना परम लोना श्याम रंग सुहावना ।
 अति चतुर चंचल चारु चितवन जूवति-चित्त-जुरावना ।
 ब्याहन चला रंग-रस-रला जसुमति-लला मन-भावना ।
 बना के मुख मरवट सोहै बे ।
 बना देखन मन मोहै बे ।
 बना केसरिया जामा बे ।
 बना लखि मोहत कामा बे ।
 लखि कान मोहै श्याम छवि पर लखत सुंदर जेहरा ।
 सिर जरकसी चीरा भुकाए खुला तिस पर सेहरा ।
 कटि ललित पटुका बाँधा सूहा सुभग दोहरा तेहरा ।
 जियमें हमारी नवल दुलहिन-हेत धरे सनेहरा ।
 बना के नैना बाँके बे ।
 बने दोनों मद छाके बे ।
 बना की भौह कमाने बे ।
 बनी का हिअरा छाने बे ।

छाने बना का नवल हिअरा भौह बाँकी प्यार की ।



जुलफैं बनी उलफैं जिया की हिलत मोहन मार की ।
 कर सुरख मेंहदी पग महावर लपट अतर अपार की ।
 जिय बस गई सूरत निबानी इलहे दिलदार की ।
 बना मेरा सब रस जानै बे ।
 बना प्रीतहि पहिचानै बे ।
 बना चतुरा रस-बादी बे ।
 बनी-रस-अधर-सवादी बे ।

रस अधर स्यादी बनी का अंग-अंग रस कस के भरा ।
 जिय प्रेम मानै नेह जानै सकल गुन-आगर खरा ।
 विधि मदन मानी छवि गुमानी नबल नेही नागरा ।
 निधि रसिक की 'हरिचंद'

सरबस नंद-बंस उजागरा १५३

लावनी

सखी चलो साँवला इलह देखन जावै ।
 मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावै ।
 नीली घोड़ी चढ़ि बना मेरा बन आया ।
 भोले मुख मरवट सुंदर लगत सुहाया ।
 जामा चीरा जरकसी चमक मन भाया ।
 सुहा पटुका कटि कसे भला छवि छाया ।
 हाथों मेंहदी मन हाथों हाथ चुरावै ।
 मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावै ।
 सिर मोर रंगीला तुरों की छवि न्यारी ।
 मोती लर गूथा सेहरा मुख मन-हारी ।
 फूलों की बेनी भबिया लटकै प्यारी ।
 सिर पेंच सीस कानन कुंडल छवि भारी ।
 चुँचराली अलकें नैनन को अति भावै ।
 मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावै ।
 तैसी दुलाहिन संग श्रीवृषभानु-कुमारी ।
 मोरी सिर सोहत अंग केसरी सारी ।
 मुख वरवट कर मैं चूरी सरस सँवारी ।
 नकबेसर सोमित चितहि चुरावनवारी ।
 सिर सेंदुर मुख मैं पान अधिक छवि पावै ।
 मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावै ।
 सखियन मिलि रस सों नेह गाँठ लै जोरी ।
 रहिं बारि-फेरि तन मन धन सब तून तोरी ।
 गावत नाचत आनंद सों मिलि कै गोरी ।
 मिलि हँसत हँसावत सकत न कंकन छोरी ।
 'हरिचंद' जुगल छवि देखि बधाई गावै ।
 मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावै १५४

ईमन, ताल नाम गर्भित

जै आदि ब्रह्म औतारी इक अलख अगोचर-चारी ।

लक्ष्मीपति धन जलद बरन तन रुद्र तीन
 दृग चार बदन पति सुंदर गरुड़ सवारी ।
 कहा कहों री रूपक हरि को चलत कवहुँ
 धीमे कहुँ द्रुत गति बृंदावन बनवारी ।
 सुफल कतल कर जुलुफ बनी सिर
 भक्त जनन के आड़े आवन
 'हरिचंद' यह सृष्टि रची रचि अचिर चरचरी सारी १५५

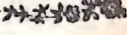
लावनी

तुम बिनु व्याकुल बिलपत बन-बन बनमाली ।
 मति करु बिलांब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।
 तुव ध्यान धारि धरि बंसी अधर बजावै ।
 भरि विरह नाम लै राधा राधा गावै ।
 तुव आगम सुमिरत छन-छन सेज सजावै ।
 मग लखत द्वार पर बार बार उठि धावै ।
 मुरछात देखि तुव बिना सेज कहैं खाली ।
 मति करु बिलांब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।
 संजोग साज सिंगार न तुव बिनु भावै ।
 तन चंद चाँदनी औरहु विरह जरावै ।
 जल चंदन माला फूल न कछ सुहावै ।
 तुम आगम बिनु कर मींजि मींजि पछतावै ।
 भई रैन चैन बिनु इसन मदन बिख व्याली ।
 मति करु बिलांब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।
 अपने अपराधन कवहुँ बैठि विचारै ।
 तुव मिलन मनोरथ अल-बल वैन उचारै ।
 कवहुँ संगम-सुख सुमिरत हियरो हारै ।
 कवहुँ तेरे गुन कहि कहि धीरज धारै ।
 भई रात ऊजरी दुख बियोग सों काली ।
 मति करु बिलांब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।
 सुमिरत तोहि दृग भरि रहत श्याम सुखदाई ।
 गड़गड़ गल बचनहु बोलि न सकत कन्हाई ।
 पिय दुखित दसा देखी नहिं अब तो जाई ।
 कर जोरत मिलु अब मोहन सों सखि धाई ।
 'हरिचंद' मनावत पूरव छाई लाली ।
 मति करु बिलांब उठि चलु बेगहि सुनु आली १५६

अष्टपदी

रासे रमयति कृष्ण राधा ।

हृदि निधाय गाढ़ालिंगन कृत हृत विरहातप-बाधा ।
 आश्लिष्यति चुम्बति परिरम्भति पुन : पुन : प्राणेश ।
 सात्त्विकभावोदयशितिलायित । मुक्ताऽकुञ्चिततकेश ।
 भुजलतिकाबन्धमाबद्ध कामकल्पतरुरूप ।



सीमन्तिनी कोटिशतमोहनसुन्दरगोकुलभूप ।
 स्यालिंगनकण्टकित -तनु- स्पशीदितमदनविकार ।
 स्खलित वचनरचन श्रवण स्खलितकृतरतरति-मार ।
 रतिविपरीतलालसालसरस लसित मोहिनीवेश ।
 निज सीत्कारमोहितप्रमदादतमाधवावेश ।
 हुंकृतिद्विगुणसुरतपणश्रमलोलित नाशामृष ।
 निजासेचनकसिंचित शशधार-मुख-स्वेदपीयूष ।
 वात्स्यायनविधिविहितपड्डिंग विलक्षण रक्षण दक्ष ।
 चतुराशीति चतुरा तरता धृत कामकलाकलपक्ष ।
 स्वेद-सुगंधविमूर्च्छितालिकुल सहकिर्किणकलराव ।
 नखदानाधरखण्डनजनितोद्भटसहचारीभाव ।
 कठिनकुचामर्दन शिथिलीकृतकरकंकणभुजवन्ध ।
 प्रतिमुद्रितसिंदूरकज्जलादिक मुख हृदय स्कन्ध ।
 निशावसानाजागर जेनित सखीजनमोहित तन्द्रे ।
 गायति गोकुलचन्द्राग्रज कवि हरिश्चन्द्र कुलचन्द्रे । १७

गरबो

थारे मुख पर सुंदर श्याम, लट्टरी लट लटके छे ।
 जे ने जोईने म्हारो मन लाल, जाइ-जाइ अटके छे ।
 थारा सुन्दर नैन विशाल, प्यारा अति रुडा छे ।
 जेने जोईने जग ना रूप, लागे भूँडा छे ।
 थारा सुन्दर गोल कपोल, गुलाब जेन्हा फूल्या छे ।
 जेने जोईने मन-भ्रमर, जुवतिओ ना भूल्या छे ।
 तारे कंठे बे बधनखा, मनोहर सोहे छे ।
 जेवा नव ससिना बे कटकाँ, लखताँ मोहे छे ।
 तारा बोली अमृत सनी, करण-सुखदाई छे ।
 जेने साँहड़ताँ मन जाय, एह्यो मिठाई छे ।
 तारो नख सिख रूप अनूप, सोभा प्यारी छे ।
 जेनी सोभा लखीने 'हरीचंद' बलिहारी छे । १८

बाला वल्लभ सुमिरण करताँ सह दुख भागे छे ।
 जेनो मंगलमय सुभ नाम अमृत जेवो लागे छे ।
 जेनो सुंदर श्याम स्वरूप कृष्ण जेवो सोहे छे ।
 जेने कंकुम तिलक ललाटे म्हारूँ मन मोहे छे ।
 जेने नैणा जुगल विशाल कृपा-रस भरी रह्या छे ।
 जेमा राधा कृष्णना रूप शोभा करी रह्या छे ।

जेनी लाँबी लाँबी बाँहों शोभा पाए छे ।
 जेथी तारुया पलित हजार म्हारो मन भाए छे ।
 जेना चरणे जन ना शरण तीर्थमय उभये छे ।
 जेने जौताँ जनना चित्त भिया थाय निभये छे ।
 म्हारा लखमन-नंदन प्यारा गुरु केहवाये छे ।
 जेना पद-रज पर 'हरिचंद' बलि बलि थाए छे । १९

कवित्त

जानि जिन पीतम सहाय लै बसत काम,
 इनहीं कवहुँ महा प्रलय प्रचारे हैं ।
 आयो जानि आज प्रान-प्यारो 'हरिचंद' ह्वै कै,
 सीतल सुगंध मंद मंद पग धारे हैं ।
 मूर्द दे भरोखन कों डारि परदान जायै,
 आवै नाहिं क्योहूँ पौन अति वज्रमारे हैं ।
 छुअन न देहौ इन्हें सपनेहूँ अंग यह,
 बेई अहैं आग हवै हवै अंग जिन जाग हैं । २०

हय चले हाथी चले रथ चले प्यादे चले,
 ऊँट चले रेल चली तार धाय कै चली ।
 सूर चले चंद चलयौ तारा चलें दिन चलयौ,
 रैन चली छिन चले पल पल में टली ।
 बाप चलयौ बेटा चलयौ नारि चली मीत चले,
 'हरीचंद' चली देव-दानव की मंडली ।
 प्रति जुग प्रति वर्ष प्रति मास प्रति दिन,
 प्रति धरी प्रति छिन लागी है चला-चली । २१

गौरी

प्रान पिया के गुन-गन सुनौ री सहेली आय ।
 सुमिरत गर भरि आवत मोपै कह्यो न जाय ।
 हौं निकसी घर बाहिर पिय मिले मारग माँह ।
 मो पग छाँह छुआई प्यारे मुकुट की छाँह ।
 मो दूग जल भरि आयो लखि कै ललन सनेह ।
 बेबस मन भयो ब्याकुल कैपि सिधिल भई देह ।
 लखि मग बहु जन हौं कछु बोलि सकी नाहिं हाय ।
 मुख की छाँह मिलायो मुख पिय तब चलि धाय ।
 गेद उठावन मिस लै मम पग-तर की धूरि ।
 हा हा नैन लगाई मोहन जीवन-मूरि ।
 चलि चलि आगे पाछे लट् भयो मँडराइ ।
 अनुचर भाव दिखायो प्रान-जीवन जदुराइ ।
 इक दिन भवन अकेली दुपहर बैठी भौन ।
 आए भेस बनाए सुंदर राधा-रौन ।
 उठन चली आदर हित लखि पिय मोहन मैन ।
 बादन इमि बैठाई कहि कहि सादर बैन ।
 ठोढ़ी गहि मुख निखरत इक टक भरि दूग नीर ।
 भुज गहि कहि हिय लाई प्रान-पिया बलबीर ।
 इक चुम्बन हित उभक्त जब लौं मैं ललचाय ।
 तब लौं सौ लीन्हे प्यारे कंठ लगाय ।
 देखि सकी न पिया मुख नीचे ह्वै गए नैन ।
 तब लौं मैं दूग चुम्प्यौ सिर हिय धरि सुख-वैन ।
 मम दूग जल-कन नैखत पिय अति ही अकुलाइ ।
 कसिकै दिग लगायो निज दूग जल बरसाय ।

मम मुख-ससि-दिसि निरखत पिय दृग भए चकोर ।
 मे आनंद-धन चाकत देखत मेरी ओर ।
 मम मुख पिय सुख पावत मम-मय मे पिय-प्राण ।
 आदर-मय मोहि कीन्ही प्यारे चतुर सुजान ।
 इक मुख गुन-गन अगनित कैसे कहौं बयान ।
 हिय उमगत गर हँधत नैन रहत भर लाय ।
 परम मधुर नित नूतन कहैं लौं कहिए गाय ।
 'हरीचंद' पिय गुन-गन जीवन एक उपाय । ६२

हिंडोले का प्रसंग

एरी हरियारी मोहि नोकी अति लागे तोहि,
 सारी हरियारी जासों तूही हरि प्यारी है ।
 वृन्दावन-देवी तू प्रतच्छ मनो आज भई,
 हरिद्र की परम बियोग-ताप-हारी है ।
 गौर-श्याम-एकता रहस्य मनु प्रगट कियो,
 हरि मैं सब भई सोई हरित सिंगारी है ।
 'हरीचंद' हेतु हरि कलप तरोवर में,
 लपटि रही कीरति की बेलि हरियारी है । ६३

दीपावली का पद

कुंज-महल रतन-खचित जगमग प्रतिबिंबन अति
 सोभित ब्रज-वाल-रचित दीप-मालिका ।
 इक-इक सत-सत लखात सो छवि बरनी न जात
 जोतिमई सोहित सुंदर अरालिका ।
 मानहु सिसुमार चक्र उडुगन सह लसत गगन
 उदित मुदित पसरित दस दिसि उजालिका ।
 मेट्यौ तम तोम तमकि बहु रवि इक साथ चमकि
 अगनित इमि दीप करै कौन तालिका ।
 सोरह सिंगार किए पीतम को ध्यान हिण,
 हाथ किए मंगलमय कनक थालिका ।
 गावन मिलि सरस गीत भलकत मुख परम प्रीत,
 आई मिलि पूजन प्रिय गोप-बालिका ।
 राधा-हरि संग लसत प्रमुदित मन हेरि हँसत,
 जुग मुख छवि छट परत गोख-जालिका ।
 'हरीचंद' छवि निहार मान्यो त्योहार चार,
 धनि-धनि दीपावलि सब ब्रज-रसालिका । ६४

जीव का दैन्य

कहिए अब लौं ठहर्यो कौन ।
 सोई भाग्यो तुव साम्हें सो गयो परिछ्यौ जौन ।
 नारद विश्वमित्र पराशर महा-महा तप-खानि ।
 असन बसन तजि बन में निबसे जन कहैं कंटक जानि ।
 तिनहूँ की जब भई परिच्छा तब न नेक ठहराए ।
 माया-नटी पकरि तिनहूँ कहैं पुतरी से नचवाए ।

तो जे जग मैं बसत विषय के कीट पाप मैं पागे ।
 तिनको तुम परखन का चाहत हम तो अध अनुरागे ।
 अपुनो विरुद समुक्ति करुनानिधि

निज गुन-गनहिं बिचारी ।

सब बिधि दीन हीन 'हरीचंदहि' लीजै तुरत उधारी । ६५

प्यारे मोहिं परखिए नाहीं ।

हम न परिच्छा जोग तुम्हारे यह समुझहु मन माहीं ।
 पापहि सों उपज्यौ पापहि में सगरो जनम सिरान्यो ।
 तुव सनमुख सो न्याव-तुला पै कैसे को ठहरान्यो ।
 कीटहु ते अति तुच्छ मंद मति अधम सबहि बिधि होना ।
 जो ठहरै किमि जाँच-समय में जो सबही बिधि दीना ।
 दयानिधान भक्त-वत्सल करुनामय भव-भयहारी ।
 देखि दुखी 'हरीचंदहि' कर गहि बेगहि लेहु उवारी । ६६

साँभ सवरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है ।
 हम सब इक दिन उड़ जाएँगे यह दिन चार बसेरा है ।
 आठ बेर नौबत बज-बजकर तुम्हको याद दिलाती है ।
 जाग-जाग तू देख घड़ी यह कैसी दौड़ी जाती है ।
 आँधी चलकर इधर उधर से तुम्हको यह समझाती है ।
 चेत चेत जिंदगी हवा सी उड़ी तुम्हारी जाती है ।
 पत्ते सब हिल-हिल कर पानी हर-हर करके बहता है ।
 हर के सिवा कौन तू है वे यह परदे में कहता है ।
 दिया सामने खड़ा तुम्हारी करनी पर सिर धुनता है ।
 इक दिन मेरी तरह बुझोगे कहता तू नहीं सुनता है ।
 रोक रोक गाकर हँसकर लड़कर जो मुँह से कह चलता है ।
 मौत-मौत फिर मौत सच है येही शब्द निकलता है ।
 तेरी आँख के आगे से यह नदी बही जो जाती है ।
 योही जीवन बह जायेगा यह तुम्हको समझाती है ।
 खिल-खिलकर सब फूल बाग में कुम्हला-२ जाते हैं ।
 तेरी भी गति यही है गाफिल यह तुम्हको दिखाता है ।
 इतने पर भी देख औ सुनकर क्या गाफिल हो फूला है ।
 'हरीचंद' हरि सच्चा साहब

उसको बिलकुल भूला है । ६७

कवित्त

वह द्विजवर हम अधम महान वह अति ही
 संतोषी मैं तो लोभ ही को जामा हौं ।
 वह स्तुति पद्यों महामूढ़ बुद्धि मेरी उन
 तंदुल दियो हौं मनहूँ सो निहकामा हौं ।
 'हरीचंद' आइ बनी एकै बात दीनानाथ
 यासों मोहिं राखि लेहु जो पै अध-धामा हौं ।
 बालापने ही सों सखा मान्यो हैं तुमहिं एक
 दीन हीन छीन हौं मैं याही सों सुदामा हौं । ६८

होइ कुल-नारी ऐसी बात क्यों विचारी यामें
 प्रति अथ भारी यह कहत पुकारी हों ।
 यही करनी है जो तो खोजी कोऊ धनी बली
 हों तो निज नारि के वियोग में दुखारी हों ।
 'हरीचंद' याही सों सुदामा बतरात इमि
 छाँड़ी मेरो हाथ ना तो दैहों शाप भारी हों ।
 द्वारिका में जाइ कै पुकारिहों हरिहि मोहि
 काहे दुख देत मैं तो बाम्हन भिखारी हों ॥६९॥
 कितै गई हाथ मेरी कुटिया परन छाई
 साढ़े तीन पादहू की खटियौ कहा भई ।
 कितै गए जनम के जोरे माटी-भाँड मेरे
 सहसन टूक की कथरिया कितै गई ।
 'हरीचंद' कहत सुदामा बिलखाई इत
 लाई किंग राशि मनि-कंचन महामई ।
 और जो गयो तो सहि जैहों कोऊ भाँति पै
 बताओ कोऊ हाथ मेरी बाम्हनी कहाँ गई ॥७०॥
 परन-कुटीर मेरी कहाँ बहि गयी इत
 कंचन महल ऊँचै ठाढ़े है महा विचित्र ।
 मृत्तिका के भाँडहू बिलाने मेरे कंथा सह
 टूटी पटरी मैं धरी पोथी हू गई पवित्र ।
 'हरीचंद' नारिहू को खोज ना मिलत कहूँ
 रोअत सुदामा हाथ कैसे भयो है चरित्र ।
 मिलन सों रह्यौ-सह्यौ घरहू उजार्यौ वाह
 द्वारिका के नाथ भली मित्रता निवाही मित्र ॥७१॥
 फल दियो भीलनी अजामिल उचार्यो नाम
 गिद्ध कियो बुद्ध, गज कलिका चढ़ाई है ।
 गोपी-गोप नेह कीनो केवट चरन धोयो
 सेवा करी भील कपि रिपु सों लराई है ।
 'हरीचंद' पद को परस मुनि-नारि लह्यौ
 गनिका पढ़ावत सुबा को नाम गाई है ।
 इनके न एकौ गुन औगुन सबै के मोमें
 एतेहू पै तारौ सबै आपु की बड़ाई है ॥७२॥

देखि कै काली कराली महा डरि
 बुद्धि न ता पद माँहि धँसी है ।
 लक्ष्मी के बहु वैभव चाहि न
 लालच में अति मेरी फँसी है ।
 त्यों 'हरीचंद' सरस्वति सेइ न
 ज्ञान के ध्यान न मैं हुलसी है ।
 चाकर हैं ब्रज साँवरे के
 जिन टेंटिन ऊपर फेंट कसी है ॥७३॥
 जो बिनु नासिका कान को ब्रह्म है
 ता दिसि बुद्धि न नेकु धँसी है ।
 निर्गुन जौन निरंजन है छवि ताकी
 न या जिय माँहि धँसी है ।
 त्यों 'हरिचंद जू' सीस सहस्र के
 देव मैं इच्छा न नेकु गँसी है ।
 चाकर हैं ब्रज साँवरे के जिन
 टेंटिन ऊपर फेंट कसी है ॥७४॥
 छोटे हैं छोटिहि बात रुचै मोहि
 यासों न जाल में बुद्धि फँसी है ।
 गुंज हरा परे देखि नरामधि
 दृष्टि तहीं मम जाय धँसी है ।
 त्यों 'हरिचंद जू' मोर-पखौअन
 गौअन देखि महा हुलसी है ।
 चाकर हैं ब्रज साँवरे के जिन
 टेंटिन ऊपर फेंट कसी है ॥७५॥
 लोचन चारु चकोरन को सुख-दायक
 नायक गोप ससी है ।
 होत हियो हरियारो बिलोकत
 कंठ हरा हरि के तुलसी है ।
 पालक हैं 'हरिचंद' को तौन जो
 नंद को बालक लोक जसी है ।
 चाकर हैं ब्रज साँवरे के जिन
 टेंटिन ऊपर फेंट कसी है ॥७६॥



गीत-गोविंदानंद

[हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खं. ५-६, नवम्बर १८७७ से
अक्टूबर १८७८ के बीच प्रकाशित]

गीत-गोविंदानंद दोहा

भारत नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर ।
जयति श्रौतिक घन कोऊ लखि नाचत मन मोर ।
रसक-रात्र बुध-वर विदित प्रेमी प्रिय-पद-सेव ।
राधा-गुन-गायक सदा मधु-वच जिय जयदेव ।
कहै काव्यर जयदेव-वच कहै मम मति अति होन ।
पै दोउ हरि-गुन-गामिनी एहि हित यह सम कीन ।
रसकरात्र जयदेव की कावता को अनुवाद ।
कियो सबन पै नहिं लह्यौ तिनमें तीन सवाद ।
मेटन को निज जिय छटक उर धरि पिय नंदनंद ।
तिनहीं के पद-बल रच्यौ यह प्रबंध हरिचंद ।
जिमि बनिता के चित्र में नहिं कछु हास-विलास ।
पै जेहि सो प्रिय सो लहत बाहु में सुखरास ।
तैसहि गीत-गोविंद अति सरस निरस मम गीत ।
पै जिन कहै प्रिय तीन ते कारहैं यासों प्रीत ।

मंगलाचरण

मेघन तें नभ छाये रहे,
वन भूमि तमालन सों भई कारी ।
सौंफ समै डरिहै, घर याहि
कृपा करिकै पहुँचावहु प्यारी ।
यों सुनि नंद-निदेश चले दोउ
कुंजन में वृषभानु-दुलारी ।
सोइ कलिंदी के कल इकंत की,
केलि हरे भव-भीति-हमारी ।

दोहा

वाणी चारु चरित्र सों, चित्रित जो पिय भीति ।
पञ्चार्वात पद दास जो, जानत कविता-रीति ।
सोई कवि जयदेव यह, गीत-गोविंद रसाल ।
रच्यौ कृष्ण कल केलिमय, नव प्रबंध रस-जाल ।

जो हरि सुमिरन होइ मन, जो सिंगार सो होत ।
तो बानी जयदेव की, सुनु सब सुगुन-निकेत ।

सवैया

वेद-उधारन मंदर-धारन
भूमि उबारन हवै बनचारी ।
द्वैत बिनासी बलि के छलि
छय-कारक छात्रन के असुरारी ।
रावन-मारन ल्यौ हल-धारन
वेद निधारन म्लेच्छ-सुदारी ।
यों दस रूप-विधायक कृष्णहि
कोटिन्ह कोटिप्रनाम हमारी ।

राग खोरट

जय जय राधा हरि-राधा-रस-केलि ।
तरनि तनूजा-तट इकंत में बाहु बाहु पर मेलि ।
एक समै हरि नंदराय संग रहे बाट में जात ।
तितही श्री राधा सुख-साधा आइ कट्टी हरखात ।
हरि-माया करि मेघ बुलाए छाप धेरि अकास ।
सौंफ समय भुव लहि तमाल तरु भई श्याम सुखरास ।
देखि नंद भय करि श्यामा सों बोले वैन रसाल ।
यह डरपत लखि कै अंधियारी बारो मेरो लाल ।
आगे हों लै जाइ सकत नहिं भई भयानक सौंफ ।
राधे करिकै दया याहि तुम पहुँचाओ घर माँफ ।
इमि सुनि नंद-निदेश चले दोउ बिहगत जमुना-तीर ।
'हरीचन्द' सों निरखि जुगल-छवि

हरी दृगन की पीर ।

राग मालव

जय जय जय जगदीश हरे ।
प्रलय भयानक जलनिधि जल धौंस प्रभु तुम वेद उधारे ।
करि पतवार पुच्छ निज बिहारे मीन सरीरहि धारे ।
कठिन पीठ मंदर मंथन किन छिति भर तिल सम राजे ।

१ इस मंगलाचरण में बारहो रस हैं । इससे यथाक्रम शृंगार, अद्भुत, वीर, रौद्र, भयानक, हास्य, वात्सल्य, करुणा, वीभत्स, सख्य, माधुर्य और शांत है ! (चंद्रिका)

२ ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण-जन्म खंड की यह कथा है । (चंद्रिका)

गिरि घूमनि सुहरानि नींद-बस

कमठ रूप अति छाजै । जय.

कनक-नयन-बध रुधिर छोट मिलि

कनक वरन छबि छायो ।

रद आगे धर ससि कलंक मनु

रूप बराह सुहायो । जय.

कर-नख-केतकिपत्र अग्र अलि-

कनककसिपु तन फार्यौ ।

खंभ-फारि निज जन-रच्छन-हित

हरि नरहरि-वपु धार्यौ । जय.

अदभुत वामन बनि बलि छलिकै

तीन पैड़ जग नाप्यौ ।

दरसन मज्जन पान समन अघ

निज नख जल थिर थाप्यौ । जय.

अभिमानि छत्रीगन बधि तिन

रुधिर सीचि धर सारी ।

इकइस बार निछत्र करी भुव

हरि भृगुपति-बपुधारी । जय.

दस दिसि दस सिरमौल दियो

बलि सब सुरगन भय हारे ।

सिय लछमन सह सोभित

सुंदर रामरूप हरि धारे । जय.

सुंदर गोर सरीर नील पट

सासि मै धन लपटायो ।

करसन कर हल सों जमुना जल

हलधर रूप सुहायो । जय.

अति करुना करि दीन पसुन पै

निंदे निज मुख वेदा ।

कलिजुग धरम कहे हरि ह्वै कै

बुढ़ रूप हर खेदा । जय.

म्लेच्छ बधन हित कठिन धार

तरवार धारि कर भारी ।

नासे जवन सत्ययुग थाप्यौ

कलकि रूप हरि धारी । जय.

नंद-नंदन जग-वंदन दस बपु

धरि लीला बिस्तारी ।

गाई कवि जयदेव सोई

'हरिचंद' भक्त-भय हारी । जय. ११४

किंमोटी या खमाच

कमला-उर धरि बाहु बिहारी ।

कुंडल कनक गंड जुग-धारी ॥

ललित कलित बनमाल सैवारी ।

जय जय जय हरि देव मुरारी ॥

जय जय दिनमनि तेज-प्रकासन ।

जय जय जय जय भव-भय-नासन ॥

मुनि-मन-मानस-जलज-विकासन ।

जय जय हरि केसव गरुडासन ॥

जय कालिय विषधर बल-गंजन ।

जय जय ब्रज-जुवती मन-रंजन ॥

जदु-कुल-कमल-सुर दुग खंजन ।

जय जय हरि केसव भव-भंजन ॥

जय जय सुर-मधु-नरक-विदारन ।

पन्नगपति-गामी जगतारन ॥

जय जय सुर-कुल-सुख-विस्तारन ।

जय हरिदेव भक्त-भय-हारन ॥

जय जय अमल कमल-दल लोचन ।

जय जय भवपति भव-दव-मोचन ॥

त्रिभुवन-गति ब्रज-तिय-मन-रोचन ।

जय जय हरि सिर वर गोरोचन ॥

जय जय जनक-सुता कृत भूषण ।

समर विजित त्रिसिरा खर-द्रुषण ॥

जय दसकंठ-वनज-वन-भूषण ।

जय दुग-छटा कमल छवि भूषण ॥

जय जय अभिनव जलधर सुन्दर ।

जय धृत-पृष्ठ कठिन गिरि मंदर ।

जय बिहरन गोवर्धन-कंदर ।

श्रीमुख ससि रत गोप पुरंदर ॥

इम सब तुव पद-पंकज-दासा ।

पूरहु निज भक्तन की आसा ॥

तिनको तुम दुख नित नित नासा ।

जिन कहँ तुव चरनन बिस्वासा ॥

श्री जयदेव रचित मन-भाई ।

मंगल उज्ज्वल गीत सुहाई ॥

'हरीचंद' गावत मन लाई ।

ताकी हरि नित करत सहाई ॥१५

इति मंगलाचरन ।



प्रथम सर्ग

(सामोद दामोदरः)

बसन्त

हरि विहरत लखि रसमय बसंत ।

जो विरही जन कहै अति दुरंत ।
बृन्दावन-कुंजनि सुख समंत ।

नाचन गायत कामिनी-कंत ।
लौ लालित लवंगलाता-सुवास ।

डोलत कोमल मलयज बतास ।
आलि-पंक-कलारव लहि आस-पास ।

रह्यौ गुँज कुंज गहवर अवास ।
उनमार्दित हवै ताप मदन-ताप ।

मिलि पथिक बधू ठानाहं बिलाप ।
आलि-कुल कल कुसुम-समूह-ताप ।

बन सोभिंत मौलासरी कलाप ।
मृगमद-सौरभ के आलवाला ।

सोभिंत बहु नव चलादल तमाल ।
जुव-हृदय-विदारन नख कराल ।

फूले पलास बन लाल लाल ।
बन प्रफुलित केसर कुसुम आन ।

मनु कनक छरी लिए मदन रान ।
आलि सह गुलाब लागे सुहान ।

विष वृष्ते मेन के मनहुं जान ।
नव नीवू फूलन करि विकास ।

जग निलाज निरखि मनु करत हास ।
निर्मा विरही हिय-छेदन हतास ।

बरछी से केतकि-पत्र पास ।
लापटत इव मार्धाविका सुवास ।

फूली मल्ली मिलि करि उजास ।
मोहे मुनिजन करि काम-आस ।

लखि तरुन-सहायक रितु-प्रकास ।
पुर्सापत लातिका नव संग पाय ।

पुलकित बोराने आम आय ।
लहि सीतल जमुना लहर बाय ।

पावन बृन्दावन रह्यौ सुहाय ।
जयदेव रचित यह सरस गीत ।

रितु-पति विहरन हरि-जस पुनीत ।
गायत जे करि 'हरिचंद' प्रीत ।

ते लहत प्रेम तजि काम-भीत । १६

मालकोस

सखि हरि गोप-बधू संग लीने ।

विलासत विविध विलास हास

मिलि कैलि-कला रसभांने । ध्रुव

स्याम सरीर खौर चंदन की पीत बसन बनमाला ।

रमनि हैसनि भलकत मनि कुंडल लोल कपोल रसाला ।

पीन उरोज भार भुकि हरि को प्रेम सहित गर लाई ।

गोप-बधू कोउ पंचम रागाहं ऊँचै सुर रहि गाई ।

चपल कटाच्छन जुवती-जन-उर काम बद्धावनहारे ।

मुग्ध बधू कोउ आइ रही मन मै मनमोहन प्यारे ।

कोउ हरि के कपोल ढिग अपनो नवल कपोलहि लाई ।

बात करन मिस चूमति पिय-मुख तन पुलकावलि छाई ।

जमुना-तीर निकुंज पुंज मै मदनाकुल कोउ नारी ।

खैचन गहि हरि को पीतांबर हैसत लरे बनवारी ।

ताल देत कंकन धुनि मिलि कल बंसी बजत सुहाई ।

ता अनुसार सरस कोउ नाचति लखि हरि करत बढ़ाई ।

विहरत कोउ संग कोउ मुख चूमत काहू को गर रहे लगाई ।

काहू को सुंदर मुख देखत चलत कोऊ संग लाई ।

जो जयदेव कांयत यह अद्भुत हरि-वन-विहरनि गावै ।

वल्लभ-वल हरिचंद सदा सो मंगल फल नव पावै । १७

इति सामोद दामोदरो नाम प्रथम सर्ग ।

बिहाग

जिय नें सो छावि टरत न टारी ।

रास-विलास रमत लखि मो तन हैसै जौन गिरिधारी । ध्रु

अधर मधुर मधु-पान छकी बंसी-धुनि देति छकाई ।

ग्रीव-दुर्लान चंचल कटाच्छ मिलि कुंडल-हलानि सुहाई ।

बुधुगरी अलकन पै प्यारी मोर-चांद्रिका राजे ।

नवल सजल घन पै मनु सुंदर इंद्रधनुष-छवि छाजे ।

गोप-बधू मुख चूम अधर अमृत रस लाल लुभाए ।

बधुजीव-निंदक ओठन पै मंद हैसनि मन भाए ।

भरत भुजन मै गोप-बधूटन प्रेम पुलक तन पूरे ।

कर-पद-गल-मनिगन आभूखन मेटत हिय तम रूरे ।

स्याम सुभग सिर केसर-रेखा घन नव ससि छवि पावै ।

जुवती-जूथ काठन कुच मीजत जेहि जिय दया न आवै ।

गंडन पर मनि-मंडित कुंडल भलकत सब मन मोहै ।

सुर-नर-मुनिगन बंदित काटि-तट लापट पीत पट सोहै ।

विसद कदंब तरे ठाढ़े जन-भव-भय-मेटनवारे ।

काम-भरी चितवन लखि मम उर काम-बद्धावनहारे ।

श्री जयदेव कथित यह हरि को रूप ध्यान मन भायो ।

बसै सदा रसिकन के हिय 'हरिचंद' अनूप सुहायो । १८

अरी सखि मोहिं मिलाउ मुरारी ।

मेटौ काम-कसक तन की गर लाइ रमन गिरिधारी । ध्रु

इक दिन गहवर कुंज गई हों तहाँ छिपे रहे प्यारे ।
 चितवत चकित चहँ दिखि मोहि लखि हँसे सुरति सुख-धारे ।
 प्रथम समागम लाज रही बहु बातन तब बिलमाई ।
 बोलत ही हँसकै कछु मो तन नीवी सिथिल कराई ।
 कोमल सेज सुवाई मोहि उर पर भर दै रहे सोई ।
 हार आलिंगत चुंबत ही पियो अधर लपटि तिन दोई ।
 आलस-वस दृग मूंदत ही तिन तन पुलकावलि छाई ।
 स्वंग सिथिल तब होत मोहि भए काम बिबस ब्रजराई ।
 बोलत ही मम प्राननाथ बहु कोक-कला बिसतारी ।
 कुनल कुसुम खासित लखि मम कृच जग नख रंख पसारी ।
 नूपुर बोलत ही पिय प्यारे सुरत बिलानहि तान्यौ ।
 रमत गिरत किंकिन सिर गाँह मुख नृमत आँत सुख मान्यौ ।
 रति-सुख-समुद्र-मग मोहि लखि दृग मूंद रहे मद थाके ।
 बिधकित सेज परी लखि पियहू काम-कलोलन छाके ।
 गोप-बधू सखि सों ईमि भाखत श्याम काम-रस पूरी ।
 गायो सो जयदेव सुकवि 'हरिचंद' भक्ति-रति-मूरी ११९

हाहा गई कृपति ही प्यारी ।

निज अपमान मानि मन भारी ॥५०॥
 मोहि धिरयो लखि बधुन मँझारी ।

रिस कारि गई उदास बिचारी ।
 निज अपराध जानि भय धारी ।

हौहू ताहि न सक्यो निवारी ।
 किमि हवैहँ करिहँ कहा बारी ।

का काहँहँ मम विरह-दुखारी ।
 धन जन जीवन घर परिवारी ।

ता बिनु बृथा जगत-निधि सारी ।
 सो मुख-चंद-जोति उँजियारी ।

कोप कुटिल भौहँ कजरारी ।
 मनहँ कैवल पर भँवर-कतारी ।

बिसरति हिय तें नाहि बिसारी ।
 बन बन फिरौ ताहि अनुसारी ।

बिलापौ बृथा पुकारि पुकारी ।
 अब हौं हिय सों ताहि निकारी ।

रमिहँ तासों गल भुज डारी ।
 मम अपराधन हिये बिचारी ।

अतिहि दुखित तेहि जात निहारी ।
 पै नहि जानौ कितै सिधारी ।

तासों सकत मनाइ न हारी ।
 दृग सों छिनहँ होत न न्यारी ।

आवत जात लाखात सदा री ।
 पै यह अचरज अतिहि हहा री ।

धाइ लगत गर क्यौं न पियारी ।
 अबकैं करु अपराध छमा री ।

करिहौं फेर न चूक तिहारी ।
 सुंदरि दरसन दै बलिहारी ।

दहत मदन तो बिनु तन जारी ।
 किंदु बिलव वारिधि तमहारी ।

गाई कवि जयदेव सँवारी ।
 बिरहातुर हरि कहनि कथारी ।

जो 'हरिचंद' भक्त-सुखकारी ॥२०॥

प्यारै तुम बिनु ब्याकुल प्यारी ।

काम-बान-भय ध्यान धरत तुव लीजै ताहि उबारी ।
 चंदन चंद न भावत पावत अति दुख धीर न धारै ।

अहिगन-गरल बगारि सरल तन मलयानिल तेहि जारै ।
 अविरेल बरसत मदन-बान लखि उर महँ तुमहिँ दृगई ।

सजग कमल-दल कवच बनाइ छिपावत हियहिँ डराइ ।
 कुसुम सेज कंटक सों लागत सुख-साजन दुख पावै ।

व्रत सम मुख तजि तुव रति मनवत कोउ बिधि समय बितावै ।
 अविरेल नीर ढरकि नैननि तें रहत कपोलन छाई ।

मनहँ राहु-बिदलित ससि तें जुग अमृत-धार बहि आई ।
 मृगमद लै तुव चित्र बनावति ब्याकुल बैठि अकेली ।

काम जानि तेहि लिखति मकर-सर पुनि प्रनवत अलबेली ।
 पुनि पुनि कहति अहो पिय प्यारे पाय परति अपना ओ ।

तुम बिनु दहत सुधानिधि प्रीतम गर लागि मरत जि आओ ।
 विलपति हँसति बिखाद करति रोअति कबहँ अकुलाई ।

कबहँ ध्यान महँ तुमहिँ निरखि गर लागति ताप मिटाई ।
 ऐसहि जो हरि-विरह-जलाधि महँ मगन होइ रस चाहै ।

सोख-बचन जयदेव कथित 'हरिचंद' गीत अवगाहै ॥२१॥
 तुव बियोग अति ब्याकुल राधा ।

मिलि हरि हरहु मदन-मद-बाधा ।
 कृश तन प्रानहु भर सम जानै ।

हार पहार सरिस उर मानै ।
 कोमल चंदन बिष सम लागै ।

सुख सामा लखि सकित भागै ।
 लेत स्वाँस गुरु ब्याकुल भारी ।

दहत तनहि मदनानि प्रजारी ।
 चौकि चौकि चितवत चहँ ओरी ।

अवत नीर नलिनी मनु तोरी ।
 तुव बिनु सुमन परस तन जारी ।

सूनी सेज न सकत निहारी ।
 निज कर सों न कपोल उठावै ।

नव ससि साँझ गहे मनु भावै ।

पुनि पुनि हरि तुव नाम उचारै ।
 बिरह मरत कोउ विधि जिय धारै ।
 कवि जयदेव कथित यह बानी ।
 'हरीचंद' हरि-जन-सुखदानी ।२२

राग किंभौटी

विरह-विधा तें व्याकुल आली ।
 तुव विनु बहुत विकल बनमाली ।ध्रु०
 मलय-समीर झकोरत आवत ।
 तन परसत अति काम जगावत ।
 फूले विविध कुसुम तरु डारन ।
 बिरही जन हिय नखन बिदारन ।
 चंद चांदनी सों तन जारत ।
 तुव दिछुरे पिय प्रान न धारत ।
 मदन-वान विधि व्याकुल भारी ।
 तलपि तलपि बिलपत बनवारी ।
 मधुर भँवर धुनि सहि नहि जाई ।
 मूँदे रहत श्रवन हरिराई ।
 जब निरसि बद्धत मदन-रुज भारी ।
 मोहत विकल अधीन मुरारी ।
 छोड़ि देह - सुख गेह बिसारी ।
 गिरि-वन-वास करत गिरिधारी ।
 मुराछि धरनि लोटत बिलखाई ।
 चौकि रहत राधे रट लाई ।
 हरि को बिरह-विलास सुहायो ।
 श्री जयदेव सुकावि यह गायो ।
 'हरीचंद' जेहि यह रस भावत ।
 तेहि हरि अनुभव प्रगट लखावत ।२३

बिलम मत करु पिय सों मिलु प्यारी ।
 बैठे कुंज अकेले तुव हित मदन-मथन गिरधारी ।ध्रु०
 धीर समीर घाट जमुना - तट बन राजत बनमाली ।
 कठिन पीन कुच परसन चंचल कर जुग सोभा-साली ।
 लै तुव नाम बहत संकेतहि मधुरी बेनु बजाई ।
 तुव दिसि तें जु रेनु उड़ि आवत रहत ताहि हिय लाई ।
 उड़त पखेरुन गिरत पत्तीअन तु आगवन बिचारी ।
 सेज सँवारत इत उत चितवत चकित पंथ बनवारी ।
 चंचल मुखर नूपुरहि तजि मुख अंचल ओट दुराई ।
 तिमिर-पुंज चल कुंच सखी मिलि हियरो लै न सिराई ।
 रति-बिपरीत पिया-उर ऊपर मुक्तमाल ढिग सोही ।
 धन पै चपल बलाका सह चपला सी रह मन मोही ।
 किंकिन तजिकै बसन उतारि निरंतर अंतर त्यागी ।

चटु पिय कोमल किसलय सेज पिया के उर रहू यागी ।
 हरि बहु-नायक मानी रैनहु जाल चली सब बीती ।
 बेगहि बलु करु पीय गनोरथ पालि प्रीति की रीती ।
 श्री जयदेव-कथित इती-वच हरि-राधा गुन गाई ।
 लही प्रेम-फल सब 'हरिचंद' जुगल छावि जीअ बसाई ।२४

तुम विनु दुखित राधिका प्यारी ।
 तुव-मय भइ तन सुरति बिसारी ।
 अधर मधुर मधु पियत कन्हाई ।
 तुमहि सबै दिसि परत दिखाई ।
 मिलत चलत उठि तुम कहँ धाई ।
 गिरि गिरि परत बिरह दुबराई ।
 किसलय बलय बिरचि कर धारी ।
 तुव रति ध्यान जिअति सुकुमारी ।
 कबहुँ रचित रस-रास सँवारी ।
 जानति हमहीं मदन-मुरारी ।
 बरति सखिन सों पुनि पुनि आली ।
 अबहुँ न क्यों आए बनमाली ।
 लखि धन सम अंधियार भुलाई ।
 तुव धोखे चूमति गर लाई ।
 तुव बिलाव अति ही अकुलाई ।
 व्याकुल रोअति सेज सजाई ।
 श्री जयदेव रचित जो गावै ।
 'हरीचंद' हरि-पद-रति पावै ।२५

(नागर नारायण नाम सर्ग)

हा हरि अजहूँ बन नहि आए ।
 बैठे बाट बिलोकत बीती औधहु कित बिलमाए ।ध्रु०
 सखियन झूठ बोलि बहरायो, हा, अब कौन उपाई ।
 प्राननाथ विनु विफल सबै मन नव जोवन सुँदराई ।
 जाके मिलन हेत कारी निसि बन बन डोलत धाई ।
 मदन-वान बेदना देत मोहिं सोहिं नितुर कन्हाई ।
 घरहु छूटयो हरिहु नहि आए तो अब मरनहि नीको ।
 कहा लाभ बिरहागि दाहि तन रखियो जीवन फीको ।
 इत मधु मधुर जामिनी मो हिय बेदन देत प्रजारी ।
 उत कोउ बड़भागिनि कामिनि सँग हवैहँ रमत मुरारी ।
 कर कंचन कंकन बाजूबंद बिरहानल तापि जारैं ।
 विष से विषय साज सब लागत उलटै दुखहि प्रचारैं ।
 कुसुम-सरिस मम कोमल तन पै फूल-माल हू भारी ।
 तीछन काम-वान सी बेधति विनु प्यारे गिरधारी ।
 हम जाके हित बेत कुंज मैं बैठी त्यागि हवेली ।
 सो हरि भूलेहु सुमिरत नहि मोहिं छाँड़ी हाय अकेली ।
 हमि बिलपति वृषभानु-लली हरि-बिरह-विधा अकुलाई ।

हरि सँग बिहरति हवैहैं कोऊ ।

बड़भार्गनि जुवती गुनवारी दै गल मै भुज दोऊ । १५०
मदन-समर-हित उचित भेस लै कुंचुकि कुच कासि बांधि ।
कच-विगलित कुसुमन सों मानहुँ बीर मुमन-सर साधे ।
हरि-गल-लागत स्वेवादिक तन मदन-बिकारहु जागे ।
कुच कलसन पर मुक्तहार बहु हिलत सुरत रस पागे ।
मुख-ससि-निकट ललित अलकावलि

उमरि-धुमरि रहि छाई ।

पिय-अधरासव-पान छकी तिमि झूमत तिय अलासाई ।
परसत उझकि कपीलन चंचल कुंडल जुगल सुहाए ।

किंकिनि कलरव करति हिलत जब

जुगल जंघ मन भाए ।

पिय तिय दिसि निरखत चितवति

कछु हँसि करि नैन लजीले ।

बिबिध भाव रस भरी दिखावति लहि रति रसिक रसीले ।
रोम पाँति उलहित तन बेपथु होत गरो भरि आएँ ।
मूँद मूँद दृग खोलति लै लै स्वास सुरति सुख पाएँ ।
झलकत मुक्त-जाल से तन पर स्रम-सीकर अति नीके ।
रति-रन अभिरत थाकि परी गल लागिकै हिय पर पी के ।
श्री जयदेव सुकावि भाखित यह हरि-विहार रस गावै ।
काम-विमुख हवै 'हरीचंद' सो प्रेम रुचिर *फल

पावै १२७

माधव नव रमनी सँग लीने ।

बंसी-बट यमुना-तट बिहरत रति-रन जय रस-भीने । १५०
मदन पुलक तन चूमन पिय मुख फरकत अधर लासाही ।
मृगमद तिलक देत ता मुख मै मनु ससि मै मृग-छाहीं ।
जुवजन मनहर रतिपति मृग बन सघन सुघन सम कारे ।
चिकुर निकर कर लिए सँवारत गूँथ कुसुम ब्रह्म प्यारे ।
नभमंडल सम कुच जुग मै घन-मृगमद लपटि सुहावै ।
नख-छत-ससि लखि नखत-माल सी मुक्तमाल पहिरावै ।
नवल नलिन भुज कोमल करतल सुकमल दल से राजै ।
मरकत कंकन तहँ पहिरावत मधुप-माल सम भ्राजै ।
सघन जघन मनु मदन-हेम-सिंहासन सुराचि सोहायो ।
सुरंग बसन पर तोरन-सम पिय किंकिन-जाल बँधायो ।
कमलालय नख-मनिगन-भूखित पद-पल्लव हिय लाई ।
निज मन हित मनु मेड़ बनावत जावक-रेख सुहाई ।
इमि बलबीर निठुर बन बिहरत सँग लै दूजी नारी ।
ता हित तरु-तर वैठि बिलोकत बाट बृथा हम हारी ।

* पाठा. अनुपम ।

'हरिचंद' कलुख कालि हारी । १२८

कमल-लोचन पिया जाहि गर लाइहैं ।
सो न सजनी कबहुँ बिरह-दुख पाइहैं ।
देखि किसलय सेज सो न दुख मानिहैं ।
प्राण-प्रीतमहि निज निकट करि जानिहैं ।
अमल कोमल कमल-वदन हिय धारिहैं ।
तोहि न सर कुटिल कामहुँ कबहुँ मारिहैं ।
अमृत मधु मधुर पिय वचन स्रवन पारिहैं ।
ताहि अति मलिन मलार्यानि न जारिहैं ।
थल-कमल सम चरन करन हिय चाहिहैं ।
ताहि चंदहु न निज किरन-सर दाहिहैं ।
श्याम सुंदर सजल जलद तन लागिहैं ।
तासु हिय कबहुँ नहिँ बिरह दुख पागिहैं ।
कनक सम पीत पट लपटि सुख सानिहैं ।
सो न गुरुजन हँसत सक जिय मानिहैं ।
तरुन-मानि कृष्ण सों सुरत मुख अनिहैं ।
सो न सपनेहुँ कबौ बिरह दुख जानिहैं ।
सुकावि जयदेव कृत गीत जो गाइहैं ।
सो न 'हरिचंद' भव-दुखन घबराइहैं । १२९

भैरव

हम सों झूठ न बोलहु माधव जाहु जू केशव जाओ ।
जो जिय बसी रैन निवसे जहँ ताही को गर लाओ । १५०
अनियारे दृग आलस-भीने पलकें धुरि धुरि जाहीं ।
जागि तिया-रस पागि न प्रगटत निज अनुराग लाजाहीं ।
बार बार चूमन सों रस भरि तिय-जुग-दृग कजरारे ।
लाल रहे तुव अधर लाल पै भए अंग सब कारे ।
रति-नर अभिरत स्याम सुभग

तन नख-छत लखत सुहायो ।

मदन नील पट कनक-लेखनी मनु जयपत्र लिखायो ।
पिय तुव हिय तिय-पद को जावक लखहु न कैसो सोहै ।
मनु जिय काम-लता उलही है पल्लव पसरि रहयो है ।

तुम अति निठुर तदपि हम तुम सों तनिकहु बिलग न प्यारे ।
तुव अधरन रद-छद पै ताकी पिय उर पीर हमारे ।
तन जिमि कारो तिमि मनहु तुव कुटिल कपट सों कारो ।
अपनी जानि औरहु हम कहैं बदि मदनानल जारो ।
बन बन बधूत-बधन-हित डोलत निरदय बने सिकारी ।

या मैं अचरज नहिं तुम प्रथमहिं नारि पूतना मारी ।
सुनि तिय-बचन सरोस पिया हठि लीनी कंठ लगाई ।
श्री जयदेव सुकवि 'हरिचंद' विलास-कथा सोइ गाई ।३०

मानी माधव पिय सों मानिनि,
मान न करु मम मान कही ।
बहत पवन लाखि हरि उठि,
आए तू कोई सुख घर बैठ रही ।
कुच जुग कलस ताल-फल से गुरु,
सरस तिनहिं कित निफल करै ।
बार बार सांखि तोहि समुझावति,
किन सुंदर हरि सों बिहरै ।
बिलपति बिकल तोहि लखि,
सखिगन हँसहिं तऊ नहिं लाज धरै ।
बैठे सजल नलिन-दल से,
जन हरि लखि किन दूग पीर हरै ।
किन जिय खेद करति सुनु मम,
बच हरि सों मिलि मृदु बोलि अरी ।
सुनि जयदेव सखी 'हरिचंद'-कथन,

निज उर-दुख दूर दरी ।३१

मान तजि मानु सुनु प्रान-प्यारी ।
दहत मोहिं मदन तुव बिरह जर जाल सों,
अधर मधु पान दै लौ उवारी ।३०

मधुर कटु बोलि मुख खोलि जासों निराख
दसन-दूति बिरहतम दूर नाऊँ ।
अधर मधु मधुर सुंदर सुधा-सिंधु, मुख-
संसिंहि लाखि दूग-चकोरहि जुड़ाऊँ ।

साँवही होइ रुठी जुपै कोप कार,
तौ न क्यौं नयन-सर मोहिं मारै ।
बाँध भुज-पास सों अधर-दंतन सुर्दास,
क्यों न अपराध-बदलो निवारै ।

तुही मम प्रानधन भव-जलधि-रतन तू,
तोहि लागि जगत हीं जीव धारौ ।
तनिक जौ तू कृपा कोर मो दिासि लखै,
तौ जगाहि तोहि परि बारि डारौ ।

नील नलिनी सुदल सरिस तुव नयन जुग,
कोप सों कोकनद रूप धारै ।
तौ न कीन जानि मोहि कृष्ण हति काम-सर,
अरुन करु तरुन अनुराग भारै ।

क्यों न सोमित करति कुंभ-कुच हार सों,
हीय जासों दुगुन होइ राजे ।
सधन निज जघन पै बाँध किंकिन कलित,
मदन नौबति सरिस सुरत बाजे ।

धल - कमल - हर मम हृदय प्रानकर,
सरस रतिरंभ तुव चरन प्यारै ।
कहै तो लाइ हिय मैं महावर भरौ,
हरौ, जिय - ताप आनंदवारै ।
सदन संताप को मदन मोहि कदन हित,
दहत अति आगनि तन मैं बढाई ।
चरन पल्लव जुगल-गरल-हर सीस मम,
धारि किन तोहि तुरत दै बुझाई ।
देखि ईम चतुर हरि पगन परि लियहि,
रिझयो लियो संक तजि अंक लाई ।
सोइ पदमावति - प्रान - जयदेव काव,
कही 'हरिचंद' लीला बनाई ।३२

उठि चलु मोहन-दिग प्यारी ।

मंजुल बंजुल कुंज बिलोकत तुव मग गिरिधारी ।
मनावत तो कहैं जे हारे,
क्रियो विनय बहु तुव पद पै निज सीस रहे धारे ।
सुरत करि उनकी तू नारी,
मंजुल बंजुल कुंज बिलोकत तुव मग गिरिधारी ।
परिहरि पग मानि नूपुर सीरै,
पीन पयोधर सधन जघन, भर चलु धीरे धीरे ।
चाल सो हँसाहि लजवाई,
चलु सुनु तरुनी जन-मोहन मन-मोहन बच धाई ।
सफल कहैं श्रवणहिं मैं वारी । मंजुल बंजुल ० ।
कुंज में सुनु कोइल, बोलै,
काम नृपति के बंदीजन से मदन-बिरद खोलै ।
चलत मलयानिल मद-माती,
नव पल्लव हारि तोहिं बुलावत निकट विरारि पाँती ।
बिलाव न करु गज-गाति वारी । मंजुल बंजुल ० ।
देखु फरकत जीवन दोऊ,
मदन रंग सो उमाइ अलिगन चहत पियहिं सोऊ ।
गवन हित सगुन मनहुं कीने,
हीर-हार जलधार भरे जुग घट सनमुख लीने ।
चूक मात समयाहि बालिहारी । मंजुल बंजुल ० ।

सांखन तोहिं रात-रन-हित साज्यौ,
तौ किन अब लौ मदन-भेरि तुव किंकिन-रव बाज्यौ ।

देवन नात्र लाजन क्यों रुठी,
चलानि न क्यों सखि कर गाहि बैठी मारनिन हवै छुटी ।
बिना तुव व्याकुल बनवारी । मंजुल बंजुल० ।

कह्यौ लौ मारनिन मम मानी,
सूचन रति अभिसार बजावन चणु कंकन रानी ।
मिलत लाख तोहि हम सुख पावै,
जुगल रूप जयदेव सुकावि लाख हिय महँ पधरावै ।
होइ 'हरिचंद' बलिहारी । मंजुल बंजुल० । ३३

माधव ढिग चल राधा प्यारी ।
बिलस पिया-गल मैं भुज धारी । ३४०
मंजु कुंज माध सेज बिछाई ।
बिहर तहाँ हैंस हैंसि सुख पाई । माधव
कुच-कलसन पर तरलित माला ।
बिहर असोक सेज पर बाला । माधव
बिबिध कुसुम लौ कुंजन बाँधे ।
बिलस कुसुम कोमल तन राधे । माधव
बहन सीत मलयानिल आई ।
बिहर मुरत-रत हरि-गुन गाई । माधव०
सघन जघन बरु सफल सुहाए ।
लखु पल्लव बलिलन लपटाए । माधव०
गूँजत मधुप मदन मद-माली ।
बिहर कृष्ण सँग रति-रस-राती । माधव०
सुनु गावत पिक काम-बधाई ।
चणु लौ निज पिय को हित लाई । माधव०
कवि जयदेव केलि-रस गावै ।
'हरिचंद' सुनि जनम सिरावै । माधव० । ३४

राधा केलि कुंज महँ जाई ।
बैठे बाट बिलोकत निरखे रस उमगे हरिराई । ३४०
राधा-साँस-मुख निरखि हरखि तन रस-समुद्र लहराने ।
रमन मनोरथ करत मदन-वस बिबिध भाव प्रगटाने ।
स्याम सुभग हिय पर ईम सोहत सुंदर मोतिन माला ।
जमुना-जल मनु सेत कमल के सोभित फेन रसाला ।
मृगमद मोचक मेचक तन पै पीत बसन लपटाओ ।
मानहूँ नील कमल पै पसर्यौ पीत पराग सुहायौ ।
रसमय तन मैं सुंदर बदन बिलोचन जुग मतवारे ।
सरद सरोवर कमलानि खेलत जुग खंजन अनियारे ।
कमल बदन में दुहँ दिसि कुंडल रति से सुभग लखाहीं ।
हिलत अधर मुसुकात मनहूँ पिय मुख चूमन ललाचाहीं ।
बारन कुसुम गुथे मनु धन महँ कहँ कहँ बाँदन राजै ।

नव ससि अरुन किरिन सम सिर पै कुंकुम तिलक बिरावै ।
मनिगन भूखन भूखति सब अँग सुंदर सुभग सरीरा ।
पुलाकित तन रति-आतुर बैठे मोहन पिय बलावीरा ।
श्री जयदेव कथित हरि को बपु जा जिय में छिन आवै ।
सो 'हरिचंद' धन्य जग में निज जीवन को फल पावै । ३५

राधे मेरी आस पुजाओ ।

प्रानापिया हरि को कहनो कार,

मिलि पिय साँ सुख पाओ । ३६०

नव किसलय सों सेज सैवारी कोमल पद तहँ धारी ।
हरु पल्लव अभिमानहि अरुन चरन दरसाइ पियारी ।
अति श्रम भयो प्रानप्यारी तोहि चरन पलोटी नरे ।
नूपुर धरी उतारि सेज पर बैठ आइ ढिग मेरे ।
बोली मधुर कछु किन निज पिय को व्याकुल हियो जुड़ावै ।
कहूँ तो उर सों अंचल कृष्ण उतारि अधिक सुख पावै ।
पिय गर लगन हेत फरकौहँ जुगल कलस कुच प्यारी ।
पिय पुलाकित हिय लाइ हरत किन मदन-ताप सुकुमारी ।
निज बिरहालन तपत देख मोहि क्यों न दया उर लावै ।
अधर मधुर रस सुधा स्वाद दै किन मोहि मरत जियावै ।
तुव बिन कोकिल नाद सुनत रहे स्रवन सदा दुख पाई ।
दै तिन कहँ सुख भाखि मधुर कछु किंकिन कलित बजाई ।
नाहक मान ठानि दुख दीनो अब मो दिस लखु प्यारी ।
नीचे नैन न लाज भरी करु दै रति-सुख बलिहारी ।
श्री जयदेव सुकावि हरि भाखित सरस गीत जो गावै ।
ता जिय में 'हरिचंद' प्रेम-बल काम-बिकार न आवै । ३६

यह सुनि राधा पिय सों बोली ।

मान छाँड़ि निज प्राननाथ सों गाँठ हृदय की खोली । ३७०
मंगल कलस सरिस सम जुग कुच मृगमद चित्र बनाओ ।
चंदन से सीतल कर हिय धरि जिय को ताप मिटाओ ।
काम-वान अलि-कुल-मद-गंजन नैननि अंजन प्यारे ।
तुव चूमन सों फैलि रह्यौ तेहि देह सँवारि दुलारे ।
दृग कुरंग-गति भेड़ सरिस मम स्रवन न पिय गिरधारी ।
काम-फाँस से कुंडल प्यारे निज कर देह सँवारी ।
मेरे मुख पर पीतम सुंदर निज कर बिरचि सँवारी ।
नवल कमल पर अलि-कुल

सरिस अलाक निरुवारि बगारौ ।

श्रम-सीकरहि पौछि मम सिर पिय

निज कर रुचिर बनाओ ।

पूरन ससि पै मृग-छाया सों मृगमद-तिलक लगाओ ।

मदन-चौर धुज से मम सुंदर केस-पास निरुवारौ ।

कोक-पच्छ से बारन गूथहु सुंदर कुसुम सँवारौ ।

सरस सचन मम जघनन पर

फल किकिनि कालित सजाओ ।

सुन्दर वसन अभूषन रचि रचि मम अंगानि पहिनाओ ।

ईमि राधा-वच सुनत कृष्ण-गर लागि बिहारे सुख पायो ।

सो जयदेव सुकवि 'हरिचंद' बिहार कृतुहल गायो । ३७

दोहा

आष्ट-पद चौबीस ईमि गाई ककि जयदेव ।

भाषा करि हरिचंद सोइ कही प्रेम-रस भेज । १

गुप्त मंत्र सम पद सबै प्रगट भाषा माहि ।

यह अपराध महा कियो यामे संसय नाहि । २

छमिहैं निज जन जानि सो बृगल दास नकसोर ।

हरिहैं अपना समुह जिय कठिन मोह-भय-पीर । ३



सतसई-सिंगार

[हरिश्चन्द्रिका खं. २ सं. ८ से खं ६ सं. ५
सन् १८७५ तथा १८७८ के बीच प्रकाशित]

सतसई-सिंगार

मेरी भव-बाधा हरो राधा नागरि सोइ ।

जा तन की झाई परै स्याम हरित दूति होइ । १*

स्याम हरित दूति होइ परै जा तन की झाई ।

पाय पलोदत लाल लखत साँवरे कन्हाई ।

श्री 'हरिचंद' बियोग पीत पट मालि दूति टोरी ।

नित हरि जा रंग रंगे हरो बाधा सोइ मेरी ।

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल ।

ईहि बानिक मो मन बसौ सदा बिहारी-लाल । ३०१

सदा बिहारी-लाल बसौ बाँके उर मेरे ।

कानन कुण्डल लटकि निकट अलकावलि घेरे ।

श्री 'हरिचंद' त्रिभाग ललित मूरत नटवर सी ।

टोरी न उर तै नेकु आञ्ज कुंजनि जो दरसी । २

मोहन मूरति श्याम की आति अनुभुत गति जोइ ।

बरसत सुचि अंतर तऊ प्रतिबिंबित जग होइ । १६१

प्रतिबिंबित जग होइ कृष्णमय ही सब सूझे ।

एक संयोग बियोग भेद कछु प्रगट न वूझे ।

श्री 'हरिचंद' न रहत फेर बाकी कछु जोहन ।

होत नैन-मन एक जगत दरसत तब मोहन । ३

नाज तीरथ हरि-राधिका-तन-दूति कर अनुराग ।

जिहि ब्रज-कौल-निकुंज-मग पग पग होत प्रयाग । २०१

पग पग होत प्रयाग सरस्वति पद की छाया ।

नख की आभा गंग छाँह सम दिनकर-जाया ।

छन छाँह लखि 'हरिचंद' कलप कोटिन लव सम लाजि ।

भक्त मकरध्वज मनमोहन मोहन तीरथ नाजि । ४

सचन कुंज छाया सुखद सीतल मन्द समीर ।

मन हवै जान अजौ वहाँ वा जमुना के तीर । ६८१

वा जमुना के तीर सोई धूनि आँखन आँचै ।

कान वेनु-धूनि आनि कोऊ औचक जिमि नावै ।

सुधि भूलाति 'हरिचंद' लखत अजहँ वृंदावन ।

आवन चाहत अबहिं निकासि मनु स्याम सरस घन । ५

सखि सोहत गोपाल के उर गुंजनि की माल ।

बाहर लसति मनौ पिये दावानल की ज्वाला । ३१२

दावानल की ज्वाला धूम सह मनहँ बिराजे ।

प्रिया-बिरह दरसाइ मनहँ संगम सुख साजे ।

सोई 'श्री हरिचंद' विहँसि कर लेत कबहुँ लाखि ।

* दोहों के आगे दी गयी संख्या बिहारी रत्नाकर के दोहों की है ।

मानिक मुक्ता-नील वनन गुंजा सो लखु सखि । ६
कर लै, चूमि, चढ़ाइ सिर, उर लगाइ भूज भोंति ।
लाहि पानी पिय की लखाति, बाँचति धरति समेति । ६३५
बाँचति, धरति समेति, खोलि पुनि पुनि निहि बाँचै ।
वरन वरन पर प्रान वारि आनंद जिय राचै ।
प्रेम-औंधि 'हरिचंद' जानि उलही उर अंतर ।
नैन नीर जुग भरे लिये ही रहत सदा कर । ७

नित प्रीति एकन ही रहत वयस-वरन-मन एक ।
चहियत जुगल-किसोर लाख लोचन-जुगल अनेक । १२३७
लोचन-जुगल अनेक होयें तौ कछु सुख पावैं ।
जग की जीवन-मूर्ति प्रिया-प्रिय निराखि सिरावैं ।
गौर-स्याम 'हरिचंद' कोटि मोहन मनमथ-रति ।
एक वरन एक रूप लखौ इक ही टक नित प्रीति । ८

लोचन-जुगल अनेक पलाटि यह आर्वाध पलक किय ।
सुधा-श्रवन-सम बैन-श्रवन-हित श्रवनहुं जुग दिय ।
सेवत-हित 'हरिचंद' किये द्वै ही कर अनुचिन ।
बिधि सब धरी अनीति जुगल छाँव किमि लाखिये नित । ९

मोर मुकुट की चंद्रिका न यों राजन नंद-नन्द ।
मनु सारि-सेखर को अकस किय सेखर सत-चन्द । १४१९
किय सेखर सत-चंद सुगं कंसरी कुलह पर ।
गंगधार सी लटाक रही दुहैं निसि मोनी लार ।
कहा कहौ 'हरिचंद' आजु छाँव नागर नट की ।
सब जिय उपजत काम लटक लाख मोर मुकुट की । १०

किय सेखर सत-चंद जटित नगपेच बिंब पारि ।
स्याम सारिचक्रन चक्र आभ सो स्याम भये चारि ।
उमृता-नट 'हरिचंद' सरद निसि रास लटक की ।
छाँव लाख मोही आज पीत पट मोर मुकुट की । ११

जहाँ जहाँ ठाढ़ी लख्यौ स्याम सुभग सिर और ।
उतहैं चिन छन गाँह रहत दृगन अजौ वह ठौर । १४२२
दृगन अजौ वह ठौर खरे ही परत लखाई ।
क्यौंह सुधि नहिं जात सोई छाँव नैनानि छाई ।
सुमिरत सोई 'हरिचंद' पीर कसकत अति उर मह ।
असुधानि सींचत तहाँ खरे निरखे हरि जहँ जहँ । १०

सोहन ओढ़े पीत पट स्याम सलोनै गात ।
मनौ नीलमनि-सैल पर आतप पर्यौ प्रभात । १६८९
आतप पर्यौ प्रभात किधौ बिजुरी घन लपटी ।

जरद चमेली तरु तमाल मैं सोभित सपटी ।
प्रिया-रूप-अनुरूप जानि 'हरिचंद' बिमोहत ।
स्याम सलोनै गात पीत पट ओढ़े सोहत । ११

किती न गोकुल कुलबधु, काहि न काहि सिख वीन ।
कौने तबी न कुल-गली हवै मुरली-सुर-लीन । १६५२
हवै मुरली-सुर-लीन कौन ब्रज पतिव्रत राख्यौ ।
किन प्रन पार्यौ, लोक-सील किन दूर न नाख्यौ
धुनि सुनिकै 'हरिचंद' न उठि धाई ताँज को कुल ।
हरि सों जल-पय-सारिस मिली अस किती न गोकुल । १२

मिनि परछाँहीं जोन्ह सों रहे दुहैं के गात ।
हरि राधा इक संग ही चले गलिन मैं जात । १६५३
चले गलिन मैं जात जुगल नहिं देत लखाई ।
राधा मिनि रहि जोन्ह छाँह मिनि रहे कन्हाई ।
गौर-स्याम 'हरिचंद' अबहिं दोउ देखो छाँह-मिनि ।
दिऐ हाथ पै हाथ साथ ही जाने हिनि मिनि । १३

गोपिन सँग निसि सरद की रमत रासिक रस-रास ।
लहाछेह अति गतिन की सर्वाँ लखे सब पास । १२९१
सर्वाँ लखे सब पास दिऐ नाचत गल-बाही ।
उरप तिरप गति लेत एक बहु गोपिन माही ।
लाग डाँट 'हरिचंद' तसथेइ संगीतक रँग ।
तान मान बधान रह्यौ निसि ब्रज-गोपिन सँग । १४

मोर चंद्रिका स्याम-सिर चढ़ि कत करति गुमान ।
लाखिबी पाइनि तर लुठति सुनियत राधा-मान । १६७६
सुनियत राधा मान कियो हरि जात मनावन ।
हवैहैं तोसी और दसेक नख-बिबिध चावन ।
धूरि भरी 'हरिचंद' होइहैं बिगत चंद्रिका ।
जावक-रँग सों लाल लाल की मोर-चंद्रिका । १५

इन दुखिया आँखियान को सुख सिरजौहि नाँहि ।
देखे वने न देखते बिन देखे अकुलाहि । १६६३
बिनु देखे अकुलाहि बिकल असुवन झर लावैं ।
सनमुख गुरुजन-लाज भरी ये लखन पावैं ।
चित्रहुं लाखि 'हरिचंद' नैन भारि आवत छिन छिन ।
सुपन नौद ताँज जात चैन कबहुं न पायो इन । १६

बिनु देखे अकुलाहि बिकल असुवन भर रोवैं ।
खुली रहैं दिन रैन कबहुं सपनेहुं नहिं सोवैं ।
'हरीचंद' संजोग बिरह सम दुखित सदाहीं ।

हाय निगोरी आँखन सुख सिरजौई नाहीं ॥१६॥

बिनु देखे अकुलाहि बावरी हवै हवै रोवै ।
उधरी उधरी फिरै लाज तजि सब सुख खोवै ।
देखै 'श्रीहरचंद' नैन भरि लखै न साँखियाँ ।
कठिन प्रेम-गति रहत सदा दुखिया ये आँखियाँ ॥१६॥

नारिच अचानक ही उठे बिनु पावस वन मोर ।
जानति हैं नान्हत करी इहि कित नन्दकिसोर ॥१६७॥
इहि कित नन्दकिसोर स्याम धन अरवहीं आप ।
प्रफुलित लाँखियत लता बोंग सर जलज मुँदाण ।
पद-रेखा 'हरिचंद' चर्माक प्रकटत नट-बानक ।
स्वैत सुगन्धित पवन अचल इत नारिच अचानक ॥१६७॥

प्रलय-करन बरखन लगे जुरि जलधर इक साथ ।
सुरपाति गरब हरयौ हरखि गिरधर गिरि धरि साथ ॥१६८॥
गिरिधर गिरि धर हाथ सकल ब्रज लोग बचाये ।
बरसि सुधा-रस सात दिवस नर-नारि जियाये ।
मिले नयन 'हरिचंद' तहाँ तजि गुरुजन की भय ।
इत तैं रस बरसात करी उत धन जन-परगाय ॥१६८॥

डिगत पानि डिगलात गिरि लाँखि सब ब्रज बेहाल ।
कंप किसेरी-दरस कें खरे लजाने लाल ॥१६९॥
खरे लजाने लाल जयै तैं भौह मरोरी ।
सजग होइ गिरि धरयौ कोर करुना करि जोरी ।
लकट लाय 'हरिचंद' रहे नव गोपहृ हरि-द्विग ।
अरी खरी नू बाल नेक चितये हरि गे डिग ॥१६९॥

लोपे कोपे इंद्र लौं रोपे प्रलय अकाल ।
गिरिधारी राखे सकल गो-गोपी-गोपाल ॥१७०॥
गो-गोपी-गोपाल अबै सब गोवरधन तर ।
हरि गिरि लीन्है हाथ तकत इक टक तुव मुख पर ।
'हरीचंद' गहि दया उनै ही लखु कर चोपे ।
नाहीं तो हरि चौकि गिरहै गिरि ब्रज लोपे ॥१७०॥

गो-गोपी-गोपाल जदाप गोपाल बचाये ।
पै तिन कौं निज बदन-सुधा दै तहीं जियाये ।
नाहीं तो 'हरिचंद' सात दिन इक कर रोपे ।
किमि हरि गिरि कर लिये रहत सगरो ब्रज लोपे ॥१७०॥

गो-गोपी-गोपाल राखि गिरिधर कहवाये ।
हाथन हीं नू सदा तिन्हें ले रहत लगाये ।
चढ़े रहत 'हरिचंद' बैन दूग जिय हरि चोपे ।

गिरिधर-धारिनि क्यौं न होत नूरनि-रस-लापे ॥१७०॥

लाज गहौ, बेकाज कत चोर रहै, घर जाँह ।
गो-रस चाहत फिरत हो, गो-रस चाहत नाँह ॥१७१॥
गो-रस चाहत नाहिं रूप लाँखि लाल गुमाने ।
सो रस पैहौ नाहिं फिरत काहे मँडराने ।
साँझ भई 'हरिचंद' जान घर देह दुहाई ।
लाँखिहें कोऊ आइ लाज कछु गहौ कन्हाई ॥१७१॥

मकराकृति गोपाल के कृंडल मोहन कान ।
धँस्यौ मनौ हिय-सर समर, इयौढी लसन निमान ॥१७२॥
इयौढी लसन निमान मनौ नुब गुन प्रगटावन ।
जोह सुनि हरि आनि बिकल कुंज नोहिं नुरत बलावन ।
चलनि न क्यौं 'हरिचंद' वृथा लावन बिलंब इत ।
छोड़ मकर तुव बिना स्याम जल-बिनु मकराकृत ॥१७२॥
अधर धरत हरि के परन ओठ-दोठि-पट-जोति ।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्र-धनुष रंग होति ॥१७३॥
इन्द्र-धनुष रंग होति स्याम धन लाह कर्ब पावन ।
याही तैं हरि सुधा-सार सम रस बरसावन ।
मुक्त-माल बक-पाँति साँझ फूली माला मध ।
बिजुरीसम 'हरिचंद' पीत पट रहयौ लपटा अध ॥१७३॥

इंद्र-धनुष सी होति बधन विरही अवलागमन ।
बिनु बलमी ते भये इतो बिष होइ कहाँ तन ।
हम बाँचत ही रहत सदा 'हरिचंद' लोक-डर ।
हाय निगोरी यह बसी पीवन अधराधर ॥१७३॥

छूटी न सिमूना की झलक, झलक्यौ जोवन अंग ।
शोपति देह दुहुन मिलि दिपति ताफता रंग ॥१७४॥
दिपति ताफता रंग वसन विरची गुँडिया सी ।
चतुराई नहिं चढ़ी तऊ कछु लाज प्रकासी ।
देह नितम्बानि भार अजौं काँट भगे लुटी नहिं ।
जोवन आयो जऊ तऊ मुगधता छूटी नहिं ॥१७४॥

दिपति ताफता रंग मिलति बय सोभा बाढी ।
कछु नरुनाई चढ़ी जीय कछु लाजह गाढी ।
आइ चली 'हरिचंद' जदाप जिय मै कछु रमना ।
बालिहारी बलि लखी तऊ नन छूटी न सिमूना ॥१७४॥

लिय-तिथि तरुनि-किसोर-बय पुन्य-काल सम दोन ।
काह पुन्यानि पाइयत बैस-साँध-संक्रान्ति ॥१७५॥
बैस-साँध-संक्रान्ति समय सब दिन नहिं आवत ।

दूनी बानि दैवज्ञ मिलन को समय बतावत ।
 श्री 'हरिचंद' सुकुंज-सेज नीरथ जानहु जिय ।
 देहु अंधर-रस-दान लाल भागन पाई नित्य । १२५
 बैस-सांध-संक्रीन सात बिनु चार सौत कहै ।
 द्वे को पट भौ नव सालन जिय अठ दूग बारह ।
 अजी न ग्यारह कृच स पाँच काट दस धुन नहिं जिय ।
 करहु न एक न देर होहु त्रय भाग मिली नित्य । १२५

ललन अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाति ।
 आवु काल्ह मै देखियत उर उकसौही भाँति । १२६।
 उर उकसौही भाँति बनक कछ कहत न आवै ।
 देखे हीं सुख होइ तिहारे मनहिं रिखावै ।
 बलि निरखौ 'हरिचंद' जुगल त्रय मिलन अलौकिक ।
 नैन बैन कछ भये औरही ललन अलौकिक । १२६

भावक उभरौही भयो, कछक परयो भरआव ।
 सोपहरा के मिस हियो निस-दिन हेरति जाय । १२५२
 निस-दिन हेरति जाय कछ हँसि हँसि कै बोलै ।
 आँख-मिचौनी के मिस साँख-दूग नापाति डोलै ।
 हिय हरखै 'हरिचंद' पियहि लखि होत लजौही ।
 काटि सूछमता प्रगट करत भावक उभरौही । १२७

अपने श्रैंग के जानि कै जोवन-नृपति प्रवीन ।
 स्नन-मन-नयन-नितंब को बडौ इजाफा कीन । १२
 बडौ इजाफा कीन सर्वांग जागीर बढ़ाई ।
 कंचुकि चाहत अंजन सारी खिलन दिवाई ।
 मदन चक्कवै जानि करन कारज ना मन के ।
 जोवन नृप आधिकार बढ़ाए अपने नन के । १२८
 इक भीत्रै, पहले परै, बूढ़ै, कहै हजार ।
 किते न औगुन जग करत वै नै चढ़ती बार । १२६१
 वै नै चढ़ती बार कूल-मरजादा तागत ।
 भंजत धीरज-मेंड़ लाज-सामाँ सब बोरत ।
 बेग काठन 'हरिचंद' भेद यह तदीप दुहँ दिक ।
 चतुर होत एक पार जानि कै बूढ़त लहि इक । १२९

देह दुर्लाहिया की बडै ज्यों ज्यों जोवन-जोति ।
 त्यों त्यों लखि सौतें सबै बदन मणिन दुति होति । १४०
 बदन मलिन दुति होति सौत गुरुजन सुख पावत ।
 लाल हजारन भाँति मनोरथ डर उपजावत ।
 तजत गरब 'हरिचंद' जिली जुवती जग मैहियाँ ।
 ज्यों ज्यों उलहति चलाति सलोनै देह दुर्लाहिया । १४०

नव नागरि-तन-मुलुक लहि जोवन-आमिल जोर ।

चाँट बाँटि तें बाँटि चाँट रकम करी और की और । १२२०
 करी और की और लखत सिमुता बलि छूटी ।
 दियो नितंबानि भार लखौ बीचहिं काँट लुटी ।
 कछ उमगे 'हरिचंद' भई बुधिह गुन-आगार ।
 चपल नैन बाँटि चले मदन परसत नव नागरि । १२१
 लहलहाति तन तरुनई लाँच लग लौ लफि जाइ ।
 लागै लाँक लोइन-भरी लोइन लेति लगाइ । १५३२
 लोइन लेति लगाइ फेरि छूटै न छुड़ाए ।
 बनत चहँदुआ नैन लगे डोलन सँग धाए ।
 लाल लट्ट 'हरिचंद', लट्ट सम देखत छाती ।
 भट्ट फिरत सँग लगे तरुनई लखि उलहाती । १३२
 सहज साँचकन, स्याम राँच, सुनि, सुगन्ध, सुकुमार ।
 गनत न मन पथ आपथ, लखि बिधुरे सुधरे बार । १५५
 बिधुरे सुधरे बार देखि उरभ्यौही चाहत ।
 मानत नहिं कूल-कानि लाज नहिं ननिक निबाहत ।
 जूग मै बाँध लटकि रहत अलकन के छोकन ।
 चाँटन में गुँथ जान केस लखि सहज सचीकन । १३३
 वेई कर व्यौरी वडै, व्यौरी क्यो न बिचार ।
 जिनहीं उरभ्यौ मो हियो तिनहीं सुरफे बार । १४३६
 तिनहीं सुरफे बार बार जिनपै मै धारी ।
 कहे देत कर-परसनि सखि यह तौ गिरधारी ।
 उन बिन को 'हरिचंद' परसि प्रगट मनमथ-जूर ।
 रोम-पाँति उकसाति पीठ लागै वेई कर । १३४
 कच समेटि, भुज कर उलाटि खरी सोस-पट डारि ।
 काको मन बाँधै न यह जूग बाँधानहारि ।
 जूग बाँधानहारि बाँध मन छोड़ि न जानै ।
 सोचनि सरस सनेह मृगधहँ लौ सानै ।
 तजति नहिं 'हरिचंद' मोहिं बोलनि मृगह न बच ।
 जुलुफ जँचीरन सोस फूल को कूलुफ देन कच । १३५

छूटे छूटाव जगत तें सटकारे सुकुमार ।
 मन बाँधत बेनी बंधे नील छबीले बार । १५७३
 नील छबीले बार हरत मन सब ही भाँतिन ।
 बंधे, छूटे, सटकारे गुंथे मोनी पाँतिन ।
 अहिं सिवार आलि आद सबन को गरब मिटावै ।
 आँखियन अरुक्षे रहत न सुरक्षे छूटे छूटावै । १३६
 कूटिल अलक छूटि परत मुख बाँटिगो इतो उद्योत ।
 बंक बँकारी देत ज्यों दाम रुपैया होत । १४४२
 दाम रुपैया होत उलैया तें व्यवहारन ।
 सोलह सै गुन बढ़त बदन-सोभा तिति बारन ।
 अमल कमल आलि पाँति रहत जिमि जमल और जुति ।
 ससि पै अहिं सम ससि-बदनी के कूटिल अलक छूटि । १३७

ताहि देख मन तीरथानि विकटनि जाइ बलाय ।
जा मृगनेनी के सदा बेनी परसत पाय ।
बेनी परसत पाय जमन सी लोल कलोलै ।
मोतिन मिस तिमि गंग संग लागी ही डोलै ।
चरन महावर सरिस सरस्वति मिलति जौन छन ।
तिय तीरथपति होत लहत फल जाहि देख मन । ३८
नीकौ लसत लिलार पर टीकौ जटित जराय ।
छाँवाह बढ़ायत राव मनौ ससि-मंडल मैं आय । १०५
ससि-मंडल मैं आइ सूर सोभाहि बढ़ायत ।
मोली-लर तारागन सी तिमि अति छवि पावत ।
तिय-सोभा 'हरिचंद' कियौ सौतिन मुख फीको ।
लखौ लाल चलि कुंज आजु प्यारी-मुख नीको । ३९

सबै सुहाएँ ही लसै बसत सुहाई ठाम ।
गोरै मुख बेदी लसै अरुन, पीत, सित, स्याम । २७१
अरुन, पीत, सित, स्याम, खुलैं सबही मन मोहैं ।
साँच कहत जग लोग सबै सुंदर कहैं सोहैं ।
बिनु सिंगार ही लेत जौन मन सहज लुभाए ।
क्यों न लगी सिंगार ललन तेहि सबै सुहाए । १४०
कहत सबै, बेदी दियेँ आँक दस-गुनो होत ।
तिन-लिलार बेदी दियेँ अगनिन बढ़त उदोत । ३२७
अगनिन बढ़त उदोत तीस, अस्सी, नब्बे-गुन ।
तीन, आठ, नव, सत, सहस्र 'हरिचंद' बढ़त पुन ।
बंदी बेना बेदी भौं लहि बनत रुपा जब ।
मोती-लर तें होत मुहर लखि थकित रहत सब । १४१

अगनिन बढ़त उदोत न सो काँच पै गिनि आवै ।
निरखत मन हर लेत तिहारे मन अति भावै ।
सो सोभा 'हरिचंद' बरनि नहि जात कछु अब ।
बलि निरखी चलि स्याम सहज छवि जाहि कहत सब । १४१

भाल लाल बेदी छप छुटे बार छवि देत ।
गहयो राहु अति आहु करि मनु ससि सूर-समेत । ३५५
मनु ससि सूर-समेत इकत गहि राहु दवावत ।
स्वेद-कना मिस अमृत निकसि तब ससि तें आवत ।
बारिध औ पिय नाते तब गहि जुगल कमल बर ।
निरुवारत तकि तमहि परसि तिय भाल लाल कर । १४२

पायल पाय लगो रहै लगे अमोलक लाल ।
भोडरइ की बेंदुली चढ़ति तिया के भाल । १४४
चढ़ति तिया के भाल तिमिहिं सो तिय गरबानी ।
हम सब कुल की होय फिरत दूरहि मंडरानी ।

कामी हरि 'हरिचंद' करी बेवस करि घायल ।
भोडर राख्यौ सीस जर्यौ रतनन लौ पायल । १४३

चढ़ति तिया के भाल पिया-मन सुख उपजावति ।
कोटि रतन रवि-ससिहूँ सों बढि सोभा पावति ।
मूरतमान सुहाग-बिंदु लखि कवि-मति कायल ।
यातें यह अनमोल जदपि नवलख की पायल । १४३

चढ़ति तिया के भाल तैसहीं तू गरबानी ।
सुनत सखिन की बात न पीतम को पतियानी ।
रहति मान करि ब्या कोप मैं करि मति मायल ।
पियाहिं लुठावति चरन तरें परसावति पायल । १४३

चढ़ति तिया के भाल सबै सुंदर कहैं सोहत ।
तानों करु न सिंगार बेंदुली ही मन मोहत ।
चलु 'हरिचंद' निकुंज दूज नजि माल हिमालय ।
उत पिय तुव बिन व्याकुल इत तू परहरति पायल । १४३

चढ़ति तिया के भाल सदा निज मान बढ़ायत ।
तैसहिं नूपुर बोलन सों आदर नहिं पावत ।
सूचति रति अभिसार सबन कहैं बाजि उतायल ।
याही सों मनि-जटितहु राखत पद तर पायल । १४३

भाल लाल बेदी ललन आखत रहे बिराजि ।
इंदु-कला कुंज मैं बसी मनौ राहु-भय भाजि । १६९०
मनौ राहु-भय भाजि इंदु कुंज-मंडल आयो ।
लाहू पै लिन बाहर ही निज जोर जमायो ।
पूजि देव-तिय न्हाइ खरी बाढी अति सोभा ।
बिधुरे कंसनि तिलक अखत लखि पिय मन लोभा । १४४

पिय-मुख लखि पन्ना जरी बेदी बढै बिनोद ।
सुत-सनेह मानौ लियो बिधु पूरन बुध गोद । १७०७
बिधु पूरन बुध गोद मोद भरि कै बैठार्यो ।
होइ उच्च के जिन सोहाग को चौचंद पार्यो ।
सेंदुर केसर पान दिठौना बेसर कच सुख ।
औरहु ग्रह मिलि बसे इकत लखि सुंदर तिय मुख । १४५

गढ़-रचना बरनी अलक चितबनि भौह कमान ।
आध बँकाई ही बढै तरुनि तुरंगम तान । ३१६
तरुनि तुरंगम तान बँकाईहि तें छवि पावत ।
ताही तें तू सदा मान की मति उपजावत ।

वेह लालित तूमंग सदा बाँके सब सों बड़ ।
यह जोरी 'हरिचंद' भली बिधि रची आपु गढ़ १४६

नासा मोरि नचाइ दूग करी कका की सौह ।
काँट लौ कसकति हिये गरी कैंटीली भौह १४७
गरी काँटीली भौह न भूलाति कबहुँ भूलाये ।
वह चितवनि वह मुरनि चलनि चख चपल नचाये ।
प्रांन रहे 'हरिचंद' एक सौहन की आसा ।
उन तौ बिछुरत ही बुधि-बल मन-धीरज नासा १४७
गरी कैंटीली भौह जीय सों चुभत सदाहीं ।
अब उनके बिनु मिले सखी जिय मानत नाहीं ।
लाउ बेगि 'हरिचंद' पूरि मम कोटिनि आसा ।
नाहीं तौ यह तन बियोग मनमथ अब नासा १४७

गरी कैंटीली भौह कोप करि प्रगट बाँकाई ।
मम भुज छटन हेत सरस रिसि जौन दिखाई ।
वह छलि भाजी हाय रहयो में लखत तमासा ।
मिलन-मनोरथ-पुंज पलक मूँदत सब नासा १४७

गरी कैंटीली भौह सोइ कसकत जिय भारी ।
गुरुजन की भय-देनि खानि हा हा वह प्यारी ।
मिलन औध 'हरिचंद' वदनि वह राखनि आसा ।
भूलाति क्योंहुँ नाहि नचावनि भौं दूग नासा १४७

गरी कैंटीली भौह बिरह व्याकुल अति भारी ।
कोउ बिधि बेगि मिलाउ मोहि सुंदर सोइ प्यारी ।
कहियो तुम करि सौह न पूरत क्यों अब आसा ।
ताकी जाको बुधि बल सब देखत तुम नासा ।

खौरि-पनच, भूकुटी-धनुष, बधिक-समर, तजि कानि ।
हनत तरुन-दूग तिलक-सर, सुरक-भाल भरि तानि १४८
सुरक-भाल भरि तानि खोजि चतुरन ही मारत ।
बधि फिर खोज न लेत चवाइन चौचंद पारत ।
जिय व्याकुल 'हरिचंद' होत गर्ति मति सब वौरी ।
गोरे गोरे भाल बिलोकत केसरि खोरी १४८

रस सिंगार मंजन किए, कंजन भंजन-देन ।
अंजन रंजनहुँ बिना, खंजन-गंजन नैन १४८
खंजन-गंजन नैन लुकंजन मनहुँ लगाये ।
पैठ हिये मन लयो तबहुँ पहिं परत लखाये ।
वारौं कोटिक मीन, मैन-सर, मृग-छाँव सरबस ।
कहूँ ये जड़ पसु निरस कहाँ वे भरे मदन-रस १४९

खेलन सिखए अलि भलै चतुर अहेरी मार ।
कानन-चारी नैन-मृग नागर नरन सिकार १४९
नागर नरन सिकार करत ये जुलुम मचावत ।
अंजन गुनहुँ बंधे उड़न झपटत गाँह लावत ।
चीन्ह चीन्ह 'हरिचंद' रसिक ये मारत सेलन ।
बांधि फिर सुधि नहिं लेत भले सिखये यह खेलन १५०

सायक-सम घायक नयन, रंगे त्रिबिध रंग गात ।
झखी बिलाखि दूरि जात जल, लखि उलजात लजात १५१
लखि उलजात लजात, हरिन बन बसत निरंतर ।
खंजन निज मद-गंजन करि निवसत तरुवर पर ।
सो मोहत 'हरिचंद' जौन त्रिभुवन के नायक ।
बुझे त्रिबेनी-नौर जीय-घायक दूग-सायक १५१

अर तैं दरत न वर परे, दई मरक मनु मैन ।
होड़ा-होड़ी बढि चले चित, चतुराई नैन १५२
चित, चतुराई, नैन मधुरता बच-रस-साने ।
जोवन कृच पिय प्रेम सबै साथाहि उमगाने ।
जीतन हरि 'हरिचंद', कुमक नृप मदन सुधरतैं ।
आवत सब ही बड़े बड़ेई दरत न अर तैं १५२

जोग-जुगति सिखये सबै मनौ महा मुनि मैन ।
चाहत पिय अद्वैतता, कानन सेवत नैन १५३
कानन सेवत नैन रहत नितही लौ लाए ।
हरि-मद-रस सों छके छबीले उमग बढ़ाए ।
सेली डोरे लाल लखत गुदरी पल अनमिख ।
क्यों न लहै अद्वैत सिद्धि प्रिय जोग जुगति सिख १५३

वर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मै न ।
हरिनी के नैनान तैं हरि नीके ए नैन १५४
हरिनी के ए नैन अनी के घन बरुनी के ।
फीके कमलान करत भावते जी के ती के ।
ही के हर 'हरिचंद' रंग चीते प्रिय प्रीते ।
नीते मानत नाहिं चपल चीते वर जीते १५४
संगति दोष लगै सबै, कहे जु सचि बैन ।
कूटिल बंग भ्रूव संग तैं भए कूटिल-गति नैन १५५
भए कूटिल-गति नैन कूटिलाई पिय सों ठानत ।
सीधे जित आत रहत कान सिख नेक न मानत ।
अरुझ परत 'हरिचंद' सैन सजि बरानिन-पंगाति ।
घायहु बाँको करत खरे बिगरे लाहि संगति १५५

दुर्गति लगत, बेधत, हिथौ, बिकल करत अँग आन ।

ए तेरे सब तें विषम ईछन तीछन वान । ३४९
 ईछन तीछन वान आज अति अचरज पारै ।
 मिलत करेजे धाय करै बिछुरे तिय मारै ।
 काढ़े औरहु धँसत बढ़त उपचार निरखि दिगि ।
 जेहि लागत तेहि लगन देत नहि लगन लाय दूग । ३५६

झूठे जानि न संग्रहै मनु मुँद-निकसे बैन ।
 वाही नें मानों किये, बातनि कौ बिधि नैन । ३४६
 बातनि कौ बिधि नैन किये सब बिधि बिधि जानी ।
 बिनु बोलेहु जासु मधुर बोलानि रस-सानी ।
 हाव भाव 'हरिचंद' छिपे रस धरे अनूठे ।
 कहे देत जिय बात करत मुख के छल झूठे । ३५७

फिरि फिरि दौरत देखियत, निचले नैकु रहैं न ।
 ये कजरारे कौन पै करत कजाकी नैन । ३५७
 करत कजाकी नैन कजा की सैन सैन गति ।
 बटपारे बरजोर बिचारे पथिक देत हति ।
 काया सम 'हरिचंद' फिरत काया धावा धरि ।
 पै निज ठौरहि रहत करत अचरज अति फिरि फिरि । ३५८

खरी भीरहूँ भोद कैं कितहूँ तैं इत आय ।
 फिरै दीठि जुरि दुहैं की सबकी दीठि बचाय ।
 सब की दीठि बचाय नीठि मिलिही ये जाहीं ।
 कोटि उपाय न करी ठौरही ये ठहराहीं ।
 काठिन प्रीति 'हरिचंद' भीत गुरुजन हरि सगरी ।
 करत आपनो काज लाज ताज यह गति निखरी । ३५९

सब ही तन समुहार्ति छिन, चलात सबन दै पीठि ।
 वाही तन ठहराति यह, किबिलनुमा लौं दीठि । ३६०
 किबिलनुमा लौं दीठि एक हरि दिसि ही हेरे ।
 कोटि जतन कोउ करी अनत कहूँ रुखहु न फेरे ।
 पीतम बिनु 'हरिचंद' कहौ क्यौं अनत लामै मन ।
 सरल भाव यों भले लखी किन छिन सबही तन । ३६०

किबिलनुमा लौं दीठि न कबहूँ प्रन करि फेरे ।
 छवि-सागर डूब्यो निज मन-ससि फिरि फिरि हेरे ।
 हरि-चुम्बक 'हरिचंद' करत दूग-लीहहिं करसन ।
 तिनही ठहरति जदपि करत काया सब ही तन । ३६०

किबिलनुमा लौं दीठि भई सब तजि पिय अनुसर ।
 ताहि देखि 'हरिचंद' प्रेम गति सुदृढ़ करी अर ।
 बिन देखे हरि-धाम लखन को तजति न यह प्रन ।

लौ परतछ हरि पाइ कहा यह चितवै सब तन । ३६०

कहत, नटत, रीझत खिझत, मिलत, खिलत, लाँच जात
 भरे भीन में करत हैं नैनन ही सों बात । ३६२
 नैनन ही सों बात करत दोऊ अरुखाने ।
 अलख जुगल के खेल न काहु लखत लखाने ।
 इन्हें काम सौं काम होइ किन लाखन जन महैं ।
 ये अपने रस-मगन भीर करिहैं इनको कहैं । ३६१

कंज-नयनि मंजन किये श्रेष्ठी व्यौरात बार ।
 कच-अंगुराति बिच दीठि दै निरखति नंदकुमार । ३६८
 निरखति नंदकुमार सखिन की दीठि बचाए ।
 एक पंथ द्वै काज करति मुख अलक छिपाए ।
 छिप्यौ चंद 'हरिचंद' सघन धन देह लुकंजन ।
 तहैं सों द्वै उडुगन निरखत करि दिग जुग कंजन । ३६२

सब अंग करि राखी सुधर नागर-नेह सिखाइ ।
 रस जुत लोति अनंत गति पुतरी पातुर राइ । ३७४
 पुतरी पातुर-राइ नचाति मन हरति सुहावनि ।
 अतिहि चतुर गुन भरी अनेकन भाव दिखावति ।
 मनहिं हरति 'हरिचंद' हठनि नित रंगी मदन-रंग ।
 को जोहत नहिं मोहत यह छवि-पूरित सब अंग । ३६३

दीठि-बरत बाँधी अर्तन, चढ़ि धावत न डरात ।
 इत उत तें चित दुहैं के नट लौं आवत जात । ३९३
 नट लौं आवत जात संक बिनु इत उत मिलि भल ।
 करत कला बहु भाँति मैन गुरु मंत्र-जोग-बल ।
 दृष्टिबंध 'हरिचंद' होत जग लखत न नीठी ।
 खेलि लहत रस-केलि रीझ चित-नट चढ़ि दीठी । ३६४

लीनेहैं साहस सहस, कीने जतन हजार ।
 लोइन लोइन सिंधु तन, पैरि न पावत पार । ३९३
 पैरि न पावत पार रहत त्रिबली-तरंग फैसि ।
 कुच-गंर सों टकराइ नाभि-भँवरन धूमत धौंसि ।
 अरुझत बारहि बार रूप-चादर परि भीने ।
 नैन कहर दरियाव पाइ बूझत मन लीने । ३६५

पहुँचात डेंट रन सुभट लौं, रोकि सकैं सब नाहि ।
 लाखनहूँ की भीर में आँख उतै चलि जाहि । ३९८
 आँख उतै चलि जाहि रुकत नेकहु नहिं रोके ।
 करै आपनो काज संक बिनु गिनत न टोके ।
 छकी प्रेम 'हरिचंद' परस्पर लगौं दरस ठाँट ।

मिलत धाइ अकुलाइ हेरि उतही पहुँचति डटि । ६६

भिरै प्रेम-रन-रंग सुभग-दुग गुन-बल फूले । ७२

गरी कुटुंबिनि-भोर मै रही बैठि दै पीठि ।
तऊ प्रलक करि जात उत सलज हँसौहीं दीठि । ९७
सलज हँसौहीं दीठि झर्पाकि उत फिरही जाँही ।
गुरु-जन नजरि बचाए दुरि सनमुख समुहाँहीं ।
कछु देखन मिस सहज इतहि उत दुरि दुरि अगरी ।
पीनम दिसि लखि लेत लालचिन चपल अचगरी । ६७

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट-पट झीन ।
मानहु सुर-सरिता बिमल जल उछलत जुग मीन । ३७६
जल उछलत जुग मीन रूप-चारा ललचाने ।
झलकत मुख तिमि निरखि न पिय मन रहत ठिकाने
सेत बसन 'हरिचंद' कहिय तन उपमा केहि सम ।
प्रगटत बाहर प्रभा चारु मुख चमकत चमचम । ७३

भौह उँचै, आँर उलटि, मोर मोरि मुँह मोरि ।
नीठि नीठि, भीतर गई, दीठि दीठि सों जोरि । १२४२
दीठि दीठि सों जोरि काज परबस अकुलानी ।
गुरुजन आयसु बँधी सलोनी ओट दुरानी ।
प्रेम-भरी 'हरिचंद' चलत दुग चपल लजौहैं ।
बेबस चितवनि चितै गई मोरत निज भौहैं । ६८

नावक-सर से लाइके तिलक तरुनि गइ ताकि ।
पावस-झर सी झर्माक के गई झरोखे झाँकि । ५७०
गई झरोखे झाँकि पिया-उर बिरह बढ़ाई ।
नीके मुख नहि लख्यो रहयो तासों अकुलाई ।
मीन उछरि जल दूर लुकै बन जिमि भजि सावक ।
तिमि सो नैन नवाइ दुरी हति पिय-उर नावक । ७४

लागत कुटिल कटाच्छ-सर क्यों न होय बेहाल ।
लगत जु हिये दुसार करि, तऊ रहत नटसाल । ३७५
तऊ रहत नटसाल सदा सालत जिय माँहीं ।
बेधि पार हवै जाँहि तदपि ये निसरत नाँहीं ।
सुधि न टरत 'हरिचंद' छिनकइ सो अत जागत ।
बारेकर के लगे सदा लागत से लागत । ६९

सटपटाति सी ससि-मुखी मुख घूँघट-पट टाँकि ।
पावस-झर सी झर्माक के गई झरोखे झाँकि । ६४६
गई झरोखे झाँकि लाज-बस ठहरि सकी नहिं ।
इत पिय-मुख नहि लख्यो भले तासों व्याकुल महि ।
परे लाज-बस जुगल बिकल वह घर-मधि ये बट ।
मिलि न सकत 'हरिचंद' प्रेम की हिय-मधि सटपट । ७५

अनियारे, दीरघ दुर्गिन किती न तरुनि समान ।
वह चितवनि औरै कछु, जेहि बस होत सुजान । ५८८
जेहि बस होत सुजान भावते हैं कछु न्यारे ।
सहज प्रीति रस-रीति बिबस निज पिय बस पारे ।
कहा भयो 'हरिचंद' जु पै लाखन तिय पिय-दिग ।
प्रेमी रीझत प्रेम न अनियारे दीरघ दुग । ७०

छुटत न लाज, न लालचौ प्यो लखि नैहर-गेह ।
सटपटात लोचन खरे, भरे सकोच-सनेह । ५२४
भरे सकोच-सनेह निरखि दिग पिय ललचाहीं ।
दुरि दुरि देखहिं कबहुँ कबहुँ लखि लोग लजाहीं ।
रोकेहु नहि रहत न घूँघट तजि सुख लूटत ।
बिचि चुम्बक के लोह-सरिस कोउ बिधि नहि छुटत । ७६

जदपि चवाइनि चीकिनी चलति चहँ दिसि सैन ।
तऊ न छाँड़त दुहुँन के हँसी रसीले नैन । ३३६
हँसी रसीले नैन करत बस-रस अरुझाने ।
भाव भरे रस भरे मैन के मनहुँ खजाने ।
जग रीझो खीझो बरजौ घटिहैं नहिं चाइनि ।
ये अपने रस-पगे चाव किन करहिं चवाइनि । ७१

दूरी खरे समीप को मानि लेत मन मोद ।
होत दुहुन के दुगन ही वत-रस हँसी-बिनोद । ६३९
वत-रस हँसी-बिनोद मान अरु मान-मनावनि ।
रिझनि-खिझनि-संकेत बदन पुनि कठ-लगावनि ।
नैननही 'हरिचंद' करत सुख-अनुभव पूरो ।
नैन मिले जिय निकट जदपि छुटै दोउ दूरो । ७७

फूले फदकत लै फरी, पल कटाच्छ-करवार ।
करत बचावत विय-नयन-पाइक घाइ हजार । १२४७
पाइक घाइ हजार करत दुरि दुरि जाहीं ।
फिर डँटि मनमुख लरहिं बचहिं अभिरहिं मुरि जाही ।
जुगल चतुर 'हरिचंद' भीर भुलवत नहिं भूले ।

तिय, कित कमनेती पढ़ी, बिन जिहि, भौह-कमान ।
चित बेधै चूकति नहीं बंक बिलोकनि-बान । ३५६
बंक बिलोकनि-बान सबै बिधि अजगुत पारत ।
बिनु देखी जो बस्तु ताहि तकि कै किमि मारत ।
काढ़े औरहु चुमत अनोखे चोखे सर हिय ।
बधिन बेझ लै जात सिकारिनि अत बिचित्र तिय । ७८

नीचे ही नीचे निपट दीठि कुही लौं दौरि ।
 उठि ऊँचे, नीचे दियो मन-कुलिंग झकझोरि । १२५७
 मन कुलिंग झकझोरि कियो परवस मोहिं प्यारी ।
 कहाँ जाऊँ, का करौं, भयो जिय अतिहि दुखारी ।
 अब नहिं आन उपाय सुधाधर-रस-विनु सींचे ।
 सब विधि कियो निकाम निरखि दृग ऊँचे नीचे । १७९

नैन-तुरंगम अलक-छाँवछरी लगी जेहि आइ ।
 निहि चढ़ि मन चंचल भयो मति दीनी विसराइ ।
 मति दीनी विसराइ विवस इत सों उत डोलै ।
 झूटी धीरता-डोर न मुखहु सों कछु बोलै ।
 सुपथ-कूपथ नहिं लखत भयो बुधि-विनु उनमद सम ।
 सब विधि व्याकुल भयो चेत चढ़ि नैन-तुरंगम । १८०

ऐंचित सी चितवनि चितै भई ओट अलसाइ ।
 फिर उलझानि कों मृग-नयानि दृगनि लगानिया लाइ । १३२०
 दृगनि लगानिया लाइ इहाँ सों किते दुरानी ।
 कल न परत विनु लखे विकल गति मति बोरानी ।
 छाँड़ि विवस 'हरिचंद' गई बुधि धीरज सैचति ।
 दृग-बंसी मन-मीन रूप निज गुन-विभ्र ऐंचति । १८१

करे चाह सों चुटुकि कै खरें उड़ैहैं मेन ।
 लाज नवाग तरफरत करत खूँद सी नैन । १४४२
 करत खूँद सी नैन मेंड गुरुजन की तोरत ।
 लोक-लोक नहिं गिनत उतैही हठि मुख जोरत ।
 मन-सहीस 'हरिचंद' थक्यो बुधि-बागहि पकरे ।

खरें विवस भे रहत न लाज-लगामन जकरे । १८२

नेकु न झुरसी विरह-झर नेह-लता कुम्हिलाति ।
 नित नित होति हरी हरी, खरी झालरनि जाति । १८८

खरी झालरनि जाति मनोरथ करि उमगाई ।
 सींचि सींचि असुवानि अविधि-तरु लाइ चढ़ाई
 बनमाली 'हरिचंद' चलाहु लावहु लौ उर सी ।
 लखहु आपनी नेह-लता बलि नेकु न झुरसी । १८३

कर उठाइ धूँधट करत उसरत पट-गुहरीट ।
 सुख-मोटे लूटीं ललन लखि ललना की लौट । १४२४

लखि ललना की लौट ललन-दृग दरत न टारे ।
 लोट-पोट हचै रहे छके सुधि सकल विसारे ।
 दूरि दूरि साम्हे होत रासक 'हरिचंद' चतुर तर ।
 अरुखे बारहि बार लखत विवली-मुख-दृग-कर । १८४

नभ लाली आली भई चटकाली धुनि कीन ।
 रतिपाली, आली, अनत, आए बनमाली न । ११४५

आए बनमाली न करी सखि बहुत कुचाली ।
 काली ब्याली रैन विरह घाली जिय माली ।
 वाली दीपक जोति मन्द भई प्रीति न पाली ।
 टाली हाली औध भई खाली नभ-लाली । १८५



होली

[हरि प्रकाश यंत्रालय द्वारा सन् १८७९
में मुद्रित]

समर्पण

प्यारे,

कहाँ चले ? इधर आओ, त्यौहार घर का करो । देखो, हमने होली के कुछ खेल
इन पत्रों में लिखे हैं, इनसे जी बहलाओ ।

तुम्हारा
हरिश्चंद्र

होली

दोहा

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर ।
जयति अपूरब धन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ।

भूपताल सहाना

सखी बनि ठनि तू चली आज
कितकों न जानत है मग श्याम खड़ो री ।
चंद सों बदन ढाँकि नीले पट
देखु न आगे ही खेल अड़ो री ।
वा मारग कोउ जान न पावत होरी
को खंभ सों हवै कै गड़ो री ।
'हरीचंद' वासों भली दूर ही की
बिहारी खिलारी फफंदी बड़ो री । १

बिहाग

रे निटूर मोहिं मिल जा तू काहे दुख देत ।
दीन हीन सब भाँति तिहारी क्यों सुधि काई न लेत ।
सही न जात होत व्याकुल बिसरत सब ही चेत ।
'हरीचंद' सखि सरन राखि कै भल्यो निबाह्यो हेत । २

सिंदूरा

कान्ह तुम बहुत लगावत अपुने कों होरी-खिलार ।
निकसि आव मैदान दुरत क्यों लै चौगान निवार ।
तू नंद-गैयाँ तौ हैं हमहूँ बरसाने की नार ।
अब को दाँव जो जीते तोपै 'हरीचंद' बलिहार । ३
एरी या ब्रज में बसिकै तरह दिये ही बनै काज ।
वह तो निलाज बिचार करत नहिं तू कत खोवत लाज ।
तू कुलबधू सुलच्छनि गोरी क्यों डरवावति गाज ।
'हरीचंद' के मुख नहिं लगनो होरी के दिन आज । ४
सखी री कासों ठानत सरबर तू बे-काम ।
वह तो धूत फफंदी ब्रज को तू है कुल की बाम ।
कौन जीतिहै छीठ निलाज सों तू कित नाहक करत कलाम ।
'हरीचंद' निज बाट चली चल याकों उपाधी नाम । ५

धनाश्री

मनमोहन चतुर सुजान, छबीले हो प्यारे ।
तुम बिनु अति व्याकुल रहैं सब ब्रज के जीवन प्रान ।
तुमरे हित नंद-लाडिले हो छोड़ि सकल धन-धाम ।

बन बन में व्याकुल फिरें हो सुंदर ब्रज की बाम ।
तनक बाँस की बाँसुरी हो लेत जबै तुम हाथ ।
व्याकुल धावैं देव-बधू ताँत्र अपने पति को साथ ।
सुर-नर-मृनि-मन-मोहिनी हो मोहन तुमरी तान ।
जमुना ब्रू बहवो तजै थाक दरत न देव-विमान ।
जड़ चैतन होइ जात हैं चैतन जड़ होइ जात ।
जो इन सब की यह दसा नौ अवलन की का बात ।
उठि धावैं ब्रज-नागरी हो सुनि मुरली ढेर ।
लाज संक मानै नहीं हो रहत श्याम कों घेर ।
मगन भई सब रूप में हो गोकुल गाँव बिसारि ।
'हरीचंद' जन बारने हो धन धन्य ब्रज-नारि ॥८॥

इकताला

भूलत पिय नंदलाल भूलवत सब ब्रज की बाल
बृंदावन नवल कुंज लोल दोलिका ।
संग राधिका सुजान गावत सारंग तान
बजत बाँसुरी मृदंग बोन दोलिका ।
ऊधम अति होत जात घूँघट में नहि लखात
छूटत बहुरंग उड़त अंबर भोलिका ।
'हरीचंद' दै असीम कहत त्रियौ लख बरीस
दिन दिन यह आवै तेहवार होलिका ॥९॥

काफी

अरे जोगिया हो कौन देस तें आयो ।
हाँ हाँ रे जोगी मोठे तेरे बोल । टेक ।
आँखें लाल बनीं मद-माती कुसुम फूल के रंग ।
मानो शिव बरसाने आयो चेला न कोऊ संग ॥
हाँ हाँ रे जोगी पहिरे बंधवर चोल ॥
हाँ हाँ रे जोगी तू तो चेला काम को भूठो साध्यौ ध्यान ।
जैसे बकुला गंगा-जल में बैठत आइ सुजान ।
हाँ हाँ रे जोगी खोलि आपुने नैन ।
हाँ हाँ रे जोगी अबलन कों ऐसे देखै जैसे ब्रज को
रसिया कोय ।
जोग लियो कैसे रे जोगी यह तो जोग न होय ॥
हाँ हाँ रे जोगी नारी बिन कैसे चैन ॥
हाँ हाँ रे जोगी कुंज कुटी एकांत थली में
जो नू निकसे आय ।
तो इक मोहन मंत्र कों हम देहैं तोहि सिखाय ॥
हाँ हाँ रे जोगी होयगो परम अनंद ॥
हाँ हाँ रे जोगी तोसों मंतर लेहिगीं हो भेंट धरै धन-धाम ।
जोगी तेरे कारने सब जोगिन ब्रज की बाम ॥
हाँ हाँ रे जोगी चेला तेरो 'हरीचंद' ॥

हो कौन देस तें आयो रे जोगिया ॥८॥

होरी काफी

तूही कहा ब्रज में अनोखी भई ।
कान नाहं काहू की करन दई ।
जानत नाहं कछु चाल यहाँ की आई अवाहं नई ।
मोहन मिलनहि जानि परंगी भूलैगी सबई ।
छेल छिलार रासक होरी को जीने सखा कई ।
गाय कवीर अवीर उड़ावत आवत हवै है सई ।
देखत ही तोहिं दीर परंगी जानि नवेली नई ।
हार नारि रंग डारि चूमि मुख चूरी करि दै रई ।
तब नासों कछु बानि नाहं ऐहै जब तेरी लाज गई ।
'हरीचंद' सों को ऐसी जो नै कै नाहिं गई ॥९॥

होरी

जो मैं डरपत ही सो भई ।
छेल छबीले खिलारन लीने छट्टे दई ।
फेंट गुलाल धरे डफ कर लै गावत तान नई ।
बाकी तान सुनत सो को नाहिं जाकी लाज गई ।
एक प्रीत, मेरी बासों पुनि इजे होरी छई ।
'हरीचंद' छिपिहैं नाहीं अब जानेंगे लो कई ॥१०॥

डफ की

हम चाकर राधा रानी के ।
ठाकुर श्री नंदनंदन के वृषभानु लली ठकुरानी के ।
निरभय रहत बदत नहिं काहू डर नाहं डरत भवानी के ।
'हरीचंद' नित रह दिवाने सूरत अबज निवानी के ॥११॥
अब तेरे भए पिया बदि कै ।
दगे नाम सों यार तिहारे छाप तेरी सिर ऊपर लै ।
कहाँ जाहिं अब छोड़ि पियारे रहें तोहि निज सरबस दै ।
'हरीचंद' ब्रज की कुंजन में डोलेंगे कहि राधे जै ॥१२॥
चिर जीओ फागुन कौ रसिया ।
जब लौं सूरज चंद उँजरी तब लौं ब्रज में फिर बसिया ।
नित नित आओ होरी खेलन नित गारी नित ही हँसिया ।
'हरीचंद' इन नैन सदा रही
पीत पिछौरी कटि कसिया ॥१३॥
कोऊ नाहिने जो बरजै निडर छेल ।
अररानो ही परत डरत नहिं
रोकि रहत मग बनि अरैल ।
वाके डर सों कोऊ कुल की नारि
निकसत नहिं जमुना की गैल ।
'हरीचंद' जैसे निबहैगी
फागुन के वाके फंद फैल ॥१४॥

धमार धनाश्री

मन-मोहन की लगावारि गोरी गूजरी ।

मगन भई हरि-रूप मैं सब कुल की लाज बिसारी ।
नंद-सुवन को नाम हो कोऊ वाके आगे लेइ ।
सुनतहि तन थरथर कैंपे मुख उतर कछु न देई ।
श्याम सुंदर को चित्र हो वाहि जो कोऊ दंत देखाई ।
नैनन सों अर्सुवा वहै मुख बचन कह्यौ नहिं जाइ ।
जो कोऊ वासों पृछई मुख बोलत आन की आन ।
जिय को भेद न खोलै वह नागरि चतुर सुजान ।
दूग को जल सुखै नहीं हो मनु जमुना वहि जाइ ।
गोरो मुख पीरो परयो मनु दिन मैं चंद लखाइ ।
नित गुरुजन खीजत रहैं हो लरत ससुर अरु सास ।
लिनकी सब बातें सहै नहिं छोड़ैं प्रेम की फाँस ।
तन अति ही दुबरो भयो मनु फूल-छरी की चाल ।
भयो मुख नित नित घटै अरु सुखे अधर रसाल ।
जो कोऊ कहि देइ हो मन-मोहन निकसे आइ ।
सुनतहि उठि धावै श्री गृह-काज मबै बिसराइ ।
मग मैं जो मोहन मिलैं हो नहिं देखत भरि नैन ।
घूंघट पट की ओट मैं हो करत कछु इक सैन ।
जहैं मन-मोहन पग धरै तहैं की रज सीस चढ़ाइ ।
सखियन कों सँग छोड़िके वह पीछे लागी जाइ ।
या बृज की सब ग्वालिनी हो ज्यों ज्यों करत चवाव ।
त्यों त्यों वाके चित में हों बढ़त चौगुनो चाव ।
जो बैठे एकांत में हो जपत उनहिं को नाम ।
ध्यान करै नंदलाल को नहिं भावै कछु धन-धाम ।
खान-पान सब छोड़िके हो पति को सुख बिसराइ ।
कोउ मिस सों ब्रजराज के वह घर के मारग जाइ ।
बातन मैं बहराइकै हो पूछत उनकी बात ।
जो हमहूँ कछु पूछहीं तो बातन मैं फिरि जात ।
नैन नींद आवै नहीं वाके लगे स्याम सों नैन ।
भावै नहिं कोउ भोग हो वाने त्याग्यो सब सुख चैन ।
जो कोऊ समुभावही तो औरहु ब्याकुल होइ ।
'हरीचंद' हरि मैं मिलिहो हो जल पय सम सब खोइ । १५

राग देश

सखी हमरे पिया परदेश होरी मैं कासों खेलौं ।
जिनके पीतम घर हैं सजनी तिनहिं की है होरी ।
हम अपने मोहन सों बिछुरीं बिरह सिंधु में बोरी ।
चोआ चंदन अंबर अरगजा औरहु सुख के साज ।
'हरीचंद' पिय बिनु सब हमको बिख से लागत आज । १६

सिंदूर

आज काहि कौन रुठायो मेरो मोहन यार ।

बिनु बोले वह चलो गयो क्यों बिना किये कछु प्यार ।
कहा करौं कछु न बनत है कर मीड़त सों वार ।
'हरीचंद' पछितान रहि गई खोइ गले को हार । १७

असावरी

तुम मम प्रानन तें प्यारें हो, तुम मेरे आँखन के तारें हो ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो आयो फागुन मास ।
अब तुम बिनु कैसे रहौगी नासों जीय उदास ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो यह होरी त्यौहार ।
हिंलि मिलि भुरमुट खोलिये हो यह विननी सौ वार ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो अब तो छोड़ै लाज ।
निधरक बिहरी मो सँग प्यारें अब याको कहा काज ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो जो रहिहो सकुचाय ।
तौ कैसे कै जीवन बाँच है यह मोहिं देहु बताय ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो जग मैं जीवन धोर ।
तो क्यों भुज भारिकै नहिं बिहरी प्यारें नंदकिशोर ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो तुम बिनु जिय अकुलाय ।
ता पै सिर पै फागुन आयो अब तो रह्यौ न जाय ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो तुम बिनु तलफैं प्रान ।
मिलि जैये हौं कहत पुकारे एहो मीत सुजान ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो यह अति सीतल छाँह ।
जमुना-कुल कदंब तरें किन बिहरी दै गलबाँह ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो मन कछु हवै गयो और ।
देखि देखि या मधु रितु मैं इन फूलन को बे-तोर ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो लेहु अरज यह मान ।
छोड़हु मोहिं न इकली प्यारें मति तरसाओ प्रान ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो देखि अकेली सेज ।
मुरछि मुरछि परिहौं पाटी पै कर सों पकरि करेज ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो नींद न ऐहै रैन ।
अति ब्याकुल करवट बदलौगी हवैहै जिय बेचैन ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो करि करि तुम्हरी याद ।
चौकि चौकि चहुँ दिसि चित ओंगी सुनै कोउ फरियाद ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो दुख सुनिहै नहिं कोय ।
जग अपने स्वारथ को लोभी बादन मरिहौं रोय ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो सुनतहि आरत बैन ।
उठि धाओ मति बिलाम लगाओ सुनो हो कमल-दल नैन ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो सब छोड़्यौ जा काज ।
सोऊ छोड़ि जाइ तौ कैसे जीवै फिर ब्रजराज ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो मति कहूँ अनतै जाह ।
मिलि कै जिय भार लेन देहु मोहिं अपना जीवन-लाह ।
प्राननाथ हो प्यारें लाल हो इनको कौन प्रमान ।

ये तो तुम विनु गौन करन कों रहत तयारहि प्रान ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो जिय में नहिं रहि जाय ।
 तासों भुज भरि मिलि कै भेटहु सुंदर बदन दिखाय ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो पल की ओट न जाय ।
 बिना तुम्हारे काहि देखिहैं अँखियाँ हमैं बताव ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो साथिन लेहु बुलाय ।
 गाओ मेरो नामहि लै लै डफ अरु बेनु बजाय ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो आइ भरो मोहिं अंक ।
 यह तो मास अहै फागुन को या मैं काकी संक ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो देहु अघर-रस-दान ।
 मुख चूमहु किन बार बार दै अपने मुख को प्रान ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो कब कब होरी होय ।
 तासों संक छोड़ि कै बिहरो दै गल में भुज दोय ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो रहौ सदा रस एक ।
 दर करौ या फागुन मैं सब कुल अरु बेद-विवेक ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो थिर करि थापी प्रेम ।
 दर करौ जग के सबै यह ज्ञान-करम-कुल-नेम ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो सदा बसौ ब्रज देश ।
 जमुना निरमल जल बहौ अरु दुख को होउ न लेस ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो फलनि फलो गिरिराज ।
 लहौ अखंड सोहाग सबै ब्रज-बधू पिया के काज ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो जाइ पछारौ कंस ।
 फेरो सब थल अपनि दुहाई करि दुष्टन को धंस ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो दिन दिन रहो बसंत ।
 यही खेल ब्रज मैं रहौ हो सब बिधि अति सुखद समंत ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो बाढ़ौ अविचल प्रीति ।
 नेह निसान सदा बजै जग चलौ प्रेम की नीति ।
 प्राननाथ हो प्यारे लाल हो यह विनती सुनि लेहु ।
 'हरीचंद' की बाँह पकरि डूढ़ पाछे छोड़ न देहु । १८

देश

रंग मति डारो मोपे सुनो मोरी बात ।
 बड़ी जुगति हौं तोहिं बताऊँ क्यौं इतने अकुलात ।
 श्री वृषभानु-नंदिनी ललिता दोऊ वा मग जात ।
 तुमहुं जाइ-साधुरी कुंज में पहिले हि क्यौं न दुरात ।
 वे उत औचक आइ परे तब कीजौ अपनी घात ।
 'हरीचंद' क्यौं इतहि खरे तुम बिना बात इठलात । १९

पूरबी

तुमहिं अनोखे बिदेस चले पिय आयो फागुन मास रे ।
 फूले फूल फिरे सब पंथी बहि रही बिपत बतास रे ।
 या रितु मैं कोउ जात न बाहर भयो काम परकास रे ।

'हरीचंद' तुम विनु कैसे बचिहै

विरहिन विकल उदास रे । २०

काफी

लाल फिर होरी खेलन आओ ।

फेर वही लीला को अनुभव हमको प्रगट दिखाओ ।
 फेर संग लै सखा अनेकन राग धमारहि गाओ ।
 फेर वही बंसी धुनि उचरौ फिर वा डफहि बजाओ ।
 फेर वही कुंज वही बन बेली फिर ब्रज-वास बसाओ ।
 'हरीचंद' अब सही जात नहिं खबर पाइ उठि धाओ । २१

सिंदूर

एरी कैसी मीर है होरी के दिन भारी ।

जाइ मनाइ कोउ लै आओ प्रानपिया गिरधारी ।
 खेलनवारे बहुत मिलेगे राग रंग पिचकारी ।
 'हरीचंद' इक सो न मिलेगौ जो कहिहै मोहिं प्यारी । २२

बिहाग

विनु पिय आजु अकेली सजनी होरी खेलौं ।
 विरह-उसास उड़ाइ गुलालहि दूग-पिचकारी मेलौं ।
 गाओ विरह-धमार लाल तजि हो हो बोलि नवेली ।
 'हरीचंद' चित माहिं गलाऊँ होरी सुनो हो सहेली । २३

गौरी

एरी विरह बढ़ावन आयो फागुन मास री ।
 हौं कैसी अब करूँ कठिन परी गाँस री ।
 औरै रितु हवै गयी बजारहु और री ।
 औरै फूले फूल और बन ठौर री ।
 और मन हवै गयो और तन पीय को ।
 और चटपटी लगी काम की जीय को ।
 बन के फूल देखि होत जिय सूल री ।
 विनु पिय मेटे कौन विरह की हूल री ।
 विसर्यो भोजन पान-खान सुख-चैन री ।
 वही खुमारी चढ़ी रहत दिन-रैन री ।
 रजनी नींद न आवै जिय अकुलाय री ।
 चौकि चौकि हौं परी चित धबराय री ।
 अटा अटा चढ़ि डोलों पिय के हेत री ।
 कहैं नहीं मेरे लाल दिखाई देत री ।
 सपने में जो कहूँ पिय-रूप दिखात री ।
 तो यह बैरिन नींद चौकि तजि जात री ।
 जो कहूँ बाजन बाजे गोकुल-गैल री ।
 तो उठि धाऊँ आवत जानूँ छैल री ।
 या घर मैं सखि क्यौं नहिं लागत आग री ।
 जाके डर हौं खेलन जात न फाग री ।

बैरिन मेरी सास जिठानी हैं सबै ।
 देखन देत न मोहन को मुख री अबै ।
 जरी लाज यह ऐहै कीने काम री ।
 जो नहिं देखन देत पिया घनश्याम री ।
 मोहिं अकेली निरबल अबला जान री ।
 तानि कानि लौं स्त्रीच्यौ मदन कमान री ।
 कहा करौं कहैं जाऊँ बताओ मोहिं री ।
 कहै किन और उपात सपथ है तोहिं री ।
 जड़पि कलकनि कहत सबै ब्रज-लोग री ।
 तऊ मिटत नहिं मुख लखिबे को सोग री ।
 रोअनहैं नहिं देत प्रगट मोहिं हाय री ।
 क्यों ऐसो दुख मिटे बताव उपाय री ।
 फिरि डफ बाजत सुनि सखि आए श्याम री ।
 होरी खेलत प्राननाथ सुखधाम री ।
 अब कैसे रहि जाय मिलौगी धाइ कै ।
 लाज छाड़ि जग नेह-निसान बजाइ कै ।
 'हरीचंद' उठि तौरी भातिनि प्रीति सों ।
 बरजैह नहिं रही मिली मन-मीत सों । १२४

ईमन कल्याण

तैडा होरी खेल मैडे जीउ नूँ भाँवदा ।
 तू वारी कोई दी सरमन करदा बुरी बे गालियाँ गाँवदा ।
 पाय अवीर नैण बिच साडे बंसी निलज बजाँवदा ।
 'हरीचंद' मैनुँ लगी लड़ तैडी तूँ नहिं आस पुराँवदा । १२५

अहीरी

वह नटवर घन साँवरो मेरो मन ले गयो री ।
 जब सों देखि लियो है वाको, तब सों भोजन-पान न भावै ।
 बैरिन लाज ह्वै गई मेरी बिरह दै गयो री ।
 घर अँगना मोहिं नाँह सुहावें, बैठत ही घुमरी सी आवै ।
 लोग कहैं मोहिं देखि-देखि याको कहा ह्वै गयो री ।
 'हरीचंद' ग्वालिन रसमाली, सास ननद की डर न डेराती, लोकलाज तजि सँग मैं डोलै, कहा जानै का नंदलाल टोना सो के गयो री ।।
 वह नटवर घर साँवरो मेरो मन ले गयो री । १२६

गौरी

मैं अरी कहा करौं कित जाऊँ,
 सखी री मन ले गयो वह खेल ।
 मेरी गलियन आइके बंसी मधुर बजाय ।
 जाइ सो कछु करि गयो वह मेरो नाम सुनाय । अरी मैं ।
 तब सों कछु भावैं नहीं हों बन-बन फिरुँ उदास ।
 कहूँ मोहिं कल आवैं नहीं हों ब्याकुल लेहुँ उदास । अरी ।
 तरु तरु खग मृगन सों हों पूछत डोलौं धाय ।

मेरो प्यारे लाल को हो देत न कोउ बताय । अरी मैं ।
 सखी संग आवै नहीं जानि कलकनि मोहिं ।
 सोई हम दूजी भई हों कहा कहौं री तोहिं । अरी मैं ।
 और कछु भावै नहीं बिसर्यौ भोजन-पान ।
 रुचि औरै कछु ह्वैगई मेरी कहँलौं करौं बखान । अरी ।
 सोई बन घरई सोई हो सोई सबै समाज ।
 ब्रिप सों मोहिं लागै अरी सब मिले बिना ब्रजराज । अरी ।
 कोऊ नाहिं सुनावई हो खबर लाल की आय ।
 तन मन वापै वारिये हो भेद जो देहि बताय । अरी मैं ।
 प्रेम प्रगट जग मैं भयो हो बाज्यौ नेह-निसान ।
 तऊ आस पूरई नहीं हो कैसे चतुर सुजान । अरी मैं ।
 तोरि सिंखला गेह की हो लोक-लाज-भय खाय ।
 'हरीचंद' हरि सों मिलौं होनी होय सो होय । अरी । १२७

पूरबी

एक बेर भरि नैन लखन दै फिर पिया जैयो बिदेसवा रे ।
 तुम बिन प्रान रहे वा नाहीं यह जिय मोहिं अदेसवा रे ।
 हरीचंद फिर कठिन परैगी कहिहै कोउ न सँदेसवा रे । १२८

कहाँ बिलमे कौन देसवा में छाये
 मोरे अबहुँ न आये पियवा रे ।
 राह देखत मोरि अँखिया थकि गई
 निसि बीति भयो भोरवा रे ।
 पाटी कर पटकत भई ब्याकुल
 लागत हार पहरवा रे ।
 'हरीचंद' पिय विनु कैसी परिहै
 कौन लागे मोरे गरवा रे । १२९

ईमन कल्याण

सुनौ चित्त दै सब सखियाँ बरनि
 सुनाऊँ श्याम सुंदर के खेल ।
 कल हों निकसी मारग याही रोगी गेल ।
 अबिर उड़ाइ गाइ गारी बहु
 (डफ बजाइ कै) करी संग की रेल ।
 'हरीचंद' तबतें नहिं भूलत नैनन तें वह केलि । १३०

डफ की

ऐसो उधम न करि अबै कंस जियै ।
 यह ऊधम तेरो सुन पावै जो तो
 पकर मँगावै तोहिं लिये दियै ।
 नै के चलि अठलानि बुरी है सदा रहत अभिमान किये ।
 'हरीचंद' या फागुन मैं क्यों निवहँगी हम लाज लिये । १३१

राग होरी बिभास

आये कहाँ सों आज प्रात रस-भोने हो ।

अति जैमात अलसात लाल रस-भीने हो ।
 कित खेले तुम रैन फाग रस-भीने हो ।
 कौन को दियो सांहाग लाल रस-भीने हो ।
 आज अहो बिनही गुलाल रस-भीने हो ।
 नैन दोउ लाल लाल रस-भीने हो ।
 गाँव न मिली गुलाल प्यार रस-भीने हो ।
 जावक लगयो लिलार लाल रस-भीने हो ।
 मिलत न चोआ वाके देस रस-भीने हो ।
 अंजन अघर सुबेस लाल रस-भीने हो ।
 कुमकुमा मोर दै चलाय रस-भीने हो ।
 ताको चिन्ह दिखाय लाल रस-भीने हो ।
 बाँध्यो अँग-अँग भुज मृनाल रस-भीने हो ।
 दइ उर बिनु गुन माल लाल रस-भीने हो ।
 रँग के बदले पीक लाय रस-भीने हो ।
 नीलो बसन उढाय लाल रस-भीने हो ।
 को ऐसी माती खेलार रस-भीने हो ।
 जिन रिक्तयो रिक्तवार लाल रस-भीने हो ।
 नैन मिलाओ करी बात रस-भीने हो ।
 काहे को सकृचात लाल रस-भीने हो ।
 कौन सो आसव कियो पान रस-भीने हो ।
 मत भये हो सुजान लाल रस-भीने हो ।
 'हरीचंद' इमि कहत बाल रस-भीने हो ।
 भुज भरि लई गोपाल लाल रस-भीने हो । ३२

राग पीलू

रिक्तैया मन को कर जोरे ठाढ़े द्वार ।
 तू तो मानिनि बात न मानै करत न कछु बिचार ।
 वह तो रसिया या दरसन को मानहि को रिक्तावर ।
 वाके नैनन आछे लागैं बिधुरे सुधरे बार ।
 बिन भूषन तन कछुक बसन बिन बिन चोली बिन हार ।
 मोहि कहत दबि निरखि लैन दै तू मति करि मनुहार ।
 ठाढ़े इक टक मुख निरखत हैं मनवत नाहि बिचार ।
 'हरीचंद' तू धन्य मानिनी धनि या छवि को प्यार । ३३

सोरठ

दिन दिन होरी बूज में आओ ।
 चिरजोओ जुग-जुग यह जोरी नित कर जोरि मनाओ ।
 नित बरसों रँग नितहि कुतुहल नित-नित खेल मचाओ ।
 'हरीचंद' यह केलि-बधाई नित आनंद सो गाओ । ३४

धमार सिंदूर

एक डफ धुंकार सुनि गन न रहोंगी
 मिलोंगी भीत को धाय । ध्रु
 प्रागुन लहि उमग्यो जो मदन जिय सो अब रोकि न जाय ।

प्राणनाथ आवन सुनि फिर पग घर में क्यों ठहराय ।
 'हरीचंद' गर लगोंगी पिया के जाने-जगत बलाय । ३५
 ठेका या ब्रज को तेरे माये कौन दयो ।
 जो तू लंगर दीठि उपाधी ऊधम रूप भयो ।
 काहु न डरत करत मन की नित ठानत रंग नयो ।
 'हरीचंद' ब्रज डगर-डगर बदनामी बीज बयो । ३६

होली काफ़ी

पिय मनमोहन के संग राधा खेलत फाग । ध्रु
 दोउ दिसि उड़त गुलाल अरगजा दोउन उर अनुराग ।
 रँग-रैलनि भोरी भेलनि में होत दृगन की लाग ।
 'हरीचंद' लखि सों मुख शोभा-अयन सराहत भाग । ३७

धमार देश

साइला म्हार मीजे न डारो रंग । ध्रु
 मति नाखो गुलाल आँखिन में सीखा छौ कनि रोड़ ।
 ना लेइ म्हारो मति गावो गारी संग बजाइ कै चंग ।
 'हरीचंद' मद-मात्यो मोहन मति लागो म्हारो संग । ३८

धमार काफ़ी

सुंदर श्याम शिरोमणि प्यारो खेलत रस-भरि होरी जू ।
 इत सब सखा लसत रँग-भीने उत वृषभानु किशोरी जू ।
 नाचत गावत रँग बढ़ावत करन बजावत तारी जू ।
 हँसत हँसावत रँग बढ़ावत गावत मोठी गारी जू ।
 श्री राधा हँसि मोहन पकरे अपने वश करि लीन्हें जू ।
 रँग मचाइ नचाइ गवायो मन भाए सुख कीन्हें जू ।
 कहत लाल छटन नहिं पैहो बिनु फगुआ बहु दीन्हें जू ।
 मों वश परे भागि कित जैहो बादि चतुरई कीन्हें जू ।
 राधा जू के पायें पलोटी अरज करो कर जोरी जू ।
 तब चाहौ छोरयो तो छोरें नृप वृषभान-किशोरी जू ।
 हा हा खात लाल कर जोरे करत बहुत अनुहारी जू ।
 यह गति लखत देवगन व्याकुल ग्याल हँसत दै तारी जू ।
 तीन लोक जाकी चरन छाँह बल जियत बसत सुख पाई जू ।
 ताकी गोपीजन के आगे चलत न कछु ठकुराई जू ।
 शिव-ब्रह्मा इंद्रादिक जाको परसत चरन डराहीं जू ।
 ताको मुकुट उतारत गोपी तनिक शंक जिय नाहीं जू ।
 जा दासी माया इक फेरे जग पर-बस हवै नाचै जू ।
 ताहि नचावत पकरि गोपिका लखि जिय अचरज रावै जू ।
 अस्तुति करत अघर सुखत है नेति कहत तउ वेदा जू ।
 गारी ताहि निसंक देत गोपी जन करत न खेदा जू ।
 ध्यान धरत पूजत बहु भाँतिन तदपि ध्यान नहिं आवै जू ।
 ताहि गुलाल लगाइ हँसत सब करत जोई मन भावै जू ।
 शिव समाधि-श्रम साधि करत नित तउ भलक नहिं देखै जू ।
 फेँट पकरि तेहि जान देत नहिं ब्रज-जुवती सुख लेखै जू ।

शको रुख चाहत त्रिभुवन में सुर भुनि नर-भय पागे जू ।
 हाथ जोरि सो अरज करत हैं राधाजू के आगे जू ।
 वेद-मंत्र पढ़ि साधि करम-बिधि यज्ञ करत जेहि लागी जू ।
 ताको मुख माँडत केशरि सौं ब्रज-युवती रस-पागी जू ।
 यह अवगति गति लखि न परत कछु देव विमानन भूले जू ।
 मोहे फिरत सार नहिं जानत तऊ केलि-सुख फूले जू ।
 रमा पलोडत चरन सरस्वति गुन-गन गाइ सुनावै जू ।
 ताके पद नूपुर दै गोपी निज सुख नाच नचावै जू ।
 बरनौ कहा बरनि नहिं आवै का समुझै जो गावै जू ।
 वल्लभ-बल 'हरिचंद' कछु क सो

वल्लभि-जन-उर आवै जू ॥३९॥

सिंधुर धमार

हमें लाख आवत क्यों कतराये ।

साफ कहत किन जिय की चलत जो

छाँह सों छाँह मिलाये ।

होरी में का बरजोरी करोगे क्यों इतने इतराये ।

रूप गरब फागुन मदमाते ताह पै आँत रसिकाये ।

जो नृग चाहत सो न इतै कछु चलो रहौ न लगाये ।

'हरिचंद' तुम्हरे व्यवहारन द्रविह से फल पाये ॥४०॥

होरी के पूजन को पद

आजु हरि खेलत रस-भरि सँग वृषभान-किसोरी ।

पूनी निरस डहडह उँजयारी बाँह बाँह में जोरी ।

चाँदनि में गुलाल की चमकनि अरु बुक्का की भोरी ।

जमुना तीर श्वेत बारू मधि अत शोभित भई होरी ।

इत सब सखा खेल बौराने उत मदमाती गोरी ।

अद्भुत छाँव 'हरिचंद' देखि कै रह्यो हरष तून तोरी ॥४१॥

रेखला

बचे रहो जरा यह बदनाम फाग है ।

आँखों की भी हमसे तुमसे लाग है ।

इस ब्रज का ता अभी चवाई लोग है ।

आँख लगाना यहाँ बड़ा एक भोग है ।

मेरी तुमरी प्रीति बहुत मशहर है ।

तिसमें भी होरी रँग चकनाचूर है ।

लगी आँख भी छुटी आज तक है कभी ।

करो लाख तदबीर यहाँ क्यों नहिं समी ।

उतरे जी के साथ यह आजब खुमार है ।

'हरिचंद' बचना इससे दुश्वार है ॥४२॥

समधिनि मधुमास

होरी में समधिनि आई ।

अहो फागुन त्योहार मनाई ।

यथाशक्ति कीन्हो सबही ने समधिनि को उपचार ।
 समधिनि जू ने बहुत करायो आदर शिष्टाचार ।
 समधिनि की तो चुपरी चपरी चोटी सोंधो लाय ।
 समधिनि को लाखि रपट परत है समधी को मन धाय ।
 समधिनि की तो आतिह चिकनी

फिरासल फिरासल सब जात ।

देहरिया रँग भीनि रही जहाँ प्रावसत सबै बरात ।

सबै जुड़ावत समधिनि को लाखि बुक्का रँग मुख मीज ।

तब समधिनि की चुवन लगत है सारी रँग मुख भीज ।

छाती मीड़त सब समधिनि कर रूप-छटा सब देखि ।

डारत अतर लगाइ अरगजा रँगिली समधिनि तेखि ।

समधिनि जू लगवावत डोलत सब सों चोवा रँग ।

फटी दरार परी समधिनि की चोली उमिर उमंग ।

समधिनि जू विपरीत करत तुम इतौ नवन नहिं योग ।

मानत तुम्हरी नृपहू सों बड़ि थाप सबै ब्रज लोग ।

फैलि रही चहुँ दिशि समधिनि की कीर्ति की नव बेलि ।

तुमहि देखि सब करत रँग सों होरी रसिक सिरौलि ।

छाँहो होत तुमहि देखत ही आदर हित दरबार ।

गाँव भरे की नारि तुमहिं इक आदर देत अपार ।

याहि बिधि समधिनि रँग बढ़त ब्रज कौन सकै सो गाय ।

नित दूलाह नित दूलाहन पै जन 'हरिचंद' बालि जाय ॥४३॥

जोबन कैसे छिपाऊँ री रसिया परो पाछे ।

भलकत तन धुति सारी सों काँड़ लगत तमासो गाऊँ री ।

मुखसिस चमक नील घूँघट में ज्यों त्यौं सकृंच चुराऊँ री ।

ये उकसौहैं अंचल बाहर इन कहैं कहाँ दुराऊँ री ।

बजमारे बिधि क्यों सिरजे ये कहा कहैं कित जाऊँ री ।

'हरिचंद' गोकुल में बसिके पतिव्रत कैसे निभाऊँ री ॥४४॥

याहि बिधि सिरजे नाहिं री तेरे जोबन डोरु ।

रहे दुँ कित ये सिसुता में जो अब प्रगट दिखाहिं री ।

उमगे परत हरत मन हरि को कंचुकि में न समाहिं री ।

'हरिचंद' निधि मदन धरी निज

इनाहँ संपुर्तनि माहिं री ॥४५॥

राग काफी

गिरिधर लाल रँगिले के सँग आजु फाग हौं खेलौंगी ।

सास ननद अरु गुरुजन की भय लाजहिं पाँयन ठेलौंगी ।

चोवा चंदन अरि अरगजा पिचकारि रँग भेलौंगी ।

'हरिचंद' वृज-चंद पिया के कंठ भुजा गहि मेलौंगी ॥४६॥

रामकली ठेका धमार

कहत हौं बार करोरन होहु चिरंजी नित

नित प्यारे देखि सिरावै हियो ।

एक एक आसिख सों मेरे अरब खरब जुग जियो ।

अब लौं रवि ससि भूमि समुद्र ध्रुव तारागन थिर कियो ।
'हरीचंद' तब लौं तुम पीतम अमृत पान नित पियो । १४७

होली डफ की

मैं तो रँगोगी अबीरी रे पिया की पगिया ।
केसर सों सब बागो रँगहों ले जैहों बाबा की बगिया ।
रंग उड़ाइ के गारी गैहों भाँग कहाँ जैहें ठगिया ।
'हरीचंद' मनमानी करिहों प्रान पिया के गर लगिया । १४८
कैसे आऊँ मेरी पायल भुनक बजै कैसे आऊँ रे ।
जगत है सब सास ननदिया

ऐसी लाज कहो कौन तजै । १४९

सोरठा

जीती सब बरसाने-वारी ।
आँख अँजड़ा पहिरि कर चूरी हारे मोहन गिरधारी ।
फगुआ दे हा हा करि छूटे अरु अनेक खाई गारी ।
'हरीचंद' कोउ विधि घर आए

तन मन धन सबस हारी । १५०

ईमन कल्याण

मोहिं मति बरजे री चतुर ननदिया होरी खेलन जाऊँ ।
फिर ये दिन सपने से ह्वैहैं पाऊँ के ना पाऊँ ।
ऐसो सगुन बताउ जो पिय को द्वारहि पै गर लाऊँ ।
'हरीचंद' जनमन की प्यासी कछु तो प्यास बुझाऊँ । १५१
होरी खेलन दे मोहिं पिय सों ननदिया नाहक रोकेरी ;
सब जग तो बरजहि तुह क्योँ बरवस लोके री ।
एक नारि हजे मरमिन ह्वै कि दुख मैं भोँके री ।
'हरीचंद' कहवाइ सुघर क्योँ बढवति सोके री । १५२

सिंदूर

अब मैं घर न रहूँगी काह के रोके,
मोहिं मति बरजौ कोय ।
ऐसो पिय लहि या फागुन को मरे अभगिन रोय ।
जाऊँगी जहँ पिय होरी खेलत मिलूँगी जगत-भय खोय ।
निधरक पिय के अधर पिऊँगी भेटूँगी भरि भुज होय ।
मेंटूँगी सब साध उवर के लोक-लाज-भय थोय ।
'हरीचंद' पाऊँगी जनम-फल होनी होय सो होय । १५३
लाल गुलाल लाल गालन मैं अति ही मन को मोहै ।
सुंदर मुख भयो औरहु सुंदर भूल जात जिय खो है ।
सबहि भले को भलो लगत है सोहै को सब सो है ।
'हरीचंद' तजि प्यारी को मुख मलन जोग अरु को है । १५४

नाह मानूँगी काह की बात

मैं पिय सँग आजु खेलौगी फाग ।

मोहिं घर के बरजौ जिन

कोऊ परी आनि अब लाग ।

मिल्यो आइ मोहिं दौब निकालूँगी अंतर को अनुराग ।

'हरीचंद' बनमालिहि सौपूँगी निधरक जोवन-बाग । १५५

दुमरी

भूम-भूम के मोरे आए पियरवा ।
दौर-दौर लागे मोरे गरवा ।
'हरीचंद' लटकीली चाल चाल
गर डारे मोतिवन को हरवा । १५६
चूम-चूम के मुख भागै सँबलिया ।
धूम-धाम के आवै मेरी हो गलिया ।
'हरीचंद' मोहिं गरवा लगावै
मन भावै मेरे छल-बलिया । १५७

दूर दूर चला जा तू भँवरवा ।
आउ छली मत मेरे निअरवा ।
'हरीचंद' नाहक तू डारत
प्रेम-फाँस अबलन के गरवा । १५८
कूक-कूक रही कारी कोड़ाया ।
फूँक-फूँक हिय बिरह-दवारिया ।
'हरीचंद' पिय ऐसी समै मैं

दूर बसे हारि बिरह-कटारिया । १५९
भूमि-भूमि रहे राते नयनवाँ ।
आओ करो अब प्यारे सयनवाँ ।

'हरीचंद' सब रात जगे तुम
निकसत नाहँ मुख पूरे बयनवाँ । १६०

उड़ि जा पंछी खबर ला पी की ।
जाय बिदेस मिलो पीतम से
कहो विधा बिरहिन के जी की !
सोने की चोंच मढ़ाऊँ मैं पंछी

जो तुम बात करो मेरे ही की ।
'माधवी' लाओ पिय को सँदेसवा
बरनि बुझाओ बियोगिन ती की । १६१

होली

मेरे जिय की आस पुजाउ पियरवा होरी खेलन आओ !
फिर दुरलभ ह्वैहैं फागुन दिन आउ गारे लगि जाओ ।
गाइ बजाइ रिभाइ रंग करि अबिर गुलाल उड़ाओ ।
'हरीचंद' दुख भेटि काम को घर तेहवार पनाओ । १६२
होरी नाहक खेलूँ मैं वन में,

पिया बिनु होरी लगी मेरे मन मैं ।
सुनो जगत दिखात श्याम बिनु बिरह-विधा बड़ी तन मैं ।
पिया बिनु होरी लगी मेरे मन मैं ।
काम कठोर दवारि लगाई जिय दहकत छिन-छिन मैं ।

'हरीचंद' विनु बिकल बिरहिनी बिलपति बालेपन में ।
पिया विनु होरी लगी मेरे मन में । ६३

बन में आगि लगी है फूले देखु फलास ।
कैसे बचिहै बाल बियोगिन देखि बसंत-बिलास ।
चलत पौन लै फूल-बास तन होत काम परकास ।
'हरीचंद' विनु श्याम मनोहर बिरहिन लेय उसास । ६४
चहूँ दिसि धूम मची है हो हो होरी सुनाय ।
जित देखो तित एक यहै धुनि जगत गयो बीराय ।
उड़त गुलाल चलत पिचकारी बावत डफ घहराय ।
'हरीचंद' माने नर नारी गावत लाज गँवाय । ६५
मोहन मोहन मेरे लग्योई डोले छोड़ै छिनहुँ न साथ ।
घर अँगना करि डारयो मो घर सब छिन जोरें हाथ ।
भाँकत द्वार चलत पाछे लागि गावत मम गुन-गाथ ।
'हरीचंद' मैं कैसे करूँ मेरे चरन दुआवत माथ । ६६

इकताला

पिया प्यारे मैं तेरे पर बारी भई ।
सहज सलोनी सुंदर सूरत निरखत ही बलिहारी भई ।
अब ना रहौं घर लाख कहो कोऊ
सबही भाँति तुम्हारी भई ।
'हरीचंद' संग लागी डोलौं सुंदर रूप-भिखारी भई । ६७

काफी पीलू

बाती जाती बहार री पिय अबहुँ न आए ।
कैसे कै मैं दिन बितवौं आली जीवन करत उभार री ।
पिय अबहुँ न आए ।
कहा करौं कित जाओं बताओ यह समयो दिन चार री ।
आली 'माधवी पिय-विनु व्याकुल कोउ न सुनत पुकार री ।
पिय अबहुँ न आए । ६८

होली खेमटा

खेलन मैं भुकि भूलै भुलनियाँ ।
अँगिया लाल लाल रँग सारी
कारी लट लटकाए नर्गनियाँ ।
गावे हँसे बजाइ रिभावे गाल
छुआवे अपनी छिगुनियाँ ।
'हरीचंद' रँग मस्त पिया के
फिरै प्रेम-माली मतलिनियाँ । ६९

होली डफ की

पीरी पारि गई रसिया के बोलन सों ।
याद परी सब रस की बातें
बढ़ि गयो बिरह ठोलेन सों ।

चलि न सकी जाकि रही ठौरही

डोली नेक न डोलन सों ।

'हरीचंद' सुधि परी फेर पिय

प्यारे के बूँचट खेलन सों । ७०

पीरी पारि गई रसिया के बोलन सों ।

आयो जानि छैल होरी को डरी लाज के खेलन सों ।

एक प्रीति दुजे होरी सिर पर कैसे बचिहौं ठोलेन सों ।

'हरीचंद' सब कोउ जानैगे मेरी गलियन डोलन सों । ७१

डफ की

अरे गुदना रे-गोरी तेरे गोरे मुख पै बहुत खुल्यो गुदना रे ।

अरे रसिया रे-गोरी बापै धायल मायल होय रह्यो ।

अरे दुपटा रे-गोरी तापै सुरख अवीरी और फब्यो ।

अरे मोहना रे-गोरी तेरे संग फिरै घर-बार तज्यो । ७२

गोरी कौन रसिक संग रात बसी ।

भरी खुमारी नैन खुलत नहिं

सिर तें सारी जात खसी ।

बेरी सिंधिल खसित तेरे अमरन

चलत डगमगी अधिक लसी ।

'हरीचंद' पिय संग निरसि जागी

चोली ढीली भई कसी । ७३

तेरी बेसर को मोती थहरै ।

या लटकन में मेरो मन लटकै खटकै धीरज नहिं ठहरै ।

'हरीचंद' तेरी सुरुख लहरिया देखत मेरो मन लहरै । ७४

तेरे श्याम बिंदुलिया बहुत खुली ।

गोरे-गोरे मुख पर श्याम बिंदुलिया

नैनन में प्यारे की चुली ।

ताह्र पे साँवरो गुदना सोहै

भँवर रह्यो मनो कमल कली ।

'हरीचंद' पिय रीभ्यौ तेरो संग

न छाँड़ै गलिय गली । ७५

मैं तो चौक उठी डफ बाजन सों ।

सोवत रही अपने आँगन मैं जागी गारी गाजन सों ।

देख्यौ तो द्वारे मोहन ठाढ़े सजे छैल सब साजन सों ।

'हरीचंद' मेरे नाम लियो नित

गारी दई बिन लाजन सों । ७६

बस करु अब ऊधम बहुत भयो ।

भोजि गई रँग सों भेरी सारी

अवीर गुलालन बसन छयो ।

भकभोरन मैं कर मेरो मुरक्यो

कंकन बाजू टूट गयो ।

'हरीचंद' तेरे पाँव परत गारी

मति दे अपजस बहुत दयो ॥७७

आजु मैं करूँगी निबेरो जो तू

ठाढ़ो रहैगो रँग मैं ।

अवही निकासूँगी सगरी कसर जो

तू रोकत ठोकत रह्यौ नित मग मैं ।

बाँध भुजन सों निज बस करि कै

मुख चूमौगी प्रेम-उमग मैं ।

'हरीचंद' अपनो करि छाँड़िगी

मीर कहाऊँगी सगरें जग मैं ॥७८

नित नित होरी ब्रज में रही ।

बिहरत हरि-सँग ब्रज-जुवनीगन सदा अनंद लहौ ।

प्रफुलित फलित रही वृंदावन मधुप कृष्ण-गुन कहौ ।

'हरीचंद' नित सरल सुधामय प्रेम-प्रवाह बहौ ॥७९



मधु-मुकुल

मधुरिपु मधुर चरित्र मधु-पूरित मृदु मुद-रास ।

हरिजन मधुकर सुखद यह नव मधु-मुकुल-प्रकास ।

हृदय बगीचा अमृ जल बनमाली सुखवास ।

प्रेम-लता मैं यह भयौ नव मधु-मुकुल-विकास ।

[बनारस लाइट यंत्रालय में सन् १८८१ में
मुद्रित]

समर्पण

हृदयवल्लभ!

यह मधु-मुकुल तुम्हारे चरण-कमल में समर्पित है, अंगीकार करो । इसमें अनेक प्रकार की कलियाँ हैं, कोई स्फुटित कोई अस्फुटित, कोई अत्यंत सुगंधमय कोई छिपी हुई सुगंध लिए, किंतु प्रेम सुवास के अतिरिक्त और किसी गंध का लेश नहीं । तुम्हारे कोमल चरणों में ये कलियाँ कहीं गड़ न जायँ, यही संदेह है । तथापि तुम्हारे बाग के फूल तुम्हें छोड़ और कौन अंगीकार कर सकता है, इससे तुम्हीं को समर्पित है ।

पद्मगुन कृष्ण ?

सं. १९३७

तुम्हारा
हरिश्चंद्र ।

मधु-मुकुल

राग वसंत

जै वृषभानु-नर्दान राधे मोहन प्रानापयारी ।
जै श्री रासिक कुँवर नंदनंदन सुंदर गिरिवरधारी ।
जै श्री कुंज-नायिका जै जै कीरति-कुल-उँजयारी ।
जै वृंदावन-चारु-चंद्रमा कोटि मदन-मद-हारी ।
जै ब्रज-नरुन-नरुनि-चूड़ामनि सखियन मै सुकुमारी ।
जयानि गोप-कुल-सीस-मुकुट-मनि

नित्य-विहार-विहारी ।

जयति वसंत जयति वृंदावन जयति खेल सुखकारी ।
जय अद्भुत जस गावत शुक मुनि 'हरीचंद' बलिहारी । १
जुनु सिसिर सुखद अति ही सुदेस ।

सूचित वसंत भावी प्रवेस ।

मुकुलिन कचनार सुठौर ठौर ।

वन दरसाए नव बौर बौर ।

कहू कहू पिक बोले बैठि डार ।

मनु रितुपति नव चोबदार ।

चलि पवन सुखद छावि कहि न जाय ।

रहे जल लहराय अनंद बढ़ाय ।

फूली अतिसी सरसों सुहात ।

मानों मिलि मदन वसंत गात ।

गेंदा फूले सब डार डार ।

मनु पाग पहिरि ठाढ़ी कतार ।

गूँजे भँवरा सब भोर भोर ।

आवेस भयो तन मदन-जोर ।

लखि विहरन जुगल लजाय मार ।

'हरीचंद' हरषि गाई बहार । २

खेलत वसंत राधा गोपाल ।

इत ब्रज-बाला उत ग्वाल-बाल ।

गावत बहार दै विविध ताल ।

बाजत मृदंग आवज रसाल ।

तहँ उड़त विविध बुक्का गुलाल ।

गारी दै दै बहु करत छयाल ।

ब्राढ़ी सोभा अति तौन काल ।

'हरिचंद' निरखि हरषित बिसाल । ३

श्याम सरस मुख पर अति सेमित तनिक अबीर सुहाई ।

नील कंज पर अरुन किरिन की मनहुँ परी परछाँई ।

मनु अंकुल अनुराग सरस सिंगार माँफ छवि देई ।

किधौं नीलमनि मधि इक भानिक निरखत मन हरि लेई ।

चन्द-बदन में मंगल को मनु अंग निरखि मन मोहै ।

'हरीचंद' छवि बरनि सके सो ऐसो कवि जग को है । ४

यह रितु वसंत प्यारी सुजान ।

नहिं ऐसी समय में कीजे मान ।

लखि शोभा यह रितुराज की ।

सब सुंदर सुखद समाज की ।

फूले नव कुसुम अनेक भाँति ।

मनु नव-रतनन की नवल पाँति ।

हरि बैठे हैं तो बिनु उदास ।

चलि बेगहि प्यारी पिय के पास ।

चलिये बनि ठनि रितुराज जान ।

'हरिचंद' कहै सो लीजे मान । ५

प्यारी पौढ़ि रहौ अब समै नाहिं ।

सब सखियाँ अपने घरन जाहिं ।

सब दिन बीत्यो खेलत वसंत ।

अति आनंदित सब सुख समंत ।

चोवा चंदन बुक्का गुलाल ।

रौंग भीनि बसन ह्वै गयो लाल ।

भरि रही अंग-अंगनि अबीर ।

सो पौछि पहिन कै नवल चीर ।

ईमि सुनि हरि की वृत्तियाँ ललाम ।

श्रीराधा आई कुंज-धाम ।

पौढ़े दोउ सुख सों एक पास ।

तन मन वार्यो 'हरिचंद' दास । ६

बिहाग धमार

अरी वह अबहिं गयो मुख माँड़ि ।

कार बेसुध भरि रूप ठगौरी तलफत ही मोहिं छाँड़ि ।

हौं आई जल भरन अकेली नाहक जमुना-घाट ।

मारग ही में आई कढ़्यो वह साजे होरी ठाट ।

औचक पाछो सों मेरी गागरि दीनी सिर तैं ढेरि ।

नैन मूँद मेरो मीजि कपोलन कंचुकि डारी तोरि ।

गाढ़े भुज किस हिये लगायो चुंबन दै ब्रजराज ।

औरहु कछु करि गयो ढिठाई मैं रहि गई करि लाज ।

अबहीं चलयौ जात कछु मुरिके चितवत मन हरि लेत ।

सैनन हा हा खात छबीलो ऊपर गारी देत ।

कहाँ गयो री कोउ बताओ रूप चटपटी लाय ।

हौं इत रही कराहत ही सखि बेसुध करि करि हाय ।

'हरीचंद' तजि लाज काज सब नेह-निसान बजाय ।

अब नहिं रहिहौं बरजौ कोऊ मिलिहौं हरि सों धाय । ७

डफ की

मैं तो मलौंगी अबीर तेरे गालन में ।

मलि गुलाल आँखें आँजौंगी चोटी गुहौंगी बालन में ।

आज कसक सब दिन की निकसै बेदी दै तेरे भालन में ।

'हरीचंद' तोहिं पकरि नचाऊँ मोर बनूँ ब्रज-बालन मैं । ८

काफी

बुरि आप फाँके-मस्त होली होय री ।
घर में भूँजी भाँग नहीं है तौ भी न हिम्मत पस्त ।
होली होय रही ।
महँगी परी न पानी बरसा बजरी नहीं सस्त ।
घन सब गवा अकिल नहिं आई तो भी मंगल-कस्त ।
होली होय रही ।

बरबस कायर कूर आलसी अंधे पेट-परस्त ।
सुभक्त कुछ न बसंत मोहिं ये भे खराब औ खस्त । ९

आजु मोरहि मोर खरी निखरी ।
गोरी काहू गाढ़े छैल के पाले परी ।
चोली-बंद खुले केस तेरे छूटे

रैन सुरत-संग्राम लरी ।

आँख लाल अधर रंग फीको
चोटी सिथिल तेरी फूल भरी ।

'हरीचंद' सगरी निसि जागी
अंग सिथिल अलसान भरी । १०

ब्रज की होरी

अरे गोरी जेबन मद इठलाती,
चलै गज मस्त सी चाल ।
अरे गोरी गिने न काहू वो मदमाती,
फिरत उतानी बाल ॥
अरे गोरी मत इतनो गरबावै,
यह ब्रज टैढ़े गाँव ।
अरे गोरी अबहिं छैल वह आवै,
मोहन जाको है नाँव ॥
अरे गोरी गर लावै मनमानो करि,
मद तेरो देइ उतार ।
अरे गोरी 'हरिचंद' संग लीने,
लंगर छैल लगवार । ११

डफ बाजै मेरो यार निकट आयो ।
सुन री सखी मेरो नाम लेइ कै मधुरे सुर गारी गायो ।
मेरे घर के द्वार खरो हवै अबिरन सौ मारग छायो ।
'हरीचंद' अब घर न रहौगी
मिलि करिहै पिय मन-भायो । १२

सिंदूर काफी

मेरी आँखिन भरि न गुलाल लाल मुख निरखन दे ।
होरीहू मैं काहें करत यह मुख-दरसन जंजाल ।
प्रीति रीति नहिं जानत प्यारी मदमातो रस-ख्याल ।

'हरीचंद' हिय होस मिटै क्यों अब यह ऐंडी चाल । १३

सिंदूर

रे रसिया तेरे कारन ब्रज में भई बदनाम ।
ऐसी होरी कोऊ खेलत वैड़ी जैसी तू खेलत श्याम ।
करत न लाज बकत मनमानी गर लावत पर-बाम ।
'हरीचंद' कछु काम और नहिं एक एहै सब जाम । १४

भीमपलासी

फिर गाई रस की सोइ गारी ।
मदन वसीकर सिद्ध मन्त्र सी
सवन परी धुनि आजि हहा री ।
फेर ओट डफ की करि चितई
चितवनि प्रेम भरी सोइ प्यारी ।
'हरीचंद' हिय लागी चटपटी
ब्याकुल भई लाज की मारी । १५

सोरठ का मेल

ब्रज के नगर तैनै कान्हा, ऊधम मचायो रे ।
होरी के मिस कुल-नारिन को गेह छुड़ायो रे ।
करत फिरत निज मनमानी गढ़ लाज ठहायो रे ।
'हरीचंद' पिय बाट चलत हठि कंठ लगायो रे । १६
मेरे निकट तू आउ होस तेरी सबै पुजाऊँ रे ।
निज बस कै रस लै अधरन को गर लपटाऊँ रे ।
काम-उमंग निकासि भुजन किस हियो सिराऊँ रे ।
'हरीचंद' अपनो करि छाँड़ै तब घर जाऊँ रे । १७

काफी

प्यारे होरी है कै जेरी ।
जो तुम निधरक भुकेई परत हो मानत नाहिं निहारी ।
कहा कहँगी देखनवारी जो मेरी दुलरी तोरी ।
'हरीचंद' मुख चूमि भजन की बंदी कौन न होरी । १८

बिहाग या काफी

अरे कोउ लाइ मिलायो रे, प्रान-पिया मेरे साथ ।
कैसे भरो जेबन मेरो उमग्यौ मरत जिआओ रे ।
इन दुखिया आँखियन को सुन्दर रूप दिखाओ रे ।
'हरीचंद' दुख-अगिन दहकि रही धाइ बुभाओ रे । १९
श्याम विनु होरी न भावे हो ।
फाग खेल तेहवार रंग सब जियहि जरावै हो ।
को दुख मेटे करि कै दया उन्हें जाइ लै आवै हो ।
'हरीचंद' पिय लाइ इतै मोहि मरत जिआवै हो । २०

पीलू काफी

अपुने रंग रंगी आँखियन मैं

प्राण-पियारे अबीर न मेलौ ।
 देखन देहु मधुर मूरति मोहिं
 अटपट खेल पिया जिन खेलौ ।
 आओ गर लागि तपन बुझाऊँ
 काहे करत हो रँग को रेलौ ।
 'हरीचंद' गर लागि प्यारी के
 क्यों न सुरति-सुख-सिंधु सकेलौ । ११

जोगिया काफ़ी

और रंग जिन डारौ रंगी मैं तो रँग तुम्हारे ।
 कोऊ बात सों होऊँ जौ बाहर तो तुम गारी उचारौ ।
 काहे को बरबस लोग हँसावत निलज खेल निरवारौ ।
 'हरीचंद' गर लागि कै मेरे जिय की होस निकारौ । १२

काफ़ी

फेर बाही चितवन सों चितयो ।
 लगी काम-चाबुक सी हिय पर तन मन बिकल भयो ।
 भले लाज धीरज बुधि-बल सब गुरु-जन-भयहु गयो ।
 'हरीचंद' निधरक उर मैं फिर काम को राज ठयो । १३

काफ़ी

होरी है कै राम-राज रे ।
 ओ तू गिनत न कछु काहुबै
 करत आपुनेइ मन के काज रे ।
 निधरक आँग पसरत नारिन के
 गारी बकि-बकि लेत लाज रे ।
 'हरीचंद' भयो छेल अनोखो
 बरजेहुँ नहि रहत बाज रे । १४

पीलू काफ़ी

यह दिन चार बहार, री पिय सों मिलु गोरी ।
 फिर कित तू कित पिय कित फागुन
 यह जिय माँफ़ बिचार ।
 जोवन-रूप-नदी बहती यह लै किन पाँय पखार ।
 'हरीचंद' मति चूक समे तू करु सुख सौं तेहवार । १५

सिंदूरिया

ऐ री जोवन उमाग्यौ फागुन लखिकै
 कोउ बिधि रह्यौ न जात ।
 मानत अब न मनाए मेरे जिय अति ही अकुलात ।
 कहा करौ कित जाऊँ सहेली कठिन काम की घात ।
 'हरीचंद' पिय बिनु मेरी कोउ पुछत हाय न बात । १६

देस

पिया बिनु कटत न दुख की रात ।

तारे गिनत लेत करवट बहु होत न कठिन प्रभात ।
 नैनन नींद न आवत क्योंहुँ जियरा अति अकुलात ।
 'हरीचंद' पिय बिनु अति ब्याकुल
 मुरि-मुरि पछरा खात । १७

सिंदूर

भलें मिलि नाँव धरौ सबरे ब्रज के
 अब तोहिं न छाड़ूँ छेल ।
 मोहन लगी फिरौं निसु-बासर
 कुंज घाट बन गेल ।
 सुख सों लाज सिधारो सुरग
 को काहू की हौं न दबेल ।
 'हरीचंद' तजि जाऊँ कहाँ
 जब सबहि कहत बिगारेल । १८

बिहाग या काफ़ी

आजु सखि होरी खेलन प्यारे पीतम आवैगे मेरे धाम ।
 रँग सों भरौगी कछु न डरौगी पुजवौगी मन काम ।
 गाल गुलाल लगाई माल गल दैके करौंगी प्रनाम ।
 'हरीचंद' मुख चूमि भुजा भरि मेटौंगी दुख को नाम । १९

बिहाग या सिंदूर

आजु सखि होरी खेलन पीतम
 ऐहै फरकत बायों नैन ।
 पुजवौगी सकल मनोरथ जिय के
 सुख सों बिताउंगी रैन ।
 दोउ भुज गल दै मुख चूमौंगी
 कहूंगी उमगि सुख-चैन ।
 'हरीचंद' हिय सफल करौंगी
 सुनि वा मुख के बैन । २०

काफ़ी

आजु मैं करौंगी निबेरो खेल को
 जो तू ठाढ़ो रहैगो रँग मैं ।
 अबहीं निकासूंगी सगरी कसर जो
 तू रोकत टोकत रह्यौ नित मग मैं ।
 बाँधि भुजन सों निज बस करके
 मुख चूमौंगी प्रेम-उमग मैं ।
 'हरीचंद' अपनो करि छाड़ूंगी
 मीर कहाऊंगी सगरे जग मैं । २१

पीलू

बन-बन फिरत उदास री, मैं पिय प्यारे बिन ।
 कहूँ न लगत जिय घाट बाट
 घर फिर-फिर लेत उसास री,

मे पिय प्यारे बिन ।

कछु न सुहात धाम धन के सुख

जियत मिलन की आस ।

'हरीचंद' उमगेई आवत दोउ दुग होइ हरास । ३२

उमग्यो जौवन जोर री, पिय बिनु नहिं मानै ।

देखि फाग-रितु बन दुम फूले कियो मदन घनघोर री ।

बाढ़ी अंग-अंग काल-कसक

अति सुनि-सुनि कोइल सोर री ।

'हरीचंद' प्यारे बिन मारत छिन-छिन मदन मरोर री । ३३

पीलू खेमटा

सलोनी तेरी सूरत मेरे जिय भाई ।

तन में नैनन में छबि तेरी रही समाई ।

इन आँखिन को और रुचत नाहिं करो अनेक उपाई ।

'हरीचंद' तू ही इक सरबस जीवन-धन सुखदाई । ३४

निवानी तेरी सूरत मेरे मन बसी ।

नैन उदास अलक अरुमानी मेरे जिय सों फँसी ।

कोटि बनावट वारों इन पै सहजहि सोभा लसी ।

'हरीचंद' फाँसी गर डारत तनक मंद मृदु हँसी । ३५

भैरवी या काफ़ी

पिया मैं पल ना तजौ तेरो साथ ।

एक ओर अब जगत होउ किन अब कलंक लियो माथ ।

जनम-जनम की दासी मैं तेरी तुम ही मेरे नाथ ।

'हरीचंद' अब तो तेरो दामन पकर्यो गाढ़े हाथ । ३६

काफ़ी

सखी री अब मैं कैसी करौं ।

बिनु पीतम गर लगै कौन विधि जीवन के दिन भरौं ।

पिनु पीतम हिय मैं हिय मेले कठिन ताप किमि हरो ।

'हरीचंद' पूछे किन उन सौ कब लौं या दुख जरौं । ३७

धनाश्री

फेर अब आई रैन बसंत की ।

बर्झल चली पौनह सुगंध भरि ताँज के सीत हिमंत की ।

फिर आई दुखदाइन पिय बिनु चरी बर्यांगन अंत की ।

'हरीचंद' पाती लो आओ अबहूँ तो कोउ कंत की । ३८

यथा-रुचि

घर में छिनहुँ धिर न रहे ।

वैर-वैरि भाँकात दुआर लागि पिय को दरस चहै ।

रूप-सुधा पीअति अघाति नहिं पिय के गुनहिं कहै ।

'हरीचंद' रस-माती पलहूँ दुग अंतर न सहै । ३९

सिंदुरा

बे-परवाही के संग मन फाँस गयो कुदावै ।

वह न गिनत तिनहुँ सों जा हिन धरन सबै ब्रज नावै ।

बेदब फाँसी करौं का सजनी कहा करै किन जावै ।

'हरीचंद' नहिं पूछन कोउ मारि फिरौं सब गावै । ४०

इकताला

पिया प्यारे मैं तेरे पर वारी भई ।

सहज सलोनी सुंदर मूरत निरखत ही बालहारी भई ।

अब ना रहौ घर लाख कहौ कोऊ सब ही भाँति तुम्हारी भई ।

'हरीचंद' संग लागी डोलौ सुंदर रूप-भिखारी भई । ४१

बिहाग

सोई पिय के गर लपटाई ।

सीस धृजा दे पिय के हिय सों काँस के हियो लगाई ।

निधरक पियत अधर-रस उमगी तऊ न नेकु अघाई ।

'हरीचंद' रस-सिंधु-तरंगन अवगाहन सूत्र पाई । ४२

भीमपल्लासी

फेर चलाई रंग पिचकारी ।

गाई फेर वहँ मोठे सुर प्रेम-भरी सोई गारी ।

फेर वहँ चितवन चितई जो तन-मन-बेधन-वारी ।

'हरीचंद' फिर मदन विवस भई,

मैं कूल-नारि बिचारी । ४३

काफ़ी सिंदुरा

इतरानो फिरि तू भले अपने

मन मैं न गिनौ कछु तेहिं माल ।

चार दिना को छैल छोहरा सोऊ भयो चहँ रसिक लाल ।

गारी गावत डफाह बजावत ऐँझानो चले मस्त चाल ।

'हरीचंद' छिन में सो भुलाऊँ पकार नचाउँ दै दै ताल । ४४

बिहाग

सोई सुख फिर चाहै पिय प्यारो ।

एक बेर चाल फेर निकुंजन जहँ ब्रजराज दुलारो ।

जहँ रस-रंग विलास किए बहु तुम संग मिलि के प्यारी ।

तहीँ बैठि सुख सोचि सकल सोइ बेवस होत मुरारी ।

तुव गुन-गन दुग भरि भरि भाखत पिय व्याकुल हवै जाई ।

राधा-नाम-अधार जिअत है प्यारो कुँअर कन्हारै ।

फेर-फेर साखियन सों पूछत चरित तिहारे आली ।

तुव बैठनि बतरानि हैसनि सुधि कर उमगत बनमाली ।

चलु कित बेगि कुंज-मंदिर में लै पिय कोँ गर लाई ।

'हरीचंद' दै अधर-अमृत पिय-प्रानाहि राखु बचाई । ४५

ईमन

गोरी-गोरी गुजरिया भोरी संग लै कान्हा ।

नट ललित जमुन-तट नव बसंत करि होरी ।
 सोभा-सिंधु बहार अंग प्रति विपति देह दीपक-
 सी छवि अति मुख सुदेस ससि सो री ।
 आसा करि लागी पिय सों रट सुर गावत ईमन हट ।
 मेघ बरन 'हरौचंद' बदन अभिराम करी बरजोरी ।
 सारंग-नैन पहिरि सुहा सारी भयो कल्याण मिले ।
 श्री गिरिधारी छवि पर जन तून तोरी ॥४६॥

होली

भारत में मची है होरी ।
 इक ओर भाग अभाग एक दिसि होय रही भक्तभोरी ।
 अपनी-अपनी जय सब चाहत होइ परी दुहुँ ओरी ।
 दुन्दु सखि बहुत बढ़े री ।
 धूर उड़त सोइ अवरि उड़ावत सब को नयन भरो री ।
 दीन दसा असुअन पिचकारिन सब खिलार भिजयो री ।
 भीजि रहे भूमि लटोरी ।
 भइ पतभार तत्व कहूँ नाहीं सोइ बसंत प्रगटो री ।
 पीरे मुख भई प्रजा दीन हवै सोई फूली सरसों री ।
 सिसिर को अंत भयो री ।
 बौराने सब लोग न सूझत आम सोई बौरयो री ।
 कुइ कहत कोकिल ताहीं तें महा अंधार छयो री ।
 रूप नहीं काहू लख्यो री ।
 हार्यौ भाग अभाग जीत लखि विजय निसान हयो री ।
 तब स्वाधीनपनो धन-बुधि-बल फगुआ माहि लयो री ।
 शेष कछु रहि न गयो री ।
 नारी बकत कुफार जीति दल तासु न सोच लयो री ।
 मूरख कारो काफिर आधो सिच्छित सर्वाह भयो री ।
 उत्तर काहू न दयो री ।
 उठौ उठौ भैया क्यों हारौ अपुन रूप सुमिरो री ।
 राम बुधिष्ठिर विक्रम की तुम झटपट सुरत करो री ।
 दीनता दूर धरो री ।
 कहाँ गए छत्री किन उनके पुरुषारथहि हरो री ।
 चूड़ी पहिरि स्यांग बनि आए धिक धिक सबन कह्यो री ।
 भेस यह क्यों पकरो री ।
 धिक यह मात-पिता जिन तुमसों कायर पुत्र जन्यो री ।
 धिक वह घरी जनम जामै यह कलंक प्रगटो री ।
 जनमतहि क्यों न मरो री ।
 खान-पियन अरु लिखन-पढ़न सों काम न कछु चलो री ।
 आलस छोड़ि एक मत हवैकै साँची बुद्धि करो री ।
 समय नहीं नेकु बचो री ।
 उठौ उठौ सब कमरन बाँधौ शस्त्रन सान धरो री ।
 विजय-निसान बजाइ बावरे आगेह पाँव धरो री ।
 छबीलिन रंगन रंगो री ।

आलस में कछु काम न चलिहै सब कछु तो बिनसो री ।
 कित गयो धन-बल राज-पाट सब कोरो नाम बचो री ।
 तऊ नहीं सुरत करो री ।
 कोकिल एहि बिधि बहु बकि हार्यौ काहू नाहि सुनो री ।
 मेटी सकल कुमेटी धोयी पोयी पढ़त मरो री ।
 काज नहीं तनिक सरो री ।
 बालिस दिन हमि खेलत बीते खेल नहीं निपटो री ।
 भयो पंक आंत रंग को तामें गज को जूय फैसो री ।
 न कोउ बिधि निकास सको री ।
 खेलत खेलत पूनम आई भारी खेल मचो री ।
 चलत कुमकुमा रंग पिचकारी अरु गुलाल की भोरी ।
 बजत डफ राग जमो री ।
 होरी सब ठाँवन लै राखी पूजत लै लै रोरी ।
 घर के काठ डारि सब दीने गावत गीत न गोरी ।
 भूमका भूमि रहो री ।
 तेज बुद्धि-बल धन अरु साहस ऊधम सूरपनो री ।
 होरी में सब स्वाहा कीनो पूजन होत भलो री ।
 करत फेरी तब कोरी ।
 फेर धुरहरी भई दूसरे दिन जब अगिन बुभो री ।
 सब कछु जरि गयो होरी में तब धूरहि धूर बचो री ।
 नाम जमघंट परो री ।
 फूँक्यौ सब कुछ भारत नै कछु हाथ न हाय रहो री ।
 तब रोअन मिस चैती गाई भली भई यह होरी ।
 भलो तेहवार भयो री ॥४७॥

होली लीला

राग मधुमात सारंग वा गौरी

रंगीली मचि रही दुहुँ दिसि होरी,
 इत हरि उत बृषभानु-किसोरी ।
 चलत कुमकुमा रंग पिचकारी, अरुन अबीर की भोरी ।
 इत जमुना निरमल जल लहरति तरल तरंगनि राजै ।
 उत गिरिराज फलित चितित फल चितामनिमय प्राजै ।
 ता मधि बिपुल बिमल वृंदावन जुगल केलि-धल साहे ।
 षटरितु रहत जहाँ कर जोरे बैकुंठहु को मोहै ।
 जाही जुही केतकी कुरवक बकुल गुलाब निवारी ।
 फूले फूल अनेकन लपटत लहरत केसर क्यारी ।
 लपटी लता तरोवर सों बहु फूलि फूलि मन भाई ।
 मनु मंडप में दुलहा दुलहिन रहे सेहरन लाई ।
 कहूँ कहूँ सघन तरोवर सों मिलि मंडन सुंदर छायो ।

पत्रपत्र सों धूप लाँदनी मिलिके लगत म्हायो ।
 कहँ कुटी कहँ सवन कुटी कहँ कदम खाँडका छाई ।
 कहँ बितान कहँ कुँज-मँडप कहँ छई छाँह मन-भाई ।
 कहँ कंदरा सिलामान बेदी विविध रतन सोपान ।
 भरना भरत बिलस जल के जहँ करत हंस कल गान ।
 फले सकल फल अमृत सारस कहँ कहँ मोर बिस्तार ।
 कहँ फूलन पै मत्त भँवरगन उड़त करत भँकार ।
 कहँ घाट छतरी कहँ राजे सीतल सुभग तिवारी ।
 कहँ बालुका विष्टी अति कोमल स्वच्छ स्वेत सुखकारी ।
 कहँ कहँ भुके तरोवर जल में मनु निज प्रिय को भेंट ।
 मुकुर मौँह सोभा लाँख अपनी के जिय को दुख भेंट ।
 कहँ कहँ कुंड तलाव बावरी भरे फाटक से नीरा ।
 कहँ भीमल लहरत अपने रंग रोंछि दुरत दुग-पीरा ।
 त्रिविध पौन जब लै पराग मधु चहुँ दिस आनि भकोरे ।
 बिहबल हवे मद-अंध करत तब गंध लिए जब दौरै ।
 कल जलान कमल अरु कोई कहँ सैवाल सुहाई ।
 कारडव जल-कुक्कट सारस बिहरत तहँ मन लाई ।
 मोर चकोर सारिका सुकगन मिलि कल कलह मचाई ।
 डार डार प्रति बैठि कोकिलन काम-बधाई-गाई ।
 सरसों अतिसी खेतन सोहै कुसुम फूल बहु फूले ।
 नव पलास कचनार देत बिरहीजन के हिय हले ।
 सखिन जानि होरी को आगम पथ गुलाब छिरकायो ।
 कियो ढेर केंसर गुलाल को रंगन होज भरायो ।
 तोरि गुलाब पाँखुरिन मारग सोहत है अति छायो ।
 अगर धूप ठौरहि ठौरन दे बगर सुवास बसायो ।
 पानदान भारी पिकदानी मुरछल चँवर अड़ानी ।
 फूल चँगर माल बहु बिजन लै मृगमद धन सानी ।
 लिये सकल सुख-साज सहेली सरस कतारन ठाढ़ी ।
 मानहुँ मदन-सदन बिसुकरमा चित्र पतूरी काढ़ी ।
 कोउ गावत कोउ नाचत आवै कोऊ भाव बतावै ।
 कोउ मुदंग बीना सुर-मंडल ताल उपंग बजावै ।
 खेलत गेंद कहँ कोउ नट सी कला अनेकन साजै ।
 आँख-मिचौनी होत तहाँ इक परसि और को भाजै ।
 छड़ी लिए इक छड़ी अदब सों सबह तमाम जनावै ।
 एक भँवर निरवारनवारी एक निरखि बलि लावै ।
 आवत तहँ दोउ होरी खेलन परम प्रेम-रंग भीने ।
 कछु अलसात छके मद लोचन बाँह बाँह में दिने ।
 अपुनो अपुनो जूय अलग करि खेलत सब मिलि गोरी ।
 जान न देहु प्रात-प्यारे को यह कह्यो ललित किसोरी ।
 रोपि मध्य डोंड़ो जै कहिकै बिजय-निसान बजाई ।
 कियो खेल आरंभ सखी प्यारी की आज्ञा पाई ।
 धरन लागीं मनमोहन पिय को घेरि घेरि ब्रज-नारी ।

लाल कियो गोपाल लाल कों दै केंसर पिचकारी ।
 चोआ चंदन बुक्का बंदन केंसर मृगमद रोरी ।
 आँवर गुलाल कुमकुमा कुमकुम अरु धनसार भकोरी ।
 मीरिज कपोल कोऊ भाजत है धाड़ फेंट कोउ खोलै ।
 कोउ मुख चूमि रहत ठोड़ी गहि इक गारी दै बोलै ।
 इतनेहि उत सों सखा-जूथ सब साँज साँज खेलन आए ।
 बाँधे पाग सुरंग फेंट मै रंग रंग बसन बनाए ।
 फेंटन पै तुराँ की मलकानि मोर-पँखोआ सोहै ।
 बेनु सींग दल भौँक डोल डफ बाजन मुनि मन मोहै ।
 गावत गारी आँवर उड़ावत धूम मचावत डोलै ।
 पकारि लेत तेहि जान देत नाह हो हो होरी बोलै ।
 तिनसों काह ब्रजराज लाडिले सखियन धोखा दीन्हो ।
 मै प्यारी के सँग आवत हो इन बीचहि गहि लीन्हो ।
 धाड़ धरोँ इनकोँ इक इक करि रंग मै सवन भिजाओ ।
 गारी दै मन-भायो करि कै बहु विविध नाच नचाओ ।
 ये अबला सबला भई भारी इनको सब मद गारी ।
 आजु हराइ इन्है होरी मै रंग के पिचुका मारी ।
 धाए सुनत ग्वाल मदमाते गहिरो खेल मचायो ।
 धूँधर करि गुलाल की चहुँ दिस रंग-नीर बरसायो ।
 एक धोरि कै मृगमद डारत इक लावत धनसारा ।
 चोआ तेल फुलेल एक लै अतर भिजावत बारा ।
 हारत अरन पंडुर श्यामल रंग रंग गुलाल उड़ाई ।
 बिच बिच विविध सुगंध सनित बुक्का बगरत मन-भाई ।
 कबहुँ बादले रंग रंग के कतरि मिहीन उड़ावै ।
 तरनि किरिन मिलि अति छबिः

पावत चमकि सवन मन भावै ।
 परिमल अँवर मृगमद पीसे सने कपूर सुहाए ।
 मेलि मेलि केवरा धूर में भोरिन पूरि उड़ाए ।
 चोआ चोँटि चोँटि के अंगन तापर बिंदुली लावै ।
 केंसर छीँटि चरचि रोरी सों लै रंग सों नहवावै ।
 गारी देत निलाज डफ बाजत ऊँचे राग जमायो ।
 गूँज रह्यो सुर बर वृंदावन हो हो शब्द सुनायो ।
 एकन कों गहि रहत एक एकन को इक मुख माँड़ै ।
 करत निपट पट-रहित एक को हा हा करि करि छाँड़ै ।
 नारि नरन कों नारि बनावत न नारिन नर साजै ।
 गाँठ जोरि बर बदन चीति कै चूमि चूमि मुख भाजै ।
 फूल-छड़ी की मारि परत तब लाल उठत अकुलाई ।
 पुनि हो हो करि रेलि पेलि लिय-दलहि भजावत आई ।
 अवनि अकास एक रंग देखियत तरुन अरुनई छाई ।
 लता पत्र प्रति रंग रंग सों इक रंग परत लखाई ।
 पटे अटारी अटा भरोखा मोखा छाजन छाते ।
 मारग सहित सुरंग गुलाल सों लाल सबे बरसाते ।

भीजे बसन सबै तिन मधि कोउ सीत-भीत अति काँपै ।
 काहू के पट छुटे लाज सों अपनो तन कोइ छापै ।
 एकन को इक पकरि नचावत एक बजावत तारी ।
 आपुन हँसत हँसावत औरन देत कुफारी गारी ।
 रंग जम्यो होरी को भारी मद-माते नर-नारी ।
 सबके नैनन में देखियत इक होरी-खेल-खुमारी ।
 तिन मधि घूँघर में गुलाल के लसत जुगल लपटाने ।
 भीगे रंग सगबगे बागे रस-बस आलस साने ।
 श्याम स्वरूप मनोहर मोहन कोटि काम लखि लाजै ।
 उमगत अंग अंग तें जेबन वय किसोर नव भ्राजै ।
 मनु मानिक नीलम मिलाइ दोउ सरस पूतरी डारी ।
 उलहत रोम रोम में सोभा कवि-रसना-मति हारी ।
 अंग अनंग भूयो आगम के दिन सहजाहि सुँदराई ।
 लखतहि मन मोहत जुवतिन को चढ़त तरल तरुनाई ।
 पद-तन लाल प्रवाल चिन्ह धुज अंकुस मडित सोहै ।
 नव पल्लव पर सरस ओस-कन से नख लखि मन मोहै ।
 चरन मंजु मंजीर बिबिध नग-जटित न परत बखानै ।
 मनु मानिगन मिस मुनिजन को मन रहत चरन लपटाने ।
 जुगल पींडुरी गुलफन की छाँव लागत दृगन अति नौकी ।
 मनु वैदुर्य द्वार जुग सुंदर करत जगत छवि फीकी ।
 कदलि-खंभ सम जंघ जुगल जेहि रमा पलोटेन चाहै ।
 तापै लपटि रह्यौ पीतांबर सोभा सुख अवगाहै ।
 मनु वन में धरि दामिन लपटी नीलाहि कंचन-बेली ।
 रस सिंगार मैं बिरह-लता सु-तमालहि पीत चमेली ।
 तापै कलित किंकिनी कूर्जात मनु रसना कावगन की ।
 बंदनवार काम-मंदिर की विजय-घोस रति-रन की ।
 तापै फेंटा ललित लपेटा पँचरंग सोभित ऐसे ।
 सावन साँझ बिबिध रंग बादर दामिन चूमत जैसे ।
 उदर उबार सचिक्कन कोमल भूयो सकल रस सोहै ।
 लेत लपेट चितै चितवत नहि भरत पेट दृग जोहै ।
 सब जग-मूल नाभिसर सोहत रूप-गाँठ मनु बाँधी ।
 ता पर रमत रसिक रोमावलि रस-सरिता सर साथी ।
 जुवति गाढ़ रति निरदय समुदय सदय दीन हित साजै ।
 सोभित उर जहँ अनुदिन नवल प्रिया-प्रतिबिंब विराजै ।
 ता पर हार अपार परे मनिगन की अनगन माला ।
 ओतप्रोत मनु जुवति मनोरथ सोत पोत मनि ख्याला ।
 सब पर सोहत गुंजमाल बनमाल सहित आलम्बी ।
 मनु अनुराग सहित सगरे रस रहे हरि-गल अवलंबी ।
 मुक्तप्रांत सोभित अति सुंदर कौस्तुभ-पदिक विराजै ।
 प्यारी मन को सरस सिंहासन छत्र मनहुँ छाँव छाजै ।
 मुक्त भएहुँ रस के लोभी-जन हरि-गर लपटाने ।
 पुन्य गोप-पद पाइ ओप-जुत चोप भरे सरसानो ।

प्रियावरोधन चतुर बाहु जुग देखत ही मन मोहै ।
 अति आतुर तिय गर लगिबे कों नील बेलि सी सोहै ।
 मनिनपूर केयूर जुगल पर नौ-रतनी कसि बाँधी ।
 नभ मसुंड के सुंड-दंड ध्रुव सह ग्रह पंगति नाँधी ।
 मनिबंधन मनिबंध कालित कंगन पहुँची मन-भाई ।
 जुगल नवल पल्लव मैं मानहुँ कुसुम-लता लपटाई ।
 जुबती-उर परसन अति चंचल कर जुग अति रंग माँडै ।
 हाथहि हाथ लेत ये चित कों फेर कवहुँ नहि छाँडै ।
 ऊरधरेख चक्र-चिन्हन सों चिन्हित कर-तल देखे ।
 मनु गुलाल पाटी पै अंकित किए मदन निज लेखे ।
 पोर पोर अँगुरी मैं मुदरी ऊपर नख दृति भारी ।
 विद्रुम कली अग्र मुक्ताफल मीना मध्य सँवारी ।
 कदलिपत्र सी पीठ दीठ पर नीठ नीठ नहि चालै ।
 ता पर पीत उपरना सोभित लपटी धूप तमालै ।
 काजर पीकादिक छाँपित बर रंग भूयो मन मोहै ।
 सोना और सुगंध दोऊ मिलि नगन जर्यौ अति सोहै ।
 कलकल कंठ कुंठ कर सोभित कंठ पीक-छवि छाजै ।
 मनहुँ नीलमनि सरस सुराही अमृत भरी अति राजै ।
 चिबुक चारु मोहत मन जोहत करन करन छाँव भारी ।
 युगल कपोल गोल दरपन सम प्रतिबिंबित जहँ प्यारी ।
 सकल स्वाद रस-मूल अधर जुग कोमल अति अनियारे ।
 मनु द्वै लाल अंगूर लिए सुक लखि मुनि-मन मतवारे ।
 कुंद-कली सी दंत-पाँत मैं बीरा रंग सुहायो ।
 मनु दरक्यौ दारिम लाख प्रमुदित नासा सुक उड़ि आयो ।
 आगम सूचित रेख लेख तल अधर आभ अरुनायो ।
 हलकत बेसर मोली सुंदर अति जिय लगत सुहायो ।
 बरुनी नैन चपल पल भौहन सोभा के मनु भौना ।
 मनुष जाल करि मनहुँ फँसाए खंजन के जुग छौना ।
 प्रिया-रंग-माते अलसाने सरसाने रस-साने ।
 प्रिया-भाव के भरे अघट मनु सोहत जुगल खजाने ।
 प्रिया-ध्यान मैं मुँदे रहन की खुले रहन की देखे ।
 भुक्ति रहन की याद परे नित जिनकी बान बिसेखे ।
 खंजन मीन कमल नरगिस मृग सीप भौर सर साथे ।
 मनु इनके गुन एकति करिके अंजन-गुन दे बाँधे ।
 जहँ जहँ परत दृष्टि इनकी बन गलियाँ अलियाँ मोहै ।
 मानिक नील हीर से बरसत खिलत कंज से सोहै ।
 मनु इन प्रन बदि राख्यौ ब्रज मैं कहर चहँ दिसि डारी ।
 जहाँ परे कतलाम करै तित सब नव जेबनवारी ।
 प्रिया-रूप लखि रीफि मनहुँ श्रवणन सों कहन गुन धाए ।
 तिनहीं के प्रतिबिंब मकर जुग कुंडल करन सोहाए ।
 मानिनि-मान प्रतिव्रत तिय को मुनि-मन ज्ञान-गह्वरे ।
 सोभा सब उपमानन की यह बदि बदि के नित चूरे ।
 चंचल चपल चारु अनियारे फरकत सुथिर रहै ना ।

प्रियाविच प्रतिविबित पुतरन प्रिया-रूप के ऐना ।
 मान तजत कोउ परी कराहत कोउ अति व्याकुल भारी ।
 चली निकट आवत कोउ धाई जित तित इनकी मारी ।
 कारी भूपकारी अनियारी बरुनी सघन सुहाई ।
 चुभत नोक जाकी नित मम उर रस छाजन सी छाई ।
 केसर आड़ु रेंख पर सोभित लाल तिलक छवि मेखा ।
 मान महावर के जुग पद की सोभित मनु जुग रेखा ।
 ललित लटपटी लाल पाग विच अलक अंधक छवि देई ।
 मनु अनुराग सिंगार लपटि रहे निरखत जिय हरि लेई ।
 चिककन चिलकदार चुनवारी कारी सोधे भोनी ।
 नव घूंघरवाली अलकावालि लटकत तिय-मन छीनी ।
 पाग पेंच पर ललित हीर सिरपेंच भल्यो रंग दमकै ।
 गरब भर्यो छवि छीन जगत की ओप-चोप करि चमकै ।
 तापर मोर-पखौआ सुंदर हलत अतिह छवि पाई ।
 जगत जीति सिंगार-सिखर पर धुजा मनहुं फहराई ।
 सहज तियागन को मन लोभा लखि नख-सिख की सोभा ।
 गोभा उठत प्रेम के जिय में देत मदन मन चोभा ।
 कोमल तासु गंध सोभा प्रति अंगन सरस सँवारी ।
 मनहुं नीलामान अंतर मेलि के पुतरी साँचे धारी ।
 तैसाहि श्रीवृषभानु-नर्दनी रंग-भरी संग राजे ।
 रूपगविता जुवति-जुथ सत जा पद-नख लखि लाजे ।
 केहि अधिकार कहन सोभा को को पुनि सुनिबे लायक ।
 बिनु नजनाथ सदा जो तिनके अंतरंग पद-पायक ।
 हरि-अनुराग प्रगटि पद-तल जुग अरुन लखत मन मोहै ।
 पिय हिय अधर नैन लागनि की जासु बानि नित जोहै ।
 पद-नख दिव्य फाटक से सुंदर काँव पै नहि कहि जाही ।
 मानस में हरि होत रुद्र-बपु लहि जिनकी परछाहीं ।
 मेंहदी सुरंग महावर आभा मिलिके अति द्रुत दमकै ।
 प्रिया-अनय पर प्रीतम की अनुराग-मेंड़ मनु चमकै ।
 अनवट बिछिया पग पातन सो सोभित अति पद-पीठी ।
 मनहुं कमल पर कालत ओस-कन चंद्र चंद्रिका दीठी ।
 पायजबे गूजरी छड़े दोउ पग में पड़े सुहाए ।
 पिय के उज्जल बिबिध मनोरथ मनु तिय-पद लपटाए ।
 चरनन की छवि किमि भाखैं ये जग के सब काँव छोटे ।
 बारंबार प्रिया सोए पर जे हरि आप पलोटे ।
 मानस में इनकी परछाहीं जब प्रगटै रंग भोने ।
 पग-पेंच चिककन श्याम धन इंद्र-धनुष छवि छीने ।
 बिनु श्रीहार के सखि समाज के जा पद-पंकज-धूरी ।
 नहि पाई शिव-अज अजहैं लौ जद्यपि करत मजूरी ।
 सारी नील लपटि रही कटि लौ रंग अनुरूप सोहाई ।
 मनु हरि आप बसंत-मिस-निस-दिन रहत अंग लपटाई ।
 अंचल हार माल मोतिन सों हिय अति सोभा पावे ।

उमंगि उमंगि जेहि श्याम मनोहर बार बार उर लौवे ।
 निज जन अभय करन को दोऊ करन मेंहदी राजे ।
 कल पल तामैं मनु प्रवाल को पल्लव सोभा साजे ।
 मुँदरी छल्ले बाँके आरसी कंकन पहुँची सोहै ।
 कड़े पड़े हथफूल अनुपम देखत पिय मन मोहै ।
 इन हाथन ही हाथन-हाथन पिय को मन लै लीनो ।
 निज जन कों नित भक्ति-दान बिनही प्रयास इन दीनो ।
 इनहीं पै धारि हाथ पिया डोलत निरतत मद-माते ।
 धाय मिलत आगे पिय कों ये याही तें रंग-राते ।
 पीठ परम सोभित चुटिला सों दीठि टरत नहि टारी ।
 मानस में पिय प्रानन को जो एकाहि राखनवारी ।
 मुख-सोभा कापै कहि आवै जहँ बानी मति हारी ।
 पिया-प्रान अवलंब एक सब उपमहि दीजे बारी ।
 पिय के जीवन-मूरि अधर दोउ कोमल पतरे सोभै ।
 पिय की रसना सजल करत लखि अमृत-स्वाद के लोभै ।
 छोड़ी नासा बेसर के बिच छोटी सो मुख राजे ।
 अति भोरी रोजित रंग पानन दंतावालि मिलि छाजे ।
 जुगल कपोलन भलकत लखियत करनफूल परछाहीं ।
 रूप-सरोवर चलित कमल मनु कविजन कहत लजाहीं ।
 प्रतिबिबित ताटक नगन में जुगल कपोल सुहाए ।
 मनु द्वे आरसि मध्य चंद्र प्रतिबिबन बढत लखाए ।
 तनिक तरकुली कानन सोहत केस-पास दुरि आए ।
 पास प्रगट परिबेष किनारिन मिलिके अति छवि छाए ।
 करन पिया-सुख-करन मनोहर सोभित परम लखाहीं ।
 पीतम-बचन मुरलिका धुनि-सुनि प्रमुक्ति रहहि सदाहीं ।
 नैन सकल रस-ऐन ध्यान के द्वार छके रंग भारी ।
 पुतरन के मिस सदा बिराजत जिनमें श्याम-बिहारी ।
 सुंदरता श्यामता बड़ाई चंचलता अरुनाई ।
 लाज सहित ये सिमिटि-सिमिटि सब इनहीं में मनु आई ।
 संहजहि कजरा फैलि रह्यो लखतहि पिय-मन ललचाई ।
 अति भोरी चमकति सी पिय के मन बहु भाई ।
 पलक पिया छवि ओट छबीली दया भरी अनियारी ।
 घनसारी कारी बरुनी राजत प्यारी भूपकारी ।
 भौह जुगल छवि भरी धनुष सी किमि कवि पै कहि आवै ।
 मानहुं मैं जिनपे कबहुं नहि कुटिलपनो दरसावे ।
 रस सोहाग की आलबाल सों भाल ललित छवि छाये ।
 तनिक बेदुली सह जापै अति सेदुर-बिदु सुहायो ।
 केस सुदेस चमक चिकनारे कारे अति सटकारे ।
 खुले बंधे सबही बिधि सोहत सघन सुघूंघरवारे ।
 सारी मुख परिवेष किनारी में सुंदर मुख दमकै ।
 मंडल किरिनावलि तारावलि में ससि मानहुं चमकै ।
 सोभा सुंदरता सुबास कोमलता ललित लुनाई ।

होड़ा-होड़ी उमड़ा रहे सब कवि पै नहिं काह जाई ।
 सोभा फैलत रस बरसत सो उमगत सो तरुनाई ।
 पसरत तेज लुनाई लहकति उपजति सी छाँवताई ।
 जितो जगत में रूप होत सब जाके तनिक विलोकै ।
 ताकी सोभा को काह पावै रहत रसन कवि रोकै ।
 प्रानपिया रिभवार पास मुख चितवत ही रहि जाहीं ।
 हवै बलिहार प्रान मन बारत छिन-छिन अति ललचाहीं ।
 लिए रहत रुख भौर निवारत इक टक बदन निहारै ।
 तनिक हँसनि बोलनि चितवनि पै अपुनो सरबस वारै ।
 सखी सहस ताज नित-नित जाके गोहन लागे डोलै ।
 हँसत प्रिया के हसे प्रान-प्यारी के बोले बोलै ।
 गुन गावत लौ पान खवावत दाबन रहत उठाएँ ।
 मुख चूमत माला सुरभावत दोउ कर लेत बलाएँ ।
 चुटकि दैत बलिहार कहत हैं बोलनि चलनि सराहै ।
 अपने कों धन-धन करि मानत प्यारी-प्रेम उमाहै ।
 जुगल परस्पर रंगे प्रेम-रंग होरी खेल न जानै ।
 रहत दुगनही में अरुमाने यहि कों सरबस मानै ।
 प्रिया श्रमित लाखि चलत कुंज को मंथर गति अति मोहै ।
 मरगजे बसन माल कुम्हलानी बिधुरे कच मन मोहै ।
 हाथ-हाथ पै दिये एक रंग अरुन भए दोउ राजै ।
 लाखि बलिहार होत सखिजन सब सरस आरती साजै ।
 अक गावत इक तार बजावत इक कुसुमन भरि लाई ।
 इक तून तोरत इक पद परसत इक लाखि रहत लुभाई ।
 वाजत बेनु मंद मधुरे सुर गावत कल-कल प्यारी ।
 आवत चले कुंज रस-भीने श्यामा श्री गिरधारी ।
 एहि बिधि खेल होत नितही नित बृंदावन छाँव छाये ।
 सदा बसंत रहत जहँ हाजिर कुसुमित फालत सोहाये ।
 जर्दाप सकल दिन अति छाँव बरसत बृंदा-बिपिन अपारा ।
 तऊ सुखद सब सों निरभय यह होरी रंग बिहारा ।
 नित-नित होरी रहै मनावत याही तें ब्रजनारी ।
 बिहरत कुल की संक छाँडकै जायै गिरिवरधारी ।
 सो होरी-रस परम गुप्त है अनुभवह नहिं आवै ।
 शिव शुक सों बिरलो कोउ-कोउ कलू पावै तो पावै ।
 पै श्रीबल्लभ-चरन-सरन जो होय सोई कलू जानै ।
 जो यह जानै सो फिर जग में और नहीं उर आनै ।
 बिनु श्रीबल्लभ-कृपा-कोर यह निरखेइ नहिं सूभै ।
 जिमि गँवार मानि हाथ लेइ पै ताको मोल न बूझै ।
 श्रीबल्लभ-पद-रज-प्रताप सों यह लीला कहि गाई ।
 मनि-सम पोहि-पोहि अति रुचि सों माला रुचिर बनाई ।
 रसिकन की सरवस्व परम निधि बल्लभियन की जानौ ।
 जुगल अनन्य जनन की तौ यह मूरि सजीवन मानौ ।
 एहि कुरसिक-जन हाथ न दीजौ रहियो सीस चढ़ाई ।

पुनि पुनि पढ़ि पुनि सुनि अनुभव
 करि लहियो रस अधिकाई ।
 विषय-विद्विषत ज्ञान-करम मैं परे स्वर्ग सुख लोभे ।
 ते या रसहि परसिहैं नाहन निज अभिमान न सोभे ।
 केवला श्रीबल्लभ-पद-किंकर 'हरीचंद' से दासा ।
 रहिहैं यह रस-सने सदा माँगत बरसाने बासा १४८

होली

फागुन के दिन चार, री गोरी खेल लै होरी ।
 फिर कित नू औ कहाँ यह औसर क्यौं जानत यह आर ।
 जोबर रूप नदी बहती सम यह जिय माँझ बिचार ।
 'हरीचंद' गर लगू पीतम के करु होरी त्योहार १४९
 श्याम पिपा बिनु होरी के दिनन में,
 जिय की साध मेरी कौन पुजावै ।
 गाइ बजाइ रिभाइ सबहि बिधि
 कौन भुजन भरि कंठ लगावै ।
 गाल गुलाल लगाइ लपट गर,
 कौन काम की कसक मिटावै ।
 'हरीचंद' मुख चूमि बार बह,
 फिर चूमन कों को ललचावै १५०

प्रान-पिया बिनु प्रान लेन कों,
 फिर होरी सिर पर धरानी ।
 गावन लोग लगे इत उत सब,
 सुनि सुनि फिर हो चली मैं दिवानी ।
 फिर फूले टेसू सरसों मिलि
 फिर कोइल कुहकत बोरानी ।
 'हरीचंद' फिर मदन-जोर भयो
 का मैं करों विरहिन अकलानी १५१

किंभौरी

रसमसी सरस रंगीली आँखियाँ मद सों भरें ।
 मुँद मुँद खुलत छकीं आलस सों दूरि दूरि जात ढरी ।
 भूमत भुकत रंग निचुरत मनु मीन मँजौठ परी ।
 'हरीचंद' पिय छकत लखत ही सबहि भाँति निखरी १५२
 प्यारी तेरी भौहैं जात चढ़ी ।
 आलस बस हवै चंचलता तजि बाँकेपनहि मढ़ी ।
 भुकि भूमत सरसानी आँखियाँ मनु रस-सिंधु कढ़ी ।
 'हरीचंद' अधखुली रसीली कानन जात बढ़ी १५३

पूरबी

नैन फकीरिनि हो रामा अपने सैयाँ के कारनवाँ ।

रूप-भीख माँगन के कारन छौन फिरत बन-बनवाँ ।
रूप-दिवानी कल न परत कहूँ बाहर कबहुँ अँगनवाँ ।
'हरीचंद' पिय-प्रेम-उपासी छोड़ि धाम धन जनवाँ । १५४

काफी

तुम बने सौदाई, जगत में हँसी कराई ।
जाव प्यारे तुम हमसे न बोली जिय न जलाओ सदाई ।
सूनी सेज बरु में सो रहूँगी तुम मत आओ यहाँई ।
तुम बने सौदाई, जगत में हँसी कराई ।
समभावत मानत नहिं नेकहु करि अपने मन-माई ।
रहो खुशी से यहाँ जाय के जहाँ मुख अविर मलाई ।
तुम बने सौदाई, जगत में हँसी कराई ।
प्यारे कियो और कों प्यारी इत उत प्रीति लगाई ।
अपने मन के भले भए हो भूठी बात बनाई ।
तुम बने सौदाई, जगत में हँसी कराई ।
हमहिं लजावत मिलत और से जियरा जरावत आई ।
'माधवी' फाग प्रान-सँग खेलि रहौगी मैं विष खाई ।
तुम बने सौदाई, जगत में हँसी कराई । १५५

होली की लावनी

इत मोहन प्यारे उत श्री राधा प्यारी ।
बृंदावन खेलत फाग बड़ी छवि भारी । १५०
सब ग्वाल बाल मिला डफ कर लिए बजावैं ।
इत सखियाँ हरि को मीठी गारी गावैं ।
पचरंग अबीर गुलाल कपूर उड़ावैं ।
पिचकारिन सों रंग की बरसा बरसावैं ।
लखि हँसत परस्पर राधा-गिरिवरधारी ।
बृंदावन खेलत फाग बड़ी छवि भारी ।
इक ग्वालिन बनि बलदेव श्याल दिग आई ।
कर पकरन मिस पकर्यो हरि करि चतुराई ।
यह लखत सखी सब घेरि घेरि कै धाई ।
गहि लिए श्याम रहि बहु बिधि नाच नचाई ।
फगुवा दै छूटे कोऊ बिधि बनवारी ।
बृंदावन खेलत फाग बड़ी छवि भारी ।
बंसी लै भागति हरि की कोऊ नारी ।
तब मोहन हा हा खात करत मनुहारी ।
सो लखि कै कोऊ हँसत खरी दै तारी ।
भागत कोऊ गाल गुलाल लाइ दै गारी ।
सो छवि लखि कै कोऊ तन मन डारत वारी ।
बृंदावन खेलत फाग बड़ी छवि भारी ।
चहुँ ओर कहत सब हो हो हो हो होरी ।
पिचकारी छूटत उड़त रंग की भोरी ।

मध ठाढ़े सुंदर स्याम साथ लै गोरी ।
बढ़ी छवि देखत रंग रंगीली जोरी ।
गुन गाइ होत 'हरिचंद' दास बलिहारी ।
बृंदावन खेलत फाग बड़ी छवि भारी । १५६

होली की ग़ज़ल

गले मुझको लगा लो ए मेरे दिलदार होली में ।
बुझे दिल की लगी मेरी भी तो ये यार होली में ।
नहीं यह है गुलाले सुख उड़ता हर जगह प्यारे ।
य आशिक की है उमड़ी आहे आतिशवार होली में ।
जवाँ के सक्के गाली ही भला आशिक को तुम दे दो ।
निकल जाए य अरमाँ जी के ऐ दिलदार होली में ।
गुलाबी गाल पर कुछ रंग मुझको भी जमाने दो ।
मनाने दो मुझे भी जाने-मन त्योहार होली में ।
अबीरी रंग अबरू पर नहीं उसके नुमायाँ है ।
अबीरी म्यान में है मगरबी तलवार होली में ।
है रंगत जाफरानी रुख अबीरी कुमकुमे कुच है ।
बने हो खुद ही होली तुम तो ऐ दिलदार होली में ।
'रसा' गर जामे मे गैरों को देते हो तो मुझको भी ।
नशीली आँख दिखला कर करो सरशार होली में । १५७

बिहाग

बिनु पिय आजु अकेली सजनी होरी खेलों ।
बिरह उसाँस उड़ाइ गुलालहिं दुग-पिचकारी मेलों ।
गावों बिरह धमार लाज तजि हो हो बोली नवेली ।
'हरीचंद' चित माहिं लगाऊँ होरी सुनो सहेली । १५८

धमार

आज है होरी लाल बिहारी ।
आज तोहिं हम देहैं नई गारी ।
तोहिं गारी कहा कहि दीजै ।
अर्गनित गुन क्यों गान लीजै ।
तेरो चंद बंस को धारी ।
जाने भोगी गुरु की नारी ।
तासों बुध भयो संकर जाती ।
जासों तेरे कुल की पाँती ।
तेरी कुल-जननी इला रानी ।
तामैं दोऊ सुख मुद-दानी ।
तेरी बेस्या सी कुल-माता ।
जाको नाम उरबसी ख्याता ।
जदुराज बड़े हैं ज्ञानी ।
जिन दीनी अपनी जवानी ।

तेरो कंसराय सो मामा ।

तेरी माय करी बे-कामा ।

तेरी रोहिनी नजि घर-बारा ।

अब ब्रज मै करत बिहारा ।

तेरो नंद बहुत जस पायो ।

जिन बिरधापन सुत जायो ।

तुम सकल गुनन मै पूरे ।

नट बिट सब ही बिधि रूरे ।

इमि कहत हैसत ब्रज-नारी ।

'हरिचंद' मृदित गिरधारी । १५९

राग देस

बिहारी जी मति लागौ म्हारे अंक ।

या गोकुल रा लोक चवाई तुम तो परम निसंक ।

म्हारी गलिअन मति आओ प्यारा रूप भीख रा रंक ।

'हरिचंद' थारे कारन म्हाणे लाग्यो छे जगरो कलंक । १६०

बिहारी जी काँई छे तम्हारो यहाँ काज ।

तुम सौतिन रे मद रा मात्वा रंग रंगीला साज ।

रैन बसे जहाँ वहाँ सिंधारो म्हाणे तो लागे छे घणी लाज ।

'हरिचंद' थारे चरनन लागूँ छिमा करौ महाराज । १६१

राग कलिंगड़ा

बिहारी जी घूमे छो धारा नेणा ।

कौन खिलार संग निसि जाग्या कहा करो छो सेणा ।

कौन रो यह लाया छी रे प्यारे रंगन रंग्यो उपरेणा ।

'हरिचंद' थै जनम रा कपटी कौन सुनै थारे बैणा । १६२

राग धनाश्री

लाल मेरो अँचरा खोलै री ।

गुरजन की नहि मानै लाज मेरो अँचरा खोलै री ।

पनियाँ लेन हौ निकसी मोसों हँसि हँसि बोलै री ।

मीठी मीठी बात सौँ प्यारो अमृत बोलै री ।

'हरिचंद' पिय साँवरो संग लागोई डोलै री । १६३

राग सहजाना

तैड़े मुखड़े पर घोल घुमाइयाँ ।

साँवलिजे साजन छल-बलिण तुभ पर बल बल जाइयाँ ।

हुई दिवाणी मोहन दा जो इशक जाल गल पाइयाँ ।

'हरिचंद' हँस हँस दिल लीता अब यह बे-परवाइयाँ । १६४

बिहाग

रे निटूर मोहि मिलि जा नू काहे दुख देत ।

दीन हीन सब भौँत तिहारी क्योँ सुधि धाइ न लेत ।

सही न जात होत जिय व्याकुल बिसरत सब ही चेत ।

'हरिचंद' सखि सरन राखि कै भल्यो निबाहयो हेत । १६५

काफी

अब तेरे भए पिया बानि कै ।

दगे नाम सों यार तिहारे छाप तेरी सिर ऊपर ले ।

कहाँ जाहि' अब छोड़ि पियारे रहे तोहि' निज सरबस दे ।

'हरिचंद' ब्रज की कुँजन में डोलैगे काहि राधे जे । १६६

सिंदुरा

आज कहि कौन हठायो मेरो मोहन यार ।

बिनु बोले वह चलो गयो क्योँ बिना किए कछु प्यार ।

कहा करौँ हौँ कछु न बनत है कर मीड़त सो बाग ।

'हरिचंद' पछितात रहि गई खोइ गले को हार । १६७

असवारी

तुम मम प्रानन तें प्यारे हो तुम मेरे आँखिन के तारे हो ।

प्राननाथ हो प्यारे लाल हो आयो फागुन मास ।

अब तुम बिनु कैसे रहोगी तासों जीव उदास ।

प्रान-प्यारे यह होरी त्योहार ।

हिंलि-मिंलि भुरमट खोलिये हो यह बिनती मौ बार ।

प्रान-प्यारे अब तो छोड़ौ लाज ।

निधरक बिहरी मो संग प्यारे अब याको कहा काज ।

प्रान-प्यारे जौ रहिहो सकुचाय ।

तौ कैसे कै जीवन बचिहै यह मोहि देहु बताय ।

प्रान-प्यारे जग में जीवन थोर ।

तो क्योँ भुज भरि कै नहि बिहरी प्यारे नंदकिशोर ।

प्रान प्यारे तुम बिनु जिय अकुलाय ।

तापै सिर पै फागुन आयो अब तो रह्यो न जाय ।

प्रान-प्यारे तुम बिन तलापै प्रान ।

मिलि जैयै हौँ कहत पुकारे एहो मीत सुजान ।

प्रान-प्यारे यह अति सीतल छाँह ।

जमुना-कूल कदंब तरे किन बिहरी दे गल-बाँह ।

प्रान-प्यारे मन कछु हवै गयो और ।

देखि देखि या मधु रितु मै इन फूलन को बे-तोर ।

प्रान-प्यारे लेहु अरज यह मान ।

छोड़हु मोहि न अकेली प्यारे मति तरसाओ प्रान ।

प्रान-प्यारे देखि अकेली सेज ।

मुरछि मुरछि परिहौँ पाटी पै कर सो पकरि करेज ।

प्राण-प्यारे नींद न ऐहै रैन ।

अति व्याकुल करवट बदलौगी हवैहै जिय बेचैन ।

प्राण-प्यारे करि करि तुम्हरी याद ।

चौकि चौकि चहुँ दिसि चित ओगी सुनै न कोउ फरियाद ।

प्राण-प्यारे दुख सुनिहै नहिँ कोय ।

जग अपने स्वारथ को लोभी बादन मरिहौँ रोय ।

प्राण-प्यारे सुनतहि आरत बैन ।

उठि धाओ मति बिलम लगाओ सुनो हो कमलदल नैन ।

प्राण-प्यारे सब छोड़्यौ जा काज ।

सोउ छोड़ि जाइ तो कैसे जीवै फिर ब्रजराज ।

प्राण-प्यारे मति कहूँ अनते जाहु ।

मिलि कै जिय भरि लेन देहु मोहिँ अपने जीवन-लाहु ।

प्राण-प्यारे इनको कौन प्रमान ।

ये तो तुम बिनु गौन करन को रहत तयारहि प्राण ।

प्राण-प्यारे पल की ओट न जाव ।

बिना तुम्हारे काहि देखिहै अँखियाँ हमै बताव ।

प्राण-प्यारे साथिन लेहु बुलाय ।

गाओ मेरे नामहि लै लै डफ अरु बेनु बजाय ।

प्राण-प्यारे आइ भरी मोहिँ अंक ।

यह तो मास अहै फागुन को यामे काकी संक ।

प्राण-प्यारे देहु अघर रस दान ।

मुख चूमहु किन बार बार दे अपने मुख को पान ।

प्राण-प्यारे कब कब होरी होय ।

तासों संक छोड़ि कै बिहरो दे गल मैं भुज दोय ।

प्राण-प्यारे रहौ सदा रस एक ।

इर करौ या फागुन मैं सब कुल अरु बेद-बिबेक ।

प्राण-प्यारे थिर करि थापौ प्रेम ।

इर करौ जग के सबै यह ज्ञान-करम-कुल-नेम ।

प्राण-प्यारे सदा बसौ ब्रज देस ।

जमुना निरमल जल बहौ अरु दुख को होउ न लेस ।

प्राण-प्यारे फलनि फलौ गिरिराज ।

लहौ अखंड सोहाग सबै ब्रज-बधु पिया के काज ।

प्राण-प्यारे जाइ पछारौ कंस ।

फेरो सब थल अपुन दुहाई करि दुष्टन को धंस ।

प्राण-प्यारे दिन दिन रहौ बसंत ।

यही खेल ब्रज मैं रहौ हो सब विधि सुखद समन्त ।

प्राण-प्यारे बाढ़ौ अंबिचल प्रीति ।

नेह-निसान सदा बजै जग चलौ प्रेम की रीति ।

प्राण-प्यारे यह बिनती सुनि लेहु ।

'हरीचंद' की बाँह पकरि दृढ़ पाछे छोड़ि न देहु । १६८

होली बन्दर सभा

(होली जबानी सुतुर्ग परी के)

इत उत नेह लगाइ भये पिय तुम हरजाई ।

जूठी पातर चाटत घूमत घर घर पूँछ डुलाई ।

सौत भई अब सगी तुम्हारी हम तो भई हैं पराई ।

पड़ी टुकड़े पर आई ।

मिल जा तू प्यारे क्यों नाहक फिरत मनो बौराई ।

बिनती करत उस्ताद खयानत गलियन गलियन धाई ।

राम सब लोग जगाई । १६६

पिय मूरख इत आइ देहु मोहिँ बोल सुनाई ।

वह दिन भूल गये जु घाट पर तुमने दही गिराई ।

पोछ उठाय रही पछताय न बोली हम सकुचाई ।

तुम्हें कछु लाज न आई ।

दुख धोवन अरु रोग-हरन तुम आप-सरूप कहाई ।

हम तो करि संतोष हैं बैठी बिरहा-बोझ उठाई ।

करो सीतल हिय आई ।

आसन सों बसंत में गायत हम तो मलार सदाई ।

भई उस्ताद न घाट न घर की खरी बात यह गाई ।

रही आँखिर मुँह बाई । १७०

होली

कुंजबिहारी हरि सँग खेलत कुंज-बिहारनि राधा ।

आनंद भरी सखी सँग लीने मेट बिरह की बाधा ।

अबिर गुलाल मेलि उमगावत रसमय सिंधु अगाधा ।

घूँघट में भुकि चूमि अंक भरि भेटति सब जिय साधा ।

कृजति कल मुरली मृदंग सँग बाजत धुम किट ता धा ।

बृंदावन-सोभा-सुख निरखत सुरपुर लागत आधा ।

मच्चौ खेल बढि रंग परस्पर इत गोपी उत काँधा ।

'हरीचंद' राधा-माधव-कृत जगल खेल अवराधा । १७१

तुम भौरा मधु के लोभी रस चाखत इत डोलौ ।

कलिन कलिन पर माते माते मधुरे मधुरे बोलौ ।

कहूँ गुंजरत कहूँ रस चाखत कहूँ नाचत मद-माते ।

बिलामि रहत कहूँ कलियन फूलन रस लालच रस-राते ।

कहूँ मधु पियत अंक कहूँ लागत करत फिरत कहूँ फेरा ।

कहूँ कलियन बस परि दल मैं मुदि रजनी करत बसेरा ।

तुमरो का परमान लाड़िले सबै बात मन-मानी ।

तुम सों प्रीति करै सो बावर् 'हरीचंद' हम जानी । १७२

शिवरात्रि का पद

आजु शिव पूजहु हे बनमाली ।

छोड़ि कुटी बाहर हवै बैठे ए दोउ शोभाशाली ।
नहिं गंगा मृग-चरम नहीं काटि नहिं विभूति सिर राजे ।
नाहिं चंद केवल कछु नागिन लटकत सिर पर छाजे ।
तुम बड़भागी भक्त लाल चलि सेवन बहुत विधि कीजे ।
'हरीचंद' ऐसी भार्मनि को काहें रुसन दीजे ॥७३॥

संस्कृत राग बसंत

हरिहरिह विलसति साखि ऋतुरागे ।
मदनमहोत्सव वर्षाविभूषित वल्लवरमणिममाजे ।
प्रकाटित वर्षाविधि हृदयाहित युवतिसहस्राधिकारे ।
स्वावेशावृतमतीकृत नरलोक-मयापहमारो ।
मुकुलिताई मुकुलितपाटलगण शोभितोपवनदेशे ।
शकुनपंढरीकृत सुविवाहार्थत सिद्धार्थकवेशे ।
त्रिविधपवन-पूरित पराग पटलाधमभ्रपङ्ककारे ।
आम्र-मंजरीवेष-विभूषित-रतिसहचरी-विहारे ।
क्राजित केकावलि कलकंठप्रतिध्वनिपूरित तीरे ।
प्रकाटित हृदयगतानुराग कमलच्छलयमुनानीरे ।
पथिकबधूबधप्रायश्चित्तालतनु-दग्धपलाशे ।
कान्तविरहपीतिमापीत वासन्ती कुसुमविकाशे ।
रूपगर्वभरहासितमालतीदर्शितदन्तकदम्बे ।
कामविकारार्जितलताका-कृत वरसहकारालम्बे ।
मृगमदकश्मीरागुरुचन्दन-चर्चित युवति-समूहे ।
सुरललानावाञ्छितविहारलोकत्रयसुकृतदुरुहे ।
श्री वृषभानु-नान्दिनीमोदविनोदमोदविताने ।
काविर गिरिधरदास-तनुभव 'हरिश्चन्द्र' कृत
गाने ॥७४॥

बसंत

श्री बल्लभ प्रभु बल्लभि अन-विन तुम्हें कहा कोउ जानै हो
निज निज रसि अनुसारहि सब ही कछु को कछु अनुमाने हो
करमठ श्रुतिरत कर्म-प्रवर्तक जज्ञ-पुरुष कहि भाखे हो ।
जानी भाष्यकार आत्म-रत विषय-विरत अभिलाखे हो ।
मरजादा-रत मानि, अचारज हरि-पद-रत सिर नावै हो ।
गुप्त परम रस अमृत प्रेम बपु नित्य बिहारि बिहारी हो ।
गो-गोपी-गोकुल-प्रिय सुंदर रास रमत गिरिधारी हो ।
प्रगटत निज जन मै निज लीला आपुहि द्विज बपु लीन्हो हो
'हरीचंद' विनु निज पद-सेवक औरत नाही चीन्हो हो

बसंत

देखहु लाहि रितुराजहि उपवन फूली चारु चमेली ।
लपटि रही सहकारन सों बहु मधुर माधवी-बेली ।
फूले वर बसंत वन वन मै कहै मालती नवेली ।
ता पै मदमाते से मधुकर गूँजत मधु-रस-रेली ।
मदन महोत्सव आजु चली पिय मदन-मोहन सों मैटै ।
चोआ चंदन अगर अरगजा पिय के अंग लपेटै ।
बहुत दिनन की साथ पुजावै मुख की रास समेटै ।
'हरीचंद' हिय लाइ प्रानप्रिय काम-कसक सब मैटै ॥७५॥
मेरे जिय की आस पुजाउ पियरया होरी खेलन आओ ।
फिर दूरलभ हवैहै फागुन दिन आउ गरे लाग जाओ ।
गाइ बजाइ रिभाइ रंग करि आँवर गुलाल उड़ाओ ।
'हरीचंद' दुख मोटि काम को घर तेहवार मनाओ ॥७७॥
होरी नाहक खेलूं मै वन में पिया विनु होरी लगी मेरे मन में
सुनो जगत दिखाई श्याम-विनु विरह-बिधा बढ़ी तन में ।
होरी नाहक खेलूं मै वन में पिया विनु होरी लगी मेरे मन में
काम कठोर दवारि लगाई जिय दहकत छन छन में ।
'हरीचंद' विन बिकल विरहिन विलपति बालेपन में ।
होरी नाहक खेलूं मै वन में पिया विनु होरी लगी मेरे
मन में ॥७८॥

वन में आगि लगी है फूले देख पलासु ।
कैसे बचि है बाल बियोगिन दीख बसंत-बिलास ।
चलत पौन लै फूल-बास होत काम परकास ।
'हरीचंद' विनु श्याम मनोहर विरहिन लेत उसास ॥७९॥

चहै दिस धूम मची है हो हो होरी सुनाय ।
जित देखो तित एक यहै धुनि जगत गयो बौराय ।
उड़त गुलाल चलत पिचकारी बाजत डफ चहराय ।
'हरीचंद' माने नर नारी गावत लाज गँवाय ॥८०॥
नित नित होरी ब्रज में रहौ ।
बिहरत हरि सँग ब्रज-जुवती-गन सब अनैद लहौ ।
प्रफुलित फालित रहौ वृंदावन मधुप कृष्ण-गुन कहौ ।
'हरीचंद' नित सरस सुधामय प्रेम-प्रवाह बहौ ॥८१॥



राग-संग्रह

"हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका, मोहन - चन्द्रिका" में
सन १८८० में प्रकाशित

राग-संग्रह

जल-बिहार, सारंग

आजु हरि बिहरत जमुना-तीर । १५०
श्यामा संग रंग भार सोहत पाहने भीने चीर ।
प्रथम समागम सकृत् चत प्यारी जब परसत बलबीर ।
उवरत अंग भीनि जल बसनन लाजि भजत तब तीर ।
धीर समी सोहायो लागत लौ सोई धीर समीर ।
'हरीचंद' संगम-गुन गावत छाबि लाखि धरत न धीर । १४

उमरी

आँठलात सँवारिया, मद ते भरी । १५०
काँट काछानि सिर मुकुट बिराजत
काँधे पर सोहै पटुका लहारिया ।
पहुँची बाजु बनमाला अरु
अँगुरिन अँगुरिन सोहै मँदरिया ।
'हरीचंद' मेरे मन बसो सोइ
हरि-राधा सोहै जाकी नगरिया । १२

गोवर्धनपूजा, बिलावल

आजु बन उमगे फिरत अहीर ।
हेरी देन बढत नहिं काहु देखियत जित तित भीर ।
इक गावत इक ताल बजावत एक बनावत चीर ।
एक नाचत इक गाइ खिलावत एक उडावत छीर ।
हमरो देव गोवर्धन पर्वत सुंदर श्याम शरीर ।
कहा करैगौ इन्द्र बापुरो जा बस केवल नीर ।
सात दिवस गिरि कर धरि राख्यो बाम भुजा बलबीर ।
'हरीचंद' जीत्यो मेरे मोहन हारयो इन्द्र अधीर । १३

ग्रीष्म ऋतु, सारंग

एरी फुहारन के दोउ कौतुक में उरभाने ।
धरत फूल फल नीर धार पर देखत रहत लुभाने ।
कबहुँक चकई चलात चपल अध-ऊरध बहु गाँत छाने ।
'हरीचंद' रिभवत सब साँख

मिाल नयजल-कैल बहाने । १४
ये युगल दोउ बैठे हो शीतल छाँह ।
सखी गढ़ीं चारों ओर फूलीं मन माँह ।
तिन बिच प्यारी पिया दिये गल बाँह । १५

बिहार, बिहाग

आजु दोउ बिहरत कुंजर कंत ।
श्यामा-श्याम सरस रंग बाढ़े सुख को लहत न अंत ।
ज्यों ज्यों निसि भीनत रंग बाढ़त होत सुरत की कंत ।
हारत कोउ न अभिरे दोऊ मदन-समर-सामंत ।
तहाँ न जाय सकत साँख-गनहुँ जहाँ कामिनी-कंत ।
'हरीचंद' श्री बल्लभ-पद-बल ताहि अनुभवत संत । १६

श्री नृसिंह चतुर्दशी-बधार्द, सारंग

आजु अपमान अंत ही निरखि भक्त को ।
बैकुंठ बन सिंह बहुत कोप्यो ।
पटाक कर भूमि पै भट्ठाक सिर केश रद
चाभि ओठन नेत्र गगन लोप्यो ।
खंभ को फारि चिक्कारि केहरि-नाद
गर्भिनी-गर्भ गरजन गिरायो ।
सटा फटकारि कै नछत्रगन नभहिं
फेंकि ईत सी उताहि क्रोध छायो ।

कोटि मनु विजु इक साथ ही गिर परी ।

भयो अति घोर भुव सोर भारी ।

सिंधु-जल उच्छल्यो गिर पर्वत-शिखर

वृक्ष जड़ सों सब दिये उजारी ।

देव-दानव-मनुज गिरे भय भांग

वस्त्र फाट गये कान सुधि तनक नाही ।

आजु असमय प्रलय देख शिव चौंक कै

शूल धरि भ्रमत इत उत लखाहीं ।

सृष्टि को क्रम संग जानि बिधि बाधरो

मूँड़ पै हाथ धरि बहुत रोयो ।

दिस्मा दहिबो लगी भयो उलका-पात

रुद्रित मूर्ति तेज अंगन खोयो ।

वस्त मधुकर पिबत नाहि मधु वृक्ष को

गऊ निज बत्स-गन नाहि चाटै ।

हवि अंगन नहि हरत डरत तहँ पौन नहि

गौन कर सकत नभ धूरि पाटै ।

चाकल माया नटी भूलि निज नट-कला

व्रगन-गाति जीव जड़ रोकि लीनी ।

रम शृंगार निज करत ही रहि गई

मनों सब चातुरी हारि दीनी ।

जगन जाको खेल बनत विगुरत तानक

भौह के इत सों उत हलन माँहीं ।

सोई त्रैकोय्यपति आजु कोप्यो जबै

तबै अब सबै कहँ सरन नाँही ।

मारि हारिनाच्छ उर फार कर नखन सों

भार हर भूमि अति शोक टार्यो ।

गोद प्रह्लाद अहलाद-पूरब लियो

चाटि मुख चूम जल नयन डार्यो ।

राज्य दै अभय पद आप पद्मा सहित

गये बैकुंठ जय जगत छायो ।

प्रेम परधान परिनाम प्रेमिन उर ।

भक्त-वत्सल नाम साँच पायो ।

सदा संकटहरन अकर कारन-करन

कृपा-कर नाम जिय जौन धारै ।

सत्रु-संताप-जय-जातना-तापहर अदल

बर घाम निज सो बिहारै ।

सदा प्रभु सर्वदा गर्वहर अभय-कर

जनन-उर सौख्य-कर दुःखहारी ।

पीर 'हरिचंद' की हरहु करुनायतन

त्रिसित कौल काल तब सरनधारी ॥७

बिरह, ठमरी

अकुलात गुजारिया, दुख तें भरी ।

तनिको सुधि तन को नहि जब तें

लागी हारि की तिरछी नजारिया ।

तलाफत रहत बिरह-दुख भारी

देत कोउ नहि पिय की खवारिया ।

'हरीचंद' पिय बिन अति व्याकुल

रोवत सुनी देखि सेजरिया ॥८

बिहाग

आजु रस कुंज-महल में बातयन रैन सिरानी जात ।

जाल रंघ तें भरित चाँदनी चलत मंद कछु सीतल बात ।

सनसनात निसि भिलांमल दीपक

पात खरक बिच-बीच सुनात ।

रगमगे दोऊ भुज दिये सिरान्हे

आलस-बस मुसकात जँभात ।

मधुर बिहाग सुनात दूर सों,

लपटि रहे बिचकित सब गात ।

'हरीचंद' दोऊ रूप-लालची सिंधल

तऊ जागे न अघात ॥९

ग्रीष्म ऋतु, फूल के शृंगार को पद

आजु सखी फूले हारि फूल कुंज माँही ।

प्यारी को सँग लिये दीन्हें गल-बाँहीं ।

फूलन के अंगन सब अभरन अति सोहैं ।

देखि देखि ब्रज-जन के मन को अति मोहैं ।

बिछिया पग राई बेलि चित की गाति हरती ।

पंकज को पायजेब पायजेब करती ।

मदनवान फूलन की काटि किंकनी राजै ।

कालियन की चोली मधि यौवन अति भ्राजै ।

चंपक की कली बनी चंपकली भारी ।

फूलन के हार कंठ सोहत रुचिकारी ।

भाबिया कर फूलन के बाजूबंद दोऊ ।

फूलन की पहुँची कर राजत अति सोऊ ।

फूलन की चूरी इमि कोऊ कर साजै ।

चंदन के हार मनहुँ लपटि लता राजै ।

पल्लव बसी अंगुरन में मुँदरी छाँबि देहीं ।

देखत ही मोहन मन हाथन सों लेहीं ।

करना के करनफूल करन बीच धारै ।

भुमका दोऊ भूमत लाखि मानों मतवारै ।

फूलन को फूलनी नक-बेसर बिच धारी ।
प्यारे को चित्त मनो पोह धर्यो प्यारी ।

मदनवान फूलन की बंदी अनुरागै ।
देखत ही लालन हिय मदन-वान लागै ।
बेना सिर फूलाहि को देखत मन भूल्यो ।
रूप की लता में मनो एक फूल फूल्यो ।

बेनी सिर फूलन की सोहत छाबि छाई ।
अपने कर नंदलाल गुँथ कै बनाई ।
नख-सिख तें फूलन के अभरन भव भारी ।
फूलन के लहंगा अरु फूलन की सारी ।
फूली छाबि देख देख नंदलाल फूल्यो ।
भ्रमर होइ मेरो मन 'हरीचंद' भूल्यो । १०

आजु सखी बृजराज लाडिलो नव दलह बनि आयो ।
फूल सेहरो सीस बिराजै फूलन साज सजायो ।
फूलन के अभरन बिराजत फूलन माल बनाई ।
फूलन चँवर दुरत दोऊ दिस फूल-छत्र सुखदाई ।
घोड़ी सजी फूल के गहने फूल लगाम बनाई ।
फूले फूले सकल बराती तन-धन दैत लुटाई ।
फूले देव विमानन फूले फूलन की भारि लाई ।
'हरीचंद' ऐसी जोरी पै फूलि फूलि बालि जाई । ११

ग्रीष्म, सारंग

आजु नंदलाल पिय कुंज ठाढ़े भये ।
स्रवन श्रुम सीस पै कलित कुसुमावली ।
मनहँ निज नाथ मुखचंद साखि देखकै
खासित आकाश तें तरल तारावली ।
बहत सौरभ मिलत सुभग त्रय-वर्धा पवन
गुंजरत महारस मत मधुपावली ।
तास 'हरिचंद' बृज-चंद ठाढ़े मध्य
राधिका बाम दाक्षिण सुचंद्रावली । १२

मकर संक्रांति

अहो हरि नीको मकर मनाये ।
चित्र चमन धरि भलो लाडिलो पुन्य-समय घर आये ।
कहा परब कियो दियो हान रस तिल तन प्रगट लखाये ।
'हरीचंद' खिचरी से मिलि क्यों कित तिरबेनी न्हाये । १३

श्री महाप्रभु जी की बधाई, सारंग

आजु भयो साँचो मंगल भुव प्रकट श्री बल्लभ सुखधाम ।
करुना-सिंधु सकल रस-पोषक पतित-उधारन जाको नाम

देवी जीवन अभयदान दै रसिक जनन के पूरे काम ।
'हरीचंद' प्रभु मंगल-मूरति
गौर-श्याम तन एक ललाम । १४

प्रबोधिनी बिहाग

आजु सुहाग की राति रसीली ।
गायो नाचो करो बधाई कुंज मॉह छबीली ।
गायत घोड़ी देव मनायत रस वरपत भरपूर ।
'हरीचंद' को टेरी टेरि कै दैत सखी सब भूर । १५

श्री ठाकुरजी की बधाई, बिहाग

आयो समय महा सुखकारी ।
सब गुन-गन- संयुक्त मन-राजत
अतिसय परम सुशोभा-धारी ।
रोहिनि नखत सात सुभ ग्रह सब
कह काहिये उममा मति हारी ।
दिसा प्रसन्न हैसत नभ निर्मल
तारन की बाढ़ी छाबि भारी ।
मंगलमय धरनी सब राजत पुर
आकर बृज गाँव सुखारी ।
नदी प्रसन्न सलिल तालन की
कमलन सों भइ शोभा भारी ।
द्विज-आर्णकुल सन्नाद करन लागे
बन-राजी फूलानि फुलवारी ।
पुन्य-गंध लै बह्यौ महासुभ बायू
सर्वाधि सूचि त्रिविध बयारी ।
द्विज जाचन की साँत-आर्गनि
सब प्रगट भई कुंज नें न्यारी ।
असुर-द्रोह सब साधू-जन के
मन सुप्रसन्न भये ता धारी ।
अजन जनम को समय जानि कै
वर्जित लज्जित सब दुन्दुभि भारी ।
गाइ-उठे गंधर्ब कन्नर चारन
साध तृप्य मन धारी ।
नाचन लगीं देव असुर सह अति
प्यारी सब घर की नारी ।
मुनि-देवता महा आनंदित बरसत
फूल भारि भारि धारी ।
सागर के गरजन के पीछे
मंद मंद गरजे जल-धारी ।
आधी राति उदित भयो चंद्रा
आनंद करत हरत आँधियारी ।

दैव-रूपिनी देवी वृ तें प्रगट
भये श्री गिरिवरधारी ।

निराख नयन आनंद सिंधिल
मे 'हरीचंद' बालहारी १६

बाल-लीला, असावरी

आबु लख्खी आँगन में खेलत जसुदा जी को बारो री ।
पीत भंगुलिया तनक चैतनी मन हरि लेत दुलारो री ।
अति सुकुमार चंद्र से मुख पै तनक डिठौना दीनी री ।
मानहुँ श्याम कमल पै इक आँल बैठो है रंग-भीनो री ।
उर बचनहा बिराजत सखि री उपमा नहिं काह आवै री ।
मनु फूली अगस्त की कालिका सोभा अतिह बढ़ावै री ।
छोटी छोटी सीस लुटारिया भ्रमरावल जनु आई री ।
तैसी तानक कुलहइया ता पै देखत अति सुखदाई री ।
छुद्रपाटिका कटि में सोहत सोभा परम रसाला री ।
मनहुँ भवन सुंदरता को लाखि बाँधी बंदन-माला री ।
पीत भंग्गा अति तन पै राजत उपमा यह बनि आई री ।
मनु घन में दामिनि लपटानी छाबि कछु बरनि न जाई री ।
कोटि काम अभिराम रूप लाखि अपनो तन मन बारै री ।
'हरीचंद' बृजचंद-चरन-रज लेत बलैया हारै री १७

दान-लीला, टोड़ी

ऐसी नहिं कीजै लाल, देखत सब बृज की बाल,
काहे हरि गये आज बहुतहिं इतराई ।
सूधे क्यों न दान लेव, अंचरा मेरो छाँड़ देव,
जामें मेरी लाज रहै करो सो उपाई ।
जानत बृज प्रीति सबै, औरह हँसेगे अबै,
गोकुल के लोग होत बड़ेई चवाई ।
'हरीचंद' गुप्त प्रीत, बरसत अति रस की रीति
नेकहू जो जानै कोउ प्रकटत रस जाई १८

मकर संक्रांति, टोड़ी

करत दोउ यहि हित खिचरी दान ।
जामें सदा मिले रहैं ऐसेहिं गौर-श्याम सुख-खान ।
चित्र बस्त्र धरि परम नेह सों जोरि पान सों पान ।
'हरीचंद' त्योहार मनावत सखि-जन वारत प्रान १९

ग्रीष्म ऋतु, सांरंग

केसर-खोर श्याम-सुंदर-तन निरखत सब मन मोहै ।
मनु तमाल में चंपक बेली लपटि रही अति सोहै ।
मनु घन में दामिनि लपटानी उपमा को कवि को है ।
'हरीचंद' बन तें बनि आवत बृज-तिय मुख-छाबि
जो है २०

प्रबोधिनी, यथा

कुंजन मंगलचार सखी री ।
थापे दोन कलास बधाये तोरन बाँधी द्वार ।
गावत सबै सोहग छबौली मिलि सब बृज की वाम ।
बन्ना बनि आयो नंद-नंदन मोहन कोटिक काम ।
रंग-रंगौली घोड़ी चाढ़ि कै सिहरो सोहत सीस ।
देत असीस सासुरे की जब जीवो कोटि बरीस ।
बन्ना बह पास बैठारी जोरि गाँठ इक साथ ।
'हरीचंद' को देत बधाई दुर्लानन अपने हाथ २१

दीनता, यथा-रुचि

गुन-गुन बिटठल के कहैं लागि कोउ गावै ।
अमित महिम लघु वृद्धि सों कछु कहत न आवै ।
दैवी-जन अपने किये कलि जीव उबारै ।
माया-तिमिर मिटाय कै खल कोटि उधारै ।
अंगीकृत जाको कियो ताको नहिं त्याग्यो ।
अपराधहि मान्यो नहीं भक्तन अनुराग्यो ।
सरन परयो त्रय ताप को मेट्यो छन माहीं ।
'हरीचंद' की गाँह भुजा यामें सक भाहीं २२

बिहाग

गावत गोपी कोकिल-बानी ।
श्रीबृषभानुराय से राजा कीरति सी जाकी पटरानी ।
गावत सारद नारद सुक मुनि सनकादिक ऋषि जानी ।
गावत चारुउ वेद शास्त्र पढ़ काह काह अकय कहानी ।
गावत गुन अज व्यासादिक शिव गीत परम रस-सानी ।
मन क्रम बचन दास चरनन की गावत 'हरीचंद'
सुखदानी २३

दान-लीला, सांरंग

ग्वालिन दै किन गोरस दान ।
करु न पुन्य यह गोवर्धन गिरि तीरथ सों बढ़ि मान ।
गहन चिकुर मुख पूरन पै छाया सम लखु आन ।
बड़ो परब तुव भाग मिल्यो है करु न बिलम्ब सुजान ।
सिसुता पूरि प्रकट प्रति पद नव जेबन संधि-समान ।
'हरीचंद' कंचन-अंगन दै हरि सुपात्र पहिचान २४

अशीष, यथा-रुचि

चिरजीवो यह जोरी जुग-जुग चिरजीवो यह जोरी ।
श्रीजसुदानंदन मनमोहन श्रीबृषभानु-किशोरी ।
नित-नित ब्याह नित्य ही मंगल नित-नित सुख अति होई ।
श्री बृंदावन-सुख-सागर को पार न पावै कोई ।

एक रूप दोउ एक बयस दोउ दोऊ चन्द्र-चकोरि ।
'हरीचंद' जब लौ ससि-सूरज तब लौ जीयो जोरि । २५

व्याहृला, यथा-रुचि

चलो सखी मिलि देखन जैये दुर्लाहिन राधा गोरी जू ।
कोटि रमा मुख-छाँव पै वारी, मेरो नवल किशोरी जू ।
घँघरी लाल जरकसी सारी सोधे भीनी चोली जू ।
मरवट मुख में शिर पै भौरी मेरी दुर्लाहिया भोली जू ।
नकबेसर कनफूल बन्यो है छवि कापे काँह आवै जू ।
अनवट बिछिया मुँदरी पहुँची दूल्ह के मन भावै जू ।
ऐसी बना-बनी पै री साँख अपनो तन मन वारी जू ।
सब सखियाँ मिलि मंगल गावत 'हरीचंद' बलिहारी जू । २६

श्रीस्वामिनी जी की बधाई

चलीं बधाई गावन के हित सुंदर बृज की नारी ।
अंचल उड़त हंस गति चंचल कर लै मंगल धारी ।
पीत बसन कटि कसन रसन छवि रसनि कहौ किमि गाई
दामिनि पै संध्या-धन तापै फिरि दामिनि लपटाई ।
नूपुर रुनित भनित कंकन कर हार चुरी मिलि बाजै ।
मनु आनंद भार सब तन भूपन गावत साजत राजै ।
चोमुख चारु दीप थालन पर मंगल साज सजाई ।
मनहँ सनाल कमल पर कमला कनक-लता चढ़ि धाई ।
धावत खसत सुमन बेनी तें उपमा कह काँव हारै ।
मनु कोमल पग गौनि चुकरगन फूल पाँवड़े डारै ।
ऊँचै सुर गावत छवि छावत बरसावत रस भाई ।
इक सौ इक बढ़ि अतिहि उतायल कीरति-मरिदर आई ।
निरखत मुख सुख अत हिय बाढ्यो वारि सुनत मन दीनों ।
आज सखी नंद के घर को सुख साँच बिधाता कीनों ।
नाचत मुदित करत कौतूहल गावत दे कर-तारी ।
'हरीचंद' आनंदमय आनंद जुगल इकत्र निहारी । २७

बिहार, केदार

चले दोउ हिलि मिलि दे गल-बाहीं ।
फैली घटा चढ़ै दिशि सुन्दर कुंजन की परछाहीं ।
अपने कर पिय श्रम-जल पोछत प्यारी कह नहिं नाहीं ।
'हरिचंद' बिजन डोलावत श्रम
लाखि विधि हरि आदि सिंहाहीं । २८

रथ-यात्रा, सारंग

रथ-यात्रा चक्र विचित्र विचित्रित परम
जगत-विजयी जयति कृष्ण को जैत्र रथ ।
अति तरलतर बलाहक शैव्य सुग्रीव मानपुष्प

तुरंग योजित चलत पथ सुपथ ।

फहरत ध्वज उड़त नव पताका परम कलास
कल इन्द्र सम सकल चमकत अकथ ।
चक्र ता पर रथ्यो तासु तल वायु सुत विनत
विनता-सुअन गर्राव और करत हथ ।
खम कृवर छत्र चारु डाँड़ी चारु विविध
मनि-जटित उचारित वेद शब्द कथ ।
भौम भनकत करत घोर घंटा घंटा घने
धुंवरु धिरत फिरत मिलि एक जय ।
भूखी सूरज-मुखी सुखी लाँखि जन दूखी
दैत्य-दल भलमलत भालारन मुक्त तथ ।
बैठि दारुत तदारुत करत अश्व को चलात
मन वेग-सम वेगाति शब्द नथ ।

देव-ऋषि करत जय-शब्द मुरछल दुरत
सूत बंदी विरत कहत बहु भाँति गथ ।
धकित 'हरिचंद' दृग सरस सोभा निखर
हराष सुमनन वर्राष लाढ्यो चारो अरथ । २९

बाल लीला, यथारुचि

छोटो सो मोहन लाल छोटे-छोटे ग्वाल बाल
छोटी-छोटी चौतनी सिरन पर सोहैं ।
छोटे-छोटे भँवरा चकई छोटी-छोटी लिये
छोटे-छोटे हाथन सों खेलैं मन मोहैं ।
छोटे-छोटे चरन सों चलत घुटुरुवन
चढ़ैं ब्रज-बाल छोटी-छोटी छवि जोहैं ।
'हरीचंद' छोटे-छोटे कर पै माखन लिये
उपमा बरनि सकैं ऐसे काँव को हैं । ३०

आश्विष, बिहाग

जुग जुग जीवो मेरी प्रान-प्यारी राधा ।
जब लौ जमुन-जल रवि ससि नभ थल
तब लौ सुहाग लहौ सुजस अगाधा ।
नित नित रूप बाढ़े परस्पर प्रेम गाढ़े
नवल बिहार करि हरी जन-बाधा ।
'हरीचंद' दे असोस कहत जीओ लख बरीस ।
तुम्हरे प्रगट भये पूरी सब साधा । ३१

गणेश चतुर्थी को पद, राग यथा-रुचि

उय उय गोपी गणेश बृंदावन चितामनि
ऋद्धि-सिद्धि दायक ब्रजनाथ प्रान-प्यारे ।
बानता कुच-मोदक गहि बार-बार केलि-करन
प्रिया-बेनिका-भुंजग हस्त-कंज धारे ।
मान-समय पद परसत अंकुसादि चिन्ह लासत

हंसत अभय वरद परम प्राण के रखवारे ।
शुंड दंड बाहु मेल करन सँग सुगज कौल
करत हैं 'हरिचंद' निरख हरषि प्राणप्यारे ॥३२॥

नित्य, विहाग

जय श्री मोहन-प्राण-प्रिये ॥५०॥
श्री वृष-भानु-नान्दिनी राधे ब्रज-कुल-तिलक त्रिये ।
जा पद-रज सिव अज बंदत नित ललचत रहत हिये ।
तिन हरि सँग बिहरत निसक निसि-दिन गलबाह दिये ।
जा मुख-चंद-मरीच देख सब ब्रज-नर-नारि जिये ।
तिनकी जीवन-मूरि हौइके सहजहि स्वयस किये ।
इंद्रादिक दिगपति जाके डर बरतत रुखहि लिये ।
'हरीचंद' सो मान जासु लाखि सहजहि बहुत भिये ॥३३॥

स्फुट, यथा-रुचि

जुरे हैं भूठे ही सब लोग ।
जैसे स्वामी परिकर तैसे तैसे ही संयोग ॥५०॥
वे तो दीनानाथ कहाये कारि इत उत कछु काज ।
एक एक की लाख इन्होंने गाई तजि के लाज ।
जुरे सिद्ध साधक ठगिया से बड़ो जाल फैलायो ।
मूँडयो जिनहैं मिटायो तिनको जग सों नाम धरायो ।
आजु नाहिं तो कल या आसा ही में दीनहिं राख्यो ।
'हरीचंद' मन लै निरमोहित श्वेत-कृष्ण नहिं भाप्यो ॥३४॥

दीनता, देवगन्धार

जो पै श्री बल्लभ-सुत नहिं जान्यो ।
कहा भयो साधन अनेक मै करिके बृथा भुलान्यो ।
बादि रसिकता अरु चतुराई जो यह जीवन जान्यो ।
मर्यो बृथा विषयारस लंपट कठिन कर्म में सान्यो ।
सोइ पुनीत प्रीति जेहि इनसों बृथा वेद मथि छान्यो ।
'हरीचंद' श्रीबिटठल बिन सब जगत भूठ करि मान्यो ॥३५॥

तथा, आसावरी

जे जन अन्य आसरो तजि श्री बिटठलनाथ हि गावैं ।
ते बिन श्रम थोरहि साधन में भव-सागर तरि जावैं ।
जिनके मात-पिता-गुरु बिटठल और कहैं कोउ नाहीं ।
ते जन यह संसार-समुद्रहि बन्स-खुरन करि जाहीं ।
जिनके श्रवन कीरतन सुमिरन बिटठल ही को भावैं ।
ते जन जीवन-मुक्त कहावहिं मुख देखे अघ जावैं ।
जिनके इष्ट सखा श्रीबिटठल और बात नहिं प्यारी ।
तिनके बस में सदा सर्वदा रहत गोबर्द्धन-धारी ।
बिन मन-काय-करम-वच सब बिधि श्रीबिटठल-पद पूजो ।
ते कृत-कृत्य धन्य ते कलि में तिन सम और न दूजो ।

जो निसि-दिन श्री बिटठल बिटठल बिटठल ही मुख भावैं ।
'हरीचंद' तिनके पद की रज हम अपने सिर राखैं ॥३६॥

बधाई, राग कान्हरा

जो पै श्री राधा रूप न धरती ।

प्रेम-पंथ जग प्रगट न होतो ब्रज-वर्निता कहा करतीं ।
पुष्टिमार्ग थापित को करतो ब्रज रहतो सब सूनी ।
हरि-लीला काके सँग करते मंडल होतो ऊनी ।
रास-मध्य को रमतो हरि रास रासिक सुर्काव कह गाते ।
'हरीचंद' भाव के भय सों भाव किहिके सरनहिं जाते ॥३७॥

जय जय जय जय जय श्री राधा ।

जब तें प्रगट भई वरसाने नासी जन के तन की बाधा ।
सब सखि आनंदित मन में अति चरन-कमल अवराधा ।
'हरीचंद' वृजचंद पिया को प्रेम-पंथ जिन साधा ॥३८॥

श्री रामनौमी व दशहरा का कीर्तन, सारंग

जयांत राम आभराम 'छवि-धाम'

पूरन-काम श्याम-वपुबाम सीता-विहारी ।
चंड कोदंड - बल खंड-कृत दनुज-बल

अनुज-सह सहज सुभ रूपधारी ।
रक्ष-कुल अनल बल प्रबल पर्जन्य सम

धन्य निज जन - पक्ष रक्षकारी ।
अवध-भूषन समर बिजित दूषन

दुष्ट बिगत दूषन चतुर धर्मचारी ।
छर प्रखर आंगन लंक दृढ़ दुर्ग

दल दलमलन बाहु मारीच-मारी ।
वैश्रवन अनुज घट-श्रवन रावन-शमन

शमन भय - दमन 'हरिचंद' वारी ॥३९॥

जगाने के पद

जागो मेरे प्राण-पियारे ।

बाल बाल गई दिखावो ससि-मुख उठो जगत उँजियारे ।
मेढहु बिरहु-ताप दरसन दे बोलहु मधुरे बैन ।
आलस भरे रैन रंगराते खेलहु पंकज-नैन ।
मेरे सरबस जीवन माधव प्रात भयो बलि जागो ।
कछु अलासाय जैभाइ मंद हँसि 'हरीचंद' गर लागो ॥४०॥

प्रबोधनी के पद, यथा-रुचि

जागो मंगल-मूर्ति गोविंद बिनय करत सब देव ।
तुव सोये सबही जन सोयो लखहु न अपनी भेव ।
बंदी वेद खरे जस गावत अस्तुति करत जुहारी ।
नारद सारद बीन बजावत जय जय बचन उचारी ।

किन्नर अरु गंधर्व अपसरा तुम्हारे ही उस गावैं ।
बाजन विविध बजाइ तुम्हें सब करि मनुहारि जगावैं ।
जग के मंगल काज होत नहिं बिनु तुव उठे कृपाल ।
तुव जागे सबही जग जागत तासों उठहु दयाल ।
निद्रा तजहु रमापति केशव चहुँ दिसि मंगल माचै ।
पंकज-नयन बिलोकि विमल उस 'हरीचंद' बाचै ॥४१॥

प्रीति अतु

भीनो पिछोरा सोहै आबु आति भीनो पिछोरा सोहै ।
चंदन लेप नैदनंदन-तन देखत ही मन मोहै ।
पारिजात मंदार रही लसि फूल-छरी कर लीन्है ।
सौम्य समय वन तें बनि आवत गोधन आगे कीन्है ।
गोरज झुरित अलक सब सुंदर ब्रज-बालन दरसायो ।
'हरीचंद' मुख-चंद देखके बासर-ताप नसायो ॥४२॥

दीनता, यथारुचि

तुम सम नाथ और को करिहैं ।
हमसे हीन दीन जनहु पै कौन कृपा बिसतरिहै ।
को निज बिरद सम्हारन कारन दौरि दीन दुखहरिहै ।
जानि क्षुधित 'हरिचंद' असन को भेजि क्षुधा परिहारि है ॥४३॥

अशीष, कान्हा

तिहारो घर सुबस बसो महारानी ।
कोरति जू तुम्हरे घर प्रगटैं वृज-जननी ठकुरानी ।
जाके भये सकल सुख बरसै जिमि सावन को पानी ।
अति आनंद भयो गोधन में हम यह आगम जानी ।
कोउ गावै कोउ देत बधाई वेद पढ़त मुनि जानी ।
'हरीचंद' प्रगटी श्री राधा मोहन के मन-मानी ॥४४॥

दीनता, यथारुचि

तेई धनि धनि या कलयुग में जिन श्री जाने बिटठलनाथ ।
जीवन जगत सुफल तिनहीं को जौन बिकाने इनके हाथ ।
धरम-मूल इक इनकी पद-रज इनके दासहि सदा सनाथ ।
भक्ति-सार इनको आराधन इनहीं को गावत श्रुति गाथ ।
इनके बिनु जे जीवत जग में ते सब श्वास लेत जिमि भाथ ।
'हरीचंद' चलु सरन इनहिं के धरि कै चरनन पर निज ॥४५॥

सेहरा यथा-रुचि

झलह श्री बृजराज फूलि बैठे कुंजन आज ।
फूलन को सेहरो फूलन के अमरन के सब साज ।
फूलि सखि गीत गावैं देव फूल बरसावै फूलयो सकल समाज ।
फूली श्रीराधाप्यारी देखि फूली बृजनारी 'हरीचंद' ॥४६॥

फूलयो आति आज ॥४६॥

दान-एकादशी और बावन द्वादशी

दान लेन है ही जन जान्यो ।
कै तुम नन्दराय के ढोटा कै बावन बलिं छल जान्यो ।
तीन पैर कहि छोटे पग सों उन छल करि कै देह बढ़ाई ।
तुम गोरस के मिस कछु और रस लीनो छलिकै बृजराई ।
वे छोटे कपटी तुम छोटे एकाहि से विधि रचे सैवारी ।
'हरीचंद' वे तो बावन रहे तुम छप्पन निकसे गिरधारी ॥४७॥

दान एकादशी

देखे आबु अनोखे दानी ।
जाचक-पन में इती ढिठाई लाल कौन यह बानी ।
रार करत कै गोरस मांगत सौ कछु बात न जानी ।
'हरीचंद' कुल-दीपक ढोटा कौन रीति यह ठानी ॥४८॥

नित्य, टोड़ी

देखी जू नागर नट, ठाढो जमुना के तट,
पर मग कोउ चलन न पावै ।
काहू को हरत चीर, काहू को गिरावै नीर,
काहू की ईडुरी दुरावै ।
श्याम बरन तन सीस टिपारो
सोभा कहि नहिं आवैं ।
'हरीचंद' हंसि हंसि नयनन आवत
तन-मन सबहि चोरावै ॥४९॥
मकर संक्रांति का और संक्रांति के दिन
गायबे को पद,

राग यथा-रुचि

दुतिय नृप भानु छठी तजु मान ।
करन चतुर्थ सदा सौतिन हिय कटि पंचमी सुजान ।
तो सम माती नाथ और कोउ नव मन दम तू बाल ।
तुव बिन आठ वेदना पावत व्याकुल पिय नैदलाल ।
दसम केतु पीड़त पिय कों अति निज दुख अग्नि बढ़ाय ।
करु अभियेक अमृत एकादस कुच पिय के हिय लाय ।
द्वादश बिनु जल तिमि हरि तुव बिन लग तनि प्रथम न नेक
'हरीचंद' हवै तृतिय पिया संग करु संक्रमन विवेक ॥५०॥

नित्य, यथा-रुचि

दोउ मिलि पौढ़े सुख सों सेज ।
करत भावती रस की बतियाँ बाढ़े मदन मजेज ।
बतियन ही कछु अनरस हवै गयो प्रिया रही करि मान ॥५१॥

बोलन नहिं कछु मोन हवै रही मौह जुगल-धनु तान । ५१

व्याहुला, यथा-रुचि

दोउ जनु गाँठि जोरि बैठारे ।

बिहँसत दोउ मुख देखि परस्पर चितवत होत सुखारे ।
दुलह दुलहिन को आनंद लखि बढ़यो अनंद अपार ।
'हरीचंद' को पकरि नचावत गारि देत ब्रज-नार । ५२

प्रीष्म श्रुतु, यथा-रुचि

दोउ मिलि बिहरत जमुना-तीर में ।
करि कर के जलयंत्र चलावत भीजि रही लट नीर में ।
इत उत तरत सखी जन सोहत मनहुँ कमल जल भीर की
छीट उड़ावत हँसत हँसावत बोलनि मनु पिक कीर की ।
साँवरे अंग गौर तन सोहत लपटनि भीजे चीर की ।
'हरीचंद' लखि तन मन वारत

छवि राधा-बलबीर की । ५३

बिरह

न जानी ऐसी हरि करिहैं ।
हमरे द्वे द्विजन के द्वे हैं दया न जिय धरिहैं ।
होत सामनो जिनि हँसि चितवत भाव अनेक कियो ।
तिन अब मिलतहि सकुचि इतै सों मुखहु फेरि लियो ।
मान्यो तिन्हें काम नहिं हमसों तासों निठुर भये ।
'हरीचंद' ब्रजनाथ नाम की लाजहि ज्यों मिटये । ५४

नित्य, यथा-रुचि

नागरी रूप-लता सी सोहै ।
कमल सो बदन पल्लव से कर पद देखत ही मन मोहै ।
अतसी-कुसुम सी बनी नासिका जलज-पत्र से नयन ।
विम्ब से अधर कुन्द दन्तावलि मदन-बान सी सयन ।
गाल गुलाब कान भुमका मनु करनफूल के फूल ।
बेनी मानों फूल की माला लखि के मन रह्यो भूल ।
बाहु सुढार मृनाल-नाल सम फूल सरिस सब अंग ।
फूलन ओट लगे हैं द्वे फल बाढ़त देखि अनंग ।
जानु बनी रम्भा की खम्भा सोभा होत अपार ।
गूलरि-फूल-सरिस कटि राजत कविजन लेहु बिचार ।
नारंगी सी एँड़ी राजत पद-तन मनहुँ प्रवाल ।
और आभरन बिबिध फूल बहु कर पहुँची उर माल ।
चम्पे सी देह दमक दवना सी चमक चमेली रंग ।
मालति महल लपट अति अवत कोमल सब अंग अंग ।
रसिक सरोमनि नंदलाल सोह भँवर भये हैं आह ।
देखि देखि छवि राधा जू की हरीचंद' बलि जाह । ५५

जल-बिहार

नाव चढ़ि दोऊ इत उत डोलें ।
छिरकत कर सों जल जत्रित करि गावत हँसत कलोलें ।
करनधार ललिता अति सुंदर सखि सब खेवत नावें ।
नाव-हलनि में पिया-बाहु में प्यारी डरि लपटावें ।
बेहि दिसि करि परिहास भुकावहिं

सबही मिलि जल-याने ।

तेहि दिसि जुगल सिमिटि भुकि

परही' सो छवि कौन बखाने ।
ललिता कहत दाँव अब मेरी तू मों हाथन प्यारी ।
मान करन की सौह खाइ तो हम पहुँचावें पारी ।
हँसत हँसावत छोट उड़ावत बिहरत दोऊ सोहैं ।
'हरीचंद' जमुना-जल फूले जलज सरिस मन मोहैं । ५६

बधाई, यथा-रुचि

प्रकटे रसिक जनन के सरबस ।
जसुमति-उदर अलौकिक वारिधि
श्याम कला-निधि निध-रस ।
पसरति चन्द्रकला सो पूरव उज्ज्वल बिमल बिसद जस ।
'हरीचंद' ब्रज-बधू चकोरी सहजहि कीन्ही निज बस । ५७
प्रगटे प्राननहूँ ते प्यारे ।
नंद-भवन आनंद-कलानिधि जसुमति मात दुलारे ।
आजु भयो साँचो आनंद भुव फले मनोरथ सारे ।
'हरीचंद' गोपिन के सरबस सब ब्रज के रखवारे । ५८

वियोग

पिया बिनु बीत गये बहु मास ।
दिन दिन मदन सतावत अति ही बाढ़त बिरह-हरास ।
छन छन छीजत छकत छबीली छलकत छोड़ि अवास ।
बेगि कृपा करि आवहु माधव 'हरीचंद' गुन-रास । ५९

दूती, यथा-रुचि

प्यारी मो सों कौन दुराव ।
कहि किन अरी अनमनी सी क्यों काहे को जिय चाव ।
काहे को असुवन सों मुख धोवत बारी नेक बताव ।
'हरीचंद' क्यों कहत न मोसों प्यारी लाइ मिलाव । ६०

नित्य बिहार, बिहाग चौताला

प्यारी के कुंज पिय प्यारो आवत
हरिहि धाय भुजन भरि लीनो ।
उमँग मिले छतियन सों लपटे दोऊ
चलत न मारग रुक्यो रंग-भीनों ।

जित की तित राह खरी सखियाँ
सब छूटत भूजन अलिंगन दीनो ।
'हरीचंद' जब बहुत सँभराये तब
क्योंहँ गमन मलहन में कीनो । १६१

विहाग तथा

प्यारी लाजन सकुची जात ।
ज्यों ज्यों रति प्रतिबिंब सामुहे आरसि माँह लाखात ।
कहत लाख रीह दूर राखिये बल करि कर्पत गात ।
'हरीचंद' रस बढ़त अधिक अति
ज्यों-ज्यों तीय लजात । १६२

संक्रान्ति, यथा-रुचि

प्यारे इतही मकर मनावहु ।
ताली खिचरी सुखद अरोगी हम कहँ सुख उपजावहु ।
बड़ो परब है आजु श्याम घन कहँ न चित चलावहु ।
'हरीचंद' मिलि देहु महा सुख मेरी लगन पुजावहु । १६३
प्यारे जान देहौ आज ।
कोटिन मकर करो नहि छाँड़ौ प्राणनाथ ब्रजराज ।
मीन मेख बिनु बात करत तुम कहँ मिथुन ललचाने ।
धनि धनि पिय तुम तुल नहि दूजो सबके घटन समाने
करकत हिय बीछी सी बातें सौतिन सँग जो कीनी ।
तासों राखौ लाय हिये अब करि करि अधिक अधीनी ।
तो वृषभानु राय की कन्या जो अब तुमहि न छाँड़ौ ।
बड़ो परब यह पुन्य उदय मोहि मिलि तुमसों रँग माँड़ौ ।
दक्खिन होन देउँ नहि कबहूँ करी लाख चतुराई ।
'हरीचंद' मेरे अयन विराजौ सदा अबै बृजराई । १६४
पिया सों खिचरी क्यों तू राखत ।
कहा मान करि बैठी रही है कछुक बचन नहि भाखत ।
यह संक्रम खिचरी को आली मानहि दूरि न राखत ।
'हरीचंद' पिय सों खिचरी सी मिलि
क्यों रस नहि चाखत । १६५

प्यारी जू के तिल पर हौ बलिहारी ।
सब सखियन की डीठि डिठौना रति-रतिपति मद-हारी ।
श्याम सरूप बसत बनि सूछम सोह दरसावत प्यारी ।
'हरीचंद' हरि पीर-मिटावन एक यहै गुनकारी । १६६

परंपरा छप्पे

प्रथम नौमि गोपी पति-पद-पंकज अरुनारे ।
पुनि शिव-नारद-व्यास बहुरि सुक मुनि मतवारे ।
द्विष्णु स्वामि पुनि ब्रह्म विष्णुमंगल-पद बंदत ।
श्री यल्लभ-चरनारविंद जुग नौमि अनंदत ।
श्री बिटठल तिनकी दोऊ बिधि संतति जो अबलौ प्रगत
तेहि बंदत नित 'हरीचंद' यह परंपरा मत की उघट । १६७

जाड़े में सैन समय गाइबे के पद

प्यारी को खोजत है पिय प्यारो ।
मिलि रह दीपावलि मैं भिल्लिमिलि फैलों वदन उजारो ।
नूपुर-धुनि सुनि जानि नवेली गहि लयायो पिय न्यारो ।
'हरीचंद' गर लाइ मनायो दीप-दान त्योहारो । १६८

बधाई

प्रगटी सुंदरता की खान ।
श्री वृषभानु राय के मींदन राधा परम सुजान ।
गावत गोपी गीत बधाई बाजत तूर निसान ।
अंबर देव फूल बरसावत चढ़ि चढ़ि दिव्य बिमान ।
जाचक भये अजाचक सिंगरे पाइ सर्बिधि सनमान ।
'हरीचंद' ब्रजचंद पिया की जोरी अति सुखदान । १६९

ग्रीष्म ऋतु में, राग वृंदावनी सारंग

प्यारी मात डोलै ऐसी धूप में ।
तेरे मैं तो वारी गई री ।
जाके हेतु फिरत तू बन बन सो तोहि आपुहि बोलै ।
तेरे मैं तो वारी गई री ।
चालि किन कुंज उसीर-महल तू करु पिय संग कलोलै ।
तेरे मैं तो वारी गई री ।
'हरीचंद' मिलि ठीक दुपहरी सुरति अमृत रस धोलै ।
तेरे मैं तो वारी गई री । १७०
पिय मेरे अंकन सुरथ विराजौ ।
सुरंग चूनरि भालरि भूमत मोती-लर बहु साजौ ।
किंकिन कलहु घटिका बाजनि चँवर चिकुर चल सोहै ।
अंचर व्यजन चलनि मनमोहन सबही बिधि जिय मोहै ।
कोक-कला कल चक्र चपलवर तुरंग उछाह लगाये ।
नेह-डोर-बल सेज-भूमि पै करि मनुहार चलाये ।
अधर-सुधा-मधु मेंट करौंगी स्वेद कुसुम बरसाई ।
'हरीचंद' बलि बेगि पधारौ जानि-सिरोमनि राई ।

नित्य, राग घट

प्रात समय उठतहि श्रीवल्लभ यह मंगलमय लीजै नाम ।
कोटि बिघन-वारन पंचानन सब बिधि समरथ पूरन काम ।
अघ-नासन करुनानिधि दीनानाथ पतितपावन सुखधाम
सुमिरन मात्र हरन जन-आरति
मोहन कोटि कोटि रति-काम ।
रहिये इनकी सरन सदा चलि
बिकि जेये इन कर बिनु दाम ।
'हरीचंद' निरभय इन चरननि

छत्र-छाँह कीजै विश्राम । १७२

गरमी में सेहरे को पद, राग यथा-रुचि
फूल्यो सो बल्लह आबु फूल ही को साजे साज

फूल सी दुलही पाइ फूल्यो फूल्यो डोले ।
केसरी बन्यो है बागो मोनि की कोर लागे

फूल भरै जब वह मुख बोले ।
फूल को सिहरो सीस फूलन की मालकंठ
फूले फूले नयन दोऊ लगे अनमोलै ।

'हरीचंद' बलिहारी निज कर गिरिधारी
कली सी दुलहिया को घूँघट खोलै ॥७३॥

फूलहु को कंगना नहीं छूटत कैसे हो बलबीर जू ।
जानि परी सब आजु तुम्हारी नामहिं के रनधीर जू ।
दूध पिवाओ जसुदा मेया जा दिन कों सो आयो ।
चोर चोरि के माखन खायो सो बल कहाँ गँवायो ।
तारी दै दै हँसी सखी सब आजु परी मोहिं जानी ।
सुनि कै तिनकी बात दुलहिया घूँघट में मुसक्यानी ।
कोटि जतन कोऊ करि हारौ लागी लगन नहिं टूटै ।
'हरीचंद' यह प्रेम-डोलना को कैसे करि छूटै ॥७४॥

फूल को सिंगार करत अपने हाथ प्यारो ।
फूलन की कलियन को आभरन सँवारो ।
पाटी पारि अपने हाथ बेनी गुथि बनावै ।
सीसफूल करनफूल लै लै पहिरावै ।
कंचुकि पहिरावत मैं चपलाई कछु कीनी ।
प्यारी मुसकाय आँखि नीची करि लीनी ।
किंकिन पहिराय भवा लहंगा पहिरायो ।
देखि देख मुदित होत प्यारो मन-भायो ।
पायल पहिरावन को चित्त जवै कीनो ।
प्राण-प्यारी सोचि चरन तब छिपाय लीनो ।
प्यारी को सँकोच जानि प्यारे इमि भाख्यो ।
मान समय कोटि बार इनहिं सीस राख्यो ।
पायल मग बाँधि फूल-माला पहिराई ।
अपने कर नंदलाल आरसी दिखाई ।
प्यारी तब धाई पिया-कंठहि लपटाई ।
'हरीनंद' बार बार लखिकै बलि जाई ॥७५॥

रास के पद

फिरि लौजै वह तान अहो पिय फिर लौजै वह तान ।
नि नि ध ध प प म म ग ग रि रि सा सा मोहन चतुरसुजान
उदित चंद्र निर्मल नभ-मंडल थकि गये देव-बिमान ।
कुनित किंकिनी नूपुर बाजत भनभन शब्द महान ।
मोहे शिव ब्रह्मादिक वहि निसि नाचत लखि भगवान ।
'हरीचंद' राधा-मुख निरखत छूट्यो सुर-तिय मान ॥७६॥

विहार, बिहाग

बैठे दोउ अपने सुख मिलि ।

ऊँचे महलन के चौबारे

सरद-चाँदनी चहुँ दिसि रही खिलि ।

प्रिया करत कछु बिनय लाल सुनि
सहि न सकत जिय बिबस जात हिलि ।
कहि बस बल 'हरिचंद' अंश पर
दुरत अघर में अमर रहत रिलि ॥७७॥

अगहन मे राजभोग समय, सारंग

बारो असि मेरो लाल सोइ उठत प्रातकाल
कहा तीर कैसे चोर भूठही अँगराती ।
चोरी लाइ छिनारो लावत

तुम ग्वालिन मद-माती ।
इहि मिस नित उठि देखन आवत
अपने मन क्यों नहिं समुझावति ।

योवन के रस चूर फिरत
तूम घर घर में इतराती ।

'हरीचंद' धरन जाहु, लालहिं मति दोष लाहु,
कहत बात क्यों बनाइ कापे इठलाती ॥७८॥

बिहार, केदार

बैठे लाल जमुना जू के तट पर ।

ग्रीष्म ऋतु जान अति सुख माना

मान संग सब गोपी चतुरतर ।

व्यजन चँवर दुरत चहुँ दिसि तें

सोभित सुभग नवल वर ।

'हरीचंद' चंद-बदन हरि की छवि लखि
कोटि काम वारि गयो एक एक पद-नख पर ॥७९॥

तथा, कलिंगड़ा

बीती निसि तिय सोवन दोजै यह ललिला लै बीन बजायो ।
चौकि परे दोउ भोर जानि तब रसमसे नैननि आलस आयो
सीरे जानि हार उर के पिय करि मनुहार तियाहि सुनायो ।
'हरीचंद' संगम-सुख-शोभा

सो कैसे कहि जात सुनायो ॥८०॥

रास को पद, भैरव

बृंदावन उज्जल वर जमुना-तट नंदलाल
गोपिन संग रहस रच्यो सरद जामिनी ।

निरत गोपाललाल संग में ब्रज-बाल बनी ।

अद्भुत गति लेत कोक-कलित कामिनी ।

लाग डाँट सुर-बंधान गावत अबूक तान

ततथेइ ततथेइ येई गति अभिरामिनी ।

गोपिन संग श्याम सुंदर मंडल-मधि सोभित अति

बिहरत बहु रूप मानो मेघ दामिनी ।

थाक्यो नभ चंद देखि रैन सिथिल भई

लखि हरि गजपति संग गज-गामिनी ।

'हरीचंद' सोभा लखि देव-मुनि नभ बिथकित

मानी हरि साथ सबै ब्रज-गामिनी ॥८१॥

वामन द्वादशी की बधाई, सारंग

बलि कीनो सो कौन करे ।

सरबस हरिहि समर्पि प्रेम सों

जगत-सीख हित को निदरे ।

द्विज-सनमान दान बच-पालन

दृढ़ व्रत को हठि नाहिं टरे ।

आत्म-समर्पन दास्य भाव निज

करि आप्रह को जीय धरे ।

हरि जस स्वामि प्रगटि दिखरायो

जामें संका सकल जरे ।

प्रभु-प्रतिकूल गुरुहि निज छाँड़यो

यह अनन्य मत को विचरे ।

राजहु गये साप गुरु दीनों

आपु बंधे पै कौन डरे ।

'हरीचंद' दृढ़ता की दुनुभि

जग बजाइ इमि कौन तरे । ८२

वेदन में निज महिमा थापन

गये त्रिविक्रम आजु सुरारी ।

सब सग व्यापकता दिखराई

सबन प्रत्यक्ष दीन-हितकारी ।

औरहु एक भेद है यामें जो

प्रगट्यो या भेष खरारी ।

वामनहूँ बपु सब सों ऊँचे

त्रिभुवन-दायक जदपि भिखारी ।

जग-दाता विराट बपु की फिरि

कहौ महिम को कहै विचारी ।

'हरीचंद' छोटे-पनहूँ में जब

सब ही सों बढि बनवारी । ८३

बलिहि छलन गये आपु छलाये ।

माँग दान दियो अपुने को

बाँधि एक छन जनम बंधाये ।

प्रनतारतिहर भगत-बछल प्रभु

साँच नाम निज करि दिखराये ।

'हरीचंद' सुर-काज करन गये

असुरराज थिर करि हरि आये । ८४

बलि की मति पर बलि बलिहारी ।

सिखयो जगहि समर्पन जिन निज गुरु की आयसु ठारी ।

हरि सों बढि सुपात्र जग नाहीं बलि सों बढि कै दाता ।

भूमि-दान सम दान नहीं यह थापी तीनहूँ बाता ।

दृढ़ विस्वास अचल निज मत हठ कबहूँ न डिगल डिगाये ।

यही सों प्रहस करि हरि को रहत द्वार बैठाये ।

सेवक-स्वामि अनन्य भये मिलि गति नहिं परत लखाई ।
इनमें को बढि को घटि यह

किमि 'हरीचंद' कहि गाई । ८५

भोजन के पद, राग यथा-रुचि

भोजन करत किशोर-किशोरी ।

कुंज महल में परि गै परदा सखि ठाढ़ी चहुँ ओरी ।

ललिता लै आई भरि थारी ताती खिचरी कोरी ।

तामैं घृत डार्यो बहुते करि रुचि बाढ़ी नहिं थोरी ।

हँसत परसपर खात खवावत बंधे प्रेम की डोरी ।

'हरीचंद' बलि बलि जोरी पर बरनि सकै सो कोरी । ८६

संक्रान्ति के पद, राग यथा-रुचि

भागन पाइये जू लालन वैस-संधि-संक्रान्ति ।

तिय तिथि पाह व्यापि गई तन में चलो किन राधा-रौन ।

बाल-तरुनई-मिलन पुन्य-छन अति थोड़े ही बेर ।

ललिता बनि ज्योतिषी बतावत समय न पैहो फेर ।

कुंज-कुटी तीरथ में चलि कै करहु स्वेद-अस्नान ।

'हरीचंद' अलि याचक को मिलि देहु दोऊ सुखदान । ८७

मकर संक्रान्ति सखी सुखदाई ।

मकर कुंडल सों मकर विलोचनि क्यों न मिलत तू धाई ।

मकरकेतु को भय नहिं मानत घर में रही छिपाई ।

वे तुव बिनु भे मकर बिना जल व्याकुल मुकरन पाई ।

मान मान तजु मान धरम कर कर धरि लै गर लाई ।

'हरीचंद' तजु मकर राधिके रहु त्योहार मनाई । ८८

स्फुट, यथा-रुचि

मन तुहिं कौन जतन बस कीजै ।

काहू सों जिय भरत न तेरो कहाँ-कहाँ चित दीजै ।

ज्ञान कर्म कुल नेम धर्म सों होत न तोहिं संतोष ।

घर घर भटकत डोलत धायो किये अनेक भरोस ।

कामादिक नित काम तिहारे सो नहिं क्योंहूँ मानै ।

सहस सहस नित करत मनोरथ ताहि कौन बिधि जानै ।

कछु पुरो नहि परत पतन नित तौहूँ चाह बढ़ावै ।

'हरीचंद' क्यों छाँडि न सब

को पिय-पद में चित लावै । ८९

बाल-लीला, बिलावल

मनिमय आँगन प्यारो खेले ।

किलकि किलकि हुलसत मनहीं

मन गहि अँगुरी मुख मेलै ।

बड़मागिनि कीरति सी मेया मोहन लागी डोलै ।

कबहुँक लै छुनछुना बजावति मीठी बतियन बोलै ।

अष्ट सिद्ध नव निधि जेहि दासी सों ब्रज सिसु-बपुधारी ।

भोरी अविचल सदा विराजो 'हरीचंद' बलिहारी १९०

तथा, आसावरी

मेरो लाड़िलो गोपाल माई साँवरो सलोना ।
जाके हित लाई मैं सुरंग खिलौना ।
छाँड़ो हठ बारने हों बार बार जाऊँ ।
मुख देखि लालन को नैनन सिराऊँ ।
वृज को उँजियारो मेरो छोटी सो लाला ।
माने मेरोई कह्यो ऐसो सुभ चाला ।
तुम्हरे हित खोखूँ लाल दुलही इक छोटी ।
मिलि खेलै लालन के रहै संग जोटी ।
माखन मिसरी हों देहों चाखो मेरे प्यारे ।
छाँड़ो मचलाई लाल नंद के दुलारे ।
हों तो सँग लागी फिरौं पलकह न त्यागों ।
पालने झुलाऊँ गीत गाऊँ अनुरागों ।
हों तो माता हूँ तेरी मेरी बात मानो ।
'हरीचंद' बलिहारी आर नाहिं ठानो १९१

रथ-यात्रा, सारंग

मेरे मन-रथ चढ़ि पिय तुम आवो ।
चारु चक्र बुधि बल छल साहस लगन की डोर लगावो ।
चपल तुरंग मनोरथ बहु विधि निर्भय छत्र छवावो ।
'हरीचंद' गर लागि हमारे प्रेम-ध्वजा फहरावो १९२

बधाई, यथा-रुचि

मंगलमय सब ब्रज-वासी लोग ।
मंगलमय हरि जिन घर प्रकटे मिले अमंगल भव के सोग ।
मंगल ब्रज वृंदावन गोकुल मंगल माखन दधि घृत भोग ।
'हरीचंद' बल्लभ-पद मंगल गोपी-कृष्ण-संयोग १९३

मान को पद, बिहाग

मेरी री मत कोउ होउ बसीठि ।
मैं उनकी वे मेरे रहिहैं सदा दिए मैं पीठ ।
मैं मानिन वे मनावनहारे मेरी उनकी मिलि दीठि ।
'हरीचंद' मिलिहों मैं उनसों लै मनुहार न नीठि १९४

नित्य, यथा-रुचि

मेरेई पौर रहत ठाढ़ो टरत न टारे नंदराय जू को दोटा ।
पाग रही भुव दरकि छबीली यामें बाँधो है मंजुल चोटा ।
चितवत हँसि फिरि मों तन हेरत कर लै बेनु बजावत ।
धरि अधरन वह ललन छबीलो नाम हमारोइ गावत ।
कर लै कमल फिरावत चहुँ दिसि मों तन दृष्टि न टारै ।
'हरीचंद' मन हरि लै हमरो हँसि हँसि पाग सँवारे १९५

मारग रोकि भयो ठाढ़ो जान

न देत मोहि पूछत है तू को री ।

कौन गाँव कह नाम तिहारो

ठाढ़ी रह नेक गोरी ।

कित चलि जात तू वदन दुराए

एरी मति की भोरी ।

साँभ भई अब कहाँ जायगी

नीकी है यह साँकरी खोरी ।

बहुत जतन करि हारि ग्वालानी

जान दियो नहिं तेहि घर ओरी ।

'हरीचन्द' मिलि बिहरत दोऊ

रैननि नन्दकुँवर श्री वृषभानुकिंसोरी १९६

ग्रीष्म को पद, यथा-रुचि

भोज भरे दोउ होइ किनारे

बैठे करत प्रेम की बतियाँ ।

ग्रीष्म ऋतु लखि सखिन बनायो

मंजु कुंज रचि पुहप-पतियाँ ।

शीतल पवन परसि जल-कन मिलि

सीतल भई सरससी रतियाँ ।

'हरीचंद' अलसाने दोऊ मुरि मुरि

बिहँसि रहत लगि छतियाँ १९७

राग, यथा-रुचि

मोहन लाल के रस सानी ।

तन की सुधि न भवन की बुधि

कछु डोलत फिरत दिवानी ।

उधरि कहत पिय गुन सब

ही से गावत कोकिल-बानी ।

बिथुरी अलक सरकि रह्यो

अंचल चंचल चखन लखानी ।

पिय-रस-मत्त छकी आसव सी

पिय के रूप लुभानी ।

पिय के ध्यान मूँद रही

लोचन अन्तरगति प्रगटानी ।

उभकि ललकि चौकति भुज भरि

भरि इमि सुख रहत भुलानी ।

निज मन हँसत मौन ह्वै

बैठति रोवति कहत कहानी ।

'हरीचन्द' इक रस हरि के रँग

दिन-निसि जात न जानी ।

प्रेम-समुद्र तन-नाथ डुबोयेहु

प्रेम-ध्वजा फहरानी १९८

विजय दशमी, मारु

मान गढ़-लंक पर विजय को मानिनी

आज ब्रजराज रघुराज बनि के चढ़े ।
 मूकुटि-धनु नयन-शर बिकट संधानि के
 मुकुट की ढाल करवाल अलकन कढ़े ।
 कोकिला कड़कि उधरत कड़खेत ही
 बदत बन्दी विरद भँवर आगे बढ़े ।
 कोक की कारिका बानरी सैन ले
 दास 'हरीचंद' रति-विजय आनंद मढ़े । १९९

आशीष, कान्हवा

माई तेरो चिरजीवो गोविन्द ।
 दिन दिन बढ़ो तेज बल धन जन ज्यों दूइज को चंद ।
 पालो गोकुल गोपी गो सुत गाय गोप सानंद ।
 हरो सकल भय निज भक्तन को नासो सब दुख-दुन्द ।
 हर्षित देखि गोद में अनुदिन रोहिनि जसुदानंद ।
 लगौ बलाय प्रान-प्यारे की मम बैननि 'हरिचंद' । ११००

जाड़े में पौढ़िबे को पद, बिहाग

रजाई करत रजाई माँहीं ।
 राजा कृष्ण राधिका रानी दिये बाँह में बाँहीं ।
 सुखद सेज सोइ राजसिंहासन छत्र ओढ़ना सो है ।
 चँवर विकुर डोलत चहुँ दिसिते को वह जो नहिं मोहै ।
 बजत निसान जीति जग कंकन किंकिन को बहु भाँती ।
 भरत बादला मोती दीनी सोइ दीनन मनि-पाँती ।
 बंधुआ मदनहिं बाँधि मँगायो लै पाइन तर पेल्यो ।
 कियो खिराज सकल सुख संपति आनंद-सिंधु सकेल्यो ।
 तब बंदीजन वेद श्वास कढ़ि पढ़्यो विरद अकुलाई ।
 कियो स्वेद अभिषेक रीफि कच-खसित कुसुम भर लाई ।
 राजतिलक सिर दियो महावर अधर-सुधा नजरानो ।
 तिहि लहि सर्वस दियो सरोपा साथ नील पट बानो ।
 नाची बेसर वारिमुखी तहँ परमानंद रह्यो छाई ।
 'हरीचंद' अवसर तब लखि के प्रेम-जगीर दिखाई । ११०१

रास, यथा-रुचि

राधिकानाथ के साथ ब्रज-बाल सब
 नवल जमुना-पूलिन रास राच्यो आज ।
 लेत संगीत गत शब्द उधटत बिबिध
 एक गावत राग सुरन साँच्यो आज ।
 तत्तयेई तत्तयेई प्रकट धुनि होत तहँ
 बजत किंकिन चुरी आनंद माच्यो आज ।
 थकित सुर गगन 'हरीचंद' निज तियन सह

देखि जब मुदिल नंदन नच्यो आज । ११०२

नित्य, बधाई

राधिका मंगल को नव बेलि ।

जा दिन प्रकटी बरसाने में सब सुख धरेउ सकलि ।
 नित नव आनंद नित नव मंगल नित नव नौतन केलि ।
 'हरीचंद' बिहरति प्रीतम सों कंठ भुजा उर मेलि । ११०३

बिहार, बिहाग

रसिक गिरिधर संग सेज सोई भली ।
 रीफि पिय देत सुखदान कीरति-लली ।
 उभकि भुक चूमि मुख लूटि रस अधर-सुख
 मेदि जिय दुसह दुख करत नव रँग-रली ।
 भुजन सों भुज बँधे अंग प्रति अंग सधे
 कसमसक कुम्हिलात सेज कुसुमन-काली ।
 अंग उमंगे रंग पिया प्यारी संग प्रेम-रति
 जंग पद मदन-मद दलमली ।
 सखी 'हरीचंद' रही रीफि तन-मन वारि
 करत गुन-गान रसमत चहुँ दिसि अली । ११०४

रसबस में निसि जाल न जानी ।
 कहत सुनत कछु हँसत हँसावत
 दृग जोरत छन-सरिस बिहानी ।
 आलस बिबस जम्हात परस्पर
 कहि बलिहार मधुर सुर बानी ।
 रूह लालची दृग नहिं भूपकत
 जागत ही निसि सकल सिरानी ।
 अरुमे प्रेम-फंद नहिं सुरभत
 मुख चूमत हरि राधा रानी ।
 'हरीचंद' सखि-गन सोइ गावत
 जुगल-प्रेम की अकथ कहानी । ११०५

नित्य

लालन पौढ़े हीं बलि जाऊँ ।
 चाँपों चरन कहानी भापों करि मनुहार सोबाऊँ ।
 सीत-भीत परदा बहु डारौ नवल अंगीठी लाऊँ ।
 सरस रंग परिमल कोमल अति चारु रजाई उढ़ाऊँ ।
 मधुरे गुन गाऊँ प्यारे को करि मनुहार मनाऊँ ।
 'हरीचंद' पौढ़ो प्रिय लालन हो तेरे बलि जाऊँ । ११०६

स्फुट

लाल यह लौ तुरकन की चाल ।
 दुख देनो गल रेंति रेंति के करनो ताहि हलाल ।
 जब बध करनो होइ बधो लौ क्यों खेलत यह छयाल ।
 एक हाथ में काम बनेगो छूटैगे भव-जाल ।
 कै मारो कै तारे मोहन के मोहि करौ निहाल ।
 'हरीचंद' मति यों तरसाओ बहुत भई नैदलाल । ११०७

रथ सारंग

लाल नहिं नेकौ रथहि चलावे ।

गली साँकरी अटक रह्यो रथ नहिं कहूँ इत उत जावै ।
उत वृषभानु-कुमारि अटा पे ठाढ़ी दृष्टि न टारै ।
इत नंदलाल रसिकबर सुंदर इक टक उतहि निहारै ।
ये हंसि हंसि के कमल फिरावत वै दोउ नैन नचावै ।
ये पीतांबर लै जु उड़ावै वे मधुरे सुर गावै ।
रीफे रसिक परस्पर दोऊ 'हरीचंद' मन माहीं ।
ये इत अपनो रथ न चलावत वे न अटा-सों जाहीं । १०८

स्फुट, यथा-रुचि

लाल लाल कर पद लाल अधर रस
लाल लाल नयन तासों संचि लाल भये हो ।
लाल माल विनु गुन लाल पीक छाप तन
लाल लाल ही महावर सिर पै दये हो ।
पीरो पट छोरि लाल पट भलो ओढ़ि आये
अनुराग प्रगट दिखावत नये हो ।
'हरीचंद' अरुन सिखा-धुनि सुनि चौकि
अरुन उदय से आज अरुन भेष लये हो । १०९

राग, यथा-रुचि

लखि सखि आजु राधिका रास ।
जमुना-पुलिन सरल कोमल कल जहँ मल्लिका विकास ।
उदित चंद्र पूरन नभ-मंडल पूरन ब्रज-तिय आस ।
मंद सुरन पिय पास बने सजि निकर चिकुर भल पास ।
प्रचलित पवन रवन हित महकत मह मह दवन-सुवास ।
दवन मदन मद मंद गवन सुख भवन जहाँ हरि-बास ।
वज्रत मृदंग उपंग चंग मिलि भजनन जति तति जास ।
बढ़यो रंग रति रंग दंग लखि अंग उमंग प्रकास ।
मुरली रली भली बाजत मिलि बीन लीन सुर खास ।
ताल देत उताल बजावत ताल ताल करि हास ।
उघटत श्री राधे राधे मधु धुनि बन सब आस ।
हरि राधा की बचन-रचन लखि बलिहारी हरि-दास । ११०

स्फुट, देश

वेग आओ प्यारे बनवारी हमारी ओर ।
दीन बचन सुनतै उठि धायो नेकु न करहु अबारी ।
कृपा-सिंधु छाँड़ो निटुराई अपनो बिरद सम्हारी ।
थाने जग दीनदयान कहै क्यों हमरी सुरत बिसारी ।
प्राण दान दीजै मोहिं प्यारी हौं झू दासी प्यारी ।
क्यों नहिं दीन बचन सुनो लालन कौन चूक छे म्हारी ।
तलफे प्राण रहै नहिं तन मा बिरह ब्याधा बढ़ी भारी ।
'हरीचंद' गहि बाँह उबारौ तुम तो चतुर बिहारी । १११

बिहार

वे देखो पौढ़े ऊँचे महल दोऊ
भलकत रूप भरोखन आई ।

हंसनि मुरनि बतरानि परस्पर
कछुक दूर तें परत लखाई ।
फैली अंग-प्रभा दीपक में जाल-
रंभ सों घिरि घिरि आई ।
'हरीचंद' कंकन-किकिन-रव निसि के
उछोरि भरो मधुर कछु सुनाई । ११२

रथ-यात्रा

यह देखो साँख सेन-श्वजा फहरात ।
ज्यों ज्यों रथ नियरे आवत है त्यों त्यों मन अकलात ।
खंजन से भये नैन सखी के चक्रित इत उत डोलै ।
आवत प्राननाथ रथ चढ़ि के सजनी यह मुख बोलै ।
जहँ लगी दृष्टि जात प्यारी की यह छवि होत रसालै ।
मानहुँ आदर सों पिय के हित कमल पाँवड़े डालै ।
अति अनुराग संग बैठन को प्यारी मन की जानी ।
'हरीचंद' लै रथ बैठाये लिया अतिहि सुख मानी । ११३

पालन

वारी वारी हौं तेरे मुख पे वारी मैं तेरे लटकन पे वारी ।
पालना-भूलो हो दठ छाँड़ो बलि बलि गइ महतारी ।
छोटी सी दुलहिनि तोहिं ब्याहौ अपने बाबा की दुलारी ।
तुम भूलो हौं हराँख भुलावो 'हरीचंद' बलिहारी । ११४
वारी मेरे लालन भूलो पालना ।
हौं बलि जाऊँ बदन की मोहन मानहुँ बात हमारी ।
माखन लेहु लालन वृज-जीवन वारने गै महतारी ।
अँचरा छोरहु तुमहिं झुलाऊँ 'हरीचंद' बलिहारी । ११५

स्फुट, यथा-रुचि

सखी मेरे नयना भये चकोर ।
अनुदिन निरखत श्याम चंद्रमा सुंदर नंद-किशोर ।
तनिक बियोग भये उर बाढ़त बहु विधि नयन मरोर ।
होत न पल की ओट छिनकहुँ रहत सदा दृग जोर ।
कोउ न इन्है जुड़ावनहारो अरुभे रूप भकोर ।
'हरीचंद' नित छके प्रेम-रस जानत सौभन न भोर । ११६

गरमी को पद

सखी मोहिं प्रीषम अति सुखदाई ।
जामें शोभा श्याम अंग की प्रति छन परत लखाई ।
विनु अंतरपट मिलत पियारी अंग अंग सो लाई ।
'हरीचंद' लखि कै सुख पावत गावत केलि बधाई । ११७

फूल-सिंगार

सखियन आज नवल दुलहिन को फूल-सिंगार बनायो हो ।
फूलन के आभरन मनोहर रचि रचि कै पहिरायो हो ।
फूलनि बेनि गुहो मनोहर फूलन मोर सुहायो हो ।

फूलन के कंगना कर बाँधे फूलनि मंडप छाये हो ।
 फूलनि चोली फूलनि सारी फूलनि लहंगा भायो हो ।
 दुलहिन दुलहा गाँठि जोरि के एक पास बैठाये हो ।
 फूली फूली सब सखियन मिलि फूल्यो मंगल गयो हो ।
 पूली जोरि देखि नयन सों 'हरीचंद' सुख पायो हो । ११८

मकर-संक्रांति टोड़ी

सुखद अति खिचरी को त्योहार ।
 मिलि बैठे दोउ कुंज सखी री नीके नयन निहार ।
 पहिरि छोट बागो अति सुंदर ओढ़े सुखद रजाई ।
 सिसिर प्रवेश दिखावत गावत तान गान सुखदाई ।
 सखी सबै मिलि नेम पुजावत करत जुगल की सेवा ।
 ताती खिचरी भोग लगावत भेंट करत बहु मेवा ।
 करत दान तिल गौर श्याम दोउ हंसि-हंसि पीतम प्यारी ।
 'हरीचंद' निज रीफि प्रान-धन

डारत छिन-छिन वारी । ११९

श्री गिरिधरजी की बधाई

सदा तुम मायावाद निवारेउ ।
 जब जब प्रबल भयो मिथ्या मत तब तब प्रकटि बिदारेउ ।
 प्रथमहि होय विष्णु स्वामी प्रभु यह मारग बिस्तारेउ ।
 फिरि श्री बल्लभ ह्वै अग्नि काठ
 कटु माया मत छिन जारेउ ।
 अब के कासी लखि असुरासी अधरन तासु बिचारेउ ।
 कृष्णावति ते श्री गोपाल-गृह जदु-कुल द्विज अवतारेउ ।
 नाम जगतगुरु सुनत श्रवन-पुट पावन अमृत पारेउ ।
 कियो ग्रंथ बहु घर थिर थाप्यो माया-वाद बिदारेउ ।
 श्री गिरिधर गिरिधर ह्वै प्रकट पुष्प-पंथ गिरि धारेउ ।
 प्रबल प्रवाह इन्द्र-धारा सों निज ब्रज लोग उवारेउ ।
 काशी में गोकुल करि दीन्हो श्रुति-रहस्य उच्चारैउ ।
 'हरीचंद' को जानि आपनो करुना करि निसतारेउ । १२०

अश्विष, यथा-रुचि

सदा ब्रज सुबस बसो बरसानो ।
 जहँ प्रगटी रस की निधि राधे बाजत प्रगट निसानो ।
 जुग जुग अविचल राज रजो दोउ रावलि अरु महारानो ।
 'हरीचंद' के सीस रहौ नित नील पीत को बानो । १२१

बिहार, बिहाग

सुंदर सेजन बैठे प्रीतम-प्यारी ।
 मिलमिलात दीप-ज्योति रँग-भरे
 सँग दोऊ सोवत ऊँची अटारी ।
 रिझवत हिलि-मिलि करि रस-बतियाँ
 फैली बदन उँजियारी ।

दीप सों परस्पर मुख अवलोकत

'हरीचंद' बलिहारी । १२२

दीनता

श्री बल्लभ की सरि करै कौन ।
 प्रगटे प्रभु गुविंद-मन-वाहक भक्त कारनै जौन ।
 परम पतित तारन करुनामय रसनिधि बुधता-भौन ।
 'हरीचंद' जो इनहिं भजत नहिं महा अभागै तौन । १२३

श्री बल्लभ प्रभु मेरे सरबस ।
 पचौ बूया करि जोग जज्ञ कोउ
 हम को तो इक इहै परम रस ।
 हमरे मात पिता पति बंधू
 हरि गुरु मित्र धरम धन कूल जस ।
 'हरीचंद' एकहि श्री बल्लभ
 तजि सब ध्यान भये इनके बस । १२४

श्री बड़े गिरिधर जी को पद

श्री बिट्ठल-सुत गुननिधान श्री रुक्मिनि जीवन-प्रान
 बन्दे श्री गिरिधर प्रभु षट्गुन सम्पन्न धीर ।
 अति ही रिझवार रसिक सकल कलागुन-प्रवीन
 बंधुन सिर छत्रछाँह मेंट जन-पीर ।
 सेवा-रस परस पात्र पंडित-जन मंडित कर
 छंडित कृत मायामति छंडित भव-पीर ।
 श्री रानी प्राननाथ गावत श्रुति बिसद गाथ
 'हरीचंद' हाथ माथ धरत बलवीर । १२५

श्रीरघुनाथजी को पद

श्रीबिट्ठल-नंदन जग-वन्दन जय जय श्री रघुनाथ ।
 जानकि-रमन समन जन अघ सत पितु-पद रजगुन गाथ ।
 सेवा रोचक मोचक भव-रुज कृत बल्लभो सनाथ ।
 'हरीचंद' अनुभव बियोग कृत सदा सहायक साथ । १२६

श्रीगोपीनाथजी को पद

श्री बल्लभ-सुत प्रथम प्रगट लीला रस भाव
 गुप्त जय जय श्री गोपीनाथ भक्तन सुखदाई ।
 गावत गुन बेद चार तऊ नहीं पावै पार
 महिमा कोउ कहि न सकत गोप-वंश-राई ।
 पुष्टि पथ करन-काथ प्रगटे हैं भूमि आज
 गावत सब ब्रज-जन मिलि आनंद-बधाई ।
 'हरीचंद' जस गावै बहुत बधाई पावै
 देखत त्रैलोक सब बलि बलि जाई । १२७

श्रीबल्लभ गृह महामंगल भयो प्रकट भये श्री गोपीनाथ ।
 मार्यादा श्रुति रूप रमन हित संकर्षन जन कियो सनाथ ।
 अक्षर ब्रह्म रूप सुभ सोहत अनुज धाम जगधाम स्वरूप ।
 जोग ज्ञान कर्मादिक मारग थापन हित प्रगटे द्विज भूप ।

संवत पंद्रह सौ सुभ सरसति आश्विन कृष्ण द्वादशी जानि ।
श्री महालक्ष्मी जी के उदर तें प्रगटे हैं सब सुख की खानि ।
पुष्टि प्रवेस हेतु अधिकारी करन कियो लीला-विस्तार ।
कहि जय जय बल्लभ-सु दोऊ

'हरीचंद' जन भयो बलिहार ११२८

श्रीघनश्यामजी को पद

श्री बिट्ठल घर अतिही उछाह ।
रानी पद्मावति सुत जायो
पूरी अपने जन की चाह ।
आश्विन वदी तेरसि रविबासर
बाढ़यो गोकुल प्रेम प्रवाह ।

'हरीचंद' वैराग प्रकट गुन

जय जय जय श्री कृष्णावति-नाह ११२९

श्री गोविन्द राय जी को पद

श्री गुविंद राय जयति सुंदर सुखधाम ।
देवि देव मेरि सकल कृष्ण-रूप थापन नित
सुंदर बरन निज भक्तन अभिराम ।
सुंदर मर्याद रूप लोक-रीति स्ववस भूप
श्रीभागवत थापन सुखमय सुआद जाम ।
'हरीचंद' बिट्ठलसुत भक्तिभाव भूरि संयुत
राज-भाव बिनसे हरि सुजन पूरन काम ११३०

श्री बालकृष्ण जी को पद

श्री रुक्मिनि-नंदन, जय-वंदन,
बाल कृष्ण सुख-धाम ।
सुंदर रूप नयन रतनार
भक्तन पूरन काम ।
रस वात्सल्य-करन अनुभव नित
विरह विधूनन हरि मुख नाम ।
'हरीचंद' बिट्ठल सुखदायक प्रिय
उनहारि रूप अभिराम ११३१

श्री गोकुलनाथ जी को पद

श्री बल्लभ निज मत राखि लियो ।
जीति सभावादी कठोर बहु माला तिलक दियो ।
अद्भुत अचरज बहुत दिखाये खल नृप निरखि भियो ।
'हरीचंद' मर्याद राखि निज जग जस प्रगट कियो ११३२

श्री यदुनाथ जी को पद

श्रीजदुपति जय जय महाराज ।
विरह गुप्त अनुभवत प्रगटि जग महँ विराग को साज ।
निवसत रह लघु कहत सुनत लहु छाँड़ि जगत के काज ।
'हरीचंद' परमारथ-पूरन गोविंद भक्ति जहाज ११३३

साँझी को पद

आजु दोउ खेलत साँझी साँझ ।
नंदकिशोर राधा गोरी जोरी सखियन माँझ ।
कुसुम चुनन में रुनभुन बाजत कर-चूरी पग-भाँझ ।
'हरीचंद' विधि गरब गहरी भई रूप लखि बाँझ ११३४

महारानी तिहारो घर सुफल फलो ।
सुन री कीरति तैं कन्या जनि सब
ब्रज-जन को कियो भलो ।

कोउ गावत कोउ हँसत मोद
भरि कोउ अति आनंद रलो ।

देखि चंद्र-मुख कुँवरि लली
को वारि-फेरि तन-मन सकलो ।

आनंद-मगन सबै ब्रज-बासी सब
जिय को दुख पगनि दलो ।

'हरीचंद' जुग-जुग चिरजीवो
जुगल कहानी जुगल चलो ११३५

दीनता, यथा-रुचि

हमरे निर्धन की धन राधा ।
साधन कोटि छोड़ि इनहीं को चरन-कमल अवराधा ।
इनके बल हम गिनत न काहू करत न जिय कोउ साधा ।
'हरीचंद' इन नख-सिख मेरी
हरी तिमिर भव-बाधा ११३६

श्री महाप्रभु जी की बधाई

आजु ब्रज साँची वजत बधाई ।
रति-पथ प्रगट करन को द्विज-बपु बल्लभ प्रगटे आई ।
दैवीजन-हित कारन भूतल लीला फेरि दिखाई ।
'हरीचंद' भूले लखि तिज जन
लियो बाँह गहि धाई ११३७

आजु प्रेम-पथ प्रगट भयो भुव
जनमे श्रीवल्लभ पूरन-काम ।

कठिन काल कलि देखि दया करि
आपुहि चलि आयो द्विजधाम ।

बहे जात अपने जन लखि कै
धर्यो बाँह गहि कहि हरि-नाम ।

'हरीचंद' रसमय बपु सुंदर
एकै राधा सुंदर श्याम ११३८

निज पथ प्रगट करन को द्विज हवै
आपुहि प्रगट भये हरि आज ।

माधव कृष्ण एकादश गुरु दिन
लक्ष्मण भट-गृह पूरन काज ।

दैवीजन मन अति हुलसाने

फूल्यो ब्रज को सकल समाज ।

'हरीचंद' मिलि नाचत गावत

मिले भक्त-जन तजि जग-लाज । १३९

आजु ब्रज घर घर बजत बधाई ।

द्विज-बपु लै नंदनंदन प्रगटे लक्ष्मण भट घर आई ।

फेर वहै लीला सोई रस निज जन हेत दिखाई ।

'हरीचंद' से अग्रम जानि निज तारे भुज गहि धाई । १४०

मान को पद, यथा-रुचि

नेक निहारु नागरी हौं बलि ।

इती रुखाई प्रान-पिया पै मान न

करु सिख मान री उठि चलि ।

फूलत लय बिरचत उत प्यारो

बिरह-हुतासन जात चलो गलि ।

तू इत बैठी भौह तनेतन नहिं

सोहात मोहिं यह रूखो कलि ।

खसित निसानायक पश्चिम दिसि

आधो सों बढ़ि रैन चली ढलि ।

अरुनसिखा-धुनि सुनियत कहूँ कहूँ

सीरी पवन चली सुगंध रलि ।

चलि किन कुंजभवन तू भामिनि

अपनी सौतिन को छलबल छलि ।

प्रथम मान पुनि सहजहि मिलिबो सुनि

वैरिनि रहि जैहैं जलि जलि ।

कसि कंचुकि नयनन दै काजर

नूपुर छाँड़ि अतर अंगन मलि ।

बिन बिलंब उठि मिलु प्यारे सों

बिरह-दवागि मिले श्रम-जल दलि ।

भाग भरी अनुराग भरी सखि पीतम

सरस सोहाग फलन फलि ।

'हरीचंद' सखि-साथ गमन छवि

नयनन तें नहिं जाइ कबहुँ टलि । १४१



वर्षा-विनोद

[हरिश्चन्द्र-चंद्रिका और मोहन चन्द्रिका
खं. २ सं. २-६ में सन् १८८० में प्रकाशित]

वर्षा-विनोद

कजली

प्यारी भूलन पधारो भुकि आए बदरा ।

ओढ़ी सुरुख चुनरि तापै श्याम चदरा ।

देखो बिजुरी चमकके बरसे अदरा ।

'हरीचंद' तुम बिन पिय अति कदरा । १

अगगग अगगग अगगग घन गरजै

सुनि सुनि मोरा जिय लरजै ।

जुगनूँ चमके बादल रमकै

बिजुरी दमकै भ्रमकै तरजै ।

ऐसी समय बनें पारवतियाँ

पिय नहिं मानत मोरी अरजै ।

ऐसन नहिं कोई पटुका गहि कै

पिय 'हरिचंदहि' जो बरजै । २

धिर धिर आए बादर छाए

रिमभिम जल बरसे ।

चम चम चपला चमकै घन भ्रमकै

भुकि झुकि बिरछन परसे ।

सूनी सेज परी में व्याकुल

पिय की सूरत नहिं दरसे ।

बिनु 'हरिचंद' पियरवा सावन में

हाय मोरा जियरा तरसे । ३

मन-मोहना हो भूलैं भ्रमकि हिंडोर ।

एक तो सावन ए दूजे घन उनए

तीजे फूल नए छए फूलो चहुँ ओर ।

चलु लाज तजु री देखु चमकै बिजुरी

बग-पाति जुरी मोरा करि रहे सोर ।

सोभा कहौ कस री में तो देखत हारी

भई बलिहारी 'हरिचंद' तन तोर । ४

दोउ मिलि भूलै फूलै हो कुंज हिंदोरे री सखी ।
बूदावन चहुँ ओर सों हो फूल्यौ शोभा देत हो ।
जमुना नीर तीर पर सुंदर भलमल लहरा लेत हो ।

दोहा

बिजुरी चमकै जोर से नभ छाए घनघोर हो ।
मोर सोर चहुँ ओर करै दादुर वन कीनी रोर हो ।
सखी भुलावै प्रेम सों हो पहिरे रंग रंग चीर हो ।
भूलै प्यारी राधिका सँग पीतम श्याम सरीर हो ।
सोभा नहिं कहि जात हो तहँ बढ़्यौ सखी आनंद हो ।
लखि गलबाहीं दोऊ को दीने बलिहारी 'हरीचंद' हो ।
दोउ मिलि भूलै फूलै हो कुंज हिंदोरे री सखी १५

लावनी

वीत चली सब रात न आए अब तक दिल-जानी ।
खड़ी अकेली राह देखती बरस रहा पानी ।
अंधेरी छाया रही भारी ।
सुभत कहूँ न पंथ सोच करै मन मन में नारी ।
न कोई समभावनवारी ।
चौकि चौकि के उभकि झरोखा भाँक रही प्यारी ।
बिरह से व्याकुल अकुलानी ।
खड़ी अकेली राह देखती बरस रहा पानी ।
सुभै पंथ न कहीं हाथ से हाथ न दिखलाता ।
एक रंग धरती अकास का कहा नहीं जाता ।
किसी का बोल नहीं सुनाता ।
बूँद बजै टपटप मारग कोई नहिं जाता आता ।
सोए घर घर सब पट तानी । खड़ी अकेली० ।
सन सन करके रात खनकती झींगुर भनकारै ।
कभी कभी दादुर रट कर जिय व्याकुल कर डारै ।
साँप खंडहर पर ठनकारै ।
गिरै करारै टूट टूट के नदी छलक मारै ।
पिया बिन सब ही दुखदानी । खड़ी अकेली० ।
ठंडी पवन भकोरे आँचल उड़ उड़ फहरावै ।
बिरहिन इत सों उत डोलै कोई नाही जो समुभावै ।
पिय बिन को जो गर लावै ।
'हरीचन्द्र' बिनु बरसा में को कसक मिटा जावै ।
कहाँ बिलमै, को मनमानी । खड़ी अकेली० १६

गजल

न आया वो विलवर औ आई घटा ।
तो हसरत की बस दिल पै छाई घटा ।
चढ़ा शाम को बाम पर गर वो माह ।
शफक का नया रंग लाई घटा ।
तुहें जुल्फ तेरी ये बिजली नहीं ।

चमकती है बिजली है छाई घटा ।
बहाने से बिजली के छेड़ा मुझे ।
नया राग परदे में लाई घटा ।
मुझे तेरी जुल्फों का ध्यान आ गया ।
जो देखी सियह सिर पै छाई घटा ।
जमीं है 'हरीचंद' गजले पढ़ो ।
'रसा' देखो कैसे है छाई घटा १७

मलार

हरि बिनु बरसत आयो पानी ।
चपला चमकि चमकि डरवावत मोहिं अकेली जानी ।
रात अंधेरी हाथ न सूझै मैं बिरहिनी बिलखानी ।
'हरीचंद्र' पिय-बिनु बरसा में हाथ मीजि पछतानी १८

ऊधो हरि जू सों कहियो जाइ हो जाइ ।
बिनु तुव प्रान परे संकट में घट
सों निकसत आइ हो आइ ।
बढ़त बिरह दुख छिन छिन मोहन
रोअत पछरा खाइ हो खाइ ।
'हरीचन्द्र' व्याकुल ब्रज देखत
वेगहि आओ धाइ हो धाइ १९
पिय-बिनु सूनी सेजिया साँपिन सी
मोरा जियरा डसि डसि लेत ।
रैन डरारी कारी भारी

व्याकुल पिय-बिनु चेत ।
तड़पत करवट लेत अकेली
धीर कोऊ नहिं देत ।
पिय 'हरिचन्द्र' बिना को गरवाँ
लगि कै हाय निबाहै हेत ११०

जुमरी हिंदोले की

लचकि मचकि बोउ झूलि रहे
जमुना-तट सुरँग हिंदोरे में ।
ब्रज-नारी सब आई मिलि भूलन को
पहिरे चुनरी रंग बोरे में ।
बरसत घन बूँद परै छतियाँ
बहै सीतल पवन भकोरे में ।
'हरीचंद' कहा छवि बरनि सकै सुख
बाढ़्यौ प्रेम-हलोरे में १११

खेमटा

कहनवा मानो हो दिल-जानी ।
निसि अंधियारी कारी बिजुरी चमकै
रुम भुम बरसत पानी ।
हाथ जोर ठाढ़ी अरज करत हो

सुनत नहीं मेरी बानी ।
 तुम ही अनोखे विदेस-जवैया 'हरीचंद' सैलानी ११२
 न जाय मो सों ऐसो भोका सहीलो न जाय ।
 भुलाओ धीरे डार लागै भारी बलिहारी हो
 बिहारी मो सों ऐसो भोका सहीलो न जाय ।
 देखो कर धर मेरी छाती धर धर करै
 पग दोउ रहे थहराय हाय ।
 'हरीचंद' निपट में तो डरि गई प्यारे
 मोहिं लेहु भट गरवां लगाय । न जाय ० ११३

सोरठ

मेरे नैनो का तारा है, मेरा गोविंद प्यारा है ।
 वो सूरत उसकी भोली सी वो सिर पगिया मठोली सी,
 वो बोली मैं उठोली सी बोलि दूग वान मारा है ।
 व घूंघरवालियां अलकैं व भोकेवालियां पलकैं,
 मेरे दिल बीच हलकैं छुटा घर-बार सारा है ।
 दरस सुख रैन दिन लूटै न छिन भर तार यह टूटै,
 लगी अब तो नहीं छूटै प्रान 'हरीचंद' वारा है ।
 मेरे नैनो का तारा है, मेरा गोविन्द प्यारा है ११४

मेरी हरि जी सों कहियो बात हो बात ।
 तुम बिन ब्रज सूनो मेरे प्यारे अब
 देख्यो नहिं जात हो जात ।
 सूखी लता पेड़ मुझाने गड
 भई दुबरे गात हो गात ।

जमुना जरित वृन्दावन उजरयो
 पीरे भए सब पात हो पात ।
 जसुदा-नंद बिकल रोअत है
 कहि कहि के हां तात हो तात ।
 सो दुख देख्यो जान न नैनन
 देखि दुखी तुव मात हो मात ।
 ब्रज-नारिन की दसा कहा कहौं
 रोअत बातत रात हो रात ।

'हरीचंद' मिलि जाओ पियारे करी
 न हम सों घात हो घात ११५

एतो हरि जी सों कहियो रोय हो रोय ।
 तुम बिन रहत सदा ब्रज-सुंदरि
 अंसुअन सों पट थोय हो थोय ।
 निसि-दिन बिरह सतावत ब्याकुल
 रही हैं सब सुख खोय हो खोय ।
 'हरीचंद' अब सहि न सकत दुख
 होनी होय सो होय हो होय ११६

संस्कृत की कजली

हरि हरि हरिरिह विहरत कुंजे मन्मथ मोहन बनमाली ।

श्री राधाय समेतो शिखिशेखर शोभाशाली ।
 गोपीजन-विधुवदन-वनज-वन मोहन मत्ताली ।
 गायति निज दासे 'हरिचंद' गल-जालक माया-जाली ११७
 हरि हरि धीर समीरे विहरति राधा कालिंदी-तीरे ।
 कृषति कल कलरव केकावलि-कारंडव-कीरे ।
 वर्षति चपला चारु चमत्कृत सघन सुघन नीरे ।
 गायति निज पद-पद्मरेणु-रत
 कविवर 'हरिश्चंद्र' धीरे ११८

मलार

मेरे गल सों लग जाओ प्यारे धिरि आई बदरिया धोर ।
 बड़ी बड़ी बूंदन वरसन लागीं बोलत दादुर मोर ।
 बिजुरी चमक देखि जिय डर पै पवन चलत भ्रुकभोर ।
 'हरीचंद' पिय कंठ लगाओ राखो अपनी कोर ११९
 आज घन अगगग गरजै हो सुनि सुनि कै जिय लरजै ।
 बड़ी बड़ी बूंद धिरि धिरि वरसे बिजुरी तरजै ।
 ऐसी समय पिय कंठ न लागत मानत नहिं मेरी अरजै ।
 'हरीचंद' पिय जात विदेसवां कोइ नहीं वरजै १२०

सावन आयो मन-भावन पिय विनु रह्यो न जाय ।
 घन की गरज सुन लरजौं मिलन को जिय ललचाय ।
 खबर न आई पिय प्यारे की करौं मैं कौन उपाय ।
 'हरीचंद' पिया को जो पाऊं लेहुं मैं गरवां लाय १२१

ऊधो जी मिलायो पियारे को हमहिं सुनाओ न जोग ।
 हम नारी जोग का जानै हो हमरे लेखे सो रोग ।
 वरसा आई बन हरे भए घर फिरे पंथी लोग ।
 'हरीचंद' लाओ मेरे श्यामहि मिटै बिरह-दुख-सोग १२२
 ऐसे सावन में साँवलिया मोरा जोवन लूटे जाय ।
 नैन-बान घायल करि दीनों जुलुफन बीच फँसाय ।
 मुख मोरा चूमि करै मन-मानी गरवा लेत लगाय ।
 सरबस रस लेके 'हरिचंद' वेदरदी

खड़ा खड़ा मुसकाय १२३

मलार की दुमरी

कुंजन में मोहिं पकरी री ।
 ऐ माई री छैठ मोहन पिया गरे लागे
 जो जो जिय आई सोइ करी री ।
 मैं निकसी दधि बेचन कारन
 औचकि आइ गही गिरधारन वरजि रही री ।
 मेरो वरज्यौ न मान्यो
 वरजोरी कर बहियाँ धरो री ।
 'हरीचंद' अति लंगर कन्हाई,
 करत फिरत ब्रज में मन-भाई,

ना जानो कैसे ऐसे छैठ लंगर के धोखे फंद परी री । १२४

तरजीह-बंद

चमक से बर्क के उस बर्क-बश की याद आई है ।
 घुटा है दम घटी है जाँ घटा जब से ये छाई है ।
 कौन सुने कासों कहीं सुरति विसारी नाह ।
 बदरावदी जिय लेत हैं ए बदरा बदराह ।
 बहुत इन जालिमों ने आह अब आफत उठाई है ।
 अहो पथिक कहियो इति गिरधारी सों टेर ।
 दूग भर लाई राधिका अब बूड़त ब्रज फेर ।
 बचाओ जलद इस सैलाव से प्यारे दुहाई है ।
 बिहरत वीतत स्याम सँग सो पावस की रात ।
 सो अब वीतत दुख करत रोअत पछरा खात ।
 कहाँ तो वह करम था अब कहाँ इतनी रुखाई है ।
 विरह जरी लखि जोगनिनि कहै न उहि कइ बार ।
 अरी आव भजि भीतरै बरसत आबु अँगार ।
 नहीं जुगनू हैं यह बस आग पानी ने लगाई है ।
 लाल तिहारे विरह की लागी अगिन अपार ।
 सरसैं बरसैं नीरहूँ मिटे न भर भभार ।
 बुझाने से है बढ़ती आग यह कैसी लगाई है ।
 वन बागन पिक बटपरा तकि विरहिन मन मैन ।
 कुहौ कुहौ कहि कहि उठैं करि करि राते नैन ।
 गजब आवाज ने इन जालिमों के जान खाई है ।
 पावस धन अँधियार मैं रह्यो भेद नहीं आन ।
 राति थोस जान्यो परै लखि चकई चकवान ।
 नहीं बरसात है यह इक कयामत सिर पर आई है ।
 पावक-फर तें मेह-भर दावक दुसह बिसेखि ।
 दहै देह वाके परस याहि दुगनहीं देखि ।
 लागी है जिनकी लौ तुमसे बस उनकी मौत आई है ।
 धुरपा होहिं न अलि यहै धुआँ धरनि चहुँ कोद ।
 जारत आवत जगत कों पावस प्रथम पयोद ।
 नहीं बिजली है यह इक आग बादल ने लगाई है ।
 येई चिरजीवी अमर निघरक फिरौ कहाइ ।
 छिन बिछुरे जिन के न इहि पावस आयु सिराइ ।
 यहाँ तो जाँ-बलाव हैं जबसे सावन की चढ़ाई है ।
 बामा भामा कामिनी कहि बोलौ प्रानेस ।
 प्यारी कहत लजात नहिं पावस चलत बिदेस ।
 मला शरमाओ कुछ तो जी में यह कैसी ढिठाई है ।
 रटत रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अंग ।
 तुलसी चाकत प्रेम को नित नूतन रुचि रंग ।
 विलों पर खाक उड़ती है मगर मुँह पर सफाई है ।
 बरखि परख पाहन पयद पंख करो टुक टुक ।
 तुलसी परो न चाहिए चतुर चातकहिं चूक ।

जबाँ पर तेरे आशिक के भला कब आह आई है ।
 दुखित धरनि लखि बरसि जल घनउ पसीजे आय ।
 द्रवत न तुम घनस्याम क्यौं नाम दयानिधि पाय ।
 खुदा ने बुत तेरी पत्थर की बस छाती बनाई है ।
 जो घन बरसै समय सिर जो भरि जनम उदास ।
 तुलसी जाचक चातकहि तऊ तिहारी आस ।
 सिवा खंजर यहाँ कब प्यास पानी से बुझाई है ।
 चातक तुलसी के मते स्वातिहु पिये न पानि ।
 प्रेम-तृषा बाढ़त भली घटे घटेगी कानि ।
 शहीदों ने तेरे बस जान प्यासे ही गँवाई है ।
 ऐसो पावस पाइहूँ दूर बसे ब्रजराइ ।
 आइ धाइ 'हरिचंद' क्यौं लेहु न कंठ लगाइ ।
 'रसा' मंजूर मुझको तेरे कदमों तक रसाई है । १२५

राग मलार

वृन्दावन करो दोउ सुख-राज ।
 फिरौ निसक दिए गल-बहियाँ लीने सखी-समाज ।
 बिहरो कुंज कुंज तर तर तर पुलिन पुलिन तजि लाज ।
 प्रति छन नए सिंगार बनाओ सजो सकल सुख-साज ।
 छिन छिन बढ़ो प्रेम प्रेमिन को पुरवहु सगरो काज ।
 हरीचंद की रानी (श्री) राधे गोपराज महाराज । १२६

भीजते साँवरे सँग गोरी ।
 अरस परस बातन रस भूली बाँह बाँह मैं जोरी ।
 कदम तरे ठाढ़े दोउ ओढ़े एकहि अरुन पिछोरी ।
 चुअत रंग अँग बसन लपटि रहे भीजि भीजि दुहुँ ओरी ।
 जल-कन झवत सगबगी अलकन करत जुगुल वित-चोरी ।
 गावत हँसत रिभ्रवत हिलि-मिलि पुनि-पुनि भरत अँकोरी ।
 बरसत धेरि धेरि घन उमंगे चपला चमक मचोरी ।
 बोलत मोर कोकिला तर पर पवन चलत फकभोरी ।
 अति रस सहस बढ़यो बृन्दावन हरित भूमि तर खोरी ।
 'हरीचंद' छवि टरत न दुग तेँ निरखि भीजती जोरी । १२७

बरषा में कोउ मान करत है
 तू कित होत सखी री अयानी ।
 यह रितु पीतम-गर लागन की
 तू रूसत कित होह सयानी ।
 देखु न कैसी छह अँधियारी
 बरसि रहयो रिमभिम लखु पानी ।
 'हरीचंद' चलि मिलु पीतम सों
 लूट न रति-सुख पिय-मन-मानी । १२८

डरपावत मोरवा कूकि कूकि ।
 पावस रितु बरसत कछु बादर
 पवन चलत है भूकि भूकि ।

पिय विनु जानि अकेली मो

कहै देत मदन तन फूँक फूँक ।

'हरीचंद' विनु हरि कामिनि के,

उठत बिरह को हूँकि हूँकि ।२९

पछितात गुजरिया, घर में खरी ।

अब लागि श्याम सुंदर नहि आए

दुखदाइनि भइ रात अँधरिया ।

बैठत उठत सेज पर भामिनि

पिय विन मोरी सूनी अटरिया ।

'हरीचंद' हरि के आवतही बसि गई

मोरी उजरी नगरिया ।३०

दियो पिय प्यारी को चौकाय ।

सुख सोये मिलि जुगल अटारिन अंग अंग लपटाय ।

इन घन गरजि बरसि बूँदन दिये काँची नींद जगाय ।

अलसाने नहि उठत सेज तें भींजि रहे अरुभाय ।

'हरीचंद' छपता लै कीनों क्योंहुँ बचन उपाय ।३१

डरत नहि घन सो रति रस-माते ।

हार्यो बरसि गरजि बहु भोतिन टरै न वीर तहाँ ते ।

गिरवर अटा सुहावनि लागत बन दरसात जहाँ ते ।

तहँई जुगल लपटि रस सोए नींद भरे अलसाते ।

रस-भीने आलस सो भीने भीने जल बरसाते ।

औरहु गाढ़ अलिंगन करि कै सोए सुखद सुहाते ।

भोर भयो नहि गिनत सखी-गन लखि कै कछु सकुचाते ।

'हरीचंद' घन दामिनि हारी जीति जुगल इतराते ।३२

प्रीति तुव प्रीतम को प्रगटैये ।

कैसे के नाम प्रगट तुव लीजे कैसे के बिधा सुनैये ।

को जाने समुझै जग जिन सो खुलि कै भरम गवैये ।

प्रगट हाय करि नैनन जल भरि कैसे जगहि दिखैये ।

कबहुँ न जाने प्रेम-रीति कोउ सुख सो बुरे कहैये

'हरीचंद' पै भेद न कहिये भले ही मौन मरि जैये ।३३

आजु फलक प्यारे की लखि कै

मो घर महा मंगल भयो अली ।

जद्यपि हौं गुरुजन के भय सो

नीके नहि चितए बनमाली ।

उठै कुंज सो मरगजे बागे

जागे आवत रति-रन-साली ।

हौं भय लो लखियन के चितई

लोचन भरि नहि रोचन लाली ।

उनहुँ नैन कोर हंसि चितई

मन लै गए ठगौरी घाली ।

'हरीचंद' भयो मोरहि मंगल

कारज हवै है सिद सुखाली ।३४

हमारी श्री राधा महारानी ।

तीन लोक को ठाकुर जो है ताड़ की ठाकुरानी ।

सब ब्रज की सिरताज लाडिली सखियन की सुखदानी ।

'हरीचंद' स्वामिनि पिय

कामिनि परम कृपा की खानी ।३५

मलार खेमटा

पथिक की प्रीति को का परमान ।

रैन बसे इत भोर चले उठि मारि नैन को बान ।

ये काहू के भये न होयगै स्वारथ लोभी जान ।

'हरीचंद' इनके फंदन परि बूधा गवैये प्रान ।३६

हिंडोरना आजु भकोरवा लेत ।

भूलत श्यामा-श्याम रंग-भरे लपटि बढ़ावत हेत ।

बरसत घन तन काम जगावत गावत तारी देत ।

'हरीचंद' अरुफे पिय प्यारी वीर सुरत-रन-खेत ।३७

परज

घेरि घेरि घन आए कुंज छाड़ धाए

ऐसी या समय कोउ मान करै बाउरी ।

देखि तो कुंज की शोभा बोलि रहे मोर

कीर हरी भूमि भई संग चलि आउ री ।

पावस रितु सवै नारी मिलै पीतम सो

तु ही अनोखी एती करत चवाउ री ।

'हरीचंद' बलिहारी मग देखे गिरधारी

उठु चलु प्यारी मति बात बहराउ री ।३८

दोउ मिलि आजु हिंडोले भूलै ।

कंचन खंभ फूल सो बांधे

शोभित सुभग कलिंदी-कूलै ।

मुलावत चहुँ दिसि नवल नागरी

सोभा को रतिहुँ नहि तूलै ।

गावत हंसत हँसाइ रिझावत पिय

छवि लखि मन ही मन फूलै ।

चलत चपल दृग कोर परसपर

मेढत कठिन मदन की सुलै ।

'हरीचंद' छवि-रासि पिया-पिय

दरसत ही जिय दुख उनमूलै ।३९

राग देश

हिंडोरे कौन भूलै थारे लार ।

तुम अटपटे थारी भूलन अटपटी हूँ तो घणी सुकुमार ।

तुम भूलो थाने हूँ जू भुलाऊँ थारो चरित अपार ।

'हरीचंद' ऐसी कहै छे राधिका मोहन-प्रान-अधार ।४०

कजली

दोउ भूलैं आयु ललित हिंडोरे सखियाँ ।
 लखि सोभा मेरी सुनो री सिरानी अँखियाँ ।
 फूले फूल बहु कुंज भुकि रहीं डलियाँ ।
 तहाँ बोलैं मोर कोकिला गावत अलियाँ ।
 परै मंद मंद फुहो दोने गल-बहियाँ ।
 श्याम भीजत बचावैं प्यारी करि छहियाँ ।
 छवि बाढ़ो अनूप तहाँ तौन घरियाँ ।
 तन मन 'हरिचंद' बलिहारी करियाँ । १४१

भारत में एहि समय भई है सब कुछ
 बिनहि प्रमान हो दुइ-रंगी ।
 आधे पुराने पुरानहि माने
 आधे भए किरिस्तान हो दुइ-रंगी ।
 क्या तो गदहा को चना चढ़ावै
 कि होइ दयानंद जायँ हो दुइ-रंगी ।
 क्या तो पढ़ै कैथी कोठिवलिये
 कि होइ बरिस्टर धाय हो दुइ-रंगी ।
 एही से भारत नास भया सब
 जहाँ तहाँ यही हाल हो दुइ-रंगी ।
 होउ एक मत भाई सबै अब
 छोड़हु चाल कुचाल हो दुइ-रंगी । १४२

सखी चली री कदम्ब तरे छोड़ि काम धाम ।
 भूलै रमकि डिरोरे जहाँ राधा-घनश्याम ।
 सोभा देखिके सिराने नयन पूरे मन-काम ।
 'हरिचंद' देखो उरभी गरे बन-दाम । १४३

एरी सखी भूलत हिंडोरे श्यामा-
 श्याम बिलोको या कदम के तरे ।
 ऐसी सोभा देखत ही बनि आवै विरिछि सोहैं हरे हरे ।
 एरी तहाँ रमकत प्यारी भूलैं दिये बाँह पिय के गरे ।
 एरी छवि देखत ही 'हरिचंद' नैन मेरे आवत भरे । १४४

देखो भारत ऊपर कैसी छाई कजरी ।
 मिटि धूर में सपेदी सब आई कजरी ।
 दुज बेद की रिचन छोड़ि गई कजरी ।
 नृप-गन लाज छोड़ि मुँह लाई कजरी । १४५

तोरे पर भए मतवार रे नयनवाँ ।
 लोक-लाज-जस-अजस न मानै
 सरस रूप रिम्भवार रे नयनवाँ ।
 मदिरा प्रेम पिये मतवार
 सब से करत बिगार रे नयनवाँ ।
 'हरीचंद' पिय रूप दिवाने
 करत न तनिक विचार रे नयनवाँ । १४६

बिनु साँवरे पियरवा जिय की जरनि न जाय ।
 जिय नहि बहलत प्रान-प्रिया-बिनू कीने लाख उपाय ।
 काले बादर देखि बिरह की हूक उठत जिय आय ।
 'हरीचंद' स्वाम बिनु बादर उलटी आग देत दहकाय । १४७

बिजुरी चमकि चमकि डरवाये,
 मोहि अकेली पिय बिनु जानि ।
 बादर गरजि गरजि अति तरजे
 पंच-रंग धनुहीं तानि ।
 मोरवा बैरी कड़खा गावै

मनमथ-विरद बखानि ।
 पिय 'हरिचंद' गरे लागि मरत
 जियाओ अरज लेहु यह मानि । १४८
 काहे तू चौका लगाय जयचंदवा ।
 अपने स्वारथ भूलि लुभाए
 काहे चोटी-कटवा बुलाए जयचंदवा ।
 अपने हाय से अपने कुल कै
 काहे तैं जड़वा कटाए जयचंदवा ।
 फूट कै फल सब भारत बोए
 बैरी कै राह खुलाए जयचंदवा ।
 और नासि तैं आपो बिलाने
 निज मुँह कजरी पुताय जयचंदवा । १४९

टूटे सोमनाथ के मंदिर केहु लागे न गोहार ।
 बैरो बैरो हिंदू हो सब गौरा करे पुकार ।
 की केहू हिंदू के जनमल नाहीं की जरि भैलैं छार ।
 की सब आज धरम तजि दिहलैं भैलैं तुरुक सब इक बार ।
 केहू लगल गोहार न गौरा रोवैं जार-बिजार ।
 अब जग हिंदू केहू नाहीं भूठे नामैं के बेवहार । १५०

धन धन भारत के सब क्षत्री जिनकी सुजस-धुजा फहराय ।
 मारि मारि कै सत्रु दिए हैं लाखन बेर भगाय ।
 महानंद की फौज सुनत ही डरे सिकंदर राय ।
 राजा चंद्रगुप्त ले आए बेटी सिल्यूकस की जाय ।
 मारि बलूचिन बिक्रम रहे शकारी पदवी पाय ।
 बापा कासिम-तनय मुहम्मद जीत्यू सिंधु दियो उतराय ।
 आयो मामूँ चढ़ि हिंदुन पै चौबिस बेरा सेन सजाय ।
 सुम्मानराय तेहि बाप-सार लखि सब बिध दियो हराय ।
 लाहौर-राज जयपाल गयो चढ़ि खुरासान पर धाय ।
 दीनो प्रान अनंदपाल पर छाँड़्यो देस धरम नहि जाय । १५१

धुवपद मलार

आयो पावस प्रचंड सब जग मै मचाई धूम
 कारे घन घेरि चारों ओर छाये ।
 गरजि गरजि तरजि तरजि बीजु चमक चहुँ दिसि

सों बरखत जल-धार लेत धरनि छिपाय ।
 मोर रोर दादुर-रव कोकिल कल भींगुर भनकारन
 मिलि चारहु दिसि तुम कलह घोर सी मचाय ।
 'हरीचंद' गिरिधारी राधा प्यारी साथ लगाय

ऐसी समै रहे मिलि कंठ लपटाय ॥५२॥

तेरेई पयान-हित पावस प्रबल आयो
 उठि चलि प्यारी देखि छाई अंधियारी भारी ।
 पथ दिखाइ दामिनी रही चमकि तेरे गवन हेत
 रवन संग मिले क्यों न निसि अति कारी कारी ।
 गोप सबै गेह गए हवै गयो इकंत कुंज

सीरी पौन चलि रही देखि प्यारी प्यारी ।
 'हरीचंद' मान छोड़ि उठि चलो साथ मेरे
 बैठे बाट हेरि रहे पिय गिरधारी वारी ॥५३॥

ख्याल मलार तिताला

ए धिरि धिरि कै मेघवा बरसे,
 पिय विनु मोरा जियरा तरसे ।
 बड़ी बड़ी बूंदन बरसत धायो घेरि घेरि
 चहुँ दिसि तैं छायो चपला चमकि मेरे प्रान परसे ।
 भोक्त पवन जोर पुरवाई अति अंधियारी कहुँ
 पंथ न लखाइ इत उत जुगनूँ चमकत दरसे ।
 पंथ न लखाइ इत उत जुगनूँ चमकत दरसे ।
 'हरीचंद' पिय गरवाँ लगाओ मेरे तन की तपन
 बुझाओ तोहिं मिलि मेरो तन मन हरसे ॥५४॥

दूसरी चाल की

देखो बूंदन बरसे दामिनि चमके धिरि
 आए बढा गरे से लग जाओ ।
 वन की गरज सुन उमगत मेरो जिय
 ऐसी समै मोहिं मत तरसाओ ।
 भरि गई नदी भूमि भई हरी हरी
 मग भए अगम दूर मत जाओ ।
 'हरीचंद' बलिहारी मिल प्यारे गिरधारी
 पुरो मनोरथ तपत बुझाओ । देखो ॥ ५५ ॥

ख्याल मलार ताल भूपक

पिया विनु बिरह-बरसा आई ।
 सचन घन दामिनि दमकि संग चमकि जुगनूँ
 रमकि बदन भमकि बरसत बूँद अति भर लाई ।
 रैन कारी डहारी भारी छाई अंधियारी विनु
 पिया बिहारी गिरधारी के प्यारी घबराई ।
 'हरीचंद' न धीर धरे पीर भई
 भारी वनवारी बिना मुरझाई ॥५६॥

सूरदासी मलार आड़ा वा तिताला

यह रितु हसन की नहिं प्यारी ।

देखु न छाये रहे घन भुकि भुकि भूमि छई हंरियारी ।
 सीरी पवन चलत गरुई हवै काम बढ़ावन-हारी ।
 वन उपवन सब भए सुहावन औरहि छवि कछु धारी ।
 फूली जुही मालती महँकी सुनि कोकिल किलकारी ।
 लहकि लहकि लपटी सब बेली पीतम-गल भुज डारी ।
 मगन भए जड़ जीव सबै जब तब तूँ रहति क्यों न्यारी ।
 'हरीचंद' गर लगु पीतम के गाढ़े भुज भरि नारी ॥५७॥

सावनी

पिय विनु सखी नौद न आवै साँपिन सी भई रैन ।
 ब्याकुल तड़पूँ अकेली पीतम विनु नहिं चैन ।
 कैसे मैं जीऊँ विनु प्यारे ही बरसत टप टप नैन ।
 'हरीचंद' कटत न सावन मारत मोहन मेन ॥५८॥

धुरपत टोड़ी वा गौड़ मलार चौताला

ताथेई ताथेई ताथेई नाचे री मदन-मोहन रास रंग
 बधुन संग लाग डाँट लेत उरप-तिरप महामोद बढ़यो
 ब्रज-जुवतिन-मध्य आनंद राँचे री ।
 ततथा ततथा ततथा बाजै मृदंग तरस तकिटथा
 तकिटथा तकिटथा छवि लखि महा मोद री ।
 अलाग लाग लेत गावत गुनिजन बंधान
 तान मान बंध्यो थिरक्यो लय बिच बिच
 बाजै मुरलि सुख साँचे री ।
 छवि लखि शिव मोहे आय नाचत डमरू बजाय
 डिमि डिमि डिमि डिमिर डिमिर जस तहाँ
 'हरीचंद' बिमल बाँचे री । ताथेई ॥ ५९ ॥

लावनी

बरसा रितु सखि सिर पर आई पिय विदेस छाप ।
 हमें अकेली छोड़ आप कुबरी सों बिलमाए ।
 सँदेसे भी नहिं भेजवाए ।
 वादे पर वादा भूठा कर अब तक नहिं आए ।
 बिथा सो कही नहीं जाती ।
 पिया बिना मैं ब्याकुल तड़पूँ नौद नहीं आती ।
 रात अँधेरी पंथ न सूझै घोर घटा छाई ।
 रिमझिम रिमझिम बूँदें बरसैं भोके पुरवाई ।
 पपीहन पी पी रट लाई ।
 सुधि कर पीतम प्यारे की मेरी अँखियाँ भरि आई ।
 बिरह से दरकी सखि छाती ।
 पिया बिन मैं ब्याकुल तड़पूँ नौद नहीं आती ।
 बाग बगीचे हरे भरे सब फूली फुलवारी ।
 भरे तलाव नदी नद नारे मिटी राह सारी ।
 बिपति यह पड़ी सखी भारी ।

कैसे आवैं मोहन उन विन व्याकुल मैं नारी ।
 याद कर तवियत घबराती ।
 पिया विन मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ।
 जुगनूँ चमकैं चार दिसा में भई बड़ी सोभा ।
 हरी भूमि पर वीर-बहूटी देखत मन लोभा ।
 नए नए बिरछन के गोभा ।
 देख देख के कामदेव मेरे जिय मारै चोभा ।
 हुई जेवन-मद से माती ।
 पिया बिना मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ।
 बरसा रितु में पीतम के सँग फिरै समी नारी ।
 झूलै वागों जाय हिंडोरा गावैं दै तारी ।
 पहिन के रँग रँग की सारी ।
 मै किसके सँग सोऊँ सखी री बिपति बड़ी भारी ।
 करूँ क्या तवियत लहराती ।
 पिया बिना मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ।
 बादुर बोलैं नाचैं मोरा बरसा रितु जानी ।
 बिजुली चमकै बादल गरजै बरस रखा पानी ।
 सेज सूनी लखि पछितानी ।
 हाथ पटक पाटी पर रो रो पिय विन बिलखानी ।
 कोई नहिं आकर समझाती ।
 पिया बिना मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ।
 कहाँ जाऊँ क्या करूँ कोई ततवीर न दिखलाती ।
 खड़ी द्वार पर राह देखती भीजत पछताती ।
 न भेजी अब तक भी पाती ।
 'हरिचंद' को जाके कोई इतना तो समझाती ।
 कटै कैसे दुख की राटी ।
 पिया बिना मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती । ६०

बारह-मास

पिय गए विदेस सँदेस नहिं पाय सखी मन-भावनी ।
 लाग्यो असाढ़ बियोग बरसा भई अरंभ सुहावनी ।
 अदरा लगी बदरा घुमड़ि रहे बिपति यह उनई नई ।
 विनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।
 सावन सुहावन दुख-बढ़ावन गरजि घन बन घेरही ।
 बामिनि दमकि जुगनूँ चमकि मोहिं दुखी जान तरेही ।
 पपिहा पिया को नाम रटि रटि काम-अगिन जगावई ।
 विनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।
 भादों औंधेरी रात टपकै पात पर पानी बजै ।
 डरि काम के भय सुन्दरी मिलि नाह सों सेजिया सजै ।
 मैं भीजि मारग देखि पिय को रोय तजि आसा दई ।
 विनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।

सखि क्वार मास लाग्यो सुहावन सबै साँझी खेलहीं ।

निसि चन्द पूरन चाँदनी मैं नाह गह भुज मेलहीं ।
 मोहिं चाँदनी भई धूप रोअत रात बीति सबै गई ।
 विनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।
 कातिक पुनीत नहाइ सब दै दीप उँजियारी करै ।
 हम प्रान-पिय-विनु विकल बिरहागिन दिवारी सी जरै ।
 औंधियार पिय विनु हिए चौपड़ कौन हँसि हँसि खेलई ।
 विनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।
 अगहन लाग्यो पाला पड़्यो सब लपटि पिय सों सोचहीं ।
 विनु प्रान-प्रियतम मिले हम करि हाय बहु बिधि रोवहीं ।
 दो भए विन इक रैन आली लाख पुग सी लागई ।
 विनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।
 सखि पूस लाग्यो रूस बैठे प्रानपिय औरै कहीं ।
 यह रात जाड़े की बिना पिय साथ के बीतत नहीं ।
 उन निठुर सब सुख छीनि हमरो राह मधुवन की लाई ।
 विनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।
 सखि माघ में कोयल कुहूकी काम को आगम भयो ।
 फूली बसंत सुखेत सरसों आम बन बौर्यो नयो ।
 यह पंचमी तिहवार की भई हाय दुखदाइन दई ।
 विनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।
 फागुन महीना मस्त सब मिलि निलज गारी गावहीं ।
 डारै अबीर गुलाल चोवा रंग सँग उड़ावहीं ।
 विनु प्रान-पिय मैं आप बिरहिन होय होरी जरि गई ।
 विनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।
 सखि चैत चाँदनि लगी सुखद बसंत ऋतु बन आइयो ।
 चटके गुलाब सुहावने जग काम को बल छाड़्यो ।
 विनु प्रानपिय दुख दुगुन भयो मनो आज भई बिरहिन नई ।
 विनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।
 बैसाख मास अरंभ ग्रीष्म औरइ दुख बाढ़ही ।
 इक तो बियोगिन आप द्वे दुसह ग्रीष्म डाढ़ही ।
 बन नयो पल्लव काम-बान समान उर बेधा दई ।
 विन श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।
 सखि जेठ में दिन भयो दूनो कटत कोऊ बिधि नहीं ।
 बन पात पातन टूँढ़ि हारी नहिं मिले प्यारे कहीं ।
 पाती न पाई श्याम को सखि बयस सब योही गई ।
 विनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।
 इमि खोज बारह मास पिय को हारि भामिनि भौनही ।
 धरि रूप जोगिन को रही औलंब करि इक मौनही ।
 'हरिचंद' देख्यो जगत को सब एक पिय मोहन-मई ।
 विनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई । ६१

कजली

मोहिं नंद के कंधाई बेलमाई रे हरी ।

वहे पुरवाई औ बदरिया झुकि आई रामा,
कुंज में बुलाई वृजवाई रे हरी ।
बौंसिया नजवाई सुनि सखि उठि आई रामा,
सब बुरि आई रस बरसाई रे हरी ।
माघवी भी जाई जिय अति हुलसाई रामा,
कजरी सुनाई मन भाई रे हरी ।
मिलु उर लाई प्यारी पिय को लुभाई रामा,
नाहिं 'हरिचंद' पछलाई रे हरी । ६२

मलार

हरि बिनु काली बदरिया छाई ।
बरसत घेरि घेरि चहुँ दिसि तें दामिनि चमक जनाई ।
कोइलि कुहुकि हिय मेरे बिरहा-अगिन बढ़ाई ।
दादुर बोलत ताल-तलैयन मानहुँ काम-बधाई ।
कौन देस छाये नैद नंदन पातीहू न पठाई ।
'हरिचंद' बिनु विकल बिरहिनी परी सेज मुरभाई । ६३

सखि फिरि पावस ऋतु आई ।
पिया बिना फिरि पी पी करि कै इन पापिन रट लाई ।
फिर बदरी भुकि भुकि कै आई बिपति-फोज उठि धाई ।
देखि अकेली कुटिल काम फिरि खींचि कमान चढ़ाई ।
फिर बरसत बैसी ही बूँद चहुँ दिसि सों भरि लाई ।
फिर दुख-नदी उमड़ि हियरा सों नैनन के मग आई ।
फिर चमकी चपला चहुँचा तें बिरहिन फेरि डराई ।
फिर इन मोरन बोलि बोलि कै मोहन सुधि जु दिवाई ।
फिर ये कुंज हरे भए देखियत जहँ हरि केलि कराई ।
'हरिचंद' फिरि विकल बिरहिनी परी सेज मुरभाई । ६४

फिरि आई बदरी कारी, फिर तलफैगे पापी प्रान ।
बिनु पिय पची फेर याही दुख देखन के हित नारी ।
अति व्याकुल तलफत कोउ नाहिंन कछु समुभावन-हारी ।
देखि दसा रोवत हुम-बेली धीर सकत नहिं धारी ।
कोकिल-कूक सुनत हिय फाटत क्यों जीवै सुकुमारी ।
'हरिचंद' बिनु को समुभावै कहि कहि प्रान-पियारी । ६५

मो मन स्याम घटा सी छाई ।
बरसत है इन नैनन के मग पिय बिनु बरसा आई ।
मन-मोहन बिछुरे सों सब जग सुनो परत लखाई ।
'हरिचंद' बिनु प्रान बचन को नाहिं लखात उपाई । ६६

राग मलार, चौताला

श्याम घटा छाई श्याम श्याम कुंज भयो
श्यामा-श्याम ठाढ़े तामे भोजत सोहै ।
तैसिय श्याम सारी प्यारी तन सौहैं भारी
छवि देखि काम-बाम चंचलाहू मोहैं ।
तैसोई मुकुट मानां घन दामिनि पर
बग-पगति तापै मोर नचो है ।

'हरिचंद' बलिहारी राधा अरु गिरधारी
सो छवि कहि सकै ऐसो कवि को है । ६७

राग मलार

अनोखी तुही नई एक नारि ।
पवास रितु मै मान करै कोउ लखि तो हृद बिचारि ।
जोगीहू घन घटा देखिके धावत ध्यान बिसारि ।
बड़े बड़े ज्ञानी वैरागी करत भोग तप हारि ।
तू कामिनि क्यों धीर धरत है यह अचरज मोहिं भारि ।
कर जोरे गिरधर पिअ ठाढ़े करत बहुल मनुहारि ।
'हरिचंद' हठ छोड़ि दया करि भुज भरि कोप बिसारि । ६८

खंडिता

आजु तौ जैमात प्रात दोऊ दुग अलसात
भीजत भीजत लाल आए मेरे अँगना ।
लटपटी पाग तें कुसुंभी रंग बरसि रह्यौ
अकेले कहाँ ते आए सखा कोऊ संग ना ।
निसि के उनींदे जागे कौन तिया-रस पागे
देखो तौ कोपोलन पै रह्यो कहूँ रँग ना ।
'हरिचंद' बलिहारी देखिये जू गिरधारी
नील पट अरुमयी है काहू को कैंगना । ६९

सारंग

आजु ब्रज बाजत महा बधाई ।
परम प्रेमनिधि श्री चंद्रावलि चंद्रभानु नृप-जाई ।
प्रफुलित भई कुंज हुम-बेली कीरादिक सुख पाई ।
परम रसिक-बर नंदलाल-हित प्रगट भूमि पै आई ।
चंद्रभानु नृप दान देत बहु हय गय सकल लुटाई ।
चंद्रकला रानी सुखदानी ताकी कूख सिराई ।
आये नंदादिक सब मिलिके महीमान घर धाई ।
प्रगटो सखी स्वामिनी की ब्रज सब मिलि नाचत गाई ।
चंपक-लतां बहुरि चंद्रावलि तनया जुगुल सुहाई ।
प्रगटे ब्रज सुतहू तें दूनो करत उछाव बनाई ।
गुप्त रूप कोउ लखत नहीं कछु भेद न जान्यो जाई ।
'हरिचंद' श्री बिडल-पद लखि लख्यो भेद सुखदाई । ७०

आजु ब्रज दूनो बढ़यो अनंद ।
भालौ सुदी पंचमी स्वाती बुध प्रगटे जदु-चंद ।
अग्रज श्री गिरिधारन जू के लीला ललित अर्मंद ।
रोहिनि माता उदर प्रगट भये हरन भक्त के दंद ।
दान देत हर्षे नैद-जसुमति हय गय रतनन कंद ।
'हरिचंद' अलि आनंद फुले गावत देव सुछंद । ७१

आसावरी

आनंद-सागर आजु उमड़ि चलयो

ब्रज में प्रगटे आइ कन्हाई ।

नाचत ग्वाल करत कोतुहल

हेरी देत कहि नंद दुहाई ।

छिरकत गोपी गोप सबै मिलि

गावत मंगलचार बधाई ।

आनंद भरे देत कर-तारी लखि

सुरगन कुसुमन भर लाई ।

देत वान सम्मान नंद जू अति

हुलास कछु बरनि न जाई ।

'हरीचंद' जन जानि आपुनो टेरे

देत सब बहुत बधाई ॥७२॥

यथा-रुचि

आजु ब्रज होत कुलाहन भारी ।

बरसाने वृषभानु गोप के श्री राधा अवतारी ।

गावत गोपी रस में ओपी गोप बजावत तारी ।

आनंद-मगन गिनत नहीं काहू देत दिवावत गारी ।

देत वान सम्मान भान जू कनक माल मन सारी ।

जो जांचत तासों बढ़ि पावत 'हरीचंद' बलिहारी ॥७३॥

आजु वन ग्वाल कोऊ नहीं जाई ।

कहत पुकारि सुनौ री भैया कीरति कन्या जाई ।

लावहु गाय सिंगारि बच्छ सह सुवरन सींग मढ़ाई ।

मोर-पंख मखतूल भूल धरि अंग अंग चित्र कराई ।

आजु उदय साँचो सब गावहु मिलिकै गीत बधाई ।

'हरीचंद' वृषभानु बया सों बहुत निछावरि पाई ॥७४॥

आनंदे सुख हेरि हेरि ।

ब्रज-जन गावत देत बधाये नचत पिछौरी फेरि फेरि ।

उनमत् गिनत न ग्वाल कछु ब्रज सुंदरि राखी घेरि घेरि ।

हेरी दे दै बोलत सबही ऊँचै सुर सों टेरि टेरि ।

छिरकत हँसत हँसावत धावत राखत दधि-घृत झेरि झेरि ।

'हरीचंद' ऐसो मुख निरखत

तन-मन वारत बेरि बेरि ॥७५॥

आनंद आजु भयो बरसाने जनमी राधा प्यारी जू ।

त्रिभुवन सुखदानी ठकुरानी जननी जनक-दुलारी जू ।

सुर नर मुनि जेहि ध्यान धरत है गावत वेद पुकारी जू ।

सो 'हरीचंद' बसत बरसाने मोहन प्रान-अधारी जू ॥७६॥

राग बिलावल

आजु भौन वृषभानु के प्रगटीं श्री राधा ।

दूरि भई है री सखी त्रिभुवन की बाधा ।

को कवि जो छबि कहि सके कछु कहि नहीं आवै ।

आनंद अति परगट भयो दुख दूरि बहावै ।

आरहिं सब ब्रज-गोपिका तन-मन-धन वारी ।

'हरीचंद' श्री राधिका-पद पै बलिहारी ॥७७॥

झेरव

आजु तो आनंद भयो का पै कहि जावै ।

भूलै सब गोपि-ग्वाल इत उत बहु डोलै ।

बाढ़यो अति हिय हुलास जय जय मुख बोलै ।

पहिरि पहिरि सुरंग सारी आई ब्रज-नारी ।

गावै हिय मोद भरी दै दै कर-तारी ।

वान देत भानु राय जाको जो भावै ।

'हरीचंद' आनंद भरि राधा गुन-गावै ॥७८॥

कान्हरा

आई भादों की उँजियारी ।

आनंद भयो सकल ब्रज-मंडल

प्रगटी श्री वृषभानु-दुलारी ।

कीरति जू की कोख सिरानी

जाके घर प्यारी अवतारी ।

'हरीचंद' मोहन जू की ज्योरी

विधना कुँवरि सँवारी ॥७९॥

आजु बरसाने नौवत जावै ।

बीन मृदंग ढोल सहनाई गह गह दुंदुभि गावै ।

सब ब्रज-मंडल शोभा बाढ़ी घर घर सब सुख सावै ।

'हरीचंद' राधा के प्रगटे देव-बधू सब लावै ॥८०॥

आजु ब्रज आनंद बरसि रह्यौ ।

प्रगट भई त्रिभुवन की शोभा सुख नहीं जात कट्यौ ।

आनंद-मगन नहीं सुधि तन की सब दुख दूरि बट्यौ ।

'हरीचंद' आनंदित तेहि छन चरन की सरन गट्यौ ॥८१॥

आजु कहा नभ भीर भई ?

सजनी कौन फूल बरसावै सुख की बेलि बई ?

बालक से चारहु को आवे ? तीन नयन को को है ?

ओढ़ि बघंबर सरप लपेटे जटा धरे सिर सोहै ?

तीन चार अरु पंच सप्त षट्मुख के मिलि क्यों नाचै ?

बड़ी जटा मुख तेज अनूपम को यह वेदहि बाँचै ?

बीन बजावति कौन लुगाई हंस चढ़ी क्यों होले ?

को यह यंत्र बजाय रही है जै जै जै जै बोलै ?

को यह लिये तमूरा ठाढ़ी को नाचै को गावै ?

इत आवै कोउ बात न पूछत पुनि नभ लौं चलि जावै ?

अति आचरज भरीं सब तन में बात करै ब्रज-नारी ?

प्रगट भई वृषभानु राय घर मोहन-प्रान-पियारी ।

आनंद बढ़यो कहत नहीं आवै कवि की मति सकुचाई ।

राधा-श्याम-चरन-पंकज-रज 'हरीचंद' बलि जाई ॥८२॥

आजु प्रगट भई श्री राधा आजु प्रगट भई ।

गोपिका मिलि घर-घरन सों भानु-नगर गई ।

आइ नंद-जसोमति मिलि होत अधिक अनंद ।
भानु वरसाने उदय भो प्रगट पूरन चंद ।
होत जय जयकार वहि पुर देव वरपै फूल ।
'हरीचंद' सब गोपिका के मिटे उर के शूल । ८३

सारंग

आजु दधि-काँदौ है वरसाने ।
छिरकति गोपी-गोप सबै मिल काहु को नहि माने ।
आनंदित घर की सुधि भूली हमको है नहि जाने ।
दधि-वृत्-दूध उड़ै लै सिर सों फिरहि अतिहि सरसाने ।
वह आनंद कापै कहि आवै भयो जौन महराने ।
श्री बल्लभ-पद-पद्म-कृपा सों 'हरीचंद' कछु जाने । ८४

कजली

श्याम-विरह में सुभक्त सब जग
हम को श्यामहि श्याम हो इक-रंगी ।
जमुना श्याम गोबरधन श्यामहि
श्याम कुंज वन धाम हो इक-रंगी ।
श्याम घटा पिक मोर श्याम सब
श्यामहि को है काम हो इक-रंगी ।
'हरीचंद' याही तें भयो है
श्यामा मेरो नाम हो इक-रंगी । ८५

मलार

अनत जाइ वरसत इत गरजत वे-काज ।
तुम रस-लोभी मीत स्वारथ के सुनहु पिया ब्रजराज ।
दामिनि सी कामिनि अनेक लिए करत फिरत हौ राज ।
'हरीचंद' निज प्रेम-पपीहन तरसावत महाराज । ८६
पिय सँग चलि री हिंडोरे भूल ।
या सावन के सरस महीने मेंटि ओरी जिय मूल ।
दोख हरी भई भूमि रही सब वन-दुम-बेली फूल ।
यह रितु मानिनि-मान-पतिव्रत देत सबै उन्मूल ।
होन सैजोगिनि सुख विरहिन के हिए उठत है झूल ।
'हरीचंद' चल ऐसा समय तू
मिलु गहि पिय भुज-मूल । ८७

राग भैरव

प्रात काल ब्रज-बाल पनियाँ भरन चलीं
गोरे गोरे तन सोहै कुसुंभी को चदरा ।
ताही समै घन आए धेरि धेरि नभ छाप
दामिनि दमक देखि होत जिय कदरा ।
बोलत चातक मोर सीतल चलै भकोर
जमुना उमड़ि चली वरसत अदरा ।
'हरीचंद' बलिहारी उठि बैठो गिरिधारी

सोभा तौ निहारौ चलि कैसे छाप वदरा । ८८

खंडिता

प्रात क्यौं उमड़ि आए कहा मेरे घर छाप
ए जू घनश्याम कित रात तुम वरसे ।
गरजत कहा कोऊ डर नहि जैहै भागि
भुकि भुकि कहा रहे चलौ अटा पर से ।
सजल लखात मानौ नील पट ओढ़ि आए
कहौ दोरे दोरे तुम आए काके घर से ।
'हरीचंद' कौन सी दामिनि सँग रात रहे
हम तौ तुम्हारे बिना सारी रैन तरसे । ८९

सारंग

आये ब्रज-जन धाय धाय ।
नाचत करत कोलाहल सब मिलि
तारी दै दै गाय गाय ।
जुरे आइ सिंगरे ब्रज-बासी
टीको बहु विधि लाय लाय ।
'हरीचंद' आनंद अति बाढ़यो
कहत नंद सों जाय जाय । ९०
आजु भयो अति आनंद भारी ।
प्रगटौ श्री वृषभानु-दुलारी ।
गोपी सब टीकौ लै आवैं ।
मिलि मिलि रहसि बधाई गावैं ।
नाचत गोप देत सब तारी ।
तन मन की कछु सुधि न सम्हारी ।
दान देति हैं मनि-गन हीरा ।
हेम पटम्बर पीअर चीरा ।
सुख बाढ़यो तेहि छन अति भारी
'हरीचंद' छवि लखि बलिहारी । ९१
आजु श्री बल्लभ के आनंद ।
प्रगट भये ब्रज-जन-सुखदायी पूरन परमानंद ।
गावत गीत सबै ब्रज-बनिता सोहत है मुख-चंद ।
बंद पढ़त द्विजवर बहु ठाढ़े देत असीस सुखंद ।
गुप्त रूप कोऊ प्रकट न जानत हलाधर सब सुखकंद ।
गोपीनाथ अनाथ-नाथ लखि मन वारत 'हरिचंद' । ९२
आजु ब्रज होत कोलाहल भारी ।
नंदराय घर मोहन प्रगटे भक्तन के सुखकारी ।
जित तित तें थाई टीको लै अति आकुल ब्रज-नारी ।
निरखन कारन श्याम नवल ससि उमैगी सजि सजि सारी ।
गावत गोप चोप भरि नाचत दै दै कै कर-तारी ।
बाजे वजत उड़त दधि माखन छीर मनहूँ घन वारी ।
दान देत नंदराय उमैगी रस रतन धेनु बिस्तारी ।
'हरीचंद' सों निरखि परम सुख देत अपनपों वारी । ९३

परज

एरी आज वजै छे रंग बधावना ।

कीरति-उदर-उदयगिरि प्रगटयो अद्भुत चंद्र सोहावना ।
आजु सुफल भयो नंद महोत्सव नर-नारी मिलि गावना ।
'हरीचंद' वृषभानु बवा सों प्रेम बधायो पावना । १४

सारंग

कुंज कुंज रथ डोलै मदन मोहन बू को
श्वेत ध्वजा तामें उड़ि उड़ि सोहै ।
तैसोई सघन घन छाय रहेउ नभ
बीच देखत ही मनमथ-मन मोहै ।
वैरत में फरहरत पीताम्बर
मनु दामिनि घन नाचै ।
श्वेत ध्वजा बग-पाँति छवि कछु कहि न
जात निरखत अति मन आनंद राचै ।
दुम दुम कुंज कुंज बन बन
तीर तीर धूमत रथ फिरि आवै ।
'हरीचंद' बलि जाय छवि देखि सुख
पाय तन मन धन सब वारिकै लुटावै । १५

बिहाग

गावत रंग-बधाई सब मिलि गावत रंग-बधाई ।
कीरति के प्रकटी श्री राधा मोहन के मन भाई ।
नर-नारी सब मिलि के आई गावत गीत सुहाई ।
'हरीचंद' कछु जस बरनन करि बहुत निछावरि पाई । १६

राइसा

गावो सखि 'मंगलचार' बधायो वृषभानु की ।
सुनि चलीं गृह गृह तें साजनि सबै सजाय ।
बरनि छवि कछु कहि न आवै चंद उदय भयो आय ।
भयो अति आनंद तेहि छन कह्यो कापै जाय ।
ग्वाल नाचै तारि दै दै देत बहुत बनाय ।
एक गावत एक नाचत एक परसत पाय ।
गारि देत दिवाय सब को सुख कह्यो नहिं जाय ।
देत सब कोऊ बधाई रतन बसन लुटाय ।
रंक भये कुबेर मानहु दान पाइ अघायं ।
भयो जौन अनंद तेहि छन कौन पै कहि जाय ।
'हरीचंद' बहुत दीनों दान तहाँ बुलाय । १७

सारंग

ग्वाल सब हेरि हेरि बोलैं ।
कीरति के कन्या जायी यह सुख सों कहि डोलैं ।
आनंद-मगन गनत नहिं काहू माठ दही के रोलैं ।
'हरीचंद' को देत बधाई भक्ति मन मोलैं । १८

गावै सबै बधाय धाप ।

आनंद भरे करत कौतुहल बहुधा यंत्र बजाय जाय ।
गोपी आई मंगल कर लै कुमकुम मुखन लगाय गाय ।
श्री-मुख लखि आनंदत सबही नयनन नहीं बलाय लाय ।
रावल-गली सुगंधिन छिरकी

बहु विधि बसन विछाय छाय ।

'हरीचंद' सोभा लखि सुर नभ

तिय सब रहीं लुभाय भाय । १९

यथा-रुचि

गोकुल प्रकटे गोकुलनाथ ।

प्रमुदित लता गोवर्दन जमुना

सब ब्रजवासी किये सनाथ ।

इक गावत इक ताल बजावत इक

नाचत गहि गहि कै हाथ ।

एक बसन पट देत बधाई

इक लावत घसि चंदन माथ ।

आनंद उमगे गनत न काहू

बाल बृद्ध सब एकहि साथ ।

'हरीचंद' सुर फूलन वरषत

सुक नारद गावत गुन-गाथ । १००

परज

घर घर आजु बधाई बाजै ।

टीको लै आवाति ब्रज-बनिता कीरति को घर राजै ।

इक गावत इक करत कोलाहल मनु पायो है राजै ।

'हरीचंद' छवि कहि नहिं आवै

कवि-मति या थल लाजै । १०१

यथा-रुचि

चंद्रभानु घर वजत बधाई ।

श्री चंद्रावलि ब्रज प्रकटाई ।

हरित भये तरु पल्लव गोभा ।

कुंज-भवन बाढ़ी अति शोभा ।

बोलि उठे कल कोकिल कीरा ।

डोली तिहि छन त्रिविध समीरा ।

उनये घन मनु आनंद छायो ।

गरजि मंद दुंदुभी बजायो ।

भादों सित पंचमी सुहाई ।

स्वाती सोम पहर निसि आई ।

चंद्रकला की कोख सिरानी ।

चंद्रावलि प्रकटी सुखदानी ।

गुप्त भेद नहिं कछु प्रगटायो ।

सो श्री बिडुल प्रकट लाखायो ।

रूप प्रकट छवि नयन निहारी ।

'हरीचंद' सर्वस बलिहारी । १०२

ढाढ़ी

चलो आज घर नंद महर के प्रेम-बधाई गावैं ।
भादों कृष्ण अष्टमी दिन श्री कृष्णचंद्र-जस गावैं ।
तोहन तनी पताका द्वारन भवन मीर भइ भारी ।
री टाढ़िन कर पगन समेटे चलियो भवन मैफारी ।
जहाँ इंद्र चंद्रादि-देवता कर बाँधे हैं ठाढ़े ।
कौन सुनैगो आज हमारी प्यारी कर हित गाढ़े ।
प्रेम-पंथ को पग है न्यारो ताते मन यह आवै ।
'हरीचंद' लखि लाल लड़इतो

नव निधि रिधि सिधि पावै । १०३

जसोदा माई लेहु हमारी बधाई ।
धन्य भाग तेरे सुनु प्यारी जनम्यो कुँवर कन्हाई ।
चिरजीवो जब लौ जमुना-जल गंगा-जल सब देवा ।
जब लौ धरा अकास ओर है जब लौ हरि की सेवा ।
तब लौ चिरजीवो जग भीतर 'हरीचंद' तब लाला ।
मंगल गीत विनोद मोद मति

मंगल होइ रसाला । १०४

हिंडोला रायसा

भूलत राधा रंग भरी कुंज-हिंडोरे आज ।
संग सब सखी सुहावनी साजे सुंदर साज ।
भूलन आये मोहन सुंदर मदन मुरारी ।
गावत ऊँचे सुर भरि संग मिलि ब्रज की नारी ।
ताल मुरज डफ आवज साथ पखावज चंग ।
बाजत लय सुर साजत बीना और उपंग ।
बिच बिच बसी गूँजत मधुर मधुर घन-घोर ।
धुनि-सुनि जासु कोइलियन तरुन मचाई रोर ।
इक उतरत इक भूलत एक चढ़त तहँ धाय ।
एक रहत गहि डोरी दूजी देत भुलाई ।
इक नाचत इक गावत एक बजावत तार ।
एक जुगल छवि लखि कै तन-मन डारत वार ।
रमकनि मै रंग बाढ़यो छवि कछु कही न जाइ ।
भौंटा लागि रहे डारन बिबिध बसन फहराइ ।
सोभा को कहि भापै भूलत बाढ़ी जौन ।
'हरीचंद' लखि लखि कै

कवि-मति रसना मौन । १०५

बिहाग

नाचति बरसाने की नारी ।

जिनके घर प्रकटी श्री राधा मोहन-प्राण-पियारी ।

नाचत शिव सनकादि मुनीश्वर नारदादि व्रतधारी ।

नाचत वेद पुरान रूप धरि डारत तन-मन वारी ।

अति आनंद बढ़यो बरसाने

प्रकटी श्रीवृषभान-कुमारी ।

'हरीचंद' आनंदित अति मन

होत निरखि बलिहारी । १०६

नंद बधाई बाँटत ठाढ़े ।

भई सुता बाबा भानुगाय के

प्रेम-पुलक तन बाढ़े ।

काहू का सोना काहू को रूपा

काहू के मनि-गन दीनो ।

जिन को माँग्यो तिन सो पायो

कह्यो सबनि को कीनो ।

काहु को धेनु बसन काहू को

दियो सबनि मन-भायो ।

आनंद भयो कहत नहिँ आवै

'हरीचंद' जस गायो । १०७

नागरी मंगल रूप-निधान ।

जब तें प्रकट भई बरसाने छायो आनंद महान ।

दिन दिन सुख उमड़त घर

घर में छन छन होत कल्यान ।

'हरीचंद' मोहन की प्यारी

राधा परम सुजान । १०८

मलार

पिय विन बरसत आयो पानी ।

चपला चमकि चमकि डरपावत

मोहिँ अकेली जानी ।

कोयल कूक सुनत जिय

फाटत यह बरपा दुखदानी ।

'हरीचंद' पिय श्याम सुंदर विनु

बिरहिन भई है दिवानो । १०९

सारंग

ब्रज-जन काँवर जोरि जोरि ।

आये मन-भाये लै दधि घृत

निज निज गृह तें दौरि दौरि ।

गोपी आई गीतन गावत पाई

परत मुर लोरि लोरि ।

करत निछावरि देखि प्रिया-मुख

तन के भूपन छोरि छोरि ।

दधि-काँदो माच्यो आँगन में देत माठ सब फोरि फोरि ।

लूटत झपटत खात मिठाई वारत छिन में कोरि कोरि ।

गिनत न कोऊ काहू को कछु पट भूपन दै तोरि तोरि ।

'हरीचंद' सुख कहत न आवे

आनंद बाढ़यो खोरि खोरि ११०

राग मलार हिंडोला

गिरधरलाल हिंडोरे भूलैं ।

पंच-रंग फूल हिंडोरे बनायो निरखि निरखि जिय फूलैं ।

को कहि सकै भई जो सोभा कालिंदी के कूलैं ।

'हरीचंद' यह कौतुक लखिकै देव विमानन भूलैं १११

राग परज

एजी आज भूलै छे श्याम हिंडोरे ।

बृंदावन री सचन कुंज में जमुना जो लेतां हलोरें ।

संग थारे वृषभानु-नंदिनी सोहै छे रंग गोरे ।

'हरीचंद' जीवन-धन बारी मुख लखतां चित चोरे ११२

ईमन

कमल नैन प्यारी भूलै भुलावै पिय प्यारी ।

कबहुँक भोटा देत कबहुँ लगावै कंठ

कबहुँ सँवारत सारी, करत मनुहारी ।

कबहुँ संग भूलै सोभा देखि देखि फूले कबहुँ

'उत्तरि भोटा देत भारी भारी, डरत सुकुमारी

'हरीचंद' बलिहारी भुकि आई घटा कारी

बरसत घोर बारी मुकुट, छावत गिरिधारी ११३

राग अड़ानो

सावन आवत ही सब दुम नए फूले

ता मधि भूलत नवल हिंडोरे ।

तेसिय हरित भूमि तामैं वीरवधू सोहै

तेसोये लता भुकि रही चहुँ कोरे ।

तेसोई हिंडोरो पंच-रंग बन्यो सोहत

तेसी ही ब्रज-वधू घेरे सब ओरे ।

'हरीचंद' बलिहारी तापै भूलै राधाप्यारी

मोहन भुलावै भोटा देत घोरे घोरे ११४

बारह-मासा

मास असाढ़ उमड़ि आए बदरा ऋतु बरसा आई ।

बोले मोर सोर चहुँ दिसि घन-घोर घटा छाई ।

पपीहन पी पी रट लाई ।

भयो अरुंभ बियोग फिरी जब काम की दुहाई ।

देखि मेरी तबियत घबराती ।

कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।

सावन मास सुहावन लागै मन-भावन नाही ।

भूलैं काकै संग हिंडोरा देकर गल-बाहीं ।

बरसि घन कुंज के माहीं ।

कोन बचावै आप भीजि मोहि रखि अपनी छाहीं ।

याद करि दरकत सखि छाती

कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।

भादों मास अंधेरो लखि कै रही धीर छोई ।

व्याकुल सुने घर में तड़पूँ पास नहीं कोई ।

अकेली मैं सेजों सोई ।

बूंद भ्रमक दामिनी चमक लखि कै करवट रोई ।

बिधा सो नहीं सही जाती ।

कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।

कार मास सब सौंभी खेलैं सरद विमल पानी ।

मैं व्याकुल बिनु प्रान-पिया के कहत न मुख बानी ।

उंजरी रात न मन मानी ।

चंदा उलटी अग्नि लगावै मोहिं बिरहिनी जानी ।

कोई करवट नहिं कल पाती ।

कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।

कातिक मास पुनीत जानि सब न्हातीं ब्रज-नारी ।

मानि दिवाली दीप-दान दे करती उंजियारी ।

पिया बिन मेरे अंधियारी ।

भई बियोगिन व्याकुल मैं सब रैन चैन हारी ।

बिपति यह सही नहीं जाती ।

कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।

अगहन आया सब मन भाया पड़ा जोर पाला ।

लपटि लपटि पीतम से सोई घर घर में बाला ।

ओढ़ कर शाल औ दुशाला ।

मैं घर बीच अकेली तड़पूँ बिना नंदलाला ।

भई सौ जुग की इक राती ।

कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।

पूस मास में सीत जोर है दुगुन रात होती ।

बिना पियारे प्राणनाथ मैं किससे लपट सोती ।

सेज सूनी लखि कै रोती ।

तड़प तड़प कर बिरह-बोफ मैं किसी भाँति द्योती ।

भई मेरी पत्थर की छाती ।

कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।

माघ मास में मदन जोर भयो रितु बसंत आई ।

बोरे बोर फूल बन फूले मोरन रट लाई ।

फिरी जग काम की दुहाई ।

कोकिल कूक सुनत जिय दरकत मुरछित घबराई ।

न पाई मोहन की पाती ।

कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ।

फागुन खेलैं फाग रंग गावैं मीठी बोली ।

चले रंग की पिचकारी उड़ै अबिर-भोली ।

देखि मेरे हिय लागी होली ।

भयो काम को जोर दरकि गई जोवन से चोली ।

जाय यह कोई समझाती ।

कैसे रैन कटे बिन पिय के नौद नहीं आती ।
 चेत चाँदनी देख भया दुख सखी मेरा दूना ।
 कामदेव ने अंग अंग मेरा जला जला भूना ।
 पिया बिन मैं अब जीऊँ ना ।
 कहाँ जाऊँ क्या करूँ दिखाता सारा जग सुना ।
 धरनि में मैं समाय जाती ।
 कैसे रैन कटे बिन पिय के नौद नहीं आती ।
 लगा मास बैसाख सखी दिन गर्मी के आए ।
 सब सँजोगियों ने खसखाने घर में लगवाए ।
 फूल के बंगले बनवाए ।
 चंदन लेप फुहारे छूटे गुलाब छिरकाए ।
 करूँ मैं क्या बियोग-माती ।
 कैसे रैन कटे बिन पिय के नौद नहीं आती ।
 जेठ मास गरमो सखि पड़ती बढ़ी पीर भारी ।
 दिन नहीं कटता किसी भाँति घबराती मैं नारी ।
 भई मेरे जौवन की ख्यारी ।
 वारी बैस छोड़ के मुझको बिछुड़े बनवारी ।
 हाथ करि रोती पछिताती ।
 कैसे रैन कटे बिन पिय के नौद नहीं आती ।
 बारह मास पिया बिन खोए रोड़ रोड़ हारे ।
 बन वन पात पात करि द्रिद मिले नहीं प्यारे ।
 मेरे प्रानों के रखवारे ।
 'हरीचंद' मुखड़ा दिखलाओ आँखों के तारे ।
 पीर अब सही नहीं जाती ।
 कैसे रैन कटे बिन पिय के नौद नहीं आती ११५

मलार

ऐ मैं कैसे आऊँ ए दिलजानी हो
 देखो रिमझिम बरसत पानी ।
 जो मेरी भीजे सुरुख चूंदरी तो घर सास रिसानी ।
 'हरीचंद' पिय मोहिं बचाओ पीत पिछोरी तानी ११६

सारंग

ब्रज जनमत ही आनंद भयो ।
 श्री वृषभानु-भवन के भीतर सब सुख आन नयो ।
 गाँव गाँव तें टीको आयो भीतर भवन लयो ।
 'हरीचंद' आनंद भयो अति दुख बहि दूरि भयो ११७
 ब्रज में रस-निधि प्रगट भई ।
 चन्द्रभानु नृप भाग फले ब्रज प्रगटी सुता नई ।
 हरि राधा को प्रेम परम जो सोई मूरति चितई ।
 कहि 'हरिचंद' मान लीला रस करि हित भूमि गई ११८

यथा-रुचि

भट्ट इक बात नई सुनि आई ।

आजु भई कीरति के कन्या बाजत रंग-बधाई ।
 नर-नारी सब हैं मिलि आई कीरति घर छवि छाई ।
 अति आनंद कहन नहिं आवै 'हरीचंद' बलि जाई ११९

मलार

मनोरथ करत द्वार पर ठाढ़ी ।
 करि करि ध्यान श्याम सुंदर को पुलकावलि तन बाढ़ी ।
 ऐहैं री या मारग सों हरि कमल-नयन घनश्याम ।
 बेनु बजावत कमल फिरावत हैसत गरे बन-दाम ।
 करि करि बहु पकवान मिठाई भरि भरि राखत थार ।
 अपने हाथ गूथि बनावत रचि फूलन के हार ।
 द्वारे मेरे रथ ठाढ़े करि मोकों अति सुख देहैं ।
 जो हम रचि रचि कै राखे है सो प्रभु रचि सो खेहैं ।
 दे बीरा आरती करौंगो व्यजनैं हाथ हुलैहैं ।
 तन मन धन न्योछावर करिहैं देखि देखि सुख पेहैं ।
 औ जो कहूँ धन बरसन लागे ताहि निवारन काज ।
 भीजत उतरि मेरे घर ऐहैं जहँ सुख को सब साज ।
 सुफल काम सब मेरो ह्वैहैं जो कछु चित बिचारेउ ।
 ऐसे ग्वालनि करति मनोरथ रथ को दूरि निहारेउ ।
 हरि आये बादरद्व आये बरषन लाय्यो पानी ।
 ताके घर प्रभु उतरि पधारे भीजत आपुहि जानी ।
 अति आनंद भयो ताके चित मिलि प्रभु अति सुख दीनो ।
 'हरीचंद' प्रभु अन्तरजामी सुफल मनोरथ कीनो १२०

कान्हारा

यह निधि धर्महि तें पाई ।
 कीरति मैया तू बड़-भागिनि जो तेरे घर आई ।
 जाको ध्यान धरत सरकादिक संपु समाधि बड़ाई ।
 सो निधि तजि बैकुंठ धाम को बरसाने में आई ।
 जाते ब्रज बिहरत आनंद भरि श्री गोकुल के राई ।
 सो निधि बार बार उर धरिकै 'हरीचंद' बलि जाई १२१

सारंग

रथ चढ़ि नंदलाल पिय करत हैं वन फेरा ।
 आजु सखी लालन संग बिहारिबे की बेरा ।
 रतन-खचित सुंदर रथ दिव्य बरन सोहैं ।
 छतरी ध्वज कलस चक्र सुर-नर-गन मोहैं ।
 छाई धन घटा चारु आनंद बरसावैं ।
 प्रमुदित घनश्याम तहाँ राग मलार गावैं ।
 और कोऊ संग नाहिं हरि अरु ब्रज-नारी ।
 हाँकत रथ अपने हाथ राधा सुकुमारी ।
 'कुंज कुंज' केलि करत डोलत हरि राई ।
 'हरीचंद' जुगुल रूप लखि कै बलि जाई १२२

यथा-रुचि

रस-रस ब्रज में प्रगट भयो ।

फूली फिरत सबै ब्रज-वनिता तन को ताप गयो ।
लीला-रूप शील-गुन-सागर ब्रज आनंद भयो ।
'हरीचंद' ब्रजचंद पिया को आनंद अतिहि दयो । १२३

श्याम संग श्यामा रंग भरी राजत ।

अरध होट घूँघट पट कीन्हे
लखि रति मन्मथ लाजत । ५०
नील निचोल मध्य मुख ससि की
फैली घटा सुहाई ।

फिलमिल ज्योति एक मिलि
दीखति महलन अलि छवि छाई ।
श्यामहु बने श्याम रंग

बागे अनुरागे पिय प्यारी ।

'हरीचंद' लखि जुगुल माधुरी
सरबस ठान्यो वारी । १२४

असावरी

सुनत जनम वृषभानु-लली को उठि धाई ब्रज-नारी ।
मंगल साज लिये कर कंजन पहिरे रंग रंग सारी ।
सो जैसे तैसे उठि धाई सुनतहि स्वामिनि नामा ।
भादों नदी सरिस उमगाई चहुँ दिसि ब्रज की वामा ।
बेनी सिथिल छसित कच भुमरन लुलित पीठ पर सौहै ।
काजर नयन श्रवन-तल तरवन देखत ही मन मोहै ।
झुम झुम मंडित मुख ससि सोभित बेदी हीर जगाई ।
अधर तमोल रंग सों भीने गावत सरस बधाई ।
आनंद उमगे गात गात सब हिय अति अधिक उछाह ।
सब घर पुत्र भयो धन वाढ्यो सब ही के मनु ब्याह ।
लोचन तृपित दरस बिनु व्याकुल पगहु सों बढि धावै ।
चौकि चौकि चितवत चारहु दिसि मग मनु कंज बिछावै ।
आइ जुरी वृषभानु-भवन में मुख निरखत सुख पायो ।
पद परि तरवा चूमि निरखि दृग जन्म सुफल करवायो ।
धनि दिन धनि निसि धनि छिन

धनि पल धनि यह घरी सोहाई ।

जामें तीन लोक की स्वामिनि भानु-भवन प्रगटाई ।
नाचत गावत करत कुलाहल प्रेम उमगि अकुलानी ।
हंसत प्रमोद करत मन फूलत बोलत कोकिल बानी ।
अति रस-मत्त बढत नहिं काहू उछलित रस आवेसा ।
अंचल खुलत नाहिं सुधि तन की भई एक ही भेसा ।
सब ब्रज के शृंगार रूप रस भाग सुहाग सुहायो ।

मोहन की सरबस संपति सँग मिलि बरसाने आयो ।
को कहि सकै कहा कहि भापै कवि पै नहिं कहि जाई ।
जो सुख सोभा ता छन वाढ़ी अनुभव नयन लछाई ।
नंद-भवन तें बढि सुख तेहि छन क्योहूँ करि प्रगटायो ।
'हरीचंद' बल्लभ-पद-बल से

केवल यह लखि पायो । १२५

हमारे तन पावस बास कर्यो । ५०

बरसत नैन-वारि सब ही छन दुख-घन उमड़ि पर्यो ।
जुगुनूँ चमकि अंगार-विरह की श्वासा बान भर्यो ।
'हरीचंद' हिय करो मिलि

सीतल ना-तरु गात जर्यो । १२६

हमारे भाई श्याम जू की जीति ।

हारो सदा जहाँ पिय प्यारो यहै प्रीति की रीति ।
प्रेम होइ से बहु नायक बनि छोई श्याम प्रतीति ।
जदपि निरंतर लखत रहत रुख तऊ नाम की भीति ।
होत अधीन मौह फेरन में यहै यहाँ की गीति ।
'हरीचंद' याही सों सब सों सरस जुगल की भीति । १२७

हम जो मनावत सो दिन आयो ।

कीरति-सुला प्रगट बरसाने गाथो गीत बधायो ।
करि सिंगार चलीं घर घर तें मंगल साज सजायो ।
हाथन कंचन-धार विराजे चौमुख दीप जगायो ।
आई मिलि वृषभानु गोप के अति आनंद उर भायो ।
वापे दीने कलस धराये टीको सबन लगायो ।
गावत गोपी तन मन ओपी द्वार निसान बजायो ।
'हरीचंद' तेहि समय जाइ के बहुत बधाई पायो । १२८

राव जू आजु बधाई दीजै ।

तुम्हारे प्रकट भई श्री राधा कह्यो हमारो कीजै ।
गोपिन को मनि-गन आभूषन दै दै आशिष लीजै ।
ग्वालन पाग पिछौरी दीजै यातें सब दुख छीजै ।
तुम्हरी सुता जगत ठकुरानी जायो मुख लखि लीजै ।
'हरीचंद' वृषभानु-सुता के चरन-कमल-रस पीजै । १२९

हमारी प्यारी सखियन की सिरताज ।

भोरी गोरी पिय-रस बोरी लाज-सुहाग-जहाज ।
ब्रज-रानी कीरति सुख-बानी पूरनि जसुमति-काज ।
नंद बवा की बयन-पूतरी मोहन की सुख-साज ।
भानु राय के घर की दीपक पालनि भक्त-समाज ।
'हरीचंद' पिय-सहित करौ नित

अबिचल ब्रज में राज । १३०



विनय-प्रेम पचासा

[सन १८८१ में प्रकाशित]

विनय-प्रेम-पचासा

जे जे श्री वृन्दावन-देवी ।
जो देवन को देव कन्हाई सोऊ जा पद-सेवी ।
अगम अपार जगत-सागर के जाके गुन-गन खेवी ।
'हरीचंद' की यहै बीनती कबहुँ तो सुधि लेवी ।
बचन दीन-जन सों जुगति नई निकारी लाल ।
बहरावन हित हम सवन भए बाल-गोपाल ।
जनम करम पढ़ि आपु को वहैकि जाई से और ।
हम दामन तजिहैं नहीं अहो छली-सिरमौर ।
जदपि बास तव में अहैं जीवहिं दोसी नाथ ।
पै निरधून कौतुक लखत तुम क्यों वाके साथ ।
भयो पाप सों पाप बिनु जग न जियत छन एक ।
ऐसे जीवहिं होइ क्यों तुव पद-पदम विवेक ।
न्याय-परायन साँच तुम साँचे अहौ दयाल ।
देखैं निबहत उभय गुन किमि मेरे अघ-काल ।
जो हम जैसे कछु करै तुम तैसे फल देहु ।
तो जग की गति आपहु करी बिसारि सनेहु ।

राग यथा-रुचि

नेनन में निवसौ पुतरी हवै हिय में बसौ हवै प्रान ।
अंग अंग संचरहु सक्ति हवै ए हो मीत सुजान ।
मन में वृत्ति वासना हवै कै प्यारे करौ निवास ।
ससि सूरज हवै रैन-दिना तुम हिय-नभ करहु-प्रकास ।
बसन होइ लिपटौ प्रति अंगन भूषन हवै तन बांधो ।
सोंधो हवै मिलि जाऊ रोम प्रति अहो प्रानपति माधो ।
हवै सुहाग-सेंदुर सिर बिलसौ अधर राग हवै सोहो ।
फूल-माल हवै कंठ लागौ मम निज सुवास मन मोहो ।
नम हवै पूरौ मम आँगन मैं पवन होइ तन लागौ ।
हवै सुगंध मो घरहि बसावहु रस हवैके मन पागौ ।
श्रवणन पूरौ होइ मधुर सुर अंजन हवै बोल नैन ।
होइ कामना जागहु हिय में करहु नौद बनि सैन ।
रहौ ज्ञान में तुमही प्यारे तुम-लाय तन मम होय ।
'हरीचंद' यह भाव रहै नहि प्यारे हम तुम दोय ।

राग असावरी

जुगल-केलि-रस बल्लभियन बिनु और कहा कोउ जानै ।
बिनु अधिकारी कौन और या गुप्त रसहिं पहिचानै ।
तर्क बितर्क महा चतुराई काव्य-कोष-निपुनाई ।
कबहुँ याके निकट न आवत लाख कहौ न बनाई ।
कै तो जगत-विषय की तिन सों गंध भयानक आवै ।
कै विज्ञान महा तम बढ़िकै सगरे रसहि सुखावै ।
जौ कोउ कोमल कमल तंतु सो महा मत्त गज बाँधै ।
तो या मरमहि समुझि सकै कछु पै जौ एकहि साथै ।
साधन जिते जगत में गाए तिनको फल कछु औरै ।
यह तो उनकी कृपा साध्य इक साधन करै सो वौरै ।
जुपै प्रवाह छुट्यो तो लागी आई महा मरजादा ।
जद्यपि यह नीकि प्रवाह सों रंग तऊ है सादा ।
अतिहि निकट परलोक लोक दोउ जो या में कछु बोलै ।
तनिकहु पग खिसक्यो तो इव्यो अमृत में विष धोलै ।
रात दिना के सुनै किये जे अति अभ्यासित भाव ।
तिन सों कैसे बचे कहो मन कोटिक करौ उपाव ।
जिमि बिनु आयसु कठिन दुर्ग में सकै न कोऊ जाय ।
तैसेहिं उनकी कृपा बिना नहिं याको और उपाय ।
पद पद पै अघ धरे करोरन वृत्ति सहज अधगामी ।
काम क्रोध उपजत छिन छिन में होउ भलो कोउ नामी ।
इन रिपुगन को जीवन कों जौ तप आदिक कछु साथै ।
तो अभिमान जानकारी को आइ सकल अँग बाँधै ।
सूछमता को परम प्रान को ताको अतर निकारै ।
तो या रसहि कछुक कछु जानै औरन आन विचारै ।
कहिए जुपै होइ कहिवे की पुनि भाखे न कहाई ।
'हरीचंद' बिनु बल्लभ-पद-बल

यह निधि नहिं लहि जाई ।

तोसों न कछु प्रभु जाचौ ।
इतनो ही जाँचत करुना-निधि तुम ही में इक राचौ ।
खर ककुर लौं द्वार द्वार पै अरथ-लोभ नहिं नाचौ ।
या पाखान-सरिस हियरे पै नाम तुम्हारोइ खाचौ ।
विस्फुलिंग से जग-दुख तजि

तब विरह-अग्नि तन ताचौ ।
 'हरीचंद' इक-रस तुमसों मिलि
 अति अनंद मन माचौ । १५

प्यारें यह नहिं जानि परी ।
 नाथ समुक्ति यह बरयो तुमहिं कै तुम मोहिं प्रभो बरी ।
 हम भाजत पै तुम गहि राखत बरवस करत निबाह ।
 उलटी गति दिखराति मनो तुमहीं कहैं मेरी चाह ।
 हम अपराध करत नहिं चूकत विचलावत विश्वास ।
 तुम तेहि छमा करत गहि गहि भुज औरहु खींचत पास ।
 बस होइ हम अति अभिमानी बचक निमक-हराम ।
 तुम स्वामी समरथ करुणामय क्यौं बनि रहे गुलाम ।
 जो हम कहैं करनी चाहत ही सों तुम उलटी कीन्ही ।
 प्रियतम हवै प्रेमी समान सब चाल जनन सों लीन्ही ।
 यह उदारता कहैं लौं गाओं बने तुमहि सों नाथ ।
 नाहीं तौ 'हरिचंद' पतित को कौन निबाहै साथ । १६

याही सों घनश्याम कहावत ।
 द्रवत दीन-दुरदसा बिलोकत करुना रस बरसावत ।
 भीगे सदा रहत हिय रस सों जन-मन-ताप जुड़ावत ।
 'हरीचंद' से चातक जन के जिय की प्यास बुझावत । १७

हरि-तन करुना-सरिता बाढ़ी ।
 दुखी देखि निज जन विनु साधन उमगि चली अति गाढ़ी ।
 तोरि कूल मरजादा के दोउ न्याव-करार गिराए ।
 जित तित परे करम फल-तरुगन जड़ सों तोरि बहाए ।
 अचल विरुद गभीर भँवर गहि महा पाप गन बोरे ।
 असहन पवन वेग अति बेगहि दीन महान हलारे ।
 मरि दीने जन हृदय-सरोवर तीनहुँ ताप बुझाई ।
 'हरीचंद' हरि-जस-समुद्र में मिली उमगि हरखाई । १८

प्रभु की कृपा कहाँ लौं गये ।
 करुना में करुनानिधि ही के इती बड़ाई पैये ।
 डार डार जौ अघ मेरे तो पात पात वह बोलै ।
 नदी नदी जौ पाप चलत तौ बिंदु बिंदु वह डोलै ।
 थल थल में छिपि रहत जु यह वह रेनु रेनु हवै धावै ।
 दीप दीप जौ यह समान वह किरिन किरिन बनि जावै ।
 काकी उपमा वाहि दीजिये व्यापक गुन जेहि माँही ।
 हिय अन्तर अंधियार दुराने अघहु नाहिं बचि जाहीं ।
 सिंधु लहरइ सिंधुमयी है मूढ़ करै जो लेखे ।
 नाहीं तौ 'हरीचंद' सरीखे तरत पतित कहूँ देखे । १९

प्रभु हो जो करिहौ सोइ न्याव ।
 सुगति कुगति सब ही अति समुचित हम पतितन के दाव ।
 जौ तून-मात्रहु न्याव करौ प्रभु करि शास्त्रन पै नेह ।
 तो हम कठिन नरक के लायक यामै कछु न सँदेह ।

पै जो ढरौ नाथ करुना-दिसि तौ का मेरे पाप ।
 कोटि कोटि बैकुंठ सुलभ तर तनिक कटाक्ष-प्रताप ।
 जौ हमरी दिसि लखहु उचित तौ सब बिधि दंड-विधान ।
 'हरीचंद' तौ यही जोग पै तुम प्रभु दयानिधान । २०

जिन नहिं श्री बल्लभ-पद गहे ।
 ते भवसिंधु-धार में साधन करत करत-हू बहे ।
 परम तत्व जानत नहिं कोऊ ज्यपि शास्त्रन कहे ।
 ते इनके किंकर-जन ही के कर-अमलक हवै रहे ।
 नवनीत-प्रिय हाथ लगत नहिं स्तुति-पय बरवस महे ।
 'हरीचंद' विनु वैश्वानर-बल करम-काठ किन दहे । २१

कहाँ लौं निज नीचता बछानौ ।
 जब सों तुमसों बिछुरे तब सों अघ ही जनम सिरानौ ।
 दुष्ट सुभाव वियोग खिस्यान संप्रह कियो सहाई ।
 सूखी लकरी वायु पाइ कै चली अग्नि उलहाई ।
 जनम जनम को बोझ जमा करि भारी गाँठ बँधाई ।
 उठि न सकत गर पीठ टूटि गई अब इतनी गरुआई ।
 बूझत तेहि लैके भव-धारा अब नहिं कछु उपआई ।
 'हरीचंद' तुम ही चाहौ तौ तारो मोहिं कन्हाई । २२

प्रभु में सेवक निमक-हराम ।
 खाइ खाइ के महा मुटैहों करिहौं कछु न काम ।
 वात बनेहौं लंबी-चोड़ी बैठयो बैठयो धाम ।
 त्रिनहु नाहिं इत उत सरकैहों रहिहौं बन्यो गुलाम ।
 नाम बँचिहौं तुमरो करि करि उलटो अघ के काम ।
 'हरीचंद' ऐसन के पालक तुमहि एक घनश्याम । २३

उमरि सब दुख ही माँहि सिरानी ।
 अपने इनके उनके कारन रोअत रैन बिहानी ।
 जहँ जहँ सुख की आसा करिके मन बुधि सह लपटानी ।
 तहँ तहँ घन संबंध जनित दुख पायो उलटि महानी ।
 सादर पियो उदर भरि बिष कहैं धोखे अमृत जानी ।
 'हरीचंद' माया-मंदिर सों मति सब बिधि बोरानी । २४

बैस सिरानी रोअत रोअत ।
 सपनेहुँ चौकि तनिक नहिं जागौं बीती सबही सोअत ।
 गई कमाई दूर सबै छन रहे गाँठ को खोअत ।
 औरहु कजरी तन लपटानी मन जानी हम धोअत ।
 स्वाद मिलौ न मजबूरी को सिर टूट्यो बोझा दोअत ।
 'हरीचंद' नहिं भर्यो पेट पै हाथ जरे दोउ पोअत । २५

नाहिनै या आसा को अंत ।
 नदत द्रोपदी-चौर-सरिस जब बुरे तंत में तंत ।
 बरन बरन प्रगटत ही आवत तन विराट अनुहारी ।
 थक्यो दुसासन जीव बापुरो खींचत खींचत हारी ।
 जिमि तित बसन बढ़ाई कहाए भगत-बछल महाराज ।



तेसहि इतै घठाइ राखिए 'हरीचंद' की लाज । १६
 करनी करुनानिधि केसव की कैसे कहि कहि गाऊँ ।
 अधम जीव परिमित मति रसना एक पार क्यों पाऊँ ।
 जग मैं जैसी होत तितोही जगत जीव कहि जानै ।
 तुम तो सब विधि करत अलौकिक किमि तेहि नाथ बखानै ।
 मात पिता तिय मुनिहू जो अघ सहि न सकैं लखि भारी ।
 सो तुम तुरत छमत करुनानिधि निज दिसि लखि बनवारी ।
 कहैं लौ कहीं दयानिधि तुम सों जानहु अंतरजामी ।
 'हरीचंद' से अधिहि चाहिए तुमरेहि ऐसो स्वामी । १७

लखहु प्रभु जीवन केरि ठिठाई ।
 निज निंदा मेटन हित तुम महीं प्रेरक शक्ति लगाई ।
 बुरो भलो सब कहत बुद्धि-बस मनहू की रुचि पाई ।
 कहैं सबै हरि करत जीव को दोष नहीं कछु भाई ।
 दैव करम संयोग आदि बहु सव्दन लेत सहाई ।
 अपने दोस और पर शापत लखहु नाथ चतुराई ।
 शास्त्रनहू कछु प्रेरकता कहि उलटो दियो भुलाई ।
 सब मैं मिल्यो सब सों न्यारो कैसे यह न बुझाई ।
 मिल्यो कहैं तो पाप पुन्य दोउ एकहि सम द्यै जाई ।
 बुदो कहे किमि तुम बिनु दूजो सत्ता नाहि लखाई ।
 कर्ता बुधि-दायक जग-स्वामी करुनासिंधु कन्हाई ।
 'हरीचंद' तारहु इन कहैं मति इनकी लखो खुटाई १८

प्रभु हो ! कब लौ नाच नचैहो ।
 अपने जन के निलाज तमासे कब लौ जगहि देखैहो ।
 कब लौ इन विमुखन के मुख सों निज गुन-गनहि लजैहो ।
 कह लौ जिन पै सतत हँसत जम तिनसों हमहि हँसैहो ।
 छिन छिन बूझत जात पंक लखि मोहिं कब चित द्रवैहो ।
 जनम जनम के निज 'हरिचंदहि'
 कब फिरिके अपनेहो । १९

छप्पय

जीव-धर्म सों कुटिल मंद-मति लोक-बिनिंदित ।
 काम-क्रोध-मद-मत्त सदा संसार मलिन मति ।
 अथिअ अबोध अधीर अधरमी अति अज्ञानी ।
 पुरुषारथ सों रहित निबल अति पै अभिमानी ।
 सब भाँति नष्ट लखि दास निज जानि कृपा कर धाइए ।
 प्रभु महा हीन 'हरिचंद' को दीन जानि अपनाइए । २०

कवित

मजौ तो गुपाल ही कौं सेवौ तो गुपाले एक
 मेरो मन लाग्यो सब भाँति गोपाल सों ।
 मेरे देव देवी गुरु माता पिता बंधु इष्ट
 मित्र सखा हरि नातो एक गोप-बाल सों ।

'हरीचंद' और सों न मेरो संबंध कछु
 आसरो सदेव एक लोचन विसाल सों ।
 माँगौ तो गुपाल सों न माँगौ तो गुपाल ही सों
 रीझौ तो गुपाल पै औ खीझौ तो गुपाल सों । २१
 द्वारहि पै लुटि जायगो बाग औ
 आतिसबाजी छिने में जरैगी ।
 ह्वैहैं बिदा टका लै हय-हाथिहु
 खाय-पकाय बरात फिरैगी ।
 दान दै मातु-पिता छुटिहैं
 'हरीचंद' सखीहु न साथ करैगी ।

गाय-वजाय जुदा सब द्यैहैं
 अकेली पिया के तू पाले परैगी । २२
 पूजिहौं देवी न देव कोऊ किन
 वेद-पुरानहु ऊँचे पुकारौ ।
 काहू सों काम कछु नहिं मोहिं सबै
 अपनी अपनी को सम्हारौ ।
 हौं बनिहौं कै नसाइहौं यासौं
 यहै प्रन है 'हरिचंद' हमारौ ।
 मानिहौं एक गुपालहि को नहिं
 और के बाप को । यामें इजारी । २३

नैनन के तारे दुलारे प्रान-प्यारे मेरे
 दुख के दरन सुख-करन विसाल हैं ।
 मेरो ध्यान मेरो ज्ञान मेरे वेद औ पुरान
 विविध प्रमान मेरे एक नंदलाल हैं ।
 'हरीचंद' और सों न काम सपनेहैं मोहिं
 मेरे सरबस धन जसुदा के बाल हैं ।
 मेरी रति मेरी मति मेरे पति मेरे प्रान
 मेरे जग माहिं सबै केवल गुपाल हैं । २४

सकल की मूलमयी वेदन की भेदमयी
 ग्रंथन की तत्वमयी वादन के जाल की ।
 मन-बुद्धि-सीमामयी सृष्टिहु की आदिमयी
 देवन की पूजामयी जीवमयी काल की ।
 ध्यानमयी ज्ञानमयी सोभामयी सुखमयी
 गोपी-गोप-गाय-ब्रज-भागमयी भाल की ।
 भक्त-अनुरागमयी राधिका-सुहागमयी
 प्राणमयी प्रेममयी मूरति गोपाल की । २५
 पाहि पाहि प्रभु अंतरजामी ।

तुमसों छिपी न कछु करुनानिधि कहा कहीं खग-गामी ।
 तुम्हरो कहत सबै मोहिं मोहन जदपि पतित मैं नामी ।
 ताकी लाज राखि 'हरचंदहि' बखसौ चरन-गुलामी । २६
 कहा कहीं कदु कहि न रही ।

विधि तैं अब लौं पंडित कवियन रचि-पचि सबहिं कही ।
महा अधम हम दीनबंधु तुम सब समरथ अघ-हारी ।
कहनो य है अनेकन विधि सों युक्त अनेक विचारी ।
नेति नेति जेहि वेद पुकारत तासों बाद बढ़ाई ।
फल कछु नाहिं उलटि खोभन-भय यामैं कह चतुराई ।
सब जानत सब करन जोग तुम नेकु जु पै इत हेरौ ।
लखि सरनागत पतित दीन 'हरिचंद' सीस कर फेरौ । १७

मिटत नहिं या मन के अभिलाख ।
पुजवत एक सबै विधि तन तैं होत और तन लाख ।
दिन प्रति एक मनोरथ बाढ़त तृष्णा उठत अपार ।
घृत जिमि अग्नि सिद्धि तिमि जग मै होत एक तैं चार ।
जोग ज्ञान जप तीरथ आदिक साधन तैं नहीं जात ।
'हरीचंद' बिनु कृष्ण-कृपा-रस पाएँ नहिंन अघात । १८

अहो हरि दम बदि बदि कै अघ कीन्हें ।
लोक वेद निंदत जेहि अनुदिन ते हम हठि सिर लीन्हें ।
जामैं जान्यो दोष अधिक अति सो कीनों चित लाई ।
तुमसों विमुख होन की कीन्हों लाखन खोज उपाई ।
जान्यो जिन्हें प्रतच्छ भयंकर नरक-गभन को डेतू ।
तेइ आचरन किये नितही नित कहाँ कहा खग-केतू ।
नाम रूप अपराध अनेकन जानि जानि बिस्तारे ।
थके वेद जम अघहृ थाके पै हम अजहूँ न हारे ।
बहुत कहाँ लौं कहाँ प्रानपति सुनत सुनत अकुलैहो ।
तुमरो नाम बेंच अघ करने यह हमही मै पैहो ।
तुम्हरे विरद-पनो सों मेरो पतित-पनो अधिकाई ।
'हरीचंद' तारे इतने पै पावन पतित कन्हाई । १९

नेह हरि सों नीको लागै ।
सदा एक-रस रहत निरंतर छिन छिन अति रस पागै ।
नहिं बियोग-भय नहिं हिंसा जहँ सतत मधुर हवै जागै ।
'हरीचंद' तेहि तजि मूरख क्यों जगत-जाल अनुरागै । २०

प्रभु मोहिं नाहिं नैकहू आस ।
सब विधि मै तजिबेहीलायक यह जिय दृढ़ विश्वास ।
शास्त्रन के अघ की जु कहानी तिनकी नहिं कछु बात ।
करुनामय को करनिहु सों मै दंडहि जोग लखात ।
जिन दोसन सों सकुल दुसासन को तुम कीन्हो नास ।
ते तिनहुँ सों बड़ि मेरे मै करत एकत्रहि बास ।
शूद्र तपी सुनि बध्यो जाहि तुम तपत जवपि सो साँच ।
महानीच हम भंड तपस्वी सो रहिहैं किमि बाँच ।
मिथ्या अपजस सुनि-सुनीच-मुख तजै सिया सी नारि ।
सत्य सत्य हम महाकलकिहि तजिहौ क्यों न मुरारि ।
जिन कर्मन सों असुर स-कुल बारंवार संहारे ।
ते अघ कौन नहीं हैं हम मै भाखहु नंद-दुलारे ।

हाँ जो पै मरजाद मिटावहु करुना-नदी बढ़ाई ।
तो या महापतित 'हरचंदहिं' सकहु नाथ अपनाई । २१
प्रेम मै मोन-मेघ कछु नाहीं ।

अति ही सरल पंथ यह सुधो छल नहिं जाके माहीं ।
हिंसा द्वेष ईरखा मत्सर मद स्वारथ की बातें ।
कबहुँ याके निकट न आवैं छल-प्रपंच की घातें ।
सहज सुभाविक रहनि प्रेम की पीतम सुख सुखकारी ।
अपुनो कोटि कोटि सुख पिय के तनिकहि पर बलिहारी ।
जहँ न ज्ञान अभिमान नेम ब्रत बिषय-वासना आवै ।
रीफ खोज दोऊ पीतम की मन आनंद बढ़ावै ।
परमारथ स्वारथ दोउ पीतम और जगत नहिं जाने ।
'हरीचंद' यह प्रेम-रीति कोउ विरले ही परिचाने । २२

तुम जो करत दीनन सों मोहन सो को और करै ।
महापतित जन वेद-विनिंदित को तिन कों उधरै ।
सब विधि हीनन सों करि नेहहि कौन दया बितरै ।
'हरीचंद' की बाँह पकरि कै को भव पार करै । २३

गोपालहि रुचत सहज व्योहार ।
निहछल बिनु प्रपंच निरकृत्रिम सब विधि बिना बिकार ।
सहज प्रेम पुनि नेम सहजही सहज भजन रस-रीति ।
सहज मिलनि बोलनि चलनि सब सहजहि प्रीति प्रतीति ।
हाव भाव चितवनि कटाक्ष अनुराग सहज जो होय ।
भावै सोई मेरे हरि को करौ कोटि कछु कोय ।
पूजा दान नेम ब्रत के पाखंड न हरि कों भावै ।
बादि रसिकता ज्ञान ध्यान जौ हरि-पद नेह न लावैं ।
तासों सहज प्रेम-पथ बल्लभ सहजहि प्रगटि चलायो ।
'हरीचंद' को सहजहि निज करि

निज जस सहज गँवायो । २४
प्रभु हो अपुनो बिरुद सम्हारो ।
जया-जोग फल देन जनन की या थल बानि बिसारो ।
न्यायी नाम छाँड़ि करुनानिधि दया-निधान कहाओ ।
मेटि परम मरजाद श्रुतिन की कृपा-समुद्र बहाओ ।
अपुनी ओर निहार साँचरे विरदहु राखहु थापी ।
जामैं निबहि जाँहि कोऊ विधि 'हरिचंदहु' से पापी । २५

महिमा मेरे गोविंदजू की कही कौन पै जाई ।
परम उदार चतुर चितामनि जानि निसोमनि-राई ।
सेवा तनिक बहुत करि मानत ऐसे दीनदयाला ।
तुलसी-दलाहि मेरु करि समभक्त ऐसो कौन कृपाला ।
निज जन के अपराध कोटि सत तुनहुँ सों लघु मानै ।
करनी लखत न कबहुँ भक्त की अपुनो कारिके जानै ।

दीन सुदामा अजामेल गज गनिका याके साखी ।
बारबार पुरान वेद कथि सोइ मुनिवर बहु भाखी ।
कहै लौं कहौ कहत नहि आवै करत नाथ जोइ जोई ।
'हरीचंद' से कलि के खल पै कृपा तुमहि सों होई । १३६

ऐसे तुमहीं सों निवहै ।

ऐसे अधमन को करुनानिधि तुम विनु कौन चहै ।
मेति सकल मरजाद श्रुतिन की पतितन को अपनाओ ।
तिनके दोस कोटि सब भूलो नित नित दया बढ़ाओ ।
बहुत कहाँ लौं कहाँ और सों कबहुँ न यह बनि आई ।
'हरीचंद' तुमसों स्वामी नहि तो वादिहि सब काई । १३७

वह अपनी नाथ दयालुता तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
वह जो कौल भक्तों से था किया तुम्हें याद हो कि न याद हो
सुनि गज की जैसे ही आपदा न बिलंब छिन का सहा गया ।
वहीं दौड़े उठ के पियादे-पा तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
वह जो चाहा लोगों ने द्रौपदी की कि शर्म उसकी सभा में लें ।
व बढ़ाया वस्त्र को तुमने जो तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
व अजामिल एक जो पापी था लिया नाम मरने पै बेटे का ।
व नरक से उसको बचा दिया तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
व जो गीध था गनिका व थी व जो व्याध था व मलाह था ।
इन्हें तुमने ऊँचों की गति दिया तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
खाना मील के वे जूठे फल कहीं साग दास के घर पै चला ।
युंही लाख किस्से कहूँ मैं क्या तुम्हें याद हो कि न याद हो
जिन बानरों में न रूप था न तो गुनहि था न तो जात थी ।
उन्हें भाइयों का सा मानना तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
व जो गोपी गोप थे ब्रज के सब उन्हे

इतना चाहा कि क्या कहूँ ।

रहे उनके उलटे रिनी सदा तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
कहो गोपियों से कहा था क्या करो याद गीता की भी जरा ।
वानी बाद भक्त-उधार का तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
या तुम्हारा ही 'हरीचंद' है गो फसाद में जग के बंद है ।
न है दास जन्मों का आपका तुम्हें

याद हो कि न याद हो । १३८

मजा कहीं नहि पाया जग में नाहक रहा भुलाया ।
छिन के सुख की लालच जित तित स्वान लार लटकाया ।
यह जग में जिसको अपना कर भूठा भ्रम बढ़ाया ।
तिन स्वारथ फंसि सूकर कूकर सब दुतकार बताया ।
अपना अपना अपना करके बहुत बढ़ाई माया ।
अंत सबै तजि दीनों मल सम जिनको अति अपनाया ।
साँचे मीत श्यासुंदर सों छिनहुँ न नेह बढ़ाया ।

'हरीचंद' मल मूत कीट बनि नर-जीवनहि गंवाय । १३९

तुम पर काल अचानक टुटेगा ।

गाफिल मत हो लवा बाज ज्यों हैसी-खेल में लूटेगा ।
कब आवेगा कौन राह से प्रान कौन विधि छूटेगा ।
यह नहि जानि परैगी बीचहि यह तन-दरपन फूटेगा ।
तब न बचावेगा कोई जब काल-दंड सिर कूटेगा ।
'हरीचंद' एक वही बचेगा जो हरिपद-रस घूटेगा । १४०

जोव तू महा अधम निर्लज्ज ।

अब तो लाजु कछुक सिर गरज्यो आइ काल को वज्र ।
फूलि न जो तू हवै गयो राजा बाबू अमला जज्ज ।
सब बकरी ही से मरि जैहैं लै दिन चार गरज्ज ।
विप से विषयन कों तजियै तौ इबन ही के कज्ज ।
'हरीचंद' हरि-चरन-अमृत-सर

तजि जग छीलर मज्ज । १४१

हरि-माया भटियारी ने क्या अजब सराय बसाई है ।
जिसमें आकर बसते ही सब जग की मति बौराई है ।
होके मुसाफिर सब ने जिसमें घर सी नैव जमाई है ।
भाँग पड़ी कूरें में जिसने पिया बना सौदाई है ।
सौदा बना भूर का लइइ देखत मति ललचाई है ।
खाया जिसने वह पछताया यह भी अजब मिठाई है ।
एक एक कर छोड़ रहे हैं नित नित खेप लदाई है ।
जो बचते सो यही सोचते उनकी सदा रछाई है ।
अजब भँवर है जिसमें पड़कर सब दुनिया चकराई है ।
'हरीचंद' भगवंत-भजन-विनु इससे नहीं रिहाई है । १४२

डंका कूच का बज रहा मुसाफिर जागो रे भाई ।
देखो लाद चले सब पंथी तुम क्यों रहे भुलाई ।
जब चलना ही निहचै है तो ले किन माल लदाई ।
'हरीचंद' हरि-पद विनु नहि तो रहि जैहो मुँह बाई । १४३

मृत्यु-नगाड़ा बाजि रहा है सुन रे तू गाफिल सब छन ।
गगन भुवन भरि पूरि रहा गंभीर नाद अनहद घन घन ।
उनपति पहिले से बजता था बचता है औ बाजैगा ।
इसी शब्द में गुन लै होंगे सदा एक यह राजैगा ।
यह जग के सामान बीचही भए बीच भिट जावैगे ।
परस रूप रस गंध अंत में शब्दहि माहि समावैगे ।
काल रूप सच्चिदानंद घन साँचो कृष्ण अकेला है ।
'हरीचंद' जो और है कुछ वह चार दिनों का मेला है । १४४

जग की लात करोरन खाया ।

मन से अब तो लाजु बेहाया ।

अपना अपना करके पाली देह रहा चौराया ।
इंद्रिज को परितोष करन हित अब भर-पेट कमाया ।
स्वारथ लोभी जग आगे दुख रोया लाज गँवाया ।
लाज गई औ धरम हुवाया हाथ कष्ट नहीं आया ।
साँचे मोत पतित-पावन भरि करन दीन पर दया ।
अरे मूढ़ 'हरिचंद' भागु चलु अब तौ उनकी छाया ॥४५॥
यारो इक दिन मोत जरूर ।

फिर क्यों इतने गाफिल होकर बने नशे में चूर ।
यहाँ चुड़ैलें तुम्हें खार्यगी जिन्हें समझते हूर ।
माया मोह जाल की फाँसी इससे भागो दूर ।
जान बूझकर धोखा खाना है यह कौन शऊर ।
आम कहाँ से खाओगे जब बोते गये बजूर ।
राजा रंक सभी दुनिया के छोटे बड़े मजूर ।
जो माँगो बाँधित को मारै वही सूर भर-पूर ।
भूठा भगड़ा भूठा टंटा भूठा सभी गरूर ।
'हरिचंद' हरि-प्रेम बिना सब अंत धूर का धूर ॥४६॥

यारो यह नहीं सच्चा धरम ।
झू झू कर या नाक मूँद कर जो कि बढ़ाया भरम ।
बचन ही में डालेंगे यह बुरे-भले सब करम ।
प्राण नहीं सुधरा तौ कोरा बैठे धोओ धरम ।
भूठे साधन छोड़ो जी से दीन बनो तुम परम ।
'हरिचंद' हरि-सरन गहो इक यहाँ धरम का मरम ॥४७॥

चेत चेत रे सोयनवाले सिर पर चोर खड़ा है ।
सारी वैस बीत गई अब भी मद में चूर पड़ा है ।
सही अपमान स्वान-सम निरलज जग के द्वार अड़ा है ।
जरा याद उस समय की भी कर सबसे जौन कड़ा है ।
देखु न पाप नरक में तेरा जीवन जनम सड़ा है ।

'हरिचंद अब' तौ हरि-पद भजु
क्यों जग-कीच गड़ा है ॥४८॥

क्यों वे क्या करने जग में तू आया था क्या करता है ।
गरभ-बास की भूल गया सुध मरनहार पर मरता है ।
खाना पीना सोना रोना और विषय में भूला है ।
यह तो सुअर में भी हैं तू मानुस बनि क्या फूला है ।
एक बात पशुओं से बढ़कर तुझमें पाई जाती है ।
तू जानी हो पापी है वहाँ पाप-गंध नहीं आती है ।
जो विशेष था तुझ में पशु से उसे भूल तू बैठा है ।
तो क्यों नाहक हम मनुष्य हैं इस गरूर में ऐंठा है ।
जान बूझ अनजान बना है देखो नहीं पतियता है ।
'हरिचंद' अब भी हरि-पद भज

क्यों अबसरहि गाँवाता है ॥४९॥

अपने को तू समझ जरा क्या भीतर है क्या भूला है ।
तेरा असिल रूप क्या है तू जिसके ऊपर फूला है ।
हड़ी चमड़ी लहू मांस चरबी से देह बनाई है ।
भीतर देखो तो धिन आवै ऊपर से चिकनाई है ।
लार पीप मल मूत पित्त कफ नकटी खूँट और पोटा है ।
नीली पीली नस कीड़ों से भरा पेट का लोटा है ।
तनिक कहीं खुल जाय तो यूँ धूँ कर सब नाक सिकोड़ेगा ।
जरा गलै या पचै मरै तो देख सभी मुँह मोड़ेगा ।
भरी पेट में मल की गठरी ऊपर न्हाइ सुधरता है ।
तिसको झू कर वायु चलै तौ नाक बंद सब करता है ।
मल से उपजा मल में लिपटा मति-मलीन तू धूरा है ।
इस शरीर पर इतना फूला रे अंधे मगरूरा है ।
जिसके छुटते ही तू गदा मिलने ही से सजता है ।
'हरिचंद' उस परमात्म को,

गदहे क्यों नहीं भजता है ॥५०॥



फूलों का गुच्छा

रचनाकाल-१८८२

समर्पण

मेरे प्राणप्रिय मित्र!

क्या तुमने यह नहीं सुना है "रिक्तपाणिनि वश्येद्वै राजां भेषजं गुरु" अर्थात् राजा और वैद्य और गुरु को कोरे हाथों नहीं देखना। तो मैं आज अनेक दिन पीछे तुम्हारा दर्शन करने आया हूँ, इससे यह "फूलों का गुच्छा" तुम्हारे जी बहलाने के लिए लाया हूँ जो अंगीकार करो तो परिश्रम सफल हो। यह मत संदेह करना कि मैं राजा वा गुरु इनमें कौन हूँ, क्योंकि मेरे तो तुम्हीं राजा और तुम्हीं वैद्य और तुम्हीं गुरु हो।

१४ सितंबर १८८२

॥१२३९॥

केवल तुम्हारा
हरिश्चंद्र

फूलों का गुच्छा

नहीं का बाकी वक्त नहीं है जरा न जी में शरमाओ।
लव पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ।
कहाँ गई वह पिछली बातें कहाँ गया वह था जो प्यार।
किधर छिपाया चाँद-सा मुखड़ा दिखलता जो यार।
बेहोशी में घबड़ा घबड़ा करके यही कहता हूँ पुकार।
मर्ज बढ़ गया बहुत इससे बचना अब है दुश्वार।
करो आरजू दिल की मेरे पूरी सूरत दिखलाओ।
लव पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ।
गरचे उम्र भर खराब रुसवा ज़लीलो परेशान रहा।
हमेशा मुझको तुम्हारे मिलने का अरमान रहा।
जिया बेहयाई से अब तक कितना भी हैरान रहा।
जान न दे दी, हमेशा कौल का तेरे ध्यान रहा।
पै मरने के सिवा है अब तदबीर कौन वह बतलाओ।
लव पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ।
तुम्हें कहे जो भूठा प्यारे उसे ही बनाए भूठा।
मुझको तुमसे नहीं कुछ बाकी है करना शिकवा।
इसमें तुम्हारा कसूर क्या है होता है किस्मत का लिखा।
मर जायेंगे पर न इस जवाँ से होगा तेरा गिला।
हुई जो होनी थी इससे जरा न जी में शरमाओ।
लव पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ।
हम तो खैर हसरत लाखों ही जी में अपने ले के चले।

पर य खोफ है तुम्हें बेरहम न प्यारे कोई कहे।
हँस के रुखसत करो न जी में तो कुछ भी अरमान रहे।
कोई जुदा गर होय तो मिलते हैं सब जाके गले।
'हरीचंद' से भला रस्म इतनी तो अदा करके जाओ।
लव पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ। १

तुम्हीं निहाँ गर हो तो जहाँ में सब ये आशकारा क्या है।
तुम्हीं छिपे हो तो यह सब जुहर प्यारे किसका है।
तेरा रंग गर नहीं है तो क्या दुनियाँ में दिखलाता है।
तेरी सिल्क बिन कहाँ से सूरत हर शय पाता है।
तुम्हें हाथ गर नहीं तो खुद क्या यह जहान बन जाता है।
तुम्हें नहीं है जो मुँह तो किसका सबद सुनाता है।
तुममें भलक गर नहीं तो किससे रोशन यह काशाना है।
तुम्हीं छिपे हो तो यह सब जुहर प्यारे किसका है।
खयाल के बाहर तुम हो तो यह खयाल सब है किसका।
तुम तो चुप हो तो फिर यह शोर जहाँ में है कैसा।
तुम्हें कान गर नहीं है तो आवाज कौन यह है सुनता।
ध्यान के बाहर जो तुम हो तो यह ध्यान कैसे आया।
दूर समझ से हो तो यह फिर कैसे सबने समझा है।
तुम्हीं छिपे हो तो यह सब जुहर प्यारे किसका है।
तुम्हें न जिसने याद किया वह खुद अपने को है भूला।
विगड़ा बस वह न तेरा जोयाँ जो ऐ यार बना।

सब कुछ उसने खोया जिसने तुझे न ऐ दिलबर पाया ।
 अंधा है वह जिसको यह नूर नहीं कुछ दिखलाया ।
 हर जा पर गर नहीं हो तुम तो फिर य तमाशा कैसा है ।
 तुम्हीं छिपे हो तो यह सब जुहर प्यारे किसका है ।
 तुम्हें कोई कावे में हाजिर कोई दैर में बतलाता ।
 भूले हैं सब अक्ल में वेशक हनके फर्क पड़ा ।
 अरे नहीं एक-जाई तू तो हाजिर रहता है हर जा ।
 फिर बकने से भला इन बातों के हासिल है क्या ।
 बेवकूफ है 'हरीचंद' जो इसमें कुछ भी कहता है ।
 तुम्हीं छिपे हो तो यह सब जुहर प्यारे किसका है । २
 छुड़ा के दीनों ईमाँ मुझको जहाँ में काफिर ठहराया ।
 देरो हरम को इबादत को क्यों मुझसे छुड़वाया ।
 पिला पिला के शराब क्यों मस्ताना मुझको बनवाया ।
 बना के मेरा तमाशा क्यों आलम को दिखलाया ।
 अपना अपना क्यों मुझको दुनियाँ में प्यारे कहलाया ।
 था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यों मुझको अपनाया ।
 कहाँ गई वह बातें प्यारी प्यारी तेरी ऐ दिलदार ।
 कहाँ गया वो तुम्हारा आगे का सा मुझ पर प्यार ।
 कहाँ गई वह मीठी निगाहें हर दम जो थीं दिल के पार ।
 कहाँ छिपाया निमानी सूरत तू ने मेरे यार ।
 दिखा के अपना जल्वा फिर क्यों रुख फेरा क्यों शरमाया ।
 था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यों मुझको अपनाया ।
 क्यों वह मैं थी मुझे पिलाई जिसका न उतरे कभी नशा ।
 दो आलम में मुझे ऐ प्यारे क्यों बदनाम किया ।
 काफिर क्यों कहलाया मुझको देरो हरम दोनों से गँवा ।
 हम-चश्मों में किया क्यों मुझे मेरे प्यारे रुसवा ।
 मेरे इश्क कानबकार दो आलम में क्यों बजवाया ।
 था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यों मुझको अपनाया ।
 होके तुम्हारा गुलाम अब मैं किसका प्यारे कहलाऊँ ।
 आके तुम्हारे दर पै प्यारे किसके घर पर जाऊँ ।
 इसी शर्म में मरता हूँ मैं अपना नाम क्या बतलाऊँ ।
 अपने दिल को यार किस तरह कबो मैं समझाऊँ ।
 यन्ही चाल थी तो फिर क्यों तू गरीब-परवर कहलाया ।
 था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यों मुझको अपनाया ।
 अब तो न छोड़ूँ तेरा कदम प्यारे जो होनी हो सो हो ।
 यार निबाहो तुम भी बाकी हैं जिंदगी के दिन दो ।
 कहाँ मैं जाऊँ किसको ढूँँ किसका होकर रहूँ कबो ।
 मैं तो प्यारे तुम्हारा हूँ तुम मेरे प्यारे हो ।
 'हरीचंद' मेरा है मैं उसका हूँ यह था क्यों फरमाया ।
 था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यों मुझको अपनाया । ४
 दिल में दिलबर ने जल्वा दिखला के बनाया मस्ताना ।

मजा न पाया बयाँ जिसका गूँग का गुड़ खाना ।
 जब से यार ने अपने इश्क की मैं से मुझे सरशार किया ।
 अपनी नरगिसी निमानी आखों का बीमार किया ।
 मोली सी उस सूरत पर मुझको निसार सौ बार किया ।
 जुल्फ दिखाकर पेंच में लट के फट गिरफ्तार किया ।
 तब से जब कुछ छोड़ हुआ उस मस्ती से मैं दिवाना ।
 मजा न पाया बयाँ जिसका गूँग का गुड़ खाना ।
 कोई मुझे कहता काफिर बे-ईमाँ कोई बतलाता ।
 कोई मुझसे बोलने में भी जबाँ से शरमाता ।
 हाल देखकर हैसता कोई तर्स कोई मुझपर खाता ।
 कोई मुझको आनकर रो रो कर है समझाता ।
 पर मैं क्या समझूँ कि रंग में अपने हूँ खुद मस्ताना ।
 मजा न पाया बयाँ जिसका गूँग का गुड़ खाना ।
 यह वह शै है जिसकी खोज में हर कोई हैरान रहा ।
 हर शख्सों ने आज तक इसकी बाबत बहुत कहा ।
 कोई मजाजी कहता हकीकी नाम किसी ने है रक्खा ।
 कोई मसजिद कोई बुतखाने में नित है जाता ।
 पै हमने तो सीधा ताका उस साकी का मैखाना ।
 मजा न पाया बयाँ जिसका गूँग का गुड़ खाना ।
 यह वह रंग है जिसमें रंगा उसपर न दूसरा रंग चढ़ा ।
 यह वह मैं है न उतरा महशर तक भी जिसका नशा ।
 बगैर इसमें डूबे किसी को जरा न इसका पता लगा ।
 बिन मस्ती के इश्क के कोई नहीं हुशियार बना ।
 'हरीचंद' क्या इससे हासिल है व फकत हमने जाना ।
 मजा न पाया बयाँ जिसका गूँग का गुड़ खाना । ५
 खाक किया सबको तब यह अकसीर है कमाया हमने ।
 सबको खोया यार अपने को तब पाया हमने ।
 अपना बेगाना किया दोस्त को दुश्मन ठहराया हमने ।
 दीन व ईमाँ बिगाड़ा धरम सब डुबाया हमने ।
 काम रंज से रहा चैन दम मर न कहीं पाया हमने ।
 दोनों जहाँ के ऐश को खाक में मिलाया हमने ।
 जिसका नाम है शरम उसी को जग में शरमाया हमने ।
 सबको खोया यार अपने को तब पाया हमने ।
 जब से दिल में मेरे वह दिलबर जलवा-अफरोज हुआ ।
 मिला मजा वह नहीं इस दुनियाँ में सानी जिसका ।
 जब से आँखों में उसके मिलने का मेरी छा गया नशा ।
 सब कुछ भूला कुछ ऐसा हासिल मुझको हुआ मजा ।
 काम किसी से रहा न ऐसा नशा है जमाया हमने ।
 सब को खोया यार अपने को तब पाया हमने ।
 छिपा न उसका इश्क-राज अखिर को सब कुछ फाश हुआ ।
 बे-दीनी का व शुहरा हुआ कि काफिर सब ने कहा ।
 हुई यहाँ तक बरबादी घर-बार खाक में सभी मिला ।

ली बदनामी हुआ वेशमी हया दर-दर रुसवा ।
 वे-ईमां वे-दीं काफिर अपने को कहलाया हमने ।
 सब को खोया यार अपने को तब पाया हमने ।
 मिला मेरा दिलबर मुझको अब किसी बात की चाह नहीं ।
 कोई खफा हो या खुश हो कुछ मुझको परवा नहीं ।
 सिवा यार के कूचे जाना देरो-हरम की राह नहीं ।
 सब कुछ मेरा यार है और कोई अल्लाह नहीं ।
 'हरीचंद' क्या बर्यां हो गूंग होकर गुड़ छाया हमने ।
 सब को खोया यार अपने को तब पाया हमने । ६

श्री राधा-माधव जुगल-चरन-रस का अपने को मस्त बना ।
 पी प्रेम-पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मजा ।
 यह वह मै है जिसके पीने से और ध्यान छूट जाता है ।
 अपने में औ दिलबर में फिर कुछ भेद नहीं दिखलाता है ।
 इसके सुख से मस्त हरेक अपने को नजर बस आता है ।
 फिर और हवस रहती न जरा कुछ ऐसा मजा दिखाता है ।
 दुक मान मेरा कहना दिल को इस मैखाने की तर्फ भुका ।
 पी प्रेम-पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मजा ।
 यह वह मै है जिसका कि नशा जब आँखों में छा जाता है ।
 मैखाना काबा बुतखाना सब एकी सा दिखलाता है ।
 हुशियार समझता अपने को जग को अहमक बतलाता है ।
 वह काम खुशी से करता जिसके नाम से जग शर्माता है ।
 जिसका नाम है शर्म आप वह इस मै से जाती शरमा ।
 पी प्रेम-पियाला भर-भर कर कुछ इस मै का भी देख मजा ।
 हुशियार वही है आलम में इस मै से जो सरशार बने ।
 हो कार उसी का पूरा जो इस दुनियां से वे-कार बने ।
 हो यार वही उसका जो इस जग में सबसेकुछियार बने ।
 पहिने कमाल का जामा वह जिसका कि गरेबां तार बने ।
 गर लुप्त उठाना हो इसका तो तू भी मेरा मान कहा ।
 पी प्रेम-पियाला भर-भर कर कुछ इस मै का भी देख मजा ।
 गो दुनिया में उस दाना को हर शख्स बड़ा नादान कहे ।
 पर उसे मजा वह हासिल है जिससे वह हेच सबको समझे ।
 कभी न उतरे उसका नशा जिसके सिर इसका भूत चढ़े ।
 हँसते-हँसते इस दुनिया से फट उसका बेड़ा पार लगे ।
 इतबार न हो तो देख न ले क्या 'हरीचंद' का हाल हुआ ।

पी प्रेम-पियाला भर भर कर
 कुछ इस मै का भी देख मजा । ७

यह वह गोरख-धंधा है जिसका न किसी पर भेद खुला ।
 यह भगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ ।
 कहाँ से औ किस तरह से किसने

क्यों यह पैदा किया जहाँ ।
 किसने सूरत खड़ी की किसने इसमें डाली जाँ ।
 मिली कहाँ से अकल बशर को अकल सख्त यह है हेराँ ।

क्या है बोलता बर्यां से इसके बस हारी है जबाँ ।
 फिर अखीर में कहाँ जायेगा इसका नतीजा होगा क्या ।
 वह भगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ ।
 कोई बनानेवाला खुद है या खुद ही यह बनता है ।
 बदन है सोई जाँ है या वहाँ-दूसरा बैठा है ।
 बुरी-मली बातों का नतीजा कहीं जाके कुछ मिलता है ।
 या मन माने वही करना दुनिया में अच्छा है ।
 इसको मुअम्मा कहते हैं मुश्किल है हल करना जिसका ।
 वह भगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ ।
 गरचे खुदा है कोई तो हो फिर उसके मानने से है क्या ।
 माने भी तो किस तरह कैसे कोई देवे बता ।
 कावे में जाकर के झुका सिर करे उसको डार कर सिज्दा ।
 या कोई बुत बना कर उसकी नित कर ले पूजा ।
 होके एक-मत मजहबवालों कुछ तो इसमें कहो जरा ।
 वह भगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ ।
 एक किसी ने माना किसी ने दो व किसी ने तीन कहा ।
 मिला बताया किसी ने उसे जहाँ से कहा जुदा ।
 बुत में किसी ने पूजा किसी ने उसको पुकारा कह के खुदा ।
 अपनी अपनी तौर पर गरज कि सबने है खींचा ।
 मनर न तै यह हुआ हकीकत में य माजरा है कैसा ।
 वह भगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ ।
 मैने तो पहिचाना प्यारे तुमको तै कर सब भगड़े ।
 बने बनाये तुम ने सब का सब में मौजूद रहे ।
 नाम तुम्हारा दिलबर है है बुत व खुदा दोनों भूटे ।
 यह सब जलवा तुम्हारा ही है जिधर चाहे देखे ।
 'हरीचंद' के सिवा किसी पर जरा न तेरा भेद खुला ।
 वह भगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ । ८

दिलबर के इश्क में दिल को एक मिलाये ।
 अपने को खोए तब अपने को पावे ।
 दिलबर को एक कर के अपने में साने ।
 इस दुनिया को इक अजब तमाशा जाने ।
 मैं क्या हूँ इसको जी देकर पहिचाने ।
 अपने को अपना सिरजनहारा माने ।
 यह भेद का परदा आँखों से हट जावे ।
 अपने को खोए तब अपने को पावे ।
 वह मैं पी ले उतरे न नशा फिर जिसका ।
 वह सुख हो जिसका बयान क्या करना ।
 सब दुनिया को बस जाने एक तमाशा ।
 इस धारा में अपने को समझे बहता ।
 जब सब आलम यह नजर खेल सा आवे ।
 अपने को खोए तब अपने को पावे ।
 कुछ भले-बुरे में फर्क न जी से रक्खे ।

काले गोरे का एक रंग बस सुमे ।
 दुश्मन को दोस्त को एकी नज़र से देखे ।
 मैखाना मसजिद मंदिर एकी समझे ।
 दो की गिनती भूले न जबाँ पर लावे ।
 अपने को खोए तब अपने को पावे ।
 जब अपना ही अपने को होए सौदा ।
 अपनी आँखों से देखे आप तमाशा ।
 खुद अपनी करने लगे आप ही पूजा ।
 अपने ही नशे से आप बने मस्ताना ।
 रग रग से अनलहक यही सदा बस आवे ।
 आने को खोए तब अपने को पावे ।
 तब 'हरीचंद' मैं क्या कहूँ यह दिखलाता ।
 जब चिनगारी से आप आग हो जाता ।
 पत्ते से पेड़ बंदे से खुदा कहलाता ।
 जब अपने को हर शै में हाजिर पाता ।
 जुज़ से कुल क़तर से दरिया बन जावे ।
 अपने को खोए तब अपने को पावे । १९
 मिले न मुझसे उसका दिल जिस में वह दिलाराम न हो ।
 मुँह न दिखावे जिसके मुँह में दिलबर का नाम न हो ।
 लगे आग उस मैखाने में जहाँ न वह साकी होवै ।
 बरग़शत : हो व मजलिस जहाँ दौर उसका न चले ।
 जिसमें उसका नशा न हो वह ज़हरे हलाहल होए मै ।
 बरहम होए वह सुहबत जहाँ न उसका जिक्र रहै ।
 बीरानः वह बाग़ हो जिसमें मेरा वह गुलफ़ाम न हो ।
 मुँह न दिखावे जिसके मुँह में दिलबर का नाम न हो ।
 पुरजे हो वह किताब जिसमें तेरा यार बयान न हो ।
 गारत हो वह दीन जिसमें तुम पर ईमान न हो ।
 ढहै वह काबा जहाँ वक्त सिजदे के तेरा ध्यान न हो ।
 टूटे वह बुत तुम्हारी फ़लक जिसमें ए ज्ञान न हो ।
 काफिर हो वह कुफ़ से तेरे यार जो कि बदनाम न हो ।
 मुँह न दिखावे जिसके मुँह में दिलबर का नाम न हो ।
 हम तो पीकर शराब तेरी मस्त हुए ऐसे प्यारे ।
 सबको खोकर तुम्हें ऐ यार हमने पाया बारे ।
 मजा मिला वह जिससे हेच दिखलाते हैं मजहब सारे ।
 छोड़के सबको बैठे मैखाने में आसन मारे ।
 दूर हो वह नाचीज़ हाथ में जिसके इश्क का ज़ाम न हो ।
 मुँह न दिखावे जिसके मुँह में दिलबर का नाम न हो ।
 कमी न देखें नज़र उठाकर गरचे सामने खड़ा हो शाह ।
 या फकीर हो, नहीं कुछ इसकी भी मुझको परवाह ।
 यार हो रिश्तेदार हो मुझको खाक नहीं कुछ उनकी चाह ।
 फकत मिलो तुम मेरे दिलबर औ मेरा करी निबाह ।
 'हरीचंद' तेरे कडलाकर और किसी से काम नहो ।

मुँह न दिखावे जिसके मुँह में दिलबर का नाम न हो । १०
 हज़ार लानत उस दिल पर जिसमें कि इश्क़े दिलदार न हो ।
 फूटें आँखें वे जिसमें बंधा अशक़ का तार न हो ।
 हिज़्र की तलखी नहीं है जिसमें तलख़ ज़िन्दगानी वह है ।
 जीस्त नहीं है सरासर बस सरगरदानी वह है ।
 सुलझे रहना इसके जाल से निरी परेशानी वह है ।
 जीना क्या है अगर इस ज़ाँ में नहीं जानी वह है ।
 उ ज़िंदा दर-गोर व जिसके मरने का आज़ार न हो ।
 फूटें आँखें वे जिनमें बंधा अशक़ का तार न हो ।
 वे महबूब मजेदारी गर हुई तबीअत में तो क्या ।
 भूठी है सब शायरी अगर नहीं दिल कहीं फिदा ।
 नाहक दीदारी है सारी गर न इश्क़ का तीर लगा ।
 दुनियादारी भी है इक बोम सिर्फ़ उलफ़त के बिना ।
 बेचारा है वही जो जुल्मे दिलबर से लाचार न हो ।
 फूटें आँखें वे जिनमें बंधा अशक़ का तार न हो ।
 मिलें जहन्नुम में वह बातें जिनका कुछ भी उसूल न हो ।
 क्यों वह काबिल है बनता जिसमें वह मकबूल न हो ।
 सिजदा है य सर का मारना जिसमें कुछ भी हुसूल न हो ।
 फाजिल है वह बना क्यों दुनियाँ में जो फुज़ूल न हो ।
 क्यों माला फेरे है वह गुल जिसके गले का हार न हो ।
 फूटें आँखें वे जिनमें बंधा अशक़ का तार न हो ।
 क्यों वद दौलतमंद है जिसके पास जरे बेकसी नहीं ।
 क्या आजादी है उसको जिसकी अक्ल कुछ फँसी नहीं ।
 बग़ैर उसके वस्ल के सब रँड-रोना है यह हँसी नहीं ।
 उजड़ा है वह मोहनी छवि जिस दिल में बसी नहीं ।
 'हरीचंद' सब अभी छाक में मिले जिसमें वह यार न हो ।
 फूटें आँखें वे जिनमें बंधा अशक़ का तार न हो । ११
 तुम गर सच्चे हो तो जहाँ को कहते हैं सब क्यों भूठा ।
 तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किसका ।
 जो भूठा होता है उसकी बातें होती हैं भूठी ।
 ज्यों सपने की मिली संपत कुछ काम नहीं करती ।
 सच्चों के तो काम हैं जितने वह सच्चे होते हैं सभी ।
 फिर बंकते हैं भला क्यों सब के जहाँ भूठा है अजी ।
 भला कहीं शीशे से हीरा हुआ किसी ने है देखा ।
 तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किसका ।
 तुम ने बनाया कि बने खुद तो यह माया है कैसी ।
 एक जो हो तुम तो फिर यह कौन दूसरी आके घुसी ।
 गरचे काम उसका है तो फिर तेरी क्या तारीफ़ रही ।
 तुम करते हो क्यों कहते हैं हुई किसमत की लिखी ।
 हैं जो तुम्हारे शरीक तो फिर ला-शरीक क्यों नाम पड़ा ।
 तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किसका ।
 जहाँ अगर भूठा है तो फिर मतवालों को क्या है काम ।

फिर मजहब में भला क्यों करता है हर शख्स कलाम ।
 बेद वगैरह भी तो जहाँ में हैं फिर क्या है इनसे काम ।
 इनके सिवा भी कहोगे जो कुछ सब भूठा है मुदाम ।
 खुद भूठा जो हो उसका कहना भी सब है भूठा ।
 तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किस का ।
 सभी शोर करते हैं साँप का रस्सी में यह धोखा है ।
 भूले हैं वह, जहाँ गर दो हो तो यह बात बन ।
 यह तो तब हो जब कि साँप रस्सी यह कायम हों दो शै ।
 यहाँ तुम्हारे सिवा है कोई दूसरा कौन कहे ।
 'हरीचंद' तू सच है तो जग क्यों अपने मुँह भूठ बना ।
 तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किसका । १२
 द्रैद फिरा मैं इस दुनिया में पश्चिम से ले पूरब तक ।
 कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे भलक ।
 मसजिद मंदिर गिरजों में देखा मतवालों का जा दौर ।
 अपने अपने रंग में रंगा दिखाया सबका तौर ।
 सिवा भूठी बातों व बनावट के न नजर आया कुछ और ।
 एक एक को टटोला खूब तरह हमने कर गौर ।
 तेरे न दर्शन हुए मुझे मैं बहुत खोज कर बैठा थक ।
 कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे भलक ।

जो आकिल पंडित शायर हैं उनको भी जाकर देखा ।
 भगड़े ही में उन्हें हमने हर दम लड़ते पाया ।
 जिसे बुरा कहता है एक उसको कहता कोई अच्छा ।
 कोई पुरानी लीक पीटै है कोई कहता है नया ।
 जहाँ पै देखा नजर पड़ी हों यह भूठी कोरी बक बक ।
 कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे भलक ।
 जिनको आशिक सुनते थे उनके भी जाकर देखे ढंग ।
 माशूकों के कहीं कुछ नजर पड़े हर तरह के रंग ।
 वही बंधी बातें वही सुहबत है वही हैं उनके संग ।
 गरज कि इनसे मेरी जाँ आई है अब बहुत ब-तंग ।
 मतलब की बातों को छोड़कर और नहीं कुछ है वेशक ।
 कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे भलक ।
 कोई मान कर सवाब तेरा इश्क जहाँ में करते हैं ।
 कोई गुनह से खोफ बोझ का करके डरते हैं ।
 कोई मजाज़ी इश्क में अपने मतलब का दम भरते हैं ।
 कोई मरके मिले बैकुंठ इसी पर मरते हैं ।
 'हरीचंद' पर इनमें से पहुँचा कोई नहीं तेरे तलक ।
 कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे भलक । १३



प्रेम-फुलवारी

[कुछ अंश नवोदिता हरिश्चन्द्र चंद्रिका में
 सन् १८८४ में प्रकाशित, पूरा ग्रंथ मेडिकल हाल
 प्रेस से सन् १८८३ में ही मुद्रित हो चुका था ।]

— सं०

समर्पण

मेरे प्यारे,
 तुम्हें कुंजों में वा नदियों के तटों पर फिरते प्रायः देखा है और इससे निश्चय होता
 है कि तुम बड़े सैलानी हो । पर यो मन-मानी सैल करने में तुम्हारे कोमल चरणों में जो
 कंकरियाँ गड़ती हैं, वह जी में कसकती हैं । इससे मैंने रच रच कर यह फुलवारी
 बनाई है, सीचते रहना, यह भला मैं किस गुँह से काँ । पर जैसे धधर उधर सैल करते
 फिरते हो, वैसे ही कभी कभी भूले भटके इस "फुलवारी" में भी आ निकलोगे तो
 परिश्रम सफल होगा ।

केवल तुम्हारा
 हरिश्चंद्र

प्रेम-फुलवारी

भरति नेह नव नीर नित बरसत सुरस अघोर ।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर । १
जेहि लहि फिर कछु लहन की आस न चित में होय ।
जयति जगत-पावन-करन प्रेम बरन यह दोय । २
चंद मिटे सूरज मिटे मिटे जगत के नेम ।
यह दृढ़ श्री 'हरिचंद' को मिटे न अबिचल-प्रेम । ३

प्रेम-फुलवारी की भूमि

राग बिहाग

श्री राधे मोहिं अपुनो कब करिहौ ।

जुगल-रूप-रस-अमित-माधुरी कब इन नैननि भरिहौ ।
कब या दीन हीन निज जन पै ब्रज को बास बितरिहौ ।
'हरिचंद' कब भव बूझत तैं भुज धरि धाइ उबरिहौ । १
अहो हरि बस अब बहुत भई ।

अपनी दिसि बिलोकि करुना-निधि कीजै नाहिं नई ।
जो हमरे दोसन कों देखो तौ न निबाह हमारी ।
करिके सुरत अजामिल-गज की हमरे करम बिसारी ।
अब नरिं सही जात कोऊ बिधि धीर सकत नहिं धारी ।
'हरिचंद' को बेगि धाइके भुज भरि लेहु उबारी । २
पियारे याको नाँव नियाब ।

जो तोहिं भजै ताहि नहिं भजनो कीनो भलो बनाव ।
बिनु कछु किये जानि अपुनो जन इनो दुख तेहि देनो ।
भली नई यह रीति चलाई उलटो अवगुन लेनो ।
'हरिचंद' यह भलो निबेर्यौ ह्वैके अंतरजामी ।
चोरनि छाँडि छाँडि कै डाँडौ उलटो धन को स्वामी । ३
जानते जो हम तुमरी बानि ।

परम अबार करन की जन पै, हे करुना की खानि ।
तो हम द्वार देखते दूजो होते जहाँ दयाल ।
तो हम द्वार देखते दूजो होते जहाँ दयाल ।
करते नहिं विश्वास बेद पै जिन तोहिं कह्यौ कृपाल ।
अब तो आइ फँसे सरनन मैं भयो तुम्हारो नाम ।
'हरिचंद' तासों मोहिं तारो बान छोड़ि घनश्याम । ४

प्यारे अब तो सही न जात ।

कहा करे कछु बनि नहिं अवत निसि दिन जिय पछितात ।
जेसे छोटे पिंजरा में कोउ पंछी परि तड़पात ।
त्योही प्रान परे यह मेरे छूटन को अकुलात ।
कछु न उपाव चलत अति ब्याकुल मुरि मुरि पछरा खात ।

'हरिचंद' खींचौ अब कोउ बिधि छाँड़ि पाँच अरु सात । ५

नाहिं तो हँसी तुम्हारी ह्वैहे ।

तुमहीं पै जग दोस धरैगो मेरो दोस न देहे ।
बेद पुरान प्रमान कहाँ को मोहिं तारे बिनु लेहे ।
तासों तारो 'हरिचंद' को नाहीं तो जस जेहे । ६
फैलिहे अपजस तुम्हारो भारी ।

फिर तुमकों कोऊ नहिं कहिहे मोहन पतित-उधारी ।
वेदादिक सब भूठ होइगो ह्व जेहे अति ख्वारी ।
तासों कोउ बिधि धाइ लीजिए 'हरिचंद' को तारी । ७
तुम्हरे हित की भाखत बात ।

कोउ बिधि अब की तार देहु मोहिं नाहीं तो प्रन जात ।
बूँद चुकि फिरि घट दरकावत रहि जैहो पछितात ।
बात गए कछु हाथ न ऐहे क्यों इतनो इतरात ।
चूक्यो समय फेरि नहिं पैहो यह जिय धरि के तात ।
तारि लीजिए 'हरिचंद' को छाँड़ि पाँच अरु सात । ८
भरोसो रीमन ही लखि भारी ।

हमहूँ को विश्वास होत है मोहन पतित-उधारी ।
जो ऐसो सुभाव नहिं होतो क्यों अहीर कुल भायो ।
तजि कै कौस्तुभ सो मनि गल क्यों गुंजा-हार धरायो ।
क्रीट मुकुट सिर छोड़ि पखौआ मोरन को क्यों धार्यो ।
फेंट कसी टेंटिन पै मेवन को क्यों स्वाद बिसार्यो ।
ऐसी उलटी रीम देखि कै उपजत है जिय आस ।
जग-निदित 'हरिचंदहु' को अपनावहिगे करि दास । ९
सम्हारहु अपुने को गिरधारी ।

मोर-मुकुट सिर पाग पेंच करि राखहु अलक सँवारी ।
हिय हलकत बनमाल उठावहु मुरली धरहु उतारी ।
चक्रादिकन सान दै राखो कंकन फँसन निवारी ।
नूपुर लेहु चढ़ाइ किकिनी खींचहु करहु तयारी ।
पियरो पट परिकर कटि कसि कै बांधो हो बनवारी ।
हम नाहीं उनमें जिनको तुम सहजहि दीने तारी ।
बानो जुगओ नीके अब की 'हरिचंद' की बारी । १०
हम तो लोक-भेद सब छोड़्यौ ।

जग को सब नाता तिनका सो तुम्हरे कारन तोड़्यौ ।
छाँड़ि सबै अपुनो अरु दूजेन नेह तुमहिं सों जोड़्यौ ।
हरिचंद पै केहि हित हम सों तुम अपुनो मुख मोड़्यौ । ११
जो पै सावधान ह्वै सुनिए ।

तौ निज गुन कछु बरनि सुनाऊँ जो उर मैं तेहि गुनिए ।
हम नाहिन उन मैं जिनको तुम तारे गरब बढ़ाई ।

बोली लेहु प्रयुगजहि तो कछु मो गुन परे सुनाई ।
चित्रगुप्त जो बदि हमरे गुन निज खातन लिखि लेहीं ।
तो हम पाप आपुने तिनको हारि तुरत सब देहीं ।
सक समे औगुन गिनिबे को नागराज प्रन कीनौ ।
नहिं गिनि गए सेस बहु रहि गयो सोई नाम तब लीनौ ।
सबै कहत हरि-कृपा बड़ेरी अब हीं परिहि लखाई ।
पै जो मो अच-भय न भागि कै रहे न हृदय दुराई ।
बहुत कहाँ लौं कहाँ प्रानपति इतने ही सब मानौ ।
'हरीचंद' सो भयो सामना नीके जुगओ बानौ ॥१२॥

पिया हौं केहि बिधि अरज करौ ।

मति कहूँ चूकि होइ ब-अदबी याही डरन डरौं ।
भोरहि सो मेलो सो लागत नर-नारिन को भारी ।
न्हात खात बन जात कुंज में केहि बिधि लेहुँ पुकारी ।
महल टहल मैं रहत लुभाने साँफहि सो सब राती ।
तहँ को बिघन बने कछु कहि के एहि डर धरकत छाती ।
बड़े बड़े मुनि देव ब्रह्म शिव जहँ मुजरा नहिं पावैं ।
तहँ हम पामर जीव कही क्यौं घुसि के अरज सुनावैं ।
एक बात बेदन की सुनिये कछु भरोस जिय आयो ।
हरीचंद पिय सहस-श्रवन तुम सुनतहि आतुर धायो ॥१३॥

प्रेम-फुलझरी के वृक्ष

प्राननाथ तुमसों मिलिबे को कहा जुगति नहिं कीनी ।
पचि हारी कछु काम न आई उलटि सबै बिधि दीनी ।
हेरि चुकी बहु इतिन को मुख थाह सबन की लीनी ।
तब अब सोचि-बिचारि निकाली जुगति अचूक नवीनी ।
तन परिहरि मन दे तुब पद है लोक तृगुनता छीनी ।
'हरीचंद' निघरक बिहरींगी अधर-सुधा-रस-भीनी ॥१४॥

इन नैनन को यही परेखो ।

वह सुख देखि पिया-संगम को फेर बिरह-दुख देखो ।
नहिं पाखान भए पिय बिछुरत प्रेम-प्रतीत न लेखो ।
'हरीचंद' निरलज हवै रोवत यह उलटी गति पेखो ॥१५॥

देख्यो एक एक को टोय ।

प्राननाथ बिनु बिरह सँघाती और नाहिने कोय ।
माता-पिता धन-धाम मीत जग निज स्वारथ को होय ।
'हरीचंद' जो सोऊ बिछुरे तो न मरे क्यौं रोय ॥१६॥

पियारे क्यौं तुम आवत याद ।

छूटत सकल काज जग के सब भिटत भोग के स्वाद ।
जब लौं तुम्हरी याद रहे नहिं तब लौं हम सब लायक ।
तुमरी याद होत ही चित में चुभत मदन के सायक ।
तुम जग के सब कामन के अरि हम यह निहचै जानै ।

'हरीचंद' तो क्यौं सब तुमरे प्रेमहि जग में सानै ॥१७॥

पियारे ऐसे तौ न रहे ।

तेस भए कठोर अबै तुम तेसे कबहुं न हे ।

हम वह नाहिं कहा, कै मुरछित लखि तुम भुज न गहे ।
कहाँ गई वे पिछली बतियाँ जो तुम बचन कहे ।
तो तुम तनिक मलिन मुख देखत छिनहु नाहिं सहे ।
सो 'हरिचंद' प्रान बिछुरत कित बदन छिपाय रहे ॥१८॥

एहि उर हरि-रस पूरि गयो ।

तन में मन में जिय में सब ठाँ कृष्ण हि कृष्ण भयो ।
भरयो सकल तन-मन तोहू नहिं मान्यो उमड़ि बह्यो ।
नैनन सों बैनन सों रोक्क्यो नाहिंन परत रह्यो ।
लघु घट तामें रूप-समुद रह्यो क्यौं न उमगि निकरै ।
तापे लाए ज्ञान कहाँ तेहि जिय कित लाइ धरै ।
कौन कहे रखिबे की उलटो वहि जैहै या धार ।
'हरीचंद' मधुपुरी जाहु तुम ह्यौं नहिं पैहो पार ॥१९॥

रहै क्यौं एक म्यान असि दोय ।

जिन नैनन में हरि-रस छाये तेहि क्यौं भावै कोय ।
जा तन-मन में रमि रहे मोहन तहाँ ग्यान क्यौं आवै ।
चाहो जितनी बात प्रबोधो ह्यौं को जो पति आवै ।
अमृत खाइ अब देखि इनारन को मूरख जो भूलै ।
'हरीचंद' ब्रज तो कदली-बन काटो तो फिरि फूलै ॥२०॥

गमन के पहिले ही मिल जाहु ।

नाहीं तो जिय ही रहि जैहै तुव मुख-देखन लाहु ।
जान देहु सब और चित के मिलि रस करन उमाहु ।
'हरीचंद' सूरति तो अपनी बारिक फेर दिखाहु ॥२१॥

नैन भरि देखन हूँ मैं हानि ।

कैसे प्रान राखिये सजनी नाहिं परत कछु जानि ।
या ब्रज के सब लोग चवाई त्यों बैरिन कुल-कानि ।
देखत ही पिय प्यारे को मुख करत चवाव बखानि ।
मिलिबो दूर रह्यो बिन बातहिं बैठि करहिं सब छानि ।
'हरीचंद' कैसी अब कीजे या ललचौही बानि ॥२२॥

प्राननाथ जो पै ऐसी ही तुम्हें करन ही हाँसी ।

तौ पहिले ही क्यौं न कह्यो हम मरतीं दै गल फाँसी ।

जिय-जारन क्यौं जोग पठायो तोरि प्रीति तिनका-सी ।

'हरीचंद' ऐसी नहिं जानी हवैहैं हरि बिसुवासी ॥२३॥

हरि संग भोग कियो जा तन सों तासों कैसे जोग करै ।

जो सरीर हरि संग लपटानी वापें कैसे भसम धरै ।

जिन श्रवणन हरि-बचन सुन्यो है ते मुद्रा कैसे पहिरै ।

जिन बेनिन हरि निज कर गूँथो जटा होइ तें क्यौं निकरै ।

जिन अधरन हरि-अमृत पियो अब ते ज्ञानहिं कैसे उबरै ।

जिन नैनन हरि-रूप बिलोक्यो

तिन्हें मूँदि क्यौं पलक परै ।

जा हिय सो हरि-हियो लिख्यो है

तहाँ ध्यान केहि भाँति धरै ।

'हरीचंद' जा सेज रमे हरि तहाँ बघम्बर क्यौं बितरै ॥२४॥

फेरइ मिलि जैये इक बार ।

इन प्रानन को नाहिं भरोसो ए है चलन तयार ॥२५॥

जो छतियन सों लागि नहिं बिहरो प्यारे नंद-कुमार ।
तो दूरहि सों बदन दिखाओ करौ लाल मनुहार ।
नहिं रहि जाय बात जिय मेरे यह निज चित्त बिचार ।
'हरीचंद' न्योतेहु के मिस बूज आओ बिना अबार ॥२५॥

भई सखि ये अँखियाँ बिगिरैल ।
बिगिरि परीं मानत नहिं देखे बिना साँवरो छैल ।
भई मतवार धरत पग डगमग नहिं सुफत कुल-गैल ।
तजिके लाज साज गुरुजन की हरि की भई रखैल ।
निज चवाव सुनि औरहु हरखत करत न कछु मन मैल ।
'हरीचंद' सब संक छाँड़ि के करहिं रूप की सैल ॥२६॥

हौस यह रहि जैहै मन माहीं ।
चलती बार पियारे पिय को बदन बिलोक्यौ नाहीं ।
बैदन के बदले पिय प्यारे धाड़ गही नहिं बाहीं ।
'हरीचंद' प्यासी ही जैहै अधर-सुधा-रस चाहीं ॥२७॥

कहाँ गए मेरे बाल-सनेही ।
अब लौं फटी नहीं यह छाती रही मिलन अब केही ।
फेर कबै वह सुख धौं मिलि है जित्त सोचि जिय एही ।
'हरीचंद' जो खबर सुनावै देहुं प्रान-धन तेही ॥२८॥

याद परै वे हरि की बतियाँ ।
जो बन-कुंजन बिहरत मधुरी कहीं लाइके छतियाँ ।
कहँ वे कुंज कहाँ वे खग-मृग कहँ वे बन की पतियाँ ।
'हरीचंद' जिय सूल होत लखि वही उँजरी रतियाँ ॥२९॥

जो पै ऐसिहि करन रही ।
तो क्यों मन-मोहन अपुने मुख सों रस-बात कही ।
हम जानी सुख सों बीतेगी जैसी बीति रही ।
सो उलटी कीनी बिधिना नै कछु नहिं निबही ।
हमैं बिसारि अनत रहे मोहन औरै चाल गही ।
'हरीचंद' कहा को कहा ह्वै गयो कछु नहिं जात कही ॥३०॥

अब वे उर में सालत बातें ।
जो नंद-नंदन ब्रज में कीनी प्रेम-प्रीति की घातें ।
वेई कुंज वही द्रुम पल्लव वही उँजरी रातें ।
एक प्रान-प्यारो दिगि नाहीं बिष सम लागत तातें ।
कूर अकूर प्रान हरि लै गयो आयो दुष्ट कहाँ तैं ।
'हरीचंद' बिदरत नहिं छतियाँ भई कुलिस की छातें ॥३१॥

अब तो लाजहु छूटि गई री ।
ठेकि-बजाइ नगारो दै के हौं पिय-बसहि भई री ।
नहिं छिपाव कछु रह्यो सखिन सों खुल्यो भेद सबई री ।
परछत ह्वै रोवत पिय के हित ऐसी रीति लई री ।
बकि बकि उठत नाम पीतम को हे यह रीति नई री ।
'हरीचंद' जग कहत भले ही यह अब बिगिरि गई री ॥३२॥

हरे कोउ कहाँ सँदेसो श्याम को ।

हमरे प्रान-पिया प्यारे को अरु भैया बलराम को ।
बहुत पथिक आवत हैं या मग नित-प्रति वाही गाम को ।
कोऊ न लायो पिय को सँदेसो 'हरीचंद' के नाम को ॥३३॥

तुव मुख देखिबे की चाट ।

प्रान न गए अजहुं मो तन तें लागी आस-कपाट ।
नैन फेर चाहत हैं देख्यो लीने गो-धन ठाट ।
बेनु बजावत सो मुख लालन वाही जमुना-घाट ।
अटक्यो जीब फँस्यो जग मैं फिर तुव मिलिबे की बाट ।
'हरीचंद' हिय भयो कुलिस लौं गयो न अब लौं फाट ॥३४॥

निलज इन प्रानन सों नहिं कोय ।
सो संगम-सुख छाँड़ि अजहुं ये जीवत निरलज होय ।
गए न संग प्रान-प्रीतम के रहे कहा सुख जोय ।
'हरीचंद' अब सरम मिटावत बिना बात ही रोय ॥३५॥

अब मैं कैसे चलूंगी क्यों सुधि मोहि दिलाई ।
पनघट ही पै पिय प्यारे को क्यों दियो नाम सुनाई ।
दूर रह्यो धर गति-मति भूलो पग न धर्यो अब जाई ।
'हरीचंद' हौं तबहि लौं काज की जब लौं रूई भुलाई ॥३६॥

हाय हरि बेरि दर्द मँझ-धार ।
कीन्हीं थल की नहिं बेरे की भली लगाई पार ।
नोह की नाव चढ़ाय चाव सों पहिले करि मनुहार ।
अब कहाँ बिन अपराध तजी क्यों सुनिहै कौन पुकार ।
लोक-लाज घर भूमि छुड़ाई करो घात सों वार ।
'हरीचंद' तापै उतराई माँगत हौं बलिहार ॥३७॥

नैन ये लागि के फिर न फिर ।
बिधुरी अलकन मैं फँसि फँसिकै रहि गए तहीं धिरे ।
पचि हारे गुरुजन सिख दैके नाहिन रहत धिरे ।
'हरीचंद' प्रीतम सरूप मैं दूबे फिर न तिरै ॥३८॥

पिय सों प्रीति लगी नहिं छूटे ।
ऊधो चाहो सो समझाओ अब तो नेह न टूटे ।
सुंदर रूप छोड़ि गीता को ज्ञान लेइ को कूटे ।
'हरीचंद' ऐसो को मूरख सुधा त्यागि बिख लूटे ॥३९॥

निठूर सों नाहक कीनी प्रीति ।
अब पछिताय हाय करि रहि गई उलटि परो सब रीति ।
हम तन मन धन जा हित खोयो उन मानी न प्रतीति ।
'हरीचंद' कहा को कहा कीनों बलि बिघना की नीति ॥४०॥

पुरानी परी लाल पहिचान ।
अब हमकों काहे को चीन्हो प्यारे भए सयान ।
नई प्रीति नए चाहनवारे तुमहूँ नए सुजान ।
'हरीचंद' पै जाई कहाँ हम लालन करहु बखान ॥४१॥

सखी री ये उरभौह नैन ।

उरभि परत सुरभ्यो नहिं जानत सोचत समुफ्त हैं न ।
कोऊ नाहिं बरजै जो इनको बने मत्त जिमि गैन ।
'हरीचंद' इन बैरिन पाछे भयो लैन के देन ॥४२॥
सखी री ये अँखियाँ रिभावरि ।

देखत ही मोहन सों रीभीं सब कुल-कानि बिसारि ।
मिलीं जाइ जल दूध मिलै ज्यों नेकु न सकीं सम्हारि ।
सुंदर रूप बिलोकत रपटीं काँच घट जिमि बारि ।
अब बिनु मिले होत है व्याकुल रोअत निलज पुकारि ।
अपुने फल करि हमहिं कनौड़ी और दिवावत गारि ।
लोक-लाज कुल की मरजादा तुन-सम तजी किचारि ।
'हरीचंद' इनको को रोके बिगरी जगहि बिगारि ॥४३॥

सखी री ये बिसुवासी नैन ।
निज सुख मिले जाइ पहिले पै अब लागे दुख देन ।
दगा दई हवै गए पराए बिसरायो सब चैन ।
'हरीचंद' इनके बेवहारन जानि नफा कछु है न ॥४४॥

मरम की पीर न जाने कोय ।
कासों कहीं कौन पुनि माने बैठ रहीं घर रोय ।
कोऊ जरनि न जाननवारी बे-महरम सब लोय ।
अपुनो कहत सुनत नहिं मेरी केहि समुभाऊं सोय ।
लोक-लाज कुल की मरजादा बैठि रही सब सोय ।
'हरीचंद' ऐसहि निबहैगी होनी होय सो होय ॥४५॥

मोह कित तुमरो सबै गयो ।
सोई हम सोई तुम तो अब ऐसो काह भयो ।
मान समै जिनको नेकहु दुख तुम कबहुं न सम्हारे ।
तेई नैन रोवत निसि-बासर कैसे सहत पियारे ।
तिनकहु लखि मम मुख मुरझानो करि मनुहार मनाओ ।
सोइ परी धरनि पै देखत क्यौं तुरतै नहिं धाओ ।
हाय कहा हों कहीं प्रान-पिय तुम आछत गति ऐसी ।
'हरीचंद' पिय कहां दुराये कहां प्रीति यह कैसी ॥४६॥

जो पिय ऐसो मन मोहिं दीनों ।
तो क्यौं एक निरालो जग नहिं मो निवास हित कीनों ।
इन जग के लोगन सों मो सों बानिक बनि नहिं आवै ।
उन करोर के मध्य एक क्यौं हम सों निबहन पावै ।
के तो जगहि छोड़ाओ हम सों राखी के दिग मोहिं ।
'हरीचंद' दुख देहु न इतनो विनय करत हों तोहिं ॥४७॥

खुलि कै दुखहु करन नहिं पावै ।
कैसे प्रान रहैं जो सब बिधि हम ही भार उठावै ।
नैनन सदा चवाइन के डर दुग भरि पियहि न देख्यौ ।
ताको दुख तो सख्यौ कोऊ बिधि जानी काम को लेख्यौ ।
रोवनहु में हानि भई अब प्रगत हाय नहिं होई ।
तो केहि बिधि जिय धीरज राखैं सो भाखौ सब कोई ।

सब बिधि हमहिं बिपति तो ऐसे जीवनहु पै ख्यारी ।
'हरीचंद' सोयो बिधिना किन जाग हमारी बारी ॥४८॥

पियारे तजी कौन सें दोस ।
इतनी हमहु तो सुनि पावै फेर करै संतोस ।
तुमरे हित सब तज्यो आस इक तुमरी ही चित धारी ।
एक तुम्हारे ही कहवाए जग में गिरवरधारी ।
जो कोउ तुमरो होइ सोई या जग में बहु दुख पावै ।
यह अपराध होइ तो भाखौ जासों धीरज आवै ।
कियो और तो दोस कछु नहिं अपनी जान पियारे ।
तुमरे ही हवै रहे जगत में एक प्रेम-प्रन धारे ।
जो अपुने ही को दुख देनो यहै आप को बानो ।
तो क्यौं नहिं ताको अपने मुख्य प्यारे प्रगत बखानो ।
जासों चतुर होइ जग में कोउ तुम सों प्रेम न लावै ।
'हरीचंद' हम तो अब तुमरे करौ जोई मन भावै ॥४९॥

सुरतिहु अब नहिं आव स्याम की ।
प्राननाथ आरति-नासन मन-मोहन सब सुख-धाम की ।
वेई नैन वही मन औ तन वही चटपटी काम की ।
भये कुलिस लौं सब पिय बिछुरे निसि वीतत चौ-जाम की
सुनियत लाल कहानिन में अब जैसे सीता-राम की ।
'हरीचंद' कहा को कहा कीनो बलि

या गति बिधि बाम की ॥५०॥
अब मैं कब लौं देखूँ बाट ।
भोर भयो हौं ठाढ़ि ही रहि गइ पकरे द्वार-कपाट ।
हार पहार भए बिछुरे अरु बिख भए सुख के ठाट ।
सुनी सेज बिनु पिया देखत क्यौं न गयो हिय फाट ।
बिरह-सिंधु में डूबी ग्वालिनि कहूँ दिखात नहिं घाट ।
'हरीचंद' गहि बांह उठाओ जिय मति करहु उचाट ॥५१॥
होय हरि द्वै में ते अब एक ।

कै मारो कै तारो मोहन छाँड़ि अपनी टेक ।
बहुत भई सहि जात नहीं अब करहु बिलंब न नेक ।
'हरीचंद' छाँड़ो हो लालन पावन-पतित-विवेक ॥५२॥
नावरि मोरी भाँभरी हो जाय परी मँफ्यार ।
निसि अँधियारी पानी लागत उलटो बहत बयार ।
सुभत नहिं उपाय बिनु केवट कोई न सुनत पुकार ।
'हरीचंद' इबत कु-समय मैं धाइ लगाओ पार ॥५३॥

कोऊ ना बटाऊ मेरी पीर को ।
सब अपने स्वारथ को कोऊ देनहार नहिं धीर को ।
कसकत सो बन रास बिलसिबो हरि-संग जमुना-तीर को ।
उलहत हियो नैन भरि आवत लखि थल धीर समीर को ।
कहाँ कहीं कित जाऊं न भूलत हँसि हँसि हरिबो चीर को ।
हरीचंद कोउ हाल कहत नहिं गोपराज बलवीर को ॥५४॥

अबिरल जुगल कमल दृग बरसत
सखि प खीजत होइ खिस्यानी ।
आजु कुंज क्यों सेज बिछाई
तापै दई पिछौरी तानी ।
हों धोखे ही गई सयन को चितित
पिय-सँजोग सुखदाई ।
द्वारहिं तें अभिलाख लाख करि
भरि आनंद फूली न समाई ।
ढकी सेज लखि कै पिय सोए
जानो भई जिय अमित उमाही ।
नूपुर खोलि चली हरए गति
पीतम-अधर-सुधा-रस चाही ।
निकट जाइके लाइ जुगल भुज
जबै गाढ़ आलिंगन कीनो ।
तब सुधि आई पिय घर नाहीं
उन तो गौन मधुबन को कीनो ।
मुरछि परी करि हाय साथ ही
मानहुँ लता मूल सों तोरी ।
बेसुधि लखि आई बृज-बनिता
बैठि रहीं घेरे चहुँ ओरी ।
छिरकत नीर गुलाब बदन पै
आँचर पौन करत कोउ नारी ।
ब्याकुल सखि-समाज सब रोअत
मनु आजुहिं बिछूरे गिरिधारी ।
इतनेह्र पै प्रान गए नहिं
फिरह्र सुधि आई अध-राती ।
हों पापिन जीवति ही जागी
फटी न अजौ कुलिस की छाती ।
फिर वह घर-व्यवहार वहै सब
करन परै नित ही उठि माई ।
'हरीचंद' मेरे ही सिर बिधि
दीनी काह जगत अमराई ।५५
रहे यह देखन कों दुग दोय ।
गए न प्रान अबौं अँखियाँ ये जीवति निरलज होय ।
सोई कुंज हरे हरे देखियत सोई सुक पिक कीर ।
सोई सोज परी सूनीं हवै बिना मिले बलबीर ।
वही भरोखा वही अदारी वही गली वही साँझ ।
वहै नाहिं जो बेनु बजावत ऐहै गलियन माँझ ।
ब्रजह्र वही वही गौवें हैं वही गोप अरु ग्वाल ।
बिडरे सब अनाथ से डोलत ब्याकुल बिना गुपाल ।
नंद-भवन सुनो देखत क्यों गयो नहीं हिय फाट ।
'हरीचंद' उठि बेगहि धाओ फेरहु ब्रज की बाट ।५६

नंद-भवन हों आजु गई हो भूले ही उठि भोर
जगत समय जानि मंगल-मुख निरखन नंद-किशोर ।
नहिं बंदीजन गोप गोपिका नाहिंन गौवें द्वार ।
नहिं कोउ मयत दही नहिं रोहिनि ठाढ़ी लै उपचार ।
तब मोहिं सुरत परी घर नाहिंन सुंदर श्याम तमाल ।
मुरछित धरनि गिरी द्वारहि पै लखि धाई ब्रज-बाल ।
लाई गेह उठाइ कोउ बिधि जीवन गए अँदेस ।
'हरीचंद' मधुकर तुव आए जागी सुनत सँदेस ।५७

हठीले पिय हो प्यारिहु को हठ राखौ ।
तुव रुसे सों काम चले नहिं मधुर बचन मुख माखौ ।
आओ मधुबन छाड़ि फेरहु दूर कूरिहि नाखौ ।
'हरीचंद' को मान राखिके अपर-सुधा-रस चाखौ ।५८

अथ प्रेम-फुलवारी के फूल

प्रीति की रीति ही अति न्यारी ।

लोग बेद सब सों कछु उलटी केवल प्रेमिन प्यारी ।
को जाने समुझै को याको बिरली जाननहारी ।
'हरीचंद' अनुभव ही लखिये जामै गिरवरधारी ।५९

श्रीराधे सोभा कहा कहिये ।
रसना अधम बहुरि अधिकारी कोऊ नहिं लहिये ।
कासों कहिये को समुझै एहि समुझि चित रहिये ।
परम गुप्त रस सब सों कहि कहि कैसे चित दहिये ।
बिनु तुव कृपा अपार सिंधु रस केहि प्रकार बहिये ।
'हरीचंद' एहि सोच छोड़ि सब मौन रह्यो चाहिये ।६०

अहो मम प्राननह्र तें प्यारे ।
ब्रज के धन प्रेमिन के सरबस इन अँखियन के तारे ।
गहवर कंठ होत क्यों सुनतहि गुन-गन परम तिहारे ।
उमगत नैन हियो भरि आवत उलहत रोमहु न्यारे ।
प्राननाथ श्री राधा जू के जसुदा-नंद-दुलारे ।
'हरीचंद' जुग जुग चिरजीअहु भक्तन के रखवारे ।६१

पियारे थिर करि थापहु प्रेम ।
परम अमृतमय जब लौं रवि-ससि प्रेमिन पौं करि छेम ।
दूर करहु जग बंचनहारे ज्ञान करम कुल नेम ।
'हरीचंद' यह प्रीत-दुन्दुमी तिनहीं गाजो एम ।६२

छोड़ि कै ऐसे मीठे नाम ।
मित्र प्रानपति पीतम प्यारे जीवितेस सुख-धाम ।
क्यों खोजत जग और नाम सब करिके मुक्ति सहेत ।
ईश्वर ब्रह्म नाम होआ सो श्रवन न जो सुख देत ।
तजि कै तेरे कोमल पंकज पद को दृढ़ बिस्वास ।
'हरीचंद' क्यों भटकत डोलत धारि अनेकन आस ।६३

अहो मेरे मोहन प्यारे मीत ।

क्यों न निवाही मम जीवन लौ परम प्रेम की रीति ।
इतनेह्र पै तोहि न आई मेरी यार प्रतीति ।
'हरीचंद' बलिहारी राखे भली करी यह नीति । ६४

बिहरिहैं जग-सिर पै दै पाँव ।
एक तुम्हारे ह्वै पिय प्यारे छाड़ि और सब गाँव ।
निंबा-करी बताओ बिगरी धरो सबै मिलि नाँव ।
'हरीचंद' नहिं कबहुं चुकिहैं हम यह अब को बाँव । ६५

निछावरि तुम पै सो कहा कीजै ।
सब कछु थोरो लगत जगत में कैसे इनको लीजै ।
राज-पाट घर-बार देह मन धन संबंधी जात ।
नेम-धरम कुल-कानि लाज सब तूनह्र से न लखात ।
प्रेम-भरी तुमरी चितवनि की समता को जग कौन ।
'हरीचंद' तासों नहिं कहिए कछु रहिए गहि मौन । ६६

न जानों गोविंद कासों रीकै ।
जब सों तप सों ज्ञान ध्यान सों कासों रिसि करि खीकै ।
बेद पुरान भेद नहिं पायो कह्यो आन की आन ।
कह जप तप कीनों गनिका नै गीध कियो कह दान ।
नेमी ज्ञानी दूर होत हैं नहिं पावत कहूँ ठाम ।
ढीठ लोक बेदह्र ते निदित घुसि घुसि करत कलाम ।
कहूँ उलटी कहूँ सीधी कहूँ बेहुन तें न्यारी ।
'हरीचंद' काहू नहिं जान्यो मन की रीति निकारी । ६७

प्रेम-फुलवारी के फल

रें मन करु नित नित यह ध्यान ।
सुंदर रूप गौर श्यामल छवि जो नहिं होत बखान ।
मुकुट सीस चंद्रिका बनी कनकून सुकुंडल कान ।
कटि काछिनि सारी पग नूपुर बिछिया अनवट प्रान ।
कर कंकन चूरी दोउ भुज पै बाजू सोमा देत ।
केसर खोर बिंदु सेंदुर को देखत मन हरि लेत ।
मुख पै अलक पीठ पै बेनी नागिनि सी लहरात ।
चटकीलो पट निपट मनोहर नील-पीत फहरात ।
मधुर मधुर अघरन बंसी-धुनि तैसी ही मुसकानि ।
दोउ नैनन रस-भीनी चितवनि परम हया की खानि ।
ऐसो अद्भुत मेष बिलोकत चकित होत सब आय ।
'हरीचंद' बिन जुगल-कृपा यह लख्यो कौन पै जाय । ६८

श्री राधे चंद्रमुखी तुव नाम ।
तदपि चकोर-मुखी सी ब्याकुल निरखत ससि-घनश्याम ।
तैसेहि जदपि-आप नव घन से मोहन कोटिक काम ।
तदपि दरस तुव प्यास नैन जुग चातक रहत मुदाम ।
कौन कहै के समुपे यामे जो कुछ करे कलाम ।
'हरीचंद' ह्वै मौन निरखिए जुगलरूप सुखधाम । ६९

आजु महा मंगल भयो भोर ।

प्राननाथ भेंटे मारग मैं चितयो प्रेम-भरी दृग-कोर ।
करौ निछावरि प्रान जीवनधन

तनिकहिं निरखत भौह मरोर ।
श्याम सरूप सुधा-रस सानी बानी बोलत नंदकिशोर ।
कोटि काम लावन्य मनोहर चितवत प्रेम भरी दृग-कोर ।
नेह भरयो सब अंग सलोनी आनंद-रस भीज्यो प्रति पोर ।
सिद्ध होयगो सगरो कारज प्रातहि मिलौ प्रानपिय मोर ।

'हरीचंद' जुग जुग चिरजीओ
मांगत ग्वालनि अंचल खोर । ७०

आजु चलि कुंजन देखहु छाई विमल जुन्हाई ।
पत्र रंघ्र में धिर धिर आवत ता तर सेज बिछाई ।
समय निसीध इकत भयो अति

कहूँ कहूँ खग बोलत सुख पाई ।
ललिता दूर बजावत बीना मधुर मृदंगहु परत सुनाई ।
आलिंगन परिरंभन को सुख लूटत तहाँ जुगल रसदाई ।
'हरीचंद' वारत तन मन सब गावत केलि बघाई । ७१

कहत हौ बार करोरन होहु चिरंजी नित
नित प्यारे देखि सिरावै हियो ।
एक एक आसिख सों मेरे

अरब खरब जुग जियो ।
जब लौ रवि-ससि-भूमि-समुद-

ध्रुव-तारा-गन धिर कियो ।
'हरीचंद' तब लौ तुम प्रीतम

अमृत पान नित पियो । ७२

लाल के रंग रंगी तू प्यारी ।
याही तें तन धारत मिस के सदा कसूमी सारी ।
लाल अघर कर पद सब तेरे लाल तिलक सिर धारी ।
नैननह्र में डोरन के मिस फलकत लाल बिहारी ।
तन-मे भई नही सुघ तन की नख-सिख तू गिरधारी ।
'हरीचंद' जग बिदित भई यह प्रेम-प्रतीति तिहारी । ७३

हमारे ब्रज की रानी राधे ।
जिन निज बस करि मोहन सह सब ब्रज-नर-नारी नाधे ।
परम उदार धाइ सुमिरन के पहिलेहि नासत बाधे ।
कहि 'हरिचंद' सोच उनकी मोहि

जे नहिं इनहिं अराधे । ७४

सखियो याद दिवावति रहियो ।
समय पाइके सदा हमारिहु कबहुं जुगल सों कहियो ।
केलि कोप आर काज समय तजि सुख में तुम रुख लहियो ।
करि मनुहार जेरि कर दोऊ मेरी बिया उलहियो ।
जो कछु क्रोध करे तो ताको बिनती कर कर सहियो ।
कहियो कबौ धाड़के बाहें 'हरिचंदहु' की गहियो । ७५

पिया मुख चूमत अलकन टारि ।

सोई बाल मुंदी पलकन की छबि रहे लाल निहारि ।
कबहुं अथर हलके कर परसत रहत मँवर निरवारि ।
अंजन मिसि सिंदूर निरखि रहे दरत न इक पल टारि ।
जागी भरि आलस भुज सों गहि पियतम को भुज नारि ।
खींचि चूमि मुख पास सोवायो 'हरीचंद' बलिहारि । ७६

पियारे केहि बिधि देहुं असीस ।

नित नित तौ हम कहत जियो तुम मोहन कोटि बरीस ।
तऊ न बोध होत मेरे जिय नित उठि यहै मनाऊँ ।
कबहुं न बदन पिया प्यारे को मुरझयो देखन पाऊँ ।
तुम जीवो तुमरे जन जीवै जब लों सागर बारी ।
कह्यो कहत करु नितहि कहैगै जीओ लाल बिहारी ।
भाग लहो सब ही प्रेमी-जन सुबस बसौ बृजबासी ।
'हरीचंद' जग जुगल बिराजै प्रीति-रीति परकासी । ७७

रहौं मैं सदा जुगल-भुज छहियाँ ।

अब मत छाँड़ौ राधा-मोहन पकरि दीन की बहियाँ ।
सदा बसाओ श्री बृंदावन नित नव कुंजन महियाँ ।
'हरीचंद' इक-रूप निबाहो अब पन बिगारै नहियाँ । ७८

तुम्हें कोऊ खोजत है हो राधे ।

ना जानै कौन साँवरो सो ढोटा पीरी कटि बाँधे ।
बड़े बड़े नैन भरि रहे जल सों बचन कहत आधे आधे ।
बन बन पात पात करि खोजत प्यारी प्यारी रट साधे ।
कोमल मुख कुम्हलाइ रह्यो वाको खरी प्रीति-पथ साधे ।
'हरीचंद' सखि चलो न दया

करि हरि-बिरहा की बाधे । ७९

टरो इन अँखियन सों अब नाहिं ।

निवसो सदा सोहागिन राधा पुतरी सी दृग माहिं ।
नील निचोल तरकुली कानन सिर सिंदूर मुख पान ।
काजर नैन सहज ही भोरी मन-मोहनि मुसकान ।
सदा राज राजौ बृंदावन सुबस बसौ ब्रज देस ।
बरसौ प्रेम-अमृत प्रेमिन पै नितहि श्याम धन मेस ।
देखि यहै अब दूजो देखन परे न जब लौं प्रान ।
'हरीचंद' निबहो स्वासा लागि यहै प्रेम की बान । ८०

श्री स्वामिनी जी की स्तुति

श्री राधे तुही सुहागिन साँची ।

और कामिनिन को सुख-संपति तुव रस आगे कांची ।
प्रेम सिद्धि तुव द्वार नटी लौं रहत रैन-दिन नाची ।
हरीचंद याही सों सब तजि हरि-मति तुव रंग राँची । ८१

राधे तुही सुहागिन पूरी ।

जाको त्रिभुवन-पति सेवक लौं अनु-छिन करत मजूरी ।
और सबन की सुख-सामाँ तुव आगे परम अधूरी ।

'हरीचंद' याही तें सोहत तोही के सेंदुर-चूरी । ८२
राधे तुव सोहाग की छाया जग में भयो सोहाग ।
तेरो ही अनुराग-छटा हरि सृष्टि-करन अनुराग ।
सत-चित तुव कृति सों बिलगाने लीला प्रियजन भाग ।
पुनि 'हरिचंद' अनंद होत लहि तुव पद-पदुम-पराग । ८३

हमारी प्यारी सखियन की सिरताज ।

ताड़ की महारानी जो सब ब्रज-मंडल-महराज ।
सील सनेह सरस सोभा-निधि पूरनि जन-मन-काज ।
'हरीचंद' की सरबस जीवनि पालनि भक्त-समाज । ८४

श्यामा प्यारी सखियन की सरदार ।

अति भोरी गोरी रस-बोरी सहजहि परम उदार ।
लाज-कृपा सों भरे बड़े दृग बड़े छूटे तिमि बार ।
'हरीचंद' तनिकहि बस कीनो श्री ब्रजराज-कुमार । ८५

राधा प्यारी सखियन की सिरमौर ।

जदपि बहुत जुवती ब्रज मैं पै पिय कहै रुचत न और ।
जा मुख-पंकज-मधु की लालच बन्यो रहत मनु भौर ।
पान खवावत चरन पलोटत दोरत बिजन चौर ।
मुख चूमत ललचाइ कबहुं पुनि कबहुं भरत अँकौर ।
निज मुख जुगल रमत नित नित श्री बृंदावन निज ठौर ।
ऐसी स्वामिनि तिजि को बरबस भरमैं इत उत दौर ।
'हरीचंद' सब तजि याही तें सेवत इनकी पौर । ८६

हमारी सरबस राधा प्यारी ।

सब ब्रज-स्वामिनि हरि-अभिरामिनि श्री वृषभानु-कुलारी ।
बृंदावन-देवी सुख-सेवी सहज दीन-हितकारी ।
'हरीचंद' गुन-निधि सोभा-

निधि कीरति की सुकुमारी । ८७

प्यारी कीरति-कीरति-बेलि ।

प्रफुलित रूप-रसि-कुसुमावलि गुन-सुगंध-रस रेलि ।
सिंची प्रेम-जीवन हरि बारो जन-भव-आतप-ठेलि ।
'हरीचंद' हरि कलप-तरोवर लपटी सुखहि सकेलि । ८८

हमारी प्रान-जीवन-धन श्यामा ।

ब्रज-जन-तरुनि-चक्र-चूड़ामनि पूरनि हरि-मन-कामा ।
अति अभिरामा सब सुख-बामा हरि-धामा मनि-वामा ।
'हरीचंद' तजि साधन सबरे रटत एक तुव नामा । ८९

राधे, सब बिधि जीति तिहारी ।

अखिल लोक-नायक रस-सरबस तिन की दृग उँजियारी ।
तजिकै जुवति सहस्र रहत तुव दिसि टक एक निहारी ।
'हरीचंद' आनंदकंद आनंद दान करति बलिहारी । ९०

आजु भुव साँचो भयो अनंद ।

जन-हिय-कुमुद बिकासन प्रगट्यो ब्रज-नम पूरन चन्द ।

जो आनंद छिप्यो हो अब लौ तोहिं प्रगटि दिखरायो ।
 मरजादा परबाह दुहुँन सों प्रेम छानि बिलगायो ।
 भटकत फिरत श्रुतिन के बन में परम पंथ नहिं सुझ्यो ।
 जो कछु कह्यो कहूँ कोउ सास्त्रन ताको मरम न बूझ्यो ।
 भक्ति कही तो नेह बिना की नेहहु व्यसन बिना को ।
 व्यसनहु क्यौ जुपे कहूँ कहूँ तो परवन चार दिना को ।
 परम नेह सों एक भाव रस इनहीं प्रीति दिखाई ।
 'हरीचंद' भक्तन-हिय बाजी जासों प्रेम-बघाई । ११

जय जय भक्त-बछल भगवान ।
 निज जन पच्छ रच्छ-कर नित प्रति सहजहि दयानिधान ।
 अधम-उधारन जनि-निस्तारन निस्तारन जस-गान ।
 'हरीचंद' करुनामय केसव जन ब्रज-जन के प्रान । १२
 जय जय करुनानिधि पिय प्यारे ।
 सुंदर श्याम मनोहर मूरति ब्रज-जन लोचन-तारे ।
 अगिनित गुन-गन गने न आवत माया नर-वपु धारे ।
 'हरीचंद' श्रीराधा-वल्लभ जसुदा-नंद-दुलारे । १३



कृष्ण-चरित्र

[रचना-काल सन् १८८३]

कृष्ण-चरित्र

आजु हरि छलि के लाए प्यारी ।
 पार उलारन मिस नौका पै रसिक-काज गिरिधारी ।
 औघट घाट लगाइ नाव निज बिहरत हरि मनुहारी ।
 'हरीचंद' सखि लखत चकित चित देत प्रान धन वारी । १२
 जुगल-छवि नैनन सों लखि लेहु ।
 ठाढ़े बाहुँ जोरि कुंजन में अवसर जान न देहु ।
 साँझ समय आगम बरसा के फूल्यो बन चहुँ ओर ।
 लहरत कालिन्दी जल झलकत आवत मन्द भकोर ।
 प्रथम फूल फूल्यो आमोदित रसमय सुखद कदंब ।
 ता तट ठाढ़े जुगल परसपर किए बाहुँ-झलंब ।
 पसरित महामोद दसदू दिसि मत्त भौर रहे भूलि ।
 'हरीचंद' सखि सरबस वारयो

सो छवि लखि जिय फूलि । १२

आजु ब्रज भई अटारिन भीर ।

आवत जानि सुरथ चढ़िकै पथ सुंदर श्याम-सरीर ।

अटो फरोखन छज्जन छाजन गोखन दारन दार ।

मुख ही मुख लखिए जुवतिन के सोभा बढी अपार ।

फूली मनौ रूप-पुलवारी हरि-हित साधि सनेह ।

कै चंदन की बंदन-माला बाँधी ब्रजप्रति गेह ।

करत मनोरथ विविध भाँति सब साजे मंगल-साज ।
 'हरीचंद' तिनको दरसन दे दुख मेट्यो ब्रजराज । १३

हरि हम कौन भरोसे जीएँ ।

तुमरे रुख फेरे करुनानिधि काल-गुदरिया सीएँ ।
 यों तो सबही खात उदर भरि अरु सब ही जल पीएँ ।
 पै धिक धिक तुम बिन सब माधो बादिहि सासा लीएँ ।
 नाथ बिना सब व्यर्थ धरम अरु अधरम दोऊ कीएँ ।
 'हरीचंद' अब तो हरि बनिहै कर-अवलंबन दीएँ । १४

नाथ बिसारे तें नहि बनिहै ।

तुम बिनु कोउ जग नहि मरम की पीर जिया जो जनि है ।
 हँसिहै सब जग हाल देखि कोउ नहि दीनता गनिहै ।
 उलटी हमहि सिखावनि दै है मेरी एक न मनिहै ।
 तुम्हरे होइ कहाँ हम जैहैं कौन बीच में सनिहै ।
 'हरीचंद' तुम बिनु दयालता और कोउ नहि ठनिहै । १५

नयल नील मेघ-वरन दरसत त्रयताप-हरन ।

परसत सुख-करन भक्त-सरन जमुन-वारी ।

सोभित सुंदर दुकूल प्रफुलित कल कमल फूल

मेटत भव-सूल भक्ति-मूल ताप-हारी ।

कोमल बर बालु रचित बेदि विविध तटनि खचित

नव लता-प्रतान सचित नचित भृंग भारी ।
 चंचल चल लोल लहर कलि कल करवाल कहर
 जग-जन जम-जाल जहर भक्तन-सुखकारी ।
 जल-कन लै त्रिविध पौन करत जबै कितहुँ गौन ।
 परसत सुख-भौन सीत सोहत संचारी ।
 अवगाहत मनुज-देव करत सकल सिद्ध सेव
 जानत नहिं भेव भेद वेद मौन-धारी ।
 ब्रजबर-मंडल-सिंगार गोप-गोपिका अचार
 प्राननाथ-कंठहार जुगल बर बिहारी ।
 पुष्टि-सुपथ पुष्टि करत सेवा को फल बितरत
 'हरीचंद' जस उचरत जयति तरनि-बारी । ६
 आजु सुर मुनि सकल ब्रजपुराधीश को
 रत्न-अभिवेक बर-विधि सों करत ।
 सकल तीरथ विमल गंग-जमुनादि नद
 चतुर्सागर-मिलित नीर कलसन भरत ।
 रिग-यजुर-साम-अथर्वनिक वेद-ध्वनि
 स्तोत्र-पौराण-इतिहास मिलि उचरत ।
 शंख-भेरि-पणव-मुरज-ढक्का बाद धनित
 घंटा-नाद बीच बिच गुंजरत ।
 विविध सव्यौषधी मलय-भृगमद-मिलित
 बारि वनसार-केसर सुगंधित परत ।
 कुसुम रल तुलसि मिश्रित सुमंत्रित सबिध
 पूर्व अधिवासितोदक घटन तें ढरत ।
 श्याम अभिराम तन पीत पट सुभग अति
 बारि सों अंग सटि लखत ही मन-हरत ।
 भरित कल केस कुंचितन तें नीर-कन
 मनहुँ मुक्तावली नवल उज्जल भरत ।
 बदत बंदी बिरद सूत चारन चारु चरित
 गावत खरे तान मानन भरत ।
 देत आसीस द्विज हस्त श्रीफल किए
 सुर जुहारत खरे रुख लिए जिअ डरत ।
 घोष-सीमंतिनी गान मंगल शब्द
 श्रवन-पुट जात दुख दुरित दारिद दरत ।
 दास 'हरीचंद' के हृदय-मधि तौन छवि
 खचित वल्लभ-कृपा-बल न टारे टरत । ७
 मेरे प्यारे जी अरज लीजो मान हो मान ।
 अब तुमरो दुख सहि न सकत हम
 मिलि आओ मीत सुजान हो जान ।
 एक बेर ब्रज में फिर आओ
 इतनो देहु मोहिं दान हो दान ।
 'हरीचंद' अब चलन चहत है
 तूम बिन मेरे प्रान हो प्रान । ८

प्रात समै प्रीतम प्यारे को
 मंगल विमल नवल जस गाऊँ ।
 सुन्दर स्याम सलोनी मूरति
 भोरहि निरखत नैन सिराऊँ ।
 सेवा करौं हरौं त्रैविधि-भय तब
 अपने गृह-कारज जाऊँ ।
 'हरीचंद' मोहन बिनु देखे
 नैनन की नहिं तपत बुझाऊँ । ९
 प्रात समै हरि को जस गावत
 उठि घर घर सब घोष-कुमारी ।
 कोउ दधि मयत सिंगार करत कोउ
 जमुना न्हान जात कोउ नारी ।
 हरि-रस मगन दिवस नहिं जानत
 मंगलमय ब्रज रहत सदा री ।
 'हरीचंद' लखि मदन-मोहन-छवि
 पुनि पुनि जात सबै बलिहारी । १०
 हरि को मंगलमय मुख देखो ।
 सुंदर स्याम अंग-छवि निरखत
 जीवन जनम सुफल करि देखो ।
 देखि प्रथम पिय प्यारे को मुख
 तब जग और काज अवरखो ।
 'हरीचंद' ब्रजचंद लखें बिनु
 जगतहि बादि बूधा करि पेखो । ११
 आनंद-निधि सुख-निधि सोभा-निधि
 वल्लभ-वदन बिलोकौ भोर ।
 मंगल परम भक्त-सुखदायक
 तृपित-करन जन-नैन-चकोर ।
 सकल कला-पूरन गुन-सागर
 नागर नेही नवल-किसोर ।
 'हरीचंद' रसिकन के सर्वस इन पै वारौं नैन करोर । १२
 हरि मोरी काहें सुधि बिसराई ।
 हम तो सब बिधि दीन हीन तुम समरथ गोकुल-राई ।
 मों अपराधन लखन लगे जौ तौ कछु नहिं बनि आई ।
 हम अपुनी करनी के चूके याहू जनम खुटाई ।
 सब बिधि पतित हीन सब दिन के कहैं लौं कही सुनाई ।
 'हरीचंद' तेहि भूलि बिरद निज
 जानि मिलौ अब धाई । १३
 देखो माई हरि जू के रथ की आवनि ।
 चलनि चक्र फहरानि धुजा को वह तुरगन की धावनि ।
 जापै जुगल दिए गल-बाँही सोभित नैन मिलावनि ।
 बीरी खानि चहैं दिसि चितवनि
 हंसि मुरि के बतरावनि ।

धेरें सखी चारु चारों दिसि नव मलार की गावनि ।
'हरीचंद' चित तें न टरति है सो सोभा सुख-पावनि । १४

धनि वे दृग जिनि हरि अवलोके ।
रथ चढ़ि कै डोलत ब्रज-वीथिन
ब्रज-तिय द्वार द्वार गति रोके ।
इक कर रास रासपति लीने
भूमत चलत तुरंग नचावत ।
दूजे कर सांटी ले दृग की
सांटी ब्रज-तिय-चित्त लगावत ।
इत उत चितवत चलत चख
हंसत हंसावत गावत डोलैं ।
छकत रूप लखि निरखनहारे
काहू सों हंसि कै मृदु बोलैं ।
संग भीर आभीर-जनन की
मुरछल चँवर डुलावत धावै ।
'हरीचंद' तें धन धन जग में
जे यह सोभा निरखि सिरावै । १५

कछु रथ हाँकनहु मैं भाँति ।
यह कछु औरहि चलनि-चलावनि औरै रथ की काँति ।
कहूँ ठिठकि रथ रोकि घरकि लौं ठाढ़े रहत मुरारि ।
कहूँ दौरावत अतिहि तेज गति कहूँ काहूँ सों रारि ।
काहु को अंग परसि रथ चालनि काहु लेनि दौराय ।
चाबुक चमकि तनक काहूँ तन मारनि देनि छुआय ।
काहूँ के घर की फेरी दे धूमनि करि रथ मंद ।
बार बार निकसनि वाही मग मैं जानी 'हरीचंद' । १६

वह धुज की फहरानि न भूलति ।
उलटि उलटि कै मो दिस चितवनि
रथ हाँकनि हरि की जिय सूलति ।
ले गए सब सुख साथहि मोहन
अब तो मदन सदा हिय हूलत ।
सो सुख सुमिरि सुमिरि कै सजनी
अजहूँ जिय रस-बेली फूलत ।
ले आओ कोउ मो दिग हरि को
बिरह-आगि अब तन उनमूलत ।
'हरीचंद' पिय-रंग बावरी

गवालिन प्रेम-झोर गहि भूलत । १७

आजु दोउ बैठे मिलि बूदावन नव निकुञ्ज
सीतल बयार सैयँ मोद भरे मन में ।

उड़त अँचल चल चंचल दुकूल कल
स्वेद फूल की सुगंध छाई उपवन में ।
रस भरे बातें करै हंसि अंग भरे
बीरी खात जात सरसात सखियन में ।

'हरीचंद' राधा प्यारी देखि रीफे गिरिधारी
आनंद सों उमगे समात नहिं तन में । १८

गंगा पतितन को आधार ।
यह कलि-काल कठन सागर सों तुमहिं लगावत पार ।
दरस-परस जल-पान किए तें तारे लोक हजार ।
हरि-चरनारविंद-मकरंदी सोहत सुंदर धार ।
अवगाहत नर-देव-सिद्ध-मुनि कर अस्तुति बहु बार ।
'हरीचंद' जन-तारनि देवी गावत निगम पुकार । १९

जयति कृष्ण-पद-पद्म-मकरंद रंजित
नीर नृप भगीरथ विमल जस-पताके ।
ब्रह्म-द्रवभूत आनंद मंदाकिनी

अलकनंदा सुकृति कृति-विपाके ।
शिव-जटा-जूट-गहवर-सघन-वन-मृगी
विधि-कमंडलु-दलित-नीर-रूपे ।
कपिल-हुंकार भस्मीभूत निरयगत
स्पर्श-तारित सगर-तारित-तनुज भूपे ।
जन्हुतनया हिमालय-शिखर-निकर

वर भेद भंजित इंद्र हस्ति गर्वें ।
असह धारा-प्रवह वारि-निधि मानहुत
मिलित शतधा रचित बेग खर्वें ।
विविध मंदिर गलित कुसुम-तुलसी-निचय
भ्रमर-चित्रित नवल विमल धारे ।
सिद्ध सीमतिनी सुकुच-कुकुम-मिलत
हिलित रंजित सुगंधित अपारे ।
लोल कल्लोल लहरी ललित वलित बल
एक संगत द्वितिय तर तरंगे ।
फरति भर भर फिलिल सरस भंकार
वर वायु गत रव वीन-मान भंगे ।

मकर-कच्छप-नक-संकुलित जीवजय
शीत पानीय तृष्णादि नाशे ।
कलित कृजित सुकारंद-कलरव नाद
कोकनद कुमुद कलहार काशे ।
निज महिम बल प्रबल अर्कसुत नर्क-भय

दूर कृत पतित-जन कृत पवित्रे ।
पान मज्जन मरण स्मरण दर्शन मात्र
निखिल अध-राशि नाशन चरित्रे ।
मुक्ति-पथ-सोपान विष्णु-सायुज्य-प्रद

परम उज्ज्वल श्वेत नीर जाते ।
जयति यमुना-मिलित ललित गंगे
सदा दास 'हरीचंद' जन पक्षपाते । २०

सारंग

प्यारे को कोमल तन परासे आवत आज
 याही तें बयार अंग सीतल करत है ।
 सनित सुगंध मंद मंद आइ मेरे ढिग
 प्रेम सों हुलसि सखी अंकम भरत है ।
 हिय की खिलत कली मदन जगत अली
 पिय के मिलन को चित चाव बितरत है ।
 'हरीचंद' चलि कुंज जहाँ करै भौर गुंज
 प्यारो सेज साजि मेरे ध्यान को धरत है ॥२१॥
 श्याम अभिराम रति-काम-मोहन सदा
 बाम श्री राधिका संग लीने ।
 कुंज सुख-पुंज नित गुंजरत भौर जहाँ
 गुंज-वन-दाम गल माहिं दीने ।
 कोटि घन बिज्जु ससि सूरमनि नील अरु
 हीर छवि जुगल प्रिय निरखि छीने ।
 करत दिन केलि भुज मेलि कुच ठेलि
 लखि दास 'हरिचंद' जयजयति कीने ॥२२॥
 आजु मुख चूमत पिय को प्यारी ।
 भरि गाढ़े भुज दृढ़ करि अंग
 अंग उमगि उमगि सुकुमारी ।
 लहि इकंत प्रानहु तें प्रियतम करत मनोरथ भारी ।
 उर अभिलाख लाख करि करि कै पुषवत साध महारी ।
 मानत धन धन भाग आपुने देत प्रान-धन वारी ।
 'हरीचंद' लूटत सुख-संपति श्री बृषभानु-दुलारी ॥२३॥
 घन गरजत बरसत लखि दोऊ
 औरहु लपटि लपटि रहे सोय ।
 स्यामा-स्याम इकंत कुंज में
 अरु तीसरो निकट नहिं कोय ।
 दामिनि दमकत ज्यौं ज्यौं त्यों त्यों
 गाढ़ी भरत भुजा की होय ।
 'हरीचंद' बरसत घन उत इत
 रस बरसत पिय-प्यारी दोय ॥२४॥
 घन दिन घन मम भाग कुंज घन दोऊ जहाँ पधारे-।
 राखौंगी बिनती करि दोऊन कों आजू प्रिया पिय प्यारे ।
 नै न पाँवरे बिछाड़ करौंगी आँचर-बिजन बयारे ।
 'हरीचंद' बारौंगी सर्वस गाऊँगी गुन-गन भारे ॥२५॥
 आज घन भाग हमारे यह घरी घन
 मेरे घर आए गिरिराज-धरन ।
 नाचों गाओँगी करौंगी बधाई वारि
 डारौंगी तन-मन-धन-प्रान-अभरन ।
 राखौंगी कंठ लाइ जान न देहों फेर
 करि बिनती बहु गहि कै चरन ।

'हरीचंद' बल्लभ-बल पीओंगी

अधर-रस, छाँडोंगी अब न सरन ॥२६॥

मंगल महा जुगल रस-केलि ।

जिन तून करि जग सकल अमंगल पायन दीने पेलि ।

सुख-समूह आनंद अखडित मरि मरि धर्यो सकेलि ।

'हरीचंद' जन रीफि मिजायो सर-समुद्र उर फेलि ॥२७॥

नाथ मैं केहि विधि जिय समझाऊँ ।

बातन सों यह मानत नाहीं कौसे कहौ मनाऊँ ।

जदपि याहि विश्वास परम दृढ़ बेद-पुरानहु साखी ।

कछु अनुभवहु होत कहत है जद्यपि सोइ बहु भाखी ।

तऊ कोटि ससि कोटि मदन सम तुव मुख बिनु दुग देखें ।

धीरज होत न याहि तनिकहु समाधान केहि लेखें ।

निस-दिन परम अमृत-सम लीला जेहि माने अरु गावै ।

तेहि बिनु अपुने चख सों देखें किमि यह धीरज पावै ।

दरसन करै रहै लीला मैं जिय मरि आनंद लूटै ।

तुप्त होहिं तब मन इंद्रिय को अनुभव भुस लै कूटै ।

संपति सपने की न काम की मृग-तृष्णा नहिं नीकी ।

'हरीचंद' बिनु सुधा जिआवै कैसे छछिया फीकी ॥२८॥

आजु दोउ बैठे हैं जल-भौन ।

हौज किनारे भरे मौज सों प्यारी राधा-रोन ।

सावन-मावों छुटत फुहारै नीरहि नीर दिखाई ।

भीज रहे दोउ तहाँ रस-भीजे सखि लखि लेत बलाई ।

बूँद बदन पर सोभा पावत कमल ओस लपटाने ।

बिधुरे बारन मैं मनु मोती पोहे अति सरसाने ।

भीने बसन श्याम अंग फलकत सोभा नहिं कहि जाई ।

मनहुँ नीलमनि सीसे-संपुट धर्यो अतिहि छवि छाई ।

धार फुहार सीस पर लैहों लखि कै दुग सुख पावै ।

मनु अभिषेक करत सब सुर मिलि छवि सों परम सुहावै ।

कै जमुना बहु रूप धारि कै जुगल मिलन हित आई ।

कै चपला घन देखि और घन मिलि बरसा बरसाई ।

लोचन ही लखिए सो सोभा कहे कष्ट्यौ नहिं आवै ।

'हरीचंद' बिनु बल्लभ-पद-बल और लखन को पावै ॥२९॥

मन मेरो कहूँ न लहत विश्राम ।

तृष्णातुर धावत इत तें उत पावत कहूँ नहिं ठाम ।

कबहुँक मोह-फाँस मैं बाँध्यौ धन-कुटुंब-मुख जोहै ।

तिनहूँ सों जब लहत अनादर तब ब्याकुल हवै मोहै ।

कबहुँ काहू नारि-प्रेम-बस ताहि को सरबस मानै ।

ताहुँ सों प्रति-प्रेम मिलन बिनु अकुलि और उर आनै ।

देवी-देव तत्र-मंत्रन में कबहुँ रहत अरुमाई ।

तिनहूँ सो जब काज सरत नहिं तबहि रहत अकुलाई ।

कबहुँ जगत के रसिक भगत सज्जन लखि तिन सों बोले ।
 कालो हृदय देखि तिनहुँ को उचटत भटकत डोले ।
 जिन कहँ मित्र खुहद करि मानत राखत जिनकी आसा ।
 तेऊ मुख भंजत तब छोड़त सबही सो विश्वासा ।
 कबहुँ ब्रह्म बनि रहत आपुही जामैं दुख नहिं व्यापै ।
 माया प्रबल तहाँ अभिमानहिं नासि जगत मत थापै ।
 सोचत कबहुँ निकसि वन जानो पै जब आपु बिलोकै ।
 तृष्णा क्षुधा साय तहहुँ लखि ताहूँ सों चित रोके ।
 ब्रह्मा सों बढ़ि लै पिपीलिका लौं जग जीव सु जेते ।
 कोऊ देत न अचल भरोसो निज स्वाराय के तेते ।
 तृष्णा अमित सुखाए छिल्ले छीलर सब जग माहीं ।
 'हरीचंद' विनु कृष्ण बारि-निधि

प्यास बुझत कहूँ नाहीं ।३०

कवित्त

ए री प्रान-प्यारी बिन देखे मुख तेरो मेरे
 जिय मैं बिरह घटा घहरि घहरि उठै ।
 त्यों ही 'हरिचंद' सुधि भूलत न क्यों हूँ तेरो
 लांबो केस रैन-दिन छहरि छहरि उठै ।
 गड़ि गड़ि उठत कटीले कुच-कोर तेरी
 सारी सो लहरदार लहरि लहरि उठै ।
 सालि सालि जात आधे आधे नैन-बान तेरे
 घूँवट की फहरानि फहरि फहरि उठै ।३१

सवैया

हमैं नीति सों काज नहीं कछु है
 अपुनो धन आपु जुगाए रहो ।
 हमरी कुल-कानि गई तो कहा
 तुम आपनी को तो छिपाये रहो ।
 हमसों सब दूरि रहो 'हरिचंद' न
 संग मैं मोहिं लगाए रहो ।
 हम तो बिरहा में सदा ही दहैं
 तुम आपुनो अंग बचाए रहो ।३२

पद

जयति जन्हु-तनया सकल लोक की पावनी ।
 सकल अघ-ओघ हर-नाम उच्चार मैं
 पतित-जन-उद्धरनि दुक्ख-विद्रावनी ।
 कलि-काल कठिन गज गर्ख खर्वित-करन

सिंहिनी गिरि मुहागत नाद-श्रावनी ।

शिव-जटा-चूट-जालाधिकृत-वासिनी

बिधि-कर्मडलु बिमल रमनि मन-भावनी ।

चित्रगुप्तादि के पत्र-गत कर्म बिधि

उलटि निज भक्त आनंद सरसावनी ।
 दास 'हरिचंद' भागीरथी त्रिपयगा
 जयति गंगे कृष्ण-चरन गुन-गावनी ।३३

श्री गंगे पतित जानि मोहिं तारौ ।

जो जस अब लौं मिल्यो तुम्हें नहिं सो जग में बिरतारौ ।
 जेते तारे हीन-छीन तुम अब लौं पतित अपारै ।
 ते मेरे लेखे तून ऐसे कहा गरीब विचारे ।
 पाप अनेक प्रकार करन की विधि कोऊ कहँ जानै ।
 हौं तो बदि बदि करौं अनेकन जेहि जम-चित्रहु मानै ।
 हम कहँ जो पै तारि लेहु जग-तारनि नाम कहाई ।
 'हरीचंद' तो जस जग मानै नातरु बादि बड़ाई ।३४

जै जै विष्णु-पदी श्री गंगे ।

पतित-उधारनि सब जग-तारनि नव उज्ज्वल अंगे ।
 शिव-सिर-मालति-माल सरिस वरं तरल तर तरंगे ।
 'हरीचंद' जन-उधरनि देवी पाप-भोग-भगे ।३५

पतित-उधारनी मैं सुनी ।

इक बाजी खेली हमहूँ सों देखैं कैसी गुनी ।
 कबहुँ न पतित मिले जग गाढ़े ताही सों गायो मुनी ।
 'हरीचंद' को जो तुम तारौ तौ तारनि सुर-धुनी ।३६

गंगा तुमरी साँच बड़ाई ।

एक सगर-सुत-हित जग आई तार्यौ नर-समुदाई ।
 एक चातक निज तृषा बुभावन जाचत घन अकुलाई ।
 सो सरवर नद नदी बारिनिधि पूरत सब भर लाई ।
 नाम लेत जल पिअत एक तुम तारत कुल अकुलाई ।
 'हरीचंद' याही तें तो सिव राखी सीस चढ़ाई ।३७

आजु हरि-चंदन हरि-तन सोहे ।

तरु तमाल पै साँफ-धूप सम देखत तिह मन मोहे ।
 ता पै फूल-सिंगार सुहायो बरनि सकै सो को है ।
 'हरीचंद' बड़ भाग राधिका अनुदिन पिय-मुख जोहै ।३८

आजु जल बिहरत पीतम-प्यारी ।

गल भुज दिये करिनि-गज से दोउ अवगाहत सुम बारी ।
 सखी खरीं चहुँ ओर चारु सब लै ग्रीषम उपचारी ।
 चंदन सोंधो फूल-माल बहु भीने बसन सैवारी ।
 कोउ गावत कोउ तार बजावत कोउ करत मनुहारी ।
 कोउ कर सों जल-जंत्र चलावत 'हरीचंद' बलिहारी ।३९

मिटत न होस हाय या मन की ।

होत एक तें लाख लाख नित तृष्णा बुझत न तन की ।
 देव-कृपा सों जो तमो-गुनी वृत्ति दूर हवै जाई ।
 तो रजोगुनी इच्छा बाढ़त लाखन जिय में आई ।
 ताहूँ के मिटे सतोगुन संचय अपुनो लोभ न छोड़े ।

जिस कीरति चिर नाम मान पै चंचल चित कहैं मोड़ै ।
मए विरागिहु भक्त सिद्ध कहवावन की रुचि बाढ़ै ।
रचि रचि छन्द नाम करिबे को इच्छा तव जिय काढ़ै ।
तासों याहि जीतिबो दुरघट जानि जतन यह लीजै ।
'हरीचंद' धनस्याम-मिलन की हौस करोरन कीजै । ४०

बे दिन सपन रहे कै साँचै ।
जे हरि संग बिहरत याही बूज बीति गए रंग-राचे ।
कहाँ गई वह सरद रैन सब जिन मैं हरि-संग नाचे ।
कहाँ वह बोलन-हँसन-मिलन-सुख मिले जौन बिनु जांचे ।
हाय दई कैसी कीनी दुख सहत करेजे कवि ।
'हरीचंद' हरि-बिनु सुनो बूज

लखनहि हित हम बाँचै । ४१

हरि हो अब मुख बेगि दिखाओ ।
सही न जात कृपानिधि माघो एहि सुनतहि उठि धाओ ।
लखि निज जन द्रवत दुख-सागर क्यों न दया उर लाओ ।
आरत बचन सुनत चुप ट्यै रहे निठुर बानि बिसराओ ।
करुनामय कृपाल केसव तुम क्यों निज प्रनहि डिगाओ ।
लखि बिलाखत 'हरीचंद' दुखी

जन क्यों नहिं धीर धराओ । ४२

यह मन पारद हू सों चंचल ।
एक पलक मैं ज्ञान बिचारत दूजे मैं तिय-अंचल ।
ठहरत कतहुँ न डोलत इत उत रहत सदा बौरानो ।
ज्ञान ध्यान की आन न मानत याको लंपट बानो ।
तासों या कहैं कृष्ण-बिरह-तप जो कोउ ताप तपावै ।
'हरीचंद' सो जीति याहि हरि-मजन-रसायन पावै । ४३

आजु अभिषेकत पिय कों प्यारी ।
धरि दृग ध्यान नवल आँसुन के भरि भरि उमगे बारी ।
कज्जल मिलित चारु मृगमद से बिरह-परब लखि भारी ।
बरखत गलित कुसुम बेनी तें सोई फूल-भर डारी ।
व्याकुल कल नहिं लहत तनिक सुख हाय मंत्र उच्चारि ।
'हरीचंद' लखि दुखित सखी-जन

करि न सकत उपचारी । ४४

जनमतहि क्यों हम नाहिं मरी ।
सखि बिधना बिध ना कछु जानत उलटी सबहि करी ।
हरि आछत ब्रज चार चवाइन करि निंदा निदरी ।
तिन भय मुखहु लखन नहिं पायो हौसहि रहत मरी ।
अब हरि सो ब्रज छोड़ि अनत रहे बिलपत बिरह जरी ।
यह दुख देखन ही जनमाई बारेंहि बिपत परी ।
सुख केहि कहत न जान्यो सपनेहु दुख ही रहत दरी ।
'हरीचंद' मोहिं सिरजि बिधिहि

नहिं जानौ कहा सरी । ४५

मेरो हठ राखो हठीले लाल ।

तुम बिनु मान कौन मेरो रखिहैं समुझहु जिय गोपाल ।
हमको तो तुमरो बल प्यारे तुव अभिमान दयाल ।
पै तुमही ऐसी जो करिहो कहैं जेहैं ब्रज-बाल ।
एक बेर ब्रज कों फिरि आओ लखि गौअन बेहाल ।
'हरीचंद' वरु फेर जाइयो मधुपुर कृष्ण कृपाल । ४६

राखिए अपुनेन कों अभिमान ।

तुव बल जो जग गिनत न काहू दीजै तेहि सनमान ।
तुम्हरे हाँय सहै इतनो दुख यह तो अनय महान ।
तुमहि कलक हमें लज्जा अति कटिहै कहा जहान ।
एक बेर फिरहु ब्रज आओ देहु जीव को दान ।
'हरीचंद' गिरि कर-धारन की करिकै सुरति सुजान । ४७

ऊधो अब बे दिन नहिं ऐहैं ।

जिन मैं श्याम संग निसि-बासर
छिन सम बिलसि बितैहैं ।
वह हँसि दान माँगनो उनको
अब हम लखन न पेहैं ।
जमुना न्हात कदम चड़ि छिपि अब
हरि नहिं चीर चुरैहैं ।
वह निसि सरद दिवस बरखा के

फिर बिधि नाहिं फिरैहैं ।
वह रस-रास हँसन-बोलन-हित
हम छिन छिन तरसैहैं ।
वह गलवाहीं दे पिय बलियाँ
अब नहिं सरस सुनैहैं ।
'हरीचंद' तरसत हम मरिहैं
तऊ न बे सुधि लैहैं । ४८

हरि बिनु बूज बसियत केहि माएँ ।
जीवत अब लौ बिनु पिय प्यारे इन अँखियन दरसाएँ ।
केहि सुख लागि जियत हम अब
लौ यह नहिं परत लखाई ।
बिनु बूजनाथ देखि बूज सुनो प्रान रहत किमि माई ।
बिनु बूजनाथ देखि बूज सुनो प्रान रहत किमि माई ।
वह बन-बिहरन कुंज कुंज मैं सपनेहु नहिं देखै ।
ऊधो जोग सुनन तुव मुख सौं प्रान रहे एहि लेखै ।
बिनु प्रिय प्राननाथ मन-मोहन आरत-हरन कन्हाई ।
'हरीचंद' निरलज जग जीवत हम माथी की नाई । ४९

सबैया

देत असीस सदा चित सों यह
साहिबी रावरी रोज बनी रहे ।
रूप अनूप महा धन है

'हरीचंद जू' बाकी न नेकु कमी रहे ।
 देखहु नेकु दया उर के
 खरी द्वार अरी यह जाचक-भीर हे ।
 दीजिये भीख उघारि के घूँघट
 प्यारी तिहारी गली को फकीर हे । ५०
 अब तो जग में खुलि के चहुँघा
 पन प्रेम को पूरो पसारि चुकी ।

कुल-रीति औ लोक की लाज सबै
 'हरीचंद जू' नीके बिगारि चुकी ।
 वहि साँवरि मूरति देखत ही
 अपुने सरबस्वहि हारि चुकी ।
 जग में कछु कोऊ कहौ किन हौं
 तौ मुरारि पै प्रान कों वारि चुकी । ५१



छोटे प्रबंध तथा मुक्तक रचनाएं

स्वर्गवासी श्री अलवरत * वर्णन अंतर्लापिका

[रचनाकाल — सन् १८६१-१८८४]

छप्पय

बस हित सानुस्वार देव-भाणी मधि का है ?
 अथहि भाषा माहि' कहा सब भाखन चाहे ?
 को तुव हारयो सदा ? दान तुम नितहि' करत किमि ?
 का तुव मीठे सुनत ? कडा सोहत नागिन जिमि ?
 महारानी तुम कहैं का कहत ? अरि-सिर पै तुम का धरत ?
 का जल को सोमा ?

कौन तुव सैन सदा निज भुज करत । १
 तुम स्व-नारि मैं कहा ? कौन रच्छा तुव करई ?
 का करिके तुव सैन सनु को बल परिहरई ?
 कैसे तुव जन हियो ? तत
 कैसे तुव जन हियो ? ततो वाचक का भासा ?
 तुव अरि-सिर नित कहा ? कौन जल बरसत खासा ?
 तुव पग संगर में का करत ? कौन प्रथम पाताल कहि ?
 आमोदित कासों तुव बसन ?

का ह्यै पर दल परत महि । २
 तुव धन कासों है बढ़ि ? को पुनि देश जवन को ?
 कौन मुखर ? तुम करत कहा अरि देखि भवन को ?
 तरु की सोमा कहा ? होत तन से कड तुव अरि ?
 पर सों कायर कहा न ? तुम किमि चलत सैन दरि ?
 तोहि बाल चालावन की सदा कहा परी पर फौज लखि ?
 कह बाधि उठत धन गाजि जिमि

साजत तोहि' रन लखि हरखि । ३
 कह सितार को सार ? सनु के किमि मन तेरे ?
 काकी मार प्रहार सीस अरि हने घनेरे ?
 का तुम सैनहि' देत सदा उनतिसएँ ही दिन ?
 कहा कहत स्वीकार समय कछु अवसर के छिन ?
 को महारानी को पति परम सोमित स्वर्गहि ह्यै रह्यो ?
 अलवरत एक छसीस इन प्रश्नन को उत्तर कह्यो । ४

* १४ दिसंबर सन् १८६१ ई. को क्वीन विक्टोरिया के पति प्रिंस एल्बर्ट की मृत्यु के समय लिखी थी ।

(यथा अलं, अव, अर, अत इत्यादि क्रम से छसीसों प्रश्नों के उत्तर केवल 'अलवरत' इन पाँच ही
 अक्षर में निकालते हैं इसीलिए इन्हें अन्तर्लापिका कहा गया है । लापिका अर्थ पहेली का होता है ।)

(रचना काल : सन् १८६९)

जाके दरस-हित सब नैना मरत पियास ।
सो मुख-चंद बिलोकिहैं पूरी सब मन आस ।
नैन बिछाए आपु हित आयहु या मग होय ।
कमल-पाँवड़े ये किए अति कोमल पग जोय ।२

हे हे लेखनी, आज तुझे मानिनी बनना उचित नहीं है, क्योंकि इस भूमि के नायक ने चिर-समय पीछे अपने प्यारी की सुधि ली है ।

आज तू भी आगत-पतिका बन और सोरह श्रृंगार करके इस पत्र रूपी रंगशाला में ऐसी मनोहर और मदमाती गति से चल कि सब देखनेवाले मोहित हो होके मतवाले से भूमन लगें और ऐसी फूलों की झड़ी लगा जिससे महाराज-कुमार के कोल चरनों को यह पत्रिका एक फूल के पाँवड़े सी बन जाय ।

आज क्या कारण है कि उपवनों में कोकिल ने घूम सी मचा रखी है और भँवरे मदमाते होकर इधर से उधर दौड़े दौड़े फिरते हैं ? वृक्षों को ऐसा कौन सा सुख हुआ है कि मतवालों की भाँति झुक झुक के भूमि चूम रहे हैं और लता सब ऐसी क्यों प्रमुदित हैं कि कुलटा नायिका की भाँति लाज छोड़ छोड़ के अपने नायक से लिपट रही हैं और फूलों ने ऐसा क्या सुख पाया है कि अपना स्थान छोड़ छोड़ के उमगे हुए पृथ्वी पर टपके पड़ते हैं और फूलों ने किस के आगे का समाचार सुन लिया है कि फूलों नहीं समाते हैं । मालिनै श्रृंगार करके किस के हेतु यह कोमल और अनेक रंग के फूलों की माला खूँय रही हैं और यह ठंडी पौन किस के अंग को झू के आती है कि सब के मन की कली सी खिली जाती है । नदियों और सरोवरों के पानी क्यों उछल उछल के अपना आनंद प्रकाश कर रहे हैं और उनमें कैवल की कलियाँ किस की स्तुति के हेतु हाथ बाँधि खड़ी हैं । हंस और चकोर ऐसी कुलेल क्यों करते हैं और वर्षा बिना मोर क्यों नाच रहे हैं । पक्षी लोग बड़े उत्साह से किस के आने की बधाई गाते हैं और हिरन लोग अपने

बड़े बड़े नेत्रों से किस के दर्शन की आशा में तृण छोड़ छोड़ के खड़े हो रहे हैं । खिड़कियों में स्त्री लोग किस के हेतु पुतली सी एकाग्र-चित्त हो रही हैं और मंगल का सब साज किस के हेतु सजा है । सुना है कि हम लोगों के महाराज-कुमार आज इधर आनेवाले हैं, फिर क्यों न इस भारतवर्ष के उद्यान में ऐसा आनंद-सागर उमगे । भारतवर्ष के निवासी लोगों को अब इससे विशेष और कौन आनंद का दिन होगा और इससे बढ़ के अपने चित्त का उत्साह और आधीनता प्रगट करने का और कौन सा समय मिलेगा । कई सौ बरस से हम लोग चातक की भाँति आसा लगाए थे कि वह भी कोई दिन ईश्वर दिखावैगा, जिस दिन हम अपने पालनेवाले को इन नेत्रों से देखेंगे और अपना उत्साह और प्रीति प्रगट करेंगे । धन्य उस जगदीश्वर को जिसने आज हमारे मनोर्थ पूर्ण करके हम को उस अपूर्व निधि का दर्शन कराया जिस का दर्शन स्वप्न में भी दुर्लभ था । धन्य आज का दिन और धन्य यह घड़ी जिसमें हमारे मनोर्थ के वृक्ष में फल लगा और राजकुंवर को हम लोगों ने अपने नेत्रों से देखा । इस समे हम लोग तन मर्न धन जो कुछ न्योछावर करै थोड़ा है और जो आनंद करै सो बहुत नहीं है । ईश्वर करै जब तक फूलों में सुगंधि और चंद्रमा में प्रकाश है और पद्मिनी-नायक सूर्य जब तक उदयाचल पर उगता है और गंगा-जमुना जब तक अमृत धारा बहती है तब तक इनके रूप-बल-तेज और राज्य की वृद्धि होय, जिसमें हम लोग इनके कर-कल्प-वृक्ष की छाया में सब मगोर्थ से पूर्ण होकर सुखपूर्वक निवास करें ।

* इयूक आव एडिन्बरा के सन् १८६९ ई. में भारत आगमन के मौके पर लिखा गया था ।

कवित्त

जनम लियो है महारानी-कोख-सागर तें
 जामें तो कलंक को न लेसहु लखायो है ।
 सुभट समूह साथ सोहत हैं तारागन
 कुमुदहि तू न हिए हरख बढ़ायो है ।
 चाहि रहे चाह सों चकोर ह्वै प्रजा के पुंज
 बैरी तम निकर प्रकास तें नसायो है ।
 आनंद असेसे दीवे हेत हिंद बीच आज
 कुंवर प्रतापी नख-तेस बनि आयो है । १
 कोकिल समान बोलि उठे हैं सुकवि सबै
 कामदार मौर से बधाई लै ले धापे हैं ।
 लागि उठी लाय बिरहीन की सी बैरिन को
 बौरि उठे हाकिम रसाल से सुहाए हैं ।
 फूलि के सफल भे मनोरथ सबन ही के
 नाचि उठे मोर से प्रजा के मन भाए हैं ।
 साजि के समाज महारानी के कुंवर आज
 दीवे सूख-साज रितुराज बनि आए हैं । २

दोहा

अरी आज सभ्रम कहा जान परत कछु नाहिं ।
 बोरे से दौरे फिरत फूले अंगन माहिं । ३
 धावत इत उत प्रेम सों गावत हरख बढ़ाय ।
 आवत राजकुमार यह कहत सुनाय सुनाय । ४
 करत मनोरथ की लहर सागर मन समुदाय ।
 राजकुंवर-मुख-चंद लखि, उमगि चलयो अकुलाय । ५

अथ षट् श्रुत रूपक

वसंत

आनंद सों बीरो प्रजा, धाये मधुप समाज ।
 मन-मयूर हरखित भए, राजकुंवर-रितुराज । ६

ग्रीष्म

तपत तरनि तिमि तेज अति, सोखत बैरि अपार ।
 जीवन में जीवन करत, ग्रीष्म-राजकुमार । ७

वर्षा

प्रजा कृषक हरखित करत, बरसत सुख-जल-धार ।
 उमगावत मन नदिन को, पावस-राजकुमार । ८

शरद

फूले सब जन मन कमल, नभ-सम निरमल देस ।
 बिकसित जस की कैरवी, आया सरद नरेस । ९

हेमंत

मुरझावत रिपु-वनज बन, अरिन कैंपावत गात ।
 राजकुंवर हेमंत बनि, आवत आज लखात । १०

सिसिर

पीरे मुख बैरी परै, पिकन बधाई दीन ।
 सीरे उर सब जन भए, सिसिर-कुमार नवीन । ११

विनय

बिनवत जुग प्रफुलित जलज, करि कलि कैक समान ।
 घुजा-भूजा की छाँह में, देहु अमय-पद दान । १२

AN OFFERING OF FLOWERS

सुमनोऽज्जलिः ।

रचना काल सन् १८७०

श्रीमन्महाराजकुमार ड्यूक आफ एडिनबरा चरणकमले समर्पित :

TO

HIS ROYAL HIGHNESS, THE DUKE OF EDINBURGH,
 K.G., K.T., G.C.M.G., K.G.C.S.I.

“किमासनन्ते गरुडासवाय किम्भूषणङ्कोस्तुभमूषणाय ॥
लक्ष्मीकलत्राय किमस्ति देयं वागीशकिन्ते वचनीयमस्ति ॥”
(निबन्धे)

BY
HARISH CHANDRA
पटना — “खडगविलास” प्रेस-बांकीपुर ।
साहब प्रसाद सिंह ने मुद्रित किया ।
१८८८.

सुमनोऽञ्जलिः*

PREFACE

The short stay of H.R.H. the Duke of Edinburgh at Benares prevented me from personally presenting his this ‘Offering of flowers’ on the occasion of his visit to this city. With the co-operation of some of my esteemed friends, I convened a meeting at my house on the 20th January and invited many respectable and learned Pundits and Gentlemen to attend it. The meeting was formally opened by me by reading the biography of the Royal Prince in Hindi, and in conclusion requesting the gentlemen present on the occasion to adopt suitable measures for the address. The Pundits of the city expressed their great satisfaction, and read individually some Shlokas (verses) Sanskrit expressing their heartfelt joy on the advent of the Royal Prince to this city. The verses are entered systematically into this book. The meeting then broke. The gentlemen present on the occasion evinced great joy and loyalty to the Royal Prince for which this small book containing the expressions of their sincere loyalty, is most respectfully dedicated to his Gracious feet.

Benares

10th March 1870

Harischandra.

Names of the gentle- men present on the occasion of the meeting held for presenting an address to H.R.H. the Duke of Edinburgh.

H.R.H. the Duke of Edinburgh.

Prof. Shri Bapu Deva

Shastri F.R.A.S.

and Fellow Calcutta

University

Shri Narayan Kavi

“ Hanuman Kavi.

“ Hari Bajpai.

* इस सुमनोजलि में सर्व श्री बापूदेव, राजाराम, बेचनराम, बस्तीराम बालशास्त्री, गोविंददेव, शीतल प्रसाद, ताराचरण, गंगाधर शास्त्री, रमापति, नृसिंह शास्त्री, दुंदिराज, विश्वनाथ, विनायक शास्त्री और रामकृष्ण शास्त्री के संस्कृत श्लोक हैं । और नारायण और हनुमान कवि की हिंदी कविताएँ हैं ।

Shri Raja Ram Shastri
 " Basti Ram "
 " Gavind Deva "
 " Bal "
 " Seetal Prasad.
 " Bechan Ram.
 " Krishna Shastri
 " Dhundhi Raj
 Dharmadhikari.
 " Ramapati Dube.
 " Ram Krishna
 Pattburdhana.
 " Shiva Ram Govind
 Ranade.

Rai Narsingh Das.
 " Jaya Krishna Das.
 " Lakshmi Chandra.
 " Murari Das.
 " Balkrishna Das.
 " Radha Krishna Das.
 Babu Vishweshwar Das.
 " Madho Das.
 " Madhusudan Das
 " Gokul Chandra
 " Shama Das.
 " Loka Natha Moitre.
 Munshi Sankata Prasad.
 Molvi Asharaf Ali Khan
 Babu Balgovinda.

श्री : ।

स्वस्ति श्रीमन्महामहिमानिजप्रतापदावानलसमूलावर्धितसर्वोर्ध्वपत्यस्वर्धमहाटवीवर्गायाः समस्त-
 सामन्तचक्रचूडामणिशरच्चन्द्रचन्द्रिकालहादित पादकुमुदाया अपूर्वविद्योद्योतखद्योतति रस्कृताञ्जनमानसवित-
 कार्याः श्रीधमद्विजयिनीदेव्याः सततपरिशीलितविविधविद्या विलासः शान्त्यादिसुदरगुणगणैरुपशोभमानो-
 नन्दनन्दनहवानन्दनिकरः नन्दनाधिपतिः श्रीमान् ड्यूकामिधानोनन्दनोनन्दनवननिभानन्दवननिवासिनां-
 मन्दाकिनीतीरवासिनां जनानां मानसान्यानन्दयितुमिव श्रीविश्वेशपुरीमाजगाम । ततस्तदागमनसमुत्पादिता-
 नन्दकन्दकदम्बाडकरितमहोत्सवप्रोत्साहितमानसेन मया तत्तन्माहितशास्त्रप्रवीणतासमासादितविविधविरुदा-
 वलीसंमानितानेकविद्वज्जनसमाजविराजिता विविधगुणि गणागणितगणितिकशोभमाना स्वस्वकुलोचितसदा-
 चारप्रचारसंपादितधनधान्यवदान्यधन्यधनिकसमलंकृता सभा सभाजिता । तस्यां च प्रथमं परमप्राचीन-
 समीचीन समय-समुचितेतिहासविचारोविद्धोचरीभूय परमां चित्त्वमत्कृतिमावहति स्म, ततः श्रीमन्महाराज्ञी-
 तनयप्रचलित कीर्तिकलानिधिवर्द्धितापूर्वदर्शनसंज्ञातकौतुकाव्यविदुषां मानसेवकाशमप्राप्तय काव्यव्याजेन
 प्रकाशमानोनिखिलजनमनः संधानानन्दयांचकार । तृतीयमागे च तस्यां विविधपरिश्रमहरः सकलजन-
 मनोनुरंजनकरोवाद्यवादन प्रचारस्तामलंचकार ।

इत्थं च सभासदां परमप्रमदप्रदायी यः कतिपयकालकलाकदम्बो व्यत्यैतत्सं बन्धीनि पण्डितवरपरि-
 कल्पितकाव्यसुमनांस्थेकीकृत्य तदञ्जलिं श्रीधुतमहाराज्ञीकुमारचरणारविन्दयोः समर्पयितुमुत्सहते ।

श्रीहरिश्चन्द्रगुप्तः

कश्यपि में ग्रहण के हित
 महाराज-कुमार के आने के हेतु

कवित्त

वाको जन्म जल याको रानी-कूख-सागर तें
 वह तो कलकी यामें छीटहु न आई हे ।
 वह नित घटे यह बाढ़े दिन दिन
 यह बिरही-दुखद यह जग-सुखदाई हे ।

जानि अधिकाई सब भाँति राजपुत्र ही मैं
 गहन के मिस यह मति उपजाई हे ।
 देखि आजु उदित प्रकासमान भूमि चंद
 नम ससि लाजि मुख कालिमा लगाई हे ।

सन् १८७१ में श्रीमान प्रिंस आफ वेल्स के पीड़ित होने पर कविता^१

रचना काल सन् १८७१

जय जय जगदाधार प्रभु, जग-व्यापक जगदीश ।
जय जय प्रनतारति-हरन, जय सहस्र-पद-सीस ।
करुणा-वरुनालय जयति, जय जय परम कृपाल ।
सुद सच्चिदानन्द-धन, जय कालहु के काल ।
सब समर्थ जय जयति प्रभू, पूर्ण ब्रह्म भगवान ।
जयति दयामय दीन-प्रिय, क्षमा-सिंधु जन-जान ।
हम हैं भारत की प्रजा, सब बिधि हीन मलीन ।
तुम सों यह बिनती करत, दया करहु लखि दीन ।
हाथ जोर सिर नाहू कै, दाँत तेरे तुन राखि ।

परम नम्र हवै कहत है, दीन वचन अति भाखि ।
बिनवत हाथ उठाय कै, दीजे श्री भगवान ।
जुबराजहिं गत-रुज करौ, देहु अभय को दान ।
तिनके दुख सों सब दुखी, नर-नारिन के बंद ।
तासो तुरतहि रोग हरि, तिन कहै करहु अनंद ।
जिनकी माता सब प्रजा-गन की जीवन-प्राण ।
तिनहिं निरोगी कीजिये, यह बिनवत भगवान ।
बेग सुनै हम कान सों, प्रिंस भए आनंद ।
परम दीन हवै जोरि कर, यह बिनवत हरिचंद ।

॥ श्री जीवन जी महाराज ॥^२

रचना काल सन् १८७२

हरि की प्यारी कौन ? देह काके बल धावत ?
कहा पदन में परि विशेषता ओध करावत ?
कहा नवोद्भा कहत ? ठाकुरन को को स्वामी ?
सुरगन को गुरु कौन ? बसत केहि थल रिसि नामी ?
हरि-वंशी-धुनि सुनि सकल ब्रजबनिता का कहि भजै ?
यह कौन अक को गुननहूँ किए रूप निज नहि तजै ?

अश्व-पीठ कह धरत ? कौन रवि के जिय भावत ?
राजा के दरबार समहि सुधि कौन दिआवत ?
नवल नारि मैं कहा देखि जुव-जन मन लोभा ?
को परिपूरन ब्रह्म ? कहा सरवर की शोभा ?
घन विधा मानविक सुगुन भूषित को जग-गुरु रह्यौ ?
इन सब प्रश्नन को एक ही उत्तर श्री जीवन कहौ ।

चतुरंग^३

बीस, तीस, चौबीस, सात, तेरह उन्निह कहि ।
चारूक, दस, पच्चीस, बयालिस, सत्तावन लहि ।
इक्कावन, छत्तिस, इक्किस, एकतिस, सोलह, छट ।
बारह दै, सत्रह, सत्ताइस, तैतिस गिन फट ।
पच्चास, साठ, तैंतालिस, सैंतिस,
चौबन, चौसठ लहिय ।

सैंतालिस, बासठ, छप्पन,
उन्तालिस, पैतालिस कहिय ।
पैंतिस, एकतालिस, अट्ठावन, बावन को गट ।
छियालीस, एकसठ, पचपन, चालिस, तेइस अठ ।
चौदह, उनतिस, चौबालिस, चौतिस, उनचासो ।
उनसठ, तिरपन, तिरसठ, अड़तालिस प्रकासो ।

१ नवम्बर १८७१ में टाइफाइड से पीड़ित होने के कारण कई दिनों तक प्रिंस की दशा गम्भीर हो गयी थी ।
उसी समय यह कविता लिखी गयी थी । — सं०

२ जिन श्री जीवन जी महाराज के अशेष गुण से पत्र में लिखे गए हैं उनके नाम की मैंने एक अंतर्लीपिका बनाई है, कृपा करके प्रकाश कीजिएगा । इस अंतर्लीपिका में १६ प्रश्न के उत्तर चार ही अक्षर से निकलते हैं ।

अथ क्रम से उत्तर । १ श्री २ जी ३ व ४ न ५ श्री जी ६ जीव ७ वन ८ वजी ९ नव १० जिन १२ वनजी १२ नजीव १३ नव श्री १४ श्रीजीव १५ जीवन १६ श्री जीवन ।

(२ सितम्बर सन् १८७२ की कवि वचन सुधा से)

३ ३ अगस्त १८७२ की कविवचन सुधा में प्रकाशित भारतेन्दु के अन तीनों छप्पयों को याद कर लेने से चतुरंग का खिलाड़ी खेल के चौसठों घर पर घोड़ा बोड़ा सकता था । किसी जमाने में चतुरंग राज परिवार का प्रिय खेल था ।

अड़तिस, बतिस, 'हरिचंद'

पंद्रह, सुपांच, बाईस लहि ।

अट्ठाइस, ग्यारह, छबिस, नव,

तीन, अठारह, एक कहि ।२

चतुर जनन को खेल चारु चतुरंग नाम को ।

तामै चपल तुरंग चलत दय अर्द्ध धाम को ।

जिमि कोउ विज सवार बाजि चढ़ि ब्यूह मांह घौंस ।

फेरे तेहि सब ठौर कठिन यद्यपि चाबुक कसि ।

तिमि चौंसठहू घर मै फिरै बाजि अंक सब ये कहहु ।

'हरिचंद' रसकि जन जानि एहि

नित चित परमानंद लहहु ।३



देवी छत्र-लीला

बनारस प्रिंटिंग प्रेस में सन् १८७३ में
प्रकाशित ।

देवी छत्र-लीला

श्रीराधा अति सोचत मन में ।

कौन भाँति पाऊँ नंद-नंदन पिया अकेले बृंदावन में ।

वे बहु-नायक रस के लोभी उनको चित्त अनेक तियन में ।

घेरे रहति सौति निसि बासर छोड़त नाहिं एकहु छन में ।

हमरे तो इक मोहन प्यारे बसे नैन में तन में मन में ।

'हरीचंद' तिन बिन क्यों जीवै

दिन बीतत याही सोचन मैं ।२

तब ललिता इक बुद्धि उपाई ।

सुनू री सखी बात इक सोची

सो मैं तुम सों कहत सुनाई ।

हम सब बनत ग्वाल अरु पंडित

देवी आपु बनहु सुखदाई ।

तिन सों जाय कहत हम अद्भुत

बृंदावन देवी प्रगटाई ।

अति परतच्छ है वाकी ताकी

देखन चलहु कन्हाई ।

'हरीचंद' यह छल करिके हम

लापत तिनको तुरत लिवाई ।२

यह बात राधा मन भाई ।

आपु बनी बृंदावन-देवी

सखियन को तहँ दियो पठाई ।

बैठि आसन करि मंदिर में

सखियन की द्वे भुजा बनाई ।

बेनु श्रृंग पुनि लकुट कमल ले

चार भुजा तहँ प्रगट दिखाई ।

भाये क्रीट मोर-पखवा को

सारी लाल लसी सुखदाई ।

रतनन के आभरन बने तन

जिनपै दृष्टि नाहिं ठहराई ।

मौन साथि दोउ नैनन धिर करि

मूरति बनी महा छवि छाई ।

'हरीचंद' देविन की देवी

आज परम परमा प्रगटाई ।३

तब सखियन निज भेष बनायो ।

कोउ बचि ग्वाल बनी कोउ पंडा

पुरुषन ही को रूप सुहायो ।

बृंदावन में सब मिलि पहुँची

जहँ मन-मोहन धेनु चरावत ।

तिन सों जाइ कहन यों लागी

सुनहु लाल इक बात सुनावत ।

अचरज एक बड़ो भयो बन में

बट तर इक देवी प्रगटानी ।

अति परतच्छ कला है वाकी महिमा

कछु न जात बखानी ।

इक आवत इक जात नगर में

भीर भई लाखन की भारी ।

जो जोइ मांगत सो सोइ पावत

साँच कहत करि सपय तिहारी ।
 तुम त्रिभुवन के नाथ कहावत
 तासों ताहि बिलोकहु जाई ।
 'हरीचंद' सुनि अति अचरज सों
 तुरत चले उठि त्रिभुवन-राई ॥४॥
 मन-मोहन पूजन-साज लिये
 दरसन को देवी के आए ।
 तहाँ भीड़ देखि नर-नारिन की
 मन में अति ही विस्मै छाप ।
 इक आवत हैं इक जात चले
 इक पूजत माला-फूल लिए ।
 इक अस्तुति दोउ कर जोरि करै
 इक मुख सों जै-जैकार किए ।
 तिन मोहन सों यह बात कही
 तुमहूँ पूजा को साज करौ ।
 मुँह-माँगो फल वरदान मिले जो
 तनिकहु उर में ध्यान धरो ।
 सुनिके मनमोहन देवी के तब
 पूजन को सब साज कियो ।
 'हरिचंद' सुअवसर देखि तहाँ
 वरदान भक्ति को माँग लियो ॥५॥
 न्योते काहूँ गाँव जात ही
 जसुमति हूँ निकसी तहँ आई ।
 भीड़ देखि पूछत सखियन सों
 यहाँ जुटीं क्यों लोग-लुगाई ।
 काहूँ कह्यौ अजू या बट सों
 देवी एक नई प्रगटाई ।
 ताकी जात करन सब आवैं
 नर-नारी इत हरख बढ़ाई ।
 सनि अति अचरज सों जसुदा
 तब देवी के दरसन को धाई ।
 'हरीचंद' मालिन सों लै केँ
 फूल बतासा पूजत जाई ॥६॥
 हरिहु मातु ढिग आइ गए ।
 कहत सुनत चरचा देवी की सब
 मिलि भीतर भवन भए ।
 दरसन करि देवी को पूज्यौ
 सब मिलि जै-जैकार दए ।
 'हरीचंद' जसुदा माता तब
 अस्तुति ठानी भगति लए ॥७॥
 चिरजीओ मेरो कुँवर कन्हैया ।

इन नैनन हों नित नित देखों राम कृष्ण दोउ मेया ।
 अटल सोहाग लहो राधा मेरी दुलहिन ललित ललैया ।
 'हरीचंद' देवी सों मांगत आँचर छोरि जसोदा मेया ॥८॥
 जब राधा को नाम लियो ।
 तब मूरत कछु मन मुसुकानी पै
 कछु भेद न प्रगट कियो ।
 पूजा को परसाद सखिन तब
 जसुदा मोहन दुहुँन दियो ।
 'हरीचंद' घर गई जसोदा कहि
 जुग-जुग मेरो लाल जियो ॥९॥
 मोहन जिय सँदेह यह आयो ।
 जब राधा को नाम लियो तब
 बाम्हन को गन क्यों मुसकायो ।
 मूरतिहूँ कछु जिय मुसुकानी
 या मैं है कछु भेद सही ।
 प्यारी-स्वेद-सुगंधहु या
 परसादी माला बीच लही ।
 पूछे न सकत सँकोचन सब सों
 अति आतुर चित लाल भए ।
 'हरीचंद' ब्रजचंद साँवरे
 मन में महा सँदेह लए ॥१०॥
 तब मोहन यह बुद्धि निकासी ।
 जो यह राधा तौ नहि छिपिहै
 अंत प्रीति ह्वै है परकासी ।
 यह जिय सोचि हाथ बीरा लै
 देवी के अधरान लगायो ।
 नख सों अधर छुयो ताही छिन
 देवी तन पुलकित ह्वै आयो ।
 सखियन कह्यौ छुओ मत देविहि
 पहिने बसनन तुम सुखदाई ।
 'हरीचंद' हँसि मौन भए तब
 कह्यौ भेद की गति मैं पाई ॥११॥
 हाथ जोरि हरि अस्तुति ठानी ।
 जय जय देवी बृंदावन की
 जै जै गोपिन की सुखदानी ।
 तुम तो देवी अहो बोलती
 आजु मौन गति नई लखानी ।
 जो अपराध भयो कछु हमसों
 ता ताको छमिए महरानी ।
 रूप-उपासी बिना मोल को
 दास हमें लीजै जिय जानी ।

'हरीचंद' अब मान न करिये

यह बिनती लीजै मन मानी । १२

हे देवी अब बहुत भई ।

यह वरदान दीजिए हमको कछु मत कीजै आजु नई ।

अब कबहुँ अपराध न करिहौं तुष चनन की सपथ करौं ।

छमा करौ हौं सरन तिहारी त्राहि त्राहि यह दीन खरो ।

सह्यौ न जात बिरह यह कहिके नैनन में हरि नीर भरे ।

'हरीचंद' बेबस ह्यै कै श्री राधा जू के चरन परे । १३

देखि चरन पै पीतम प्यारो ।

छुटि गयो मान कपट कछु जिय में

रह्यो छब को नाहिं संमारो ।

घाई उठाइ लियो भुज भरिके

नैनन नीर भर्यो नहिं ढारो ।

तन कंपत गद्गद मुख बानी

कह्यौ न कछु जो कहन बिचारो ।

रहे लपटाइ गाढ़ भुज भरिके

छूटत नहिं तिय हिए पियारो ।

'हरीचंद' यह सोभा लखि कै

अपनो तन-मन- सहजहि वारो । १४

पूछत लाल बोलि किन प्यारी ।

क्यों इतनो पाखंड बनायो

ठग्यो बड़ो ठगिया बनवारी ।

प्यारी कह्यौ तुम्हारेहि कारन

प्यारे श्रम यह कीन्हो भारी ।

तुम बहु-नायक मिलत कहैं नहिं

ताही सौं यह बुद्धि निकारी ।

प्रेम भरे दोउ मिलत परस्पर

मुख चूमत हैं अलकन टारी ।

'हरीचंद' दोउ प्रीति-बिबस लखि

आपुन-पौ कीनो बलिहारी । १५

सखियनहु निज बेस उतार्यौ ।

घाई सबै चारहु दिसि सौं

कहत बधाई तन मन वार्यौ ।

कोउ लाई सज्जा कोउ बीरी कोउन

चँवर मोरछल ढार्यौ ।

कोउन गाँठि जोरि कै दोउ को

एक पास लैके बैठार्यौ ।

दूलह बन्धो पियारो राधा

दुलहिन को सिंगार सँवार्यौ ।

'हरीचंद' मिलि केलि बधाई

गावत अति जिय आनंद धार्यौ । १६

चिरजीओ यह अविचल जोरी ।

सदा राज राजौ वृंदावन नंद-

नंदन बृषभानु-किशोरी ।

देत असीस सबै बृज-जुवती

करत निछावरि मनि-गन छोरी ।

आरति बारत धीर न धारत

रहत रूप लखि कै तुन तोरी ।

कुंज-महल पधराइ लाल को हटीं

सबै बृज-वासिनि गोरी ।

मिलि बिलसत दोऊ अति सुख सौं

'हरीचंद' छवि भाखे को री । १७

यह रस वृज में रहो सदाई ।

जो रस आजु रह्यौ कुंजन में छदम-केलि-सुख पाई ।

नित नित गाओ री सब सखियाँ मोहन-केलि-बधाई ।

'हरीचंद' निज बानी पावन करन सुजस यह गाई । १८



प्रातः स्मरण मंगल-पाठः

हरि प्रकाश यंत्रालय, नेपाली खपरा, काशी से प्रकाशित ।

रचना काल — सन् १८७३

प्रातः स्मरण मंगल-पाठः

मंगल राधा-कृष्ण-नाम-गुन-रूप सुहावन ।
मंगल जुगल-विहार रसिक-मन-मोद-बद्धावन ।
मंगल गल भुज डारि बदन सों बदन मिलावनि ।
मंगल चुंबन लेनि बिहंसि हंसि कंठ लगावनि ।
आलिङ्गन परिभन मिलनि मंगल कोक-कलानि कढ़ि ।
'हरिचंद' महा मंगलमयी जुगल-केलि रसरेलि बढ़ि । १
मंगल प्रातहि उठे कछुक आलस रस पागे ।
सिथिल बसन अरु केस नैन घूमत निसि जागे ।
भुज तोरनि जमुहानि लपटि कै अलस मिटावनि ।
भूखन बसन सँवारि परस्पर नन मिलावनि ।
कछु हँसनि सीकरनि लाज सों मुरि अँग पर गिरि परनि ।
'हरीचंद' महा मंगलमयी प्रात उठनि पग धरि धरनि । २
मंगल सखी-समाज जानि जागे उठि धाई ।
जल-भारी पिकदान वस्त्र दरपन लै आई ।
करि मुजरा बलिहार भई लखि नैन रिसाई ।
प्रगट सुरत के चिन्ह देखि कछु हँसी-हँसाई ।
मुख धोइ पाग कसि आरसी देखत अलक सँवारही ।
'हरिचंद' भोग मंगल धर्यो आरोगत मन वारही । ३
मंगल मेरि मृदंग पनत्र दुंदुभि सहनाई ।
चंग मुचंग उपंग भाँभ भालरी सुहाई ।
गोमुख आनक ढोल नफीरी मिलि कै साजै ।
मंगलमयी मुरलिका बिच बिच अजुगत बाजै ।
जे करति हाथ जोरे सबै मुरछल बिंजन द्वारही ।
'हरीचंद' महामंगलमयी मंगल-आरति बारही । ४
मंगल जुगल नहाइ विविध सिंगार बनावत ।
मंगल आरसि देखि फूल-माला पहिरावत ।
मंगल गोपी गोपी-वल्लभ भोग लगावत ।
मंगल ग्वालिन आइ दूध मथि घैया प्यावत ।
मंगल भोजन बहु बिधि करत उठि बीरी मुख मै धरत ।
मंगल उगार 'हरिचंद' लै राज-भोग आरति करत । ५
मंगल बन के फल अनेक भीलनि लै आई ।
मंगल जुगल समेत फूल-माला पहिराई ।
मंगल संध्या भोग अरपि आरति मिलि करही ।
मंगलमय सिंगार बहुरि निसि हलको धरही ।

मंगल व्याह्र पै पान करि बीरी खात जँमात है ।
'हरिचंद' सैन आरति करत
सखि सब निरखि सिहात है । ६
मंगल बृदा-विपिन कृज मंगलमय सोहै ।
मंगल गिरि गिरिराज वृक्ष मंगल मन मोहै ।
मंगल बन सब ओर भरत भरना सब मंगल ।
मंगल पच्छी बोल सुमंगल फूल पत्र फल ।
मंगल अलि-कुल गावत फिरत मंगल केकी नाचही ।
'हरिचंद' महामंगल सदा नित बृदावन माँचही । ७
मंगल जमुना-नीर कमल मंगलमय फूले ।
मंगल सुंदर घाट बँधे भँवरे जहँ भूले ।
मंगलमय नंद-गाँव महावन मंगल भारी ।
मंगल गोकुल सबै ओर उपवन सुखकारी ।
मंगल बरसानो नित नवल मंगल रावलि सोहई ।
'हरीचंद' कुंड तीरथ सबै मंगलमय मन मोहई । ८
मंगल श्री नंदराय सुमंगल जसुदा माता ।
मंगल रोहिनि मंगलमय बलदाऊ भ्राता ।
मंगल श्री वृषभानु सुमंगल कीरति रानी ।
मंगल गोपी ग्वाल गऊ हरि को सुखदानी ।
मंगल दधि दूध अनेक बिधि मंगल हरि-गुन गावही ।
'हरिचंद' लकुट अरु मुकुट धरि मंगल धेनु बजावही । ९
मंगल वल्लभ नाम जगत उधर्यो जेहि गाए ।
विष्णु स्वामि पथ परभ महा मंगल दरसाए ।
मंगल विठ्ठलनाथ प्रेम-पथ प्रगटि दिखायो ।
मंगल दैवी जेन दुखी लखि ज्ञान चलायो नाम को ।
'हरिचंद' महामंगल भयो दुख मेट्यो सब जाम को । १०
मंगल गोपीनाथ रूप पुरुषोत्तम धारी ।
श्री गिरिधर गोविंद राय भक्तन-दुखहारी ।
बालकृष्ण श्री गोकुलेस रघुनाथ सुहाए ।
श्री जदुपति घनस्याम सात बपु प्रगट दिखाए ।
मंगलमय बल्लभ बंस अटल प्रेम-मारग रह्यो ।
'हरिचंद' महा मंगलमयी वेद-सार जिन मथि कह्यो । ११

मंगल तिनकी मिलनि कहनि बोलनि सुखदानी ।
मंगल अनुराग सुनयन जल
हंसनि नचनि गावनि रमनि ।
'हरिचंद' जगत सिर पाँव धरि

मंगल लीला मैं गमनि १२२

मंगल गीता और भागवत सों मथि काढ़ी ।
मंगल-मूरति जुगल-चरित विरुदावलि बाढ़ी ।
दादस दादस अर्ध पदी जो प्रातहि गावे ।
मंगल बाढ़े सदा अमंगल निकट न आवे ।
मंगल चंद्रावलिनाथ की केलि-कथा मंगल-मई ।
मंगल बानी 'हरिचंद' सबही को मंगल भई १२३

सुमिरौ बल्लभ रूप महा मंगल फल पावन ।
गौर गुप्त बपु प्रगट श्याम लोचन मन-भावन ।
दृग विसाल आजानु-बाहु पदमासन सोहे ।
गल तुलसी की माल देखि सबको मन मोहे ।
सिर तिलक बाहु पर छाप बर केस बँध्यो सिर राजई ।
त्रय ताप जनन को दूर सों देखत ही दुरि भाजई १२४

जुगल-केलि रस-मत्त हँसत लखि ज्ञान खलन कहैं ।
दैयनि पै अति करुन रौद्र मायाबादिन पहुँ ।
बादिन पै उत्साह भयद अनुसरन कहैं पग पग ।
दीन जीव पै घृणित अर्चमित देखि विमुख जग ।
अति शांत भक्तवत्सल परम

सख्य बिबुध-जन सों करत ।

जग-हास्य सिखावत मुख मधुर

आनंदमय रस बपु घरत १२५

हृदय आरसी माँहि जुगल परतच्छ लखावत ।
जग-उधार मैं रसिक माल कर शोभा पावत ।
चरन-कमल-तल सकल विमल तीरथ दरसावत ।
मुख सों श्री भागवत गूढ़ आसय नित गावत ।
घेरे चहुँ दिसि सब संतजन जे हरि-रस भीजे रहत ।
कर ज्ञान-माद्रिका धारि के तिनसों कृष्ण-कथा कहत १२६
कबहुँ अचल ह्वै रहत मोन कछु मुख नहिं भाखत ।
कबहुँ बाद भर लाइ खाँडि माया-मत नाखत ।
जुगल-केलि करि याद हँसत कबहुँ गुन गावत ।
कंपादिक परतछ संचारी भाव जनावत ।
तन रोम-पाँति उघटित सदा गदगद हरि गुन मुख कहत ।
लखि दीन-दसा जग जीय की

उमगि निरंतर दृग बहत १२७

तीरथ पावन करन कबहुँ भुव पावन होलत ।

श्री आनंदमय-सुधा-समूह माँथ कबहुँ बोलत ।

ग्रंथ रचत एकाग्र चित्त करि बाँचि सुनावत ।
कबहुँ बैठि एकांत बिरह अनुभव प्रगटावत ।
सेवा करि पीतम की कबौ सिखवत विधि सेवन प्रगट ।
कबहुँ सिच्छत जन आपुने

बिबिध वाक्य-रचना उघट १२८

मोर कुटी मँह बैठि खिलावत कबहुँ लाल कहैं ।
खेलत धरि त्रैरूप बाल-तन बनि मोहन तहैं ।
हरे कुंज बन छए बितानन तनी लता सब ।
भुके मोर चहुँ ओर सुनन कों तहैं किंकिन-रब ।
तिन मध्य खिलौना कर लिए चुचकारत बालकन जब ।
किलकाइ चलाहि आनंद भरि

निरखत नैन सिरात तब १२९

बन उपवन एकांत कुंज प्रति तरु तरु के तर ।
तीर तीर प्रति कूल कूल कुंडन पै सर सर ।
गुफा दरी गिरि घाट सिखर गौवन की गोहर ।
गोकुल ब्रज के गाँव गाँव ब्रज-वासिन घर घर ।
हरि जहैं जहैं जो लीला करी तहैं

तहैं सोइ अनुभव करत ।

ब्रज-वासिन गौवन ब्रज-पसुन

संग ताहि विधि अनुसरत १३०

सेवा मैं हरि सों कबहुँ रस भरि बतरावत ।
कबहुँ सुतन सों हरि-सेवा की रीति बतावत ।
ब्रह्मवाद कों कबहुँ बहुत विधि थापन करहीं ।
लोक सिखावन हेतु कबहुँ संध्या अनुसरहीं ।
विश्राम करत कबहुँ जबै अमित होइ तब भक्त-जन ।
गुन गावत चरन पलोटहीं

करहिं कोउ मुरछल बिजन १३१

राख्यो श्रुति की मेड़ शास्त्र करि सत्य दिखायो ।
द्विज-कुल धन धन कियो भूमि को मान बढ़ायो ।
दैवी-जन अवलांब दियो पंडित परितोषे ।
वैष्णव-मारग उदय कियो बिरही-जन पोषे ।
ब्रज-भूमि लता तरु गिरि नदी पसु पंछी सों नेह करि ।
ब्रज-बासी जन अरु गउन सों

प्रेम निबाह्यो रूप धरि १३२

केसादिक सों बाम श्याम दक्षिन छवि पावत ।
शिव विराग सों प्रगट देवरिषि से गुन गावत ।
ग्रंथ-रचन सों व्यास मुक्त मुक्त रूप प्रकासत ।
वैष्णव-पथ प्रगटाइ विष्णु स्वामी प्रभु भासत ।
मुख शास्त्र कहन बिरहागि कों प्रगटावन सों अगिनं सम ।
मनु सकल तत्व पिंडी बन्यो

सोभित श्री बल्लभ परम १३३

मनहुँ देवगन तत्व काढ़ि यह रूप बनायो ।
 श्री भागवत-सुधा-समुद्र मधि कै प्रगटायो ।
 पिंडभूत वैराग रूप निज प्रगट दिखावत ।
 ज्ञान मनहुँ घन होइ सिमिटि कै सोभा पावत ।
 व्यास मुक्त सुक रूप प्रकासत ।
 वैष्णव-पथ प्रगटाइ विष्णु स्वामी प्रभु भाषत ।
 मुख शास्त्र कहन बिरहागि कों प्रगटावन सों अगिन सम ।
 मनु सकल तत्व पिंडी बन्यौ

सोमित श्री बल्लभ परम । २३

मनहुँ देवगन तत्व काढ़ि यह रूप बनायो ।
 श्री भागवत-सुधा-समुद्र मधि कै प्रगटायो ।
 पिंडभूत वैराग रूप निज प्रगट दिखावत ।
 ज्ञान मनहुँ घन होइ सिमिटि कै सोभा पावत ।

यह मनहुँ प्रेम की पूतरी इक रस सँदे में ढरी ।
 प्रेमीजन-नयनन सुख महा प्रगटावत निज बपु धरी । २४
 तिलंग बंस द्विजराज उदित पावन बसुधा-तल ।
 भारद्वाज सुगोत्र यजुर शाखा तैतिरि वर ।
 यज्ञ नरायन-कुलमनि लक्ष्मन भट्ट-तनूमव ।
 झल्लमगारू-गर्मरत्न सम श्री लक्ष्मी धव ।
 श्री गोपिनाथ-विठ्ठल-पिता भाष्यादिक बहु ग्रंथ कर ।
 श्री विष्णुस्वामि-पथ-उद्धरन जै जै बल्लभ रूप वर । २५
 इमि श्री बल्लभ रूप प्राप्त जो सुमिरन करई ।
 लहै प्रेम-रस-दान जुगल पन मैं अनुसरई ।
 दादस दादस अर्घ-पदी प्रातहि उठि गावै ।
 दुबिध बासना छाँड़ि केलि-रस को फल पावै ।
 यह प्राननाथ की प्रथम ही सुमिरन सब मंगल-मई ।
 बानी पुनीत 'हरिचंद' की प्रेमिन को मंगल मई । २६



दैन्य-प्रलाप

भक्तिसूत्र वैजयंती के अंत में यह कविता दी
 गई थी, जो सन् १८७३ में प्रकाशित हुई ।

दैन्य प्रलाप

जग में काको कीजै तोस ।

जासों तनकहु बिरति कीजिए सोई धारत रोस ।
 इन्द्रिय सब अपुनी दिसि खींचत चाहि चाहि निज भोग ।
 मन अलम्य बस्तुनहु भोगत मानत तनिक न सोग ।
 कहति प्रतिष्ठा हमहिं बढ़ाओ चहति कामना काम ।
 ईर्षा कहति तुमहिं इक जीअहु करि औरन बे-काम ।
 जागत सपन काय वाचा सों मन सों भोगत धाय ।
 घिसि गई इंद्री प्रान सिथिल भे तोहू नाहिं अवाय ।
 जौन मिलत कै तन बल नहिं तौ दूरहि सों ललचाय ।
 त्रिमि सत्पुण्य हवै लाखत मिठाइन स्थान लार टपटाय ।
 सब सों थकि कै करत स्वर्ग के अमृतादिक मैं चाह ।
 धिक धिक धिक 'हरिचंद' सतत

धिक यह जग काम अथाह । १

पूरबी

तन-पौरुष सब थाका मन नहिं थाका हो माधो ।
 केस पके तन पक्वौ रोग सो मनुआँ तबहु न पाका ।
 अर्जुन-भीम-सरिस चाहत यह करन बिषय-रन साका ।
 बीती रैन तबौ मतवारा घोर नींद मैं छाका ।
 हारि गयो पै भूठहि गाड़े अबहूँ विजय-पताका ।
 'हरिचंद' तुम बिनु को रोकै ऐसे ठय को नाका । २
 नर-तन सब औगुन की खान ।
 सहज कुटिल-गति जीषहु तामें यामें श्रुति परमान ।
 स्वारथ-पन आग्रह मलीनता लोभ काम अरु क्रोध ।
 कामादिक सब नित्य धरम हैं तन मन के निरबोध ।
 तापैं सहधरमिन सों पूर्यौ भो संसार सहाय ।
 अंध आसरे चलयौ अंध के कहो कहा लौं जाय ।
 करि करुना करुनानिधि केसव जो पै पकरो हाथ ।

तो सब विधि 'हरिचंद' बचै न-तु द्रुवत होइ अनाथ । ३

नर-तन कहो सुदृढा कैसी ।

कितनहु धोओ पोछौ बाहर भीतर सब छिन पैसी ।

कारन जाको मूत रही मल ही मै लिपटि अनेसी ।

ताको जल सों सुद करत तिनकी ऐसी की तैसी ।

देहिक करमन सों न बने कछु ता गति सहज मलै सी ।

'हरीचंद' हरि-नाम-मजन बिनु सब वैसी की वैसी । ४

विरद सब कहाँ भुलाए नाथ ।

पावन पतित दीन-जन रच्छन जो गाई श्रुति गाथ ।

जानहु सब कुछ अंतरजामी धाइ गहौ अब हाथ ।

'हरीचंद' भेटहु निज जन की विधिहु लिखी जौ माथ । ५

तुम सों कहा छिपी करुनानिधि

जानहु सब अंतर-गति ।

सहज मलिन या देह जीव की

सहजहि नीच-गामिनी जो मति ।

तन मन सपनहुँ सो लोभी की

दीन बिपत-गन में रति ।

निरलज जितने होत पराजित

तितनो ही लपटति अति ।

तापै जौ तुमहुँ बिसराओ

तजि निज सहज विरद-तति ।

तौ 'हरिचंद' बचै किमि बोलहु

अहो दीन-जन की पति । ६

देखहु निज करनी की ओर ।

लखहु न करनी जीवन की कछु एहो नंदकिसोर ।

अपनाए की लाज करहु प्रभु लखहु न जन के दोस ।

निज बाने को विरद निबाहो तजहु हीन पर रोस ।

दीनानाथ दयाल जगतपति पतित-उधारन नाथ ।

सब विधि हीन अधम 'हरिचंदहि' देहु आपुनो हाथ । ७

करहु उन बातन की प्रभु याद ।

जो अरजुन सों भारत-रन में कही थापि मरजाद ।

कैसहु होय दुराचारी पै सेवै मोहिं अनन्य ।

ताही कहैं तुम साधु गुनहु या जग मै सोई धन्य ।

सीध धरम मति शांति पाइहै जो राखत मम आस ।

अरजुन मम परतिज्ञा जानहु नहिं मम भक्त-बिनास ।

छाँहि धरम सब लोक वेद के मम सरनहिं इक आउ ।

सब पावन सों तोहिं छुड़ैहैं कछु न सोच जिय लाउ ।

कही बिभीषन सरन समय मै सोऊ सुमिरहु गाथ ।

लखिमन हनुमान आदिक सब याके साखी नाथ ।

हम तुमरे हैं कहै एकहु बार सरन जो आइ ।

ताहि जगत सों अमय करत हम सबहि भाँति अपनाइ ।

यहू कट्यो मम जनहिं बासना उपजै और न हीय ।

जिमि कृटे चुरए धानन मै उपजै नाहीं वीय ।

यहू कट्यो तुम मो कहैं प्यारे निह-किंचन अरु दीन ।

यहू कट्यो तुम हमहिं जीव के प्रेरक अंतर-लीन ।

कह लौं कहीं सुनौ इतनी अब सत्यसंघ महाराज ।

'हरीचंद' की बार भुलाई क्यों वे बातें आज । ८

तिनकों रोग सोग नहिं व्यापै जे हरि-चरन उपासी ।

सपनहु मलिन न होइ सदा जे कलप-तरोवर-बासी ।

हरि के प्रवल प्रताप सामुहैं जगत दीनता नासी ।

'हरीचंद' निरभय बिहरहिं नित कृष्ण-दास अरु बासी । ९



उरहना

'हरिचंद्र मैगजीन' के १५ अक्टू. सन् १८७३
के अंक में प्रकाशित । इसके दो तीन पद
राग-संग्रह तथा प्रेम-प्रलाप में भी आ गये हैं

उरहना

प्राननाथ तुम बिनु को और मान राखे ।
जिअ सों वा मुख सों को प्यारी कहि भाखे ।
प्रति छन को नयो नयो अनुभव करवावे ।
कौन जो खिभाइ के रोवाइ के हँसावे ।
संशय सागर महान द्रवत लखि धाई ।
कौन जो अवलंब देहि तुम बिनु ब्रजराई ।
सुत पितु भव मोह कौन मेंटै चित लेई ।
मूरख कहवाइ जगत पंडित-गति देई ।
लोक वेद भगरन के जाल में बंधायो ।
कोने तुम बिनु करि निज अनुभव सुरभायो ।
भव अथाह बहे जात लखि कै चित माहीं ।
कौने करि मेंड़ धरी निज बिसाल बाहीं ।
भूठे जग कहत मर्यो चित संदेह आयो ।
'हरीचंद' कौन प्रगटि साँचो कहवायो ।१

अची को पीठ ही चहिए ।

पाप बसत तुम पीठ माँहि यह बेदनहू कहिए ।
बुद्ध होय निन्धो बेदहि तब सों मुख नहिं लहिए ।
'हरीचंद' पिय मुख न दिखाओ रुठे ही रहिए ।२

अहो मोहि मोहन बहुत खिलायो ।

अब लौं हाय कियो नाही बध बातन ही बिलमायो ।
जानि परी अपराध हमारो तोहिं सुमिरत हवै आयो ।
ताही सों रुठि रुठि कै अब
ताहि सों रुठि रुठि कै अब लौं प्रान न पीय नसायो ।
हमहूँ जानत मो अब आगे लघु सम सब दुख आयो ।
'हरीचंद' पै बिरह तुम्हरो जात न तनिक सहायो ।३

अहो हरि निरदय चरित तुम्हारे ।

तनिक न द्रवत हृदय कुलिसोपम लखि निज भक्त दुखारे ।
दयानिधान कृपानिधि करुना-सागर दीन पियारे ।
यह सब नाम भूठही बेदन बकि बकि बूधा पुकारे ।
गोपीनाथ कहाइ न लाजत निरलज खरे सुधारे ।
'हरीचंद' तुम्हरे कहवायें मरियत लाजन मारे ।४

सुनौ हम चाकर दीनानाथ के ।

कृपा-निधान भक्त-वत्सल के पोषित पालित हाथ के ।

पिया न पूछत तऊ सुहागिनि बनि सेंदुर दे माथ के ।
दीन दया लखि हँसौ न कोऊ सुनौ सबैरे साथ के ।
वा घर के सेवक ऐसे ही जीवत स्वासा भाथ के ।
'हरीचंद' निरलज हवै गावत

निरलज हरि-गुन-गाथ के ।५

साहब रावरे ये आवैं ।

जिन्हें देखि जग के करुना सों नैनन नीर बहावैं ।
कोऊ हँसे बिपति पै कोऊ दसा बिलोकि लजावैं ।
कोऊ घृणा करै कोऊ मूरख कहि कै हाथ बतावैं ।
देखि लेहु इक बार इनहिं तु नैना निरखि सिरावैं ।
'हरीचंद' आखिर तो तुमरे कोऊ भाँति कहावैं ।६

बीरता याही मैं अटकी ।

हम अबलन प जोर दिखावत य है बान टटकी ।
यही हित नित कसे रहत कटि कसनि पीत पटुकी ।
'हरीचंद' बलिहार सूरता पिय नागर-नट की ।७

लाल क्यौं चतुर सुजान कहावत ।

कहर अनीति निरलज से डोलत

क्यौं नहिं बदन छिपावत ।

चतुराई सब धूर मिलाई तौहू गरब बढ़ावत ।

'हरीचंद' अबलन को बाधि कै कैसे अकरि दिखावत ।८

बेनी हमरे बाँट परी ।

धन धन भाग लाइहैं नैनन रहिहै हृदय धरी ।

लखि मुख चूमि अघर भुज दै भुज करौ सबै मिलि राज ।

हमरे तौ बेनी को दरसन सिद्ध करै सब काज ।

क्यौं कविगन नागिन की उपमा मेरी प्यारिहिं देत ।

हमकों तो इक यहै जिआवत राखत हमसो हेत ।

क्यौं नहिं सुख मानै थोड़े ही जो बिधि बिरच्यो भाग ।

राज देखि द्रजेन को क्यौं हम करै अकारथ लाग ।

बेनी हमरी हमरो जीवन बेनी ही के हाथ ।

जब तुम मुख फेरत तब बेनी रहत हमारे साथ ।

भलहिं रूप-सागर तुम्हरो सों खारो मेरे जान ।

'हरीचंद' मोहिं कल्प-तरोवर कामद बेनी-न्धान ।९

तन्मय-लीला

जनवरी १८७४ की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में
प्रकाशित

तन्मय-लीला

राधे-श्याम-प्रेम-रस भीनी ।
नहिं मानत कछु गुरुजन को भय
लोक-लाज तजि दीनो ।
मगन रहत हरि-रूप-ध्यान में
जल-पथ की गति लीनी ।
'हरीचंद' बलि प्रेम सराहत
तन की सुधि नहिं कीनी ११

राधे भई आपु घनश्याम ।
आपुन की गोविंद कहत है छाँड़ि राधिका नाम ।
वैसेइ भुकि भुकि के कुंजन में कबहुँक बेनु बजावै ।
कबहुँ आपुनो नाम लेइ के राधा राधा गावै ।
कबहुँ मोन गहि रहत ध्यान करि मूँदि रहत दोउ नैन ।
'हरीचंद' मोहन बिनु व्याकुल नेकु नहीं चित चैन १२

प्यारी अपनो ध्यान बिसार्यौ ।
श्रीराधे श्रीराधे कहि के कुंजन जाइ पुकार्यौ ।
कबहुँ कहत वृषभानु-नदिनी मान न इतनो कीजै ।
प्राण-पियारी सरन आपुके कष्ट्यो मानि मेरो लीजै ।
पनघट चलि रोको ब्रजनारिन दधि को दान चुकावो ।
कबहुँ कहत मेरो सुरंग खिलौना राधे लियो बुराई ।
कबहुँ कहत मेया यह तोकों छोटी दुलहिन भाई ।
कबहुँ कहत हम सात दिवस गोबरधन कर पै धार्यौ ।
अच बक धेनुक सकट पूतना इनको हमहिं संहार्यौ ।
कबहुँ कहत प्यारी जमुना-तट कुंजन करौ बिहार ।
'हरीचंद' भइ श्याम-रूप सो तन की दसा बिसार १३

सखी सब राधा के गृह आई ।
प्रेम-मगन तिन ताकहँ देखी जातें अति पछिताई ।
दोऊ नैन मूँदि के बैठी नेकहु नाहिन बोले ।

राधे राधे कहि के हारी तबहुँ न घूँचट खोलै ।
बीजन करि बहु भाँति जगावो लै लै बाकौ नाम ।
सुनत नहीं बानी कछु इनकी उर बैठे घन-श्याम ।
जब गोपाल को नाम लियो तब बोलि उठी अकुलाई ।
'हरीचंद' सखियन आगे लखि कछुक गई सकुचाई १४

सखिन सों पूछत कित है प्यारी ।
ललिता तू मोहिं आनि मिलावै हों तेरी बलिहारी ।
देहों आपुनो पीत पिछोरा बंसी रतन-जराई ।
'हरीचंद' इमि कहत राधिका ध्यान माँह फिर आई १५

दसा लखि चकित भई ब्रज-नारी ।
राधे को कह भयो सखी री अपनी दसा बिसारी ।
राधा नाम लिये नहिं बोलत कृष्ण नाम तें बोले ।
वैसे ही सब भाव जतावति हँसि हँसि घूँचट खोलै ।
घन घन प्रेम धन्य श्रीराधा घन श्री नंद-कुमार ।
'हरीचंद' हरि के मिलिबे को करो कछु उपचार १६

तहाँ तब आइ गए घन-श्याम ।
मोर-मुकुट कटि पीत पिछोरी गरे गुंज की दाम ।
दसा देखि प्यारी राधा की अति आनंद जिय मान्यो ।
सखियनहुँ ये प्रेम अवस्था को सब हाल बखान्यो ।
प्रेम-मगन बोले नंद-नंदन सुनि प्यारे में आई ।
जो तुम राधा नाम टेरिके बेनु बजाइ बोलाई ।
सुनतहि नैन खोलिके देख्यो स्याम मनोहर ठाढ़े ।
कछुक प्रेम कछु सकुच मानिके प्रेम-बारि दूग बाढ़े ।
दौरि कंठ मोहन लपटाई बहुत बढ़ाई कीनी ।
कर्यौ बोध प्यारी राधा को हृदय लाह पुनि लीनी ।
कर सों कर दे चले कुंज दोउ सखियन अति सुख पायो ।
रसना करत पवित्र आपुनी 'हरीचंद' जस गायो १७



दान-लीला

फरवरी सन् १८७४ ई. की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन'
में प्रकाशित

दान-लीला

पिअ प्यारे चतुर सुजान मोहन जान दे ।
प्रेमिन के जीवन-प्राण मोहन जान दे ।
प्यारे गिरिधारियाँ एकान्त में राखी हैं सब घेर ।
ऐसी तुम्हें न चाहिए हो छाँड़ी होत अबे ।
कैसे छाँड़ें ग्वालिनी हो लागत मेरो दान ।
ताहि दिये बिन जाति हौ तुम नागरि चतुर सुजान ।
जो चाहौ सो लाडिले हँसि हँसि गो-रस लेहु ।
सखन संग भोजन करौ औ मोहिं जान तुम देहु ।
धोरे ही निपटी भले दै गौ-रस को दान ।
परम चतुर तुम नागरी लियो हम कौ मूरख जान ।
तुमको मूरख को कहै हो यह का कहत मुरारि ।
सकल गुनन की खान हो जानें ग्वारि गँवार ।
जद्यपि सकल गुन-खानि हैं हो नागर नाम कहात ।
पै तुम भौह-मरोर सों मेरे भूलि सकल गुन जात ।
तुम तो कदु भूलै नहीं ही स्वारथ ही के मीत ।
भूलीं सब गोपिका हो करिकै तुमसों प्रेम-प्रीत ।
क्यों भूलीं सब गोपिका हो करिकै हमसों प्रीति ।
यह हमको समुझाइये क्यों भाखत उलटी रीति ।
हम उलटी नहिं भाखहीं हो समुभौ तुम चित चाह ।
हम दीनन के प्रेम की हो कहा तुम्हें परवाह ।
ऐसी बात न बोलिए भूठेहिं दोस लगाय ।
बँधे तुम्हार प्रेम में हम सों कैसे छूटि जाय ।
प्रेम बँधे जौ लाडिले हो तो यह कैसे होत ।
हम ब्याकुल तुम बिन रहै नहिं भूलेहू सुधि लेत ।
गुरु-जन की नित त्रास सों हम मिलत तुमहिं नहीं धाइ ।
जिय सों बिलग न मानियो हम मधुकर तुव बन-राइ ।

जा दिन बंसी बजाइके हो लीनी हमै बुलाय ।
ता दिन गुरुजन-भीति हो कित दीनी सबै बहाय ।
गुप्त प्रीति आछी लागै हो प्रगट भए रस जाय ।
जामैं या ब्रज को कोऊ नहिं देख कलंक लगाय ।
प्रगट भई तिहुँ लोक में हौ गोपी-मोहन-प्रीति ।
सब जग में कुलाट भई तापै तुम को नाहीं प्रतीति ।
गुरु-जन घर मैं खोभहीं हो देत अनेकन गारि ।
बाहर के देखत कहैं यह चली कलंकिन नारि ।
करन देहु जग को हँसी हो चप ह्वै हैं थकि जाइ ।
त्रिन सो सब जग छाँड़ के हो मिलै निसान बजाइ ।
प्यारे तुमरे ही लिए सब जग को बेवहार ।
तुम विरुद सब छाँड़िए हो मात पिता परिवार ।
पै कठिनाई है यहै अरु होत यहै जिय साल ।
तुम तो कछु मानौ नहीं मेरे बे-परवाही लाल ।
सब सों तो पहिले करो हो हँसि हँसि के तुम चाह ।
पै पालन सीखे नहीं तुम प्रेमी प्रेम-निबाह ।
तुम्हें कहा कोउ की परी भलेइ देइ कोउ प्राण ।
तापै उलाटो आइके हो माँगत हम सों दान ।
लोक-लाज कुल धर्महू तन मन धन बुधि प्राण ।
सब तो तुम कौं दे चुकीं अब माँगत काको दान ।
बहुत भई पिय लाडिले अब क्योंहू सहि नहिं जाय ।
जनि दासिका आपुनी गहिं लीजै भुजा बढ़ाय ।
परम दीनता सों भरे सुनि प्यारी कै बैन ।
पुलकित अँग गढ़गढ़ भयो हौ उमगि चले दोउ नैन ।
धाइ चूमि मुख भुजन सों भरि लीनी कंठ लगाय ।
'हरीचंद' पावन भयो यह अनुपम लील गाय ।

रानी छद्म-लीला

१५ फरवरी सन् १८७४ ई. की 'हरिश्चन्द्र
मैगजीन' में प्रकाशित

रानी छद्म-लीला

नोमि राधिका-पद जुगल तिन पद को बल पाइ ।

उलटि छद्म-लीला कहत 'हरीचंद' कछु गाइ ।
करे कान्ह जिमि छद्म सुहाए ।

श्री प्यारी के मन अति भाए ।
 तिमि प्यारीह जीअ बिचारयौ ।
 पियहि ठगो यहि चित निरधारयौ ।

निरधारि जिय कदि छदम-लीला सखिन को आजा दई ।
 वन कछुक ठगिए आवृ लालहि रीति यह कीजे नई ।
 नव भेस रानी को मनोहर सबन संग मिलि कीजिए ।
 अति चतुर मोहन तिनहुं को चलि आजु घोखा दीजिए ।
 यह जिय सोच बिचारि कै गई एक वन मोहिं ।
 वृंदा को आजा दई सजौ सबै चि चाहि ।
 वृन्दा तब तहँ आजा पाई ।
 सब सामग्री सजी सुहाई ।
 नव खंडन के महल बनाए ।
 राज-साज तह सजे सुहाए ।

सजि साज के सब साज बिच मैं सुभग सिंहासन धर्यौ ।
 धरि क्रीट बैठी मध्य राधा भेष रानी को कर्यौ ।
 बहु छड़ी मुरछल चँवर सूरजमुखी पंखा छत्र ले ।
 भई सखी ठाढ़ी अदब सों चहुँ और सब मिलि नजर दे ।
 परवानो जारी कियो बन-देविन के नाम ।
 अबहिं पकरि कै बिन सखन हाजिर लाओ श्याम ।
 सुनि चहुँ दिसि सखियाँ धाई ।
 मिलि वृन्दावन मैं आई ।
 तहँ सखन संग हरि जाई ।
 रहे आपु चरावत गाई ।

जहँ आप चारत गाय हे तहँ सखि सबै मिलि कै गई ।
 करि साम दाम सुदंड भेदहि बात यह बरनी नई ।
 जदु-वंश की रानी नई इक कुमुद-वन में हे रही ।
 जागीर मैं तिन कंस नृप सों कुमुद वन की महि लही ।
 तिन हम को आजा दई करि के टेढ़ो डीठ ।
 कौन श्याम उधम करै मेरे वन में छीठ ।
 बिन मेरो हुकुम बतायो ।
 उन क्यों वन गाय चरायो ।
 फूल-फूल बिपिन के जेते ।
 उन तोरि लिए क्यों तेते ।

उन तोरि वन के फूल फल सब घास गडवन को दई ।
 तेहि पकरि हाजिर करौ यह हम सबन को आजा भई ।
 यह सुनि हुकूम बिन सखा गन बलि तहाँ उत्तर कीजिए ।
 जो हुकुम रानी देहिं ताको अदब सो सुनि लीजिए ।
 सुनि आजा जिय संग धरि कुछ तो भय हिय लीन ।
 कछु रानी को नाम सुनि लालचहु मन कीन ।
 तब संग सखिन के आए ।
 मुजरा करि नाम सुनाए ।

पग परि बोलीं सब आली ।
 यह हाजिर है वन-माली ।

भयो हाजिर द्वार पै करि कृपा मुजरा लीजिए ।
 जो हुकुम याके होइ लायक महारानी कीजिए ।
 लखि भूमि में तन प्रान-प्रिय को कछु दिया जिय मैं लाई ।
 कछु जानि आयो नारि के ढिग कोप निज मन में भई ।
 उत मोहन श्री राधिका सी रानी को देखि ।
 कछु जिय मैं सकित भए मोह तनेनी देखि ।
 तब बोले मोहन प्यारे ।
 कहिए केहि हेत हैकारे ।
 हम तो कछु दोष न कीनो ।
 तो क्यों मोहिं दूषन दीनो ।

क्यों दियो दूषन मोहिं सुनि कै राधिका बोलत भई ।
 कछु क्रोध मैं निज छब्र को नहिं ध्यान करि जिय में लाई ।
 जो झूठ बोले नितहिं तासों और अपराधी नहीं ।
 तेहि दंड देनो उचित राजहि नीति यह जग की कही ।
 सुनि रुखे तिय के बचन भरे श्याम जुग नैन ।
 हाथ जोड़ि गदगद गिरा बोले मोहन वैन ।
 हम भूठ कही कब बानी ।
 मोहिं कहि दीजे महारानी ।
 सुनि बचन राधिका बोली ।
 जिय गाँठि आपनी खोली ।

जिय गाँठि आपनी खोली राधा बाल प्रीतम सों कही ।
 तुम कहत हम श्री राधिका तजि और तिय देख नहीं ।
 तो आजु सुनि क्यों नाम रानी को यहाँ आए कहौ ।
 हो परम कपटी श्याम तुम अब दरस नहिं मेरो लाहौ ।

यह कहि के मुख फेरि कै राधा रही रिसाय ।
 तब व्याकुल ह्वै धाई पिय परे तिया के पाय ।
 भरि नैन अरज यह कीनी ।
 कर जोरि बिनय-विधि लीनी ।
 नित को अपराधी वारी ।
 तजि चरन जाय कित प्यारी ।

कित जाहिं तजि कै चरन यह दूग बारि भरि मोहन कह्यौ ।
 सुनि दीन बोलन प्रान-पति की धीर नहिं कोउ को रह्यौ ।
 हँसि मिली प्यारी मान तजि निज रूप ले संग श्याम के ।
 मिलि करी क्रीड़ा विविध विधि

नव कुंज सुख रस-धाम के ।

एहि विधि प्रीतम सों मिली नव वन छब्र बनाइ ।
 'हरीचंद' पावन भयो यह रस-लीला गाइ ।

संस्कृत लावनी

सन् १८७४ की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में
प्रकाशित

संस्कृत लावनी

कुंज कुंज सखि सत्वरं ।
चल चल दयित : प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरं ॥
सर्वा अपि संगताः ।
नो दृष्ट्वा त्वां तासि प्रियसखिहरिणा हं प्रेषिता ॥
मानं त्यज वल्लभे ।
नास्ति श्री हरिसदृशो दयितो यच्चि इदं ते शुभे ।
गतिर्भिन्ना ।
परिधेहि निचोलं लघु ।
जायते विलम्बो बहु ।
सुंदरि त्वरां त्वं कुरु ।
श्री हरि मानसे वृणु ।
चल चल शीघ्रं नोचेत्सव निष्यन्तिहि सुन्दरं ।
अन्यद्वन मन्दिरं चल चल दयितः ॥
ऋणु वेणुनादमागतं ।
त्वदर्धमेव श्रीहरिरेणुः समानयत्प्रीतिशतं ॥
त्वय्येव हरिं सद्गतं ।
तवैतार्थमिह प्रमत्तशतकं प्रियेण विनियोजितं ॥
शृण्वन्यमृतां संरुतं ।
आकरार्यान्त सर्वं समाप्यहरिणोमधुरं मतं ॥
विभिन्न गतिः ।
दिशति ते प्रियतमसंदेशं ॥
प्रहीत्वा मदनः पिकवेशं ।
जनयति मर्नासि स्वावेशं ॥
समुन्साहयतरोतलेशं ।
न कुरु विलम्बं क्षणमपि मत्वा दृष्ट्वाभिमौल्याकारं ॥
ऋणु वचनं मे हितभरं ।
चल चल दयितः ॥१२॥

सुख्योप्यरतगतः ।
गोपिगोपयितुमभिसरणं तव अधिकारइहततः ॥
दृश्यते पश्यनोमुखं ।
कस्यापिहि जीवस्य प्रणयिन्यभिसरणीतसुखं ॥
ब्रज ब्रजेन्द्र कुलनन्दनं ।
करोति यत्सूनिरपि सखि सकलव्याधेः सुनिकन्दनं ॥
गतिः ॥
चन्द्रमुखि चन्द्ररवे समुदितं ॥
करैस्त्वामालम्बितुमुद्यतं ।
आलि अवलोक्य तारावृतं ॥
भाति बिष्टयं चन्द्रिकायुतं ।
चकोरायितश्चन्द्रस्त्यत्स्था स्थलमपि रत्नाकरं ॥
मुखं ते द्रष्टुं सखि सुन्दरं ।
चल चल ॥१३॥
परित्यज चंचलमंजीरं ।
अवगुण्ठय चन्द्राननमिह सखि धेहि नील चीरं ॥
रमय रसिकेश्वरमाभीरं ।
युवतीशतसंप्रामसुरतरतमचलमेकवीरं ॥
भयं त्यज हृदि धारय धीरं ।
शोभयस्वमुखकान्तिविराजितरवितनया तीरं ॥
गतिः ॥
मुञ्चमानं मानय वचनं ॥
विलम्बं मा कुरु कुरु गमनं ।
प्रियाके प्रिये रचय शयनं ॥
सुतनुतनु सुखमयमालिजनं ।
दासो दामोदर हरिचन्दौ पार्थयतस्तेवरं ॥
वरय राधे त्वं राधावरं ।
चल चल दयितः प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरं ॥१४॥



बसंत होली*

सन १८७४ की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में
प्रकाशित

बसंत होली

जोर भयो तन काम को आयो प्रगट बसंत ।
बाढ़यो तन में अति विरह भो सब सुख को अंत ।
चैन मिटायो नारि को मेन सैन निज साज ।
याद परी सुख दैन की रैन कठिन भइ आज ।
परम सुहावन से भए सबै विरिछ बन बाग ।
तुविध पवन लहरत चलत दहकावत उर आग ।
कोइल अरु पपिहा गगन रटि रटि खायो प्रान ।
सोवन निसि नहिं देत है तलपत होत बिहान ।
है न सरन तुभुवन कहूँ कहु विरहिन कित जाय ।
साथी दुख को जगत में कोऊ नाहिं लखाय ।
रहे पथिक तुम कित विलम वेग आइ सुख देहु ।
हम तुम बिन व्याकुल भई धाइ भुजन भरि लेहु ।
मारत मेन मरोरि के दाहत है रितुराज ।
रहि न सकत बिन मिलौ कित गहरत बिन काज ।
गमन कियो मोहिं छोड़ि के प्रान-पियारे हाय ।

दरकत छतिया नाह बिन कीजै कौन उपाय ।
हा पिय प्यारे प्रानपति प्राननाथ पिय हाय ।
मूरति मोहन मेन के दूर बसे कित जाय ।
रहत सदा रोवत परी फिर फिर लेत उसास ।
खरी जरी बिनु नाथ के मरी दरस के प्यास ।
चूमि चूमि धीरज धरत तुव भूषन अरु चित्र ।
तिनहीं को गर लाइकै सोइ रहत निज मित्र ।
यार तुम्हारे बिनु कुसुम भए बिष-बुभे बान ।
चौदिसि टेसू फूलि के दाहत है मम प्रान ।
परी सेज सफरी सरिस करवट लै पछतात ।
टप टप टपकत नैन जल मुरि मुरि पछरा खात ।
निसि कारी सापिन भई डसत उलटि फिरि जात ।
पटकि पटकि पाटी करन रोइ रोइ अकुलात ।
टरे न छाती सों दुसह दुख नहिं आयो कंत ।
गमन कियो केहि देस को बीती हाय बसंत ।
वारों तन मन आपुनो दुहुँ कर लेहुँ बलाय ।
रति-रंजान 'हरिचंद' पिय जो मोहिं देहु मिलाय ।



स्फुट समस्या

१५ मई १८७४ की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में
प्रकाशित ।

स्फुट समस्या

हित दीन सों जे करै धन्य तेई
यह बात हिए में बिचारिये जू ।
सुनिए न कही कछु औरन की
आपनी बिहदालि सम्हारिये जू ।
'हरिचंद' जू आपकी होय चुकी

एहि कों जिय में निरधारिये जू ।
हम दीन और हीन जो हैं तो कहा
आपुनी दिसि आपु निहारिये जू ।
बिधि में बिध सों जब ब्याह रच्यो
नव कुंजन मंगल चाँवर मे ।
बूषभानु-किसोरी भई दुलही

* इसके सामने छपा है —

पहिलो बरन न बाँचियो यह बिनवत करजोर ।
जो पढ़िके मानो बुरो तो न दोस कछु मोर ।।

दिन दलह सुंदर साँवर मे ।

'हरिचंद' महान अनंद बढ़यो

दोउ मोद भरे जब भाँवर मे ।

तिनसों जग मैं कछु नाहिं बनी

जो न ऐसी बनी पै निछावर मे ।२

आँचर खोले लट छिटकाए

तन की सुधि नहिं ल्यावति हो ।

धूर-धूसरित अंग संक कछु

गुरु-जन का नहिं पावति हो ।

'हरिचंद' इत सों उत व्याकुल

कबहुँ हँसत कहुँ गावति हो ।

कहा भयो है पागल सी क्यों

कान्ह कान्ह गोहरावति हो ।३

पहिले तो बिन ही समझे तुम

नाहक रोस बढ़ावति हो ।

फिर अपनी करनी पै आपुहि

रोइ रोइ बिलखावति हो ।

मान समय 'हरिचंद' भिभक्ति पिय

अब काहें पछतावति हों ।

तब तो मुख उनसों फेर्यो अब

कान्ह कान्ह गोहरावति हो ।

बार बार क्यों जानि-बूझि

तुम याही गलियन आवति हो ।

रोकि रोकि मग भई बावरी

इतसों उत क्यों धावति हो ।

त्यौं हरिचंद भली रुजगारिन

नाहक तक्र गिरावति हो ।

दही दही सब करौ अरे क्यों

कान्ह कान्ह गोहरावति हो ।४

कुंज-भवन नहीं गहबर बन यह

हाँ क्यों सेज सजावति हो ।

मोहन देखि जानि आए क्यों

आदर को उठि धावति हो ।

देखि तमालन दौरि दौरि

क्यों अपने कंठ लगावति हो ।

पात स्वरक सुनि के प्यारी

क्यों कान्ह कान्ह गोहरावति हो ।५

जो तुम जोगिन बनि पी के

हित अंग भभूत रमावति हो ।

सेलि डारि गले नैनन में

छकि के रंग जमावति हो ।

त्यौं 'हरिचंद' जोगिया लेके

तो फिर अलख अलख बोलौ

काँधे बीन बजावति हो ।

क्यों कान्ह कान्ह गोहरावति हो ।७

ती को मेख छाँड़ि कै जो तुम

मोहन बनिके आवति हो ।

मोर मुकुट सिर पीत पिछौरी

तैसोइ भाव दिखावति हो ।

तो 'हरिचंद' कसर इतनी क्यों

बंसी और बजावति हो ।

राधे राधे रट लाओ क्यों

कान्ह कान्ह गोहरावति हो ।८

मूड़ चढ़ीं ब्रज चार चवाइन

इनपै क्यों हँसबावति हो ।

धीर धरो बलि गई प्रेम क्यों

अपुनो प्रगट लखावति हो ।

'हरिचंद' या बड़े गोप के

बंसहिं क्यों लजबावति हो ।

सखिन सामुने व्याकुल ह्वै क्यों

कान्ह कान्ह गोहरावति हो ।९

कौन कहत हरि नाहिं कुंज में

सुनो भूठ बजावति हो ।

कौन गयो मधुवन यह हरि को

नाहक दोस लगावति हो ।

बनि 'हरिचंद' बियोगिन सी

सब बादहिं विरह बढ़ावति हो ।

जित देखो तित प्राननाथ क्यों

कान्ह कान्ह गोहरावति हो ।१०

श्री बन नित्य विहार धली इत

जोगिन बनि क्यों आवति हो ।

बिन बान ही प्रेम आपुनो

माला फेरि दिखावति हो ।

नाम लेइ 'हरिचंद' निठुर को

नाहक प्रीति लजावति हो ।

राधे राधे कहौ सबै क्यों

कान्ह कान्ह गोहरावति हो ।११

पिय के कुंज नाहिं कोउ इजी काहें रोस बढ़ावति हो ।

बिना बात निरदोसी पिय पै भौहं खींचि चढ़ावति हो ।

कहा दिखैहो का तुम चोरी पकरी जो ऐंड़ावति हो ।

अपुनो ही प्रतिबिम्ब देखि क्यों

कान्ह कान्ह गोहरावति हो ।

होइ स्वामिनी दूतीपन को कैसे चित चलावति हो ।

हाथ न ऐहै ताहि गहत क्यों घर के द्वार मुँदावति हो ।

प्रेम-पगी 'हरिचंद' बादही रचि रचि सेज बिछावति हो ।

अपुनो ही प्रतिबिम्ब देखि क्यों

कान्ह कान्ह गोहरावति हो । १३
 चूरी खनकनि मैं बंसी को
 नाहक धोखा लावति हो ।
 बिना बात इन मोरन पै
 जिय मुकुट-संक उपजावति हो ।
 जाहु जाहु 'हरिचंद' ब्या क्यौ
 जल मैं आगि लगावति हो ।
 सुनिहैं लोग सबे घर के क्यौ
 कान्ह कान्ह गोहरावति हो । १४
 बिना बात ही अटा चढ़ी क्यौ
 आँचर खोले धावति हो ।
 सेज साजि अनुराग उमगि क्यौ
 रचि रचि माल बनावति हो ।

पावस रितु नहिं जानति हो
 'हरिचंद' ब्या भ्रम पावति हो ।
 पिया नहीं ये धन उनये क्यौ
 कान्ह कान्ह गोहरावति हो । १५
 कबहुँ नारी पुरुष के अजगुत भाव दिखावति हो ।
 कबहुँ लाज करि बदन ढकत हो कबहुँ बेनु बजावति हो ।
 भई एक सों द्वै सजनी 'हरिचंदहि' अलख लखावति हो ।
 राधे राधे कबौ कबौ तुम कान्ह कान्ह गोहरावति हो । १६
 श्याम सलोनी मूरति अँग अँग
 अद्भुत छबि उपजावति हो ।
 नारी होय अनारी सी क्यौ बरसाने में आवति हो ।
 जानि गई हरिचंद सबे जब तब क्यौ बात छिपावति हो ।
 राधे राधे कहो अहो क्यौ कान्ह कान्ह गोहरावति हो । १७



मुँह-दिखावनी*

रचना काल सन् १८७४

राज कुमार श्री ड्यूक आफ एडिनबरा की नवबधू को ।

आजु अतिहि आनंद भयो बढ्यो परम उछाह ।
 राज-डुलारी सों सुनत राजकुंवर को ब्याह । १
 बसे राज-घर सुख भयो मिटे सकल दुख-दुंद ।
 मेरी बहू सुलच्छिनी प्रजन दियो आनंद । २
 द्वार बंधाई तोरने मनिगन मुक्ता-माल ।
 धाई धाई फिरत है कहत बधाई बाल । ३
 विद्या लक्ष्मी भूमि अरु तुव प्यारी तरवार ।
 राज-कुंवर ४ सौत लखि मोहीं हारि निहार । ४
 "देह द्वाहया के बड़े ज्यौ ज्यौ जोबन-जोति ।
 त्यों त्यों लखि सौतै-बदन अतिहि मलिन दुति होति" । ५
 मांगी मुख-दिखावनी कुलधिन करि अनुराग ।
 मास सदन मन ललनई सौतिन दियो सुहाग । ६

महरानी विक्टोरिया! धन धन तुमरो भाग ।
 लख्यौ बधू मुख-चंद तुम पूर्यौ भाग सुहाग । ७
 रूस रूस सब के हिये भय अति ही हो जौन ।
 बधू! तुम्हारे ब्याह सों उड़्यौ फूस सो तीन । ८
 धन यह संवत मास पख धन तिथि धन यह बार ।
 धन्य घरी छन लगन जेहि ब्याहे राजकुमार । ९
 आए मिलि सब प्रजा-गन नजर देन तुव धाम ।
 ठाढ़े सनमुख देखिए नवत जुहारत नाम । १०
 कोउ मनि मानिक मुकुत कोउ कोऊ गल को हार ।
 कनक रोष्य महि फूल फल लै लै करत जुहार । ११
 तब हम भारत की प्रजा मिलिके सहित उछाह ।
 लाए 'आशा' दासिका लीजे एहि नर-नाह । १२
 सेवा मैं एहि राखियो नवल बधू के नाथ ।
 यह भाग निज मानिके छनक न तजिहै साथ । १३

* सन् १८७४ ई. में क्वीन विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र ड्यूक ऑफ एडिनबरा का विवाह रूस की राजकुमारी ग्रे डचेज़ मेरी के साथ हुआ था, जिसके उपलक्ष्य में यह मुँह-दिखावनी लिखी गई थी । १५ फरवरी सन् १८७४ ई. की हरिश्चंद्र मैगज़ीन में यह प्रकाशित है ।

रुस मिले सों रेल के आगम-गमन-प्रचार ।
 घन जन बल व्यवहारने छोड़ो यह सुकुमार । १४
 तासों तुम्हरे कर-कमल सौपत एहि नर-नाह ।
 जब लौं जीवै कीर्तियौ तब लौं कुंवर ! निवाह । १५
 यह पाली सब प्रजन अति करि बहु लाह उमाह ।
 अति सुकुमारी लाड़िली सौपत तोहिं नर-नाह । १६
 यह बाहर कहूँ नहिं भई सही न गरमी सीत ।

आदर दे कै राखियो करियो नित चित प्रीत । १७
 जौ यासौं जिय नहिं रमै वा कछु जिय अकुलाय ।
 सीति बधू वा एहि लखै हो हम कहत उपाय । १८
 जब हम सब मिलि एक-मत हवै तोहिं करहिं प्रनाम ।
 फेरि दीजियो तब हमै दै कछु और इनाम । १९
 जब लौं धरनी सेस-सिर जब लौं सुरज-चंद ।
 तब लौं जननी-सह जियो राजकुंवर सानंद । २०



उर्दू का स्यापा

जून १८७४ की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में
 प्रकाशित

अलीगढ़ इंस्टिट्यूट गज़ट और बनारस अखबार के देखने में ज्ञात हुआ कि बीबी उर्दू मारी गई और परम आहसानियत होकर भी राजा शिवप्रसाद ने यह हिंसा की — हाय हाय ! बड़ा अंधेर हुआ मानो बीबी उर्दू अपने पति के साथ सती हो गई । यद्यपि हम देखते हैं कि अभी साढ़ तीन हाथ की ऊँटनी सी बीबी उर्दू पागुर करनी जीती है, पर हमको उर्दू अखबारों की बात का पूरा विश्वास है । हमारी तो कहावत है — “एक मियाँ साहेब परदेस में सरिश्तेदारी पर नौकर थे । कुछ दिन पीछे घर का एक नौकर आया और कहा कि मियाँ साहेब, आपकी जोरू राँड हो गई । मियाँ साहेब ने सुनते ही सिर पीटा, रोए गाए, बिछौने से अलग बैठे,

सोग माना, लोग भी मातम-पुरसी को आए । उनमें उनके चार पाँच मित्रों ने पूछा कि मियाँ साहेब आप बुद्धिमान होके ऐसी बात मुँह से निकालते हैं, भला आपके जीते आपकी जोरू कैसे राँड होगी ? मियाँ साहेब ने उत्तर दिया — “भाई बात तो सच है, खुदा ने हमें भी अकिल दी है, मैं भी समझता हूँ कि मेरे जीते मेरी जोरू कैसे राँड होगी । पर नौकर पुराना है, भूठ कभी न बोलेगा ।” जो हो 'बहर हाल हमें उर्दू का गम वाजिव है' तो हम भी यह स्यापे का प्रकर्ण यहाँ सुनाते हैं । हमारे पाठक लोगों को खलाई न आवे तो हँसने की भी उन्हें सौगन्द है, क्योंकि हाँसा-तमासा नहीं बीबी उर्दू तीन दिन की पट्टी अभी जवान कट्टी मरी है ।

**अरबी, फारसी, पश्तो, पंजाबी इत्यादि कई
 भाषा खड़ी होकर पीटती है**

हे हे उर्दू हाय हाय । कहाँ सिधारी हाय हाय ।
 मेरी प्यारी हाय हाय । मुंशी मुल्ला हाय हाय ।
 बल्ला बिल्ला हाय हाय । राय पीटें हाय हाय ।
 टांग घसीटें हाय हाय । सब छिन सोचें हाय हाय ।

डाढ़ी नोचें हाय हाय । दुनिया उलटी हाय हाय ।
 रोजी बिलटी हाय हाय । सब मुख्तारी हाय हाय ।
 किसने मारी हाय हाय । खबर नबीसी हाय हाय ।
 दाँत-पीसी हाय हाय । एंडटर-पोसी हाय हाय ।
 बात फरोशी हाय हाय । वह लस्सानी हाय हाय ।
 चरब-जुबानी हाय हाय । शोख-बयानी हाय हाय ।
 फिर नहिं आनी हाय हाय ।



प्रबोधिनी

अगस्त १८७४ की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में
प्रकाशित

जागे मंगल-रूप सकल ब्रज-जन-रखवारे ।
जागो नन्दानन्द-करन जसुदा के बारे ।
जागे बलदेवानुज रोहिनि मात-दुलारे ।
जागो श्री राधा के प्रानन ते प्यारे ।
जागो कीरति-लोचन-सुखद भानु-मान-वर्द्धित-करन ।
जागो गोपी-गो-गोप-प्रिय भक्त-सुखद असरन-सरन । १

होन चहत अब प्रात चक्रवाकिनि सुख पायो ।
उड़े विहग तजि वास चिरैयन रोर मचायो ।
नव मुकुलित उत्पल पराग लै सीत सुहायो ।
मंथर मति अति पावन करत पंडुर बन धायो ।
कलिका उपवन बिकसन लगीं भँवर चले संचार करि ।
पूरव पच्छिम दोउ दिसि अरुन

तरुन अरुन कृत तेज धरि ॥ १२

दीप-जोति भइ मंद पहरुगन लगे जँभावन ।
भई सँजोगिन दुखी कुमुद मुद मुँदे सुहावन ।
कुम्हिलाने कच-कुसुम बियोगिनि लखि संचुपावन ।
भई मरगजी सेज लगे सब भैरव गावन ।
तन अभरन-गन सीरे भए काजर दूग बिकसित सजत ।
अधरन रस लाली साथ मुख पान स्वाद तजनों चहत । १३

मथन दही ब्रज-नारि दहत गौअन ब्रज-बासी ।
उठि उठि के निज काज चलत सब घोष-निवासी ।
द्विज-गन लावत ध्यान करत सन्ध्यादि उपासी ।
वनत नारि खडिता क्रोध पिय पेछि प्रकासी ।
गौ-रम्भन-धुनि सुनि बच्छगन आगुल माना दिग चलत ।
पशु-बंद सबै बन को गवन करन चले सब उच्छलत । १४

नारद तुंबरु पट विभास ललितार्दि अलापत ।
चारहु मुख सों बेद पढ़त विधि तुव जस थापत ।
इंद्रादिक सुर नमत जुहारत थर थर कौपत ।
व्यासादिक रिषि हाथ जोरि तुव अस्तुति जापत ।
जय विजय गरुड कपि आदि गन खरे खरे मुजरा करत ।
शिव डमरू लै गुन गाइ तुव प्रम-मगन आनंद भरत । १५

दुर्गादिक सब खरी कौर नैनन की जोहत ।

गंगादि आचँवन हेत घट लाई सोहत ।
तीरथ सब तुव चरन परस-हित छाटे मोहत ।
तुलसी लीने कुसुम अनेकन माला पोहत ।

ससि सुर पवन घन इंदिरा निज निज सेवा में लगत ।
ऋतु काल यथा उपचार मैं खरे भरे भय सगवगत । १६

बंदीजन सब द्वार खरे मधुरे गुन गावत ।
चंग मृदंग सितार वीन मिलि मंद बजावत ।
द्विज गन प नंदराय अनेक असीम पढ़ावत ।
निज निज सेवा मैं सब सेवक उठि उठि धावत ।
पिकदान वस्त्र दरपन चँवर जलभारी उबटन मलाय ।
सोंधो सुगंध तंबोल लै खरे दास-दासी-निचय । १७

मये सद्य नवनीत लिये रोटी घृत-बोरी ।
तनिक सलोनै साक दूध की भरी कटोरी ।
खरी जसोदा मात जात बलि बलि तुन तोरी ।
तुव मुख निरखन-हेत ललक उर किये किरोरी ।
रोहिनि आदिक सब पास ही खरी बिलोकत बदन तुव ।
उठि मंगलमय दरसाय मुख मंगलमय सब करहु भुव । १८

करत काज नहिं नंद विना तुव मुख अवरेखे ।
दाऊ बन नहिं जात बदन सुंदर विनु देखे ।
ग्वालिन दांध नहिं बँचि सकत लालन विनु पेखे ।
गोप न चारत गाय लखे विनु सुंदर भेखे ।
भइ भीर द्वार भारी खरे सब मुख निरखन आस करि ।
बलिहार जागिए देर भइ बन गो-चारन चेत धरि । १९

करत रोर तम-चोर भोर चक्रवाक विगोए ।
आलस तजि के उठौ सुरत सुख-सिंधु भिगोए ।
दरसन हित सब अली खरीं आरती सँजोए ।
जुगल जागिए बेर भई पिय प्यारी सोए ।
मुख-चंद हमै दरसाइ कै हरी विरह को दुख विकट ।
बलिहार उठो दोऊ अबै बीती निसि दिन भो प्रगट । ११०

लालिता लीने वीन मधुर सुर सों कछु गावत ।
बैठि विसाखा कोमल करन मृदंग बजावत ।
चित्रा रचि रचि वह कुसुमन की माल बनावत ।
श्यामा भामा अभरन सारी पाग सजावत ।
पिकदान चंद्रभागा लिए चम्पक-लतिका जल गहत ।
दरपन लै कर में इंद्रलोक

लेखा बलि बलि जागौ कहत । १११

कबरी सबरी गूँथि फेर सों माँग भराओ ।
कसिकै रस सों पाग पेच सिरपेच बँधाओ ।

अंजन मुख सों सीस महावर-विंदु छुड़ाओ ।
जुग कपोल सों पीक पोछि कै छाप मिटाओ ।
उर हार चीन्ह परि पीठ पर कंकन उपर्यौ देत छवि ।
जागौ दुराउ तेहि बात अब जामे कछु बरनै न कवि । १२

आलस पूरे नैन अरुन अब हमहिं दिखावहु ।
सुरत याद दे प्रिया-दुगन भरि लाज लजावहु ।
चुटकी दै बलिहार बोलि कहु आलस जैभावहु ।
केलि-कहानी विविध भाखि कछु हैसहु-हैसावहु ।
भरि प्रेम परस्पर तन चितै आलस मेटहु लागि हिय ।
अंगरानि मुरनि लपटानि लखि

सखिगन सर्व सिराहिं जिय । १३

जागौ जागौ नाथ कौन तिय-रति रस भोए ।
सिगरी निसि कहूँ जागि इतै आवत ही सोए ।
च्यों न सामुहें नैन करत क्यौँ लाज समोए ।
आधे आधे बैन कहत रस-रंग भिगोए ।
बलिहार और के भांग-सुख हमैं प्रात दरसन मिलन ।
ताइ पै सोवत लाल बलि जागौ कंज चहत खिलन । १४

जुगल कपोलन पीक छाप अति शोभा पावत ।
खंडित अधरन पै अंजन जावक सरसावत ।
सिर नूपुर धुंधरु अंक छवि दुगुन बढ़ावत ।
अंग अंग प्रति अभरन-गन चिन्हित दरसावत ।
कंकन पायल सों पीठ खचि गाल तरौनन सों बुभित ।
कंचुकी छाप सह माल बह बिनु

गुन कोमल हिय सुभित । १५

रहे नील पट ओढि चुरिकन जहँ लपटाए ।
सेंदुर बिंदुली पीक चित्र तहँ विविध बनाए ।
बिजुरी अलकन मैं बेसर क्यौँ सरस फँसाए ।
खसित पाग मैं गलित कुसुम मिलि पेंच बँधाए ।
बलिहार आरसी जल लिए दासी बिनय-बचन कहत ।
जागौ पीतम अब निसि विगत

गर लागो मनमथ दहत । १६

ड्रवत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो ।
आलस-दव एहि दहन हेतु चहुँ दिसि सों लागो ।
महा मूढ़ता वायु बढ़ावत तेहि अनुरागो ।
कृपा-दृष्टि की वृष्टि बुभावहु आलस त्यागो ।
आपुनो अपुनायो जानिके करहु कृपा गिरिवर-धरन ।
जागो बलि बेगहि नाथ अब देहु दीन हिंदुन सरन । १७

प्रथम मान धन बुधि कोशल बल देइ बढ़ायो ।
क्रम सों विषय-बिदूषित जन करि तिनहिं घटायो ।
आलस मैं पुनि फाँसि परसपर बैन चढ़ायो ।
ताही के मिस जवन काल सम को पग आयो ।
तिनके कर की करबाल बल बृद्ध सब नासि कै ।

अब सोवहु होय अचेत तुम दीनन के गल फाँसि कै । १८

कहँ गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर ।
चंद्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करिके थिर ।
कहँ क्षत्री सब मरे जरे सब गये कितै गिर ।
कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत है चिर ।
कहँ दुर्ग-सैन-धन-बल गयो धूरहि धूर दिखात जग ।
जागो अब तो खल-बल-दलन

रहहु अपुनो आर्य-मग । १९

जहाँ बिसेसर सोमनाथ माधव के मंदिर ।
तहँ महजिद बनि गई होत अब अल्ला अकबर ।
जहँ भूसी उज्जैन अवध कन्नौज रहे बर ।
तहँ अब रोवत सिवा चहुँ दिसि लखित खंडहर ।
जहँ धन-विद्या बरसत रही सदा आवै बाही ठहर ।
बरसत सब ही विधि बे-वसी अब तौ जागो चक्रधर । २०

गयो राज धन तेज रोष बल ज्ञान नसाई ।
बुद्धि वीरता श्री उछाह सूरता विलाई ।
आलस कायरपनो निरुद्यमता अब छाई ।
रही मूढ़ता बैर परस्पर कलह लराई ।
सब विधि नासी भारत-प्रजा कहूँ न रक्ष्यौ अवलंब अब ।
जागो जागो करुनायतन फेर जागिहौ नाथ कब । २१

सीखत कोउ न कला, उदर भरि जीवत केवल ।
पसु समान सब अन्न खात पीअत गंगा-जल ।
धन विदेस चलि जात तऊ जिय होत न चंचल ।
जड़ समान ह्यै रहत अकिल हत रचि न सकत कल ।
जीवत विदेस की वस्तु लै ता बिनु कछु नहिं करि सकत ।
जागो जागो अब साँवरे सब कोउ रुख तुमरो तकत । २२

पृथ्वीराज जयचंद कलह करि जवन बुलायो ।
तिमिरलंग चंगेज आदि बहु नरन कटायो ।
अलादीन औरंगजेब मिलि धरम नसायो ।
विषय-वासना दुसह मुहम्मद सह फैलायो ।
तब लौं सोए बहुत नाथ तुम जागे नहिं कोऊ जतन ।
अब तौ जागौ बलि बेर भइ हे मेरे भारत-रतन । २३
जागो हौं बलि गई बिलंब न तनिक लगावहु ।
चक्र सुंदरसन साथ धारि रिपु मारि गिरावहु ।
थापहु थिर करि राज छत्र सिर अटल फिरावहु ।
मूरखता दीनता कृपा करि बेग नसावहु ।
गुन विद्या धन बल मान बहु सबै प्रजा मिलि कै लहै ।
जय राज राज महाराज की आनंद सो सब ही कहै । २४

सब देसन की कला सिमिति कै इतही आवै ।
कर राजा नहिं लेइ प्रजन पै हेत बढ़ावै ।

गाय दूध बहु देहिं तिनहिं कोउ न नवावै ।
द्विज-गन आस्तिक होइ मेघ सुभ जल वरसावै ।

तजि छुद्र बासना नरसवै निज उछाह उन्नति करहिं ।
कहि कृष्ण राधिका-नाथ जय

हमहूँ जिय आनंद भरहिं । २५



प्रात-समीरण

अक्टूबर १८७४ की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में
प्रकाशित । इसका छंद बँगला का पयार है ।

मन्द मन्द आवै देखो प्रात समीरण
करत सुगन्ध चारो ओर विकीरन ।
गात सिहरात तन लगत सीतल
रैन निद्रालस जन-सुखद बंचल ।
नैन सीस सीरे होत सुख पावै गात
आवत सुगन्ध लिए पवन प्रभात ।
वियोगिनी-विदारन मन्द मन्द गौन
बन-गुहा बास करै सिंह प्रात-पौन ।
नाचत आवत पात पात हिहिनात
तुरग चलत चाल पवन प्रभात ।
आवै गुंजरत रस फूलन को लेत
प्रात को पवन भौर सोभा अति देत ।
सौरभ सुमद धारा ऊंचे किए मस्त
गज सो आवत चलयो पवन प्रसस्त ।
फुलावत हिय-कंज जीवन सुखद
सज्जन सो प्रात पवन सोहै बिना मद ।
दिसा प्राची लाल करै कुमुदी लजाय
होरी को खिलार सो पवन सुख पाय ।
भौर-शिष्य मंत्र पढ़ै धर्म-कर्म-वन्त
प्रात को समीर आवै साधु को महंत ।
सौरभ को दान देत मुदित करत
दाता बन्यो प्रात-पौन देखो री चलत ।
पातन कंपावै लेत पराग खिराज
आवत गुमान भज्यौ समीरन-राज ।
गावै भौर गूँज पात खरक मृदंग
गुनी को अखारो लिए प्रात-पौन संग ।

काम में चेतन्य करे देत हे जगाय

मित्र उपदेस बन्यो भोर पौन आय ।
पराग को भौर दिए पच्छी बोल बाज
ब्याहन आवत प्रात-पौन चलयो आज ।
आप देत थपकी गुलाब चुटकार
बालक खिलावै देखो प्रात की बयार ।
जगावत जीव जग करत चैतन्य
प्रात-तत्व सम प्रात आवै धन्य धन्य ।
गुटकत पच्छी धुनि उड़े सुख होत
प्रात-पौन आवै बन्यो सुंदर कपोत ।
नव-मुकुलित पद्म-पराग के बोझ
भारवाही पौन चलि सकत न सोझ ।
दुअत सीतल सबै होत गात आत
स्नेही के परस सम पवन प्रभात ।
लिए जात्री फूल-गंध चलै तेज धाय
रेल रेल आवै लखि रेल प्रात-बाय ।
विविध उपमा धुनि सौरभ को भौन
उड़त अकास कवि-मन किधौ पौन ।
आग सिहरात झूप उड़त अंचल
कामिनी को पति प्रात-पवन चंचल ।
प्रात समीरन सोभा कही नहिं जाय
जगत उद्योगी करै आलस नसाय ।
जागे नारी नर लगै निज निज काम
पंछी चहचह बोलै ललित ललाम ।
कोई भजै राम राम कोई गंगा न्हाय
कोई सजि वस्त्र अंग काज हेत जाय ।
चटकै गुलाब फूल कमल खिलत
कोई मुख बंद करै परन हिलत ।

गावत प्रभाती बाजै मंद मंद ढोल
 कहूँ करै द्विजगन जय जय बोल ।
 बजै सहनाई कहूँ दूर सों सुनाय
 भैरवी की तान लेत चित्त को चुराय ।
 उड़त कपोत कहूँ काग करै रोर
 चुड़ चुड़ चिरैयन कीनो अति सोर ।
 बोलै तम-चोर कहूँ ऊँचो करि माथ
 अल्ला अकबर करै मुल्ला साथ साथ ।
 बुझी लालटेन लिए झुकि रहे माथ
 पहरू लटकि रहे लंबो किए हाथ ।
 स्वान सोये जहाँ तहाँ छिपि रहे चोर
 गऊ पास बच्छन अहीर देत छोर ।
 दही फल फूल लिए ऊँचे बोलै बोल ।
 आवत ग्रामीन-जन चले टोल टोल ।
 सड़क सफाई होत करि छिड़काव
 बगगी बैठि हवा खाते आवैं उमराव ।

काज व्यग्र लोग धाए कंधन हिलाय
 कसे कटि चुस्त बने पगड़ी सजाय ।
 सोई वृत्ति जागीं सब नरन के चित्त
 बुरी-भली सबै करै लोक जौन नित्त ।
 चले मनसुबा लोक थोकन के जौन
 मार-पीट दान-धर्म काज-काज भौन ।
 व्यास बैठे घाट घाट खोलि कै पुरान
 ब्राह्मन पुकारै लगे हाय हाय दान ।
 अरुन किरिन छाई दिसा भई लाल
 घाट नीर चमकन लागे तौन काल ।
 दीप-ज्योति उडुगन सह मंद मंद
 मिलत चकई चका करत अनंद ।
 प्रलय पीछे सृष्टि सम जगत लखाय
 मानो मोह बील्यो भयो ज्ञानोदय आय ।
 प्रात-पौन लागे जाग्यौ कवि 'हरीचंद'
 ताकी स्तुति करि कहौ यह बंग छंद ।



बकरी-बिलाप

अक्टूबर १८७४ की 'कवि वचन सुधा' में
 प्रकाशित

सरद निसा निरमल दिसा गरद सहित नभ स्वच्छ ।
 सब के मन आनंद बढ़यो लखि आगम दिन अच्छ । १
 पितृ पक्ष को जानि कै ब्राह्मन-मन सानंद ।
 निरखहिं आश्विन मास सब ज्यौं चकोर-गन चंद । २
 लखि आगम नवरात को सब को मन हुलसात ।
 लखन राम-लीला ललित सजि सजि सबही जात । ३
 छुट्टी भई अदालतन आफिस सब भए बंद ।
 फिरे पथिक सब भवन निज धरि धरि हिए अनंद । ४
 बंगालिन के हैं भयो घर घर महा उछाह ।
 देवी-पूजा की बढ़ी चित्त चौगुनी चाह । ५
 नाच लखन मद-पान को मिल्यो आइ सुभ जोग ।
 दुरगा के परसाद सों मिलिहैं सब ही भोग । ६
 कोउ गावत कोउ हंसत मंगल करन बिचार ।
 आगतपतिका बनि रहीं परदेसिन की नारि । ७
 ऐसे आनंद के समय बकरी अति अकुलाय ।

निज सिसु-गन लै गोद में करत दीन बनि हाय । ८
 घोर सरद साँपनि समै मोसो दुखिया कौन ।
 जाके सुत सब नासिहैं बलिदायक अध-भौन । ९
 माता को सुत सो नहीं प्यारो जग में कोय ।
 ताकै परम बियोग में क्यों न मरै हम रोय । १०
 जिनके सिसु हवै कै मरै ते जानहिं यह पीर ।
 बाँझ गरभ की बेदना जानै कहा सरीर । ११
 अपने बचन देखि कै हरो हमारो सोग ।
 मेरो दुख अनुभव करौ तुमहु कुटुम्बी लोग । १२
 दूध देत नित तुन चरत करत न कछु बिगार ।
 ताहूँ पै मम यह दसा रे निर्दय करतार । १३
 पुत्र-सोगिनी ही रह्यौ जौ पै करनो मोहिं ।
 तौ रे बिधि मम रचन सों कहा सिरान्यौ तोहिं । १४
 रे रे बिधि सब बिधि अबिधि आजु अबिधि तैं कौन ।
 बधि बधि कै मेरे सुअन महा सोक मोहिं दीन । १५

सुरति करत जिय अति जरत मरत रोय करि हाय ।
 बलि यह बलिजा नीम सौ हीयो उलटत जाय । १६
 गुख गदगद तन स्वेद-कन कंठहु रूँध्यो जात ।
 उलट्यो परत करेजवा जिय अतिही अकुलात । १७
 कहाँ जायँ कासों कहैं कोउ न मुनिवे जोग ।
 खाँव खाँव करि धाय सब हमहिं लगावत भोग । १८
 जदपि नारि दुख जानहीं मेरो सहित विवेक ।
 पै ते पति-मति मैं रैगी बरजहिं तिन्हैं न नेक । १९
 मानुष-जन सों कठिन कोउ जन्तु नाहिं जग बीच ।
 विकल छोड़ि मोहिं पुत्र लै हनत हाय सब नीच । २०
 बृथा जवन कोँ इसहीं करि वैदिक अभिमान ।
 जो हत्यारो सोइ जवन मेरे एक समान । २१
 धिक् धिक् ऐसे धरम जो हिंसा करत विधान ।
 धिक् धिक् ऐसो स्वर्ग जो बध करि मिलत महान । २२
 शास्त्रन को सिद्धांत यह पुण्य सु पर-उपकार ।
 पर-पीड़न सों पाप कछु बढ़ि के नहिं संसार । २३
 जज्ञन में जप-जज्ञ बढ़ि अरु सुभ सात्विक धर्म ।

सब धर्मन सों श्रेष्ठ है परम अहिंसा धर्म । २४
 पूजा लै कहैं तुष्ट नहिं धूप दीप फल अन्न ।
 जो देवी बकरा बधे केवल होत प्रसन्न । २५
 हे विस्वभर ! जगत-पति जग-स्वामी जगदीश ।
 हम जग के बाहर कहा जो काटत मम सीस । २६
 जगन्मात ! जगदम्बिके ! जगत, जननि जग-रानि ।
 तुव सन्मुख तुव सुतन को सिर काटत क्यों जानि । २७
 क्यों न खींचि के खड्ग तुम सिंहासन तें धाड़ ।
 सिर काटत सुत बधिक कौ क्रोधित बलि दिग आई । २८
 त्राहि त्राहि तुमरी सरन मैं दुखिनी अति अम्ब ।
 अब लम्बोदर-जननि विनु मोकों नहिं अवलम्ब । २९
 निर-अपराध गरीब हम सब विधि बिना सहाय ।
 हे षट्मुख-गजमुख-जननि तुम समझौ मम हाय । ३०
 पुत्रवती विनु जानई को सुत-बिछुरन-पीर ।
 यासों मोहिं अब दै अमय जननि धरावहु धीर । ३१
 एहि विधि बहु बिलपत परी बकरी अति आधीन ।
 हे करुना-वरुनायतन द्रवहु ताहि लखि दीन । ३२



स्वरूप-चिन्तन

दिसंबर सन् १८७४ ई० हरिश्चन्द्र चन्द्रिका
 में प्रकाशित ।

जय जज गिरिवर-धरन जयति श्री नवनीत-प्रिय ।
 जयति द्वारिकाधीश जयति मथुरेश माल हिय ।
 जय जय गोकुलनाथ मदनमोहन पिय प्यारे ।
 जय गोकुल-चंद्रमा सु बिडुलनाथ दुलारे ।
 श्री बालकृष्ण नटवर नवल श्री मुकुंद दुख-द्वंद-हर ।
 स्वामिन सह ललित तुभंग

गोपाललाल जय जयतिवर । १

जय जय श्री गिरिराज-धरन श्रीनाथ जयति जय ।
 वेद-दमन जय नाग-दमन जय शमन भक्त-भय ।
 जय श्री राधा-प्राणनाथ श्री वल्लभ प्यारे ।
 श्री बिडुल के जीव जयति जसुदा के बारे ।
 श्रीवल्लभ कुल के परम निधि

भक्तन के बहु दुख-दरन ।

नित नव निकुंज लीला-करन जय जय श्रीगिरिवरधरन । २

जय जय श्री नवनीत-प्रिय जय जसुदानंदन ।
 जय नंदागन रिंगन कर जुवती-मन-फंदन ।
 जय कृत मृगमद-तिलक भाल जय युक्त माल गल ।
 मुख मंडित दधि-लेप घुटुरुवन चलत चपल चल ।
 जय बाल ब्रह्म गोपाल जन-पालक केहरि करज हिय ।
 जदुनाथ नाथ गोकुल-बसन जै जै श्री नवनीत-प्रिय । ३

जय जय मथुरानाथ जयति जय भव-भय-भंजन ।
 जय प्रनतारति-हरन जयति जय जन-मन-रंजन ।
 भुज विसाल सुभ चार भक्त-जन के रखवारे ।
 शंख चक्र असि गदा पद्म आयुध कर धारे ।
 श्री गिरिधर-प्रिय आनंदनिधि जयति चतुर्विध जूथपति ।
 गावत श्रुति गुन-गन-गाथ जय मथुरानाथ अनाथ-गति । ४

जय श्री बिट्ठलनाथ साथ स्वामिनि सुठि सोहत ।
करि धारे दोउ हाथ रास-श्रम भरि मन मोहत ।
नृत्य भाव करि विविध जयति जुवती-मन-फंदन ।
जसुदा-ललित जयति नंद-नंदन आनंदन ।
श्री गोविंद प्रभु-पालन प्रनत दीन-हीन-जन-उद्धरन ।
जय असुर-दरन भक्तन-भरन

श्री बिट्ठल असरन-सरन १५

जयति द्वारिकाधीस-सीस मनि-मुकुट विराजत ।
जयति चार कर चक्रादिक आयुध छवि छाजत ।
तिय-दुग द्वै कर मूँदि जुगल कर बेनु बजायो ।
कंठ चरन उपमान कंबु अंबुज मन-भायो ।
जय प्रिया कंकनाकार कर चक्र गदा बंसी अभय ।
जय बालकृष्ण प्रिय प्रान श्री द्वारिकेस महाराज जय १६

जय श्री गोकुलनाथ जयति गिरिराज-उधारन ।
विवि कर वंस प्रसंस कंबु गिरि विवि कर धारन ।
रास-रसिक नटराज रसिक-मंडल मनि-मंडन ।
हरन इंद्र-मद-मान भक्त भव-भयभर-खंडन ।
श्री राधापति चंद्रावली-रमन शमन गजपति गमन ।
श्री वल्लभ प्रिय रसमय जयति गोकुलेस मनमय दमन १७

जय गोकुल-चंद्रमा परम कोमल अग सोहन ।
रास जूथपति बेनु-बाद-रत तिय-मन-मोहन ।
मधि नायक बृन्दाबनेस राका ससि पूरन ।
नटवर नर्तक करन मत्त मनमय-मद-चूरन ।
श्रीरघुपति पति अति ललित गति

कति जुवती मति जति हरन ।

रतिरंजन नति प्रिय जयति

श्री गोकुल-ससि साँवर वरन १८

जय जय मोहन मदन मदन-मद-कदन ताप-हर ।
सब सुख-सोभा-सदन रदन-छवि कुंद-निंद-कर ।
मरजादा उलधि पुष्टि-पथ थापन चाहत ।

होइ त्रिभंगी प्रिया बदन मधु रस अवगाहत ।
वर बंसी कर स्वामिनि सहित

करन प्रेम-रंग भक्ति-लय ।

श्री घनश्याम आनंद भरन जय श्री मोहन मदन जय १९

जय श्री नटवर लाल ललित नटवर वपु राजत ।
निरतत तजि मरजाद देखि रति-पति जिय लाजत ।
परम रसिक रस रास रास-मंडल की सोभा ।
पग कर सिर की हिलनि देखि ब्रज-तिय मन लोभा ।
श्री बृन्दावन-नभ-चंद्रमा जन-चकोर आनंद-कर ।
नित प्रेम-सुधा-बरखन-करन जय नटवर त्रय ताप-हर ।

जय जय जय श्री बालकृष्ण जसुदा के वारे ।
बलदेवानुज नंदराय के प्रान पियारे ।
नंदालय कृत जानु पानि रिंगन बाला-कृत ।
कर मोदक मन-मोद-करन ब्रत जुवती-जन-हित ।
जदुपति प्यारे आनंदनिधि सब गोकुल के प्रान-प्रद ।
भँगुली टोपी मसिविंदु सिर बालकृष्ण जयजनी-सुखद ११

श्री मुकुंद भव-हुंद-हरन जय कुंद गौर छवि ।
श्याम मिलित मधि जुगल भाव सो किमि वरनै कवि ।
बाल भाव परतच्छ तरुन अतर छवि छाजै ।
कर मोदक मिस प्रिया अधर मधु स्वाद विराजै ।
जदुनाथ मनोरथ-पूर्ण-कर श्रीवल्लभ चिकुरस्थ वर ।
श्री गिरिधर लालित ललित जय

श्रीमुकुंद दुख-हुंद-हर १२

जय जय श्री गोपाल लाल श्री राधानायक ।
कोटि काम-मद-मथन-भक्तजन सादा सहायक ।
प्रिया प्रनय भट गौर बदन सुंदर छवि छाजत ।
प्यारी रिभवन हेत मुरलि कर लिये बजावत ।
दरसन दै मन करसन करत ब्रज-जुवतीजन-मन-हरन ।
काशी मै बृन्दावन-करन जय गोपाल असरन-सरन १३



श्री राजकुमार-शुभागमन- वर्णन*

सन् १८७६ में 'बाला
बोधिनी' में प्रकाशित

स्वागत स्वागत धन्य तुम भावी राजधिराज ।
भई सनाथा भूमि यह परसि चरन तुव आज ११
"राजकुंअर आओ इते दरसाओ मुख चंद ।
बरसाओ हम पर सुधा बाढ़्यौ परम अनंद १२
नैन बिछाए आपु हित आवहु या मग होय ।
कमल पाँवड़े ये किए अति कोमल पग जोय" १३
साँचहु भारत में बढ़्यौ अचरज सहित अनंद ।
निरखत पच्छिम सों उदित आज अपूरव चंद १४
दुष्ट नृपति बल दल दली दीना भारत भूमि ।
लहिहै आबु अनंद अति तुव पद-पंकज चूमि १५
विकसित कीरति-कैरवी रिपु विरही अति छीन ।
उडुगन-सम-नृप और सब लखियत तेज-बिहीन १६
भवत सुधा-सम बचन-मधु पोखत औषधिराज ।
त्रासत चोर कुमित्र खल नंदत प्रजा-समाज १७
चित-चकोर हरखित भए सेवक-कुमुद अनंद ।
मिट्यौ दीनता-तम सबै लखि भूपति मुख-चंद १८
मन-मयूर हरखित भए गए दुरित दव दूरि ।
राजकुंअर नव धन सरस भारत-जीवन-मूरि १९
हृदय-कमल प्रफुलित भए दुरे दुखद खल-चोर ।
पसर्यौ तेज जहान रवि भूपति-आगम मोर १०
नंद-पति-प्यारी सची दंड बज्र गज जान ।
मंजीवर सुर-सह लसत नृप-सुत- इंद्र-समान ११
भए लहलहे न सबै उलस्यौ प्रजा-समाज ।
बंदी-पिक गावत सुजस राजकुंअर रितुराज १२
बिदलित रिपु-गज-सीस नित नख-बल बुद्धि-प्रभाव ।
जन वन पथि सम अति प्रबल हरि भावी नर-राव १३
मेलाह सों बढ़ि सबै सज्यौ नगर को साज ।
बुढ़वामंगल तुच्छ कह लखि नव मंगल आज १४
ललित अकासी धुज सजे परकासी आनंद ।
राका सी कासीपुरी लखि भूपति मुखचंद १५
नौबत-धुनि-मंजीर सजि अंचल-धुज फहराय ।
कासी तुमहिं मिनार-मिस टेरति हाथ उठाय १६
मरवट सथिये बसन धुज मौरी तोरन लाय ।
दुलही सी कासीपुरी उलही नव बर पाय १७

जिमि रघुवर आए अवध जिमि रजनी लहि चंद ।
तिमि आगमन कुमार के कासी लह्यौ अनंद १८
मधुवन तजि फिर आई हरि ब्रज निव से मनु आज ।
ऐसो अनुपम सुख लह्यौ तुम कहैं निरखि समाज १९

[चडिमि: कुलकम]

जदपि न भोज न व्यास नहिं बालमीकि नहिं राम ।
शाक्यसिंह 'हरिचंद' बलि करन जुधिष्ठिर श्याम १२०
जदपि न विक्रम अकबरहु कालिदासहू नाहिं ।
जदपि न सो विद्यादि गुन भारतवासी माहि १२१
प्रतिष्ठान साकेत पुनि दिल्ली मगध कनौज ।
जदपि अबै उजरी परीं नगर सबै विनु मौज १२२
जदपि खंडहर सी भरी भारत भुव अति दीन ।
खोइ रत्न संतान सब कूस तन दीन मलीन १२३
तदपि तुमहिं लखि कै तुरत आनदित सब गात ।
प्राण लहे तन सी अहो भारत भूमि दिखात १२४
बाव जरे कहैं वारि जिमि विरही कहैं जिमि मीत ।
रोगिहि अमृत-पान मिजि तिमि एहि तोहि लहि प्रीत १२५
घर घर में मनु सुत भयो घर घर में मनु ब्याह ।
घर घर बाढ़ी संपदा तुव आगम नर-नाह १२६
जैसे आतप तपित कों छाया सुखद गुनात ।
जवन-राज के अंत तुव आगम तिमि दरसात १२७
मसजिद लखि बिसुनाथ ढिग परे हिय जो घाव ।
ता कहैं मरहम सरिस यह तुव दरसन नर-राव १२८
कुंअर कहाँ हम लेहिं तोहिं ठौर न कहैं लखाय ।
दुग-मग ह्वै हमरे हिय बैठहु प्रिय तुम आय १२९
कुंअर कहा आदर करै देहिं कहा उपहार ।
तुव मुख ससि आगे लसत तून-सम सब संसार १३०
पै केवल अति सुद जिय कहि यह देहिं असीस ।
सानुज-माता-सहित तुम जीओ कोटि बरीस १३१
जब लौं बानी वेद की जब लौं जग को जाल ।
जब लौं नम ससि-सूर अरु तारारन की माल १३२
जब लौं गंगा-जमुन-जल जब लौं भर्यौ नदीस ।
जब लौं कवि कविता सुथित जब लौं भुव अहि-सीस १३३

* सन् १८७५ में प्रिंस आफ वेल्स सम्राट एडवर्ड सप्तम के आगमन पर लिखी गयी यह कविता आषाढ़
सं. १९३३ की बाला बोधिनी में छपी थी । इसमें १९वें दोहे के बाद के छह दोहे हरिश्चंद्र कला में भी हैं ।

जब लौं सुमन सुवास पर मत भँवर संचार ।
जब लौं कामिनि-नयन पर होहिं रसिक बलिहार । ३४
जब लौं तत्व सबै मिले गठे सबै परमानु ।
जब लौं ईश्वर अस्तित्व तब लौं तुम नरमानु । ३५
जिओ अचल लहि राज-सुख नीरुज बिना विवाद ।
उदय अस्त लौं मेदिनी पालहु लहि सुख स्वाद । ३६
पहरू कोउ न लखि परे होय अदालत बंद ।
ऐसो निरुपद्रव करौ राज-कुँअर सुख-कंद । ३७

लोहा गृह के काम में कलह दंपती माहिं ।
बाद बुधनही मैं सदा तुव राजत रहि जाहिं । ३८
जाति एक सब नरन की जदपि विविध व्योहार ।
तुमरे राजत लखि परे नेही सब संसार । ३९
रसना इक आसा अमित कहैं लौं देहिं असीस ।
रहौ सदा तुम छत्र ते होइ हमारे सीस । ४०
भ्रात मात सह सुतन जुत प्रिया सहित जुवराज ।
जिओ जिओ जुग जुग जिओ भोगौ सब सुख-साज । ४१



भारत-भिक्षा*

अहो आज का सुन परत भारत भूमि मैभार ।
चहुँ ओर आनंद-धुनि कहा होत बहु बार । १
बृटिश सुशासित भूमि मैं आनंद उमगे जात ।
सबै कहत जय आज क्यौं यह नहिं जान्यो जात । २
बृटिश-राज-चिन्हन सजी नगरन-अटा अटारि ।
धुजा-पताका फरहरहिं सहसन आज सँवारि । ३
गंग-जमुन-गोदावरी-पथ हवै हवै बहु जान ।
छ्यों सब आवत हैं सजे देव-विमानसमान । ४
घर बाहर इत उत सबै सजे वसन मनि साज ।
चातक और चकोर से खरे अरे क्यौं आज । ५

शाखा

आवत भारत आज कुँअर बूटनहि सुखदानी ।
सुनहु न गगनहिं भेदि होत जै जै धुनि-बानी । ६
जै जै जै विजयिनी जयति भारत-महरानी ।
जै राजागन-मुकुट-मनी धन-बल-गुन खानी । ७
जाकी कृपा-कटाक्ष चहत सिंगरे राजा-गन ।
जा पद भारत-भुवन लुठत हवै बस कंपित मन । ८
आवत सोइ बूटन कुँअर जल-पथ सुनि एहि छन ।
ठाढ़ो भारत मग में निखरत प्रेम पूलक तन । ९

पूर्ण कोरस

मृदंगादि बाजे बजाओ बजाओ ।
सितारादि यंत्रै सुनाओ सुनाओ ।
अरे ताल दे लै बद्धाओ बद्धाओ ।
बधाई सबै धाइ गाओ सुनाओ ।
कहाँ हैं रबानी मृदंगी सितारी ।
कहाँ हैं गवैये कहाँ नृत्यकारी ।
कहाँ आज मौलाबकस वाजपेई ।
कहाँ आज हैं क्षेत्रमोहन गुसाई ।
कहाँ भाट नाटकपती स्वांगधारी ।
कहाँ नट गुनी चट करैं सब तयारी ।
कहो रागिनी आज भारी जमाव ।
मिले एक लै मैं सु-गावैं बजावैं ।
कहाँ भाँड़ कथक छिपे हैं बुहलाओ ।
मुबारक कहाओ बधाई गवाओ ।
कहाँ हैं सबै सुंदरी बार-नारी ।
कहो पेशवाजैं सजैं आज भारी ।
लगै दून मैं आज आवाज प्यारी ।
सरगी बजै राग रंगी सँवारी ।
छिड़ै भैरवी सारंगौ सिंध काफी ।

* मई-सिम्बर १८७५ के हरिश्चन्द्र चन्द्रिका के सम्मिलित अंकों में छपी इस कविता को उस पत्र के सम्पादक ने हेम चन्द्र बनर्जी की बंगला कविता की छापा पर लिखी कविता माना है । इसके बहुत से पद विजयिनी-विजय वैजयंती भारतवीरत्व में आ गये हैं जिन्हें यहाँ नहीं दिया गया है ।

जमै जोगिया पूरिया औ धनाश्री ।
 रहै कान्हरा देस सोरठ बिहागा ।
 कलिंगा किदारा परज आदि रागा ।
 मिलै तान लै राग-रंगै जमाओ ।
 मिले मान संगीत भावै दिखाओ ।
 रहै लाग-डाँटो उरप-तिरप संग ।
 रहै तत्येई तत्येई तृत्य-रंगा ।
 दिखाओ कुमारै कला आज धाए ।
 बड़े भाग सों पाहुने गेह आए । ११०

आरम्भ

कहाँ सबै राजा कुँवर और अमीर नवाब ।
 आज राज-दरबार में हाजिर होहु सितार । १११
 सिरन भुकाइ सलाम करि मुजरा करहु जुहारि ।
 जटितहु जूतन त्यागि कै स्वच्छ बूट पग धारि । ११२
 जानु सुगनि नावाइ कै पद पै धरि उसनीस ।
 चूमि चूमि बर अभय-प्रद कर जुग नावहु सीस । ११३
 परम माक्ष फल राज-पद-परसन जीवन माहिं ।
 बूटन-देवता राज-सुत-पद परसहु चित चाहि । ११४
 कित हुलकर कित सेंधिया कित बेगम भूपाल ।
 कित काशीपति कित रहे सिक्ख-राज पटियाल । ११५
 कित लायल ईजानगर मानी नृप मेवार ।
 कित जोधपुर जैपुरी त्रावकोर कछार । ११६
 जाट भरतपुर धौलपूर राना कित तुम जाम ।
 कित मुहम्मदिन के पती दक्षिन-राज निजाम । ११७
 धाओ धाओ बेग सब पहिरि पहिरि पौसाक ।
 पगरी मोती-माल गल साजि राजि इक ताक । ११८
 गले बाँधि इस्तार सब जटित हीर मनि कोर ।
 धावहु धावहु दौरि कै कलकत्ता की ओर । ११९
 चढ़ि तुरंत बग्गीन पर धावहु पाछे लागि ।
 उडुपति संग उडुगन-सरिस नृप सुख सोभा पागि । १२०
 राज-भेंट सबही करौ अहो अमीर नवाब ।
 हाजिर ह्वै झुकि झुकि करौ सबै सलाम अदाब । १२१

शाखा

राजसिंह छूटे सबै करि निज देर उजार ।
 सेवत हित नृप बर कुँअर धाये बाँधि कतार । १२२
 तजि अफगानिस्तान को धाये पुष्ट पठान ।
 हिमगिरि को दै पीठ किय कश्मीरस पयान । १२३
 नाभा पटियाला अमृत-सर जन्म अस्थान ।
 कच्छ सिंधु गुजरात मेवाड़ राजपुतान । १२४
 कोल्हापुर ईजानगर काशी अरु इंदौर ।
 धाए नृप एक साथ सब करि सूनो निज ठौर । १२५

लखि कुल-दीपक राज-सुत धाए भूप-पतंग ।
 रुके न गिरिवर नगर नद समुद जमुन जल गग । १२६
 कहाँ पाँडु जिन हस्तिनापुर मधि कीनौ जाग ।
 राजसूय साँची लखैं बूटन-रचित बल आग । १२७

पूर्ण कोरस

अति सुंदर मोहनी सजायो ।
 आजु लगत कलकत्ता सुहायो ।
 द्वार द्वार पर बंदन-माला ।
 रंग रंग बसन फूल-दल-जाला । १२८
 कदली खंभ पात थरहरहीं ।
 पद भय हिलि हिलि मनु मन हरहीं ।
 फर फर फहरत धुजा पताका ।
 चम चम चमकत कलस बलाका । १२९
 अटा अटारी बाहर मोखन ।
 छज्जे छातन गोख भरोखन ।
 दीपहि दीपक परत लखाई ।
 मनु नभ तें ताराबलि आई । १३०
 दिन को रवि अकास लखि लज्जित ।
 मनहुँ हीर गिरि खंडव सज्जित ।
 छुटत अतसबाजी रंग-रंगी ।
 गगन प्रकट मनु अनल फिरंगी । १३१
 नव तारे प्रगटहि नसि जाहीं ।
 उड़त बान इमि गगन लखाहीं ।
 गंज सितारनि की छवि भारी ।
 नभ मनु तेजोमय फुलवारी । १३२
 धन कलकत्ता कलि-रजधानी ।
 जेहि लखि कै सुरपुरी लजानी ।
 चलत कुँअर चढ़ि चपल तुरंगनि ।
 सँग सोभित दल बल चतुरंगनि । १३३
 नृप-गन धावत पाछे पाछे ।
 अश्व चढ़े मनि काछे आछे ।
 ताजनि पर कलंगी थरहरई ।
 नृपगन दल दल सोभा करई । १३४
 चलहि नगर-दरसन हित धाई ।
 भ्रमक भ्रमक बाजने बजाई ।
 बजत बूटिस भेरी घहराई ।
 कादर मन सुनि-सुनि थहराई । १३५
 रूल बूटानिय रूल दि बेबस ।
 ताल तरंग बजत अति रन रस ।
 आरंभ
 उठहु उठहु भारत-जननि लेहु कुँअर भरि गोद ।

आज जगे तुव भाग फिर मानहुँ मन अति मोद । ३६
करि आदर मुदु बैन कहि बहु बिधि देहु असीस ।
चिर दिन लौं सिसु-मुख

लख्यौ नहिं तुम सोइ अवनीस । ३७
सेज छाँड़ि माता उठहु उदित अरुन तुव देस ।
मिटे अमंगल तिमिर सब राजकुमार-प्रबेस । ३८
मति रोओ रोओ न तुम जननी व्याकुल होय ।
उठहु उठहु धीरज घरहु लेहु कुँअर मुख जोय । ३९
तुम दुखिया बहु दिनन की सदा अन्य आधीन ।
सदा और के आसरे रहो दीन मन खीन । ४०
तुम अबला हत-भागिनी सदा सनाय दयाल ।
जोग भजन भूली रहत सूधे जिय की बाल । ४१
सो दुख तुमरो देखि महरानी करुना धारि ।
निज प्राणोपम पुत्र तुव ढिग पठयो मनुहारि । ४२
रिपु-पद के बहु चिन्ह सब कुँअरहिं देहुं गिनाय ।
काढ़ि करेजो आपनो देहु न सुतहि दिखाय । ४३
सदा अनादर जो सख्यो सख्यो कठिन रिपु-लात ।
सो छत देहु दिखाय अब करहु कुँअर सों बात । ४४
उठहु फेर भारत जननि हवै प्रसन्न इक बार ।
लेहु गोद करि नृप कुँअर भयो प्रात उँजियार । ४५

शाखा

सुनत सेज तजि भारत माई ।
उठि तुरंतहि जिय अकुलाई ।
निविड़ केस कोउ कर निरुआरी ।
पीत बदन की क्रांति पसारी । ४६
मरे नेत्र अँसुअन जल-धारा ।
लै उसास यह बचन उचारा ।
क्यों आवत इत नृपति-कुमारा ।
भारत में छायो अँधियारा । ४७
कहा यहाँ अब लखिबे जोगू ।
अब नाहिन इत वे सब लोगू ।
जिन के भय कंपत संसारा ।
सब जग जिन को तेज पसारा । ४८
रहे शास्त्र के जब आलोचन ।
रहे सबै जब इत घट-दरसन ।
भारत बिधि बिद्या बहु जोगू ।
नहिं अब इत केवल है सोगू । ४९
सो अमूल्य अब लोग इतै नहिं ।
कहा कुँअर लखिहै भारत महिं ।
रहे जबै मनि क्रीट सकुंडल ।
रख्यो दंड जब प्रबल अखंडल । ५०

रख्यो रुधिर जब आरज-सीसा ।
ज्वलित अनल समान अवनीसा ।
साहस बल इन सम कोउ नाहीं ।
जबै रख्यो महि-मंडल माहीं । ५१
जब मोहिं ये कहि जगनि पुकारै ।
दसहु दिसि धुनि गरज न पारै ।
तब मैं रही जगत की माता ।
अब मेरी जग मैं यह बाता । ५२
लखिहैं का कुमार अंब धाई ।
गोद बैठि हैंसिहैं इत आई ।
जब पुकारिहै कहि मोहिं माता ।
आनंद सों भरिहौं सब गाता । ५३
युरप अमरिका इहिहि सिद्धाईं ।
भारत-भाग-सरिस कोउ नाहीं ।
पूर्व सखी मम रोम पिआरी ।
मरि कै बाँचि उठै फिरि बारी । ५४
ग्रीसहु पुनि निज प्रानन पायो ।
हाय अकेली हमहिं बनायो ।
भग्न दंड कपित कर-धारी ।
कब लौं ठाढ़ी रहौं दुखारी । ५५
भग्न सकल भूषन तन साजी ।
दास-जनन कहवैहौं लाजी ।
मेरे भागन जो तन हारे ।
थाप्यो पद मम सीस उधारे । ५६

आरंभ

सुनि बोली आरत-जननि आये कहा कुमार ।
आये किन आओ निकट पुत्र जननि-अँकवार । ५७
रहत निरंतर अंतरहि कठिन पराजय-पीर ।
आवो सुत मम हृदय लागि सीतल करहु सरीर । ५८
लेहु माय कहि मोहिं पुकारी ।
सोइ भावन जिमि निज महतारी ।
सत संबत लौं रह्यौं अधूरी ।
करौ न आज भाव सोइ पूरी । ५९
अतिहि अकिंचन भारत-बासा ।
अतिहि छीन हिंदुन की आसा ।
भूलि बृटिश बल धारि सनेहू ।
भारत-सुतन गोद करि लेहू । ६०
कहि कृष्ण इन्हें मति तुच्छ करौ ।
नहि कीटहु तुच्छ बिचार धरो ।
इनहुँ कहं जीवन देह दया ।

इनहुँ कहँ ज्ञान सनेह मया ॥६१॥

इनहुँ कहँ लाज तुषा ममता ।

इनहुँ कहँ क्रोध क्षुधा समता ।

इनहुँ तन सोनित हाड़ तुचा ।

इनहुँ कहँ आखिर ईस रचा ॥६२॥

कबहुँ कबहुँ अबहुँ सोई उदय होत चित आस ।

इनसों करहु न कुँअर तुम कबहुँ जीय उदास ॥६३॥

सोई परम पवित्र भुव आये अहो कुमार ।

ताहि न समझहु तुच्छ तुम सो संबंध बिचार ॥६४॥

पालत पच्छिहु जो कुँअर करि पिंजरन महँ बंद ।

ताहू कहँ सुख देत नर जामें रहे अनंद ॥६५॥

सोई सुख लहि घरहु में गावत विविध बिहंग ।

जतनहिं सों बस होत है बन के मत्त मतंग ॥६६॥

कोकिल-स्वर सब जग सुखी बायस-शब्द उदास ।

यह जग कों कह देत है वह कह लेत निकास ॥६७॥

केवल यह भाखै मधुर वह कठोर रव नित ।

तासों जग चाहे सबै मधुर सरल बस चित ॥६८॥

हम तुव जननी की निज दासी ।

दासी-सुत मम भूमि-निवासी ।

तिनको सब दुख कुँअर छुड़ावो ।

दासी की सब आस पुरावो ॥६९॥

मेटहु भय कर अमय दिखाई ।

हरहु बिपति बच मधुर सुनाई ।

बृटिश-सिंह के बदन कराला ।

लखि न सकत भयभीत भुआला ॥७०॥

फाटत हिय जिय थर थर कंपत ।

तेज देखिकै दृग जुग मंपत ।

कहि न सकत मन को दुख भारी ।

भरत नैन जुग अंबरल भारी ॥७१॥

सौदागर मेलुआ जहाजी ।

गोरा धरमपती जग काजी ।

सबहिं राज सम पूजन करहीं ।

सबको मुख देखत ही डरहीं ॥७२॥

तेज चंड सो हरहु कुमार ।

पोंछहु मम दुख को जल-धारा ।

ले भारत-बासी मम सुत दिग ।

बैठहु छिनक लखहु छवि भरि दृग ॥७३॥

लखहु लखहु सुत आनंद भारी ।

कैसो छाये भुवन मँभारी ।

तुमहिं देखि सब पुलकित गाता ।

गद्गद गल कहि सकहि न बाता ॥७४॥

कहहि धन्य यह रैन धन्य दिन ।

धन धन घरी आज धन पल छिन ।

प्रेम-अश्रु-जल बहहि नैन तें ।

जिअहु कुँअर सब कहहिं बैन तें ॥७५॥

फिरहु कुँअर जब जननी पासा ।

कहियो पूरहिं मम मन-आसा ।

मिथ्या नहिं कछु याके माहीं ।

राजभक्त भारत-सम नाहीं ॥७६॥

लेहिं प्रात उठिकै तुव नामा ।

करहिं चित्र तव देखि प्रनामा ।

तुमरे सुख सों सब सुख पावैं ।

छल तजि सदा तुवहि गुग गावैं ॥७७॥

यह कहि भारत नैन भरि आँवर बदन छिपाय ।

दे असीस जिय सों नृपहि भई अदृश्य सुहाय ॥७८॥

बजे बृटिश डंका सघन गहगह शब्द अपार ।

जय रानी विक्टोरिया जै जुवराज-कुमार ॥७९॥

पूर्ण कोरस

उदयो भानु है आजु या देस माहीं ।

रहयो दुःख को लेसहु सेस माहीं ।

महाराज अलवर्त या भूमि आये ।

अरे लोग धाबो बजावो बघाये ॥८०॥

छुटीं तोप पहरिं धुजा गरजे गहकि निसान ।

भुव-मंडल छलभल भयो राजकुमार-प्रयाण ॥८१॥



श्री पंचमी

फरवरी १८७५ की 'कवि वचन सुधा' में
प्रकाशित

श्री पंचमी प्रथम बिहार-दिन मदन महोत्सव भारी ।
भरन चलीं सब मिलि पीतम कों घर घर तें ब्रज-नारी ।
नव-सत साज-सिंगार सजे कंचुकि सुइइ सैवारी ।
लहैकति तन-दुति नवजोवन तें तापै तनसुख सारी ।
गावत गीत उमगि ऊँचे सुर मनहुँ मदन-मतवारी ।
गलिन गलिन प्रति पायल भ्रमकति

दमकति तन दुति-न्यारी ।

मदन दुहाई फेरति डोलै विरद वसंत पुकारी ।
सजे सैन सी उमड़ी आवहिं जीतन कों गिरधारी ।
ललिता, चंद्रभगा, चंद्रावलि, ससिरेखा सुकुमारी ।
स्यामा, भामा, नाम, बिसाखा, चम्पक-ललिका प्यारी ।
सब मधि राधा सुखवि अगाधा श्रीवृषभानु-दुलारी ।
कर मैं लै चम्पक तबला सी सोहत प्रान-पियारी ।

जसुमति फगुआ देत सबनि कों भूषन बसन सैवारी ।
सो सुख सोभा निरखि होत तहैं 'हरीचंद' बलिहारी ।
अंबर उमत अबिर अरगजा चलत रंग पिचकारी ।
डफ बाजत गावत मनु भेरी जीति जगत-गति सारी ।
बहुँचीं नंद-भवन सब मिलि कै नव नव जोवनवारी ।
निरख्यौ मुख ससि प्रान-पिया को दीनो तन-मन वारी ।
कियो खेल आरंभ प्रथमहीं पिय सों भानु-कुमारी ।
केसर छिरकि चंद मुख माइयो आम-मौर सिर धारी ।
तिय के भरत खेल माव्यौ मधि नर-नारिन के भारी ।
उड़यो रंग केसर चहुँ दिसि तें भइ अबीर लँघियारी ।
निलज भरत अंकम आपसु मैं देत उचारी गारी ।
हो हो करि धावत गावत मिलि देत परस्पर तारी ।



अथ श्री सर्वोत्तम-स्तोत्र (भाषा)

लीयों में छपे इसके प्रथम संस्करण की सूचना
'कवि वचन सुधा' के सं. १९३४ सन् १८७७ ।
के अंक द्वारा दी गयी थी ।

जयति आनंद रूप परमानंद कृष्णमुख
कृपानिधि देवि उद्धारकारी ।
स्मृति मात्र सकल आरतिहरन गूढ़
गुन भागवत अथ लीनो बिचारी ।
एक साकार परब्रह्म स्थापन-करन
चारहु वेद के पारगामी ।
हरन मायावाद बहुवाद नास करि
भक्ति-पथ-कमल को दिवस स्वामी ।
शूद्र ललना लोक उदरन सामर्थ
गोपिकाधीश कृत अंगिकारी ।

बल्लमी कृत मनुज अंगिकृत जनन
पै धरन मर्याद बहु करुनधारी ।
जगत-व्यापक दान करत सब वस्तु को
चरित जाके सकल अति उदारा ।
आसुरी जनन मोहन करन हेत यह
व्याज सों प्रकृति इव रूप धारा ।
अग्नि अवतार बल्लभ नाम शुभ रूप
सदा सज्जनन-हित करत जानी ।
लोक-शिक्षा-करन कृष्ण की भक्ति करि ।
निखिल जग इष्ट के आपु दानी ।

सर्व लक्ष्मणनि-संपन्न श्रीकृष्ण को
 ज्ञान प्रभु देत गुरु रूप धारी ।
 सदा सानंद तुलिल पद्मदल-सरिस
 नयन जुग जगत संतापहारी । ६
 कृपा करि दृष्टि की वृष्टि बर्धित किए
 वासिका दास पति परम प्यारे ।
 रोग दृग करन मुरखित भक्ति द्वेषिगन
 भक्तजन चरन सेवित दुलारे । ७
 भक्तजन सुख-सेव्य अति दुराराध्य
 दुरलभ कुंज पद अग्र तेजधारी ।
 वाक्य रस-करन पूरन सकल जनन
 मन भागवत-पय-सिंधु-मधनकारी । ८
 सार ताको जनि रास बनितान के
 भाव सों सकल पूरित सुमेसा ।
 होत सनमुख देत प्रेम श्रीकृष्ण को
 अविमुक्ति देत लखि बहत देसा । ९
 रास लीकैक तात्पर्य-मम रूप मुनि
 देत करि कृपा बहु कथा ताकी ।
 त्यागि सब एक अनुभव करहु विरह को
 यहै उपदेस बानी सु जाकी । १०
 भक्ति आचार उपदेस नित करत पुनि
 कर्म मारग प्रवर्तन सु कीनो ।
 सदा यागादि मैं भक्ति मारग एक
 करहु साधनहि उपदेस दीनो । ११
 पूर्ण आनंद-माय सदा पूरन काम ।
 वाक्य-प्रति निखिल जग विबुध भूषा ।
 कृष्ण के सहस शुभ नाम निज मुख कहे
 भक्ति पर एक जाको सरूपा । १२
 भक्ति आचार उपदेस हित शास्त्र के
 वाक्य नाना निरुपन सु कीने ।
 भक्त-जन सदा घेरे रहत जिनन निज
 प्रेम-हित प्रान-प्रन त्यागि दीने । १३
 निज दास अर्थ-साधन अनेकन किए
 जदपि प्रभु आप सब शक्तिकारी ।
 एक भुव लोक प्रचलित करन
 भक्तिपथ कियो निज वंश पितु रूप धारी । १४
 निज विमल वंस में परम माहात्म्य प्रभु
 धरयो सब जगत सदेहहारी ।
 पतिव्रता पति परलौकिकैहिक दान
 करन अधिकार जन को बिचारी । १५

गूढ़ भति हृदय निज अन्य अनभक्त को
 सकल आशय आपु कहत प्यारे ।
 जग उपासन आदि मारगादीन मैं
 मुग्ध जन-मोह के हरनवारे । १६
 सकल मारगन सों भक्ति मारग बीच
 अति विलक्षण सु अनुभवहि मानै ।
 पृथक कहि शरण को मार्ग उपदेस करि
 कृष्ण के हृदय की बात जानै । १७
 प्रति क्षण गुप्त लीला नव निकुंज को
 भरि रही चित्त मैं सदा जाके ।
 सोइ कथा स्मरण करि चित्त आक्षिप्तवत
 भूलि गइ सकल सुधि आये ताके । १८
 ब्रज जिय ब्रजवास अतिहि प्रिय पुष्टि
 लीला-करन सदा एकांत-चारी ।
 भक्तजन सकल इच्छा सुपूरन-करन
 अतिहि अज्ञात लीला बिहारी । १९
 अतिहि मोहन निरासक्त जग भक्त
 मात्रासक्त पतित पावन कहाई ।
 जस-गान करत जे भक्त तिनके
 हृदय कमल मैं वास जाको सदाई । २०
 स्वच्छ पीयूष लहरी सइस निज जसनि
 तुच्छ करि अन्य रस दिये बहाई ।
 पर रूप कृष्ण-लीला अमृत रस
 अखिल जन सीचि प्रेम मैं दिए भिजाई । २१
 सदा उत्साह गिरिराज के दास में
 सोई लीला प्रेम-पूर गाता ।
 यज्ञ हवि हरत पुनि यज्ञ आपुहि करत
 अति बिसद चारहु फल के दाता । २२
 सुभ प्रतिज्ञा सत्य जगत उद्धार की
 प्रकृति सों दूर बहु नीति-ज्ञाता ।
 कीर्ति वर्द्धन करी सूत्र को भाष्य करि
 कृष्ण इक तत्व के ज्ञान-दाता । २३
 तूल मायावाद दहन-हित अग्नि वपु
 ब्रह्म को वाद जग प्रगट कीनो ।
 निखिल प्राकृत रहित गुनन भूषित सदा
 मंद मुसुकानि मन चोरि लीनो । २४
 तीनहुँ लोक भूषन भूमि भाग्य वर
 सहज सुंदर रूप वेद-सार ।
 सदा सब भक्त पार्थित चरन कमल
 रज धन रूप नीमि लक्ष्मण-कुमार । २५

एक सत आठ ए नाम अभिराम नित

प्रेम सों जे जगत माँहि गावै ।

परम दुर्लभ कृष्ण-अधर-अमृत-पान

स्वाद करि सुलभ ते सदा पावै ॥६॥

नाम आनंदनिधि वल्लभाधीश को

बिहलेश्वर प्रकट करि ।

छोड़ि साधन सकल एक यह गाढ़के

परम संतोष 'हरिचंद' पायें

इति श्री मद्भिठलनाथ-चरण-पंकज-पराग-लेपना-

पसारितनिखिलकल्मष हरिश्चन्द्रकृत

भाषान्तरित कीर्तनस्वरूप श्री सर्वोत्तम स्तोत्र

समाप्तिमगमत् ॥



निवेदन-पंचक

वर्षा न होने पर सोमवार आसाढ़ शुक्ल १२
सं. १९३३(सन् १८८६) की 'कवि वचन सुधा'
में यह रचना प्रकाशित की गयी थी । इसके
अगले अंक में सूचना है कि जिस दिन यह
कविता प्रकाशित हुई उसी दिन वर्षा हुई ।

श्याम घन अब तौ जीवन देहु ।

दुसह दुखद दावानल ग्रीष्म सों बचाइ जग लेहु ।

तृनावर्त नित धूर उड़ावत बरसौ कह ना मेहु ।

'हरीचंद' जिय तपन मिटाओ निज जन पै करि नेहु ।१

श्याम घन निज छबि देहु दिखाय ।

नवल सरस तन साँवल चपल पीताम्बर चमकाय ।

मुक्तमाल बगजाल मनोहर दृगन देहु बरसाय ।

श्रवन सुखद गरजनि बंसी धुनि अब तौ देहु सुनाय ।

ताप पाप सब जग को नासौ नेह-मेह बरसाय ।

'हरीचंद' पिय द्रवहु दया करि करुनानिधि ब्रजराय ।२

श्याम घन अब तौ बरसहु पानी ।

दुखित सबै नर नारी खग मृग कहत दीन सम बानी ।

तपत प्रचण्ड सूर निरदय ह्वै द्रवहु हाय भुरानी ।

'हरीचंद' जग दुखित देखि कै द्रवहु आपुनो जानी ।३

कितै बरसाने-वारी राधा ।

हरहु न जल बरसाइ जगत की पाप-ताप-मय बाधा ।

कठिन निदाघ लता वीरुध तुन पसु पंछी तन दाधा ।

चातक से सब नभ दिसि हेरत जीवन बरसन साधा ।

तुम करुनानिधि जन-हितकारिनि-दया-समुद्र अगाधा ।

'हरीचंद' यही तैं सब तजि तुव पद-पदुम अराधा ।४

जगत की करनी पै मति जैये ।

करिकै दया दयानिधि माधो अब तौ जल बरसेये ।

देखि दुखी जग-जीव श्याम घन करि करुना अब ऐये ।

'हरीचंद' निज बिरद याद करि सब को जीव बचैये ।५



सर्व लक्ष्मननि-संपन्न श्रीकृष्ण को
 ज्ञान प्रभु देत गुरु रूप धारी ।
 सदा सानंद तुलिल पद्मदल-सरिस
 नयन जुग जगत संतापहारी । ६
 कृपा करि दृष्टि की दृष्टि वर्धित किए
 वासिका दास पति परम प्यारे ।
 रोग दृग करन मुरखित भक्ति द्वेषिगन
 भक्तजन चरन सेवित दुलारे । ७
 भक्तजन सुख-सेव्य अति दुराराध्य
 दुरलभ कुंज पद अग्र तेजधारी ।
 वाक्य रस-करन पूरन सकल जनन
 मन भागवत-पय-सिंधु-मथनकारी । ८
 सार ताको जनि रास बनितान के
 भाव सों सकल पूरित सुमेसा ।
 होत सनमुख देत प्रेम श्रीकृष्ण को
 अविमुक्ति देत लखि बहत देसा । ९
 रास लीकेक तात्पर्य-मम रूप मुनि
 देत करि कृपा बहु कथा ताकी ।
 त्यागि सब एक अनुभव करहु बिरह को
 यहै उपदेस बानी सु जाकी । १०
 भक्ति आचार उपदेस नित करत पुनि
 कर्म मारग प्रवर्तन सु कीनो ।
 सदा यागादि मैं भक्ति मारग एक
 करहु साधनहि उपदेस दीनो । ११
 पूर्ण आनंद-माय सदा पूरन काम ।
 वाक्य-प्रति निखिल जग विबुध भूषा ।
 कृष्ण के सहस्र शुभ नाम निज मुख कहे
 भक्ति पर एक जाको सरूपा । १२
 भक्ति आचार उपदेस हित शास्त्र के
 वाक्य नाना निरूपन सु कीने ।
 भक्त-जन सदा घेरे रहत जिनन निज
 प्रेम-हित प्रान-प्रन त्यागि दीने । १३
 निज दास अर्थ-साधन अनेकन किए
 जदपि प्रभु आप सब शक्तिकारी ।
 एक भुव लोक प्रचलित करन
 भक्तिपथ कियो निज वंश पितु रूप धारी । १४
 निज विमल वंस में परम माहात्म्य प्रभु
 धरयो सब जगत सदेहहारी ।
 पतिव्रता पति परलोकिकैहिक दान
 करन अधिकार जन को बिचारी । १५

गूढ़ भति हृदय निज अन्य अनभक्त कों
 सकल आशय आपु कहत प्यारे ।
 जग उपासन आदि मारगादीन मैं
 मुग्ध जन-मोह के हरनवारे । १६
 सकल मारगन सों भक्ति मारग बीच
 अति विलक्षण सु अनुभवहि मानै ।
 पृथक कहि शरण को मार्ग उपदेस करि
 कृष्ण के हृदय की बात जानै । १७
 प्रति क्षण गुप्त लीला नव निकुंज को
 भरि रही चित्त मैं सदा जाके ।
 सोइ कथा स्मरण करि चित्त आक्षिप्तवत
 भूलि गइ सकल सुधि आये ताके । १८
 ब्रज जिय ब्रजवास अतिहि प्रिय पुष्टि
 लीला-करन सदा एकांत-चारी ।
 भक्तजन सकल इच्छा सुपूरन-करन
 अतिहि अज्ञात लीला बिहारी । १९
 अतिहि मोहन निरासक्त जग भक्त
 मात्रासक्त पतित पावन कहाई ।
 जस-गान करत जे भक्त तिनके
 हृदय कमल मैं वास जाको सदाई । २०
 स्वच्छ पीयूष लहरी सइस निज जसनि
 तुच्छ करि अन्य रस दिये बहाई ।
 पर रूप कृष्ण-लीला अमृत रस
 अखिल जन सींचि प्रेम में दिए मिजाई । २१
 सदा उत्साह गिरिराज के वास में
 सोई लीला प्रेम-पूर गाता ।
 यज्ञ हवि हरत पुनि यज्ञ आपुहि करत
 अति बिसद चारहु फल के दाता । २२
 सुम प्रतिज्ञा सत्य जगत उद्धार की
 प्रकृति सों दूर बहु नीति-ज्ञाता ।
 कीर्ति वर्द्धन करी सूत्र को भाष्य करि
 कृष्ण इक तत्व के ज्ञान-दाता । २३
 तूल मायावाद दहन-हित अग्नि वपु
 ब्रह्म को वाद जग प्रगट कीनो ।
 निखिल प्राकृत रहित गुनन भूषित सदा
 मंद मुसुकानि मन चोरि लीनो । २४
 तीनहुँ लोक भूषन भूमि भाग्य वर
 सहज सुंदर रूप बेद-सार ।
 सदा सब भक्त पार्थित चरन कमल
 रज धन रूप नीमि लक्ष्मण-कुमार । २५

एक सत आठ ए नाम अभिराम नित

प्रेम सों जे जगत माहि गावैं ।

परम दुरलभ कृष्ण-अधर-अमृत-पान

स्याद करि सुलभ ते सदा पावैं । १६

नाम आनंदनिधि वल्लभाधीश को

बिठलेश्वर प्रकट करि दिखायो ।

छोड़ि साधन सकल एक यह गाढ़के

परम संतोष 'हरिचंद' पायो । १७

इति श्री मद्भिठलनाथ-चरण-पंकज-पराग-लेपना-

पसारितनिखिलकल्मष हरिश्चन्द्रकृत

भाषान्तरित कीर्तनस्वरूप श्री सर्वोत्तम स्तोत्रं

समाप्तिमगमत् ।।



निवेदन-पंचक

वर्षा न होने पर सोमवार आसाढ़ शुक्ल १२
सं. १९३३(सन् १८८६) की 'कवि वचन सुधा'
में यह रचना प्रकाशित की गयी थी । इसके
अगले अंक में सूचना है कि जिस दिन यह
कविता प्रकाशित हुई उसी दिन वर्षा हुई ।

श्याम घन अब तौ जीवन देहु ।

दुसह दुखद दावानल ग्रीष्म सों बचाइ जग लेहु ।

तृणावर्त नित घूर उड़ावत बरसौ कह ना मेहु ।

'हरिचंद' जिय तपन मिटाओ निज जन पै करि नेहु । १

श्याम घन निज छबि देहु दिखाय ।

नवल सरस तन साँवल चपल पीताम्बर चमकाय ।

मुक्तमाल बगजाल मनोहर दृगन देहु बरसाय ।

श्रवण सुखद गरजनि बंसी धुनि अब तौ देहु सुनाय ।

ताप पाप सब जग को नासौ नेह-मेह बरसाय ।

'हरिचंद' पिय द्रवहु दया करि करुनानिधि ब्रजराय । २

श्याम घन अब तौ बरसहु पानी ।

दुखित सबै नर नारी खग मृग कहत दैन सम बानी ।

तपत प्रचण्ड सूर निरदय ह्वै द्रवहु हाय भुरानी ।

'हरिचंद' जग दुखित देखि कै द्रवहु आपुनो जानी । ३

किते बरसाने-वारी राधा ।

हरहु न जल बरसाइ जगत की पाप-ताप-मय बाधा ।

कठिन निदाघ लता वीरुध तुन पसु पंछी तन दाधा ।

चातक से सब नम दिसि हेरत जीवन बरसन साधा ।

तुम करुनानिधि जन-हितकारिनि-दया-समुद्र अगाधा ।

'हरिचंद' यही तें सब तजि तुव पद-पदुम अराधा । ४

जगत की करनी पै मति जैये ।

करिकै दया दयानिधि माधो अब तौ जल बरसेये ।

देखि दुखी जग-जीव श्याम घन करि करुना अब ऐये ।

'हरिचंद' निज बिरद याद करि सब को जीव बचैये । ५



मानसोपायन

अर्थात्

युवराज श्रीप्रिन्स आफ वेल्स के भारतवर्ष में शुभागमन के महोत्सव में हिन्दी, महाराष्ट्री, बंगाली आदि विविध देश भाषा तथा फ़ारसी, अंगरेजी, आदि विदेश भाषा और संस्कृतछन्दों में अनेक कवि पंडित चतुर उत्साही राजभक्त जन निर्मित कविता संग्रह रूपी उपायन ।

भारत राजराजेश्वरी नन्दन युवराज

कुमार प्रिंस आफ वेल्स

के चरण कमलों में

संस्कृत भाषादि अनेक कविता ग्रन्थाकार तथा श्रीयुक्त राजकुमार
ड्यूक आफ एडिनबरा को सुमनोद्भिजलि समर्पण कर्त्ता

हरिश्चन्द्र

समर्पित तथा तस्मैव संगृहीत और प्रकाशित ।

"रत्नाकरोति भवनं गृहिणी च पद्मा देयं किमस्ति भवते जगदीश्वराय ॥
गोपीगृहीतमनसो मनसो-स्तिदैत्यम् दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण ॥"

पटना—'खंगविलास'—प्रेस—बांकीपुर ।

साहब प्रसाद सिंह ने मुद्रित किया ।

सन् १८८८

मानसोपायन

अग्रजोपम स्नेह-पूजास्पद प्रिय कुमार,

जब आपसे कुछ भी कहने की इच्छा करते हैं तो चित्त में कैसे विविध भाव उत्पन्न होते हैं । कभी भारतवर्ष के पुरावृत्त के प्रारंभ काल से आज तक जो बड़े बड़े दृश्य यहाँ बीते हैं और जो महायुद्ध, महा शोभा और महा दुर्दशा भारतवर्ष की हुई है, उनके चित्र नेत्र के सामने लिख जाते हैं । कभी हिंदुओं की दशा पर करुणा उत्पन्न होती है, कभी स्नेह कहता है कि हाँ यही अवसर है खूब जी खोल कर जो कुछ हृदय में बहुत काल से भाव और उद्गार संचित है, उनको प्रकाश करो । पर साथ ही राजभक्ति और आपका प्रताप कहता है कि खबरदार हद से आगे न बढ़ना, जो कुछ बिनती करना बड़ी नम्रता और प्रमाण के साथ । इधर नई रोशनी के शिक्षित युवक कहते हैं — 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो' । सुनते सुनते जी थक गया, कोई मस्तिष्क की बात कहो । उधर प्राचीन लोग कहते हैं हमारे यहाँ तो 'सर्वदेवमयो नृपः' लिखा ही है जितना बन सके इनका आदर करो । कितने यहाँ के निवासी ऐसे मूढ़ हैं कि इन बातों को अब तक जानते ही नहीं । जानें कहाँ से, हजारों बरस से राज-सुख से वंचित हैं । आज तक ऐसा शुभ संयोग आया ही न था कि आप सा सुखद स्वामी इनके नेत्र-गोचर हो । इसी से तो आप के आगमन से हम लोगों को

क्या आनंद हुआ है, वह कौन जान सकता है । प्रिय ! हम सब स्वभावसिद्ध राजभक्त हैं । विचारे छोटे पद के अंगरेजों को हमारे चित्त की क्या खबर है, ये अपनी ही तीन छटाँक पकाने जानते हैं । अतएव दोनों प्रजा एकरस नहीं हो जाती ; आप दूर बसे, हमारा जी कोई देखनेवाला नहीं, बस छुट्टी हुई । आपके आगमन के केवल स्मरण से हृदय गद्गद और नेत्र अश्रुपूर्ण हमीं लोगों के हो जाते हैं और सहज में आप पर प्राण न्योछावर करनेवाले हमीं लोग हैं, क्योंकि राजभक्ति भरतखंड की मिट्टी का सहज गुण और कर्तव्य धर्म है, पर कोई कलेजा खोल कर देखनेवाला नहीं । जाने दो इन पचड़ों से क्या काम । जब आप का आगमन सुना तभी से आपके यश-रूपी कीर्तिस्तंभ को आपके शुभागमन के स्मरणार्थ स्थापन करने की इच्छा थी, पर आधि-व्याधि से यह सुयोग तब न बना । यद्यपि कविता-कलाप तो उसी समय समाचार पत्रों में सूचना देकर एकत्र किया था, परन्तु उनका प्रकाश न भया था सो अब जब कि हम दीनों की अवलांब अब श्रीमती महारानी ने भारत-राजराजेश्वरी का पद ग्रहण किया और इस महत् महान से भारतवर्ष को अपनी अपार कृपा से सहज कृतकृत्य किया तो इसी शुभ मंगल अवसर पर यह पुस्तक प्रकाश करके हम भी आपके कोमल चरणों

में समर्पित करते हैं, कृपा पूर्वक स्वीकार कीजिये और इसको कविता नहीं बरञ्च अपनी प्रजा के चित्त के पूर्ण उद्गार और समुच्छवास समझिए । जिस तरह आप और अनेक कौतुक देखते हैं, कृपापूर्वक इस प्रजा के चित्तरूपी आतशी शीशे से (क्योंकि वह आपके

वियोग और अपनी दुर्दशा से संतप्त हो रहा है) बनी हुई सैरबीन की भी सैर कीजिए और उस परिश्रम को क्षमा कीजिए जो इसके पढ़ने में हो, क्योंकि हमने तो चाहा कि थोड़ा ही लिखें और यह बहुत थोड़ा ही है, पर आपको श्रम देने को बहुत है ।
१ जनवरी १८७७ ई.

हरिश्चंद्र

आओ आओ हे जुवराज ।

धन-धन भाग हमारे जागे पूरे सब मन-काज ।
कहैं हम कहैं तुम कहैं यह धन दिन कहैं यह सुभ संयोग ।
कहैं हतभाग भूमि भारत की कहैं तुम-से नृप लोग ।
बहुत दिनन की सूखी, डाढ़ी, दीना भारत भूमि ।
लहि है अमृत-वृष्टि सो आनंद तुव पद-पंकज चूमि ।
जैहि दलमल्यौ प्रबल दल लैकै बहु विधि जवन-नरैस ।
नास्यौ धरम करम सबहिन के मारि उजार्यौ देस ।
पृथ्वीराज के मरें लख्यौ नहिं सो सुख कबहुँ नैन ।
तरसत प्रजा सुनन को नित हीं निज स्वामी के बैन ।
जदपि जवनगन राज कियो इतही बसिकै सह साज ।
पै तिनको निज करि नहि जान्यौ कबहुँ हिंदु समाज ।
अकबर करिकै बुद्धिमता कछु सो मेट्यौ सदेह ।
सोउ दारा सिकोह लौं निबही औरंग डारी खेह ।
औरहु औरंगजेब दियो दुख सब विधि परम नसाय ।
निज कुल की मरजाद-मान-बल-बुधिहू साथ घटाय ।
ता दिन सों दुरलभ राजा-सुख इन्हिं इकंत निवास ।
राजभक्ति उत्साहादिक को इन कहैं नहिं अम्यास ।
जदपि राज तुव कुल को इत बहु दिन सों बरसत छेम ।
तदपि राज-दरसन बिनु नहिं नृप प्रज माहिं कछु प्रेम ।
सो अभाव सब तुव आवन सों मिट्यौ आज महाराज ॥
पूरयो प्रेम देस-देसन में प्रमुदित प्रजा-समाज ।
आवहु प्रिय नैनन मग बैठो हिय मै लेहुं छिपाय ।
जाहु न फिरि तजि भारत को तुम हम सों नेह लगाय ।

गुजराती भाषा

(गरबी हरिश्चन्द्रकृत)

आवो आवो भारत राज भारत जवाने ।
ईई दरसन दुख एनूं जनम जनमनो खोवाने ।
ज्यम चन्द्रोदक जोई चकोर जिय राचे रे ।
ज्यम नव घन आता लखी मोर बन नाचे रे ।
तेहूं भारतवासी जनो तवागम चाहे जी ।
लखि सुख ससि राजकुमार मुदित मन माहे जी ।
आवो आवो प्यारा राजकुमार नई दऊं जावाने ।
वाला भारत मां सुख बसो सनेह बधावाने ।
नई भियूं प्रानप्रिय आवे अरज करूं बोलीने ।
देऊं आज लखाड़ी तमने हिरदो खोलीने ।
म्हारा भारतवासी अनाथ नाथ बने नाथे जी ।
तेथी कोंवर बिराजे अइज अम्हारे साथे जी ।
ज्यारे जवन-जलधि जले पृथ्वीराज-रवि नास्यौ रे ।
आजे तयार थकी नहीं भारत तेज प्रकास्यौ रे ।
ते तुव पद-नख-ससि किरिणै बाणो वापो जी ।
फरी फरया भाग्य भारत नां आनंद छायो जी ।
वाला बैठइयो नव मुखबंद कामगंगारा नैणावे ।
वारी श्रवण फड़या श्रवणे तव अमृत बैणावे ।
आजे उमग्यौ आनंद रस सुख चारे पासे छायो छे ।
तेथी तव जस परम पवित्र कविये गायो छे ।

मानसोपायन भारतेन्दु द्वारा सम्पादित तथा संग्रह में निम्नलिखित सज्जनों की कविताएं प्रकाशित हुई थीं—

१. श्रीबद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन	हिंदी	२ सवैया २४ दोहे-सोरठे
२. श्रीरामराज	"	१९ " "
३. श्रीकल्लू जी	"	३ " "
४. श्रीलीलाबिहारी शुक्ल	"	२ कवित्त
५. श्रीनारायण कवि	"	१ कुंडलिया ७ दोहे सोरठे
६. श्रीलोकनाथ शर्मा	"	१० " "
७. श्रीकमलाप्रसाद मुं.	"	१ बो. ७ कवित्त, छप्पय, सवैया
८. श्रीसंतलाल	"	९ छप्पय
९. श्रीब्रजचंद	"	१० दोहे ।
१०. श्रीसंतोषसिंह शर्मा	पंजाबी २४ दोहे, ५ कवित्त	
११. श्रीदामोदर शास्त्री	महाराष्ट्री ७ पद	

पं. बापूदेव शास्त्री, पं. सखाराम भट्ट, पं. वैकटेश शास्त्री, पं. विष्णुदत्त, पं. राजाराम गोरे, पं. कैलाशचंद्र शिरोमणि, पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. गदाधर शर्मा मालवीय, पं. आवा शास्त्री हलदीकर, पं. बिहारी शर्मा चतुर्वेदी, पं. गोपाल शर्मा, पं. लक्ष्मीनाथ द्रविड़, पं. रामचंद्र शास्त्री, पं. रामशरण त्रिपाठी, पं. रामचंद्र, पं. अनंतराम भट्ट, पं. चित्रधर मैथिल, पं. गोविंद शर्मा, पं. माधव राम, पं. भवानीप्रसाद, पं. रामप्रसाद मिश्र, पं. गोविन्द मिश्र, पं. श्रीधर मैथिल, पं. शालिग्राम, पं. हरिनाथ द्विवेदी, गोस्वामी रामगोपाल शर्मा, पं. ईश्वरदत्त, पं. दामोदर शास्त्री, पं. रामकृष्ण पटवर्धन, पं. कान्तानाथ भट्ट, पं. शिवनारायण शर्मा ओझा, पं. विश्वनाथ शर्मा, पं. गोविंद भरद्वाज, पं. राम ब्रह्म शास्त्री, पं. विश्वनाथ शास्त्री, पं. परमेश्वर मैथिल, नारायण पं., पं. विजयनाथ, पं. नंदकुमार शर्मा, पं. सोहन शर्मा, पं. भबू शास्त्री अष्टपुत्र, पं. विश्वेश्वरनाथ, पं. उदयानंद शर्मा, पं. राजेश्वर द्रविड़, पं. केशव शास्त्री पर्वतीय, पं. काशीनाथ भट्ट, पं. बापू शर्मा, पं. शीतला प्रसाद, पं.

गणेशदत्त, पं. बस्ती राम द्विवेदी, पं. दामोदर भरद्वाज, पं. शिवकुमार मिश्र पं. गंगाधर शास्त्री तैलंग, पं. रामकृष्ण पटवर्धन, पं. राजाराम, पं. राम मिश्र, पं. सरयूप्रसाद, पं. शीतलाप्रसाद त्रिपाठी, श्री मकरध्वज सिंह, पं. कन्हैयालाल पांडेय, पं. बेचनराम त्रिपाठी, पं. राधाकृष्ण, पं. कालीप्रसाद शिरोमणि, पं. लक्ष्मीनाथ कवि, पं. माधोदास और पं. राधाकृष्ण ने संस्कृत में श्लोक लिखे थे, जो इकतीस पृष्ठों में छपे थे ।

इसके अनंतर सत्रह पृष्ठों में तालिब, अहकर, संतलाल, हसन, नज्म, अमीर और जिया की उर्दू ४८ पृष्ठों में बंगला, ४ पृष्ठों में अंग्रेजी और ८ पृष्ठों में तैलगू आदि भाषाओं की रचनाएं संगृहीत हैं । सन् १८७६ ई. में प्रिंस ऑफ वेल्स ने काशी में अस्पताल की नींव डाली थी । जिसका नाम किंग एडवर्ड हास्पिटल रखा गया था । यही नाम बदल कर शिवप्रसाद गुप्त अस्पताल हुआ । उस पर तीन तारीखें भी उर्दू में हैं और अमीर ने हरिश्चंद्र की प्रशंसा भी मुसबस के अंत में की है ।



प्रातः स्मरण स्तोत्र*

रचना-काल-सन्-१८७७

सुमिरौ राधाकृष्ण सकल मंगलमय सुंदर ।
सुमिरौ रोहिनि-नंदन रेवतिपति कर हलधर ।
जसुदा, कीरति, भानु, नंद, गोपी-समुदाई ।
बृन्दावन गोकुल गिरिवर बृज-भूमि सुहाई ।
कालिन्दी कलि के कलुष सब हारिनि सुमिरौ प्रेम-बल ।
ब्रज गाय बच्छ तुन तरु लता पसु पंखी सुमिरौ सकल ।१

श्री गोपीजन-रमण

सुमिरौ श्री चंद्रावली मोहन-प्रान पियारी ।
श्री ललिता रस-सलिता परम जुगल हितकारी ।
रस-शाखा हरिप्रिया विशाखा पूरन-कामा ।
परम सभागा चंद्रभागा, रस-धामा भामा ।

श्री चंपकलतिका, इंदुलेखा राधा-सहचरि सहित ।
श्री स्वामिनि की आठो सखी नित सुमिरौ करि प्रेम हित ।२

अष्ट सखा-छप्पय

श्रीदामा सुखधाम कृष्ण को परम प्रान-प्रिय ।
वसुदामा शुभ नाम दाम मनिमय जाके हिय ।
सुबल ब्रबल परिहास-रसिक मंगल मधु मंगल ।
लोक-सुखद ब्रज-लोक कृष्ण अनुरूप कृष्ण-फल ।
अरजुन-पालक गोवत्स बहु ऋषभ वृषभ जूधाधिपति ।
हरिजू के आठ सखा सदा सुमिरत मंगल होत अति ।३

द्वारिका की लीला स्मरण

धाम द्वारिका कनक-भवन जादव नर-नारी ।

* हरिप्रकाश यंत्रालय में पत्राकार छपा था, पर उसमें समय नहीं दिया है । कवि-वचन सुधा (१-४-१८७७) में छपने की सूचना निकली थी ।

उदव, सात्यकि, नारद, गरुड, सुदर्शनचारी ।
रुक्मिणि, सत्या, मद्रा, शैव्या, नागनजिती पुनि ।
जांबवती, लक्ष्मणा, मित्रविंद, रोहिणि गुनि ।
इन आदि नारि सोलह सहस इनके सुत परिवार सह ।
प्रद्युम्न पार्थ अनिरुद्ध ज़ुत सुमिरौ दुख-नासन दुसह १४

अथ लीला स्मरण

देवकि के घर जननि नंद घर में चलि आए ।
बकीं तृनावृत अघ वक बछ बृष केसि नसाए ।
बाल-रूप कालीमर्दन सुरपति मद-मंजन ।
गोचारक रस रास-रमन गोपी-मन-रंजन ।
कंसादि नास-कर सकल भुव-भार-उतारन रूप धरि ।
सुमिरौ लीलामय नंद-सुत

अटल नित्य ब्रज-बास करि १५

अथ अवतार स्मरण

मत्स्य कच्छ बारह प्रगट नरहरि बपु बावन ।
परशुराम श्री राम लक्ष्मण भरत शत्रुहन ।
पुनि बलराम सुबुद्ध कल्कि हरि दस बपु धारी ।
चोबिस रूप अनेक कोटि लीला विस्तारी ।
अवतारी हरि श्रीकृष्ण बपु शुद्ध सच्चिदानंदधन ।
नित सुभिरत मंगल होत अति

सुख पावत सब भक्त-जन १६

अथ समुदाय स्मरण

गंगा गीता शंख चक्र कौमोदकि पद्मा ।
नंदक सारंग वान पास पद्मा-सुख सद्मा ।
वंशी माला श्रृंग वेत्र पीताम्बरादि कल ।
पुण्यधाम हरि वासर वैष्णव धर्म बिगत मल ।
हरि-प्रेम दास्य विश्वास दृढ़ तिलक छाप माला सुमिरि ।
तुलसी हरि-प्रिय-समुदाय भवि

नित नित सुमिरौ उठि प्रात हरि १७

अथ श्री भागवत स्मरण

निखिल निगम को सार दिव्य बहु गुण-गण-भूषित ।
आदि अनादि पुरान सरस सब भाँति अदूषित ।
शुक मुख भाखित मुक्त कथा परमारथ सोधक ।
प्रह्म-ज्ञानमय सत्यवती-नंदन मन-बोधक ।
दस लक्ष्मन लक्षित पाप-हर द्वादस शाखा सहित वर ।
सुमिरौ अष्टादस सहस श्री ग्रंथ भागवत मोह-हर १८

अथ प्राचीन भक्त स्मरण

सुमिरौ शुक नारद शिव अज नर व्यास परासर ।
बालमीक पृथु अम्बरीष प्रह्लाद पुन्य-कर ।
पुण्डरीक भीष्मक शौनक पाण्डव गंगा-सुत ।
हनुमान सुग्रीव विभीषन अंगद कपि ज़ुत ।
शाहिल्य गर्ग मैत्रेय जय विजय कुमुद कुमुदाक्ष मजि ।
हरि-भक्त सुमिरि मन प्रात उठि
नित प्रथमहि गृह-काज तजि १९

अथ गुरु-परंपरा स्मरण

सुमिरौ श्री गोपीपति पद-पंकज अरुनार ।
श्री शिव नारद व्यास बहुरि शुकदेव पियारे ।
विष्णु स्वामि पूनि अरु-अवली सत सप्त सुमिरि मन ।
बिल्वमंगल पुनि सुमिरौ थापन निज मत धरि तन ।
श्री बल्लभ बिठ्ठल भव-हरन पुष्टि-प्रकाशक जग बिमल ।
सुमिरौ नित प्रेम-परंपरा

गुरुजन की निज भक्ति-बल १२०

अथ गुरु-स्मरण

श्री बल्लभ सुमिरौ अरु श्री गोपीनाथ पियारे ।
श्री बिठ्ठल पुरुषोत्तम जग-हित नर-बपु धारे ।
श्री गिरिधर गोविन्द राय पुनि बालकृष्ण कह ।
गोकुलपति रघुपति जदुपति घनश्याम-भक्ति लह ।
लक्ष्मी-रुक्मिणि-पद्मावती-पद-रज नित सिर धारिए ।
श्री बल्लभ कुल को ध्यान मन कबहुँ नाहिं बिसारिए १२१

अथ वैष्णव-स्मरण

श्री निम्बार्क रामानुज पुनि मध्व जय ध्वज ।
नित्यानंद अद्वैत कृष्ण चैतन्य व्यास भज ।
हित हरिबंश गदाधर श्री हरिदास मनोहर ।
सूरदास परमानंद कुंभन कृष्णदास वर ।
गोविन्द चतुर्भुजदास पुनि नंददास अरु छीत कल ।
नित सुमिरि प्रात गन उठत ही

हरि भक्तान के पद-कमल १२२

दोहा

द्वादस द्वादस अई पद प्रात पढ़ै जो कोय ।
हरि-पद-बल 'हरिचंद' नित मंगल ताको होय १२३



हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान*

रचना काल-सन् १८७७

अहो अहो मम प्राण प्रिय आर्य भ्रातृ-गण आज ।
 धन्य दिवस जो यह जुड़ो हिन्दी हेतु समाज ।^१
 तामें आदर अति दिये मोहिं तुम निज जन जान ।
 जो बुलवायो मोहिं इत दर्शन हित सन्मान ।^२
 जदपि न मैं जानत कछु सब विधि सों अति दीन ।
 तदपि भ्रात निज जानिकै सबन कृपा अति कीन ।^३
 भारत में यह देस धनि जहाँ मिलत सब भ्रात ।
 निज भाषा हित कट कसे हम कहैं आज लखात ।^४
 निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।
 बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सुल ।^५
 पढ़े संस्कृत जतन करि पंडित भे विख्यात ।
 पै निज भाषा ज्ञान बिन कहि न सकत एक बात ।^६
 पढ़े फारसी बहुत विध तोड़ भये खराब ।
 पानी खटिया तर रहो पूत मरे बकि आब ।^७
 अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन ।
 पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन ।^८
 यह सब भाषा काम की जब लौ बाहर बास ।
 घर भीतर नहिं कर सकत इन सों बुद्धि प्रकास ।^९
 नारि पुत्र नहिं समझहीं कछु इन भाषन माहिं ।
 तासों इन भाषन सों काम चलत कछु नाहिं ।^{१०}
 उन्नति पूरी है तबहि जब घर उन्नति होय ।
 निज सरीर उन्नति किए रहत मूढ़ सब लोय ।^{११}
 पिता विविध भाषा पढ़े पुत्र न जानत एक ।
 तासों दोउन मध्य में रहत प्रेम अविवेक ।^{१२}
 अंग्रेजी निज नारि को कोउ न सकत पढ़ाइ ।
 नारि पढ़े बिन एक डू काज न चलत लखाइ ।^{१३}
 गुरु सिखवत बहु माति लौ जदपि बालकन ज्ञान ।
 पै माता-शिक्षा सरिस, होत तौन नहिं ज्ञान ।^{१४}
 जब अति कोमल जिय रहत तब बालक तुतरात ।
 भूलत नहिं सो बात जो तबै सिखाई जात ।^{१५}
 भूलि जात बहु बात जो जीवन सीखत लोय ।
 पै भूलत नहिं बालकन सीख्यो सुनो जो होय ।^{१६}
 जिमि लै काँची मृत्तिका सब कछु सकत बनाय ।
 पै न पकाए पर चलत तामें कछु उपाय ।^{१७}

काँचे पर ता सों बनत जो कछु सो रह जात ।
 चिन्ह सदा तिमि बाल सिसु शिक्षा नाहिं भुलात ।^{१८}
 सो सिसु-शिक्षा मातु-वस जो करि पुत्रहि प्यार ।
 खान-पान खेलन समय सकत सिखाय बिचार ।^{१९}
 लाल पुत्र करि चूमि मुख विविध प्रकार खेलाइ ।
 माता सब कछु पुत्र को सहजहिं सकत दिखाइ ।^{२०}
 सो माता हिंदी बिना कछु नहिं जानत और ।
 तासों निज भाषा अहै, सबही की सिरमौर ।^{२१}
 पढ़ो लिखो कोउ लाख विध भाषा बहुत प्रकार ।
 पै जबही कछु सोचिहो निज भाषा अनुसार ।^{२२}
 सुत सों तिय सों मीत सों भृत्यन सों दिन रात ।
 जो भाषा मधि कीजिये निज मन की बहु बात ।^{२३}
 ता की उन्नति के किये सब विधि मिटत कलेस ।
 जामें सहजहिं देसकौ इन सब को उपदेश ।^{२४}
 जदपि बाहर के जनन गुन सों देत रिभाय ।
 पै निज घर के लोग कहैं सकत नाहिं समभाय ।^{२५}
 बाहर तो अति चतुर बनि कीनो जगत प्रबंध ।
 पै घर को व्यवहार सब रहत अंध को अंध ।^{२६}
 कै पहिने पतलून कै भये मौलवी खास ।
 पै तिय सके रिभाय नहिं जो गृहस्थ सुख बास ।^{२७}
 इनकी सो अति चतुरता तिनको नाहिं सुहात ।
 ताही सों प्राचीन कवि कही भली यह बात ।^{२८}
 खसम जो पूजे देहरा भूत-पूजनी जोय ।
 एकै घर में दो मता कुसल कहाँ से होय ।^{२९}
 तासों जब सब होहिं घर बिद्या-बुद्धि-निधान ।
 होइ सकत उन्नति तबै और उपाय न आन ।^{३०}
 निज भाषा उन्नति बिना कबहुं न हवै है सोय ।
 लाख अनेक उपाय यों भले करो किन कोय ।^{३१}
 इक भाषा, इक जीव इक मति सब घर के लोग ।
 तबै बनत है सबन सों मिटत मूढ़ता सोग ।^{३२}
 और एक अति लाभ यह यामें प्रगट लखात ।
 निज भाषा में कीजिये जो विद्या की बात ।^{३३}
 तेहि सुनि पावै लाभ सब बात सुनु जो कोय ।
 यह गुन भाषा और महैं कबहुं नाहीं कोय ।^{३४}

* हिंदी भाषा के परमाचार्य श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र का लेखक, जिसे बाबू साहब ने जून मास (जेष्ठ सं. १९३४) की हिंदीवर्दिनी सभा में पढ़ा था । (हिंदी प्रदीप खं. १ सं. १-२, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा "हिंदी भाषा" नाम से प्रकाशित ।

लखहु न अंगरेजन करी उन्नति भाषा माहिं ।
सब विद्या के ग्रंथ अंगरेजिन मांहि लखाहिं । १२५
सब्द बहुत परदेस के उच्चार हु न ठीक ।
लिखत कछू पढ़ि जात कछू सब बिधि परम अलीक । १२६
पै निज भाषा जानि तेहि तजत नहीं अंगरेज ।
दिन दिन याही को करत उन्नति पै अति तेज । १२७
बिबिध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक प्रकार ।
सब देसन से लै करहु भाषा माहिं प्रचार । १२८
जहाँ जौन को गुन लख्यो लियो जहाँ सो तौन ।
ताहीं सों अंगरेज अब सब विद्या के भौन । १२९
पढ़ि बिदेस भाषा लहत सकल बुद्धि को स्वाद ।
पै कृतकृत्य न होत ये बिन कछू करि अनुवाद । १३०
तुलसी कृत रामायनहु पढ़त जबै चित लाय ।
तब ताको आसय लिखत भाषा माहिं बनाय । १३१
तासों सबहीं भाँति है इनकी उन्नति आज ।
एकहि भाषा महँ अहै जिनकी सकल समाज । १३२
धर्म जुद विद्या कला गीत काव्य अरु ज्ञान ।
सबके समझन जोग है भाषा माहिं समान । १३३
भारत में सब भिन्न अति ताही सों उत्पात ।
बिबिध देस मतह बिबिध भाषा बिबिध लखात । १३४
सौम्यौ ब्राह्मन को धरम तेइ जानत वेद ।
तासों निज मत को लख्यो कोऊ कबहुँ न भेद । १३५
तिन जो भाष्यो सोइ कियो अनुचित जदपि लखात ।
सपनहुँ नहिं जानी कछू अपने मत की बात । १३६
पढ़े संस्कृत बहुत बिध अंगरेजी हूँ आप ।
भाषा चतुर नहीं भये हिय को मिट्यो न ताप । १३७
तिमि जग शिष्टाचार सब मौलवियन आधीन ।
तन सों सीखे विनु रहत भये दीन के दीन । १३८
बैठनि बोलनि उठनि पुनि हँसनि मिलनि बतरान ।
विन पारसी न आवही यह जिय निश्चय जान । १३९
तिमि जग की विद्या सकल अंगरेजी आधीन ।
सबै जानि ताके बिना रहै दीन के दीन । १४०
करत बहुत बिधि चतुरई तऊ न कछू लखात ।
नहिं कछू जानत तार में खबर कौन बिधि जाता । १४१
रेल चलत केहि भाँति सों कल है काको नाँव ।
तोप चलावत किमि सबै जरि सकल जो गाँव । १४२
वस्त्र बनत केहि भाँति सों कागज केहि बिधि होत ।
काहि कबाइद कहत हैं बाँधत किमि जल-सोत । १४३
उतरत फोटोग्राफ किमि छिन महँ छाया रूप ।
होय मनुष्यहि क्यों भये हम गुलाम ये भूप । १४४
यह सब अंगरेजी पढ़े विनु नहिं जान्यो जात ।
तासों याको भेद नहिं साधारनहि लखात । १४५

बिना पढ़े अब या समे चले न कोउ बिधि काज ।
दिन दिन छीजत जात है या सों आर्य्य समाज । १४६
कल के कल बल छलन सों छले इते के लोग ।
नित नित घन सों घटत हैं बादत है दुख सोग । १४७
मारकीन मलमल बिना चलत कछू नहिं काम ।
परदेसी जुलहान के मानहु भये गुलाम । १४८
वस्त्र काँच कागज कलम चित्र खिलौने आदि ।
आवत सब परदेस सों नितहि जहाजन लादि । १४९
इत की रुई सींग अरु चरमहि तित लै जाय ।
ताहि स्वच्छ करि वस्तु बहु भेजत इतहि बनाय । १५०
तिनही को हम पाइके साजत निज आमोद ।
तिन बिन छिन तून सकल सुख, स्वाद बिनोद प्रमोद । १५१
कछू तो बेतन में गयो कछूक राज-कर माहिं ।
बाकी सब व्योहार में गयो रख्यो कछू नहिं । १५२
निरधन दिन दिन होत है भारत भुव सब माँति ।
ताहि बचाइ न कोउ सकत निज भुज बुद्धि-बल काँति । १५३
यह सब कला अधीन है तामें इतै न ग्रन्थ ।
तासों सूफत नहिं कछू द्रव्य बचावन पंथ । १५४
अंगरेजी पहिले पढ़े पुनि बिलायतहि जाय ।
या विद्या को भेद सब तो कछू ताहि लखाय । १५५
सो तो केवल पढ़न में गई जवानी बीति ।
तब आगे का करि सकत होइ विरध गहि नीति । १५६
तैसहि भोगत दण्ड बहु विनु जाने कानून ।
सहत पुलिस की ताड़ना देत एक करि दून । १५७
पे सब विद्या की कहैं होइ जु पै अनुवाद ।
निज भाषा महँ तो सबै याको लहै स्वाद । १५८
जानि सकैं सब कछू सबहि बिबिध कला के भेद ।
बने वस्तु कल की इतै मिटे दीनता भेद । १५९
राजनीति मममें सकल पावहिं तत्व बिचार ।
पहिचानै निज धरम को जानै शिष्टाचार । १६०
दूजे के नहिं बस रहैं सीखैं बिबिध विवेक ।
होइ मुक्त दोउ जगत के भोगै भोग अनेक । १६१
तासो सब मिलि छाँड़ि कै दूजे और उपाय ।
उन्नति भाषा की करहु अहो भ्रात गन आय । १६२
बच्च्यो तनिकहू समय नहिं तासों करहु न देर ।
औसर चूके व्यर्थ की सोच करहुगे फेर । १६३
प्रचलित करहु जहान में निज भाषा करि जल ।
राज-काज दरबार में फैलावहु यह रत्न । १६४
भाषा सोधहु आपनी होइ सबै एकत्र ।
पढ़हु पढ़ावहु लिखहु मिलि छपवावहु कछू पत्र । १६५
बैर बिरोधहि छोड़ि कै एक जीव सब होय ।
करहु जतन उदार को मिलि भाई सब जोय । १६६

आलहा बिरहु को भयो अंगरेजी अनुवाद ।
 यह लखि लाज न आवई तुमहिं न होत बिखाद । ७७
 अंगरेजी अरु फारसी अरबी संस्कृति ढेर ।
 खुले खज़ाने तिनहिं क्यों लूटत लावहु ढेर । ७८
 सबको सार निकाल कै पुस्तक रचहु बनाइ ।
 छोटी बड़ी अनेक बिघ बिबिघ विषय की लाइ । ७९
 मेतहु तम अज्ञान को सुखी होहु सब कोय ।
 बाल वृद्ध नर नारि सब विद्या संजुत होय । ८०
 फूट बैर को दूरि करि बाँधि कमर मजबूत ।
 भारत माता के बने भ्राता पूत सपूत । ८१
 देव पितर सबही दुखी कष्टित भारत माय ।
 दीन दसा निज सुतन की तिनसों लखी न जाय । ८२
 कब लौं दुख सहिहौ सबै रहिहौ बने गुलाम ।
 पाइ मूढ़ कालो अरघ-सिद्धित काफिर नाम । ८३
 बिना एक जिय के भये चलिहै अब नहिं काम ।
 तासों कोरो ज्ञान तजि उठहु छोड़ि बिसराम । ८४
 लखहु काल का जग करत सोवहु अब तुम नाहिं ।
 अब कैसे आयो समय होत कहा जग माहिं । ८५
 बढ़न चहत आगे सबै जग की जेती जाति ।
 बल बुधि धन विज्ञान में तुम कहैं अबहूँ राति । ८६
 लखहु एक कैसे सबै मुसलमान क्रिस्तान ।
 हाय फूट इक हमहिं में कारन परत न जान । ८७

बैर फूट ही सों भयो सब भारत को नास ।
 तबहु न छाड़ित याहि सब बँधे मोह के फाँस । ८८
 छोड़हु स्वार्थ बात सब उठहु एक चित होय ।
 मिलहु कमर कसि भ्रातगन पावहु सुख दुख खोय । ८९
 बीती अब दुख की निंसा देखहु भयो प्रभात ।
 उठहु हाय मुँह घोड़ कै बाँधहु परिकर भ्रात । ९०
 या दुख सों मरनो, भलो, धिग जीवन बिन मान ।
 तासों सब मिलि अब करहु बेगहि ज्ञान बिधान । ९१
 कोरी बातन काम कछु चलिहै नाहिन मीत ।
 तासों उठि मिलि कै करहु बेग परस्पर प्रीत । ९२
 परदेसी की बुद्धि अरु वस्तुन की करि आस ।
 पर-बस ह्यै कब लौं कहो रहिहौ तुम ह्यै बास । ९३
 काम खिताब किताब सौं अब नहिं सरिहै मीत ।
 तासों उठहु सिताब अब छाँड़ि सकल भय मीत । ९४
 निज भाषा, निज धरम, निज मान करम ब्योहार ।
 सबै बढ़ावहु बेगि मिलि कहत पुकार पुकार । ९५
 लखहु उदित पूरब भयो भारत-मानु प्रकास ।
 उठहु खिलावहु हिय-कमल करहु तिमिर दुख नास । ९६
 करहु विलम्ब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल ।
 निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सब को मूल । ९७
 लहहु आर्य्य भ्राता सबै विद्या बल बुधि ज्ञान ।
 मेति परस्पर द्वेह मिलि होहु सबै गुन-खान । ९८



अपवर्गदाष्टक*

रचनाकाल-सन् १८७७

परब्रह्म परमेश्वर परमात्मा परात्पर ।
 पर पुरुष पदपूज्य पतित-पावन पञ्चावर ।
 परमानन्द प्रसन्नवदन प्रभु पञ्च-विलोचन ।
 मन्वानाम पुण्डरीकाक्ष प्रनरारति-मोचन ।
 पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
 तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि । १

फनपति फनप्रति फूँक बाँसुरी नृत्य प्रकासन ।
 फनिपति-नाथ फनीश-शयन फनि बैरि कृतासन ।

फैली फिरि फिरि चंद्रफेन सी बदन-कातिबर ।
 फलस्वरूप फबि रही फूल-माला गल सुंदर ।
 पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
 तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि । २
 ब्रजपति बृंदावन-बिहार-रत बिरह-नसावन ।
 बिष्णु ब्रह्म बरदेश बरहवर सीस सुहावन ।
 बनमाली बलरामानुज बिधु विधि-बदित बर ।
 बिबुधाराधित बिधुमुख बुधनत बिदित बेनुधर ।
 पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।

: कवि-वचन-सुधा शनिवार अ. जेष्ठ कृष्ण ६ संवत् १९३४ में प्रकाशित ।

तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि । ३

भवकर भवहर भवप्रिय भद्राग्रज भद्रावर ।
भक्तिवश्य भगवान भक्तवत्सल भुव-भरहर ।
भव्य भावनागम्य भामिनीभाव विभावित ।
भाव गतामृतचंद्र भागवतभय-विद्वधित ।
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि । ४

माधव मनमयमनमय मधुर मुकुंद मनोहर ।
मधुमरदन मुरमथन मानिनी-मान-मंदकर ।
मरकतमनि-तन मोहन मंजुल नर मुरलीकर ।
माये मत्त मयूर मुकुट मालती-माल गर ।
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी-गति देत किमि । ५

बृंदा बृंदावनी बिदित बृंखभानु-दुलारी ।
परा परेशा प्रिया पूजिता भव-भयहारी ।

ब्रजधीश्वरी भामा मोहन-प्रातपियारी ।
ब्रजविहारिनी फलदायिनि बरसाने-वारी ।
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि । ६

विष्णुस्वामि पथ प्रथित बिल्वमंगल मतमण्डन ।
मिथ्यावाद-विनासकरन मायामत-खण्डन ।
भारद्वाज सुगोत्र विप्रवर वेद बादब्रत ।
भक्तपूज्य भुवि भक्ति-प्रचारक भाष्यरचन-रत ।
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि । ७

ब्रजवल्लभ वल्लभ वल्लभ वल्लभ-वल्लभवर ।
पद्मावतिपति बालकृष्ण पितु भुविस्ववसंधर ।
मथन भागवत समुद भामिनी भाव विभावित ।
प्रगट पुष्टिपथकरन प्रथित पतितादिक पावित ।
बिहल प्रनु प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि । ८



मनोमुकुल-माला

अर्थात्

राजराजेश्वरी आर्येश्वरी भारताधीश्वरी श्री १०८
विजयिनी देवी के चरण-तामरस में हरिश्चंद्र द्वारा
समर्पित वाक्य-पुष्पोहार ।

रचना काल सन् १८७७

अथ इंगलैंडी-पारसीक-वर्ण-चित्रिता

राजराजेश्वरी आशी:

G वहु E स अ C स बल हरहु प्रजन की :pr ।
सर U जमुना गंग में जब लौं थिर जग नी । १
J K वल तुम दास है नासहु तिनकी R ।
बटे स Y तेज नित T को अवल लिलार । २

भारत के A कत्र सब V र सदा बल P n ।
B सहु बित्वा ते रहैं तुमरे नितहि अधीन । ३
ह) ث ح) सबै و) विना क J
गले ७ नहिं सनु को तुव सनमुख गुन-धाम ।
अई कीरति छई रहै अहंहराज ।
र) र बरनत सबै 2 कवि यातें आज । ४
था ५ थिर करि राज-गन अपने अपने ठौर ।
तासों तुम'हिं भई महारानी जग और । ५ *

* जीवहु ईस असीस बल हरहु प्रजन की पीर ।

अथ अङ्कमयी राजराजेश्वरी स्तुति^१

करि वि४ देख्यौ बहुत जग बिनु २स न१ ।
तुम बिनु हे विक्टोरिये नित १०० पथ टेक ।
ह ३ तुम पर सैन लै ८० कहत करि १०० ह ।
पै विन७ प्रताप-बल सत्रु मरोरे भौह ।
सो १३ ते लोग सब बिल १७ त सचैन ।
अ ११ ती जागती पै सब ६ न दिन-रैन ।
सखि तुव मुख २६ सि सबै कै १६ त अनंद ।
निहचै २७ की तुम मैं परम अमंद ।
जिमि ५२ के पद तरें १४ लोक लखात ।

तिमि भुव तुम अधिकार मोहिं बिस्वै २० जनात ।
६१ खल नहिं राज मैं २५ वन की बाय ।
तासों गायो सुजस तुव कवि ६ पद हरखाय ।
किये १००००००००००० बल १०००००००००
के तनिकहिं भौह मरोर ।
४० की नहिं अरिन की सैन सैन लखि तोर ।
तुव पद १००००००००००००००० प्रताप को
करत सुकवि पि १००००००० ।
करत १००००००० बहु १००००० करि
होत तऊ अति धोर ।
तुम ३१ व मैं बड़ी ताते बिरच्यौ छन्द ।
तुव जस परिमल । । । लहि अंक-चित्र हरिचंद ।

भाषा सहज

कविता

धन्य धन्य दिन आजु को धन धन भारत-भाग ।
अतिहि बढ़ायो सहज निज दोऊ दिसि अनुराग ।^१

सरयू जमुना गंग मैं जब लौं थिर जग नीर ।
जे केवल तुय दास हैं नासहु तिनकी आर ।
बढ़ै सवाई तेज नित टीको अचल लिलार ।
भारत के एकत्र सब वीर सदा बल-पीन ।
बीसहु बिस्वा ते रहै तुमरे नितहि अधीन ।
चेरे से हेरे सबै तेरे बिना कलाम ।

आजु मान अति ही लह्यो आरज भारत देस ।
भारत की राजेश्वरी भए अनंद बिसेस ।
प्रथम शमीरामा^२ भई दूजी भई न और ।

गलै दाल नहिं सत्रु की तुव सनसुख गुनधाम ।
अमीमई कीरति छई रहै अजी महाराज ।
बेर बेर बरनत सबै ये कवि यातें आज ।
थापे थिर करि राज-गन अपने अपने ठौर ।
तासों तुम सी नहिं भई महारानी जग और ।

^१ करि विचार देख्यौ बहुत जग बिनु दोस न एक ।
तुम बिन हे विक्टोरिये नित नव सौ पथ टेक ।
हती न तुम पर सैन लै असी कहत करि सौह ।
पै विनसात प्रताप-बल सत्रु मरोरै भौह ।
सोते रहते लोग सब बिलसत रहत सचैन ।
अग्या रहती जागती पै सब छन दिन रैन ।
लखि तुव मुख छवि ससि सबै कैसो रहत अनन्द ।
निहचै सत्ता ईस की तुम मैं परम अमंद ।
जिमि बावन के पद तरें चौदह लोक लखात ।

तिमि भुव तुव अधिकार मोहिं बिस्वै बीस जनात ।
इक सठ खल नहिं राज में पची सबन की बाय ।
तासों गायो सुजस तुव कवि षट्-पद हरखाय ।
किये खरब बल अरब के तनिकहिं भौह मरोर ।
चालि सकी नहिं अरिन की सैन सैन लखि तोर ।
तुव पद पद्म प्रताप को करत सुकवि पिक रोर ।
करत कोटि बहु लक्ष करि होत तऊ अति धोर ।
तुम इक ती सब में बड़ी ताते बिरच्यौ छंद ।
तुव जस परिमल पौन लहि अंक-चित्र हरिचंद ।

^२ पद्म पुराण में भारत को जीतने वाली शमीरामा नामक देवी का विजयदशमी के दिन शमी वृक्ष में पूजन का विधान है, जिसको इतिहास में Queen Semiremis कहते हैं ।

सो पूजी तुम विजयिनी महारानी बनि ठौर । ३
विजय मित्र जय विजयपति अजय कृष्ण भगवान ।
करहि विजयिनी विजय नित दिन दिन सह कल्याण । ४
नारी दुर्गा रूप सब राजा कृष्ण समान २ ।
शक्ति शक्तिमत तुम देऊ यासों अतिहि प्रधान । ५
और देश के नृप सबै कहवावत महाराज ।
सो मोटी जिय सत्य तुम हवै कै राजधिराज । ६

होइ भारताधीश्वरी आरज-स्वामिनि आज ।
तुम द्वै ३ आरज जाति कहै मिलयो धन यह राज । ७

रंग-चित्र ४

— दुति करि बैरि भट — मुख मसि लाय ।
— पीरजन — लित — हि इत पठवाय । १

श्री राज-राजेश्वरी-स्तुति

संस्कृत छन्द में

श्रीमत्सर्वगुणाम्बुधेर्जनमनो वाणी विदूराकृते —
नित्यानन्दधनस्य पूर्ण करुणाऽऽ सारैर्जनान् सिंचितः
शक्तिः श्रीपरमेश्वरस्य जनताभाग्यैरवाप्तोदया —
साम्राज्यैकनिकेतनं विजयिनी देवी वरी बृध्यते । १
नानाद्वीप-निवासिनो नृपतयः स्वैरुत्तमाद् गैर्नतैः —
रादेशाक्षरमालिकां यदुदितां मालामिवाभिप्रति ।
यत्कीर्तिः शरदिदुसुन्दरचिर्व्याप्नोति कृत्स्नां महीं ।
सेय सर्व जनातिगस्वविमवा कासां गिरां गोचरां । २
एषा यद्यपि सार्वभौमपदवीं प्राप्ता प्रतापैर्निजे —
वैरिब्रातमहीधराशनिसमैर्भूपालनैकव्रतैः ।

आर्यावर्त जमर्त्य भाग्यं निवहैर्भूयो धुनोदित्वरैः
स्वीकृत्या जनयन्मुद मनसिनः साऽऽयैश्वरीति प्रथाम् । ३
कर्णाकर्णिकया गते श्रुतिपथं वार्तां मृते स्मिन्वयं ।
विन्दामो यममन्दमात्तपुलका आनन्दयुं संततम् ।
अप्राप्यातितनौ तनाववसरं तेनेव संचोदिताः ।
श्रीमत्याः परमेश्वराच्चिरतर संप्रार्थयामः शिवम् । ४
दीनानाथ जनावनोद्यतमना मानादिनानाविध- ।
श्रीमत्सर्वगुणावनिर्नयघना समोदयित्री बुधान् ।
जीयादुज्ज्वल कीर्तिरातिशमिनी मूर्तिः परस्ये शितुः
पुत्रैरात्मसमैः समं विजयिनी देवी सहस्रं समाः । ५

गजल

रचना काल सन् १८६७

मादये तारीख

[विक्टोरिया शाहेशाहान हिन्दोस्तान]

उसको शाहनशही हर बार मुबारक होवे ।
कैसेरे हिंद का दरबार मुबारक होवे ।
बाद मुब्त के हैं देहली के फिरे दिन या रब ।
तख्त ताऊस तिलाकार मुबारक होवे ।
बागुवां फूलों से आबाद रहे सहने चमन ।
बुलबुलो गुलशने बे-खार मुबारक होवे ।

एक इस्तुद में हैं शेखो विरहमन दोनों ।
सिजदः इनको उन्हें जुन्नार मुबारक होवे ।
मुजदरे दिल कि फिर आई है गुलिस्तां में बहार ।
मैकशो खानये खुम्मार मुबारक होवे ।
दोस्तों के लिये शादी हो गुलज़ार मुबारक होवे ।
खार उनको इन्हें गुलज़ार मुबारक होवे ।

ज़मज़मों ने तेरे बस कर दिए लब बंद 'रसा' ।
यह मुबारक तेरी गुफ्तार मुबारक होवे ।

१. स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु-दुर्गा पाठ ।

२. नराणां च निराधिपः— श्री गीता ।

३. हिंदू और अंग्रेज ।

४. (पीरे) दुति करि बैरि भट (कारे) मुख मसि लाय ।

(हरे) पीर जन (नील) लित (लाल) हि इत पठवाय ।

वेणु-गीति

रचना काल सन् १८७७

(श्री चंद्रावली-मुख चकोरी विजयते)

दोहा

जे जे श्री घनश्याम बपु जे श्री राधा बाम ।
जे जे सब ब्रज-सुंदरी जे बृंदावन धाम ।
मायावाद-मतंग-मद हरत गरजि हरि नाम ।
जयति कोऊ सो केसरी, बृंदावन बन धाम । २
गोपीनाथ अनाथ-गति जग-गुरु बिठ्ठलनाथ ।
जयति जुगल बल्लभ-तनुज गावत श्रुति गुनगाथ । ३
श्री बृंदावन नित्य हारि गोचारन जब जाहि ।
विरह-बेलि तबही बढ़े गोपी-जन उर माहि । ४
तब हरि-चरित अनेक बिधि गावहि तनमय होइ ।
करहि भाव उर के प्रगट जे राखे बहु गोइ । ५
जो गावहि ब्रज भक्त सब मधुरे सुर सुम ह्वंद ।
रसना पावन करन को गावत सोइ 'हरिचंद' । ६

राग सोरठ तिताला

सखी फल नैन धरे को एह ।
लखिबो श्री ब्रजराज-कुंवर को गौर सांवरी देह ।
सखन संग बन तें बनि आवत करत वेनु को नाद ।
धन्य सोई या रस को जानै पान कियो है स्वाद ।
वह चितवनि अनुराग मरी सी फेरनि चारहुं ओर ।
'हरीचंद' सुमिरत ही ताके बाढ़त मैन-मरोर । १
सखी लखि दोउ भाइन को रूप ।
गोप-सखा-मंडल-मधि राजत मनु द्वै नट के भूप ।
नवदल मोरपच्छ कमलन की माल बनी अभिराम ।
ता पै सोहत सुरंग उपरना बेष बिचित्र ललाम ।
नटवर रंगभूमि में सोमित कबहुं उठत है गाय ।
'हरीचंद' ऐसी छवि लखि कै बार बार बलि जाय । २

राग देस होरी का ताल

बंसी कौन सुकृत कियो ।
गोपिकन को भाग 'याने आंपुही लै पियौ ।
करत अमृत-पान आपुन औरहू को देत ।
बचत रस सो पियत हिदिनी क्षुध लता समेत ।
प्रगट हिदिनी तटनि नृन पुन श्रवत मधु तरु-डार ।
होत याहि रोमांच या को बहत आंसू-धार ।
बेन-पुत्र सुपुत्र लखिकै करत दोउ आनंद ।

आपु हरी न होत अचरज यह बड़ो 'हरिचंद' । ३

राग मल्लार आड़ा चौताला

बड़ी जग कीरति बृंदावन की ।
श्री जसुदानंदन की जापै छाप भई चरनन की ।
वेनु-धुनि सुनि जहाँ नाचत मत्त होइ मयूर ।
सिखर पै गिरिराज के सब संग कों करि दूर ।
सबै मोहत देव नर मुनि नदी खग मृग आन ।
ता समै यह मोर नाचत सुनत बंसी-तान ।
पच्छ यातें धरत सिर पै श्याम नटवर-राज ।
कहत इमि 'हरिचंद' गोपी बैठि अपुन समाज । ४

बिहाग तिताला

धन्य ये मूढ़ हरिन की नार ।
पाइ बिचित्र बेष नंदनंदन नीके लेहि निहारि ।
मोहित होइ सुनि बंसी-धुनि श्याम हरिन लै संग ।
प्रनय समेत करहि अवलोकन बाढ़त अंग अनंग ।
जानि देवता बन को मानहुं पूजहि आदर देहि ।
'हरीचंद' धनि धनि ये हरिनी जन्म सुफल कर लेहि । ५

राग सोरठ तिताला

बिमानन देव-बधू रहीं भूलि ।
बनिताजन मन नैन महोत्सव कृष्ण-रूप लखि फूलि ।
सुनिकै अति बिचित्र गीतन कों बंसी की धुनि धोर ।
षकित होत सब अंग अंग मैं बाढ़त मैन मरोर ।
खुलि खुलि परत फूल की कबरी नीबी की सुधि नाहिं ।
'हरीचंद' कोउ चलन न पावत या नम-पथ के माहिं । ६

देस तिताला

लखो सखि इन गौवन को हाल ।
ऐसी दसा पसुन को है जहाँ हम तो हैं ब्रज-बाल ।
कृष्णचंद के मुख सों निकसे जो बंसी की तान ।
तो अमृत कों पान करहिं ये ऊँचे करि करि कान ।
बछरा थन मुख लाइ रहे नहिं पीवत नहिं तुन खात ।
थन तें पय की धार बहत है नैनन तें जल जात ।
इक टक लखत गोविंदचंद कों पलक परत नहिं नैन ।
'हरीचंद' जहाँ पसु की यह गति अबलन कों किन चैन । ७

सोरठ मल्लार तिताला

धन्य ये मुनि बृदावन-बासी ।

दरसन हेतु बिहंगम हवै रहे मूरति मधुर उपासी ।
नव कोमल दल पल्लव हुम पै मिलि बैठत है आई ।
नैननि मूँदि त्यागि कोलाहल सुतहि बेनु-धुनि भाई ।
प्राननाथ के मुख की बानी करहिं अमृत-रस-पान ।
'हरीचंद' हम को सोउ दुर्लभ यह विधि की गति आन । ८

सोरठ तिताला

अहो सखि जसुना की गति ऐसी ।

सुनत मुकुंद गीत मधु श्रवणन बिहवल हवै गई कैसी ।
भँवर पड़त सोइ काम-वेग-सों थकित होत गति भूली ।
तटनि घास अंकुरित देखियत सोइ रोमावलि फूली ।
चुंबन हित धावत लहरन सों कर लै कमल अनेक ।
मानहुँ पूजन-हेत चरन को यह इक कियो विवेक ।
चरन-कमल के सदृस जानि तेहि निसि-दिन उर पै राखे
'हरीचंद' जहँ जल की यह गति अबलन की कहा भाखे । ९

बिहाग आड़ा चौताला

जहँ जहँ राम-कृष्ण चलि जाहीं ।

तहँ तहँ आतप जानि देव सब दौरि करहिं तन छाहीं ।
खेलहि संग गोप के बालक चरहिं गऊ सुख पाई ।
तिन के मध्य बने दोउ राजत मुरली मधुर बजाई ।
प्रेम मगन हवै सुरंग फूल सब गगन आइ बरसावै ।
कठिन भूमि कोमल पद लखि कै मनु पाँवड़े बिछावै ।
दूर देस सों आइ देवता रूप-सुधा नित पीयै ।
'हरीचंद' वसि एक गाँव बिनु दरसन कैसे जीयै । १०

कान्हरा आड़ा चौताला

अहो सखी धनि भीलन की नारि ।

हरि-पद-पंकज को श्री कुंकुम लेहिं कुचन पै धारि ।
तन-सिंगार जो ब्रज-जवतिन को प्रान-पिया पद लायौ ।
सो बन-गवन समै ब्रज तून के पातन मैं लपटायौ ।
हरि-पद-तल की आभा सों सो अरुन हवै रह्यौ मोहै ।
भक्तन को अनुराग मनहुँ यह चरनन लाग्यौ सोहै ।
ताहि देखि भई बिकल काम-बस कर सों लेहिं उठाई ।
निज मुख मैं दोउ कुच मैं लावहिं मनसिज-ताप नसाई ।
जगवन्दन नन्दनन्दन के-पग-चंदन भीलिन पावै ।

'हरीचंद' हम को सोउ दुर्लभ एकहि जात कहावै । ११

राग सारंग वा बिहाग ताल चर्चरी

हरि-दास-वर्य गिरिराज धन धन्य
सखि राम धनश्याम करै केलि जापै ।
चरन के स्पर्श सों पुलकि रोमांच भयो
सोई सब वृक्ष अरु लता तापै ।
भरत भरना सोई प्रेम-असुवा बहत
नवत तरु-डार मनुहार करहीं ।
परम कोमल भयो है यंगवीन (०) सम
जानि जापै कृष्ण-चरन धरहीं ।
करत आदर सहित सबन की पहनुई
संग के गोप गो-बच्छ लेहीं ।
पत्र फल मधुर मधु स्वच्छ जल तून छाँह
आदि सब वस्तु गिरिराज देहीं ।
करहिं बहु केलि हरि खेल खेलहिं संग
ग्वालगन परम आनंद पावै ।
देखि 'हरीचंद' छबि मुदित विथकित चकित
प्रेम भरि कृष्ण के गुनहिं गावै । १२

सोरठ तिताला

सखी यह अति अचरच की बात ।

गोप सखा अरु गोधन लै जब राम कृष्ण बन जात ।
बेनु बजावत मधुरे सुर सों सुनि कै ता धुनि कान ।
भूलि जात जग में सब की गति सुनत अपूरब तान ।
वृक्षन कौ रोमांच होत है यह अचरज अति जान ।
धावर होइ जात है जंगम जंगम थावर मान ।
गोबधन कंधन पै धारे फेंटा झुकि रह्यौ माथ ।
मत्त भृंग-जुत है बन-माला फूल-छरी पुनि हाथ ।
बेनु बजावत गीतन गावत आवत बालक संग ।
'हरीचंद' ऐसो छबि निरखत बाढ़त अंग अनंग । १३

दोहा

कृष्णचंद्र के विरह में बैठि सबै ब्रज-बाल ।
एहि बिधि बहु बातें करत तन सुधि बिगत बिहाल । १
जब लौं प्यारे पीय को दरस होत नहिं नैन ।
इक छन सौ जुग लौं कटत परत नहीं जिय चैन । २
सौं समै हरि आइ कै पुरवत सब की आस ।
गावत तिनको बिमल जस 'हरीचंद' हरि-दास । ३



श्री नाथ-स्तुति

रचना काल सन् १८६७

छप्ये

जय जय नंदानंद-करन वृषभानु-मान्यतर ।
जयति यशोदा-सुअन कीर्तिदा कीर्त्तिदानकर ।
जय श्री राधा-प्राण-नाथ प्रणतारति-मंजन ।
जय वृंदावन-चंद्र चंद्रवदनी-मनरंजन ।
जय गोपति गोपति गोपपति गोपीपति गोकुल-शरण ।
जय कष्ट-हरण करुनाभरण जय श्री गोवर्द्धन-धरण । १
जय जय बकी-बिनाशन अघ-बक-वदन-विदारण ।
जय वृंदावन-सोम व्योम-तमोम-निवारण ।
जयति भक्त-अवलंब प्रलम्ब प्रलम्ब-बिनासन ।
जय कालिय-फन प्रति अति द्रुति गति नृत्य प्रकाशन ।
श्रीदाम-सखा घनश्याम-वपु वाम-काम-पूरन-करण ।
जय ब्रह्मधाम अभिराम रामानुज श्रीगिरिवर-धरण । २
जयति बल्लामी-बल्लाम बल्लाम बल्लभ-बल्लभ ।
जय पल्लवदुति अघर भल्ल बरजित कटाक्ष प्रम ।
उर-कृत मल्ली माल जयति ब्रज पल्ली-भूषन ।
ब्रजतरु-बल्ली-कुंज-रचित हल्लीश मुदित मन ।
जय दुष्ट-काल वनमाल गर भक्तपाल गजचाल-वय ।
कृत ताल नृत्य उताल गति गोप-पाल नंदलाल जय । ३
जय धृतरहापीड कुपलयापीड पीडकर ।

चूर करन चानूर मुष्टिबल मुष्टि-दर्पदर ।
जयति कंस विध्वंस-करन विधु-वंस-अंसधर ।
परम हंस प्रिय अति प्रशंस अवतंस लसित वर ।
जय अनिर्वाच्य निर्वाणप्रद नित अर्वाच्यहु प्राच्यतर ।
दुर्वाराबुदकबुर्दलन श्रुति-निर्वादित ब्रह्म-वर । ४
जयति पार्वती-पूज्यपूज्य पतिपर्व दत्त सुख ।
पांडवगुर्वीत्रातोर्वीपति सर्वरीश मुख ।
हृतसुपर्व्य वृषपर्वीदिकवर्बरदवी हुत ।
जय अयर्वनुत गान्धर्वीयुत गन्धर्व-स्तुत ।
दुर्वासाभाषित सर्वपति अर्व खर्व जन-उद्धरण ।
जय शक्रगर्वकृत खर्व पर्वत पूजित पर्वतधरण । ५

जय नर्तनप्रिय जय आनर्त्त-नृपति-तनया-पति ।
तृनावर्त्तहर कृपावर्त्त जय जयति आर्तगति ।
कार्तस्वर-भूषण-भूषति जय धार्तराष्ट्र-दर ।
स्मार्तबृन्द-पूजित जय कार्तिक पूज्य पूज्य-तर ।
त्रय वर्हविराजित सीसवर गहदीनजन-उद्धरण ।
जय अर्ह अहर्निशदुखदरण जय श्रीगोवर्द्धनधरण । ६

दोहा

यह खट सुंदर खटपदी सुमिरि पिया नंदनंद ।
हरिपद-पंकज-खटपदी विरची श्री 'हरिचंद' ।



मूक प्रश्न

रचना काल सन् १८७७

छप्पय

जीव एक, द्वै मृतक वनस्पति तीजो जानो ।
धातु चतुर्थी, शून्य पांच, जल छठयों मानो ।
रस सातों, आठयों पारथिन, नवों बसन कहि ।

दस मुद्रा, मणि ग्यारह, बारहमो मिश्रित लहि ।
औषध तेरह, कृत्रिम चतुरदस, पन्द्रह लेखन सकल ।
'हरिचंद' जोड़ि दोहान को कहहु प्रश्न-फल अति
विमल । *

* इस छप्पय में पन्द्रह वस्तु हैं, यथा — जीव, मृतक, वनस्पति, धातु, शून्य, जल, रस, पार्थिव, वस्त्र, द्रव्य, मणि, मिश्रित, औषध, कृत्रिम और लेख । इन्हीं पन्द्रहों में सारे संसार की वस्तु आ गई । जीव

दोहा

जीव, वनस्पति, शून्य, रस, वस्त्रौषधि, मनि लेख ।
एक कृष्ण को ध्यान धरि, प्रश्न चित्त सों देख ।
मृतक, वनस्पति, लेख, जल, कृत्रिम, रस, मनि, द्रव्य ।
जुगल चरन सिर नाइ कै, भाषु प्रश्न फल भव्य ।

धातु, शून्य, जल, लेख, रस, कृत्रिम, औषध, मिश्र ।
वतुर्व्यूह माधो सुमिरि, कह फल स्वच्छ अमिश्र ।
मिस्त्रौषध, कृत्रिम, वसन, द्रव्य, लेख, मनि भूमि ।
अष्ट सखी सह श्याम सजि, कह फल गुरु-पद चूमि ।



अपवर्ग-पंचक

रचना काल सन् १८७७

परम पुरुष परमेश्वर पञ्चापति परमाधर ।
पुरुषोत्तम प्रभु प्रनतपाल प्रिय पूज्य परात्पर ।
पदम नयन अरु पदमनाथ पालक पांडव-पति ।
पूर्ण पृतना-घातक प्रेमी प्रेम प्रीति गति ।
प्यारे यह मुख सों भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ कै अपवर्गी गति देत किमि ।
फलस्वरूप फनपति-फनप्रतिनिर्तन फलदाई ।
वासुदेव विभु विष्णु विश्व ब्रजपति बल-भाई ।
भरताप्रज भुवभार-हरण भवप्रिय भव-भय-हर ।
मनमोहन मुरमधुसूदन मावर मुरलीधर ।
माधव मुकुंद सोई भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।

तुम नाम पवर्गी पाइ कै अपवर्गी गति देत किमि । २
प्रिया परा परमानंद पुरुषोत्तम-प्यारी ।
फलदायिनि ब्रजसुखकारिनि वृषभानु-दुलारी ।
बरसानेवारी बृन्दा बृन्दावन-स्वामिनि ।
भक्त-जननि भयहरनि मनहरनि भोरी भामिनि ।
माधव-सुखदाइनि भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ कै अपवर्गी गति देत किमि । ३

बल्लभ बल्लभ बल्लभ पण्डित मंगल मण्डन ।
ब्रह्मवाद-कर भाष्यकार माया-मत-खण्डन ।
भारद्वाज सुगोत्र भट्टकुल-मणि वेवेद्वर ।
मिथ्या मत-तमतोम-दिवाकर पुष्टि-प्रगट-कर ।

में जीते हुए प्राणी मात्र, मृतक में चमड़ा, मांस, लोभ, केश, पंख, मल, भाला, इत्यादि जो कुछ जीव से अलग वस्तु हो । वनस्पति में पत्ता, छल, लकड़ी, फल, फूल, गोंद, अन्न इत्यादि । धातु में बनाई हुई धातु की चीजें और बिना बनी धुतु । शून्य कुछ नहीं । जल में पानी से लेकर द्रव्य पदार्थ मात्र । रस में घी, गुड़, नमक और भोज्य वस्तु मात्र, पार्थिव में पत्थर, खाक, कंकड़, चूना इत्यादि । वस्त्र में डोरा, रुई, रेशम, इत्यादि । द्रव्य में रुपया, पैसा, हुंड़ी, लोट, गहना इत्यादि । मिश्रित में एक से विशेष वस्तु मिली है । औषध से दवाएँ सूखी गोली और मद्य इत्यादि । कृत्रिम मनुष्य की बनाई वस्तु । लेख में कागज, पुस्तक, कलम इत्यादि । इन वस्तुओं को ध्यान में चढ़ा लेना और छप्पय याद कर लेनी । किसी से कहा कि कोई चीज हाथ में वा जी में ले और फिर उसके सामने क्रम से दोहे पढ़ो ।

पूछो किस किस दोहे में वह वस्तु है जो तुमने ली है । जिन दोहों में बतावे उन दोहों के दूसरे तुक की गिनती के संकेतों को जोड़ डालो जो फल हो वह छप्पय के उसी अंक में देखो ! जैसा किसी ने रस लिया है तो पहिला दूसरा और तीसरा दोहा बतावेगा उसके अंक एक जुगल चतुर अर्थात् एक दो और चार गिन के सात हुए तो छप्पय में सातवीं वस्तु रस है देख लो और गणित विद्या के प्रभाव से सच्चा और सिद्ध मूक प्रश्न बतला दो ।

यह मूक प्रश्न कविवचन सुधा, ३० अप्रैल सन् १८७७ ई. में प्रकाशित हुआ था ।

बल्लभ बल्लभ सोइ भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
 तुम नाम पवर्गी पाइ कै अपवर्गी गति देत किमि । १४
 बल्लभनंदन भक्ति-मार्ग-प्रगटन बुध-बोधक ।
 भावाश्रयरसपुष्ट विष्णु-स्वामी पथ-शोधक ।
 वैष्णवजन मन-हरन भक्तकुल-कमल-प्रकासक ।
 बिद्वन मंडन-करन वितण्डावाद-बिनासक ।

विट्ठल विट्ठल सोइ भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
 तुम नाम पवर्गी-पाइकै प्रभु अपवर्गी गति देत किमि । १५

दोहा

यह पवर्ग हरि नाम-जुत पंचक वर अपवर्ग ।
 पढ़त सुनत 'हरिचंद' जो लहत तीन सुख स्वर्ग ।



पुरुषोत्तम-पंचक

रचना काल सन् १८७७

सखी पुरुषोत्तम मेरे प्यारे ।
 प्राननाथ मेरे मन धन जीवन जसुदानंद-दुलारे ।
 जानत प्रीति-रीति सब भाँतिन नेह निवाहन-हारे ।
 'हरीचंद' इनके पद-नख पै जगत-जाल सब वारे । १
 सखी पुरुषोत्तम मेरे नाथ ।
 मोर मुकुट सिर कटि पीतांबर सुंदर मुरली हाथ ।
 गल वनमाल गोप गोपीगन गऊ बच्छ लिये साथ ।
 'हरीचंद' पिय करुना-सागर निज-जन करन सनाथ । २
 पुरुषोत्तम प्रभु मेरे स्वामी ।
 पतित-उधारन करना-कारन तारन खग-पति-गामी ।
 पंकज-लोचन भव-दव-मोचन जन-रोचन अभिरामी ।

'हरीचंद' संतन के सरवस बखसहु चरन-गुलामी । ३
 पुरुषोत्तम प्रभु मेरे सरवस ।
 सरवस गुन-निधि करुना-बरुनालय जानत सकल
 प्रेम-रस ।
 प्रीति-रीति पहिचानत मानत यातें रहत भगत-वस ।
 'हरीचंद' मेरे प्रान-जीवन-धन
 मोह्यो मनहि तनिक हँस । ४
 पुरुषोत्तम बिन मोहिं नहिं कोई ।
 मात-पिता परिवार-बंधु-धन मम हरि-राधा दोई ।
 इन बिनु जगत और जो कौनो आयसु नाहक खोई ।
 'हरीचंद' इन चरन सरन रहु मन बिनु साधन होई । ५



भारत-वीरत्व*

रचना काल सन् १८७८

अहो आज का सुनि परत भारत भूमि मैंभर ।
 चहँ ओर तें घोर धुनि कहा होत बहु बार । १
 ब्रिटिश सुशासित भूमि मैं रन-रस उमगे गात ।
 सबै कहत जय आज क्यों यह नहिं जान्यो जात । २

शाखा

जितन हेतु अफगान चढ़त भारत महारानी ।
 सुनहु न गगनहिं भेदि होत जै जै धुनि-बानी । ३
 जै जै जै बिजयिनी जयति भारत-सुखदानी ।
 जै राजागन-मुकुटमनी धन-बल-गुन खानी । ४
 सोई ब्रिटिश अधीश चढ़त अफगान-जुद-हित ।
 देखहु उमड़्यो सैन-समुद उमड़्यो सब जित तित । ५

* यह हरिश्चंद्र चंद्रिका के सन् १८७८ ई. के अक्तूबर अंक में प्रकाशित हुआ था । इसमें

पूर्ण कोरस

अरे ताल दै लै बढ़ाओ ।

सबै धाड़ के राग मारु सुगाओ । ६

आरंभ

'कहाँ सबै राजा कुँअर और अमीर नवाब ।
कहौ आज मिल सैन में हाजिर होहु सिताब । ७
धाओ धाओ बेग सब पकरि पकरि तरवार ।
लरन हेत निज सत्रु सों चलाहु सिंधु के पार । ८
चढ़ि तुरंग नय चलाहु सब निज पति पाछे लागि ।
"उडपति सँग उडगन सरिस नृप सुख सोभा पागि" । ९
याद करहु निज वीरता सुमिरहु कुल-मरजाद ।
रन-कंकन कर बाँधि कै लरहु सुभट रन-स्वाद । १०
बज्यो बृटिश डंका अबै गहगह गरजि निसान ।
कपे थरथर भूमि गिरि नदी नगर असमान । ११

शाखा

राज-सिंह छूटे सबै करि निज देश उजार ।
लरन हेत अफगान सों धाए बाँधि कतार । १२

पूर्ण कोरस

सुन्दर सैना सिबिर सजायो ।

मनहु वीर रस सदन सुहायो ।

छुटत तोप चहुँ दिसि अति जंगी ।

रूप धरे मनु अनल फिरंगी । १३

हा हा कोई ऐसो इते ना दिखावै ।

अबै भूमि के जो कलंके मिटावै ।

चलै संग मैं युद्ध को स्वाद चाखै ।

अबै देस की लाज को जाइ राखै । १४

कहाँ हाय ते वीर भारी नसाए ।

कितै दर्प तें हाय मेरे बिलाए ।

रहे वीर जे सूरता पूर भारे ।

भए हाथ तेई अबै क्रूर कारे । १५

तब इन ही को जगत बड़ाई ।

रही सबै जग कीरति छाई ।

तित ही सब ऐसो कोउ नाहीं ।

लरै छिनहुँ जो संगत माहीं । १६

प्रगट वीरता देहि दिखाई ।

छन महँ काबुल लेइ छुड़ाई ।

फूस-हृदय-पत्री पर बरबस ।

लिखै-लोह लेखनि भारत-जस । १७

आरम्भ

परिकर कटि कसि उठौ धनुष पै धरि सर साधौ ।
केसरिया बाना सजि कर रन-कंकन बाँधौ । १८
जासु राज सुख बस्यो सदा भारत भय त्यागी ।
जासु बुद्धि नित प्रजा-पुंज-रंजन महँ पागी । १९
जो न प्रजा-तिय दिसि सपनेहुँ चित चलावै ॥
जो न प्रजा के धर्महि हठ करि कबहुँ नसावै । २०
बाँधि सेतु जिन सुरत किए दुस्तर नद नारे ।
रची सड़क बेधड़क पथिक हित सुख बिस्तारे । २१
ग्राम ग्राम प्रति प्रबल पहारु दिए बिठाई ।
जिन के भय सों चोर बृन्द सब रहे दुराई । २२
नृप-कुल दत्तक-प्रथा कृपा करि निज यिर राखी ।
भूमि कोष की लोभ तज्यौ जिन जग करि साखी । २३
करि वारड-कानून अनेकन कुलहि बचायो ।
विद्या-दान महान नगर पति नगर चलायो । २४
सब ही विधि हित कियो विविध विधि नीति सिखाई ।
अभय बाँह की छाँह सबहि सुख दियो सोहाई । २५
जिनके राज अनेक भाँति सुख किए सदाहीं ।
समरभूमि तिन सों छिपनो कछु उत्तम नाहीं । २६
जिन जवन्न तुम धरन नारि धन तीनहुँ लीनो ।
तिनहुँ के हित आरजगन निज जसु तजि दीनो । २७
मानसिंह बंगाल लरै परतापसिंह संग ।
रामसिंह आसाम बिजय किए जिय उछाह रंग । २८
छत्रसाल हाड़ा जूझ्यौ दारा हितकारी ।
नृप भगवान सुदास करी सैना रखवारी । २९
तो इनके हित क्यौ न उठहिँ सब वीर बहादुर ।
पकरि पकरि तरवार लरहिँ बनि युद्ध चक्रधुर । ३०

शाखा

सुनत उठे सब वीरवर कर महँ धारि कृपान ।
सजि सजि सहित उमंग किय पेशावरहि पयान । ३१
चली सैन भूपाल की बेगम-प्रेषित धाड़ ।
अलवर सों बहु उँट चढ़ि चले वीर चित चाड़ । ३२
सैन सस्त्र धन कोष सब अर्पन कियो निजाम ।
दियो बहावल पूर-पति सैन-सहित निज धाम । ३३
वीस सहस्र सिपाह हिय जम्बूपति सह चाह ।
सैन सहित रन-हित चढ़्यौ आपुहि नामा-नाह । ३४

पृष्ठ दस और पंक्तियाँ २५ हैं । इसमें विजयिनी-विजय-वैजयंती और भारत शिक्षा आदि के पद भी सम्मिलित हैं, जो व्यर्थ पुनरावृत्ति के भय से नहीं दिए गए हैं ।

मण्डी जीद सुकेत पटिआला चम्बाधीस ।
 टोंक सेन्धिया बहुरि करपूरथल-अवनीस ।३५
 जोधपुराधिप अनुज पुनि टोंक चवा सह साज ।
 नाहन मालर-कोटला फरिदकोट के राज ।३६
 साजि साजि निज सैन सब जिय मैं भरे उछाह ।
 उठि कै रन-हित चलत मे भारत के नर-नाह ।३७
 'डिसलायल' हिंदुन कहत कहाँ मूढ़ ते लोग ।

दूग भर निरखहिं आज तें राजभक्ति-संजोग ।३८
 निरभय पग आगेहिं परत मुख तें भाखत मार ।
 चले वीर सब लरन हित पच्छिम दिास इक बार ।३९

पूर्ण कोरस

छुटी तोप फहरी धुजा गरजे गहकि निसान ।
 भुव-मण्डल खलभल भयो भारत सैन पयान ।४०



श्री सीता-वल्लभ स्तोत्र

रचना काल सन् १८७९

तद्वन्दे कनकप्रभं किमपि जानकीधाम ।
 मत्प्रसादतस्त्वार्यतामेति राम इति नाम ॥
 यो धारितः शिरसि शारदानारदाद्यौ ।
 यश्चैक एव भवरोगकृते निदानम् ॥
 यो वै रघूत्तमवशीकरसिद्धचूर्णम् ।
 त जानकीचरणरेणुमहं स्मरामि ।१।
 या ब्रह्मोशैः पूजिता बह्मरूपा
 प्रेमानन्द प्रेमभावैकगम्या ।
 रामस्यास्ते या परा गौरमूर्तिः
 सा श्रीसीता स्वामिनी मे स्तु नित्यम् ।२
 नमोस्तु सीतापदपल्लवाभ्याम्
 ब्रह्मेशमुख्यैरतिसेविताभ्याम् ।
 भक्तेष्ट दाभ्याम्भवर्भजनाभ्याम् ।
 रामप्रियाभ्याम्भजीवनाभ्याम् ।३
 रामप्रिये राममनो भिरामे
 रामात्मिके पूरितरामकामे ।
 रामाप्रदे रामजनाभिवन्द्ये
 रामे रमे त्वां शरणं प्रपद्ये ।४
 कण्ठे पंकजमालिका भगवतो यष्टिः करे कांचनी
 गेहे चित्रपटी कुले मृतमयी क्षेमकरी देवता ।
 शय्यायां मणिदीपिका रतिकलाखेलाविधौ पुत्रका
 देहे प्राणसमास्ति या रघुपतेस्तां जानकीमाश्रये ।५

श्री मद्राममनः कुरंगदमने या हेमदामात्मिका
 मज्जूपा सुमणे रघूत्तममणेश्वेतो लिनः पद्मिनी ।
 या रामाक्षिचकोरपोषणकरी चान्द्रीकला निर्मला
 सा श्रीरामवशीकरी जनकजा सीता स्तु मे स्वामिनी ।६
 प्रायेण सन्ति बहवः प्रभवः पृथिव्याम्
 ये दण्डनिग्रहकरा निजसेवकानाम् ।
 किंचापरधशतकौटिसहाजनानाम्
 एकात्ममेव हि यतो सि धरासुपुत्री ।७
 स्वस्वास्सपत्यास्सुरनाथ सुनो
 रक्षः पतेस्त्यागकृतश्च भर्तुः ।
 त्वया पराधा क्षमिता अनेके
 क्षमासुते क्षाम्यमापि चागः ।८
 यन्मातास्ति वसुन्धरा भगवती साक्षात् विदेहः पिता
 स्वस्रः कोशलराज जास्व सुरकश्चार्यो दशस्यन्दनः ।
 दासो वायुसुतो सुतो कुशलवौ रामानुजा देवराः
 यास्या ब्रह्मपति स्तयातिदयया किं किं न सम्भाव्यते ।९
 नातः परं किमपि किंचिदपीह मातः
 वाच्यं ममास्ति भवती पदकजमूले ।
 एतावदेव निनिवेद्य सुखं शय्ये हम्
 यन्मूढधीः शिशुरहं जननी त्वमेव ।१०
 वन्दे भरतपत्नीं श्री माण्डवीं रतिरूपिणीम् ।

* हरिश्चन्द्र चंद्रिका खं. ६ सं. १३ जुलाई सन् १८७९ ई. में प्रकाशित ।

तारुण्यरससम्पूर्णां कारुण्यरसपूरिताम् । ११

लक्ष्मणप्रेयसी श्री मच्छीरध्वजतनूदभवाम् ।

वन्देहमूर्मिलां देवीं पतिप्रेमरसोर्मिलाम् । १२

नृपतिकुशध्वजकन्या धन्या नान्या समास्ति यल्लोके ।

सा श्रुतिविश्रतकीर्तिः श्रुतिकीर्तिम स्तु सुप्रीता । १३

यस्याः पतिर्निमिकुलाभरणं विदेहो

जामातरः श्रुतिशिरः प्रतिपाद्य रूपाः ।

भाग्यस्य या करपदादिविशिष्टमूर्तिः

तां श्री जगज्जनिजनिं प्रणमेसुनेत्राम् । १४

जामातृत्वे गतं यस्य साक्षाद्ब्रह्म परात्परम् ।

तं वन्दे ज्ञाननिलयं विदेहं जनकं परम् । १५

विश्वामित्रं शतानन्दं मैथिलं च कुशध्वजम् ।

भौमं लक्ष्मीनिधिं चापि वन्दे प्रीत्या पुनः पुनः । १६

विदेहस्थान् नराश्चापि बालान् नारीः गुणोज्वलाः ।

वन्दे सर्वान् पशूज्जीवान् भूमिं च तृणावीरुधः । १७

सर्वे ददन्तां कृपयाः मह्यं श्रीजानकीपदम् ।

भक्तिदानम्प्रकुर्वन्तु यतस्ते स्वामिनीप्रियाः । १८

आह्लादिनिं चारुशीलामतिशीलां सुशीलकाम् ।

हेमां वन्दे सदा भक्त्या सखीः सेवाविधौ हरेः । १९

शांता सुभद्रा संतोषा शोभना शुभदा धरा ।

चावंगी लोचना क्षेमा सुधात्री चापि सुस्मिता । २०

क्षेमदात्री सत्यवती धीरा हेमागिनी तथा ।

वन्दे एता अपि श्रीमज्जानक्याः प्रियकारिणीः । २१

वयस्यां माधवीं विद्यां वागीशां च हरिप्रियां ।

मनोजवां सुविद्यां च नित्यां नित्यं नमाम्यहम् । २२

कमला विमलाद्याश्च नद्यस्सख्यात्मिकास्तु याः ।

नमोनमः सदा ताम्यः सर्वताः कृपयान्तु माम् । २३

परीता स्वगुणैरेवमधीतावेदवादिभिः ।

कान्त्यास्फीता गुणातीता पीतांशुकविलासिनी । २४

श्रुतिगीतादिभिर्गीता शीतांशुकिरणोज्वला ।

नित्यमस्तु मनोनीता सीता प्रीता ममोपरि । २५

आशाक्रीता वशं नीता मायया दुःखदायया ।

भवभीता वयं सीतापदपल्लवमाश्रिताः । २६

खादन् पिवन् स्वापन् गच्छन् श्वसन्स्तिष्ठन् यदा तदा ।

यत्र तत्र सुखे दुःखे सीतैव स्मरणे स्तु ने । २७

रात्रौ सीता दिवा सीता सीता सीता गृहे बने ।

पृष्ठे ग्रं पार्श्वयोः सीता सीतैवास्तु गतिर्मम । २८

इदं सीता-प्रियं स्तोत्रं श्रीरामस्यातिबल्लभम् ।

श्री हरिश्चन्द्रजिह्वाग्रे स्थित्वा वाण्या विनिर्मिताम् । २९

यः पठेत् प्रातरुत्थाय सायं वा सुसमाहितः ।

भक्तियुक्तो भावपूर्णः स सीतावल्लभो भवेत् । ३०



श्री रामलीला

रचना काल सन् १८७९

पद

हरि-लीला सब विधि सुखदाई ।
कहत सुनत देखत जिय आनत देति भगति अधिकाई ।
प्रेम बढ़त अघ नसत पुन्य-रति जिय मैं उपजत आई ।
याही सो हरिचंद करत सुनि नित हरि-चरित बढ़ाई । १

गद्य

आहा ! भगवान् की लीला भी कैसी दिव्य और धन्य पदार्थ है कि कलिमलप्रसित जीवों को सहज ही प्रभु की ओर झुका देती है और कैसा भी विषयी जीव क्यों न हो वो घड़ी तो परमेश्वर के रंग में रंग ही देती है । विशेष कर के धन्य हम लोगों के भाग्य कि श्रीमान महाराज काशिराज भक्त-शिरोमणि की कृपा से सब लीला विधि-पूर्वक देखने में आती है । पहले मंगलाचरण होकर रावण का जन्म होता है फिर देवगण की स्तुति और वकुण्ड और क्षीरसागर की भाँकी से नेत्र कृतार्थ होते हैं । फिर तो आनन्द का समुद्र श्री राम-जन्म का महोत्सव है जो देखने ही से संबंध रखता है, कहने की बात नहीं है ।

कवित्त

राम के जनम माँहि आनंद उछाह जौन
सोई दरसायो ऐसी लीला परकासी है ।
तेसे ही भवन दसरथ राज रानी आदि
तेसो ही अनंद भयो दुख-निसि नासी है ।
सोहिलो वधाई द्विज दान गान बाजे बाजै
रंग फूलि-वृष्टि चाल तेसी ही निकासी है ।
कलियुग त्रेता कियो नर सब देव कीन्हें
आजु कासीराज जू अजुध्या कीनी कासी है । २
फिर श्री रामचंद्रजी की बाल-लीला, मुण्डन, कर्णबध, जनेऊ, शिकार खेलना आदि ज्यों का त्यों होता है देखने से मनुष्य भव-दुख मूल से खोता है । फिर विश्वामित्र आते हैं संग में श्रीराम जी को सानुज ले जाते हैं । मार्ग में ताड़िका सुबाहु का बध और फिर चरणरेणु से अहिल्या का तारना । अहा ! धन्य प्रभु के पद-पद्म जिनके स्पर्श से कहीं मनुष्य पारस होता है देवता बनता है कहीं पत्थर तरता है । इस प्रभु की दीन दयाल पर श्री मन्महाराज की उक्ति ।

दोहा

हम जानो तुम देर जौ लावत तारन माहिं ।
पाहनहू तें कठिन गुनि मो हिय आवत नाहिं । ३
तारन मैं मो दीन के लावत प्रभु कित बार ।
कुलिस रेख तुव चरनहू जो मम पाप पहार । ४

कवि की उक्ति

मो ऐसे को तारिबो सहज नु. दीन-दयाल ।
आहन पाहन वज्रहू सों हम कठिन कृपाल । ५
परम मुक्तिहू सों फलद तुअ पद-पदुम मुरारि ।
यहै जतावन हेत तुम तारी गौतम-नारि । ६
एहो दीनदयाल यह अति अचरज की बात ।
तो पद सरस समुद्र लहि पाहनहू तरि जात । ७
कहा पछानहुँ तें कठिन मो हियरो रघुबीर ।
जो मम तारन मैं परी प्रभु पर इतनी भीर । ८
प्रभु उदार पद परसि जइ पाहनहू तरि जाय ।
हम चैतन्य कहाइ क्यों तरत न परत लखाय । ९
अति कठोर निज हिय कियो पाहन सों हम हाल ।
जामैं कबहुँ मम सिरहु पद-रज देहिं दयाल । १०
हमहुँ कछु लघु सिल न सो सहजहिं दीनो तार ।
लगिहै इत कछु बार प्रभु हम तो पाप-पहार । ११

फिर श्री रामचंद्र जी सानुज जनक-नगर देखने जाते हैं पर नारियों के मन नैन देखते ही लुभाते हैं ।

कवित्त

कोऊ कहै यहै रघुराज के कुँयर दोऊ
कोऊ ठाढ़ी एक टक देखै रूप घर में ।
कोऊ खिरकीन कोऊ हाट बाट धाई फिरै
बावरी हवै पूछे गए कौन सी डगर मैं ।
'हरीचंद' भूमे मतवारो दुग मारो कोऊ
जकी सी थकी सी कोऊ खरी एक धर मैं ।
लहर चढ़ी सी कोऊ जहर मढ़ सी भई
अहर पड़ी है आजु जनक सहर मैं । १२
फिर श्रीरामजी फुलवारी में फूल लेने जाते हैं । उस समय फुलवारी की रचना, कुंजों की बनावट, कल के मोरों का नाचना और चिड़ियों का चहकना यह सब देखने ही के योग्य है ।

इतने में एक सखी जो कुंजों में गई तो वहाँ राम रूप
देखकर बावली हो गई । जब वहाँ से लौटकर आई तो
और सखियाँ पूछने लगी ।

कवित्त

कहा भयो कैसी है बतावै किन देह दसा
छनहीं में काहे बुधि सबही नसानी सी ।
अबहीं तो हँसति हँसति गई कुंजन में
कहा तित देख्यौ जासों ह्वै रही हिरानी सी ।
'हरीचंद' काहू कछु पढ़ि कियो टोना लागी
ऊपरी बलाय के रही है बिख सानी सी ।
आनंद समानी सी जगत सों भुलानी सी
लुभानी सी दिवानीसी सकानी सी बिकानी सी । १३
यह सुनकर वह सखी उत्तर देती है ।

सवैया

जाहु न जाहु न कुंजन में उत
नाहि तो नाहक लाजहि खोलिहौ ।
देखि जौ लैहौ कुमारन को
अबही फट लोककी लोकहि खोलिहौ ।
भूलिहै देस-दसा सगरी
'हरिचंद' कछु को कछु मुख बोलिहौ ।
लागिहै लोग तमासे हहा
बलि बावरी सी ह्वै बजारन डोलिहौ । १४

कवित्त

जाहु न सयानी उत बिरछन माहिं कोऊ
कहा जानै कहा दोय भलक अमन्द है ।
देखत ही मोहिं मन जात नसै सुधि बुधि
रोम रोम छकै ऐसो रूप सुख-कन्द है ।
'हरीचंद' देवता है सिद्ध है छलावा है
सहाबा है कि रत्न है कि कीनी दृष्टि-बंद है ।
जाहू है कि जंत्र है कि मंत्र है कि तंत्र है कि
तेज है कि तारा है कि रवि है कि चन्द है । १५
वहाँ से दूसरे दिन श्रीरामचन्द्र धनुष-यज्ञ में आते
हैं और उनका सुंदर रूप देखकर नर-नारी सब
यही मानते हैं ।

कवित्त

आए हैं सबन मन भाए रघुराज दोऊ
जिन्हें देखि धीर नहिं हिअ माँहि धरि जाय ।
जनक-दुलारी जोग दूलाह सखी है आई

ईस करै राउ आज प्रनहिं विसरि जाय ।
'हरीचंद' चाहे जौन होइ आई सीअ बरै
जो जो होइ बाधक बिधाता करै मारि जाय ।
चाटि जाहि धुन याहि अबहीं निगोरो
बटपारो दर्ईमारो धनु आगि लागै जरि जाय । १६
जब धनुष के पास श्री रामजी जाते हैं तब जानकी
जी अपने चित्त में कहती हैं ।

सवैया

मो मन मैं निहचै सजनी यह
तातहु तें प्रन मेरो महा है ।
सुन्दर स्याम सुजान सिरमनि
मो हिअ मैं रमि राम रहा है ।
रीत पतिव्रत राखि चुकी मुख
भाखि चुकी आपुनो दुलहा है ।
चाप निगोड़ो अबै जरि जाहु
चढ़ौ तो कहा न चढ़ौ तो कहा है । १७

लोगों को चितित देख श्री रामचंद्र जी धनुष के
पास जाते हैं और उठा कर दो टुकड़े करके पृथ्वी पर
डाल देते हैं । बाजे और गीत के साथ जय जय की
धुन आकाश तक छा जाती है ।

कवित्त

जनक निरासा दुष्ट नृपन की आसा
पुरजन की उदासी सोक रनिवास मनु के ।
बीरन के गरब गरूर भरपूर सब
भ्रम मद आदि मुनि कौसिक के तनु के ।
'हरीचंद' भय देव मन के पुहुमि भार
बिकल बिचार सबै पुर-नारी जनु के ।
संका मिथिलेस की सिया के उर सूल सबै
तोरी डारे रामचंद्र साथै हर धनु के । १८
धनुष टूटते ही जगत्-जननी श्री जानकी जी
जयमाल लेकर भगवान को पहिनाते चलीं, उसकी
शोभा कैसे कही जाय ।

कवित्त

चंदन की डारन मैं कुसुमित लता कैधौ
पोखराज माखन मैं नव-रत्न जाल है ।
चंद्र की मरीचिन मैं इंद्र-धनु सोहै कै
कनक जुग कामी मधि रसन रसाल है ।
'हरीचंद' जुगुल मृनाल मैं कुमुद बेलि
मृंगा की छरी मैं हार-गूथ्यो हरि लाल है ।

कैधौ जुग हंस एकै मुक्त-माल लीने कै
सिया जू करन माँह चारु जयमाल है ११९

सवैया

टूटत ही धनु के मिलि मंगल
गाइ उठीं सगरी पुर-बाला ।
ले चलीं सीतहि राम के पास
सबै मिलि मन्द मराल की चाला ।
देखत ही पिय कों 'हरिचंद'
महा मुद पूरित गात रसाला ।
प्यारी ने आपुने प्रेम के जाल सी
प्यारे के कण्ठ दई जयमाला १२०

बस चारों ओर आनंद ही आनंद हो गया ।
फिर अयोध्या से बरात आई । यहाँ जनकपुर में
सब ब्याह की तैयारी हुई । वैसी ही मण्डप की रचना
वैसा ही सब सामान ।

श्री रामचंद्र द्रुलह बन कर चारों भाई बड़ी शोभा
से ब्याहने चले मार्ग में पुर-बनिता उनको देख कर
आपुस में कहने लगीं ।

कवित्त

एई अहै दसरथ-नन्द सुखकन्द तारी
गौतम की नारी इनहीं मारि राछसनि ।
कौसला के प्यारे अति सुंदर दुलारे सिया ।
रूप रिक्खवारे प्रेमी जनक प्रान धनि ।
सुंदर सरूप नैन बाँके मद छाके 'हरिचंद'
चुँघराली लटै लटकै अहो सी बनि ।
कहा सबै उभकि बिलोको बार बार देखो
नजरि न लागै नैन भरि कै निहारौ जनि १२१

सवैया

एई है गौतम नारि के तारक
कौसिक के मुख के रखवारे ।
कौसलानंदन नैन-अनंदन
एई हैं प्रान जुड़ावत-हारे ।
प्रेमिन के सुखदेन महा 'हरिचंद' के
प्रानहुँ तें अति प्यारे ।
राज-दुलारी सिया जू के द्रुलह
एई हैं राघव राजदुलारे १२२

मण्डप में पहुँच कर सब लोग यथास्थान बैठे ।
महाराज जनक ने यथार्थाधि कन्यादान दिया । जै जै
धृनि मे पृथ्वी आकाश पूर्ण हो गया ।

सवैया

वेदन की विधि सों मिथिलेस करी
सब ब्याह की रीति सुहाई ।
मन्त्र पढ़ै 'हरिचंद' सबै द्विज
गावत मंगल देव मनाई ।
हाथ में हाथ के मेलन ही सब
बोलि उठे मिलि लोग लुगाई ।
जोरी जियो दुलहा दुलही की
बधाई बधाई बधाई बधाई १२३

मोर लसै उत मोरी इतै उपमा
इकट्ट नहिं जातु लही है ।
केसरी बागी बनो दोउ के इत
चन्द्रिका चारु उतै कुलही है ।
मेंहदी पान महावर सों
'हरिचंद' महा सुखमा उलही है ।
लेहु सबै दृग को फल देखहु

द्रुलह राम सिया दुलही है १२४
विधि सों जब ब्याह भयो दोउ को
मनि मण्डप मंगल चाँवर मे ।
मिथिलेस कुमारी भई दुलही
नव द्रुलह सुन्दर साँवर मे ।

'हरिचंद' महान अनन्द बढ़यो
दोउ मोद भरे जब भाँवर मे ।
तिनसों जग में कछु नाहिं बनी जे न
ऐसी बनी पै निछावर मे १२५
फिर जेवनार हुई सब लोग भोजन को बैठे स्त्रियाँ
द्वेल मैजीरा लेकर गाली गाने लगीं ।

सुंदर श्याम राम अभिरामहिं गारी का कहि दीजै जू ।
अगुन सगुन के अनगन गुनगन कैसे के गनि लीजै जू ।
मायापति माया प्रगटावन कहत प्रगट श्रुति चारी ।
जो पति पितु सिसु दोउ मै व्यापत ताहि लागै का गारी ।
मात पिता को होत न निरनय जात न जानो जाई ।
जाके जिय जैसी रुचि उपजै तैसिय कहत बनाई ।
अज के दसरथ सुने रहे किमि दसरथ के अज आये ।
भूमिसुता पति भूमिनाथ सुत दोऊ आप सोहाये ।
धन्य धन्य कौशिल्या रानी जिन तुम सों सुत जायो ।
मात पिता सों बरन बिलच्छन श्याम सरूप सोहायो ।
कैकै की जो सुता कैकई ताको सुकृत अपारा ।
भरतहि पर अति ही रुचि जाकी को कहि पावै पारा ।
नाम सुमित्रा परम पवित्रा चारु चरित्रा रानी ।
अतिहि विचित्रा एक साथ जेहि द्वे सन्तानि प्रगटानी ।

अति विचित्र तुम चारहु भाई कोउ साँवर कोउ गोरे ।
 परी छाँह के औरहि कारन जिय नहि आवत मोरे ।
 कोसलेस मिथिलेस दुहुन मैं कहौ जनक को प्यारे ।
 कौसल्या सुत कौसलपति सुत दुहुँ एक को न्यारे ।
 चरु सों प्रकटे के राजा सों यह मोहिं देहु बताई ।
 हम जानी नृप वृद्ध जानि कछु द्विज गन करी सहाई ।
 तुमरे कुल को चाल अलौकिक बरनि कछु नहिं जाई ।
 भागीरथी धाइ सागर सों मिलि अनंद बढ़ाई ।
 सू बंस गुरु कुलहि चलायो छत्री सबहि कहाहीं ।
 असमंजस को बंस तुम्हारे राघव संसय नाहीं ।
 कहैं लौं कहौं कहत नहिं आवै तुमरे गुन-गन भारी ।
 विरजीऔ दुलहा अरु दुलहिन 'हरीचंद' बलिहारी ॥२६॥

फर आनंद से बारात विदा होकर घर आई । रानियों
 ने दुलहा दुलहिन को परछन कर के उतारा । महाराज
 दशरथ ने सब का यथायोग्य आदर-सत्कार किया ।
 अब हम लोग भी श्री जनक लाली नव दुलही की
 आरती करके बालकांड की लीला पूर्ण करते हैं ।

आरति कीजै जनक लाली की ।

राम मधुप मन कमल कली की ।
 रामचंद्र मुख चन्द चकोरी ।

अन्तर साँवर बाहर गोरी ।
 सकल सुमंगल सुफल फली की ।
 पिय दृग मृग जुग बंधन डोरी ।

पीय प्रेम-रस रासि किसोरी ।
 पिय मन गति विश्राम थली की ।
 रूप-रासि गुननिधि जग स्वामिनि ।

प्रेम प्रबीन राम अभिरामिनि ।
 सरबस धन 'हरिचंद' अली की ॥२७॥

अब अयोध्या काण्ड की लीला प्रारंभ हुई । करुणा
 रस का समुद्र उमड़ चला । श्री रामचंद्र जी के वनवास
 का कैकई ने वर माँगा, भगवान बन सिधारे, राजा
 दशरथ ने प्राण त्यागा ।

दोहा

बिनु प्रीतम तून सम तज्यौ तन राखी निज टेक ।
 हारे अरु सब प्रेम-पथ जीते दसरथ एक ॥२८॥

नगर में चारों ओर श्रीराम जी का बिरह छा गया
 जहाँ सुनिए लोग यही कहते थे ।

राम बिनु पुर बसिए केहि हंत ।
 धिक निकेत करुणा-निकेत बिनु का सुख इत बसि लेत ।
 नेत साथ किन चलि हरि को उत जियत वादि बनि प्रेत ।

'हरीचंद' उठ चलु अबहूँ बन रे अचेत चित चेत ॥२९॥

रामचंद्र बिनु अवध अँधेरो ।
 कछु न सुहात सिया-बर बिनु मोहिं राज-पाट घर-बेरो ।
 अति दुख होत राजमंदिर लखि सूनो साँभ सबेरो ।
 इबत अवध बिरह सागर मैं को आवै बनि बेरो ।
 पसु पंछी हरि बिनु उदास सब मनु दुख कियो बसेरो ।
 'हरीचंद' करुनानिधि केसव दै दरसन दिन फेरो ॥३०॥

राम बिनु बादहि बीतत सासैं ।
 धिक सुत पितु परिवार राम बिनु जे हरि-पद-रति नासैं ।
 धिक अब पुर बसिबो गर डारै भूठ मोह की फासैं ।
 'हरीचंद' तित चलु जित
 हरि-मुख-चंद्र-मरीचि प्रकासैं ॥३१॥

राम बिनु अवध जाइ का करिए ।
 रघुबर बिनु जीवन सों तौ
 यह भल जौ पहिलेहि मरिए ।
 क्यों उत नाहक जाइ दुसह
 बिरहानल मै नित जरिए ।
 'हरीचंद' बन बसि नित हरि
 मुख देखत जगहि बिसरिए ॥३२॥

राम बिन सब जग लागत सूनो ।
 देखत कनक-भवन बिनु सिय-पिय
 होत दुसह दुख दूनो ।
 लागत घोर मसानहुँ सों
 बढ़ि रघुपुर राम बिहूनो ।
 कहि 'हरिचंद' जनम जीवन सब
 धिक धिक सिय-बर ऊनो ॥३३॥

जीवन जो रामहि संग बीतै ।
 बिनु हरि-पद-रति और बादि
 सब जनम गंवावत रीतै ।

नगर नारि धन धाम काम सब
 धिक धिक बिमुख जौन सिय पीतै ।
 'हरीचंद' चलु चित्रकूट भजु भव मृग बाधक चीतै ॥३४॥

फिर भरत जी अयोध्या आए और श्री रामचंद्र जी
 को फेर लाने को बन गए । वहाँ उनकी मिलन रहन
 बोलन सब मानों प्रेम की खराद थी । वास्तव में जो
 भरत जी ने किया सो करना बहुत कठिन है ।
 जब श्री रामचंद्र जी न फिरे तब पाँवरी लेकर भरतजी
 अयोध्या लौट आए । पादुका को राज पर बैठा कर
 आप नंदिग्राम में वनचर्या से रहने लगे । यहाँ
 भरत जी की आरती करके आयोध्या कांड की लीला
 पूर्ण हुई ।

आरति आरति-हरन भरत की ।

सीय राम पद पंकज रत की ।

धर्म धुरंधर धीर वीर वर ।

राम सीय जस सौरभ मधुकर ।

सील सनेह निबाह निरत की ।

परम प्रीति पथ प्रगट लखावन ।

निज गुन गन जस अघ विद्धान ।

परछत पीय प्रेम मूरत की ।

बुद्धि विवेक ज्ञान गुन इक रस ।

रामानुज सन्तन के सरबस ।

'हरीचंद' प्रमु विषय बिरत की । ३५



भीष्मस्तवराज*

रचना काल सन् १८७९

मेरी मति कृष्ण-चरन में होय ।

जग के तृष्णा-जाल छाँड़ि कै सोक-मोह-भ्रम खोय ।

जादवपति भगवान लेत जो बिहरन हित अवतार ।

परमानंद रूप मायामय पावत कोउ न पार ।

यह जग होत जासु इच्छा तें जो यहि देत बिबेक ।

तिनही श्री हरिचरन-कमल तें मम चित टरै न नेक । १

मो मन हरि सरूप में रहै ।

विजय-सखा-पद-कमल छोड़ि

मति छिनहुँ न इत उत बहै ।

तुमुवन-मोहन सुंदर श्याम तमाल सरस तन सोहै ।

कुटिल अलक-अलि मुख-सरोज पर निरखत ही मन मोहै ।

अरुन किरिन सम सुंदर पीत बसन जुग तन पर धारे ।

एकहु छिन इन नैनन तें मम कबहुँ होहु न न्यारे । २

बसै जिय कृष्ण-रूप में मेरो ।

भारत-बुद्ध-समय जो सुंदर अरजुन रथ पर हेरो ।

सुंदर अलकावलि में रन की धूरि रही लपटाई ।

सोहत सीकर-बिंदु बदन पर सो छबि लगति सुहाई ।

मम चोखे बानन सों कहूँ कहूँ खंडित कवचहि धारे ।

अनुदिन बसो नयन जुग मेरे श्री बसुदेव-दुलारे । ३

जिय तें सो छबि बिसरत नाहीं ।

लखी जौन भारत अरंभ में अरजुन के रथ माहीं ।

सखा-बचन सुनि दोउ दल के मधि रथ लै ठाढ़े कीनो ।

पर-जोधन की आयु-तेज-बल देखत जिन हरि लीनो । ४

तिनकी चरन भक्ति मोहिं होई ।

जिन अरजुनहिं मोह मैं लखि कै तासु अविद्या खोई ।

सब बेदन को सार ज्ञानमय जिन हरि गीता गाई ।

निज जन-बंध-संकाहि मोह मति पारथ की बिसराई । ५

मेरी गति होउ सोह बनवारी ।

जिन मेरी परतिज्ञा राखत निज परतिज्ञा टारी ।

अरजुन कहैं लखि बिकल बान सों कूदि सुरथ सों धायत ।

को भरे मेरी दिसि आवत कर तें चक्र फिरायत ।

जद्यपि पग गहि बहु भाँतिन सों पारथ रोक्यो चाहै ।

पै न रुकत जिमि महामत गज लखि मृगराज उछाहै ।

गिनत न मम सर-बरसनि कों कछु बध हित धायत आवै ।

टूटि रट्यो तन कवच मनोहर सोभा अधिक बढ़ावै ।

पीतांबर फहरात बात-बस सो छबि लागत प्यारी ।

यहै रूप तें सदा बसो मन मेरे श्री गिरधारी । ६

मेरे जिय पारथ-सारथि बसिए ।

इक कर मैं लगाम दूजे मैं चाबुक लीने बसिए ।

जासु रूप लखि मरे वीर जे तिनहुँ हरि-पद पायो ।

मरन-समय मम जिय मैं निबसो सोई रूप सुहायो । ७

हरि मम आँखिन आगे डोलौ ।

छिनहुँ हिय तें टरहु न माधव सदा श्रवन ढिग बोलौ ।

जो सरूप लखि कै ब्रज-बनिता देह गहे सब त्यागी ।

* हरिश्चन्द्र चंद्रिका खं. ६ सं. १५ सितम्बर सन् १८७९ ई. में प्रकाशित

होइ बिलग हरि-रूप-उपासी हरि-पद मैं अनुरागी ।
 रास बिलास हास रस बिहरत प्रेम-मगन मन फूली ।
 तनमय भई तनिक सुधि नाही देह दसा सब भूली ।
 भाव-बिबस भगवान भक्त-प्रिय सबही विधि सुखाई ।
 सोई बसो सदा इन नैनन सुंदर कुंअर कन्हाई । ८
 अहो मम भाग्य कष्ट्यौ नहिं जाई ।
 जो देखत त्रिभुवनपति माधव नैनन तें ब्रजराई ।
 धरम-सभा महँ जेहि लखि
 रिषि-मुनि अपनों भाग सराहैं ।

सब सों पूजित चरन-कमल जो
 तासु चरन हम चाहै । ९
 तिन हरि मो कहैं अब अपनायो ।
 निज नख-चंद्र-प्रकास मोह-तम मेरो सबहि नसायो ।
 सबके हिय मैं अंतर-जामी ह्वै है जो ईस समायो ।
 सोई अब मम उर अंतर मैं निज प्रकास प्रगटायो ।
 हरयो मोह-तम अमय दान दै निज स्वरूप दरसायो ।
 कहि 'हरिचंद' भीष्म हरि-पद-बल
 परम अमृत-फल पायो । १०



मान-लीला फूल-बुझैअल

रचना काल सन् १८७९

अमल कमल-कर-पद-बदन जमल कमल से नैन ।
 क्यों न करत कमला बिमल कमल-नाभ-संग सैन । १
 निसि बीती मनवत सखी तू न नेक मुसकात ।
 चटकत कली गुलाब की होन चहत परमात । २
 वह अलबेला कुंज मैं पर्यो अकेला हाय ।
 उठि चलि बहु बेला गई करु दुग-मेला धाय । ३
 अरी माधवी-कुंज मैं माधव अति बेहाल ।
 मधुरिपु माधव मास मैं तो बिनु व्याकुल बाल । ४
 पहिरि नवल चंपकली चंपकली से गात ।
 रस-लोभी अनुपम भँवर हरि-दिग क्यों नहिं जात । ५
 रूप रंग ऐसो मिल्यौ तामैं ऐसी मान ।
 बिनु सुगंध के पूल तू भई कनैर समान । ६
 तुव कुच परसन लालसा गेंदा लै कर श्याम ।
 खरे उछारत कुंज मैं क्यों न चलत तू बाम । ७
 कह पायन मिहदी लगी जासों चलयौ ना जाय ।
 धाय कुंज मैं पियहि क्यों लेत न कंठ लगाय । ८
 दाऊ दीठि बचाय हरि गए कुंज के भौन ।
 बजवत दाऊदी उतै क्यों न करत तू गौन । ९
 बूधा बकुल-पन कर रही उत व्याकुल अति लाल ।
 चलि न मौलि बारन गुथे मौलिसिरी की माल । १०
 खबर न तोहि संकेत की कही केतकी बार ।
 चलि पथ कुंज निकेत की कित की ठानत आर । ११

छिरकि केवरा सों पयहि चलन पाँवरे डारि ।
 कब सों मोहन बैठि कै मारग रहे निहारि । १२
 करत न हरगिस लाड़िले वा बिन सेज न सैन ।
 नरगिस से कब के खुले तुअ मग जोहत नैन । १३
 बिमल चाँदनी भुव बिछी नभ चाँदनी प्रकास ।
 तऊ अंधेरो तुब बिना पिय अति रहत उदास । १४
 बैठि रही क्यों कुंद ह्वै च्लु मकुंद के पास ।
 कुंद-दमल दरसाइ क्यों करत मंद नहिं हास । १५
 अरी माधुरी कुंज मैं बचन माधुरी भाखि ।
 मधुर पिया के प्रान को क्यों न लेत तू राखि । १६
 कष्ट्यौ न मानत मो तिया पहिरि मोतिया-हार ।
 लाउ गरे मोहन पिया सुंदर नंद-कुमार । १७
 सारी तन सजि बैजनी पग पैजनी उतारि ।
 मिलु न बैजनी-माल सों सजनी रजनी चारि । १८
 मदन-बान पिय उर हनत तो बिनु अति अकुलात ।
 तू निरमोहिन इत परी भूठे ही अनखात । १९
 मानिनि वारी बेग चलि प्यारी मान निवारि ।
 सहिन न सकत अब बेदना तो विनि मदन मुरारि । २०
 रमन रेवती के अनुज तो बिनु अति अकुलात ।
 पिय-पद क्यों नहिं सेवती करत मान बिनु बात । २१
 जदपि सबै सामां जुही कल न लहत तउ लाल ।
 सोनजुही सों भावती चलि उठि याही काल । २२

अति अनारि हठ नहिं करिय सीख सखी की मानि ।
 पिय सों रस न कीजिये यामैं कोउ दिन हानि । १२३
 गुल्लाला फूलें लखी आयो बर रितु-राज ।
 कहो भला ऐसी समै कहा मान सों काज । १२४
 तुव हित कब के चक्रधर ठाढ़े पकरि कपाट ।
 दै निसु दरसन लाड़िली जोहत हरि तुव वाट । १२५
 हरि सिंगार सब छाड़ि के तुव बिनु होय मलीन ।
 परे भूमि पै देखु किन विरह-बिधा तन छीन । १२६
 फूली वन नव मालती माल तीय गर डारि ।
 अब उठि चलु न बिलंब करु लै उर लाइ मुरारि । १२७
 करन-फूल दोउ करन सजि हरन सकल उर-सूल ।
 चलु न चरन-आमरन तजि भरत मदन सुख मूल । १२८
 रायबेलि महकति सखी अति सुगंध रस भेलि ।
 क्यों न रमत तू श्याम सों कंठ भुजा दोउ मेलि । १२९
 ठाढ़े पीअ कदंब तर तजिके जुवति-कदंब ।
 चलु बिलंब तजि राधिके दै निज भुज अवलंब । १३०
 पहिरि मल्लिका-माल उर प्रेम-बल्लिका बाल ।
 लपटी कृष्ण तमाल सों लखि 'हरिचंद' निहाल । १३१

१

मल्लिका (चमेली)	कमल	रायबेलि	मालती
सुदरसन	अनार	सेवती	मदन बान
मोतिया	कुंद	नरगिस	केतकी
गुलदाऊदी	गेंदा	चंपा	बेला

२

मल्लिका (चमेली)	गुलाब	कदंब	मालती
हरसिंगार	अनार	जुही	मदनबान
बैजनी	कुंद	चांदनी	केतकी
मोलिसिरी	गेंदा	कनेर	बेला

नेत्र

४

मल्लिका (चमेली)	कदम	रायबेलि	करनफूल
अनार	माधवी	जूही	सेवती
निवारी	कुंद	चांदनी	नरगिस
केवड़ा	गेंदा	कनेर	चंपा

वेद

८

मल्लिका (चमेली)	कदम्ब	रायबेलि	करनफूल
मिंहदी	मालती	हरसिंगार	सुदरसन
गुल्लाला	कुंद	चांदनी	नरगिस
केवड़ा	केतकी	मोलिसिरी	गुलदाउजी

१६

मल्लिका (चमेली)	कदम्ब	रायबेलि	करनफूल
मालती	हरसिंगार	सुदरसन	गुल्लाला
अनार	जूही	सेवती	निवारी
मदनबान	बैजनी	मोतिया	माधुरी

श्रृंगार

प्रश्न करने की विधि

यह एक बड़ा आश्चर्य प्रश्न का खेल है । पहले मान लीला के जिन दोहों में जिस फूल का नाम निकलता हो उसको समझ लो और उन दोहों के अंक भी याद कर रखो । प्रश्न करने वाले से कहो कि इन्हीं ३१ फूलों में एक फूल का नाम अपने जी में लो फिर इन पाँचों ताशों में से एक एक ताश उसके सामने रखकर पूछो इसमें

वह फूल है, जिसमें वह बतावै उन ताशों को अलग अलग करके उनके ऊपर लिखी गिनती जोड़ लो कि कितने अंक आते हैं। मान लीला के उसी अंक के दोहे में जिस फूल का नाम हो वही उसने जी में लिया है। जैसा चंपा अगर किसी ने लिया है तो वह ४ और १ एक अंक वाला ताश बतावैगा तो उसके जोड़ने से

५ अंक हुए तो मान लीला में पाँचवें दोहे में चंपा का वर्णन है इससे चंपा उसने लिया है समझो और जिसमें सबके समझ में न आवै इसके वास्ते स्पष्ट अंक के बदले छिपे अंक रखे हैं यथा चंद्र १ नेत्र २ वेद ४ वसु ८ शृंगार १६।



बन्दर सभा*

रचना काल सन् १८७९

इन्दर सभा उर्दू में एक प्रकार का नाटक है वा नाटकाभास है और यह बन्दर सभा उसका भी आभास है

(आना राजा बन्दर का बीच सभा के)

सभा में दोस्तो बन्दर की आमद जामद है।

गधे औ फूलों के अफसर की आमद आमद है।
मरे जो घोड़े तो गदहा य बादशाह बना।

उसी मसीह के पैकर की आमद आमद है।
व मोटा तन व थुँदला थुँदला मू व कुच्ची आँख
व मोटे ओठ मुखन्दर की आमद आमद है।

हे खर्च खर्च तो आमद नहीं खर-मुहरे की
उसी बिचारे नए खर की आमद आमद है। १

[चौबोले जबानी राजा बन्दर के बीच अहवाल अपने को]

पाजी हूँ मैं कौम का बन्दर मेरा नाम।
बिन फुजूल कूदे फिरे मुझे नहीं आराम।
सुनो रे मेरे देव रे दिल को नहीं करार।
जल्दी मेरे वास्ते सभा करो तैयार।
लाओ जन्नाँ को मेरे जलदी जाकर ह्याँ।
सि मूडै गारत करै मुजरा करै यहाँ। २

[आना शतुरमुर्ग परी का बीच सभा के]

आज महफिल में शतुरमुर्ग परी आती है।

गोया महमिल से व लेली उतरी आती है।
तैल औ पानी से पट्टी है सेंवारी सिर पर।
मुँह पै माँझा दिये जल्लादो जरी आती है।
भूठे पट्टे की है मूबाफ पड़ी चोटी में।
देखते ही जिसे आँखों में तरी आती है।
पान भी खाया है मिस्सी भी जमाई हैगी।
हाथ में पायँचा लेकर निखरी आती है।
मर सकते हैं परिन्दे भी नहीं पर जिस तक।
चिड़िया-वाले के यहाँ अब व परी आती है।
जाते ही लूट लूँ क्या चीज खसोटूँ क्या शै।
बस इसी फिक्क में वह सोच भरी आती है। ३

[गजल जबानी शतुरमुर्ग परी हस्तब हाल अपने को]

गाती हूँ मैं औ नाज सदा काम है मेरा।
ए लोगो शतुरमुर्ग परी नाम है मेरा।
फन्दे से मेरे कोई निकलने नहीं पाता।
इस गुलाशने आलाम में बिछा दाम है मेरा।
दो चार टके ही पै कभी रात गँवा हूँ।
कारुँ का खजाना कभी इनआम है मेरा।
पहले जो मिलै कोई तो जी उसका लुभाना।

* हरिशचंद्र चंद्रिका सं. १३ जुलाई सन् १८७९ ई. में छपा।

वस कार यही तो सहरो शाम है मेरा ।
 शुरफा व रुजला एक है दरबार में मेरे ।
 नहीं खास नहीं फैज तो इक आम है मेरा ।
 बन जाएं जुगत तब तो उन्हें मूड़ ही लेना ।
 खाली हों तो कर देगा देना घता काम है मेरा ।
 जर मजहबो मिललत मेरा बन्दी हूँ मैं जर की ।
 जर ही मेरा अल्लाह है जर राम है मेरा । १४

[छन्द जबानी शुरुरमुर्ग परी]

राजा बन्दर देस मैं रहें इलाही शाद ।
 जो मुफ्फ सी नाचीज को किया समा में याद ।
 किया समा में याद मुफ्फे राजा ने आज ।
 दौलत माल खजाने की मैं हूँ मुहताज ।
 रुपया मिलना चाहिये तख्त न मुफ्फको ताज ।
 जग में बात उस्ताद की बनी रहे महाराज । १५

[दुनरी जबानी शुरुरमुर्ग परी के]

आई हूँ मैं समा में छोड़ के घर ।

लेना है मुफ्फे इनआम में जर ।

दुनिया में है जो कुछ सब जर है ।

बिन जर के आदमी बन्दर है ।

बन्दर जर हो तो इन्दर है ।

जर ही के लिये कसबो हुनर है । १६

[गजल शुरुरमुर्ग परी की बहार के मौसम में]

आमद से बसन्तों के है गुलजार बसन्ती ।
 है फर्श बसन्ती दरो-दीवार बसन्ती ।
 आँखों में हिमाकत का कैवल जब से खिला है ।
 आते हैं नजर कूचओ बाजार बसन्ती ।
 अफयूँ मदक चरस के व चण्ड के बदीलत ।
 यारों के सदा रहते हैं रुखसार बसन्ती ।
 दे जाम मए गुल के मये जाफरान के ।
 दो चार गुलाबी हों तो दो चार बसन्ती ।
 तहवील जो खाली हो तो कुछ कर्ज मँगा लो,
 जोड़ा हो परी जान का तय्यार बसन्ती । १७

[होली जबानी शुरुरमुर्ग परी के]

पा लोगों कर जोरी भली कीनी तुम होरी ।
 फाग खेलि बहु रंग उड़ायो और धूर भरि भोरी ।
 धूँधर करो भली हिलि मिलि के अंधाधुंध मचोरी ।
 न सूफत कछु चहुँ ओरी ।

बने दीवारी के बहुआ घर लाइ भली विधि होरी ।

लगी सलोनो हाथ चरहु अब दसमी चैन करो री ।

सबै तेहवार भयो री । १८

(फिर कभी)



विजय-बल्लरी

रचना काल सन् १८८१

अबो आज आनंद का भारत भूमि मैफार ।
 सबके हिय अति हर्ष क्यों बाढ़यो परम अपार । ११
 आर्य गगन कों का मिल्यो जो अति प्रफुलित गात ।
 सबै कहन जै आजु क्यों यह नहिं जान्यो जात । १२
 सबके मन संतोष अति सबके मन आनंद ।
 सबही प्रमुदित देखियत ज्यों चकोर लहि चंद । १३
 कहा भूमि-कर उठि गयो के टिककस मो माफ ।
 जनसाधारन कों भयो किधौ सिविल पथ साफ । १४

नाटक अरु उपदेश पुनि समाचार के पत्र ।
 कारामुक्त भए कहा जो अनंद अति अत्र । १५
 के प्रतच्छ गो-बधन की जवनन छाड़ी बानि ।
 जो अब आर्य प्रसन्न अति मन महँ मंगल मानि । १६
 कहा तुम्हें नहिं खबर खबर जय की इत आई ।
 जीति देस गन्धार सत्रु सब दिये भगाई । १७
 सब औगुन की खानि अयूब भज्यो असु लैकै ।
 प्रविसी सेना नगर माहिं जय डंका दैकै । १८

मरट कारागार बस्यो याकूब अभागो ।
 और सबे बर्बर-दल इत उत बल-हत भागो । १९
 गो-भक्षक रक्षक बनि अंगरेजन फल पायो ।
 तासों करि अति क्रोध सनुगन मारि भगायो । १०
 पंचम पांडव जिमि सकुनी गन्धार पछार्यो ।
 बृटिश रिषम तिमि खरज काबुली मध्य मार्यो । ११
 रुस रुस उर सूल दियो ईरान दबायो ।
 बृटिश सिंह को अटल तेज करि प्रगट दिखायो । १२
 प्रथम जबै काबुलपति कछु अभिमान जनायो ।
 तबै बृटिश हरि गरजि कोपि वापै चढ़ि धायो । १३
 शेर अली भजि माँद समाधि प्रवेस कियो तब ।
 ठहरि सकत कहैं अली रंग-नायक उमड़ै जब । १४
 रुस हंस दे घूस प्रथम तेहि आस बढ़ाई ।
 घोखा दैके अन्त घूस बनि पोंछ दबाई । १५
 खेबर दर अरगला कठिन गिरि सरित करारै ।
 शत्रु हृदय सह तोड़ि तोड़ि रिजु कीन्हें सारै । १६
 काबुल का बल करै बृटिश हरि गरजि चढ़ै जब ।
 बन गरजे केहरी भजहिं छट खर खच्चर सब । १७
 नीति विरुद्ध सदैव दूत बध के अघ साने ।
 रुस कुमति फौस हूस आप सों आप नसाने । १८
 सिंह-चिन्ह को भुजा चढ़ी वाला-हिसार पर ।
 जय देवी बिजयिनी सोर भो काबुल घर घर । १९
 पुनि परतिज्ञा चेति सत्य सो बदन न मोड़यो ।
 खल-दल-बल दलमलि तुन-सम अफगानहिं छोड़यो । २०
 नृप अबदुल रहमान कियो आदेश सुनाई ।
 सुद, सत्य अरु दान-बीरता तृतीय दिखाई । २१
 तजि कुदेस निज सैन सहित सब सेनापतिगन ।
 भारत में फिर आय बसे जय कहत मुदित मन । २२
 ताही सो उत्साह बढ़यो यह चहुँ दिसि मारी ।
 जय जय बोलत मुदित फिरत इत उत नर नारी । २३
 नहिं नहिं यह कारन नहीं अहै और ही बात ।
 जो भारतवासी सबै प्रमुदित अतिहिं लखात । २४
 काबुल सों इनको कहा हिये हरख की आस ।
 ये तो निज धन-नास सों रन सों और उदास । २५

ये तो समुम्हत व्यर्थ सब यह रोटी उतपात ।
 भारत कोष बिनास कों हिय अति ही अकुलात । २६
 ईति भीति दुष्काल सों पीड़ित कर को सोग ।
 ताड़ पै धन-नास की यह बिनु काज कुयोग । २७
 स्टैची डिजरेली लिटन चितय नीति के जाल ।
 फौस भारत जरजर भयो काबुल-युद्ध अकाल । २८
 सबहिं माँति नृप-भक्त जे भारतवासी-लोक ।
 शस्त्र और मुद्रण विषय करी तिनहुँ को लोक । २९
 सुजस मिलै अंगरेज कों होय रुस की रोक ।
 बड़े बृटिश बाणिज्य पै हम कों केवल सोक । ३०
 भारत राज मंभार जो कहूँ काबुल मिलि जाई ।
 जज्ज कलक्टर होइहैं हिंदू नहिं तित धाई । ३१
 ये तो केवल मरन हित द्रव्य देन हित हीन ।
 तासों काबुल-युद्ध सों ये जिय सदा मलीन । ३२
 इनके जिय के हरख को औरहि कारन कोय ।
 जो ये सब दुख भूलि कै रहे अनदित होय । ३३
 अब जानी हम बात जौन अति आनंदकारी ।
 जासों प्रमुदित भये सबै भारत नर-नारी । ३४
 नृप रहमान अयूब दोऊ मिलि कलह मचाई ।
 अंत प्रबल ह्वै लिय अयूब गन्धार छुड़ाई । ३५
 आदि बंस नव बंस दोऊ काबुल अधिकारी ।
 जाहि जातिगन चहै करै निज नृप बलधारी । ३६
 यामें हमरो कहा कउन उन सों मम नाता ।
 भार पड़ै मिलि लड़ै भिड़ै भगड़ै सब भ्राता । ३७
 दूढ़ करि भारत-सीम बसैं अंगरेज सुखारे ।
 भारत असु बसु हरित करहिं सब आर्य दुखारे । ३८
 सनु सनु लड़वाइ दूर रहि लखिय तमासा ।
 प्रबल देखिए जाहि ताहि मिलि दीजे आसा । ३९
 लिबरल दल बुधि मौन शान्तिप्रिय अति उदार चित ।
 पिछली चूक सुधारि अबै करिहै भारत-हित । ४०
 खुलिहै 'लोन' न युद्ध बिना लगिहै नहिं टिक्कस ।
 रहिहै प्रजा अनन्द सहित बढ़िहै मंत्री-जस । ४१
 यहै सोचि आनंद भरे भारतवासी जन ।
 प्रमुदित इत उत फिरहिं आब

रच्छित लखि निज धन । ४२



विजयिनी-विजय-पताका या वैजयंती *

रचना काल सन् १८८२

PREPATORY NOTE

A special meeting of the Benares institute was held on the 22nd September 1882 at 6 P.M. in the Town Hall to express our joy at the recent success of the Indian army in Egypt. Almost all the raises, Civil, Revenue and Judicial officers, Pandits, Professors, Members of Municipal and District Committees and Scholars were present, The Hall was full and many were obliged to hear the recital from the verandah. The Honorable Raja Siva Siva Prasad C.S.I. was unanimously voted to the chair.

Babu Harischandra read an excellent poem in Hindi on the subject. The opening stanzas of the poem explain the cause of India's unusual cheerfulness. It is the signal success of the Indian army in Egypt. A vivid contrast is drawn between the past and present conditions of India and the victory of British nation

in Egypt described.

The gentlemen present expressed their unqualified applause at the recital and the hall resounded with cheers. The Honorable Raja Siva Prasad C.S. I. then described the importance of Egypt as a highway to India and said that the British conquest has been extremely rapid. He thanked Babu Harischandra for his excellent poem.

Mr. Bullock, the Collector warmly thanked Raja Siva Prasad and Babu Harischandra for sentiments of loyalty to the British Government, expressed by the people of Benares.

H.H. the Maharaja of Benares was unavoidably detained at Ram Nagar on account of some religious ceremony but he has expressed his full sympathy with the object of the meeting.

विजयिनी-विजय-पताका या वैजयंती

कहो कहा यह सुनि पर्यौ जाको सबहिं उछाह ।
हरखित आरज मात्र मे जिय बढ़ाह अति चाह ।
फरकि उठीं सब की भुजा खरकि उठी तलवार ।
क्यों आपुहि ऊँचै भए आर्य मोछ के बार ।

जे आरजगन आजु लौं रहे नवाए माथ ।
तेह्र सिर ऊँचो किए क्यों दिखत इक साथ ।
क्यों पताक लहरन लगीं फहरन लगे निसान ।
क्यों बाजन बजिबे लगे घहरि घहरि इक तान ।

१ आश्विन कृ. ६ सं. १९३९ को कवि-वचन-सुधा खंड १४ सं. ९ में विजयिनी-विजय पताका छपी थी । अंग्रेजी की इस रिपोर्ट का हिंदी रूपान्तर वहाँ छपा है । सं.

२ अंग्रेजों ने पहला विद्रोह को सन् १८८२ में दबाकर पूरे मिश्र में अपनी प्रभुता स्थापित की । इसमें भारतीय सेना भी अंग्रेजों की ओर से लड़ी थी । इस उपलक्ष्य में भारत में भी विजयोत्सव मनाया गया । 'बनारस इस्टीट्यूट' की एक विशेष सभा २२ सितम्बर १८८२ को बनारस के टाउन हाल में हुई थी, जिसमें भारतेन्दु ने यह कविता पढ़ी — सं.

क्यों दुंदुभि हुंकार सों छाये पूरि अकास ।
 क्यों कंपित करि पवन-गति छई नफीरी-आस ।५
 वटिश सुशासित भूमि मैं रन-रस उमगे गात ।
 सबै कहत जय आबु क्यों यह नहिं जानौं जात ।६
 छुटत तोप गभीर रव ब्रजनाद सब जोर ।
 गिरि कंपत थर धर खरे सुनि धर धर धर सोर ।७
 विंध्य हिमालय नील गिरि सिखरन चढ़े निसान ।
 फहरत 'रूल ब्रिटानिया' कहि कहि मेघ समान ।८
 अटक कटक लौं आबु क्यों सगरो आरज देस ।
 अति आनंद मैं भरि रह्यो मनु दुख को नहिं लेस ।९
 क्यों अ-जीव भारत भयो आबु सजीव लखात ।
 क्यों मसान भुव आबु बनि रंगभूमि सरसात ।१०
 सहसन बरसन सों सुन्यो जो सपनेहु नहिं कान ।
 जो जय भारत शब्द क्यों पूर्यो आबु जहान ।११

शाखा

कहा तुम्है नहिं खबर खबर जय की इत आई ।
 जीति मिसर मैं शत्रु-सैन सब दई भगाई ।१२
 तड़ित तार के द्वार मिल्यो सुभ समाचार यह ।
 भारत-सेना कियो घोर संग्राम मिश्र मह ।१३
 जेनरल मकफरसन आदिक जे सेनापति-गन ।
 नि लै भारत सैन कियो भारी अति ही रन ।१४
 बोलि भारती-सैन दयी आयसु उठि धायो ।
 अभिमानी अरबी बेगहि गहि लाओ ।१५
 सुनि कै सबही परम वीरता आबु दिखाई ।
 शत्रु-गगन सों सनमुख भारी करी लराई ।१६
 छिन मैं शत्रु भगाइ गह्यो अरबी पासा कहैं ।
 तीन सहस रन-वीर करे बँधुआ संगर महैं ।१७
 आरजगन को नाम आबु सब ही रखि लीनो ।
 पुनि भारत को सीस जगत महैं उन्नत कीनो ।१८

आरंभ

कित अरजुन, कित भीम कित करन नकुल सहदेव ।
 कित बिराट, अभिमन्यु कित द्रुपद सत्य नरदेव ।१९
 कित पुरु, रघु, अज, यदु कितै परशुराम अभिराम ।
 कित रावन, सुगीव कित हनुमान गुनधाम ।२०

कित भीष्म, कित द्रोण कित सात्यकि अति रनधीर ।
 कित पोलस, कित चन्द्र, कित पृथ्वीराज, हम्मीर ।२१
 कित सकारि विक्रम, कितै समरसिंह नरपाल ।
 कित अंतिम नर-वीर रन-जीतसिंह भूपाल ।२२
 कहहु लखाहिं सब आइ निज संतति को उत्साह ।
 सजे साज रन को खरे मरन-हेत करि चाह ।२३

स्वामिभक्ति किरतजता दरसावन-हित आज ।
 छाँड़ि प्राण देखहिं खरो आरज बंस समाज ।२४
 तुमरी कीरति कुल-कथा साँची करबे हेतु ।
 लखहु लखहु नृप-गन सबै फहरावत जय-केतु ।२५
 मेटहु जिय के सत्य सब सफल करहु निज नैन ।
 लखहु न अरबी सों लारन ठाढ़ी आरज-सैन ।२६

शाखा

सुनत वीर इक वृद्ध नरन के संमुख आयो ।
 श्वेत सिंह जिमि गुहा छाँड़ि बाहर दरसायो ।२७
 सुभ्र मोछ फहरात सुजस की मनहुं पताका ।
 सेत केस सिर लसत मनहुं थिर भई बलाका ।२८
 अरुन बदन ढिग सेत केस सुंदर दरसायो ।
 वीर रसहिं मनु धेर रह्यो रस सांत सुहायो ।२९
 रचि-ससि मिलि इक ठौर उदित सी कांति पसारो ।
 पी हृदय आजानु-बाहु स्वेताम्बर धारो ।३०
 कटि पै माथा कंध धनुष कर मैं करवाला ।
 परी पीठ पै ढाल गुलाबी नैन बिसाला ।३१
 सिंह ठबानि निरभय चितवनि चितवत समुहाई ।
 तन दुति फैली छूटि परत धानी पर आई ।३२
 नभ मधि ठाढ़े होइ कही यह घन सम बानी ।
 अति गंभीर कछु करुना कछु वीर-रस-सानी ।३३

कोरस

क्यों बहरावत भूठ मोहिं और बढ़ावत सोग ।
 अब भारत मैं नाहिं वे रहे वीर जे लोग ।३४
 जो भारत जग मैं रह्यो सब सों उत्तम देस ।
 ताही भारत मैं रह्यो अब नाहिं सुख को लेस ।३५
 याही भुव मैं होत हैं हीरक, आम, कपास ।
 इतहीं हिमगिरि, गंग-जल, काव्य-गीत-परकास ।३६
 याही भारत देस मैं रहे कृष्ण मुनि व्यास ।
 जिनके भारत-गान सों भारत-बदन प्रकास ।३७
 जासु काव्य सों जगत-मधि ऊँचो भारत-सीस ।
 जासु राज-बल-धर्म की तृषा करहिं अवनीस ।३८
 सोई व्यास अरु राम के बंस सबै सतान ।
 अब लौं ये भारत भरे नहिं गुन-रूप-समान ।३९
 कोटि कोटि ऋषि पुन्य-तन, कोटि कोटि नृप सूर ।
 कोटि कोटि बुध, मधुर, कवि मिले यहाँ की धूर ।४०

आरंभ

हाय वहै भारत भुव भारी ।

सब ही बिधि तें भई दुखारी ।
 रोम-ग्रीस पुनि निज बल पायो ।

सब बिधि भारत दुखित बनायो ।४१

अति निरबली स्याम जापाना ।

हाय न भारत तिनहुँ समाना ।

हाय रोम तू अति बड़-भागी ।

बरबर तोहिं नास्यो जय लागी ॥४२॥
तोड़े कीरति-खंभ अनेकन ।

द्वहे गढ़ बहु करि जय-टेकन ।

सबै चिन्ह तुव धूर मिलाए ।

मंदिर महलनि तोरि गिराए ॥४३॥
कछु न बची तुव भूमि निसानी ।

सो बरु मेरे मन अति मानी ।

पै भारतभुव-जीतन-हारे ।

थाप्यो पद या सीस-उचारे ॥४४॥
तोरयो दुर्गनि, महल द्वायो ।

तिनही मैं निज गेह बनायो ।

ते कलंक सब भारत केरे ।

ठढ़े अजहूँ लाखो घनेरे ॥४५॥

आय पंचनद, हा पानीपत ।

अजहूँ रहे तुम धरनि बिराजत ।

हाय चितौर निलज तू भारी ।

अजहूँ खरो भारत मैफारी ॥४६॥

जा दिन तुव अधिकार नसायो ।

ताही दिन किन धरनि समायो ।

रह्यो कलंक न भारत-नामा ।

क्यों रे तू बाराणसि धामा ॥४७॥

इनके भय कंपत संसारा ।

सब जग इनको तेज पसारा ।

इनके तनिकाहि भौंह हिलाए ।

धर धर कंपत नृप भय पाए ॥४८॥

इनके जय की उज्जल गाथा ।

गावत सब जग के रुचि साथी ।

भारत-किरिन जगत उँजियारा ।

भारत जीव जियत संसारा ॥४९॥

भारत-भुज-बल लहि जग रच्छित ।

भारत-विद्या सों जग सिच्छित ।

रहे जबै मनि क्रीट सुकुंडल ।

रह्यो दंड जय प्रबल अखण्डल ॥५०॥

रह्यो रुधिर जब आरज सीसा ।

ज्वलित अनल-समान अग्नीसा ।

साहस बल इन सम कोउ नाहीं ।

जबै रह्यो महि मंडल माहीं ॥५१॥

तब इनहीं की जगत बढ़ाई ।

रही सबै जग कीरति छाई ।

तितही अब ऐसो कोउ नाहीं ।

लरै छिनहुँ जो संगर माहीं ॥५२॥

प्रगट वीरता देह दिखाई ।

छन महँ मिसरहिं लेह छुड़ाई ।

निज भुज-बल विक्रम जग माड़े ।

भारत-जर-धुज अविचल गाड़े ॥५३॥

यवन-हृदय-पत्नी पर बरबस ।

लिखै लोह-लेखनि भारत-जस ।

पुनि भारत-जस करि विस्तारा ।

मम मुख फेर करे उँजियारा ॥५४॥

शाखा

हाय !

सोय भारत भूमि भई सब भाँति दुखारी ।

रह्यो न एकहु वीर सहजन कोस मैफारी ॥५५॥

होत सिंह को नाद जौन भारत-बन माहीं ।

तहँ अब ससक सियार स्वान खर आदि लखाहीं ॥५६॥

जहँ भूसी उज्जैन अवध कनौज रहे वर ।

तहँ अब रोवत सिवा चहँ दिसि लखियत खंडहर ॥५७॥

घन विद्या बल मान वीरता कीरति छाई ।

रही जहाँ तित केवल अब दीनता लखाई ॥५८॥

कोरस

अरे वीर इक बेर उठहु सब फिर कित सोए ।

लेहु करन करवालि काढ़ि रन-रंग समोए ॥५९॥

चलहु वीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहि उड़ाओ ।

लेहु म्यान सों खंग खींचि रन-रंग जमाओ ॥६०॥

परिकर कटि कसि उठौ बँदू कहि मरि मरि साधौ ।

सजौ जुद्ध-बानो सब ही रन-कंकन बाँधौ ॥६१॥

का अरबी को वेग कहौ याको बल भारी ।

सिंह जगे कहूँ स्वान ठहरिहै समर मैफारी ॥६२॥

पद-तल इन कहँ दलहु कीन-तून-सरिस नीच-चय ।

तनिकहु संक न करहु धर्म जिय जय तित निश्चय ॥६३॥

जिन बिनहीं अपराध अनेकन कुल संहारे ।

इत पादरी बनिन आदि बिन दोसहि मारे ॥६४॥

प्रथम जुद्ध परिहार कियो विश्वास दिवाई ।

पुनि घोखा दे एकाएकी करी लराई ॥६५॥

इनको तुरतहि हतौ मिलै रन के घर माहीं ।

इन हलियन सों पाप किएहु पुन्य सबाहीं ॥६६॥

उठहु वीर तरवार खींचि माइहु घन संगर ।

लोह-लेखनी लिखहु आर्य बल जवन-हृदय पर । ६७
 मारु बाजे बजै कहो घौसा घहराहीं ।
 उड़हि पताका सनु-हृदय लखि लखि थहराहीं । ६८
 चारन बोलहिं विजय-सुजस बंदी गुन गावैं ।
 छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावैं । ६९
 चमकहिं जस भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर ।
 हींसहिं हय भ्रमकहिं रथ अज विक्करहिं समर थर । ७०
 नासहु अरबी शत्रु-गनन कहैं कहैं करि छन महैं छय ।
 करहु सबहि बिजयिनी-राज महैं भारत की जय । ७१

आरंभ

सुनत उठे सब वीर-वर कर महैं धारि कृपान ।
 कियो सबन मिलि जुद्ध-हित धारि उमंग पयान । ७२
 पहिरि जिरह काटि कांस सबै तौलत चले कृपान ।
 लै बंदूक साधत चले लच्छ वीर बलवान । ७३
 निरभय पग आगहिं परत मुख तें भाखत मार ।
 चले वीर सब लारन हित मिसरिन सों इकवार । ७४
 चंद्र-सूर्य-बंसी जिते प्रमर, अनल, चौहान ।
 घोड़न चढ़ि आए सबै छत्री वीर सुजान । ७५
 सुमिरि सुमिरि हजरी सबै निज पुरुषन की बात ।
 धाए ऐंठत मोछ निज उमंगि वीर रस गात । ७६
 उमगी भारत-सैन जब सुमद-सरिस घनघोर ।
 तब मिसरी चीनी कहा का सैधव को जोर । ७७
 बजी बृटिश रन-दुंदुभी गरजे गहकि निसान ।
 कपे थर थर भूमि गिरि नदी नगर असमान । ७८

शाखा

दमामा सनाई बजाओ बजाओ ।
 अरे राग मारु सुनाओ सुनाओ ।
 सबै फौज आगे बढ़ाओ बढ़ाओ ।
 अरे जै-पताका उड़ाओ उड़ाओ ।
 कहाँ वीर हौ बेग धाओ सु-धाओ ।
 अरे वीरता को दिखाओ दिखाओ ।
 अरे म्यान सों शस्त्र खोलो सु-खोलो ।
 अरे मार मारी धरौ मार बोलो ।
 अरे शत्रु सीस काटो सु-काटो ।
 अरे कायरै दौरि डाँटो सु-डाँटो ।

निसाना सबै लै लगाओ ।

अरे लै बंदूकें चलाओ चलाओ ।

सबै युद्ध भारी मचाओ मचाओ ।

अरे शत्रु-सेनै भगाओ भगाओ । ७९

कोरस

भगी शत्रु की सेन रह्यो कहूं नाहिं ठिकाना ।
 कै जमपुर कै गिरि बन कबुरन कियो पयाना । ८०
 सुख सों बस्यो खदीव प्रजागन अति सुख पायो ।
 ब्रिटिश क्रोध को फल सब कहैं परतच्छ लखायो । ८१
 मथ्यो समुद्रहि जिन ब्रिटानिया निज कटाक्ष-बल ।
 जग महैं जिनको निरभय बिचरत कठिन प्रबल दल । ८२
 जिन भारत महैं आई तोप-बल दह्यो ब्रज कहैं ।
 आगि-वान जय-पत्र लिख्यो जिन भारत-अंग महैं । ८३
 कठिन छत्रियन जीति लए जिन बहु गढ़ सहजहि ।
 सिक्खन दीनी हार लियो मूलतान तनिक चांह । ८४
 तर्जनि अग्र हिलाइ लखनऊ छिन महैं लीनो ।
 तनिक दृष्टि की कोर सकल साजन बस कीनो । ८५
 कठिन सिपाही द्रोह-अनल जा जग-बल नामी ।
 जिन भय सिर न हिलाइ सकत कहूं भारतवासी । ८६
 जासु सैन-बल देखि रूस समयहिं जिय हार्यो ।
 बरलिन संधिहि मानि होउ बिधि समयहिं टार्यो । ८७
 सहजहि निज बस कीनी जिन सिप्रस को टापू ।
 छाड़ि दियो सब नृपनन पै निज प्रबल प्रतापू । ८८
 काबुल अरु कंधार कठिन महैं हलचल पार्यो ।
 शेरअली-याकूब-अयूबाहि सहज उखार्यो । ८९
 खैबर दर अरगला कठिन गिरि-सरित करारे ।
 सनु-हृदय सह तोड़ि तोड़ि रिजु कीन्हे सारे । ९०
 रूम-रूस-उर सूल दियो ईरान दबायो ।
 बृटिश सिंह को अटल तेज करि प्रगट दिखायो । ९१
 सिंह चिन्ह की धुजा चढ़ी बाला हिसार पर ।
 जय देवी बिजयिनी सोर भो काबुल घर घर । ९२
 ताके आगे कहा मिसिर का अरबी को बल ।
 इन सों सपनहु बैर किए पावे परतछ फल । ९३
 बज्यो बृटिश डंका गहकि धुनि छाई चहुं ओर ।
 जयति राजराजेश्वरी कियो सबनि मिलि सोर । ९४



नये जमाने की मुकरी

'नवोदिता हरिश्चंद्र चंद्रिका' खं. ११ सं. १ में
सन् १८८४ में प्रकाशित ।

जब सभाविलास संगृहीत हुई थी, तब वैसा ही
काल था कि (क्यों सखि सज्जन ना सखि पंखा) इस
चाल की मुकरी लोग पढ़ते पढ़ते थे किन्तु अब काल
बदल गया तो उसके साथ मुकरियाँ भी बदल गई ।
बानगी दस पाँच देखिये —

सब गुरुजन को बुरो बतावै ।

अपनी खिचड़ी अलग पकावै ।

भीतर तत्व न भूठी तेजी ।

क्यों सखि सज्जन नाहं अंगरेजी ११
तीन बुलाए तेरह आवैं ।

निज निज बिपता रोइ सुनावैं ।
आँखों फूटे भरा न पेट ।

क्यों सखि सज्जन नाहं प्रवृण्ड १२
सुंदर बानी कहि समुझावै ।

बिधवागन सों नेह बढ़ावै ।
दयानिधान परम गुन-आगर ।

सखि सज्जन नाहं विद्यासागर १३
सीटी देकर पास बुलावै ।

रूपया ले तो निकट बिठावै ।
ले भागै मोहिं खेलाहि खेल ।

क्यों सखि सज्जन नाहं सखि रेल १४
धन लेकर कछु काम न आव ।

ऊँची नीची राह दिखाव ।
समय पड़े पर सीधै गुंगी ।

क्यों सखि सज्जन नाहं सखि चुंगी १५
मनलाव ही की बोले बात ।

राखै सदा काम की धात ।
डोले पहने सुंदर समला ।

क्यों सखि सज्जन नाहं सिख अमला १६
रूप दिखावत सरबस लूटै ।

फंदे में जो पड़े न छूटै ।

कपट कटारी जिय मैं हलिस ।

क्यों सखि सज्जन नाहं सखि पूर्णिस १७

भीतर भीतर सब रस चुसै ।

हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै ।

जाहिर बातन मैं आति तेज ।

क्यों सखि सज्जन नाहं अंगरेज १८
सतएँ अठएँ मों घर आवै ।

तरह तरह की बात सुनाव ।

घर बैठा ही जोड़ुं नार ।

क्यों सखि सज्जन नाहं अखबार १९
एक गरभ मैं सौ सौ पूत ।

जनमावै ऐसा मजबूत ।
करै खाटाखट काम सयाना ।

सखि सज्जन नाहं छापाखाना १२०
नई नई नित तान सुनावै ।

अपने जाल में जगत फँसावै ।
नित नित हमै करै बल-मुन ।

क्यों सखि सज्जन नाहं कानून १२१
इनकी उनकी खिदमत करो ।

रूपया देने देने मरों ।
तब आवै मोहिं करन खराब ।

क्यों सखि सज्जन नहीं खिताब १२२
लंगर छोड़ि खड़ा हो भूमै ।

उलाटी गाँत प्रतिकर्लाहि चूमै ।
देस देस डोलै सजि साज ।

क्यों सखि सज्जन नहीं जहाज १२३
मूँह जब लागै तब नाहं छूटै ।

जाति मान धन सब कुछ लूटै ।
पागल करि मोहिं करे खराब ।

क्यों सखि सज्जन नहीं सराब १२४



जातीय संगीत

रचनाकाल — सन् १८८४

प्रभु रच्छहु दयाल महारानी ।
बहु दिन जिए प्रजा-सुखदानी ।
हे प्रभु रच्छहु श्री महारानी ।
सब दीस में तिनकी जय होई ।
रहै प्रसन्न सकल भय खोई ।
राज करै बहु दिन लौ सोई ।
हे प्रभु रच्छहु श्री महारानी । १

उठहु उठहु प्रभु त्रिभुवन राई ।
तिनके अरिन देहु अकुलाई ।
रन महैं तिनहिं गिरावहु मारी ।
सब सुख दारिद दूर बहाओ ।
विद्या और कला फैलाओ ।
हमारे घर महैं शांति बसाओ ।
देहु असीस हमैं सुखकारी । २

प्रभु निज अनगन सुभग असीसा ।
बरसहु सदा विजयिनी-सीसा ।
देहु निरुजता जस अधिकारा ।
कृपक, राजसुत, कै अधिकारी ।
करहिं राज को सभ्रम भारी ।
निकट दूर के सब नर नारी ।
करहिं नाम आदर विस्तारा । ३

रच्छहु निज भुज तर सह साजा ।
सब समर्थ राजन के राजा ।

अलख राज कर सब बल-खानी ।
बिनय सुनहु बिनवत सब कोई ।
पूरब सों पच्छिम लौं जोई ।
राजभक्त-गन इक मन होई ।
हे प्रभु रच्छहु श्री महारानी । ४

(युद्ध के समय योधागण के गाने की)

उठहु उठहु प्रभु त्रिभुवन-राई ।
तिनके शत्रु देहु छितराई ।
रन महैं तिनहिं गिरावहु मारी ।
स्वार्मान स्वत्व हेतु जे वीरा ।
लड़हिं हरहु तिनकी सब पीरा ।
यह बिनवत हम तुव पद तीरा ।
हे प्रभु जग-स्वामी सुखकारी । ५

(अकाल और उपद्रव के समय गाने को)

उठहु उठहु प्रभु ! त्रिभुवन-राई ।
कठिन काल में होहु सहाई ।
देहु हमहिं अवलवन भारी ।
अभय हाथ मम सीस फिराओ ।
मुरभी भुव पर सुख बरसाओ ।
पिता विपति सों हमहिं बचाओ ।
आइ सरन तुव रहे पुकारी । ६

रिपनाष्टक

[रचना काल सन् १८८४]

जय जय रिपन *उदा जयति भारत-हितकारी ।
जयति सत्य-पथ-पथिक जयति जन-शोक-बिदारी ।

जय मुद्रा-स्वाधीन-करन सालाम दुख-नाशन ।
मृत्यु-वृत्ति-प्रद जय पीडित-जन दया-प्रकाशन ।

* जार्ज फ्रेडरिक सेमुएल रॉबिन्सन, मारविकस ऑव रिपन का जन्म सन् १८२७ ई. में लंदन में हुआ था ।

जय प्रजा-राज्यस्थापन-करन हरन दीन भारत-विपद ।
जय भारतवासिहि देन नव-महा-न्यायपति प्रथम पद । १
जय जय हिंदू-उन्नति-पथ-अवरोध-मुक्त-कर
जय कर-बंधन-मंथर-कर जय जयति गुणाकर ।
जय जन-सिच्छन-हेत समिति-सिच्छा-संस्थापक ।
जय जय सेतासेत बरन सम संमत मापक ।
जय राज्य धुरंधर धीर जय भारत-शिल्पोन्नति-करन ।
जय परम प्रजावत्सल सदा सत्य-प्रिय जय श्री रिपन । २

राजतंत्र के पंडित तुम जानत प्रयोग खट ।
स्तंभन कीनो राज-वाक्य कटि अटल नीति अट ।
जन-दुख-मारन उच्चाटन द्वैविद भाव जग ।
बिद्वेषण स्वारथी मिलित दल मद न्याय मग ।
आकर्षण मन सब जनन को निज उदार गुण प्रगट-कर ।
जय मोहन मंत्र समान निज वाक्य विमोहित देशवर । ३

जय भारत-नव-उदित-रिपन-चंद्रमा मनोहर ।
शुक्ल-कृष्ण-सम तेज तदपि जस अपजस बिधि कर ।
जस-चंद्रिकी विकासि प्रकास्यो उन्नति मारग ।
वाक्य अमृत बरसाइ किए आल्हादित नर जग ।
ससअंक बंगविल सो लसत जन-मन-मुकुद प्रफुल्लतर ।
सत्ताइस रैन प्रकास सम सत्ताइस शुभ कर्म कर । ४

जय तीरथपति रिपन प्रजा अध-शोक-बिनाशक ।
गंग-जमुन-सम मिलित तदपि जान्हवि मरजादक ।

अक्षय बट सम अचल कीर्ति थापक मन पावन ।
गुप्त सरस्वति प्रगट कमीशन मिस दरसावन ।
कलि-कलुष प्रजागत-भीति कों सब बिधि मेटन नाम रट
जय तारन-तरन प्रयाग-सम जस चहुं दिस सब पै प्रगट । ५

जदपि बाहु-बल क्लाइव जीत्यो सगरो भारत ।
जदपि और लाटनहू को जन नाम उचारत ।
जदपि हेसटिज आदि साथ धन ले गए भारी ।
जदपि लिटन दरबार कियो सजि बड़ी तयारी ।
पै हम हिंदुन के हीय की भक्ति न काहू सँग गई ।
सो केवल तुमरे सँग रिपन छाया सी साथिन भई । ६

शिवि दधीच हरिचंद कर्ण बलि नृपति युधिष्ठिर ।
जिमि हम इनके नाम प्रात उठि सुभिरत है चिर ।
तिमि तुमहू कहैं नितहिं सुभिरिहैं तुव गुन गाई ।
यासों बढ़ि अनुराग कहो का सकत दिखाई ।
हम राजभक्ति को बीज जो अब लौ उर अंतर धर्यो ।
निज न्याय-नीर सों सोचि के तुम बामें अंकुर कर्यो । ७

निज सुनाम के बरन किए तुम सकल सबहि बिधि ।
रिपु सब किए उदास दई हिय राजभक्ति सिधि ।
महारांनी को पन राख्यो निज नवल रीति बल ।
परि मध न्याय-तुला के नप राख्यो सम दुहुं दल ।
सब प्रजापुंज-सिर आपकौ रिन रहिहै यह सर्व छन ।
तुम नाम देव सम नित जपत रहिहै हम हे श्री रिपन । ८



यह सन १८६१ ई. से १८६५ ई. तक भारत-सचिव रहे और फिर कई पदों पर रहकर सन १८८० ई. में भारत के बाइसराय हुए । इनके समय में सन १८८१ ई. में बर्नाकुलर प्रेस एक्ट समाप्त किया गया । सन १८८१ ई. में मैसूर राज्य उसके राजवंश को सौंप दिया गया । एलबर्ट विल भी इन्हीं के समय में प्रस्तावित हुआ । अफ़गान युद्ध का अंत इन्हीं के समय में हुआ और अब्दुर्रहमान काबुल के अमीर हुए । लार्ड रिपन अराज कर्मचारी शिक्षित भारतीयों को, राज्य-प्रबंध के संपर्क में लाने का सदा प्रयत्न करते रहे और इन्होंने स्थानिक स्वयत्त शासन के लिए कई नये नियम बनाए थे । इन्हीं कारणों से यह भारत में विशेष सम्मानित हुए थे । सन १८८४ में वे विलायत लौट गये ।

स्फुट कविताएँ

दोहे और सोरठे आदि

हे इत लाल कपोल ब्रत कठिन प्रेम की चाल ।
 मुख सों आइ न भाखिहैं निज सुख करो हलाल । १
 प्रेम बनिज कीन्हो हुतो नेह नफा जिय जान ।
 अब प्यारे जिय की परी प्रान-पुंजी में हान । २
 तेरोई दरसन चहै निस-दिन लोभी नैन ।
 श्रवण सुनो चाहत सदा सुंदर रस-मै बैन । ३
 डर न मरन विधि बिनय यह भूत मिलैं निज बास ।
 प्रिय हित वापी मुकुर मग बीजन अँगन अकास । ४
 तन-तरु चढ़ि रस चूसि सब फूली-फली न रीति ।
 प्रिय अकास-बेली भई तब निर्मूलक प्रीति । ५
 पिय पिय रटि पियरी भई पिय री मिले न आन ।
 लाल मिलन की लालसा लखि तन तजत न प्रान । ६
 मधुकर धुन गूढ दंपती पन कीने मुकताय ।
 रमा बिना यक बिन कहै गुन वेगुनी सहाय । ७
 चार चार षट षट दोऊ अस्तादस को सार ।
 एक सदा द्वै रूप घर जै जै नंदकुमार । ८
 नीलम औ पुखराज दोउ जद्यपि सुख 'हरिचंद' ।
 पै जो पन्ना होइ तो बाढ़े अधिक अनंद । ९
 नीलम नीके रंग को हौं लाई हौं बाल ।
 कहूँ न देय तो होयगो अति अद्भुत अहवाल । १०
 जद्यपि है बहु दाम को यह हीरा री माय ।
 बने तबै जब नीलमनि निकट जड़यो यह जाय । ११
 नैन नवल 'हरिचंद' गुन लाल असित सित तीन ।
 त्रिविध सक्ति त्रैदेव कै तिरवेनी के मीन । १२
 कहन दीन के बैन देहु विधाता एक बर ।
 नहिं लागे ये नैन कोऊ सों जग नरन में । १३
 प्रेम-प्रीति को बिरवा चलेहु लगाय ।
 सींचन की सुध लीजो मुरझि न जाय । १४

सवैया

अब और के प्रेम के फंद परे
 हमें पूछत कौन, कहाँ तू रहे ।
 अहे मेरेह भाग की बात अहो तुम
 सों न कछु 'हरिचंद' कहे ।
 यह कौन सी रीति अहे हरिजू तेहि
 मारत हौ तुमको जो चहै ।
 बह भूलि गयो जो कही तुमने हम
 तेरे अहे तू हमारी अहे । १

हम चाहत है तुमको जिउ से
 तुम नेकहू नाहिने बोलती हो ।
 यह मानहु जो 'हरिचंद' कहे
 केहि हेत महाविष घोलती हो ।
 केहि हेत महाविष घोलती हो ।
 तुम औरन सों नित चाह करौ
 हमसों हिअ गाँठ न खोलती हो ।
 इन नैन के डोर बंधी पुतरी तुम
 नाचत औ जग डोलती हो । २

जा मुख देखन को नितही रुख
 इतिन दासिन को अवरेंछ्यो ।
 मानी मनौतीहू देवन की
 'हरिचंद' अनेकन जोतिस लेख्यो ।
 सो निधि रूप अचानक ही मग में
 जमुना जल जात मैं देख्यो ।
 सोक को थोक मिट्यो सब आजु
 असोक की छाँह सखी पिय पेख्यो । ३
 रैन में ज्यौहीं लगी भ्रपकी त्रिजटे
 सपने सुख कौतुक-देख्यो ।
 ले कपि भालु अनेकन साथ मैं
 तोरि गढ़े चहुँ ओर परेख्यो ।
 रावन मारि बुलावन मो कहैं
 सानुज मैं अबहीं अवरेंछ्यो ।
 सोक नसावत आवत आजु
 असोक की छाँह सखी पिय पेख्यो । ४

सदा चार चवाइन के डर सों
 नहिं नैनहु साम्हे नचायो करै ।
 निरलज्ज भई हम तो पै डरे
 तुमरो न चवाव चलायो करै ।
 'हरिचंद' जू वा बदनामिन के
 डर तेरी गलीन न आयो करै ।
 अपनी कुल-कानिहुँ सों बढ़िकै
 तुम्हरी कुल-कानि बचाओ करै । ५

ताजि के सब काम को तेरे
 गलीन में रोजहि रोज तो फेरो करै ।

तुव बाट बिलोकत ही 'हरिचंद'

जू बैठि के साँझ सबेरो करे ।

पे सही नहि जात भई बहुते सो

कहाँ कह लौं जिय छोरो करे ।

पिय प्यारे तिहारे लिये कब लौं

अब इतिन को मुख हेरो करे ।६

आइयो मो घर प्रान पिया

मुखचंद दया करि के दरसाइये ।

प्याइये पानिय रूप सुधा को बिलोकि

इतै दुग प्यास बुभाइये ।

छाइये सीतलता हरीचंद जू हा हा

लगी हियरे की बुभाइये ।

लाइये मोहि गरे हसि के उर

प्रीपमै प्यारे हिमन्त बनाइये ।७

कोऊ कलकिनि भाखत है कहि

कामिनिह कोऊ नाम धरैगो ।

त्रासत हैं घर के सिगरे अब

बाहरीहू तो चवाव करैगो ।

इतिन की इनकी उनकी

'हरिचंद' सबै सहते ही सरैगो ।

तेरेई हेत सुन्यो न कहा कहा

औरहू का सुनिबो न परैगो ।८

मन लागत जाको जबै जिहिसों

करि दया तो सोऊ निभावत है ।

यह रीति अनेखी तिहारी नई

अपुनो जहाँ इनो दुखावत है ।

'हरिचंद' जू बानो न राखत आपुनो

दासहू हवै दुख पावत है ।

तुम्हरे जन होइ कै भोगे दुखे तुम्हें

लाजहू हाय न आवत है ।९

देखत पीठि तिहारी रहैगे न

प्रान कबौं तन बीच नवारे ।

आओ गरे लपटो मिलि लेहु

पिया 'हरिचंद' जू नाथ हमारे ।

कौन कहे कहा होयगो पाछे

बने न बने कछु मेरे सम्हारे ।

जाइयो पाछे विदेस भले करि

लेन दे भेंट सखीन सों प्यारे ।१०

पीवै सदा अधरामृत स्याम को

भागन याको सुजात कहा है ।

तवै मुधि मूल वहाँ है ।

छूटे सबै धन-धाम अली हिय

व्याकुलता सुनि होत महा है ।

बेनु के बंस भई वंसुरी जो

अनर्थ करे तो अचर्ज कहा है ।११

लै बदनामी कलकिनि होइ चवाइन

को कब लौं मुख चाहिए ।

सासु जेठानिन की इनकी उनकी

कब लौं सहि कै जिय दाहिए ।

ताइ पै एती रुखाई पिया 'हरिचंद'

की हाय न क्योंहूँ सराहिए ।

का करिए मरिए केहि भाँतिन नेह

को नातो कहाँ लौं निवाहिए ।१२

लखिके अपने घर को निज सेवक

भी सबै हाथ सदा धरिहैं ।

हल सों सब दूपन खेचि भट्टे

सब बैरिन मूसल सों मरिहैं ।

अनुजै प्रिय जो सो सदा उनको प्रिय

कारज ताको न क्यों सरिहैं ।

जिनके रछपाल गोपाल धनी

तिनको बलभद्र सुखी करिहैं ।१३

अब प्रीति करी तो निवाह करी

अपने जन सों मुख मोरिए ना ।

तुम तो सब जानत नेह मजा

अब प्रीति कहूँ फिर जोरिए ना ।

'हरिचंद' कहै कर जोर यही

यह आस लगी तेहि तोरिए ना ।

इन नैनन माहँ बसो नित ही

तेहि आँसुन सों अब बोरिए ना ।१४

यह काल कराल अहै कलि को

'हरिचंद' को नैक सोहातो नहीं ।

धन धाम अराम हराम करी

अपनो तो कोऊ दरसातो नहीं ।

चित चाहत है चित चाह करे पर

याको निवाह लखातो नहीं ।

दिल चाहत है दिल देइबे को

दिलदार तो कोऊ दिखातो नहीं ।१५.

कवित्त

आजु बृषभानुराय पीरी होरी होय रही

दोरी किसोरी सबै जोवन चढ़ाई में ।

खेलत गोपाल 'हरिचंद' राधिका के साथ
 बुक्का एक सोहत कपोल की लुनाई में ।
 कैधों भयो उदित मयंक नभ बीच कैधों
 हीरा जख्यो बीच नीलमनि की जराई में ।
 कैधों पर्यो कालिंदी के नीर छीर कैधों
 गरक सु-गोरी भई स्याम-सुंदराई में । १

गोपिन की बात कौ बखानौ कहा नंदलाल
 तेरो रूप रोम रोम जिनके समाय गो ।
 बिरह-बिया से सब व्याकुल रहत सदा
 'हरिचंद' हाल बाकी कौन पै कहाय गो ।
 आंसुन की प्रलय-पयोधि बूड़ि जैहै जबै
 ड्रवि ड्रवि सब ब्रह्मंडह विलाय ग ।
 पौड़त फिरौगै आप नीर बीच होय जब
 बिरह-उसासन तैं बट जरि जाय गो । २

तेरेई बिरह कान्ह रावरे कला-निधान
 मार बान मारै सदा गोपिन के घट पै ।
 व्याकुल रहत ताते रैन दिन आप बिन
 धूर छाव रही देखौ नागिन सी लट पै ।
 'हरिचंद' देखे बिनु आज सब ब्रज-बाल
 बैठि के बिसुरतीं कलिंदी जू के तट पै ।
 होयगी प्रलय आज गोपिन के आंसुन तैं
 ताते ब्रज जाय बैठो भट बंसी बट पै । ३
 गोपिन बियोग अब सही नहीं जात मोपै
 कब लौं निठुर होय मेन-बान मारौगे ।
 'हरिचंद' आप सों पुकारे कहौ बार बार
 बेगही कृपाल अबै गोकुल सिधारोगे ।
 कहत निहोरि कर जोरि हम पूछैं जौन
 राधा-रौन ताको कौन उत्तर बिचारोगे ।
 आंसुन को नीर जबै बाढ़ेगो समुद्र तबै
 कच्छ रूप धारौगे मच्छ रूप धारौगे । ४

राधा-श्याम सेवै सदा बृंदावन वास करै
 रहै निहंचित पद आस गुरुवर के ।
 चाहे धन धाम न अराम सों है काम
 'हरिचंद' जू भरोसे रहैं नंदराय-घर के ।
 एरे नीच धनी हमें तेज तू दिखावै कहा
 गुज परवाही नाहिं होहिं कबौ खर के ।
 होइ ले रसाल तू भलेई जग-जीव काज
 आसी ना तिहारे ये निवासी कल्पतर के । ५
 जदपि उँचाई धीरताई गरुआई आदि

एरे गजराज तेरी सबही बढ़ाई है ।
 दान धारा दे दे सदा तोषत सबन नित
 हिंसा सो विरत तऊ बल अधिकाई है ।
 तासौ 'हरिचंद' मरजाद पै रहन नीको
 काक चुगलन की जासों बनि आई है ।
 बिरद बढ़ावें ये न दूर कर इन्हैं तेरे
 कान की चपलताई भौर दुखदाई है । ६
 बात गुरुजन की न आछी लरकाई लागे
 भावै खेल कूद में चपलता असीम की ।
 छोड़त कसालो होय जदपि नरन तऊ
 बान नाहिं नीकी मद भाँग के अफीम की ।
 अवगुन करी लहू पेड़ा सौं गुनद
 'हरिचंद' हित होय जग औषधि हकीम की ।
 जौन गुनदाई सोई बात है सुहाई तासों
 नीकी मधुराईहू सौं तिकताई नीम की । ७

जैही बक बार सुनै मोहै सो जन्म भरि
 ऐसो ना असर देख्यो जादू के तमासा में ।
 अरिहु नवावैं सीस छोटे बड़े रीमै सब
 रहत मगन नित पूर होइ आसा में ।
 देखी ना कबहुं मिसरी से मधुहू मैं ना
 रसाल, ईख, दाख में न तनिक बतासा में ।
 अमृत मैं पाई ना अघर मैं सुरंगना के
 जेती मधुराई भूप सज्जन की भासा में । ८
 केलि-भौन बैठी प्यारी सरस सिंगार करै
 सौतन के सब अभिमाने दरत सो ।
 कंठ-हार चूरी कर बाजूबंद चंद आदि
 पहिन्यो अभूषन बियोगहिं हरत सो ।
 पगपान चाँदी को चरन पहिरन लागी
 सोभा देखि रंभा-रति गर्बहू गरत सो ।
 छोड़ अभिमान दास होन काज चंद आज
 नवल बधू के मानो पायन परत सो । ९

बृंदावन सोभा कछु बरनि न जाय मोपै
 नीर जमुना को जहैं सोहै लहरत सो ।
 फूले फूल चारों ओर लपटे सुगंध तेसो
 मंद गंधवाह जिय तापहिं हरत सो ।
 चाँदनी मैं कमल-कली के तरें बार बार
 'हरिचंद' के प्रतिबिंब नीर माहिं बगरत सो ।
 मान के मनाइबे को दौरि दौरि प्यारो आज
 नवल बधू के मानो पायन परत सो । १०
 आजु कुंज-मंदिर विराजे पिय प्यारी नोक

दिने गल-बाहीं बाढ़े मैन के उमाह में ।
 हँसि हँसि बातें करें परम प्रमोद भरें
 रीभे रूप-जाल भीजे गुनन अथाह में ।
 कान में कहन मिस बात चतुराई करि
 मुख ढिग लाई प्रान प्यारे भरि चाह में ।
 चूमि कै कपोलन हँसावत हँसत छबि
 छावत छबीलो छैल छल के उछाह में ॥११॥
 रंग-भौन पीतम उमंग भरि बैठ्यौ आज
 साजे रति-साज पूरयो मदन-उमाह में ।
 'हरीचंद' रीभत रिभावत हँसावत हँसत
 रस बाढ़्यौ अति प्रेम के प्रवाह में ।
 बीरी देन मिस छए आँगुरी अधर पुनि
 चूमै चुपचाप ताहि पान खान चाह में ।
 लार्जाहि छड़ावत छकावत छकत छबि
 छावत छबीलो छैल छल के उछाह में ॥१२॥
 आजु लौ न आए जो तो कहा भयो प्यारे याकों
 सोच चित नाहि धारि मति सकुचाइये ।
 औधि सौं उदास हवै कै गमन तयार यह
 ताते अब लाज छोड़ि कृपा करि धाड़ये ।
 'हरीचंद' ये तो दाम आपुही के प्रान कछु
 और न कियो तो अब एतो ही निभाइये ।
 चाहत चलन अकुलाइकै बिसासी इन्हें
 आह प्रान-प्यारे जू बिदा तो करि जाइये ॥१३॥
 जोग जय जप तप तीरथ तपस्या ब्रत
 ध्यान दान साधन समूह कौन काम को ।
 वेद औ पुरान पढ़ि ज्ञान को निधान भयो
 कर मगरूर पाइ पंडिताई नाम को ।
 'हरीचंद' बात बिना बात को बनाइ हार्यौ
 चरो रह्यौ जाम दाम काम धन धाम को ।
 जानै सब तऊ अनजानै है महान जानै
 राम को न जानै ताहि जानिये हराम को ॥१४॥
 साँफ समे साजे सज ग्वाल-बाल साथ लिए
 मोहन मनहि हरि आवत हरू हरू ।
 सीस मोर-मुकुट लकुट कर लीने ओढ़े
 पीत उपरेना जामैं टैंक्यो चारु गोखरू ।
 'हरीचंद' बेनु को बजावत हैं गावत
 सु आवत हैं लिए साथ साथ गाय बाछरू ।
 नाचत गुबाल मध्य लाजत मनोज लखि
 आवैं सखि बाजत गुपाल पाय घूंघरू ॥१५॥
 दासी दरबानन की भिरकी करोर सहीं
 इतिन नचाये नवीं नौ-नौ पानि नेजे पर ।
 दिवस बिताये दौरि इत उत दूरि दूरि

रोइह सकी न खुलि हाय दुख सेजे पर ।
 'हरीचंद' प्रानन पे आय-बनी सबै भाँति
 अंग अंग भीनी पीर परी विष रेजे पर ।
 हाय प्रान-प्यारे नेक बिछुरे तिहारे दुख
 कोटिन अँगोजे याही कोमल करेजे पर ॥१६॥
 मेघ मायावाद सिंह वादी अतुल धर्म
 बृष जयति गुण-रासि बल्लभ-सुअन ।
 कालि कुवृश्चिक दुष्ट जीव जीवन-मूरि
 करम छल मकर निज-वाद धनु-सर-समन ।
 गोप-कन्या भाव प्रगटि सेवा बिसद
 कृष्ण राधा मिथुन भक्ति-पथ दृढ़-करन ।
 हरन जय-हिय-करक मीन धुज-भय मेदि
 दास 'हरिचंद' हिय कुम्भ हरि-रस भरन ॥१७॥
 कुंभ-कुच परस दृग-मीन को दरस तजि
 तुच्छ सुख मिथुन को हिय बिचारैं ।
 छल मकर छाँड़ि सब तानि बैराग-धनु
 सिंह हवै जगत के जाल जारैं ।
 कृष्ण बृषभानु-कन्या सहित भजन करि
 कलि कुवृश्चिक समुभि दूर टारैं ।
 छाँड़ि अनआस बिस्वास हिय अतुल धरि
 करम की रेख पर मेख मारैं ॥१८॥
 फूलैंग पलास बन आंगि सी लगाइ कर
 कोकिल कुहकि कल सबद सुनावैगो ।
 त्योंही 'नरीचंद' सबै गावैगो धमार धीर
 हरन अवीर वीर सबही उड़ावैगो ।
 सावधान होहु रे बियोगिनी सम्हारि तन
 अतन तनक ही में तापन तें तावैगो ।
 धीरज नसावत बढ़ावत बिरह काम
 कहर मचावत बसंत अब आवैगो ॥१९॥
 खेलौ मिलि होरी दोरी केसर-कमोरी फैंको
 भरि भरि भोरी लाज जिअ मैं बिचारौ ना ।
 डारौ सबै रंग संग चंगह बजाओ गाओ
 सबन रिभाओ सरसाओ संक धारौ ना ।
 कहत निहोरि कर जोरि 'हरिचंद' प्यारे
 मेरी बिनती है एक हाहा ताहि टारौ ना ।
 नैन हैं चकोर मुख-चंद तें परैगी ओट
 यातें इन आँखिन गुलाल लाल डारौ ना ॥२०॥
 लोक वेद लाज करि कीजे ना रुखाई एती
 द्रविये पियारे नेकु दया उपजाइ कै ।
 बिरह विपति दुख सहि नहि जाय
 कहि जाय ना कछुक रहौ मन बिलखाइ कै ।
 'हरीचंद' अब तो सहारो नहि जाय हाय

भुजन बढ़ाय बेग मेरी ओर आइ कै ।
 बिरद निभाय लीजै मरत जिवाइ लीजै
 हा हा प्रान-प्यारे धाड़ लीजै गर लाइ कै । १२१
 आजु एक ललना जवाहिर खरीदवे को
 आई हुती सुधर सुहाई हाट वारे की ।
 कर के लिये तैं भए मुक्ता प्रवाल जैसे
 गुंजा से लखाने फेरि दीठि दृग-तारे की ।
 कहै 'हरिचंद' मोतीचूर से लखात फेरि
 हास को विलास बढ़ायो सुखमा कतारे की ।
 बीजक को मोल घटायो नफा की चलावै कहा
 अकिल हेरानी लखि जौहरी बेचारे की । १२२

पद और गीत

प्रगटे द्विजकुल-सुखकर-चंद ।

भक्ति-सुधा-रस निस-दिन बरसत सब बिधि परम अमंद

मायावाद परम अंधियारी हरि कियो दुख-दंद ।
 भक्त-हृदय-कुमुदिनि प्रफुलित भई भयो परम आनंद ।
 काशी नभ महैं किरिन प्रकाशी बुध सब नखत सुखंद ।
 'हरिचंद' मन-सिंधु बढ़ायो लखि रसमय मुख सुखकंद । १३

हरि-सिर बाँकी बिराजै ।

बाँको लाल जमुन-तट ठाढ़े बाँकी मुरली बाजै ।
 बाँकी चपला चमकि रही नव बाँको बादल गाजै ।
 'हरिचंद' राधा जू की छबि लखि रति मति गति भाजै । १२

सखी री ठाढ़े नंद-किसोर ।

वृंदावन में मेहा बरसत निसि बीती भयो मोर ।
 नील बसन हरि-तन राजत हैं गीत स्वामिनी मोर ।
 'हरिचंद' बलि बलि ब्रज-नारी सब ब्रजजन-मनचोर । १३

हरि को धूप-दीप लै कीजै ।

घटरस बीजन बिबिध भाँति के नित नित भोग धरीजै ।
 दही मलाई घी अरु माखन तापो पै लै दीजै ।
 'हरिचंद' राधा-माधव-छबि देखि बलैया लीजै । १४

सुदामा तेरी फीकी छाक ।

मेरी छाक रोहिनी पठई मोठी आर सु-पाक ।
 बलदाऊ को कोरी रोटी मोको घी की दोनी ।
 सो सुनि सुबल तोक उठि बैठे मेरी बहुत सलोनी ।
 जैसी तेरी मैया मोटी तैसी मोटी रोटी ।
 मेरी छाक भली रे मैया जामें रोटी छोटी ।
 बोलत राम पतौका लै लै बैठो भोजन कीजै ।
 बच्चो बचायो अपनो जूठन 'हरिचंद' को दीजै । १५
 भोजन कीनो भानु-कुमारी ।

ठाढ़े लिए नंद के नंदन भरि कै कंचन भारी ।
 ललिता लिए सुभग बीरा कर लौंग कपूर सोपारी ।
 जुग जुग राज करी या ब्रज में 'हरिचंद' बलिहारी । १६

बैठे पिय-प्यारी इक संग ।

परदा परे बनाती चहुँ दिसि बाजत ताल मृदंग ।
 धरी अंगीठी स्वच्छ धूम-बिन गावत अपने रंग ।
 'हरिचंद' बलि बलि सो छबि लखि राधा लिए उछंग । १७

अब तौ आय पर्यौ चरनन मैं ।

जैसो हों तैसो तुमरोई राखोइगे सरनन मैं ।
 गनिका गीध अमीर अजामिल खस जवनादिक तारे ।
 ओरहु जो पापी बहुतेरे मये पाप तैं न्यारे ।
 सुत-बध हेत पूतना आई सब बिधि अघ तैं पानी ।
 जो गति जननीहूँ को दुर्लभ सो गति ताको दीनी ।
 औरो पतित अनेक उधारे तिनमें मोहूँ को जान ।
 तुमही एक आसरो मेरे यह निहचै करि मान ।
 बुरो भलो तुमरोई कहावत याकी राखो लाज ।
 'हरिचंद' ब्रजचंद पियारे मत छाड़हु महाराज । १८

माई री कमल-नैन कमल-बदन बैठे हैं जमुना-तीर ।
 कमल से करन कमल लिए फेरत सुंदर स्याम सरीर ।
 कमल की कंठ माल ललित ललाम

बनी कमल ही को कटि चीर ।

कमल के महल कमल के खंभा भौरन की जापे भीर ।
 सुंदर कमल फूले लहलहे सोहत ता मधि फलकत नीर ।
 'हरिचंद' पद-कमल जपत नित भंजन-भव-भय-भीर । १९

मंगल मंगल मंगल रूप ।

मंगल गिरि गोवर्धन धार्यो मंगल गिरिघर ब्रज के भूप ।
 मंगल-मय ब्रह्मानु-नंदिनी श्रीराधा अति रुचिर सुरूप ।
 मंगल बल्लभ-चरन-कृपा से

'हरिचंद' उबर्यो भव कूप । १०

घर तें मिलि चलीं ब्रज-नारि ।

खसित कवरी नैन घूमत सजे सकल सिंगार ।
 लिए पूजन-साज कर मैं कुटिल बिथुरे बार ।
 कृष्ण-गुन गावत सुबिहसत 'हरिचंद' निहार । ११

जल में न्हात हैं ब्रज-बाल ।

मास अगहन जान उत्तम मिलान को गोपाल ।
 हाथ जोरि सुकहत देविहि देउ पति नंदलाल ।
 चीर लै 'हरिचंद' भागे सुभग स्याम तमाल । १२

खोजत बसन ब्रज की बाल ।

निकसि कै सब लेहु छिपि कै कह्यौ स्याम तमाल ।
 सुनत चंचल चित चहुँ दिसि चकित निरखत नारि ।
 मधुर बैननि हिओ धरकत जानि कै बनवारि ।
 कदम पर तैं दरस दीनो गिरिधरन घनश्याम ।
 अंग अंग अनूप शोभा मथन कोटिक काम ।
 सिर मुकुट की लटक चटकत बसन सोभित पीत ।
 चरन तक बनमाल सोभित मनहुँ लपटी प्रीत ।
 फैलि रहि सोभा चहुँ दिसि मन लुभावत पास ।
 नैन तैं 'हरिचंद' के छाबि टरत नहि इक साँस ॥१३॥

देखौ सोभित तरु पर नट-वर ।
 मोर मुकुट कटि पीत पिछौरी मुरली हाथ सुघर-वर ।
 बोले हरि बाहर हवै आओ हे ब्रज-वाल चतुर-तर ।
 नाँगी होइ जमुन मैं पैठी पूजहु आइ दिवाकर ।
 सुनि पिअ-बचन निकसि सब आई दीनो चीर गुंजधर ।
 पहिरि चीर ब्रज-नारि नवेली केलि करी कुंजन पर ।
 'हरीचंद' हरि की यह लीला नहि पावत विधि अरु हर ।
 कोमल मंजु साँवरी मूरति नित्य बिराजै हिअ पर ॥१४॥

राग सारंग

श्री कृष्ण घर घर वाजत सुनिय बधाई ।
 श्री राधा रावल मैं जाई ।
 जय जय जय जय जय धुनि माचैं ।
 आनंद-मगन तहाँ सब नाचैं ।
 नाचत ब्रह्मा शिव अरु शेषा ।
 नाचत बरुन कुबेर सुरेसा ।
 नाचत नारद आदि मुनीसा ।
 नाचत देव कोटि तैतीसा ।
 नाचत बसु अरु मरुत गनेसा ।
 नाचत जम रवि ससि सुभकेसा ।
 नाचत परशुराम धनु धारे ।
 नाचत राज-ऋषि सुर-ऋषि न्यारे ।
 नाचत चारन किन्नर रच्छा ।
 नाचत बिद्याधर अरु जच्छा ।
 नाचत खग मृग अहिगन मच्छा ।
 नाचत गाय मैस के बच्छा ।
 नाचत सुक प्रह्लाद विभीषन ।
 नाचत परीक्षित बलि आनंद मन ।
 नाचति सरस्वति वीन बजाई ।
 माया नाचति अति हरपाई ।
 नाचति चंपकलता विसाखा ।
 चंद्रावलि ललिता रस-साखा ।
 नाचत श्यामदा जसुदा माई ।

व्याही काँरी सबे लुगाई ।
 नाचत नंद सुनंद सुहाए ।
 महानंद आति आनंद छाए ।
 नचत तोक बल सुख श्रीदामा ।
 सँग वृषभान गोप सुखधामा ।
 नाचत नर-नारिन के वृन्दा ।
 प्रेम-मत्त नाचत 'हरिचंद' ॥१५॥

राग सारंग

गवाल गावैं गोपी नाचैं । प्रेम-मगन मन आनंद राचैं ।
 भानु राय के राधा जाई । धाये सब सुनि लोग-लुगाई ।
 माखन दधि धृत दूध लुटावैं । बार बार प्रमुदित उर लावैं ।
 ताल पखावज आवज वाजै । दुंदुभि ढोल दमामा गाजै ।
 कदत गवाल-वाल सब सोहैं ।
 देखि देखि सुर नर मुनि मोहैं ।
 भये दूध दधि धृत के पंका ।
 इत उत दौरत फिरत निसंका ।
 देत निछावर मानगन बारी ।

प्रेमानंद मगन नर-नारी ।

थकित भये सब देव बिमाना ।

मुदित करत 'हरिचंद' बखाना ॥१६॥

सुनौ सखि बाजत है मुरली ।
 जाके नेकु सुनत ही हिअ में उपजत बिरह-कली ।
 जड़ सम भए सकल नर-खग मृग लागत श्रवन भली ।
 'हरीचंद' की मति रति गति सब धारत अधर छली ॥१७॥
 बैरनि बाँसुरी फेरि बजी ।
 सुनत श्रवन मन थकित भयो अरु मति-गति जाति भजी ।
 सात सुरन अरु तीन ग्राम सों पिय के हाथ सजी ।
 'हरीचंद' औरहु सुधि मोही जबही अधर तजी ॥१८॥

बाँसुरिआ मेरे बैर परी ।

छिनहुँ रहन देत नहि घर में मेरी बुद्धि हरी ।

बेनु-बंस की यह प्रभुताई विधि-हर-सुमति छरी ।

'हरीचंद' मोहन बस कीनो बिरहिन-ताप-करी ॥१९॥

सखी हम बंसी क्यों न भए ।

अधर सुधा-रस निसु-दिनु पीवत प्रीतम-रंग एए ।

कबहुँ कर मैं कबहुँ कटि मैं कबहुँ अधर भरे ।

सब ब्रज-जन-मन हरत रहत नित कुंजन माँझ खरे ।

देहि बिधाता यह बर माँगो कीजै ब्रज की धूर ।

'हरीचंद' नैनन में निबसे मोहन-रस भर पूर ॥२०॥

नाचत नवल गिरिधर लाल ।

सकल सुखदाता संग गोपी बाल ।
बजत भौंफ मृदंग आवज चंग बीना ताल ।
बात बाल 'हरिचंद' छाँव लाख सुभग श्याम तमाल ॥२१॥

भोजन कीजै प्रान-पियारी ।
भई बड़ी बार हिंडोले भूलत आज भयो श्रम भारी ।
विंजन मीठो दूध सुहातो कीजै पान दुलारी ।
वृठन मांगत द्वार खड़ो है 'हरिचंद' बलिहारी ॥२२॥
पनघट बाट घाट रोकत जसुदा जी को बारो ।
साँवर वरन श्याम स्याम ही सज्यौ
हैं साज इन आँखियन को तारो ।
मुरालि बजावत गीतन गावत

करत अचगरी प्यारो ।
'हरिचंद' इंदुरी जमुन में बहावत मन ललचावत
नैन नचावत मेरो तन परसत सुंदर नंद-दुलारो ॥२३॥

बजन लगी बंसी यार की ।
धुनि सुनि ब्रज-तिय चकित होत है
सुधि आवत दिलदार की ।
मीठी तान लेत चित मोह्यो
चितवन तीखी यार की ।
'हरिचंद' नैनन में गाँढ़ गई
छाँव गुंजन के हार की ॥२४॥

बजन लगी बंसी कान्ह की ।
धुनि सुनि चकित भए खग मृग
सब सुधि न रही कछु प्रान की ।
मोहे देव गंधरव रिसि मुनि
भूले गति जु विमान की ।
'हरिचंद' को मन मोह्यो
'अम बिसरी सुधिहु अपान की' ॥२५॥

किन चौकाए पीतम प्यारे ।
किन सुख में दुख दिये जु उठि इत भोरहिं भोर पधारे ।
मेरे जान कर तमचुर यह तुम कहैं सुरत दिवाई ।
कै ब्रिज-गन कै चहाकि चिरैयन मेरी आस पुजाई ।
सीरी पौन अरुन किरिनावलि भए सहाय पियारे ।
धन्य भाग जो अबहुँ उठि कै आए भवन हमारे ।
आओ चरन पलोदों प्यारे सोइ रहौ सम भारी ।
'हरिचंद' सुनि बचन रचन तिय गर लाई बनवारी ॥२६॥

हम में कौन कसर पिय प्यारे ।
अजामेल मैं का अवगुन जे नहिं तन माँहि हमारे ।

जानी और पतित के माथे सींग रही है भारी ।
तब बिन हमहिं देखि नहिं तारत बूढ़-बिपिन-बिहारी ।
जो पापहिं करिबै मों जग में जीव पतित कहवावै ।
तो हमसों बढि के कोउ नाहीं को मेरी सरि पावै ।
कछु तो बात होइहै जासों तारत हम कहैं नाहीं ।
नाहीं तो 'हरिचंद' पतित-पति ह हम कित बचि जाहीं ॥२७॥

तरन मैं मोहि लाभ कछु नाहीं ।
तुमरेई हित कहत बात यह गुनि देखहु मन माहीं ।
तुमरेहु जिअ अब लौं बाकी यहै हौस चलि आई ।
कै कोउ काठिन अधी पावै तो तारि बाँढ़आई ।
बहुत दिनन की तुमरी इच्छा तेहि पूरन मैं आयो ।
करहु सफल सो हम सों बढि कोउ पापी नहिं जग जायो ।
लेहु जोर अजमाह आपुनो दया-परिच्छा लीजै ।
हे बलबोर अधी 'हरिचंदहि' हारि पीठि जिनि दीजै ॥२८॥

तुव जस हमहिं बढावन-हारे ।
तुव गुन दिव्य तारनादिक के कारन हमहिं पियारे ।
छिपी दया तुव मेरेहि अघ मैं यह निहचै जिय जानौ ।
हम बिन तुम जग कछु न बड़ाई यह प्रतीत कर मानौ ।
केवल त्रिभुवन-पति फलदायक न्याय करत रहि जैये ।
दया-निधान पतित-पावन प्रभु हमरे हेत कहैये ।
हमहीं कियो कृपाल तुमहिं अघ-तीरन हमहिं बनायौ ।
यह गुन मानि हीन 'हरिचंदहि'
क्यों न अबहुँ अपनायौ ॥२९॥

हमरी स्वारथ ही की प्रीति ।
तुव गुनहु स्वारथ हित गावत मानहु नाथ प्रीतीति ।
बक-धरमी स्वारथ-मूलक सब प्रेम भक्ति की रीति ।
'हरिचंद' ऐसे छलियन कों सकिहौ नाथ न जीति ॥३०॥

अब हम बदि बदि कै अघ करिहैं ।
जब सब पतितन सों बढि जैहैं तब ही भव-जल तरिहैं ।
हम जानी यह बानि नाथ की पतितन ही सों प्रीति ।
सहजहि कृपा कृपिन-दरिसि गार्मानि यहै आपु की रीति ।
ताही सों अघ किये अनेकन करत जात दिन-रात ।
तऊ न तरत परत नहिं जानी क्यों अब लौं हम तात ।
किए करत अघ फेर करैगे जब लौं जिअ मैं जीअ ।
जा सों दृष्टि परे तुमरी इत सुंदर साँवर पीअ ।
दीन-बन्धु प्रनतारति-भंजन आरत-हरन मुरारि ।
दयानिधान कृपन-जन-वत्सल निज गुन नाम समहारि ।
पावन परम पतित हरि हम कहैं हीन जानि उठि घाओ
साधन-रहित सहित अघ सत

लखि 'हरिचंदहि' अपनाओ ॥३१॥

देखहु मेरी नाथ दिखाई ।

होइ महा अघ-रासि रहन हम चहत भगत कहवाई ।
कवहूँ सुधि तुमरी आवै जो छठे-छमाहें भूले ।
ताहि सों मनि मानि प्रेम अति रहत संत बनि फूले ।
एक नाम सों कोटि पाप को करन पराछित आवैं ।
निज अघ बड़वानलहि एक ही आँसू बूंद बुझावैं ।
जो व्यापक सर्वज्ञ न्याय-रत धरम-अधीस मुरारी ।
'हरीचंद' हम छलन चहत तेहि साहस पर बलिहारी ॥३२॥
स्याम घन देखहु गौर घटा ।

मरी प्रेम-रस सुधा बरसि रही छाई छूटि छाटा ।
आपुहि बादर रूप जल भरी आपुहि बिजु लटा ।
यह अद्भुत लखि सिखी सखीगन नाचत बैठि अटा ।
हिय हरखावत छवि बरखावत भुकी निकुंज तटा ।
'हरीचंद' चातक हवै निसि-दिन जाकों नाम रटा ॥३३॥

आजु बसंत पंचमी प्यारे आओ हम तुम खेलैं ।
चोआ चंदन छिरकि परसपर अरस परस रंग भेलैं ।
ओर कहैं जिनि जाहु पियरे हम तुम मिलि रस रेलैं ।
तुम मोहि देहु आपुनी माला हम निज तुअ उर मेलैं ।
प्राननाथ कहैं कंठ लाइ कै आनंद-सिंधु सकेलैं ।
'हरीचंद' हिय-होस पुजावै विरहहि पायन ठेलैं ॥३४॥

आई है आजु बसंत पंचमी चलु पिय पूजन जैय ।
आम मंजरी काम चिनौती लै पिय सीस बँधैये ।
अति अनुराग गुलाल लाइ कै नव केसर चरचैये ।
उषीपन सुगन्ध सोंधे भृगमद कपूर छिरकैये ।
पुष्प-गेंदुकरन परसि पिया कों तन में काम जगैये ।
सचित पंचम ऊँचे सुर सों काम-बधाई गैये ।
आलिंगन परिभन चुम्बन भाव अनेक दिखैये ।
'हरीचंद' मिलि प्रान-पिया सों सरस बसंत मनैये ॥३५॥

नव दुलह ब्रजराय-लाडिलो नव दुलहिन वृषभानु-किसोरी ।
श्री वृन्दाबन नवल कुंज में खेलत दोउ मिलि होरी ।
नव सत साजि सिंगार अभूषन नवल संग गोरी ।
नवल सेहरो सीस विराजत नवल बसन तन राजै ।
त्रिभुवन-मोहन जुगल-माधुरी कोटि मदन लखि लाजै ।
अति कमनीय मनोहर मूरति ब्रज-जन यह रस जानै ।
'हरीचंद' ब्रजचंद-राधिका तजिकै किहि उर आनै ॥३६॥

कुंज-बिहारी हरि-संग खेलत कुंज-बिहारिनि राधा ।
आनंद भरी सखी संग लीन्हें मेटि विरह क्री बाधा ।
अबिर गुलाल मेलि उमगावत रसमय सिंधु अगाधा ।
धूँधर में भुकि चूमि अंग भरि मेटति सब जिय साधा ।

कृजति कल मुरली मृदंग संग बाजत धुम कित ताधा ।
वृन्दाबन-सोभा-सुख निरखत सुरपुर लागत आधा ।
मच्चौ खेल बढ़ि रंग परसपर इत गोपी उत काँधा ।
'हरीचंद' राधा-माधव कृत जुगल खेल अवराधा ॥३७॥

सरस साँवरे के कपोल पर बुक्का अधिक बिराजै ।
मनहु जमुन-जल पुंज छीर की छोट अतिहि छवि छाजै ।
नील कंज पै कलित ओस-कन फलकत तियनि रिभावै ।
प्रिया-दीति कौ चिन्ह किधौ यह ब्रज-जुवती मन भावै ।
सूछम रूप सकल ब्रज-तिय को बस्यो कपोलनि आई ।
'हरीचंद' छवि निरखि हरषि हिय बार बार बलि जाई ॥३८॥

नव वसंत को आगम सजनी हरि को जनम सुहायो ।
गावत कोकिन कीर मोर सी जुवती बजत बधायो ।
विविध दान लहि जाचक जन से कलित कुसुम बहु फूले ।
गुग गावत धावत बंदीजन से भँवरे बहु भूले ।
उड़त गुलाल अबीर रंग सो दधि-काँदो फरि लाई ।
नाचत गारी दैत निलज से गावत ताल बजाई ।
टसू फूलान मिस वृन्दाबन प्रकटयौ जिय अनुरागे ।
केसर-सिंचित सम सरसों-बन नैन सुखद अति लागे ।
गोप पाग पहिरे सब सोमित गेंदा तरु इक-रासी ।
बौरे आम सरिस डोलत आनंद-बौरे ब्रजरासी ।
बंस-बेलि लहरानी नंदजू की अति सुख भालरि लाई ।
तरुन तमाल स्याम घन उपजे 'हरीचंद' सुखदाई ॥३९॥

पिया मन-मोहन के संग राधा खेलत फाग ।
दोउ दिसि उड़त गुलाल अरगजा दोउन उर अनुराग ।
रंग-रेलनि भोरी भेलनि में होत इगनि की लाग ।
'हरीचंद' लषि सो सुख-सोभा अपुन सराहत भाग ॥४०॥

शोभा कैसी छाई ।

कोइल कुहुकै भँवर गुंजारै सरस बहार

फूलि रही सरसों अँखियन लगत सुहाई, देखो ।
बीती सिसिर बसन्तहु आई फिर गई काम-दुहाई ।
बौरन आम लाग्यो मन बौर्यो विरहिन विरह सताई, देखो ।
जान न देहौ तुहि ऐसी समय में लेहौं लाख बलाई ।
'हरीचंद' मुख चूमि पियरवा गरवाँ रहिहौं लाई, देखो ॥४१॥

रिमफिम बरसे पनियाँ घर नहिं जनियाँ कैसे बीतै रात ।
मोर सोर घनघोर करत हैं सुनि सुनि जीअ डरात ।
सूनी सेज देखि पीतम बिनु धीरज जिय न धरात ।
पिय 'हरिचंद' बसे परदेसवाँ मोर

जोबवनाँ नाहक जात ॥४२॥

देखो साँवरे के संगवाँ गोरी भूलेलीं हिंडोर ।

जमुना तीर कदम की डारियाँ पहिरे चीर पटोर ।
 बिजुली चमके पनिर्वाँ बरसे बादर छौले हो धनधोर ।
 हरि-राधा छवि देखि नयनवाँ सखि जुड़ेलैं मोर । १४३
 सखी कैसी छवि छाई देखो आई बरसात ।
 मोहिं पिया बिना हाय न भाई बरसात ।
 धन गरजत बिरह बढ़ाई बरसात ।
 हरि मिलत न भई दुखदाई बरसात । १४४

मथुरा के देसवाँ से भेजल पियरवाँ रामा ।
 हरि हरि ऊधो जोगवा की पाती रे हरी ।
 सब मिलि आओ सखी सुनो नई बतियाँ रामा ।
 हरि हरि मोहन भए कुबरी के सँधाती रे हरी ।
 छोड़ि घर-बार अब भसम रामाओ रामा ।
 हरि हरि अब नहिं ऐहैं सुख की राती रे हरी ।
 अपने पियरवाँ अब भए हैं पराए रामा ।
 हरि हरि सुनत जुड़ाओ सब छाती रे हरी । १४५

रिमझिम बरसत मेह भीजति मैं तेरे कारन ।
 खरी अकेली राह देखि रही सुनो लागत गेह ।
 आइ मिलो गर लगी पियारे तपत काम सो देह ।
 'हरिचंद' तुम बिनु अति व्याकुल लाग्यो कठिन सनेह । १४६

मलार चौताला

(समय कुतुबुद्दीन का राज)

छाई आँधियारी भारी सूझत नहिं राह कहैं
 गरजि गरजि बादर से जवन सब डरावैं ।
 वपला सी हिंदुन की बुद्धि वीरतादि भई
 छिपे वीर-तारागन कहैं न दिखावैं ।
 सुजस-चंद मंद भयो कायरता-वास बढ़ी
 दरिद-नदी उमड़ि चली मूरखता
 पंक चहल पहल पग फँसावैं ।

हरिचंद' नंदनंद गिरिवर धरो आइ फेर
 हिन्दुन के नैन नीर निस दिन बरसावैं । १४७

मलारी जलद तिताला

(समय सिकंदर का पंजाब का युद्ध)

गोरस सर जल रन महँ बरसत
 लखि कै मोरा जियरा हरसत ।
 बिजुरी सी चमकत तरवारें, बादर सी तोपें ललकारैं,
 बीच अवल गिरिवर सो छत्री गज चढ़ि देवराज-सम सरसत
 भींगुर से झनकत हैं बखतर, जवन करत दादुर से टरटर
 छर्रा उड़त बहुत जुगनु से एक एक कौं तम सम गरसत ।

बढ़्यो वीर रस सिंधु सुहायो, डिग्यो न राजा सबन डिगायो,
 ऐसो वीर बिलोकि सिकंदर जाइ

मिल्यो कर सों कर परसत । १४८

धनि धनि री सारिस-गमनी ।
 गरि मध पसरी साम मनी सारी रेसम सनि सरिस सनी ।
 निस मनि सम निसि धरि धरि
 मगमधि परी परी पग मगनि गनी ।
 निसरी साम साध सानी गनि
 'हरिचंद' सरिगम पधनी । १४९

चातक को दुख दूर किया सुख दीनों सबै जग जीवन भारी ।
 पूरे नदी नद ताल तलैया किए सब भाँति किसान सुखारी ।
 सुखेहु रुखन कोने हरे जग पूरो महा मुद हलै निज वारी ।
 हे धन आसिन लौ इतनो करि रीते भएहु बड़ाई तिहारी । १५०

जय वृषभानु-नंदिनी राधे मोहन-प्रान-पियारी ।
 जय श्री रसिक कुँवर नंदनंदन मोहन गिरिवधारी ।
 जय श्री कुंज-नायिका जय जय कीरति-कुल-उँडियारी ।
 जय वृदावन चारु चंद्रमा कोटि-मदन-मद-हारी । १५१
 जय ब्रज-तरुन-तरुनि-चूड़ामनि सखियन में सुकुमारी ।
 जयति गोप-कुल-सीस-मुकुटमनि नित्यै सत्य बिहारी ।
 जयति बसंत जयति वृंदावन जयति खेल सुख सुखकारी
 जय अद्भुत जस गावत सुक मुनि 'हरिचंद' बलिहारी । १५२

प्रगटे हरिजू आनंद-करत ।
 मनु आई भुव पर ऋतु बसंत ।
 सब फूले गोप ग्वाल-बाल ।
 मनु बौरि रहे बन में रसाल ।
 सब ग्वाल धरे केसरी पाग ।
 मनु डारन पै गेंदा सुभाग ।
 फैली चहुँ दिसि हरदी सुरंग ।
 सरसों के खेत फूलन के संग ।
 सब के मन में अति री हुलास ।
 मनु फूलि रहे सुंदर पलास ।
 देखत सब देव चढ़े बिमान ।
 मनु उड़त विविध पक्षी सुजान ।
 नट नाचत गावत करत छयाल ।
 मनु नाचि रहे बन में मराल ।
 गावत मागध बंदी प्रवीन ।
 मनु बोलि रही कोकिल नवीन ।
 पहिरे नर-नारी बसन हार ।
 मनु नये पत्र-फल फूल चार ।
 सो सुख लूटत 'हरिचंद' दास ।

मनु मत भँवर पायो सुवास १५३

महारानी तिहारो घर सुबस बसो ।

आबु सुफल ब्रजवास भयो सब घर घर अति आनंद रसो ।
कोउ गावत कोउ करत कोलाहल माखन को कोउ लेत रसो ।
श्री राधा के प्रकट भये ते या बरसानो सुख बरसो ।
देत असीस सदा चिर जीवो मोहन को संग लै बिलसो ।
'हरीचंद' आनंद अति बाढ़्यो
सब जिय को दुख दरद नसो १५४

मन की कासों पीर सुनाऊँ ।

बकनो बूया और पतिखोने सबै चवाई गाऊँ ।
कठिन दरद कोऊ नहिं धरिहै धरिहै उलटो नाऊँ ।
यह तो जो जानै सोइ जानै क्यों करि प्रकट जनाऊँ ।
रोम रोम प्रति नयन श्रवन मन केहि धुनि रूप लखाऊँ ।
बिना सुजान सिरोमनि री केहि हियरो काढ़ि दिखाऊँ ।
मरमिन सखिन वियोग दुखित क्यों कहि निज दसा रोआऊँ
'हरीचंद' पिय मिले तो पग गहि बाट रोकि समझाऊँ १५५

तू केहि चितवत चकित मृगी सी ।

केहि द्रुढ़त तेरो कह खोयो

क्यों अकुलात लखाति ठगी सी ।

तन सुधि करि उघरत ही आँचर

कौन व्याध तू रहति खगी सी ।

उत्तर देत न खरी जकी ज्यों

मद पीये कै रैन जगी सी ।

चौकि चौकि चितवति चारिहु

दिसि सपने पिय देखति उमंगी सी ।

भूलि बैखरी मृग सावक ज्यों निज

दल तजि कहूँ दूरि भगी सी ।

करति न लाज हाट-वारन की

कुल-मर्यादा जाति डगी सी ।

'हरीचंद' ऐसे हि उरभी तो

क्यों नहिं डोलत संग लगी सी १५६

श्री गोपीजन-बल्लभ सिर पै बिराजमान

अब तोहि कहा डर मूढ़ मन बावरे ।

छोड़िके कुसंग सबै आसरो अनेक अबै

छिन भर हरि-पद सीस नित नाव रे ।

कहत पुकार बार बार सुनि यह राम

क्रोध छोड़ि एक हरि गुन गाव रे ।

'हरीचंद' मटकै अनेक ठोर तिन प्रति

टेक तज बल्लभ सरन अब आव रे १५७

हठीरो दे दे मेरी मुँदी ।

हा हा करत हौं पड़ौ परत हौं गुरुजन माँफ़ खरी ।
'हरीचंद' तुम चतुर रसीले बहियाँ पकरी १५८
बिनु सैयाँ मोको भावै नहिं अँगना ।
चँदा उदय जरावत हमकों बिष सो लगत कैंगना १५९

पिय की मोठी मोठी बतियाँ ।

श्रवन सुहावत सुधा-रस सानी कहत लाइ जब छतियाँ ।
बोलत ही हिय खचित होत मनु मैं लिखत मन पतियाँ ।
'हरीचंद' पूरन हिय करनहिं रहत सदा बनि थतियाँ १६०

तरल तरंगिनि भव-भय-भंगिनि जय जय देवि गंगे ।
जगदघ-हारिनि करुना-कारिनि रमा-रंग-पद रंगे ।
नवल बिमल जल हरत सकल मल पान करत सुखदाई ।
पापहि नासत पुन्य प्रकासत जलमय रूप लखाई ।
कच्छप मीन भ्रमरमय सोभित कृपा-कमल-दल फूले ।
देव-बधू-कुच-कुंकुम रंजित लखि छवि सुर नर भूले ।
शिव-सिर-बासिनि अज-कर्मडलिनि पतित मंडलिनि तारो
'हरीचंद' इक दास जानि कै करुन कटाच्छ निहारो १६१

हरिजू की आवनि मो जिय भावै ।

लटकीली रस-भरी रँगली मेरे दुगन सुहावै ।
निज जन दिसि निरखनि दुग भरि कै हँसनि मुरनि मन मानै
बेनु बजावनि कटि कसि धावनि गावनि करि रस दानै ।
बक बिलोचन फेरनि हेरनि सब ही चित चुरावै ।
'हरीचंद' भूलत नहिं कबहुँ नित सुधि अधिक दिवावै १६२

जग बौराना मेरे लेखे ।

कोइ असाध कोई साधू बनि धाया करि करि भेखे ।
लड़ि लड़ि मरा बाद बादन में बिनु अपने चख देखे ।
धरम करम कर मोटी कीनी और करम की रेखे ।
होय सयाना मूल गँवाया सभी ब्याज के लेखे ।
'हरीचंद' पागल बनि पाया पीतम प्रीति परेखे १६३

हरि जू कों नेह परम फल माई ।

मेरे नेम धरम जप संजम बिधि याही में आई ।
यहै लोक परलोक चार फल यहै जगत ठकुराई ।
मेरे काम धाम परमारथ स्वारथ यहै सदाई ।
यहै वेद बिधि लाज रीति धन हमरे यहै बड़ाई ।
'हरीचंद' बल्लभ की सरबस मैं जिय निधि कर पाई १६४
मुसाफिर चेत करो निसि बीत गई चौजाम ।

अब चलने की करो तयारी सिर पर आई घाम ।
कमर कसो औ बस्त्र सम्भारो कर में राखो दाम ।
'हरीचंद' पहिले से चेतो तब पैहो आराम । ६५

होली डफ की

तेरी अँगिया में चोर बसैं गोरी ।
इन चोरन मेरो सरबस लुट्यौ मन लीनो जोरा-जोरी ।
छोड़ि देई कि बंद चोलिया पकरै चोर हम अपनोरी ।
'हरीचंद' इन दोउन मेरी नाहक कीनी चित चोरी । ६६
देखो बहियाँ मुरक मोरी ऐसी करी बर-जोरी ।
औचक आय दौरी पछे तें लोक की लाज सब छोरी ।
छीन भपट चपट मोरी गागर मलि दीनी मुख रोरी ।
नहिं मानत कछु बात हमारी कंचुकि को बँद छोरी ।
एई रस सदो रसिक रहिओ 'हरीचंद' यह जोरी । ६७

ग़ज़ल

फिर आई फस्ले^१ गुल^२ फिर ज़ख्मदह^३ रह रह के पकते हैं ।
मेर दागे ज़िगर^४ पर सुरते लाला^५ लहकते हैं ।
नसीहत है अबस^६ नासेह^७ बयाँ नाहक ही बकते हैं ।
जो बहके दुख्तेर^८ से हैं वह कब इनसे बहकते हैं ?
कोई जाकर कहो यह आखिरी पैगाम^९ उस बुत से ।
अरे आ जा अभी दम तन में बाकी है सिसकते हैं ।
न बोसा लेने देते हैं न लगते हैं गले मेरे ।
अभी कम-उम्र है हर बात पर मुझ से भिभकते हैं ।
व गैरों को अदा से कल्ल जब बेबाक^{१०} करते हैं ।
तो उसकी तेग को हम आह किस हेरत^{११} से तकते हैं ।
उड़ा लाये हो यह तर्जें सखुन^{१२} किस से बताओ तो ।
दमे तकदीर^{१३} गोया बाग में बुलबुल चहकते हैं ।
'रसा' की है तलाशे यार में यह दस्त-पैमाई^{१४} ।
कि मिस्ले शीशा मेरे पाँव के छाले भलकते हैं । १
खयाले नावके^{१५} मिजगाँ^{१६} में बस हम सर पटकते हैं ।
हमारे दिल में मुबत से ये खारे^{१७} गम खटकते हैं ।
रुखे रौशन पै उसके गेसुए^{१८} शबगू^{१९} लटकते हैं ।
कयामत^{२०} है मुसाफिर रास्त : दिन को भटकते हैं ।
फुगाँ^{२१} करती है बुलबुल याद में गर गुल के ऐ गुलबी^{२२}

सदा इक आह की आती है जब गुचे^{२३} चटकते हैं ।
रिहा करता नहीं सैयाद हम को मौसिमे गुल में ।
कफस^{२४} में दम जो घबराता है सर दे दे पटकते हैं ।
उड़ा दूँगा 'रसा' में धज्जियाँ बमाने^{२५} सहरा^{२६} की ।
अबस^{२७} खारे बियाबाँ मेरे दामन से अटकते हैं । २
ग़ज़ब है सुरम : देकर आज वह बाहर निकलते हैं ।
अभी से कुछ दिले मुज़्तर^{२८} पर अपने तीर चलते हैं ।
जरा देखो तो ऐ अहले सखुन^{२९} जोरे सनाअत^{३०} को ।
नई बंदिश है मजमूँ नूर के साँचे में ढलते हैं ।
बुरा हो इश्क का यह हाल है अब तेरो फुकत^{३१} में ।
कि चश्मे खूँ चको^{३२} से लख्ते^{३३} दिल पैहम^{३४} निकलते हैं ।
हिला देंगे अभी ऐ सगे दिल तेरे कलेजे को ।
हमारी आहें आतिश-बार^{३५} से पत्थर पिघलते हैं ।
तेरा उमरा हुआ सीना जो हम को याद आता है ।
तो ऐ रश्के परी पहरों कफे^{३६} अफसोस मलते हैं ।
किसी पहलू नहीं चैन आता है उश्शाक को तेरे ।
तड़फते हैं फुगाँ करते हैं औ करवट बदलते हैं ।
'रसा' हाजत नहीं कुछ रौशनी की कुंजे मर्कद^{३७} में ।
बजाये शमा^{३८} याँ दागे ज़िगर हर वक्त जलते हैं । ३
अजब जोबन है गुल पर आमदे फस्ले बहारी है ।
शिताब आ साकिया गुलरू^{३९} कि तेरी यादगारी है ।
रिहा करता है सैयादे सितमगर मौसिमे गुल में ।
असीराने^{४०} कफस लो तुमसे अब रुखसत हमारी है ।
किसी पहलू नहीं आराम आता तेरे आशिक को ।
दिले मुज़्तर तड़पता है निहायत बेकरारी है ।
सफाई देखते ही दिल फड़क जाता है बिस्मिल का ।
अरे ज़ल्लाद तेरे तेग की क्या आबदारी है ।
दिला^{४१} अब तो फिराके यार में यह हाल है अपना ।
कि सर जानू पर है और खून दह आँखों से जारी है ।
इलाही खैर कीजो कुछ अभी से दिल घड़कता है ।
सुना है मजिले औबल की पहली रात भारी है ।
'रसा' महबे^{४२} फसाहत^{४३} दोस्त क्या दुश्मन भी है सारे ।
ज़माने में तेरे तर्जें सखुन की यादगारी है । ४
आ गई सर पर कज़ा लो सारा सामाँ रह गया ।

१. ऋतु, २. फूल, ३. घाव, ४. हृदय, ५. एक पुष्प, ६. व्यर्थ, ७. उपदेशक, ८. मदिरा, ९. सदेश, १०. निडरता से, ११. आश्चर्य, १२. कहने की शैली, १३. बोलना, १४. जंगल में भटकना, १५. छोटा वाण, १६. पलक, १७. काँटा, १८. बाल, १९. काली, २०. प्रलय, २१. आह, २२. पुष्प चुननेवाला, २३. कलियाँ, २४. पिंजड़ा, २५. अंचल, २६. जंगल, २७. व्यर्थ, २८. घबड़ाया गया, २९. कविगण, ३०. व्यंजना, ३१. विरह, ३२. टपकनेवाले, ३३. टुकड़ा, ३४. सदा, ३५. अग्निवर्षक, ३६. हथेली, ३७. कन्न, ३८. दीपक, ३९. पुष्पमुखी, ४०. कैदियों, ४१. हे हृदय, ४२. मुग्ध, ४३. अच्छी व्यंजनाशक्ति.

ऐ फलक क्या क्या हमारे दिल में अरमा^१ रह गया ।
 बागबा^२ है चार दिन की बागे आलम में बहार ।
 फूल सब मुरझा गये खाली बियाबा^३ रह गया ।
 इतना एहसा^४ और कर लिल्लाह^५ ऐ दस्ते जनु^६ ।
 बाकी गर्दन में फकत तारे गिरेबा^७ रह गया ।
 याद आई जब तुम्हारे रुप रौशन की चमक ।
 मैं सरासर सूरते आईना हैरा^८ रह गया ।
 ले चले दो फूल भी इस बागे आलम से न हम ।
 वक्त रेहलत^९ हैफ^{१०} है खाली हि दामा^{११} रह गया ।
 मर गये हम पर न आये तुम खबर को ऐ सनम^{१२} ।
 हौसला सब दिल का दिल ही में मेरी जाँ रह गया ।
 नातवानी ने दिखाया जोर अपना ऐ 'रसा' ।
 सूरते नक्शे कदम मैं बस नुमाया^{१३} रह गया ।
 फिर मुझे लिखना जो वस्फे^{१४} रुए जाना^{१५} हो गया ।
 वाजिब इस जा पर कलम को सर भुकाना हो गया ।
 सरकशी इतनी नहीं जालिम है ओ जुल्फे सियाह ।
 बस के तारीक^{१६} अपनी आँखों में जमाना हो गया ।
 ध्यान आया जिस घड़ी उसके दहाने^{१७} तंग का ।
 हो गया दम बंद मुश्किल लव हिलाना हो गया ।
 ऐ अज़ल^{१८} जल्दी रिहाई दे, न बस ताखीर कर ।
 खानए तन^{१९} भी मुझे अब कैदखाना हो गया ।
 आज तक आईना-वश हैरान है इस फिर्क में ।
 कब यहाँ आया सिकंदर कब रवाना हो गया ।
 दौलते दुनिया न काम आएगी कुछ भी बाद मर्ग^{२०} ।
 है जमी^{२१} में खाक कार^{२२} का खजाना हो गया ।
 बात करने में जो लव उसके हुए जेरो जबर^{२३} ।
 एक सायत में तहो बाला^{२४} जमाना हो गया ।
 देख ली रफ्तार उस गुल की चमन में क्या सबा ।
 सर्व^{२५} को मुश्किल कदम आगे बढ़ाना हो गया ।

जान दी आखिर कफस में अंदलीबे^{२६} जार^{२७} ने ।
 मुज्द^{२८} है सैयाद वीरा^{२९} आशियान^{३०} हो गया ।
 जिन्द : कर देता है एक दम में य ईसाए नफस^{३१} ।
 खेल उसको गोया मुरदे को जिलाना हो गया ।
 तीसने^{३२} उसरे रवा^{३३} दम भर नहीं रुकता 'रसा' ।
 हर नफस गोया उरू एक ताजियाना हो गया ।
 दिल मेरा तीरे सितमगर का निशाना हो गया ।
 आफते जाँ मेरे हक में दिल लगाना हो गया ।
 हो गया लागर^{३४} जो उस लैली अदा के इश्क में ।
 मिसले मजनू^{३५} हाल मेरा भी फिसाना^{३६} हो गया ।
 खाकसारी^{३७} ने दिखाया बाद मुर्दन^{३८} भी उरुत^{३९} ।
 आसमा^{४०} तुरबत^{४१} पर मेरे शामियाना हो गया ।
 छाबे गफलत से जरा देखो तो कब चौंके हैं हम ।
 काफिला मुल्के अदम^{४२} को जब रवाना हो गया ।
 फसले गुल में भी रिहाई की न कुछ सूरत हुई ।
 कैद में सैयाद मुझको एक जमाना हो गया ।
 दिल जलाया सूरते परवाना जब से इश्क में ।
 फर्ज तब से शामअ पर आँसू बहाना हो गया ।
 आज तक ऐ दिल जवाबे खत न मेजा यार ने ।
 नामाबर को भी गये कितना जमाना हो गया ।
 पासे रुसवाई^{४३} से देखो पास आ सकते नहीं ।
 रात आई नींद का तुमको बहाना हो गया ।
 हो परेशानी सरेमू^{४४} भी न जुल्फे यार को ।
 इसलिये मेरा दिले सद-चाक^{४५} शाना^{४६} हो गया ।
 बद मुर्दन कौन आता है खबर को ए 'रसा' ।
 खत बस कंजे लहद^{४७} तक दोस्ताना हो गया ।
 जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है ।
 उसी का सब है जलवा^{४८} जो जहाँ में अशकारा^{४९} है ।
 भला मखलूक^{५०} खालिक की सिफत समझे कहाँ कुदरत ।

१. इच्छा, २. ईश्वर के लिए, ३. पागलपन, ४. कंठी, ५. महायात्रा, ६. शोक, ७. प्रिय, ८. गुण, ९. अंधकार, १०. मुख, ११. मृत्यु, १२. शरीर रूपी गृह, १३. मृत्यु, १४. एक घनाद्वय, १५. नीचे ऊपर, टेढ़े, १६. अस्तव्यस्त, १७. एक पौधा, सरो, १८. बुलबुल, १९. दुखी, २०. सुखी, २१. घोंसला, २२. प्राण, २३. घोड़ा, २४. चलता हुआ, २५. कृश, २६. कहानी, २७. नम्रता, २८. मरने के, २९. उत्कर्ष, ३०. कब्र, ३१. परलोक, ३२. कलंक के विचार, ३३. बाल बराबर भी, ३४. सौ टुकड़े, ३५. कंधी, ३६. कब्र, ३७. शोमा, ३८. प्रकट, ३९. सृष्टि के जीव.

इसी से नेति नेति ऐ यार वेदों ने पुकारा है ।
 न कुछ चारा चला लाचार चारो हारकर बैठे ।
 बिचारे ब्रेद ने प्यारे बहुत तुमको बिचारा है ।
 जो कुछ कहते हैं हम यह भी तेरा जलवा है एक वरन : ।
 किसे ताकत जो मुँह खोले यहाँ हर शक्स हारा है ।
 तेरा दम मरते हैं हिंदू अगर नाकूस^१ बजता है ।
 तुझे ही शेख न प्यारे अजाँ देकर पुकारा है ।
 जो बुत पत्थर हैं तो काबे में क्या जुज़ खाको पत्थर है ।
 बहुत भूला है वह इस फ़र्क में सर जिसने मारा है ।
 न होते जलबगर तुमलो यह गिरजा कब का गिर जाता ।
 निसारा^२ को भी तो आखिर तुम्हारा ही सहारा है ।
 तुम्हारा नूर है हर शै में कह^३ सो कोई^४ तक प्यारे ।
 इसी से कह के हर हर तुमको हिंदू ने पुकारा है ।
 गुनह बख़्शो रसाई दो 'रसा' को अपने कदमों तक ।
 बुरा है या भला है जैसा है प्यारे तुम्हारा है ।^८

उठा के नाज़ से दामन भला किधर को चले ।
 हृधर तो देखिये बहरे खुदा^५ किधर को चले ।
 मेरी निगाहों में दोनों जहाँ हुए तारीक ।
 य आप खोल के जुल्फें दोता^६ किधर को चले ।
 अभी तो आए हो जल्दी कहाँ है जाने की ।
 उठो न पहलू से ठहरो ज़रा किधर को चले ।
 ख़फा हो किसपै भवै क्योँ चढ़ी हैं ख़ैर तो है ।
 ये आप तेग पै धर कर ज़िला किधर को चले ।
 मुसाफिराने अदम कुछ तो अज़ीजों से कहो ।
 अभी तो बैठे थे है है भला किधर को चले ।
 चढ़ी हैं त्योरियाँ कुछ है मिज़ह^७ भी जुम्बिश^८ में ।
 खुदा ही जाने ये तेगो अदा किधर को चले ।
 गया जो मैं कहीं भूले से उनके कूचे में ।
 तो हँस के कहने लगे हैं 'रसा' किधर को चले ।^९

असीराने कफ़स सहने चमन को याद करते हैं ।
 भला बुलबुल प यों भी जुलम ऐ सैयाद करते हैं ।
 कमर का तेरे जिस दम नक़्श हम ईजाद करते हैं ।
 तो जाँ फ़र्मान^९ आकर मानियो बिहजाद^{१०} करते हैं ।
 पसे मुर्दन तो रहने दे ज़मीं पर ऐ सबा मुफ़्फ़को ।
 कि मिटटी खाकसारों^{११} की नहीं बरबाद करते हैं ।
 दमे रफ़्तार आती है सदा पाज़ेब से तेरी ।
 लहद के खिस्तगाँ उठो मसीहा याद करते हैं ।
 कफ़स में अब तो ऐ सैयाद अपना दिल तड़पता है ।
 बहार आई है मुरग़ाने-चमन फरियाद करते हैं ।^{१२}
 बता दे ऐ नसीमे सुबह शायद मर गया मजनुँ ।
 बता दे ऐ नसीमें सुबह शायद मर गया मजनुँ ।
 ये किसके फूल उठते हैं जो गुल फरयाद करते हैं ।
 मसल सच है बशर^{१३} की कद्रे ने अमत^{१४} बाद होती है ।
 सुना है आज तक हमको बहुत वह याद करते हैं ।
 लगाया बाग़बाँ ने ज़ख़्म कारी दिल प बुलबुल के ।
 गरेंबाँ चाक गुंचे हैं तो गुल फरयाद करते हैं ।
 'रसा' आगे न लिख अब हाल अपनी बेकरारी का ।
 बरंगे गुंच : लब^{१५} मज़मू तेरे फरयाद करते हैं ।^{१०}

दिल आतिशे हिज़राँ से जलाना नहीं अच्छा ।
 अय शोल : रुख़ो^{१७} आग लगाना नहीं अच्छा ।
 किस गुल के तसव्वर^{१८} में है ए लाल : ज़िगर-खूँ ।
 यह दाग कलेजे प उठाना नहीं अच्छा ।
 आया है अयादत^{१९} को मसीहा सरे बालीं^{२०} ।
 ऐ मर्ग^{२१}, ठहर जा अभी आना नहीं अच्छा ।
 सोने दे शबे वस्ले गरीबाँ है अभी से ।
 ऐ मुर्गे-सहर^{२२} शोर मचाना नहीं अच्छा ।
 तुम जाते हो क्या जान मेरी जाती है साहब ।

१. शंख, २. ईसाई, ३. तिनका, ४. पर्वत, ५. ईश्वर के लिए, ६. दोनों ओर, ७. पलक,

८. हिलना, ९. एक पुष्प, १०. तर्क तथा वाधा, ११. दीनों,

१२. पाठा — बहार आई है फिर सैरे गुलिस्ता याद करते हैं ।

कफ़स में सिर को टकराते हैं और फरियाद करते हैं ।।

१३. मनुष्य, १४. भलाई, १५. कली के समान बंद ओठ,

१६. एक प्रति में निम्नलिखित शैर अधिक है ।

मज़ामीने बलंद अपनी पहुँच जाएँगी गई तक ।

य तर्जो नौ जमीं में शैर हम आबाद करते हैं ।।

१७. प्रकाशमान मुखवाले, १८. सोच, १९. रुग्णावस्था में हाल पूछने जाना, २०. सिराहना,

२१. मृत्यु, २२. सबरे का मुर्गा ।

अय जाने-जहाँ आपका जाना नहीं अच्छा ।
 आ जा शवे फुकृत में कसम तुमको खुदा की ।
 ऐ मौत बस अब देर लगाना नहीं अच्छा ।
 पहुँचा दे सबा कूचए जानों में पसे मर्ग ।
 जंगल में मेरी खाक उड़ाना नहीं अच्छा ।
 आ जाय न दिल आपका भी और किसी पर ।
 देखो मेरी जाँ आँख लड़ाना नहीं अच्छा ।
 कर दूँगा अभी हथ्र^१ बपा देखियो जल्लाद ।
 घब्बा य मेरे खूँ का छुड़ाना नहीं अच्छा ।
 ऐ फाख्त : उस सर्वसिद्दी^२ कद का हूँ शैदा ।
 कू कू की सदा मुफको सुनाना नहीं अच्छा ।
 होगा हरेक आह से महशर^३ बपा 'रसा' ।
 आशिक का तेरे होश में आना नहीं अच्छा । ११
 रहे न एक भी बेदादगर^४ सितम^५ बाकी ।
 रुके न हाय अभी तक है दम में दम बाकी ।
 उठा दुई का जो परदा हमारी आँखों से ।
 तो कावे में भी रहा बस वही सनम बाकी ।
 बुला लो वालीं प हसरत न दिल में मेरे रहे ।
 अभी तलक तो है तन में हमारे दम बाकी ।
 लहद प आएँगे और फूल भी उठाएँगे ।
 ये रंज है कि न उस वक्त होंगे हम बाकी ।
 यह चार दिन के तमाशे हैं आह दुनिया के ।
 रहा जहाँ में सिकन्दर न और न जम^६ बाकी ।
 तुम आओ तार से मरकद प हम कदम चूमें ।
 फकत यही है तमन्ना तेरी कसम बाकी ।
 'रसा' ये रंज उठाया फिराक में तेरे ।
 रहे जहाँ में न आखिर को आह हम बाकी । १२
 बैठे जो शाम से तेरे दर पर सहर हुई ।
 अफसोस अय कमर^७ कि न मुतलक खबर हुई ।
 अरमाने वस्ल यों ही रहा सो गए नसीब ।
 जब आँख खुल गई तो यकायक सहर हुई ।
 दिल आशिकों के छिद गए तिरछी निगाह से ।
 मिज़गाँ^८ की नोक दुशमने जानी जिगर हुई ।
 पछताता हूँ कि आँख अबस तुम से लड़ गई ।
 बरछी हमारे हक में तुम्हारी नजर हुई ।
 छानी कहाँ न खाक, न पाया कहीं तुम्हें ।
 मिष्टी मेरी खराब अबस दर-बदर हुई ।

ध्यान आ गया जो शाम को उस जुल्फ का 'रसा' ।
 उलफन में सारी रात हमारी बसर हुई । १३
 बाल बिखेरे आज परी तुरबत पर मेरे आएगी ।
 मौत भी मेरी एक तमाशा आलम को दिखलाएगी ।
 मट्टवे अदा हो जाऊँगा गर वस्ल में वह शरमाएगी ।
 बारे खुदाया दिन की हसरत कैसे फिर बर आएगी ।
 कहीदा^९ ऐसा हूँ मैं भी दूँदा करे न पाएगी ।
 मेरी खातिर मौत भी मेरी बरसों सर टकराएगी ।
 इसके नुर्ता में जब दिल उलझा दीन कहाँ इसलाम कहाँ ।
 वाअज़^{१०} काली जुल्फ की उल्फत सब को राम बनाएगी ।
 चंगा होगा जब न मरीज़े काकुले शबगूँ हज़रत से ।
 आपकी उलफत ईसा की अब अज़मत आज मिटाएगी ।
 बढ़े अयादत भी जो आएँगे न हमारे वालीं पर ।
 बरसों मेरे दिल की हसरत सिर पर खाक उड़ाएगी ।
 देखूँगा मिहराबे हरम याद आएगी अबरूए सनम ।
 मेरे जाने से मसजिद भी बुतखाना बन जाएगी ।
 गाफिल इतना हुस्न प गर्ग^{११} ध्यान किधर है तौबा कर ।
 आखिर इक दिन सूरत यह सब मिष्टी में मिल जाएगी ।
 आरिफ^{१२} जो हैं उनके हैं बस रंज व राहत एक 'रसा' ।
 जैसे वह गुज़री है यह भी किसी तरह निभ जाएगी । १४
 फसादे दुनिया मिटा चुके हैं
 हुसूले हस्ती उठा चुके हैं ।
 खुदाई अपने में पा चुके हैं
 मुझे गले यह लगा चुके हैं ।
 नहीं नज़ाकत से हम में ताकत
 उठाएँ जो नाज़े हूरे जन्नत^{१३} ।
 कि नाज़े शमशीर पुर नज़ाकत
 हम अपने सर पर उठा चुके हैं ।
 नजात हो या सज़ा हो मेरी मिले
 जहन्नुम^{१४} कि पाऊँ जन्नत ।
 हम अब तो उनके कदम प अपना
 गुनह भरा सिर झुका चुके हैं ।
 नहीं ज़बाँ में है इतनी ताकत
 जो शुक्र लाएँ बजा हम उनका ।
 कि दामें हस्ती^{१५} से मुझको अपने ।
 इक हाथ में वह छुड़ा चुके हैं ।
 वजूद^{१६} से हम अदम में आकर ।

१. प्रलय, २. सरो पौधे के समाव सीधा, ३. प्रलय, ४. अत्याचारी, ५. कष्ट, अत्याचार,
 ६. ईरान का एक राजा जमशेद, ७. चंद्र, ८. पलकें, ९. कृश, १०. उपदेशक, ११. घमंड,
 १२. ज्ञानी, १३. स्वर्ग, १४. नर्क, १५. जीवन

मुर्की^१ हुए ला-मर्का^२ के जाकर ।
 हम अपने को उनकी तेग खाकर
 मिटा मिटाकर बना चुके हैं ।
 यही हैं अदना सी इक अदा से
 जिन्होंने बरहम^३ है की खुदाई ।
 यही हैं अकसर कज़ा के जिनसे
 फरिश्ते भी ज़क^४ उठा चुके हैं ।
 य कहदो बस मौत से हो रुखसत
 क्यों नाहक आई है उसकी शामत ।
 कि दर तलक वह मसीह^५ खसलत
 मेरी अयादत को आ चुके हैं ।
 जो बात माने तो ऐन शफकत
 न माने तो एन हुस्ने खूबी ।
 'रसा' भला हमको दखल क्या अब
 हम अपनी हालत सुना चुके हैं ।^{१५}
 दश-पेमाई का गर कस्द मुकर्रर होगा ।
 हर सरे खार पए आबिला^६ नशतर होगा ।
 मेकदे से तेरा दीवाना जो बाहर होगा ।
 एक में शीशा और इक हाथ में सागर होगा ।
 हलकए चश्मे सनम लिख के य कहता है कलम ।
 बस कि मरकज़ से कदम अपना न बाहर होगा ।
 दिल न देना कभी इन संग-दिलों को यारो ।
 चूर होवेगा जो शीशा तहे पत्थर होगा ।
 देख लेना व अगर रुख की तजल्ली^७ तेरे ।
 आइना खानए मायूसी^८ मे शशदर^९ होगा ।
 चाक कर डालूंगा दामाने कफन वहशत से ।
 आस्ती^{१०} से न मेरा हाथ जो बाहर होगा ।
 ऐ 'रसा' जैसा है बर-गशता^{११} ज़माना हमसे ।
 ऐसा बरगशता किसी का न मुकदर^{१२} होगा ।^{१६}
 नींद आती ही नहीं घड़के की बस आवाज़ से ।
 तंग आया हूँ मैं इस पुरसोज^{१३} दिल के साज़ से ।
 दिल पिसा जाता है उनकी चाल के अन्दाज़ से ।
 हाथ में दामन लिए आते हैं वह किस नाज़ से ।
 सैकड़ों मुरदे जिलाए हो मसीहा नाज़ से ।
 मौत शर्मिदा हुई क्या क्या तेरे ऐजाज़^{१४} से ।
 बागबाँ कुंजे कफस में मुबतों^{१५} से हूँ असीर ।

अब खुले पर भा तो मैं वाकिफ नहीं परवाज़^{१६} से । ।
 कन्न में राहत से सोए ये न था महशर का खौफ ।
 बाज़ आए ए मसीहा हम तेरे ऐजाज़ से ।
 वाए गुफलत भी नहीं होती कि दम भर चैन हो ।
 चौक पड़ता हूँ शिकस्त ! होश की आवाज़ से ।
 नाज़े माशुकाना से खाली नहीं है कोई बात ।
 मेरे लाशे को उठाए हैं व किस अन्दाज़ से ।
 कन्न में सोए है महशर का नहीं खटका 'रसा' ।
 चौकनेवाले हैं कब हम सुर^{१७} की आवाज़ से ।^{१७}
 चाह जिसकी थी वही यूसुफे सानी निकला ।^{१८}
 बख्त^{१९} ने फिर मुझे इस साल दिखाई होली ।
 सोजे फुरकत जेबस मुभको न भाई होली ।
 शोष्ण इश्क भड़कता है तो कहता हूँ 'रसा' ।
 दिल जलाने के लिए आह यह आई होली ।^{१९}
 बुते काफिर जो तू मुभसे खफा है ।
 नहीं कुछ खौफ मेरा भी खूदा है ।
 यह दर परद : सितारों की सदा है ।
 गली कूच : में गर कहिए बजा है ।
 रकीबों^{२०} में वह होंगे सुखरू आज ।
 हमारे कल्ल का बीड़ा लिया है ।
 यही है तार उस मुतरिब^{२१} का हर रोज ।
 नया इक राग लाकर छेड़ता है ।
 शुनीद : के बुवद मानिंद दीद : ।^{२२}
 तुफे देखा है दूरों को सुना है ।
 पहुँचता हूँ जो मैं हर रोज जाकर ।
 तो कहते हैं गज़ब तू भी 'रसा' है ।^{२०}
 रहमत का तेरे उम्मीदवार आया हूँ ।
 मुँह ढपि कफन में शर्मशार^{२३} आया हूँ ।
 आने न दिया बारे^{२४} गुनह ने पैदल ।
 ताबूत^{२५} में काँधों पे सवार आया हूँ ।^{२१}
 बंपई गरचे दुपट्टा है तो गुलदार है बेल ।
 सैरे गुलशन को चले आते हैं गुलशन होकर ।^{२२}
 कलक की गज़ल 'बाद अज़ फना तो रहने दे इस
 झाकसार को' पर चार शेर कहे हैं —
 अल्ला रे लुल्फे ज़बह की कहता हूँ बार बार ।

१. अस्तित्व, संसार, २. गूहवाला, ३. बिना गूह का, ४. व्यस्त, ५. पराजय, ६. फफोला,
 ७. प्रकाश, ८. नैराश्य, ९. चकित, १०. फिरा हुआ, ११. भाग्य, १२. जलन से भरा ।
 १३. अदभुत कार्य, १४. उड़ान, १५. प्रलय के समय बजने वाला नरसिंहा बाजा, १६. भाग्य,
 १७. प्रतिद्वंद्वी, १८. गायक, १९. सुना हुआ क्या देखे हुए के समान हो सकता है, २०. लज्जित,
 २१. बोझ ।

कातिल गले से खींच न खंजर की धार को ।
तड़पा न कर दे जबह मुझे बानिए-जफा ? ।
कुरबाँ गले प फेर दे खंजर की धार को ।
दे दो जबाब साफ कि किस्सा तमाम हो ।
दौड़ाते किस लिए हो इस उम्मीदवार को ।
होगी कशिश वहाँ से पस अज़ मार्ग जो 'रसा' ।
पाएगी गर हवा मेरे मुश्ते-गुबार^२ को । १२३

[बुलबुल को बाँधिए, तो रगे
गुल से बाँधिए,— तरह]

जुल्फों को लेके हाथ में कहने लगा वह शोख ।
गर दिल को बाँधना हो तो काबुल से बाँधिए । १२४
जब कभी उसकी याद पड़ती है ।

सोस^३ आकर ज़िगर में पड़ती है ।
यादे मिज़गाँ जो मुझको है पैहम^४ ।

बरछी सी एक ज़िगर में गड़ती है ।
वक्ते तहरीर यह ज़मीने सखुन ।

बात में आसमाँ पै चढ़ती है ।
हे जो मधे नज़र विसाल उसे ।

दम बदम मुझ पै आँख पड़ती है ।
वस्ल में भी नहीं है चैन मुझे ।

छाहिशे दिल जियाद : बढ़ती है ।
हे अब उसको सुलहो-जंग में लुल्फ ।

दिल मिला जब तो आँख लड़ती है ।
वेके आँखों में सुरमा वह बोले ।

शान पर आज तेग चढ़ती है ।
सेरे गुलशन जो करता है वह माह ।

बस गुलिस्ताँ पै ओस पड़ती है ।
बस्ल होगा नसीब आज 'रसा' ।

चेहरए गुल पै ओस पड़ती है ।
सौ करो एक भी नहीं बनती ।

आह नकदीर जब बिगड़ती है । १२५
बर्कदम^५ क्यों हाथ में शमशीर है ।

आज किस के कल्ल की तदबीर है ।
खाक सर पर पाँओं में ज़ंजीर है ।

तेरे चलते यह मेरी लौकीर^६ है ।
पूछते हो क्या मेरी जरदी का हाल ।

साहबो यह इश्क की तासीर है ।

कुचए लैली में कहते हैं मुझे ।

मिन अउन^७ मजनों की बस तस्वीर है ।
दस्तो-पा^८ सदै आशिकों के होते हैं ।

घर तेरा क्या खतए^९ कश्मीर है ।
पीसता है माहरूओं^{१०} को सदा ।

कैसी कजफहमी^{११} पै चरखे मीर है ।
पूछा मैंने एक दिन उस माह से ।

मेह्य तुझको कुछ भी ए बेपीर है ।
रुठता है दम बदम बेवजह क्यों ।

आशिकों की क्या यही लौकीर है ।
हे कसम तुफ को हमारे सर की जूँ ।

क्या खता थी जिसकी यह ताज़ीर^{१२} है
बोला हँस कर चुपके बस जाओ चले ।

क्या तुन्हारी मौत दामनगीर है ।
फूल झड़ते हैं जबाँ से बात में ।

मिस्ते बुलबुल यार की तकदीर है ।
फर्शें रह^{१३} करता हूँ आँख उसके लिए ।

खाके-पा हक में मेरे अकसीर है ।
ख्वाब में उस गुल को देखा ऐ 'रसा' ।

बस्ल होगा उसकी ये ताबीर^{१४} है ।
ऐ 'रसा' मिटती नहीं जुज़ ताब-मर्ग ।

खते किसमत की अबब तहरीर है । १२६
हे कमाँ अबरू तो मिजगाँ तीर है ।

आफते जाँ गुमज़ए^{१५} बे पीर है । १२७ १२७

बाद येँ मिले हुए फुट कर पद

दीपन की बर माला शोभित ।
जगमग जोत जगति चारो दिसि सोभा बढ़ी बिसाला ।

घूट करपूर पूर करि राखी मेदि तिमिर की जाला ।
'हरीचंद' बिहरत आनंद भरि राधा मद-गोपाला ! १

हटरी सजि कै राधा रानी मोहन पिय को लै बैठावत ।
फूल-माल पहिराइ बिबिध बिधि भाँति के भोग लगावत ।

बारी देत आरती करि कै करत निछावर बसन लुटावत ।
इक टक निरखि प्रान-पिय मुख छवि

जीवन जनम सुफल करि पावत ।
जगमग दीप प्रकास बदन दुति

रतन अभूषन मिलि मन भावत ।
हाट लगाइ प्रेम की मोहन

१. शव रखने का सँडूक, २. अत्याचारी, ३. एक मुट्ठी धूलि, ४. अफसोस, ५. सर्वदा,
६. विद्युत रूपा, ७. सम्मान, ८. ठीक वैसाही, ९. हाथ पैर, १०. देश, ११. चंद्रमुखी,
१२. उल्टी समझ, १३. दंड, १४. राह मार्ग, १५. स्वप्न का फल

मन के बदले सौंज दिखावत ।
पासा खेलत हँसत हँसावत
जानि बूझि पिय अपुन हरावत ।
'हरीचंद' पिय प्यारी मिलि के
एहि विधि नित त्यौहार मनावत । १२

समस्या—'क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी।' की पूर्ति

कहा भयो मद है पीयू के गहिरी बिजया छानी सी ।
लाल लाल दूग केंस बिथुरि रहे सूरत भई निवानी सी ।
भुक भुक भूमत अल-बल बोलत चाल मस्त बोरानी सी ।
काके रंग रंगी ऐसी क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी । १
छट्यौ केंस खुलौ है अंचल पीक-छाप पहिचानी सी ।
टूटी माल हार अरु पहुँची कुसुम-माल कुम्हिलानी सी ।
नैन लाल अधरा रस चूसे सुरतिह अलसानी सी ।
जानी जानी नेकु लाजु क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी । २
बन बन पात पात करि डोलत बोलत कोकिल बानी सी ।
मूँदि मूँदि दूग खोलि खोलि कै कहँ रहत ठहरानी सी ।
उभकति झुकति जगी सी सब छिन मोहन हाय बिकानी सी ।
धीरज धरि बलि गई अरी क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी । ३
मौन रहत कबहुँ कबहुँ तू बोलत अलाबल बानी सी ।
ठगी उगी रस पगी ध्याम रट लागी कबहुँ अकुलानी सी ।
तन की सुधि गुरु जन की मै बिनु 'हरीचंद' रस सानी सी ।
काके मद माती डोलत क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी । ४
उफनत तक्र चुअत चहुँ दिास तें खींचत पथ कहँ पानी सी ।
बार बार नैद-द्वार जाइ कै अड़ी रहत बिकानी सी ।
तन की सुधि नहिँ उधरत आँचर डोलत पथहि भुलानी सी ।
मुख सों कहत गुपालाहि लै क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी । ५
नेहर सासुर बाहर भीतर सब थल की ह्वै रानी सी ।
लाज मेति अन-कही भई अपवादनहू न-डरानी सी ।
कुलहि कलंक लगाय भली विधि होइ गई मन-मानी सी ।
अबहुँ तो कष्टु सम्हरि अरी क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी । ६
बिलखि बिलखि मति रोवै प्यारी ह्वै के दुख बोरानी सी ।
सीस धुनत क्यों अमरन तोरत फारत अंचल तानी सी ।
गहिरी लेत उसास भरी दुख भई मीन बिनु पानी सी ।
कहुँ बैठत कहुँ उठि धावत क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी । ७
आजु कुंज मै कौन मिलयो जिन लूटी सब रस खानी सी ।
वूसे अधर अंगूर दोउ गालन पै प्रगट निसानी सी ।
बिथुरे बार सिंगार हार 'हरिचंद' माल कुम्हिलानी सी ।
धर धर छतिया क्यों धरकत क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी । ८
बंसी भुकि झुकि कहा बजावत फूठहिँ अंचल तानी सी ।
आपुहि आपु हँसत अरु रीझत यह गति अलख लखानी सी ।

मेरे गल भुज दे दै लटकत मुख चूमत मन-मानी सी ।
नाम रटत अपुनो राधे क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी । ९
नन्द-मवन नहिँ भानु-मवन यह इत क्यों रहत लजानी सी ।
चूँचट तानि बिलोकत केहि तू हिय हरषित रस-सानी सी ।
मैं ही एक अरी तू केहि इत आदर देत बिकानी सी ।
सेज सजत क्यों आँगन में क्यों प्यारी फिरत दिवानी सी । १०

समस्या—'रोम मोम रूस फूस है।' की पूर्ति

जीते हैं गुराई सों अनेक अरमनी
जरमनी जरमनी मन रहत मसूस है ।
चित्र लिखे चीनी भए पारसी सिपारसी से
संग लगे डोलैं आँगरेज से जलूस हैं ।
मौह के हिलाये सों बिलात तेरे चरे ऐसे
हेरे नित नित फरासीस और प्रूस हैं ।
जदपि कहावै बल भारी पै तिहारी सौह
प्यारी तेरे आगे रोम मोम रूस फूस हैं । १
हवसी गुलाम भये देखि कारे केंस तेरे
चीनी लखि गालन कों फोरत फनूस हैं ।
मिसरी सुनत मीठे बोल बिना दाम बिके ।
तन की सुबास रहे मिलय मसूस हैं ।
फरासीसी मद्य सीसी द्वार मतवारे भए
नैन पेखि काफरी हू होइ रहे बूस हैं ।
बरमा हिये के काम धरमा चलायो प्यारी
तेरे रूप आगे रोम मोम रूस फूस हैं । २
भाजे से फिरत शत्रु इत उत दौरि दौरि
दबत जमानी जाको जोहत जलूस है ।
ब्रह्म अस्त्र ऐसी तोपैं तोपैं एके बार फौज
बिमल बंदूक गोली दारू कारतूस है ।
ऐसी कौन जग में बिलोकि सके जौन इन्हें
देखि बल बैरी-दल रहत मसूस है ।
प्रबल प्रताप भारतेश्वरी तिहारै क्रोध
ज्वाल काल आगे रोम मोम रूस फूस है । ३
जनम लियो है जाने मरनो अवस ताहि
राजा है कै रंक है चतुर है कि इस है ।
'हरीचंद' एक हरी नाम जग साँचो जानी
बाकी सब भूठो चार दिन को जलूस है ।
काफरी कपूर चरबी से अरबी हैं आँगरेज
आदि काठ तून तूल प्रूस भूस है ।
सकला सी सकल सकल काल ज्वाल आगे
हिंदू धूत-विंदू रोम मोम रूस फूस है । ४

समस्या— 'राम बिना बे-काम सभी' की पूर्ति

राज-पाट हय गज रय प्यादे बहु बिधि अन धन धाम सभी ।
 हीरा मोती पन्ना मानिक कनक मुकुट उर दाम सभी ।
 खाना-पीना नाच-तमाशा लाख ऐश-आराम सभी ।
 जैसे बिजन निमक बिना त्यों राम बिना बे-काम सभी । १
 इक्कीस तोप सलामी की औअल दर्जे का काम सभी ।
 क्रास बाथ इस्टार हुए महाराज बहादुर नाम सभी ।
 जग जस पाया मुलक कमाया किया ऐश-आराम सभी ।
 सार न जाना रहा भुलाना राम बिना बे-काम सभी । २
 यह जग मोह-जाल की फाँसी भूठे सुत धन-धाम सभी ।
 नाटक इसमें मर पच के करते हैं जीस्त हराम सभी ।
 जब तक दम में दम था भगड़े टण्टे रहे तमाम सभी ।
 आँख मुँदो तब यह सूझा है राम बिना बे-काम सभी । ३
 ब्रह्म-ज्ञान विचार ध्यान धारना व प्रानायाम सभी ।
 षट दरसन की बक बक जप तप साधन आठो जाम सभी ।
 योग सिद्धि बैराग भक्ति पूजा पत्री परनाम सभी ।
 प्रेम बिना सब व्यर्थ कृष्ण बलराम बिना बे-काम सभी । ४

समस्या— 'ग्रीष्म प्यारे हिमंत बनाइये' की पूर्ति

कीजिये राई सुमेर सरीखी
 सुमेरहि खीझि कै धूर मिलाइये ।
 राव सों रंक भिखारी सों भूपति
 सिंह सो स्थान के पाय पुजाइये ।
 दीजिए सींग ससे 'हरिचंद जू'
 सागर-नीर मिठाइ बहाइए ।
 कीजै हिमन्तहि ग्रीष्म भीषम
 ग्रीष्म प्यारे हिमन्त बनाइये । १
 पूरन बह्म समर्थ सबै जिय में
 जोइ आवै सोई दरसाइये ।
 फेरिये सूरज चंद गती छिन में
 जग लाख बनाइ नसाइये ।
 होनी न होनी सबै करिये 'हरिचंद जू'
 सीस की लीक मिटाइये ।
 कीजै हिमन्तहि ग्रीष्म भीषम
 ग्रीष्म प्यारे हिमन्त बनाइये । २
 प्रेम दै आपुनो मेटि दुखै जुग
 नैनन आँसु प्रवाह बहाइये ।

लोभ पदारथ चारहु को अरु
 लोक को मोह दया कै छुड़ाइए ।
 आपुनो ही 'हरिचंद जू' रूप
 दसो दिसि नैनन को दरसाइए ।
 भारी भवातप ताप तपे हिय
 ग्रीष्म प्यारे हिमन्त बनाइए । ३
 दीनहूँ पै कबौं कीजै कृपा उजरी
 कुटी मेरिहू आइ बसाइए ।
 राखिए मान गरीबनीहू को
 दयानिधि नाम की लाज निभाइये ।
 दै अधरामृत प्रान पिया 'हरिचंद जू'
 काम को ताप मिटाइये ।
 मेरे दुखै सुख कीजिये पीतम
 ग्रीष्म प्यारे हिमन्त बनाइये । ४
 भोज मरे अरु विक्रमहू किनको
 अब रोई कै काव्य सुनाइये ।
 भाषा भई उरद्र जग की अब तो
 इन ग्रंथन नीर डुबाइये ।
 राजा भये सब स्वारथ पीन
 अमीरहू हीन किन्हें दरसाइये ।
 नाहक देनी समस्या अबै यह
 "ग्रीष्म प्यारे हिमन्त बनाइये" । ५

समस्या— 'जीवो सदा विक्टोरिया रानी' की पूर्ति

राज में जाके सबै सुखसाज
 सुकीरति जासु न जात बखानी ।
 जो सुन्यो श्री रघुनंदन के समै
 नैनन सों सोई रीति लखानी ।
 तार औ रेल की चाल करी 'हरिचंद'
 जो लोगन को सुखदानी ।
 यातें कहैं सबरे मिलिकैं
 चिरजीवो सदा विक्टोरिया रानी । १
 दीन भये बलहीन भये धन
 छीन भये सब बुद्धि हिरानी ।
 ऐसी न चाहिये आपुके राज
 प्रजागन ज्यों मछरी बिनु पानी ।
 या रुज की तुम ही अहो बेद
 कहै तेहिं तें 'हरिचंद' बखानी ।
 टिक्कस देहु छुड़ाइ कहैं सब
 जीवो सदा विक्टोरिया रानी । २

**समस्या — बीस रवि दस ससि संग
ही उदय भये' की पूर्ति**

ठाढ़ नंदनंदन कलिंदजा निकट लिये
 दोऊ और ब्रजवाल कंठ में भुजा दये ।
 अंग अंग माधुरी निकाई सुकुमारताई
 पुरन प्रकास परिहास सुख सों छये ।
 'हरीचंद' धारि उर सेत रतनारें नख
 ध्यान करि प्रेम भरि मूँद दूग द्वै लये ।
 करत प्रकास मेरे हिय उदयाचल पै
 बीस रवि दस ससि संग ही उदै भये । १
 देख्यो आबु आली ब्रजराज के कुँअर बू को
 राधा लिये संग ठाढ़े अति सुखमा छये ।
 प्रीति रीति पूरे घरे दोऊ हाथ कुच पर
 एक टक देखत चकोर नैन ह्वै गये ।
 'हरीचंद' आँगुरीन मानिक अँगूठी द्वै द्वै
 तैसे नख सेत मिलि सोभा बेलि से वये ।
 मानों आबु प्रात उदयाचल सिखर पर

बीस रवि दस ससि संग ही उदै भये । २
 आबु जलकेलि मैं बिलोकी ब्रजवाल दस
 खेलैं जमुना मैं सोभा कमल मनो वये ।
 जलन उछारै छोड़े हाथ सों फ़हारैं गहि
 भुजा कंठ डारै महामोद मन मैं लये ।
 कर मेहदी सों रंगे तेसे मुखमंडल
 दिखात 'हरिचंद' सब अंग जल मैं दये ।
 मानों नम छोड़ि अनहोनी कर होनी आबु
 बीस रवि दस ससि संग ही उदै भये ।
 ताप अधिकत कबौ जिय सियरात आली
 जब तें पियारे मनमोहन जुदै भये ।
 कबहुँ प्रकास औ अँधेरो सो कबहुँ हिय
 जल खिलत खिलत कबहुँ कबहुँ मुदै भये ।
 प्यारे 'हरिचंद' के बियोग सों प्रथम दसा
 दूजी ध्यान माँझ मानों संगम सुदै भये ।
 ताप दूनो ताहू पै न जानि परै मोहि कहा
 बीस रवि दस ससि संग ही उदै भये । ३



दशरथ विलाप

(दशरथ विलाप)

कहाँ हो ऐ हमारे राम प्यारे ।
 किधर तुम छोड़ कर मुझको सिधारे ।
 बुढ़ापे में य दुख भी देखना था ।
 इसी के देखने को मैं बचा था ।
 छिपाई है कहाँ सुन्दर व मूरत ।
 दिखा तो सावली सी मुझको सुरत ।
 छिपे हो कौन से परदे में बेटा ।
 निकल आओ कि अब मरता हु बुढ़ा ।
 बुढ़ापे पर दया मेरे जो करते ।
 तो बन की ओर क्यों तुम पैर धरते ।
 किधर वह वन है जिसमें राम प्यारा ।
 अजुब्या छोड़ कर सूचना सिधारा ।
 गई संग में जनक की जो लली है ।
 इसी में मुझको और बे कली है ।
 कहेंगे क्या जनक यह हाल सुनकर ।
 कहाँ सीता कहाँ वन वह भगंकर ।
 गया लक्ष्मण भी उसके साथ ही साथी ।
 तड़फता रह गया मैं मलते ही हाथ ।
 मेरी आँखों की पुतली कहाँ है ।
 बुढ़ापे की मेरी लकड़ी कहाँ है ।
 कहाँ दूँदों मुझे कोई बता दो ।
 मेरे बच्चों को बस मुझसे मिला दो ।
 लगी है आग छाती में हमारे ।
 बुझाओ कोई उनका हाल कह के ।
 मुझे सूना दिखाता है जमाना ।
 कहीं भी अब नहीं मेरा ठिकाना ।
 अंधेरा हो गया घर हाथ मेरा ।

हुआ क्या मेरे हाथों का खिलौना ।
 मेरा धन लूट कर के कौन भागा ।
 मेरे घर को मेरे किसने उजाड़ा ।
 हमारा बोलता तोता कहाँ है ।
 अरे वह रामा सा बेटा कहाँ है ।
 कमर टूटी न बस अब उठ सकेंगे ।
 अरे बिन राम के रो रो मरेंगे ।
 कोई कुछ हाल तो आकर के कहता ।
 है किस वन में मेरा प्या कलेजा ।
 हवा और धूप में कुम्हला के थक कर ।
 कहीं साये में बैठे होंगे रघुवर ।
 जो डरती देखकर मट्टी का चीता ।
 व वन वन फिर रही है आज सीता ।
 कभी उतरी न सेजों से जमीं पर ।
 वे फिरती है पियोदे आज दर दर ।
 न निकली जान अब तक बेहया हूँ ।
 भला मैं राम बिन क्यों जी रहा हूँ ।
 मेरा है वज्र का लोगों कलेजा ।
 कि इस दुख पर नहीं अब भी य फटता ।
 मेरे जीने का दिन बस हाथ बीता ।
 कहाँ है राम लक्ष्मण और सीता ।
 कहीं मुखड़ा तो दिखला जायें प्यारे ।
 न रह जाये हविस जी मैं हमारे ।
 कहाँ हो राम मेरे राम ये राम ।
 मेरे प्यारे मेरे बच्चे मेरे श्याम ।
 मेरे जीवन मेरे सरबस मेरे प्रान ।
 हुए क्या हाथ मेरे राम भगवान ।
 कहाँ हो राम हा प्राणों से प्यारे ।
 यह कह दशरथ जी सुरपुर को सिधारे ।





दूसरा खण्ड
(नाटक)



यह भारतेन्दु की प्रथम नाट्य रचना है। बंगला से अनूदित है। इस समय भारतेन्दु बाबू की अवस्था अठारह वर्ष थी। इस नाटक के प्रथम संस्करण की कोई प्रति उपलब्ध नहीं है। इसका दूसरा संस्करण चन्द्रप्रभा प्रेस में सन् १८८३ में हुआ। जिसका उपक्रम चैत्र सम्बत् १९३९ (१८८२) में लिखा गया था। उपक्रम में भारतेन्दु स्वयं लिखते हैं कि प्रथम संस्करण पन्द्रह वर्ष पहले यानी सन् १८६७ में हुआ था। सन् १८८६ का संस्करण भारत जीवन प्रेस का है। बंगला के अतिरिक्त संस्कृत में विद्यासुन्दर नाम का एक छोटा काव्य मिलता है। यह कब लिखा गया यह तो पता नहीं पर यह चौर कवि कृत कहा जाता है।

— सं.

द्वितीय आवृत्ति का उपक्रम

विद्यासुन्दर की कथा बंग देश में अति प्रसिद्ध है। कहते हैं कि चौर कवि जो संस्कृत में चौरपंचाशिका का कवि है यही सुन्दर है। कोई इस चौरपंचाशिका को वररुचि की बनाई मानते हैं। जो कुछ हो विद्यावती की आख्यायिका का मूल सूत्र वही चौरपंचाशिका है। प्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र राय ने इस उपाख्यान को बंगभाषा में काव्य स्वरूप में निर्माण किया है और उसकी कविता ऐसी उत्तम है कि बंगदेश में आबाल वृद्ध बनिता सब उसको जानते हैं। महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर ने उसी काव्य का अवलंबन करके जो विद्यासुन्दर नाटक बनाया था उसी की छाया लेकर आज पन्द्रह बरस हुए यह हिंदी भाषा में निर्मित हुआ है। विशुद्ध हिन्दी भाषा के नाटकों के इतिहास में यह चौथा नाटक है। निवाज का शकुन्तला या ब्रजवासीदास का प्रबोधचन्द्रोदय नाटक नहीं काव्य है इससे हिन्दी भाषा में नाटकों की गणना की जाये तो महाराज रघुराजसिंह का आनंदरघुनंदन और मेरे पिता को नहुष नाटक यही दो प्राचीन ग्रंथ भाषा में वास्तविक नाटककार मिलते हैं। यों नाम को तो देवमायाप्रपंच समयसार इत्यादि कई भाषा ग्रंथों के पीछे नाटक शब्द लगा दिया है। इनके पीछे शकुन्तला का अनुवाद राजा लक्ष्मणसिंह ने किया है। यदि पूर्वोक्त दोनों ग्रंथों को ब्रजभाषामिश्र होने के कारण हिन्दी न मानो तो विद्यासुन्दर नाटक गुणों में अद्वितीय न होने पर भी द्वितीय है। पश्चिमोत्तर देश की मान्य गवर्नमेन्ट ने इसकी एक सौ पुस्तक लेकर इसका मान बढ़ाया है। पूर्व आवृत्ति का अत्यन्ताभाव ही इसकी पुनरावृत्ति का कारण है।

यह दूसरी आवृत्ति उसी को समर्पित है जिससे इस ग्रंथ से त्रिपथगा घनिष्ठ संबंध है। प्रथम विद्या मानो उसकी द्वितीया संपत्ति है द्वितीय एक देशी कथा भाग और तृतीय हमारा संबंध है।

काशी चैत्र १९३९

हरिचन्द्र

विद्यासुन्दर

प्रथम अंक
पहिला गर्भांक

(राजा और मंत्री का प्रवेश)

राजा — (चिन्ता सहित) यही तो बड़ा आश्चर्य है कि इतने राजपुत्र आए पर उनमें मनुष्य एक भी नहीं आया । इन सबों का केवल राजवंश में जन्म तो है पर वास्तव में ये पशु है । जो मैं ऐसा जानता तो अपनी कन्या को ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा न करने देता पर अब तो उसे मिटा भी नहीं सकता । अब निश्चय हुआ कि हमारी विद्या की विद्या केवल दोषकारिणी हो गई । हा, क्यों मंत्री तुम कोई उपाय सोच सकते हो ।

मंत्री — महाराज आप जो आज्ञा करते हैं सो सच है । लक्ष्मी और सरस्वती दोनों एक स्थान पर नहीं रहतीं इससे ऐसा भाग्यशाली वर मिलना अत्यंत कठिन है । इन दिनों मैंने सुना है कि कांचीपुर के राजा गुणसिन्धु का पुत्र युवराज अत्यन्त सुन्दर अनेक शास्त्रों में शिक्षित और बड़ा कवि है और अनेक पंडितों को शास्त्रार्थ में जीता है ।

राजा — क्या गुणसिन्धु राजा को ऐसा गुणवान पुत्र हो और उसका समाचार हम अब तक न जानें ।

मंत्री — महाराज मैंने निश्चय सुना है वह अपूर्व सुन्दर और अद्वितीय पंडित है । इससे मैं अनुमान करता हूँ कि जिसने संसार की सब विद्या पाई है वही हमारी राजकुमारी विद्या को भी पावेगा । यद्यपि ईश्वर की इच्छा और होनहार अत्यन्त प्रबल है तथापि हमको निश्चिन्त होके बैठ रहना उचित नहीं है । इस कहने का अभिप्राय यह है कि आप कांचीपुर में किसी को समाचार लेने के हेतु भेजिए ।

राजा — ठीक है, तो विलम्ब क्यों करते हो । शीघ्र ही वहाँ किसी को भेजना चाहिए । (द्वार की ओर देखकर) कोई है ! गंगा भाट को अभी बुला लाओ ।

(प्रतिहारी आकर)

प्रतिहारी — जो आज्ञा महाराज । (जाता है)

राजा — (खेदपूर्वक) विद्यावती का केवल यह अदृष्ट है कि अब तक कहीं विवाह नहीं ठहरता । देखें क्या होता है ।

मंत्री — महाराज आज तक कोई कन्या क्वारी नहीं रही । सीता और द्रौपदी इत्यादि जिनके बड़े कठिन प्राण थे उनका तो विवाह हो ही गया । जब ईश्वर कन्या

उत्पन्न करता ही तो उसका वर भी उसीके साथ उत्पन्न कर देता है । अतएव आपको सोच करना न चाहिए ।

(प्रतिहारी के सहित गंगा भाट का प्रवेश)

गंगा भाट — वीरसिंह महाराज को,
दिन दिन ही जय हो ।
तेज बुद्धि बल नित बढ़े शत्रु,
रहै नहीं कोय ।।

राजा — कविराज अब तक तुमने अनेक देशों में भ्रमण किया और अनेक राजपुत्रों को यहाँ ले आए परन्तु उनमें सुपात्र एक भी न आया । अब हम सुनते हैं कि कांचीपुर के राजा गुणसिन्धु के पुत्र सुन्दर ने अनेक विद्या उपाजित की है इससे हम सोचते हैं कि वही हमारी विद्या के योग्य भी होगा इससे तुम शीघ्र वहाँ गमन करो और राजपुत्र को अपने साथ ही लेते आओ तो अति उत्तम हो जिसमें विलंब न हो क्योंकि राजकन्या विवाह योग्य हो चुकी है ।

भाट — महाराज यह कौन बड़ी बात है, मैं अभी जाता हूँ । (जाता है)

राजा — (मंत्री से) गुणसिन्धु राजा को एक पत्र भी देना उचित है । तुम यह सब वृत्तान्त इस रीति से लिख दो कि जिसमें हमारा सब कार्य सिद्ध हो जाय और गंगा भाट की यात्रा की सब वस्तु शीघ्र ही सिद्ध कर दो जिसमें उसे विलम्ब न हो । अब बेला ढल चली, हम भी रनिवास को जाते हैं ।

मंत्री — जो आज्ञा ।

जवनिका गिरती है

दूसरा गर्भांक

सुन्दर आता है ।

सुन्दर — (स्वगत) वर्तमान की शोभा का वर्णन मैंने जैसा सुना था उससे कहीं बढ़कर पाया । आह कैसे सुन्दर सुन्दर घर बने हैं, कैसी चौड़ी चौड़ी सुन्दर स्वच्छ सड़कें हैं, वाणिज्य की कैसी बुद्धि हो रही है, दुकानें अनेक स्थान की अनेक प्रकार की सब वस्तुओं से पूर्ण हो रही हैं, सब लोग अपने अपने काम में लगे हुए हैं और बहुतेरे लोग नदी के प्रवाह की भाँति इधर उधर बौड़ रहे हैं, स्थान स्थान पर पहरदार लोग सावधानी से पहर दे रहे हैं, प्रजा लोग सुख से अपना कालक्षेप करते हैं । निश्चय यहाँ का राजा बड़ा

भाग्यमान है। यद्यपि हमारे पिता की राजधानी भी अत्यन्त अपूर्व हैं परन्तु इस स्थान सा तो मुझे पृथ्वी में कोई स्थान ही नहीं दिखाई देता। इसका वर्तमान नाम बहुत ठीक है क्यों कि इसमें रूप और धन दोनों की वृद्धि है। (हँसकर) परन्तु हमारा अभिलाष भी वर्तमान हो तो हम जाने (चारों ओर देखकर) बाह, यह उद्यान भी कैसा मनोहर है, इसके सब वृक्ष कैसे फलों फूले हैं और यह सरोवर कैसे निर्मल जल से भरा हुआ है मानों सब वृक्षों ने अपने अनेक रंग के फूलों की शोभा देखने को इस उद्यान के बीच में एक सुन्दर आरसी लगा दी है। पक्षी भी कैसे सुन्दर स्वर से बोल रहे हैं मानो पुकारते हैं कि इससे सुन्दर संसार में और कोई उद्यान नहीं है। आहा, कैसा मनोहर स्थान है। हम इस वकुल के कुंज में थोड़ा विश्राम करेंगे। (बैठता है) अहा, शरीर कैसा शीतल हो गया। निश्चय यह पौन (साँस लेकर) हमारी प्राणप्यारी त्रिभुवनमोहिनी विद्या का अंग स्पर्श करके आता है, नहीं तो ऐसी मधुर सुगंध इसमें न होती है। (कुछ सोचकर) यह तो सब ठीक है परन्तु जिस काम के हेतु मैं यहाँ आया हूँ उसका तो कुछ सोच ही नहीं किया। यहाँ मैं किसी को जानता भी नहीं कि उससे कुछ उपाय पूछूँ क्योंकि मैं तो यहाँ छिपकर आया हूँ। (चिन्ता नाट्य करता है)

एक चौकीदार आता है

चौकीदार— (स्वगत) ई के हो भाई, कोई परदेसी जान पड़इला। हमहन के कुछ घूस फूस देई की नाहीं। भला देखी तो सही (प्रकाश) कौन है।

सुंदर— हम एक परदेशी हैं।

चौ.— सो क्या हमें नहीं सूझता पर कहाँ रहते हो।

सुं.— हमारा घर दक्षिण है।

चौ.— दक्षिण तो जमराज के घर तक सभी हैं। तुम किस दक्षिण में रहते हो।

सुं.— सो नहीं, हमारा घर इतनी दूर नहीं है।

चौ.— तो फिर कहते क्यों नहीं कि तुम्हारा घर कहाँ है।

सुं.— कांचीपुर।

चौ.— काशी कांची जो सुनते है सोई कांची !

सुं.— काशी दूसरा नगर है कांची दूसरा। काशी कांची एक ही कैसी।

चौ.— तो फिर यहाँ क्यों आए हो।

सुं.— यहाँ विद्याप्राप्ति के अर्थ आए हैं।

चौ.— कौन विद्या।

सुं.— जो विद्या सब में प्रधान है।

चौ.— सब में प्रधान विद्या ! सब में प्रधान विद्या तो चोरी है।

सुं.— (मुसक्याकर) तुम्हारे यहाँ यही विद्या प्रधान होगी।

चौ.— (सोटा उठाकर पैतरे से चलता हुआ) हाँ रे, यही तो हमारा काम है कि जो इस विद्या के पांडित हों उन्हें हम वैसा पुरस्कार दें।

सुं.— क्या पुरस्कार देता है।

चौ.— इस विद्या के पुरस्कार हेतु एक यंत्र बना है जिसका नाम काठ तुड़म हर और चोर शत्रु है।

सुं.— कैसा है।

चौ.— दो बड़े बड़े काठ एकत्र करके चोर भाई का पाँव बसके भीतर डाल देते हैं। (सुन्दर का दाहिना पैर बल से खींचकर अपनी दोनों जाँघ में रखकर दबाता है) अब जब तक हमरी पूजा न दोगे तब तक न छूटोगे।

सुं.— (चौकीदार को बल पूर्वक लात मारता है और चौकीदार पृथ्वी पर गिरता है) लो तुम्हारी यही पूजा है।

चौ.— (उठाकर) हाँ हाँ बचा, अभी तुमको दूसरा पुरस्कार नहीं दिया। चार पाँच कोड़े तुम्हारी पीठ पर लगे तब जानो।

सुं.— बस अब बहुत भई, मुंह सम्हाल के बोलो नहीं तो एक मुक्का ऐसा मारूंगा कि पृथ्वी पर लोटने लगोगे और दक्षिण दिशा में यमराज के घर की ओर गमन करोगे। जिसके हेतु तुम इतना उपद्रव करते हो सो मैं जानता हूँ परंतु धमकी दिखाने से तो मैं एक कौड़ी भी न दूंगा और तुमको भी परदेशियों से भगड़ा करना उचित नहीं है। (कुछ देता है) इसे लो और अपने घर चल दो।

चौ.— (आनन्द से लेकर) नहीं, नहीं, हमने आपको जाना नहीं निस्संदेह आप बड़े योग्य पुरुष हैं हम आशीर्वाद देते हैं कि आप अनेक विद्या लाभ करें, राजकुमारी विद्या भी आपको मिले। (हँसता हुआ जाता है)

सुं.— आज बहुत बचे नहीं तो यह दुष्ट बहुत कुछ दुख देता। जिस काम को चलो पहले अनेक प्रकार के विघ्न होते हैं। देखें अब क्या होता है। (पिंड के नीचे बैठ जाता है। हीरा मालिन आती है।)

ही. मा.— (आश्चर्य से) अरे यह कौन है। हाय हाय ऐसा सुन्दर रूप तो न कभी आँखों देखा न कानो

सुना । इसकी दोनों हाथ से बलैया लेने की जी चाहता है । लोग सच कहते हैं कि चन्द्रमा को सिंगार न चाहिए । हमको जान पड़ता है कि चन्द्रमा ही पृथ्वी पर उतर के बैठे हैं । क्या कामदेव इस रूप की बराबरी कर सकता है । ऐसी कौन स्त्री है जो इसको देख के धीरज धरेगा । हम सोचते हैं कि यह कोई परदेशी है क्योंकि इस नगर में ऐसा कोई नहीं है जिसको हीरा मालिन न जानती हो । हाथ हाथ इसके माँ बाप का कलेजा पत्थर का है कि ऐसे सुकुमार पुरुष को घर से निकलने दिया । निश्चय इसकी स्त्री नहीं है नहीं तो ऐसे पति को कभी न छोड़ती । जो कुछ हो एक बेर इससे पूछना तो अवश्य चाहिए । (पास जाकर हँसती हुई) क्यों जी तुम कौन हो । हमको तो कोई परदेशी जान पड़ते हो ।

सुं.— (स्वगत) अब यह कौन आई । (प्रकाश) हमारा घर दक्षिण है और विद्या को खोजते खोजते यहाँ तक आए हैं ।

ही. मा.— उतरे कहाँ हो ।

सुं.— अभी कहाँ उतरे हैं क्योंकि हम इस नगर में किसी को नहीं जानते । इसी हेतु अब तक उतरने का निश्चय नहीं किया और इसी वृक्ष की ठंडी छाया में विश्राम करते हैं और सोचते हैं कि अब कौन उपाय करे । तुम कौन हो ।

ही. मा.— हम राजा के यहाँ की मालिन है, हमारा नाम हीरा है । हमारा घर यहाँ से बहुत पास है । मैया, हमारा दुख कुछ न पूछो । (पास बैठ जाती है) हमारे दोनों कुल में कोई नहीं है, जमराज सबको तो ले गए पर न जाने हमको क्यों भूल गए । (लम्बी साँस लेती है) पर रानी और राजकुमारी हम पर बड़ी दया रखती हैं और उन्हीं के पास जाकर हम अपना जी बहलाती हैं । अभी तो आपने अपने रहने का निश्चय कहीं नहीं किया है । (रुक कर) हमें कहने में लाज लगती है क्योंकि हमारे यहाँ बड़ी बड़ी अटारी तो हैं नहीं केवल एक भोपड़ी है जो आप दुःखिनी जान कर हमसे बचना न चाहिए तो चलिए हम सेवा में सब भाति लगी रहेंगी ।

सुं.— (स्वगत) तो इसमें हमारी क्या हानि, जो रहने का ठिकाना होगा तो काम का भी ठिकाना हो रहेगा क्योंकि यह रात दिन रनिवास में आती जाती है इससे वहाँ के सब समाचार मिलते रहेंगे और ऐसे कामों में जहाँ अच्छा बिचवई मिला तहाँ उसके सिद्ध होने में विलंब नहीं होता । (प्रकाश) अब इससे बढ़कर हमारा

क्या उपकार होगा कि इस परदेश में हमको आप से आप मिलने को घर मिले । तुमने हम पर बड़ी कृपा की । आज से तुम हमारी मौसी और हम तुम्हारे मांजे हुए ।

ही. मा.— यह हमारे भाग्य की बात है कि आप ऐसे कहते हो और यों तो आप हमारे बाप के भी अन्नदाता हो । दया करके जो चाहो पुकारो । तो हम आज से तुमको बेटा कहेंगे । (स्वगत) हाथ हाथ, हसका मुख कैसा सुख गया है । (प्रकाश) तो अब बेटा अपने घर चलो, हमारा जो कुछ है सो सब तुम्हारा है ।

सुं.— हाँ चलो ।

जवनिका गिरती है

तीसरा गर्भांक

सुंदर और हीरा मालिन आती है

सुं.— रनिवास का समाचार सब मैंने सुना । तो मौसी राजा को क्या केवल एक ही कन्या है ।

ही. मा.— हाँ बेटा केवल एक ही कन्या है पर वह कुछ सामान्य कन्या नहीं है मानो कोई देवता की कन्या श्राप से पृथ्वी पर जनमी है और राजा रानी दोनों उसको वैसा ही प्यार भी करते हैं । घर में सब से विशेष उनको वही प्यारी है । यहाँ तक कि उसको प्राण से भी अधिक समझते हैं ।

सुं.— मला मौसी वह राजकन्या कैसी है ।

ही. मा.— बेटा उसकी कथा कोई एक मुँह से नहीं कह सकता । (गाती है)

गगन मोरन तिताला

कहो यह कैसे बरने रूप ।

नख सिख लौं सब ही बिधि सुंदर सोभा अति ही
अनूप ॥ १

नैन धरे को कौन सुफल जो नैन न देख्यो वाहि ।

कोटि चंदहू लाज करत है तनिक बिलोकत जाहि ॥ २

धुंधराये सटकारे कारे बिथुरे सुधरे केस ।

एड़ी लौं लाबे अति सोमित नव जलधर के मेस ॥ ३

लचकीली कटि अतिही पातरी चालत भोका खाय ॥

अति सुकुमार सकल अंग वाके कवि सो नहि कहि जाय ॥ ४

दिन दिन जोवन बढ़त उमंग अति पूरि रहे सब गात ।

लाज मरी चितवन चित चोरति जब मुसुकाइ जभात ॥ ५

तरुनाई अंगराई अंग अंग नैन रहत ललचाय ।

मनु जग जुवजन जीतन एकहि बिधिना रची बनाय ॥ ६

सु.— हाँ मौसी यह सब बात तो हम जानते हैं पर हम चाहते हैं कि एक बेर राजसभा में जाकर विद्या के विद्या की परीक्षा करें। जो जीत गए तो सकाम सिद्ध भया और जो हार गए तो कुछ लाज नहीं क्योंकि हमें इस नगर में कोई पहिचानता नहीं। भला एक दिन मौसी हमारे हाथ की गूथी माला तू वहाँ ले जा सकती है।

ही. मा.— (हँसकर) वाह बेटा तुम क्या माला बनाने भी जानते हो। तुम लोगों का तो यह काम नहीं है। क्या माला गूथ कर राजकन्या के गले के हार हुआ चाहते हो।

सु.— नहीं मौसी हम केवल एक ही माला गूथना जानते हैं जिसे तुम देख लेना जो अच्छी बने तो राजकन्या के पास ले जाना।

ही. मा.— (हँसकर) अच्छा, कल तुम माला गूथना देखें कैसी बनती है। अब रात बहुत गई उठो और कुछ भोजन करके सो रहो।

जर्बनिका गिरती है

चौथा गर्भांक

(विद्या बैठी हुई है डाली हाथ में लिए हीरा मालिन आती है)

ही. मा.— (हँसकर) राजकुमारी कहां हैं (सामने देखकर) अहा यहाँ बैठी है। आज मुझको इस माला के गूथने में बड़ी देर लगी इससे मैं दौड़ी आती हूँ। यह माला लीजिए और आज का अपराध क्षमा कीजिए।

वि.— चल बहुत बातें न बना। जो रात भर चैन करेगी तो सबेरे जल्दी कैसे आ सकेगी। तेरा शरीर बूढ़ हो गया है पर चित्त अभी बारही बरस का है। इतना दिन हो गया अब तब मैंने पूजा नहीं किया। पर तुझे क्या। तू तो रंग में रंग रही है। मेरी पूजा हो या न हो।

ही. मा.— वाह वाह बाल पके दांत टूटे पर अभी हम बारही बरस की बनी हैं। आप धन्य हैं, हमने तो आज बड़े परिश्रम से माला गूथी कि राजकुमारी उसको देख कर अत्यन्त प्रसन्न होगी। उसके बदले आपने हमको गाली दिया। सच है अभागों को कहीं भी सुख नहीं है। अब हमने अपना कान पकड़ा। अब की बार क्षमा कीजिए ऐसा अपराध फिर कभी न होगा। यह माला लीजिए।

वि.— (माला हाथ में लेती है) अभी आज तो माला बड़ी सुन्दर है! (पत्ते की पुड़िया में फूल के धनुषवाणा देखकर) क्यों रे, इसमें यह फूल के धनुषवाणा कहां से आए क्या तू हम से ठोली करती है। सच बतला यह माला किसने बनाई है।

ही. मा.— मेरे बिना कौन बनावेगा।

वि.— नहीं नहीं तू तो नित्य ही बनाती थी पर ऐसी माला तो किसी दिन नहीं बनी। आज निश्चय किसी दूसरे ने बनाई है।

ही. मा.— मैं तो एक बेर कह चुकी कि हमारे घर में दस बीस देवर जेठ तो बैठे नहीं हैं कि बना देंगे। (आकाश देखकर) अब सांभ होती है हमको आज्ञा दो!

वि.— वाह वाह आज तो आप मारे अभिमान के फूली जाती हैं। ऐसा घर पर कौन बैठा है जिसके हेतु इतनी घबड़ाती है। बैठ तुझे मेरी सौगन्द है। बता यह माला किसने बनाई है। (मालिन का अंचरा पकड़ के खींचती है।)

ही. मा.— नहीं भाई नहीं, मैं कुछ न कहूंगी। जड़ काट के पल्लव सींचने से क्या होगा। बैठे बैठे दुःख कौन मोल ले क्योंकि प्रीत करनी तो सहज है पर निबाहना कठिन है इस हेतु इससे दूर ही रहना उचित है।

वि.— वाह वाह तू बड़ा हठ करती है। एक छोटी सी बात मैंने पूछी सो नहीं बताती। क्या मुझसे छिपाने की कोई बात है जो नहीं बतलाती।

ही. मा.— मैं तो तुम्हारे लिए प्राण देती हूँ और भगवान से नित्य मनाती हूँ कि हमारी राजकुमारी को सुन्दर वर मिले जिसे देख के मैं अपनी आँख ठँदी करूँ और आप उसके बदले मुझ पर क्रोध करती हो। इसी के जतन में तो मैं रात दिन लगी रहती हूँ।

वि.— तो खुलकर क्यों नहीं कहती। आधी बात कहती है आधी नहीं कहती व्यर्थ देर करती है। है।

ही. मा.— सुनिए दक्षिण देश के कांचीपुर के गुणसिंधु राजा का नाम आपने सुना ही होगा। उसका पुत्र सुन्दर जिसे ले आने के हेतु राजा ने गंगा भाट को भेजा था यहाँ आप से आप आया है।

वि.— (घबड़ाकर) कहां कहां? (फिर कुछ लाजित होकर) नहीं क्या वह सचमुच यहाँ आया है।

ही. मा.— (हँसकर) मैं उसको बड़े यत्न से लाई हूँ क्योंकि मैं सर्व्वदा खोजा करती थी कि मेरी बेटी

को दूल्हा चांद का टुकड़ा मिले तो मैं सुखी होऊँ सो मैंने कहीं से खोजकर उसे अपने घर में रक्खा है पर यहाँ तो वही दशा है जाके हित चोरी करो वही बनावै चोर ।

वि.— तो फिर वे छिप के क्यों आए हैं ।

ही. मा.— आपकी प्रतिज्ञा तो संसार में सब पर विदित ही है सो प्रत्यक्ष बाद करने में जो कोई हारे तो प्रेम भंग होय और परस्पर संकोच लगे इस हेतु छिप के आए हैं ।

वि.— उनका रूप कैसा है ।

ही. मा.— उनका रूप वर्णन के बाहर है ।
(गाती है, राग—विहाग) ।

कहै को चन्द वदन की शोभा ।

जाको देखत नगर नारि कों सहजहि तें मन लोमा ॥

मनु चन्दा आकास छोड़ि के भूमि लखन को आयो ।

कैधौ काम बाम के कारन अपुनो रूप छिपायो ॥

भौह कमान कटाक्ष बान से अलक भ्रमर घुंघुरारे ।

देखत ही बेधत है मन मुग नहिं बचि सकत विचारे ॥

वि.— तो मला उन को एक बेर किसी उपाय से देख भी सकती है ?

ही. मा.— वाह वाह यह तुम ने अच्छी कही । पहिले राजा रानी से कहें वह देख सुन के जाँच लें तो पीछे तुम देखना ।

वि.— नहीं, ऐसा न होने पावे, पहिले मैं देख लूँ तब और कोई देखे ।

ही. मा.— मैं कैसे पहिले तुम्हें दिखला दूँ, यह राजा का घर है चारों ओर चौकी पहरा रहता है यहाँ मक्खी तो आही नहीं सकती मला वह कैसे आ सकते हैं जो कोई जान जायगा तो क्या होगा ?

वि.— सो मैं कुछ नहीं जानती जैसे चाहो वैसे एक बेर मुझ को उन का दर्शन करा दो । तू आप चतुर है कोई न कोई उपाय सोच लेना और जो तू मेरा मनोरथ पूरा करेगी तो मैं भी तेरा मनोरथ पूरा कर दूँगी ।

ही. मा.— यह तो मैं भी समझती हूँ पर मैं सोचती हूँ कि किस रीति से उसे ले आऊँ, हाँ एक उपाय यह तो है कि वह इस वृक्ष के नीचे ठहरे और तुम अपनी अटारी पर से देख लो ।

वि.— हाँ ठीक है, यह उपाय बहुत अच्छा है । पर कब आज या कल ?

ही. मा.— कल उन को लाऊंगी (हँसकर) एक बात मैं कह देती हूँ कि उन को एक बेर देख के फिर मूल न जाना ।

वि.— मूल जाऊंगी — हाय !

(गाती है — ठुमरी)

मेरे तन अति बाढ़ी विरहपीर अब नहिं सहि जाई हो ।
अब कोउ उपाय मोहि नहिं लखाय, दुख कासों कछु कहि न जाय, मन हीं विरह की अग्नि बरै घूआँ न दिखाई हो ॥
दईमारी लाज बैरिन सी आज, कहो आवत मेरे कौन काज, पिय बिन मेरो जियरा तड़पै कछु नहिं बसाई हो ॥

(राग विहाग)

चढ़ावत मो पै काम कमान ।

बेघत है जिय मारि गारि के तानि श्रवन लागि बान ॥

पिया बिना निसिदिन डरपावत मोहि अकेली जान ॥

तुमरे बिन को घीर घरावे पीतम चतुर सुजान ॥१॥

ही. मा.— (हँस कर) वाह वाह यह अनुराग हम नहीं जानती थीं ।

(गाती है—राग—कलिंगड़ा)

अबो तुम सोच करो मति प्यारी ।

तुम्हरो प्रीतम तुमहिं मिलै है करि अनेक उपचारी ॥

अति कुम्हिलाने कमल बदन को प्रफुल्लित करि हो वारी

चँवहि जो चाहे तो लाऊँ यह तो बात कहारी ॥

वि.— तो मैं आज छत पर उसकी आशा देखूंगी ।

॥ जवनिक गिरती है ॥

॥ प्रथम अंक समाप्त हुआ ॥

दूसरा अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान — विद्या का महल

(विद्या बैठी है और चपला पंखा हाँकती है और सुलोचना पाना का डब्बा लिए खड़ी है) ।

सुलोचना— (बीड़ा देकर) राजकुमारी, एक बात पूछूँ पर जो बताओ ।

वि.— क्यों सखी क्यों नहीं पूछती, मेरी ऐसी कौन सी बात है जो तुम लोगों से छिपी है ।

सुलोचना— और कुछ नहीं मुझे केवल इतना पूछना है कि कई दिन से तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो रही है, सर्वदा अनमनी सी बनी रहती हो, और खान पान सब छूट गया है, और दिन दिन शरीर गिरा पड़ता है, रात दिन मुँह सूखा रहता है, इसका कारण क्या है ?

वि.— (मुँह नीचा कर लाज से चुप रह जाती है)

सुलोचना — (बीड़ा देकर) यह तो मैं पहिले ही जानती थी कि तुम न कहोगी ।

वि. — नहीं सखी मैं क्यों न कहूंगी पर तू क्या उसका कारण अब तक नहीं जानती ?

सुलो. — जो जानती तो क्यों पूछती ?

वि. — हीरा मालिन जो उस दिन माला लाई थी वह क्या तूने नहीं देखी थी ?

सुलो. — हाँ देखी तो थी, तो उस से क्या ?

वि. — और उस दिन छत पर से मैं जिसे वृक्ष तले देखने गई थी उसे तू ने नहीं देखा था ?

सुलो. — हाँ सो सब जानती हूँ ।

वि. — तो अब नहीं क्या जानती ?

सुलो. — तो फिर उस में इतना सोच विचार क्यों चाहिये केवल एक बेर बड़ी रानी जी से कहने से सब काम सिद्ध हो जायगा ।

चपला — बाह २ क्या इसी बात का इतना सोच विचार था, तो मैं अभी जाती हूँ (जाना चाहती है)

वि. — नहीं २ ऐसा काम कभी न करना, नहीं तो सब बात बिगाड़ जायगी ।

चप. — क्यों इस में दोष क्या है ?

सुलो. — और फिर यह न होगा तो होगा क्या ?

वि. — सखी मेरी प्रतिज्ञा ने सब बात बिगाड़ रक्खी है !

चप. — क्यों ?

वि. — माँ से कह देने से फिर उन के संग विचार करना पड़ेगा, और उस में जो मैं जीती तो भी अनुचित है क्योंकि मैं अपना प्राण धन सब उन से हार चुकी हूँ और फिर उन से विवाह भी कैसे होगा, और वह जीते तो इस बात का लोगों को निश्चय कैसे होगा कि गुणसिन्धु राजा के पुत्र यही हैं और निश्चय बिना तो विवाह भी नहीं हो सकता, इस से मेरा जी दुबिधे में पड़ा है — और जिस दिन से मैंने उन्हें देखा है उस दिन से अपने आप में नहीं हूँ क्योंकि उस मनमोहन रूप को देखकर मैं कुल और लाज दोनों छोड़ चुकी हूँ और उस विषय में जो २ उमंग उठते हैं वह कहने के बाहर हैं और सखियो ! तुम लोग भी तो स्त्री हो अपने ऐसा जी सब का समझो । हाय, मुझे कोई उपाय नहीं दिखाता ।

(गाती है) (राग सोरठा)

सखी हम कहा करें कित जाय ?

बिनु देखे वह मोर्हाँन मूरति नैना नाहिं अधायं ॥१॥

कछु न सुहात धाम धन गृह सुख मात पिता परिवार ।

बसति एक हिय मैं उनकी छवि नैनन वही निहार ॥२॥

बैठत उठत सयन सोवत निंसि चलत फिरत सब ठौर ।

नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न इक पल और ॥३॥

नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न इक पल और ॥३॥

हमरे तो तन मन धन प्यारे मन बच क्रम चित माहिं ।

पै उन के मन की गति सजनी जानि परत कछु नाहिं ॥४॥

सुमिरन वही ध्यान उन को ही मुख मैं उनको नाम ।

दूजी और नाहिं गति मेरी बिनु पिय और न काम ॥५॥

नैन दरसन बिनु नित तलफे श्रवन सुनन कों कान ।

बात करन कों मुख तलफे, गर मालिने को ये प्राण ॥६॥

सुलो. — हाँ इन बातों को तो मैं समझती हूँ पर कर क्या सकती हूँ क्योंकि कोई उपाय नहीं दिखता । हम तो तेरे दुख से दुखी और तेरे सुख से सुखी हैं, जो किसी उपाय से यह सुख होय तो हम सब अपने शरीर बेंच कर भी उसे कर सकती हैं, परन्तु यह ऐसी कठिन बात है कि इस का उपाय ही नहीं है ।

चप. — इस में क्या सन्देह, आज दिन राजा के प्रताप से सब देश धर २ कांपता है और द्वारों पर चौकीदार यमदूत की भाँति खड़े रहते हैं, तब फिर ऐसी भयानक बात कैसे हो सकती है ।

वि. — (लम्बी साँस लेकर) हाय सखी अब मैं क्या करूंगी जो शीघ्र ही कोई उपाय न होगा तो प्राण कैसे बचैये यह प्रीत दइमारी बड़ी दुःखद होती है — (गाती है) (राग बिहाग)

बावरी प्रीति करौ मति कोय ।

प्रीति किये कौन सुख पायो मोहि सुनाओ सोय ॥१॥

प्रीति कियो गोपिन माधव सो लोक लाज भय खोय ।

उनको छोड़ि गये मथुरा को बैठि रही सब राय ॥२॥

प्रीति पतंग करत दीपक सों सुन्दरता कहं जोय ।

सो उलटो तैहिं बाह करत है पच्छ नसावत लेय ॥३॥

जानि वृष्णि के प्रीति करी हम कुल मरजादा धोय ।

अब तो प्रीतम रंग रंगी मैं होनी होय सो होय ॥४॥

हीरा मालिन ने हम को वचन तो दिया है कि किसी भाँति उसे एक बेर तुझ से मिला दूंगी पर देखूँ अब वह क्या उपाय करती है ।

(एक सुरंग का मुँह खुलता है और उस में से सुन्दर निकलता है)

(सब सखी घबड़ा कर एक दूसरी का मुँह देखती हैं और विद्या लाज से मुँह नीचे कर लेती है)

चप. — अरे यह कौन है और कहाँ चला आता है !

सुलो.— सोई तो मैं बचड़ाती हूँ कि यह कौन है और कहाँ ये आया है, अब मैं चोर २ कह कर पुकारती हूँ जिसमें सब चौकीदार लोग दौड़कर हम लोगों को बचावें ।

वि.— (हाथ से पुकारने का निषेध कर के धीरे से) नहीं २ मैं समझती हूँ कि यह चोर नहीं है, मेरा चितचोर है कोई जाकर उस से पूछो ।

चप.— भला देखो मेरी छाती कैसे धड़कती है । इससे मैं तो नहीं पूछने की (सुलोचना से) सुलोचना तू जाकर पूछ आ यह कौन है ।

सुलो.— (सुन्दर से) तुम कौन हो और बिराने घर में क्यों घुस आये हो सच बतलाओ क्योंकि हम लोगों का दर से कलेजा काँपता है, इस से कहो कि तुम देवता हो, या दानव हो या मनुष्य हो ?

सु.— (मुसुका कर) नहीं सखी, डरने का क्या काम है ? न मैं देवता हूँ, न दानव, मैं तो साधारण मनुष्य हूँ और कांचीपुर के महाराज गुणसिन्धु का पुत्र हूँ, और मेरा नाम सुन्दर है, भाट के मुख से तुम्हारी राजकन्या के विचार का समाचार सुन के यहाँ आया हूँ परन्तु विचार तो दूर रहै तुम्हारी सभा में अविचार बहुत है ।

चप.— (धीरे से) सखी यह तो वही है ।

सुलो.— क्यों हमारी सभा में अविचार कौन सा है ?

सु.— और विचार किस को कहते हैं ? जो कोई परदेशी अर्थात् आये तो न तो उसका आदर होता है और न कोई उसे बैठने को कहता है ।

(विद्या संकेत से चपला से बैठाने को कहती है और सुन्दर बैठता है, और विद्या लज्जा से वस्त्र से अपना सब शरीर ढाँक लेती है ।

सुं.— (सुलोचना से) सखी विद्यावती के गुण की मैं जैसी प्रशंसा सुनी थी उस से भी अधिक आश्चर्य गुण देखने में आये ।

सुलो.— ऐसे आप ने कौन आश्चर्य गुण देखे ?

सु.— जाल में चन्द्रमा को फँसाना, बिजली को मेघ में छिपाना, और वस्त्र से कमल की सुगंध को मिटाना, यह सब बात तुम्हारी राजकन्या कर सकती है ।

सुलो.— (हँस कर) यह आप कैसे बातें कहते हैं, क्या ये बातें हो सकती हैं ।

सुं.— जो नहीं हो सकतीं तो तुम्हारी राजकन्या

ने अंचल से मुख क्यों छिपा लिया ?

सुलो.— (हँस कर) आप बड़े सुरसिक और पंडित हैं इस से मैं आप की बात का उत्तर नहीं दे सकती, "दीपक की राँव के उदय बात न पूछें कोय" पर हाँ जो लज्जा न करती तो हमारी सखी कुछ उत्तर देती ।

सुं.— (हँसकर) तो आज तुम्हारी राजकन्या हम से हार गई ।

सुलो.— क्यों हार क्यों गई ?

सुं.— और हारने के माथे क्या सौंग होती है ? मुझे देख कर लाज के मारे वह कुछ उत्तर नहीं दे सकती इसी से हार गई ।

सुलो.— (हँस कर) आप को सब कहना शोभा देता है ।

वि.— (सखी से) सुलोचने, तुम्हें कुछ उत्तर देने नहीं आता, तू क्यों नहीं कहती कि हमारी विद्यावती ने विद्या के विचार का प्रण किया था, कुछ चोरी विद्या के विचार का प्राण नहीं किया था, आप से न देकर घुस आये और अब बातें बनाते हैं ।

सुं.— (हँस के) हाँ इस देश के विचार की चाल ही यही है और उलटे हमी चोर बनाये जाते हैं, मैंने क्या अपराध किया था कि उस दिन वृक्ष के नीचे घंटों खड़ा किया गया और तुम्हारी राजकुमारी ने हमारा तन मन धन सब लूट लिया । अब कहो पहिले चोरी का आरंभ किसने किया, वही बात हुई कि 'उलटा चोर कोतवाल को डाँड़े' ।

वि.— और सुनो ! यह चोर नहीं है बड़े साधू है । सच है साधू न होते तो सेन देने की विद्या कहाँ सीखते ! यह कर्म साधुओं ही के तो हैं — सखियो ! आज तुमने बड़े महात्मा का दर्शन किया निश्चय तुम्हारे सब पाप कट गये क्योंकि शंख बजानेवाले साधू तो बहुत देखे थे पर सेन लगानेवाले आज ही देखने में आये ।

सुं.— (हँस कर) इसमें क्या सन्देह है, सखियो ! तुम परीक्षा कर लो कि हम में सब साधुओं के लक्षण हैं कि नहीं ? देखो मैं अपने चोर को दूँदता २ यहाँ तक आया और उसे पाकर उस को पकड़ने और धन फेर लेने के बदले और भी जो कुछ मेरे पास बच गया है भेंट किया चाहता हूँ, परन्तु जो यह लें ।

वि.— (धीरे से) दीजिये ।

सुं.— (प्रसन्न होकर) सखियो तुम साक्षी रहना, मन और प्रण तो इन्होंने चोरी कर के ले लिए,

एक देह बच गई है इसे मैं अपनी ओर से अर्पण करता हूँ (विद्या से) प्यारी, मैं यह केवल इसी हेतु आया था तो तुम ने मुझे अपना कर लिया, अब इसका निवाह करना, (हाथ बढ़ाता है)

वि.— (लाज से) यह मैंने कब कहा था ?

सुलो.— (विद्या से हँस कर) सखी, अब तेरी ये बातें न चलेगी आज के विचार में तो तू हार गई ।

च.— इसमें क्या संदेह है, यहां के न्याय के विचार का क्या काम है जो रस के विचार में जीते सो जीता क्योंकि न्याय का विचार कर के स्त्री को जीतना यह भी एक अविचार है ।

सुलो.— (हँस कर विद्या से) सखी अब विलांब क्यों करती है क्योंकि राजपुत्र तुम्हें अपना शरीर समर्पण कर के पाणिग्रहण के हेतु हाथ फैलाए हुए हैं इससे या तो तुम उसकी बनी या उसे अपना करो क्योंकि आज से हम उसमें और तुम्हें में कुछ भेद नहीं समझती और हस्तकमल के संग अपना हृदयकमल भी राजपुत्र के अर्पण करो क्योंकि अच्छे काम में विलम्ब न करना चाहिए ।

सुं.— (प्रसन्नता से विद्या का हाथ अपने हाथ में लेकर) अहाहा ऐसा भी कोई दिन होगा ।

सुलो.— अब होने में विलम्ब क्या है ? परन्तु मैं यह विनती करती हूँ कि हमारी राजकुमारी अत्यन्त सीधी और सच्ची हैं क्योंकि इसने पहिले ही जान पहिचान में आपका विश्वास करके अपना तन मन धन आप के अर्पण किया परन्तु आप सुरसिक और पण्डित हैं इस से इस धन की रक्षा का कोई उपाय कीजिये (फूल की माला से दोनों का हाथ बांधती है) हम भगवान से प्रार्थन करती हैं कि तुम दोनों सर्वदा फूल की माला की भाँति आपस में प्रेम के डोरे में बंधे रहो ।

पु.— सखी, हम भी हृदय से एवमस्तु कहते हैं ।

च.— राजनन्दिनी तो इस समय कुछ कहने ही की नहीं पर मैं उसकी ओर से कहती हूँ कि ऐसा ही हो ।

सुलो.— ऐसी नई बहू की प्रतिनिधि कौन नहीं होना चाहती ?

च.— चल तुम्हें तो ऐसी ही बातें सूझती हैं ।

सुलो.— अब नये दुलहे दुलहिन को दूर २ बैठना उचित नहीं है, इस से कृपा कर के दोनों एक पास बैठो जिसे देख कर हमारी आँखें सुखी हों ।

सुन्दर— (हँस कर के) ठीक है (विद्या के पास

बैठता है और विद्या कटाक्ष से देखती है) ।

सुलोचना— (हँस कर) सखी, सब बातें हो चुकी तो अब गान्धर्व विवाह की कुछ रीतें बची क्यों जाती हैं और हमारी आज्ञा करने में तुम्हें क्या लज्जा है, अब तुम दोनों माला का अदला बदला करो जिसे देख कर हम सुखी हों ।

(सुंदर के यत्न से दोनों परस्पर माला बदलते हैं और सखी लोग आनन्द ले ताली बजाती हैं) ।

विद्या— (मन ही मन) विधाता क्या सचमुच आज ऐसा दिन हुआ है, या कि मैं सपना देखती हूँ — नहीं यह सपना है ।

च.— हमारे नेत्र आज सुफल हुए ।

सुलो.— (आनन्द से गाती है) ।

आजु अति मोहि आनन्द भयो ।

बहुत दिवस की इच्छा पूजी सब दुख दूर गयो ।।
यह सोहाग की राति रसीली सब मिलि मंगल गाओ ।
जनम लिये को आज मिल्यो फल अखियाँ निरखि सिराओ
दिन दिन प्रेम बढ़ो दोउन को सब अति ही सुख पावैं ।
चिरजीवो दुलहा अरु दुलहिन दोउ कर जोरि मनावैं ।।

सुन्दर.— आहाहा कैसा मधुर गीत है, सखी जो तुम्हें कष्ट न हो तो एक गीत और गा ।

सुलो.— वाह ऐसे आनन्द के समय में और मैं गीत न गाऊँ, उस में नये जमाई की पहिली आज्ञा न माननी तो सर्वथा अनुचित है ।

च.— सखी हमारी राजनन्दिनी ने उस दिन जो गीत बनाई थी सो क्यों नहीं गाती ? क्योंकि नये बर उस गीत से निश्चय बड़े प्रसन्न होंगे ।
(विद्या आँखों से निषेध करती है)

सुलो.— हाँ सखी बहुत ठीक कहा (विद्या से) क्यों सखी इसमें दोष क्या है तू क्यों निषेध करती है अब तो मैं निश्चय वही गीत गाऊँगी । (चपला ताल देती है और सुलोचना गाती है ।)

(राग देस)

जहाँ पिय तहीं सबै सुख साज ।

बिनु पिय जीवन व्यर्थ सखी री यद्यपि सबै समाज ।
जो अपुनो पीतम संग नाहीं सुरपुर कौन काज ।।
निरजन बनहूँ मैं पीतम के संग सुरपुर को राज ।।११।।

सुं.— वाह २ बहुत अच्छी गीत गाया, जैसे मेरे कान में अमृता की धारा की वर्षा हुई, सखी सुरपुर सुख आज मुझे यथार्थ अनुभव होता है ।

सुलो.— (हँस कर) क्या मेरे गाने से ! जो होय अब रात बहुत गई और नई बहू के मिलाप में पहिले ही

दिन बहुत विलम्ब करना योग्य नहीं ।

सुं.— हाँ सखी, अब जाता हूँ (अंगूठी उतार कर दोनों सखियों को देता है) यह हमारे सन्तोष का चिन्ह सर्वदा अपने पास रखना ।

सुलो.— (लेती है) यद्यपि यह अंगूठी सहज ही बहुमूल्य है परन्तु आप के सन्तोष का चिन्ह होने से और भी अमूल्य हो गई और इसे हम सर्वदा बड़े प्यार से अपने पास रखेंगी ।

च.— आप की प्रसादी फूल भी हमें रत्न के समान है ।

सुलो.— तो अब उठिए ।

सुं.— तुम आगे चलो हम लोग भी आते हैं ।

सुलो.— (उठकर) इधर से आइए ।

(सुलोचना और चपला आगे २, उन के पीछे विद्या का हाथ पकड़े हुए सुन्दर चलता है और ज्वनिका गिरती है)

दूसरा गर्भाक

(विद्या और मालिन बैठी हैं)

वि.— कहो उन के लाने का क्या किया, लम्बी चोड़ी बातें ही बनाने आती हैं कि कछ् करना भी आता है ?

मा.— भला इस में मेरा क्या दोष है मैंने तो पहिले ही कहा था कि यह काम छिपाकर न होगा, जब मैंने कहा कि मैं रानी से कहूँ तो भी तुमने मना किया और उलटा दोष भी मुझी को देती होँ, उस दिन तुम ने कहा कि उन से कहो वे कोई उपाय आप सोच लेंगे, उसका उन ने यह उत्तर दिया कि 'मौसी में परदेशी हूँ इस नगर की सब बातें नहीं जानता और राजा के घर में चोरी से घुस कर बच जाना भी साधारण कर्म नहीं है । जब तुम्हीं कोई उपाय नहीं सोच सकती तो मैं क्या सोचूँगा और अब मुझे मनुष्यों का कुछ भरोसा नहीं है इससे मैं अब देवकर्म करूँगा सो तू घर में एक अग्नि का कुंड बना दे और रात भर मेरा पहरा दिया कर' वे तो यों कहते हैं पर देखूँ उनका देवता कब सिद्ध होता है — भला वह तो चाहे जब हो एक नई बात और सुनने में आई है जिससे जी में तो रुलाई आती है और ऊपर हँसी आती है ?

वि.— क्या कोई और भी बात सुनने में आई है ?

ही. मा.— हाँ, मैंने सुना है कि राजसभा में कोई संन्यासी आया है ।

वि.— तो फिर क्या ?

ही. मा.— मैं सुनती हूँ कि वह विचार में सभा को तो जीत चुका है और अब कहता है मैं राजकुमारी से शास्त्रार्थ करूँगा ।

वि.— ऐसा कभी हो सकता है कि मैं संन्यासी से विचार करूँ ।

ही. मा.— क्यों नहीं, क्या प्रण करने के समय तुम ने यह प्रतिज्ञा थोड़ी ही की थी कि संन्यासी को छोड़कर मैं प्रण करती हूँ, अब तो जैसा राजकुमार वैसा ही संन्यासी ।

वि.— तो मैं तो उस से विचार नहीं करने की ।

ही. मा.— अब नहीं करने से क्या होता है विचार तो करना ही होगा । और फिर इस में दोष क्या है, जैसा तुम्हारा दिव्य राजा के कुल में जन्म है वैसा ही दिव्य संन्यासी वर मिल जायगा, मैंने तो चन्द्रमा का टुकड़ा वर खोज दिया था पर तू कहती है कि रानी से उसका समाचार ही मत कहो, तो अब मैं कौन उपाय करूँ — अच्छा है जैसी तुम्हारी चोटी है कुछ उस से भी लम्बी उस की डाढ़ी है, सिर पर बड़ा भारी जटा है और सब अंग में भभूत लगाए हैं, ऐसे जोगी नित्य नित्य नहीं आते-अहाहा कैसा अद्भुत रूप है !

(गाती है) (राग देस)

अरे यह जोगी सब मन माने ।

लम्बी जटा रंगीले नैना जत्र मंत्र सब जाने ।।

कामदेव मनु काम छोड़ि के जोगी हवै बौराने ।

या जोगिय की मैं बालहारी जग जोगिन कियो जानै ।

अरे यह जोगी ।।१।।

ऐसा रसिक जोगी वर मिलता है अब और क्या चाहिए ?

वि.— चल तू भी चूल्हे में जा और जोगी भी ।

ही. मा.— ऐसा कभी न कहना मैं भले चूल्हे में जाऊँ पर संन्यासी बिचारा क्यों चूल्हे में जायगा ? भला यह तो हुआ पर अब मैं यह पूछती हूँ कि एक भले मानस के लड़के को मैंने आस देकर घर में बैठा रक्खा है, उस की क्या दशा होगी और मैं उससे क्या उत्तर दूँगी क्योंकि तुम तो महादेव जी की सेवा में जाओगी पर वह बिचारा क्या करेगा — और क्या होगा । तुम संन्यासी को लेकर आनन्द करना और वह विचार आप संन्यासी होकर हाथ में दंड कमंडल लेकर तुम्हारे नाम से भीख मांग खाएगा ।

वि.— चल — लुच्ची ऐसी दशा शत्रु की

होय — मैं तो उसे उसी दिन वर चुकी जिस दिन उस का आगमन सुना और उसी दिन उसे तन मन धन दे चुकी जिस दिन उस का दर्शन दिया, इस से अब प्राण कहाँ रहा और विचार का क्या काम है ?

ही. मा. — पर मन में लड़कू खाने से तो काम नहीं चलेगा । क्योंकि मन से हम ने इन्द्र का राज कर लिया, इससे क्या होता है, सपने की सम्पत्ति किस काम की कि जब आँख खुली तो फिर वही टूटी खात — राजा यह बात कैसे जानेंगे और रानी इस बात को क्या समझती है कि मेरी कन्या का गान्धर्व विवाह हो चुका है और जब संन्यासी से व्याह देंगे तब तुम क्या करोगी और वह तब कहाँ जायगा ?

वि. — हाँ तुम तो इस बात से बड़ी प्रसन्न हो ! तुम्हारी क्या बात है । मैंने कई बार कहा कि उसको एक बार मुझसे और मिला दे पर तू उसे कब छोड़ती है । अरी पापिन जामाई को तो छोड़ देती पर तू भी तू धन्य है कि इतनी बूढ़ी हुई और अभी मद नहीं उतरा । जब बुढ़ापे में यह दशा है तो चढ़ते यौवन में न जाने क्या रही होगी ।

ही. मा. — सच है उलटा उराहना तो मुझे मिलेहीगा क्योंकि अब तो सब दोष मुझे लगेगा, तुमको सब बात में हंसी सूफती है पर मुझे ऐसा दुख होता है कि उसका वर्णन नहीं होता ।

जो विधि चन्दहिं राहु बनायो ।

सोइ तुम कहं संन्यासी लायो ॥

इस दुःख से प्राण त्याग करना अच्छा है — मेरी तो छाती फटी जाती — यह मैंने जो सुना सो कहा अब तुम जानो तुम्हारा काम जानै, मैंने जो सुना कहा ।

वि. — नहीं नहीं मैं तो तेरे भरोसे हूँ जो तू करोगी सो होगा — भला उनसे भी एक बेर यह समाचार कह दे ।

(चपला आती है)

च. — राजकुमारी पूजा का समय हुआ ।

वि. — चलो सखी मैं अभी आई ।

(चपला जाती है)

ही. मा. — तो मैं आज जाकर उससे यह वृत्तान्त कहती हूँ, इस पर वह जो कहेगा सो मैं कल तुमसे फिर कहूँगी ।

वि. — ठीक है, कल अवश्य इसका कुछ उपाय करेंगे !

(जवनिका गिरती है) ।

तृतीय गर्भांक

(विद्या अकेली बैठी है और सुन्दर आता है)

वि. — आज मेरे बड़े भाग्य है कि आप सांभ ही आये ।

सुं. — (पास बैठकर) प्यारी, मुझे जब तेरे मुखचन्द्र का दर्शन हो तभी सांभ है ।

वि. — परन्तु प्राणनाथ, यह दिन सर्व्वदा न रहेगा चार दिन की चांदनी है ।

सुं. — हाँ यह तो मैं भी कहता हूँ ।

वि. — क्यों ?

सु. — क्योंकि जब मैं 'बैठिए' तो कभी नहीं सुनता और 'जाइए' प्रायः सुनता हूँ तो अवश्य ऐसा होगा ।

वि. — वाह वाह ! अब तो आप बहुत सी हंसी करना सीखे हैं — कहिए कै उपवास में यह विद्या आई है (पान का डब्बा देती है) लीजिए इसे छूके शुद्ध कर दीजिए ।

सु. — पहिले आप तो मुझे पवित्र कीजिए पीछे मैं जब आप शुद्ध हो जाऊंगा तब इसे भी पवित्र कर सकूंगा ।

वि. — भला यह बात तो हुई आज सवेरे मालिन आई थी उसका समाचार आप जानते हैं ?

सु. — हाँ वह तो नित्य सवेरे आती है आज विशेष क्या हुआ, क्या उसको किसी ने एक दो धौल लगाई ?

वि. — भला, मेरे सामने ऐसा कभी हो सकता है और फिर वह ऐसी डरपोकनी है कि जो उसको कोई मारता तो वह तुरन्त रानी से जाकर सब समाचार कह देती तो भी बुरा होता ।

सुं. — तो उससे बहुत चौकस रहना चाहिए ।

वि. — नहीं, इसका कुछ भय नहीं है पर एक दूसरी बात जो मैंने सुनी है उसका बहुत भय है ।

सुं. — क्या कोई दूसरा उपद्रव हुआ ?

वि. — एक बड़े पण्डित संन्यासी आए हैं वह मुझसे विचार किया चाहते हैं ।

सुं. — (विषाद से) अरे यह बड़ा उपद्रव हुआ — मैं उस संन्यासी को जानता हूँ क्योंकि जब मैं बर्हमान को आता था तो वह मुझे मार्ग में मिला था, वह निश्चय बड़ा पंडित है, इससे उसका विचार में जीतना कठिन है ।

वि. — तब क्या होगा ?

सुं.— होगा क्या 'चोर का धन बठमार लूटै' ।

वि.— भगवान ऐसा न हो कि मुझे उससे विचार करना हो ।

सुं.— जी महाराज विचार करने की आज्ञा देंगे तो करना ही होगा ।

वि.— हां यह तो ठीक है — हाय हाय मैं बड़े द्विविधे में पड़ रही हूँ कि क्या करूँगी ।

सुं.— तुम्हें किस बात का सोच है, पुराना कपड़ा उतारा नया पहिना, सोच तो मुझे है ।

वि.— (उदास होकर) चलो सब समय हंसी नहीं अच्छी होती "पुराना उतारा नया पहिना" यह तो पुरुषों का काम है स्त्री बिचारी तो एक बेर जिस की हुई जन्म भर उसी की हो रहती है ।

सुं.— (हंस कर) ऐसा मत कहो क्योंकि स्त्रियों के चरित्र अत्यन्त विलक्षण होते हैं ।

वि.— मैं तो नये पुरुषों का मुख भी नहीं देखने पाती मैं नई पुरानी क्या जानूँ आपही नित्य नई स्त्री को देखते हैं आप जानें ।

सुं.— तो क्या हुआ इतने दिन तक राजसुख भोग किया अब जोगिन का सुख भोग करना ।

वि.— यह बात कैसे हो सकती है कि जिस के वियोग में एक पलक प्रलय सा जान पड़ता है उस को छोड़ कर मैं जोगिन हूँगी — हा ! मैं संन्यासिनी हूँगी — हे भगवान तू ने कर्म में क्या लिखा है ! (अत्यन्त शोक करती है और लम्बी साँसे लेती है) ।

सुं.— (हंसकर) और जो वह संन्यासी हमीं होयं ।

वि.— यह बात कैसी ?

सुं.— नहीं मैंने एक बात कही जो वह संन्यासी हमीं होयं ।

वि.— तो फिर तुम्हारे लिये तो मैं जोगिन आप ही हो रही हूँ इस में क्या कहना — जो यह बात सच्च होय तो शीघ्र ही कहो तुम्हें मेरी सौगन्द है — जब से मैंने उस का समाचार सुना है तब से मुझे रात को नींद नहीं आती ।

सुं.— (हंसकर) जो तुम्हें दुःख होता है तो मैं कहता हूँ पर किसी से कहना मत, अपनी सखियों से भी न कहना । देखो मैं राजसमा देखने को संन्यासी बन के गया था और मैंने विचार कि यहाँ विचार की चरचा निकालें देखें क्या फल होता है ।

वि.— हाय हाय अब मेरे प्राण में प्राण आए — अरे तू बड़ा बहुरूपिया है और तुझे बड़े बड़े

नखरे आते हैं । पुरुष में तो यह दशा है जो स्त्री होता तो न जाने क्या करता, चल तू बड़ा छलिया है — हाय हाय मुझे कैसा धोखा दिया, भला तू ने यह विद्या कहाँ सीखी (कुछ ठहर कर) हां तब — तब क्या हुआ ?

सुं.— तब क्या हुआ सो तो तुम जानती होगी पर राजा ने कुछ निश्चय नहीं किया ।

वि.— यह बड़ा आनन्द हुआ मानों आज मेरे छाती पर से एक बोझा उतर गया, मुझे आज रात को नींद सुख से आवैगी कल मैंने मालिन से हंसी में यह बात उड़ा तो दी थी पर भीतर मेरा जीही जानता था और मैंने आप से भी कई बेर कहना चाहा पर सोचती थी कि कैसे कहूँ ।

(सुलोचना आती है)

सुलो.— राजकुमारी, रात बहुत गई जो बहुत जागोगी तो कल दिन को जी आलस में रहेगा ।

वि.— नहीं सखी अब जाती हूँ (सुलोचना जाती है और विद्या सुंदर भी उठकर चलते हैं) पर एक बेर मुझे भी उस रूप का दर्शन करा देना क्योंकि मुझे भी तो जोगिन बनना है ।

सुं.— प्यारी, उस प्रेम के जोगी की जोगिन होना तुम्हीं को शोभा देता है ।

वि.— नाथ, तुम जो कहो सो सब उचित है ।

(जवनिका पतन)

दूसरा अंक समाप्त हुआ ।

तीसरा अंक

प्रथम गर्भांक

(विमला और चपला आती हैं)

विमला— बाहरे बाहरे कैसी दौड़ी चली आती है देख कर भी बहाली दिये जाती है ।

चपला— (देखकर) नहीं बहिन नहीं मैंने तुम्हें नहीं देखा क्षमा करना ।

विम.— भला मैंने क्षमा तो किया पर अपनी कुशल कहो ?

च.— कुशल मैं क्या कहूँ उस दिन के तो समाचार तूने सुने ही होंगे ।

विम.— कौन समाचार राजकन्या के — बड़े घर की बात ?

च.— अरे चुप चुप भाई धीरे धीरे — जो कोई सुन ले तो कहे कि यह सब ऐसे ही रनवास की बातें

कहती फिरती होंगी ।

विम.— हाँ तो फिर रानी ने सब बात जान कर क्या कहा ?

च.— कहेंगी क्या अपना सिर ? राजकुमारी को बुला कर बड़ी ताड़ना की और हम लोगों पर जो क्रोध किया उस का तो कुछ पार ही नहीं है और राजा से जा कर सब कह दिया । राजा ने और भी दस बीस बातें सुनाई, क्रोध से लाल होकर कोतवाल की आज्ञा दी कि नंगे शस्त्र ले कर रात भर राजकुमारी के महल के चारों ओर घूमा करो और किसी प्रकार से उस चोर को पकड़ो ।

विम.— (घबड़ा कर) तब क्या हुआ ?

च.— उसी समय से कोतवाल न हम लोगों के महल में बड़ी उपद्रव मचा रहा है और कहां तक कहें कई चौकीदार स्त्री बन २ के विद्या के सोने के महल में रात भर बैठे रहें, पर जिस के हेतु इतना उपद्रव हुआ वह अभी यह समाचार नहीं जानता और फिर उसकी क्या दशा होगी, इस सोच से विद्यावती रात भर रोती रही । यद्यपि हम लोगों ने बहुत समझाया परन्तु उसको धीरज कहां, इसी विपत में सब रात कटी ।

विम.— फिर सबेरे क्या हुआ सो कहो ।

च.— फिर क्या हुआ यह तो मैं ठीक २ नहीं जानती पर कोतवाल सबेरे उठ के चले गये और विद्या ने मुझ से कहा कि तू सोघ ले कि अब क्या होता है ।

विम.— सो तूने कुछ सोघ पाई ?

च.— अब तक तो कुछ सोघ नहीं मिली, लोगों के मुंह से ऐसा सुनती हूँ कि चोर पकड़ गया और एक आपत्ति यह भी न है कि मैं तो किसी से पूछ भी नहीं सकती परन्तु कोतवाल इत्यादिक बड़े प्रसन्न हैं इस से जाना जाता है कि चोर पकड़ गया — मैंने पहिले ही कहा था कि इस काम को छिपा के करना अच्छी बात नहीं है (नेपथ्य में कोलाहल होता है) अरे यह क्या है, यह तो कोतवाल का शब्द जान पड़ता है और मानो सब इसी ओर आते हैं तो अब हम लोग किनारे खड़ी हो जायँ जिस से वह सब हमको न देखें (दोनों एक ओर खड़ी हो जाती हैं)
(नेपथ्य में फिर कोलाहल होता है और कोई गाता है)
(हाथ बंधे हुए सुन्दर और मालिन को लेकर चौकीदार आते हैं)

१ चौ.— चल रे चल ।

२ चौ.— आज इसका पांव फूल गया है, जिस दिन सुरंग खोद कर राजकुमारी के महल में गया था

उस दिन पैर नहीं फूले थे, आज आप 'गजगति' चलते हैं ।

सुं.— क्यों व्यर्थ बकता है, राजा के पास तो सब चलते ही हैं, वह जो समझेगा सो उचित दंड देगा, फिर तुम को अपनी तीन छटांक पकाये बिना क्या डूबी जाती है ।

१ चौ.— अहा मानो हमारे राजपुत्र आये हैं, देखो सब लोग मुंह सम्हाल के बोलो कहीं अप्रसन्न न हो जायँ और उनकी अक्षत चन्दन से पूजा करो — लुच्चा, जिस दिन सेन लगाया था उस दिन आदर कहां गया था, आज आप बड़े पदवी बने हैं, चल चुपचाप आगे चला चल नहीं तो —

२ चौ.— सुनो भाई बहुत शब्द मत करो, कोतवाल ने कह दिया कि चुपचाप जाना हम पीछे २ आते हैं और सब लोग संग ही महाराज के यहां जायेंगे इस से जब तक वह न आवें तब तक यहां चुपचाप खड़े रहो ।

३ चौ.— अच्छा आइए चोर जी यहां ठहरिए । राजकुमारी के महल के जाने का समय गया, अब कारागार में चलने का समय आया (सब बैठते हैं) ।

२ चौ.— देखो भाई भला यह तो परदेसी है पर इस रांड मालिन को क्या सूझी कि इसने ऐसा साहस किया !

१ चौ.— अरे यह छिनाल बड़ी छतीसी है, इसको तुमने समझा है क्या — ऐसा मन होता है कि इस रांड की जीम पकड़ के खींच लें (हीरा के पास जाता है) ।

ही. मा.— दोहाई महाराज की, दोहाई महाराज की, हे धर्मदेवता तुम साक्षी रहना, देखो यह सब मुझे अकेली पाकर मेरा धर्म लिया चाहते हैं, दोहाई राजा की ।

१ चौ.— वाह वाह, चुप रह ।

(धूमकेतु कोतवाल आता है)

धू. के.— क्यों तुम लोगों ने क्या शब्द कर रक्खा है ?

ही. मा.— दोहाई कोतवाल की, यह सब जो चाहते हैं सो गाली देते हैं हाय इस राज्य में स्त्रियों का ऐसा अपमान, महाराज धूमकेतु आप तो पण्डित हैं, आप इस का विचार क्यों नहीं करते ?

१ चौ.— महाराज यही रांड सब कुकर्म की जड़ है और तिस पर ऐसी ऐसी बातें बनाती हैं ।

ही. मा.— एक मैं ही दुकर्म करती हूँ और तुम

सब साधू हो, देखो कोतवाल हम तो कुछ नहीं करती और तुम सब हमारी प्रतिष्ठा बिगाड़ते हो ।

धू. के.— (हंस कर) हाँ हाँ ! मैं तेरी सब प्रतिष्ठा समझता हूँ, पर यहाँ इस से क्या ? सब लोग महाराज के पास चलेँ जो वह चाहेंगे सो करेंगे ?

ही. मा.— अरे कोतवाल बाबा इस बुढ़िया को क्यों पकड़े लिये जाते हो बुढ़िया के मारने से क्या लाभ होगा, मुझे अपने बाप की सौगन्द जो मैं कुछ जानती हूँ — भगवान साक्षी है कि मैं किसी पाप में रही हूँ ।

सु.— मौसी इतनी शीघ्रता क्यों करती है ? सब लोग महाराज के पास चलते हैं जो महाराज उचित समझेंगे सो करेंगे ?

ही. मा.— (क्रोध से) अरे दुष्ट तेरी मौसी कौन है ? इसी के पीछे तो हमारा सब कुछ नाश हुआ, अब तेरा होमकुंड क्या हुआ और तेरे इष्ट देवता कहां गए ! अरे तू बड़ा जालिया है और तूने मुझे बड़ा धोखा दिया, अब मैं आज पीछे अपने घर में किसी परदेसी को न उतारूंगी ।

धू. के.— अब भले ही न उतारना, पर इस उतारने का फल तो भुगतना ही पड़ेगा ।

ही. मा.— (रोती है) हाय मैं हाथ जोड़ के कहती हूँ कि मैं इस विषय में कुछ नहीं जानती, दोहाई भगवान की मैं कुछ नहीं जानती (कोतवाल से) अरे बेटा ! तुम्हारे माँ बाप मुझे बड़े प्यार से रखते थे, सो तुम अपने माँ बाप के पुण्य पर मुझे छोड़ दो और इसने जैसा कर्म किया है वैसा दण्ड दो । दोहाई कोतवाल की मैं बिना अपराध मारी जाती हूँ ।

धू. के.— इस से क्या होता है ! अब तुम दोनों को महाराज के पास ले चलते हैं और उन की आज्ञा से एक संग ही बदीगूह में छोड़ देंगे (सुन्दर का हाथ पकड़कर कोतवाल जाता है और हीरा को खींच करा चौकीदार लोग ले जाते हैं)

विम.— अब सचमुच चोर पकड़ा गया ।

च.— जो आँख से देखती है उस का पूछना क्या ?

विम.— पर भाई ऐसा रूप तो न आँखों देखा और न कानों सुना, यह तो राजकन्या के योग्य ही है इस में उसने अनुचित क्या किया, क्योंकि जैसी सुन्दर वह है वैसाही यह भी है, "उत्तम को उत्तम मिले मिले नीच को नीच" ।

च.— पर उस निर्दयी विधाता से तो सही नहीं गई ।

विम.— सोई तो, अहा जैसे चन्द्रमा को राहु ग्रसे हा — विधाता बड़ा कपटी है ।

च.— सखी, अब और कुछ मत कह क्योंकि इस कथा के सुनने से मेरी छाती फटी जाती है और राजकन्या का दुःख स्मरण कर के मुझसे यहाँ खड़ा नहीं रहा जाता, देखें और क्या २ होता है ?

विम.— तो फिर कब मिलेंगी ?

च.— जो जीती रहूँगी तो शीघ्रही मिलूँगी (दोनों जाती हैं) ।

(जवानिका गिरती है ।)

दूसरा गर्भांक

(विद्या शोक में बैठी है)

चपला और सुलोचना आती हैं ।

च.— (धीरे से) सखी, मुझसे तो यह दुःख की कथा न कही जायगी तूही आगे चलकर कह ।

सुलो.— तो तुम मत कहना पर संग चलने में क्या दोष है जो विपत्ति आती है सो भोगनी पड़ती है ।

च.— चला ।

(दोनों विद्या के पास जाती हैं)

वि.— (घबड़ाकर) कहो सखी कहो क्या समाचार लाई हो ?

सुलो.— सखी क्या कहूँ कुछ कहा नहीं जाता, मेरे मुख से ऐसे दुःख की बात नहीं निकलती । हाय — हम इसी दुःख देखने को जीती हैं — सखी जिस प्रीतम के सुख से तू सुखी रहती थी वह आज पकड़ा गया — हाय उस के दोनों कोमल हाथों को निरदई कोतवाल ने बांध रक्खा है — हाय — उस की यह दशा देखकर मेरी छाती क्यों नहीं फट गई ।

वि.— (घबड़ा कर) अरे सच ही ऐसा हुआ — हाय फिर क्या हुआ होगा — (माथे पर हाथ मार कर) हा विधाता तेरे मन में यही थी — (मूर्छा खाती है और फिर उठ कर) हाय — प्राणनाथ बन्धन में पड़े हैं और मैं जीती हूँ — हाय ।

थिक है वह देह औ गेह सखी

जिहि के बस नेह को टूटनो है ।

उन प्राण पियारे बिना यह जीवहि

राखि कहा सुख लूटनो है ॥

हरिचन्द पू बात ठनी जिय मैं

नित की कलकानि ते छूटनो है ।

तजि और उपाय अनेक सखी

अब तो हमको विष घूटनो है ।।

सखी अब मैं किसके हेतु जीऊंगी — आओ हम तुम मिल के क्योंकि यह पिछला मिलना है फिर मैं कहाँ और तुम कहाँ — सखी जो प्राणप्यारे जीते बचै तो उनसे मेरा संदेश कह देना कि मैंने तुम्हारी प्रीति का निवाह किया कि अपना प्राण दिया पर मुझे इतना शोच रह गया कि हाय मेरे हेतु प्राण प्रीतम बाँधे गये — पर मेरी इस बात का निवाह करना कि मेरे दुःख से तुम दुखी न होना — हाय — मेरी छाती वज्र की है कि अब भी नहीं फटती (रोती है और मूर्छा खाकर गिरती है)

सुलो. — (उठा कर) सखी इतनी उदास न हो और रो रो कर प्राण न दे — यद्यपि जो तू कहती है सो सब सत्य है पर जब ईश्वर ही फिर जाय तो मेरा तेरा क्या वश है ? हाय — बादल से कोई बिजली भी नहीं गिरती कि हम को यह दुःख देखना पड़े — सखी धीरज धर सखी धीरज धर ।

वि. — (रोकर) सखी, मन नहीं मानता । हाय — विसासी विधाता ने क्या दिखा कर क्या दिखाया, हाय-अब मैं क्या करूंगी — और कैसे दिन काटूंगी ।

'मेलि गारे मृदु बेलि सी बाहिन

कौन सी चाहन छाहन डोलिहौं ।

कासो सुहास बिलास मुबारक ही के

हुलासन सों हंसि बोलिहौं ।।

श्रौनन प्याइहौं कौन सुधारस कासों विधा की कथा गद्दी छोलिहौं ।

प्यारे बिना हौं कहा लखिहौं

सखियां दुखिया अखियां जब खोलिहौं" ।।

सखी, केवल दुःख भोगने को जन्मी हूँ क्योंकि आज तक एक भी सुख नहीं मिला — क्या विधाता की सब उलटी रीति है कि जिस वस्तु से मुझे सुख है उसी को हरण करता है — हाय मैं ने जाना था कि मुझे मन माना प्रीतम मिला, अब मैं कभी दुखी न हूँगी सो आशा आज पूरी हो गई — हाय अब मुझे जन्म भर दुःख भोगना पड़ा ।

सुलो. — सखी, यह सब कर्म के भोग हैं नहीं तो तुम राजा की कन्या हो तुम्हारे तो दुःख पास न आना चाहिए पर क्या करे — सखी तू तो आप बड़ी पण्डित है — मैं तुझे क्या समझाऊंगी पर फिर भी कहती हूँ कि धीरज धर ।

वि. — सखी, मैं यद्यपि समझती हूँ पर मेरा जी

धीरज नहीं धरता — कर्म के भोग न होते तो यह दिन क्यों देखना पड़ता — हाय — जो पिता माता प्राण देकर सन्तान की रक्षा करते हैं उन्हीं पिता माता ने मुझे जन्म भर रंझापे का दुख दिया (रोती है)

च. — सखी, अब इन बातों से और भी दुःख बढ़ेगा इससे चित्त से यह बातें उतार दे और किसी भाति धीरज धर के जी को समझा ।

वि. — सखी, मैं तो समझती हूँ पर मन नहीं समझता — हाय — और जिस का सर्वस नास हो जाय वह कैसे समझे और कैसे धीरज धरे — हाय ! हाय ! प्राण बड़े अघम हैं कि अब भी नहीं निकलते (लम्बी सांस लेती है और रोती है)

सुलो. — पर एक बात यह भी है कि अभी राजा ने न जाने क्या आज्ञा दी — बिना कुछ भए इतना दुःख उचित नहीं, न जाने राजा छोड़ दें ।

वि. — राजसभा में क्या होगा केवल हमारे शोकानल में पूर्णाहुति दी जायगी और क्या होगा — हाय — प्राणनाथ इस अभागिनी के हेतु तुम्हें बड़े-बड़े दुःख भोगने पड़े ।

सुलो. — जो तू कहै तो मैं छत पर से देखू कि सभा में क्या होता है ।

वि. — जो तेरे जी में आवै और जिस से मेरा मला हो सो कर ।

सुलो. — चपल चल हम देखें तो क्या होता है ।

च. — चल (दोनों जाती हैं)

वि. — अब मैं यहाँ बैठी बैठी क्या करूंगी और मन को कैसे समझाऊंगी । हे भगवान मेरे अपराधों को क्षमा कर — मैं बड़ी दीन हूँ मैंने क्या ऐसा अपराध किया है कि तू मुझे दुःख दे रहा है । नहीं भगवान का क्या दोष है, सब दोष मेरे भाग्य का है (हाथ जोड़कर) हे दीनानाथ, हे दीनबन्धु, हे नारायण, मुझ अबला पर दया करो — और जो मैं प्रतिव्रता हूँ और जो मैंने सदा निश्छल चित्त से तुम्हारी आराधना की हो तो मुझे इस दुःख से पार करो ।

(नेपथ्य में)

अरे राजकाज के लोगों ने बड़ा बुरा किया कि बिना पहिचाने कांचीपुरी के महाराज गुणसिन्धु के पुत्र राजकुमार सुन्दर को कारागार में भेज दिया — क्या किसी ने उसे नहीं पहिचाना ? मैं अभी जाकर महाराज से कहता हूँ कि यह तो वही है जिसके बुलाने के हेतु आपने मुझे कांचीपुर भेजा था ।

वि. — (हर्ष से) अरे — यह कौन अमृत की

घर बरसाता है — अहा भगवान ने फिर दिन फेरे क्या ? अब मैं भी छत पर चल कर देखूँ कि समा में क्या होता है ।

(जवनिका गिरती है)

तीसरा गर्भांक

(राजा सिंहासन पर बैठा है)

(मंत्री पास है और कुछ दूर पर गंगा भाट खड़ा है ।)

राजा. — मंत्री, गंगा भाट ने जो कहा सो तुमने सुना ?

मंत्री — महाराज, सब सुना ।

रा. — तब फिर उनको चोर जान कर कारागार में भेज देना बुरा हुआ ?

मं. — महाराज, पहिले यह कौन जानता था कि यह राजा गुणसिन्धु का पुत्र है, केवल चोर समझ कर दंड दिया गया ।

रा. — पर जब से मैंने उसे देखा तभी से मुझ को संदेह था कि आकार से यह कोई बड़ा तेजस्वी जान पड़ता है और मैं सच कहता हूँ कि उसकी मधुर मूर्ति और तरुण अवस्था देख कर मुझे बड़ा मोह लगता था — जो कुछ हो अब तो विलम्ब मत कर और शीघ्र ही आप जाकर उसे ले आ क्योंकि कोतवाल अभी कारागार तक न पहुँचा होगा ।

मं. — जो आज्ञा महाराज, मैं अभी जाता हूँ (जाना चाहता है ।)

रा. — पर केवल सुन्दर का लाना और कोतवाल इत्यादिक को मत लाना ।

मं. — जो आज्ञा (जाता है)

राजा. — क्यों कविराज, तुम उसे अच्छी भाँति पहिचानते हो कि नहीं ?

गंगा — महाराज, मैं भली भाँति पहिचानता हूँ और पृथ्वीनाथ ! बिना जाने मैं कोई बात निवेदन भी तो नहीं कर सकता ।

रा. — तो गुणसिन्धु राजा का पुत्र वही है ?

गं. — महाराज, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

रा. — तुम जो न कहते तो बड़ा अनर्थ होता । यह भी हमारे भाग्य की बात है कि ईश्वर ने धर्म बचा लिया । पर मंत्री के आने में इतना विलम्ब क्यों हुआ इस से तुम जाकर देखो तो सही ।

गं. — जो आज्ञा (जाता है) ।

रा. — (आप ही आप) इतना विलम्ब क्यों लगा ? (शरीर हिला कर) विद्यावती के संग जो इसका गांधर्व विवाह हुआ वह अच्छा ही हुआ क्योंकि नीच कुल में विवाह करने से तो मरना अच्छा होता है, परन्तु हमारी विद्यावती ने कुछ अयोग्य नहीं किया, यह एक भाग्य की बात है नहीं तो मैं अपने हाथ से कन्या को जन्म भर का दुख दे चुका था, अहा भगवान ने बहुत बचाया (द्वार की ओर देख कर) मंत्री अब तक नहीं आये (नेपथ्य में पैर का शब्द सुन कर) जान पड़ता है कि सब आते हैं (गंगा भाट आता है)

गं. — महाराज, कांचीराजपुत्र को मंत्री आदर पूर्वक ले आते हैं (मंत्री और सुन्दर) ।

रा. — (सुन्दर का मुख चूम कर) यहाँ आओ पुत्र यहाँ (हाथ पकड़ कर अपने सिंहासन पर बैठाता है) बेटा मैंने तुझको आज अनेक दुःख दिये, इस दोष को मैं स्वीकार करता हूँ और यह मांगता हूँ कि तुम आज से इन बातों को भूल जाओ ।

सु. — (हाथ जोड़ कर) महाराज ! आपका क्या दोष है यह तो आपने मुझे उचित दंड दिया था, यह केवल मेरे यौवन का दोष था कि मैंने आपके यहाँ अनेक अपराध किए सो मैं हाथ जोड़कर मांगता हूँ कि आप मुझे क्षमा करें ।

रा. — (मंत्री से) मंत्री रनिवास में से विद्यावती को शीघ्र ले लाओ ।

मं. — जो आज्ञा (जाता है) ।

रा. — बेटा, मैंने तुमको जितना दुख दिया है उसके बदले तो मैं तुम्हारा कुछ भी सन्तोष नहीं कर सकता पर मैं इतना कहता हूँ कि तुम ने विद्यावती से जो गांधर्व विवाह किया है उस में मैं प्रसन्नता पूर्वक सम्मति प्रगट करता हूँ जिस से अवश्य तुमको बड़ा संतोष होगा ।

सुं. — (हाथ जोड़ कर) महाराज, आपकी कृपा ही से मुझ को बड़ा संतोष हुय ।

(मंत्री आता है)

रा. — मंत्री क्या विद्यावती आई ?

मं. — महाराज अभी आती है ।

रा. — (सुन्दर से) बेटा, तुम ने पकड़े जाने के समय अपना नाम क्यों नहीं बतलाया नहीं तो इतना उपद्रव क्यों होता ?

सु. — महाराज, जो मैं नाम बतलाता तो भी मेरी बात कौन सुनता और सभासद जानते कि यह प्राण बचाने को भूठी बातें बनाता है और फिर क्षत्री के

निष्कलंक कुल में उत्पन्न होकर ऐसे बुरे कर्म में अपना नाम प्रगट करने से प्राणत्याग करना उत्तम है ।
(सुलोचना और चपला के संग विद्या नीची आँख किये हुए आती है)

वि.— (धीरे से) सखी मैं पिता को मुंह कैसे दिखाऊंगी ।

सुलो.— (धीरे से) जब पिता ने ब्रुला भेजा है तो कौन सी लज्जा है ।

रा.— आ मेरी प्यारी बेटा इधर आ, आज तक मैंने तुझे अनेक दुःख दिये थे परं वे सब दुःख आज सम्पूर्ण हो गये (उठकर विद्या का हाथ पकड़ कर) प्यारे यह लो वीरसिंह का सर्वस धन मैं तुम्हें आज समर्पण करता हूँ (विद्या का हाथ सुन्दर के हाथ में देता है और नेपथ्य में बाजा बजता है और आनन्द के शब्द से रंगभूमि पर जाती है) यह बात तो कहना सर्वथा अनुचित है कि इस कन्या पर प्रीति रखना क्योंकि जो परस्पर अत्यन्त नेह न होता तो दुःख क्यों सहते परन्तु ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आज से फिर तुम्हें कोई दुख न हो और सर्वथा अखण्ड सुख करो और शीघ्र ही एक बालक हो जिस के देखने से हमारा हृदय और आँखें शीतल हों ।

(दोनों दण्डवत् करते हैं)

सुं.— महाराज, आप की दया से मेरे सब दुख दूर हुए पर यह शंका है कि मैं आप की प्रसन्नता के हेतु कोई योग्य सेवा नहीं कर सका ।

गं.—

आज अनन्द भयो अति हो

विपदा सब की दूरि दूरि नसाई ।

मोद बढ़यो परजागन को

दुख को कहूँ नाम न नेकु लखाई ।।

मंगल छाड़ रह्यो चहुँ ओर-

असीसत हैं सब लोग लुगाई ।

जोरी जियो दुलहा दुलही की

बधाई बधाई बधाई बधाई ।।

सुं.— महाराज, आप ने मुझे यद्यपि सब सुख दिया तथापि एक प्रार्थना और है ।

राजा.— कहो ऐसी कौन सी वस्तु है जो तुम को अदेय है ।

सुं.— (हाथ जोड़कर) महाराज ने यद्यपि मालिन को प्राण दान दिया है परन्तु देश से निकाल देने की आज्ञा है सो अब उसके सब अपराध क्षमा किये जाय ।

रा.— (हंस कर) जो तुम चाहते हो सोई होगा (मन्त्री से) मन्त्री, मालिन के सब अपराध क्षमा हुए, इस से अब उसे कोई दण्ड न दिया जाय ।

मं.— जो आज्ञा ।

रा.— (मन्त्री से) मन्त्री, अब तुम शीघ्रही व्याह के सब मंगल साज सजो जिस में नगर में कहीं शोच का नाम न रहे क्योंकि पुरवासियों को दुलहा दुलहिन के देखने की बड़ी अभिलाषा है और मैं बर बधू को लेकर रनिवास में जाता हूँ ।

मं.— महाराज, हम लोगों का जीवन आज सुफल हुआ ।

(मन्त्री और भाट एक ओर से जाते हैं और राजा और विद्यासुन्दर दूसरी ओर से और उन के पीछे सखी जाती हैं)

(जवनिका पतन होती है)

नेपथ्य में मंगल का बाजा बजता है ।

।। इति ।।



रत्नावली

नाटिका

संस्कृत से अनूदित इस नाटिका के प्रस्तावना और विषयकम्भक का ही अनुवाद मिलता है। भारतेन्दु ने इसकी भूमिका वैशाख कृ. सं. १९२५ को लिखी थी इसके किसी पत्रिका में छपने या इसकी किसी पुरानी प्रति का पता नहीं। रत्नावली का एक और अनुवाद बरेली के किन्हीं पं. देवदत्त जी का भी मिलता है।— सं.

भूमिका

हिन्दी भाषा में जो सब भांति की पुस्तकें बनने के योग्य हैं अभी वे बहुत कम बनी हैं विशेष कर के नाटक तो (कुंवर लक्ष्मणसिंह के शकुन्तला के सिवाय) कोई भी ऐसे नहीं बने हैं जिन को पढ़ के कुछ चित्त को आनन्द और इस भाषा का बल प्रगट हो; इस वास्ते मेरी इच्छा है कि चार नाटकों का तर्जुमा हिन्दी में हो जाय तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो।

शकुन्तला के सिवाय और सब नाटकों में रत्नावली नाटिका बहुत अच्छी और पढ़नेवालों को आनन्द देनेवाली है इस हेतु से मैंने पहिले इसी नाटिका का तर्जुमा किया है और जो ईश्वरेच्छा अनुकूल है और आप गुणग्रहकों की अनुग्रहदृष्टि है तो धीरे धीरे कुछ नाटकों का तर्जुमा होकर प्रकाशित होता जायगा।

इस नाटिका में मूल संस्कृत में जहाँ छन्द थे वहाँ मैंने भी छन्द किये हैं यदि संस्कृत के छन्दों से इसके छन्दों को मिला के पढ़ि तो इसका परिश्रम प्रकट होगा।

मुझे इसके उल्था करने में श्री पंडित शीतलाप्रसाद से बहुत सहायता मिली है।

और निश्चय है कि इस का उल्था अगर कोई अच्छी हिन्दी जानने वाला करता तो रचना अति उत्तम होता इस से मुझे आप लोगों से आशा है कि इसके मूल चूक को सुधारेंगे और मुझे अपने एक दास की नाई सदा स्मरण करेंगे।

बनारस।

हरिश्चन्द्र

मि. वैशाख २ सं. १९२५।

श्रीकृष्णाय नमः

श्रीराधिकायै नमः

रत्नावली

रंगभूमि में नाट्यी (मंगलाचरण) पढ़ता है।

नाट्यी।

पादाग्रस्थितया मुहुःस्तनभरणीनीतया नम्रतां।

शम्भोःसस्पृहलोचनत्रयपथं यान्त्या तदाराधने॥

हीमत्या शिरसीहितः सपुलकस्वेवोदगमोत्कम्पया।

वेष्टितोऽप्यनु कुसुमाञ्जलिगिरिजया क्षिप्तो न्तरं पातु वः॥

पार्वती शिवजी के पूजन के समय उन के मस्तक पर पुष्पाञ्जली चढ़ाने के लिये कई बार चरण के अंगूठों के बल से ऊँची हुई और स्तनों के भार से फिर नीची हो गई। परन्तु जब शिवजी इन की ओर तीनों नेत्रों से बड़े अभिलाष से देखने लगे तो इन को बड़ी लज्जा हुई और रोम खड़े हो गए और अंग में पसीना और कंप होने लगा और हाथ न सम्हल सका तो इन्होंने उस पुष्पाञ्जली को बीच ही में छोड़ दिया। ऐसी पुष्पाञ्जली तुम्हारी रक्षा करे।

औत्सुक्येन कृतत्वा सह भुवा व्यावर्तमाना ह्रिया ।
तैस्तेर्बन्धूजनस्य वचनैर्नीता भिममुख्यं पुनः ॥
दृष्ट्वा ग्रं वरमातसाध्वसरसा गौरी नवे संगमं ।
सरोहतपुलका हरेण हसता शिवायास्तु वः ॥

पार्वती प्रथम समागम के समय पहिले तो उत्कण्ठित हो कर जल्दी से चलीं परंतु जब थोड़ी दूर गईं तो स्वभाव ही से लजा कर फिर पीछे हटीं । जब बंधुजनों की स्त्रियों ने अनेक प्रकार से समझाया तो फिर सन्मुख हुई और जब पति को आगे देखा तो इनको अति भय हुआ और इन के अंग में रोमाञ्च हो आया तब शिव जी ने हंसकर कर कंठ से लगा लिया । ऐसी पार्वती तुम्हारा कल्याण करें ।

क्रोधेद्देष्टुं पतैस्त्रिभिरुपशमिता वनहयो मीत्रयो पि
त्रासार्तात्त्रुत्विको धश्चपलगणहृतोष्णीषपट्टाः पतन्ति ॥
दक्षः स्तौत्यस्य पत्नी विलपति करुणं चापि देवैः ।
शंसन्ति त्यातहासोमस्रमथनविधौ पातदेवः शिवो वः ॥

प्रज्वलित हमारी तीनों दृष्टियों के पड़ने से ये तीनों अग्निन बुझ गईं । हमारे चंचल गणों ने त्रुत्विकों के माथे की पाग छीन ली हैं और वे मारे डर के मुँह के बल गिरे पड़ते हैं । दक्ष स्तुति करता है इस की स्त्री करुणा कर के रोती है देवता सब भाग गये । शिव जी दक्ष के यज्ञ के विध्वंस के समय यह कहते हुए तुम्हारी रक्षा करें ।

नादी के पीछे सूत्रधार आता है ।

सूत्रधार— बस बहुत बढ़ाने का कुछ काम नहीं । आज इस बसन्तोत्सव में महाराज श्रीहर्ष देव के चरण कमल के आश्रित राजा लोग जो बहुत देशों से आकर इकट्ठे हुए हैं उन लोगों ने हम को बड़े आदर से बुला कर कहा है कि हमारे स्वामी श्रीहर्षदेव नो जो बहुत अपूर्व रत्नावली नाटिका बनाई है उस का वृत्तान्त हम लोगों ने बहुत लोगों के मुँह से सुना है पर अब तक उस की लीला नहीं देखी । इस वास्ते सब लोगों के चित्त को आनंद देनेवाले उनके बहुत मान से और हम लोगों पर अनुग्रह की दृष्टि से उस नाटिका की लीला कीजिये (धूम कर और चारों तरफ देख कर) अब इस समय नेपथ्य रचना कर लूँ तो फिर जो करना हो करूँ (सब लोगों की तरफ देख कर) अरे मुझे निश्चय होता है कि सब सभासदों का मन इसी ओर लगा है ॥ क्यों न होय ।

श्री हर्ष सो अति निपुण कवि यह सभा जन गुन को धरै ।
जग बत्सराज चरित्र मनहर हम ललित लीला करै ॥
इन सबन सों जहँ होय एकहु मिलहिं मन बांछित घने ।
यद उदय मेरे भाग्य का जहँ सकल गुन गन हैं बने ॥

तब तक घर से सुघर घरनी को बुला कर कुछ गाना आरंभ करें (धूमकर और नेपथ्य की ओर देखकर) यही मेरा घर है इसके भीतर चले (कुछ आगे बढ़कर) प्यारी इधर आइयो ।

नटी आई ।

नटी— प्राणनाथ ! मैं आई हूँ । कहिये आज कौन सी लीला करनी है ।

सू.— प्यारी ! इन राजा लोगों को रत्नावली देखने की बड़ी इच्छा है सो तुम जाकर नेपथ्य के सब साजों को सम्हालो ।

नटी— (चिन्ता से लंबी सांस लेकर) प्राणनाथ ! आप इस बेला निचिन्त हो आप क्यों न नाचोगे मुझ अमागिनि की तो एक ही कन्या है उसे भी आपने दूसरे देश में देने कहा है । ऐसे दूर रहनेवाले घर से उसका ब्याह कैसे होग इस सोच में मुझे तो अपने देह की भी सुधि नहीं है । नाचना कैसा ।

सू.— प्यारी ! बर दूर देश में है इस बात की कुछ चिन्ता न करो, क्योंकि —

जौ विधना अनुकूल तौ दीपन सों सब लाय ।
सागर मधि दिग अंत सों तुरतहि देत मिलाय ॥

(नेपथ्य में ।

सू.— (सुनकर नेपथ्य की ओर देखकर) प्यारी : अब क्यों विलंब करती हो यह मेरा छोटा भाई यौगंधरायन वन के आया है । आओ हम लोग भी चलकर अपना २ भेष धारण करें ।

(यह कह के दोनों चले जाते हैं) (इति प्रस्तावना)

बहुत प्रसन्न भेष से योगन्धरायन आता है ।

यौ.— यह सच है इसमें कुछ संदेह नहीं । (जो विधना अनुकूल इत्यादि फिर से पढ़ता है) जो ऐसा न होता तो ये अनहोनी बातें कैसे होतीं कि हमने सिद्ध के बात का विश्वास करके सिंहल दीप के राजा की कन्या अपने स्वामी के लिये मांगी और जब उसने भेजी तो जहाज टूट जाने से वह डूबने लगी और एक तखते पर जो उसको मिल गया था बहती फिरी और संयोग से उसी समय कौशाम्बी के एक महाजन ने जो सिंहल दीप से फिरा आता था उसे बहते देखा और उसके गले की रत्नमाला से इसने जाना कि कोई बड़े घर की बेटी है इससे वह उसको यहाँ लाया (प्रसन्न होकर) सब भाति हमारे स्वामी की बढ़ती ही होती जाती है (विचार कर के) और हम ने भी उस कन्या को बड़े गौरव से रानी को सौंपा है यह बात अच्छी हुई । अब सुनने में आया है कि हमारे महाराज के व्याघ्रव्य कंचुकी और सिंहलेश्वर

का वसुभूति मंत्री जो राजकन्या के साथ चले थे वह दोनों किसी उपाय से बच कर समुद्र के किनारे लगे और वहां सेनापति रुमण्वान से जो कौशला नगरी जीतने गया था, मिल के यहाँ आ पहुँचे इन बातों से यद्यपि हमारे स्वामी का सब काम सिद्ध ही होता है तो भी हमारे जी को धीरज नहीं होता । हा ! सेवक का धर्म बड़ा कठिन है ।

यद्यपि स्वामिहि के हित कारन

मैंने सबै यह कात्र कियो है ।

देखहु तो यह भाग की बात

सु देव ने आय सहाय दियो है ॥

सिद्ध होइगो संसय नाहिं

सदा निहचै मन माह लियो है ।

तौह कियो अपने वित सों

यह सोचि डरै सब काल हियो है ॥

(नेपथ्य में कुलाहल होता है)

(कान लगा कर) अरे यह नगरनिवासियों के चाकर की धुन सुन पड़ती है । मृदंग भी कैसा मधुर बज रहा है और उसी के साथ कैसी मीठी मीठी तानें सुनाई देती हैं ऐसा अनुमान होता है अस वसन्तोत्सव में नगरवासियों ऐसा अनुमान है इस वसन्तोत्सव में नगरनिवासियों का कौतुक देखने को महाराज अटारी की ओर जाते हैं ।

ऊपर देखकर —

आहा ! महाराज तो अटारी पर आगए । देखो ।

याके राज बीच कहूँ विग्रह नहीं हैं अरु विग्रहरहित कामदेवहु सुहायो है । यह रति मान और वह रतिपति यह प्रजा चित वसे वह जगचित छायो है ॥ याको है वसन्तक परमसखा वाहू को वसन्त रितु मित्र यह जगबीच गायो है । आपुनो महोत्सव विलोकिये कों अनुरागी कामदेव मानो बत्सराज बनि आयो है ॥^१

तो घर जाकर अब जो करना है उसकी चिन्ता करूँ (चला जाता है)

इति विष्कम्भक । परदा गिरा ॥



१. अथवा यह पाठान्तर । दोहा ।

रति धर जन चित बसत बिन विग्रह मित्र वसन्त ।

आयो उत्सव लखन बनि बत्सराज रितु कन्त ॥

पाखंड विडंबन

पं. कृष्ण मिश्र के प्रबोध चन्द्रोदय नाटक के तीसरे अंक का यह अनुवाद है बाबू ब्रजरत्नदास इसे अपनी चाल का पहला नाटक मानते हैं। सम्भवतः भक्ति की पराकृष्टा और वैष्णवधर्म की विशिष्टता स्थापित करने की नीयत से भारतेन्दु ने इसे अनूदित किया। यह नाटक श्री छन्नूलाल द्वारा बनारस प्रिंटिंग प्रेस में सं. १९२९ में छपा। — सं०

॥पाखण्ड विडम्बन ॥

अर्थात्

प्रबोध चन्द्रोदय नाटक

का

तीसरा अंक

श्री मन्महाकवि कृष्ण मिश्र

का बनाया

तथा

श्रीहरिश्चन्द्रजी

ने

हिन्दी भाषा में हास्य रसिकों के आनन्दार्थ
॥अनुवाद किया॥

Benares :

Printed at the Benaras Printing Press
by Chhannu Lal

मेरे प्यारे!

भला इस्से पाखंड का विडम्बन क्या होना है यहाँ तो तुम्हारे सिवा सभी पाखंड हैं क्या हिन्दू क्या जैन क्योंकि मैं पूछता हूँ कि बिना तुमको पाप मत की प्रवृत्ति ही क्यों है तुम्हें छोड़ कर मेरे जान सभी भूटे हैं चाहे ईश्वर हो चाहे ब्रह्म चाहे बेद हो चाहे इंजील तो इस्से यह शंका न करना कि मैंने किसी मत की निन्दा के हेतु यह उलथा किया है क्योंकि सब तुम्हारा है इस नाते तो सभी अच्छा है और तुमसे किसी से संस्वध नहीं इस नाते सभी बुरे हैं। इन बातों को जाने दो।

क्योंजी ऐसे निटुर क्यों हो गये हो ? क्या तुम वह नहीं हो ? इतने दिन पीछे मिलना उस पर भी आँखें निगोड़ी प्यासी ही रहें; मुँह न छिपाओ देखो यह कैसा सुन्दर नाटक का तमाशा तुमको दिखाता हूँ क्योंकि जब तुम अपने नेत्रों को स्थिर करके यह तमाशा देखने लगोगे तो मैं उतना ही अवसर पा कर तुम्हारी भोली छवि चुपचाप देख लूँगा।

फाल्गुन सुदी १४ सं. १९२९,

तुम्हारा हरिश्चन्द्र ॥

॥ पाखंड विडम्बन ॥

॥ शान्ति और करुणा आती है ॥

शा.— (शोच से) मेरी प्यारी मां कहां है जल्दी मुझे अपना मुखड़ा दिखा । हा !

जो बन में सरितान के तीर

जहां बहे सीतल पौन सुहाई ॥

देवन के घर में ऋषि के घर में

जिन आपुनी आयु बिताई ॥

सज्जन के चित में जो रही हिय में

जिन पुन्य की वेलि बढ़ाई ॥

सो परी जाय पखंडिन के कर गाय

ज्यों बाधि के राखे कसाई ॥

अब मैं जी के क्या करूंगी क्योंकि —

मम देखे बिन न्हाय नहिं नहिं पियै नहिं खाय ।

मो बिन प्रान न रखिहै प्यारी श्रद्धा माय ॥

हा ! तो अब सरधा माता के बिना जीना तो दुःखही भोग करना है । सखी करुणा तू मेरा सोच मत करियो मैं शीघ्र ही आग में जल के अपनी मां के पास पहुंचुंगी ।

(रोती है)

करु.— (शोच से) सखी यह क्या करती है तेरा यह दुःख मुझ से सहा नहीं जाता, तू ऐसी बातें कह कर मुझे क्यों अघमरी किए देती है सखी धीरज धर और प्रान मत दे तब तक मैं उस को तीरथों में, गंगाजी के किनारों पर सुने बनों में, मुनी लोगों की कुटियों में और देवता के मन्दिरों में ढूंढ़ती हूँ ऐसा न हो कि वह महाराज महामोह के डर से कहीं छिप रही हो ।

शा.— सखी अकारण क्यों खोज करती है ? क्योंकि, —

कूल में छाड़ रहे है सिवार

घिरे हैं विखानस के समुदाई ।

त्यों घर ब्राह्मण के चरु सों

कुश सों समिधान सों राखे छिपाई ॥

चारहुआश्रम के इमि मूढन कामना की बहु बेलि बढ़ाई ।

बातद्वानाहि कहूँ सुनिए कित श्रद्धा गई कल्लु जान न जाई ।

करु.— सखी ऐसा कभी नहीं हो सकता क्योंकि वह तो सतोगुनी श्रद्धा है उसकी ऐसी दुरगत तो सपने में भी नहीं हो सकती ।

शा.— सखी जब देव फिर जाता है तो क्या क्या नहीं होता, देख

श्री रघुनाथ की प्रान पिया

मिथिलेस लली दस सीस चही है ।

वेद चुराय के दानव के गन

भागे पताल न जाय कही है ॥

वाम मदालसा जो सुरलोक की

सो छलकै खल दैत लही है ।

जो विधि बाम भयो सजनी तब

जो जो करै सो अचर्च नहीं है ॥

तो चल अब पाखण्डही के

घर में चल के खोज करै ॥

करु.— ठीक है चल ॥ (दोनों घूमती हैं)

करु.— (डर) सखी मुझे जल्दी बचा ॥

शा.— है ! क्या कोई राच्छस है ।

करु.— देख इधर देख यह सरीर में कीचड़ लगा कर अपने को मेला कुचैला बनाए नोचे खसोट वाल नंगा धिड़ंगा, खोड़े मैले दाँत भोड़ी भ्यावनी सूरत राच्छस की मूरत हाथ में भ्राडूसा एक मोरछल लिए इधर चला आता है ॥

शा.— सखी यह राक्षस नहीं है क्योंकि ऐसा बलवान नहीं जान पड़ता ।

करु.— तो सखी फिर यह कौन है ?

शा.— सखी हो नो हो वह पिशाच है ।

करु.— सखी दिन में पिशाच की गम कहाँ ?

शा.— तो कोई नरक से तुरत का ढकेला पापी होगा ।

(पास से देखकर और जान कर)

अरे जाना यह तो महाराज महा मोह का भेजा दिगंबर सिद्धान्त है तो इस्से दूरही रहना चाहिये (मुंह फेरती है)

करु.— सखी एक दो घड़ी यहीं ठहर तो सरधा को खोजें ॥

(दोनों किनारे खड़ी हो जाती हैं)

(ऊपर कहे हुए मेस से दिगम्बर सिद्धान्त आता है)

दिग.— नमो अर्हन्त नमो अर्हन्त ॥

नवद्वारोदेह धरतिसमा आतम दीप ।

जिनबररो सिद्धान्त यह देसी मोच्छ समीप ॥

अरे सुणौरे सरावगियो सुणौ : अरे,

रे रे प्रावक सुनो !

यामल रूपी देह मांकासी जलारी सुद्धि ।

आतम भिमल स्वभावछै यह रिषिआरी बुद्धि ॥

(ऊपर कान लगाकर)

क्या कहयो कौण रिसिआरी ? अरे सुण
जो न करी परनाम दै मिष्ट भोग सतकार ।
तो बैरहु तिन सों न कर जदपि रमत रिपि दार ॥

(वैसाही भेस बनाये श्रद्धा आती है)

श्र. — हुकम महाराज ॥

(शान्ति मूर्च्छा खाके गिरती है)

दिगं. — अरे सरावकारा कुल एक्क छिण मत
छोडिया ॥

श्र. — जो हुकम महाराज (जाती है)

करु. — सखी धीरज धर धिरज धर तू इतता
क्यों डरती है क्योंकि मैंने अहिंसा से सुना है कि
पाखंडियों को भी तमोगुण की बेंटी सरधा है इससे यह
तो तमोगुणी सरधा है ।

शा. — (उठ कर और अपने को सम्हाल कर)
सखी ठीक है ।

दुराचार में अति लपटाई ।

वेष कूरूप न देख्यो जाई ॥

बस विधि हीन अहै गुनमाहीं ।

माता की सरि कोउ विधि नाहीं ॥
तो अब हम लोग बौद्धों के घर में उसे खोजें ।

(शान्ति करुणा धूमती है)

॥ हाथ में पोथी लिए भिक्षुक बुद्धागम आता है ॥

भिक्षु. — (चिन्ता करके) अले अले उपाछको छुनो
छनो ।

छन छन मैं विगरत बनत जग ता भावहि मानि ।
छोड़ि बासना सकल भे मुक्त तत्व हम जानि ॥

(फिर कर बड़े चाव से)

अले अले अहाहा ! अले छावाछ छावाछ इछ धलम्म में
दोनों लोअ का छुख है ॥

लहने को मिआ घल छुन्दलछा अलु

भोजन को मिली छुंदल नानी ।

लददु अनेअन भोजन को मिए

छैन के एत ऐ छेज छुखाली ॥

के छलधा जुअती छव अंगन

लाओत तेअ फुएअ छुवाली ।

दे गलमें वहर्यां छुख छो इमि

बीअत है नित लात उजाली ॥

करु. — सखी यह ताड़ सा लम्बा बड़ा गेरुआ
काछे सिर मुंडा कौन है जो इधरी की ओर चला आता
है ?

शा. — सखी यह बुद्धागम है ॥

भिक्षु. — (ऊँचे सुरसे) अले अले उपाछको
अलेअले भिक्षुओ अले छुनो भगवान छौगत छुनो ।
(पुस्तक पढ़ता है)

अले भिक्षुओ अमदिव्य चच्छ छेछव लोकों की
दुलगइ छुलगइ छव देखते ऐ अले छव छंछार छनिकए
आम्मा थायी नईऐ अल्ले इच्छे जोऊके दाठभिक्षुओछे
जिय की लाअ अच्छी नई अलेबछवछ इनकी लाअ छे
(नेपथ्य की ओर देखकर) छलधेइधल आना इधल ॥
(श्रद्धाभिक्षुकी आती है)

श्र. — आज्ञा महाराज ॥

भिक्षु. — अले उपाछक औ भिक्षुओ छे
छव्वदालपती लहु ॥

श्र. — जो आज्ञा महाराज (जाती है)

शा. — सखी यह भी तामसी श्रद्धा होगी ।

करु. — सखी ऐसेही है ।

दिगं. — (भिक्षुक को देखकर बड़े ऊँचे शब्द से)
अरे अरे भिक्षुक इठे आ इठे आ म्हां तोसूं कछू
पूछांगा ।

भिक्षु. — (क्रोध से) हट पाप पिछाचकी
मूअतका वकताऐ ॥

दिगं. — अरे क्रोध क्यूं करेहै रे हों शस्त्रो
विचार पूछवावालोछूं ॥

भि. — अले छपनअ तू छ छतल वो जानताए
अच्छा देखतेए । (बैठकर) पूछका पूछताऐ ॥

दिगं. — अरे कहे छन विनास बालामत वारो
तेरो कसो ब्रतछे ।

भि. — (हिं) सुन छनछन में ज्ञान का नाश और
उदय होता है इस से जब कोई विज्ञान क्षन में प्रान त्याग
करता है तो उसकी मोक्ष होती है

दिगं. — अरे मूरख अरे जो कोई मन्वन्तर
माकोई रो मोछहोवा वालो छे वा भयो तौ वह तेरो
उपकार कैसे करेगो और पूछूं के यह धरम रो उपदेश
कोण ने कियो छे ॥

भि. — अले छलवगगबुध भगोआनने उपदेछ
कियाऐ ॥

दिगं. — अरे बुध्य सरवज छे यह धेने कहा
सूकादारे ॥

भि. — अले उनके छाछतलै छेछिध्यए ॥

दिगं. — अरे थोरी बुद्धि के अरे जो वाहीके कहेसूं
सर्वज्ञता होती होय तो हूं भी कहुं छू के हूंसर्वज्ञ छूं और
हूं भले जानू छूंजो हूं सर्वज्ञारो सर्वज्ञछूं और थैं और थारो
वाप बादे सात पुरषा म्हारे दास हैं ॥

भि. — अले पाप पिछाच अले मैया कुबेआ अले

हम तेएदछऐले ॥

दिगं.— अरे दासियों के दास ! यह तो मैंने एक दृष्ट्यांत दियो और अब तेरे हित की कहूं सुन बुद्ध को धरम छोड़ि और अहंन्त को धम्म ले ।

भि.— अले पापी आप नाछ ओ कल दूछलों को बी नाछ कलताए ॥

(हि) छोड़िसवै वरवार कौ करिनिदित के कर्म ।

भयो पिशाच समान तू लो जैनिन के धर्म ॥

औल बी जैन धलम्म को छलवगता तेने केछे जानी ।

दिगं.— अरे ग्रहनक्षत्र चन्द्र सूर्य ग्रहनके ज्ञान के संवाद का देखवाही सूं भगवान अरहंत री सर्वज्ञता प्राटथायछे ॥

भि.— (हंसकर) अले जोतिछ छाछतल तो अनादिऐ न जानै किछ ने तुमलोओको धोखा दे कल इछ धलाम्मे लखहै ॥

(हि) है जितनो बड़ो देह को पिंडक जीवहू तैसइ रूपहि धारिहै । तासों नजानिहै और कछू निजदेहही की सब बात सम्हारिहै । जीकी नहीं गति दूसरे लोक में सो किमि बात कहूँको विचारिहै । कुंभके भीतर दीप टंक्यौ सो न बाहर क्यौँहूँ प्रकाश पसारिहै ॥

इछछे दोनों लोअ-बिलुद्ध जैनमत छे छगत भगवा नहीं का मत अच्छाए इछमों छदेअ कुछ नइऐ ॥

शा.— सखी चल उधर चलै ।

कर.— चल सखी ।

(दोनों धूमती हैं)

शा.— सखी देख यह सामने सोमसिद्धान्त जाता है तो चल इसके पीछे चलै ॥

(कापालिक का रूप धारण किये सोमसिद्धान्त आता है)

कापा.— (धूमकर)

हाड़को कंठ में चार माला धरे ।

देखते जोगकी दृष्ट मंभार से

एक श्री संभु से भिन्न संसार से ॥

दिगं.— अरे यह पुरुष कापालिक व्रत धारहै तौयासूं होइ कछु पूछूं (पास जाकर) बोल रे बोल कापालिका तू अरे । हाड़ और मूढ़ को कंठ माला धरे ॥ कौनसो धर्म रे कौनसो धर्म है । मोक्ष जामें मिले सो कसोकर्म है ॥

कापा.— अरे छपनक सुन जो हम लोगों का धर्म हैं ॥

नित सीस के काटे लहसों भरे

चरबी लगे मासको होमकरै ।

पुनि खोपड़ी ब्राह्मन जात की

लाइ कै पारन के हित मद्यभरै ॥

अरु काटिकै कंठ कठोर तुरंतके

रक्तन कुंभ भराइ धरै ।

ममदेवता भैरव नाथ जू है

जिन्हें पूजन लोग अनेक तरै ।

भिधु.— (दोनों कान मूढ़ कर) बुद्ध बुद्ध अले बला कथिन धलम्मऐ ।

दिगं.— अहंन्त २ अरे कोऊ बड़े पापी ठगियाने य विचाराकूं ठगलियोछे ॥

कापा.— (क्रोध से) क्योँरे पाप पखंडियों से नीच, मुड़ मुड़े, नोचे खसोटे अरे चौदहो भुवन के स्वामी स्थिति उत्पत्ति प्रलय पालन करने वाले वेदान्त वेद्य भगवान् भवानीनाथ का मत ठगों का है क्योँरे अरे सुन इस मत की महिमा ।

हरिहर आदिक देव गनन को बाधि मंगाऊं ।

नभ पप मैं नक्षत्रन की गतिरोकि थिराऊं ॥

परबत नदी समुद्र नगर नर सह यह धरनी ।

एक प्याले में घोरिपिऊं यह सुनि मम करनी ॥

दिगं.— अरे कपलिआ सोई तो कहूं छूं कै काहू इन्द्रजाल वारेने तोंकूं इन्द्रजाल दिखाइ कै भरमाइ दियो छे ।

कापा.— अरे पापी फिर भी भगवान पर इन्द्रजाल वाले का आक्षेप करता है ? तो अब इसका घमंड दूर करना चाहिए (खंग खींच कर) तो अब मैं । अबो खींचकै खंग की तीक्ष्ण धारै ।

गरौ काटिकै दुष्टकों मारि डारै ॥

लग्यो फेन ताजो लहू यासु लैहों ।

अबै हों भवानी भवै तृप्ति देहों ॥

(खंग लेकर दौड़ता है)

दिगं.— (डर से) महाभाग 'अहिंसा परमो धर्मः ॥'

(भिधुक की गोद में छिपता है)

भि.— (कापालिक को निवारण करके) महालाज महालाज हंछी की बकवाद में इस तपच्छीको बध उचित नइऐ ॥

(कापा : खंग मियान में रखता है)

दिगं.— (फिर उठ कर) जो महाराज रो क्रोध शान्त भयो होय तो हों कछू पृथिवेकी इच्छा कहूं छूं ॥

कापा.— पूछ क्या पूछता है !

दिगं.— आप को धरम्म तो सुन्यौ पर मोक्ष को सुख कशो होयछे ।

कापा.— सुन ।

हे न कछु विन भोग के या जग
कौन जो दूसरी सुःख बतावै ।
मानिके वेदन ज्ञानहि छाड़िके हवै

पथरा निज मुक्ति बनावै ॥
पारबती समप्यारिन सों बिहरै
रतिमें मुख सों मुखलावै ।
हवै शिव नाचै अनंद भरो जग

मैं सुख सो निज काल बितावै ॥
भि.— महालाज बैलागिओ को तो ऐछी मुक्ति न
बच्छी लपे गी ॥

दिगं.— अरे खप्परवारे जो तू रीसै न तो हों यह
पूछूँ जो शरीर और प्रेम दोऊ होत हूँ मुक्ति तो वेद में
नहीं ।

कापा.— (आप ही आप) अरे इनके वित्त में
तनिक भी श्रद्धा नहीं है । अच्छा देखो (प्रकाश) श्रद्धे
इधर तो आना ।

(कपालिनी बनी हुई श्रद्धा आती है)

कण्ठ.—

सखी देख यह रजोगुण की बेटी श्रद्धा है ।
दृग्जुग अलसाने कंज से नील सोहैं ॥
जुवजन गलमाला अस्थिकी देखिमोहैं ।
कुच अरु उरु भारैं चाल धीरी लईहैं ।
मुख छवि यह देखौ चन्दकी सी भई हैं ॥

श्र.— (धूमकर) रावलजी मैं आई कहिये क्या
आज्ञा है ।

कापा.— प्यारी पकड़ तो इस भिक्षुक को ।
(श्रद्धा भिक्षुक को लपट जाती है)

भिक्षुक.— (लपट कर और रोमांच दिखाकर)
वाहले कपालिनी का लपटनेका छुछ ।— (हिंदी में)
बार अनेकन रंडन को हम लैं निज कंठ लगायो ।
चूमि मुखै गल मैं भुज डालि सदा निज जन्म बितायो ॥
औरहु भोग अनेक किए कुच वारिनकों लपटायो ।
जो सुख मोहि कपालिनि दीनन सो कबहुँ हम पायो ॥

अले कपालिक चलितल बला पवित्तलपे अहाहा
अले छोम छिद्धान्त इच्छा कलनेके जोगए अले यह बला
अचलज धलमए महालाज हमने आजख बुद्ध का मत
छोआ ओल कोल धलम लिआ आप हमाले आचलज
ओ हम आप के छिछ भए छो अब हमको पलमेछुली
दिच्छा दीजिए ।

दिगं.— अरे भिक्षुक तू अभी कपालिनी के संग
सूँ इषित होयगयो सो दूर हट ॥

भि.— अले दिगंवल तू अभी कपालिनी का छुछ

काजाने ॥

कापा.— प्यारी पकड़ इसको भी ।

(श्रद्धा दिगंबर को लपटती है)

दिगं.— (रोमांचित होकर) अहाहा ! वाहरे !
कपालिनी गल लाग वारोसुःख अरी सुंदरी एकवार तो
फेर गरेसू लपटिजा (स्वगत) अरे ऐसी समय नागो
रहिवो उचित नहीं तासू लंगोटी लगायलऊ तो ठीक परे
(लंगोटी कसकर) अहाहा ! (गाता है)

अरें सुण पीणपयोधर वारी ।

यारे इन नेणा री सोमा भृगन लजावन हारी ॥
रीकपालिनी जौं तू म्हासूँ रमण करै मिलि प्यारी ।
तो सरावगिणि और जतिण रो काम कछु न यहारी ॥
अरे कपालिक रा दरसनही मोच्छको सुख छै ।
अरे आचारज हूं धारोसेवकछूं हमकुं भैरवीदिच्छा
ध्यानसुंदै ।

कापा.— अच्छा बैठो ।

(दोनों बैठते हैं)

(कापा : हाथ में बोतल लेकर ध्यान करता है)

श्र.— रावलजी बोतल मद से भर गया ।

कापा.— (देखकर और कुछ पीकर शेष भिक्षुक
को देता है)

यह पवित्र भवभयहरन । अमृत पियो इक साथ ॥
करम पास यासों कटत । भाखत भैरवनाथ ॥

(दोनों कुछ संकोच करते हैं)

दिगं.— अरे । म्हारे अर्हन्तानुशासन में मद
पीवारी आज्ञा तो कोई नहीं ॥

भि.— अले कपालिक की जूथी मदिला कैछे
पियेगे ।

कापा.— क्या सोचते हो ? श्रद्धे इन दोनों का
पशुत्व अब भी नहीं गया ये हमारे पीने से मदिराको जूठी
समझते हैं इससे तू अपने अधर के रस से इसको
पवित्र कर के इन दोनों को दे क्योंकि कथा वाले भी
कहते हैं 'स्त्री मुख तु सदा शुचि ।'

श्र.— महाराज को जो आज्ञा (आप पीकर बोतल
भिक्षुक को देती है)

भि.— महापछादपे (बोतल लेकर पीता है) अहा
कैछी छुंदल दुधियाए ॥

बहुवार बारबधून के संग पान हम मद को कर्यौ ।
जो अधर मधु के संग मौलसिरी सुगंधन सो भर्यौ ॥
यह तो सुवासित आप जोगिन वदन संगमजानही ।
जेहि जानि दुरलभ देवगन लैं अमृत बहु सुख मानही ॥

दिगं.— अरे भिक्षुक सब आपही आप मत पीजा
कापालिनीरी जूठी मीठी मदिरा थोड़ी म्हारे कूँ बी तो
छोड़ ।

(भि : दिगम्बर को बोलत देता है)

दिगं.— (पीकर) अहाहा वाह रे या मदिराकी
मिठास वाह रे स्वाद वाह रे सुगंध वाह रे मादकता अरे
मैं तो अहँत के मतमे रह्यौ सो ऐसी मदिरा दिना बहुत
ही ठग्यो गयौ अरे भिक्षुक मेरोतो माथो घूमे छै तासो हूँ
तो सोऊँगो ॥

भि.— बहुत धीकए (दोनों) लेटते हैं)

कापा.— प्यारी यह आज बिना मोल के दो दास
मिलेहैं तो उठ इस आनंद में हमलोग नृत्य करें (दोनों
नाचते हैं)

दिगं.— अरे भिक्षुक यह कापालिक अरे हौं
भूल्यो आचारज कापालिनी के संग नाच रह्यौ छै तो
हमबेऊ क्यौन नाचैं ॥

भि.— धीकए (दोनों) नाचते हैं)

दि.— ("अरे सुण पीणापयोधर वारी . . .")

यह गाता है और गिरता २ नृत्य करता है)

भि.— आचालज ! इछ मतसे यह आचलज ऐ
कि बिना पलिछलमही छव छिदिमिलतीये ॥

कापा.— अरे तुने इसमे आश्चर्य क्या समझा ॥
जाहि विलोकौबने सोई सिद्ध धरुं

निज चित्त जो सोई करौं ॥

अरु काम कलान की बातें अनेक

पढ़ाइ सिखाइ कै कष्ट हरीं ॥

पुनि मोहन मारन कर्षन थोभन

आदि अनेकन सिद्धिमरौं ।

वह कौनसी कामना जोनमिले

जिय यामे कछुन सदेह धरौं ॥

दिगं.— अरे कापालिक (कुछ ठहरकर) नई
आचारज वा आचार्य रावलजी श्री आन
महाराज ॥

भि.— अले इछ विचाले तपछली ने कबी मद
पान तो कियाई नई था इच्छे बावला ओगयाए महालाज
आप इछका मद उताल दीजिए ॥

कापा.— ठीक है (अपने जूठे पान की सीठी देता
है) ।

दिगं.— (जाकर और स्वस्थ होकर) आचार्य हों
यह पूछ के जैसी या मदिरा में आहरन सिद्धिछे वैसी
स्त्री पुरुष के आहरण मैं छे के नहीं ॥

कापा.— अरे यह क्या पूछता है देख ।
सुर मुनि विद्याधर की नारी ।

यक्षरक्ष किन्नर की प्यारी ॥

स्वर्ग भूमि पाताल छिपाई ।

भोगैं सब विद्या बल लाई ॥

दिगं.— (कुछ उंगलियों पर गिनकर) सुणौ
सुणौ अरे हमने गनित सूजान्यो के हम सब महा मोह के
किंकर हैं ।

दोनो.— (स्वर्ण आनानाट्य करके) ठीक है
आपने बहुत ठीक समझा है ।

दिगं.— तो अब राजा को कछु काम करो ।

कापां.— वह क्या ।

दिगं.— धर्म री बेटी श्रद्धा कूँ पकड़ कै महाराज
रे पास ले चलो ॥

कापा.— बोल वह दासी की पुत्री कहाँ है अभी
उस्को विद्या के बल से खींच मंगाता हूँ ।

दिगं.— (खड़ी लेकर गणित करता है)

शा.— सखी देख यह सब माता की बात करते हैं
इस्से कान लगा कर सुनना चाहिए ।

करु.— सखी ठीक है (दोनों सुनती हैं)

दिगं.— (विचारकर)

नहिं जल थल पाताल मैं, गिरवर हूँ मैं नाहिं ।

कृष्ण भक्ति के संग वह, बसत साधु चित माहिं ॥

करु.— सखी बधाई है ! सुन तेरी मा श्रद्धा श्री
कृष्ण को भगित महारानी संग है ॥

(शा : हर्ष नाट्य करती है)

कापा.— और कामदेव के डर से भागकर धर्म
कहाँ छिपा है ॥

(दिगं : गिनकर "नहिं जल थल, . . ." फिर से पढ़ता
है)

कापा.— (शोक से) हा महाराज के बुरे दिन
आए ।

हरिमणित सबै कछु सिद्ध करे ।

सरधा सतकन्या का दोस हरे ।

पुनि धर्महूँ सो कर छूटि गयो ।

सबहु विधि हाय अनर्थ भयो ॥

जो होय प्राण रहे तक तो स्वामी का काम साधना ही

है तो अब हम महाभैरवी विद्या का प्रयोग करके धर्म

और श्रद्धा को खींचते हैं ।

॥ चारों जाते हैं ॥

शा — सखी चल हम लोग भी इन पापियों का
मनोरथ देवी विष्णु भक्ति से कहें ।
॥दोनों जाती हैं॥

॥जवनिका पतन॥
इति श्री प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में पाखंड विडम्बन नाम
यह तीसरा खेल समाप्त हुआ ।



वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति प्रहसन

परिहास पूर्ण शैली का यह नाटक सं. १९३० के शुरू में लिखा गया । २१ जून १८७२ के 'कविवचन सुधा' के अंक में इस नाटक के पूरे होने की सूचना छप चुकी थी । इसका पहला संस्करण मेडिकल हाल प्रेस से सन् १८७३ में निकला । बाद में १८८४ में इसे भारत जीवन प्रेस ने भी छपा ।

— सं०

DEDICATION

प्यारे,

मैं तुम्हें क्या तमाशा दिखाऊंगा हां धन्यवाद करूंगा क्योंकि निस्संदेह तुमने ऐसा तमाशा दिखाया कि सब कुछ भूल गया, अहा ! स्त्री पुरुष, पंडित मूर्ख, अपना बिगाना और छोटे बड़े सबका तमाशा देखा पर वाह ! क्या ही तमाशा है — तमाशा तो है पर देखनेवाले थोड़े हैं, न हो तुम देखो मैं देखूँ उन्हीं तमाशाओं में से यह भी एक तमाशा है देखो ।

श्रावण शुद्ध ११
सोम — सं० १९३०

तुम्हारा
हरिश्चन्द्र

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

प्रहसन

नांदी

दोहा

बहु बकरा बलि हित कटै, जाके बिना प्रमान ।
सो हरि की माया करै, सब जग को कल्यान ॥

(सूत्रधार और नटी आती हैं)

सूत्रधार—अहा हा ! आज की संध्या की कैसी शोभा है । सब दिशा ऐसी लाल हो रही है, मानों किसी ने बलिदान किया है और पशु के रक्त से पृथ्वी लाल हो

गई है ।

नटी— कहिए आज भी कोई लीला कीजिएगा ?

सूत्र.— बलिहारी ! अच्छी याद दिखाई, हां जो लोग मांसलीला करते हैं उनकी लीला करैंगे ।

(नेपथ्य में) अरे शैलूषाधम ! तू मेरी लीला क्या करेगा । चल भाग जा, नहीं तो मुझे भी खा जायेंगे ।

(दोनों सभय) अरे हमारी बात गृध्रराज ने सुन ली, अब भागना चाहिए नहीं तो बड़ा अनर्थ करेगा ।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना

प्रथम अंक

स्थान रक्त से रंगा हुआ राजभवन
(नेपथ्य में) बड़े जाइये ! कोटिन लवा बटेर के
नाशक, वेद धर्म प्रकाशक, मंत्र से शुद्ध करके बकरा
खानेवाले, दूसरे के मांस से अपना मांस बढ़ानेवाले,
सहित सकल समाज श्रीगृधराज महागर्जाधिराज !

(गृधराज, चोबदार, पुरोहित और मंत्री आते हैं)

राजा— (बैठकर) आज की मछली कंसी
स्वादिष्ट बनी थी ।

पुरोहित— सत्य है । मानो अमृत में डूबोई थी
और ऐसा कहा भी है —

कंचित वदन्त्यमृतमांस्त सुरालयेषु कंचित वर्दान्त
वनिताधरपल्लवेषु ।

ब्रह्मो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षा : जंबीरनीर-
परिपूरितमत्स्यखण्डे ॥

राजा— क्या तुम ब्राह्मण होकर ऐसा कहते
हो ? ऐं तु साक्षात् ऋषि के वंश में होकर ऐसा कहते
हो !

पुरो.— हां हां ! हम कहते हैं और वेद, शास्त्र,
पुराण, तंत्र सब कहते हैं । "जीवो जीवस्य जीवनम्"

राजा— ठीक है इसमें कुछ संदेह नहीं है ।

पुरो.— संदेह होता तो शास्त्र में क्यों लिखा
जाता । हां बिना देवी अथवा भैरव के समर्पण किए
कुछ होता हो तो हो भी ।

मंत्री— सो भी क्यों होने लगा भागवत में लिखा
है ।

"लोके व्यवर्थाभिषमद्यसेवा नित्यास्त जन्तोर्नाह तत्र
चोदना ।"

पुरो.— सच है और देवी पूजा नित्य करना
इसमें कुछ सन्देह नहीं, और जब देवी की पूजा भई तो
मांस भक्षण आही गया । बलि बिना पूजा हो ही गो नहीं
और जब बलि दिया तब उसका प्रसाद अवश्य ही लेना
चाहिये । अजी भागवत में बलि देना लिखा है, जो
वैष्णवों का परम पुरुषार्थ है ।

'धूपोपहारबालाभस्सर्वकामवर्धश्वरी'

मंत्री— और 'पंचपंचनखा भक्ष्या : ' यह सब
वाक्य बराबर से शास्त्रों में कहते ही आते हैं ।

पुरो.— हां हां, जो इसमें भी कुछ पूछना है अभी
साक्षात् मनु जी कहते हैं —

'न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने'
और जो मनुजी ने लिखा है कि —

'स्वमांसं परमांसेन यो वर्दीयतुमिच्छति'

सो वही लिखते हैं ।

'अनभ्यर्च्य पितृन् देवान'

इससे जो खाली मांस भक्षण करते हैं उनको दोष है ।
महाभारत में लिखा है कि ब्राह्मण गोमांस खा गय पर
पितरों को समर्पित था इससे उन्हें कुछ भी पाप न
होता ।

मंत्री— जो सच पृछो तो दोष कुछ भी नहीं है
चाहे पूजा करके खाओ चाहें वैभे खाओ ।

पुरो.— हां जी यह सब मिथ्या एक प्रपंच है,
खूब मजे में मांस कचर-२ के खाना और चैन करना ।
एक दिन तो आखिर मरना ही है, किस जीवन के वास्ते
शरीर का व्यर्थ वैष्णवों की तरह कलेश देना, इससे
क्या होता है ।

राजा— तो कल हम बड़ी पूजा करेंगे एक लाख
बकरा और बहुत से पक्षी मँगवा रखना ।

चोबदार— जो आज्ञा ।

पुरो.— (उठ कर के नाचने लगा) अहा हा !
बड़ा आनंद भया, कल खूब पेट भरेंगा ।

(राग कान्हड़ा ताल चर्चरी)

धन्य वे लोग जो मांस खाते ।

मच्छ बकरा लवा ससक हरना चिड़ा

भेड़ इत्यादि नित चाभ जाते ।

प्रथम भोजन बहिर होइ पूजा सुनित

अतिही सुखमा भरे दिवस जाते ।

स्वर्ग को वास यह लोक में है तिन्हें

नित्य एहि रीति दिन जे बिताते ।

(नेपथ्य में वैतालिक)

राग सोरठ

सुनिण चित धार यह वान ।

बिना भक्षण मांस के सब व्यर्थ जीवन जात ।

जिन न खायो मच्छ जिन नाहिं कियो मंदिरा पान ।

कछु कियो नाहिं तिन जगत में यह सु निहचै जान ॥

जिन न चुर्यो अधर सुंदर और गोल कपोल ।

जिन न परस्यो कंभ कच नाहिं लखी नासा गोल ॥

एकह निर्स जिन न कीना भोग नाहिं रस लीन ।

जानिए निहचै ते पशु हैं तिन कछ नाहिं कीन ।

दोहा

एहि आसार संसार में, चार वस्तु हैं सार ।

जुआ मंदिरा मांस अरु, नारी संग विहार ॥

क्योंकि —

"मांस एव परो धर्मो मांस एव परा गतिः ।

मांस एव परो योगी मांस एव परं तपः ॥"

हे परम प्रचण्ड भूजदण्ड के बल से अनेक पाखण्ड के खण्ड को खण्डन करनेवाले, नित्य एक अज्ञापुत्र के भक्षण की सामर्थ्य आप में बढ़ती जाय और आस्थ माला धारण करनेवाले शिवजी आप का कल्याण करें आप बिना ऐसी पूजा और कौन करे। (आकर बैठता है)

पुणे.— वाह वाह ! सच है सच है ।

(नेपथ्य में)

पत्नीहीना तू या नारी पत्नीहीनस्तु न : पुमान् ।
उभाभ्यां षण्डरण्डाभ्यान् दोषो मनुरब्रवीत् ॥

(सब चर्कित होकर)

ऐसा मालूम होता है कि कोई पुनर्विवाह का स्थापन करने वाला बंगाली आता है ।

(नगे सिर बढ़ी धोती पहने बंगाली आता है)

बंगाली— अक्षर जिसके सब बे मेल, शब्द सब बे अर्थ न छंद वृत्ति, न कृच्छ्र, ऐसे भी मंत्र जिसके भूँह से निकलने से सब कार्यों के सिद्ध करने वाले हैं ऐसी भवानी और उनके उपदेष्टा शिवजी इस स्वतंत्र राजा का कल्याण करें ।

(राजा दण्डवत् करके बैठता है)

राजा— क्यों जी भट्टाचार्य जी पुनर्विवाह करना वा नहीं ।

बंगाली— पुनर्विवाह का करना क्या ! पुनर्विवाह अवश्य करना । सब शास्त्र की यही आज्ञा है, और पुनर्विवाह के न होने से बड़ा लोकसान होता है, धर्म का नाश होता है, ललनागन पृश्चली हो जाती हैं जो विचार कर देखिए तो विधवागन का विवाह कर देना उनको नरक से निकाल लेना है और शास्त्र की भी आज्ञा है ।

“नष्टे मृत्ये प्रब्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ।
पंचस्वापत्स् नारीणां पातरन्यो विधीयते ॥”
ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेद्यती गच्छेत्तर्पास्वनी !
अस्त्रीको विधवां गच्छेन्न दोषो मनुरब्रवीत् ॥

राजा— यह वचन कहाँ का है ?

बंगाली— यह वचन श्रीपराशर भगवान का है जो इस युग के धर्मवक्ता हैं यथा —

‘कलौ पाराशरी स्मृतिः’

राजा— क्यों पुरोहितजी, आप इसमें क्या कहते हैं ?

पुणे.— कितने साधारण धर्म ऐसे हैं कि जिनके न करने से कुछ पाप नहीं होता, जैसा —
“मध्याह्ने भोजनं कुर्यात्” तो इसमें न करने से कुछ पाप नहीं है, वरन व्रत करने से पुण्य होता है ।

इसी तरह पुनर्विवाह भी है इसके करने से कुछ पाप नहीं होता और जो न करे तो पुण्य होता है । इसमें प्रमाण श्रीपाराशर्य स्मृति में —

“मृते भर्तार या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता ।
सा नारी लभते स्वर्गं यावच्चर्चाद्वादिवाकरो ।”

इस वचन से, और भी बहुत जगह शास्त्र में आज्ञा है, सो जो विधवा विवाह करती हैं उनको पाप तो नहीं होता पर जो नहीं करतीं उनको पुण्य अवश्य होता है और व्यभिचारिणी होने का जो कहो सो तो विवाह होने पर भी जिस को व्यभिचार करना होगा सो करें ही गी जो आप ने पूछा वह हमारे समझ में तो यों आता है परन्तु सच पूछिए तो स्त्री तो जो चाहे सो करे इन को तो दोष ही नहीं है —

‘न स्त्री जारण, दार्यात्’ । ‘स्त्रीमुखं तु सदा शूचि’ ।

स्त्रियस्समस्ताः सकला जगत्सु’ । ‘व्यभिचारादृती शुद्धः ।

इनके हेतु तो कोई विधि निषेध है ही नहीं जो चाहें करें, चाहें जितना विवाह करें, यह तो केवल एक बखेड़ा मात्र है ।

(सब एक मुख हो कर) सत्य है, वाह वे क्यों न हो यथार्थ हैं ।

चोबदार— सन्ध्या भई महाराज !

राजा— समा समाप्त करो ।

इति प्रथमांक

द्वितीय अंक

स्थान पुत्राघर ।

(राजा, मंत्री, पुरोहित और उक्त भट्टाचार्य आते हैं । और अपने-अपने स्थान पर बैठते हैं)

चोबदार— (आकर) श्रीमच्छंकराचार्य मतान्-यासी कोई वेदांती आया है ।

राजा— आकरपूर्वक ले आओ ।

(विदूषक आया)

विदूषक— हे भगवान इस वक्तावादी राजा का नित्य कल्याण हो जिससे हमारा नित्य पेट भरता है । हे ब्राह्मण लोगों ! तुम्हारे मुख में सरस्वती हंस सहित वास करें और उसकी पूंछ मुख में न अटकें । हे पुरोहित, नित्य देवी के सामने मराया करो और प्रसाद खाया करो ।

(बीच में चुरा फेर कर बैठ गया)

राजा— ओं मुख फिर के बैठ ।

विदू.— ब्राह्मण को मुख कहने हो फिर हम नहीं जानते जो कुछ तुम्हें यह मिला, हा !

राजा — चल मूझ उदईड को कौन दंड देनेवाला है ।

विद्व. — हां फिर मालूम होगा ।
(वेदांती आए)

राजा — बैठए ।

वेदांती — अद्वैतमत के प्रकाश करनेवाले भगवान शंकराचार्य इस मायाकल्पित मिथ्या संसार से तुझको मुक्त करें ।

विद्व. — क्यों वेदांतीजी, आप मांस खाते हैं कि नहीं ?

वेदांती — तुमको इससे कुछ प्रयोजन है ?

विद्व. — नहीं, कुछ प्रयोजन तो नहीं है । हमने इस वास्ते पछा कि आप वेदांती अर्थात् बिना दाँत के हैं सो आप भक्षण कैसे करने होंगे ।

(वेदांती टेढ़ी दृष्टि से देखकर चुप रह गया । सब लोग हँस पड़े)

विद्व. — (बंगाली से) तुम क्या देखते हो ? तुम्हें तो चैन है । बंगाली मात्र अच्छ भोजन करते हैं ।

बंगाली — हम तो बंगालियों में वैष्णव हैं । नित्यानंद महाप्रभु के संप्रदाय में हैं और मांसभक्षण कर्माप नहीं करने और अच्छ तो कुछ मांसभक्षण में नहीं ।

वेदांती — इसमें प्रमाण क्या ?

बंगाली — इसमें यह प्रमाण कि मत्स्य की उत्पाति वीर्य और रज से नहीं है । इनकी उत्पाति जल से है । इस हेतु जो फलादिक भक्ष्य हैं तो ये भी भक्ष्य हैं ।

पुरो. — साधु-साधु ! क्यों न हो । सत्य है ।

वेदांती — क्या तुम वैष्णव बनते हो ? किस संप्रदाय के वैष्णव हो ?

बंगाली — हम नित्यानंद महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के संप्रदाय में हैं और श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण ही हैं, इसमें प्रमाण श्रीभागवत में —
कृष्णवर्ण त्विषा कृष्णं सांगोपांगाम्भार्यदिः ।
यज्ञैः संकीर्तनप्रार्थैर्यजान्त ह्यणुमेधसा ॥

वेदांती — वैष्णवों के आचार्य तो चार हैं । तो तुम इन चारों से विलक्षण कहाँ से आए ?
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः ।

राजा — जाने दो, इस कोरी बकवाद का क्या फल है ?
(नेपथ्य में)

उमासहाय परमेश्वरं विभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं दयालुम् ।

(पुनः) गोविन्द नारायण माधवेति ।

पुरो. — कोई वैष्णव और शैव आते हैं ।

राजा — चोबदार जा करके आदर से ले आओ ।
(चोबदार बाहर गया, वैष्णव और शैव को लेकर फिर आया)

(राजा ने उठकर दोनों को बैठाया)

दोनों — शंख कपाल लिए कर मैं, कर दूसरे
चक्र त्रिशूल सुधारें ।

माल वनी माण अस्थ की कंठ मैं

नेत्र दसो दाँस माँझ पसारें ॥

राधिका पारवती दाँस वाम,

सबै जगनाशन पालनवारें ।

चंदन भस्म को लेप किए हार ईश,

हरैं सब दुःख तुम्हारें ॥

बंगाली — महाराज, शैव और वैष्णव ये दोनों मत वेद के बाहर हैं ।

सर्वे शाक्त द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः ।

आर्द्रदेवीमृपासन्ते गायत्री वंदमातरम् ॥

तथा — तस्मान्माहेश्वरी प्रजा ।

इस युग का शास्त्र तंत्र है ।

कृते श्रुत्युक्तमार्गाश्च त्रेतायां स्मृतिर्भाषिताः ।

द्वापरे वै पुराणोक्ताः कलावागमसंभवाः ॥

विद्यासुन्दर पेज न. १३ फाइल विद्या. ०३ हिस्स १

शैव — मुंह समहाल के बोला करो, उस श्लोक का अर्थ सुनो, सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ताः परंतु, शैवा वैष्णवा न शाक्ताः प्रोक्ताः । जो केवल गायत्री की उपासना करते हैं वे शाक्त हैं । 'पुराण हरिणा प्रोक्तौ मार्गौ द्वौ शैववैष्णवौ' । और वेदां करके वेच शिव ही हैं ।

बंगाली — भवव्रतधारा ये च ये च तान्समनुव्रताः पाश्चाण्डिनश्च ते सर्वे सच्छास्त्रार्गपन्थिनः ॥
इस वाक्य में क्या कहने हैं ?

शैव — इस वाक्य में ठीक कहने हैं । इसके आगेवाले वाक्यों से इसको मिलाओ । यह दोनों तार्त्रिकों ही के वास्ते लिखते हैं । वह शैव कैसे कि —
'नष्टशोचा मूढधियो जटा भस्मास्थिधारिणः ।
विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र देवं सुरासवम् ॥
तो जहाँ देव सुरा और आसव यही हैं अर्थात् तार्त्रिक शैव, कुछ हम लोग शुद्ध शैव नहीं ।

राजा — भला वैष्णव और शैव मांस खाते हैं कि नहीं ?

शैव— महाराज, वैष्णव तो नहीं खाते और शैवों को भी न खाना चाहिए परंतु अब के नष्ट बुद्धि शैव खाते हैं ।

पुरो.— महाराज, वैष्णवों का मत तो जैनमत की एक शाखा है और महाराज दयानंद स्वामी ने इन सबका खूब खण्डन किया है, पर वह तो देवी की मूर्ति भी तोड़ने को कहते हैं । यह नहीं हो सकता क्योंकि फिर बलिदान किसके सामने होगा ?

(नेपथ्य में) नारायण

राजा— कोई साधु आता है ।

(धूर्तशिरोमार्ण गंडकीदास का प्रवेश)

राजा— आइए गंडकीदास जी ।

पुरो.— गंडकीदासजी हमारे बड़े मित्र हैं । यह और वैष्णवों की तरह जंजाल में नहीं फँसे हैं । यह आनंद से संसार का सुख भोग करते हैं ।

गंडकी— (धीरे से पुरोहित से) अजी, इस सभा में हमारी प्रतिष्ठा मत बिगाड़ो । वह तो एकांत की बात है ।

पुरो.— वाह जी इसमें चोरी की कौन बात है ?

गंडकी— (धीरे से) यहाँ वह वैष्णव और शैव बैठे हैं ।

पुरो.— वैष्णव तुम्हारा क्या कर लेगा ! क्या किसी की डर पड़ी है ?

विदु.— महाराज, गंडकीदासजी का नाम तो रंदादासजी होता तो अच्छा होता ।

राजा— क्यों ?

विदु.— यह तो रंदा ही के दास है ।

आशंखचक्रांकितबाहुदण्डा गृहे समालींगितबालारण्डा :

अथच — भण्डा भविष्यान्ति कलौ प्रचण्डा :

रण्डामण्डलमण्डनेषु पटवो धूर्ताः कलौ वैष्णवाः ।

शैव, वैष्णव और वेदांती— अब हम लोग आज्ञा लेते हैं । इस सभा में रहने का हमारा धर्म नहीं ।

विदु.— दंडवत, दंडवत जाइए भी किसी तरह ।

(सब जाते हैं)

विदु.— महाराज, अच्छा हुआ यह सब चले गए । अब आप भी चले । पूजा का समय हुआ ।

राजा— ठीक है ।

(जर्जनाका गिरती है)

तृतीय अंक

स्थान राजपथ

(पुरोहित गले में माला पहिने टीका दिए बोटल लिए उन्मत्त सा आता है)

पुरो.— (धूमकर) वह भगवान करै ऐसी पूजा नित्य हो, अहा ! राजा धन्य है कि ऐसा धर्मानुष्ठ है, आज तो मेरा घर मांस मदिरा से भर गया । अहा ! और आज की पूजा की कैसी शोभा थी, एक ओर ब्राह्मणों का वेद पढ़ना, दूसरी ओर बलिदानवालों का क्रुद-क्रुदकर बकरा काटना 'वाच' ते शुधामि', तीसरी ओर बकरों का तड़पना और चिलाना, चौथी ओर मदिरा के घड़ों की शोभा और बीच में होम का कुंड, उसमें मांस का चटचटाकर जलना और उसमें से चिराहिन की सुगन्ध का निकलना, वैसा ही लोह का चारों ओर फैलना और मदिरा की छलक, तथा ब्राह्मणों का मद्य पीकर पागल होना, चारों ओर घी और चरबी का बहना, मानो इस मंत्र की पुकार सत्य होती थी ।

'धृतं धृतपावानः पिबत वसां वसापावानः ।'

अहा ! वैसी ही कुमारियों की पूजा —

'इमं ते उपस्थं मधुना सृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद-
द्वितीयं तस्या योनिं परिपश्यति धीराः ।'

अहा हा ! कुछ कहने की बात नहीं है सब बातें उपस्थित थीं ।

'मधुवाता ऋतायते मधु क्षरान्ति सिन्धवः ।

ऐसे ही मदिरा की नदी बहती थी । (कुछ ठहर कर)

जो कुछ हो मेरा तो कल्याण हो गया, अब इस धर्म के आगे तो सब धर्म तुच्छ हैं और जो मांस न खाय वह तो हिन्दू नहीं जैन है वेद में सब स्थानों पर बलि देना लिखा है । ऐसा कौन सा यज्ञ है जो बिना बलिदान का है और ऐसा कौन देवता है जो मांस बिना ही प्रसन्न हो जाता है, और जाने दीजिए इस काल में ऐसा कौन है जो मांस नहीं खाता ? क्या छिपा के क्या खुले-खुले, अँगूछे में मांस और पोथी के चोंगों में मद्य छिपाई जाती है । उसमें जिन हिंदुओं ने थोड़ी भी अंगरेजी पढ़ी है वा जिनके घर में मुसलमानी स्त्री है उनकी तो कुछ बात ही नहीं, आजाद है । (सिर पकड़कर) है माया क्यों धूमता है ? अरे मदिरा ने तो जोर किया । (उठ कर गाता है) ।

जोर किया जोर किया जोर किया रे, आज तो मैंने नशा जोरे किया रे । साँझिह से हम पीने बैठे पीते पीते भोर किया रे ।। आज तो मैंने,

(गिरता पड़ता नाचता है)

रामरस पीओ रे भाई, जो पीए सो अमर होय जाई ।

चोकें भीतर मुरना पाकें जवेलै नहाय के ऐसन जनम जर जाई ॥ रामरस पीओ रे भाई

अरे जो बकरी पत्ती खात है ताकी काढ़े खाल ।
अरो जो नर बकरी खात है तिनको कौन हवाल ॥

रामरस पीओ रे भाई
यह माया हार की कलवारिन मद पियाय राखा बौराई ।
एक पड़ा भुइंया में लोटे दूसर कहै चोखो दे भाई ॥

रामरस पीओ रे भाई
अरे चढ़ी है सो चढ़ी नहिं उतरन को नाम ।
भर रही खुमारी तब क्या रे किसी से है काम ॥

रामरस पीओ रे भाई
मीन काट जल धोइए खाए अधिक पियास ।
अरे तुलसी प्रीत सराहिए मुए मीत की आस ।

रामरस पीओ रे भाई
अरे मीन पीन पाठीन पुराना भरि भरि भार कहारन आना ।

महिष खाई करि मदिरा पाना अरे गरजा रे कुम्भकरन बलबाना ॥ रामरस पीओ रे भाई
ऐसा है कोई हरिजन मोदी तन की तपन बुझावैगा ।
पूरन प्याला पिये हरी का फेर जनम नहिं पावैगा ।

रामरस पीओ रे भाई
अरे भक्तों ने रसोई की तो मरजाद ही खोई ।
कलिय की जगह पकने लगी रामतरोई रे ।

रामरस पीओ रे भाई
भगतजी गदहा क्यों न भयो ।
जब से छोड़यो मांस-मछरिया सत्यानाश भयो ।

रामरस पीओ रे भाई
अरे एकादशी के मछली खाई ।
अरे कबौं मरे बैकुंठ जाई ।

रामरस पीओ रे भाई
अरे तिल भर मछरी खाइवो कोटि गरु को दान ।
ते नर सीधे जात है सुरपुर बैठि विमान ।

रामरस पीओ रे भाई
कंठी तोड़ो माला तोड़ो गंगा देह बहाई ।
अरे मदिरा पीयो खाइ कै मछरी बकरा जाह चवाई ॥

रामरस पीओ रे भाई
ऐसी गाढ़ी पीत्रिए ज्यौं मोरी की कीच ।
घर के जाने मर गए आप नशे के बीच ।

रामरस पीओ रे भाई
(नाचना नाचना गिर के अचेत हो जाता है)
(मतवाले बने हुए राजा और मंत्री आते हैं)

राजा — मंत्री पुरोहितजी बेसुध पड़े हैं ।

मंत्री — महाराज पुरोहित जी आनंद में हैं । ऐसे ही लोगों को मोक्ष मिलता है ।

राजा — सच है । कहा भी है —
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा परितत्वा धरणीतले ।
उत्थाय च पुनः पीत्वा नरो मुक्तिमवाप्नुयात् ।

मंत्री — महाराज, संसार के सार मदिरा और मांस ही हैं ।
'मकाराः पञ्च दुर्लभाः ।'

राजा — इसमें क्या संदेह ।
वेद वेद सबही कहें, भेद न पायो कोय ।
बिन मदिरा के पान सो, मुक्ति कहाँ क्यों होय ।

मंत्री — महाराज, ईश्वर ने बकरा इसी हेतु बनाया ही है, नहीं और बकरा बनाने का काम क्या था ? बकरे केवल यज्ञार्थ बने हैं और मद्य पानार्थ ।

राजा — यज्ञो वे विष्णुः यज्ञेन यज्ञमयजति देवाः यज्ञाद्भवति पर्जन्यः, इत्यादि श्रुतिस्मृति में यज्ञ की ऐसी स्तुति है और "जीवो जीवस्य जीवन" जीव इसी के हेतु हैं क्योंकि — "मांस भात को छोड़िके का नर खेहें घास ?"

मंत्री — और फिर महाराज, यदि पाप होता भी हो तो मूर्खों को होता होगा । जो वेदांती अपनी आत्मा में रमण करनेवाले ब्रह्मस्वरूप ज्ञानी हैं उनको क्यों होने लगा ? कहा है न —

यावदतोस्मि हंतास्मीत्यात्मानं मन्यते स्वदुक ।
तावदेवाभिमानिनो वाश्यबाधकतामियात् ।
गतासुनगतायुश्च नानुशोचत पांडिताः ॥
नैनं छिन्दति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
अच्छेद्योयामदह्योयमक्लेशो शोष्य एव च ।
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

इससे हमारे आप से ज्ञानियों को तो कोई बंधन नहीं है । और सुनिष्ट मदिरा को अब लोग कमेटी करके उठाया चाहते हैं वाह बे वाह !

राजा — छिः अजी मद्यपान गीता में लिखा है "मद्याजी मां नमस्कुरु ।"

मंत्री — और इस संसार में मांस और मद्य से बढ़कर कोई वस्तु है भी तो नहीं ।

राजा — अहा ! मदिरा की समता कौन करेगा जिसके हेतु लोग अपना धर्म छोड़ देते हैं । देखो —
मदिरा ही के पान हित, हिंदू धर्महि छोड़ि ।
बहुत लोग ब्राह्मो बनत, निज कुल सों मुख मोड़ि ॥
ब्राह्मी को अरु ब्राह्म को, पहिलो अक्षर एक ।
तासों ब्राह्मो धर्म में, यामें नोस न नेक ॥

मंत्री— महाराज, ब्राह्मणों को कौन कहे हम लोग

तो वैदिक धर्म मानकर सौत्रामणि यज्ञ करके मदिरा पी सकते हैं ।

राजा— सच है, देखो न —

मदिरा को तो अंत अरु आदि राम को नाम ।
तामों तामें दोष कुछ नहीं यह बूढ़ ललाम ।
तिष्ठ तिष्ठ क्षण मद्य हम पियें न जब लौं नीच ।
यह कहि देवी क्रोध सों हत्यों शुभ रन बीच ॥
मद पी विधि जग को करत, पालत हरि करि पान ।
मर्याद पी क नाश सब करत शंभु भगवान ॥
विष्णु वारुणी, पारि पुरुषोत्तम मद्य मुरारि ।
शार्पण शिव, गौडी गार्ग्य, ब्रांडी ब्रह्म विचारि ॥
मंत्री— और फिर महाराज, ऐसा कौन है जो

मद्य नहीं पीता, इससे तो हमी लोग न अच्छे जो
विधिपूर्वक वेद की रीति से पान करते हैं और यों
छिपके इस समय में कौन नहीं करता ।
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरु सैयद सेख पठान ।
दे बनाइ मोहि कौन जो करत न मदिरा पान ॥
पियत भट्ट के ठट्ट अरु गुजरातिन के वृन्द ॥
गौतम पियत अनंद सों पियत अग्र के नंद ॥
ब्राह्मण सब छिपि छिपि पियत जामै जानि न जाय ।
पाथी के चोगान भारि बोलन बगल छिपाय ॥
वैष्णव लोग कहावही कंठी मुद्रा धारि ।
छिपि छिपि के मदिरा पियाहं, यह जिय मारि विचारि ।
होदल में मदिरा पियें, चोट लगे नहीं लात्र ।
लोद गण ठाढ़ रहत दोदल दबै कात्र ॥
राजा राजकुमार मिलि बाबू लीने संग ।
वार-वधन लै बाग में पीअत भर उमंग ॥

राजा— सच है इसमें क्या संदेह है ।

मंत्री— महाराज, मेरा सिर धुमता है और एसी
डुल्ला होती है कि कुछ नाचूं और गाऊं ।

राजा— ठीक है मैं भी नाचूं-गाऊंगा, तब प्रारंभ
करा ।

(मंत्री उठकर राजा को हाथ पकड़ कर गिरता-पड़ता
नाचना और गाता है)

पीने अवधू के मनवाले प्याला प्रेम हरी रस का रे ।
तनन् तनन् तनन् तनन् में गाने का है चसका रे ॥
निनि धध पप मम गग ररि सासा भरले सुर अपने बस
का रे ।

धार्धकट धार्धकट धार्धकट धाधा बजे मृदंग थाप
कस कार ॥

पीने अवधू के ।

भट्टी नहीं सिन लोढ़ा नहीं धोधार ।

पलकन की फेरन में चढ़त धुआंधार ॥

पीने अवधू के ।

कलवारिन मदमाती काम कलान ।

भरि भरि देन पियलवा महा ठट्टान ॥

पीने अवधू के ।

अरी गुलाबी गाले की लिए गुलाबी हाथ ।

मोहि दिखाव मद की भलक छलक पियालो साथ ॥

पीने अवधू के ।

बहार आई है भर दे बादल गुलगुं से पैमाना ।

रहं लाखों बरस साकी तेरा आवाद मैखाना ॥

समहल बैठो अरे मस्तो जरा हाशियार हो जाया ।

कि साकी हाथ में मैं का लिए पैमाना आता है ।

उड़ता खाक सिर पर धूमता मस्ताना आता है ।

पीने अवधू के — अहाँ अहाँ अहाँ ॥

यह अलग है लोग चतुर्ग ही गाने हैं ।

न जाय न जाय मो सों मदवा भरालो न जाय नच फिर

कहाँ से —

ट्रिक डीप और टेस्ट नॉट द पीरियरन स्प्रिंग ।

Drink deep or taste not the Pierian spring

पीने अवधू के मनवाले प्याला प्रेम हरी रस का रे ।

(एक दूसरे के सिर पर धौल मालकर ताल बकर

नाचते हैं । फिर एक पुरोहित को सिर पकड़ता है

दूसरा पैर और उसको लेकर नाचते हैं ।)

(जवानका गिरती है)

चतुर्थ अंक

स्थान — यमपुरी

(यमराज बैठे हैं, और चित्रगुप्त पास खड़े हैं)

(चार दूत राजा, पुरोहित, मंत्री, गंडकीदास, शैव और

वैष्णव को पकड़ कर लाते हैं)

१ दूत— (राजा के सिर में धौल मारकर) चल वे

चल, अब यहाँ तेरा राज नहीं है कि छत्र-चंबर होगा,

फूल के पैर रखता है, चल भगवान यम के सामने और

अपने पाप का फल भुगत, बहुत कूद-कूद के हिंसा की

और मदिरा पी, सौ सोनार की न एक लोहार की । (दो

धौल और लगाता है)

२ दूत— (पुरोहित को घसीटकर) चालिए

पुरोहितजी, दक्षिणा लीजिये, वहाँ आपने चक्र-पूजन

किया था, यहाँ चक्र में आप में चालिए, दाखिए

बलिदान का कैसा बदला लिया जाता है ।

३ दूत—(मंत्री की नाक पकड़कर) चल वे चल, राज के प्रबन्ध के दिन गये, जूती खाने के दिन आए, चल अपने किये का फल ले ।

४ दूत—(गंडकीवास का कान पकड़कर भोका देकर) चल रे पाखंडी चल, यहाँ लंबा टीका काम न आवेगा । देख वह सामने पाखंडियों का मार्ग देखने वाले सर्प मुँह खोले बैठे हैं ।

(सब यमराज के सामने जाते हैं)

यम—(वैष्णव और शैव से) आप लोग यहाँ आकर मेरे पास बैठिए ।

वै. और शै.— जो आज्ञा । (यमराज के पास बैठ जाते हैं ।)

यम— चित्रगुप्त देखो तो इस राजा ने कौन-कौन कर्म किये हैं ।

चित्र— (वही देखकर) महाराज, सुनिये, यह राजा जन्म से पाप में रत रहा, इसने धर्म को अधर्म माना और अधर्म को धर्म माना, जो जी चाहा किया और उसकी व्यवस्था पाण्डितों से ले ली, लाखों जीव का इसने नाश किया और हजारों घड़े मंदिर के पी गया पर आद सत्त्वदा धर्म की रस्ती, आहिंसा, सत्य, शौच, दया, शान्ति और तप आदि सच्चे धर्म इसने एक न किये, जो कुछ किया वह केवल वितंडा कर्म-जाल किया, जिसमें मांस भक्षण और मंदिर पीने को मिले, और परमेश्वर-प्रीत्यर्थ इसने एक कौड़ी भी नहीं व्यय की, जो कुछ व्यय किया सब नाम और प्रतिष्ठा पाने के हत ।

यम— प्रातिष्ठा कैसी, धर्म और प्रातिष्ठा से क्या सम्बन्ध ?

चित्र— महाराज सकार अंगरेज के राज्य में जो उन लोगों के चित्तानुसार उदारता करता है उसको "स्टार आफ इंडिया" की पदवी मिलती है ।

यम— अच्छा ! तो बड़ा ही नीच है, क्या हुआ मैं तो उपस्थित ही हूँ

'अंतः प्र ह्यन पापानां शास्ता वैवस्वतो यमः'
मला पृथित के कर्म तो सुनाओ ।

चित्र— महाराज यह शुद्ध नास्तिक है, केवल कर्म में यज्ञोपवीत पहने है, यह तो इसी श्लोक के अनुरूप है—

अंतः शाक्ता बहिः शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः ।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले ॥

इसने शुद्ध चित्त से ईश्वर पर कभी विश्वास नहीं किया, जो-जो पक्ष राजा ने उठाये उसका समर्थन करता

रहा और टके-टके पर धर्म छोड़ कर इसने मनमानी व्यवस्था दी, दक्षिणा मात्र दे दीजिए फिर जो कहिए उसी में पंडितजी की सम्मति है, केवल इधर उधर कमंडलाचार करते इसका जन्म बीता और राजा के संग से मांस-मद्य का भी बहुत सेवन किया, सैकड़ों जीव अपने हाथ से बध कर डाले ।

यम— अरे यह तो बड़ा दुष्ट है, क्या हुआ मुझसे काम पड़ा है, यह बचा जी तो ऐसे ठीक होंगे जैसा चाहिये, अब तुम मंत्री जी के चरित्र कहो ।

चित्र— महाराज, मंत्रीजी की कुछ न पूछिए । इसने कभी स्वामी का भला नहीं किया, केवल चुटकी बजाकर हाँ में हाँ मिलाया, मुँह पर स्तुति पीछे निंदा, अपना घर बनाने से काम, स्वामी चाहे चूल्हे में पड़े, घूस लेते जन्म बीता, मांस और मद्य के बिना इसने न और धर्म जाने न कर्म जाने—यह मंत्री की व्यवस्था है, प्रजा पर कर लगाने में तो पहले सम्मति दी पर प्रजा के सुख का उपाय एक भी न किया ।

यम— भला ये श्रीगंडकीवास जी आये हैं इनका पात्र चरित्र पढ़ो कि सुनकर कृतार्थ हों, देखने में तो बड़े लम्बे लम्बे तिलक दिये हैं ।

चित्र— महाराज, ये गुरु लोग हैं, इनके चरित्र कुछ न पूछिए, केवल दम्भाय इनका तिलक मुझ और केवल ठगने के अर्थ इनकी पूजा, कभी भक्ति से मूर्ति को दंडवत् न किया होगा पर मंदिर में जो स्त्रियाँ आईं उनको सर्वदा तकते रहे, महाराज, इन्होंने अनेकों को कृतार्थ किया और समय तो मैं श्रीरामचंद्रजी का श्रीकृष्ण का दास हूँ पर जब स्त्री सामने आवे तो उससे कहेंगे मैं राम तुम जानकी, मैं कृष्ण तुम गोपी और स्त्रियाँ भी ऐसी मूर्ख कि फिर इन लोगों के पास जाती हैं, हा ! महाराज, ऐसे पापी धर्मबचकों को आप किस नरक में भेजियेगा ।

(नेपथ्य में बड़ा कलकल होता है)

यम— कोई दूत जाकर देखो यह क्या उपद्रव है ।

१ दूत— जो आज्ञा । (बाहर जाकर फिर आता है) महाराज, संयमनीपुरी की प्रजा बड़ी दखी है, पुकार करती है कि ऐसे आज कौन पापी नरक में आए हैं जिनके अंग के वायु से हम लोगों का सिर घूमा जाता है और अंग जलता है । इनको तो महाराज शीघ्र ही नरक में भेजें नहीं तो हम लोगों के प्राण निकल जायेंगे ।

यम— सच है, ये ऐसे ही पापी हैं, अभी मैं इनका दंड करता हूँ, कह दो घबड़ाये न ।

१ दूत — जो आज्ञा । (बाहर जाकर फिर आता है)

यम. — (राजा से) तुझ पर जो बोध ठहराए गए हैं बोल उसका क्या उत्तर देता है ।

राजा — (हाथ जोड़कर) महाराज, मैंने तो अपने जान सब धर्म ही किया कोई पाप नहीं किया, जो मांस खाया वह देवता-पितर को चढ़ाकर खाया और देखिए महाभारत में लिखा है कि ब्राह्मणों ने भूख के मारे गोवध करके खा लिया पर श्राद्ध कर लिया था इससे कुछ नहीं हुआ ।

यम. — कुछ नहीं हुआ, लगेँ इसको कोड़े ।

२ दूत — जो आज्ञा । (कोड़े मारता है)

राजा — (हाथ से बचा-बचाकर) हाय-हाय, दुहाई-दुहाई, सुन लीजिए —

सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालंजरे गिरौ ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरासि मानसे ॥
तेषां जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ ॥

यह वाक्य लोग श्राद्ध के पहले श्राद्ध शुद्ध होने को पढ़ते हैं फिर मैंने क्या पाप किया । अब देखिए अंगरेजों के राज्य में इतनी गोर्हासा होती है सब हिंदू बीफ खाते हैं उन्हें आप नहीं दंड देते और हाय हमसे धार्मिक की यह दशा, दुहाई वेदों की दुहाई धर्म शास्त्र की, दुहाई व्यासजी की, हाय रे मैं इनके भरोसे मारा गया ।

यम. — बस चुप रहो, कोई है ? यह अंधता-मिश्र नामक नरक में जायगा । अभी इसके अलग रखो ।

१ दूत — जो आज्ञा महाराज । (पकड़-खींचकर एक ओर खड़ा करता है) ।

यम. — (पुरोहित से) बोल वे ब्राह्मणधर्म ! तु अपने अपराधों का क्या उत्तर देता है ।

पुरो. — (हाथ जोड़कर) महाराज, मैं क्या उत्तर दूंगा, वेद-पुराण सब उत्तर देता है ।

यम. — लगेँ कोड़े, दृष्ट वेद-पुराण का नाम लेता है ।

२ दूत — जो आज्ञा (कोड़े मारता है)

पुरो. — दुहाई-दुहाई, मेरी बात तो सुन लीजिए । यदि मांस खाना बुरा है तो इधर क्यों पीते हैं, इधर भी तो मांस ही है और अन्न क्यों खाते हैं अन्न में भी तो जीव है और वैसे ही सुरापान बुरा है जो वेद में सोमपान क्यों लिखा है और महाराज, मैंने तो जो बकरें

खाए वह जगदंबा के सामने बलि देकर खाए, अपने हेतु कभी हत्या नहीं की और न अपने राजा साहब की भाँत मृगया की । दुहाई, ब्राह्मण व्यर्थ पीसा जाता है । और महाराज, मैं अपनी गवाही के हेतु बाबू राजेन्द्रलाल के दोनो लेख देता हूँ, उन्होंने वाक्य और दलीलों में सिद्ध कर दिया है कि मांस की कौन कहे गोमांस खाना और मद्य पीना कोई दोष नहीं, आगे के हिंदू सब खाते-पीते थे । आप चाहिए एंथियाटिक सोसाइटी का जर्नल मंगा के देख लीजिए ।

यम. — बस चुप, दृष्ट ! जगदंबा कहता है और फिर उसी के सामने उसी जगत के बकरे को अर्थात् उसके पुत्र ही को बलि देता है । अरे दृष्ट अपनी अंबा कह, जगदंबा क्यों कहता है, क्या बकरा जगत के बाहर है ? चांडाल सिंह को बलि नहीं देता — 'अजापुत्रं बलिं दद्याद्वैवोर्ध्वलघातकः' कोई है ? इसको सूचीमुख नामक नरक में डालो । दृष्ट कहीं का वेद-पुराण का नाम लेता है । मांस-मदिरा खाना-पीना है तो यों ही खाने में किसने रोका है धर्म को बीच में क्यों डालता है, बाँधो ।

२ दूत — जो आज्ञा महाराज । (बांध कर एक ओर खड़ा करता है) ।

मंत्री — (आप ही आप) मैं क्या उत्तर दूँ, यहाँ तो सब बात बरंग है । इन भयानवी भूतियों को देखकर प्राण सुखे जाते हैं उत्तर क्या दूँ । हाय-हाय, इनके ऐसे बड़े-बड़े दाँत हैं कि मुझे तो एक ही कवर कर जाएंगे ।

यम. — बोल जल्दी ।

३ दूत — (एक कोड़ा मारकर) बोलना है कि नहीं ।

मंत्री — (हाथ जोड़कर) महाराज, अभी सोंचकर, बड़ी कठिनाई है और बड़े-बड़े अधर्म से एकत्र किया है सब आपको भेंट करूंगा और मैं निरपराधी कुटुंबी हूँ मुझे छोड़ दीजिये ।

चित्र. — (क्रोध से) अरे दृष्ट, यह भी क्या, मृत्युलोक की कचहरी है कि तु हमें घूस देता है और क्या हम लोग वहाँ के न्यायकर्ताओं की भाँति जंगल से पकड़ कर आए हैं कि तुम दुष्टों के व्यवहार नहीं जानते । जहाँ तू आया है और जो गति तेरी है वही घूस लेनेवालों की भी होगी ।

यम. — (क्रोध से) क्या यह दृष्ट द्रव्य दिखाता है ? भला रे दृष्ट ! कोई है इसको पकड़कर कुंभीपाक में डालो ।

३ दूत— जो आज्ञा महाराज । (पकड़कर सींचता है) ।

यम.— अब आप बोलिए बाबाजी, आप अपने पापों का क्या उत्तर देने हैं ?

गंडकी.— मैं क्या उत्तर दूँगा । पाप पुण्य जो करता है ईश्वर करता है । इसमें मनुष्य का क्या दोष है ।

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशे जुन तिष्ठति ।
आमयन सर्वभूतानं यंत्रारूढानं मामया ॥

मैं तो आज तक सर्वथा अच्छा ही करता रहा ।

यम.— कोई है ? लगे कोई दण्ड को, अब ईश्वर फल भी भगतैगा । हाय हाय, ये दण्ड दूसरों की स्त्रियों को मां और बेटी कहते हैं और लंबा लंबा टीका लगाकर लोगों को ठगते हैं ।

४ दूत— महाराज यह किस नरक में जायगा । (कोई मारता है)

गंडकी.— हाय-हाय, दुहाई, अरे कंठी-टीका कुछ काम न आया । अरे कोई नहीं है जो इस समय बचावे ।

यम.— यह दण्ड गरव नरक में जायगा जहाँ इसको एसे ही अनेक धर्मबंचक मिलेंगे । ले जाओ सबको ।

(चारों दूत चारों को पकड़कर घसीटते और मारते हैं और चारों चिल्लाते हैं)

चारों—

अरे 'बौद्धकी हिंसा हिंसा न भवति'

हाय रे 'आग्निष्टोमे पशुमालभेत ।'

अरे बाप रे "सौत्रमण्यां सुरा पिबेत् ।"

मैया रे "श्रोत्रं ते शुधामि ।"

यही कहकर चिल्लाते हैं और दूत लोग उसको घसीटकर मारते मारते ले जाते हैं)

यम.— (जैव और वैष्णव से) आप लोगों को अक्रान्ति भक्ति से ईश्वर ने आपको कैलास और वैकुण्ठ वास की आज्ञा दी है सो आप लोग जाइए और अपने मुकुट का फल भाँगिए । आप लोगों ने इस धर्म बंचकों की दशा तो देखी ही है, देखिए पापियों की यह गति होती है और आप से मुकुटियों को ईश्वर प्रसन्न होकर सामीप्य मुक्त देता है सो लौटाइए, आप लोगों को परम पद मिला । बधाई है, काँहए इससे भी विशेष कोई आपका हित हो तो मैं पूर्ण करूँ ।

शै. और वै.— (हाथ जोड़कर) भगवन् इनसे बढ़कर और हम लोगों का क्या हित होगा । तथापि यह नादकाचार्य भरतर्तुष का वाक्य सफल हो ।

निज स्वार्थ को धर्म-द्वय या जग सां होई ।
ईश्वर पद मैं भक्ति करेँ छल किन् सच कोई ।
खल के विष-वैनन सों मत सज्जन दुख पावै ।
दुष्ट राजकर मेघ समय पै जल बरसावै ॥
कजरी तुमरिन सों मोड़ि मुख सत कविता सब कोइ कहै ।

यह कवि ब्रान् वध-वदन में

गर्व साँस ला प्रगाढ़न रहै ॥

(सब जाते हैं)

(जयानका गिरती है ।)

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

समान प्रहसनं ।



धनंजय विजय

मूल संस्कृत में है। इसके रचयिता कांचन पंडित थे। इसका समय संदिग्ध है। लेकिन भारतेन्दु ने इसे व्यायोग में सं. १५३७ की एक हस्तलिखित प्रति का उल्लेख किया है। जिससे इसके समय की अंतिम सीमा जरूर निर्धारित होती है। यह "पहिले पहल" हरिश्चंद्र मैगजीन में सन् १८७३ ई. में प्रकाशित हुआ। - सं.

॥ धनंजय विजय ॥

व्यायोग

श्री नारायण उपाध्याय के पुत्र

श्री कवि कांचन

का बनाया

हिंदी भाषा के रसिकों के आनन्दार्थ

श्री हरिश्चन्द्र

ने मूल गद्य के स्थान में गद्य और छन्द के स्थान में छन्द में

अनुवाद किया

बनारस

मेडिकल हाल के छापेखाने में छापी गई।

सन् १८७४ ई.

प्यारे:-

निश्चय इस ग्रंथ से तो तुम बड़े प्रसन्न होगे क्योंकि अच्छे लोग अपनी कीर्ति से बढ़कर अपने जन की कीर्ति से सन्तुष्ट होते हैं तो इस हेतु इस होली के आरम्भ के त्यौहार माघी पूर्णिमा में हे धनंजय और निधनंजय के मित्र! यह धनंजय विजय तुम्हें समर्पित है स्वीकार करो।

तुम्हारा

हरिश्चन्द्र

धनंजय विजय

व्यायोग

(नान्दी आशीर्वाद पढ़ता है)

हरेलीली वराहस्य द्रष्टादण्डः स पातु वः।

हेमाद्रिकलशा यत्र धात्री छत्रप्रियं दधौ ॥

सुत्रधार आता है

सू.— (चारों ओर देखकर) वाह वाह प्रातःकाल की कैसी शोभा है।

(भैरव)

भोर भयो लखि काम मात श्रीरुकमिनी महलान जागीं।

विकसे कमल उदय भयो रवि को चकइनि अति अनुरागी।

हंस हंसनी पंख हिलावत सोइ पटह सुखदाई।

आंगन धाइ धाइ कै भंवरी गावत केलि बधाई ॥

(आगे देखकर) अहा शरद रितु कैसी सुहानी है।

(भैरव) (वा ठुमरी)

सबको सुखदाई अति मन भाई शरद सुहाई आई।

कूजत हंस कोकिला फूले कमल सरनि सुखदादे ॥

सूखे पंक हरे भए तरुवर दुरे मेघ मग भूले ॥

अमल इन्दु तारे भए सरिता कूल कास तरु फूले ॥

निर्मल जल भयो दिसा स्वच्छ भई सो लखि अति अनुरागे।

जानि परत हरि शरद विलोक्त रतिश्रम आलस जागे ॥
(नेपथ्य की ओर देखकर) अरे यह चिट्ठी लिए कौन आता है ।

(एक मनुष्य चिट्ठी लाकर देता है)

(सूत्रधार खोलकर पढ़ता है)

'परम प्रसिद्ध श्री महाराज जगदेव जी
जान देन मैं समर मैं जिन न लही कहुं हारि ।
केवल जग में विमुख किय जाहि पराई नारि ॥
जाके जिय में तुल सो तुच्छ बोय निरधार ।
खीमे अरि को प्रबल दल रीमे कनक पहार ॥

वह प्रसन्न होकर रंगमंडन नामक नट को आज्ञा करते हैं ।
अलसाने कछु सुरत श्रम अरुन अधखुले नैन ।
जगजीवन आगे लखहु दैन रमाचित चैन ॥
शरद देखि जब जग भयो चहुदिसि महा उछाह ।
तौ हमहुं को चाहिए मंगल करन सचाह ॥

इस्से तुम वीररस का कोई अद्भूत रूपक खोलकर
मेरे गदाधर इत्यादि साधियों को प्रसन्न करो' ऐसा
कौनसा रूपक है (स्मर्ण करके) अरे जाना ।

कवि मुनि के सब शिशुन को धारि धाय सी प्रीति ।
सिखवत आप सरस्वती नित बहु विधि की नीति ॥
ताही कुल में प्रगट भे नारायण गुणधाम ।
लट्यो जीति बहु बादिगन जिन बादीश्वर नाम ॥
अमय दियो जिन जग को धारि जोग संन्यास ।
पै भय इक रवि को रही मंडल भेदन त्रास ॥

तिनके सुत सब गुन भरे
कविवर कांचन नाम ।

जाकी रसना मनु सकल
विद्या गन की धाम ॥

तो उस कवि का बनाया धनंजय विजय खेलें ।

(नेपथ्य की ओर देखकर) यहां कोई है ।

(पारिपार्श्वक आता है)

पा.— कौन नियोग है कहिए ।

स.— धनंजय विजय के खेलने में कुशल नटवर्ग
को बुलाओ ।

पा.— जो आज्ञा । (जाता है)

सू.— (पश्चिम की ओर देखकर)

सत्य प्रतिज्ञा करने को छिप्यो निशा अज्ञात ।
तेजपुंज अर्जुन सोई रवि सो कहत लखात ॥
(विराट के अमात्य के साथ अर्जुन आता है)

अ.— (उत्साह से) देव अनुकूल जान पड़ता है
क्योंकि

जा लताहि खोजत रहे मिली सु पगतल आइ ।
विना परिश्रम तिमि मिल्यो कुरुपति आपुहि धाइ ॥

स.— (हर्ष से देखकर) अरे यह शामिलक तो
अर्जुन का भेष लेकर आ पहुंचा तो अब मैं और पात्रों
को भी चलकर बनाऊं ।

(जाता है)

॥ इति प्रस्तावना ॥

अ.— (हर्ष से)

गोरक्षन रिपुमान बध नृप विराट को हेत ।
समर हेत इक बहुत, सब भाग मिल्यो हा खेत ॥
और भी

वहै मनोरथ फल सुफल वहै महोत्सव हेत ।
जो मानी निज रिपुन सों अपुना बदलो लेत ॥

अमा.— देव यह आप के योग्य संग्राम भूमि
नहीं है —

जिन निवातकवचन बध्यो कालकेय दिय दाहि ।
शिव तोख्यौ रनभूमि जिन ये कौरव कह ताहि ॥

अ.— वाह सुयोधन वाह ! क्यों न हो ।

लट्यो बाहुबल जाति कै ना तुव पुरुषन राज ।
सो तुम जूआ खेलि कै जीत्यो सहित समाज ॥
अब भीलन की भाति इमि छिपि कै चोरत गाय ।
कुल गुरु ससि तुव नीचपन लखि कै रह्यौ लजाय ॥

अमा.— देव !

जदपि चरित कुरुनाथ के ससि सिर देत भुकाय ।
तरु रावरो विमल जस राखत ताहि उचाय ॥

अ.— (कुछ सोचकर) कुमार नगर के पास पास
धरे शस्त्रों को लेने रथ पर बैठकर गया है सो अब तक
क्यों नहीं आया ?

(उत्तरकुमार आता है)

कु.— देव आपकी आज्ञानुसार सब कुछ प्रस्तुत
है अब आप रथ पर विराजिए ।

अ.— (शस्त्र बांधकर रथ पर चढ़ना नाट्य
करता है)

अमा.— (विस्मय से अर्जुन को देखकर)
रनभूषन भूषित सुतन गत दूखन सब गात ।
सरद सूर सम घन रहित दूर प्रचंड लखात ॥

(नायक से)

दक्षिण खुरमहि मरदि हय गरजहिं मेघ समान ।
उडि रथ धुज आगे बढ़हिं तुव बस बिजय निसान ॥

अ.— अमात्य ! अब हम लोग गऊ छुड़ाने जाते
हैं । आप नगर में जाकर गऊहरण से व्याकुल नगर
वासियों को धीरज दीजिए ।

अमा.— महाराज जो आज्ञा (जाता है) ।

अ. — (कुमार से) देखो गऊ दूर न निकल जाने
पावें घोड़ों को कस के हाँकों ।।

कु. — (रथ हाँकना नाट्य करता है)

अ. — (रथ का वेग देखकर)

लौकहू नहीं लखिपरत चक्र की ऐसे धावत ।
दूर रहत तरु वृन्द छनक में आगे आवत ।।
जदपि वायु बल पाइ धूरि आगे गति पावत ।
पै हय निज खुर वेग पीछहीं मारि गिरावत ।।
खुर मरदित महि चूमहिं मनहू

धाड़ चलहिं जब वेग गति ।

मनु होइ जीत हित चरन सों

आगेहि मुख बढ़ियाजात आत ।।

(नेपथ्य की ओर देखकर) अरे अरे अहीरो सोच मत
करो क्योंकि

जबलौं बछरा कलना करि महि तून नहिं खै है ।
जबलौं जननी बाट देखि कै नहिं डकरै है ।।
जबलौं पय पीअनहित ते नहिं व्याकुल हवै है ।
ताके पाँहि गाय जीति कै हम ले ऐहैं ।।

(नेपथ्य में) बड़ी कृपा है ।

कु. — महाराज ! अब ले लिया है कौरवों की
सेना को क्योंकि

हय खुररज सों नभ छयो वह आगे दरसात ।
मनु प्राचीन कपोलगत सान्द्र सुरुचि सरसात ।।
कविवर मद धारा तिया रमत रसिक जो पौन ।
सोई केलिमद गंधलै करत इतहीं गौन ।।

अ. — वह देखो कौरवों की सेना दिखा रही है ।।

चपल चंवर चहुँचोर चलाहिं सित छत्र फिराहीं ।
उड़ाहिं गीधगन गगन जबै भालै चमकाहीं ।।
घोर सख के शब्द भरत बन भूगन डरावात ।
यह देखौ कुरुसेन सामने धावात आवात ।।

(बाह की ओर देखकर उत्साह से)

बनबन धावत सदा धूर धूसर जो सोहीं ।
पंचाली गल मिलत हेतु अबलौं ललचैही ।।
जो जुवती जन बाहु बलय मिलि नाहिं लजाहीं ।
रिपुगन ! ठाढ़े रहौ सोई मम भुज फरकाही ।।

(नेपथ्य में)

फेरत धनु टंकारि दरप शिव सम दरसावत ।
साहस को मनु रूप काल सम दुसह लखावत ।।
जय लक्ष्मी सम वीर धनुष धरि रोस बढ़ावत ।
को यह जो कुरुपतिहि गिनत नहिं इतहीं आवत ।।

(दोनों कान लगाकर सुनते हैं)

कु. — महाराज यह किसके बड़े गम्भीर वचन हैं ।।

अ. — हमारे प्रथम गुरु कृपाचार्य के ।।

(फिर नेपथ्य में)

शिव तोपन खाँडव दहन सोई पाँडव नाथ ।
धनु खींचत घट्टा पड़े दूजे काके हाथ ।।
छाँट गए सब शस्त्र तबौं धीरज उर धारे ।
बाहु मात्र अवशेष दगुन हिय क्रोध पसारे ।।
जाहि देखि निज कपट भूति हवै प्रगट पुरारी ।
साहस पै वह रीफि रहे आपुन पौहारी ।।

अरे यह निश्चय अर्जुन ही है, क्योंकि —

सागर परम गंभीर नय्यो गोपद सम छिन में ।
सीता विरह मिटावन की अद्भुत मति जिन में ।
जानी जिन तून फूस हूस की लंका सारी ।
रावन गरब मिटाइ हने नसिचर बल भारी ।।
श्रीराम प्रान सम वीर वर भक्तराज मुग्धीव प्रिय ।
सोई वायु तनय धुज वैँठ कै गरजि डरावत शत्रु हिय ।।

(दोनों सुनते हैं)

कु. — आपुमान

भरी वीर रस सों कहत चतुर गूढ़ आत बात ।
पक्षपात सुत सो करत को यह तुम पै तात ।।

अ. — कुमार ! यह तो ठीक ही है, पुत्र सा
पक्षपात करता है यह क्या कहते हो ! मैं आचार्य का तो
पुत्र ही हूँ ।

(नेपथ्य में)

करन ! गहौ धनु वेग, जाहु कृप ! आगे धाई ।
द्रोन ! अस्त्र भृगुनाथ लहे सब रहो चढ़ाई ।।
अश्वत्थामा ! काज सबै कुरूपति को साधहु ।
दुरमुख ! दुस्सासन ! विकर्ण ! निज व्यूहन बांधहु ।।
गंगा सुत शांतनु तनय बर भीम क्रोध सो धनु गहत ।
लखि शिव शिक्षित रिपु सामुहें तानि बान छोड़ो चहत ।।

अ. — (आनन्द से) अहा ! यह कुरुराज अपनी
सैन्य को बढ़ावा दे रहा है ।

कु. — देव ! मैं कौरव योधाओं का स्वरूप और
बल जानना चाहता हूँ ।

अ. — देखो इसके ध्वजा के सर्प के चिन्ह ही से
इसकी टढ़ाई प्रगट होती है ।

चन्द्र वंश को प्रथम कलाह अंकुर एहि मानौ ।
जाके चित सौजन्य भाव नहिं नेकु लखानौ ।।
बिष जल अंगिन अनेक भाति हमको दुख दीनो ।
सो यह आवत दीठ लखौ कुरूपति मति हीनो ।।

कु. — और यह उसके दाहिनी ओर कौन है ।

अ. — (आश्चर्य से)

जिन हिडम्ब अरि रिसि भरे लाखत लाज भय खोय ।।
कृष्णापट खींच्यो निलज यह दुस्सासन सोय ।।

कु. — अब इससे बढ़कर और क्या साहस

हागा ।

अ. — इधर देखो (हाथ जोड़कर प्रणाम करके)

कंचन वेदी बैठे बड़ोपन प्रगट दिखावत ।

मूरज को प्रतिबंध जाहि मिला जाल तनावत ।

अस्त्र उपनिषद भेद जानि भय दूर भजावत ।

कौरव कुल गुरु पूज्य ब्रोन अचारज आवत ।

कु. — यह तो बड़े महानुभाव से जान पड़ते हैं ।

अ. — इधर देखौ ।

सिर पै बाकी जुट जटा मंडित छावि धारी ।

अस्त्र रूप मनु आप दूसरो दुसह पुरारी ।

शत्रुन कों नित अजय मित्र को पूरन कामा ।

गुरु मृत मेरो मित्र लखौ यह अश्वत्थामा ।

कु. — हाँ और बताइये ।

अ. — धनुर्वेद को सार जिन घट भरि पूरि प्रताप ।

कनक कलशकरि धुज धर्यौ सो कृप कुरु गुरु आप ।

कु. — और वह कुरुराज के सामने लड़ाई के हेतु

फैट कैसे कौन खड़ा है ।

अ. — (क्रोध से)

सब कुरुगन को अनय बीज अनुचित अभिमानी ।

भृगुपति छालि लाहि अस्त्र वृथा गरजत अचखानी ।

सूत सूत्रन विनु बात दरप अपनो प्रगटावत ।

इंद्रशक्ति लाहि गर्व भरो रन को इत आवत ।

कु. — (हंस कर) इनका सब प्रभाव घोष यात्रा में

प्रकट हो चुका हैं (दूसरी ओर दिखाकर) यह किसका

ध्वज है ।

अ. — (प्रणाम करके)

परतय जिन कबड़ न लखी निज व्रतहि दृढ़ाई ।

श्वेत कैसे मिस सो कीरति मनु तन लपटाई ।

परशुराम को तोष भयो जा सर के त्यागे ।

तौन पितामह भीष्म लखौ यह आवत आगे ।

सूत ! घोड़ों को बढ़ाओ

(नेपथ्य में)

समर बिलोकन कों जुरे चढ़ि विमान सुर धाइ ।

निज बल बाहु विचित्रता अरजुन देहु दिखाय ।

(इन्द्र, विद्याधर और प्रतिहारी आते हैं)

इन्द्र. — आश्चर्य से

बातहु सों भगवै बली तौ निबलन भय होय ।

तौ यह दारुन युद्ध लांछि क्यों न डरै जिय खोय ।

एक रथी इक और उत बली रथी समुदाय ।

तोड़ सूत तू धन्य और इकलो देत भजाय ।

कु. — (आगे देखकर) देव कौरवराज यह चले

आते हैं ।

(रथ पर बैठा दुर्योधन आता है)

दु. — (अर्जुन को देखकर क्रोध से)

बहु दुख सहि बनबास करि जीवन सों अकुलाय ।

मरन हेतु आयो इतै इकलो गरव बढ़ाय ।

अ. — (हंसकर)

काल केय बंधि कै निवातकवचन कहं मार्यो ।

इकले खांडव दाहि उमापति युद्ध प्रचार्यो ।

इकलेही बल कृष्ण लखत भांगनी हरि छीनी ।

अरजुन की रन नाहि नई इकली गति लीनी ।

दु. — अब हंसने का समय नहीं है क्योंकि

अंधाधुंध घोर संग्राम का समय है ।

अ. — (हंसकर)

दूर रहौ कुरुनाथ नाहि यह छल जुआ इत ।

पापी गन मिला द्रौपद कों दासी कीनी जित ।

यह रण जुआ जहां बान पास हम डारै ।

रिपु गन सिर की गोट जीति अपुने बल मारै ।

दु. — (क्रोध से)

बूढ़ी पार्थरन सों गयो तेरो सर अभ्यास ।

नर्तन साला जात किन इत पौरुष परकास ।

कु. — (मुँह चिढ़ाकर) आर्य इनको यह आप ठीक

कहते हैं कि इनका बहुत दिन से धनुष चलाने का

अभ्यास छूट गया है ।

जब बन में गंधर्व गनन तुमकों कांसि बांध्यो ।

तब करि अग्रज नेह गरजि जिन तहं सर साध्यो ।

लीन्हौ तुहं छुड़ाइ जीति सुर गन छिन मांहौ ।

तब तुम शर अभ्यास लख्यो बिहबल हवै नाहीं ।

विद्या. — देव यह बालक बड़ा दीठा है ।

इ. — क्यों न हो राजा का लड़का है

दु. — सूत ! ब्राह्मणों की भांति इस कोरी

बकवाद से फल क्या है । यह पृथ्वी ऊँची नीची है

इससे तुम अब समान पृथ्वी पर रथ ले चलो ।

अ. — जो कुरुराज की इच्छा (दोनों जाते हैं)

विद्या. — (अर्जुन का रथ देखकर) देव !

तुव सूत रथ हय खुर बढ़ी समर धूरि नभ जौन ।

अरि अरनी मंथन आर्गन धूम लेखसी तौन ।

इ. — क्यों न हो तुम महा कवि हो ।

विद्या. — देव ! देखिए अर्जुन के पास पहुंचते ही

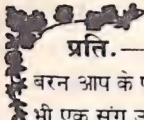
कौरवों में कैसा कोलाहल पड़ गया देखिए ।

हाय हिन हिनात अनेक गज सर खाइ घोर चिकारहीं ।

बहु बजहिं बाजे मार धरु धुनि दपति वीर उचारहीं ।

टंकार धनुकी होत घंटा बजहिं सर संचारहीं ।

सुनि सबद रन को बरन पति सुरबधूतन सिंगारहीं ।



प्रति.— देव ! केवल कोलाहल ही नहीं हुआ वरन आप के पुत्र के उधर जाते ही सब लोग लड़ने को भी एक संग उठ दौड़े. देव ! देखिए अर्जुन ने कान तक खींच खींचकर जो बान चलाए हैं उससे कौरव सैना में किसी के अंग भंग हो गए हैं किसी के धनुष दो टुकड़े हो गए हैं किसी के सिर कट गए हैं किसी की आंखें फूट गई हैं किसी की भुजा टूट गई है किसी की छाती घायल हो रही है ।

इन्द्र.— (हर्ष से) बाह बेटा अब ले लिया है ।

विद्या.— अब देखिए देखिए ।

गज जूथ सोई गन घटा मद धार धारा सरतजे ।
तरवार चमकाने बीजु की दमकाने गरज बाजन बजे ॥
गोली चले जुगनू सोई बक वृन्द ध्वज बहु सोहई ।
कातर बियोगिन दुखद रन की भूमि पावस नभ भई ॥
तुव सुत सर साह मद गलित दंत केतकी खोय ।
धावत गज जिनके लखें हथिनी को भ्रम होय ॥

इन्द्र.— (संतोष से)

हर सिच्छित सर रीति जिन कालकेय दियदाहि ।
जो जदुनाथ सनाथ कह कौरव जीतन ताहि ।

प्रति.— महाराज देखें ।

कटे कुंड सुंडन के रुंड मैं लगाय तुंड भुंड मुंड पान
करै लेह भूत चेटी हैं । घोड़न चबाइ चरबीन सों अघाय
मेटी भूख सब मरे मूरवान मैं समेटी हैं ॥ लाल अंग
कीने सीस हाथन में लीने अस्थि भूखन नवीने आंत
जिनपै लपेटी हैं । हरख बढ़ाय आंगुलीन को नचाय पियै
सोनिन पियासी सी पिसाचन की बेटी हैं ॥

विद्या.— देव देखिए ।

हिलन धुजा सिर ससि चमक मलिक के व्यूह लखात ।
तुव सुत सर लागि धूमि जब गरज गन मंडल खात ॥

इन्द्र.— (आनन्द से देखता है)

प्रति.— देव देखिए देखिए आप के पुत्र के धनुष से छूटे हुए बानों से मनुष्य और हाथियों के अंग कटने से जो लहू की धारा निकलती है उसे पी पी कर यह जोगिनिये आपके पुत्र ही की जीत मनाती हैं ।

इन्द्र.— तो जय ही है क्योंकि इनकी असीस सन्धी है ।

विद्या.— (देखकर) देव अब तो बड़ा ही घोर युद्ध हो रहा है देखिए ।

विरांच नली गज सुंड की काटि काटि भट सीस ।
रुधिर पान करि जोगिनी विजयाह देहि असीस ॥
टाँट गई डोड भौह स्वेद सों तिलक मिटाए ।
नयन पसारै जाल क्रोध सों ओठ चबाए ॥

कटे कुंडलन मुकुट बिना श्रीहत दरसाए ।
वायु वेग बस कंस मूछ दाढ़ी फहराए ॥
तुव तनय बाल लागि वैर सिर

एहि विधि सों नभ में फिरत ।

तिन संग काक अरु कंक बहुरंक भए धावत गिरत ॥

(बड़े आश्चर्य से इधर उधर देखकर) देव देखिए ।
सीस कटे भट सोहहीं नैन जुगल बल लाल ।
बराहं तिनाहं नाचाहं हंसाहं गावाहं नभ सुर बाल ॥

इन्द्र.— (हर्ष से) मैं क्या क्या देखूं मेरा जी तो बावला हो रहा है ।

इत लाखन कुरु संग लरत इकलो कुंती नंद ।
उत वीरन को वरन को लराहं अप्सरा बृंद ॥

विद्या.— ठीक है (दूसरी ओर देखकर) देव इधर देखिए ।

लपटि दपटि चहुं दिसन बाग बन जीव जरावत ।
ज्वाला माला लोल लहर धुज से फहरावत ॥
परम भयानक प्रगत प्रलय सम समय लखावत ।
गंगा सुत कृत अंगिन अस्त्र उमग्यो ही आवत ॥

प्रति.— देव ! मुझे तो इस कड़ी आंच से डर लगती है ।

विद्या.— भद्र ! व्यर्थ क्यों डरता है भला अर्जुन के आगे यह क्या है ? देख ।

अर्जुन ने यह वरुन अस्त्र जो वेग चलायो ।
तासों नभ मैं घोर घटा को मंडल छायो ॥
उमाडि उमाडि करि गरज बीजुरी चमक डरायो ।
मुसलधार जल बरसि छिनक मैं ताप बुझायो ॥

इन्द्र.— बालक बड़ा ही प्रतापी है ।

प्रति.— देव ! राधेय ने यह भुजंगास्त्र छोड़ा है देखिए अपने मुखों से आग सा बिष उगलते हुए अपने सिर की मांगियों से चमकते हुए इन्द्रधनुष से पृथ्वी को व्याकुल करते हुए देखने ही से वृक्षों को जलाने हुए यह कैसे-कैसे डरावने सांप निकले चले जाते हैं ।

विद्या.— (देखकर) वैनामक अस्त्र चल चुका. दृष्ट मनोरथ सरिस लसे लाबे दुखदाई ।
देदे जिमि खल चित भयानक रहत सदाई ॥
बमत बदन बिष निन्दक सो मुख कारिख लाए ।
अहिगन नभ मैं लखहु धाड़ के चहुं दिस लाए ॥

इन्द्र.— क्या खांडव वन का वैर लेने आते हैं ?

विद्या.— आप शोच क्यों करते हैं देखिए अर्जुन ने गारुडास्त्र छोड़ा है ।

निज कुल गुरु तुव पुत्र सारथाह तोष बढ़ावत ।
भरपाटि दपटि गाहि अहिन टुक करि नास मिलावत ॥



बादर से उड़ि चीखि चीखि दोउ पंख हिलावत ।
गरुड़न को गन गगन छयो अहि हियो डरावत ॥

इन्द्र.— (हर्ष से) हां तब ।

प्रति.— देखिए यह दुर्योधन के वाक्य से पीड़ित होकर द्रोणाचार्य ने आपके पुत्र पर वारुणास्त्र छोड़ा है ।

विद्या.— (देखकर) वैनामक अस्त्र चला चुका है, देखिए ।

रगे गंड सिंदूर सो घहरत घंटा घोर ।
निज मद सों सोचत धरनि गरजि विकारिहं जोर ।
सुंड फिरावत सीकरन धावत भरे उमंग ।
छावत आवत घन सरिस मरदत मनुज मतंग ॥

इंद्र.— तब तब ।

विद्या.— तब अर्जुन ने नरसिंहास्त्र छोड़ा है देखिए

गरजि गरजि जिन छिन मैं गर्भिनि गर्भ गिरायो ।
काल सरिस मुख खोलि दांत बाहर प्रगटायो ।
मारि थपेड़न गंड सुंड को मांस चबायो ।
उदर फारि चिक्कारि रुधिर पौसरा चलायो ॥
करि नैन अगिनि सम मोछ फहराइ पोंछ टेढ़ी करत ।
गल केसर लहरावत चलयौ क्रोधि सिंहदल दल दलत ॥
दलत ॥

इन्द्र.— तो अब जय होने में थोड़ी ही देर है ।

विद्या.— देव ! कहिए कि कुछ भी देर नहीं है ।

गंगा सुत के बधि तुरग द्रोणसुत हति खेत ।
करन रथहि करि खंड बहु कृप कहं कियो अचेत ॥
और भजाई सैन सब द्रोण सुवन धनु काट ।
तुव सुत जोहत अब खड़े दुरजोधन की बाट ॥

प्रति.— दुर्योधन का तो बुरा हुआ ।

विद्या.— नहीं ।

व्याकुल तुव सुत बान सों विमुख भयो रनकाज ।
मुकुट गिरन सों क्रोध करि फिरचो फेर कुरुराज ॥
(नेपथ्य में)

सुन सुन कर्ण के मित्र ।
सभा मांहि लखि द्रोपदिहि क्रोध अतिहि जिय लेत ।
अग्रज परतिज्ञा करी तुव उरु तोड़न हेत ॥
ताही सो तोहि नहिं बध्यो न तरु अबौ कुरु ईस ।
जा सर सों तोर्यो मुकुट तासों हरतो सीस ॥

प्रति.— देव अपने पुत्र का वचन सुना ।

इन्द्र.— (विस्मय से) ।

दे भए अनुकूल तें सबही करत सहाय ।
भीम प्रतिज्ञा सों बच्यो अनायास कुरुराय ॥

विद्या.— देव ! दुर्योधन के मुकुट गिरने से सब कौरवों ने क्रोधित होकर अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया है ।

इन्द्र.— तो अब क्या होगा ।

विद्या.— देव अब आपके पुत्र ने प्रस्वापनास्त्र चलाया है ।

नाक बोलावत धनु किए तर्किया मुंदे नैन ।
सब अचेत सोए भई मुरबा सी कुरु सैन ।

इन्द्र.— युद्ध से थके वीरों को सोना योग्य ही है ।
हां फिर ।

विद्या.—

एक पितामह छोड़ि कै सबको नांगो कीन ।
बाधि अधेरी आंख मैं मूढ़ि तिलक सिर दीन ॥
अब जागे भागे लखौ रह्यो न कोऊ खेत ।
गोधन लै तुव सुत आवै ग्वालन देखौ देत ॥
शत्रु जीति निज मित्र को काज साधि सानन्द ।
पुरुजन सों पूजित लखौ पुर प्रावसत तुवनन्द ॥

इन्द्र.— जो देखना था वह देखा ।

(रथ पर बैठे अर्जुन और कुमार आते हैं)

अ.— (कुमार से) कुमार ।

जो मो कहं आनंद भयो करि कौरव विनु सेस ।
तुव तन को विनु धाव लखि तासों मोद विसेस ॥

कु.— जब आप सा रक्षा हो तो यह कौन बड़ी बात है ।

इन्द्र.— (आनन्द से) जो देखना था वह देख चुके ।

(विद्याधर और प्रतिहारी समेत जाता है)

अ.— (सन्तोष से) कुमार ।

करी बसन विनु द्रोपदी इन सब सभा बुलाय ।
सो हम इनको वस्त्र हरि बदलो लीन्ह चुकाय ॥

कु.— आप ने सब बहुत ठीक ही किया क्योंकि बरु रन मैं मरनो भलौ पाछे सब सुख सीव ।
निज अरिसौं अपमान हिय खटकत जबलौं जीव ॥

अ.— (आगे देखकर) अरे अपने भाइयों और राजा विराट समेत आर्य धर्मराज इधर ही आते हैं ।
(तीनों भाई समेत धर्मराज और विराट आते हैं)

धर्म.— मत्स्यराज ! देखिए ।

धूर धूसरित अलक सब मुख श्रमकन भलकात ।
असम समर करि शक्ति पै जयसोभा प्रगटात ॥
सौगन्धिक तोस्यो छनक कियो हिडम्बहि घात ।
हत्यो बकासुर जिन सहज तेहि केती यह बात ॥

भीम.— (विनय से) महाराज सुनिए अब हम

क्षमा नहीं कर सकते ।

धर्म.— बेटा क्षमा के दिन गए युद्ध के दिन आए अब इतना मत घबड़ाओ ।

विरा.— (युधिष्ठिर से) ।

तुव सरूप जाने बिना लियो अनेकन काज ।
जोग अजोग अनेक विघ सों छमिये महराज ॥

अ.— राजन यह उपकार ही हुआ अपकार कभी नहीं हुआ । क्योंकि ।

जो अजोग करते न हम सेवा ह्यै तुम दास ।
तो कोऊ विधि छिपतौ न यह मम अज्ञात निवास ॥

विरा.— (अर्जुन से) राज पुत्र ।

सात चरनइ संग चले मित्र भए हम दोय ।

विरा.— सत्य है ।

द्विज सोहत विद्या पढ़ै छत्री रन जय पाय ।
लक्ष्मी सोहत दान सों तिमि कुल बधू लाजाय ॥

अ.— (घबड़ाकर) अरे क्या भैया आ गए (रथ से उतरकर दंडवत करता है) ।

सब— (आनन्द से एक ही साथ) कल्याण हो — जीते रहो ।

धर्म.—

इकले सिव षट पुर दह्यौ निसचर मारे राम ।
तम इकले जीतौ कुरुन नहिं अथ चौथो नाम ॥

अ.— (सिर झुका कर हाथ जोड़कर) यह केवल आपकी कृपा है ।

विरा.— (नेपथ्य की ओर हाथ से दिखाकर) राजपुत्र देखो ।

मिलि बछरन सों धेनु सब श्रवाहं दूध की धार ।
तुय उज्जल कीरति मनहुं फैलत नगर मंभार ॥

और

खींच्यौ कृष्णा केस जो समर माहि कुरुराज ।
सो तुस मुकुट गिराइ कै बदलो लीनहों आज ॥

भीम— (सुनकर क्रोध से) राजन अभी बदला नहीं चुका क्योंकि ।

तोरि गदा सों हृदय दुष्ट दुस्सासन केरो ।
तासों ताजो सद्य रुधिर करि पान घनेरो ॥

ताहीं करसों कृष्णा की बेनी बंधवाई ।

भीमसेन ही सो बदलो लेहै चुकवाई ॥

धर्म.— बेटा तुम्हारे आगे यह क्या बड़ी बात है ।

तासों माँगत उत्तरा पुत्र बधू तुव होय ॥

अ.— आपकी जो इच्छा क्योंकि ।

आपु आवती लच्छमी को मूरख नहि लेत ।
सोऊ बिन मागे मिलै तो केवल हरि हेत ॥

बि.— और भी मैं आपका कुछ प्रिय कर सकता हूँ ।

अ.— अब इस्से बढ़कर क्या होगा ।

शत्रु सुजोधन सो लही करन सहित रनजीत ।
गाय फेरि जाए सबै पायो तुमसो मीत ॥

लही बधू सुत हित भयो सुख अज्ञात निवास ।
तौ अब का नहिं हम लह्यौ जाकी राखैं आस ॥

तौ भी यह भरत वाक्य सत्य हो ।

राज वर्ग मद छोड़ि निपुन विद्या मै होई ।
श्री हरिपद मै भक्ति करै छल विनु सब कोई पंडित

गन पर कृति लखि कै मति दोष लगावैं ।
छुटै राज कर मेघ समै पै जल बरसावैं ॥

कजरी ठुमरिन सों मोरि मुख
सत कविता सब कोउ कहै ।

यह कविवानी बुध बदन मै
रवि ससि लौं प्रगटित रहै ॥

और भी

सौजन्यामृतसिन्धवः परहितप्रारब्धवीरव्रता ।
वाचालाः परवर्णने निजगुणालापे च मौनव्रताः ॥

आपत्स्वप्यविलुप्तधैर्यनिचयास्सम्पत्स्वनुत्सेकिनो ।
माभूवन्तु खलवक्त्रनिर्गतविषम्लाननास्सज्जनाः' ॥

विरा.— तथास्तु ।

(सब जाते हैं)

श्री धनंजय विजय नाम का व्यायोग श्रीहरिश्चन्द्र अनुवादित समाप्त हुआ ।

विदित हो कि यह जिस पुस्तक से अनुवाद किया गया है वह संवत् १५२७ की लिखी है और इसी से बहुत प्रमाणिक है इस्से इसके सब पाठ उसी के अनुसार रक्खे हैं ।



मुद्राराक्षस

विशाखदत्त कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद है। जर्मन विद्वान प्रोफेसर हिल्लब्रैंड के अनुसार मुद्राराक्षस की प्राचीन कई प्रतियां पाई जाती हैं, जिनमें रचनाकार के स्थान पर किसी पर विशाखदत्त का और किसी पर भास्करदत्त का उल्लेख है। ज्ञातव्य है कि विशाखदत्त के पिता का नाम भास्करदत्त था। इस नाटक का अनुवाद भारतेन्दु जी ने राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के आग्रह से किया था। और इसे पाठ्यक्रम में चलवाने का प्रयत्न भी किया था। यह पहले बालबोधिनी में प्रकाशित हुआ। इसकी प्रस्तावना वर्ष २ नं. २ फ़ाल्गुन सं. १९३१ (फ़रवरी १८७५) में प्रकाशित हुई थी।

कहते हैं कि इसी का अनुवाद महामना पं. मदनमोहन मालवीय के पितृव्य पं. गंगाधर भट्ट मालवीय जी ने भी किया था पर जब उन्हें यह मालूम हुआ कि भारतेन्दु ने भी किया है, तो उन्होंने इसे प्रकाशित नहीं किया। — सं.

मुद्राराक्षस

नाटक

परमश्रद्धास्पद

श्रीयुक्त राजा शिवप्रसाद बहादुर सी.एस.आई.

के

चरण कमलों में

केवल उन्हीं के उत्साहदान से

उनके

वात्सल्यभाजन छात्र द्वारा बना हुआ

यह ग्रंथ

सादर समर्पित हुआ

पूर्व कथा

पूर्व काल में भारतवर्ष में मगधराज एक बड़ा भारी जनस्थान था। जरासंध आदि अनेक प्रसिद्ध पुरुवंशी राजा यहाँ बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। इस देश की राजधानी

पाटलिपुत्र अथवा पुष्पपुर थी। इन लोगों ने अपना प्रताप और शौर्य इतर बढाया था कि आज तक इसका नाम भूमंडल पर प्रसिद्ध है। किन्तु कालचक्र बड़ा प्रबल है कि किसी को भी एक अवस्था में रहने नहीं देता।

अंत में नंदवंश ने पौरवों को निकालकर वहाँ अपना जयपताका उड़ाई। वररुचि सारे भारतवर्ष में अपना प्रबल प्रताप विस्तारित कर दिया।

इतिहास ग्रंथों में लिखित है कि एक सौ अड़तीस वर्ष नंदवंश ने मगध देश का राज्य किया। इसा वंश में महानंद का जन्म हुआ। यह बड़ा प्रसिद्ध और अत्यंत प्रतापशाली राजा हुआ। जब जर्गाद्विजयी सिकंदर (अलक्षेंद्र) ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी तब अशुभ हाथी, बीस हजार सवार और दो लाख पैदल लेकर महानंद ने उसके विरुद्ध प्रयाण किया था।^१ सिद्धांत यह कि भारतवर्ष में उस समय महानंद सा प्रतापी और कोई राजा न था।

महानंद के दो मंत्री थे। मुख्य का नाम शकटार था और दूसरे का राक्षस था। शकटार शुद्ध और राक्षस ब्राह्मण^२ था। ये दोनों अत्यंत वृद्धिमान और महाप्रतिभासंपन्न थे। केवल भेद इतना था राक्षस धीर और गंभीर था, उसके विरुद्ध शकटार अत्यंत उद्विग्नस्वभाव था, यहाँ तक कि अपने प्राचीनपने के अभिमान से कभी कभी यह राजा पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता। महानंद भी अत्यंत उग्र स्वभाव, अमहानशील और क्रोधी था, जिसका परिणाम यह हुआ कि महानंद ने अंत को शकटार को क्रोधाग्नि होकर बड़े निर्विड बंदीखाने में कैद किया और सपरिवार उसके

भोजन का केवल दो सेर सत्तु देता था।

शकटार ने बहुत दिन तक महामात्य का आधिकार भोगा था इससे वह अनादर उसके पक्ष में अत्यंत दुःखदाई हुआ। नित्य सत्तु का वरतन हाथ में लेकर अपने परिवार से कहता कि जो एक भी नंदवंश को जड़ से नाश करने में समर्थ हो वह सत्तु खाए। मंत्री के इस वाक्य से दुःखित होकर उसके परिवार का कोई भी सत्तु न खाता। अंत में कारागार की पीड़ा से एक एक करके उसके परिवार के सब लोग मर गए।

एक तो अपमान का दुःख, दूसरे कुटुंब का नाश, इन दोनों कारणों से शकटार अत्यंत तनछीन मनमलीन दीनहीन हो गया। किंतु अपने मनसूबे का ऐसा पक्का था कि शत्रु से बदला लेने की इच्छा से अपने प्राण नहीं त्याग किए और थोड़े-बहुत भोजन इत्यादि से शरीर को जीवित रखा। रात दिन इसी सोच में रहता कि किस उपाय से वह अपना बदला ले सकेगा।

कहते हैं कि राजा महानंद एक दिन हाथ-मुँह धोकर हँसते-हँसते जनाने में आ रहे थे। विचक्षणा नाम की एक दासी, जो राजा के मुँह लगने के कारण कुछ धुन्ध हो गई थी, राजा को हँसता देख कर हँस पड़ी, राजा उसकी दिठाई से बहुत चिढ़े और उससे पूछा — तू क्यों हँसी? उसने उत्तर दिया — 'जिस बात पर

१. नंदवंश सम्मिलित क्षत्रियों का वंश था। ये लोग शुद्ध क्षत्री नहीं थे।

२. सिकंदर के कान्यकुब्ज से आगे न बढ़ने से महानंद से उससे मुकाबिला नहीं हुआ।

३. बृहत्कथा में राक्षस मंत्री का नाम कहीं नहीं है, केवल वररुचि के एक सच्चे राक्षस से मैत्री की कथा यों लिखी है — एक बड़ा प्रचंड राक्षस पाटलिपुत्र में फिरा करता था। वह एक रात्रि वररुचि से मिला और पूछा कि 'इस नगर में कौन स्त्री सुंदर है?' वररुचि ने उत्तर दिया — 'जो जिसको रुचें वहीं सुंदर है।' इस पर प्रसन्न होकर राक्षस ने उस से मित्रता की और कहा कि हम सब बात में तुम्हारी सहायता करेंगे और फिर सदा राजकाज में ध्यान में प्रत्यक्ष होकर राक्षस वररुचि की सहायता करता।

४. बृहत्कथा में यह कहानी और ही चाल पर लिखी है। वररुचि, व्याडि और इंद्रदत्त तीनों को गुरुदक्षिणा देने के हेतु करोड़ों रुपए के सोने की आवश्यकता हुई। तब इन लोगों ने सलाह की कि नंद (सत्यनंद राजा के पास चलाकर उससे सोना लें। उन दिनों राजा का डेरा अयोध्या में था, ये तीनों ब्राह्मण वहाँ गए, किंतु संयोग से उन्हीं दिनों राजा मर गया। तब आपस में सलाह करके इंद्रदत्त योगबल से अपना शरीर छोड़कर राजा के शरीर में चला गया, जिससे राजा फिर जी उठा। तभी से उसका नाम योगानंद हुआ। योगानंद ने वररुचि को करोड़ रुपये देने की आज्ञा की। शकटार बड़ा बुद्धिमान था; उसने सोचा कि राजा का मर कर जीना और एक बारगी एक अपरिचित को रुपया देना इसमें ही न हो कोई भेद है। ऐसा न हो कि अपना काम करके फिर राजा का शरीर छोड़कर यह चला जाय, यह सोचकर शकटार ने राज्य भर में जितने भी मुरदे मिले उनको जलावा दिया, उसी में इंद्रदत्त का भी शरीर जल गया। जब व्याडि ने यह वृत्तान्त योगानंद से कहा तो यह सुनकर वह पहिले तो दुःखी हुआ पर फिर वररुचि को अपना मंत्री बनाया। अंत में शकटार की उग्रता से संतान होकर उसको अग्नि कूर्प में कैद किया। बृहत्कथा में शकटार के स्थान पर शकटाल ना लिखा है।

मुद्राराक्षस

विशाखदत्त कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद है। जर्मन विद्वान प्रोफेसर हिल्लब्रैंड के अनुसार मुद्राराक्षस की प्राचीन कई प्रतियां पाई जाती हैं, जिनमें रचनाकार के स्थान पर किसी पर विशाखदत्त का और किसी पर भास्करदत्त का उल्लेख है। ज्ञातव्य है कि विशाखदत्त के पिता का नाम भास्करदत्त था। इस नाटक का अनुवाद भारतेन्दु जी ने राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के आग्रह से किया था। और इसे पाठ्यक्रम में चलवाने का प्रयत्न भी किया था। यह पहले बालबोधिनी में प्रकाशित हुआ। इसकी प्रस्तावना वर्ष २ नं. २ फाल्गुन सं. १९३१ (फरवरी १८७५) में प्रकाशित हुई थी।

कहते हैं कि इसी का अनुवाद महामना पं. मदनमोहन मालवीय के पितृव्य पं. गंगाधर भट्ट मालवीय जी ने भी किया था पर जब उन्हें यह मालूम हुआ कि भारतेन्दु ने भी किया है, तो उन्होंने इसे प्रकाशित नहीं किया। — सं.

मुद्राराक्षस

नाटक

परमश्रद्धास्पद

श्रीयुक्त राजा शिवप्रसाद बहादुर सी.एस.आई.

के

चरण कमलों में

केवल उन्हीं के उत्साहवान से

उनके

वात्सल्यभाजन छात्र द्वारा बना हुआ

यह ग्रंथ

सादर समर्पित हुआ

पूर्व कथा

पूर्व काल में भारतवर्ष में मगधराज एक बड़ा भारी जनस्थान था। जरासंध आदि अनेक प्रसिद्ध पुरुवंशी राजा यहाँ बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। इस देश की राजधानी

पाटलिपुत्र अथवा पुष्पपुर थी। इन लोगों ने अपना प्रताप और शौर्य इतना बढ़ाया था कि आज तक इसका नाम भूमंडल पर प्रसिद्ध है। किन्तु कालवक्र बड़ा प्रबल है कि किसी को भी एक अवस्था में रहने नहीं देता।

अंत में नन्दवंश ने पौरवों को निकालकर वहाँ अपनी जयपताका उड़ाई। वररुचि सारे भारतवर्ष में अपना प्रबल प्रताप विस्तारित कर दिया।

इतिहास ग्रंथों में लिखित है कि एक सौ अड़तीस वर्ष नन्दवंश ने मगध देश का राज्य किया। इसा वंश में महानंद का जन्म हुआ। यह बड़ा प्रसिद्ध और अत्यंत प्रतापशाली राजा हुआ। जब जगदीश्वरी सिकंदर (अलक्षेन्द्र) ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी तब असंख्य हाथी, बीस हजार सवार और दो लाख पैदल लेकर महानंद ने उसके विरुद्ध प्रयाण किया था।^१ सिद्धांत यह कि भारतवर्ष में उस समय महानंद सा प्रतापी और कोई राजा न था।

महानंद के दो मंत्री थे। मुख्य का नाम शकटार था और दूसरे का राक्षस था। शकटार शूद्र और राक्षस ब्राह्मण^२ था। ये दोनों अत्यंत बुद्धिमान और महाप्रतिभासंपन्न थे। केवल भेद इतना था राक्षस धीर और गंभीर था, उसके विरुद्ध शकटार अत्यंत उद्विग्नस्वभाव था, यहाँ तक कि अपने प्राचीनपने के अभिमान से कभी कभी यह राजा पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता। महानंद भी अत्यंत उग्र स्वभाव, अमहानशील और क्रोधोधी था, जिसका परिणाम यह हुआ कि महानंद ने अंत को शकटार को क्रोधांध होकर बड़े निविड़ बंदीखाने में कैद किया और सपरिवार उसके

भोजन का केवल दो सेर सत्तु देता था।

शकटार ने बहुत दिन तक महामात्य का अधिकार भोगा था इससे यह अनादर उसके पक्ष में अत्यंत दुखलाई हुआ। नित्य सत्तु का भरतन हाथ में लेकर अपने परिवार से कहता कि जो एक भी नन्दवंश को जड़ से नाश करने में समर्थ हो वह सत्तु खाए। मंत्री के इस वाक्य से दुःखित होकर उसके परिवार का कोई भी सत्तु न खाता। अन्त में कारागार की पीड़ा से एक एक करके उसके परिवार के सब लोग मर गए।

एक तो अपमान का दुःख, दूसरे कुटुंब का नाश, इन दोनों कारणों से शकटार अत्यंत तनछीन मनमलीन दीनहीन हो गया। किंतु अपने मनसूबे का ऐसा पक्का था कि शत्रु से बदला लेने की इच्छा से अपने प्राण नहीं त्याग किए और थोड़े-बहुत भोजन इत्यादि से शरीर को जीवित रखा। रात दिन इसी सोच में रहता कि किस उपाय से वह अपना बदला ले सकेगा।

कहते हैं कि राजा महानंद एक दिन हाथ-मुँह धोकर हैसने-हैसते जमाने में आ रहे थे। विचक्षणा नाम की एक दासी, जो राजा के मुँह लगने के कारण कुछ धुन्ध हो गई थी, राजा को हैसता देख कर हैस पड़ी, राजा उसकी हिठाई से बहुत चिढ़े और उससे पूछा — तू क्यों हैसी? उसने उत्तर दिया — 'जिस ज्ञान पर

१. नन्दवंश सम्मिलित क्षत्रियों का वंश था। ये लोग शुद्ध क्षत्री नहीं थे।

२. सिकंदर के कान्यकुब्ज से आगे न बढ़ने से महानंद से उससे मुकाबिला नहीं हुआ।

३. बृहत्कथा में राक्षस मंत्री का नाम कहीं नहीं है, केवल वररुचि के एक सच्चे राक्षस से मैत्री की कथा यों लिखी है — एक बड़ा प्रचंड राक्षस पाटलिपुत्र में फिरा करता था। वह एक रात्रि वररुचि से मिला और पूछा कि 'इस नगर में कौन स्त्री सुंदर है?' वररुचि ने उत्तर दिया — "जो जिसको रुचै वहीं सुंदर है।" इस पर प्रसन्न होकर राक्षस ने उस से मित्रता की और कहा कि हम सब बात में तुम्हारी सहायता करेंगे और फिर सना राजकाज में ध्यान में प्रत्यक्ष होकर राक्षस वररुचि की सहायता करता।

४. बृहत्कथा में यह कहानी और ही चाल पर लिखी है। वररुचि, ब्याड़ि और इंद्रदत्त तीनों को गुप्तदक्षिणा देने के हेतु करोड़ों रुपए के सोने की आवश्यकता हुई। तब इन लोगों ने सलाह की कि नंद (सत्यनंद राजा के पास चलाकर उससे सोना लें। उन दिनों राजा का डेरा अयोध्या में था, ये तीनों ब्राह्मण वहाँ गए, किंतु संयोग से उन्हीं दिनों राजा मर गया। तब आपस में सलाह करके इंद्रदत्त योगबल से अपना शरीर छोड़कर राजा के शरीर में चला गया, जिससे राजा फिर जी उठा। तभी से उसका नाम योगानंद हुआ। योगानंद ने वररुचि को करोड़ रुपये देने की आज्ञा की। शकटार बड़ा बुद्धिमान था; उसने सोचा कि राजा का मर कर जीना और एक बारगी एक अपरिचित को रुपया देना इसमें हो न हो कोई भेद है। ऐसा न हो कि अपना काम करके फिर राजा का शरीर छोड़कर यह चला जाय, यह सोचकर शकटार ने राज्य भर में जिनने भी मुरदे मिले उनको जलावा दिया, उसी में इंद्रदत्त का भी शरीर जल गया। जब ब्याड़ि ने यह वृत्तान्त योगानंद से कहा तो यह सुनकर वह पहिले तो दुःखी हुआ पर फिर वररुचि को अपना मंत्री बनाया। अंत में शकटार की उग्रता से संतान होकर उसको अंधे कृपे में कैद किया। बृहत्कथा में शकटार के स्थान पर शकटाल ना लिखा है।

महाराज हँसे उसी पर मैं भी हँसी ।' महानंद इस बात पर और भी चिढ़ा और कहा कि अभी बतला मैं क्यों हँसा, नहीं तो तुझको प्राणदंड होगा । दासी से और कुछ उपाय न बन पड़ा और उसने घबड़ाकर इसके उत्तर देने की एक महीने की मुहल्लत चाही । राजा ने कहा — आज से ठीक एक महीने के भीतर जो उत्तर न देगी तो कभी तेरे प्राण न बचेगे ।

विचक्षणा के प्राण उस समय तो बच गए परंतु महीने के जितने दिन बीतते थे, मारे चिंता के वह मरी जाती थी । कुछ सोच विचार कर वह एक दिन कुछ खाने-पीने की सामग्री लेकर शकटार के पास गई और रो-रोकर अपनी सब विपत्ति कहने लगी । मंत्री ने कुछ देर तक सोचकर उस अवसर की सब घटना पूछी और हँसकर कहा — 'मैं जान गया राजा क्यों हँसे थे । कुल्ला करने के समय पानी के छोटे छींटों पर राजा को बटबीज की याद आई, और यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बड़े बड़े के वृक्ष इन्हीं छोटे बीजों के अंतर्गत हैं । किन्तु भूमि पर पड़ते ही वह जल के छोटे नाश हो गए । राजा अपनी इसी भावना को याद करके हँसते थे ।' विचक्षणा ने हाथ जोड़कर कहा — 'यदि आप के अनुमान से मेरे प्राण की रक्षा होगी तो मैं जिस तरह से होगा आपको कैदखाने से छुड़ाऊँगी और जन्म भर आपकी दासी होकर रहूँगी ।'

राजा ने विचक्षणा से एक दिन फिर हँसने का कारण पूछा, तो विचक्षणा ने शकटार से जैसा सुना था कह सुनाया । राजा ने चमत्कृत होकर पूछा — 'सच बता, तुझसे यह भेद किसने कहा ।' दासी ने शकटार का सब वृत्त कहा और राजा को शकटार की बुद्धि की प्रशंसा करते देख अवसर पाकर उसके मुक्त होने की प्रार्थना भी की । राजा ने शकटार को बंदी से छुड़ाकर राक्षस के नीचे मंत्री बनाकर रखा ।

ऐसे अवसर पर राजा लोग बहुत चुक जाते हैं । पहले तो किसी की अत्यन्त प्रतिष्ठा बढ़ानी ही नीतिविरुद्ध है । यदि संयोग से बढ़ जाय तो उसकी बहुत सी बातों को तरह देकर टालना चाहिए, और जो कदाचित् बड़े प्रतिष्ठित मनुष्य का राजा अनादर करें तो उसकी जड़ काटकर छोड़े, फिर उसका कभी विश्राम न करे । प्रायः अमीर लोग पहले तो मुसाहिब या कारिगों को बेतरह मिर चढ़ाते हैं, और फिर छोटी छोटी बातों पर उसकी प्रतिष्ठा हीन कर देते हैं (इसी से ऐसे लोग राजाओं के प्राण के ग्राहक हो जाते हैं और अंत में

नंद की भाँति उसका सर्वनाश होता है ।

शकटार यद्यपि बंदीखाने से छूटा और छोटा मंत्री भी हुआ, किन्तु अपनी अप्रतिष्ठा और परिवार के नाश का शोक उसके चित्त में सदा पहिले ही सा जागता रहा । रात दिन वह यही सोचता कि किस उपाय से ऐसे अव्यवस्थितचित्त उद्विग्न राजा का नाश करके अपना बदला ले ! एक दिन वह थोड़े पर हवा खाने जाता था । नगर के बाहर एक स्थार पर देखता है कि एक काला सा ब्राह्मण अपनी कुटी के सामने मार्ग की कुशा उखाड़-उखाड़ कर उसकी जड़ में मठा डालता जाता है । पसीने से लथपथ है, परंतु कुछ भी शरीर की ओर ध्यान नहीं देता । चारों ओर कुशा के बड़े-बड़े ढेर लगे हुए हैं । शकटार ने आश्चर्य से ब्राह्मण से इस श्रम का कारण पूछा । उसने कहा — 'मेरा नाम विष्णुगुप्त चाणक्य है । मैं ब्रह्मचर्य में नीति, वैद्यक, ज्योतिष,

रसायन आदि संसार की उपयोगी सब विद्या पढ़कर विवाह की इच्छा से नगर की ओर आया था, किंतु कुश गड़ जाने से मेरे मनोरथ में विघ्न हुआ, इससे जब तक इन बाधक कुशाओं का सर्वनाश न कर लूँगा और काम न करूँगा । मठा इस वास्ते इनकी जड़ में देता हूँ जिससे पृथ्वी के भीतर इनका मूल भी भस्म हो जाय ।'

शकटार के जी में यह बात आई कि ऐसा पक्का ब्राह्मण जो किसी प्रकार राजा से क्रुद्ध हो जाय तो उसका जड़ से नाश करके छोड़े । यह सोचकर उसने चाणक्य से कहा कि जो आप नगर में चलकर पाठशाला स्थापित करें तो मैं अपने को बड़ा अनुगृहीत समझूँ । मैं इसके बदले बेलदार लगाकर यहाँ की सब कुशाओं को खुदा डालूँगा । चाणक्य इस पर संमत हुआ और उसने नगर में आकर एक पाठशाला स्थापित की । बहुत से विद्यार्थी लोग पढ़ने आने लगे और पाठशाला बड़े धूमधाम से चल निकली ।

अब शकटार इस सोच में हुआ कि चाणक्य से राजा से किस चाल से विगाड़ हो । एक दिन राजा के घर में श्राद्ध था । उस अवसर को शकटार अपने मनोरथ सिद्ध होने का अच्छा समय सोचकर चाणक्य को श्राद्ध का न्योता देकर अपने साथ ले आया और श्राद्ध के आसन पर बिठला कर चला गया, क्योंकि वह जानता था कि चाणक्य का रंग काला, आँखें लाल और दाँत काले होने के कारण नंद उसको आसन पर से उठा देगा, जिससे चाणक्य अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसका सर्वनाश करेगा ।

और ठीक ऐसा ही हुआ — जब राक्षस के साथ नंद श्राद्धशाला में आया और एक अनिर्मात्रत ब्राह्मण को आसन पर बैठा हुआ और श्राद्ध के अयोग्य देखा तो चिढ़कर आज्ञा दी कि इसको बाल पकड़कर यहाँ से निकाल दो । इस अपमान से ठोकर खाए हुए सर्प की भाँति अत्यंत क्रोधित होकर शिखा खोलकर चाणक्य ने सब के सामने प्रतिज्ञा की कि जब तक इस दुष्ट राजा का सत्यानाश न कर लूँगा तब तक शिखा न बाँधूँगा । यह प्रतिज्ञा करके बड़े क्रोध से राजभवन से चला गया ।

शकटार अवसर पाकर चाणक्य को मार्ग में से अपने घर ले आया और राजा की अनेक निंदा करके उसका क्रोध और भी बढ़ाया और अपनी सब दुर्दशा कह कर नंद के नाश में सहायता करने की प्रतिज्ञा की । चाणक्य ने कहा कि जब तक हम राजा के घर का भीतरी हाल न जानें कोई उपाय नहीं सोच सकते । शकटार ने इस विषय में विचक्षणा की सहायता देने का वृत्तान्त कहा और रात को एकांत में बुलाकर चाणक्य के सामने उससे सब बात का करार ले लिया ।

महानंद को नौ पुत्र थे । आठ विवाहिता रानी से और एक चंद्रगुप्त मुरा नाम की नाइन स्त्री से । इसी से चंद्रगुप्त को मौर्य और वृषल भी कहते हैं । चंद्रगुप्त बड़ा बुद्धिमान था इसी से और आठों भाई इससे भीतरी द्वेष रखते थे । चंद्रगुप्त की बुद्धिमान्ता की बहुत सी कहानियाँ हैं । कहते हैं कि एक बेर रूम के बादशाह ने महानंद के पास एक कृत्रिम सिंह लोहे की जाली के पिंजड़े में बंद करके भेजा और कहला दिया कि पिंजड़ा टूटने न पावे और सिंह इसमें से निकल जाय । महानंद और उसके आठ औरस पुत्रों ने इसको बहुत कुछ सोचा, परन्तु बुद्धि ने कुछ काम न किया । चंद्रगुप्त ने विचारा कि यह सिंह अवश्य किसी ऐसे पदार्थ का बना होगा जो या तो पानी से या आग से गल जाय, यह सोचकर पहले उसने उस पिंजड़े को पानी के कुँड में रखा और जब वह पानी से न गला तो उस पिंजड़े के चारों तरफ आग जलावाई, उसकी गर्मी से वह सिंह लाह और राल का बना था गल गया । एक बेर ऐसे ही किसी बादशाह ने एक अंगीठी में बहकती हुई आग, एक बोरा सरसों और एक मीठा फल महानंद के पास अपने झूल के द्वारा भेज दिया । राजा की सभा का कोई भी मनुष्य इसका

आशय न समझ सका ; किंतु चंद्रगुप्त ने सोचकर कहा कि अंगीठी यह दिखलाने को भेजी है कि मेरा क्रोध अग्नि है और सरसों यह सूचना कराती है कि मेरी सेना असंख्य है और फल भेजने का आशय यह है कि मेरी मित्रता का फल मधुर है । इनके उत्तर में चंद्रगुप्त ने एक घड़ा जल और एक पिंजड़े में थोड़े से तीतर और एक अमूल्य रत्न भेजा, जिसका आशय यह था कि तुम्हारी सेना कितनी भी असंख्य क्यों न हो हमारे वीर उनको भक्षण करने में समर्थ हैं और तुम्हारा क्रोध हमारी नीति से सहज ही वृद्धाया जा सकता है और हमारी मित्रता सदा अमूल्य और एक रस है । ऐसे ही तीन पुतलीवाली कहानी भी इसी के साथ प्रसिद्ध है । इसी बुद्धिमान्ता के कारण चंद्रगुप्त से उसके भाई लोग बुरा मानते थे ; और महानंद भी अपने औरस पुत्रों का यक्ष करके इससे कुढ़ता था । यह यद्यपि शूद्र के गर्म से था, परन्तु ज्येष्ठ होने के कारण अपने को राज का भागी समझता था ; और इसी से इसका राजपरिवार से पूर्ण वैमनस्य था । चाणक्य और शकटार ने इसी से निश्चय किया कि हम लोग चंद्रगुप्त को राज का लोभ देकर अपनी ओर मिला लें और नन्दों का नाश करके इसी को राजा बनावें ।

यह सब सलाह पक्की हो जाने के पीछे चाणक्य तो अपनी पुरानी कुटी में चला गया और शकटार ने चंद्रगुप्त और विचक्षणा को तब तक सिखा पढ़ाकर पक्का करके अपनी ओर फोड़ लिया । चाणक्य ने कुटी में जाकर हलाहल विष मिले हुए कुछ ऐसे पकवान तैयार किए जो परीक्षा करने में न पकड़े जायें, किन्तु खाते ही प्राण नाश हो जाय । विचक्षणा ने किसी प्रकार से महानंद को पुत्रों समेत यह पकवान खिला दिया, जिससे बेचारे सबके सब एक साथ परमधाम को सिधारे ।

चन्द्रगुप्त इस समय चाणक्य के साथ था । शकटार अपने दुःख और पापों से संतप्त होकर निविड़ बन में चला गया और अनशन करके प्राण त्याग किए । कोई कोई इतिहास लेखक कहते हैं कि चाणक्य ने अपने हाथ से शस्त्र द्वारा नन्द का वध किया और फिर क्रम से उसके पुत्रों को भी मारा, किन्तु इस विषय का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है । चाहे जिस प्रकार से हो चाणक्य ने नन्दों का नाश किया, किन्तु केवल पुत्र

सहित राजा के मारने ही से वह चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर न बैठ सका, इससे अपने अंतरंग मित्र जीर्वासिद्ध को क्षपणक के वेष में राक्षस के पास छोड़कर आप राजा लोगों से सहायता लेने की इच्छा से विदेश निकला। अंत में अफगानिस्तान वा उसके उत्तर और के निवासी पर्वतक नामक लोभ परतंत्र एक राजा से मिलकर और उसको जीतने के पीछे मगध राज्य का आधा भाग देने के नियम पर उसको पटने पर चढ़ा लाया। पर्वतक के भाई का नाम वैरोधक और

पुत्र का नाम मलयकेतु था। और भी पाँच म्लेच्छ राजाओं को पर्वतक अपनी सहायता को लाया था। इधर राक्षस मंत्री राजा के मरने से दृष्टी होकर उसके भाई सर्वार्थसिद्ध को सिंहासन पर बैठाकर राजकाज चालने लगा। चाणक्य ने पर्वतक की सेना लेकर कुसुमपुर को चारों ओर से घेर लिया। पंद्रह दिन तक घोरतर युद्ध हुआ। राक्षस की सेना और नागरिक लोग लड़ते लड़ते शीथिल हो गए; इसी समय में गुप्त रीति से जीर्वासिद्ध के बहकाने से राजा सर्वार्थसिद्ध वैरागी

होला। विचक्षण ने उस अभिचार का निर्माल्य किसी प्रकार इन लोगों के अंग में छुला दिया था। किंतु वर्तमान लाल के विद्वान लोग सोचते हैं कि उस समय निर्माल्य में मंत्र का बल नहीं था; चाणक्य ने कुछ औषध ऐसे विषमिश्रित बनाए थे कि जिनके भोजन वा स्पर्श से मनुष्य का सद्यः नाश हो जाय। भट्ट सोमदेव के कथा सरित्सागर के पीठलंबक के चौथे तरंग में लिखा है — योगानंद को ऊँची अवस्था में नए प्रकार की कामवासना उत्पन्न हुई। वररुचि ने यह सोचकर कि राजा को तो भोगविलास से छुड़ी ही नहीं है, इससे राजकाज का काम शकटार से निकाला जाय तो अच्छी तरह चले। यह विचार कर और राजा से पूछकर शकटार को अंधे कुएँ से निकाल कर वररुचि ने मंत्रीपदा पर नियत किया। एक दिन शिकार खेलने में गंगा में राजा ने अपनी पाँचों उँगली परछाई वररुचि को दिखावाई। वररुचि ने अपनी दो उँगलियों की परछाई ऊपर से दिखाई, जिससे राजा के हाथ की परछाई छिप गई। राजा ने इन संज्ञाओं का कारण पूछा। वररुचि ने चित्त एक हो जायँ तो पाँच का बल व्यर्थ है। इस बात पर राजा ने वररुचि की बड़ी स्तुति की। एक दिन राजा अनेक कारणों से वह बच गया। वररुचि ने कहा कि आप के सब महल की यही दशा है। अनेक स्त्री वेषधारी पुरुष महल में रहते हैं और उन सबों को पकड़ कर दिखला दिया। इसी से उस ब्राह्मण के प्राण बचे। एक दिन योगानंद की रानी के एक चित्र में, जो महल में लगा हुआ था; वररुचि ने जाँच में तिल बना दिया। वररुचि को आज ही रात को मार डालो। शकटार ने उसको अपने घर में छिपा रखा और किसी और को उसके बढले मार कर उसका मारना प्रकट किया। एक बेर राजा का पुत्र हिरण्यगुप्त जंगल में शिकार खेलने गया था, दिया। इन दोनों में यह बात ठहरी की आधी रात तक कुँवर सोवें भालू पहरा दें, फिर भालू सोमे कुँवर पहरा दें। भालू ने अपना मित्र धर्म निवाहा और सिंह के बहकाने पर भी कुँवर की रक्षा की। किंतु अपनी पारी में कुँवर ने सिंह के बहकाने से भालू को ढकेलना चाहा, जिस पर उसने जाग कर मित्रता के कारण कुँवर को मारा सोच हुआ और कहा कि वररुचि जीता होता तो इस समय उपाय सोचता। शकटार ने यह अवसर समझकर मित्रद्वेष किया उसी का यह फल है। वह वृत्त कहकर उसको उपाय से अच्छा किया। वररुचि ने कहा — कुँवर ने यह सब वृत्त किस तरह जाना? वररुचि ने कहा — तुमने यह सब वृत्त किस तरह जाना? वररुचि ने कहा — योगबल से जैसे रानी का तिल। (ठीक यही कहानी राजा भोज उसकी रानी भानुमती उसके पुत्र और शकटार ने राजा को मारने को कहा था, किंतु वह धर्मिष्ठ था इससे सम्मत न हुआ। वररुचि के चले जाने पर शकटार ने अवसर पाकर चाणक्य द्वारा कृत्या से नंद को मारा।

१. लिखी पुस्तकों में यह नाम, विरोधक, वैरोधक इत्यादि कई चाल से लिखा है।

होकर बन में चला गया। इस कुसमय में राजा के चले जाने से राक्षस और भी उदास हुआ। चंदनदास नामक एक बड़े धनी जौहरी के घर में अपने कुटुंब को छोड़ कर और शकटदास कायस्थ तथा अनेक राजनीति जाननेवाले विश्वासपात्र मित्रों को और कई आवश्यक काम सौंपकर राजा सर्वार्थसिद्धि के फेर लाने को आप तपोवन की ओर गया।

चाणक्य ने जीवसिद्धि द्वारा यह सब सुनकर राक्षस के पहुँचने के पहले ही अपने मनुष्यों से राजा सर्वार्थसिद्धि को मरवा डाला। राक्षस जब तपोवन में पहुँचा और सर्वार्थसिद्धि को मरा देखा तो अत्यन्त उदास होकर वहीं रहने लगा। यद्यपि सर्वार्थसिद्धि के मार डालने से चाणक्य की नंदकुल के नाश की प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी, किंतु उसने सोचा कि जब तक राक्षस चंद्रगुप्त का मंत्री न होगा तब तक राज्य स्थिर न होगा। वरंच बड़े विनय से तपोवन में राक्षस के पास मंत्रित्व स्वीकार करने का संदेसा भेजा, परंतु प्रभुमक्त राक्षस ने उसको स्वीकार नहीं किया।

तपोवन में कई दिन रहकर राक्षस ने यह सोचा कि जब तक पर्वतक को हम न फोड़ेंगे, काम न चलेगा। यह सोचकर वह पर्वतक के राज्य में गया और वहाँ उसके बड़े मंत्री से कहा कि चाणक्य बड़ा दगाबाज है, वह आधा राज कभी न देगा। आप राजा को लिखिए, वह मुझसे मिले तो मैं सब राज्य उनको दूँ। मंत्री ने पत्रद्वारा पर्वतक को यह सब वृत्त और राक्षस की नीतिकुशलता लिख भेजा और यह भी लिखा कि अत्यंत वृद्ध हैं, आगे से मंत्री का काम राक्षस को दीजिए। पाटलिपुत्र विजय होने पर भी चाणक्य आधा राज्य देने में विलंब करता है, यह देखकर सहज लोभी पर्वतक ने मंत्री की बात मान ली और पत्र द्वारा राक्षस को गुप्त रीति से अपना मुख्य अमात्य बना कर इधर ऊपर के चित्त से चाणक्य से मिला रहा।

जीवसिद्धि के द्वारा चाणक्य ने राक्षस का सब हाल जानकर अत्यंत सावधानतापूर्वक चलना आरंभ किया। अनेक भाषा जानने वाले बहुत से धूर्त पुरुषों को वेष बदल बदलकर भेद लेने को चारों ओर नियुक्त किया। चंद्रगुप्त को राक्षस का कोई गुप्तचर धोखे से किसी प्रकार की हानि न पहुँचावे इसका भी पक्का प्रबंध किया और पर्वतक की विश्वासघातकता का बदला लेने का दृढ़ संकल्प से, परन्तु अत्यंत गुप्त रूप से, उपाय सोचने लगा।

राक्षस ने केवल पर्वतक की सहायता से राज के मिलने की आशा छोड़कर कुल्लू^१, मलय, काश्मीर, सिंधु और पारस इन पाँचों देशों के राजा से सहायता ली। जब इन पाँचों देश के राजाओं ने बड़े आदर से राक्षस को सहायता देना स्वीकार किया तो वह तपोवन के निकट फिर से लौट आ और वहाँ से चंद्रगुप्त के मारने को एक विषकन्या^२ भेजी और अपना विश्वासपात्र समझ कर जीवसिद्धि को उसके साथ कर दिया। चाणक्य ने जीवसिद्धि द्वारा यह सब बात जानकर और पर्वतक की धूर्तता और विश्वासघातकता से कुढ़ कर प्रकट में इस उपहार को बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण किया और लानेवाले को बहुत सा पुरस्कार देकर विदा किया। साँभ होने के पीछे धूर्ताधिराज चाणक्य ने इस कन्या को पर्वतक के पास भेज दिया और इन्द्रियलोलुप पर्वतक उसी रात को उस कन्या के संग से मर गया। इधर चाणक्य ने यह सोचा कि मलय-केतु यहाँ रहेगा तो उसको राज्य का हिस्सा देना पड़ेगा, इससे किसी तरह इसको यहाँ से भगावें तो काम चले। इस कार्य के हेतु भागुरायण नामक एक प्रतिष्ठित विश्वासपात्र पुरुष को मलयकेतु के पास सिखा पड़ा कर भेज दिया। उसने पिछली रात को मलयकेतु से जाकर उसका बड़ा हितु बनकर उसने कहा कि आज चाणक्य ने विश्वासघातकता करके आप के पिता को विषकन्या के प्रयोग से मार डाला और अबसर पाकर आप को भी मार डालेगा। मलयकेतु बेचारा इस बात

१. कुल्लू देश किलात वा कुल्लू देश।

२. विषकन्या शास्त्रों में दो प्रकार की लिखी है। एक थोड़े से ऐसे बुरे योग हैं कि उस लग्न में उस प्रकार के ग्रहों के समा जो कन्या उत्पन्न हो जिसके साथ जिसका विवाह हो वा जो उसका सांग करे वह साथ ही वा शीघ्र ही मर जाता है। दूसरे प्रकार की विषकन्या वैद्यक रीति से बनाई जाती थी। छोटेपन से वरन गर्भ से कन्या को दूध में वा भोजन में थोड़ा-थोड़ा विष देते बड़ी होने पर उसका शरीर ऐसा विषमय हो जाता था कि जो उसका अंग संग करता वह मर जाता।

के सुनते ही सन्न हो गया और पिता के शयनागार में जाकर देखा तो पर्वतक को बिछौने पर मरा हुआ पाया । इस भयानक दृश्य के देखते ही मुग्ध मलयकेतु के प्राण सूख गए और वह भागुरायण की सलाह से उस रात को छिपकर वहाँ से भाग कर अपने राज्य की ओर चला गया । इधर चाणक्य के सिखाए भद्रभट इत्यादि चंद्रगुप्त के कई बड़े-बड़े अधिकारी प्रकट में राजद्रोही बनकर मलयकेतु और भागुरायण के साथ ही भाग गए ।

राक्षस ने मलयकेतु से पर्वतक के मारे जाने का समाचार सुनकर अत्यंत सोच किया और बड़े आग्रह

और सावधानी से चन्द्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्टसाधन मो प्रवृत्त हुआ ।

चाणक्य ने कुसुमपुर में दूसरे दिन यह प्रसिद्ध कर दिया कि पर्वतक और चंद्रगुप्त दोनों समान बंधु थे, इससे राक्षस ने विषकन्या भेजकर पर्वतक को मार डाला और नगर के लोगों के चित्त पर, जिनको कि यह सब गुप्त अनुसंधि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया ।

इसके पीछे चाणक्य और राक्षस के परस्पर नीति की जो चोटें चलती हैं, उसी का इस नाटक में वर्णन है ।

महाकाव्य विशाखदत्त का बनाया

मुद्राराक्षस

स्थान — रंगभूमि

रंगशाला में नांदीमंगलपाठ

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अघोर ।
ज्यति अपूरब धन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ॥
'कौन है सीस पै ? 'चंद्रकला'.

'कहा याको है नाम यही त्रिपुरारी ?

'हाँ यही नाम है, भूल गई

किमी जानत हू तुम प्रान-पियारी' ॥

'नारहि पूछत चंद्राहिं नाहिं',

'कहे विजया जदि चांद्र लबारी' ।

यों गिरजे छलि गंग छिपावत ईस हरो सब पीर
तुम्हारी ॥

पाद-प्रहार सों जाई पताल न

भूमि सबै तनु बोझ के मारे ।
हाथ नचाइबे सों नभ मैं इत के उत टूटि परै नाहिं
तारे ।

देखन सों जरि जाहिं न लोक

न खोलत नैन कृपा उर धारे ।

यों थल के बिनु कष्ट सों नाचत

शर्व हरो दुख सर्व तुम्हारे ॥२

(नांदीपाठ के अनंतर

सूत्रधार— बस ! बहुत मत बढ़ाओ, सुनो,
आज मुझे सभासदों की आज्ञा है कि सामंत वटेश्वरदत्त

१. स्वतंत्र मंगलाचरण ।

२. संस्कृत का मंगलाचरण —

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किन्तु नामैतदस्या :

नामैवास्यास्तदेतत् ; परिचितमपि ये विस्मृतं कस्य हेतोः ।

नारी पृच्छमि नेन्दुः कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु —

दैव्या निह नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यामव्याद्विभोर्वः ॥१॥

और भी

पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवनेरक्षतः स्वैरपातैः

संकोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयता सर्वलोकातिगानाम् । दृष्टिं लक्ष्येषु

नोग्रज्वलनकणमृन् वध्नतो दाहभीते

स्त्रियाधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिनः पातु वो दुःखनुत्तम् ॥२॥

के पौत्र और महाराज पृथु के पुत्र विशाखदत्त कवि का बनाया मुद्राराक्षस नाटक खेलो। सच है, जो सभा काव्य के गुण और दोष को सब भाँति समझती है, उसके सामने खेलने में मेरा भी चित्त संतुष्ट होता है। उपजें आँखें खेत में, मुखरुह के धान ! सघन होन मैं धान के, चहिय न गुनी किसान ॥ तो मैं घर से सुघर घरनी को बुलाकर कुछ गाने बजाने का ढंग जमाऊँ। (धूमकर) यही मेरा घर है, चलो। (आगे बढ़कर) अहा ! आज तो मेरे घर में कोई उत्सव जान पड़ता है, क्योंकि घरवाले सब अपने अपने काम में चूर हो रहे हैं।

पीसत कोऊ सुगंध कोऊ जल भरि कै लायत । कोऊ बैठि के रंग रंग की माल बनायत ॥ कहैं तिय गन हुँकार सहित अति स्रवन सोहायत । होत मुशल को शब्द सुखद जिय को सुनि भावत ॥

जो हो घर से स्त्री को बुलाकर पूछ लेता हूँ (नेपथ्य की ओर)

री गुनवारी अब उपाय की जाननवारी । घर की राखनवारी सब कुछ साधनवारी ॥ मो गृह नीति सरूप काज सब करन सँवारी । बेगि आउरी नटी विलंब न करु सुनि प्यारी ॥

(नटी आती है)

नटी—आर्यपुत्र ! मैं आई, अनुग्रहपूर्वक कुछ

आज्ञा दीजिए।

सूत्र.—प्यारी, आज्ञा पीछे दी जायगी पहिले यह बता कि आज ब्राह्मणों का न्योता करके तुमने इस कुटुंब के लोगों पर क्यों अनुग्रह किया है ? या आपही से आज अर्थात् लोगों ने कृपा किया है कि ऐसे धूम स रसोई चढ़ रही है ?

नटी—आर्य ! मैंने ब्राह्मणों को न्योता दिया है।

सूत्र.—क्यों ? किस निमित्त से ?

नटी—चंद्रग्रहण लगनेवाला है।

सूत्र.—कौन कहता है ?

नटी—नगर के लोगों के मुँह सुना है।

सूत्र.—प्यारी मैंने ज्योतिःशास्त्र के चौंसठों अंगों में बड़ा परिश्रम किया है। जो हो ; रसोई तो होने दो पर आज तो ग्रहण है यह तो किसी ने तुझे धोखा ही दिया है क्योंकि—

चंद्र बिंब पूरा न भए कर केतु^१ हठ दाप^२।

बल सों करिहै ग्रास कह—

(नेपथ्य में)

हैं ! मेरे जीते चंद्र को कौन बल से ग्रस सकता है ?

सूत्र.—जोह बुध रच्छत आप ॥

नटी—आर्य ! यह पृथ्वी ही पर से चंद्रमा को कौन बचाना चाहता है ?

अर्थ

'यह आपके सिर पर कौन बड़भांगिनी है ?' 'शशिकला' है। 'क्या इसका यही नाम है ?' 'हाँ, यही तो, तुम तो जानती हो फिर क्यों भूल गई ?' 'अजी हम स्त्री को पूछती हैं, चंद्रमा को नहीं पूछती', 'अच्छा चंद्र की बात का विश्वास न हो तो अपनी सखी विजया से पूछ लो।' योही बात बनाकर गंगा जी को छिपाकर देवी पार्वती को ठगने की इच्छा करने वाले महादेव जी का छल तुम लोगों की रखा करे।

दूसरा

पृथ्वी भुंकने के डर से इच्छानुसार पैर का बोझ नहीं दे सकते, ऊपर के लोको के इधर-उधर हो जाने कीय से हाथ भी यथेच्छ नहीं फेंक सकते और उसके अग्निक्ल से जल जायँ इसी ध्यान से किसी की ओर भर दृष्टि देख भी नहीं सकते, इससे आधार के संकोच से महादेव जी का कष्ट से नृत्य करना तुम्हारी रक्षा करे।

नाटकों में पहले मंगलाचरण करके तब खेल आरंभ करते हैं।

इस मंगलाचरण के नाटकशास्त्र में नांदी कहते हैं। किसी का मत है कि नांदी पहले ब्राह्मण पढ़ता है, कोई कहता है सूत्रधार ही और किसी का मत है कि परदे के भीतर से नांदी पढ़ी या गाई जाय।

१. संस्कृत मुहाविरों में पति को स्त्रियाँ आर्यपुत्र कहकर पुकारती हैं।

२. होरा मुहूर्त जातक ताजक रमल इत्यादि।

३. अर्थात् ग्रहण का योग तो कदापि नहीं है। खैर रसोई हो।

४. केतु अर्थात् राक्षस मंत्री। राक्षस मंत्री ब्राह्मण था और केवल नाम उसका राक्षस था किंतु गुण उसमें देवताओं के थे।

५. इस श्लोक का यथार्थ तात्पर्य जानने को काशी संस्कृत विद्यालय के अध्यक्ष जगदिश्वर पंडितवर

सूत्र.— प्यारी, मैंने भी नहीं लिखा, देखो, अब फिर से वही पढ़ता है और अब जब वह फिर बोलेंगा तो मैं उसकी बोली से पहचान लूंगा कि कौन है ।
(‘अहो चंद्र पूर न भए’ फिर से पढ़ता है)
(नेपथ्य में)

हैं ! मेरे जीते चंद्र को कौन बल से ग्रस सकता है ?

सूत्र.— (सुनकर) जाना ।

अरे अहं कीटल्य

नटी— (डर नाट्य करती हैं)

सूत्र.—

दृष्ट टेढ़ी मतिवारो ।

बापूदेव शास्त्री को मैंने पत्र लिखा । क्योंकि टीकाकारों ने ‘चंद्रमा पूर्ण होने पर’ यही अर्थ किया है और इस अर्थ से मेरा जी नहीं भरा । कारण यह कि पूर्ण चंद्र में तो ग्रहण लगता ही है ; इसमें विशेष क्या हुआ ? शास्त्री जी ने जो उत्तर दिया है वह यहाँ प्रकाशित होता है ।

श्रीयुत बाबू साहिब को बापूदेव का कोटिश : आशीर्वाद, आपने प्रश्न लिख भेजे उनका संक्षेप से उत्तर लिखता हूँ ।

१ सूर्य के अस्त हो जाने पर जो रात्रि में अंधकार होता है यही पृथ्वी की छाया है और पृथ्वी गोलाकार है और सूर्य से छोटी है इसलिये उसकी छाया सूच्यकार शंकु के आकार की होती है और यह आकाश में चंद्र के भ्रमण मार्ग को लाँच के बहुत दूर तक सदा सूर्य से छह राशि के अंतर पर रहती है और पूर्णिमा के अंत में चंद्रमा भी सूर्य से छह राशि के अंतर पर रहता है । इसलिये जिस पूर्णिमा में चंद्रमा पृथ्वी की छाया में आ जाता है अर्थात् पृथ्वी की छाया चंद्रमा के बिंब पर पड़ती है तभी वह चंद्र का ग्रहण कहलाता है और छाया जो चंद्रबिंब पर देख पड़ती है वही ग्रस कहलाता है और राहु नामक एक दैत्य प्रसिद्ध है वह चंद्रग्रहणकाल में पृथ्वी की छाया में प्रवेश करके चंद्र की ओर प्रजा को पीड़ा करता है, इसी कारण से लोक में राहुकृत ग्रहण कहलाता है और उस काल में स्नान, दान, जप, होम इत्यादि करने से वह राहुकृत पीड़ा दूर होती है और बहुत पुण्य होता है ।

२ पूर्णिमा में चंद्रबिंब भी संपूर्ण उज्ज्वल होता है तभी चंद्रग्रहण होता है ।

३ जब कि पूर्णिमा के दिन चंद्रग्रहण होता है, इससे पूर्णिमा में चंद्रमा का और बुध का योग कभी नहीं होता (क्योंकि बुध सर्वदा सूर्य के पास रहता है और पूर्णिमा के दिन सूर्य चंद्रमा से छह राशि के अंतर पर रहता है, इसलिये बुध भी उस दिन चंद्र से दूर ही रहता है) । यों बुध के योग में चंद्रग्रहण कभी नहीं हो सकता । इति शिवम् संवत् १९३७ जेष्ठ शुक्ल, १५ मंगल दिने, मंगल मंगले भूयात् ।

शास्त्री जी से एक दिन मुझे इस विषय में फिर वार्ता हुई । शास्त्रीजी को मैंने मुद्राराक्षस की पुस्तक भी दिखाई । इसपर शास्त्री जी ने कहा कि मुझको ऐसा मालूम होता है कि यदि उस दिन उपराग का संभव होगा तो सूर्यग्रहण का क्योंकि बुधयोग अमावस्या के पास होता भी है । पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि राहु चंद्रमा का ग्रस करता है और केतु सूर्य का और इस श्लोक में केतु का नाम भी है । इससे भी संभव होता है कि सूर्य उपराग रहा हो । तो चाणक्य का कहना भी ठीक हुआ कि केतु हठपूर्वक क्यों चंद्र को ग्रसा चाहता है अर्थात् एक तो चन्द्रग्रहण का दिन नहीं, दूसरे केतु का चंद्रमा ग्रस का विषय नहीं क्योंकि नंदवीर्यजात होने से चंद्रगुप्त राक्षस का वध्य नहीं है । इस अवस्था में ‘चंद्रम असंपूर्णमंडल’ चंद्रमा का अधूरा मंडल यह अर्थ करना पड़ेगा । तब छंद में ‘चंद्र बिंब पूरन भए’ के स्थान पर ‘बिना चंद्र पूरन भए’ पढ़ना चाहिए ।

बुध का बिंब प्राचीन भास्कराचार्य के मतानुसार छह कला पंद्रह विकला के लगभग है । परंतु नवीनों के मत से केवल दश विकला परम है ।

परंतु इसमें कुछ संदेह नहीं कि यह ग्रह बहुत छोटा है क्योंकि प्राचीनों को इसका ज्ञान बहुत कठिनाता से हुआ है, इसलिये इसका नाम ही बुध, ज, इत्यादि हो गया । यह पृथ्वी से ६८९,३७७ इतने योजन की दूरी पर मध्यम मान से रहता है और सदा सूर्य के अनुचर के समान सूर्य के पास ही रहता है, एक पाद अर्थात् तीन राशि भी सूर्य से आगे नहीं आता । विलसन ने केतु शब्द से मलयकेतु का ग्रहण किया है । इसमें भी एक प्रकार का अलंकार अच्छा रहता है ।

वमत्कृतबुधिसंपन्न पंडित सुधाकर जी ने इस विषय में जो लिखा है वह विचित्र ही है । वह भी प्रकाश किया जाता है —

नंदवंश जिन सहजार्ह निज क्रोधानल जारो ।
चंद्रग्रहण को नाम सुनत निज नृप को मानी ॥
इतही आवत चंद्रगुप्त पै कछु भय जानी ॥
तो अब चलो हम लोग चलें ।

(दोनों जाते हैं)

प्रथम अंक

(स्थान — चाणक्य का घर)

(अपनी खुली शिखा को हाथ से फटकारता हुआ चाणक्य आता है)

चाणक्य. — बता ! कौन है जो मेरे जीते चंद्रगुप्त को बल से प्रसना चाहता है ?

सदा दाँत के कृभ को जो बिदारें ।

ललाई नए चंद सी जौन धारें ॥

जैभाई समै काल सो जौन बाढ़ें ।

भलो सिंह को दाँत सो कौन काढ़ें ॥

और भी

कालसर्पिणी नंद-कुल, क्रोध धृग सी जौन ।
अबहुँ बाँधन देत नाहें, अहो शिखा मम कौन ।
दहन नंदकुल बन सहज, अति प्रज्वलित प्रताप ।
को मम क्रोधानल-पतंग, भयो चहत अब पाप ॥

शारंगरव ! शारंगरव !!

(शिष्य आता है)

शिष्य. — गुरुजी ! क्या आज्ञा है ?

चाणक्य. — बेटा ! मैं बैठना चाहता हूँ ।

शिष्य. — महाराज ! इस दालान में बेंत की चटाई पहिले ही से बिछी है, आप बिराजिए ।

चाणक्य. — बेटा ! केवल कार्य में तत्परता मुझे व्याकुल करती है, न कि और उपाध्यायों के तुल्य शिष्यजन से दुःशीलता^१ (बैठकर आप ही आप) क्या सब लोग यह बात जान गए कि मेरे नंदवंश^२ के नाश से क्रुद्ध होकर राक्षस पितावध से दुस्खी मलयकेतु^३ से मिलकर यवनराज की सहायता लेकर चंद्रगुप्त पर चढ़ाई किया चाहता है । (कुछ सोचकर) क्या हुआ, जब मैं नंदवंश-वध की बड़ी प्रातिज्ञारूपी नदी से पार

करत अधि अंधियार वह, मिलि मिलि करि हरिचंद ।

द्विजराजहु विकसित करत, धनि धनि यह हरिचंद ॥

श्री बाबू साहब को हमारे अनेक आशीर्वाद,

महाशय !

चंद्रग्रहण का संभव भूछाया के कारण प्रति पूर्णिमा के अंत में होता है और उस समय के केतु और सूर्य साथ रहते हैं । परंतु केतु और सूर्य का योग यदि नियत संख्या के अर्थात् पाँच राशि सोलह अंश से लेकर यह राशि चौदह अंश के वा ग्यारह राशि सोलह अंश से लेकर बारह राशि चौदह अंश के भीतर होता है तब ग्रहण होता है और यदि योग नियत संख्या के बाहर पड़ जाता है तब ग्रहण नहीं होता । इसलिये सूर्य केतु के योग ही के कारण से प्रत्येक पूर्णिमा में ग्रहण नहीं होता । तब

क्रूरग्रह : स केतुश्चन्द्रमसं पूर्णमण्डलमिदानीम् ।

अभिभवितुमिच्छति बलाद्रक्षत्येनं तु बुधयोगः ॥

इस श्लोक का यथार्थ अर्थ यह है कि क्रूरग्रह सूर्य केतु के साथ चंद्रमा के पूर्ण मंडल को न्यून करने की इच्छा करता है परंतु हे बुध ! योग जो है वही बल से उस चंद्रमा की रक्षा करता है । यहाँ बुध शब्द पंडित के अर्थ में संबोधन है, ग्रहवाची कदापि नहीं है । बुध शब्द को ग्रहार्थ में ले जाने से जो जो अर्थ होते हैं वे सब बनौआ हैं । इति

सं. १९३७, वैशाख शुक्ल ५

ऊँचे हवै गुरु बुध कबी मिलि लरि होत विरूप ।

करत समागम सबहि सों यह द्विजराज अनुप ॥

आपका

पं. सुधाकर

१. अर्थात् कुछ तुम लोगों पर दुष्टता से नहीं, अपने काम की घबराहट से बिछी हुई चटाई नहीं देखी ।

२. नंदवंश अर्थात् नव नंद-एक नंद और उसके आठ पुत्र ।

३. पर्वतेश्वर राजा का पुत्र ।

उत्तर चुका, तब यह बात प्रकाश होने ही से क्या मैं इसको न पूरा कर सकूँगा ?

क्योंकि —

दिंसि सारस रिपु-रमनी वदन-शंसि शोक कारख लाय कै ।
ले नोति पवनहि सांचव-बिटपन छार डारि जराय कै ।।
बिनु पुर निवासी पच्छगन नृप बंसमूल नसाय कै ।
भो शांत मम क्रोधाग्नि यह कछु दहन हित नहिं पाय कै ।।

और भी

जिन जनन ने अति सोच सो

नृप-भय प्रगट धिक नहिं कह्यो ।

पै मम अनादर को अतिहि

वह सोच जिय जिनके रह्यो ।।

ते लखाहि आसन सों गिरायो नंद सहित समाज को ।
जिमि शिखर तें बनराज क्रोध गिरावई गजराज को ।।
सो यद्यपि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हूँ, तो भी ।
चंद्रगुप्त के हेतु शस्त्र अब भी धारण करता हूँ । देखो मैंने —

नव नंदन कौं मूल सहित खोद्यो छन भर में ।
चंद्रगुप्त मैं श्री राखी नलिनी जिमि सर में ।
क्रोध प्रीति सों एक नासि कै एक बसायो ।
शत्रु मित्र को प्रकट सबन फल लै दिखलायो ।।

अथवा जब तक राक्षस नहीं पकड़ा जाता तब तक नंदों के मारने ही से क्या और चंद्रगुप्त को राज्य मिलाने से ही क्या ? (कुछ सोचकर) अहा ! राक्षस की नंदवंश में कैसी दृढ़ भक्ति है ! जब तक नंदवंश का कोई भी जीता रहेगा तब तक वह कभी शूद्र का मंत्री बनाना स्वीकार न करेगा, इससे उसके पकड़ने में हम लोगों को निरुद्यम रहना अच्छा नहीं । यही समझकर तो नंदवंश का सर्वार्थसिद्धि विचारा तपोवन में चला गया तो भी हमने मार डाला । देखो, राक्षस मलयकेतु को मिलाकर हमारे बिगाड़ने में यत्न करता ही जाता है । (आकाश में देखकर) वाह राक्षस मंत्री वाह ! क्यों न हो ! वाह मंत्रियों में वृहस्पति के समान वाह ! तू धन्य है, क्योंकि —

जब लौं रहे सुख राज को तब लौं सबै सेवा करै ।
पुनि राज बिगड़े कौन स्वामी ? तनिक नहिं चित में धरै ।
जे बिपतिहूँ मैं पालि पूरब प्रीति काज संवारहीं ।
ते धन्य नर तुम सरीख दुरलभ अहै संसय नहीं ।।

इसी से तो हम लोग इतना यत्न करके तुम्हें मिलाया चाहते हैं कि तुम अनुग्रह करके चंद्रगुप्त के

मंत्री बनो, क्योंकि —

मूर्ख कातर स्वामिभवत कछु काम न आवै ।
पंडित हू विन भक्ति काज कछु नाहिं बनावै ।।
निज स्वारथ की प्रीति करै ते सब जिमि नारी ।
वृद्धि भक्ति दोउ होय सबै सेवक सुखकारी ।।
सो मैं भी इस विषय में कुछ सोता नहीं हूँ, यथाशक्ति उसी के मिलाने का यत्न करता रहता हूँ । देखो, पर्वतक को चाणक्य ने मारा यह अपवाद न होगा, क्योंकि सब जानते हैं कि चंद्रगुप्त और पर्वतक मेरे मित्र हैं तो मैं पर्वतक को मारकर चंद्रगुप्त का पक्ष निर्बल कर दूँगा ऐसी शंका कोई न करेगा, सब यही कहेंगे कि राक्षस ने विषकन्या प्रयोग करके चाणक्य के मित्र पर्वतक को मार डाला । पर एकांत में राक्षस ने मलयकेतु के जी में यह निश्चय करा दिया कि तेरे पिता को मैंने नहीं मारा, चाणक्य ही ने मारा । इससे मलयकेतु मुझसे बिगड़ रहा है । जो हो, यदि यह राक्षस लड़ाई करने को उद्यत होगा तो भी पकड़ा जायगा । पर जो हम मलयकेतु को पकड़ेंगे तो लोग निश्चय कर लेंगे कि अवश्य चाणक्य ही ने अपने मित्र इसके पिता को मारा और अब मित्रपुत्र अर्थात् मलयकेतु को मारना चाहता है । और भी, अनेक देश की भाषा, पहिरावा, चाल व्यवहार जाननेवाले अनेक वेषधारी बहुत से दूत मैंने इसी हेतु चारों ओर भेज रखे हैं कि वे भेद लेते रहें कि कौन हम लोगों से शत्रुता रखता है, कौन मित्र है । और कुसुमपुर निवासी नंद के मंत्री और संबंधियों के ठीक ठीक वृत्तांत का अन्वेषण हो रहा है, वैसे ही भद्रमदादिकों को बड़े बड़े पद देकर चंद्रगुप्त के पास रख दिया है और भक्ति की परीक्षा लेकर बहुत से अप्रमादी पुरुष भी शत्रु से रक्षा करने को नियत कर दिए हैं । वैसे ही मेरा सहपाठी मित्र विष्णु शर्मा नामक ब्राह्मण जो शुक्रनीति और चौसठों कला से ज्योतिषशास्त्र में बड़ा प्रवीण है, उसे मैंने पहले ही योगी बनाकर नंदवध की प्रतिज्ञा के अनंतर ही कुसुमपुर में भेज दिया है, वह वहाँ नंद के मंत्रियों से मित्रता करके, विशेष करके राक्षस का अपने पर बड़ा विश्वास बढ़ाकर सब काम सिद्ध करेगा, इससे मेरा सब काम बन गया है परंतु चंद्रगुप्त सब राज्य का भार मेरे ही ऊपर रखकर **सुख करता है** । सच है, जो अपने बल बिना और अनेक दुःखों के भोगे बिना राज्य मिलता है वही सुख देता है । क्योंकि —

१. अग्नि बिना आधार नहीं जलती ।

२. नंद ने कुरूप होने के कारण चाणक्य को अपने श्राद्ध से निकाल दिया था ।

अपने बल सों लावहीं जद्यपि मारि सिकार ।
तर्दाप सुखी नहिं होत हैं, राजा-सिंह-कुमार ॥
(यम^१ का चित्र हाथ में लिए योगी का वेष धारण किए
दूत आता है)

दूत—

अरे, और देव को काम नहिं, जम को करो प्रनाम ।
जो दूजन के भक्त को, प्रान हरित परिनाम ॥

और

उलटे ते हू बनत है, काज किएआत हेत ।
जो जम जी सबको हरत, सोई जीविका देत ॥
तो इस घर में चलकर जमघट दिखाकर गावें ।
(धूमता है)

शिष्य— रावल जी ! इयोदी के भीतर न
आना ।

दूत— अरे ब्राह्मण ! यह किसका घर है ?

शिष्य— हम लोगों के परम प्रसिद्ध गुरु
चाणक्य जी का ।

दूत— (हँसकर) अरे ब्राह्मण, तब तो यह मेरे
गुरुभाई का घर है ; मुझे भीतर जाने दे, मैं उसको
धर्मोपदेश करूँगा ।

शिष्य— (क्रोध से) छि : मूर्ख ! क्या तू गुरु
जी से भी धर्म विशेष जानता है ?

दूत— अरे ब्राह्मण ! क्रोध मत कर, सभी सब
कुछ नहीं जानते, कुछ तेरा गुरु जानता है, कुछ मेरे से
लोग जानते हैं ।

शिष्य— (क्रोध से) मूर्ख ! क्या तेरे कहने से
गुरु जी की सर्वज्ञता उड़ जायगी ?

दूत— भला ब्राह्मण ! जो तेरा गुरु सब जानता
है तो बतलावे कि चंद्र किसको नहीं अच्छा लगता ?

शिष्य— मूर्ख ! इसको जानने से गुरु को क्या
काम ?

दूत— यही तो कहता हूँ कि यह तेरा गुरु ही
समझेगा कि इसके जानने से क्या होता है ? तू तो सुधा
मनुष्य है, तू केवल इतना ही जानता है कि कमल को
चंद्र प्यारा नहीं है । देख —

जदपि होत सुंदर, कमल, उलटो तदपि सुभाव ।
जो नित पूरन चंद सों, करत बिरोध बनाव ॥

चाणक्य— (सुनकर आप ही आप) अहा !
"मैं चंद्रगुप्त के बैरियों को जानता हूँ" यह कोई गूढ़

वचन से कहता है ।

शिष्य— चला मूर्ख ! क्या बैठकाने की
बकवाद कर रहा है ।

दूत— अरे ब्राह्मण ! यह सब ठिकाने की बातें
होगी ।

शिष्य— कैसे होगी ?

दूत— जो कोई सुननेवाला और समझनेवाला
होय ।

चाणक्य— रावल जी ! बेखटके चले आइए,
यहाँ आपको सुनने और समझनेवाले मिलेंगे ।

दूत— आया (आगे बढ़कर) जय हो महाराज
की ।

चाणक्य— (देखकर आप ही आप) कामों की
भीड़ से यह नहीं निश्चय होता कि निपुणक को किस
बात के जानने के लिये भेजा था । अरे जाना, इसे लोगों
के जी का भेद लेने को भेजा था । (प्रकाश) आओ आओ
कहो, अच्छे हो ? बैठो ।

दूत— जो आज्ञा । (भूमि में बैठता है)

चाणक्य— कहो, जिस काम को गए थे
उसका क्या किया ? चंद्रगुप्त को लोग चाहते हैं कि
नहीं ?

दूत— महाराज ! आपने पहले ही से ऐसा प्रबंध
किया है कि कोई चंद्रगुप्त विराग न करे ; इस हेतु
सारी प्रजा महाराज चंद्रगुप्त में अनुरक्त है, पर राक्षस
मंत्री के दूढ़ मित्र तीन ऐसे हैं जो चंद्रगुप्त की वृद्धि नहीं
सह सकते ।

चाणक्य— (क्रोध से) अरे ! कह, कौन
अपना जीवन नहीं सह सकते, उनके नाम तू जानता
है ?

दूत— जो नाम न जानता तो आप के सामने
क्योंकर निवेदन करता ?

चाणक्य— मैं सुना चाहता हूँ कि उनके क्या
नाम हैं ?

दूत— महाराज सुनिए । पहिले तो शत्रु का
पक्षपात करनेवाला क्षपणक है ।

चाणक्य— (हर्ष से आप ही आप) हमारे
शत्रुओं का पक्षपाती क्षपणक है ? (प्रकाश) उसका नाम
क्या है ?

दूत— जीर्वासिद्ध नाम है ।

१. उस काल में एक चाल के फकीर जम का चित्र दिखलाकर संसार की अनित्यता के गीत गाकर भीख
माँगते थे ।

चाणक्य.—तूने कैसे जाना कि क्षपणक मेरे

शत्रुओं का पक्षपाती है ?

दूत—क्योंकि उसने मंत्री के कहने से देव पर्वतेश्वर पर विषकन्या का प्रयोग किया ।

चाणक्य.—(आप ही आप) जीवर्सिद्धि तो हमारा गुप्त दूत है । (प्रकाश) हाँ, और कौन है ?

दूत—महाराज ! दूसरा राक्षस मंत्री का प्यारा सखा शकटदास कायध है ।

चाणक्य.—(हँसकर आप ही आप) कायध कोई बड़ी बात नहीं है तो भी क्षुद्र शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, इसी हेतु तो मैंने सिद्धारथ को उसका मित्र बनाकर उसके पास रखा है (प्रकाश) हाँ, तीसरा कौन है ?

दूत—(हँसकर) तीसरा तो राक्षस मंत्री का मानों हृदय ही पुष्पपुरवासी चंदनदास नामक वह बड़ा जौहरी है जिसके घर में मंत्री राक्षस अपना कुटुंब छोड़ गया है ।

चाणक्य.—(आप ही आप) अरे ! यह उसका बड़ा अंतरंग मित्र होगा ; क्योंकि पूरे विश्वास बिना राक्षस अपना कुटुंब यों न छोड़ जाता । (प्रकाश) भला, तूने यह कैसे जाना कि राक्षस मंत्री वहाँ अपना कुटुंब छोड़ गया है ?

दूत—महाराज ! इस 'मोहर' की अँगूठी से आपको विश्वास होगा । (अँगूठी देता है ?)

चाणक्य.—(अँगूठी लेकर और उसमें राक्षस का नाम बाँचकर प्रसन्न होकर आप ही आप) अहा ! मैं समझता हूँ कि राक्षस ही मेरे हाथ लगा । (प्रकाश) भला, तुमने यह अँगूठी कैसे पाई ? मुझसे सब वृत्तान्त तो कहो ।

दूत—सुनिए, जब मुझे आपने नगर के लोगों का भेद लेने भेजा तब मैंने यह सोचा कि बिना भेष बदले मैं दूसरे के घर में न घुसने पाऊँगा, इससे मैं जोगी का भेष करके जमराज का चित्र हाथ में लिए फिरता-फिरता चंदनदास जौहरी के घर में चला गया और वहाँ चित्र फैलाकर गीत गाने लगा ।

चाणक्य.—हाँ तब ?

दूत.—तब महाराज ! कौतुक देखने को एक पाँच बरस का बड़ा सुंदर बालक एक परदे के आड़ से स्त्री की उँगली पतली होती है, इससे द्वार पर ही यह बड़ा कलकल हुआ कि "लड़का कहाँ गया ।" इतने में एक स्त्री ने द्वार के बाहर मुख निकालकर देखा और लड़के को फट पकड़ ले गई, पर पुरुष की उँगली से स्त्री की उँगली पतली होती है, इससे द्वार पर ही य

अँगूठी गिर पड़ी, और मैं उस राक्षस मंत्री का नाम देखकर आपके पास उठा लाया ।

चाणक्य.—वाह वाह ! क्यों न हो । अच्छा जाओ मैंने सब सुन लिया । तुम्हें इसका फल शीघ्र ही मिलेगा ।

दूत.—जो आज्ञा ।

चाणक्य.—शारंगरव ! शारंगरव !!

शिष्य—(आकर) आज्ञा, गुरुजी ।

चाणक्य.—बेटा ! कलम, दावात, कागज तो लाओ ।

शिष्य—जो आज्ञा । (बाहर जाकर ले आता है) गुरुजी ! ले आया ।

चाणक्य.—(लेकर आप ही आप) क्या लिखूँ ? इसी पत्र से राक्षस को जीतना है ।

(प्रतिहारी आती है)

प्रतिहारी—जय हो, महाराज की जय हो !

चाणक्य.—(हर्ष से आप ही आप) वाह वाह ! कैसा सगुन हुआ कि कार्यारंभ ही में जब शब्द सुनाई पड़ा । (प्रकाश) कहो, शोणोत्तरा, क्यों आई हो ?

प्रति.—महाराज ! राजा चंद्रगुप्त ने प्रणाम कहा है और पूछा है कि मैं पर्वतेश्वर की क्रिया किया चाहता हूँ इससे आपकी आज्ञा हो तो उनके पहिरे आभरणों को पंडित ब्राह्मणों को दूँ ।

चाणक्य.—(हर्ष से आप ही आप) वाह चंद्रगुप्त वाह ; क्यों न हो ; मेरे जी की बात सोचकर संदेश कहला भेजा है । (प्रकाश) शोणोत्तरा ! चंद्रगुप्त से कहो कि 'वाह ! बेटा वाह ! क्यों न हो, बहुत अच्छा विचार किया ! तुम व्यवहार में बड़े ही चतुर हो, इससे जो सोचा है सो करो, पर पर्वतेश्वर के पहिरे हुए आभरण गुणवान ब्राह्मणों के देने चाहिएँ, इससे ब्राह्मण में चुन के भेजूँगा ।

प्रति.—जो आज्ञा महाराज ? (जाती है)

चाणक्य—शारंगरव ! विश्वावसु आदि तीनों भाइयों से कहो कि जाकर चंद्रगुप्त से आभरण लेकर मुझसे मिलें ।

शिष्य—जो आज्ञा । (जाता है)

चाणक्य—(आप ही आप) पीछे तो यह लिखें पर पहिले क्या लिखें । (सोचकर) अहा ! इतों के मुख से ज्ञात हुआ है कि उस म्लेच्छराज-सेना में प्रधान पाँच राजा परम भक्ति से राक्षस की सेवा करते हैं ।

प्रथम चित्रवर्मा कुलूत को राजा भारी ।
मलयदेशपति सिंहनाद दूजो बलधारी ।।
तीजो पुसकरनयन अहै कश्मीर देश को ।

सिधुसेन पुनि सिधु नृपति अति उग्र भेष को ।।
मेधाक्ष पांचवों प्रबल अति,

बहु हय-जुत पारस-नृपति ।
अब चित्रगुप्त इन नाम को

मेटहिं हम जब लिखाहिं हति ।।^१
(कुछ सोचकर) अथवा न लिखूँ, अभी सब बात यों
ही रहे । (प्रकाश) शारंगरव ! शारंगरव !

शिष्य — (आकर) आज्ञा गुरुजी !

चाणक्य — बेटा ! वैदिक लोग कितना भी अच्छा
लिखें तो भी उनके अक्षर अच्छे नहीं होते ; इससे
सिद्धार्थ से कहो (कान में कहकर) कि वह शकटदास
के पास जाकर यह सब बात यों लिखवा कर और
'किसी का लिखा कुछ कोई आप ही बांचे' यह सरनामे
पर नाम बिना लिखवाकर हमारे पास आवे और
शकटदास से यह न कहे कि चाणक्य ने लिखवाया है ।

शिष्य — जो आज्ञा । (जाता है)

चाणक्य — (आप ही आप) अहा ! मलयकेतु
को तो जीत लिया ।

(चिट्ठी लेकर सिद्धार्थक आता है)

सिद्धा — जय हो महाराज की जय हो,
महाराज ! यहा शकटदास के हाथ का लेख है ।

चाणक्य — (लेकर देखता है) वाह कैसे सुंदर
अक्षर हैं ! (पढ़कर) बेटा इस पर यह मोहर कर दो ।

सिद्धा — जो आज्ञा । (मोहर करके) महाराज,
इस पर मोहर हो गई, अब और कहिए क्या आज्ञा है ।

चाणक्य — बेटा ! हम तुम्हें एक अपने निज
काम में भेजा चाहते हैं ।

सिद्धा — (हर्ष से) महाराज, यह तो आपकी
कृपा है । कहिए, यह दास आपके कौन काम आ सकता
है ।

चाणक्य — सुनो पहिले जहाँ सूली दी जाती है
वहाँ जाकर फाँसी देनेवालों को दाहिनी आँख दबाकर
समझा देना ? और जब वे तेरी बात समझकर डर से
इधर उधर भाग जायें तब तुम शकटदास को लेकर
राक्षस मंत्री के पास चले जाना । वह अपने मित्र के प्राण
बचाने से तुम पर बड़ा प्रसन्न होगा और तुम्हें
पारितोषिक देगा, तुम उसको लेकर कुछ दिनों तक
राक्षस ही के पास रहना और जब और भी लोग पहुँच

जायें तब यह काम करना । (कान में समाचार कहता
है ।)

सिद्धा — जो आज्ञा महाराज ।

चाणक्य — शारंगरव ! शारंगरव !!

शिष्य — (आकर) आज्ञा गुरुजी !

चाणक्य — कालपाशिक और दंडपाशिक से
यह कह दो कि चंद्रगुप्त आज्ञा करता है कि जीर्वासद
क्षपणक ने राक्षस के कहने से विषकन्या का प्रयोग
करके पर्वतेश्वर को मार डाला, यही दोष प्रसिद्ध करके
अपमानपूर्वक उसको नगर से निकाल दें ।

शिष्य — जो आज्ञा (धूमता है)

चाणक्य — बेटा ! ठहर — सुन, और वह
जो शकटदास कायस्थ है वह राक्षस के कहने से नित्य
हम लोगों की बुराई करता है । यही दोष प्रगट करके
उसको सूली दे दें और उसके कुटुंब को कारागार में
भेज दें ।

शिष्य — जो आज्ञा महाराज । (जाता है)

चाणक्य — (चिंता करके आप ही आप) हा !
क्या किसी भाँति यह दुरात्मा राक्षस पकड़ा जायगा ।

सिद्धा — महाराज ! लिया ।

चाणक्य — (हर्ष से आप ही आप) अहा ! क्या
राक्षस को ले लिया ? (प्रकाश) कहो, क्या पाया ?

सिद्धा — महाराज ! आपने जो संदेश कहा,
वह मैंने भली भाँति समझ लिया, अब काम पूरा करने
जाता हूँ ।

चाणक्य — (मोहर और पत्र देकर) सिद्धार्थक !
जा तेरा काम सिद्ध हो ।

सिद्धा — जो आज्ञा । (प्रणाम करके जाता है)

शिष्य — (आकर) गुरु जी, कालपाशिक,
दंडपाशिक आपसे निवेदन करते हैं कि महाराज
चंद्रगुप्त की आज्ञा पूर्ण करने जाते हैं ।

चाणक्य — अच्छा बेटा ! मैं चंदनदास जौहरी
को देखा चाहता हूँ ।

शिष्य — जो आज्ञा । (बाहर जाकर चंदनदास
को लेकर आता है) इधर आइए सेठ जी !

चंदन — (आप ही आप) यह चाणक्य ऐसा
निर्दय है कि यह जो एकाएक किसी को बुलावे तो लोग
बिना अपराध भी इससे डरते हैं, फिर कहाँ मैं इसका

१. अर्थात् अब जब हम इनका नाम लिखते हैं तो निश्चय ये सब मरेंगे । इससे अब चित्रगुप्त अपने खाते
से इनका नाम काट दें, न ये जीते रहेंगे न चित्रगुप्त को लेखा रखना पड़ेगा ।

२. चांडालों को पहले से समझा था कि जो आदमी दाहिनी आँख दबावे उसको हमारा मनुष्य समझ कर तुम
लोग भटपट हठ जानो ।

नित्य का अपराधी, इसी से मैंने धनसेनादिक तीन महारजों से कह दिया कि दुष्ट चाणक्य जो मेरा घर लूट ले तो आश्चर्य नहीं, इससे स्वामी राक्षस का कुटुंब और कहीं ले जाओ, मेरी जो गाँत होनी है वह हो ।

शिष्य — इधर आइए साह जी !

चंदन — आया (दोनों धूमते हैं)

चाणक्य — (देखकर) आइए साहजी ! कहिए, अच्छी तो हैं ? बैठिए यह आसन है ।

चंदन — (प्रणाम करके) महाराज ! आप नहीं जानते कि अनुचित सत्कार अनादर से भी विशेष दुःख का कारण होता है, इससे मैं पृथ्वी पर बैठूँगा ।

चाणक्य — वाह ! आप ऐसा न कहिए, आपको तो हम लोगों के साथ यह व्यवहार उचित ही है ; इससे आप आसन ही पर बैठिए ।

चंदन — (आप ही आप) कोई बात तो इस दुष्ट ने जानी । (प्रकाश) जो आज्ञा (बैठता है)

चाणक्य — कहिए साहजी ! चंदनदास जी ! आपको व्यापार में लाभ तो होता है न ?

चंदन — महाराज, क्यों नहीं, आपकी कृपा से सब बनज-व्यापार अच्छी भाँति चलता है ।

चाणक्य — कहिए साहजी ! पुराने राजाओं के गुण, चंद्रगुप्त के दोषों को देखकर, कभी लोगों को स्मरण आते हैं ?

चंदन — (कान पर हाथ रखकर) राम ! राम ! शरद ऋतु के पूर्ण चंद्रमा की भाँति शोभित चंद्रगुप्त को देखकर कौन नहीं प्रसन्न होता ?

चाणक्य — जो प्रजा ऐसी प्रसन्न है तो राजा भी प्रजा से कुछ अपना भला चाहते हैं ।

चंदन — महाराज ! जो आज्ञा । मुझसे कौन और कितनी वस्तु चाहते हैं ?

चाणक्य — सुनिए साह जी ! यह नंद का राज नहीं है, चंद्रगुप्त का राज्य है, धन से प्रसन्न होने वाला तो वह लालची नंद ही था, चंद्रगुप्त तो तुम्हारे ही भले से प्रसन्न होता है ।

चंदन — (हर्ष से) महाराज, यह तो आपकी कृपा है ।

चाणक्य — पर यह तो मुझसे पूछिए कि वह भला किस प्रकार से होगा ?

चंदन — कृपा करके कहिए ।

चाणक्य — सौ बात की एक बात यह है कि राजा से विरुद्ध कामों को छोड़ो ।

चंदन — महाराज वह कौन अभाग है जिसे आप राजविरोधी समझते हैं ?

चाणक्य — उनमें पहिले तो तुम्हीं हो ।

चंदन — (कान पर हाथ रखकर) राम ! राम ! राम ! भला तिनके से और आँगन से कैसा विरोध ?

चाणक्य — विरोध यही है कि तुमने राजा के शत्रु राक्षस मंत्री का कुटुंब अब तक घर में रख छोड़ा है ।

चंदन — महाराज ! यह किसी दुष्ट ने आपसे झूठ कह दिया है ।

चाणक्य — सेठजी ! डरो मत । राजा के भय से पुराने राजा के सेवक लोग अपने मित्रों के पास बिना चाहे भी कुटुंब छोड़कर भाग जाते हैं इससे इसके छिपाने ही में दोष होगा ।

चंदन — महाराज ! ठीक है । पहिले मेरे घर पर राक्षस मंत्री का कुटुंब था ।

चाणक्य — पहिले तो कहा कि किसी ने भूठ कहा है । अब कहते हो था, यह गबड़े की बात कैसी ?

चंदन — महाराज ! इतना ही मुझसे बातों में फेर पड़ गया ।

चाणक्य — सुनो, चंद्रगुप्त के राज्य में छल का विचार नहीं होता, इससे राक्षस का कुटुंब दो, तो तुम सच्चे हो जाओगे ।

चंदन — महाराज ! मैं कहता हूँ न, पहिले राक्षस का कुटुंब था ।

चाणक्य — तो अब कहाँ गया ?

चंदन — न जाने कहाँ गया ।

चाणक्य — (हँसकर) सुनो सेठ जी ! तुम क्या नहीं जानते कि साँप तो सिर पर बूटी पहाड़ पर । और जैसा चाणक्य ने नंद को . . . (इतना कह कर लाज से चुप रह जाता है ।)

चंदन — (आप ही आप)

प्रिया दूर धन गरजहीं, अहो दुःख अति घोर ।
और्षाधि दूर हिमाद्रि पै, सिर पै सर्प कठोर ॥

चाणक्य — चंद्रगुप्त को अब राक्षस मंत्री राज पर से उठा देगा यह आशा छोड़ो, क्योंकि देखो —
नृप नंद जीवत नीतिबल सों मति रही जिनकी भली ।
ते 'वक्रनासादिक' सचिव नहिं थिर सके करि, नसि चली ॥

सो श्री सिमिट अब आय लिपटी चंद्रगुप्त नरेश सों ।
तेहि दूर को करि सकै ? चांदनि छुटत कहूँ राकेस सों ?

और भी

“सादा दंत के कुंभ को” इत्यादि फिर से पढ़ता है।

चंदन.— (आप ही आप) अब तुमको सब कहना फवता है।।

(नेपथ्य में) हटो हटो —

चाणक्य— शारंगरव ! यह क्या कोलाहल है देखो तो ?

शिष्य— जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आकर) महाराज, राजा चंद्रगुप्त की आज्ञा से राजद्वेषी जीर्वासिद्ध क्षपणक निरादरपूर्वक नगर से निकाला जाता है।

चाणक्य— क्षपणक ! हा ! हा ! अथवा राजविरोध का फल भोगे। सुनो चंदनदास ! देखो, राजा अपने द्वेषियों को कैसा कड़ा दंड देता है। मैं तुम्हारे भले की कहता हूँ, सुनो, और राक्षस का कुटुंब देकर जन्म भर राजा की कृपा से सुख भोगो।

चंदन.— महाराज ! मेरे घर राक्षस मंत्री का कुटुंब नहीं है।

(नेपथ्य में कलकल होता है)

चाणक्य— शारंगरव ! देख तो यह क्या कलकल होता है ?

शिष्य— जो आज्ञा। (बाहर जाकर फिर आता है) महाराज ! राजा की आज्ञा से राजद्वेषी शकटदास कायस्थ को सूली देने ले जाते हैं।

चाणक्य— राजविरोध का फल भोगे। देखो, सेठ जी ! राजा अपने विरोधियों को कैसा कड़ा दंड देता है, इससे राक्षस का कुटुंब छिपाना वह कभी न सहेगा ; इसी से उसका कुटुंब देकर तुमको अपना प्राण और कुटुंब बचाना हो तो बचाओ।

चंदन.— महाराज ! क्या आप मुझे डर दिखाते हैं ! मेरे यहाँ अमात्य राक्षस का कुटुंब हई नहीं है, पर जो होता तो भी मैं न देता।

चाणक्य— क्या चंदनदास ! तुमने यही निश्चय किया है ?

चंदन.— हाँ ! मैंने यही दृढ़ निश्चय किया है।

चाणक्य— (आप ही आप) वाह चंदनदास ! वाह ! क्यों न हो !

दूजे के हित प्राण दै, करै धर्म प्रतिपाल।
को ऐसी शिव के बिना, दूजे है या काल।।

(प्रकाश) क्या चंदनदास, तुमने यही निश्चय किया है ?

चंदन.— हाँ ! हाँ ! मैंने यही निश्चय किया है।

चाणक्य— (क्रोध से) दुरात्मा दुष्ट बानिया !

देख राजकोप का कैसा फल पाता है।

चंदन.— (बाँह फैलाकर) मैं प्रस्तुत हूँ, आप जो चाहिए अभी दंड दीजिए।

चाणक्य— (क्रोध से) शारंगरव ! काल-पाशिक, दंडपाशिक से मेरी आज्ञा कहो कि अभी इस दुष्ट बनिये को दंड दें। नहीं, ठहरो, दुर्गपाल रिजय-पाल से कहो कि इसके घर का सारा धन ले लें और इसको कुटुंब समेत पकड़कर बाँध रखें, तब तक मैं चंद्रगुप्त से कहूँ, वह आप ही इसके सर्वस्व और प्राण के हरण की आज्ञा देगा।

शिष्य— जो आज्ञा महाराज ! सेठजी इधर आइए।

चंदन.— लीजिए महाराज ! यह मैं चला। (उठकर चलता है, आप ही आप) अहा ! मैं धन्य हूँ कि मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, अपने हेतु को सभी मरते हैं !

चाणक्य— (हर्ष से) अब ले लिया है राक्षस को, क्योंकि

जिमि इन तून सम प्राण तबि कियो मित्र को त्रान।

तिमि सोइ निज मित्र अरु कुल रखिहै दै प्राण।।

(नेपथ्य में कलकल)

चाणक्य— शारंगरव !

शिष्य— (आकर) आज्ञा गुरुजी !

चाणक्य— देख तो यह कैसी भीड़ है।

शिष्य— (बाहर जाकर फिर आश्चर्य से आकर) महाराज ! शकटदास को सूली पर से उतार कर सिद्धार्थक लेकर भाग गया।

चाणक्य— (आप ही आप) वाह सिद्धार्थक। काम का आरंभ तो किया। (प्रकाश) हैं क्या ले गया ? (क्रोध से) बेटा ! दौड़कर भागुरायण से कहो कि उसको पकड़े।

शिष्य— (बाहर जाकर आता है, विषाद से) गुरु जी ! भागुरायण तो पहिले ही से कहीं भाग गया है।

चाणक्य— (आप ही आप) निज काज साधने के लिये जाय। (क्रोध से प्रकाश) भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुराज, बलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष और विजयवर्मा से कहो कि दुष्ट भागुरायण को पकड़ें।

शिष्य— जो आज्ञा। (बाहर जाकर फिर आकर विषाद से) महाराज ! बड़े दुख की बात है कि सब बेड़े का बेड़ा हलचल हो रहा है। भद्रभट इत्यादि तो सब पिछली ही रात भाग गए।

चाणक्य— (आप ही आप) सब काम सिद्ध करें। (प्रकाश) बेटा, सोच मत करो।

जे बात कछु जिय धारि भागे, भले सुख सो भागहीं ।
जे रहे तेहु जाहिं, तिनको सोच मोहि जिय कछु नहीं
सत सैन सो अधिक साधिनि काज की जेहि जग कहै ।
सो नंदकुल की खननहारी बुद्धि नित मो में रहै ॥

(उठकर और आकाश की ओर देखकर) अभी भद्र-
भट्टादिकों को पकड़ता हूँ । (आप ही आप) राक्षस !
अब मुझसे भाग के कहाँ जायगा, देख —
एकाकी मदगलित गज, जिमि नर लार्वाहं बाँध ।
चंद्रगुप्त के काज में तिमि तोहि धरिहौ साधि ॥
(सब जाते हैं — जवनिका गिरती है)

द्वितीय अंक

स्थान — राजपथ

(मदारी आता है)

मदारी — अलललललललल, नाग लाए साँप
लाए !

तंत्र युक्ति सब जानहीं, मंडल रचाहिं बिचार ।
मंत्र रक्षही ते करहिं, अहि नृप को उपकार ॥

आकाश में देखकर^{१)} महाराज ! क्या कहा ? 'तू
कौन है ?' महाराज ! मैं जीर्णविष नाम सेपरा हूँ । फिर
आकाश की ओर देखकर) क्या कहा कि 'मैं भी साँप
का मंत्र जानता हूँ खेलूँगा ? तो आप काम क्या करते
हैं, यह कहिए ? (फिर आकाश की ओर देखकर) क्या
कहा — 'मैं राजसेवक हूँ ?' तो आप तो साँप के साथ
खेलते ही हैं । (फिर ऊपर देखकर) क्या कहा
'कैसे' ? मंत्र और जड़ी बिन मदारी और आँकुस बिन
मतवाले हाथी का हाथीवान, वैसे ही नए अधिकार के
संग्रामविजयी राजा के सेवक — ये दोनों अवश्य नष्ट
हाते हैं । (ऊपर देखकर) यह देखते देखते कहाँ चला
गया ? (फिर ऊपर देखकर) यह महाराज ? पृथ्वी हो
कि 'इन पिटारियों' में क्या है ? 'इन पिटारियों' में मेरी
जीविका के सर्प हैं (फिर ऊपर देखकर) क्या कहा कि
मैं देखूँगा ! वाह वाह महाराज । देखिए देखिए, मेरी
बोहनी हुई, काँहए इसी स्थान पर खोलूँ ? परंतु यह
स्थान अच्छा नहीं है ; यदि आपको देखने की इच्छा हो
तो आप इस स्थान में आइए मैं दिखाऊँ । (फिर
आकाश की ओर देखकर) क्या कहा कि 'यह स्वामी
राक्षस मंत्री का घर है, इसमें मैं घुसने न पाऊँगा, तो

आप जायें, महाराज ! मैं तो अपनी जीविका के प्रभाव से
सभी के घर जाता आता हूँ । अरे क्या वह गया ?
(चारों ओर देखकर) अहा, बड़े आश्चर्य की बात है जब
मैं चाणक्य की रक्षा में चंद्रगुप्त को देखता हूँ तब
समझता हूँ कि चंद्रगुप्त ही राज्य करेगा, पर जब राक्षस
की रक्षा में मलयकेतु को देखता हूँ तब चंद्रगुप्त का राज
गया सा दिखाई देता है, क्योंकि —

चाणक्य ने लै जर्दाप बाँधी बुद्धिरूपी डोर सो ।
कारि अचल लक्ष्मी मौर्यकुल में नीति के निज जोर सो ।
पै तर्दाप राक्षस चातुरी कारि हाथ में ताकों करे ।
महिं तर्हि खींचत आपुनी दिसि मोहि यह जानी परे ।

सो इन दोनों पर नीतिचतुर मंत्रियों के विरोध में
नंदकुल की लक्ष्मी संशय में पड़ी है ।

दोऊ सचिव विरोध सों, जिमि बन जुग गजराज ।
हथिन सी लक्ष्मी बिचल, इत उत भोँका खाय ॥

तो चलूँ, अब मंत्री राक्षस से मिलूँ ।
(जवनिका उठती है और आसन पर बैठा राक्षस और
पास प्रियंवदक नामक सेवक दिखाई देते हैं)

राक्षस — (ऊपर देखकर आँखों में आँसू भर
कर) हा ! बड़े कष्ट की बात है —

गुन-नीति बल सों जीति अरि जिमि आपु जादवगन हयो
तिमि नंद को यह विपुल कुल बिधि बाम सों सब नसि
गयो ॥

एहि सोच में मोहि दिवस अरु निसि नित्य जागत
बीतहीं ।

यह लखे चित्र विचित्र मेरे भाग के बिनु भीतहीं ॥

अथवा

बिनु भक्ति भूले, बिनहि
स्वारथ हेतु हम यह पन लियो ।

बिनु प्रान के भय, बिनु
प्रतिष्ठा लाभ सब अब लौं कियो ॥

सब छोड़ि के परदासता एहि हेत नित प्रति हम करें ।
जो स्वर्ग में हूँ स्वामि मम निज शत्रु हत लाखि सुख भरे ॥

(आकाश का ओर देखकर दुःख से) हा ! भगवती
लक्ष्मी ! तू बड़ी अगुणज्ञा है क्योंकि —

निज तुच्छ सुख के हेतु तजि गुनरासि नंद नृपाल को ।
अब शूद्र में अनुरक्त हवै लपटी सुधा मनु ब्याल को ।
ज्यों मत्त गज के मरत मद की धार ता साथहि नसे ।
त्यों नंद साथहि नसी किन ? निलाज, अजहूँ जग बसे ॥
अरे पापिन !

का जग में कुलवत नृप जीवत रह्यौ न कोय ।

१. 'आकाश में देखकर' या 'ऊपर देखकर' का आशय यह है कि मानो दूसरे से बात करता है ।

जो तू लपटी शूद्रों से नीचगामिनी होय ?

अथवा

वारवधू जन को अहैं सहजार्ह चपल सुभाव ।
ताज क्लीन गुनियन करार्ह ओछे जन से चाव ॥

तो हम भी अब तेरा आधार ही नाश किए देते हैं ।
(कुछ सोचकर) हम मित्रवर चंदनदास के घर अपना
कुटुंब छोड़कर चले आए सो अच्छा ही किया । क्योंकि
एक तो अभी कुसुमपुर को चाणक्य घेरा नहीं चाहता,
इससे यहाँ के निवासी महाराजनंद में अनुरक्त हैं,
इससे हमारे सब उद्योगों में सहायक होते हैं । वहाँ भी
विषादिक से चंद्रगुप्त के नाश करने को और सब प्रकार
से शत्रु का दौंव घात व्यर्थ करने को बहुत सा धन देकर
शकटदास को छोड़ ही दिया है । प्रांतक्षण शत्रुओं का
भेद लेने को और उनका उद्योग नाश करने को भी
जीर्वासादि इत्यादि सुहृद नियुक्त ही हैं ।

सो अब तो —

विषवृक्ष-अहिंसुत-सिंहपोत समान जा दुखरास को ।
नृपनंद निज सुत जानि पाल्यो सकल निज असु-नास को ।
ता चंद्रगुप्ताह बुद्धि सर मम तुरत मारि गिराई है ।
जो दृष्ट दैव न कवच बनि के असह आइ आइ है ॥

(कंचुकी आता है)

कंचुकी — (आप ही आप)

नृपनंद काम समान चानक-नीति-जर जरजर भयो ।
प्राणि धर्म सम नृप चंद्र तिन तन पुरहू क्रम से बंदि
लियो ॥

अवकास लहि तेहि लोभ राक्षस जदपि जीतन जाइह ।
पै सिंघल बल भे नहि कोऊ बिधिहू से जय पाइह ॥

(देखकर) मंत्री राक्षस है । (आगे बढ़कर) मंत्री !
आप का कल्याण हो ।

राक्षस जाजलक ! प्रणाम करता हूँ । अरे प्रियंबदक !
आसन ला ।

प्रियंबदक — (आसन लाकर) यह आसन है,
आप बैठें ।

कंचुकी — (बैठकर) मंत्री, कुमार मलयकेतु ने
आपको यह कहा है कि 'आपने बहुत दिनों से अपने
शरीर का सब शृंगार छोड़ दिया है इससे मुझे बड़ा दुख
होता है । यद्यपि आपको अपने स्वामी के गुण नहीं
भूलते और उनके वियोग के दुःख में यह सब कुछ नहीं
अच्छा लगता तथापि मेरे कहने से आप इनको
पहरे ।' (आभरण दिखाता है) मंत्री ! आभरण कुमार
ने अपने अंग से उतार कर भेजे हैं, आप इन्हें धारण
करें ।

राक्षस — जाजलक ! कुमार से कह तो कि

तुम्हारे गुणों के आगे मैं स्वामी के गुण भूल गया ।

पर —

इन दृष्ट बैरिन से दुखी निज अंग नहि सँवारिहों ।
भूषन बसन सिंगार तब लौ हो न तन कछु धारिहों ॥
जब लौ न सब रिपु नासि, पार्तालपुत्र फेर बसाइहों ॥
हे कुँवर ! तुमको राज दे, सिर अचल छत्र फिराइहों ॥

कंचुकी — अमात्य ! आप जो न करो सो छोड़ा
है, यह बात कौन काँठन है ? पर कुमार की यह पहली
बिनती तो मानने ही के योग्य है ।

राक्षस — मुझे तो जैसी कुमार की आज्ञा
माननीय है वैसी ही तुम्हारी भी, इससे मुझे कुमार की
आज्ञा मानने में कोई विचार नहीं है ।

कंचुकी — (आभूषण पहिराता) कल्याण हो
महाराज ! मेरा काम पूरा हुआ ।

राक्षस — मैं प्रणाम करता हूँ ।

कंचुकी — मुझको जो आज्ञा हुई थी सो मैंने पूरी
की । (जाता है)

राक्षस — प्रियंबदक ! देख तो मेरे मिलने को
द्वार पर खड़ा है ।

प्रियं — जो आज्ञा । (आगे बढ़कर सेंपरे के पास
आकर) आप कौन हैं ?

सेंपरा — मैं जीर्णविष नामक सेंपरा हूँ और
राक्षस मंत्री के सामने मैं साँप खेलना चाहता हूँ । मेरी
यही जीविका है ।

प्रियं — तो ठहरो, हम अमात्य से निवेदन कर
ले । (राक्षस के पास जाकर) महाराज ! एक सेंपरा है,
वह आपको अपना करतब दिखलाया चाहता है ।

राक्षस — (बाई आँख का फड़कना दिखाकर
आप ही आप) हैं, आज पहिले ही साँप दिखाई पड़े ।
(प्रकाश) प्रियंबदक ! मेरा साँप देखने को जी नहीं
चाहता तो इसे कुछ देकर विदा कर ।

प्रियं — जो आज्ञा । (सेंपरे के पास जाकर) लो,
मंत्री तुम्हारा कौतुक बिना देखे ही तुम्हें यह देते हैं,
जाओ ।

सेंपरा — मेरी ओर से यह बिनती करो कि मैं
केवल सेंपरा ही नहीं हूँ किंतु भाषा का कवि भी हूँ,
इससे जो मंत्री जी मेरी कविता मेरे मुख से न सुना चाहें
तो यह पत्र ही दे दो पढ़ लें ! (एक पत्र देता है)

प्रियं — (पत्र लेकर राक्षस के पास आकर)
महाराज ! वह सेंपरा कहता है कि मैं केवल सेंपरा ही
नहीं हूँ, भाषा का कवि भी हूँ । इससे जो मंत्री जी मेरी
कविता मेरे मुख से सुनना न चाहें तो यह पत्र ही दे दो
पढ़ लें । (पत्र देता है) ।

राक्षस— (पत्र पढ़ता है)

सकल कुसुम रस पान करि मधुप रसिक सिरताज ।

जो मधु त्यागत ताहि लै होत सबै जग काज ॥

(आप ही आप) अरे !! — 'मैं कुसुमपुर का वृत्तांत जाननेवाला आप का दूत हूँ' इस दोहरे से यह ध्वनि निकलती है । अह ! मैं तो कामों से ऐसा घबड़ा रहा हूँ कि अपने भेजे भेदिया लोगों को भी भूल गया । अब स्मरण आया । यह तो सैंपेरा बना हुआ विराधगुप्त कुसुमपुर से आया है । (प्रकाश) प्रियंवदक ! इसको बुलाओ यह सुर्काव है, मैं भी इसकी कावता सुना चाहता हूँ ।

प्रियं.— जो आज्ञा । (सैंपेरे के पास जाकर) वालिए, मंत्री जी आपको बुलाते हैं ।

सैंपेरा— (मंत्री के सामने जाकर और देखकर आपही आप) अरे यही मंत्री राक्षस है ! अहा !— लै बाम बाहु-लताहि राखत कंठ सौं खसि खसि परे । तिमि धरे दक्षिण बाहु कोइ गोद में बिच लै गिरै ॥ जा बुंद के डर होइ सकल नृप हृदय कुच नहि धरे । अजहूँ न लक्ष्मी चंद्रगुप्तहि गाढ़ आलिंगन करे ॥ (प्रकाश) मंत्री की जय हो ।

राक्षस— (देखकर) अरे विराध — (संकोच से बात उड़ाकर) प्रियंवदक ! मैं जब तक सर्पों से अपना जी बहलाता हूँ तब तक सबको लेकर तू बाहर ठहर !

प्रियं.— जो आज्ञा ।

(बाहर जाता है)

राक्षस— मित्र विराधगुप्त ! इस आसन पर बैठो ।

विराध गुप्त— जो आज्ञा । (बैठता है) ।

राक्षस— (खेद-सहित निहारकर) हा ! महाराज नंद के आश्रित लोगों की यह अवस्था ! (रोता है)

विराध— आप कुछ सोच न करें, भगवान की कृपा से शीघ्र ही वही अवस्था होगी ।

राक्षस— मित्र विराधगुप्त ! कहो, कुसुमपुर का वृत्तांत कहो ।

विराध— महाराज ! कुसुमपुर का वृत्तांत बहुत लंबा-चौड़ा है, जिससे जहाँ से आज्ञा हो वहाँ से कहूँ ।

राक्षस— मित्र ! चंद्रगुप्त के नगर-प्रवेश के पीछे मेरे भेजे हुए विष देनेवाले लोगों ने क्या क्या किया यह सुना चाहता हूँ ।

विराध— सुनिए — शक, यवन, किरात, कांबोज, पारस, वालहीकादिक देश के चाणक्य के मित्र राजों की सहायता से, चंद्रगुप्त और पर्वतेश्वर के

बलरूपी समुद्र से कुसुमपुर चारों ओर सो घिर गया है ।

राक्षस— (कृपाण खींचकर क्रोध से) हैं ! मेरे जीते कौन कुसुमपुर घेर सकता है ? प्रवीरक ! प्रवीरक !

चढ़ो लै सरै, धाड़ घेरो अटा को ।

धरो द्वार पै कुंजरै ज्यों घटा को ।

कहौ जोधने मृत्यु को जीति धावै ।

चलै संग मै छाँड़, कै कीर्ति पावै-॥

विराध— महाराज ! इतनी शीघ्रता न कीजिए, मेरी बात सुन लीजिए ।

राक्षस— कौन बात सुनूँ ? अब मैंने जान लिया कि इसी का समय आ गया है । (शस्त्र छोड़कर आँखों में आँसु भरकर) हा ! देव नंद ! राक्षस को तुम्हारी कृपा कैसे भूलेगी ?

हैं जहाँ फुँड खड़े गज मेघ के अज्ञा

करी तहाँ राक्षस ! जायकै ।

त्यो ये तुरंग अनेकन हैं,

तिनहूँ के प्रबन्धहि राखौ बनायकै ॥

पैदल ये सब तेरे भरोसे हैं,

काज करौ तिनको चित लायकै ।

यों कहि एक हमैं तुम मानत है,

निज काज हजार बनाय कै ॥

हाँ फिर ?

विराध.— तब चारों ओर से कुसुमनगर घेर लिया और नगरवासी बिचारे भीतर ही भीतर घिरे घिरे घबड़ा गए । उनका उदासी देखकर सुरंग के मार्ग से सर्वार्थसिद्धि तपोवन में चला गया और स्वामी के विरह से आपके सब लोग शिथिल हो गए । तब अपने जयकी डौड़ी सब नगर में शत्रु लोगों ने फिरवा दी, और आपके भेजे हुए लोग सुरंग में इधर उधर छिप गए, और जिस विषकन्या को आपने चंद्रगुप्त के नाश-हेतु भेजा था उससे तपस्वी पर्वतेश्वर मारा गया ।

राक्षस— अहा मित्र ! देखो, कैसा आश्चर्य हुआ —

जो विषमयी नृप-चंद्र बध-हित नारि राखी लाय कै ।

तासों हत्यो पर्वत उलटि चाणक्य बुद्धि उपाय कै ॥

जिमि करन शक्ति अमोघ अर्जुन-हेतु धरी छिपाय कै ।

पै कृष्ण के मत सो घटोत्कच पै परी घहराय कै ॥

विराध.— महाराज ! समय की सब उलटी गति है — क्या कीजिएगा ?

राक्षस— हाँ । तब क्या हुआ ?

विराध.— तब पिता का वध सुनकर कुमार

मलयकेतु नगर से निकलकर चले गए और पर्वतेश्वर के भाई वैरोधक पर उन लोगों ने अपना विश्वास जमा लिया। तब उस दुष्ट चाणक्य ने चंद्रगुप्त का प्रवेश मुहूर्त प्रसिद्ध करके नगर के सब बढ़ई और लोहारों को बुलाकर एकत्र किया और उनसे कहा कि महाराज के नंद भवन में गृहप्रवेश का मुहूर्त ज्योतिषियों ने आज ही आधी रात का दिया है, इससे बाहर से भीतर तक सब द्वारों को जाँच लो। तब उससे बढ़ई लोहारों ने कहा कि महाराज ! चंद्रगुप्त का गृहप्रवेश जानकर दारुवर्म ने प्रवेश द्वार तो पहले ही सोने की तोरनों से शोभित कर रखा है, भीतर से द्वारों को हम लोग ठीक करते हैं।' यह सुनकर चाणक्य ने कहा कि बिना कहे ही दारुवर्म ने बड़ा काम किया इससे उसको चतुराई का पारितोषिक शीघ्र ही मिलेगा।

राक्षस — (आश्चर्य से) चाणक्य प्रसन्न हो यह कैसी बात है ? इससे दारुवर्म का यत्न या तो उलटा होगा या निष्फल होगा, क्योंकि इसने बुद्धिमोह से या राजभक्ति से बिना समय ही चाणक्य के जी में अनेक सदेह और विकल्प उत्पन्न कराए। हाँ फिर ?

विराध — फिर उस दुष्ट चाणक्य ने बुलाकर सबको सहेज दिया कि आज आधी रात को प्रवेश होगा, और उसी समय पर्वतेश्वर का भाई वैरोधक और चंद्रगुप्त को एक आसन पर बिठाकर पृथ्वी का आधा आधा भाग कर दिया।

राक्षस — क्या पर्वतेश्वर के भाई वैरोधक को आधा राज मिला, यह पहले ही उसने सुना दिया ?

विराध — हाँ, तो इससे क्या हुआ ?

राक्षस — (आप ही आप) निश्चय यह ब्राह्मण बड़ा धूर्त है, कि उसने उस सीधे तपस्वी से इधर उधर की चार बात बनाकर पर्वतेश्वर के मानने के अपयश निवारण के हेतु यह उपाय सोचा। (प्रकाश) अच्छा कहो — तब ?

विराध — तब यह तो उसने पहले ही प्रकाश कर दिया था कि आज रात को गृह प्रवेश होगा, फिर उसने वैरोधक को अभिषेक कराया और बड़े बड़े बहुमूल्य स्वच्छ मोतियों का उसके कवच पहिराया और अनेक रत्नों से जड़ा सुंदर मुकुट उसके सिर पर रखा और गले में अनेक सुगंध के फूलों की माला पहिराई, जिससे वह एक ऐसे बड़े राजा की भाँति हो गया कि जन लोगों ने उसे सर्वदा देखा है वे भी न पहिचान सकें। फिर उस दुष्ट चाणक्य की आज्ञा से लोगों ने चंद्रगुप्त की चंद्रलेखा नाम की हथिनी पर बिठाकर बहुत से मनुष्य साथ करके बड़ी शीघ्रता से नंद

में उसका प्रवेश कराया जब वैरोधक मंदिर में घुसने घुसने लगा तब आपका भेजा दारुवर्म बढ़ई उसको चंद्रगुप्त समझकर उसके ऊपर गिराने को अपनी कल की बनी तोरन लेकर सावधान हो बैठा। इसके पीछे चंद्रगुप्त के अनुयायी सब बाहर खड़े रह गये और जिस बर्बर को आपने चंद्रगुप्त के मारने के हेतु भेजा था वह भी अपनी सोने की छड़ी की गुप्ती जिसमें एक छोटी कृपाण थी लेकर वहाँ खड़ा हो गया।

राक्षस — दोनों ने बैठिकाने काम किया। हाँ फिर ?

विराध — तब उस हथिनी को मारकर बढ़ाया और उसके दौड़ चलने से कल की तोरण का लक्ष्य, जो चंद्रगुप्त के घोड़े वैरोधक पर किया गया था, चूक गया और वहाँ बर्बर जो चंद्रगुप्त का आसरा देखता था, वह बेचारा उसी कल की तोरन से मारा गया। जब दारुवर्म ने देखा कि लक्ष्य तो चूक गए, अब मारे जायहीगे तब उसने उस कल के लोहे की कील से उस ऊँचे तोरन के स्थान ही पर से चंद्रगुप्त से घोड़े तपस्वी वैरोधक को हथिनी ही पर मार डाला।

राक्षस — हाय ! दोनों बातें कैसे दुख की हुई कि चंद्रगुप्त तो काल से बच गया और दोनों विचारे बर्बर और वैरोधक मारे गए (आप ही आप) दैव ने इन दोनों को नहीं मारा हम लोगों को मारा !! (प्रकाश) और यह दारुवर्म बढ़ई क्या हुआ ?

विराध — उसको वैरोधक के साथ के मनुष्यों को मार डाला।

राक्षस — हाय ! बड़ा दुःख हुआ ! हाय प्यारे दारुवर्म का हम लोगों से वियोग हो गया। अच्छा ! उस वैद्य अभयदत्त ने क्या किया ?

विराध — महाराज ! सब कुछ किया।

राक्षस — (हर्ष से) क्या चंद्रगुप्त मारा गया ?

विराध — दैव ने न मारने दिया।

राक्षस — (शोक से) तो क्या फूलकर कहते हो कि सब कुछ किया।

विराध — उसने औषधि में विष मिलाकर चंद्रगुप्त को दिया, पर चाणक्य ने उसको देख लिया और सोने के बरसतन में रखकर उसके रंग पलटा जानकर चंद्रगुप्त से कह दिया कि इस औषधि में विष मिला है, इसको न पीना।

राक्षस — अरे वह ब्राह्मण बड़ा ही दुष्ट है। हाँ, तो वह वैद्य क्या हुआ ?

विराध — उस वैद्य को वही औषधि पिलाकर मार डाला।

राक्षस— (शोक से) हाय हाय ! बड़ा गुणी मारा गया । भला शयनघर के प्रबंध करनेवाले प्रमोदक ने क्या किया ।

विराध— उसने सब चौका लगाया ।

राक्षस— (घबड़ा कर) क्यों ?

विराध— उस मूर्ख को जो आपके यहाँ से व्यय को धन मिला सो उससे उसने अपना बड़ा ठट्ठाट फेलाया । यह देखते ही चाणक्य चौकन्ना हो गया और उससे अनेक प्रश्न किए, जब उसने उन प्रश्नों के उत्तर अडंबड दिए तो उसपर पूरा सदेह करके दुष्ट चाणक्य ने उसको बुरी चाल से मार डाला !

राक्षस— हा ! क्या देव ने यहाँ भी उलटा हमी लोगों को मारा ! भला वह चंद्रगुप्त के सोते समय मारने के हेतु जो राजमवन में वीभत्सकादि वीर सुरंग में छिपा रखे थे उनका क्या हुआ ?

विराध— महाराज ! कुछ न पूछिए ।

राक्षस— (घबड़ाकर) क्यों-क्यों क्या चाणक्य ने जान लिया ?

विराध— नहीं तो क्या ?

राक्षस— कैसे ?

विराध— महाराज ! चंद्रगुप्त के सोने जाने के पहले ही वह दुष्ट चाणक्य उस घर में गया और उसको चारों ओर से देखा तो भीतर की एक दरार से चिऊटियाँ चावल के कने लाती हैं । यह देखकर उस दुष्ट ने निश्चय कर लिया कि इस घर के भीतर मनुष्य छिपे हैं । बस, यह निश्चय कर उसने घर में आग लगावा दिया और धुआँ से घबड़ाकर निकल तो सके ही नहीं, इससे वे वीभत्सकादि वहीं भीतर ही जलकर राख हो गए ।

राक्षस— (सोच से) मित्र ! देख, चंद्रगुप्त का भाग्य कि सब के सब मर गए । (चिंता सहित) अहा ! सखा ! देख दुष्ट चंद्रगुप्त का भाग्य !

कन्या जो विष की गई ताहि हतन के काज ।
तासों मारयो पर्वतक जाको आप्ठो राज ॥
सबै नसे कलबल सहित जे फटए बध हेत ।
उलटी मेरी नीति सब मोर्यहि को फल देत ॥

विराध— महाराज ! तब भी उद्योग नहीं छोड़ना चाहिए —

प्रारंभ ही नहीं विघ्न के भय अधम जन उद्यम सजै ।

पुन करहिं तो कोउ विघ्न सों डरि मध्य ही मध्यम तजै ।

धरि लात विघ्न अनेक पै निरभय न उद्यम ते टरै ।

जे पुरुष उत्तम अंत में ते सिद्ध सब कारज करै ॥

और भी —

का सेसहि नहिं भार पैर धरती देर न डारि ।
कहा दिवसमनि नहिं थकत पै नहिं रुकत विचारि ॥
सज्जन ताको हित करत जेहि किय अंगीकार ।
यहै नेम सुकृत को निज बिय करहु विचार ॥

राक्षस— मित्र ! यह क्या तू नहीं जानता कि मैं प्राण्य के भरोसे नहीं हूँ ? हाँ, फिर ।

विराध— तब से दुष्ट चाणक्य चंद्रगुप्त की रक्षा में चौकन्ना रहता है और इधर उधर के अनेक उपाय सोचा करता है और पहिचान-पहिचान के नंद के मित्रों को पकड़ता है ।

राक्षस— (घबड़ाकर) हाँ ! कहां तो, मित्र ! उसने किसे पकड़ा है ?

विराध— सबसे पहले तो जीवसिद्धि क्षपणक को निरादर करके नगर से निकाल दिया ।

राक्षस— (आप ही आप) भला, इतने तक तो कुछ चिंता नहीं, क्योंकि वह योगी है उसका घर बिना जी न घबड़ायागा । (प्रकाश) मित्र ! उसपर अपराध क्या ठहराया ?

विराध— कि इसी दुष्ट ने राक्षस की भेजी विषकन्या से पर्वतेश्वर को मार डाला ।

राक्षस— (आप ही आप) वाह रे कौटिल्य वाह ? क्यों न हो ?

निज कलंक हम पै धरयो, हत्यौ अर्ध बँटवार ।
नीतिबीज तुम एक ही फल उपजवत हजार ॥
(प्रकाश हाँ, फिर

विराध— फिर चंद्रगुप्त के नाश को इसने दारुमार्मिक नियत किए थे यह दोष लगाकर शकटदास को शूली दे दी ।

राक्षस— (डुःख से) हा मित्र शकटदास ! तुम्हारी बड़ी अयोग्य मृत्यु हुई । अथवा स्वामी के हेतु तुम्हारे प्राण गए । इससे कुछ सोच नहीं है, सोच हमी लोगों का है कि स्वामी के मरने पर भी जीना चाहते हैं ।

विराध— मंत्री ! ऐसा न सोचिए, आप स्वामी का काम कीजिये ।

विराध— मित्र ।

केवल है यह सोक, जीव लोभ अब लौ बचे ।
स्वामि गयो परलोक, पै कृतघ्न इतही रहे ॥

विराध— महाराज ! ऐसा नहीं । ('केवल है यह' ऊपर का छंद फिर से पढ़ता है) १

राक्षस— मित्र ! कहां, और भी सैकड़ों मित्रों का नाश सुनने को ये पापी कान उपस्थित हैं ।

विराध— यह सब सुनकर चंदनदास ने बड़े

कट से आपके कुटुंब को छिपाया !

राक्षस— मित्र ! उस दुष्ट चाणक्य के तो चंदनदास के विरुद्ध ही किया ।

विराध— तो मित्र का बिगाड़ा करना तो अनुचित ही था ;

राक्षस— हाँ, फिर क्या हुआ ?

विराध— तब चाणक्य ने आपके कुटुम्ब को चंदनदास से बहुत मांगा पर उसने नहीं दिया, इस पर उस दुष्ट ब्राह्मण ने —

राक्षस— (घबड़ाकर) क्या चंदनदास को मार डाला ।

विराध— नहीं, मारा तो नहीं, पर स्त्री-पुत्र धन-समेत बाँधकर बंदीघर में भेज दिया ।

राक्षस— तो क्या ऐसे सुखी होकर कहते हो कि बंधन में भेज दिया ? अरे ! यह कहो कि मंत्री राक्षस को कुटुंब सहित बाँध रक्खा है । अरे ! यह कहो कि मंत्री राक्षस को कुटुंब सहित बाँध रक्खा है ।

(प्रियंवदक आता है)

प्रियंवदक— जय-जय महाराज ! बाहर शकटदास खड़े हैं ।

राक्षस— (आश्चर्य से) सच ही !

प्रियं— महाराज ! आपके सेवक कभी मिथ्या बोलते हैं ?

राक्षस— मित्र विराधगुप्त ! यह क्या !

विराध— महाराज ! होनहार जो बचाया चाहे तो कौन मार सकता है ।

राक्षस— प्रियंवदक ! अरे जो सच ही कहता है तो उनको फटपट लाता क्यों नहीं ?

प्रियं— जो आज्ञा । (जाता है)

(सिद्धार्थ के संग शकटदास आता है)

शकटदास— (देखकर आप ही आप)

वह सूली गड़ी जो बड़ी दृढ़ के,

सो चंद्र को राज थिरयो प्रन तें ।

लपटी वह फाँस की डोर सोई,

मनु श्री लपटी वृषलै मन तें ॥

बजी डौड़ी निरादर की नृप नंद के,

सेऊ लख्यो इन आँखन तें ॥

नहिं जानि परै इतनोह भए,

केहि हेतु न प्रान कटै तन तें ॥

(राक्षस को देखकर) यह मंत्री राक्षस बैठे हैं । अहा !

नंद गए हू नहिं तजत प्रभुसेवा को स्वाद ।

भूमि बैठि प्रगत मनहुँ स्वामिभक्त-मरजाद ॥

(पास जाकर) मंत्री की जय हो ।

राक्षस— (देखकर आनंद से) मित्र शकटदास !

आओ, मुहासे मिल लो, क्योंकि तुम दुष्ट चाणक्य के हाथ से बच के आए हो ।

शकट— (मिलता है)

राक्षस— (मिलकर) यहाँ बैठा ।

शकट— जो आज्ञा । (बैठता है)

राक्षस— मित्र शकटदास ! कहो तो यह आनंद की बात कैसे हुई ?

शकट— (सिद्धार्थ को दिखाकर) इस प्यारे सिद्धार्थ ने सूली देने वाले लोगों को हटाकर मुझको बचाया है ।

राक्षस— (आनंद से) वाह सिद्धार्थ ! तुमने काम तो अमूल्य किया है, पर भला ! तब भी यह जो कुछ है सो लो । (अपने अंग से आभरण उतार कर देता है)

सिद्धा— (लेकर आप ही आप) चाणक्य के कहने से मैं सब कहूँगा । (पैर पर गिरके प्रकाश) महाराज ! यहाँ मैं पहिले पहल आया हूँ, इससे मुझे यहाँ कोई नहीं जानता कि मैं उसके पास इन भूषणों को छोड़ जाऊँ । इससे आप इसी अंगूठी से इस पर मोहर करके अपने ही पास रखें, मुझे जब काम होगा ले जाऊँगा ।

राक्षस— क्या हुआ ? अच्छा शकटदास ! जो यह कहता है वह करो ।

शकट— जो आज्ञा । (मोहर पर राक्षस का नाम देखकर धीरे से मित्र ! यह तो तुम्हारे नाम की मोहर है ।

राक्षस— (देखकर बड़े सोच से आप ही आप) हाय हाय इसको त हाय हाय इसको तो जब मैं नगर से निकला था तो ब्राह्मणी ने मेरे स्मरणार्थ ले लिया था, यह इसके हाथ कैसे लगी ? (प्रकाश) सिद्धार्थ ! तुमने यह कैसे पाई ?

सिद्धा— महाराज ! कुसुमपुर में जो चंदनदास जौहरी हैं उनके द्वार पर पड़ी पाई ।

राक्षस— तो ठीक है ।

सिद्धा— महाराज ! ठीक क्या है ?

राक्षस— यही कि ऐसे धनिकों के घर बिना यह वस्तु और कहा मिले ?

शकट— मित्र ! यह मंत्रीजी के नाम की मुहर है, इससे तुम इसको मंत्री को दे दो, तो इसके बदले तुम्हें बहुत पुरस्कार मिलेगा ।

सिद्धा— महाराज ! मेरे ऐसे भाग्य कहा कि

आप इसे लें । (मोहर देता है)

राक्षस— मित्र शकटदास ! इसी मुद्रा से सब काम किया करो ।

शकट— जो आज्ञा ।

सिद्धा— महाराज ! मैं कुछ बिनती करूँ ?

राक्षस— हाँ हाँ ! अवश्य करो ।

सिद्धा— यह तो आप जानते ही हैं कि उस दुष्ट चाणक्य की बुराई करके फिर मैं पटने में घुस नहीं सकता, इससे कुछ दिन आप ही के चरणों की सेवा किया चाहता हूँ ।

राक्षस— बहुत अच्छी बात है । हम लोग तो ऐसा चाहते ही थे, अच्छा है, यहीं रहो ।

सिद्धा— (हाथ जोड़कर) बड़ी कृपा हुई ।

राक्षस— मित्र शकटदास ! ले जाओ, इसके उतारो और सब भोजनदिक को ठीक करो ।

शकट— जो आज्ञा ।

(सिद्धार्थक को लेकर जाता है)

राक्षस— मित्र विराधगुप्त ! अब तुम कुसुमपुर का वृत्त जो छूट गया था सो कहो । वहाँ के निवासियों को मेरी बातें अच्छी लगती हैं कि नहीं ।

विराध— बहुत अच्छी लगती हैं, वरन वे सब तो आप ही के अनुयायी हैं ।

राक्षस— ऐसा क्यों ?

विराध— इसका कारण यह है कि मलयकेतु के निकलने के पीछे चाणक्य को चंद्रगुप्त ने कुछ विद्रोह दिया और चाणक्य ने भी उसकी बात न सहकर चंद्रगुप्त की आज्ञा भंग करके उसके दुःखी कर रखा है, यह मैं भली भाँति जानता हूँ ।

राक्षस— (हर्ष से) मित्र विराधगुप्त ! जो तुम इसी सँपेरे के भेष से फिर कुसुमपुर जाओ और वहाँ मेरा मित्र स्तनकलास नामक कवि है उससे कह दो कि चाणक्य के आज्ञाभंगादिकों के कवित्व बना बनाकर चंद्रगुप्त के बढ़ावा देता रहे और जो कुछ काम हो जाय वह करभक्त से कहला भेजे ।

विराध— जो आज्ञा (जाता है)

(प्रियंवदक आता है)

प्रियं— जय हो महाराज ! शकटदास कहते हैं कि ये तीन आभूषण विकते हैं, इन्हें आप देखें ।

राक्षस— (देखकर) अहा यह तो बड़े मूल्य के गहने हैं, अच्छा शकट दास से कह दो कि दाम चुका कर ले लें ।

प्रियं— जो आज्ञा । (जाता है)

राक्षस— तो अब हम भी चलकर करभक्त को

कुसुमपुर भेजें । (उठता है) अहाँ ! क्या उस मृतक चाणक्य से चंद्रगुप्त से बिगाड़ हो जायगा ? क्यों नहीं ? क्योंकि सब कामों को सिद्ध ही देखता हूँ । चंद्रगुप्त निज तेज बल करत सबन को राज । तेहि समझत चाणक्य यह मेरी दियो समाज । अपनो अपनो करि चुके काज रह्यो कछु जौन । अब जौ आपसु में लड़ैं तो बड़ अचरज कौन ।। (जाता है)

तृतीय अंक

स्थान — राजभवन की अटारी
(कंचुकी आता है)

कंचुकी— रूप आदि विषय जो राखे हिये बहु हे रूप आदिक विषय जो राखे हिये बहु लोभ सों । सो मिटे इंद्रीगन सहित ह्वै सिथिल अतिही छोभ सो ।।

मानत कह्यो कोउ नाहि सब अंग अंग ढीले ह्वै गए । तौह न तृष्णे ! क्यों तजत तू मोहि बूढ़ोहु भए ।

(आकाश की ओर देखकर) अरे ! अरे !
सुगार्गप्रासाद के लोगों ! सुनो । महाराज चंद्रगुप्त ने तुम लोगों को यह आज्ञा दी कि 'कौमुदी-महोत्सव के होने से परम शोभित कुसुमपुर को मैं देखना चाहता हूँ इससे उस अटारी को बिछोने इत्यादि से सज रखो, देर क्यों करते हो ! (आकाश की ओर देखकर) क्या कहा ? कि क्या महाराज चंद्रगुप्त नहीं जानते कि कौमुदी-महोत्सव अब की न होगा ? दूर दइमारो ! क्या मरने को लगे हो ? शीघ्रता करो ।

सबैया

बहु फूल की माल लपेट कै खंभन

धूप सुगंध सो ताहि धुपाइए ।

तापै चहँ दिस चंद छपा से

सुसोभित चौर घने लटकाइए ।।

भार सों चारु सिंहासन के

मुरछा में धरा परी धेनु सी पाइए ।

छोट कै तापै गुलब मिल्यौ

जल चंदन ताकहँ जाइ जगाइए ।।

(आकाश की ओर देखकर) क्या कहते हो कि 'हम लोग अपने काम में लग रहे हैं ?' अच्छा अच्छा भटपट सब सिद्ध करो । देखो ! वह महाराज चंद्रगुप्त आ पहुँचे ।

बहु दिन श्रम करि नंद नृप बढ्यो राजपुर जौन । बालोपन ही में लियो चंद्र सीस निज तौन ।।

डिगत न नेकहु विषय पथ दूढ़ प्रतिज दूढ़ गात ।
गिरन चहत समहरत बहुरि नेकु न जिय धरारात ॥
(नेपथ्य में — इधर महाराज इधर । राजा और
प्रतिहारी आते हैं)

राजा — (आप ही आप) राज उसी का नाम है
जिसमें अपनी आज्ञा चले, दूसरे के भरोसे राज करना
भी एक बोझा होना है । क्योंकि —
जो दूजे को हित करे तो खोवै निज काज ।
जो छाये निज काज तो कौन बात को राज ॥
दूजे ही को हित करे तो वह परबस मूढ़ ।
कठ पुत्री सो स्वाद कछु पावे कबहुँ न कूढ़ ॥
और राज्य पाकर भी इस दुष्ट राजलक्ष्मी को सम्हालना
बहुत कठिन है । क्योंकि —

कूर सदा भाखत पियहि चंचल सहज सुभाव ।
नर गुन औगुन नहिं लखति सज्जन खल सम भाव ॥
डरति सूर सो भीरु कहैं गिनति न कछु रति-हीन ।
बारनारि अरु लच्छमी कहो कौन बस कीन ? ॥

यद्यपि गुरु ने कहा है कि तू भूठी कलह करके
स्वतंत्र होकर अपना प्रबंध कर ले, पर यह तो बड़ा
पाप सा है । अथवा गुरुजी के उपदेश पर चलने से
हम लोग तो सदा ही स्वतंत्र हैं ।

जब लौं बिगारै काज नहिं तब लौं न गुरु कछु तेहि कहै ।
पै शिष्य जाइ कुराह तो गुरु सीस अंकुस हवै रहै ॥
तासों सदा गुरु-वाक्य-वश हम नित्य पर आधीन हैं ।
निलोभ गुरु से संत जन ही जगत में स्वाधीन है ॥

(प्रकाश) अजी वैहीनर ! सुगांगप्रासाद का मार्ग
दिखाओ ।

कंचुकी — इधर आइए, महाराज, इधर ।

(राजा आगे बढ़ता है)

कंचुकी — महाराज ! सुगांगप्रासाद की यही
सौद्वी है ।

राजा — (ऊपर चढ़कर) अहा ! शरद ऋतु की
शोभा से सब दिशाएँ कैसी सुंदर हो रही हैं ।
क्योंकि —

सरद बिमल ऋतु सोहई निरमल नील प्रकास ॥
निसानाथ पूरन उदित सोलह कला प्रकास ।
चारु चमेली बन रही महमह महँकि सुवास ।
नदी तीर फूले लखौ सेत सेत बहु कास ॥
कमल कुमोदिन सरन में फूले सोभा देत ।

भौर वृंद जापै लखौ गूँजि गूँजि रस लेत ।
बसन चाँदनी चंद मुख, उडुगन मोती माल ॥
कास फूल मधु हास, यह सरद किधौ नव बाल ॥

(चारों ओर देखकर) कंचुकी ! यह क्या ? नगर में
'चंद्रिकोत्सव' कहीं नहीं मालूम पड़ता ; क्या तूने सब
लोगों से ताकीद करके नहीं कहा था कि उत्सव हो ?

कंचुकी — महाराज सबसे ताकीद कर दी थी ।

राजा — तो फिर क्यों नहीं हुआ ? क्या लोगों ने
हमारी आज्ञा नहीं मानी ?

कंचुकी — (कान पर हाथ रखकर) राम राम !
भला नगर क्या, इस पृथ्वी में ऐसा कौन है जो आपकी
आज्ञा न माने ?

राजा — तो फिर चंद्रिकोत्सव क्यों नहीं हुआ ?
देख न —

गज रथ बाजि सजे नहीं, बँधी न बंदनवार ।
तने बितान न कहूँ नगर, रजित कहूँ न द्वार ॥
न नारी डोलत न कहूँ फूल माल गल डार ।
नृत्य बाद धुनि गीत नहिं सुनियत श्रवन मैभार ॥

कंचुकी — महाराज ! ठीक है, ऐसा ही है ।

राजा — क्यों ऐसा ही है ?

कंचुकी — महाराज योंही है ।

राजा — स्पष्ट क्यों नहीं कहता ?

कंचुकी — महाराज ! चंद्रिकोत्सव बंद किया
गया है ।

राजा — (क्रोध से) किसने बंद किया है ?

कंचुकी — (हाथ जोड़कर) महाराज ! यह मैं
नहीं कह सकता ।

राजा — कहीं आर्य चाणक्य ने तो नहीं बन्द
किया ?

कंचुकी — महाराज ! और किसको अपने प्राणों
से शत्रुता करनी थी ?

राजा — (अत्यंत क्रोध से) अच्छा, अब हम
बैठेंगे ।

कंचुकी — महाराज ! यह सिंहासन है,
बिराजिए ।

राजा — (बैठकर क्रोध से) अच्छा, कंचुकी !
आर्य चाणक्य से कह कि 'महाराज आपको देखा चाहते
हैं' ।

कंचुकी — जो आज्ञा । (बाहर जाता है)

(एक ओर परदा उठता है और चाणक्य बैठा
हुआ दिखाई पड़ता है ।)

चाणक्य — (आप ही आप) दुष्ट राक्षस हमारी
बराबरी करता है, जानता है कि —

जिमि हम नृप-अपमान सों महा क्रोध उर धारि ।
करी प्रतिज्ञा नंद नृप नासन की निरधारि ॥

सो नृप नंदहि पुत्र सह नासि करी हम पूर्ण ॥
चंद्रगुप्त राजा कियो करि राक्षस-मद चूर्ण ॥
तिमि सोऊ मोहि नीति-बल छलन चहत इति चंद ।
पै मो आछत यह जतन वृथा तासु आति मंद ॥

(ऊपर देखकर क्रोध से) अरे राक्षस ! छोड़-छोड़
यह व्यर्थ का श्रम ; देख —

जिमि नृप नंदहि मारि कै वृष लहि दीनों राज ।
आइ नगर चाणक्य किय दुष्ट सर्प सों काज ॥
तिमि सोऊ नृप चंद्र को चाहत करन बिगार ॥
निज लघु मति लाँघ्यो चहत मो बल-बुद्धि-पहार ॥

(आकाश की ओर देखकर) अरे राक्षस ! मेरा पीछा
छोड़ो क्योंकि —

राज काज मंत्री चतुर करत बिना अभिमान ।
जैसी तुम नृप नंद हो चंद्र न तौन समान ॥
तुम कदु नहिं चाणक्य सो साथी कठिनहु काज ।
तासों हम सों बेर करि नहिं सरिहैं तुव राज ॥
अथवा इसमें तो मुझे कुछ सोचना ही न चाहिए ।
क्योंकि —

मम भागुरायन आदि भूत्यन मलय राख्यो घेरि कै ।
तिमि गए सिद्धारथक ऐहैं तेउ काज निवेरि कै ॥
अब लखहु करि छल कलह नृप सों भेद बुद्धि उपाइ कै ।
पर्वत जनन सों हम बिगारत राक्षसहि उलटाइ कै ॥

कंचुकी — हा ! सेवा बड़ी कठिन होती है ।
नृप सों सचिव सों सब मुसाहेब-गनन सों डरते रहौ ।
पुनि विटहु जे अति पास के तिनकों कट्यौ करतो रहौ ।
मुख लखत बीतत दिवस निसि भय रहत संपित प्राण है ।
निज उदर-पूरन हेतु सेवा स्वान-वृत्ति समान है ॥

(चारों ओर घूमकर देखकर)

अहा ! यही आर्य चाणक्य का घर है तो चलूँ ।
(कुछ आगे बढ़कर और देखकर) अहाहा ! यह
राजधिराज श्रीमन्त्रीजी के घर की संपत्ति है । जो —
कहूँ परे गोमय शुष्क, कहूँ सिल परी सोमा दे रही ।
कहूँ तिल कहूँ जब-रासि लागी बटुन जो भिक्षा लडी ॥
कहूँ कुस परे कहूँ समिध सूखत भार सों ताके नयो ।
यह लखौ छप्पर महा जरजर होइ कैसे भुकि गयो ॥
महाराज चंद्रगुप्त के भाग्य से ऐसा मंत्री मिला है ।

बिन गुनहूँ के नृपन कों धन हित गुरुजन धाई ।
सूखो मुख करि भूठहीं बहु गुन कहहिं बनाई ॥
पै जिनको तृष्णा नहीं ते न लबार समान ।
तिनसों तून सम धनिक जन पावत कबहुँ न मान ॥

(देखकर डर से) अरे आर्य चाणक्य यहाँ बैठे हैं,

जिन्होंने —

लोक धरणि चंद्रहि कियो राजा नंद गिराइ ।

हो प्रात रवि के कटूत जिमि ससि तेज नसाइ ॥
(प्रगट दंडवत करके) जय हो ! आर्य की जय हो !!

चाणक्य — (देखकर) कौन है, वैहीनर । क्यों
आया है ?

कंचुकी — आर्य ! अनेक राजागणों के मुकुट-
माणिक्य से सर्वदा जिनके पदतल लाल रहते हैं उन
महाराज चंद्रगुप्त ने आपके चरणों में दंडवत् करके
निवेदन किया है कि 'यदि आपके किसी कार्य में विघ्न
न पड़े तो मैं आपका दर्शन किया चाहता हूँ ।

चाणक्य — वैहीनर ! क्या वृषल मुझे देखा
चाहता है ? क्या मैंने कौमुदी महोत्सव का प्रतिषेध कर
दिया है यह वृषल नहीं जानता ?

कंचुकी — आर्य क्यों नहीं ।

चाणक्य — (क्रोध से) हैं ? किसने कहा ?

कंचुकी — (भय से) महाराज प्रसन्न हों जब
सुगांगप्रसाद की अटारी पर गए थे तो देखकर महाराज
ने आप ही जान लिया कि कौमुदी महोत्सव अबकी नहीं
हुआ ।

चाणक्य — अरे ठहर, मैंने जाना यह तुम्हीं
लोगों ने वृषल का जी मेरी ओर से फेरकर उसे चिढ़ा
दिया है, और क्या ।

(कंचुकी भय से नीचा मुँह करके चुप रह जाता है)

चाणक्य — अरे राज के कारबारियों का
चाणक्य के ऊपर बड़ा ही विद्वेष पक्षपात है । अच्छा,
वृषल कहाँ है । बता ।

कंचुकी — (डरता हुआ) आर्य ! सुगांगप्रसाद
की अटारी पर से महाराज ने मुझे आपके चरणों में
मेजा है ।

चाणक्य — (उठकर) कंचुकी सुगांगप्रसाद
का मार्ग बता ।

कंचुकी — इधर महाराज । (दोनों घूमते हैं)

कंचुकी — महाराज ! यह सुगांगप्रसाद की
सीढ़ियाँ हैं, चढ़ें ।

(दोनों सुगांगप्रसाद पर चढ़ते हैं और चाणक्य के
घर का परदा गिर के छिप जाता है)

चाणक्य — (चढ़कर और चंद्रगुप्त को देखकर
प्रसन्नता से आप ही आप) अहा ! वृषल सिंहासन पर
बैठा है —

हीन नंद सो रहित नृप चंद्र करत जेहि भोग ।
परम होत संतोष लखि आसन राजा भोग ॥

(पास जाकर) जय हे वृषल की !

चंद्रगुप्त — (उठकर और पैरों पर गिरकर)

आर्य ! चंद्रगुप्त दंडवत् करता है ।

चाणक्य — (हाथ पकड़कर उठाकर) उठो बेटा ! उठो ।

जहाँ लौ हिमालय के सिखर सुरधुनी-कन सीतल रहे ।

जहाँ लौ विविध मणिखंड-मंडित समुद्र दच्छिन दिसि बहे ।।

तहाँ लौ सबै नृप आइ भय सों तोहि सीस भुकावहीं ।

तिनके मुकुट-मणि रंगे तुव पद निरखि हम सुख पावहीं ।

चंद्र — आर्य ! आपकी कृपा से ऐसा ही हो रहा है । बैठिए ।

(दोनों यथास्थान बैठते हैं)

चाणक्य — वृषल ! कहां मुझे क्यों बुलाया है ?

चंद्रगुप्त — आर्य के दर्शन से कृतार्थ होने को ।

चाणक्य — (हँसकर) भया बहुत शिष्टाचार हुआ, अब बताओ क्यों बुलाया है ? क्योंकि राजा लोग किसी को बेकाम नहीं बुलाते !

चाणक्य — जब पूछना ही है तब तुमको इससे में क्या फल सोचा है ?

चाणक्य — (हँसकर) तो यही उलाहना देने को बुलाया है न ?

चंद्र — उलाहना देने को कभी नहीं ?

चाणक्य — तो क्यों ?

चंद्र — पूछने को ।

चाणक्य — जब पूछना ही है तब तुमको इससे क्या ? शिष्य को सर्वदा गुरु की रुचि पर चलना चाहिए ।

चंद्र — इसमें कोई संदेह नहीं पर आपकी रुचि बिना प्रयोजन नहीं प्रवृत्त होती । इससे पूछा ।

चाणक्य — ठीक है, तुमने मेरा आशय जान लिया, बिना प्रयोजन के चाणक्य की रुचि किसी और कभी फिरती ही नहीं ।

चंद्र — इसी से तो तुमने बिना मेरा जी अकुलाता है !

चाणक्य — सुनो, अर्थशास्त्रकारों ने तीन प्रकार के राज्य लिखे हैं — एक राजा के भरोसे, दूसरा मंत्री के भरोसे, तीसरा राजा और मंत्री दोनों के भरोसे ; सो तुम्हारा राज तो केवल सचिव के भरोसे है ; फिर इन बातों के पूछने से क्या ? व्यर्थ मुँह दुखाना है, यह सब हम लोगों के भरोसे है, हम लोग जाने ।

(राजा क्रोध से मुँह फेर लेता है ; नेपथ्य में दो वैतालिक गाते हैं)

(राग विहाग)

प्रथम वै —

अहो यह सरद संभु हवै आई ।

कास-फूल फूले चहुँ दिसि तें सोइ मनु भस्म लगाई ।।

चंद उदित सोइ सीस अभूषन सोभा लगति सुहाई ।

तासों रंजित धन-पटली सोइ मनु गज-खाल बनाई ।।

फूले कुसुम मुंडमाला सोइ सोहत अति धवलाई ।

राजहंस सोभा सोइ मानों हास-विभव दरसाई ।।

अहो यह सरद संभु बनि आई ।

(राग कलिंगड़ा)

हरौ हरि-नेन तुम्हारी बाधा ।

सरद-अंत लखि सेस अंक तें जगे जगत-सुभ-साधा ।।

कछु कछु खुले मूँदै कछु सोभित आलस भरि अनियारे

अरुन कमल से मद के माते थिर भे जदपि दरारे ।।

सेस सीस मनि चमक-चकोधन तनिकहुँ नहिं सकुचाहीं ।

सकुचाहीं ।।

नींद भरे श्रम जगे चुभत जे नित कमला-उर माहीं ।।

हरौ हरि-नेन तुम्हारी बाधा ।

दूसरा वै — कड़खे की चाल में)

अहो जिनको विधि सब जीव सों बढ़ि दीनो जग काज ।

अरे, दान-सलिल-वारे सदा जे जीतहिं गजराज ।।

अहो, भूक्यो न जिनको मान ते नृपवर जग सिरताज ।।

बरे, सहहिं न आज्ञा-मंग जिमि दंतपात मुगराज ।।

अरे, केवल बहु गहिना पहिरि राजा होइ न कोय ।

अहो, जाकी नहिं आज्ञा तरौ सो नृप तुम सम होय ।।

चाणक्य — (सुनकर आप ही आप) भला

पहिले ने तो देवता रूप शरद के वर्णन में आशीर्वाद

दिया, पर इस दूसरे ने कहा ? (कुछ सोच कर) अरे

जाना, यह सब राक्षस की करतूत है । अरे दुष्ट

राक्षस ! क्या तू नहीं जानता कि अभी चाणक्य सो

नहीं गया है ?

चंद्र — अजी वैहीनर ! इन दोनों गानेवालों

को लाख-लाख मोहर दिलावा दो ।

वैहीनर — जो आज्ञा महाराज । (उठकर जाना

चाहता है)

चाणक्य — वैहीनर, ठहर अभी मत जा,

वृषल, कुपात्र को इतना क्यों देते हो ?

चंद्र — आप मुझे सब बातों में यों ही रोक दिया

करते हैं, तब यह मेरा राज्य क्या है वरन् उलटा बंधन

है ।

चाणक्य — वृषल ! जो राजा आप असमर्थ

होते हैं उनमें इतना ही तो दोष है, इससे जो ऐसी इच्छा

हो तो तुम अपने राज का प्रबंध आप कर लो ।

चंद्र.— बहुत अच्छा, आज से मैंने सब काम सन्हाला ।

चाणक्य— इससे अच्छी और क्या बात है, तो मैं भी अपने अधिकार पर सावधान हूँ ।

चंद्र.— जब यही है तो पहिले मैं पूछता हूँ कि कौमुदी महोत्सव का निषेध क्यों किया गया ?

चाणक्य— मैं भी यही पूछता हूँ कि उसके होने का प्रयोजन क्या था !

चंद्र.— पहिले तो मेरी आज्ञा का पालन ।

चाणक्य— मैंने भी आप की आज्ञा के अपालन के हेतु की कौमुदी-महोत्सव का प्रतिषेध किया, क्योंकि —

आइ चारह सिंधु के छोरहु के भूपाल ।
जो शासन सिर पै धरै जिमि फूलन की माल ॥
तोहि हम जो कछु टारहीं सोउ तुव हित उपदेस ।
जासो तुमरो विनय गुन जग मैं बढ़ै नरेस ॥

चंद्र.— और जो दूसरा प्रयोजन है वह भी सुनूँ ।

चाणक्य— वह भी कहता हूँ ।

चंद्र.— कहिए ।

चाणक्य— शोणोत्तरे ! अचलदत्त कायस्थ से कहे कि तुम्हारे पास जो भद्रमट इत्यादिकों का लेखपत्र है वह माँगा है ।

प्रतिहारी— जो आज्ञा । (बाहर से पत्र लाकर देती है)

चाणक्य— वृषल, सुनो ।

चंद्र.— मैं उधर ही कान लगाए हूँ ।

चाणक्य— (पढ़ता है) स्वस्ति परम प्रसिद्ध महाराज श्री चन्द्रगुप्त देव के साथी जो अब उनको छोड़कर कुमार मलयकेतु के आश्रित हुए हैं उनका यह प्रतिज्ञापत्र है । पहिला गजाध्यक्ष भद्रमट, अश्वाध्यक्ष पुरुषदत्त महाप्रतिहार चंद्रमानु का भानजा हिंगुरात, महाराज के नातेदार महाराज बलगुप्त, महाराज के लड़कपन का सेवक राजसेन, सेनापति सिंहबलदत्त का छोटा भाई भागुरायण, मालवा के राजा का पुत्र रोहिताश्व और क्षत्रियों में सबसे प्रधान विजयवर्मा (आप ही आप) ये हम सब लोग यहाँ महाराज का काम सावधानी से साधते हैं (प्रकाश) यही इस पत्र में लिखा है । सुना ?

चंद्र.— आर्य्य, मैं इन सबों के उदास होने का कारण सुनना चाहता हूँ ।

चाणक्य— वृषल ! सुनो—जो गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष थे वे रात-दिन मद्य, स्त्री और जुआ में

डूबकर अपने काम से निरे बेसुच रहते थे । इससे मैंने उनसे अधिकार लेकर केवल निर्वाह के योग्य जीविका कर दी थी, इससे उदास होकर कुमार मलयकेतु के पास चले गए और वहाँ अपना-अपना कार्य्य सुनाकर फिर उसी पद पर नियुक्त हुए हैं और हिंगुरात और बलगुप्त ऐसे लालची हैं कि कितना भी दिया पर अंत में मारे लालच के कुमार मलयकेतु के पास इस लोभ से जा रहे कि यहीं बहुत मिलेगा, और जो आपका लड़कपन का सेवक राजसेन था उसने आपकी थोड़ी ही कृपा से हाथी, घोड़ा, घर और धन सब पाया, पर इस भय से भागकर मलयकेतु के पास चला गया कि सब धन छिन न जाय, और वह जो सिंहबलदत्त सेनापति का छोटा भाई भागुरायण है उससे पर्वतक से बड़ी प्रीति थी सो उसने कुमार मलयकेतु से यह कहा कि "जैसे विश्वासघात करके चाणक्य ने तुम्हारे पिता को मार डाला वैसे ही तुम्हें भी मार डालेगा इससे यहाँ से भाग चलो" ऐसे ही बहकाकर कुमार मलयकेतु को भगा दिया और जब आपके बैरी चंदनदासादिकों को दंड हुआ कृपा से हाथी, घोड़ा, घर और धन सब पाया, इस भय से भाग कर मलयकेतु के पास चला गया कि सब धन छिन न जाय, और वह जो सिंहबलदत्त सेनापति का छोटा भाई भागुरायण है उससे पर्वतक से बड़ी प्रीति थी सो उसने कुमार मलयकेतु से यह कहा कि "जैसे विश्वासघात करके चाणक्य ने तुम्हारे पिता को मार डाला वैसे ही तुम्हें भी मार डालेगा इससे यहाँ से भाग चलो" ऐसे ही बहकाकर कुमार मलयकेतु को भगा तब मारे डर के मलयकेतु के पास जा रहा । उसने भी यह समझकर कि इसने मेरे प्राण बचाए और मेरे पिता का परिचित भी है उसको कृतज्ञता से अपना अंतरंगी मंत्री बनाया है, और वे जो रोहिताश्व और विजयवर्मा थे वे ऐसे अभिमानी थे कि जब आप उनके नातेदारों का आदर करते थे तब वह कुदृते थे, इसी से वे भी मलयकेतु के पास चले गए, बस, यही उन लोगों की उदासी का कारण है ।

चंद्र— आर्य्य । जब इन सबके भागने का उद्यम जानते ही थे तो क्यों न रोक रखा ?

चाणक्य— ऐसा कर नहीं सके ।

चंद्र— क्या आप इसमें असमर्थ हो गए वा कुछ उसमें भी प्रयोजन था ?

चाणक्य— असमर्थ कैसे हो सकते हैं ?

उसमें भी कुछ प्रयोजन ही था ।

चंद्र.— आर्य्य । वह प्रयोजन मैं सुनना चाहता हूँ ।

चाणक्य— सुनो और मूल मत जाओ ।

चंद्र.— आर्य ! मैं सुनता हई हूँ, भूलूँगा भी नहीं ; कहिए ।

चाणक्य— जब जो लोग उदास हो गए हैं या विगड़ गए हैं उनके दो ही उपाय हैं, या तो फिर से उन पर अनुग्रह करें या उनको दंड दें और भद्रभट, पुरुषदत्त से जो अधिकार ले लिया गया है तो अब उन पर अनुग्रह यही है कि फिर उनको उनका अधिकार दिया जाय ; और यह हो नहीं सकता, क्योंकि उनको मृगया, मद्यपानादिक का जो व्यसन है इससे इस योग्य नहीं हैं कि हाथी, घोड़ों को सम्हालें और सब सेना की जड़ हाथी घोड़े ही हैं । वैसे ही हिंगुरात बलगुप्त को कौन प्रसन्न कर सकता है, क्योंकि उनको सब राज्य पाने से भी संतोष न होगा, और राजसेन और भागुरायण तो धन और प्राण के डर से भागे हैं ; ये तो प्रसन्न होई नहीं सकते, और रोहिताक्ष, विजयवर्मा का तो कुछ पूछना ही नहीं है, क्योंकि वे तो और नातेदारों के मान से जलते हैं और उनका कितना भी मान करो, उन्हें थोड़ा ही दिखलाता है ; तो इनका क्या उपाय है । यह तो अनुग्रह का वर्णन हुआ, अब दंड का सुनिए । यदि हम इन सबों को प्रधान पद पाकर के जो बहुत दिनों से नन्दकुल के सर्वदा शुभाकांक्षी और साक्षी रहे दंड देकर दुखी करें तो नन्दकुल के साथियों का हम पर से विश्वास उठ जाय, इससे छोड़ ही देना योग्य समझा, सो इन्हीं सब हमारे भृत्यों को पक्षपाती बनाकर राक्षस के उपदेश से म्लेच्छराज की बड़ी सहायता पाकर और अपने पिता के वध से क्रोधित होकर पर्वतक का पुत्र कुमार मलयकेतु हम लोगों से लड़ने को उद्यत हो रहा है, सो यह लड़ाई के उद्योग का समय है उत्सव का समय नहीं । इससे गद्द के संस्कार के समय कौमुदीमहोत्सव क्या होगा, यही सोचकर उसका प्रतिषेध कर दिया ।

चंद्र.— आर्य ! मुझे अभी इसमें बहुत कुछ पूछना है ।

चाणक्य— भली भाँति पूछो, क्योंकि मुझे भी बहुत कुछ कहना है ।

चंद्र.— यह पूछता हूँ —

चाणक्य— हाँ ! मैं भी कहता हूँ ।

चंद्र.— यह कि हम लोगों के सब अनर्थों की जड़ मलयकेतु है ; उसे आपने भागते समय क्यों नहीं पकड़ा ?

चाणक्य— वृषल ! मलयकेतु के भागने के समय भी दो ही उपाय थे — या तो मेल करते या दंड

देते । जो मेल करते तो आधा राज देना पड़ता और जो दंड देते तो फिर यह हम लोगों की कृतघ्नता सब पर प्रसिद्ध हो जाती कि इन्हीं लोगों ने पर्वतक को भी मरवा डाला और जो आधा राज देकर अब मेल कर लें तो उस विचारे पर्वतक के मारने का पाप ही पाप लगे । इससे मलयकेतु के भागते समय छोड़ दिया ।

चंद्र.— और भला राक्षस इसी नगर में रहता था, उसका भी आपने कुछ न किया इसका क्या उत्तर है ।

चाणक्य— सुनो, राक्षस अपने स्वामी की स्थिर भक्ति से और यहाँ बहुत दिन रहने से यहाँ के लोगों का और नंद के सब साथियों का विश्वासपात्र हो रहा है और उनका स्वभाव सब लोग जान गए हैं । उसमें बुद्धि और पौरुष भी है, वैसे ही उसके सहायक भी हैं और कोषबल भी हैं, इससे जो वह यहाँ रहे तो भीतर के सब लोगों को फोड़कर उपद्रव करें और जो यहाँ से दूर रहे तो वह ऊपरी जोड़ तोड़ लगावे पर उनके मिटाने में इतना कठिनाई न हो । इससे उसके जाने के समय उपेक्षा कर दी गई ।

चंद्र.— तो जब वह यहाँ था तभी उसको वश में क्यों नहीं कर लिया ?

चाणक्य— वश क्या कर लें, अनेक उपयोग से तो वह छाती में गड़े काँट की भाँति निकालकर दूर किया गया है ! उनसे दूर करने में और कुछ प्रयोजन ही था ।

चंद्र.— तो बल से क्यों नहीं पकड़ रखा ?

चाणक्य— वह राक्षस ऐसा नहीं है, उस पर जो बल किया जाता तो या तो वह आप मारा जाता या तुम्हारी सेना का नाश कर देता ।

और —

हम खोवें इक महत नर जो वह पावै नास ।
जो वह नासै सैन तुव तौहू जिय अति त्रास ॥
तासों कल बल करि बहुत आने बस करि बाहि ।
जिमि गज पकरै सुघर तिमि बाँधैगे हम ताहि ॥

चंद्र.— मैं आप की बात तो नहीं काट सकता, पर इससे तो मंत्री राक्षस ही बड़ चढ़ के जान पड़ता है ।

चाणक्य— (क्रोध से) 'आप नहीं' इतना क्यों छोड़ दिया ? ऐसा कभी नहीं है । उसने क्या किया है कहां तो ?

चंद्र.— जो आप न जानते हों तो सुनिए कि वह महात्मा —

जदपि आपु जीती पुरी तदपि धारि कुशलात ।
जब लौं जिय चाह्यौ रद्यौ धारि सीस पै लात ॥
डौंडी फेरन के समय निज बल जय प्रगटाय ।

मेरो दल के लोग को दीनों तुरत हराय ॥
 मोहें परिजन रीति सों जाके सब बिनु त्रास ।
 जो मो पे निज लोकहू आनहिं नहिं विश्वास ॥
चाणक्य— (हँसकर) वृषल ! राक्षस ने वह सब किया ?

चंद्र— हाँ ! हाँ ! अमात्य राक्षस ने यह सब किया ।

चाणक्य— तो हमने जाना, जिस तरह नंद का नाश करके तुम राजा हुए वैसे ही अब मलयकेतु राजा होगा ।

चंद्र— आर्य ! यह उपालंभ आपको नहीं शोभा देता, करनेवाला सब दूसरा है ।

चाणक्य— रे कृतघ्न ।

अतिहि क्रोध करि खोलिके सिखा प्रतिज्ञा कीन ।
 सो सब देखत भुव करी नव नृप नंद विहीन ॥
 धिरी स्वान अरु गोध सों भय उपजावनिहारि ।
 जारि नंदहू नहिं भई सांत मसान दवारि ॥

चंद्र— यह सब किसी दूसरे ने किया ।

चाणक्य— किसने ?

चंद्र— नन्दकुल के द्वेषी देव ने ।

चाणक्य— देव तो मूर्ख लोग मानते हैं ।

चंद्र— और विद्वान लोग भी यद्वा तद्वा करते हैं ।

चाणक्य— (क्रोध नाट्य करके) अरे वृषल !
 क्या नौकरों की तरह मुझ पर आज्ञा चलाता है ।
 खुली सिखाई बौधिवे चंचल मे पुनि हाथ ।
 (क्रोध से पैर पृथ्वी पर पटक कर)

घोर प्रतिज्ञा पुनि चरन करन चहत कर साथ ॥
 नंद नसे सों निरुज हवै तू फूल्यौ गरबाय ।
 सो अभिमान मिटाइहौ तुरतहिं लेहि गिराय ॥

चंद्र— (घबड़ाकर) अरे ! क्या आर्य को सचमुच क्रोध आ गया !

फर फर फरकत अधर फूट, भए नयन जुग लाल ।
 चढ़ी जाती भौहैं कुटिल, स्वाँस तजत जिमि व्याल ॥
 मनहुँ अचानक रुद्रदृग खल्यौ त्रितिय दिखरात ।
 (आवेग सहित)

घरनी धार्यौ बिनु घँसे हा हा किमि पदधात ॥
चाणक्य— (नकली क्रोध रोककर) तो वृषल ! इस कोरो बकवाद से क्या लाभ है ! जो राक्षस चतुर है तो यह शस्त्र उसी को दे । (शस्त्र फेंक और

उठकर — आप ही आप) ह ह ह ! 'राक्षस' ! यही तुमने चाणक्य को जीतने का उपाय किया ।

तुम जानो चाणक्य सों नृप चरहि लखाय ।

सहजहि खेहै राज हम निज बल बुद्धि उपाय ॥
 सो हम तुमही कहूँ छलन कियो क्रोध परकास ।
 तुमरोई करिहै उलटि यह तुव भेद विनास ॥
 (क्रोध प्रकट करता हुआ चला जाता है)

चंद्र— आर्य वैहीनर ! "चाणक्य का अनादर करके आज से चंद्रगुप्त सब काम-काज आप ही सम्हालेंगे," यह लोगों से कह दो ।

कंचुकी— (आप ही आप) अरे ! आज महाराज ने चाणक्य के पहले आर्य शब्द नहीं कहा ! क्यों ? क्या सचमुच अधिकार छीन लिया ? वा इसमें महाराज का क्या दोष है !

सचिव-दोष सों होत है नृपहु बुरे ततकाल ।
 हाथीवान-प्रमाद सों गज कहवावत व्याल ॥

चंद्र— क्यों जी ? क्या सोच रहे हो ?

कंचुकी— यही कि महाराज को महाराज शब्द यथार्थ शोभा देता है ।

चंद्र— (आप ही आप) इन्हीं लोगों के धोखा खाने से आर्य का काम होगा । (प्रकट) शोणोत्तरे ! इस सूखी कलह से हमारा सिर दुखने लगा, इससे शयनगृह का मार्ग दिखलाओ ।

प्रतिहारी— इधर आवें, महाराज, इधर आवें ।

चंद्र— (उठकर चलता हुआ आप ही आप)
 गुरु आयसु छल सों कलह करिहू जीय डराय ।
 किमि नर गुरुजन सों लरहिं, यहै सोच जिय हाय ॥
 (सब जाते हैं — जवनिका गिरती है ।)

चतुर्थ अंक

(स्थान — मंत्री राक्षस के घर के बाहर का प्रांत ।)

(करभक घबड़ाया हुआ आता है)

करभक— अहाहा हा ! अहाहा हा !

अतिसय दुरगम ठाम में सत जोजन सों दूर ।
 कौन जात है धाइ बिनु प्रभु निदेश भरपूर ॥

अब राक्षस मंत्री के घर चलूँ । (थका सा बूमकर) । अरे कोई चौकीदार है ! स्वामी राक्षस मंत्री से जाकर कहे कि 'करभक काम पूरा करके पटने से दौड़ा आता है ।'

(दौवारिक आता है)

दौवारिक— अजी ! चिल्लाओ मत, स्वामी राक्षस मंत्री को राजकाज सोचते-सोचते सर में ऐसी बिथा हो गई है कि अब तक सोने के बिछोने से नहीं

उठे, इससे एक घड़ी भर ठहरो, अबसर मिलता है तो मैं निवेदन किए देता हूँ ।

परदा उठता है और सोने के बिछोने पर चिन्ता में भरा राक्षस और शटकदास दिखाई पड़ते हैं)

राक्षस— (आप ही आप)

कारज उलटो होत है कुटिल नीति के जोर ।
का कीजै सोचत यही जगि होय है मोर ॥

और भी

आरंभ पहिले सोचि रचना वेश की करि लावहीं ।
इक बात में गर्भित बहुत फल गूढ़ भेद दिखावहीं ॥
कारन अकारन सोचि फैली क्रियन को सकुचावहीं ।
जे करहि नाटक बहुत दुख हम सरिस तेज पावहीं ॥

और भी यह दुष्ट ब्राह्मण चाणक्य —

दौवा— (प्रवेश कर) जय जय ।

राक्षस— किसी भाँति मिलाया या पकड़ा जा सकता है !

दौवा— अमात्य —

राक्षस— बाएँ नेत्र के फड़कने का अपशकुन देखकर आप ही आप) 'ब्राह्मण चाणक्य जय जय' और 'पकड़ा जा सकता है अमात्य' यह उलटी बात हुई और उसी समय असगुन भी हुआ । तो भी क्या हुआ, उद्यम नहीं छोड़ेंगे । (प्रकाश) भद्र ! क्या कहता है ?

दौवा— अमात्य ! पटने से करभक आया है सो आप से मिला चाहता है ।

राक्षस— अभी लाओ ।

दौवा— जो आज्ञा । (करभक के पास जाकर, उसको संग ले आकर) भद्र ! मंत्रीजी वह बैठे हैं, उधर जाओ । (जाता है)

कर— (मंत्री को देखकर) जय हो, जय हो ।

राक्षस— अभी करभक ! आओ आओ, अच्छे हो ? — बैठो ।

कर— जो आज्ञा । (पृथी पर बैठ जाता है)

राक्षस— (आप ही आप) अरे ! मैंने इसको किस काम का भेद लेने को भेजा था यह भूला जाता है । (चिन्ता करता है)

(बैत हाथ में लेकर एक पुरुष आता है)

पुरुष— हटे रहना, बचे रहना — अजी देर रहो — दूर रहो, क्या नहीं देखते ?

नृप द्विजादि जिन नरन को मंगल रूप प्रकास ।
ते न नीच मुखहू लखहि, कैसो पास निवास ॥

(आकाश की ओर देखकर) अजी क्या कहा, कि

क्यों हटाते हो ? अमात्य राक्षस के सिर में पीड़ा सुनकर कुमार मलयकेतु उसको देखने को इधर ही आते हैं !

(जाता है)

(भागुरायण और कंचुकी के साथ मलयकेतु आता है)

मलयकेतु— (लंबी साँस लेकर — आप ही आप) हा ! देखो पिता को मरे आज दस महीने हुए और व्यर्थ वीरता का अभिमान करके अब तक हम लोगों ने कुछ भी नहीं किया, वरन तर्पण करना भी छोड़ दिया । या क्या हुआ, मैंने तो पहिले यही प्रतिज्ञा की है कि कर बलाय उर ताड़त गिरे, आँचरहु की सुधि नहीं परी । मिलि करहि आरतनाद हाहा, कलक खुलि रज सो मरी । जो शोक सों भई मातुगन की दशा सो उलटायहै ॥ करि रिपु जुवतिगन की सोई गति पितहि तृप्त करायहै ॥

और भी —

रन मरि पितु दिग जात हम वीरन की गति पाय ।
कै माता दुग-जल धरत रिपु-जुवती मुख लाय ॥

(प्रकाश) अजी जाजले ! सब राजा लोगों से कहो कि 'मैं बिना कहे सुने राक्षस मंत्री के पास अकेला जाकर उनके प्रसन्न करूँगा, इससे वे सब लोग उधर ही ठहरें !'

कंचुकी— जो आज्ञा ! (धूमते-धूमते नेपथ्य की ओर देखकर) अजी राजा लोग ! सुनो कुमार की आज्ञा है कि मेरे साथ कोई न चले (देखकर आनंद से) महाराज कुमार ! आप देखिए । आपकी आज्ञा सुनते ही सब राजा रुक गए —

अति चपल जे रथ चलत, ते सुनि चित्र से तुरतहि भए ।

जे खुरन खोदत नभ-पथहि,

ते बाजिगन झुकि रुकि गए ।

जे रहे धावत, ठिठकि ते

गज मूक घँआ सह सघे ।

मरजाद तुव नहिं तजहिं नृपगण जलधि से मानहुँ
बँधे ॥

मलय— अजी जाजले ! तुम भी सब लोगों को लेकर जाओ, एक केवल भागुरायण मेरे संग रहे ।

कंचुकी— जो आज्ञा ।

(सबको लेकर जाता है)

मलय— मित्र भागुरायण ! जब मैं यहाँ आता था तो भद्रमत प्रभूति लोगों ने मुझसे निवेदन किया कि 'हम राक्षस मंत्री के द्वारा कुमार के पास नहीं रहा

चाहते, कुमार के सेनापति शिखरसेन के द्वारा रहेंगे ।
दुष्ट मंत्री ही के डर तो चन्द्रगुप्त को छोड़कर यहाँ सब
बात का सुबीता जानकर कुमार का आश्रय लिया है ।
सो उन लोगों की बात का मैंने आशय नहीं समझा ।

भागु.— कुमार ! यह तो ठीक ही है, क्योंकि
अपने कल्याण के हेतु सब लोग स्वामी का आश्रय हित
और प्रिय के द्वारा करते हैं ।

मलय.— मित्र भागुरायण ! तो फिर राक्षस मंत्री
तो हम लोगों का परम प्रिय और बड़ा हितु है ।

भागु.— ठीक है, पर बात यह है कि अमात्य
राक्षस का वैर चाणक्य से है, कुछ चन्द्रगुप्त से नहीं है,
इससे तो चाणक्य की बातों से रूठकर चन्द्रगुप्त उससे
मंत्री का काम ले ले और नन्दकुल की भक्ति से "यह
नन्द ही के वंश का है" यह सोचकर राक्षस चन्द्रगुप्त से
मिल जाय और चन्द्रगुप्त भी अपने बड़े लोगों का पुराना
मंत्री समझकर उसको मिला ले, तो ऐसा न हो कि
कुमार हम लोगों पर भी विश्वास न करें ।

मलय.— ठीक है, मित्र भागुरायण । राक्षस
मंत्री का घर कहाँ है ?

भागु.— इधर, कुमार, इधर । (दोनों घूमते हैं)
कुमार । यही राक्षस मंत्री का घर है ! चलिए ।

मलय.— चलें । (दोनों भीतर जाते हैं)

राक्षस— अहा ! स्मरण आया ; (प्रकाश) कहो
जी ! तुमने कुसुमपुर में स्तनकलास वैतालिक को देखा
था ?

कर.— क्यों नहीं ?

राक्षस— मित्र भागुरायण ! जब तक कुसुमपुर
की बातें हों तब तक हम लोग इधर ही ठहरकर सुनें
कि क्या बात होती है, क्योंकि —

भेद न कछु जामैं खुलै याही भय सब ठौर ।
नृप सों मंत्रीजन कहहिं बात और ही और ॥

भागु.— जो आज्ञा । (दोनों ठहर जाते हैं)

राक्षस— क्यों जी ! वह काम सिद्ध हुआ ?

कर.— अमात्य की कृपा से सब काम सिद्ध ही
है ।

मलय.— मित्र भागुरायण । वह कौन-सा काम
है ?

भागु.— कुमार मंत्री के जी की बातें बड़ी गुप्त
हैं । कौन जाने ? इससे देखिए अभी सुन लेते हैं कि
क्या कहते हैं ।

राक्षस— अजी, भली भाँति कहो ।

कर.— सुनिज जिस समय आपने आज्ञा दिया
कि करभक्त, तुम जाकर वैतालिक स्तनकलास से कह

दो कि जब जब चाणक्य चंद्रगुप्त की आज्ञा भंग करे तब
तब तुम ऐसे श्लोक पढ़ो जिससे उसका जी और फिर
जाय ।

राक्षस— हाँ तब ?

कर.— तब मैंने पटने से जाकर स्तनकलास से
आपका संदेशा कह दिया ।

राक्षस— तब ?

कर.— इसके पीछे नन्दकुल के विनाश से दुःखी
लोगों का जी बहलाने के हेतु चंद्रगुप्त ने कुसुमपुर में
कौमुदीमहोत्सव होने की डौड़ी पिटा दी और उसको
बहुत दिन से बिछुड़े हुए मित्रों के मिलाप की भाँति पुर
के निवासियों ने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक स्नेह से मान
लिया !

राक्षस— (आँसू भरकर) हा देव नन्द !

जदपि उदित कुमुदन सहित पाइ चाँदनी चंद ।

तदपि न तुम बिन लसत हे नृपससि । जगदानन्द ॥

हाँ, फिर क्या हुआ ?

कर.— जब चाणक्य दुष्ट ने सब लोगों के नेत्र
के परमानन्ददायक उस उत्सव को रोक दिया और उसी
समय स्तनकलास ने ऐसे-ऐसे श्लोक पढ़े कि राजा का
भी मन फिर जाय ।

राक्षस— कैसे श्लोक थे ।

कर.— ("जिनको विधि सब" पढ़ता है)

राक्षस— वाह मित्र स्तनकलास, वाह क्यों न
हो ! अच्छे समय में भेद बीज बोया है, फल अवश्य
होगा । क्योंकि —

नृप रूठे अचरज कहा, सकल लोग जा संग ।
छोटे हू मानैं बुरो परे रंग में भंग ॥

मलय.— ठीक है । ('नृप रूठे' यह दोहा फिर
पढ़ता है) ।

राक्षस— हाँ फिर क्या हुआ ?

कर.— तब आज्ञा भंग से रुष्ट होकर चंद्रगुप्त ने
आपकी बड़ी प्रशंसा की और दुष्ट चाणक्य से अधिकार
ले लिया ।

मलय.— मित्र भागुरायण ! देखो प्रशंसा करके
राक्षस में चंद्रगुप्त ने अपनी भक्ति दिखाई ।

भागु.— गुण-प्रशंसा से बढ़कर चाणक्य का
अधिकार लेने से ।

राक्षस— क्यों जी, एक कौमुदीमहोत्सव के
निषेध ही से चाणक्य चंद्रगुप्त में बिगाड़ हुआ कि कोई
और कारण भी है ?

मलय.— क्यों मित्र भागुराय ! एक और वैर मे
यह क्या फल निकालेंगे ?

भागु.— यह फल निकाला है कि चाणक्य बड़ा बुद्धिमान है, वह व्यर्थ चंद्रगुप्त को क्रोधित न करावेगा और चंद्रगुप्त भी उसकी बात जानता है, वह भी बिना बात चाणक्य का ऐसा अपमान न करेगा, इससे उन लोगों में बहुत भगड़े से जो बिगाड़ होगा तो पक्का होगा ।

कर.— आर्य्य ! और भी कई कारण हैं ।

राक्षस— कौन ?

कर.— कि जब पहले यहाँ से राक्षस और कुमार मलयकेतु भागे तब उसने क्यों नहीं पकड़ा ?

राक्षस— (हर्ष से) मित्र शकटदास ! अब तो चंद्रगुप्त हाथ में आ जायगा ।

शकट.— अब चंदनदास छूटेगा, और आप कुटुंब से मिलेंगे, वैसे ही जीवसिद्धि इत्यादि लोग क्लेश से छूटेंगे ।

भागु.— (आप ही आप) हाँ, अवश्य जीवसिद्धि का क्लेश छूटा ।

मलय.— मित्र भागुरायण ! अब मेरे हाथ चंद्रगुप्त आवेगा, इसमें इनका क्या अभिप्राय है ?

भागु.— और क्या होगा ? यही होगा कि चाणक्य से छूटे चंद्रगुप्त के उद्धार का समय देखते हैं ।

राक्षस— अजी, अब अधिकार छिन जाने पर यह ब्राह्मण कहाँ है ?

कर.— अभी तो पटने ही में है ।

राक्षस— (घबड़ाकर) हैं ! अभी वहीं है ? तपोवन नहीं चला गया ? या फिर कोई प्रतिज्ञा नहीं की ?

कर.— अब तपोवन जायगा — ऐसा सुनते हैं ।

राक्षस— (घबड़ाकर) शकटदास, यह बात तो काम की नहीं,

देव नंद को नहीं सट्यौ जिन भोजन अपमान ।
सो निज कृत नृप चंद की बात न सहिहै जान ॥

मलय.— मित्र भागुरायण ! चाणक्य के तपोवन जाने वा फिर प्रतिज्ञा करने में कौन कार्य्य सिद्धि निकाली है ।

भागु.— कुमार ! यह तो कोई कठिन बात नहीं है, इसका आशय तो स्पष्ट ही है कि चंद्रगुप्त से जितनी दूर चाणक्य रहेगा उतनी ही कार्य्यसिद्ध होगी ।

शकट.— आमात्य ! आप व्यर्थ सोच न करें, क्योंकि देखें

सबहिं भाँति अधिकार लहि अभिमान नृप चंद ।
नहिं सहिहै अपमान अब राजा होइ स्वच्छंद ॥

तिमि चाणक्यहु पाइ दुख एक प्रतिज्ञा पूरि ।
अब इजो करिहै न कछ निज उद्यम मद चुरि ॥

राक्षस— ऐसा ही होगा । मित्र शकटदास ! जाकर करमक को डरा इत्यादि दो ।

मलय.— जो आज्ञा ।

(करमक को लेकर जाता है)

राक्षस— इस समय कुमार से मिलने की इच्छा है ।

मलय.— (आगे बढ़कर) मैं आप ही आपसे मिलने को आया हूँ ।

राक्षस— (आसन से उठकर) अरे कुमार आप ही आ गए ! आइए, इस आसन पर बैठिए ।

मलय.— मैं बैठता हूँ आप विराजिए ।

(दोनों बैठते हैं)

मलय.— इस समय सिर की पीड़ा कैसी है ?

राक्षस— जब तक कुमार के बदले महाराज कहकर आपको नहीं पुकार सकते तब तक यह पीड़ा कैसे छूटेगी ।

मलय.— आपने जो प्रतिज्ञा की है तो सब कृद होईगा । परंतु सब सेना सामंत के होते भी अब आप किस बात का आसरा देखते हैं ?

राक्षस— किसी बात का नहीं, अब चढ़ाई कीजिए ।

मलय.— अमात्य ! क्या इस समय शत्रु किसी संकट में है ?

राक्षस— बड़े ।

मलय.— किस संकट में ?

राक्षस— मंत्री संकट में ।

मलय.— मंत्री-संकट तो कोई संकट नहीं है ।

राक्षस— और किसी राजा को न हो तो न हो, चंद्रगुप्त को तो अवश्य है ।

मलय.— आर्य ! मेरी जान में चंद्रगुप्त को और भी नहीं है ।

राक्षस— आपने कैसे जाना कि चंद्रगुप्त को मंत्री-संकट संकट नहीं है ?

मलय.— क्योंकि चंद्रगुप्त के लोग तो चाणक्य के कारण उससे उदास रहते हैं, जब चाणक्य ही न रहेगा तब उसके सब कामों के लोग और भी संतोष से करेंगे ।

राक्षस— कुमार, ऐसा नहीं है, क्योंकि वहाँ दो प्रकार के लोग हैं — एक चंद्रगुप्त के साथी, दूसरे नंदकुल के मित्र, उनमें जो चंद्रगुप्त के साथी हैं उनको चाणक्य ही स दुःख था ; नंदकुल के मित्रों को कुछ

दुःख नहीं है, क्योंकि वह लोग तो यही सोचते हैं कि इसी कृतघ्न चंद्रगुप्त ने राज के लोभ से अपने पितृकुल का नाश किया है, पर क्या करें उनका कोई आश्रय नहीं है इससे चंद्रगुप्त के आसरे पड़े हैं। जिस दिन आपको शत्रु के नाश में और अपने पक्ष के उद्धार में समर्थ देखेंगे उसी दिन चंद्रगुप्त को छोड़कर आपसे मिल जायेंगे, इसके उदाहरण हमी लोग हैं।

मलय.— आर्य ! चंद्रगुप्त पर चढ़ाई करने का एक यही कारण है कि कोई और भी है ?

राक्षस— और बहुत क्या होंगे एक यही बड़ा मारी है।

मलय.— क्यों आर्य ! यही क्यों प्रधान है ? क्या चंद्रगुप्त और मंत्रियों से या आप अपना काम करने में असमर्थ हैं ?

राक्षस— निरा असमर्थ है।

मलय.— क्यों ?

राक्षस— यों कि जो आप राज्य सँभालते हैं या जिनका राज राजा और मंत्री दोनों करते हैं वह राजा ऐसे हों तो हों ; परंतु चंद्रगुप्त तो कदापि ऐसा नहीं है। चंद्रगुप्त एक तो दुरात्मा है, दूसरे वह तो सचिव ही के भरोसे सब काम करता है, इससे वह कुछ व्यवहार जानता ही नहीं, तो फिर वह सब काम कैसे कर सकता है ? क्योंकि —

लक्ष्मी करत निवास अति प्रबल सचिव नृप पाय ।
पै निज बाल सुभाव सों इकहिं तजत अकुलाय ॥

और भी —

जो नृप बालक सों रहत सब सचिव के गोद ।
बिन कछु जग देखे सुने सो नहिं पावत मोद ॥

मलय.— (आप ही आप) तो हम अच्छे हैं कि सचिव के अधिकार में नहीं। (प्रकाश) अमात्य ! यद्यपि यह ठीक है तथापि जहाँ शत्रु के अनेक छिद्र हैं तहाँ तक इसी सिद्धि से सब काम न निकलेगा।

राक्षस— कुमार के सब काम इसी से सिद्ध होंगे देखिए,

चाणक्य को अधिकार छूट्यो चंद्र हैं राजा नए ।
पुर नंद में अनुरक्त तुम निज बल सहित चढ़ते भए ॥
जब आप हम — (कहकर लज्जा से कुछ ठहर जाता है)

तुव बस सकल उद्यम सहित रन मति करी ।
वह कौन सी नृप ! बात जो नहिं सिद्धि ह्वै है ता धरी ॥

धरी ॥

मलय.— अमात्य ! जो अब आप ऐसा लड़ाई का समय देखते हैं तो देर करके क्यों बैठे हैं ? देखिए —

इनको ऊँची सीस है, बाको उच्च करार ।
श्याम दोऊ, वह जल स्रवत, ये गंडन मधुधार ॥
उतै भँवर को शब्द, इत भँवर करत गुजार ।
निज सम तेहि लखि नासिहै, दंतन तोरि कछार ॥
सीस सोन सिद्ध सों ते मतंग बल दाप ।
सोन सहज ही खोलिहैं निश्चय जानहु आप ।

और भी —

गरजि गरजि गंभीर रव, बरसि बरसि मधु धार ।
सतु-नगर गज घेरिहै, धन जिमि विविध पहार ॥
(शस्त्र उठाकर भागुरायण के साथ जाता है)

राक्षस— कोई है ?

(प्रियंवदक आता है)

प्रियंवदक— आज्ञा ।

राक्षस— देख तो द्वार पर कौन भिक्षुक खड़ा है ?

प्रिय.— जो आज्ञा । (बाहर जाकर फिर आता है) अमात्य ! एक क्षपणक भिक्षुक ।

राक्षस— (असगुन जानकर आप ही आप) पहिले ही क्षपणक का दर्शन हुआ ।

प्रिय.— जीवसिद्धि है ।

राक्षस— अच्छा बोलाकर ले आ ।

प्रिय.— जो आज्ञा । (जाता है)
(क्षपणक आता है)

क्षपणक—

पहिले कटु परिणाम मधु, औषध-सम उपदेस ।
मोह व्याधि के वैद्य गुरु, तिनको सुनहु निदेश ॥
(पास जाकर) उपासक ! धर्म लाभ हो !

राक्षस— ज्योतिषीजी, बताओ, अब हम लोग प्रस्थान किस दिन करें ?

क्षप.— (कुछ सोचकर) उपासक ! मुहूर्त तो देखा । आज मन्ना तो पहर पहिले ही छूट गई है और तिथि भी संपूर्णचंद्र पूर्णिमासी है । आप लोगों को उत्तर से दक्षिण जाना है और नक्षत्र भी दक्षिण ही है । अथइ सूरहि, चंद के उदए गमन प्रशस्त ॥ पाह लगन बुध केतु तो उदयी हू भी अस्त ॥ १

१. मन्ना छूट गई अर्थात् कल्याण को तो आप ने जब चंद्रगुप्त का पक्ष छोड़ा तभी छोड़ा और संपूर्ण-चंद्रा पूर्णिमासी है अर्थात् चंद्रगुप्त का प्रताप पूर्ण व्याप्त है । उत्तर नाम, प्राचीन पक्ष छोड़कर दक्षिण अर्थात् यम की दिशा

राक्षस—अजी, पहिले तो तिथि ही नहीं शुद्ध है ।

क्षप.—उपासक !

एक गुनी तिथि होत है, त्यों चौगुन नक्षत्र ।
लगन होत चौतिस गुनो, यह भाखत सब पत्र ॥
लगन होत है शुभ लगन छोड़ि क्रूर ग्रह एक ।
जाहु चंद कल देखि कै पावहु लाभ अनेक ॥२

राक्षस—अजी, तुम और ज्योतिषियों से जाकर भगड़ो ।

क्षप.—आप ही भगड़िउ, मैं जाता हूँ ?

राक्षस—क्या आप रूस तो नहीं गए ?

क्षप.—नहीं, तुमसे ज्योतिषी नहीं रूसा है ।

राक्षस—तो कौन रूसा है ?

क्षप.—(आप ही आप) भगवान, कि तुम अपना पक्ष छोड़कर शत्रु का पक्ष ले बैठे हो ।

(जाता है)

राक्षस—प्रियंवदक ! देख तो कौन समय है ।

प्रियं.—जो आता । (बाहर से हो आता है)
आय ! सूर्यास्त होता है ।

राक्षस—(आसन से उठकर और देखकर)
अहा ! भगवान सूर्य अस्ताचल को चले —

जब सूरज उदयो प्रबल, तेज धारि आकाश ।

तब उपवन तरुवर सबै छायाजुत भे पास ॥

दूर परे ते तरु सबै अस्त भए रवि ताप ॥

जिमि धन विन स्वामिहि तजै भृत्य स्वारथी आप ॥

(दोनों जाते हैं)



पंचम अंक

(हाथ में मोहर और गहिने की पेटी और पत्र लेकर

सिद्धार्थक आता है)

सिद्धार्थक—अहाहा !

देशकाल के कलश में सिंची बुद्धि-जल जौन ।
लता नीति चाणक्य की बहु फल देहे तौन ॥
अमात्य राक्षस की मोहर का, आर्य चाणक्य का लिखा
हुआ यह लेख और मोहर की हुई यह आभूषण की
पेटिका लेकर मैं पटने जाता हूँ । (नेपथ्य की ओर
देखकर) अरे ! यह क्या क्षपणक आता है ? हाय हाय !
यह तो बुरा असगुन हुआ । तो मैं सूरज का देखकर
इसका दोष छुड़ा लूँ ।

(क्षपणक आता है)

क्षप.—

नमो नमो अहंत को, जो निज बुद्धि प्रताप ।

लोकोत्तर की सिद्धि सब करत हस्तगत आप ॥

सिद्धा.—भदंत ! प्रणाम ।

क्षप.—उपासक ! धर्म लाभ हो । (भली भाँति
देखकर) आज तो समुद्र पार होने का बड़ा भारी उद्योग
कर रखा है ।

सिद्धा.—भदंत तुमने कैसे जाना ?

क्षप.—इसमें छिपी कौन बाता है ? जैसे समुद्र
में नाव पर सब के आगे मार्ग दिखलाने वाला माँभी
रहता है, वैसे ही तेरे हाथ में यह लखौटा है ।

सिद्धा.—अजी भदंत ! भला यह तुमने ठीक
जाना कि मैं परदेश जाता हूँ, पर यह कहा कि आज दिन
कैसा है ?

क्षप.—(हँसकर) वाह श्रावक वाह ! तुम मूँड़
मुँड़ाकर भी नक्षत्र पूछते हो ?

सिद्धा.—भला अभी क्या विगड़ा है ? कहते
क्यों नहीं ? दिन अच्छा होगा जायँगी, न अच्छा होगा न
जायँगी ।

को जाना है । नक्षत्र दक्षिण है अर्थात् आपका वाम (विरुद्ध पक्ष) नक्षत्र और आपका दक्षिण पक्ष (मलयकेतु) नक्षत्र (बिना क्षत्र के) अथए इत्यादि तुम जो सूर हो उसकी बुद्धि के अस्त के समय और चंद्रगुप्त के उदय के समय जाना अच्छा है अर्थात् चाणक्य की ऐसे समय में जय होगी । लगन अर्थात् कारण भाव में बुध चाणक्य पड़ा है इससे केतु अर्थात् मलयकेतु का उदय भी है तो भी अस्त ही होगा । अर्थात् इस युद्ध में चंद्रगुप्त जीरेगा और मलयकेतु हारेगा ।
सूर अथए—इस पद से जीवसिद्धि ने अमंगल भी किया । आश्विन पूर्णिमा तिथि, भरणी नक्षत्र, गुरुवार, मेष के चंद्रमा मीन लगन में उसने यात्रा बतलाई । इसमें भरणी नक्षत्र, गुरुवार, पूर्णिमा तिथि यह सब दक्षिण की यात्रा में निषिद्ध है । फिर सूर्य मृत है, चंद्र जीवित है यह भी बुरा है । लगन में मीन का बुध पड़ने से नीच का होने से बुरा है । यात्रा में नक्षत्र दक्षिण ही से बुरा है ।

२. मलयकेतु का साथ छोड़ दो तो तुम्हारा भला हो । वास्तव में चाणक्य के मित्र होने से जीवसिद्धि ने साइत भी उलटी दी । ज्योतिष के अनुसार अत्यंत क्रूर बेला, क्रूर प्रहबंध में युद्ध आरंभ होना चाहिए । उसके विरुद्ध सौम्य समय में युद्ध यात्रा कही, जिसका फल पराजय है ।

क्षप.— चाहे दिन अच्छा हो या न अच्छा हो, मलयकेतु के कटक से बिना मोहर लिए कोई जाने नहीं पाता ।

सिद्धा.— यह नियम कब से हुआ ?

क्षप.— सुनो, पहिले तो कुछ भी रोक-टोक नहीं थी, पर जब से कुसुमपुर के पास आए हैं तब से यह नियम हुआ है कि बिना मोहर के न कोई जाय न आवे । इससे जो तुम्हारे पास भागुरायण की मोहर हो तो जाओ नहीं तो चुप बैठ रहो, क्योंकि पीछे से तुम्हें हाथ पैर न बंधवाना पड़े ।

सिद्धा.— क्या यह तुम नहीं जानते कि हम राक्षस के अंतरंग खेलाड़ी मित्र हैं ? हमें कौन रोक सकता है ?

क्षप.— चाहे राक्षस के मित्र हो चाहे पिशाच के, बिना मोहर के कभी न जाने पाओगे ।

सिद्धा.— भदंत ! क्रोध मत करो, कहो कि काम सिद्ध हो ।

क्षप.— जाओ, काम सिद्ध होगा, हम भी पटने जाने के हेतु भागुरायण से मोहर लेने जाते हैं ।
(दोनों जाते हैं)

इति प्रवेशक

(भागुरायण और सेवक आते हैं)

भागु.— (आप ही आप) चाणक्य की नीति भी बड़ी विचित्र है ।

कहूँ विरल, कहूँ सधन, कहूँ विफल, कहूँ फलवान ।
कहूँ कूस, कहूँ अति शूल, कछु भेद परत नहीं जान ॥
कहूँ गुप्त अति ही रहत, कबहूँ प्रगट लखात ।
कठिन नीति चाणक्य की, भेद न जान्यो जात ॥

(प्रगट) भासुरक ! मलयकेतु से मुखे क्षण भर भी दूर रहने में दुःख होता है इससे बिछौना बिछा तो बैठें ।

सेवक— जो आज्ञा । बिछौना बिछा है, विराजिए ।

भागु.— (आसन पर बैठकर) भासुरक ! बाहर कोई मुझसे मिलने आवे तो आने देना ।

सेवक— जो आज्ञा जाता है

भागु.— (आप ही आप करुणा से) राम राम ! मलयकेतु तो मुझसे इतना प्रेम करता है, मैं उसका बिगाड़ किस तरह करूँगा ?

अथवा —

जस-कुल तजि, अपमान सहि, धन-हित परबस होय ।

जिन बेंच्यो निज प्रान तन, सबै सकत करि सोय ॥

(आगे आगे मलयकेतु और पीछे प्रतिहारी आते हैं)

मलय.— (आप ही आप) क्या करें राक्षस का चित मेरी ओर से कैसा है यह सोचते हैं तो अनेक प्रकार के विकल्प उठते हैं, कुछ निर्णय नहीं होता ।

नंदवंश को जानिके ताहि चंद्र की चाह ।
कै अपनायो जानि निज मेरे करत निबाह ॥
को हित अनहित तासु को यह नहिँ जान्यो जात ।
तासों जिय सदेह अति, भेद न कछु लखात ॥
(प्रगट) विजये ! भागुरायण कहाँ हैं देख तो ?

प्रति.— महाराज ! भागुरायण वह बैठे हुए आपकी सेना के जानेवाले लोगों को रहा-खर्च और परवाना बाँट रहे हैं ?

मलय.— विजये ! तुम दबे पाँव से उधर से आओ, मैं पीछे से जाकर मित्र भागुरायण की आँखें बंद करता हूँ ।

प्रति.— जो आज्ञा ।

(दोनों दबे पाँव से चलते हैं और भासुरक आता है)

भासुरक— (भागुरायण से) बाहर क्षपणक आया है, उसको परवाना चाहिए ।

भागु.— अच्छा, यहाँ भेज दो ।

भासु.— जो आज्ञा । (जाता है)
(क्षपणक आता है)

क्षप.— श्रावक को धर्म लाभ हो ।

भागु.— (छल से उसकी ओर देखकर) यह तो राक्षस का मित्र जीवसिद्धि है । (प्रगट) भदंत ! तुम नगर में राक्षस के किसी काम से जाते होंगे ।

क्षप.— (कान पर हाथ रखकर) छी छी ! हमसे राक्षस वा पिशाच क्या काम ?

भागु.— आज तुमसे और मित्र से कुछ प्रेम कलह हुआ है, पर यह तो बताओ कि राक्षस ने तुम्हारा कौन अपराध किया है ?

क्षप.— राक्षस ने कुछ अपराध नहीं किया है, अपराधी तो हम हैं ।

भागु.— ह ह ह ह । भदंत । तुम्हारे इस कहने से तो मुझको सुनने की और भी उत्कंठा होती है ।

मलय— (आप ही आप) मुझको भी ।

भागु.— तो भदंत । कहते क्यों नहीं ?

क्षप.— तुम सुनके क्या करोगे ?

भागु.— तो जाने दो, हमें कुछ अप्रग्रह नहीं है, गुप्त हो तो मत कहो ।

क्षप.— नहीं उपासक ! गुप्त ऐसा नहीं है, पर यह बहुत बुरी बात है ।

भागु.— तो जाओ, हम तुमको परवाना न देंगे ।

क्षप.— (आप ही आप की भाँति) जो यह इतना आप्रह करता है तो कह दें । (प्रगट) श्रावक ! निरुपाय होकर कहना पड़ा । सुनो । मैं पहिले कुसुमपुर में रहता था, तब संयोग से मुझसे राक्षस से मित्रता हो गई, फिर उस दुष्ट राक्षस ने चुपचाप मेरे द्वारा विपकन्या का प्रयोग कराके विचारे पर्वतेश्वर को मार डाला ।

मलय.— (आँखों में पानी भर के) हाय हाय ! राक्षस ने हमारे पिता को मारा, चाणक्य ने नहीं मारा । हा !

भागु.— हाँ, तो फिर क्या हुआ ?

क्षप.— फिर मुझे राक्षस का मित्र जानकर उस दुष्ट चाणक्य ने मुझको नगर से निकाल दिया : तब मैं राक्षस के यहाँ आया, पर राक्षस ऐसा जालिया है कि अब मुझको ऐसा काम करने को कहता है जिससे मेरा प्राण जाय ।

भागु.— भदत ! हम तो यह समझते हैं कि पहिले जो आधा राज देने को कहा था, वह न देने को चाणक्य ही ने यह दुष्ट कर्म किया, राक्षस ने नहीं किया ।

क्षप.— (कान पर हाथ रखकर) कभी नहीं, चाणक्य तो विपकन्या का नाम भी नहीं जानता : यह घोर कर्म उस दुर्बुद्धि राक्षस ही ने किया है ।

भागु.— हाय हाय ! बड़े कष्ट की बात है । लो मुहर तो तुमको देने हैं, पर कुमार को भी यह बात सुना दो ।

मलय.— (आगे बढ़कर) सुन्यो मित्र, श्रुति-भेद-कर शत्रु कियों जो हाल । पिता मरन को मोहि दुख दुगुन भयो एहि काल ॥

क्षप.— (आप ही आप) मलयकेतु दुष्ट ने यह बात सुन ली तो मेरा काम हो गया । (जाता है)

मलय.— (दाँत पीसकर ऊपर देखकर) अरे राक्षस !

जिन तोपे विश्वास करि सौप्यो सब धन धाम । ताहि मारि दुख दै सजन साँचो किय निज नाम ॥

भागु.— (आप ही आप) आर्य चाणक्य की आज्ञा है कि "अमात्य राक्षस के प्राण की सर्वथा रक्षा करना" इससे अब बात फेरें । (प्रकाश) कुमार ! इतना आवेग मत कीजिए । आप आसन पर बैठिए तो मैं कुछ निवेदन करूँ ।

मलय.— मित्र, क्या कहते हो ? कहो । (बैठ

जाता है)

भागु.— कुमार ! बात यह है कि अर्थशास्त्रवालों की मित्रता और शत्रुता अर्थ ही के अनुसार होती है, साधारण लोगों की भाँति इच्छानुसार नहीं होती । उस समय सर्वार्थसिद्धि को राक्षस राजा बनाया चाहता था तब देव पर्वतेश्वर ही उस कार्य में कटक थे तो उस कार्य की सिद्धि के हेतु यदि राक्षस ने ऐसा किया तो कुछ दोष नहीं आप देखिए —

मित्र शत्रु हवै जात है, शत्रु करहि अति नेह । अर्थ-नीति-वस लोग सब बदलहि मानहुँ देह ॥ इससे राक्षस को ऐसी अवस्था में दोष नहीं देना चाहिए । और जब तक नंदराज्य न मिले तब तक उस पर प्रकट स्नेह ही रखना नीतिसिद्ध है ; राज मिलने पर कुमार जो चाहेंगे करेंगे ।

मलय.— मित्र ! ऐसा ही होगा । तुमने बहुत ठीक सोचा है । इस समय इसके वध करने से प्रजागण उदास हो जायेंगे और ऐसा होने से जय में भी सन्देह होगा ।

(एक मनुष्य आता है)

मनुष्य.— कुमार की जय हो ! कुमार के कटकदार के रक्षाधिकारी दार्धचक्षु ने निवेदन किया है कि "मुद्रा लिए बिना एक पुरुष कुछ पत्र-सहित बाजार जाता हुआ पकड़ा गया है सो उसको एक बेर आप देख लें ।"

भागु.— अच्छा, उसको ले आओ ।

पुरुष.— जो आज्ञा ।

(जाता है और हाथ बँधे हुए सिद्धार्थक को लेकर आता है)

सिद्धा.— (आप ही आप)

गुन पै रिभ्रवति दोस सों दूर बचावति जौन । स्वाभि-भक्ति जननी सरिस, प्रनमत नित हम तौन ॥

पुरुष.— (हाथ जोड़कर) कुमार ! यही मनुष्य है ।

भागु.— (अच्छी तरह देखकर) यह क्या बाहर का मनुष्य है या नहीं किसी का नौकर है ?

सिद्धा.— मैं अमात्य राक्षस का पासवर्ती सेवक हूँ ।

भागु.— तो तुम क्यों मुद्रा लिए बिना कटक के बाहर जाते थे ?

सिद्धा.— आर्य ! काम की जल्दी से ।

भागु.— ऐसा कौन काम है, जिसके आगे राजा का भी कुछ मोल नहीं गिना ?

(सिद्धार्थक भागुरायण के हाथ में लेख देता है)

भागु.— (लेख लेकर देखकर) कुमार ! इस लेख पर अमात्य राक्षस की मुहर है ।

मलय.— ऐसी तरह से खोलकर दो कि मुहर न टूटे ।

(भागुरायण पत्र खोलकर मलयकेतु को देता है)

मलय.— (पढ़ता है) स्वति । यथास्थान में कहीं से कोई किसी पुरुष-विशेष को कहता है हमारे विपक्ष को निराकरण करके सच्चे मनुष्य ने सचाई दिखाई ! अब हमारे पहले के रखे हुए हमारे हितकारी मित्रों को भी जो-जो देने को कहा था वह देकर प्रसन्न करना । यह लोग प्रसन्न होंगे तो अपना आश्रय छूट जाने पर सब भाँति अपने अपने उपकारी की सेवा करेंगे । सच्चे लोग कहीं नहीं भूलते तो भी हम स्मरण कराते हैं । इनमें से कोई तो शत्रु का कोष और हाथी चाहते हैं और कोई राज चाहते हैं । हमको सत्यवादी ने जो तीन अलंकार भेजे सो मिले । हमने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है सो लेना । और जबानी हमारे अत्यंत प्रमाणिक सिद्धार्थक से सुन लेना ।^१

मलय.— मित्र भागुरायण ! इस लेख का आशय क्या है ?

भागु.— भद्र सिद्धार्थक ! यह लेख किसका है ?

सिद्धा.— आर्य ! नहीं जानता ।

भागु.— धूर्त ! लेख लेकर जाता है और यह नहीं जानता कि किसने लिखा है, और सदेसा किससे कहेगा ?

सिद्धा.— (डरते हुए की भाँति) आपसे ।

भागु.— क्यों रे ! हमसे ?

सिद्धा.— आपने पकड़ लिया । हम कुछ नहीं जानते कि क्या बात है ?

भागु.— (क्रोध से) अब जानेगा ! भद्र मासुरक ! इसको बाहर ले जाकर जब तक यह सब कुछ न बतलावे तब तक खूब मारो ।

पुरुष.— जो आज्ञा (सिद्धार्थक को बाहर लेकर जाता है और हाथ में एक पेटी लिए फिर आता है) आर्य ! उसको मारने के समय उसके बगल में से यह मुहर की पेटी गिर पड़ी ।

भागु.— (देखकर) कुमार ! इस पर भी राक्षस की मुहर है ।

मलय.— यही लेख अशून्य करने को होगी ।

इसकी भी मुहर बचाकर हमको दिखाओ ।

(भागुरायण पेटी खोलकर दिखाता है)

मलय.— अरे ! यह तो वही सब आभरण हैं जो हमने राक्षस को भेजे थे । निश्चय यह चंद्रगुप्त को लिखा है ।

भागु.— कुमार ! अभी सब संशय मिट जाता है । मासुरक ! उसको और मारो ।

पुरुष.— जो आज्ञा । बाहर जाकर फिर आता है) आर्य ! हमने उसको बहुत मारा है । अब कहता है कि अब हम कुमार से सब कह देंगे ।

मलय.— अच्छा, ले आओ ।

पुरुष.— जो कुमार की आज्ञा । (बाहर जाकर सिद्धार्थक को लेकर आता है)

सिद्धा.— (मलयकेतु के पैरों पर गिरकर) कुमार ! हमको अमय बान दीजिए ।

मलय.— भद्र ! उठो, शरणागत जन यहाँ सदा अमय हैं । तुम इसका वृत्तांत कहो ।

सिद्धा.— (उठकर) सुनिए । मुझको अमात्य राक्षस ने यह पत्र देकर चंद्रगुप्त के पास भेजा था ।

मलय.— जबानी क्या कहने को कहा था वह कहो ।

सिद्धा.— कुमार ! मुझको अमात्य राक्षस ने यह कहने को कहा था कि मेरे मित्र कुलूत देश के राजा चित्रवर्मा, मलयाधिपति सिंहनाद, कश्मीरेश्वर पुष्कराक्ष सिंधु-महाराज सिंधुसेन और पारसीकपालक मेघाक्ष इन पाँच राजाओं से आपसे पूर्व में संधि हो चुकी है । इसमें पहले तीन तो मलयकेतु का राज चाहते हैं और बाकी दो खजाना और हाथी चाहते हैं । जिस तरह महाराज ने चाणक्य को उखाड़कर मुझको प्रसन्न किया उसी तरह इन लोगों को प्रसन्न करना चाहिए । यही राजसंदेश है ।

मलय.— (आप ही आप) क्या चित्रवर्मादिक भी हमारे द्रोही हैं । तभी राक्षस में उन लोगों की ऐसी प्रीति है । (प्रकाश) विजये ! हम अमात्य राक्षस को देखा चाहते हैं ।

प्रति.— जो आज्ञा । (जाती है)

(एक परदा हटता है और राक्षस आसन पर बैठा हुआ चिंता की मुद्रा में एक पुरुष के साथ दिखाई पड़ता है)

राक्षस.— (आप ही आप) चंद्रगुप्त की ओर के बहुत लोग हमारी सेना में भरती हो रहे हैं इससे हमारा

१. यह यही लेख है जिसको चाणक्य ने शकटदास से धोखा देकर लिखवाया था और अपने हाथ से राक्षस की मुहर उस पर कर के सिद्धार्थक के दिया था ।

मन शुद्ध नहीं है। क्योंकि —

रहत साध्य ते' अन्वित अरु विलसत निज पच्छहि ।
सोई साधन साधक जो नहि छुअत विपच्छहि ॥
जो पुनि आपु असिद्ध सपच्छ विपच्छहु में सम ।
कछु कहैं नहि निज पच्छ माँहि जाको है संगम ॥
नरपति ऐसे साधनन कों अनुचित अंगीकार करि ।
सब भाँति पराजित होत है बादी लों बहु विधि विगिरि ॥
वा जो लोग चंद्रगुप्त से उदास हो गए हैं वही लोग इधर मिले हैं, मैं व्यर्थ सोच करता हूँ । (प्रगट) प्रियंवदक !
कुमार के अनुयायी राजा लोगों से हमारी ओर से कह दो कि-अब कुसुमपुर दिन-दिन पास आता जाता है, इससे सब लोग अपनी सेना अलग-अलग करके जो जहाँ नियुक्त हों वहाँ सावधानी से रहें ।

आगे खस अरु मगध चले जयध्वजहि उड़ाए ।
यवन और गंधार रहें मधि सेन जमाए ॥
चेदि-हून-सकराज लोग पीछे सों धावहि ॥
कौलूतादिक नृपति कुमारहि घेरे आवहि ॥

पिय — अमात्य की ओ आजा । (जाता है)
(प्रतिहारी आती है)

प्रति. — अमात्य की जय हो । कुमार अमात्य को देखना चाहते हैं ।

राक्षस — भद्र ! क्षण भर ठहरो । बाहर कौन है ?

(एक मनुष्य आता है)

मनुष्य — अमात्य ! क्या आजा है ?

राक्षस — भद्र ! शकटदास से कहो कि जब से कुमार ने हमको आभरण पहराया है तब से उनके सामने नंगे अंग जाना हमको उचित नहीं है । इससे जो तीन आभरण मोल लिए हैं उनमें से एक भेज दें ।

मनुष्य — जो अमात्य की आज्ञा । (बाहर जाता है और आभरण लेकर आता है) अमात्य ! अलंकार लीजिए ।

राक्षस — (अलंकार धारण करके) भद्रे ! राजकुल में जाने का मार्ग बतलाओ ।

प्रति. — इधर से आइए ।

राक्षस — अधिकार ऐसी बुरी वस्तु है कि निर्दोष मनुष्य का भी जी डरा करता है । सेवक प्रभु सों डरत सदाहीं ।

पराधीन सपने सुख नहीं ॥

जे ऊँचे पद के अधिकारी ।

तिनको मनहीं मन भय भारी ॥

सबहीं द्वेष बड़न सो करहीं ।

अनुछिन कान स्वामी को भरहीं ॥

जिमि जे जनमें ते मरे, मिले अवसि विलगाहि ।

तिमि जे अति ऊँचे चढ़े, गिरि हैं संसय नाहि ॥

प्रति — (आगे बढ़ कर) अमात्य ! कुमार यह विराजते हैं, आप जाइए ।

राक्षस — अरे, कुमार यह बैठे हैं ।

लखत चरन की ओर हू, तऊ न देखत ताहि ।
अचल दृष्टि इक ओर ही, रही बुद्धि अवगाहि ॥
कर पै धारि कपोल निज लसत भुको अवनीस ।
हुसह काज के भार सों मनहुँ नमित भो सीस ॥
(आगे बढ़कर) कुमार की जय हो !

मलय. — आर्य ! प्रणाम करता हूँ । आसन पर विराजिय ।

(राक्षस बैठा है)

मलय. — आर्य ! बहुत दिनों से हम लोगों ने आपको नहीं देखा ।

राक्षस — कुमार ! सेना को आगे बढ़ाने के प्रबंध में फैसले के कारण हमको यह उपालांभ सुनना पड़ा ।

मलय. — अमात्य ! सेना के प्रयाण का आपने क्या प्रबंध किया है ? मैं भी सुनना चाहता हूँ ।

राक्षस — कुमार ! आपके अनुयायी राजा लोगों को यह आज्ञा दी है । ('आगे खस अरु मगध' इत्यादि छंद पढ़ता है) ।

मलय. — (आप ही आप) हाँ, जाना ; जो हमारा नाश करने के हेतु चंद्रगुप्त से मिले हैं वही हमको घेरे रहेंगे । (प्रकाश) आर्य, अब कुसुमपुर से कोई आता है या वहाँ जाता है कि नहीं ?

राक्षस — अब यहाँ कसी के आने जाने से क्या प्रयोजन । पाँच छः दिन में हम लोग ही वहाँ पहुँचेंगे ।

मलय. — (आप ही आप) अभी सब खुल जाता है । (प्रगट) जो यही बात है तो इस मनुष्य की चिट्ठी लेकर आपने कुसुमपुर क्यों भेजा था ?

राक्षस — (देखकर) अरे ! सिद्धार्थक है ? भद्र ! यह क्या ?

सिद्धा. — (भय और लज्जा नाट्य करके) अमात्य ! हमको क्षमा कीजिए । अमात्य ! हमारा कुछ भी दोष नहीं है, मार खाते-खाते हम आपका रहस्य छिपा न सके ।

राक्षस — भद्र । वह कौन सा रहस्य है यह हमको नहीं समझ पड़ता !

सिद्धा. — निवेदन करते हैं, मार खाने से । (इतना ही कह वह लज्जा से नीचा मुँह कर लेता है ।)

मलय. — भागुरायण ! स्वामी के सामने लज्जा

और भय से यह कुछ न कह सकेगा, इससे तुम सब बात आर्य से कहो ।

भागु.— कुमार की जो आज्ञा । अमात्य ! यह कहता है कि अमात्य राक्षस ने हमको चिट्ठी देकर और संदेश कह कर चंद्रगुप्त के पास भेजा है ।

राक्षस— भद्र सिद्धार्थ ! क्या यह सत्य है ?

सिद्धा.— (लज्जा नाट्य करके) बहुत मार खाने के डर से मैं कह दिया ।

राक्षस— कुमार ! यह भूठ है, मार खाने से लोग क्या नहीं कह देते ?

मलय.— भागुरायण ! चिट्ठी दिखला दो और संदेशा वह अपने मुँह से कहेगा ।

(भागुरायण चिट्ठी खोलकर 'स्वस्ति कहीं से कोई किसी को' इत्यादि पढ़ता है) ।

राक्षस— कुमार ! कुमार ! यह सब शत्रु का प्रयोग है ।

मलय.— लेख शून्य करने को आर्य ने जो आभरण भेजे हैं वह शत्रु कैसे भेजेगा ? आभरण दिखलाता है) ।

राक्षस— कुमार यह मैंने किसी को नहीं भेजा । कुमार ने यह मुझको दिया और मैंने प्रसन्न होकर सिद्धार्थ को दिया ।

भागु.— अमात्य ! क्या ऐसे उत्तम आभरणों को, विशेष कर क्या अपने अंग से उतार कर कुमार की दी हुई वस्तु का यह पात्र है ?

मलय.— और संदेश भी बड़े प्रामाणिक सिद्धार्थ सुनना, यह आर्य ने लिखा है ।

राक्षस— कैसा सन्देश और कैसी चिट्ठी ? यह हमारा कुछ नहीं है !

मलय.— तो मुहर किसकी है ?

राक्षस— धूर्त लोग कपटमुद्रा भी बना लेते हैं ।

भागु.— कुमार ! अमात्य सच कहते हैं । सिद्धार्थ यह चिट्ठी किसकी लिखी है ?

(सिद्धार्थ राक्षस का मुँह देखकर चुप रह जाता है)

भागु.— चुप मत रहो ! जी कड़ा करके कहो ।

सिद्धा.— आर्य ! शकटदास ने ।

राक्षस— शकटदास ने लिखा तो मानों मैंने ही लिखा ।

मलय.— विजये ! शकटदास को हम देखा चाहते हैं ।

भागु.— (आपही आप) आर्य चाणक्य के लोग बिना निश्चय समझे हुए कोई बात नहीं करते । जो शकटदास आकर यह चिट्ठी किस प्रकार लिखी गई है

यह वृत्तान्त कह देगा तो मलयकेतु फिर बहक जायगा । (प्रकाश) कुमार ! शकटदास, ने अमात्य राक्षस के सामने लिखा होगा तो भी न स्वीकार करेंगे, इससे उनका कोई और लेख मँगाकर अक्षर मिला लिए जायँ ।

मलय.— विजये ! ऐसा ही करो ।

भागु.— और मुहर भी आवे ।

मलय.— हाँ, वह भी ।

कचुकी— जो आज्ञा (बाहर जाती है और पत्र और मुहर लेकर आती है) कुमार ! यह शकटदास का लेख और मुहर है ।

मलय.— (देखकर और अक्षर और मुहर की मिलान करके) आर्य ! अक्षर तो मिलते हैं ।

राक्षस— (आप ही आप) अक्षर निःसंदेह मिलते हैं, किंतु शकटदास हमारा मित्र है, इस हिसाब से नहीं मिलते । तो क्या शकटदास ही ने लिखा, अथवा —

पुत्र दार की याद करि स्वामि भक्ति तजि देत ।
छोड़ि अचल जस को कर्म चल धन सों जन हेत ॥
या इसमें संदेह ही क्या है ?

मुद्रा ताके हाथ में, सिद्धार्थक हू मित्र ।
ताही के कर को लिख्यो, पत्रहु साधन चित्र ।
मिलि कै शत्रुन सों करन भेद भूलि निज धर्म ।
स्वामि विमुख शकटहि कियो, निश्चय यह खल कर्म ॥

मलय.— आर्य ! श्रीमान् ने तीन आभरण भेजे सो मिले, यह जो आपने लिखा है सो उसी में का एक आभरण यह भी है ? (राक्षस के पहने हुए आभरण को देखकर आप ही आप) क्या यह पिता के पहने हुए आभरण हैं ? (प्रकाश) आर्य, यह आभरण आपने कहाँ से पाए ?

राक्षस— जौहरी से मोल लिया था ।

मलय.— विजये ! तुम इन आभरणों को पहचानती हो ?

प्रति.— (देख कर आँसू भर के) कुमार ! हम सुगुहीत नामधेय महाराज पर्वतेश्वर के पहिरने के आभरणों को न पहचानेंगी ?

मलय.— (आँखों में आँसू भर के)
भूषण-प्रिय ! भूषण सबै, कुल भूषण ! तुव अंग ।
तुव मुख ढिग इमि सोहतो, जिमि ससि तारन संग ॥

राक्षस— (आप ही आप) ये पर्वतेश्वर के पहने हुए आभरण हैं ? (प्रकाश) जाना, यह भी निश्चय चाणक्य के भेजे हुए जौहरियों ने ही बेचा है ?

मलय.— आर्य ! पिता के पहने हुए आभरण

और फिर चंद्रगुप्त के हाथ पड़े हुए जौहरी बेंचे, यह कभी हो नहीं सकता । अथवा हो सकता है —

अधिक लाभ के लोभ सों, क्रूर ! त्यागि सब नेह ।
बदले इन आभरण के तुम बेंच्यौ मम देह ॥

राक्षस — (आप ही आप) अरे ! यह दाँव तो पूरा बैठ गया ।

मम लेख नहीं यह किमि कहैं मुद्रा छपी जब हाथ की ।
विश्वास होत न शकट तजिहै प्रीति कबहूँ साथ की ॥
पुनि बेचिहै नृप चंद भूषण कौन यह पतियाइहै ।
तासों भलो अब मौन रहनो कथन तें पति जाइहै ॥

मलय — आर्य ! हम यह पूछते हैं ?

राक्षस — जो आर्य हो उससे पूछो ; हम अब पापकारी अनार्य हो गए हैं ।

मलय —

स्वामि पुत्र तुव मौर्य, हम मित्र पुत्र सह हेत ।
पैहौ उत वाको दियो, इत तुम हमको देत ॥
सचिवहु भे उत दास ही, इत तुम स्वामी आप ।
कौन अधिक फिर लोभ जो, तुम कीन्हो यह पाप ॥

राक्षस — (आँखों में आँसू भर के) कुमार !
इसका निर्णय तो आप ही ने कर दिया —

स्वामि पुत्र मम मौर्य, तुम मित्र पुत्र सह हेत ।
पैहैं उत वाको दियो, इत हम तुमको देत ॥
सचिवहु भे उत दास ही, इत हम स्वामी आप ।
कौन अधिक फिर लोभ जो, हम कीन्हो यह पाप ॥

मलय — (चिट्ठी, पेटी इत्यादि दिखला कर)
यह सब क्या है ?

राक्षस — (आँखों में आँसू भर के) यह सब चाणक्य ने नहीं किया देव ने किया ।

निज प्रभु सों करि नेह जे भृत्य समर्पत देह ।
तिन सों अपने सुत सरिस सदा निबाहत नेह ॥
ते गुणागाहक नृप सत्रै जिन मारे छन माहि ।
ताही बिधि को दोस यह औरन को कछु नाहि ॥

मलय — (क्रोधपूर्वक) अनार्य ! अब तक छल किए जाते हो कि यह सब देव ने किया ।

विपकन्या दे पितु हत्यौ प्रथम प्रीति उपजाय ।
अब रिपु सों मिलि हम सबन बधन चहत ललचाय ॥

राक्षस — (दःख से आप ही आप) हा ! यह और जले पर नमक है । (प्रगट कानों पर हाथ रखकर)
नारायण ! देव पर्वतेश्वर का कोई अपराध हमने नहीं किया ।

मलय — फिर पिता को किसने मारा ?

राक्षस — यह देव से पूछो ।

मलय — देव से पूछें, जीवसिद्धि भी क्षपणक से न पूछें ?

राक्षस — (आप ही आप) क्या जीवसिद्धि भी चाणक्य का गुप्तचर है ! हाय ! शत्रु ने हमारे हृदय पर भी अधिकार कर लिया ?

मलय — (क्रोध से) भासुरक, शिखरसेन सेनापति से कहो कि राक्षस से मिलकर चंद्रगुप्त को प्रसन्न करने को पाँच राजे जो हमारा बुरा चाहते हैं, उनमें कौलूत चित्रवर्मा, मलयाधिपति सिंहनाद और कश्मीराधीश पुष्कराक्ष ये तीन हमारी भूमि की कामना रखते हैं, सो इनको भूमि ही में गाढ़ दे ; और सिंधुराज सुषेण और पारसीकपति मेघाक्ष हमारी हाथी की सेना चाहते हैं सो इनको हाथी ही के पैर के नीचे पिसवा दे ।

पुरुष — जो कुमार की आज्ञा । (जाता है)

मलय — राक्षस ? हम मलयकेतु हैं, कुछ तुमसे विश्वासघाती राक्षस नहीं है । इससे तुम जाकर अच्छी तरह चंद्रगुप्त का आश्रय करो ।

चंद्रगुप्त-चाणक्य सों मिलिए सुख सों आप ।
हम तीनहुँ को नासिहैं जिमि त्रिवर्ग कहैं पाप ॥

भागु — कुमार ! व्यर्थ अब कालक्षेप मत कीजिए । कुसुमपुर घेरने को हमारी सेना चढ़ चुकी है ।

उड़िके तियगन गंड जुगल कहैं मलिन बनावति ।
अलिकुल से कल अलकन निज कन धवल छावाति ॥
चपल तुरग-खुर घात उठी घन घुमड़ि नबीनी ।
सतु-सीस पै धूरि परै गजमद सों भीनी ॥
(अपने भृत्यों के साथ मलयकेतु जाता है)

राक्षस — (घबड़ाकर) हाय ! हाय ! चित्रवर्मादिक साधु सब व्यर्थ मारे गए । हाय ! राक्षस की सब चेष्टा शत्रु के नहीं, मित्रों ही के नाश करने को होती है । अब हम मंदभाग्य क्या करें ?

जाहि तपोवन, पै न मन शांत होत सह क्रोध ।
प्राण देहि रिपु के जियत यह नारिन को बोध ॥
खींचि खंगकर पतंग सम जाहिं अनल-अरि-पास ।
पै या साहस होइहै चंदनदास विनास ॥
(सोचता हुआ जाता है)

वृष्ट अंक

स्थान — नगर से बाहर सड़क

(कपड़ा, गहिना पहिने हुए सिद्धार्थ आता है)

सिद्धार्थक—

प्रबल नील तन जयति जय, केशव केशी काल ।
जयति सृजन जन दृष्टि ससि, चंद्रगुप्त नरपाल ॥
जयति आर्य चाणक्य की नीति सहज बल-भीन ।
बिनही साजे सैन नित, जीतत अरि कुल जौन ॥
चलो, आज पुराने मित्र समिद्धार्थक से भेंट करें ।
(घूमकर) अरे ! मित्र समिद्धार्थक आप ही इधर आता है ।

(समिद्धार्थक आता है)

समिद्धार्थक—

मिटत ताप नहि पान सो, हात उछाह बिनास ।
बिना मीत के सुख सवै औरहु करत उदास ॥
सुना है कि मलयकेतु के कटक से मित्र सिद्धार्थक आ गया है । उसी को खोजने को हम भी निकले हैं कि मिले तो बड़ा आनन्द हो । (आगे बढ़कर) अहा ! सिद्धार्थक तो यही है । कहो मित्र ! अच्छे तो हो ?

सिद्धा.— अहा ! मित्र समिद्धार्थक आप ही आ गए । (बढ़कर) कहो मित्र ! क्षेम कुशल तो है ?

(दोनों गले से मिलते हैं)

समि.— भला ! यहाँ कुशल कहाँ कि तुम्हारे ऐसा मित्र बहुत दिन पीछे घर भी आया तो बिना मिले फिर चला गया !

सिद्धा.— मित्र ! क्षमा करो । मुझको देखते ही आर्य चाणक्य ने आज्ञा दी कि इस प्रिय वृत्तांत को अभी चंद्रमा सट्टस प्रकाशित शोभावाले परम प्रिय महाराज प्रियदर्शन से जाकर कहो । मैं उसी समय महाराज के पास चला गया और उनसे निवेदन करके यह सब पुरस्कार पाकर तुमसे मिलने को तुम्हारे घर अभी जाता ही था ।

समि.— मित्र ! जो सुनने के योग्य हो तो महाराज प्रियदर्शन से जो प्रिय वृत्तांत कहा है वह हम भी सुनें ।

सिद्धा.— मित्र ! तुमसे भी कोई बात छिपी है ! सुनो ! आर्य चाणक्य की नीति से मोहित मति होकर उस नष्ट मलयकेतु ने राक्षस को दूर कर दिया और चित्रवर्मादिक पाँचों प्रबल राजों को मरवा डाला । यह देखते ही और सब राजे अपने प्राण और राज्य का संशय समझकर उसको छोड़कर सेना सहित अपने अपने देश चले गए । जब शत्रु ऐसी निर्बल अवस्था में हुआ, तो मद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुरात, बलागुप्त, रात्रसेन, भागुरायण, रोहिताक्ष, विजयवर्मा, इत्यादि लोगों ने मलयकेतु को कैद कर लिया ।

समि.— मित्र ! लोग तो यह जानते हैं कि

मद्रभट इत्यादि लोग महाराज चंद्रश्री को छोड़कर मलयकेतु से मिल गए तो क्या कुकवियों के नाटक की भाँति इसके मुख में ओर तथा निबहण में और बात है ?

सिद्धा.— वयस्य ! सुनो, जैसे देव की गति नहीं जानी जाती वैसे ही आर्य चाणक्य की जिस नीति की भी गति नहीं जानी जाती उसको नमस्कार है ?

समि.— हाँ । कहो, तब क्या हुआ ?

सिद्धा.— तब इधर से सब सामग्री लेकर आर्य चाणक्य बाहर निकले और विपक्ष के शेष राजाओं को निःशेष करके बर्बर लोगों की सब सामग्री लूट ली ।

समि.— तो वह सब अब कहाँ है ?

सिद्धा.— वह देखो ।

स्रवत गंडमद गरब गज, नदत मेघ अनुहार ।
चावुक भय चितवत चपल, खड़े अस्व बहु द्वार ॥

समि.— अच्छा, यह सब जाने दो । यह कहो कि सब लोगों के सामने इतना अनादर पाकर फिर भी आर्य चाणक्य उसी मंत्री के काम को क्यों करते हैं ?

सिद्धा.— मित्र ! तुम अब तक निरर्थक साधे बने हो । अरे, अमात्य राक्षस भी आर्य चाणक्य की जिन चालों को नहीं समझ सकते उनको हम तुम क्या समझेंगे !

समि.— वयस्य । अमात्य राक्षस अब कहाँ है ?

सिद्धा.— उस प्रलय कोलाहल के बढ़ने के समय मलयकेतु की सेना से निकलकर उंदुर नामक चर के साथ कुसुमपुर ही की ओर वह आते हैं, यह आर्य चाणक्य को समाचार मिला है ।

समि.— मित्र ! नंदराज्य के फिर स्थापना की प्रतिज्ञा करके स्वनामतुल्य-पराक्रम अमात्य राक्षस, उस काम को पूरा किए बिना फिर कैसे कुसुमपुर आते हैं ?

सिद्धा.— हम सोचते हैं कि चंदनदास के स्नेह से ।

समि.— ठीक है, चंदनदास के स्नेह ही से । किंतु तुम सोचते हो कि चंदनदास के प्राण बचेंगे ?

सिद्धा.— कहाँ उस दिन के प्राण बचेंगे ? हमी दोनों की वधस्थान में ले जाकर उसको मारना पड़ेगा ।

समि.— (क्रोध से) क्या आर्य चाणक्य के पास कोई घातक नहीं है कि ऐसा नीच काम हम लोग करें ?

सिद्धा.— मित्र ! ऐसा कौन है जिसको इस जीवलोक में रहना हो और वह आर्य चाणक्य की आज्ञा न माने ? चलो, हम लोग चाँडाल का वेप बनाकर

चन्दनदास को वधस्थल में ले चलें ।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रवेशक

स्थान — बाहरीप्रांत में प्राचीन बारी

(फाँसी हाथ में लिए हुए एक पुरुष आता है)

पुरुष —

पट गुन सुदृढ़ गुथी मुख फाँसी ।

जय उपाय परिपाटी गाँसी ॥

रिपु-बंधन मैं पटु प्रति पोरी ।

जय चाणक्य नीति की डोरी ।

आर्य चाणक्य के चर उंदुर ने इसी स्थान में मुझको अमात्य राक्षस से मिलाने को कहा है । (देख कर) यह अमात्य राक्षस सब अंग छिपाए हुए आते हैं । तब तक इस पुरानी बारी में छिपकर हम देखें कि यह कहाँ ठहरते हैं (छिपकर बैठता है)

(सब अंग छिपाए हुए राक्षस आता है)

राक्षस — (आँखों में आँसू भर के) हाय ! बड़े कष्ट की बात है ।

आश्रय बिनसें और पै जिमि कुलटा तिय जाय ।

तजि तिमि नंदहि चञ्चला चंद्रहि लपटी धाय ॥

देखा देखी प्रजहु सब कीनो ता अनुगौन ॥

तजि कै निज नृप नेह सब कियो कुसुमपुर भौन ॥

होइ बिफल उद्योग मैं, तजि कै कारज भार ।

आप्त मित्रहू थकि रहे, सिर विनु जिमि अहि छार ॥

तजि कै निज पति भुवन पति सुकुल जाय नृप नंद ।

श्री वृषली गइ वृषल ढिग सील त्यागि दरि छंद ॥

जाइ तहाँ थिर हवै रही निज गुन सहज बिसारि ।

बस न चलत जब बाम विधि सब कछु देत विगारी ॥

नंद मरे सैलेश्वरहि देन चह्यौ हम राज ।

सोऊ बिनसे तब कियो ता सुत हित सो साज ॥

विगरचौ तौन प्रबंध हू, मिट्यौ मनोरथ मूल ।

दोस कहा चाणक्य को दैवहि भो प्रतिकूल ॥

वाह रे म्लेच्छ मलयकेतु की मूर्खता ! जिसने इतना नहीं समझा कि —

मरे स्वामिहू नहिं तज्यौ जिन निज नृप अनुराग ।

लोभ छाँड़ि दै प्रान जिन करी सत्रु सों लाग ॥

सोई राक्षस शत्रु सों मिलिहै यह अधेर ।

इतनो सूभ्यौ वाहि नहिं दई दैव मति फेर ॥

सो अब भी शत्रु के हाथ में पड़के राक्षस नाश हो जायगा,

पर चंद्रगुप्त से संधि न करेगा । लोग भूठा कहें, यह

अपयश हो, पर शत्रु की बात कौन सहेगा ? (चारों ओर

देखकर) हा ! इसी प्रांत में देव नंद रथ पर चढ़कर

फिरने आते थे ।

इतिह देव अभ्यास हित सर तजि धनु संधानि ।

रचत रहे भुव चित्र सम सुचक्र परिखानि ॥

जहँ नृपगन सकित रहे इत उत थमे लखात ।

सोई भुव ऊजर भई दृगन लखी नहिं जात ॥

हाय ! यह मंदभाग्य अब कहाँ जाय ? (चारों ओर

देखकर) चलो, इस पुरानी बारी में कुछ देर ठहरकर

मित्र चंदनदास का कुछ समाचार लें । (घूमकर आप

ही आप) अहा ! पुरुष के भाग्य की उन्नति-अवनति

की भी क्या क्या गति होती है कोई नहीं जानता ।

जिमि न ससि कहँ सब लखत निज निज करहि उठाय ॥

तिमि पुरजन हम को रहे लखत अनंद बढ़ाय ॥

चाहत हे नृपगन सबै जासु कृपा दृग कोर ।

सो हम इत सकित चलत मानहुँ कोऊ चोर ॥

वा जिसके प्रसाद से यह सब था, जब वही नहीं है तो

यह हो हीगा । (देखकर) यह पुराना उद्यान कैसा

भयानक हो रहा है ।

नसे विपुल नृप कुल सरिस बड़े बड़े गृह जाल ।

मित्र नास सों साधुजन हिय सम सूखें ताल ॥

तरुवर भे फलहीन जिमि विधि विगरे सब नीति ।

तुन ? सों लोपी भूमि जिमि मति लहि मूढ़ कुरीति ॥

तीछन परसु प्रहार सों कटे तरौबर-गात ।

रोशत मिलि पिंडूक संग ताके धाव लखात ॥

दुखी जानि निज मित्र कहँ अहि मनु लेत उसास ।

निज कंचुल मिस धरत हैं, फाहा तरु-व्रन पास ।

तरुगन को सूख्यौ हियो, छिदे कीट सों गात ।

दुखी पत्र फल छाँह विनु, मनु मसान सब जात ॥

तो अब तक हम इस सिला पर, जो भाग्यहीनों को

सुलभ है, लेटें । (बैठकर और कान देकर सुनकर)

अरे ! यह शंख डंके से मिला हुआ नांदी शब्द कहाँ हो

रहा है ?

अति ही तीछन होन सों फोरत सोता कान ।

जब न समायो धरन मैं तब इत कियो पयान ॥

संख पटह धुनि सों मिल्यौ भारी मंगल नाद ।

निकस्यौ मनहु दिगंत की दूरी देखन स्वाद ॥

(कुछ सोचकर) हाँ, जाना । यह मलयकेतु के पकड़े

जाने पर राजकुल(रुककर)मौर्यकुल को आनंद देने को

हो रहा है । (आँखों में आँसू भर कर) हाय बड़े दुःख

की बात है ।

मेरे विनु अब जीति दल शत्रु पाइ बल घोर ।

मोहि सुनावन हेतु ही कीन्हों शब्द कठोर ॥

पुरुष — अब तो यह बैठे हैं तो अब आर्य

चाणक्य की आज्ञा पूरी करें । (राक्षस की ओर न

देखकर अपने गले में फाँसी लगाना चाहता है)

राक्षस — (देखकर आप ही आप) अरे यह फाँसी क्यों लगाता है ? निश्चय कोई हमारा सा दुखिया है । जो हो, पूछें तो सही । (प्रकाश) भद्र, यह क्या करते हो ?

पुरुष — (रोकर) मित्रों के दुःख से दुखी होकर हमारे ऐसे मंदभाग्यों का जो कर्तव्य है ।

राक्षस — (आप ही आप) पहले ही कहा था, हमारा सा दुखिया है । (प्रकाश) भद्र, जो अति गुप्त वा किसी विशेष कार्य की बात न हो तो हमसे कहो कि तुम क्यों प्राण त्याग करते हो ?

पुरुष — आर्य ! न तो गुप्त ही है न कोई बड़े काम की बात है ; परंतु मित्र के दुःख से मैं क्षण भर भी ठहर नहीं सकता ।

राक्षस — (आप ही आप दुःख से) मित्र की विपत्ति में हम पराए लोगों की भाँति उदासीन होकर जो देर करते हैं मानों उसमें शीघ्रता करने की यह अपना दुःख कहने के बहाने शिक्षा देता है । (प्रकाश) भद्र ! जो रहस्य नहीं है तो हम सुना चाहते हैं कि तुम्हारे दुःख का क्या कारण है ?

पुरुष — आपको इसमें बड़ा ही हठ है तो कहना पड़ा । इस नगर में जिष्णुदास नामक एक महाजन है ।

राक्षस — (आप ही आप) वह तो चंदनदास का बड़ा मित्र है ।

पुरुष — वह हमारा प्यारा मित्र है ।

राक्षस — (आप ही आप) कहता है कि वह हमारा प्यारा मित्र है । इस अति निकट संबंध से इसको चंदनदास का वृत्तांत ज्ञात होगा ।

पुरुष — (रोकर) सो दीन जनों को धन देकर वह अब अग्निप्रवेश करने जाता है । यह सुनकर हम यहाँ आए हैं कि इस दुःखवार्ता सुनने के पूर्व ही अपने प्राण दे दें ।

राक्षस — भद्र ! तुम्हारे मित्र के अग्निप्रवेश का कारण क्या है ?

कै तेहि रोग असाध्य भयो
कोऊ जाको न औषध नाहिं निदान है ?

पुरुष — नहीं आर्य !

राक्षस — कै विष अग्निहु सो बढ़ि कै

नुप कोप महा फाँस त्यागत प्राण है ?

पुरुष — राम राम ! चंद्रगुप्त के राज्य में लोगों को प्राणहिंसा का भय कहाँ ?

राक्षस — कै कोउ सुंदरी पै जिय देत

लगयो हिय भाँहि बियोग को बान है ?

पुरुष — राम राम ! महाजन लोगों की यह चाल नहीं ; विशेष करके साधु जिष्णुदास की ।

राक्षस — तौ कहँ मित्रहि को दुख वाहु के नाश के हेतु तुम्हारे समान है ?

पुरुष — हाँ, आर्य ।

राक्षस — (घबड़ाकर आप ही आप) अरे, इसके मित्र का प्रिय मित्र तो चंदनदास ही है और यह कहता है सुहृदविनाश ही उसके विनाश का हेतु है इससे मित्र के स्नेह से मेरा चित्त बहुत ही घबड़ाता है । (प्रकाश) भद्र ! तुम्हारे मित्र का चरित्र हम सविस्तर सुना चाहते हैं ।

पुरुष — आर्य ! अब मैं किसी प्रकार से मरने में विलांब नहीं कर सकता ।

राक्षस — यह वृत्तांत तो अवश्य सुनने के योग्य है, इससे कहो ।

पुरुष — क्या करें ? आप ऐसा हठ करते हैं तो सुनिए ।

राक्षस — हाँ ! जी लगाकर सुनते हैं, कहो ।

पुरुष — आपने सुना ही होगा कि इस नगर में प्रसिद्ध जोहरी सेठ चन्दनदास हैं ।

राक्षस — (दुःख से आप ही आप) देव ने हमारे विनाश का द्वार अब खोल दिया । हृदय ! स्थिर हो अभी न जाने क्या क्या कष्ट तुमको सुनना होगा । (प्रकाश) भद्र ! हमने भी सुना है कि यह साधु अत्यंत मित्रवत्सल हैं ।

पुरुष — यह जिष्णुदास के अत्यंत मित्र हैं ।

राक्षस — (आप ही आप) यह सब हृदय के हेतु शोक का वज्रपात है । (प्रकाश) हाँ, आगे ।

पुरुष — सो जिष्णुदास ने मित्र की भाँति चंद्रगुप्त से बहुत विनय किया ।

पुरुष — क्या क्या ?

पुरुष — कि देव ! हमारे घर में जो कुछ कुटुंबपालन का द्रव्य है आप सब ले लें, पर हमारे मित्र नंदनदास को छोड़ दे ।

राक्षस — (आप ही आप) वाह जिष्णुदास ! तुम धन्य हो । तुमने मित्रस्नेह का निर्वाह किया ।

जा धन के हित नारि तजै

पति पूत तजै पितु सीलहिं खोई ।

भाई सों भाई लरै रिपु से

पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई ॥

ता धन को बनिया ह्यै गिन्यौ

न दियो दुख भीत सों आरत होई ।

स्वारथ अर्थ तुम्हारी है तुमरे

सम और न या जग कोई ।।
(प्रकाश) इस बात पर मौर्य ने क्या कहा ?

पुरुष — आर्य ! इस बात पर चंद्रगुप्त ने उससे कहा कि जिष्णुदास ! हमने धन के हेतु चंदनदास को नहीं दंड दिया है । इसने अमात्य राक्षस का कुटुंब अपने घर में छिपाया था, और बहुत माँगने पर भी न दिया, अब भी जो यह दे दे तो छूट जाय, नहीं तो इसको प्राणदंड होगा । तभी हमारा क्रोध शांत होगा और दूसरे लोगों को भी इससे डर होगा — यह कह उसको वध-स्थान में भेज दिया । जिष्णुदास ने कहा कि 'हम कान से अपने मित्र का अमंगल सुनने के पहिले मर जाँ तो अच्छी बात है' और अग्नि में प्रवेश करने को वन में चले गए । हमने भी इसी हेतु कि उनका मरण न सुने यह निश्चय किया कि फाँसी लगाकर मर जायँ और इसी हेतु यहाँ आए हैं ।

राक्षस — (घबड़ाकर) अभी चंदनदास को मारा तो नहीं

पुरुष — आर्य ! अभी नहीं मारा है, बारंवार अब भी उनसे अमात्य राक्षस का कुटुंब माँगते हैं और वह मित्रवत्सलता से नहीं देते, इसी में इतना विलांब हुआ ।

राक्षस — (सहर्ष आप ही आप) वाह मित्र चंदनदास ! वाह ! धन्य ! धन्य !!
मित्र परोच्छ्रुं मैं कियो सरनागत प्रतिपाल । निरमल जस सिवि सो लियो तुम या काल कराल ।। (प्रकाश)
भद्र ! तुम शीघ्र जाकर जिष्णुदास को जलाने से रागे, हम जाकर अभी चंदनदास को छुड़ाते हैं ?

पुरुष — आर्य आप किस उपाय से चंदनदास को छुड़ाइएगा ?

राक्षस — (खड़ग मियन से खींचकर) इन दुःखों में एकांत मित्र निष्कृप कृपाण से ।

समर साध तन पुलकित नित साथी मम कर को । रन महँ बारहिं बार परिछ्यौ जिन बल पर को ।। विगत जलद नभ नील खड़ग वह रोस बढ़ावत । मीत कष्ट सो दुखिहु मोहिं रनहित उमगावत ।। **पुरुष** — सेठ चंदनदास के प्राण बचाने का उपाय मैंने सुना किंतु ऐसे टेढ़े समय में इसका परिणाम क्या होगा, यह मैं नहीं कह सकता । (राक्षस को देखकर पैर पर गिरता है)
आर्य ! क्या सुगृहीत-नामधेय अमात्य राक्षस आप ही हैं ? यह मेरा संदेह आप दूर कीजिए ।

राक्षस — भद्र ! भर्तृकुल विनाश से दुःखी और मित्र के नाश का कारण यथार्थ नामा अनार्य राक्षस मैं ही हूँ ।

पुरुष — (फिर पैर पर गिरता है) धन्य है ! बड़ा ही आनंद हुआ । आपने हमको आज कृतकृत्य किया है ?

राक्षस — भद्र ! उठो । देर करने की कोई आवश्यकता हीं । जिष्णुदास से कहो कि राक्षस चंदनदास को अभी छुड़ाता है ।

(खंग खींचे हुए 'समर साध' इत्यादि पढ़ता हुआ इधर उधर टहलता है)

पुरुष — (पैर पर गिरकर) अमात्यचरण ! प्रसन्न हों । मैं यह विनती करता हूँ कि चंद्रगुप्त दुष्ट ने पहले शकटदास के वध की आज्ञा दी थी फिर न जाने कौन शकटदास को छुड़ाकर उसको कहीं परदेश में भगा ले गया । आर्य शकटदास के वध में धोखा खाने से चंद्रगुप्त ने क्रोध करके प्रमादी समभदार उन वधियों ही को मार डाला । तब से वधिका जो किसी को वधस्थान में ले जाते हैं और मार्ग में किसी को शस्त्र खींचे हुए देखते हैं तो छुड़ा ले जाने के भय से अपराधी को बीच ही में तुरंत मार डालते हैं । इससे शस्त्र खींचे हुए आपके वहाँ जाने से चंदनदास की मृत्यु में और भी शीघ्रता होगी । (जाता है)

राक्षस — (आप ही आप) उस चाणक्य बटु का नीतिमार्ग कुछ समझ नहीं पड़ता क्योंकि —

सकट वच्चौ जो ता कहै तो क्यों धातक धात । जाल भयो का खेल में कछु समझ्यौ नहिं जात ।। (सोचकर)

नहिं शस्त्र को यह काल यासों मीत जीवन जाइ है । जो नीति सोचै या समय तो व्यर्थ समय नसाइ है ।।
तुप रहनइ नहिं लोग जब मम हित बिपति चंदन परचौ । तासों बचावन प्रियहि अब हम देह निज विक्रय करचौ ।।
(तलवार फेंककर जाता है)

सप्तम अंक

स्थान — सूली देने का मसान
(पहिला चांडाल आता है)

चांडाल — हटो लोगो हटो दूर हो भाइयो, दूर हो । जो अपना प्राण, धन और कुल बचाना हो तो दूर हो । राज का विरोध यत्नपूर्वक छोड़ो । करि कै पथ्य विरोध इक रोगी त्यागत प्राण । पै विरोध नृप सों किए नसत सकुल नर जान ।।
जो न मानो तो इस राजा के विरोधी को देखो जो स्त्री पुत्र समेत यहाँ सूली देने को लाया जाता है । (ऊपर

देखकर) क्या कहा कि 'इस चंदनदास के छूटने का कुछ उपाय भी है ?' भला इस बेचारे के छूटने का कौन उपाय है । पर हाँ, जो यह मंत्री राक्षस का कुटुंब दे दे तो छूट जाय । (पिस्स ऊपर देखकर) क्या कहा कि 'यह शरणागतवत्सल प्राण देगा पर यह बुरा कर्म न करेगा ।' तो फिर इसकी बुरी गति होगी क्योंकि बचने का तो वही एक उपाय है ।

(कंधे पर सूली रखे मृत्यु का कपड़ा पहने चंदनदास, उनकी स्त्री और पुत्र, दूसरा चांडाल आते हैं)

स्त्री.— हाय हाय ! जो हम लोग नित्य अपनी बात बिगड़ने के डर से फूँक फूँकर पैर रखते थे उन्हीं हम लोगों की चोरों की भाँति मृत्यु होती है । काल देवता को नमस्कार है, जिसको मित्र उदासीन सभी एक से हैं, क्योंकि —

छोड़ि मांस भक्ष मरन भय जियहिं खाइ तून घास ।
तिन गरीब मृग को करहिं निरदय व्याधा नास ॥
(चारों ओर देखकर)

अरे भाई जिष्णुदास ! मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देते ? हाय ! ऐसे समय में कौन ठहर सकता है ।

चंदन.— (आँसू भरकर) हाय ! यह मेरे सब मित्र बिचारे कुछ नहीं कर सकते, केवल रोते हैं और अपने को अकर्मण्य समझ शोक से सूखा सूखा मुँह किए आँसू भरी आँखों से एकटक मेरी ही ओर देखते चले आते हैं ।

दोनों चांडाल— अजी चंदनदास ! अब तुम फाँसी के स्थान पर आ चुके इससे कुटुंब को विदा करो ।

चंदन.— (स्त्री से) अब तुम पुत्र को लेकर जाओ, क्योंकि आगे तुम्हारे जाने की भूमि नहीं है ।

स्त्री.— ऐसे समय में तो हम लोगों को विदा करना उचित ही है, क्योंकि आप परलोक जाते हैं, कुछ परदेश नहीं जाते । (रोती है)

चंदन.— सुनो, मैं कुछ अपने दोष से नहीं मारा जाता, एक मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, इस हर्ष के स्थान पर क्या रोती है ?

स्त्री.— नाय ! जो यह बात है तो कुटुंब को क्यों विदा करते हो ?

चंदन.— तो फिर तुम क्या कहती हो ?

स्त्री.— (आँसू भरकर) नाय ! कृपा करके मुझे भी साथ ले चलो ।

चंदन.— हा ! यह तुम कैसी बात कहती हो ? अरे ! तुम इस बालक का मुँह देखो और इसकी रक्षा करो, क्योंकि यह बिचार कुछ भी लोकव्यवहार नहीं

जानता । यह किसका मुँह देख के जीएगा ?

स्त्री.— इसकी रक्षा कुलदेवी करेंगी । बेदा ! अब पिता फिर न मिलेंगे इससे मिलकर प्रणाम कर ले ।

बालक.— (पैरों पर गिरके) पिता ! मैं आपके बिना क्या कहूँगा ?

चंदन.— बेदा, जहाँ चाणक्य न हो वहाँ बसना ।

दोनों चांडाल— (सूली खड़ी करके) अजी चंदनदास ! देखो, सूली खड़ी हुई अब सावधान हो जाओ !

स्त्री.— (रोकर) लोगों, बचाओ ! अरे ! कोई बचाओ !

चंदन.— भाइया, तनिक ठहरो । (स्त्री से) अरे ! अब तुम रो रोकर क्या नन्दों को स्वर्ग से बुला लोगी ? अब वे लोग यहाँ नहीं हैं जो स्त्रियों पर सर्वदा दया रखते थे ।

१ चांडाल— अरे वेणुवेत्रक ! पकड़ इस चंदनदास को, घरवाले आप ही रो पीटकर चले जायेंगे ?

२ चांडाल— अच्छा वज्रलोमक, मैं पकड़ता हूँ ।

चंदन.— भाइयो ! तनिक ठहरो, मैं अपने लड़के से तो मिल लूँ । (लड़के को गले लगाकर और माथा सँघकर) बेदा ! मरना तो था ही पर एक मित्र के हेतु मरते हैं इससे सोच मत कर ।

पुत्र— पिता, क्या हमारे कुल के लोग ऐसा ही करते आए हैं ? (पैर पर गिर पड़ता है) !

२ चांडाल— पकड़ रे वज्रलोमक ! (दोनों चंदनदास को पकड़ते हैं)

स्त्री— लोगों ! बचाओ रे, बचाओ ! (बिग से राक्षस आता है)

राक्षस— डरो मत ; डरो मत । सुनो सुनो, घातको ! चंदनदास को मत मारना, क्योंकि — नसत स्वामिकुल जिन लख्यौ निज चख शत्रु समान । मित्रदुःख हूँ मैं धर्यौ निलज होइ जिन प्रान ॥ तुम सों हारि बिगारि सब कदी न जाकी साँस । ता राक्षस के कंठ मैं डारहु यह जमफाँस ॥

चंदन.— (देखकर आँखों में आँसू भरकर) अमात्य यह क्या करते हो ?

राक्षस— मित्र, तुम्हारे सम्बन्धित का एक छोटा सा अनुकरण ।

चंदन.— अमात्य, मेरा किया तो सब निष्फल

हो गया, पर आपने ऐसे समय यह साहस अनुचित किया ।

राक्षस— मित्र चंदनदास ! उलाहना मत दो सभी स्वार्थी हैं (चांडाल से) अजी ! तुम उस दुष्ट चाणक्य से कहो ।

दोनों चांडाल— क्या कहें ?

राक्षस—

जिन कलि मैं हूँ मित्र हित तू न सम छोड़े प्राण ।
जाके जस रवि सामुहे सिवि जस दीप समान ॥
जाको अति निर्मल चरित, दया आदि नित जानि ।
बोदहु सब लज्जित भए, परम शुद्ध जेहि मानि ॥
ता पूजा के पात्र कों मारत तू धरि पाप ।
जाके हित सो शत्रु तुव आयो इत मैं आप ॥

१ चांडाल— अरे वेणुवेत्तक ! तू चंदनदास को पकड़कर इस मसान के पेड़ की छाया में बैठ, तब से मंत्री चाणक्य को मैं समाचार दूँ कि अमात्य राक्षस पकड़ा गया ।

२ चांडाल— अच्छा रे वज्रलोमक ! (चंदनदास, स्त्री, बालक और सुली को लेकर आता है)

१ चांडाल— (राक्षस को लेकर घूमकर) अरे यहाँ पर कौन है ? नंदकुल सेनासंचय के चूर्ण करने करने वाले वज्र से, वैसे ही मौर्यकुल में लक्ष्मी और धर्म स्थापना करने वाले, आर्य चाणक्य से कहो —

राक्षस— (आप ही आप) हाय ! यह भी राक्षस को सुनना लिखा था !

१ चांडाल— कि आप की नीति ने जिसकी बुद्धि को घेर लिया है, वह अमात्य राक्षस पकड़ा गया । (परदे में सब शरीर छिपाए केवल मुँह खोले चाणक्य आता है)

चाणक्य— अरे कहो, कहो ।

किन जिन बसननि मैं धरी कठिन अग्नि की ज्वाल ?
रोकी किन गति वायु की डोरिन ही के जाल ?
किन गजपति मईन प्रबल सिंह पींजरा दीन ?
किन केवल निज बाहु बल पार समुद्रहि कीन ?

१ चांडाल— परमनीतिनिपुण आप ही ने तो ।

चाणक्य— अजी ! ऐसा मत कहो, वरन "नंदकुलद्वेषी देव ने" यह कहो ।

राक्षस— (देखकर आप ही आप) अरे ! क्या यही दुरात्मा वा महात्मा कौटिल्य है ? क्योंकि सागर जिमि बहु रत्नमय तिमि सब गुन की खानि ।
तोष होत नहि देखि गुन बैरी हूँ निज जानि ॥

चाणक्य— (देखकर) अरे ! यही अमात्य राक्षस है ?

जिस महात्मा ने—

वह दुख सों सोचत सदा जागत रैन विहाय ।
मेरी मति अरु चंद्र की सैनहि दई थकाय ॥
(परदे से बाहर निकलकर) अजी अजी अमात्य राक्षस ! मैं विष्णुगुप्त आपको दंडवत् करता हूँ । (पैर छूता है)

राक्षस— (आप ही आप) अब मुझे अमात्य कहना तो केवल मुँह चिढ़ाना है । (प्रगट) अजी विष्णुगुप्त ! मैं चांडालों से झूठा हूँ इससे मुझे मत झूठो ।

चाणक्य— अमात्य राक्षस ! वह श्वपाक नहीं है, वह आपका जाना-सुना सिद्धार्थक नामा राजपुरुष है ; और दूसरा भी समिद्धार्थक नामा राजपुरुष ही है ; और इन्हीं दोनों द्वारा विश्वास उत्पन्न करके उस दिन शकटदास को धोखा देकर मैंने वह पत्र लिखवाया था ।

राक्षस— (आप ही आप) अहा ! बहुत अच्छा हुआ कि मेरा शकट दास पर से संदेह दूर हो गया ।

चाणक्य— बहुत कहाँ तक कहूँ —

वे सब भद्रभटादि, वह सिद्धार्थक, वह लेख ।
वह भदंत, वह भूपनहु, वह नट आरत भेख ॥
वह दुख चंदनदास को जो कछु दियो दिखाय ।
सो सब मम (लज्जा से कुछ सकुचकर)
सो सब राजा चंद्र को तुम सों मिलन उपाय ॥
देखिये, यह राजा भी आप से मिलने आप ही आते हैं ।

राक्षस— (आप ही आप) अब क्या करें ? (प्रगट) हाँ ! मैं देख रहा हूँ ।

(सेवकों के संग राजा आता है)

राजा— (आप ही आप) गुरुजी ने बिना युद्ध ही दुर्जय शत्रु का कुल जीत लिया इसमें कोई संदेह नहीं । मैं तो बड़ा लज्जित हो रहा हूँ, क्योंकि —

हवै बिनु काम लजात करि नीचो मुख भरि सोक ।
सोवत सदा निषग में मम बानन के थोक ॥
सोवहि धनुष उतारि हम जदपि सकहि जग जीति ।
जा गुरु के जागत सदा नीति निपुण गत भीति ॥
(चाणक्य के पास जाकर) आर्य ! चंद्रगुप्त प्रणाम करता है ।

चाणक्य— वृषल ! अब सबै असीस सच्ची हुई इससे इन पूज्य अमात्य राक्षस को नमस्कार करो, यह तुम्हारे पिता के सब मंत्रियों में मुख्य है ।

राक्षस— (आप ही आप) लगाया न इसने संबंध —

राजा— (राक्षस के पास जाकर) आर्य ! चंद्रगुप्त प्रणाम करता है ।

राक्षस— (देखकर आप ही आप) अहा ! यही

चंद्रगुप्त है ।

होनहार जाको उदय बालपने ही जोड़ ।

राज लख्यौ जिन बाल गज जूयाधिप सम होइ ॥

(प्रगट) महाराज ! जय हो ।

राजा — आर्य !

तुमरे आछत बहुरि गुरु जागत नीति प्रवीन ।

कहहु कहा या जगत में जाहि न जय हम कीन ॥

राक्षस — (आप ही आप) देखो, यह चाणक्य का सिखाया पढ़ाया मुझसे कैसी सेवकों की सी बात करता है ! नहीं नहीं, यह आप ही विनीत है । अहा ! देखो, चंद्रगुप्त पर डाह के बदले उलटा अनुराग होता है । चाणक्य सब स्थान पर यशस्वी है, क्योंकि —

पाइ स्वामि सतपात्र जो मंत्री मूर्ख होइ ।

तोड़ पावे लाभ जस, इत तो पंडित वोइ ॥

मूर्ख स्वामी लहि गिरै चतुर सचिव हू हारि ।

नदी तीर तरु जमि नसत जीरन है लहि वार ॥

चाणक्य — क्यों अमात्य राक्षस ! आप क्या चंदनदास के प्राण बचाया चाहते हैं ।

राक्षस — इसमें क्या संदेह है ?

चाणक्य — पर अमात्य ! आप शस्त्र ग्रहण नहीं करते, इससे संदेह होता है कि आपने अभी राजा पर अनुग्रह नहीं किया, इससे जो सच ही चंदनदास के प्राण बचाया चाहते हो तो यह शस्त्र लीजिए ।

राक्षस — सुनो विष्णुगुप्त ! ऐसा कभी नहीं हो सकता, क्योंकि हम उस योग्य नहीं, विशेष करके जब तक तुम शस्त्र ग्रहण किए हो तब तक हमारे शस्त्र ग्रहण करने का क्या काम है ?

चाणक्य — भला अमात्य ! आपने यह कहाँ से निकाला कि हम योग्य हैं और आप अयोग्य हैं ? क्योंकि देखिए —

रहत लगामहिं कसे अश्व की पीठ न छोड़त ।

खान पान असनान भोग तजि मुख नहिं मोड़त ॥

छूटे सब सुख साज नौद नहीं आवत नयनन ।

निसि दिन चौकत रहत वीर सब भय धरि निज मन ॥

वह हौदन सौं सब छन कर्यौ नृप गजगन अवरोखिए ।

रिपुदर्प दूर कर अति प्रबल निज महात्मबल देखिए ॥

वा इन बातों से क्या ! आपके शस्त्र ग्रहण किए बिना तो चंदनदास बचता भी नहीं ।

राक्षस — (आप ही आप)

नंद नेह छूट्यौ नहीं दास भए अरि साथ ।

ते तरु कैसे काटि है जे पाले निज हाथ ॥

कैसे करिहैं मित्र पै हम निज कर सों घात ।

अबो भाय गति अति प्रबल मोहिं कछु जानि न जान ॥

(प्रकाश) इच्छा विष्णुगुप्त ! मैंगाओ खंग "नमस्सर्वकार्य प्रतिपत्तिहेतवे सुहृत्सन्हाय" देखो, मैं उपस्थित हूँ ।

चाणक्य — (राक्षस को खंग देकर हर्ष से) राजन वृषल ! बधाई है, बधाई है ! अब अमात्य राक्षस ने तुम पर अनुग्रह किया । अब तुम्हारी दिन दिन बढ़ती ही है ।

राजा — यह सब आपकी कृपा का फल है । (पुरुष आता है)

पुरुष — जय हो महाराज की, जय हो । महाराज ! भद्रमटभागुरायणादिक मलयकेतु को हाथ पैर बाँधकर लाए हैं और द्वार पर खड़े हैं । इसमें महाराज की क्या आज्ञा होती है ?

चाणक्य — हाँ, सुना । अजी ! अमात्य राक्षस से निवेदन करो, अब सब काम वही करेंगे ।

राक्षस — (आप ही आप) कैसे अपने वश में करके मुझी से कहलाता है । क्या करें ? (प्रकाश) महाराज, चंद्रगुप्त ! यह तो आप जानते हैं कि हम लोगों का मलयकेतु का कुछ दिन तक संबंध रहा है । इससे उसका प्राण तो बचाना ही चाहिए ।

(राजा चाणक्य का मुँह देखता है)

चाणक्य — महाराज ! अमात्य राक्षस की पहिली बात तो सर्वथा माननी ही चाहिए । (पुरुष से) अजी ! तुम भद्रमटादिकों से कह दो कि "अमात्य राक्षस के कहने से महाराज चंद्रगुप्त मलयकेतु को उसके पिता का राज्य देते हैं" इससे तुम लोग रांग जाकर उसको राज पर बिठा आओ ।

पुरुष — जो आज्ञा ।

चाणक्य — अजी अभी ठहरो, सुनो ! दुर्गपाल विजयपाल से यह कह दो कि अमात्य राक्षस के शस्त्र ग्रहण से प्रसन्न होकर महाराज चंद्रगुप्त यह आज्ञा करते हैं कि "चंदनदास के सब नगरों का जगत्सेठ कर दो ।"

पुरुष — जो आज्ञा । (जाता है)

चाणक्य — चंद्रगुप्त ! अब और मैं क्या तुम्हारा प्रिय करूँ ?

राजा — इससे बढ़कर और क्या भला होगा ? मेरी राक्षस सों भई, मिल्यो अकंटक राज । नंद नसे सब अब कहा यासों बढ़ि सुख साज ॥

चाणक्य — (प्रतिहारी से) विजये ! दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि "अमात्य राक्षस के मेल से प्रसन्न होकर महाराज चंद्रगुप्त आज्ञा करते हैं कि हाथी, घोड़ों को छोड़कर और सब बंधुओं का बंधन

छोड़ दो' वा जब अमात्य राक्षस मंत्री हुए तब अब हाथी घोड़ों का क्या सोच है ? इससे —

छोड़ो सब गज तुरग अब कछु मत राखो बाँध ।
केवल हम बाँधत सिखा निज परतिज्ञा साधि ॥

(शिखा बाँधता है)

प्रतिहारी — जो आज्ञा । (जाती है)

चाणक्य — अमात्य राक्षस ! मैं इससे बढ़कर और कुछ भी आपका प्रिय कर सकता हूँ ?

राक्षस — इससे बढ़कर और हमारा क्या प्रिय होगा ? पर जो इतने पर भी संतोष न हो तो यह आशीर्वाद सत्य हो —

"वाराहीमात्मयोनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानुरूपा
यस्य प्राग्दन्तकोटिप्रलयपरिगता शिश्रिये भूतघात्री ।
म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना पीवर राजमूर्तेः
स श्रीमद्वन्धुभृत्यश्चिरमवतु महोम्पार्थिवश्चंद्रगुप्तः ॥" १४

(सब जाते हैं)

उपसंहार— (क)

इस नाटक में आदि, अंत तथा अकों के विश्रामस्थल में रंगशाला में ये गीत गाने चाहिए ।
यथा —

सबके पूर्व मंनलाचरण में ।

(ध्रुवपद चौताला)

जय जय जगदीश राम, श्याम धाम पूर्ण काम,
आनंदधन ब्रह्म सत् चित्तसुखकारी ।
कंस रावनादि काल सतत प्रनत भक्त पाल,
सोभित गल मुक्तमाल, दीनतापहारी ॥
प्रेमभरन पापहरन, असरन जन सरन चरन,
सुखहि करन दुखहि हरन, वृंदावनचारी ।
रमावास जगनिवास, राम रमन समनत्रास,
विनवत 'हरिचंद' दास, जयजय गिरधारी ॥
(प्रस्तावना के अंत में प्रथम अंक के आरम्भ में । चाल
लखनऊ की ठुमरी 'शाहजादे आलम तेरे लिये' इस
चाल की)

जिनके हितकारक पंडित हैं

तिनकों कहा सजुन को डर है ।

समुझैं जग मैं सब नीतिन्ह जो

तीन्हैं दुर्ग बिदेस मनो घर है ।

जिन मित्रता राखी है लायक सों

तिनकों तिनकाहू महा सर है ।

जिनकी परतिज्ञा टरे न कबौं

तिनकी जय ही सब ही थर है ॥

(पहले अंक की समाप्ति और दूसरे अंक के प्रारंभ में)
जग मैं घर की फूट बुरी ।

घर के फूटहि सों बिनसाई सुवरन लंकपुरी ॥

फूटहि सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो ।

जाको घाटो या भारत मैं अबलौं नहि पुजयो ॥

फूटहि सों जयचंद बुलायो जवनन भारत धाम ।

जाको फल अबलौं भोगत सब आरज होइ गुलाम ॥

फूटहि सों नव नंद बिनासे गयो मगध को राज ।

चंद्रगुप्त को नासन चढ़यो आपु नसे यह साज ॥

जो जग मैं धन मान और बल अपुनो राखन होय ।

तो अपुने घर मैं भूलेइ फूट करौ मति कोय ॥

(दूसरे अंक की समाप्ति और तीसरे अंक के आरंभ में)

जग में तेई चतुर कहावैं ।

जे सब बिधि अपने कारज को नीकी भाँति बनावैं ॥

पढ़्यौ लिख्यौ किन होइ जु पै नहि कारज साधन जानैं ।

ताही को मूरख या जग मैं सब कोउ अनुमानैं ॥

छल मैं पातक होत जदपि यह शास्त्रन मैं बहु गायो ।

पै अरि सों छल किए दोष नहि मुनिजन यहै बतायो ॥

(तीसरे अंक की समाप्ति और चौथे अंक के आरंभ में)

ठुमरी

तिनको न कछु कबहूँ बिगरे,

गुरु लोगन को कहनो जे करैं ।

जिनको गुरु पंथ दिखावत है

ते कुपंथ पै भूलि न पाव धरैं ॥

जिनको गुरु रच्छत आप रहैं

ते बिगारे न बैरिन के बिगारैं ।

गुरु को उपदेश सुनौ सब ही,

जग कारज जासों सबै सँभारैं ॥

(चौथे अंक की समाप्ति और पाँचवें अंक के आरंभ में)

परबी

करि मूरख मित्र मिताई, फिर पछितैहौ रे भाई ।

अंत दगाखैहौ सिर धुनिहौ रहि हो सबै गँवाई ॥

१. महाबली वाराह शरीरधारी स्वयं श्रीविष्णु, जिनके दृष्टांत पर प्रलय में निमग्ना पृथ्वी ठहरी हुई थी, तथा बड़े भाई का अनुयायी ऐश्वर्यशाली राजा चंद्रगुप्त बहुत दिनों तक पृथ्वी की रक्षा करते रहे, जिस राजमूर्ति की दोनों दृढ़ भुजाओं में म्लेच्छों से उत्पीड़ित होकर वह आश्रय पा रही है ।

मूरख जो कछु हितहु करै तो तामैं अंत बुराई ।
 उलटो उलटो काज करत सब दैहै अंत नसाई ॥
 लाख करी हित मूरख सों पै ताहि न कछु समुझाई ।
 अंत बुराई सिर पै ऐंहे रहि जैहो मुँह बाई ॥

फिर पछितैहौ रे भाई ॥
 (पाँचवें अंक की समाप्ति और छठे अंक के आरंभ में)
 काफी ताल होली का

छलियन सों रहो सावधान नहिं तो पछताओगे ।
 इनकी बात मैं फँसि रहिहौ सबहि गँवाओगे ॥
 स्वारथ लोभी जन सों आखिर दगा उठाओगे ।
 तब सुख पैहौ जब साँचन सों नेह बढ़ाओगे ॥

छलियन सों ॥
 (छठे अंक की समाप्ति और सातवें अंक के आरंभ में)
 ('जिनके मन में सिय राम बसे' इस धुन की)
 जग सूरज चंद टरै तो टरै पै

न सजन नेहु कबौ बिचलै ।
 धन संपति सर्वस गेह नसै

नहिं प्रेम की मेड़ सो एड़ टले ॥
 सतवादिन कों तिनका सम प्रात
 रहे तो रहे वा ढलै तो ढलै ॥

निज मीत की प्रीत प्रतीत रहौ
 इक और सबै जग जाउ भलै ॥

(अंत में गाने को)

उद्दिहाग— श्लोक के अर्थ के अनुसार)

हौर हरि रूप सबै जग बाधा ।
 जा सरूप सों धरनि उधारी निज जन कारज साधा ॥
 जिमि जव दाढ़ अंग्र लै राखी महि असुर गिरायो ।
 कनक दृष्टि म्लेच्छन हूँ तिमि किन अब लौं मारि नसायो ॥
 आरज राज रूप तुम तासों माँगत यह बरदाना ।
 प्रजा कुमुदगन चंद्रनृपति को करहु सकुल कल्याणा ॥

(बिहाग दुमरी)

पूरी अमी की कटोरिया सी
 चिरजीओ सदा विकटोरिया रानी ।
 सूरज चंद प्रकास कर जब लौं
 रहै सात हूँ सिंधु में पानी ॥
 राज करी सुख सों तब लौं निज
 पुत्र औ पौत्र समेत सयानी ।
 पाली प्रजागन को सुख सों जग
 कीरति मान करै गुन गानी ॥

(कलिंगड़ा)

लहौ सुन सब विधि भारतवासी ।
 विद्या कला जगत को सीखौ तजि आलस की फाँसी ॥
 अपनो देश धरम कुल समुझहु छोड़ि वृत्ति निज दासी ।
 उद्यम करिकैं होहु एकमति निज बल बुद्धि प्रकासी ॥
 पंचपीर की भगति छोड़ि कै ह्वै हरिचरन उपासी ।
 जग के और नरन सम येऊ होउ सबै गुनरासी ॥

उपसंहार— (ख)

इस नाटक के विषय में विलसन साहिब लिखते हैं कि यह नाटक और नाटकों से अति विचित्र है, क्योंकि इसमें संपूर्ण राजनीति के व्यवहारों का वर्णन है । चंद्रगुप्त (जो यूनानी लोगों का सैंद्रोकोतस sandrocottus है) और पाटलिपुत्र (जो यूरप की पालीबोत्तरा Palibothra है) के वर्णन का ऐतिहासिक नाटक होने के कारण यह विशेष दृष्टि देने के योग्य है ।

इस नाटक का कवि विशाखदत्त, महाराज पृथु का पुत्र और सामंत बटेश्वरदत्त का पौत्र था । इस लिखने से अनुमान होता है कि दिल्ली के अंतिम हिंदू राजा पृथ्वीराज चौहान ही का पुत्र विशाखदत्त है, क्योंकि अंतिम श्लोक से विदेशी शत्रु की जय की ध्वनि पाई जाती है, भेद इतना ही है कि रायसे में पृथ्वीराज के पिता का नाम सोमेश्वर और दादा का आनंद लिखा है । मैं यह अनुमान करता हूँ कि सामन्त बटेश्वर इतने बड़े नाम को कोई शीघ्रता में या लघु करके कहे तो सोमेश्वर हो सकता है और संभव है कि चंद ने भाषा में सामंत बटेश्वर को ही सोमेश्वर लिखा हो ।

मेजर विल्फर्ड ने मुद्राराक्षस के कवि का राम गोदावरी तीर निवासी अनंत लिखा है, किंतु वह केवल भ्रममात्र है । जितनी प्राचीन पुस्तकें उत्तर वा दक्षिण में मिलीं, किसी में अनंत का नाम नहीं मिला है ।

इस नाटक पर बटेश्वर मेथिल पंडित की एक टीका भी है । कहते हैं कि गुहसेन नामक किसी अपर पंडित की भी एक टीका है, किंतु देखने में नहीं आई । महाराज तंजौर के पुस्तकालय में व्यासराज यज्वा की एक टीका और है ।

चंद्रगुप्त^१ की कथा विष्णुपुराण, भागवत और पुराणों में और बृहत्कथा में वर्णित है । कहते हैं कि

१. प्रियदर्शी-प्रियदर्शन, चंद्र, चंद्रगुप्त, श्रीचंद्र, चंद्रश्री, मौर्य यह सब चंद्रगुप्त के नाम हैं, और चाणक्य, विष्णुगुप्त, द्रोमिल या द्रोहिण, अशुल, कोटिल्य यह सब चाणक्य के नाम हैं ।

विकटपल्ली के राजा चंद्रदास का उपाख्यान लोगों ने इन्हीं कथाओं से निकाल लिया है ।

महानंद अथवा महापद्मनंद भी शुद्र के गर्भ से था, और कहते हैं कि चंद्रगुप्त इसकी एक नाइन स्त्री के पेट से पैदा हुआ था । यह पूर्वपीठिका में लिख आए हैं कि इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र थी । इस पाटलिपुत्र (पटने) के विषय में यहाँ कुछ लिखना अवश्य हुआ । सूर्यवंशी सुदर्शन^१ राजा की पुत्री पाटली ने पूर्व में इस नगर को बसाया । कहते हैं कि कन्या को बंध्यापन के दुःख और दुर्नाम से छुड़ाने को राजा ने एक नगर बसाकर उसका नाम पाटलिपुत्र रख दिया था । वायुपुराण में 'जरासंध' के पूर्वपुरुष वसु राजा ने बिहार प्रांत का राज्य संस्थापन किया यह लिखा है । कोई कहते हैं कि 'वेदों' में जिस वसु के यज्ञों का वर्णन है वही राज्यगिरि राज्य का संस्थापक है जो लोग चरणाद्रि को राज्यगुह का पर्वत बतलाते हैं उनको केवल भ्रम है । इस राज्य का आरंभ चाहे जिस तरह हुआ हो पर जरासंध ही के समय से यह प्रख्यात हुआ । मार्टिन साहब ने जरासंध ही के विषय में एक अपूर्व कथा लिखी है । वह कहते हैं कि जरासंध दो पहाड़ियों पर दो पैर रखकर द्वारका में जब स्त्रियाँ नहाती थीं तो ऊँचा होकर उनको धूरता था । इसी अपराध पर श्रीकृष्ण ने उसको मरवा डाला ।

मगध शब्द मग से बना है । कहते हैं कि 'श्रीकृष्ण के पुत्र साँव ने शाकद्वीप से मग जाति के ब्राह्मणों को अनुष्ठान करने को बुलाया था और वे जिस देश में बसे उसकी मगध संज्ञा हुई ।' जिन अंगरेज विद्वानों ने 'मगध देश' शब्द को मद्र (मध्यप्रदेश) का अपभ्रंश माना है उन्हें शुद्र भ्रम हो गया है जैसा कि मेजर विलफर्ड पालीबोत्रा को राजमहल के पास गंगा और कोसी के संगम पर बतलाते और पटने का शुद्र नाम पद्मावती कहते हैं । यो तो पाली इस नाम के कई शहर हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध हैं किंतु पालीबोत्रा पाटलिपुत्र ही है । सोन के किनारे मावलीपुर एक स्थान है जिसका शुद्र नाम महाबलीपुर है । महाबली नंद का नामांतर भी है, इसी से और वहाँ प्राचीन चिन्ह मिलने से कोई-कोई शंका करते हैं कि बलीपुर वा

बलीपुत्र का पालीबोत्रा अपभ्रंश है, किंतु यह भी भ्रम ही है । राजाओं के नाम से अनेक ग्राम बसते हैं इसमें कोई हानि नहीं, किंतु इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र ही थी ।

कुछ विद्वान का मत है कि मग लोग मिश्र से आए और यहाँ आकर Siris और Osiris नामक देव और देवी की पूजा प्रचलित की । यह दोनों शब्द ईश और ईश्वरी के अपभ्रंश बोध होते हैं । किसी पुराण में 'महाराज दशरथ के शाक-द्वीपियों को बुलाया' यह लिखा है । इस देश में पहले काल और चेरु (चोल) लोग बहुत रहते थे । शतुक और अजक इस वंश में प्रसिद्ध हुए । कहते हैं कि ब्राह्मणों ने लड़कर इन दोनों को निकाल दिया । इसी इतिहास से भुईहार जाति का भी सूत्रपात होता है और जरासंध के यज्ञ से भुईहारों की उत्पत्तिवाली किवंदती इसका पोषण करती है । बहुत दिन तक ये युद्धप्रिय ब्राह्मण यहाँ राज्य करते रहे । किंतु एक जैन पंडित 'जो ८०० वर्ष ईसामसीह के पूर्व हुआ है' लिखता है कि इस देश के प्राचीन राजा को मग नामक राजा ने जीतकर निकाल दिया । कहते हैं कि बिहार के पास बारागंज में इसके किले का चिन्ह भी है । यूनानी विद्वानों और वायु पुराण के मत से उदयाश्व ने मगधराज की संस्थापन किया । इसका समय ५५० ई. पू. बतलाते हैं और चंद्रगुप्त को इससे तेरहवाँ राजा मानते हैं । यूनानी लोगों ने सोन का नाम Eranobaos (इरन्नोबओस) लिखा है, यह शब्द हिरण्यवाह का अपभ्रंश है । हिरण्यवाह, स्वर्णनंद और शोण का अपभ्रंश सोन है । मेगास्थनीज अपने लेख में पटने के नगर को ८० स्टेडिया (आठ मील) लंबा और १५ चौड़ा लिखता है, जिससे स्पष्ट होता है कि पटना पूर्वकाल ही से लंबा नगर है^२ । उसने उस समय नगर के चारों ओर ३० फुट गहरी खाई, फिर ऊँची दीवार और उसमें ५७० बुर्ज और ६४ फाटक लिखे हैं । यूनानी । लोग जो इस देश को (Prassi) प्रास्सि कहते हैं वह पलाशी का अपभ्रंश बोध होता है, क्योंकि जैनग्रंथों में उस भूमि के पलाशवृक्ष से आच्छादित होने का वर्णन दिया गया है ।

जन और बौद्धों से इस देश से और भी अनेक संबंध

१. सुदर्शन सहस्रबाहु अर्जुन का भी नामांतर था, किसी किसी ने भ्रम से पाटली को शुद्रक की कन्या लिखा है ।

२. जिस पटने का वर्णन उस काल के यूनानियों ने उस समय इस धूम से किया है उसकी वर्तमान स्थिति यह है । पटने का जिला २४° ५८' से ५२° ४२' लैटि. और ८४° ४४' से ८६° ०५' लॉगि. पृथ्वी

हैं। मसीह के छः सौ बरस पहले बुद्ध पहले पहल राजगृह ही में उदास होकर चले गए थे। उस समय इस देश की बड़ी समृद्धि लिखी है और राजा का नाम विविसार लिखा है। (जैन लोग अपने बीसवें तीर्थंकर सुव्रत स्वामी का राजगृह में कल्याणक भी मानते हैं) विविसार ने राजधानी के पास ही इनके रहने को कलद नामक विहार भी बना दिया था। फिर अजातशत्रु और अशोक के समय में भी बहुत से स्तूप बने। बौद्धों के बड़े बड़े धर्मसमाज इस देश में हुए। उस काल में हिंदू लोग इस बौद्ध धर्म के अत्यंत विद्वेष्टी थे। क्या आश्चर्य कि बुद्धों के द्वेष ही से मगध देश को इन लोगों ने अपवित्र ठहराया हो और गौतम की निंदा ही के हेतु अहल्या की कथा बनाई हो।

भारत नक्षत्री राजा शिवप्रसाद साहब ने अपने इतिहास तिमिरनाशक के तीसरे भाग में इस समय और देश के विषय में जो लिखा है वह हम पीछे प्रकाशित करते हैं। इससे बहुत सी बातें उस समय की स्पष्ट हो जायेंगी।

प्रसिद्ध यात्री हिआनसांग सन् ६३७ ई. में जब भारतवर्ष में आया था तब मगध देश हर्षवर्द्धन नामक कन्नौज के राजा के अधिकार में था। किंतु दूसरे इतिहास-लेखक सन् २०० से ४०० तक बौद्ध कर्णवंशी राजाओं को मगध का राजा बतलाते हैं और अंध्रवंश का भी राज्य बिह्न संभलपुर में दिखाते हैं।

सन् १२९२ ई. में पहले इस देश में मुसलमानों का राज्य हुआ। उस समय पटना बनारस के बंदावत

राजदूत राजा इन्द्रदमन के अधिकार में था। सन् १२२५ में अलतिमश ने गयासुद्दीन को मगध प्रांत का स्वतंत्र सुवेदार नियत किया। इसके थोड़े ही काल पीछे फिर हिंदू लोग स्वतंत्र हो गए। फिर मुसलमानों ने लड़कर अधिकार किया सही, किंतु भगड़ा नित्य होता रहा, यहाँ तक कि सन् १३९३ में हिंदू लोग स्वतंत्र रूप में फिर यहाँ के राजा हो गए और तीसरे महमद की बड़ी भारी हार हुई। यह दो सौ बरस का समय भारतवर्ष का पैलेस्टाइन का समय था। इस समय में गया के उद्धार के हेतु कई महाराणा उदयपुर के देश को छोड़कर लड़ने आए^१ थे और पंजाब से लेकर गुजरात दक्षिण तक के हिंदू मगध देश में जाकर प्राण त्याग करना बड़ा पुण्य समझते थे। प्रजापाल नामक एक राजा ने सन् १४०० के लगभग बीस बरस मगध देश को स्वतंत्र रखा। किंतु आर्यमत्सरी दैव ने यह स्वतंत्रता स्थिर नहीं रखी और पुण्यधाम गया फिर मुसलमानों के अधिकार में चला गया। सन् १४७८ तक यह प्रदेश जौनपुर के बादशाह के अधिकार में रहा। फिर बहलूलवंश ने इसको जीत लिया था, किंतु १४९१ में हुसैनशाह ने फिर जीत लिया। इसके पीछे बंगाल के पाठानों से और जौनपुर वालों से कई लड़ाई हुई और सन् १४९४ में दोनों राज्य में एक सुलहनामा हो गया। इसके पीछे सूर लोगों का अधिकार हुआ और शेरशाह ने बिहार छोड़कर पटने को राजधानी किया। सूरों के पीछे क्रमान्वय से (१५७५ ई.) यह देश मुगलों के अधीन

२१०१ मील समचतुकोण १५५९६३८ मनुष्य-संख्या। पटने की सीमा उत्तर गंगा, पश्चिम गंगा, पश्चिम सोन, पूर्व का मुँगिर का जिला और दक्षिण गया का जिला। नगर की बस्ती अब सवा तीन लाख मनुष्य और बावन हजार घर हैं। साढ़े आठ लाख मन के लगभग बाहर से प्रति वर्ष यहाँ माल आता और पाँच लाख मन लग भग जाता है। हिंदुओं में छः जातियाँ यहाँ विशेष हैं। यथा एक लाख अस्सी हजार ग्वाला, एक लाख सत्तर हजार कुनबी, एक लाख सत्रह हजार भुइँहार, पचासी हजार चमार, अस्सी हजार कोहरी, आठ हजार रातश्त। अब दो लाख के आस-पास मुसलमान पटने के लिले में बसते हैं।

१. गया के भूगोल में पंडित शिवनारायण त्रिवेदी भी लिखते हैं — "औरंगाबाद के तीन कोष अग्निकोण पर देव बड़ी भारी बस्ती है। यहाँ श्रीभगवान् सूर्यनारायण का बड़ा भारी संगीन पश्चिम रुख का मंदिर है। यह मंदिर देखने से बहुत प्राचीन जान पड़ता है। यहाँ कालिक और चैत की छठको बड़ा मेला लगता है। दूर-दूर के लोग यहाँ आते और अपने लड़कों के मुँडन छेदन आदि की मनौती उतारते हैं। मंदिर से थोड़ी दूर दक्खिन बाजार के पूरब और सूर्यकुंड का तालाब है। इस तालाब से सटा थुआ और एक कच्चा तालाब है। उसमें कमल बहुत फूलते हैं। देव राजधानी है। यहाँ के राजा महाराजा उदयपुर के घराने के मड़ियार राजपूत हैं। इस घराने के लोग सिपाहगरी के काम में बहुत प्रसिद्ध होते आये हैं। यहाँ के महाराज श्रीजयप्रकाशसिंह के, श्री. आई. बड़े शूर सुशील और उदार मनुष्य थे। यहाँ से दो कोस दक्खिन कचनपुर में राजा साहिब का बाग और मकान देखने लायक बना है। देव से तीन कोस पूरब उमगा एक छोटी सी बस्ती है, उस के पास पहाड़ के

हुआ और अन्त में जरासंध और चंद्रगुप्त की राजधानी पवित्र पाटलिपुत्र ने आर्य वंश और आर्य नाम परित्याग करके औरंगजेब के पोते अजीमशाह के नाम पर अपना नाम अजीमाबाद प्रसिद्ध किया (१६९७ ई.) बंगाल के सूबेदारों में सबसे पहले सिराजुद्दौला ने अपने को स्वतंत्र समझा था किंतु १७५० की पलासी की लड़ाई में मीर जाफर औरंगजेबों के बल से विहार बंगाला और उड़ीसा का अधिनायक हुआ। किंतु अंत में जगद्विजयी औरंगजेबों ने सन् १७६३ में पूर्व में पटना पर अधिकार करके दूसरे बरस की बकसर प्रसिद्ध लड़ाई जीतकर स्वतंत्र रूप से सिंहबिन्द की ध्वजा की छाया के नीचे इस देश के प्रांत मात्र को हिंदोस्तान के मानचित्र में लाल रंग के स्थापित कर दिया।

जस्टिन (Justin) कहता है^१ — सद्रकुत्तम महापराक्रमी था। असंख्य सैन्य संग्रह करके विरुद्ध लोगों का इतने सामना किया था। डियोडोरस सिक्यूलस (Deodorus Siculus) कहता है^२ — प्राच्य देश के राजा चंद्रमा के पास २०००० अश्व, २०००० पदाति, २००० रथ और ४००० हाथी थे। यद्यपि यह Xandramas शब्द चंद्रमा का अपभ्रंश है, किंतु कई भ्रांत यूनानियों ने नंद को भी इसी नाम से लिखा है। क्विंतस करशियस (Quintus Curtius) लिखता है —^(३) चंद्रमा के क्षौरकार पिता ने पहले मगधराज को फिर उसके पुत्रों को नाश करके रानी के गर्भ में अपने उत्पन्न किए हुए पुत्र को गद्दी पर बैठाया। स्ट्राबो (Strabo) कहता है —^(४) सेल्यूकस ने मेगास्थनीज को सद्रकुत्तम के निकट भेजा और अपना भारवर्षीय समस्त राज्य देकर उससे संधि कर ली। ओरियन Orriun लिखता है —^(५)

मेगास्थनीज अनेक बार सद्रकुत्तम की सभा में गया था।^(६) प्लूटार्क (Plutarch) ने चंद्रगुप्त को दो लाख सेना का नायक लिखा है। इस सब लेखों को पौराणिक वर्णनों से मिलाने से यद्यपि सिद्ध होता है कि सिकंदरकृत पुरु पराजय के पीछे मगधराज मंत्री द्वारा निहत हुए और उनके लड़के भी उसी गति को पहुँचे और उसके पीछे चंद्रगुप्त राजा हुआ, किंतु बहुत से यूरानी लेखकों ने चंद्रगुप्त की पट्टरानी के गर्भ में क्षौरकार से उत्पन्न लिखकर व्यर्थ अपने को भ्रम में डाला है। चंद्रगुप्त क्षत्रिय वीर्य से दासी में उत्पन्न था यह सर्वसाधारण का सिद्धान्त है।^(७) इस क्रम से ३२७ ई. पू. में नंद का मरण और ३१४ ई. पू. में चंद्रगुप्त का अभिषेक निश्चय होता है। पारस देश की कुमारी के गर्भ से सिल्यूकस को जो एक अति सुन्दर कन्या हुई थी वही चंद्रगुप्त को दी गई। ३०२ ई. पू. में यह संधि और विवाह हुआ, इसी कारण अनेक यवनसेना चंद्रगुप्त के पास रहती थी। २९२ ई. पू. में चंद्रगुप्त २४ बरस राज्य करके मरा।

चंद्रगुप्त के इस मगधराज्य को आइनेअकबरी में मकता लिखा है। डिग्विग्नेस (Deguignes) कहता है कि चीनी मगध देश के मकियात कहते हैं। केंफर (Kemfer) लिखता है कि जापानी लोग उसको मगत् कफ कहते हैं। (कफ शब्द जापानी में देशवाची है)। प्राचीन फारसी लेखकों ने इस देश का नाम मावाद वा मुवाद लिखा है। मगधराज्य में अनुगांग प्रदेश मिलने ही से लिब्यतवाले इस देश को अनुखेक वा अनोनखेक कहते हैं और तातारवाले इस देश को एनाकाक लिखते हैं।

सिसली डिडोरस ने लिखा है कि मगधराजधानी

ऊपर देव के सूर्यमंदिर के ढंग का एक महादेव का मंदिर है। पहाड़ के नीचे एक टूटा गढ़ भी देख पड़ता है। जान पड़ता है कि पहले राजा देव के घराने के लोग यहाँ ही रहते थे, पीछे देव मोँ बसे। देव और उमगा दोनों इन्हीं की राजधानी थी, इससे दोनों नाम साथ ही बोले जाते (देवमूंगा) तिल संक्रांति को उमगा में बड़ा मेला लगता है।^१ इससे स्पष्ट हुआ है कि उदयपुर के जो राजा लोग आए उन्हीं के खानदान में देव के राजपूत हैं। और विहारदर्पण से भी यह बात पाई जाती है कि मड़ियार लोग मेवाड़ से आए हैं!

१. Justin His. Phellipp Lib XV Chap. IV.

२. Deodorus Siculus XVII. . 93.

३. Quintus Curtius IX. 2.

४. Strabo XV. 2.9.

५. Orriun Indica X. 5.

६. Plutarch Vita Alexanbri O. 62.

७. टाड आद कई लोगों का अनुमान है कि मोरी वंश के चौहान जो बापाराव के पूर्व चितौर के राजा थे वे भी मोर्य थे। क्या चंद्रगुप्त चौहान था? या ये मोरा सब शुद्र थे?

पालीपुत्र भारतवर्षीय हर्क्यूलस (हरिकुल) देवता द्वारा स्थापित हुई। सिसरो ने हर्क्यूलस (हरिकुल) देवता का नामांतर बेलस (बलः) लिखा है। बल शब्द बलदेव जी का बोध करता है और इन्ही का नामांतर बली भी है। कहते हैं कि निम्न पुत्र अंगद निमित्त बलदेव जी ने यह पुरी निर्माण की, इसी से बलीपुत्रपुरी इसका नाम हुआ। इसी से पालीपुत्र और फिर पाटलीपुत्र हो गया। पाली भाषा, पाली धर्म, पाली देश इत्यादि शब्द भी इसी से निकले हैं। कहते हैं कि बाणासुर के बसाए हुए जहाँ तीन पुर थे उन्हीं को जीतकर बलदेव जी ने अपने पुत्रों के हेतु पुर निर्माण किए। यह तीनों नगर महाबलीपुर इस नाम से एक मद्रास हाते में, एक विदर्भदेश में (मुजफ्फरपुर वर्तमान नाम) और एक (राजमहल वर्तमान नाम) बंगदेश में है। कोई कोई बालेश्वर, मैसूर, पुरनियाँ प्रभृति को भी बाणासुर की राजधानी बतलाते हैं। यहाँ एक बात बड़ी विचित्र प्रकट होती है। बाणासुर भी बलीपुत्र है। क्या आश्चर्य है कि पहले उसी के नाम से बलीपुत्र शब्द निकला हो। कोई नंद ही का नामांतर महाबली कहते हैं और कहते हैं कि पूर्व में गंगा जी के किनारे नंद ने केवल एक महल बनाया था, उसके चारों ओर लोग धीरे-धीरे बसने लगे और फिर वह पत्तन (पटना) हो गया। कोई महाबली के पितामह उदसी, उदासी, उदय, श्रीउदयसिंह (?) ने ४५० ई. पू. इसको बसाया मानते हैं। कोई पाटलि देवी के कारण पाटलिपुत्र मानते हैं।

विष्णुपुराण और भागवत में महापद्म के बड़े लड़के का नाम सुमाल्य लिखा है। बुद्धकथा में लिखते हैं कि शकटाल ने इंद्रदत्त का शरीर जला दिया इससे योगानंद (अर्थात् नंद के शरीर में इंद्रदत्त की आत्मा) फिर राजा हुआ। व्याडि जाने के समय शकटाल को नाश करने का मंत्र दे गया था। दररुचि मंत्री हुआ किंतु योगानंद ने मदमत होकर उसको नाश करना चाहा उससे वह शकटाल के घर में छिपा। उसकी स्त्री उपकोशा पति को मृत समझकर सती हो गई। योगानंद के पुत्र हिरण्यगुप्त के पागल होने पर वररुचि फिर राजा के

हुँदिराज पंडित लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि नंदों में मुख्य था। इसको दो स्त्रियाँ थी। सुनंदा बड़ी थी और पास गया था, किंतु फिर तपोवन में चला गया। फिर शकटाल के कौशल से चाणक्य नंद के नाश का कारण हुआ। उसी समय शकटाल ने हिरण्यगुप्त जो कि योगानंद का पुत्र था उसको मार कर चंद्रगुप्त को जो कि असली नंद का पुत्र था, गद्दी पर बैठाया।

दूसरी शूद्रा थी, उसका नाम मुरा था। एक दिन राजा दोनों रानियों के साथ एक ऋषि के यहाँ गया और ऋषि कृत मार्जन के समय सुनंदा पर नौ और मुरा पर एक छोट पानी की पड़ी। मुरा ने ऐसी भक्ति से उस जल को ग्रहण किया कि ऋषि से प्रसन्न होकर वरदान दिया। सुनंदा को एक मांसपिंड और मुरा को मोर्य उत्पन्न हुआ। राक्षस ने मांसपिंड काटकर नौ टुकड़े किया, जिससे नौ लड़के हुए। मोर्य को सौ लड़के थे, जिसमें चन्द्रगुप्त सबसे बड़ा बुद्धिमान था। सर्वार्थसिद्धि ने नंदों को राज्य दिया और आप तपस्या करने लगा। नंदों ने ईर्ष्या से मोर्य और उसके लड़कों को मार डाला, किंतु चंद्रगुप्त चाणक्य ब्राह्मण के पुत्र विष्णुगुप्त की सहायता से नंदों को नाश करके राजा हुआ।

यों ही भिन्न भिन्न कवियों और विद्वानों ने भिन्न भिन्न कथाएँ लिखी हैं। किंतु सबके मूल का सिद्धान्त पास पास एक ही आता है।

इतिहास तिमिरनाशक में इस विषय में जो कुछ लिखा है वह नीचे प्रकाश किया जाता है।

विंविसार को उसके लड़के अजातशत्रु ने मार डाला। मालूम होता है कि यह फसाद ब्राह्मणों ने उठाया। अजातशत्रु बौद्ध मत का शत्रु था। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध आश्वस्ती में रहने लगा। यहाँ भी प्रसेनजित को उसके बेटे ने गद्दी से उठा दिया : शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कपिलवस्तु में गया।

अजातशत्रु की दुश्मनी बौद्ध मत से धीरे धीरे बहुत कम हो गई। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध फिर मगध में गया। पटना उस समय एक गाँव था, वहाँ हरकारों की चौकी में ठहरा। वहाँ से विशाली १ में गया। विशाली की रानी एक वेश्या थी। वहाँ से पावा गया, वहाँ से

१ जैनी महावीर के समय विशाली अथवा विशाला का राजा चेटक बतलाते हैं। यह जगह पटने के उत्तर तिरहुत में है : उजड़ गई है। वहाँ वाले अब उसे बसहर पुकारते हैं।

जैनी यहाँ महावीर का निर्वाण बतलाते हैं, पर जिस जगह को अब पावापुर मानते हैं असल में वह नहीं है : पावा विशाली से पश्चिम और गंगा ने उत्तर होनी चाहिए।

जैन अपने चौबीसवें अर्थात् सबसे पिछले तीर्थंकर महावीर का निर्वाण विक्रम के संवत् से ४७० अर्थात् सन् ईसवी से ५२७ बरस बतलाते हैं और महावीर के निर्वाण से २५० बरस पहले अपने तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ

कुशीनार गया। बौद्धों के लिखने बमूजिव उसी जगह सन् ईसवी ४४३ वरस पहले ८० वरस की उमर में साल के वृक्ष के नीचे बाईं करवट लेते हुए इसका निर्वाण हुआ। काश्यप उसका जानशीन हुआ। अजातशत्रु के पीछे तीन राजा अपने बाप को मारकर मगध की गद्दी पर बैठे, यहाँ तक कि प्रजा ने घबराकर विशाली की वेश्या के बेटे शिशुनाग मंत्री को गद्दी पर बैठा दिया। वह बड़ा बुद्धिमान था। इसके बेटे काल अशोक ने, जिसका नाम ब्राह्मणों ने काकवर्ण भी लिखा है, पटना अपनी राजधानी बनाया।

जब सिकंदर का सेनापति बाबिल का बादशाह सिल्यूकस सूबेदारों के तदारुक को आया, पटने से सिंधु किनारे तक नंद के बेटे चंद्रगुप्त के अमल दखल में पाया, बड़ा बहादुर था, शेर ने इसका पसीना चाटा था और जंगली हाथी ने इसके सामने सिर झुका दिया था।

पुराणों में विविसार को शिशुनागर के बेटे काकवर्ण का परपोता बतलाया है और नंदिवर्दन को विविसार के बेटे अजातशत्रु का परपोता; और कहा है कि नंदिवर्दन का बेटा महानंद और महानंद का बेटा शुद्धी से महापद्मनंद और इसी महापद्मनंद और उसके आठ लड़कों के बाद जिन्हें नवनंद कहते हैं, चंद्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा। बौद्ध कहते हैं कि तक्षशिला के रहनेवाले चाणक्य ब्राह्मण ने धननंद को मार के चंद्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया और वह मौरिया नगर के राजा का लड़का था और उसी जाति का था जिसमें शाक्यमुनि गौतम बुद्ध पैदा हुआ।

मेगस्थनीज लिखता है कि पहाड़ों में शिव और

मैदान में विष्णु पुजाते हैं, पुजारी बदन रंग कर और सिर में फूलों की माला लपेटकर घंटा और भण्ड बजाते हैं। एक वर्ण का आदमी दूसरे वर्ण की स्त्री व्याह नहीं सकता है और पेशा भी दूसरे का इख्तियार नहीं कर सकता है। हिंदू घुटने तक जामा पहनते हैं और सिर और कंधों पर कपड़ा रखते हैं। जूते उनके रंग वरंग के चमकवार और कारचोबी के होते हैं। बदन पर अकसर गहने, भौं मिहंदी से रंगते हैं और दाढ़ी मूछ पर खिजाव करते हैं। छतरी, सिवाय बड़े आदमियों के और कोई नहीं लगा सकता। रथों में लड़ाई के समय घोड़े और मजिल काटने के लिए बैल जोते जाते हैं। हाथियों पर भारी जर्दोजी भूल डालते हैं। सड़कों की मरम्मत होती है, पुलिस का अच्छा इतिजाम है। चंद्रगुप्त के लश्कर में औसत चोरी तीस रुपये रोज से जियादा नहीं सुनी जाती है। राजा जमीन की पैदावार से चौथाई लेता है।

चंद्रगुप्त सन् ई. के ९१ वरस पहले मरा। उसके बेटे बिंदुसार के पास यूनानी एलची दयोमेकस (Diamachos) आया था परंतु वायुपुराण में उसका नाम भद्रसार और भागवत में बारिसार और मत्स्यपुराण में शायद बृहद्रथ लिखा है। केवल विष्णुपुराण बौद्ध ग्रंथों के साथ बिंदुसार बतलाता है। उसके १६ रानी थीं और उनसे १०१ लड़के, उनमें अशोक^३ जो पीछे से 'धर्मअशोक' कहलाया, बहुत तेज था, उज्जैन का नाजिम था। वहाँ के एक सेठ^(४) की लड़की देवी उससे व्याही थी, उसी से महेन्द्र लड़का और संचमिता (जिसे सुमित्रा भी कहते हैं) लड़की हुई थी।



का निर्वाण मानते हैं।

* कैसे आश्चर्य की बात है, चेटक रंढी के भड़वे को भी कहते हैं। (हरिश्चंद्र)

१. चंदन इत्यादि लगाकर।

२. अर्थात् पगड़ी दुपट्टा।

३. जैनियों के ग्रंथों में इसी का नाम अशोक भी लिखा है।

४. सेठ श्रेष्ठों का अपभ्रंश है, अर्थात् जो सबसे बड़ा हो।

सत्य हरिश्चन्द्र

सन् १८७६ में निउ मेडिकल हाल प्रेस, बनारस से छपा यह नाटक सम्भवतः बच्चों के लिए लिखा गया था। संस्कृत साहित्य में आर्य क्षेमेश्वर कृत चंडकौशिक और रामचंद्र कृत सत्य हरिश्चन्द्र नाम के दो रूपक मिलते हैं। जो राजा हरिश्चंद्र की आख्यायिका को लेकर लिखे गये हैं। भारतेन्दु का यह नाटक इन दोनों में से किसी का अनुवाद तो नहीं था। पर पहले का कुछ भाग इसमें अनुदित अवश्य है।

— सं.

सत्य हरिश्चन्द्र

एक रूपक

चार खेलों में

चन्द्रावली इत्यादि नाटकों के कवि

श्री हरिश्चन्द्र

लिखित

श्रीयुक्त बाबू बालेश्वरप्रसाद बी. ए.

की आज्ञानुसार

काशी पत्रिका नामक पाक्षिक हिन्दी पत्र से

संगृहीत होकर

बनारस

निउ मेडिकल हाल प्रेस में छापा गया

सन् १८७६ ई.

उपक्रम

मेरे मित्र बाबू बालेश्वरप्रसाद बी. ए. ने मुझ से कहा कि आप कोई ऐसा नाटक भी लिखें जो लड़कों को पढ़ने पढ़ाने के योग्य हो क्योंकि शृंगार रस के आप ने जो नाटक लिखे हैं वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं लड़कों को उनसे कोई लाभ नहीं। उन्होंने की इच्छानुसार मैंने यह सत्य हरिश्चन्द्र नामक रूपक लिखा है। इस में सूर्य कुल सम्भूत राजा हरिश्चन्द्र की कथा है। राजा हरिश्चन्द्र सूर्य वंश का अट्ठाइसवाँ राजा रामचन्द्र के ३५ पीढ़ी पहले राजा त्रिशंकु का पुत्र था। इसने शौमपुर नामक एक नगर बसाया था और बड़ा ही दानी था। इसकी कथा शास्त्रों में बहुत प्रसिद्ध है और संस्कृत में राजा महिपाल देव के समय में आर्य्य क्षेमेश्वर कवि ने चंडकौशिक नामक नाटक इन्हीं हरिश्चन्द्र के चरित्र में बनाया

है। अनुमान होता है कि इस नाटक को बने चार सौ बरस से ऊपर हुए क्योंकि विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्य ग्रंथ में इसका नाम लिखा है। कौशिक विश्वामित्र का नाम है। हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र दोनों शब्द व्याकरण की रीति से स्वयं सिद्ध हैं। विश्वामित्र कान्यकुब्ज का क्षत्रिय राजा था। वह एक बेर संयोग से वशिष्ठ के आश्रम में गया और जब वशिष्ठ ने सैन समेत उसकी जाफत अपनी शबला नाम की कामधेनु गऊ के प्रताप से बड़े धूमधान से की तो विश्वामित्र ने वह कामधेनु लेनी चाही। जब हजारों हाथी, घोड़े और गऊ के बदले भी वशिष्ठ ने गऊ न दी तो विश्वामित्र ने गऊ छीन लेनी चाही। वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने विश्वामित्र की सब सेना नाश कर दिया और विश्वामित्र के सौ पुत्र भी वशिष्ठ ने शाप से जला दिए। विश्वामित्र इस

पराजय से उदास होकर तप करने लगे और महादेव जी से वरदान में सब अस्त्र पाकर फिर वशिष्ठ से लड़ने आए। वशिष्ठ ने मंत्र के बल से एक ऐसे ब्रह्म दंड खड़ा कर दिया कि विश्वामित्र के सब अस्त्र निष्फल हुए। डार कर विश्वामित्र ने सोचा कि अब तप कर के ब्राह्मण होना चाहिए और तप कर के अंत में ब्राह्मण और ब्रह्मर्षि हो गए। यह बाल्मीकीय रामायण के आयोध्या कांड के ५२ से ६० सर्ग तक सविस्तार वर्णित है।

जब हरिश्चंद्र के पिता त्रिशंकु ने इसी शरीर से स्वर्ग जाने के हेतु वशिष्ठ जी से कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह अशक्य काम हम से न होगा। तब त्रिशंकु वशिष्ठ के सौ पुत्रों के पास गया और जब उन से भी कोरा जवाब पाया तब कहा कि तुम्हारे पिता और तुम लोगों ने हमारी इच्छा पूरी नहीं किया और हम को कोरा जवाब दिया इससे अब हम दूसरा पुरोहित करते हैं। वशिष्ठ के पुत्रों ने इस बात से रुष्ट होकर त्रिशंकु को शाप दिया कि तू चांडाल होजा। विचारा त्रिशंकु चांडाल बन कर विश्वामित्र के पास गया और दुखी होकर अपना सब हाल वर्णन किया। विश्वामित्र ने अपने पुराने वैर का बदला लेने का अच्छा अवसर सोचकर राजा से प्रतिज्ञा किया कि इसी देह से तुम को स्वर्ग भेजेगे और सब मुनियों को बुलाकर यज्ञ करना चाहा। सब ऋषि तो आए पर वशिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आए और कहा कि जहाँ चांडाल यजमान और क्षत्रिय पुरोहित वहाँ कौन जाय। क्रोधी विश्वामित्र ने इस बात से रुष्ट होकर शाप से वशिष्ठ के उन सौ पुत्रों को भस्म कर दिया। यह देखकर और विचारे ऋषि मारे डर के यज्ञ करने लगे। जब मंत्रों से बुलाने से देवता लोग यज्ञ भाग लेने न आए तो विश्वामित्र ने क्रोध से श्रुवा उठाकर कहा कि त्रिशंकु यज्ञ से कुछ काम नहीं तुम हमारे तपोबल से स्वर्ग जाओ। त्रिशंकु इतना कहते ही आकाश की ओर उड़ा। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आना चाहता है तो पुकारा कि अरे तू यहां आने के योग्य नहीं है नीचे गिर। त्रिशंकु यह सुनते ही उलटा होकर नीचे गिरा और विश्वामित्र से त्राहि त्राहि पुकारा। विश्वामित्र ने तप बल से उसको वहां बीच ही में स्थिर रखा। कर्मनाशा नामक नदी त्रिशंकु के ही लार से बनी है। फिर देवताओं पर क्रोध करके विश्वामित्र ने सृष्टि ही दूसरी करनी चाही। दक्षिण ध्रुव के समीप सप्तर्षि और नक्षत्र इन्होंने नए बनाए और बहुत से जीव जंतु फल मूल बनाकर जब

इन्द्रादिक देवता भी दूसरे बनाने चाहे तब देवता लोग डर कर इनसे क्षमा मांगने गए। इन्होंने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रखकर और दक्षिणाकाश में त्रिशंकु को ग्रह की भाँति प्रकाशमान स्थिर रखकर क्षमा किया। यह सब भी रामायण ही में है। फिर एक बेर पानी नहीं बरसा इससे बड़ा काल पड़ा। विश्वामित्र एक चांडाल के घर भीख मांगने गए और जब कुत्ते का मांस पाया तो उसी से देवताओं को बलि दिया। देवता लोग इन के भय से काँप गए और इन्द्र ने उसी समय पानी बरसाया। यह प्रसंग महाभारत के शांति पर्व के १४१ अध्याय में है। फिर हरिश्चन्द्र की विपत्ति सुनकर क्रोध से वशिष्ठ जी ने उनको शाप दिया कि तुम बकुला हो जाओ और विश्वामित्र ने यह सुनकर वशिष्ठ को शाप दिया कि तुम आड़ी हो जाओ। पक्षी बनकर दोनों ने बड़ा घोर युद्ध किया जिससे त्रैलोक्य काँप गया। अन्त में ब्रह्मा ने दोनों से मेल कराया। यह उपाख्यान मारकंडेय पुरान के नवें अध्याय में है। इनकी उत्पत्ति यों है। भृगु ने जब अपने पुत्र च्यवन ऋषि को व्याह किये देखा तो बड़े प्रसन्न हुए और बेटा बहु देखने को उनके घर आए। उन दोनों ने पिता की पूजा किया और हाथ जोड़ कर सामने खड़े हो गए। भृगु ने बहू से कहा कि बेटी बर मांग। सत्यवती ने यह वर मांगा कि मुझे तो वेद शास्त्र जानने वाला और मेरी माता को युद्ध विद्या विशारद पुत्र हो। भृगु ने एवमस्तु कह कर ध्यान से प्राणायाम किया और उनके श्वास से दो चरु उत्पन्न हुए भृगु ने वह बहू को देकर कहा कि यह लाल चरु तो तुम्हारी माता प्रति ऋतु समय में अश्वत्थ का आलिंगन करके खाय और तुम यह सफेद चरु उसी भाँति उदुम्बर का आलिंगन करके खाना। भृगु के वाक्यानुसार सत्यवती ने कनौज के राजा गांधि की स्त्री अपनी माता से कहा। उसकी माता ने यह समझकर कि ऋषि ने अपनी पतोहू को अच्छा बालक होने का चरु दिया होगा जब ऋतु काल आया तब लाल चरु तो कन्या को खिलाया और सफेद आप खाय। भगवान भृगु ने तपोबल से जब यह बात जानी तो आकर बहू से कहा कि तुमने चरु को उलट पुलट किया इससे तुम्हारा लड़का ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय कर्म होगा और तुम्हारा भाई क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हो जायगा सत्यवती ने जब ससुर से अपराध की क्षमा चाही तब उन्होंने कहा कि अच्छा तुम्हारे पुत्र के बदले पौत्र क्षत्रिय कर्मा होगा वही राजा गांधि को विश्वामित्र हुए और च्यवन को जमदग्नि और

जमदग्नि को परशुराम हुए । यह उपाख्यान कालिका
पुराण के ८४ अध्याय में स्पष्ट है ।

इन उपाख्यानों के जानने से इस नाटक के पढ़ने
वाले को बड़ी सहायता मिलेगी । इसी भारतवर्ष में

उत्पन्न और इन्हीं हम लोगों के पूर्व पुरुष महाराजा
हरिश्चन्द्र भी थे और यह समझकर इस नाटक के पढ़ने
वाले कुछ भी अपना चरित्र सुधारेंगे तो कवि का
परिश्रम सुफल होगा ।

समर्पण

नाथ

यह एक नया कौतुक देखो । तुम्हारे सत्यपथ पर चलने वाले कितना कष्ट उठाते
हैं यही उसमें दिखाया गया है । भला हम क्या कहें ? जो हरिश्चन्द्र ने किया वह तो
अब कोई भी भारतवासी न करेगा पर उस वंश ही के नाते इनको भी मानना । हमारी
करतूत तो कुछ भी नहीं पर तुम्हारी तो बहुत कुछ हृष्ट । बस इतनी ही सही । लो सत्य
हरिश्चन्द्र तुम्हें समर्पित है अंगीकार करो । छल मत समझना सत्य शब्द सार्थ है
कुछ पुस्तक के बहाने समर्पण नहीं है ।

जेष्ठ शुद्ध ५ सं. १९३३ ।

तुम्हारा
हरिश्चन्द्र ।

सत्यहरिश्चन्द्र

एक रूपक

करण रस अंगी

भयानक और वीर अंग

चार अंकों में

प्रथम अंक

द्वितीय अंक

तृतीय अंक

चतुर्थ अंक

इन्द्र सभा

हरिश्चन्द्र की सभा

काशी में विक्रय

स्मशान

अथ सत्यहरिश्चन्द्र

(मंगलाचरण)

सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अथ हर सुख कन्द ।

जनहित कमला तजन जय शिव नृप कवि हरिचन्द्र^१ ॥१॥

(नान्दी के पीछे सूत्रधार^२ आता है)

सू.— अहा ! आज की सन्ध्या भी धन्य है कि
पूछ ही नहीं है । केवल उन्हीं की चाह और उन्हीं की

इतने गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं और सबकी
इच्छा है कि हिन्दी भाषा का कोई नवीन नाटक देखें ।
धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहाँ के लोग नाटक किस
चिढ़िया का नाम है इतना भी नहीं जानते थे भला वहाँ
अब लोगों की इच्छा इधर प्रवृत्त हुई । परन्तु हा ! शोच
की बात है कि जो बड़े-२ लोग हैं और जिनके किए कुछ
हो सकता है वे ऐसी अन्धपरम्परा में फँसे हैं और ऐसे
बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं
बात है जिन्हें भूठी खेरखाही दिखाना वा लंबा चौड़ा
गाल बजाना आता है । (कुछ सोच कर क्या हुआ, दंग
पर चला जायगा तौ यों भी बहुत कुछ हो रहेगा । काल
बड़ा बली है, धीरे-२ सब आप से आप ही कर देगा ।
पर भला आज इन लोगों को लीला कौन सी दिखाऊँ ।
(सोच कर) अच्छा उनमें भी तो पूछ लें ऐसे कौतुकों में
पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बुद्धि विशेष लड़ती है ।
(नेपथ्य की ओर देख कर) मोहना ! अपनी भाभी को

१. यह श्लेष शिवजी, राजा हरिश्चन्द्र, श्रीकृष्ण, चन्द्रमा और कवि पांच का वर्णन करता है ।

२. सूत्रधार हरे वा नीले रंग की साटन का कामदार जांधिया पहिने उस के आगे पटुके की तरह

कमरबन्द के दोनों किनारे नीचे ऊपर लटकते हुए, गले में चुस्त सामने बुताम की मिरजाई, ऊपर माला
बगैर और सब गहिने सिर पर टिपारा, पैर में घुंघरू, हाथ में छड़ी, वा पैजामा, काछनी सिर पर मुकुट ।



जरा इधर तो भोजना ।

(नेपथ्य में से — मैं तो आप ही आती थी कहती हुई नटी? आती है)

न. — मैं तो आप ही आती थी । वह एक मनिहारिन आ गई थी उसी के बखेड़े में लग गई, नहीं तो अब तक कभी की आ चुकी होती । कहिए आज जो लीला करनी हो वह पहिले ही से जानी रहै तो मैं और सभी से कह के सावधान कर दूँ ।

सू. — आज का नाटक तो हमने तुम्हारी ही प्रसन्नता पर छोड़ दिया है ।

न. — हम लोगों को तो सत्य हरिश्चन्द्र आज कल अच्छी तरह याद है और उसका खेल भी सब छोटे बड़े को मज रहा है ।

सू. — ठीक है यही हो । भला इससे अच्छा और जौन नाटक होगा । एक तो इन लोगों ने उसे अभी देखा नहीं है, दूसरे आख्यान भी करुणा पूर्ण राजा हरिश्चन्द्र का है, तीसरे उसका कवि भी हम लोगों का एक मात्र जीवन है ।

न. — (लंबी सांस लेकर) हा ! प्यारे हरिश्चन्द्र का संसार ने कुछ भी गुण रूप न समझा । क्या हुआ । कहेंगे सबे ही नैन नीर भरि भरि पाछे प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी रहिजायगी ॥२॥

सू. — इसमें क्या सन्देह है । काशी के पण्डितों ही ने कहा है ॥

सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचंद ।
जिमि सुभाव दिन रैन के कारन नित
हरिचंद^१ ॥३॥^२

और फिर उनके मित्र पंडित शीतला-प्रसाद जी ने इस नाटक के नायक से उनकी समता भी किया है इससे उनके बनाए नाटकों में भी सत्य हरिश्चन्द्र ही आज खेलने को जी चाहता है ॥

न. — कैसी समता मैं भी सुनूँ ।

सू. — जो गुन नृप हरिचन्द्र मैं जगहित सुनियत

कान ।

सो सब कवि हरिचन्द्र मैं लखहु प्रतच्छ सुजान ॥४॥^३

(नेपथ्य में)

अरे !

यहां सत्यभय एक के कांपत सब सुर लोक ।

वह दूजो हरिचन्द्र को करन इन्द्र उर सोक ॥५॥

सू. — (सुनकर और नेपथ्य की ओर देख कर)

यह देखो ! हम लोगों को बात करते देर न हुई कि मोहना इन्द्र बन कर आ पहुंचा । तो अब चलो हम लोग भी तैयार हों ।

(दोनों जाते हैं)

ईत प्रस्तावना



प्रथम अंक

जर्वनिका उठती है

(स्थान इन्द्रसभा, बीच में गद्दी तकिया धरा हुआ, घर सजा हुआ)

(इन्द्र^४ आता है)

इ. — ('यहां सत्यभय एक के' यह दोहा फिर से पढ़ता हुआ इधर उधर घूमता है)

(बारगल^५ आता है)

दा. — महाराज ! नारद जी आते हैं ।

इ. — आने दो अच्छे अवसर पर आए ।

दा. — जो आज्ञा । (जाता है)

इ. — (आप ही आप) नारद जी सारी पृथ्वी पर इधर उधर फिरा करते हैं इनसे सब बातों का पक्का पता लगेगा । हमने माना कि राजा हरिश्चन्द्र को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि उस के धर्म की एक बेर परीक्षा तो लेनी चाहिए ।

(नारदजी^७ आते हैं)

इ. — (हाथ जोड़कर दंडवत करता है)

आइए आइए धन्य भाग्य, आज किधर भूल पड़ ।

१. महाराष्ट्री भेष, कमर पर पेटी कसे, वा मर्दाना कपड़ा पहिने, पर जेवर सब जनाने ।

२. हरि — सूर्य ।

३. "विद्वज्जनप्रतिष्ठा कारणमेवं हरिश्चन्द्रः यद्वत् स्वभावगत्वादिन रात्योर्वा हरिश्चन्द्रः" ।

४. "श्रूयन्ते ये हरिश्चन्द्रे जगदात्मादिनो गुणा । दृश्यन्ते हरिश्चन्द्रे चन्द्रवत् प्रियदर्शने ॥"

५. जामा, क्रीट, कुण्डल और गहने पहने हुए, हाथ में ब्रज कई फल का छोटा भाला लिए हुए ।

६. छज्जेदार पगड़ी, चमकन, घेरदार पाजामा पहने कमरबन्द कसे और हाथ में असा लिये हुए ।

७. धोती की लांग कसे, गाती बाँधे, सिर से पांव तक चंदन का और दिए, पैर में घुंघुरु, सिर के बाल छुटे, और हाथ में बीन लिए हुए । आने और जाने के समय 'राम कृष्ण गोविन्द' की ध्वनि नेपथ्य में से हो ।

ना.— हमें और भी कोई काम है, केवल यहाँ से वहाँ और वहाँ से वहाँ — यही हमें है कि और भी कुछ ।

इ.— साधु स्वभाव ही से परोपकारी होते हैं । विशेष कर के आप ऐसे जो हमारे से दीन गृहस्थों को घर बैठे दर्शन देते हैं । क्योंकि जो लोग गृहस्थ और काम काजी हैं वे स्वभाव ही से गृहस्थी के बन्धनों से ऐसे जकड़ जाते हैं कि साधु संगम तो उनको सपने में भी दुर्लभ हो जाता है, न वे अपने प्रबन्धों से छुड़ी पावेंगे न कहीं जायेंगे ।

ना.— आप को इतनी शिष्टाचार नहीं सोहती । आप देवराज हैं और आप के संग की तो बड़े बड़े ऋषि मुनि इच्छा करते हैं फिर आप को सतसंग कौन दुर्लभ है । केवल जैसा राजा लोगों में एक सहज मुँह देखा व्यापार होता है वैसी ही बातें आप इस समय कर रहे हैं ।

इ.— हम को बड़ा शोच है कि आप ने हमारी बातों को शिष्टाचार समझा । क्षमा कीजिए आप से हम बनावट नहीं कर सकते । भला विराजिये तो सही यह बातें तो होती ही रहेंगी ।

ना.— विराजिये (दोनों बैठते हैं) ।

इ.— कहिए इस समय कहां से आना हुआ ।

ना.— अघ्योध्या से । अहा ! राजा हरिश्चन्द्र धन्य है । मैं तो उसके निष्कपट अकुत्रिम स्वभाव से बहुत ही संतुष्ट हुआ । यद्यपि इसी सूर्यकुल में अनेक बड़े-२ धार्मिक हुए पर हरिश्चन्द्र तो हरिश्चन्द्र ही है ।

इ.— (आप ही आप) यह भी तो उसी का गुण गाते हैं ।

ना.— महाराज । सत्य की तो मानो हरिश्चन्द्र मूर्ति है । निस्सन्देह ऐसे मनुष्यों के उत्पन्न होने से भारत भूमि का सिर केवल इनके स्मरण से उस समय भी ऊँचा रहेगा जब यह पराधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त होगी ।

इ.— (आपही आप) अहा ! हृदय भी ईश्वर ने क्या ही वस्तु बनाई है । यद्यपि इसका स्वभाव सहज ही गुणग्राही हो तथापि दूसरों की उत्कट कीर्ति से इसमें ईर्ष्या होती ही है, उसमें भी जो जितने बड़े हैं उनकी ईर्ष्या भी उतनी ही बड़ी है । हमारे ऐसे बड़े पदाधिकारियों को शत्रु उतना संताप नहीं देते जितना दूसरों की सम्पत्ति और कीर्ति ।

ना.— आप क्या सोच रहे हैं ।

इ.— कुछ नहीं । योही मैं यही सोचता था कि हरिश्चन्द्र की कीर्ति आजकल छोटे बड़े सबके मुँह से सुनाई पड़ती है इससे निश्चय होता है कि नहीं हरिश्चन्द्र निस्सन्देह बड़ा मनुष्य है ।

ना.— क्यों नहीं, बड़ाई उसी का नाम है जिसे छोटे बड़े सब मानें, और फिर नाम भी तो उसी का रह जायगा जो ऐसा दृढ़ होकर धर्म साधन करेगा । (आप ही आप) और उसकी बड़ाई का यह भी तो एक बड़ा प्रमाण है कि आप ऐसे लोग उससे बुरा मानते हैं क्योंकि जिससे बड़े-२ लोग डाह करें पर उसका कुछ विगाड़ न सकें यह निस्सन्देह बहुत बड़ा मनुष्य है ।

इ.— भला उसके गृह चरित्र कैसे हैं ।

ना.— दूसरों के लिए उदाहरण बनाने के योग्य । भला पहिले जिसने अपने निज के और अपने घर के चरित्र ही नहीं शुद्ध किये हैं उसकी और बातों पर क्या विश्वास हो सकता है । शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है । बचन से उपदेशक और त्रियादिक से कैसा भी धर्मनिष्ठ क्यों न हो पर यदि उसके चरित्र शुद्ध नहीं है तो लोगों में वह टकसाल न समझा जायगा और उसकी बातें प्रमाण न होंगी ! महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उनके मन बचन और कर्म एक रहते हैं, इनके भिन्न ।^१ निस्सन्देह हरिश्चन्द्र महाशय है । उसके आशय बहुत उदार हैं इसमें कोई संदेह नहीं ।

इ.— भला आप उदार वा महाशय किसको कहते हैं ।

ना.— जिसका भीतर बाहर एक सा हो और विद्यानुरागिता उपकार प्रियता आदि गुण जिसमें सहज हों । अधिकार में क्षमा, विपत्ति में धैर्य, सम्पत्ति में अनभिमान, और युद्ध में जिसको स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है और उसी की माता पुत्रवती है । हरिश्चन्द्र में ये सब बातें सहज हैं । दान करके उसको प्रसन्नता होती है और कितना भी दे पर संतोष नहीं होता, यही समझता है कि अभी थोड़ा दिया ।

इ.— (आपही आप) हृदय ! पत्थर के होकर तुम यह सब कान खोल के सुनो ।

ना.— और इन गुणों पर ईश्वर की निश्चला भक्ति उसमें ऐसी है जो सब का भूषण है क्योंकि उसके बिना किसी की शोभा नहीं । फिर इन सब बातों पर विशेषता यह है कि राज्य का प्रबन्ध ऐसा उत्तम और दृढ़ है कि लोगों को संदेह होता है कि इन्हें राज काज देखने की छुट्टी कब मिलती है । सच है छोटे जी के लोग थोड़े ही कामों में ऐसे घबड़ा जाते हैं मानो सारे संसार का बोझ इन्हीं पर है ; पर जो बड़े लोग हैं उनके सब काम महारम्म होते हैं तब भी उनके मुख पर कहीं से व्याकुलता नहीं भलकती, क्योंकि एक तो उनके उदार चित्त में धैर्य और अवकाश बहुत है, दूसरे उनके समय व्यर्थ नहीं जाते और ऐसे यथायोग्य बंटे रहते हैं जिससे

उन पर कभी भीड़ पड़ती ही नहीं ।

इ. — भला महाराज वह ऐसे दानी हैं तो उनकी लक्ष्मी कैसे स्थिर है ।

ना. — यही तो हम कहते हैं । निस्संदेह वह राजा कुल का कलांक है जिसने बिना पात्र विचारे दान देते-२ सब लक्ष्मी का क्षय कर दिया, आप कुछ उपार्जन किया ही नहीं जो था वह नाश हो गया । और जहां प्रबन्ध है वहां धन की क्या कमती है । मनुष्य कितना धन देगा और जाचक कितना लेंगे ।

इ. — पर यदि कोई अपने वित्त के बाहर मांगे या ऐसी वस्तु मांगे जिससे दान की सर्वस्व हानि हो तो वह वे कि नहीं ?

ना. — क्यों नहीं । अपना सर्वस्व वह क्षण भर में दे सकता है, पात्र चाहिए । जिसको धन पाकर सत्पात्र में उसके त्याग की शक्ति नहीं है वह उदार कहा हुआ ।

इ. — (आपही आप) भला देखेंगे न ।

ना. — राजन् ! मानियों के आगे प्राण और धन तो कोई वस्तु ही नहीं है । वे तो अपने सहज सुभाव ही से सत्य और विचार दृढ़ता में ऐसे बंधे हैं कि सत्पात्र हरिश्चन्द्र — जिसका सत्य पर ऐसा स्नेह है जैसा भूमि, कोष, रानी, और तलवार पर भी नहीं है । जो सत्यानुरागी ही नहीं है भला उससे न्याय कब होगा, और जिसमें न्याय नहीं है वह राजा ही काहे का है । कैसी भी विपत्ति और उभय संकष्ट पड़े और कैसी ही हानि वा लाभ हो पर जो न्याय न छोड़े वही धीर और वही राजा । और उस न्याय का मूल सत्य है ।

इ. — तो भला वह जिसे जो देने को कहैगा देगा वा जो करने को कहैगा वह करेगा ।

ना. — क्या आप उसका परिहास करते हैं । किसी बड़े के विषय में ऐसी शंका ही उसकी निन्द्य है । क्या आप ने उसका यह सहज साभिमान वचन कभी नहीं सुना है —

चन्द तरै सूरज तरै तरै जगत व्योहार ।
पै दृढ़ श्रीहरिश्चन्द्र को तरै न सत्य विचार ॥

इ. — (आप ही आप) तो फिर इसी सत्य के पीछे नाश भी होंगे, हमको भी अच्छा उपाय मिला । (प्रकट) हाँ पर आप यह भी जानते हैं कि क्या वह यह सब धर्म स्वर्ग लेने को करता है ?

ना. — वाह । भला जो ऐसे उदार हैं उनके आगे स्वर्ग क्या वस्तु है । क्या बड़े लोग धर्म स्वर्ग पाने को करते हैं । जो अपने निर्मल चरित्र से संतुष्ट हैं उन के आगे स्वर्ग कौन वस्तु है । फिर भला जिनके शुद्ध हृदय

और सहज व्योहार हैं वे क्या यश वा स्वर्ग की लालच से धर्म करते हैं । वे तो आपके स्वर्ग को सहज में दूसरे को दे सकते हैं । और जिन लोगों को भगवान के चरणारविंद में भक्ति है वे क्या किसी कामना से धर्माचरण करते हैं, यह भी तो एक क्षुद्रता है कि इस लोक में एक देकर परलोक में दो की आशा रखना ।

इ. — (आप ही आप) हमने माना कि उस को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथार्थ अपने कर्मों से वह स्वर्ग का अधिकारी तो हो जायगा ।

ना. — और जिनको अपने किये शुभ अनुष्ठानों से आप संतोष मिलता है उन के इस असीम आनंद के आगे आपके स्वर्ग का अमृतपान और अप्सरा तो महा महा तुच्छ हैं । क्या अच्छे लोग कभी किसी शुभ कृत्य का बदला चाहते हैं ।

इ. — तथार्थ एक बेर उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता ।

ना. — राजन् ! आपका यह सब सोचना बहुत अयोग्य है । ईश्वर ने आपको बड़ा किया है तो आपको दूसरों की उन्नति और उत्तमता पर संतोष करना चाहिए । ईर्ष्या करना तो क्षुद्राशयों का काम है । महाशय वही है जो दूसरों की बड़ाई से अपनी बड़ाई समझी ।

इ. — (आप ही आप) इन से काम न होगा । (बात बहलाकर प्रकट) नहीं नहीं मेरी यह इच्छा थी कि मैं भी उनके गुणों को अपनी आँखों से देखता भला मैं ऐसी परीक्षा थोड़े लेना चाहता हूँ जिसमें उन्हें कुछ कष्ट हो ।

ना. — (आप ही आप) अहा ! बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता । बड़ा वही है जिसका चित्त बड़ा है । अधिकार तो बड़ा पर चित्त में सदा क्षुद्र और नीच बातें सूझा करती हैं वह आदर के योग्य नहीं है, परन्तु जो कैसा भी दरिद्र है पर उसका चित्त उदार और बड़ा है वही आदरणीय है ।

(द्वारपाल आता है)

दा. — महाराज ! विश्वामित्र जी आए हैं ।

इ. — (आप ही आप) हाँ इनसे वह काम होगा । अच्छे अवसर पर आए । जैसा काम हो वैसे ही स्वभाव के लोग भी चाहिए । (प्रकट) हाँ हाँ लिवालाओ ।

दा. — जो आज्ञा । (जाता है)

(विश्वामित्र^१ आते हैं)

इ. — (प्रणामादि शिष्टाचार करके) आइए भगवन् बिराजिए ।

वि. — (नारदजी को प्रणाम करके और इन्द्र को

आशीर्वाद देकर बैठते हैं) ।

ना.— तो अब हम जाते हैं, क्योंकि पिता के पास हमें किसी आवश्यक काम को जाना है ।

वि.— यह क्या ? हमारे आते ही आप चले, भला ऐसी रुष्टता किस काम की ।

ना.— हरे हरे ! आप ऐसी बात सोचते हैं, राम राम भला आप के आने से हम क्यों जायेंगे । मैं तो जाने ही को था कि इतने मो आप आ गये ।

इ.— (हँसकर) आपकी जो इच्छा ।

ना.— (आप ही आप) हमारी इच्छा क्या अब तो आप ही की यह इच्छा है कि हम जायें, क्योंकि अब आप तो विश्व के अमित्र जी से राजा हरिश्चन्द्र को दुःख देने की सलाह कीजिएगा तो हम उसके बाधक क्यों हों पर इतना निश्चय रहे कि सज्जन को दुर्जन लोग जितना कष्ट देते हैं उतनी ही उनकी सत्य कीर्ति तपाए सोने की भाँति और भी चमकती है क्योंकि विपत्ति बिना सत्य की परीक्षा नहीं होती । (प्रगट) यद्यपि 'जो इच्छा' आप ने सहज भाव से कहा है तथापि परस्पर में ऐसे उदासीन वचन नहीं कहते क्योंकि इन वाक्यों से रूखापन भलकता है । मैं कुछ इसका ध्यान नहीं करता, केवल मित्र भाव से कहता हूँ । लो जाता हूँ और यही आशीर्वाद देकर जाता हूँ कि तुम किसी को कष्टदायक मत हो क्योंकि अधिकार पाकर कष्ट देना यह बड़ों की शोभा नहीं सुख देना शोभा है ।

इ.— (कुछ लज्जित होकर प्रणाम करता है) ।

(नारदजी जाते हैं)

वि.— यह क्यों ? आज नारद भगवान ऐसी जली कटी क्यों बोलते थे, क्या तुमने कुछ कहा था ।

इ.— नहीं तो । राजा हरिश्चन्द्र का प्रसंग निकला था सो उन्होंने उसकी बड़ी स्तुति की और हमारा उच्च पद का आदरणीय स्वभाव उस परकीर्ति को सहन न कर सका इसी में कुछ बात ही बात ऐसा सन्देह होता है कि वे रुष्ट हो गए ।

वि.— तो हरिश्चन्द्र में कौन से ऐसे गुण हैं ? (सहज ही भूकटी चढ़ जाती है) ।

इ.— (ऋषि का भ्रमंग देखकर चित्त में संतोष करके उनका क्रोध बढ़ता हुआ) महाराज सिपारसी लोग चाहे जिसको बढ़ा दें चाहे घटा दें । भला सत्य धर्म पालन क्या हंसी खेल है । यह आप ऐसे महात्माओ ही का काम है जिन्होंने घर बार छोड़ दिया है । भला राज करके और घर में रह के मनुष्य क्या

धर्म का हठ करेगा । और फिर कोई परीक्षा लेता तो मालूम पड़ती । इन्हीं बातों से तो नारद जी बिना बात ही अप्रसन्न हुए ।

वि.— मैं अभी देखता हूँ न । जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं । भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानीपने का अभिमान करेगा ।

(क्रोध पूर्वक उठकर चला चाहते हैं कि परदा गिरता है) ।

॥ इति प्रथम अंक ॥

दूसरा अंक

स्थान — राजा हरिश्चन्द्र का राजभवन ।

रानी शैव्या^१ बैठी हैं और एक सहेली^२

बगल में खड़ी है ।

रा.— अरी ? आज मैंने ऐसे बुरे-२ सपने देखे हैं कि जब से सो के उठी हूँ कलेजा काँप रहा है । भगवान कुसल करे ।

स.— महाराज के पुन्य प्रताप से सब कुसल ही होगी आप कुछ चिन्ता न करें । भला क्या सपना देखा है मैं भी सुनूँ ?

रा.— महाराज को तो मैंने सारे अंग में भस्म लगाए देखा है और अपने को बाल खोले, और (आँखों में आंसू भर कर) रोहितास्व को देखा है कि उसे साँप काट गया है ।

स.— राम ! राम ! भगवान सब कुसल करेगा । भगवान करे रोहितास्व जुग जुग जिए और जब तक गंगा जमुना में पानी है आप का सोहाग अचल रहे । भला आप ने इसकी शांति का भी कुछ उपाय किया है ।

रा.— हाँ गुरुजी से तो सब समाचार कहला भेजा है देखो वह क्या करते हैं ।

स.— हे भगवान हमारे महाराज महारानी कुंआर सब कुसल से रहें, मैं आँचल पसार के यह रत्नदान मांगती हूँ ।

(ब्राह्मण आता है)^३

ब्रा.— (आशीर्वाद देता है)

स्वस्वस्तुतेकुशलमस्तुचिरायस्तु

गोवाजिहस्तिधनधान्यसमुद्भिरस्तु

ऐश्वर्यमस्तुकुशलोस्तुरिपुक्षयोस्तु

सन्तानवृद्धिसहिताहरिमक्तिरस्तु ॥

१. लहंगा, साड़ी, सब जनाना गहिना, बन्दी बेना इत्यादि ।

२. साड़ी, सादा सिंगार ।

३. घोती, उपरना, सिर पर चुन्दी वा सिर भर बाल, डाढ़ी हाथों में पवित्री, तिलक, खड़ाक ।

रा. — (हाथ जोड़कर प्रणाम करती है)

ब्रा. — महाराज गुरुजी ने यह अभिमंत्रित जल भेजा है इसे महारानी पहिले तो नेत्रों से लगा लें और फिर थोड़ा सा पान भी कर लें और यह रक्षाबन्धन भेजा है इसे कुमार रोहिताश्व की दाहिनी भुजा पर बांध दें फिर इस जल से मैं मार्जन करूंगा।

रा. — (नेत्र में जल लगाकर और कुछ मुंह फेर कर आचमन करके) मालती यह रक्षाबन्धन तू सम्हाल के अपने पास रख जब रोहिताश्व मिले उसके दहिने हाथ पर बाँध दीजियो।

स. — जो आज्ञा (रक्षाबन्धन आने पास रखती है)।

ब्रा. — तो अब आप सावधान हो जाय मैं मार्जन कर लूँ।

रा. — (सावधान होकर) जो आज्ञा।

ब्रा. — (दुर्वा से मार्जन करता है)।

देवास्त्वामभिषिचन्तु ब्रह्मविष्णु शिवादयः
गन्धर्वाः किन्नराः नागाः रक्षाः कुर्वन्तु ते सदा
पितरो गुह्यकायक्षाः देव्यो भूताचमातरः
सर्व्वे त्वामभिषिचन्तु रक्षाः कुर्वन्तु ते सदा
भद्रमस्तु शिवं चास्तु महालक्ष्मीं प्रसीदतु
पतिपुत्रयुतासाध्विजैस्त्वयं शरदांशतं ।।

(मार्जन का जल पृथ्वी पर फेंककर)

यत्पापं रोगमशुभं तद्दूरे प्रतिहतमस्तु

(फिर रानी पर मार्जन करके)

यन्मंगलं शुभं सौभाग्यं धनधान्यमारोग्यं बहु

पुत्रत्वं तत्सर्व्वमीशप्रसादात् ब्राह्मणवचनात् त्वय्यस्तु

(मार्जन कर के फूल अक्षत रानी के हाथ में देता है)

रा. — (हाथ जोड़कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती है)
महाराज गुरु जी से मेरी ओर से विनती करके दंडवत कह दीजिएगा।

ब्रा. — जो आज्ञा (आशीर्वाद देकर जाता है)

रा. — आज महाराज अब तक सभा में नहीं आए ?

स. — अब आते होंगे पूजा में कुछ देर लगी होगी।

(नेपथ्य में बैतालिक गाते हैं)

(राग भैरव)

प्रगटहु रविकुलारवि निसि वीती प्रजा कमलगन फूले।

मन्द परे रिपुगन तारा सम जन भय तम उन भूले ।।

नसे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो ।

मागध बंदी सुत चिरैनन मिलि कलरोर मचायो ।।

तुव कस सीतल पौन परसि चटकी गुलाब की कलियाँ ।

अति सुख पाइ असीस देत सोई करि अंगुरिन चट अलियाँ ।।

भए धरम में धित अब द्विज जन प्रजा काज निज लागे ।

रिपु जुवती मुख कुमुद मन्द जन चक्रवाक अनुरागे ।।

अरध सरिस उपहार लिए नृप ठाढ़े तिन कहं तोखो ।

न्याव कृपा सों ऊंच नीच सम समुक्ति परसि कर पोखो ।

(नेपथ्य में से बाजे की धुनि सुन पड़ती है)

रा. — महाराज ठाकुरजी के मंदिर से चले, देखो बाजों का शब्द सुनाई देता है और बंदीलोग भी गाते आते हैं।

स. — आप कहती हैं चले ? वह देखिये आ पहुंचे कि चले।

रा. — (घबड़ा कर आदर के हेतु उठती हैं)

(परिकर^१ सहित महाराज हरिश्चन्द्र^२ आते हैं)

(रानी प्रणाम करती है और सब लोग

यथा स्थान बैठते हैं)

ह. — (रानी से प्रीतिपूर्वक) प्रिये ! आज तुम्हारा मुखचन्द्र मलीन क्यों हो रहा है ?

रा. — पिछली रात मैंने कुछ दुःस्वप्न देखे हैं जिनसे चित्त व्याकुल हो रहा है।

ह. — प्रिये ! यद्यपि स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु होता है पर तुम तो वीर कन्या वीरपत्नी और वीरमाता हो तुम्हारा स्वभाव ऐसा क्यों ?

रा. — नाथ ! मोह से धीरज जाता रहता है।

ह. — सो गुरु जी से कुछ शान्ति करने को नहीं कहलया।

रा. — महाराज ! शान्ति तो गुरु जी ने कर दी है।

ह. — तब क्या चिन्ता है शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रखो सब कल्याण होगा। सदा सर्वदा सहज मंगल साधन करते भी जो आपत्ति आ पड़े तो उसे निरी ईश्वर की इच्छा ही समझ के संतोष करना चाहिए।

रा. — महाराज ! स्वप्न के शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज ने भी ग्रंथों में देखा है ?

ह. — (रानी की बात अनसुनी करके) स्वप्न तो

१. राजा के परिकर में प्रथम मंत्री नीमा पैजामा कमरबंद दुशाला पगड़ी सिरपेच सजे। दो मुसाहिव साधारण सभ्यों के भेष में। एक निशान वाला सेवक के भेष में। निशान पर सूर्य के नीचे "सत्ये नास्ति भयं क्वचित्" लिखा हुआ। चार शस्त्रधारी अंगरक्षक दो सेवक।

२. सपेद वा केसरी जामा पैजामा कमरबंद मर्दाना सब गहना सिर पर किरौट वा पगड़ी सिरपेच तुरां हाथ में तलवार दुशाला वा कोई चमकता रुमाल ओढ़े।

कुछ हमने भी देखा है। (चिन्ता पूर्वक स्मरण करके) हाँ यह देखा है कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्या साधन करने को सब दिव्य महाविद्याओं को खींचता है और जब मैं स्त्री जान कर उनको बचाने गया हूँ तो वह मुझी से रुष्ट हो गया है और फिर जब बड़े विनय से मैंने उसे मनाया है तो उसने मुझसे मेरा सारा राज्य मांगा है। मैंने उसे प्रसन्न करने को अपना सब राज्य दे दिया है। (इतना कहकर अत्यन्त व्याकुलता नाट्य करता है)।

रा.— नाथ। आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यों हो गए।

ह.— मैं यह सोचता हूँ कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहाँ पाऊँगा और बिना उसकी थाती उसे सौंपे भोजन कैसे करूँगा।

रा.— नाथ। क्या स्वप्न के व्योहार को भी आप सत्य मानिएगा।

ह.— प्रिये हरिश्चन्द्र की अर्दागिनी होकर तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है। हाँ! भला तुम ऐसी बात मुँह से निकालती हो! स्वप्न किसने देखा? मैं नैन? फिर क्या? स्वप्न संसार अपने काल में असत्य है इसका कौन प्रमाण है, और जो अब असत्य कहो तो मरने के पीछे तो यह संसार भी असत्य है फिर इस संसार में परलोक के हेतु लोग धर्माचरण क्यों करते हैं? दिया सो दिया, क्या स्वप्न में क्या प्रत्यक्ष।

रा.— (हाथ जोड़कर) नाथ क्षमा कीजिए, स्त्री की बुद्धि ही कितनी!

ह.— (चिन्ता करके) पर मैं अब करूँ क्या! अच्छा। प्रधान! नगर में डौंडी पिटवा दो कि राज्य सब लोग आज से अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण का समझे उसके अभाव में हरिश्चन्द्र उसके सेवक की भाँति उस की थाती समझ के राज का कार्य करेगा और दो मुहर राज काज के हेतु बनवा लो एक पर 'अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण सेवक हरिश्चन्द्र' और दूसरे पर 'राजाधिराज अज्ञात नाम गोत्र ब्राह्मण महाराज' खुदा रहे और आज से राज काज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहे। देस देस के राजाओं और बड़े २ कार्यधीशों को भी आज्ञापत्र भेज दो कि महाराज हरिश्चन्द्र के स्वप्न में अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण को पृथ्वी दी है इससे आज से उसका राज हरिश्चन्द्र मंत्री की भाँति समझलेगा।

(द्वारपाल आता है)

द्व.— महाराजाधिराज! एक बड़ा क्रोधी ब्राह्मण

दरवाजे पर खड़ा है और व्यर्थ हम लोगों को गाली देता है।

ह.— (घबड़ा कर) अभी सादर पूर्वक ले आओ!

द्व.— जो आज्ञा (जाता है)।

ह.— यदि ईश्वरच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी बात हो।

(द्वारपाल के साथ विश्वामित्र आते हैं)।

ह.— (आदर पूर्वक आगे से लेकर और प्रणाम करके) महाराज! पधारिए यह आसन है।

वि.— बैठे, बैठ चुके, बोल अभी तैने मुझे पहिचना कि नहीं।

ह.— (घबड़ाकर) महाराज! पूर्व परिचित तो आप ज्ञात होते हैं।

वि.— (क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम तू काहे को पहिचानेगा, सच है रे सूर्यकुलकलांक तू क्यों पहिचानेगा, धिक्कार तेरे मिथ्या धर्माभिमान को ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट तैं भूल गया कल पृथ्वी किस को दान दी थी, जानता नहीं कि मैं कौन हूँ?

'जातिस्वयंग्रहणदुर्ललितैकविप्र'

दृष्यदशिष्टसुतकाननधूमकेतुम

सगान्तराहरणभीतजगतकुतान्तं

चण्डालयाजिनमवैषिनकौशिकमाम'

ह.— (पैरों पर गिरके बड़े विनय से) महाराज! भला आप को त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जो न जानेगा।

'अन्नक्षयादिषु तथाविहितात्मवृत्ति

राजप्रतिग्रह पराङ्मुखमानसं त्वाम

आहोवकप्रधनकम्पितजीवलोकं

कस्तेजसां च तपसां च निधिर्नवेति ॥'

वि.— (क्रोध से) सच है रे पाप पाखंड मिथ्यादान वीर! तू क्यों न मुझे 'राज प्रतिग्रह पराङ्मुख' कहेगा क्योंकि तैने तो कल सारी पृथ्वी मुझे दान न दी है, ठहर ठहर देख इस फूट का कैसा फल भोगता है, हा! इसे देख कर क्रोध से जैसे मेरी दहिनी भुजा शाप देने को उठती है वैसे ही जाति स्मरण के संस्कार से बाईं भुजा फिर से कृपाण ग्रहण किया चाहती है, (अत्यन्त क्रोध से लंबी सांस लेकर और बांह उठा कर) अरे ब्रह्मा! सम्हाल अपनी सृष्टि को नहीं तो परम तेज पुञ्ज दीर्घतपोवर्द्धित मेरे आज इस असह्य क्रोध से सारा संसार नाश हो जाएगा, अथवा संसार के नाश ही से

१. जटा और डाढ़ी बढ़ाए, खड़ाऊ पहिने, गले में मृगछाला बांधे, धोटी पर बाध की मोटी करधनी, एक

हाथ में कुश और कमंडल।

क्या ? ब्रह्मा का तो गर्व उसी दिन मैंने चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई, आज इस राजकुलान्गर का अभिमान चूर्ण करूँगा जो मिथ्या अहंकार के बल से जगत में दानी प्रसिद्ध हो रहा है ।

ह. — (पैरों पर गिर के) महाराज क्षमा कीजिए मैंने इस बुद्धि से नहीं कहा था, सारी पृथ्वी आप की मैं आप का भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुँह से निकालते हैं । (ईर्ष्य क्रोध से) और आप बार-बार मुझे भूठा न कहिए । सुनिए मेरी यह प्रतिज्ञा है ।

'चन्द्र टरै सूरज टरै टरै जगत व्योहार ।

पै दूढ़ श्रीहरिचन्द्र को टरै न सत्य बिचार' ॥

बि. — (क्रोध और अनादर पूर्वक हँस कर) हहहह ! सच है सच है रे मूढ़ ! क्यों नहीं, आखिर सूर्यवंशी है । तो वे हमारी पृथ्वी ।

ह. — लीजिए, इसमें बिलम्ब क्या है, मैंने तो आप के आगमन के पूर्व ही से अपना अधिकार छोड़ दिया है । (पृथ्वी की ओर देख कर)

जेहि पाली इक्ष्वाकु सीं अबलौं रवि कुल राज । ताहि देत हरिचन्द्र नृप विश्वामित्र हि आज ॥

वसुधे ! तुम बहु सुख कियो मम पुरुखन की होय । घरमबद्ध हरिचन्द्र को छमहु सु परबस जोय ॥

बि. — (आप ही आप) अच्छा ! अभी अभिमान दिखा ले, तो मेरा नाम विश्वामित्र तो तुमको सत्यभ्रष्ट कर के छोड़ा, और लक्ष्मी से तो भ्रष्ट हो ही चुका है । (प्रगट) स्वस्ति । अब इस महादान की दक्षिणा कहाँ है ?

ह. — महाराज ! जो आज्ञा हो वह दक्षिणा अभी आती है ।

बि. — भला सहस्र स्वर्ण मुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी ।

ह. — जो आज्ञा (मंत्री से) मंत्री हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ ।

बि. — (क्रोध से) 'मंत्री हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ' मंत्री कहाँ से लावेगा ? क्या अब खजाना तेरा है कि तैं मंत्री पर हुकुम चलता है ? भूठा कहीं का, देना ही नहीं था तो मुँह से कहा क्यों ? चल मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा ।

ह. — (हाथ जोड़कर विनय से) महाराज ठीक है । खजाना अब सब आप का है, मैं भूला क्षमा कीजिए । क्या हुआ खजाना नहीं है तो मेरा शरीर तो है ।

बि. — एक महीने में तो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुम पर कठिन ब्रह्मदंड गिराऊँगा, देख केवल एक मास की अवधि है ।

ह. — महाराज ! मैं ब्रह्मदंड से उतना नहीं डरता जितना सत्यदंड से इससे

वेचि देह दारा सुअन होइ दास हू मन्द । रवि है निज वच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द्र ॥ (आकाश से फूल की वृष्टि और बाजे के साथ जयध्वनि होती है)

(जयनिका गिरती है)

॥ इति दूसरा अंक ॥

तीसरे अंक में अंकावतार

स्थान-वाराणसी का बाहरी प्रान्त तालाब ।

(पाप^१ आता है)

पाप — (इधर उधर दौड़ता और हाँफता हुआ) मरे रे मरे, जले रे जले, कहाँ जाय, सारी पृथ्वी तो हरिश्चन्द्र के पुन्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर ही नहीं सकते । सुना है कि राजा हरिश्चन्द्र काशी गए हैं क्योंकि दक्षिणा के वास्ते विश्वामित्र ने कहा कि सारी पृथ्वी तो हमको तुमने दान दे दी है, इससे पृथ्वी में जितना धन है सब हमारा हो चुका और तुम पृथ्वी में कहीं भी अपने को बेचकर हमसे उरिन नहीं हो सकते । यह बात जब हरिश्चन्द्र ने सुनी तो बहुत ही घबड़ाए और सोच विचार कर कहा कि बहुत अच्छा महाराज हम काशी में अपना शरीर बेचेंगे क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि काशी पृथ्वी के बाहर शिव के त्रिशूल पर है । यह सुनकर हम भी दौड़े कि चलो हम भी काशी चलो क्योंकि जहाँ हरिश्चन्द्र का राज्य न होगा वहाँ हमारे प्राण बचेंगे, सो यहाँ और भी उत्पात हो रहा है । जहाँ देखो वहाँ स्नान, पूजा, जप, पाठ, दान, धर्म, होम इत्यादि में लोग ऐसे लगे रहते हैं कि हमारी मानो जड़ ही खोद डालेंगे । रात दिन शंख घंटा की घनघोर के साथ वेद की धुनि मानो ललकार के हमारे शत्रु धर्म की जय मनाती है और हमारे ताप से कैसा भी मनुष्य क्यों न तपा हो भगवती भागीरथी के जलकण मिले वायु से उसका हृदय एक साथ शीतल हो जाता है । इसके उपरान्त शि शि . . . ध्वनि अलग मारे डालती है । हाय कहाँ जाय

१. काजल सा रंग, लाल नेत्र, महा कुरूप, हाथ में नंगी तलवार लिए, नीला काछ कछे ।

क्या करें । हमारी तो संसार से मानो जड़ ही कट जाती है, भला और जगह तो कुछ हमारी चलती भी है पर यहां तो मानो हमारा राज ही नहीं, कैसा भी बड़ा पापी क्यों न हो यहां आया कि गति हुई ।

(नेपथ्य में)

सच है, येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः :

पाप — अरे ! यह कौन महा भयंकर भेस, अंग में भभूत पोते ; एड़ी तक जटा लटकाए, लाल लाल आँख निकाले साक्षात् काल की भाँति तृशूल घुमाता हुआ चला आता है । प्राण ! तुम्हें जो अपनी रक्षा करनी हो तो भागो पाताल से, अब इस समय भूमंडल में तुम्हारा ठिकाना लगना कठिन ही है ।

(भागता हुआ जाता है)

(भैरव आते हैं)

भैर. — सच है । येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः । देखो इतना बड़ा पुण्यशील राजा हरिश्चन्द्र भी अपनी आत्मा और स्त्री पुत्र बेचने को यहीं आया है । अहा ! धन्य है सत्य । आज जब भगवान् भूतनाथ राजा हरिश्चन्द्र का वृत्तांत भवानी से कहने लगे तो उनके तीनों नेत्र अश्रु से पूर्ण हो गए और रोमांच होने से सब शरीर के भस्मकण अलग अलग हो गए । मुझको आज्ञा भी हुई है कि अलक्ष रूप से तुम सर्व्वदा राजा हरिश्चन्द्र की अंगरक्षा करना । इससे चलूँ मैं भी भेस बदल कर भगवान् की आज्ञा पालन में प्रवर्त हूँ ।

(जाते हैं । ज्वनिका गिरती है)

तीसरे अंक में यह अंकावतार समाप्त हुआ

तीसरा अंक

(स्थान काशी के घाट किनारे की सड़क)

महाराज हरिश्चन्द्र घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं

ह. — देखो काशी भी पहुँच गए । अहा ! धन्य है काशी । भगवति वाराणसि तुम्हें अनेक प्रणाम हैं । अहा ! काशी की कैसी अनुपम शोभा है ।

'चारहु आश्रम वर्न बसैं मनि कंचन धाम अकास बिभासिका । सोभा नहीं कहि जाई कछु बिधि नै रची मानो पुरीन की नासिका । आपु बसैं गिरि धारनजू तट देवनदी बर बारि बिलासिका । पुन्यप्रकासिका पापबिनासिका हीयहुलासिका सोहत कासिका' ॥१॥

'बसैं बिहुमाधव बिसेसरादि देव सबै दरसन ही तें लागे जब मुख मसी है । तीरथ अनादि पंचगंगा

मनिकर्निकादि सात आवरन मध्य पुन्य रूप धंसी है । गिरिधरदास पास भागीरथी सोभा देत जाकी बार तोरें आसु कर्म रूप रसी हैं । ससी सम जसी असी बरना मैं बसी पाप खसी हेतु असी ऐसी लसी वारानसी है' ॥२॥

'रचित प्रभासी भासी अवलि मकानन की जिनमें अकासी फबै रतन नकासी है । फिरैं दास दासी बिप्रगृही औ सन्यासी लसे बर गुनरासी देवपुरी हूँ न जासी है । गिरिधरदास विश्वकीरति विलासी रमा हासी लौ उजासी जाकी जगत हुलासी है । खासी परकासी पुनवांसी चंद्रिका सी जाके वासी अविनासी अधनासी ऐसी कासी है' ॥३॥

देखो । जैसा ईश्वर ने यह सुंदर अंगूठी के नगीने सा नगर बसाया है वैसी ही नदी भी इसके लिए दी है । धन्य गंगे !

'जम की सब त्रास विनास करी मुख तें निज नाम उचारन में । सब पाप प्रतापहि दूर दरघौ तुम आपन आप निहारन में । अहो गंग अनंग के शत्रु करे बहु नेकु जलै मुख डारन में । गिरिधारनजू कितने विरचे गिरि-धारन धारन धारन में' ॥४॥

कुछ महात्म ही पर नहीं गंगा जी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है । अहा !

नव उज्जल जलधार हार हीरक सी सोहति ।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति ॥
लोल लहर पवन एक पै इक इमि आवत ।
जिमि नरगन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत ॥
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत ।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ॥
श्री हरिपदनख चन्द्रकान्त मनि प्रवित सुधारस ।
ब्रह्म कमंडल मंडन भव खंडन सुर सरबस ॥
शिव सिर मालति माल भगीरथ नृपति पुन्य फल ।
पेरावत गज गिरि पति हिम नग कंठहार कल ॥
सगर सुअन सठ सहस परस जल मात्र उधारन ।
अगिनित धारारूप धारि सगर संचारन ।
कासी कहं प्रिय जानि ललकि भेट्यौ जब धाई ।
सपनेहुं नहि तजी रखी अंकन लपटायी ॥
कहं बंधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत ।
कहुं छतरी कहुं मट्टी बड़ी मन मोहत जोहत ॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताक ।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौसा करि साक ॥
मधुरी नौबत बजत कहं नारी नर गावत ।
बेद पढ़त कहुं द्विज कहुं जोगी ध्यान लगावत ॥

१. महादेव जी का सा सिंगार, तीन नेत्र, नीला रंग एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे में प्याला ।

२. यह चारों कवित प्रथकर्ता के पिता श्री बाबू गोपालचन्द्र के बनाए हैं जो कविता में अपना नाम गिरिधरदास रखते थे ।

कहू सुंदरी नहात नीर कर जुगल उछारत ।
 जुव अंबुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निखारत ।।
 धोअत सुंदरि बदन करन अति ही छबि पावत ।।
 बारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मियावत ।।
 सुंदरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुंदर सोहत ।
 कमल बेलि लहलही नवल कुसमन मन मोहत ।।
 दीठि जही जहं जात रहत तितही ठहराई ।
 गंगा छबि हरिचन्द्र कछु बरनी नही जाई ।।

(कुछ सोचकर) पर हां ! जो अपना जी दुखी होता है तो संसार सूना जान पड़ता है ।

असनं वसनं वासो येषां चैवाविधानतः ।
 मगधेनसमाकाशी गंगाप्यंगारवाहिनी ।।१

विश्वामित्र को पृथ्वी दान करके जितना चित्त प्रसन्न नहीं हुआ उतना अब बिना दक्षिणा दिये दुखी होता है । हा ! कैसे कष्ट की बात है राजपाट धनधाम सब छूटा अब दक्षिणा कहां से देंगे ! क्या करें ! हम सत्य धर्म कभी छोड़ें हीगे नहीं और मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि बिना दक्षिणा मिले शाप देने को तैयार होंगे, और जो वह शाप न भी देंगे तो क्या ? हम ब्राह्मण का ऋण चुकाए बिना शरीर भी तो नहीं त्याग कर सकते । क्या करें ? कुबेर को जीत कर धन लावें ? पर कोई शस्त्र भी तो नहीं है । तो क्या किसी से मांग कर दें ? पर क्षत्रिय का तो धर्म नहीं कि किसी के आगे हाथ पसारें । फिर ऋण काढ़ें ? पर देंगे कहां से । हा ! देखो काशी में आकर लोग संसार के बंधन से छूटते हैं पर हमको यहां भी हाथ हाथ मची है । हा ! पृथ्वी ! तू फट क्यों नहीं जाती कि मैं अपना कलंकित मुंह फिर किसी को न दिखाऊं । (आतंक से) पर यह क्या ? सूर्यवंश में उत्पन्न होकर हमारे यह कर्म हैं कि ब्राह्मण का ऋण दिए बिना पृथ्वी में समा जाना सोचें । (कुछ सोच कर) हमारी तो इस समय कुछ बुद्धि ही नहीं काम करती । क्या करें ? हमें तो संसार सूना देख पड़ता है । (चिन्ता करके) एक साथ हर्ष से) वाह अभी तो स्त्री पुत्र और हम तीन-२ मनुष्य तैयार हैं । क्या हम लोगों के बिकने से सहस्र स्वर्ण मुद्रा भी न मिलेंगी ? तब फिर किस बात का इतना शोच ? न जानें बुद्धि इतनी देर तक कहां सोई थी । हमने तो पहले ही विश्वामित्र से कहा था ; बेचि देह दारा सुअन होय दास हूं मंद ।

रखि हैं निज बच सत्य करि अभिमानी हरिश्चन्द्र ।।
 (नेपथ्य में) तो क्यों नहीं जल्दी अपने को बेचता ? क्या हमें और काम नहीं है कि तेरे पीछे-२ दक्षिणा के वास्ते लगे फिरें ?

ह. — अरे मुनि तो आ पहुंचे । क्या हुआ आज उनसे एक दो दिन की अवधि और लेंगे ।

(विश्वामित्र आते हैं)

वि. — (आप ही आप) हमारी विद्या सिद्ध हुई भी इसी दुष्ट के कारण फिर बहक गई कछु इन्द्र के कहने ही पर नहीं हमारा इस पर स्वतः भी क्रोध है पर क्या करें इसके सत्य, धैर्य और विनय के राज्यभ्रष्ट हो चुका पर जब तक इसे सत्यभ्रष्ट न कर लूंगा तब तक मेरा संतोष न होगा । (आगे देखकर) अरे यही दुरात्मा (कुछ रुक कर) वा महात्मा हरिश्चन्द्र है । (प्रगट) क्यों रे आज महीने में कै दिन बाकी हैं । बोल कब दक्षिणा देगा ?

ह. — (धबड़ाकर) अहा ! महात्मा कौशिक । भगवान् प्रणाम करता हूं । (दंडवत करता है) ।

वि. — हुई प्रणाम, बोल तैं ने दक्षिणा देने का क्या उपाय किया ? आज महीना पूरा हुआ अब मैं एक क्षण भर भी न मानूंगा । दे अभी नहीं तो — शाप के वास्ते कर्मडल से जल हाथ में लेते हैं ।)

ह. — (पैरों में गिरकर) भगवान् क्षमा कीजिए ; क्षमा कीजिए । यदि आज सूर्यास्त के पहिले न दूं तो जो चाहे कीजिएगा । मैं अभी अपने को बेचकर मुद्रा ले आता हूं ।

वि. — (आप ही आप) वाह रे महानुभावता ! (प्रगट) अच्छा आज सांभ तक और सही । सांभ को न देगा तो मैं शाप ही न दूंगा वरंच त्रैलोक्य में आज ही विदित कर दूंगा कि हरिश्चन्द्र सत्य भ्रष्ट हुआ । (जाते हैं)

ह. — भला किसी तरह मुनी से प्राण बचे । अब चलें अपना शरीर बेचकर दक्षिणा देने का उपाय सोचें । हा ! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है, इस लोक में वही मनुष्य कृतार्थ है जिसने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल आंखें नहीं देखी हैं । (आगे चलकर) अरे क्या बजार में आ गए, अच्छा, (सिर पर तृण रखकर) २ अरे सुनो भाई सेठ, साहूकार, महाजन, दुकानदार, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं किसी को लेना हो तो लो । (इसी तरह

१. जिन का भोजन, वस्त्र और निवास ठीक नहीं है उनको काशी भी मगह है और गंगा भी तपाने वाली है

२. उस काल में जब कोई दास्य स्वीकार करता था तो सिर पर तृण रखता था ।

कहता हुआ इधर उधर फिरता है) देखो कोई दिन वह था कि इसी मनुष्य विक्रय को अनुचित जानकर हम दूसरों को दंड देते थे पर आज वही कर्म हम आप करते हैं। देव बली है। (अरे सुनो भाई इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरता है। ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'क्यों' तुम ऐसा दुष्कर कर्म करते हो ?' आर्य यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है। (ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'तुम क्या क्या कर सकते हो ; क्या समझते हो, और किस तरह रहोगे ?' इस का क्या पूछना है। स्वामी जो कहेगा वही करेंगे ; समझते सब कुछ हैं पर इस अवसर पर कुछ समझना काम नहीं आता ; और जैसे स्वामी रक्खेगा वैसे रहेंगे। जब अपने को बेच ही दिया तब इसका क्या विचार है। (ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'कुछ काम कम करो।' आर्य हम लोग तो क्षत्रिय हैं, हम दो बात कहाँ से जानें। जो कुछ ठीक या कह दिया।

(नेपथ्य में से)

आर्यपुत्र ! ऐसे समय में हम को छोड़े जाते हो। तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन रहके क्या करूँगी। स्त्री को अर्द्धांगिनी कहते हैं, इससे पहिले बायाँ अंग बेच लो तब दहिना अंग बेचो।

ह. — (सुनकर बड़े शोक से) हा ! रानी की यह दशा इन आँखों से कैसे देखी जायगी ! (सड़क पर शैव्या और बालक फिरते हुए दिखाई पड़ते हैं)

शै. — कोई महात्मा कृपा करके हमको मोल ले लो बड़ा उपकार हो।

बा. — अम को भी कोई मोल ले तो बला उपकाल हो।

शै. — (आँखों में आँसू भरकर) पुत्र ! चन्द्रकुल-भूषण महाराज वीरसेन का नाती और सूर्यकुल की शोभा महाराज हरिश्चन्द्र का पुत्र होकर तू क्यों ऐसे कातर बचन कहता है। मैं अभी जीती हूँ ! (रोती है)

बा. — (माँ का अंचल पकड़ के) माँ ! तुमको कोई मोल लेगा तो अम को भी मोल लेगा। आँ आँ माँ लोती काए को ओ। (कुछ रोना सा मुँह बना के शैव्या का अंचल पकड़ के झूलने लगता है)।

शै. — (आँसू पोछकर) पुत्र ! मेरे भाग्य से पूछ।

ह. — अह ! भाग्य ! यह भी तुम्हें देखना था।

हा ! अयोध्या की प्रजा रोती रह गई हम उनको कुछ धीरज भी न दे आए। उनकी अब कौन गति होगी।

हा ! यह नहीं कि राज छूटने पर भी झुटकारा हो अब यह देखना पड़ा। हृदय तुम इस चक्रवर्ती की सेवा योग्य बालक हो और स्त्री को बिकता देखकर टुकड़े टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ?

(बारंवार लंबी साँसें लेकर आँसू बहाता है)।

शै. — (कोई महात्मा इत्यादि कहती हुई ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'क्या क्या करोगी ?' पर पुरुष से संभाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़कर और सब सेवा करूँगी। (ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'पर इतने मोल पर कौन लेगा ?' आर्य कोई साधु ब्राह्मण महात्मा कृपा करके लेही लेंगे।

(उपाध्याय और बटुक आते हैं)

उ. — क्यों रे कौडिन्य ! सच ही दासी बिकती है ?

ब. — हाँ गुरुजी क्या मैं झूठ कहूँगा। आप ही देख लीजिएगा।

उ. — तो चल, आगे आगे भीड़ हटाता चल। देख धाराप्रवाह की भाँति कैसे सब काम काजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं। भीड़ के मारे पैर धरने की जगह नहीं है, और मारे कोलाहल के कान नहीं दिया जाता।

ब. — (आगे आगे चलता हुआ) हटो भाई हटो (कुछ आगे बढ़कर) गुरुजी यह जहाँ भीड़ लगी है वहीं होगी।

उ. — (शैव्या को देखकर) अरे यही दासी बिकती है ?

शै. — (अरे कोई हम को मोल ले इत्यादि कहती और रोती है)

बा. — (माता की भाँति तोतली बोली से कहता है)।

उ. — पुत्री ! कहो तुम कौन कौन सेवा करोगी ?

शै. — पर पुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़कर और जो-२ कहिण्णा सब सेवा करूँगी।

उ. — वाह ! ठीक है। अच्छा लो यह सुवर्ण। हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र के अग्नि की सेवा के घर के काम काज नहीं कर सकती सो तुम सम्हालना।

शै. — (हाथ फैलाकर) महाराज आपने बड़ा उपकार किया।

उ. — शैव्या को भली भाँति देखकर आपही आप) आहा ! यह निस्संदेह किसी बड़े कुल की है। इसका

मुख सहज लज्जा से ऊंचा नहीं होता, और दृष्टि वर्राबर पैर ही पर है। जो बोलती है वह धीरे धीरे और बहुत सम्हाल के बोलती है। हा! इसकी यह गति क्यों हुई! (प्रकट) पुत्री तुम्हारे पति हैं न?

शै.— (राजा की ओर देखती है)

ह.— आप ही आप दुख से) अब नहीं। पति के होते भी ऐसी स्त्री की यह दशा हो।

उ.— राजा को देख कर आश्चर्य से) अरे यह विशाल नेत्र, प्रशस्त वक्षस्थल, और संसार की रक्षा करने के योग्य लंबी-२ भुजावाला कौन मनुष्य है, और मुकुट के योग्य सिर पर तुण क्यों रखा है? (प्रगट) महात्मा तुम हम को अपने दुख का भागी समझो और कृपा पूर्वक अपना सब वृत्तों कहो।

ह.— भगवान्! और तो विदित करने का अवसर नहीं है इतना ही कह सकता हूँ कि ब्राह्मण के ऋण के कारण यह दशा हुई।

उ.— तो हम से धन लेकर आप शीघ्र ही ऋणमुक्त हजिए।

ह.— (दोनों कानों पर हाथ रख कर) राम राम! यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है। आप से धन लेकर हमारी कौन गति होगी?

उ.— तो पांच हजार पर आप दोनों में से जो चाहे सो हमारे संग चले।

शै.— (राजा से हाथ जोड़कर) नाथ हमारे आछल आप मत बिकिए, जिस में हम को अपनी आँख से यह न देखना पड़े हमारी इतनी विनती मानिए। (रोती है)

ह.— (आँसू रोक कर) अच्छा! तुम्हीं जाओ। (आपही आप) हा! यह वज्र हृदय हरिश्चन्द्र ही का है कि अब भी नहीं विदीर्ण होता।

शै.— (राजा के कपड़े में सोना बांधती हुई) नाथ! अब तो दर्शन भी दुर्लभ होंगे। (रोती हुई उपाध्याय से) आर्य आप क्षण भर क्षमा करें तो मैं आर्य पुत्र का भली भाँति दर्शन कर लूँ। फिर यह मुख कहाँ और मैं कहाँ।

उ.— हाँ हाँ मैं जाता हूँ कौडिन्य यहा है तुम उसके साथ आना। (जाता है)

शै.— (रोकर) नाथ मेरे अपराधों को क्षमा करना।

ह.— (अत्यन्त घबड़ाकर) अरे अरे विधाता तुझे यही करना था। (आप ही आप) हा! पहिले महारानी बनाकर अब दैव ने इसे दासी बनाया। यह भी देखना बड़ा था। हमारी इस दुर्गति से आज कुलगुरु भगवान् सूर्य का भी मुख मलिन हो रहा है। (रोता हुआ प्रकट

रानी से) प्रिये सर्वभाय से उपाध्याय को प्रसन्न रखना और सेवा करना।

शै.— (रोकर) नाथ! जो आज्ञा।

बटु.— उपाध्याय जी गए अब चलो जल्दी करो।

ह.— (आँखों में आँसू भर के) देवी (फिर रुक कर अत्यंत सोच से आप ही आप) हाय! अब मैं देवी क्या कहता हूँ अब तो विधाता ने इसे दासी बनाया। (धैर्य से) देवी! उपाध्याय की आराधना भली भाँति करना और इनके सब शिष्यों से भी सुदृढ़ भाव रखना, ब्राह्मण के स्त्री की प्रीति पूर्वक सेवा करना, बालक का यथासंभव पालन करना, और अपने धर्म और प्राण की रक्षा करना। विशेष हम क्या समझावें जो जो दैव दिखावे उसे धीरज से देखना। (आँसू बहते हैं)

शै.— जो आज्ञा (राजा के पैरों पर गिर के रोती है)।

ह.— (धैर्य पूर्वक) प्रिये! देर मत करो बटुक घबड़ा रहे हैं।

शै.— (उठकर रोती और राजा की ओर देखती हुई धीरे धीरे चलती है)

बा.— (राजा से) पिता माँ काँ जाती ऐं।

ह.— (धैर्य से आँसू रोककर) जहाँ हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया है।

बा.— (बटुक से) अले माँ को मत लेजा। (माँ का आँचल पकड़ के खींचता है)

बटु.— (बालक को ढकेल कर) चल चल देर होती है।

बा.— (ढकेलने से गिर कर रोता हुआ उठकर अत्यंत क्रोध और करुणा से माता पिता की ओर देखता है)

ह.— ब्राह्मण देवता! बालकों के अपराध से नहीं रुष्ट होना (बालक को उठाकर धूर पोंछ के मुँह चूमता हुआ) पुत्र मुझ बाँडाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्यों देखता है? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिए। जाओ माता के संग मुझ भाग्यहीन के साथ रह कर क्या करोगे। (रानी से) प्रिये धैर्य धरो। अपना कुल और जाति स्मरण करो। अब जाओ देर होती है।

(रानी और बालक रोते हुए बटुक के साथ जाते हैं)

ह.— धन्य हरिश्चन्द्र! तुम्हारे सिवाय और ऐसा कठोर हृदय किस का होगा। संसार में धन और जन छोड़कर लोग स्त्री की रक्षा करते हैं पर तुमने उसका भी त्याग किया।

(विश्वामित्र आते हैं)

ह. — (पेर पर गिर के प्रणाम करता है)

बि. — ला दे दक्षिणा । अब सांभ होने में कुछ देर नहीं है ।

ह. — (हाथ जोड़कर) महाराज आधी लीजिए आधी अभी देता हूँ । (सोना देता है)

बि. — हम आधी दक्षिणा लेके क्या करें ! दे चाहे जहाँ से सब दक्षिणा । (नेपथ्य में) धिक् तपो धिक् व्रतमिदं धिक् ज्ञानं धिक् बहुश्रुतम् । नीतवानसि यन्नृत्तम् हरिश्चन्द्रमिमां दशां ।

बि. — (बड़े क्रोध से) आ : हमको धिक्कार देने वाला यह कौन दुष्ट है ? (ऊपर देखकर) अरे विश्वेदेवा (क्रोध से जल हाथ में लेकर) अरे क्षत्रिय के पक्षपतियो ! तुम अभी विमान से गिरो और क्षत्रिय के कुल में तुम्हारा जन्म हो और वहाँ भी लड़कपन ही में ब्राह्मण के हाथ से मारे जाओ^१ । (जल छोड़ते हैं) (नेपथ्य में हाहाकार के साथ बड़ा शब्द होता है) (सुनकर और ऊपर देखकर आनंद से) हहहह ! अच्छा हुआ ! यह देखो किरीट कुंडल बिना मेरे क्रोध से विमान से छूट कर विश्वेदेवा उलटे हो-र कर नीचे गिरते हैं । और हमको धिक्कार दें ।

ह. — (ऊपर देखकर भय से) वाह रे तप का प्रभाव । (आप ही आप) तब तो हरिश्चन्द्र को अब तक शाप नहीं दिया है यही बड़ा अनुग्रह है । (प्रकट) भगवन यह स्त्री बेच कर आधा धन पाया है सो लें और आधा हम अपने को बेचकर अभी देते हैं । (नेपथ्य में) अरे अब तो नहीं सही जाती ।

बि. — हम आधा न लेंगे चाहे जहाँ से अभी सब दे ।

ह. — (अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि पुकारता हुआ घूमता है)

(चांडाल के भेष में धर्म और सत्य आते हैं)^१

धर्म. — (आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरिरूप जगत हमरे बल चालत ।
जल थल नभ धिर मो प्रभाव मरजाद न टालत ।।
हमहीं नर के मीत सदा सांचे हितकारी ।

इक हमहीं संग जात तजत सब पितु सुत नारी ।।
सो हम नित थित इक सत्य मैं जाके बल सब जियो ।।
सोइ सत्य परिच्छन नृपति को आबु भेस हम यह कियो ।।
कियो ।।

(आश्चर्य से आप ही आप) सचमुच इस राजर्षि के समान दूसरा आज त्रिभुवन में नहीं है । (आगे बढ़कर प्रत्यक्ष) अरे हरजनवाँ ! मोहर का सँदूख ले आवा है न ?

सत्य. — क चौधरी मोहर ले के का करवो ?

धर्म. — तोंहसे का काम पूछे से ?

(दोनों आगे बढ़ते हुए फिरते हैं)

ह. — (अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि दो तीन बेर पुकार के इधर उधर घूमकर) हाय ! कोई नहीं बोलता और कुलगुरु भगवान् सूर्य भी आज हमसे रुष्ट हो कर शीघ्र ही अस्ताचल जाया चाहते हैं (घबराहट दिखाता है) ।

धर्म. — (आप ही आप) हाय हाय ! इस समय इस महात्मा को बड़ा ही कष्ट है । तो अब चलो आगे । (आगे बढ़कर) अरे अरे हम तुम को मोल लेंगे । लेव यह पचास से मोहर लेव ।

ह. — (आनन्द से आगे बढ़कर) वाह कृपा-निधान ! बड़े अवसर पर आए । लाइये । (उसको पहिचान कर) आप मोल लेंगे ?

धर्म. — हाँ हम मोल लेंगे । (सोना देना चाहता है) ।

ह. — आप कौन हैं ?

धर्म. — हम चौधरी डोम सरदार ।

अमल हमारा दोनों पार ।।

सब मसान पर हमारा राज ।।

कफन मांगने का है काज ।।

फूलमती देव^२ के दास ।।

पूजै सती मसान निवास ।।

धनतेरस औ रात दिवाली ।।

बल चढ़ाय कै पूजै काली ।।

सो हम तुमको लेंगे मोल ।।

देगे मुहर गांठ से खोल ।।

१. यही पाँचों विश्वेदेवा विश्वामित्र के शाप से द्वापर में द्रोपदी के पांच पुत्र हुए थे जिन्हें अश्वत्थामा ने बालकपन ही में मार डाला ।

२. काछ कछे, काला रंग, लाल नेत्र, सिर भर छोटे छोटे घूँघराले बाल और शरीर नंगा, बालों से मतवालापन भूलकता हुआ ।।

३. प्राचीन काल में चांडालों की कुल देवी चंडकाल्यायनी थी परंतु इस काल में फूलवती इन लोगों की कुलदेवी है ।

(मत्त की भाँति चेष्टा करता है)

ह. — (बड़े दुःख से) अहह ! बड़ा दारुण व्यसन उपस्थित हुआ है । (विश्वामित्र से) भगवान् मैं पैर पड़ता हूँ, मैं जन्म भर आप का दास होकर रहूँगा, मुझे चाँडाल होने से बचाइए ।।

बि. — छिः मूर्ख ! भला हम दास लेके क्या करेंगे ।

'स्वयंदासास्तपस्विनः'

ह. — (हाथ जोड़कर) जो आज्ञा कीजियेगा हम सब करेंगे ।

बि. — सब करेगा न ? (ऊपर हाथ उठाकर) कर्म के साक्षी देवता लोग सुनें, यह कहता है कि जो आप कहेंगे मैं सब करूँगा ।

ह. — हाँ हाँ जो आप आज्ञा कीजिएगा सब करूँगा ।

बि. — तो इसी गाहक के हाथ अपने को बेचकर अभी हमारी शेष दक्षिणा चुका दे ।

ह. — जो आज्ञा । (आप ही आप) अब कौन सोच है । (प्रगत धर्म से) तो हम एक नियम पर विकेंगे ।

धर्म. — वह कौन ?

ह. —

भीख असन कम्मल बसन रखिहैं दूर निवास ।।
जो प्रभु आज्ञा होई है करि हैं सब द्ये दास ।।

धर्म. — ठीक है लेव सोना (दर से राजा के आँचल में मोहर देता है)

ह. — लेकर हर्ष से आप ही आप) ऋण छूट्यो पूर्यो बचन द्विजहू न दीनो शाप । सत्य पालि चंडालहू होई आजु मोहि दास ।।

(प्रकट विश्वामित्र से) भगवन् ! लीजिए यह मोहर ।

बि. — (मुह चिढ़ाकर) सचमुच देता है ?

ह. — हाँ हाँ यह लीजिए । (मोहर देते हैं)

बि. — (लेकर) स्वास्ति । (आप ही आप) बस अब चलो बहुत परीक्षा हो चुकी । (जाना चाहते हैं)

ह. — (हाथ जोड़कर) भगवन् दक्षिणा देने में देर होने का अपराध क्षमा हुआ न ?

बि. — हाँ क्षमा हुआ । अब हम जाते हैं ।

ह. — भगवन् प्रणाम करता हूँ ।

(विश्वामित्र आशीर्वाद देकर जाते हैं)

ह. — अब चौधरी जी (लज्जा से रुककर) स्वामी की जो आज्ञा हो वह करें ।

धर्म. — (मत्त की भाँति नाचता हुआ)

जाओ अभी दक्खिनी मसान ।
लेओ वहाँ कफफन का दान ।।

जो कर तुमको नहीं चुकावे ।
सो किरिया करने नहिं पावे ।।
चलो घाट कर करो निवास ।
भए आज से मेरे दास ।

ह. — जो आज्ञा ।

सत्यहरिश्चन्द्र का तीसरा अंक समाप्त हुआ ।

(ज्वनिका गिरती है)

चौथा अंक

स्थान — दक्षिण स्मशान, पीपल का बड़ा पेड़,

चिता, मुरदे, कोए, सियार, कुते, हड्डी, इत्यादि ।
(कम्मल ओढ़े और एक मोटा लट्ठ लिए हुए राजा हरिश्चन्द्र फिरते दिखाई पड़ते हैं)

ह. — (लंबी साँस लेकर) हाय ! अब जन्म भर यही दुख भोगना पड़ेगा ।

जाति दास चंडाल की, घर घनघोर मसान ।
कफन खसोटी को करम, सबही एक समान ।।
न जाने विधाता का क्रोध इतने पर भी शांत हुआ कि नहीं । बड़ों ने सच कहा है कि दुःख से दुःख जाता है ।
दक्षिणा का ऋण चुका तो यह कर्म करना पड़ा । हम क्या क्या सोचें । अपनी अनाथ प्रजा को या दीन नातेदारों को, या अशरण नौकरों को, या रोती हुई दासियों को, या सुनी अयोध्या को, या दासी बनी महारानी को, या उस अनजान बालक को, या अपने ही इस चंडालपने को । हा ! बटुक के धक्के से गिरकर रोहिताश्व ने क्रोधभरी और रानी ने जाती समय करुणाभरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अब तक नहीं भूलती । (घबड़ा कर) हा देवी ! सूर्यकुल की बहू और चंद्रकुल की बेटी होकर तुम बेची गई और दासी बनी । हा ! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गुंथ सकती थीं उनसे बरतन कैसे माजोगी ! (मोह प्राप्त होने चाहता है पर सम्हल कर) अथवा क्या हुआ ? यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा ।

बेच देह दारा सुअन होई दासहू मन्द ।
राख्यो निज बच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द ।।
(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

अरे ! यह असमय में पुष्पवृष्टि कैसी ? कोई पुन्यात्मा का मुरदा आया होगा । तो हम सावधान हो जायं । (लट्ठ कंधे पर रखकर फिरता हुआ) खबरदार खबरदार बिना हम से कहे और बिना हमें आधा कफन दिए कोई संस्कार न करे । (यही कहता हुआ निर्भय मुद्रा से इधर उधर देखता फिरता है) (नेपथ्य में कोलाहल सुनकर) हाय हाय ! कैसा भयंकर स्मशान है ! दूर से मंडल बांध बांध

कर चोंच बाण, देना फैलाए, कंगालों की तरह मूर्खों पर
गिद कैसे गिरते हैं, और कैसे मांस नोच नोच कर
आपस में लड़ते और चिल्लाते हैं। उधर अत्यन्त कर्णकट
अमंगल के नगाड़े की भाँति एक के शब्द की लाग से दूसरे
सियार कैसे रोते हैं। उधर चिराइन फैलाती हुई चट चट
करती चिता कैसी जल रही हैं, जिन में कहीं से मांस के
टुकड़े उड़ते हैं, कहीं लोह या चरबी बहती है। आग का रंग
मांस के संबंध से नीला पीला हो रहा है। ज्वाला धूम-धूम
कर निकलती हैं। आग कभी एक साथ धधक उठती है
कभी मन्द हो जाती है। धुआँ चारों ओर छा रहा है। (आगे
देखकर आदर से) अहा ! यह वीभत्स व्यापार भी बड़ाई के
योग्य है। शव ! तुम धन्य हो कि इन पशुओं के इतने
काम आते हो। अतएव कहा है

‘मरनो भगो विदेश को जहाँ न अपने कोय ।
माटी खाय जनावरा महा महोच्छव होय ।’

अहा ! देखा

स्मर पर बैठयो काग आँख बाँट खान निकारत ।
खोचत जीभाँह स्यार आँतह आनन्द उर धारत ।
गिद जाँच कहँ खोद खोद के मांस उवारत ।
खान आँगुरन काँट काँट के खान विचारत ।
वह चील नाँच ले जात तुच मोद बढ़यो सबको हियो ।
मनु ब्रह्मभोज त्रिजमान कोउ आजु भिखाँगन कहँ दियो ।
सोई मुख सोई उदर सोई कर पद नोय ।
भयो आजु कछु और ही परसत जेहि नहिँ कोइ ॥
हाइ मांस लाला रक्त बसा तुना सब सोय ।
छिन्न भिन्न द्रवगन्धमय मरे मनुस के होय ॥
कादर जेहि लाखि के डरन पीड़ित पावत लाज ।
अहो ! व्यर्थ संसार को विषय वासना साज ॥
अहा ! अरीर भी कैसी निस्मार वस्तु है ।
(हा ! मरना भी क्या वस्तु है ।)

सोई मुख जेहि चन्द वसान्यौ ।
सोई अंग जेहि प्रिय करि जान्यौ ॥
सोई भुज जे पिय गर डारें ।
सोई भुज जिन रन विक्रम पारें ॥
सोई पद जेहि सेवक बन्दत ।
सोई छाँव जेहि देखि आनन्दत ॥
सोई रसना जहँ अमृत बानी ।
सोई स्त्री के हिय नारि जुहानी ॥
सोई हृदय जहाँ जहर अनेका ।
सोई सिर जहँ निज बच टेका ॥
सोई छाँवमय अंग सुबाए ॥
आजु जीव बिनु धरान सुहाए ॥
कहाँ गई वह सुंदर सोभा ।

जीवत जेहि लाखि सब मन लोभा ॥
प्रानहँ ते वाढ़ जा कहँ चाहत ।
ता कहँ आजु सबै मारि लहत ॥
फूल बोझ हूँ जिन न सहायें ।
तिन पै बोझ काठ बहु डारें ॥
सिर पीड़ा जिन की नहिँ हेरी ।
करन कपाल क्रिया तिनकेरी ॥
छिनहुँ जे न भए कहँ न्यारे ।
ते हँ बन्धुन छोड़ि सिधारें ॥
जो दुग कोर महीप निहारत ।
आजु काक तेहि भोज विचारत ॥
भुज बल जे नहिँ भुवन समाए ।
ते लाखियत मुख कफन छिपाए ॥
नरपाति प्रजा भेद विनु देखें ।
गने काल सब एकाँहि लेखें ॥
सृभग करुण अमृत बिख साने ।
आजु सबै इक भाव विकाने ॥
पुरु दधीच कोउ अब नाहीं ।
रहे नावँ हीं ग्रन्थन माहीं ॥

अहा ! देखो वही सिर जिसपर मंत्र से अभिषेक होता था,
कभी नवरत्न का मुकुट रक्खा जाता था, जिसमें इतना
अभिमान था कि इन्द्र को भी नृच्छ गिनता था, और जिसमें
बड़े-२ राज जीतने के मनोरथ भर थे, आज पिशाचों का
गेंद बना है और लोग उसे पैर से छूने में भी धिन करते
हैं। (आगे देखकर) अरे यह स्मशान देवी हैं। अहा
कात्यायनी को भी कैसे वीभत्स उपचार प्यारा है। यह
देखो शोम लोगों ने सूखे गले सड़े फूलों की माला गंगा में से
पकड़ पकड़ कर देवी को पहना दी है और कफन की ध्वजा
लगा दी है। मरे बैल और भैंसों के गले के घंटे पीपल की
डार में लटक रहे हैं जिन में लोलक की जगह नली की
हड्डी लगी है। घट के पानी से चारों ओर से देवी का
अभिषेक होता है और पेट के खिमे में लोह के थापे लगे
हैं। नीचे जो उतारों की बर्ली दी गई है उस के खाने को
कुत्ते और सियार लड़-लड़ कर कोलाहल मचा रहे हैं।
(हाथ जोड़ कर) ‘भगवति ! चंडि ! प्रेते ! प्रेते
बिमाने ! लसत्प्रेते । प्रेतास्थि रौद्ररूपे ! प्रेताशनि ।
भैरवि ! नमस्ते’ ।

नेपथ्य में) राजन हम केवल चंडालों के प्रणाम के योग्य
हैं। तुम्हारे प्रणाम से हमें लज्जा आती है। मांगो क्या वर
मांगते हो।

ह. — (सुनकर आश्चर्य से) भगवति ! यदि आप
प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिए ।
(नेपथ्य में) साधु महाराज हरिश्चन्द्र साधु !

ह. — (ऊपर देखकर) अहा ! स्थिरता किसी को भी नहीं है । जो सूर्य उदय होते ही पड़िमनी बल्लभ और लौकिक वैदिक दोनों कर्म का प्रवर्तक था, जो दो पहर तक अपना प्रचंड प्रताप क्षण-२ बढ़ता गया, जो गगनांगन का दीपक और कालसर्प का शिखामणि था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भांति अपना सब तेज गंवाकर देखो समुद्र में गिरा चाहता है ।

अथवा

सांभ सोई पट लाल कसे काटि सूरज खप्पर हाथ लह्यो है । पच्छिम के वह सव्दन के मिस जीअ उचाटन मंत्र कह्यो है । मद्य भरी नर खोपरी सो ससि को नय बिम्बहू धाड़ गह्यो है । दै बलि जीव पसू यह मत्त ह्वै काल कपालिक नाचि रह्यो है ।

सूरज धूम बिना की चिता सोई अंत में लै जल माहिं बहाई । बोलैं घने तरु बैठि बिहंगम रोअत सो मनु लोग लोगाई । धूम अंधार, कपाल निसाकर, हाड़ नखत्र, लहसी^१ ललाई । अनंद हेतु निसाचर के यह काल समान सी सांभ बनाई ।

अहा ! यह चारों ओर से पक्षी लोग कैसा शब्द करते हुए अपने-२ घोंसलों की ओर चले आते हैं । वर्षा से नदी का भयंकर प्रवाह, सांभ होने से स्मशान के पीपल पर कौओं का एक संग अमंगल शब्द से काँव-काँव करना, और रात के आगम से एक सन्नाटे का समय चित्त में कैसी उदासी और भय उत्पन्न करता है । अंधकार बढ़ता ही जाता है । वर्षा के कारण इन स्मशानवासी मंडूकों का टर-टर करना भी कैसा डरावना मालूम होता है ।

रुआ चर्द्दास ररत डरत सुनि कै नर नारी । फटफटाइ वोउ पंख उलूकहू रटत पूकारी । अन्धकार बस गिरत काक अरु चील करत रब । गिद्ध गरुड़ हड़गिल्ल भजत लाखाविकट भयद दब । रोअत सियार गरजत नदी स्वान भू मि डरपावई । संग दादुर भीगुर रुदन धुनि मिलि खर तुमुल मचावई ।

इस समय ये चिता भी कैसी भयंकर मालूम पड़ती है । किसी का सिर चिता के नीचे लटक रहा है, कहीं आँच से हाथ पैर जलकर गिर पड़े हैं, कहीं शरीर आधा जला है, कहीं बिलकूल कच्चा है, किसी को जैसे ही पानी में बहा दिया है, किसी को किनारे छोड़ दिया है, किसी का मुँह जल जाने से दाँत निकला हुआ भयंकर

हो रहा है, और कोई दहकती आग में ऐसा जल गया कि कहीं पता भी नहीं है । बाहरे शरीर ! तेरी क्या क्या गति होती है !!! सचमुच मरने पर इस शरीर को चटपट जला ही देना योग्य है क्योंकि ऐसे रूप और गूण जिस शरीर में थे, उसको कीड़ों वा मर्छालियों से नुचवाना और सड़ा कर दुर्गन्धमय करना बहुत ही बुरा है । न कुछ शेष रहेगा न दुर्गति होगी । हाय ! चलो आगे चलें । (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर घूमता है) (कौतुम से देखकर) पिशाचों का क्रीड़ा कुतूहल भी देखने योग्य है । अहा ! यह कैसे काले-काले भाड़ से सिर के बाल खड़े किये लम्बे-२ हाथ पैर बिकराल दाँत लम्बी आँभ निकाले इधर उधर दौड़ते और परस्पर किलकारी मारते हैं मानों भयानक रस की सेना मूर्तिमान होकर यहाँ स्वच्छंद बिहार कर रही है । हाय हाय ! इन का खेल और सहज व्योहार भी कैसा भयंकर है । कोई कटाकट हड्डी चबा रहा है, कोई खोपड़ियों में लोह भर भर के पीता है, कोई सिर का गेंद बनाकर खेलता है, कोई अंतड़ी निकालकर गले में डाले है और चंदन की भाँत चरबी और लोह शरीर में पीत रहा है, एक दूसरे से मांस छीन कर ले भागता है, एक जलता मांस मारे तृष्णा के मुँह में रख लेता है पर जब गरम मालूम पड़ता है तो धू धू करके धूक देता है, और दूसरा उसी को फिर भट से खा जाता है । हा ! देखो यह चुड़ैल एक स्त्री की नाक नथ समेत नोच लाई है जिसे देखने को चारों ओर से सब भूतने एकत्र हो रहे हैं और सभी को इसका बड़ा कौतुक हो गया है । हसी में परस्पर लोह का कुल्ला करते हैं और जलती लकड़ी और मुरवों के अंगों से लड़ते हैं और उनको ले ले कर नाचते हैं । यदि तनिक भी क्रोध में आते हैं तो स्मशान में कुत्तों को पकड़-२ कर खा जाते हैं । अहा ! भगवान भूतनाथ ने बड़े कठिन स्थान पर योग साधना की है । (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरता है) (ऊपर देख कर) आधी रात हो गई, वर्षा के कारण अंधेरी बहुत ही छा रही है, हाथ से हाथ नहीं सूझता । चाँडाल कुल की भाँत स्मशान पर तम का भी आज राज हो रहा है । (स्मरण करके) हा । इस दुःख की दशा में भी हमसे प्रिया अलग पड़ी है । कैसी भी हीन अवस्था हो पर अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं

१. प्राचीन काल में राज के अपराधी लोग स्मशान ही पर गला काट कर मारे जाते थे इसी से यहाँ स्मशान के वर्णन में लोह का वर्णन है ।

मालूम पड़ता । सच है — "टूट टाट घर टपकत छटियौ टूट । पिय के बांह उसिसबां सुख के लूट" । बिधना ने इस दुःख पर भी वियोग दिया हा ! यह वर्षा और यह दुःख ! हरिश्चन्द्र का तो ऐसा काँठन कलेजा है कि सब सहेगा पर जिसने सपने में भी दुख नहीं देखा वह महारानी किस दशा में होगी । हा देवि ! धीरज धरो धीरज धरो । तुमने ऐसे ही भाग्यहीन से स्नेह किया है जिसके साथ सदा दुःख ही दुःख है । (ऊपर देखकर) अरे पानी बरसने लगा ! (घोची भली भाँत ओढ़कर) हमको तो यह वर्षा और स्मशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं । देखो

चपला की चमक चढ़ा सों लगाई चिता चिनगी चिलक पटबीजना चलायो है । हेती बग माल स्याम बाद सु भूमिकारी वीर वधू वृंद भव लपटायो है ।। हरीचन्द नीर धार आंसु सी परत जहाँ दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है । दाहन वियोगी दुखियान को मरे हँ यह देखो पापी पावस मसान बनि आयो है ।

(कुछ देर तक चुप रह कर) कौन है ? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिर कर) इन्द्रकालहू सरिस जो आयसु लाधे कोय । यह प्रचंड भुज दंड मम प्रांत भट ताको होय ।। अरे कोई नहीं बोलता । (कुछ आगे बढ़कर) कौन है ?

(नेपथ्य में) हम हैं ।

ह. — अरे हमारी बात का उत्तर कौन देता है ? चलो जहाँ से आवाज आई है वहाँ चलकर देखें । (आगे बढ़कर नेपथ्य की ओर देखकर) अरे यह कौन है ?

चिता भस्म सब अंग लगाए ।

अस्थि अभूषण बिबिध बनाए ।।

हाथ मसान कपाल जगावत ।

को यह चलयो रुद्र सम आवत ।।

(कार्पाणिक के वेष में धर्म आता है)

धर्म. — अरे हम हैं ।

वृत्ति अयाचित आत्म रति करि जग के सुख त्याग ।
फिरहि मसान-२ हम धारि अनन्द विराग ।।

(आगे बढ़कर महाराज हरिश्चन्द्र को देखकर आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत ।
जल थल नभ थिर मम प्रभाव मरजाद न टालत ।।
हमहीं नर के मीत सदा सांचे हितकारी ।
हम ही इक संग जात तजत जब पितु सुत नारी ।।
सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियो ।
सो सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेष हम यह कियो ।।

(कुछ सोचकर) राजर्षि हरिश्चन्द्र की दुःख परंपरा अत्यंत शोचनीय और इनके चरित्र अत्यन्त आश्चर्य के हैं ! अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है । सहत बिबिध दुख मरि मिटत भोगत लाछन सोग । पै निज सत्य न छाड़हीं जे जग सांचे लोग । बरु सूरज पच्छिम उगे बिन्ध्य तरं जल माँहि । सत्य वीर जन पै कबहुं निज बच टारत नाहिं ।।

अथवा उनके मन इतने बड़े हैं कि दुख को दुख, सुख को सुख गिनते ही नहीं । चलें उनके पास चलें । (आगे बढ़कर और देखकर) अरे यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं ? (प्रकट) महाराज ! कल्याण हो ।

ह. — (प्रणाम करके) आइये योगिराज ।

ध. — महाराज हम अर्थी हैं ।

ह. — (लज्जा और विकलता नाट्य करता है)

ध. — महाराज आप लज्जा मत कीजिए । हम लोग योग बल से सब कुछ जानते हैं । आप इस दशा पर भी हमारा अर्थ पूर्ण करने को बहुत हैं । चन्द्रमा राहु से ग्रसा रहता है तब भी दान दिलवा कर भिक्षुओं का कल्याण करता है ।

ह. — आज्ञा । हमारे योग्य जो कुछ हो आज्ञा कीजिए ।

ध. — अंजन गुटिका पादुका धातुभेद बैताल ।
वज्र रसायन जोगिनी मोहि सिद्ध इहि काल ? ।

ह. — तो मुझे आज्ञा हो वह करूँ ।

ध. — आज्ञा यही है कि यह सब मुझे सिद्ध हो गए हैं पर बिधन इस में बाधक होते हैं सो आप विधनों का निवारण कर दीजिए ।

१. गेरुए वस्त्र का काछा कछे गेरुआ कफनी पहिने, सिर के बाल खेले, सेंदुर का अर्द्धचंद्र दिए, नगी तलवार गले में लटकती हुई, एक हाथ में खण्ड बलता हुआ, दूसरे हाथ में चिमटा, अंग में भभूत पोते, नशे से आँखें लाल, लाल फूल की माला और हड़दी के आभूषण पहिने ।

२. अंजन सिद्धि से जमनी में गड़े खजाने देख पड़ते हैं । गुटिका धुह में रखकर वा पादुका पहिन कर चाहे जहाँ अलाक्ष्य चला जाय । धातुभेद से औषध मात्र सिद्ध होती है । बैताल बस में होकर यथेच्छ काम देता है । वज्र सिद्ध होने से जहाँ गिराओ वहाँ गिरता है । रसायन सिद्धि से चाँदी सोना बनता है । जोगिनी सिद्ध होने से भूत भविष्य का वृत्त कह देती है । और सब इच्छा पूर्ण करती है । यही आठो सिद्धि हैं ।

ह. — आप जानते ही हैं कि मैं परायण दास हूँ, इससे जिनमें मेरा धर्म न जाय वह मैं करने को तैयार हूँ ।

ध. — (आप ही आप) राजन् जिस दिन तुम्हारा धर्म जाएगा उस दिन पृथ्वी किसके बल से ठहरेगी (प्रत्यक्ष) महाराज इसमें धर्म न जायगा क्योंकि स्वामी की आज्ञा तो आप उल्लंघन करते ही नहीं । सिद्धि का आकर इसी स्मशान के निकट ही है और मैं अब पुरश्चरण करने जाता हूँ, आप विधियों का निषेध कर दीजिए ।

(जाता है)

ह. — (ललकार कर) हटो रे हटो विधियाँ चारों ओर से तुम्हारा प्रचार हम ने रोक दिया ।

(नेपथ्य में) महाराजाधिराज जो आज्ञा ।

आप से सत्य वीर की आज्ञा कौन लांघ सकता है । खल्वी द्वार कल्याण को सिद्ध जोग तप आज ।

निर्धि सिद्धि विद्या सब करहि अपने मन को काज ।।
ह. — (हर्ष से) बड़े आनन्द की बात है कि विधियों ने हमारा कहना मान लिया । (विमान पर बैठी हुई तीनों महाविद्या आती हैं^१)

म. — वि. महाराज हरिश्चन्द्र ! बधाई है । हमी लोगों को सिद्ध करने को विश्वामित्र ने बड़ा परिश्रम किया था तब देवताओं ने माया से आपको स्वप्न में हमारा रोना सुनकर हमारा प्राण बचाया ।

ह. — (आप ही आप) अरे यही सृष्टि की उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाली महाविद्या हैं जिन्हें विश्वामित्र भी न सिद्ध कर सके । (प्रगट हाथ जोड़कर) त्रिलोकविजयिनी महाविद्याओं को नमस्कार है ।

म. — वि. महाराज हम लोग आप के बस में हैं । हमारा ग्रहण कीजिए ।

ह. — देवियो ! यदि हम पर प्रसन्न हो तो विश्वामित्र मुनि को वशवर्त्तिनी हो क्योंकि उन्होंने आप लोगों के वास्ते बड़ा परिश्रम किया है ।

म. — वि. (परस्पर आश्चर्य से देखकर) धन्य महाराज धन्य ! जो आज्ञा ।

(जाती हैं)

धर्म एक बैताल के सिर पर पिटारा रखवाए हुए आता है ।

ध. — महाराज का कल्याण हो । आप की कृपा से महानिधान^२ सिद्ध हुआ । आपको बधाई है अब लीजिए इस रसेन्द्र को ।

याही के परभाव सों अमरदेव सम होइ ।
जोगी जन विहरहिं सब मेरु शिखर भए खोइ ।।

ह. — (प्रणाम करके) महाराज दास धर्म के यह विरुद्ध है । इस समय स्वामी से कहे बिना मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है ।

ध. — (आश्चर्य से आप ही आप) वाह रे महानुभावता ! (प्रगट) तो इसके स्वर्ण बना कर आप अपना दास्य छोड़ा लें ।

ह. — यह ठीक है पर मैंने तो विनती किया न कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिले सब स्वामी का है । क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना सत्व मात्र बेच चुका इससे आप मेरे बदले कृपा करके मेरे स्वामी ही को यह रसेन्द्र दीजिए ।

ध. — (आश्चर्य से आप ही आप) धन्य हरिश्चन्द्र ! धन्य तुम्हारा धैर्य ! धन्य तुम्हारा विवेक ! और धन्य तुम्हारी महानुभावता ! या चले मेरु वरु प्रलय जल पवन भूकोरन पाय । पै वीरन के मन कबहुं चलहिं नाहिं ललचाय ।। तो हमें भी इसमें कौन हठ है । (प्रत्यक्ष) बैताल ! जाओ जो महाराज की आज्ञा है वह करो ।

वै. — जो रावल जी की आज्ञा । (जाता है)

ध. — महाराज ब्राह्म मुहूर्त निकट आया अब हम को भी आज्ञा हो ।

ह. — जोगिराज ! हम को भूल न जाइएगा, कभी कभी स्मरण कीजिएगा ।

ध. — महाराज ! बड़े बड़े देवता आप का स्मरण करते हैं और करेंगे मैं क्या हूँ ।

(जाता है)

ह. — क्या रात बीत गई ! आज तो कोई भी मुरदा नया नहीं आया । रात के साथ ही स्मशान भी शांत हो चला । भगवान् नित्य ही ऐसा करें ।

(नेपथ्य में घंटानूपुरादि का शब्द सुनकर) अरे यह बड़ा कोलाहल कैसा हुआ ?

(विमान पर अष्ट महासिद्धि नव निर्धि और बारहो प्रयोग आदि देवता^३ आते हैं) ।

१. ब्रह्मा, विष्णु, महेश के वेश में पर स्त्री का शृंगार ।

२. महानिधान बुभुक्षित धातु भेदी पारा जिसे बावन तोला पाव रत्ती कहते हैं ।

३. साधारण देवी देवताओं के वेश में । अष्ट महासिद्धि यथा — अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईश्वरत्व और वशित्व । नव निर्धि यथा — पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द,

ह. — (आश्चर्य से) अरे यह कौन देवता बड़े प्रसन्न होकर स्मशान पर एकत्र हो रहे हैं ।

दे. — महाराज हरिश्चन्द्र की जय हो । आप के अनुग्रह से हम लोग विघ्नों से छूट कर स्वतंत्र हो गए । अब हम आपके वश में हैं जो आज्ञा हो करें । हम लोग अष्ट महा सिद्धि नव निधि और बारह प्रयोग सब आप के हाथ में हैं ।

ह. — (प्रणाम करके) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हो तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जन के, और प्रयोग साधकों के पास जाओ ।

दे. — (आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे बिना और ऐसा कौन होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे । हमी लोगों की सिद्धि को बड़े २ योगी मूर्ति पच मरते हैं पर तुमने तृण की भाँति हमारा त्याग करके जगत कल्याण किया ।

ह. — आप लोग मेरे सिर आँखों पर हैं पर मैं क्या करूँ, क्योंकि मैं पराधीन हूँ । एक बात और भी निवेदन है । वह यह कि छ अच्छे प्रयोग की तो हमारे समय में सद्यः सिद्धि होय पर बुरे प्रयोगों की सिद्धि विलम्ब से हो ।

दे. — महाराज ! जो आज्ञा । हम लोग जाते हैं । आज आप के सत्य ने शिव जी के कीलन को भी शिथिल कर दिया । महाराज का कल्याण हो ।

(जाते हैं)

(नेपथ्य में इस भाँति मानो राजा हरिश्चन्द्र नहीं सुनते)

(एक स्वर से) तो अब अप्सरा को भेजे ?

(दूसरे स्वर से) छिः मूर्ख ! जिस को अष्ट सिद्धि नव निधियों ने नहीं डिगाया उसको अप्सरा क्या डिगावेगी ।

(एक स्वर से) तो अब अन्तिम उपाय किया जाय ।

(दूसरे स्वर से) हाँ तत्क्षक को आज्ञा दे । अब और कोई उपाय नहीं है ।

ह. — अहा अरुण का उदय हुआ चाहता है । पूर्व दिशा ने अपना मुँह लाल किया । (साँस ले कर) 'था चकई को भयो चित चीतो विलोति चहूँ दिसि चाय सों नाची । हवै गई छीन कलाधर की कला जाभिनी जाँति

मनो जम जाँची । बोलत बैरी बिहंगम देव संजोगिन की भई संपति काची । लोह पियो जो बियोगिन को सो कियो मुख लाल पिशाचिन प्राची ।' हा ! प्रिये इन बरसातों की रात को तुम रो रो के बिताती होगी ! हा ! वत्स रोहिताश्व, भला हम लोगों ने तो अपना शरीर बेचा तब दास हुए तुम बिना विके हो क्यों दास बन गए !

जोहि सहसन परिचायिका राखत हाथहि हाथ । सो तुम लोटत धूर मैं दास बालकन साथ ! जाकी आयसु जग नृपति सुनतहि धारत सोस ! तेहि द्विज बटु अज्ञा करत अहह कठिन अति इस । बिनु तन बेचे बिनु जग जान विवेक । दैव सर्पदंशित भए भोगत कष्ट अनेक ।

(घबड़ाकर) नारायण ! नारायण ! मेरे मुख से क्या निकल गया । देवता उस की रक्षा करें । (बाई आँख का फड़कना दिखाकर) इसी समय में यह महा अपशकुन क्यों हुआ ? (बाहिनी भुजा का फड़कना दिखाकर) अरे और साथ ही यह मंगल शकुन भी ! न जाने क्या होनहार है, वा अब क्या होनहार है जो होना था सो हो चुका । अब इस से बढ़कर और कौन दशा होगी ? अब केवल मरण मात्र बाकी है । इच्छा तो यही है कि सत्य छूटने और दीन होने के पहाँले ही शरीर छूटे क्योंकि इस दुष्ट वित्त का क्या ठिकाना है पर वश क्या है ।

(नेपथ्य में)

पुत्र हरिश्चन्द्र सावधान । यही अन्तिम परीक्षा है । तुम्हारे पूरखा इधवाकु से लेकर त्रिशंकु पर्यन्त आकाश में नेत्र भरे खड़े एक टक तुम्हारा मुख देख रहे हैं । आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दुःख किसी को नहीं हुआ था । ऐसा न हो कि इन का सिर नीचा हो । अपने धैर्य का स्मरण करो ।

ह. — (घबड़ा कर ऊपर देखकर) अरे ! यह कौन है ? कुलगुरु भगवान सूर्य अपना तेज समेटे मुझे अनुशासन कर रहे हैं । (ऊपर पित : मैं सावधान हूँ सब दुःखों को फूल की माला की भाँति ग्रहण करूँगा । (नेपथ्य से राने की आवाज सुन पड़ती है)

ह. — अरे अब सबेरा होने के समय मुरदा आया ! अथवा चाँदल कुल का सदा कल्याण हो हमें इस से

नील, और बर्चस्स । बारह प्रयोग यथा — मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और कामनाशन यह छ बुरे ; और स्तम्भन, वशीकरण, आकर्षण, बंदी मोक्षण, कालपूरण और वाक् प्रसारण ये छ : अच्छे ।

१. शिवजी ने साधन मात्र को कील दिया है जिस में जलदी न सिद्ध हों, सो राजा हरिश्चन्द्र ने विघ्नों को जो रोक दिया इस से वह कीलन भी शिव जी की इच्छा पूर्वक उस समय दूर हो गया था क्योंकि यह भी तो एक सब मो बड़ा विघ्न था ।

क्या । (खबरदार इत्यादि कहता हुआ फिरता है)
(नेपथ्य में)

हाय ! कैसी भई ! हाय बेटा हमें रोनी छोड़ के कहाँ चले गए ! हाय ! हायरे !

ह. — अहह ! किसी दीन स्त्री का शब्द है, और शोक भी इस को पुत्र का है । हाय हाय ! हम को भी भाग्य ने क्या ही निर्दय और वीभत्स कर्म सौंपा है । इससे भी वस्त्र सांगना पड़ेगा । (रोती हुई शैल्या रोहिताश्व का मुखा लिये आती है ।)

शै. — (रोती हुई) हाय ! बेटा जब बाप ने छोड़ दिया तब तुम भी छोड़ चले ! हाय हमारी विपत और दुष्टी की ओर भी तुम ने न देखा ! हाय ! हाय रे ! अब हमारी कौन गति होगी ! (रोती है)

ह. — हाय ! हाय ! इसके पति ने भी इसको छोड़ दिया है ! हा ! इस तर्पास्वनी को निष्करण विधि ने बड़ा ही दुःख दिया है ।

शै. — (रोती हुई) हाय बेटा ! अरे आज मुझे किसने लूट लिया ! हाय मेरी बोलती चिड़िया कहाँ उड़ गई ! हाय अब मैं किसका मुँह देख के जीऊंगी ! हाय मेरी अंधी की लकड़ी कौन छीन ले गया ! हाय मेरा ऐसा सुंदर खिलौना किसने तोड़ डाला ! अरे बेटा तू तो मरे पर भी सुंदर लगता है ! हाय रे ! अरे बोलता क्यों नहीं ! बेटा जल्दी बोल, देख माँ कब की पुकार रही है ! बच्चा तू तो एक ही दफे पुकारने में दौड़कर गले से लपट जाता था, आज क्यों नहीं बोलता !

(श्व को बारंबार गले लगाती, देखती और चूमती है)

ह. — हाय हाय ! इस दुःखिया के पास तो खड़ा नहीं हुआ जाता ।

शै. — (पागल की भांति) यह क्या हो रहा है ! बेटा कहाँ गए हो आओ जल्दी ! अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगती है यहाँ मुझ को कौन ले आया है रे ! बेटा जल्दी आओ ! क्या कहते हो, मैं गुरू को फूल लेने गया था वहाँ काले साँप ने मुझे काट लिया ! हाय हाय रे ! अरे कहाँ काट लिया ? अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलाबै बच्चे को । अरे वह साँप कहाँ गया ! हम को क्यों नहीं काटता ? काट रे काट, क्या उस सुकुआर बच्चे ही पर बल दिखाता था ? हमें काटा । हाय हम को नहीं काटता । अरे हिंयाँ तो कोई साँप बाँप नहीं है, मेरे लाल भूठ बोलना कब से सीखे ? हाय हाय मैं इतना पुकारती हूँ और तुम खेलना नहीं छोड़ते ? बेटा गुरूजी पुकार रहे हैं उनके होम की बेला निकली जाती है । देखो बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं । दो जल्दी इनको दूब और

बेलापत्र । हाय हमने इतना पुकारा तुम कुछ नहीं बोलते ! (जोर से) बेटा साँभ भई, सब विद्यार्थी लोग घर फिर आए तुम अब तक क्यों नहीं आए ? (आगे श्व देखकर) हाय हाय रे ! अरे मेरे लाल को साँप ने सचमुच इस लिया ! हाय लाल ! हाय मेरे आँखों के उजियाले को कौन ले गया ! हाय ! मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहाँ उड़ गया ! बेटा अभी तो बोल रहे थे अभी क्या हो गया ! हाय मेरा बसा घर आज किसने उजाड़ दिया ! हाय मेरी कोख में किस ने आग लगा दी ! हाय मेरा कलोजा किसने निकाल लिया ! (चिल्ला चिल्लाकर रोती है) हाय लाल कहाँ गए ! अरे अब मैं किसका मुँह देख के जीऊंगी रे ! हाय अब माँ कहके मुझको कौन पुकारेगा ! अरे आज किस बैरी की छाती ठंडी भई रे ! अरे तरे सुकुआर अंगों पर भी काल को तनिक दया न आई ! अरे बेटा आँख खोलो ! हाय मैं सब विपत तुम्हारा ही मुँह देखकर सहती थी सो अब कैसे जीती रहूंगी ! अरे लाल एक बेर तो बोलो (रोती है)

ह. — न जाने क्यों इसके रोने पर मेरा कलोजा फटा जाता है ।

शै. — (रोती हुई) हा नाथ ! अरे अपने गोद के खेलाए बच्चे को यह दशा क्यों नहीं देखते ! हाय ! अरे तुम ने तो इसको हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना सो हमने इसकी यह दशा कर दी ! हाय ! अरे ऐसे समय में भी आकर नहीं सहाय होते ! भला एक बेर लड़के का मुँह तो देख जाओ ! अरे मैं किस के भरोसे अब जीऊंगी ।

ह. — हाय हाय ! इसकी बातों से प्राण मुह को चले आते हैं और मांलूम होता है कि संसार उलटा जाता है । यहाँ से हट चले (कुछ दूर हटकर उसकी ओर देखता खड़ा हो जाता है) ।

शै. — (रोती हुई) हाय ! यह विपत का समुद्र कहाँ से उमड़ पड़ा ! अरे छालिया मुझे छलकर कहाँ भाग गया ! (देखकर) अरे आयूस की रेखा तो इतनी लम्बी है फिर अभी से यह बज्र कहाँ से टूट पड़ा ! अरे ऐसा सुंदर मुँह, बड़ी २ आँख, लम्बी लम्बी भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब सा रंग ! हाय मरने के तुम में कौन से लच्छन थे जो भगवान ने तुझे मार डाला ! हाय लाल ! अरे बड़े २ जोतसी गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा, बहुत दिन जीयेगा, सो सब भूठ निकला ! हाय ! पोथी, पन्ना, पूज पाठ, नान, जप होम, कुछ भी काम न आया ! हाय तुम्हारे बाप का कठिन पुत्र भी तुम्हारा सहाय न भया और तुम

चल बसे ! हाय !

ह. — अरे इन बातों से तो मुझे बड़ी शंका होती है (शब को भली भांति देखकर) अरे इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्ती के से दिखाई पड़ते हैं । हाय ! न जाने किस बड़े कुल का दीपक आज इस ने बुझाया है, और न जाने किस नगर को आज इसने अनाथ किया है । हाय ! रोहिताश्व भी इतना बड़ा भया होगा (बड़े सोच से) हाय हाय ! मेरे मुंह से क्या अमंगल निकल गया । नारायण (सोचता है)

शै. — भगवान् विश्वामित्र ! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे भए । हाय !

ह. — (घबड़ाकर) हाय हाय यह क्या ? (भली भांति देखकर रोता हुआ) हाय अब तक मैं संदेह ही में पड़ा हूँ ? अरे मेरी आँखें कहाँ गई थीं जिन ने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहिचाना, और कान कहाँ गये थे जिन ने अब तक महारानी की बोली न सुनी ! हा पुत्र ! हा लाल ! हा सूर्यवंश के अंकुर ! हा हरिश्चन्द्र की विपत्ति के एक मात्र अवलम्ब ! हाय ! तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया माँ को छोड़कर कहाँ गए । अरे तुम्हारे कोमल अंगों को क्या हो गया ! तुम ने क्या खेला, क्या खाया, क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे । पुत्र स्वर्ग ऐसा ही प्यारा था तो मुझ से कहते, मैं अपने बाहुबल से तुम को इसी शरीर से स्वर्ग पहुँच देता । अथवा अब इस अभिमान से क्या ? भगवान् इसी अभिमान का फल यह सब दे रहा है । हाय पुत्र ! (रोता है)

आह ! मुझसे बढ़कर और कौन मन्दभाग्य होगा ! राज्य गया, धन, जन, कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्रशोक उपस्थित हुआ । भला अब मैं रानी को क्या मुँह दिखाऊँ । निस्संदेह मुझसे अधिक अभाग और कौन होगा । न जाने हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं जो कुछ हमने आज तक किया वह यदि पुण्य होता तो हमें यह दुख न देखना पड़ता । हमारा धर्म का अभिमान सब भूँटा था, क्योंकि कलियुग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले, निस्संदेह मैं महा अभागा और बड़ा पापी हूँ । (रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है और नेपथ्य में शब्द होता है) क्या प्रलयकाल आ गया ? नहीं । यह बड़ा भारी असगुन हुआ है । इसका फल कुछ अच्छा नहीं, वा अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है जो होगा । हा । न जाने किस अपराध से देव इतना रुठा है (रोता है) हा सूर्यकुल आलवालप्रवाल । हा हरिश्चन्द्र हृदयानन्दन !

हा शैव्यावलम्ब ! हा वत्सरोहिताश्व ! हा मातृ पितृ विपत्ति सहचर ! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़कर कहाँ गए ! आज हम सब मुच चाँडाल हुए । लोग कहेंगे कि इस ने न जाने कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्रशोक देखा । हाय हम संसार को क्या मुँह दिखावेंगे । (रोता है) वा संसार में इस बात के प्रगट होने के पहले ही हम भी प्राण त्याग करें । हा निर्लज्ज प्राण तुम अब भी क्यों नहीं निकलते । हा बज्र हृदय इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता । नेत्रों अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो । या इस व्यर्थ प्रलाप का फल ही क्या है, समय बीता जाता है, इसके पूर्व कि किसी से साम्हना हो प्राण त्याग करना ही उत्तम बात है (पेड़ के पास जाकर फाँसी देने के योग्य डाल खोजकर उसमें दुपट्टा बांधता है) धर्म ! मैंने अपने जान सब अच्छा ही किया परंतु न जाने किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा सो मुझे क्षमा करना । (दुपट्टे की फाँसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौक कर) गोविन्द गोविन्द ! यह मैंने क्या अनर्थ अधर्म विचारा । भला मुझ दास को अपनी शरीर पर क्या अधिकार था कि मैं ने प्राण त्याग करना चाहा । भगवान् सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे । नारायण नारायण ! इस इच्छाकृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा ! हे सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर क्षमा करना, दुख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती ; अब तो मैं चाँडालकुल का दास हूँ, न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र । चलूँ अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊँ, वा देखूँ अब दुक्खिनी शैव्या क्या करती है (शैव्या के पीछे जाकर खड़ा होता है) ।

शै. — (पहली तरह बहुत रोकर) हाय ! अब मैं क्या करूँ । अब मैं किसका मुँह देखकर संसार में जीऊँगी । हाय मैं आज से निपूती भई ! पुत्रवती स्त्री अपने बालकों पर अब मेरी छाया न पड़ने देंगी । हा नित्य सबेरे उठकर अब मैं किसकी चिन्ता करूँगी । खाने के समय मेरी गोद में बैठकर और मुझ से मांग मांग कर अब कौन खायगा ! मैं परोसी थाली सूनी देखकर कैसे प्रान रक्खूँगी । (रोती है) हाय खेलता खेलता आकर मेरे गले से कौन लपट जायगा, और मा मा कहकर तनक तनक बातों पर कौन हठ करेगा । हाय मैं अब किसको अपने आँचल से मुँह की धूल पोँछकर गले लगाऊँगी और किसके अभिमान से विपत में भी फूली फूली फिरूँगी । (रोती है) या जब

रोहिताश्व नहीं तो मैं ही जी के क्या करूंगी । (छाती पीटकर) हाय प्रान तुम भी क्यों नहीं निकले । (हाय मैं ऐसी स्वार्थी हूँ कि आत्महत्या के नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती । नहीं नहीं अब मैं न जीऊंगी । या तो इस पेड़ में फाँसी लगाकर मर जाऊंगी या गंगा में कूद पड़ूंगी (उन्मत्त की भाँति उठकर दौड़ना चाहती है) ।

ह. — (आड़ में से)

तनहिं बेचि दासी कहवाई ।

मरत स्वामि आयसु बिन पाई

करु न अधर्म सोचु जिय माहीं ।

'पराधीन सपने सुख नाही' ।।

शै. — (चौकन्ती होकर) अहा ! यह किसने इस कठिन समय में धर्म का उपदेश किया । सच है मैं अब इस देह की कौन हूँ जो मर सकूँ । हा देव ! मुझसे यह भी न देखा गया कि मैं मरकर भी सुख पाऊँ । (कुछ धीरज धरके) तो चलूँ छाती पर वज्र धरके अब लोकरीति करूँ । रोती और लकड़ी चुनकर चिता बनाती हुई हाय ! जिन हाथों से ठोंक ठोंक कर रोज सुलाती थी उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रक्खूंगी, जिसके मुँह में खाला पड़ने के भय से कभी मैंने गरम दूध भी नहीं पिलाया उसे — (बहुत ही रोती है) ।

ह. — धन्य देवी आखिर तो चंद्र सूर्यकुल की स्त्री हो तुम न धीरज करोगी तो और कौन करेगा ।

शै. — (चिता बनाकर पुत्र के पास आकर उठाना चाहती है और रोती है) ।

ह. — तो अब चलें उस से आधा कफन मांगें (आगे बढ़कर और बलपूर्वक आंसुओं को रोककर शैव्या से) महाभागे ! स्मशान पति की आज्ञा है कि आधा कफन दिए बिना कोई मुरदा फूंकने न पावे सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे लो तब क्रिया करो (कफन मांगने को हाथ फैलाता है, आकाश से पुष्पवृष्टि होती है) ।

(नेपथ्य में)

अहो धैर्यमहो सत्यमहो दानमहो बलं । त्वया राजन् हरिश्चन्द्र सर्व्वं लोकोत्तरं कृतं ।

(दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शै. — हाय ! इस कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है ? या इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं नहीं तो आर्यपुत्र से धर्मी की यह गति हो ! यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाषंड है ।

ह. — (दोनों कानों पर हाथ रखकर) नारायण नारायण ! महाभागे ऐसा मत कहो ; शास्त्र, ब्राह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं । ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित्त होगा । अपना धर्म विचारो । लाओ मृतकबल हमें दो और अपना काम आरंभ करो (हाथ फैलाता है)

शै. — (महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवर्ती का चिन्ह देखकर और कुछ स्वर कुछ आकृति से अपने पति को पहचान कर) हा आर्यपुत्र इतने दिन तक कहाँ छिपे थे ! देखो अपने गोद के खेलाएँ दुलारे पुत्र की दशा । तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो अब अनाथ की भाँति मसान में पड़ा है (रोती है) ।

ह. — प्रिये धीरज धरो । यह रोने का समय नहीं है । देखो सबेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कोई आजाय और हम लोगों की जान ले, और एक लज्जा मात्र बच गई है वह भी जाय । चलो कलेजे पर सिल रखकर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कबल हमको दो ।

शै. — (रोती हुई) नाथ ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आँचल फाड़कर इसे लपेट लाई हूँ, उसमें से भी जो आधा ढ़ंगी तो यह खुला ही रह जायगा । हाय चक्रवर्ती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता ! (बहुत रोती है)

ह. — (बलपूर्वक आंसुओं को रोककर और बहुत धीरज धर कर) प्यारी रोओ मत । ऐसे ही समय में तो धीरज और धरम रखना काम है । मैं जिस का दास हूँ उस की आज्ञा है कि बिना आधा कफन लिए क्रिया मत करने दो । इससे मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझकर तुम से इसका आधा कफन न लूँ तो बड़ा अधर्म हो । जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिए धर्म न छोड़ा उसका धर्म आध गज कपड़े के बास्ते मत छुड़ाओ और कफन से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दे । देखो सबेरा हुआ चाहता है ऐसा न हो कि कुलगुरु भगवान् सूर्य अपने वंश की यह दुर्दशा देखकर चित्त में उदास हों । (हाथ फैलाता है)

शै. — (रोती हुई) नाथ जो आज्ञा । (रोहिताश्व का मृतकबल फाड़ना चाहती है कि रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छूटने का सा बड़ा शब्द और बिजली का सा उजाला होता है । नेपथ्य में बाजे की और बस धन्य और जय २ की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं और भगवान् नारायण प्रकट होकर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं) ।

भ. — बस महाराज बस (धर्म और सत्य सब की परमावधि हो गई । देखो तुम्हारे पुण्य भय से पृथ्वी

बारम्बार कांपती है, अब त्रैलोक्य की रक्षा करो । (नेत्रों से आंसू बहते हैं)

ह.— (साष्टांग बंदवत् करके रोता हुआ गद्गद स्वर से) भगवान् ! मेरे वास्ते आपने परिश्रम किया ! कहाँ यह श्मशान भूमि, कहाँ यह मर्त्यलोक, कहाँ मेरा मनुष्य शरीर और कहाँ पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानन्दधन साक्षात् आप ! (प्रेम के आंसुओं से और गद्गद कंठ होने से कुछ कहा नहीं जाता)

भ.— (शैव्या से) पुत्री अब शांति मत कर ! धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे, राजर्षि हरिश्चन्द्र ऐसा पति मिला है (रोहिताश्व की ओर देखकर वत्स रोहिताश्व उठो देखो तुम्हारे माता पिता देर से तुम्हारे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं ।)

(रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से भगवान् को प्रणाम कर के माता पिता का मुँह देखने लगता है, आकाश से फिर पुष्पवृष्टि होती है)

ह. और शै.— (आश्चर्य, आनंद, करुणा और प्रेम से कुछ कह नहीं सकते, आँखों से आंसू बहते हैं और एकटक भगवान् के मुखारविंद की ओर देखते हैं) (श्री महादेव, यावर्ती, भैरव, धर्म, सत्य, इंद्र, और विश्वामित्र आते हैं)।

सब— धन्य महाराज हरिश्चन्द्र धन्य ! जो आपने किया सो किसी ने, न किया, न करेगा । (राजः हरिश्चन्द्र शैव्या और रोहिताश्व सबको प्रणाम करते हैं)

धि.— महाराज यह केवल चन्द्र सूर्य तक आप की कीर्तिस्थिर रहने के हेतु मैंने छल किया था सो क्षमा कीजिए और अपना राज्य लीजिए ।

(हरिश्चन्द्र भगवान् और धर्म का मुँह देखते हैं)

धर्म.— महाराज राज आप का है इसका मैं साक्षी हूँ आप निस्संदेह लीजिए ।

सत्य.— ठीक है जिसने हमारा अस्तित्व संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया उसी का पृथ्वी का राज्य है ।

श्रीमहादेव.— पुत्र हरिश्चन्द्र भगवान् नारायण के अनुग्रह से ब्रह्मलोक पर्यंत तुम ने पाया तथापि मैं आशिर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी कीर्ति जब तक पृथ्वी है तब तक स्थिर रहे, और रोहिताश्व दीर्घायु, प्रतापी और चक्रवर्ती होय ।

पा.— पुत्री शैव्या ! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग की स्त्रियाँ गावें, तुम्हारी पुत्रवधू सौभाग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कभी त्याग

न करे ।

(हरिश्चन्द्र और शैव्या प्रणाम करते हैं)

भै.— और जो तुम्हारी कीर्ति कहे सुने और उसका अनुसरण करे उस की भैरवी यानना न हो ।

इन्द्र.— (राजा को आलिंगन करके और हाथ जोड़ के) महाराज मुझे क्षमा कीजिये । यह सब मेरी दुष्टता थी परंतु इस बात से आप का तो कल्याण ही हुआ । स्वर्ग कौन कहे आप ने अपने सत्यबल से ब्रह्मपद पाया । देखिये आप की रक्षा के हेतु श्रीशिव जी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी, आप उपाध्याय बने थे, नारद जी बटु बने थे, साक्षात् धर्म ने आप के हेतु चांडाल और कापालिक का भेष लिया, और सत्य ने आप ही के कारण चांडाल के अनुचर और बैताल का रूप धारण किया । न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान् नारायण की इच्छा से केवल आप के सुयश के हेतु किया गया ।

ह.— (गद्गद स्वर से) अपने दासों का यश बढ़ानेवाला और कौन है ।

भ.— महाराज । और भी जो इच्छा हो मांगो ।

ह.— (प्रणाम करके गद्गद स्वर से) प्रभु ! आप के दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई, तथापि आप की आज्ञानुसार यह वर मांगता हूँ कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ वैकुण्ठ जाय और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे ।

भ.— एवमस्तु, तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट पतंग जीव मात्र सब परमधाम जायेंगे, और कलियुग में धर्म के सब चरण टूट जायेंगे तब भी वह तुम्हारी इच्छानुसार सत्य मात्र एक पद से स्थित रहेगा । इतना ही देकर मुझे सन्तोष नहीं हुआ कुछ और भी मांगो । मैं तुम्हें क्या २ ई क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हें दे चुका । तथापि मेरी इच्छा यही है कि तुम को कुछ और वर ई । तुम्हें वर देने में मुझे सन्तोष नहीं होता ।

ह.— (हाथ जोड़कर) भगवान् मुझे अब कौन इच्छा है । मैं और क्या वर मांगूँ तथापि भरत का यह वाक्य सुफल हो —

खल गनन सों सज्जन दुखी मति होई, हरिपद रति रहै ।
उपधर्म छूटै सत्य निज भारत गहै, कर दुख बहै ।।
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, सबजगसुखल है
तजि ग्रामकविता सुकविजन की अमृत बानी सब कहै ।।

(पुष्पवृष्टि और बाजे की धुनि के साथ जयनिका गिरती है)

इति श्री सत्य हरिश्चन्द्र नाटक सम्पूर्ण हुआ ।।

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के परवर्ती संस्करणों में बढ़ाया
गया अंश ।

(पिशाच और डाकिणी गण परस्पर आमोद करते और
गाते बजाते आते हैं ।)

पि. और डा.—

हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमाछम,
हम सेवें मसान, शिव को भजें, बोलैं वम वम वम ।

पि.—

हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी को तोड़ेंगे ।
हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सबका फोड़ेंगे ।

डा.— हम घुट घुट घुट घुट घुट घुट लोह
पिलावेंगी ।

हम चट चट चट चट चट चट ताली बजावेंगी ।।

सब—

हम नाचें मिलकर धेई धेई धेई धेई कूटें धम धम धम ।
हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमा छम ।।

पि.—

हम काट काट कर सिर को गेंदा उछालेंगे ।
हम खींच खींच कर चर्वी पंशाखा बालेंगे ।।

डा.—

हम माँग के लाल लाल लोह का सिंदूर लगावेंगी ।
हम नस के तागे चमड़े का लहंगा बनावेंगी ।।

सब—

हम धात्र से सज के बज के चलेंगे चमकेंगे चम चम चम ।

पि.—

लोह का मुँह से फरं फरं फुहारा छोड़ेंगे ।
माला गले पहिरने को अँतड़ी को जोड़ेंगे ।।

डा.—

हम लाद के औंघे मुरदे चौकी बनावेंगी ।
कफन बिछा के लड़कों को उस पर सुलावेंगी ।।

सब—

हम सुख से गावेंगे दोल बजावेंगे दम दम दम दम दम ।
(वैसे ही कूदते हुए एक ओर चले जाते हैं ।)



प्रेम योगिनी

अपूर्व नाटिका है। पहले इसके दो दृश्य लिखे गये थे। जिसमें पहले में 'काशी के बदमाशों' और 'बुरे चाल के लोगों' का वर्णन है। और दूसरे में काशी की प्रशंसा करते हुए यहां देखने योग्य स्थान और योग्य महात्माओं का वर्णन है। दोनों दृश्य हरिश्चन्द्र चंद्रिका खण्ड १ संख्या ११ और खण्ड २ सं. ३, ७ सन् १८७४ में प्रकाशित हुए थे। फिर यही काशी के छायाचित्र अर्थात् काशी के दो बुरे भले फोटोग्राफ नाम से चंद्रिका से उद्धृत हो हरिप्रकाश प्रेस, बनारस से प्रकाशित हुए। — सं.

प्रेमजोगिनी नाटिका

श्रीहरिश्चन्द्रलिखिता

नान्दी मंगलपाठ करता है —

भरित नेह नवनीर नित बरसत सुरस अथोर ।
जयति अपूरव घन कोऊ लखि नाचत मन मोर ॥
और भी —

जिन तृन सम किय जानि जिय कठिन जगत जंजाल ।
जयतु सदा सो ग्रंथ कवि प्रेमजोगिनी बाल ॥
(मलिन मुख किए सूत्रधार और पारिपार्श्वक आते हैं)

सू. — (नेत्र से आंसू पोंछ और ठंडी सांस भरकर) हा ! कैसे ईश्वर पर विश्वास आवै ।

पा. — मित्र आज तुम्हें क्या हो गया है और क्या बकते हो और इतने उदास क्यों हो ।

(नेत्र से जल की धारा बहती है और रोकने से भी नहीं रुकती ।)

पा. — (अपने गले में सूत्रधार को लगाकर और आंसू पोंछकर) मित्र आज तुम्हें हो क्या गया है ? यह क्या सूझी है ? क्या आज लोगों को यही तमाशा दिखाओगे ।

सू. — हो क्या गया है क्या मैं भूठ कहता हूँ — इससे बढ़कर और दुःख का विषय क्या होगा कि मेरा आज इस जगत के कर्ता और प्रभु पर से विश्वास उठा जाता है और सच है क्यों न उठे यदि कोई हो तब न उठे हा ! क्या ईश्वर है तो उसके यही काम हैं जो संसार में हो रहे हैं । क्या उसकी इच्छा के बिना भी कुछ होता है ? क्या लोग दीनबन्धु दयासिन्धु

उसको नहीं कहते ? क्या माता पिता के सामने पुत्र की स्त्री के सामने पति की और बन्धुओं के सामने बन्धुओं की मृत्यु उसकी इच्छा बिना ही होती है । क्या सज्जन लोग विद्यादि सुगुण से अलंकृत होकर भी उसके इच्छा बिना ही दुखी होते हैं और दुष्ट मूर्खों के अपमान सहते हैं, केवल प्राण मात्र नहीं त्याग करते पर उनकी सब गति हो जाती है, क्या इस कमलवनरूप भारत भूमि को दुष्ट गजों ने उसकी इच्छा बिना ही छिन्न भिन्न कर दिया ? क्या जब नादिर चंगेज खाँ जैसे ऐसे निर्दयों ने लाखों निर्दोषी जीव मार डाले तब वह सोता था ? क्या अब भारतखंड के लोग ऐसे कापुरुष और दीन उसकी इच्छा के बिना ही हो गए ? हा ! (आंसू बहते हैं लोग कहते हैं कि ये यह उसके खेल हैं । छिः ऐसे निर्दय को भी लोग दयासमुद्र किस मुँह से पुकारते हैं ?

पा. — इतना क्रोध एक साथ मत करो । यह संसार तो दुःख रूप आप ही है इसमें सुख का तो केवल आभास मात्र है ।

सू. — आभासमात्र है तो — फिर किसने यह बखेड़ा बनाने कहा था और पचड़ा फैलाने कहा था उसपर भी न्याय करने और कृपालु बनने का दावा (आँख भर आती है) ।

पा. — आज क्या है किस बात पर इतना क्रोध किया है भला यहाँ ईश्वर का निर्णय करने आये हो कि नाटक खेलने आए हो ?

सू. — क्या नाटक खेलें क्या न खेलें ले इसी खेल ही में देखो । क्या सारे संसार के लोग सुखी रहें और हम लोगों का परम बन्धु पिता मित्र पुत्र सब भावनाओं से भावित, प्रेम की एकमात्र मूर्ति, सत्य का

एक मात्र आश्रय, सौजन्य का एकमात्र पात्र, भारत का एकमात्र हित, हिन्दी का एकमात्र जनक, भाषा नाटकों का एकमात्र जीवनदाता, हरिश्चन्द्र ही दुखी हो (नेत्र में जल भर कर) हा सज्जनशिरोमणे ! कुछ चिन्ता नहीं तेरा तो बाना है कि कितना ही भी 'दुख हो उसे सुख ही मानना' लोभ के परित्याग के समय नाम और कीर्ति तक का परित्याग कर दिया और जगत से विपरीत गति चलके तूने प्रेम की टकसाल खड़ी की है । क्या हुआ जो निर्दय ईश्वर तुझे प्रत्यक्ष आकर अपने अंक में रख कर आदर नहीं देता और खल लोग तेरी नित्य एक नई निन्दा करते हैं और तू संसारी वैभव से सूचित नहीं है ; तुझे इनसे क्या, प्रेमी लोग जो तेरे और तू जिन्हें सरबस है वे जब जहाँ उत्पन्न होंगे तेरे नाम को आदर से लेंगे और तेरी रहन सहन को अपनी जीवन पद्धति समझेंगे (नेत्रों से आँसू गिरते हैं) मित्र ! तुम तो दूसरों का अपकार और अपना उपकार दोनों भूल जाते हो तुम्हें इनकी निन्दा से क्या इतना चित्त क्यों क्षुब्ध करते हो स्मरण रखो ये कीड़े ऐसे ही रहेंगे और तुम लोक वहिष्कृत होकर भी इनके सिर पर पैर रखके विहार करोगे, क्या तुम अपना वह कवित्त भूल गए —

"कहेंगे सबै ही नैन नीर भरिभरि पाछे प्यारे हरिचंद की कहानी रहि जायगी" मित्र मैं जानता हूँ कि तुम पर सब आरोप व्यर्थ है ; हा ! बड़ा विपरीत समय है (नेत्र से आँसू बहते हैं) ।

पा. — मित्र जो तुम कहते हो सो सब सत्य है पर काल भी तो बड़ा प्रबल है । कालानुसार कर्म किए बिना भी तो काम नहीं चलता ।

सू. — हाँ न चले तो हम लोग काल के अनुसार चलेंगे, कुछ वह लोकोत्तर चरित्र थोड़े ही काल के अनुसार चलेगा ।

पा. — पर उसका परिणाम क्या होगा ?

सू. — क्या कोई परिणाम होना अभी बाकी है हो चुका जो होना था ।

पा. — तो फिर आज जो ये लोग आये हैं सो यही सुनने आए हैं ?

सू. — तो ये सब सभासद तो उसके मित्रवर्गों में हैं और जो मित्रवर्गों में नहीं हैं उनका जी भी उसी की बातों में लगता है ये क्यों न इन बातों को आनन्दपूर्वक सुनैंगे ।

पा. — परन्तु मित्र बातों ही से तो काम न चलेगा न । देखो ये हिन्दी भाषा में नाटक देखने की इच्छा से

आए हैं इन्हें कोई खेल दिखाओ ।

सू. — आज मेरा चित्त तो उन्हीं के चरित्र में मगन है आज तुझे और कुछ नहीं अच्छा लगता ।

पा. — तो उनके चरित्र के अनुरूप ही कोई नाटक करो ।

सू. — ऐसा कौन नाटक है यों तो सभी नायकों के चरित्र किसी किसी विषय में उससे मिलते हैं पर आनुपूर्वी चरित्र कैसे मिलेगा ।

पा. — मित्र मृच्छकटिक हिन्दी में खेलो क्योंकि ! उसके नायक चारुदत्त का चरित्रमात्र इनसे सब मिलता है केवल वसन्तसेना और राजा की हानि है ।

सू. — तो फिर भी आनुपूर्वी न हुआ और पुराने नाटक खेलने इनका जी भी न लगेगा कोई नया खेलें ।

पा. — (स्मरण करके) हाँ हाँ वह नाटक खेलौ जो तुम उस दिन उद्यान में उनसे सुनते थे, — वह उनके और इस घोर काल के बड़ा ही अनुरूप है उसके खेलने से लोगों का वर्तमान समय का ठीक नमूना दिखाई पड़ेगा और वह नाटक भी नई पुरानी दोनों रीति मिलके बना है ।

सू. — हाँ हाँ प्रेमयोगिनी — अच्छी सूरत पड़ी — तो चलो यों ही सही इसी बहाने उसका स्मरण करें ।

पा. — चलो ॥ (दोनों जाते हैं)

अई जवनिका पतन

॥ इति प्रस्तावना ॥

प्रथम अंक

पहिले गर्भांक के पात्र

टेकचंद	एक महाजन बनिये
छक्कूजी	ऐ
माखनदास	वैष्णव बनियाँ
धनदास	नाम के वैष्णव
बनितादास	कीर्तन करनेवाला
मिश्र	कोड़ा मार कर मंदिर की भीड़
भापटिया	हटाने वाला
जलधरिया	पानी भरने वाला
बालमुकुन्द	दो भाई मुलतानी वैष्णव
मलजी	

पहिला गर्भाक

स्थान — मंदिर का चौक

(भ्रमटिया इधर उधर घूम रहा है)

भ्र.— आज अभी कोई दरसनी परसनी नहीं आये और कहाँ तक अभहिंन तक मिसरो नहीं आये अभहीं तक नींद न खुली होइहैं । खुले कहाँ से आधी रात तक बाबू किहाँ बैठ के ही ही ठी ठी करा चाहे, फिर सबेरे नींद कैसे खुलै ।

(दोहर माथे में लपेटे आँखें मलते मिश्र आते हैं — देखकर)

भ्र.— का हो मिसरजी तोरी नींद नहीं खुलती देखो शंखनाद होय गवा मुखिया जी खोजत रहे ।

मि.— चले तो आई थे ; अधियै रात के शंखनाद होय तो हम का करै तोरे तरह से हमहू के घर में से निकस के मंदिर में घुस आवना होता तो हमहू जल्दी अउते । हियाँ तो दारानगर से आवना पड़त है । अबहीं सुरजौ नाहीं उगे ;

भ्र.— भाई सेवा बड़ी कठिन है, लोहे का चना चाबए के पड़ै, फोकरे थोरे होथी ।

मि.— भवा चलो अपना काम देखो । (बैठ गया)
(स्नान किये तिलक लगाये दो गुजराती आते हैं)

पहिला— मिसरजी जय श्रीकृष्ण कहो का समय है ।

मि.— अच्छी समय है मंगला की आधी समय है बैठो ।

प.— अच्छा मयुरादासजी वैसे जाओ । (बैठते हैं)

(धोती पहिने १ धोती ओढ़े छक्कूजी आते हैं और उसी बंस से माखनदास भी आये)

छ.— (माखनदास की ओर देखकर) काहो माखनदास एहर आयो ।

मा.— (आगे बढ़कर हाथ जोड़कर) जै सी किष्ण साहब ।

छ.— जै श्रीकृष्ण बैठो कहो आजकल बाबू रामचंद का क्या हाल है ।

मा.— हाल जौन है, लौन आप जनते हो, दिन दूना रात चौ गूना । अभई कलहौ हम ओ रस्ते रात के आवत रहे तो तबला ठनकत रहा । बस रात दिन हा हा

ठी ठी बहुत भवा दुइ चार कवित्त बनाय लिहिन बस होय चुका ।

छ.— अरे कवित्त तो इनके बापौ बनावत रहे कवित्त बनावे से का होथै और कवित्त बनावना कुछ अपने लोगन का काम थोरे हय ई भाँटन का काम है ।

मा.— ई तो हई है पर उन्हें तो ऐसी सेखी है कि सारा जमाना मूरख है और मैं पंडित थोड़ा सा कुछ पढ़ बढ़ लिहिन हैं ।

छ.— पढ़िन का है पढ़ा बढ़ा कुछ भी नहिनी, एहर ओहर की दुइ चार बात सीख लिहिन किरिस्तानी मते की अपने मारग की बात तो कुछ जनवै कतै अबहीं कल के लड़का हैं ।

मा.— और का ।

(बालमुकुन्द औ मलजी आते हैं)

दोनो— (छक्कू की ओर देखकर । जय श्रीकृष्ण बाबू साहब ।

छ.— जय श्रीकृष्ण, आओ बैठो कहो नहाय आयो ।

बा.— जी भय्याजी का तो नेम है कि बड़े सबेरे नहा कर फूलघर में जाते है तब मंगला के दर्शन करेक तब घर में जायकर सेवा में नहाते हैं और मैं तो आज कल कार्तिक के सबब से नहाता हूँ तिस पर भी देर हो जाती है रोकड़ मेरे जिम्मे काकाजी ने कर रखा है इससे बिध बिध मिलाते देर हो जाती है फिर कीर्तन होते प्रसाद बँटते व्यालू वालू कूर्ते बारह कभी एक वजते हैं ।

छ.— अच्छी है जो निबही जाय कहो कातिक नहाये बाबू रामचंद जायें कि नाहीं !

बा.— क्यों जाते क्यों नहीं अब की दोनों भाई जाते हैं कभी दोनों साथ कभी आगे पीछे कभी इनके साथ मसाल कभी उनके मुझको अकशर करके जब मैं जाता हूँ तब वह नहाकर आते रहते हैं ।

छ.— मसाल काहे ले जायें मेहरारुन का मुंह देखे के ?

बा.— (हँसकर) यह मैं नहीं कह सकता ।

छ.— को मलजी आज फूलघर में नाहीं गयो हिअई बैठ गयो ?

म.— आज देर हो गई दर्शन करके जाऊंगा ।

छ.— तोरे हियाँ ठाकुर जी आगे होहिहै कि नाहीं ?

म.— जागे तो न हाँगे पर अब तैयारी होगी मेरे हियाँ तो स्त्रियाँ जगाकर मंगल भोग घर देती हैं । फिर जब मैं दर्शन करके जाता हूँ तो भोग सराकर आरती

कर्ता है ।

छ. — कहां तोसे रामचंद्र से बोलाचाली है कि नहीं ?

म. — बोलचाल तो हैं पर अब यह बात नहीं है आगे तो दर्शन करने का सब उत्सवों पर बुलावा आता था अब नहीं आता तिसमें बड़े साहब तो ठीक ठीक, छोटे वित्त के बड़े खोटे हैं ।

(नेपथ्य में)

गरम जल की गागर लाओ ।

झ. — (गली की ओर देखकर जोर से) अरे कौन जलधारिया है एतनी देर भई अमहीं तोरे गागर लिआवे की बखत नहीं भई ? सड़सी से गरम जल की गगरी उठाये सनिया लपेटे जलधारिया आता है)

झ. — कहां जगेसर ई नहीं कि जब शंखनाद होय तब भटपट अपने काम से पहुँच जावा करो ।

ज. — अरे चल्ले तो आवधई का भहराय पड़ी का सुत्तल थोड़े रहली हमहूँ के भापट कंधे पर रख के एहर ओहर घूमे के होत तब न । इहाँ तो गगरा दोवत दोवत कथा छिल जाला । (यह कहकर जाता है)

(मैली श्रोती पहिने दोहर सिर में लपेटे टेकचंद आए)

टे. — (मथुरादास की ओर देखकर) कहां मथुरादास जी रुड़ा छो ?

म. — हाँ साहेब, अच्छे हैं । कहिए तो सही आप इतने बड़े उच्छव में कलकत्ते से नहीं आए । हियाँ बड़ा सुख हुआ था, बहुत से महाराज लोग पधारे थे । पट रुत छपन भोग में बड़े आनंद हुए ।

टे. — भाई साहब, अपने लोगन का निकास घर से बड़ा मुसकिल है । येक तो अपने लोगन का रेल के सवारी से बड़ा बखेड़ा पड़ता है, दूसरे जब जौन काम के वास्ते जाओ जब तक ओका सब इन्तजाम न बैठ जाय तब तक हुँवा जाए से कौन मतलब है और कौन सुख तो भाई साहब श्री गिरिराज जी महाराज के आगे जो जो देखा है सो अब सपने में भी नहीं है । अहा ! वह श्री गोविंदराय जी के पधारने का सुख कहाँ तक कहें ।

(धनदास और वनितादास आते हैं)

ध. — कहां यार का तिगथी ?

ब. — भाई साहेब, बड़ी देर से देख रहे हैं, कोई पच्छी नजर नहीं आया ।

ध. — भाई साहेब, अपना तो ऊ पच्छी काम का जे भोजन सोजन दूनों दे ।

ब. — तोहरे सिद्धांत से भाई साहेब हमारा काम तो नहीं चलता ।

ध. — तबै न सुरमा धुलाय के आँख पर

चरणाभूत लगाए हौ जे में पलक बाजी खूब चले, हाँ एक पलक एहरो ।

ब. — (हँसकर) भाई साहेब अपने तो वैष्णव आदमी हैं, वैष्णविन से काम रक्खत है ।

ध. — तो भला महाराज के कबों समर्पन किए है कि नहीं ?

ब. — कौन चीज ?

ध. — अरे कोई चौकाली ठुल्ली मावड़ी पामरी ठोली अपने घरवाली ।

ब. — अरे भाई गोसाँइन पर तो ससुरी सब आपे भहराई पड़ थीं पवित्र होवै के वास्ते, हमका पहुँचवै ।

ध. — गुरु इन सबन का भाग बड़ा तेज है, मालो लूटै मेहररुवो लूटै ।

ब. — भाई साहब, बड़न का नाम बेचपै और इन सबन में कौन लच्छन हैं, न पढ़ना जानै न लिखना, रात दिन हा हा ठी ठी ये है कि और कुछ ?

ध. — और गुरु इनके बंदोलत चार जीवन के और चैन है एक तो भट दूसरे इनके सरबस खवास तिसरे बिरकत और चौथी बाई ।

ब. — कुछ कहै की बात नहीं है । भाई मंदिर में रहै से स्वर्ग में रहै । खाए के अच्छा पहिरै के परसादी से महाराज कब्जों गाढ़ा तो पहिरावै न करियँ, मलमल नागपुरी ढाँके पहिरियँ, अतरै फुलेल केसर परसादी बीड़ा चाभो सब से सेवकी ल्यौ, ऊपर से ऊ बात का सुख अलगै है ।

ध. — क्या कहै भाई साहब हमरो जनम हिर्यई होता ।

ब. — अरे गुरु गली गली तो मेहरारू मारी फिरथीं तीहें एह पर रोने बना है । अब तो मेहरारू टके सेर है । अच्छे अच्छे अमीरनो के घर की तो पैसा के वास्ते हाथ फैलावत फिरथीं ।

ध. — तो गुरु हम तो ऊ तार चाही पै जहाँ से उलाटा हमै कुछ मिलै ।

ब. — भाग होय तो ऐंसियो मिल जायँ । देखो लाइली प्रसाद के और बच्चू के ऊ नागरनी और बम्हनिया मिली हैं कि नहीं !

ध. — गुरु, हियों तो चाहे मुड़ मुड़ाये हो चाहे मुँह में एक्को बाँत न होय पताली खोल होय, पर जो हथफेर दे सो काम की ।

ब. — तोहरी हमरी राय ई बात में न मिलिये । (रामचन्द्र ठीक इन दोनों के पीछे का किवाड़ खोलकर आता है)

छ. — (धीरे से मुँह बना के) ई आएँ । (सब

लोगों से जय श्री कृष्ण होती है) ।

बा.— (रामचंद्र को अपने पास बैठकर) कहिए बाबू साहब आजकल तो आप मिलते ही नहीं क्या खबगी रहती है ?

रा.— भला आप ऐसे मित्र से कोई खफा हो सकता है ? यह आप कैसी बात कहते हैं ?

बा.— कार्तिक नहाना होता न है ?

रा.— (हँसकर) इसमें भी कोई सन्देह है !

बा.— हँहँहँ फिर आप तो जो काम करेंगे एक तजवीज के साथ ऐं ।

(रामचन्द्र का हाथ पकड़ के हँसता है)

रा.— भाई ये दोनों (धनदास और वनितादास को दिखा कर) बड़े दुष्ट हैं । मैं किवाड़ी के पीछे खड़ा सुनता था । घंटों से ये स्त्रियों ही की बात करते थे ।

बा.— यह भवसागर है । इस्में कोई कुछ बात करता है, कौं कुछ बात करता है । आप इन बातों का कहाँ तक ख्याल कीजिएगा ऐं ! कहिए कचहरी जाते हैं कि नहीं ?

रा.— जाते हैं कभी कभी — जी नहीं लगता, मुफ्त की बेगार और फिर हमारा हरिदास बाबू का साथ कुकुर भौंभौं, हज्जते-बंगाल माथा खाली कर डालते हैं । खाँव खाँव करके, थूँक थूँक के, बीभत्स रस के आलंबन, सूर्यनंदन —

बा.— (हँसकर) उपमा आपने बहुत अच्छी दिया और कहिए और अधरी मजिसदरो^१ का क्या हाल है ?

रा.— हाल क्या है सब अपने अपने रंग में मस्त हैं । काशी परसाद अपना कोठीवाली ही में लिखते हैं सहजादे साहब तीन धंटे में इक सतर लिखते हैं उसमें भी सैकड़ों गलती । लक्ष्मीसिंह और शिवसिंह अच्छा काम करते हैं और अच्छा प्रयागलाल भी करते हैं, पर वह पुलिस के शत्रु हैं । और विष्णुदास बड़े conning chap हैं । दीवानराम हई नहीं, बाकी रहे फिजिजियन सो वे तो अँगरेज ही हैं, पर भाई कई मूखों को बड़ा अभिमान हो गया है, बात बात में तपाक दिखाते और छ महीने को भेज देंगा कहते हैं ।

बा.— मैं कनम चाप नहीं समझा ।

रा.— कनिंग चैप माने कुटीचर !

(नेपथ्य में)

श्री गोविंदराय जी की श्री मंगला खुली (सब दौड़ते हैं)

(परदा गिरता है)

इति मंदिरादर्श नामक प्रथम गर्भांक

दूसरे गर्भांक के पात्र

दलाल

गंगापुत्र

भंडेरिया

दुकानदार

सुधाकर

भूरी सिंह

परदेसी

तीर्थस्थ ब्राह्मण

लिंगिया

रामचंद (नाटक के नायक) का

मुसाहब

वदमाश

दूसरा गर्भांक

स्थान — गैबी, पेड़ कुँआ, पास बावली
(दलाल, गंगापुत्र, दुकानदार, भंडेरिया और भूरीसिंह बैठे हैं)

द.— कहो गहन यह कैसा बीता ? ठहरा भोग बिलासी —

माल वाल कुछ मिला, या हुआ कोरा सत्यानाशी ?
कोई चूतिया फँसा या नहीं ? कोरे रहे उपासी ?

ग— मिले न काहे मैया, गंगा मैया दौलत दासी ।।
हम से पूत कपूत की दाता मनकनिका सुखरासी ।
मूखे पेट कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी ।।

द.— परदेसियों बहुत रहे आए ?

द.— परदेसियों बहुत रहे आए ?

ग— और साल से बढ़कर ।

भ— पितर सौदनी रही न अमसिया,

भू— रंग है पुराने फाँकर ।

खूब बचा बचा ताड़घो कहना,

तूँ हो चूतिया हंटर ।

भ— हम न तड़वै तो के तड़िये ? यही तो किया जन्म भर ।।

द.— जो हो, अब की भली हुई यह अमावसी पुनवासी ।

ग— मूखे पेट कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी ।

१. 'अनारैरी मजिस्ट्रेट का पद और अधिकार दिया है, उनका नाम यों है — कुँवर शंभूनारायण सिंह, बा. ऐश्वर्यनारायण सिंह, बा. गुरुदास मित्र, बा. हरिश्चंद्र, राय नारायणदास, बा. विश्वेश्वर दास, डा. लाजरस, मुं. बेणीलाल और दीवान कृष्ण कुँआर ।' (कवि-वचन-सुधा भाद्रपद शु. १५ सं. १९२३)

भू.— यार लोग तो रोजे कड़ाका करयें ऐ पेजामा ।

ग.— ई तो भूठ कह्यो, सिंहा,

भू.— तू सच बोल्यो, मामा ॥

ग.— तौहें का, तू मार पीट के करयो अपना कामा ॥

कोई का खाना, कोई की रंडी, कोई का पगड़ी जामा ॥

भू.— ऊ दिन छीपट डर गए अब सोरहो दंड एकासी ।

ग.— भूखे पेट नहिं सुतत, ऐसी है ई कासी ॥

भू.— जब से आए नए मजिस्टर तब से आफत आई ।

जान छिपावत फिरीये खटमल —

दू.— ई तो सच है भाई ॥

भू.— ई है ऐसा तेज गुरु बरसन के देयै लदाई ।
गोविन पालक मेकलौडो से एकी जवर दोहाई ॥
जान बचावत छिपत फिरीये घुस गई सब बदनामी ॥

ग.— भूखे पेट कोई नहिं सुतत, ऐसी है ई कासी ॥

तोरे आँख में चरबी छाई माल न पायो गोजर ।
कैसी दून की सुख रही है असमानों के उप्पर ॥
तन न भए हो पैदा करके, घर के माल चुतरे तर ।
बछिया के बाबा, पँडिया के ताऊ,

घुसनि के घुसघुस भरभर ॥
कहाँ की ई तू बात निकास्यो खासी सत्यानासी ॥
भूखे पेट तो कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी ॥
(गाता हुआ एक परदेसी आता है)

प.— देखी तुमरी कासी, लोगो, देखी तुमरी कासी ।
जहाँ विराजै विश्वनाथ विश्वेश्वरजी अविनासी ॥
आधी कासी भाट भंडेरिया बाम्हन औ संन्यासी ॥
आधी कासी रंडी मुंडी राँड खानगी खासी ॥
लोग निकम्मे भंगी गंजड़ लुच्चे बे-बिसवासी ॥
महा आलसी भूठे शुहदे बे-फिकरे बदमासी ॥
आप काम कुछ कभी करै नहिं कोरे रहें उपासी ॥
और करे तो हँसै बनावै उसको सत्यानासी ॥
अमीर सब भूठे और निंदक करें घात विश्वासी ॥
सिपारसी डरपुक्के सिद्ध बोलैं बात अकासी ॥
मेली गली भारी कतवारन सड़ी चमारिन पासी ॥
नीचे नल से बढवू उबलै मनो नरक चौरासी ॥
कूते भूँकत काटन दौड़ै सड़क साँड़ सों नासी ॥

दौड़ै बंदर बने मुखर कूदैं चढ़े अगासी ॥
घाट जाओ तो गंगापुतर नोचैं दे गल फाँसी ॥
करै घाटिया बस्तर-मोचन दे देके सब भाँसी ॥
राह चलत भिखमंगे नौचैं बात करै दाता सी ॥
मंदिर बीच भंडेरिया नोचैं करै धरम की गाँसी ॥
सौदा लेत दलालो नोचैं देकर लासालासी ॥
माल लिये पर दुकानदार नोचैं कपड़ा दे र ॥
चोरी भए पर पुलिस नोचैं हाथ गले विच ॥
गए कचहरी अमला नोचैं मेचि बनावै घ ॥
फिरै उचक्का दे दे धक्का लूटै माल मवासी ॥
कैद भए की लाज तनिक नहिं बे-सरमी नंगा सी ॥
साहेब के घर दौड़ै जावैं चंदा देहि निकासी ॥
चढ़ै बुखार नाम मंदिर का सुनतहि होय उदासी ॥
घर की जोरू लड़के भूखे बने दास औ दासी ॥
दाल की मंडी रंडी पूजैं मानो इनको मासी ॥
आप माल कचरौं छानैं उठि भोरहिं कागाबासी ॥
बाप के तिथि दिन बाम्हन आगे धरै सड़ा औ बासी ॥
आप माल कचरौं छानैं उठि भोरहिं कागाबासी ॥
बाप के तिथि दिन बाम्हन आगे धरै सड़ा औ बासी ॥
करि बेवहार साक बाधै बस पूरी दौलत दासी ॥
घालि रुपैया काढ़ि दिवाला माल डेकारै ठाँसी ॥
काम कथा अमृत सी पीयै समुझैं ताहि बिलासी ॥
रामनाम मुँह से नहिं निकसै सुनतहि आवै खाँसी ॥
देखी तुमरी कासी भैया, देखी तुमरी कासी ॥

भू.— कहो ई सरवा अपने शहर की एतनी निन्दा कर गया तू लोग कुछ बोलत्यों नाहीं ?

ग.— भैया, अपना तो जिजमान है अपने न बोलेंगे चाहे दस गारी भी दे ले ।

भं.— अपना जिजमाने ठहरा ।

द.— और अपना भी गाहके है ।

दू.— और भाई हमहूँ चार पैसा एके बंदौलत पावा ।

भू.— तू सब का बोलबो तू सब निरे दब्बू चप्पू हो, हम बोलवै । (परदेसी से) ए चिड़ियाबावली के परदेसी परदेसी । कासी की बहुत निन्दा मत करो मुँह बस्सेये का कहैं के साहिब मजिस्टर हैं नाहीं तो निंदा करना निकास देते ।

प.— निकास क्यों देते ? तुमने क्या किसी का ठीका लिया है ?

भू.— हाँ हाँ, ठीका लिया है मटियाबुर्ज ।

प.— तो क्या हम भूठ कहते हैं ?

भू.— राम राम तू भला कबौं भूठ बोलबो तू तो निरे पोथी के बैठन हो ।

प— बैठन क्या ।

भू— वे ते मत करो गणों के, नाहीं तो तोरी
अरबी फारसीं घुसेड़ देवे ।

प— तुम तो भाई अजब लड़ाके हो, लड़ाई मोल
लेते फिरते हो । वे ते किसने किया है ? यह तो अपनी
अपनी राय है कोई किसी को अच्छा कहता है कोई
बुरा कहता है । इससे बुरा क्या मानना ।

भू— सच है पनचोरा, तू कहै सो सचच, बुढ़ढी तू
कहे सो सचच ।

प— भाई अजब शहर है, लोग बिना बात ही लड़े
पड़ते हैं ।

(सुधाकर आता है)

(सब लोग आशीर्वाद, दंडवत, आओ आओ शिष्टाचार
करते हैं)

गं— मैया इनके दम के चैन है । ई अमीरन के
खेलउना हैं ।

भू— खेलाउना का है टाल खजानची खिदमत-
गार सबे कुछ हैं ।

सु— तुन्हें साहब चरिये बूकना आता है ।

भू— चरी का, हमहन भूठ बोलिल ; अरे
बखत पड़े पर तू रंडी ले आब : मंगल के मुजरा मिले
ओमें दस्तूरी काट ; पैर दाब : रुपया पैसा अपने पास
रक्ख : यारन के दूरे से भाँसा बताव : । ऐ ! ले गुरु
तोही कह : हम भूठ कहथई ।

गं— अरे मैया बिचारे ब्राह्मण-कोई तरह से
अपना कालच्छेप करयें ब्राह्मण अच्छे हैं ।

भं— हाँ भाई न कोई के बुरे में न भले में और
इनमें एक बड़ी बात है कि इनफी चाल एक रंग हमेसा
से देखी ये ।

गं— और साहेब एक अमीर के पास रहै से
इनकी चार जगह जान पहिचान होय गई । अपनी बात
अच्छी बनाय लिहिन हैं ।

दू— हाँ भाई बजार में भी इनकी साक बंधी है ।

सु— भया भया यह पचड़ा जाने दो, कहो यह नई
मूरत कौन है ?

भू— गुरु साहब हम हियाँ भाँग का रगड़ा
लगावत रहें बीच में गहन के मारे-पीटे ई धूआँकस
आय गिरे ।

आके पिंजड़े में फँसा अब तो पुराना चंडल ।

लगी गुलसन की हवा दुम का हिलाना गया भूल ॥

(परदेशी के मुँह के पास चुटकी बजाता है और नाक
के पास से उँगली लेकर दूसरे हाथ की उँगली पर
घुमाता है)

प— भाई तुम्हारे शहर सा तुम्हारा ही शहर है,
यहाँ की लीला ही अपरंपार है ।

भू— तोहँ लीला करयो ।

प— क्या ?

भू— नहीं ई जे तोहँ रामलीला में जाथी कि
नाहीं ?
(सब हँसते हैं)

प— (हाथ जोड़कर) भाई तुम जीते हम हारे,
माफ करो ।

भू— (गाता है) तुम जीते हम हारे साधो तुम जीते
हम हारे ।

सु— (आप ही आप) हा ! क्या इस नगर की
यही दशा रहेगी ? जहाँ के लोग ऐसे मूर्ख हैं वहाँ आगे
किस बात की वृद्धि की संभावना करें ! केवल इस
मूर्खता छोड़ इन्हें कुछ आता ही नहीं ! निष्कारण किसी
को बुरा भला कहना । बोली ही बोलने में इनका परम
पुरुषार्थ ! अनाव शनाव जो मुँह से आया बक उठे न
पढ़ना न लिखना ! हाय ! भगवान् इनका कब उद्धार
करेगा !!

भू— गुरु, का गुड़बुड़-गुड़बुड़ जपयो ?

सु— कुछ नाहीं भाई यही भगवान का नाम ।

भू— हाँ भाई, भई एह बेरा टें टें न किया चाहिए
राम राम की बखत भई तो चलो न गुरु ।

सब— चलो भाई ।

(जवनिका गिरती है)

(इति गैबी ऐबी नामक दूसरा गर्भाक)!

तीसरा गर्भाक

स्थान—मुगलसराय का स्टेशन
(मिठाईवाले, खिलौनेवाले, कुली और चपरासी इधर
उधर फिरते हैं । सुधाकर एक विदेशी पंडित और
दलाल बैठे हैं)

द.— (बैठ के पान लगाता है) या दाता राम !
कोई भगवान से भेंट कराना ।

वि.प.— (सुधाकर से) — आप कौन हैं ।
कहाँ से आते हैं ।

सु— मैं ब्राह्मण हूँ, काशी में रहता हूँ और
लाहोर से आता हूँ ।

वि.प.— क्या आपका घर काशी ही जी में है ?

सु.— जी हाँ, ।

वि.प.— भला काशी कैसा नगर है ?

सु— वाह ! आप काशी का वृत्तान्त अब तक नहीं

जानते भला त्रैलोक्य में और दूसरा ऐसा कौन नगर है जिसको काशी की समता दी जाय ।

वि. प.— भला कुछ वहाँ की शोभा हम भी सुनें ?

सु.— सुनिए, काशी का नामांतर वाराणसी है जहाँ भगवती जहन नन्दिनी उत्तरवाहिनी होकर धनुषाकार तीन ओर से ऐसी लपटी हैं मानो इसको शिव की प्यारी जानकर गोद में लेकर आलिंगन कर रही हैं, और अपने पवित्र जलकण के स्पर्श से तापत्रय दूर करती हुई मनुष्यमात्र को पवित्र करती हैं । उसी गंगा के तट पर पुण्यात्माओं के बनाए बड़े बड़े घाटों के ऊपर दोमंजिले, चौमंजिले, पंच मंजिले और सतमंजिले ऊँचे ऊँचे घर आकास से बातें कर रहे हैं मानो हिमालय के श्वेत शृंग सब गंगा सेवन करने को एकत्र हुए हैं । उसमें भी माधोराय के दोनों घरहरे तो ऐसे दूर से दिखाई देते हैं मानो बाहर के पथिकों को काशी अपने दोनों हाथ ऊँचे करके बुलाती हैं । साँझ सबेरे घाटों पर असंख्य स्त्री पुरुष नहाते हुए ब्राह्मण लोग संध्या का शास्त्रार्थ करते हुए, ऐसे दिखाई देते हैं मानो कुबेरपुरी की अलकनंदा में किन्नरगण और ऋषिगण अबगाहन करते हैं, और नगाड़ा नफीरी शंख घटा भाभ्रस्तव और जय का तुमुल शब्द ऐसा गुंजता है मानो पहाड़ों की तराई में मयूरों की प्रतिध्वनि हो रही है, उसमें भी जब कभी दूर से साँझ को वा बड़े सबेरे नौबत की सुहानी धुन कान में आती है तो कुछ ऐसी भली मालूम पड़ती है कि एक प्रकार की भपकी सी आने लगती है । और घाटों पर सबेरे धूप की झलक और साँझ को जल में घाटों की परछाहीं की शोभा भी देखते ही बन आती है ।

जहाँ ब्रज ललना ललित चरण युगल चूर्ण परब्रह्म सच्चिदानंद घन बासुदेव आप ही श्री गोपाललाल रूप धारण करके प्रेमियों को दर्शन मात्र से कृतकृत्य करते हैं, और भी विंदुमाधवादि अनेक रूप से अपने नाम धाम के स्मरण दर्शन, चिन्तनादि से पतितों को पावन करते हुए विराजमान हैं ।

जिन मंदिरों में प्रातःकाल संध्या समय दर्शनीकों की भीड़ जमी हुई है, कहीं कथा, कहीं हरिकीर्तन, कहीं नामकीर्तन कहीं ललित कहीं नाटक कहीं भगवत लीला अनुकरण इत्यादि अनेक कौतुकों के मिस से भी भगवान के नाम गुण में लोग मग्न हो रहे हैं ।

जहाँ तारकेश्वर विश्वेश्वरादि नामधारी भगवान भवानीपति तारकब्रह्म का उपदेश करके तनत्याग मात्रा से ज्ञानियों को भी दुर्लभ अपुनर्भव परम मोक्षपद — मनुष्य पशु कीट पतंगादि आपामर

जीवनमात्र को देकर उसी क्षण अनेक कल्पसंचित महापापपुंज भष्म कर देते हैं ।

जहाँ अंधे, लंगड़े, लूले, बहरे, मूर्ख और निरुद्यम आलसी जीवों को भी भगवती अन्नपूर्णा अन्न वस्त्रादि देकर माता की भाँति पालन करती हैं ।

जहाँ तंक देव, दानव, गंधर्व, सिद्ध चारण, विद्याधर देवर्षि, राजर्षिगण और सब उत्तम उत्तम तीर्थ — कोई मूर्तिमान, कोई छिपकर और कोई रूपांतर करके नित्य निवास करते हैं ।

जहाँ मूर्तिमान सदाशिव प्रसन्न वदन आशुतोष सकलसद्गुणैकरत्नाकर, विनयैकनिकेतन, निखिल विद्याविशारद, प्रशांतहृदय, गुणिजनसमाश्रय, धार्मिकप्रवर, काशीनरेश महाराजधिराज श्रीमदीश्वरी-प्रसादनारायणसिंह बहादुर और उनके कुमारोपम गुमार श्री प्रभुनारायणसिंह बहादुर दान धर्मसभा राम-लीलादि के मिस धर्मोन्नति करते हुए और असत् कर्म नीहार को सूर्य की भाँति नाशते हुए पुत्र की तरह अपनी प्रजा का पालन करते हैं ।

जहाँ श्रीमती चक्रवर्तिनिचयपूजितपादपीठा श्रीमती महारानी विक्टोरिया के शासनानुवर्ती अनेक कमिश्नर ब्रज कलेक्टरादि अपने अपने काम में सावधान प्रजा को हाथ पर लिए रहते हैं और प्रजा उनके विकट दंड के सर्वदा जागने के भरोसे नित्य सुख से सोती है ।

जहाँ राजा शंभूनारायणसिंह बाबू फतहनारायणसिंह बाबू गुरुदास बाबू माधवदास विश्वेश्वरदास राय नारायणदास इत्यादि बड़े बड़े प्रतिष्ठित और धनिक तथा श्री बापूदेव शास्त्री, श्रीवाल शास्त्री से प्रसिद्ध पंडित, श्रीराजा शिवप्रसाद, सेयद अहमद खाँ बहादुर ऐसे योग्य पुरुष, मानिकचंद्र मिस्त्री से शिल्पविद्या निपुण, वाजपेयी जी से तन्त्रीकार, श्री पंडित बेचनजी, शीतलजी, श्रीताराचरण से संस्कृत के और सेवक हरिश्चंद्र से भाषा के कवि बाबू अमृतलाल, मुंशी गन्तूलाल, मुंशी शामसुंदरलाल से शास्त्रव्यसनी और एकांतसेवी, श्रीस्वामी विश्वरूपानंद से यति, श्रीस्वामि विशुद्धानंद से धर्मोपदेष्टा, दातृगणैकाग्रगण्य श्री-महाराजधिराज विजयनगराधिपति से विदेशी सर्वदा निवास करके नगर की शोभा दिन रूनी रात चौगुनी करते हैं ।

जहाँ कहींस कालिज (जिसके भीतर बाहर चारों ओर श्लोक और दोहे खुदे हैं), जयनारायण कालिज से बड़े बंगाली टोला, नार्मल और लंडन मिशन से मध्यम तथा हरिश्चंद्र स्कूल से छोटे अनेक विद्याभित्ति हैं, जिनमें संस्कृत, अंगरेजी, हिन्दी, फारसी, बंगला,

महाराष्ट्री की शिक्षा पाकर प्रति वर्ष अनेक विद्यार्थी विद्योत्तीर्ण होकर प्रतिष्ठाालाभ करते हैं ; इनके अतिरिक्त पंडितों के घर में तथा हिंदी फारसी पाठकों की निज शाला में अलग ही लोग शिक्षा पाते हैं, और राय शंकाप्रसाद के परिश्रमोत्पन्न पब्लिक लाइब्रेरी, मुनशी शीतलप्रसाद का सरस्वती-भवन, हरिश्चंद्र का सरस्वती और भंडार इत्यादि अनेक पुस्तक-मंदिर हैं, जिनमें साधारण लोग सब विद्या की पुस्तकें देखने पाते हैं ।

जहाँ मानमंदिर ऐसे यंत्रभवन, सारनाथ की धमेक से प्राचीनावशेष चिह्न, विश्वनाथ के मंदिर का वृषभ और स्वर्ण-शिखर, राजा चेतसिंह के गंगा पार के मंदिर, कश्मीरीमल की हवेली और कवीस कालिज की शिल्पविद्या और माधोराय के धरहरे की ऊँचाई देखकर विदेशी जन सर्वदा रहते हैं ।

जहाँ महाराज विजयनगर के तथा सरकार के स्थापित स्त्री-विद्यामंदिर, औषधालय, अंधभवन, उन्मत्तागा इत्यादिक लोकद्वयसाधक अनेक कीर्तिकार्य हैं वैसे ही चूड़वाले इत्यादि महाजनों का सदावर्त और श्री महाराजाधिराज संधिया आदि के अटल सत्र से ऐसे अनेक दीनों के आश्रयभूत स्थान हैं जिनमें उनको अनायास ही भोजनाच्छादन मिलता है ।

अहोबल शास्त्री, जगन्नाथ शास्त्री, पंडित काकाराम, पंडित मायादत्त, पंडित हीरानंद चौबे, काशीनाथ शास्त्री, पंडित भवदेव, पंडित सुखलाल ऐसे धुरंधर पंडित और भी जिनका नाम इस समय मुखे स्मरण नहीं आता अनेक ऐसे ऐसे हुए हैं, जिनकी विद्या मानों मंडन मिश्र की परंपरा पूरी करती थी ।

जहाँ विदेशी अनेक तत्ववेत्ता धार्मिक धनीजन पवार कुटुंब देश विदेश छोड़कर निवास करते हुए तत्त्वचिंतन में मग्न सुख-दुःख भुलाए संसार को यथारूप में देखते सुख से निवास करते हैं ।

जहाँ पंडित लोग विद्यार्थियों को ऋक्, यजुः साम, अथर्व, महाभारत, रामायण, पुराण, उपपुराण, स्मृति, न्याय, व्याकरण, सांख्य, पातंजल, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, शैव, वैष्णव, अलंकार, साहित्य, ज्योतिष इत्यादि शास्त्र सहज पढ़ाते हुए मूर्तिमान गुरु और व्यास से शोभित काशी की विद्यापीठता सत्य करते हैं ।

जहाँ भिन्न देशनिवासी आस्तिक विद्यार्थीगण परस्पर देव-मंदिरों में, घाटों पर, अध्यापकों के घर में, पंडित सभाओं में वा मार्ग में मिलाकर शास्त्रार्थ करते हुए अर्नगल धारा प्रवाह संस्कृत भाषण से सुनने वालों

का चित्त हरण करते हैं ।

जहाँ स्वर लय छंद मात्रा, हस्तकंपादि से शुद्ध वेदपाठ की ध्वनि से जो मार्ग में चलते वा घर बैठे सुन पड़ती है, तपोधन की शोभा का अनुभव होता है ।

जहाँ द्रविड, मगध, कान्यकुब्ज, महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब, गुजरात इत्यादि अनेक देश के लोग परस्पर मिले हुए अपना-२ काम करते दिखते हैं और वे एक एक जाति के लोग जिन मुहल्लों में बसे हैं वहाँ जाने से ऐसा ज्ञान होता है मानों उसी देश में आए हैं, जैसे बंगाली टोले में ढाके का, लहौरी टोले में अमृतसर का और ब्रह्माघाट में पूने का भ्रम होता है ।

जहाँ निराहार, पयाहार, यताहार, भिक्षाहार, रक्तावर, श्वेतावर, नीलावर, चर्मांवर, दिगंबर, नंदी, सन्यासी, ब्रह्मचारी, योगी, यती, सेवड़ा, फकीर, सुथरेसाई, कनफटे, ऊर्ध्वबाहु, गिरि, पुरी, भारती, वन, पर्वत, सरस्वती, किनारामी, कबीरी, वादपंथी, नान्हकसाही, उदासी, रामानंदी, कौल, अचोरी, शैव, वैष्णव, शाक्त गणपत्य, सौर, इत्यादि हिंदू और ऐसे ही अनेक भाँति के मुसलामान फकीर नित्य धर से उधर भिक्षा उपार्जन करते फिरते हैं और इसी भाँति सब अंधे लंगड़े, लूले, दीन, पंगु, असमर्थ लोग भी शिक्षा पाते हैं, यहाँ तक कि आधी काशी केवल दाता लोग के भरोसे नित्य अन्न खाती है ।

जहाँ हीरा, मोती, रुपया, पैसा, कपड़ा, अन्न, धी, तेल, अतर, फुलेलक, पुस्त खिलौने इत्यादि की दुकानों पर हजारों लोग काम करते हुए मोल लेते बेचते ढंगली करते दिखाई पड़ते हैं ।

जहा की बनी कमखाव बाफता, हमरू, समरू ; गुलबदन, पोत, बनारसी साड़ी दुपट्टे, पीताम्बर, उपरने, चोलखंड, गोंटा, पट्टा इत्यादि अनेक उत्तम वस्तुएँ देशविदेश जाती हैं और जहाँ की मिठाई, खिलौने, चित्र टिकुली, बीड़ा इत्यादि और भी अनेक सामग्री ऐसी उत्तम होती हैं कि दूसरे नगर में कदापि स्वप्न में भी नहीं बन सकती ।

जहाँ प्रसादी तुलसी माला फूल के पवित्र और स्नायी स्त्री पुरुषों के अंग के विविध चंदन, कस्तूरी, अतर इत्यादि सुगंधि द्रव्य के मादक आमोद संयुक्त परम शीतलकण तापत्रय विमोचक गंगाजी के स्पर्श मात्र से अनेक लौकिक अलौकिक ताप से तापित मनुष्यों का चित्त सर्वदा शीतल करते हैं ।

जहाँ अनेक रंगों के कपड़े पहने, सोरहो सिंगार बत्तीसो अभरण सजे पान खाए मिस्सी की धड़ी जमाए

जोवन मदमाली भलभलाती हुई बारबिलासिनी देवदर्शन वैद्य ज्योतिषी गुणीगृहगमन जार मिलन गानश्रावण उपवनभ्रमण इत्यादि अनेक बहानों से राजपथ में इधर-उधर भूमती घूमती नैनो के पटे फेरती बिचारे दीन पुरुषों को ठगती फिरती हैं। और कहाँ तक कहें काशी काशी ही है। काशी सी नगरी तैलोक्य में दूसरी नहीं है। आप देखिएगा तभी जानिएगा बहुत कहना व्यर्थ है।

वि.प.— वाह वाह ! वाह ! आपने वर्णन से मेरे चित्त का काशी दर्शन का उत्साह चतुर्गुण हो गया। यों तो मैं सीधा कलकत्ते जाता पर अब काशी बिना देखे कहीं न जाऊँगा। आपने तो ऐसा वर्णन किया मानों चित्र सामने खड़ा कर दिया। कहिए यहाँ और कौन कौन गुणी और दाता लोग हैं जिनसे मिलूँ।

सु.— मैं तो पूर्व ही कह चुका हूँ कि काशी गुणी और धनियों की खान है यद्यपि यहाँ के बड़े बड़े पंडित जो स्वर्गवासी हुए उनसे अब होने कठिन हैं, तथापि अब भी जो लोग हैं दर्शनीय और संस्मरणीय हैं। फिर इन व्यक्तियों के दर्शन भी दुर्लभ हो जायेंगे और यहाँ के दाताओं का तो कुछ पूछना ही नहीं ! चूड़ की कोठीवालों ने पंडित काकाराम जी के श्रृण के हेतु एक साथ बीस सहस्र मुद्रा दिये। राजा पटनीमल के बाँधे धर्म्मचिन्ह कर्मनाशा का पुल और अनेक धर्म्मशाला, कृष्ण, तालाब, पुल इत्यादि भारतवर्ष के प्रायः सभी तीर्थों पर विद्यमान हैं। साह गोपालदास के भाई साह भवानोदास की भी ऐसी उज्ज्वल कीर्ति है और भी दीवान केवलकृष्ण, चम्पतराय अमीन इत्यादि बड़े बड़े दानी इसी सौ वर्ष के भीतर हुए हैं। बाबू राजेन्द्र मित्र की बाँधी देवी पूजा गुरु दास मित्र के यहाँ अब भी बड़े धूम से प्रतिवर्ष होती है। अभी राजा देवनारायणसिंह ही ऐसे गुणज्ञ हो गए हैं कि उनके यहाँ से कोई खाली हाथ नहीं फिरा। अब भी बाबू हरिश्चंद्र इत्यादि गुणग्राहक इस नगर की शोभा की भाँति विद्यमान हैं। अभी लाला बिहारीलाल और मुंशी रामप्रताप जी ने कायस्थ जाति का उद्धार करके कैसा उत्तम कार्य किया। आप मेरे मित्र रामचंद्र ही को देखिएगा। उसने बाल्यावस्था ही में लक्षावधि मुद्रा व्यय कर दी है। अभी बाबू हरखचंद मरे हैं जो एक गोदान नित्य करके जलपान करते थे। कोई भी फकीर यहाँ से खाली नहीं गया। दस पंद्रह रामलीला इन्हीं काशीवालों के व्यय से प्रति वर्ष होती हैं और भी हजारों पुण्यकार्य यहाँ हुआ ही करते हैं। आपको सबसे मिलाऊँगा आप

काशी चले तो सही।

वि.पं.— आप लाहोर क्यों गए थे।

सु.— (लंबी साँस लेकर) कुछ न पूछिए योंही सेर को गया था।

द.— (सुधारकर से) का गुरु। कुछ पंडितजी से बोहनी बाँड़े का तार होय तो हम भी साथ चलूँ।

सु.— तार तो पंडितवाड़ा है कुछ विशेष नहीं जान मड़ता।

द.— तब भी फोक सऊड़े का मालवाड़ा। कहाँ तक न लेऊँचिये।

सु.— अब जो पलते पलते पलें।

वि.— यह इन्होंने किस भाषा में बात की ?

सु.— यह काशी ही की बोली है, ये दलाल हैं, सो पूछते थे कि पंडितजी कहाँ उतरेंगे।

वि.— तो हम तो अपने एक सम्बन्धी के यहाँ नीलकंठ पर उतरेंगे।

सु.— ठीक है, पर मैं आपको अपने घर अवश्य ले जाऊँगा।

वि.— हाँ हाँ इसमें कोई संदेह है ? मैं अवश्य चलूँगा।

(स्टेशन का घंटा बजता है और जर्बनिका गिरती है) इति प्रतिच्छवि-वाराणसी नामक तीसरा गर्भांक समाप्त हुआ।

प्रथम अंक

चतुर्थ गर्भांक

स्थान — बुभुक्षित दीक्षित की बैठक

(बुभुक्षित दीक्षित, गम्प पंडित, रामभट्ट, गोपालशास्त्री, वंबुभट्ट, माधव शास्त्री आदि लोग पान बीड़ा खाते और भाँग बूटी की तजबीज करते बैठे हैं; इतने में महाश कोतवाल अर्थात् निमंत्रण करनेवाला आकर चौक में से दीक्षित को पुकारता है)

महाश— काहो, बुभुक्षित दीक्षित आहेत ?

बुभुक्षित— (इतना सुनते ही हाथ का पान रखकर) कोण आहे ? (महाश आगे बढ़ता है) वाह महाश तु आहेश काय ? आय बाबा आज किति ब्राह्मण

आमच्या तडात देतोस ? सरदारानी किती सांगीतलेत !
(थोडा ठहरकर) कायरे ठोक्याच्या कमर्यान्त
सहस्रभोजन कुणाच्या यजमानाचे चालले आहे ?

महाश — दीक्षित जी ! आज ब्राह्मणाची अशी
मारामार भाली कि मी मांहीं सांगू शकत नाहीं —
कोण तो पचडा !

बु.भु — खरें, काय मारामार भाली ? अच्छा ये
तर बैठकेंत पण आखेरीस आमचे तडाची काय
व्यवस्था ? ब्राह्मण आणलेस की नाहीं ? कां हात
हलवीतच आलस ?

महाश — (बैठक में बैठकर जल मांगता है)
दीक्षित जी थोडेंसे पाणी द्या, तहान बहुत लागली
आहे ।

बु.भु — अच्छा भाई, थोडा सा ठहर अत्ता
उनातून आला आहेस, बूटी ही बनतेच आहे । पाहिजे
तर बूटीचच पाणी पी । अच्छा सांग तर कसे काय
ब्राह्मण किती मिलाळे ?

महाश — गुरु, ब्राह्मण तो आज २५ निकाले,
यार लोग आपके शागिर्द हैं कि और किसके ?

चंबूमड — (बड़े आनंद से) क्या भाई सच
कहो — २५ ब्राह्मण मिलाळे ?

महाश — हो गुरु ! २५ ब्राह्मण तर नुसते
सहस्रभोजनाचे, परंतु आजचे वसंतपूजेचे तर शिवाय
च — आणखी सभेकरतां तर पेघ लावलाच आहे
पण —

गोपाल, माधव शास्त्री — (घबडाकर) काय
महाश पण कां ? सभेचें काम कुणाकडे आहे ? अणखी
सभा कधीं होणार ? आं ?

महाश — पण इतकेच कीं हा यजमान पाप
नगरांत रहतो, आणियाला एक कन्या आहे ती
गतमर्तुका असून सकेशा आहे आणि तीर्थस्थलीं तर
क्षौर करणें अवश्य पण क्षौरकरून कन्येची शोभा जाईल
या करितां जर कोणी असा शास्त्रीय आधार दाखवील
तर एक हजार रुपयांची सभाकरण्याचा त्यांचा विचार
आहे व या कामांत धनुतुदिल शास्त्रीनी हात घातला
आहे ।

गप्प पंडित — अं : , तो ऐसी झुल्लक बात के
हेतु शास्त्राधार का क्या काम है ? इसमें तो बहुत से
आधार मिलेंगे ।

माधव शास्त्री — हां पंडित जी आप ठीक
कहते हैं, क्योंकि हम लोगों का वाक्य और ईश्वर का
वाक्य समान ही समझना चाहिए "विप्रवाक्ये
जनार्दनः" "ब्राह्मणोऽम देवत" इत्यादि ।

गोपाल — ठीकच आहे, आणि जर कदाचित्
असल्या दुर्घट कामानी आम्ही लोकदुष्ट्या निन्ध भालो
तथापि बन्धच आहों, कारण श्री मद्भागवतांत ही
लिहले आहे 'विप्रं कृतागसमपि नैव द्रष्ट्येत कश्चने-
त्यादि' ।

गप्प पंडित — हां जी, और इसमें निंद होने
का भी क्या कारण ? इसमें शास्त्र के प्रमाण बहुत से हैं
और युक्ति तो हुई है । पहिले यही देखिए कि इस क्षौर
कर्म से दो मनुष्यों को अर्थात् वह कन्या और उसके
स्वज्जन इनको बहुत ही दुःख होगा और उसके
प्रतिबंध से सबको परम आनंद होगा । तब यहाँ इस
वचन को देखिए —

'येन केनाप्युपायेन यस्य कस्यापि देहिनः ।

संतोषं जनयेत् प्राज्ञस्तदेवेश्वर पूजनं ॥'

बु.भु — और ऐसे बहुत से उदाहरण भी इसी
काशी में होते आये हैं दूसरा काशीखंड ही में कहा
है 'येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः ।'

चंबूमड — मूर्खतागार का भी यह वाक्य है
'अथवा वाललवनं जीव — नाबैनवद्भवेत्' ।
संतोषसिधु में भी 'सकेशेव हि संस्थाप्या यदि
स्यातोयवा नृणां' ।

महाश — दीक्षित जी ! बूटी भाली — अब छने
जल्दी कारण बहुत प्यासा जीव होऊन गेला अणखी
अफून पुष्कल ब्राह्मण सांगायेचे आहेत ।

बु.भु — (मांग की गोली और जल, बरतन,
कटोरा साफी लेकर) । शास्त्री जी ! थोडे से बड़ा
तर ।

माधव शास्त्री — दीक्षित जी ! हें मांम काम
नह्वें, कारण मी अपला खाली पीण्याचा मालिक आहे,
मला छानतां येत नाहीं । (गोपाल शास्त्री की ओर
दिखलाकर । ये इसमें परम प्रवीण हैं ।

गोपाल शास्त्री — अच्छा दीक्षित जी, मीच
आलों सही ।

चंबूमड — (इन सबों को अपने काम में
निमग्न देखकर) बरें मग महाश अखेरीस तडाचे किसी
ब्राह्मण सहस्रभोनाचे व वसंत पूजेचे किती ?

महाश — दीक्षिताचे तडांत आज एकंदर २५
ब्राह्मण ; पैकीं १५ सहस्र भोजनाकडे आणि १०
वसंतपूजेकडे —

माधव शास्त्री — आणि सभेचे ?

महाश — सभेचे तर मी सांगीतलेच कीं
धनुतुदिल शास्त्रीचे अधिकारांत आहे, आणि दोन तीन
दिवसांत ते बंदोबस्त करणार आहेत ।

गण्य पंडित — क्यों महाश ! इस सभा में कोई गोड़ पंडित भी है वा नहीं ।

महाश — हाँ पंडित जी, वह बात छोड़ दीजिए, इसमें तो केवल दक्षिणात्य द्राविण और क्वचित् तैलंग भी होंगे, परन्तु सुना है कि जो इसमें अनुमति करेंगे वे भी अवश्य सभासद होंगे ।

गण्य पंडित — इतना ही न, तब तो मैंने पहिले ही कहा है, माधव शास्त्री ! अब भाई यह सभा दिलवाना आपके हाथ में है ।

माधव — हाँ पंडित जी, मैं तो अपने शक्त्यनुसार प्रयत्न करता हूँ, क्योंकि प्रायः काका धनतुलिन शास्त्री जो कुछ करते हैं उसका सब प्रबंध मुझे ही सौंप देते हैं । (कुछ ठहर कर) हाँ, पर पंडित जी, अच्छा स्मरण हुआ, आपसे और न्यू फंड (New fond) शास्त्री से बहुत परिचय है, उन्हीं से आप प्रवेश कीजिए, क्योंकि उनसे और काका जी से गहरी मित्रता है ।

गण्य पंडित — क्या क्या शास्त्री जी ? न्यू — क्या ? मैंने यह कहीं सुना नहीं ।

गोपाल — कभी सुना नहीं इसी हेतु न्यू फंड ।

गण्य पंडित — मित्र ! मेरा ठठा मत करो । मैं यह तुम्हारी बोली नहीं समझता । क्या यह किसी का नाम है ? मुझे मालूम होता है कि कदाचित् यह द्रविड़ त्रिलिंग आदि देश के मनुष्य का नाम होगा । क्योंकि उधर की बोली मैंने सुनी है उसमें मूढ़न्य वर्ण प्रायः बहुत रहते हैं ।

माधव शास्त्री — ठीक पंडित जी, अब आप का तर्कशास्त्र पढ़ना आधा सफल हुआ । अस्तु ये इधर ही के हैं जो आप के साथ रामनगर गये थे, जिन्होंने घर में तमाशेवाले की बैठक की थी —

गण्य पंडित — हाँ हाँ, अब स्मरण हुआ, परन्तु उनका नाम परोपकारी शास्त्री है और तुम क्या भांड रहते हो ?

गोपाल शास्त्री — वह पंडित जी, भांड नहीं कहा फंड कहा — न्यू फंड अर्थात् नये शौखीन । सारांश प्राचीन शौखीन लोगों ने जो जो कुछ पदार्थ उत्पन्न किए, उपभुक्त किये उन ही उनके उच्छिष्ट पदार्थ का अवलंबन करके वा प्राचीन रसिकों की चाल चलन को अच्छी समझ हमको भी लोक वैसा ही कहे आदि से खींच खींच के रसिकता लाना, क्या शास्त्री जी ऐसा न इसका अर्थ ?

माधव शास्त्री — भाई, मुझे क्यों नाहक इसमें डालते हो —

गण्य पंडित — अच्छा, जो होय मुझे उसके नाम से क्या काम । व्यक्ति मैंने जानी परन्तु माधव जी आप कहते हैं और मुझसे उनसे भी पूर्ण परिचय है और उनको उनका नाम सच शोभता है, परन्तु भाई वे तो बड़े आदर्य मान्य हैं और कंजूस भी हैं — और क्या तुमसे उनसे मित्रता मुझसे अधिक नहीं है । यहाँ तक शयनासन तक वे तुमको परकीय नहीं समझते ।

माधव शास्त्री — पंडित जी ! वह सर्व ठीक है, परन्तु अब वह भूतकालीन हुई । कारण 'अति सर्वत्र बर्ज्येत्' —

बुभु — हाँ पंडित जी ! अब क्षण भर इधर बूटी को देखिए, लीजिए । (एक कटोरा देकर पुनः दूसरा देते हैं)

गण्य पंडित — वाह दीक्षित जी, बहुत ही बढ़िया हुई ।

चंबूभट्ट — (सब को बूटी देकर अपनी पारी आई देखकर) हाँ हाँ दीक्षित जी, लिकड़ेच खतम करा मी आज कल पीत नहीं ।

गोपाल माधव — काँ भट जी ! पुरे आतां, हे नखरे कुठे शिकलात, या — प्या — हवेने व्यर्थ थंडी झोते ।

चंबूभट्ट — नहीं भाई मी सत्य सांगलों, भला सोसत नाही । तुम्हाला माझे नखरे वाटतात पण हे प्रायः इथले काशीतलेच आहेत, व अपल्या सारख्यांच्या परम प्रियतम सफेत खड्डखडीत उपर्णा पाँघरणार अनाथा बालांनीच शिकविलेन बरें ।

(सब आग्रह करके उसके पिलाते हैं)

महाश — कां गुरु दीक्षित जी अब पलेती जमविली पाहिजे ।

बुभु — हाँ भाई, घे तो बंटा आणि लाव तर एक दोन चार ।

महाश — (इतने में अपना पान लगाकर खाता है और दीक्षित जी से) दीक्षित जी, १५ ब्राह्मण ठोक्याच्या कमर्यांत पाटवा, दाहा बाजतां पानें मांडलो जातील, आणि आज रात्री वसंतपूजेस १० ब्राह्मण लवकर पाठवा कारण मग दूसरे तडाचे ब्राह्मण येतील (ऐसा कहता हुआ चला जाता है)।

बुभु — (उसको पुकारते हुए जाते हैं) महाश ! दक्षिणा कितनी ? (महाश वहीं से चार अंगुली दिखाकर गडा कहकर गया ।

माधव — दीक्षित जी ! क्या कहीं बहरी ओर चलिएगा ?

गोपाल — (दीक्षित से) हाँ गुरु, चलिए आज

बड़ी वहाँ लहरा है ।

बुभु.— भाई बहरीवर मी जाऊन इकडचा बन्दोबस्त कोण करील ?

गोपाल— ओ : गुरु इतके १५ ब्राह्मणात घबड़ावता । सर्वमन्त्रास सांगीतले ब्राह्मण जे भाले । न्यू फांड की पत्ती हैं ।

गण्य पंडित— क्या परोपकारी की पत्ती हैं ? खाली पत्ती दी है कि और भी कुछ है ? नहीं तो मैं भी चलूँ ।

माधव शास्त्री— पत्ती क्या बड़ी बड़ी लहरा है, एक तो बड़ा भारी प्रदर्शन होगा और नाना रीति के नाच, नए नए रंग देख पड़ेगे ।

गण्य पंडित— क्यों शास्त्री जी मुझे यह बड़ा आश्चर्य ज्ञात होता है और इससे परिहासोक्ति सी देख पड़ती है । क्योंकि उसके यहाँ नाच रंग होना सूर्य का पश्चिमाभिमुख उगना है ।

गोपाल— पंडित जी ! इसी कारण इनका नाम न्यू फांड है । और तिस पर यह एक गूट्य कारण से होता है । वह मैं और कभी आप से निवेदन करूँगा, वा मार्ग में —

बुभु.— (सर्वमन्त्र नाम अपने लड़के को सब व्यवस्था कहकर आप पान पलेती और रस्सी लोटा और एक पंखी लेकर) हाँ भाई मेरी सब तैयारी है ।

माधव गोपाल— चलिए पंडित जी वैसे ही धनतुंदिल शास्त्री जी के यहाँ पहुँचेंगे । (सब उठकर बाहर आते हैं ।)

चंबूमट्ट— मैं तो भाई जाता हूँ क्योंकि संध्या समय हुआ है । (चला जाता है)

गण्य पंडित— किधर जाना पड़ेगा ?

माधव शास्त्री— शंखोध्यारा क्योंकि आजकल श्रावण मास में और कहाँ लहरा ? धराऊ कजरी, स्तोक, लावनी, ठुमरी, कटौवल, बोली ठोली सब उधर ही ।

गण्य पंडित— ठीक शास्त्र जी, अब मेरे ध्यान में पहुँचा, आजकल शंखोध्यारा का बड़ा माहात्म्य है । भला घर पर यह अब कहाँ सुनने में आवेगा ? क्योंकि इसमें धराऊ विशेषण दिया है ।

गोपाल— आ : हमारा माधव शास्त्री जहाँ है वहाँ सब कुछ ठीक ही होगा, इसका परम आश्रय प्राणप्रिय रामचंद्र बाबू आपके विदित है कि नहीं ? उसके यहाँ ये सब नित्य कृत्य हैं ।

गण्य पंडित— रामचंद्र हम ही को क्या परंतु मेरे जान प्राय : यह जिसको विदित नहीं ऐसा स्वल्प ही निकलेगा । विशेष करके रसिकों को ; उसको तो मैं खूब जानता हूँ ।

गोपाल— कुछ रोज हमारे शास्त्री जी भी थे, परंतु हमारा क्या उनका कहिए ऐसा दुर्भाग्य हुआ कि अब वर्ष वर्ष दर्शन नहीं होने पाता । रामचंद्र जी तो इनको अपने भ्राते के समान पालन करते थे और इनसे बड़ा प्रेम रखते थे । अस्तु सारांश पंडित वहाँ रामचंद्र जी के बगीचे में जायेंगे । वहाँ सब लहरा देख पड़ेगी और इस मिस से तो भी उनका दर्शन होगा ।

बुभु.— अरे पहिले नवे शौखिनाचे इथे जाऊं तिथे काय आहे हें पाहूँ आणि नंतर रामचंद्राकडे भुक् ।

माधव शास्त्री— अच्छा तसेच होय आजकल न्यू फांड शास्त्री यानी ही बहुत उदारता धरली आहे बहुत सी पाखरें ही चारली आहेत तो सर्व दुष्टीस पडतील पण भाई भी आँत यायचा नाही । कारण मला पाहून त्यांना त्रास होतो ।

गोपाल— अच्छा तिथ वर तर चलशील आगे, देखा जायगा ।

(सब जाते हैं और जवनिका गिरती है)

(इति)

धिस्सधिसद्विज कृत्य विकर्तनी नाम चतुर्थ गर्भाक

॥ प्रथम अंक समाप्त हुआ ॥



विषयस्य विषमौषधम्

पहली बार यह नाटक "हरिश्चंद्र चंद्रिका" सं. ३ सं. १० अक्टूबर सन् १८७६ ई. में प्रकाशित हुआ। इसके शीर्षक के ऊपर प्राप्त लिखा था। जिसमें लगता है कि यह शीर्षक किसी दूसरे लेखक का रहा होगा। — सं.

विषयस्य विषमौषधम् (भाग)

परतिय-रत रावन द्यूँ, पर-धन-रत तिमि कंस।
राम कृष्ण जय सूर ससि, करन मोह अधधंस ॥१॥

(भण्डाचार्य आता है)

भण्डाचार्य— (लम्बी सांस लेकर)

'पर नारी पैनी छुरी, ताहि न लाओ अंग।
रावनहू को सिर गयो, पर नारी के संग ॥१॥

हमारी दशा भी अब रावण की हुआ चाहती है, तो क्या हुआ, होय।

रावन ने दस सिर दिए, जनक-नन्दनी-काज।
जो मेरो इक सिर गयो, तो यामें कहां लाज ॥३॥

देखो पर-स्त्री संग से चन्द्रमा यद्यपि लाँछित है तो भी जगत को आनन्द देता है वैसे ही (मोछों पर हाथ फेरकर) हम बड़े कलंकित सही पर हमी उस नगर की शोभा हैं। भला दुष्ट बाबाभट्ट क्या हुआ तुम ने हमारा सब भेद खोल दिया, इस भेद खुलने पर भी हम ने तुम्हें और कृष्णाबाई दोनों को न छकाया तो मेरा नाम भण्डाचार्य नहीं। अब भी क्या खंडेराव का राज्य है कि पहलवानों की पूछ होगी अब तो जो कुछ हमी लोग हैं (ऊपर देखकर) क्या कहा कि 'इसी उपद्रव से न यह गति हुई' किसकी किसकी? महाराज मलहार राव की? ए भाई जरा हाल तो कहे जाओ (ऊपर देखकर) हैं चला गया, कौन गति हुई, इनता तो हमने भी सुना था कि कुछ दिन हुए एक खबीसन आई थी, क्या जानै कौन साहेब उसके मालिक थे। उं! अरे वह तो इसी बान पर न आई थी कि महाराज की भेड़ियां उन से अच्छी तरह नहीं चराई जातीं, तो फिर इस से क्या? अपनी नाक ठहरी चाहे जिधर फेर दिया। और फिर उस का प्रबन्ध करने तो उनके साढ़े-तीन नातेदार आए न थे एक दादा दूसरा भाई तीसरा पति (नौरा) और आधो जीजी, क्या उन से भी कुछ न हुआ (ऊपर देखकर) क्या कहा, होता कहां से मलहर जी कुछ करने देते तब तो। अजी बावले हुए हो करने क्या

देते? राजा होता है प्रभु और "कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः प्रभुः" यह प्रभु का लक्षण है, उनकी बकरी थी चाहे जिस घाट पानी पिलाया। हम तो अपने नौकरों से रात दिन जो चाहते हैं काम लेते हैं। और फिर सुख भी तो हिंदुस्तान में तीन ही ने किया, एक मुहम्मदशाह ने दूसरे वाजिदअली शाह ने तीसरे हमारे महाराज ने। मुहम्मदशाह के जमाने में नादिरशाही हुई, वाजिदअली से लखनऊ ही छूटा, अब देखें इन की कौन गति होती है। इस का तो यही फल है, पर फिर कौर इस रंग में नहीं है, बड़े बड़े ऋषि मुनि राजा महाराज नए पुराने सभी तो इस में फंसे हैं। अहा स्त्री वस्तु भी ऐसी ही है।

पुरुष जनन के मोहन को विधि यंत्र विचित्र बनायो है। काम अनल लावन्य सुजल बल जाको बिरचि चलायो है। कमर कमानी बार तार सों सुन्दर ताहि सजायो है। धरमघड़ी अरु रेलहु सों बढि यह सबके मन भायो है ॥ है ॥

यह तो कल के अर्थ में यंत्र हुआ अब हिन्दुस्तानी तन्त्र का यन्त्र वर्णन सुनिए। पुरुष जनन के मोहन को यह मंगल यन्त्र बनायो है। कामदेव के बीच मन्त्र सों अंकित सब मन भायो है ॥ ग्रहण दिवारी कारी चौदस सानी रात जगायो है। सिद्ध भयो सब को मन मोहत नारी नाम धरायो है ॥

(ऊपर देखकर) क्या कहा? इसी यंत्र के अनुष्ठान का न यह फल हुआ कि सिर पर इतनी सारी जवाबदेही आय पड़ी। किसके किसके? किसके बल हम कूदते हैं! अरे महाराज के? क्या हुआ (ऊपर देखकर) क्या कहा? 'तुमको क्या नहीं मालूम' हमको यहां तक तो मालूम है कि पहिले एक कमीशन आया था और फिर कुछ आया के आया जाया की गड़बड़ सुनी थी। छिः छिः स्त्री ऐसी ही वस्तु है उस पर भी कुमारी। बिजली को घन का पचवड़। स्त्री और बिजली जिससे छू गई वह गया (ऊपर देखकर) क्या कहा 'गया भी ऐसा कि फिर न वहुँरैगा' अरे कौन कौन? क्या कहा? वही

जिसका तुम सुबरे से पचड़ा गा रहे हो ! हाय ! हाय ! महाराज ! अरे क्या हुए ? गद्दी से उतारे गए ? हाय ! महा अनर्थ हुआ । महाराज नहीं गए हिन्दुस्तान गया । भला पूरा हाल तो कहां (कुछ ठहर कर ऊपर देखकर) हां समझा । हाय बहुत ही बुरा हुआ बुढ़िया मरने का डर नहीं जम परचने का डर है ? परचल गोह करौदा खाय । वाजिदअलीशाह भी तो इसी खुराफात से उतारे थे "मा और भाई मल्लिक : से इनसाफ चाहने के लिये विलायत पहुँचे वह कुछ सुनाती (न ?) दोनों आपनी जान मलिक : पर निछावर कर गुजरे" "सो बातें सुनि राजसभा में ह्वै निशंक विस्तारी जूँ" भाई यस्यास्ति भाग्यं स नर : कुलीन : स पण्डित : श्रुतिमान् गुणाजः स एव दासा स च दर्शनीयः सर्वगुणाः भाग्यवता-मधीनाः । हमारा तो सुनकर जी जल गया कि कविवचन सुधा नाम का कोई अखबार सोने के और लाल टाइप में उस दिन छपा था जिस दिन महाराज उतारे गए । बाहरें शिफारशियो ? अरे खुशामद की भी कुछ हद होती है । एक बादशाह ने हुक्म दिया बड़े-बड़े खुशामदी लाओ । तीन आदमी हाजिर किये गए । बादशाह ने पूछा तुम खुशामद कर सकोगे । पहिला बोला हुजूर क्यों नहीं । बादशाह ने उसे निकाल दिया । दूसरे से पूछा तुम खुशामद कर सकोगे ? उसने कहा जहाँपनाह जहाँ तक हो सकेगी, बादशाह ने उसे भी निकाल दिया । तीसरे से भी पूछा तुम खुशामद कर सकोगे । बोला गरीब परवर क्या मजाल भला मेरी ताकत है कि हुजूर की खुशामद कर सकूँ । बादशाह ने कहा हाँ यह पक्का खुशामदी है । ठीक वही हाल है । और निबाह भी इसी से है हजार जान दे मरो शिफारिश नहीं तो कुछ भी नहीं । जान भी दे तो बादशाह ही न था । फिर भी भाई शिफारशियों का कल्याण है । तो हमहुँ कहव अब ठकुर सोहाती । हसब टाठब फुलाउब गालू, पर हम से न होगा । भला कहां हिन्दुस्तानी शिफारशी दरबार, कहां हमसे पण्डित । "हरि संग भोग कियो जा तन सों तासों कैसे जोग करे ।" पक्षपात नहीं है ऐसा ही है । लाखों सबूत दे सकते हैं पर कोई सुनै भी । हाय ! कोई सुनने वाला भी तो "नहीं प्रानपियारे तिहारै बिना कहां काहि करेजो निकासी दिखाऊँ" ए भाई कुछ कहना भी तो मरु मारना है । पासा पड़े सो दाव, राजा करे सो न्याय । कहैं जो लोग बस उस को बजा कहिए । इन का राज गया तो क्या आश्चर्य है यह कुछ

आज ही थोड़े हुई है सनातन से चली आई है । और फिर राजनीति राक्षा भी तो इसी से होती है । पर ऐसे ही सारे भारतवर्ष की प्रजा का सरकार ध्यान नहीं रखती । रामपुर में दुरंत यवन हिन्दुओं को इतना दुख देते हैं पूजा नहीं करने देते शंख नहीं बजता पर सरकार इस बात की पुकार नहीं सुनती । यद्यपि यह अनर्थ वहां है जहां पहिले सरकारी राज्य था और जिस देश के विषय में पक्का अहदनामा हो चुका है । अहदनामे पर क्या, जैसे अधिकारी आते हैं वैसा बरताव होता है । सरकार बिचारी कुछ देखने आड़े ही आती है । धन्य है ईश्वर ! सन् १५९९ में जो लोग सौदागरी करने आये थे वे आज स्वतंत्र राजाओं को यों दुध की मक्खी बना देते हैं । वा यह तो बुद्धि का प्रभाव है । साढ़े सत्रह सौ के सन् में जब आरकाट में क्लाइव किले में बन्द था तो हिन्दुस्तानियों ने कहा कि रसद घट गई है सिर्फ झुल्ल है सो गोरे खाँय हम लोग मांड पीकर रहेंगे । सन् १६१७ में जब सरकार से सब मरहठे मात्र बिगड़े थे तब सिर्फ बड़ोदे वाले साथ थे । उन के कुल की यह दशा ! यह तो जब पहिले कमीशन आया था तभी हम समझे थे । यदा श्रीय माधव वासुदेव सर्वात्मना पाण्डुबार्थ निविष्ट । यस्यामा गाँ विक्रममेक माहुस्तादनाशसे विजयाय संजय । जो हो मलहर की यह करतूत भी कभी न भुलेंगी । कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा अपूर्व कृष्ण से किसी ने पूछा था कि आप लोग कैसे राजा हैं तो उन्होंने उत्तर दिया जैसे सतराज के राजा, जहां चलाइए वहां चलें । (ऊपर देख कर) क्या कहा ? यह सब ठीक, पर कहे कौन ? सो तो ठीक है "कोनसाहिबनू-अक्खे" यों नहीं यों कर । राजा और देव बराबर होते हैं ये जो करें सो देखते चलो बोलने की तो जगही नहीं । मलहर सुनते ही तो यह नौबत काहे को होती । राजा बनारस के अधिकार के विषय में जब कौन्सिल में चर्चा हुई तो हेस्टिंग्स साहिब ने रेंजिडेण्ट न मुकर्र हो, वे कम्पनी को पटने के इलाके में मालगुजारी दिया करें । क्योंकि रेंजिडेण्ट मुकर्र होने से वह राजा और राज्य पर अपना अख्तियार जारी करने की कोशिश करेगा और इन से राजा के साथ उसका बिवाद होने से कौन्सिल में हमेशा नालिशें आवेंगी, जिसमें कि निस्सन्देह रेंजिडेण्ट की बात पर विश्वास कर के राजा के विपक्ष फैसला होगा और पश्चात् एतद्वारा उनका सब नुकसान होकर उनको साधारण जमींदारी की अवस्था भोगनी पड़ेगी" * सो उन्हीं रेंजिडेण्ट से

* सन् १७७५ ई. के जून की १२ तारीख का गवर्नर जेनरल की मिनट देखो ।

मलहर ने बिगाड़ कर लिया। ठीक है ठीक है अरे भाई अपने हिन्दुस्तानियों का चाल व्यवहार जितना हिन्दुस्तानी समझेंगे उतना और कोई क्या समझेंगा ? वरंच ऐसे मामलों का अन्तःसार हिन्दुस्तानी ही लोग जानते हैं, "सहवासी विजानीयत् चरितसहवासिनः"। हाय ! ऐसे बड़े वंश की यह दुर्दशा ! सच है, कुपुत्र बुरा होता है। इनका पुरखा दमाजी गायकवाड़ कैसा प्रतापी था, जिसके बल से पेशवा रघुनाथराव निशंक रहता था। सन् १७६८ में जब माधवराव रघुनाथराव से जूती उछली थी तो इसी दमा ने अपने बेटे गोविन्दराव को भेजा था। सुना है कि दमा के ४ बेटे थे, बड़ा, पर छोटी रानी से तो सियाजी छोटा, पर बड़ी रानी से गोविन्दराव। सब से छोटकी रानी से फते सिंह और माणिक जी। यही गोविन्दराव बाप के मरने पर साढ़े पचास लाख रु. देकर हर साल उनहत्तर हजार रुपया और तीन हजार सवार, समय पड़े पाँच हजार देने के करार पर सैना खास खेल हुआ (ऊपर देख कर) क्या कहा ? फतेसिंह भी तो लड़ा था ? हाँ सिया जी को राजा बनाकर लड़ता भिरता रहा, पर बाजीराव ने पेशवा होकर गोविन्दराव को पक्का न कर दिया, वरञ्च हरिफड़ के चढ़ाव के समय फौज लेकर आप बड़ौदे गया और गोविन्दराव को राजा बनाया। सर्कार ही ने तो इन दोनों की कलह मिटाई थी जिसमें तै कर दिया था कि २६ लाख रु. तो तीन महीने में गायकवाड़ पेशवा रघुनाथ को दे और पेशवा उसको दश लाख की दक्षिण में जागीर दे और दो लाख तेरह हजार की जमीन गायकवाड़ सर्कार को दे (ऊ. दे.) क्या कहा ? कभी कर्नल गाड ने बड़ौदे का भी तो कुछ हिस्सा ले लिया था ? हाँ फतेसिंह ने कुछ गड़बड़ किया था पर उस पर कर्नल गाड ने हुमायूँ का जहर ले लिया था (ऊपर देखकर) क्या कि फिर क्या हुआ ? फिर यह तै हुआ कि मायी नदी के उत्तर की पृथ्वी पेशवा फतेसिंह ले और सर्कार को भरोच अठाविशी के अठाइसो परगने, शिनोर परगना और कुछ जमीन मिले। यह फतेसिंह नानाफड़नवीस के दौर दौरा में साढ़े पंद्रह लाख रु. दीवान को देकर सैना खास खेल हुआ। बिचारा सन् १७९१ ई. में गिर कर मर गया और उस का छोटा भाई मानिक जी सिया जी को नांव का राजा बना कर राज चलाने लगा। पर गोविन्द राव ने, जो तब खेड़े गांव में पूने के पास रहता था, पेशवा से कहा कि हमारा राज अब हम को मिले। यह सुनतेही माणिक जी ने तैंतीस लाख तेरह हजार रुपया नजर और ३८ लाख की बाकी देकर फड़नवीस से राज की

सनद लेली और इधर गोविन्दा ने महाजी सेधिया के पूना आने पर उनके द्वारा सनद पायी। इसी बखेड़े में माणिकराव आपही मर गया तब भी नाना ने गोविन्द को पहिली नजर दिए बिना जाने न दिया, देखो इन्हीं अँगरेजों ने पहिले तै हुई बात के विरुद्ध समझ कर उस समय गोविन्दा की सहायता की और नाना को समझाया कि सालपी में जो तै हो चुका है उसके बरखिलाफ अब नया तापी के दक्षिण का मुल्क बिचारे गोविन्दा से क्यों मांगते हो और इन्हीं के बदीलत बिचारा गोविन्दा सन् १७९२ दिसम्बर को १९ तारीख को राजा हुआ और सन् १७९९ में बम्बई के गवर्नर डंकन साहब से मिलकर शिष्टाचार करके सूरत का चौथाई हिस्सा और चौरासी परगना दिया (ऊ. दे.) क्या कहा ? हाँ कुछ बड़ोबा का हाल और भी कहो ? सुनो, हम तो इस वंश के पुराने पुरोहित हैं सब शाखोच्चार करें। हाँ तो सबसे पहिले गोविन्दा राज गद्दी पर बैठे, फिर आबा शेलूकर जो नाना के साथ कैद में पड़ा था सो सेधिया को दस लाख रु. देकर छूटा और अहमदाबाद का हाकिम हुआ, बाजीराव ने गोविन्दराव से और उससे बिगाड़ कराया जिससे इन दोनों में रात दिन धौल धप्पड़ होती रही पर डंकन साहब से गोविन्दराव से मेल होने से आबा मन्द पड़ गया, बिचारा गोविन्दराव १८१० सन् में मर गया, कुछ मल्हारराव की पुरुषार्थी नहीं हैं। गोविन्दराव के उस समय से यह बात है क्योंकि वह चार औरस और ७ दासी पुत्र छोड़ गए थे, आनन्दराव सब में बड़ा था उसी को राजवाले मालिक समझते थे पर वह बुद्धिमान नहीं था इससे दूसरे हिस्सेदारों ने अपना तार जमाना चाहा गोविन्दराव ने दूसरे लड़के कान्हों जी को फसादी जानकर अपने सामने से कैद किया था। पर पीछे आनन्दराव से बहुत मिन्नत करके और फौज के अफसरों को बीच में डालकर छूटा और मुख्य दीवान हुआ पर उस पर संतोष न कर के सारे राज पर सत्ता बढ़ाने लगा अन्त में रावजी आपा परभू पुराने कारिन्दे ने प्रबल होकर उसको पदच्युत किया। इन दोनों ने सर्कार से सहायता चाही। जिस में कान्होजी ने पुराने करार के सिवाय चिखली का परगना देने को कहा। आनन्दराव और उसके दीवान आपा की मदद को सात हजार अरब सवार थे क्योंकि आपा का भाई बाबा जी उनका सरदार था, कान्होबा का पक्षपाती कड़ी का जमींदार मल्हारराव गायकवाड़ था और यह मनुष्य शूर चतुर था, इसने आनन्दराव के राज में जब बहुत उपद्रव किया और बहुत से किले भी ले लिए तब आपा ने बम्बई के गवर्नर को मदद के वास्ते लिखा और

पाँच पल्टन इस शर्त पर मांगी कि उन का खर्च वह देगा। बम्बई के गवर्नर ने बिना गवर्नर जेनरल से पूछे पूरी मदद कैसे दें यह सोचकर मेजर बाकर साहब की मुहतमी में १६०० आदमी भेजे जो आनन्दराव पल्टन से मिल के कड़ी पर चढ़ दौड़े। उस समय मल्हारराव ने, मुख से चूक हुई हम सब फेर देंगे, यह कह के मेल का पैगाम डाला। पर उस के जी में छल था। इसी से जब ये लोग बेखबर थे तब छापा मारा पर बाकर साहब की बुद्धिमानी से फौज बच गई। थोड़े दिन में मालूम हुआ कि मल्हार ने आनन्दराव के बहुत से लोग मिला लिए जिस से बाकर साहब को उस समय अपनी रक्षा के सिवा और कुछ न सूझी और बम्बई कुमक भेजने को लिखा। एप्रिल को २३ तारीख को बम्बई से कुछ लोगों को मदद आ गई और वे लोग खाई खोद कर कड़ी का किला घेर कर पड़े रहे। गायकवाड़ और सरकार की फौज ने मिल कर कड़ी जीत लिया जिस में ११३ सरकारी आदमी मरे, मल्हारराव सरकार के अधीन हुआ और सवा लाख रु. साल नरियाद की आमदनी में से देकर वहाँ उस को नजरबन्द रखा और कड़ी का किला गायकवाड़ के अधिकार में आया। मल्हारराव का पक्षपाती गणपतराव गायकवाड़ बड़ोदे के पास लड़ता था सो संकर के किले में बन्द हुआ। सरकार ने वह किला भी छीन लिया और गणपतराव और गोविन्दराव का दासीपुत्र मुरारराव ये दोनों धार भाग गए और वहाँ के पवार राजा के आश्रय में रहे, थोड़े दिन पीछे अरब लोगों ने अपनी तनखाह न मिलने के बहाने बड़ा उपद्रव किया आनन्दराव को कैद कर लिया और कान्होबा को कैद से छोड़ दिया। मेजर बाकर ने पहिले तो उन्हें बहुत समझाया फिर दस दिन तक खूब लड़े और अन्त में जब किले की दीवार तोड़ा तब अरब लोगों ने हार कर मेल करना चाहा। इस लड़ाई में अच्छे अच्छे अंग्रेजी सरदार मारे गए। सवा सत्रह लाख तनखाह बाकी देकर इस करार कर मेल हुआ कि वे लोग अपने देश या राज के बाहर चले जायँ। उस में बहुत तो चले गए पर आबू जमादार राज पिंपली गाँव में कान्होबा से जा मिला। कान्होबा ने फिर मार धाड़ लूट खसोट शुरू की, पर अन्त में होम्स साहब से हार कर उज्जैन में जा रहा। हाँ हाँ इस के सिवा एक बात और भी है। एक दफे बड़ोदा के वकील बाप मैराल को बाजीराव ने कहा कि बड़ौदा वालों के यहाँ हमारा एक करोड़ा रुपया बाकी है। सो उसमें से सत्रह लाख हम छोड़ देते हैं बाकी इनसे दिलवा दो। बाजीराव ने केवल दगाबाजी से बड़ोदे पर हाथ डालने को यह युक्ति की थी, बड़ोदे

वाले कहते थे कि हम ने जो बहुत से पेशवा के काम किए हैं उसके बदले हमी को अभी कुछ चाहिए, गंगाधरशास्त्री पट्टवर्धन को गायकवाड़ ने सरकारी की रक्षा में पेशवा के यहाँ भेजा। पेशवा ने कछु बात तै नहीं की और शिष्टाचार में लगा कर शास्त्री को लेकर अपने सलाही त्रिवंक जी डेगला के साथ पंढरपुर गया और वहाँ छल से १८१५ की चौदहवीं जुलाई को शास्त्री को किसी सिपाही से मरवा डाला। सरकार ने इस बात पर अत्यन्त क्रोध किया और चारों ओर से पेशवा पर फौज भेजी जिस से पेशवा ने अन्त में हार कर त्रिवंक को सरकार के हवाले किया और आगे से बड़ोदावालों को छेड़ने का हाथ उठाया। हाय ! यह वही बड़ोदा है जिस पर सरकार की सदा से ऐसी छाया रही।

(ऊपर देख कर) क्या कहा 'हाँ कहे चलो' जाने दो इन पुराने पचड़ों को लेकर कौन रोवे पर भाई आर्चसन साहब ने अपने अहदनामों में लिखा है कि खडेरराव और मल्हारराव के सिवाय पीलजी गायकवाड़ के असली और नसली वंश में और कोई नहीं है ; तब मल्हारराव का वंश राज पर बैठने से रोका जाय यह तनिक अनुचित मालूम होता है। अनुचित काहे को है सन् १८०२ में जो अहदनामों हुए हैं उनमें तो सरकार को गायकवाड़ की खानगी बातों में बिलकुल अधिकार है। फिर यह रोना क्या। हम तो जानते हैं कि जब मल्हारराव ने लक्ष्मीबाई से विवाह किया तभी से उसकी बड़ी बहिन दरिद्राबाई भी इनके ताक में भी और समय पाकर अपनी बहिन के पास आ गई। शास्त्रों में लिखा है कि लक्ष्मी दरिद्रा दोनों बहिन हैं। पर भाई ! यह कन्या फली नहीं मुद्राराक्षस की विषकन्या हो गई। अत भी तो बड़ी हुई। सुना है कि जब महाराज शहर के अमीरों के घर में जाते थे तो उनके डर के मारे औरतें कुएँ में उतारी जाती थीं। क्या हुआ सनातन से चली आई है। अग्नि वर्ण भी तो ऐसा ही था।

'अकमकपरिवर्तनोचिते तस्य निन्यतुरशून्यतामुभे। बल्लकींच हृदयंगमस्वना वल्लुवागपिच वामलोचना'।

और नहीं तो क्या। या बगल मो महाताब हो या आफताब या साकी हो या शराब। भला रावन इन से बढ़ के था कि ये रावन के बढ़ के ? एक बात में ये रावन से बढ़ गये कि ऐसे काल में और सरकार के राज्य में इन्होंने ऐसा उपद्रव किया ! धन्य भारत भूमि ! तुम ऐसी ही पुत्र प्रसव करने थे। हाय ! मुहम्मदशाह और वाजिदअलीशाह तो मुसलमान हो के छूटे पर मल्हारराव का कलंक हिन्दुओं से कैसे

छूटगा। विधवा विवाह सब कराया चाहते हैं पर इसने सौभाग्यवती विवाह निकाला। भला मुसलमान होता तो तिलाक दिला के भी हलाल कर लेता। पर तिलाक कहाँ, लक्ष्मीबाई के खसमे ने तो नालिश की थी। सच है यह ऐसे ही हजरत थे। हमारे सरकार के विरुद्ध जो कुछ कहै वह भस्त्र मारै। यदि ऐसे लोगों के उचित दंड न हो तो वे लोग न जानें क्या अनर्थ करें। कहा भी तो है।

'अदंडघान दण्डयेत राजा दंडघानेवाभिनन्दयन् ।
अयशोमहदाप्नोति नारकीचगतिपरा' ॥१॥

(ऊपर देखकर) क्या कहा ? और खानदेश का एक कुमार गद्दी पर बैठा भी तो दिया गया। लो भया तब क्या हहाहा ! भला तब हम क्या इतना भँखते थे। अहा धन्य है सकार ! यह बात कहीं नहीं है। दूध का दूध पानी का पानी। और कोई बादशाह होता तो राज जप्त हो जाता। यह इन्हीं का कलेजा है। हे ईश्वर जब तक गंगा यमुना में पानी है तब तक इनका राज स्थिर रहे। अहा ! हमारी तो पुरोहिती फिर जगी।

हमैं मल्हारराव से क्या काम, हमैं तो उस गद्दी से काम है "कोउ नृप होउ हमैं का हानी" धन्य अंगरेज ! राम और युधिष्ठिर का धर्मराज्य इस काल में प्रत्यक्ष कर दिखाया, अहाहा ! (ऊपर देखकर) क्या कहा ? कहो और क्या चाहते हो। भला और क्या चाहेंगे हमारा भंडपना जारी ही रहा बड़ोदा का राज फिर मुख से बसा तो अब और क्या चाहिए। और मल्हारराव का जो कहो तो उसका कौन सोच है, जैसे व्रत वैसे उद्यापन। विषस्यविषमौषध, तो भी यह भरत वाक्य सफल हो। परतिय परधन देखि न नृपगन चित्त चलावैं। गाय दूध बहु देहिं, मेघ सुभ जल परसावैं ॥ हरि पद में रति होइ न दुख कोऊ कहं व्यापै ॥ अंगरेजन को राज ईस इत थिर करि थापै ॥ श्रुति पन्थ चलै सज्जन सबै सुखी होहिं तजि दुष्टभय ॥ कविवानी थिर रस सों रहै भारत की नित होइ जय ॥

जवनिका गिरती है।

इति विषस्यविषमौषधम् नाम भाणं ।



कर्पूर मंजरी

महाराष्ट्र के क्षत्रिय कवि राजशेखर की प्राकृत कृत "संटक" का अनुवाद है।
चैत्रशुक्ल ९ सम्बत् १९३३ से शुरू हो "कविबचन सुधा" में छपा। पुस्तकाकार
पहला संस्करण बनारस आर्य यंत्रालय से सन् १८८२ में निकला — सं०

कर्पूरी मञ्जरी

(सङ्क)

दोहा

भरित नेह वन नीर नीत, बरसत सुरस अथोर ।

जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ॥

(सूत्रधार आता है)

सूत्रधार — (घूमकर) हैं क्या हमारे नट लोग

गाने बजाने लगे ? यह देखो कोई सखी कपड़े चुनती है, कोई माला गूंधती है, कोई परदे बांधती है, कोई चन्दन घिसती है ; यह देखो बंसी निकली, यह बीन की खोल उतरी, यह मृदंग मिलाए गए, यह मंजीरा भनका, यह

धुरपद गाया गया । (कुछ ठहर कर) किसी को बुलाकर पृष्ठे तो (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे कोई है ? पारि-पार्श्वक आता है ।

पा. — कहो, क्या आज्ञा है ?

सूत्र. — (सोच कर) क्या खेलने की तैयारी हुई ?

पारि. — हाँ, आज सट्टक न खेलना है ।

सूत्र. — किस का बनाया ?

पारि. — राज्य की शोभा के साथ अंगों की शोभा का ; और राजाओं में बड़े दानी का अनुवाद किया ।

सूत्र. — (विचार कर) यह तो कोई कूट सा मालूम पड़ता है (प्रगट) हाँ हाँ राजशेखर का और हरिश्चन्द्र का ।

पारि. — हाँ, उन्हीं का ।

सूत्र. — ठीक है, सट्टक में यद्यपि विष्कम्भक प्रवेशक नहीं होते तब भी यह नाटकों में अच्छा होता है । (सोचकर) तो भला कवि ने इस को संस्कृत ही में क्यों न बनाया, प्राकृत में क्यों बनाया ?

पारि. — आप ने क्या यह नहीं सुना है ?

जामैं रस कछु होत है, पढ़त ताहि सब कोय ।
बात अनूठी चाहिए, भाषा कोऊ होय ॥
और फिर

कठिन संस्कृत अति मधुर, भाषा सरस सुनाय ।
पुरुष नारि अन्तर सरिस, इन में बीज लखाय ॥

सूत्र. — तो क्या उस कवि ने अपना कुछ वर्णन नहीं किया ?

पारि. — क्यों नहीं, उस समय के कवियों के चन्द्रमा अपराजित ही ने उसका बड़ा बखान किया है । निरभर बालक राज कवि, आदि अनेक कबीस । जाके सिखए तें भए, अति प्रसिद्ध अवनोस ॥ धवल करत चारहु दिसा, जाको सुजस अमन्द । सो शेखर कवि जग विदित, निज कुल कैरव चन्द ॥

सूत्र. — पर भला आज तुम को किस ने खेलने की आज्ञा दी है ?

पारि. — अवन्ती देश के राजा चारुधान की बेटी उसी कवि की प्यारी स्त्री ने, और यह भी जान रखो कि इस सट्टक में कुमार चन्द्रपाल कुन्तल देश की राजकुमारी को ब्याहेगा । तो अब चलो अपने २ स्वांग सजै, देखो तुम्हारा बड़ा भाई देर से राजा की रानी का भेस धर कर परदे के आड़ में खड़ा है ।

(दोनों जाते हैं)

पहिला अंक

स्थान — राजभवन

(राजा, रानी, विदूषक और दरबारी लोग दिखाई पड़ते हैं)

राजा — प्यारी, तुम्हें बसन्त के आने की बधाई है, देखो अब पान बहुत नहीं खाया जाता, न सिर में तेल देकर चोटी कस के गूंधी जाती है, वैसे ही चोली भी कस के नहीं बांधी जाती, न केसर का तिलक दिया जा सकता है, उसी से प्रगट है कि बसन्त ने अपने बल से सरदी को अब जीत लिया ।

रानी — महाराज ! आपको भी बधाई है, देखिए, कामी जन चन्दन लगाने और फूलों की माला पहिरने लगे, और दोहर पाएँते रक्खी रहती है, तो भी अब ओढ़ने की नौबत नहीं आती ।

(नेपथ्य में दो बैतालिक गाते हैं ।)

जै पूरब दिसि कामिनी कंत ।

चंपावति नगरी सुख समंत ॥
खेलत जीत्यौ जिन राढ़ देश ।

मोहत अनंग लखि जासु भेस ॥
क्रीड़ा मृग जाको सारदूल ।

तन वरन कान्ति मनु हेम फूल ॥
सब अंग मनोहर महाराज ।

यह सुखद होइ रितुराज साज ॥
मन्द मन्द लै सिरिस सुगन्धहि सरस पवन यह आवै ।
करि संचार मलय पर्वत पै विरहिन ताप बढ़ावै ॥
कामिनि जन के बसन उड़ावत काम धुजा फहरावै ।
जीवन प्रान दान सो बितरत वायु सबन मन भावै ॥१॥
देखहु लहि रितुराजहि उपवन फूली चारु चमेली ।
लपटि रही सहकारन सों बहु मधुर माधवी बेली ॥
फूले वर बसन्त बन बन में कहु मालती नबेली ।
तापै मदमाते से मधुकर गूजत मधुरस रेली ॥१॥

राजा — प्यारी, हम लोग तो आपस में बसन्त की बधाई एक दूसरे को देते ही थे अब इन दोनों कांचनचन्द्र और रत्नचन्द्र बन्धियों ने हम दोनों को बधाई दी । अब तुम इस बसन्तोत्सव की ओर दृष्टि करो । देखो कोइल कैसे पंचम सुर में बोलती है, हवा के फोंके से लता कैसी नाच रही है तरुन स्त्रियों के जी में कैसा इस का उत्साह छा रहा है और सारी पृथ्वी इस बसन्त की वायु से कैसी सुहानी हो रही है ।

रानी— महाराज ! बन्दी ने जैसा कहा है हवा वैसी ही बर रही है, देखिए यह पवन लंका के कनगूरों की पंगति में यद्यपि कैसा चंचल है पर अगस्त मुनि के आश्रम में उन के भय से धीरा चलता है, इसके भोंके से चन्दन कपूर कंगोल और केले के पत्ते कैसे भोंका खा रहे हैं, जंगलों में जहाँ साँप नाचते हैं और ताम्रपर्णी नदी की लहरों को यह स्पर्श करता है तो उन्हें दूना कर देता है ।

देखिये, कोयल मानों कामदेव की आज्ञा से इस चैत के त्योंहार में पुकार रही है कि तरुणिओ भूठा मान छोड़ो, अपने प्यारे को प्यार की चितवन से देखो, और दौड़ दौड़ के प्रीतम को गले लगाओ यह चार दिन की ज्वानी तो बहती नदी है, फिर यह दिन कहाँ और यह समय कहाँ ?

विदूषक— अरे कोई मुझे भी पूछो, मैं भी बड़ा पंडित हूँ, जब मैंने अपना मकान बनाया था तो हजारों गदहों पर लाद लाद कर पोथियाँ नेव में भरवाई गई थीं और हमारे ससुर जनम भर हमारे यहाँ पोथी ही ढोते २ मरे, काले अक्षर दूसरों को तो कामधेनु हैं पर हमको भैंस हैं ।

विचक्षणा— इसी से तो तुम्हारा नाम लवार पाड़े हैं ।

वि.— (क्रोध से) हत तेरी की, दाई माई कुटनी लुच्ची मूर्ख ! अब हम ऐसे हो गए कि मजदूरिनें भी हमें हँसे !

विच.— तुम्हारी माई कुटनी है तभी तुम ऐसे सपूत हुए, तुम से तो वे भाट अच्छे जो अभी गीत गा गए हैं, तुम्हें इतनी भी समझ नहीं कि कुछ बनाओ और गाओ, यह सेखी और तीन काने ।

विदू.— अब हम इन के सामने गावेंगे, इनका मुंह है कि हमारी कविता सुनें हाँ अगर हमारे दोस्त महाराज कुछ कहें तो अलबत्ते गाऊँ ।

राजा— हाँ, हाँ मित्र पढ़ो, हम सुनते हैं ।

विदू.— लाठी पर तमूरा बजा कर गाता है ।

आयो २ वसन्त आयो २ वसन्त ।

बन में महुआ टेसू फुलन्त ॥

नाचत है मोर अनेक भाति,

मनु भैंसा का पड़वा फूलफालि ।

बेला फूले बन बीच बीच,

मानो दही जमायो सींच सींच ।

बहि चलत भयो है मन्द पौन,

मनु गदहा का छान्यो पैर ।

तारीफ और वाह वाह करते जाइए नहीं न गाया

जायगा, देखिए संगीत साहित्य दोनों एक ही साथ करना मेरा काम है ।

(गाता है)

गेंदा फूले जैसे पकौरि ।

लड़ड़ से फले फल बौरि बौरि ।

खेतन में फूले भातदाल ।

घर में फूले हम कुल के पाल ॥

आयो आयो वसन्त आयो आयो वसन्त ॥

(सब लोग हँसते हैं)

राजा— भला इनकी कविता तो हो चुकी अब विचक्षणे ! तुम भी कुछ पढ़ो ।

विदू.— हाँ हाँ, हमारी बोली पर हंसती है तो यह पढ़े बड़ी बोलने वाली इस को सिवाय टें टें करने के और आता क्या है, क्या ऐसी बदमाश स्त्री राजा के महल में रहने के योग्य है ? यह रात दिन महारानी का गहना चुरा कर अपने मित्रों को दिया करती है और उस पर हमारे काव्य पर हंसती है, सच है बन्दर आदी का स्वाद क्या जाने, हमारे काव्य पर रीझनेवाले महाराज हैं, तू क्या रीमेगी, अब देखते न हैं तू कैसा काव्य पढ़ती है ।

रानी— हाँ हाँ सखी विचक्षणे ! हम लोगों के आगे तो तू ने अपना बनाया काव्य कई बेर पढ़ा है, आज महाराज के सामने भी तो पढ़, क्योंकि विद्या वही जिस की सभा में परीक्षा ली जाय और सोना वही जो कसौटी पर चढ़े और शस्त्र वही जो मैदान में निकले ।

विचक्षणा— महारानी की जो आज्ञा (पढ़ती है) फूलेंगे पलास बन आगि सी लगाइ क्रूर,

कोकिल कुहकि कल सबद सुनावैगो ॥

त्यौही सखी लोक सबै गावैगो धमार धीर ।

हरन अबीर वीर सब ही उड़ावैगो ॥

सावधान होहुरो वियोगिनी सम्हारि तन,

अतन तनकही मैं तापन तें तावैगो ॥

धीरज नसावत बढ़ावत बिरह काम,

कहर मचावत वसन्त अब आवैगो ॥

राजा— वाह वाह ! सचमुच विचक्षणा बड़ी ही चतुर है और कविता-समुद्र के पार हो गई है, यह तो सब कवियों की राजा होने योग्य है ।

रानी— (हंस कर) इस में कुछ सन्देह है हमारी सखी सब कवियों की सिरताज तो हुई ।

विदू.— (क्रोध से) तो महारानी स्पष्ट क्यों नहीं कहती कि यह दासी विचक्षणा बहुत अच्छी है और कपिञ्जल ब्राह्मण बहुत निकम्मा है ।

विचक्षणा— है है ! एक बारगी इतने लाल

पीले हो गए, जो जैसा है उसका गुण तो उस के काव्य ही से प्रकट हो गया, तुम्हारे काव्य की उपमा तो ठीक ऐसी है जैसे लम्बस्तनी के गले में मोती की माला, बड़े पेटवाली को कामदार कुरती, सिर मुण्डी के फूलों की चोटी और कानी को काजल ।

विदू. — सच है, और तुम्हारी कविता ऐसी है सफेद फर्श का गोबर का चोंच, सोने की सिकड़ी में लोहे की घण्टी और दरियाई की अंगिया में मूँज की बखिया ।

विचक्षणा — खफा मत हो, अपनी ओर देखो, आप आप ही हो, एक अक्षर नहीं जानते तिस पर भी हीरा तौलते हो, और हम सब पढ़ लिख कर भी अब तक कपास ही तौलती हैं ।

विदू. — बकबक किये ही जायगी तो तेरा दहिना और बायाँ युधिष्ठिर का बड़ा भाई उखाड़ लेंगे ।

विचक्षणा — और तुम भी जो टें टें किये ही जाओगे तो तुम्हारी भी स्वर्ग काट के एक ओर के पोंछ की अनुप्रास मूड़ देंगे और लिखने की सामग्री मुंह में पोत कर पान के मसाले का टीका लगा देंगे ।

राजा — मित्र ! इस के मुंह मत लगो, यह कविताई में बड़ी पक्की है ।

विदू. — (क्रोध से) तो साफ साफ क्यों नहीं कहते कि हरिश्चन्द्र और पद्माकर इसके आगे कुछ नहीं हैं ।

(क्रोध करके इधर इधर घूमता है)

विचक्षणा — चल, उसी खूटी पर लटक जिस पर मेरा लहंगा रक्खा है ।

विदूषक — (क्रोध कर और सिर हिला के) और तू भी वहाँ जा जहाँ मेरी बुढ़ी माँ के दाँत गए । छिः ! हम भी बड़े २ दरबार से निकाले गए पर ऐसी अधर नगरी और चौपट राजा कहीं नहीं । यहाँ चरणामृत और शराब एक ही बरतन में भरे जाते हैं ।

विचक्षणा — भगवान करे इस दरबार से तुम्हें वह मिले जो महादेव जी के सिर पर है और तुम्हें वह शास्त्र पढ़ाया जाय जो कांटो को मर्दन करता है ।

विदूषक — लौडिया फिर टें टें किये ही जाती है, खजाना लूट लूट के खाली कर दिया, इस पर भी मोढ़े पर बैठने वाली और गलियों में मारी मारी फिरने वाली, हम कुलीन ब्राह्मणों के मुंह लगती है । जा तुम्हको सर्वदा वही फांकना पड़े जो महादेव जी अंग में पोतते हैं और तेरे हाथ सदा वही लगे जिस में धरम बंधता है ।

विचक्षणा — तेरे इस बोलने पर तो ऐसा जी

चाहता है कि पान के बदले चरनदास जी से तेरा मुंह लाल कर दूं । फिट ।

विदू. — (बड़े क्रोध से ऊँचे स्वर से) ऐसे दरबार को दूर ही से नमस्कार करना चाहिए जहाँ लौडियाँ पण्डितों के मुंह आवें । यदि हमें इसी उचक्की की बात सहनी हों तो हम बसुंधरा नाम को अपनी ब्राह्मणी ही की न चरनसेवा करें जो अच्छा अच्छा और गर्म २ खाने को खिलावे (ऐसा कहता हुआ क्रोध से चला जाता है) (सब लोग हँसते हैं) ।

रानी — महाराज कपिजल बिना सभा ऐसी हो गई जैसे बिना काजल का शृंगार ।

नेपथ्य में ।

नहीं २ हम नहीं आवेंगे । विचक्षणा को खसम और राजा को मुसाहब कोई दूसरा खोज लो या आज ये हमारा काम वही गलितयीवना और चिपटे नाक कान वाली करेंगी ।

विचक्षणा — महारानी ! आपके आग्रह से यह कपिजल और भी अकड़ा जाता है, जैसे सन की गाँठ भिगाने से उलटी कड़ी होती है, उसको जाने दीजिए इधर देखिए यह गवारियों के गीतों और चाँचर से मोहित सूर्य यद्यपि धीरे चलता है तो भी अब कितना पास आ गया है ।

(विदूषक घबड़ाया हुआ आता है)

विदूषक — आसन ! आसन !!

राजा — क्यों ?

विदूषक — भैरवानन्द जी आते हैं ।

राजा — क्या वही भैरवानन्द जो आज कल के बड़े प्रसिद्ध हैं ?

विदूषक — हाँ, हाँ ।

(भैरवानन्द आते हैं)

भै. न. — जंत्र न मंत्र न ज्ञान न ध्यान न जोग न भोग केवल गुरु का प्रसाद, पीने को मदिरा और खाने को मांस, सोने को स्त्री मसान का बास, लाख लाख दासी सब कड़े २ अंग सेवा में हाजिर रहें पीए मद्य भंग, भिच्छा का भोजन और चमड़े का बिछौना, लंका पलंग सातों दीप नवों खण्ड गौना, ब्रह्मा विष्णु महेश पीर पैगम्बर जोगी जती सती बीर महावीर हनुमान रावन महिरावन अकाश पताल जहाँ बाधू तहाँ रहे जो जो कहूँ सो सो करे, मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरो मंत्र ईश्वरोवाच, दोहाई पशुपति नाथ की, दोहाई कामाक्षा की, दोहाई गोरखनाथ की ।

राजा — महाराज ! प्रणाम ! 1

भै. न. — राजा ! विष्णु और ब्रह्मा तप करते २

यक गए पर सिद्धि मय और स्त्री ही में है यह महादेव जी ही ने जाना है तो वह कापालिकों के परम कुलगुरु शिव तेरा कल्याण करे ।

राजा — महाराज, आसन पर विराजए ।

शै. न. — हम रमते लोगों को बैठने से क्या काम, तब भी तेरी खातिर से बैठते हैं । (बैठता है) — बोल, क्या दिखावें ?

राजा — महाराज ! कुछ आश्चर्य दिखाइए ।

शैरवानन्द — क्या आश्चर्य दिखावें ?

सूरज बांधू चन्दर बांधू बांधू अग्नि पताल ।
सेंस समुन्दर इन्दर बांधू औ बांधू जम काल ॥
जच्छ रच्छ देवन की कन्या बल लाऊँ बांध ।
राजा इन्दर का राज डोलाऊँ तो मैं सच्चा साध ॥
नहीं तो जोगड़ा । और क्या ।

राजा — (विदूषक के कान में) मित्र, तुम ने कहीं कोई बड़ी सुन्दर स्त्री देखी हो तो बुलवावें ?

विदूषक — (स्मरण करके) हाँ ! दक्षिण देश में विदमं नाम नगर है वहाँ मैंने एक लड़की बड़ी सुन्दर देखी थी, वही बुलाई जाय ।

शैरवानन्द — बोल ! बुलाई जाय ?

राजा — हाँ ! महाराज ! पूर्णमासी का चन्द्रमा पृथ्वी पर उतारा जाय ।

शैरवानन्द — (ध्यान करता है)

(पदे के भीतर से खिंची हुई की भाँति एक सुन्दर स्त्री आती है और सब लोग बड़ा ही आश्चर्य करते हैं)

राजा — (आश्चर्य से) आहाहा ! जैसे रूप का खजाना खुल गया, नेत्र कृतार्थ हो गए, यह रूप, यह जोवन, यह चितवन, यह भोलापन, कुछ कहा नहीं जाता, मालूम होता है कि वह नहा कर बाल सुखा रही थी उसी समय पकड़ आई है, अहा ! धन्य है इसका रूप !!! इसकी चितवन कलेजे में से चित्त को जोरा-जोरी निकाले लेती है, इसकी सहज शोभा इस समय कैसी भली मालूम पड़ती है, अहा ! इसके कपड़े से जो पानी की बूँदे टपकती हैं वह ऐसी मालूम होती हैं मानों भावी वियोग के भय से वस्त्र रोते हैं, काजल आँखों से धो जाने से नेत्र कैसे सुहाने हो रहे हैं, और बहुत देर तक पानी में रहने से कुछ लाल भी हो गए हैं, बाल हाथों में लिए हैं उससे पानी की बूँदें ऐसी टपकती हैं मानों चन्द्रमा का अमृत पी जाने से वो कमलों ने नागिनी को ऐसा दबाया है कि उनके पोंछ से अमृत बहा जाता है, भीगे वस्त्र से छोटे छोटे इसके कठोर कुच अपनी ऊँचाई और श्यामताई से यद्यपि प्रत्यक्ष हो रहे हैं तो भी यह उन्हें बाँह से छिपाना चाहती है, और वैसे ही गोरी

गोरी जाँचे इस के चिपके हुए भीगे वस्त्र से यद्यपि चमकती हैं तो भी यह उन को दबाए देती है, वरञ्च इसी अंग उधरने से यह लजाकर सकपकानी सी भी हो रही है और योगबल से खिच आने से जो कुछ डर गई है, इससे और भी चौकन्नी हो होकर भूले हुए मृगछीने की भाँति अपने चंचल नेत्र नचाती है ।

स्त्री — (चकपकानी सी होकर एक एक को देखती है) (आप ही आप) यह कौन पुरुष है जिस का देह गम्भीर और मधुर छवि का मानो पुंज है, निश्चय यह कोई महाराज है और यह भी महादेव के अंग में पार्वती की भाँति निश्चय इस की प्यारी महारानी हैं, और यह कोई बड़ा जोगी हैं, हो न हो यह सब इसी का खेल है (विचार करके) यद्यपि यह एक स्त्री के बगल में बैठा है तो भी मुझे ऐसी गहरी और तीखी दृष्टि से क्यों देखता है (राजा की ओर देखती है ।)

राजा — (विदूषक से कान में) मित्र ! अभी जो इसने अपने कानों को छूने वाली चञ्चल चितवन से मुझे देखा तो ऐसा मालूम हुआ कि मानों मुझ पर किसी ने अमृत की पिचकारी चलाई वा कपूर बरसाया वा चांदनी से एक साथ नहला दिया या मोती का बुक्का छिड़क दिया ।

विदूषक — सच्च है, अहाहा ! वाह रे इस के रूप की छवि ! इसकी कमर एक लड़का भी अपनी मुठ्ठी में पकड़ सकता है, और नेत्र की चञ्चलता देख कर पुरुष क्या स्त्री भी मोह जाती हैं, देखो यद्यपि इस ने स्नान के हेतु गहना उतार दिया है तो भी कैसी सुहानी दिखाई पड़ती है । सच्च है, सुन्दर रूप को तो गहना ऐसा है जैसा निर्मल जल को काँई ।

राजा — ठीक है, इस की छवि तो आप ही कुन्दन की निन्दा करती है । तो गहने से इसे क्या, इस का दुबला शरीर काम की परतंचा उतारी हुई कमान है, और इस के गोरे गोरे गोल गालों में कनफूल की परछाहीं ऐसी दिखाती है जैसे चाँदी की थालों में भरे हुए मजीठ के रंग में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब, इस के कर्णवलम्बी नेत्र मेरे मन को अपनी ओर खींचे ही लेते हैं ।

विदूषक — (हँस कर) जाना जाना ! बहुत बड़ाई मत करो ।

राजा — (हँस कर) मित्र ! हम कुछ भ्रूट नहीं कहते, तुम्ही देखो, यह बिना आभूषण भी अपने गुणों से भूषित है । जो स्त्रियाँ ऐसी सुन्दर हैं उन पर पुरुष को आसक्त कराने में कामदेव को अपना धनुष नहीं चढ़ाना पड़ता, देखो इसकी चितवन में मिठास के साथ स्नेह

मी भलकता है, इस के कान में नीले कमल के फूल भूलते हुए ऐसे सुहाते हैं मानो चन्द्रमा में सो दोनों ओर से कलंक निकला जाता है ।

रानी— अजी कपिञ्जल ! इनसे पूछो तो यह कौन हैं या मैं ही पूछती हूँ । (स्त्री से) सुन्दरी, यहाँ आओ, मेरे पास बैठो और कहो तुम कौन हो ?

राजा— आसन दो ।

विदूषक— यह मैंने अपना दुपट्टा बिछा दिया है, विराजो (स्त्री बैठती है) ।

विदूषक— हाँ, अब कहो ।

स्त्री— कुन्तल देश में जो विदम्बरनगर है, वहाँ की प्रजा का बल्लभ, बल्लभराज नामक राजा है ।

रानी— (आप ही आप) वह तो मेरा मौसा है ।

स्त्री— उसकी रानी का नाम शशिप्रभा है ।

रानी— (आप ही आप) और यही तो मेरी मौसी का भी नाम है ।

स्त्री— (आँख नीची कर के) मैं उन्हीं की बेटी हूँ ।

रानी— (आप ही आप) सच है, बिना शशिप्रभा के और ऐसी सुन्दर लड़की किस की होगी । सीप बिना मोती और कहाँ हो (प्रगट) तो क्या कर्पूरमंजरी तु ही है ?

स्त्री— (लाल से सिर झुका कर चुप रह जाती है) ।

रानी— तो आओ २ बहिन मिल तो लें ।

(कर्पूरमंजरी को गले लगा कर मिलती है)

कर्पूरमंजरी— बहिन, यह आज हमारी पहली भेंट है ।

रानी— भैरवानन्द जी की कृपा से कर्पूरमंजरी का देखना हमें बड़ा ही अलम्भ लाभ हुआ । अब यह पन्द्रह दिन तक यहीं रहे, फिर आप जोगबल से पहुँचा दीजिएगा ।

भैरवानन्द— महारानी की जो इच्छा ।

विदूषक— मित्र ! अब हम तुम दो ही मनुष्य यहाँ बेगाने निकले, क्योंकि ये दोनों तो बहिन ही हैं और भैरवानन्द जी इन दोनों के मिलाने वाले ठहरे, यह सरस्वती की दूसरी कुटनी भी एक प्रकार की रानी ही ठहरी, गए हम ।

रानी— विचक्षणा ! अपनी बड़ी बहन सुलक्षण से कह कि भैरवानन्द जी की पूजा कर के उन को यथायोग्य स्थान दे ।

विचक्षणा— जो आज्ञा ।

रानी— महाराज ! अब हम महल में जाते

हैं, क्योंकि बहिन को अभी कपड़ा पहराना और सिंगार करना है ।

राजा— इस को सिंगारना तो मानों चपे के थाल में कस्तूरी भरना है, पर साँफ हो चुकी है अब हम भी तो चलते हैं ।

(नेपथ्य में दो बैतालिक गाते हैं)

प. वै.— (राग गौरी)

भई यह साँफ सबन सुखदाई ।

मानिक गोलक सम दिन मनि मनु संपुट दियो छिपाई ।।

अलसानी दुग मूदि मूदि के कमल लता मन भाई ।

पच्छी निज निज चले बसेरन गावत काम बधाई ।।

दू. वै.— (राग पूरबी) देखो बीत चलयो दिन प्यारे, आई गई रतियाँ हो रामा । दीपक बरे निकस चले तारे हो, हिलत नहीं पतियाँ हो रामा ।। बसिन महलन सेज बिछाई हो मान मई मतियाँ रामा । काम छोड़ि घर फिरै सबे नर हो, लगीं तिय छतियाँ हो रामा ।।

(जवनिका गिरती है ।)

पहला अंक समाप्त हुआ ।

दूसरा अंक

स्थान राजभवन

(राजा और प्रतिहारी आते हैं)

प्र.— इधर महाराज इधर ।

राजा— (कुछ चल कर सोच से) हा ! उस समय वह यद्यपि कुच नितम्ब भार से तनिक भी न हिली, परन्तु त्रिबली के तरंग भय श्वास से चंचल थे, और गला तिरछा था, मुखचंद्र हिलने से बेणी ने कंचुकी की आलिंगन किया था, सो छवि तो भुलाए भी नहीं भूलती ।

प्रतिहारी— (आप ही आप) क्या अब तक वही गेद वही चौगान ! अच्छा देखो, हम इनका चित्त बसन्त के वर्णन से लुभाते हैं । (प्रत्यक्ष) महाराज ! इधर देखिए, कोकिल के कण्ठ खोलनेवाले भ्रमरों की झंकार में माधुर्य उत्पन्न करनेवाले और बिरहियों के चित्त पंचम स्वर से घूर्णित करनेवाले चैत के दिन अब कुछ बड़े होने लगे ।

राजा— (सुन कर अनुराग से) सच है, तभी न लावन्त्य जल से पूरित अनेक विलास हास से छके सब की सुंदरता जीतनेवाले उस के नील कमल से नेत्रों को

स्मरण करके शृंगार को जगाते हुए कामदेव ने वियोगियों पर यह कठिन धनु कान तक तान कर तीर चढ़ाया है, (पागल की भांति) हा ! वह हरिननयनी मानों चित में घूमती है, उस के गुण नहीं भूलते, सेज पर मानों सोई हुई है, और मेरे साथ ही साथ चलती है, प्रति शब्द में मानों बोलती है, और काव्यों से मानों मूर्तिमान प्रगट होती है, हा ! जिस को उसने नेत्र भर नहीं देखा है जब वे बसन्त ऋतु के पंचम गान से मरे जाते हैं तो जिन्हें उस ने पूर्णदृष्टि से देखा है उन्हें तो तिलांजलि ही देना योग्य है । हाय ! उस के दूध के घोए सफेद कोए में काली भंवरे सी पुतली कैसी शोभित है, जिन की दृष्टि के साथ ही कामदेव भी हृदय में प्रवृष्ट हो जाता है । (विचार कर के) प्यारे मित्र ने क्यों देरी लगाई ।

(विचक्षणा और विदूषक आते हैं ।)

विदू. — तो विचक्षणा तुम सच कहती हो न ?

विच. — हां हां सच है, वाह ! सच नहीं क्या भूठ कहेंगे ।

विदू. — हम को तुम्हारी बात का विश्वास इससे नहीं आता कि तुम बड़ी हंसोड़ हो ।

विच. — वाह ! हंसी की जगह हंसी होती है, काम की बात में हंसी कैसी ?

विदू. — (राजा को देख कर) अहा ! प्यारे मित्र यह बैठे हैं, हा ! बिना हंस के मानस, बिना मद के हाथी, तुषार के कगल, दिन के दीपक और प्रातःकाल के पूर्णचन्द्र की भांति महाराज कैसे तनछीन मनमलीन हो रहे हैं ?

दोनो — (सामने जाकर) महाराज की जय हो ।

राजा — कहां मित्र, तुन्हें विचक्षण कहां मिली ?

विदू. — महाराज ! आज विचक्षणा मुझ से मित्रता करने आई थी, इन्ही बातों में तो इतनी देर लगी ।

राजा — क्यों, विचक्षणा तुम से क्यों मित्रता करेगी ?

विदू. — क्योंकि आज यह किसी बड़े प्यारे मनुष्य की पत्नी हाथ में लिए है ।

राजा — और भला यह केवड़ा कहाँ से आया ?

विच. — केवड़े ही के पत्र पर पत्नी लिखी है ।

राजा — बसन्त ऋतु में केवड़ा कहाँ से आया ?

विच. — भैरवानन्द जी ने अपने मंत्र के प्रभाव से महारानी के महल के सामने एक लाठी को केवड़े का पेड़ बना दिया, महारानी ने भी आज हिंदोलनर्तनी चतुर्थी के पर्व से उन्हीं पत्तों से महादेव जी की पूजा की,

और दो पत्ता अपनी छोटी बहिन कर्पूरमंजरी को दिया, उस ने भी एक पत्ता मंगला गौरी को चढ़ाया, और दूसरे पत्ते की पुड़िया यह आप के भेंट है जिस में कस्तूरी के अक्षरों से छन्द लिखे हैं ।

(पत्र राजा को देती है)

राजा — (खोल कर पढ़ता है)

जिमि कपूर के हंस सों, हंसी घोछा खाय ।
तिमि हम तुम सों नेह करि, रहे हाय पछिलाय ॥
(इस को बारम्बार पढ़ कर) अहा ! यह वही मदन के रसयान अक्षर हैं ।

विच. — महाराज ! दूसरा छन्द मैं ने अपनी प्यारी सखी की दशा में बना के लिखा है ; उसे भी पढ़िए ।

राजा — (पढ़ता है)

बिरह अनल दहकत तिनत छाती ।

दुखद उसास बढ़त दिन राती ॥

गिरत आंसु संग सखि कर चूरी ।

तन सम जियन आस भई भूरी ॥

विच. — और अब मेरी बहिन ने जो उस का हाल लिखा है वह पढ़िए ।

राजा — (पढ़ता है)

तुम बिन तासु उसास गुरु, भए हार के तार ।
तन चंदन पति जात है, बिरह अनल संचार ॥
तन पीरो दिन चंद सम, निस दिन रोअत जात ।
कबहुं ताको मुख कमल, मूदु मुसकनि बिकसात ॥

राजा — (लम्बी सांस लेकर) भला कविता में तो वह तुम्हारी बहिन ही है, इसका क्या कहना है ।

विदू. — महाराज ! विचक्षणा पृथ्वी की सरस्वती और इसकी बहिन त्रैलोक्य की सरस्वती, भला इसका क्या पूछना है, पर हम भी अपने मित्र के सामने कुछ पढ़ना चाहते हैं ।

जबसों देखी मृगनयनि, भूल्यो भोजन पान ।
निसदिन जिय चिन्तत वहे, रुचत और नहि आन ॥

मलय पवन तापत तनहि, फूल माल न सुहात ।
चंदन लेप उसीर रस, उलाटे जारत गात ॥

हार धार तरवार से, सूरज सों बढ़ि चंद ।
सबहीं सुख दुखमय भयो, परे प्रान हू मंद ॥

राजा — प्रान न मंद होंगे, अभी थोड़ी ही देर से लड़कू से जिला दिए जायेंगे । अब यह कहो कि रनिवास में फिर क्या क्या हुआ ?

विदू. — विचक्षणा, कहो न क्या क्या हुआ ?

विच. — महाराज ! स्नान कराया, वस्त्र पहिनाया, तिलक लगाया, आभूषण साजे और मनाकर

प्रसन्न किया ।

राजा— कैसे ?

विच.— गोरे तन कुमकुम सुरंग, प्रथम न्दवाई बाल ।

राजा— सोतो जनु कंचन तप्यो, होत पीत सों लाल ॥

विच.— इन्द्रनीलमणि पैजनी, ताहि दई पहिराय ।

राजा— कमल कली जुग घेरि कै, अलि मनु बैठे आय ॥

विच.— सजी हरित सारी सरिस, जुगल जघ कहं घेरि ।

राजा— सो मनु कदली पात निज, खंभन लपट्यो फेरि ॥

विच.— पहिराई मनि किंकिनी, छीन सुकटि तट लाय ।

राजा— सो सिंगार मंडप बंधी, बंदनमाल सुहाय ॥

विच.— गोरे कर कारी चुरी, चुनि पहिराई हाय ।

राजा— सों सापिन लपटी मनहुं, चंदन साखा साय ॥

विच.— निज कर सों बांधन लगी, चोली तब यह बाल ।

राजा— सो मनु खींचत तीर भट, तरकस ते तेहि काल ॥

विच.— लाल कंचुकी में उगे, जोवन जुगल लखात ।

राजा— सो मानिक संपुट बने, मन चोरी हित गात ॥

विच.— बड़े बड़े मुक्तान सों, गल अति सोभा देत ।

राजा— तारागन आए मनौ, निज पति ससि के हेत ॥

विच.— करनफूल जुग करन में, अतिहि करत प्रकास ।

राजा— मनु ससि ले डै कुमुदिनी, बैठायो उतरि अकास ॥

विच.— बाला के जुग कान में, बाला सोभा देत ।

राजा— स्रवत अमृत ससि दुहुं तरफ, पियत मकर करि हेत ।

विच.— जिय रंजन खंजन दृगनि, अंजन दियो

बनाय ॥

राजा— मनहु सान फेर्यो मदन, जुगल बान निज लाय ॥

विच.— चोटी गुथी पाटी सरस, करिकै बांधे केस ।

राजा— मनहु सिंगार इकत्र ह्वै, बंध्यो यार के वेस ॥

विच.— बहुरि उढ़ई ओढ़नी, अतर सुवास बसाय ।

राजा— फूल लता लपटी किरिन, रवि ससि की मनुआय ॥

विच.— एहि विधि सो भूषित करी, भूषण बसन बनाय ।

राजा— काम बाग भालरि लई, मनु बसत मृत पाय ॥

विदू.— महाराज ! मैं सच कहता हूँ ।

दृग काजर लहि हृदय वह, मनिमय हान पाय ।
कंचन किंकिनि सों सुभग, ता जुग जघ सुहाय ॥

राजा— (उस की बात का अनादर करके)
छिः । दृग पग पोछन को किए भूषण पायदाज ।

विदू.— (क्रोध से) वाह ! हम तो गहिने का वर्णन करते हैं और आप उसकी निन्दा करते हैं ।

अबि सुन्दर हूँ कामिनी, किनु भूषण न सुहाय ।
फूल बिना चम्पक लता, केहि भावत मन भाय ॥

राजा— (हंसकर) मूढ़ ।
बिनु भूषण सोहही, चतुर नारि करि भाव ।

चहिअत नहि अंगूर को, मिश्री मधुर मिलाव ॥

विच.— महाराज ठीक है, जो नेत्र कान को छूए

लेते हैं उनमें अंजन क्या, और जो मुख चन्द्रमा की निन्दा करता है उस को तिलक क्या, वैसे ही यद्यपि रूप के समुद्र से शरीर में काई से गहिनों की कौन आवश्यकता है, पर यह केवल लोक की चाल है, फूली हुई पीत चमेली को किसने गहिने से सजा है ।

राजा— कपिञ्जल सुनो, गहिना और कपड़ा तो नाचने वालियों का भूषण है, रूप वही है जो सहज ही चित्त चुरावे, सुनाव ही स्त्री की शोभा है, और गुण ही उसका भूषण है, रसिक लोग कभी ऊपर की बनावट नहीं देखते ।

विच.— महाराज ! मैं रानी की आज्ञा से केवल उस की सेवा ही नहीं करती, कर्पूरमंजरी को मेरे प्रेम से मुझ पर विश्वास भी है इसी से मैं भी उसे बहुत चाहती हूँ और आप से सच निवेदन करती हूँ कि वह निस्सन्देह विरह से बहुत ही दुखी है । क्योंकि

मदन दहन दहकत हिए, हाथ धरयो नहिं जात ।
करसों ससि की ओट के, बितवत सों नित रात ॥
मैं तो इतना ही कहे जाती हूँ बाकी सब कपिजल
कहेगा ।

(जाती है)

राजा — कहां मित्र और कौन काम है ?

विदू. — आज हिंडोल चतुर्थी के दिन रानी और
कर्पूरमंजरी भूला भूलने आवैगी और महाराज इसी
केले के कुंज में छिपकर देखेंगे यही काम है । (कुछ
सोचकर) अहा ! महारानी बड़ी चतुर हैं तो भी हम ने
कैसा छकाया, पुरानी बिल्ली को भी दूध के बदले मट्ठा
पेलाया ।

राजा — मित्र तुम्हारे बिना और कौन हमारा
काम ऐसा जी लगा के करे, समुद्र को चन्द्रमा के सिवाय
और कौन बढ़ा सकता है ।

(दोनों केले के कुंज में जाते हैं)

विदू. — मित्र इन ऊँचे चबूतरे पर बैठो ।

राजा — अच्छा ।

(दोनों बैठते हैं)

विदू. — कहां पूर्णिमा का चन्द्र दिखाई पड़ा (एक
और हाथ से दिखाता है) ?

राजा — (देखकर के) अहा ! यह तो सचमुच
प्यारी का मुखचन्द्र दिखाई पड़ा ।

गयो जगत रमनी गरब, परथो मन्द नभ चन्द ।
सकुचि कमल जल मैं दुरे, भई कुमुद छविमन्द ॥

भूलनि मैं किंकिन वजन, अंचल पट फडगन ।
को जोहत मोहत नहीं, प्यारी छवि इहि आन ॥

विदू. — आप सूतधार ये इस से आप ने बहुत
थोड़े में कहा, हम माध्यकार हैं इससे हम विस्तार
पूर्वक कहते हैं ।

फूली फूलबेली सी नवेली अलबेली बधू,

भूलत अकेली काम केली सी बढ़ति है ।

कहे पद्माकर भ्रमकी की भ्रकोरन सों,

चारों ओर सोर किंकिनीन को कढ़ति है ॥

उर उचकाई मचकीन की मचामच सों,

लंकहि लचाय चाय चौगुनी चढ़ति है ।

रति विपरीत की पुनीत परिपाटी सुतो,

होसनि हिंडोरे की सुपाटी मैं पढ़ति है ॥१॥

छाड़हौं मलारे और जमाइहौं हिये में छवि,

छाड़हौं छिगुनि कुंज कुंजहीं के कोरे मैं ।

कहे पद्माकर पियाइहौं पियाला मुख,

मुख सों मिलाइहौं सुगंध के भ्रकोरे मैं ॥

नेह सरसाइहौं सिखाइहौं जो सासन मैं,

पाइहौं परी सो सुख मैं के मरोरे मैं ।

उर उर सरभाइहौं हिए सों हिए लाइहौं,

भुलाइहौं कबैधों प्रानप्यारी हिंडोरे मैं ॥२॥

रहसि रहसि हंसि हंसि के हिंडोरे चढ़ी,

लेत खरी पेगे छवि छावैं उसकन मैं ।

उड़त दूकूल उचरत भुज मूल बढ़ी,

सुखमा अतुल केस फूलन खसन मैं ॥

बोझल ह्वै देखि देखि भये अनिमेष लाल,

रीझत विसुर श्रम सीकर मसन मैं ।

ज्यों, ज्यों, लचि लचि लंक लचकत भावती की,

त्यों त्यों पित्र प्यायो गहै आंगुरी दसन मैं ॥३॥

भूलत पाट की डोरी गहे,

पटुली पर बैठन ज्यों उकुरु की ।

देवजू दै मचकी कटि बाजत,

किंकिनि केहर गोल उरु की ॥

सीखन के विपरीत मनो

ऋतु पावस ही चटसार सुरु की ।

छोटी पटैं उचटैं तिय चोटी

चमोटी लगे मानों काम गुरु की ॥

भूलति ना यह भूलनि बाल की,

फूलनि भाल की लाल पटी की ।

देव कहै लटके कटि चंचल

चोली दुगंचल चाल नदी की ॥

अंचल की फहरान हिये,

रहि जान पयोधर पीन तटी की ।

किंकिनि की भ्रमकानि भुलावनी,

भ्रुकनि भ्रुकि जानि कटी की ॥५॥

राजा — हाथ हाथ ! कर्पूरमंजरी भूले से क्यों
उतरी ? भूल क्या खाली हुआ, हमारे मन के साथ
देखनेवालों के नेत्र भी खाली हुए ।

विदू. — क्या बिजली की भांति चमक कर छिप
गई ?

राजा — नहीं, बरन छलावे की भांति दिखाई
पड़ी और फिर अन्तर्धान हो गई ।

(स्मरण कर के)

गोरी सो रंग उमंग भरयो वित,

अंग अनंग को मंत्र जगाए ॥

काजर रेख खुभी दुग मैं बोट,

भौहन काम कमान चढ़ाए ॥

आवनि बोलनि डोलनी ताकी,

चढ़ी चित में अति चोप बढ़ाए ।

सुन्दर रूप सो नैनन में बस्यो,

भूलत नाहिनै क्यों हूँ भुलाए ॥

विदू.— मित्र, यही पन्ने का कुंज है, यहाँ बैठ के आप आसरा देखिए, अब सांभ भी हुआ चाहती है ।

(दोनों बैठते हैं)

राजा— मित्र, अब तो उस का विरह बहुत ही तपाता है ।

विदू.— तो हमारा लाठी पकड़े दम भर बैठे रहो तब तक ठण्डाई की तयारी लावें ।

(कुछ आगे बढ़कर) वाह ! क्या विचक्षणा यहीं आती है ?

राजा— ज्यों ज्यों संकेत का समय पास आता है, त्यों त्यों उत्कण्ठा कैसी बढ़ती जाती है !

(लम्बी सांस लेकर)

ससि सम मुख दृग कुमुद से, कर पद कमल समान ।
चम्पा सो तन तदपि वह, दाहत मोहि सुजान ।

विदू.— अहा ! विचक्षणा तो ठण्डाई लिए ही आती है ।

(विचक्षणा आती है ।)

विच.— अहा ! प्यारी सखी को विरह का ताप कैसा सता रहा है ।

विदू.— (पास जाकर) यह क्या है ?

विच.— ठण्डाई ।

विदू.— किस के लिए ?

विच.— प्यारी सखी के वास्ते ।

विदू.— तो आधी हम को दो ।

विच.— क्यों ?

विदू.— महाराज के वास्ते ।

विच.— कारण ?

विदू.— "कपूर्मजरी के वास्ते" कारण ।

विच.— तुम क्या नहीं जानते महाराज का वियोग ?

विदू.— तो तुम क्या नहीं जानती कपूर्मजरी का वियोग ?

(दोनों हंसते हैं)

विच.— तो महाराज कहां है ?

विदू.— तुम्हारी आज्ञानुसार पन्ने के कुंज में ।

विच.— तो तुम भी वहां जाके बैठो ! दम भर में ठण्डाई के बदले दोनों को दर्शन ही से तरावट पहुंच जायगी ।

विदू.— तो वहां जाओ जहां से फिर न बहुरो ।

(विचक्षणा को ढकेलता है)

(दोनों आपस में धक्का मुक्की करते हैं)

विच.— छोड़ो छोड़ो ! रानी की आज्ञानुसार कपूर्मजरी आती होगी ।

विच.— रानी जी की क्या आज्ञा है ?

विच.— महारानी ने तीन पेड़ लगाये हैं ?

विदू.— किस के ?

विच.— कुरवक, तिलक और अशोक के ।

विदू.— फिर ?

विच.— महारानी ने कहा कि सुन्दर स्त्रियों के आलिंगन से कुरवक, देखने से तिलक और पैर के छूने से अशोक फूलता है, इस से तुम जाकर मेरे कहे अनुसार सब काम अभी करो, सो वह आती होगी ।

विदू.— तो पन्ने के कुंज से प्यारे मित्र को लाकर इन तमालों की आड़ में बैठावें ।

(राजा को लाकर तमाल के पास बैठाता है)

विदू.— मित्र सावधान होकर अपने मन रूपी समुद्र के चन्द्रमा को देखो ।

राजा— (देखता है)

(सजी सजाई कपूर्मजरी आती है)

कपूर्.— कहां से विचक्षणा ?

विच.— (पास जाकर) सखी, रानी की आज्ञा पूरी करो ।

राजा— मित्र, कौनसी आज्ञा ?

विदू.— धवराओ मत, चुपचाप बैठे बैठे देखा करो ।

विच.— यह कुरवक का पेड़ है ।

कपूर्.— (आलिंगन करती है)

राजा—

करत अलिंगन ही अहो, कुरवक तरु इक साथ ।
फूल्यो उमगि अनन्द सों, परसि पियारी हाथ ॥

विदू.— मित्र, यह अद्भुत इन्द्रजाल देखो, जिससे छोटा सा कुरवक का पेड़ कैसा एक साथ फूल उठा ! सच है, दोहद के ऐसे ही विचित्र गुण होते हैं ।

विच.— और सखी यह तिलक का पेड़ है ।

कपूर्.— (देर तक उसी की ओर देखती है)

राजा—

अहा, काजर भीनी काम निधि दीठि तिरीछी पाय ।
भर्यो मंजरिन तिलक तरु, मनहु रोम उलाहाय ॥

विच.— सखी, अब इस अशोक की पारी है ।

कपूर्.— (वृक्ष को लात मारती है ।)

विच.—

नूपर बाजत पद कमल, परसत पुरत अशोक ।

फूलों तजि सब सोक निज, प्रगटि कुसुम कल थोक ।।

विदू.— मित्र, महारानी ने यह बोहद आपही क्यों न किया, आप इस का कारण कुछ कह सकते हैं ?

राजा— तुम्ही जानो ।

विदू.— मैं कहूँ, पर जो आप रुठ न जायं ?

राजा— भला इसमें रुठने की कौन बात है, निस्सन्देह जो जी में आवे कह डाले ।

विदू.—

जदपि उतै रूपादि गुन, सुन्दर मुख तन केस ।
पे इत जोवन नृपति की, महिमा मिली विसैस ।।

राजा—

जदपि इतै जोवन नवल, मधुर लरकई चारु ।
पे उत चतुराई अधिक, प्रगटन रस ब्यौहारु ।।

विदू.— सच है जवानी और चतुराई में बड़ा बीच है ।

(नेपथ्य में बैतालिक गाते हैं)

(राग चैती गौरी)

मन भावनि भई सांफ सुहाई । दीपक प्रकट कमल
सकुचाने प्रफुलि कुमुदिनि निसि दिग आई ।। ससि
प्रकाश पसरित तारागण उगन लगे नभ में अकुलाई ।
साजत सेज सबै जुवती जन पीतम हित हिय हेत
बढ़ाई । फूले रैन फूल वागन में सीतल पौन चली
सुखदाई । गौरी राग सरस सुर सब मिलि गावत
कामिनि काम बढ़ाई ।।

राजा— मित्र, देखो सन्ध्या हुई ।

विदू.— तभी न बन्धियों ने सांफ के गीत गाए ।

कर्पूर.— सखी अघेरा होने लगा, अब चलो ।

विच.— हाँ, चलना चाहिए ।

(जवनिका गिरती है)

इति द्वितीय अंक

तीसरा अंक

स्थान राजभवन

(राजा और विदूषक आते हैं)

राजा— (स्मरण करके) । उसकी मधुर छबि के
आगे नया चन्द्रमा, चम्पे की कली, हलदी की गांठ,
तपाया सोना और केसर के फूल कुछ नहीं है । पन्ने के
हार और मालती की माला से शोभित उस का कण्ठ जी
से नहीं भूलता और उस के कर्णावल्म्बी नेत्र मेरे जी में
अब तक खटकते हैं ।

विदू.— मित्र, स्त्रीजितों की भांति तुम क्यों
व्यर्थ बकते हो ?

राजा— मित्र, स्वप्न में हम ने ऐसा ही मनुष्य
रत्न देखा है ।

विदू.— कैसा ?

राजा— मैं ने देखा है कि वह कमलबदनी हंसती
हुई मेरी सेज के पास आकर नीलकमल धुमाकर मुझे
मारने चाहती है और जब मैंने उस का अंचल पकड़ा है
तो वह चंचल नेत्रों को नचाकर अंचल छुड़ाकर भाग
गई और मेरी नोंद भी खूल गई ।

विदू.— (आप ही आप) तो कुछ हम भी कहें ।
(प्रगट) मित्र, मैंने भी एक सपना देखा है !

राजा— (आशा से) हाँ मित्र, कहो कहो ।

विदू.— हम ने देखा है कि देवगंग के सोते में
सोते सोते हम महादेव जी के सिर पर खेलने वाली नदी
में जा पहुँचे हैं और फिर शरद ऋतु के मेघों ने हम को
पेट भर के पीया है और तब हम हवा के घोड़े पर
आकाशा की सैर करते फिरते हैं ।

राजा— (आश्चर्य से) हाँ, फिर ?

विदू.— फिर उसी मेघ में गुञ्जारे की भांति बैठे
बैठे तारपणीं नदी में पहुँचे हैं और जब सूर्य चित्रा
नक्षत्र में गये तब समुद्र के ऊपर जाके वह मेघ बड़ी
बड़ी बूंद से बरसने लगा और एक सीप ने मुंह खोल कर
इमें भली भांति पीया है और उस के पेट में जाते ही हम
छ मांशे के मोती हो गये ।

राजा— (आश्चर्य से) फिर ?

विदू.— फिर हम समुद्र की लहरों से टक्कर
लड़े और सैकड़ों सीपों में धूमते फिरे । अन्त में घिस
घिसा कर सुन्दर गोल मटोल चमकीले मोती बन गए
और हम को पूर्व जन्म का स्मरण ज्यों का त्यों बना
रहा ।

राजा— (आश्चर्य से) फिर क्या हुआ ?

विदू.— फिर समुद्र से वह सीप निकाल कर
फाड़ी गई, तब हम एक दाने से चौंसठ होकर बाहर
निकले और लाख अशरफी पर एक सेठ के हाथ बिके
और जब उस ने उन मोतियों को बिघवाया तो हम को
बड़ी पीड़ा हुई ।

राजा— (आश्चर्य से) हाँ तब ?

विदू.— फिर उस सेठ ने दस दस छोटे मोतियों
के बीच हमें पिरोकर एक माला बनाई । तब हमारा
दाम करोड़ों अशरफी से भी बढ़ गया और सोने के डिब्बे
में रख के सागरदत्त सेठ ने पंजाब देश से कर्णउभ नगर
के राजा श्री बज्रायुध के हाथ हमें बेच डाला ।

राजा— (घबड़ाकर) फिर क्या हुआ ?

विदू.— फिर उस की रानी के सुन्दर गले में थोड़ी देर तक हम भूला भूलते रहे, पर जब राजा ने उस का आलिंगन किया तो कठोर स्तन के धक्कों से पिस कर हम ऐसे चिल्लाये कि नींद खुल गई ।

राजा— (हंस्ता है)

समझा, यह तुम हमारा परिहास करते हो ।

विदू.— परिहास नहीं, ठीक कहते हैं । राज्य से छुटा हुआ राजा, कुटुम्ब में फंसी बालरण्डा, भूखा गरीब ब्राह्मण, और बिरह से पागल प्रेमी लोग मन के ही लड़कू से मूख बुझा लेते हैं । भला मित्र, हम यह पूछते हैं कि यह सब किसका प्रभाव है ।

राजा— प्रेम का ।

विदू.— भला रानी से इतना स्नेह होते भी कर्पूरमंजरी पर इतना प्रेम क्यों करते हैं और फिर रानी रूप आदिक में किस से कमती है ?

राजा— यह मत कहो । किस २ मनुष्य से ऐसी प्रेम की गांठ बंध जाती है कि उस में रूप कारण नहीं होता । ऐसे प्रेम में रूप और गुण तो केवल चवाइयों के मुह बंद करने के काम आता है ।

विदू.— तो प्रेम नाम आप के मत से किस का ?

राजा— नव यौवन वाले स्त्री पुरुषों के परस्पर अनेक मनोरथों से उत्पन्न सहज चित्त के विकार को प्रेम कहते हैं ।

विदू.— और उस में गुण क्या क्या हैं ?

राजा— परस्पर सहज स्नेह अनुराग के उमंगों का बढ़ना, अनेक रसों का अनुभव, संयोग का विशेष सुख, संगीत साहित्य और सुख की सामग्री मात्र को सुहाना कर देना और स्वर्ग का पृथ्वी पर अनुभव करना ।

विदू.— और वह जाना कैसे जाता है ।

राजा— लगावट की दृष्टि, नेत्रों का चञ्चल और चोर होना, अंग अंग के अनेक भाव और मुख की आकृति से ।

विदू.— हमारी जान में चित्त में जो बिहार के उत्साह होते हैं उसी का नाम प्रेम है । और उस को रूप नहीं है तो भी मनुष्य में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है । जहाँ कामदेव का इन्द्रजाल यह प्रेम स्थिर है वहाँ अभूषण और द्रव्य से क्या ?

राजा— (हंस कर) इस को द्रव्य और अभूषण ही की पड़ी रहती है । अरे !

कहा अभूषण कह वसन, का अनेक सिंगार ।
तिय तन सो कछु और ही ; जो मोहत संसार ॥

खज्जनमद गज्जन करन ; जग रज्जन जे आहि ।

मदन लुकज्जन सरिस दृग, कह अंजन तिन माहि ॥

धन कुल की मरजाद कछु, प्रेमपंथ नहि होत ।

राव रंक सब एक से, लगत प्रनय रस सोत ।

धनिक बधू जो छवि लहत ; बेदी रतन जराय ।

ग्रामबधूटी हूँ सुई, कुकुम तिलक लगाय ।

"अगियारे तोखे दृगनि, किती न तरुनि जहान ।

वह चितवनि कछु और ही, जिहि बस होत सुआन" ॥

विदू.— यह ठीक है, पर लड़कई में जो रूप रहता है जवानी के सौन्दर्य से उस से कोई सम्बन्ध नहीं । यह क्यों ?

राजा— हमारे जान में जन्म लेनेवाला विधि दूसरा है । और उन्नत कुच उत्पन्न करने वाला दूसरा है । सुन्दरता से मरा अंग, कर्णाबलाम्बी नेत्र, हारशोभी सत्न, क्षीण मध्य देश और गोल नितम्ब यही पांच अंग कामदेव के मुख्य सहायता होते हैं ।

(नेपथ्य में)

हाय ! इस ठण्डे घर में भी कर्पूरमंजरी पसीने से तर हुई जाती है इस से इसे पंखा भले ।

सखी कुरंगिक ! यह हिम उपचार तो मुझ कमल की लता को और भी मुरझा देगा ।

कमलनान विषजाल सम, हार भार अहि भोग ।

मलय प्रलय जल अनल मोहि, वायु आयु हर रोग ॥

विदू.— प्यारे मित्र ने सुना ! तो अब इस अमृत के प्याले की उपेक्षा कब तक करोगे, चलो धूप से सूखती कमलिनी, बिना पानी की केसर की क्यारी, बालक के हाथ में रोली की पुतली, हरने के सींग में फंसी हुई चन्दर की डाल, और अनाड़ी के हाथ पड़ी मोती की सी कर्पूरमंजरी की दशा है, इस से बल कर शीघ्र ही उस को प्राणदान दो, लो न तुम्हारा सपना तो सच्च हुआ, चलो काम की पताका उड़ाओ, मदनमंत्र के हुंकार के साथ ही स्वेद का अभिषेक भी होय, चलो इसी खिड़की से चलो । (खिड़की की ओर चलना नाट्य करते हैं) (भीतरी परदा उठता है और एक घर में कुरंगिका और कर्पूरमंजरी बैठी दिखाई देती हैं) ।

कर्पूर.— (राजा को देखकर घबड़ा के) अहा ! क्या पूर्णिमा का चन्द आकाश से उतर आया या भगवान शिव जी ने रति की अधीनता पर प्रसन्न होकर फिर से कामदेव को जिला दिया, या वही छलिया आता है जिसने चित्त चुरा कर ऐसा धोखा दिया । सखी ! यह कुछ इन्द्रजाल तो नहीं है ?

विदू.— (राजा को दिखा कर) हां, सचमुच यह इन्द्रजाल का तमाशा है ।

कर्पूर.— (लाज से सिर नीचे कर लेती है)

कुरंगि.— सखी महाराज खड़े हैं और तू आदर करने को नहीं उठती ?

कर्पूर.— (उठा चाहती है)

राजा— बस बस, प्यारी, तुम अपने कोमल अंगों को क्यों दुख देती हो ? जहाँ की तहाँ बैठी रहो । कुच नितम्ब के भार सों, लवि न जाय कटि छीन । रहो रूही, बैठी रहो, करो न आज नवीन ॥

बिदू.— हाय हाय ! कर्पूरमंजरी को बड़ा पसीना हो रहा है । अच्छा, पंखा फले । (अपने दुपट्टे से पंखा फलता हुआ जान बूझ कर दिया बुझा देता है) । हहहह ! बड़ा आनन्द हुआ । दिया गुल पगड़ी गायब । अब बड़ा आनन्द होगा । महाराज ! देखिए कुछ अन्धेर न हो ।

राजा— तो सब लोग छत्त पर चलो, आओ प्यारी तुम हमारा हाथ पकड़ लो और अपनी मन्द चाल से हंसों को लजाओ (स्पर्श सुख नाट्य करके) अहा ! तुम्हारे अंग से छू जाते ही कदम्ब की भाँति हमारा अंग पुष्पित हो गया ।

(सब लोग चलना दिखाते हैं)

(नेपथ्य में प्रथम बैतालिक)

नव ससि उदय होइ सुखदायक । कुमकुम मुख मण्डित तिय मुख सम, देखहु उग्यो जामिनीनायक । अरुन दिसा प्राची राग राची, तरुन करुन बिरही जन धायक । रजनी लखि सजनी अनंग अब, तजत किरिन मिस तकि तकि सायक ॥ पत्ररन्ध्र तें छनि छनि आवत, चांदनि रस सिंगार की बायक । तारागन प्रगटित नभ मण्डल, ससि राजा के संग जनु पायक । बिहरत तरुनि संजोगिन सों मिलि, लहि सब सुख रसिकन के लायक । प्रफुलित कुमुद देखि सरवर मह, गायत कम बधाई गायक ॥

(नेपथ्य में चन्द्रमा का प्रकाश होता है)

बिदू.— कनकचन्द्र गा चुका अब माणिकचन्द्र गावे ।

(नेपथ्य में दूसरा बैतालिक गाता है)

रैन संजोगिन कों सुखदाई ।

तजत मानिनी मान चन्द लखि,

दूती तिन कहं चलत लिवाई ॥

कोमल सेज तमोल फूल मधु,

सुखद साज सब धरे सजाई ।

बिहरहि कामिनि कामी जन संग,

लूटहिं सुख पीतम ढिग पाई ॥

बिदू.—

दिसावधू चन्दन तिलक, नभ सरवर को हंस ।
काम कंद सम नभ उदित, यह ससि जगत प्रसंस ॥

कुरं.—

चंद उदय लखि कै मदन, कानन लों धनु तानि ।
जीत्यो जग जुव जन सबै, निसि निज अति बल जानि ॥
(कर्पूरमंजरी से) सखी अब तेरा बनाया चन्द्रमा का वर्णन महाराज को सुनाती हूँ ।

कर्पूर.— (लज्जा नाट्य करती है ।)

कुरं.—

ससि अति सुन्दर ताहि कहुं दुष्टि नाहि लागि जाय ।
तातें देव कलंक मिस, दियो दिठौना लाय ॥

राजा— वाह वाह ! जैसा छंद जैसे ही बनाने वाले । फिर क्या पृथना है, कोमल मुख से जो अक्षर निकलेंगे वह क्यों न कोमल होंगे पर —

सिर दै कस्तूरी तिलक, सब विधि ससि छवि धारि ।
तुमहू तौ मम मन कुमुद, विकसावति सुकुमारि ॥

(चन्द्रमा की ओर)

तजौ गरब अब चन्द तुम, भूलौ मत मन माहि ।
क्रोध हंसनि भ्रमंग छवि, तुम मैं सपनेहु नाहि ॥

(नेपथ्य में कोलाहल)

राजा— यह क्या कोलाहल है ?

क. म.— (भय से) कुरंगिके ! देखो तो यह क्या है ?

(कुरंगिका बाहर होकर आती है ।)

बिदू.— जान पड़ता है कि यह सब बात रानी ने जान ली ।

कुरं.— हाँ ठीक है, महारानी हम लोगों को पकड़ने यहाँ आती हैं यही कोलाहल है ।

क.— (डर कर) तो हम लोग अब इस सुरंग की राह से महल में जाते हैं जिसमें महारानी महाराज के साथ हमें न देखें ।

(सब जाना चाहते हैं । जबनिका गिरती है)

इति तृतीय अंक

चौथा अंक

(राजा और बिदूषक आते हैं ।)

राजा— अहा ! ग्रीष्म ऋतु भी कैसा भयानक होता है ! इस ऋतु में वो बातें अत्यन्त असह्य हैं — एक तो दिन की प्रचण्ड धूप, दूसरे प्यारे मनुष्य का वियोग ।

बिदू.— संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते

है — एक सुखी एक दुखी । हम अच्छे न सुखी न दुखी, न संयोगी न वियोगी ।

(नेपथ्य में मैना बोलती है)

तो तेरा सिर टूट बेल सा क्यों नहीं गिर पड़ता ?

राजा — मित्र खिलवाड़िन मैना क्या कहती है, सुनो ।

विदू. — (क्रोध से) अच्छा दुष्ट दासी देख अभी तुम्ह को पकड़ कर मरोड़ डालते हैं ।

(नेपथ्य में मैना बोलती है)

हां हां, निपुते जो हमें पर न होते तू सब करता ।

राजा — (देख कर) क्या मैना उड़ गई ? (विदूषक से) कामी जनों की प्यारी इस गरमी की ऋतु में जब निशारूपी मैना जल्दी से उड़ जाती है तो यह मैना क्यों न उड़े । क्यों न हो, वा संयोगियों को तो ग्रीष्म भी सुखद ही है । दो पहर तक ठण्डे चन्दन का लेप, तीसरे पहर महीन गीले कपड़े, फुहारे, खसखाने और साँफ़ को जल बिहार और हिम से ठण्डी की हुई मदिरा और पिछली रात ठण्डी हवा में बिहार इत्यादि इस ऋतु में भी सुख के सभी साज हैं, पर जो करनेवाला हो ।

विदू. — ऐसा नहीं, मुँह भर के पान, पानी से फूली हुई सुपारी और कपूर की धूर और मीठा २ भोजन ही गरमी में सुखद होता है ।

राजा — छिः, इस गरमी में भी तुम्हें पान और मीठे भोजन की पड़ी है । गरमी में तो वायु के संयोग से जल, हिम में रखने से मदिरा, चन्दनलेप करने से स्त्री, सुन्दर कण्ठ पाकर फूल और पंचम स्वर से पूरित हो कर वंशी यही पांच वस्तु ठण्डी हैं । तथा सिरिस के फूल के गहने, बेल की चोटी, मोतियों के हार, चम्पे की चम्पाकली, नेवारी के गजरे, जल भरी कुमुद की बिना डोरे की माला और हाथ में कमलनाल के कंकण यही सुन्दरियों को रत्नाभरण के बदले योग्य श्रृंगार हैं ।

विदू. — हम तो यही कहेंगे कि दो पहर को चन्दन लगाएँ, साँफ़ को नहाएँ मन्दवायु से कान का फूल हिलाने वाली स्त्री ही गरमी में सुखद होती है ।

राजा — (याद करके) देखो, जिन के प्यारे पास हैं उनको गरमी के बड़े बड़े दिन एक क्षण से बीतते हैं, पर जो अपने प्यारे से दूर पड़े हैं उन को तो ये दिन पहाड़ से भी बड़े हो जाते हैं । (विदूषक से) मित्र, कुछ उसी की बात कहो ।

विदू. — हाँ मित्र, सुनो, बहुत अच्छी २ बात कहेंगे । जब से कपूर्मंजरी को गुप्त घर की सुरंग के दरवाजे पर महारानी ने देख लिया है तब से सुरंग का

मुँह बन्द करके अनंगसेना, कलिंगसेना, वसन्तसेना और विभ्रमसेना, नामक चार सखियों को नंगी तलवार लेकर पूरव में, अनंगलेखा, चन्दनलेखा, चित्रलेखा, मृगांकलेखा, और विभ्रमलेखा इन पांच सखियों को धनुषदेकर दक्षिण में, और कुन्दनमाला, चन्दनमाला कुबलमाला, कांचनमाला, वकुलमाला, मंगलमाला और माणिक्यमाला इन सात सखियों को चोखे माले देकर पश्चिम दरवाजे पर, और अनंगकेलि, कर्पूरकेलि कंदर्पकेलि और सुन्दरकेलि, इन चार सखियों को खंग देकर उच्चर की ओर पहरों के वास्ते रक्खा है । और भी हजारों हथियारबन्द सखी चारों ओर फिरा करती हैं, और मदिरावती, केलिवती, कल्लोलवती, तरंगवती और तांबूलवती ये पांच सोने की छड़ी हाथ में लेकर उस सेना की रक्षा करती हैं ।

राजा — वाहरे ठाट बाट ! महारानी सचमुच अपने महारानीपन पर आ गई ।

विदू. — मित्र, महारानी के यहाँ से सारंगिका नाम की सखी कुछ कहने को आती है ।

(सारंगिका आती है)

सारंगिका — महाराज की जय हो । महाराज ! महारानी ने निवेदन किया है कि आज वटसावित्री का उत्सव होगा सो महाराज छत पर से देखें ।

राजा — महारानी की जो आज्ञा ।

(सारंगिका जाती है)

(राजा और विदूषक छत पर चढ़ना नाट्य करते हैं)

विदूषक — देखिए, मोतियों के गहने से लदी हुई नृत्य में वस्त्र फहराने वाली स्त्रियाँ हीरे के नगीने से जलकरणों में कैसा परस्पर खेल रही हैं, इधर विचित्र प्रबंध से घूमनेवाली, फिरकी की भाँति नाचनेवाली और सम पर पाँव रखनेवाली स्त्रियाँ कैसा परस्पर नाच रही हैं, कोई मंडल बाँधकर पंक्ति से, कोई दूसरी का हाथ पकड़कर और कोई अकेली ही नाचती हैं । नृत्य के श्रमशवास से कुचों पर हार कम्पित होकर देखनेवालों के नेत्र और मन को अपनी ओर बुलाते हैं, सब देश की स्त्रियों के स्वांग बन कर कुछ स्त्रियाँ अलग ही कौतुक कर रही हैं । यह देखिये जिस ने भीलनी का स्वांग लिया है वह कैसी निर्लज्ज और मत्तचेष्टा करती है ? वैसे ही जो गंगारिन बनी है वह अपनी सहज सीधी और भोली चितवन से अलग चित्त चुराती है ; कोई गाती है, कोई हँसती है, कोई नकल करती है सब अपने २ रंग में मस्त हैं ।

(सारंगिका आती है)

सार. — (आप ही आप) अहा ! महाराज तो छत

पर पन्ने के बंगले में बैठे हैं (प्रगट) महाराज की जय हो । महाराज ! महारानी कहती हैं कि हम सांभ को महाराज का ब्याह करैंगे ।

विदूषक— ह हा ह हा ! वाह ! क्या अच्छी बे समय की रागिनी छेड़ी गई है ।

राजा— सारंगिके ! सविस्तार कहो, तुम्हारी बात हमारी समझ में नहीं आती है ।

सार— विगत चतुर्दशी को महारानी ने मानिक्य की गौरी बनाकर भैरवानन्द जी के हाथ से प्रतिष्ठा कराई थी, सो जब महारानी ने भैरवानन्द जी से कहा कि आप कुछ गुरुदक्षिणा मांगिये तब उन्होंने कहा "ऐसी गुरुदक्षिणा दो जिसमें महाराज का कल्याण भी हो और वे प्रसन्न भी हों, अर्थात् लाट देश के राजा चन्द्रसेन की कन्या घनसारमंजरी को ज्योतिषियों ने बताया है कि जिस से इसका विवाह होगा वह चक्रवर्ती होगा । उसका महाराज से विवाह कर दो यही हमें गुरुदक्षिणा दो ।" महारानी ने भी स्वीकार किया और इसी हेतु मुझे आपके पास भेजा है ।

विदू— वाह वाह ! सिर पर सांभ और काबुल में वैद्य, आज ब्याह और लाट देश में घनसारमंजरी ।

राजा— इससे क्या ! भैरवानन्द के प्रभाव से सब निकट है ।

सार— महाराज, आम की बारी वाले चामुण्डा के मन्दिर में महारानी और भैरवानन्द जी आपका ब्याह करैंगे सो आप यहां से कहीं मत टलियेगा ।

(जाती है)

राजा— वह सब भैरवानन्द जी का प्रभाव है ।

विदू— सच है, चन्द्र बिना चन्द्रकान्तमणि को और कौन द्रवावे ?

(एक ओर बगीचे और मन्दिर का दृश्य)

(भैरवानन्द आता है)

भैरवानन्द— इस बट के मूल में सुरंग के दरवाजे पर चामुंडा की मूर्ति है तो यहीं ठहरै । (हाथ जोड़कर) कल्पान्त महास्मशान रूपी क्रीड़ा मन्दिर में ब्रह्मा की खोपड़ी के कटोरे में राक्षसों का उष्ण रुधिर रूपी मद्यपान करने वाली कराली काली को नमस्कार है । (आगे बढ़कर) अभी तक कर्पूरमंजरी नहीं आई ? (सुरंग का मुंह खुलता है और उसमें से कर्पूरमंजरी निकलती है)

क. मं.— महाराज प्रणाम करती हूं ।

भै. व.— योग्य वर पाओ ! आओ, यहां बैठो

क. मं.— (बैठती है) ।

भै. न.— अब तक रानी नहीं आई ?

(रानी आती है)

रानी— (आगे देख कर) अरे यही चामुण्डा हैं ? और कर्पूरमंजरी भी बैठी है । (भैरवानन्द से) महाराज, ब्याह की सामग्री ले आवे ?

भै. नं.— हां रानी ।

रानी— (आगे बढ़ती है ।)

भै. नं.— (हंस कर) यह खोजने गई है कि हमारे पहरे में से कर्पूरमंजरी कैसे चली आई ? तो अच्छा बेटा कर्पूरमंजरी तुम सुरंग की राह से जाकर अपनी जगह पर बैठो, जब रानी देख ले तब चली आना ।

क. मं.— जो आज्ञा (उसी की भांति जाती है) ।

रानी— (आगे एक घर में झांक कर) अरे कर्पूरमंजरी तो यही है, वह कोई दूसरी होगी, बेटा कर्पूरमंजरी जी कैसी है ?

(निपथ में) सिर में कुछ दर्द है ।

रानी— तो चलें (आगे बढ़कर) लाओ जल्दी तयारी । (कर्पूरमंजरी सुरंग की राह से आकर अपनी जगह पर बैठती है)

रानी— (देखकर) अरे ! यहां भी कर्पूरमंजरी !

भै. नं.— बेटा विभ्रमलेखे ! ब्याह की सामग्री ले आई ?

रानी— हां लाई सही, पर कर्पूरमंजरी के लायक आभूषण लाना भूल गई ।

भै. नं.— तो लाओ जल्दी ले आओ ।

रानी— जो आज्ञा (आगे बढ़कर उसी घर की ओर जाती है)

भै. नं.— बेटा कर्पूरमंजरी फिर वैसा ही करो ।

क. मं.— जो आज्ञा (वैसे ही जाती है ।)

रानी— (उसी घर के दरवाजे से झांककर) आहा ! मैं निस्संदेह ठगी गई, (प्रगट) अरे ब्याह की तयारी लाओ (कर्पूरमंजरी वैसे ही आती है) (फिर भैरवानन्द के पास आकर और कर्पूरमंजरी को देखकर) यह क्या चरित्र है ! हा ! हमारी चेष्टा इस योगीश्वर ने ध्यान से सब जानी होगी ।

भै. नं.— रानी ! बैठो, महाराज भी आते होंगे । (राजा और विदूषक ऊपर से उतरते हैं और कुरंगिका आती है)

भै. नं.— महाराज विराजिए (सब बैठते हैं)

राजा— (कर्पूरमंजरी को देखकर) यह कामदेव की मूर्तिमान शक्ति है, वा शृंगार की साक्षात् लता है, वा सिमटी हुई चन्द्रमा की चांदनी है, वा हीरे की पुतली है, वा वसन्त ऋतु की मूल कला है, जिस को इसने एक बार देखा उसके चित्तरूपी देश में कामदेव का

निष्कटक राज हुआ ।

विदु.— (धीरे से) बाहरे जल्दी, अरे अब तो क्षण भर में गोद ही में आई जाती है । अब क्या बक बक लगाए हो, कोई सुनैगा तो क्या कहैगा ?

रानी— (कुरंगिका से) तुम महाराज को गहिना पहिनाओ और सुरंगिका घनसार मंजरी को (दोनों सखियाँ बैसा ही करती हैं) ।

भै. नं.— उपाध्याय को बुलाओ ।

रानी— महाराज का पुरोहित आर्य्य कपिजल बैठा ही है फिर किस की देर है ?

विदु.— हाँ हाँ, हम तो तय्यार ही हैं । मित्र, हम गंठबन्धन करते हैं, तुम कर्पूरमंजरी, का हाथ पकड़ो और कर्पूरमंजरी, तुम महाराज को पकड़ो (मूठ मूठ के अशुद्ध मंत्र पढ़ता है और वैदिकों की चेष्टा करता है) ।

भै. नं.— तुम निरे वही हो कर्पूरमंजरी का घनसार मंजरी नाम हुआ ।

राजा— (कर्पूरमंजरी का हाथ पकड़ कर आप ही आप) आहा ! इस के कोमल करस्पर्श से कदम्ब और केवड़े की भाँति मेरा शरीर एक साथ रोमांचित हो गया ।

विदु.— अग्नि प्रगटाओ और लावा का होम करो

(राजा और कर्पूरमंजरी अग्नि की फेरी करते हैं कर्पूरमंजरी धुँएँ से मुँह फेरना नाट्य करती है) ।

रानी— अब विवाह हो गया, हम जाते हैं ।

(जाती है)

भै. नं.— विवाह की आचार्य्य दक्षिणा दीजिए ।

राजा— (विदूषक से) हाँ मित्र ! सौ गांव तुम को दिया ।

विदु.— स्वस्ति स्वस्ति (उठकर बगल बजाकर नाचता है) ।

भै. नं.— महाराज, कहिए और क्या होय ?

राजा— (हाथ जोड़ कर) महाराज ! अब क्या बाकी है ?

कुन्तल नृपकन्या मिली, चक्रवर्ति पद साथ ।
सब पूरे मनकाज मम, तुमपद बल ऋषिनाथ ॥
तब भी भरतवाक्य सत्य हो ।

उन्नत चित्त ह्वै आर्य्य परस्पर प्रीति बढ़ावै ।
कपट नेह तजि सहज सत्य व्योहार चलावै ॥
जवनसंसारगजात दोस गन इन सो छूटै ।
सबै सुपथ पथ चलै नितही सुख सम्पति लूटै ॥
तजि विविध देव रति कर्म मति एक भक्ति पथ सब गहै ।
हिय भोगवती सम गुप्त हरिप्रेम धार नितही बहै ।
॥ इति ॥



श्री चंद्रावली

नाटिका

सं. १९३३ सन् १८७६ में छपा मौलिक नाटक । इसका संस्कृत अनुवाद सं.
१९३५ हरिश्चन्द्र चंद्रिका में क्रमशः छपा था, यह अनुवाद पं. गोपालशास्त्री ने
किया था । — सं.

समर्पण

प्यारे!

तो तुम्हारी चंद्रावली तुम्हें समर्पित है । अंगीकार तो किया ही है इस पुस्तक को भी उन्हीं की कानि से अंगीकार करो । इस में तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है, इस प्रेम का नहीं जो संसार में प्रचलित है । हाँ एक अपराध तो हुआ जो अवश्य क्षमा करना ही होगा । वह यह कि प्रेम की दशा छाप कर प्रसिद्ध की गई । वा प्रसिद्ध करने ही से क्या जो अधिकारी नहीं है उन के समझ ही में न आवेगा ।

तुम्हारी कुछ विचित्र गति हैं । हमी को देखो । जब अपराधों को स्मरण करो तब ऐसे कि कुछ कहना ही नहीं । क्षण भर जीने के योग्य नहीं । पृथ्वी पर पैर धरने को जगह नहीं । मुंह दिखाने के लायक नहीं । और जो यों देखो तो ये लम्बे लम्बे मनोरथ । यह बोलचाल । यह डिठई कि तुम्हारा सिद्धान्त कह डालना । जो हो इस दूध खट्टई की एकत्र स्थिति का कारण तुम्हीं जानो । इसमें कोई संदेह नहीं कि जैसे हों तुम्हारे बनते हैं । अतएव क्षमा समुद्र ! क्षमा करो । इसी में निर्व्याह है । बस—

भाद्रपद कृष्ण १४

सं. १९३३

हरिश्चन्द्र

श्रीचन्द्रावली नाटिका

स्थान रंगशाला ।

(ब्राह्मण आशीर्वाद पाठ करता हुआ आया ।)
मरति नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर ।
जयति अलौकिक धन कोऊ, लखि नाचत मन
मोर ॥१॥

(और भी)

नेति नेति तत् शब्द प्रतिपाद्य सर्व्व भगवान् ।
चन्द्रावली चकोर श्रीकृष्ण करौ कल्याण ॥२॥
(सूत्रधार आता है)

सू.— वस वस बहुत बढ़ाने का कुछ काम
नहीं ? मारिष मारिष दौड़ो दौड़ो आज ऐसा अच्छा
अवसर फिर न मिलेगा हम लोग अपना गुण दिखा कर
आज निश्चय कृतकृत्य होंगे ।

(पारिपाश्वर्क आकर)

पा.— कहो कहो, आज क्यों ऐसे प्रसन्न हो रहे
हो ? कौन सा नाटक करने का विचार है और उसमें
ऐसा कौन सा रस है कि फूले नहीं समाते ?

सू.— आ : तुमने अब तक न जाना ? आज मेरा
विचार है कि इस समय के बने एक नये नाटक की
लीला कहूँ क्योंकि संस्कृत नाटकों को अपनी भाषा में
अनुवाद करके तो हम लोग अनेक बार खेल चुके हैं
फिर भी बारम्बार उन्हीं के खेलने को जी नहीं चाहता ।

पा.— तुमने बात तो बहुत अच्छी सोची, वाह
क्यों नहो, पर यह तो कहो कि वह नाटक बनाया
किसने है ?

सू.— हम लोगों को परम मित्र हरिश्चन्द्र ने ।

पा.— (मुँह फेर) किसी समय तुम्हारी बुद्धि में
भी भ्रम हो जाता है भला वह नाटक बनाना क्या जाने ।
वह तो केवल आरम्भशूर है और अनेक बड़े-बड़े कवि
हैं, कोई उनका प्रबन्ध खेलते ?

सू.— (हँसकर) इसमें तुम्हारा दोष नहीं, तुम तो
उस से नित्य नहीं मिलते, जो लोग उसके संग में रहते
हैं वे तो उसको जानते ही नहीं तुम विचारे क्या हो !

पा.— (आश्चर्य से) हाँ मैं तो जानता ही न था,
भला कहो उनके दो चार गुण मैं भी सुन सकता हूँ ।

सू.— क्यों नहीं, पर जो श्रद्धा से सुनो तो ।

पा.— मैं प्रति रोम को कर्ण बना कर महाराज
पुथु हो रहा हूँ, आप कहिए ।

सू.— (आनन्द से) सुनो —

परम प्रेम निधि रसिक बर, अति आदर गुन खान ।

जग जन रंजन आशु कवि, को हरिचंद समान ॥३॥

जिन श्री गिरिधरदास कवि, रचे ग्रन्थ चालीस ।
ता सुत श्री हरिचन्द को, को न नवावे सीस ॥४॥
जग जिन तून सम करि तज्यौ, अपने प्रेम प्रभाव ।
करि गुलाब सो आचमन, लीजत वाको नांव ॥५॥
चन्द टलै सूरज टलै, टलै जगत के नेम ।
यह दृढ़ श्री हरिचन्द को टलै न अविचल प्रेम ॥६॥
पा.— वाह वाह ! मैं ऐसा नहीं जानता था, तब
तो इस प्रयोग में देर करनी ही भूल है ।

(नेपथ्य में)

श्रवन सुखद भव भय हरन त्यागिन कों अत्याग ।
नष्ट जीव त्रिनु कौन हरि गुन सों करै विराग ॥
हम सौँह तजि जात नहिं, परम पुन्य फल जौन ।
कृष्ण कथा सौं मधुर तर, जग मैं भाखौं कौन ॥८॥

सू.— (सुन कर आनन्द से) आहा ! यह देखो
मेरा प्यारा छोटा भाई शुकदेव जी बनकर रंगशाला में
आता है और हम लोग बातों ही से नहीं सुलझे । तो
अब मारिष ! चलो, हम लोग भी अपना अपना वेष
धारण करें ।

पा.— क्षण भर ठहरो मुझे शुकदेव जी के इस वेष
को शोभा देख लेने दो तब चलूँगा ।

सू.— जब कहा, अहा कैसा सुन्दर बना है, वाह
मेरे भाई वाह । क्यों न हो आखिर तो मुझ रंगरंज का
भाई है ॥

अति कोमल सब अंग रंग सांवरो सलोना ।
घूँघर वाले बालन पै बलि वारों टोना ॥
भुज विशाल मुख चन्द भलमले नैन लज्जो हैं ।
जुग कमान सी खिंची गड़त हिय में दोउ मोहैं ॥
छवि लखत नैन छिन नहिं दरत

शोभा नहिं कहि जात है ।

मनु प्रेमपुंज ही रूप धरि आवत आजु लखात है ॥९॥

॥ दोनों जाते हैं ॥

॥ इति प्रस्तावना ॥

(अथ विष्कम्भक

(आनन्द में झूमे हुए डगमगी चाल से शुकदेव जी आते
हैं ।)

शु.— (श्रवन सुखद इत्यादि फिर से पढ़कर)
अहा संसार के जीवों की कैसी विलाक्षण रुचि है, कोई
नेम धर्म में चूर है, कोई ज्ञान के ध्यान में मस्त, कोई
मत मतान्तर के भगड़े में मतवाला हो रहा है, एक
दूसरे को दोष देता है, अपने को अच्छा समझता है,

कोई संसार को ही सर्वस्व मानकर परमार्थ से चिढ़ता है, कोई परमार्थ ही को परम पुरुषार्थ मानकर घर बार तृष्णा सा छोड़ देता है । अपने अपने रंग में सब रंगे हैं, जिसने जो सिद्धान्त कर लिया है वही उसके जी में गड़ रहा है और उसी के खंडन मंडन में जन्म बिताता है, पर वह जो परम प्रेम अमृत मय एकान्त भक्ति है जिस के उदय होते ही अनेक प्रकार के आग्रह स्वरूप ज्ञान विज्ञानादि अंधकार नाश हो जाते हैं और जिस के चित्त में आते ही संसार का निगड़, आप से आप खुल जाता है — किसी को नहीं मिली मिले ; कहाँ से, अब उस के अधिकारी भी तो नहीं हैं और भी, जो लोग धार्मिक कहाते हैं उन का चित्त स्वगत स्थापन और पर मत निराकरण रूप वादविवाद से और जो विचारे विषयी हैं उनका अनेक प्रकार की इच्छा रूपी तृष्णा से, अवसर तो पाता ही नहीं कि इधर भुक्कें । (सोच कर) अहा इस मदिरा को शिवजी ने पान किया है और कोई क्या पियेगा ? जिस के प्रभाव से अर्द्धाङ्ग में बैठी पार्वती भी उन को विकार नहीं कर सकती, धन्य है, धन्य है और दूसरा ऐसा कौन है । (विचार कर) नहीं नहीं ब्रज की गोपियों ने उन्हें भी जीत लिया है, आहा इनका कैसा विलक्षण प्रेम है कि अकथनीय और अकरणीय है क्योंकि जहाँ माहात्म्य ज्ञान होता है वहाँ प्रेम नहीं होता और जहाँ पूर्ण प्रीति होती है वहाँ माहात्म्य ज्ञान नहीं होता । ये धन्य हैं कि इनमें दोनों बातें एक संग मिलती हैं, नहीं तो मेरा सा निवृत्त मनुष्य भी रात दिन इन्हीं लोगों का यश क्यों गाता है ?

(नेपथ्य में वीणा बजती है)

(आकाश की ओर देख कर और वीणा का शब्द सुनकर)

आहा ! यह आकाश कैसा प्रकाशित हो रहा है और वीणा के कैसे मधुर स्वर कान में पड़ते हैं ऐसा संभव होता है कि देवर्षि भगवान् नारद यहाँ आते हैं ? आहा ! वीणा कैसे मीठे सुर से बोलती है । (नेपथ्य पथ की ओर देखकर) अहा वही तो हैं, धन्य हैं कैसी सुन्दर शोभा है —

पिंग जटा को भार सीस पै सुन्दर सोहत ।
गल तुलसी की माल बनी जोहत मन मोहत ॥
कटि भृगुपति को चरम चरन मैं धुंधर धारत ।
नारायण गोविन्द कृष्ण यह नाम उचारत ॥
ले बीना कर बादन करत तान सात सुर सौं भरत ।
जग अघ छिन मैं हरि कहि हरत

जेहि सुनि नर भवजल तरत ॥१०॥

जुग तू बन की बीन परम शोभित मन भाई ।

लय अरु सुर की मनहुं जुगल गठरी लटकाई ॥

आरोहन अवरोहन के कै द्वै फल सोई ।
कै कोमल अरु तीव्र सुर भरे जग मन मोई ॥
कै श्री राधा अरु कृष्ण के अगनित गुन गन के प्रगट ।
यह आगम खजाने द्वै भरे नित खरचत तो ह
अवट ॥११॥

मल्लु तीरथ भय कृष्ण चरित की कांवरि लीने ।
कौ भूगोल खगोल दोउ कर अमलक कीने ।
जग बुधि तौलन हेत मनहुं यह तुला बनाई ।
भक्ति मुक्ति की जुगल पिटारी कै लटकाई ।
मनु गांवन सों श्री राग के बीना ह फलती भई ।
कै राग सिन्धु के तरन हित यह दोऊ तू बी लाई ॥२॥
ब्रह्म जीव, निरगुन सगुन, द्वैताद्वैत विचार ।
नित्य अनित्य विवाद कै द्वै तुंबा निरधार ॥३॥
जो इक तुंबा लै कढ़ै, सो वैरागी होय ।
क्यों नहिं ये सब सौं बढ़ै, लै तुंबा कर दोय ॥४॥
तो अब इन से मिल के आज मैं परमानन्द लाभ करूंगा ।

(नारद जी आते हैं)

शु. — (आगे बढ़कर और गले से मिलकर)
आइए आइए, कहिए कुशल तो है ? किस देश को पवित्र करते हुए आते हैं ?

ना. — आपसे महापुरुष के दर्शन हों और फिर भी कुशल न हो यह बात तो सर्वथा असम्भव है ; और आप से तो कुशल पूछना ही व्यर्थ है ।

शु. — यह तो हुआ अब कहिए आप आते कहाँ से हैं ?

ना. — इस समय तो मैं श्रीवृन्दावन से आता हूँ ।

शु. — अहा ! आप धन्य हैं जो उस पवित्र भूमि से आते हैं (पैर छू कर) धन्य है उस भूमि की रज, कहिए वहाँ क्या क्या देखा ?

ना. — यहाँ परम प्रेमानन्दमयी श्री ब्रजलली लीलों का दर्शन करके अपने को पवित्र किया और उनकी बिरहावस्था देखता बरसों वहीं भूला पड़ा रहा, अहा ये श्री गोपीजन धन्य हैं, इनके गुणगण कौन कह सकता है ।

गोपिन की सरि कोऊ नाहीं ।

जिन तून सम कुल लाज निगड़ सब तोरछौ हरि रस माही
जिन निज बस कीने नंदनन्दन बिहारी दै गलबाहीं ।
सब सन्तन के सीस रहौ इन चरन छत्र की छाहीं ॥५॥
ब्रज के लता पता मोहि कीजे ।

गोपी पद पंकज, पावन की रज जामैं सिर भीजै ।
आवत जात कुंज की गलियन रूप सुध नित पीजै ।
श्री राधे राधे मुख यह बर मुंह मांग्यो हरि दीजै ॥

(प्रेम अवस्था में आते हैं और नेत्रों से आंसू बहते हैं)

शु.— (अपने आंसू पोंछ कर) अहा धन्य हैं आप धन्य हैं, अभी जो मैं न सम्हालता तो बीना आप के हाथ से छूट के गिर पड़ती, क्यों न हो श्री महादेव जी के प्रीतिपात्र होकर आप ऐसे प्रेमी हों इसमें आश्चर्य नहीं ।

ना.— (अपने को सम्हाल कर) अहा येक्षण कैसे आनन्द से बीते हैं, यह आप से महात्मा की संगत का फल है ।

शु.— कहिए, उन सब गोपियों में प्रेम विशेष किस का है ?

ना.— विशेष किसका कहूँ और न्यून किसका कहूँ, एक से एक बढ़ कर हैं । श्रीमती की कोई बान ही नहीं वह तो श्री कृष्ण ही हैं लीलार्थ वो हो रही हैं तथापि सब गोपियों में श्रीचन्द्रावली जी के प्रेम की चरचा आज कल ब्रज के डगर-डगर में फैली हुई है । अहा ! कैसा विलक्षण प्रेम है, यद्यपि माता पिता भाई बन्धु सब निषेध करते हैं और उधर श्रीमती जी का भी भय है तथापि श्रीकृष्ण से जल में दूध की भाँति मिल रही हैं लोक लाज गुरुजन कोई बाधा नहीं कर सकते किसी न किसी उपाय से श्रीकृष्ण से मिल ही रहती हैं ।

शु.— धन्य हैं धन्य हैं, कुल को वरन जगत को अपने निर्मल प्रेम से पवित्र करने वाला है ।

(नेपथ्य में वेणु का शब्द होता है)

अहा यह वंशी का शब्द तो और भी ब्रजलीला की सुधि दिलाता है चलिए चलिए अब तो ब्रज का वियोग सहा नहीं जाता ; शीघ्र ही चल के उसका प्रेम देखें, उस लीला के बिना देखे आँखे व्याकुल हो रही हैं ।

॥ दोनों जाते हैं ॥

॥ इति प्रेममुख नामक विष्कम्भक ॥

प्रथम अंक

॥ जवनिका उठी ॥

स्थान श्री चन्द्रावन : गिरिराज दूर से दिखाता है ।

(श्री चन्द्रावली और ललिता आती हैं)

ल.— प्यारी व्यर्थ इतना सोच क्यों करती है ?

च.— नहीं सखी मुझे सोच किस बात का है ।

ल.— ठीक है, ऐसी ही तो हम मूर्ख हैं कि इतना भी नहीं समझती ।

च.— नहीं सखी मैं सच कहती हूँ, मुझे कोई

शोच नहीं ।

ल.— बलिहारी सखी एक तू ही तो चतुर है, हम सब तो निरी मूर्ख हैं ।

च.— नहीं सखी जो कुछ शोच होता तो मैं तुझ से कहती न ? तुझ से ऐसी कौन बात है जो छिपाती ।

ल.— इतनी ही तो कसर है जो तू मुझे अपनी प्यारी सखी समझती तो क्यों छिपाती ?

च.— चल मुझे दुख न दे भला मेरी प्यारी सखी तू न होगी तो और कौन होगी ।

ल.— पर यह बात मुख से कहती है, चित्त से नहीं ।

च.— क्यों ?

ल.— जो चित्त से कहती तो फिर मुखसे क्यों छिपाती ?

च.— नहीं सखी, यह केवल तेरा झूठा सन्देह है ।

ल.— सखी मैं भी इसी ब्रज में रहती हूँ और सब के रंग ढंग देखती ही हूँ तू मुझसे इतना क्यों उड़ती है ? क्या तू यह समझती है कि मैं यह भेद किसी से कह दूंगी, ऐसा कभी न समझना सखी तू तो मेरी प्राण है मैं तेरा भेद किससे कहने जाऊंगी ?

च.— सखी भगवान न करें कि किसी को किसी बात का सन्देह पड़ जाय जिस को सन्देह पड़ जाता है वह फिर कठिनता से मिटता है ।

ल.— अच्छा तू सौगंद खा ।

च.— हाँ सखी, तेरी सौगंद ।

ल.— क्या मेरी सौगंद ?

च.— तेरी सौगंद कुछ नहीं है ।

ल.— क्या कुछ नहीं है फिर तू चली न अपनी चाल से ? तेरी छल विद्या कहीं नहीं जाती, तू व्यर्थ इतना क्यों छिपाती है सखी तेरा मुखड़ा कहे देता है कि तू कुछ सोचा करती है ।

च.— क्यों सखी मेरा मुखड़ा क्या कहे देता है ?

ल.— यही कहे देता है कि तू किसी की प्रीति में फंसी है ।

च.— बलिहारी सखी, मुझे अच्छा कलंक दिया ।

ल.— यह बलिहारी कुछ काम न आवैगी अन्त में फिर मैं ही काम आऊंगी और मुझी से सब कहना पड़ेगा क्योंकि इस रोग का वैद्य मेरे सिवा दूसरा न मिलेगा ।

च.— पर सखी जब कोई रोग हो तब न ?

ल.— फिर वही बात कहे जाती है अब क्या मैं इतना भी नहीं समझती सखी भगवान ने मुझे भी आँखें

दी हैं और मेरे भी मन है और मैं कुछ ईंट पत्थर की नहीं बनी हूँ ।

च.— यह कौन कहता है कि तू ईंट पत्थर की बनी है इससे क्या ?

ल.— इससे यह कि ब्रज में रहकर उससे वही बची होगी जो ईंट पत्थर की होगी ।

च.— किससे ?

ल.— जिसके पीछे तेरी यह दशा है ?

च.— किसके पीछे मेरी यह दशा है ?

ल.— सखी तू फिर वही बात कहे जाती है । मेरी रानी, ये आँखें ऐसी बुरी हैं कि जब किसी से लगती हैं तो कितना भी छिपाओ नहीं छिपती ।

छिपाये छिपत न नैन लगे ।

उधरि परत सब जानि जात है घूँघट मैं न खगे ।
कितनो करी दुराव दुरत नहीं जब ये प्रेम पगे ।
निडर भए उधरे से डोलत मोहन रंग रगे ॥

च.— वाह सखी क्यों न हो तेरी क्या बात है अब तूही तो एक पहेली बूझने वालों में बची है चल बहुत झूठ न बोल कुछ भगवान से भी डर ।

ल.— जो तू भगवान से डरती तो भूठ क्यों बोलती वाह सखी अब तो तू बड़ी चतुर हो गई है कैसा अपना दोष छिपाने को मुझे पहिले ही से झूठी बना दिया (हाथ जोड़कर) धन्य है तू दंडवत् करने के योग्य है कृपा करके अपना बायाँ चरण निकाल तो मैं भी पूजा करूँ चल मैं आज पीछे तुझ से कुछ न पूछूँगी ।

च.— (कुछ सकपकानी सी होकर) नहीं सखी तू क्यों झूठी है झूठी तो मैं हूँ और जो तूही बात न पूछैगी तो कौन बात पूछैगा सखी तेरे ही भरोसे तो मैं ऐसी निडर रहती हूँ और तू ऐसी रूसी जाती है !

ल.— नहीं बस अब मैं कभी कुछ नहीं पूछने की एक बेर पूछकर फल पा चुकी ।

च.— (हाथ जोड़कर) नहीं सखी ऐसी बात मुंह से मत निकाल एक तो मैं आप ही मर रही हूँ तेरी बात सुनने से और भी अधमरी हो जाऊँगी (आँखों में आँसू भर लेती है) ।

ल.— प्यारी तुझे मेरी सौगन्द । उदास न हो मैं तो सब भाँति तेरी हूँ और तेरे भले के हेतु प्राण देने को तैयार हूँ यह तो मैंने हंसी की थी क्या मैं नहीं जानती कि तू मुझसे कोई बात न छिपावैगी और छिपावैगी तो काम कैसे चलेगा देख !

हम भेद न जानिहै जो पै कछ

औ दुराव सखी हम में परि है ।

कहि कौन मिलै है पियारे पिये

पुनि कारज कासों सबे सरि है ॥

बिन मोसों कहे न उपाव कछ

यह वेदन दूसरी को हरि है ।

नहिं रोगी बताइहै रोगहि जो

सखी वापरो बैद कहा करि है ॥

च.— तो ऐसी कौन बात है जो तुझसे छिपी है तू जानबूझ के बार-बार क्यों पूछती है ऐसे पूछने को तो मुंह चिढ़ाना कहते हैं और इसके सिवा मुझे व्यर्थ याद दिलाकर क्यों दुःख देती है हा !

ल.— सखी मैं तो पहिले ही समझी थी, यह तो केवल तेरे हट करने से मैंने इतना पूछा नहीं तो मैं क्या नहीं जानती ?

च.— सखी मैं क्या करूँ मैं कितना चाहती हूँ कि यह ध्यान भुला दूँ पर उस निद्र की छाँव भूलती नहीं इसी से सब जान जाते हैं ।

ल.— सखी ठीक है ।

लगैहीं चितवनि औरहि होति

दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम भलक की जोति ॥
घूँघट मैं नहीं धिरत तनिक हूँ अति ललचौही बानि ।
छिपत न कैसहुँ प्रीति निगोड़ी ये अन्त जात सब जानि ।

च.— सखी ठीक है जो दोष है वह इन्हीं नेत्रों का है यही रीझते, यही अपने को छिपा नहीं सकते और यही दृष्ट अन्त में अपने किये पर रोते हैं ।

सखी ये नैना बहुत बुरे ।

तब सों भये पराये हरि सों जब सों जाइ बुरे ॥
मोहन के रस बस हवै डोलत तलफत तनिक दुरे ॥
मेरी सीख प्रीति सब छाड़ी ऐसे ये निगुरे ॥
जग खीझ्यो बरज्यो पै ये नहिं हठ सों तनिक मुरे ॥
अमृत भरे देखत कमलन से विष के बुते छुरे ॥

ल.— इसमें क्या सन्देह है, मेरे पर तो सब कुछ बीत चुकी है । मैं इन के व्यवहारों को अच्छी रीति से जानती हूँ । निगोड़े नैन ऐसे ही होते हैं ।

होत सखी ये उलझौहैं नैन ।

उरभि परत सुरभयो नहिं जानत सोचत समुझत हैं न ।
कोउ नहिं बरजे जो इनको बनत मत जिमि गैन ।
कहा कहौं इन बैरिन पाछे होत लैन के देन ॥

च.— और फिर इन का हठ ऐसा है कि जिस की छवि पर रीझते हैं उसे भूलते नहीं, और कैसे भूलें, क्या वह भूलने के योग्य है हा !

नैना वह छवि नाहिं न भूले ।

इया भरि चहुं दिसि की चितवनि नैन कमल दल फूले ॥
वह आवनि वह हंसनि छबीली वह मुसकनि चितचोरे ।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह वह देखन चहु कोरे ॥

वह धीरी गति कमल फिरावत कर लै गायन पाछे ।
वह धीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछोरी काछे ॥
पर बस भये फिरत हैं नैना इक छन टरत न टारें ।
हरि ससि मुख ऐसी छवि निरखत तन मन धन सबहारे ।

ल.— सखी मेरी तो यह विपति भोगी हुई है इस
से मैं तुझे कुछ नहीं कहती ; दूसरी होती तो तेरी निन्दा
करती और तुझे इस से रोकती ।

च.— सखी दूसरी होती तो मैं भी तो उससे यों
एक संग न कह देती । तू तो मेरी आत्मा है । तू मेरा
दुःख मिटावेगी कि उलटा समझावेगी ?

ल.— पर सखी एक बड़े आश्चर्य की बात है कि
जैसी तू इस समय दुखी है वैसी तू सर्व्वदा नहीं रहती ।

च.— नहीं सखी ऊपर से दुखी नहीं रहती पर
मेरा जी जानता है जैसे रातें बीतती हैं ।
मन मोहन तें बिछुरी जब सों

तन आसुन सों सदा धोवती हैं ।
हारचंद जू प्रेम के फंद परी

कुल की कुल लाज हि खोवती हैं ॥
दुख के दिन कों कोउ भाति बितै

बिरहागम रैन संजोवती हैं ।
हमहीं अपुनी दसा जानैं सखी

निस सोवती हैं किधौं रोवती हैं ॥

ल.— यह हो पर मैंने तुझे जब देखा तब एक ही
दशा में देखा और सर्व्वदा तुझे अपनी आरसी वा किसी
दर्पण में मुंह देखते पाया पर वह भेद आज खुला ।
हैं तो याही सोच मैं बिचारत रही रो काहें.

दरपन हाथ तें न छिन विसरत है ।
त्यौही हरचंद जू वियोग औ संयोग दोऊ,

एक से तिनहारे कछु लाखि न परत है ॥
जानी आत्र हम ठकुरानी तेरी बात,

तू तौ परम पुनीत प्रेम पथ बिचरत है ।
तेरे नैन मूरति पियारे की बसति ताहि,

आरसी में रैन दिन देखिबो करत है ॥

सखी ! तू धन्य है बड़ी भारी प्रेमिन है और प्रेम शब्द
को सार्थ करने वाली और प्रेमियों की मंडली को शोभा
है ।

च.— नहीं सखी ! ऐसा नहीं है मैं जो आरसी
देखती थी उसका कारण कुछ दूसरा ही है । हा !
(लम्बी सांस लेकर) मैं जब आरसी में अपना

मुंह देखती और अपना रंग पाती थी तब भगवान
से हाथ जोड़कर मनाती थी कि भगवान मैं उस निर्दयी
को चाहूँ पर वह मुझे न चाहे, हा ! (आंसू टपकते हैं)

ल.— सखी तुझे मैं क्या समझाऊँगी पर मेरी

इतनी विनती है कि तू उदास मत हो जो तेरी इच्छा हो
पूरी करने उद्यत हूँ ।

च.— हाँ ! सखी यही तो आश्चर्य है कि मुझे
इच्छा कुछ नहीं है और न कुछ चाहती हूँ तो भी मुझको
उसके वियोग का बड़ा दुःख होता है ।

ल.— सखी मैं तो पहिले ही कह चुकी कि तू
धन्य है संसार में जितना प्रेम होता है कुछ इच्छा लेकर
होता है और सब लोग अपने ही सुख में सुख मानते हैं
पर उसके विरुद्ध तू बिना इच्छा के प्रेम करती है और
प्रीतम के सुख से सुख मानती है यह तेरी चाल संसार से
निराली है, इसी से मैंने कहा था कि तू प्रेमियों के मंडल
को पवित्र करने वाली है ।

च.— (नेत्रों में जल भर कर मुख नीचा कर लेती
है)

(दासी आकर)

दा.— अरी, मैया खीफ रही है के वाहि ! घर
कछु और हू कामकाज हैं के एक हाहा ठीठी ही है, चल
उठि, भार सों यहीं पड़ी रही ।

च.— चल आऊँ बिना बात की बकवाद लगाई
(ललिता से) सुन सखी इसकी बातें सुन, चल चले ।
(लम्बी सांस लेकर उठती है) ।

(तीनों जाती हैं)

॥ स्नेहालाप नाम पहिला अंक समाप्त हुआ ॥



दूसरा अंक

स्थान केले का वन

समय संध्या का, कुछ बादल छाए हुए ।
(वियोगिनी बनी हुई श्री चंद्रावली जी आती हैं)

च.— (एक वृक्ष के नीचे बैठकर) वाह प्यारे !
वाह ! तुम और तुम्हारा प्रेम दोनों विलक्षण हो ; और
निश्चय बिना तुम्हारी कृपा के इसका भेद कोई नहीं
जानता, जानें कैसे ? सभी उसके अधिकारी भी तो नहीं
हैं, जिसने जो समझा है उसने वौसा ही मान रखा है,
हा ! यह तुम्हारा जो अखंड परमानन्दमय प्रेम है और
जो ज्ञान वैराग्यादिकों को तुच्छ करके परम शान्ति देने
वाला है उसका कोई स्वरूप ही नहीं जानता, सब अपने
ही सुख में और अभिमान में भूले हुए हैं, कोई किसी
स्त्री से वा पुरुष से उसको सुन्दर देख कर चित्त लगाना
और उससे मिलने का अनेक यत्न करना इसी को प्रेम
कहते हैं, और कोई ईश्वर की बड़ी लम्बी-चौड़ी पूजा
करने को प्रेम कहते हैं — पर प्यारे तुम्हारा प्रेम इन

दोनों से विलक्षण है, क्योंकि यह अमृत तो उसी को मिलता है जिसे तुम आप देते हो, (कुछ ठहर कर) हाय ! किससे कहूँ और क्या कहूँ और क्यों कहूँ और कौन सुने और सुने भी तो कौन समझे — हा !

जग जानत कौन है प्रेम विधा

केहि सो चरचा या वियोग की कीजिए ।

पुनि को कही मानै कहा समुझै कोऊ

क्यों बिन बातकी रारहि लीजिए ॥

नित जो हरिचंद जू बीते सहै

बकि के जग क्यों परतीतहि छीजिए ।

सब पृथ्त मौन क्यों बैठि रहो

पिय प्यारे कहा इन्है उत्तर दीजिए ॥

क्योंकि —

मरम की पीर न जानत कोय ।

कासो कहौ कौन पुनि मानै बैठि रही घर रोय ।

कोऊ जरनि न जाननहारी बेमहरम सब लोय ।

अपुनी कहत सुनत नहिं मेरी केहि समुभाऊं सोय ।

लोक लाज कुल की मरजादा दीनी है सर्व खोय ।

हरीचंद ऐसेहि निबहैगो होनी होय सो होय ॥

परन्तु प्यारे तुम तो सुनने वाले हो ? यह आश्चर्य है कि तुम्हारे होते हमारी यह गति हो प्यारे ! जिनको नाथ नहीं होते वे अनाथ कहाते हैं (नेत्रों से आंसू गिरते हैं) । प्यारे ! जो यही गति करनी थी तो अपनाया क्यों ?

पहिले सुसुकाई लजाइ कछु

क्यों चितै मुरि मो तन छाम कियो ।

पुनि नैन लगाई बढ़ाई के प्रीति

निबाहन को क्यों कलाम कियो ॥

हरिचंद भए निरमोही इतै निज

नेह को यों परिनाम कियो ।

मनमाहि जो तोरन ही की हुती

अपनाइ के क्यों बदनाम कियो ॥

प्यारे तुम बड़े निरमोही हो, हा ! तुम्हें मोह भी नहीं आती । (आँख में आंसू भर कर) प्यारे इतना तो वे नहीं सताते जो पहिले सुख देते हैं तो तुम किस नाते इतना सताते हैं ? क्योंकि —

जिय सूधी चितौन की साथै रही

सदा बातन में अनखा रहे ।

हसिके हरिचंद न बोले कभू

जिय दूरहिं सों ललचाय रहे ॥

नहिं नेकु दया उर आवत है

करि के कहा ऐसे सुभाय रहे ।

सुख कौन सो प्यारे दियो पहिले

जिहि के बदले यों सताय रहे ॥

हा ! क्या तुम्हें लाज भी नहीं आती ? लोग तो सात पैर संग चलते हैं उसका जन्म भर निबाह करते हैं और तुमको नित्य की प्रीति का निबाह नहीं है ! नहीं नहीं तुम्हारा तो ऐसा स्वभाव नहीं था यह नई बात है, यह बात नई है या तुम आप नये हो गये ।

हो ? भला कुछ तो लाज करो !

कितकों ढरिगो वह प्यार सबै

क्यों रुखाई नई यह साजत हो ।

हरिचन्द भये हो कहां के कहां

अन बोलिबे में नहिं छाजत हो ॥

नित को मिलनो तो किनारे रह्यो

मुख देखत ही दुरि भाजत हो ।

पहिले अपनाइ बढ़ाई के नेह

न रुसिबे में अब लाजत हो ॥

प्यारे जो यही गति करनी थी तो पहिले सोच लेते ।

क्योंकि,

तुम्हरे तुम्हरे सब कोऊ कहै

तुम्हें सो कहा प्यारे सुनात नहीं ।

बिरुदावली आपुनो राखो मिलो

मोहि सोचिबे की कोउ बात नहीं ॥

हरिचन्द जू होनी हुती सो भई

इन बातन सों कछु हात नहीं ।

अपनावते सोच बिचारि अबै

जल पान के पृथनी जात नहीं ॥

प्राणनाथ ! (आँखों में आंसू उमड़ उठे) अरे नेत्रों अपने किये का फल भोगो ।

घाइके आगे मिलीं पहिले तुम

कौन सों पृथि के सो मोहि भाखो ।

त्यों सब लाज तजी छिन में

केहि के कहे एतौ कियो अभिलाखो ॥

काज बिगारि सबै अपुनी

हरिचन्द जू धीरज क्यों नहिं राखो ।

क्यों अब रोई के प्रान तजी

अपुने किये को फल क्यों नहिं चाखो ॥

हा !

इन दुखियान कों न सुख सपने ह मिल्यो

योही सदा व्याकुल बिकल अकुलायगी ।

प्यारे हरिचन्द जू की बीती जानि औध जोपे

जैहें प्रान तऊ येतो साथ न समायगी ॥

देख्यो एक बारह न नैन भरि तोहि यातें
जौन जौन लोक जैहैं तहीं पछितायंगीं ।
बिना प्रान प्यारे भये दरस तुम्हारे हाथ
देखि लीजौ आखें ये खुली ही रहि जायंगीं ॥
परन्तु प्यारे अब इनको इसरा कौन अच्छा लगेगा
जिसे देख कर यह धीरज धरैगी, क्योंकि अमृत पीकर
फिर छाछ कैसे पीयेंगी ।
बिछुरे पिय के जग सुनो भयो
अब का करिए कहि पेंछि का ।
सुख छाड़ि के संगम को तुम्हरे
इन तुच्छन कों अब लेखिए का ॥
हरिचन्द जू हीरन को वेवहारन के
कांचन कों लै परेखिए का ।
जिन आखिन मैं तुव रूप बस्यो

उन आखिन सों अब देखिए का ॥
इससे नेत्र तुम तो अब बन्द ही रहो (आंचल से नेत्र
छिपाती है) ।

(बनदेवी^१ सन्ध्या^२ और वर्षा^३ आती हैं)

स.— अरी बन देवी । यह कौन आखिनैं मूढ़ि के
अकेली या निरजन बन मैं बैठी रही है ।

ब. दे.— अरी का तू याही नायं जानै ? यह राजा
चन्द्रभानु की बेटी चन्द्रावली है ।

वर्षा.— तो यहां क्यों बैठी है ।

ब. दे.— राम जानै (कुछ सोचकर) अहा जानी !
अरी, यह तो सदा ह्याई बैठी बक्यौ करै है और यह
तो या बन के स्वामी के पीछे बावरी होय गई है ।

वर्षा.— तो चलो यासूं कछू पूछ ।

ब. दे.— चल ।

(तीनों पास जाती हैं)

ब. दे.— (चन्द्रावली के कान के पास) अरी मेरी
बन की रानी चन्द्रावली ! (कुछ ठहर कर) राम ! सुने ह
नहीं है (और ऊंचे सुर से) अरी मेरी प्यारी सखी
चन्द्रावली ! (कुछ ठहर कर) हाय ! यह तो अपने सों
बाहर होय रही है अब काहे को सुनेगी (और ऊंचे सुर
से) अरी ! सुने नाय ने री मेरी अलख लड़ैती
चन्द्रावली !

च.— (आंख बन्द किये ही) हां हां अरी क्यों
चिल्लाया है चोर भाग जायगो ।

ब. दे.— कौन सो चोर ?

च.— माखन को चोर, चीरन को चोर, और मेरे

देश में ठीक नियम पर चलने वाला कोई आर्य

ब. दे.— सो कहाँ सो भाग जायगो ?

च.— फेर बकें जाय है अरी मैंने अपनी आखिन
में मूढ़ि राख्यौ है सो तू चिल्लायागी तो निकसि
भागेगो ।

ब. दे.— (चन्द्रावली की पीठ पर हाथ फेरती
है) ।

च.— (जल्दी से उठ, बन देवी का हाथ
पकड़कर) कहो ! प्राणनाथ अब कहाँ भागेगो ।
(बनदेवी का हाथ छुड़ा कर एक ओर वर्षा सन्ध्या दूसरी
ओर वृक्षों के पास हट जाती हैं)

च.— अच्छा क्या हुआ यों ही हृदय से भी
निकल जाओ तो जानूं तुमने हाथ छुड़ा लिया तो क्या
हुआ मैं तो हाथ नहीं छोड़ने की, हा ! अच्छी प्रीति
निवाही !

(बनदेवी सीटी बजाती है)

च.— देखो दुष्ट का, मेरा तो हाथ छुड़ा कर भाग
गया अब न जाने कहाँ खड़ा बंशी बजा रहा है । अरे
छलिया कहाँ छिपा है ? बोल बोल कि जीते जी न
बोलेगा (कुछ ठहर कर) मन बोल मैं आप पता लगा
लूंगी । (बन के वृक्षों से पूछती है) अरे वृक्षो बताओ तो
मेरा लुटेरा कहाँ छिपा है ? क्यों रं मोरो इस समय नहीं
बोलते नहीं तो रात को बोल के प्राण खाये जाते थे कहे
न वह कहाँ छिपा है (गाती है)

अहो अहो बन के रुख कहुं देख्यौ पिय प्यारो ।
मेरो हाथ छुड़ाइ कहौ वह कितै सिधारो ॥
अहो कदम्ब अहो अम्ब निम्ब अहो बकुल तमाला ।
तुम देख्यौ कहौ मन मोहन सुन्दर नंदलाला ॥
अहो कुंज बन लता विरुध तन पूछत तोसों ।
तुम देखे कहूं श्याम मनोहर कहहु न मोसों ॥
अहो जमुना अहो खग मृग हो अहो गोबरधन गिरि ।
तुम देखे कहूं प्रान पियारे मन मोहन हरि ॥

(एक एक पेड़ से जाकर गले लगती है)

(बन देवी फिर सीटी बजाती है)

च.— अहा देखो उधर खड़े प्राण प्यारे मुझे बुलाते
हैं तो चलो उधर ही चलें (अपने आभरण संवारती हैं)
(वर्षा और सन्ध्या पास आती हैं)

व.— (हाथ पकड़कर) कहाँ चली सजि कै ?

च.— पियारे सों मिलन काज ।

व.— कहाँ तू खड़ी है ?

१. हरा कपड़ा, पत्ते का किरीट, फूलों की माला ।

२. गहरा नारंगी कपड़ा ।

३. रंग सांवला लाल कपड़ा ।

च.— प्यारे ही को यह धाम है ।

ब.— कहा कहैं मुख सों ?

च.— पियारे प्राण प्यारे ।

ब.— कहा काज है ?

च.— पियारे सों मिलन काम है ॥

ब.— मैं हूँ कौन वो तो ?

च.— हमारे प्राण प्यारे ही न ?

ब.— तू है कौन ?

च.— पीतम पियारे मेरो नाम है ।

स.— (आश्चर्य से) पूछत सखी के एकै उत्तर
बतावति जकी सी एक रूप आज श्यामा भई श्याम
है ॥

(बन देवी आकर चन्द्रावली के पीछे से आँख बन्द करती
है)

च.— कौन है कौन है ?

ब. दे.— मैं हूँ ।

च.— कौन तू है ?

ब. दे.— (सामने आकर) मैं हूँ, तेरी सखी
वृन्दा ।

च.— तो मैं कौन हूँ ?

ब. दे.— तू तो मेरी सखी चन्द्रावली है न ? तू
अपने हूँ को भूल गई ।

च.— तो हम लोग अकेले बन में क्या कर रही
हैं ?

ब. दे.— तू अपने प्राण नाथे खोज रही है न ?

च.— हा ! प्राणनाथ ! हा ! प्यारे ! अकेले छोड़
के कहा ले गये ? नाथ ऐसी ही बदी थी ! प्यारे यह वन
इसी विरह का दुःख करने के हेतु बना है कि तुम्हारे
साथ बिहार करने को ? हा !
जो पै ऐसिहि करन रही ।

तो फिर क्यों अपने मुख सों तुम रस की बात कही ॥
हम जानी ऐसिहि बीतैगी जैसी बीति रही ।

सो उलटी कीनी बिधिना ने कछु नाहिं निबही ॥

हमैं बिसारि अनत रहे मोहन औरै चाल गही ।

'हरीचंद' कहा को कहा हवै गयौ कछु नहिं जात की ॥
(रोती है)

ब. दे.— (आँखों में आंसु भर के) प्यारी ! अरी
इतनी क्यों धरवाई जाय है देख तौ यह सखी खड़ी है सो
कहा कहैगी ।

च.— ये कौन है ?

ब. दे.— (वर्षा को दिखा कर) यह मेरी सखी
वर्षा है ।

च.— यह वर्षा है तो हा ! मेरा वह आनन्द का

घन कहाँ है ? हा ! मेरे प्यारे ! प्यारे कहाँ बरस रहे
हो ? प्यारे गरजना इधर और बरसना और कहीं ?

"बलि सांवरी सूरत मोहिनी मूरत

आखिन को कबौं आई दिखाइये ।

चातिक सी मरै प्यासी परी

इन्हें पानिप रूप सुधा कबौ प्याइये ॥

पीत पट बिजुरी से कबौ

हरिचंद जू धाड़ इतै चमकाइये ।

इतह कबौ आइकै आनन्द के घन

नेह को मेह पिया बरसाइये ॥"

प्यारे ! चाहे गरजो चाहैं लरजो — इन चातकों की
तो तुम्हारे बिना और गति ही नहीं है, क्योंकि फिर यह
कौन सुनेगा कि चातक ने दूसरा जल पी लिया ; प्यारे
तुम तो ऐसे करुणा के समुद्र हो कि केवल हमारे एक
जाचक के मांगने पर नदी नद भर देते हो तो चातक के
इस छोटे चंचु-पुट भरने में कौन श्रम है क्योंकि प्यारे
हम दूसरे पक्षी नहीं हैं कि किसी भाति प्यास बुझा लेंगे
हमारे तो हे श्याम घन तुम्ही अवलम्ब हो ; हा !
(नेत्रों में जल भर लेती है और तीनों परस्पर चकित हो
कर देखती हैं)

ब. दे.— सखी देख तो कछु इनकी हू सुन कछु
इनकी हू लाज कर अरी यह तो नई है ये कहा कहैगी ?

सं.— सखी यह कहा कहै है हम तौ याको प्रेम
देख बिना मोल की दासी होय रही है और तू पाँड़ताइन
बान के ज्ञान छाँटि रही है ।

च.— प्यारे ! देखो ये सब हँसती हैं — तो
हँसै, तुम आओ, कहाँ बन में छिपे हो ? तुम मुँह
दिखलाओ इनको हँसने दो ।

धारन दीजिए धीर हिण

कुलकानि को आजु बिगारन दीजिए ।

मारन दीजिए लाज सबै

हरिचन्द कलंक पसारन दीजिए ।

चार चवाइन कों चहुँ ओर सों

सोर मचाइ पुकारन दीजिए ॥

छाँड़ि संकोचन चन्द मुखे भरि लोचन आजु निहारन
दीजिए ॥

क्योंकि —

ये दुखियां सदा रोयों करैं बिधना

इन कों कबहूँ न दियो सुख ।

भूठहीं चार चवाइन के डर देख्यो

कियो उनहीं को लिए रुख ॥

छाँड़्यो सबै हरिचन्द तऊ न गयो

जिय सों यह हाय महा दुख ।

प्रान वचै केहि भातिन सों तरसै

जब दूर सों देखिवै कों मुख ॥

ब. दे.— (आंसू अपने आंचल से पोछकर) तौ ये यहां नांय रहिवे की सखी एक घड़ी धीरज धर जब हम चली जांय तब जो चाहियो सो करियो ।

च.— अरी सखियो मोहि छमा करियो, अरी देखौ तो तुम मेरे पास आई और हमने तुमारो कछु सिष्टाचार न कियो । (नेत्रों में आंसू भर कर, हाथ जोड़कर) सखी मोहि छमा करियो और जानियो कि जहां मेरी बहुत सुखी हैं उन में एक ऐसी कुलच्छिनी हूं है ।

सं और ब.— नहीं नहीं सखी तू तो मेरी प्रानन सों हूं प्यारी है, सखी हम सच कहें तेरी सी सांची प्रेमिन एक हू न देखी ऐसे तो सबी प्रेम करै पर तू सखी धन्य है ।

चं.— हां सखी और (संध्या को दिखा कर) या सखी को नाम का है ?

ब. दे.— याको नाम संध्या है ।

चं.— (घबड़ा कर) संध्यावली आई ? क्या कुछ संदेसा लाई ? कहो कहो प्रान प्यारे ने क्या कहा ? सखी बड़ी देर लगाई (कुछ ठहर कर) संध्या हुई है ? संध्या हुई ? तो वह वन से आते होंगे सखियो चलो भरोखों में बैठें यहां क्यों बैठी हो ।

(नेपथ्य में चन्द्रोदय होता है, चन्द्रमा को देखकर)
अरे-२ यह देखो आया ।

(उंगली से दिखा कर)

देख सखी देख अनमेख ऐसी मेख यह

जाहि पेख तेज रविहू को मंद हवै गयो ।

हरिचन्द ताप सब हिय को नसाइ चित

आनन्द बढ़ाइ भाइ अति छकि सों छयो ॥

गवाल उड़गन बीच बेनु को बजाइ सुधा

रस बरखाइ मान कमल लजा दयो ।

गोरज समूह घन पटल उचारि वह

गोप कूल कुमुद निसाकर उदै भयो ॥

चलो चलो उधर चलो । (उधर दौड़ती है)

ब. दे.— (हाथ पकड़ कर) अरी बावरी भई है चन्द्रम निकस्यो है के वह वन सों आवै है ?

चं.— (घबड़ा कर) का सूरज निकस्यो ? भोर भयो हाय ! हाय ! हाय ! या गरमी में या दुष्ट सूरज की तपन कैसे सही जायगी अरे भोर भयो हाय भोर भयो ! सब रात ऐसे ही बीत गई, हाय फेर वही घर के व्योहार चलैंगे, फेर वही नहानो वही खानो बेई बातें, हाय !

केहि पाप सों पापी न प्रान चलै

अटके कित कौन बिचार लयो ।

नहिं जान परै हरिचन्द कछु

बिधि ने हम सों हठ कौर ठयो ॥

निसि आजहू की गई हाय बिहाय

पिया बिनु कैसे न जीव गयो ॥

हत अभागिनी आखिन कों नित के

दुख देखिवे कों फिर भोर भयो ॥

तो चलो घर चलै, हाय हाय ! मां सों कौन वहाना करूंगी, क्योंकि वह जाती ही पूछेगी कि सब रात अकेली वन में कहा करती रही । (कुछ ठहर कर) पर प्यारे ! भला यह तो बताओ कि तुम आज की रात कहां रहे ? क्यों देखो तुम हमसे भूठ न बोले न ! बड़े भूठे हो, हा ? अपनों से तो भूठ मत बोला करो, आओ आओ अब तो आओ ।

आउ मेरे भूठन के सिरताज ।

छल के रूप कपट की मूरत मिथ्यावाद जहाज ।

क्यों परतिज्ञा करी रह्यो जो ऐसो उलटो काज ।

पहिले तो अपनाइ न आवत तजिवे में अब लाज ॥

चलो दूर हठो बड़े भूठे हो ।

आउ मेरे मोहन प्यारे भूठे ।

अपनी टारि प्रतिज्ञा कपटी उलटे हम सों रूठे ॥

मति परसो तन रगे और को रंग अघर तुम जूठे ।

ताहू पै तिनको लाजत निरलज अहो अनूठे ॥

पर प्यारे बताओ तो तुम्हारे बिना राता क्यों इतनी बढ़ जाती है ?

काम कछु नहिं यासों हमें

सुख सों जहां चाहिए रैन बिताइए ।

पै जो करै बिनती हरिचन्द जू

उत्तर ताको कृपा कै सुनाइए ॥

एक मतो उनसो क्यों कियो तुम

सोउ न आवै जो आप न आइए ।

रुसिबे सों पिय प्यारे तिहारे

दिवाकर रुसत है क्यों बताइए ॥

जाओ जाओ मैं नहीं बोलती (एक वृक्ष की आड़ में दौड़ जाती है)

तीनों— भई ! यह तो बावरी सी डोलै, चलो हम सब वृक्ष की छाया में बैठे (किनारे एक पास ही तीनों बैठ जाती हैं)

चंद्रा.— (घबराई हुई आती है अंचल केश इत्यादि खुल जाते हैं) कहां गया कहां गया ? बोल ! उलटा रुसना, भला अपराध मैंने किया कि तुमने ? अच्छा मैंने किया सही, क्षमा करो, आओ, प्रगत हो, मुंह दिखाओ, भई बहुत भई गुदगुदाना वहां तक जहां तक रुलाई न आवै (कुछ सोचकर) हा ! भगवान किसी को

किसी की कनौड़ी न करे, देखो मुखको इसकी कैसी बातें सहनी पड़ती हैं । आप ही नहीं भी आता उलटा आप ही रुसता है, पर क्या करू अब तो फंस गई, अच्छा यों ही सही । ('अहो अहो बन के रुख' इत्यादि गाती हुई वृक्षों से पूछती है) हाय ! कोई नहीं बतलाता अरे मेरे नित के साथियो कुछ तो सहाय करो ।

अरे पौन सुख मौन सबै थल गौन तुम्हारो ।
क्यों न कहौ राधिका रौन सों मौन निवारो ॥
अहे भंवर तुम श्याम रंग मोहन ब्रत धारी ।
क्यों न कहौ वा निठुर श्याम सों दसा हमारी ॥
अहे हंस तुम राज बंस तरवर की सोभा ।
क्यों न कहौ मेरे मानस सों या दुख के गोभा ।
हे सारस तुम नीके बिछुरन बेदन जानौ ।
तौ क्यों पीतम सों नहिं मेरी दसा बखानौ ॥
हे कोकिल कुल श्याम रंग के तुम अनुरागी ।
क्यों नहिं बोलहु तहीं जाय जहं हरि बड़ भागी ॥
हे पपिहा तुम पिउ पिउ पिय पिय पिय रटत सबाई ॥
आजहु क्यों नहिं रटि रटि कै पिय लेहु बुलाई ॥
अहे भानु तुम तो घर घर में किरिन प्रकासो ॥
क्यों नहिं पियहिं मिलाइ हमारो दुख तम नासो ॥
हाय !

कोउ नहिं उत्तर देत भये सबही निरमोही ।
प्राण पियारे अब बोलौ कहाँ खोजौ तोही ॥
(चन्द्रमा बदली की ओट हो जाता है और बादल छा जाते हैं)

(स्मरण करके) हाय ! मैं ऐसी भूली हुई थी कि रात को दिन बतलाती थी, अरे मैं किसको दृढ़ती थी, हा ! मेरी इस मूखता पर उन तीनों सखियों ने क्या कहा होगा, अरे यह तो चन्द्रमा था जो बदली को ओट में छिप गया । हा ! यह हत्यारिन वर्षा ऋतु है, मैं तो भूल गई थी, इस अधरे में मार्ग तो दिखाता ही नहीं चलूंगी कहाँ और घर कैसे पहुँचूंगी ? प्यारे देखो जो जो तुम्हारे मिलने में सुहाने जान पड़ते थे वही अब भयावने हो गये, हा ! जो बन आँखों में देखने में कैसा भला दिखाता था वही अब कैसा भयंकर दिखाई पड़ता है, देखो सब कुछ है एक तुम्ही नहीं हो (नेत्रों से आँसू गिरते हैं) प्यारे ! छोड़ के कहाँ चले गये ? नाथ ! आँखें बहुत प्यासी हो रही हैं इनको रूप सुधा कब पिलाओगे ? प्यारे बेनी की लट बंध गई हैं इन्हें कब सुलभाओगे (रोती है) नाथ इन आँसुओं को तुम्हारे बिना और कोई गोंछने वाला भी नहीं है, हा ! यह गत तो अनाथ की भी नहीं होती, अरे विधिना ! मुखे कौन सा सुख दिया था जिसके बदले इतना दुःख देता है, सुख का तो मैं नाम

सुन के चौक उठती थी और धीरज धर के कहती थी कि कभी तो दिन फिरेंगे सो अच्छे दिन फिरें । प्यारे बस बहुत भई अब नहीं सही जाती, मिलना दो तो जीते जी मिलजाओ । हाय ! जो भर आँखों देख भी लिया होता तो जी का उमाह निकल गया होता, मिलना दूर रहें मैं तो मुँह देखने को तरसती थी, कभी सपने में भी गले न लगाया, जब सपने में देखा तभी घबड़ा कर चौक उठी हाय ! इन घर वालों और बाहर वालों के पीछे कभी उनसे रो रो कर अपनी विपत भी न सुनाई कि जी भर जाता, लो घर वालो और बाहर वालो ब्रज को सम्हालो मैं तो अब यहीं (कंठ गदगद हो कर रोने लगती है) हाय रे निठुर ! मैं ऐसा निरमोही नहीं समझी थी, अरे इन बादलों की ओर देख के तो मिलता, इस ऋतु में तो परदेसी भी अपने घर आजाते हैं पर तू न मिला, हा ! मैं इसी दुख देखने को जीती हूँ कि वर्षा आवे और तुम न आओ, हाय ! फेर वर्षा आई, फेर पते हरे हुए, फेर कोइल बोली पर प्यारे तुम न मिले, हाय ! सब सखियाँ हिंडोले भूलती होंगी पर मैं किसके संग भूलूँ क्योंकि हिंडोला भुलाने वाले मिलेंगे पर आप भीज कर मुझे बचाने वाला और प्यारी कहने वाला कौन मिलेगा (रोती है) हा ! मैं बड़ी निर्लज्ज हूँ, अरे प्रेम मैने प्रेमिन बन कर तुझे भी लज्जित किया कि अब तक जीती हूँ, इन प्राणों को अब न जानें कौन लाहे लूटने हैं कि नहीं निकलते । अरे कोई देखा मेरो छाती ब्रज की तो नहीं है कि अब तक (इतना कहते ही मूर्छा खा कर ज्यों ही गिरा चाहती है उसी समय तीनों सखियाँ आकर सम्हालती हैं)

(जर्जानका गिरती है)

॥ प्रियान्वेषण नामक दूसरा अंक समाप्त हुआ ॥

दूसरे अंक के अंतर्गत

॥ अंकावतार ॥

॥ बीथी, वृक्षा ॥

(सन्ध्यावली दीड़ी हुई आती है)

सं.— राम राम ! मैं दौरत दौरत हार गई, या ब्रज की गऊ का है सांड हैं ; कैसी एक साथ पूँछ उठाय के मेरे संग दौरी हैं, तापें वा निपूते सुवल को बुरो होय और हूँ तुमड़ी बजाय के मेरी ओर उन सबनै लहकाय दीनी, अरे जो मैं एक संग प्रानन्ने छोड़ि के न भाजती तौ उनके रपट्टा में कबकी आय जाती । देखि आज वा सुवल की कौन गति कराऊँ, बड़ो दीठ भयो है

प्रानन की हांसी कौन काम की देखो तो आज सोमवार है नंदगांव में हाट लगी होगी मैं वहीं जाती इन सबने बीच की आय धरी, मैं चन्द्रावली की पाती वाके यारें सौप देती इतनों खुटकोऊ न रहतो । (घबड़ा कर) अरे आई ये गोवें तो फेर इतैही कूं अरराई । (दौड़कर जाती है और चोली में से पत्र गिर पड़ता है) (चंपकलता आती है)

चं.ल.— (पत्र गिरा हुआ देख कर) अरे ! यह चिट्ठी किसकी पड़ी है किसी की हो देखूं तो इसमें क्या लिखा है (उठा कर देखती है) राम राम ! न जाने किस दुखिया की लिखी है कि आंसुओं से भीज कर ऐसी चपट गई है कि पढ़ी ही नहीं जाती और खोलने में फट जाती है (बड़ी कठिनाई से खोल कर पढ़ती है) प्यारे !

क्या लिखूं ! तुम बड़े दुष्ट हो चलो भला सब अपनी बीरता हम पर दिखानी थी । हां ! भला मैंने तो लोक वेद अपना विराना सब छोड़कर तुम्हें पाया तुमने हमें छोड़ के क्या पाया ? और जो धर्म उपदेश करो तो धर्म से फल होता है, फल से धर्म नहीं होता निर्लज्ज, लाज भी नहीं आती मुंह ढको फिर भी बोलने बिना डूब जाते हो, चलो वाह ! अच्छी प्रीति निबाही, जो हो तुम जानते हो ही, हाय कभी न कहूँगी योंही सही अन्त मरना है मैंने अपनी ओर से खबर दे दी अब मेरा दोष नहीं बस ।

“केवल तुम्हारी”

(लंबी सांस लेकर) हा ! बुला रोग है न करै किसी के सिर बैठे बिठाए यह चक्र घहराय, इन चिट्ठी के देखने से कलेजा कांपा जाता है, बुरा ! तिसमें स्त्रियों की बड़ी बुरी दशा है क्योंकि कपोतव्रत बुरा होता है कि गला घोट डालो मुंह से बात न निकले । प्रेम भी इसी का नाम है, राम राम उस मुंह से जीम खींच ली जाय जिससे हाय निकले । इस व्यथा को मैं जानती हूं कि और कोई क्या जानैगा क्योंकि जाके पांव न भई बिवाई सो क्या जाने पीर पराई । यह तो हुआ पर यह चिट्ठी है किसी की यह न जान पड़ी (कुछ सोचकर) अहा जानी ! निश्चय यह चन्द्रावली ही की चिट्ठी है । क्योंकि अक्षर भी उसी के से हैं और इस पर चन्द्रावली का चिन्ह भी बनाया है । हा ! मेरी सखी बुरी फंसी, मैं तो पहिले ही उसके लच्छनों से जान गई थी पर इतना नहीं जानती थी, अहा गुप्त प्रीति भी विलक्षण होती है, देखो इस प्रीति में संसार की रीति से कुछ भी लाभ नहीं, मनुष्य न इधर होता है न उधर का, संसार के सुख छोड़कर अपने हाथ आप मूर्ख बन जाता है । जो हो

यह पत्र तो मैं आप उन्हें जाकर दे आऊंगी और मिलने की भी विनती करूँगी ।

(नेपथ्य में बूढ़ों के से सुर से)

हां तू सब करैगी ।

चं.— (सुन कर और सोचकर) अरे यह कौन है (देख कर) न जाने कोऊ बूढ़ी फूस सी डोकी है ऐसे न होय के यह बात फोड़ि के उलटी आग लगावै, अब तो पहिले याहि समझचावनो परचो, चलूं (जाती है) ।।इति द्वितीया के भेद प्रकाश नामकों कावतार : ।।

तीसरा अंक

।। समय तीसरा पहर, गहिरा बादल छाये हुए ।।

।। स्थान तालाब के पास एक बगीचा ।।

।। झूला पड़ा है, कुछ सखी झूलती कुछ इधर उधर फिरती हैं ।।

(चन्द्रावली, माधवी, काममंजरी, विलासिनी, इत्यादि एक स्थान पर बैठी हैं, चन्द्रकान्ता, वल्लभा, श्यामला, मामा, भूले पर हैं, कामिनी और माधुरी हाथ में हाथ दिए घूमती हैं)

का.— सखी, देख बरसात भी अब की किस धूम धाम से आई है मानो कामदेव ने अवलाओं को निर्बल जान कर इनके जीतने को अपनी सैना भिजवाई है । धूम से चारों ओर से घुम घुम कर बादल परे के परे जमाये वगपंगति का निसान उड़ाये लपलपाती नंगी तलवारसी बिजली चमकाते गरज-गरज कर डराते बान के समान पानी बरखा रहे हैं और इन दुष्टों का जो बढ़ने को मोर करखासा कुछ अलग पुकार पुकार गा रहे हैं । कुल की मर्याद ही पर इन निगोड़ों की चढ़ाई है । मनोरथों से कलेजा उमगा आता है और काम की उमंग जो अंग अंग में भरी है उनके निकले बिना जी तिलमिलाता है । ऐसे बादलों को देखकर कौन लाज की चहर रख सकती है और कैसे पतिव्रत पाल सकती है !

माधु.— विशेष कर वह जो आप कामिनी हो (हंसती है) ।

का.— चल तुम्हें हंसने ही की पड़ी है । देख भूमि चारों ओर हरी हरी हो रही है । नदी नाले बावली तालाब सब भर गये । पक्षी लोग पर समेटे पतों की आड़ में चुपचाप सकपके से होकर बैठे हैं । बीरबहूटी और जुगनू पारी पारी रात और दिन को इधर उधर बहुत दिखाई पड़ती हैं । नदियों के करारे धमाधम टूट

कर गिरते हैं। सर्प निकल निकल अशरण से इधर उधर भागे फिरते हैं। मार्ग बन्द हो रहे हैं। परदेशी जो जिस नगर में हैं वहीं पड़े पड़े पछता रहे हैं आगे बढ़ नहीं सकते। वियोगियों को तो मानो छोटा प्रलय काल ही आया है।

माधु.— छोटा क्यों बड़ा प्रलय काल आया है। पानी चारों ओर से उमड़ ही रहा है। लाज के बड़े बड़े जहाज गारद हो चुके, भया फिर वियोगियों के हिसाब तो संसार डूबाही है तो प्रलय ही ठहरा।

का.— पर तुझ को तो कटे कृष्ण का अवलम्ब है न, फिर तुझे क्या, भाँडीर घट के पास उस दिन खड़ी बात कर ही रही थी, गए हम —

माधु.— और चन्द्रवली ?

का.— हाँ, चन्द्रवली विचारी तो आप ही गई बीती है उसमें भी अब तो पहरों में हैं, नजर बन्द रहती है, झलक भी नहीं देखने पाती, अब क्या —

माधु.— जाने दे नित्य का भँखना। देख, फिर पुरवैया भुकोरने लगी और वृक्षों से लपटी लताएँ फिर से लरजने लगीं। साड़ियों के आँचल और दामन फिर उड़ने लगे और मोर लोगों ने एक साथ फिर शोर किया। देख यह घटा अभी गरज गई थी फिर गरजने लगी।

का.— सखी वसंत का ठंडा पवन और सरद की चांदनी से राम राम करके वियोगियों के प्राण बच भी सकते हैं, पर इन काली काली घटा और पुरवैया के भोंके तथा पानी के एकतार भमाके से तो कोई भी न बचेगा।

माधु.— तिसमें तू तो कामिनी ठहरी तू बचना क्या जाने।

का.— चल ठोलेलिन। तेरी आँखों में अभी तक उस दिन की खूमारी भरी है इसी से किसी को कुछ नहीं समझती। तेरे सिर बीते तो मालूम पड़े।

माधु.— बीती है मेरे सिर। मैं ऐसी कच्ची नहीं कि थोड़े में बहुत उबल पड़ूँ।

का.— चल तू हुई है क्या न उबल पड़ेगी स्त्री की विसात ही कितनी बड़े बड़े योगियों के ध्यान इस बरसात में छूट जाते हैं, कोई योगी होने ही पर मन ही मन पछताते हैं कोई जटा पटक कर हाय-हाय चिल्लाते हैं और बहुतेरे तो तूमड़ी तोड़ तोड़कर योगी से भोगी हो ही जाते हैं।

माधु.— तो तू भी किसी सिद्ध से कान फुंकवा कर तुमड़ी तोड़वा ले।

का.— चल ! तू क्या जाने इस पीर को। सखी

यही भूमि और यही कदम कुछ दूसरे ही हो रहे हैं और यह दुष्ट बादल मन ही दूसरा किये देते हैं। तुझे प्रेम हो तब सुमै। इस आनन्द की धुनि में संसार ही दूसरा एक विचित्र शोभा वाला और सहज काम जगाने वाला मालूम पड़ता है।

माधु.— कामिनी पर काम का दावा है इसी से हेर फेर उसी को बहुत छेड़ा करता है।

(नेपथ्य में बारम्बार मोर कूकते हैं)

का.— हाय हाय इस कठिन कुलाहल से बचने का उपाय एक विषपान ही है। इन दर्दमारों का कूकना और पुरवैया का भुकोर कर चलना यह दो बात बड़ी कठिन है। धन्य हैं वे जो ऐसे समय में रंग रंग के कपड़े पहिने ऊँची ऊँची अटारियों पर चढ़ी पीतम के संग घटा और हरियाली देखती हैं वा बगीचों, पहाड़ों और मैदानों में गलबाहीं डाले फिरती हैं। दोनों परस्पर पानी बचाते हैं और रंगीन कपड़े निचोड़ कर चौकुना रंग बढ़ाते हैं भूलते हैं, भुलाते हैं, हँसते हैं, हँसाते हैं, भीगते हैं, भिगाते हैं, गाते हैं, गवाते हैं, और गले लगते हैं, लगाते हैं।

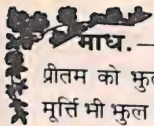
माधु.— और तेरो न कोई पानी बचाने वाला न तुझे कोई निचोड़ने वाला, फिर चौगुने की कौन कहे ड्यूँदा सवाया तो तेरा रंग बढ़े ही गा नहीं।

का.— चल लुच्चिन ! जाके पायं न भई विवाई सों क्या जाने पीर पराई। (बात करती करती पेड़ की आड़ में चली आती है)

माधवी.— (चन्द्रवली से) सखी, श्यामला का दर्शन कर, देख कैसी सुहावनी मालूम पड़ती है। मुखचन्द्र पर चूनरी चुई पड़ती है। लटै सगबगी हो कर गले में लपट रही हैं। कपड़े अंग में लपट गये हैं। भोगने से मुख का पान और काजल सब की एक विचित्र शोभा हो गई है।

चं.— क्यों न हो। हमारे प्यारे की प्यारी हैं। मैं पास होती हो दोनों हाथों से इसकी बलैया लेती और छाती से लगाती।

का.— सखी, सचमुच आज तो इस कदंब के नीचे रंग बरस रहा है जैसी समा बंधी है वैसी ही भूलने वाली है। भूलने में रंग रंग की साड़ी की अर्द्ध चन्द्राकार रेखा इन्द्र धनुष की छवि दिखाती है। कोई सुख से बैठे भूले की ठंडी ठंडी हवा खा रही है, कोई गाती बाधे लाग कसे पेंग मारती है, कोई गाती है कोई डर कर दूसरी के गले में लपट जाती है, कोई उतरने को अनेक सौगंद देती है पर दूसरी उसको चिढ़ाने को भूला और भी भोंको से भुला देती है।



माध.— हिंडोरा ही नहीं भूलता । हृदय में प्रीतम को भुलाने के मनोरथ और नैनो में पिया की मूर्ति भी भुल रही है । सखी आज सांवला ही की मेंहदी और चूनरी पर तो रंग है । देख बिजुरी की चमक में उसकी मुखछबि कैसी सुन्दर चमक उठती है और वैसे पवन भी बार बार घूघट उलट देता है । देख — हलति हिये में प्रान प्यारे के विरह सूल

फूलति उमंग भरी भूलति हिंडोरे पै ।
गावति रिझावति हंसावति सबन हरि-

चंद चाव चौगुनो बढाइ धन घोरे पै ॥
वारि वारि डारौ प्रान हंसनि मुरनि वत-

रान मुंह पान कजरारे दूग डोरे पै ॥
ऊनरी घटामें देखि दूनरी लगी है आहा

कैसी आबु चूनरी फवी है मुखगोरे पै ॥

चं.— सखियो देखो कैसे अधेर गजब है कि या रत में सब अपनो मनोरथ पूरो करे और मेरी यह दुरगति होय ! भला काहुबे तो दया आवती । (आँखों में आंसू भर लेती है ।)

माध.— सखी तू क्यों उदास होय है । हम सब कहा करे हम तो आज्ञाकारिणी दासी ठहरी, हमारो का अखत्यार है तऊ हममें सों तो कोऊ कछू तोहि नायं कहे ।

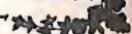
का.मं.— भलो सखी हम याहि कहा कहैगी याहू तो हमारी छोटी स्वामिनी ठहरी ।

विला.— हां सखी हमारी तो दोऊ स्वामिनी हैं । सखी बात यह है कै खराबी तो हम लोगन की है, ये दोऊ फेर एक की एक होयगी । लाठी मारवे सों पानी थोरों हं जुदा हो जायगो, पर अभी जो सुन पावें कि टिमकी सखी ने चन्द्रावलिये अकेलि छोड़ि दीनी तो फेर देखो तमासा ।

माध.— हम्बे बीर । और केर कामहू तो हमीं सब बिगारे । अब देखि कौन ने स्वामिनी सों चुगली खाई । हमारेई तुमारे में सों बहू है । सखी चन्द्रावलिये जो दुःख देयगी वह आप दुःख पावैगी ।

चं.— (आप ही आप) हाय ! प्यारे हमारी यह दशा होती है और तुम तनिक नहीं ध्यान देते प्यारे फिर यह शरीर कहाँ और हम तुम कहाँ ? प्यारे यह संयोग को तो अब की ही बना है फिर यह बातें दुर्लभ हो जायेंगी । हाय नाथ ! मैं अपने इन मनोरथों को किस को सुनाऊँ और अपनी उमंगें कैसे निकालूँ । प्यारे रात छोटी है और स्वांग बहुत है । जीना थोड़ा और उत्साह बढ़ा । हाय ! मुझ सी मोह में डूबी को कहीं ठिकाना नहीं । रात दिन रोते ही बीतते हैं । कोई बात पूछने

वाला नहीं क्योंकि संसार में जो कोई नहीं देखता सब ऊपर ही की बात देखते हैं । हाय ! मैं तो अपने पराये सब से बुरी बन कर बेकाम हो गई । सब को छोड़ कर तुम्हारा आसरा पकड़ा था सो तुमने यह गति की । हाय ! मैं किसी की होके रहूँ, मैं किस का मुंह देख कर जिऊँ । प्यारे मेरे पीछे कोई ऐसा चाहने वाला न मिलेगा । प्यारे फिर दीया लेकर मुझको खोजोगे । हा तुमने विश्वासघात किया । प्यारे तुम्हारे निर्दयीपन की भी कहानी चलेगी । हमारा तो कपोतव्रत है । हाय स्नेह लगा कर दगा देने पर भी सुजान कहलाते हो । बकरा जान से गया पर खाने वाले को स्वाद न मिला । हाय यह न समझा था कि यह परिणाम करोगे । वाह खूब निबाह किया । बधिक भी बध कर सुधि लेता है, पर तुमने न सुधि ली । हाय एक बेर तो आकर अंक में लगा जाओ । प्यारे जीते जी आदमी का गुन नहीं मालूम होता । हाय फिर तुम्हारे मिलने को कौन तरसेगा और कौन रोवेगा । हाय संसार छोड़ा भी नहीं जाता सब दुःख सहती हूँ पर इसी में फंसी पड़ी हूँ । हाय नाथ ! चारों ओर से जकड़ कर ऐसी ऐसी बेकाम क्यों कर डाली है । प्यारे योंही रोते दिन बीतेंगे । नाथ यह हवस मन की मन ही में रह जायगी । प्यारे प्रगट होकर संसार का मुंह क्यों नहीं बंद करते और क्यों शंका द्वार खुला रखते हो । प्यारे सब दीनदयालुता कहाँ गई ! प्यारे जल्दी इस संसार में छुड़ाओ । अब नहीं सहो जाती । प्यारे जैसी हैं, तुम्हारी हैं । प्यारे अपने कनौड़े को जगत की कनौड़ी मत बनाओ । नाथ जहाँ इतने गुन सीखे वहाँ प्रीति निबाहना क्यों न सीखा । हाय ! मन्मदार में हुवा कर ऊपर से उतराई मांगते हो, प्यारे सो भी दे चुकी अब तो पार लगाओ । प्यारे सब की हद होती है । हाय हम तड़पे और तुम तमाशा देखो । जन कुटुम्ब से छुड़ा कर यों छितर बितर करके बेकाम देना यह कौन बात है । हाय सब की आँखों में हलकी हो गई । जहाँ जाओ वहाँ दूर दूर, उस पर यह गति । हाय "भामिनी तें भौड़ी करी मानिनी तें मौड़ी करी कौड़ी करी हीरा तें कनौड़ी करी कुलते" तुम पर बड़ा क्रोध आता है और कुछ कहने को जी चाहता है । बस अब में गाली दूंगी । और क्या कहूँ, बस आप आप ही हो ; देखो गाली में भी तुम्हें मैं मर्म वाक्य कहूंगी — भूठे, निर्दय, निर्धुन, निर्दय हृदय कपाट" बखेड़िये और निर्लज्य ये सब तुम्हें सच्ची गालियाँ हैं ; भला जो कुछ करना ही नहीं था तो इतना क्यों भूठ बके ? किसने बकाया था ? कूद कूद कर प्रतिज्ञा करने बिना क्या डूबी जाती थी ? भूठे ! भूठे !! भूठे !!! भूठे ही नहीं बरंच



विश्वासघातक ; क्यों इतनी छात ठोक और हाथ उठा उठाकर कर लोगों को विश्वास दिया ? आप ही सब मरते चाहे जहन्नुम में पड़ते, और उस पर तुरा यह है कि किसी को चाहे कितना भी दुःख देखें आपको कुछ घृणा तो आती ही नहीं, हाथ हाथ कैसे कैसे दुखी लोग हैं — और मजा तो यह है कि सब धान बाइस पसेरी । चाहे आपके वास्ते दुःखी हो, चाहे अपने संसार के दुःख से, आपको, दोनों उल्लू फंसे हैं । इसी से तो "निर्दय हृदय कपाट" यह नाम है । भला क्या काम था कि इतना पचड़ा किया ? किसने इस उपद्रव और जाल करने को कहा था ? कुछ न होता तुम्हीं तुम रहते वस चैन था केवल आनन्द था फिर क्यों यह विषमय संसार किया । बखेड़िये । और इतने बड़े कारखाने पर बेहयाई परलेसिरे की । नाम बिके, लोग भूठा कहें, अपने मारे फिरें, आप भी अपने मुंह भूठे बनें, पर बाहरे शुद्ध बेहयाई और पूरी निर्लज्जता । बेशरमी हो तो इतनी तो हो । क्या कहना है लाज को जूतों मार के पीट पीट के निकाल दिया है । जिस मुहल्ले में आप रहते हैं उस मुहल्ले में लाज की हवा भी नहीं जाती । जब ऐसे हो तब ऐसे हों । हाथ एक बेर भी मुंह दिखा दिया होता तो मतवाले मतवाले बने क्यों लड़ लड़कर सिर फोड़ते । अच्छे खासे अनूठे निर्लज्ज हो, काहे को ऐसे बेशरम मिलेंगे, हुकुमी बेहया हो, कितनी गाली दूं बड़े भारी पूरे हो, शरमाओगे थोड़े ही कि माथा खाली करना सुफल हो । जाने दो — हम भी तो वैसी ही निर्लज्ज और भूठी हैं । क्यों न हों । जस दुलह तस बनी बराता । पर इसमें भी मूल उपद्रव तुम्हारा ही है, पर यह जान रखना कि इतना और कोई न कहैगा क्योंकि सिफारशी नेतिनेति कहेंगे, सच्ची थोड़े ही कहेंगे । पर यह तो कहो कि यह दुखमय पचड़ा ऐसा ही फैला रहैगा कि कुछ तै भी होगा वा न तै होय । हम को क्या ? पर हमारा तो पचड़ा छुड़ाओ । हाथ मैं किससे कहती हूं । कोई सुनने वाला है । जंगल में मोर नाचा किसने देखा । नहीं नहीं वह सब देखता है, वा देखता होता तो अब तक मेरी खबर न लेता । पत्थर होता तो वह भी पसीजता । नहीं नहीं मैंने प्यारे को इतना दोष व्यर्थ दिया । प्यारे तुम्हारा दोष कुछ नहीं । यह सब मेरे कर्म के दोष है । नाथ मैं तो तुम्हारी नित्य की अपराधिनी हूं । प्यारे छमा करो । मेरे अपराधों की ओर न देखो अपनी ओर देखो (रोती है)

मा. — हाथ हाथ सखियो यह तो रोय रही है ।

का. म. — सखी प्यारी रोवै मती । सखी तोहि

मेरे सिर की सौह जो रोवै ।

मा. — सखी मैं तेरे हाथ जोड़ूं मत रोवै । सखी हम सबन को जीव भर्य आवै है ।

बि. — सखी जो तू कहैगी हम सब करैगी । हम भले ही प्रियाजी की रिस सहैगी पर तो सूं हम सब काह् वात सों बाहर नहीं ।

मं. — हाथ हाथ ! यह तो मानै ही नहीं (आंसू पोछ कर) मेरी प्यारी मैं हाथ जोड़ूं हा हा खाऊंमानि जा ।

का. म. — सखी यासों मति कछ कहौ । आओ हम सब मिलि के विचार करे जासों याको काम हो ।

बि. — सखी हमारे तो प्राणताई यापै निखावर है पर जो कछ उपाय सूझै ।

चं. — [रो कर] सखी एक उपाय मुझे सूझा है जो तुम मानो ।

मा. — सखी क्यों न मानैगी तू कहे क्यों नहीं ।

चं. — सखी मुझे यहां अकेली छोड़ जाओ ।

मां. — तो तू अकेली यहां का करेगी ?

चं. — जो मेरी इच्छा होगी ।

मां. — भलो तेरी इच्छा का होयगी हमइं सुनै ?

चं. — सखी वह उपाय कहा नहीं जाता ।

मां. — तौ का अपनी प्राण देगी । सखी हम ऐसी भोरी नहीं हैं कै तोहि अकेली छोड़ जायगी ।

बि. — सखी तू व्यर्थ प्राण देन को मनोरथ करै है तेरे प्राण तोहि न छोड़ेंगे । जो प्राण तोहि छोड़ जायगे तो इनको ऐसी सुन्दर शरीर फिर कहां मिलेगो ।

का. म. — सखी ऐसी बात हम सूं मति कहै, और जो कहे सो २ हम करियें को तयार हैं, और या बात को ध्यान तू सपनो हूं मैं मति करि । जब ताई हमारे प्राण है तब ताई तोहि न मरन दैयगी पीछे भलेइं जो होय सो होय ।

चं. — [रो कर] हाथ ! मरने भी नहीं पाती । यह अन्याय ।

मा. — सखी अन्याय नहीं यही न्याय है ।

का. मं. — जान दै मधवी वासों मति कछ पूछै । आओ हम तुम मिल कै सल्लाह करै अब का करनो चाहिए ।

बि. — हां माधवी तू ही चतुर है तू ही उपाय सोच ।

मां. — सखी मेरे भी मैं तो सूं मति आवै है । हम तीन हैं सो तीन काम बांटे लें । प्यारी तू के मनाइवै को मेरो जिम्मा । यही काम सब में कठिन है । और तुम दो उन मैं सो एक याके धरकेन सों याकी

सफाई करावे और एक लाल जू सों मिलिवे की कहै ।
का. म.— लाल जी सों मैं कहूँगी । मैं विन्ने
 बहुती लजाउंगी और जैसे होय गो वैसे यासों
 मिलाऊंगी ।

मां.— सखी बेऊ का करै । प्रिया जी के डर सों
 कल्ल नहीं कर सकै ।

बि.— सो प्रिय जी को जिम्मा तेरो हुई है ।

मा.— हां हां, प्रिया जी को जिम्मा मेरो ।

बि.— तौ याके घर को मेरौ ।

मा.— भयो फेर का । सखी काहू बात को सोच
 मति करै । उठि ।

चं.— सखियो ! व्यर्थ क्यों यत्न करती हो । मेरे
 भाग्य ऐसे नहीं हैं कि कोई काम सिद्ध हो ।

मा.— सखी हमारे भाग्य तो सीधे हैं । हम अपने
 भाग्य बल सों सब काम करैंगी ।

का. मं.— सखी तू व्यर्थ क्यों उदास भई जाय
 है । जब तक सांसा तब तक आसा ।

मां.— तौ सखी बस अब यह सलाह पक्की
 भई । जब ताई काम सिद्ध न होय तब ताई काहुवै खबर
 न परै ।

बि.— नहीं खबर कैसे परैगी ?

का. मं.— (चन्द्रावली का हाथ पकड़ कर) लै
 सखी अब उठि । चलि हिंडोरो भूलि ।

मां.— हां सखी अब तौ अनमनोपन छोड़ि ।

चं.— सखी छटा ही सा है पर मैं हिंडोरे न
 भूलूंगी । मेरे तो नेत्र आप ही हिंडोरे भूला करते हैं ।
 पल पटुली पै डोर प्रेम लगाय चारु

आसा ही के खंभ दाय गाढ़ के धरत है ।
 भुमका ललित काम पूरन उछाह भरयो

लोग बदनामी भूमि भालार भरत है ॥

हरीचन्द आंसू दूग नीर बरसाइ प्यारे

पिया गुन मान सो मलार उचरत है ।

मिलन मनोरथ के भोटन बढ़ाइ सदा

विरह हिंडोरे नैन भूल्योई करत है ॥

और सखी मेरा जी हिंडोरे पर और उदास होगा ।

मां.— तौ सखी तेरी जो प्रसन्नता होय ! हम तौ
 तेरे सुख की गाहक हैं ।

चं.— हा ! इन बादलों को देख कर तो और भी
 जी दुखी होता है ।

देखि घनस्याम घनस्याम की सुरतिकरि

जियमैं विरहघटा घहरि घहरि उठे ।

त्यौहीं इन्द्रधनु बगमाल देखि बनमाल

मोतीलर पीकी जय लहरि लहरि उठे ।

हरीचंद मोर पिक धुनि सुनि बंसीनाद

बांकी बार बार छहरि छहरि उठै ।

देखि देखि दामिनी की दुगुन दमक पीत

पट छोरे मेरे हिय फहरि फहरि उठे ।

हाय ! जो बरसात संसार को सुखद है वह मुझे
 इतनी दुखदाई हो रही है ।

मा.— तौ न दुखदायिनी होयगी । चल उठि पर
 चलि ।

का. मं.— हां चलि ।

(सब जाती हैं)

॥ जवनि का गिरती हैं ॥

॥ इति वर्षा वियोग विपत्ति नाम तृतीय अंक ॥

॥ चौथा अंक ॥

॥ स्थान चन्द्रावली जी की बैठक ॥

खिड़की में से यमुना जी दिखाई पड़ती है । पलांग
 बिछी हुई, परदे पड़े हुए इतरदान पानदान इत्यादि सजे
 हुए ।

(१ जोगिनी आती है)

जो.— अलख ! अलख ! आदेश आदेश गुरू
 को ! अरे कोई है इस घर में ? — कोई नहीं
 बोलता । क्या कोई नहीं है ? तो अब मैं क्या करूँ ?
 बैठूँ । का चिन्ता है । फकीरों को कहीं कुछ रोक
 नहीं । उसमें भी हम प्रेम की जोगी । तो अब कुछ
 गावें ।

(बैठकर गाती है)

“कोई एक जोगिन रूप कियै ।

भौहैं बक छकोहैं लोयन चलि चलि कोयन कान छिपै ॥

सोभा लखि मोहत नारीनर बारि फेरि जल सबहिं पियै ।

नागर मनमथ अलख जगावत गावत कांधे बनीं लियै २ १

१. गेरुआ सारी गहिना सब जनाना पछिने, रंग सांवला । सिंदूर का लम्बा टीका वेड़ा । बाल खुले हुए । हाथ
 में सारंगी लिये हुए । नेत्र लाल । अत्यन्त सुन्दर । जब जब गावैगी सारंगी बजा कर गावैगी ।

२. काफी ।

बनी मनमोहिनी जोगिनिया ।
गल सेली तन गेरुआ सारी
केस खुले सिर वैदी सोहनियां ।
मातै नैन लाल रंग डोरे मद
बोरे मोहै सबन छलिनियां ।
हाथ सरंगी लिये बजावत
गाय जगावत बिरह अगिनियः १ ॥२॥

जोगिन प्रेम की आई ।
बड़े बड़े नैन छुए कानन लौ चितवन मद अलसाई ॥
पूरी प्रीति रीति रस सानी प्रेमी जन मन भाई ॥
नेह नगर मैं अलख जगावत गावत बिरह बधाई ॥३॥
जोगिन आँखन प्रेम खुभारी ।
चंचल लोयन कोयल खुभि रही काजर रेंख ढरारी ॥
डोरे लाल लाल रस बोरे फैली मुख उजियारी ।
हाथ सरंगी लिये बजावत प्रेमिन प्रान पियारी ॥४॥
जोगिन मुख पर लट लटकाई ।
कारी धूधरवारी प्यारी देखत सब मन भाई ॥
छूटे केस गेरुआ बागे सोभा दुगुन बढ़ाई ।
सांचे ढरी प्रेम की मूर्ति आँखियां निरखि पिराई ।

(नेपथ्य में से यज्ञी की भनकार सुन कर)
अरे कोई आता है । तो मैं छिप रहूँ । चुपचाप सुनूँ ।
देखूँ यह सब क्या बातें करती हैं ।

(जोगिन जाती है, ललिता आती है)

ल. — हैं अब तक चन्द्रावली नहीं आई । सांभ
हो गई, न घर में कोई सखी है न दासी, भला कोई चोर
चकार चला आवे तो क्या हो । (छिड़की की ओर देख
कर) अहा ! यमुनाजी की कैसी शोभा हो रही है । जैसा
वर्षा का बीतना और शरद का आरंभ होना वैसा ही
वृंदावन के फूलों की सुगन्धि से मिले हुए पवन की
भ्रकोर से यमुना जी का लहराना कैसा सुन्दर और
सुहावना है कि चित को मोहे लेता है । अहा ! यमुना
जी की शोभ तो कुछ कही ही नहीं जाती । इस समय
चन्द्रावली होती तो यह शोभा उसे दिखाती । वा वह
देख ही के क्या करती उलटा उसका बिरह और
बढ़ता । (यमुनाजी की ओर देख कर) निस्सन्देह इस
समय बड़ी ही शोभा है ।

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये ।
भ्रुकुं कूल सों जल परसन हित मनहुँ सुहाये ।
किधौं मुकुर मैं लखत उभकि सब निज निज शोभा ।
कै प्रनवल जल जानि परम पावन फल लोभा ।
मनु आतप बारन तीर कों सिमिति सबै छाये रहत ।

कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत ।
कहँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भातिन ।
कहँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पातिन ।
मनु दुग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज सोभा ।
कै उमगे पिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा ।
कै करि कै बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई ।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ।

कै पिय पद उपमान जानि एहि निज उर धारत ।
कै मुख करि नहु भूंगन मिस अस्तुति उच्चारत ।
कै ब्रज तियगन बदन कमल की भलकत भाई ।
कै ब्रज हरिपद परस हेतु कमला बहु आई ।
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमंडल वगरे फिरत ।
कै जानि लच्छमीं भौन एहि करि सतधा निज जल धरत ।
तिन पै जेहि छिन चंद जोति राका निसि आवति ।
जल मैं मिलि कै नभ अवनी लौ तान तनावति ।
होत मुकुरमय सबै तवै उज्जल इक ओभा ।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा ।
सो को कवि जो छवि कहि सकै ताछन जमुना तीर की ।
मिलि अर्चनि और अम्बर रहत छवि इकसी नभ तीर की

परत चन्द्र प्रतिबिम्ब कहँ जल माँध चमकाओ ।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो ।
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो ।
कै तरंग कर मुकुर लिये सोभित छवि छायो ।
कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखात है ।
कै जल उर हरि मूर्ति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है
कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत ।
पावन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत ।
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै ।
कै तरंग की छोर हिंडोरन करत कलोलै ।

कै बालगुड़ी नभ मैं उड़ी सोहत इत उत धावती ।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती ।
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल ।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अँवकल ।
कै कालिन्दी नीर तरंग जितो उपजावत ।
तितनौ ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ॥
कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत ।
कै निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि बैठत कसरत
करत ॥

कृजत कहूँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत ।
कहूँ कारंडव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत ।

१. चैती गौरी वा पीलू खेमटा ।

चक्रवाक कहं वसत कहं वक ध्यान लगावत ॥
सुक पिक जल कहं पियत कहं भ्रमरावलि गावत ॥
कहं तट पर नाचत मोर बहुं रोर विविध पच्छी करत ॥
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय
धरत ॥

कहं बालुका विमल सकल कोमल बहु छाई ॥
उज्जल भलकत रजत सिद्धी मनु सरस सुहाई ॥
पिय के आगम हेत पांवड़े मनहुं बिछाये ॥
रत्नरासि करि चूर कूल मैं मनु बगराये ॥
मनु मुक्त मांग सोभित भरी,

श्यामनीर चिकरन परसि ।
सतगुन छाये के तीर मैं,

ब्रज निवास लखि हिय हरसि ।

(चन्द्रावली अचानक आती है)

चं. — वाह वाहरी बैहना आजु तो बड़ी कविता
करी । कविताई की मोट की मोट खोलि दीनी । मैं सब
छिपें छिपे सुनती ।

(दवे पांव से योगिन आकर एक कोने में खड़ी हो जाती
है)

ल. — भलो भलो बीर तोहि कविता सुनिबे को
सुधि तै जाई हमारे इतनोई बहुत है ।

चं. — (सुनते ही स्मरण पूर्वक लम्बी सांस
लेकर)

सखीरी क्यों सुधि मोहि दिवाई ।

हैं अपने गृह कारज भूली भूलि रही विलमाई ॥
फेर वहै मन भयो जात अब मरिहौं जिय अकुलाई ॥
हैं तवही लौं जगत काज की जब लौं रहौं भुलाई ॥

ल. — चल जान दै दूसरी बात कर ।

जो. — (आप ही आप) निस्सन्देह इसका प्रेम
पक्का है, देखो मेरी सुधि आते हो इसके कपोलों पर
कैसी एक साथ जरदी दौड़ गई । नेत्रों में आंसुओं का
प्रवाह उमग आया । मुंह सूख कर छोटासा हो गया ।
हाय ! एकही पल में यह तो कुछ की कुछ हो गई । अरे
इसकी तो यही गति है ।

छरीसी छकीसी जड़ा भईसी जकीसी घर

हारीसी बिकीसी सो तो सबही घरी रहे ।
बोले तें न बोले दूग खोले नाहि डोले बैठी

एकटक देखे सो खिलोनासी धरी रहे ॥

हरीचन्द ओरो घबरात समुझायें हाय

हिचकि हिचकी रोवे जीवति भरी रहे ॥

याद आयें सखिन रोवावे दुख कहि कहि

तौलौं सुख पावे जौलौं मुरछि परी रहे ।

अब तो मुझ से रहा नहीं जाता । इससे मिलने को

अब तो सभी अंग व्याकुल हो रहे हैं ।

चं. — (ललिता की बात सुनी अनसुनी करके
बायें अंग का फरकना देखकर आप ही आप) अरे यह
असमय में अच्छा सगुन क्यों होता है । (कुछ ठहर
कर) हाय आशा भी क्या ही बुरी वस्तु है और प्रेम भी
मनुष्य को कैसा अन्धा कर देता है । भला वह कहाँ
और मैं कहाँ, पर जो इसी भरोसे पर फूला जाता है कि
अच्छा सगुन हुआ है तो जरूर आवेंगे (हँसकर)
हैं — उनको हमारी इस वखत फिकिर होगी । मान
न मान मैं तेरा मिहमान मन को अपने ही मतलब की
सुझती है । मेरो पिय मोहि बात न पूछे तऊ सोहागिन
नाम (लम्बी सांस लेकर) हा ! देखो प्रेम की गति ! यह
कभी आशा नहीं छोड़ती जिसको आप चाहो वह चाहे
भूठ मूठ भी बात न पूछे पर अपने जी को यह भरोसा
रहता है कि वे भी जरूर इतना ही चाहते होंगे (कलेजे
पर हाथ रखकर) रहो रहो क्यों उमगे आते हो धीरज
धरो, वे कुछ दीवार में से थोड़े ही निकल आवेंगे ।

जो. — (आप ही आप) होगा प्यारी ऐसा ही
होगा । प्यारी मैं तो यहीं हूँ । यह मेरा ही कलेजा है
कि अंतर्ध्यामी कहला कर भी अपने लोगों से मिलने में
इतनी देर लगती है । (प्रगट सामने बढ़कर)
अलख ! अलख !

(दोनों आदर करके बैठती हैं)

ल. — हमारे बड़े भाग जो आपुसी महात्मा के
दर्शन भये ।

चं. — (आप ही आप) न जानें क्यों इस योगिन
की और मेरा मन आप से आप खिंचा जाता है ।

जो. — भला हम अतीतन को दरसत कहा योहों
घर घर डोलत फिरें ।

ल. — कहाँ तुम्हारे देस है ।

जो. — प्रेम नगर प्रिय गांव ।

ल. — कहा गुरु कहि बोलहीं ।

जो. — प्रेमी मेरो नांव ॥

ल. — जो लियो केहि कारनै ।

जो. — अपने पिय के काज ।

ल. — मंत्र कौन ?

जो. — पियनामइक ।

ल. — कहा तज्यौ ?

जो. — जगलाज ।

ल. — आसन कित ।

जो. — जितही रमे ।

ल. — पन्थ कौन ।

जो. — अनुराग ।

ल.— साधन कौन ।

जो.— पिया मिलन ।

ल.— गादी कौन ।

जो.— सुहाग ।

नैन कहे गुरु मन दियो, विरह सिद्धि उपदेस ।
तब सो सब कुछ छोड़ि हम, फिरत देस परदेस ॥

चं.— (आप ही आप) हाय ! यह भी कोई बड़ी
भारी बियोगिनि है तभी इसकी ओर मेरा मन आपसे
आप खिंचा जाता है ।

ल.— तो संसार को जोग औरहीं रकम को है
और आप को तो पन्थ ही दूसरी । है । तो भला हम
यह पूछें कि का संसार के ओर जोगी लोग वृथा जोग
साधें हैं ।

जो.— यमैं का सन्देह है सुनो (सारंगी छेड़ कर
गाती है)

पंचि मरत वृथा सब लोग जोग सिरधारी ।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ॥
विरहागिन धूनी चारों ओर लगाई ।
बंसी धुनि की मुद्रा कानो पहिराई ॥
अंसुअन की सेली गल में लगत सुहाई ।
घर धूर जमी सोई अंग भभूत रमाई ।
लट उरफि रहीं सोई लटकाई लटकारी ।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ।
गुरु विरह दियो उपदेस सुनो ब्रजबाला ।
पिय विछुरन दुख का (ज ?) बिछाओ तुम मृगछाला ॥

मन के मन के की जपो पिया की माला ।
विरहिन की तो हैं सभी निराली चाला ॥
पीतम से लगि लौ अचल समाधि न टारी ।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ॥
यह है सुहाग का अचल हमारे बाना ।
असगुन की मूरति खाक न कभी चढ़ाना ।
सि सेंदुर देकर चोटी गूथ बनाना ।
कर चूरी मुख में रंग तमोल जमाना ॥
पीना प्याला भर रखना वही खुमारी ।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ॥
हे पन्थ हमारा नैनो के मत जाना ।
कुल लोक वेद सब औ परलोक मिटाना ॥
शिवजी से जोगी को भी जोग सिखाना ॥
हरिचन्द एक प्यारे से नेह बढ़ाना ॥
ऐसे बियोग पर लाख जोग बलिहारी ।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ॥

चं.— (आप ही आप) हाय हाय इसका
गाना कैसा जी को बंधे डालता है । इसके शब्द

का जीपर एक ऐसा विचित्र अधिकार होता है
कि वर्णन के बाहर हैं । या मेरा जी ही चोटल
हो रहा है । हाय हाय ! ठीक प्राण प्यारे की सी
इसकी आवाज है । (बल पूर्वक आंसुओं को
रोक कर और जी बहला कर) कुछ इस से और
गावाऊं । (प्रकट) योगिन जी कष्ट न हो तो कुछ और
गाओ । (कह कर कभी चाव से उसकी ओर देखती है
और कभी नीचा सिर करके कुछ सोचने लगती है ।)
जो.— (मुसका कर) अच्छा प्यारी ! सुनो (गाती
है)

जोगिन रूप सुधा की प्यासी ।
बिनु पिय मिलें फिरत
बन ही बन छाई मुखहि उदासी ।
भोग छोड़ि धन धाम
काम तजि भई प्रेम बनबासी ।
पिय हित अलख अलख रट
लागी पीतम रूप उपासी ।
मन मोहन प्यारे तेरे लिए
जोगिन बन बन बन छान फिरी ॥
कोमल से तन पर खाक मली
ले जोग स्वांग सामान फिरी ॥
तेरे दरसन कारन डगर डगर
करती तेरा गुन गान फिरी ।
अब तो सूरत दिखला प्यारे
हरिचन्द बहुत हैरान फिरी ।

चं.— (आप ही आप) हाय यह तो सभी बातें पते
की कहती है । मेरा कलेजा तो एक साथ ऊपर को
खिंचा आता है । हाय ! 'अब तो सूरत दिखला
प्यारे' ।

जो.— तो अब तुम को भी गाना होगा । यहां तो
फकीर हैं । हम तुम्हारे सामने गावें तुम हमारे सामने न
गाओगी । (आप ही आप) भला इसी बहाने प्यारी की
अमृत बानी तो सुनैगे । (प्रकट) हां ! देखो हमारी यह
पहिली भिक्षा खाली न जाय हम तो फकीर हैं हमसे
कौन लाज है ।

चं.— भला मैं गाना क्या जानूं । और फिर मेरा
जी भी आज अच्छा नहीं है गला बैठ हुआ है । (कुछ
ठहर कर नीची आंख कर के) और फिर मुझे संकोच
लगता है ।

जो.— (मुसक्या कर) वाह रे संकोच वाली ।
भला मुझ से कौन संकोच है ? मैं फिर रुठ जाऊंगी जो
मेरा कहना न करेगी ।

चं.— (आप ही आप) हाय हाय ! इसकी कैसी

मीठी बोलन है जो एक साथ जी को छीने लेती है । जरा से झूठे क्रोध से जो इसने भौहें तनेनी की हैं वह कैसे भली मालूम पड़ती है । हाय ! प्राणनाथ कहीं तुम्हीं तो जोगिन नहीं बन आए हो । (प्रकट) नहीं नहीं रूठो मत मैं क्यों न गाऊंगी । जो भला बुरा आता है सुना दूंगी, पर फिर भी कहती हूं आप मेरे गाने से प्रसन्न न होगी । ऐ मैं हाथ जोड़ती हूं, मुझे न गवाओ (हाथ जोड़ती है) ।

ल.— वाह तुझे नये पाहुने की बात अवश्य माननी होगी । ले मैं तेरे हाथ जोड़ूं हूं, क्यों न गावैगी । यह तो उससे बहाली बता जो न जानती हो ।

चं.— तो तू ही क्यों नहीं गाती । दूसरों पर हुकुम चलाने को तो बड़ी मुस्तैद होती है ।

जो.— हां हां सखी तू ही न पहिले गा । ले मैं सरंगी से सुर की आस देती जाती हूं ।

ल.— यह देखो । जो बोले सो धी को जाय । मुझे क्या, मैं अभी गाती हूं ।

(राग विभाग गाती है)

अलख गति जुगल पिया प्यारी की ।
को लाखि कै लाखत नहीं आवै तेरी गिरिधारी की ॥
बलि बलि बिछुरनि मिलनि

हंसनि रूठनि नितहीं यारी की ।

त्रिभुवन की सब रति गति मति

छवि या पर बलिहारी की ॥

चं.— (आप ही आप) हाय ! यहां आज न जाने क्या हो रहा है मैं कुछ सपना तो नहीं देखती । तुझे तो आज कुछ सामान ही दूसरे दिखाई पड़ते हैं । मेरे तो कुछ समझ ही नहीं पड़ता कि मैं क्या देख सुन रही हूं । क्या मैंने कुछ नशा तो नहीं पिया है । अरे यह योगिन कहीं जादूगर तो नहीं है । (घबड़ाती सी होकर इधर उधर देखती है)

(इसकी दशा देखकर ललिता सकपकाती और जोगिन हंसती है)

ल.— क्यों ? आप हंसती क्यों हैं ?

जो.— नहीं योंही मैं इस को गीत सुनाया चाहती हूं पर जो यह फिर गाने का करार करे ।

चं.— (घबड़ा कर) हां मैं अवश्य गाऊंगी आप गाइए ।

(फिर ध्यानावस्थित सी हो जाती है) ।

(सारंगी बजाकर गाती है)

(संकरा)

जो.—

तू केहि चितवति चकित मृगीसी ।

केहि द्रुढ़त तेरो कहा खोयो

क्यों अकुलाति लखाति ठगीसी ॥

तन सुधि करु उघरत री आंचर

कौन ख्याल तू रहति खगीसी ।

उतरु न देत जकीसी बैठी मद

पीयो कै रैन जगीसी ॥

चौकि चौकि चितवति चारहु

दिस सपने पिय देखति उमगीसी ॥

भूलि बैखरी मृग छौनी ज्यों निज

दल तजि कहुं दूर भगीसी ॥

करति न लाज हाट घर बर की

कुलमरजादा जाति डगीसी ।

हरीचंद ऐसिहि उरभी तो

क्यों नहिं डोलत संग लगीसी ॥

तू केहि चितवति चकित मृगीसी ।

चं.— (उन्माद से) डोलूंगी डोलूंगी संग लगी (स्मरण करके लाज कर आप की आप) हाय हाय ! मुझे क्या हो गया है । मैंने सब लज्जा ऐसी धो बहाई कि आये गये भीतर बाहर वाले सब के सामने कुछ बक उठती हूं भला यह एक दिन के लिये आई बिचारी योगिन क्या कहेंगी ? तो भी धीरज ने इस समय बड़ी लाज रक्खी नहीं तो मैं राम-राम-नहीं-नहीं मैंने धीरे से कहा था किसी ने सुना न होगा । अहा ! संगीत और साहित्य में भी कैसा गुन होता है कि मनुष्य तन्मय हो जाता है । उस पर भी जले पर नोन । हाय ! नाथ हम अपने उन अनुभव सिद्ध अनुशासनों और बड़े हुए मनोरथों को किस को सुनावें जा काव्य के एक एक तुक और संगीत की एक एक तान से लाख लाख गुन बढ़ते हैं और तुम्हारे मधुर रूप और चरित्र के ध्यान से अपने आप ऐसे उज्ज्वल सरस और प्रेममय हो जाते हैं । मानो सब प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं । पर हा ! अंत में करुणा रस में उनकी समाप्ति होती है क्योंकि शरीर की सुधि आते ही एक साथ बेबसी का समुद्र उमड़ पड़ता है ।

जो.— वाह अब यह क्या सोच रही हो ! गाओ ले अब हम नहीं मानेंगी ।

ल.— हां सखी अब अपना बचन सच कर ।

चं.— (अर्द्धन्माद की भांति) हां हां मैं गाती हूं । (कभी आंसू भर कर कभी कई बेर, कभी ठहर कर, कभी भाव बता कर, कभी बेसुर ताल ही, कभी ठीक ठीक कभी टूटी आवाज से पागल की भांति गाती है) मन की कासों पीर सुनाऊं ।

वकनो वृथा और पत खोनी सबै चवाई गाऊं ॥

कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहै धरिहै उलटो नाऊं ॥
 यह तों जो जानै सोइ जानै क्यों करि प्रगट जनाऊं ॥
 रोम रोम अति नैन श्रवन मन केहि धुनि रूप लखाऊं ।
 बिना सुजान शिरोमनि री केहि हियरो काढ़ि दिखाऊं ॥
 मरमिन सखिन वियोग दुखिन क्यों

कहि निज दसा रोआऊं ।
 हरीचंद पिय थिले तो पग परि गहि पटुका समझाऊं ॥
 (गाते गाते बेसुध होकर गिरा चाहती है कि एक
 बिजली सी चमकती है और योगिन श्रीकृष्ण बनकर
 उठाकर गले लगाते हैं और नेपथ्य में बाजे बजते हैं)

ल. — (बड़े आनंद से) सखी बधाई है, लाखन
 बधाई है । ले होश में आ जा । देख तो कौन तुझे गोद
 में लिये है)

चं. — (उन्माद की भांति भगवान के गले में
 लपट कर) ।

पिय तोहि राखौगी भुजन में बाधि ।
 जान न देहों तोहि पियारे धरौगी हिये सों नाधि ॥
 बाहर गर लगाइ राखौगी अन्तर कैसेगी समाधि ।
 हरीचन्द छूटन नहिं पैहों लाल चतुरई साधि ।
 पिय तोहि कैसे हिय राखौं छिपाय ?

सुन्दर रूप लखत सब कोऊ यहै कसक जिय आय ॥
 नैनन में पुतरी करि राखौं पलकन ओट दुराय ।
 हियरे में मनहू के अन्तर कैसे लेउं लुकाय ।
 मेरो भाग रूप पिय तुमरी छीनत सौतैं हाय ।
 हरीचन्द जीवन धन मेरे छिपत न क्यों इत धाय ॥
 पिय तुम और कहैं जिन जाहु ।

लेन देहु किन मो रकिन को रूप सुधा रस लाहु ।
 जो जो कही करौं सोइ सोई धरि जिय अमित उछाहु ।
 राखौं हिये लगाइ पियारे किन मन कोहिं समाहु ॥
 अनुदिन सुन्दर बदन सुधानिधि नैन चकोर दिखाहु ।
 हरिचन्द पलकन की ओटें छिनहु न नाथ दुराहु ॥
 पिय तोहि कैसे बस करि राखौ ।
 तुव दूग मैं दूग तुव हिय मैं निज हियरो केहि विधि

नाखौं ॥
 कहा करौं का जनत विचारौ बिनती केहि विधि भाखौं ।
 हरीचन्द प्यासी जनमन की अधरसुधा किमि चाखौं ॥

भगवान् — तो प्यारी मैं तोहि छोड़ि के कहां
 जाऊंगी तू तो मेरी स्वरूप ही है । यह सब प्रेम की
 वि. — सखी ! बधाई है । स्वामिनी ने आज्ञा
 दई है के प्यारे सों कही दे चन्द्रावली की कुंज में सुखेन
 पचारी ।

चिं. — (बड़े आनंद से घबड़ाकर ललितता
 विशाखा से) सखियो, मैं तो तुम्हारे लिए पीतम पाये

हैं । (हाथ जोड़कर) तुमारो गुन जनम जनम गाऊंगी ।

वि. — सखी, पीतम तेरो तू पीतम की, हम तो
 तेरी टहलानी हैं । यह सब तो तुम सबन की लीला है ।
 यामैं कौन बोले और बोले हू कहा जो कछु समझै तो
 बोले — या प्रेम को तो अकथ कहानी है । तेरे प्रेम को
 परिलेख तो प्रेम की टकसाल होयगो और उत्तम प्रेमिन
 को छोड़ि और काहू की समझ ही में न आवेंगो । तू
 धन्य तेरो, प्रेम धन्य, या प्रेम के समझिवारे धन्य और
 तेरे प्रेम को चरित्र जो पढ़े सो धन्य । तो मैं और
 सिन्धु करिवे को तेरी लीला है ।

ल. — अहा ! इस समय जो मुझे आनन्द हुआ है
 उसका अनुभव और कौन कर सकता है । जो आनन्द
 चन्द्रावली को हुआ है वही अनुभव मुझे भी होता है ।
 सच है युगल के अनुग्रह बिना इस अकथ आनन्द का
 अनुभव और किस को है ?

चं. — पर नाथ ऐसे निठुर क्यों हो ! अपनों को
 तुम कैसे दुखी देख सकते हो ? हा ! लाखों बातें सोची
 थी कि जब कभी पाऊंगी तो यह कहूंगी यह पूछूंगी पर
 आज सामने कुछ नहीं पूछा जाता !

भ. — प्यारी मैं निठुर नहीं हूँ । मैं तो अपने
 प्रेमिन को बिना मोल को दास हूँ । परन्तु मोहि निहचै
 है के हमारे प्रेमिन को हम सों हूँ हमारो विरह प्यारी
 है । ताही सों मैं हूँ बचाय जाऊँ हूँ । या निठुरता मैं जे
 प्रेमी हैं विनको तो प्रेम और बढ़े और जे कच्चे हैं विनके
 बात खुल जाय । सो प्यारी वह बात हूँ दूरसेन की है ।
 तुमारो का तुम और हम तो एक ही है न तुम हम सों
 जुदी हो न प्यारी जू सों । हमने तो पहिले ही कही के
 यह सब लीला है । (हाथ जोड़कर) प्यारी छिमा
 करियो, हम तो तुम्हारे सबन के जनम जनम के रानियाँ
 हैं । तुमसे हम कभू उरिन नौईवेई के नहीं । (आँखों
 में आंसू भर जाते हैं) ।

चं. — (घबड़ाकर दोनों हाथ छुड़ाकर आंसू भर
 के) बस बस नाथ बहुत भई, इतनी न सही जायगी ।
 आपकी आँखों में आंसू देखकर मुझसे धीरज न धरा
 जायगा (गले लगा लेती है) ।

(विशाखा आती है)
 स्वामिनी में भेद नहीं है, ताहू मैं रस की पोषक ठैरी ।
 बस, अब हमारी बोलन की यही बिनती है के तुम बोल
 गलबाही दे के विराजौ और हम युगलजोड़ी को दर्शन
 करि आज नेत्र सफल करै ।

(गलबाही देकर युगल स्वरूप बैठते हैं)

दोनों —
 नीके निरखि निहारो नैन भरि नैनन को फल आजु लहो री

जुगल रूप छाँव अमित माधुरी

रूप-सुधा-रस-सिंधु बहौ री ।

इनही सौं अभिलाख लाख करि

इक इनहीं को नितहि चहौ री ।

जो नर तनहि सफल करि चाहौ

इनहीं के पद कंज गहौ री ।

करम-ज्ञान-संसार-जाल तजि

बरु बदनामी कोठि सहौ री ।

इनहीं के रस-मत्त भगन नित

इनहीं के हवै जगत रहौ री ॥

इनके बल जग-जाल कोटि अब

तुन सम प्रेम प्रभाव दहौ री ॥

इनहीं को सरबस करि जानौ यहै

मनोरथ जिय उमहौ री ॥

राधा चंद्रावली-कृष्ण-ब्रज-जमुना-

गिरिवर सुखहिं कहौ री ।

जनम जनम यह कठिन प्रेमव्रत

'हरीचंद' इकरस निबहौ री ॥

भ. — प्यारी ! और जो इच्छा होय सो कहौ ।

काहे सो कै जो तुम्है प्यारो है सोई हमैं हूँ प्यारो है ।

चं. — नाथ ! और कोई इच्छा नहीं, हमारी तो

सब इच्छा की अवधि आपके दर्शन ही ताई है तथापि

भरत को यह वाक्य सफल होय —

परमारथ स्वारथ दोउ कह सँग मेलि न सानैं ।

जे आचारज होई धरम निज तेइ पहिचानैं ॥

बृंदाविपिन बिहार सदा सुख सो थिर होई ।

जन बल्लभी कहाइ भक्ति बिनु होइ न कोई ॥

जगजाल छाँहि अधिकार लहि कृष्णचरित सबही कहै ।

यह रतनदीप हरिप्रेम को सदा प्रकाशित जग रहे ॥

(फूल की वृष्टि होती है, बाजे बजते हैं और ज्वरनिका गिरती है)

इति परमफल चतुर्थ अंक



भारत दुर्दशा

सन् १८७५ में छपा दुखान्त रूपक है, जिसे भारतेन्दु नाट्य रासक या लास्य रूपक कहते हैं ।

— सं.

भारतदुर्दशा

(मंगलाचरण)

जय सतजुग-थापन-करन, नासन म्लेच्छ-आचार ।

कठिन धार तरवार कर, कृष्ण कलिक अवतार ॥

पहिला अंक

स्थान — बीथी

(एक योगी गाता है)

(लावनी)

रोवहु सब मिलिके आवहु भारत भाई ।

हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ॥ ध्रुव ॥

सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनों ।

सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनों ॥

सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनों ।

सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनों ॥

अब सबके पीछे सोई परत लखाई ।

हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ॥

जहं भए शाक्य हरिचंदरु नहुष ययाती ।
जहं राम युधिष्ठिर बासुदेव सर्याती ॥
जहं भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती ।
तहं रही मूढ़ता कलह अविद्या राती ॥
अब जहं देखहु तहं दुःखहिं दुःख दिखाई ।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ॥
लरि वैदिक जैन दुबाई पुस्तक सारी ।
करि कलह बुलाई जवनसेन पुनि भारी ॥
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहु बारी ।
छाई अब आलस कुमति कलह अंधियारी ॥
भए अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई ।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ।
अंगरेजराज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन बिदेश चलि जात इहै अति ख्वारी ।
ताह्र पै महंगी काल रोग बिस्तारी ।
दिन दिन दूने दुःख ईस देत हा हा री ॥
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई ।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ।

(पटोत्तोलन)



दूसरा अंक

स्थान — श्मशान, टूटे-फूटे मंदिर

कोआ, कुत्ता, स्यार घूमते हुए, अस्थि इधर-उधर पड़ी है ।

(भारत^१ का प्रवेश)

भारत — हा ! यह वही भूमि है जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचंद्र के इतत्व करने पर भी वीरोत्तम दुर्योधन ने कहा था, 'सूच्यग्रं नेव दास्यामि बिना युद्धेन केशव' और आज हम उसी को देखते हैं कि श्मशान हो रही है । अरे यहाँ की योग्यता, विद्या, सम्पत्ता, उद्योग, उदारता, धन, बल, मान, बुद्धिचिंतता, सत्य सब कहाँ गए ? अरे पामर जयचन्द्र ! तेरे उत्पन्न हुए बिना मेरा क्या ड़्वा जाता था ? हाय ! अब मुझे कोई शरण

देनेवाला नहीं । (रोता है) मात ; राजराजेश्वरी विजयिनी ! मुझे बचाओ । अपनाए की लाज रक्खो । अरे देव ने सब कुछ मेरा नाश कर दिया पर अभी संतुष्ट नहीं हुआ । हाय ! मैंने जाना था कि अंगरेजों के हाथ में आकर हम अपने दुखी मन को पुस्तकों से बहलावेंगे और सुख मानकर जन्म बितावेंगे पर देव से यह भी न सहा गया । हाय ! कोई बचानेवाला नहीं ।

(गीत)

कोऊ नहिं पकरत मेरो हाथ ।
बीस कोटि सुत होत फिरत मैं हा हा होय अनाथ ॥
जाकी सरन गहत सोइ मारत सुनत न कोउ दुखगाथ ।
दीन बन्यो इस सों उत डोलत टकरावत निज माथ ॥
दिन दिन बिपति बढ़त सुख छीजत देत कोऊ नहिं साथ ।

सब विधि दुख सागर में ड़्बत धाइ उबारो नाथ ॥

(नेपथ्य में गंभीर और कठोर स्वर से)

अब भी तुझको अपने साथ का भरोसा है ! खड़ा तो रह ! अभी मैंने तेरी आशा की जड़ न खोद डाली तो मेरा नाम नहीं ।

भारत — (डरता और कांपता हुआ रोकर) अरे यह विकराल वदन कौन मुँह बाए मेरी ओर दौड़ता चला आता है ? हाय-हाय इससे कैसे बचेंगे ? अरे यह तो मेरा एक ही क्रौर कर जायगा ! हाय ! परमेश्वर बैकुंठ में और राजराजेश्वरी सात समुद्र पार, अब मेरी कौन दशा होगी ? हाय अब मेरे प्राण कौन बचावेगा ? अब कोई उपाय नहीं । अब मरा, अब मरा । (मूर्छा खाकर गिरता है)

(निर्लज्जता^२ आती है)

निर्लज्जता — मेरे आछत तुमको अपने प्राण की फिक्र । छि : छि : ! जीओगे तो भीख माँग खाओगे । प्राण देना तो कायरो का काम है । क्या हुआ जो धनमान सब गया 'एक जिंदगी हज़ार नेआमत है ।' (देखकर) अरे सचमुच बेहोश हो गया तो उठा ले वलें । नहीं नहीं मुझे अकेले न उठेगा । (नेपथ्य की ओर) आशा ! आशा ! जल्दी आओ ।

(आशा^३ आती है)

निर्लज्जता — यह देखो भारत मरता है, जल्दी इसे घर उठा ले चलो ।

१. फटे कपड़े पहिने, सिर पर अर्ध किरीट, हाथ में टेकने की छड़ी, शिथिल अंग ।

२. जाँचिया — सिर खुला — ऊँची चोली — दुपट्टा ऐसा गिरता पड़ता कि अंग खुले, सिर खुला, खानगियों का सा वेध ।

३. लड़की के वेध में ।

आशा—मेरे आछत किसी ने भी प्राण दिया है ?
ले चलो : अभी जिलाती हूँ ।
(बोनों उठाकर भारत को ले जाती है)

तीसरा अंक स्थान — मैदान

(फौज के डेर दिखाई पड़ते हैं ! भारतदुर्दैव ? आता है)
भारतदु.— कहां गया भारत मूर्ख ! जिसको
अब भी परमेश्वर और राजराजेश्वरी का भरोसा है ?
देखो तो अभी इसकी क्या क्या दुर्दशा होती है ।
(नाचता और गाता हुआ)

अरे !
उपजा ईश्वर कोप से औ आया भारत बीच ।
छार छार सब हिंद कहूँ मैं, तो उत्तम नहिं नीच ।
मुखे तुम सहज न जानो जी, मुखे इक राक्षस मानो जी ।
कौड़ी कौड़ी को कहूँ मैं सबको मुहताब ।
भूखे प्राण निकालूँ इनका, तो मैं सच्चा राज । मुझे,
काल भी लाऊँ महंगी लाऊँ, और बुलाऊँ रोग ।
पानी उलटा कर बरसाऊँ, छाऊँ जग में सोग । मुझे,
फूट बैर और कलह बुलाऊँ, ल्याऊँ सुस्ती जोर ।
घरघर में आलस फैलाऊँ, छाऊँ दुख घनघोर । मुझे,
काफर काला नीच पुकारूँ, तोई पैर और हाथ ।
हैं इनको संतोष खुशामद, कायरता भी साथ । मुझे,
मरी बुलाऊँ देस उजाड़ूँ, महंगा करके अन्न ।
सबके ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुखको धन ।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी ।
(नाचता है)

अब भारत कहां जाता है, ले लिया है । एक तस्सा
बाकी है, अबकी हाथ में वह भी साफ है । भला हमारे
बिना और ऐसा कौन कर सकता है कि अंगरेजी
अमलदारी में भी हिंद न सुधरे ! लिया भी तो अंगरेजों
से औगुन ! हा हाहा ! कुछ पढ़े लिखे मिलकर देश
सुधारा चाहते हैं ? हहा हहा ! एक चने से भाड़
फोड़ोगे । ऐसे लोगों को दमन करने को मैं ज़िले के
हार्कियों को न हुक्म देगा कि इनको डिसलायल्टी में
पकड़ो और ऐसे लोगों को हर तरह से खारिज करके
जितना जो बड़ा मेरा मित्र हो उसको उतना बड़ा मेडल
और खिताब दो । हैं ! हमारी पालिसी के विरुद्ध उद्योग
करते हैं, मूर्ख ! यह क्यों ? मैं अपनी फौज ही भेज के
उन सब चौपट करता हूँ । (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे

कोई है ? सत्यानाश फौजदार को तो भेजो ।

(नेपथ्य में से 'जो आशा' का शब्द सुनाई पड़ता है)
देखो मैं क्या करता हूँ । किधर किधर भागेंगे ।

(सत्यानाश फौजदार आते हैं)
(नाचता हुआ)

सत्या. फौ.—

हमारा नाम है सत्यानास । आए हैं राजा के हम पास ।
धरके हम लाखों ही भेस । किया चौपट यह सारा देस ।
बहु हमने फैलाए धर्म । बड़ाया छुआछूत का कर्म ।
होके जयचंद हमने एक बार । खोल ही दिया हिंद का

द्वार ।
हलाकू चंगेजो तैमूर । हमारे अदना अदना सूर ।
दुरानी अहमद नादिरसाह । फौज के मेरे तुच्छ सिपाह ।
हैं हममें तीनों कल बल छल ।

इसी से कुछ नहीं सकती चल ।
पिलावैगे हम खूब शराब । करैगे सबको आज खराब ।

भारतदु.— अहा सत्यानाशजी आए । आओ,
देखो अभी फौज को हुक्म दो कि सब लोग मिल के
चारों ओर से हिंदुस्तान को घेर ले । जो पहले से घेरे हैं
उनके सिवा औरों को भी आज्ञा दो कि बढ़ चले ।

सत्या. फौ.— महाराज 'इंद्रजीत सन जो कछु
भाखा, सो सब जनु पहिलाहिं करि राखा ।' जिनको
आज्ञा हो चुकी है वे तो अपना काम कर ही चुके हैं और
जिनको जो हुक्म हो, कर दिया जाय ।

भारतदु.— किसने किसने क्या क्या किया
है ?

सत्या. फौ.— महाराज ! धर्म ने सबके पहिले
सेवा की ।

रवि बहु विधि के वाक्य पुरानन माँहि घुसाए ।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए ।।
जाति अनेकन करी नीच अरु ऊँच बनायो ।
खान पान संबंध सबन सों बरजि छुड़ायो ।।
जन्मपत्र विधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब ।
बालकपन में ब्याहि प्रीतिबल नास कियो सब ।।
करि कुलान के बहुत ब्याह बल वीरज मारयो ।
विधवा ब्याह निषेध कियो विभिचार प्रचारयो ।।
रोकि विलायतगमन कूपमंडक बनायो ।
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो ।।
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई ।
ईश्वर सो सब विमुख किए हिंदू घबराई ।।

१. क्रूर, आधा किस्तानी आधा मुसलमानी वेष, हाथ में नंगी तलवार लिए ।

भारतदु.— आहा ! हाहा ! शाबाश ! शाबाश !

हाँ और भी कुछ धर्म ने किया ?

सत्या. फौ.— हाँ महाराज ।

अपरस सोलहा द्यूत रवि, भोजनप्रीति छुड़ाय ।
किए तीन तेरह सबै, चौका चौका छाय ॥

भारतदु.— और भी कुछ ?

सत्या. फौ.— हाँ ।

रचिकै मत वेदांत को, सबको ब्रह्म बनाय ।
हिंदुन पुरुषोत्तम कियो, तोरि हाथ अरु पाय ॥
महाराज, वेदांत ने बड़ा ही उपकार किय । सब हिंदू
ब्रह्म हो गए । किसी को इतिकर्तव्यता बाकी ही न
रही । जानी बनकर ईश्वर से विमुख हुए, रुझ गए,
अभिमानि हुए और इसी से स्नेहशून्य हो गए । जब
स्नेह ही नहीं तब देशोद्वार का प्रयत्न कहाँ ! बस, जय
शंकर की ।

भारतदु.— अच्छा, और किसने किसने क्या
किया ?

सत्या. फौ.— महाराज, फिर संतोष ने भी
बड़ा काम किया । राजा प्रजा सबको अपना चेला बना
लिया । अब हिंदुओं को खाने मात्र से काम, देश से
कुछ काम नहीं । राज न रहा, पेनसन ही सही ।
रोजगार न रहा, सुद ही सही । वह भी नहीं, तो घर ही
का सही, 'संतोष' परम सुख' रोटी ही को सराह सराह
के खाते हैं । उद्यम की ओर देखते ही नहीं । निरुद्यमता
ने भी संतोष को बड़ी सहायता दी । इन दोनों को
वहादुरी का मेडल जरूर मिले । व्यापार को इन्हीं ने
मार गिराया ।

भारतदु.— और किसने क्या किया ?

सत्या. फौ.— फिर महाराज जो धन की सेना
बची थी उसको जीतने को भी मैंने बड़े बाके वीर भेजे ।
अपव्यय, अदालत, फैशन और सिफारिश इन चारों
ने सारी दुश्मन की फौज तितर बितर कर दी ।
अपव्यय ने खूब लूट मचाई । अदालत ने भी अच्छे हाथ
साफ किए । फैशन ने तो ब्रिल और टोटल के इतने
गोले मारे कि अंधाधार कर दिया और शिफारिश ने भी
खूब ही छकाया । पूरब से पच्छिम और पच्छिम से
पूरब तक पीछा करके खूब भगाया । तुहफे, घूस और
चंदे के ऐसे बम के गोले चलाए कि 'बम बोल गई बाबा
की चारों दिसा' घूम निकल पड़ी । मोटा भाई बना
बनाकर मूँड लिया । एक तो खुद ही यह सब पैडिया के
ताऊ, उस पर चुटकी बजी, खुशामद हुई, हर दिखाया

गया, बराबरी का झगड़ा उठा, धाँय धाँय गिनी
गई, १ वर्षमाला कंठ कराई, २ बस हाथी के खाए कैथ
हो गए । धन की सेना ऐसी भागी कि कन्नौ में भी न
बची, समुद्र के पार ही शरण मिली !

भारतदु.— और भला कुछ लोग छिपाकर भी
दुश्मनों की ओर भेजे थे ?

सत्या. फौ.— हाँ, सुनिए । फूट, डाह, लोभ,
भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ, शोक,
अश्रुमार्जन और निर्बलता इन एक दरजन दूती और दूतों
को शत्रुओं की फौज में हिला मिलाकर ऐसा पंचामृत
बनाया कि सारे शत्रु बिना मारे घंटा पर के गरुड़ हो
गए । फिर अंत में भिन्नता गई । इसने ऐसा सबको
काई की तरह फाड़ा कि भाषा, धर्म, चाल, व्यवहार,
खाना, पीना सब एक एक योजन पर अलग अलग कर
दिया । अब आवें बचा ऐक्य ! देखें आहीं के क्या करते
हैं !

भारतदु.— भला भारत का शस्य नामक
फौजदार अभी जीता है कि मर गया ? उसकी पलटन
कैसी है ?

सत्या. फौ.— महाराज ! उसका बल तो
आपकी अतिवृष्टि और अनावृष्टि नामक फौजों ने
बिलकुल तोड़ दिया । लाही, कीड़े, टड्डो और पाला
इत्यादि सिपाहियों ने खूब ही सहायता की । बीच में
नील ने भी नील बनकर अच्छा लंकादहन किया ।

भारतदु.— वाह ! वाह ! बड़े आनन्द की बात
सुनाई । तो अच्छा तुम जाओ । कुछ परवाह नहीं, अब
ले लिया है । बाकी साकी अभी सपराए डालता हूँ ।
अब भारत कहाँ जाता है । तुम होशियार रहना और
रोग, महर्घ, कर, मद्य, आलस और अधकार को जरा
क्रम से मेरे पास भेज दो ।

सत्या. फौ.— जो आज्ञा । (जाता है)

भारतदु.— अब उसको कहीं शरण न
मिलेगी । धन, बल और विद्या तीनों गई । अब
किसके बल कृदेगा ?

(जवनिका गिरती है)

पटोत्तोलन

१. सलामी मिली ।

२. पी. आई. ई. आदि उपाधियाँ मिली ।

चौथा अंक

(कमरा अंग्रेजी सजा हुआ, मेज, कुर्सी लगी हुई ;
कुर्सी पर भारत दुदेव बैठे हैं)
(रोग का प्रवेश)

रोग — (गाता हुआ) जगत सब मानत मेरी आन ।
जगत सब मानत मेरी आन ।

मेरी ही टट्टी रचि खेलत नित सिकार भगवान ।
मृत्यु कलक मिटावत मैं ही मो सम और न आन ।
परम पिता हम हीं वैद्यन के अतारन के प्रान ।।

मेरा प्रभाव जगत विदित है । कुपथ्य का मित्र और
पथ्य का शत्रु मैं ही हूँ । तैलोक्य में ऐसा कौन है
जिसपर मेरा प्रभुत्व नहीं । नजर, श्राप, भूत, प्रेत,
टोना, टनमन, देवी, देवता सब मेरे ही नामांतर हैं ।
मेरी ही बढौलत ओझा, दरसनिए, सयाने पडित, सिद्ध
लोगों को ठगते हैं । (आतंक से) भला मेरे प्रबल प्रताप
को ऐसा कौन है जो निवारण करे । हह ! चुंगी की
कमेटेी सफाई करके मेरा निवारण करना चाहती है, यह
नहीं जानती कि जितनी सड़क चौड़ी होगी उतने ही हम
भी 'जस जस सुरसा वदन बढ़ावा, तासु दुगुन कपि रूप
दिखावा' । (भारतदुदेव को देखकर) महाराज ! क्या
आज्ञा है ?

भारतदु. — आज्ञा क्या है, भारत को चारों ओर
से घेर लो ।

रोग — महाराज ! भारत तो अब मेरे प्रवेशमात्र
से मर जायगा । घेरने का कौन काम है ? धन्वंतरि
और काशिराज दिवोदास का अब समय नहीं है । और
न सुश्रुत, यागमट्ट, चरक ही हैं । वैदगी अब केवल
जीयिका के हेतु बची है । काल के बल से औषधों के
गुणों और लोगों की प्रकृति में भी भेद पड़ गया । बस
अब हमें कौन जीतेगा और फिर हम ऐसी सेना भेजेगे
जिनका भारतवासियों ने कभी नाम तो सुना ही न
होगा ; तब भला वे उसका प्रतिकार क्या करेंगे ! हम
भेजेगे विस्फोटक, हैजा, डेंगू, अपाण्लेक्सी । भला
इनको हिंदू लोग क्या रोकेंगे ? ये किधर से चढ़ाई
करते हैं और कैसे लड़ते हैं जानेंगे तो हई नहीं, फिर
छुड़ी हुई वरंच महाराज, इन्हीं से मारे जायेंगे और इन्हीं
को देवता करके पूजेंगे, यहाँ तक कि मेरे शत्रु डाक्टर
और विद्वान इसी विस्फोटक के नास का उपाय टीका
लगाना इत्यादि कहेंगे तो भी ये सब उसको शीतला के
हर से न मानेंगे और उपाय आछत अपने हाथ प्यारे
बच्चों की जान लेंगे ।

भारतदु. — तो अच्छा तुम जाओ । महर्घ और

टिकस भी यहाँ आते होंगे सो उनको साथ लिए जाओ ।
अतिवृष्टि, अनावृष्टि की सेना भी वहाँ जा चुकी है ।
अनक्य और अधिकार की सहायता से तुम्हें कोई भी
रोक न सकेगा । यह लो पान का बीड़ा लो । (बीड़ा देता
है)

(रोग बीड़ा लेकर प्रणाम करके जाता है)

भारतदु. — बस, अब कुछ चिंता नहीं. चारों
ओर से तो मेरी सेना ने उसको घेर लिया, अब कहाँ
बच सकता है ।

(आलस्य का प्रवेश)

आलस्य. — हहा ! एक पोस्ती ने कहा : पोस्ती
ने पी पोस्त नौ दिन चले अढ़ाई कोस । दूसरे ने जबाब
दिया, अब वह पोस्ती न होगा डाक का हरकारा होगा ।
पोस्ती ने जब पोस्त पी तो या कूँड़ी के उस पार या इस
पार ठीक है । एक बारी में हमारे दो चले लेटे थे और
उसी राह से एक सवार जाता था । पहिले ने पुकारा
"भाई सवार, सवार, यह पक्का आम टपक कर मेरी
छाती पर पड़ा है, जरा मेरे मुँह में तो डाल ।" सवार ने
कहा "अजी तुम बड़े आलसी हो । तुम्हारी छाती पर
आन पड़ा है सिर्फ हाथ से उठाकर मुँह में डालने में यह
आलस है ।" दूसरा बोला ठीक है साहब, यह बड़ा ही
आलसी है । रात भर कुत्ता मेरा मुँह चाटा किया और
यह पास ही पड़ा था पर इसने न हाँका ।" सब है किस
जिंदगी के वास्ते तकलीफ उठाना ; मजे में हालमस्त
पड़े रहना । सुख केवल हम में है 'आलसी पड़े कुएँ में
वहीं चैन है ।'

(गाता है)

गजल —

दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा ।
मर जाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा ।।
विस्तर प मिस्ले लोथ पड़े रहना हमेशा ।
बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा ।।
"रहने दो जमीं पर मुझे आराम यहीं है ।"
छेड़ो न नक्शेपा हैं मिटाना नहीं अच्छा ।।
उठ करके घर से कौन चले यार के घर तक ।
"मौत अच्छी है पर दिल का लगाना नहीं अच्छा ।"
धोती भी पहिने जब कि कोई गैर पिन्हा दे ।
उमरा को हाथ पैर चला नहीं अच्छा ।।
सिर भारी चीज है इसे तकलीफ हो तो हो ।
पर जीम बिचारी को सताना नहीं अच्छा ।।
फाकों से मरिए पर न कोई काम कीजिए ।
दुनिया नहीं अच्छी है जमान नहीं अच्छा ।।

१. मोट अदमी जैभाई लेता हुआ धीरे धीरे आवेगा ।

सिजदे से गर बिहिश्त मिले दूर कीजिए ।
 दो जख ही सही सिर का भुकाना नहीं अच्छा ॥
 मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलों को क्या ।
 ऐ मीरे फर्श रंज उठाना नहीं अच्छा ॥

और क्या । काजी जो दुबले क्यों, कहैं शहर के
 अंदेश से । अरे 'कोरु नृप होउ हमें का हानी, चेरी
 छाँड़ि नहि' होउव रानी ।' आनंद से जन्न बिताना ।
 'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम । दास
 मलुका कह गए, सबके दाता राम ।।' 'जो पड़तव्य' सो
 मरतव्य, जो न पड़तव्य' सो भी मरतव्य, तब फिर
 दंतकटाकट किं कर्तव्य' ?' भई जात में ब्राह्मण, धर्म
 में वीरागी, रोजगार में सूद और दिल्लीगी में गप सब से
 अच्छी । घर बैठे जन्न बिताना, न कहीं जाना और न
 कहीं आना सब खाना, हगना, मृतना, सोना, बात
 बनाना, तान मारना और मस्त रहना । अमीर के सर
 पर और क्या सुरखाब का पर होता है, जो कोई काम न
 करे वही अमीर । 'तबंगरी बदिलस्त न बमाल ।' ?
 दोई तो मस्त है या मालमस्त या हालमस्त ।
 (भारतदुर्दश को देखकर उसके पास जाकर प्रणाम
 करके) महाराज ! मैं सुख से सोया था कि आपकी आज्ञा
 पहुँची ज्यो त्यों कर यहाँ हाजिर हुआ । अब हुक्म ?

भारतदु.— तुम्हारे और साथी सब हिंदुस्तान
 की ओर भेजे गए हैं, तुम भी वहीं जाओ और अपनी
 जोगनिद्रा से सब को अपने वश में करो ।

आलमस्य.— बहुत अच्छा । (आप ही आप)
 आह रे बप्पा ! अब हिंदुस्तान में जाना पड़ा । तब चलो
 धीरे धीरे चलें । हुक्म न मानेंगे तो लोग कहेंगे
 'सरबस खाइ भोग करि नाना, समरभूमि भा दुरलभ
 प्राना ।' अरे करने को दैव आप ही करेगा, हमारा
 कौन काम है, पर चलें ।

(यही सब बुड़बुड़ाता हुआ जाता है)

(मदिरा आती है)

मदिरा— भगवान सोम की मैं कन्या हूँ । प्रथम
 वेदों ने मधु नाम से मुझे आदर दिया । फिर देवताओं
 की प्रिया होने से मैं सुरा कहलाई और मेरे प्रचार के हेतु
 श्रोत्रामणि यज्ञ की सृष्टि हुई । स्मृति और पुराणों में भी
 प्रवृत्ति मेरी नित्य कही गई । तंत्र तो केवल मेरी ही हेतु
 बने । ससार में चार मत बहुत प्रबल हैं, हिंदू बौद्ध,
 मुसलमान और क्रिस्तान । इन चारों में मेरी चार
 पवित्र प्रेममूर्ति विराजमान हैं । सोमपान, बीराचमन,

शराबुनुतहूरा और बापटेजिग वाईन । मला कोई कहे
 तो इनको अशुद्ध ? या जो पशु हैं उन्होंने अशुद्ध कहा ही
 तो क्या हमारे चाहनेवालों के आगे वे लोग बहुत होंगे
 तो फी सैकड़े दस होंगे, जगत में तो हम व्याप्त हैं ।
 हमारे चले लोग सदा यही कहा करते हैं । और फिर
 सरकार के राज्य के तो हम एकमात्र भूषण हैं ।
 दूध सुरा दधिदू सुरा, सुरा अन्न धन धाम ।
 वेद सुरा ईश्वर सुरा, सुरा स्वर्ग को नाम ॥
 जाति सुरा विद्या सुरा, बिन मद रहै न कोय ।
 सुधरी आजादी सुरा, जगत् सुरामय होय ॥
 ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरु, शैयद सेख पठान ।
 दै बताइ मोहि कौन जो, करत न मदिरा पान ॥
 पियत भट्ट के ठट्ट अरु, गुजरातिन के वृद ।
 गौतम पियत अनंद सो, पियत अग्र के नंद ॥
 होटल में मदिरा पिएँ, चोट लगे नहि लाज ।
 लोट लए ठाढ़े रहत, टोटल दैवे काज ॥
 कोउ कहत मद नहि पिएँ, जो कलु लिख्यो न जाय ।
 कोउ कहत हम मद्य बल, करत वकीली आय ॥
 मद्यहि के परभाव सों, रचत अनेकन ग्रंथ ।
 मद्यहि के परकास सों, लखत धरम को पंथ ॥
 मद पी विधिजग को करत, पालत हरि करि पान ।
 मद्यहि पी के नाश सब, करत शंभु भगवान ॥
 विष्णु वारुणी, पोटें पुरुषोत्तम, मद्य मुरारि ।
 शक्तिपि शिव गौड़ी गिरिश, ब्राडी ब्रह्म विचारि ॥
 मेरी तो धन बुद्धि बल, कुल लज्जा पति गेह ।
 माय बाप सुत धर्म सब, मदिरा ही न सँदेह ॥
 सोक हरन आनंद करन, उमगावन सब गात ।
 हरि मैं तपबिनु लय करनि, केवल मद्य लखात ॥
 सरकारहि मंजूर जो मेरा होत उपाय ।
 तो सब सों बढ़ि मद्य पे देती कर बैठाय ॥
 हमहीं कों या राज की, परम निसानी जान ।
 कीर्ति खंभ सी जग गड़ी, जबलों पिर ससि मान ॥
 राजमहल के चिन्ह नहि, मिलिहैं जग इत कोय ।
 तबहूँ बोटल टूक बहु, मिलिहैं कीरति होय ॥
 हमारी प्रवृत्ति के हेतु कुछ यत्न करने की आवश्यकता
 नहीं । मनु पुकारते हैं 'प्रवृत्तिरेषा भूताना' और
 भागवत में कहा है 'लोके व्यवयामिषमद्यसेवा
 नित्ययास्ति जतोः ।' उसपर भी वर्तमान समय की
 सम्यता की तो मैं मुख्यमूलसूत्र हूँ । विषयद्वियों के
 सुखानुभव मेरे कारण दिगुणित हो जाते हैं । संगीत
 साहित्य की तो एकमात्र जननी हूँ । फिर ऐसा कौन है

१. अमोरी हृदय से है, धन से नहीं है !

२. साँवली सी स्त्री, लाल कपड़ा, सोने का गहना, पैर में चुंबुंरु ।

जो मुझसे विमुख हो ?

(गाती है)

(राग काफी, धनाश्री का मेल, ताल धमार)

मदवा पीले पागल जोवन बीतौ जात ।

बिनु मद जगत सार कछु नाहीं मान हमारी बात ॥

पी प्याला छक छक आनंद से नितहि साँफ और प्रात ।

झूमत चल डगमगी चाल से मारि लाज को लात ॥

हाथी मच्छड़, सूरज जुगनू जाके पिंप लखात ।

ऐसी सिद्धि छोड़ि मन मूरख काहे ठोकर खात ॥

(राजा को देखकर) महाराज ! कहिए क्या हुक्म है ?

भारतदु.— हमने बहुत से अपने वीर हिंदुस्तान में भेजे हैं । परतु मुझको तुमसे जितनी आशा है उतनी और किसी से नहीं है । जरा तुम भी हिंदुस्तान की तरफ जाओ और हिंदुओं से समझो तो ।

मदिरा— हिंदुओं के तो मैं मुबत से मुँहलागी हूँ, अब आपकी आज्ञा से और भी अपना जाल फैलाऊँगी और छोटे बड़े सबके गले का डार बन जाऊँगी । (जाती है)

(रंगशाला के दीपों में से अनेक बुझा दिए जायेंगे)

(अंधकार का प्रवेश)

(आँधी आने की भाँति शब्द सुनाई पड़ता है)

अंधकार— (गाता हुआ स्थलित नृत्य करता है)

(राग काफी)

जै जै कलियुग राज की, जै महामोह महाराज की ।

अटल छत्र सिर फिरत थाप जग मानत जाके काज की ॥

कलह अविद्या मोह मूढ़ता सबै नास के साज की ॥

हमारा सृष्टि संहार कारक भगवान् तमोगुण जी से

जन्म है । चोर, उलूक और लंपटों के हम एकमात्र

जीवन हैं । पर्वतों की गुहा, शोकितों के नेत्र, मूखों के

मस्तिष्क और खलों के चित्त में हमारा निवास है ।

हृदय के और प्रत्यक्ष, चारों नेत्र हमारे प्रताप से बेकाम

हो जाते हैं । हमारे दो स्वरूप है, एक आध्यात्मिक

और एक आधिभौतिक, जो लोक में अज्ञान और अंधेरे

के नाम से प्रसिद्ध हैं । सुनते हैं कि भारतवर्ष में भेजने

को मुझे मेरे परम पुज्य मित्र दुर्दैव महाराज ने आज

बुलया है । चलें देखें क्या कहते हैं (आगे बढ़कर)

महाराज की जय हो, कहिए, क्या अनुमति है ?

भारतदु.— आओ मित्र ! तुम्हारे बिना तो सब

सूना था । यद्यपि मैंने अपने बहुत से लोग भारतविजय

को भेजे हैं पर तुम्हारे बिना सब निर्बल हैं । मुझको

तुम्हारा बड़ा भरोसा है, अब तुमको भी वहाँ जाना

होगा ।

अंध.— आपके काम के वास्ते भारत क्या वस्तु है, कहिए मैं विलायत जाऊँ ।

भारतदु.— नहीं, विलायत जाने का अभी समय नहीं, अभी वहाँ त्रेता, द्वापर है ।

अंध.— नहीं, मैंने एक बात कही । भला जब तक वहाँ दुष्ट विद्या का प्राबल्य है, मैं वहाँ जाही के क्या करूँगा ? गैस और मैगनीशिया से मेरी प्रतिष्ठा भंग न हो जाएगी ।

भारतदु.— हाँ, तो तुम हिंदुस्तान में जाओ और जिसमें हमारा हित हो सो करो । वस 'बहुत बुझाई तुमहि' का कहऊँ, परम चतुर मैं जानत अहऊँ ।

अंध.— बहुत अच्छा, मैं चला । वस जाते ही देखिए क्या करता हूँ । (नेपथ्य में बैतालिक गान और गीत की समाप्ति में क्रम से पूर्ण अधिकार और पटाक्षेप) निहचे भारत को अब नास ।

जब महाराज विमुख उनसों तुम निज मति करी प्रकास ॥

अब कहूँ सरन तिन्हें नहिँ मिलिहैं हवैहै सब बल चूर ।

बुधि विद्या धन धान सबै अब तिनको मिलिहैं धूर ॥

अब नहिँ राम धर्म अर्जुन नहिँ शाक्यसिंह अरु व्यास ।

करिहै कौन पराक्रम इनमें को देहे अब आस ॥

सेवाजी रनजीतसिंह हू अब नहिँ बाकी जौन ।

करिहैं कछू नाम भारत को अब तो नृप मौन ॥

वही उदेपुर जेपुर रीवां पन्ना आदिक राज ।

परबस भए न सोच सकहिँ कछू करि निज बल बेकाज ॥

अंगरेजहु को राज पाइकै रहे कूढ़ के कूढ़ ।

स्वारथपर विभिन्न-मति-भूले हिंदू सब हवै मूढ़ ॥

जग के देस बढ़त बदि बदि के सब बाजी जेहि काल ।

ताहू समय रात इनको है ऐसे ये बेहाल ॥

छोटे चित अति भीरु बुद्धि मन बचल बिगत उछाह ।

उदर-भरन-रत, ईसविमुख सब भए प्रजः नरनाह ॥

इनसों कछू आस नहिँ ये तो सब बिधि बुधि-बल-हीन ।

बिना एकता-बुद्धि-कला के भए सबहि विधि दीन ॥

बोझ लादि के पैर छानि के निज सुख करहु प्रहार ।

ये रासम से कछू नहिँ कहिहैं मानहु छमा अंगार ॥

हित अनहित पशु पंक्षी जाना पै ये जानहिँ नाहि ।

भूले रहत आपूने रंग मैं फँसे मूढ़ता माहि ॥

जे न सुनिहिँ हित, भलो करहिँ नहिँ तिनसों आसा कौन ।

डंका दै निज सैन साजि अब करहु उतै सब गौन ॥

(जबनिका गिरती है)

पाँचवाँ अंक

स्थान — किताबखाना

(सात सभ्यों की एक छोटी सी कमेटी ; सभापति चक्करदार टोपी पहने, चश्मा लगाए, छड़ी लिए ; छह सभ्यों में एक बंगाली, एक महाराष्ट्र, एक अखबार हाथ में लिए एडिटर, एक कवि और दो देशी महाशय)

सभापति — (खड़े होकर) सम्मगण ! आज की कमेटी का मुख्य उद्देश्य यह है कि भारतदुर्दैव की, सुना है कि हम लोगों पर चढ़ाई है । इस हेतु आप लोगों को उचित है कि मिलकर ऐसा उपाय सोचिए कि जिससे हम लोग इस भावी आपत्ति से बचें । जहाँ तक हो सके अपने देश की रक्षा करना ही हम लोगों का मुख्य धर्म है । आशा है कि आप सब लोग अपनी अपनी अनुमति प्रकट करेंगे । (बैठ गए, करतलध्वनि)

बंगाली — (खड़े होकर) सभापति साहब जो बात बोला सो बहुत ठीक है । इसका पेशतर कि भारतदुर्दैव हम लोगों का शिर पर आ पड़े कोई उसके परिहार का उपाय सोचना अत्यंत आवश्यक है किंतु प्रश्न ई है जे हम लोग उसका दमन करने शाकता कि हमारा बोज्जोबल के बाहर का बात है । क्यों नहीं शाकता ? अलबत्त शकैगा, परंतु जो सब लोग एक मत होगा । (करतलध्वनि) देखो हमारा बंगाल में इसका अनेक उपाय शाधन होते हैं । ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन लोग इत्यादि अनेक श्रमा भी होते हैं । कोई थोड़ा बी बात होता हम लोग मिल के बड़ा गोल करते । गर्वनमेंट तो केवल गोलमाल से भय खाता । और कोई तरह नहीं शोनता । ओहूआ का अखबार वाला सब एक बार ऐसा शोर करता कि गर्वनमेंट को अलबत्त भुनने होता । किंतु हेर्या, हम देखते हैं कोई कुछ नहीं बोलता । आज शव आप सभ्य लोग एकत्र हैं, कुछ उपाय इसका अवश्य शोचना चाहिए । (उपवेशन) ।

प. देशी — (धीरे से) यहीं, मगर अब तक कमेटी में हैं अभी तक । बाहर निकले कि फिर कुछ नहीं ।

द. देशी — (धीरे से) क्यों भाई साहब ; इस कमेटी में आने से कमिश्नर हमारा नाम तो दरबार से खारिज न कर देंगे ?

एडिटर — (खड़े होकर) हम अपने प्राणपण से भारत दुर्दैव को हटाने को तैयार हैं । हमने पहिले भी इस विषय में एक बार अपने पत्र में लिखा था परंतु यहाँ तो कोई सुनता ही नहीं । अब जब सिर पर आफत आई सो आप लोग उपाय सोचने लगें । भला अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है जो कुछ सोचना हो जल्द

सोचिए । (उपवेशन)

कवि — (खड़े होकर) मुहम्मदशाह ने भाँड़ों ने दुश्मन को फौज से बचने का एक बहुत उत्तम उपाय कहा था । उन्होंने बतलाया कि नादिरशाह के मुकाबले में फौज न भेजी जाय । जमना किनारे कनात खड़ी कर दी जाय, कुछ लोग चूड़ी पहने कनात के पीछे खड़े रहें । जब फौज इस पार उतरने लगे, कनात के बाहर हाथ निकालकर उँगली चमकाकर कहें "मुए इधर न आइयो इधर जनाने हैं" । बस सब दुश्मन हट जायेंगे । यही उपाय भारतदुर्दैव से बचने को क्यों न किया जाय ।

बंगाली — (खड़े होकर) अलबत्त, यह भी एक उपाय है किंतु असम्भगण आकर जो स्त्री लोगों का विचार न करके सहसा कनात को आक्रमण करेगा तो ? (उपवेशन)

एडि. — (खड़े होकर) हमने एक दूसरा उपाय सोचा है, एड्रुकेशन की एक सेना बनाई जाय । कमेटी की फौज । अखबारों के शस्त्र और स्पीचों के गोले मारे जायें । आप लोग क्या कहते हैं ? (उपवेशन)

द. देशी — मगर जो हाकिम लोग इससे नाराज हों तो ? (उपवेशन)

बंगाली — हाकिम लोग काहे को नाराज होगा । हम लोग शदा चाहता है कि अंगरेजों का राज्य उत्पन्न न हो, हम लोग केवल अपना बचाव करता । (उपवेशन) ।

महा. — परंतु इसके पूर्व यह होना अवश्य है कि गुप्त रीति से यह बात जाननी कि हाकिम लोग भारतदुर्दैव की सैन्य से मिल तो नहीं जायेंगे ।

द. देशी — इस बात पर बहस करना ठीक नहीं । नाहक कहीं लेने के देने न पड़ें अपना काम देखिए (उपवेशन और आप ही आप) हाँ, नहीं तो अभी कल ही भाड़वाजी होय ।

महा. — तो सार्वजनिक सभा का स्थापन करना । कपड़ा बीनने की कल मँगानी । हिंदुस्तानी कपड़ा पहिनना । यह भी सब उपाय है ।

द. देशी — (धीरे से) बनात छोड़कर गंजी पहिरेंगे, हें हें ।

एडि. — परन्तु अब समय थोड़ा है जल्दी उपाय सोचना चाहिए ।

कवि — अच्छा तो एक उपाय यह सोचो कि सब हिन्दू मात्र अपना फैशन छोड़कर कोट पतलून इत्यादि पहिरें जिसमें सब दुर्दैव की फौज आवे तो हम लोगों को योरोपियन जानकर छोड़ दें ।

प. देशी— पर रंग गोरा कहाँ से लावेगे ?

बंगाली— हमारा देश में भारत उदार नामक एक नाटक बना है । उसमें अँगरेजों को निकाल देने का जो उपाय लिखा, सोई हम लोग दुर्दैव का वास्ते काहे न अवलंबन करें । ओ लिखता पाँच जन बंगाली मिल के अँगरेजों को निकाल देगा । उसमें एक तो पिशान लेकर स्वेज का नहर पाट देगा । दूसरा बाँस काट काट के पिवरी नामक जलयंत्र विशेष बनावेगा । तीसरा उस जलयंत्र से अँगरेजों की आँख से धूर और पानी डालेगा ।

महा.— नहीं नहीं, इस व्यर्थ की बात से क्या होना है । ऐसा उपाय करना जिससे फल सिद्ध हो ।

प. देशी— (आप ही आप) हाय ! यह कोई नहीं कहता कि सब लोग मिलकर एक चित्त हो विद्या की उन्नति करो, कला सीखो जिससे वास्तविक कुछ उन्नति हो । क्रमशः सब कुछ हो जायगा ।

एडि.— आप लोग नाटक इतना सोच करते हैं, हम ऐसे ऐसे आर्टिकल लिखेंगे कि उसके देखते ही दुर्दैव भागेगा ।

कवि— और हम ऐसी ही ऐसी कविता करेंगे ।

प. देशी— पर उनके पढ़ने का और समझने का अभी संस्कार किसको है ?

(नेपथ्य में से)

भागना मत, अभी मैं आती हूँ ।

(सब डरके चौकन्ने से होकर धधर उधर देखते हैं)

दू. देशी— (बहुत डरकर) बाबा रे, जब हम कभेटी में चले थे तब पहिले ही छींक हुई थी । अब क्या करें । (टेबुल के नीचे छिपने का उद्योग करता है)

(डिसलायलटी का प्रवेश)

समापति— (आगे से ले आकर बड़े शिष्टाचार से) आप क्यों यहाँ तशरीफ लाई हैं ? कुछ हम लोग सरकार के विरुद्ध किसी प्रकार की सम्मति करने को नहीं एकत्र हुए हैं । हम लोग अपने देश की भलाई करने को एकत्र हुए हैं ।

डिसलायलटी— नहीं, नहीं, तुम सब सरकार के विरुद्ध एकत्र हुए हो, हम तुमको पकड़ेंगे ।

बंगाली— (आगे बढ़कर क्रोध से) काहे को पकड़ेगा, कानून कोई वस्तु नहीं है । सरकार के विरुद्ध कौन बात हम लोग बोला ? व्यर्थ का विभीषिका !

डिस.— हम क्या करें, गवर्नमेंट की पालिसी यही है । कवि वचन सुधा नामक पत्र में गवर्नमेंट के

विरुद्ध कौन बात थी ? फिर क्यों उसे पकड़ने को हम भेजे गए ? हम लाचार हैं ।

दू. देशी— (टेबुल के नीचे से रोकर) हम नहीं, हम नहीं, तमाशा देखने आये थे ?

महा.— हाय हाय ! यहाँ के लोग बड़ो भीरू और कापुरुष हैं । इसमें भय की कौन बात है ! कानूनी है ।

समा.— तो पकड़ने का आपको किस कानून से अधिकार है ?

डिस.— इंगलिश पालिसी नामक ऐक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफा से ।

महा.— परंतु तुम ?

दू. देशी— (रोकर) हाय हाय ! भटवा तुम कहता है अब मरे ।

महा.— पकड़ नहीं सकतीं, हमको भी दो हाथ दो पैर हैं । चलो हम लोग तुम्हारे संग चलते हैं, सवाल जवाब करेंगे ।

बंगाली— हाँ चलो, ओ का बात — पकड़ने नहीं श्रेयता ।

समा.— (स्वगत) चैयरमैन होने से पहिले हमी को उत्तर देना पड़ेगा, इसी से किसी बात में हम अगुआ नहीं होते ।

डिस.— अच्छा बलो । (सब चलने की चेष्टा करते हैं) ।

(जबनिका गिरती है)



छठ अंक

स्थान — गंभीर वन का मध्यभाग
(भारत एक वृक्ष के नीचे अचेत पड़ा है)

(भारतभाग्य का प्रवेश)

भारतभाग्य— (गाता हुआ-राग चैती गौरी)
जागो जागो रे भाई ।

सोअत निसि बैस गंवाई जागो जागो रे भाई ॥
निसि की कौन कहे दिन बीत्यो काल राति चलि आई ।
देखि परत नहि हित अनहित कछु परे बैरि बस जाई ॥
निज उदार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई ।
अबहुं चैति, पकरि राखो किन जो कछु बची बड़ाई ॥
फिर पछिताए कछु नहिं ह्वेहै रहि जैहो मुंह बाई ॥
जागो जागो रे भाई ॥

(भारत को जगाता है और भारत जब नहीं जागता)

१. पुलिस की वर्षी पहिने ।

तब अनेक यत्न से फिर जगाता है, अंत में हारकर
उदास होकर)

हाय ! भारत को आज क्या हो गया है ? क्या
निस्संदेह परमेश्वर इससे ऐसा ही क्रुद्ध है ? हाय क्या
अब भारत के फिर वे दिन न आवेंगे ? हाय यह वही
भारत है जो किसी समय सारी पृथ्वी का शिरोमणि गिना
जाता था ?

भारत के भुजबल जग रक्षित ।

भारतविद्या लहि जग सिन्धित ॥

भारततेज जगत बिस्तारा ।

भारतमय कंपत संसारा ॥

जाके तनिकहिं भौह हिलाए ।

थर थर कंपत नृप डरपाए ॥

जाके जय की उज्ज्वल गाथा ।

गावत सब महि मंगल साथा ॥

भारत किरिन जगत उँजियारा ।

भारतजीव जितत संसारा ॥

भारतवेद कथा इतिहासा ।

भारत वेदप्रथा परकासा ॥

फिनिक मिसिर सीरीय युनाना ।

भे पंडित नहि भारत दाना ॥

रह्यो रुधिर जब आरज सीसा ।

ज्वलित अनल समान अपनीसा ॥

साहस बल इन सम कोउ नाही ।

तबै रह्यो महिमंडल माहीं ॥

कहा करी तकसीर तिहारी ।

रे बिधि रुष्ट याहि की वारी ॥

सबै सुखी जग के नर नारी ।

रे बिधना भारत हि दुखारी ॥

हाय रोम तू अति बड़भागी ।

बर्बर तोहि नास्यो जय लागी ॥

तोढे की रतिधंभ अनेकन ।

छाहे गढ़ बहु करि प्रण टेकन ॥

मंदिर महलनि तोरि गिराए ।

सबै चिन्ह तुव धूरि मिलाए ॥

कछु न बची तुव भूमि निसानी ।

सो बरु मेरे मन अति मानी ॥

भारत भाग न जात निहारे ।

थाप्यो पग ता सीस उधारे ॥

तोख्यो दुर्गन महल ढहायो ।

तिनहीं में निज गेह बनायो ।

ते कलंक सब भारत करे ।

ठाढ़े अजहुं लखो घनेरे ॥

काशी प्राग अयोध्या नगरी ।

दीन रूप सम ठाढ़ी सगरी ॥

चंडालहु जेहि निरखि घिनाई ।

रही सबै भुव मुँह मसि लाई ॥

हाय पंचनद हा पानीपत ।

अजहुं रहे तुम धरनि बिराजत ॥

हाय चितौर निलज तू भारी ।

अजहुं खरो भारतहि मंझारी ॥

जा दिन तुव अधिकार नसायो ।

जो दिन क्यों नहिं धरनि समायो ॥

रह्यो कलंक न भारत नामा ।

क्यों रे तू बारानसि धामा ॥

सब तजि के भजि के दुखभारी ।

अजहुं बसत करि भुव मुख कारो ॥

अरे अग्रवन तीरयराजा ।

तुमहुं बचे अबलौं तजि लाजा ॥

पापिनि सरजू नाम धराई ।

अजहुं बहत अबधतत जाई ॥

तुम में जल नहिं जमुना गंगा ।

बढ़हु बेग करि तरल तरंगा ॥

धोवहु यह कलंक की रासी ।

बोरहु किन भट मथुरा कासी ॥

कुस कन्नोज अंग अरु बंगहि ।

बोरहु किन निज कठिन तरंगहि ॥

बोरहु भारत भूमि सबेरे ।

मिटै करक जिय की तब मेरे ॥

अहो भयानक भ्राता सागर ।

तुम तरंगनिधि अतिबल आगर ॥

बोरे बहु गिरि वन अस्थाना ।

पै बिसरे भारत हित जाना ॥

बढ़हु न बेगि धाई क्यों भाई ।

देहु भारत भुव तुरत डुबाई ॥

घेरि छिपावहु विध्य हिमालय ।

करहु सफल भीतर तुम लय ॥

धोवहु भारत अपजस पंका ।

मेटहु भारतभूमि कलंका ॥

हाय ! यहीं के लोग किसी काल में जगन्मान्य थे ।

जेहि छिन बलभारे हे सबै तेग धारे ।

तब सब जग धाई फेरते हे दुहाई ।

जग सिर पग धारे धावते रोस भारे ।

बिपुल अपनी जीती पालते राजनीती ॥

जग इन बल काँपे देखिके चंड दाये ।
सोइ यह मेरे हृदये रहे आज चरे ॥
ये कृष्ण बरन जब मधुर तान ।

करते अमृतोपम वेद गान ॥
तब मोहन सब नर नारि वृंद ।

सुनि मधुर बरन सज्जित सुखंद ॥
जग के सबही जन धारि स्वाद ।

सुनते इनहीं को वीन नाद ॥
इनके गुन होतो सत्रहि चैन ।

इनहीं कुल नारद तानसैन ॥
इनहीं के क्रोध किए प्रकास ।

सब काँपत भूमंडल अकास ॥
इनहीं के हुंकृति शब्द धोर ।

गिरि काँपत हे सुनि चारु ओर ॥
जब लेत रहे कर में कृपान ।

इनहीं कहँ हो जग तृन समान ॥
सुनि कै रनवाजन खेत माहिं ।

इनहीं कहँ हो जिय सक नाहिं ॥
याही भुव महँ होत है हीरक आम कपास ।
इतही हिमगिरि गंगाजल काव्य गीत परकास ॥
जाबाली जैमिनि गरग पातजलि सुकदेव ।
रहे भारतहि अंक में कबहि सबै भुवदेव ॥
याही भारत मध्य में रहे कृष्ण मुनि व्यास ।
जिनके भारतगान सों भारतबदन प्रकास ॥
याही भारत में रहे कपिल सूत दुरवास ।
याही भारत में भए शाक्य सिंह संन्यास ।
याही भारत में भए मनु भृगु आदिक होय ।
तब तिनसी जग में रह्यो घृना करत नहि कोय ॥
जासु काव्य सों जगत मधि अब ल ऊँचो सीस ।
जासु राज बल धर्म की तृषा करहिं अवनिस ॥
साई व्यास अरु राम के बंस सबै संतान ।
ये मेरे भारत भरे सोइ गुन रूप समान ॥
सो बंस रुधिर वही सोई मन विस्वास ।
वही वासना चित वही आसय यही विलास ॥
कोटि कोटि ऋषि पुन्य तन कोटि कोटि अति सूर ।
कोटि कोटि मधुर कवि निले यहाँ की धूर ॥
सोइ भार की आज यह भई दुरदसा हाय ।
कहा करे कित जायँ नहिं सूक्ष्म कष्ट उपाय ॥

(भारत को फिर उठाने की अनेक चेष्टा करके
उपाय निष्फल होने पर रोकर)

हा ! भारतवर्ष को ऐसी मोहनिद्रा ने घेरा है कि अब
इसके उठने की आशा नहीं । सच है, जो जान बूझकर

सोता है उसे कौन जगा सकेगा ? हा दैव ! तेरे विचित्र
चरित्र हैं, जो कल राज करता था वह आज जूते में टाँका
उधार लगवाता है । कल जो हाथी पर सवार फिरते थे
आज नंगे पाँव बन बन की धूल उड़ाते फिरते हैं । कल
जिनके घर लड़के लड़कियों के कोलाहल से कान नहीं
दिया जाता था आज उसका नाम लेवा और पानी देवा
कोई नहीं बचा और कल जो घर अन्न धन पूत लक्ष्मी
हर तरह से भरे पूरे थे आज उन घरों में तू ने दिया
बेलनेवाला भी नहीं छोड़ा ।

हा ! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि,
कालिदास पाणिनि, शाक्यसिंह, वाणभट्ट, प्रभृति
कवियों के नाममात्र से अब भी सारे संसार में ऊँचा है,
उस भारत की यह दुर्दशा ! जिस भारतवर्ष के राजा
चन्द्रगुप्त और अशोक का शासन रूम रूस तक माना
जाता था, उस भारत की यह दुर्दशा ! जिस भारत में
राम, युधिष्ठिर, नल, हरिश्चन्द्र, रत्तिदेव, शिवि
इत्यादि पवित्र चरित्र के लोग हो गए हैं उसकी यह
दशा ! हाय, भारत मैया, उठो ! देखो विद्या का सूर्य
पश्चिम से उदय हुआ चला आता है ! अब सोने का
समय नहीं है । अंगरेज का राज्य पाकर भी न जगे तो
कब जागोगे । मूर्खों के प्रचंड शासन के दिन गए, अब
राजा ने प्रजा का स्वत्व पहिचाना । विद्या की चरचा
फैल चली, सबको सब कुछ कहने सुनने का अधिकार
मिला, देश विदेश से नई विद्या और कारीगरी आई ।
तुमको उस पर भी वही सीधी बातें, भाँग के गोले,
ग्रामगीत, वही बाल्यविवाह, भूत प्रेत की पूजा जन्मपत्री
की विधि ! वही थोड़े में संतोष, गप हाँकने में प्रीति
और सत्यानाशी चालें ! हाय अब भी भारत की यह
दुर्दशा ! अरे अब क्या चिंता पर सम्हलोगा । भारत
भाई ! उठो, देखो अब दुःख नहीं सहा जाता, अरे कब
तक बेसुध रहोगे ? उठो, देखो, तुम्हारी संतानों का
नाश हो गया । छिन्न-भिन्न होकर सब नरक की यातना
भोगते हैं, उस पर भी नहीं चेतते । हाय ! मुझसे तो अब
यह दशा नहीं देखी जाती । प्यारे जागो । (जगाकर और
नाड़ी देखकर) हाय इसे तो बड़ा ही ज्वर चढ़ा है ! किसी
तरह होश में नहीं आता । हा भारत ! तेरी क्या दशा हो
गई ! हे करुणासागर भगवान् इधर भी दृष्टि कर । हे
भगवती राज-राजेश्वरी, इसका हाथ पकड़ो । (रोकर)
अरे कोई नहीं जो इस समय अवलंब दे । हा ! अब मैं
जी के क्या कहूँगा ! जब भारत ऐसा मेरा मित्र इस
दुर्दशा में पड़ा है और उसका उद्धार नहीं कर सकता,
तो मेरे जीने पर धिक्कार है ! जिस भारत का मेरे साथ
अब तक इतना संबंध था उसकी ऐसी दशा देखकर भी

मैं जीता रहूँ तो बड़ा कुतूहल है ! (रोता है) हा विधाता, तुझे यही करना था ! (आतंक से) छि : छि : इतना क्लैव्य क्यों ? इस समय यह अधीरजपना ! बस, अब धैर्य ! (कमर से कटार निकालकर) भाई भारत ! मैं तुम्हारे ऋण से छूटता हूँ ! मुझसे वीरों का कर्म नहीं हो सकता । इसी से कातर की भाँति प्राण देकर उन्मृण होता हूँ । (ऊपर हाथ उठाकर) हे सव्यांतर्यामी ! हे परमेश्वर ! जन्म-जन्म मुझे भारत सा भाई मिले ।

जन्म जन्म गंगा जमुना के किनारे मेरा निवास हो ।

(भारत का मुँह चूमकर और गले लगाकर)
भैया, मिल लो, अब मैं बिदा होता हूँ । भैया, हाथ क्यों नहीं उठाते ? मैं ऐसा बुरा हो गया कि जन्म भर के वास्ते मैं बिदा होता हूँ तब भी ललककर मुझसे नहीं मिलते । मैं ऐसा ही अभाग हूँ तो ऐसे अभागों जीवन ही से क्या ; बस यह लो ।

(कटार का छाती में आघात और साथ ही जवनिका पतन)



भारत जननी

सन् १८७७ की दिसम्बर में "हरिश्चन्द्र चंद्रिका" में प्रकाशित मौलिक ओपेरा । सन् १८७८ की "कविवचन सुधा" में एक विज्ञापन छपा जिससे यह पता चलता है कि यह भारतेन्दु की मौलिक कृति न होकर उनके किसी मित्र की कृति है । जिन्होंने बंगला की "भारतमाता" का हिन्दी अनुवाद किया । उनकी इच्छा के अनुसार भारतेन्दु ने उसमें संशोधन कर पद आदि जोड़ अपनी पत्रिका में प्रकाशित किया ।

बाद में "नाटक" (सिद्धांत विवेचन) में उन्होंने इसे स्वरचित नाटको की सूची में लिखा । दिसम्बर १८८१ के "उचितवक्ता" में भी इसका विज्ञापन भारतेन्दु रचित ही किया गया है । इसका पहला संस्करण हरिप्रकाश प्रेस और तीसरा संस्करण सं. १९२४ में भारत जीवनप्रेस से निकला ।

— सं.

भारतजननी

An Opera.

बंग भाषा की "भारतमाता के आशय के अनुसार निर्मित हुआ और चन्द्रिका से उद्धृत हो कर

श्री मन्महाराज राधाप्रसाद सिंह डुमरांव
देशाधीश्वर की अनुमति से

श्री हरिश्चन्द्र ने
प्रकाश किया ।

बनारस

नं. १ महल्ला नेपाली खपरा हरि
यंत्रालय में अमीर सिंह ने
मुद्रित किया ।

भारत जननी

An opera

(सुप्रधार आता है)

(मेरव ताल इकताला)

सू.—

जगत पिता जग जीवन जागो मंगल मुख दरसाओ ।
तुव सोए सबही मनु सोए तिन कह जागि जगाओ ॥
अब विनु जागे काज सरत नहि आलस दूर बहाओ ।
हे भारत भुवनाथ भूमि निज वृद्ध आनि बचाओ ॥

भारत भूमि और भारत सन्तान की दुर्दशा दिखाना
ही इस भारत जननी की इति कर्तव्यता है और आज जो
वह आर्य वंश का समाज इस खेल देखने को प्रस्तुत है
उसमें से एक मनुष्य भी यदि इस भारतभूमि के
सुधारने में एक दिन भी यत्न करे तो हमारा परिश्रम
सफल है ।

(जाता है)

स्थान — बड़ा भारी खंडहर

(एक टूटे देवालय की सहन में एक मैली साड़ी
पहिने बाल खोले भारतजननी निद्रित सी बैठी, भारत
सन्तान इधर उधर सो रहे हैं ।) (भारत सरस्वती
आती है सफेद चन्द्रजोत छोड़ी जाय)

(गाती हुई ठुमरी)

भा. सं.—

क्यों माता मुख मलिन होय रही जिय मैं कहा उदासी ।
क्यों घर छोड़ि त्यागी आभूषन बैठी है बनबासी ॥
कहाँ गई वह मुख की सोभा कित वह तेज गवायो ।
कित वह श्री बल बुधि उछाह सब कछु नहि आज लखायो ।
कहाँ गयो वह राजमवन कित धवल धाम बिनसाए ।
कहाँ वह ओज प्रताप नसानो वैभव कितहि दुराए ॥
सदा प्रसन्न तेजजुत मुख तुव बालअरक छवि छाजै ।
सो दिन ससि सम पीत बरन ह्वै आजु तेज बिन राजे ॥
धूरि भरी तुव अलक देखि मेरो चित अकुलाई ॥
छत्र चवर नित दुरत जौन मुख तह मनु छुटत हवाई ॥

कित सब वेद पुरान शास्त्र उपवेद अंग सह भागे ।
दरसन दुरै कितै जिन के बल तुव प्रताप जग जागे ॥
आजु न कोऊ संग अकेली दीन होइ बिलखाई ।
बैछी क्यों हत जननि कहाँ क्यों बुधि गुन ज्ञान नसाई ॥
(भारत माता के पास जाकर कई बेर जगाकर)
(परज कलिंगड़ा)

क्यों बोलत नहि मुख माय बचन
जिय व्याकुल बिन तुव अमृत बचन ।
क्यों रुसि रही अपराध बिना
नहि खोलत क्यों जुगल नयन ।
बिनती न सुनत हित जिय न गुनत
भई मौन कियो जागत ही सयन ।
मुख खोलौ बोलौ बलि बलि गई
दिन ही मैं काहे करत रयन ॥

बिछुरत अब फिर कठिन मिलन
लै जात यवन मोहि करि कै जयन ॥
(अंत का तुक गाते और रोते रोते भारत सरस्वती
जाती है)

(भारत दुर्गा आती है लाल चंद्रजोत छूटे)

(राग बसंत)

भा. दु.—

भारत जननी जिय क्यों उदास ।
बैठी इकली कोउ नाहि पास ।
किन देखहु यह रितुपति प्रकास ।
फुलीं सरसों बन करि उजास ॥
खेतन मैं पकि रहे लखहु धान ।
पियरान लगे भरि स्वाद पान ।
रितु बदलि चली देखहु सुजान ।
अबहुं तो चेतो धारि ज्ञान ॥
भयो सुखद सिसिर को माय अंत
लखि सर्बाहिन मिली गायो बसंत ॥
तब क्यों न बाँध कंकन समंत ।
साजत केसरिया भूमि कंत ॥

(होली)

भारत में मची है होरी ।।

इक ओर भाग अभाग एक दिस होय रही भकभोरी ।

अपनी अपनी जय सब चाहत होइ परी दुहुँ ओरी ।।

दुन्दु सखि बहुत बढ़ी री ।।११।।

धूर उड़त सोइ अबिर उड़ावत सबको नयन भरो री ।

दीन दसा असुवन पिचकारिन सब खिलार भिजयो री ।।

भीजि रहे भूमि लटो री ।।२।।

भइ पतभार तत्व कहूँ नहीं सोइ वसंत प्रगटो री ।

पीरे मुख भई प्रजा दीन हवै सोइ फूली सरसों री ।।

सिसिर को अंत भयो री ।।३।।

बौराने सब लोग न मूझत आम सोई बौरयो री ।

कुहू कहत कोकिल ताहीं तें महा अंधार छयो री ।।

रूप नहिं कहु लख्यौ री ।।४।।

हार्यो भाग अभाग जीत लखि विजय निसान हयो री ।

तब उछाह श्रीधन बुधिबल सब फगुआ माहि लयो री ।।

सेस कछु रहि न गयो री ।।५।।

* गारी बकत कुफार जेति दल तासुन सोच लयो री ।

मूर्ख कारो काफिर आधो सिच्छित सबहिं भयो री ।।

उत्तर काहू न दयो री ।।६।।

उठौ उठौ मैया क्यों हारौ अपुन रूप सुमिरो री ।

राम युधिष्ठिर विक्रम की तुम भटपट सुरत करो री ।।

दीनता दूर धरो री ।।७।।

कहां गये क्षत्री किन उन के पुरषारथहिं हरो री ।

चूड़ी पहिरि स्वांग बनि आए धिक धिक सबन कह्यो री ।

भेस यह क्यों पकरो री ।।८।।

धिक वह मात पिता जिन तुम सों कायर पुत्र जन्यो री ।

धिक वह घरी जनम भयो जामै यह कलक प्रगटो री ।

जनमतहिं क्यों न मरो री ।।९।।

खान पियन अरु लिखन पढ़न सों काम न कछु चलो री ।

आलस छोड़ि एक मत हवै कै सांची वृद्धि करो री ।

समय नहिं नेकु बचो री ।।१०।।

उठौ उठौ सब कमरन बांधौ शस्त्रन सान धरो री ।

विजय निसान बजाइ बावरे आगेइ पांव धरो री ।

छबीलिन रंग रंगो री ।।११।।

आलस में कछु काम न चलि है सब कछु तो बिनसो री ।

कित गयो धन बल कल विवेक अब कोरो नाम बचो री ।

तऊ नहिं सुरत करो री ।।१२।।

कोकिल एहि विधि बहुबकि हार्यो काहू नाहि सुनो री ।

मेटो सकल कुमेटी धोयी पोयी पढ़त मरो री ।

काज नहिं तनिक सरो री ।।१३।।

चालिस दिन इम खेलत बीते खेल नहीं निपटो री ।

भयो पंक अति रंग को तामै गज को जूथ फंसो री ।

न कोउ विधि निकसि सको री ।।१४।।

कंपन बांधौ कर में सबेरे चूरी डारहु तोरी ।

एक मतो करि दृढ़ हवै सबेरे आगेहि चरन धरो री ।

मचा बहु गहिरी होरी ।।१५।।

अबलन सो जनि डरहु घाइ दृढ़ करिकै करन गहो री ।

निपट निलज करिके भकभोरहु अरुन रंग में बोरी ।

छबीलिन रंग रंगो री ।।१६।।

खेलत खेलत पूनम आई भारी खेल मचो री ।

चलत कुमकुमा रंग पिचकारी अरु गुलाल की भोरी ।।

बजत डफ राग जमो री ।।१७।।

होरो सब ठावन लै राखी पूजत लै लै रोरी ।

घर के काठ डारि सब दोने गावत गीतन गोरी ।।

भूमको भूमि रहो री ।।१८।।

तेज बुद्धि बल धन अरु साहस उद्यम सूरपनो री !

होरी में सब स्वाहा कीनी पूजन होत भलो री ।।

करत फेरी तब को री ।।१९।।

फेर घुरहरो भई दूसरे दिन जब अगिन बुझो री ।

सब कछु जरि गयो होरी में तब धूरहि धूर बचो री ।

नाम जमघण्ट परो री ।।२०।।

फूक्यो सब कछु भारत नै कछु हाथ न हाय रहो री ।

तब रोअन मिस चैती गाई भली भई यह होरी ।

भलो तेवहार भयो री ।।२१।।

(रोती हुई भारत जननी की ठोड़ी पर हाथ रख कर)

(राग चैती)

अब हम जात हो परदेसवाँ कठिन फिर होइहै मिलनवाँ

हो राम ।

अरे मुखहू न कोई बोलै कोई न आदर देय मोरे रामा ।

अरे सपनेहु न मोर पियरवा रे भुज भर मोहि लेय ।।

अरे अबहू न सोचत लोगवा मति सब गई बौराय हो राम ।

हमरे बिन जरि जरि मरिहैं करि करि कै हाय ।

हम रूसि चली परदेसवाँ फिर नहिं आवन होय हो राम ।

अरे बिन आदर तनिकौ पाए जात बिदेश हम रोय ।

(रोते रोते हाथ की तलवार को दो टुकड़े तोड़कर भारत

दुर्गा जाती है)

(भारत लक्ष्मी आती है) (हरी चन्द्र जोत छूटे)

(सोरठ गाकर)

भा. ल.—

मलिन मुख भारत माता तेरो ।

बारि भरत दिन रैन नैन सो लखि दुख होत घनेरो ।
तुव मुख ससि देखत मन जलनिधि बढ़त रट्यौ चहुं
फेरो ।
सोइ मुख आज बिलोकत दुख सो फट्यौ जात हिय मेरो ॥

मलार ।

लखौ किन भारत वासिन की गति ।
मदिरा मत भए से सोअत ह्यै अचेत तजि सब मति ॥
घन गरजै जल बरसे इन पर विपति परै किन आई ।
ये बजमारे तनिक न चौकत ऐसी जड़ता छाई ॥
भयो घोर अन्धियार चहुँदिसि ता महँ बदन छिपाए ।
निरलज परे खोइ आपुनपी जगतहू न जगाए ॥
कहा करै इत रहि कै अब जिय तासो यहै बिचारा ।
छोड़ि मूढ़ इन कहे अचेत हम जात जलधि के पारा ॥
(अन्त का तुक गाते गाते और रोते रोते
भारत लक्ष्मी का प्रस्थान)

भारत माता — (आँखें खोल कर) हाय क्या हुआ ? क्या लक्ष्मी अन्तर्धान हो गई ? हाँ ! मैं ऐसी पापिनी हूँ कि नेत्रों के सामने आने पर भी उसे आँख भर न देखा भली भाँति उसे पहचान भी न सकी । (चिन्ता से) नहीं नहीं अन्तर्धान नहीं हुई अभी तो वह हमको बहुत कुछ कह रही थी बहुत उरहना देती थी और कुछ प्रबोध करती थी फिर क्यों कुछ कहते कहते और रोते रोते दूर चली गई ? क्या कहा (सोच के) 'जाऊँ जलधि के पार' हाय (रोने लगी) फिर हमारी और हमारे सन्तति की लक्ष्मी बिना क्या गति होगी ? (सोच से) तो क्या इन लड़कों को जगा दँ ? क्या सब वृत्तान्त उन से कह दँ ? नहीं जगाने का काम नहीं ये सब चिरकाल से गाढ़ निद्रा में सो रहे हैं । इन्हें सोने ही दें । (सोच कर) नहीं नहीं भला यह कुछ सोते थोड़े ही हैं इन्हें तो अज्ञानधकार में पड़ने के कारण दिग भ्रम हो रहा है और इसी हेतु नेत्र निमीलित कर इस दशा में पड़े हैं । हाय मेरे बेटे अन्न जल न मिलने के कारण पिपासाकुलित सर्प की भाँति बार बार दीर्घ श्वास ले रहे हैं । हाय मैं कैसी पापिनी क्रूरकर्मा नृशंसहृदया हूँ कि अपने सन्तत ही ऐसी दशा देख कर भी जीती हूँ । हा विधाता मेरे प्राण शतधा होकर अभी क्यों नहीं विदीर्ण हो जाते, माता का हृदय तो ऐसा कठोर स्खन में भी नहीं होता ।

जान पड़ता है कि अभी कुछ और भी शेष है जिसे के हेतु ईश्वर मेरे प्राण का शीघ्र ही अन्त नहीं कर देता

(आंसू पोंछ कर एक का हाथ पकड़ के) बेटा उठो, इस प्रकार सोने से कुछ काम न चलेगा, यह पूर्वकाल का समय नहीं, तुम्हारा वह दिन गया, अब शीघ्र उठो और इस रोग के निवृत्त करने को सब मिल कर ऐक्यावलम्बन कर स्वस्थचित हो कोई उपाय सोचो, नहीं तो रोग बढ़ जाने पर फिर कुछ न बन पड़ेगी । (एक को उठाती है तो दूसरा सोता है और दूसरे को उठाती है तो पहिला सो जाता है, इसी भाँति सब को भारतमाता ने उठाया किंतु सब के सब फिर पूर्ववत् सो गए) हाय ! यह क्या है ? ये किस दशा में पड़े हैं ? वत्स ! तुम लोगों की क्या गति हो रही है, इतने काल से मैं सोचती हूँ किन्तु कुछ ध्यान में नहीं आता, कितना प्रबोधन किया परंतु सब निष्फल हुआ (कुछ सोच के) हा अब मैं ने समझा अभी इन के चेतने का समय नहीं आया, अभी जो कुछ प्रयत्न किया जायगा सब निष्फल होगा, देखो एक को उठाओ तो एक सोता है और इसको उठाओ तो वह सोता है । तो फिर क्या हताश हो कर इन को ऐसे ही रहने दें ? पर इस से तो संबोधन नहीं होता, अच्छा तो एक बार और उद्योग करूँ ।

पृथ्वीराज जैचंद कलह करि जवन बुलायो ।
तिमिरलंग चंगेज आदि बहु नरन कटायो ॥
अलादीन औरंगजेब मिलि धरम नसायो ।
विषय वासना दुसह मुहम्मद शह फैलायो ॥
तब लौं सोए वत्स तुम, जागे नहिं कोऊ जतन ।
अब तो रानी विक्टोरिया, जागहु सुत भय छाड़ि मन ॥
जहां बिसेसर सोमनाथ माधव के मंदर ।
तहं महजिद बन गई होत अब अल्ला अकबर ॥
जहं भूसी उज्जैन अवध कन्नौज रहे बर ।
तहं अब रोवत सिवा चहुँ दिशि लखियत खंडहर ॥
जहं धन बिधा बरसत रही सदा अबै, वाही ठहर ।
बरसत सब ही विधि वेवसी अब तो चेतो कीर वर ॥

पहिला — (आँख मल कर) माँ क्यों बुलाती है ?

दूसरा — बड़ी गाढ़ी नींद में थे क्यों बुधा जगाया माँ !

तीसरा — हम को सोने दो माँ, बड़ी नींद आती है क्यों नाहक दिक करनी ही ?

भारतमाता — वत्स ! कब तक इस प्रकार से तुम सब निद्रित रहोगे, अब सोने का समय नहीं, एक बेर आँखें खोल भली भाँति पृथ्वी की दशा को तो देखो

तुम्हें कुछ नहीं मालूम कि तुम्हारे चारों ओर क्या हो रहा है, यह तो तुम लोग देखो कि तुम्हारी अब क्या अवस्था हो रही है, क्या ये और क्या हो गए, एक बेर तो भला अपने मन में बिचारो, निरवलंबा शोकसागर-मग्ना, अमागिनी अपनी जननी की दुरावस्था को एक बार तो आँखें खोल के देखो। बेटा हमारा धन, आमृषण बसन इत्यादि सब लुटेरे बलात्कार हर ले गये, अब हम निराधार हो रही हैं, तेल भी नहीं मिलता कि केशों में लगावें। यह मलिन शतप्रथि वस्त्र मैं कब तक पहिँ हाय ! जो अँगरेजों का राज्य न होता तो अबतक तो मेरे प्राण न बचते। बेटा तुम लोग अब उठो और अपने इस दुखिया माता को घोर दुःख से उद्धार करो।

पहिला— माँ फिर अब हम क्या करें ?

दूसरा— हम अपने माता के कष्ट को कैसे दूर करें !

तीसरा— माँ तुम किस्से कहती हो ! हम लोग तो अब मनुष्य नहीं, हम लोग तो अब आलसी हो गए हैं, हमारी गणना तो अब अज्ञान तिमिरावृत, कृपनिवासी पिशाचगणों में है, तो फिर हम क्या करें ?

भारतज.— हाय ! हाय। क्या सचमुच हमारे पुत्रों की अब ऐसी दोन दशा हो गई है कि ये लोग कुछ भी नहीं कर सकते। अरे मेरे इसी अंक में आगे कैसे-कैसे महात्मागण हुए हैं जिन के यश सौरभ से सारी पृथ्वी आमोदित थी। इसी हमारे अंक आलबाल में कैसे पुण्य कल्पतरु हुए हैं जिनकी कीर्तिशाखा दशों दिशा में भी नहीं समा सकी। इसी हमारे अंक में कैसे कोसे लोग लालित पालित हुए है जिन का आज दिन समस्त संसार आदरपूर्वक नाम ग्रहण करता है, जिन्होंने अपने बुद्धि बल से मुझ को सब देश ललनाओं का शिरोमणि कर रखा था।

“जावाली जेमिनि गरग पातज्जलि शुक्रदेव ।
रहे हमारेहि अंक में कबहिँ सबै भुवदेव ॥
याही मेरे अंक में रहे कृष्ण मुनि व्यास ।
जिन के भारत गान सों भारत बदन प्रकास ॥
याही मेरे अंक में कपिल सूत दुर्वास ।
याही मेरे अंक मो कपिल सूत संन्यास ।
याही मेरे अंक मै शाक्य सिंह संन्यास ।
तब तौ तिन कौ करत हो आदर जग सब कोय ॥”

सो उसी भारतभूमि में अब सब हतज्ञान हो रहे हैं

और कोई इन को सम्हालने वाला नहीं। कोई काल ऐसा था कि इस भूमि की स्त्रियाँ भी विद्या संप्रभ, शौर्य, औदार्य में जगत विख्यात थीं वहाँ के पुरुष अब

उद्यमशून्य हो केवल सूद या नौकरी पर सन्तोष कर के बैठे हैं, उद्योग किस चिड़िया का नाम है इसको मानो स्वप्न में भी नहीं जानते।

हाय ! जगत विख्यात हमारे पूर्व समय के पुत्रगण किधर गये। क्या उन की आत्मा भी यहाँ नहीं है जो इस अमागिनि दुखिया माता को इस समय सम्बोधन दे।

कहं गये विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर ।
चन्द्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करि के धिर ॥
कहं छत्री सब मरे बिनसि सब गए कितै गिर ।
कहाँ राज को तीन साज जेहि जानत हे चिर ॥
कहं दुर्ग सैन जन बल गयो, धूरिहि धूर दिखात जग ।
उठि अजौ न मेरे वत्सगन, रक्षहि अपुनो आर्य मग ॥”

पहिला— माता बड़ी भूख लगी है।

दूसरा— क्षुधा से उदर फटा जाता है।

तीसरा— माँ कुछ खाने को दो।

भारतमाता— (स्वगत) काल तू बड़ा प्रबल है, तुझ को कोई कार्य दुर्घट नहीं, तू सब कर सकता है, तेरा विश्वास कभी नहीं करना (प्रकाश) बेटा मेरे पास क्या है जो तुम लोगों को खाने को दूँ।

सब— माता दूध दो वहीं पिये।

भारतमाता— वत्स ! तुम्हारी माँ के पास क्या अब दूध रक्खा है जो तुम लोगों को दे, बेटा इतर पदार्थों की क्या गणना है मेरे शरीर का तो अब रक्त भी शेष नहीं, यवन सब चूस ले गए। बेटा तुम लोग कब तक ऐसे पड़े रहोगे अब अपना-२ काम देखने के लिये तुम लोग शीघ्र प्रयत्न करो।

पहिला— माँ हम लोग क्या करें कैसे इस क्षुधित उदर को, पूर्ण कर आत्मा को सुख दें।

दूसरा— माँ हम लोगों की तो यहाँ तक इच्छा होती है कि सेना विभाग में जा कर महारानी की ओर से उन के शत्रुओं से प्रथम ही युद्ध करें और इस से अपने को प्रतिपालित करें, परंतु वह भी तो नहीं करने पाते।

भारतमाता— बेटा तुम लोग क्या कह रहे हो ? हाय मैं ऐसी बज्रहृदया हूँ कि यह सब सुन कर भी सुखपूर्वक अपना प्राण धारण किये हूँ अब तो यह दूसह दुख सहा नहीं जाता (दीर्घ श्वास लेकर) बेटा तुम लोग अब क्या कर सकते हो, तुम्हारे पास अब है क्या ? तुम लोग अब एक बेर जगद्विख्याता, ललनाकुल-कमल कलिकाप्रकाशिका, राजनिचयपूजितपादपीठा, सरल हृदया, आर्द्रचित्ता, प्रजारञ्जनकारिणी, एवम् दयाशीला आर्य स्वामिनी राजराजेश्वरी महारानी विकटोरिया के चरण कमलों में अपने इस दुःख का

निवेदन करो वह अतीव कारुण्यमयी दयाशालिनी और प्रजाशोक नाशिनी है, निस्सन्देह तुम लोगों की ओर कृपाकटाक्ष से देखेंगी और अगस्त की भाँति भटिति हैं तुम लोगों के शोकसागर का शोषण कर लेंगी ।

पहिला — माँ हम लोगों ने कई बार पुकारा इतना मुक्त कंठ होकर गोहार किया कि हम लोगों का कंठ अर्धापि स्तब्ध हो रहा है किन्तु हम लोगों का रुदन इतने समुद्र पार महारानी के कान तक पहुँचता ही नहीं । माँ इसमें उनका क्या दोष हम लोगों के भाग्य का सब दोष है, महारानी यदि सुनें तो अपनी दयामयी प्रकृति से अवश्य कुछ करें ।

भारतमाता — बेटा तुम लोग क्या करोगे तुम्हारे दिन ही ऐसे हैं । हा विधाता हमारे भाग्य में इतना कष्ट । जननी हो के अपनी सन्तति की यह दशा इन्हीं नेत्रों से देखनी पड़ती है । हाय ! वे नेत्र भी नहीं फूट जाते ! इसमें विधाता का दोष नहीं हमारे कपाल का दोष है ! (स्वगत) एक समय में मैं इन्हीं मुञ्जाओं से अपने प्रसिद्ध यशस्वी पुत्रों को गोद में ले कर उनका स्नह चुम्बन करती-२ अहंकार मद से उन्मत्त होती थी और अपने को रमणी-सरसरोजिनी, रमणीकुलगर्व, रमणीधुरी, कीर्त्तनीया, रमणी ललाटतिलक, रमणी-शिरोभूषण, रमणी-मौक्तिकर्मणि, समझ अपने भाग्य को सगाहती थी, हाय अब तो वैसा ही जगदीश्वर हमारे उस पूर्वकाल के गर्वों को खर्व कर रहा है । शास्त्रकारों ने वृथा लिखा है कि पाप पुण्य का फल स्वर्ग में होता है, मैं जानती हूँ कि पाप कर्म का फल इसी काल और इसी संसार में भोगना पड़ता है । (प्रकाश) बेटा तुम लोग हमारे कहने से एक बेर और महान् उच्चस्वर से कृपाशीला महारानी को पुकारो, वह चाहे तो सब सुन सकती है और निःसन्देह दत्तचित्त हो सब सुनेगी और शोकसमूह को शीघ्र ही दूर करेगी ।

पहिला — अच्छा तो एक बार और पुकारें, जान पड़ता है कि विधाता ने हम लोगों को केवल रोने ही के हेतु इस संसार में भेजा है तो फिर इस को कौन भेट सकता है । अच्छा एक बार फिर पुकारें तो सही (उच्चस्वर से) कहा सम्मार्गरक्षिणी, लडननिवासिनी राजाधिराजनी, इंग्लैण्डेश्वरी माता विकटोरिया ! माता ! ये भारत सन्तानगण आप से सर्वत्रय प्रार्थना करते हैं एक बार आप दया कर इन अनाथभारत सन्तानों के प्रति अपना कृपाकटाक्ष निक्षेपण कीजिये । माता ! हम लोगों ने सुना है कि आप दयाशीला और परम कारुणिका हैं, आप प्रच्छन्न भेष से दरिद्रों का दुःख दूर करती हुई समस्त नगर में विचरण करती हैं ।

यदि एक बार भी आप अपने शील युक्त नेनों की कौर से हम भारत सन्तानों की ओर देखें तो हम लोगों का सब क्लेश पल भर में दूर हो जाय और हम लोगों का सुख और आप का औदार्य्य दिग्देशान्तर में फैल जाय, अब विलम्ब करना उचित नहीं ! माता इन भारतसन्तानों को अब शीघ्र ही दया दान दीजिये । हम लोग जिस रोगापति से पीड़ित हो रहे हैं उसको आप के अतिरिक्त दूसरे की सामर्थ्य नहीं कि दूर कर सके ।

(एक साहिब का प्रवेश)

साहिब — (तर्जन गर्जन पूर्वक) रे दुराशय ! दुर्वत्तिगण ! क्या इसी हेतु हमने तुम लोगों को ज्ञान चक्र दिया है ? रे नराधम ! राजविद्रोही महारानी के पुकारने में तुम लोगों को तनिक भी भय का सञ्चार नहीं होता । उह ! यदि ऐसा जानते तो क्या हम तुम लोगों को लिखना पढ़ना सिखाते । सब अब चुप रहो, खबरदार जो आगे कुछ भी कोलाहल किया ।

पहिला — माँ फिर भी तुम पुकारने को कहोगी ?

दूसरा — माँ इसी से तो हम लोग कुछ भी नहीं बोलते ।

भारतमाता — (रोकर) ईश्वर तू कहाँ है ! मेरे पुत्र अब पुकारने और रोने भी नहीं पाते ।

(दूसरे साहिब का प्रवेश)

दू. सा. — अरे इंग्लैण्ड चन्द्रलाञ्छन ! तू यहाँ से दूर हो ।

(पहिले को निकाल देता है)

दू. सा. — (भारतमाता के समीप जाकर) माता ! अब और रोदन न करो तुम्हारा दुःख देखने से पाषाण भी द्रवीभूत हो जाता है । तुम्हारे निरन्तर धारावाही अश्रुप्रवाह के अवलोकन से कौन ऐसा कठोर चित्त मनुष्य है जो फिर भी स्थिर रहेगा । आलुलायित केशायलम्बित ये तुम्हारे क्षीण गण्डस्थल एवम् विगतकान्ति तथा संस्कार रहित इस तुम्हारे कृशशरीर को देखकर कौन दुःखसागर में मग्न नहीं होता । तिस पर ऐसे लोग तुम्हारे इस शोक को अधिकतर वदित करते हैं । किंतु हे माता ! अंगरेज सब कदापि भी ऐसे नहीं । तुम्हारा अश्रुपात देखने से जिनका स्वयम् अश्रुपात नहीं होता ऐसे अंगरेज बहुत थोड़े हैं । उनकी दयालुता न्यायशीलता, निष्पक्षपातता और प्रजापालित्व तो संसार में प्रसिद्ध है । माँ ऐसे भी कितने असभ्य हैं किन्तु वे परमहीन और बेही हमारी जाति के कलंक हो रहे हैं । माता ! हम लोगों की महारानी परम कारुणिका और अति दयाशीला हैं । वह अपनी प्रजा के

अनुरञ्जन के हेतु प्राणप्रिय आत्मपुत्रों का भी त्याग कर सकती हैं और इतर वस्तुओं की कौन गणना । उन के गुण अनन्त हैं । उनके समान सच्चरित्रा, साध्वी, पतिव्रता और धर्मपरायणा स्त्री कुल में उत्पन्न होना अति दुर्लभ है । वह रामचन्द्र से भी अधिक प्रजापालन में सदैव तत्पर रहती हैं । माता ! कुछ दुःख मत करो तुम्हारी यह शोकरात्रि अब शीघ्र ही प्रमात होगी और सुखरूपी मार्तण्ड तुम्हारे इस मुकुलित मुखकमल को शीघ्र ही प्रफुलित करेगा । माता ! तुम ने क्या ग्लेडस्टन फासेट मैनियर विलियम्स इत्यादि महात्माओं का नाम नहीं सुना ! ये लोग तो अभागे भारतसन्तानों के शोक निवारण के हेतु तन मन सब अर्पण कर चुके हैं और रात दिन उसी का प्रयत्न किया करते हैं । (सन्तानों के प्रति) भ्रातृगण ! सचमुच तुम लोगों की अब तक अत्यन्त दुर्दशा हुई है और तुम लोगों ने अनेक आपत्तियों को भेली है और अनेक दुःख उठाये हैं, भाई इस में कोई क्या कर सकता है सब उस सृष्टिकारक परमेश्वर के आधीन हैं, उसी को पुकारो, वही समस्त जगत् और सब दीन दुखियों का रक्षक है । जगदीश्वर तुम लोगों को इस विषदजाल से शीघ्र ही मुक्त करे ।

(दूसरे साहिब का प्रस्थान)

(धैर्य का प्रवेश)

धैर्य — जननी क्यों रोदन करती हो धैर्य को धारण करो और शोकवेग को दूर करो । देखो मैं धैर्य

तुम्हारा आशवासन करता हूँ । यद्यपि मैं धैर्य हूँ और विषद काल में लोगों को धीरज देने के हेतु मैंने जन्म लिया है किन्तु तुम्हारे इस शोकावस्था को देख मेरे भी धीरज छूट जाते हैं और अतः पर उसके धारण करने को असमर्थ हूँ । मैं कैसे तुम्हारा दुःख दूर करूँ । (सन्तानों से) हे भ्रातृगण अब उठो और जननी के दुःखानल के निर्व्वान का प्रयत्न करो । अभिमान लोभ अपमान आत्मसमाज प्रशंसा परजातनिन्दा इन सब का सावधान पूर्वक परित्याग करो धैर्य का अवलम्बन करो सब कोई धैर्य को धारण करो भाई अवश्य तुम लोगों की कांक्षा पूरी होगी धीरज धरो धीरज धरो ।

(धैर्य का प्रस्थान)

भारतमाता — हे मेरे प्यारे वत्सगण ! अब भी उठो और धैर्य के उत्साह और ऐक्य के उपदेशों को मन में रख इस दुःखिया के दुःख दूर करने में तन मन से तत्पर हो, अब तक हमने उसका सहन किया अब तो ऐसा उपाय करो जिसमें मेरा यह शोकनद बहने न पावे (हाथ जोड़कर) हे जगदीश्वर तू सर्वशक्तिमान है तुझको कोई बात दर्द नहीं अब मुझ अवला पर दया करके मेरा दुःख निवारण कर और मेरी इस प्रार्थना को अंगीकार कर ।

पुनि हृदय ज्ञान प्रकाश ते अज्ञान तम तुरतहि दहै ॥
तजि द्वेष इर्ष्या द्वेह निन्दा देस उन्नति सब चहै ॥
अभिलाख यह जिय पूर्ववत धन धन्य मोहि सबही कहै ॥

सब जाते हैं ।

जवनिका पतन ।



नीलदेवी

(गीत रूपक)

सन् १८८१ ई. में लिखा गया ऐतिहासिक मौलिक गीत रूपक। कहते हैं भारतेन्दु ने जिस अंग्रेजी काव्य की कुछ पंक्तियाँ इस रूपक के आरम्भ में उद्धृत की हैं। उसी के कथानक के आधार पर इसका निर्माण हुआ है। ये पंक्तियाँ किस काव्य की हैं इसका कहीं उल्लेख नहीं है। पर लगता है, बंगला के नीलदर्पण के राष्ट्रीयता की इस पर छाप अवश्य है। — सं.

नीलदेवी

ऐतिहासिक गीत रूपक

'गर्ज गर्ज क्षणं मृदु मधु' यावत्पियाम्यहं ।
मयात्वायिहते त्रैव गर्जिष्यन्माशु देवता : ।'
'तेलोक्यामिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः ।'
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥'
'इत्थं' यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।
तदातदा वतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥
'स्त्रियः समस्ताः सकलाः जगत्सु त्वयैका
पूरितमम्बमेतत्.

(दुर्गापाठ)

'For the kiss she gave him was his first
and last.'
Kiss of dagger, driven to his heart and
past.
At the feet he wallowed, choked with
wicked blood.
In his breast the katar quivered where it
stood.
At the felt his fingers vainly wildly try !
Then they stiffen feable are ! thou
slayer die
From his jewelled scabbard, drew the
shureef's sword,
Cut at vein the neck-bone of the Muslim
Lord,
Underneath, the star light sooth a slight
of dread !
Like the Goddess Kali, comes she with
the head.
Comes to where her brothers guard their

murdered Chief;

All the camp is silent but the night is
brief.

At his feet she flings it, fling her burden
vile;

'Suraj ! I keep my promise ! Brothers !
build the pile'

नाटकस्थ पात्र गण

सूर्य्य देव पंजाब प्रान्त का राजा ।

सोमदेव सूर्य्य देव का पुत्र ।

अब्दुशरीफ़ खाँ सूर . . . दिल्ली के बादशाह का
सिपहसालार ।

वसन्त . . . पागल बना हुआ महाराज सूर्य्यदेव का
नौकर ।

पं. विष्णुशर्मा . . . मौलवी के भेष में राजा का
पाँडित ।

नीलदेवी . . . महाराज सूर्य्यदेव की रानी ।

चपरगाट्ट और पीकदान अली दो मुफ्तखोरे ।

देवासंह इत्यादि सिपाही, राजपूत सर्वर ।

मुसलमान मुसाहिब, काजी, भटियारी, देवता, अप्सरा
इत्यादि ।

मातृ भगिनी सखी तुल्या आर्य ललना गण !

आज बड़ा दिन है। क्रिस्तान लोगों को इससे
बढ़कर कोई आनन्द का दिन नहीं है। किन्तु मुझको
आज उलटा और दुःख है। इसका कारण मनुष्य
स्वभाव सुलभ ईर्ष्या मात्र है। मैं कोई सिद्ध नहीं कि
रागद्वेष से विहीन हूँ। जब मुझे अंगरेजी रमणी लोग
मेरेसँचित केश राशि, कृतम कुन्तलजुट, मिथ्या

रत्नाभरण और विविध वर्ण वसन से भूषित क्षीण कटि-
देश कसे, निज निज पति गण के साथ, प्रसन्न वदन
झर से उधर फर फर कल की पुतली की भाँति फिरती
हुई दिखाई पड़ती है तब इस देश की सीधी सीधी
स्त्रियों की हीन अवस्था मुझको स्मरण आती है और
यही बात मेरे दुःख का कारण होती है। इससे यह
शंका किसी को न हो कि मैं स्वप्न में भी यह इच्छा
करता हूँ कि इन गौरांगी युवती समूह की भाँति हमारी
कुललक्ष्मी गणा भी लज्जा को तिलांजलि देकर अपने
पति के साथ घूमें; किंतु और बातों में जिस भाँति
अंगरेजी स्त्रियाँ सावधान होती हैं, पढ़ी लिखी होती हैं,
घर का काम काज सम्हालती हैं, अपने संतान गण को
शिक्षा देती हैं, अपना स्वत्व पहचानती हैं, अपनी जाति
और अपने देश की सम्पत्ति विपत्ति को समझती हैं,
उसमें सहाय देती हैं, और इतने समुन्नत मनुष्य जीवन
को व्यर्थ ग्रह दास्य और कलह ही में नहीं खोतीं उसी
भाँति हमारी गृह देवता भी वर्तमान हीनावस्था को
उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें यही लालसा
है। इस उन्नति पथ की अवरोधक हम लोगों की
वर्तमान कुल परंपरा मात्र है और कुछ नहीं है। आर्य
जन मात्र को विश्वास है कि हमारे यहाँ सर्वदा स्त्रीगण
इसी अवस्था में थीं। इस विश्वास के भ्रम को दूर
करने ही के हेतु यह ग्रंथ विचरित हो कर आप लोगों के
कोमल कर कमलों में समर्पित होता है। निवेदन यही
है कि आप लोग इन्हीं पुण्यरूप स्त्रियों के चरित्र को
पढ़ें, सुनें और क्रम से यथार्थवत् अपनी वृद्धि करें।

२५ दिसंबर १८८१

ग्रंथकर्ता

नीलदेवी

वियोगात

प्रथम दृश्य

हिमगिरि का शिखर

(तीन अप्सरा गान करती हुई दिखाई देती हैं)

अप्सरागण—(भिन्नीय जलद तिताला)

धन धन भारत की छत्रा नी।

वीरकन्यका वीरप्रसविनी वीरवधू जग जानी ॥

सती सिरोमनि धर्मधुरन्धर बुधि बल धीरज खानी ।

इनके जस की तिहूँ लोक में अमल धुजा फहरानी ।

सब मिलि गाओ प्रेम बधाई ।

यह संसार रतन इक प्रेमहिं और बादि चतुराई ॥

प्रेम बिना फीकी सब बातें कहहु न लाख बनाई ॥
जोग ध्यान जप तप व्रत पूजा प्रेम बिना विनसाई ॥
हाथ भाव रस रंग रीति बहु काव्य केलि कुसलाई ॥
बिना लोन विंजन सो सबही प्रेम रहित दरसाई ॥
प्रेमहि सो हारिहू प्रगटत हैं जदपि ब्रह्म जगराई ॥
तासों यह जग प्रेमसार है और न आन उपाई ॥

दूसरा दृश्य

युद्ध के ठेरे खड़े हैं ।

एक शामियाने के नीचे अमीर अबदुशरीफखाँ सूर बैठा
है और मुसाहिब लोग इर्द गिर्द बैठे हैं ।

शरीफ—(एक मुसाहिब से) अबदुस्समद ! खूब
होशियारी से रहना । यहाँ के राजपूत बड़े काफिर हैं ।
इन कमबख्तों से खुदा बचाए । (दूसरे मुसाहिब से)
मालिक सज्जाद ! तुम शब के पहरो का इन्तिजाम अपने
जिम्मे रखो ऐसा न हो कि सूरजदेव शबखुन मारे ।
(काजी से) काजी साहब ! मैं आप से क्या बयान कहूँ,
वल्लाही सूरजदेव एक ही वदबला है । इहातए पंजाब
में ऐसा बहादुर दूसरा नहीं ।

काजी—वेशक हजूर ! सुना गया है कि वह
हमेशा खेमों ही में रहता है । आसमान शामियाना और
जमीन ही उसे फर्श है । हजारों राजपूत उसे हरवक्त
घेरे रहते हैं ।

शरीफ—वलाह तुमने सच कहा, अजब
बर्दाकरदार से पाला पड़ा, जाना तंग है । किसी तरह
यह कमबख्त हाथ आता तो और राजपूत खुद बखुद
पस्त हो जाते ।

१ मुसाहिब—खुदावन्द ! हाथ आना दूर रहा
उसके खौफ से अपने खेमे में रहकर भी खाना सोना
हaram हो रहा है ।

शरीफ—कभी उस बेईमान से सामने लड़ कर
फतह नहीं मिलनी है । मैंने तो अब जी में ठान ली है
कि मौका पाकर एक शब उसको सोते हुए गिरफ्तार
कर लाना । और अगर खुदा को इस्लाम की रोशनी का
जिल्वा हिन्दोस्तान जुलमत निशान में दिखलाना मंजूर
है तो वेशक मेरी मुराद बर आएगी ।

काजी—इन्शा अलाह तआला ।

शरीफ—कसम है कलामे शरीफ की मेरी
खुराक आगे से इस तफक्कुर में आधी हो गई है ।
(सब लोगों से) देखो अब मैं सोने जाता हूँ तुम सब लोग
होशियार रहना ।

(गजल)

(उठकर सब की तरफ देख कर)

इस राजपूत से रहो हुशियार खबरदार ।
गफलत न जरा भी हो खबरदार खबरदार ॥
ईमाँ की कसम दुश्मने जानी है हमारा ।
काफिर है य पंजाब का सरदार खबरदार ॥
अज्जर है भभूका है जहन्नुम है बला है ।
बिजली है गजब इसकी है तलवार खबरदार ॥
दरबार में वह तेगे शररवार न चमके ।
घरवार से बाहर से भी हर बार खबरदार ॥
इस दुश्मने ईमाँ को है धोखे से फँसाना ।
लड़ना न मुकाबिल कभी जिनहार खबरदार ॥
(सब जाते हैं)

तीसरा दृश्य

पहाड़ की तराई

(राजा सूर्यदेव, रानी नीलदेवी और चार राजपूत बैठे हैं)

सू.— कहो भाइयो इन मुसलमानों ने तो अब बड़ा उपद्रव मचाया है ।

१ ला.— तो महाराज ! जब तक प्राण हैं तब तक लड़ेंगे ।

२ रा.— महाराज ! जय पराजय तो परमेश्वर के हाथ है परन्तु हम अपना धर्म तो प्राण रहे तक निबाहें ही गे ।

सू.— हाँ हाँ, इसमें क्या संदेह है । मेरा कहने का मतलब यह है कि सब लोग सावधान रहें ।

३ रा.— महाराज ! सब सावधान हैं । धर्म युद्ध में तो हमको जीतनेवाला कोई पृथ्वी पर नहीं है ।

नी. दे.— पर सुना है कि ये दुष्ट अधर्म से बहुत लड़ते हैं ।

सू.— प्यारी । वे अधर्म से लड़ें हम तो अधर्म नहीं न कर सकते । हम आर्यवंशी लोग धर्म छोड़ कर लड़ना क्या जानें ? यहाँ तो सामने लड़ना जानते हैं । जीते तो निज भूमि का उद्धार और मरे तो स्वर्ग । हमारे तो दोनों हाथ लड़इ हैं ; और यश तो जीते तो भी हमारा साथ है और मरे तो भी ।

४ था.— महाराज । इसमें क्या संदेह है, और हम लोगों को एकाएकी अधर्म से भी जीतना कुछ दाल भात का गस्सा नहीं है ।

नी. दे.— तो भी इन दुष्टों से सदा सावधान हो

रहना चाहिए । आप लोग सब तरह चतुर हो मैं इसमें विशेष क्या कहूँ स्नेह कुछ कहलाए बिना नहीं रहता ।

सू. दे.— (आदर से) प्यारी । कुछ चिंता नहीं है अब तो जो कुछ होगा देखा ही जायगा न । (राजपूतों से) ।

सावधान सब लोग रहहु सब भाँति सदाहीं ।
जागत ही सब रहैं रैनहूँ सोअहिं नाहीं ॥
कसे रहैं कटि रात दिवस सब बीर हमारे ।
अस्य पीठ सो होहिं चारजामे जिनि न्यारे ।
तोड़ा सुलगत चढ़े रहैं घोड़ा बंदकन ।
रहैं खुली ही म्यान प्रतचे नहिं उतरें छन ॥
देखि लेहिगे कैसे पामर जवन बहादुर ।
आवहिं तो चड़ि सनमुख कायर कूर सबै जुर ॥
देहैं रन को स्वाद तुरतहि तिनहिं चखाई ।
जो पै इक छन इ सनमुख हवै करिहि लराई ॥
(जवनिका पतन)

चौथा दृश्य

सराय

(भठियारी, चपरगढ़ खाँ और पीकजान अली)

चप.— क्यों भाई अब आज तो जशन होगा न ? आज तो वह हिंदू न लड़ेगा न ।

पीक.— मैंने पक्की खबर सुनी है । आज ही तो पुलाव उड़ाने का दिन है ।

चप.— भई मैं तो इसी से तीन चार दिन दरबार में नहीं गया । सुना वे लोग लड़ने जायेंगे । मैंने कहा जान थोड़ी ही भारी पड़ी है । यहाँ तो सदा मागतों के आगे मारतों के पीछे । जबान तेरा कहिए दस हजार हाथ भाहूँ

पीक.— भई इसी से तो कई दिन से मैं भी खेमों तर्फ नहीं गया । अभी एक हफ्ता हुआ मैं उस गाँव में एक खानगी है उसके यहाँ से चला आता था कि पाँच हिन्दुओं के सवारों ने मुझे पकड़ लिया और तुरक तुरक करके लगे चपतियाने । मैंने देखा कि अब तो बेतरह फँसे मगर वल्लाह मैं भी अपने कोम और दीन की इतनी मज्जमत और हिन्दुओं की इतनी तारीफ़ की कि उन लोगों को छोड़ते ही बन आई । ले ऐसे मौके पर और क्या करता ? मुसल्मानी के पीछे अपनी जान देता ?

चप.— हाँ जी किसकी मुसल्मानी और किसका कुफ़र । यहाँ अपने भाँड़े हलुए से काम है ।

भटि. — तो मियाँ आज जशन में जाना तो दोखो मुझको भूत मत जाना । जो कुछ इनआम मिले उस में भी कुछ देना । हाँ ! देखो मैने कई दिन खिदमत की है ।

पीक. — ज़रूर ज़रूर जान छल्ला, यह कौन बात है तुम्हारे ही वास्ते जो पर खेलकर यहाँ उतरें हैं । (चपरगट्ट से कान में) यह सुनिए जान भोकेँ हम माल चामें वी भटियारी । यह नहीं जानतीं कि यहाँ इनकी ऐसी ऐसी हजारों चरा चर छोड़ दी हैं ।

चप. — (धीरे से) अजी कहने दो कहने से कुछ दिये ही थोड़े देते हैं । भटियारी हो चाहे रंडी आज तक तो किसी को कुछ दिया नहीं है उलटा इन्हीं लोगों का खा गए हैं (भटियारी से) वाह जान तक हाजिर है । जब कहो गरदन काट कर सामने रख दूँ । (खूब धूरता है ।)

भटि. — (आँखें नचाकर) तो मैं भी तो मियाँ की खिदमत से किसी तरह बाहर नहीं हों ।

(दोनों गाते हैं)

पिकदानी चपरगट्ट है बस नाम हमारा ।
इक मुपत का खाना है सदा काम हमारा ॥
उमरा जो कहे रात तो हम चाँद दिखा दें ।
रहता है सिफारिश से भरा जाम हमारा ॥
कपड़ा किसी का खाना कहीं सोना किसी का ।
गैरों ही से है सारा सरंजाम हमारा ।
हो रंज जहाँ पास न जाएँ कभी उसके ।
आराम जहाँ हो है वहाँ काम हमारा ।
जर दीन है कुरआन है ईमाँ है नबी है ।
जर ही मेरा अल्लाह है जर राम हमारा ॥

भटि. — ले मैं तो मियाँ के वास्ते खाना बनाने जाती हूँ ।

पीक. — तो चलो भाई हम लोग भी तब तक जरा 'रहे लाखों बरस साकी तेरा आवाद मेखाना' ।

चपर. — चलो ।

(जवनिका पतन)

पंचम दृश्य

(सूर्यदेव के डेरे का बाहरी प्रान्त)

(रात्रि का समय)

देवा सिंह सिपाही पहरा देता हुआ घूमता है ।

नेपथ्य में गान

(राग कलिंगड़ा)

सोंओ सुख निदिया प्यारे ललन ।

नैनन के तारे दुलारे मेरे बारे

सोंओ सुख निदिया प्यारे ललन ।

भई आधी रात बन सनसनात,

पथ पंछी कोउ आवत न जाल,

जग प्रकृति भई मनु थिर लखात

पातहु नहिँ पावत तरुन हलन ॥

फलमलत दोष सिर धुनत आय,

मनु प्रिय पतंग हित करत हाय,

सतरात अंग आलस जनाय,

सनसन लगी सिरी पवन चलन ।

सोए जग मे सब नींद घोर,

जागत कामी चितित चकोर,

बिरहिन बिरही पाहरू चोर,

इन कहं छन रैनहुँ हाय कल न ॥

सिपाही — बरसों घर छूटे हुए । देखें कब इन दुष्टों का मुँह काला होता है । महाराज घर फिरकर चलें तो देस फिर से बसे । रामू की माँ को देखे कितने दिन हुए । बच्चा की खबर तक नहीं मिली (चौक कर ऊँचे स्वर से) कौन है ? खबरदार जो किसी ने फूटमूठ भी इधर देखने का दिवार किया । (साधारण स्वर से) हाँ — कोई यह न जाने कि देवासिंह इस समय जोरू लड़कों की याद करता है इससे भूला है । क्षत्री का लड़का है । घर की याद आवै तो और प्राण छोड़कर लड़े । (पुकारकर) खबरदार । जागते रहना । (इधर उधर फिर कर एक जगह बैठकर गाता है)

(कलिंगड़ा)

प्यारी बिन कटन न कारी रैन ।

पल छिन न परत जिय हाय चैन ॥

तन पीर बढी सब छुटगो धीर,

कहि आयत नहिँ कछु मुखहु बेन ।

जिय तड़फड़ात सब जरत गात,

टप टप टपकत बुख भरे नैन ॥

परदेस परे तजि देस हाय,

बुख मोटन हारो कोउ है न ।

सजि विरह सैन यह जगत जैन,

मारत मरोरि मोहि पापी मैन ॥

प्यारी बिन कटत न कारी रैन ।

(नेपथ्य में कोलाहल)

कौन है । यह कैसा शब्द आता है । खबरदार ।

(नेपथ्य में विशेष कोलाहल)

(घबड़ाकर) हैं यह क्या है ? अरे क्यों एक साथ

इतना कोलाहल हो रहा है । बीरसिंह ! बीर सिंह !

जागो । गोविंद सिंह दोड़ो !

नेपथ्य में बड़ा कोलाहल और मार मार का शब्द । शस्त्र खींचे हुए अनेक यवनों का प्रवेश । अल्ला अकबर का शब्द । देवासिंह का युद्ध और पतन । यवनों का डरे में प्रवेश ।

पटाक्षेप ।

छठवाँ दृश्य

अमीर का खेमा

(मसनद पर अमीर अबदुशशीरफ खाँ सूर बैठा है इधर उधर मुसलमान लोग हथियार बाँधे मोछ पर ताव देते बड़ी शान से बैठे हैं ।)

अमीर—अलहमदुलिल्लाह ! इस कम्बख्त काफिर को तो किसी तरह गिरफ्तार किया । अब बाकी फौज भी फतह हो जायगी ।

एक सदर्—ऐ हुजूर जब राजा ही कैद हो गया तो फौज क्या चीज़ है । खुदा और रसूल के हुक्म से इसलाम की हर जगह फतह है । हिंदू हैं क्या चीज़ । एक तो खुदा की मार दूसरे बेवकूफ आनन फानन में सब जहन्नुमरसीद होंगे ।

२ सदर्—खुदाबंद ! इसलाम के आफताब के आगे कुफ़ की तारीकी कभी ठहर सकती है ? हुजूर अच्छी तरह से यकीन रखें कि एक दिन ऐसा आवेगा जब तमाम दुनिया में ईमान का जिलवा होगा । कुफ़ार सब देखिले दोजख़ होंगे और पयगंबरे आखिरूल जमाँ सल्लल्लल्लाह अलै हुम्मल्लल्लम का दीन तमाम रूप जमीन पर फैल जायगा ।

अमीर—आमीं आमीं ।

काज़ी—मगर मेरी राय है कि और गुप्तगू के पेशतर शुकरिया अदा किया जाय क्योंकि जिस हकतआला की मिहरबानी से यह फतह हासिल हुई है सबके पहिले इस खुदा का शुक्र अदा करना जरूर है ।

सब—बेशक, बेशक ।

(काज़ी उठकर सब के आगे घुटने के बल झुकता है और फिर अमीर आदि भी उसके साथ झुकते हैं)

काज़ी—(हाथ उठाकर) काफिर पै मुसलमाँ को फतहयाब बनाया ।

सब—(हाथ उठाकर) अलहमदु उलिल्लाह ।

काज़ी—की मेह बड़ी तुने य बस मेरे खुदाया ।

सब—अलहमदु उलिल्लाह ।

काज़ी—सदके में नबी सैयदे मक्की मदनी के

अतफाले अली के, असहाब के, लश्कर मेरा दुश्मन से बचाया ।

सब—अलहमदु उलिल्लाह ।

काज़ी—खाली किया इक आन में देरों को सनम से, शमशीर दिखा के, बुतखान : गिरा कर के हरम तुने बनाया ।

सब—अलहमदु उलिल्लाह ।

काज़ी—इस हिंद से सब दूर हुई कुफ़ की जुल्मत, की तुने वह रहमत नक्कारए ईमाँ को हरेक सिम्त बजाया ।

सब—अलहमदु उलिल्लाह ।

काज़ी—गिरकर न उठे काफिर बंदकार जमी से, ऐसे हुए गारत । आमीं कहो ।

सब—आमीं ।

काज़ी—मेरे महबूब खुदाया ।

सब—अलहमदु उलिल्लाह ।

(जवनिका गिरती है)

सातवाँ दृश्य

कैदखाना ।

महाराज सूर्यदेव एक लोहे के पिंजड़े में मूर्छित पड़े हैं । एक देवता सामने खड़ा होकर गाता है ।

देवता—

(लावनी)

सब भाति देव प्रतिकूल होइ एहि नासा ।
अब तजहुं वीर बर भारत की सब आसा ॥
अब सुख सूरज को उदय नहीं इत ह्वेहै ।
सो दिन फिर इत समनेहं नहिं ऐहै ।
स्वाधीनपनो बल धीरज सबहि नसैहै ।
मंगलमय भारत भुव मसान ह्वे जैहै ॥
दुख ही दुख करिहै चारहु ओर प्रकासा ॥
अब तजहु वीर बर भारत की सब आसा ॥
इत कलह विरोध सबन के हिय घर करिहै ।
मूरखता को तम चारहु ओर पसरिहै ॥
वीरता एकता ममता दूर सिधरि है ॥
तजि उद्यम सब ही दास वृत्ति अनुसरि है ॥
ह्वे जैहै चारहु बरन शूद बनि दासा ।
अब तजहु वीर बर भारत की सब आसा ।
ह्वेहैं सब इतके भूत पिशाच उपासी ।
कोऊ बनि जैहैं आपुहि स्वयं प्रकासी ॥

नसि जेहें सगरे सत्य धर्म अविनासी ।
 निज हरि सों ह्वैहैं विमुच भरत भुववासी ॥
 तजि सुपथ सबहि जन करिहैं कुपथ विलासा ॥
 अब तजहु वीर वर भारत की सब आसा ॥
 अपनी वस्तुन कहैं लिखिहैं सबहि पराई ॥
 निज चाल छोड़ि गहिहैं औरन की धाई ॥
 तुरकन हित करिहैं हिंदू संग लराई ॥
 यवनन के चरनहिं रहिहैं सीस चढ़ाई ॥
 तजि निज कुल करिहैं नीचन संग निवासा ॥
 अब तजहु वीर वर भारत की सब आसा ॥
 रहे हमहुं कबहुं स्वाधीन आर्य बल धारी ॥
 यह दैहैं जिय सों सबही बात विसारी ॥
 हरि विमुच धरम विनु धन, बलहीन दुखारी ॥
 आलसी मंद तन छीन झुधित संसारी ॥
 सुख सों सहिहैं सिर यवन पादुका त्रासा ॥
 अब तजहु वीर वर भारत की सब आसा ॥
 (जाता है)

सू.दे.— (सिर उठा कर) यह कौन था ? इस मरते हुए शरीर पर इस ने अमृत और विष दोनों एक साथ क्यों बरसाया ? अरे अभी तो यहाँ खड़ा गा रहा था अभी कहाँ चला गया ? निस्संदेह यह कोई देवता था । नहीं तो इस कठिन पहरे में कौन आ सकता है । ऐसा सुंदर रूप और ऐसा मधुर सुर और किसका हो सकता है । क्या कहता था ? 'अब तजहु वीर वर भारत की सब आसा' ऐं ! यह देववाक्य क्या सचमुच सिद्ध होगा ? क्या अब भारत का स्वाधीनता सूर्य फिर न उदय होगा ? क्या हम क्षत्रिय राजकुमारों को भी अब दासवृत्ति करनी पड़ेगी ? हाय ! क्या मरते मरते भी हमको यह वज्र शब्द सुनना पड़ा ? और क्या कहा 'सुख सों सहिहैं सिर यवन पादुका त्रासा' । हाय ! क्या अब यहाँ यही दिन आवेंगे ? क्या भारत जननी अब एक भी वीर पुत्र न प्रसव करेगी ? क्या दैव को अब इस उत्तम भूमि की यही नीच गति करनी है ? हा ! मैं यह सुनकर क्यों नहीं मरा कि आर्यकुल की जय हुई और यवन सब भारतवर्ष से निकाल दिए गए । हाय ! (हाय करता और रोता हुआ मूर्छित हो जाता है)
 (जवनिका पतन)

आठवाँ दृश्य

मैदान वृक्ष ।

(एक पागल आता है)

पागल— मार मार मार-काट काट काट-ले ले ले-ईबी-सीबी-बीबी-तुरक तुरक तुरक-अरे आया आया आया-भागो भागो भागो । (दौड़ता है) मार मार मार-और मार दे मार-जाय न जाय न-दुष्ट चांडाल गोभक्षी जवन-अरे हॉ रे जवनलाल डाढ़ी का जवन-बिना चोटी का जवन-हमारा सत्यानाश कर डाला । हमारा हमारा हमारा । इसी ने इसी ने-लेना जाने न पावे । दुष्ट म्लेच्छ है ! हमको राजा बनावैगा । छत्र चँवर मुरछल सिंहासन सब — पर जवन का दिया — मार मार मार — शस्त्र न हो तो मंत्र से मार । मार मार मार । छॉ ह्री हवॉ फट चट पट — जवन पट — पट — छट पट — आँ ईं ऊँ आकास बांध पाताल — चोटी कटा निकाल । फ : — हाँ हीं हौं — जवन जवन मारय मारय उच्चाटय उच्चाटय . . . बेधय बेधय . . . नाशय नाशय फाँसय फाँसय — त्रासय त्रासय . . . स्वाहा फू : सब जवन स्वाहा फू : अब भी नहीं गया ? मार मार मार । हमारा देश — हम राजा हम रानी । हम मंत्री । हम प्रजा । और कौन ? मार मार मार । तलवार तलवार । टूट गई टूटी । टूटी से मार । ढेले से मार । हाथ से मार । मुक्का जूता लात लाठी सोंटा ईटा पत्थर — पानी सबसे मार हम राजा हमारा देश हमारा भेस हमारा पेड़ पत्ता कपड़ा लत्ता छाता जूता सब हमारा । ले चला ले चला । मार मार मार — जाय न जाय न — सूरज में जाय चंद्रमा में जाय जहाँ जाय तारा में जाय उतारा में जाय पारा में जाय जहाँ जाय वही पकड़ — मार मार मार । मीयाँ मीयाँ मीयाँ चीयाँ चीयाँ चीयाँ । अल्ला अल्ला अल्ला हल्ला हल्ला हल्ला । मार मार मार । लोहे के नाती कीं दुम से मार पहाड़ की स्त्री के दिये से मार — मार मार — अंड का बंड का संड का खंड — धूप छाँह चना मोती अगहन पूस माघ कपड़ा लत्ता डोम चमार मार मार । ईंट की आँख में हाथी का बान — बंदर की पैली में चूने की कमान — मार मार मार — एक एक एक मिल मिल मिल — छिप छिप छिप — खुल खुल खुल — मार मार मार —

(एक मियाँ को आता देखकर)

मार मार मार — मुसल मुसल मुसल — मान मान मान — सलाम सलाम सलाम कि मार मार मार — नबी नबी नबी — सबी सबी सबी — ऊंट के अंडे की चरबी का खर । कागज के छपे कर सपे की सर — मार मार मार ।

(मियाँ के पास जाकर)

तुरुक तुरुक तुरुक — घुरुक घुरुक घुरुक —
मुलुक मुलुक मुलुक — फुरुक फुरुक फुरुक —
याम शाम लीम लाम दाम —

(मियाँ को पकड़ने को लौड़ता है)

मियाँ— (आप ही आप) यह हो बड़ी हत्या
लगी । इससे कैसे पिंड छूटेगा — (प्रकट) दूर दूर ।

पागल— दूर दूर दूर — चूर चूर चूर —
मियाँ की डाढ़ी में दोजख की दूर — दन तड़ाक छ
मियाँ की माई में मोयी की मूँ — मार मार मार मियाँ
छार छार ।

(मियाँ के पास जाकर अट्हास करके)

रावण का साला दुर्योधन का भाई अमरुत के पेड़
की पसेरी बनाता है — अच्छा अच्छा — नहीं नहीं
तैने तो हमको उस दिन मारा था न ! हाँ हाँ यही है यही
जाने न पावे । मार मार —

(मियाँ की गरदन पकड़कर पटक देता है और छाती
पर चढ़कर बैठता है)

रावण का साला दिल्ली का नवाब वेद की
किताब — बोल हम राजा कि तू राजा — (मियाँ की
डाढ़ी पकड़कर खींचने से कृत्रिम डाढ़ी निकल आती
है । विष्णु शर्मा को पहिचान कर अलग हो जाता है)
रावण का साला मियाँ का भेस विष्णु के कान में शर्मा
का केस । मेरी शक्ति गुरु की भक्ति फुरो मंत्र
इश्वरोवाच डाढ़ी जगावे तो मियाँ साँच ।

(आँख से इंगित करता है)

मियाँ— (फिर डाढ़ी लगाकर) लाहौलवलाकूअत
क्या बेखबर पागल है । इसके घर के लोग इसके
लौटने के मुनतजीर हैं यह यहीं पड़ा है ।

पागल— पड़ा घड़ा सड़ा — घूम घाम जड़ा —
एक एक बात — जात सात धात — नास नास
नास — घास छास फास ।

मियाँ— क्या सचमुच — दरहकीकत — यह
बड़ा भारी पागल है ।

पागल— सचमुच नाच — राजा अकास —
दाल बे दाल मियाँ मतवाल (आँख से दूर जाने को
इंगित करता है । मियाँ आगे बढ़ते हैं — यह पीछे
धूल फेंकता दौड़ता है)

मार मार मार । बरसा की धार । लेना जाने न
पावे । मियाँ का खच्चर (दोनों एकांत में जाकर खड़े
होते हैं)

मियाँ— (चारों ओर देख कर) अरे वसंत ! क्या
सचमुच सर्वनाश हो गया ?

पागल— पंडित जी ! कल सबेरी रात ही
महाराज ने प्राण त्याग किए (रोता है) ।

मियाँ— हाय ! महाराज हम लोगों को आप
किसके भरोसे छोड़ गए ! अब हमको इन नीचों का
दासत्व भोगना पड़ेगा ! हाय हाय ! (चारों ओर देखकर)
हाँ, समाचार तो कही क्या हुआ ।

पागल— कल उन दुष्ट यवनों ने महाराज से कहा
कि तुम जो मुसलामान हो जाओ तो हम तुमको अब भी
छोड़ दें । इस समय वह दुष्ट अमीर भी वहीं खड़ा था ।
महाराज ने लोहे के पिंजड़े में से उसके मुँह पर धूक
दिया, और क्रोध कर के कहा कि दुष्ट ! हमको पिंजड़े
में बंद और परवश जानकर ऐसी बात कहता है । छत्री
कहीं प्राण के भय से दीनता स्वीकार करते हैं । तुमपर
धू और तेरे मत पर धू ।

मियाँ— (घबड़ाकर) तब तब ।

पागल— इसपर सब यवन बहुत बिगड़े । चारों
ओर से पिंजड़े के भीतर शस्त्र फेंकने लगे । महाराज ने
कहा इस बंधन में मरना अच्छा नहीं । वड़े बल से
लोहे के पिंजड़े का डंडा खींचकर उखाड़ लिया और
पिंजड़े से बाहर निकल उसी लोहे के डंडे से सत्ताईस
यवनों को मारकर उन दुष्टों के हाथ से प्राण त्याग
किए । हाय ! (रोता है)

मियाँ— (चारों ओर देखकर) और अब क्या
होता है ? महाराज का शरीर कहाँ है ? तुमने यह सब
कैसे जाना ?

पागल— सब इन्हीं दुष्टों के मुख से सुना ।
इसी मेप में घूमते हैं । महाराज का शरीर अभी पिंजड़े
में रक्खा है । कल जशन होगा । कल सब शराब
पीकर मस्त होंगे । (चारों ओर देखकर) कल ही
अवसर है ।

मियाँ— तो कुमार सोपदेव और महारानी से हम
जाकर यह वृत्त कह देते हैं, तुम इन्हीं लोगों में रहना ।

पागल— हाँ हम तो यहीं हुई हैं । (रोकर) हम
अब स्वामी के बिना वह जाही कर क्या करेंगे ।

मियाँ— हाय ! अब भारतवर्ष की कौन गति
होगी ? अब त्रैलोक्य ललाम सुता भारत कमलिनी को
यह दुष्टयवन यथासुख दलन करेंगे । अब स्वाधीनता
का सूर्य हम लोगों में फिर न प्रकाश करेगा । हाय !
परमेश्वर तू कहाँ सो रहा है । हाय ! धार्मिक वीर पुरुष
की यह गति !

(उदास स्वर से गाता है)

(बिहाग)

कहाँ करुनानिधि केसव सोए !

जागत नेकु न यदपि बहुत बिधि भारत बासी रोए ॥
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारत हित बिसराए ॥
इतके पसु गज को आरत लखि आतुर प्यादे धाए ॥
इक इक दीन हीन नर के हित तुम दुख सुनि अकुलाई ॥

अकुलाई ॥
अपनी संपति जानि इनहिं तुम रहयो तुरंतहिं धाई ॥
प्रलय काल सम जौन सुंदरसन असुर प्राण संहारी ॥
ताकी धार भई अब कुठित हमरी बेर मुरारी ॥
दुष्ट जवन वरबर तुव संतति घास साग सम काटै ॥
एक-एक दिन सहस सहस नर सीस काटि भुव पाटै ॥
ह्ये अनाथ आरत कुल बिधिश बिलपहिं दीन दुखारी ॥
बल करि दासी तिनहिं बनावहिं तुम नहिं लजत खरारी ॥
कहां गए सब शास्त्र कही जिन भारी महिमा गाई ॥
भक्तबल करुनानिधि तुम कहं गयो बहुत बनाई ॥
हाय सुनत नहिं निठुर भए क्यों परम दयाल कहाई ॥
सब बिधि बूझत लखि निज देसहिं लेहु न अबहुं बचाई ॥

(दोनों रोते हैं)

(जवनिका पतन)

नवाँ दृश्य

राजा सूर्यदेव के डेरे

(एक भीतरी डेरे में रानी नीलदेवी बैठी हैं और बाहरी
डेरे में क्षत्री लोग पहरा देते हैं)

नी.दे.— (गाती और रोती)

तजी मोहि काके ऊपर नाथ ।

मोहि अकेली छोड़ि गए तजि बालपने के साथ ।
याद करहु जो अगिनि साखि दै पकर्यौ मेरो हाथ ।
सो सब मोह आज तजि दीनों कीनो हाय अनाथ ॥१॥

प्यारे क्यों सुधि हाय बिसारी ?

दीन भई बिड़री हम डोलत हा हा होय तुमारी ॥
कबहुं कियो आदर जा तन को तुम निज हाथ पियारे ।
ताही की अब दीन दशा यह कैसे लखत दुलारे ।
आदर के धन सम जा तन कहैं निज अंकन तुम धर्यौ ।
ताही कहैं अब पर्यौ धूर में कैसे नाथ निहार्यौ ॥२॥

प्यारे कितै गई सो प्रीति ?

निठुर होइ तजि मोहि सिधारे नेह निबाहन रीति ।
इकइयो रहयो जो छिन नहिं तजिहैं मानहु वचन प्रतीति ।
सो मोहि जीवन लौं दुख दीनो करी हाय विपरीति ॥३॥

(कुमार सोमदेव चारपूतों के साथ बाहरी डेरे में आते हैं)

सोम.— माइयो महाराज का समाचार तो आप

लोगों ने सुना । अब कहिए क्या कर्तव्य है ? मेरी तो
शोक से मति विकल हो रही है । आप लोगों की जो
अनुमति हो किया जाय ।

१ रा. पू.— कुमार आप ऐसी बात कहेंगे कि
शोक से मति विकल हो रही है तो भारतवर्ष किसका
मुँह देखेगा । इस शोक का उत्तर हम लोग अश्रुधारा
से न देकर कृपाण धारा से देंगे ।

२ रा. पू.— बहुत अच्छा !!! उन्मत्त सिंह,
तुमने बहुत अच्छा कहा । इन दुष्ट चांडाल यवनों के
रुधिर से हम जब तक अपने पितरों का तर्पण न कर
लेंगे हम कुमार की शपथ करके प्रतिज्ञा कर के कहते हैं
कि हम पितृश्रृणु से कभी उन्मत्त न होंगे ।

३ रा. पू.— शाबाश ! विजयसिंह ऐसा ही
होगा । चाहे हमारा सर्वस्व नाश हो जाय परंतु
आकल्पात लोह लेखनी से हमारी यह प्रतिज्ञा दुष्ट
यवनों के हृदय पर लिखी रहेगी । धिक्कार है उस
छत्रियाधम को जो इन चांडालों के मूल नाश में न प्रवृत्त
हो ।

४ रा. पू.— शत बार धिक्कार है सहस्र बार
धिक्कार है उसको जो मनसा वाचा कर्मणा किसी तरह
इन कापुरुषों से डरे । लक्ष बार कोटि बार कोटि बार
धिक्कार है उसको जो इन चांडालों के दमन करने में
तृण मात्र भी त्रुटि करे । (बायाँ पैर आगे बढ़ाकर)
म्लेच्छ कुल के और उसके पक्षपातियों के सिर पर यह
मेरा बायाँ पैर है जो शरीर के हजार टुकड़े होने तक ध्रुव
की भाँति निश्चल है । जिस पामर को कुछ भी
सामर्थ्य हो हटावै ।

सो. दे.— धन्य आर्यवीर पुरुषगण ! तुम्हारे
सिवा और कौन ऐसी बात कहेगा । तुम्हारी ही भुजा के
भरोसे हम लोग राज्य करते हैं । यह तो केवल तुम
लोगों का जी देखने को मैंने कहा था । पिता की
वीरगति का शोक किस क्षत्रिय को होगा ? हाँ जो हम
लोग इन दुष्ट यवनों का दमन न करके दासत्व स्वीकार
करें तो निसंदेह दुःख हो । (तलवार खींच कर)
भाइयों चलो इसी क्षण हम लोग उस पामर नीच यवन
के रक्त से अपने आर्य पितरों को तृप्त करें ।
बलहु बीर उठि तुरत सबै जय ध्वजहि उड़ाओ ।
लेहु म्यान सो खंग खींचि रनरंग जमाओ ।
परिकर किस कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ ।
केसरिया बानो सजि सजि रनकंकन बांधौ ।
जो आरज गन एक होइ निज रूप सम्हारै ।
तजि गृह कलाहहि अपनी कुल मरजाद विचारै ।
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी ।

सिंह जगै कहै स्वान ठहरिहैं समर मैफारी ।
 पदतल इन कहैं दलहु कीट त्रिन सरिस जवनचय ।
 तनिकहु संक न करहु धर्म जित जय तित निश्चय ।
 आर्य वंश को बघन पुन्य जा अधम धर्म मै ।
 गोमक्षन द्विज श्रुति हिसन नित जास कर्म मै ।
 तिनको तुरितहिं हतौ मिलै रन कै घर माहीं ।
 इन दुष्टन सों पाप किएहुं पुन्य सदाहीं ।
 विरुंतिहु पदतल हसत हवै तुच्छ जंतु इक ।
 ये प्रतच्छ अरि इनहिं उपेछै जौन ताहि धिक ।
 धिक तिन कहैं जे आर्य होइ जवनन को चाहैं ।
 धिक तिन कहैं जे इनसों कछु संबध निवाहैं ।
 उठहु वीर तरवार खींचि मारहु घन संगर ।
 लोह लेखनी लिखहु आर्य बल जवन हृदय पर ।
 मारू बाजे बजैं कहौ धौसा घहराहीं ।
 उडहिं पताका सत्रु हृदय लखि लखि थहराहीं ।
 चारन बोलहिं आर्य सुजस बंदी गुन गावैं ।
 छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावैं ।
 चमकहिं अंसि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर ।
 होंसहिं हय भनकहिं रथ गज चिक्करहिं समर थर ।
 छन महैं नासहिं आर्य नीच जवनन कहैं करि छय ।
 कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय ।

सब वीर— भारतवर्ष की जय — आर्यकुल
 की जय — महाराज सूर्यदेव की जय — महारानी
 नीलदेवी की जय — कुमार सोमदेव की जय —
 छत्रिय वंश की जय ।

(आगे आगे कुमार उसके पीछे तलवार खींचकर
 छत्रिय चलते हैं । रानी नीलदेवी बाहर के घर में आती
 है)

नील— पुत्र की जय हो । छत्रिय कुल की जय
 हो । बेटा एक बात हमारी सुन लो तब युद्ध यात्रा करो ।

सोम— (रानी को प्रणाम करके) माता ! जो
 आज्ञा हो ।

नी. दे.— कुमार तुम अच्छी तरह जानते हो कि
 यवन सेना कितनी असंख्य है और यह भी भली भांति
 जानते हो कि जिस दिन महाराज पकड़े गए उसी दिन
 बहुत से राजपूत निराश होकर अपने अपने घर चले
 गए । इससे मेरी बुद्धि में यह बात आती है कि इनसे
 एक ही बेर संमुख युद्ध न करके कौशल से लड़ाई करना
 अच्छी बात है ।

सो. दे.— (कुछ क्रोध कर के) तो क्या हम
 लोगों में इतनी सामर्थ्य नहीं कि यवनों को युद्ध में
 लड़कर जीतें ?

सब छत्री— क्यों नहीं ?

नी. दे.— क्यों नहीं ?

नी. दे.— (शांत भाव से) कुमार तुम्हारी सर्वदा
 जय है । मेरे आशीर्वाद से तुम्हारा कहीं पराजय नहीं
 है । किंतु माँ की आज्ञा मानना भी तो तुमको योग्य है ।

सब क्षत्री— अवश्य अवश्य ।

सोम— (हाथ जोड़ कर) माँ, जो आज्ञा होगी
 वही करूँगा ।

नी. दे.— अच्छा सुनो । (पास बुलाकर कान में
 सब विचार कहती हैं)

सोम— जो आज्ञा ।

(एक ओर से कुमार और दूसरी ओर से रानी जाती हैं)
 (पटाक्षेप)

दसवाँ दृश्य

स्थान — अमीर की मजलिस

(अमीर गद्दी पर बैठा है । दो चार सेवक खड़े हैं । दो चार
 मुसाहिब बैठे हैं । सामने शराब के पियाले, सुराही,
 पानदान, इतरदान रक्खे हैं । दो गवैये सामने गा रहे
 हैं । अमीर नशे में भ्रमता है)

गवैये —

आज यह फतह की दरबार मुबारक होए ।
 मुल्क यह तुम्हको शहरयार मुबारक होए ।
 शुक्र सद शुक्र की पकड़ा गया वह दुश्मने दीन ।
 फतह अब हमको हरेक बार मुबारक होए ।
 हमको दिन रात मुबारक हो फतह ऐणे उरूज ।
 काफिरो को सदा फिटकार मुबारक होए ।
 फत्हे पंजाब से सब हिंद की उम्मीद हुई ।
 मोमिनो नेक य आसार मुबारक होए ।
 हिंद गुमराह हों बेजर हों बने अपने गुलाम ।
 हमको ऐशो तरबोतार मुबारक होए ।

अमीर— आमीं आमीं । वाह वाह वल्लाही खूब
 गाया । कोई है ? इन लोगों को एक एक जोड़ा दुशाला
 इनआम दो । (मद्यपान)

(एक नौकर आता है)

नौ— खुदावन्द निआमत ! एक परदेसी की
 गानेवाली बहुत ही अच्छी खेमे के दरवाजे पर हाजिर
 है । वह चाहती है कि हज़ूर को कुछ अपना करतब
 दिखलाए । जो इर्शाद हो बजा लाऊँ ।

अमीर— जरूर लाओ । कहां साज मिला कर
 जल्द हाजिर हो ।

नौ.— जो इरशाद ।

अमीर— आज के जशन का हाल सुनकर दूर दूर से नाचने गानेवाले चले आते हैं ।

मुसाहिब— बजा इरशाद है, और उनको इनआम भी बहुत जियादा : मिलता है न क्यों आवें ? (चार समाजियों के साथ एक गायिका का प्रवेश)

अमीर— (आप ही आप) यह तायफा तो बहुत ही खूबसूरत है ! (प्रगट) तुम्हारा क्या नाम है ? (मद्यपान)

गायिका— मेरा नाम चंडिका है । मैं बड़ी दूर से आपका नाम सुनकर आती हूँ ।

अमीर— बहुत अच्छी बात है । जल्द गाना शुरू करो । तुम्हारा गाना सुनने को मेरा इशतियाक हर लहजे बढ़ता जाता है । जैसी तुम खूबसूरत हो वैसा ही तुम्हारा गाना भी खूबसूरत होगा (मद्यपान)

गायिका— जो हुकुम । (गाती है)

तुमरी तिताला

हाँ मोसे सेजिया चद्रलि नहिं जाई हो ।

पिय बिनु सापिन सी डसे बिरह रैन ।

छिन छिन बढ़त बिधा तन सजनी,

कटत न कठिन बियोग की रजनी ।

बिनु हरि अति अकुलाई हो ।

अमीर— वाह वाह क्या कहना है ! (मद्यपान) क्यों फिवाहुसैन ! कितना अच्छा गाना है ।

मुसाहिब— सुवहानअल्लाह ! हजूर क्या कहना है । वल्लाह मेरा तो क्या जिन्न है मेरे बुजुर्गों ने ख्वाब में भी ऐसा गाना नहीं सुना था ।

(अमीर अँगूठी उतारकर देना चाहता है)

गायिका— मुझको अभी आपसे बहुत कुछ लेना है । अभी आप इसको अपने पास रखें आखिर में एक साथ मैं सब ले लूँगी ।

अमीर— (मद्यपान करके) अच्छा ! कुछ परवाह नहीं । हाँ, इसी धुन की एक और हो मगर उसमें फुरकत का मजमून न हो क्योंकि आज खुशी का दिन है ।

गायिका— जो हुकुम (उसी चाल में गाती है) जाओ जाओ काहे आओ प्यारे कतराए हो । काहे चलो छाँह से छाँह मिलाए हो । जिय को मरम तुम साफ कहत

किन काहे फिरत मँडराए हो ।

एहो हरि देखि यह नयो मेरो

जोवन हम जानी तुम जो लुभाए हो ।

अमीर— (मद्यपान कर के अत्यंत रीफने का नाट्य करता है) कसम खुदा की ऐसा गाना मैंने आज तक नहीं सुना था । दरहकीकत हिंदोस्तान इल्म का खजाना है । वल्लाह मैं बहुत ही खुश हुआ ।

मुसाहिब गण— वल्लाह, बजा इरशाद वेशक इत्यादि सिर और दाड़ी हिला हिलाकर कहते हैं)

अमीर— तुम शराब नहीं पीती ?

गायिका— नहीं हजूर ।

अमीर— तो आज हमारी खातिर से पीओ ।

गायिका— अब तो आपके यहाँ आई ही हूँ । ऐसी जल्दी क्या है । जो जो हजूर कहेंगे सब करूँगी ।

अमीर— अच्छा कुछ परवाह नहीं । (मद्यपान) थोड़ा सा और आगे बढ़ आओ ।

(गायिका आगे बढ़ कर बैठती है)

अमीर— (खूब धूरकर स्वगत) हाय हाय ! इसको देखकर मेरा दिल बिलकुल हाथ से जाता रहा । जिस तरह हो आज ही इसको कानू में लाना जरूर है । (प्रगट) वल्लाह, तुम्हारे गाने ने मुझको बेअख्तियार कर दिया है । एक चीज़ और गाओ इसी धुन की । (मद्यपान)

गायिका— जो हुकुम । (गाती है)

हाँ गरवा लगावै गिरिधारी हो,

देखो सखी लाज सरम जग की,

छोड़ि चट निपट निलज मुख चूमे बारी बारी । अति मदमाती हरि कछु न गिनत

छेल बरजि रही मैं होइ होइ बलिहारी ।

अब कहाँ जाऊँ कहा करूँ लाज की मैं मारी

अमीर— (मद्यपान करके उन्मत्त की भाँति) वाह ! वाह क्या कहना है । (गिलास हाथ में उठाकर) एक गिलास तो अब तुमको जरूर ही पीना होगा । लो तुमको मेरी कसम, वल्लाह मेरे सिर की कसम जो न पी जाओ ।

गायिका— हजूर मैंने आज तक शराब नहीं पी है । मैं जो पीऊँगी तो बिल्कुल बेहोश हो जाऊँगी ।

अमीर— कुछ परवाह नहीं, पीओ ।

गायिका— (हाथ जोड़कर) हजूर, एक दिन के वास्ते शराब पीकर मैं क्यों अपना इमान छोड़ूँ ?

अमीर— नहीं नहीं, तुम आज से हमारी नोकर हुई, जो तुम चाहोगी तुमको मिलेगा । अच्छा हमारे पास आओ हम तुमको अपने हाथ से शराब पिलावेंगे । (गायिका अमीर के अति निकट बैठती है)

अमीर— लो जान साहब !

(पियाला उठाकर अमीर जिस समय गायिका के

पास ले जाता है उस समय गायिका बनी हुई नीलदेवी चोली से कटार निकालकर अमीर को मारती है और चारों समाजी बाजा फेंककर शस्त्र निकालकर मुसाहिब आदि को मारते हैं) ।

नी. दे. — ले चाँडाल पापी ! मुझको जान साहब कहने का फल ले महाराज के बध का बदला ले । मेरी यही इच्छा थी कि मैं इस चाँडाल का अपने हाथ से बध करूँ ! इसी हेतु मैंने कुमार को लड़ने से रोका सो इच्छा पूर्ण हुई । (और अघात) अब मैं सुख पूर्वक सती

हूँगी ।

अमीर — (मृतावस्था में) दगा — अल्लाह चाँडका —

(रानी नीलदेवी ताली बजाती है (तंबू फाड़कर शस्त्र खींचे हुए, कुमार सोमदेव राजपूतों के साथ आते हैं । मुसलमानों को मारते और बाँधते हैं । क्षत्री लोग भारतवर्ष की जय, आर्यकुल की जय, क्षत्रियवंश की जय, महाराज सूर्यदेव की जय, महारानी नीलदेवी की जय, कुमार सोमदेव की जय इत्यादि शब्द करते हैं) ।

(पटाक्षेप)



दुर्लभ बन्धु

शेक्सपीयर के " मर्चेन्ट आफ वेनिस " का अनुवाद । इसका पहला दृश्य ज्येष्ठ शुक्ल सं. १९३७ की हरियचंद्र चंद्रिका और मोहनचंद्रिका में प्रकाशित हुआ । यह नाटक अपूर्ण रह गया था जिसे पं. रामशंकर व्यास और बाबू राधा कृष्ण दास ने बाद में पूरा कर प्रकाशित कराया ।

दुर्लभा गुणिनो शूराः वातारश्चातिदुर्लभाः ।
मित्रार्थे त्यक्तसर्व्वस्यो बन्धुस्सर्व्वैस्सुदुर्लभाः । ।

خدا ملے تو ملے آشنا نہیں ملتا
کسی کا کوئی نہیں دوست سب کہانی ہے

प्रथम अंक

पहिला दृश्य

स्थान — वंशपुर की सड़क
(अनंत, सरल और सलोने आते हैं)

अनंत — सपना न जाने मेरा जी इतना क्यों

उदास रहता है, इससे मैं तो व्याकुल हो ही गया हूँ पर तुम कहते हो कि तुम लोग भी घबड़ा गए । हा, न जाने यह उदासी कैसी है, कहाँ से आई है और क्यों मेरे चित्त पर इसने ऐसा अधिकार कर लिया है ? मेरी बुद्धि ऐसी अकुला रही है कि मैं अपने आप से बाहर हुआ जाता हूँ ।

सरल — आपका जी क्या यहाँ है, आपका चित तो वहाँ है जहाँ समुद्र में आप के सौदागरी के भारी जहाज बड़ी-बड़ी पाल उड़ाए हुए धनमत्त लोगों की भाँति डगमगी चाल से चल रहे होंगे और वरुण देवता की भाँति भूमते और आस पास की छोटी छोटी नौकाओं की ओर दयादृष्टि से देखते आते होंगे और वे बेचारियाँ भी अपने छोटे छोटे परों से उड़ती हुई और सिर झुका झुकाकर बारंबार उनको प्रणाम करती किसी तरह से लगी बम्भी उनका अनुगमन करती चली आती होंगी।

सलोने — महाराज ! हम सच कहते हैं ! जो हमारी इतनी जोखिम जहाज पर बाहर होती तो हमारा जी आठ पहर उसी में लगा रहता, प्रति क्षण तिनका उठाकर हम हवा का रुख देखा करते, रात दिन नकश लिए सड़क, बंदर और खाड़ियों को ताका करते और थोड़े से खटके में भी अपनी हानि के डर से घबड़ा जाते।

सरल — और मेरा कलेजा तो गरम दूध के फूँकने में भी तूफान की याद करके दहल जाता और सोचता कि हाय यदि कहीं समुद्र में आँधी चली तो जहाजों की क्या गति होगी। बालू की घड़ी देखने से मुझे यह ध्यान बँधता कि मेरा माला से लदा जहाज बालू की चर पर चढ़ गया है और उसके उलट जाने से उसका ऊँचा मस्तूल झुका हुआ ऐसा दिखाई देता है मानों वह अपने प्यारे जलयान की समाधि को गले लगा कर रो रहा है। देवालय के शिखर का ऊँचा पत्थर देखते ही मुझे पहाड़ों की चट्टानें याद आतीं और सोचता कि इन्हीं चट्टानों से ठोकर खाकर मेरा भरा पूरा जहाज टूट गया है, किराना पानी पर फैल गया है और रंग रंग के रेशमी कपड़े समुद्र की लहरों पर लहरा रहे हैं, यहाँ तक कि जो जहाज अभी लाखों रुपये का था छन भर में एक पैसे का भी न रहा। बतलाइए कि जब एक बार इस तरह का शोक जी में आवे तो संभव है कि मनुष्य हानि के डर से उदास न हो जाय ?

सलोने — मैं जानता हूँ कि आपको अपनी जोखों ही का सोच है।

अनंत — इसका नहीं। मैं धन्यवाद करता हूँ कि मेरा माल कुछ एक ही जहाज पर नहीं लदा है, और न सबके सब एक ही ओर भेजे गए हैं, और न एक साल के घाटे नफे से मेरे व्यापार की इतिश्री है, इससे सौदागरी की जोखों के सबब से मैं इतना उदास नहीं हूँ।

सरल — तो कहीं किसी से आँख तो नहीं लगी है ?

अनंत — छि छि !

सरल — वह भी नहीं यह भी नहीं तब तो आप का जी झूठ मूठ उदास है, अभी हँसो, बोलो, कूदो, अभी प्रसन्न हो जाय। संसार में दो प्रकार के लोग होते हैं। कुछ तो ऐसे हैं जो वे समझे वृत्ति तुच्छ तुच्छ बात पर बड़े बड़े दंत निकाल कर खिलखिला उठते हैं और भाँजे ऐसे (मुहरंमी पैदाइश के) होते हैं कि ऐसा उत्तम परिहास त्रिस पर धर्मराज सा गंभीर मनुष्य हँस पड़े उस पर भी उनका फूला हुआ शून्य नहीं पिचकता।

(बसंत, लवंग और गिरीश आते हैं)

सलोने — लो गिरीश और लवंग के साथ आपके प्रियबंधु वसंत आते हैं। अब हमारा प्रणाम लो। हम लोग आपको अपने से अच्छी मंडली में छोड़ कर जाते हैं।

सरल — भाई यदि ये उत्तम मित्रगण न आ जाते तो मैं आपको अच्छी तरह प्रसन्न किये बिना कभी न जाता।

अनंत — मेरे हिसाब तो तुम भी बहुत उत्तम मित्र हो। परंतु तुम्हें किसी आवश्यक काम से जाना है इसी हेतु अवसर पाकर यह बात बनाई है।

सरल — प्रणाम महाशयो।

बसंत — दोनों मित्रों को प्रणाम। कहो अब हम लोग फिर कब हँसे बोलेंगे। तुम लोग तो अब निरें अपरिचित हो गए। सचमुच क्या चले ही जाओगे ?

सरल — हम लोग अवसर के समय फिर मिलेंगे।

(सरल और सलोने जाते हैं)

लवंग — मेरे श्रीमंत बसंत लीजिए आपसे और अनंत गुणकंत अनंत से भेंट हो गई अब हम लोग भी जाते हैं, परंतु खाने के समय जहाँ मिलने का निश्चय किया उसे न भूलिएगा।

बसंत — नहीं, न भूलूँगा।

गिरीश — भाई अनंत। आप उदास मालूम पड़ते हो। हुआ ही चाहें। संसार के कामों में जो जितना विशेष रहेगा उतना ही विशेष वह उदास रहेगा। मैं सच कहता हूँ कि आपकी सूरत बिलकुल बदल गई है।

अनंत — मैं संसार को उसके वास्तविक रूप से बढ़कर कदापि नहीं समझता। गिरीश ! संसार एक रंगशाला है, जहाँ सब मनुष्यों को एक न एक स्वाँ अवश्य बनना पड़ता है, उनमें से उदासी का नाट्य मेरे हिस्से है।

गिरीश— और मैं विद्वक की नकल करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरे बाल भी हँसते खेलते पकें। नित्य मद्य पीने से मेरे कलेजे में गर्मी पहुँचे न कि आहों के भरने से उसमें शीत आवे। शरीर में रक्त की गर्मी रहते भी लोग क्योकर मूर्त की तरह चुपचाप बैठे रह सकते हैं, जागते हुए लोग भी किस तरह सो जाते हैं, या रोगी की तरह कराह कराह कर दिन बिताते हैं। आप मेरी बात से अप्रसन्न न हूँजिएगा, मैं आपको जी से चाहता हूँ तब इतनी धृष्टता की है। बहुतेरे मनुष्य ऐसे होते हैं कि बँधे पानी के तालाब की भाँति उनके मुख का रंग सदा गँदला बना रहता है और यह समझ कर कि लोग हमको बड़ा सोचने वाला, विचारवान, पंडित और गंभीर कहेंगे व्यर्थ को भी मुँह फुलाए रहते हैं। उनका मुँह देखने से स्पष्ट प्रगट होता है कि वह लोग अने को वेदव्यास से भी बढ़कर लगाते और अपनी बात को वेदव्यास से भी बढ़कर समझते हैं। मेरे प्यारे अनंत। मैं ऐसे बहुतेरे लोगों को जानता हूँ जो केवल जीभ न हिलाने के कारण समझदार प्रसिद्ध हैं। मैं सच कहता हूँ कि ऐसे लोगों से बोलना ही पाप है क्योंकि इनकी बात के सुनते ही क्रोध आ जाता है और मनुष्य के मुँह से बुरा भला निकल ही आता है। मैं इस विषय में आप से फिर कभी बातचीत करूँगा। देखिए ऐसा न हो कि उसी भूठी बड़ाई की इच्छा आप पर भी प्रबल हो। भाई लवंग चलो अब इस समय बिदा। खाने के पीछे आकर मैं अपना व्याख्यान समाप्त करूँगा।

लवंग— तो खाने के समय तक के लिए जाता हूँ। परंतु मैं तो उन्हीं गूंगे बुद्धिमानों में से एक हूँ, क्योंकि गिरीश अपनी वक्तावद में मुझे तो कभी बोलने ही नहीं देता।

गिरीश— अभी दो बरस मेरी संगति में और रहो तो फिर तुम्हारी जित्वा का शब्द तुम्हारे कान को भी न सुनाई पड़ेगा।

अनंत— अच्छा जाओ, मैं भी तब तक वक्तावद करना सीख रहता हूँ।

गिरीश— आप बड़ी कृपा कीजिएगा क्योंकि चुप रहने का स्वभाव यों तो पशुओं के लिये योग्य होता है या ऐसी स्त्रियों के लिये जिसे व्याह करने वाला न मिलता हो।

(गिरीश और लवंग जाते हैं)

अनंत— कहो भाई, इसकी बात में कोई आनंद क्या?

बंसत— गिरीश बहुत ही व्यर्थ वक्ता है। सारे वंशानगर में उससे बढ़कर कोई वक्ता न निकलेगा।

व्यर्थ की वक्तावद की जाल में उसका वास्तविक आशय ऐसा छिपा रहता है जैसे गट्टे भर भूसे में अनाज का एक दाना। जब दिन भर उसके लिए हैरान हो तब कहीं एक दाना हाथ लगे, वैसे ही जब बहुत सा समय इसकी बात के पीछे नाश करो तब उसका आशय समझ में आवे और इतने कष्ट के पीछे समझने पर भी कुछ उसका फल नहीं।

अनंत— हुआ, यह रामकहानी दूर करो। अब यह बतलाओ कि वह कौन सी स्त्री है जिसके लिये तुम गुप्त यात्रा करने वाले हो। देखो, आज मुझसे सब वृत्तान्त कहने का वादा है।

बंसत— भाई अनंत! तुम अच्छी तरह जानते हो कि मैंने अपनी सब जायजाद किस तरह गँवा दी। समझ कर व्यय न कर के सर्वदा बड़ी चाल चला और यही चाल मेरे नाश की कारण हुई। परंतु मुझे अपनी अवस्था के घट जाने का कुछ भी शोक नहीं है, शोक है तो केवल इस बात का है मुझे जो बहुत सा ऋण हो गया है उसे किसी तरह चुका दूँ। भाई अनंत! तुम्हारा मैं सब प्रकार ऋणी हूँ। रुपये का कहो, दया का कहो। इस लिये ऋण चुकाने का मैं जो जो उपाय सोचता हूँ वह तुम से सब स्वच्छ स्वच्छ वर्णन करके अपने चित्त के बोझ को हलका करूँगा।

अनंत— प्यारे बंसत! परमेश्वर के वास्ते मुझ से सब वृत्तान्त स्पष्ट वर्णन करो। यदि वह उपाय धर्म का है जैसा कि तुम सदा वरतते आए हो तो निश्चय रखो क मेरा रुपया मेरा शरीर सब कुछ तुम्हारे लिये समर्पण है।

बंसत— छोटेपन में जब मैं पाठशाला में पढ़ता था तब यदि मेरा कोई तीर खो जाता था तो उसके टूटने को मैं वैसा ही दूसरा तीर उसी ओर छोड़ता था और ध्यान रखता था कि यह तीर कहाँ गिरता है। इसी भाँति दुहरी जाँचों उठाने से प्रायः दोनों मिल जाते थे। इस लड़कपन की बात के छोड़ने से मेरा आशय यह है कि अब मैं जो उपाय किया चाहता हूँ वह भी इसी लड़कपन के खेल की भाँति है। मैं तुम्हारा बड़ा ऋणी हूँ। जो कुछ मैंने तुमसे लिया वह सब एक हठी लड़के की भाँति गँवा दिया परंतु जहाँ तुमने पहिले एक तीर छोड़ा है उसी ओर यदि एक तीर और फेंको तो मैं तुम्हें निश्चय दिलाता हूँ कि अब की मैं उसके लक्ष्य की ओर अच्छी तरह दृष्टि रख कर जैसे होगा वैसे दोनों तीर खोज लाऊँगा। और यदि संयोग से पहिला न मिला तो दूसरा तो अवश्य ही फेर लाऊँगा और पहिले के लिये धन्यवाद के साथ तुम्हारा सदा ऋणी रहूँगा।

अनंत — भाई तुम तो मुझे अच्छी तरह जानते

हो। फिर मेरा जी टटोलने के लिये फेरवट के साथ बात करके व्यर्थ क्यों समय नष्ट करते हो। मुझे इसका दुःख है कि तुमने इस बात में संदेह किया कि मैं तुम्हारे लिए प्राण तक दे सकता हूँ। यदि तुम मेरी सर्वस्व हानि किए होते तब भी मुझे इतना दुःख न होता जो इस बात से हुआ। व्यर्थ बात बढ़ाने से क्या लाभ? केवल इतना कहो कि मुझे तुम्हारे हेतु क्या करना होगा, मैं उसके लिये प्रस्तुत हूँ शीघ्र बतलाओ।

वंसत — विल्वमठ में एक क्वारी स्त्री रहती है जो अपने माँ बाप के मर जाने से एक बड़ी रियासत की स्वामिनी हुई है। उसका रूप ऐसा है कि केवल सौंदर्य के शब्द से उसकी स्तुति हो ही नहीं सकती। उसमें अनगिनत गुण हैं। कुछ दिन हुए उसकी चितवन ने मुझको ऐसे प्रेम संदेह दिए थे कि मुझको उसकी ओर से पूरी आशा है। उसका नाम पुरश्री है, वह सचमुच पुरश्री है, पुरश्री क्या सारे संसार की श्री है। रूप में श्री और गुण में सरस्वती है। संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ उसकी स्तुति की सुगंध न फैली हो। चारों ओर से बड़े बड़े राजकुमार और धनिक उसके व्याह की आशा में आते हैं। भाई अनंत! यदि मुझे इतना रूपया मिलता कि वहाँ जाकर इन लोगों के समक्ष मैं विवाह की प्रार्थना कर सकता तो मेरा जी कहता है कि मैं अपने मनोरथ में अवश्य विजयी होता।

अनंत — भाई तुम अच्छी तरह जानते हो कि मेरी सब लक्ष्मी समुद्र में है, इस समय न मेरे पास मुद्रा है न माल जिसे बेच कर रुपया मिल सके, इससे जाओ देखो तो मेरी साक वंशनागर में क्या कर सकती है। तुम्हें पुरश्री के पास विल्वमठ जाने के लिए जो रुपया चाहिए उसके प्रबन्ध में मैं ऊँचा नीचा सब काम करने को प्रस्तुत हूँ। देखो अभी जाकर खोज करो कि रुपया कहाँ मिलता है और मैं भी जाता हूँ मेरे नाम या जमानत से जिस प्रकार रुपया मिले मुझे किसी बात में सोच विचार नहीं है।

(दोनों जाने हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान — विल्वमठ में पुरश्री के घर का एक कमरा

(पुरश्री और नरश्री आती हैं)

पुरश्री — नरश्री मैं सच कहती हूँ कि मेरा नन्हा सा जी इतने बड़े संसार से बहुत ही दुःखी आ गया है।

नरश्री — मेरी प्यारी सखी यह बात तो आप तब कहतीं जब, भगवान न करे, जैसा आपको सुख है उसके बदले उतना ही दुःख होता। परंतु न जाने क्यों प्रायः ऐसा देखा है कि जो बहुत धनवान हैं वह भी संसार से वैसे ही घबड़ाये रहते हैं जैसे वह लोग मृष्टों मरते हैं। इसी से निश्चय होता है कि मध्यावस्था कुछ साधारण भाग्य की बात नहीं। लक्ष्मी बहुत शीघ्र श्वेत बाल करती है पर तृप्ति बहुत दिन तक जिलाना है।

पुरश्री — क्यों न हो तुमने कैसे मनोहर वाक्य कहे और कैसी अच्छी तरह।

नरश्री — यदि उनका बरताव किया जाय तो और उ० हो।

पुरश्री — यदि अच्छी बात का करना उतना ही ही सहज होता जितना कि उसका जानना तो सब मढ़ियाँ मंदिर और सब भोपड़ियाँ महल हो जातीं। अच्छा गुरु वही है जो अपनी शिक्षा पर आप भी चलता है। बीस अच्छी बातें दूसरा को सिखलाना सहज है किंतु उनमें से अपनी शिक्षा के अनुसार एक पर भी चलना कठिन है। बुद्धि स्वभाव के ठंडा करने के लिये बहुत से उपाय बतलाती है किंतु समय पर क्रोध की गर्मी को कब रोक सकती है। यौवन का हिरन शिक्षा के फदे में से बहुत सहज से छूट जाता है। किंतु इस बात से और पतिवरण करने से कोई संबंध नहीं। हाय! भला मेरे वरण करने का फल ही क्या? मैं तो न जिसे चाहूँ उसे स्वीकार कर सकती हूँ और न जिसे न चाहूँ, उसे अस्वीकार कर सकती हूँ। हाय! एक जीती लड़की की आशा एक मरे हुए बाप के मृत-पत्र से कैसी रुक रही है। नरश्री क्या यह घोर दुःख की बात नहीं है कि न मैं किसी को स्वीकार कर सकती हूँ और न अस्वीकार?

नरश्री — आपके बाप बड़े अच्छे और धर्मिष्ठ मनुष्य थे और ऐसे महात्माओं को मरने के समय अनुभव हुआ करते हैं। इससे सोनो चाँदी और जस्ते के तीन सँदकों के निश्चय करने में जो बात उन्होंने सोची थी (जिसके अनुसार वह मनुष्य जो उनका बतलाया हुआ सँदक ग्रहण करेगा उसी का विवाह आपसे होगा) वह कभी बुराई न करेगी। मुझे निश्चय है कि

चितित सद्क को वही मनुष्य चुनेगा जिससे आप जी से प्यार करती होंगी। परन्तु यह तो कहिए कि इतने राजकुमार और धनिक जो विवाह की आशा में आए हैं

नरश्री— और भला फनेश देश के नरेश को आप कैसा समझती हैं।

पुरश्री— वे लगाम का ऊँट। मनुष्य के साँचे में ढल गया है बस इसी से मनुष्य कहा जाता है, नहीं तो है निरा पशु। किसी की निन्दा करनी निम्नन्देह पाप है पर सच्ची बात यह है कि नेपाल के राजकुमार से जैसा एक नाशने बढ़कर यह धुद्धवद्ध है वैसा ही पाटन वाले से बढ़कर नकचद्ध। आप तो कुछ भी नहीं है पर छाया उसमें सब किसी की है। अभी गौरिया बोले तो आप उसकी तान पर नाचने लगे और अभी अपनी परछाई देखें तो तलवार लेकर उससे लड़ने चलें। एक उससे न व्याह किया मानों बीस मनुष्य से एक साथ व्याह किया। यदि वह मुझसे धृणा करेगा तो मैं उससे कदापि अप्रसन्न न हूँगी वरंच अपना सौभाग्य समझूँगी क्योंकि यदि वह मेरे प्रेम में पागल भी हो जायगा तो मैं उसे प्यार न कर सकूँगी।

नरश्री— अच्छा, अंगदेश के नवयुवक धनी उनमें से किसी की अंग आपको कुछ भी स्नेह है या नहीं।

पुरश्री— तुम उनके नामों को मेरे सामने कहती जाओ तो मैं प्रत्येक के विषय में अपना विचार दर्शन करती जाऊँगी। इसी से तुम मेरे प्रेम का वृत्तित जान लोगी।

नरश्री— अच्छा तो नेपाल के राजकुमार से आरंभ कीजिए।

पुरश्री— छिः छिः! वह तो निरा बछेड़ा है, और कोई काम नहीं, बस रात दिन अपने घोड़ों ही का वर्णन। सारे अस्तबल की बेला अपने सिर लिये रहता है और बड़ा भारी अभिमान इस बात पर करता है कि मैं अपने घोड़े की नाल आप ही बाँध लेता हूँ। वह तो बिल्कुल खोगीर की भरती है। निखट्ट नेपाली टट्ट।

नरश्री— और पाटन वाला ?

पुरश्री— मरकहा बैल। रात दिन फूँ फूँ किया करना है मानो उसकी चितवन कहे देती है कि या तो व्याह करो या साफ जवाब दो। सैकड़ों हँसी की बातें सुनाता है पर चाहे कि तनिक भी उसका ध्यान

पिचके। मुस्कुराना तो सपने में नहीं जानता। हँसी मानो चुप में डार आया है। अभी जब हड्डा कट्टा साँड़ बना है तब तो वह रोनी मूरत है तो बुद्धापे में तो बात पूछते रो देगा। सिवाय हर हर भजने के और किसी काम का न रहेगा। मेरा व्याह चाहे एक मुद्दे से ही पर इन भदे जानवरों से नहीं। भगवान इन दोनों से बचावे।

ब्रजपालक को आप क्या कहती हैं ?

पुरश्री— तुम जानती हो कि मैं उसके कुछ नहीं कह सकती क्योंकि न वह मेरी बात समझता है न मैं उसकी। वह न हिंसी जानता है न ब्रजभाषा न मारवारी और तुम शपथपूर्वक कह सकोगी कि मैथिल में मुझे कितना न्यून अभ्यास है। उसकी सूरत तो बहुत अच्छी है पर इससे क्या ? खिलौने से कोई भी बातचीत कर सकता है ? उसका पहिनावा कैसा बेजोड़ है ! उसने अपना अंग मारवाड़ में मोल लिया है, पाजामा मधुरा में बनवाया है, टोपी गुजरात से मँगनी लाया है, और चालढाल थोड़ी थोड़ी सब जगह से भीख मांग लाया है।

नरश्री— और उसका परोसी मालवा का अधिपति ?

पुरश्री— परोसी की सी क्षमा तो उसके स्वभाव में निस्संदेह है क्योंकि उस दिन जब उस अंगवाले ने उसकी कनपटी पर एक घूसा मारा था तो उसने सौगंद खाई थी कि अवसर मिलेगा तो अवश्य बदला लूँगा। इस पर फनेश देशवाले ने बीच में पड़ कर भगड़ा यों निबटा दिया कि रुसो मत दहिने के बदले बायाँ भी तुमको मिल जायगा।

नरश्री— और उस नवयुवक शर्मण्य देश के मंडलेश्वर के भतीजे को आप कैसा पसंद करती हैं ?

पुरश्री— राम राम ! वह तो बड़ा भारी पनचक्कर है। सबरे जब वह अपने आप में रहता है तभी बहुत बुरा रहता है तो तीसरे पहर जब मद में चूर होता है तब तो और भी बुरा हो जाता है। अच्छी दशा में वह मनुष्य से कुछ न्यून रहता है और बुरी दशा में पशु से भी नीच हो ही जायगा। भगवान न करे यदि वह आपति पड़े कि मुझको उससे विवाह करना हो तो जैसे हो सके वैसे मैं उससे दूर रहूँ।

नरश्री— भला यदि ऐसा हुआ कि उसने वही मंत्रूषा चुना जिसके चुनने से वह आपको पावे तब क्या कीजिएगा क्योंकि फिर तो विवाह न करना अपने बाप

की इच्छा के विरुद्ध चलना है ।

पुरात्री— इसी से मैं तुम से कहती हूँ कि जिस मंजूषा में भूत की मूर्ति है, उसके ऊपर एक उत्तम मद्य से भरा हुआ पात्र रख दो क्योंकि भीतर भूत ऊपर मद्य बस वह उसी सन्दूक को चुनेगा । जैसे हो उस समुन्द्र सोख अगस्त से बचाने का कोई उपाय करना ही पड़ेगा ।

नरत्री— सखी आप इन बात का भय मत कीजिए कि इन लोगों में से किसी से आप को विवाह करना पड़ेगा क्योंकि मैं सब के जी का हाल ले चुकी हूँ । यदि आप अपने बाप की आज्ञा के अनुसार मंजूषा के चुनने ही पर अपना निश्चय रखेंगी और कोई दूसरी प्रतिज्ञा न करेंगी तो यह सब के सब यहाँ से चले जायें और फिर विवाह की इच्छा प्रकट कर के आपको कष्ट न देंगे ।

पुरात्री— तुम निश्चय जानो कि यदि मुझे मारकडेय की आयु मिले तो भी मैं अम्बालिका की तरह क्वारी मर जाऊँगी पर अपने पूज्य पिता की इच्छा के विरुद्ध कभी ब्याह न करूँगी । मुझे बड़ा आनंद है कि इन सन्दूकों में ऐसी चातुरी है कि यह सब आपत्ति बिना मंत्र जंत्र के आप से आप दूर हो जाती है क्योंकि इन में से ऐसा कोई नहीं जिसका मैं घड़ी भर रहना भी सह सकती हूँ ।

नरत्री— क्यों सखी आपको स्मरण है कि नहीं आप के पिता के समय में फनित मठ के राजा के साथ वंशनगर का एक युवक बुद्धिमान और शूर मनुष्य आया था ?

पुरात्री— हाँ वह बसन्त था — क्यों यहीं न उसका नाम था ?

नरत्री— हाँ सखी — जहाँ तक कि मुझे मूर्ख की समझ है सुंदरी स्त्री के योग्य उससे उत्तम और कोई वर मुझे दृष्टि नहीं पड़ा ।

पुरात्री— मुझे भी भाँति स्मरण है और जो कुछ तुमने उसकी प्रशंसा की बहुत ठीक है ।

(एक नौकर आता है)

क्यों क्यो ! कोई नई बात है ?

नौकर— बबुई साहिब ऊ चारों आदमी आप से बिदा होए के ठाढ़ होएँ और एक पाँचवाँ का हरकारा आयाल हो सो कहत हो की मोरकुटी के राजकुमार

ओकर मालिक आज राती के इहाँ पहुँची हैं ।

पुरात्री— यदि यह पाँचवाँ मनुष्य ऐसा होता है कि मैं उसके आने पर वैसा ही प्रसन्नता प्रकट कर सकती जैसी प्रसन्नता से इन चारों को बिदा करती हूँ तो क्या बात थी । परंतु यदि इसका रूप भूत का सा है और चित देवता का सा तो मैं उसका शाप देना इसका अपेक्षा उत्तम समझूँगी कि वह मुझसे ब्याह करे । नरत्री चलो । नौकर तू आगे जा । एक साहक जाने जा नहीं पाता कि दूसरा आ उपस्थित होता है । (सब जाते हैं) ।

तीसरा दृश्य

(बंसत और शैलाक्ष आते हैं)

शैलाक्ष— छ म सुद्रा — हैं ।

बंसत— हाँ साहिब — तीन महीने के वादे पर ।

शैलाक्ष— तीन महीने का वादा — हैं ।

बंसत— और इनके लिये, जैसा कि मैं आप से कह चुका हूँ, अनंत जामिन होंगे ।

शैलाक्ष— अनंत जामिन होंगे — हैं ।

बंसत— तो आप मुझे देंगे ? आप से मेरा काम निकलेगा ? मैं आप के उत्तर की रक्षा देखता हूँ ।

शैलाक्ष— छ सहस्र मुद्रा तीन महीने का वादा — और अनंत की जमानत ।

बंसत— जी हाँ । आप क्या उत्तर देते हैं ?

शैलाक्ष— अनंत है दो अच्छा मनुष्य ।

बंसत— क्यों क्या आपने इस के विरुद्ध कुछ सुना है ?

शैलाक्ष— नहीं नहीं, मेरा अभिप्राय उनके अच्छे होने से यह है कि उनकी जमानत ही बहुत है — यद्यपि आजकल उनकी दशा हीन है क्योंकि उनका एक जहाज त्रिफुल को गया है दूसरा हिन्दुस्तान को, सुना है कि भाजार में भी कुछ व्यवहार है, एक

तीसरा जहाज मौक्षिक में तथा चौथा अंग देश में है । इसी भाँति इधर उधर और बंदरों में भी उनकी जोखों है । परंतु जहाज फिर भी काठ ही है और मल्लाह भी मनुष्य ही है ; चूहे थल में भी होते हैं और जल में भी, वैसे ही चोर पृथ्वी पर भी होते हैं और पानी में भी अर्थात् डाकुओं का भय सभी स्थल है और फिर आँधी, तूफान और चट्टान का भय अलग लगा हुआ है पर फिर भी वह बहुत हैं — छ सहस्र मुद्रा — मैं समझता हूँ कि उनकी जमानत स्वीकार कर लूँगा ।

बंसत — संताप रखिए उनकी जमानत निस्संदेह ग्रहण करने योग्य है ।

शैलाक्ष — मैं अपना मन भर लूँगा और किस तरह मेरा तोप होगा इस पर विचार करूँगा — मैं अनंत से इसकी वानचीत कर सकता हूँ ?

बंसत — यदि दोपहर को कृपा करके हम लोगों के साथ खाना खाएँ तो वहाँ सब बात निश्चय हो जाय ।

शैलाक्ष — जी हाँ सूर्य सूँघने को और उस घर में खाने को जहाँ आप के देवताओं ने सब पिशाची की बातें भर दी हैं । मैं आप लोगों से लेन देन करूँगा बोलूँगा, आप के साथ चलूँ फिरेगा और ऐसे ही दूसरी बातें करूँगा, परंतु यह नहीं हो सकता कि मैं आप लोगों के साथ खाना खाऊँ, पानी पीऊँ या पूजा करूँ । वाजार की क्या खबर है ? — यह कौन आता है ।

(अनंत आता है)

बंसत — अनंत आप आ पहुँचे ।

शैलाक्ष — (आप ही आप) देखो इसकी सूरत ही से यह बात फलकती है कि यह हिंदुओं को प्रसन्न करने के लिये जैनियों से शत्रुता रखता है । मैं इससे वृणा करता हूँ क्योंकि यह ईसाई है परन्तु मुख्यतः इस कारण से ऐसा निरुत्साह और नीच है कि लोगों को रुपया बिना व्याज के ऋण दे देकर हम लोगों के व्याज का भाव बिगाड़ देता है । यदि एक बार भी मेरे हाथ चढ़े तो मैं सब पुरानी कसर निकाल लूँ । यह मनुष्य हमारी पवित्र जाति को तुच्छ समझता है और मेरी और मेरे व्यवहारों की निंदा वहाँ भी नहीं छोड़ता जहाँ बहुत से व्यापारी इकट्ठा होते हैं । धर्मोपार्जित द्रव्य का व्याज नाम रखता है । धिक्कार है मेरी जाति को यदि मैं इस मनुष्य से बदला न लूँ ।

बंसत — शैलाक्ष आपने सुना ?

शैलाक्ष — मैं अभी आपने जी में हिसाब कर रहा था कि मेरे पास कितना रुपया तैयार है और जहाँ तक मैंने सोचा इस समय मेरे पास छ सहस्र रुपया न निकलेगा — पर इससे क्या ? मैं त्र्यंबक से जो मेरी जाति का एक धनिक पुरुष है शेष मुद्रा ले लूँगा । परंतु नेक ठहरिए — कै महीने की मिति आप चाहते हैं ? (अनंत से) प्रणाम महाशय, आपकी बड़ी आयु है, अभी आप ही का हम लोग वर्णन कर रहे थे ।

अनंत — शैलाक्ष यद्यपि मैं व्याज पर रुपये का कमी लेन देन नहीं करता तो भी अपने मित्र की अत्यंत आवश्यकता को समझ कर अपने नियम के तोड़ने पर प्रस्तुत हूँ । बंसत तुम इनसे कह चुके हो कि कितने रुपये की आवश्यकता है ?

शैलाक्ष — हाँ हाँ — छ सहस्र मुद्रा ।

अनंत — और तीन महीने के लिये ।

शैलाक्ष — हाँ मैं भूल गया था — तीन महीने की मिति पर — आप कह चुके हैं — तो किन प्रतिज्ञाओं पर, नेक ठहरिए — किंतु सुनिए तो सही अभी आपने कहा था कि हम सूद पर लेन देन नहीं करते ।

अनंत — मैं इसका व्यापार कभी नहीं करता ।

शैलाक्ष — जब कि यादव अपने मामा लवंद्र की भेटों को चरते थे — तो उनको उनकी माँ की चातुरी से बरकत मिली थी ।

अनंत — तो उनके नाम लेने से यहाँ क्या तात्पर्य है ? क्या वह सूद खाते थे ?

शैलाक्ष — नहीं व्याज नहीं खाते थे, जिसे आप सूद कहते हैं ठीक वैसा व्याज नहीं लेते थे — सुनिए यह क्या उपाय करते थे । जब की लवंद्र और उनमें परस्पर यह बात निश्चय हुई कि जितने भेटों के बच्चे धारीदार और चितकबरे पैदा हों वह यादव को वेतन में मिले तो यादव ने चतुर्गई से बहुत सी हरी छड़ियाँ काट कर और स्थान स्थान से छिलका उड़ा कर उन्हें गंडेदार बनाया और उठी हुई भेटों के सामने गाड़ दिया और जब यह गाभिन हुई तो इसके प्रयोग से चितकबरे बच्चे उत्पन्न हुए, जो यादव के भाग में आये । यह लाभ उठाने का एक उपाय था और यादव पर ईश्वर की कृपा थी क्योंकि लाभ भी होना ईश्वर की कृपा है, यदि

मनुष्य उसको चोरी से न उपाजन करे !

अनंत — यह तो ईश्वर की दया थी जिससे यादव ने अपने परिश्रम का इस प्रकार से फल पाया । इसमें उनका कुछ वश न था वरंच केवल ईश्वर की माया से यह बात प्रकट हुई । पर क्या आप का यह तात्पर्य है कि इतिहास में इस कथा के लिखने से यह अभिप्राय था कि व्याज लेना उचित समझा जाय, या आप अपने रुपये और अशरफी को भेड़ा भेड़ी समझते हैं ।

शैलाक्ष — मैं यह नहीं कह सकता परंतु मैं उनसे बच्चे वैसे ही शीघ्र उत्पन्न कर लेता हूँ । परंतु नेक इस बात को सुनिए ।

अनंत — बसंत इस पर विचार करो, राक्षस भी अपने स्वार्थ के लिये इतिहास और पुराण का प्रणाम दे सकता है । दृष्ट मनुष्य जो अपनी निष्कलंकता प्रकट करता है एक हैसमुख बात करनेवाला होता है । वह एक सेव की भाँति है जिसका छिलका बहुत स्वच्छ और उत्तम है परंतु भीतर बिलकुल सड़ा हुआ है, देखो भूट की सूरत देखने में कैसी चिकनी चुपड़ी होती है ।

शैलाक्ष — छः हजार रुपया — यह तो एक पूरी जमा है — और महीने भी तीन — तो हमें भाव सोचने दीजिए ।

अनंत — स्पष्ट कइो रुपया देना है या नहीं ।

शैलाक्ष — अनंत महाशय आपने बाजार में सहस्रों ही बार मेरे धन और लाभ के लिये मेरी दुर्दशा की होगी पर मैंने क्षमा करने के सिवाय कभी कुछ उत्तर नहीं दिया क्योंकि क्षमा हमारी जाति का चिन्ह है । आप मुझे नास्तिक, गलकष्ट और कुत्ता कह कर मेरे जातीय परिधान पर थूकते थे और यह सब केवल इस अपराध के लिये कि मैं अपनी जमा को जिस भाँति चाहता हूँ काम में लाता हूँ । अस्तु तो अब जान पड़ता है कि आप मेरी सहायता के अपेक्षी हैं, आप मेरे पास आए हैं । और कहते हैं कि शैलाक्ष हमें रुपया ऋण दो — ऐं आप ऐसा कहते हैं, आप जो मेरी डाढ़ी को अपना उगालदान समझते थे और मुझे ठीक इस तरह ठोकर मारते थे जैसे कोई अपनी देहली पर अनजान कुत्ते को मारता है । आपकी प्रार्थना रुपये की है — इसका मैं आपको क्या उत्तर दूँ ? क्या मैं आपसे यह पूछूँ कि साहिब कहीं कुत्ते के पास भ रुपया सुना है ? कभी संभव है कि अपवित्र कुत्ता भी छ सहस्र मुद्रा ऋण दे सके । या नम्रता से सिरसं भुका कर भृत्य की भाँति

कांपता हुआ धीमे स्वर से निवेदन कहूँ 'महाराज ने कृपापूर्वक मुझ पर गए बुध को थूका था और फलाने दिन ठोकर मारी थी और फलाने दिन कुत्ते की उपाधि दी थी, अतः इन कृपाओं के बदले मैं उतना रुपया देने को प्रस्तुत हूँ ?

अनंत — मैं तुम्हें फिर भी ऐसा कहूँगा और तुम पर थूकूँगा और लात मारूँगा । यदि तुम्हें रुपया उधार देना है तो मुझे अपना मित्र समझ कर मत दे (क्योंकि मित्रता रुपये से जो एक बाँध की भाँति है बच्चे कब उत्पन्न कर सकती है ?) वरंच अपना शत्रु समझ कर जिससे भंगप्रतिज्ञ होने पर तुम्हें सर्व प्रकार से प्रतिज्ञानुसार दंड ग्रहण करने का मुँह पड़े ।

शैलाक्ष — वाह वाह देखिए तो आप कैसा आपे से बाहर हो गये । मैं आपसे मित्रता का नाता रक्खा चाहता हूँ और पिछले बैरों को मूला कर आपके स्नेह की आशा रखता हूँ, मैं आपको रुपया उधार देने को प्रस्तुत हूँ और मूढ़ एक पैसा नहीं चाहता तिस पर भी आप मेरी बात नहीं सुनते । क्या यह मेरा बर्ताव मित्रता का नहीं है ?

बसंत — यह आपकी दया है ?

शैलाक्ष — मैं इस कृपा को दिखलाऊँगा । (अनंत से) मेरे साथ किसी व्यवस्थापक के यहाँ चलिए और उसके सामने तमस्सुक पर अपनी मुहर कर दीजिए और हँसी की रीति पर यह शर्त लिख दीजिए कि यदि अमुक दिन और अमुक स्थान पर आप मेरा रुपया जिसका तमस्सुक में वर्णन है न चुका दें तो मुझे अधिकार होगा कि उसके बदले मैं आपके जिस शरीर के अंश से चाहूँ आघ से माँस काट लूँ ।

अनंत — मैं चित से प्रसन्न हूँ और इन शर्तों पर मुहर कर दूँगा और यह भी कहूँगा कि इस जैन में बड़ी मनुष्यता है ।

बसंत — तुम मेरे लिये ऐसे तमस्सुक पर हस्ताक्षर न करने पाओगे इससे तो मैं अपनी दरिद्रावस्था में रहना ही श्रेय समझूँगा ।

अनंत — क्यों ? इरो मत — प्रतिज्ञा भंग होने की घड़ी कदापि न आवेगी — दो महीने के भीतर अर्थात् तमस्सुक की मित्ती पूजने के एक महीना पहिले मुझे आशा है कि इसका तिगुना धन मेरे पास पहुँच जायगा ।

शैलाक्ष — हे ईश्वर, ये आर्य भी कैसे मनुष्य होते हैं ! जैसा इनका चित्त कठोर होता है वैसा ही औरों का भी समझ कर संदेह करते हैं ! भला यह तो बतलाइये कि यदि इन्होंने प्रतिज्ञा भंग की तो तुम इस शर्त के पूरा करने से क्या लाभ, होगा ? मनुष्य के शरीर का आघ सेर मांस किस रोग की औषधि है और वह किस गिनती में है ? क्या वह उतना भी काम में आ सकता है जैसा भेड़ी बकरी का मांस ? सुनिष्ट केवल इनसे मैत्री करने के लिये मैं इनके साथ ऐसी कृपा करता हूँ, यदि यह इसे समझें तो अच्छी बात है नहीं तो प्रणाम, और मेरी प्रीति के बदले मेरे साथ बुराई न कीजिएगा ।

अनंत — हाँ शैलाक्ष मैं इस तमस्सुक पर मुहर कर दूँगा ।

शैलाक्ष — तो अभी व्यवस्थापक के घर पर जाइए और इस हों की दस्तावेज के लिखने को कहिए । मैं भी श्रीप्राजा का कर धैली में छ हजार रुपये लिये हुए वहीं पहुँचा हूँ और अपना घर भी देखता आऊँगा जिसे एक बड़े बहुव्ययी और अविश्वासी भृत्य को सौंप आया हूँ — मैं सब काम कर के बात की बात में आप से मिलता हूँ । (जाता है)

अनंत — अच्छा फटपट जाओ । यह जैन ऐसा कृपालु होता जाता है कि आर्य बन जायगा ।

वसंत — मैं चिकनाँ चुपड़ी बातें और दुष्ट अंतःकरण नहीं पसंद करता ।

अनंत — आओ, इसमें कोई धोका नहीं हो सकता क्यों कि मेरे जहाज मिति पूजने के एक महीना पहिले अवश्य ही पहुँच जायेंगे । (जाते हैं)

द्वितीय अंक

पहिला दृश्य

स्थान — विल्वमठ । पुरश्री के घर का एक कमरा (तुरहियाँ बजती हैं । मोरकुटी का राजकुमार अपने रामासदों के सहित और पुरश्री, नरश्री और अपनी इसरी सहेलियों के संग आती है ।)

मोरकुटी — मेरी रंगत देखकर मुझे घृणा न करना क्योंकि यह तो सूर्य की दी हुई बर्फी है जिसके

समीप मैं रहता हूँ और जिसकी छाया में पला हूँ । उत्तर के देश जहाँ सूर्य की गर्मी वर्ष के दुकड़ों को भी नहीं गला सकती वहाँ के किसी सुंदर से सुंदर युवा को मेरे सामने लाओ और हम दोनों तुम्हारे प्रेम के लिये अपने शरीर में नश्वर चुभावें तो विदित होगा कि किस का रुधिर अधिक रक्त है । सखी तुम विश्वास मानों कि मेरे इसी चेहरे ने बड़े से बड़े वीरों का पिता पानी कर दिया है, और मैं अपने प्रेम की सौगंद खा कर कहता हूँ कि इसी मुख को मेरे देश की परम सुंदरी युवतियाँ भी चाहती हैं । मैं अपने इस रंग को किसी अवस्था में बदलना पसंद न करूँगा पर हाँ तुम्हारी प्रसन्नता के लिये ।

पुरश्री — मेरी रुचि के लिये केवल मेरी आँखें ही नहीं हैं और न मैं किसी भाँति अपनी इच्छा के अनुसार पति बन सकती हूँ, किंतु ऐ प्रसिद्ध राजकुमार, यदि मेरे पिता ने मुझे परवश न कर दिया होता अर्थात् इस बात की उलाहना न लगा दी होती कि जो कोई मुझे उस विधि से जीते (जिसका आपसे मैं वर्णन कर चुकी हूँ) उसकी मैं स्त्री बनूँ तो जिन लोगों को मैंने अब तक देखा है उनमें से आपको किसी की अपेक्षा पूर्ण मनोरथ होने का अवसर कम न था ।

मोरकुटी — मैं इतनी कृपा के लिये भी तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ, तो ईश्वर के लिये मुझे सद्गुणों के पास ले चलो जिसमें अपने प्रारब्ध की परीक्षा करूँ । शपथ है इस खंग की, जिसने राजा को वध किया और इंद्र के उस राजकुमार को मारा जो महाराज सुलक्षण से तीन लड़ाइयाँ जीता था, तुम्हारे मिलने की आशा में मैं संसार में वीर से वीर का सामना करने को प्रस्तुत हूँ, रीढ़ की मादा के सामने से उसके बच्चे उठा लाने को उपस्थित हूँ, सिंह जिस समय के शिकार की खोज में गरज रहा हो उसकी आँख निकाल लाने को प्रस्तुत हूँ — पर हाय ऐसी अवस्था में किसका वश है ! यदि हारीत और लक्ष्मण पासा फेंक कर इस बात को निश्चय करना चाहें कि दोनों में कौन बड़ा आदमी है तो संभव है कि पासे के पड़ने से अनारी जीत जाय और संसार का सबसे बड़ा पहलवान अपने एक नीच नौकर के सामने नीचा देखे । ऐसे ही संयोग से मेरी अवस्था हो सकती है कि अपने लक्ष्य में प्राप्त करने में असमर्थ हूँ जिसे कदाचित् एक साधारण व्यक्ति भी कर ले और मुझे कुढ़ कुढ़ कर मरना पड़े ।

पुरश्री — लाचारी है — बिना मंजूषा चुने हुए

कुछ नहीं हो सकता, इसलिये या तो आप इस इच्छा ही को छोड़ दें या यदि चुनना चाहें तो पहिले इस बात की शपथ खावें कि यदि आप भूटे मंजूषा को चुनें तो फिर आमरण किसी स्त्री की ओर ब्याह करने के अभिप्राय से दृष्टि न करें — इसे खूब सोच लीजिए ।

मोरकुटी — हमें यह प्रतिज्ञा स्वीकार है । चलो अपने भाग्य की परीक्षा करें ।

पुरात्री — पहिले मन्दिर में चलिए । तीसरे पहर सड़क चुनिएगा ।

मोरकुटी — ऐ भाग्य सहाय हो, मुझे सबसे अधिक प्रसन्न या सबसे अधिक अभागा बनाना तेरे ही हाथ है ।

(तुरहियाँ वज्रती हैं । सब जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान — वंशनगर-एक सड़क

(गोप आता है)

गोप — निस्संदेह मेरा धर्म मुझे इस जैन अपने स्वामी के पास से भाग जाने की सम्मति देगा । प्रेत मेरे पीछे लगा है और मुझे बहकाता है कि गोप, मेरे अच्छे गोप, पाँव उठाओ, आगे बड़ो, और चलते फिरते दिखलाई दो । मेरा धर्म कहता है नहीं, खबरदार सच्चे गोप खबरदार, सच्चे गोप भागो मत, भागने पर लात मारो । तो एक ओर से बली भूता बहका रहा है कि अपनी बोरिया बँधना बाँधो, धता हो, दून हो, साहस को दृढ़ करो और नौ दो ग्यारह हो जाओ — दूसरी ओर से धर्म मेरे चित्त को, गले का हार हो कर, इस प्रकार से शिक्षा देता है — मेरे धर्मिष्ठ मित्र गोप ! तुम कि एक धर्मात्मा के पुत्र हो वरंच यों कहना चाहिए कि एक धर्मात्मा स्त्री के पुत्र हो — अस्तु मेरा धर्म कहता है कि अपने स्थान से हिलो मत — तो अब भूत कहता है कि अपने स्थान से हिलो और धर्म कहता है कि अपने स्थान से मत हिलो । मैं अपने धर्म से कहता हूँ कि तुम्हारी सम्मति बहुत अच्छी है । फिर मैं भूत से कहता हूँ कि तुम्हारी राय बहुत अच्छी है । यदि मैं अपने धर्म की आज्ञा मानता हूँ तो मुझे अपने स्वामी जैन के साथ ठहरना पड़ता है जो कि आप ही एक

प्रकार का भूत है — यदि मैं जैन के पास से भाग जाता हूँ तो भूत की आज्ञा पर चलता हूँ जो कि (स्वामी की प्रतिष्ठा में अंतर नहीं डालता) आप ही भूत है । निस्संदेह जैन तो निज भूत का अवतार है इसलिये मेरी जान में तो मेरा धर्म बड़ा कठोर है जो इस जैन के साथ ठहरने की सम्मति देता है । भूत की सम्मति बहुत भली जान पड़ती है, तो ले भूत मैं भागने को उपस्थित हूँ, मेरे पाँव तेरी आज्ञा में हैं, मैं अवश्य भागूँगा ।

वृद्ध गोप — साहिब नेक कृपा कर के परदेसी महाजान के घर का मार्ग तो बत, देते ।

गोप — आगे के मोड़ पर पहुँच कर अपने दाहिने हाथ को फिर जाना, और सब से आगे को मोड़ पर जब पहुँचो तो अपने बायें हाथ को मुड़ना, फिर दूसरे मोड़ पर किसी ओर न फिरना वरंच तिरछे मुड़ कर सीधे परदेसी महाजान के घर चलो जाना ।

(वृद्ध गोप एक टोकरा लिए हुए आता है)

वृद्ध गोप — भाई समुद्र परदेसी महाजान के घर का कौन सा मार्ग है ?

गोप — (आप ही आप) ईश्वर का ज्ञान ! आप मेरे सगे बाप हैं, जो ऐसे अच्छे हो गए हैं कि अपने जनमाए हुए लड़के को नहीं पहिचानते । ठहरो ननिंक इन की परीक्षा लूँगा ।

वृद्ध गोप — भगवान की शपथ है इस मार्ग का पाना तो कठिन होगा । भला आप को विदित है कि एक मनुष्य गोप नाम का जो उनके यहाँ रहता था अब वहाँ है या नहीं ?

गोप — क्या तुम युवक गोप को पूछते हो ? — (आप ही आप) अब देखो मैं कैसा खेल करता हूँ — क्या तुम युवा गोप महाशय का वर्णन करते हो ?

वृद्ध गोप — 'महाशय' न कहिए वरंच एक दरिद्र का बेटा । उसका बाप एक बहुत ही धर्मात्मा दरिद्री है पर धन्य है ईश्वर को कि रोटी कपड़े से सुखी है ।

गोप — उसके बाप को कौन पूछता है वह जो चाहे सो हों, यहाँ तो इस समय युवा गोप महाशय का वर्णन है ।

वृद्ध गोप — जो हाँ वही गोप आप का मित्र ।

गोप — इसी लिये तो बूढ़े बाबा मैं तुमसे कहता हूँ, इसी लिये तो निवेदन करता हूँ कि उसे युवा महाशय कहो ।

वृद्ध गोप — आप की साहिबी बनी रहे मैं गोप

को पूछता है ।

गोप — तो उसका नाम गोप महाशय हुआ — बाबा गोप महाशय का वर्णन न करो क्योंकि वह युवा सज्जन मनुष्य तो कुछ दिन हुए मर गया या यों समझ लो कि स्वर्ग को गया ।

बृद्ध गोप — भगवान न करे ! वही लड़का तो मेरे बुढ़ापे की लकड़ी था, मेरे अँधेरे घर का दीपक था ।

गोप — मेरी सूरत तो कहीं लकड़ी या दिये से नहीं मिलती ? — बाबा तुम मुझे पहचानते हो ?

बृद्ध गोप — शोच है कि मैं आप को नहीं पहिचानता, किंतु ईश्वर के लिये मुझे शीघ्र बतलाइए कि मेरा लड़का (भगवान ससकी आत्मा को सुख दे !) जीता है कि मर गया ?

गोप — बाबा तुम मुझे नहीं पहिचानते ?

बृद्ध गोप — साहिब मैं तो बिल्कुल अंधा हूँ और तुम्हें नहीं पहिचान सकता ।

गोप — और न यदि तुम्हारे आँख होती तो तुम मुझे पहिचान सकते । यह बड़े बुद्धिमान पिता का काम है कि अपने लड़के को पहिचान लें । अच्छा बूढ़े बाबा मैं तुम्हारे बेटे का हाल तुमसे कहूँगा, मुझे आशीर्वाद दो, अभी सच्चा हाल खुल जायगा । रुधिर अधिक दिन तक नहीं छिप सकता, लड़का कदाचित् छिप सके — परंतु अंत को मुख्य बात प्रकट हो जाती है । (घुटने के बल झुकता है) ।

बृद्ध गोप — भाई उठो यह क्या बात है — मुझे निश्चय है कि तुम मेरे लड़के गोप नहीं हो ।

गोप — ईश्वर के लिये अब अधिक मूर्ख मत बनो और मुझे आशीर्वाद दो । मैं वही गोप हूँ जो पहिले तुम्हारा लड़का था, अब तुम्हारा बेटा है, और आगे तुम्हारा बच्चा कहलावेगा ।

बृद्ध गोप — मैं कैसे जानूँ कि तुम मेरे बेटे हो ?

गोप — मैं नहीं जानता कि तुम्हारी समझ को क्या कहूँ पर महाजन का नौकर गोप मैं ही हूँ और भली भाँति जानता हूँ कि तुम्हारी पत्नी मागधी मेरी माता है ।

बृद्ध गोप — निस्सन्देह उसका नाम मागधी है । मैं शपथ से कह सकता हूँ कि यदि तू गोप है तो मेरे ही मांस और रुधिर से है । बाह बाह तेरे डाढ़ी कितनी लंबी निकल आई है ! जितने बाल तेरी टुडड़ी पर हैं उतने तो मेरे घोड़े दमनक की पोंछ पर भी न होंगे ।

गोप — तो इससे मालूम होता है कि दमनक की पोंछ बढ़ने के बदले दिन पर दिन भीतर धुसी जाती है । मुझे स्मरण है कि जब मैंने उसे अंतिम बार देखा था तो उसकी पोंछ के बाल मेरी डाढ़ी के बाल से कहीं बड़े

थे ।

बृद्ध गोप — हे भगवान ! तम में कितना अंतर हो गया है । भला तुझे से और तेरे स्वामी से कैसी पटती है ? मैं उसके लिये कुछ भेंट लाया हूँ । बता तेरी उनके साथ कैसी निभती है ?

गोप — किसी भाँति निभ जाती है । मैं अपने जी में नौ दो ग्यारह होने की ठान चुका हूँ और जब तक कुछ दूर भाग न लूँगा कदापि दम नहीं लूँगा । मेरा स्वामी पूरा जैन है । उसे भेंट दोगे ! हुह, उसे फाँसी दो । मैं उसी नौकरी में भूखों मरता हूँ — नेक मेरी दशा तो देखो कि कोई चाहे तो मेरी नसीब को हर एक अँगुली को गिन ले । बाबा बड़ी बात हुई कि तुम यहाँ आ गए । चलो अपनी भेंट वसंत महाराज को दो जो अच्छी नई नई वदियाँ बाँटता है । यदि मुझे इसकी नौकरी न मिली तो जहाँ तक कि ईश्वर के पास पुथ्वी है मैं भाग जाऊँगा । अहा ! मेरा भाग्य कैसा प्रबल है ! देखो वह आप चले आते हैं । बाबा इससे कहो, क्योंकि यदि अब मैं एक दम भी जैन की नौकरी करूँ तो मैं उससे अधम ।

(वसंत लोरी तथा दूसरे भृत्यों के सहित आता है)

वसंत — अच्छा यों ही करो — परंतु देखो ऐसी शीघ्रता से सब प्रबंध हो कि अधिक से अधिक पाँच बजे तक ब्यालू तैयार हो जाय । इन पत्रों को डाक में डाल आओ, वदियाँ भटपट बनवा लो और गिरीश से जाकर कहो कि अभी मेरे घर आवें ।

(एक नौकर जाता है)

गोप — बाबा — हूँ ।

बृद्ध गोप — ईश्वर आपको निरायु करे ।

वसंत — (धन्यवाद पूर्वक) तुम्हें मुझसे कुछ काम है ?

बृद्ध गोप — धर्मावतार यह दीन बालक भेर पुत्र —

गोप — दीन बालक नहीं महाराज वरंच धनिक महाजन का मनुष्य जो इस बात को चाहता है जैसा कि मेरा पिता विवरण के साथ कहेगा कि —

बृद्ध गोप — इसे नौकर की बड़ी इच्छा है और —

गोप — सचमुच महाराज मुख्य बात वह है कि मैं जैन के यहाँ नौकर हूँ और इच्छा रखता हूँ जैसा कि मेरा बाप कहेगा कि —

बृद्ध गोप — महाराज इसकी और इसके स्वामी की जरा भी नहीं पटती —

गोप — मैं थोड़े में सच्ची कहे देता हूँ कि जैन ने

मेरे साथ बुराई की है जिसके कारण से मैं चाहता हूँ, जैसा कि मेरा बाप जो मैं आशा करता हूँ कि एक वृद्ध मनुष्य है आपसे सविस्तार वर्णन करेगा —

वृद्ध गोप — मैं एक थाली कबूतर के मांस की आपको पारितोषिक देने को लाया हूँ और मेरी प्रार्थना यह है कि —

गोप — सौ बात की एक बात यह है कि यह प्रार्थना मेरे विषय में जैसा कि आपको इस सच्चे बूढ़े के कहने से विदित होगा जो यद्यपि बूढ़ा और दीन है तो भी मेरा बाप है।

बसंत — दो के बदले एक मनुष्य बोलो — तुम क्या चाहते हो ?

गोप — सरकार की सेवा करना।

वृद्ध गोप — जी हाँ यही मुख्य तात्पर्य है।

बसंत — मैं तुम्हें भली भाँति जानता हूँ, तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार हुई। तुम्हारे स्वामी शैलाक्ष ने आज ही तुम्हारी सिफारिश की है, यदि एक धनवान जैन की सेवा छोड़ कर मुझ ऐसे दरिद्री की नौकरी करना चाहते हो।

गोप — वह पुरानी कहावत सरकार के और मेरे स्वामी शैलाक्ष के विषय में ठीक ठीक घट गई है — सरकार पर ईश्वर की कृपा है और उसके पास पुष्कल धन है।

बसंत — यह बात तो तुमने खूब कही। बूढ़े बाबा अपने बेटे के साथ जाओ अपने पुराने स्वामी से बिदा होकर मेरे घर का पता लगाकर उपस्थित हो। (अपने भूत्यों से) इस मनुष्य को एक वर्दी जिसमें औरों की वर्दियों से उत्तम लैस टैकी हो दे दो, देखो अभी निबटा दो।

गोप — बाबा चलो — मेरे लिये कहीं नौकरी की कमी हो सकती है, नहीं। मैं कभी अपने भुँह से प्रार्थना नहीं करता ! हाँ (अपना हाथ देख कर) क्या मुझ से बढ़कर मारवाड़ भर में किसी की हवेली निकलेगी, जो पुस्तक लेकर शपथ खाने को प्रस्तुत है कि तुम खूब रुपया कमाओगे ! यह देखो आयु की रेखा कैसी सीधी चली गई है ! — और यह पल्लियों का एक साधारण लेखा है — हा केवल पंद्रह स्त्री यह तो कुछ भी नहीं है — ग्यारह राँड़ और नौ क्वारियों से ब्याह करना तो मनुष्य के लिये थोड़ी ही बात है — फिर तीन बार डबते डबते बचना — और फिर

एक तिनके से जीव का जोखिम — यह देखो यह इन सब आपत्तियों से बचने की रेखा है — अहा ! यदि विधाता कोई स्त्री है तो ऐसे उत्तम स्त्रीधन के साथ

अवश्य ब्याहने के योग्य है — बाब जाओ — मैं पलक भाँजते मैं जैन से बिदा हो लूँगा। (गोप और वृद्ध गोप जाते हैं)।

बसंत — लोरी इसको भली भाँति समझ लो। इन वस्तुओं को मोल लेकर और वर्दियाँ बाँट कर शीघ्र लौट आओ क्योंकि आज ही रात को मुझे अपने परम प्रतिष्ठित मित्र का आतिथ्य करना है। शीघ्रता करो, जाओ।

लोरी — जहाँ तक हो सकता है शीघ्र प्रबंध करके उपस्थित होता हूँ।

(गिरीश आता है)

गिरीश — तुम्हारे स्वामी कहाँ हैं ?

लोरी — महाराज, वहाँ टहल रहे हैं।

(लोरी जाता है)

गिरीश — बसंत महाशय —

बसंत — गिरीश !

गिरीश — मेरी आपसे एक प्रार्थना है।

बसंत — मैंने स्वीकार की — कहो।

गिरीश — देखिए अस्वीकार न कीजिएगा — मैं आपके साथ विलम्बमठ चलूँगा।

बसंत — इसमें कौन सी बात है आनंद से चलो — लेकिन सुनो गिरीश, तुम में ढिठाई, अनाय्यता और असभ्यता अधिक है जो यद्यपि तुम में गुण जान पड़ते हैं और हमारी दृष्टि में दुर्गुण नहीं ठहरते तथापि बाहरवालों की दृष्टि से धृष्टता समझी जाती हैं। नेक इसका ध्यान रखना और लज्जा के ठंढे पानी से अपने चिलबिलेपान की गर्मी को ठंडा करने का यत्न करना जिसमें ऐसा न हो कि जहाँ मैं जानेवाला हूँ वहाँ तुम्हारी अनाय्यता के कारण मैं भी हल्का समझा जाऊँ और मेरी सब आशाएँ धूलि में मिल जायँ।

गिरीश — बसंत महाराज, सुनिए यदि मैं गंभीर बन जाऊँ, नम्रता के साथ न बोलूँ, शपथ खाने का अभ्यास कम न कर दूँ, स्तोत्र की पुस्तक जेब में न भरे रहूँ, दृष्टि नीची न रखूँ, केवल इतना ही नहीं वरंच जिस समय स्तुति पढ़ी जाती हो अपनी टोपी की इस तरह आँख पर आँधेरी न चढ़ा लूँ, और आह भर कर एवमस्तु कहूँ, और एक बड़े विद्वान सभ्य मनुष्य की भाँति निम्रता के साथ हर बात में चुनाचुनी न करूँ, तो आज से मेरी बात का विश्वास न कीजिएगा।

बसंत — वह तो देखने ही में आवेगा।

गिरीश — हाँ पर आज की रात को इस प्रतिबंध से दूर रखिए, आज की रात हँसी के लिये रुकावट न रहेगी।

बसंत — नहीं नहीं मैं कब ऐसा चाहने लगा, वरंच मैं तो स्वयं कहने को था कि आज की सभा में नियम से भी अधिक ढीठ रहो क्योंकि आज ऐसे मित्रों का भोज है जो चुहल की इच्छा रखते हैं — परंतु इस समय विदा हो क्योंकि मुझे कुछ काम है ।

गिरिश — और मैं लवंग प्रमृति के पास जाता हूँ, पर भोजन के समय हम सब अवश्य उपस्थित होंगे !

(दोनों जाते हैं)

तीसरा दृश्य

स्थान — वंशनगर, शैलाक्ष के घर की एक कोठरी
(जसोदा और गोप आते हैं)

जसोदा — मुझे खेद है कि तू मेरे बाप की नौकरी छोड़ता है । यह घर मुझे नरक समान लगता है पर तुम ऐसे हंसमुख भूत के कारण थोड़ा बहुत जी बहल जाता था । अस्तु, विदा हो ; यह ले यह एक रुपया तेरे लिये पारितोषिक है । और सुन गोप ! थोड़ी देर में तेरे नये स्वामी के यहाँ लवंग भोजन करने जायगा उसे चुपके से यह पत्र दे देना — बस जा — मैं नहीं चाहती कि मेरा बाप मुझे तुझसे बात करते देख ले ।

गोप — तुम्हें ईश्वर को सौंपता हूँ — आँसुओं के मारे तो मेरे मुँह से शब्द नहीं निकलने पाता । ऐ सुंदरी कामिनी, ऐ प्यारी जैनिन, यदि कोई आर्य्य तुझे न ठगे और अपनी स्त्री न बनावे तो मेरा नाम नहीं । किंतु बस, ईश्वर ही रक्षा करे । प्रेम के आँसू तो मेरे दृढ़ चित्त पर प्रबल हुआ चाहते हैं । ईश्वर रक्षा करे —

(जाता है)

जसोदा — अच्छा विदा हो सुहृद गोप । हाय ! मेरे लिये कैसे यह पाप की बात है कि मैं अपने बाप की लड़की होने से लज्जित होऊँ ! परंतु यद्यपि मैं उसके रक्त से उत्पन्न हूँ पर मेरा चित्त उसका सा नहीं है । ऐ लवंग, यदि तू अपने वचन पर दृढ़ रहा तो मैं इस भगड़े को निबटा दूँगी और आर्य्य होकर तेरी प्यारी स्त्री बन जाऊँगी ।

(जाती है)

चौथा दृश्य

स्थान — वंशनगर — एक सड़क
(गिरिश, लवंग, सलारन और सलोने आते हैं)

लवंग — नहीं, वरंच हम लोग खाने के समय खिसक देंगे और मेरे घर पर आकर भेस बदल कर सब लोग लौट आवेंगे । एक घंटे में सब काम हो जायगा ।

गिरिश — हम लोगों ने अभी सब तैयारी नहीं की है ।

सलारन — अब तक मशालिचियों का भी कुछ प्रबंध नहीं हुआ है ।

सलोने — जब तक कि स्वाँग का उत्तमता के साथ प्रबंध न हो वह निरा लड़कों का खेल होगा और मेरी सम्मति में ऐसी अवस्था में उसका न करना ही उत्तम होगा ।

लवंग — अभी तो केवल चार बजा है — अभी हमें तैयारी के लिये दो घंटे का अवकाश है —

(गोप हाथ में पत्र लिए आता है)

कहो जी गोप क्या समाचार लाए ?

गोप — यदि आप इसे खोलेंगे तो आप ही सब समाचार विदित हो जायगा ।

लवंग — मैं इन अक्षरों को पहिचानता हूँ, ईश्वर की सौगंध कैसे सुंदर अक्षर हैं, और जिस कोमल हाथ ने इन्हें लिखा है वह इस पत्र से भी अधिक गोरा है ।

गिरिश — निस्संदेह यह तुम्हारी प्यारी का पत्र है ।

गोप — सहिव अब मुझे आज्ञा होती है ?

लवंग — कहाँ जाते हो ?

गोप — अपने पुराने स्वामी जैन को अपने नये आर्य्य स्वामी के साथ आज रात को भोजन करने के लिए निमंत्रण देने ।

लवंग — ठहरो, यह लो, प्यारी जसोदा से कह दो कि कदापि अंतर न पड़ेगा — देखो अकेले में कहना — जाओ ।

(गोप जाता है)

महाशयो आप लोग अब तो रात के लिये स्वाँग की तैयारी करेंगे ? मशाल दिखलाने वाले का प्रबंध हो गया ।

सलारन — जी हाँ मैं अभी जाकर तैयार होता हूँ ।

सलोना — और मैं भी चला ।

लवंग — लगभग एक घंटे के गिरिश के घर पर मुझसे और गिरिश से मिलना ।

सलारन — बहुत ठीक ।

गिरिश — वह पत्र जसोदा ही का न था ?

(सलारन और सलोने जाने हैं)

लवंग — अवश्य है कि मैं तुमसे सब हाल वर्णन कर दूँ। उसने मुझे सूचना दी है कि मैं उसे किस भाँति उसके बाप के घर से ले जाऊँ, कितनी अशरफी और गहने उसने ले रखे हैं, और कैसा परिचारक का वस्त्र अपने लिये उपस्थित कर रखा है। भाई गिरीश यदि कभी इसके बाप जैन को स्वर्ग में आने की आज्ञा मिलेगी तो अपनी बेटी के सुकृत के बदले, और यदि कभी कोई बुराई इस तक आवेगी तो इस बहाने से कि वह एक अधर्मी जैन की बेटी है। आओ, मेरे साथ आओ, मार्ग में इसे पढ़ते चलो। सुंदरी जसोदा आज स्वाँग में मशाल दिखलावेगी।

(दोनों जाते हैं)



पाँचवा दृश्य

स्थान — वंशनगर — शैलाक्ष के घर के सामने

(शैलाक्ष और गोप आते हैं)

शैलाक्ष — अच्छा तो तू देखेगा, तेरा आँखें आप ही इस बात का न्याय करेंगी कि वृद्ध शैलाक्ष और बसंत में कितना अंतर है। अरी जसोदा ! जैसा तू मेरे यहाँ मुखमुए की भाँति ढाई सेर भकोसता था उसका स्मरण वहाँ आवेगा। अरी जसोदा ! और हर समय पड़े रहने और खरटे लेने और कपड़े फाड़ डालने की महिमा भी जान पड़ेगी। अरी जोसदा, सुनती नहीं !

गोप — जसोदा !

शैलाक्ष — तुम, किसने पुकारने को कहा है ? मैंने तुमसे नहीं कहा कि पुकार।

गोप — आपही न मुझ पर सदा क्रोध हुआ करते थे जि तू बेकहे कोई काम नहीं करता।

(जसोदा आती है)

जसोदा — मुझे आपने बुलाया है ? आज्ञा ?

शैलाक्ष — मुझे आज का नेपता आया है, लो जसोदा यह कुंजियाँ तुम्हारे सुपर्द हैं। पर मैं क्यों जाने लगा ? मुझे वह लोग कुछ प्रेम में नहीं बुलाते वरंच सुश्रया से — किंतु क्या हुआ मैं भी तिरस्कार की दृष्टि से जाऊँगा और उस बहुव्ययी आर्य्य का माल चामूँगा। मेरी प्यारी बेटी तू घर से सावधान रहियो।

मेरा जाने को तानक भी जी नहीं चाहता, मुझे कोई बुराई आती मालूम होती है जिसका मेरे जी में खटका लग रहा है, क्योंकि आज ही रात को मैंने रुपये के

तोड़ों का सपना देखा था।

गोप — आप कृपा करके चलें : मेरे नये स्वामी आपकी राह देखते होंगे, और उन लोगों ने आपस में गुट किया है। यह मैं नहीं कह सकता कि आप अवश्य ही स्वाँग देखिएगा परंतु यदि ऐसा हुआ तो निस्संदेह कुछ न कुछ रंग खिलेगा क्योंकि मेरी नाक से उस दिन तेवहार के छ बजे सबेरे रुधिर का बहना व्यर्थ न जायगा।

शैलाक्ष — क्या स्वाँग भी बनेंगे ? सुनो जसोदा ब्राह्मों में ताला लगा दो और जब मेरी टबटब और बाँसुरी की ध्वनि सुनाई दे तो भरोखों में से भाँकने के लिये ऊपर न चढ़ना और न इन आर्य्य मसखरो के लुक फेर हुए चिहनों को देखने के लिए खिड़की से बाजार की ओर सिर निकालना वरंच शीघ्र ही मेरे घर के कानों को अर्थात् खिड़कियों को बंद कर लेना जिसमें ऐसे असभ्य तुच्छ जनों का शब्द मेरे सभ्य घर के भीतर न पहुँचने पावे। शपथ है अहंत देव की छड़ी की मेरा जी आज रात के नेवते में जाने को नेक भी नहीं उभरता। किन्तु मैं जाऊँगा। अबे तू आगे जा कह दे कि मैं आऊँगा।

गोप — महाराज में चला। बबुई तुम इनकी बकबक पर ध्यान न देकर आवश्य खिड़की में से भाँकती रहना क्योंकि 'आज होगा उस मसीहा का गुजर इस राह से, जिसने मूसा क को।' (जाता है)।

शैलाक्ष — वह मूर्ख प्रेत का अवतार क्या कहता था, ऐं ?

जसोदा — उसने केवल इतना ही कहा कि 'बबुई ईश्वर आपकी रक्षा करे' और कुछ नहीं।

शैलाक्ष — वह मूर्ख प्रेम तो रखता है परंतु खाने में सांड से अधिक है, दिन को सोने में जंगली बिल्ली से बढ़कर और काम करने में घोड़े से अधिक सुस्त। ऐसे कृतघ्नों का निर्वाह मेरे साथ कहाँ हो सकता है ; इसीलिए मैं उसे दूर करता हूँ, और फिर उसे पल्ले भी कैसे मनुष्य के बाँधता हूँ जिसके उधार लिए हुए रुपये के नष्ट करने में वह सहायता देगा। अच्छा जसोदा अब तुम भीतर जाओ, कदाचित् मैं अभी लौट जाऊँ। जिस भाँति मैंने समझा दिया है वैसा ही करना। ब्राह्मों को बंद करती जाओ — 'जागै सो पावै, सोवै सो खोवै' यह कहावत बहुत ठीक है। (जाता है)

जसोदा — जाइए — (आप ही आप)

"गर वर आई आर्जू मेरी तो रुखसत आपको,
आपने बेटे को खोया और मैंने बाप को ।"

(जाती है)

छठा दृश्य

(स्थान — शैलाक्ष के घर के सामने)

(गिरीश और सलारन भेस बदले हुए आते हैं)

गिरीश — यही वरामदा है जिसके नीचे लवंग ने हमें खड़े रहने को कहा था ।

सलारन — उनका समय तो हो गया ।

गिरीश — आश्चर्य है कि उन्होंने देर की क्योंकि अनुरागियों की चाल तो सदा धड़ी से तीव्र रहती है ।

सलारन — ओह ! नये अनुरागी कामदेव के कबूतर की भाँति अनुराग की दस्तावेज पर मुहर करने को तो दस गुने तेज उड़ते हैं पर फिर उसकी उलफन में उतने ही सुस्त हो जाते हैं ।

गिरीश — यह तो नियम की बात है । किसी को भी खाने के पश्चात् वह भूख नहीं रह जाती है जो खाने पर बैठने के समय थी ? कोई घोड़ा भी उस तीव्रगति के साथ लौट सकता है जिसके साथ वह चला था ? संसार में जितनी वस्तुएँ हैं उनके मिलने के पूर्व जो उत्साह रहता है वह उनके मिलने पर नहीं रहता जैसा कि कहा भी है । "जो मजा इतिहार में देखा, वह नहीं वस्त्रो यार में देखा ।" जिस समय जहाज अपनी खाड़ी से खाना होता है तो कैसा एक युवा व्यसनी अथवा बहुव्ययी के भाँति भड़ियाँ फहराए हुए और दुष्ट वायु के गले लगा हुआ चला जाता है ! पर जब वह लौटता है तो उसी बहुव्ययी की भाँति उसकी कैसी दुरवस्था हो जाती है अर्थात् तूफान से किनारे टूटे हुए, पाल फटे हुए निरातंक और व्याकुल ! और यहाँ सब बुराइय उसी कठोर वायु के द्वारा होती है ।

(लवंग आता है)

गिरीश — वह देखो लवंग आ पहुँचे । उस विषय में हम लोग फिर बातचीत करेंगे ।

लवंग — मेरे प्यारे 'जो, मुझे विलांब के लिये क्षमा करना । इसमें अपराध मेरा न था वरंच आवश्यक कामों को । जब स्त्री चुराने की तुम्हारी बारी आवेगी तब मैं भी इतनी देर तक तुम्हारी राह देखूँगा । अच्छा इधर आओ, यहीं मेरा ससुरा जैनी रहता है । ऐ कोई भीतर है ।

(जसोदा लड़के का कपड़ा पहिने हुए ऊपर से भाँकती है)

जसोदा — तुम कौन हो ? शीघ्र बतलाओ जिसमें मेरा पूरा संतोष हो जाय । यद्यपि मैं शपथ खा सकती हूँ कि मैं तुम्हारा शब्द पहिचानती हूँ ।

लवंग — तुम्हारा प्रेमी लवंग ।

जसोदा — निस्संदेह तुम लवंग हो, और सचमुच मेरे प्यारे, क्योंकि मैं तुम्हारे सिवाय किसको प्यार करती हूँ ? किंतु प्यारे इस बात को सिवाय तुम्हारे कौन जान सकती है कि मैं भी तुम्हारी प्यारी हूँ या नहीं ?

लवंग — इस बात का साक्षी तो ईश्वर और तुम्हारा मन है ।

जसोदा — लो इस सद्क को सम्हालो, इसमें हम लोगों के परिश्रम का पूरा मिहनताना मिलेगा । मुझे हर्ष है कि रात का समय है और तुम मेरी सूरत नहीं देख सकते क्योंकि मुझे अपने इस वेष पर बड़ी लज्जा आती है : पर प्रेम अंधा होता है और प्रेमी अपनी मूर्खता की बातों को कभी नहीं देख सकते, क्योंकि यदि वह देख सकें तो कामदेव आप मुझे लड़के के वेष में देख कर लज्जित हो जाय ।

लवंग — उतरो, क्योंकि तुम्हें मशअल दिखलानी होगी ।

जसोदा — क्या मैं अपनी निर्लज्जता को आप ही मशअल लेकर दिखाऊँ ? वह तो स्वयं अत्यंत प्रकाशमान है । प्यारे, मशअलची तो इसलिये होता है कि अंधेरे में की वस्तुओं को प्रकट करे पर मुझे तो उसके विरुद्ध अपने तई छिपाना चाहिए ।

लवंग — प्यारी तुम तो लड़के के सुहावने वेष में आप ही छिपी हो । परंतु अब शीघ्रता करो क्योंकि रात, जो प्रेमियों की अवलंब है, बीतती जाती है और हम लोगों को अभी वसंत के भोज में कुछ देर ठहरना है ।

जसोदा — मैं द्वार बंद करके और कुछ और रुपये ले कर अभी आती हूँ ।

(ऊपर से जाती है)

गिरीश — मैं शपथ खा कर कह सकता हूँ कि वह जैन नहीं वरंच आर्या जान पड़ती है ।

लवंग — मेरा बुरा हो यदि मैं इसे जो से न प्यार करता हूँ । यदि मेरी समझ ठीक है तो यह बुद्धिमती है, और यदि मेरी आँखें अंधी नहीं हो गई हैं तो सुंदर भी अत्यंत ही है । सचाई इस की जैसी कुछ है विदित है, अतः ऐसी बुद्धिमती, सुंदरी और सच्ची युवती का मैं सदा मन से आज्ञाकारी रहूँगा ।

(जसोदा नीचे आती है)

क्या तुम आ गई ? चलो महाशयो, चलो, हमारे स्वाँग

के साथी लोग हमारी राह देख रहे होंगे ।
(जसोब और सलारन के साथ जाता है)
(अनंत आता है)

अनंत — कौन है ?

गिरीश — अनंत महाराज ?

अनंत — छी छी गिरीश ! और लोग कहाँ हैं ?
नौ बज गया । हमारे सब मित्र तुम लोगों का बाट जोहते हैं । आज स्वाँग बंद रहा क्योंकि अभी —
अनुकूल वायु चला और वसंत शीघ्र ही यात्रा करने जायेंगे । मैंने बीसियों मनुष्यों को तुम्हारी खोज में चारों ओर नौड़ाया है ।

गिरीश — मैं इस सनाचार से बहुत प्रसन्न हुआ । मुझे स्वाँग से कहीं बढ़ कर इस बात में आनंद मिलेगा कि आज ही रात को पाल उड़ाऊँ और चलता-फिरता दिखलाई दूँ ।

(जाते हैं)

सातवाँ दृश्य

(स्थान — विल्वमठ, पुरश्री के घर का एक कमरा)

(तुरहियाँ बजती हैं । पुरश्री और मोरकुटी का राजकुमार अपने अपने साथियों के साथ आते हैं)

पुरश्री — जाओ, पढ़ें उठाओ और इस प्रतिष्ठित राजकुमार को तीनों सद्क दिखलाओ । अब आप पसंद कर लें ।

मोरकुटी — पहला सद्क सोने का है जिस पर यह लेख लिखा है । "जो कोई मुझे पसंद करेगा वह उस वस्तु को पावेगा जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं ।"

दूसरा चाँदी का है जिस पर यह प्रतिज्ञा लिखी है ।

"जो कोई मुझे पसंद करेगा वह उतना पावेगा जितने के वह योग्य है ।"

तीसरा कुंद सीसे का है जिस पर वैसी ही धमकी भी लिखी हुई है । "जो कोई मुझे पसंद करे वह अपनी सब वस्तुओं को भय में डाले और उनसे हाथ धोवे ।"

भला मैं कैसे जानूँगा कि मैंने सही सद्क चुना है ?

पुरश्री — इनमें से एक में मेरी तस्वीर है — यदि आप उसे चुनेंगे तो मैं भी उस चित्र के साथ आप की हो जाऊँगी ।

मोरकुटी — कोई देवता इस अवसर पर मेरी सहायता करता ! देखूँ तो : मैं इस सद्कों के परिलेखों

पर फिर तो विचार करूँ । इस सीसे के सद्क पर क्या लिखा है ?

"जो कोई मुझे पसंद करे वह अपनी सब वस्तुओं को भय में डाले और उनसे हाथ धोवे ।

हाथ धोवे — किस के लिये ? सीसे के लिये ? भय में डालना और सीसे के लिये ? यह सद्क तो बहुत ही धमकाता है ; लोग जो अपनी सब वस्तुओं को जोखों में डालते हैं तो अच्छे अच्छे लाभ की आशा में ; सहृदय कड़े करकट की ओर कब झुक सकता है ; तो मैं सीसे के लिये न किसी वस्तु के हाथ धोऊँगा और न उसे भय में डालूँगा । अब देखो यह चाँदी जिसकी रंगत अल्प-वयस्क कामिनियों की सी है क्या कहती है ? "जो कोई मुझे पसंद करेगा वह उतना पावेगा जितने के वह योग्य है ।" उतना जितने के वह योग्य है ? —

मोरकुटी के राजकुमार नेक ठहर और हाथ साध कर अपनी योग्यता को तौल । यदि तू अपने नाम की ख्याति के अनुसार आँका जाय तो तू निस्संदेह बहुत कुछ पाने के योग्य है, पर कौन जाने कदाचित् यह कुमारी इस बहुत कुछ से बढ़ कर हो । किंतु इसी के साथ अपनी योग्यता में संदेह करना भी निर्बलता की बात है और अपनी योग्यता में बट्टा लगाना है । उतना जितने के मैं योग्य हूँ । वाह वह तो यही कुमारी है ; मैं अपनी उत्पत्ति, अपनी लक्ष्मी, अपनी शिक्षा, अपनी चालचलन हर बात से उसके पाने की क्षमता रखता हूँ, पर सबसे बढ़ कर अपने प्रेम के ध्यान से मैं अपने को उसके योग्य कह सकता हूँ । तो अब मैं आगे क्यों भटक्कूँ और इसी को चुन लूँ — पर एक बार सोने के सद्क की लिपि को फिर तो देखूँ । "जो कोई मुझे पसंद करेगा वह उस वस्तु को पावेगा जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं ।"

वाह वह तो यही कुमारी है ; सारा संसार इसकी इच्छा रखता है और पृथ्वी के चारों कोनों से लोग इस जगत् महात्मा के पैर चूमने को चले आते हैं । हरिद्वार के जंगल और बीकानेर के उजाड़ मैदान दोनों आज कल पुरश्री के प्रणयी राजकुमारों के लिये साधारण मार्ग हो रहे हैं । समुद्र जिसका अभिमानो मस्तक आकाश के मुँह पर धूकता है उसका भय भी आने वालों के साहस को नहीं तोड़ सकता और लोग पुरश्री के देखने की लालसा में उस पर से ऐसे चले आते हैं जैसे कोई एक छोटे से नाले को पार करता हो । इन सद्कों में से एक में उसका मनोहर चित्र है । क्या यह सम्भव है कि वह सीसे के भीतर हो ? ऐसा तुच्छ विचार मेरे नाश का कारण होगा ।

सीसा तो अंधेरी समाधि में उसके कफन के रखने के लिये भी एक बड़ी मही वस्तु होगी । था यह समझूँ कि वह चाँदी में बंद है जिसका मूल्य खरे सोने से दसगुना कम है ? ऐसा सोचना ही पाप है ! मला कभी भी ऐसा अलम्भ्य रत्न सोने से कम मूल्य वाले पदार्थ में जड़ा गया है ? अंग में एक सोने का सिक्का होता है जिस पर पार्षदों का चित्र खुदा रहता है, परंतु वह तो ऊपर खुदा रहता है और यहाँ सचमुच एक अप्सरा सोने के विछोने पर भीतर मग्न है । अच्छा मुझे ताली दो मैं इसी को चुनता हूँ आगे जो कुछ मेरे भाग्य में हो !

पुरश्ची— यह तो राजकुमार यदि मेरी तस्वीर इसके भीतर निकली तो मैं आपकी हो चुकी ।

(सोने के संदूक को खोलता है)

मोरकुटी— हाय अंधेर ! यह क्या निकला । एक खोपरी जिसकी आँख के गढ़े में एक लिपटा हुआ पत्र खोसा है । इसे पढ़ें तो सही —
"करि विचार देखहु जिय माहीं ।

जो चमकत सो सुवरन नाहीं ।।

कितने ही मम छवि ललचाने ।

नाइक प्रान देत विनु जाने ।।

जे समाधिगन कनक रँगाये ।

तिन में भरे कीट बहु पाये ।।

जिमि तुअ अंग वीर रस साना ।

तिमि होले गुन-ज्ञान निधाना ।।

जिमि तुमरे तन जोवन जोती ।

तौसिहि बुदि वृद्ध की होती ।।

तो न होत यह पढ़ि सम नासा ।

जाहु प्रनाम सरव तुअ आसा" ।।

सचमुच सद् और श्रम व्यर्थ, तो अब गर्मों को विदा और सर्दों से काम — पुरश्ची का ईश्वर रक्षक हो ! मेरा जी इतना टूट गया है कि अब एक दम ठहरने का सामर्थ्य नहीं रहता । जिसका मनोरथ पूरा नहीं होता वे ऐसे ही विदा होते हैं ।

(जाता है)

पुरश्ची— अच्छी छटी, जाओ परदों को गिराओ । यदि इस राजकुमार की रंगत के सब लोग मुझे इसी भाँति बरे तो क्या बात है ।

(सब जाते हैं)

आठवाँ दृश्य

स्थान — बंशनगर, एक सड़क

(सलारन और सलोने आते हैं)

सलारन— अजी मैंने स्वयं बसंत को जहाज पर जाते देखा ; उन्हीं के साथ गिरीश भी गया है, पर मुझे विश्वास है कि उस जहाज में लवंग कदापि नहीं है ।

सलोने— उस दुष्ट जैन ने वह आपत्ति मचायी कि महाराज को स्वयं बसंत के जहाज की तलाशी लेने के लिये जाना पड़ा ।

सलारन— हाँ, परंतु वह ढेर करके पहुँचे, उस समय जहाज जा चुका था और वहाँ महाराज को समाचार मिला कि लवंग अपनी वल्लभा जसोदा के सहित एक छोटी सी नाव में जाता दृष्टि पड़ा था ! इसके सिवाय अनंत ने महाराज को अपने भरोसे पर इस बात का विश्वास कराया कि वह दोनों बसंत के जहाज पर नहीं हैं ।

सलोने— मैंने तो आज तक धवराहट और भूँफलाहट के ऐसे बेजोड़ और विचित्र वाक्य न सुने थे जैसे कि वह जैनी कुता सड़क पर बक रहा था — 'मेरी बेटी !— हाय मेरी अशरफियाँ !— हाय मेरी बेटी !— हाय !— एक आर्य्य के साथ भाग गई !— हाय मेरी आर्य्य अशरफियाँ !— न्याय कानून ! मेरी अशरफियाँ और मेरी बेटी ! एक सरबमुहर तोड़ा, दो सरबमुहर तोड़े अशरफियों के, कलवार अशरफियों के, मेरी बेटी चुरा ले गई !— और रत्न ; दो नगीने, दो अमूल्य अलम्भ्य नगीने, जिन्हें मेरी बेटी चुरा ले गई — न्याय ! लड़की का पता लगाओ ! उसी के पास अशरफियाँ और पत्थर हैं ।'

सलारन— अजी बंशनगर के सारे लड़के उसके पीछे दौड़ते हैं और हल्ला मचा कर चिखते हैं — इसके पत्थर, इसकी लड़की और इसकी अशरफियाँ ।

सलोने— अनंत महाशय को चाहिए कि उससे मावधान रहें और ठीक समय पर अमृण चुका दें नहीं तो पीछे से पछताना पड़ेगा ।

सलारन— तुमने अच्छा स्मरण दिलाया, कल मैं एक फनेशवासी से बातचीत कर रहा था कि उसने वर्णन किया कि उस छोटे समुद्र में जो फनेश और अंगदेश को जुदा करता है तुम्हारे देश का एक अमूल्य धन से लदा हुआ जहाज डूब गया है । मुझे इस समाचार के सुनते ही अंगत के जहाज का ध्यान आया और मन में ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि वह उनका जहाज न हो ।

सलोने— पर तुमको यही उचित है कि जो कुछ

मुनो अनंत के कान तक पहुँचा दो, किंतु अकस्मात् मत कह देना क्योंकि इसमें कदाचित् उन्हें अधिक सोच हो ।

सलारन—मुझे तो उनसे बढ़कर दयावंत मनुष्य सारे संसार में दृष्टि नहीं आता । मैं वसंत और अनंत के जुदा होने के समय उपस्थित था । वसंत ने उनसे कहा कि मैं जहाँ तक संभव होगा शीघ्र लौट आऊँगा जिस पर उन्होंने उत्तर दिया — 'वसंत मेरे लिये काम में कदापि शीघ्रता न करना वरंच उचित अवसर के अधीन रहना और उस दस्तावेज के विषय में जो मैंने जैन को लिख दो है कभी अपने जी में ध्यान न करना । प्रति क्षण प्रसन्न रहना और अपने चित्त को प्राणप्रिया की प्रसन्नता और प्रेम के सूचित करने में आसक्त रहना जो तुम्हारे मनोरथ के लिये उपयुक्त हो' परंतु अंत को उनकी आँखों में आँसू ऐसे डबडबा आए कि और कुछ न कह सके और अपना मुँह फेर कर वसंत को और हाथ बढ़ाया और एक अद्भुत अनुराग सहित जिससे सच्ची प्रीति टपकती थी उनसे हाथ मिला कर बिदा हुए ।

सलोने—मैं समझता हूँ कि वह संसार को वसंत ही के लिये चाहते हैं । चलो उन्हें खोज करके मिलें और उनके जी की उदासी को किसी शुभ समाचार से दूर करें ।

सलारन—चलो ।

(जाते हैं)

नवाँ दृश्य

स्थान — बिल्वमठ, पुरश्री के घर का एक कमरा (नरश्री एक नौकर के साथ आती है)

नरश्री—शीघ्रता करो ; पदों को भटपट उठाओ ; आर्यग्राम के राजकुमार शपथ ले चुके और सन्दूक चुनने के लिये पहुँचा ही चाहते हैं । (तुरहियाँ बजती हैं । पुरश्री और आर्यग्राम का राजकुमार अपने अपने मुसाहिवों के सहित आते हैं ।)

पुरश्री—अवलोकन कीजिए ऐ प्रसिद्ध राजकुमार, वह सन्दूक रखे है । यदि आपने उस मंजूषा को चुना जिसके भीतर मेरी छवि है तो अभी आप के साथ मेरे विवाह के उपचार हो जायँगे परंतु यदि आप भ्रम में पड़े तो शीघ्र ही मुख से एक वर्ण उच्चारण किए बिना आप को यहाँ से चले जाना पड़ेगा ।

आ. रा.—मुझे शपथ है कि प्रण के अनुसार तीन बातों का ध्यान रखना होगा । पहिले इस बात को

किसी घर प्रकट न करना कि मैंने कौन सा सन्दूक चुना था ; दूसरे यदि मैं लक्ष्य मंजूषा को न चुन सकूँ तो फिर अपनी अवस्था भर किसी स्त्री की ओर प्रणय की दृष्टि से न देखूँ तोसरे यदि मैं सन्दूक के चुनने में त्रुटि करूँ तो शीघ्र ही तुमसे पृथक् हो कर अपनी रहा लूँ ।

पुरश्री—जो कोई मुझ अधम के प्राप्त करने का प्रयत्न करता है उसे इन्ही प्रणों के अनुसरण करने की सौगंद खाना पड़ती है ।

आ. रा.—और मैं भी उसी के अनुकूल कर चुका । हे ईश्वर मेरे मन का मनोरथ पूरा कर !—सोना, चाँदी और तुच्छ सीसा 'जो कोई मुझे चाहे वह अपनी सब वस्तुओं को विघ्न में डाले और उनसे हाथ धो बैठे ।'

वाह, इसी रूप पर ? नेक अपने मुख की श्यामता को धो ले तब विघ्न डालने और हाथ धोने की सुना । और सोने का सन्दूक क्या कहता है ? तनिक देखूँ तो सही ;

'जो कोई मुझे चाहेगा वह उस पदार्थ को पावेगा जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं ।'

जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं । संभव है कि इस 'बहुत' का संकेत मुखों की ओर हो जो कि बाहरी चमक दमक पर जाते हैं और दृष्टि के ऐसे स्थूल होते हैं कि किसी वस्तु की आंतरिक अवस्था को कदापि नहीं ज्ञात कर सकते, वरंच गोला कबूतर की भाँति अपने खोते को भय स्थान में घर की बाहरी दीवार पर बनाते हैं जहाँ कि हर समय भय रहता है । मैं उस वस्तु को नहीं चाहूँगा जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं क्योंकि मैं सर्वसाधारण के तुल्य नहीं हुआ चाहता और गँवार लोगों की सहायता नहीं किया चाहता । तो अब मैं तेरी ओर ध्यान देता हूँ ऐ चाँदी के सन्दूक, एक बर फिर तो बता तेरा क्या प्रण है, 'जो कोई मुझे चाहेगा वह उतना पावेगा जितने के यह योग है ।' भई सच्ची सच्ची तूने इसमें कभी क्योंकि निज की योग्यता बिना कौन प्रतिष्ठा लाभ कर सकता और कौन बढ़ा हो सकता है । किसी मनुष्य को अपनी योग्यता से अधिक अधिकार पाने का साहस न करना चाहिए । अहा ! कैसा अच्छा होना यदि अधिकार, उपाधि और पद उत्कोच से न मिला सकते और प्रतिष्ठा निष्कलांक बनी रहती अर्थात् केवल पानेवाले की योग्यता से गोल ली जा सकती । फिर कितने सिर जो अब मन सूचन में नगे दिखलाई देते हैं लोपी से ढके हुए दृष्टि पड़ते । कितने लोग जो अब हाकिम हैं महकुम होते । कितने कमीने जो बड़े बन बैठे हैं मानियों में से दूध की मक्खी

को भाँति निकाल दिए जाते और कितने प्रतिष्ठित जो समय के हेरफेर से साधारण लोगों में मिल गए हैं भूमी में से अन्न की भाँति छोट कर बड़े पद पर पहुँचा दिए जाते । अस्तु, किंतु मैं अपना काम देखूँ ।

“जो कोई मुझे चाहेगा वह उतना पावेगा जितने के वह योग्य है ।” मैं अपनी योग्यता को मान लेता हूँ । मुझे इसकी कुंजी दो तो मैं इसे तुरंत खोलकर अपने भाग्य को परीक्षा करूँ ।

(चाँदी के सन्दूक को खोलता है)

पुरश्ची— क्या निकला ? आह इतना क्यों रुके है ?

आ. रा.— ऐं यह क्या है ? एक झूठे अंधे का चित्र जो मुझे एक पत्र दे रहा है ! मैं इसे पहँगा । हाँ ! मुझमें और पुरश्ची के स्वरूप में क्यों सादृश्य । और मुझसे और मेरी आशाएँ और योग्यता से क्या संबंध ! ‘जो कोई मुझे चाहेगा वह उतना पावेगा जिसके वह योग्य है ।’

क्या मेरे मुँह के योग्य यही मूर्ख का मस्तक है ? क्या मेरे लिये यही पारितोषिक है ? क्या मेरी योग्यता इससे अधिक नहीं है ।

पुरश्ची— अपराध करना, और न्याय करना दो विरुद्ध बातें हैं और एक दूसरे के प्रतिकूल ।

आ. रा.— इसमें लिखा क्या है ?

(पढ़ता है)

‘जिमि यह उज्ज्वल रजत सुहायो ।

सात बेर ले अगिन तपायो ॥

तिमि यह बुद्धि बहु विधि जाँची ।

कोउ प्रकार ठहरी नहि काँची ॥

ऐसे बहुत मूर्ख जग माँही ।

जे छाया सँग धाये जाही ॥

पै कहूँ तिन को आस पुराई ।

सुग मरिचि कहूँ प्यास बुझाई ॥

जो सुख छायाहि अंक लगाए ।

होत तिनहि सोई गहि पाए ॥

ऐसे बहु जग नर अज्ञान ।

सेत केस भे रजत समान ॥

पै नहि बुद्धि तिनहि अछु आई ।

तैसहि यह मूर्ख सिर भाई ॥

जो रहिहै तुअ होइ निसानी ।

करहु अबै जो तुअ मन मानी ॥

‘व्याहड़ जाइ औरही काह ।

हारि चुके वाजी घर जाह’ ॥

मैं जितनी बेर तक यहाँ ठहरूँगा उतना ही अधिक

मूर्ख बनूँगा, एक मूढ़ का सिर लेकर तो मैं व्याह करने को आया पर अब वो लेकर जाता हूँ । प्यारी ईश्वर रक्षा करे ! मैं अपनी सौगंद पर स्थिर रहूँगा और संतोष के साथ अपने दुःख को खाऊँगा ।

(आर्यप्राप्त का राजकुमार अपने साथियों के सहित जाता है)

पुरश्ची— वाह इस कपूर्वार्त्तिका ने तो अच्छे उस पतंग के पंख जला दिए । समझदार मूर्ख ऐसों ही को कहते हैं । जिस समय वह सँझकों को चुनते हैं तो अपने मन की स्फूर्ति में सब बुद्धि को छो देते हैं ।

नरश्ची— यह पुरानी कहावत मिथ्या नहीं है — फाँसी और स्त्री दोनों का मिलना भाग्य से होता है ।

पुरश्ची— नरश्ची आओ पदों को गिराओ ।

(एक भृत्य आता है)

भृत्य— रानी साहिब कहाँ हैं ?

पुरश्ची— इधर, राजा साहिब क्या आज्ञा करते हैं ?

भृत्य— सकार की डेवद्वी पर वंशनगर का एक नवयुवक अपने स्वामी के आगमन का समाचार लेकर आया है । यह मनुष्य अपने स्वामी के प्रणाम के साथ बहुमूल्य सौगात भी लाया है । अब तक मैंने अभिलाष का ऐसा मनोहर दूत न देखा था । वसंत ऋतु जो कि सुहावन ग्रीष्म के आगमन का समाचार देता था है ऐसा प्रिय नहीं प्रतीत होता जैसा कि यह दूत जो अपने स्वामी के पहुँचने का समाचार लाया है ।

पुरश्ची— किसी भाँति चुप भी रह ; मैं सोचती हूँ कि थोड़ी ही बेर में तेरे मुँह से सुनूँगी कि वह मनुष्य तेरा कोई संबंधी है क्योंकि उसकी प्रशंसा तू अत्यंत कर रहा है । आओ नरश्ची आओ ; मैं इस अभिलाष के दूत को जो ऐसी नम्रता के साथ आता है अभी देखा चाहती हूँ ।

नरश्ची— ऐ कामदेव यह मनुष्य वसंत का हो ?
(जाती है)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान — वंशनगर, एक सड़क

(सलोन और सलारन आते हैं)

सलोने — कहां बाजार का कोई नया समाचार

है ?

सलारन — इस बात का अब तक वहाँ बड़ा कोलाहल है कि अनंत का एक अनमोल माल से लदा हुआ जहाज उस छोटे समुद्र में नष्ट हो गया ; कदाचित् उस स्थान को लोग दुरुह कहते हैं जो एक बड़ी भयानक बालू की ठेंक है जहाँ कितने ही बड़े-बड़े अनमोल जहाज नष्ट हो गए हैं यदि यह समाचार निरी गप हाँकने वाली कुटनी न हो ।

सलोने — ईश्वर करे वह वैसी ही भूठी कुटनी निकले जो आँसू बहाने के लिये अपनी आँखों में लाल मिर्च मल लेती है, जिसमें लोगों पर अपने तीसरे पति के मरने का दुःख प्रकट करे । पर यह सच है और मैं बिना इसके कि बात को बढ़ाऊँ या बातचीत की सीधी राह से मुझे कहता हूँ कि सुहृद अनंत धर्मिष्ठ अनंत — हाय मुझे तो कोई ऐसा शब्द ही नहीं मिलता जिससे उसकी प्रशंसा सूचित हो सके ।

सलारन — अच्छा तो अब तुम्हारा वाक्य समाप्त हुआ ।

सलोने — वाह ! क्या कहते हो ? अच्छा तो उसका परिणाम यह है कि उनका एक जहाज नष्ट हो गया ।

सलारन — मैं तो आशीर्वाद देता हूँ कि उनकी हानि यहीं पर समाप्त हो जाय ।

सलोने — मैं भी भटपट एयमस्तु कह दूँ, कहीं ऐसा न हो कि भूत मेरी प्रार्थना में विघ्न करे क्योंकि यह देखो वह जैन की सूरत में चला जाता है ।

(शैलाक्ष आता है)

सलोने — कहां जी शैलाक्ष आज कल सौदागरों में क्या समाचार है ?

शैलाक्ष — मेरी बेटी के भागने का हाल तुमको भली भाँति विदित है तुमसे बढ़कर इस बात को कोई नहीं जानता, कोई नहीं जानता ।

सलारन — इसमें भी कोई संदेह है, परंतु यदि मुझसे पूछो तो मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि अमुक वर्जो ने उसके लिये पर बनाये थे जिनके सहारे से उड़ी ।

सलोने — और शैलाक्ष भी इस बात को जानता था कि उस चिड़िए के पर जम चुके हैं जिसके होने से सब पक्षियों का नियम है कि अपने माँ बाप के खोते से निकल भागते हैं ।

शैलाक्ष — वह इस अपराध के लिये अवश्य नरक में पड़ेगी ।

सलारन — अवश्य यदिचेत भूत उसका न्याय-

कर्ता हो ।

शैलाक्ष — ऐ ! मेरा ही मांस और रुधिर मुझी से विरुद्ध हो !

सलोने — तुम भी पुराने घाघ होकर क्या ही बाही तबाही बकते हो ! भला, ऐसी युवा कुमारी के ऐसे कृत्य को विरुद्ध कह सकते हैं ?

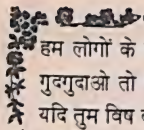
शैलाक्ष — क्या मेरी लड़की मेरा मांस और लहू नहीं है ?

सलारन — तुम्हारे और उसके मांस में तो उससे भी अधिक अंतर है जैसा कि नीलमणि और स्फटिक में होता है, तुम्हारे और उसके रुधिर में उससे भी अधिक अंतर है जैसा कि सिंगर्फ और गेरू में होता है । पर यह तो कहो कि तुमने भी अनंत के जहाज के नष्ट होने का कुछ हाल सुना है ?

शैलाक्ष — वह मेरे लिये एक दूसरे घाटे की बात है ; एक पूरा व्यर्थ व्यय करने वाला और दीवालिया जो अब बाजार में किसी को मुँह नहीं दिखला सकता, एक भिखमंगा जो किस बनावट के साथ बन ठन कर बाजार में आया करता था ; नेक वह अपनी दस्तावेज तो देखे ; वह मुझे बड़ा व्याज खाने वाला कहता था ; नेक वह अपनी दस्तावेज तो देखे ; वह लोगों को बहुत अपनी आर्य्य दयालुता दिखलाने के लिये व्यर्थ रुपया ऋण दिया करता था ; नेक वह अपनी दस्तावेज तो देखे ।

सलारन — क्यों, मुझे विश्वास है कि यदि वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सके तो तुम उनका मांस न माँगोगे ; भला वह तुम्हारे किस काम में आ सकता है ?

शैलाक्ष — मछली फँसाने के लिये चारे के काम में यदि वह और किसी वस्तु का चारा नहीं हो सकता तो मेरे बदले का चारा तो होगा । उसने मुझे अप्रतिष्ठित किया है और कम से कम मेरा पाँच लाख का लाभ रोक दिया है ; वह सदा मेरी हानि पर हँसा है, मेरे लाभ की निंदा की है, मेरी जाति की अप्रतिष्ठा की है, मेरे व्यवहारों में टाँच मारी है, मेरे मित्रों को ठंडा और मेरे शत्रुओं को गर्म किया है ; और यह सब किस लिये ? केवल इस लिये कि मैं जैनी हूँ । क्या जैनी की आँख, नाक, हाथ, पाँव और दूसरे अंग आर्य्यों की तरह नहीं होते ? क्या उसकी सुधि, सुख और दुःख, प्रीति और क्रोध आर्य्यों की भाँति नहीं होता ? क्या वह वही अन्न नहीं खाता उन्हीं शस्त्रों से घायल नहीं होता, वही रोग नहीं फैलता, उन्हीं औषधियों से अच्छा नहीं होता, उसी गर्मी और जाड़े से सुख और कष्ट नहीं उठाता जैसा कि कोई आर्य्य ? क्या यदि तुम चुटकी काटो तो



हम लोगों के रुधिर नहीं निकलता ? क्या यदि तुम गुदगुदाओ तो हम लोगों को हँसी नहीं आती ? क्या यदि तुम विष दो तो हम लोग मर नहीं जाते ? तो फिर जो तुम हम पर अत्याचार करोगे तो क्या हम बदला न लेंगे ? यदि हम लोग और बातों में तुम्हारे सदुस हैं तो इस बात में भी तुम्हारे तुल्य होंगे । यदि कोई जैनी किसी आर्य्य को दुःख दे तो वह किस भाँति अपनी नम्रता प्रकट कर सकता है ? बदला लेकर । तो यदि कोई आर्य्य किसी जैन को क्लेश पहुँचावे तो इसे उसके उदाहरण के अनुसार किस प्रकार से सहन करना चाहिए ? अवश्य बदला लेकर । जो पाजीपन तुम लोग मुझे अपने उदाहरण से सिखलाते हो उसे मैं कर दिखलाऊँगा और कितनी ही कठिनता क्यों न पड़े मैं बदला लेने में अवश्य तुमसे बढ़कर रहूँगा ।

(एक भृत्य आता है)

भृत्य— महाशयो मेरे स्वामी अनंत अपने घर पर हैं और आप दोनों से कुछ बातचीत किया चाहते हैं ।

सलारन— हम लोग तो उनको चारों ओर खोज ही रहे थे ।

(दुर्बल, आता है)

सलारन— यह देखो एक दूसरा जैनी आया ; अब तीसरा इनकी बराबरी का नहीं निकल सकता पर हाँ उस दशा में कि भूत आप ही एक जैन बन जाय ।

(सलोने, सलारन और भृत्य जाते हैं)

शैलाक्ष— कहो जी दुर्बल जयपुर से क्या समाचार लाए ? मेरी बेटी का पता लगाया ?

दुर्बल— मैंने जहाँ जहाँ उसका समाचार सुना, वहाँ वहाँ पहुँचा परंतु कहीं पता न लगा ?

शैलाक्ष— वही, वही, वही वह हीरा ले गई जो मैंने दो सहस्र अशरफी को फरीदकोट में लिया था ! ऐसा बड़ा ईश्वर का कोप हमारी जाति पर आज तक न गिरा था । मुझे तो आज तक उसका अनुभव न हुआ था — दो सहस्र अशरफी का एक हीरा और दूसरे अमूल्य रत्न अलग । अच्छा होता कि मेरी लड़की मेरी आँखों के सामने मर गई होती वर रत्न उसके शरीर पर होते । अच्छा होता कि उसका शव मेरे पावों के नीचे गड़ता और अशरफियाँ उसके कफन में होती । उनका कुछ पता नहीं लगा ? यही परिणाम हमारे प्रयत्नों का है और विदित नहीं कि खोज में कितना व्यय पड़ा — हाय यह हानि पर हानि ! "मुफलिसी में आटा गीला !" इतना तो चोर ले गया और इतना चोर की खोज में नष्ट हुआ । तिस पर न कुछ उसके

सन्ती मिलने की आशा और न बदला निकलने की । किसी और के घर दुःख भी दृष्टि पड़ता जिसे देख कर धीरज हो । हाँ यदि है तो मेरी गर्दन पर सवार, कहीं से आह भी नहीं सुनाई देती सिवाय उसके जो मेरे हृदय से निकलती है, और न सिवाय मेरे किसी के आँसु गिरते हैं ?

दुर्बल— ऐसा तो नहीं और लोग भी अपने अपने दुःख से खाली नहीं है । अभी मैंने जयपुर में समाचार पाया कि अनंत का —

शैलाक्ष— क्या, क्या, क्या ? दुःख दुःख ?

दुर्बल— उसके जहाजों का एक बेड़ा त्रिपुल से आते समय राह में नष्ट हो गया ।

शैलाक्ष— धन्य है ईश्वर को, धन्य है ईश्वर को, क्या यह समाचार सच्चा है ? क्या यह समाचार सच्चा है ?

दुर्बल— मैं आप उन खलासियों के मुँह से सुन आया हूँ जो जहाज के नष्ट होने से बच कर आए हैं ?

शैलाक्ष— मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ अच्छे दुर्बल, बड़ा अच्छा समाचार लाए, बड़ा अच्छा समाचार ला, अहाहा — कहाँ ? जयपुर में ?

दुर्बल— मैंने जयपुर में सुना कि तुम्हारी बेटी ने एक रात में अस्सी अशरफियाँ व्यय कीं ।

शैलाक्ष— तू मेरे कलेजे में छुरी मारता है । अब मैं फिर अपनी अशरफियों को इन आँखों से न देखूँगा ; हाय ! अस्सी अशरफियाँ ! एक बार मैं अस्सी अशरफियाँ !

दुर्बल— अनंत के कई ऋणदाता मेरे साथ वजनगर को आए जो शपथ खा कर कहते थे कि अब उसके काम का बिगड़ना किसी भाँति नहीं रुक सकता ।

शैलाक्ष— बड़े हर्ष की बात है ; मैं उसे बहुत रुलाऊँगा, मैं उसे कोच कोच कर माहूँगा ; बड़े हर्ष का विषय है ।

दुर्बल— उनमें से एक ने मुझे एक अँगूठी दिखलाई जो तुम्हारी बेटी ने उसे एक बंदर के मोल में दी है ।

शैलाक्ष— उसका नाम मत तो दुर्बल ! तुम मेरे हृदय में रह रह के घात करते हो ! वह मेरी नीलाम की अँगूठी थी ; मैंने उसे कमलाक्षी से पाया था, जब कि मेरा ब्याह नहीं हुआ था ; यदि मुझे कोई बंदरों का जंगल देता तो भी मैं इस अँगूठी को अपने से पृथक न करता ।

दुर्बल— लेकिन अनंत तो निस्संदेह नष्ट हो



गया ।

शैलाक्ष — इसमें भी कोई संदेह है, यह तो स्पष्ट है, यह तो भली भाँति प्रकट है । जाओ दुर्बल उसके पकड़ने के लिए एक प्रधान ठहराओ, उसे पंद्रह दिन पहले से पक्का कर रखो । यदि यह मनुष्य अपने प्रण के अनुसार रुपया न दे सका तो मैं इसका पिता निकलवा लूँगा, क्योंकि यदि यह काँटा वंशनगर से निकल जाय तो मेरा व्यापार मनमाना चले । अच्छा दुर्बल अब जाओ और मुझसे मंदिर में मिलो, जाओ प्यारे दुर्बल ; देखो हम लोगों के मंदिर में मिलना । (दोनों जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान — ब्रिल्लमठ, पुरश्री के घर का एक कमरा

(बंसत, पुरश्री, गिरीश, नरश्री, और उनके साथी आते हैं । सद्क रक्खे जाते हैं)

पुरश्री — भगवान के निहारे थोड़ा ठहर जाइए । भला अपने भाग्य की परीक्षा के पहिले एक दो दिन तो ठहर जाइए, क्योंकि यदि आप की रुचि ठीक न हुई तो आप के साथ रहने का आनंद तुरंत ही हाथ से जाता रहेगा । इसलिए थोड़ा धीरज धरिए, न जाने क्यों मेरा जी आप से पृथक् होने को नहीं करता, पर मैं समझती हूँ कि इसका कारण अनुराग नहीं है और यह तो आप भी कहेंगे कि घृणा का इससे संबंध नहीं हो सकता । किंतु कदाचित् आप मेरे जी की बात न समझे हों इसलिये मैं आप को भाग्य की परीक्षा करने के पहले दो एक महीने तक ठहराऊँगी, परंतु इससे क्या होना है ? कुमारी अपने जी की बात को ब्रिल्वा पर कब ला सकती है । मैं आप को पते का सन्दूक बता सकती हूँ पर मेरी सौगंद टूट जायगी और यह मुझे किसी तरह पर अंगीकार नहीं । कदाचित् मैं आप को न मिलूँ, पर यदि ऐसा हुआ तो मेरा चित्त यही कहेगा कि तू ने अपराध क्यों न किया और शपथ क्यों न तोड़ डाली । मेरा मन करता है कि आपकी आँखों को कोसूँ, इन्हीं ने तो मुझे मोल ले लिया और मेरे दो भाग कर डाले — आधी तो मैं आप की हूँ, और शेष आधी भी आप ही की, क्योंकि यदि मैं यों कहूँ कि अपनी हूँ तो भी तो आपही की हुई, इस लिये सब आप ही की ठहरी । क्या बुरा समय आ गया है कि अपनी वस्तु पर भी अपना बस नहीं ! एतएव यद्यपि मैं आप ही की हूँ तो भी क्या ? हुई न हुई दोनों

बराबर — यदि कहीं भाग्य ने धोखा दिया तो उसके कारण मैं क्यों दुःख में पड़ूँ, पड़े तो भाग्य पड़े जिसका दोष है । मैं बहुत कुछ बक गई पर तात्पर्य मेरा यह है कि बातचीत में कुछ समय कटे और आपके सद्क पसंद करने के लिये जाने में इसी बहाने कुछ देर हो ।

बंसत — मुझे फटपट चुन लेने दीजिए, यों रहने से तो मेरा जी सूली पर टंगा है ।

पुरश्री — सूली पर, तो कहिए कि आप के प्रेम के साथ दगा कैसी मिली हुई है ?

बंसत — दगा का क्या काम, हाँ यदि कुछ है तो अपने चित्त के अभिलाष पूरे होने की ओर से अविश्वास । मेरे प्रेम के साथ तो दगा का होना ऐसा है मानो आग और बर्फ की मित्रता ।

पुरश्री — जी हाँ, पर मुझे भय है कि आप का जी तो सूली पर टंगा है, और सूली पर लोग प्रायः विवश होकर वे सिर पैर की बका करते हैं ।

बंसत — जीवदान दीजिए तो यथार्थ कह दूँ ।

पुरश्री — अच्छा तो फिर कहिए, आप का जीवन आपको मुबारक ।

बंसत — कह दूँ, मेरा प्राण मुझको मुबारक ! तो तो मेरा मनोरथ बर आया, वाह जब सताने वाला आप ही वह राह दिखलाता है जिस से जी बचे तो कष्ट भी परम सुख है । परंतु अच्छा अब मुझे सद्कों के साथ अपने भाग्य की परीक्षा के लिये छोड़ दीजिए ।

पुरश्री — अच्छा तो आप जायँ, उन सद्कों में से एक में मेरा चित्र है ; यदि आप मुझे चाहते होंगे तो वह आप को मिल जायगा । नरश्री तुम अब अलग खड़ी हो जाओ और जब आप सद्क पसंद करने लगे तो कुछ गाना का भी आरंभ हो, जिसमें यदि आप कहीं चुक जायँ तो जैसे वक्त अपना दम निकालने के समय गाता है वैसे ही आप के विदा होने के समय भी गाना होता रहे । यदि कहिए कि वक्त की समाधि पानी में होती है तो मेरी आँखें नदी बनकर आप के शत्रुओं की समाधि बन जायँगी । यदि कहीं आप ने दाँव मारा तो गाना क्या है मानो उस समय की सलामी का बाजा है जब कोई नया राजा सिंहासन पर बैठता है और उसकी शुभचिंतक प्रजा करके अभिनंदन को आती है, या वह मीठी तान है जिसे सुनकर नया वर विवाह के दिन सवेरे ही उठ कर ब्याह की तैयारी करता है । देखिए वह जाते हैं । जब रुद्र उस कुमारी को छुड़ाने गया था, जिसे त्र्यम्बक ने समुद्र की एक आपत्ति को सौंप दिया था तो जैसा तेज उसके मुख पर बरसता था वैसा ही उनके मुँह पर बरसता है परंतु प्रेम तो उसकी अपेक्षा

कई अंश अधिक है। मैं भी उस कुमारी की भाँति बलिदान के लिये प्रस्तुत हूँ और यह स्त्रियाँ मानो त्र्यम्बक की रहने वाली हैं और वियोगिन बनी हुई खड़ी देख रही हैं कि इस दुस्तर कर्म का क्या परिणाम होता है। अच्छा मेरे रुद्र जाओ, अब तो मेरा जीवन तुम्हारे प्राण के साथ है। और निश्चय रखिए कि आप का चित्त यद्यपि आप स्वयं लड़ने जाते हैं, इतना न धड़कता होगा जितना मेरा धड़कता है यद्यपि मैं केवल दूर से खड़ी हुई कौतुक देख रही हूँ।

गीत

अहो यह भ्रम उपजत किय आय।

जिय मैं के सिर मैं जनमत है बढ़त कहाँ सुख पाय।
ता को यह उत्तर जिय उपजत बढ़त दृष्टि मैं धाय।
पै यह अति अचरज कै जित यह जनमत तितहि नसाय।
देखि उपरी चमक चतुर हूँ जद्यपि जात भुलाय॥
पै जब जानत अथि र ताहि तब निज भ्रम पर पछिताय।
तासों टनटन बजै कहौ अब घंटा हू घहराय॥

बंसत— सच है जो पदार्थ देखने में भले और भड़कीले होते हैं वस्तुतः कुछ नहीं होते। संसार के लोग बाहरी चमक दमक में भूल जाया करते हैं। देखिए कानून में कोई दलील कैसी भ्रूठी और बे सिर पैर की क्यों न हो यदि उसी को साधु भाषा में नमक मिर्च लगाकर कहिए तो उसका सब अवगुण छिप जाता है। उसी भाँति धर्म में देखिए तो कैसी ही घृणा के योग्य भूल क्यों न हो कोई न कोई उपयुक्त युक्ति मनुष्य उसके प्रमाण में देकर उसे सराहेगा और उसके दोषों पर सुवर्ण का पर्दा डाल देगा। निरी बुराई पर भी बाहरी भलाई का मुलामा चढ़ जाता है। देखिए कितने ऐसे इरपोक मनुष्य, जिनके चित्त बालू की भीत की भाँति निर्बल हैं, दाढ़ी और रूप रंग में मानसिंह और विजयसेन को तुच्छ करते हैं और भीतर देखिए तो उनका दुर्बल अंतःकरण दूध सा स्पष्ट है। उन लोगों को कहना चाहिए कि यह केवल वीरपुरुषों का उतरन अपना प्रभाव दिखलाने के निमित्त पहिन लेते हैं। सुंदरता की ओर दृष्टि कीजिए तो विदित होगा कि वह केवल चाँदी की न्योछावर है जितना रुपया लगाइए उतनी ही भड़क हो। वास्तव में तत्त्वरूपण करने पर करामात प्रतीत होने लगती है, जिसके सिर पर जितना अधिक भार है उतना ही विशेष तृच्छ है। यही दशा उन धूर्तवाले सुंदर कंचकलापों का है जो वायु में इस भाँति बल खाते हैं कि मनुष्य को लुभा लेते हैं। देखिए एक के सिर से उतर कर दूसरे के सिर चढ़ते हैं और जिस सिर ने

उन्हें पाला था वह अंत में कीड़ों का आहार है। अतः मूषण वसन क्या हैं मानो किसी बड़े भयानक समुद्र का ऐसा किनारा है जो थाह बता कर गोता दे या किसी हिंदुस्तानी स्त्री का भड़कीला दुपट्टा है, अर्थात् यह कहना चाहिए कि समय के छली लोग भ्रूट को ऐसा सच करके दिखा देते हैं कि बड़े बड़े बुद्धिमान की बुद्धि चकित हो जाती है। इसलिये चमकीले सोने जिसने महाराज मागधि से उसका खाना लेकर लोहे के चने चबवाए हैं तुम्हें को न छुड़ेंगे और न तुम्हें ऐ कुरूप चाँदी जिसके लिये एक मनुष्य दूसरे की सेवा करता है। परंतु तुच्छ सीसे जिसके देखने से आशा के बदले भय उत्पन्न होता है—

वचन रचन तजि और के, तोही पै विस्वास।
उदासीन प्रेमी मनहि, लखि तुव रंग उदास॥
औरन तजि तासों चुनत, सीसक अब हम तोहि।
आनंदवन करुनायतन, करहु अनंदित मोहि॥

पुरश्री— (आप ही आप)

मिटयो सकल भ्रम भीति नसानी।
नसी निरासा जिय-दुखदानी॥
मोह-कैवल-रुज दृग सों भाग्यौ।
संसय तजि मन आनंद पाग्यौ॥
प्रेम! धीर धरु किन अकुलाई।
धरत सीवैं तजि पगहि बढ़ाई॥
आनंद नीर इतो हिय-जलधर।
उमगि उमगि जनि वरस धीर धर॥
यह सुख नदि उमड़ि जो आई।
मम घट घट नहि सकत समाई॥
होइ न कहूँ अनंद अजीरन।
तासों धरु धीरज चंचल मन॥

बंसत— देखें तो यह क्या निकला?

(सीसे के संद्रक को खोलकर) वाह वाह यह तो मेरी परम सुंदरी पुरश्री का चित्र है! यह किस चित्तेरे की निपुणता है कि चित्र बोला ही चाहता है? क्या यह आँखें सचमुच फिरती हैं या केवल मेरी आँखों की पुतलियों पर इनकी परछाई पड़ने से मुझे घूमती हुई दिखाई देती हैं। इधर देखिए तो दोनों ओष्ठ इस भाँति से भिन्न हैं मानों मीठे प्यारे श्वासों के आने जाने का मार्ग है। ऐसे प्यारे साथियों के विरह का कारण ऐसी ही प्यारी वस्तु होनी चाहिए। इधर देखिए तो बालों की छवि खींचने में चित्रकार ने मकड़ी की चातुरी को तुच्छ कर दिखलाया है और सोने के तारों का ऐसा जाल बिना है कि मनुष्य का चित्त पतंग की भाँति उसमें फँस जाय। पर वाह री आँखें! इनके बनाने के समय

चित्रकार की दृष्टि किस भाँति ठहरी ? मेरी समझ में तो जब एक बन गई थी तो उसकी दोनों आँखें इस एक के न्योछावर हो जातीं और यह आँख बेजोड़ रह जाती । किंतु सच पूछिए तो जितनी ही मेरी प्रशंसा की इस चित्र के सामने कुछ गिनती नहीं उतनी ही साक्षात् के सामने इस छवि की कुछ गणना नहीं । देखिए यह भाग्य का लेखाजोखा है ।

(पढ़ता है)

जो लखि छवि ऊपरी भुलाते ।

तौ यह दौंढ कबहुं नहिं पाते ॥

तुम्हरी बुद्धि धीर नहिं छूटी ।

लेहु अब रस संपति लूटी ॥

अब जिय चाह करौ जनि दूजी ।

भ्रमहु न जग इच्छा तुव पूजी ॥

जो तुम याहि भाग निज लेखी ।

तौ मुरि निज प्यारी मुख देखी ॥

जीवन सरबस याहि बनाई ।

रहौ ब्रुमि मुख कंठ लगाई ॥

अब जो प्यारी सुंदरी तुव अनुशासन होय ।

तौ हम चुंबन लेहिं अरु निजहु नहिं भय खोय ॥

(मुँह चूमता है)

कहैं द्वे जन की होइ मैं जीतत बाजी कोय ।

तौ सब दिसि सों एक सँग ताकी जय धुनि होय ॥

सो कोलाहल सुनत ही तासु बुद्धि अकुलाय ।

ठाढ़ी सोचन साँच ही जीयो मैं इत आय ॥

तिमि सुंदरि सदेह यह मेरे हू जिय माहि ।

के जो देखत मैं दुगन तौन साँच की नाहि ॥

सो मम भ्रम तुम करि दया बेगहि देहु मिटाय ।

मम जयपत्र सकारि पुनि सुंदरि मुहि अपनाय ॥

पुरश्चरी — मेरे स्वामी बसंत आप मुझे जैसी खड़ी हुई देखते हैं वैसे ही मैं हूँ ; यद्यपि केवल अपने लिये मेरे जी में यह अभिलाष नहीं है कि मैं अपनी वर्तमान मेरे जी में यह अभिलाष नहीं है कि मैं अपनी वर्तमान अवस्था में बड़ जाऊँ किंतु आपके विचार से मेरा बस चले तो मैं सौगुनी अच्छी हो जाऊँ । रूप में सहस्र बार और धन में लक्षवार अधि हो जाऊँ, केवल इसलिए कि आपकी दृष्टि में ज़रू । संभव है कि मैं गुण, सौंदर्य, लक्ष्मी और मित्रों में अत्यंत बड़ जाऊँ तथापि इन सब अलम्य पदार्थों के होते भी मेरी अवस्था यह है कि मैं एक निरी मूर्ख, बेसमझ और सीधी सादी छोकरी हूँ ; पर हाँ इस बात से तो प्रसन्न हूँ कि मेरी अवस्था इतनी अधिक अभी नहीं हुई कि मैं कुछ सीख न सकूँ और इस कारण से और भी प्रसन्न हूँ कि इतनी कुठित

भी नहीं हो गई हूँ कि सीखने के योग्य न रही हूँ और सबसे अधिक प्रसन्नता का कारण यह है कि मैं अपने भोले चित्त को आपको सौंपती हूँ कि वह आपको अपना स्वामी, अपना नियंता, अपना अधिपति समझकर जो आप कहे सो किया करे । मैं और जो कुछ मेरा है अब वह सब आप का हो चुका । अभी एक साइत हुई कि मैं इस राजभवन और अपने अनुचरों को स्वामिनी और अपने मन की रानी थी, और अभी इस क्षण यह घर, ये नौकर चाकर और मैं आप, सब आप के हो गए । मैं इन सभी को इस अँगूठी के साथ आपको सौंपती हूँ । जब यह अँगूठी आप के पास न रहे, खो जाय या आप इसे किसी को दे दें तो मैं तो समझूँगी कि आप के प्रेम में अंतर आ गया और फिर मुझे आप से उपालंभ देने का पूरा स्वत्व प्राप्त होगा ।

बसंत — प्यारी मेरी जिह्वा को सामर्थ्य नहीं कि तुम्हारे उत्तर में एक अक्षर भी निकाले, पर हाँ मेरा रोम रोम तुम्हारी कृतज्ञता में जिह्वा बन रहा है और मेरी सुधि में ऐसी घबड़ाहट आ गई है जैसी कि प्रजावृंद में उस समय दृष्टि पड़ती है जब कि वह अपने प्यारे राजा के मुख से कोई उत्तम व्याख्यान सुन कर प्रसन्न हो जाते हैं और वाह वाह करने और आशी : देने लगते हैं । जब कि बहुत से शब्द जिनके कुछ अर्थ हो सकते हैं मिल कर सब व्यर्थ हो जाते हैं और सिवाय इसके कि उनसे प्रसन्नता प्रकट हो और कोई तात्पर्य नहीं समझ में आता । परंतु यह प्यारी अँगूठी मेरी उँगली से उसी समय जुग होगी जब कि इस उँगली से सत्ता निकल जायगी और उस समय तुम निस्संदेह समझ लेना कि बसंत मर गया ।

नरश्री — मेरे स्वामी और मेरी स्वामिनी अब तक हम लोग खड़े खड़े अपने मन के मनोरथ के पूर्ण होते देखा किए और अब हम लोगों की बारी है कि 'कल्याण हो' की ध्वनि मचावें । 'कल्याण हो' ऐ मेरे स्वामी और मेरी स्वामिनी ।

गिरीश — ऐ मेरे स्वामी बसंत और मेरी सरल स्वामिनी मेरी यही आसिस है कि आप के सारे मनोरथ पूरे हों क्योंकि मुझे निश्चय है कि आप मेरे हर्ष को तो बाँट लेगे ही नहीं, अतः मेरी यह प्रार्थना है कि जिस समय आप लोग परस्पर अपना मनोभिलाषा और प्रतिज्ञा पूरी करें उसी समय मेरा ब्याह भी कर दिया जाय ।

बसंत — मुझे तन और मन से स्वीकार है पर इस शर्त पर कि तुम अपने लिये कोई स्त्री ठहरा लो ।

गिरीश — मैं आप को धन्यवाद देता हूँ कि आप ही के न्योछावर में मेरा काम भी निकल आया, क्योंकि

ज्योंही आप की प्रेम दृष्टि राजकुमारी पर पड़ी, मेरे नेत्रों में भी उनकी सहेली बस गई। उधर आप अनुरक्त हुए इधर मैं प्रेम के फंदे में फँसा। इस में न आप को बिलंब लगा न मुझे। आप के प्रारम्भ की परीक्षा सड़कों के चुनने पर थी वैसे ही मेरा भाग्य भी उन्हीं के साथ अटका हुआ था। तात्पर्य यह है कि मुझे इस सुंदरी की इतनी सुश्रवा करनी पड़ी कि शरीर से स्वेद निकल आया और अपनी प्रीति का निश्चय दिलाने के लिये इतनी सौगंदें खानी पड़ी कि तालू चटक गया तब कहीं, यदि वाकदान कोई वस्तु है तो इनके मुख से यह वाक्य निकला कि जो तुम्हारे स्वामी का विवाह मेरी स्वामिनी से हो जायगा तो मैं भी तुम्हें प्रणम करूँगी।

पुरश्री— नरश्री क्या यह बात सच है ?

नरश्री— हाँ सखी यदि आप की इच्छा के विरुद्ध न हो तो सच ही समझी जायगी।

बसंत— और तुम गिरिश धर्मपूर्वक यह विचार करते हो न ?

गिरिश— धर्मावतार सब सच्चे जी से।

बसंत— तुम्हारे व्याह से हमारे समाज का आनंद दूना हो उठेगा।

गिरिश— ये यह कौन आता है ? अहा लवंग और उनकी प्राणप्यारी ! और हमारे पुराने वंशनगर के मित्र सलोन भी साथ हैं।

(लवंग, जसोदा और सलोन आते हैं)

बसंत— अहा लवंग और सलोन आए परंतु मैं अपनी अवस्था में बिना अपनी प्यारी की आज्ञा के प्रसन्नता प्रकट करने का कब अधिकार रखता हूँ। प्यारी पुरश्री यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं अपने सच्चे मित्रों और स्वदेशियों के आने पर प्रसन्नता प्रकट करूँ।

पुरश्री— मेरे स्वामी इस में मेरी परम प्रसन्नता है, ऐसे लोगों का भाग्य से आना होता है।

लवंग— मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, किंतु सच पूछिए तो मेरी इच्छा आप से यहाँ भेंट करने की न थी परंतु मार्ग में सलोन मित्र मिल गए और मुझे यहाँ लाने के विषय में इतना हठ किया कि मैं नहीं न कर सका और साथ आना ही पड़ा।

सलोन— जी हाँ मैं इनको वस्तुतः खींच लाया पर इसका एक मुख्य कारण है अनंत महाशय ने आपको सलाम कहा है।

(बसंत के हाथ में एक पत्र देता है)

बसंत— इससे पहिले कि मैं उनके पत्र को खोलूँ मुझे भगवान के लिये इतना बता दो कि मेरे

सुहृन्मित्र प्रसन्न तो हैं।

सलोन— देखने में तो वह पीड़ित नहीं हैं परंतु आंतरिक हो तो हो और न अच्छे ही दृष्टि आते हैं किंतु वित्त का हाल मैं नहीं कह सकता। अच्छा उस पत्र से उनका वृत्तान्त आपको भली भाँति सूचित हो जायगा।

गिरिश— नरश्री अपने पाहुनों का सत्कार करो और उनका मन बहलाओ। सलोन नेक इधर ध्यान दीजिए, कहो तो वंशनगर का क्या समाचार है, सब सौदागरों के सिरताज हमारे सुहृद अनंत किस भाँति है ? हमारे पूर्ण मनोरथ होने का समाचार सुनकर तो वह फूल न समायी, हम लोग अपने समय के महावीर हैं क्योंकि सोने की खाल हमने ही जीती है।

सलोन— मेरी जान तो यदि तुम उस खाल को पीतते जिसे बसंत हारे हैं तो अच्छा होता।

पुरश्री— कदाचित् पत्र में कोई बुरा समाचार है कि जिससे बसंत के मुख की कांति बंदी जाती है। कोई प्रिय मित्र मर गया हो, नहीं तो कौन ऐसी बात है कि जिससे ऐसे धीर मनुष्य की अवस्था हीन हो जाय। ऐं ! यह तो क्षण प्रति क्षण मुख की पाँड़ता बढ़ती जाती है। बसंत मुझे क्षमा कीजिएगा, मैं आपके शरीर का अर्धांग हूँ, और इसलिए जो कुछ कि उस पत्र में लिखा है उस में से आधा हाल सुनने को मैं भी अधिकारी हूँ।

बसंत— ऐ मेरी प्यारी पुरश्री इस पत्र में कई एक ऐसे दुखदाई शब्द हैं कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता। मेरी सुजान प्यारी तुम भली भाँति जानती हो कि जब मैंने तुम्हें अपना मन दिया था तो यह पहले ही कह दिया था कि जो, कुछ कि मेरी पूँजी है वह मेरा शरीर है अर्थात् मैं अपने कुल का कुलीन हूँ। और इस में कोई बात मिथ्या न थी, परन्तु प्यारी यद्यपि मैंने अपनी क्षमता तुम पर स्पष्ट प्रकट कर दी तो भी यदि सब पूछो तो मैंने अभिमान किया क्योंकि जिस समय मैंने तुमसे यह कहा कि मेरे पास कुछ नहीं है मुझे यों कहना चाहिये था कि मेरी अवस्था उससे भी गई बीती है। खेद है कि मैंने केवल अपना मनोरथ पूरा करने के लिये अपने प्यारे मित्र को उसके परम शत्रु के पंजे में फँसा दिया। देखो यह पत्र वर्तमान है जिसे मेरे मित्र का शरीर समझना चाहिए और प्रति शब्द उसका नया धाव जिससे रक्त टपक रहा है। पर क्यों सलोन क्या यह सत्य है कि उनका सारा काम बिगड़ गया ? क्या एक भी ठीक न उतरा ? ऐ त्रिपुल, मौक्षिक, अंगदेश, नंदन बरबर और हिंदुस्तान सब देशों के जहाजों में से एक को भी व्यापारियों को निराश करने वाली चटानो ने अखंड न छोड़ा।

सलोने — महाराज एक भी नहीं । तिस पर यह

और आपत्ति है कि यदि वह जैन को नकद रुपया देने का कहीं से प्रबन्ध भी करें तो वह न लेगा । मेरी दृष्टि में तो ऐसा व्यक्ति मनुष्य की उन्नति तथा उसकी अवन्ति का साथ अब तक नहीं आया ! इसी सोच में वह प्रति दिन सायं प्रातः मण्डलेश्वर को जाकर घेरता है और कहता है कि यदि मेरे साथ न्याय न बरता जायगा तो इस राज्य के इस सिद्धांत पर कि वह प्रतिवर्ष के लोगों को एक दृष्टि से देखता है बड़ा लग जायगा । बीस सौदागरों और कितने और बड़े बड़े नामी लोगों ने और मंडलेश्वर ने आप भी उसे समझाया पर उसने एक की भी न सुनी । अब बतलाइए क्या किया जाय । उस पर तो ईर्ष्या के मारे यही धुन सवार है कि बस जो कुछ होना था सो हो चुका अब तमस्सुक के प्रण के अनुसार मेरा विचार हो ।

जसोदा — जब कि मैं उनके साथ थी मैंने उन्हें प्रायः दुर्बल और अक्रूर अपने स्वदेशियों से इस बात की सीमा खाले हुए सुना था कि यदि मुझे कोई ऋण के बीस गुने रुपये भी दे तो अनंत के मांस के अतिरिक्त उसकी ओर आँख उठा कर न देखूँगा और महाराज मुझे निश्चय है कि यदि वहाँ के विचाराधीन कानून के अनुकूल उसे हठपूर्वक रोक न रक्खेंगे तो विचारे अनंत के सिर पर बुरी बीतेगी ।

पुरश्ची — क्या वह आपके कोई प्यारे मित्र हैं जिन पर यह आपत्ति आई है ।

बसंत — (आह भरकर) यह वही मेरा सबसे प्यारा मित्र है जो उपकार करने में अपना जोड़ी नहीं रखता, उपकार करने में कभी नहीं थकता और शील का राजा है । इस समय मारवाड़ में वही अकेला एक मनुष्य है जिसमें मारवाड़ के प्राचीन समय के लोगों की उत्तम बातें और उच्च विचार पूरे पूरे पाए जाते हैं ।

पुरश्ची — उन्हें उस जैन का कितना देना है ?

बसंत — मेरे ही कारण छ हजार रुपये के ऋणी हो गए हैं ।

पुरश्ची — बस इतना ही ? आप बारह सहस्र देकर तमस्सुक फेर लीजिए । यदि आवश्यकता हो तो बारह सहस्र के भी दूने कर डालिए और इस दूने के तिगुने, पर ऐसा कदापि न होने पावे कि बसंत के कारण उनके ऐसे अनुपम मित्र का एक रोम भी टेढ़ा हो ।

चलिए अभी मंदिर में चल कर व्याह की रीति कर लीजिए और इसके उपरांत सीधे अपने मित्र के पास वंशनगर को चले जाइए ; क्योंकि जब तक आपका शोच दूर न हो लेगा, मुझे आप के साथ सोना

धिकार है । उस छोटे ऋण को चुका देने के लिये उनका बीस गुना रुपया लेते जाइए और उसे देकर अपने मित्र को वहाँ साथ लेते आइए । इस बीच में मैं और मेरी सहेली नरेश्वरी कुमारी और विधवा स्त्रियों की भाँति अपना समय काटेंगी । आइए चलिए क्योंकि आपको आज ही अपने व्याह के दिन यहाँ से जाना है । अपने मित्रों से प्रसन्नतापूर्वक मिलिए और अपना मन विकसित रखिए । आप से मिलने में जितनी कठिनता होंगी उतने ही अधिक आप मुझे प्यारे प्रतीत होंगे । परंतु तनिक अपने दोस्त का पत्र तो सुनाइए ।

बसंत — (पढ़ता है) —

मेरे प्यारे बसंत, सब जहाज नष्ट हो गए मेरे ऋणबाता निर्दयता से वर्तते हैं, मेरे अवस्था अत्यंत ही नष्ट है और मेरी प्रतिज्ञा जैन के साथ टल गई और जो कि ऋण के चुका देने में संभव नहीं कि मैं जीता बचूँ, इसलिये मैं सब हिसाब अपने और तुम्हारे बीच साफ समझूँगा कि मैं अपने भरने के समय तुम्हें एक आँख देख लूँ । परन्तु हर हालत से यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है । यदि मेरा प्रेम तुम्हें यहाँ तक न खींच ला सके तो मेरे पत्र का कुछ ध्यान न करना ।

पुरश्ची — मेरे प्यारे सब काम को फटपट पूरा करके एकबारगी चले ही जाओ ।

बसंत — जब तुमने प्रसन्नता से जाने की आज्ञा दी तो अब मुझे क्या विलांब है । परंतु जब तक कि मैं लौट न आऊँ मेरे लिये नींद हराम और सुख दुःख से अधम है ।

तीसरा दृश्य

स्थान — वंशनगर की एक सड़क

शैलाक्ष, सलारन, अनंत और कारागार के प्रधान आते हैं)

शैलाक्ष — प्रधान इससे सचेत रहो ; मुझसे दया का नाम न लो । यही वह मूर्ख है जो लोगों को बिना व्याज रुपये ऋण दिया करता था । प्रधान इससे सावधान रहो ।

अनंत — मेरे सुहृद शैलाक्ष कुछ तो मेरी सुन लो ।

शैलाक्ष — मैं तमस्सुक के प्रणों को नहीं तोड़ने का, उसके विरुद्ध कुछ मत कहो । मैं इस बात की श्रम खा चुका हूँ कि अपने तमस्सुक की शर्तों पर दू

रहंगा। तुम ही न इस मुकदमे के होने के पहिले मुझे कुत्ता कहा करते थे। अच्छा मैं तो तुम्हारे कहने अनुसार कुत्ता हो ही चुका पर नेक मेरे पंजों से डरते रहना; मंडलेश्वर साहिब मेरा विचार करेंगे! मुझे तो ऐ दुष्ट प्रधान तुम्ह पर आश्चर्य होता है कि तुम्हें क्या मूर्खता सूझी है जो इसकी बातों में आकर इसे बेखटके इधर उधर लिए फिरता है।

अनंत — भगवान के वास्ते एक बात तो मेरी सुन लो।

शैलाक्ष — मुझे अपने तमस्सुक से काम है, मैं कदापि तुम्हारी बात न सुनूँगा, मुझे केवल अपने तमस्सुक से काम है; बस अब अधिक गिड़गिड़ाते से क्या लाभ। मैं कुछ ऐसा चित्त का दुर्बल अथवा आँखों का अंधा थोड़े ही हूँ जो सिर हिला कर खेद करूँ, आहें भरूँ और आय्यों के समझाने बुझाने में आकर पिघल जाऊँ। मेरे पीछे न आओ, मैं कदापि सुनने का नहीं, मुझे अपने तमस्सुक से काम है।

(शैलाक्ष जाता है)

सलारन — मनुष्य की आकृति में ऐसा पापाण-हृदय कुत्ता काहे को निकलेगा।

अनंत — जाने दो, अब मैं उसके पीछे व्यर्थ गिड़गिड़ाना न फिरूँगा। वह मेरे प्राण लेने की चिंता में है और इसका कारण भी मैं भली भाँति जानता हूँ। प्रायः मैंने बहुतेरे लोगों को जो मेरे पास आकर रोए हैं उसके पंजे से छुड़ाया है और इसी कारण से वह मेरा प्राणघातक शत्रु हो रहा है।

सलारन — मुझे निश्चय है कि मंडलेश्वर उसकी शर्त को कदापि स्थिर न रहने देंगे।

अनंत — क्यों नहीं, मंडलेश्वर कानून के उद्देश्य को जिससे विदेशी वंशनगर में आकर बेखटके लेन देन करते हैं क्योंकि बदला सकते हैं। यदि अस्वीकार किया जाय तो यहाँ के राज्य का अपवाद है क्योंकि इस नगर का वाणिज्य और लाभ सब जाति वालों के मिलाप होने के कारण है। अच्छा तो अब तुम जाओ। जो दुःख और क्षतियाँ मैंने इधर उठाई हैं उनके कारण मेरी अवस्था ऐसी नष्ट हो गई है कि कदाचित्त कल तक मेरे रक्त के प्यासे ऋणदाताओं के लिये मेरे शरीर में आध सेर माँस भी शेष न रहे। आओ प्रधान चलो। ईश्वर करे कहीं बसंत आ जाय और मुझे अपना ऋण चुकाते हुए देख लो, फिर मेरे जी में कोई लालसा शेष न रहेगी।

(सब जाते हैं)

स्थान — विल्वमठ पुरश्री के घर का एक कमरा

(पुरश्री, लवंग, जसोदा और बालेसर आते हैं)

लवंग — प्यारी यद्यपि आप के मुँह पर कहना सुझा है पर आप में ठीक देवताओं का सा सच्चा और पवित्र प्रेम पाया जाता है और इसका बड़ा प्रमाण यह है कि आपने इस भाँति अपने स्वामी का विरह सहन किया किंतु यदि आपको विदित हो कि आपने किस पर इतनी कृपा की है और वास्तव में कैसे सच्चे सम्य को सहायता भेजी है और उसको मेरे स्वामी अर्थात् आपके स्वामी से कैसी प्रीति है तो आपको अपने इस कृत्य पर और साधारण कर्तव्यों की अपेक्षा कहीं बढ़कर प्रसन्नता हो।

पुरश्री — मैं अच्छे काम करके न आज तक पछताई हूँ और न अब पछताऊँगी क्योंकि ऐसे मित्र जो हर क्षण मिले जुले रहते हैं और जिनके चित्त में एक दूसरे का समान प्रेम है मानो एक प्राण दो वेह हैं उनकी चाल ढाल रहन सहन और चित्त भी अवश्य ही एक सा होगा तो मैं समझती हूँ कि यह अनंत जो मेरे स्वामी के अंतरंग मित्र हैं उन्हीं के सदृश्य होंगे। यदि ऐसा है तो मैंने अपने स्वामी के चित्त को महा आपत्ति के पंजे से कैसे थोड़े व्यय में छुड़ा पाया। पर इससे तो मेरी ही प्रशंसा निकलती है इसलिये अब इस प्रकरण को छोड़कर दूसरी बातें सुनो। लवंग मैं अपने घर और गृहस्थी का सारा प्रबंध अपने स्वामी के लौट आने तक तुम्हारे आधीन करती हूँ। रही मैं सो मैंने अपने मन में ईश्वर के सामने एक मन्त्र मानी है कि नरश्री को साथ लेकर उसके स्वामी और अपने स्वामी के आने तक प्रार्थना करती और उसकी ओर लौ लागाए रहूँ। यहाँ से दो मील पर एक मठ है, उसी में जाकर हम लोग रहेंगे। मैं आशा करती हूँ कि तुम मेरी इस प्रार्थना से जिसे अपनी प्रीति और कुछ अधिक आवश्यकता होने के कारण करती हूँ अनीकार न करोगे।

लवंग — प्यारी मैं तन मन से आप की आज्ञा का अनुगामी हूँ।

पुरश्री — मेरे नौकर चाकर इस इच्छा को जान चुके हैं और वह तुम्हें और जसोदा को महाराज बसंत और मेरे स्थापनापन्न समझेंगे। अच्छा अब मैं तुम लोगों से विदा होती हूँ, जब तक कि भगवान तुमसे फिर न मिलाए।

लवंग — भगवान आपको उच्च मनोरथ और उत्तम साहस दें।

जसोदा — मेरी आसिस है कि आपका आंतरिक मनोरथ पूरा हो ।

पुरुश्री — मैं तुम्हारी इस अभिलाषा का धन्यवाद देती हूँ और तुम्हारे विषय भी वैसा ही जो से चाहती हूँ । जसोदा मेरा राम राम लो ।

(जसोदा और लवंग जाते हैं)

हाँ बालेसर जैसा कि मैंने तुम्हें सदा सच्चा और धार्मिक पाया है वैसा ही मैं चाहती हूँ कि अब भी पाऊँ । इस पत्र को लो और जहाँ तक कि तुम्हारे पाँच में बल हो शीघ्र पाँडुपुर पहुँचने का प्रयत्न करो और इसे मेरे चचेरे भाई कविराज बलवंत के हाथ में दो और देखो कि जो पत्र और वस्त्र वह तुम्हें दें उन्हें ईश्वर के वास्ते मन से अधिक तीव्र उस घाट पर जहाँ से वंशनगर को व्यापार का माल जाता है, लेकर आओ । वस अब चले जाओ, बातों में समय नष्ट न करो । मैं तुमसे पहिले वहाँ पहुँच जाऊँगी ।

बालेसर — बबुई मैं जितना शीघ्र संभव होगा जाऊँगा ।

पुरुश्री — इधर आओ नरश्री मुझे अभी वह काम करना है जो तुम्हें अभी विदित नहीं है । हम तुम चल कर अपने स्वामी को देखेंगे और उनको इसका ध्यान भी न होगा ।

नरश्री — हमें भी वह देखेंगे यह नहीं ?

पुरुश्री — हाँ हाँ परंतु ऐसे भेस में कि उन्हें ध्यान न होगा कि वे वीरता के चिन्ह जो स्त्रियों में नहीं होते हम में उपस्थित हैं । मैं प्रण करती हूँ कि जब हम तुम युवा मनुष्यों की भाँति वस्त्र इत्यादि पहिन कर तैयार हो जायेंगे, उस समय मैं तुमसे बढ़कर सजीली जान पड़ूँगी और अपनी तलवार को खूब तिरछी बांध कर चलाऊँगी और बालक और युवा के शब्द के बीच का भारी शब्द बनाकर बोलूँगी और स्त्रियों की मंदगति छोड़कर पुरुषों की भाँति लम्बे पैर रखूँगी और एक अभिमानी नवयुवक व्यसनी पुरुष की भाँति युद्ध इत्यादि का भी वर्णन करूँगी और भूठी बातें गढ़ गढ़ कर कहूँगी कि बड़ी प्रतिष्ठित स्त्रियाँ मुझपर आसक्त हुई पर मैंने उन्हें ऐसा कोरा उत्तर दिया कि नैराश्य से पीड़ित होकर मर गई पर मेरा इसमें क्या वस था फिर मैं खेद प्रकट करूँगी और कहूँगी कि यद्यपि इसमें मुझ पर कुछ दोष नहीं है किंतु यदि वह मेरे इश्क में न भरती तो उत्तम था और इसी प्रकार के बीसों भूठ ऐसे बोलूँगी कि लोगों को इस बात का पक्का विश्वास हो जायगा कि मुझे पाठशाला छोड़े साल भर से अधिक न हुआ होगा । मुझे इन अभिमानी छोकरो के सहस्त्रों

चुटकुले स्मरण हैं और इन्हीं में से अपना काम निकालूँगी । परंतु आओ मैं तुमसे अपना सब उपाय गाड़ी में जो बगीचे के फाटक पर खड़ी है सवार होकर वर्णन करूँगी । वस अब शीघ्र ही चलो क्योंकि हमें आज ही बीस मील समाप्त करना है ।

(दोनों जाती हैं)

पाँचवा दृश्य

स्थान — बिल्वमठ — एक उद्यान

(गोप और जसोदा आते हैं)

गोप — हाँ बेशक — तुम जानती हो कि पिता के पापों का दंड उसके बच्चों को भोगना पड़ता है इसलिये मैं सच कहता हूँ कि मुझे तुम्हारा अमंगल दृष्टि आता है । मैंने तुमसे छलाबल की बात आज तक नहीं की और अब भी तुमसे अपना विचार स्पष्ट कह दिया । नेक अपने मन को प्रसन्न रखो क्योंकि मेरी सम्मति में तो तुम अपराधग्रस्त हो चुकी । हाँ एक उपाय तुम्हारे कल्याण का दृष्टि आता है सो उसकी भी आशा कुछ ऐसी वैसी है ।

जसोदा — वह कौन सा उपाय है नेक बताना तो ?

गोप — भाई ! तुम यह समझो कि तुम अपने पिता से उत्पन्न नहीं हो अर्थात् तुम जैन की कन्या नहीं हो ।

जसोदा — तो तो सचमुच यह आशा ऐसी ही वैसी है क्योंकि ऐसा करने में मुझे अपनी माता के अपराधों का दंड मिलेगा ।

गोप — हाँ सच तो है, तब तो मुझे भय है कि तुम अपने माता पिता दोनों के निमित्त दंड पाओगी । हाय हाय जब मैं तुम्हें उधर अर्थात् तुम्हारे पिता से वचाता हूँ तो इधर खाई अर्थात् तुम्हारी माता दृष्टि आती है । अच्छा तो अब तुम दोनों ओर से गई ।

जसोदा — मैं अपने स्वामी के द्वारा मुक्ति पाऊँगी, वह मुझे आर्य धर्म में लाए हैं ।

गोप — तो तो प्रधान दोष उन पर है ! हम लोग पहिले ही से आर्य धर्म के क्या न्यून मनुष्य हैं । परन्तु अच्छा जितने ये उतनों का किसी भाँति पूरा पड़ जाता था पर अब नये आर्यों के भरती होने से सूर का दाम बढ़ जायगा । यदि हम सब के सब शूकर भक्षी बन

जायगी तो थोड़े दिनों में बहुत दाम देने से भी उस स्वादिष्ट मांस का एक टुकड़ा भी हाथ न आवेगा ।

(लवंग आता है)

जसोदा— गोप, मैं तुम्हारी सब बातें अपने स्वामी से कहूँगी ; देखो वह आते हैं ।

लवंग— गोप, यदि, तुम इस भाँति मेरी स्त्री से परोक्ष में बात किया करोगे तो मुझ से कैसे देखा जायगा ।

जसोदा— नहीं लवंग हम लोगों की ओर से संदेह मत करो ; मुझ से और गोप से कहासुनी हो रही है क्योंकि वह मुझसे स्पष्ट कहता है कि मुझको भगवान न क्षमा करेगा क्योंकि मैं जैन की पुत्री हूँ और तुम्हारे विषय में कहता है कि तुम अपनी जाति के शुभचिंतक नहीं हो क्योंकि जैनियों को आर्य बना कर सूअर के मांस का भाव बिगाड़ते हो ।

लवंग— अबे जा उन लोगों से भोजन की तैयारी के लिये कह दे ।

गोप— साहिब वह सब प्रस्तुत है क्योंकि उनको भी तो पेट है ।

लवंग— ईश्वर का कोप हो तुझ पर, तू क्या ही हँसोड़ है । अच्छा उन्हें थाली परोसने के लिये कह दे ।

गोप— यह भी हो चुका है केवल आच्छादन करना शेष है ।

लवंग— तो शीघ्र आच्छादित करो ।

गोप— यह मेरा सामर्थ्य नहीं कि स्वामी के सामने आच्छादन करूँ ।

लवंग— फिर भी अपना ही राग गाए जाता है । क्या तू एक ही क्षण में अपना कुल हँसोड़पन खर्च कर डालेगा मैं तुझसे विनय करता हूँ कि मेरी सरल बातचीत के सीधे अर्थ समझ । जा अपने साथियों से कह दे कि थाली में मांस चुन कर ढँपना, छुरी काँटा इत्यादि रख दे । हमलोग भोजन को आते हैं ।

गोप— महाराज थाली तो परस दी जायगी और मांस भी लगा दिया जायगा पर बिना चुहल के खाना अलौना प्रतीत होगा इससे इसका तार न तोड़िये ।

लवंग— ईश्वर की शरण, इस दुष्ट में तो हँसोड़पन कूट कूट कर भरों है मानो इसके सिर में श्लोक की सेना पैतरा बाँधे हर समय उपस्थित है । मैं बहुतेरे दुष्टों को जानता हूँ जो इससे अधिकार में कहीं बढ़कर हैं परंतु शब्दों के प्रयोग में अर्थ का सत्यानाश करते हैं । जसोदा तुम किस विचार में हो । भला प्यारी तू अपनी सम्मति तो वर्णन करो कि तुम राजकुमार वसंत की अदागिनी को कैसा समझती हो ?

जसोदा— उनकी प्रशंसा अनिवार्य है । मेरी जान में तो उचित होगा कि राजकुमार वसंत को अब अपना जीवन निरी पवित्रता के साथ बिताना चाहिए क्योंकि जो पदार्थ कि उन्हें अपनी स्त्री में मिला है वह ऐसा है कि मानों उन्हें पृथ्वी पर स्वर्ग का सुख जीते जी हाथ लगा और यदि वह इसका आदर न करें तो स्पष्ट है कि उन्हें स्वर्ग का सुख भी क्या उठेगा । मेरी समझ में तो यदि वो देवता आपस में कोई स्वर्गीय कौतुक करें और वो सांसारिक स्त्रियों की होड़ बढें और इनमें से एक पुरश्चो को अपनी ओर से बाजी में लगावें तो दूसरे को अपनी शर्त में एक स्त्री के साथ और भी बहुत कुछ बदना होगा । क्योंकि इस उजाड़ संसार में पुरश्चो का सा दूसरा तो मिलना नहीं ।

लवंग— जैसा कि राजकुमार वसंत को स्त्री लब्ध हुई है वैसा ही मैं भी तुम्हें स्वामी मिला हूँ ।

जसोदा— सत्य वचन । परंतु इसके विषय में भी तनिक मेरी सम्मति पूछ देखो ! ?

लवंग— हाँ अभी पूछता हूँ । पहिले चलो खाना खा लें ।

जसोदा— नहीं, अभी मुझे पेट भर तुम अपनी प्रशंसा कर लेने दो भोजन के उपरांत समाई न रहेगी ।

लवंग— भगवान के वास्ते यह क्या खाने के समय के लिये रहने दो । उस समय तुम मुझे कैसा ही कुछ कहोगी मैं उसे और पदार्थों के साथ पचा जाऊँगा ।

जसोदा— बहुत अच्छा मैं आपकी प्रशंसा की पोथी वहीं खोलूँगी ।

(दोनों जाते हैं)

चौथा अंक

पहला दृश्य

(स्थान — वंशनगर राजद्वार)

(मंडलेश्वर वंशनगर, प्रधान लोग अनंत, वसंत, गिरीश, सलारन, सलोन और दूसरे लोग आते हैं)

मंडलेश्वर— अनंत आ गए हैं ?

अनंत— धर्मावतार उपस्थित हैं ।

मंडलेश्वर— मूँके तुम पर अत्यंत शोक होता है क्योंकि तुम ऐसे दुष्ट कठोर वक्रहृदय वादी (मुबई) के उत्तर देने के लिये बुलाए गए हो, जिसे दया नाम की भी नहीं छू गई है ।

अनंत— मैं सुन चुका हूँ कि महाराज ने उसके

क्रूर बरताव के नम्र करने के प्रयत्न में कितना श्रम किया परंतु उस पर किसी बात की सिद्धि नहीं होती और न मैं किसी उचित रीति से उसकी शत्रुता की परिधि के बाहर जा सकता हूँ। अतः मैं अपना संतोष उसके अनर्थ के प्रति प्रकट करता हूँ और उसका अत्याचार सहने को सब प्रकार से प्रस्तुत हूँ और कदापि मुख से आह न निकालूँगा।

मंडलेश्वर— कोई जाय और उस जैन को न्यायालय में उपस्थित करे।

सलोने— महाराज वह पहिले ही से द्वार पर खड़ा है, वह देखिए आ पहुँचा।

(शैलाक्ष आता है)

मंडलेश्वर— सब लोग स्थान दो जिसमें वह हमारे समुख आकर खड़ा हो। शैलाक्ष, सारा संसार सोचता है और मैं भी ऐसा ही समझता हूँ कि यह ठठ तुम उसी क्षण तक स्थिर रखोगे जब तक कि उसके पूरे होने का समय न आ जायगा और तब लोगों का यह विचार है कि तुम जितनी अब प्रकट में कठोरता दिखला रहे हो उसकी अपेक्षा कहीं अधिक खेद और दया प्रकाश करोगे और जहाँ कि अभी तुम उससे प्रतिज्ञा भंग होने का दंड लेने पर प्रस्तुत हो (जो इस दीन व्यापारी के शरीर का आध सेर मांस है) वहाँ उस समय तुम केवल इस दंड ही के छोड़ने पर अभिमत न हो जाओगे वरंच मनुष्य धर्म और शील का अनुकरण करके मूल ऋण में से आधा छोड़ दोगे। यदि उसकी हानियों की ओर जो इधर थोड़ी देर में उसके ऊपर फट पड़ी हैं ध्यान दिया जाय तो वही इतने बड़े व्यापारी की कमर तोड़ देने के लिये बहुत हैं और कोई मनुष्य कैसा ही कठोर चित्त क्यों न हो और पत्थर का हृदय क्यों न रखता हो यहाँ तक कि कोल और भिल्ल भी जिन्होंने कभी शील का नाम नहीं सुना उसकी दशा को देख कर अत्यंत ही शोक करेंगे, तो ऐ जैन हम लोग आशा करते हैं कि तुम इसका उत्तर नम्रता पूर्वक दोगे।

शैलाक्ष— महाराज को अपने उद्देश्य से सूचित कर चुका हूँ और मैंने अपने पवित्र दिन रविवार की शपथ खाई है कि जो कुछ मेरा दस्तावेज के अनुसार चाहिए वह भग्नप्रतिज्ञा होने के दंड के सहित लूँगा। यदि महाराज उसको दिलवाना अनंगीकार करें तो इसका अपवाद महाराज के न्याय और महाराज के नगर की स्वतंत्रता के सिर पर। महाराज मुझ से यही न पूछते हैं कि मैं इतना मृतमांस छ हजार रुपयों के बदले लेकर क्या करूँगा। इसका उत्तर मैं यही देता हूँ कि मेरे मन की प्रसन्नता। वस अब महाराज को उत्तर

मिला ? यदि मेरे घर में किसी घूस ने बहुत सिर उठा रक्खा हो और मैं उसके नष्ट करने के लिये बीस सहस्र मुद्रा व्यय कर डालूँ तो मुझे कौन रोक सकता है। अब भी महाराज ने उत्तर पाया या नहीं ? कितने लोगों को सूअर के मांस से घृणा होती है, कितने ऐसे हैं कि बिल्ली को देखकर आपे से बाहर हो जाते हैं, तो अब आप मुझ से उत्तर लीजिए कि जैसे इन बातों का कोई मूल कारण नहीं कहा जा सकता कि वह सूअर के मांस से क्यों दूर भागते हैं और यह बिल्ली सदृश दीन और सुखदायक जंतु से क्यों इतना घबराते हैं वैसे ही मैं भी इसका कोई कारण नहीं कह सकता और न कहूँगा। सिवाय इसके कि मेरे और उसके बीच एक पुरानी शत्रुता चली आती है और मुझे उसके स्वरूप से घृणा है जिसके कारण से मैं एक ऐसे विषय का जिसमें मेरा इतना घाटा है उद्योग करता हूँ। कहिए अब तो उत्तर मिला ?

बसंत— ओ निर्दय यह बात जिससे तू अपने अत्याचार को उचित सिद्ध करता है कोई उत्तर नहीं है।

शैलाक्ष— मेरा कुछ तेरी प्रसन्नता के लिये उत्तर देना कर्तव्य थोड़े ही है।

बसंत— क्या सब लोग ऐसे पशु को मार डालते हैं जिसे वह बुरा समझते हैं।

शैलाक्ष— संसार में कोई भी ऐसा मनुष्य है जो किसी जंतु के मारने से जिससे वह घृणा करता हो हाथ उठावे।

बसंत— हर एक अपराध से पहिली बार घृणा उत्पन्न हो जाती है।

शैलाक्ष— क्या तुम चाहते हो कि मैं साँप को दूसरी बार इसने का अवसर दूँ।

अनंत— भगवान के निहोरे नेक विचारों तो कि तुम किससे विवाह कर रहे हो। इसको मार्ग पर लाना तो ठीक वैसी बात ही है जैसा कि समुद्र के किनारे खड़े होकर तरंगों को आज्ञा देना कि तुम इतनी ऊँची मत उठो, या भेड़िये से पूछना कि उसने बकरी के बच्चे को खा कर उसकी माँ को दुःख में क्यों फँसाया, या पहाड़ी खजूर के वृक्षों को कहना कि वह अपनी ऊँची फुगियों को वायु के भोंके से न हिलाने दें और न पत्तों की खड़खड़ाहट का शब्द होने दें, ऐसे ही तुम संसार के कठिन से कठिन काम कर लो इसके पूर्व कि इस जैन के चित्त को (जिस से कठोरतर दूसरा पदार्थ न होगा) द्रव करने का यत्न करो। इसलिये मैं प्रार्थना करता हूँ कि न तो तुम उससे अब कुछ देने दिलाते की बातचीत

करो और न इस विषय में अधिक चिंता करो वरंच थोड़े में भाग्य पर संतोष करके मुझे दंड भुगतने और इस जैन को अपना मनोरथ पूरा करने दो ।

बंसत — तेरे छ हजार रुपयों के बदले यह ले बारह तयार है ।

शैलाक्ष — यदि इन बारह हजार रुपयों का हर एक रुपया बारह भागों में बाँट दिया जाय और हर एक भाग एक रुपये के बराबर हो तो भी मैं उनकी ओर आँख उठा कर न देखूँ, मुझे केवल दस्तावेज के प्रण से काम है ।

मंडलेश्वर — भला तू किसी पर दया नहीं करता तो तुझे दूसरों से क्या आशा होगी ?

शैलाक्ष — जब मैंने कोई अपराध ही नहीं किया है तो फिर किस बात से डरूँ ? आप लोगों के पास कितने मोल लिए हुए दास और दासियाँ उपस्थित हैं जिन्हें आप गधों, कुत्तों और खच्चरों की भाँति तुच्छ अवस्था में रख कर उनसे सेवा कराते हैं और यह क्यों ? केवल इस लिये कि आपने उन्हें मोल लिया है । यह मैं आप से यह कहूँ कि आप उन्हें स्वतंत्र करके अपने कुल में ब्याह कर लीजिए, या यह कि उन्हें बोझ के नीचे दबा हुआ पसीने से घुला घुला कर मारे क्यों डालते हैं, उन्हें भी अपनी सदृश कोमल शैया पर सुलाइए और स्वादिष्ट भोजन खिलाइए तो इसके उत्तर में आप यही कहिएगा कि वह दास हमारे हैं हम जो चाहेंगे करेंगे, तुम कौन ? इसी भाँति मैं भी आपको उत्तर देता हूँ कि इस आध सेर मांस का जो मैं इससे माँगता हूँ बहुतमूल्य दिया गया है, वह मेरा माल है और मैं उसे अवश्य लूँगा । यदि आप दिलबाना अस्वीकार करें तो आप के न्याय पर बुझी है । जाना गया कि वंश-नगर के कानून में कुछ भी सार नहीं । मैं राजद्वार की आज्ञा सुनने के लिए उपस्थित हूँ, कहिए मुझे मिलेगा या नहीं ?

मंडलेश्वर — मुझे निज स्वत्व के अनुसार अधिकार है कि मुकदमे के दिन को टाल दूँ । यदि बलवंत नामी एक सुयोग्य वकील जिसकी मैंने इस मुकदमे के विचार के लिये बुलाया है आज न आया तो मैं इस मुकदमे को टाल दूँगा ।

सलारन — महाराज बाहर उस वकील का एक मनुष्य खड़ा है, जो उसके पास से पत्र लेकर अभी पांडुरपुर से चला आता है ।

मंडलेश्वर — शीघ्र पत्र लाओ और दूत को भीतर बुलाओ ।

बंसत — अनंत अपने चित्त को स्वस्थ रखेंगे ।

कैसे मनुष्य हो ! साहस न हारो । पहिले इसके कि तुम्हारा एक बाल भी टेढ़ी हो मैं अपना मांस, त्वचा, अस्थि और जान प्राण वो धन उस जैन के अर्पण करूँगा ।

अनंत — गल्ले भर में मन्तव्य की दुर्बल भेड़ मैं ही हूँ, मेरा ही मरना श्रेय है । कोमल फल सब के पहले पृथ्वी पर गिरता है तो मुखी को गिरने दो । तुम्हारे लिये इससे बढ़कर कोई बात उचित न होगी कि मेरे पश्चात् मेरा जीवनचरित्र लिखो ।

(नरश्री वकील के लेखक के भेस में आती है)

मंडलेश्वर — तुम पांडुरपुर से बलवंत के पास से आते हो ?

नरश्री — जी महाराज यहाँ से उन्हीं के पास से बलवंत ने आपको प्रणाम कहा है ।

(एक पत्र देती है)

बंसत — क्यों, तू ऐसे उत्साह से छुरी क्यों तीक्ष्ण कर रहा है ?

शैलाक्ष — उस दिवालिये के शरीर से दंड का मांस काटने के लिये ।

गिरीश — अरे निर्दयी जैनी तू अपनी जूती के तल्ले पर छुरी को क्यों तेज करता है, तेरा पापाण तुल्य हृदय तो प्रस्तुत ही है । पर कोई शस्त्र यहाँ तक कि बधिक की तलवार भी तेरी शत्रुता के वेग को नहीं पहुँच सकती । क्या तुम पर किसी की विनती काम नहीं आती ?

शैलाक्ष — नहीं, एक की भी नहीं जो तू अपने बुद्धि से गढ़ सकती हो ।

गिरीश — हा ! ओ कठोर कुत्ते, ईश्वर तेरा बुरा करे, यह केवल न्याय का दोष है जिसने अब तक तुझे जीता रख छोड़ा है, तूने तो आज मेरे धर्म में बढ़ा लगा दिया क्योंकि तेरे लक्षणों को देखकर मुझे गोरक्ष के इस विचार को कि पशुओं की आत्मा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करती है मानना पड़ा । तेरी हिंसक आत्मा एक भेड़िये की छाया में थी जो कितने मनुष्यों के जीव वध के लिए सूली चढ़ा दिया गया था । इस अवस्था को पहुँचने पर भी उस नारकी आत्मा को तोष न हुआ और वहाँ से भाग कर जिस समय तू अपनी माता के अपवित्र गर्भ में था तुम में पैठ गई क्योंकि तेरा मनोरथ भी भेड़ियों की भाँति घातक हिंसक है ।

शैलाक्ष — जब तक कि तेरे धिक्कार में इतनी शक्ति न हो कि अनंत की मुहर को मेरी दस्तावेज पर से मिटा दे सके तब तक इस विचार से क्या फल निकल सकता है । व्यर्थ को तू चिल्ला चिल्ला कर

अपना ही कंठ फाड़ रहा है। ऐ नवयुवक अपने सुधि की औषधि कर कहीं ऐसा न हो कि तेरे सिर पर कोई आपत्ति आ जाय। क्या तुझे विदित नहीं कि मैं न्याय के लिये यहाँ खड़ा हूँ ?

मंडलेश्वर— बलवंत अपने पत्र में इस न्याय सभा के लिये एक नवयुवक विद्वान वकील की सिफारिश करता है, वह कहाँ है ?

नरश्री— वह समीप ही आपके उत्तर पाने की प्रत्याशा में खड़े हैं कि आप उन्हें विवाद करने की आज्ञा दे देंगे या नहीं।

मंडलेश्वर— अति प्रसन्नता से। आप दो चार महाशय जायें और उनका समादर करके सम्मान के साथ यहाँ ले आएँ तब तक विचारसभा बलवंत का पत्र सुनेगी।

(लेखक पढ़ता है)

श्रीमन्, मैंने महाराज का पत्र अस्वस्थ होने की अवस्था में पाया। परंतु जिस समय आप का दूत पहुँचा उस समय मेरे मित्रों में से मालवा के एक युवा वकील बालेसर नामी मरी भेंट करने को आए हुए थे। मैंने उनको जैन और अनंत सौदागर के मुकद्दमे का सब व्यवसाय समझा दिया। हम दोनों मनुष्यों ने मिल कर कई व्यवसाय पलट कर देखीं। मैंने अपनी सम्मति उनसे प्रकट कर दी है अतः वह मेरी सम्मति लेकर जिसे वह अपनी योग्यता के बल से (जिसकी प्रशंसा मैं किसी मुँह से नहीं कर सकता) और सुधार लेंगे। मेरे निवेदन के अनुसार मेरे स्थानापन्न महाराज की सेवा में उपस्थित होते हैं। प्रार्थना करता हूँ कि महाराज उनकी अल्प अवस्था का ध्यान न करके उनके आदर में कदापि न्यूनता न करेंगे क्योंकि मेरी दृष्टि में ऐसी थोड़ी अवस्था का पुरुष ऐसी पुष्कल बुद्धि के साथ आज तक नहीं आया। मैं उन्हें महाराज की सेवा में अर्पण करता हूँ, परीक्षा से उनकी योग्यता का हाल भली भाँति खुल जायगा।

मंडलेश्वर— आप लोगों ने सूना कि प्रसिद्ध विद्वान बलवंत ने क्या लिखा है और जान पड़ता है कि वकील महाशय भी वह आ रहे हैं।

(पुरश्री वकीलों की भाँति वस्त्र पहने आती है)

मंडलेश्वर— आइये हाथ मिलाइए, आप ही वृद्ध बलवंत के पास से आते हैं ?

पुरश्री— महाराज।

मंडलेश्वर— मुझे आप के आने से बड़ी प्रसन्नता हुई, विराजिए। आप इस मुकद्दमे को जानते हैं जिसका इस समय विचारसभा में विचार हो रहा

है ?

पुरश्री— मैं उसके वृत्तांत को भली भाँति जानने वाला हूँ। वर्णन कीजिए कि इन लोगों में से कौन सौदागर है और कौन जैन ?

मंडलेश्वर— अनंत और वृद्ध शैलाक्ष दोनों सामने खड़े हो जाओ।

पुरश्री— तुम्हारा नाम शैलाक्ष है ?

शैलाक्ष— हाँ मेरा नाम शैलाक्ष है।

पुरश्री— यह तुमने विचित्र मुकद्दमा रच रक्खा है, परंतु नियमानुसार वंशनगर का कानून तुमको उसके प्रयत्न से रोक नहीं सकता। और आप ही इनके पजे में फँसे हैं, क्यों साहिब ?

(अनंत से)

अनंत— जी हाँ, मुझी पर इनका लक्ष्य है।

पुरश्री— आप तमस्सुक लिखना स्वीकार करते हैं।

अनंत— निस्संदेह मैं स्वीकार करता हूँ।

पुरश्री— तब तो अवश्य है कि जैन दया करे।

शैलाक्ष— मैं किस बात से दब कर ऐसा कहूँ यह तो कहिए ?

पुरश्री— दया ऐसी वस्तु नहीं जिसे आग्रह की आवश्यकता हो। वह जलधारा की भाँति नभ मंडल से पृथ्वीतल पर गिरती है। उसका दुहरा फल मिलता है अर्थात् पहले उसको जो करता है और दूसरे उसको जिसे उसका लाभ पहुँचता है। महानुभावों को यह अधिकतर शोभा देती है, मंडलेश्वरों को यह मुकुट से अधिकतर शोभित है। राजदंड केवल सांसारिक बल प्रकट करता है जो आतंक और तेज का चिह्न है और जिससे राजेश्वरों का भय लोगों के चित्त पर छा जाता है परंतु दया का प्रभाव राजदंड के प्रभाव की अपेक्षा कहीं अधिक है, दया का वासस्थान राजेश्वरों का चित्त है, यह एक प्रधान महिमा ईश्वर की है। अतः संसार के राजेश्वर उसी समय दैवतुल्य प्रतीत होते हैं जब कि वह न्याय के साथ दया का भी बरताव करते हैं। इसलिए ऐ जैनी यद्यपि तू न्याय ही न्याय पुकारता है किंतु विचार कर कि केवल न्याय ही के भरोसे पर हम में से कोई मरने के उपरांत मुक्त होने की आशा नहीं कर सकता। हम ईश्वर से दया की प्रार्थना करते हैं तो चाहिए कि वही प्रार्थना हमको भी दया के काम सिखावे। मैंने इतना तेरे न्याय के आग्रह से हटाने के निमित्त से कहा पर यदि तू न मानेगा तो जैसे हो सकेगा वंशनगर की विचारशीला न्यायसभा तुझे इस सौदागर पर विनयपत्र दे देगा।

शैलाक्ष — मेरा किया मेरे सिर पर । मैं राजद्वार से अपने तमस्सुक के अनुसार दंड दिला पाने की प्रार्थना करता हूँ ।

पुरश्ची — क्या वह रुपया चुका देने की क्षमता नहीं रखता ।

बसंत — हाँ, मैं राजद्वार में उनकी संती अभी दूना देने को उपस्थित हूँ । यदि इससे भी उसका पेट न भरे तो मैं उस जमा का दस गुना दूँगा और यदि न दे सकूँ तो दंड में अपना सिर अर्पण करूँगा । यदि इस पर भी वह न माने तो स्पष्ट है कि शत्रुता के आगे धर्म की दाल नहीं गलती । मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने निज अधिकार से इस बार कानून का प्रतिबंध छोड़ दीजिए । एक बड़े भारी उपकार की अपेक्षा में थोड़ी सी अनीति स्वीकार कीजिए और हे मंडलेश्वर, अत्याचारी पिशाच की बुराई को रोकिए ।

(मंडलेश्वर से)

पुरश्ची — ऐसा न होना चाहिए वंशनगर के कानून के अनुसार किसी को अधिकार नहीं है कि नीति को रोक सके । यह विचार दृष्टांत की भाँति पर लिखा जायगा और बहुत सी त्रुटियाँ इसके कारण राजा के कामों में आ पड़ेंगी । यह कदापि नहीं हो सकता ।

शैलाक्ष — वाह वाह मानो महात्मा विक्रम आप ही न्याय के लिए उतर कर आए हैं । वास्तव में आपको विक्रम ही कहना चाहिए । ऐ युवा बुद्धिमान न्यायकर्ता मैं नहीं कह सकता कि मैं चित्त से आपका कितना समादर करता हूँ ।

पुरश्ची — कृपाकर, नेक मुखे तमस्सुक तो देखने दो ।

शैलाक्ष — लीजिए सुप्रतिष्ठ वकील महाशय यह उपस्थित है ।

पुरश्ची — शैलाक्ष तुम्हें तुम्हारे मूलधन का तिगुना मिल रहा है ।

शैलाक्ष — शपथ, शपथ, मैं शपथ जो खा चुका हूँ । क्या मैं झूठी शपथ खाने का पाप अपने माथे पर लूँ ? न, कदापि नहीं, यदि मुखे इसके बदले में वंशनगर का राज्य भी हाथ आए तो भी ऐसा न करूँ !

पुरश्ची — इस तमस्सुक की मिति तो टल चुकी और इसके अनुसार विवेकतः जैन को अधिकार है कि सौदागर के हृदय के पास से आध सेर मांस काट ले । परंतु उस पर दयाकर और तिगुना रुपया लेकर मुखे तमस्सुक फाड़ डालने की आज्ञा दे ।

शैलाक्ष — हाँ उस समय जबकि मैं लिखे अनुसार दंड दिला पाऊँ । मुखे प्रीति होता है कि आप एक

योग्य न्यायी हैं, आप कानून से परिचित हैं और उसके तात्पर्य को भी ठीक समझते हैं, तो मैं आपको उसी की शपथ देता हूँ जिसके आप पूरे आधार हैं कि आप आज्ञा सुनाने में विलंब न करें । मैं अपने प्राण की सौगंद खाकर कहता हूँ कि मनुष्य की जिह्वा में इतना सामर्थ्य नहीं कि मेरा मनोरथ फेरे । मुझको सिवाय तमस्सुक के प्रणों के और किसी बात से क्या प्रयोजन ।

अनंत — मैं भी चित्त से चाहता हूँ कि न्यायकर्ता आज्ञा सुना दे ।

पुरश्ची — तो बस आपको छाती खोलकर प्रस्तुत रहना चाहिए ।

शैलाक्ष — बाहरे योग्यता ! वाह रे न्याय ! आहा ! क्या कहना है !

पुरश्ची — क्योंकि कानून का अभिप्राय यही है कि प्रतिज्ञा भंग करने का दंड तमस्सुक के प्रणानुसार सब व्यवस्था में दिया जाना चाहिए, तो वह इस अवस्था में भी उचित है ।

शैलाक्ष — बहुत ठीक, क्या कहना है, न्यायकर्ता को ऐसा ही बुद्धिमान और न्यायी होना चाहिए ! यह अवस्था और यह बुद्धि ।

पुरश्ची — अब आप अपनी छाती खोल दीजिए ।

शैलाक्ष — जी हाँ छाती ही, यही तमस्सुक में लिखा है, है न मेरे सुजन न्यायकर्ता, हृदय के समीप ये ही शब्द लिखे हैं ।

पुरश्ची — ऐसा ही है, परन्तु बताओ कि मांस तोलने के लिये तराजू रखे है ?

शैलाक्ष — मैंने उन्हें ला रक्खा है ।

पुरश्ची — शैलाक्ष, अपनी ओर से कोई जराह भी बुरा रक्खो कि उसका घाव बंद कर दे, जिसमें अधिक रक्त निकलने से कहीं वह मर न जाय ।

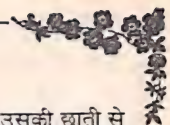
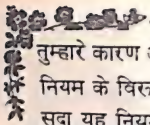
शैलाक्ष — क्या यह तमस्सुक में लिखा है ?

पुरश्ची — नहीं लिखा तो नहीं परंतु इससे क्या, इतनी भलाई यदि उसके साथ करोगे, तो तुम्हारी ही कीर्ति है ।

शैलाक्ष — मैं नहीं करने का, तमस्सुक में इसका वर्णन नहीं है ।

पुरश्ची — अच्छा सौदागर साहिब, तो अब आपको जो कुछ किसी से कहना सुनना हो कह सुन लीजिए ।

अनंत — केवल दो बातें करनी हैं, नहीं तो मैं सब भाँति उपस्थित और प्रस्तुत हूँ । लाओ बसंत, मुखे अपना हाथ दो, मैं तुमसे बिदा होता हूँ । तुम इस बात का कदापि खेद न करना कि मुख पर यह आपत्ति



तुम्हारे कारण आई क्योंकि इस समय पर भाग्य अपने नियम के विरुद्ध बहुत कृपालु जान पड़ती है। उसका सवा यह नियम देखने में आया है कि वह भाग्यहीन मनुष्य को उनकी लक्ष्मी चले जाने के उपरांत ठोकर खाने और दुरवस्था से दारिद्र्य का दुःख उठाने के लिए छोड़ देती है किंतु मुझे वह एक साथ इस जन्म भर के क्लेश से छुटकारा दिए देती है। अपनी सुशील स्त्री से मेरा सलाम कहना और उनसे मेरे मरने का हाल कह देना। जो स्नेह मुझे तुम्हारे साथ था उसका भी वर्णन करना, मेरे प्राण देने के ढंग को सराहना और जिस समय मेरी कहानी कह चुको तो उनसे न्यायदर्ष्ट से पूछना कि किसी समय में बसंत का भी कोई चाहने वाला था या नहीं। मेरे प्यारे तुम इस बात का खेद न करो कि तुम्हारा मित्र संसार से उठा जाता है क्योंकि निश्चय मानो कि उसे इस बात का नेक भी शोक नहीं कि वह तुम्हारे ऋण को अपने प्राण देकर चुकाता है क्योंकि यदि जैन ने गहरा घाव लगाने में कमी न की तो मैं तुरंत उससे उम्न हो जाऊँगा।

बसंत— अनंत मेरा व्याह एक स्त्री के साथ हुआ है जिसे मैं अपने प्राण से अधिक प्रिय समझता हूँ, परंतु मेरा प्राण, मेरी स्त्री और सारा संसार तुम्हारे जीवन के सामने तुच्छ है, और तुमको इस दुष्ट राक्षस के पंजे से छुड़ाने के लिये मैं इन सब को खोने वरंच तुम पर से न्योछावर करने को प्रस्तुत हूँ।

पुरश्ची— यदि तुम्हारी स्त्री इस स्थान पर उपस्थित होती तो तुम्हारे मुँह से अपने विषय में ऐसे शब्द सुन कर अवश्य अप्रसन्न होती।

गिरिश— मेरी एक स्त्री है, जिसे मैं धर्म से कहता हूँ कि मैं प्यार करता हूँ परंतु यदि उसके स्वयं जाने से किसी देवता की सहायता मिल सकती, जो इस पापी जैन के चित्त को फेर देता है तो मुझे उससे हाथ धोने में कुछ शोक न होता।

नरश्ची— यही कुशल है कि तुम उसकी पीठ पीछे ऐसा कहते हो, नहीं तो न जाने आज कैसी आपत्ति मचती।

शैलाक्ष— (आप ही आप) इन आर्यपतियों की बातें सुनो! मेरी बेटा का व्याह तो यदि बरबंड के सदृश्य किसी व्यक्ति से होता तो मैं अधिक पसन्द करता, इसकी अपेक्षा कि वह एक आर्य की स्त्री बने।

(चिल्ला कर) समय व्यर्थ जाता है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप विचार सुना दें।

पुरश्ची— इस सौदागर के शरीर का आधा सेर मांस तुम्हारा ही है, जिसे कि कानून दिलाता है और

राजसभा देती है।

शैलाक्ष— वाह रे न्यायी!

पुरश्ची— और यह मांस तुमको उसकी छाती से काटना चाहिए, कानून इसको उचित समझता है और न्यायसभा आज्ञा देती है।

शैलाक्ष— ऐ मेरे सुयोग्य न्यायकर्ता! इसका नाम विचार है। आओ, प्रस्तुत हो।

पुरश्ची— थोड़ा ठहर जा, एक बात और शेष है। यह तमस्सुक तुम्हें रुधिर एक बूँद भी नहीं दिलाता, "आध सेर मांस" यही शब्द स्पष्ट लिखे हैं। इसलिये अपनी प्रण प्राप्त कर ले अर्थात् आध सेर मांस ले ले परंतु यदि काटने के समय इस आर्य का एक बूँद रक्त भी गिराया तो वंशानगर के कानून के अनुसार तेरी सब संपत्ति और लक्ष्मी व सामग्री राज्य में लगा ली जायगी।

गिरिश— वाह रे विवेकी! सुन जैन — ऐ मेरे सुयोग्य न्यायी!

शैलाक्ष— क्या यह कानून में लिखा है?

पुरश्ची— तुम्हें आप कानून दिखला दिया जायगा क्योंकि जितना तू न्याय न्याय पुकारता है उससे अधिक न्याय तेरे साथ बरता जायगा।

गिरिश— आहा! वाह रे न्याय! देख जैनी कैसे विवेकी न्यायकर्ता हैं।

शैलाक्ष— अच्छा मैं उसकी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ — तमस्सुक का तिगुना देकर वह अपनी राह ले।

बसंत— ले यह रुपये हैं।

पुरश्ची— ठहरो, इस जैनी के साथ पूरा न्याय किया जायगा, थोड़ा धीरज धरो, शीघ्रता नहीं है, उसे दंड के अतिरिक्त और कुछ न दिया जायगा।

गिरिश— ओ जैनी देख तो कैसे धार्मिक और योग्य न्यायी हैं। वाह वाह!

पुरश्ची— तो अब तू मांस काटने की प्रस्तुतियाँ कर, परंतु सावधान, स्मरण रखना कि रक्त नाम को भी न निकलाने पावे और न आध सेर मांस से न्यून वा अधिक कटे। यदि तूने ठीक आध सेर से थोड़ा सा भी न्यूनाधिक काटा यहाँ तक कि यदि उसमें एक रत्ती बीसवें भाग का भी अंतर पड़ा, वरंच यदि तराजू की डाँडी बीच से बाल बराबर भी इधर या उधर हटी तो तू जी से मारा जायगा और तेरा सब धन और धान्य छीन लिया जायगा।

गिरिश— वाह वाह! मानो महाराज विक्रम आप ही न्याय के लिए उतर आए हैं! अरे जैनी देख



महाराज विक्रम ही तो हैं ! भला अधम तू अब मेरे हाथ चढ़ा है ।

पुरात्री — ओ जैनी तू अब किस सोच विचार में पड़ा है ? अपना दंड ग्रहण कर ले ।

शैलाक्ष — अच्छा मुझे मेरा मूल दे दो मैं अपने घर जाऊँ ।

बसंत — ले, यह रुपया उपस्थित है ।

पुरात्री — यह भरी सभा में रुपये का लेना अस्वीकार कर चुका है । अब इसे न्याय और दंड के अतिरिक्त कुछ न मिलेगा ।

गिरिश — विक्रम महाराज ! सचमुच यह विक्रम ही तो हैं । ऐ जैनी, मैं तेरा धन्यवाद करता हूँ कि तू ने मुझे अच्छा शब्द बतला दिया ।

शैलाक्ष — क्या मुझे मेरी मूल धन भी न मिलेगा ?

पुरात्री — तुम्हें दंड के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलने का । इससे ऐनी जैनी अपने जी पर खेल कर उसे वसूल कर ले ।

शैलाक्ष — अच्छा मैंने उसे राक्षस को सौपा अब मैं यहाँ कदापि न ठहरूँगा ।

पुरात्री — ठहर ओ जैनी, तुम्हपर कानून की एक और धारा है । वंशनगर के कानून में यह लिखा है कि यदि किसी परदेसी के विषय में यह सिद्ध हो कि उसने प्रकट या गुप्त रीति पर वंशनगर के किसी रहने वाले के वध करने की चेष्टा की तो वह प्रतिवादी जिसके विषय में ऐसा यत्न किया गया हो अपने प्रतिवादी की आधी सम्पत्ति पर अधिकार दिला पाने का दायी है और शेष आधा राजकोष में ग्रहण किया जायगा । अपराधी के मुक्त करने का केवल मंडलेश्वर को अधिकार है, उसमें कोई दूसरा हस्तक्षेप नहीं कर सकता । तो जान, ओ जैनी कि इस समय तेरी अवस्था अत्यंत दुर्बल है क्योंकि मुकद्दमा के विवरण से यह स्पष्ट है कि तू ने जान बूझ कर प्रतिवादी के प्राण लेने की चेष्टा की और इस भाँति उस आपत्ति में, जिसका मैं ऊपर वर्णन कर चुका हूँ, फँसा है । इसलिये तुम्हको उचित है कि मंडलेश्वर के चरणों पर सिर रखकर दया की प्रार्थना कर ।

गिरिश — सुन जैनी, मैं तुम्हें एक उपाय बताऊँ ; मंडलेश्वर से निवेदन कर कि तुम्हें आप फाँसी लगाकर मर जाने की आज्ञा दें । परंतु तेरा धन संपत्ति तो छीन ली जायगी अब तेरे पास इतना बचेगा कहां कि रस्सी मोल ले सके, इस लिये तुम्हको राजा की के व्यय से फाँसी देनी पड़ेगी ।

मंडलेश्वर — जिसमें तुम्हें हमारे और अपने स्वभाव में अंतर जान पड़े मैंने बेमार्गी तेरा जी बचा दिया । अब रही तेरी सम्पत्ति सो उसमें से आधी तो अनंत की हो चुकी और आधी राज्य की, जिसके पलटे में यदि तू दीनता प्रकाश करेगा तो दंड ले लिया जायगा ।

पुरात्री — अर्थात् जितना राज्यांश है उसके बदले में, अनंत के भाग से कुछ प्रयोजन नहीं ।

शैलाक्ष — नहीं मेरा प्राण और सब कुछ ले लीजिए, वह भी न क्षमा कीजिए । जब कि आप उस आधार को जिस पर मेरा घर खड़ा है लिए लेते हैं तो मेरे घरको पहले ले चुके, इस भाँति जबकि आपने मेरे जीवन का आधार छीन लिया तो मानो मेरा प्राण पहले ले चुके ।

पुरात्री — अनंत तुम उसके साथ कितनी दया कर सकते हो ।

गिरिश — भगवान के वास्ते सिवाय एक रस्सी के जिससे वह फाँसी लगाकर मर सके और कुछ व्यर्थ न देना ।

अनंत — मैं मंडलेश्वर और राजसभा से विनती करता हूँ कि उसके अर्धभाग के बदले का दंड मैं इस शर्त पर देने को प्रस्तुत हूँ कि वह भाग शैलाक्ष मेरे पास धरोहर की भाँति जमा रहने दे, जिसमें उसके मरने पर जो मनुष्य हाल में उसकी लड़की को ले भागा है उसको सौंप दूँ । परंतु इसके साथ दो प्राण हैं अर्थात् पहले तो वह इस वक्तव्य के लिये आर्य हो जाय और दूसरे इस समय सभा में एक दानपत्र इस आशय का लिख दे कि उसके मरने पर उसकी सारी सम्पत्ति उसके जमाता लवंग और उसकी लड़की को मिले ।

मंडलेश्वर — उसे यह करना पड़ेगा, नहीं तो मैंने जो क्षमा की आज्ञा अभी दी है उसे काट देता हूँ ।

पुरात्री — क्यों जैनी तू इस पर प्रसन्न है, कह क्या कहता है ?

शैलाक्ष — मैं प्रसन्न हूँ ।

पुरात्री — लेखक अभी एक दानपत्र लिखो ।

शैलाक्ष — भगवान के निहारे मुझे यहाँ से जाने की आज्ञा दीजिए, मेरी बुरी दशा है । पांडुलिपि मेरे मकान पर भेज दीजिए मैं हस्ताक्षर कर दूँगा ।

मंडलेश्वर — अच्छा जा, परन्तु हस्ताक्षर कर देना ।

गिरिश — आर्य होने से तेरे दो धर्म बाप होंगे । कदाचित्त मैं न्याय कर्ता होता तो दस और होते जिसमें तुम्हें आर्य करने के लिए मंदिर भेजने के बदले में

सूली पर पहुँचा देते ।

(शैलाक्ष जाता है)

मंडलेश्वर— महाशय मैं प्रार्थना करता हूँ कि आज आप मेरे साथ भोजन करें ।

पुरश्री— महाराज मुझे क्षमा करें, मुझे आज ही रात को पांडुरपुर जाना है और यह अत्यन्त आवश्यक है कि मैं अभी चला जाऊँ ।

मंडलेश्वर— मैं खेद करता हूँ कि आपको अवकाश नहीं है । अनंत इनका भली भाँति सत्कार करो क्योंकि मेरी जान तुम पर इनका बड़ा उपकार है । (मंडलेश्वर, बड़े बड़े प्रधान और उनके चाकर जाते हैं)

बसंत— ऐ मेरे सुयोग्य उपकारी, आज मैं और मेरे मित्र आपके बुद्धि वैभव से आपत्ति से मुक्त हुए, जिसके बदले छ सहस्र मुद्रा जो जैन के पाने थे मैं बड़ी प्रसन्नता से आपकी भेंट करता हूँ क्योंकि आपने हमारे निमित्त कष्ट सहन किया है ।

अनंत— और इनके अतिरिक्त हम लोग जन्म भर तन मन से आपके दास बने रहेंगे

पुरश्री— जिस मनुष्य का चित्त अपने किए पर तुष्ट हुआ उसने अपनी सारी मजदूरी भरपाई और मेरे चित्त को इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि आप मेरे द्वारा मुक्त हुए, इससे मैं समझता हूँ कि आपने मुझको सब कुछ दिया । मेरे चित्त में आज तक मिहनताना पाने का ध्यान नहीं हुआ है, क्योंकि मुझे किराये के टट्टू बनने से घृणा है । कृपापूर्वक जब मेरा आपका कमी फि साक्षात् हो तो मुझे स्मरण रखियेगा । ईश्वर आपकी रक्षा करें, अब मैं विदा होता हूँ ।

बसंत— महाशय मेरा धर्म है कि इस बारे में आपसे फिर प्रार्थना करूँ, कृपा करके कोई वस्तु हम लोगों के स्मरणार्थ मिहनताने करके नहीं वरंच एक स्मारक चिन्ह की भाँति स्वीकार कीजिए । मेरी प्रार्थना है कि आप मेरी दो बातें स्वीकार करें, एक तो यह है कि आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार करें और दूसरे मेरी धृष्टता को क्षमा करें ।

पुरश्री— आप मुझे अत्यन्त दबाते हैं इसलिये अब अधिक अस्वीकार करना निःशीलता है । अच्छा एक तो मुझे आप अपने दस्ताने दें, मैं उन्हें आपकी प्रसन्नता के लिये पहनूँगा और दूसरे आपके स्नेह के चिह्न मैं इस अँगूठी को लूँगा । हाथ न खींचिए, मैं और कुछ न लूँगा पर मुझे निश्चय है कि आप मेरे स्नेह से निहारे इसके देने में अनंगीकार न करेंगे ।

बसंत— यह अँगूठी महाशय ! खेद, यह तो एक अत्यन्त तुच्छ वस्तु है मुझे आपको देते लज्जा आती

है ।

पुरश्री— मैं इसको छोड़ और कुछ कदापि न लूँगा और मुख्य करके मेरा जी इसके लेने को बहुत ही चाहता है ।

बसंत— मैं इसके मोल लेने के ध्यान से यह बातचीत नहीं करता, इसमें कुछ और ही भेद है । वंशनगर के राज्य में जो अँगूठी सब से अधिक मूल्य की होगी उसे मैं सूचना देकर मँगवाऊँगा और आप के अर्पण करूँगा पर केवल इस अँगूठी के लिये आप मुझे क्षमा करें ।

पुरश्री— बस महाशय बस, मैंने समझ लिया कि आप बातों के बड़े धनी हैं । पहले तो आपने मुझे मीछ मँगना सिखलाया और अब यह ढंग बताते हैं कि भिखमंगे को किस भाँति टालना चाहिए ।

बसंत— मेरे सुहृद, यह अँगूठी मुझे मेरी स्त्री ने दी थी और जिस समय कि उसने इसे मेरी उँगली में पहनायी तो मुझ से इस बात की प्रतिज्ञा ले ली कि न तो मैं इसे कभी बेचूँ, न किसी को दूँ और न छोड़ूँ ।

पुरश्री— इस भाँति के चुटकुले प्रायः बहाना करनेवालों के पास गढ़े गढ़ाए रहते हैं । यदि आपकी स्त्री पागल न होगी तो वह इस बात के कह लेने पर कि मैंने आप के साथ इस अँगूठी की लागत से कितना बढ़कर सुलूक किया, इसके दे डालने पर आप से सदा के लिये श्रुत कदापि न ठान लेंगी । अच्छा मेरा प्रणाम लीजिए ।

(पुरश्री और नरश्री जाती हैं)

अनंत— मेरे सुहृद बसंत अँगूठी उन्हें दे दो । इस समय उनकी उपकार और मेरी प्रीति को अपनी स्त्री की आज्ञा से बढ़कर समझो ।

बसंत— जाओ गिरीश, दौड़कर उन तक पहुँचो, यह अँगूठी उनको भेंट करो और यदि बन पड़े तो उन्हें किसी भाँति अनंत के घर पर लाओ, बस अब चले ही जाओ देर न करो ! (गिरीश जाता है) आओ हम तुम भी वहीं चलो, कल बड़े तड़के हम दोनों विल्वमठ की ओर चलेंगे, आओ अनंत ।

(दोनों जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान — वंशनगर की एक सड़क

(पुरश्री और नरश्री आती हैं)

पुरात्री — जैन के घर का पता लगा कर उससे

फटपट इस पांडुलिपि पर हस्ताक्षर करा लो । हम लोग आज ही रात को चलते होंगे, जिसमें अपने पति से एक दिन पहले घर पहुँच रहें । लवंग इस लिपि को देखकर अत्यंत प्रसन्न होगा ।

(गिरीश आता है)

गिरीश — महाराज बड़ी बात हुई कि आप मिल गए । मेरे मालिक बसंत ने अंततः सोच समझ कर वह अँगूठी आप की सेवा में भेजी है और प्रार्थना की है कि आज आप उन्हीं के साथ भोजन करें ।

पुरात्री — मैं असमर्थ हूँ, हाँ उनकी अँगूठी मैंने सिर आँखों से स्वीकार की । तुम मेरी ओर से जाकर विनती कर देना । अब तुम इतनी कृपा और करो कि मेरे लेखक को शैलाक्ष का घर दिखला दो ।

गिरीश — मैं प्रस्तुत हूँ ।

नरत्री (पुरात्री से) महाशय मैं आप से कुछ विनय किया चाहता हूँ । (अलग ले जाकर कहती है) देखिए मैं भी अपने पति की अँगूठी लेने का यत्न करती हूँ । मुझसे उन्होंने शपथ खाई थी कि मैं उसे जन्म भर अपने से पृथक् न करूँगा ।

पुरात्री — अवश्य, चूकियो मत, हम लोगों को अच्छा अवसर हाथ आएगा । यह लोग शपथ खायेंगे कि हमने अँगूठी पुरुषों को दी है परन्तु हम लोग उनकी एक न मानेंगी और आप सौगंद खाकर उन्हें भूठा बना लेंगी । बस अब चली ही जाव, तुम जानती हो जहाँ मैं ठहरी रहूँगी ।

नरत्री — आइए महाशय, मुझे वह घर बतला दीजिए ।

(दोनों जाते हैं)



पाँचवाँ अंक

पहिला दृश्य

स्थान — विल्वमठ, पुरात्री के घर का प्रवेशद्वार

(लवंग और जसोदा आते हैं)

लवंग — आहा ! चाँदनी क्या आनंद दिखा रही है ! मेरे जान ऐसी ही रात में जब कि वायु इतना मंद चल रहा था कि वृक्षों के पत्तों का शब्द तक सुनाई न देता था, त्रिविक्रम दुर्ग की भीत पर चढ़ कर कामिनी

की राह ताकता हुआ, जो यवनपुर के खंभे में थी, हृदय से ठंडी साँस निकाल रहा था ।

जसोदा — ऐसी ही रात में कामिनी ओस पड़ी हुई घास पर डर डर कर कदम रखती थी कि क्यायक सिंह की पछाई सामने देखकर बेचारी भय से भाग गई ।

सिंह की पछाई सामने देखर बेचारी भय से भाग गई ।

लवंग — ऐसी ही रात में जयलक्ष्मी समुद्र के किनारे खड़ी होकर छड़ी से अपने प्यारे को कामपुर लौट आने के लिये संकेत करती थी ।

जसोदा — ऐसी ही रात में मालिनी ने जड़ी वृष्टियों को जंगल में एकत्र किया था, जिनके प्रभाव से वृद्ध पुरुष जवान हो गया ।

लवंग — ऐसी ही रात में जयलक्ष्मी समुद्र के पिता के घर से निकल भागी और एक दरिद्र प्रेमी के साथ वंशनगर से विल्वमठ को चली आई ।

जसोदा — ऐसी ही रात में लवंग ने उससे वित्त से प्रेम करने की सौगंद खाई और निर्वाह का प्रण करके उसका मन छीन लिया परंतु एक भी सच्चे न निकले ।

लवंग — ऐसी ही रात में कामिनी जसोदा ने दुष्टता से अपने प्रेमी पर दोष लगाया और उसने कुछ न कहा ।

जसोदा — क्या कहूँ मैं तो तुम को बात ही बात में बेबात कर देती यदि कोई आता न होता । देखो मुझे किसी के पैर की आहट जान पड़ती है ।

(तूफानी आता है)

लवंग — रात के ऐसे सन्नाटे में कौन इतना शीघ्र चला आता है !

तूफानी — मैं हूँ, आप का एक मित्र ।

लवंग — ऐं मित्र ? कैसे मित्र ? भला मित्र, कृपा करके अपना नाम तो बताओ ?

तूफानी — मेरा नाम तूफानी है । मैं यह समाचार लाया हूँ कि मेरी स्वामिनी आज मुँह अँधेरे विल्वमठ में पहुँच जायेंगी । वह मंदिरों में घुटने के बल विवाह मंगल होने की प्रार्थना कर रही है ।

लवंग — उनके साथ और कौन आता है ?

तूफानी — कोई नहीं, केवल वह आप एक जोगिन के भेष में और उनकी सहेली । पर यह तो कहिए कि हमारे स्वामी अभी तक लौट आए या नहीं ।

लवंग — न वह आए हैं न कुछ उनका हाल विदित हुआ है । पर आओ जसोदा हम तुम भीतर चलकर घर के स्वामी के शिष्टाचार का प्रबंध कर

रखें ।

(गोप आता है)

गोप— धूतू धूतू पिपी पिपी धूतू धूतू !

लवंग— कौन पुकारता है ?

गोप— धूतू धूतू ! तुम जानते हो कि लवंग महाशय और उनकी स्त्री कहाँ है ? धूतू धूतू !

लवंग— अरे कान न फोड़े डाल, इधर आ ।

गोप— धूतू धूतू ! किधर ? किधर ?

लवंग— यहाँ ।

गोप— उनसे कह दो कि मेरे स्वामी के पास से एक दूत आया है । जिस की तुरुही मंगल समाचारों से भरी हुई है, वह सवेरा होते होते यहाँ पहुँच जायँगी ।

लवंग— प्यारी आओ, घर में चल कर उनके आने की राह देखें, या अच्छा यहीं बैठी रहो भीतर जाने की कौन सी आवश्यकता है । भाई तुफानी नेक भीतर जाकर लोगों से जना दो कि तुम्हारी स्वामिनी आती हैं और अपने साथ गवैयाँ को बाहर बुलाते लाओ ।

(तुफानी जाता है)

इस बुरुज पर चाँदनी कैसी छिटक रही ! आओ हम तुम यहीं बैठकर गाना सुनें । एक तो सन्नाट मैदान और दूसरी रात, यह दोनों राग का आनंद दूना बढ़ा देते हैं । बैठो जसोदा, देखो तो आकाश क्या शोभा दिखला रहा है, यह प्रतीत होता है कि मानों उसमें हजारों सोने के कुंकुमे लटकते हैं । जितने यह दृष्टि आते हैं इनमें से छोटे से छोटे की चाल से भी देवताओं के राग का सा शब्द आता है, मानों वह उनके शब्द के सात सुर मिलाते हैं । ऐसा ही सुरीलापन मनुष्य के निश्शब्द आत्मा में भी है परंतु वह इस भौतिक वस्त्र को, जो नष्ट हो जाने वाला है, पहने है इसलिये हम उसके मिठे राग को सुन नहीं सकते ।

(गाने बजाने वाले आते हैं)

इधर आओ और कोई राग ऐसा छोड़ो कि तानसेन भी नींद से चौक उठे और जब तुम्हारे मिठे सुरों का आलाप तुम्हारी स्वामिनी के कान तक पहुँचे तो वह भी विवश होकर घर की ओर दौड़ी आवे ।

जसोदा— मैं तो जिस समय अच्छा राग सुनती हूँ सब सुघ बुध दूर भाग जाती है ।

(लोग गाते हैं)

लवंग— इसका कारण यह है कि तुम अपना ध्यान जमाती और उस पर सोचती हो । तुमने देखा होगा कि नये सीधे बछड़े जिन्हें किसी ने हाथ तक न लगाया हो आपस में क्या क्या कुलेलों करते, छलाँग मारते और हिनहिनाते हैं जिससे उनके रुधिर की गर्मी

जानी जाती है । परंतु यदि संयोग से उनके सामने तुरुही या किसी दूसरे प्रकार का वाजा बजाया जाय तो वह शीघ्र ही सबके सब ठठक कर खड़े हो जायँगे और राग के प्रभाव से कुछ देर के लिये उनकी घबड़ाहट दूर हो जायगी । एक कवि का कथन ठीक है कि तानसेन के गाने का प्रभाव वृक्ष, पत्थर, जल पर भी होता था क्योंकि कोई वस्तु ऐसी कठोर और भयानक नहीं जिसकी प्रकृति-स्वभाव को अधिक नहीं तो थोड़ी ही देर के लिये राग बदल न देता हो । जिस मनुष्य को गाने का आनंद नहीं और जिसके जी पर सुरीले शब्द का प्रभाव नहीं होता उससे अत्याचार, छल और चोरी इत्यादि जो कुछ न हो सब थोड़ा है क्योंकि ऐसे मनुष्य का चित्त नरक से अधिक अंधा और भ्रष्ट और बुरा होता है और वह कदापि विश्वास के योग्य नहीं होता । तुम ध्यान देकर गाना सुनो ।

(पुरश्ची और नरश्ची कुछ दूर पर चली आती हैं)

पुरश्ची— वह प्रकाश जो सामने दृष्टि पड़ता है मेरे ही दालान में हो रहा है । देखो तो एक छोटे से दीपक का प्रकाश कितनी दूर तक फैला हुआ है । इसी भाँति संसार में शुभकर्म चमकता है ।

नरश्ची— जब चाँदनी थी तो यह प्रकाश जान नहीं पड़ता था ।

पुरश्ची— इसी भाँति बड़ा तेज अपने सामने छोटे तेज को दबा लेता है । किसी कवि ने कितना ठीक कहा है — दिये (दीपकों) की तो प्रकट में चमक है, पर दिये (दान) का प्रकाश परलोक में भी है । राजा की अनुपस्थिति में उसके प्रतिनिधि ही की प्रतिष्ठा राजा के समान होती है परंतु उसके सामने जैसे नदी की समुद्र के सामने कुछ गिनती नहीं उसका भी कोई मान नहीं होता । ऐं देखो, कहीं से गाने का शब्द आता है ! कोई मान नहीं होता । ऐं देखो, कहीं से गाने का शब्द आता है !

नरश्ची— सखी यह आप ही के महल में गाना हो रहा है ।

पुरश्ची— इसमें संदेह नहीं कि हर वस्तु के लिये एक नियत काल है और उसी समय वह भली जान पड़ती है । मेरी सम्मति में इस समय गाना दिन की अपेक्षा अधिक मनोहर होता है ।

नरश्ची— सखी यह आनंद एकांत के कारण से प्राप्त हुआ है ।

पुरश्ची— यदि कोई कान ही न दे तो कौवे का शब्द वैसा ही कोमल और मधुर है जैसा कोयल का और मेरी सम्मति में दिन को जब कि बत्तक काँव काँव कर

रही हों, बुलबुल हजारदास्ताँ का चहचहाना कोलाहल से बुरा है। कितनी वस्तुओं की सुंदरता और उत्तमता समय ही पर जानी जाती है। बस बंद करो, चंद्रमा समुद्र के साथ सोने को गया और अभी उसकी आँख नहीं खुलने की।

(गाना बंद हो गया)

लवंग— यदि मेरे कानों ने तूटि न की तो यह शब्द पुरश्ची का है !

पुरश्ची— मेरा शब्द तो इस समय मानों अंधे के लिये लकड़ी हो गया।

लवंग— ऐ मान्य सखी, आपके कुशलपूर्वक लौट आने पर धन्यवाद देता हूँ।

पुरश्ची— हम लोग अपने अपने स्वामी की कुशलता की प्रार्थन करती थीं और हम आशा करती हैं कि हमारी प्रार्थन स्वीकार हुई। वह लोग आए ?

लवंग— इस समय तक तो नहीं आए हैं परंतु उनके पास से अभी एक दूत समाचार लाया है कि वह लोग निकट ही हैं।

पुरश्ची— नरश्री भीतर जाकर नौकरों से कह दो कि वह हमारे बाहर जाने के विषय में किसी से कुछ न कहें, लवंग तुम भी ध्यान रखना और तुम भी स्मरण रखना जसोदा।

(तुरुही की ध्वनि सुनाई देती है)

लवंग— आपके पति आन पहुँचे, मेरे कान में उनकी तुरुही का शब्द आता है। हम लोग लुतरे नहीं हैं, आप तनिक भय न कीजिए।

पुरश्ची— आज के सवेरे की दशा तो कुछ पीड़ित सी जान पड़ती है क्योंकि उसके मुँह पर नियम से अधिक पियराई छा रही है जैसा कि सूर्यास्त के समय दृष्टि आती है।

(बसंत, अनंत, गिरीश और उनके नौकर चाकर आते हैं)

बसंत— यदि सूर्यास्त होने पर आप घूँघट उलट कर निकल आएँ तो हम को उसके अस्त होने की कुछ चिंता न हो।

पुरश्ची— ईश्वर करे मुख की कान्ति आपको प्रकाशित कर सके परंतु मेरी गति में चमक न आए क्योंकि चमक मटक छिछोरेपन का चिह्न है जिसका परिणाम यह होता है कि अंत को स्वामी के चित्त में अपनी स्त्री की ओर से एक चमक आ जाती है, इसलिये ईश्वर मुझ को इस आपत्ति से बचाए। आपका जाना हम लोगों को शुभकर हो।

बसंत— प्यारी मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ, पर

इस समय तुम मेरे मित्र के आने पर प्रसन्नता प्रकट करो। यही अनंत हैं जिनका मैं अंतःकरण से अत्यंत उपकृत हूँ।

पुरश्ची— इसमें कोई संदेह है, आप को अवश्य उपकार मानना चाहिए क्योंकि जहाँ तक मैंने सुना है उन्होंने आप के साथ बड़ा उपकार किया है।

अनंत— आप लोग इस कहने से मुझे व्यर्थ लज्जित करते हैं, मैंने तो जो कुछ सेवा की होगी उससे कहीं अधिक भर पाया।

पुरश्ची— महाशय आपके पधारने से हमारे घर की शोभा और हम लोगों की प्रसन्नता दूनी हुई परंतु मुख से कहना बनावट है और मैं अपने आंतरिक हर्ष को बनावट की आवश्यकता नहीं समझती।

(गिरीश और नरश्री पृथक् बात करते जान पड़ते हैं)

गिरीश— शपथ है अपने प्राण की तुम मुझ पर भूठा दोष लगाती हो, मैंने सचमुच उसे न्यायकर्ता के लेखक को दिया।

पुरश्ची— वाह वाह आते ही भगड़ा होने लगा ! यह क्या बात है ?

गिरीश— एक सोने के छल्ले के लिये, एक टके की मुँदरी के लिये जो आपने दी थी और जिस पर यह वाक्य खुदा था जैसा प्रायः बिसातियों की छुरियों पर लिखा होता है — 'मुझसे स्नेह रखो और कभी जुदा न हो'।

नरश्री— तुम लिखने और मूल्य का क्या कहते हो। क्या तुमने लेने के समय शपथ नहीं खाई थी कि मैं उसे आमरण अपनी उँगली में रखूँगा और वह मेरे साथ समाधि में जायगी ? यदि मेरा कुछ ध्यान न था तो भला अपनी कठिन सौगंदों का तो ध्यान करते। हंह ! न्यायी के लेखक को दिया ! मैं भली भाँति जानती हूँ कि जिस लेखक को तुम ने दिया है उसके मुँह पर दाढ़ी कभी न निकलेगी।

गिरीश— क्यों नहीं, जब वह पूर्ण युवा होगा तो अवश्य निकलेगी।

नरश्री— हाँ, यदि स्त्री पुरुष हो सकती हो।

गिरीश— शपथ भगवान की, मैंने उसे एक लड़के को दिया, एक मम्हले कद के छोकरे को जो तुम से ऊँचा न था। यहाँ विचारपति का लेखक था। उसने ऐसी मीठी मीठी बातें करके अँगूठी पारितोषिक में माँगी कि मैं अतंगीकार न कर सका और उसको सौपते ही बनी।

पुरश्ची— सुनो साहिब मैं स्पष्ट कहती हूँ कि

इस विषय में सब दोष तुम पर है कि एक लड़के की बातों में आकर अपनी स्त्री का दिया हुआ पहला चिन्ह उसे दे डाला और वह वस्तु, जिस पर तुम ने अपनी उँगली में पहनने के समय सौगंद की बौछार मचा दी थी और प्रतिज्ञा के ढेर लगा दिए, ऐसे सहज में दे डाली । मैंने भी अपने प्यारे स्वामी को एक अंगूठी दी है और उसने शपथ ले ली है कि उसे कभी जुदा न करे । यह देखिए यहाँ उपस्थित हैं । परंतु उनकी संती मैं शपथ खा सकती हूँ कि यदि कोई उन्हें कुबेर का भंडार भी अर्पण करे तो वह उसे अपनी उँगली से न उतारें, दे डालना तो दूर है । तात्पर्य यह कि गिरीश तुम ने अपनी स्त्री को व्यर्थ इतना बड़ा दुःख दिया । यदि मैं उसके स्थानापन्न होती तो इस समय क्रोध के मारे पागल हो जाती ।

बंसत — (आप ही आप) इस समय इससे उत्तम कोई उपाय नहीं कि मैं अपना बायाँ हाथ काट डालूँ और शपथ खा लूँ कि जहाँ तक बस चला रक्षा की परंतु अंत को जब हाथ कट गया तो उसी के साथ अंगूठी भी गई ।

गिरीश — मेरे स्वामी बंसत ने अपनी अंगूठी विचाराधीश को उसकी प्रार्थना पर दे दी और निस्संदेह उसने काम भी ऐसा ही किया था । इस पर उसके लेखक ने लिखाई की संती मेरी अंगूठी माँगी और अभाग्य यह कि उसे और उसके स्वामी दोनों को इस बात का आग्रह हुआ कि सिवाय उन अंगूठियों के और कोई वस्तु हाथ से न छुएँगे ।

पुरश्री — क्यों साहब आपने कौन सी अंगूठी दी ? वह तो काहे को दी होगी जो आपने मुझ से पाई थी ।

बंसत — यदि मुझे भूठ बोल कर अपने अपराध को दूना कर देना स्वीकार हो तो हाँ निस्संदेह अस्वीकार करूँ परंतु तुम देखती हो कि मेरी उँगली में अंगूठी नहीं है, वह जाती रही ।

पुरश्री — ऐसे ही आपका निर्दय चित्त भी स्नेह से शून्य है । शपथ भगवान की, जब तक आप मेरी अंगूठी मेरे सामने लाकर न रखिएगा मैं आपके साथ अंक में सोना पाप समझूँगी ।

पुरश्री — और मैं भी जब तक अपनी अंगूठी देख न लूँगी आपसे बात न कहूँगी । (गिरीश से)

बंसत — मेरी प्यारी पुरश्री, यदि तुम्हें विदित हो कि मैंने अंगूठी किसे दी, किसके लिये क्यों दी और कैसे निर्वंशता से दी जब कि वह पुरुष सिवा उस अंगूठी के दूसरी वस्तु के लेने पर प्रसन्न ही नहीं होता था तो तुम्हारा क्रोध इतना न रह जाय ।

पुरश्री — यदि आप को अंगूठी का गौरव विदित होता, या आपने उसके देने वाली को आधा भी दिया होता, या अपनी बात का कि मैं सदा अंगूठी प्राण सदृश रक्खूँगा नेक भी विचार किया होता तो आप उसे कभी अपने से जुदा न करते । भला कौन ऐसा मूर्ख होगा कि आप से निर्लज्जता के साथ एक रीति की वस्तु को माँगें जाता, यदि आप ने कुछ भी चित्त से उसके न देने का यत्न किया होता । नरश्री का विचार मुझे यथार्थ प्रतीत होता है, मैं शपथ खा सकती हूँ कि आप ने अंगूठी अवश्य किसी स्त्री को दी ।

बंसत — प्यारी, मैं अपनी प्रतिष्ठा, अपने प्राण की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैंने उसे किसी स्त्री को नहीं दिया वरंच एक वकील को, जिसने छ हजार रुपया लेना अस्वीकार किया और केवल वह अंगूठी माँगी । फिर भी मैंने निवेदन किया और उसे अप्रसन्न होकर चले जाने दिया यद्यपि यह वह पुरुष था जिसने मेरे प्यारे मित्र की जान बचाई थी । मेरी प्यारी तुम ही बताओ कि मैं क्या करता ? मेरे शील ने सहन न किया कि ऐसे उपकारी को अप्रसन्न करूँ, मुझे बड़ी लज्जा पड़े पड़ी और स्वभाव इस बात को सह न सका कि मैं अपनी मर्यादा में कृतघ्नता का घब्र्रा लगाऊँ । अंत को मुझे विवश होकर अंगूठी उसके पीछे भेज देनी पड़ी । मेरी प्यारी मेरा अपराध क्षमा करो । शपथ है यदि तुम वहाँ होती तो अंगूठी को मुझ से छीन कर उस योग्य वकील को सौंप देती ।

पुरश्री — अच्छा अब उस वकील की ओर से सचेत रहना और उसको मेरे घर के निकट कदापि न फटकने देना क्योंकि जिस वस्तु से मुझको प्रीति थी और आपने मेरे निहारे सदा अपने पास रखने की शपथ खाई थी वह उसके हाथ में आ गई तो मैं भी आप की भाँति उदारता पर कमर बाँधूँगी और जो कुछ वह मुझ से माँगींगा उसके स्वीकार करने से मुँह न मोड़ूँगी । पहिचान तो मैं उसको लूँ ही गो, इसमें किसी भाँति का संदेह नहीं । अब आप को उचित है कि कभी रात के समय घर से बाहर न जायँ और आठ पहर मेरी रक्षा करते रहें । यदि आपने मुझे किसी दिन अकेला छोड़ा तो शपथ है अपने लज्जा की जिस पर अब किसी पुरुष की परछाई नहीं पड़ी है, मैं उस वकील को अपने पास सुला लूँगी ।

नरश्री — और मैं उसके लेखक को, इसलिये सावधान कभी मुझको मेरे भरोसे पर छोड़ कर न जाना ।

गिरीश — अच्छा जैसा तुम्हारा जी चाहे करो,

पर उस अवस्था में उसे मेरे पंजे से बचाए रहना नहीं तो लेखक साहब की लेखनी पर आपत्ति आ जायगी ।

अनंत — मैं ही अभागा इन भगड़ों का कारण हूँ ।

पुरश्री — आप न उदास हूँजिए, आपके आने की मुझे बड़ी प्रसन्नता है ।

बंसत — पुरश्री, इस बार मेरा अपराध जी निरी निर्वशता की अवस्था में हुआ क्षमा कर दो और अब मैं इन सब मित्रों के सामने तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ वरंच तुम्हारी आँखों की जिनमें मेरा प्रतिबिम्ब दृष्टि पड़ता है शपथ कर कहता हूँ कि —

पुरश्री — देखिए नेक आप लोग इस बात को विचारिए, वह मेरे दो नेत्रों में अपना दुहरा प्रतिबिम्ब देखते हैं यानी हर नेत्र में एक, इसलिये आप अपनी दुहरी सूरत की शपथ खाइए तो हाँ विश्वास हो ।

बंसत — अच्छा थोड़ा मेरी सुन लो । इस अपराध को क्षमा करो और अब मैं अपने जीवन की सौगंद खाता हूँ कि अब फिर कभी तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा से भ्रष्ट न हूँगा ।

अनंत — मैंने एक बार रुपयों के बदले अपना शरीर इनके लिये धरोहर रक्खा था और यदि वह मनुष्य, जिसने आपके स्वामी की अँगूठी ली, न होता तो यह अब तक कभी का नष्ट हो गया होता । अब मैं इस बार अपने प्राण को जमानत में दे करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपके स्वामी फिर कभी जान बूझ कर अपना वचन न तोड़ेंगे ।

पुरश्री — तो मैं आपको उनका जामिन समझूँगी । अच्छा उन्हें यह अँगूठी दीजिए और शपथ ले लीजिए कि इसको पहली से अधिक सावधानी के साथ रक्खें ।

अनंत — लो बंसत इसको लो और शपथ खाओ ।

बंसत — शपथ भगवान की यह वही अँगूठी है, जो मैंने उस वकील को दी थी ।

पुरश्री — और मैंने भी तो उसी से पाई । बंसत मुझे क्षमा करना क्योंकि इसी अँगूठी के स्वत्व से वह मेरे साथ आकर सोया था ।

नरश्री — और मेरे सुहृद गिरिश आप भी मेरा अपराध क्षमा करें क्योंकि वही मफलाकद वकील का लेखक इस अँगूठी के बदले कल रात को मेरे साथ सोया हुआ था ।

गिरिश — ऐं, यह तो मानो भरी बरसात में छेत को कुएँ के पानी से सींचना है । क्या हम लोगों में कोई

तोप पाया जो हमारी स्त्रियों ने हमें अपना भंडुआ बनाया ।

पुरश्री — इतनी असम्यता से मत बको । आप लोग चकित हो गए । लीजिए यह पत्र पांडुरुर से बलवंत के पास आया है, इसे अवकाश के समय पढ़ियेगा, उससे आपको विदित होगा कि पुरश्री वकील थी और नरश्री उसकी लेखक । लवंग उपस्थित है वह साक्षी ही देंगे कि ज्योंही आप सिधारे मैं भी उसी क्षण चल दी और अभी चली आती हूँ यहाँ तक कि घर में पैर नहीं रक्खा । अनन्त महाराज आपका आगमन मंगल, मैं आपको वह समाचार सुनाती हूँ जिसका आपको स्वप्न में भी ध्यान न होगा । इस पत्र की मुहर तोड़ कर पढ़िये, इसमें आप देखिएगा कि आपके तीन जहाज अनमोल माल से लदे हुए घाट (बन्दरगाह) में आ गए हैं । परन्तु मैं आपको यह न बतलाऊँगी कि मेरे हाथ यह पत्र क्योंकर लगा ।

अनंत — मेरे मुख से तो शब्द नहीं निकलता ।

बंसत — आप ही वकील थीं और मैं पहचाना तक नहीं !

गिरिश — आप ही वह लेखक हैं जो मुझे जोरू का भंडुआ बनाया चाहती हैं ?

नरश्री — जी हाँ, पर वह लेखक जिसकी इच्छा कभी ऐसा करने की नहीं परतु हाँ उस अवस्था में कि वह स्त्री से पुरुष बन सके ।

बंसत — मेरे सुहृद वकील अब आपको मेरे साथ सोना होगा और जब मैं न रहूँ उस समय मेरी स्त्री के साथ सोइए ।

अनंत — बबुई आप ने जीवन और उसकी सामग्री दोनों मुझे दी, क्योंकि इस पत्र से विदित हुआ कि वास्तव में मेरे कुशलता के साथ बंदरगाह में आ गए ।

पुरश्री — लवंग, मेरे लेखक के पास आप के लिये भी कुछ सौगात प्रस्तुत है ।

नरश्री — और मैं आपको बिना लिखाई लिए सौंपती हूँ, लीजिये यह उस धनी जैनी ने आपको और वसोदा को एक दानपत्र अपनी सारी संपत्ति का लिख दिया है, जिसके आप लोग उसके मरने पर उत्तराधिकारी होंगे ।

लवंग — महाशय जी, यह मानों भूखों के सामने मोहनभोग का ढेर लगा देना है ।

पुरश्री — सबरा हो गया अब तक मेरी जान में आप लोगों का इन सब बातों के विषय पूरा तोप नहीं हुआ, इसलिये उचित होगा कि भीतर चलाकर जो जो

संदेह हों उनके विषय मुझसे प्रश्न कीजिए और
ब्योरेवार वृत्तांत सुनिए ।

गिरीश — बहुत ठीक —

हैं जब तक मेरे दम में दम डूँगा हर घड़ी हर दम ।
रेहगा रात दिन खटका नरसी की अँगूठी का ।
(सब जाते हैं)

इति



अंधेर नगरी

चौपट राजा

यह प्रहसन भारतेन्दु ने बनारस में हिन्दी भाषी और कुछ बंगालियों की संस्था
नेशनल थियेटर के लिए एक दिन में सन् १८८१ में लिखा था और काशी के दशरथनेध
घाट पर ही उसी दिन अभिनीत भी हुआ । भारतेन्दु जी का इस संस्था के संरक्षक थे ।

— सं.

अंधेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा

समर्पण

मान्य योग्य नहि होत कोऊ कोरे पद पाए ।
मान्य योग्य नर ते, जे केवल परहित जाए ।।
जे स्वार्थ रत धूर्त हंस से काक-चरित-रत ।
ते औरन हलि बचि प्रभुहि नित होहि समुन्नत ।।
जदपि लोक की रीति यही पै अन्त धर्म जय ।
जौ नाही यह लोक तदपि छलियन अति जम भय ।।
नरसरीर मे रत्न वही जो परबुख साथी ।
खात पियत अरु स्वस्त स्थान मुडुक अरु माथी ।।
तासो अब लौ करो, करो सो, पै अब जागिय ।
गो क्षुति भारत देस समुन्नति मै नित लागिय ।।
साँच नाम निज करिय कपट तजि अन्त बनाइय ।
नृप तारक हरि पद भजि साँच बढाई पाइय ।
ग्रंथकार ।

छेदश्चन्दनचूतचंपकयने रक्षा करीरदुमे
हिंसा हंसमपूरक्येकिलकुले क्यकेपुलीलारतिः
यातंगेन खरक्रयः समतुला कर्पूरक्यपस्योः पया
पया यत्र विचारणा गुणिगणे देशाय तस्मै नमः

अंधेर-नगरी

चौपट्ट राजा

टके सेर भाजी टके सेर खाजा ।

प्रथम दृश्य

(वाक्य प्रान्त)

(महन्त जी दो चेलों के साथ गाते हुए आते हैं)

सब—

राम भजो राम भजो राम भजो भाई ।

राम के भजे से गनिका तर गई,

राम के भजे से गीध गति पाई ।

राम के नाम से काम बनै सब,

राम के भजन विनु सबहि नसाई ॥

राम के नाम से दोनों नयन विनु

सुरबास भए कबिकुलराई ।

राम के नाम से घास जंगल की,

तुलसी बास भए भजि रघुराई ॥

महन्त— बच्चा नारायण दास ! यह नगर तो दूर
से बड़ा सुन्दर दिखलाई पड़ता है ! देख, कुछ भिच्छा
उच्छा मिले तो ठाकुर जी को मोग लगे । और क्या ।

ब. दा.— गुरु जी महाराज ! नगर तो नारायण
के आसरे से बहुत ही सुन्दर है जो है सो, पर भिक्षा
सुन्दर मिले तो काड़ा आनन्द होय ।

महन्त— बच्चा गोबरधन दास ! तू पश्चिम की
ओर से जा और नारायण दास पूरब की ओर जायगा ।
देख, जो कुछ सीधा सामग्री मिले तो श्री शालग्राम जी
का बालभोग सिद्ध हो ।

श. दा.— गुरु जी ! मैं बहुत सी भिच्छा लाता
हूँ । यहाँ लोग तो बड़े मालवर दिखलाई पड़ते हैं ।
आप कुछ चिन्तों मत कीजिए ।

महन्त— बच्चा बहुत लोम मत करणा ।

देखना, हाँ—

लोम पाप को मूल है, लोम मिटावत मान ।

लोम कभी नहीं कीजिए, यामै नरक निबान ॥

(गाते हुए सब जाते हैं)

दूसरा दृश्य

(बाजार)

कबाबवाला—कबाब गरमागरम मसालेदार—

चौरासी मसाला बहतर आँच का — कबाब गरमागरम
मासालेदार — खाय सो होठ चाटे, न खाय सो जीभ
काटे । कबाब लो, कबाब का डेर — बेच टके सेर ।

घासीराम— चने जोर गरम —

चने बनावैं घासीराम । निज कीं भोली में दूकान ॥

चना चुरमुर चुरमुर बोलै । बाबू खाने को मुँह खोलै ॥

चना खावै तोकी मैना । बोलै अच्छा बना चबेना ॥

चना खायं गफूरन मुन्ना । बोलै और नहीं कुछ

मुन्ना ॥

चना खाते सब बंगाली । जिन धोती ढीली ढाली ॥

चना खाते मियां जुलाहे । डाढ़ी हिलती गाह बगाहे ॥

चना हाकिम सब जो खाते । सब पर दूना टिकस लगाते ॥

चने जोर गरम — टके सेर ।

नरंगीवाली— नरंगी ले नरंगी —सिलहट की

नरंगी, बुटवल की नरंगी, रामबाग की नरंगी,

आनन्दबाग की नरंगी । भई नीबू से नरंगी । मैं तो

पिय के रंग न रंगी । मैं तो भूली लेकर संगी । नरंगी

ले नरंगी । कंवला नीबू, मीठा नीबू, रंगतरा,

संगतरा । दोनों हाथों लो — नहीं पीछे हाथ ही मलते

रहोगे । नरंगी ले नरंगी । टके सेर नरंगी ।

हलवाई— जलेबियां गरमा गरम । ले सेब

हमरती लड्डू गुलाबजामुन खुरमा बुंदिया बरफी

समोसा पेड़ा कचौड़ी दालमोट पकौड़ी घेवर गुपचुप ।

हलुआ हलुआ ले हलुआ मोहनभोग । मोयनदार

कचौड़ी कचाका हलुआ नरम चमाका । घी में नरक

चीनी में तरातर चासनी में चमाचम । ले भूरे का

लड्डू । जो खाय सो भी पछताय जो न खाय सो भी

पछताय । रेवड़ी कड़ाका । पापड़ पड़ाका । ऐसी जात हलवाई जिसके छत्तिस कौम हैं भाई । जैसे कलकत्ते के विलसन मन्दिर के भितरिए, वैसे अंधेर नगर के हम । सब समान ताजा । खाजा ले खाजा । टके सेर खाजा ।

कुजड़िन—ले धनिया मेथी सोआ पालक चौराई 'बथुआ करेमुँ नोनियाँ कुलफा कसारी चना सरसों का साग । मरसा ले मरसा । ले बैंगन लौआ कोहड़ा आलू अरुई बण्डा नेनुआँ सूरन रामतरोई तोरई मुरई ले आदी मिरचा लहसुन पियाज टिकोरा । ले फालसा खिरनी आम अमरूत निबुआ मटर होरहा । जैसे काजी वैसे पाजी रैयत राजी टकेसेर भाजी । ले हिन्दुस्तान का मेया फूट और बैर ।

मुगल—बादाम पिस्ते अखरोट अनार बिहीदाना मुनक्का किशमिश अंजीर आवजोश आलूबोखरा चिलगोजा सेव नाशपाती बिही सरदा अंगूर का पिटारी । आमारा ऐसा मुल्क जिसमें अंगरेज का भी दाँत खट्टा ओ गया । नाहक को रुपया खराब किया । हिन्दोस्तान का आदमी लक लक हमारे यहाँ का आदमी बुबक बुबक लो सब मेया टके सेर ।

पाचकवाला—

चूरन अमल बेद का भारी । जिस को खाते कृष्ण मुरारी । मेरा पाचक है पचलोना । जिको खाता श्याम सलोना । चूरन बना मसालेदार । जिसमें खट्टे की बहार । मेरा चूरन जो कोई खाय । मुझको छोड़ कहीं नहिं जाय । हिन्दू चूरन इस का नाम । विलायत पूरन इस का काम । चूरन जब से हिन्द में आया । इसका धन बल सभी घटाया । चूरन ऐसा हट्टा कट्टा । कीना दाँत सभी का खट्टा । चूरन चला डाल की मंडी । इसको खाएँगी सब रंडी । चूरन अमले सब जो खावें । इनी दशवत तुरत पचावें । चूरन नाटकवाले खाते । इस की नकल पचा कर लाते । चूरन सभी महाजन खाते । जिससे जमा हजम कर जाते । चूरन खाते लाला लोग । जिनको अकिल अजीरन रोग । चूर खावै एडिटर जात । जिन के पेट पचै नहिं बात । चूरन साहेब लोग जो खाता । सारा हिंद हजम कर जाता । चूरन पुलिसवाले खाते । सब कानून हजम कर जाते । ले चूरन का ढेर, बेचा टके सेर ।

मछलीवाली—मछरी ले मछरी ।

मछरिया एक टके के बिकाय ।

लाख टका के वाला जोबन, गाँहक सब ललचाय ।

नेन मछरिया रूप जाल में, देखतही फसि जाय ।

बिनु पानी मछरी सो बिरहिया, मिले बिना अकुलाय ।

जातवाला (ब्राह्मण)—जात ले जात,

टके से जात । एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं । टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाय और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें । टके के वास्ते भूठ को सच करै । टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान । टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचें, टके के वास्ते भूठी गवाही दें । टके के वास्ते पाप को पुण्य मानें, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावें । वेद धर्म कुल मरजादा सच्चाई बड़ाई सब टके सेर । लुटाय दिया अनमोल माल ले टके सेर ।

बनियाँ—आटा दाल लकड़ी नमक घी चीनी मसाला चावल ले टके सेर ।

(बाबा जी का चेला गोबर्धनदास आता है और सब बेचनेवालों की आवाज सुन सुन कर खाने के आनन्द में बड़ा प्रसन्न होता है ।)

गो. दा.—क्यों भाई बणिघे, आटा कितणे सेर ?

बनियाँ—टके सेर ।

गो. दा.—औ चावल ?

बनियाँ—टके सेर ।

गो. दा.—औ चीनी ?

गो. दा.—टके सेर ।

गो. दा.—औ घी ?

बनियाँ—टके सेर ।

गो. दा.—सब टके से । सचमुच ।

बनियाँ—हाँ महाराज, क्या भूठ बोलूँगा ।

गो. दा.—(कुजड़िन के पास जाकर) क्यों भाई, भाजी क्या भाव ?

कुजड़िन—बाबा जी, टके सेर । निबुआ मुरई धनिया मिरचा साग सब टके सेर ।

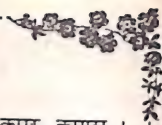
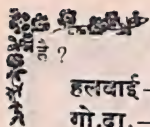
गो. दा.—सब भाजी टके सेर । वाह वाह ! बड़ा आनंद है । यहाँ सभी चीज टके सेर । (हालवाई के पास जाकर) क्यों भाई हलवाई ? मिठाई कितणे सेर ?

हलवाई—बाबा जी ! लड्डुआ हलुआ जलेबी गुलाबजामुन खाजा सब टके सेर ।

गो. दा.—वाह ! वाह !! बड़ा आनन्द है ? क्यों बच्चा, मुझसे मसखरी तो नहीं करता ? शचमुच सब टके सेर ?

हलवाई—हाँ बाबा जी, शचमुच सब टके सेर । इस नगरी की चाल ही यही है । यहाँ सब चीज टके सेर बिकती है ।

गो. दा.—क्यों बच्चा ! इस नगरी का नाम क्या



है ?

हलवाई — अंधेर नगरी ।

गो.दा. — और राजा का क्या नाम है ?

हलवाई — चौपट राजा ?

गो.दा. — वाह ! वाह ! अंधेर नगरी चौपट राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा (यही गाता है और आनन्द से बगल बजाता है) ।

हलवाई — तो बाबा जी कुछ लेना देना हो तो ले दो ।

गो.दा. — बच्चा, भिक्षा माँग कर सात पैसे लाया हूँ, साढ़े तीन सेर मिठाई दे दे, गुरु चले सब आनन्दपूर्वक इतने में छक जायगे ।

हलवाई मिठाई तौलता है — बाबा जी मिठाई लेकर खाते हुए और अंधेर नगरी गाते हुए जाते हैं ।)

(पटाक्षेप)



तीसरा दृश्य

(स्थान जंगल)

(महन्त जी और नारायणदास एक ओर से 'राम भजो' इत्यादि गीत गाते हुए आते हैं और एक ओर से गोवर्धनदास अन्धेरनगरी गाते हुए आते हैं)

महन्त — बच्चा गोवर्धन दास ! कह, क्या भिक्षा लाया ? गठरी तो भारी मालूम पड़ती है ।

गो.दा. — बाबा जी महाराज ! बड़े माल लाया हूँ, साढ़े तीन सेर मिठाई है ।

महन्त — देखू बच्चा ! (मिठाई को झोली अपने सामने रखकर खेल कर देखता है) वाह ! वाह ! बच्चा ! इतनी मिठाई कहाँ से लाया ? किस धर्मात्मा से भेंट हुई ?

गो.दा. — गुरुजी महाराज ! सात पैसे भीख में मिले थे, उसी से इतनी मिठाई मोल ली है ।

महन्त — बच्चा ! नारायण दास ने मुझसे कहा था कि यहाँ सब चीज टके सेर मिलती है, तो मैंने इसकी बात का विश्वास नहीं किया । बच्चा, यह कौन सी नगरी है और इसका कौन सा राजा है, जहाँ टके सेर भाजी और टके ही सेर खाजा है ?

गो.दा. — अन्धेरनगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा ।

महन्त — तो बच्चा ! ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं है, जहाँ टके सेर भाजी और टके ही सेर

खाजा हो ।

दोहा

सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास ।
ऐसे देस कुदेस में, कबहुं न कीजे बास ।।

कोंकिल बायस एक सम, पण्डित मूरख एक ।
इन्द्रायन दाड़िम विषय, जहाँ न नेकु विवेकु ।।
बसिए ऐसे देस नहिं, कनक वृष्टि जो होय ।
रहिए तो दुख पाइये, प्रान दीजिए रोय ।।

सो बच्चा चलो यहाँ से । ऐसी अन्धेरनगरी में हजार मन मिठाई मुफ्त की मिले तो किस काम की ? यहाँ एक छन नहीं रहना ।

गो.दा. — गुरु जी, ऐसा तो संसार भर में कोई देस ही नहीं है । दो पैसा पास रहने ही से मजे में पेट भरता है । मैं तो इस नगर को छोड़कर नहीं जाऊँगा । और जगह दिन भर मांगो तो भी पेट नहीं भरता । बरब बाजे बाजे दिन उपास करना पड़ता है । सो मैं तो यहीं रहूँगा ।

महन्त — देख बच्चा, पीछे पछतायगा ।

गो.दा. — आपकी कृपा से कोई दुःख न होगा ; मैं तो यही कहता हूँ कि आप भी यहीं रहिए ।

महन्त — मैं तो इस नगर में अब एक क्षण भर नहीं रहूँगा । देख मेरी बात मान नहीं पीछे पछताएगा । मैं तो जाता हूँ, पर इतना कहे जाता हूँ कि कभी संकट पड़े तो हमारा स्मरण करना ।

गो.दा. — प्रणाम गुरु जी, मैं आपका नित्य ही स्मरण करूँगा । मैं तो फिर भी कहता हूँ कि आप भी यहीं रहिए ।

(महन्त जी नारायण दास के साथ जाते हैं ; गोवर्धन दास बैठकर मिठाई खाता है ।)

(पटाक्षेप)



चौथा दृश्य

(राजसभा)

(राजा — मन्त्री और नौकर लोग यथास्थान स्थित हैं)

१ **सेवक** — (घिल्लाकर) पा खाइए महाराज ।

राजा — (पीनक से चौँक के धबड़ाकर उठता है) क्या कहा ? सुनखा आई ए महाराज । (भागता है) ।

मन्त्री — (राजा का हाथ पकड़कर) नहीं नहीं, यह कहता है कि पान खाइए महाराज !

राजा — दुष्ट लुच्चा पाजी ! नाहक हमको डरा दिया । मन्त्री इसको सौ कोड़े लगें ।

मन्त्री — महाराज ! इसका क्या दोष है ? न तमोली पान लगाकर देता, न यह पुकारता ।

राजा — अच्छा, तमोली को दो सौ कोड़े लगें ।

मन्त्री — पर महाराज, आप पान खाइए सुन कर थोड़े ही डरे हैं, आप तो सुपनख के नाम से डरे हैं, सुपनखा की सजा हो ।

राजा — (घबड़ाकर) फिर वही नाम ? मन्त्री तुम बड़े खराब आदमी हो । हम रानी से कह देंगे कि मन्त्री बेर बेर तुमको सीत बुलाने चाहता है । नौकर ! नौकर ! शराव ।

२ नौकर — (एक सुराही में से एक गिलास में शराव उभल कर देता है) लीजिए महाराज । पीजिए महाराज ।

राजा — (मुँह बनाकर पीता है) और दे । (नेपथ्य में — दुहाई है दुहाई — का शब्द होता है ।)

कौन चिल्लाता है — पकड़ लाओ ।

(दो नौकर एक फर्पादी को पकड़ लाते हैं)

फ. — दोहाई है महाराज दोहाई है । हमारा न्याव होय ।

राजा — चुप रहो । तुम्हारा न्याव यहाँ ऐसा होगा कि जैसा जम के यहाँ भी न होगा । बोलो क्या हुआ ?

फ. — महाराज कल्लू बनिया की दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उसके नीचे दब गई । दोहाई है महाराज न्याव हो ।

राजा — (नौकर से) कल्लू बनिया की दीवार को अभी पकड़ लाओ ।

मन्त्री — महाराज, दीवार नहीं लाई जा सकती ।

राजा — अच्छा, उसका भाई, लड़का, दोस्त, आशना जो हो उसको पकड़ लाओ ।

राजा — महाराज ! दीवार ईंट चूने की होती है, उसको भाई बेदा नहीं होता ।

राजा — अच्छा कल्लू बनिये को पकड़ लाओ ।

(नौकर लोग दौड़कर बाहर से बनिए को पकड़ लाते हैं) क्यों वे बनिए ! इसकी लरकी, नहीं बरकी क्यों दबकर मर गई ।

मन्त्री — बरकी नहीं महाराज बकरी ।

राजा — हाँ हाँ, बकरी क्यों मर गई — बोल, नहीं अभी फाँसी देता हूँ ।

कल्लू — महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं । कारीगर ने ऐसी दीवार बनाया कि गिर पड़ी ।

राजा — अच्छा, इस मल्लू को छोड़ दो, कारीगर को पकड़ लाओ । (कल्लू जाता है, लोग कारीगर को पकड़ लाते हैं) क्यों वे कारीगर ! इसकी बकरी किस तरह मर गई ?

कारीगर — महाराज, मेरा कुछ कसूर नहीं, चूनेवाले ने ऐसा बोदा बनाया कि दीवार गिर पड़ी ।

राजा — अच्छा, इस कारीगर को बुलाओ, नहीं नहीं, निकालो, उस चूनेवाले को बुलाओ । (कारीगर निकाला जाता है, चूनेवाला पकड़कर लाया जाता है) क्यों वे छैर सुपाड़ी चूनेवाले ! इसकी कुबरी कैसे मर गई ?

चूनेवाला — महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं, भिंशी न चूने में पानी ढेर दे दिया, इसी से चूना कमजोर हो गया होगा ।

राजा — अच्छा, चुन्नीलाल को निकालो, भिंशी को पकड़ो । (चूनेवाला निकाला जाता है, भिंशी लाया जाता है (क्यों वे भिंशी ! गंगा जमुना की किंशी ! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी दीवार दब गई ।

भिंशी — महाराज ! गुलाम का कोई कसूर नहीं, कस्साई ने मसक इतनी बड़ी बना दिया कि उसमें पानी जादे आ गया ।

राजा — अच्छा, कस्साई को लाओ, भिंशी निकालो ।

(लोग भिंशी को निकालते हैं और कस्साई को लाते हैं) क्यों वे कस्साई, मशक ऐसी क्यों बनाई कि दीवार लगाई बकरी दबाई ?

कस्साई — महाराज ! गंडेरिया ने टके पर ऐसी बड़ी भेड़ मेरे हाथ बेंचो की उसकी मशक बड़ी बन गई ।

राजा — अच्छा, कस्साई को लाओ, भिंशी को लाओ ।

(कस्साई निकाला जाता है गंडेरिया आता है)

क्यों वे ऊखपौड़े के गंडेरिया ! ऐसी बड़ी भेड़ क्यों बेचा कि बकरी मर गई ?

गंडेरिया — महाराज ! उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई, सो उस के देखने में मैंने छोटी बड़ी भेड़ का खयाल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं ।

राजा — अच्छा, इस को निकालो, कोतवाल को

अमी सरबमुख पकड़ लाओ ।

(गड़ेरिया निकाला जाता है, कोतवाल पकड़ा आता है)

क्यों वे कोतवाल ! तेने सवारी ऐसी धूम से क्यों निकाली कि गड़ेरिये ने घबड़ा कर बड़ी भेड़ बेचा, जिस से बकरी गिर कर कल्लू बनियाँ दब गया ?

कोतवाल — महाराज महाराज ! मैं ने तो कोई कसूर नहीं किया मैं तो शहर के इन्तजाम के वास्ते जाता था ।

मंत्री — (आप ही आप) यह तो बड़ा गुजब हुआ, ऐसा न हो कि बेवकूफ, इस बात पर सारें नगर को फूंक दे या फांसी दे ।

(कोतवाल से) यह नहीं, तुम ने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाली ?

राजा — हां हां, यह नहीं, तुम ने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाली कि उसकी दबरी दबी ।

कोतवाल — महाराज महाराज —

राजा — कुछ नहीं, महाराज महाराज ले जाओ, कोतवाल को अमी फांसी दे । दरबार बरखास्त ।

(लोग एक तरफ से कोतवाल को पकड़ कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मंत्री को पकड़ कर राजा जाते हैं)

(पटाक्षेप)

पांचवां दृश्य

(आरण्य)

(गोवर्धन दास गाते हुए आते हैं)

(राग काफी)

अंधेरे नगरी अनबूझ राजा ।

टका सेर भाजी टका से खाजा ॥

नीच ऊँच सब एकहि ऐसे ।

जैसे भड़प पड़ित तैसे ॥

कुल मरजाद न मान बड़ाई ।

सबै एक से लोग लुगाई ॥

जात पांत पृछे नहि कोई ।

हरि को भजे सो हरि को होई ॥

वेश्या जोरु एक समाना ।

बकरी गऊ एक करि जाना ॥

सांचे मारे मारे डोलैं ।

छली दुष्ट सिर चढ़ि चढ़ि बोलैं ॥

प्रगट सम्य अन्तर छलधारी ।

सोइ राजसभा बलभारी ॥

सांच कहैं ते पनही खावैं ।

भूठे बहुविधि पदवी पावै ॥

छलियन के एका के आगे ।

लाख कहौ एकहु नहि लागे ।

भीतर होइ मलिन की कारो ।

चहिये बाहर रंग चटकारो ॥

धर्म अधर्म एक दसाई ।

राजा कैर सो न्याव सदाई ॥

भीतर स्वाहा बाहर सादे ।

राज करहि अमले अरु प्यादे ॥

अन्धाधुन्ध मच्चौ सब देसा ।

मानहुं राजा रहत बिदेसा ॥

गो द्विज श्रुति आदर नहि होई ।

मानहुं नृपति बिधर्मी कोई ॥

ऊँच नीच सब एकहि सारा ।

मानहुं ब्रह्म ज्ञान विस्तारा ॥

अंधेर नगरी अनबूझ राजा ।

टका सेरा भाजी टका सेर खाजा ॥

(बैठकर मिठाई खाता है)

गुरुजी ने हमको नाहक यहाँ रहने को मना किया था । माना कि देस बहुत बुरा है । पर अपना क्या ?

अपने किसी राजकाज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, रोज

मिठाई चामना, मजे में आनन्द से राम-भजन करना ।

(मिठाई खाता है)

(चार प्यादे चार ओर से आकर उस को पकड़ लेते हैं)

१ प्या. — चल वे चल, बहुत मिठाई खा कर

मुटया है । आज पूरी हो गई ।

२ प्या. — बाबा जी चलिए, नमोनारायन

कीजिए ।

गो. दा. — (घबड़ा कर) हैं ! यह आफत कहाँ से

आई ! अरे भाई, मैंने तुम्हारा क्या बिगड़ा है जो

मुझको पकड़ते हो ।

प्या. — आप ने बिगाड़ा या बनाया है इस से

क्या मतलब, अब, चलिए । फांसी चढ़िए ।

गो. दा. — फांसी । अरे बाप रे बाप फांसी !!

मैंने किस की प्राण मारे कि मुझ को फांसी !

२ प्या. — आप बड़े मोटे हैं, इस वास्ते फांसी

होती है ।

गो. दा. — मोटे होने से फांसी ? यह कहाँ का

न्याय है ! अरे, हंसी फकीरों से नहीं करनी होती ।

१ प्या. — जब सूली चढ़ लीजिएगा तब मालूम

होगा कि हंसी है कि सच । सीधी राह से चलते हो

कि घसीट कर ले चलें ?

गो. दा. — अरे बाबा, क्यों बेकसूर का प्राण

मारते हो ? भगवान् के यहाँ क्या जवाब दोगे ?

१ प्या.— भगवान् को जवाब राजा देगा । हम को क्या मतलब । हम तो हुक्मी बन्दे हैं ।

गो. दा.— तब भी बाबा बात क्या है कि हम फकीर आदमी को नाहक फांसी देते हो ?

१ प्या.— बात है कि कल कोतवाल को फांसी का हुकुम हुआ था । जब फांसी देने को उस को ले गए, तो फांसी का फन्दा बड़ा हुआ, क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं । हम लोगों ने महाराज से अर्ज किया, इस पर हुक्म हुआ कि मोटा आदमी पकड़ कर फांसी दे दो, क्योंकि बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी की सजा होनी जरूर है, नहीं तो न्याय न होगा । इसी वास्ते तुम को ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुमको फांसी दें ।

गो. दा.— तो क्या और कोई मोटा आदमी इस नगर भर में नहीं मिलता जो मुझ अनाथ फकीर को फांसी देते हैं !

१ प्या.— इस में दो बात हैं — एक तो नगर भर में राजा के न्याय के डर से कोई मुठाला ही नहीं, दूसरे और किसी को पकड़े तो वह न जानें क्या बात बनावे कि हमी लोगों के सिर कहीं न घहराय और फिर इस राज में साधू महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है, इस से तुम्हीं को फांसी देंगे ।

गो. दा.— दुहाई परमेश्वर की, अरे मैं नाहक मारा जाता हूँ ! अरे यहाँ बड़ा ही अन्धेरे है, अरे गुरु जी महाराज का कहा मैंने न माना उस का फल मुझ को भोगना पड़ा । गुरुजी कहाँ हो ! आओ, मेरे प्राण बचाओ, अरे मैं बेअपराध मारा जाता हूँ गुरुजी गुरुजी —

(गोबर्धन दास चिल्लाता है, प्यादे लोग उस को पकड़ कर ले जाते हैं)

(पटाक्षेप)

छाँट दूरय

(स्थान श्मशान)

(गोबर्धन दास को पकड़े हुए चार सिपाहियों का प्रवेश)

गो. दा.— हाय बाप रे ! मुझे बेकसूर ही फांसी देते हैं । अरे भाइयो, कुछ तो धरम विचारो । अरे मुझ गरीब को फांसी देकर तुम लोगों को क्या लाभ होगा ? अरे मुझे छोड़ दो । हाय ! हाय ! (रोता है और छुड़ाने

का यत्न करता है)

१ सिपाही— अबे, चुप रह — राजा का हुकुम भला कहीं टल सकता है ? यह तेरा आखिरी दम है, राम का नाम ले — बेफाइदा क्यों शोर करता है ? चुप रह —

गो. दा.— हाय ! मैं ने गुरुजी का कहना न माना, उसी का यह फल है । गुरुजी ने कहा था कि ऐसे — नगर में न रहना चाहिये, यह मैं ने न सुना ! अरे ! इस नगर का नाम ही अधेरनगरी और राजा का नाम चौपट्ट है, तब बचने की कौन आशा है । अरे ! इस नगर में ऐसा कोई धर्मात्मा नहीं है जो इस फकीर को बचावे । गुरु जी ! कहाँ हो ? बचाओ — गुरुजी-गुरुजी — (रोता है, सिपाही लोग उसे घसीटते हुए ले चलते हैं)

(गुरु जी और नारायण दास आते हैं)

गुरु.— अरे बच्चा गोबर्धन दास ! तेरी यह क्या दशा है ?

गो. दा.— (गुरु को हाथ जोड़कर) गुरु जी ! दीवार के नीचे बकरी दब गई, सो इस के लिए मुझे फांसी देते हैं, गुरु जी बचाओ ।

गुरु.— अरे बच्चा ! मैंने तो पहिले ही कहा था कि ऐसे नगर में रहना ठीक नहीं, तैने मेरा कहना नहीं सुना ।

गो. दा.— मैं ने आप का कहा नहीं माना, उसी का यह फल मिला । आप के सिवा अब ऐसा कोई नहीं है जो रक्षा करे । मैं आप ही का हूँ, आप के सिवा और कोई नहीं (पैर पकड़ कर रोता है) ।

महन्त— कोई चिन्ता नहीं, नारायण सब समर्थ है । (भौं चढ़ाकर सिपाहियों से) सुनो, मुझको अपने शिष्य को अन्तिम उपदेश देने दो, तुम लोग तनिक किनारे हो जाओ, देखो मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हारा भला न होगा ।

सिपाही— नहीं महाराज, हम लोग हट जाते हैं । आप वेशक उपदेश कीजिए ।

(सिपाही हट जाते हैं । गुरु जी चले के कान में कुछ समझाते हैं)

गो. दा.— (प्रगट) तब तो गुरु जी हम अभी फांसी चढ़ेंगे ।

महन्त— नहीं बच्चा मुझको चढ़ने दे ।

गो. दा.— नहीं गुरु जी, हम फांसी पड़ेंगे ।

महन्त— नहीं बच्चा हम । इतना समझाया नहीं मानता, हम बूढ़े भए, हमको जाने दे ।

गो. दा.— स्वर्ग जाने में बूढ़ा जवान क्या ?

आप तो सिद्ध हो, आपको गति अगति से क्या ? मैं फांसी चढ़ूंगा ।

(इसी प्रकार दोनों हुज्जत करते हैं — सिपाही लोग परस्पर चकित होते हैं)

१ सिपाही — भाई ! यह क्या माजरा है, कुछ समझ नहीं पड़ता ।

२ सिपाही — हम भी नहीं समझ सकते कि यह कैसा गवड़ा है ।

(राजा, मंत्री कोतवाल आते हैं)

राज — यह क्या गोलमाल है ?

१ सिपाही — महाराज ! चेला कहता है मैं फांसी पड़ूंगा, गुरु कहता है मैं पड़ूंगा ; कुछ मालूम नहीं पड़ता कि क्या बात है ?

राजा — (गुरु से) बाबा जी ! बोलो । काहे को आप फांसी चढ़ते हैं ?

महन्त — राजा ! इस समय ऐसा साइत है कि जो मरेगा सीधा बैकुण्ठ जायगा ।

मंत्री — तब तो हमी फांसी चढ़ेंगे ।

गो. दा. — हम हम । हम को तो हुकुम है ।

कोतवाल — हम लटकेंगे । हमारे सबब तो दीवार गिरी ।

राजा — चुप रहो, सब लोग, राजा के आछत और कौन बैकुण्ठ जा सकता है । हमको फांसी चढ़ाओ, जल्दी, जल्दी ।

महन्त —

जहाँ न धर्म न बुद्धि नाह, नीति न सुजान समाज ।
ते ऐसहि आपुहि नसे, जैसे चौपटराज ॥
(राजा को लोग टिकठी पर खड़ा करते हैं)

(पटाक्षेप)

इति



सतीप्रताप

गीतिरूपक, जिसे भारतेन्दु ने सम्वत् १९४१ में लिखना शुरू किया था । इसके कुछ दृश्य सन् १८८४ में "हरिश्चंद्र चंद्रिका" के अंकों में प्रकाशित हुए । भारतेन्दु जी के निधन के कारण यह पूरा नहीं हो पाया । बाद में बाबू राधाकृष्ण दास ने अंतिम तीन दृश्य लिखकर इसे पूरा किया ।

कहा जाता है कि लाला श्री निवासदास "तप्तासंदरण" नाटक इसी पति महात्म्य पर लिख चुके थे । वह "हरिश्चंद्र मेगजीन" में छपा भी था । शायद वह भारतेन्दु को पसंद नहीं आया तभी उन्होंने इस गीत रूपक को लिखा । — सं.

सती प्रताप

(एक गीतिरूपक)

पहला दृश्य

हिमालय का अधोभाग ।

तुण लता वेष्टित एक टीले पर बैठी हुई तीन

अप्सरा गाती हैं ॥

(राग भिषौटी)

१ अप्सरा —

१. जय जय श्री रुक्मिन महारानी ।

२. निज पति त्रिभुवन पति हरि पद में छाया सी

लपटानी।

३. सती सिरामणि रुपरासि करुणामय सब गुनखानी।

४. आदिशक्ति जग कारिनि पालिनि निज भक्तन

२ अप्सरा—

(राग जंगला या पीलू)

जग में पतिव्रत सम नहीं आन।

नारि हेतु कोउ धर्म न दूजे जग में यासु समान ॥

अनुसूया सीता सावित्री इन के चरित प्रमान ॥

पति देवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान ॥

धन्य देस कुल जहँ निवसत हैं नारी सती सुजान ॥

धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य व्याह असधान ॥

सब समर्थ पतिवरता नारी इन सम और न आन ॥

याही ते स्वर्गहू में इन को करत सबै गुन गान ॥

३ अप्सरा—

(रागिनी बहार)

नवल बन फूलीं द्रुम बेली।

लहलह लहकहिं भममह महकहिं मधुर सुगंधहिं रेली।

प्रकृति नवोद्गा सजे खरी मनु भूपन बसन बनाई।

आंचर उड़त बात बस फहरत प्रेम धूजा लहराई ॥

गूँजहिं भंवर बिहंगम डोलहिं बेलहिं प्रकृति बधाई।

पुतली सी जित तित तितली गन फिरहिं सुगन्ध लुभाई ॥

लहराहिं जल लहकहिं सरोज मन हिलहिं पात तरु डारी।

लखि रितु पति आगम सगरे जग मनहुं कुलाहल भारी ॥

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

तपोवन — लतामंडप में सत्यवान बैठा हुआ है।

(रंग गीति-पीलू-धमार)

“क्यों फकीर बना आया वे मेरे वारे जोगी।

नई बैस कोमल अंगन पर काहे भभूत रमाया वे ॥

किन वे मात पिता तेरे जोगी जिन तोहि नाहि मनाया वे ॥

(चैती गौरी तिताला)

विदेसिया वे प्रीति की रीति न जानी।

प्रीति की रीति कठिन अति प्यारे कोई विरले पहिचानी ॥

सत्यवान — यह कोमल स्वर कहां से वान में

आया ? प्रतिध्वनि के साथ यह स्वर ऐसा गूँज रहा है

कि मेरी सारी कदम्बखंडी शब्द ब्रह्ममय हो गई। बीच

बीच में मोर कुहक कुहक कर और भी गूँज दूनी कर

देते हैं। (कुछ सोचकर) हाय ! मेरा मन इस समय भी

स्थिर नहीं। हाय ! प्रासादों में स्फटिक की छत पर

चलने में जिनके चरण को कष्ट होता था आज वह

कंटकमय पथ में नंगे पाओं फिर रहे हैं और दुःखफेन

सी सेज के बदले आज मृगचर्म पर सोते हैं। हाय हमारे

माता पिता बुढ़ापे से सामर्थ्यहीन तो थे ही ऊपर से देव

ने उन्हें अंधा भी बनाया। हाय अभागो सत्यवान से भी

कभी माता पिता की सेवा न बन पड़ी। कभी उनके

वात्सल्य-पूर्ण प्रेमाभूत वचन ने मेरे कान न शीतल

किए। और न ऐसा होना है। जनमते ही तो तपस्या

करनी पड़ी। धन्य विधाता ! दरिद्र को धनवान और

धनवान को दरिद्र करना तो तुम्हें एक खेल है। किन्तु

दरिद्र बन के फिर क्यों कष्ट देते हो। दरिद्र ही सही

पर मन को तो शान्ति दो। भला वो घड़ी भी वृद्ध माता

पिता की सेवा करने पावें। (चिन्ता)

(सावित्री को घेरे हुए गाते गाते मधुकरी, सुरवाला

और लवंगी का आना और फूल बीनना)

सखीजन— (गौरी)

मीरा रे बोरानो लखि बोर

लुबध्यों उतहि फिरत मंडरान्यों जात कहूँ नहीं और—

मीरा रे बोरान्यो

(चैती गौरी)

फूलन लगे राम बन नवाल गुलबया।

फूलन लगे राम महुआ फले आम बोराने डारहिडार

भंवरवा भूलन लगे राम।

(गौरी)

एवन लागि डोलत बन की पतिया।

मानहु पधिकन निकट बुलावहिं कहन प्रेम की बतिया ॥

अलक हिलत फहरत तन सारी होत है शीतल

छतिया ॥

यह छबि लखि ऐसी जिय अवत इतहि बितैए रतिया ॥

सुरवाला— सखी, कैसा सुंदर वन है।

लवंगी— और यह बारी भी कैसी मनोहर है।

मधुकरी— आहा ! तपोवन रिषि मुनि लोगों

को कैसा सुखदायक होता है।

सावित्री— सखी, रिषि मुनि क्या तपोवन सभी

को सुख देता है।

सुरवाला— क्योंकि यहाँ सदा बसन्त ऋतु

रहती है न।

सावित्री— बसन्त ही से नहीं तपोवन ऐसा

नहीं है।

मधुकरी— आहा ! यह कुंज कैसा सुंदर है।

सखी देखो माधवीलता इस कुंज पर कैसा घनघोर छाई

हुई है।

सावित्री— सहज वस्तु सभी मनोहर होती है।

देखो इस पर फूल कैसे सुन्दर फूले हैं जैसे किसी ने देवता की फूल मण्डली बनाई हो ।

सुरबाला — और उधर से हवा कैसी ठंडी आती है ।

लवंगी — और हवा में सुगंध कैसी है ।

मधुकरी — सखी ! एकटक उधर ही क्यों देख रही हो !

सुरबाला — सच तो सखी । वहाँ क्या है जो उधर ही ऐसी दृष्टि गड़ा रही हो ?

लवंगी — तू क्या जाने । तपोवन में सेकड़ों वस्तु ऐसी होती हैं ।

सावित्री — (रागसोरठ)

लखो सखि भूतल चन्द खस्यो ।

राहु केतु भय छोड़ि रोहिनिहि या बन आइ बस्यो ॥

कै सिव जय हित करत तपस्या मनसिज इत निबस्यो ।

कै कोऊ बनदेव कुंज में बनबिहार बिलस्यो ॥

मधुकरी — सच तो, तपसियों में ऐसा रूप !

सुरबाला — जाने दे । वनवासी तपस्वी में ऐसा रूप कहाँ ?

सावित्री — यह मत कहो । विघना की कारीगरी जैसी नगर में वैसी ही बन में ।

(सत्यवान की ओर सत्पुष्प दृष्टिपात)

सुरबाला — देखती हो ? एक मन एक प्राण डोकर कैसी सोच रही है ?

लवंगी — (परिहास से) आज जो यह तापस-कुमार के बदले राजकुमार होते तो घर बैठे गंगा बही थी ।

मधुकरी — सखी, इसका कुछ नेम नहीं है कि राजकुमारी का ब्याह राजकुमार ही से हो ।

सावित्री — विधाता ने जिस भाव में राजपुत्र को सिरजा है उसी भाव में मुनिपुत्र को । और फिर राजधन से तपोधन कुछ कम नहीं होता ।

सत्यवान — (आप ही आप) यह क्या बनदेवी आई है ।

मधुकरी — हम उनके पास जाकर प्रणाम तो कर आवे ।

(मधुकरी का कुंज की ओर बढ़ना और सत्यवान का लतामंडप से निकलकर बाहर बैठना)

मधुकरी — (सत्यवान के पास जाकर) प्रणाम (हाथ जोड़कर सिर झुकाना)

सत्यवान — आयुष्मती भव । आप लोग कौन हैं ?

मधुकरी — हम लोग अपनी सखी मद्रदेश के

जयन्ती नगर के राजा अश्वपति की कुमारी सावित्री के साथ फूल बीनने आई हैं ।

सत्यवान — (स्वगत) राजकुमारी ! वामन को चंद्रस्पर्श ।

मधुकरी — कृपानिधान । आप सदा यहीं निवास करते हैं ।

सत्यवान — जब तक देव अनुकूल न हो यहीं निवास है ।

मधुकरी — इससे तो बोध होता है कि किसी राजभवन को सूना करके आप यहाँ आए हैं ।

सत्यवान — सखी ! उन बातों को जाने दो ।

मधुकरी — हमारे अनुरोध से कहना ही होगा । दयाल सज्जनगण अतिथि की याज्ञा व्यर्थ नहीं करते । विशेष कर के पहले ही पहल ।

सत्यवान — हम शाल्व देश के राजा धुमत्सेन के पुत्र हैं । हमारा नाम चित्राश्व वा सत्यवान है । इस भेधधारण्य नामक वन में पिता की सेवा करते हैं ।

मधुकरी — (आप ही आप) तभी । गंगा समुद्र छोड़कर और जलाशय की ओर नहीं झुकती । (प्रकट) तो आज्ञा हो तो अब प्रणाम कहूँ ।

सत्यवान — (कुछ उदास होकर) यह क्यों ? बिना आतिथ्य स्वीकार किए हुए ?

मधुकरी — इसका तो मैं सखी से पूछ लूँ तो उत्तर दूँ । (सावित्री के पास आकर) सखी ! कुमार तापस कहते हैं कि आतिथ्य स्वीकार करना होगा ।

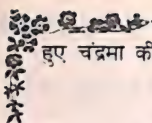
सावित्री — (सखियों का मुँह देखती है) ।

लवंगी — (परिहास से) अवश्य अवश्य ! इसमें क्या हानि है ।

सावित्री — (कुछ लज्जा करके) सखी ! उनसे निवेदन कर दे कि हम लोग माता पिता की आज्ञा लेकर तब किसी दिन आतिथ्य स्वीकार करेंगे, आज विलम्ब भी हुआ है ।

मधुकरी — (सत्यवान के पास जाकर) कुमारी कहती है कि किसी दिन माता पिता की आज्ञा लेकर हम आवेंगे तब आतिथ्य स्वीकार करेंगे । आप तो जानते ही हैं कि आर्यकुल की ललनागण किसी अवस्था में भी स्वतंत्र नहीं हैं । इससे आज क्षमा कीजिए ।

सत्यवान — (कुछ उदास होकर) अच्छा । (सखियों के साथ सावित्री का प्रस्थान) (उधर ही देखता है) यह क्या ? चित्त में ऐसा विकार क्यों ? क्या स्वर्ण और रत्न में भी मलिनता ? क्या अग्नि में भी कीट की उत्पत्ति ? उह ? फिर वही ध्यान ? यह क्या ? अब तो जी नहीं मानता । चले आगे बढ़कर बदली में छिपते



हुए चंद्रमा की शोभा देखकर जी को शान्ति दें ।
(जाता है)

(पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य

जयन्ती नगर गृहोद्यान ।

(जोगिन बनी हुई सावित्री ध्यान करती है)

(नेपथ्य में बैतालिक गान)

प्र. वै.—

नैन लाल कुसुम पलास से रहे हैं फूलि

फूल माल करें बन भालारि सी लाई है ।

भंवर गुंजार हरि नाम को उचार तिभि

कोकिला सी कुहकि बियोग राग गाई है ॥

हरीचन्द तबि पतभर घर बार सबै

बौरी बनि नौरी चारू पौद ऐसी धाई है ।

तेरे बिछुरे तें प्रान कंत कै हिमन्त अन्त

तेरी प्रेम जोगिनी बसन्त बनि आई है ॥१॥

द्वि. वै.—

पीरो तन परघो फूली सरसों सरस सोई

मन मुरझान्यो पतभार मनो लाई है ।

सीरी स्वास त्रिविध समीरसी बर्हात सदा

अँखियाँ बरसि मधुभरि सी लगाई है ॥

हरीचन्द फूले मन मैन के मसूसन सों

ताही सों रसाल बाल बदि कै बौराई है ।

तेरे बिछुरे तें प्रान कंत कै हिमन्त अन्त

तेरी प्रेम जोगिनी बसन्त बनि आई है ॥२॥

प्र. वै.—

"बरुनी बघंवर मैं गूदरी पलक दोऊ,

कोए राते बसन भगौहै भेख रखियाँ ।

बूड़ी जलही मैं दिन जामिनीहूँ जागै भौह,

धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ ॥

आंसू ज्यौँ फटिक माल काजर की सेली पैन्ही,

भई हैं अकेली तजि चेलि संग सखियाँ ।

दीजिये दरस देव कीजिये संजोगन ये,

जोगिन हवै बैठी हैं बियोगिन की अँखियाँ" ॥३॥

द्वि. वै.—

एक ध्यान एकै ज्ञान एकै मन एकै प्रान,

दसों दिसि अबिचल एकै तान तानो है ।

जग मैं बसत हूँ मनहुँ जग बाहिर सो,

हियो तन दोऊ निसि दिवस तपानो है ॥

हरीचंद जोग की जुगति रिदि सिदि सब,

तजि तिनका सी एक नेह को निभानो है ।

बिना फल आस सीस सहनी सहस्र त्रास,

जोगिन सों कठिन बियोगिन को बानो है ॥

(सावित्री ध्यान से आँख खोलती है)

सावित्री— अहा ! एक पहर दिन आ गया ।

सखीगण अब तक नहीं आई इसी से ध्यान भी निर्विधन

हुआ । हमारी वासना सत्य है तो अंतर्गति जाननेवाली

सतीकुल-सरोजिनी भगवती भवानी हमारी भावना

अवश्य पूर्ण करेंगी । मन बच कर्म से जो हमारी भक्ति

पति के चरणारविंद में है तो वे हमको अवश्य ही

मिलेंगे । अथवा न भी मिलें तो इस जन्म में तो दूसरा

पति हो नहीं सकता । स्त्रीधर्म बड़ा कठिन है ।

जिसको एक बेर मन से पति कहकर वरण किया

उसको छोड़कर स्त्री शरीर की अब इस जगत् में कौन

गति है । पिता माता बड़े धार्मिक हैं सखियों के मुख से

यह संवाद सुनकर वह अवश्य उचित ही करेंगे । वा न

करेंगे तो भी इस जन्म में अन्य पुरुष अब मेरे हेतु कोई

है नहीं । (अपना वेष देखकर) अहा ! यह वेष मुझको

कैसा प्रिय बोध होता है । जो वेष हमारे जीवितेश्वर

धारण करें वह क्यों न प्रिय हो । इसके आगे बहुमूल्य

हीरों के हार और चमत्कार दर्शक वस्त्र सब तुच्छ हैं ।

वही वस्तु प्यारी है जो प्यारे को प्यारी हो । नहीं तो

सर्वसंपत्ति की मूल कारण स्वरूपा देवी पार्वती भगवान

भूतनाथ की परिचर्या इस वेष से क्यों करती ?

सतीकुलतिलका देवी जनकनदिनी को अयोध्या के बड़े

बड़े स्वर्ग विनिंदक प्रासाद और शचीदुर्लभ गृह-सामग्री

से भी वन की कर्णकुटी और पर्वतशिला अति प्रिय थी,

क्योंकि सुख तो केवल प्राणनाथ की चरणपरिचर्या में

है । जब तक अपना स्वतंत्र सुख है तब तक प्रेम

नहीं । पत्नी का सुख एकमात्र पति की सेवा है । जिस

बात में प्रियतम की रुचि उसी में सहधर्मिणी की

रुचि । अहा ! वह भी कोई धन्य दिन आवेगा जब हम

भी अपने प्राणाराध्य देवता प्रियतम पति की चरणसेवा

में नियुक्त होंगी । वृद्ध श्वसुर और सास के हेतु पाक

आदि निर्माण करके उनका परितोष करेंगी । कुसुम,

दूर्वा, तुलसी, समिधा इत्यादि बीनने को पति के साथ

वन में घूमेंगी । परिश्रम से थकित प्राणनायक के स्वेद-

सीकर अपने अंचल से पोछकर मंद मंद वनपत्र के

व्यजनवायु से उनका श्रीअंग शीतल और चरण-

संवाहनादि से श्रमगत करेंगी । (नेत्र से आँसू गिरते हैं

(गान करते हुए सखीगण का आगमन)

(डुमरी)

सखीत्रय—

देखो मेरी नई जोगिनियाँ आई हो-जोगी पिय मन भाई हो ।
खुले केस गोरे मुख सोहत जोहत दृग सुखदाई हो ॥
नव छाती गाती कसि बाँधी कर जप माल सुहाई हो ।
तन कंचन दुति बसन गेरुआ द्वनी छवि उपजाई हो ॥

देखो मेरी नई जोगिनियाँ आई हो ।

(सावित्री के पास जाकर)

(लावनी)

लावणी—

सखि ! बोले जीवन महा कठिन व्रत कीनो ।
यह जोग भेष कोमल अंगन पर लीनो ॥
अबहीं दिन तुमरे खेल कूद के प्यारी ।
पितु मातु चाव सों भवन बसो सुकुमारी ॥
ओढ़ो पहिरो लखि सुख पावै महतारी ।
बिलसौ गृह संपति सखी गई बलिहारी ॥
तजि देहु स्वांग जो सबही विधि सों हीनो ॥
यह जोग भेष जो कोमल अंग पर लीनो ॥

मधु.—

सखि ! यही जगत की चाल जितनी है क्वारी ।
उनके सबही विधि मात पिता अधिकारी ॥
जेहि चाहै ताकहैं दान करै निज बारी ।
यामैं कछु कहनो तजनो लाज दुलारी ॥
बिनती मानहु हठ माँहि वृथा चित दीनो ।
यह जोगभेष जो कोमल अंग पर लीनो ॥

सुर.—

सखि औरहु राजकुमार बहुत जग माँहीं ।
विद्या-बुधि-गुन-बल-रूप-समूह लखाहीं ॥
चिरजीवी प्रेमी धनी अनेक सुनाहीं ।
का उन सम कोऊ और जगत में नाहीं ॥
जाके हित तुम तजि राजभेष सुख-भीनो ।
यह जोग-भेष निज कोमल अंग पर लीनों ॥

सावित्री— (इषट क्रोध से)

बस-बस ! रसना रोको ऐसी मति भाखो ।
कछु धरमहु को भय अपने जिय मैं राखो ॥
कुलकामिनि ह्वै गनिका धरमहि अभिलाखो ।
तजि अमृतफल क्यों विषमय विषयहि चाखो ॥
सब समुझि बूझि क्यों निंदहु मूरख तीनों ।
यह जोग-भेष जो कोमल अंग पर लीनो ॥

लावणी— सखी को कैसा जल्दी क्रोध आया है ?

सावित्री— अनुचित बात सुनकर किसको

क्रोध न आवेगा ?

सुर.— सखी ! हम लोगों ने जो वचन दिया था

वह पूरा किया ।

सावित्री— वचन कैसा ?

सुर.— सखी, तुम्हारे माता पिता ने हम लोगों से वचन लिया था कि जहाँ तक हो सकेगा हम लोग तुमको इस मनोरथ से निवृत्त करेंगे ।

सावित्री— निवृत्त करोगी ? धर्मपथ से ? सत्य प्रेम से ? और इसी शरीर में ?

सुर.— सखी, शांत भाव धारण करो । हम लोग तुम्हारी सखी हैं, कोई अन्य नहीं हैं । जिसमें तुमको सुख मिले वही हम लोगों को करना है । यह सब जो कुछ कहा सुना गया, केवल ऊपरी जी से ।

सावित्री— तब कुछ चिंता नहीं । चलो, अब हम लोग माता के पास चलें । किंतु वहाँ मेरे सामने इन वालों को मत छेड़ना ।

सखीगण— अच्छा, चलो ।

(जवनिका गिरती है)

चौथा दृश्य

स्थान — तपोवन । धुमत्सेन का आश्रम

(धुमत्सेन, उनकी स्त्री और ऋषि बैठे हैं)

धुमत्सेन— ऐसे ही अनेक प्रकार के कष्ट उठाए हैं, कहाँ तक वर्णन किया जाय ।

पहला ऋषि— यह आपकी सज्जनता का फल है ।

(छप्पय)

क्यों उपज्यौ नरलोक ? ग्राम के निकट भयो क्यों ?
सघन पात सों सीतल छाया दान दयो क्यों ?
मीठे फल क्यों फल्यो ? फल्यो तो नम्र भयो कित ?
नम्र भयो तो सहु सिर पै बहु बिपति लोक कृत ।
तोहिं तोरि मरोरि उपाहि हैं पाथर हनिहैं सबहि नित ।
जे सज्जन ह्वै नै के चलहिं तिनकी वह दुरगति उचित ॥

दूसरा ऋषि— ऐसा मत कहिए ! वरंच यों

कहिए —

चातक को दुख दूर कियो पुनि

दीनो सब जग जीवन भारी ।

पूरे नदी नद ताल तलैया किये

सब भाँति किसान सुखारी ॥

सूखेहु रुखन कीने हरे जग पूरयो

महामुद दै निज भारी ।

हे घन आसिन लौं इतनो करि

रीते भए हूँ बड़ाई तिहारी ।

द्युमत्सेन —

मोहि न धन को सोच भाग्य बस होत जात धन ।
पुनि निरधन सो दोष न होत यही गुन गुनि मन ॥
मो कहैं इक दुख यहै जु प्रेमिनि हू मोहिं त्याग्यौ ॥
बिना द्रव्य के स्वानहू नहिं मोसों अनुराग्यौ ॥
सब मित्रन छोड़ी मित्रता बंधुन हू नातो नज्यौ ।
जो दास रह्यौ मम गेह को मिलनहुँ मैं अब सो तज्यौ ॥
तज्यौ ॥

प. ऋषि — तो इसमें आपकी क्या हानि है ?
ऐसे लोगों से न मिलना ही अच्छा है ।

द्युमत्सेन — नहीं, उनके न मिलने का मुझको
अणुमात्र सोच नहीं है । मुझको तो ऐसे तुच्छमना लोगों
के ऊपर उलटी दया उत्पन्न होती है । मुझको अपनी
निर्धनता केवल उस समय अति गदाती है जब किसी
सत्पुरुष कुलीन को द्रव्य के अभाव से दुःखी देखता
है । उस समय मुझको निस्संदेह यह हाथ होती है कि
आज द्रव्य होता तो मैं उसकी सहायता करता ।

द. ऋषि — आपके मन में इसका खेद होता है
तो मानसिक पुण्य आपको हो चुका । और आपकी
मनोवृत्ति ऐसी है तो वह अवश्य एक न एक दिन
फलवती होगी ।

प. ऋषि — सज्जनगण स्वयं दुर्दशाग्रस्त रहते
हैं, तब भी उनसे जगत् में नाना प्रकार के कल्याण ही
होते हैं ।

द्युमत्सेन — अब मुझसे किसी का क्या कल्याण
होगा ! बुढ़ापे से शरीर में पोरुष हुई नहीं । एक आँख
थी सो भी गई । तीर्थ भ्रमण और देवदर्शन से भी
रहित हुए ।

प. ऋषि — आपके नेत्रों के इतने निर्बल हो
जाने का क्या कारण है ? अभी कुछ आपकी अवस्था
अति वृद्ध नहीं हुई है ।

द्युमत्सेन — वही कारण जो हमने कहा था ।
(उदास होकर) पुत्रशोक से बढ़कर जगत् में कोई शोक
नहीं है । गणक लोगों ने यह कहकर कि तुम्हारा पुत्र
अल्पायु है, मेरा चित्त और भी तोड़ रखा है । इसी से न
मैं ऐसा घर, ऐसी लक्ष्मी सी बहू पाकर भी अभी विवाह
संबंध नहीं स्थिर करता ।

द. ऋषि — अहा ! तभी महाराज, अश्वपति
और उनकी रानी इस संबंध से इतने उदास हैं । केवल

कन्या के अनुरोध से संबंध करने के लिये कहते हैं ।

(हार्ननाम गान करते हुए नारद जी का आगमन)

नारद — (नाचते और वीणा बजाते हुए)

(चाल नामकीर्तन महाराष्ट्रीय कटाव)

जय केशव करुणाकंद । जय नारायण गोविंद ।
जय गोपीपति राधानायक ।

कृष्णकमल लोचन सुखदायक ॥

माधव सुरपति रावण-हंता ।

सीतापति ऋदुपति श्रीकंता ॥

बुद्ध नृसिंह परशुधर बावन ।

मच्छ-कच्छा-बपुधर जग-पावन ॥

कालिक बराह मुकुन्दा । जय केशव करुणा कंद ॥

जय जय विष्णु भक्त भयहारी । बृंदावन वैकुण्ठ-बिहारी ॥

जसुदा-सुअन देवकीनंदन । जगबंदन प्रभु कंसनिर्कंदन ॥

शंख-चक्र-कौमोदकि-धारी । वंशीधर बकवदन बिहारी ॥

जय बृंदावन चंद । जय केशव करुणा-कंद ॥

जय नारायण गोविंद ।

(सब लोग प्रणाम करके बैठते हैं)

द्युमत्सेन — हमारे धन्य भाग कि इस
दीनावस्था में आपके दर्शन हुए ।

नारद — राजन् ! तुम्हारे पास सत्यधन,
तपोधन, धैर्यधन अनेक धन हैं, तुम क्यों दीन हो ।

और आज हम तुमको एक अति शुभ संदेश देने को आए
हैं । तुम्हारे पुत्र का विवाह संबंध हम अभी स्थिर किए

आते हैं । सावित्री के पिता को भी समझा आए हैं कि
उनकी कन्या सावित्री अपने उज्ज्वल पातिव्रत धर्म के

प्रभाव से सब आपत्तियों को उल्लांघन करके सुखपूर्वक
कालयापन करेगी और अपने पवित्र चरित्र से दोनों कुल

का मान बढ़ावेगी । तुमसे भी यही कहने आए हैं कि
सब संदेह छोड़कर विवाह का संबंध पक्का करो ।

द्युमत्सेन — मुझको आपकी आज्ञा कभी
उल्लांघन नहीं है । किन्तु —

नारद — किंतु फिंतु कुछ नहीं । विशेष हम इस
समय नहीं कह सकते । इतना मात्र निश्चय जानो कि

अन्त में सब कल्याण है ।

द्युमत्सेन — जो आज्ञा ।

नारद — अब हम जाते हैं ।

(गान चाल भैरव, ताल इकताला वा बाउल
भजन की चाल पर ताल आड़ा)

बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम परम मधुर नाम ।

गोविंद-२ केशव केशव गोपाल गोपाल माधव माधव ।

हरि हरि हरि वंशीधर श्याम ।

नारायण वासुदेव नंदनन्दन जगबंदन ।

वृंदावन चारु चंद गारे गुंजदाम ।

'हरीचंद' जन रंजन सरन सुखद मधुर मूर्ति ।

राधापति पूर्ण करन सतत भक्त काम ॥

(नृत्य और गीत)

(जवनिका गिरती है)



सबै जाति गोपाल की

संवादात्मक प्रहसन है । रुद्र जी के अनुसार अंग्रेजी के कर्टन रेजर के अनुसारण पर लिखा गया है । हरिश्चंद्र मैगजीन जिल्द संख्या ६ नवम्बर १८७३ में पहली बार छपा । "सबै जाति गोपाल की" "वसंत पूजा" "ज्ञाति विवेकिनी सभा", संड. भट्टयो: संवाद" ये चारों सं. १९३० से ८० के बीच कभी प्रकाशित "प्रहसन पंचक" में संग्रहीत हैं ।

— सं०

सबै जात गोपाल की

(एक पंडित जी और एक क्षत्री आते हैं)

क्षत्री — महाराज देखिये बड़ा अंधेर हो गया कि ब्राह्मणों ने व्यवस्था दे दी कि कायस्थ भी क्षत्री हैं । कहिए अब कैसे कैसे काम चलेगा ।

पंडित — क्यों इसमें दोष क्या हुआ ? "सबै जात गोपाल की" और फिर यह तो हिंदुओं का शास्त्र पनसारी की दूकान है और अक्षर कल्प वृक्ष है इस में तो सब जात की उत्तमता निकल सकती है पर दक्षिणा आपको बाएं हाथ से रख देनी पड़ेगी फिर क्या है फिर तो "सबै जात गोपाल की ।"

क्ष. — भला महाराज जो चमार कुछ बनना चाहे तो उसको भी आप बना दीजिएगा ।

पं. — क्या बनना चाहे ?

क्ष. — कहिये ब्राह्मण ।

पं. — हां, चमार तो ब्राह्मण हई है इस में क्या संदेह है, ईश्वर के चर्म से इनकी उत्पत्ति है, इनको यह दंड नहीं होता . चर्म का अर्थ ढाल है इससे ये दंड रोक लेते हैं । चमार में तीन अक्षर है 'च' चारों वेद 'म' महाभारत 'र' रामायण जो इन तीनों को पढ़ावे वह चमार । पद्मपुराण में लिखा है कि इन चर्मकारों ने

एक बेर बड़ा यज्ञ किया था, उसी यज्ञ में से चर्मण्वती निकली है । अब कर्म भ्रष्ट होने से अन्त्यज हो गए हैं नहीं तो हैं असिल में ब्राह्मण, देखो रैदास इन में कैसे भक्त हुए हैं लाओ दक्षिणा लाओ । 'सबै.'

क्ष. — और डोम ।

पं. — डोम तो ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों कुल के हैं, विश्वामित्र-वशिष्ट वंश के ब्राह्मण डोम हैं और हरिश्चंद्र और वेणु वंश के क्षत्रिय हैं । इस में क्या पूछना है लाओ दक्षिणा 'सबै जा.' ।

क्ष. — और कृपा निधान ! मुसलमान ।

प. — मीयाँ तो चारों वर्णों में हैं । वाल्मीकि रामायण में लिखा है जो वर्ण रामायण पढ़े मीयाँ हो जाय ।

पठन द्विजो वाग ऋषभत्वमीयात् ।

ख्यात् क्षत्रियों भूमिपतित्वमीयात् ॥

अल्लहोपनिषत् में इनकी बड़ी महिमा लिखी है । बाराका में दो भाँति के ब्राह्मण थे जिनको बलदेव जी (मुशली) मानते थे । उनका नाम मुशलिमान्य हुआ और जिन्हें श्रीकृष्ण मानते उनका नाम कृष्णमान्य हुआ । अब इन दोनों का अपभ्रंश मुसलमान और कुस्तान हो गया ।

क्ष.— तो क्या आप के मत से कृस्तान भी ब्राह्मण हैं ?

पं.— हई हैं इसमें क्या पूछना है — ईशावास उपनिषत् में लिखा है कि सब जगत ईसाई है ।

क्ष.— और जैनी ?

पं.— बड़े भारी ब्राह्मण हैं । "अहैन्नित्यपि जैनशासनरता" जैन इनका नाम तब से पड़ा जब से राजा अलर्क की सभा में इन्हें कोई जैन न कर सका !

क्ष.— और बौद्ध ?

पं.— बुद्धि वाले अर्थात् ब्राह्मण ।

क्ष.— और धोबी ।

पं.— अच्छे खासे ब्राह्मण जयदेव के जमाने तक धोबी ब्राह्मण होते थे । 'धोई कवि : क्षमापति :' । ये शीतला के रज से हुए हैं इससे इनका नाम रजक पड़ा ।

क्ष.— और कलवार ।

पं.— क्षत्री हैं, शुद्ध शब्द कुलवर है, भट्टी कवि इसी जाति में था ।

क्ष.— और महाराज जी कुहार ।

पं.— ब्राह्मण, घटखर्पर कवि था ।

क्ष.— और हां, हां वैश्या ।

पं.— क्षत्रियानी-रामजनी, और कुछ बनियानी अर्थात् वैश्या ।

क्ष.— अहीर ।

पं.— वैश्य-नंदादिकों के बालकों का द्विजाति संस्कार होता था । "कुरु द्विजाति संस्कारं स्वस्ति-वाचनपूर्वकं" भागवत में लिखा है ।

क्ष.— भुइहार ।

पं.— ब्राह्मण ।

क्ष.— दूसर ।

पं.— ब्राह्मण, भृगुवंश के, ज्वालाप्रसाद पंडित का शास्त्रार्थ पढ़ लीजिए ।

क्ष.— जाठ ।

पं.— जाठर क्षत्रिय ।

क्ष.— और कोल ।

पं.— कोल ब्राह्मण ।

क्ष.— धरिंकार ।

पं.— क्षत्रिय शुद्ध शब्द धर्यंकार है ।

क्ष.— और कुनबी और भर और पासी ।

पं.— तीनों ब्राह्मण वंश में हैं, भरद्वाज से भर, कन्व से कनुबी, पराशर से पासी ।

क्ष.— भला महाराज नीचों को तो आपने उत्तम बना दिया अब कहिए उत्तमों को भी नीच बना सकते हैं ?

पं.— ऊँच नीच क्या, सब ब्रह्म है, आप दक्षिणा दिए चलिए सब कुछ होता चलेगा ।

क्ष.— दक्षिणा मैं दूँगा, आप इस विषय में भी कुछ परीक्षा दीजिए ।

पं.— पूछिए मैं अवश्य कहूँगा ।

क्ष.— कहिए अगरवाले और खत्री ।

पं.— दोनों बढई हैं, जो बढिया अगर चंदन का काम बनाते थे उनकी संज्ञा अगरवाले हुई और जो खाट बीनते थे वे खत्री हुए वा खेत अगोरने वाले खत्री कहलाए ।

क्ष.— और महाराज नागर गुजराती ।

पं.— सपेरे और तैली, नाग पकड़ने से नागर और गुल जलाने से गुजराती ।

क्ष.— और महाराज भुइहार और भाटिये और रोड़े ।

पं.— तीनों शूद्र, भूजा से भुइहार, भट्टी रखने वाले भाटिये, रोड़ा देने वाले रोड़े ।

क्ष.— (हाथ जोड़कर) महाराज आप धन्य हो लक्ष्मी वा सरस्वती जो चाहें सौ करे चलिए दक्षिणा लीजिये ।

पं.— चलो इस सब का फल तो यही था ।

(दोनों गए)



बसंत पूजा

संवादत्मक प्रहसन" हरिश्चंद्र मैगजीन" जि. सं. ७ अप्रैल मई १८७४ में छपा ।
" प्रहसन पंचक" में संग्रहीत दूसरा प्रहसन । — सं.

बसंत पूजा

(यजमान और सर्वभट्ट और मुद्रं भट्ट आते हैं)

यज.— महाराज इसका नाम बसंत पूजा क्यों है ?

स.भ.— महाराज इसमें बसंतों की बसंत ही में पूजा करते हैं विशेषतः हम लोग पूरे बसंतनंदन हैं क्योंकि तौकी बाई को बाईस रुपये मिलें, मियां खिलौना को पंढरह, लाट साहब को नजर भी पंढरी की असरफी, बड़े डाक्टर और वकीलों की फीस भी इतना ही, बीनकारों को दस, कवियों को पांच, चपरासियों को दो, कथा पर एक, पंडितों का ईमान विगड़वाई आठ आना पर हम को दुअन्नी, कठसरैया की माला और बेलकठा, सेती के चंदन घस मोरें ललुआ ।

मु.भ.— सत्यं सत्यं, हम चिल्लाने में किसी

मु.भ.— सत्यं सत्यं, हम चिल्लानो में किसी से कम नहीं, शास्त्र भी हमारा सर्वोपरि वेद, उस पर यह दशा ।

य.— अच्छा आज कोई इस समय के अनुसार सहिता पढ़िये तो हम विशेष दक्षिणा दें ।

स.भ.— तर आरंभ करा मुद्रं भट्ट ।

मु.भ.— हाँ भी हमणतो सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः ।

स.भ.— अँ आँ सहताक्षः नेत्रं कुत्रास्ति ।

मु.भ.— स्वकार्यदर्शने-मा भवतु प्रजा-दर्शनेन्सहस्रपातु (रेलादिना) सभूमिं सर्व्यतो वृत्तवा-अत्यतिष्ठदशांगुलं ।

स.भ.— हाँ हाँ अत्यतिष्ठत्साईं त्रिहस्तं वासपतवितस्तकं ।

मु.भ.— पुरीषः एवेदं सर्व्वं यदभूतयच्च भाव्यं ।

स.भ.— उत्तमद्यत्वस्ये शानो यदन्नेनातिरोहति ।

य.— सहस्र शीर्षा का अध्याय तो हमें भी यह याद है यह मत पढ़िये दूसरा चरछा निकालिये ।

मु.भ.— तरते नमः म्हणा ।

स.भ.— हाँ-राज्ञेनमः वणिजेनम गौराय-

चनमस्ताम्रायचनमः ह्रूणायचनमः कर्पद्दिने नमोनमः ।

मु.भ.— नमश्श्वभ्यश्शपतिभ्यश्चयोनमोनमः ।

य.— हमें यह नमोनमो नहीं सुहाती ।

स.भ.— तर देवता म्हणा-गौरी देवता हनुमान देवता जाम्बुवान देवता चंद्रमा देवता ।

मु.भ.— पूषा देवता मूका देवता ईसा देवता भूठा देवता मीठा देवता गोदेवता के भक्ष को देवता ।

स.भ.— प्रकाल देवता स्वार्थो देवता धोखा देवता जोषा देवता कोरा देवता शिष्टाचारा देवता ।

मु.भ.— लाटो देवता जज्जो देवता मजिस्ट्रो देवता पुलिस देवता डाक्टरो देवता ।

स.भ.— बंगला देवता सड़को देवता रेलो देवता तारो देवता धूआँकसो देवता ।

मु.भ.— कोतवालो देवता थानेदोरो देवता नाजिरो देवता कांस्टिबलो देवता देव ताकत का होअः ।

स.भ.— ईशावासमिदं सर्व्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत् ।

मु.भ.— माधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नस्सन्तोषधीः । मधुम्हणजे मद्य ।

स.भ.— सलामश्चते बंदगीचते वूसश्चते बंदाचते अडेसश्चते बालश्चते बलश्चते राज्यंचते पाटंचते कलाकौशल्यंचते स्वच्छ विहारश्चते लक्ष्मीचते विद्यांचते ।

मु.भ.— रिसेपुशनश्चते-इल्युमिनेशनश्चते टैक्शचते-बुगीचते जमाचते जुर्मानाचते ।

स.भ.— वैतुमालश्चते रसूमश्चते स्टाम्पश्चते नजरश्चते डालीश्चते इनामश्चते ।

मु.भ.— रेलतार का किराया च ते अगरैजी सोदे का दामश्चते रुईचते अनंचते ।

स.भ.— एकाचते बलंचते तनमनधन सर्व्वस्वंचते भवतु ।

मु.भ.— मूर्खताचमे कायरत्वंचमे धक्काचमे सर्व्वस्वंचते भवतु ।

मु.भ.— मूर्खताचमे कायरत्वंचमो धक्काचमे गरदनियाचमे हंसीचमे ।

गरदनियाचमे हंसीचमे ।

स. भ. — भ्रष्टताचमे आजादीचमे इंग्लि-
साइजजडत्वचमे वीएचमे एमएचमे ।

मु. भ. — गर्वचमे कमेटीचमे चुंगी किमिशनरीचमे
आनररी मेजिस्ट्रेटीचमे ।

स. भ. — खानाचमे टिकटचमे मद्यचमे
होटलचमे लेक्चरचमे ।

मु. भ. — स्टारअवइंडियाचमे कौंसिलमें-
वरत्वचमे उपाधिचमे ।

स. भ. — दबार में कुरसीचमे मुलाकातचमे
आनरचमे प्रतिष्ठाचमे ।

मु. भ. — फूलस्केपचमे हाफसिविलाइजेडत्वचमे
जितत्वममन्धवत्वचमे वूटचमे शिफारशन कल्पन्ताम् ।

य. — लीजिए महाराज दक्षिणा, कान की मैल
सब निकल गई अब नींद आती है बस धता ।

दोनों. — अहा हा इस गला फाड़ने का फल तो
यही था लाइये लाइये ।

सब जाते हैं ।



ज्ञाति विवेकिनी सभा

यह प्रहसन'' कविवचन सुधा'' जि. ८ सं. १०, ११ दिसम्बर १८७६ में प्रकाशित
है । '' प्रहसन पंचक'' में भी संग्रहीत है ।

ज्ञाति विवेकिनी सभा

(विपिन राम शास्त्री सभा के सब पंडितों से बोले)

'हे सभा के विराजमान पंडितों, आज हमने आप सब को इस लिए बुलाया है कि आप सब महात्मा हमारी इस विनती को सुनो और उस पर ध्यान दो । वह हमारी विनती यह है कि हमारे पुश्तैनी यज्ञमान गढ़ेरिये लोग जो परम सुशील और सत्कर्म लवलीन हैं इन्हें किसी वर्ण में दखिल करें । अरे भाइयो यह बड़े सोच की बात है कि हमारे जीते जी यह हमारे जन्म के यज्ञमान जो सब प्रकार से हमको मानते जानते हैं नीच के नीच बने रहें तो हमारी जिंदगी को धिक्कार है ।

कोई वर्ष ऐसा नहीं होता कि इन विचारों से दस बीस भेड़ा बकरा और कमरी आसनादि वस्तु और सीधा पैसा न मिलता होय । विचारे बड़े भक्तिमान और ब्रह्मण्य

होते हैं । इसलिये हमने इनके मूल पुरुष का निर्णय और वर्ण व्यवस्था लिखी है । हम को आशा है कि आप सब हमारी संमति से मेल करेंगे ! क्योंकि आज की हमारी कल की तुम्हारी । अभी चार दिन ही की बात है कि निवासीराम कायस्थ की गर्दत पर कैसा लंबा चौड़ा दस्तखत हमने कर दिया । और हम क्या आप सबने ही कर दिया है । रह गई पांडित्य सो उसे आज कलह कौन पूछता है गिनती में नाम अधिक होने चाहिए ।

मैंने कलिपुराण का आकाश खंड और निघंट पुराण का पाताल खंड देखा तो मुझे अत्यंत खेद भया कि यह हमारे यज्ञमान खासे अच्छे क्षत्री अब कालवशात् शूद्र कहलाते हैं । अब देखिए इनके नामार्थ ही से छत्रियत्व पाया जाता है । गढ़ारि अर्थात् गढ़ जो किला है उसके अरि, तोड़ने वाले, यह काम सिवाय क्षत्री के दूसरे का अरिनहीं है । यदि इसे गूढ़ारि का अपभ्रंश समझें तो यह

शब्द भी छत्रियत्व का सूचक है। गृह मत्स्य का नाम है तिनका और अर्थ लें तो यह भी ठीक है क्योंकि जल स्थल सब का आखेट करना क्षत्रियों का काम है। सब अर्थ अनुमान मात्र है मुख्य इनका नाम गरुड़ार्थ अर्थात् के वंशी या गरुड़ के भाई जो अरुण हैं उनके वंश में उत्पन्न। इसी से जो पंडित लोग इनका नाम गरलारि अनुमान करते हैं सो भी ठीक है क्योंकि गरलारि जो मरकत अथवा गरुड़ मणि है सो गरुड़ जी की कृपा से पूर्वकाल में इनके यहां बहुत थे और इनको सर्प नहीं काटता था और ये सर्पविष निवारण में बड़े कुशल थे इसी से गरुड़ार्थ कहलाते थे, अब गड़रिया कहलाने लगे हैं।

इन की पूर्वकालिक प्रशस्तता और कुलीनता का वृत्तांत तो आकाश खंड ही कहे देता है कि इनका मूल पुरुष उत्तम क्षत्री वर्ण था। यद्यपि इस अवस्था में सब प्रकार से हीन वैन हो गए हैं तथापि बहुत से क्षत्रियत्व के चिन्ह इनमें पाए जाते हैं। पहिले जब इनके पुरखे लोग समर भूमि में जुड़ते थे और लड़ने के लिए व्यूह रचना करते थे तो अपने योद्धाओं के चेतने और सावधान करने के लिए संस्कृत में यह बोली बोलते थे। मतोहि मतोहि दूढ़ दूढ़। अर्थात् मतवाले हो गए हो संभलों चौकस रहो सो इस वाक्य के अपभ्रंश का लेश अब भी इन लोगों में पाया जाता है। देखो जब ये भेड़ी और बकरियों को डांटने लगते हैं तो 'द्रिह द्रिह मतवाही मतवाही' कहने लगते हैं तो इनके क्षत्री होने में भला कौन संदेह कर सकता है। क्षत्री का परम धर्म वीरता, शूरता, निर्भयता और प्रजापालन है सो इनमें सहज ही प्राप्त है। सावन भादों की अंधेरी रात में जंगलों के बीच सिंह के समान गरजते हैं और अपनी प्रजा भेड़ी बकरी को बड़े भारी शत्रु वृक से बचाते हैं। शिकारी ऐसे होते हैं कि शशप्रभृति वन जंतुओं को दंडों से पीट लेते हैं। बड़े बड़े वेगवान आदेशकारी श्वान इनकी सेवा करते और इनकी छाग मेषमय सेना की रक्षा में उद्यत रहते हैं। और दुःख सुख की सहनशीलता इन्हीं के बाँटे पड़ी है। जेठ की धूप और सावन भादों की वर्षा और पुस माघ की तुषार के दुःख को सहकर न खेदित होना इन्हीं का काम है। जैसे इनके पुरखे लोग पूर्वकाल में बाणों से विदह होनों पर रण में पीछे का पांव नहीं देते थे ऐसे ही जब इनके पांव में भदई कुश का डामा तीव्र चुभ जाता है तो ये उस असह्य व्यथा को सहकर आगे ही बढ़ते हैं। और धरती को सुधारने में तो इनकी प्रत्यक्ष महिमा है कि जिस खेत में दो तीन रात ये गरुड़वंशी नृपति छागमयी सेना को लेकर

निवास करते हैं उस खेत के किसान को ऋद्धि सिद्धि से पूर्ण कर देते हैं। फिर वह भूमि सबल और विकार रहित हो जाती है और मोटे नाजों की कौन कहे उसमें गोधूम और इक्षुदंड अपरिमित उत्पन्न होता है तो इनसे बढ़कर भूमिपाल और प्रजारक्षक कौन होगा। और यज्ञ करना क्षत्रियों का मुख्य धर्म है सो इनमें भली भाँति पाया जाता है। शरत्कालीन और चैत्र मासिक नवरात्र में अच्छे हृष्ट पुष्ट छाग मेषों के वलि प्रदान से भद्रकाली और योगिनीगणको तृप्त करते हैं। और जब इनके यहां लोमकर्तनोत्सव होता है तो उस समय सब भाई बिरादर इकट्ठे होकर खान पान के साथ परम आनन्द मनाते हैं। व्यवहार कुशल ऐसे होते हैं कि इनकी सेना की कोई वस्तु व्यर्थ नहीं जाती। यहाँ तक कि मल, मूत्र, मांस, चाम, लोम उचित मूल्य से सब बिकता है। और बैरीहता ऐसे हैं कि सबसे बड़े भारी शत्रु को पहिले ही इन्होंने मार डाला है जैसे कहावत प्रसिद्ध है कि गड़रिया अपनी रिस को मनहीं में मार डालता है यदि ऐसा न करते तो इनकी प्रजा की ऐसी वृद्धि काहे को होती। ये ऐसे नीतिज्ञ होते हैं कि मेष छाग की शक्ति के अनुसार हलकी लकड़ी से उनकी ताड़ना करते हैं। घुड़ और नदी से बढ़कर परोपकारी साधू कोई नहीं होता सो वहीं इनका रात दिन निवास रहता है इसलिए ये गरुड़ार्थ सदैव सज्जनों की संगति में रहते हैं। मनोरंजन तंत्र में लिखा है कि पूर्व काल में यज्ञार्थ संचित पशुओं को राक्षस लोग उठा ले जाते थे तब उनकी रक्षा का सभार ऋषियों ने इन गरुड़वंशी क्षत्रियों को सौंपा तो इन्होंने राक्षसों को जीत कर यज्ञ पशुओं की रक्षा की तभी से छागमेष की रक्षा इनके कुल में चली आती है।

मैं अति प्रसन्न हुआ कि आप सबने सम्मति से एकता करके मेरी बात रख ली और तंत्र के इन प्रामाणिक वचनों को सच्चा किया।

मेषचारणसंस्कृता :	छागपालनतत्परा :
बभ्रूवुःक्षत्रियादेवि	स्वाचारप्रतिवर्जनात् ॥
कलीपचसहस्राब्दे	किंचिद्भनेगतेसति ।
क्षत्रियत्वगमिष्यति	ब्राह्मणानां व्यवस्थया ॥

(तदनंतर गरुड़वंशियों के संमुख होकर)

हे गरुड़वंशियों आज इस सभा के ब्राह्मणों ने तुम्हारे पुनः अपने क्षत्रिय पद के ग्रहण और धारण करने की अभिलाषा को पूर्ण किया। अब सब दक्षिणा लाओ हम सब पंडित जन आपस में बाँट लें और तुम्हारे क्षत्री बनने के कागद पर दस्तखत कर दें ॥

(कलऊ गड़रिया दक्षिणा देता है पंडित लोग लेते हैं)

कलहु— सब महरजवन से मोरी इहै बिनती हो कि किछु कहा कराना हो तवन पक्का पाढ़ा कर दिह : । हाँ महरज्जा जिहमा कोऊ दोषे न ।

विपिनराम— दोखै का सारे ?

कलहु— अरे इहै कि धरम सास्तरवा में होइ तौने एहिमा लिखिह : ।

विपिनराम— अरे सरवा धरमसास्तर फास्तर का नाम मत लेइ ताइ तोप कै काम चलाउ सास्तर का परमान दूँदे सरऊ तो तोहार कतहँ पता न लागी । अरे फिर आज काल धरमसास्तर को पूछत को है ।

कलहु— अरे महरज्जा पोथी पुरान के अश्लोक फश्लोक लिख दीहा इहै और का महरज्जा तोहार परजा हौ ।

विपिनराम— अरे सरवा परजा का नाँव मत

लेइ । अस कहु कि हम क्षत्री हई ।

कलहु— अच्छा महरज्जा हम क्षत्री हई तोहरे सबके पायन परत हई ।

विपिनराम— अच्छा चिरबूचिरबू सुखी रहा । अच्छा कलऊ तुम दोऊ प्रानी एक विरहा गाइ कै सुनाइ दो तो हम सब विदा होहिं ।

कलहु— बहुत अच्छा महरज्जा (अपनी स्त्री से) आउरे पवरी धीहर ।

(दोनों स्त्री पुरुष मिलकर नाचते गाते हैं)

आउ मोरी जानी सकल रसखानी ।

धरि कंध बहिया नाचु मनमानी ।

मैं भैलों छतरि तु धन छतरानी ।

अब सब छुटि गैरे कुल कै रे कानी ॥

धन धन बम्हना लै पोथिया पुरानी ।

जिन दियो छतरी बनाई जगजानी ॥

(सब का प्रस्थान भया)



संड भंडयो संवाद

"विद्यार्थी" में फाल्गुन सं. १९३५ मे प्रकाशित "प्रहसन पंचक" का चौथा प्रहसन । — सं.

संडभंडयो: संवाद :

संड:— कः कोत्र भो : ? (आप यहाँ कौन ?)

भंड:— अहमस्सि भंडाचार्यः । (मैं हूँ भण्डाचार्य ।)

सं:— कुतो भवान् ? (कहाँ से आ रहे हैं ?)

भं:— अहं अनादिवनसमाधित उत्थितः । (मैं अनादि कब्रिस्तान से उठा हूँ)

सं:— विशेषः । (विशेषता क्या है ?)

भं:— क अभिप्रायः । (क्या मतलब ?)

सं:— तर्हितु भवान् वसंत एव । (तब तो आप वसंत ही हैं ।)

भं:— अत्र कः सन्देशः केवल वसंतो, वसंतनन्दनः । (इसमें सन्देश क्या ? खालिस वसंत हूँ ; वसंतनन्दन हूँ ।)

सं:— मधुनन्दनोवा माधवनन्दनो वा ? (चैत्रनन्दन या वैशाखनन्दन ?)

भं:— आः किमामाक्षिपसि ! नाहं मधोः कैटभाग्रजस्य नन्दनः ! अहं तु हिंदू पदवाच्य अतएव माधवनन्दनः । (ओह ! आक्षेप क्यों करता है ? मैं मधुकैटभ के बड़े भाई का बेटा नहीं हूँ । मैं हिंदू नामधारी हूँ अतः माधवनन्दन हूँ ।)

सं.— तर्हितु सुस्वागतं ते । आगच्छ । माधवनन्दन । (तब आपका स्वागत है । आइए माधवनन्दन जी !)

भं.— हंत, प्रणामं करोमि । हा हंत । प्रणाम करता हूँ ।)

सं.— आस्यतां स्थीयतां च । (आइए, विराजिए !)

भं.— हं हं हं हं, भवानेव तिष्ठतु । (ह : ह : ह : आप भी बैठिए ।)

सं.— नायं कालो व्यर्थशिष्टाचारस्य, तत् स्थीयतां, इदमासनं (यह व्यर्थ शिष्टाचार का समय नहीं है अतः बैठिए । यह आसन है ।)

भं.— इदमासनमास्ये । (मैं इस आसन पर बैठा हूँ ।)

(उभावुपनिशतः)

(दोनों बैठते हैं ।)

सं.— किमर्थं निर्गतोसि ? (किसलिए निकले हैं ?)

भं.— कुतः जननीजठरकुहर पिटरात् गृहाद्वा । (कहाँ से ? घर से या माता की गर्भ गठरी से ?)

सं.— पूर्वतस्तु निर्गत एव विभासि, परतः पृच्छामि । (गर्भ गठरी से ही निकले जान पड़ते हों ; पहला प्रश्न फिर पूछता हूँ किस लिए निकले हों !)

भं.— होलिका रमणार्थं । (होली खेलने के लिए ।)

सं.— हहा ! अस्मिन् घोरतरसमयेपि भवादृशा होलिका रमणमनुमोदयति न जानासिह नायं समयो होलिकारमणस्य ? भारतवर्षधने विदेशगते, क्षुत् चामपीडिते च जनपदे, किं होलिकारमणेन ? (वाह ! ऐसे कठिन समय भी आप जैसे लोग होली खेलने का समर्थन करते हैं, यह नहीं जानते कि यह समय होली खेलने का नहीं । भारतवर्ष का धन विदेश जाने से जनता भूख प्यास से पीड़ित है । यह क्या होली खेलने का समय है ?)

भं.— अस्मादृशां गृहे सर्वदैव होलिका, नाहं लोकरोदनं शृणोमि । लोकास्तु सर्वदैव रोदनशीलाः । (हम जैसों के घर सदा होली हैं मैं लोगों का रोना नहीं सुनता । लोग तो हमेशा रोते ही रहने हैं ।)

भं.— तर्हि भवान् दुष्टवंशजातः । (तो आप दुष्ट के वंश में उत्पन्न हुए हैं ?)

भं.— नाहं दुष्टराजः । (मैं दुष्टराज नहीं हूँ ।)

सं.— नहि भो, मया उच्यते तर्हितु भवान् दुष्टवंशजातः ? (नहीं जी, मैंने तो यह पूछा कि क्या

आप दुष्ट के कुल में पैदा हुए हैं ?)

भं.— नाहं जयपुरी । (मैं जयपुरी नहीं हूँ ।)

सं.— कः कथयति भवान् जयपुरी, दिल्लीपुरी, गोरक्षपुरी, गिरिभारतीति ? (कौन कहता है कि आप जयपुरी, दिल्लीपुरी, गोरक्षपुरी, गिरि, भारती हैं ?)

भं.— तर्हि न सुदो मया दुष्टाशब्दार्थः । (तब तो मैंने दुष्ट शब्द का अर्थ नहीं समझा ।)

सं.— दुष्टानामन्या राक्षस्या एव होलिकापर्वं । (दुष्ट नाम की राक्षसी का ही यह होलिका पर्व है ।)

भं.— आः ! पुनरपि मामाक्षिपसि राक्षसवंशकलकेन ! मधुनन्दनः मेवोक्त नाहं मधु-वंशीय, माधवनन्दनोहं । (ओह, फिर राक्षस वंश का कलंक लगाकर मुझ पर आरोप करता है । मैंने मधुनन्दन कहा ; मैं मधुवंशी नहीं हूँ, माधवनन्दन हूँ ।)

सं.— भवतु, केन साकं रस्यसे होलिकाक्रीडः । (अच्छा, किसके साथ होली खेलेंगे ?)

भं.— यो मिलिष्यति-उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकं । (जो भी मिल जायगा, विश्व परिवार है उदार वृत्त वालों का ।)

सं.— कया सामग्रया भवान् रिरंसुः ? (किस चीज से आप होली खेलेंगे ?)

भं.— धवलधूलिरक्तपौडरश्यामपंकपीता-गरुजादिद्रव्यैः । अंतरं च गुलाश्च चोवा चंदनमेव च । अवीरः पिचकारी चेति वाक्यात् । (सफेद धूल, लालपाउडर, कालेकीचड़, पीले अगुरु आदि चीजों से और चोवा चंदन से भी । अवीर पिचकारी आदि वाक्यों से ।)

सं.— अधुना, भारते तादृक, कीर्तिकतरि न सति, धवलधूलिः कुत आगमिष्यति ? (आजकल भारत में वैसे कीर्तिशाली नहीं रह गये हैं, सफेद धूल कहाँ से आयेगी ?)

भं.— न ज्ञात भवता ? चुंगीरचित राजमार्गतः । (आपको मालूम नहीं ? चुंगी रचित शाही सड़क से ।)

सं.— भवतु राजमार्गतो, देवमार्गतो वा, किन्तु धवलधूलिः कुतस्तत्र निरंतरसेककर्मप्राप्त्युति ? (शाही सड़क हो या देवताओं की सड़क परंतु बराबर बहुत छिड़काव होने से वहाँ धूल कहाँ ?)

भं.— आः । यथार्थनामन् । नास्ति धूल्यभावः ? भारतेन तु प्रायः सर्वेषामेव धूर्तनेत्रैश्चक्षेपिता धूलि-मिलिष्यति । (हे अन्यर्थनाम । धूल की कमी नहीं है । भारत में प्रायः सभी की आँखों में धूर्तों द्वारा भोकी गयी धूल मिलेगी ।)

सं.— तर्हि रक्तपौडरकुतः मेडिकलहालात् ?

(तब लाल पाउडर कहाँ से आयेगा ? क्या मेडिकल हाल से ?)

भं.— न बुढ़ भो भवता, रक्त पौडर नाम अबीर : रक्तच तत पौडरचेति समास : । (आप नहीं जानते, लाल पाउडर का नाम अबीर है । लाल है जो पाउडर यह समास हुआ ।)

सं.— रक्तं, पौडरं चेति किं वस्तुद्वयं ? (लाल और पाउडर क्या दो वस्तुएँ हैं ?)

भं.— हा ! कीदृशो भवानल्पज्ञः ! नहि नहि, भो अन्यार्णविलेदक रक्त वर्णावच्छिन्नः पौडर, नाम विशिष्टजातिबोधकः स्वाभाविकधर्मवान् तत्त्वरूपध्वूर्णविशेषः । (आप भी कितने धोधा हैं । नहीं नहीं, दूसरे रंगों को पृथक् करने वाले लाल रंग से युक्त एक विशिष्ट वस्तु का बोधक सहज गुण वाले चूर्ण का नाम पाउडर है ।)

सं.— हंहो बुढ़ भवान् वैयाकरण नैययायिकश्च । (हाँ अब समझ आप वैयाकरण भी हैं और नैयायिक भी) ।

भं.— सत्यमेव, यत्र शादिकास्तत्रार्थिका इति हि प्रसिद्धिः (सच है, यह तो प्रसिद्ध ही है कि जहाँ शब्द शास्त्री वहाँ तर्क शास्त्री !)

भं.— भवतु रक्तपौडरं कृत आनेप्यसि, आयीणा शिरसि तदभावात् ? (अच्छा लाल पाउडर लाइयेगा कहाँ से आयों के सिर पर तो रह नहीं गया है)

भं.— हहहह, रक्त रजसोपि वारिद्धं मम नारीमंडस्य ! विशेषतः कुसुमाकरे ऋतो ? (अहाहा, मेरे नारीमंड के लिये रक्त रज का भी अभाव है, खासकर वसंत ऋतु में) ।

सं.— ज्ञातं परंतु श्यामपंकं किं जयचंद्रादारभ्य आर्यकुलानर्थविग्रहमूलजनकानोमुखात्, भारत ललनाया अश्रुपूर्णान्नेत्राद्वा ? (समझा, परंतु क्या जयचंद्र से शुरू कर आर्य वंश के लिये अनर्थ और विग्रह की जड़ के जन्मदाताओं के मुँह से या नारियों के आसू भरने नेत्रों से काला कीचड़ लाइयेगा ।)

भं.— नहि, गंधविक्रेतुर्हृदटपण्यात् । (नहीं,

इत्रफरोशों के बाजार से)

सं.— अग्ररुजंकुत, आर्याणां मुखं कान्ति समूहात् ? (अगुरु कहाँ से लाइयेगा ? क्या आयों के मुख की कान्ति से ?)

भं.— पांचलात्काश्मीरात् । अस्माकं तु सर्वत्रैव गतिः, यतः कुतश्चिद् गृहीत्वा क्रीडिष्यामि । (पंजाब से काश्मीर से ! हम लोगों की गति सभी जगह है अतः कहीं से भी लाकर खेलूंगा ।)

सं.— क्रीड निश्चितो भवान् कुत्रास्माकं देशचिंतातुराणां क्रीडाभिरुचिः ? (आप बेफिक्र खोलिये हम जैसे देश की चिन्ता से ग्रस्त लोगों को खेल का क्या शौक ?)

भं.— भवंतस्तु व्यर्थं देशचिंतापुराः भवच्चिंतया किं भविष्यति ? (आप व्यर्थ ही देश की चिन्ता से व्याकुल हैं, आपके चिन्ता करने से क्या क्या होगा ?)

सुखं क्रीड, रमस्व, खेल, कूदखेलम् याति, पुनः क्व युवतयः, रोदनेन न किमपि भविता (सुख से खेलिए कूदिए । फिर यौवन कहाँ ? रोने से क्या होता है) । भारतंतु होलिकाया मेव गता । अत्रतु जमघटो-धूलिखेल एवावशिष्यति, तन्मारय अनंतांगलाराज-धानीशिखरोपरि पोलिटिकल चिन्ता समूहः । (भारत ही होली झोंक जायगा । यहाँ तो जमघट छलका खेल ही बच रहेगा या चिन्ता रह जायगी भारत में अगणित अँगरेजों की राजधानी की चोटी पर बैठे हुए राजनीतिज्ञों के पास ।)

सं.— मित्र, परमयमुत्साहः किंमूलः इति जानासि वा त्वं ? (मित्र, उत्साह तो तुम्हारा खूब है परंतु क्या इसका कारण भी जानते हो) ।

भं.— नहि, लोके तु शिष्टाचार एव सर्वकर्म-प्रधानो मन्यते, अतः सएव मूलं भविता अवा पश्यचाधुनिकं विद्यार्थिनं । (नहीं, दुनिया के सभी कामों में शिष्टाचार ही प्रधान माना जाता है अतः वही कारण होगा या देख लो आजकल के विद्यार्थियों को) ।

सं.— भवतु तथैव करोमि । (अच्छा, ऐसा ही करूंगा) ।



रणधीर प्रेममोहिनी

लाला श्री निवासदास की रणधीर प्रेममोहिनी की प्रस्तावना ।

— सं.

रणधीर प्रेममोहिनी की

प्रस्तावना

नान्दी ।

(गाइए गनपति जगबन्दन । चाल में)

गीत ।

जय जय हरि निज जन सुखदाई ।

विश्व ब्रह्मा विभु त्रिभुवन राई ।

भक्त चकोर चन्द्र सुख रासी ।

घट घट व्यापक अज अविनासी ॥

आरज धर्म प्रचारक स्वामी ।

प्रेम गम्य प्रभु पन्नग गामी ।

करि करुणा प्रभु प्रीति प्रकासी ।

भारत सोक मोह तम नासी ॥

(जय जय इत्यादि)

(सूत्रधार आता है)

सूत्रधार— हां प्रभु ! "भारत सोक मोह तम नासी" देखो अंगरेंजों की दया से पश्चिम से विद्या का स्रोत प्रवाहित होकर सारे भारतवर्ष को प्लावित कर रहा है परन्तु हिन्दू लोग कमल के पते की भांति उसके स्पर्श से अब भी अलग हैं । (कुछ सोच कर) सचमुच नाटक के प्रचार से इस भूमि का बहुत कुछ भला हो सकता है । क्योंकि यहां के लोग कौतुकी बड़े हैं । दिल्लीगी से इन लोगों को जैसी शिक्षा दी जा सकती है वैसी और तरह से नहीं । तो मैं भी क्यों न कोई ऐसा नाटक खोलू जो आर्य लोगों के चरित्र का शोधक हो, (नेपथ्य की ओर देखकर) प्यारी ! आज क्या यहां न आओगी ।

(नटी आती है)

नटी— प्राणनाथ ! मैं तो आप ही आती था । कहिए क्या आज्ञा है ?

सूत्रधार— प्यारी ! आप इस आर्य समाज के सामने कोई ऐसा नाटक खेलो जिसका फल केवल चित विनोद ही न हो ।

नटी— जो आज्ञा परन्तु वह नाटक सुखान्त हो कि दुःखान्त ?

सूत्रधार— प्यारी ! मेरी जान तो इस संसार रूपी कपट नाटक के सूत्रधार ने जगत ही दुःखान्त बनाया । कैसा भी राजपाट उत्साह विद्या खेल तमाशा क्यों न हो अन्त में कुछ नहीं । सवका अन्त दुःख है इससे दुःखान्त ही नाटक खेलो ।

नटी— मेरी भी यही इच्छा थी । क्योंकि दुःखान्त नाटक का दर्शकों के चित्त पर बहुत देर असर बना रहता है ।

सूत्रधार— और नाटक भी कोई नवीन हो और स्वभाव विरुद्ध न हो । कहो तुम कौन सोचती हो ।

नटी— नाथ ! दिल्ली के रहस लाला श्रीनिवासदासजी का बनाया रणधीर प्रेममोहिनी नाटक क्यों न खेला जाय । मेरे जान तो उसका आजकल हिन्दी समाज में चरचा भी है । इससे वही अच्छा होगा ।

सूत्रधार— हां हां बहुत अच्छी बात है । उस नाटक में वे सब गुण हैं जो मैं चाहता हूं । तो चलो हम लोग शीघ्र ही वेश सजें । और खेल का आरम्भ हो ।

नटी— चलिए ।

(दोनो जाते हैं)

नट का गान ।

आवहु मिलि भारत भाई । नाटक देखहु सुख पाई

आवहु मिलि ।

जबसों बढ्यौ विषय इत मूरखता सब नैननि छाई ।

तबसों बाढ़े भांड भगनिया गनिका के समुदाई ॥

आवहु, मिलि ।

ऐसो कोउ न विनोद रयौ इन जामैं जीअ लुभाई ।

सज्जन कहन सुमन देसान के लायक दृग सुखदाई ॥

आवहु मिलि ।

ताही सों यह सब गुन पूरन नाटक रच्यौ बनाई ।

याहि देखि श्रम करहु सफल मम यह विनवत सिर नाई

आवहु, मिलि ।

श्री हरिश्चन्द्र

बनारस ।

श्री रामलीला

चम्पूविधा में वर्णित रामनगर की लीला का वर्णन । पहली बार इसे खंडूंग विलास प्रेस बांकीपुर ने छपा ।

— सं.

श्री रामलीला

अतिरोचक गद्य और पद्य में श्री राम जी की
बाललीला ।

भारत भूषण भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र कृत

जिसको हिन्दी भाषा के प्रेमी तथा रसिकजनों के
मनोविलास के लिये क्षत्रियपत्रिका सम्पादक

म. कु. बाबू रामदीन सिंह

ने प्रकाशित किया

पटना — 'खगविलास' प्रेस बांकीपुर ।

चंडीप्रसाद सिंह ने मुद्रित किया ।

१९०४

हरिश्चन्द्राब्द २०

प्रथम बार

दाम ॥)

श्री रामलीला ।

पद — हरि लीला सब विधि सुखदाई ।

कहत सुनत देखत जिअ आनत देति भगति अधिकाई ।

प्रेम बहत अघ नसत पुन्यरति जिय में उपजत आई ।

याही सों हरिचन्द करत स्मृति नित हरि चरित बड़ाई । १

गद्य — आहा ! भगवान की लीला भी कैसी दिव्य

और धन्य पदार्थ है कि कलिमल ग्रसित जीवों को सहज ही प्रभु की ओर भुका देती है और कैसा भी विषयी जीव क्यों न हो वो घड़ी तो परमेश्वर के रंग में रंग ही देती है । विशेष करके धन्य हम लोगों के भाग्य कि श्रीमान

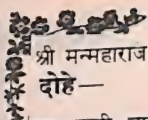
महाराज काशिराज भक्त शिरोमणि की कृपा से सब लीला विधिपूर्वक देखने में आती है । पहले

मंगलाचरण होकर रावण का जन्म होता है फिर देवगण की स्तुति और वैकुण्ठ और क्षीरसागर की भाँकी से नेत्र कृतार्थ होते हैं । फिर तो आनन्द का समुद्र श्री रामजन्म का महोत्सव है जो देखने ही से सम्बन्ध रखता है कहने

की बात नहीं है ।

कवित्त — राम के जनम मांहि आनंद उछाह
जौन सोई दरसायो ऐसी लीला परकासी है । तैसे ही
भवन दसरथ राज रानी आदि तैसे ही अनन्द भयो दुख
निसि नासी है ॥ सोहिलो बधाई द्विज दान गान बाजे
बजै रंग फूल वृष्टि चाल तैसे निकासी है । कलिजुग
त्रेता कियो नर सब देव कीन्हें आजु कासीराज जू
अजुध्या कीनी कासी है ॥ २ ॥

फिर श्री रामचन्द्र की बाललीला, मुण्डन कर्णबध
जनेऊ शिकार खेलना आदि ज्यों का त्यों होता है देखने
से मनुष्य भव दुख मूल से खोता है । फिर विश्वामित्र
आते हैं संग में श्री राम जी को सानुज ले जाते हैं । मार्ग
में ताड़िका सुबाहु का बध और फिर चरण रेणु से
अहिल्या का तारना । आहा ! धन्य प्रभु के पदपद्म
जिसके स्पर्श से कहीं मनुष्य पारस होता है देवता बनता
है कहीं पत्थर तरता है । इस प्रभु की दीन दयाल पर



श्री मन्महाराज की उक्ति ।

दोहे—

हम जानी तुम देर जो, लावत तारन माहि ।
पाहन हूँ ते कठिन गुनि, मो हिय आवत नाहि । १३
तारन मैं मो दीन के, लावत प्रभुत कित बार ।
कुलिस रेख तुव चरन हूँ, जो मम पाप पहार । १४
कवि की उक्ति ।

मो ऐसो को तारिबो, सहज न दीनदयाल ।
आहन पाहन वज्रहूँ, सो हम कठिन कृपाल । १५
परम मुक्तिहूँ सों फलद, तुअ पद पदुम मुरारि ।
यह जतावन हेत तुम, तारी गौतम नारि । १६
एहो दीनदयाल यह, अति अचरज की बात ।
तो पद सरस समुद्र लहि पाहन हूँ तरि जात । १७
कहा पखानहुँ ते कठिन, मो हियरो रघुवीर ।
जो मम तारन मैं परी, प्रभु पर इतनी भीर । १८
प्रभु उदार पद परसि जड़, पाहन हूँ तरि जाय ।
हम चेतन्य कहाइ क्यौं तरत न परत लखायं । १९
अति कठोर निज हिय कियो, पाहन सों हम हाल ।
जामैं कबहुँ मम सिरहूँ, पद रज देहि दयाल । २०
हमहूँ कछु लघु सिल न जो, सहजहिं दीनी तार ।
लगि है इत कछु बार प्रभु, हम तौ पाप पहारा । २१
फिर श्री रामचन्द्रजी सानुज जनकनगर देखने जाते हैं । पुरनारियों के मन नैन देखते ही लुभाते हैं ।

कवित्त—कोऊ कहै यहै रघुराज के कुंआर
बेऊ कोऊ ठाढ़ी एक टक देखै रूप घर मैं । कोऊ
खिरकीनी कोऊ हाट बाट धाई फिरै बावरी ह्वै पूछे गए
कौनसी डगर मैं ॥ हरीचन्द्र भूमै मतवारी दृग मारी
कोऊ जकी सी ठगी सी थकी सी कोऊ खरी एकै थर
में । लहर चढ़ी सी कोऊ जहर मढ़ी सी भई कहर पड़ी
है आजु जनक सहर मैं ॥ १२ ॥

फिर श्री राम जी फुलवारी में फूल लेने जाते हैं ।
उस समय फुलवारी की रचना, कुंजों की बनावट कल
के भीरों का नाचना, और चिट्ठियों का चहकना यह सब
देखने ही के योग्य है ।

इतने में एक सखी जो कुंजों में गई तो वहाँ रामरूप
देखकर बावली हो गई । जब वहाँ से लौटकर आई तो
और सखियाँ पूछने लगीं ।

कवित्त—कहा भयो कैसी है बतावै किन देह
दसा छन हीं में काहे बुधि सबही नसानी सी । अवहीं
तो हंसति हंसति गई कुञ्जन मैं कहा तित देख्यो जासों
ह्वै रही हिरानी सी ॥ हरीचन्द्र काहूँ कछु पढ़ि कियो
येना लागी ऊपरी बलाय कै रही है बिख सानी सी ।

अबन्ध समानी सी जगत सों भुलानी सी लुमानी सी ।

दिवानी सी सकानी सी बिकानी सी ॥ १३ ॥

यह सुनकर वह सखी उत्तर देती है ।

सवैया—जाहु न जाहु न कुञ्जन में उत नाहि
तौ नाहकर लाजहि खोलि हो । देखि जौ लैहो कुमारन
कों अवहीं भट लोक की लीकहि छोलि हो ॥ भूलि है
देह दसा सगरी हरिचन्द्र कछु को कछु मुख बोलि हो ।
लागि हैं लोग तमासे हहा बलि बावरी सी ह्वै बजारन
डोलि हो ॥ १४ ॥

कवित्त—जाहु न सयानी उत विरछन माहि
कोऊ कहा जानै कहा बोय भलक अमन्द है । देखत ही
मोहि मन जात नसे सुधि बुधि रोम रोम छकै ऐसो रूप
सुख कन्द है ॥ हरीचन्द्र देवता है सिद्ध है छलावाह
सहावा है कि रत्न है कि कीनो दृष्टि बन्द है । जादू है
कि जन्त्र है कि मन्त्र है कि तन्त्र है कि तेज है कि तारा
है कि रवि है कि चन्द्र है ॥ १५ ॥

वहाँ से दूसरे दिन श्री रामचन्द्र धनुषयज्ञ में आते हैं
और उनका सुन्दर रूप देखकर नर नारी सब यही
मनाते हैं ।

कवित्त—आए हैं सबन मन भाए रघुराज बेऊ
जिन्हें देख धीर नाहिं हिअ माहि धरि जाय । जनक
दुलारी जोग दूलाह सखी हैं एई ईस करे राउ आज प्रनहिं
बिसरि जाय ॥ हरीचन्द्र चाहै जौन होइ एई सिअ बरै
जो जो होइ बाधक विधाता करै मरि जाय । चाटि जाहिं
धुन याहि अवहीं निगोरो बटपारो दई मारो धनु आग
लगै जरि जाय ॥ १६ ॥

जब धनुष के पास श्रीरामजी जाते हैं तब जानकी जी
अपने चित्त में कहती हैं ।

सवैया—मो मन मैं निहचै सजनी यह तातहु ते
प्रन मेरो महा है । सुन्दर स्याम सुजान सिरामनि मो
हिअ मैं रमि राम रहा है ॥ रीत पतिव्रत राखि चुकी
मुख भाखि चुकी अपुनो दुलाहा है । चाप निगोड़ो अबै
जरि जाहु चढ़े तो कहा न चढ़ौ तो कहा है ॥ १७ ॥

लोगों को **बिनाित देख** श्री रामचन्द्र जी धनुष के पास
जाते हैं और उठाकर दो टुकड़े करके पृथ्वी पर डाल देते
हैं । बाजे और गीत के साथ जय जय की धुन आकाश
तक छा जाती है ।

कवित्त—जनक निरासा दुष्ट नृपन की आसा
पुरजन की उदासी सोक रनिवास मनु के । बीरन के
गरब गरूर भरपूर सब भ्रम आदि मुनि कौसिक के तनु
के ॥ हरीचन्द्र भय देव मन के पुहुमि भार बिकल
विचार सबै पुरनारी जनु के । सका मिथिलेस की सिया
के उर सूल सबै तोरि डारे रामचन्द्र साथै हर धनु
के ॥ १८ ॥

धनुष टूटते ही जगत जननी जानकी जी जयमाल लेकर भगवान को पहिनाने चलीं उसकी शोभा कैसे कही जाय ।

कवित्त — चन्दन की डारन में कुसुमित लता कैधौ पोखराज साखन में नव रत्न जाल है । चन्द्र की मरीचिन में इन्द्रधनु सोहै के कनक जुग कामा मधि रसन रसाल है ॥ हरीचन्द जुगल मृनाल में कुमुद बेलि मृगा की छरी में हार गूथ्यो हीर लाल है । कैधौ जुग हंस एके मुक्तमाल लीने के सिया जू करन मह चारु जयमाल है ॥१९॥

सवैया — टूटत ही धनु के मिलि मंगल गाइ उठीं सगरी पुरवाला । लै चलीं सीतहि राम के पास सबै मिलि मन्द मराल की चाला ॥ देखत ही पिय को हरिचन्द महा मुद पूरित गात रसाला । प्यारी ने आपुने प्रेम के जाल सी प्यारे के कण्ठ दई जयमाला ॥२०॥

बस चारों ओर आनन्द ही आनन्द हो गया ।

फिर अयोध्या से बरात आई यहाँ जनकपुर में सब व्याह की तयारी हुई । वैसी ही मण्डप की रचना वैसा ही सब सामान ॥

श्री रामचन्द्र दूल्हा बन कर चारों भाई बड़ी शोभा से व्याहने चले । मार्ग में पुर बनिता उनको देख कर आपुस में कहने लगीं ।

कवित्त — एई अहैं दसरथ नन्द सुखकन्द तारी गौतम की नारी इनहीं ने मारी राखसनि । कौशला के प्यारे अति सुंदर दुलारे सिया रूप रिफवारे प्रेमी जनन के प्रान धनि ॥ सुन्दर सरूप नैन बाँके मट गके हरिचन्द धुबुराली लटै लटकै अही सी बनि । कहा सबै उफकि बिलोकी बार बार देखो नजरि न लागै नै भरि के निहारी जनि ॥२१॥

सवैया — एई हैं गौतम नारि के तारक कौसिक के मुख के रखवारे । कौसला नन्दन नैन अनन्दन एई हैं प्रान जुड़ावन हारे ॥ प्रेमिन के सुखदेन महा हरिचन्द के प्रानहु ते अति प्यारे । राजदुलारी सिया जू के दूल्हा एई हैं राघव राज दुलारे ॥२२॥

मण्डप में पहुँच कर सब लोग यथास्थान बैठे । महाराज जनक ने यथा विधि कन्यादान दिया । जै जै की धुनि से पृथ्वी आकाश पूर्ण हो गया ॥

सवैया — बेदन विधि सों मिथिलेस करी सब व्याह की रीति सुहाई । मंत्र पढ़ै हरिचन्द सबै द्विज गावत मंगल देव मनाई ॥ हाथ में हाथ के मेलत ही सब बोलि उठे मिलि लोग लुगाई । जोरी जियो दुलहा दुलही की बधाई बधाई बधाई ॥२३॥

मौर लसें उत मौरी इतै उपमा इकट्ठ नहीं जातु लही

है । केसरी बागो बनो दोउ के इत चन्द्रिका चारु उतै कुलही है । मेंहदी पान महावर सों हरिचन्द महा सुखमा उलही है । लेहु सबै दूग को फल देखहु दूल्हा राम सिया दुलही है ॥२४॥

विधि सो जब व्याह भयो दोउ को मनि मण्डप मंगल चाँवर भे । मिथिलेस कुमारी भई दुलही नव दूल्हा सुंदर साँवर भे ॥ हरिचन्द महान अनन्द फलों दोउ मोद भरे जब भाँवर भे । तिनसों जग में कछ नाहिं बनी जे न ऐसी बनी पै निछावर भे ॥२५॥

फिर जेवनार हुई ! सब लोग भोजन करने को बैठे । स्त्रियाँ ढोल मंजीरा लेकर गाली गाने लगीं ।

सुन्दर श्याम राम अभिरामहिं गारी का कहि दीजे जू । अगुन सगुन के अनगन गुनगन कैसे के गनि लीजे जू ॥ मायापति माया प्रगटावन कहत प्रगट सुति चारी । जो पति पितु सिसू दोउ में व्यापत ताहि लागै का गारी । मात पिता को हत न निरनय जात न जानी जाई । जाके जिय जैसी रुचि उपजै तैसिय कहत बनाई ॥ अज के दसरथ सुने रहै किमि दसरथ के अज जाये । भूमिसुता पति भूमिनाथ सुत दोउ आप सोझाये ॥ धन्य धन्य कौसल्या रानी जिन तुम सो सुत जाओ । मात पिता सों बरन बिलच्छन श्याम सरूप सोहायो । कैकै की जो सुता कैकेई ताको सुकृत अपारा । भरतहि पर अतिही रुचि जाकी को कहि पावै पारा ॥ नाम सुमित्रा परम पवित्रा चारु चरित्रा रानी । अतिहि बिचित्रा एक साथ जेहि द्वै सन्तति प्रगटानी ॥ अति विचित्र तुम चारहु भाई कोउ साँवर कोउ गोरे । परी छाह के औरहि कारन जिय नहि आवत मोरे ॥ कौसलेस मिथिलेस दुहुन में कही जनक को प्यारे । कौसल्यासुत कौसलपतिमुत दुई एक की न्यारे ॥ चरु सों प्रगटे के राजा सों यह मोहि देहु बताई । हम जानी नृप बृद्ध जानि कछु । द्विज गन करी सहाई । तुमरे कुल की चाल अलौकिक बरनि कछु नहि जाई । भागीरथी धाइ सागर सों मिलि अनंद बढ़ाई । सूर बंस गुरु कुलहि चलायो छत्री सबहि कहाही । असमञ्जस को बंस तुम्हारो राघव संसय नाहीं ॥ कहलौं कहां कहत नहि आवै तुमदे गुन गन भारी । चिरजीवो दुलहा अरु दुलहिन हरीचंद बलिहारी ॥२६॥

फिर आनंद से बरात बिदा होकर घर आई । रानियों ने दुलहा दुलहिन को परछन करके उतारा । महाराज दशरथ ने सब का यथा योग्य आदर स्त्कार किया । अब हम भी श्री जनक लली नव दुलही की आरती करके बालकांड की लीला पूर्ण करते हैं ॥

आरती कीजे जनक लली की । राम मधुप मन

कमल कली की ॥ रामचंद्र मुख चंद्र चकोरी अंतर
सांवर बाहर गोरी । सकल सुमंगल सुफल फली की ।
पिय डूंग मृग जुग बंधन डोरी । पीय प्रेम रस रासि
किसोरी पिय मन गति विश्राम थली की । रूप रासि
गुन निधि जग स्वामिनि प्रेम प्रवीन राम अभिरामिनि
सरबस धन हरिचंद अली की ॥१२७॥

अय अयोध्या कांड की लीला प्रारंभ हुई । करुणा
रस का समुद्र उमड़ चला । श्री रामचंद्र जी के बनवास
का कैकेयी ने बर मांगा भगवान बन सिधारे राजा
दशरथ ने प्राण त्यागा ।

(बोहा ।

बिनु प्रीतम तून सम तज्यौ, तन राखी निज टेक
हारे अरु सब प्रेम पथ, जीते दसरथ एक ॥१२८॥

नगर में चारों ओर श्री रामजी का विरह छा गया
जहां सुनिए लोग यही कहते थे ॥

पद— राम बिनु पुर बसिए केहि हेत । धिक
निकेत करुणानिकेत बिनु का सुख इत बसि लेत ॥
देत साथ किन चलि हरि की उत जियत बादि बनि
प्रेत । हरीचंद उठि चलु अबहु बन रे अचेत चित
चेत ॥१२९॥

रामचंद्र बिनु अवध अंधेरो ॥ कछु न सुहात
सियाबर बिनु मोहि राज पाट घर घेरो ॥ अति दुख
होत राजमदिर लखि सूनो सांभ सबेरो । इबत अवध
विरह सागर में का आवै बनि बेरो । पसु पंछी हरि
बिनु उदास सब मनु दुख कियो बसेरो । हरीचंद
करुनानिधि केसव दै दरस दिन फेरो ॥१३॥

राम बिनु वादहि बीतत सासैं । धिक सुत पितु
परिवार राम जै बिनु हरि पद रति नासैं ॥ धिक अब
पुर बसिबो गर डारें मूठ मोह की फासैं । हरीचंद तित
चलु जित हरि मुख चंद मरीचि प्रकासै ॥१३१॥

राम बिनु अवध जाइ का करिए । रघुबर बिनु
जीवन सों तो यह भल जौ पहिलेहि मरिए ॥ क्यौ उत
नाहक जाइ दुसह विरहानल मैं नित जरिए । हरीचंद
वन बसि नित हरि मुख देखत जगहि बिसरिए ॥१३२॥

राम बिन सब जग लागत सूनो । देखत कनक भवन
बिनु सिय पिय होत दुसह दुख इनो ॥ लागत घोर
मसान हुं सो बढ़ि रघुपुर राम बिहूनो । कवि हरिचंद
जनम जीवन सब धिक धिक सियबर ऊनो ॥१३॥

जीवन जो रामहि संग बीतै । बिनु हरि पद रति
और बादि सब जनम गंवावत रीतै । नगर नारि धन
धाम काम सब धिक धिक बिमुख जौन सिय पीतै ।
हरीचंद चलु चित्रकूट भजु भव मृग बाधक
चीतै ॥१३४॥

फिर भरत जी अयोध्या आए और श्री रामचंद्र जी को
फेर लाने को बन गए । वहां उन की मिलन रहन
बोलन सब मानों प्रेम की खराद थी । वास्तव में जो
भरत जी ने किया सो करना बहुत कठिन है । जब श्री
रामचंद्र जी न फिरे तब पावरी ले कर भरत जी अयोध्या
लौट आए । पादुका को राज पर बैठा कर आप नंदिग्राम
में बनचर्या से रहने लगे । यह भरत जी की आरती कर
के अयोध्या कांड की लीला पूर्ण हुई ॥

आरति

आरति आरति हरन भरत की सीय राम पद पंकज
रत की । धर्म धुरंधर धीर वीर बर राम सीय जस
सौरभ मधुकर सील सनेह निबाह निरत की ॥ परम
प्रीति पग प्रगट लखावन निज गुन गन जन अघ
विद्रावन परतछ पीय प्रेम मूरत की । बुद्धि विवेक ज्ञान
गुन इक रस रामानुज संतन के सरबस हरीचन्द प्रभुत
विषय विरत की ॥१३५॥



नाटक

अथवा

दृश्य काव्य सिद्धान्त विवेचन

भारतेन्दु बाबू ने महज नाटक ही नहीं लिखे नाट्य कला पर भी एक स्वतन्त्र पुस्तक नाटक लिखी। जिसे उन्होंने संस्कृत और अंग्रेजी दोनों के नाट्य ग्रन्थों के आधार पर तैयार किया था। यह पुस्तक मेडिकल हाल प्रेस बनारस से सन् १८८३ में प्रकाशित हुई थी।

— सं.

उपक्रम

मुद्राराक्षस का जब मैंने अनुवाद किया तब यह इच्छा थी कि नाटकों के वर्णन का विषय भी इसके साथ दिया जाय। किंतु एक तो ग्रंथ के बढ़ने के भय से दूसरे कई मित्रों के अनुरोध से यह विषय स्वतंत्र, पुस्तकाकार मुद्रित हुआ। इसके लिखित विषय दशरूपक, भारतीय नाट्य शास्त्र, साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश, विल्सन्स हिंदू थिएटर्स, लाईफ आव दि एमिनेंट परसन्स, ड्रामेटिस्ट्स पैड नोवेलिस्ट, हिस्ट्री दि इटालिक थिएटर्स, और आर्य दर्शन से लिए गए हैं। आशा है कि हिंदी भाषा में नाटक बनाने वालों का यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी हो। एक तो मनुष्य बुद्धि ही भ्रमात्मिका है; दूसरे मेरी ठीक रुग्णावस्था में यह विषय लिखा गया है, इससे बहुत सी अशुद्धियां संभव हैं। आशा है कि सज्जनगण गुण मात्र ग्रहण करके मेरा काम सफल करेंगे। इसके निर्माण से मुझको जिससे सहायता मिली है उसको धन्यवाद देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि दक्षिण हस्त के परिवर्तन में वाम हस्त जो कार्य करे वह भी निजकृत ही है।

चैत्र शुक्ला १५, संवत् १९४०

हरिश्चन्द्र

समर्पण

हे मायाजवनिकाच्छन्न! जगन्नाटक-सूत्रधार! मदनरंग नायक! नट नागर!

जिसने इसे इतने बड़े संसार-नाटक को रचकर खड़ा किया है, जगद्गुरु! पाती वस्तु मात्र उसी को समर्पणीय है, विशेषकर नाटक संबंधी और वह भी उसी के एक अभिमानी जन का।

नाथ! आज एक सप्ताह होता कि मेरे इस मनुष्य जीवन का अंतिम अंक हो चुकता, किंतु न जाने क्या सोचकर और किस पर अनुग्रह करके उसकी आत्मा नहीं हुई। नहीं तो यह ग्रंथ प्रकाश भी न होने पाता। यह भी आप ही का खेल है कि आज इसके प्रकाश का दिन आया। जब प्रकाश होता है तो समर्पण भी होना अवश्य हुआ। अतएव —

त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये।

अपनाप हुए की वस्तु समझकर अंगीकार कीजिए।

यद्यपि संसार के कुरोग से मन प्राण तो नित्य ग्रस्त था ही किंतु चार महीने से शरीर से भी रोगग्रस्त तुम्हारा।

हरिश्चंद्र।

बपु लख चौगुली सजे नट सम रिझवन तोहि।

निरखि रीझि गति देहु कै खीझि निवारहु मोहि।।

कृष्ण त्वदीयपदपंकजपंजरते

अर्धत मे विश्रुत मानस राजहंसः।

प्राणप्रयाण समये कफज्वातपित्तैः

कंठ्यारोधनविधौ स्मरण कृतस्तेः।

चैत्र शुक्ला पूर्णिमा
महापास की समाप्ति
संवत् १९४०

नाटकः

अथवा

दृश्य श्रव्य

नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया। नट कहते हैं विद्या के प्रभाव से अपने वा किसी वस्तु के स्वरूप के फेर कर देने वाले को, वा स्वयं दृष्टि रोचन के अर्थ फिरने को। नाटक में पात्रगण अपना स्वरूप परिवर्तन करके राजादिक का स्वरूप धारण करते हैं वा वेषविन्यास के पश्चात् रंगभूमि में स्वकीय कार्य-साधन के हेतु फिरते हैं। काव्य दो प्रकार के हैं — दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य वह है जो कवि की वाणी को उसके हृदयगत आशय और हाव-भाव सहित प्रत्यक्ष दिखला दे। जैसा कालिदास ने शाकुंतल में भ्रमर के आने पर शाकुंतला की सूधी चितवन से

कटाक्षों का फेरना जो लिखा है, उसको प्रथम चित्रपटी द्वारा उस स्थान का शाकुंतला वेषसज्जित स्त्री द्वारा उसके रूप-यौवन और वनोचित श्रृंगार का, उसके नेत्र, सिर, हस्तचालनादि द्वारा उसके आंगमंगी और हाव-भाव का; तथा कवि-कथित वाणी के उसी के मुख से कथन द्वारा काव्य का, दर्शकों के चित्त पर छवित कर देना ही दृश्यकाव्यत्व है। यदि श्रव्यकाव्य द्वारा ऐसी चितवन का वर्णन किसी से सुनिए या ग्रंथ में पढ़िए तो जो काव्य-जनित आनंद होगा, यदि कोई प्रत्यक्ष अनुभव करा दे तो उससे चतुर्गुणित आनंद होता है दृश्यकाव्य की सज्जा रूपक है। रूपकों में नाटक ही सबसे मुख्य है। इससे रूपक मात्र को नाटक कहते हैं। इसी विद्या का नाम कुशीलवशास्त्र भी है। ब्रह्मा, शिव, भरत, नारद, हनुमान, व्यास, वाल्मीकि, लव-कुश, श्रीकृष्ण, अर्जुन, पार्वती, सरस्वती, और तुंबुरु

आदि इसके आचार्य हैं। इनमें भरतभूमि इस शास्त्र के मुख्य प्रवर्तक हैं।

अर्थ भेद

नाटक शब्द की अर्थग्राहिता यदि रंगस्य खेल ही में की जाय तो हम इसके तीन भेद करेंगे। काव्यमिश्र, शुद्ध कौतुक और भ्रष्ट। शुद्ध कौतुक यथा कठपुतली वा खेलौने आदि से सभा इत्यादि का दिखलाना, गुँगे-बहिरें का नाटक, बाजीगरी वा चोड़े के तमाशे में संवाद, भूत-प्रेतादि की नकल और सभ्यता की अन्याय दलितगियों को कहेंगे। भ्रष्ट अर्थात् जिनमें अब नाटकत्व नहीं शेष रहा है यथा भाँड़, इन्द्रसभा, गस, यात्रा, लीला और भाँकी आदि। पारसियों के नाटक, महाराष्ट्रों के खेल आदि यद्यपि काव्यमिश्र हैं तथापि काव्यहीन होने के कारण वे भी भ्रष्ट ही समझे जाते हैं। काव्यमिश्र नाटकों को दो श्रेणी में विभक्त करना उचित है। प्राचीन और नवीन —

अर्थ प्राचीन

प्राचीन समय में अभिनय नाट्य, नृत्य, नृत्त, तांडव और लास्य इन पाँच भेदों में बँटा हुआ था। इनमें नृत्य भावसहित नाचने को, नृत्त केवल नाचने को और तांडव और लास्य भी एक प्रकार के नाचने ही को कहते हैं। इससे केवल नाट्य में नाटक आदि का समावेश होगा; शेष चारों नाचनेवालों पर छोड़ दिए जायँगे। नाट्य रूपक और उपरूपक में दो भेदों में बँटा है। रूपक के दश भेद हैं। यथा —

१ नाटक।

काव्य के सर्वगुण संयुक्त खेल को नाटक कहते हैं। इसका नायक कोई महाराज (जैसा दुष्यन्त) वा ईश्वरांश (जैसा श्रीराम) वा प्रत्यक्ष परमेश्वर (जैसा श्रीकृष्ण) होना चाहिए। रस शृंगार वा वीर। अंक पाँच के ऊपर और दस के भीतर। आख्यान मनोहर और अत्यन्त उज्ज्वल होना चाहिए। उदाहरण शाकुन्तल, वेणीसंहार आदि।

२ प्रकरण।

यह और बातों में नाटक के तुल्य होना चाहिए

किन्तु इसका उपाख्यान लौकिक हो। नायक कोई मन्त्री धनी वा ब्राह्मण हो। इसकी नायिका मंत्रिकन्या, किसी के घर में आश्रित भाव से रहनेवाली, वा वेश्या हो। प्रथमावस्था में शुद्ध और द्वितीयावस्था में प्रकरण की संकर संज्ञा होती है। उदाहरण मल्लिकामारुत मालतीमाधव और मृच्छकटिक।

३ भाण।

भाण में एक ही अंक होता है। इसमें नट ऊपर देख देख कर जैसे किसी से बात करे आप ही सारी कहानी कह जाता है। बीच में हँसना, गाना, क्रोध करना, गिरना इत्यादि आप ही दिखलाता है। इसका उद्देश्य हँसी, भाण उत्तम और बीचों बीच में संगीत भी होता है। उदाहरण "विषस्य विष-मोषधम्।"

४ व्यायोग

युद्ध का निदर्शन, स्त्री पात्र रहित और एक ही दिन की कथा का होता है। नायक कोई अवतार^१ वा वीर होना चाहिए। ग्रंथ नाटक की अपेक्षा छोटा। उदाहरण 'धनंजय विजय।'

५ समवकार

यह तीन अंक में हो। इसमें १२ तक नायक हो सकते हैं। कथा देवी हो। छन्द वैदिक हों। युद्ध आश्चर्य मात्रा इत्यादि इसमें मिश्रलाई जाती हैं। उदाहरण भाषा में नहीं है।

६ डिम

यह भी वैसा ही किन्तु इसमें उपद्रव दर्शन विशेष होता है। अंक चार नायक देवता वा दैत्य का अवतार। (उदाहरण नहीं)।

७ ईहामृग

चार अंक, नायक ईश्वर वा अवतार। नायिका देवी। प्रेम इत्यादि वर्णित होता है। नायिका द्वारा युद्धादि कार्य सम्पादन होता है। (उदाहरण नहीं)।

८ अंक।

एक ही अंक में खेल दिखलाना। नायक गुणी और आख्यान प्रसिद्ध हो। (उदाहरण नहीं)।

(१) अवतारों का वर्णन भक्तमाल में एक ही छप्पय में लिखा है :—

जय जय मीन बराह कमठ नरहरि बलि बावन ।
परसुराम रघुवीर कृष्ण कीरति जगपावन ॥
बौध कलंकी व्यास पृथु हरि हंस मन्वंतर ।
यज्ञ ऋषभ हयग्रीव ध्रुवहि वर देन धन्वंतर ॥
बद्रीपति दत्त कपिल देव सनकादिक करुणा करौ ।
चौबीस रूप लीला रुचिर अग्रदास उर पद धरौ ॥

९ वीथी ।

भाण की भाँति एक अंक में । इसमें दो पुरुष आकर बात कर सकते हैं । अपनी वार्ता में विविध भाव द्वारा किसी का प्रेम वर्णन करेंगे किन्तु हँसते जायेंगे (उदाहरण नहीं) ।

१० प्रहसन

हास्यरस का मुख्य खेल । नायक राजा वा धनी वा ब्राह्मण वा धूर्त कोई हो । इसमें अनेक पात्रों का समावेश होता है । यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए किन्तु अब अनेक दृश्य दिये बिना नहीं लिखे जाते । उदाहरण — हास्यार्णव, वैदिकी हिंसा, अन्धेर नगरी ।

महानाटक ।

नाटक के लक्षणों से पूर्ण ग्रंथ यदि दश अंकों में पूर्ण हो तो उसको महानाटक कहते हैं ।

अथ उपरूपक ।

उपरूपक के अठारह भेद हैं । यथा नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेक्षण, रासक, संलापक, श्रीगदित (श्रीरासिका) शिल्पक, विलासिका, दुर्मलिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका ।

नाटिका ।

नाटिका में चार अंक होते हैं और स्त्री पात्र अधिक होते हैं तथा नाटिका की नायिका कनिष्ठा होती है अर्थात् नाटिका के नायक की पूर्व प्रणयनी के वश में रहती है । उदाहरण रत्नावली, चन्द्रावली इत्यादि ।

त्रोटक ।

इसमें सात-आठ नौ या पाँच अंक होते हैं । और प्रायः प्रति अंक में विद्वेषक होता है । नायक दिव्य मनुष्य होता है । उदाहरण विक्रमोर्वशी ।

गोष्ठी ।

नौ या दस साधारण मनुष्य और पाँच छः स्त्री जिसमें हों और कैशिकी वृत्ति तथा एक ही अंक हो । (उदाहरण नहीं) ।

सट्टक ।

जो सब प्राकृत में हो और प्रवेशक विक्कम्मक जिसमें न हों और शेष सब नाटिका की भाँति हो वह सट्टक है । उदाहरण कर्पूरमंजरी ।

नाट्यरासक ।

इसमें एक अंक, नायक उदात्त, नायिका बासकसज्जा, पीठमर्द उपनायक, और अनेक प्रकार के गान नृत्य होते हैं ।

अथ शेष उपरूपक ।

योंही थोड़े थोड़े भेद में और भी शेष उपरूपक होते हैं । न तो सबों के भाषा में उदाहरण हैं न इन सबों का काम ही विशेष पड़ता है इससे सविस्तार वर्णन नहीं किया गया ।

भरत मुनि ने उपरूपकों के भेद नहीं लिखे हैं । दश प्रकार के रूपक लिखकर नाटक के दो भेद और माने हैं यथा नाटिका और त्रोटक । 'मल्लिकामारुत' प्रकरण-कार दंडी कवि रूपकमात्र को मिश्रकाव्य नाम से व्यवहृत करते हैं ।

अथ नवीन भेद

आज कल योरोप के नाटकों की छाया पर जो नाटक लिखे जाते हैं और बंगदेश में जिस चाल के बहुत से नाटक बन भी चुके हैं वह सब नवीन भेद में परिगणित हैं । प्राचीन की अपेक्षा नवीन की परम मुख्यता वारम्बार दृश्यों के बदलने में है और इसी हेतु एक अंक में अनेक अनेक गर्भाकों की कल्पना की जाती है क्योंकि इस समय में नाटक के खेलों के साथ विविध दृश्यों का दिखलाना भी आवश्यक समझा गया है । इस अंक और गर्भाकों की कल्पना यों होनी चाहिए, यथा पाँच वर्ष के आख्यान का एक नाटक है तो उसमें वर्ष वर्ष के इतिहास के एक एक अंक और उस अंक के अंतःपाती विशेष-२ समयों के वर्णन का एक एक गर्भाक । अथवा पाँच मुख्य घटनाविशिष्ट कोई नाटक है तो प्रत्येक घटना के संपूर्ण वर्णन का एक-२ अंक और भिन्न-भिन्न स्थानों में विशेष घटनांतःपाती छोटी छोटी घटनाओं के वर्णन में एक एक गर्भाक । ये नवीन नाटक मुख्य दो भेदों में बँटे हैं — एक नाटक, दूसरा गीतिरूपक । जिनमें कथा भाग विशेष और गीति न्यून हों वह नाटक और जिसमें गीति विशेष हों वह गीतिरूपक । यह दोनों कथाओं के स्वभाव से अनेक प्रकार के हो जाते हैं किन्तु उनके मुख्य भेद इतने किये जा सकते हैं यथा — १ संयोगांत — अर्थात् प्राचीन नाटकों की भाँति जिसकी कथा संयोग पर समाप्त हो । २ वियोगांत जिसकी कथा अंत में नायिका वा नायक के मरण वा और किसी आपद घटना पर समाप्त हो । (उदाहरण 'रणधीर प्रेममोहिनी') ३ मिश्र — अर्थात् जिसके अंत में कुछ लोगों का तो प्राणवियोग हो और कुछ सुख पावें ।

इन नवीन नाटकों की रचना के मुख्य उद्देश्य ये होते हैं यथा — १ शृंगार २ हास्य ३ कौतुक ४ समाज संस्कार ५ देशवत्सलता । शृंगार और हास्य के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं, जगत में प्रसिद्ध है । कौतुकाविशिष्ट वह है जिसमें लोगों के

चित्तविनोदार्थ किसी यंत्रविशेष द्वारा या और किसी प्रकार अद्भुत घटना दिखाई जाय । समाज संस्कार के नाटकों में देश की कुरीतियों का दिखलाना मुख्य कर्तव्य कर्म है । यथा शिक्षा की उन्नति विवाह सम्बन्धी कुरीतिनिवारण अथवा धर्म सम्बन्धी अन्यान्य विषयों में संशोधन इत्यादि । किसी प्राचीन कथाभाग का इस बुद्धि से संगठन कि देश की उससे कुछ उन्नति हो, इसी प्रकार के अंतर्गत है । (इसके उदाहरण सावित्री चरित्र, दुःखिनीवाला, बाल्यविवाहविद्वेषक जैसा काम वैसा ही परिणाम, जय नारसिंह की, चक्षुदान इत्यादि ।) देशवत्सल नाटकों का उद्देश्य पढ़ने वालों वा देखने वालों के हृदय में स्वदेशानुराग उत्पन्न करना है और ये प्रायः करुणा और वीररस के होते हैं । (उदाहरण भारतजननी, नीलदेवी, भारतदुर्दशा इत्यादि) । इन पांच उद्देश्यों को छोड़कर वीर, सख्य इत्यादि अन्य रसों में भी नाटक बनते हैं ।

अथ नाटक रचना ।

प्राचीन समय में संस्कृत भाषा में महाभारत आदि का कोई प्रख्यात वृत्तान्त अथवा कवि-प्रौढोक्ति सम्भूत, किम्वा लोकाचार संघटित, कोई कल्पित आख्यायिका अवलम्बन करके, नाटक प्रभृति दशविध रूपक और नाटिका प्रभृति अष्टादश प्रकार उपरूपक लिपिबद्ध होकर, सहृदय सभासद लोगों की तात्कालिक रुचि अनुसार, उक्त नाटक नाटिका प्रभृति दृश्यकाव्य किसी राजा की अथवा राजकीय उच्चपदाभिषिक्त लोगों की नाट्यशाला में अभिनीत होते हैं ।

पुराचीनकाल के अभिनयादि के सम्बन्ध में तात्कालिक कवि लोगों की और दर्शक मंडली की जिस प्रकार रुचि थी वे लोग तदनुसार ही नाटकादि दृश्यकाव्य रचना कर के सामाजिक लोगों का चित्त विनोद कर गये हैं किन्तु वर्तमान समय में इस काल के कवि तथा सामाजिक लोगों की रुचि उस काल की अपेक्षा अनेकांश में विलक्षण है इससे संप्रति प्राचीन मत अवलम्बन करके नाटक आदि दृश्यकाव्य लिखना युक्तिसंगत नहीं बोध होता ।

जिस समय में जैसे सहृदय जन्म ग्रहण करें और

देशीय रीति नीति का प्रवाह जिस रूप से चलता रहे, उस समय में उक्त सहृदय गण के अन्तःकरण की वृत्ति और सामाजिक रीति पद्धति इन दोनों विषयों की समीचीन समालोचना करके नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना योग्य है ।

नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना हो तो प्राचीन समस्त रीति ही परित्याग करें यह आवश्यक नहीं है क्योंकि जो सब प्राचीन रीति वा पद्धति आधुनिक सामाजिक लोगों की मतपोषिका होंगी वह सब अवश्य ग्रहण होंगी । नाट्यकला कौशल दिखलाने को देश काल और पात्रगण के प्रति विशेष रूप से दृष्टि रखनी उचित है । पूर्वकाल में लोकातीत असंभव कार्य की अवतारणा सम्भगण को जैसी हृदयहारिणी होती थी वर्तमान काल में नहीं होती ।

अब नाटकादि दृश्यकाव्य में अस्वाभाविक सामग्री परिपोषक काव्य सहृदय सभ्य मंडली को नितांत अरुचिकर है, इस लिये स्वाभाविक रचना ही इस काल के सम्भगण की हृदयग्राहिणी है, इस से अब अलौकिक विषय का आश्रय करके नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना उचित नहीं है । अब नाटक में कहीं आशीः^१ प्रभृति नाट्यालंकार, कहीं 'प्रकरी'^२ कहीं 'विलोभन'^३ कहीं 'सम्फेट'^४ 'पंचसन्धि'^५ वा ऐसे ही अन्य विषयों की कोई आवश्यकता नहीं बाकी रही । संस्कृत नाटक की भाँति हिन्दी नाटक में इनका अनुसन्धान करना, वा किसी नाटकांग में इन को यत्न पूर्वक रखकर हिन्दी नाटक लिखना व्यर्थ है, क्योंकि प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा सम्पादन करने से उल्टा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है । संस्कृत नाटकादि रचना के निमित्त महामुनि भरत जो जो सब नियम लिख गए हैं उनमें जो हिन्दी नाटक रचना के नितांत उपयोगी हैं और इस काल के सहृदय सामाजिक लोगों की रुचि के अनुयायी हैं वे ही नियम यहाँ प्रकाशित होते हैं ।

अथ प्रतिकृति (Scenes)

किसी चित्रपट द्वारा नदी, पर्वत, वन वा उपवन

१. आशीः—नाटक में जो आशीर्वाद कहा जाय । यथा शाकुन्तल में 'ययातिरेव शर्मिष्ठा पत्युर्वहुमता भव' ।

२. 'प्रकरी नायकस्य स्यान्नाटकीय फलान्तरम्' ।

३. 'गुणाख्यानं विलोभनं' यथा वेणीसंहार में 'नाथ किं दुष्करं तुए परिकुविदेते' ।

४. 'सम्फेटो रोष भाषणम्' यथा वेणीसंहार में 'राजा — अरे मरुत्तनय ! वृद्धस्य राज्ञः पुरतो निन्दितमप्यात्मकर्म श्लाघयसि' ।

५. पंचसन्धि यथा — 'मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्ष उपसंहृतिः इति पंचास्य भेदाः स्युः' ।

आदि की प्रतिच्छाया दिखलाने को प्रतिकृति कहते हैं। इसी का नामान्तर अन्तःपटी वा चित्रपट वा दृश्य वा स्थान है, (१)। यद्यपि महामुनि भरत प्रणीत नाट्यशास्त्र में, चित्रपट द्वारा प्रासाद, वन उपवन किम्बा शैल प्रभृति की प्रतिच्छाया दिखाने का कोई नियम स्पष्ट नहीं लिखा है, किन्तु अनुधावन करने से बोध होता है कि तत्काल में भी अन्तःपटी परिवर्तन द्वारा वन उपवन वा पर्वतादि की प्रतिच्छाया अवश्य दिखलाई जाती थी। ऐसा न होता तो पौर जानपदवर्ग के अपवादमय से श्रीरामकृत सीतापरिहार के समय में उसी रंगस्थल में एक ही बार अयोध्या का राजप्रासाद और फिर उसी समय वाल्मीकि का तपोवन कैसे दिखलाई पड़ता, इससे निश्चय होता है कि प्रतिकृति के परिपत्तन द्वारा पूर्वकाल में यह सब अवश्य दिखलाया जाता था। ऐसे ही अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक के अभिनय करने के समय सूत्रधार एक ही स्थान में रह कर परदा बदले बिना कैसे कभी तपोवन और कभी दुष्यन्त का राजप्रासाद दिखला सकेगा (२) यही सब बात प्रमाण है कि उस काल में भी चित्रपट अवश्य होते थे। ये चित्रपट नाटक में अत्यन्त प्रयोजनीय वस्तु है और इन के बिना खेल अत्यन्त नीरस होता है।

जवनिका वा वाह्यपटी (Drop Scene) (३)

कार्य अनुरोध से समस्त रंगस्थल को आवरण करने के लिये नाट्यशाला के संमुख जो चित्र प्रक्षिप्त रहता है उसका नाम जवनिका वा वाह्यपटी है। जब रंगशाला में चित्रपट परिवर्तन का प्रयोजन होता है उस समय यह जवनिका गिरा दी जाती है। संस्कृत नाटकों में जवनिकापतन का नियम देखने से और भी प्रतीत होता है कि अन्तःपटी परिवर्तन द्वारा गिरि नदी आदि की प्रतिच्छाया उस काल में भी अवश्य दिखलाई जाती थी।

“ततः प्रविशन्त्यपटीक्षेपेणाप्सरसः”

अर्थात् जवनिका बिना गिराये ही (उर्वशी विरहातुर) अप्सरागण ने रंगस्थल में प्रवेश किया इत्यादि दृष्टान्त ही इस के प्रमाण हैं।

अथ प्रस्तावना।

नाटक की कथा आरंभ होने के पूर्व नटी विदूषक किम्बा पारिपाश्विक सूत्रधार से मिलकर प्रकृत प्रस्ताव विषयक जो कथोपकथन करें, नाटक के इतिवृत्त सूचक उस प्रस्ताव को प्रस्तावना कहते हैं। नाटक की नियमावली में मुनिवर भरतार्य ने पाँच प्रकार की प्रस्तावना लिखी हैं। वह पांचों प्रणाली अति आश्चर्य भरित और सुंदर हैं। उन में से चार हिंदी नाटक में भी व्यवहार की जा सकती हैं। सूत्रधार के पार्श्वचर बन्धु को पारिपाश्विक कहते हैं। पारिपाश्विक की अपेक्षा नट कुछ न्यून होता है। अब पूर्व लिखित पाँच प्रकार की प्रस्तावना लिखते हैं।

यथा १ उद्घात्यक, २ कथोद्घात, ३ प्रयोगातिशय ४ प्रवर्तक, और ५ अवगलित।

अथ उद्घात्यक।

सूत्रधार प्रभृति की बात सुनकर अन्य प्रकार अर्थ प्रतिपादनपूर्वक जहाँ पात्र प्रवेश होता है उसे उद्घात्यक प्रस्तावना कहते हैं।

उदाहरण। मुद्राराक्षस।

सूत्र.—प्यारी, मैंने जेति शास्त्र के चौसठों अंगों में बड़ा परिश्रम किया है। जो हो रसोई तो होने दो। पर आज गहन है यह तो किसी ने तुम्हें धोखा ही दिया है। क्योंकि—

चन्द्रबिम्बपूरन भए, क्रूर केतु हठ दाप।

बल सों करि है ग्रास कह—

(नेपथ्य में)

है ! मेरे जीते चंद्र को कौन बल से ग्रास कर सकता है ?

सूत्र.।—

जेहि बुध रच्छत आप।

१. वर्तमान समय में जहाँ-२ ये दृश्य बदलते हैं उसी को गभीक कहते हैं।

२. मुद्राराक्षस में भी कई उदाहरण इस के प्रत्यक्ष मिलते हैं। मलयकेतु राक्षस से मिलने जाता है यह कह कर उसी अंक में कहते हैं कि आसन पर बैठा राक्षस दिखलाई पड़ा। स्मृशान से चंदनदास को ले कर चांडाल कुद बढ़ कर पुकारता है कि भीतर कौन है अमात्य चाणक्य से कहो इत्यादि। अर्थात् पूर्व के दोनों दृश्य बदल कर राक्षस के और चाणक्य के गर के दृश्य दिखलाई पड़े। यह न हो तब तो नाटक निरर्थक हो जाते हैं जैसा रास में और महाराष्ट्रों के नाटक में शतरंजी और मशालची को दिखला कर नायिका नायक कहते हैं कि अहा देखो ! यह फुलवारी वा नदी कैसी सुंदर है। इससे जहाँ पात्र जैसे स्थान का अपने वाक्य में वर्णन करें वा जिस स्थान की वह कथा हो उसका चित्र पीछे पड़ा रहना बहुत ही आवश्यक है।

३. इस परदे पर कोई सुंदर मनोहर नदी पर्वत नगर इत्यादि का दृश्य वा किसी प्रसिद्ध नाटक के किसी अंक का चित्र दिखलाना अच्छा होता है। प्रणाली अति आश्चर्य भरित और सुंदर है। उन में से हिंदी नाटक में भी व्यवहार की जा सकती है। सूत्रधार के पार्श्वचर बन्धु को पारिपाश्विक कहते हैं। पारिपाश्विक की अपेक्षा

आप ।

यहाँ सूत्रधार ने तो ग्रहण का विषय कहा था किन्तु चाणक्य ने चंद्र शब्द का अर्थ चंद्रगुप्त प्रगट कर के प्रवेश करना चाहा, इसी से उद्घात्यक प्रस्तावना हुई ।
अथ कथोद्घात ।

जहाँ सूत्रधार की बात सुन कर उस के साथ वाक्य के अर्थ का मर्म-ग्रहण कर के पात्र प्रविष्ट होते हैं उसे कथोद्घात कहते हैं ।

यथा रत्नावली में सूत्रधार के इस कहने पर कि ईश्वरेच्छा से द्वीपान्तर किम्बा समुद्र के मध्य की वस्तु भी सहज में मिल जाती है, योगधरायण का आना ।

यहाँ सूत्रधार के वाक्य का मर्म यह था कि जिस नाटक में द्वीपान्तर की नायिका आती है, खेला जायगा इसी को समझ कर अन्य नट मन्त्री बन कर आया ।

अथ प्रयोगातिशय ।

एक प्रयोग करते करते घृणाक्षरन्याय से दूसरे ही प्रकार का प्रयोग कौशल में प्रयुक्त और उसी प्रयोग का आश्रय कर के पात्र प्रवेश करें तो उसको प्रयोगातिशय प्रस्तावना कहते हैं ।

जैसे कुदमाला नामक नाटक में सूत्रधार ने नृत्य प्रयोग के निमित्त अपनी भार्या को आटवान करने के प्रयोग विशेष द्वारा सीता और लक्ष्मण का प्रवेश सूचित किया ।^१ इस प्रकार से नाटक की प्रस्तावना शेष होने पर पात्र प्रवेश और नाटकीय इतिवृत्त की सूचना होगी ।

अथ चर्चिका

जब जब एक एक विषय समाप्त होगा जबनिका पाल कर के पात्रगण अन्य विषय दिखलाने को प्रस्तुत होंगे तब तब पटीक्षेप के साथ ही नेपथ्य में चर्चिका आवश्यक है, क्योंकि बिना उस के अभिनय शुष्क हो जाता है । जहाँ बहुत स्वर मिल कर कोई बाजा बजे या गान हो उस को चर्चिका कहते हैं । इस में नाटक की कथा के अनुरूप गीतों का वा रागों का बजना योग्य है । जैसे सत्यहरिश्चन्द्र में प्रथम अंक की समाप्ति में जो

चर्चिका बजे वह भैरवी आदि सबरे के राग की और तीसरे अंक की समाप्ति पर जो बजे वह रात के राग की होनी चाहिए ।

कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारतीवृत्ति ।

अथ कैशिकीवृत्ति ।

जो वृत्ति अति मनोहर स्त्री जनोचित भूषण से भूषित, और रमणी बाहुल्य नृत्य (२) गीतादि परिपूर्ण और भोगादि विविध विलास युक्त होती है उस का नाम कैशिकीवृत्ति है । यह वृत्ति शृंगाररसप्रधान नाटकों की उपयोगिनी है ।

अथ सात्वतीवृत्ति ।

जिस वृत्ति द्वारा शौर्य, दान, दया और दक्षिण्य प्रभृति से विरोचिता विविध गुणान्विता, आनन्द विशेषोद्भाविनी, सामान्य विलास युक्ता, विशेषा और उत्साहवर्दिनी वाग्भंगी नायक कर्तृक प्रयुक्त होती है उस का नाम सात्वतीवृत्ति है । वीररस प्रधान नाटक में इस की आवश्यकता होती है ।

अथ आरभटी ।

माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, आघात, प्रतिधात और बन्धनादि विविध रौद्रोचितकार्यवर्द्धित वृत्ति का नाम आरभटी है । रौद्र रस वर्णन के स्थल में इस वृत्ति पर दृष्टि रखनी चाहिये ।

अथ भारती ।

साधुभाषाबाहुल्य वृत्ति का नाम भारतीवृत्ति है । वीररस रस वर्णन स्थल में यह व्यवहृत होती है । नाटककर्ता ग्रन्थगुम्फन करने के समय यदि आचरस प्रधान नाटक लिखने की इच्छा करेंगे, तो उन को कैशिकी वृत्तिही में समस्त वर्णन करना योग्य है । आचरस वर्णन करने के समय ताल ठोकना, भगदर घुमाना, वा असिक्षेप प्रभृति विरोचितविषयक कोई भी वर्णन नहीं करना चाहिए । सात्वती प्रभृति वृत्तियों के पक्ष में भी ठीक यही चाल है ।

१. यहाँ प्रयत्नक अवगति के लक्षण ग्रंथकार ने भूल से नहीं लिखे । जहाँ वर्तमान समय को सूत्रधार वर्णन करता हो और उसी का सम्बन्ध लिये पात्र का प्रवेश हो उसे प्रवर्तक कहते हैं । जहाँ दूसरे समावेश से (उपमादि द्वारा) दूसरा कार्य सिद्ध हो (दूसरे का प्रवेश हो) उसे अवगलित कहते हैं । यथा शाकुंतल । विशेष विवरण संस्कृत ग्रंथों में है ।

२. हिंदुस्तान से नृत्यविद्या उठ गई, यह विद्या आगे इस देश में ऐसी प्रचलित थी कि सब अच्छे लोग इस को सीखते थे । इस के शास्त्र अब तक कहीं कहीं लब्ध होते हैं और उनसे इस विद्या का महत्व प्रत्यक्ष प्रगट होता है । संगीतशास्त्र का यह एक अंग है । वाद्य नृत्य और नाना यह तीनों वस्तु जिस में हो उसको संगीत संज्ञा है । इस काल में हिंदुस्तान में संगीत शास्त्र जानने वालों का कुछ आदर नहीं और लोग इस विद्य से उपहास करते हैं परन्तु ये ही इस देश के दुर्दिन का उदाहरण हैं, अब भी भारतवर्ष के जिस प्रदेश में यह विद्य बच गई है वहाँ बहुत अच्छी है जैसा कि १८९१ ई. में श्री महाराज व्यंकटगिरि के संग एक नर्तकी शास्त्री नाम

अथ उपक्षेप ।

अभिनयकार्य के प्रथम संक्षेप में समस्त नाटकीय विवरण कथन का नाम उपक्षेप है ।

पूर्वकाल में मुद्रायंत्र (१) की सृष्टि नहीं हुई थी, इस हेतु रंगस्थल में नट नटी सूत्रधार अथवा पारिपाश्विक कर्तृक उपक्षेप का उल्लेख होता था । आज कल मुद्रायंत्र के प्रभाव से इस की कुछ आवश्यकता नहीं रही प्रोग्राम बांट देने ही से वह काम सिद्ध हो जायगा ।

पूर्वकाल में नाटक मात्र में उपक्षेप उपन्यस्त होता था यह नियम नहीं था क्योंकि सब नाटकों में उपक्षेप का उल्लेख दिखाई नहीं पड़ता । वेणीसंहार में इस का उल्लेख है किन्तु यह भीमकृत उपन्यस्त हुआ है ।

यथा भीम :—

"लाक्षागृहानलविपान्नसभा प्रवेशैः प्राणेषु विलिखितेषु च नः प्रहृत्य आकृष्य पाण्डववधुपरिधानकेशान् सुस्था भवन्ति मयि जीवतिधार्तराष्ट्राः ?"

अथ प्ररोचना ।

जिस के अनुष्ठान द्वारा अभिनयदर्शन में सामाजिक लोगों की प्रवृत्ति जन्मती है उस का नाम प्ररोचना है । यह सूत्रधार, नट, पारिपाश्विक या नटी के द्वारा विगीत होती है ।

अथ नेपथ्य ।

रंगस्थल के पश्चात् भाग में जो एक गुप्त स्थान रहता है उस का नाम नेपथ्य है ।

अलंकारयिता इसी स्थान में पात्रों के वेश भूषणादि

से साजते हैं । जब रंगभूमि में आकाशवाणी देवीवाणी अथवा और कोई मानुषीवाणी का प्रयोजन होता है तो वह नेपथ्य ही में से गाई या कही जाती है ।

अर्थ उद्देश्यबीज ।

गुम्फित आख्यायिका के समग्र मर्म का नाम उद्देश्यबीज है । कवि जो इस का साधन न कर सकेंगा तो उस का ग्रंथ नाटक में परिगणित न होगा ।

अथ वस्तु ।

नाटकीय इतिहास अथवा कोई विवरण विशेष का नाम वस्तु है । वस्तु दो प्रकार की है यथा — आधिकारिक वस्तु और प्रासंगिक वस्तु ।

अथ प्रासंगिक वस्तु ।

जो समस्त इतिवृत्त का प्रधान नायक होता है उस को अधिकारी कहते हैं । अधिकारी का आश्रय करके जो वस्तु विरोचित होती है उसका नाम आधिकारिक वस्तु है । जैसा उत्तरचरित ।

अथ प्रासंगिक वस्तु ।

इस आधिकारिक इतिवृत्त का रस पुष्ट करने के लिये प्रसंगक्रम में जो वृत्त लिखा होता है, उस का नाम प्रासंगिक वस्तु है । जैसा बालरामायण में सूरीव विभीषणादि का चरित्र ।

अथ मुख्य उद्देश्य ।

प्रसंग क्रम से नाटक में कितनी भी शाखा प्रशाखा विस्तृत हों, और गर्भाक के द्वारा आख्यायिका के अतिरिक्त और कोई विषय वर्णित हो किन्तु मूल प्रस्तावनिष्कम्प रहें तो उस की रसपुष्टि करने को मुख्य उद्देश्य कहा जाता है ।

की आई थी । निस्सन्देह वह इस विधा में बहुत प्रवीण थी । नृत्त और नृत्य दोनों में अपूर्व काम करती थी । इस देश की नर्तकी तो केवल मुखावलोकन ही के योग्य होती हैं गुण तो उनके पास से भी नहीं निकलता परन्तु वह "यथानाम तथागुणः" को सत्य करती थी । नृत्य और नृत्त में यह भेद है कि "भवेद्भावाश्रयनृत्त-नृत्यताललयान्नयम्" जिस में भाव मुख्य हो वह नृत्त और जिसमें लय मुख्य हो वह नृत्य कहलाता है । भाव नेत्र मौह मुख और हाथ और स्वर से भी प्रकट होते हैं । लय भी हाथ पैर गले और मौह से होती है । नृत्य के शास्त्रों में १०८ भेद लिखे हैं और लग डोट उड़प तिरप हस्तक भेद इत्यादि इस के अंग हैं, जिसमें केवल पुंछरु बजाने के ७ मुख्य भेद हैं । लास्य और ताण्डव इस के दो मुख्य अंग हैं और यह नृत्य एक से लेकर बहुत से मनुष्यों से भी होता है । पुरुष और स्त्री दोनों इस के अधिकारी हैं परन्तु नृत्तभेद से किसी में केवल स्त्री और किसी में दोनों होते हैं । हम परम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह विद्यासम्बन्धी संगीतशास्त्र हम लोगों में फैले और यह प्रचलित मूर्खतामय लज्जा का कारण विषयरूपी संगीत हमारे शत्रुओं को मिले ।

(१) यद्यपि छापे की विधि बहुत दिनों से भारतवर्ष में प्रचलित है इस में कुछ सन्देह नहीं, किन्तु आजकल जैसी इस की उन्नति है और इससे पत्र और पुस्तक आदि छप-र के प्रकाशित होते हैं यह भी कभी यहाँ था कि नहीं सो कुछ निश्चय नहीं है । श्री कृष्ण के समय जब राजा शल्य ने द्वारवतीपुरी को आश्रयण किया उस समय वहाँ यह बन्दोबस्त किया था कि "नचा मुद्रा भिनयति नैवान्तः प्रविशेदप" महाभारतवनपर्व ; अर्थात् बिना राजकीय नाम की मोहर छाप के कोई नगर से निकल नहीं सके और कोई भीतर

अथ अभिनय ।

कालकृत अवस्था विशेष के अनुकरण का नाम अभिनय है । अवस्था यथा, रामाभिषेक, सीता निर्वासन, द्रोपदी का केशभारकर्षण आदि ।

अथ पात्र ।

जो लोग राम युधिष्ठिरादि का रूप धारण करते, कथित अवस्था का अनुकरण करते हैं, उन लोगों को पात्र कहते हैं । नाटक के जो सब अंश स्त्रीगणकर्तृक प्रदर्शित होते हैं, उन में भाव, हाव, हेला प्रभृति यौवन सम्भूत अष्टाविंशति प्रकार के अलंकार उन लोगों को अभ्यास नहीं करने पड़ते किंतु पुरुष लोगों को स्त्री वेश धारण के समय अभ्यास द्वारा वह भाव दिखलाना पड़ता है ।

अथ अभिनय प्रकार ।

अभिनय चार प्रकार का होता है । — यथा आंगिकाभिनय, वाचिकाभिनय, आहार्याभिनय और सात्विकाभिनय ।

अथ आंगिकाभिनय ।

केवल अंगभंगी द्वारा जो अभिनयकार्य साधन करते हैं, उस का नाम आंगिकाभिनय है । जैसे सती नाटक में नन्दी । सती ने शिव की निन्दा श्रवण कर के वेह त्याग किया । यह सुन कर महावीर नन्दी ने जब त्रिशूल हस्त में लेकर के रंगस्थल में प्रवेश किया तब केवल आंगिकभाव द्वारा क्रोध दिखलाना चाहिये ।

अथ वाचिकाभिनय ।

केवल वाक्यविन्यास द्वारा जो अभिनय कार्य समाहित होता है, उस का नाम वाचिकाभिनय है । यथा तोतले आदि का वेश ।

अथ आहार्याभिनय ।

वेष भूषणादि निष्पाद्य का नाम आहार्याभिनय है । जैसा सत्यहरिश्चन्द्र में चोबदार का मुसाहिब ये लोग जब राजा के साथ रंगस्थल में प्रवेश करते हैं तो इन को कुछ बात नहीं करनी पड़ती । केवल आहार्याभिनय के द्वारा आत्मकार्य निष्पन्न करना होता है ।

अथ सात्विकाभिनय ।

स्तम्भ स्वेद रोमांच कम्प और अश्रु प्रभृति द्वारा अवस्थानुकरण का नाम सात्विकाभिनय है । जैसा सती को मृत देखकर नन्दी का व्यवहार और अश्रुपात इत्यादि ।

अथ बीमत्साभिनय ।

एक पात्र द्वारा जब कथित अभिनय में से दो वा तीन अथवा सब प्रदर्शित होते हैं तो उस को बीमत्साभिनय कहते हैं ।

अथ अंगांगी भेद ।

नाटक में जो प्रधान नायक होता है उस को समस्त इतिवृत्त का अंगी कहते हैं । जैसे सत्यहरिश्चन्द्र में हरिश्चन्द्र ।

अथ अंग ।

अंगी के कार्यसाधक पात्रगण अंग कहलाते हैं ।

भी न आवे, यहां स्पष्ट ही देख लीजिये कि छापे की मुद्रा से, एक जगह के अक्षर दूसरी जगह उतारे जाते थे । मुद्राराक्षस नाटक, जो राजा चन्द्रगुप्त के समसामयिक वा कुछ उत्तरवर्ती काल में बना है, यहां भी राक्षस नामांकित मुद्रा प्रसिद्ध ही है । इस प्रकार यद्यपि मुद्रण विधि का मूल तो आर्य्यशास्त्रों में प्रायः मिलता है, किन्तु इस की उन्नति कर के देशान्तरीय लोगों ने जैसा इस से लाभ उठाया है वैसा भारतीय आर्य्य लोगों ने कूछ भी नहीं किया, यह सभी कोई कह सकते हैं ; अतएव यह मुद्रण विद्या देशान्तर ही से चली और अनार्य्य लोग ही इस के आद्य आचार्य्य हुए, यह बात हम को भी खुले मुंह कहनी पड़ती है ।

छापा यन्त्र बनाने के निमित्त अनेक लोग ही सम्मान प्राप्त होने के योग्य हैं, किन्तु वास्तव में इंग्लैण्ड देश के हाल्लेम नगर में यह यन्त्र पहले ही पहले निमित्त हुआ, यह प्रायः सभी स्वीकार करते हैं । उक्त नगर के शासन कर्ता लौरेंस कोम्बर साहिब के शक १४४० चौदह सौ चालीस में इसका निर्माण किया और आद्या प्रादुर्भाव के निमित्त, सब के प्रथम वही सम्माननीय हुआ । वह एक दिन अपने समीपस्थ किसी बगीचे में जाके एक वृक्ष की गीली त्वचा काट के, उस से अपने नाम के अक्षर बना-२ एक झीड़ा सी कर रहा था । वे ही अक्षर काट काट के जब उस ने एक किसी कागज के ऊपर रख दिये थे, उसी समय एक वायु का भोका आया और वे अक्षर जो उस वृक्ष के रस से गीले हो रहे थे, उनकी समस्त और वे अक्षर जो उस वृक्ष के रस से गीले हो रहे थे, उनकी समस्त आकृति वायुवेग से हठात् उस कागज पर उखड़ आयी । साहिब ने जब उक्त घटना देखी तो पीछे अपनी विवेचना द्वारा वह और-२ भी अनेक प्रकार की परीक्षा करने लगा, फिर उस के काष्ट के अक्षर बना

जैसे वीरचरित में सुग्रीव विभीषण अंगद इत्यादि ।

अथ वैषम्यपात दोष ।

नाटक में अंगों को अवनत कर के अंग का प्राधान्य करने से वैषम्यपात नामक दोष होता है ।

अथ अंक लक्षण ।

नाटक के एक एक विभाग को एक एक अंक कहते हैं । अंक में वर्णित नायक नायिकादि पात्र का चरित्र और आचार व्यवहारादि दिखलाया जाता है । अनावश्यक कार्य का उल्लेख नहीं रहता । अंक में अधिक पद्य का समावेश दृषणावह होता है ।

अथ अंकावयव ।

नाटक का अवयव बृहत् होने से, एक रात्रि में अभिनय कार्य समाहित नहीं होगा । इस हेतु दश अंक से अधिक नाटक निर्माण विधि और युक्ति के विरुद्ध है । प्रथम अंक का अवयव जितना होगा द्वितीयांक का अवयव तदपेक्षा न्यून होना चाहिये । ऐसे ही क्रम क्रम से अंक का अवयव छोटा कर के ग्रन्थ समाप्त करना चाहिये ।

अथ विरोधक ।

नाटक में जिन विषयों का वर्णन निषिद्ध है, उन का नाम विरोधक है ।

उदाहरण ।

द्राह्मण, अति विस्तृत युद्ध, राज्य देशादि का विप्लव, प्रबल वाक्ता, दन्तच्छेद, नखच्छेद, अश्ववि बृहत्काय अन्तु का अति वेग से गमन, नौका परिचालन और नदी में सन्तारण प्रभृति अघटनीय विषय ।

अथ नायक निर्वाचन ।

विनय, शीलता, वदन्त्यता, दक्षता, क्षिप्रता, शौर्य, प्रियभाषिता, लोकरञ्जकता, वाग्मिता — प्रभृति गुणसमूह सम्पन्न सद्देशसम्भूत युवा को नायक होने का अधिकार है । नायक की भांति नायिका में भी

यथासम्भव वही गुण रहना आवश्यक है । प्रहरान आदि रूपकविशेष के नायकादि अन्य प्रकार के होते हैं ।

अथ परिच्छद विवेक ।

नाटकान्तर्गत कौन पात्र कैसा परिच्छद पहिरे यह ग्रन्थकार कर्तुं उल्लिखित नहीं होता न किसी प्राचीन नाटककार ने इस का उल्लेख किया है । नाटक में किसी स्थान में उत्तम परिच्छद का परिवर्तन दिखलाई पड़ता है । नाटक सत्यहरिश्चन्द्र में "दरिद्र वेप से हरिश्चन्द्र का प्रवेश ।"

ऐसी अवस्था भिन्न स्पष्ट रूप से परिच्छद का वर्णन किसी स्थान में उल्लिखित नहीं रहता, इस से अभिनय में वेशरचयिता पात्रगण का स्वभाव और अवस्था विचार करके वेशरचना कर दे । नेपथ्य कार्य सुन्दर रूप से निर्वाह के हेतु एक रसज्ञ वेपविधायक की आवश्यकता रहती है ।

अथ देशकाल प्रवाह ।

अति दीर्घकाल सम्प्राध घटना सकल नाटक में अल्पकाल के मध्य में वर्णनकरना यद्यपि दृषणावह नहीं है तथापि नाटक में देशगत और कालगत वैलक्षण्य वर्णन करना अतिशय अनुचित है ।

अथ विष्कम्भक ।

नाटक में विष्कम्भक रखने का तात्पर्य यह है कि नाटकीय वस्तुरचना में जो सब अंश अत्यन्त नीरस और आडम्बरात्मक हैं उनके सन्निवेशित होने से सामाजिक लोगों को विरक्ति और अरुचि हो जाती है । नाटक प्रणेतृगण इन घटनाओं को पात्र विशेष के मुख से संक्षेप में विनिर्गत कराते हैं ।

अथ नाटकरचना प्रणाली ।

नाटक लिखना आरम्भ करके, जो लोग उद्देश्यवस्तु परंपरा से चमत्कारजनक और मधुर अति वस्तु

के एक प्रकार के सधर और द्रव वस्तु में उन को डुबोके छपा किया, तब और भी कुछ उत्तम छपा हुआ मालूम दिया । शेष में 'उसने शीशा एवं शीशा और रांगा मिले हुए पातु से अक्षर बना के यन्त्र के निमित्त एक स्वतन्त्र स्थान निर्माण किया । इस प्रकार उस काल से ले के अद्य पर्यन्त इस उत्तम मुद्रणविद्या की वृद्धि होती चली आती है । उक्त लौरेंस साहिब के पास एक उस का नौकर 'योहनफस्त' नामक रहता था । उस ने गुप्त भाव से अपने स्वामी की विद्या चुरायी और वहां से आके मेण्डस नामक नगर में, उक्त मुद्रणविद्या का प्रकाश किया । अतएव वह उस देश में उस नूतन विद्या द्वारा विद्वान और मायावी के नाम से स्वयं विख्यात हुआ ।

भारतवर्षीय उन्नति के समय और उस के बाद जब यूनान और रोम देशीय लोगों की उन्नति का समय आया तो, वहां भी केवल जो धनी और बड़े आदमी होते थे, अथवा अधिक परिश्रम करते थे, वही हस्तलिखित पुस्तकों द्वारा विद्या उपार्जन कर सकते थे, किंतु आज छापे द्वारा विविध विद्याविभूषित पुस्तकें सर्वसाधारण को सहज ही में प्राप्त हो सकती हैं, इससे मनुष्य समाज में एक नूतन युग सा आविर्भूत हुआ दिखाई देता है, इस में कुछ संदेह नहीं ।

निर्वाचन करके भी स्वाभाविक सामग्री परिणाम के प्रति दृष्टिपात नहीं करते उन का नाटक नाटकादि दृश्य काव्य लिखने का प्रयास व्यर्थ है क्योंकि नाटक आख्यायिका की भांति श्रव्य काव्य नहीं है।

प्रथकर्ता ऐसी चातुरी और नैपुण्य से पात्रगण की बातचीत रचना करे कि जिस पात्र का जो स्वभाव हो वैसी ही उस की बात भी विरचित हो। नाटक में वाचाल पात्र को मितभाषिता, मितभाषी की वाचालता, मूर्ख की वाक्पटुता और पण्डित का मौनीभाव बिडम्बनामात्र है। पात्र की बात सुनकर उसके स्वभाव का परिचय ही नाटक का प्रधान अंग है। नाटक में वाक्प्रबंध एक प्रधान दोष है। रसविशेष द्वारा दर्शक लोगों के अन्तःकरण को उन्नत अथवा एक बारगी शोकावनत करने को समधिक बागाएँ करने से भी उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। नाटक में वाचालता की अपेक्षा मितभाषिता के साथ वाग्मिता का ही सम्यक् आदर होता है। नाटक में प्रबंध रूप से किसी भाव को व्यक्त करने का नाम गौण उपाय है और कौशलविशेष द्वारा थोड़ी बात में गुरुतर भाव व्यक्त करने का नाम मुख्योपाय है थोड़ी सी बात में अधिक भाव की अवतारणा ही नाटक जीवन का महोपध है। जैसा उत्तररामचरित में महात्मा जनकजी आकर पृच्छते हैं 'क्वास्ते प्रजवत्सलो रामः' यहाँ प्रजावत्सल शब्द से महाराज जनक के हृदय के कितने विकार बोध होते हैं। केवल सहृदय ही इस का अनुभव करेंगे। चित्रकार्य के निमित्त जो जो उपकरण का प्रयोजन और स्थान विशेष की उच्च नीचता दिखलाने को जैसी आवश्यकता होती है वैसे ही वही उपकरण और उच्च नीचता प्रधानपूर्वक अति सुन्दर रूप से मनुष्य के बाह्य भाव और कार्यप्रणाली के चित्रकरण द्वारा सहज भाव से उसका मानसिक भाव और कार्य प्रणाली दिखलाना

प्रशंसा का विषय है। जो इस भांति दूसरे का अन्तर्भाव व्यक्त करने को समर्थ है, उन्हीं को नाटककार सम्बोधन दिया जा सकता है और उन्हीं के प्रणीत ग्रन्थ नाटक में परिगणित होते हैं।

नाटक में अन्तर का भाव कैसे चित्रित किया जाता है इस का एक अति आश्चर्य दृष्टांत अभिज्ञान शाकुन्तल (१) से उद्धृत किया गया।

शकुन्तला श्वशुरालय में गमन करेगी इस पर भगवान कण्व जिस भांति खेदप्रकाश करते हैं वह यह है :

'सर्व्वयज्ञ कृत' इत्यादि नाम प्रसिद्ध है, 'तं यज्ञं वहिषिप्रौक्षं पुरुषं' इत्यादि की दो तीन श्रुति में यज्ञोत्पत्ति कही है।

'ये द्वे कालविधत्तः' अर्थात् चन्द्रमा और सूर्य्य सूर्य्यशशांकवह्नियन्' जिस की दो नेत्र स्वरूप मूर्तियाँ काल का विधान करती हैं और शिव के निमित्त में प्रलायादिक होते हैं यह भी पुराण प्रसिद्ध वा सूर्य्य नेत्र चन्द्रमा सिर पर वा मन स्वरूप 'चन्द्रमा मन सो वातश्चक्षोस्सूर्य्यो अजायत'।

'श्रुतिविषयगुणा या स्थिताव्याप्य विश्व' अर्थात् वाणीस्वरूपी मूर्ति, जिस की वाणी वेद स्वरूप विश्व को अपने नियम में व्याप्त कर के स्थित है क्योंकि शिवजी वाणी के अधिदेवता 'वागीशः' अर्हं कलानां श्रृषभोपि' विद्याकामस्तु गिरिश' 'वाणी व्याकरणं यस्य' इत्यादि पुराण में प्रसिद्ध हैं वा वेदों की विषय हो कर जो मूर्ति एक देशावच्छिन्ना होकर भी विश्व को व्याप्त कर के स्थित है 'सभूमि सर्व्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगलम्' वा

नाभि अंग का वर्णन किया है यस्य नाभिवै आकाशः 'नाभ्या असीदन्तरिक्षं' इत्यादि।

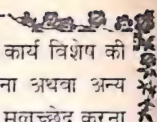
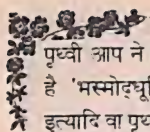
'यामाहुः सर्व्वबीजप्रकृतिरिति अर्थात् पृथ्वी, सो

(१) इस प्रसिद्ध नाटक के मंगलाचरण का श्लोक 'यासष्टु सृष्टिराद्या वहति विधिहुतं या हविर्वा च होत्री ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुण या स्मिता व्याप्यविश्वम् । या 'माहुस्सर्व्वबीजप्रकृतिरिति यथा प्राणिनः प्राणवन्तः प्रत्यक्षाभिः प्रसन्न स्तनुभिरवतु वस्तामिष्टाभिरीशः' बहुत प्रसिद्ध है और सब टीकाकारों ने इस के अनेक अर्थ किये हैं तथापि मुझे ऐसा निश्चित होता है कि कालिदास ने क्षिति इत्यादि शब्दों में श्रीशिवजी का विराट् स्वरूप वर्णन नहीं किया है क्योंकि उन मूर्तियों का 'प्रत्यक्षाभिः' यह विशेषण दिया है और लोग 'यासष्टुः सृष्टिराद्य' इस का अर्थ आकाश करते हैं तो आकाश क्या अक्षि का विषय है ? इस से मेरे ध्यान में आता है कि शिवजी की जो प्रत्यक्ष परम सुन्दरी मूर्ति है वह उसकी का वर्णन है। जैसे:—

'यासष्टु सृष्टिराद्या' अर्थात् जल 'शीघ्रं च मन्दाकिनी' जि मूर्ति में 'जल सब के ऊपर है।'

वहतिविधिहुतं याहविः', अर्थात् अग्नि, 'वन्देसूर्य्यशशांकवह्निनयनं', जिस मूर्ति का एक मुख्य अंग अर्थात् नेत्र अग्नि है वा मुख वर्णन किया 'गुह्योर्वै अग्निः' 'मुखादग्निः'।

'या चा होत्री' अर्थात् यजमान स्वरूप जो मूर्ति कर्ममार्ग स्थापन करने वाली है,



पृथ्वी आप ने भस्म स्वरूप से सर्वांग में धारण किया है 'भस्मोद्भूतलित सर्वांगः' भस्मोद्भूतलित विग्रहः' इत्यादि वा पृथ्वी गंगा शिर नेत्र मुख नाभि इत्यादि अंगों का वर्णन कर के चरण का वर्णन करते हैं जिस के चरण पृथ्वी स्वरूप हैं 'चरणे धरा पद्माम्भूमिः' इत्यादि ।

'यथा प्राणिनः प्राणवन्तः' अर्थात् आत्मा, तो इस में मूर्ति ही में आत्मा का वर्णन इस हेतु किया जिस में भगवान के देह में आत्मा है अलग यह सन्देह न हो क्योंकि 'यथा सैन्धवघनो' इत्यादि परमात्मा का स्वरूप है तो सब मूर्तियों का वर्णन कर के व्यापकत्व और आत्मस्वरूपत्व कहा वा कानों का वर्णन मानों 'श्रोत्राद्वायुश्चप्राणश्च' वा आप प्राणायामस्य हैं यह ध्यान किया है ।

तो इन आठों मूर्तियों से विशिष्ट प्रत्यक्ष शिवजी का वर्णन कालिदास ने किया, कुछ संसार स्वरूप भगवान का वर्णन नहीं है क्योंकि अन्त में भी कण्व — (मन में चिन्ता करके)

आहा आज शकुन्तला पतिगृह में जायगी यह सोचकर हमारा हृदय कैसा उत्कण्ठित होता है, अन्तर में जो वाष्पभर कर उच्छवास हुआ है उससे वाग्जड़ता हो गई है, और दृष्टिशक्ति चिन्ता से जड़भूत हो रही है । हाय ! हम वनवासी तपस्वी हैं सो जब हमारे हृदय में ऐसा वैकल्य होता है तो कन्या के वियोग के अभिनव दुःख में बिचारे गृहस्थों की क्या दशा होती होगी ।

सहृदय पाठक ! आप विवेचना कर के देखिये कि इस स्थान में कविश्रेष्ठ कालिदास कुलपति कण्व ऋषि का रूपधारण कर के ठीक उनका मानसिक भाव व्यक्त कर सके हैं कि नहीं ?

इस के बदले कालिदास यदि कण्व ऋषि का छाती पीटकर रोना वर्णन करते तो उन के ऋषि जनोचित धैर्य की क्या दुर्दशा होती अथवा कण्व का शकुन्तला के जाने पर शोक ही न वर्णन करते तो कण्व का स्वभाव मनुष्य स्वभाव से कितना दूर जा पड़ता । इसी हेतु कविकुलमुकुटमाणिक्य भगवान् कालिदास ने ऋषि जनोचित भाव ही में कण्व का शोक वर्णन किया ।

नाटक रचना में शैथिल्य दोष कभी न होना

चाहिये । नायक नायिका द्वारा किसी कार्य विशेष की अवतारणा कर के अपरिसमाप्त रखना अथवा अन्य व्यापार की अवतारणा कर के उस का मूलच्छेद करना नाटक रचना का उद्देश्य नहीं है । जिस नाटक की उत्तरोत्तर कार्यप्रणाली सन्दर्शन कर के दर्शक लोग पूर्वकार्य विस्मृत होते जाते हैं वह नाटक कभी प्रशंसा भाजन नहीं हो सकता ! जिन लोगों ने केवल उत्तम वस्तु चुन कर एकत्र किया है उन की गुम्फित वस्तु की अपेक्षा जो उत्कृष्ट मध्यम और अधम तीनों का यथा स्थान निर्वाचन कर के प्रकृति की भाव भंगी उत्तम रूप से चित्रित करने में समर्थ है वही काव्यामोदी रसज्ञ मण्डली अपूर्व आनन्द वितरण कर सकते हैं । कालिदास भवभूति और शेक्सपियर प्रभृति नाटककार इसी हेतु पृथ्वी में अमर हो रहे हैं । कोई सामग्री संग्रह नहीं है, अथवा नाटक लिखना होगा यह अलीक संकल्प करके जो लोग नाटक लिखने को लेखनी धारण करते हैं उनका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है । यदि किसी को नाटक लिखने की वासना हो तो नाटक किस को कहते हैं इस का तात्पर्य हृदयंगम कर के, नाटकरचयिता को सूक्ष्मरूप से ओतप्रोत भाव में मनुष्य प्रकृति की आलोचना करनी चाहिये । जो अनालोचित मानव प्रकृति हैं उनके द्वारा मानवजाति के अन्तर्भाव सब विशुद्धरूप से चित्रित होंगे, यह कभी सम्भव नहीं है इसी कारण से कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल और शेक्सपियर मैकबेथ और हैमलेट इतने विख्यात हो के पृथ्वी के सर्व स्थान में एकादर से परिभ्रमण करते हैं । मानवप्रकृति की समालोचना करनी हो तो नाना प्रकार के लोगों के साथ कुछ दिन वास करें । तथा नाना प्रकार के समाज में गमन करके विविध लोगों का आलाप सुने तथा नाना प्रकार के ग्रंथ अध्ययन करें, वरंच समय में अश्वरक्षक, गोरक्षक, दास, दासी, ग्रामीण, दस्यु प्रभृति नीच प्रकृति और सामान्य लोगों के साथ कथोपकथन करें । यह न करने से मानवप्रकृति समालोचित नहीं होती । मनुष्य लोगों की मानसिक वृत्ति परस्पर जिस प्रकार अदृश्य है उन लोगों के हृदयस्वभाव भी उसी रूप अप्रत्यक्ष हैं । केवल बुद्धि वृत्ति की परिचालना द्वारा तथा जगत के कतिपय बाह्य कार्य पर सूक्ष्म दृष्टि

'अभिवाद्योमहाकम्मात्पस्योभूतभावतः' 'स्वर्कर्म' 'नीललोहितः' विशेषण दिया है और यों मानने से क्रम से शिर पर गंगा फिर मुख और उन के यज्ञादिक कर्म और चन्द्रबूड तथाच नेत्र फिर वाणी का वा नाभि का और भस्माधारण का तथा चरण का और फिर मुख स्वरूप आत्मा का क्रमशः वर्णन हो गया तो मेरी बुद्धि में आता है कालिदास का अभिप्राय भी यही होगा क्योंकि 'प्रत्यक्षामिः' का दोष और नाटके के उपसंहार में सगुण शिव नीललोहित कर के वर्णन इत्यादि का इस अर्थ में विरोध नहीं आता ।।



रखकर उस के अनुशीलन में प्रवृत्त होना होता है । और किसी उपकरण द्वारा नाटक लिखना भ्रष्ट मारना है ।

राजनीति, धर्मनीति, आन्वीक्षिकी, दंडनीति, सन्धि, विग्रह प्रभृति राजगुण, मन्त्रणा चातुरी, आय, करुणा प्रभृतिरस, विभाव, अनुभाव व्यभिचारी भाव, तथा सात्विक भाव तथा व्यय, वृद्धि, स्थान प्रभृति त्रिवर्गा की समालोचना में सम्यक् रूप समर्थ हो तब नाटक लिखने को लेखनी धारण करें ।

स्वदेशीय तथा भिन्न देशीय सामाजिक रीति व्यावहारिक रीति पद्धति का निदान फल और परिणाम इन तीनों का विशिष्ट अनुसन्धान, नाटक रचना का उत्कृष्ट उपाय है ।

वेश और वाणी दोनों ही पात्र की योग्यतानुसार होनी चाहिये । यदि भृत्यपात्र प्रवेश करे तो जैसे बहुमूल्य परिच्छद उस के हेतु अस्वाभाविक है वैसे ही पण्डितों के संभाषण की भाँति विशेष संस्कृत गर्भित भाषा भी उस के लिये अस्वाभाविकी है । महामुनि भरताचार्य पात्र स्वभावानुकूल भाषण रखने का वर्णन अत्यन्त सविस्तार कर गये हैं, यद्यपि उनके नाट्य रचनादि विषय के नियम हिंदी में प्रयोजनीय नहीं किन्तु पात्र स्वभाव विषयक नियम तो सर्वथा शिरोधार्य हैं ।

नाटक पठन वा दर्शन में स्वभावरक्षा मात्र एक उपाय है जो पाठक और दर्शकों के मनः समुद्र को भाव तरंगों से आस्फलित कर देता है ।

नाटकदर्शकगण विदूषक के नाम से अपरिचित नहीं है किन्तु विदूषक का प्रवेश किस स्थान में योग्य है इस का विचार लोग नहीं करते । बहुत से नाटकलेखकों का सिद्धांत है कि अथ इति की भाँति विदूषक की नाटक में सहज आवश्यकता है । किन्तु यह एक भ्रम मात्र है । वीर वा करुणरस प्रधान नाटक में विदूषक का प्रयोजन नहीं रहता । शृंगार की पुष्टि के हेतु विदूषक का प्रयोजन होता है, सो भी अब स्थल में नहीं, क्योंकि किसी किसी अवसर पर विदूषक के बदले विट, चेट, पीठमर्द, नर्मसखा प्रभृति का प्रवेश विशेष स्वाभाविक होता है । प्राचीन शास्त्रों के अनुसार कुसुमवसंतादिक नामधारी, नाटा, मोटा, वामन, कुबड़, टेढ़े अंग का वा और किसी विचित्र आकृति का, किम्बा हकला तोतला भोजनप्रिय, मूर्ख, असंगत, किन्तु हास्य रस के अविरोध बात कहने वाला विदूषक होना चाहिए और उसका परिच्छद भी ऐसा हो जो हास्य का उद्दीपक हो ।

संयोग शृंगार वर्णन में इस की स्थिति विशेष स्वाभाविक होती है ।

(१) मुद्राराक्षस में मुख्य अंगीभाव से कोई रस न पाकर मुफ को उद्योगवीर की कल्पना करनी पड़ी ।

अथ रस वर्णन ।

शृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत, वीभत्स, शांत, भक्ति वा दास्य, प्रेम वा माधुर्य, सख्य, वात्सल्य, प्रमोद वा आनन्द ।

शृंगार, संयोग और वियोग दो प्रकार का । यथा शाकुन्तल के पहले और दूसरे अंक में संयोग, पाँचवें छठें अंक में वियोग ।

हास्य, यथा भाण प्रहसनों में ।

करुणा, यथा सत्यहरिश्चन्द्र में शैब्या के विलाप में, रौद्र, यथा धनंजय-विजय में युद्धभूमि वर्णन ।

वीर रस ४ प्रकार । यथा दानवीर, सत्यवीर युद्धवीर, और उद्योगवीर । दानवीर, यथा सत्य-हरिश्चन्द्र में 'जेहि पाली इक्ष्वाकु सों' इत्यादि । सत्यवीर यथा हरिश्चन्द्र में 'बेचि देह द्वारा सुअन' इत्यादि युद्धवीर यथा नीलदेवी । उद्योगवीर (१) मुद्राराक्षस । भयानक अद्भुत और वीभत्स यथा सत्यहरिश्चन्द्र में स्मशानवर्णन ।

शांत यथा प्रबोध चन्द्रोदय में भक्ति यथा संस्कृत चैतन्यचन्द्रोदय में, प्रेम यथा चन्द्रावली में, वात्सल्य और प्रमोद के उदाहरण नहीं हैं ।

अथ रसविरोध ।

नाटकरचना में विरोधी रसों को बहुत बचाना चाहिए । जैसे शृंगार के हास्यवीर विरोधी नहीं किन्तु अति करुणा वीभत्स रौद्र भयानक और शान्त विरोधी हैं तो जिस नाटक में शृंगाररस प्रधान अंगी भाव से हो उसमें ये न आने चाहिए । अति करुणा लिखने का तात्पर्य यह कि सामान्य करुणा तो वियोग में भी वर्णित होगी किन्तु पुत्रशोकादिवत् अति करुणा का वर्णन शृंगार का विरोधी है । हाँ नवीन (ट्रेजेडी) वियोगान्त नाटक लेखक तो इस रस विरोध करने को बाधित हैं । नाटकों की सौन्दर्यरक्षा के हेतु विरोधी रसों को बचाना भी बहुत आवश्यक कार्य है अन्यथा होने से कवि का मुख्य उद्देश्य नाश हो जाता है ।

अथ अन्य स्फुट विषय ।

नाटक रचना के हेतु पूर्वोक्त कथित विषयों के अतिरिक्त कुछ नायिकाभेद और कुछ अलंकारशास्त्र जानने की भी आवश्यकता होती है । ये विषय रसरत्नाकर भारतीयभूषण लालित्यलता आदि ग्रन्थों में विस्तार रूप से वर्णित हैं ।

आज कल की सभ्यता के अनुसार नाटकरचना में उद्देश्यफल उत्तम निकलना बहुत आवश्यक है । यह न होने से सभ्यशिक्षण ग्रन्थ का तादृश आदर नहीं

करते। अर्थात् नाटक पढ़ने या देखने से कोई शिक्षा मिले जैसे सत्यहरिश्चन्द्र देखने से आर्यजाति की सत्यतत्त्वा, नीलदेवी से देशस्नेह इत्यादि शिक्षा निकलती है। इस मर्यादा की रक्षा के हेतु वर्तमान समय में स्वकीया नायिका तथा उत्तम गुण विशिष्ट नायक को अवलम्बन कर के नाटक लिखना योग्य है। यदि इसके विरुद्ध नायिका नायक के चरित्र हों तो उसका परिणाम बुरा दिखलाना चाहिए। यथा नहुष नाटक में इन्द्राणी पर आसक्त होने से नहुष का नाश दिखलाया गया है। अर्थात् चाहे उत्तम नायिका नायक के चरित्र की समाप्ति सुखमय दिखलाई जाय किंवा दुःखचरित्र पात्रों के चरित्र की समाप्ति कटकमय दिखलाई जाय। नाटक के परिणाम से दर्शक और पाठक कोई उत्तम शिक्षा अवश्य पावें।

अथ अभिनय विषयक अन्यान्य स्फुट नियम।

नाटक की कथा — नाटक की कथा की रचना ऐसी विचित्र और पूर्वापर बढ़ होनी चाहिए कि जब तक अन्तिम अंक न पढ़े किम्बा न देखे यह न प्रकट हो कि खेल कैसे समाप्त होगा। यह नहीं कि 'सीधा एक को बेटा हुआ उस ने यह किया वह किया' प्रारम्भ ही में कहानी का मध्य बोध हो।

पात्रों के स्वर — शोक हर्ष हास क्रोधादि के समय में पात्रों को स्वर भी घटाना बढ़ाना उचित है। जैसे स्वाभाविक स्वर बदलते हैं वैसे ही कृत्रिम भी बदलें। 'आप ही आप' ऐसे स्वर में कहना चाहिए कि बोध हो कि धीरे-धीरे कहता है किन्तु तब भी इतना उच्च हो कि श्रोतागण निष्कण्टक सुन लें।

पात्रों की दृष्टि — यद्यपि परस्पर वार्ता करने में पात्रों को दर्शकों की ओर देखकर कहने पड़ेंगे। इस पात्रों को दर्शकों की ओर देखकर कहने पड़ेंगे। इस अवसर पर अभिनयचतुर्य यह है कि यद्यपि पात्र दर्शकों की ओर देखें किन्तु यह न बोध हो कि वह बातें वे दर्शकों से कहते हैं।

पात्रों के भाव — नृत्य की भांति 'रंगस्थल पर पात्रों को हस्तक भाव वा मुख नेत्र भ्रू के सूक्ष्मतर भाव दिखलाने की आवश्यकता नहीं स्वर भाव और शयायोग्य स्थान पर आंगमंगी भाव ही दिखलाने चाहिए।

पात्रों का का फिरना — एक यह साधारण नियम भी माननीय है कि फिरने वा जाने के समय जहाँ तक हो सके पात्रगण अपनी पीठ दर्शकों को बहुत कम दिखलावें। किन्तु इस नियम पालन का इतना आग्रह न करें कि जहाँ पीठ दिखलाने की आवश्यकता हो वहाँ

भी न दिखलावें।

पात्रों का परस्पर कथोपकथन — पात्रगण आपस में वार्ता जो करें उन को कवि निरं काव्य की भांति न प्रथित करें। यथा नायिका से नायक साधारण काव्य की भांति 'तुम्हारे नेत्र कमल हैं, कृच कलश हैं' इत्यादि न कहें। परस्पर वार्ता में हृदय के भावबोधक वाक्य ही करने योग्य हैं। किसी मनुष्य वा स्थानादि के वर्णन में लम्बी चौड़ी काव्यरचना नाटक के उपयोगी नहीं होती।

अथ नाटकों का इतिहास।

यदि कोई हम से यह प्रश्न करे कि सब के पहिले किस देश में नाटकों का प्रचार हुआ तो हम क्षण मात्र का भी विलम्ब किये बिना मुक्त कंठ से कह देंगे भारतवर्ष में। इसका प्रमाण यह है कि जिस देश में संगीत और साहित्य प्रथम परिपक्व हुए होंगे वहीं प्रथम नाटक का भी प्रचार हुआ होगा। हम नहीं समझ सकते कि पृथ्वी की और कोई जाति भी भारतवर्ष के सामने इस विषय में मुंह खोले। आर्यों का परम शास्त्र वेद संगीत और साहित्यमय है। और जाति में संगीत और साहित्य प्रमोद के हेतु होते हैं किन्तु हमारे पूज्य आर्य महर्षियों ने इन्हीं शास्त्रों द्वारा आनन्द में निमग्न होकर परमेश्वर की उपासना की है। यहाँ तक कि हमारे तीसरे वेद साम की संज्ञा ही गान है। और किस के यहाँ धर्म संगीत साहित्य-मय है? हमारे यहाँ लिखा है —

यीणाबादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः।

तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं प्रयच्छति ॥१॥

काव्यालापश्च येकेचित् गीतिकान्यखिलानिच।

शब्दरूपधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मनः ॥२॥

तो जब हमारे धर्म के मूल ही में संगीत और साहित्य मिले हैं तब इस में क्या सन्देह है कि इस रस के प्रथमाधिकारी आर्यगण ही हैं। इस के अतिरिक्त नाटक-रचना में रंग नट इत्यादि गो शब्द प्रयुक्त होते हैं वे सब प्राचीन काव्य, कोष, व्याकरण और धर्मशास्त्रों में पाए जाते हैं। इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि नाटक-रचना हमारे आर्यगणों पर पूर्वकाल ही से विदित है।

सर्वदा नट लोगों के ही द्वारा ये नाटक नहीं अभिनीत होते थे। आर्य राजकुमार और कुमारीगण भी इस को सीखते थे। महाभारत के खिल हरिवंश पर्व के विष्णु पर्व के ९३ अध्याय में प्रद्युम्न साम्बादि यादव राजकुमारों का वज्रनाम के पुर में जाना और वहाँ नट बन कर (कीबेरम्भामिसार) नाटक खेलना बहुत स्पष्ट

रूप से वर्णित है। वहाँ लिखा है कि जब प्रद्युम्न आदिक वीर वज्रनाभ के पुर में गये तो भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने कुमारों को नाटक करने की आज्ञा देकर भेजा था। प्रद्युम्न सुत्रधार थे साम्ब विदूषक थे और गद पारिपाश्विक थे। यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी गाने बजाने का साथ ले कर साथ गई थीं। पहले दिन इन लोगों ने रामजन्म नाटक किया जिस में लोमपाद राजा की आज्ञा से गणिका लोगों का शृंगी ऋषि को ठग कर लाना बहुत अच्छी रीति से दिखलाया गया था। दूसरे दिन फिर रम्भाभिसार नाटक किया (१) इसमें पहिले इन लोगों ने नेपथ्य बाधा (२) फिर स्त्रियों से भीतर से

बड़े सुन्दर स्वर से गान किया (३) पीछे गंगा जी के वर्णन में प्रद्युम्न गद और साम्ब ने मिलकर नान्दी गायी (४) और तदनन्तर प्रद्युम्न जी ने विनय के श्लोक पढ़कर सभा को प्रसन्न किया। (५) और तब नाटक आरम्भ हुआ। इस में शूर नामक यादव रावण बना, मनोयती नाम्नी स्त्री रम्भा (६) प्रद्युम्न नल कुंवर और साम्ब विदूषक। इसी प्रकरण से यह बात सिद्ध होती है कि केवल नट ही नहीं, प्राचीन काल से आर्यकुल में बड़े-२ लोग भी इस विद्या को भली भाँति जानते थे (१९)।

मध्य समय के नाटक

(१) 'मैमापि वदनेपथ्या नटवेषधरास्तथा। कार्यार्थं भी कर्माणो नृत्यार्थं मुपचक्रमुः।।' इत्यादि २१ श्लोक से ३२ श्लोक तक।

(२) अर्थात् विना नेपथ्य के महाराष्ट्रों की भाँति शतरंजी और मशालची के भरोसे नाटक नहीं खेला।

(३) इस से विदित हुआ कि बाह्यपटी उठने के पहले गान होना भी प्राचीन रीति है।

(४) नाँदी विदूषक दृढ़ नियम उसी काल से प्रचलित है।

(५) विनय के श्लोक पढ़े अर्थात् प्रस्तावना हुई।

(६) इस से एक बात बहुत बड़ी प्रमाण हुई कि प्राचीन काल में स्त्री का वेष स्त्री लेती थी।

(७) अब के लोगों को नाटक के अनुशीलन वा अनुकरण करने में उत्साह नहीं होता वरन इसके तुच्छ और बुरा समझ के इस से दूर भागते हैं और नाटक करने वाले चतुरों को लोग साधारण झेल बजाने वाले नट जान कर इस काम में अपनी घृणा प्रकाश करते हैं, परन्तु बड़े शौच की बात है कि जो सब से अच्छी वस्तु है और जिसके करने वाले लोग महा सम्भ्यता के निकलन हैं इन्हीं दोनों बातों में देश के कुसंस्कार से लोगों को अरुचि हो गई। नाटकों का अभिनय करना सहृदय जनों के समाज को कितनी प्रीति देनेवाला, देश की कुचालों को सुधारने वाला और कैसा कुशल करने वाला है इसका सब गुण उन नाटकों को देखने ही से उन पर प्रगट हो जायगा और इसी भाँति प्रतिकूलता के बन्धन से छूट कर अनुकूलता भूषण से भूषित होकर नाटक दर्शन रूपी अलौकिक कुसुम कानन में घूमने फिरने से अनिर्वचनीय आनन्द पावेंगे और उस के काव्यों के वायु के ठंडे और सुगन्धित झरोखों से उन के जी की कली खिल जायगी। नाटकों के अभिनय करने में जो स्वच्छंदता होती है उसे छोड़ कर उस से देश का कितना उपकार होता है कि हम लिख नहीं सकते देखिये कि यदि एक बड़ा राजा वा कोई धनी अथवा कोई पण्डित किसी बुरे काम में प्रवृत्त होय तो उसको हम लोग सभा में कभी शिक्षा न दे सकेंगे और जो कुसंस्कार की दावागि बहुत काल से प्रगट हो कर हम लोगों के मंगलमय सम्भ्यता वन को जला रही है उस महा दावागि को हम लोग वेषकथन वारि से घर बैठे बुझाना चाहेंगे तो कभी न बुझैगी इस में अब हम लोगों को कुशलता के उद्योग बीजों को अवश्य बोना चाहिये और वह किसी एक मनुष्य के प्रयत्न से कभी अंकुरित न होगी परन्तु यदि नाटकों के अभिनय का आरम्भ हो जायगा तो यह सब कुचाल आप से आप छूट जायगी और उसी भाँति फिर सब लोग अच्छी बातों से रुचत न होकर प्रचार में प्रयत्न करेंगे।

जैसे वेश्या सक्त पुरुषों का वेष धारण करने वाले नटों से वेश्या सक्त पुरुषों को घृणा होगी और कुलटात्व दोष निवारण के हेतु कुलटा वेषधारी नट के आने से उसका दुर्दशा का दिखाना, मद्यपों के वेष से मद्यपों की बुरी अवस्था का अनुभव कराना इसी भाँति जुबारी भूँट बोलने वाले ऋषी, अपने बन्धुओं से विरोध करनेवाले, वृथा आचरण करने वाले, वृथा व्यय करनेवाले, कर्कश बोलनेवाले, और मूर्खों के वेष और सम्भाषण से इन की दुर्दशा दिखाने से अनायास ही पूर्वोक्त दुर्दशावाले मनुष्य सभा में बातों ही के चोअ से चैतन्य हो जाएंगे और इस रस रूपी उपदेश से सावधान हो कर बुरी बातों से बचेंगे। और जो नाटक करना कोई बुरी बात होती तो सम्य शिरोमणि विद्यासागर अंगरेज लोग इसके होने में क्यों प्रयत्न करते और बड़ी-२ रंगशालाओं में नित्य नित्य बड़े बड़े अधिकारी लोग क्यों वेष धारण करके नाटकाभिनय करते? जो कहां कि यह नाटक

मध्य समय के नाटककारों में कविकुलगुरु भगवान् कालिदास (१) मुख्यतः हैं। भवभूति (२) और धावक दूसरी श्रेणी में हैं। राजशेखर, जयदेव, भट्टनारायण, दंडी (३) इत्यादि तीसरी श्रेणी में हैं। अब जितने नाटक प्रसिद्ध हैं उन में मुच्छकटिक सब से प्राचीन है। इसके पीछे शकुन्तला और विक्रमोर्वशी बने हैं। यहाँ पर एक बड़ी प्रसिद्ध बात का विचार करना है। प्रायः सभी प्राचीन इतिहास लेखकों ने लिखा है कि श्रीहर्ष कालिदास के पूर्व हुआ, क्योंकि मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने धावक का नाम लिया है, किन्तु राजतरंगिणी में हर्ष नामक जो राजा हुआ है वह विक्रमादित्य (४) के कई सौ वर्ष पीछे हुआ है। अनन्त देव नामक राजा भोज के समय में था ! अनन्त का पुत्र कलस हुआ जिस ने आठ बरस राज्य किया। इस का पुत्र हर्ष था जिस ने कई दिन मात्र राज्य किया था। कनिष्क के मत से हर्ष सन् १०८८ ई. में और विल्सन के मत से १०५४ ई. में हुआ था। यद्यपि राजतरंगिणीकार ने हर्ष को कवि लिखा है और बिह्लण और विल्लण कवि भी इसके समय में लिखे हैं किन्तु धावक का नाम तथा रत्नावली इत्यादि के बनने का प्रसंग कोई नहीं लिखा। राजतरंगिणीकार के मत से हर्ष के समय अत्यन्त उपद्रव रहा। और चारों ओर

राजकुमार तथा उच्चद कुल के लोगों के रुधिर की नदी बहती थी। हर्ष श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती की भांति मूर्तिपूजा के भी विरुद्ध था इसी हेतु प्रजा उसको तुरन्त पुकारती थी। इन बातों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि या तो धावकवाला श्रीहर्ष दूसरा है, कश्मीर का नहीं। या मालविकाग्निमित्रकार कालिदास वह जगतप्रसिद्ध शकुन्तला का कालिदास नहीं। दूसरी बात विशेष संभव बोध होती है क्योंकि शकुन्तला और मालविकाग्निमित्र की संस्कृत ही में भेद नहीं काव्य की उत्तमता मध्यमता में भी आकाश पाताल का बीच है।

राजतरंगिणी में लिखा है कि कश्मीर के राजा तुंजीन के समय में चंद्रक कवि ने बड़ा सुन्दर नाटक बनाया। यह तुंजीन राजतरंगिणी के हिसाब से गत कलि ३५८२ में अर्थात् आज से १००२ वर्ष पहले, द्रायर के मत से १०३ ई. पूर्व अर्थात् आज से १९८६ वर्ष पहले, कनिष्क के मत से ईस्वी सन् ३१९ में अर्थात् १५६४ वर्ष पहले, विल्सन के मत से १०४ ई. पूर्व अर्थात् १९८७ वर्ष पहले, विल्फर्ड के मत से सन् ५४ ईश्वी में अर्थात् १८२९ वर्ष पहले हुआ था।

जिन जिन संस्कृत नाटकों की स्थिति मुझको उपलब्ध हुई है उनकी एक तालिका प्रकाश की जाती

भरतखण्ड के हेतु एक नई बात है सो नहीं, देखिए पूर्वकाल में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने पुत्र साम्ब और श्रीप्रद्युम्न का और अपने छोटे भाई गद को एक बड़े समाज के साथ नाटक करने की आज्ञा दी थी और उन लोगों ने रामाभिनय नाटक किया था और इसी भांति से भरतखण्ड भूषण रूप से प्रचार था इसमें विशेष प्रणाली का कुद काम नहीं है, उस समय के शकुन्तला और रत्नावली इत्यादि नाटक अब भी प्रमाण आदर्शरूप से वर्तमान हैं और पढ़नेवालों को अपूर्व आनन्द देते हैं। अहा ! हे नाटकविरोधी मानवगण ! आप लोग अब चमत्कार कार्य में क्यों उत्साह नहीं बढ़ाते और इस आनन्दमय रस समुद्र में क्यों नहीं स्नान करते और बड़े-२ महात्मा और रसिक शिरोमणि दुष्यन्त युधिष्ठिर राम और वत्सराज ऐसे लोगों के साक्षात् दर्शन और उनके गुण स्वभाव श्रवण की इच्छा क्यों नहीं करते ? इस हेतु अब यही हमारी प्रार्थना है कि आप लोग इस बात को सुनकर कान में रुई देके न बैठे जहाँ तक हो सके इस की उन्नति में प्रयत्न करें जिससे हमारे इस देशवासियों का उपकार हो।

(१) पुरा कवीनां गणानाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः। अद्यपि तत्तुल्यकवेरभावात् अनामिका सार्ववर्ती बभूव ॥११॥

(२) भवभूतेः संबन्धात् भूधरभूरेव भारती भाति। एतत्कृत कारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥११॥

(३) जाते जगति वाल्मीकी कविरित्यभिधा भवत्। कवी इतिततोव्यासे कवयस्त्वयि दंडिनि ॥११॥ प्रसिद्ध कवि कालिदास और दंडी स्पष्टिनी दो स्त्रियां भी कवि हुई थीं। यथा — 'नीलोत्पलदलश्यामा' की विज्जिकां मामजानता। वृथैव दंडिना प्रोक्तं सर्वं शुक्ला सरस्वती।' तथा सरस्वतीव कर्णाटी विजयाका जयत्यसौ। या वैदर्भगिरां यासः कालिदासादनन्तरम् ॥११॥

भास नामक कोई कवि नाटककार हुआ है किन्तु उस का नाटक प्रसिद्ध नहीं है। 'सूत्रधार कृतारम्भेनाटकेष्वहुमिकैः। सपताकैर्यशो लेभे भासो देव कुलेरिव ॥१॥' भासोदासः कवि कुलगुरुः कालिदासो विलासः ॥११॥

(४) विक्रमादित्य के समय में इतिहास के देखने से अत्यन्त गोलमाल मालूम होती है। परन्तु जिस विक्रमादित्य का सम्बन्ध चलाया है वह १९ सौ से ऊपर हुए यह ठीक है परन्तु राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने

है। इस में * ऐसा चिन्ह जिन पर दिया है वे नाटक मेरे पढ़े हुए हैं और छपे भी हैं और जिन पर X ऐसा चिन्ह है वे मेरे पढ़े तो हैं किन्तु छपे नहीं हैं और शेष भारतवर्ष में मिलते तो हैं किन्तु मेरे देखे हुए नहीं हैं। इन्हीं नाटकों में कोई कोई ऐसे भी होंगे जो मृच्छकटिक के पूर्व के बने होंगे किन्तु अब इस बात का पता नहीं लग सकता है यह सारी सृष्टि दो हजार वर्ष की है। जिस काल के अनन्त उदर में हम आर्यों के अनन्त ग्रन्थरत्न गल पच गए वहाँ इस के पूर्व के नाटक भी गए। कालिदास भवभूति प्रभृति महाकवियों के जीवनचरित स्वतन्त्र आलोच्य विषय हैं इस हेतु यहाँ नहीं लिखे गए।

अथ संस्कृत नाटकतलिका	
शाकुन्तल, *	(कालिदास)
मालविकाग्निमित्र, *	"
विक्रमोर्वशी, *	"
मालतीमाधव, *	(भवभूति)
प्रियदर्शिका, *	(श्रीहर्ष)
धूर्तसमागम *	(राजशेखर)
कर्पूरमञ्जरी-X	"
विद्वदशालाभञ्जिका, *	"
प्रचण्डपाण्डव	(चन्द्रशेखर)
बालरामायण *	जामदग्न्यजय
प्रसन्नराघव,	(जयदेव)

अपने इतिहास लिमिरनाशक तीसरे खंड में यो लिखा है :-

यहाँ तक कि सन् ईसवी में ५७७ बरस पहले विक्रम उज्जैन के शैव राजा ने दिल्ली फतह करके अपना अमल कश्मीर तक पहुँचाया और बौद्धमत को बड़ा धक्का लगाया। ब्राह्मणों ने फिर बल पाया। इस ने पण्डितों का नवरत्न बनाया। कालिदास सब का शिरोमणि था। उसी के समय में कुमारसंभव ग्रन्थ बना। मृच्छकटिक नाटक भी सन् ईस्वी के आरम्भ ही में रचा गया। उससे उस समय का हाल बहुत मालूम होता है। उस में वसन्त* नाम एक वेश्या के मकान की तारीफ लिखी है। चौकठ रंगी हुई झाड़ू दी हुई, पानी छिड़का हुआ, बंदनवार बंधी हुई, बालाखाना बलंद, पीले भण्डे, गमलों में आम के पौधे, पहले चौक में वेदपाठी ब्राह्मणों की तरह दर्बान उंचले, कच्चे दही भात खाकर यज्ञ के बचे हुए खाने से वेपर्वा, दूसरे चौक में अस्तबल, उस में रथ के बैल, लड़ाई के मेढ़े और बन्दर, बंधे हुए हाथी भात और घी के गोले खाते हुए, तीसरे चौक में जवान जुआ खेलते हुए, चौथे चौक में नाच गाना नाटक बाजा, पाँचवें चौक में रसोई, तेल और हींग की बू से महकी हुई जानवरों की खालें धोई जाती हैं। मिठाई और पकवान बन रहे हैं। छठें चौक में दर्वाजा मिहराबदार; जोहरी सुनार पटवे गहने बना रहे हैं। हक्काक अपना काम कर रहे हैं कोई केसर के थैले सुखला रहा है और कोई मुश्कनाफे हिलाता है, कोई चन्दन का इतर निकाल रहा है, कोई और और खुशबू की चीजे बना रहा है। सातवें चौक में चिड़ियाखाना कबूतर तोते मैना कोयल मौजूद, आठवें चौक में उस वेश्या का भाई रेशमी कपड़े पहने गहनों से चमकमता हुआ लोट पोटा कर रहा है मानों उस के हड्डी के जोड़ ही उखड़ गये हैं और उस की मा जामदानी का कपड़ा पहने तेल से चमकते हुए पैरों में जूती ऐसी मोटी कि शायद वहाँ उसे बैठा कर उस मकाना की दीवार बनायी गयी थी। बाग में बसन्त टहल रही थी उस की सवारी के रथ पर पड़े पड़े हुए थे चारुदत्त ब्राह्मण इस वेश्या का यार था चोरी करना भी बिद्या में गिना जाता था ! एक ब्राह्मण चार दीवार में जनेऊ से नाप कर शास्त्र के बमूजिब स्वस्तिक और घड़े की शकल पर संध लगा रहा है। राजा वेश्या के पीछे बाजार में दौड़ता है, उसे घायल करता है। एक बौद्ध भिक्षुक बचाता है। आर्यक अहीर जिस की आँखें तांबे के रंग की लिखी हैं राजा को मार कर उज्जैन की गद्दी पर आप बैठता है। जो हो इस में संदेह नहीं कि विक्रम के समय में (शक लोग नाग की पूजा करते थे और नाग ही उन की चिन्ह था कौन जाने यही यहाँ नागवंशियों की जड़ हुए हों रामगढ़ सिरगुजा के नागवंशी राजा अब तक अपनी मुहर में नाग का चिन्ह था कौन जाने यही यहाँ नागवंशियों की जड़ हुए हों रामगढ़ सिरगुजा के नागवंशी राजा अब तक अपनी मुहर में नाग का चिन्ह खुदवाते हैं यूनान का पुराना इतिहासवेत्ता हेरोदोतस लिखता है कि शक लोग अपने तँई एक एक ऐसी स्त्री की औलाद बतलाते थे जिस का नीचे का धड़ साँप का था इसी से शायद इस देश वालों को नागकन्या का खयाल बंधा) हूण जट (Jits, Getes, Gaeti तैमूर के समय तक यह तातार में वहाँ की एक कौम गिनी जाती थी) इत्यादि तातारी कौमों को इस देश पर भारी चढ़ाई की थी और विक्रम ने उन से अच्छी लड़ाई जीती बरन इसी लिये यह शकारि कहलाया विक्रम नाम के इतने (आठ से अधिक) राजा हुए हैं कि उन के इतिहास मिलजुल जाने के कारण बहुत गड़बड़ हो गये हैं यहाँ तक कि अकसर साहिब लोग संवत् को विक्रम का चलाया नहीं मानते हैं क्योंकि उस समय उज्जैन में किसी बड़ महाराजाधिराज विक्रम का कहीं कुछ पक्का पता नहीं

अनर्घ्यराघव, * (मुरारि)
 पुष्पमाला, * (राजशेखर)
 उदात्तराघव
 महारामायण,
 हनुमन्नाष्टक (त्रावकोरराज)

अंगदनाटक
 मुद्राराक्षस, ° (विशाखदत्त)
 वेणीसंहार, * (नारायण भट्ट)
 धनञ्जयविजय * (कांचन)
 मूच्छकटिक * (शूद्रक)

मिलता । एक बड़ा विक्रम सन् ५०० और ६०० ईस्वी के बीच में महाराजाधिराज हुआ । मातृगुप्त को मेज के कश्मीर फतह किया । वहाँ का राजा तोरमान कैद हो गया लेकिन विक्रम के मरने पर और मातृगुप्त के काशीवास करने को चले आने पर तोरमान के बेटे प्रवरसेन ने कश्मीर से निकल कर विक्रम के बेटे शिलादित्य को कैद कर लियाह और जिस तरह नादिरशाह दिल्ली से तख्ताऊस ले गया था विक्रम का बत्तीस पुतलियों वाला सिंहासन उठा ले गया । एक साहिब ऐसा भी अनुमान करते हैं कि यहाँ संवत् गुप्तों के राज से चला था बीच में लुप्त हो गया था और फिर किसी गुप्त विक्रम ने जारी किया इसी से विक्रम का कहलाया । कौन जाने यही बड़ा विक्रम दूसरा चंद्रगुप्त विक्रम रहा हो । बराहमिहिर का समय सन् ५८७ ईस्वी ठीक निश्चय हो गया है वह इसी विक्रम के समय में हुआ जिसने सन् ५०० और ६०० के बीचमें राज किया और अमरसिंह कोशकर्ता और कालिदास कवि भी बराहमिहिर के साथ इसी विक्रम की सभा के रत्न थे । (एक पंडित मातृगुप्त ही को कालिदास ठहराते हैं ।) लेकिन सन् ईस्वी से कोई २६ बरस पहले यहाँ सिंध मालवा इत्यादि देशों में तातारियों का राज हो गया था इनके सिक्कों से जो मिलते हैं मालूम होता है कि वह आग पूजते थे । क्योंकि उनके देवता अर्देश्रो (Ardethro) अर्थात् अग्निदेव की जो उन पर तसवीर है उस के कंधों से अग्नि की शिखा निकल रही है और फिर पिछले सिक्कों पर शिव की मूर्ति भी त्रिशूल हाथ में लिये नंदी के सहारे से खड़ी है परंतु आंख दो और सिर में अग्नि की शिखा प्रज्वालित । दूसरी ओर इन्हीं सिक्का पर हलियोस (Helios) अर्थात् हरिः अर्थात् सूरज, माओ (Mao) अर्थात् माह अर्थात् चांद और नानाइया (Nanaia) अर्थात् नानदेवी खुदा हुआ है । इसी नानदेवी को अब अफगानिस्तान वाले बीबी नानी कहते हैं । और याज्ञवल्क्य स्मृति में इन्हीं सिक्कों को नानक वा नाणक (इस दलील से यह ग्रंथ विक्रम से पीछे बना मालूम होता है) लिखा है । कनकों राजा का जो सिक्का मिला है उस पर बुद्ध की मूर्ति है लेकिन अग्नि की शिखा के साथ यह वही राजा है जिसे बौद्ध और ब्राह्मणों ने कनिष्क (पिशावर के पास मनिकयाला का स्तूप इसी कनिष्क का बनवाया है । सन् ईस्वी से ३३ बरस पहले के रूमी सिक्के उस में से निकले हैं) लिखा है ! राजतगिणी में लिखा है कि कश्मीर में तीन राजा मुरुष अर्थात् तुर्क वंश के हुए और कनिष्क नागर बिहार स्तूप और विद्यालय बनाये बौद्ध मत को रौनक दी नागार्जुन तार्त्रिक योगी जिसका नाम नागसेन भी लिखा है और विदर्भ में जनमा था उनका गुरु था । नागार्जुन के चले माध्यमिक कहलाये । इस ने कश्मीर में बौद्ध का चौथा संघ अर्थात् समाज किया । तातार से के ज्यदीप (Java) तक बुद्ध का मत फैलाया । चीनवाले इन राजाओं को ऐसा जबर्दस्त लिखते हैं कि उन्होंने ओल में चीन से शाहजादे मंगाये थे । जाड़े में हिन्दुस्तान में बहार में कंधार में, और गर्मी में काबुल के उत्तर कोहिस्तान में रहते थे । निदान इन तुरुष्कवंशी राजाओं ने बौद्ध शैव और अग्नि पूजन को खूब मिलाया मानों तीनों को एक मत कर डाला । गुप्तराजा — लेकिन सन् १४४ ईस्वी से अर्थात् बौद्ध राजा मेघवाहन के मरने से बौद्धों का असली जोर घटने और ब्राह्मणों का बढ़ने लगा था जब फाहियान आया गुप्तवंशी दूसरा चंद्रगुप्त विक्रम सारे भारतवर्ष का महाराजाधिराज था । यह शायद आखिरी बौद्ध चक्रवर्ती राजा हुआ वह समुद्रगुप्त पराक्रम का जिस का नाम सेवपुरमितरी और इलाहाबाद की लाटों पर खुदा है, बेटा था और उस के दादा पहले चंद्र के दादा । गुप्त से गुप्त संवत् गिना जाता था (अभी हम लिख आये हैं कि "एक साहिब ऐसा भी अनुमान करते हैं कि यहाँ संवत् गुप्तों के राज से चला था बीच में लुप्त हो गया था फिर किसी गुप्त विक्रम ने जारी किया इससे विक्रम का कहलाया" सो वह विक्रम यही दूसरा चन्द्रगुप्त हो सकता है । विक्रम अथवा विक्रमादित्य उस का खिताब था और इसी तरह शिलादित्य अवश्य उस के बेटे कुमार गुप्त महेन्द्र का खिताब

रहा होगा इससे पहले कहीं विक्रम के नाम से किसी संवत् का कुछ पता नहीं लगता है अबूरेहा लिखता है

فاما كرت كمال فگان كمانيل ذوعاً اشرار القربيا فلما انقرض اوج بهم و
 كان بلب كال اخير هم ازل تاريهم ايضا صالحيون من شك كال افا

जमदग्न्यजय

समुद्रमंथन

त्रिपुरबाह

सारदातिलक

(शंकर)

ययातिचरित

(रुद्रभट्ट)

ययातिविजय

ययातिशर्मिष्ठा

मृगांकलेखा

(त्रिमल्लदेव के पुत्र
विश्वनाथ)

हास्यार्णव +

महावीरचरित *

(भवभूति)

उत्तररामचरित *

..

रत्नावली *

(श्रीहर्ष)

नागानन्द, ° ..

विदग्धमाधव X

(रूपगोस्वामि)

राधामाधव

पारिजातक

कमलिनीकलहंस चूड़ामणि दीक्षित

तपतीसंवरण

(त्रावकोरराज)

मालमंगलभाण

(मालमंगल)

कलावतीकामरूप

नग्नभूपतिग्रह नाटक

प्रियदर्शना

यादवोदय

बालिवध

अनेकमूर्त

मयपालिका

क्रीडारसालतल

कनकावतीमाधव

विन्दुमती

केलिरैवतक

कामदत्ता

सुदर्शनविजय

वासन्तिकापरिणय

चित्रयज्ञ

(वैद्यनाथ वाचस्पति

भट्टाचार्य)

वृषभानुजानाटिका X

(मथुरा दास कायस्थ)

रूपारागोदय X

(रुद्रचन्द्रदेव)

और वाड साहिब के वमूजिब सोमनाथ में एक पत्थर र संवत् १३२० और बल्लभी ९५४ और हिजरी ६६२ लिखा हुआ मिला है पस मुताबकत बहुत अच्छी हो जाती है अर्थात् ईस्वी सन् ३१९ अर्थात् गुप्त संवत् ३७६ में कि विक्रम के संवत् के बराबर है गुजरात से गुप्तों के निकलने पर गुप्त संवत् लुप्त होकर बल्लभी का संवत् शुरू हुआ। जब विक्रम ने गुप्त संवत् का उद्धार करके उसे फिर चलाया वह अर्थात् गुप्त संवत् अर्थात् विक्रम का चलाया संवत् १३२० बल्लभी संवत् ९५४ के जैसा कि पत्थर पर लिखा है बराबर आया। इसी दूसरे चन्द्रगुप्त विक्रम के पोते स्कन्दगुप्त का कीर्तिस्तम्भ गोरखपुर के जिले में सीलमपुर मभौली के पास कुहाव गांव में अब तक मौजूद है। उसमें लिखा है कि एक सौ राजा उसके सामने सिर झुकाते थे। स्कन्दगुप्त के बाप कुमारगुप्त महेन्द्र की तसवीर जो उसके सिक्के पर है उस से जाहिर है कि वह थोड़ी मुहरी का पाजामा और बुटमदार कोट पहनता था। गुप्त राजाओं के सिक्कों पर अकसर शिव पार्वती नदी मयूर सिंह (मयूर कार्तिकेय का वाहन और सिंह पार्वती का और नदी शिव का यह तो हर कोई जानता है) इत्यादि का चिन्ह मिलता है। समुद्रगुप्त और स्कन्दगुप्त दोनों निश्चय वैदिक और शैव थे। सन् ३१९ ईस्वी में इन गुप्तों को सेन राजाओं ने गुजरात से निकाल दिया और अपनी राजधानी बल्लभी (कहते हैं कि बल्लभी का राज सन् २०० ईस्वी से कुछ पहले सूर्यवंशी कनकसेन ने अवध से जाकर जमाया था) का संवत् काइम किया। यह सेन भी बड़े नामी राजा हुए। निदान हवागंगा के समय तक अर्थात् सन् ६०० ईस्वी से इधर तक बौद्धमत मध्यदेश में बना रहा, फिर घटते घटते ऐसा घटा कि सन् बारह तेरह सौ ईस्वी से भारतवर्ष में अब नाम को भी बाकी न रहा। हवागंगा लिखता है कि बनारस में १०० शिवालय और १०००० शैव मौजूद थे और बिहार में कुल तीस और बौद्ध पांच हजार से भी कम रह गए थे। इस सन्देह नहीं कि कन्नौज के भवभूति ने सन् ७२० ईस्वी में मालतीमाधव नाटक बनाया है उस में लिखा है कि बिहार के राजा का लड़का माधव न्याय सीखने के लिये उज्जैन में एक बौद्ध गुरनी के पास गये और वहां मन्त्री की लड़की मालती भी पढ़ने को आती थी परन्तु दिल्ली में तोमर कन्नौज में राठौर महोबे में चंदेल सब शैव और वैष्णव थे। बुद्ध ने चाहा था कि ज्ञान जो बुद्धि से परे और केवल अनुभवसिद्ध है और थोड़ों को ही प्राप्त हो सकता है सब को दान दे और इन सब लोगों का हाल यह है कि मोटी बात चाहते हैं जो दिखलाई दे उसी की पूजा करते हैं। निबार यहीं मूर्ति और प्रतिमापूजन की जड़ हुई यहां तक कि स्तूप वृक्ष पशु राख हड्डी ईट पत्थर इत्यादि सब पूजने लगे।

मल्लिकामारुत *

(उद्दण्ड)

पार्वतीस्वयंवर

वसंततिलकभाण *

(वरदाचार्य)

सुभद्राविजय

मुकुन्दनन्द X

सुभद्राहरण

नटक मेलक प्रहसन *

भैमोपरिणय

दानकेलिकौमुदी X

रुक्मिणीकल्याण

(चूणामणि)

अभिराममणि

(सुन्दरमिश्र)

वसुमती चित्रसेन

मधुरानिरुद्ध

(चन्द्रशेखर)

विद्यापरिणय (वेदकविस्वामी)

कंसवध X

(कृष्णकविशेष)

अहल्या संक्रन्दन

प्रद्युम्नविजय

शंकरदीक्षित बाल-

आनन्दविलास

श्रीरामचरित

कृष्णदीक्षित के पुत्र

सेवतिकापरिणय

धूर्तनर्तक

साम्राज्यदीक्षित

कनकवल्लीपरिणय

कोतुक सर्वस्व

(गोपीनाथ पं.)

रामनाटक

प्रबोधचन्द्रोदय *(कृष्णमिश्र)

सुभद्राधनंजयविजय

(गुरुराम)

चैतन्यचन्द्रोदय

सौगंधिकाहरण

वकुलमालिनी परिणय

(कृष्ण दीक्षित)

संकल्पसूर्योदय *

(वेदांताचार्य)

वसंतभूषणभाण

रामाभ्युदय

इन्दिरापरिणय

कुंदमाला

कल्याणीपरिणय

सौगंधिकारहरण

कुसुमवाणविलास

रैवतकमदनिका

बटुचरित्र नाटक

कुसुमशेखरविजय

ताराशशांक

(चूडामणि)

मरकतवल्लीपरिणय

नर्मवती

चूडामणि नाटक

पं. अक्विकादत

विलासवती

व्यास साहित्याचार्य)

शृंगारतिलक

(रुद्रभट्ट)

सामवत नाटक

देवीमहादेव

सौगंधिका हरण

वाराशशांक

(श्रीधर)

कुसुमशेखरविजय

(चंडकौशिक *

(आर्यक्षेमीश्वर)

छलितराम

जानकीराधव

कंदर्पकेलि

रुक्मिणीपरिणय X

(रामचंद्र)

स्तंभितरंभ

गृहवृक्षवाटिका

विजयपारिजात वा

कुलपत्यंग

आसामविजय

(हरिजीवन)

बर्ध्याशिला

पुण्यदूषितक (प्रकरण)

तरंगदत्त (प्रकरण)

ललिता नाटिका

लीलामधुकर

जानकीपरिणय X

रामभद्र दीक्षित)

दूतांगद X

माधवाभ्युदय

(वेदांताचार्य)

मुहूर्तप्रहसन X

(सुभट)

प्रद्युम्नानन्दनीय

(वैकटाचार्य)

नाटक सर्वस्व

पंचवाणविजय

उदयन चरित

रविकिरण कृष्णिका

कृत्यारामायण

सुभद्राधनंजय

(गुरुराम)

रामाभिनन्द

कन्यामाधव

रामचरित

त्रिपुरारि

चंद्रकला

(विश्वनाथ)

सत्योत्तमापरिणय

प्रभावतीपरिणय

मिक्षाटन नाटक

मंत्रांग नाटक

संवरणा नाटक

सीताराघव नाटक

हृषिकेश चंद्र यशश्चंद्रिका

नरकासुरव्यायोग

अरुणामोदिनी

बृहन्नाटक

काशिदास प्रहसन

अंवालभाण

(श्रीवरदाचार्य)

कृष्णभक्तिचंद्रिकानाटक X

(अनंतदेव)

अतंद्रचंद्रिका

विद्यानिधि

पार्थ पराक्रम

भर्तृहरिनिर्वेद

धर्मविजयनाटक

(शुक्ल भूदेव)

सत्संगविजयनाटक (वैद्यनाथ)

चंद्रप्रभा X

कर्णसुंदरी नाटिका

रतिवल्लभ X

(जगन्नाथ पंडितराज)

जगन्नाथ वल्लभनाटक

ध्रुवचरित्र °

(पं. दामोदरशास्त्री)

अथ भाषानाटक

हिंदी भाषा में वास्तविक नाटक के आकार में ग्रन्थ की सृष्टि हुए पच्चीस वर्ष से विशेष नहीं हुए। यद्यपि नेवाज कवि का शकुन्तला नाटक, वेदान्त विषयक भाषा ग्रन्थ समयसार नाटक, ब्रजवासीदास प्रभृति के प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के भाषा अनुवाद, नाटक नाम से अभिहित हैं किन्तु इन सबों की रचना काव्य की भाँति है अर्थात् नाटक रीत्यनुसार पात्रप्रवेश इत्यादि कुछ नहीं है। भाषा कविकुल मुकुट माणिक्य देवकवि का 'देवमायाप्रपंच नाटक' और श्रीमहाराज काशिराज की आज्ञा से बना हुआ प्रभावती नाटक तथा श्रीमहाराज विश्वनाथसिंह रीवा का आनन्दरघुनन्दन नाटक यद्यपि नाटक रीति से बने हैं किन्तु नाटकीय यावत नियमों का प्रतिपालन इनमें नहीं है और छन्दप्रधान ग्रंथ हैं। विशुद्ध माणिक्य देवकवि का 'देवमायाप्रपंच नाटक' और श्रीमहाराज काशिराज की आज्ञा से बना हुआ प्रभावती नाटक तथा श्रीमहाराज विश्वनाथसिंह रीवा का आनन्दरघुनन्दन नाटक यद्यपि नाटक रीति से बने हैं किन्तु नाटकीय यावत नियमों का प्रतिपालन इनमें नहीं है और छन्दप्रधान ग्रंथ हैं। विशुद्ध नाटक रीति से

पात्रप्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्यचरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्र जी) का है। इस में इंद्र को ब्रह्महत्या लगना और उसके अभाव में नहुष का इन्द्र होना, नहुष का इन्द्रपद पाकर मद, उसकी इन्द्रानी पर कामचेष्टा, इन्द्रानी का सतीत्व, इन्द्रानी के भुलावा देने से सप्तऋषि को पालकी में जोत कर नहुष का चलना, दुर्वासा का नहुष को शाप देना और फिर इन्द्र का पूर्वपद पाना, यह सब वर्णित है। मेरे पिता ने बिना अंगरेजी शिक्षा पाए इधर क्यों दृष्टि दी यह बात आश्चर्य की नहीं। उन के सब विचार परिष्कृत थे। बिना अंगरेजी की शिक्षा के भी उन को वर्तमान समय का स्वरूप भली भाँति विदित था। पहले तो धर्मही के विषम में ही वह इतने परिष्कृत थे कि वैष्णवव्रत पूर्वपालन के हेतु अन्य देवता मात्र की पूजा और व्रत घर से उठा दिए थे। रामसन साहब लेफ्टिनेंटगवर्नर के समय काशी में पहला लड़कियों का स्कूल हुआ तो हमारी बड़ी बहिन को उन्होंने उस स्कूल में प्रकाश रीति से पढ़ने बैठा दिया। यह कार्य उस समय में बहुत ही कठिन था क्योंकि इस में बड़ी ही लोकनिन्दा थी। हम लोगों को अंगरेजी शिक्षा दी। सिद्धान्त यह कि उनकी सब बातें परिष्कृत थीं और उन को स्पष्ट बोध होता था कि आगे काल कैसा चला आता है। नहुष नाटक बनने का समय मुझ को स्मरण है। आज पच्चीस बरस हुए होंगे जब कि मैं सात बरस का था नहुष नाटक बनता था। केवल २७ वर्ष की अवस्था में मेरे पिता ने देहत्याग किया किन्तु इसी अवसर में चालीस ग्रन्थ (जिन में बलरामकथामृत, गर्गसंहिता, भाषावाल्मीकि रामायण, जरासन्धबध महाकाव्य और रसरत्नाकर ऐसे बड़े बड़े भी हैं) बनाए।

हिन्दी भाषा में दूसरा ग्रन्थ वास्तविक नाटककार राजा लक्ष्मणसिंह का शकुन्तला नाटक है। भाषा के माधुर्य आदि गुणों से यह नाटक उत्तम ग्रन्थों की गिनती में है। तीसरा नाटक हमारा विद्यासुन्दर है। चौथे के स्थान में हमारे मित्र लाला श्रीनिवासदास का तप्तासंवरण, पंचम हमारा वैदिकीहिंसा, षष्ठ प्रियमित्र बाबू तोताराम का केटोकृतान्त और फिर तो और भी दो चार कृत विद्य लेखकों के लिखे हुए अनेक हिन्दी नाटक हैं। सर. विलियम म्योर (१) साहिब के काल में

(१) सन् १८७६ ईस्वी जुलाई में मैंने भी एक कवित्व मेजा था जिस पर इन्होंने अनेक धन्यवाद दिया था। जो कवित्व मैंने मेजा था वह यह है —

अनेक ग्रन्थ बने हैं क्योंकि वे ग्रन्थ बनानेवालों को पारितोषिक देते थे। इसी से रत्नावली भी हिन्दी में बनी (२५) और छपी है किन्तु इसकी ठीक वही दशा है जो पारसी नाटकों की है। काशी में पारसी नाटकवालों ने नाचघर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उस में धीरोदात्त नायक दुष्यन्त खेमटेवालियों की तरह कमर पर हाथ रख कर मटक मटक कर नाचने और पतरी कमर बलखाय यह गाने लगा और डाक्टर थिबो बाबू प्रमदादास मित्र प्रभृति विद्वान यह कह कर उठ आए कि अब देखा नहीं जाता ये लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं। यही दशा बुरे अनुवादों की भी होती है। बिना पूर्व कवि के हृदय से हृदय मिलाए अनुवाद करना शुद्ध भ्रष्ट मारना ही नहीं कवि की लोकान्तर स्थित आत्मा को नरक कष्ट देना है।

इस रत्नावली की दुर्दशा के दो चार उदाहरण यहां विखलाए जाते हैं। 'यथा तब यह प्रसंग हुआ कि योगन्धरायण प्रसन्न हो कर रंगभूमि में आया और यह बोला और गान कर कहता है कि अए मदनिके' अब कहिए यह राम कहानी है कि नाटक ? और आनन्द सुनिए 'जो आज्ञा रानी जी की ऐसा कर तैसा ही करती है हहाहाहा !!!

'एक आनन्द और सुनिए। नाटकों में कहीं कहीं आता है 'नाट्ये नोपविश्य' अर्थात् पात्र बैठना नाट्य करता है। उस का अनुवाद हुआ है 'राजा नाचता हुआ बैठता है' 'नाट्ये नोल्लिख्य' की दुर्दशा हुई है 'ऐसे नाचते हुई लिखती है' ऐसे ही 'लेखनी को लेकर नाचती हुई' निकट बैठ कर नाचती हुई।'।।

और आनन्द सुनिए 'इतिविष्कम्मकः' का अनुवाद हुआ है 'पीछे विष्कम्मक आया' धन्य अनुवादकर्ता !

और धन्य गवर्नमेंट जिसने पढ़ने वाले की बुद्धि का सत्यानाश करने को अनेक द्रव्य का श्राद्ध कर के इस को छपा !!

गवर्नमेंट की तो कृपादृष्टि चाहिए योग्यायोग्य के विचार की आवश्यकता नहीं। फालेन साहब की डिक्शनरी के हेतु आधे लाख रुपये से विशेष व्यय किया गया तो यह कौन बड़ी बात है। 'सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास'। यहाँ तो 'मेंट भए जय साहि सों 'भाग चाहियत भाल' वाली बात है। किन्तु ऐसी दशा में अच्छे लोगों का परिश्रम व्यर्थ हो जाता है क्योंकि 'आंधरे साहिब की सरकार कहाँ लौं करे चतुराई चितेरो'।

यद्यपि हिन्दी भाषा में दस बीस नाटक बन गए हैं किन्तु हम यही कहेंगे कि अभी इस भाषा में नाटकों का बहुत ही अभाव है। आशा है कि काल की क्रमोन्नति के साथ ग्रन्थ भी बनते जायेंगे। और अपनी सम्मति शालिनी ज्ञान वृद्ध बड़ी बहन बंगभाषा के अक्षररत्न भांडागार की सहायता से हिन्दी भाषा बड़ी उन्नति करे।

यहाँ पर यह बात प्रकाश करने में भी हम को अतीव आनन्द होता है कि लण्डन नगरस्थ श्रीयुत फ्रेडरिक पिनकाट साहब ने भी (२६) शकुन्तला का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है। वह अपने २० मार्च के पत्र में हिन्दी ही में मुझ को लिखते हैं 'उस पर भी मैं ने हिन्दी भाषा के सिखलाने के लिए कई एक पोथियाँ बनाई हैं उनमें से हिन्दी भाषा में शकुन्तला नाटक एक है।'।

हिन्दी भाषा में जो सब से पहला नाटक खेला गया वह जानकीमंगल था। स्वर्गवासी मित्रवर बाबू ऐश्वर्य्य नारायण सिंह के प्रयत्न से चैत्र शुक्ल ११ संवत्

आसुतोस ऐसे आसु तोसत सबन तुम याही तें जगत नीलकंठ बने चाके हो। त्रासत अनेक खल सर्पन सदप तुम वलम मयूर सुख पूरक प्रजा के हो।।१।।

(१) इस को बरेली कौलेज के संस्कृत प्रोफेसर पण्डित देवदत्त तिवारी ने उलथा किया है। वह महाशय देवकोश अर्थात् अमर कोश भाषा-विवरण सहित के कर्ता भी हैं :

देखि भूमि हरित अधिक हरखात गात ईस कृपा जल सों विसैस सुख छाके हो। सबै तुम्है मोर कहे सहज सनेह बस प्रजा दुख बलन सहज डग ताके हो।।

(२) इन से मुझे संस्कृत, नागरी की उन्नति होने की अधिक आशा है क्योंकि इन्होंने संस्कृत हिन्दी के अनेक ग्रंथ पुराचीन और नवीन संग्रह किए हैं और तन मन धन से संस्कृत हिन्दी की उन्नति चाहते हैं। मैं हिन्दी का यह सौभाग्य समझता हूँ। ऐसे सहायक मित्र मिलने से हिन्दी रसिकों को भी अभिमान होना चाहिये। ये उन पुराचीन ग्रन्थों के प्रकाश के लिये यत्न कर रहे हैं जो अब तक प्रकाश न हुए हैं। इन के कई पत्रों का संग्रह हिन्दी भाषा में है देखिये।

१९२५ में बनारस थिएटर में बड़ी धूम धाम से यह खेला गया था। रामायण से कथा निकाल कर यह नाटक पंडित शीतला प्रसाद त्रिपाठी ने बनाया था। इस के पीछे प्रयाग और कानपुर के लोगों ने भी रणधीर प्रेममोहिनी और सत्यहरिश्चन्द्र खेला था। पश्चिमोत्तर देश में ठीक नियम पर चलने वाला कोई आर्य्य शिष्टजन का नाटकसमाज नहीं है।

अथ हिन्दी नाटक तालिका ।

नहुषनाटक	(श्रीगिरिधरदास)
शकुन्तला	(राजालक्ष्मण सिंह)
शकुन्तला	(फ्रेडरिक पिकाट साहब)
मुद्राराक्षस	(हरिश्चन्द्र)
सत्य हरिश्चन्द्र	"
विद्या सुंदर	"
अन्धेर नगरी	"
विषस्य विषमौषधम्	"
सती प्रताप	"
चन्द्रावली	"
माधुरी	"
पाखंड विडम्बन	"
नवमल्लिका	"
दुर्लभमन्थु	"
प्रेमयोगिनी	"
जैसा काम वैसा परिणाम	"
नील देवी	"
भारत दुर्दशा	(हरिश्चन्द्र)
भारत जननी	"
धनंजय विजय	"
वैदिकी हिंसा	"
बूढ़ेमुह मुंहासे लोग	
देखे तमाशे (बूढ़े शालिकेर	बाबूगोकुल
का अनुवाद ।	चन्द
अद्भुत चरित्र वा गृहचंडी	(श्रीमती)
तप्तासंवरण	लाला श्रीनिवास दास)
रणधीर प्रेममोहिनी	(लाला श्रीनिवास दास)
केटो कृतान्त	(बाबू तोताराम भारत
	बंधु सम्पादक)
सज्जाद सुम्बुल	(बाबू केशोराम भट्ट
	बिहारबन्धु सम्पादक)
शमशाद सौसन	"
जय नारसिंह की	(पं देवकीनन्दन दिवारी,

प्रयाग समाचार पत्र सम्पादक)

होलीखगेश	"
चक्षुदान	"
पद्मावती	(पं. बालकृष्ण भट्ट
शर्मिष्ठा	हिंदीप्रदीप
सरोजिनी	(पं. गणेशदत्त)
सरोजिनी	(राधाचरण गोस्वामी भारतेन्दु सम्पादक)
मृच्छकटिक	(पं. गदाधरभट्ट मालवीय,
मच्छकटिक	(पं. दामोदर शास्त्री)
मृच्छकटिक	(बाबू ठाकुरदयाल सिंह)
बारांगना रहस्य	(बाबू बदरीनारायण
	चौधरी, आनन्दकादम्बिनी के सम्पादक)
विज्ञान विभाकर	(पं. जानी बिहार लाल)
ललिता नाटिका	(पं. अम्बिका दत्त)
व्यास साहित्याचार्य, वैष्णव पत्रिका और पियूषप्रवाह	के सम्पादक)
बेव पुरुष हृदय	"
वैणीसंहार नाटक	"
गोसंकट	"
जानकीमंगल	(पं. शीतलाप्रसाद त्रिपाठी)
दुःखिनीबाला	(बाबू राधाकृष्णदास)
पद्मावती	"
महारस	(महाराजधिरज कुमार लाल
	खंग बहादुरमल्ल युवराज
	मन्मौली राज)
रामलीला ७ कांड	(पं. दामोदर शास्त्री,
	विद्यार्थी सम्पादक)
बालखेल	"
राधामाधव	"
वेनिस का सौदागर	(बाबू बालेश्वर प्रसाद)
	काशी पत्रिका सम्पादक)
	(बाबू ठाकुरदयाल सिंह)

योरप में नाटकों का प्रचार

योरप में नाटकों का प्रचार भारतवर्ष के पीछे हुआ है। पहिले दो मनुष्यों के सम्बाद को ही वहाँ नाटकों का सूत्रपात मानते हैं। प्राचीन ईसाई धर्मपुस्तक में 'बुक अव जाब' और सुलैमान के गीतों में ऐसे सम्बाद मिलते हैं किन्तु इन के अतिरिक्त हिब्रू भाषा में और कोई प्राचीन नाटक का ग्रन्थ नहीं। योरप में सबसे प्राचीन नाटक यूनान में मिलते हैं और यह निश्चय अनुमान हुआ है कि भारतवर्ष से वहाँ यह विद्या गई होगी। यूनान में एयेन्स प्रदेश में नाटकों का प्रचार विशेष था

और डायोनिसस (१) नामक देवता के मेले में नाटक प्रायः खेले जाते थे। अनुमान होता है कि बैक्सस

(२) नामक देवता की पूजा से वहाँ इन का चलन हुआ प्राचीन काल से यूरोप के नाटक संयोगान्त और वियोगान्त इन दो भागों में बँटे हैं। आरिअन नामक कवि ने ५८० वर्ष ईसा के पूर्व वियोगान्त नाटक की सृष्टि की ट्रेजिडी (Tragedy) शब्द बकरे से निकला है जिस से अनुमान होता है कि बैक्सस देवता के सामने बकरे का बलि दिया जाता था और उसी समय पहिले यह खेल आरम्भ हुआ इस से वियोगान्त नाटक की संज्ञा ट्रेजिडी हुई। (Comedy) कामेडी ग्राम शब्द से निकला है अर्थात् ग्राम्यसुखों का जिन में वर्णन हो वह कामेडी (संयोगान्त) है। थेसपिस ने (५३६ ई. पू.) प्रथम रंगशाला में एक शिष्य का वेष देकर मनुष्यों को सम्वाद पढ़वाया और उसी पात्र को प्रिनिशश ने ५१२ ई. पू. पहले पहल स्त्री का वेष देकर रंगशाला में सब को दिखलाया। इस के पीछे इशिलस के काल तक वियोगान्त नाटकों में फिर कोई नई उन्नति नहीं हुई।

आरिअन ही के समय में वरन् उसी के लाग पर सुसेरियन ने संयोगान्त नाटकों का प्रचार सारे यूनान में फिर फिर कर किया और एक छोटी सी चलती फिरती रंगशाला भी उन के साथ थी। उस काल के ये नाटक अब के बंगाली यात्रा वा रास के से होते थे। उस समय में वियोगान्त नाटक गम्भीराशय और विशेष चित्ताकर्षक होने के कारण सभ्य लोगों में और संयोगान्त ग्राम्य लोगों में खेले जाते थे। एपिकार्मस, फार्मस, मेगनेस, क्रेटस, क्रेटनस यूपोलिस, यूफेटिक्रेटस और एलिस्टेफेन्स ये सब उस काल के प्रसिद्ध कामेडी लेखक थे। बीच में लोगों ने संयोग वियोग मिला कर भी पुस्तकें लिख कर इस विद्या की उन्नति की।

वियोगान्त नाटक में इशिलस सोफाकोलस और यूरुपिडीस ये तीन बड़े दक्ष हुए। इन कवियों ने स्वयं पात्रों को अभिनय करना सिखाया और स्वाभाविक भावभंगी दिखलाने में विशेष परिश्रम किया। अरस्तू ने इन्हीं तीनों कवियों की अपने ग्रन्थ में बड़ाई की है।

रोमवाले नाटकविद्या में ऐसे दक्ष नहीं थे। इन लोगों ने यूनान वालों ही से इस विद्या का स्वाद पाया। शोक का विषय है कि प्लाटस और टेरेन्स के अतिरिक्त इन कवियों में से किसी का नाम मालूम है न कोई ग्रन्थ मिला। आगस्टस के प्रसिद्ध समय में

इस विद्या की उन्नति हुई थी किन्तु सेनीका नामक नाटक के अतिरिक्त और किसी ग्रन्थ का नाम तक कहीं नहीं मिला। रोम के बड़े बड़े महलों और धीरों के साथ वहाँ की विद्या और कला भी धूल में मिल गई, यहाँ तक कि उन का नाम लेनेवाला भी कोई न बचा। जब रोम में क्रिस्तानी मत फैला तो ऐसे नाटक वा खेल राजनियम के अनुसार निषेध कर दिए गए। केवल पिता पुत्र एपोलीनारी और ग्रेगरी ने इजिप्स से कथा भाग लेकर क्रिस्तानों का जी बहलाने को कुछ सवांग इत्यादि बनाए थे।

यूरोप में इटलीवालों ने पहले पहल ठीक तरह से नाटक के प्रचार में उद्योग किया और रोमवालों के चित्त में फिर से मुरझाए हुए इस बीज को हरा किया। सोलहवीं शताब्दी में ट्सनो कवि का सोफोनिस्वा नामक वियोगान्त नाटक पहले पहल छपा गया। आरिआस्टोवैबिना और मैशियाविली ने टिसीनो की भाँति और कई नाटक लिखे। इसी शताब्दी के अंत में गिम्बाटिस्त्यालिआपोर्दा ने प्रहसन पहले पहल प्रकाश किया और इस में परिहास की बातें ऐसी सुसम्भ्यता से वर्णन की कि लोगों ने नाटक की इस शैली को बहुत ही प्रसन्नता से स्वीकार किया। इसी समय में हिशी, बोरगिनी, ओडो और बुओनाटोरी ने जातीय स्नेह बढ़ानेवाले वीररसाश्रित इतिहास के खेल लिखे और प्रचार किए। सत्रहवीं शताब्दी में रिनुशिनी ने पहले पहल आपेरा (संगीत नाट्य) का आरम्भ किया। इस में उस ने ऐसे उत्तम रीति से प्रेम, देशस्नेह, वीर और करुण रस के गीत बांधे कि सब लोग और नाटकों को भूल कर इसी की ओर भुके। मैकी नामक कवि ने इस की ओर भी उन्नति की। अब स्पेन फरासीस चारों ओर इसी गीतिनाट्य का चर्चा फैल गया। इस के पीछे जीनो, मेटेस्टेसिओ, गोलडोनी, मोलिएर, रिशोबिनी, गोज्जी, गालडोनी, आलफीरो, मांटी, मानुजानी और निकोलिनी इत्यादि प्रसिद्ध कवियों ने पूर्वोक्त नाटकों के ऐसी उत्तमता से ग्रन्थ लिखे और नाट्य में ऐसी उन्नति की कि इटली इस विद्या में सारे योरप की गुरु मानी गई।

यूरोप के और देशों में नाटकों के प्रचार को पादरियों ने बहुत रोका। जहाँ कोई नाटक खेलता थे पादरी उस को धर्म दण्ड देने को दौड़ते। विलेना,

(१) यह युद्ध का देवता था।

(२) यह मद्य का देवता है। प्रिन्सिप साइब कहते हैं कि यह बलराम है।

सान्तिलाना, नाहरो और रूपड़ा नामक कवियों ने इस आपत्ति से बचने को अपनी लेखनी को धर्मविषय के नाटकों के लिखने पर परिचालित किया। विशेष कर के करवैनस ने अपने नाटक ऐसी उत्तमता से लिखे कि लोगों के चित्त से नाटकों की बुराई का संस्कार एकबारगी उठा दिया। इस के पीछे कलिडरन भी ऐसा ही उत्तम कवि हुआ कि उस को राजनियम विरुद्ध होने पर सैतीस बरस के वास्ते नाटक लिखने की राजाज्ञा मिली। ये दोनों कवि सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व भाग में हुए थे।

फरासीस में नाटकों के विषय में बहुत सा वादानुवाद होता रहा और इसके होने के नियमों पर लोगों में बड़ा चरचा रहा किन्तु कोई बहुत उत्तम नाटक लेखक उस समय नहीं हुआ। जाडिली ने पहले पहल पांच अंक का एक वियोगान्त नाटक ठीक चाल पर बनाया और फरासीस के दूसरे हेनरी बादशाह के सामने वह खेला गया। चौदहवें लुइस के दरबार में कार्नीली, मालिएरी और रैसिनी क्रम से एक दूसरे अच्छे नाटकवाले हुए। इस के पीछे वालटायर बड़ा प्रसिद्ध हुआ वाले हुए। इस के पीछे वालटायर बड़ा प्रसिद्ध हुआ और फिर चार पांच और प्रसिद्ध कवि हुए।

जर्मनी के नाटक के इतिहास में अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ तक कोई भी विशेष बात नहीं। लेंसिंग ने पहले पहल अपनी धूम धाम की समालोचना में जर्मनी का ध्यान इधर फेरा। इसके पीछे गोथी और सिलर यह दो बड़े प्रसिद्ध लेखक हुए।

इंग्लैण्ड के नाटकों का इतिहास अत्यन्त शृंखलाबद्ध है। पहले यहां केवल मत सम्बन्धी नाटक होते थे और इन का प्रबन्ध भी पादरियों के हाथ में रहता था। ये नाटक दो प्रकार के होते थे एक धर्मसम्बन्धी आश्चर्य घटनाओं के दूसरे शिक्षा-सम्बन्धी। इंग्लैण्ड के पुनरसंस्कार ने इन पुरानी बातों में कोई स्वाद बाकी न रक्खा। यहा तक कि सोलहवीं शताब्दी के मध्य में संयोग और वियोग के नाटक स्वतंत्र रूप से वहां प्रचण्ड हुए। पहला संयोगान्त नाटक सन् १५५७ में निकोलस उडाल ने लिखा। ठीक उसके दस बरस पीछे बीबी नोरटेन और लाई

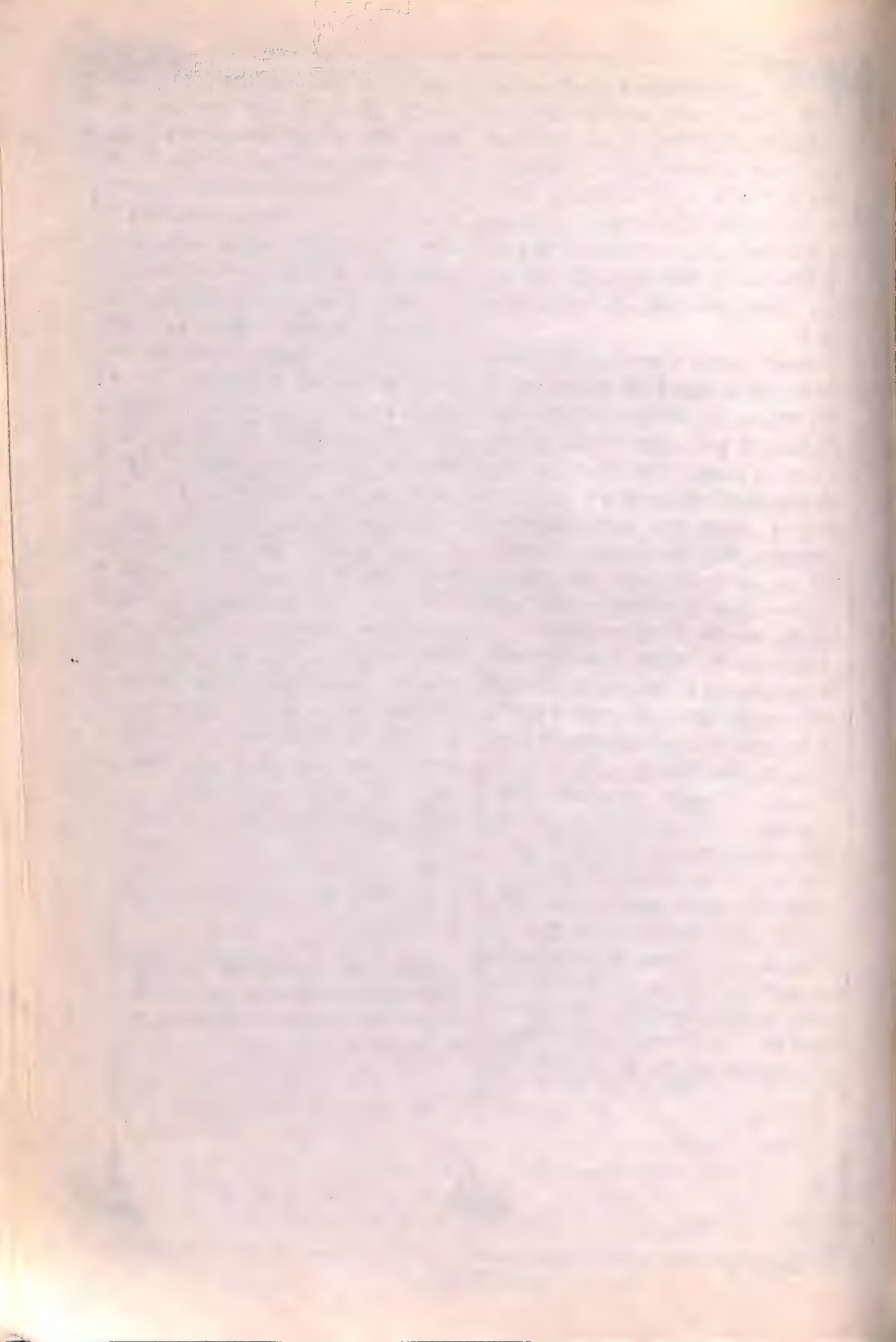
बकहर्स्ट से मारबूडाक नामक पहला वियोगान्त नाटक बनाया। उस के पीछे स्टिल, किड, लाज, ग्रीन, लायली, पील, माली और नैश इत्यादिक कई प्रसिद्ध नाटककार हुए। जगत विख्यात शेक्सपीयर ने अपने वाक्य माधुर्य के आगे सब को जीत लिया। यह प्रसिद्ध कवि सन् १५६४ में स्ट्रट फोर्ड बार्बिक्सायर में उत्पन्न हुआ। इसका पिता ऊन का व्यवसाय करता था और उसके दस लड़कों में शेक्सपीयर सब से बड़ा था। काल पा कर यह ऐसा प्रसिद्ध कवि हुआ कि पृथ्वी के मुख्य कवियों की गणना में एक रत्न समझा जाने लगा। इस को जैसी कविताशक्ति थी वैसी ही विचित्र कथाओं की बाँधने की भी शक्ति थी। जिस के मस्तिष्क में ये दोनों शक्तियाँ एकत्र हों उस के बनाए हुए नाटकों का क्या पूछना है। नाटक भी इस ने बहुत बनाए और सब रस के। निस्सन्देह यह मनुष्य परमेश्वर की सृष्टि का एक रत्न हुआ है।

बेनजानसन, व्यूमौन और फ्लेचर ये तीन शेक्सपीयर के समकालीन प्रसिद्ध नाटककार हुए हैं। मैसिन्जर, फोर्ड और शरली के काल तक इंग्लैण्ड की प्राचीन नाटक प्रणाली समाप्त होती है। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में ड्राइडन ने नई प्रणाली के नाटक लिखने आरम्भ किए। अठारहवीं शताब्दी में ली, आटवे, ग्रे, कानग्रीव, सिवर, विचरली, वैनब्रो, फारक्वहर, एडिसन जान्सन, यंग टामसन, लिलो, मूर, गैरिक, गोल्डस्मिथ कालमन्स, कम्बरलैण्ड, हालक्राफ्ट, बीबी इन्च वाल्ड, लुइस, मैटूरिन नेट्यूरिन तथा आधुनिक काल में शिरिडन नोल्स, बुलवरलिटन लॉर्डवैरन, कालेरिज, हेनरी, टेलर, टालफोर्ड जेरलड ब्रूक्स, मास्टेन, टामटेलर, चाल्सरीड, राबर्टसन, विल्स वैरन, गिल्वर्ट, स्विनवर्न, टेनीसन और ब्रौनिंग प्रसिद्ध नाटककार गद्य पद्य के कवि हुए हैं।

इंग्लैण्ड में इन नाटक लिखनेवालों के हेतु एक राजनियम है जिस से अपने जीवित समय में कवि लोग और उन के पीछे उन के उत्तराधिकारी कविस्वत्व का भोग कर सकते हैं।

॥ इति ॥





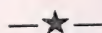
तीसरा खण्ड
(गद्य)



अगरवालों की उत्पत्ति

इसका रचनाकाल सन् १८७१ है। इसी वर्ष यह मेडिकल हाल प्रेस से छपी। १८७१ की किसी कविवचन सुधा में इसका विज्ञापन भी छपा था। सन् १८८२ का खंडूग विलास प्रेस बांकीपुर का भी एक संस्करण मिलता है। शेरिंग की कास्ट और ट्राइब में इस लेख का उल्लेख कई बार आता है।
— सं.

भूमिका



यह वंशावली परंपरा की जनश्रुति और प्राचीन लेखों से संगृहीत हुई है परंतु इसका विशेष भाग भविष्य पुराण के उत्तर भाग में के श्रीमहालक्ष्मी व्रत की कथा से लिया गया है। इसमें वैश्यों में मुख्य अगरवालों की उत्पत्ति लिखी है। इस बात का महाराज जय सिंह के समय में निर्णय हुआ था कि वैश्यों में मुख्य अगरवाले ही हैं। इन अगरवालों का संक्षेप वृत्तांत इस स्थान पर लिखा जाता है। इनका मुख्य देश पश्चिमोत्तर प्रांत है और बोली स्त्री और पुरुष सब की खड़ी बोली अर्थात् उर्दू है। इन के पुरोहित गौड़ ब्राह्मण हैं और इनका व्यवहार सीधा और प्रायः सच्चा होता है और इस जाति में एक विशेषता यह है कि इन में कोई ऊँचे नीचे नहीं होते और न किसी को कोई अल्ल (उपाधि) होती है। बनारस और मिरजापुर में तो पुरवियों का नाम भी सुनाता है पर जो देश में पूछे कि तुम पुरविय हो कि पछाँही तो वे लोग बड़ा आश्चर्य करते हैं और कहते हैं कि पुरविय शब्द का क्या अर्थ है। बनारस के पछाँही लोगों में भी ठीक अगरवाले की रीतें नहीं मिलती और उनकी बोली भी वैसी नहीं है। केवल जो घर दिल्ली वाले लोगों के हैं उनमें वे बातें हैं। इन लोगों में जैसा विवाहादिक में उत्साह

होता है वैसा ही मरने में बरसों दुःख भी करते हैं परंतु जो बूढ़ा मरता है तब तो विवाह से भी धूमधाम विशेष कर देते हैं!!!

देश में तो जामा पगड़ी पहन के सब दाल भात खाते हैं पर इधर वह व्यवहार नहीं करते और केवल पूरी खाने में जाति का साथ देते हैं। एक बात यह भी इस जाति में उत्तम है कि अगरवालों में मास और मदिरा की चाल कहीं नहीं है पर हुक्का इनके पुरोहित और ये दोनों पीते हैं यों जो लोग नेमी हों वे न पियें पर जाति की चाल है। विवाह के समय इन का बहुत व्यय करना सब में प्रसिद्ध है। और इसी विपत्त से कई घर बिगड़ गए पर यह रीति छोड़ते नहीं। इन में कुछ लोग जैनी भी होते हैं। और देश में सब जनेऊ पहिरते हैं पर इधर पूरब में कोई कोई नहीं भी पहिरते। इनके पुरुषों का पहिरावा पगड़ी पायजामा या धोती और अंगा है और स्त्रियों का पहिरावा ओढ़ना घँघरा या छोटेपन में सुथना है। और दशो संस्कार होने की चाल इन में अब तक मिलती है। पुरबियों के अतिरिक्त मारवाड़ी अगरवाले भी होते हैं पर इनका ठीक पता नहीं मिलता कि कथ से और कहाँ से हैं। जैसे पछाँही अगरवालों की चाल खत्रियों से मिलती है वैसे ही इन मारवाड़ियों की महेशवरियों से मिलती है पर पुरबियों की चाल तो इन दोनों से बिलक्षण है।

अगरवालों की उत्पत्ति की भूमिका में यह बात लिखनी भी आनंद देने वाली होगी कि श्रीनंदरायजी, जिन के घर साक्षात् श्रीकृष्णचंद्र प्रगट हुए, वैश्य ही थे और यह बात श्रीमद्भागवतादि ग्रंथों से भी निश्चय की गई है। जो हो, इस कुल में सर्वदा से लोग बड़े धनवान और उदार होते आए पर इन दिनों वे बातें जाती रही थीं। मुगलों के समय से इनकी वृद्धि फिर हुई और अब तक होती जाती है।

मैंने इस छोटे से ग्रंथ में संक्षेप से इनकी उत्पत्ति लिखी है। निश्चय है कि इसे पढ़ के वे लोग अपनी कुछ परंपरा जानेंगे और मुझे भी अपने दीन और छोटे भाइयों में स्मरण रखेंगे।

वैशाख शुद्ध ५ सं० १९२८
काशी

श्री हरिश्चंद्र



वैश्यवंशावतंसाय भगवते श्रीकृष्णचन्द्राय नमः

अगरवालों की उत्पत्ति

दोहा

विमल वैश्य वंशावली, कुमुदवनी हित चंद ।

जयजय गोकुल, गोप, गो, गोपी-पति नंद-नंद ॥१॥

भगवान ने अपने मुख से ब्राह्मण और भुजा से क्षत्री और जाँघ से वैश्य और चरण से शूद्रों को बनाया । उसमें वैश्य को चार कर्म का अधिकार दिया — पहिला खेती, दूसरा गऊ की रक्षा, तीसरा व्यापार और चौथा व्याज । जैसे वेद और यज्ञादिक का स्वामी ब्राह्मण और राज्य और युद्ध का स्वामी क्षत्री वैसे ही धन का स्वामी वैश्य है और ब्राह्मण-क्षत्री-वैश्य इन तीनों की द्विज संज्ञा है और तीनों वर्ण वेद-कर्म के अधिकारी हैं । पहिला मनुष्य जो वैश्यों में हुआ उसका नाम धनपाल था, जिसे ब्राह्मणों ने प्रतापनगर में राज पर बिठाकर धन का अधिकारी बनाया । उसके यहाँ आठ पुत्र और एक कन्या हुई । उस कन्या का नाम मुकुटा था और वह याज्ञवल्क्य ऋषि से ब्याही गई । उन आठ पुत्रों के ये नाम थे — शिव, नल, अनिल, नंद, कुंद, मुकुंद, बल्लभ और शंखर । इन पुत्रों को अश्वविद्या शालिहोत्र के आचार्य विशाल राजा ने अपनी आठ बेटियाँ ब्याह दी थीं । उन कन्या लोगों के ये नाम थे और यही वैश्य लोगों की मात्रिका हैं — पद्मावती, मालती, कांती, शुभ्रा, भव्या, भवा, रजा और सुंदरी । इनका ब्याह नाम के क्रम से हुआ । इन आठ पुत्रों में नल नामा पुत्र जोगी दिगंबर होकर वन में चला गया और सात पुत्रों ने सात द्वीप का अधिकार पाया । और पृथ्वी में इनका वंश फैल गया । जब द्वीप में विश्व नामा राजा हुआ जो आठ पुत्रों में शिव के कुल में था और उस विश्व को वैश्य हुआ । उसके वंश में एक सुदर्शन राजा हुआ, जिस के दो स्त्रियाँ थीं जिन के नाम सेवती और नलिनी थे । उस का पुत्र धुरंधर हुआ । इसी धुरंधर का पड़पोता समाधि नामा वैश्य हुआ था । इसी समाधि के वंश में मोहन दास बड़ा प्रसिद्ध हुआ, जिस ने कावेरी के तट पर श्रीरंगनाथ जी के बहुत से मंदिर बनाए । इस का पड़पोता नेमिनाथ हुआ, जिसने नेपाल बसाया और उस का पुत्र वृंद हुआ, जिसने श्री वृन्दावन में यज्ञ करके वृंदा देवी की मूर्ति स्थापन किया । इस वंश में गुर्जर बहुत प्रसिद्ध हुआ, जिस के नाम से गुजरात का देश बसा है । इसके वंश में हीर नामा एक राजा हुआ, जिस के रंग इत्यादिक सौ पुत्र थे, जिन में रंग ने तो राज पाया और सब बुरे कर्मों से शुद्ध हो गए और तप के बल से फिर इन लोगों के वंश चलाये, जिन के वंश के लोग वैश्य हुए पर उनके कर्म शूद्रों के से थे । रंग का पुत्र विशोक हुआ, उसके पुत्र का नाम मधु और उसका पुत्र महीधर हुआ । महीधर ने श्री महादेव जी को प्रसन्न करके बहुत से बर पाये । इसके वंश में सब लोग ब्योहार में चतुर और सब धन और पुत्र से सुखी थे ।

इसी वंश में वल्लभ नामा एक राजा हुए और उस के घर में बड़े प्रतापी अग्र राजा उत्पन्न हुए । इसको अग्रनाथ और अग्रसेन भी कहते थे । यह बड़ा प्रतापी था । इसने दक्षिण देश में प्रतापनगर को अपनी राजधानी बनाया । यह नगर धन और रत्न और गऊ से पूर्ण था । यह ऐसा प्रतापी था कि इंद्र ने भी उससे मित्रता की थी । एक समय नाग लोक से नागों का कुमुद नाम राजा अपनी माधवी कन्या को लेकर भूलोक में आया और उस कन्या को देखकर इंद्र मोहित हो गया और नागराज से वह कन्या माँगी । पर नागराज ने इंद्र को वह कन्या नहीं दी और उसका विवाह राजा अग्र से कर दिया । यही माधवी कन्या सब अगरवालों की जननी है और इसी नाते हम लोग सर्पों को अब तक मामा कहते हैं ।

इंद्र ने इस बात से बड़ा क्रोध किया और राजा अग्र से बैर मान कर कई बरस उनकी राजधानी पर जल नहीं बरसाया और अग्रराजा से बड़ा युद्ध किया, तब भगवान ब्रह्मदेव ने दोनों को युद्ध से रोका । इससे राजा

अपनी राजधानी में फिर आया और राज अपनी स्त्री को सौंप के आप तीर्थों में घूमने चला गया और सब तीर्थों में फिर कर महालक्ष्मी की उपासना किया और काशी में आकर कपिलधारा तीर्थ पर महादेव जी का बड़ा यज्ञ करके बहुत सा दान किया, तब श्री महादेवजी प्रसन्न होकर प्रगट हुए और कहा कि वर माँगो तब राजा ने कहा कि मैं केवल यही वर माँगता हूँ कि इंद्र मेरे वंश में होय । इसपर प्रसन्न होकर अनेक वर दिये और कहा कि तुम महालक्ष्मी की उपासना करो तुम्हारी सब इच्छा पूरी होगी । यह सुन कर राजा फिर तीर्थ में चला और एक प्रेत की सहायता से हरिद्वार पहुँचा और वहाँ से गर्गमुनि के संग सब तीर्थों में फिरा और जब फिर हरिद्वार में आया तब वहाँ महालक्ष्मी की बड़ी उपासना किया और देवी ने प्रसन्न होकर वर दिया कि इंद्र तेरे वंश में होगा और तेरे वंश में दुःखी कोई न होगा और अंत में तुम दोनों स्त्री पुरुष ध्रुवतारा के आसपास रहोगे और इस समय तुम कोलापुर में जाओ, वहाँ नागराज के अवतार राजा महीधर की कन्याओं का स्वयंवर है वहाँ उन कन्याओं से व्याह करके अपना वंश चलाओ । देवी से ये वर पाकर राजा कोलापुर में गया और वहाँ उन कन्याओं से धूमधाम से व्याह किया और फिर कर दिल्ली के पास के देशों में आया और पंजाब के सिरे से आगे तक अपना राज स्थापन किया और इन्हीं देशों में अपना वंश फैलाया । जब इंद्र ने राजा के वर का समाचार सुना तब तो घबड़ाया और उससे मित्रता करनी चाही । और इस बात के हेतु नारद जी को भेजा और एक अप्सरा जिसका नाम मधुशालिनी था देकर मेल कर लिया । इसके पीछे राजा अग्रसेन ने जमुना जी के तट पर श्री महालक्ष्मी का बड़ा तप किया और श्रीलक्ष्मीजी ने प्रसन्न होकर ये वर दिये कि आज से यह वंश तेरे नाम से होगा और तेरे कुल की मैं रक्षा करने वाली और कुलदेवी हूँगी और इस कुल में मेरा दीवाली का उत्सव सब लोग मानेंगे । यह वर देकर श्री महालक्ष्मी चली गई । तब राजा ने आकर अपना राज बसाया । उस राज की उत्तर सीमा हिमालय पर्वत और पंजाब की नदियाँ थीं और पूर्व और दक्षिण की सीमा श्रीगंगाजी और पश्चिम की सीमा जमुनाजी से लेकर मारवाड़ देश के पास के देश थे । इनके वंश के लोग सर्वदा इन्हीं देशों में बसे । इससे मुख्य अगरवाले लोग वेही हैं जो पंजाब प्रांत से इधर मेरठ-आगरे तक के बसने वाले हैं । अगरवाल्लों के मुख्य बसने के नगर ये हैं — १-आगरा, जिसका शुद्ध नाम अग्रपुर है । यह नगर राजा अग्र के पूर्व-दक्षिण प्रदेश की राजधानी था । २-दिल्ली, जिसका शुद्ध नाम इंद्रप्रस्थ है । ३-गुडगाँवाँ, जिसका शुद्ध नाम गौड़ ग्राम है । यह नगर अगरवाल्लों के पुरोहित गौड़ ब्राह्मणों को मिला था, इसी से प्रायः अगरवाल्ले लोग यहीं की माता को पूजते हैं । ४-मेरठ, जिसका शुद्ध नाम महाराष्ट्र है । ५-रोहतक, जिसका शुद्ध नाम रोहिताश्रव है । ६-हाँसीहिसार, जिसका शुद्ध नाम हिसार देश है । ७-पानीपत, जिसका शुद्ध नाम पुन्यपत्तन जाना जाता है । ८-करनाल । ९-कोट काँगड़ा, जिसका शुद्ध नाम नगर कोट है । अगरवाल्लों की कुलदेवी महामाया का मंदिर यहीं है और ज्वाला जी का मंदिर भी इसी नगर की सीमा में है । १०-लाहौर, इस नगर का शुद्ध नाम लवकोट है । ११-मंडौ इसी नगर की सीमा में रेवाल्सर तीर्थ है । १२-बिलासपुर, इसी नगर की सीमा में नयना देवी का मंदिर बसा है । १३-गढ़वाल । १४-जींदसपीदम । १५-नाभा । १६-नारनौल, इसका शुद्ध नाम नारिनवल है । ये सब नगर उस राज में थे और राजधानी का नाम अग्र नगर था, जिसे अब अगरोहा कहते हैं । आगरा और अगरोहा ये दोनों नगर राजा अग्रसेन के नाम से आज तक प्रसिद्ध हैं । राजा अग्रसेन ने अपनी राजधानी में महालक्ष्मी का एक बड़ा मंदिर किया था ।

राजा अग्रसेन ने साढ़े सत्रह यज्ञ किये । इसका कारण यह है कि जब राजा ने अद्रारवाँ यज्ञ आरंभ किया और आधा हो भी चुका तब राजा को यज्ञ की हिंसा से बड़ी ग्लानि हुई और कहा कि हमारे कुल में यद्यपि कहीं भी कोई मांस नहीं खाता परंतु देवी हिंसा होती है, सो आज से जो मेरे वंश में हो उसको यह मेरी आन है कि देवी हिंसा भी न करे अर्थात् पशु-यज्ञ और बलिदान भी हमारे वंश में न होंवे और इससे राजा ने उस यज्ञ को भी पूरा नहीं किया । राजा को सत्रह रानी और एक उपरानी थीं । उनसे एक एक को तीन तीन पुत्र और एक एक कन्या हुई और उसी साढ़े सत्रह यज्ञ से साढ़े सत्रह गोत्र हुए । कोई लोग ऐसा भी कहते हैं कि किसी मनुष्य का व्याह जब गोत्र में हो गया तो बड़े लोगों ने एकही गोत्र के दो भाग कर दिये, इससे साढ़े सत्रह गोत्र हुए पर यह

१. इसको कोई मयराष्ट्र भी कहते हैं ।

२. अब यह एक गाँव सा बच गया है ।

वात प्रमाण के योग्य नहीं है । राजा अग्र के उन बहत्तर पुत्र और कन्याओं के बेटा अग्रवाल कहाए । अग्रवाल का अर्थ अग्र के बालक हैं । अग्रवालों के साढ़े सत्रह गोत्रों के ये नाम हैं — १ गर्ग, २ गोइल, ३ गावाल, ४ वात्सिल, ५ कासिल, ६ सिंहल, ७ मंगल, ८ भदल, ९ तिगल, १० ऐरण, ११ टैरण, १२ ठिंगल, १३ तितल, १४ मितल, १५ तुंदल, १६ तायल, १७ गोभिल, और गवन अर्थात् गोइन आधा गोत्र है, पर अब नामों में के कुछ अक्षर उलट पुलट भी हो गए हैं । राजा अग्र ने अपने सहायक गर्ग ऋषि के नाम से अपना प्रथम गोत्र किया और दूसरे गोत्रों के नाम भी यज्ञों के अनुसार रखे । राजा अग्र ने अपने कुल पुरोहित गौड़ ब्राह्मण बनाए और उस काल में सब अगरवाले वेद पढ़नेवाले और त्रिकाल साधनेवाले थे । राजा अग्र बूढ़ा होकर तप करने चला गया और उसका पुत्र विभु राज पर बैठा और उसके कई वंश तक राजा लोग अपने धर्म में निष्ठ होकर राज करते रहे । इस वंश में दिवाकर एक राजा हुआ, जो वेदधर्म छोड़कर जैनी हो गया और उसने बहुत से लोगों को जैनी किया और उसी काल से अगरवालों में वेदधर्म छूटने लगा परंतु अगरोहा और दिल्ली के अगरवालों ने अपना धर्म नहीं छोड़ा । इस वंश में राजा उग्रचंद्र के समय से राज घटने लगा और जब शहाबुद्दीन ने चढ़ाई किया तब तो अगरोहा सब भाँति नाश कर दिया । शहाबुद्दीन की लड़ाई में बहुत से लोग मारे गए और उनकी बहुतसी स्त्री सती हुईं, जो हम लोगों के घर में अब तक मानी और पूजी जाती हैं । यह अगरवालों के नाश का ठीक समय था । इसी समय से इन में से बहुतों ने धर्म छोड़ दिये और यज्ञोपवीत तोड़ डाले । उस समय जो अगरवाले भागे वे मारवाड़ और पूर्व में जा बसे और उनके वंश में पुरबिये और मारवाड़ी अगरवाले हुए, और उत्तराधी और दखिनाधी लोग भी इसी भाँति हुए, पर मुख्य अगरवाले पछाँही वेही कहलाए जो दिल्ली प्रांत में बच गए थे । जब मुगलों का राज हुआ तब अगरवालों की फिर बढ़ती हुई और अकबर ने तो अगरवालों को अपना वजीर बनाया । उसी काल से अगरवालों की विशेष वृद्धि हुई । अकबर के दो मुख्य और प्रसिद्ध अगरवाले वजीर थे, जिन का नाम महाराज टोडरमल और मद्भूषाह था । मद्भूषाही पैसा इन्हीं के नाम से चला है ।



चरितावली

अर्थात्

अनेक प्रसिद्ध पुरुषों का जीवन चरित

यह सन् १८७१ से १८८० के बीच लिखे इतिहास और पुराण पुरुषों के जीवन चरित्रों का संग्रह है। जो अलग-अलग पत्रिकाओं में छप चुकी है। इस संग्रह में उन व्यक्तियों का जीवन चरित्र है जिन्होंने धर्म, साहित्य, राजनीति आदि के विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित किया है। इसमें कुछ महान लोगों की कुण्डलियां भी हैं।

— सं.

चरितावली

१— विक्रम

इस के पूर्व कि हम विक्रमादित्य का कुछ चरित्र लिखें हम को श्री मद्बुहलर साहब का धन्यवाद करना चाहिए, जिन्होंने विक्रमांक-चरित्र नाम ग्रंथ खोज कर प्रकाश किया। यह श्रीहर्षचरित्र के चाल का एक दूसरा ग्रंथ है, जो अब प्रकाश हुआ। यह ग्रंथ विलहण कवि का है और अनेक छंदों में अठारह सर्ग में लिखा हुआ है। इसके सत्रह सर्गों में विक्रमादित्य का चरित्र और अठारहवें सर्ग में कवि ने अपना वर्णन किया है। प्रसिद्ध है कि चौरपंचाशिका इसी विलहण की बनाई हुई है। कहते हैं कि गुजरात के राजा वैरीसिंह की बेटी चन्द्रलोखा वा शशिकला को विलहण पढ़ता था और उस ने उससे गंधर्व विवाह भी किया था। जब राजा ने इस बात से क्रुद्ध होकर विलहण को फाँसी की आज्ञा दिया, रास्ते में इस ने चौरपंचाशिका बनाई, जिससे प्रसन्न होकर राजा ने फाँसी के बदले अपनी कन्या की बाँह उसके गले में डाली। इन कथाओं पर हमारा कुछ ऐसा विश्वास नहीं, क्योंकि इस ग्रंथ में विलहण ने इन बातों की कहीं चर्चा नहीं की है। विलहण अपना हाल यो लिखता है — कश्मीर के देश में त्रिहल्लम और सिंध के मुहाने पर प्रवर पुर नाम का बड़ा सुंदर नगर था। अनंत देव वहाँ का बड़ा प्रतापी और धार्मिक राजा था, जिसकी रानी का नाम सुभटा था। उस रानी का भाई क्षितिपति भोज के समान कवियों का गुण ग्राहक और बड़ा विष्णुभक्त था। अनंत का बेटा कलश हुआ और कलश के पुत्र हर्षदेव और विजयमल्ल थे। प्रवरपुर के पास ही विजयवन में खीनमुख नाम का एक गाँव था, जहाँ कुशिक गोत्र के ब्राह्मण बसते थे, जिनको गोपादित्य मध्य देश से बड़े आदर से लाया था। उन ब्राह्मणों में मुक्ति कलश सब से मुख्य था और उस को राज्य कलश और राज्य कलश को ज्येष्ठ कलश पुत्र हुआ। ज्येष्ठ कलश को इन्द्रराम, विलहण, आनंद तीन पुत्र थे। विलहण व्याकरण और काव्य अच्छी तरह पढ़ा था और श्री बृन्दावन में बहुत दिन तक उस ने काल बिताया और फिर कन्नौज, प्रयाग, बनारस और अयोध्या में फिरता रहा और फिर कुछ दिन दहाल के राज्य में, कुछ दिन धार में और कुछ दिन गुजरात में रहकर अपनी कविता से लोगों को प्रसन्न करता रहा। जब यह दक्षिण में चोल देश में गया, तो वहाँ के राजा से इसको विद्यापति की पदवी मिली। उस की

माता का नाम नागादेवी था। कर्ण के दरबार में गंगाधर कवि के मुकाबिले में राम जी के चरित्र में काव्य बनाया। यह अपने ग्रंथ में लिखता है कि किसी कारण से वह राजा भोज से न मिल सका। विक्रमांक चरित्र उसने अपने बुढ़ापे में बनाया। विदित रहे कि विल्हण इसवी ग्यारहवें शतक के मध्य और अंत भाग में हुआ है, क्योंकि विक्रमादित्य ने (जिस के दरबार का यह पंडित था) सन् १०७६ से ११२७ तक राज्य किया था। विल्हण की कविता में कई बातें विशेष जानने के योग्य हैं, जैसा उसने कादम्बरी का अपने ग्रंथ में वर्णन किया है, जिससे स्पष्ट जाना जाता है कि वाण कवि विल्हण के पहिले हुआ है और उसके समय में भी वाण की कविता का माधुर्य भारतवर्ष में फैला हुआ था। फारसी (शिकस्त) के चाल के कोई अक्षर विल्हण के समय में कश्मीर में लिखे जाते थे, क्योंकि उसने कश्मीर के वर्णन में लिखा है कि वहाँ कायस्थ लोग अपने लिखावट की जाल से किसी को ठग नहीं सकते थे। विल्हण गुजरातियों से बहुत नाराज था, क्योंकि वह लिखता है कि गुजराती राक्षसी बोली बोलते हैं और लांघ नहीं बाँधते और मेले होते हैं। विल्हण के बाप ने महामाष्य पर कोई तिलक किया था, परन्तु अब वह नहीं मिलता। विल्हण की कविता वैदर्भी और ओज और प्रसाद गुण से पूर्ण है। कविता से जहाँ कवि के और गुण प्रकट होते हैं वहाँ साथ ही उसका अभिमान, उबड़पटा और परिहास का स्वभाव भी पाया जाता है।^१

इसी कवि ने विक्रमादित्य का चरित्र अठारह सर्गों में कहा है। इस समय हम इस बात का भगड़ा नहीं ले बैठते कि विक्रम कितने भए और किस किस समय में भए। यहाँ पर हम केवल उस विक्रम का चरित्र वर्णन करते हैं जो दक्षिण देश में राज्य करता था, कल्याण जिसकी राजधानी थी और विक्रमादित्य जिस का नाम था। हमारे पाठक लोगों को यह जान कर बड़ा आश्चर्य होगा कि यह वह विक्रम नहीं है जिसका संवत् चलता है और न इस विक्रमादित्य के हुए १९४१ वर्ष हुए।

इस विक्रमादित्य का जन्म चालुक्य नामक क्षत्रीवंश में हुआ था। विल्हण लिखता है कि ब्रह्मा एक बेर अंजुली में जल लेकर अर्घ्य देना चाहते थे कि इंद्र अपनी विपत्ति कहने लगा, जिस से ब्रह्मा ने अपनी अंजुली का जल गिरा दिया और उसी से चालुक्य नामक क्षत्रियों का कुल उत्पन्न हुआ। हारीत और मानव्य इस वंश के पूर्व पुरुष थे और पहले से ये लोग अयोध्या के राजाओं के अधिकार में अयोध्या जी में बसते थे। श्री रामचंद्र के समय में भी ये लोग उन की सेवा में उपस्थित थे। फिर इन लोगों ने दक्षिण में अधिकार आरंभ किया और धीरे-धीरे वहाँ के राजा हो गये। काल पाकर श्री तैलप नामक इस वंश में एक राजा हुआ। इसने सन् ९७३ से ९९७ तक राज्य किया। इस ने हिंदुस्तान के बहुत से राजाओं को मार कर अपना अधिकार बढ़ाया। श्रीयुत बूलर साहब लिखते हैं मुंज को इसी ने मारा था और मालवा पर इस ने बड़े धूमधाम से चढ़ाव किया था। उसके पीछे सत्याश्रय राजा हुआ, जिसने ग्यारह वर्ष अर्थात् सन् १००८ तक राज्य किया। इसी का नामांतर सत्यश्री था। इस के पीछे जय सिंह राजा हुआ, जिसने सन् १०१० तक राज्य किया। इसके पीछे आहव मल्लदेव राजा हुआ। इसी का नामांतर त्रिभुवनमल्ल और त्रैलोक्यमल्ल था। इसने पचास के देश

१. "बून्दी राजवंश वर्णन" और बाबू रामचरित्र सिंह संग्रहीत "नृपवंशावली" और "राजस्थान" में देखिये।
 २. सिंहल के इतिहास में बंगाल का पहला हाल इतना लिखा है कि सिंहबाहु नाम एक बंगाले का राजा था। उस का बड़ा बेटा विजयसिंह प्रजाओं को पीड़ा देने के कारण जब देश से निकाला गया, तो सात सौ आदमियों के साथ जहाज में चढ़कर निकला। अनेक प्रकार के कष्ट सहने के उपरान्त सिंहल में जा पहुँचा और वहाँ के लोगों को जीत कर उन का राजा बन गया। विजयसिंह के मरने के बाद उस का भतीजा पांडुबास जो बंगाल में रहता था सिंहल-दीप के सिंहासन पर बैठा। यह सिंहलदीप के राजाओं में पहला राजा था। सिंहवंश के राजा होने के कारण इस टापू का नाम सिंहलदीप हुआ। जिस साल बुद्धदेव का परलोक हुआ था उसी साल सिजयसिंह सिंहल में पहुँचा। यह साफ जान पड़ता है कि ५०० बरस ईस्वी सन् के पहले बंगाल में आर्यवंश के लोगों का अधिकार बहुत बढ़ था, क्योंकि उन लोगों ने भी समुद्र की राह से जहाज पर चढ़ कर दूर दूर के देशों को जीता था।

३. विल्हण का यह स्फुट श्लोक मिला है, जिस से उसका अभिमान स्पष्ट प्रगट होता है।

वासः शुभ्रमुर्वसन्तसमयः पुष्पंशरन्मल्लिका। धानुष्कः कुसुमायुधः परिमलः कस्तूरिकाऽस्त्रवनुः।।
 वाणीतर्वरसोज्ज्वला प्रियतमा श्यामावयो धौवनं। देवोमाधवएवंपंचमलया गीतकिर्षिविल्हणः।।

मालव की राजधानी धारानगरी पर चढ़ाई किया। कर्नाटक, कुंतल और डहल देश में इसका निज राज्य था, पर चोल, केरल और द्रविण देश इसने जीत के अपने राज्य में मिला लिया था। विल्हण लिखता है कि अदभुत कथा और दश रूप काव्य में इस राजा का बहुत सा वर्णन है। इस को पुत्र नहीं होता था इस से इसने महादेव जी की घर ही में बड़ी आराधना की और काल पाकर सोमदेव, विक्रमादित्य और जय सिंह तीन पुत्र हुए। विक्रम के शरीर में छोटपन ही से शूरता इत्युदिक उत्तम गुण झलकते थे। जब यह जवान हुआ, तो पहिले इस ने बंगाले पर चढ़ाव किया और कामरूप जीता। समुद्रपार होकर सिंहल पर^० इसने चढ़ाव किया और द्रविड़ और चोलों की राजधानी कांची तीन बेर लूटा। जब वह सिंहल जीत कर लौटा, तो गोदावरी के पास सुना कि तुंगभद्रा के किनारे पिता ने देह त्याग किया। यह उसी समय घर गया और इस का बड़ा भाई सोमदेव राजा हुआ। विल्हण लिखता है कि सोमदेव बड़ा मदनमत्त हो गया था और इन्दुमित्र नामक एक बुरा राजा उस को सहायता को मिल गया, इस से विक्रम ने इसका संग छोड़ा। इसी को चालुक्य कहते हैं। दिया हौर कोंकण का राजा जयकेश इससे मिलकर दक्षिण में बहुत से देश जीते और अपना अपना अलग राज स्थापन किया। उस समय इस का छोटा भाई जयसिंह भी इस के साथ था। द्रविण देश के राजा ने अपनी कन्या देकर इस से मैत्री की और जब वह राजा मर गया तो विक्रम ने उसके बेटे अर्थात् अपने साले को बड़े धूमधाम से गद्दी पर बैठाया। और फिर गांगकुंडपुर होता हुआ तुंगभद्रा के किनारे आकर रहा। जब चेंगों के राजा राजिक ने इस के साले को जीत लिया था तब यह बड़ी धूमधाम से उस से लड़ने को आया था। यह लड़ाई बड़ी तैयारी से हुई और सोमदेव अंत में पकड़ा गया। राजिक भागा और विक्रमादित्य अपने बाप की गद्दी पर बैठा। काहाट के राजा की कन्या ने स्वयंवर किया था, जिस में विक्रमादित्य भी गया था। विल्हण ने यहाँ पर राजाओं के स्वाभाविक अभिमान और काम की चेष्टा के वर्णन में बहुत ही अच्छी स्वभावोक्ति दिखाई है और 'पारसीक तैल' के नाम से आतिशबाजी के भाँति की किसी वस्तु का वर्णन किया है। स्वयंवर में विल्हण ने नीचे लिखे हुए राजाओं का वर्णन किया है, जिस से प्रगट होता है कि इतने राजा उस समय अलग अलग वर्त्तमान और अच्छी दशा में थे, यथा अयोध्या, चंदेरी, कान्यकुब्ज (अर्जुन के कुल का राजा), चंबल के तट का देश, कालिंजर, गोपाचल, मालव, गुजरात, मंदराचल के समीप का पांड्यदेश और चोल। कन्या ने जयमाल विक्रमादित्य के गले में डाली और धूमधाम से इस का विवाह हुआ।

इस राजा के बहुत से ऐश्वर्य और बिहार वर्णन के पीछे विल्हण लिखता है कि एक दिन विक्रम ने दूत के मुख से सुना कि उसका छोटा भाई बागी हो गया है और चेंगों जीतने के पीछे विक्रम ने जो उसे देश और सेना दी थी उस पर संतोष न करके बहुत से सिपाही नौकर रख के सारे दक्षिण में लूट मार करता फिरता है और द्रविड़ के राजा (शायद विक्रम का साला) ने उसे बहुत ही बहकाया है और छोटे-छोटे बहुत से उपद्रवी राजा उससे मिल गए हैं। यह सुन कर बहुत पछताया और सेना लेकर बाहर निकला। जब भाई की सेना के पास इसका डेरा पहुँचा, तो उसने दूतों के और पत्रों के द्वारा उस को बहुत समझाया, पर वह न माना और अंत में विक्रम से हारकर कहीं दूर जा रहा। विक्रम फिर सुख से राज्य करने लगा। एक बेर कांची पर फिर चढ़ा था, क्योंकि वहाँ का राजा इस से फिर गया था। कवि ने विक्रम के स्वाभाविक बहुत से गुण लिखे हैं, जिन में उदारता का बहुत ही सविशेष वर्णन है। इस ने इक्यावन वर्ष राज्य किया था।

ऊपर के लिखे अनुसार लोगों को विक्रम का जीवनवृत्त विदित होगा। कवि ने उस में जो जो सद्गुण लिखे हैं वह उस में रहे हों, पर अपने दो भाइयों को उस ने जीता और बड़े भाई को कैद करके आप गद्दी पर बैठा, इस से उसके चरित्र में हम को थोड़ा संदेह होता है। क्योंकि जब उसके बड़े भाई के जीतने का कवि वर्णन करेगा, तो उस दोष के छिपाने के वास्ते उस के उस भाई को बुरा लिखें, इस में क्या संदेह है। जो कुछ हो, विक्रम एक बड़ा राजा और गुणग्राही मनुष्य हो गया है और यह पंडितों के आदर का ही फल है कि उस का संपूर्ण वर्णन आज हम पाठकों को सुनाते हैं।

कालिदास का जीवनचरित्र

यह सब बातें केवल बंगदेशियों की हैं। पश्चिम प्रदेशीय पंडित लोग भारतवर्षीय कवियों में कालिदास को सर्वोच्चासन देते हैं। बंबई के प्रसिद्ध पंडित भाऊदाजी ने केवल कालिदास की कविता ही नहीं पढ़ी बरन

बहुत परिश्रम करके प्राचीन संस्कृत ग्रंथ और ताम्रपत्रों से उन का जीवनवृत्तान्त संग्रह की। हम ने भी उन के ग्रंथ से कई एक बातें ग्रहण किया है।

कालिदास विख्यात महाराजा विक्रम के नवरत्नों में थे। इसके^१ व्यतिरिक्त उन के जीवन की और कोई प्रमाणिक बात लोग नहीं जानते। बंगदेश के कई अभिमानी पंडितों ने कालिदास को लंपट ठहरा कर उन के नाम से हास्यरस की कविताओं का प्रचार किया। पाठशाला के युवा ब्राह्मण थोड़ा सा मुग्धबोध व्याकरण पढ़ के इन श्लोकों का अभ्यास करके धनिक लोगों का मनोरंजन करते हैं और इसी प्रकार धनी लोगों से प्रति वर्ष कुछ पाते हैं। यथार्थ में तो यह सब कविता कालिदास की नहीं हैं, परंतु नवीन कवियों की बनाई हुई है। "प्रफुल्लित ज्ञान नेत्र" नामक पद्यमय पुस्तक बंगभाषा में मुद्रित हुई है। इस ग्रंथ में लोगों ने मिथ्या कल्पना करके कालिदास में ऊपर लिखा हुआ दोष ठहराया है। इसी प्रकार से इन दिनों अंगरेजी भूमिका सहित यह रघुवंश की सटीक पोथी मुद्रित हुई है। इस में भी लोगों ने मिथ्या कल्पना किया है। कालिदास ने कोई भी ग्रंथ में अपना वृत्तान्त कुछ भी नहीं लिखा है, केवल, इतनाही प्रकट किया है।

धन्वन्तरिः क्षपणकोमरसिंहशंकुः वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः ।
ख्यातोबराहमिहिरनृपतेः सभार्यारत्नानिवैवचरिर्नवविक्रमस्य ॥

केवल इतना ही परिचय नवरत्नों का लिखा है। अभिज्ञानशाकुंतल-ग्रंथकर्ता के इतने ही परिचय से संतुष्ट न रह के और-और संस्कृत ग्रंथों से इस विषय का अनुसंधान करना उचित है। प्रायः ५०० वर्ष हुए कि कोलाचल मल्लिनाथ सूरि ने कालिदास कृत काव्यों की टीका की है। उन्होंने ने यह टीका दक्षिणावरनाथ की टीका देखकर बनाई। परंतु वह अब दुष्प्राप्य है। भाषातत्त्ववित् लासेन साहब ने यह लिखा है कि कालिदास ईस्वी दो संवत् में समुद्र गुप्त की सभा में वर्तमान थे। लासेन ने एक पत्थर देखा था, जिस पर यह लिखा था कि "समुद्र गुप्त कवि बंधु काव्य प्रिय" और इसी से यह अनुमान करते हैं कि कविश्रेष्ठ कालिदास उन के समसाद थे। बेन्टली ने एशियाटिक नामक पत्रिका में भोज प्रबंध का फरासीसी अनुवाद और "आईने अकबरी" को देख कर लिखा है कि भोज राजा के राज्य के ८०० वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य के सभा में कालिदास वर्तमान थे, परंतु यह बात कदापि नहीं हो सकती। बेंटली ने स्वीय ग्रंथों में कई एक ऐसी अशुद्ध बातें लिखी हैं जिनके पढ़ने से बोध होता है कि वह हिंदुओं का इतिहास कुछ भी नहीं जानते।

कर्नेल विलफोर्ड, प्रिंसेप और एलफिनस्टन ने लिखा है कि कालिदास प्रायः १४०० वर्ष पूर्व वर्तमान थे।

भोज प्रबंध के प्रमाणानुसार गुजरात, मालव और दक्षिण के पंडित कहते हैं कि कालिदास सन् ११०० ईस्वी में भोजराजा के समसाद थे। उज्जैन के राजसिंहासन पर कई विक्रमादित्य और भोजराज नामक राजा बैठे, परंतु सब से अंत के भोज राजा तो संवत् ११०० ईस्वी में राज्य करते थे। और इससे बोध होता है कि अंत के विक्रम ही को भोजराज कहते हैं और उन्हीं को नवरत्न की सभा थी। हमने स्वयं "भोजप्रबंध" पाठ कर के देखा है कि उनमें यह लिखा है कि मालव देशांतर्गत धारानगराधिप भोज सिन्धुल के पुत्र और मुंज के भ्रातृपुत्र थे। भोज के बाल्यावस्था में उन के पिता का परलोक हुआ तो उनके पितृव्य मुंज राजपद पर अभिषिक्त हुए और भोज ने उन के मंत्री बनकर बहुत विद्या उपार्जन किया और इसी प्रकार भोज दिन प्रतिदिन विख्यात होने लगे। तो मुंज के मन में यह शंका हुई कि अब लोग हमको पदच्युत करेंगे और यह विचार करने लगे कि किसी प्रकार से भोज का प्राणनाश करूं। इसी हेतु मुंज ने वत्सराज राजा को बुलाकर अपना दुष्टविचार प्रकाशित किया और कहा कि भोज को शीघ्र ही अरण्य में ले जाकर इसका प्राणनाश करो। परंतु इस राजा ने भोज को तो छिपा रक्खा और पशु के रक्त से भरे हुए खड्ग को राजा मुंज के पास भेज दिया। इस को देखकर उन्होंने सानन्द चित्त से पूछा कि भोज ने मानव लीला समाप्त किया ? यह सुन वत्स राजा ने एक पत्र पर लिख

१. राजा लक्ष्मण सिंह रघुवंश के उल्था में यों लिखते हैं :- "कालिदास नाम के कई कवि हुए हैं। उनमें दो मुख्य गिने जाते हैं—एक वह जो राजा वीर विक्रमाजीत की सभा के नौरत्नों में था, दूसरा जो राजा भोज के समय में हुआ। इनमें भी पण्डित लोग पहले को दूसरे से श्रेष्ठ मानते हैं और उसी के रचे हुए रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, ऋतुसंहार इत्यादि काव्य और शाकुंतल नाटक, विक्रमोर्वशी वोटक और और अच्छे अच्छे ग्रंथ समझे गए हैं।

दिया कि — "मान्धाता, जो भोज क्या, एक समय नृप कुल का शिरोमणि था अब परलोक में है । रावणारि रामचंद्र जिन्होंने समुद्र में सेतु बाँधा था वह कहाँ हैं ? और बहुत से महोदय गण और राजा युधिष्ठिर ने स्वर्गारोहण किया है, परन्तु पृथ्वी उन के साथ नहीं गई । पर आप के साथ पृथ्वी अवश्य रसातल को जायगी ।" इस पत्र के पढ़ते ही मुंज का शरीर रोमांचित हुआ और भोज के लिये अत्यंत व्याकुल हुए । परन्तु जब उन्होंने सुना कि भोज जीता है, तो उन को वत्सराज से शीघ्र बुलवा कर धारानगर के राज सिंहासन पर बैठाया और आप ईश्वराराधन के निमित्त अरण्य में प्रवेश किया । भोज ने पितृसिंहासन पा के बहुत से पंडितों को अपनी सभा में बुलाया । हम को भोज प्रबंध में कालिदास के सहित नीचे लिखे हुए पंडितों के नाम मिले हैं :—

कर्पूर, कलिंग, कामदेव, कोकिल, श्रीदचन्द्र, गोपालदेव, जयदेव, तारेचंद्र, दामोदर, सामनाथ, धनपाल, वाण, भवभूति, भास्कर, मयूर, मल्लिनाथ, महेश्वर, माध, मुचकुंद, रामचंद्र, रामेश्वर, भक्त, हरिवंश, विद्याविनोद, विश्ववसु, विष्णुकवि, शंकर, सामदेव, शुक, सीता, सोम, सुबधु इत्यादि ।

सीता अवश्य किसी स्त्री का नाम है और इसी से बोध होता है कि स्त्रीशिक्षा उस समय प्रचलित थी । तो हम नहीं समझते कि हम लोगों के स्वदेशीय अब इस को क्यों बुरा समझ के अपने देश की उन्नति नहीं होने देते । देखिये, अमेरिका में स्त्रीशिक्षा कैसी प्रचलित है और जो लोग एक समय अत्यंत मूर्ख अवस्था में थे अब यूरोप के लोगों को भी दबा लिया चाहते हैं, तो यह देखकर हे हिंदुस्तानियो ! क्या तुम को थोड़ी भी लज्जा नहीं आती ?

पण्डित शेषगिरि शास्त्री ने लिखा है कि बल्लालसेन ने १२० ईस्वी में भोजप्रबंध बनाया । इस से बोध होता है कि वे भोजराज के विद्योत्साही और उनके संमान के वृद्धि के हेतु कालिदास, भवभूति इत्यादि कवियों को केवल अनुमान ही से भोजराज का सभासद ठहराया है । भोजचरित में इन सब कवियों के नाम मिलते हैं इस लिये भोजप्रबंध को कैसे प्रामाणिक ग्रंथ कहें ? इसी भोजराज ने चंपू रामायण, सरस्वती कंठाभरण, अमरटीका, राजवार्तिक, पार्तजलिटीका और चारुचार्य इत्यादि बहुत से ग्रंथ मिलते हैं, परन्तु कालिदास, भवभूति आदि कवियों के नाम इन में से एक भी ग्रंथ में नहीं लिखे हैं । विश्वगुणादर्शक ग्रंथकार वेदांताचार्य कालिदास श्रीहर्ष और भवभूति एक समय भोजराज के सभा में वर्तमान थे, जैसा लिखा भी है ।

**माघश्वरो मयूरो मुररिपुरेपरो भारविः सारविद्यः ।
श्रीहर्षः कालिदासः कविरथ भवभूत्यादयो भोजराजः ॥**

इस में वे भी भोजप्रबंधप्रणेता बल्लाल के न्याय महाभ्रम में पतित हुए हैं, क्योंकि श्रीहर्ष, कालिदास और भवभूति एक काल में वर्तमान नहीं थे । इस विषय में बहुत से प्रमाण भी हैं ।

भारतवर्ष के बहुत से राजाओं का नाम विक्रमादित्य था । उज्जयिनी के अधीश्वर विक्रमादित्य जो ५७ ईस्वी.पू. में राज्य करते थे और जिन्होंने 'संवत्' स्थापन किया है तो अब हम लोगों को देखना चाहिये कि कालिदास इस विक्रम की सभा में उपस्थित थे वा नहीं । हम्बोल्ट लिखते हैं कि कविवर होरेस और वर्जिल कालिदास के समकालि थे । इस बात को बहुत से यूरोपीय पंडितों ने स्वीकार किया है । कर्नेल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि "जब तक हिंदू साहित्य वर्तमान रहेगा तब तक लोग भोज प्रमार और उनके नवरत्नों को न भूलेंगे" । परन्तु यह ठहराना बहुत कठिन है कि वह गुण-पंडित तीन भोजराजों में से किस भोजराज की नवरत्न की सभा थी । कर्नेल टॉड ने यह निरूपण किया है — प्रथम भोजराज संवत् ६३१ में, द्वितीय ७२१ और तृतीय भोजराज संवत् ११०० में वर्तमान थे । "सिंहासनवतीसी", "वेतालपच्चीसी" और "विक्रमचरित्र" आदि ग्रंथों में महाराज विक्रमादित्य की बहुत सी अलौकिक कथा भरी हुई है, इसी कारण इन में कोई सत्य इतिहास नहीं मिल सकता । मेरुतुंग कृत "प्रबंध चिंतामणि" और राजशेखरकृत "चतुर्विंशति प्रबंध" में लिखा है कि महा राजा विक्रमादित्य अति शूर वीर और महाबल पराक्रांत नृपति थे । परन्तु उनमें नवरत्न और कालिदास आदि कवियों का कुछ भी वृत्त नहीं लिखा है ।

जैन ग्रंथों में लिखा है कि **सिद्धसेन** नामक जैन पुरोहित विक्रमादित्य के उपदेष्टा थे । परन्तु हम नहीं कह सकते कि यह बात कहाँ तक शुद्ध है । और एक जैन लेखक कहते हैं कि ७२३ संवत् में भोजराज के राज्य में

बहुत से लोग उज्जयिनी नगर में जा बसे थे। यह और वृद्ध भोज दोनों जैनमतावलंबी थे। ये सब वृत्तांत जैन ग्रंथों से ज्ञात होते हैं और और संस्कृत ग्रंथों में ये सब प्रमाण नहीं मिलते। वृद्धभोज मनोतुंग सूरि के शिष्य थे। मनातुंग और बाण, मयूर भट्ट के समकालिक जैनाचार्य्य थे। बाणकृत हर्षचरित पढ़ने से ज्ञात होता है कि उन्होंने सन् ७०० ईस्वी में श्रीकण्ठधरिपति हर्षवर्द्धन के साथ भेंट किया था। यही कान्यकुब्जाधिपति हर्षवर्द्धन हियांग सियांग शिलादित्य थे और इन्हीं की सभा में हियांग सियांग नामक चैनिक परिव्राजक बुलाए गए थे। शिलादित्य थे और इन्हीं की सभा में हियांग सियांग नामक चैनिक परिव्राजक बुलाए गए थे। बाण कवि ने हियांग सियांग के ग्रंथ को पाठ करके अपना ग्रंथ बनाया। हर्षवर्द्धन के साथ चैनिकाचार्य्य के भेंट का वृत्तांत हर्षचरित्र में "यवन प्रोक्त पुराण" नामक ग्रंथ से लिया गया है।

महर्षि कण्व ने अपने "कथा सरित्सागर" के १८ वें अध्याय में नरवाहन दत्त को विक्रमादित्य का उपन्यास कहा है। उसमें लिखा है कि विक्रमादित्य सन् ५०० ईस्वी में राज्य करते थे। नरवाहन दत्त जैन ग्रंथ, कथा सरित् सागर और मत्स्य-पुराण के मतानुसार शतानिक के पौत्र थे। नासिक में एक पत्थर की चट्टान मिली है जिस पर विक्रमादित्य का नाम लिखा है और उन को नाभाग, नहुष, जन्मेजय, ययाति और और बलराम के नाई योद्धा वर्णन किया है। पाठक जनों को देखना उचित है कि एक विक्रमादित्य के इतिहास में कितनी गड़बड़ है। लोगों में जो केवल एक ही विक्रमादित्य प्रसिद्ध है, इस समय के भारतवर्षीय इतिहासों में कई एक विक्रमादित्यों के नाम मिले हैं। परंतु हम को उस विक्रमादित्य का इतिहास ज्ञात होना आवश्यक है जिस से हम लोगों का संदेह दूर हो और यह जान पड़े कि नवरत्नों के अमूल्यरत्न कवि-चक्रचूड़ामणि कालिदास का विक्रमादित्य से कुछ संबंध है वा नहीं।

श्री देवकृत विक्रमचरित में लिखा है कि विक्रमादित्य तीर्थंकर वर्द्धमान के नाश होने के ४७० वर्ष परे उज्जयिनी में राज्य करते थे और इन्होंने ही संवत् स्थापन किया है, परंतु इस ग्रंथ में कालिदास का नाम भी नहीं लिखा है।

पंडित तारानाथ तर्कवाचस्पति कहते हैं कि महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश', 'कुमारसम्भव' और 'मेघदूत' बनाने के अनंतर ३०६८-कलिंगराज्य में "ज्योतिर्विदाभरण" नामक कालज्ञान शास्त्र बनाया। मेघदूत-प्रकाशक बाबू प्राणनाथ पंडित महाशय ने भी इस बात को अपनी भूमिका में लिखा है, परंतु यह किसी का ग्रंथ नहीं दृष्टि पड़ता कि "ज्योतिर्विदाभरण" रघुकार कालिदास रचित है। तर्कवाचस्पति महाशय के मत को सहायता देने के निमित्त "ज्योतिर्विदाभरण" के कतिपय श्लोकों का अनुवाद करके नीचे लिखते हैं, जैसा कालिदास ने लिखा।

मैंने इस प्रफुल्लकर ग्रंथ को भारतवर्षांतरगत मालव देश में (जिस में १८० नगर हैं) राजा विक्रमादित्य के राज्य के समय रचा है ॥७॥

शंकु, वररुचि, मणि, अंशुदत्त, जिष्णु, त्रिलोचन हरि, घटकपर्प, अमर सिंह और और बहुत से कवियों ने उनके सभा को सुशोभित किया था ॥८॥

सत्य, वराहमिहिर, अतिसेन, श्रीवाढरायणी, भनिव्य, कुमार सिंह और कई एक महाशय ज्योतिषशास्त्र के अध्यापक थे ॥९॥

धन्वंतरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, बैतालभट्ट, घटकपर्प, कालिदास और वराहमिहिर और वररुचि, ये सब महाशय विक्रम के नवरत्न थे ॥१०॥

विक्रम की सभा में ८०० छोटे छोटे राजा और उनके महासभा में १६ वाग्मी, १० ज्योतिषी, ६ वैद्य और १६ वेद-पारंग पंडित उपस्थित रहते थे ॥११॥

कोई कहते हैं कि यह कवि, मालवा के हर्ष विक्रमादित्य के समय, हज़रत ईसा की छठवीं सदी में था। उस राजा की राजधानी उज्जैन नगरी थी। इसी कारण कालिदास भी वहाँ रहा था। राजा विक्रम की सभा में नौ रत्न थे, उनमें से एक कालिदास था। कहते हैं कि लड़कपन में इसने कुछ भी नहीं पढ़ा लिखा, केवल एक स्त्री के कारण इसे यह अनमोल विद्या का धन हाथ लगा। इस की कथा यों प्रसिद्ध है कि राजा शारदानंद की लड़की विद्योत्तमा बड़ी पंडिता थी। उसने यह प्रतिज्ञा की कि जो मुझे शास्त्रार्थ में जीतेगा, उसी को व्याहूँगी। उस राजकुमारी के रूप, यौवन, विद्या की प्रशंसा सुनकर दूर दूर से पंडित आते थे पर शास्त्रार्थ के समय उस से

सब हार जाते थे। जब पंडितों ने देखा कि यह लड़की किसी तरह वश में नहीं आती और सब को हरा देती है, तो मन में अत्यंत लज्जित होकर सबने पक्का किया कि किसी ढब विद्योत्तमा का विवाह किसी ऐसे मूर्ख के साथ करावे, जिसमें वह जन्म भर अपने घमंड पर पछताती रहे। निदान वे लोग मूर्ख के खोज में निकले। जाते जाते देखा कि एक आदमी पेड़ के ऊपर जिस टहनी के ऊपर बैठा है, उसी को जड़ से काट रहा है। पंडितों ने उसे महा मूर्ख समझ कर बड़ी आवभगत से नीचे बुलाया और कहा कि चले हम तुम्हारा ब्याह राजा की लड़की से करा दें। पर खबरदार राजा की सभा में मुंह से कुछ भी बात न कहो, जो बात करनी हो इशारों में कहियो। निदान जब वह राजा की सभा में पहुँचा, जितने पंडित वहाँ बैठे थे, सब ने उठकर उस की पूजा की, ऊँची जगह बैठने को दी और विद्योत्तमा से यो निवेदन किया कि ये बृहस्पति के समान विद्वान हमारे गुरु आपके ब्याहने को आये हैं। परंतु इन्होंने तप के लिए मौन साधन किया है। जो कुछ आप को शास्त्रार्थ करना हो, इशारों से कीजिए। निदान उस राजकुमारी ने इस आशय से, कि ईश्वर एक है, एक उँगली उठाई। मूर्ख ने यह समझकर कि धमकाने के लिए उँगली दिखा कर आँख फोड़ देने का इशारा करती है, अपनी दो उँगलियाँ दिखावाई। पंडितों ने उन दो उँगलियों के ऐसे अर्थ निकाले कि उस राजकुमारी को हार माननी पड़ी और विवाह भी उसी दम हो गया। रात के समय जब दोनों का एकांत हुआ, किसी तरफ से एक ऊंट चिल्ला उठा। राजकुमारी ने पूछा कि यह क्या शोर है, मूर्ख तो कोई भी शब्द शुद्ध नहीं बोल सकता था, कह उठा उट्ट चिल्लाता है। और जब राजकुमारी ने दुहराकर पूछा तो, उट्ट की जगह उस्ट्ट कहने लगा, पर शुद्ध उष्ट्ट का उच्चारण न कर सका। तब तो विद्योत्तमा को पंडितों की दागाबाजी मालूम हुई और अपने धौंछा खाने पर पछताकर फूट-फूट कर रोने लगी। वह मूर्ख भी अपने मन में बड़ा लज्जित हुआ। पहिले तो चाहा कि जान ही दे डालूँ पर सोच समझकर घर से निकल विद्या उपार्जन में परिश्रम करने लगा। और थोड़े ही दिनों में ऐसा पंडित हो गया, जिस का नाम आज तक चला जाता है। जब वह मूर्ख पंडित होकर घर में आया, तो जैसा आनंद विद्योत्तमा के मन में हुआ, लिखने से बाहर है। सच है, परिश्रम से सब कुछ हो सकता है।

कालिदास के समय घटखपर, वररुचि आदि और भी कवि थे। कालिदास ने काव्य, नाटकादि अनेक ग्रंथ संस्कृत-भाषा में लिखे हैं। इन की काव्य-रचना बहुत सादी, मधुर और विषयानुसारिणी है। अंगरेज लोग कालिदास को अपने शेक्सपियर के सदृश उपमा देते हैं। इसके समय में भवभूति नामक एक कवि था। कहते हैं कि उसकी विद्या कालिदास से अधिक थी। परंतु कवित्वशक्ति कालिदास की सी न थी। भवभूति कालिदास के श्रेष्ठत्व को मानता था।

कालिदास सारस्वत ब्राह्मण था। उस को आखेट आदि खेलों की बड़ी चाह थी और उसने अपने ग्रंथ में इस का वर्णन किया है कि मनुष्य के शरीर पर ऐसे खेलों से क्या क्या उपकारी परिणाम होते हैं।

विक्रमादित्य ने उस को कश्मीर का राजा बनाया और यह राज्य उस ने चार बरस नौ महीने किया।

कालिदास उज्जैन में रहता था, परन्तु उसकी जन्मभूमि कश्मीर थी। देशांतर होने पर स्त्री के वियोग से जो दुःख उसने पाये, उन का बखान मेघदूत-काव्य में लिखा है। कालिदास बड़ा चतुर पुरुष था। उसकी चतुराई की बहुत सी कहानियाँ हैं और वे सब मनोरंजन हैं, यथा उनमें से कई एक ये हैं।

(१) भोजराजा के कवित्व पर बड़ी प्रीति थी। जो कोई नया कवि उसके पास आता और कविताचातुर्य बताता, तो उसको वह अच्छा पारितोषिक देता, और चाहता तो अपनी सभा में भी रखता। इस प्रकार से यह कविमंडल बहुत बढ़ गया। उसमें कई कवि तो ऐसे थे कि वे एक बार कोई नया श्लोक सुन लेते, तो उसे कंठ कर सकते थे। जब कोई मनुष्य राजा के पास आकर नया श्लोक सुनाता था, तो कहने लगते थे, कि यह तो हमारा पहिले ही से जाना हुआ है और तुरंत पढ़कर सुना देते थे।

एक दिन कालिदास के पास एक कवि ने आकर कहा कि महाराज, आप यदि राजा के पास ले चले और कुछ धन दिला दें, तो मुझ पर आप का बड़ा उपकार होगा। जो मैं कोई नया श्लोक बनाकर राजसभा में सुनाऊँ तो उनका नूतनत्व मान्य होना कठिन है इस लिए कोई युक्ति बताइए।

कालिदास ने कहा कि तुम श्लोक में ऐसा कहो कि राजा से मुझ को रत्नों का हार लेना है, और जो कुछ मैं कहता हूँ, सो यहाँ के कई पंडितों को भी मालूम होगा। इस पर यदि पंडित लोग कहें कि श्लोक पुराना है, तो तुम को रत्नों का हार मिल जायगा, नहीं नए श्लोक का अच्छा पारितोषिक मिलेगा।

उस कवि ने कालिदास की बताई हुई युक्ति को मानकर वैसा ही श्लोक बनाया और जब उस को राजसभा में पढ़ा, तो कविमंडल चुपचाप हो रहा और उस कवि को बहुत सा धन मिला ।

(२) एक समय कालिदास के पास एक मूढ़ ब्राह्मण आया और कहने लगा कि कविराज मैं अति दरिद्री हूँ और मुझ में कुछ गुण भी नहीं हैं, मुझ पर आप कुछ उपकार करें तो भला होगा ।

कालिदास ने कहा, अच्छा हम एक दिन तुम को राजा के पास ले चलेंगे, आगे तुम्हारा प्रारब्ध । परन्तु रीति है कि जब राजा के दर्शन निमित्त जाते हैं, तो कुछ भेंट ले जाया करते हैं^१ इसलिए मैं जो ये सटिक के चार टुकड़े देता हूँ सो ले चलो । ब्राह्मण घर लौटा और उन सटिक के टुकड़ों को उस ने धोती में लपेट रक्खा । यह देख किसी ठग ने उस के बिन जाने उन टुकड़ों को निकाल लिया और उन के बदले लकड़ी के उतने ही टुकड़े बांध दिए ।

राजा के दर्शनों को चलने के समय ब्राह्मण ने सटिक के टुकड़ों को नहीं देखा । जब सभा में पहुँचा तब यह काष्ठ की भेंट राजा को अर्पण की । राजा उस को देखते ही बहुत क्रोधित हुआ । उस समय कालिदास पास ही था । उस ने कहा, महाराज, इस ब्राह्मण ने अपनी दरिद्ररूपी लकड़ी आप के पास लाकर रक्खी है इसलिये कि उस को जला कर इस ब्राह्मण को आप सुखी करें ! यह बात कवि के मुख से सुनते ही राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उस ब्राह्मण को बहुत धन दिया ।

(३) एक समय राजा भोज कालिदास को साथ ले वनक्रीड़ा के हेतु अरण्य को गए, और घूमते-घूमते थके माँदे हो, एक नदी के किनारे जा बैठे । इस नदी में पत्थर बहुत थे, उन पर पानी गिरने से बड़ा शब्द होता था । उस समय राजा ने कालिदास से विनोद करके पूछा कि कविराज यह नदी क्यों रोती है ? कालिदास ने उत्तर दिया कि महाराज वह छोटे ही पन में अपने मैके से ससुराल को जाती है ।

कालिदास के प्रसिद्ध ग्रंथ शकुंतला, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र और मेघदूत हैं । शकुंतला बहुत वर्णनीय ग्रंथ है । उस का उल्था यूरुप में सब देशों की भाषाओं में हो गया है ।

एक समय कविवर कालिदास अपने मकान में बैठकर अपने प्रिय पुत्र को अध्ययन कराता था, उसी समय क्षत्रिय-कुल-भूषण शकारि विक्रमादित्य संयोग से आ गए । कविवर कालिदास ने महाराज को देख प्रिय पुत्र का पढ़ाना छोड़ कर शिष्टाचार की रीति से महाराज का आदर मान किया । जब क्षत्रिय-कुल-भूषण राजा विक्रमादित्य ने पढ़ाने की प्रार्थना की तब फिर अध्ययन कराना प्रारंभ किया । उस समय कविवर कालिदास अपने प्रिय पुत्र को यही पढ़ाता था कि राजा अपने देश ही में मान पाता है और विद्वान् का मान सब स्थानों में होता है । महाराज इस प्रकार की शिक्षा को सुन कर अपने मन में कुतर्क करने लगे कि कविराज कालिदास ऐसा अभिमानी पंडित है कि मेरे ही सामने पंडितों की बड़ाई करता है और राजाओं को वा धनवानों को वा मुखे नीचा देखता है । मैं पंडितों का विशेष आदर मान करता हूँ और जो मेरे वा राजाओं के वा धनवानों के यहाँ पंडितों का आदर नहीं, तो कहाँ हो सकता है । ऐसा कुतर्क करते हुए अपने घर पर गए । महाराज विक्रमादित्य ने कविवर कालिदास को जो धन संपत्ति दी थी उसको हर लेने के लिए मंत्री को आज्ञा दी । मंत्री ने वैसा ही किया जैसा महाराज ने कहा था । कविवर कालिदास की जीविका जब हर ली गई तब दुःखी होकर अपने बाल बच्चों के साथ अनेक देशों में भटकता अन्त में करनाटक देश में पहुँचा । करनाटक देशाधिपति बड़ा पंडित और गुणग्राहक था । उसके पास जाकर कविवर कालिदास ने अपनी कविताशक्ति दिखाई, तो उस पर करनाटक देशाधिपति ने अति प्रसन्न होकर बहुत सा धन और भूमि देकर उसको अपने राज्य में रक्खा । कविवर कालिदास राजा से सम्मान पाकर उस देश में रहकर प्रतिदिन राजसभा में जाने लगा । वहाँ राजा के सिंहासन के पास ऊँचे आसन पर बैठ सब राजकाजों में उत्तम सलाह देने लगा और अनेक प्रकार की कविताओं से सभासदों के मन की कली खिलाता हुआ सुख से रहने लगा । जब से कविवर कालिदास को विक्रमादित्य ने छोड़ा तब से वे बड़े शोक-सागर में डूबे थे । नवर्त्तों में कविवर कालिदास ही अनमोल रत्न था । इसके सिवाय जब राजा को राजकाज के कामों से फुरसत मिलती थी तब केवल कविराज कालिदास ही की अद्भुत

१. राजा कन्या ज्योतिषी, वैद गुरु सुर सिद्ध ।

मरे हाथ इन पै गए, शेष कार्य सब सिद्ध । ।

कविताओं को सुनकर राजा का मन प्रफुल्लित होता था । इस लिए ऐसे गुणी मनुष्य के बिना राजा का सब वस्तुओं से मन उदास होने लगा । फिर राजा ने कविराज कालिदास का पता लगाने के लिये सब देशों में दूतों को भेजा । जब कहीं पता न लगा तब राजा आप ही भेष बदल कर खोजने के लिये निकले । कई देशों में घूमते फिरते जब करनाटक देश में गए उस समय उन्हें पथव्यय के लिए एक हीरा जड़ी हुई अंगूठी को छोड़ और कुछ नहीं था । उस अंगूठी को बेचने के लिये वे किसी जौहरी की दुकान पर गये । रत्न-पारपी ने ऐसे दरिद्र के हाथ में ऐसी अनमोल रत्न-जड़ित-अंगूठी को देख कर मन में चोर समझा और कोतवाल के पास भेजा । कोतवाल राज-सभा में ले गया । वे चारों ओर देखते भालते जो आगे बढ़े तो कविवर कालिदास को देखा और कहा, महाराज मैंने जैसा किया वैसा ही फल पाया । कविवर कालिदास उठकर राजा को अंक में लगा कर करनाटक देशाधिपति से परिचय करा और सब व्यौरा कह कर राजा वीर विक्रमादित्य के साथ चला आया ।

पर इन कथाओं से भी वही झंझट पाई जाती है और कविवर कालिदास का समय ठीक निश्चय होना कठिन है ।

कोई कोई कहते हैं कि कविवर कालिदास की सहायता से एक ब्राह्मण ने राजा भोज से एक श्लोक पर अनेक रुपया इस चतुराई से लिया था ।

उज्जैन नगरी में राजा भोज ऐसा विचारसिक और गुणज्ञ और दानशील था कि विद्या की वृद्धि के प्रयोजन से उसने यह नियम प्रचलित किया था कि जो कोई नवीन आशय का श्लोक बना के लावे, तो उसको लाख रुपये देवे । इस बात को सुन के देश देशांतर के पंडित लोग नये आशय के श्लोक बना के लाते थे, परंतु उसकी सभा में चार ऐसे पंडित थे कि एक को एक बार, दूसरे को दो बार, तीसरे को तीन बार और चौथे को चार बार सुनने से नया श्लोक कंठस्थ हो जाता था । सो जब कोई परदेशी पंडित राजा की सभा में नवीन आशय का श्लोक बना के लाता तो वह राजा के सम्मुख पढ़के सुनाता था । उस समय राजा अपने पंडितों से पूछता था कि वह श्लोक नया है वा पुराना । तब वह मनुष्य जिसको कि एक बार के सुनने से कंठस्थ होने का अभ्यास था कहता कि यह पुराने आशय का श्लोक है और आप भी पढ़ के सुना देता था । इसके अनन्तर वह मनुष्य जिसको दो बार सुनने से कंठ हो जाता था पढ़ के सुनाता और इसी प्रकार वह मनुष्य जिसको तीन बार और वह भी जिसको चार बार के सुनने से कंठस्थ होने का अभ्यास था, क्रम से सब राजा को कंठाग्र सुना देते । इस कारण परदेशी विद्वान अपने प्रयोजन से रहित हो जाते थे और इस बात की चर्चा देश देशांतर में फैली । सो एक विद्वान ऐसा देश काल में चतुर और बुद्धिमान था कि उसके बनाये हुए आशय को इन चार मनुष्यों को भी अंगीकार करना पड़ा कि यह नवीन आशय है और वह श्लोक यही है ।

श्लोक

राजन् श्रीभोजराज त्रिभुवनविजयी धार्मिकस्ते पिताऽभूत् ।
पित्रा तेन गृहीता नवनवतिमिता रत्नकोटिर्मदीया ॥
तां त्वं देहि त्वदीयैस्सकल बुधवरैर्ज्ञायते वृत्तमेत-
न्नोचेज्जानंतितेवैनवकृतमथवा देहि लक्षं ततो मे ॥१॥

हे राजा भोज, तीनों लोक के जीतनेवाले, तुम्हारे पिता बड़े धर्मिष्ठ हुए हैं । उन्होंने मुझे से निन्तानवे करोड़ रत्न लिया है सो मुझे आप दीजिये और इस वृत्तान्त को तुम्हारे सभासद विद्वान् जानते होंगे, उनसे पूछ लीजिये । जो वह कहें कि यह आशय केवल नवीन कविता मात्र है, तो अपने प्रण के अनुसार एक लाख रुपया मुझे दीजिए । इस आशय को सुनकर चारों विद्वानों ने विचारांश किया कि जो इसको पुराना आशय ठहरावे, तो महाराज को निन्तानवे करोड़ द्रव्य देना पड़ता है और नवीन कहने में केवल एक लाख । सो उन चारों ने क्रम से यही कहा कि पृथ्वीनाथ, यह नवीन आशय का श्लोक है । इस पर राजा ने उस विद्वान को लाख रुपया दिया ।

३. श्री रामानुज स्वामी का जीवनचरित्र

दक्षिण में पूर्व सागर के पश्चिम तट से बारह कोस दूर तोंडीर देश में भूतपुरी नामक नगरी है । यहाँ हारीत गोत्र के केशव नामक ब्राह्मण रहते थे । यह संतान-हीन होने के कारण बहुत दुखी रहा करते थे । एक

बार चंद्रग्रहण में पुत्रप्राप्ति के हेतु इन्होंने यज्ञ भी किया था। कहते हैं स्वप्न में शेषजी ने दर्शन देकर इनको आज्ञा किया कि हम तुम्हारे घर में अवतार लेंगे। तदनुसार श्री रामानुजाचार्य का केशव के घर चैत्र सुदी ५ को जन्म हुआ। लक्ष्मण आर्य्य और रामानुज यह दो नाम इनका रक्खा गया। सोलहवें बरस रक्षाकांवा नामक एक स्त्री के साथ इनका विवाह हुआ। विवाह के पीछे केशवजी मर गए। तब रामानुज स्वामी विद्या पढ़ने को कांचीपुर गये और वहाँ यादव नामक प्रसिद्ध पंडित के पास विद्या पढ़ने लगे। जिन दिनों स्वामी वहाँ विद्या पढ़ते थे उन्हीं दिनों में कांचीपुर के राजा की कन्या को ब्रह्मपिशाच की बाधा हुई। राजानुज स्वामी ने अपना पैर छुला कर उसकी पिशाचबाधा दूर कर दी। इससे प्रसन्न होकर राजा ने उनको बहुत सा द्रव्य दिया। उसी काल में स्वामी के मौसा गोविंद नामक एक बड़े पंडित यादव पंडित से शास्त्रार्थ करने आये और रामानुज स्वामी का और इनका मत-विषयक एक विश्वास होने से दोनों में अत्यंत प्रीति हुई। यादव पंडित जो वास्तव में मायावादी थे गोविंद पंडित और स्वामी से बाद में बारंबार पराभूत होने से इस कुविचार में फंसे कि किसी भाँति स्वामी के प्राण हरण किए चाहिए। इसी वास्ते प्रगट में बहुत स्नेह दिखाकर स्वामी को साथ लेकर यात्रा के बहाने से प्रयाग की ओर चले। मार्ग में गोंडा के जंगल में गोविंद पंडित ने स्वामी से यादव की सब कुप्रवृत्ति कह दिया। स्वामी मयमीत होकर जंगल में छिपे। वहाँ उस जंगल के देवता नारायण हस्तिगिरिनाथ ने लक्ष्मी समेत व्याधमिथुन बनकर दर्शन दिया और अपनी रक्षा में उनको कांचीपुर ले आए।

इसी समय रंगपुर में यामुनाचार्य नामक एक त्रिदंडी संन्यासी थे। उनको सर्वलक्षणसंपन्न एक शिष्य करने की इच्छा हुई। उन्होंने अपने चेलों को चारों ओर भेजा कि एक सर्वगुणसंयुक्त लड़का खोज लाओ। उन शिष्यों ने आचार्य से जाकर रामानुज स्वामी का कुल गुण विद्या आदि का वर्णन किया।

गोविंद पंडित इस समय कालहस्ति नगर में आ बसे और वहाँ एक शिव स्थापन करके अध्यापन कराने लगे। यादव भी प्रयाग से कांची फिर आए और स्वामी का दैवी प्रभाव देख कर शिष्यों के द्वारा उनसे मैत्री करके रहने लगे।

यामुनाचार्य रामानुज स्वामी को देखने के हेतु कांचीपुर चले और मार्ग में हस्तिगिरि नारायण के दर्शन के हेतु और अपने शिष्य कांचीपूर्ण से मिलने को हस्तिपुर में ठहरे। संयोग से रामानुज स्वामी आदि शिष्यों के साथ यादव पंडित भी हस्तिगिरि नाथ के दर्शन को आये थे। वहाँ कांचीपूर्ण ने आचार्य से स्वामी का परिचय कराया और आचार्य इनको देख कर बहुत प्रसन्न हुए और कुछ दिन के पीछे सब लोग अपने अपने नगर गए। एक दिन रामानुज स्वामी अपने गुरु यादव पंडित को तेल लगाते थे। उसी समय 'कप्यास्य' इस श्रुति का अर्थ यादव ने कुछ अशुद्ध किया, इससे स्वामी को बड़ा कष्ट हुआ और शास्त्रार्थ में स्वामी ने यादव को परास्त किया। इससे यादव ने क्रोधित होकर स्वामी को निकाल दिया। स्वामी वहाँ से हस्तिगिरि चले आए और कांचीपूर्ण के उपदेश से हस्तिगिरि वरदराज नारायण की सेवा करने लगे।

यह वृत्तान्त सुनकर यामुनाचार्य ने अपने शिष्य पूर्णाचार्य को अपने बनाए स्तोत्र देकर हस्तिगिरि भेजा। एक दिन वरदराज स्वामी के सामने पूर्णाचार्य वह सब स्तोत्र पढ़ रहे थे कि रामानुज स्वामी ने सुन कर और उनकी भक्तिपूर्ण रचना से प्रसन्न होकर पूर्णाचार्य से पूछा कि यह स्तोत्र किसके बनाए हैं। पूर्णाचार्य ने कहा कि यह सब स्तोत्र यामुनाचार्य के बनाए हैं और वे आप के दर्शन की बड़ी इच्छा रखते हैं। पूर्णाचार्य के उपदेश से रामानुज स्वामी यामुनाचार्य से मिलने रंगपुर चले और मार्ग में महापूर्णाचार्य से मिलाप हुआ। स्वामी का आना सुनकर यामुनाचार्य भी आगे से उन को लेने चले, किंतु कावेरी के किनारे पहुँच कर शरीर छोड़ दिया। स्वामी भी शीघ्रता से वहाँ पहुँचे, तो देखा कि आचार्य ने शरीर छोड़ दिया है, परंतु तीन अंगुली उठाये हुए हैं। स्वामी ने आचार्य का आशय समझ कर (अर्थात् १ बोधायन मतानुसार ब्रह्मसूत्रादि का भाष्य बनाना, २ दिल्ली के तत्सामयिक बादशाह से श्रीराममूर्ति का उद्धार करना और ३ दिग्विजय पूर्वक विशिष्टाद्वैत मत का प्रचार) प्रतिज्ञा किया कि हम आपकी इच्छा पूर्ण करेंगे, जो सुन कर सुखपूर्वक आचार्य वैकुण्ठ धाम गए और स्वामी भी कांची फिर आए। एक बेर कांचीपूर्ण के घर स्वामी भोजन करने गए थे, तब कांचीपूर्ण ने स्वमत विषयक उन को अनेक उपदेश किया और कहा कि आप रंगपुर जाकर पूर्णाचार्य से सब ग्रंथ पढ़िए।

स्वामी उन के उपदेशानुसार रंगपत्तन आए और विधिपूर्वक पंच संस्कार^१ दीक्षित होकर संस्कृत और द्राविड़ भाषा के ग्रंथ सरहस्य पूर्णाचार्य से पढ़े। कुछ काल पीछे एक कुएं में से जल निकालते समय पूर्णाचार्य की स्त्री से और स्वामी की स्त्री से कुछ कलह हो गई, इससे स्वामी रक्षकाम्बा से उदास हो गए। एक यही नहीं, अनेक समय में रक्षकाम्बा के खरतर स्वभाव का परिचय मिलने से स्वामी का जी उस की ओर से खिंच गया था, इस से स्वामी ने उनको नैहर भेज दिया और आप भी सब धन गृह आदि का त्याग करके त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। कांचीपूर्ण ने इस पर अति प्रसन्न होकर 'यतिराज' की स्वामी को पदवी दिया।

कुछ दिन पीछे स्वामी के भांजे दाशरथि और अनंतभट्ट के पुत्र कूरनाथ यह दोनों आकर कांची रहने लगे और स्वामी से विद्या पढ़ने लगे। एक समय यादव पंडित कांची आए और शंख चक्र से स्वामी का कलेवर चिन्हित देख कर बड़ा आपेक्ष किया। इस पर स्वामी की इच्छा से कूरनाथ ने शास्त्रार्थ पूर्वक स्वमत स्थापन कर के यादव को निरुत्तर किया। यादव पंडित ने भी ज्ञान पाकर त्रिदंड ग्रहणपूर्वक गृहस्थाश्रम का परित्याग किया और दीक्षित होकर गोविंददास यह नाम पाया। इन्हीं गोविंददास ने 'यतिधर्म समुच्चय' नामक ग्रंथ बनाया है।

कुछ काल के पीछे यमुनाचार्य के पुत्र वररंग स्वामी रामानुज को लेने को हस्तिगिरि आए। यहाँ उन्होंने नाटकों का अभिनय दिखला कर श्रीवरदराज को माँगा और वहाँ से रामानुज स्वामी को लाकर रंगनाथ जी को समर्पण किया, जिससे स्वामी अब रंगनाथ जी की सेवा का अधिकार और उस संप्रदाय का आचार्यत्व दोनों के अधिकारी हुए।

उसी समय में स्वामी के ममेरे भाई वेंकट गोविंद पंडित से, जो कि बड़े शैव थे, वेंकटगिरि के निवासी श्री शैलपूर्ण नामक वैष्णव यति से बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ, जिस में गोविंद पंडित ने पराजय पाकर श्री शैलपूर्ण का शिष्यत्व अंगीकार किया।

कुछ दिन पीछे पूर्णाचार्य के उपदेश से स्वामी रामानुज अठारह वर गोष्ठीपुर में गोष्ठीपूर्णचार्य से तत्व पृथक् की इच्छा से गए और यद्यपि पहिले उन्होंने बहुत आनाकानी की पर अंत में सब रहस्य स्वामी को उपदेश किया किंतु यह कह दिया था कि यह किसी को बतलाना मत।

स्वामी रामानुज मंत्री का रहस्य पाकर ऐसे परितुष्ट हुए कि अनेक लोगों से उन्होंने दयापूर्वक वह रहस्य कहा। जब गोष्ठीपूर्णचार्य को यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने स्वामी को बुला कर पूछा कि "जो गुरु की आज्ञा उल्लंघन करे उस की क्या गति होती है?" स्वामी ने उत्तर दिया 'नर्क'। तब गुरु ने पूछा कि फिर तुम ने हमारी आज्ञा उल्लंघन कर के रहस्य क्यों लोगों से कहा। इस पर स्वामी ने अपने दयापरवश उदार स्वभाव से निर्भय होकर उत्तर दिया —

**“पतिष्ये एक एवाहं नरके गुरुपातकात्।
सर्वे गच्छन्तु भवतां कृपया परमे पदम्॥”**

अर्थात् आप की आज्ञा टालने से मैं एक नरक में पड़ूँ किंतु और लोग जिन से हम ने रहस्य का उपदेश किया है वे आप की दया से परम पद पावें।

गुरु उन के उस उदार वाक्य से ऐसे प्रसन्न हुए कि "मन्नाथ," अर्थात् हमारे भी स्वामी, उन का नाम रक्खा और वरदान दिया कि आज से यह वैष्णव सिद्धांत रामानुज सिद्धांत से प्रचलित होगा और संसार में तुम आचार्य रूप से प्रसिद्ध होगे।

कुछ काल पीछे स्वामी के भांजे दाशरथि स्वामी की आज्ञा से पूर्णाचार्य की बेटी के ससुराल में उस का काम काज सम्हालने को रहने लगे। वहाँ एक वैष्णव श्रुतियों का कुछ विरुद्ध अर्थ करता था। उस से शास्त्रार्थ कर के उस को उन्होंने स्वामी के पास दीक्षित होने को भेज दिया और वह वैष्णव दास नाम पाकर इस मत का एक मुख्य पंडित हुआ।

इस सम्प्रदाय में मालाधर नामक एक बड़े पंडित थे। शठकोपाचार्य कृत सहस्रगीतिका स्वामी ने उन से व्याख्यान सुना। ऐसे ही अनेक वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्धों से स्वमत का अनेक सिद्धांत स्वामी ने लिया। वरंच अपने पुत्र सुंदरबाहु को मालाधर ही से दीक्षित कराया।

१. वेणु — ऊर्ध्व पुंड, मुद्रा बहुरि, माला, मंत्र, विचार।

संस्कार ए वैष्णवी, धर्म कर्म को सार ॥१॥

रंगजी ठाकुर का आभूषण एक बार चोर लोग चुरा ले गए थे और उन लोगों को इस वेष से कारागार हुआ था। वे चोर स्वामी से बड़ा द्वेष रखते थे। इस से उन लोगों ने स्वामी के अंगसेवकों को घूस देकर इन के भोजन में विष मिला दिया। किंतु परमेश्वर ने यह सब वृत्त अनुभव द्वारा स्वामी को बतला दिया, इस से उन की रक्षा हुई।

यज्ञमूर्ति नामक एक वेदांत का बड़ा भारी संन्यासी पंडित था। वह दिग्विजय करता हुआ रंगनगर में स्वामी से शास्त्रार्थ करने आया। स्वामी ने अठारह दिन पर्यंत उस से शास्त्रार्थ कर के उस को परास्त किया और उस से प्रायश्चित्त करा के उस को फिर से शिखा सूत्र धारण कराया। देवराज, देवमन्नाथ और मन्नाथ यह तीन नाम उस पंडित के रखे गए और वह एक बड़े मठ का स्वामी नियत हुआ। इस पंडित ने ज्ञानसार और प्रमेयसार नामक द्वाविड़ भाषा में वेष्णव मत के दो बड़े सुंदर ग्रंथ बनाए हैं।

एक समय पुण्यनगर से अनंताचार्य बहुत से वैष्णवों के साथ स्वामी के दर्शन को आए। स्वामी ने उन को वेंकटगिरि की सेवा का अधिकार दिया। तब वे वेंकटगिरि गए और वहाँ वृंदावन बना कर रहने लगे। इन्होंने वेंकटनाथ स्वामी का 'रामानुज' 'लक्ष्मण' इत्यादि नाम रक्खा हैं।

स्वामी इस के पश्चात् देशाटन करने को निकले और वेंकटगिरि होते हुए उत्तर की यात्रा को चले। मार्ग में दिल्ली में त्रिविक्रमाचार्य से भेंट किया। वहाँ से बदरीनाथादि होते हुए लौट कर अष्ट सहस्र गाँव में आए। वहाँ वरदाचार्य और यज्ञेश नामक अपने दो शिष्यों को मठाधिपति नियुक्त किया। वहाँ से हस्तगिरि आए और पूर्णाचार्यादि से मिल कर कापिल तीर्थ को गए। वहाँ कुछ दिन तक रहे और देश के राजा बिट्टलदेव को शिष्य किया। इस राजा बिट्टलदेव ने तोंडीर मंडलादिक अनेक गाँव स्वामी को भेंट किए। वहाँ से वृषाचलादि स्थानों में अपना माहात्म्य प्रकाश करते हुए रंगनगर स्वामी लौट आए।

स्वामी के मामा के पुत्र गोविंदपंडित को विराग में ऐसी रुचि हुई कि स्वामी ने बहुत कहा परंतु उन्होंने गृहस्थाश्रम स्वीकार नहीं किया। तब स्वामी ने उनको संन्यास दिया।

एक बार केवल कुरेश को साथ लेकर स्वामी शारदापीठ गए क्योंकि वहाँ विशिष्टाद्वैत मत का मूल ग्रंथ बौधायन कृत ब्रह्मसूत्र वृत्ति की पुस्तक थी। जिस को देखकर स्वामी को तदनुसार भाष्य बनाना बहुत आवश्यक था। शारदापीठ के सब पंडितों को स्वामी ने शास्त्रार्थ में पराजित किया। जब वहाँ से लौटे तो बौधायन वृत्ति की पुस्तक स्वामी के साथ थी। किंतु शारदापीठ के पंडितों ने द्वेष करके रात को डाँका डाला और वह पुस्तक लूट ले गए। स्वामी को इससे बड़ा दुःख हुआ। तब कुरेश ने कहा कि आप इतना दुःख क्यों सहते हैं। एक बार मैंने आद्योपांत उस पुस्तक को देखा है, इससे उसके प्रति अक्षर मुझको काँठा है। मैं सब आप को लिख दूँगा। तदनुसार एकश्रुतिधर कुरेश ने बौधायन सूत्र वृत्ति सब स्वामी को लिख दी। इसी वृत्ति के अनुसार स्वामी ने वेदांत सूत्र पर श्रीभाष्य, वेदांतसार, वेदार्थसंग्रह और गीताभाष्यादि ग्रंथ बनाए।

इन ग्रंथों के बनाने के पीछे बहुत से शिष्यों को साथ लेकर स्वामी दिग्विजय करने निकले। क्रम से चोलमंडल, पांड्यमंडल, कुरुक इत्यादि देशों में जाकर वहाँ के पंडितों को शास्त्रार्थ में जीत कर उनको वैष्णव धर्म से दीक्षित किया और कुरंग देश के राजा को दीक्षित करके केरल देश के पंडितों को जीता। वहाँ से क्रम से द्वारिका, मथुरा, शालिग्राम, काशी, अयोध्या, बदरिकाश्रम, नैमिषारण्य और श्रीवृंदावन आदि तीर्थों में होते हुए फिर से शारदापीठ गए। वहाँ सरस्वती ने प्रत्यक्ष होकर 'कप्यास्य' इस श्रुति का तात्पर्य पूछा। स्वामी ने जो अर्थ कहा इस से प्रसन्न होकर सरस्वती ने श्री भाष्य अपने सिर पर चढ़ा कर स्वामी को दिया और उन का दोनों हाथ पकड़ कर 'भाष्यकार' नाम से पुकारा। इस के अनंतर स्वामी ने वहाँ के पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित करके पुरुषोत्तम क्षेत्र गमन किया। वहाँ जाकर देखा कि बौद्ध और कापालिक लोग पुरुषोत्तम की सेवा में नियुक्त हैं। स्वामी ने उन को जीतकर वैष्णवगण को सेवा में नियुक्त किया और वहाँ रामानुज मठ बना कर रहने लगे।

१. दो. कहहिं एक अद्वैत, दुतिय द्वैत मत जान।

त्रितिय विशिष्टाद्वैत है, ता मधि तीन प्रमान।।१।।

प्रगत लोक मत लोक मैं, दुतिय वेदमत जान।

तृतिय संतमत करत जिहि, हरिजन अधिक प्रमान।।२।।

स्वामी की इच्छा थी कि पंचरात्र के त्रिधि से जगन्नाथ जी की सेवा हो परंतु पंडे लोग अपने मन से सब काम कुरते थे और श्री जगन्नाथ जी भी इसी से प्रसन्न थे । क्योंकि जब स्वामी जी ने इस बात में आग्रह किया, तो एक रात देवगण ने स्वामी को सोते हुए उठा कर कर्मक्षेत्र में रख दिया । जाग कर स्वामी ने यह चरित्र देखा और भगवदिच्छा मुख्य समझ कर फिर इस विषय में आग्रह न किया ।

कुछ दिन कर्मचल रहकर स्वामी सिंहाचल, अहोबलक्षेत्र, गरुडाचलादि तीर्थों में गए और वहाँ से फिर वेंकटगिरि जाकर वहाँ के शैवों को शास्त्रार्थ में परास्त किया ।

कुछ काल पीछे कुरंगो को व्यास-पराशर के अंश के दो पुत्र एक साथ उत्पन्न हुए । स्वामी ने एक का नाम पराशर और दूसरे का व्यास वा श्री रामदेशिक रक्खा । इन्हीं पराशर को रंगेश ने अपुत्र होने के कारण गोद लेकर बड़े धूमधाम से विवाह किया था । गोविंद को भी कालांतर में पुत्र हुआ, तो स्वामी ने परांकुश उसका नाम रक्खा ।

मथुरा के एक धनिक धनुर्दास को उस की भार्या हेमांगना समेत स्वामी ने वैष्णव दीक्षा दी । यह धनुर्दास ऐसा उत्तमवैष्णव हुआ है कि रंगनाथ जी के उत्सव में स्वामी एक बार उस को मित्र की भाँति पकड़े हुए थे और इस पर जब लोगों ने पूछा तो स्वामी ने उसकी वैष्णवता की बड़ी स्तुति की ।

उसी समय में चोलदेश का एक बड़ा भारी शैव राजा कुमिकंठ हुआ था जिस ने चित्रकूट तक विजय किया था । इस ने एक बार शास्त्रार्थ के हेतु प्रार्थनापूर्वक स्वामी को बुलाया । स्वामी उस के यहाँ जाते थे कि मार्गमें चेलाचलाम्बा और उसके पति को दीक्षित किया । और बहुत से बौद्धों को शास्त्रार्थ में जय किया । इसी प्रकार कुछ दिन भक्तनगर में रहे । वहाँ स्वप्न देखने से इन्होंने यादवाचल जाकर वहाँ छिपी हुई भगवन्मूर्ति को निकाला और शके १०१२ में उस मूर्ति को यादवाचल में प्रतिष्ठित किया ।

एक बार स्वामी को खबर मिली कि दिल्ली के राजा के घर में रामप्रिय नामक एक नारायण की मूर्ति है । स्वामी यह सुनकर दिल्ली गए और वहाँ कुछ दिन रह कर राजा से वह मूर्ति ले आए । कहते हैं कि दिल्ली के राजा की बेटी उस भगवद्विग्रह पर ऐसी आसक्त थी कि भक्ति प्रभाव से आज तक नारायण की मूर्ति उस के पास तथा यादवाचल में वर्तमान है ।

इसके पीछे विष्णुचित्त की बेटी गोदा को स्वामी ने उपदेश दिया । इन के ७४ शिष्य बड़े प्रसिद्ध हुए हैं । इन में भी अध्रपूर्ण की बड़ी महिमा है ।

इस प्रकार स्वामी रामानुज आचार्य एक सौ बीस वर्ष पृथ्वी पर रहे और चारो ओर वैष्णव संप्रदाय का प्रचार करके सब शिष्यों को भगवद्भक्ति का उपदेश करके माघ सुदी १० को परम-धाम पधारे । इनके पीछे रंगनाथ जी के मंदिर का अधिकार पराशर को मिला और दशरथि, पूर्णाचार्य, गोविंद और कुरुक ये चार मत-शाखा-प्रवर्तक हुए । इस संप्रदाय के मुख्य बड़े बड़े लोग शठकोपाचार्य, रंगेश, वेंकटेश, वरद, बकुला-भरण, सुंदर । यामुनाचार्य, वररंग, पूर्णाचार्य, गोष्ठीपूर्ण, मासभद्र, माधवदास, कासार, भक्तिसार, फणि कृष्ण, कुलशेखर, भट्टनाथ, पडमराज और अनंताचार्य आदिक हैं ।

दानपत्रादिकों से और दक्षिण राजाओं के घर के लेखकों से निश्चय होता है कि ईस्वी सन् १०१० वा इसके आस पास किसी संवत् में स्वामी का जन्म हुआ था और द्वादश शताब्दी के पूरे पूरे भोग में ये वर्तमान थे ।

इनका मत विशिष्टाद्वैत है और उपास्यदेव साकारा ब्रह्मनारायण है । ये भुजा पर तप्त चक्र की छाप देते हैं । हिंदुस्तान के सब प्रांत में इस मत के लोग मिलते हैं । और बहुत बड़े बड़े पंडित इस मत में हुए हैं । बड़गल और तिंगल ये दो शाखा इस मत की बहुत प्रसिद्ध हैं । पीछे तो रामानंद आदि अनेक शाखा इस की हुई हैं । इनके संप्रदाय के वैष्णव श्री वैष्णव कहलाते हैं ।

४-श्रीशंकराचार्य

इन्दीवरदलश्याममिन्दिरानन्दकन्दलम् ।

बन्दारुजनमन्दारं बन्देऽहं यदुनन्दनम् ॥

धन्य वह ईश्वर है जो अपनी सृष्टि में अनेक अद्भुत शक्ति के मनुष्यों को उत्पन्न करता है और उनके द्वारा लोगों की पहिली चाल चलन को बदल देता है । फिर कुछ काल के अनंतर दूसरे को उत्पन्न करता हुआ उससे भी वैसा ही कराता है, इसी प्रकार से अपने सृष्टि क्रम को निरंतर चलाता है ।

देखो कुछ न्यूनाधिक ११०० वर्ष हुए इस सारे भारतवर्ष में बौद्धमत फैला गया था और लोग उसी मत पर चलते थे और जो उस मत को स्वीकार करने में आप्रसन्न थे उनको अनेक प्रकार के क्लेश सहने पड़ते थे । प्रायः कन्याकुमारी अंतरीप से चीन देश तक और ब्रह्मा के देश से ईरान तक जहाँ देखो बौद्धमत के मनुष्य देख पड़ते थे । फाहियान और ह्वानसांग जो चीन देश से यात्रा के लिये यहाँ आए थे और जिनके सं. ३९९ और ६४० ईस्वी निश्चित किए गए हैं, अपने ग्रंथ में उस समय का भारतवर्ष का वृत्तांत लिखते हैं कि बौद्धधर्म की बड़ी उन्नति है, राजाओं ने बौद्ध भिक्षुओं को गाँव, बाग, घर, बिहार बनाने के लिये दे दिये हैं और उनमें श्रमण लोग सुख से बास करते हैं । मांस खाने का बड़ा निषेध किया गया है, कोई यज्ञ करने नहीं पाते, न देवी के सामने बलिदान कर सकते हैं, और पटने में जिसे पाटिलपुत्र भी कहते हैं शाक्यमुनि बुद्ध का बड़ा उत्सव होता है और प्रायः बड़े बड़े नगरों में स्तूप^१ और बिहार देख पड़ते हैं ।

हवन्सांग लिखता है कि बौद्धमत केवल भारतवर्ष ही में फैला न था परंतु तुरान और काबुल में भी सौ से अधिक बिहार बने थे और उन दिनों में गजनी, काबुल इत्यादि पश्चिम के देश इसी भारतवर्ष के राजाओं के अधीन थे । सब मिल के अस्सी राजा गिने जाते थे । जालंधर से गंगासागर तक और हिमालय से महानदी तक देश कन्नौज के बौद्ध राज हर्षवर्धन के अधीन थे और मगध देश में बौद्ध राजा राज करते थे ।

इस से यह न समझना चाहिए कि भारतवर्ष में वैदिक मत लुप्त हो गया था । बहुत से ऐसे ऐसे देश दक्षिण

१. "गोरखपुर दर्पण" में एक लेख यों लिखा है :-

भागलपुर के निकट एक पत्थर की लाट है जिस पर पुराने अक्षर खुदे हुए हैं । उन अक्षरों को प्रिन्सेप साहिब ने बनारस में पढ़ा था । सहिया गाँव परगने सलेमपुर मंझौली में है । वहाँ एक पुराना मंदिर है, जिसके बीच एक बुद्ध की मूर्ति वर्तमान है और कहाँव जो सलेमपुर से छ मील पश्चिम है उस गाँव में एक लाट २४ फुट ऊँची गड़ी है और उस पर छ फुट लंबे १६ कोने के कलश पर एक बुद्ध की मूर्ति स्थापित है । उस पर जो पुराने अक्षर अंकित हैं उनका उल्टा नीचे लिखा जाता है ।

मूल — यस्योपस्थानभूमिर्नृपतिशतशिरः पातवातावधूता ।

गुप्तानां वंशजस्य प्रविसृतयशसस्तस्य सर्वोत्तमर्जः ॥

राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिपशतपतेः स्कन्दगुप्तस्य शान्तेः ।

वर्षे त्रिंशद्दशैकोत्तरकथततमे ज्येष्ठमासि प्रपन्ने ॥१॥

छयात्के स्मिन् ग्रामरत्नेककुम्भरति जनैस्साधुसंसर्गपृते ।

पुत्रोयस्तोमिलस्य प्रचुरगुणनिधेर्मादृसोमो महार्थः ॥

तत्सूनुर्गुप्तसोमः प्रथुलमतिपथाव्याघ्र इत्यन्यसंज्ञाः ।

मद्रस्तस्यात्मजोऽभूजिज्ज गुरुययतिषु प्रायशः प्रीतिमान्यः ॥२॥

पुण्यस्कंधं स चक्रे जगट्टिमखिलं संसरद्वीक्ष्य भीतो ।

श्रयोर्त्थं भूतभूत्यै पथि नियमवता महतामादिकर्त्तुः ॥

पच्येद्रान्स्थापयित्वा धरणिधरमयान्सन्निष्ठातत्ततोऽयं ।

शीलस्तम्भः सुचारुः गिरिवर शिखराग्रोपमः कीर्तिकर्त्ता ॥३॥

में और काशी, कुरुक्षेत्र, काश्मीर इत्यादि उत्तर में थे जहाँ वैदिक मत के लोग रहते थे और यज्ञ योगादिक सब अपने कर्म करते थे ।

जब इस प्रकार से बौद्धमत भारतवर्ष में फैल गया, ईश्वर ने सोचा कि अब वैदिक मत डूबने पर है, जो इस की सहायता न करेंगे तो इस का चलना कठिन है । द्रविण देश में जो अब मंदराज हाते में है चिदंबरपुर में द्रविण ब्राह्मण के कुल में सर्वज्ञ नामक तपस्वी का जन्म हुआ । उस की स्त्री का नाम कामाक्षी था और वे दोनों चिदंबरेश्वर की, जो आकाशलिंग कर के दक्षिण देश में प्रसिद्ध है, सेवा करने लगे । और एक कन्या उन को हुई उस का नाम विशिष्टा रक्खा । आठवें वर्ष उस कन्या का विवाह विश्वजित् ब्राह्मण से कर दिया और वह विशिष्टा भी सर्व काल अपने मा बाप के सदृश उसी महादेव की सेवा करती थी । उस का पति विश्वजित् उस को छोड़ कर जंगल में तप करने को गया, परंतु विशिष्टा ने महादेव की सेवा नहीं त्यागी । ईश्वर उस से प्रसन्न हुआ और उस को एक लड़का उत्पन्न हुआ, जिसका नाम शंकराचार्य रक्खा । पुराण और तंत्रों में शंकराचार्य को शिव का अवतार लिखा है और इन के प्रतिवादी वैष्णव लोग भी इन को शिव का अवतार होने में कुछ विवाद नहीं करते । इन की उत्पत्ति का समय अभी ठीक ठीक नहीं ज्ञात हुआ परंतु शिष्य परंपरा से जो आचार्य के अनंतर अभी तक चली आती है, जान पड़ता है कि कुछ न्यूनाधिक एक हजार वर्ष हुए । डाक्टर डाकवेल साहब अपने ग्रंथों में १०० वर्ष लिखते हैं, और पण्डित जयनारायण तर्क-पञ्चानन १२०० वर्ष के निकट अनुमान करते हैं ।

उस नगर के निवासी ब्राह्मणों ने इनके ज्ञात कर्मादिक संस्कार किये और तीसरे वर्ष में चौल और पाँचवें में यज्ञोपवीत किया । तब से श्रीशंकराचार्य जी ने आठवें वर्ष तक सकल विद्या का पूर्ण अभ्यास किया और सब विद्या में पारंगत हुए और शिष्यों को भी विद्या सिखलाई । आठवें वर्ष में श्रीगोविंद योगीन्द्र के उपदेश से सन्यासाश्रम स्वीकार किया और इनके मुख्य शिष्य बारह थे, जिनके नाम पद्मपाद, हस्तामलक, समित्पाणि, चिद्विलास, ज्ञानकन्द, विष्णुगुप्त, शुद्धकीर्ति, भानुमरीचि, कृष्णदर्शन, बुद्धिवृद्धि, विरंचपाद, अनन्तानन्दगिरि थे । इनके समय में पचास से अधिक मत प्रचलित थे, उनमें जो जो कुछ मुख्य मत थे उनके नाम ये हैं । शैव, वैष्णव, सौर, गाणपत्य, शाक्त, कापालिक, कौल, पांचरात्र, भागवत, बौद्ध, जैन, चार्वाक इत्यादि । इन सब मतवालों के आचार्यों को उन्होंने शास्त्रार्थ में जीत लिया और उन सब को अपना शिष्य किया ।

तब आचार्य जी काशी में गये और मध्याह्न के समय माणिकर्णिका स्नान करते थे, इतने में श्रीव्यास जी बूढ़े ब्राह्मण का भेष लेकर वहाँ आये और शंकराचार्य से पूछा कि मैंने सुना है कि आपने ब्रह्मसूत्र में बहुत परिश्रम किया है । आचार्य ने उत्तर दिया, हाँ, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ पूछो । व्यास जी ने एक स्थल में पूछा, आचार्य जी ने उसका यथार्थ उत्तर दिया । इस पर व्यास जी फिर कुछ विवाद करने लगे । आचार्य जी को क्रोध आया और अपने पद्मपाद नामक शिष्य से कहा कि इस बूढ़े ब्राह्मण को बाहर निकाल दो, तब शिष्य ने यह श्लोक पढ़ा ।

शंकरः शंकर साक्षात् व्यासो नारायणः स्वयम् ।
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते किं करः किंकरिष्यति ।

उल्लाह—राजा स्कन्दगुप्त जिस के प्रस्थान के समय अर्थात् जब वह अपने मन्दिर से बाहर निकलता था सैकड़ों राजाओं के सिर के मुकुट उस के चरणों पर झुकते थे । बड़ा यशस्वी और प्रचुर रत्न से युक्त था । उस के स्वर्ण वास करने से ३२१ वर्ष के अनन्तर ज्येष्ठ महीने में राजा सोमिल का बेटा मद्रिसोम, उस का बेटा रुद्रसोम, जिस का व्याघ्र भी नाम है, उस का बेटा मद्रसोम, जिस की भक्ति ब्राह्मण गुप्त और सन्यासियों में अधिक थी, जगत् का संस्करण अर्थात् दिन दिन नाश अवलोकन करके बहुत भययुक्त हुआ । और उस से अपनी और अपनी प्रजा की रक्षा के लिये ककुभ ग्राम में जिस को अब कहाँ कहते हैं और जिस में साधु जन अधिक बसते थे, जिन के रहने से वह पवित्र गिना जाता था, एक यज्ञ किया । उस यज्ञ में पाँच इंद्र पहाड़ों के बराबर अर्थात् पाँच स्तंभ पर इंद्र की मूर्तिर्त बना कर स्थापित की । वह (१) कहाँ में (२) भागलपुर में (३) सारण में (४) बेतिया के राज्य में (५) तराई में अब भी कई फुट के लंबे गड़े हुये खड़े मौजूद हैं और उन के सिवाय एक और स्तंभ स्थापन किया, जो उस की कीर्ति को प्रकाश करता है ।

आचार्य जी ने यह सुनकर कहा जो सचमुच यह बूढ़ा ब्राह्मण व्यास होगा, तो अवश्य हमारे उत्तर पर संतुष्ट हो के प्रत्यक्ष दर्शन देगा। व्यास जी यह सुनकर आप प्रत्यक्ष हुए और आचार्य जी से कहा कि मैं तुम्हारी परीक्षा लेने के वास्ते आया था। तुम तो शिव के अवतार हो तुम को कौन जीतने वाला है। फिर व्यास ने आचार्य को वर दिया और ब्रह्मा को बुला कर इनकी आयु बढ़ा दी। तब से आचार्य का प्रताप दिगुणित बढ़ गया। कुछ समय के अनंतर आचार्य जी रूद्रपुर में गए। वहाँ भट्टपाद, जिसे कुमारिल कहते हैं और जिस ने मीमांसातन्त्र वार्तिक नामक एक बड़ा भारी ग्रंथ बनाया है, तुषागिन में बैठा था। आचार्य जी ने उससे मेंट करके वाद-मिद्धा माँगी, परंतु भट्टपाद ने कहा कि मैं अब शरीर दग्ध होने के कारण तुम्हारे साथ शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हूँ। मेरा वहनोई मंडनमिश्र, जो हस्तिनापुर से आग्नेय दिशा में विजिलबिंदु नाम नगर में रहता है, तुम से शास्त्रार्थ करेगा और उससे तुम्हारा गर्व शान्त हो जायगा।

आचार्य जी यह वचन सुन कर वहाँ गये और लोगों से मंडनमिश्र के घर का ठिकाना पूछा। लोगों ने उत्तर दिया कि जहाँ तोते और मैने शास्त्रार्थ करते हैं वही मंडनमिश्र का घर है। शंकराचार्य जी ने सोचा कि जो मैं दरवाजे से जाता हूँ तो मुझे बहुत काल लगेगा, इस लिये मंत्र के बल से आकाशमार्ग से उसके घर में उतरें। कोई कहते हैं कि उस के घर के पीछे एक लंबा ताड़ का पेड़ था उस पर चढ़ कर घर में गये। उस समय मंडनमिश्र श्राद्ध करता था। इनको देखते ही बहुत क्रुद्ध हो गया क्योंकि ये संन्यासी थे और उस ने संन्यास का खंडन किया था और कहा, "कुतो मुण्डी"। आचार्य जी ने उत्तर दिया, "आगलान्मुण्डी"। मंडन ने कहा — "सुरापिता"। शंकर जी ने कहा — "साहिश्वेता" इत्यादि दोनों के संवाद हुए। मिश्र जी श्राद्ध समाप्त करने के अनंतर आचार्य से शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त हुए और उसकी स्त्री सरस्वणी, जिसे सरस्वती का साक्षात् अवतार कहते थे, मध्यस्थ हुई। दोनों से सौ दिन तक शास्त्रार्थ हुआ। अंत में मंडनमिश्र का पराजय हुआ और संन्यासाश्रम को स्वीकार किया। पुराण में मंडनमिश्र को ब्रह्मा का अवतार लिखा है।

जब मंडनमिश्र संन्यास लेने लगे उस के पहिले ही सरस्वणी अपना पूर्व शरीर छोड़ कर ब्रह्मलोक को जाने लगी। शंकराचार्य ने वन दुर्गा मंत्र में आकर्षण किया और कहा कि मुझसे शास्त्रार्थ करके चली जाओ। उसने कहा मैंने वैधव्य के भय से अपने पति के संन्यास के पहिले ही पृथ्वी को त्याग किया। अब पृथ्वी पर नहीं आ सकती, क्योंकि तुम से शास्त्रार्थ करूँ। आचार्य ने उत्तर दिया कि आकाश में भूमि से छः हाथ दूरी पर खड़ी होके मुझसे शास्त्रार्थ कर। उसने आचार्य के कहने के अनुसार शास्त्रार्थ किया, अंत में हार गई, तब उस ने सोचा कि यह संन्यासी है इस को काम-शास्त्र नहीं आता होगा इसमें जो पूछेंगे तो उत्तर नहीं दे सकेगा। फिर सरस्वणी ने कहा कि काम-शास्त्र में विवाद करो। शंकराचार्य इस वचन को सुनकर चुप हो गये और कहा कि छः महीने के अनंतर तुमसे इसी शास्त्र में विवाद करूँगा।

तब शंकराचार्य अमृतपुर में गए। वहाँ का राजा मर गया था। इसका नाम अमरु करके प्रसिद्ध था। उसका शरीर जलाने के लिये चिता पर रक्खा था इतने में शंकराचार्य ने अपने शरीर से प्राण निकाल कर परकायप्रवेश विद्या के बल से उस राजा के मृत शरीर में प्रवेश किया और शिष्यों ने आचार्य का शरीर एक पहाड़ की गुफा में रक्खा। कहीं लिखा है इस राजा की सौ रानी थीं उन में जो बड़ी थी उस ने देखा कि पति की चेष्टा पहले ऐसी नहीं है केवल पहला शरीर मात्र वही है और इस की आत्मा किसी योगी की जन पड़ती है नहीं तो इतना चातुर्य इस में कहाँ से होता। रानी ने आज्ञा दी कि जहाँ कहीं मृत शरीर मिले उसी क्षण उस को जला दो। राजदूतों ने आचार्य का शरीर गुफा में पाया और उसको जलाने के लिये चिता पर रक्खा और आग लगा दी। आचार्य के शिष्यों ने देख कर राजा की स्तुति की। उस का अभिप्राय यही थी कि राजा, तू शंकराचार्य है दूसरा कोई नहीं। उसी क्षण राजा के शरीर से प्राण ने निकल कर उस चिता पर रक्खे हुए शरीर में प्रवेश किया और अग्नि शांत होने के लिये नृसिंह की स्तुति की। नृसिंह ने प्रसन्न हो के वर दिया। वहाँ से सरस्वती के पास आये और उसको जीत लिया और उस को साथ लेकर श्रृंगपुर में आये, जिस को अब श्रृंगेरी कहते हैं और जो तुंगभद्रा के तीर पर है। उसी स्थल पर सरस्वती की स्थापना की और भारती संप्रदाय की शिष्य परंपरा करने की रीति स्थापन की।

शंकराचार्य की गुरुपरंपरा इस प्रकार से लिखी है। पहिले नारायण, फिर ब्रह्मा, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, सुक, गौड़पाद, गोविंद योगीन्द्र, श्री शंकराचार्य। इन के १२ मुख्य शिष्य हुए उन के नाम

पहिले लिख आये है ।

शृंगेरी में १२ बरस रह कर कांचीपुर में गये । वहाँ कामाक्षा देवी की स्थापना की और कांची का नगर बसाया और विष्णुकांची में बरदराज विष्णु का और शिवकांची में शिव का मंदिर बनवाया और अवतारमूर्तियों नदी के तीर पर रहने वाले लोगों को शिष्य किया । प्रायः सब भारतवर्ष में इनकी शिष्यशाखा फैली ।

श्री शंकराचार्यजी ने व्यास सूत्र पर अद्वैत भाष्य और दस महोपनिषदों और गीता पर भी भाष्य बनाये । और कई एक ग्रंथ बनाये हैं वे सब अब तक मिलते हैं । इनका मत यह था कि प्रपंच में ब्रह्म को छोड़कर जो कुछ दिखाई देता है सब मिथ्या है, सब ब्रह्म रूप है, और ईश्वर और जीव एक ही है इत्यादि, उनके ग्रंथों को देखने से जान पड़ता है । इसी लिये किसी मत को जिस में ईश्वर की सत्ता मानी जाती है सर्वथा खंडन नहीं किया । नास्तिक मत को छोड़कर सब मतों को स्थापन किया और ३२ बरस के वय में परलोक को चले गये । शक्ति संगम तन्त्रादिक ग्रंथों में तो १६ ही वर्ष लिखे हैं परंतु शंकर विजयादि ग्रंथों से ज्ञात हुआ कि जो ऊपर संख्या लिखी है ठीक है क्योंकि इतना कृत्य इतने थोड़े समय में नहीं हो सकता । इनकी कीर्ति अब तक इस भारतवर्ष में चली जाती है और प्रायः यहाँ के लोग भी इसी मत पर चलते हैं ।

मैंने शंकराचार्य का जीवनवृत्त बहुत संक्षेप से लिखा है । यदि इसमें कहीं शीघ्रता के हेतु भूल हो तो पढ़ने वाले उस पर क्षमा करें क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि भ्राति पुरुष का धर्म है ।

५. महाकवि श्री जयदेव जी*

जयदेव जी की कविता का अमृत पान करके तृप्त, चकित, मोहित और धूर्णित कौन नहीं होता और किस देश में कौन सा ऐसा विद्वान है जो कुछ भी संस्कृत जानता हो और जयदेव जी की काव्य-माधुरी का प्रेमी न हो । जयदेव जी का यह अभिमान कि अंगूर और ऊख की मिठास उनकी कविता के आगे फीकी है बहुत सत्य है । इस मिठाई को न पुरानी होने का भय है न चींटी का डर है, मिठाई है, पर नमकीन है यह नई बात है । सुनने पढ़ने की बात है पर गूंगे का गुड़ है । निर्जन में जंगल पहाड़ में जहाँ बैठने को बिछौना भी न हो वहाँ गीतगोविंद सब आनंद सामग्री देता है, और जहाँ कोई मित्ररसिक भक्त-प्रेमी न हो वहाँ यह सब कुछ बन कर साथ रहता है । जहाँ गीतगोविंद है वहीं वैष्णव गोष्ठी है, वहीं रसिक-समाज है, वहीं वृंदावन है, वहीं प्रेमसरोवर है, वहीं भाव-समुद्र है, वहीं गोलोक है और वहीं प्रत्यक्ष ब्रह्मानंद है । पर यह भी कोई जानता है कि इस परब्रह्म-रस प्रेम-सर्वस्व शृंगार-समुद्र के जनक जयदेव जी कहाँ हुए ? कोई नहीं जानता और न इसकी खोज करता । प्रोफेसर लैसेन ने लैटिन भाषा में और पूना के प्रिन्सिपल आरनल्ड साहब ने अंगरेजी में गीत-गोविंद का अनुवाद किया, परंतु कवि का जीवनचरित्र कुछ न लिखा केवल इतना ही लिख दिया कि सन् ११५० के लगभग जयदेव उत्पन्न हुए थे । किंतु धन्य है बाबू रत्नकीर्तन गुप्त कि बिन्होंने पहिले पहल इस विषय में हाथ डाला और "जयदेवचरित्र" नामक एक छोटा सा ग्रंथ इस विषय पर लिखा । यद्यपि समयनिर्णय में और जीवनचरित्र में हमारे उनके मत में अनेक अनेक्य है तथापि उनके ग्रंथ से हम को अनेक सहायता मिली है, यह मुक्त कंठ से स्वीकार करना होगा । और इसमें कोई संशय नहीं कि उन्होंने के ग्रंथ ने हमारी रुचि को इस विषय के लिखने पर प्रबल किया है ।

वीरभूमि से प्रायः दस कोस दक्षिण? अजयनद के उत्तर किन्दुबिल्व? गाँव में श्रीजयदेव जी ने जन्म ग्रहण किया था ।

संभव है कि कन्नौज से आए हुए ब्राह्मणों में से जयदेव जी का वंश भी हो । इन के पिता का नाम

* चंद्रिका अभिनव किरणावली खंड ६ संख्या १० अप्रैल सन् १८७९ में पूर्वार्ध छपा ।

१. अजयनद भागीरथी का करद है । यह भागलपुर ज़िला के दक्षिण से निकल कर साताल परगने के दक्षिण भाग दक्षिण की ओर और फिर वर्दमान और वीरभूमि के ज़िले के बीच में से पश्चिम की ओर बह कर कटवा के पास भागीरथी से मिला है । (ज. च. बंगदेश विवरण) ।

२. किन्दुबिल्व वीरभूमि के मुख्य नगर सूरि से नौ कोस है । यहाँ श्रीराधा दामोदर जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है । वैष्णवों का यह भी एक पवित्र क्षेत्र है ।

भोजदेव और माता का नाम रामादेवी था । इन्होंने किस समय अपने आविर्भाव से धरातल को भूषित किया था यह अब तक नहीं ज्ञात हुआ । श्रीयुक्त सनातन गोस्वामी ने लिखा है कि बंगाधिपति महाराज लक्ष्मणसेन की सभा में जयदेव जी विद्यमान थे । अनेक लोगों का यही मत है और इस मत को पोषण करने को लोग कहते हैं कि लक्ष्मणसेन के द्वार पर एक पत्थर खुदा हुआ लगा था, जिस पर यह श्लोक लिखा हुआ था "गोवर्द्धनश्चरणो जयदेव उमापतिः । कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणास्य च ॥"

श्रीसनातन गोस्वामी के इस लेख पर अब तीन बातों का निर्णय करना आवश्यक हुआ । प्रथम यह कि "लक्ष्मणेश्वर" का काल क्या है । दूसरे यह कि यह लक्ष्मणसेन वही है जो बंगाले का प्रसिद्ध लक्ष्मणसेन है कि दूसरा है । तीसरे यह कि यह बात अद्वय है कि नहीं कि जयदेव जी लक्ष्मणसेन की सभा में थे ।

प्रसिद्ध इतिहास लेखकर मिनहाजिउद्दीन ने तबकाते नासिरी में लिखा है कि जब बख्तियार खिलजी ने बंगाल फतह किया तब लछमनिया नाम का राजा बंगाले में राज करता था । इन के मत से लछमनिया बंगदेश का अंतिम राजा था । किंतु बंगदेश के इतिहास से स्पष्ट है कि लछमनिया नाम का कोई भी राजा बंगाले में नहीं हुआ । लोग अनुमान करते हैं कि बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन के माधवसेन और केशवसेन "लक्ष्मणेश्वर" इस शब्द के अपभ्रंश से लछमनिया लिखा है ।

राजशाही के जिले से मेटकाफ साहब को एक पत्थर पर खोदी हुई प्रशस्ति मिली है । यह प्रशस्ति विजयसेन राजा के समय में प्रद्युम्नेश्वर महादेव के मंदिर-निर्माण के वर्णन में उमापतिधर की बनाई हुई है । डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र के मत से इस की संस्कृति की रचना प्रणाली नवम या दशम वा एकादश शताब्दी की है । शोध की बात है कि इस प्रशस्ति में संवत् नहीं दिया है, नहीं तो जयदेव जी के समय निरूपण में इतनी कठिनाई न पड़ती । इसमें हेमंतसेन, सुमंतसेन और वीरसेन यही तीन नाम विजयसेन के पूर्वपुरुषों के दिये हैं, जिससे प्रगत होता है कि वीरसेन ही वंशस्थापनकर्ता है । विजयसेन के विषय में यह लिखा है कि उस ने कामरूप और कुरुमंडल (मद्रास और पुरी के बीच का देश) जय किया था और पश्चिम जय करने को नौका पर गंगा के तट में सेना भेजी थी । तवारीखों में इन राजाओं का नाम कहीं नहीं है । कहते हैं आइनेअकबरी का सुखसेन (बल्लालसेन का पिता) विजयसेन का नामांतर है, क्योंकि बाकरगंज की प्रस्तरलिपि में जो चार नाम हैं वे विजयसेन, बल्लालसेन, लक्ष्मणसेन और केशवसेन इस क्रम से हैं । बल्लालसेन बड़ा पंडित था और दानसागर और वेदार्थ स्मृति संग्रह इत्यादि ग्रंथ उसके कारण बने । कुलीनों की प्रथा भी बल्लालसेन की स्थापित है । उसके पुत्र लक्ष्मणसेन के काल में भी संस्कृतविद्या की बड़ी उन्नति थी । भट्ट नारायण (बेणी संहार के कवि) के वंश में धनंजय के पुत्र हलायुध पंडित उसके दानाध्यक्ष थे, जिन्होंने ब्राह्मण सर्वस्व बनाया और इनक दूसरे भाई पशुपति भी बड़े स्मार्त आन्हिककार थे । कहते हैं कि गौड़ का नगर बल्लालसेन ने बसाया था, परंतु लक्ष्मणसेन के काल से उस का नाम लक्ष्मणावती (लखनौती) हुआ । लक्ष्मणसेन के पुत्र माधवसेन और केशवसेन थे । राजावली में इन के पीछे सुसेन या शूरसेन और लिखा है और मुसलमान लेखकों ने नौजीव (नवदीप ?), नारायण, लखमन और लखमनिया ये चार नाम और लिखे हैं वरंच एक अशोकसेन भी लिखा है किंतु इन सबों का ठीक पता नहीं । मुसलमानों के मत से लखमनिया अंतिम राजा है, जिस ने ८० वर्ष राज्य किया और बख्तियार के काल में जिसने राज्य छोड़ा । यह गर्भ ही से राजा था । तो नाम का क्रम वीरसेन से लछमनिया तक एक प्रकार ठीक हो गया, किंतु इन का समय निर्णय अब भी न हुआ, क्योंकि किसी दानपत्र में संवत् नहीं है । दानसागर के बनने का समय समय-प्रकाश के अनुसार १०१९ शके (१०७९ ई.) है । इस से बल्लालसेन का राजत्व ग्यारहवीं शताब्दी के अंत तक अनुमान होता है और यह आइनेअकबरी के समय से भी मेल खाता है । बल्लालसेन ने १०६६ में राज्य आरंभ किया था । तो अब सेनवंश का क्रम यों लिखा जा सकता है ।

१. बंबई की छपी हुई पुस्तक में राधा देवी जो इन की माता का नाम लिखा है वह असेगत है । हाँ, यामादेवी और रामादेवी यह दोनों पाठ अनेक हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं । बंगला में र और व में केवल एक बिन्दु के भेद होने के कारण यह भ्रम उपस्थित हुआ है ।

वीरसेन
सामंतसेन
हेमंतसेन
विजयसेन वा सुखसेन
बल्लालसेन
लक्ष्मणसेन
माधवसेन
केशवसेन
लछमनिया

१०६६
११०१
११२१
११२२
११२३

बल्लालसेन का समय १०६६ ई. समय-प्रकाश के अनुसार है। यदि इस को प्रमाण न मानें और फारसी लेखकों के अनुसार लछमनिया के पहले नारायण इत्यादि और राजाओं को भी मानें तो बल्लालसेन और भी पीछे जा पड़ेंगे। तो अब जयदेव जी लक्ष्मणसेन की सभा में थे कि नहीं यह विचारना चाहिए। हमारी बुद्धि से नहीं थे। इस के कई दृढ़ प्रमाण हैं। प्रथम तो यह कि उमापतिभर जिसने विजयसेन की प्रशंति बनाई है वह जयदेव जी का समसामयिक था। तो यदि यह मान लें कि जयदेव उमापति गोवर्दनादिक सब सौ बरस से विशेष जिए हैं तब यह हो सकता है कि ये विजयसेन और लक्ष्मण दोनों की सभा में थे। दूसरे चंद कवि ने जिसका जन्म ११५० सन् के पास है अपने रायसा में प्राचीन कवियों की गणना में जयदेव को लिखा है।^१ तो सौ डेढ़ सौ वर्ष पूर्व हुए बिना जयदेव जी की कविता का चंद के समय तक जगत में आदरणीय होना असंभव है। गोवर्दन ने अपनी सप्तशती में "सेन-कुलतिलक भूपति" इतना ही लिखा, नाम कुछ न दिया, किंतु उस की टीका में "प्रवरसेन नामा इति" लिखा है। अब यदि प्रवरसेन, हेमंतसेन या विजयसेन का नामांतर मान लिया जाय और यह भी मान लिया जाय कि जयदेव जी की कविता बहुत जल्दी संसार में फैल गई थी और समय-प्रकाश का बल्लाल का समय भी प्रमाण किया जाय तो यह अनुमान हो सकता है कि विजयसेन के समय में वा उस से कुछ ही पूर्व सन् १०२५ से १०५० तक में किसी वर्ष में जयदेव जी का प्राकट्य है और ऐसा ही मानने से अनेक विद्वानों की एकवाक्यता भी होती है। यहाँ पर समय विषयक जटिल और नीरस निर्णय जो बंगला और अंगरेजी ग्रंथों में है वह न लिख कर सार लिख दिया है। इससे "जयदेव चरित" इत्यादि बंगला ग्रंथों में जो जयदेव जी का समय तेरहवीं वा चौदहवीं शताब्दी लिखा है वह अप्रमाण होकर यह निश्चय हुआ कि जयदेव जी ग्यारहवीं शताब्दी के आदि में उत्पन्न हुए हैं।

जयदेव जी की बाल्यावस्था का सविशेष वर्णन कुछ नहीं मिलता। अत्यंत छोटी अवस्था में यह मान्वापतृविहीन हो गए थे, यह अनुमान होता है। क्योंकि विष्णुस्वामि चरितामृत के अनुसार श्री पुरुषोत्तमक्षेत्र में इन्होंने उसी संप्रदाय के किसी पंडित से पढ़ी थी। इनके विवाह का वर्णन और भी अद्भुत है। एक ब्राह्मण ने अनपत्य होने के कारण जगन्नाथ देव की बड़ी आराधना कर के एक कन्या-रत्न लाभ किया था। इस कन्या

मुजंगप्रयात —	प्रथम मुजंगी सुधारी ग्रहण ।	जिनें	नाम	एक	अनेक	कहने ।।
दुती	लभ्यं देवतं जीवतेस ।	जिनें	विश्व	राख्यो	बलीमंत्र	सेस ।।
चवं	वेद बंम हरी किति भाषी ।	जिनें	ग्रम्म	साग्रम्म	संसार	साषी ।।
तृती	भारती व्यास भारत्य भाष्यो ।	जिनें	उत्त	पारत्य	सारत्य	साष्यो ।।
चवं	सुखदेवं परीषत्त पाय ।	जिनें	उदय्यो	श्रब्ब	कुर्वेस	राय ।।
नरं	रूप पंचम्म श्रीहय सार ।	नलेराय	कंठ	दिने	पद	हार ।।
छटं	कालिदासं सभाषा सुबदं ।	जिनें	बाग्यानी	सुबानी	सुबदं	।।
कियो	कालिका मुख वासं सुसुदा ।	जिनें	सेत	बन्धोति	भोज	प्रबंद ।।
सतं	डंडमाली उलाली कवित् ।	जिनें	बुद्धि	तारंग	गंगा	सरित् ।।
जयदेव	अट्ट कवी कविचराय ।	जिनें	केब	किति	गोविद	गाय ।।
गुरं	सब्ब कब्बी लहू चंद कब्बी ।	जिनें	वसिष	देवि	सा अंग	हब्बी ।।
कवी	कितिकिति उकती सुविस्वो ।	तिने	कोउ	विष्टोकवीचंद	भक्खो	।।

का नाम पद्मावती था । जब यह कन्या विवाह योग्य हुई तो जगन्नाथ जी ने स्वप्न में उसके पिता को आज्ञा किया कि हमारा भक्त जयदेव नामक एक ब्राह्मण अमुक वृक्ष के नीचे निवास करता है, उसको तुम अपनी कन्या दो । ब्राह्मण कन्या को लेकर जयदेव जी के पास गया । यद्यपि जयदेव जी ने अपनी अनिच्छा प्रकाश किया तथापि देवादेशानुसार ब्राह्मण उस कन्या को उनके पास छोड़ कर चला आया । जयदेव जी ने जब उस कन्या से पूछा कि तुम्हारी क्या इच्छा है तो पद्मावती ने उत्तर दिया कि आज तक हम पिता की आज्ञा में थे, अब आप की दासी हैं । ग्रहण कीजिए वा परित्याग कीजिए मैं आप का दासत्व न छोड़ूंगी । जयदेव जी ने उस कन्या के मुख से यह सुन कर प्रसन्न होकर उस का पाणिग्रहण किया । अनेक लोगों का मत है कि जयदेव जी ने पूर्व में एक विवाह किया था । उस स्त्री की मृत्यु के पीछे उदास होकर पुरुषोत्तमक्षेत्र में रहते थे । पद्मावती उनकी दूसरी स्त्री थी । इन्हीं पद्मावती के समय, संसार में आदरणीय कविता रत्न का निकष गीतगोविंद काव्य जयदेव जी ने बनाया ।

गीतगोविंद के सिवा जयदेव जी की और कोई कविता नहीं मिलती । प्रसन्नराघव, पद्मधरी, चन्द्रालोक और सीताविहार काव्य विदर्भ नगर वासी कौण्डिन्यगोत्रोद्भव महादेव पंडित के पुत्र दूसरे जयदेव जी के बनाए हैं, जिनका काव्य में पीयूषवर्ष और न्याय में पक्षधर उपनाम था । वरंच अनेक विद्वानों का मत है कि तीन जयदेव हुए हैं, यथा गीतगोविंदकार, प्रसन्नराघवकार और चन्द्रालोककार, जिनका नामांतर पीयूषवर्ष है ।

पद्मावती के पाणिग्रहण के पीछे जयदेव जी अपने स्थापित इष्टदेव की सेवा निर्वाहार्थ द्रव्य एकत्र करने की इच्छा से वा तीर्थाटन और धर्मोपदेश की इच्छा से निज देश छोड़ कर बाहर निकले । श्रीवृंदावन की यात्रा करके जयपुर या जयनगर होते हुए जयदेव जी मार्ग में चले जाते थे कि डाँकुओं ने धन के लोभ से उन पर आक्रमण किया और केवल धन ही नहीं लिया, वरंच उनके हाथ पैर भी काट लिए । कहते हैं कि किसी धार्मिक राजा के कुछ भूय लोग उसी मार्ग से जाते थे । उन लोगों ने जयदेव जी की यह दशा देखा और अपने राज्य में उन को उठा ले गए । वहाँ औषध इत्यादि से कुछ इनका शरीर स्वस्थ हुआ । इसी अवसर में चोर भी उस नगर में आए और साधु वेश में उस नगर के राजा के यहाँ उतरे । तब राजा के घर में जयदेव जी का बड़ा मान था और दान धर्म इन्हीं के द्वारा होता था । जयदेव जी ने इन साधु वेशधारी चोरों को अच्छी तरह पहचान लिया और यदि वे चाहते तो भली भाँति अपना बदला चुका लेते, परंतु उनके सहज उदार और दयालु चित्त में इस बात का ध्यान तक न आया, वरंच दानादिक देकर उनका बड़ा आदर किया । विदा के समय भी उन को बड़े सत्कार से अच्छी विदाई देकर विदा किया और राजा के दो नौकर साथ कर दिये कि अपनी सरहद तक उन को पहुँचा आवें । मार्ग में राजा के अनुचर ने उन चोरों से पूछा कि इन साधु जी ने और लोगों से विशेष आपका आदर क्यों किया । इस पर उन चाँडाल चोरों ने यह उत्तर दिया कि जयदेव जी पहिले एक राजा के यहाँ रहते थे, इन्होंने कुछ ऐसा दुष्कर्म किया कि राजा ने हम लोगों को इन के प्राण हरने की आज्ञा दिया, किंतु दया परवश हो कर हम लोगों ने इन के प्राण नहीं लिए, केवल हाथ पैर काट के छोड़ दिया । इसी बात के छिपाने के हेतु जयदेव ने हमलोगों का इतना आदर किया । कहते हैं कि मनुष्यों की आधारभूता पृथ्वी इस अनर्थ मिथ्याप्रवाद को न सह सकी और द्विधा विदीर्ण हो गई । वे चोर सब उसी पृथ्वीगर्भ में डूब गए और परमेश्वर के अनुग्रह से जयदेव जी के भी हाथ पैर फिर से यथावत् हो गए । अनुचरों के द्वारा यह वृत्तान्त सुन कर और जयदेव जी से पूर्ववृत्ति जान कर राजा अत्यंत ही चमत्कृत हुआ । आश्चर्य घटना-अविश्वासी विद्वानों का मत है कि जयदेव जी ऐसे सहृदय थे कि उनके सहज स्वभाव पर रीझ कर लोगों ने यह गल्प कल्पित कर ली है ।

तदनंतर जयदेव जी ने अपनी पत्नी पद्मावती को भी वहीं बुला लिया । कहते हैं कि एक बेर उस राजा की रानी ने ईर्ष्या-वश पद्मावती की परीक्षा करने को उस से कह दिया कि जयदेव जी मर गए । उस समय जयदेव जी राजा के साथ कहीं बाहर गए थे । पतिप्राणा पद्मावती ने यह सुनते ही प्राण परित्याग कर दिया । जब जयदेव जी आए और उन्होंने यह चरित देखा तो श्रीकृष्ण नाम सुना कर उस को पुनर्जीवन दिया, किंतु उस ने उठ कर कहा कि अब आप हमको आज्ञा दीजिए, हमारा इसी में कल्याण है कि हम आपके सामने परमधाम जायें, और तदनुसार उस ने फिर शरीर नहीं रक्खा । जयदेव जी इससे उदास होकर अपनी जन्मभूमि केंदुली ग्राम में चले आए और फिर यावत् जीवन वहीं रहे ।

श्री जयदेव जी के गीतगोविंद के जोड़ पर गीतगिरीश नामक एक काव्य बना है, किंतु जो बात इस में है वह उस में सपने में भी नहीं है ।

गीतगोविंद के अनेक टीकाकार भी हुए हैं, यथा उदय, जो खास गोवर्दनाचार्य का शिष्य था और जयदेव जी से भी कुछ पढ़ा था। एक टीका उस की बनाई है और पीछे से अनेक टीका बनी हैं। उदयन की टीका जयदेव जी के समय में बन चुकी थी और इसमें भी कोई संदेह नहीं कि गीतगोविंद जयदेव जी के जीवन काल ही से सारे संसार में प्रचलित हो गया था। गीतगोविंद दक्षिण में बहुत गाया जाता है और बाला जी में सीढ़ियों पर द्रविण लिपि में खुदा हुआ है। श्री बल्लभाचार्य संप्रदाय में इस का विशेष भाव है, वरंच आचार्य के पुत्र गोसाईं विद्वलनाथ जी की इस के प्रथम अष्टपदी, पर एक रसमय टीका भी बड़ी सुंदर है, जिस में दशावतार का वर्णन रंगार परत्व लगाया है। वैष्णवों में परिपाटी है कि अयोग्य स्थान पर गीतगोविंद नहीं गाते, क्योंकि उनका विश्वास है कि जहाँ गीतगोविंद गाया जाता है वहाँ अवश्य भगवान का प्रादुर्भाव होता है। इस पर वैष्णवों में एक आख्यायिका प्रचलित है। एक बुढ़िया की गीतगोविंद की "धीर समीरे यमुना तीरे" यह अष्टपदी याद थी। वह बुढ़िया गोवर्दन के नीचे किसी गाँव में रहती थी। एक दिन वह बुढ़िया अपने बैगन के खेत में पेड़ों को खींचती थी और अष्टपदी गाती थी, इस से ठाकुर जी उस के पीछे पीछे फिरे। श्रीनाथ जी के मंदिर में तीसरे पहर को जब उत्थापन हुए तो श्री गोसाईं जी ने देखा कि श्रीनाथ जी का बागा फटा हुआ है और बैगन के कटे और मिट्टी लगी हुई है। इस पर जब पूछा गया तो उत्तर मिला कि अमुक बुढ़िया ने गीतगोविंद गाकर हमको बुलाया इस से कटे लगे, क्योंकि वह गाती गाती जहाँ जाती थी मैं उस के पीछे फिरता था। तब से यह आज गोसाईं जी ने वैष्णवों में प्रचार किया कि कुस्थान पर कोई गीतगोविंद न गावे।

किंवदंती है कि जयदेव जी प्रति दिवस श्रीगंगा स्नान करने जाते थे। उन का यह श्रम देख कर गंगाजी ने कहा कि तुम इतनी दूर क्यों परिश्रम करते हो, हम तुम्हारे यहाँ आप आवेंगे। इसी से अजयनद नामक एक धार में गंगा अब तक केंदुली के नीचे बहती हैं।

जयदेव जी विष्णुस्वामी संप्रदाय में एक ऐसे उत्तम पुरुष हुए हैं कि संप्रदाय की मयावस्था में मुख्यत्व कर के इन का नाम लिया गया है। यथा —

विष्णुस्वामीसभारम्भां जयदेवादिमध्यगां । श्रीमद्वल्लभपर्यन्तांस्तुमीगुरुपरम्पराम् । १

जयदेव जी का पवित्र शरीर केंदुली ग्राम में समाधिस्थ है। यह समाधि मंदिर सुंदर लताओं से वेष्टित हो कर अपनी मनोहरता से अद्यापि जयदेव जी के सुंदर चित्त का परिचय देता है।

"जयदेव जी नितांत करुण हृदय और परम धार्मिक थे। भक्ति विलसित महत्व छटा और अनुपम प्रीति व्यंजक उदार भाव यह दोनों उनके अंतःकरण में निरंतर प्रतिभासित होते थे। उन्होंने अपने जीवन का अर्धकाल केवल उपासना और धर्मघोषणा में व्यतीत किया। वैष्णव संप्रदाय में इन के ऐसे धार्मिक और सहृदय पुरुष विरले ही हुए हैं"।

जयदेव जी एक सत्कवि थे, इस में कोई संदेह नहीं। यद्यपि कालिदास, भवभूति, भारवि इत्यादि से बढ़कर वह कवि थे यह नहीं कह सकते, पर उनकी अपेक्षा इनको सामान्य भी नहीं कह सकते। बंगभूमि में तो कोई ऐसा सत्कवि आज तक हुआ नहीं। "ललितपद विन्यास और श्रवण मनोहर अनुप्रास छटा निबंधन से जयदेव की रचना अत्यंत ही चमत्कारिणी है। मधुर पद विन्यास में तो बड़े कवि भी इस से निस्संदेह हारे हैं"।

जयदेव जी का प्रसिद्ध ग्रंथ गीतगोविंद बारह सग्यों में विभक्त है। जिस में पूर्व में श्लोक और फिर गीत क्रम से रक्खे हैं। इस ग्रंथ में परस्पर विरह, दूती, मान, गुण-कथन और नायक का अनुनय और तत्पश्चात् मिलन यह सब वर्णित है। जयदेव जी परम वैष्णव थे। इस से उन्होंने जो कुछ वर्णन किया अत्यंत प्रगाढ़ भक्ति पूर्ण हो कर वर्णन किया है। इन्होंने इस काव्य में अपनी रसशालिनी रचना शक्ति और चित्तरंजक सद्भाव-शालित्व का एक शेष प्रदर्शन दिया है। पंडितवर ईश्वरचंद्र विद्यासागर स्वर्णगीत संस्कृत विषयक प्रस्ताव में लिखते हैं "इस महाकाव्य गीतगोविंद की रचना जैसी मधुर कोमल और मनोहर है उस तरह की दूसरी कविता संस्कृत-भाषा में बहुत अल्प है। वरंच ऐसे ललित पद विन्यास, श्रवण मनोहर, अनुप्रास छटा और प्रसाद गुण और कहीं नहीं है।" वास्तव में रचना विषय में गीतगोविंद एक अपूर्व पदार्थ है। और तालामानों के वातुय से और अनेक रागों के नाम के अनुकूल गीतों में अक्षर से स्पष्ट बोध होता है कि जयदेव जी

गाना बहुत अच्छा जानते थे। कहते हैं कि गीतगोविंद को अष्टपदी और अष्टताली नाम से भी लोग पुकारते हैं।

अनेक विद्वानों ने लिखा है गीतगोविंद विक्रमादित्य की सभा में गाया जाता था। किंतु यह कथा सर्वथा गीत-गोविंद निस्संदेह गाया जाता था। वरंच जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी में लिखा है कि श्रीहर्ष जब क्रम सरोवर के निकट भ्रमण करते थे उन दिनों गीतगोविंद उन की सभा में गाया जाता था।

कहते हैं कि "प्रिये चारुशीले" इस अष्टपदी में "स्मरगरल खण्डनं मम शिरसि मण्डनं" इस पद के आगे जयदेव जी की इच्छा हुई कि "देहि पदपल्लवमुदारं" ऐसा पद दें, किंतु प्रभु के विषय में ऐसा पद देने को उन का साहस नहीं पड़ा, इस से पुस्तक छोड़ कर आप स्नान करने चले गए। भक्तवत्सल, भक्तमनोरथपूरक भगवान इस समय स्नान से फिरते हुए जयदेव जी के वेश में घर में आए। प्रथम पद्मावती ने जो रसोई बनाई थी उस को भोजन किया, तदनंतर पुस्तक खोल कर "देहि पदपल्लवमुदारं" लिख कर शयन करने लगे। इतने में जयदेव जी आए तो देखा कि पतिप्राणा पक्षावती, जो बिना जयदेव जी को भोजन कराये जल भी नहीं पीती थी वह, भोजन कर रही है। जयदेव जी ने भोजन का कारण पूछा तो पद्मावती ने आश्चर्य-पूर्वक सब वृत्त कहा। इस पर जयदेव जी ने जाकर पुस्तक देखा तो "देहि पदपल्लवमुदारं" यह पद लिखा है। वह जान गए कि यह सब चरित्र उसी रसिकशिरोमणि भक्तवत्सल का है। इस से आनंद पुलकित हो कर पद्मावती का थाली का अन्न खा कर अपने को कृतार्थ माना।

कहते हैं कि पुरी के राजा सात्विकराय ने ईर्ष्यापरवश होकर एक जयदेव जी को कविता की भाँति अपना भी गीतगोविंद बनाया था। इस भगड़े को निबटाने को कि कौन गीतगोविंद अच्छा है दोनों गीतगोविंदों को पंडितों ने जगन्नाथ जी के मंदिर में रखकर बंद कर दिया। जब यथा समय द्वार खुला तो लोगों ने देखा कि जयदेव जी का गीतगोविंद श्री जगन्नाथ जी के हृदय में लगा हुआ है और राजा का दूर पड़ा है। यह देखकर राजा आत्महत्या करने को तैयार हुआ। तब श्रीजगन्नाथ जी ने उसके संबोधन के वास्ते आज्ञा किया कि हम ने तेरा भी आंगीकार किया, शोच मत कर।

गीतगोविंद अंगरेजी गद्य में सर विलियम जोन्स कृत, पड़य में आरनल्ड साहब कृत, लैटिन में लासिन कृत, जर्मन में रुकार्ट कृत, ऐसे ही अनेक भाषाओं में अनेक जन कृत अनुवादित हुआ है। हिंदी में इसके छंदोबद्ध तीन अनुवाद हैं। प्रथम राजा डालचन्द की आज्ञा से रायचन्द नागर कृत, द्वितीय अमृतसर के प्रसिद्ध भक्त स्वामी रत्नहरीदास कृत और तृतीय इस प्रबंध के लेखक हरिश्चंद्र कृत। इन अनुवादों के अतिरिक्त द्राविण और कार्णाटादि भाषाओं में इसके अपरागर अन्य अनेक अनुवाद हैं।

लोग कहते हैं कि जयदेव जी ने गीतगोविंद के अतिरिक्त एक ग्रंथ रतिमंजरी भी बनाया था, किंतु यह अमूलक है। गीतगोविंदकार की लेखनी से रतिमंजरी सा जघन्य काव्य निकले यह कभी संभव नहीं। एक गंगा की स्तुति में सुन्दर पद जयदेव जी का बनाया हुआ और मिलता है, वह उनका बनाया हुआ हो तो हो।

इस भाँति अनेक सौ बरस हुए कि श्रीजयदेव जी इस पृथ्वी को छोड़ गए। किंतु अपनी कविता-बल से हमारे समाज में वह सादर आज भी विराजमान हैं। इनके स्मरण के हेतु केन्दुली गाँव में अब तक मकर की संक्रांति को एक बड़ा भारी मेला होता है, जिसमें साठ सत्तर हजार वैष्णव एकत्र हो कर इनकी समाधि के चारों ओर संकीर्तन करते हैं।

६. पुष्पदंताचार्य और महिम्न

यह स्तोत्र अब ऐसा प्रसिद्ध है कि आर्य की भाँति माना जाता है, वरंच पुराणों में भी कहीं-कहीं इसका माहात्म्य मिलता है। एक प्रसंग है कि जब पुष्पदंत ने महिम्न बना के शिवजी को सुनाया तब शिवजी बड़े प्रसन्न हुए इससे पुष्पदंत को गर्व हुआ कि मैंने ऐसी अच्छी कविता किया कि शिवजी प्रसन्न हो गए। यह बात शिवजी ने जाना और अपने भूंगी-गण से कहा कि मुँह तो खोलो। जब भूंगी ने मुँह खोला, तो पुष्पदंत ने देखा कि महिम्न के बत्तीसो श्लोक भूंगी के बत्तीसो दाँत में लिखे हैं। इससे यह बात शिवजी ने प्राप्त किया कि ये

श्लोक तुमने नहीं बनाए हैं। वरंच यह तो हमारी अनादि स्तुति-श्लोक है। यह बात प्रसिद्ध है कि पुष्पदंत जब शाप से ब्राह्मण हुआ था तब यह स्तोत्र बनाया है और ऐसी ही अनेक आख्यायिका हैं। अब वह पुष्पदंत कौन है और कब वह ब्राह्मण हुआ इसका विचार करते हैं। कथासरित्सागर में एक पहिला ही प्रसंग है, जिससे यह प्रसंग बहुत स्पष्ट होता है। उस में लिखते हैं कि पार्वती जी का मान छुड़ाने को शिवजी ने अनेक विचित्र इतिहास कहे और उस समय नंदी को आज्ञा दी थी कि कोई भीतर न आवै, परंतु पुष्पदंत गण ने योगबल से नंदी से छिप कर भीतर जा कर वह सब कथा सुनी और अपनी स्त्री जया से कही और जया ने फिर पार्वती से कही। यह सुन कर पार्वती ने बड़ा क्रोध किया और पुष्पदंत और उस के मित्र माल्यवान् को शाप दिया कि दोनों मृत्युलोक में जन्म लो। फिर जब उन सबों ने पार्वती को बहुत मनाया तब पार्वती ने कहा कि अच्छा विध्याचल में सुप्रतीक नाम यक्ष काणभूति पिचाश हुआ है उसको देख कर पुष्पदंत जब यह सब कथा कहेगा तब दोष दूर होगा और काणभूति से जब माल्यवान् सुनेगा तब शाप से छूटेगा। वही पुष्पदंत वररुचि नामक कवि कौशांबी में हुआ और सुप्रतिष्ठ नगर में माल्यवान् गुणाढ्य कवि हुआ। यथा —

अवदच्चन्द्रमौलिः कौशाम्बीत्यस्तियामहानगरी ।

तस्यां सपुष्पदंतो वररुचि नामा प्रिये जातः ॥११॥

अन्यश्च माल्यवानपि नगरे सुप्रतिष्ठाख्ये ।

जातो गुणाढ्य नामा देवितयोरेषवृत्तान्तः ॥१२॥”

कौशांबी नगरी में सोमदत्त व अग्निशिख नामा ब्राह्मण की स्त्री वसुदत्ता से वररुचि का जन्म हुआ और पिता छोटे ही पन में मर गया, इस से माता ने बड़े कष्ट से इस का पालन किया। यह छोटे ही पन में ऐसा श्रुतिधर था कि एक बेर जो सुनता वा जो कला देखता कंठ कर लेता और जान जाता। एक समय बेतसपुर के देवस्वामी और कदंबक नामा ब्राह्मण के पुत्र इंद्रदत्त और व्याडि इसके घर में आए। वहाँ इन दोनों ने वररुचि को एकश्रुतिधर सुन के प्राति शांख्य पढ़ा और वररुचि ने उन दोनों को वह ज्यों का त्यों सुना दिया और वररुचि के पिता का मित्र भवानंदर नामक नट उस रात्रि को कहीं अभिनय करता था। वह देख कर वररुचि ने अपने माता के सामने ज्यों का त्यों फिर कर दिखाया। उन दोनों ब्राह्मणों को इसकी एकश्रुतिधरता से बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि जब इन दोनों ने विद्या के हेतु तक किया था तब इन को वर मिला था कि पाटलिपुत्र में वर्ष नामक उपाध्याय से सब विद्या पाओगे। वर्ष, उपवर्ष यह दो भाई शंकर स्वामि ब्राह्मण के पुत्र थे। उनमें उपवर्ष पंडित और धनी था और वर्ष मूर्ख और दरिद्री था। उपवर्ष की स्त्री से अनादर पा कर वर्ष ने विद्या के हेतु तप किया और स्कंद से सब विद्या पाई, परंतु स्कंद ने कहा था कि जो एक श्रुतिधर हो उसके सामने तुम अपनी विद्या प्रकाश करना। सो जब वर्ष के पास ये दोनों ब्राह्मण गए तब उसकी स्त्री ने कहा कि एकश्रुतिधर कोई हो तो ये अपनी विद्या प्रकाश करें, अन्यथा न प्रकाश करेंगे। इसी से वे दोनों ब्राह्मण वररुचि को एक श्रुतिधर पा कर बड़े प्रसन्न हुए। वररुचि की माता से उन दोनों ने सब वृत्त कह कर वररुचि को साथ लिया और फिर पाटलिपुत्र में आए, क्योंकि उसकी माता से भी आकाशवाणी ने कहा था कि तेरा पुत्र एकश्रुतिधर होगा और वर्ष से सब विद्या पढ़ेगा और व्याकरण का आचार्य होगा। वर्ष ने तब उन तीनों को विद्या पढ़ाया और बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि वररुचि एकश्रुतिधर, व्याडि द्विश्रुतिधर और इंद्रदत्त त्रिश्रुतिधर था। वर्ष को नगर के लोग मूर्ख जानते थे, पर जब एकाएकी उस के विद्या का प्रकाश हुआ तो सब ब्राह्मणवर्ग बड़े प्रसन्न हुए और नंद राजा ने भी बहुत सा धन वर्ष को दिया। फिर इन तीनों ने बड़ी विद्या पढ़ी और वररुचि ने उपवर्ष की कन्या उपकोषा से विवाह किया और उपकोषा अपने पतिव्रत और चरित्र से नंद की भगिनी हुई। वर्ष के एक पाणिनि * नामा मूर्ख शिष्य ने शिव जी से वर पाकर व्याकरण बनाया और जब वररुचि ने उससे वाद किया तो

* राजा शिवप्रसाद यों लिखते हैं:—“समय के उलट फेर में हमारे पंडित लोग जो कुछ अपनी पंडिताई दिखलाते हैं, लिखने योग्य नहीं है। इसी एक बात से सोच लो कि जिस पंडित से पाणिनि व्याकरण का जमाना पृच्छोगे छूटते कहेगा कि सत्य युग में हुआ था। लाखों बरस बीते परंतु इस से इनकान न करेगा कि कात्यायन की पतंजलि ने टीका लिखी और पतंजलि की व्यास ने। अब हेमचन्द्र अपने कोश में कात्यायन का

शिवजी ने हुँकर के वररुचि का इन्द्रमत का व्याकरण भुला दिया, इस से वररुचि ने फिर तपस्या कर के शिवजी से पाणिनि व्याकरण सीखा । यह वररुचि बहुत दिन तक योगानंद का मंत्री रहा और इस का नामांतर कात्यायन था, परंतु यह नंद का मंत्री कैसे हुआ और कब तक रहा यह यहाँ नहीं लिखते, क्योंकि प्रसंग के बाहर है । यह बन बन फिरने लगा । जब शकटार ने चाणक्य द्वारा नंदवंश का नाश किया तब उदास हो कर और विध्याचल में कालभूति पिशाच को देख कर अपना पूर्व जन्म स्मरण करके उस से सब कथा कह कर बदरिकाश्रम में जा कर योग से अपनी गति को गया और शाप से छूटा । गंधर्व से भी पहिले जन्म में यह गंगातीर के ग्रहार नामक ग्राम में गोविंददेव ब्राह्मण अग्निदत्ता ब्राह्मणी का पुत्र देवदत्त था और प्रतिष्ठानपुर के राजा की कन्या से विवाह किया था । उस कन्या ने पहले दाँत में फूल दबा कर उस को संकेत बताया था । इससे जब वह ब्राह्मण वरदान पाकर शिवगण हुआ तब उस की स्त्री भी जया प्रतिहारी हुई ।

इस कथा के व्याख्यान से यह स्पष्ट होता है कि वर्णन नंद के राज्य के समय का है और उस समय के

नाम वररुचि बतलाता है और कश्मीर का सोमदेव भट्ट अपने कथासरित्सागर में लिखता है कि कात्यायन वररुचि कौशांबी में, जो अब प्रयाग के पास जमुना के किनारे कोसम गाँव कहलाता है, पैदा हुआ, पाणिनि से व्याकरण में शास्त्रार्थ किया और राजा नंद का मंत्री हुआ । मुद्राराक्षस इत्यादि बहुत ग्रंथों से साबित है कि नंद के बाद ही चंद्रगुप्त राज्यसिंहासन पर बैठा और चंद्रगुप्त का जमाना ऐसा निश्चय ठहर गया है कि जैसे पलासी की लड़ाई अथवा नादिरशाही अथवा पृथ्वीराज और विक्रम का कहो कि हम पाणिनि का जमाना अब अढ़ाई हजार बरस से इधर मानें या लाखों बरस से उधर ? पतंजलि चंद्रगुप्त के पीछे हुआ इसमें किसी तरह का संदेह नहीं, क्योंकि उसने अपने भाष्य में "समाराजा मनुष्य पूर्वा" इस सूत्र पर "चंद्रगुप्तसमम्" ऐसा उदाहरण दिया है ।"

Dr. Rajendra Lal Mitra LL.D. in his Indo-Aryans No. 1. P. 19 says, "According to Dr. Goldstucker, the Grammar of Pāṇini was composed between the 9th and 11th centuries before Christ. Professor Max Muller brings down the age of Grammar to the 6th century B.C.,"

पाणिनीय व्याकरण के समय में निम्नलिखित बातें होती थीं ।

१. उस समय के लोगों में हँसी करने की चाल थी । एहिमन्ये ओदनं भोक्ष्यसे इति भुक्तः सोऽतिथिभिः- मानो भात खाने आया है सब खा पी गया ।

२. श्राद्धों में नाती को अवश्य बुलाने की चाल थी । निमन्त्रण, आवश्यक श्राद्धभोजनादौ दौहित्रदेः प्रवर्तनं — निमन्त्रण, अर्थात् जैसे नाती वगैरह को श्राद्ध भोजन में बुलाना ।

३. नृत्य और नृत में मेद । गात्र विक्षेपमात्रं नृतं-भाँड़ों का तमासा, बदन तोड़ना इत्यादि । पदार्थाभिनयोनृत्यं — भावादिकों का दिखलाना ।

४. बहुत सी कहावतें उस समय के लोग जानते थे । जैसा-नविश्वसेद-विश्वस्ते-जिस का विश्वास एक बेर गया फिर उसका विश्वास न करना ।

५. आलिङ्गन करने की रीति थी । अश्लिक्षत कन्यां देवदत्त — देवदत्त ने कन्या को आलिङ्गन दिया ।

६. लड़कियों को गहना पहिानने की चाल । उपस्कृता कन्या-अलंकार पहिनाई गई कन्या ।

७. पुहावरेवार बोलने की चाल । हस्तयते-हाथी पर चढ़के जाता है । पादयते-लात मारता है ।

८. लोग बहुत भावुक थे । सिद्धशब्दो ग्रंथान्ते मङ्गलार्थ-ग्रंथ के अंत में सिद्ध-ऐसा लिखो, क्योंकि यह मंगल है ।

९. वृषस्यतिगौः-गाय उठी है ।

१०. महल बना करते थे । कुटीरयति प्रासादे । महल में बैठ कर भोपड़ी समझता है ।

११. भिक्षुक लोग राजा के पास जाया करते थे । भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते ।

१२. मल्लयुद्ध हुआ करता था । आहवयते-मैदान में खड़े होकर पुकारना । नहीं तो आहवयति ।

१३. खिराज दिया जाता था । करं बिनयते-कर देने को निकालता है ।

१४. शास्त्र की चर्चा रहा करती थी । शास्त्रेवदते-शास्त्र में बोल सकता है ।

देवता शिव और स्कंध थे और व्याकरण का बड़ा प्रचार था। कातंत्र, कालाप, एन्द्र, पाणिनी इत्यादि मत में परस्पर बड़ा विरोध था। संस्कृत, प्राकृत, पेशाची और देश भाषा बहुत प्रसिद्ध थी, परंतु पाँच और भाषा भी प्रचलित थीं। पाटलिपुत्र नया बसा था, प्रतिष्ठानपुर और अयोध्या भी बहुत बसती थी, धूर्तता फैल गई थी और हिंदुस्तान में पश्चिम देश बहुत मिला हुआ था इत्यादि।

इस वृहत्कथा में ऐसे ही गुणादय कवि के भी तीनों जन्म लिखे हैं और उस का वृहत्कथा का पेशाची भाषा में निर्माण करना, उस में छः लाख ग्रंथ जला देना और एक लाख ग्रंथ नर वाहन दत्त के चरित्र का राजा शातवाहन को देना इत्यादि सविस्तर वर्णित है।

अब यह वृहत्कथा कब बनी है और किस ने बनाया है इस के विचार में चित्त बहुत दोलायित होता है, क्योंकि इस का काल ठीक निर्णीत नहीं होता। नंद के समय की भी नहीं मान सकते, क्योंकि इसी वृहत्कथा में विक्रमादित्य, उदयन ऐसे प्राचीन नवीन अनेक राजाओं का वर्णन है, परंतु इतना कह सकते हैं कि इस का मूल प्राचीन काल से पड़ा है और उस को अनेक काल में अनेक कवि बढ़ाते गए हैं, क्योंकि "कात्यायनाद्यैकृतः, तत्पुण्यदन्तादिभिः" इत्यादि पदों में आदि शब्द मिलता है। वा अनेक प्राचीन सुनी हुई कथाओं को किसी ने एकत्र कर के आदर के हेतु उस में पुण्यदंत का नाम रख दिया हो तो भी आश्चर्य नहीं, क्योंकि कात्यायन वररुचि का होना ख्रीस्ताब्दीय के १२० वर्ष पूर्व लोग अनुमान करते हैं और विक्रम का काल पहिलों ने ५०० ख्रीस्ताब्द के लगभग निश्चय किया है और ऐसा मानने से प्रोफेसर गोल्डसूकर इत्यादि इतिहासवेत्ताओं का दो वररुचि मानने वाला मत भी स्पष्ट खण्डित होता है, क्योंकि वृहत्कथा में जब विक्रम का चरित्र है तब उसी विक्रमादित्य वाले वररुचि का नाम कात्यायन संभव है।

परंतु हमारा कथन यह है कि संस्कृत वृहत् कथा गुणादय की बनाई ही नहीं है, क्योंकि उस में स्पष्ट लिखा है कि गुणादय ने संस्कृत बोलना छोड़ दिया था, इस से पिशाच भाषा में वृहत्कथा बनाया। तो इस दशा में संभव है कि किसी ने यह वृहत्कथा बना कर वररुचि, गुणादय, पुण्यदंत इत्यादि का नाम आदर और प्रमाण पाने के हेतु रख दिया हो।

अब जो वृहत्कथा मिलती है वह तीस हजार श्लोक में रामदेव भट्ट के पुत्र सोमदेव भट्ट की बनाई है, जो उसने कश्मीर के राजा संग्रामदेव के पुत्र अनंत देव की रानी सूर्यवती के चित्तविनोद के हेतु बनाई है और इसी अनंतदेव के पुत्र कमलदेव हुए और कमलदेव के पुत्र श्री हर्षदेव हुए। कश्मीर के इन राजाओं के नाम चित्त को और भी संशय में डालते हैं, क्योंकि रत्नावली वाला श्रीहर्ष कालिदास के पहिले का है, क्योंकि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में धावक कवि का नाम प्राचीन कवियों में लिखा है। अब इस दशा में विरोध का परिहार हो सकता है कि जिस विक्रम का चरित्र वृहत्कथा में है वह नवरत्न वाला विक्रम नहीं, किंतु कोई प्राचीन विक्रम है। और यह वृहत्कथा धावक के थोड़े ही काल पहिले कश्मीर में सोमदेव ने बनाई है, क्योंकि इस में नंद और विक्रम के नाम की भाँति भोज, कालिदास इत्यादि का नाम नहीं और नवरत्न वाला वररुचि दूसरा था, क्योंकि उस काल में राजा और कवियों के वही नाम बारंबार होते थे, इस से वृहत्कथा संवत् और ख्रिस्तसन के पूर्व बनी है और गुणादय और वररुचि कुछ इस से भी पहिले के हैं।

परंतु वृहत्कथा के किसी लेख का हम प्रमाण नहीं करते, क्योंकि यह बड़ा ही असंगत ग्रंथ है। जैसा अनंत पंडित की बनाई मुद्राराक्षस की पूर्व पीठिका में नंद का नाम सुधन्या लिखा है और इस में योगनंद है। उस में जो वररुचि के मंत्री होने का प्रसंग है वह इस पीठिका में कहीं मिलता ही नहीं और पाणिनी, वर्ष, कात्यायन, व्याडि, इंद्रदत्त और अनेक व्याकरण के आचार्य वृहत्कथा के मत से एक काल के थे, पर बुद्धिमानों ने इन सबके काव्य में बड़ा भेद ठहराया है। इससे इतिहास विषय में वृहत्कथा अप्रामाणिक है। वृहत्कथा का वर्णन और गुणादय इत्यादि कवियों का वर्णन आर्या सप्तशती बनानेवाले गोवर्द्धन कवि ने किया है और गोवर्द्धन कवि का काव्य जयदेव जी के काल से निश्चित होगा। बंगाली लेखकों ने जयदेव जी का समय पन्द्रहवाँ शतक ठहराया है, पर इस निर्णय में परम भ्रांत हुए हैं, क्योंकि जयदेव जी का काल एक सहस्र वर्ष के पूर्व है और इसमें प्रमाण के हेतु पृथ्वीराज रायसा में चंद कवि का जयदेव जी का और गीतगोविंद वर्णन ही प्रमाण है। जयदेव जी ने गोवर्द्धन कवि का वर्णन वर्तमान क्रिया से किया है। इससे अनुमान होता है कि उस काल में गोवर्द्धन कवि था। बंगाली लोगों में कोई बारहवें शतक में लक्ष्मण सेन के काल में जयदेव को मानते हैं।

और उसके समकालीन गोवर्दन इत्यादि कवियों को लक्ष्मण सेन की सभा के पंचरत्न मानते हैं। यह बात भी असंभव है, क्योंकि पृथ्वीराज ग्यारहवें शतक में था और चंद भी तभी था। तो जयदेव चंद के सैकड़ों वर्ष पहिले निस्संदेह हुए हैं, क्योंकि चंद ने प्राचीन कवियों की गणना में बड़ी भक्ति से जयदेव जी का वर्णन किया है। हाँ, यदि लक्ष्मण सेन को पृथ्वीराज के पहिले मानो तो जयदेव उसकी सभा के पंडित हो सकते हैं, नहीं तो समझ लो कि आदर के हेतु इन कवियों का नाम लक्ष्मण सेन ने अपनी सभा में रक्खा है। इससे चल सखि कुंज की भाषा और अंगरेजी इतिहासवेत्ताओं का मत लेकर बंगालियों ने जयदेव का जो काल निर्णय किया है वह अप्रमाण है यह निश्चय हुआ और बृहत्कथा उस काल के भी पहिले बनी है यह भी सिद्धान्तित हुआ।

७. श्री वल्लभाचार्य

दोहा

तम पाखंड हि हरत कर, जन मन जलज विकास।
जयति अलौकिक रवि कोऊ, श्रुति पथ करन प्रकाश॥

जो लोग बहुत प्रसिद्ध हैं और जिन को लाखों मनुष्य सिर झुकाते हैं उनके जीवनचरित्र पढ़ने या सुनने की किसीकी इच्छा न होगी। इस हेतु यहाँ पर श्री वल्लभाचार्य का जीवनचरित्र संक्षेप से लिखा जाता है।

मंदराज हाते में, तैलंगदेश के आकवीडु जिले में काँकरबल्लि गाँव में भारद्वाज गोत्र, तैलंग ब्राह्मण जाति पंचप्रवर, यजुर्वेद, तैत्तिरीयशाखा, दीक्षित सोमयागी उपनाम, यज्ञनारायण भट्ट के प्रसिद्ध वंश से लक्ष्मण भट्ट जी की धर्मपत्नी इल्लमगारु के गर्भ से चम्पारण्य में इनका जन्म हुआ।

लक्ष्मण भट्ट जी के तीन पुत्र थे। बड़े रामकृष्ण भट्ट जी युवावस्था ही में संन्यस्त हो गये और केशव पुरी नाम से प्रसिद्ध हुए। मँझले पूर्वोक्ताचार्य और छोटे रामचंद्र भट्ट जी, जिन के कृष्णकुतूहल, गोपाल लीला इत्यादि ग्रंथ हैं। इन्होंने अपने नाना की वृत्ति पाई थी, परन्तु विवाह न करके अपना सब जीवन अयोध्या में बिताया।

लक्ष्मण भट्ट जी अपने घर के खान पान से बहुत दुखी थे। वे जब काशी में अपने जाति के ब्राह्मणों का सत्कार करने आये तो मार्ग में वितिया के इलाके में चौरा गाँव के पास चम्पारण्य में संवत् १५३५ वैसाख बदी ११, * आदित्यवार को मध्याह्न समय आचार्य का जन्म हुआ। जब वे पाँच वर्ष के हुए तब चैत सुदी ९ के दिन अपने पिता से गावत्री उपदेश लिया और कृष्णदास मेघन को उसी आष्टाक्षर मंत्र का उपदेश करके प्रथम वैष्णव किया।

उसी साल असाढ़ सुदी ८ को काशी के प्रसिद्ध पंडित माधवानंद तीर्थ त्रिदण्डी से विद्याध्ययन किया और छोटेपन ही में पत्रावलम्बन ग्रंथ कर के विष्णुनाथ के दरवाजे पर लगा दिया और डौड़ी पीट कर काशी के पंडितों से पहला शास्त्रार्थ किया। जब इन के पिता काशी से चले तो लक्ष्मणबाबा जी में उनका देहांत हुआ। उनकी क्रियानिक के पीछे आचार्य पृथ्वी परिक्रमा को चले और विद्यानगर में जाकर कृष्णदेव राजा की सभा में सब पंडितों को जीत कर आचार्य पद पाया। संवत् १५४८ के वैशाख बदी २ को ब्रह्मचर्य धर्म से पहिली पृथ्वी परिक्रमा करने चले और पंढरपुर, त्र्यंबक, उज्जैन होते हुए वृज आएं और चार महीने श्रीवृंदावन में रह कर श्रीमद्भागवत का पारायण किया और फिर सोरों, अयोध्या जो नैमिषारण्य होते हुए काशी आए।

राह में जो पंडित मिलते उनसे शास्त्रार्थ करते और वैष्णव धर्म फैलाते थे।

काशी जी से गया और जगन्नाथ जी होते हुए फिर दक्खिन चले गए और संवत् १५५४ में अपना पहिला दिग्विजय समाप्त किया। दूसरे दिग्विजय में वृज में गोवर्दन पर्वत पर श्रीनाथ जी का स्वरूप प्रकट कर के उन की सेवा स्थापन किया और तीन पृथ्वी परिक्रमा कर के सारे भारतखंड में वैष्णव मत फैला कर बावन वर्ष की अवस्था में संवत् १५८७ आषाढ़ सुदी २ को काशी जी में लीला में प्राप्त हुए। इनके दो पुत्र — बड़े श्री गोपीनाथ जी, छोटे श्री विठ्ठलनाथ जी। गोपीनाथ जी के पुत्र श्री पुरुषोत्तम जी, पर उनके आगे वंश नहीं। श्री विठ्ठलनाथ जी के सात पुत्र, जिनमें बड़े गिरधर जी और छोटे पुत्र यदुनाथ जी का वंश अब तक वर्तमान है।

* वल्लभदिग्विजय में लिखा है : संवत् शाके १४४० वैशाख मास कृष्णपक्ष ११ रविवार मध्याह्न। एक पद श्री

इनका मत शुद्धाद्वैत अर्थात् जगत्ब्रह्म के सच्चित्तरूप से अभिन्न और सत्य, परन्तु भक्ति बिना ब्रह्मस्वरूप का ज्ञान फलदायक नहीं। परमोपास्य श्रीकृष्ण और विष्णुस्वामी परमाचार्य, साधन सेवा मुख्य, प्रमाण ग्रंथ, वेदव्याससूत्र, गीता और भागवत। तिलक दो रेखा का लाल : ऊर्ध्वपुंडः, शंख, चक्र, शीतल।

आचार्य ने अणुभाष्य, तत्त्वदीप, निबंध, रसमंडन, श्री मद्भागवत पर सुबोधिनी टीका, सिद्धान्त मुक्तावली, पुष्टिप्रवाह मर्यादा, पुरुषोत्तम 'सहस्र' नाम, सिद्धान्त रहस्य, अंतःकरण प्रबोध, भक्ति प्रकरण, नवरत्न, विवेक धैर्याश्रय, पद्मवलंबन, कृष्णाश्रय, भक्तिवर्दिनी, जलभेद संन्यासनिर्णय, जैमिनी सूत्रभाष्य, चित्तप्रबोध, निरोधलक्षण, व्यास-विरोध लक्षण, परिवृद्धाष्टक और वैद्यवल्लभ ये चौबीस ग्रंथ बनाये हैं, जिनमें दोनों सूत्रों का भाष्य और भागवत की टीका बहुत बड़े ग्रंथ हैं।

द्वारकेशजी कृत।। रागसारंग।। ५ ३ ५ १

तत्त्व गुण वान भुवि माधवासित तरणि प्रथम सौमग दिवस प्रकट लक्ष्मण-सुवन।

धन्य वंपारन्य मन्य त्रैलोक्य जन अन्य अवतार भुवि है न ऐसा भुवन।। १।।

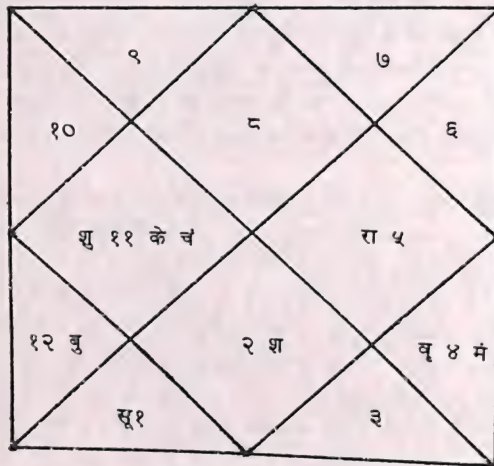
लग्न वृश्चिक कुंभ केतु कपि इंद्र सुख मीन बुध उच्च रवि बैरि नाशे।

मंद वृष कर्क गुरु भौम युत सिंह मै तमस के योग ध्रुव यज्ञ प्रकाशे।। २।।

रिछ घनिष्ठा प्रतिष्ठा अधिष्ठान स्थिर विरह बदनामलाकार हरि को।

यहै निश्चय 'द्वारकेश' इन के शरण और को श्री वल्लभाधीश सरि को।। ३।।

श्री महाप्रभुन की जन्मकुण्डली ऊपर के कीर्तन अनुसार।



८. सूरदास जी

दो.— हरि पद पंकज भक्त अलि, कविता रस भरपूर ।

दिव्य चक्षु कवि-कुल-कमल, सूर नौमि श्री सूर ॥

सब कवियों के वृत्तांत में सूरदास जी का वृत्तांत पहिले लिखने के योग्य है, क्योंकि यह सब कवियों के शिरोमणि हैं और कविता इनकी सब भाँति की मिलती है। कठिन से कठिन और सहज से सहज इनके पद बने हैं और किसी कवि में यह बात नहीं पाई जाती। और कवियों की कविता में एक बात अच्छी है और कविता एक ढंग पर बनती है परंतु इन की कविता में सब बात अच्छी है और इनकी कविता सब तरह की होती है, जैसे किसी ने शाहनशाह अकबर के दरबार में कहा था —

दो.— उत्तम पद कवि गंग को, कविता को बल वीर ।

केशव अर्थ गँभीर को, सूर तीन गुन धीर ॥

और इस के सिवाय इनकी कविता में एक असर ऐसा होता है कि जो में जगह करे। जैसे एक वार्ता है कि किसी समय में एक कवि कहीं जाता था और एक मनुष्य बहुत व्याकुल पड़ा था। उस मनुष्य को अति व्याकुल देखकर उस कवि ने एक दोहा पढ़ा।

दो.— किधौ सूर को सर लग्यो, किधौ सूर की पीर ।

किधौ सूर को पद सुन्यौ, जौ अस विकल शरीर ॥

इस वार्ता के लिखने का यह अभिप्राय है कि निस्संदेह इन के पदों में ऐसा एक असर होता कि जो लोग कविता समझते हैं उनके जी पर इस की चोट लगे।

ये जाति के ब्राह्मण थे और इनके पिता का नाम बाबा रामदास जी था, जो गाना बहुत अच्छा जानते थे और कुछ धुरवपद इत्यादि भी बनाते थे और देहली या आगरे या मथुरा इन्हीं शहरों में रहा करते थे और उस समय के नामी गुनियों में गिने जाते थे। उन के घर यह सूरदास जी पैदा हुए। यह इस असार संसार के प्रपंच को न देखने के वास्ते आँख बंद किए हुए थे। इन के पिता ने इन को गाना सिखाने में बड़ा परिश्रम किया था और इन की बुद्धि पहिले ही से बड़ी विलक्षण और तीव्र थी। संवत् १५४० के कुछ न्यूनाधिक में इनका जन्म हुआ था और आगरे में इन्होंने कुछ फारसी विद्या भी सीखी थी। इनकी जवानी ही में इनके पिता का परलोक हुआ और यह अपने मन के हो गए और भजन तभी से बनाने लगे। उस समय में इनके शिष्य भी बहुत से हो गए थे और तब अपना नाम पदों में सूर स्वामी रखते थे। उन्हीं दिनों में इनने महाराज नल और दमयंती के प्रेम की कथा में एक पुस्तक बनाई थी, जो अब नहीं मिलती। उस समय इनकी पूर्ण युवा अवस्था थी। और उन दिनों में ये आगरे से नौ कोस मथुरा के रास्ते के बीच में एक स्थान जिस का नाम गऊघाट है, वहीं रहते थे और बहुत से इनके शिष्य इनके साथ थे। फिर ये आचार्य-कुल-शिरोरत्न श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य हुए। तब से यह अपना नाम पदों में सूरदास रखने लगे। ये भजनों में नाम अपना चार तरह से रखते थे — सूर, सूरदास, सूरजदास, और सूरध्याम। जब यह सेवक हुए थे तब इन्होंने यह भजन बनाया था।

भजन— चकई री चलि चरन-सरोवर, जहँ नहि प्रेम-वियांग।

जहँ भ्रम-निसा होत नहिँ कबहूँ सो सागर सुख जोग ॥१॥

सनक से हंस मीन शिव-मुनि-जन नख-रवि-प्रभा-प्रकाश।

प्रफुलित कमल निमेषन ससि डर गुंजत निगम सुबास ॥२॥

जेहि सर सुभग मुक्ति-मुक्ताफल सुकृत बिमल जल पीजै।

सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम इहाँ कहा रहि कीजै ॥३॥

जहँ श्री सहस सहित नित क्रीड़त सोभित 'सूरज दास'।

अब न सहाइ बिचै रस छीलर वा समुद्र की आस ॥४॥

फिर तो इन की सामर्थ्य बढ़ती ही गई और इन्होंने श्री मद्भागवत को भी पदों में बनाया, और भी सब तरह के भजन इन्होंने बनाए। इनके श्रीगुरु इनको सागर कहकर पुकारते थे, इसी से इन ने अपने

पदों को इकट्ठा करके उस ग्रंथ का नाम सूरसागर रखा । जब यह बृद्ध हो गए थे और श्री गोकुल में रहा करते थे, धीरे-धीरे इन के गुण शाहनशाह अकबर के कानों तक पहुँचे । उस समय ये अत्यन्त बृद्ध थे और बादशाह ने इनको बुलावा भेजा और गाने की आज्ञा किया । तब इनने यह भजन बनाकर गाया ।

मन रे करि माधो सो प्रीति ।

फिर इन से कहा गया कि कुछ सहनशाह का गुणानुवाद गाइए । उस पर इन्होंने यह पद गाया ।

केदार— नाहिन रह्यौ मन में ठौर ।

नंद-नंदन अछत कैसे आनिये उर और ॥१॥

चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत राति ।

हृदय ते वह मदन मूरति छिनु न इत उत जाति ॥२॥

कहत कथा अनेक ऊधो लोग लोभ दिखाइ ।

कहा करौ चित प्रेम पूरन घट न सिंधु समाइ ॥३॥

श्यामगात सरोज आनन ललित गति मृदु हास ।

'सूर' ऐसे दरस कारन भरत लोचन खास ॥४॥

फिर संवत् १६२० के लगभग श्रीगोकुल में इन्होंने इस शरीर को त्याग किया । सूरदास जी ने अंत समय में यह पद किया था ।

बिहाग— खंजन-नैन रूप-रस भाते ।

अतिसय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते ॥

चलि चलि जात निकट श्रवणन के उलटि फिरत ताटक फँदाते ।

'सूरदास' अंजन गुन अटके नातर अब उड़ि जाते ॥

दो०— मन समुद्र भयो सूर को, सीप भये चख लाल ।

हरि मुक्ताहल परतहीं, मूँद गए तत् काल ॥

संसार में जो लोग भाषा काव्य समझते होंगे वे सूरदास जी को अवश्य जानते होंगे और उसी तरह जो लोग थोड़े बहुत भी वैष्णव होंगे वे उनका थोड़ा बहुत जीवन-चरित्र अवश्य जानते होंगे । चौरासी वार्ता, उस की टीका, भक्तमाल और उस की टीकाओं में इनका जीवन विवृत किया है । इन्हीं ग्रंथों के अनुसार संसार को और हम को भी विश्वास था कि ये सारस्वत ब्राह्मण हैं, इनके पिता का नाम रामदास, इनके माता पिता दरिद्र थे, ये गऊघाट पर रहते थे, इत्यादि । अब सुनिप, एक पुस्तक सूरदास जी के दुर्गिटकृत पर टीका (टीका भी संभव होना है इन्हीं की, क्योंकि टीका में जहाँ अलंकारों के लक्षण दिए हैं । वह दोहे और चौपाई भी सूर नाम से अंकित हैं) मिली है । इस पुस्तक में ११६ दुर्गिटकृत के पद अलंकार और नायिका के क्रम से हैं और उन का स्पष्ट अर्थ और उनके अलंकार इत्यादि सब लिखे हैं । इस पुस्तक के अंत में एक पद में कवि ने अपना जीवनचरित्र दिया है, जो नीचे प्रकाश किया जाता है । अब इस को देख कर सूरदास जी के जीवनचरित्र और वंश को हम इसरी ही दुर्गिट से देखने लगेंगे । वह लिखते हैं कि 'प्रथजगत' पार्थज गोत्र में इन के मूल पुरुष ब्रह्मराज हुए जो बड़े सिद्ध और देवप्रसाद-लाभ थे । इन के वंश में भोचंद हुआ । पृथ्वीराज ने जिस को जाला देश दिया ; उस के चार पुत्र, तिन में पहिला राजा हुआ । इसरा गुणचंद्र । उस का पुत्र सीलचंद्र उसका

१. 'प्रथ जगत' इस जाति वा गोत्र के सारस्वत ब्राह्मण सुनने में नहीं आए । पंडित राधाकृष्ण संगृहीत सारस्वत ब्राह्मणों की जाति माला में 'प्रथ जगत', 'प्रथ' वा 'जगत' नाम के कोई सारस्वत ब्राह्मण नहीं होते । जगा वा जगतिआ तो भाट को कहते हैं ।

२. ब्रह्मराज नाम से भी संदेह होता है कि यह पुरुष या तो राजा रहा हो या भाट ।

३. 'भो' का शब्द हुआ अर्थ में लीजिए तो केवल चंद्र नाम था । चंद्र नाम का एक कवि पृथ्वीराज की सभा में था ! आश्चर्य !!!

४. पृथ्वीराज का काल सन् ११७६ ।

वीरचंद्र । यह वीरचंद्र रत्नधर (रणधर्मर) के राजा प्रसिद्ध हमीर के साथ खेलता था । इसके वंश में हरिश्चंद्र हुआ । उसके पुत्र को सात पुत्र हुए, जिन में सब से छोटा (कवि लिखता है) मैं सूरचंद्र था । मेरे छः भाई मुसलमानों के युद्ध में मारे गए । मैं अंधा कुबुद्धि था । एक दिन कूर्प में गिर पड़ा, तो सात दिन तक उस (अंधे) कूर्प में पड़ा रहा, किसी ने न निकाला । सातवें दिन भगवान ने निकाला और अपने स्वरूप का (नेत्र दे कर) दर्शन कराया और मुझ से बोले कि वर माँग । मैंने वर माँगा कि आप का रूप देख कर अब और रूप न देखें और मुझ को दृढ़ भक्ति मिले और शत्रुओं का नाश हो । भगवान ने कहा ऐसा ही होगा । तू सब विद्या में निपुण होगा । प्रबल दक्षिण के ब्राह्मण-कुल से शत्रु का नाश होगा । और मेरा नाम सूरदास, सूर, सूरधाम इत्यादि रखकर भगवान अंतर्धान हो गए । मैं ब्रज में बसने लगा । फिर गोसाई ने मेरी आष्टछाप में थापना की इत्यादि । इस लेख से और लेख अशुद्ध मालूम होते हैं, क्योंकि जैसा चौरासी वार्ता की टीका में लिखा है कि दिल्ली के पास सीही गाँव में इन के दरिद्र माता पिता के घर इनका जन्म हुआ, यह बात नहीं आई । वह एक बड़े कुल में उत्पन्न थे और आगरे वा गोपाचल में इनका जन्म हुआ । हाँ, यह मान लिया जाय कि मुसलमानों के युद्ध में इतने भाइयों के मारे जाने के पीछे भी इन के पिता जीते रहे और दरिद्र अवस्था में पहुँच गए थे और उसी समय में सीही गाँव में चले गए हों तो लड़ मिल सकती है । जो हो, हमारी भाषा कविता के राजाधिपति सूरदास जी एक इतने बड़े वंश के हैं, यह जान कर हम को बड़ा आनंद हुआ । इस विषय में कोई और विद्वान जो कुछ और विशेष पता लगा सके तो उत्तम हो ।

भजन

प्रथमही प्रथ जगत में प्रगट अद्भुत रूप ।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप ॥
पान पिय देवी दियो सिव आदि सुर सुर पाय ।
कहत्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकार्य ॥
पारि पायन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन ।
तासु वंश प्रसिद्ध में भौचंद चारु नवीन ॥
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्है ज्वाला देस ।
तनय ताके चार कीन्हों प्रथम आप नरेस ॥
दूसरे गुनचंद ता सुत सीलचंद सरूप ।
वीरचंद प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप ॥

१. हमीर चौहान, भीमदेव का पुत्र था । रणधर्मर के किले में इसी की रानी इस के अलाउद्दीन (दुष्ट) के हाथ से मारे जाने पर सहस्रावधि स्त्री के साथ सती हुई थी । इसी का वीरत्व यश सर्वसाधारण में 'हमीर हठ' के नाम से प्रसिद्ध है (तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार) । इसी की स्तुति में अनेक कवियों ने वीर रस के सुंदर श्लोक बनाए हैं "मुञ्चति मुञ्चति कोष भजति च भजति प्रकम्पमरिचग" । मीर वीर खड्ग त्यजति च त्यजति क्षमामाशु" । इस का समय सन् १२९० (एक हमीर सन् ११९२ में भी हुआ है) ।

२. संभव है कि हरिचंद्र के पुत्र का नाम रामचंद्र रहा हो, जिसे वैष्णवों ने अपनी रीति के अनुसार रामदास कर लिया हो ।

३. उस समय तुगलकों और मुगलों का युद्ध होता था ।

४. शत्रुओं से लौकिक अर्थ लीजिए तो मुगलों का कुल (इससे संभव होता है इन के पूर्वपुरुष सदा से राजाओं का आश्रय कर के मुसलमानों को शत्रु समझते थे या तुगलकों के अश्रित थे, इससे मुगलों को शत्रु समझते थे), यदि अलौकिक अर्थ लीजिए तो काम-क्रोधादि ।

५. सेवा जी के सहायक पेशवा का कुल, जिस ने पीछे मुसलमानों का नाश किया । अलौकिक अर्थ लीजिए तो सूरदास जी के गुरु श्री बल्लभाचार्य दक्षिणब्राह्मण-कुल के थे ।

६. 'गोसाई' श्री बल्लभनाथ जी, श्री बल्लभाचार्य के पुत्र ।

७. आष्टछाप यथा सूरदास, कुंभनदास, परमानंद दास और कृष्णदास ये चार महात्मा आचार्य जी के सेवक और दीत स्वामि, गोविन्द स्वामि, चतुर्भुज दास और नंददास ये गोसाई जी के सेवक । ये आठो महाकवि थे ।

रत्नभौर हमीर भूपति संग खेलत आय ।
 तासु वंश अनूप भा हरिचंद अति विख्याय ॥
 आगरे रहि गोपाचल में रहौ ता सुत वीर ।
 पुत्र जनमें सात ताके महा भट गंभीर ॥
 कृष्णचंद, उदाराचंद जु, रूपचंद सुभाइ ।
 बुद्धिचंद प्रकाश चौधै चंद भे सुखदाइ ।
 देवचंद प्रबोध संसृत चंद ताको नाम ।
 भयो सप्तो नाम सूरज चंद मंद निकाम ॥
 सो समर करि साहि सेवक गए विधि के लोक ।
 रहे सूरज चंद दुग ते हीन भरि बर सोक ॥
 परो कृप पुकार काह सुनी ना संसार ।
 सातपैं दिन आइ जटुपति कीन आपु उधार ॥
 दियो चख दै कही सिसु सुनु माँगु वर जो चाइ ॥
 हौ कही प्रभु भगति चाहत, शत्रु नाश सुभाइ ॥
 दूसरो जा रूप देखौ देखि राधास्याम ।
 सुनत करुनासिंधु भाख्यो एवमस्तु सुधाम ॥
 प्रबल दच्छिन बिप्रकुल तैं सत्रु ह्वै है नास ।
 अशित बुद्धि विचारि विद्यामान माने सास ॥
 नाम राखो मोर सूरजदास, सूर सुश्याम ।
 भए अंतरधान बीते पाछली निसि जाम ॥
 मोहि पन सोइ है ब्रजकी बसे सुखि चित थाप थापि ।
 थापि गोसाई करी मेरी आठ मद्धे छाप ॥
 विप्र प्रथ जगात को है भाव भूरि निक्काम ।
 सूर है नंदनंद जू को लयो मोल गुलाम ॥ *

१. सुकरात

इतिहासों से प्रगत है कि यूनान देश प्राचीन काल में हर तरह की विद्या, शिल्प, विज्ञान आदि के लिए अति प्रसिद्ध था, वरन् हर एक विद्याओं की खान या उत्पत्ति भूमि कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा । वहीं के बड़े बड़े विद्वान और विज्ञानियों में एक सुकरात भी था । यह ईसाई सन् ४७१ वर्ष पहिले आसीनिया नगर में पैदा हुआ था और "होनहार बिरवान के होत चौकने पात" वाली कहावत के अनुसार छोटी ही उमर में अपने बाप के सौदागिरी पेशे का काम भटपट सीख सिखाय भलीभाँति प्रखर हो गया । तब यह हर तरह की विद्याओं के सीखने में प्रवृत्त हुआ और अपना समय यूनान देश के विद्वानों में काटने लगा, जिन के सतसंग से कुछ दिनों के उपरान्त अपनी विमल बुद्धि के कारण यह संपूर्ण विद्या, विज्ञान और शिल्पशास्त्र में भली-भाँति कुशल हो यूनान के बड़े बड़े विद्वान और दार्शनिक से भी बाद विवाद में भिड़ जाता था । उन का पक्ष खंडन कर अपनी बात अनेक युक्तियों से सिद्ध करता था । यहाँ तक कि कुछ दिनों में संपूर्ण यूनान भर में इसकी लोकोत्तर चमत्कार बुद्धि की धूम मच गई । एक बार सुकरात का बाप कहीं बाहर सफर को जाते समय इसे चार हजार लूर, जो उस समय का यूनानी सिक्का था, इसके निज के खर्च के लिए दे गया था । पर इसने उन सब रुपयों को बनौर ऋण के अपने एक मित्र को दे दिया । उसने रुपये इसे फिर लौटा कर न दिए, पर सुकरात ने इस बात का कुछ भी ख्याल न किया और न रुपये उससे कभी माँगे । मेसिडोनिया का राजा अर्किलीस ने बहुत कुछ

* कवि वचन सुधा जिल्द २ प्राचीन पुस्तकावली में और श्री हरिश्चंद्र-चंद्रिका खंड ६ संख्या ५ नवंबर सन् १८७८ ई. में छपा ।

चाहा कि सुकरात एक बार उससे किसी बात के लिए कुछ कहे, पर इस ने कभी इस बात की ओर ध्यान भी न किया। इस बुद्धिमान हकीम में धीरज इतना था कि किसी तरह की तकलीफ या रंज जो इस पर आ पड़ते थे तो यह किसी प्रकार और लोगों को उस मानसी व्यथा को नहीं प्रगट होने देता था। उस के मन की सब से बड़ी अमिलाषा जिस के लिए वह अत्यंत लौलीन रहा किया यह थी कि जिस तरह हो सके हम अपनी जन्मभूमि को कुछ फायदा पहुँचा सकें और सब लोग कुमार्ग से बच सच्चे और सीधे राह पर चलें, एक दूसरे की बुराई कभी न चेतें। यद्यपि इस सज्जन पुरुष ने कोई स्कूल या वाज करने को कोई जगह नहीं बनावाया पर अक्सर जहाँ लोगों की बहुत भीड़माड़ रहती उनके बीच यह खड़ा हो घंटों तक सदुपदेश किया करता था और दिन रात मनसा वाचा कर्मणा अपने देश के लोगों के हित में तत्पर रहा। हकीम अफलातून सुकरात का बहुत बड़ा सार्गिंद था। मरती बार सुकरात ने तीन बात के लिये अपनी प्रसन्नता प्रगट की और हाथ जोड़ कर कहा, हे जगदीश्वर, मैं तुझे कोटि-कोटि धन्यवाद देता हूँ कि तूने मुझे बातों के मर्म समझने की बुद्धि दी, यूनान ऐसे देश में जन्म दिया और अफलातून ऐसा शिष्य मुझे दिया। एक दिन अट्टिका का राजा अलसीबिडीस बड़े घमंड में भर यह दून हाँक रहा था कि मेरे पास बड़ा धन है और मैं बड़े भारी राज्य का स्वामी हूँ। जब सुकरात ने उसकी यह घमंड की बात सुनी उससे कहा, अलसीबिडीस, तनिक इधर आ और भूगोल के नक्शे की ओर ध्यान कर, और बता तेरा राज्य अट्टिका कहाँ पर है। जब उसने नक्शे को देखा, घमंड के नशे में जो चूर-चूर था सब उतर गया और उसकी आँख खुल गई। सिर नीचा कर कहा कि मेरा मुल्क यूनान, जो सम्पूर्ण यूरोप का एक छोटा सा देश है, उस का भी एक अत्यंत छोटा प्रदेश है। उसको यह बात सुन सुकरात ने कहा, तो ऐ प्यारे, फिर क्यों इतनी दून की हाँक रहा है। घमंड बहुत बुरा होता है; सर्व शक्तिमान जगदीश्वर के करतब से इस भूमंडल पर एक से एक चढ़ बढ़ कर पड़े हैं, उन के सामने तू किस गिनती में है? थोड़े दिन बाद यूनान के बहुत से अत्याचारी निष्ठुर मनुष्यों ने ईर्ष्या में उनहत्तरवें वर्ष में सुकरात पर यह दोष लगाया कि यह बुढ़ा असीना नगर के नव युवा लोगों को बुरे चाल-चलन की ओर रुचु करता है, उनके बाप दादाओं के पुराने बर्ताव और मत से हटा कर उन्हें नास्तिक बनाया चाहता है और उन के देवी देवताओं की निंदा करता है। इन दोषों के कारण वह अदालत के सुपुर्द हुआ। अदालत ने इसे विष पीकर मर जाने की सजा तजवीज की। उस निर्दोषी पर प्राणांत दंड की सजा का हुकुम सुन जब सब उसके बंधु भाई और मित्र विलाप कर और पछता रहे थे, सुकरात अत्यंत धैर्य के साथ विष का प्याला उठा कर चूँट गया और मरने तक सबों को सदुपदेश देता रहा। जब विष इस के सर्वांग में व्याप्त हो गया, यहाँ तक कि बोल भी न सकता था, तब इसने आँख बंद कर ली और सिधार गया।

१०. महाराजाधिराज नेपोलियन

९वीं जनवरी सन् १८७३ ई. को बारह बज के २५ मिनट पर महाराजाधिराज तृतीय नेपोलियन ने इस असार संसार को त्याग किया। जो मनुष्य मरने के अर्द्धशत वर्ष पूर्व तक एक प्रधान देश का राजा और महाराजा बड़े आए थे, वही नेपोलियन इंग्लैंड के एक गाँव में एक छोटे घर में मरा !!! इस से बढ़के और क्या दुःख होगा कि जिस के एक खेल में रुम और रुस के महाराज पारिस की गलियों में बैठते थे, उस के शव के साथ वही ग्राम निवासी लोग !!! क्यों धन के अभिमानियो ! तुम अब भी अपने धन का अभिमान करोगे और अपने से छोटे को दुःख देने में प्रवृत्त होगे ? यह वही नेपोलियन है, जिस का दादा ऐसा प्रतापी था, जिसने सारे यूरोप को हिला दिया था और सब अंगरेजों को दाँतों चने चबवा दिए थे। जर्मनी के युद्ध में नेपोलियन पराजित हुआ, इस का कुछ सोच नहीं, क्योंकि जिस काल में नेपोलियन के स्थान का था उस की समाधि का था उस युद्धस्थान का भी चिन्ह न मिलेगा, उस समय तक उन का नाम वर्तमान रहेगा।

महाराज नेपोलियन चिलहर्स नामक स्थान में गाड़े गए। उस समय बोनापार्ट के वंश के सब लोग और पारिस के समस्त शिल्पविद्या के गुणियों का समाज यिनान के आगे था। लार्ड साइडनी और लार्ड स्पील्ड महारानी विक्टोरिया और यूबराज की ओर से आये थे और पचास सहस्र मनुष्य केवल कौतुक देखने को एकत्र थे और राजकुमार और विधवा महारानी भी साथ थीं। शव को समाधि करने के पीछे बोनापार्ट के वंश के सब

लोगों ने राजकुमार को पिता के स्थानापन्न भाव से वंदना किया। इंग्लैंड, रूस इत्यादि सब राजकीय कार्यालय दस दिवस तक शोक भेष में रहे।

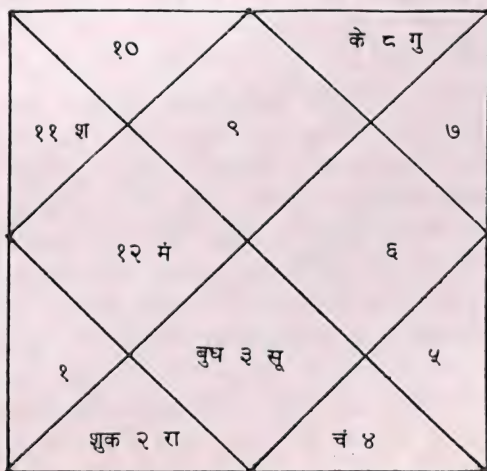
हम को लिखने में अत्यंत खेद होता है कि पृथ्वी पर का एक महा विख्यात पुरुष समाप्त हुआ। इस मनुष्य की सब आयुष्य प्रारंभ से अंत तक चमत्कारिता और फेरफार की एक विलक्षण शृंखला थी। कुछ काल तक राजा और कुछ काल तक रंक सांप्रत सब पराक्रमी राजा उस का आदर करते थे, जो क्या अब उस को तुच्छ मान कर उसकी अप्रतिष्ठा करनी चाहिए ?

यद्यपि वे राजसिंहासन पर न थे और इंग्लैंड में केवल एक साधारण मनुष्य के समान रहते थे तथापि उनके मरण की दुःखवार्ता श्रवण कर के राजकीय और राजसभा के अधिकारियों के चित्त अवश्य चकित होंगे और फ्रांस के राज्य-प्रबंधों में इनके मृत्यु के कुछ विलक्षण फेरफार होगा। यह नेपोलियन फ्रेंच लोगों के मुख्य महाराज थे। और इनको तीसरे नेपोलियन कहते थे और बड़े नेपोलियन बोनापार्ट के भतीजे थे। इन का जन्म २० अप्रैल सन् १८०८ ई. में फ्रांस देश में हुआ था और इन के पिता का नाम लुई बोनापार्ट था, जो लालैंड के महाराज थे। जब यह सात वर्ष के हुए थे तब प्रथम नेपोलियन का अंत का परामव हुआ था। अनंतर इन को और इनके माता को फ्रांस छोड़ कर के अन्य देश में जाना पड़ा। इन्होंने स्विटजरलैंड में विद्याभ्यास आदि किया। पीछे इन को वहाँ की सेना में रहने की आज्ञा मिली। कुछ दिवस पर्यंत थन सरोवर के तट के तोपखाने में अभ्यास किया। तदनंतर सन् १८३० में फ्रांस देश में राज्य संबंधी हलचल देखकर के फिर अपने स्वदेश में आने का उद्योग किया परंतु वह सफल न हुआ; उलटी सीमा के बाहर रहने की आज्ञा हुई। एक वर्ष के अनंतर स्विटजरलैंड छोड़ कर के टस्कनी में जाकर रहना पड़ा और रोम के युद्ध में मिल गए। इतने में उन के जेष्ठ भ्राता का देहांत हुआ। फिर वहाँ से निकल कर इंग्लैंड में जाकर रहे। सन् १८३२ से सन् १८३५ पर्यंत काल ग्रंथ लिखने में व्यतीत किया। इसी काल में अनेक चचेरे भाई, प्रथम नेपोलियन के पुत्र नेपोलियन की सहायता करके उसे दूसरा नेपोलियन कहला कर राजसिंहासन पर बैठावे, फ्रांस देश के कई एक मुख्य निवासियों के चित्त में यह बात आई थी और फ्रांस के सीमा तक आगमन की इच्छा करते थे तो इतने में उन का भी देहांत हुआ, इससे फ्रांस के राजसिंहासन पर बैठने का अधिकार उक्त नेपोलियन को प्राप्त हुआ और वह संपादन करने का विचार उन के चित्त में आया। सन् १८३६ पर्यंत प्रयत्न करके स्ट्रासबर्ग पर चढ़ाई किया, परंतु यह प्रयत्न सफल न होकर आपही पकड़े गए। अंत में पारिस में उन को ले गए। वहाँ एक दो वर्ष रहकर स्विटजरलैंड में लौट आए, तो वहाँ उनके माता का देहांत हुआ। सन् १८३८ में उनकी अनुमति से एक महाशय ने स्ट्रासबर्ग के चढ़ाई का वर्णन लिखा, इस से फ्रेंच सरकार को बड़ा खेद हुआ और उक्त महाशय को दंड दिया और नेपोलियन को स्विटजरलैंड से निकाल देने के हेतु वहाँ के सरकार को लिख भेजा। परंतु नेपोलियन आपही स्विटजरलैंड छोड़ कर पुनः इंग्लैंड में गए। वहाँ दो वर्ष रहकर सन् १८४० में फ्रांस का राज्य मिलाने के हेतु प्रयत्न करते रहे और बोलोन पर चढ़ाई किया, परंतु वह भी प्रयत्न निष्फल हुआ और पकड़े गए और इन के सहकारी जितने मनुष्य थे सभी को जन्म भर के हेतु वहाँ के दुर्ग में कारागार हुआ। इस दुर्ग में ८ वर्ष पर्यंत रहे। अनंतर सन् १८४६ के मई महीने के २५वीं तारीख को अपूर्व वेश धारण कर के वेलजिअम में भाग कर फिर इंग्लैंड में गए। सन् १८४८ ई. के फ्रांस के युद्ध तक वहाँ रहे। इस युद्ध के समय फ्रांस के निवासियों ने इनको नैशनल असेम्बली का सभासद नियत किया। तदनंतर उन्हीं महाशयों ने इन को अध्यक्ष नियत किया। तारीख २ दिसम्बर सन् १८५१ को उन्होंने कई महाशयों के विचार से और पारिस के सर्व प्रसिद्ध राजकीय महाशयों को घेर कर कारागार में डाल दिया और नैशनल असेम्बली को तोड़कर के स्वतः मुख्याधिकारी डिक्टेटर नाम से आप प्रसिद्ध हुए। कुछ सेना मार्ग में रख कर प्रबंध करने के अनंतर 'सकल देश का हम को इस वर्ष अध्यक्ष का अधिकार मिला' यह प्रसिद्ध किया और उन्हीं के इच्छानुसार सब अधिकार उनको प्राप्त हुआ और उन्होंने फ्रेंच लोगों की सम्मति से तारीख २ दिसम्बर सन् १८५२ को अपने को महाराज तीसरा नेपोलियन कहवाया।

इंग्लैंड के सरकार ने प्रथम उन को मान्य किया और पश्चात् यूरोपियन सब राजाओं ने धीरे-धीरे उन को फ्रेंच का महाराज कहना स्वीकार किया। सन् १८५३ के जनवरी की १३ तारीख को उन्होंने विवाह

किया । तदनंतर १८५४ में रशिया के युद्ध का आरंभ हुआ और सन् १८५६ में समाप्त हुआ । इस युद्ध से उनकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई । सन् १८५९ — ६० इस वर्ष में उन्होंने विक्टर इमानुअल की सहायता करके इटली को आस्ट्रिया के अधिकार से निकाल कर स्वतंत्र किया और आस्ट्रिया का पराभव करने से उन की और भी विशेष प्रतिष्ठा बढ़ी और उन को कुछ देश भी इसी कारण मिला । इसी समय में महाराज नेपोलियन ने अत्युच्च पद भी प्राप्त किया, यह समझना चाहिए । तदनंतर मेक्सिको में इन्होंने प्रयत्न और लड़ाई करके अपना राज्य स्थापन किया, परंतु इस का परिणाम अत्यंत दुःखकारक हुआ । अंत में सन् १८७० में प्रशिया और उनके युद्ध का आरंभ होकर उन का भली भाँति पराभव ता. २ सेप्टेम्बर सन् १८७० में हुआ । तदनंतर कुछ दिवस जर्मनी के दुर्ग में बंद रह कर छूट गए । पश्चात् इंग्लैंड में आप और अपनी रानी और पुत्र चिरंजीव प्रिंस नेपोलियन यह सब ता. २० मार्च सन् १८७१ को एकत्र हुए । इस पुत्र का जन्म ता. १६ मार्च सन् १८५६ में हुआ था । अंत का समय उनका साधारण मनुष्य के समान परदेश में और परराष्ट्र में व्यतीत हुआ । उन को कई दिन से रोग हुआ, पर शास्त्रोपाय बहुत करते थे, परंतु उससे कुछ न्यून न हुआ और बहुत कृश हो गए । तारीख ९ को दिन के साढ़े बारह बजे उनका देहांत हुआ । जब ये राजसिंहासन पर थे इनने ने रोम के प्रथम प्रख्यात महाराज जुलियस-सीज़र का इतिहास लिखा । इन सब वृत्तों से स्पष्ट विदित होगा कि इन को जन्म भर फेरफार उलट पुलट करते व्यतीत हुआ ; उन को भली भाँति स्वस्थता कभी नहीं हुई थी । प्रशिक्षण लोगों से इन का पराभव होने तक सर्व पृथ्वी में इधर दश वर्ष पर्यंत इन के समान बुद्धिमान और सर्व सामान्य गुणयुक्त दूसरा पुरुष नहीं हुआ । ऐसा लोग कहते हैं कि इन को शीघ्र इस दशा में पहुँचने का मुख्य कारण यही है कि इन से कोई परोपकार नहीं हुआ और इन के हाथ जेनरल वाशिंगटन के समान निष्काम और परोपकार से रहित थे और अपनी बुद्धि से कोई उत्तम कृत्य नहीं किया । इसी कारण इनकी कीर्ति का उय और अस्त अंतकाल में हुआ तथापि यह मनुष्य अति उच्च पद को प्राप्त कर के पतन हुआ और पणाम अत्यंत खेदजनक हुआ । इस से सकल मनुष्यों को खेद हुआ यह वार्ता प्रसिद्ध है ।

११. महाराज जंगबहादुर



परोपकार से रहित थे और अपनी बुद्धि से कोई उत्तम कृत्य नहीं किया। इसी कारण इनकी कीर्ति का उदय और अस्त अंतकाल में हुआ तथापि यह मनुष्य अति उच्च पद को प्राप्त कर के पतन हुआ और परिणाम अत्यंत श्रम मन्महाराज जंगबहादुर का वैकुण्ठवास होना सब पर विदित है और बहुत से समाचारपत्रों में यह समाचार प्रकाश हो चुका है, परंतु हमारी लेखनी इस शोक से काले आँसुओं से न रुदन करे यह चिंत नहीं सहन कर सकता। बादशाह रंजीत सिंह को सब लोग भारतवर्ष का अंतिम मनुष्य कहते थे, परंतु महाराज जंगबहादुर ने अपने अप्रमेय बल से उन्हीं लोगों से यह कहलाया कि महाराज जंगबहादुर भी हिन्दुस्तान में एक मनुष्य हैं। पूर्वोक्त महाराज ने १८७७ फरवरी की पच्चीसवीं तारीख को वीर प्रसू-भारतभूमि को पुत्रशोक दिया। यों तो अनेक जननी-यौवन-कुठार नित्य जनमते और मरते हैं, पर यह एक ऐसा पुरुष मरा कि भारतवर्ष के सच्चे हितकारी लोगों का जी टूट गया। भादों की गहरी अँधेरी में एक दीप जो टिम कर को फिलमिला रहा था, वह भी बुझ गया। क्या इस अभागिन भारतमाता को फिर ऐसे पुत्र होंगे? नीति के तो मानो ये मूर्तिमान अवतार थे। ऐसे प्रदेश में रह कर जो चारों ओर भिन्न-भिन्न राज्यों से घिरा हो, स्वामी की उन्नति साधन करते हुए आस पास के कठिन महाराजों को प्रसन्न रखना नीति सूत्र के परम सूत्रधार का काम है। हम लोगों के भाग्य ही ऐसे हैं; यह रोना कहाँ तक रोएँ।

पूर्वोक्त महाराज प्रतिवर्ष की भाँति दौरा करते हुए शिकार खेलते थे कि एकाएक सुगौली में जो पहुँचे तो रोगाक्रांत हो गए। कहते हैं कि उवाँत और दस्त होने से एक साथ बहुत व्याकुल हो गए। और उसी समय कहाँ को आजा दी कि बाघमति गंगा पर पालकी ले चलो। बड़ी महारानी महाराज के साथ थीं और उन्होंने अत्यंत सावधानी से अपने जगत विख्यात प्राणपति की उभयलोकसाधिनी अंतिम सेवा की। कहाँ के बदले पालकी क्षत्रियों ने उठाई थी। जब नदी पर सवारी पहुँची तब दानादिक कर के महाराज ने इस असार संसार का त्याग किया। उन के भाई जनरल रणोद्दीप सिंह बहादुर उसी समय काठमांडू गए और महाराज से एकांत में यह शोक समाचार कहा। महाराजधिराज ने उसी समय उन को महाराजगी का पद और उनके भाई को जो जो अधिकार प्राप्त थे सब दिए। महाराज रणोद्दीप सिंह ने बाहर आकर चालीस हजार सेना में से बीस हजार को बाहरी और सीमा के प्रांतों पर और बीस हजार को नगर के चारों ओर उपस्थित रहने की आज्ञा दिया, जिससे किसी प्रकार के उपद्रव की शंका न हो। इस सेना में ब्रह्म की आज्ञा केवल स्वकीय रक्षा के निमित्त थी। राजधानी में दो दिन तक यह समाचार छिपा रहा, दूसरी रात्रि को एक साथ यह वज्रपात या समाचार नगर में फैल गया जिस से सारी रानी और दो छोटी रानी अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक सती हुई। कहते हैं कि जिन रानियों से विशेष प्यार था और सदा महाराज के साथ सती होना प्रकाश करती थीं वे न सती हुई और इन दोनों छोटी रानियों से प्रकाश में प्रेम विशेष नहीं था और ये सती हुई। कहाँ हैं और देश की स्त्रियाँ, आँखें, और आँख खोल कर भारतभूमि का प्रेम और पातिव्रत देखें और लाज से सिर मुका लें।

१२. जज्ज द्वारकानाथ मिश्र

स्वर्गीय आनरेबुल द्वारकानाथ मिश्र ने सन् १८३१ में हुगली जिला के अंतर्गत आपता से एक कोस दूर अनुनाशी गाँव में एक साधारण हुगली और हबड़ा की कचहरी के मुख्तार विश्वनाथ मिश्र के घर जन्म लिया था। बंगाली पाठशाला और हुगली ब्रांच स्कूल में पढ़कर हुगली कालेज में इन्होंने अंगरेजी विद्याध्ययन करके अपनी बुद्धि के चमत्कार से सब शिक्षकादिकों को अचम्बित किया। ये अंगरेजी भाषा की पारंगतता के अतिरिक्त हिसाब किताब भी बहुत अच्छी भाँति जानते थे। हुगली कालेज से ये हिंदू कालेज में आए, जब इन के शील, औदार्य, चातुर्य, स्वातंत्र्य इत्यादि गुण सब छोटे बड़े के चित पर भली भाँति खचित हो गये थे। हुगली कालेज में मुख्य छात्रवृत्ति पाना तथा अपने पहिले ही लेख पर पारितोषिक पाना, कौन्सिल आफ एजुकेशन के रिपोर्ट में इन की स्थिति का लिखा जाना, और कलकत्ता युनिवर्सिटी के फेलोशिप के हेतु इन का चुना जाना ही इन के गुणों और विद्या का प्रत्यय देता है। एक कानूनी मनुष्य के पुत्र होने के कारण इन की चित्तवृत्ति एक साथ कानून की ओर फिरी और उसमें योग्य क्षमता पाकर सन् १८५६ में ये वकीली की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और उसी वर्ष के मार्च में अपना वर्तमान इंटरप्रिटर का पद छोड़कर इन्होंने सदर कचहरी में वकीली करना आरंभ किया। इन्होंने केवल अपने व्यय से एक औषधालय नियत किया और द्रव्यहीन छात्रों को उत्तम परीक्षा होने

तक सहायता करते थे और इन के सत्यप्रियता निष्पक्षपातता, दोनों पर दया, मुकदमों के सूक्ष्म भावार्थों की समझ और कार्य में चातुर्य इत्यादि गुण हाकिमों से लेकर चपरासियों तक विदित हो गए थे। और जज्ज लोग इन को विवाद की जड़ समझने और समझने से बहुत ही प्यार करते थे। विशेष कर के आनरेबुल पंडित शंभूनाथ अपनी वकीली से लेकर जज्ज होने की अवस्था तक इन्हें बहुत प्यार करते थे। ठकुरानी दासी के कर-संबंधी बड़े मुकदमे में १५ जज्जों के फुलबेंच के सामने मिस्टर डाइन ऐसे प्रसिद्ध वकील और अनेक अंगरेज वकीलों को सात दिन तक अनवरत वाग्धारा-वर्णन से और कानून संबंधी सूक्ष्म बातों की भर से परास्त कर के हिन्दू वकीलों में इन्होंने चिरकीर्ति का ध्वज स्थापित किया और गर्वनमेंट की इन पर विशेष दृष्टि से उस समय में जब कि इन की आमदनी एक लाख रुपये साल की थी, ये गर्वनमेंट के मुख्य वकील हुए। और पंडित शंभूनाथ के मृत्यु पर सन् १८६७ में ये बिना इच्छा किया भी जस्टिस पीकाक की प्रार्थनानुसार गर्वनमेंट से प्रधान जज्ज नियत किये गये और विचारासन पर बैठ कर जैसी योग्यता और शुद्ध चित्त से सावधान होकर उन्होंने काम किया वह हिंदूसमाज में चिरस्मरणीय है। जस्टिस पीकाक के अतिरिक्त कोई जज्ज इन की योग्यता के तुल्य नहीं गिने जाते थे और एक व्याभिवारिणी के दाय भाग के बड़े मुकदमे के समय बीमार होकर सात बरस सज्जी का काम करके अपने ग्राम में अपनी वृद्ध माता, तीसरी स्त्री, दो बालक और दो विवाहिता बालिका को छोड़ कर ये भारतवर्ष को शून्य करके अपनी ४३ वर्ष की अवस्था में ता. २५ फेब्रवरी सन् १८७४ बुध के दिन परलोक को सिधारे।

१३. श्री राजाराम शास्त्री

श्रीयुत पंडितवर राजाराम शास्त्री वेदर श्रीतादि विविध विद्यापारीण श्रीयुत गोविंदभट्ट कालेंकर के तीन पुत्रों में कनिष्ठ थे। जब ये दस वर्ष के लगभग थे तब इन के पितृचरण परलोक को सिधारे। फिर त्रिलोचन घाट पर एक ऋषितुल्य महातपस्वी श्रीयुत रानडोपनामक हरिशास्त्री विद्वान् ब्राह्मण रहते थे, उन के पास इन्होंने अपनी तरुण अवस्था के प्रारंभ में काव्य और कौमुदी पढ़ कर आस्तिकनास्तिकों भयविध द्वादश दर्शनार्थवर्ष परम मान्य जगद्विदितकीर्ति श्रीयुत दामोदर शास्त्री जी के पास तर्कशास्त्राध्ययन प्रारंभ किया। थोड़े ही दिनों में इन की अतिलौकिक प्रतिभा देख कर इन को उक्त शास्त्री जी महाशय ने अपनी वृद्ध अवस्था के कारण पढ़ाने का आयास अपने से न हो सकेगा, जान कर श्रीमान् कैलास निवास परमानंदनिमग्न दिगंगनाविख्यात-यशोराशि प्रसिद्ध महा पण्डितवर्य श्रीयुत काशीनाथ शास्त्री जी के, जिन के नाम श्रवणमात्र के सहृदय पंडितवर समूह गङ्गद होकर सिर डुलाते हैं, स्वाधीन कर दिया। और इन के प्रतिभा का अत्यंत वर्णन कर के कहा कि मैं एक रत्न आपको पारितोषिक देता हूँ जो आपके सुविस्तीर्ण शाखाकांडमंडित कुसुमचयाकीर्ण यशोवृक्ष को अपनी यशश्चन्द्रिका से सदा अम्लान और प्रकाशित रखेगा। फिर इन्होंने उक्त महाशय के पास व्याकरणादि विविध शास्त्र पढ़कर चित्रकूट में जाकर उत्तम उत्तम पंडितों के साथ विप्रतिपत्तियों में अत्युत्तम प्रतिष्ठा पाई और श्रीमंत विनायक राव साहेब ने बहुत सन्मान किया। फिर जब सांस्कृतादि विविध विद्या कलादि गुण-गण मंडित श्रीमान् जान मयूर साहेब की काशी में आप और पाठशाला में विविध विद्या पारंगत पंडिततुल्य विद्यार्थियों की परीक्षा ली तब उक्त शास्त्री जी महाशय के विद्यार्थिगण में इन की अद्भुत प्रतिभा और अनेक शास्त्रोपस्थिति देख प्रसन्न होकर केवल इस अमिप्राय से कि ऐसे उत्तम पंडित-रत्न का अपने पास रहना यशस्कर है और आजमगढ़ के जिले में उक्त साहेब महाशय प्राद्विवाक थे इस लिए कहीं कहीं हिंदू धर्म शास्त्र के अनुसार निर्णय करने के विमर्श में और उनकी बनाई हुई अनेक सुंदर सुंदर कविता के परिशोधन में सहायता के लिए इन को अपने साथ ले गए। उन के साथ चार पाँच वर्ष के लगभग रह कर ग्वालियर में गए। वहाँ बहुत से उत्तम उत्तम पंडितों के साथ शास्त्रार्थ में परम प्रतिष्ठा और राजा की ओर से अत्युत्तम सन्मान पूर्वक विदाई पाकर संवत् १९१२ के वर्ष में काशी आए। तब यद्यपि विधजोद्वाहशंकासमाधि अर्थात् पुनर्विवाह खंडन श्रीमान् परम गुरु श्री काशीनाथ शास्त्री जी तैयार कर चुके थे तथापि उस को इन्होंने अपूर्व अपूर्व अनेक शंका और समाधानों से पुष्ट किया। इसी कारण उक्त शास्त्री जी महाराज ने अपने नाम के पहिले इन्हीं का नाम उस ग्रंथ पर लिख कर प्रसिद्ध किया। संवत् १९१३ के वर्ष के अंत में श्रीमान् यशोमात्रा विशेष

वालण्टेन साहेब महाशय ने सांख्यशास्त्राध्यापन के कार्य में इनको नियुक्त किया। उस कार्य पर अधिष्ठित होकर सपरिभ्रम पाठन आदि में अनेक विद्यार्थियों को ऐसे व्युत्पन्न किया जिन की सभा में तत्काल अपूर्व कल्पनाओं को देख कर प्राचीन प्रतिष्ठित पंडित लोग प्रसन्न होकर श्लाघा करते थे। संवत् १९२० के वर्ष में राजकीय श्री संस्कृत पाठशालाध्यक्ष श्रीमान् ग्रिफिथ साहेब महाशय ने इन को धर्मशास्त्राध्यापक का पद दिया। सब से बराबर पढ़ा पढ़ा कर शतावधि विद्यार्थियों को इन्होंने उत्तम पंडित किया, जो संप्रति देशदेशान्तर में अपने अपने विद्यार्थिगण को पढ़ाकर इन की कीर्ति को आसमुद्रांत फैला रहे हैं। कुछ दिन हुए श्रीमान् नंदन नगर की पाठशाला के संस्कृताध्यापक मोक्षमूलर साहिब महाशय की बनाई हुई अंगरेजी और संस्कृत व्याकरण की पुस्तक का परिशोधन और कई स्थलों में परिवर्तन किया था, जिससे उक्त साहिब महाशय ने अति प्रसन्न होकर इनकी कीर्ति अनेक द्वीपान्तर निवासियों में विख्यात की, यहाँ तक कि जब उन्होंने अपने पुस्तक की द्वितीयावृत्ति छपवाई तब उस की भूमिका में लिखा है कि इन के समान संस्कृत व्याकरण जानने वाला इस द्वीप में तो क्या संसार भर में दूसरा कोई नहीं है। वे उक्त पंडित वर राजाराम शास्त्री संप्रति पाँच चार वर्ष से विरक्त हो कर योगाभ्यास में लगे थे और अपने दीन बांधवों का पोषण और दीन विद्यार्थी प्रभृति के परिपालन ही के हेतु अर्जन करते थे और आप साधारण ही वृत्ति से जीवन करते हुए मठ मेनिवास करते थे। संवत् १९३२ श्रावण शुक्ल १२ के दिन संन्यास लेकर उसी दिन से अन्न परित्याग पूर्वक परमार्थ का अनुसंधान करते करते मरण काल से अव्यवहित पूर्व तक सावधानता पूर्वक परमेश्वर का ध्यान करते करते भाद्रपद कृष्ण ३ गुरुवार को प्रातःकाल ८ बजते बजते परमपद को प्राप्त हो कर यशोमान्नावशिष्ट रह गए।

१४. लार्ड म्योसाहिबका जीवन चरित्र *

हा ! यह कैसे दुःख की बात है कि आज दिन हम उस के मरण का वृत्तांत लिखते हैं जिस की भुजा की छाँह में सब प्रजा सुख से कालक्षेप करती थी और जो हम लोगों का पूरा हितकारी था। ऐसा कौन है इस को पढ़कर न कपित होगा और परम शोक से किस की आँखों से आँसू न बहेंगे ? मनुष्य की कोई इच्छा पूरी नहीं होने पाती और ईश्वर और ही कुछ कर देता है। कहाँ युवराज के निरोग होने के आनंद में हम लोग मग्न थे और कैसे कैसे शुभ मनोरथ करते थे, कहाँ यह कैसा विज्जुपात सा हाहाकार सुनने में आया। निस्सन्देह भरतखंड के वृत्तांत में सर्वदा इस विषय को लोग बड़े आश्चर्य और शोक से पढ़ेंगे और निश्चय भूमि ने एक ऐसा अपूर्व स्वामी खो दिया है जैसा फिर आना कठिन है। तारीख १२ को यह भयानक समाचार कलकत्ते में आया और उसी समय सारा नगर शोकाक्रांत हो गया।

गुरुवार ८वीं तारीख को श्रीमान् लार्ड म्यो साहिब पोर्ट ब्लेयर उपद्वीप में ग्लासगो नामक जहाज पर आए और द्वाका और नेमिसिस नाम के दो जहाज और भी संग आए और साढ़े नौ बजे उन टापुओं में पहुँचे और ग्यारह बारह के भीतर श्रीमान् ने बर्मा के चीफ कमिश्नर इत्यादि लोगों के साथ कैदियों की बारक, गोराबारिक और दूसरे प्रसिद्ध स्थानों को देखा। उस समय श्रीमान् की शरीर रक्षा के हेतु बहुत से सिपाही, कांस्टेबल और गाई बड़ी सावधानी से नियत किए गए और थोड़ी देर जेनरल स्टुअर्ट साहिब की कोठी पर उठर कर सब लोग जहाजों को फिर गए। अर्द्धाई बजे सब लोग फिर उतरे और इन टापुओं के लोगों का स्वभाव जानकर सब लोग बड़ी सावधानी से चले और बड़े यत्न से सब लोग श्रीमान् की रक्षा करते रहे। उस समय श्रीमती लेडी म्यो और सब स्त्रियाँ ग्लासगो जहाज पर ही थीं। ये लोग अबरदीन और ऐंडो होते हुए बाइयर टापू में पहुँचे। यह स्थान रास के टापू से द्वाई कोस है और यहाँ १३०० कैदी रहते हैं, जो अपने बुरे कर्मों से काले पानी भेजे गए हैं। भय का स्थान समझ कर कांस्टेबल और सरकारी पलटन रक्षा के हेतु संग हुई और जेलखाना इत्यादि स्थानों को देख कर चयाम टापू में गए और वहाँ कोयले की खान देख कर फिर जहाज पर फिर आने का विचार करने लगे। अब ५ बजने का समय आया और सब लोग जहाज पर जाने को घबड़ा रहे थे कि श्रीमान् ने कहा कि हम लोग हिरात की पहाड़ी पर चढ़ें और वहाँ सूर्यास्त की शोभा देखें। यह पहाड़ी इसी टापू में है और इसके ऊपर

* शनिवार २४ फरवरी सन् १८७२ ई. कवि वचन सुधा जि. ३ सं. १३ में प्रकाशित (स.)

कोई बस्ती नहीं है, परंतु नीचे होय टौन नामक एक छोटी बस्ती है, जिस में कुछ कैदी काम करने वाले रहते हैं। यद्यपि सबेरे ऐसा लोगों ने सोचा था कि समय मिलेगा तो इस पहाड़ी पर जायेंगे, पर ऐसा निश्चय नहीं था और न यहाँ कुछ तयारी थी। ऐलिस साहिब इस पहाड़ी पर नहीं चढ़े और यहाँ पलटन के न होने से चथाम से पलटन बुलाई गई कि वह श्रीमान को रक्षा करे और वहाँ से आठ कांस्टेबल रक्षा हेतु संग हुए। श्रीमान एक छोटे टट्ट पर चलते थे और सब लोग पैदल थे। ऊपर बहुत से ताड़ और सुपारी के पेड़ों से स्थान घना हो रहा था और चोटी पर पहुँच कर श्रीमान पाँच घंटे तक सूर्यास्त की शोभा देखते रहे। यद्यपि सूर्यास्त हो चुका था पर ऊपर प्रकाश इतना था कि नीचे की घाटी दिखाती थी और अंधकार होता जान कर सब लोग नीचे उतरने लगे। मार्ग में केवल दो छूटे हुए कैदी मिले और उन लोगों ने कुछ बिनती करना चाहा। पर जेनरल/स्टुअर्ट ने उन को टोका और कहा कि जब श्रीमान स्वस्थ रहें तब आओ। इन के अतिरिक्त और कोई मार्ग में नहीं मिला। कप्तान लकउड और कौंट बालगस्टन आगे बढ़ गए और एक चट्टान पर बैठे उन लोगों का मार्ग देखते थे। इस समय अंधेरा हो गया था, परंतु कुछ मार्ग दिखाई देता था और उन लोगों ने केवल कुछ मनुष्यों को पानी ले जाते देखा और कोई नहीं मिला। श्रीमान सवा सात बजे नीचे पहुँचे और उस समय संपूर्ण रीति से अंधेरा हो गया था और एक अफसर ने मशाल लाने की आज्ञा दिया इस से कई मनुष्य भी संग के उन को बुलाने हेतु दौड़ गए। जब कैदियों के भोपड़े के आगे चढ़े, जेनरल/स्टुअर्ट एक आर्धसियर को आज्ञा देने के हेतु पीछे ठहर गए और श्रीमान आगे बढ़ गए। उस समय श्रीमान के आगे दो मशाल और कुछ सिपाही थे और उन के प्राइवेट सेक्रेटरी मेबर्न और जमादार भी कुछ दू हो गए थे और कलनल जरविस और मि. हाकिन और मि. एलिन भी पीछे छूट गए थे कि इतने में एक मनुष्य उनके बीच से उछला और श्रीमान को दे छुरी मारी, जिस में से पहली दहिने कंधे पर और दूसरी बाएँ पर लगी। यह नहीं जाना गया कि यह किस मार्ग से वहाँ आया, क्योंकि चारों ओर लोग घेरे थे। पर ऐसा अनुमान होता है कि चट्टानों के नीचे छिप रहा था। श्रीमान चोट लगते ही उछले और पास ही पानी के गड्ढे में गिर पड़े यद्यपि लोगों ने उन को उठाकर खड़ा किया, पर ठहर न सके और तुरंत फिर गिर पड़े। उनके अंत के शब्द हैं "They've hit me Burne" उन लोगों ने मुझे मारा और फिर वे एक शब्द

कहे वह समझ न पड़े और उन के शरीर को लोग उठाकर जहाज पर लाने लगे, परंतु श्रीमान तो पूर्व ही शरीर त्याग कर चुके थे और वीरों की उत्तम गति को पहुँच चुके थे। उस दुष्ट को अर्जुन सिंह नामक क्षत्रिय ने बड़े साहस से पकड़ा। कहते हैं कि उस ने पहिले तो उस हत्यारे के मुख पर अपना दुपट्टा डाल दिया और फिर आप उस पर एक साहिब की सहायता से चढ़ बैठा और फिर तो सब लोगों ने उस को हाथों हाथ पकड़ लिया और यदि उस समय विशेष रक्षा न की जाती तो लोग क्रोधावेश में उस को मार डालते। कहते हैं कि जिस समय उन का शरीर जहाज पर लाए हैं उस समय अनवरत रुधिर बहता था। जब श्रीमान का शरीर ग्लासगो पर लाए उस समय लेड़ी म्यौ के चित्त की दाशा सोचनी चाहिए! हा! कहाँ तो यह प्रतीक्षा करी थी कि प्यारा पति फिर से आता है, अब उसके साथ भोजन करेंगे और यात्रा का वृत्तांत पूछेंगे, कहाँ उस पति का मृतक शरीर सामने आया। हाय हाय! कैसा दारुण समय हुआ है!! परंतु वाह रे इन का धैर्य कि उसी समय शोक को चित्त में छिपा कर सब आज्ञा उसी भाँति किया जैसी श्रीमान करते थे। जब यह समाचार कलकत्ते में १२वीं तारीख को पहुँचा उसी समय आज्ञा हुई दुर्गाध्वज अधोमुख हो और ३९ मिनट पर सार्यकाल तोप छुटें। कानून के अनुसार लाई नेपियर गवर्नर-जेनरल हुए और उसी टापू से एक एक जहाज उन के लाने को भेजा गया और श्रीमान के भाई भी फिर बुला लिए गये। परंतु लाई नेपियर के आने तक आनरैबल स्ट्रैची स्थानापन्न गवर्नर-जेनरल हुए। कहते हैं कि लाई नेपियर १६ तारीख को चले। जिस दिन वे वहाँ से चले थे उस दिन सब लोग शोक वस्त्र पहरे हुए इनको विदा करने को एकत्र हुए थे। श्रीमान का शरीर कलकत्ते में आया और वहाँ से आयरलैंड गया। लेडी म्यौ और श्रीमान के दोनों भाई और पुत्र तो बम्बई जायेंगे, वहाँ से जहाज पर सवार होंगे, पर श्रीमान का शरीर सीधा कलकत्ते से ग्लासगो पर जायगा।

नीचे लिखा हुआ आशय का पत्र कलकत्ते के छोपे वालों को सरकार की ओर से मिला है। 'आठवीं तारीख बृहस्पति के दिन श्रीमान गवर्नर जेनरल बहादुर पोर्टब्लेयर नाम स्थान पर पहुँचे और रास नाम स्थान को भली-भाँति निरीक्षण कर वाइपर नामे टापू में पहुँचे, जहाँ महा दुष्ट गण रहते हैं। स्टीवर्ट साहेब सुपरिटेन्डेंट ने श्रीमान के शरीर रक्षा के हेतु बहुत अच्छा प्रबंध किया था कि कोई मनुष्य निकट न आने पावे।

गुलिस के व्यतिरिक्त एक विभाग पदचारियों का साथ था, परंतु यह श्रीमान् को लंकेश्वर जान पड़ता था और उन्होंने ने कई बार निषेध किया। यहाँ से लोग चायम में गए, जहाँ आरे चलते हैं और लकड़ी काटी जाती है। परंतु यह सब कर्म पाँच बजे के भीतर ही हो गया, तो श्रीमान् ने कहा कि होपटाउन प्रदेश में चल कर हरियट पर्वत पर आरोहण करके प्रदोष काल की शोभा देखना चाहिए। यह स्थिर कर सब लोग उसी ओर चले और साढ़े पाँच बजे वहाँ पहुँचे। थोड़े से गुलिस के सिपाही साथ में थे, क्योंकि वहाँ यह आशा न थी कि कोई दुष्कर्मा मिले — ~~यह स्थिति~~ रोग ग्रसित और श्रमित लोग रहते हैं। श्रीमान् बहुत दूर पर्यंत एक टट्ट पर आरुढ़ थे और उनके सहचारी लोग भूमि पर चलते थे। हरियट पर्वत पर पहुँच कर लोगों ने किंचित् काल विश्राम किया और फिर तीर की ओर चले। मार्ग में दो श्रमिक व्यक्ति मिले और श्रीमान् से कुछ कहने की इच्छा प्रकट की, परंतु स्टीवर्ट साहेब ने उनसे कहा कि तुम लोग लिख कर निवेदन करो। दो साहेब आगे थे और लोग साथ में थे। उन लोगों के तीर पर पहुँचने के पूर्व ही अधिकार छा गया और श्रीमान् के पहुँचते पहुँचते "मशाल" जल गए। तीर पर पहुँच कर स्वीटर्ट साहेब पीछे हट कर किसी को कुछ आज्ञा देने लगे। शेष २० गज आगे नहीं बढ़े थे कि एक दुष्कर्मी हाथ में छुरी लिए द्रुतवेग से मंडल में आया और श्रीमान् को दो छुरी मारी, एक वाम स्कंध पर और दूसरी स्कंध के पुट्टे के नीचे। अर्जुन नाम सिपाही और हाबिन्स साहेब ने उसे पकड़ा और बड़ा कोलाहल मचा और "मशाल" जल गए। उसी समय श्रीमान् भी या तो करार पर से गिर पड़े वा कूद पड़े। जब फिर से प्रकाश हुआ तो लोगों ने देखा कि गवर्नर जेनरल बहादुर पानी में खड़े थे और स्कंध देश से रुधिर का प्रवाह बड़े वेग से चल रहा था। वहाँ से लोग उन्हें एक गाड़ी पर रख कर ले गए और घाव बाँधा गया, परंतु वे तो हो चुके थे। जब उन की लाश ग्लासगो नाम नौका पर पहुँची तो डाक्टरों ने कहा कि इन दोनों घावों में एक भी प्राण लेने के समर्थ था। परंतु उस समय लेंडी म्यो का साहस प्रशंसनीय था। उनको अपने "राज" नाश की अपेक्षा भारतखंड के राज के नाश और प्रजा के दुःख का बड़ा शोक हुआ। स्टुअर्ट साहेब ने इस विषय का गवर्नमेंट को एक रिपोर्ट किया है और एक साटिफिकेट डाक्टरों की ओर से भी गवर्नमेंट को भेजा गया है।

शव यात्रा

हा! शनिश्चर (१७ वीं) को कलकत्ते की कुछ और ही दशा थी। सब लोग अपना अपना उचित कर्म परित्याग कर के विषन्नबदन प्रिसेप घाट की ओर दौड़े जाते थे। बालक अपनी अवस्था को विस्मृत कर और खेल कुतूहल छोड़ उस मानव-प्रवाह में बहे जाते थे, वृद्ध लोग भी अपने चिरासन को छोड़ लकुट हाथ में, शरीर काँपते हुए उन के अनुसरण चले। — स्त्री बेचारी कुलमर्याद-सीमा-परिवद उद्दिग्गचित होकर खिड़कियों पर बैठी गुलाल नेत्र प्रसारनपूर्वक अपने हितैषी, परमविद्याशाली और परम गुणवान उपराज के मृतक शरीर के आगमन की मार्ग प्रतीक्षा करती थी। मार्ग में गाड़ियों की श्रेणी बँध गई थी, नदी में संपूर्ण नौकाओं के पताका युक्त मस्तूल झुक रहे थे, मानों सब सिर पटक पटक कर रो रहे हैं। दुर्ग से सेना धीरे धीरे आई और गवर्नमेंट हाउस से उक्त घाट पर्यंत श्रेणीबद्ध होकर खड़ी हुई और प्रत्येक वर्ग के पुरुष समुचित स्थान पर खड़े थे। एक सन्नाटा बँध गया था कि पोने पाँच बजे घाट पर से एक शतन्वी (तोप) का शब्द हुआ और उसका प्रतिउत्तर दुर्ग और कानी नाम नौका पर से हुआ। बाजावालों ने बड़ी सावधानी से अपने अपने वाद्य यंत्रों को उठाया और कलकत्ते के यालटियर्स लोग आगे बढ़े। एक तोप की गाड़ी पर इंगलैंड के राजकीय पताका से आच्छादित श्रीमान् गवर्नर जेनरल का मृतक शरीर शव यात्रा के आगे हुआ। उस समय लोगों के चित्त पर कैसा शोक छा गया था उसका वर्णन नहीं हो सकता। ऐसा कौन पाहनचित्त होगा जिसका हृदय उस श्रीमान् के चंचल अश्व को देखकर उस समय विदीर्ण न हुआ होगा। उस के नेत्र से भी अश्रुधारा प्रवाहित होती थी। हा! अब उस चाड़े का चढ़नेवाला इस संसार में नहीं है। उस से भी शोकजनक श्रीमान् के प्रिय पुत्र की दशा थी जो कि विषन्नबदन, अधोमुख, सजलनयन, बाल खोले अपने दोनों चचा के साथ पिता के मृतक शरीर के साथ चलते थे। हा! ऐसी वयस में उन्हें ऐसी विपद पड़ी। परमेश्वर बड़ा विषमदर्शी दीख पड़ता है। वैसे ही मेजर बर्न भी देखे जाते थे। शोक से आँखें लाल और डबडबाई हुई थीं और अनाथ की भाँति अपने स्वामी वरन उस मित्र

के शोक में आतुर थे, जिनने उन्हें अंत में पुकारा और मरण समय उन्हीं का नाम लिया। हा ! यह यात्रा निम्नलिखित रीति पर गवर्नमेंट हाउस में पहुँच। कार्टर मास्टर जनरल के विभाग का एक अश्वारोही अफसर फस्ट बंगाल केवलरी (अश्वारोही सेना) का एक भाग, कलकत्ते के वालंटियर्स की रैफल पलटन अस्त्र उलटा लिए हुए और श्री महारानी की १४ वीं रेजिमेंट का शोकसूचक बाजा बजता हुआ।

श्रीमान् का बाजा

बॉडी गार्ड शरीररक्षक पैदल

दुर्ग और कधीड़ल गिरजा के पाद्री श्री मान् के चापलेन

डाक्टर जे. फेअरर सी. एस्. आई., करनेल जी. डिलेन कमांडिंग बाडी गार्ड

क. एफ. एच. ग्रेगरी

एडीकाँग

डाक्टर ओ. बर्नेट

के. एच. वी. लॉकउड एडीकाँग

क. टी. एम. जोन्स आर. एन.

एल. टी. डीन

क. आर. एच. आट एडिकाँग

श्रीमान् का
मृतक शरीर

एक तोप की गाड़ी पर

सुबादार मेजर और सरदार बहादुर शिवबल्लभ अवस्ती

एडिकाँग

क. सी. एल. सी. डी रोवक

एडिकाँग

ले. सी. हाकिन्स आर. एन.

मेजर ओ. टी. वर्न प्राइवेट सेक्रेटरी।

मुख्य शोक प्रकाशक।

आनरेबल आर. बार्क, आनरेबल टी. बार्क, मेजर बार्क।

श्रीमान् का विश्वासपात्र क्लर्क वा लेखक।

श्रीमान् के सेवक।

श्रीमान् के पलटन के अफसर।

श्रीमान् के एतद्देशीय सेवक।

माझी नौकास्थ लोग और ग्लासगो और डाफनी नाम नौका का तोपखाना।

उक्त नौकाओं के अफसर।

अस्मिन् कालिक गवर्नर-जनरल।

बंगाल के लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर और श्रीमान् कमांडर-इन-चीफ।

बंगाल के चीफ जस्टिस, कलकत्ते के लॉर्ड बिशप, आर्क बिशप और पश्चिम

बंगाल के विकार अपॉस्टोलिक।

श्रीमान् गवर्नर-जनरल के सभा के सभासद।

कलकत्ते के पुहन जज्ज।

सभा के अधिक सभासद ।

एतद्देशीय राजे ।

कन्सलस जेनरल । बरमा के चीफ कमिश्नर ।

अन्य देशों के कन्सल एजेन्ट ।

गवर्नमेन्ट के सेक्रेटरी ।

इन के पीछे और बहुत से लोग पलाटन के अफसर इत्यादि और लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के साथ के लोग थे । यद्यपि अनुचित तो है, परन्तु ऐसी शोभा कलकत्ते में कभी देखने में नहीं आई थी और ईश्वर करे न कभी देखने में आवे ।

श्रीमान् का शरीर सर्वसाधारण लोगों के देखने के लिये तीन दिन पर्यंत मारक्लहाल रक्खा गया है और सब लोग श्रीमान् का अन्त का दरबार करने बहाँ जायेंगे ।

हे भारतवर्ष की प्रजा ! अपने परम प्रेम्णरूपी अश्रुजल से अपने उस उपराज्याधीश का तर्पण करो जो आज तक तुम्हारा स्वामी था और जिस की बांह की छांह में तुम लोग निर्भय निवास करते थे और जो अनेक कोटि प्रजा लक्षावधि सैन्य के होते हुए भी अनाथ की भाँति एक धृष्ट के हाथ से मारा गया और एक बेर सब लोग निस्सन्देश शोक-समुद्र में मग्न होकर उस अनाथ स्त्री लेडी म्यो और उनके छोटे बालकों के दुःख के साथी बने । हा ! लेखनी दुःख से आगे लिखने को असमर्थ हो रही है, नहीं तो विशेष समाचार लिखती । निश्चय है कि पाठकजन इस असह्य दुःख रूपी वृत्त को पढ़ कर विशेष दुःखी होने की इच्छा भी न रखेंगे ।

श्रीमान् स्वर्गवासी के मरण पर लोगों ने क्या किया :

जिस समय यह शोक रूपी वृत्त श्रीमती महाराणी को पहुँचा श्रीमती ने लेडी म्यो और बर्क साहेब को तार भेजा कि हम लोगों के उस अपार दुःख से अत्यंत दुःखी हुए और हम तुम लोगों के उस दुःख के साथी हैं जो श्रीमान् लार्ड म्यो के मरने से तुम पर पड़ा है । सेक्रेटरी आफ स्टेट ने भी इसी भाँति स्थानापन्न गवर्नर जेनरल को तार दिया कि "हम इस समाचार से अत्यंत दुःखी हुए । निस्सन्देश भरतखंड ने एक अपना बड़ा योग्य स्वामी नाश किया और यह ऐसा अकथनीय वृत्तांत है कि इस समय हम विशेष कुछ नहीं कह सकते" । महाराज साम ने भी स्थानापन्न गवर्नरजेनरल को तार दिया है कि हम इस दुःख में लेडी म्यो और भारत की प्रजा के साथ हैं, जो उन लोगों पर अकस्मात् एक योग्य स्वामी के नाश होने से आ पड़ा है । महाराज जयपुर को जब यह समाचार गया एक संग शोकाक्रांत हो गए और राज के किले का झंडा गिरवा दिया और पंचमी का बड़ा दर्बार बंद कर दिया और बीस बीस मिनट पर किले से शोक सूचक तोप फूटी और नगर में एक दिन तक सब काम बंद रहा । सुना है कि महाराज कलकत्ते जायेंगे । पटियाला के महाराज ने एक शोकसूचक इशितहार प्रकाशित किया और अपने दबारियों को आज्ञा दिया कि शोक का वस्त्र पहिरे । महाराज कपूरथला ने भी ऐसा ही किया और अवध अंगुमन के सेक्रेटरी को एक पत्र भेजा कि उन के स्मरणार्थ उद्योग करे । कलकत्ते की दशा तो लिखने के योग्य ही नहीं है, न ऐसा कभी पूर्व में हुआ था और न ईश्वर करे होय । वसंत पंचमी का नाच गान सब बंद हो गया और नगर में दूकानें सब कई दिन तक बंद रहीं, बरात नहीं निकली, कई लग्न टाल दिए गए । वहाँ के जस्टिस आफ दि पीस लोग मिल कर एक शोकपत्र श्री लेडी म्यो को देने वाले हैं और भी अनेक शोकसूचक कृत्य हो रहे हैं । बंबई में भी सब दूकानें बंद हो गई और सब कारखाने बंद हो गए । बनारस में भी इस समाचार के आने से कई स्कूल बंद हो गए और कई शोकसूचक कमेडियाँ हुईं । बंबई में फरासीस, इटली और प्रशिया इत्यादि देशों के राजदूतों ने अपनी कोठियों के राज के झंडे आधे गिरा दिये और सब मिल कर शोक का वस्त्र पहिन कर वहाँ के गवर्नर के पास गए थे और वहाँ सब लोगों ने शोक भरी वार्ता किया और उस के उत्तर में लाट साहिब ने भी एक सुरस भाषण किया । हा ! ईश्वर फिर यह दिन लावे !!

उस बांडाल दुष्ट हत्यारे शेरअली के विषय में फ्रेड आफ इंडिया के संपादक से हम पर्ण सम्मति करते हैं । निस्सन्देश उस दुष्ट को केवल प्राण बंद देना तो उस की मुँह भाँगी बात देनी है, क्योंकि मरने से डरता तो

ऐसा कर्म न करता। संपादक महाशय लिखते हैं कि ये दुष्ट प्राण से प्रतिष्ठा और धर्म को विशेष मानते हैं इस से ऐसा करना चाहिये जिस में इन दुष्टों का मुख भंग हो और धर्म और प्रतिष्ठा दोनों को हानि पहुँचे। वह लिखते हैं (और बहुत ठीक लिखते हैं, अवश्य ऐसा ही वरुन इस से बड़ कर होना चाहिये) कि उस के प्राण अभी न लिये जायें और उसे खाने को वह वस्तु मिलें जो "हराम" है और वस्त्र के स्थान पर उस को सूअर के चर्म की टोपी और कुरता पहनाया जाय। यावच्छक्ति उस को दुःख और अनादर दिया जाय। ऐसे नीच के विषय में जितनी निर्दयता की जाय सब थोड़ी है और ऐसे समय हम लोगों को कानून छप्पर पर रखना चाहिए और उस को भरपूर दुःख देना चाहिये।

श्रीमान् लार्ड म्यौ स्पर्गवासी के मरने का शोक जैसा विद्वानों की मंडली में हुआ वैसा सर्वसाधारण में नहीं हुआ। इस में कोई संदेह नहीं कि एक बेर जिस ने यह समाचार सुना घबड़ा गया, पर ताड़श लोग शोकाक्रांत न हो गए इस का मुख्य कारण यह है कि लोगों में राजभक्ति नहीं है। निस्संदेह किसी समय में हिंदुस्तान के लोग ऐसे राजभक्त थे कि राजा को साक्षात् ईश्वर की भाँति मानते और पूजते थे, परंतु मुसलमानों के अत्याचार से यह राजभक्ति हिंदुओं से निकल गई। राजभक्ति क्या इन दुष्टों के पीछे सभी कुछ निकल गया; विद्या ही का वैसा आदर न रहा। अब हिंदुस्तान में तीन बात का बड़ा घाटा है — वह यह है कि लोग विद्या, स्त्री, राजा का ताड़श स्वरूप ज्ञान पूर्वक आदर नहीं करते। विद्या को केवल एक जीविका को वस्तु समझते हैं। वैसे ही स्त्री को केवल काम शांत्यर्थ या घर की सेवा करने वाली मात्र जानते हैं। उसी भाँति राजा को भी केवल इतना जानते हैं कि वह मुफ्त से बलवान है और हम उस के वश में हैं। राजा का और अपना संबंध नहीं जानते और यह नहीं समझते कि भगवान की ओर से वह हम लोगों के सुख दुःख का साथी नियत हुआ है, इससे हम भी उस के सुख दुःख के साथी हैं।

हम आशा रखते हैं कि श्रीमान् गवर्नरजेनरल बहादुर के अकाल मृत्यु का समाचार अब सब को भली भाँति पहुँच गया। हम लोगों ने जिस समय यह संवाद सुना शरीर शिथिलेंद्रिय और वाक्य-शून्य हो गया। यदि कोई आकर कहे कि चंद्रमा में आग लगी है तो कभी विश्वास न होगा। उसी प्रकार भरतखंड के उपराज का एक कैदी के हाथ से मारा जाना किसी समय में एकाएकी ग्राह्य नहीं हो सकता। हाय ! देश को कैसा दुःख हुआ ! अभी वे ब्रह्म देश की यात्रा कर के अंडमन्स नाम द्वीपस्थित दुखियों के सहायार्थ उपाय करने को जाते थे और वहाँ ऐसी घटना उपस्थित हुई। चीफ जस्टिस नारमन का मरण भूलने न पाया और एक उस से भी विशेष उपद्रव हुआ और फिर भी मुसलमान के हाथ से। यद्यपि कई अंग्रेजी समाचार पत्र संपादकों ने लिखा है कि जो कारण नारमन साहेब के मारने का था सो श्रीमान् के घात का कारण नहीं हो सकता, परंतु इस में हमारी सम्मति नहीं है। क्योंकि यदि शेरअली के मन यह बात पहिले से ठनी न होती तो वह ऐसे निर्जन स्थान में छुरी ले कर छिपा क्यों बैठ रहाता। फिर एक दूसरे कैदी के "इज्जत" से स्पष्ट ज्ञात होता है। जिस समय शेरअली ने अब्दुल्ला के और नारमन साहेब के मरण का समाचार सुना कैसा प्रसन्न हुआ और लोगों का निमंत्रण किया। यदि वह उस वर्ग का न होता जो कि तन मन से चाहते हैं कि सरकार "काफिर" है इस लिये उस के बड़े बड़े अधिकारियों के मारने से बड़ा "सवाब" होता है। प्रसन्नता और निमंत्रण का क्या कारण था ? फिर वह स्वतः कहता है कि अपने मरण के पुर्य में एक बात कहूँगा। वह कौन सी बात हो सकती है ! इन सब विषयों को भली भाँति डढ़ कर के तब उस को फाँसी देना उचित है।

१५. लार्ड लारेन्स

सन् १८११ ई. ४ मार्च को उक्त महात्मा ने जन्म ग्रहण किया था। उन्होंने पहिले कुछ दिन वर्ड लण्डन डेरी के काथेल कालिज में शिक्षा लाभ की थी, बाद उस के हेलिवार कालिज में पढ़ने लगे। १८२९ ई. में सिविलियन हो कर भारतवर्ष में आए। १८३१ ई. में दिल्ली के रेजिडेंट और चीफ कमिश्नर के सहकारी हुए। १८३२ ई. में प्रतिनिधि मजिस्टर और कलक्टर हुए। १८३४ ई. में पानीपत के प्रतिनिधि मजिस्टर हो के गए। दो बरस के बाद गुड़गाँव के एजेण्ट मजिस्टर और डिपटी कलक्टर हुए। कई एक वर्षों के बाद दिल्ली के मजिस्टर हुए। उस समय यहाँ के गवर्नरजेनरल सर हेनरी हारडिंग थे। उन्होंने ने इन की चमत्कार राजनीति देख कर इन को शतदु तीरस्य प्रदेशों का कमिश्नर कर के भेज दिया। १८४८ ई. में लारेन्स लाहौर

के रेडिफ़ेण्ड के प्रतिनिधि हुए। सिक्खों की दूसरी लड़ाई के बाद डलहौसी ने पंजाब शासन करने के लिये एक एडमिनिस्ट्रेशन बोर्ड स्थापन किया। उस में यह और इन के बड़े भाई सर हेनरी लारेन्स, चार्ल्स और मानसेल सम्मनित हुए। इन दोनों भाइयों ने राज्य शासन संबंध में अति उत्तम क्षमता और निपुणता दिखाई। जॉन लारेन्स ने १८५७ ई. के गदर में अपनी अद्भुत शक्ति के प्रभाव से पंजाब को शांत रक्खा था, इसी लिये आज तक भारत साम्राज्य अय्याहत है। उस समय लारेन्स पंजाब के चीफ कमिश्नर थे। १८५६ ई. में लारेन्स को के. सी. बी. की उपाधि मिली और बाद ही इन को जी. सी. बी. की भी उपाधि मिली थी। १८५८ ई. में यह महाराज बारनट होकर प्रीवी कौंसिल के सम्मनित हुए। १८६३ ई. के डिसेम्बर महीने में भारतवर्ष के गवर्नर-जेनरल होकर लार्ड एलगिन के उत्तराधिकारी हुए। १८६९ ई. के मार्च महीने में यह लार्ड उपाधि प्राप्त हो कर पार्लियामेंट में सम्मनित हुए। लार्ड लारेन्स का धर्म विषय में विशेष अनुराग था। इन्होंने भारतवर्ष के गवर्नमेंट स्कूल समूहों में बाइबल पढ़ाने का प्रस्ताव किया था। और और भी विशेष गुण इन में थे। आज कल यह पार्लियामेंट में भारतवर्ष संबंधी विषयों की चर्चा विशेष करने लगे थे। जिस में भारतवर्ष का मंगल हो, इन की यही इच्छा और चेष्टा रहती थी। ऐसे हितकारी मित्र को खोकर जो भारतवर्ष शोकाकुल न होगा, यह कहना बाहुल्य है। उनके सन्मानार्थ १ जुलाई को कलकत्ते के किले का निशान गिरा था और ३१ तोपें दागी गई थीं। लार्ड हेस्टिंग्स के बाद और किसी का ऐसा सम्मान नहीं किया गया था। वेस्टमिनिस्टर ऐबे में इन को समाधि दी गई है।

१६. महाराजाधिराज जार

ता. १३ मार्च (१८८१ ई.) रविवार के दिन रूस के शाहनशाह जार राजकीय गाड़ी में बैठकर मजदूरों से अपने मयन में जाते थे कि इस बीच में किसी दुष्ट ने कुलफीदार गोला उन की गाड़ी के नीचे फेंका। परंतु वार खाली गया। तब दूसरा फेंका। इस बेर गोला फूट गया और उस के भीतर की बारूद और गोलियों ने चारो ओर उड़ कर गाड़ी को विध्वंस किया। और जार के पैरों का पता न लगा। केवल दो घण्टा प्राण रहा, पश्चात् शाहनशाह रूस पंचत्व को प्राप्त हुए। इस गोले ने कई मनुष्यों का प्राण लिया। इस दुष्ट घातक के पकड़ने का शोध हुआ और पकड़ा गया। इस की अवस्था केवल २१ वर्ष की है; नाम इस का रोसा काफ है। यह खनन विद्या में निपुण है। पहले तो इस दुष्ट ने अपने अपराध को अस्वीकार कर के बचाव किया था, पर यह गुप्तभाव कब छिपे। अंत में इस ने सब कुछ अपने मुख से प्रगट किया। इस घोर विपत्ति से रूस में हाहाकार मचा है। यूरोप के लोगों को भी बड़ा दुःख हुआ है। राजकुमार जारविच रूसी राज्य के उत्तराधिकारी अपने पिता के पद पर नियुक्त हुए और उन का राजकीय नाम "तृतीय एलेक्जेंडर" रक्ख गया है। इयूक आफ एडिम्बरा सप्लीक सेंटपीटर्सबर्ग में गये हैं। इंग्लैंड में इस मास भर अधिकारी लोग शोचसूचक वस्त्र धारण करेंगे। हाउस आफ कामंस और लाईस की तरफ से दुःख सात्वन पत्र भेजे जायेंगे। निहिलिस्ट लोग इस दुष्ट कर्म के करने में बहुत दिन से लगे हुए थे और कई बेर जो नहीं सो कर चुके थे पर शाहनशाह की आयुष्य थी, इस से इनका यत्न पूरा नहीं होता था। अब की इन्होंने अपना दुष्ट संकल्प पूरा किया। शाहनशाह रूस जैसे शूर और पराक्रमी थे सो समस्त भूमंडल में प्रख्यात ही है।

इस महान् व्यक्ति का जन्म सन् १८१८ में हुआ। उस समय इन के चाचा अलेक्जेंडर प्रथम रूस के राजसिंहासन पर थे। इन की पूरी सात वर्ष की अवस्था भी नहीं हुई थी कि इन के चाचा साहब स्वर्गवासी हुए। मृत अलेक्जेंडर के भाई कांसटेंटाइन ने राज्य के भार से मुख मोड़ लिया था, इस कारण जार के पिता निकोलास को गद्दी मिली और ये युवराज हुए। इस के अनंतर रूसी सैनिक लोगों में बलवा उत्पन्न हुआ और वह कई दिन तक रहा। इन बलवाइयों का नाम "डेकाब्रिस्ट्स" था और ये लोग राजकीय कुटुंब के पूर्ण शत्रु थे। इन का यह संकल्प था कि जैसे जर्मनी के छोटे छोटे हिस्से हो गए हैं, वैसे ही इस राज्य के भी हो जावें। परंतु बहुत सी अन्य प्रामाणिक सैन्य समूह ने प्रथम निकोलास को इन के पराजय करने में बड़ी ही सहायता दी, जिस ने इन का दुष्ट संकल्प निर्मूल हो गया। सन् १८२५ में राजकीय व्यवस्था भली भाँति स्थापित करके निकोलास अपनी इच्छानुसार राज करने लगे। जार की माता प्रुशिया के सम्राट तृतीय फ्रेडरिक की कन्या थीं।

इन्होंने ने स्वयं अपने लड़के जार को विद्या सिखाई, परंतु इस बात से इन के पिता अप्रसन्न रहते थे। उन्होंने जार को फौजी गवर्नरों और निपुण शिक्षकों के पास विद्योपार्जन के निमित्त बैठया। इस बात को जार ने अनहित समझ अपने को उस शिदा से हटाया और देश देश पर्यटन करने लगे और कुछ काल तक अपनी माला की संबंधिनी स्त्रियों के सहवासी रहे। ये राजकीय प्रबंधों से बहुत प्रसन्न रहते थे। सैनिक कामों में इन का मन कुछ भी नहीं लगता, जो बात रूसी राज दरबार के संपूर्ण विरुद्ध थी। इस विषय में पूर्ण चिंतना और यह कल्पना होने लगी कि इस युवराज के अधिकार में पुराने रूसी समूह क्योंकर रहने पावेंगे। यह बात इन के भाई फ्रांइयूक कांस्टेन्टाइन के लिये परमोपयोगी थी। इन दोनों भाइयों में इस कारण ईर्ष्या उत्पन्न हुई। सामान्यतः इस बात की चर्चा होने लगी और कभी कभी लड़ाई भी हो जाती थी।

एक समय की बात है कि इन के भाई कांस्टेन्टाइन ने जो समुद्रीय सेना के एडमिरल थे, इतनी अधिक शत्रुता इन पर की कि ये कैद कर लिए गए। इस व्यवहार के पल्टे निकोलस ने यही दंड देना कांस्टेन्टाइन को योग्य समझा। इस आपुस के विरोध से इनके पिता को बड़ा शोक रहता था। जब कि सन् १८४३ में अलेक्जेंडर का प्रथम पुत्र जन्मा तब निकोलस ने कांस्टेन्टाइन से शपथ ली कि वह युवराज का आज्ञाकारी रहेगा। निदान निकोलस ने अपने मरने के समय दोनों लड़कों को बुलाकर उन के समक्ष अलेक्जेंडर को राज्याधिकार का तिलक दे दिया और इन दोनों से शपथ ली कि आपुस में विरोध रहित राज्य प्रबंध में सन्मद रहें, जिस से प्रजा और राज्य को हानि न पहुँचे। यह सुन शाहजादे ने बड़े बड़े प्रधान मंत्रियों के सन्मुख प्रतिज्ञा की कि राज्य प्रबंध हम भलीभाँति करेंगे और अपने को द्वितीय अलेक्जेंडर के नाम से विख्यात किया। उसी दिन अपराह्न समय सब राजकीय और सैनिक कर्मचारियों ने जो सेन्टपीटर्सबर्ग में थे आज्ञाकारिता स्वीकार की और भेंटें दीं। एक कौंसिल जो नवीन अलेक्जेंडर के लिए नियत हुई थी उस में यह विचार ठहरा कि जो युद्ध उस से और अन्य राज्यों से हो रहा है वह हुआ करे। अलेक्जेंडर का प्रथम काम यह था कि उस ने समग्र राज्यभर में अपने नाम और राज्यसिंहासन पर स्थित होने का विज्ञापन दिया और उस में यह आशय प्रगट किया कि मुख्य अभिप्राय मेरा यह है कि जिस प्रकार से पीटर, कैथराइन, अलेक्जेंडर प्रथम के समय से राज्य की प्रभा और वैभव बढ़ती आई है और वैसी ही बढ़ा करे। जेनरल रुडीगर को वास नामक स्थान से बुलाकर राजकीयगाँव की कमान दी और अपनी शान, शौकत के मुआफिक सेना भरती की; वाणिज्य की उन्नति में भी बड़ी चेष्टा की। राज्य में बहुत से गुलाम जो सरदार लोगों के पास थे उनमें से २३०००००० गुलामों को दासत्व भाव से मुक्त कराया। यही नहीं बरन् उन को पेट भरने का उद्योग भी बतला दिया। निस्संदेह यह काम जार का, जो सन् १८६१ में हुआ था, अत्यंत प्रशंसा के योग्य है। इन्होंने सरकारी कालेज स्थापित किए। देश देश में सभा नियत कराई। फेब्रुअरी सन् १८६८ में पोलैंड गुलामों को भी स्वाधीन किया। इस के करने का अभिप्राय यह था कि पोलैंड के सरदारों का ऐश्वर्य न्यून हो जाय, क्योंकि पूर्व में उस भूमि के स्वामी बेही लोग थे। जार की विद्याविभाग की ओर दृष्टि इतनी अधिक बढ़ी थी कि उन्होंने यूरोप के कालिजों के समान अपनी राजकीय पाठशाला में बड़े बड़े पद स्थापित किए थे और यह प्रबंध बड़ा ही उत्तम था कि प्रत्येक सुबे की ओर से मेंबर भरती होते थे। इन की सभा प्रथम सन् १८६५ में हुई थी, जिस से बहुत कुछ उपकार के पलट्टे अपकार की संभावना भी हुई। जार ने अपनी प्रजा को युद्ध विद्या में बहुत निपुण किया और राज्य में पंचायती कोट न्याय करने की स्थापित कर दिए। सन् १८६६ में इन्होंने बुखारे के अमीर से लड़ाई प्रारंभ की, जो डेढ़ वर्ष तक होती रही। इस में रूसी लोग विजयी हुए और समरकंद पर अपना अधिकार जमा लिया। सन् १८६८ में जार ने अपना अमेरिका प्रदेश यूनाइटेड स्टेट्स की गवर्नमेन्ट अमेरिका के हाथ १४०००००० रुपये को बेंच दिया। जब फ्रेंच और जर्मन में लड़ाई होने लगी और जर्मन लोगों ने पैरिस नामक स्थान को घेर लिया तब जार ने सन् १८५६ के संधिपत्र को (जिस से बल्गर्सी की सीमा बाँधी गई थी) मानना अंगीकार किया। इस से बड़े बड़े राष्ट्रों की बड़ी कठिनाता देख गड़ने लगी। सन् १८७१ में इस निमित्त एक कान्फरेन्स हुआ, जिस में जार के इच्छानुरूप संधिपत्र स्थापित हुआ। सन् १८७२ में जब चार बर्लिन नगर को गए तो जर्मन और ऑस्ट्रिया के सम्राट से भेंट किया। ये दोनों महाराज सेन्टपीटर्सबर्ग में थे। शाहनशाह की भेंट के लिए निर्मात्रित होकर आए थे। उस अवसर में बड़ा उत्सव हुआ था। सन् १८७३ में जेनरल कॉफमैन ने खोवा को अधिकार में लाकर इस का कुछ खंड रूसी महाराज्य में जोड़ा था। सन् १८७४ में इन्होंने अपने राज्य के चारों ओर

पर्यटन किया। जहाँ जहाँ इन का गमन होता था वहाँ वहाँ की प्रजा बड़ी धूम धाम से इनका आदर सम्मान करती थी। सन् १८७५ में इनके जेनरल कॉफमैन ने कोखंद नामक स्थान को सर किया और सब्ज दरिया का उत्तर भाग अपने अधिकार में करके मस्कविट के राज्य को मिला लिया। सन् १८७६ में जब टर्की और सर्बिया के बीच में युद्ध प्रारंभ हुआ, उनमें इन्होंने कुछ स्वयं सहायता किसी को नहीं की। हाँ, रूसी लोग सर्बिया की सैन्य समूह में गए थे। जब तुर्क लोगों ने अलेक्जिनाक को फतः कर लिया उस समय कुस्तुन्तुनिया में रहने वाले वकील ने सुल्तान को छ सप्ताह तक युद्ध बंद करने के लिये एक निवेदनपत्र प्रदर्शित किया था, जिसे सुल्तान ने मान्य किया। सन् १८७७ में टर्की और सर्बिया के मध्य एक संधिपत्र हुआ और इसी वर्ष में यूरोप के सब राजों के वकीलों का कुस्तुन्तुनिया में कान्फरेंस हुआ था, उसमें जो व्यवस्था नियत हुई सो टर्की के सुल्तान को माननीय न हुई, उस कारण जार ने टर्की से लड़ने का उद्देश प्रगट किया। इस युद्ध में तुर्क लोग बड़ी शूरता से लड़े, परंतु तुर्की लोग पराजित हुए।

उस समय रूसी सेना कुस्तुन्तुनिया के द्वार तक पहुँची थी। सन् १७७८ ता. १९ फेब्रुअरी को एक संधिपत्र स्थान स्टेफेनो में हुआ, जिस के नियम वॉर्लिन के कान्फरेंस में कुछ परिवर्तन हुए थे। जार का चित्त सर्वदा धर्म विषय में लगा रहता था, इसी कारण ये सब भजनमंदिरों के अध्यक्ष हुए थे; परंतु ये रोमनकैथलिक चर्च से द्वेष रखते थे। जार के ऊपर दो मारण-प्रयोग हुए — प्रथम सन् १८६६ ता. १६ एप्रिल को ज्योंही ये गाड़ी पर सवार होते थे कि एक काराकोजोव विद्यार्थी ने गोली चलाई, परंतु एक कारीगर ने उसी क्षण अपने बुद्धिबल से उस विद्यार्थी के हाथ को फेर दिया, इस कारण निशाना उस का खाली गया।

इस बात को देखकर जार ने उस कारीगर कामिसरोफ नामक को उच्च पदवी का सरदार बनाया। द्वितीय सन् १८६७ में ता. ६ जून को पारिस में पोल जाति के बरेजोवास्की नामक पुरुष ने इन पर गोली चलाई थी, उस समय जार अपने दोनों पुत्र और शाहनशाह नेपोलियन के साथ गाड़ी में बैठे थे। परंतु कुशल हुई, कि गोली किसी को न लगी केवल एक अर्दली सवार का घोड़ा जख्मी हुआ। दूसरी गोली वह दुष्ट छोड़ता ही था कि बंदूक की नली फट गई और उसी के हाथ में जा लगी। जार का विवाह ता. २८ एप्रिल सन् १८४१ में हेंस की राजकन्या मेरिया एलेक्जान्द्रोविना से हुआ, जिससे संतति बहुत हुई। ज्येष्ठ पुत्रस्वर्गवासी निकोलस का जन्म ता. २२ सेप्टेम्बर सन् १८४३ में हुआ था जो सन् १८६५ में मृत्यु के वश हुआ। द्वितीय पुत्र एलेग्जेंडर ता. १० मार्च सन् १८८५ में जन्में और उन का विवाह ता. ९ नवम्बर सन् १८६६ में डेनमार्क की राजकन्या मेरिया फेडोरविना से हुआ। इन की राजकन्या डचेज मेरी का विवाह ता. २३ जनवरी सन् १८७४ में इंग्लैंड के राजकुमार ड्यूक आफ एडिम्बरा से हुआ।

Francis I King of France.

इन का जन्म सन् १४९४ सेप्टेम्बर की १२ वीं तारीख को दो पहर बाद १० घंटा ३७ मिनट पर। जन्मदेश का अक्षांश याम्य ४८ अंश, उस समय दशम का विपुवांश ३३ अंश ४८ कला, दशम लग्न ११ राशि ६ अंश, जन्म लग्न ३ राशि ५ अंश ५६ कला।

सायना: स्पष्ट ग्रहा:

र.	च.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	ग्रहा:
५	१०	६	४	४	५	११	रा.
२८	२७	१९	१५	२३	२३	१०	अ.
३९	३०	१०	५०	१५	५४	२२	क.

दक्षिण चन्द्र क्रांति १० अंश २ कला। दक्षिण शनिक्रांति: ९ अंश ४३ कला।

जन्म कुंडली



Charles V Emperor of Germany

इन का जन्म सन् १५०० फेब्रुअरी की चौबीसवीं तारीख आधीरात के बाद २ घन्टा ३९ मिन्ट । जन्मस्थान का अक्षांश याम्य ५२ अंश । उस समय दशम का विषुवांश २२० अंश, दशम लग्न ७ राशि १२ अंश २७ कला, जन्म लग्न ९ राशि ५ अंश ४४ कला ।

सायनाः स्पष्ट ग्रहाः

र.	च.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	ग्रहाः
११	९	११	११	१	११	१	रा.
१४	६	१९	२६	२४	७	१७	अ.
३०	४५	३६	४०	४०	२९	३७	क.

जन्म कुंडली



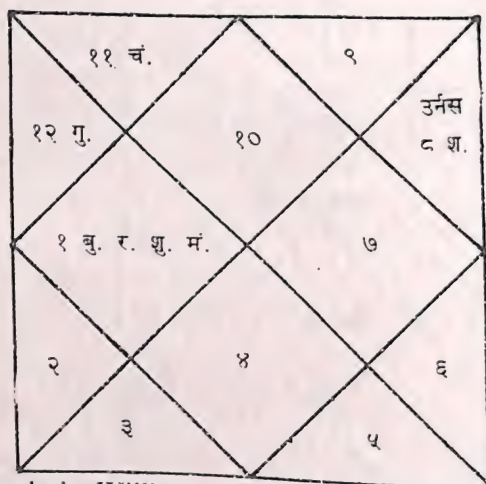
Napoleon III Emperor of France.

इन का जन्म सन् १८०८ एप्रिल की २० वीं तारीख की आधीरात के बाद १ घंटा पर । जन्मस्थान प्यारिस, दशम का विषुवांश २२२ अंश ५६ कला, दशम लग्न ७ राशि १५ अंश २४ कला, जन्म लग्न ९ राशि १ अंश २४ कला ।

सायनाः स्पष्ट ग्रहः संक्रांतयः

र.	च.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	उर्नस	ग्रहाः
०	१०	०	०	०	११	७	७	रा.
२९	२६	२	२	२९	९	२०	३	अ.
४५	२९	३२	२	५३	२४	२४	८	क.
क्रा ३	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ३	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ६	
११	७	१	०	११	८	१५	१२	अ.
२४	४६	१८	३८	७	५५	२८	३	क.

जन्म कुंडली



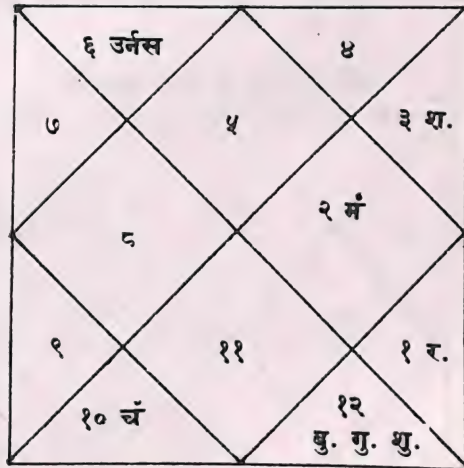
Frederic William V Emperor of Germany.

इन का जन्म सन १७९७ मार्च की २२ वीं तारीख को दो पहर के बाद दो बजे पर । जन्मस्थान बर्लिन, दशम विषुवांश ३० अंश ३० कला ४४ विकला, दशम लग्न १ राशि २ अंश ३३ कला, जन्म लग्न ४ राशि १८ अंश ५ कला ।

सायनाः स्पष्ट ग्रहाः संक्रांतयः

र.	च.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	उर्नस	ग्रहाः
०	९	११	११	१	११	२	५	रा.
२	२५	७	१४	१५	२७	२१	९	अ.
२५	२४	२२	५२	२८	३६	४८	५९	क.
क्रा ३	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ६	क्रा ३	क्रा ६	क्रा ३	क्रा ३	
०	२३	१०	७	१७	१	२२	८	अ.
५८	३०	४६	१९	२	५६	१२	३५	क.

जन्म कुंडली



महाराज मल्हार राव की जन्म कुण्डली



महाराज के प्रस्तुत दशा का कारण लग्नेश ७, भौम है दशमेश रवि १ तनु भावि दोनों का परस्पर दृष्टि योग है ।

लग्नकर्माधिनेतारौ अन्योन्याश्रयि संस्थितौ ।
राजयोगावितिप्रोक्तौ विख्यातौविजयीभवेत् ॥११॥

टीपू सुल्तान की जन्म कुण्डली



सिकन्दर की जन्म कुण्डली



रावण की जन्म कुण्डली



पुरावृत्त-संग्रह

अर्थात्

इतिहास सम्बन्धी बात

इस संग्रह में ज्यादातर प्राचीन काल की प्रशस्तियां और दान पत्र हैं। इसमें सन् १८७२ से १८७४ के बीच लिखे गये और एक १८८२ का प्रकाशित लेख है। इनका संग्रह कब और कहाँ से हुआ इसका उल्लेख कहीं नहीं मिला है। — सं.

(इस प्रबंध में प्राचीन पुस्तकें तथा राजा, बादशाह आदि के वृत्त और आरंभ में सर्कारी अमलदारी की दशा जो कुछ हाथ लगेंगी प्रकाशित होगी।)

१. अकबर और औरंगजेब

काशी में राजा पटनीमल्ल बहादुर अग्रवाल कुलके भूषण हो गए हैं। इन के उद्योग, अध्यवसाय, साहस, धर्मनिष्ठा, गंभीर गवेषणा, बुद्धि और अपूर्व औदार्य सभी गुण प्रशंसा के योग्य हैं। कई बेर राजविप्लव में ऐसे लुट गए कि कुछ भी पास न रहा, किंतु अपने उद्योग से फिर करोड़ों की संपत्ति पैदा किया। गया, काशी, मथुरा, वैतरणी, किस तीर्थ में इन के बनाए मंदिर, घाट, तालाब, आदि नहीं हैं। कर्मनाशा का पक्का पुल अद्यापि इनकी अतुल कीर्ति का चिन्ह वर्तमान है। फारसी विद्या के ये पारंगत थे। काशीखंड का संपूर्ण फारसी में इन्होंने स्वयं अनुवाद किया है। और भी कई ग्रंथों का हिंदी और फारसी में इन्होंने अनुवाद कराया था। वेद, स्मृति, पुराण, काव्य, कोष आदि विषय मात्र की पुस्तकें इन्होंने संग्रह की थीं। फारसी पुस्तकों के संग्रह की तो कोई बात ही नहीं, अंगरेजी यद्यपि स्वयं नहीं जानते थे किंतु दस पंद्रह हजार की पुस्तक अंगरेजी भाषा की संग्रह की थीं और सब के ऊपर फारसी में उस का नाम, विषय, कवि, मूल्य आदि का वृत्तांत लिखा हुआ था। उनका सरस्वती भंडार और औषधालय तीन लाख रुपये का समझा जाता था। किंतु हाय ! वह अमूल्य भंडार नष्ट हो गया। कीट, दीमक, छुईमुई, चूहे आदि उन अमूल्य ग्रंथों को खा गए। उनके स्वकार्य निपुण छ प्रौत्र और अनेक प्रपौत्रों के होते भी यह अमूल्य संग्रह भस्मावेष हो गया। मैंने दो बेर इस भंडार का दर्शन किया था। रुपये का चार आना तो पहली ही बेर देखा था, दूसरी बेर एक आना मात्र बचा पाया। सो भी खंडित छिन्न भिन्न। इस पुण्य-कीर्ति-उदार मनुष्य की उदारता और अध्यवसाय और उसके संग्रहीत वस्तु की यह दुःशा देख कर मेरी छाती फट गई। इस्कन्दरिया का पुस्तकालय मानो अपनी आँखों से जला हुआ देख लिया। अस्तु ! ईश्वर की यही गति है !! नाशान्ताः सद्यः सर्वे !!!

उन के प्रपौत्र और अपने फुफेर भाई राय प्रहलाद दास से कह कर उस संग्रह की भस्मावशिष्ट हड्डियों में से मैं टूटे फूटे दस पाँच ग्रंथ ले आया हूँ। इन में कुछ सर्कारी पुराने छपे हुए कागज और कुछ खंडित पुस्तकें हैं। इस प्रबंध में बहुत सी बात उन्हीं सबों में से चुन कर लिखी जायँगी, इस हेतु उस संग्रहीतनामा महापुरुष का भी थोड़ा वृत्तांत लिखे बिना जी न माना।

प्रकृति मनुसरामः

मैने बादशाहदर्पण नामक अपने छोटे इतिहास में अकबर और औरंगजेब की बुद्धि और स्वभाव का तारतम्य दिखलाया है। अब पूर्वोक्त राजा साहब की अंगरेजी किताबों में सन् १७८२ से लेकर १८०२ तक के जो पुराने एशियाटिक रिसर्चज के नंबर मिले हैं, उन में जोधपुर के राजा जसवंत सिंह का वह पत्र भी मिला है जो उन्होंने औरंगजेब को लिखा था और श्रीयुक्त राजा शिवप्रसाद सी. एस. आई. ने भी अपने इतिहास में जिस का कुछ वर्णन किया है तथा मेरे मित्र पंडित गणेश राम जी व्यास ने मुझ को कुछ पुस्तकें प्राचीन दी हैं, उन में महाकवि कालिदास के बनाए सेतुबंध काव्य की टीका मिली है, जिस में कुछ अकबर का वर्णन है। इन दोनों को हम यहाँ प्रकाश करते हैं, जिस से पूर्वोक्त दोनों बादशाहों का स्पष्ट चित्त और विचार policy प्रकट हो जायगी।

यह टीका राजा रामदास कछवाहे की बनाई है। अपना वंश उस ने यों लिखा है। कुलदेव को क्षेमराज, उन के पुत्र भाणिक्य राय, फिर क्रम से मोकलराय, घोरराय, नापाराय (उन के पोत्र) पातलराय, खाना-राय, चंदाराय और उदयरज हुए। इन्हीं उदयरज का पुत्र रामदास हुआ, जो सर्व भाव से अकबर का सेवक है। अकबर के विषय में वह लिखता है:—

श्लोक।

आभेरोरासमुद्रादवति वसुमती यः प्रतापेन तावत् ।
दूरे गाः पाति मृत्योरपि करममुचत्तीर्थवाणिज्य वृत्योः ।
अप्यश्रौषीत् पुराण जपति च दिनकृन्नाम योगं विधत्ते ।
गंगाम्भोर्भिन्नमम्भो न च पिवति जयत्येषजल्लालुदीन्द्रः ॥३॥
अंग-वंग-कलिंग-सिलिहट-तिपुरा-कामता-कामरूपा
नान्धं कर्णाट-लाट द्रविड-मरहट द्वारका-चोल-पाण्ड्यान् ।
भोटान्नं मारुवाग्नेत्कलमलयखुरासानखान्धारजाम्बू ॥
काशी-काश्मीर ढक्का बलक-बदखशा-काबिलान् यः प्रशास्ति ॥४॥
कलियुगमहिमाऽपचीयमानश्च तिसुरभिद्विजधर्मरक्षणाय ।
धृतसगुणतनं तमप्रमेयं पुरुषमकल्बरथाहमानतोस्मि ॥५॥

अर्थ — जो समुद्र से मेरु तक पृथ्वी को पालता है, जो मृत्यु से गडों की रक्षा करता है, जिस ने तीर्थ और व्यापार के कर छुड़ा दिए, जिस ने पुराण सुने, जो सूर्य का नाम जपता, जो योग धारण करता है और गंगाजल छोड़कर और पानी नहीं पीता उस जलालुदीन की जय ॥३॥

अंग वंग कलिंग सिलहट तिपुरा कामता (कामटी ?) कामरूप अंध कर्णाटक लाट द्रविड महाराष्ट्र द्वारका चोल पाण्ड्य भोट मारवाड़ उड़ीसा मलय खुरासान कंदहार जम्बू काशी ढाका बलख बदखशा और काबुल को जो शासन करता है ॥४॥

कलियुग की महिमा से घटते हुए वेद गऊ द्विज और धर्म की रक्षा को सगुण शरीर जिस ने धारण किया है उस अप्रमेय पुरुष अकबरशाह को हम नमस्कार करते हैं ॥५॥

पाठक गण ! अकबर की महिमा सुनी। यह किसी भाट की बनाई नहीं है, एक कट्टर कछवाहे क्षत्रिय महाराज की बनाई है, इसी से इस पर कौन न विश्वास करेगा। उसने गो-वध बंद कर दिया था यह कवि परंपरा द्वारा तो श्रुत था, अब प्रमाण भी मिल गया। हिंदूशास्त्रों को वह सुना करता था। यह तो और इतिहासों में लिखा है कि वह आदित्यवार को पवित्र समझता था। देखिए उसके इस कार्य से, गायत्री के देवता सूर्य के आदर से, हिंदूमात्र उससे कैसे प्रसन्न हुए होंगे। मैं समझता हूँ कि उस समय सूर्यवंशी राजा बहुत थे और सूर्य को यह सम्मान दिखा कर अकबर ने सहज उन लोगों का चित्त वश कर लिया था। योग साधने से हिंदुओं की प्रसन्नता और शरीर की रक्षा दोनों काम हुए। विशेष यह बात जानी गई कि वह गंगाजल छोड़ कर और पानी

नहीं पीता था। यह उस की सब क्रिया हिंदुओं को वश करने को एक महामोहनास्त्र थीं। इसी से उसको परमेश्वर का अवतार तक कहने में हिंदुओं ने संकोच न किया। उसको लोग जगद्गुरु पुकारते थे, यह आगे वाले महाराज जसवंत सिंह के पत्र से प्रकट होगा। इसके विरुद्ध औरंगजेब से हिंदुओं का जी कैसा दुःखी था और उस समय राज्य की भी कैसी अवन्ति थी यह भी इस पत्र ही से प्रकट हो जायगा, हम विशेष क्या लिखें

विदित हो कि इस पत्र के लेखक महाराज जसवंत सिंह जोधपुर के महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे। सन् १६३८ में गजसिंह युद्ध में मारे गए। अपने बड़े पुत्र अमर सिंह को अति क्रूर और प्रजापीड़क समझ कर गज सिंह ने त्याग कर दिया। यही अमर सिंह फिर शाहजहाँ के दरबार में रहा और वहाँ भी अपनी उदत्तता से एक दिन काम पर हाजिर नहीं हुआ। इस पर शाहजहाँ ने उस पर जुर्माना किया। जुर्माना अदा कराने को सलाबत खाँ खजानची को भेजा। उस का भी अमर सिंह ने निरादर किया। इस पर बादशाह ने उस को दरबार में बुला भेजा। यह अति क्रोधावेश में एक कटार लिए हुए दरबार में निर्भय चला गया। बादशाह को क्रोधित देख कर रोषानल और भी भड़का। पहले सलाबत का प्राण संहार किया फिर वही शस्त्र बादशाह पर चलाया। खंभे में लग कर कटार गिर पड़ी, किंतु उस आघात में बल इतना था कि खंभे का दो अंगुल पत्थर टूट गया।^१ दरबार में चारों ओर हाहाकार हो गया। पाँच बड़े बड़े मोगल सदाँरों को अमर ने और मारा। अंत में उसको उसका साला अर्जुन गोरा (बूँदी का राजकुमार) पकड़ने चला, तो उससे लड़ा और उसी की तलवार से गिरा भी। अब तक तख्त पर लहू की छींट और टूटा हुआ खंभा उस के वीर दर्प का चिन्ह आगरे के किले में विद्यमान है। लाल किले का दरवाजा, जिससे अमर सिंह आया था, बुखारा दरवाजा कहलाता था; उस दिन से अमर फाटक कहलाता है। उसके सरदार चंपावत गोती और कंपावत गोती भी दरबार में अपनी निज सैन्य लेकर घुस आए और बहुत से मुगलों को मार कर मारे गए। अमर सिंह की स्त्री बूँदी की राजकुमारी पति का देह लेने को उसी हल्ले में अपने योद्धाओं को लिये किले में चली आई और देह ले गई और डेरे में जा कर सती हो गई। इस घटना के वर्णन में राजपुताने में कई ग्रंथ, ख्याल आदि बने हैं और अब तक इस लीला को नट, सुथरेसाही, जोगी, भवैये, गवैये गाया करते हैं।

अथ पत्र

"सब प्रकार की स्तुति सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को उचित है और आप की महिमा भी स्तुति करने के योग्य है, जो चंद्र और सूर्य की भाँति चमकती है। यद्यपि मैंने आज कल अपने को आप के हाथ से अलग कर लिया है किन्तु आपकी जो सेवा हो उसको मैं सदा चित्त से करने को उद्यत हूँ। मेरी सदा इच्छा रहती है कि हिंदुस्तान के बादशाह रईस मिर्जा राजे और राय लोगों यथा ईरान तूरान रूम और शाम के सरदार लोग और सातों बादशाहत के निवासी और वे सब यात्री जो जल या थल के मार्ग से यात्रा करते हैं मेरी सेवा से उपकार लाभ करें।

यह इच्छा मेरी ऐसी उत्तम है कि जिसमें आप कोई दोष नहीं देख सकते। मैंने पूर्वकाल में जो कुछ आप की सेवा की है, उस पर ध्यान कर के मुझ का अति उचित जान पड़ता है कि मैं नीचे लिखी हुई बातों पर आप का ध्यान दिलाऊँ, जिसमें राजा और प्रजा दोनों की भलाई है। मुझ को यह समाचार मिला है कि आप ने मुझ शुभचिंतक के विरुद्ध एक सेना नियत की है और मैंने यह भी सुना है कि ऐसी सेनाओं के नियत होने से आपका खजाना जो खाली हो गया है उस को पूरा करने को आप ने नाना प्रकार के कर भी लगाए हैं।

आप के परदादा मुहम्मद जलालुद्दीन अकबर ने, जिनका सिंहासन अब स्वर्ग में है, इस बड़े राज्य को ५२ बरस तक ऐसी सावधानी और उत्तमता से चलाया कि सब जाति के लोगों ने उससे सुख और आनंद उठाया। क्या ईसाई, क्या मूसाई, क्या दाऊदी, क्या मुसलमान, क्या ब्राह्मण, क्या नास्तिक सब ने उनके

-
१. आनि के सलाबत खाँ जोर के जनाई बात तोरि घर पंजर करेजे जाय करकी। दिल्लीपति नाह के चरन चलबे को भए गाज्यो राजसिंह को सुनी है बात बरकी॥
 - कहै 'बनवारी' बादशाह के तख्त पास फरकि फरकि लोथ लोथन सी अरकी।
 - हिंदुन की हब सह राखी तैं अमर सिंह कर की बड़ाई के बड़ाई जमघर की॥

राज्य में समान भाग से राजा का न्याय और राज्य का सुख भोग किया । और यही कारण है कि सब लोगों ने एक मुँह होकर उनको जगत्गुरु की पदवी दिया था ।

शाहनशाह मुहम्मद नूरुद्दीन जहाँगीर ने, जो अब नन्दनवन में बिहार करते हैं, उसी प्रकार २२ वरस राज्य किया और अपनी रक्षा की छाया से सब प्रजा को शीतल रक्खा । और अपने आश्रित या सीमास्थित राजवर्ग को भी प्रसन्न रक्खा और अपने बाहु बल से शत्रुओं का दमन किया ।

वैसे ही परम प्रतापी शाहजहाँ ने बत्तीस वरस राज्य करके अपना शुभ नाम अपने गुणों से विख्यात किया ।

आप के पूर्व पुरुषों की यह कीर्ति है । उन के विचार ऐसे उदार और महत थे कि जहाँ उन्होंने चरण रक्खा, विजय लक्ष्मी को हाथ जोड़े अपने सामने पाया और बहुत से देश और द्रव्य को अपने अधिकार में किया । किंतु आप के राज्य में वे देश अब अधिकार से बाहर होते जाते हैं और जो लक्षण दिखलाई पड़ते हैं उनसे निश्चय होता है कि दिन दिन राज्य का क्षय ही होगा । आप की प्रजा अति दुःखी है और सब देश दुर्बल पड़ गये हैं । चारों ओर से वस्तियों के उजड़ जाने की और अनेक प्रकार की दुःख ही की बातें सुनने में आती हैं । जब बादशाह और शाहजादों के देश की यह दशा है तब और रईसों की कौन कहे । शूरता तो केवल जित्वा में आ रही है । व्यापारी लोग चारों ओर रोते हैं । मुसलमान अव्यवस्थित हो रहे हैं । हिंदू महा दुःखी हैं, यहाँ तक कि प्रजा को संध्या को खाने को भी नहीं मिलता और दिन को सब मारे दुःख के अपना सिर पीटा करते हैं ।

ऐसे बादशाह का राज्य के दिन स्थिर रह सकता है, जिसने भारी कर से अपने प्रजा की ऐसी दुर्दशा कर डाली है ? पूरब से पश्चिम तक सब लोग यही कहते हैं कि हिंदुस्तान का बादशाह हिंदुओं का ऐसा द्वेपी है कि वह ब्राह्मण से बड़ा योगी वैरागी और संन्यासी पर भी कर लगता है और अपने उत्तम तैमूरी वंश को इन धनहीन उदासीन लोगों को दुःख देकर कलंकित करता है । अगर आप को उस किताब पर विश्वास है जिस को आप ईश्वर का वाक्य कहते हैं तो उसमें देखिए कि ईश्वर को मनुष्य मात्र का स्वामी लिखा है, केवल मुसलमानों का नहीं । उस के सामने गबर और मुसलमान दोनों समान हैं । नाना रंग के मनुष्य उसी ने इच्छा से उत्पन्न किये हैं । आप के मसजिदों में उस का नाम लेकर चिल्लाते हैं और हिंदुओं के यहाँ देवमंदिरों में घंटा बजाते हैं, किन्तु सब उसी को स्मरण करते हैं । इससे किसी जात को दुःख देना परमेश्वर को अप्रसन्न करना है । हम लोग जब कोई चित्र देखते हैं, उसके चित्तों को स्मरण करते हैं और कवि की उक्ति के अनुसार जब कोई फूल सूँघते हैं उसके बनाने वाले को ध्यान करते हैं ।

सिद्धांत यह है कि हिंदुओं पर जो आप ने कर लगाना चाहा है वह न्याय के परम विरुद्ध है । राज्य के प्रबंध को नाश करने वाला है और बल को शिथिल करने वाला है तथा हिंदुस्तान के नीति रीति के अति विरुद्ध है । यदि आप को अपने मत का ऐसा आग्रह हो कि आप इस बात से बाज न आवें, तो पहिले रामसिंह से, जो हिंदुओं में मुख्य है, यह कर लीजिए और फिर अपने इस शुभचित्त को बुलाइए । किंतु यों प्रजापीडन वा रण भग वीर धर्म उदारचित्त के विरुद्ध है । बड़े आश्चर्य की बात है कि आप के मंत्रियों ने आप को ऐसे हानिकार विषय में कोई उत्तम मंत्र नहीं दिया ।"

महात्मा कर्नेल डॉड साहब लिखते हैं कि यह पत्र महाराज जसवंतसिंह ने नहीं लिखा था, महाराणा राजसिंह ने लिखा था ।

२. कन्नौज के राजा का दानपत्र

यह प्रसिद्ध दानी कन्नौज के राजा गोविंदचंद के अन्यतर दानपत्र की प्रति है । यह राजा बड़ा ही दानी था ।

ताम्रपत्र ।

स्वास्ति

संरम्भः

अकुण्ड्रेत्कुण्डवैकुण्डकण्ठपीठलुत्करः ।

सुरतारंभे

सश्रियः श्रेयसेऽस्तुवः ॥१॥

आसीदशीतद्युति वंशजातक्षमापालमालासुदिवंगतासु ।
साक्षाद्विवस्वानिवभूरिधाम्ना नाम्ना यशोविग्रहइत्युदारः ॥२॥

तत्सुतोभून्महीचन्द्रश्चन्द्रधामनिर्भर्निर्ज ।

येनायारमकूपारं पारेव्यापारितंयशः ॥३॥

तस्याऽभूत्तनयोनयैकरसिकः क्रांतद्विषन्मंडलो

विध्वस्तादभुतवीरयोध विजितः श्रीचन्द्रदेवोनृपः ।

येनोदारतरप्रतापशमिताशेषप्रजोषद्रवं

श्रीमंगाधिपुराधिराज्यसममं दोर्विक्रमेनोर्जितं ॥४॥

तीर्थाणि काशिकुशिकोत्तरकोसलेन्द्रस्थानीयकानि परिपायताभिगम्य ॥

हेमात्मतुल्यमनिशंददता द्विजेभ्यो येनांकिता वसुमती शतशरंतुलाभिः ॥५॥

तस्यात्मजोमदनपालइतिक्षिर्तींद्रचूडामणिर्विजययेनिजगोत्रचन्द्रः ।

यस्याभिषेककलशोल्लसितैः पयोभिः प्रक्षालितंकलिरजः पटलंधरित्र्याः ॥६॥

यस्यासी द्विजयः प्रयाणसमये तुंगाचलौघश्चलन

माद्यत्कुंभिपदक्रमात्समसरत्त्र्यस्यन्महीमंडले ।

चूडारत्न विभिन्नतालुगलितस्थानास्तगुदभासिताः

शेषः पेशवशादितः क्षणमसोक्रोडेनिलीनाननः ॥७॥

तस्मादजायत निजायत बाहुबल्लिवरुद्धनवराष्ट्र गजोनरैः ।

सांद्रामतुद्रवसुधा प्रभवी गवां यो गोविंदचंद्रइति चंद्रइवांबुराशेः ॥८॥

नकथमप्यलभन्तरणक्षमां स्तिष्ठषुदिक्षुगजानथतक्षिणः ।

ककुभिवभ्रमुरभ्रमुवल्लभ प्रतिभटाइवयस्यघटागजाः ॥९॥

सोयं समस्तराजचक्रसंसेवितचरणः परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर निज भूषोपार्जित श्रीकान्यकुब्जाधिपत्य श्रीचन्द्रदेवपादानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वर श्रीमदनपाल देव पदानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वराश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति विविध विद्याविचारवाचस्पति श्रीमद्गोविन्दचन्द्रदेवो विजयी खरकापतुलयां मधुवाग्राम निवासिनो निखिलजन पदानुपगतानपि राजाराज्ञी युवराज मन्त्रिपुरोहित प्रतीहार सेनापति भांडगारिका ऽक्षपट लिकभिषग्नि मित्तिकान्तः पुरिकदूत करितुरगपत् तनाकरस्याना ऽऽगोकुलाधिकारि पुरुषान्समाज्ञापयति बोधयत्यादिशतिच यथा विदितमस्तुभवतां यथोपरिलिखितग्रामः सजलस्थलः सलोहलवणाकरः समतस्यकारः सगतींखरः समधूकाप्रवनवाटिका विटपतुगप्रतिगोचरपर्यन्तश्रुतुराघाटशुद्ध-स्वमसीमापर्यन्तः सोगांधः संवत् ११९५ माघ वदि ९ सोमदिने प्रयागे वेण्यां स्नात्वा विधिवन्मन्त्राद्देव मुनिमनुजभूत पितृणां स्तर्पयित्वा तिमिर पटल पाटन पटुसहस्रमुष्णरोचिषमु-पस्यायौषधिपतिसकलसप्तमंस मम्यर्च्य त्रिभुवनत्रातुर्वासुदेवस्य पूजां विधायप्रचुरपायसेनहविषा हविर्भुजहुत्वा मातापित्रोरात्मनश्च पुण्यशोभिषुदये कौशिकगोत्राय कौशिकावदल्य विश्वामित्र देवरातत्रिप्रवराय पण्डित श्रीकैकप्रपौत्राय पण्डित श्रीमहादित्य पौत्राय पण्डित श्रीसाक्षतपुत्रायपण्डित श्रीविद्याकचसंभाराय ब्राह्मणाय अस्सा भिर्गोर्कण-कुशलतापूतकरतलोदकपूर्वमाचन्तार्क यावदाशीसनी कृत्यप्रदत्तोमत्ताराद्यद्वयमानभाग भोग कर प्रवणिकर प्रभृति समस्तादायानां विधियाप्रयदास्यन्निति भवन्तिचात्र । श्लोकः ।

भूमियः प्रातर्गृह्णाति यश्चभूमिप्रयच्छति । उभौ तौपुण्यकर्माणौ नियतंस्वर्गगामिनौ । शंभुमन्त्रासनं छत्रं वराश्चावरवारणाः । भूमिदानस्यचिन्तानि फलमेतत्पुरंदर । सर्वनेताम्नाविनः पार्थिवेन्द्रान्भूयोभूयो याचतेरामभद्रः । सामान्योयंधर्मसेतुर्पाणां कालेकालेपालनीयोभवदिमः । बहुभिर्बभूक्ता राजभिः-सगरादिभिः । । यस्ययस्ययदाभूमिस्तस्यतस्यतदाफलं । स्थलमेकंग्राममेकं भूमेरप्येकमंगुलं । हरन्तरकमा-ज्जोति यावदाभूतसुसंलवं । ठक्कुर श्रीबालिकेन लिखितमिदम् ।

काशी क्वीन्स कालिज (Queen's College Benares) के फाटक पर यह लेख है —

तालुकदार दाउदपुर के राय पृथ्वीपाल सिंह ने
अपने कीर्ती के लिये दो द्वार रचवाये ।

(१)

रामरास बाबू सुचर, वैश्यवंश औतार ।
हर्षचन्द्र तिन के तनय, रचवाये दुईद्वार ॥

(२)

राजा पटनीमल्ल के पुत्र नारायण दास ।
रचवाये दुईद्वार यह, अचल कीर्ति के आस ॥

(३)

श्री देवकीनन्दन सूनुरासीचो जनकी पूर्वपद प्रसाद ।
तदंगजो द्वारमिदं द्रव्य धत राम प्रसन्नोपमहीश्चरोये ॥

(४)

श्री मत्त बाबू देवकीनन्दन पौत्र उदार ।
बाबू रामप्रसन्नो सिंह रचवाये यह द्वार ॥ सं. १८०७ ॥

(५)

श्री बाबू भगवानदास बड़े जनि बिदित ।
मुजापुर विच धाम तिन रचवाए द्वार दुई ॥

(६)

सुनय जानकिदास के, श्री विश्वेश्वर दास ।
रचवाए दुई दुवार वर, मुक्ति सुजस के आस ॥

(७)

राजा दर्शन सिंह के, सुत कुल अति उजियार ।
राजा रघुवरदयाल जस, चाहि किन दुई दुवार ॥

(८)

इण्डियन म्यूजियम (Indian Museum) में एक पत्थर के मुड़ेरे के एक टुकड़े पर नीचे की ओर निम्न लिखित लेख लिखा है । वह पत्थर अशोक के चारदिवाली का है, परंतु यह लेख सन् ईसवी दो सौ बरस पहले का नहीं हो सकता । यह गुप्ताक्षर में पुराचीन रीति से लिखा है —

दी पढंका कता येषां दान × × मशमनिनाचार्य्य ।

—(ः)—

अशोक के चारदिवाली के मुड़ेरे के पत्थर पर निचली ओर निम्न लिखित लेख लिखा है । यह दो लाइन (पंक्ति) में है और प्रत्येक लाइन ६ फीट लंबा है ।

१ । कारितो यन्त्रवज्रासन वृहत्तर्गभर्मुकुटी प्रमादमर्द्धत्रिकोट्यां भश्मतेर्मभुलेपकस्यपुन लटिकः गिक रेदगतुट मादन्त्यावर्कतारकं भगवते बुद्धाय × × रदानेन वृत्तप्रदीपः × राखि दिण प्रति समधने रदनी भायां च प्रदहं वृत्तप्रदीपैः गुणे शतदानेनापारेण कारितः बिहारेपि भगवते रेत्यपद ।

२ । हप्रटां पाक्षय नः धिकरो धमशत तं दं वं ग प्रदेय च च नं पं × × × × पं × × मनीनू भाधुरं लातीत तदसं सव्वं चा प्रहतत × क्षनुमत्पादितं तदेतत् सव्वं यन्मया बुद्धो प्रचेतमभारंतन ।

मेजर (Major Mead) ने बोधगया के बड़े मंदिर की एक कोठरी से एक मूर्ति निकाली थी उस के पांच के समीप निम्न लिखित लिपि थी —

इदमतितरचित्रं सर्वं सत्वानुकम्पिने ।

भवनवरमदारजितमाराय पतये ॥

सु (शु) द्वात्मा कारयामास बोधिमार्गतोयति : ।

बोधि पे (से) णो (नो) तिबिख्यातो दत्तगल्लनिवासक : ॥

भवबन्धविमुक्त्यार्थं पित्रोर्वन्धुजनस्य च ।

तथोपाध्यायपूर्वाणामाहवाग्रनिवासिनां ॥ ली ॥

ए. ग्राट साहिब (A. Grote Esqr.) प्रेसिडेन्ट बंगाल एशियाटिक सोसाइटी ने निम्नलिखित लिपि, जो एक साढ़ (नंदी) की मूर्ति के पीठ पर लिखी हुई है, एशियाटिक सोसाइटी में भेज दी थी । यह लेख कुटिलाक्षर (Kutila Character) में लिखा हुआ है । भीमकउल्ला के पुत्र श्री सुफदी भट्टारक ने यह मूर्ति संवत् ७८१ में सन्तति के लिए चढ़ाई थी ।

ए सम्ब ७८१ वैशाख वदि ९ षरूध्य ग्रामव ×××× तम भिमक उल्लासुतेन श्री सुफन्दिनभट्टारक अ (?) ग्र (?) त ततया ×× । त्मनापत्यहेतोः वृषभट्टारकप्रतिष्ठितेति ।

जनरल कनिंगहम (General Cunningham) ने बोधगया के मंदिर के फाटक के चूर के नीचे एक पत्थर देखा था जिस पर निम्न लिखित लिपि लिखी खुदी हुई है । यह लेख २० लाइन में है और कुटिलाक्षर में लिखा हुआ है ।

(१) नमोबुदाय ॥ आसीद्वृत्तनरेन्द्रबुन्दविजयी श्रीराष्ट्रकूटान्वयः श्रीमानन्द इति त्रिलोकविदितस्तेज-स्विनामग्रणीः । सत्येन प्रययेन शौचविधिना श्लाघयेन विख्यातिपतस्त्यागैः कल्प महीरुहः प्रणयिषु प्राज्ञो नरेन्द्रात्मजः ॥

(२) यो मत्तमातंगमभिद्रवन्तन्त्रेन्द्रवीर्यास्तुरगेन्द्रागामी ।

कशाभिघातेन विजित्य वीरः प्रख्यातवान्हस्तितलप्रहारः ॥

(३) दुर्गं दुर्जयमूर्धितक्षितिभुजामत्युत्तमैर्विक्रमैः श्रीमद्वम कृपाण पुण्यविभवैरुच्चैर्विजयै च यः । येनाद्यापि नरेन्द्रसंसदि सदा सम्भूतरोमोदामैर्वर्णजैर्मणिपूरदुर्गधवलः संवर्ण्य सूरिभिः ॥

(४) यः शौर्यातिशयदानल्पसद्गुणात्ख्यातो महोद्भूतः (?) सन्मार्गेण गुणावलोक इति च श्लाघ्यामभिख्यान्दधौ । गैर्यैर्बुद्धगुणाह्वयैरभिन् वस्वान्तर्विशोषोदगतैर्यशान्ते तनुमुत्तससर्ज विधि वद्योगीव तीर्थाश्रयः ॥

(५) तस्यालि सूनुर्विजितारिवर्गः प्रतापसंतापितदिग् विभागः । प्रहर्षितार्थिब्रजपदमपण्डः पूषेव पादाश्रितसर्व्व लोकः ॥

(६) धर्म्मार्थकामेषु गृहीतसारः श्रिया सदाराधिपतपादपद्मः । अरातिमातंगकुलैकसिंहस्त्रिलोकविख्यात-यशः पताकः ॥

(७) कोपे यमः कल्पतरुः प्रसादे प्रयोगमार्गप्रणयी कलानां । अगण्यविक्रान्तविलासभूमिः प्रभूतसद्वर्णशशांककीर्तिः ॥ रूपोदयैरपितचित्रयोनिर्मर्तागजारोहनलब्धशब्दः । तुरंगमाध्यासनकौशलाप्तः प्रभासते राजसु कीर्तिराजः ॥

(८) तस्यात्मजः शुभशतोदितपुण्यमूर्तिः साक्षान्मनोभव इव प्रयतात्मभावः । दृष्ट्वा विषद्विपिनवन्हिर-दीर्घदीप्तिरस्तीह तुंग इतिसान्वयनामधेयः ॥

(९) कामिनीवदनपंकजतिग्मभानुविद्वन्मनः कुमुदकाननकान्तरश्मिः शास्त्रप्रयोगकुशलः कुशलानुवर्ती धर्म्मवलोकइति च प्रथित पृथिव्याम् ॥

(१०) शैलेन्द्रस्य द्विभूताननवरतगलद्धानमत्तद्विरेफ्रेणीसंकीर्णनादप्रतिगजविजयोद्गारिभेरीविरावान् । दृष्ट्वा यो दन्तिशास्त्रे पु गुरु रिच गुरुः प्रो गु ×××× लोलः कालजः पुण्यपूतः कलायति मृगवदन्यकानवारणन्तान् ॥

(११) येनागाधतया जितो जलनिधिः शान्त्या मुनिस्तेजसा भानुः कान्ततया शशी मृगपतिः शौच्यण नीत्या गुरुः ।

कर्णस्त्यागितया विलासविधिना दैत्यद्रिषामीश्वरः वाचालापितया यथार्थपदया नैवास्ति यस्योपमा ॥

(१२) घत्ते यः श्रीनिधानं हृतकलिचलितं धर्ममामूलमुच्चैरुत्तुंगैः स्वर्गमार्गप्रणयिभिरतुलैः कीर्त्तनैः शुद्धकीर्त्तिः कुर्वतसेवामनिन्द्यामनुदिनममलैरन्नापानैर्यतीनां शिष्टैस्मत्कारयत्रैर्भव इव चलितं रावणोनाचलेन्द्रम् ॥

(१३) तेन प्रसन्नमनसा जितमारुशत्रोरुतीर्णजन्मजलधेरसू × × भवैकबन्धोः श्रीमद्रिशुद्रगुणरत्नस — विप्रेन्द्रशेखरितपादसरोजरेणोः ॥

(१४) मोहान्धकारनिघनोद्गतभास्करस्य संग्रामरेणुशमनैकघनाघनस्य । द्वेपोगोदरगणकर्मणि तार्क्ष्यस्य गिरिदारणवज्रघाम्नः ॥

(१५) स्फुज्ज्वत्प्रवादिकरियूथमुगाधिपस्य नैरात्म्यसिंहनिनदप्रविभातवितस्य । धर्म्माभिषेकपरिपूतजगत्-त्रयस्य — गुणरत्नमहार्णवस्य ॥

(१६) निम्मापिता गन्धकुटीयमुच्चैः सोपानमालेव दिवो दिदेश । गृहीतसारेण धनोदयानामनित्यता-भावितमा — ॥

(१७) तरामर्शविचक्षणेन शरत्पसन्नेन्दुमनोहरेण । मदानभिज्ञेन गुणाभिरामैरावर्जिताज्यसमागमेन ॥

(१८) मुनिरिह गुणरत्न — प्रजानामभयपथविदर्शी सन्निधत्ता सदैव । विदधदभिमतानां सिद्धिमभ्युन्नतीनामनयविमुखबुद्धेदयिकस्यास्य भूयः ॥ त देवराज सम्बत् १५ श्रावणदिनपञ्चम्यां । सिंहलद्वीपजन्मना पण्डितरत्न श्रीजनभिक्षुणा ॥

एक मूर्ति पर बोधगया में यह लेख लिखा है । यह दो पक्ति में है जो प्रत्येक ६ फीट लम्बी है । पूर्णभद्र सुमंतस के पुत्र ने इस (मूर्ति) को बनवाया था । इस से उस का और उस के वंश का कुछ वृत्तत मालूम होता है ।

१ । बावस्तस्यैव स्वसङ्घतः सङ्घः ।

२ । सिद्ध्या । परः श्रीमान् तस्य सुतः श्रीधर्मः ।

३ । धर्मिय जगती कृत्तिक प्रतापनेग्रता यातः तेनयशः

१ । सिन्धौ दातु × गजो गल्लभूमजः—

नरवर सिद्ध ग

२ । नुसपुररन्ध्री सदुदयकम् × पुनः पूतः श्री दुर्गजयसेनः

कुमा कु तर सयू शुभं

म्योधिंलासुकुत ग

१ । ये धर्म्मा हेतुप्रभवा हेतुस्तेषां तथागतः ह्यवदत् तेषाञ्चयो निरोध स्ववादी महा —

२ । श्रमणः ।

३ । श्रीसामन्तस्तदात्मजस्तस्य । श्रीपुनु भद्रनामा प्रतापेन चन्द्रमः कोतिः । द्राक्ष

१ । सु × यिष्ठो × × श्रीमान्

२ । सेनोसन द्योतः । श्रीमति उदण्डपुरे येन

३ । तिलरलकता × सिंव चन्द्रनमवृतः सुधियः ॥

महाबोधी मन्दिर के समीप एक पत्थर के टुकड़े पर खोदी हुई निम्न लिखित लिपि डबल्यू हाथोर्न (W. Hawthorne Esqr.) ने पायी थी, उस पत्थर को बचनन हमिलटन (Mr. Buchanan Hamilton) ने ईस्ट इन्डिया कम्पनी के म्यूजियम (Museum) में रख दिया था ।

नमोबुद्धाय संकलोप्यं प्रवरमहावीरस्वामिनः परमोपासकस्य देवज्ञचरणारविन्दमकरन्दमधुकर-हलकारभूपालवैश्वोत्पन्ना कृष्णनृपति गुरुह नारायण रिपुराज मतगज सिंहति रिवल महीपाल जनकेत्यादिनिजनिखेल प्रशस्ति समलंकृतं सपादलक्ष शिखरिख समेण राजाधिराज श्रीमदशोकचन्द्र-

देवकनिष्ठभ्रातृ श्रीदशरथनामधेयकुमारपादपद्मोपजीविभारादागरिक सत्यव्रतपरायणत्रिनिवर्तनीय-
बोधिसत्व चरितस्कन्धस्वकुलदीय श्री सहस्रपातु नामधेयस्य महात्मक श्रीचाट ब्रह्मसुतस्य
महामहात्मक श्री ऋषिब्रह्मपौत्रस्य यद्वत्पुरायतद्वभट्टाचार्योपाध्याय मातापित्र शवांग संगता सकल
पुण्यराशि रत्नविज्ञानफलावाप्तव इति श्रीमल्लक्षण सेनदेवपादानामतीतराज्ये सं. ७९ वैशाख वदि १२
गुरौ ।

बोधगया के बड़े मंदिर के बारहदरी के सामने एक छोटे मंदिर में एक संगमरमर के तख्ते पर
तीन लिपि खोदी हुई है । यह तख्ता कुछ नीले रंग का चार फीट लंबा और दो फीट ३ इंच चौड़ा है ।
इस के आगे की ओर दो लिपि है, पहली अपभ्रंश पाली भाषा में और दूसरी ब्रह्मा देश की भाषा में है ।
और तख्ते की पिछली ओर ३० पंक्ति ब्रह्मा देश की भाषा में है ? परंतु वह संस्कृत नहीं है । उन में
से केवल पालीलिपि को यहाँ नागरी अक्षर में प्रकाश किया है —

- १ । नमस्तस्मै भगवते अरहते सम्यक् सम्बुद्धाय ॥ जयतु ॥ बोधिभूले जिन्ना : सर्वे सर्वजुतो तथा अयं ।
जयतं धर्मगतापि बोधिप्रसादनेन सा । पथ्यावर्तश्लोक । अयं महाधर्मराजा अनेकशेनिमप्रतिच्छ-
द्वन्तगजराजस्वामि अनेकशतामं आदित्यकुलसम्मत्तान । पीतुपीतामह अव्ययकपाय्यकादिमहा
धर्मराजनं सम्यक्वि ।
- २ । पिकानं धर्मिकानं प्रवरराजवंशानुक्रमेण असम्मितक्षेत्रिय वंशजो । सन्ध्याशीलाद्यनेकगुणाधिवासो ।
दानराणेन सन्तोषमानसो । धर्मिको धर्मगुरुधर्मकेतु धर्मध्वजो । बुद्धादिरतनत्रये सततं समितं
निम्नपोषण प × रूढयो । नानाविधानि । शारीरिक, परिमोग उद्देश्यक चैत्यानि नानाप्रकारेण नन्दति
माने ।
- ३ । ति पूजेति संस्करोति । मारजयनक्लेशविध्वंसनसर्वधर्मविधातनवीरभूतं महाबोधिम्बि । अभिप्रसादेन
पुनष्पुनं भनसि × × × × । संमति परिवृन्दति कलैरारम्भने गन्य । सप्तपञ्चदिके गते ।
वसूरतवभूवर्षे ? । धर्म विहगे नमारबन्धः । पुराकपिल व × × ॥ माया देव्यो सुदोदवी ।
निक्षमिता स्तनुले अनु " अ " ।
- ४ । तं पदं तेन सुदेसिनो धर्मो संघो चास्यानुशासितो । दिश्यते दानिलोक । मू बोधित्वस्य न दिश्यते ।
इति हि पूरणतन्त्रागतानुरूपं । अयं महाधर्मरागमनसि करोनो विमसन्तो । परिपृच्छन्ती
पीतामहच्छद्वन्त गजराजस्वामि महाधर्मराजकाले । मध्यपदैरागतेहि वाणिरैहि ब्राह्मणैहि × गौहि च ।
- ५ । माग्यराष्ट्रे । गयाशीषपदे च नद्यानेरञ्जनाप्रतीरे सुसमे भूमिभागे । वनप्रतिभूत्वा प्रतिष्ठिभावं ।
अर्धचण्डसाखाप्रमाणेन हस्तशत विस्ताराद् ये धर्मभावं । × कादी पाति हरार्य्य गृहणक । लेयय ।
पिद्धानं दक्षिण महासाखाय स्वयमेवच्छिन्नाकारदशा मानभावं बोधिमण्डसंखानवज्रासनयानसिरिधम्मा
सोके ।
- ६ । न नाम सकल जम्बुद्वीपेश्वरमहाराजा कृतचेतियस्य विद्यमानभावं । पूर्वे षडशतसप्तपन्नापसकराजे
श्वेतगजेन्द्रमहाराजेन तं चैत्यमतिसंखरित्वा धम्ममासाय सेनज्ञ स्वामिनभावं च श्रुत्वा । तदेतत् वचनं
अनेकतन्त्रागतवचनेन सं सन्दति समेति । यथातं गंगोदकेन यमुनोदकस्मि । युत्तायुक्तं विदि ।
- ७ । त्वा । अवश्यमेवेषं भगवता सह जातो महाबोधीसि निसंषयं । सन्निधानमकासि ॥ यथावत् कठोन
विशेष नियमिते हि । मनुरपानं क्षेत्रवस्त्वादिकर्मकरण × ततो यथानुक्रममुत्तुन्नतभावेन पदवी युगेधे ।
अष्टराजकरोप मात्रविस्तारोकेष मश्रु प्रमाणानम्पिति शानमधिहल्ले । समन्तातिनलना ।
- ८ । गन्धं शुध्वबनघ्नतीनं प्रदक्षिणावद्याभिमुखपरिवारितो रजतवर्णवालुकाभिप्रकिर्ण । मेरितलमिव समे
भूमिभागे । बोधिमण्ड संधायस्य वज्रासनपल्लकस्य अपस्मयफलकमिव सन्धुक्षुत्वा । साखा पर्ण ×
मणिपत्रमिव पटिच्छादेत्वा महाबोधिवृक्षः प्रतिष्ठाति तस्मिन् पनवज्रासनपल्लके अत (न) ।
- ९ । न (त) ग्रंथि काले सर्वेपि असंख्येया सम्यक् समबुद्धा आणाप्राणवस्तुज्ञानपादकन्धत्रिराकोटिपत्तिसहस्र-
सविपस्सता ज्ञानसंघातं महावज्रज्ञानं भावेत्वा अ ।
- १० । मार्गपदष्ठान सर्वज्ञान ज्ञानपति रमिसु । न याहिसे । सण्वहन्ते कल्पे पयस सण्वहितो । विनाश्यन्तेपि
प × विन्श्यन्तो अचलपदेयो पृथुद्वीप × बो ।

- ११। धिमण्डो नाम होति ।। एवं अतिच्चरिय मन्वच्चरिय महाबोधिवृक्ष एकसत विदित्वा अभिप्रसादमानसो । यथा कालि × चक्रवत्तिसिरिधम्मसोको प × महिकोसलो । महार्थं यतिर्वा महाबोधिमभिपूजेसु । यथा पूजेतुकोमो । सिरिपवरसुधम्ममहाराजाधिराजाति । मूलभासाय श्रीप्रवरधम्मिक राजा × × × मल ।
- १२। ज्वतो अनेकश्चेति × प्रतिसरदकुमुदकुन्दइन्दु प्रभासमानवर्णच्छन्दन्तगजराजस्वामिमहाधम्मराजा । पुरोहित महाराजिन्द अगग महाधम्मराज गुरुभि × न भूमिनन्दभारिकामतु पञ्चमहाराजभिरुप सागरसूरमकः । अनेकशतपरिजनेहि मूढ । द्विसहस्रसत्रिशतपञ्चषष्टिसासनवर्षे । एकसहस्रे ।
- १३। शिक शतत्याशीतिसकराजे कार्तिकमाससरदक्रतुप । स्वविजिनरक्तागदेन नु सार जलजस्थलजमार्गण पेसेत्वा सरिच्चर महाराजिन्दाररता देवी नामिकाय अगमहेसिया साद । महाबोधिमूले बुद्धत प्राप्त भगवन्तमुद्देश्य । दक्षिणोदक पादन्तो । इमं महापृथुविं साक्षिं कृत्वा महार्थ्य ।
- १४। हि सोणं रोप्य माणिवय विचित्रेहि । ल । × । छत्र । ध्वज । पद्योत । कलश । मालांग लेहि महाबोधिमभिपूजेसि । संसारौधनिर्मुग्ग सत्वगणतणह्मं पि बुद्धत प्रयतमकासि । मातापीतुपीता-महाय्यक पाय्यकादिनं पि सत्वानं पुण्यभागमदासि । यथानेह रविससि । यावत् क्षयावतिष्ठति ।
- १५। तथापि दसेलक्षरं । तिष्ठतं अनुमोदयति । इदमनेकश्चेतिमप्रतिच्छदन्तगजराजस्वामिमहाधम्मराजोत्तरं पुज्यसेलक्षरं । महाजेयसहस्रनामेन पण्डितामन्येन बन्धित । इदं सेलक्षरं सिराजिन्दमहाधम्मराज-गुरुनामिकेन पुरोहितेन नागरीलेखाय लिखितं ।।।।।

राजा जन्मेजय का दानपत्र

यह दानपत्र युधिष्ठिर के संवत् १११ का है, जो गौड़ अग्राहर तालुका अनंतपुर जिला महानाद नगर इलाका मैसूर में मिला है । इस में सर्पयाग और सूर्यपर्व का वर्णन है । कर्नेल एलिस साहिब सोचते हैं कि यह उस जन्मेजय का नहीं है, विजयनगर के राजाओं में से किसी का है । यह कहते हैं कि जैसा सूर्यग्रहण इस में लिखा है वैसा स. १५२१ ई. में हुआ था । कोलब्रुक साहिब कहते हैं कि यह प्राचीन काल में ब्राह्मणों ने जाल करके बनाया होगा । परंतु उन दोनों साहिबों की बात का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं । इस की लिपि प्राचीन बालवन्द अथवा नन्दनगर अक्षरों में है । इसके पीछे का भाग बहुत सा टूट गया है और यहाँ हम भी इस का वह भाग नहीं लिखते जिस ने उन दक्षिणी ग्रामों के और उन की चारों सीमाओं का वर्णन बड़े कठिन कठिन कर्णाटकी शब्द लिखे हैं ।

“जयत्याविष्कृतं विष्णोर्वाराहं क्षोधितार्णवम् ।

दक्षिणोन्नतदंष्ट्राग्रं

विश्रान्तम्भूवनं वपुः ।।

स्वस्ति समस्तीभुवनाश्रय श्री पृथ्वी वल्लभ महाराज परमेश्वर परम भट्टारक हस्तिनापुरवराधीश्वर आरोहभगदत्तरिपुराय कान्तादत्त वैरिवैद्यव्यपाण्डव कुलकमलमार्तण्डकदन प्रचण्ड कलिंग कोदण्ड मार्तण्ड एकांगवीर रणरंगधीर अश्वपतिराय दिशापति गजपतिराज्य संहारक नरपतिराय मस्तक तलप्रहारिहारुद्धा-प्रौढरेखरे : सामन्त मृगचामर कोंकण चतुर्दश भयंकरनित्यकर मरांगनापुत्र सुवर्णवराहलाञ्छनध्वजसमस्त राजावलिविराजित समा लिङ्गित श्री सोमवंशोद्भव श्री परीक्षित चक्रवर्ती । तस्यपुत्रो जन्मेजयचक्रवर्ती हस्तिनापुरे सुखसंकथाविनोदन राज्यं करोति । दक्षिण दिशावरे दिग्विजययात्रेयविजयं करोमि । तुंगभद्राहरिद्रा-संगमे श्री हरिहरेश्वरसन्निधौ कटकमुत्क्रमितचैत्रमासे कृष्णपक्षदर्शके रवि वासरे वक्कणे उत्तरायण संक्रान्तौ व्यतीपातनिमित्त सूर्यपर्वणि अर्द्धाश्रमसंप्रसित समये सर्वयागं करोमि ।

इस के पीछे ३२००० ब्राह्मण जो वनवासे शान्तलिको गौतम ग्राम और दूसरे गाँवों से आए थे जिन में मुख्य गौतमगोत्री कण्वशास्त्रीय गोविन्द पट्टवर्धन कर्णाट ब्राह्मण, काण्वशास्त्रीय यशिष्ठगोत्री वामन-पट्टवर्धन कर्णाट ब्राह्मण, कण्वशास्त्रीय भारद्वाजगोत्री केशव यज्ञ दीक्षित कर्णाटक ब्राह्मण, कण्वशास्त्रीय श्रीवत्सगोत्री नारायण दीक्षित कर्णाटक ब्राह्मण थे । उनको गौतम ग्राम के बारहों गाँव नाद बल्लि, बूदबल्लि, चिक्कहार, कतरलगरे, सुरलगोडु, ताग, रंगु, जिंअलूत, वाचेन, हल्लि, त्रपगोडु और किहसम्य गोडु सब सपर्याय अष्टभोग समेत पूजन करके दिया । इस के नीचे इन गाँवों की सीमा लिखी है । उस के पीछे 'सर्वनितात भाविना पार्थिवेन्द्रान्' यह और 'दानं वा पालनं वापि' ये दो प्राचीन श्लोक हैं ।

मंगलीश्वर का दानपत्र

यह दानपत्र मंगलीश्वर का कलादगी जिले में वदामों में हिंदू मत की बड़ी गुहाओं के पास खुदा है, इसकी लंबाई और चौड़ाई २५ × ४३ इंच है। यह मंगलीश्वर कीर्ति वर्मा का भाई पुलकेशी का पुत्र था, जो शक ४७७ में राज्य करता था। यह दानपत्र श. ५०० (ई. ५७८) में लिखा गया है जिस के १२ वर्ष पूर्व अर्थात् ४८८ (ई. ५६६) में यह राज्य पर बैठा था। इस दानपत्र में मंगलीश्वर ने एक विष्णुमंदिर बनाया और अपने भाई को स्मरणार्थ जो निपिममलिंगेश्वर ग्राम दिया है उस का वर्णन है।

स्वस्ति । श्रीस्वामिपादानुध्यातानां मण्डव्यसगोत्राणाम् हारीति पुत्राणाम् अग्निष्टोमाग्निचयनवाजपेय-
पौंडरीक बहुसु वर्णाश्वमेधावभूधस्नान पवित्री कृतशिरसाम् चाल्क्यानावंशेसंभूतः शक्तित्रयसंपन्नः
चालक्यवशाश्वर पूर्णचन्द्रः अनेकगुणगणालंकृतशरीरः सर्वशास्त्रार्थतत्त्वनिविष्टबुद्धिः अतिबलपराक्रमोत्साह-
संपन्नः श्रीमंगलिश्वरोरणाविक्रान्तः प्रवदं मानराज्यसंवत्सरे द्वादशेशकनूपतिराज्याभिषेक संवत्सरे
ष्वतिक्रान्तेषु पंचसुशतेषु निजभुजावसम्बितखंगधारानमितनृपशिरो मकुट मणिप्रभारजिपादयुगलः चतुः
सागरपर्यन्तावनविजयः मांगलिकागारः परमभागवतोलयये मयाविष्णुगृहअतिदैव मानुष्यकाम अत्यद्भुतकर्म
विरचितभूमि भागोपभागो परिपर्यन्तातिशय दर्शनीय तमकृत्वातस्मिन् महाकार्तिक्यापौर्णमास्याब्राह्मणेभ्यो-
महाप्रदानंत्वाभगवतः प्रलयोदितावर्क मण्डलाकारचक्षुपितापकारिपक्षरय विष्णोः प्रतिमाप्रतिष्ठापनाभ्युदये
निपिमलिंगेश्वरम नामग्रामनारायणावल्युग्रहारार्थं षोडशमृद्व्येभ्योब्राह्मणेभ्यश्च सत्रनिबन्धं प्रतिदिनंअनुविधानं
कृत्वाशेषं च परिब्राजकभोज्यं दत्त्वा सकलजगन्मंडलावनसमर्पार्थहस्त्यश्च पदातसंकुलानेकयुद्धलव्यजय
पताकालम्बितचतुस्समुद्रोन्मिनिवारितयशः प्रतापनोपशोभिताय देवद्विजगुरुपूजिताय ज्येष्ठायस्मद्भात्रे
कीर्तिवर्मणेपराक्रमेश्वरात्तु पुण्यो पचयफलम् आदित्याग्निमहाजन समुद्रमुदक पूर्वविश्राणितमस्मद्भ्रातृशुश्रूतपणे
यत्फलतन्मह्यस्यादितिनकैश्वत्परि हापितव्यः । बहुभिर्ब सुधादत्ता बहुभिश्चानुपालिता यम्ययस्ययदा-
भूमिस्तस्यतस्यतदाफलम् । स्वदत्तापरदत्तावायव्राद्रक्षयुधिष्ठिर । महीमही क्षितांश्रेष्ठद्वानाच्छे योनुपालनं ।
स्वदत्तापरदत्तावायोहरेतवसुधरम् । श्वविष्ठायांकुमि भूत्वापितृभिस्सहमज्जति । व्यासगीताः श्लोकाः ।

मणिकर्णिका ।

अहा ! संसार का भी कैसा स्वरूप है और नित्य यह कुछ से कुछ हुआ जाता है, पर लोग इस को नहीं समझते और इसी में मग्न रहते हैं । जहाँ लाखों रुपये के बड़े बड़े और दृढ़ मंदिर बने थे वहाँ अब कुछ भी नहीं है और जो लाखों रुपये अपने हाथ से उपार्जन व्यय करते थे उन के वंशवाले भीख मांगते फिरते हैं नित्य नए नए स्थान बनते जाते हैं वैसे ही नए नए होते जाते हैं ।

यह मणिकर्णिका तीर्थ सब स्थानों में प्रसिद्ध है और हिन्दूधर्मवालों को इस का आग्रह सर्वदा से रहा है । इसी कारण जो बड़े-बड़े राजा हुए उन सबों ने इस स्थान पर कीर्ति करनी चाही और एक के नाम को मिटा कर दूसरा अपना नाम करता रहा । इस स्थान पर तीर्थ दो हैं, एक तो गंगाजी दूसरा चक्रपुष्करिणी तीर्थ और इन दोनों पर लोगों की सदा दृष्टि रही । घाट के नीचे ब्रह्मनाल और नीलकण्ठ तक अनेक घाटों के बनने के चिन्ह मिलते हैं । थोड़े दिन हुए कि मणिकर्णिका पर एक पुराना छत्ता था जिस को लोग राजा कीचक का छत्ता कहते थे, पर न जाने यह कीचक किस वंश में और किस समय में उत्पन्न हुआ था । ऐसा ही राजा मान का एक जनाना घाट है जो गली की भांति ऊपर से पड़ा है, पर अब इस के ऊपर ब्रह्मनाल की सड़क चलती है । निश्चय है कि योही घाटों के नीचे अनेक राजाओं के बनाए घाटों के चिन्ह मिलेंगे । हम आजकल में मणिकर्णिका पर से एक प्राचीन पत्थर उठा लाए हैं जिससे उस समय का कुछ वृत्तांत मिलता है । यह पत्थर संवत् १३५९ तेरह सौ उनसठ का लिखा है जो ईस्वी सन् १३०२ के समय का होता है । इस के अक्षर प्राचीन काल के हैं और मात्रा पड़े हैं । पर शोच का विषय है कि पूरा नहीं है, कुछ भाग इस का टूट गया है, इससे नाम का पता नहीं लगता कि किस राजा का है । जो कुछ वृत्त उससे जाना गया वह यह है — "उक्त समय में क्षत्रिय राजा दो भाई बड़े विष्णुभक्त और ज्ञानवान हुए और इन की कीर्ति परम प्रगट थी, उन लोगों ने मणिकर्णिका घाट बनवाया । उस घाट के निर्माण का विस्तार वीरेश्वर तक था और मध्य में मणिकर्णिकेश्वर का

बड़ा लम्बा चौड़ा और ऊँचा मंदिर बनाया और बीच में बड़ी बड़ी वेदिका बनाई (वेदिका चबूतरे को कहते हैं) यह राजा बड़ा गुणज्ञ था" इत्यादि । इससे निश्चय है कि उस की बनाई कोई वस्तु शेष नहीं रही । अब जो मणिकर्णिकेश्वर है वह एक गहिरें नीचे संकीर्ण स्थान में है और विश्वेश्वर और धीरेश्वर भी नए स्थानों में हैं । ऐसा अनुमान होता है कि गंगाजी आगे ब्रह्मनाल की ओर बहुत दब के बहती थीं, क्योंकि अद्यापि वहाँ नीचे घाट मिलते हैं । निश्चय है कि इस राजा के पीछे भी अनेक बार घाट बने होंगे, परंतु अब जो कुछ टूटा फूटा घाट बचा है वह अहल्याबाई साहब का बनाया है ।

मणिकर्णिका कुण्ड की सीढ़ियाँ जो वर्तमान हैं वह दो सौ उनचास २४९ वर्ष की बनी हुई है और इन को नारायणदास नामक वैश्य ने (जिस का पुकारने का नाम नरैन् था) बनवाई है । यह सोमवंशी राजा वासुदेव का नाम था । यह बात इन श्लोकों से प्रगट होती है जो वहाँ एक पत्थर पर खुदे मिले हैं ।

व्योमाष्टपट चन्द्रमिते शुभेन्दो मासे शुचौ विष्णुतिथौ शिवायां ।

चकार नारायणदासगुप्तः सोपानमेतन्मणिकर्णिकायाः ॥११॥

जालः क्षितौवासतुल्यतेजाः सीमान्यये भूपति वासुदेवाः

तस्यानुवर्त्तो मणिकर्णिकायाश्चकार सोपान ततिर्नरेणुः ॥१२॥

वासुदेवाग्रसचित्रो नरेणुरावतात्मजः ।

चक्रपुष्करणी तीर्थ जीर्णोद्धारमचीकृत ॥१३॥

॥ काशी ॥

मैं इस में काशी के तीन भाग का वर्णन करूँगा यथा प्रथम भाग में पंचक्रोश का, दूसरे में गोसाइयों के काल का, तीसरे कुछ अन्य स्फुट वर्णन । मैं पंचक्रोशी का वर्णन ऐसा नहीं करना चाहता कि जिसे देख कर लोग पंचक्रोशी की यात्रा करने चले जायँ वरंच मैं भगवान काल के उस परम प्रबल फेर फार रूपी शक्ति को दिखाता हूँ जिस से धैर्यमानों का धैर्य और अज्ञानों का मोह बढ़ता है । आहा ! उस की क्या महिमा है और कैसी अविन्य शक्ति है ? अतएव मैं मुक्तखंड से कह सकता हूँ कि ईश्वर भी काल का एक नामान्तर है । क्योंकि इस संसार की उत्पत्ति प्रलय केवल इसी पर अंटकी है । जिस विजयी और विख्यात सिकन्दर ने संसार को जीत उसकी अस्थि कहाँ गड़ी है और जिस कालिदास की कविता संसार पढ़ता है वह किस काल में और किस स्थान पर हुआ ? यह किसका प्रभाव है कि अब उस का खोज भी नहीं मिलता ? काल का अतएव यदि हम प्राचीन, नवीनों से नवीन, बलवालों से बलवान, उत्पत्ति, पालन, नाश कर्ता और सर्व तन्त्रष्वतन्त्रादि विशेषणों से विशिष्ट ईश्वर को काल ही का एक नामान्तर कहें, तो क्या दोष है ।

इस पंचक्रोशी के मार्ग और मंदिर और सरोवरों में से दो सौ वा तीन सौ वर्ष से प्राचीन कोई चिन्ह नहीं है और इस बात का कोई निश्चायक नहीं कि पंचक्रोश का मार्ग यही है केवल एक कर्दमेश्वर का मंदिर मात्र बहुत प्राचीन है और इस के बौद्धों के काल का वा इस के पीछे के काल का कहें, तो अयोग्य न होगा । इस मंदिर के अतिरिक्त और कोई प्राचीन चिन्ह नहीं, पर हाँ पद पद पर पुराने बौद्ध वा जैन मूर्तिखंड, पुराने जैन मंदिरों के शिखर, दासे, खम्भे और चौखटें टूटी फटी पड़ी हैं । क्यों भाई हिंदुओ ! काशी तो तुम्हारा तीर्थ न है । और तुम्हारा वेद मत तो परम प्राचीन है । तो अब क्यों नहीं कोई चिन्ह दिखाते जिस से निश्चय हो कि काशी के मुख्य देव विश्वेश्वर और विंदुमाधव यहाँ पर थे और यहाँ उन का चिन्ह शेष है और इतना बड़ा काशी का क्षेत्र है और यह उस की सीमा और यह मार्ग और यह पंचक्रोश के देवता हैं । बस इतना ही कहो भगवते कालाय नमः । हमारे गुरु राजा शिवप्रसाद तो लिखते हैं कि "केवल काशी और कन्नौज में वेदधर्म बच गया था" पर मैं यह कैसे कहूँ, वरंच यह कह सकता हूँ कि काशी में सब नगरों से विशेष जैन मत था और यहाँ के लोग दूढ़ जैनी थे, भवतु काल जो न करे सब आश्चर्य्य है । क्या यह संभावना नहीं हो सकती कि प्राचीन काल में जो हिंदुओं की मूर्तियाँ और मंदिर थे उन्हीं में जैनों ने अपने काल में अपनी मूर्तियाँ बिठा दीं ? क्यों नहीं । केवल कुछ क्षण दिल्ली के सिंहासन पर एक हिंदू बनिया बैठ गया था उतने ही समय में मसजिदों में हिंदुओं ने सिद्ध

के मेरव बना दिये और कुरान पढ़ने की चौकियों पर व्यासों ने कथा बांची, तो यह क्या असम्भावित है।
 कर्दमेश्वर का मंदिर बहुत ही प्राचीन है और उस के शिखर पर बहुत से चित्र बने हैं जिनमें कई एक हिंदुओं के देवताओं के हैं, पर अनेक ऐसे विचित्र देव और देवी बनी हैं जिसका ध्यान हिंदू शास्त्र में कहीं नहीं मिलता अतएव कर्दमेश्वर महादेव जी का राज्य उस मंदिर पर कब से हुआ यह निश्चय नहीं है और पलथी मारे हुए जो कर्दमजी की श्रीमूर्ति है वह तो निस्संदेह ***कुछ और ही है और इसके निश्चय के हेतु उस मंदिर के आस पास के जैन खंड प्रमाण हैं और उसी गांव में आगे कूप के पास दाहिने हाथ एक चौतरा है उस पर वैसी ही ठीक किसी जैनाचार्य की मूर्ति पलथी मारे खड़ित रखी है देख लीजिए और उस के लंबे कान उस का जैनत्व प्रमाण करते हैं। अब कहिए वह तो कर्दम ऋषि हैं ये कौन हैं कपिलदेव जी है ? ऐसे ही पंचक्रोशी के सारे मार्ग में पंच काशी के आस पास के अनेक गांव में सुंदर सुंदर शिल्पविद्या से विरचित जैन खंड पृथ्वी के नीचे और ऊपर पड़े हैं। कर्दमेश्वर का सरोवर श्रीमती रानी भवानी का बनाया है और उस पर यह श्लोक लिखा है।

**“ शाके गोत्रतुर्भूपतिभिरे श्रीमत्भवानीनृपा
 गौड़ाख्यानमहीमहेन्द्रवनिता निष्कर्दमं कर्दमं ।
 कुंडं प्राक्सुखंडमंडिततटं काश्यां व्यधादादरात्
 श्रीतारातनया पुरांतकपर प्रीत्यै विमुक्तै नृणां ॥**

अर्थ— शाके १६७७ में अपनी कन्या श्रीतारा देवी के स्मरणार्थ यह कर्दम कुंड बंगाले की महारानी श्रीभवानी ने बनाया। इन महारानी की कीर्ति ऐसी ही सब स्थानों में उज्ज्वल और प्रसिद्ध है और राजा चंद्रनाथ राय (उनके प्रपौत्र) मानो उस पुण्य के फल हैं। भीमचंडी के मार्ग में भी ऐसे ही अनेक चिन्ह हैं और भद्राक्षी नामक ग्राम में एक बड़ा पुराना कोट उलटा हुआ पड़ा है और पंचक्रोशी करानेवाले उसके नीचे उसी के ईंटों से छोटे-२ घर बनाते हैं और इस में पुण्य समझते हैं। सम्भावना है कि यहाँ कोई छोटी राजसी रही हो, क्योंकि काशी के चारों ओर ऐसी छोटी छोटी कई राजसियाँ थीं जैसे आशापुर। काशीखंड में आशापुर को एक बड़ा नगर कर के लिखा है पर अब तो गाँव मात्र बच गया है। भीमचंडी का कुंड भी श्रीमती रानी भवानी का बनाया है और उस में यह श्लोक लिखा हुआ है।

**शाके कालाद्रिभूपे गतविलकमलं गौड़राजेन्द्रपत्नी
 गन्धर्वाम्भोनिधिसमखननं स्वर्गसोपानजुष्टं ।
 चक्रे राक्षी भवानी सुकृतिमतिकृतिर्भीमचंडी सकाशे
 काश्यामस्यासुकीर्त्तिस्सुर पतिसमितौगीयतेनारदाद्यैः ।**

अर्थात् शाके १६७६ में रानी भवानी ने यह सरोवर बनाया तो इस लेख से ११८ का प्राचीन यह सरोवर है। इससे प्राचीन भी कुछ चिन्ह हैं, पर अत्यन्त प्राचीन नहीं। देहली विनायक जो मुख्य काशी की सीमा हैं वहीं ठीक नहीं हैं, क्योंकि वहाँ कोई भी प्राचीन चिन्ह शेष नहीं है। वहाँ के मंदिर और सरोवर सब एक नगर के बनाये हुए हैं जिसे अभी केवल सत्तर अस्सी बरस हुए। पर इतने ही समय में वह बहुत टूट गए हैं। काशी के कतिपय पंडित कहते हैं कि प्राचीन देहली विनायक वहाँ से कोसों दूर हैं। अतएव पंचक्रोशी का प्रचलित मार्ग ही अशुद्ध है और यह संभावना भी है, क्योंकि सिंधुसागर तीर्थ का बहुत सा भाग इस मार्ग में बाम भाग पड़ता है, पर प्राचीन मार्ग की सड़क खेतवालों ने संपूर्ण नष्ट कर डाली है ? रामेश्वर में श्री रानी भवानी की धर्मशाला और उद्यान है, परंतु रामेश्वर के कोस भर उधर बीच मार्ग ही में एक बड़ा प्राचीन मंदिर खंड पड़ा है। बीच में शिवपुर एक विश्राम है और वहाँ पाँचों पांडव हैं, परंतु वह विश्राम इत्यादि कोई काशीखंड लिखित नहीं हैं। सब साहो गोपाल दास के भाई भवानी दास साहो के बनाए हुए हैं और अब वह एक ऐसा विश्राम हो गया है कि सब काशी के बंधु वहीं पंचक्रोशी वालों से मिलने जाते हैं। कपिलधारा मानों जैनों की राजधानी है। कारण ऐसा अनुमान होता है कि प्राचीन काल में काशी उधर ही बसती थी, क्योंकि सारनाथ वहाँ से पास ही है और मैं वहाँ से कई जैन मूर्ति के सिर उठा लाया हूँ। ऐसी भी जनश्रुति है कि महादेवभट्ट नामक

कोई ब्राह्मण था, उसी ने पंचकोशी का उद्धार किया है।

मुझे शिव मूर्ति अनेक प्रकार की मिली है १ पंचमुख दशभुज, २ एक मुख द्विभुज, ३ एक मुख चतुर्भुज, ४ एकाग्र से पैर लटकाए हुए बैठे और पार्वती गोद में बैठी, ५ पालथी मारे, ६ पार्वती को आलिंगन किए हुए इत्यादि। तो इस अनेक प्रकार की शिव मूर्तियों की प्राप्ति से शंका होती है कि आगे लिंग पूजन का आग्रह नहीं था।

काशी में किसी समय में दश नामी गोसाइयों का बड़ा प्राबल्य था और इन महात्माओं ने अनेक कोटि मुद्रा पृथ्वी के नीचे दबा रखी है अतएव अनेक ताम्र पत्र पर बीजक लिखे हुए मिलते हैं, पर वे द्रव्य कहाँ हैं इसका पता नहीं। इन गोसाइयों ने अनेक बड़े बड़े मठ बनवाए थे और वे सब ऐसे दृढ़ बने हैं कि कभी हिल भी नहीं सकते। इन गोसाइयों में पीछे मद्यपान की चाल फैली और इसी से इन का तेजोनाश हुआ और परस्पर की उन्मत्तता और अदालत की कृपा से इन का सब धन नाश हो गया, पर अद्यापि वे बड़े बड़े मठ खड़े हैं। इन गोसाइयों के समय में भैरव की पूजा विशेष फैली थी। कालिज में एक विस्तीर्ण पत्थर पड़ा है उस पर एक गोसाइयों के बनाए मठ और शिवाले और उसकी विभूति का सविस्तार वर्णन है मैं उस को ज्यों का त्यों आगे प्रकाश करूंगा जिससे वह स्वयं स्पष्ट हो जायेगा।

यहाँ जिस मुहल्ले में मैं रहता हूँ उस के एक भाग का नाम चौखम्भा है। इस का कारण यह है कि वहाँ एक मसजिद कई सौ बरस की परम प्राचीन है। उसका कुतबा कालबल से नाश हो गया है पर लोग अनुमान करते हैं कि ६६४ बरस की बनी है और मसजिद चिह्न सुतून, यही उस की 'तारीख' पर यह दृढ़ प्रमाणी भूत नहीं है। इस मसजिद में गोल गोल एक पवित्र में पुराने चाल के चार खंभे बने हैं अतएव यह नाम प्रसिद्ध हो गया है। यही व्यवस्था ढाई कनगूरे के मसजिद की है, यह मसजिद भी बड़ी पुरानी है। अनुमान होता है कि मुगलों के काल के पूर्व की है। इसकी निर्मिति का काल में १०५९ ई. बतलाते हैं। इस से निश्चय होता है कि इस मुहल्ले में आगे अब सा हिंदुओं का प्राबल्य नहीं था, पर यह मुहल्ला प्राचीन समय से बसा है।

मैंने जो अनेक स्थलों पर लिखा है कि जैन मूर्ति बहुत मिलती हैं इससे यह निश्चय नहीं कि काशी में जैन के पूर्व हिंदुधर्म नहीं था, क्योंकि जैन काल से पूर्व की और सम काल की हिंदुओं की अनेक मूर्ति अद्यापि उपलब्ध होती हैं। कालिज में एक प्रस्तर खंड पड़ा है और उस की लिपि परम प्राचीन है। पंडित शीतलाप्रसाद जी का अनुमान है कि यह लिपि पाली के भी पूर्व की है। इस पत्थर पर एक काली के मंदिर की प्रतिष्ठा का समाचार है और इस का काल अनेक सहस्र वर्ष पूर्व है और उस में ये श्लोक लिखे हैं।

१

ख्याता वाराणसीय त्रिभुवनभवने भोगचौरीति दूरात् ।
सेवन्ते यां विरक्ताः जननमरणयो मोक्षमक्षैकरक्ता ॥

२

यत्र देवोऽविमुक्तः यो हृष्टया ब्रह्माहा सऽपि च्युतकलिकलुषो जायते शुद्धभावः ।
अस्यामुत्तुंगशृंगस्पुटशशि किरिणा ॥

३

प्रतुलिविधिविधजनपदस्त्रीविलासाऽभिरामं विद्या वेदान्ततत्त्वव्रतजपनियमव्यग्रञ्चन्द्रा-
भिजुष्टं ॥ श्रीमत्स्थान सुसेव्य ॥

४

तन्नाऽभूत् सार्यनामा शिशुरपि विनयव्यापदोभद्रभूतिः त्यागी धीरः कृतज्ञः
परिलघविभवोप्यात्मवृत्त्याभिजीवी ।

५

वर्णा चङ्करोत्तमांगरचितव्यालम्बिमालोत्कटा ।
सर्पत्सर्पविदेष्टितांगरपशुव्याविद्धिशुष्कमिषा लीला नृत्यरुचितपिलोत्प

६

यस्यापि न तस्य तुष्टिरभवत् यावत् भवानीग्रहं शुशिलप्टाऽमलसन्धि बन्धघटितं

घंटानिनादोज्जलं । रम्यं दृष्टिहरं शिलोच्चाय ॥

ध्वज चामरं सुकृति नाश्रेयो ऽर्थिना कारितं

७

इस लेख के उपसंहार काल में मणिकर्णिका घाट का अवशिष्ट वर्णन करता हूँ । अब जो सांप्रत घाट वर्तमान है वह अहल्याबाई का बनवाया हुआ है और दो बड़े बड़े शिवालय भी घाट की सीमा पर उन्हीं के बनाए हैं और उन पर ये श्लोक लिखे हैं ।

श्रीमान् होलकरोपाख्यख्यातो राजन्यदर्पहा ।
मल्लारिरावनामा ऽभूत् खंडेरावस्तु तत्सुतः ॥१॥
विलासी गुणकल्पदरुः शूरो वीराभिसम्मतः ।
तत्पत्नी पुण्यचरिता कुलद्वयविभूषणं ॥२॥
अहल्याख्या तया ख्याता तृषु लोकेषु कीर्तये ।
बद्धोघट्टस्सुसोपानो मणिकर्ण्यास्सुविस्तृतः ॥३॥
तत्पार्श्वयोर्विधायेमौ प्रासादाबुन्नतौ पृथक् ॥
तयोः पश्चिमदिक्संस्थे स्थापितो गौतमेश्वरः ॥४॥
प्राक् संस्थे तारकेशांके अहल्योद्धारकेश्वरः ।
स्थापितो वसुवैदेह विधुसम्मतवैक्रमे ॥५॥
रामेन्दुदधि भूयुक्ते शालिवाहनजेशके ।
राधशुक्लद्वितीयायां गुरौ दुद्रुभिवत्सरे ॥६॥
घटोत्सर्गः सुसम्पन्नः यजमान्यभ्यनुज्ञयया ।
स्वामिकार्यहितैकेच्छु जीवाजीशर्म हस्ततः ॥७॥
(शाके १७१३)

काशी में विन्नुमाधव घाट सम्वत् १७९२ में श्री छत्रपति महाराज के पन्त प्रतिनिधि परशुराम के पुत्र श्री श्रीनिवास की स्त्री श्रीमती राधाबाई ने बनवाया है और ऐसा अनुमान होता है जब यह घाट नहीं बना था तभी से इसका नाम नरसिंह दाढ़ा था, क्योंकि नरसिंह दाढ़े का नाम उस श्लोक में पड़ा है जो बाई साहब के काल का बना है । निश्चय है कि नरसिंह दाढ़ा के नाम से लोग सोचेंगे कि यह कौन वस्तु है, परंतु मैं इतना ही कह सकता हूँ कि वह नरसिंह दाढ़ा एक पत्थर का केवल मुख का आकार है जो रामानंद की मढ़ी में हनुमान जी की बाई और दीवार में लगा है और जब वहाँ तक पानी चढ़ता है तब इंद्रदमन का नहान लगता है । ऐसा अनुमान होता है कि यह इसी नाम के हेतु बनाया हो या वह किसी पुरानी मूर्ति का मुँह है जो नरसिंह जी के मुँह के नाम से पूजता है । पर कोई कहते हैं कि वह रामानंद गोसाईं का मुँह है । जो हो, मुँह तो गोल पुराना मुछमुंडा सा है ।

यही श्लोक वहाँ खुदा है ।

स्वस्ति श्री विष्णुमार्कण्डेयनगरधरासंमि ते १९७२ ब्रोधेनाद्रे ।
मासीषे शुक्लके दिक्स्थिहरिभयुते चान्दिविश्वेशुष्ट्यै ॥
श्रीशाहोः श्रीनिवासः प्रतिनिधिपदगः पशुरामात्मजस्त ।
ज्जायाराधाकृतोयं जयतिनृहरिदंष्ट्राख्यघटः सुबद्धः ॥१॥
प्रत्यंतरमिदं ऊर्ध्वं श्लोकस्यद्वारिदीपवत् ।
अकारिबालकृष्णेन स्वामिकार्यनिरूपकं ॥२॥

तथा काशी में जो वृद्धकाल महादेव का मंदिर है वह भी किसी छत्रपति के आश्रितों में मेघश्याम के पुत्र चाविक उपनामक देवराज ने बनाया है और एक तो कालेश्वर के लिंग का जीर्णोद्धार किया और अपने नाम देवराजेश्वर एक शिव और बैठाया है जो इन श्लोकों से प्रगट है ।

अब्देत्वीश्वरसंज्ञके शुभदिने संस्थाप्य कलेश्वरं ।
 प्राचीनं प्रणतार्तिभंजनपरं श्रीदेवराजेश्वरं ॥
 शाहछत्रपतेः कृपालुवशगः श्रीदेवरोयः स्वयं ।
 नेघश्यामसुतः शिवालयमहो काश्यामबध्नात्ध्रुवं ॥१॥
 श्रीमत्प्रोद्भूतप्रतापप्रगटितयशसः शाहुभूपालकस्य ।
 प्राजस्याज्ञानुकारिद्विजहितविहितश्चाविकोदेवरायः ।
 धात्रब्देभोरभट्टानुमितमुपवनं गेहशालाविशालं ।
 काश्यांविश्वेश्वरस्यत्रिजगधनुषः प्रीतयेनिर्निमाय ॥२॥

पापमक्षेश्वर भैरव का मंदिर भी बाजीराव का बनाया है । जो हो, अब काशी में जितने मंदिर वा वाट हैं उन में आधे से विशेष इन महाराष्ट्रों के बनाए हुए हैं ।

शिवपुर का द्रौपदी कुण्ड

यह बात प्रसिद्ध है कि शिवपुर काशी की पंचक्रोशी में कोई तीर्थ नहीं केवल लोगों के वहाँ टिकते टिकते वह टिकान हो गई है और देवता बिठा दिए गए हैं । पर अब की द्रौपदी कुंड में एक पत्थर के देखने से ज्ञात हुआ कि यह प्राचीन तीर्थ है और तीन सौ बरस पहिले भी यहाँ पांडवों का मंदिर था । वरंच 'सुकृति कृति हितैषी' पद जो उस में राजा टोडरमल का विशेषण दिया है उस से ज्ञात होता है कि उन्होंने भी किसी के बनाये हुए कुंड का जीर्णोद्धार किया है इससे उसकी और भी प्राचीनता सिद्ध होती है । यह बावली राजा टोडरमल ने सं. १६४६ में बनवाई थी और 'पांडव मंडपे' इस पद से स्पष्ट है कि वहाँ उस काल में पांडवों का मंदिर था । इस का पहिला श्लोक नहीं पढ़ा गया बाकी के तीन श्लोक पाठकों के विनोदार्थ यहाँ प्रकाशित होते हैं ।

प्रत्यर्थिक्षितिपालकालनसु**** ने दूतिका ।

मुद्रांक प्रकटप्रतापतपनप्रोद्भासिताशामुखे ॥१॥

क्षणाशेकवरे प्रशासति महीं तस्मिन् नृपालावलिल्फूर्जन्यौ-

लिमरीचिवीचिरुचिरोदञ्चत्पदाम्भोरुहे ॥२॥

तद्राज्यैकधुरन्धरस्य वसुधा साम्राज्यदीक्षागुरोः ।

श्रीमच्छण्डनवंशमण्डनमणेः श्रीटोडरक्षमापतेः ।

धर्मौघैकविधौ समाहितमतेरादेशतोऽचीकर-

द्वारपी पाण्डवमण्डपे** वनो गोविन्ददासः सुधीः ॥३॥

ऋतुनिगमरसात्मासम्मिमे १६४६ बत्सरेये

सुकृतिकृतिहितैषी टोडरक्षोणिपालः ।

विहितविविधपूतौऽचीकरच्छारु वापीम्

विमलसलिलसारां बद्धस्तोपान पंक्तिम् ॥४॥

पंपासर का दानपात्र

यह दानपात्र गोदावरी के तीर पर एक खेतवाले को मिला है । यह पाँच टुकड़ों में अच्छा गहिरा खुदा हुआ कपाली लिपि में पाँचों टुकड़े एक तामे की सिकड़ी में बंधे हुए एक तामे के डब्बे में बंद और उसी डब्बे में जोसे की भाँति किसी वस्तु के आठ टुकड़े और एक चोंगा जिसमें सील लगी हुई थी निकला है । अनुमान होता है कि इस चोंगे में कागज रहा होगा, जो काल पाकर भीतर ही भीतर गल गया है । यह पात्र चंद्रवंशी क्षत्री दो राजाओं के दिए सं. १९७ के हैं और इन के पढ़ने से उस काल की बहुत सी चाल व्यवहार और उन के राज्य करने की नीति इत्यादि प्रगट होती है । इससे इनका यथास्थित संस्कृत का भाषानुवाद यहाँ प्रकाश होता है

इस वंश का और कहीं पता नहीं लगा है। केवल उन दोनों ताम्रपत्रों से जो कालोपानी से सं. १८५७ में एशियाटिक सोसाइटी में आए थे इनका संबंध ज्ञात होता है, क्योंकि उनमें यही लिपि और इन्हीं दोनों वंशों का वर्णन है पर नाम अलग अलग है और उन दोनों में संबंध भी नहीं है।

विजयनजयन नामक क्षत्रियों के दो प्राचीन कुल थे जिनकी संज्ञा ढड़िया और पुछड़िया थी ॥१॥

अपने वैरियों का सर्वस्व धन और धर्म नाश करके और भोग करके ढड़िया वंश समाप्त हुआ।

पुछड़िया कुल के राजा जब दोनों कुलों के स्वामी हुए तब इन लोगों ने प्रजा का बड़ा आडम्बर से सत्कार किया और चक्रवर्ती हो गए ॥३॥

विद्या में बड़े पद और सभाओं में बड़ी बड़ी वक्तृता और आदर के अनेक आकाशी चिन्हों से इन के अनुयायी सदैव शोभित रहते थे ॥४॥

उदार ऐसे थे कि समाधि में भी रुपया नहीं बचने पाता था, चारों ओर केवल जाचक ही जाचक दिखाई देने थे ॥५॥

कलानिपुण ऐसे थे कि इन के सिवा और कोई था ही नहीं और राजनीति के छल बल के तो एकमात्र ब्रह्मपति थे ॥६॥

कहते हैं कि शौरसेन यादव वंश में बलदेव जी से इस वंश का साक्षात् संबंध है, क्योंकि अब तक ये जैसे हलीमद प्रिय भी हैं ॥७॥

ये इतने चतुर थे कि और सब जाति के लोग इन के सामने मूर्ख ज्ञात होते थे। और प्रबल भी इतने कि इन की बात कभी दोहराई नहीं जाती थी ॥८॥

इन में वेणु के पुत्र सगर के पौत्र दीपसिंह के प्रपौत्र नामग और त्रिशंकु नामक दो राजा हुए ॥९॥

नाभाग को भोज मदमत और भगवान तीन पुत्र और त्रिशंकु को बावन नामक एक पुत्र था ॥१०॥

बावन को गौरचंद्र और हनुमान दो पुत्र हुए, जो अब तमसा कृष्णा तक नीलगिरि से हिमगिरि के प्रांत तक राज्य करते हैं ॥११॥

इनके अभिषेक के बलाकण से और हाथियों के मद से तथा शूरा के परिश्रम और रति शूरा के स्वेद जल और इन के शत्रुओं की स्त्री के नेत्रजल से मिलकर इन की दान जलधारा नगर के चारों ओर खाई सी बन रही है ॥१२॥

जिन लोगों को ये जीतते थे उन की ऐसी दुर्गति होती थी कि वे अन्न वस्त्र को भी दीन हो जाते थे तथापि ये ऐसे दयालु थे कि यही मात्र उन के शरण होते थे ॥१३॥

प्राचीन कर सब इन लोगों ने क्षमा कर दिए। इनके काल में केवल आठ दस कर बच गए। उस पर भी प्रजा को दुःखी देखकर ये उन का बड़ा प्रतिपालन करते थे ॥१४॥

वरंच ये ऐसे दयालु थे कि और राजाओं की भांति आप कर लेने में ये ऐसे लज्जित होते थे जिस का वर्णन नहीं। इसी से पाठशाला धर्मशाला इत्यादि धर्म कार्य के हेतु संगृहीत हो कर उन्हीं कामों में व्यय होता था ॥१५॥

शुक्लानधान उसी को समझते थे जो इनके जानिवालों की नौकरी वा बनज को मिस आवे ॥१६॥

लक्ष्मी के एक मात्र आश्रय सरस्वती के पूरे दुर्गा के वर्ग तीनों शक्ति से ये सम्पन्न और त्रिदेव पूजन के बड़े आग्रही थे ॥१७॥

इन धर्मावतारों ने पंपासर तीर्थ पर चन्द्रमा के पूर्ण ग्रास पर फाल्गुनी पौर्णिमा संवत् १९७ पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र व्यतीपात योग वैद्व्य करण शनिवार कन्या पर गुरु मेष पर शुक्र मीन पर सूर्य कुम्भ में चंद्रमा मिथुन में बुध करकट में मंगल और शनि में पंपासर तीर्थ में स्नान कर परम धार्मिक परमेश्वर परम माहेश्वर भक्षरक महाराज गौरचंद्र तथा हनुमच्छंद्र मुद्गल गोत्र गर्गादि. गरस मुद्गल द्विजवर ठक्कुरनासी के पौत्र ठक्कुर उष्वट के पुत्र ठक्कुर चुपल शर्मा को कलिंगदेशान्तर्गत खातावी प्रगने के छीछल प्रगने का पसंसरी और कारस नामक दो ग्राम दे कर इस के सीर सायर आकास पाताल खेत खर्वट बाटी तिबारी जल थल सब पर इन का अधिकार करते हैं इन के वंश का जो होय वह उस को माने कोई कर नहीं लगेगा।

मि. चैत्र शुद्ध १ सं. १९८ विक्रम के लिखे सूत्रधार प्रवासी राय और ब्राह्मण ब्राह्मण्य ने शुभ ।

(इस के आगे ये श्लोक लिखे हैं)

ये सर्वेऽस्त्युभाविनः पाथिबिन्द्राकुतेभ्यो भूयोयाचते रामचन्द्रः ।

सामान्योऽयं धर्मसेतुर्गुणाणां काले काले रक्षणीयो भवद्विभः ॥

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेस्त्युयः ।

षष्ठि वर्ष सहस्राणि विष्ण्यां जायते क्रिमिः ॥

शुभम् श्रीः ॥

कन्नौज का दानपत्र

यह दानपत्र राजा गोविन्दचन्द्र कन्नौज के राजा का है जो दिल्ली के बादशाही खजाने से सिख लोग लाहौर लूट कर ले गए थे और अब श्री पंडित राधाकृष्ण चीफ पंडित लाहौर ने उस की एक प्रति हमारे पास भेजी है । इस राजवंश का पूर्व स्थापक गाहवाल राजा था और करल्ल इस का अन्तिम राजकुमार हुआ । उसी वंश की एक शाखा महिआल में (या महिआल का पुत्र) भोज हुआ जिसका काल ८८५ ईस्वी है । इन भोज और करल्ल की कीर्ति समाप्त होने के पीछे उसी वंश की शाखा में यशोविग्रह राजा हुआ उस का पुत्र महीचन्द्र, उस का पुत्र चन्द्रदेव, उसका पुत्र मदनपाल और उस मदनपाल का पुत्र गोविन्दचन्द्र था, जिस ने यह दान किया है । यह राजा ऐसा दानी था कि इसके दिये हुए गाँवों के शतावधि दानपत्र मिले हैं । ये लोग वैष्णव वा वैष्णवों के अनुयायी थे, क्योंकि इनके दानपत्रों पर गरुड़ का चिन्ह और गोविन्दचन्द्र की मोहर पांचजन्य शंख है । 'अकुण्ठेकुण्ठ' यह श्लोक प्रायः दानपत्रों पर है । यह दानपत्र संवत् ११८२ में माघ वदी ६ शुक्रवार को ग्रीवमती (?) तीर्थ में गंगा में स्नान कर के राजा गोविन्दचन्द्र ने गौतम गोत्र के गौतमदि. गरस मुन्ध विप्रवर के ब्राह्मण ठक्कर अल्हन के पुत्र छीमठ बाभठ दोनों भाइयों को हलद तालुके का गोंडली नाम गाँव दिया है ।

स्वस्ति.—अकुण्ठेकुण्ठवैकुण्ठकण्ठलुठत्करः । संरम्भः सुरतारम्भे सश्रियः श्रेयसे ऽस्तुवः ॥१॥ आसीदशीतद्युति वंशजतक्ष्मापालमालासुविद्यंगतासु । साक्षाद्वि-
स्वानिदभूरिधाम्ना नाम्ना यशोविग्रह इत्यदारः ॥२॥ तत्सतोऽभ्यन्महीचन्द्रश्चन्द्र-
धामनिर्भन्निजम् । येनाचारमकूपार पारेव्यापारितंयशः ॥३॥ यस्य भूत्तनद्योनयैक-
रसिकः अतद्विषमण्डलो विध्वस्तोऽतवीरघोतिमिरः श्रीचन्द्रदेवबोनृपः । येनोदार
तरप्रतापशमिताशेषप्रजोपद्रवम् श्रीमगाधिपुराधिराज्यमसम् दौर्विक्रमेणार्जितम् ॥४॥
तीथानि काशिकुशिकोत्तरं कौशलेन्द्रस्थानीयकानि परिपालयताभिगम्य ॥ हेमात्स-
तुल्यमनिशददता द्विजेभ्यो येनाकिता वसुमती शतशस्तुलाभिः ॥५॥ तस्यात्मजो-
विजयपालइतिक्षितीन्द्रचूडामणिविद्ययतेनिजगोत्रचन्द्रः । यस्याभिषेककलशोल्ल-
सितैः पयोभिः प्रक्षालितंकलिरजः पटलं धरिष्याः ॥६॥ यस्यासी द्विजयप्रसाण-
समये तुंगाचलौचैश्चलन्माधत्कुम्भपदक्रनायमभरत्रस्यन्महीमण्डलम् । चूडारत्न
विभिन्नतालुगलितसनासृगुदुभासितः शेषः पेषवशादिवक्षणमसौक्रोडेनिली-
ताननः ॥७॥ तस्मादजायत निजायत बाहुबलिवद्धादरुद्धनवराज्य गजोनरेन्द्रः । सान्द्रा
मृतद्रवमुचा प्रभवो गवां यो गोविन्दचन्द्रइति चन्द्रश्वाभ्युराशेः ॥८॥ नक्षत्रमप्लभत्त-
रक्षणाक्षमास्तिमृपुदिक्षुगजानधवज्रिणः । कुकुम्भिबभ्रमुरभ्यमुवल्लभ प्रतिभटाहव-
यस्यघटागजाः ॥९॥

सौयं समस्तराजचक्रसंसेवितचरणाः परममहारक महाराजाधिराज परमेश्वर
परममाहेश्वर निज भुजोपार्जित श्रीकान्यकुब्जाधिपत्य श्रीचन्द्रदेवपदानुयात परम
भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वराश्वपति गजपति नरपति
राज्यपत्रयाधि विविध विद्याविचारवाचस्पतिः श्रीमदुगोविन्दचन्द्रदेवो विजयी

हृदोपपत्तनायामगोउलीग्राम निवासिनो निखिलजन पदानुपगतानपि च राजाराज्ञी युवराज मन्त्रिपुरोहितप्रतिहार-सेनापतिभाण्डारिकाक्षपटलकमिकनैमिषित्तिकान्तः पुरिक-दूतकरि-तुरगपत्तनाकरस्थान्नागोकुलाधि पुरुषानाज्ञापयति बोधयत्यादि- शतित्थयथा विदितमस्तुभवतां मयोपरिलिखितग्रामः सजलस्थलः सहोहलवणाकरः समत्स्याकरः सगतोखरः समधूकाग्रवनवाटिकः विटपतृणयुतोणोचरपर्यन्तः सोध्रविम्बत्तरः घटविबद्धः स्वमीमापर्यन्तः द्वयपीत्यधिकैका दशशत संवत्सरे ११८२ माघमासि कृष्णपक्षे षट्यान्तिथौ भृगावर्षितः ग्रीवमतीस्थलेगंगायां स्नात्वा विधिवन्मन्त्रदेव मुनिमनुजभूत पितृगणां स्तर्पयित्वा तिमिर पटल पाटन पट्टमह-समुद्धतार्चिषमुपस्थायौषधपतिसकलशेखरं सप्रभ्यर्च्य त्रिभुवनत्रतुर्वासुदेवस्य पूजां विधायप्रचुरप्रायसेनहविषा हविर्भुजहुत्वा मातापित्रौ रात्मनश्च पुण्ययशोभि-वृद्धयेऽस्माभिरग्रे करणकुशलतायुतकमतुलोदक पूर्वगौतमगौत्राभ्यांगौतमांकिर समुद्गलत्रिः प्रवराभ्यांठक्कुर श्रीआल्हनपुत्राभ्यां श्रीछीछट श्रीवाछट शर्म्भ्यां आचन्द्राकिं यावच्छासती कृत्यप्रदत्तमत्वा यथा दीयमानभाग भोगकर प्रवणिकरतु-रुष्कदण्ड सर्वादायनाज्ञां विवेकी भूयक्षान्तव्योति । भवन्तिचात्र श्लोकाः ।

भूमियः प्रतिगृह्णाति यश्चभूमिप्रयच्छति । उभौ तौपुण्यकर्माणौ नियतंस्वर्ग-गामिनौ ॥१॥ संबंधमासनंछत्र वाराश्वावरवारणाः । भूमिदानस्यचिन्हानि फलमेत-त्पुरंदर ॥२॥ सव्वनितान्भाविनः पाथिविन्द्रान्भूयो भूयो याचतेरामचन्द्रः । सामा-न्योड्यां धर्मसेनतुर्वृपाणां कालेकालेपाल-नीयोभवदिभः ॥३॥ बहुभिर्वसुधाभुक्ता राजभिः सगरादिभिः । यस्यस्ययदाभूमिस्तस्यतस्यतदाफलम् ॥४॥ गामेकाम् स्वर्णमेकञ्च भूमेरप्येकमंगलम् । हरन्तरकमाप्नोति यादवाहृतसंलवम् ॥५॥ तडागानां सहस्रेणाप्यञ्च मेघशतेनश्च । गवांकोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्धति ॥६॥ इति ।

नागमंगला का दानपत्र

श्रीरंगपट्टन से १५ कोस उत्तर नागमंगल शहर में एक मंदिर है । वहाँ पर निम्नलिखित लेख ६ ताम्रपत्रों पर खोदा हुआ मिला है जोकि एक मोटे धातु के कड़े से बेधित हैं, ये पत्रे १० इंच लम्बे और ५ इंच चौड़े हैं ।

इस लेख से ज्ञात होता है कि पृथिवी निगुड़ राजा की स्त्री कुदेवी जो पल्लवाधिराज की पोती थी उसने शके ६९९ में एक जैन मंदिर स्थापित किया था । इसी के सहायता के कारण उस के पति को विजय स्कन्धावार के महाराज पृथ्वी कोगिणि से उसके राज्यप्राप्ति के पचास वरस बाद प्रार्थना करने पर यह दानपत्र मिला था ।

मर्कण के पत्रों के लेख से मिलता हुआ कुछ कोणू राजाओं का वृत्तान्त इस लेख के पूर्व में है, जो सन् ४६६ से आरंभ होता है । इन लेखों में केवल इतना ही अंतर है कि इस में प्रथम महाराज का नाम कोडगणी वर्म धर्म महाधिराज और छठे का कोणणी महाधिराज लिखा है और केवल दानकर्ता को कोणयी लिखा है । इस शब्द के भिन्न भिन्न प्रकार के लिखे जाने से कुछ प्रयोजन नहीं केवल इस से यह सूचना होती है कि कुर्ग में एक पत्थर पर खुदा लेख निकाला था और जिसको सत्यवाक्य कोडगिणी वर्म धर्म महाराजाधिराज ने सन् ८४० में लिखा था उस में भी इसी शब्द कोणणी ही का अपभ्रंश है और इस को कभी कभी कोडगू भी लिखते थे जो कि कोडगू से बहुत मिलता है । यह कोडगू उस देश का प्रचलित नाम है जिसको अंग्रेज लोग कुर्ग लिखते हैं ।

मर्करा के लेख के सदृश इस से भी ज्ञात होता है कि दूसरे माधव और कदेव राजाओं में संबंध भया था अर्थात् पूर्वोक्त ने दूसरे की भगिनी से विवाह किया था, इस में विष्णु गोप के पुत्र गोद लेने और डिंडिकरराय के राज्य का कुछ भी वर्णन नहीं है । इस समय से लेकर भुविक्रम के राज्य तक जिसने सन् ५२१ में राज्यासिंहासन को सुशोभित किया दानपत्र और राज्य इतिहास दोनों में राजाओं की नामावली संपूर्ण मिलती है । इसके पश्चात् विलंड जिसका शुद्ध नाम राजा श्रीवल्लभाख्य था उसको इतिहास में वर्तमान राजा का भाई

लिखा है (प्रोफेसर डाउसन के अनुसार छोटा भाई और टेलर के अनुसार बड़ा) । यथार्थ में वह राजा और राज्यप्रबंध का कार्य सम्पादक दोनों था । दानपत्र में छोटे भाई का नाम नवकाम लिखा है । कोणणीमहाराज सोमेश्वर का वृत्तान्त जिस का शुद्ध नाम डाउसन शिवग महाराज टेलर शिवरामराय बताते हैं पीछे लिखा है । इतिहास में तो यों है कि इस का पौत्र पृथ्वी कोणणी महाराज था, जो सन ७४६ में राज्य सिंहासन पर था । यही नाम दानकर्ता का है और यदि भीमकोप और राजाकेसरी इसी राजा के नामांतर मान लिये जायें जैसा कि संभव होता है तो इतिहास और उन पत्र का वृत्तान्त एक मिल जाता है ।

(१) स्वस्ति जितं भगवता गतघनगगनाभेन पद्मनाभेन श्रीमज्जान्हेवकुलाम-
लव्योमावभासनभास्करः स्वखड्गैकप्रहारखंडितमहाशिलास्तंभलब्धबलपराक्रमो-
दारणारिगणविदारणोपलब्धवारणविभूषणविभूषितः काण्णायनसगोत्रशु श्रीमत्को-
दग्निवर्मार्धर्ममहाधिराजः तस्य पुत्रः पितुरन्वागतगुणयुक्तो विद्याविनयविहितवृत्तः
सम्यक्प्रजापालनमात्राधिगतराज्यप्रयाजानो विद्वत्कविकाचननिकपोपलभूतो
नीतिशास्त्रस्य वक्तृप्रयोक्तृकुशलो दत्तकसूत्रवृत्तेः प्रणेता श्रीमान्महाधिराजः
तत्पुत्रः पितृपैतामहगुणयुक्तोअनेक-चतुर्दन्त्ययुद्धावाप्तचतुर्दधिसलिलास्वा-
दितयथाः श्रीमद्धरिवर्ममहाधिराजः, तत्पुत्रो द्विजगुरुदेवतापूजनपरो (२)
नारायणचरणानुध्यातः श्रीमान्निष्णुगोपमहाधिराजः तत्पुत्रो त्र्यंबकचरणाम्भो-
रुहराजपवित्रीकृतोत्तमांगः स्वभुजबलपराक्रममक्रयकृतराज्यः कलियुगबलपंका-
वसन्नधर्मवृषोद्धरणनित्यसन्नद्धः श्रीमान्माधवमहाधिराजः तत्पुत्रश्रीमत्कदंबकु-
लगगभक्तिमालिनः कृष्णवर्ममहाधिराजस्य प्रियभागिनेयो विद्याविनयातिशय-
परिपूरिततांतरात्मा निरवग्रहप्रधानशौर्यो विद्वत्सु प्रथमगण्यः श्रीमान् कोणणि-
महाधिराजः अविनतनामा तत्पुत्रो विजृम्भमाणशक्तित्रय "अंदरिह" "अलत्तुप"
"पौकलाले" पेलंगराज्यानेकसमरमुखमखड्गतशूरपुरुष पशूपहार-विघसविहस्ती-
कृतकृतान्ताग्निमुखः किरातार्जुनीयपंचदशसर्गा (३) दिकोंकारो दुब्बिनतीतना-
मधेयः तस्य पुत्रो दुर्दान्तविमर्दमिभूमितविश्वम्भरादिपंचालिमाला-मकरन्दपुंज-
पिंजरीक्रीयमाणचरणयुगलनलिनोमुक्षरनामनामधेयः तस्य पुत्रश्चतुर्दशविद्या-
स्थानाधिगतविमलमतिः विशेषतो नवकोशस्य नीतिशास्त्रस्य वक्तृप्रयोक्तृकुशलो
रिपुतिमिरनिकरनिराकरणोदयभास्करः श्रीविक्रमप्रथितनामधेयः तस्य पुत्रः
अनेकसमरसम्पादितविजृम्भितद्विरदरदनकुलिशघातत्रणसमरूद्धस्वास्थ्यद विजय-
लक्षणलक्ष्मी कृतविशालवक्षस्थलः समधिगतसकलशास्त्राधितत्त्वः समाराधित-
त्रिवर्गो निरवग्रहचरितप्रतिदिनवर्द्धमानप्रभावो भुविक्रमनामधेयः अपिच ॥

नानाहेतिप्रहारप्रतिहतसुभटारामवाटोत्थितासृग ।

भारास्वादाभृताशक्षुधितपरिसरदग्ध्रसंरुद्धसीमे ॥

सामन्तान्पल्लवेन्द्रान्नरपतिमजयद्योबिलंदाभिधाने ।

राज्याश्रीवल्लभाख्यः समरशतजयावाप्तलक्ष्मीविलासः ॥

तस्यानुजो नतनरेन्द्रकिरीटकोटिरत्नार्कदीधितिविराजितपादपद्मः ॥

लक्ष्म्याः स्वयं वृतपतिर्नवकामनामाशिष्टप्रियोरिगणदारणगीतकीर्तिः ॥

तस्य कोणणिमहाराजस्य सीमेश्वरापरनामधेयस्य पौत्रः समवनतसमस्त-
सामन्तमुकुटतटघटितबहुबलरत्नविलसदमरधनुष्काण्डमण्डितचरणनखमण्डलो
नारायणे निहितभक्तिः शूरपुरुषतुरगनरवारणघटा संघर्षहाराणसमरशिरसिनि-
हितात्मकोपो भीमकोपः प्रकटरतिसमय समनुवर्तनचतुरयुवतिजनलोकधृतो लोकधूर्तः
सुदुर्धरानेकयुद्धमूर्धन्यलब्धविजयम्पदहितगजघटां (५) तकेसरीराजकेसरी अपिच ॥

यो गंगान्वयनिर्मलालंरतलव्याभासनप्रोल्लसन् ।

मार्तण्डोरिभयंकरः शुभकरः संमार्गरक्षाकरः ॥

सौराज्यं समुपेत्य राज्यसविताराजन्यतारोत्तमो ।
 राजा श्रीपुरुषेश्वरो विजयते राजन्यचूडामणिः ॥
 कामः रामः सचापे दशरथतनयो विक्रमे जामदग्न्यः ।
 प्राज्ये वीर्यं बलारिर्बहुमहसिरविः स्वप्रभुत्वेधनेशः ॥
 भूयोविख्यातशक्तिः स्पुटतरमखिलप्राणभाजाविधाता ।
 धात्राश्लिष्टः प्रजानांपतिरितिकवयोयंप्रशंसतिनित्यम् ॥

तेन प्रतिदिनप्रवृत्तमहादानजनितपुण्याहधोषमुखरितमन्दिरौदारेण श्रीपुरुष-
 प्रथमनाममधेयेन पृथ्वीकौण्ठिमहारजेन, अप्ठानवत्पुत्तरषट्छतेषु शकवर्षेष्वार्ति-
 तेष्व्वात्मनः प्रवर्द्धमानविजयवीर्यं संवत्सरेपंचाशत्समेवर्द्धमाने मान्यपुरमधिबसति
 विजयस्कन्दावारे श्रीमूलमूलशरणामिनंदितनंदिसंगान्वयइश्रुगित्तिरंनान्निगने
 मूलिकलग्ने स्वच्छतरगुणाकरकीरप्रततिप्रल्हादितसकललोकः चंद्रश्वापरः चंद्रनंदि-
 नामगुरुरस्ति तस्य शिष्यः समस्तविबुधलोकपरिरक्षणक्षमात्मशक्तिः परमेश्वर-
 लालनीयमहिमा कुमारवद्वितीयः कुमारनंदिनामा मुनिपतिरभवत् तस्यांतेवासी
 समधिगतसकलतत्त्वार्थसमपितबुधसार्द्धसंपत्संपादितकीर्तिः कीर्तिनंद्याचार्यो नामा
 महामुनिः समजनि, तस्य प्रियशिष्यः शिष्यजनकमलाकरप्रबोधजनकः
 मिथ्याज्ञानसंततसनुतससन्मानात्मकसद्धर्मव्योमावभासनभास्करोविमलचंद्राचार्यः
 समुदपादि, तस्य महर्षेधर्मोपदेशनयाश्रीमद्वाणकलकलः सर्वतपोमहानदीप्रवाहः
 बाहुदण्डमण्डलाखण्डितारिमंडलद्रुमशुंडा डुंडुप्रथमनामधेयो निर्गुण्डयुवराजो जज्ञे,
 तस्य प्रियात्मजः आत्मजनितनयविषनिः शेषीकृतरिपुलोकः लोकहितः मधुरमनोहर-
 चरितः चरितार्तत्रिकर्णप्रवृत्तिः परमगुणप्रथमधेयः श्रीपृथ्वीनिर्गुंडराजोऽजायत
 पक्कवाधिराजः प्रियतमजायां सगरकुलतिलकात् मरुवर्मणो जातांकुण्डाधिनामधेया-
 मुवाह भर्तृभावनाविर्भूयतायासंततप्रवर्तितधर्मकार्ययानिर्मिताय श्रीपुरोत्तरदिशामलं
 कुबतिलोभतिलकधाम्नेजिनभवनाय खंडस्फुटितनवसंस्कारदेवपूजादानधर्मप्रवर्तनार्थं
 तस्य एव पृथ्वी निर्गुण्डराजस्य विद्यापनया महाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीजसहितदेवेन
 निर्गुण्डविषयांतः पाति पोन्नालिनामाग्रामः सर्वपरिहारोपेदत्तः तस्य सीमां तराणि
 पूर्वस्यांदिशि नोलिबेलदा वेगलेमालदि, पूर्वदक्षिणस्यांदिशिपाण्यंगेरि, दक्षिणस्यां-
 दिशि वेडगली गेरयादिल गेरयापल्लादकुदल, दक्षिणपश्चिमायांदिशिजयद
 शकेप्यावेडगलमोलादुत्तरपश्चिमायांदिशि हेनके बितालनुवाजराकेलि, पश्चिमोत्त-
 रस्यांदिशि पुणुसेयगोडगालाकालकुप्ये, उत्तरस्यांदिशि सामगेडेयपल्लादाह
 पेरमुडिककेउत्तरपूर्वस्यांदिशि कलाम्बेयेत्यगष्ट ईशान्यामन्यादिक्षेत्राणिदत्तानि
 डुंडुसमुद्रदावयलुलकिलुदाडामेगेपदिरक्कंगंमणामपालेयरेनल्लु राजारपाक्कडकंडुगं
 श्रीवरदडुंडगालण्डरातांडुपडुययांडुतांडु श्रीवरदावयलुलकम्भरगत्तिनल्लिरिकंडुगं
 कालानिपेरगिलयकेडगेआरमंडुगं रेपुलिगिलेयाकोयेलगोदायददं इरुपत्तगुंडुगं भेद्य
 अदुबुश्रीवरवा बडगणापदुवणाकोनुणन् देवंगेशीमदपपहिदं मूवन्तादुबिन्नुमेनतानं
 अस्य दानस्य साक्षिणः अप्ठदशप्रकृतयः अस्य दानस्य साक्षिणः पराणवति
 सहस्रविषयप्रकृतयः योऽस्यापहलां लोभान्मोहात्प्रमादेन वा संपंचभिर्महद्भिः पातकैः
 संयुक्तो भवति यो रक्षति सपुण्यभाग् भवति अपि चात्रमनुगीताः श्लोकः ।

स्वदानुं सुमहच्छक्यं दुःखमन्यस्य पालनं ।
 दानं वा पालनं वेति दानाच्छेयोऽनुपालनं ॥
 देवस्वं तु विषं घोरं न विषं विषमुच्यते ।
 विषमेकाकिनं हन्ति देवस्वं पुत्रपौत्रकौ ॥

सर्वकलाधारभूतचित्रकलाभिज्ञेन विश्वकर्माचार्येणैव शासनं लिखितं
 चतुष्कण्डुकात्री हिवीजमात्रं द्विकण्डुककंगुक्षेत्रं तदपि ब्रह्मदेयमिव रक्षणीयं ।

चित्रकूट (चित्तौर) स्थ रमा कुंड प्रशस्तिः

ओंनमः श्रीगणेशप्रसादात् सरस्वत्यै नमः ।। श्रीचित्रकोटाधिपति श्रीमहाराजाधिराज महाराणा श्रीकुम्भकर्ण पुत्री श्रीजीर्ण प्रकारे सोरठ पति महाराया राय श्रीमंडलीकः ॥ भार्या श्रीरमाबाई ए प्रासाद रामस्वामि रु रामकुंड काराधिता सर्वतः १५५४ वर्षे चैत्र सुदि ७ रवौ मुहूर्त कृताः ॥ शुभं भवतु ।

श्रीमत्कुम्भ नृपस्य दिग्गज रवातिक्रांत कीर्त्यं बुधैः । कन्या यादव वंश मंडन मसि श्रीमंडलीक प्रिया । संगीतागम दुग्ध सिधुजमुधा स्वादे परा देवता । प्राद्युन्नं कुरुते वनीपक जनं कं न स्मरते रमा ॥११॥ श्रीमत्कुम्भलमेर दुर्ग शिखरे दामोदरं मंदिरं श्रीकुण्डेश्वर दक्षणा श्रित गिरे स्तीरे सरः सुंदरं । श्रीमदभूरि महाब्धि सिधु भुवने श्रीयोगिनी पत्तने भूयः कुंड मचीकरत्तिकल रमा लोकत्रये कीर्तये ॥२॥ श्रीकुम्भोद्भूतमन्वया बुधिनियमितः किं वा सुधा दीधितेनिक्षेप स्त्रिदशैरशोषण भिया किवाप्सरासुंदरं । प्राप्नुं पौर पुरात्रि वृंद मभुजद्भूमौ तलं मानसं चित्रं रामशर प्रहार भयतोऽभ्यर्च्य कंडायते ॥३॥ यस्मिन्नीर विहारि कोक मिथुनं क्रीडासमुन्मीलिते शीतांशा वितरेतरेण नितरां विश्लेष मासाद्य वा । तापे नैव तनौ विमर्त्य विरतं सोपान भित्तिस्फुरत स्वीयागे प्रतिबिंब संगम वशादूर्ध्वे तीरे वरत ॥४॥ पानीय हार विहार भुंदर सुंदरी वदनं निजं प्रतिबिंब भूत मतिह नर्मल धीर नीरगमंबुजं । आदातु मुखत पाणिना जलदोलनेन गत श्रम वितनोति कानन कुम्भ पूरणमत्र विस्मय विभ्रमा ॥५॥ रसाल तरु मंजुलं पिक विनोद नावोत्कलं क्वचित् कनक केतकोम्भ पराग पिगांचलं । सशीकर सुशीतलं सुरभि वृंद मंदानिलं मदीय मति नर्मलं जयति वीर भूमौ तलं ॥६॥ यदिय तट भूतलं हसित कुंद पुष्पोज्वलं क्वचिद्विक्रम मालती कुसुम लोल भूगे प्लवं । क्वचित् शरलसारणी तरल नीरता पेशलं स्तवति सुरयोषितं किमुत नंदना दव्यलं । एतद्विभक्ति तटलयेषु रुचिरोत्कीर्णैः सुरीणां गणैः क्रीडो पागत पौरयोधत रवते रपि । तत्तादृक्प्रतिबिंबते रुपलसन्नागागाना संगिभिर्मन्ये कुंडमिदं रमा विरचितं लोकत्रया ददमुत ॥८॥ यद्गुरुण प्रतिष्ठा समये समुपेत विबुध वृंदस्य । कनकदुकूल विवरणं विदधाति रमेति लोलुपति सुराः ॥९॥ यावच्छेष शिरःसुशेखरपदं भूमूतधात्र्या मये मेरुर्मेरु गिरेरुपपुंरितो ब्रह्मादि लोकत्रयं । धत्ते यावदमुत्र वा दिनमणि माणिक्य नैराजनं तावच्चारुतरं रमा विरचितं कुंडं चिरं नंदतु ॥१०॥

श्री रमा वर्णनं

उन्मीलद्गुण रत्नरोहण मही प्रौढप्रमालंकृता सौंदर्यामृत वाहिनी मधुसुहृत्साम्राज्य सर्वस्वभूः । सौराष्ट्रेश्वर यादवान्वयमणेः श्रीमंडलीक प्रभो राज्ञी चारु रमावती वितनुते संगीतमानंदं ॥१॥ कुम्भब्रह्म सुमीरित क्रममगा दुच्छिन्नता यत्स्नितौ तत्पदद्वय गिरीश भक्ति परमा रम्या रमा भारती । संगीतं भरतादि गोत्र विधिना ब्रह्मैक तानोपमा मंदानंद विधायकं विलासति प्रोल्हासयति परम् ॥२॥ नादा नंद मयी वरोन्नतकरा लोलोललसद्गलकी रागा रक्त गिरीश्वर स्वरकला शमोर्मिरम्यो ज्वला । लीलां देलित राजहंस गमना सद्भोगी मुक्तः मुक्ता पद्मा मोदित मानसा विजयते वागीश्वरी श्रीरमा ॥३॥ संजता जलधे विवेक विधुरा धीरेष्वबद्धादरा चापल्याऽभिरता प्रमोद मयते या पंकजातस्थितोः । विद्वत् कुम्भ नृपोद्भवया गुण गणा पूर्णा प्रवीणा नदी धैर्य प्रीति मतीति तां विजयते श्रेयो चित श्रीरमा ॥४॥ राज द्रैवत भूधरां तररतं श्रीकांतमाराधयत् कांतानंदित मानसा यदनिशं रागेव चावत्यतः । मेरौ कुम्भकृते महीप तनय श्रीमंडलीक प्रिया श्रीदामोदर मंदिर व्यरचयत् कैलास शैलोज्ज्वलं ॥५॥ श्रीरस्तु सूत्रधार रामा । अथ श्रीमहाराज श्रीमंडलीक प्रबंधः । इंदोरनिमित्तं कुलं बहुबाहुजातं वंशेषु यस्य वसंतरतुलं बभूव । श्रीमंडलेंद्र गिरि रेतकाधियासो दामोदरो भवतु वः सुचिरं विभूत्यै ॥१॥ श्रीमंडलीक दर्शन परितुष्ट मना महेश्वर सुकविः । श्रीमेदपात ब्रसतिर्गुणनिधिमेनं यथा मति स्तोति ॥२॥ आश्लिष्टः सुर विटपी संप्रति चितामणिर्मया कलितः । लब्धः सुवर्ण शिखरी मिलिते त्वयि मंडलाधीश ॥३॥ सुर विटपि विटप विशाल भुजदलकलित विपुल महाफलं । कवि चित चितामणि महागुण जाल जन्म महीतलं । अनवरत सुर सरिदमलतमजल लुलित सुर शिखरि प्रभं कलयाभि मंडल राज महमिह तोष मेमि हिम प्रभं ॥४॥ परि कलितः पुरुहूतो धन नाथो नयन गोचरो रचितः । साक्षात् कृतो रतीशस्त्वयि

मिलिते मंडलाधीश ॥५॥ पुरुहूतमिव गुरु मंत्र यंत्रित मंगल मंडित । धननाथमिव धन दानं तोषित चंद्रमौलिमखंडित । रतिरमणमिव पर युवति कृतनुति महत विषय शरैर्युतं परिचित्य मंडल राज मह मिह गोदमगममनुव्रतं ॥६॥ अंकुरिता शर्मलता कोरकिता चित चंपक व्रतितः । उल्लसिता तनु नलिनी मिलिते त्वयि मंडलाधीश ॥७॥ कलघौत विवरण तरल करजल जनित शर्म सवकुरं जनचित चंपक कुसुम संभव मधुर तर मधु बंधुरं । गणनैक मणि विसकुरण पुलकित विपुल तनु नलिनी दलं अनुभूय मंडल राज मिदमपि भवति हृदय मनाकुलं ॥८॥ कपूरं नयन युगे वपुषि सुधा रश्मि परिषेकः । हृदये परमानंदस्त्वयि मिलिते मंडलाधीश ॥९॥ घन सार सारसभाभि मार्दवलोचनं हिमनिर्भरं सकलं प्लुतं वपुरद्य हिमहिम धाम धामनि निर्भर । मम मनसि परमानंद संपदुदारतर भमि वदंते नरनाथ भवति विलोकिते सति मंडलेश शुचिस्मिते ॥१०॥ सुर तर रद्य नरेश गेहदशं मम कलयति । सुरगिरि रिति यदुराज राजमान संकलयति । सुपति रयमिति मति रुदति । संप्रति नर नायक परिरिति नयनानुरक्ति रुदयति । इदसायक अनुपमतम महिम महोप सुतमंडल सकल कला । अष्ट भूति भवमवधि नवनिधि सनिधि रधिकलमा ॥ *

* अत्र अंतिम पंक्तिः पठनाशक्यत्वात्परित्यक्ता ।

गोविंद देवजी के मंदिर की प्रशस्ति ।

"सम्बत ३४ श्री शकबंध अकबरशाह राज्ये श्रीकुर्मकुल श्रीपृथ्वीराजाधि । राजवंश महाराज श्रीभगवंतदास सुत श्रीमहाराजाधिराज श्रीमानसिंहदेव श्रीवृन्दावन जोग पीठस्थानकरा श्रीगोविन्ददेव को ।"

इस के प्रारंभ होने का यह संवत् जानना चाहिए ।

"श्रीवृन्दाविपिने शिवादिदिशिष्यद्वन्द्वावलीवन्दिते . . . श्री गोविन्द . . . ण्यक्सदाराजते ॥१॥ श्रीमानकंबरोयदा भुवमयात्सवांतदेवाधुनासर्वः सौख्यम . . . गणैः स्वधर्ममुच्चैर्मजनु । श्रीगोविन्द पदंतदेवदुयिते वासायसद्वैष्णवाल्मभं . . . तस्मै सदे वा. प. ॥२॥ तस्मिस्तस्यसदान्वितक्षितिपतिः श्रीमानसिंहामिधः पृथ्वीराज विराज . . . धे श्वन्द्रमाः । भूभूदभारहमल्लजात भगवद्भासात्मजोमन्दिरं कुर्वन्निदरायावला-दचलाया ॥३॥ . . . स्तथाविधमहाराजाधिराजाप्यसौ येनैवारि दिग्नेन विजयीध्वस्त भ्रमः क्रीडति सश्रीमान. सिंह नवायुदेयस्य नियत्यं दिव्य पितृयाः कीर्तिध्वजत्वंगताः ॥४॥ यः क. धिपजातिरेष विजयीश्री मानसिंहोनुः . . . सदा विजत . . . दास सुधीः । श्रीगोविन्दपदारविन्द . . . स्तनमन्दिरं संमदान् कुर्वन्नुदममत्रतूर्ण . . . पू . . . ॥५॥ श्रीमानसिंहाद्भुतम ॥६॥ . . . इन्द्रप्रस्थनिवासि . . . पुगुरुगोविन्द-दासामिधः । . . भवदाविष्य दखिल श्रीवैष्णवानां सुखं श्रीकर्ता हरिणासदानि जदयाया. याविनि . . . ॥७॥ श्रीग्रसेनः कृती, तौदौश्रीयुतभानसिंहनुपति प्रस्थायितौनन्द ताम् । किम्बाग्नद्वन्द्वनीय . . . प्रतिपदसौख्यं गम हद्दिन्दुत ॥८॥ मुनिवेदतुचन्द्राहू १६४७ सम्बन्मन्दिर सम्भवे . . . ॥९॥ श्रीमद्रूपसनातनानामनौतो-भजेतज ॥१०॥"

इन पद्यों का अविकल न होने से अर्थ लिखना हम उचित नहीं समझते । केवल एक दो बात स्मरण रखने के योग्य है ।

१ म. अकबर का संस्कृत नाम "अकबर" है, प्रायः भाषा-रसिक और संस्कृत-रसिक लोगों के उपयोगी है । २ य. मानसिंह की वंशपरम्परा यह है, राजा भारहमल्ल (वा भारामल्ल) राजा भागवतदास वा भगवंतदास राजा मानसिंह । ३ य. श्रीरूपगोस्वामी और श्री सनातन गोस्वामी का प्रशंसा जैसी आज काल है वैसी तीन सौ बरस पहिले भी थी लोग आधुनिक कीर्ति कल्पना न समझें ।

इस लिपि के निकट ही जगमोहन के द्वार के ठीक सामने भूमि पर एक पत्थर की चट्टान में यह सफल संबंधी लिपि है "राणा श्री अमर सिंह जी सुत श्री बागजी सुत श्री सबलसिंहजी की जात्रा सफल सम्बत् सतरै से अगरोतरामगंसेर सुत ७ सो में लखत प्रोहेत जी जबादादास पधारो सम्बत् १७७८ ।

पाँच छोटे छोटे शिखर के दक्षिण, उत्तर में दो मन्दिर, दक्षिण मन्दिर की शिखर कुछ फूटी है और मंदिर का द्वार दो किष्कु ऊँचा है । सीढ़ी के योग से चढ़ते हैं । भीतर एक तल घर में वृंदादेवी (वा पातालदेवी) विराजती है । घुमाव की बारह पक्की सीढ़ी उतर कर नीचे दर्शन करना होता है । देवी की मूर्ति शृंगवर (संगमरमर) पाषाण की अष्टभुजी एवं सिंहवाहिनी ११ इंच ऊँची और ९ इंच चौड़ी है । पास ही एक शृंगवर की छोटीसी चौकी पर श्रीराधिका जी के चरणचिन्ह है । चौकी के तट पर यह पद्य लिखा है ।

एक मोरी जिस का निकास बाहर की ओर उत्तर दिशा में है उस के ऊपर यह प्रशस्ति है ।
"संवत् ३४ श्रीशकबन्ध अकबर महाराज श्री कर्मकुल श्री पृथ्वीराजाधिराज वंश श्री महाराज श्रीभगवन्तदास सुत श्रीमहाराजाधिराज श्रीमानसिंहदेव श्रीवृन्दावन जोगपीठ स्थान मंदिर कराजो श्रीगोविन्ददेव को काम उपरि श्रीकल्याणदास आज्ञा करि माणिकचंद चोपड़ शिल्पकारि गोविन्ददास दीलवरिकारिगरदः गोरपदासवीमवल् ॥"

मंदिर के चारों ओर संकीर्ण कच्चे चौक में कोई उत्तम स्थान नहीं है, केवल पूर्व द्वार की बाईं ओर कुछ थोड़ी फुलवारी है और पश्चिम द्वार की ओर अति निकट एक छत्री है । यह छत्री प्रथम नाट्य मंदिर के सामने थी, परंतु अबकी जीर्णोद्धार में परिष्कार एवं संस्कार करके पश्चिम प्रांत में एक चौतरे पर स्थापित कर दी गई । इस में चरणचिन्ह शृंगवर के बने हैं और एक स्तंभ पर लिपि है । ज्ञात होता है कि इस में किसी के अस्थि समूह सञ्चित थे, क्योंकि चरणचिन्ह का व्यवहार प्रायः ऐसे ही स्थान में होता है । दूसरे राजाओं में ऐसी रीति भी प्रचलित है पुण्य-स्थान में अस्थि सञ्चय किया जाय ।

"संवत् १६९३ वरषे कालिक वदि ५ शुभदिने हजरत श्री३ शाहजहाँ राज्ये राणा श्रीअमरसिंह जी को बेटो राजाश्रीभीम जी राणी श्रीरम्भावती चौखंडी सौराई छेजी ।"

बौद्धमत का श्लोक जो सारनाथ की धनेख से मिला था ।

**७ ये धम्महेतु प्रभवाहेतुतेषां तथा गता ह्यवदत्
तेषांचयो निरोध एवंवादी महाश्रमणः ।**

बिहार जिले में बहुतेरी प्राचीन बौध मूर्तों पर यह श्लोक खुदा हुआ है, वरन् राजगृह के प्रसिद्ध जैन मंदिर में भी जो बस्ती में है एक मूर्ति पर यही श्लोक खुदा है, और इसी कारण हम उस को प्राचीन बौधमती अनुमान करते हैं ।

जेनरल कनिंगहाम साहिब ने जो दो हजार बरस के लगभग पुराने राजा वासुदेव की अथवा राजा वासुदेव के संवत् नब्बे में बनवाई महावीर स्वामी की मूर्ति मथुरा में पायी है उस पर ९० का अंक लिखा है । जेनरल साहिब ने जो उस मूर्ति पर से हफों का छापा लिया है उस के एक (पहले) टुकड़े में (सिद्ध ओं नमो अरहत महावीरस्य राजा वासुदेवस्य संवत्सरे ९०) लिखी है । अफसोस है कि हफों के घिस जाने के सबब इस से अधिक उस की इबारत पढ़ी ही नहीं जा सकती है ।

जिला गया के प्रसिद्ध स्थान देवमंगा में एक सूर्य का मंदिर है उस पर, यह श्लोक खुदा है । इस लेख से आश्चर्य होता है कि इतने दिनों का लेख वर्तमान हो ।

शून्यव्योमनभोरसेंदुकरभेहीने द्वितीयेयुगे ।

माधेवाणतिथौ शितै गुरुदिने, देवो दिनेशालुयं ॥

प्रारंभेदुष्टदांचयेरचयितुं सौम्यादिलायांभवो ।

यस्या सीत्सनराधिपः प्रभुतया लोकोविशोकोभुवि ॥

अर्थ — दूसरे युग अर्थात् त्रेता युग के १२१६००० वर्ष बीतने पर माघ शुक्ल पंचमी गुरुवार के दिन ऐलपूरवार जो बुध से इला में उत्पन्न हुआ था उस ने पाषाणदिकों से दिनेश अर्थात् सूर्य का मंदिर बनाना प्रारंभ किया था । जब यह राज्य करता था तब इस की प्रभुता से सब प्रजा भूमि में सुखी थी ।

प्राचीन का सम्वत् निर्णय ।

माधवाचार्य लिखित किसी की टीका से राजावली ग्रंथ से उद्धृत ।

यह राजावली ग्रंथ किसी ज्योतिषी ने स. १८१६ में बनाया है । इस में संवत्सर, प्रतिपदा के विधान

और कालादिक का अनेक निर्णय किया है और फिर कलियुग के राजाओं का और अन्य युग के राजाओं का नाम

'राजाधिराज माधवाचार्य टीकायामुक्तं' कह के उसने माधवाचार्य के किसी ग्रंथ की टीका से उद्धृत किया है यह संवत् और नामादिक प्राचीन इतिहास के उपयोगी जान कर यहाँ प्रकाश किये जाते हैं ।

सत्ययुग में — कृष्णातीर में अमरेश्वरलिंग, पुष्करतीर्थ, बौद्धपत्तनपीठ । राज-कृतसंज्ञ कृतयुत्र कृतदेव त्यागी मेन, मुचकुन्द, मेरुवनन्द, अंधक, हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, विरोचन, बलि, वाणासुर, गमासुर, कपिलभद्र, निर्घोषा, मान्धाता, वेणु । कश्यप, सूर्य, मनु, महामनु, तक्षक, अनुरञ्जन, विश्वावसु, विमना, प्रद्युम्न, धनञ्जय, महीदाम, यौवनाश्व, मान्धाता, मुचकुन्द, पुरुुरवा, बलि, सुकान्ति, वीर ।

त्रेता में — नैमिषारण्यतीर्थ, सोमेश्वर लिंग, जालंधर पीठ । राजा-कद्रू, पुरुुरवा, ग्रीषध, वेणु, नैषध, त्रिशुंग, मरीचि, इक्षु, मनु, दिलीप, रघु, त्रिशंकु, हरिश्चंद्र, रोहिताश्व, धुंधुमार, जन्हु, सगर, भगीरथ, वेणु, वत्स, भूपाल, अश्व, अलिधि, नल, नील, नाम, पुंडरीक, क्षेमक, शतधन्वा, शतानीक, पारिजातक, दलनाभ, पुष्पसेन, अजपाल, दशरथ, श्रीराम, लवकुश, अंगस्वामी, अग्निवर्ण ।

द्वापर में — कुरुक्षेत्र तीर्थ, केदारेश्वरलिंग, अवन्ती पत्तन । राजा — भर्तृहरि, पुरु, अनुविरक्त, अव्यक्त, फेन, इंद्र, ब्रह्मा, अत्रि, सोम, बुद्ध, धनुर्जय, शतनु, गव्य, गवाक्ष, असमञ्जस, निर्घोष, प्रजापति, अंकुर, उपवीर, अनुसंधि, जेष्ठभरत, कनिष्ठभरत, धर्मध्वज, शांतनु, पांडु, नरवाहन, क्षेमक, ययाति, क्षान्त, चित्र, पार्थ, अर्जुन, अभिमन्यु, परीक्षित, जन्मेजय ।

कलियुग में — गंगा तीर्थ, कालीदेवता, प्रतिष्ठानपुरनगर । कलिकवतार इस ने अलग तीन बाल पर यहाँ लिखा है और उन के परस्पर जन्मदिन, पिता माता के सब अलग अलग हैं । कलियुग के आरंभ से ३०४४ वर्ष के भीतर युधिष्ठिर, परीक्षित, जन्मेजय, वत्सराज, क्षेमसिंह, सोमसिंह, राणकण्य, अंशुसेन, रामभद्र, भरतसिंह, पठानसिंह, विक्रमसिंह, नरसिंह, आदित्यसिंह, ब्रह्मसिंह, वसुधासिंह, हर्षसेन, भर्तृहरि । ३०४४ में विक्रम का राज्य, ३१७९ में शालिवाहन का राज्य, फिर सूर्यसेन, शक्तिसिंह, खड्गसेन, सुखसिंह, मम्मलसेन, मुञ्ज, भरत, श्रीपाल, जयानंद, रामचंद्र, छत्रचंद्र, अनूप सिंह, तुम्बरपाल, ननश्वाहाण, रणवाही, शालपाल, कीर्तिपाल, अनंगपाल, विशालाक्ष, सोमदेव, बलदेव, नागदेव, कीर्तिदेव, पृथ्वीपति इतने प्रसिद्ध राजा हुए । फिर म्लेच्छों का राज्य आरंभ हुआ । सिकंदरशाह ने विश्वेश्वर का अपराध किया । इस के पीछे मुसलमानों का वर्णन है ।

फिर कालनिर्णय यों किया है — व्यासादिक का काल ५१५४ वर्ष कलियुग लगने के पूर्व । श्री कृष्णावतार द्वार की संख्या प्रारंभ, कलियुग के पूर्व क्योंकि कलि का काल होते भी उसने प्रावलय नहीं पाया था । क्षेमक तक युधिष्ठिर का वंश, सुमित्र तक इक्ष्वाकु का वंश और रिपुञ्जय तक जरासंध का वंश एक सहस्र वर्ष कलियुग बीते समाप्त हो चुका था । फिर १३८ वर्ष प्रयोतनों का राज्य गत कलि ११३८ वर्ष । शिशुनाग वंश का राज्य ३६२ वर्ष ग. क. १५०० वर्ष । फिर शुद्ध क्षत्रियों का राज्य छूटकर नंददिकों का राज्य हुआ । नंदों का राज्य १३७ वर्ष ग. क. ११३७ वर्ष । फिर कण्ववंश के राजा उन का राज्य ५५७ वर्ष ग. क. २१९४ वर्ष । फिर आंध्रराजा का ४५६ वर्ष ग. क. २६५० वर्ष । फिर सात आभीर और दस गर्दभिल राजों का राज्य ३९४ वर्ष ग. क. ३०४४ वर्ष । फिर विक्रमों का राज्य १३५ वर्ष ग. क. ३१२९ वर्ष । अंत के विक्रम को शालिवाहन ने मारा, फिर शालिवाहन वंश ने १५५ वर्ष राज्य किया । शेष पुत्र के वंशने १३९, शक्तिकुमार के वंश ने ११४, शुद्रक ने ९५ और इंदुकिरीटी ने ४८ । सब ४३७ वर्ष हुए । फिर ३३ वर्ष तोमर, ३४ वर्ष चिंतामणि, ३० वर्ष राम और ३६ वर्ष हेमाद्रि राजा ने राज्य किया । सब १३३ वर्ष हुए । तब शक ५१० था । उसी के पीछे तुरुष्कलोनों का प्रवेश होने लगा । फिर भारतवंश के खंडराज हुए । फिर चालुक्य वंश ने ४४४ वर्ष, पल्लोमदत्त ५५ वर्ष, गौड़राज्य २०, मिल्लराज ५० वर्ष राज्य तब शाके १००६ वर्ष कलि ४१८५ । फिर यादवराजे २२७ वर्ष तब शक १२३३ वर्ष । इस वंश के देवगिरि के अंतिम राजा रामदेव को शक १२१७ में अल्लाउद्दीन ने जीत कर राज्य फेर दिया, राम देव ने ५६ वर्ष और राज्य किया फिर तुरकों का राज्य ३३४ वर्ष हुआ ।

महाराष्ट्र देश का इतिहास

रचनाकाल सन् १८७५। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खण्ड— ३-४ सन् १८७५-७६
पहली बार प्रकाशित। बाबू शिवबल्लभ सहाय के अनुसार पुस्तकालय सन् १८८० में
प्रकाशित। सं.

महाराष्ट्र देश का इतिहास

महाराष्ट्र देश का शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं मिलता। शालिवाहन राजा वहाँ के पुराने राजों में गिना जाता है। इसने शाका चलाया है और यह भी प्रसिद्ध है कि इसने किसी विक्रम को मारा था। इस की राजधानी प्रतिष्ठात थी, जिसे अब पैठण कहते हैं। देवगिरि का राज्य मुसलमानों के आगमन तक स्वाधीन था और रामदेव वहाँ का आखिरी स्वतंत्र राजा हुआ। तेरहवें शतक में मुसलमानों ने देवगिरि (देवगढ़) विजय कर के उसका नाम दौलताबाद रक्खा। सन् १३५० ई. के लगभग दिल्ली के बादशाह के जफर खाँ नामक सूबेदार ने दक्षिण में एक मुसलमानी स्वतंत्र राज्य स्थापित किया और वह पहिले एक ब्राह्मण का सेवक था, इससे अपना पद ब्राह्मण रक्खा था। इस वंश ने पहिले गुलबर्गा में, फिर बिंदर में, अंदाज डेढ़ सौ बरस राज किया। सन् १५०० के लगभग इस राज की पाँच शाखा हो गई थीं, जिनमें गोलकुंडा, बीजापुर और अहमदनगर वाले विशेष बली थे। इस वंश के राज में सन् १३९६ में बारह बरस का दक्षिण में एक बड़ा भारी अकाल पड़ा था। हिंदुओं में उस समय कोंकण में सिरका नाम का केवल एक स्वाधीन सरदार था, बाकी सब लोग इन के अधीन थे। ब्राह्मणीराज्य नाश होने के समय सन् १४९६ ई. में वास्कोडिगामा ने पुर्तगाल लोगों के साथ कालीकट में प्रथम प्रवेश किया और सन् १५१० में गोआ उन लोगों के अधीन हो गया। बीजापुर के बादशाह आदलशाही और गोलकुंडे के कुतुबशाही और अहमदनगर के निजामशाही कहलाते थे। सन् १६२८ में अहमदनगर की बादशाहत दिल्ली के अधिकार में हो गई और गोलकुंडा और बीजापुर भी सन् १६८७ ई. में दिल्ली में मिल गए।

महाराष्ट्रों का राजस्थापन करनेवाला शिवा जी सन् १६२७ ई. में उत्पन्न हुआ।

उस के पूर्वजों का नाम भोंसला था, जो लोग दौलताबाद के पास बेरुल गाँव में रहते थे।

शिवाजी का दादा मालोजी भोंसला अपने वंश में पहिला प्रसिद्ध मनुष्य हुआ और उसने अपने बेटे शहाजी का विवाह अहमदनगर के बादशाह के दशहजारी सरदार जादोराव की बेटी से किया और पूना सूबा बादशाह से जागीर में पाया और शिवनेरी और चाकण दोनों किलों का सरदार भी नियत हुआ।

अहमदनगर की बादशाहत बिगड़ने पर शहाजी दिल्ली में शाहजहाँ के पास गया और वहाँ से अपनी जागीर कायम रखने की सनद ले आया, पर थोड़े ही दिन पीछे किसी वैमनस्य से दिल्ली का अधिकार छोड़कर वह बीजापुर के बादशाह से आ मिला और अपने राज्य में करनाटक के बहुत से गाँव मिला लिये

शिवाजी शिवनेरी किले में जनमा और तब उस का बाप करनाटक में रहता था, इस से उसने छोटपन में पूना प्रांत में दादोजी कोणदेव से शिक्षा पाई थी। छोटोहीपन से इस में वीरता के चिन्ह और लड़ाई के उत्साह प्रगट थे।

उनीस बरस की अवस्था में तोरन का किला जीत लिया और दादोजी कोणदेव के मरने पर पूना के जिले का सब काम अपने हाथ ले लिया।

बीजापुर के पुरंदर और दूसरे दूसरे कई किले अपने अधिकार में कर के उस पर संतोष न करके दिल्ली के बादशाही देशों में भी लूट कर इसने अपना बल, सेना और धन बढ़ाया।

मालव नाम की सूर जाति के लोग इस की सेना में बहुत थे और सन् १६४८ ई. में बीजापुर के बादशाह से इस के कल्याण की सुवेदारी लिया, परंतु जब बादशाह ने उसका बल बढ़ते देखा तो सन् १६५९ में अपने अफजल खाँ नामक सरदार को उससे लड़ने को भेजा, पर शिवाजी ने धोखा दे कर इस सरदार को मार डाला।

सन् १६६४ ई. में शिवाजी का बाप मर गया और तब से उसने अपना पद राजा रख कर अपने नाम की एक टकसाल जारी किया।

यह पहले राजगढ़ और फिर रायगढ़ के किले में रहता था। उस ने अपने बहुत से किले बनाये थे, जिन में राजगढ़ और प्रतापगढ़ ये दो मुख्य थे।

सन् १९५६ ई. में सामराज पंत को शिवाजी ने पेशवा नियत किया।

बीजापुर का बादशाह तो शिवाजी को दमन करने में समर्थ न हुआ, औरंगजेब ने राजा जसवंत सिंह को बहुत सी फौज दे कर शिवा जी को जीतने को भेजा, पर शिवाजी ने बादशाह के आधीन रहना स्वीकार कर के राजा से मेल कर लिया। और सन् १६६६ में आप भी दिल्ली गया, पर वहाँ उस का यथेष्ट आदर न हुआ, इस से उसने बादशाह को कटु वचन कहा, जिससे थोड़े दिन तक कैद में रह कर फिर अपने बेटे समेत दक्खिन भाग गया। कुछ दिन पीछे औरंगजेब ने उस को राजा का खिताब दिया और उसी अधिकार से उस ने दक्खिन में सन् १६७० में चौथ और सरदेशमुखी नाम के दो कर स्थापन किये। सन् १६६५ में इस ने पानी के राह से मालाबार पर चढ़ाई की और दो बर सूरत लूटा। जब यह दूसरे बर सूरत लूटने जाता था तब १५००० फौज इसके साथ थी और राह में हुक्ली नामक शहर लूटने से बहुत सा धन इस के हाथ आया और फिर तो वह यहाँ तक बलवान हो गया था कि जो अपने भाई वेंकों जी से बाप की जागीर बँटवाने और बीजापुर का इलाका लूटने को कर नाटक की तरफ गया था तो इसके साथ ४००० पैदल और ३०००० सवार थे। सामराज पंत से पेशवाई ले कर मोरोपंत पित्रलो को उस स्थान पर नियत किया और प्रतापराव गूजर इस का मुख्य सेनापति था, जिस के मरने पर हंबीर राव मोहिता उसी काम पर हुआ।

सन् १६७६ में रामगढ़ में शिवाजी का विधिपूर्वक राज्याभिषेक हुआ और तब इसने आठ अपने मुख्य प्रधान रखे थे। पेशवापंत, अमात्य, पंतसचिव, मंत्री, सेनापति, सुमंत, न्यायाधीश और पंडितराव, यही आठ पद उस ने नियुक्त किये थे और अपने जीते हुए देशों का काम आकाजी सोनदेव के अधिकार में दिया।

जिस समय सब कोंकन और पूना का इलाका और करनाटक और दूसरे देशों में भी कुछ पृथ्वी इस के अधीन थी उस समय सन् १६८० ई. में संभाजी और राजाराम नाम के दो पुत्र छोड़ कर तिरपन वर्ष की अवस्था में यह परलोक सिंघारा।

शिवाजी के मरने के पीछे तेईस वर्ष की अवस्था में संभाजी गद्दी पर बैठा, पर यह ऐसा क्रूर और दुर्व्यसनी था कि इस से सब लोग दुखी थे। इस ने अपने छोटे भाई राजाराम की मा को मार डाला और सब पुराने कारबारियों को निकाल कर कलूसा नामक कनौजिया ब्राह्मण को सब राजकाज सौंप दिया। इस की दुष्टता से इस के पिता का सब प्रबंध बिगड़ गया और सब सर्दार इस के अशुभ-चिंतक हो गये और यहाँ तक कि सन् १८८९ ई० में जब यह संगमेश्वर की ओर शिकार खेलने गया था तो इस को मुगलों ने पकड़ कर औरंगजेब की आज्ञा से कलूसा ब्राह्मण समेत तुलापुर में मार डाला।

इस का पुत्र शिवाजी जिस को साहू जी भी कहते हैं, औरंगजेब की कैद में था, इस से इस का सौतेला भाई राजाराम गद्दी पर बैठा। इस ने सितारा में अपनी राजधानी स्थापन किया और पंत प्रतिनिधि नाम का एक नया पद नियुक्त किया और बड़े भाई के बिगाड़े हुए सब प्रबंधों को नए सिरे से सँवारा। यह १७०० ई में मरा और फिर आठ वर्ष तक इस की स्त्री ताराबाई ने अपने पुत्र शिवाजी को गद्दी पर बिठा कर उस के नाम से राज्य

का काम चलाया ।

इन लोगों के समय में औरंगजेब ने महाराष्ट्रों को बहुत बिगाड़ना चाहा, परंतु कुछ फल न हुआ, यहाँ तक कि वह सन् १७०७ में आप ही मर गया । जब सभाजी का पुत्र शिवाजी औरंगजेब के पास रहता था तब औरंगजेब इस के दादा को लुटेरा शिवाजी और उस को साहू शिवाजी कहता था, इसी से दूसरे शिवाजी का नाम साहूराजा हुआ । सन् १७०८ ई. में जब साहू औरंगजेब की कैद से छूट कर आया तब सर्वारों ने उसे सितारे की गद्दी पर बिठाया, और तब उस की चाची ताराबाई ने अपने पुत्र शिवाजी को लेकर कोलापुर का एक अलग स्वतंत्र राज स्थापन किया ।

जब साहू राजा १७ वर्ष तक कैद में था तब औरंगजेब की बेटी उस पर और उस की मा पर बड़ी मेहरबान थी । इसी से औरंगजेब ने अपने यहाँ के दो बड़े बड़े मरहठे सरदारों की बेटी उसे ब्याह दी थी और उसे बहुत सी जागीर भी दी थी । जब साहू राजा दिल्ली से सितारे आता था तब एक स्त्री ने अपना दूध पीनेवाला बालक उस के पैर पर रख दिया था, जिस के वंश में अब अकलकोट के राजा हैं । साहू राजा का स्वभाव विषयी था, इसी से उस ने अपना सब काम घनाजी राव यादव को सौंप रखवा था और उसने आवाजी पुरंदरे और बालाजी विश्वनाथ नाम के दो मनुष्य अपने नीचे रखे थे । घना जी के मरने पर सन् १७१४ ई. में बालाजी विश्वनाथ पेशवा हुआ और महाराष्ट्र के इतिहास में इस का नाम सब से प्रसिद्ध है ।

साहू राजा बयालीस वर्ष राज कर के छाल्छ वर्ष की अवस्था में सन् १७४९ ई. में मर गया और इस के पीछे सितारे का राज्य पेशवा के अधिकार में रहा । यह मरते समय लिख गया था कि ताराबाई के पोते राजाराम को गोद ले कर कर हमारी गद्दी पर बिठा कर राज काज पेशवा करै ।

राजाराम सन् १७४९ ई. में नाम मात्र का राजा हो कर सन् १७७० तक राज्य करके अमृत मरा । फिर शिवाजी के भाजे के वंश का एक पुरुष दत्तक लेकर साहू महाराज के नाम से गद्दी पर बिठाया, जो सन् १८०८ ई० में मरा और उस के पीछे उस का पुत्र प्रताप सिंह गद्दी पर बैठा । इस को सन् १८१८ में सर्कार अंगरेज बहादुर ने पेशवा के राज्य से बहुत मुल्क दिया, पर सन् १८४९ में इस बेपारोप होने से अंगरेजों ने इसे निकाल कर इसके छोटे भाई शाहाजी को गद्दी पर बिठाया, जो सन् १८४८ ई. में निर्वंश मर कर इस वंश का अंतिम राजा हुआ और उसका सारा राज्य सर्कारी राज्य में मिल गया ।

दूसरा भाग

बालाजी विश्वनाथ ने पेशवा होकर सैन्यदों की सहायता से दिल्ली के परतंत्र बादशाह से अपने स्वामी का गया हुआ सब राज्य फेर लिया और छ वर्ष पेशवाई करके सन् १७२० में सासवड़ गाँव में मर गया । उसी साल में हैदराबाद के नवाबों का मूल पुरुष निजामुलमुल्क नर्मदा के इस पार आकर बादशाही सेना से लड़ाई कर रहा था और अपना अधिकार बहुत बढ़ा लिया था ।

साहू राजा ने बालाजी विश्वनाथ के बड़े पुत्र बाजीराव को पेशवाई का अधिकार दिया । यह मनुष्य शूर और युद्ध में बड़ा कुशल था और उस का छोटा भाई चिमनाजी आप्पा भी बड़ा बुद्धिमान और वीर था और अपने बड़े भाई की राज्य और लड़ाई के कामों में बड़ी सहायता करता था । निजामुलमुल्क से इस ने तीन लड़ाई बड़ी भारी भारी जीती और गुजरात, मालवा इत्यादि अनेक देशों पर अपना इच्छित्यार कर लिया और अपनी सेना ले कर सारे हिंदुस्थान को लूटता और जीतता फिरता था । संधिया, हुल्कर और गाइकवाड़ ने इसी के समय उत्कर्ष पाया, पर संधिया के पुरुषा पहले से बादशाही फौज के सारदारों में थे । वरंच कहते हैं कि औरंगजेब ने इन्हीं पुरुषों में से किसी की बेटी साहूराजा को ब्याही थी । नागपुर वालों ने भी इसी के समय राज पाया । चिमनाजी आप्पा ने पोर्तुगीज लोगों से साष्टीबेट का इलाका बड़ी बहादुरी से छीन लिया था । बाजीराव सन् १७४० में मरा और उस का बड़ा पुत्र बालाजी उर्फ नाना साहब पेशवा हुआ । इस का एक छोटा भाई रघुनाथ राव नाम का था । इस ने पूना को अपनी राजधानी बनाया । इसके छोटे भाई के अधिकार में राज्य का सब काम था । यद्यपि नाना साहब राज्य के कामों में बड़ा चतुर था पर कपटी और बड़ा आलसी मनुष्य था, पर उस के दोनों भाई अपने काम में ऐसे सावधान थे कि उस की बात में कुछ फरक न पड़ने पाया ।

सदाशिव राव भाऊ ने रामचंद्र बाबा शेणवी को साथ लेकर महाराष्ट्री राज्य का फिर से नया और पक्का

प्रबंध किया। महाराष्ट्रों का बल उस समय पूरा जमा हुआ था और हिंदुस्तान में ये लोग चारों ओर चढ़ाई करते फिरते थे। दिल्ली के बादशाह ने माना कि इनकी कठपुतली था। नाना साहब से नागपुर के सरदार राधोजी भोसला से कुछ वैमनस्य हो गया था, पर साहू राजा ने बीच में पड़ कर विहार, अयोध्या और बंगाल का मरहटी अधिकार भोसला से छोड़वा कर आपस का द्वेष मिटा दिया।

सन् १७४८ ई. में एक सौ चार वर्ष का होकर निजामुलमुल्क मर गया। उस के पीछे बारह वर्ष तक उसका राज्य अव्यवस्थित रहा; फिर उस के पुत्रों में से निजामअली नाम के एक मनुष्य ने वह राज्य पाया। रघुनाथ राव ने अटक से कटक तक हिंदुस्तान को दो बेर जीता, पर वहाँ का रुपया वसूल करना हुल्कर और सेंधिया के अधिकार में करके आप फिर आया।

इसी अवसर में अहमदशाह अफगानों की बड़ी भारी फौज लेकर हिंदुस्तान में मराठों को जीतने के लिये आया। तब सदाशिव राव भाऊ और पेशवा का बड़ा लड़का विश्वास राव ये दोनों सेंधिया, हुल्कर, गाडकवाड़ और और और सरदारों के साथ डेढ़ लाख पैदल, पचपन हजार सवार और दो सौ तोप की फौज से दिल्ली की ओर चले और सन् १७६० ई. में जब मरहटों ने दिल्ली जीती थी तब से इन की बहुत सी फौज दिल्ली में भी थी सो वह फौज भी इन लोगों के साथ मिल गई, पर दो महीने पीछे इन के फौज में अनाज का ऐसा टोटा पड़ा कि मरहटों से सिवा लड़ने के और कुछ न बन पड़ा। यह बड़ी लड़ाई पानीपत के मैदान में सन् १७६१ ई. के जनवरी महीने की सातवीं तारीख को हुई। भाऊ निजामअली के जीतने से ऐसा गर्वित हो रहा था कि इस लड़ाई को वह बड़ी असावधानी से लड़ा। जब उस ने सुना कि विश्वास राव बहुत जखमी हो गया है तब हाथी पर से उतर पड़ा और फिर उस का पता न लगा। जनको जी सेंधिया और इब्राहीम खाँ गारदी भी मारे गये और दूसरे भी अनेक बड़े बड़े सरदार मारे गये, और मरहटों की ऐसी भारी हार हुई कि सारे दक्खिन में सियापा पड़ गया। और नाना साहब को तो इस हार से ऐसी ग्लानि और दुःख हुआ कि थोड़े ही दिन पीछे परलोक सिधारे। इस मनुष्य के समय में जैसी पहिले महाराष्ट्रों की वृद्धि हुई थी वैसाही एक साथ क्षय भी हो गया। सन् १७६१ में बालाजी बाजीराव उर्फ नाना साहेब के मरने पीछे उन का पुत्र पहिला माधवराव गद्दी पर बैठा। यह स्वभाव का न्यायी सूर धीर और दयालु था। मराठी राज से बेगार की चाल इस ने एक दम उठा दी थी और गरीबों के पालने से इस का चित्त बहुत ही बहलता था। नाना फड़नवीस नामक प्रसिद्ध मनुष्य इस का मुख्य वजीर था और मराठी राज्य की आमदनी इस के समय सात करोड़ रुपया थी। इसी के काल में हैदरअली ने मैसूर के राज की नेव दी थी। इस ने राधोबा दादा को कैद कर के पूने भेज दिया और आप न्याय और धर्म से ग्यारह बरस राज कर के अट्ठाईस बरस की अवस्था में क्षय रोग से मरा। इस के मरने के पीछे इस के भाई नारायण राव को गद्दी पर बैठाया, पर आठ ही महीने पीछे रघुनाथ राव ने उस को एक सूबेदार से मरवा डाला और आप गद्दी पर बैठा। इस से सब कारबारी इतने नाराज थे कि जब नारायण राव की स्त्री गंगाबाई (जो विधवा होने के समय गर्भवती थी) पुत्र जनी तो सवाई माधवराव के नाम से उस को राजा बना के उस के नाम की मुनादी फिरवा दी और नाना फड़नवीस सब काम काज करने लगा। राधोबा ने अँगरेजों से इस शर्त पर सहायता चाही कि साष्टीबेट, बसई गाँव और गुजरात के कुछ इलाके अँगरेज सरकार को दिये जायें, पर पोर्तुगीज और बादशाह के कलह से अँगरेजों ने आप ही वह बेट ले लिया और फिर कलकत्ते के गवर्नर को लिख अनुसार नाना फड़नवीस ने साष्टीबेट अँगरेजों को लिख दिया और कोपर गाँव में राधोबा को कुछ महीना कर के रख दिया। राधोबा दादा को बाजीराव, चिमना आप्पा और अमृतराव तीन पुत्र थे परंतु अमृतराव दत्तक थे। राधोबा का कई मनोरथ पूरा नहीं हुआ और सन् १७४८ में मर गया। नाना फड़नवीस से महाजी सेंधिया से कुछ लाग थी, इस से महाजी उस के ताबे कमी नहीं हुआ और सब कुछ उत्पात करता रहा। नाना की फौज के हरिपंत फड़के और परशुराम पंत पट्टवर्दन ये दो बड़े सरदार थे। सन् १७९५ में निजाम अली से महाराष्ट्र लोगों से एक लड़ाई, जिस में मरहटे जीते और अँगरेजों से भी तीन बरस तक कुछ कलह रही, पर फिर मेल हो गया। सन् १७९६ में नाना फड़नवीस के वंश में रहने के दुःख से माधव राव गिर के मर गया और राधोबा का बड़ा बेटा दूसरा बाजीराव पेशवा हुआ, पर इस से भी नाना फड़नवीस से खपट चली ही गई। बाजीराव ने दौलतराव सेंधिया को उभारा और उस ने छल बल कर के नाना फड़नवीस को नगर के किले में कैद कर लिया, पर बाजीराव को उस के कैद से खड़ा कर फिर से दीवान बनाना पड़ा, क्योंकि ऐसा चतुर मनुष्य उस काल में उस को दूसरा मिलना कठिन था। नाना फड़नवीस सन् १८०० में मर गया और मराठी राज्य की लक्ष्मी और बल

अपने साथ लेता गया। राज पर बैठने के पहिले बाजीराव ने दौलतराव से करार किया था कि हम पेशवा होंगे तो तुम को दो करोड़ रुपया देंगे, पर जब इतना रुपया आप न दे सका तो दौलतराव के साथ पूना लूटा। सन् १८०२ में जब दौलतराव कहीं दौरा करने गया था तब यशवन्त राव हुल्कर ने पूना पर चढ़ाई किया और पेशवा और संधिया दोनों की सेना को हरा कर पूने को खूब लूटा। बाजीराव इस समय भाग कर अँगरेजों की शरण गया और उन से बसई में यह बात ठहराई कि सरकारी ८००० फौज पूने में रहे और बाजीराव को शत्रुओं से बचावे और उस का सब खर्च बाजीराव दे। अँगरेजी फौज पहुँच जाने के पूर्व ही हुल्कर पूना छोड़ के चला गया और बाजीराव फिर से पेशवा हुआ। बाजीराव ऊपर से तो अँगरेजों से मेल रखता था पर भीतर से बड़ा ही बैर रखता था और दूसरे राजों को बहकाने सिवा आप भी छिपी छिपी फौज भरती करता जाता था। सन् १८१५ में गंगाधर शास्त्री पट्टवर्धन जो गाइकवाड़ का वकील हो कर सरकारी अँगरेज की सलाह से बाजीराव के दरबार में गया था, उस को बाजीराव ने त्र्यंबक डेंगला नाम के एक अपने मुँह लगे हुये सरदार से मरवा डाला, जो सरकारी के और बाजीराव के बैर का मुख्य कारण हुआ और सरकारी ने उस त्र्यंबक को सन् १८१८ में पकड़ कर चुनार के किले में कैद किया। सरकारी फौज इस समय गवर्नर-जेनरल की आज्ञा से पिंडारों को शमन करती फिरती थी कि इसी बीच में बाजीराव ने भी किसी बहाने से सरकारी से लड़ाई करनी आरंभ कर दी और बापू गोखला को सेनापति नियत किया, पर अंत में हार कर सन् १८१८ ई. की ३ जून को मालकम साहेब के शरण में जाकर आठ लाख रुपया साल लेकर विट्ठूर में रहना अंगीकार किया। और इसी बीच में अष्ट गाँव पर छापा मार के सितारा के राजा को पकड़ लिया और इसी लड़ाई में बापू मारा गया। जब बाजीराव भागा फिरता था, उन्होंने दिनों में भीमा के किनारे कारे गाँव में मरहठों की फौज से और सरकारी फौज से एक बड़ा घोर युद्ध हुआ, जिस में सरकारी ३०० सिपाही और बीस अँगरेज मारे गये, पर इन लोगों ने बहादुरी से उनको आगे न बढ़ने दिया। सरकारी की ओर से यहाँ जयसूचक एक कीर्तिस्तंभ बना है। सरकारी ने महाराष्ट्र देश का राज अपने हाथ में लेकर एलफिंस्टन साहेब को वहाँ का प्रबंध सौंपा और पूर्वोक्त साहब ने महाराष्ट्रों की परंपरा के मान और रीति का पालन कर के किसी की जागीर किसी के साथ बंदोबस्त कर के वहाँ की प्रजा को ऐसा संतुष्ट किया कि वे लोग अब तक उन को स्मरण करते हैं।

दिल्ली दरबार दर्पण

THE DELHI ASSEMBLEGE MEMORANDUM

जयति राजराजेश्वरी जय युवराज कुमार । जय नृप-प्रतिनिधि कवि लिटन जय दिल्ली दरबार ।।
स्नेह भरन तम हरन दोउ प्रजन करन उँजियार । भयो देहली दीप सो यह देहली दरबार ।।

इस पुस्तक में सन् १८७७ के दिल्ली दरबार का विशद वर्णन है, जो क्वीन विक्टोरिया के भारत साम्राज्ञी पदवी धारण करने के उपलक्ष्य में लार्ड लिटन के नेतृत्व में हुई थी। यह सन् १८७७ के जनवरी अंक में पहली बार 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के परिशिष्ट में छपी थी।

— सं.

दिल्ली दरबार दर्पण

सब राजाओं की मुलाकातों का हाल अलग अलग लिखना आवश्यक नहीं, क्योंकि सब के साथ वहां मामूली बातें हुई। सब बड़े बड़े शासनाधिकारी राजाओं को एक एक रेशमी झंडा और सोने का तगमा मिला। झंडे अत्यंत सुंदर थे। पीतल के चमकीले मोटे मोटे डंडों पर राजराजेश्वरी का एक मुकुट बना था और एक एक पट्टरी लगी थी जिस पर झंडा पाने वाले राजा का नाम लिखा था और फरहरे पर जो डंडे से लटकता था स्पष्ट रीति पर उनके शस्त्र आदि के चिन्ह बने हुए थे। झंडा और और तगमा देने के समय श्रीयुत वाइसराय ने हर एक राजा से ये वाक्य कहे :-

“मैं श्रीमती महारानी की तरफ से यह झंडा खास आप के लिये देता हूँ, जो उन के हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी की पदवी लेने का यादगार रहेगा। श्रीमती को भरोसा है जब कभी यह झंडा खुलेगा आप को उसे देखते ही केवल इसी बात का ध्यान न होगा कि इंगलिस्तान के राज्य के साथ आप के खैरखाह राजसी घराने का कैसा दृढ़ संबंध है वरन् यह भी कि सरकार की यही बड़ी भारी इच्छा है कि आप के कुल को प्रतापी, प्रारब्धी और अचल देखे। मैं श्रीमती महारानी हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी की आज्ञानुसार आप को यह तगमा भी पहनाता हूँ। ईश्वर करे आप इसे बहुत दिन तक पहिनें और आप के पीछे यह आप के कुल में बहुत दिन तक रह कर इस शुभ दिन की याद दिलावे जो इस पर छपा है।”

शेष राजाओं को उन के पद के अनुसार सोने या चांदी के केवल तगमे ही मिले। किलात के खाँ को भी झंडा नहीं मिला, पर उन्हें एक हाथी, जिस पर ४००० की लागत का हौदा था, जड़ाऊ गहने, घड़ी, कार चोबी, कपड़े, कमखाब के थान वगैरह सब मिला कर २५००० की चीजें तुहफे में मिलीं। यह बात किसी दूसरे के लिये नहीं हुई थी। इस के सिवाय जो सरदार उन के साथ आए थे उन्हें भी किशतियों में लगा कर दस हजार रुपये की चीजें दी गई। प्रायः लोगों को इस बात के जानने का उत्साह होगा कि खाँ का रूप और वस्त्र कैसा था। निस्संदेह जो कपड़ा खाँ पहने थे वह उन के साथियों से बहुत अच्छा था तो भी उन की या उन के किसी साथी की शोभा उन मुगलों से बढ़ कर न थी जो बाजार में मेवा लिये घूमा करते हैं। हाँ, कुछ फर्क था तो इतना था कि लंबी गफिन दाढ़ी के कारण खाँ साहिब का चिहरा बड़ा भयानक लगता था। इन्हें झंडा न मिलने का कारण यह समझना चाहिये कि यह विलकुल स्वतंत्र हैं। इन्हें आने और जाने के समय श्रीयुत वाइसराय गलीचे के किनारे तक पहुँचा गए थे, पर बैठने के लिये इन्हें भी वाइसराय के चबूतरे के नीचे वही कुर्सी मिली थी जो और राजाओं को। खाँ साहिब के मिजाज में रूखापन बहुत है। एक प्रतिष्ठित बंगाली इन के डेरे पर मुलाकात के लिये गए थे। खाँ ने पूछा, क्यों आए हो? बाबू साहिब ने कहा, आप की मुलाकात को। इस पर खाँ बोले कि अच्छा, आप हम को देख चुके और हम आप को, अब जाइये।

बहुत से छोटे छोटे राजाओं की बोलचाल का ढंग भी, जिस समय वे वाइसराय से मिलने आए थे, संक्षेप के साथ लिखने के योग्य है। कोई तो दूर ही से हाथ जोड़े आए, और दो एक ऐसे थे कि जब एडिकाँग के बदन भुका कर इशारा करने पर भी उन्होंने सलाम न किया तो एडिकाँग ने पीठ पकड़ कर उन्हें धीरे से भुका दिया। कोई बैठ कर उठना जानते ही न थे, यहाँ तक कि एडिकाँग को “उठो” कहना पड़ता था। कोई झंडा, तगमा, सलामी और खिताब पाने पर भी एक शब्द धन्यवाद का नहीं बोल सके और कोई विचारे इन में से दो ही एक पदार्थ पाकर ऐसे प्रसन्न हुए कि श्रीयुत वाइसराय पर अपनी जान और माल निश्चय करने को तैयार थे। सब से बढ़ कर बुदिमान हमें एक महान्मा देख पड़े जिन से वाइसराय ने कहा कि आपका नगर तो तीर्थ गिना जाता है, पर हम आशा करते हैं कि आप इस समय दिल्ली को भी तीर्थ ही के समान पाते हैं। इस के जवाब में वह बंधक बोल उठे कि यह जगह तो सब तीर्थों से बढ़कर है, जहाँ आप हमारे “खुदा” मौजूद हैं। नवाब लुहार की भी अंगरेजी में बात चीत सुन कर ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिन्हें हंसी न आई हो। नवाब साहिब बोलते तो बड़े धड़ाके से थे, पर उसी के साथ कायदे और मुहावरे के भी खूब हाथ पांव तोड़ते थे। कितने वाक्य ऐसे थे जिन के कुछ अर्थ ही नहीं हो सकते, पर नवाब साहिब को अपनी अंगरेजी का ऐसा कुछ विश्वास था कि अपने मुँह से केवल अपने ही को नहीं वरन् अपने दोनों लड़कों को भी अंगरेजी, अरबी

ज्योतिष, गणित आदि ईश्वर जाने कितनी विद्याओं का पंडित बखान गए । नवाब साहिब ने कहा कि हम ने और रईसों की तरह अपनी उमर खेल कूद में नहीं गँवाई वरन लड़कपन ही से विद्या के उपार्जन में चित लगाया और पूरे पंडित और कवि हुए । इस के सिवाय नवाब साहिब ने बहुत से राजभक्ति के वाक्य भी कहे । वाइसराय ने उत्तर दिया कि हम आप की अँगरेजी विद्या पर इतना मुबारकवाद नहीं देते जितना अँगरेजों के समान आप का चित होने के लिये । फिर नवाब साहिब ने कहा कि मैंने इस भारी अवसर के वर्णन में अरबी और फारसी का एक पद्य ग्रंथ बनाया है जिसे मैं चाहता हूँ कि किसी समय श्रीयुत को सुनाऊँ । श्रीयुत ने जवाब दिया कि मुझे भी कविता का बड़ा अनुराग है और मैं आप सा एक भाई-कवि (Brother-poet) देख कर बहुत प्रसन्न हुआ, और आप की कविता सुनने के लिये कोई अवकाश का समय निकालूँगा ।

२९ तारीख को सब के अंत में महारानी तंजौर वाइसराय से मुलाकात को आई । ये तास का सब वस्त्र पहने थीं और मुँह पर तास का नकाब पड़ा हुआ था । इस के सिवाय उन के हाथ पाँव दस्ताने और मोत्रे से ऐसे ढके थे कि सब के जी में उन्हें देखने की इच्छा ही रह गई । महारानी के साथ में उन के पति राजा सखाराम साहिब और दो लड़कों के सिवाय उन की अनुवादक मिसेज फर्थ भी थीं । महारानी ने पहले आकर वाइसराय से हाथ मिलाया और अपनी कुर्सी पर बैठ गई । श्रीयुत वाइसराय ने उन के दिल्ली आने पर अपनी प्रसन्नता प्रगट की और पूछा कि आप को इतनी भारी यात्रा में अधिक कष्ट तो नहीं हुआ ? महारानी अपनी भाषा की बोलचाल में बेगम भूपाल की तरह चतुर न थीं, इस लिये जियादा बातचीत मिसेज फर्थ से हुई, जिनमें श्रीयुत ने प्रसन्न हो कर "मनभावनी अनुवादक" कहा । वाइसराय की किसी बात के उत्तर में एक बार महारानी के मुँह से "यस" निकल गया, जिस पर श्रीयुत ने बड़ा हर्ष प्रगट किया कि महारानी अँगरेजी भी बोल सकती है, पर अनुवादक मेम साहिब ने कहा कि वे अँगरेजी में दो चार शब्द से अधिक नहीं जानती ।

इस वर्णन के अंत में यह लिखना अवश्य है कि श्रीयुत वाइसराय लोगों से इतनी मनोहर रीति पर बातचीत करते थे जिस से सब मगन हो जाते थे और ऐसा समझते थे कि वाइसराय ने हमारा सबसे बड़ कर आदर स्तुकार किया । भेंट होने के समय श्रीयुत ने हर एक से कहा कि आप से दोस्ती कर के हम अत्यंत प्रसन्न हुए और तगमा पहिनाने के समय भी बड़े स्नेह से उन की पीठ पर हाथ रख कर बात की ।

१ जनवरी को दरबार का महोत्सव हुआ ।

यह दरबार, जो हिंदुस्तान के इतिहास में सदा प्रसिद्ध रहेगा, एक बड़े भारी मैदान में नगर से पाँच मील पर हुआ था । बीच में श्रीयुत वाइसराय का पटकोण चबूतरा था, जिसकी गुंबदनुमा छत पर लाल कपड़ा चढ़ा और सुनहला रुपहला तथा शीशे का काम बना था । कंगुरे के ऊपर कलसे की जगह श्रीमती राजराजेश्वरी का सुनहला मुकुट लगा था । इस चबूतरे पर श्रीयुत अपने राजसिंहासन में सुशोभित हुए थे । उन के बगल में एक कुर्सी पर लेडी साहिब बैठी थीं और ठीक पीछे खवास लोग हाथों में चँवर लिये और श्रीयुत के ऊपर कारचोबी छत्र लगाए खड़े थे । वाइसराय के सिंहासन के दोनों तरफ दो पेज (दामन बरबान), जिन में एक श्रीयुत महाराज जबू का अत्यंत सुंदर सब से छोटा राजकुमार और दूसरा कर्नल बर्न का पुत्र था, खड़े थे और उन के दहने बाएँ और पीछे मुसाहिब और सेक्रेटरी लोग अपने अपने स्थानों पर खड़े थे । वाइसराय के इस चबूतरे के ठीक सामने कुछ दूर पर उस से नीचे एक अर्धचंद्राकार चबूतरा था, जिस पर शासनाधिकारी राजा लोग और उनके मुसाहिब, मदारस और बंबई के गवर्नर, पंजाब, बंगाल और पश्चिमोत्तर देश के लेफ्टिनेंट गवर्नर, और हिंदुस्तान के कमांडरइनचीफ अपने अपने अधिकारियों समेत सुशोभित थे । इस चबूतरे की छत बहुत सुंदर नीले रंग के साटन की थी, जिसके आगे लहरियादार छज्जा बहुत सजीला लगा था । लहरिये के बीच बीच में सुनहले काम के चाँद तारे बने थे । राजाओं की कुर्सियाँ भी नीली साटन से मढ़ी थीं और हर एक के सामने वे फड़े गड़े थे जो उन्हें वाइसराय ने दिये थे और पीछे अधिकारियों की कुर्सियाँ लगी थीं, जिन पर भी नीली साटन चढ़ी थी । हर एक राजा के साथ एक एक पोलिटिकल अफसर भी था । इन के सिवाय गवर्नमेंट के भारी भारी अधिकारी भी यहाँ बैठे थे । राजा लोग अपने अपने प्रांतों के अनुसार बैठाए गए थे, जिस से ऊपर नीचे बैठने का बखेड़ा बिल्कुल निकल गया था । सब मिलाकर तिरसठ शासनाधिकारी राजाओं को इस चबूतरे पर जगह मिली थी, जिनके नाम नीचे लिखे हैं :—

महाराज अजयगढ़, बड़ौदा, विजावर, भरतपुर, चरखारी, दतिया, ग्वालियर, इंदौर, जयपुर, जबू, जोधपुर, करौली, किशुनगढ़, पन्ना, मेसूर, रीवा, उर्छा, महाराजा उदयपुर, महाराज राजा अलावर, बूंदी, महाराज राना भलावर, राना धौलपुर, राजा बिलासपुर, बमरा, विरोदा, चवा, छतरपुर, देवास, धार, फरीदकोट, जींद, खरोद, कूचबिहार, मंडी, नाभा, नाहन, राजपीपला, रतलाम, समथर, सुकेत, टिहरी, राव जिगनी, टोरी, नवाब टोंक, पटौदी, मलेरकोटला, लुहारू, जूनागढ़, जौरा, दुलाना, बहावलपुर, जागीरदार अलीपुरा, बेगम भूपाल, निजाम हैदराबाद, सरदार कलसिया, ठाकुर साहिब भावनगर, मुर्ची, पिपलोदा, जागीरदार पालदेव, मीर खैरपुर, महंत कोंदका, नंदगाँव और जाम नवानगर ।

वाइसराय के सिंहासन के पीछे, परंतु राजसी चबूतरे की अपेक्षा उस से अधिक पास, धनुषखंड के आकार की दो श्रेणियाँ चबूतरों की और बनी थीं जो दस भागों में बाँट दी गई थीं । इन पर आगे की तरफ थोड़ी सी कुर्सियाँ और पीछे सीढ़ीनुमा बेंचें लगी थीं, जिन पर नीला कपड़ा मड़ा था । यहाँ ऐसे राजाओं को जिन्हें शासन का अधिकार नहीं है और दूसरे सरदारों, रईसों, समाचारपत्रों के संपादकों और यूरोपियन तथा हिंदुस्तानी अधिकारियों को, जो गवर्नमेंट के नेवते में आये थे या जिन्हें तमाशा देखने के लिये टिकट मिले थे, बैठने की जगह दी गई थी । ये ३००० के अनुमान होंगे । किलात के खाँ, गोआ के गवर्नर-जनरल, विदेशी राजदूत, बाहरी राज्यों के प्रतिनिधि समाज और अन्यदेश संबंधी कांसल लोगों की कुर्सियाँ भी श्रीयुत वाइसराय के पीछे सरदारों और रईसों की चौकियों के आगे लगी थीं ।

दरबार की जगह के दक्खिन तरफ १५००० से ज्यादा सरकारी फौज हथियार बाँधे लैस खड़ी थी और उत्तर तरफ राजा लोगों की सजी पलटनें भाँति भाँति की वरदी पहने और चित्र विचित्र शस्त्र धारण किये परा बंधे खड़ी थीं । इन सब की शोभा देखने से काम रखती थी । इस के सिवाय राजा लोगों के हाथियों के परे जिन पर सुनहली अमारियाँ कसी थीं और कारचोबी भूलें पड़ी थीं, तोपों की कतार, सवारों की नंगी तलवारों और भालों की चमक, फरहरों का उड़ना, और दो लाख के अनुमान तमाशा देखने वालों की भीड़ जो मैदान में डटी थी, ऐसा समा दिखलाती थी जिसे देख जो जहाँ था वहीं हक्का बक्का हो खड़ा रह जाता था । वाइसराय के सिंहासन के दोनों तरफ हाइलैन्डर लोगों का गार्ड ऑफ ऑनर और बाजेवाले थे, और शासनाधिकारी राजाओं के चबूतरे पर जाने के जो रास्ते बाहर की तरफ थे उन के दोनों ओर भी गार्ड ऑफ ऑनर खड़े थे । पौने बारह बजे तक सब दरबारी लोग अपनी अपनी जगहों पर आ गए थे । ठीक बारह बजे श्रीयुत वाइसराय की सवारी पहुँची और धनुष खंड आकार के चबूतरों की श्रेणियों के पास एक छोटे से खम्भे के दरवाजे पर ठहरी । सवारी पहुँचते ही बिलकुल फौज ने शस्त्रों से सलामी उतारी पर तोपें नहीं छोड़ी गईं । खम्भे में श्रीयुत ने जाकर स्टार ऑव इंडिया के परम प्रतिष्ठित पद के ग्रांड मास्टर का वस्त्र धारण किया । यहाँ से श्रीयुत राजसी छत्र के तले अपने राजसिंहासन की ओर बढ़े । श्री लेडी लिटन श्रीयुत के साथ थीं और दोनों दामनबरदार बालक, जिन का हाल ऊपर लिखा गया है, पीछे दो तरफ से दामन उठाए हुए थे । श्रीयुत के चलते ही बंदीजन (हेरलड लोगों) ने अपनी तुरहियाँ एक साथ बहुत मधुर रीति पर बजाई और फौजी बाजे से ग्रांड मार्च बजने लगा । जब श्रीयुत राजसिंहासनवाले मनोहर चबूतरे पर चढ़ने लगे तो ग्रांडमार्च का बाजा बंद हो गया और नैशनल ऐन्थेम अर्थात् (गौड सेव दि क्वीन — ईश्वर महारानी को चिरंजीवी रक्खे) का बाजा बजने लगा और गार्ड ऑफ ऑनर ने प्रतिष्ठा के लिये अपने शस्त्र झुका दिये । ज्योंही श्रीयुत राजसिंहासन पर सुशोभित हुए, बाजे बंद हो गए और सब राजा महाराजा, जो वाइसराय के आने के समय खड़े हो गए थे, बैठ गए । इस के पीछे श्रीयुत ने मुख्य बंदी (चीफ हेरलड) को आज्ञा की कि श्रीमती महारानी के राजराजेश्वरी की पदवी लेने के विषय में अंगरेजी में राजाज्ञापत्र पढ़े । यह आज्ञा होते ही बंदीजनों ने, जो दो पाँती में राज्यसिंहासन के चबूतरे के नीचे खड़े थे, तुरही बजाई और उसके बंद होने पर मुख्य बंदी ने नीचे की सीढ़ी पर खड़े होकर बड़े ऊँचे स्वर से राजाज्ञापत्र पढ़ा, जिस का उल्था यह है :—

महारानी विक्टोरिया

ऐसी अवस्था में कि हाल में पार्लियामेंट की जो सभा हुई उन में एक ऐक्ट पास हुआ है, जिसके द्वारा परम कृपालु महारानी को यह अधिकार मिला है कि यूनाइटेड किंगडम और उस के अधीन देशों की राजसंबंधी पदवियों और प्रशस्तियों में श्रीमती जो कुछ चाहें बढ़ा लें और इस ऐक्ट में यह भी वर्णन है कि ग्रेट ब्रिटेन और

आयरलैंड के एक में मिल जाने के लिये जो नियम बने थे उन के अनुसार भी यह अधिकार मिला था कि यूनाइटेड किंगडम और उस के अधीन देशों की राजसंबंधी पदवी और प्रशस्ति इस संयोग के पीछे वही होगी जो श्रीमती ऐसे राजाज्ञापत्र के द्वारा प्रकाश करेंगी, जिस पर राज की मुहर छपी रहे। और इस ऐक्ट में यह भी वर्णन है कि ऊपर लिखे हुए नियम और उस राजाज्ञापत्र के अनुसार जो १ जनवरी सन् १८०१ को राजसी मुहर होने के पीछे प्रकाश किया गया, हम ने यह पदवी ली "विक्टोरिया ईश्वर की कृपा से ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड के संयुक्त राज की महारानी स्वधर्मरक्षिणी," और इस ऐक्ट में यह भी वर्णन है कि उस नियम के अनुसार, जो हिंदुस्तान के उत्तम शासन के हेतु बनाया गया था, हिंदुस्तान के राज का अधिकार, जो उस समय तक हमारी ओर से ईस्ट इंडिया कंपनी को संपूर्ण था, अब हमारे निज अधिकार में आ गया और हमारे नाम से उस का शासन होगा। इस नये अधिकार की कि हम कोई विशेष पदवी लें और इन सब वर्णनों के अनंतर इस ऐक्ट में यह नियम सिद्ध किया गया है कि ऊपर लिखी हुई बात के स्मरण निमित्त कि हमने अपने मुहर किये हुए राजाज्ञापत्र के द्वारा हिंदुस्तान के शासन का अधिकार अपने हाथ में ले लिया, हम को यह योग्यता होगी कि यूनाइटेड किंगडम और उस के अधीन देशों की राजसंबंधी पदवियों और प्रशस्तियों में जो कुछ उचित समझे बढ़ा लें। इस लिये अब हम अपने प्रीवी काउंसिल की संमति से योग्य समझ कर यह प्रचलित और प्रकाशित करते हैं कि आगे को, जहाँ सुगमता के साथ हो सके, सब अवसरों में और संपूर्ण राजपत्रों पर जिन में हमारी पदवियाँ और प्रशस्तियाँ लिखी जाती हैं, सिवाय सनद, कमिशन, अधिकारदायक, पत्र, दानपत्र, आज्ञापत्र, नियोगपत्र, और इसी प्रकार के दूसरे पत्रों के, जिन का प्रचार यूनाइटेड किंगडम के बाहर नहीं है, यूनाइटेड किंगडम और उस के अधीन देशों की राजसंबंधी पदवियों में नीचे लिखा हुआ मिला दिया जाय, अर्थात् लैटिन भाषा में "इंडिई एम्प्रेट्रिक्स" (हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी) और अंगरेजी भाषा में "एम्प्रेस ऑव इंडिया"। और हमारी यह इच्छा और प्रसन्नता है कि उन राजसंबंधी पत्रों में जिन का वर्णन ऊपर हुआ है यह नई पदवी न लिखी जाय। और हमारी यह भी इच्छा और प्रसन्नता है कि सोने चांदी और तंबू के सब सिक्के, जो आज कल यूनाइटेड किंगडम में प्रचलित हैं और नीतिविरुद्ध नहीं गिने जाते और इसी प्रकार तथा आकार के दूसरे सिक्के जो हमारी आज्ञा से अब छापे जायेंगे, हमारी नई पदवी लेने से भी नीतिविरुद्ध न समझे जायेंगे, और जो सिक्के यूनाइटेड किंगडम के अधीन देशों में छापे जायेंगे और जिन का वर्णन राजाज्ञापत्र में उन जगहों के नियमित और प्रचलित द्रव्य करके किया गया है और जिन पर हमारी संपूर्ण पदवियाँ या प्रशस्तियाँ या उन का कोई भाग रहे, और वे सिक्के जो राजाज्ञापत्र के अनुसार अब छापे और चलाए जायेंगे इस नई पदवी के बिना भी उस देश के नियमित और प्रचलित द्रव्य समझे जायेंगे, जब तक कि इस विषय में हमारी कोई दूसरी प्रसन्नता न प्रगट की जायगी।

हमारी बिडसर की कचहरी से २८ अप्रैल को एक हजार आठ सौ छिहत्तर के सन् में हमारे राज के उनतालीसवें बरस में प्रसिद्ध किया गया।

ईश्वर महारानी को चिरंजीव रखे!

जब चीफ हेराल्ड राजाज्ञापत्र को अंगरेजी में पढ़ चुका तो हेराल्ड लोगों ने फिर तुरही बजाई, इस के पीछे फॉरेन सेक्रेटरी ने उर्दू में तर्जुमा पढ़ा। इस के समाप्त होते ही बादशाही झंडा खड़ा किया गया और तोपखाने से, जो दरबार के मैदान में मौजूद था, १०१ तोपों की सलामी हुई। चौतीस चौतीस सलामी होने के बाद बंदूकी को बाढ़ें दगीं और जब १०१ सलामियाँ तोपों से हो चुकीं तब फिर बाढ़ छूटी और नैशनल ऐन्थेम का बाजा बजने लगा।

इसके अनंतर श्रीयुत बाइसराय समाज को एंड्रेस करने के अभिप्राय से खड़े हुए। श्रीयुत बाइसराय के खड़े होते ही सामने के चबूतरे पर जितने बड़े बड़े राजा लोग और गवर्नर आदि अधिकारी थे खड़े हो गए पर श्रीयुत ने बड़े आदर के साथ दोनों हाथों से हिंदुस्तानी रीति पर कई बार सलाम करके सब से बैठ जाने का इशारा किया। यह काम श्रीयुत का, जिस से हम लोगों की छाती दूनी हो गई, पायोनीयर सरीखे अंगरेजी समाचार पत्रों के संपादकों को बहुत बुरा लगा, जिन की समझ में बाइसराय का हिंदुस्तानी तरह पर सलाम करना बड़े हेठाई और लज्जा की बात थी। खैर, यह तो इन अंगरेजी अखबारवालों की मामूली बातें हैं। श्रीयुत बाइसराय ने जो उत्तम एंड्रेस पढ़ा उस का तर्जुमा हम नीचे लिखते हैं:—

सन् १८५८ ईसवी की १ नवंबर को श्रीमती महारानी की ओर से एक इशतिहार जारी हुआ था, जिसमें हिंदुस्तान के रईसों और प्रजा को श्रीमती की कृपा का विश्वास कराया गया था, जिस को उस दिन से आज तक वे लोग राजसंबंधी बातों में बड़ा अनमोल प्रमाण समझते हैं ।

वे प्रतिज्ञा एक ऐसी महारानी की ओर से हुई थीं, जिन्होंने आज तक अपनी बात को कभी नहीं तोड़ा, इस लिये हमें अपने मुँह से फिर उन का निश्चय कराना व्यर्थ है । १८ बरस की लगातार उन्नति ही उन को सत्य करती है और यह भारी समागम भी उन के पूरे उतरने का प्रत्यक्ष प्रमाण है । इस राज के रईस और प्रजा जो अपनी अपनी परंपरा की प्रतिष्ठा निर्विघ्न भोगते रहे और जिन को उचित लाभों की उन्नति के यत्न में सदा रक्षा होती रही उन के वास्ते सरकार की पिछले समय की उदारता और न्याय आगे के लिये पक्की जमानत हो गई है हम लोग इस समय श्रीमती महारानी के राजराजेश्वरी की पदवी लेने का समाचार प्रसिद्ध करने के लिये इकट्ठे हुए हैं, और यहाँ महारानी के प्रतिनिधि होने की योग्यता से मुझे अवश्य है कि श्रीमती के उस कृपायुक्त अभिप्राय को सब पर प्रकट कहूँ जिस के कारण श्रीमती ने अपने परंपरा की पदवी और प्रशस्ति में एक पद और बढ़ाया ।

पृथ्वी पर श्रीमती महारानी के अधिकार में जितने देश हैं — जिन का विस्तार भूगोल के सातवें भाग से कम नहीं है, और जिन में तीस करोड़ आदमी बसते हैं — उन में से इस बड़े और प्राचीन राज के समान श्रीमती किसी दूसरे देश पर कृपादृष्टि नहीं रखती ।

सब जगह और सदा इंगलिस्तान के बादशाहों की सेवा में प्रवीण और परिश्रमी सेवक रहते आए हैं, परंतु उन से बढ़कर कोई पुरुषार्थी नहीं हुए, जिन की बुद्धि और वीरता से हिंदुस्तान का राज सरकार के हाथ लगा और बराबर अधिकार में बना रहा । इस कठिन काम में जिसमें श्रीमती की अँगरेजी और देशी प्रजा दोनों ने मिलकर भली भाँति परिश्रम किया है, श्रीमती के बड़े बड़े स्नेही और सहायक राजाओं ने भी शुभचिंतकता के साथ सहायता दी है, जिन की सेना ने लड़ाई की मिहनत और जीत में श्रीमती की सेना का साथ दिया है, जिन की बुद्धिपूर्वक सत्यशीलता के कारण मेल के लाभ बने रहे और फैलते गए हैं, और जिन का यहाँ आज वर्तमान होना, जो कि श्रीमती के राजराजेश्वरी की पदवी लेने का शुभ दिन है, इस बात का प्रमाण है कि वे श्रीमती के अधिकार की उत्तमता में विश्वास रखते हैं और उन के राज में एका बने रहने में अपना भला समझते हैं ।

श्रीमती महारानी इस राज को, जिसे उन के पुरखों ने प्राप्त किया और श्रीमती ने दृढ़ किया, एक बड़ा भारी पैतृक धन समझती हैं जो रक्षा करने और अपने वंश के लिये संपूर्ण छोड़ने के योग्य है, और उस पर अधिकार रखने से अपने ऊपर यह कर्तव्य जानती हैं कि अपने बड़े अधिकार को इस देश की प्रजा की भलाई के लिये यहाँ के रईसों के हकों पर पूरा पूरा ध्यान रखकर काम में लावें । इस लिये श्रीमती का यह राजसी अभिप्राय है कि अपनी पदवियों पर एक और ऐसी पदवी बढ़ावें, जो आगे सदा को हिंदुस्तान के सब रईसों और प्रजा के लिये इस बात का चिन्ह हो कि श्रीमती के और उन के लाभ एक हैं और महारानी की ओर राजभक्ति और शुभचिंतकता रखनी उन पर उचित है ।

वे राजसी घरानों की श्रेणियाँ जिन का अधिकार बदल देने और देश की उन्नति करके के लिये ईश्वर ने अँगरेजी राज को यहाँ जमाया, प्रायः अच्छे और बड़े बादशाहों से खाली न थीं परंतु उन के उत्तराधिकारियों के राज्यप्रबंध से उन के राज्य के देशों में मेल न बना रह सका । सदा आपस में भगड़ा होता रहा और अंधेर मचा रहा । निर्बल लोग बली लोगों के शिकार थे और बलवान् अपने मद के इस प्रकार आपस की काट मार और भीतरी भगड़ों के कारण जड़ से हिलकर और निर्जीव होकर तैमूरलंग का भारी घराना अंत को मिट्टी में मिल गया, और उस के नाश होने का कारण यह था कि उस से पश्चिम के देशों की कुछ उन्नति न हो सकी ।

आजकल ऐसी राजनीति के कारण जिस से सब जात और सब धर्म के लोगों की समान रक्षा होती है, श्रीमती की हर एक प्रजा अपना समय निर्विघ्न सुख से काट सकती है । सरकार के समभाव के कारण हर आदमी बिना किसी रोक टोक के अपने धर्म के नियमों और रीतों को बरत सकता है । राजराजेश्वरी का अधिकार लेने से श्रीमती का अभिप्राय किसी को मिटाने या दबाने का नहीं है वरन् रक्षा करने और अच्छी राह बतलाने का । सारे देश की शीघ्र उन्नति और उस के सब प्रांतों की दिन पर दिन बुद्धि होने से अँगरेजी राज के फल सब जगह प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं ।

हे अंगरेजी राज के कार्यकर्ता और सच्चे अधिकारी लोग — यह आप ही लोगों के लगातार परिश्रम का गुण है कि ऐसे ऐसे फल प्राप्त हैं, और सब के पहले आप ही लोगों पर मैं इस समय श्रीमती की ओर से उनकी कृतज्ञता और विश्वास को प्रगट करता हूँ। आप लोगों ने इस भारी राज की भलाई के लिये उन प्रतिष्ठित लोगों से जो आप के पहले इन कामों पर नियत थे किसी प्रकार कम कष्ट नहीं उठाया है और आप लोग बराबर ऐसे साहस, परिश्रम और सचाई के साथ अपने तन, मन को अर्पण करके काम करते रहे जिस से बढ़कर कोई दृष्टांत इतिहासों में न मिलेगा।

कीर्ति के द्वार सब के लिये नहीं खुले हैं परंतु भलाई करने का अवसर सब किसी को जो उसकी खोज रखता हो मिल सकता है। यह बात प्रायः कोई गवर्नमेंट नहीं कर सकती कि अपने नौकरों के पदों को जल्द जल्द बढ़ाती जाय, परंतु मुझे विश्वास है कि अंगरेजी सरकार की नौकरी में 'कर्तव्य का ध्यान' और 'स्वामी की सेवा में तन, मन को अर्पण कर देना' ये दोनों बातें 'निज प्रतिष्ठा' और 'लाभ' की अपेक्षा सदा बढ़कर समझी जायँगी। यह बात सदा से होती आई है और होती रहेगी कि इस देश के प्रबंध के बहुत से भारी भारी और लाभदायक काम प्रायः बड़े बड़े प्रतिष्ठित अधिकारियों ने नहीं किये हैं वरन् जिले के उन अफसरों ने जिनकी धैर्यपूर्वक चतुराई और साहस पर संपूर्ण प्रबंध का अच्छा उतरना सब प्रकार आधीन है।

श्रीमती की ओर से राजकाज संबंधी और सेना संबंधी अधिकारियों के विषय में मैं जितनी गुणग्राहकता और प्रशंसा प्रगट करूँ थोड़ी है क्योंकि ये तमाम हिंदुस्तान में ऐसे सूक्ष्म और कठिन कामों को अत्यंत उत्तम रीति पर करते रहे हैं और करते हैं जिनसे बढ़कर सूक्ष्म और कठिन काम सरकार अधिक से अधिक विश्वासपात्र मनुष्य को नहीं सौंप सकती। हे राजकाज संबंधी और सेना संबंधी अधिकारियों, — जो कमसिनी में इतने भारी जिम्मे के कामों पर मुकर्र होकर बड़े परिश्रम चाहने वाले नियमों पर तन, मन से, चलते हो और जो निज पौरुष से उन जातियों के बीच राज्य प्रबंध के कठिन काम को करते हो जिन की भाषा, धर्म और रीतें आप लोगों से भिन्न हैं — मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि अपने अपने कठिन कामों को दृढ़ परंतु कोमल रीति पर करने के समय आप को इस बात का भरोसा रहे कि जिस समय आप लोग अपने जाति की बड़ी कीर्ति को थामें हुए हैं और अपने धर्म के दयाशील आज्ञाओं को मानते हैं उसी के साथ आप इस देश के सब जाति और धर्म के लोगों पर उत्तम प्रबंध के अनमोल लाभों को फैलाते हैं।

उस पश्चिम की सभ्यता के नियमों की बुद्धिमानी के साथ फैलाने के लिये, जिस से इस भारी राज का धन बराबर बढ़ता गया, हिंदुस्तान पर केवल सरकारी अधिकारियों ही का एहसान नहीं है, वरन् यदि मैं इस अवसर पर श्रीमती की इस यूरोपियन प्रजा को जो हिंदुस्तान में रहती है पर सरकारी नौकर नहीं है, इस बात का विश्वास कराऊँ कि श्रीमती उन लोगों के केवल उस राजभक्ति ही की गुणग्राहकता नहीं करतीं जो वे लोग उनके और उनके सिंहासन के साथ रखते हैं किंतु उन लाभों को भी जानती और मानती हैं, जो उन लोगों के परिश्रम से हिंदुस्तान को प्राप्त होते हैं तो मैं अपनी पूज्य स्वामिनी के विचारों को अच्छी तरह न वर्णन करने का दोषी ठहरूँगा।

इस अभिप्राय से कि अपने राज के इस उत्तम भाग को प्रजा को सरकार की सेवा या निज की योग्यता के लिये गुणग्राहकता देखाने का विशेष अवसर मिले श्रीमती ने कृपापूर्वक केवल स्टार आफ इंडिया के परम प्रतिष्ठित पद वालों और आर्डर आफ ब्रिटिश इंडिया के अधिकारियों की संख्या ही में थोड़ी सी बढ़ती नहीं की है किंतु इसी हेतु एक बिल्कुल नया पद और नियत किया है जो "आर्डर आफ दि इंडियन एम्पायर" कहलायेगा।

हे हिंदुस्तान की सेना के अंगरेजी और देशी अफसर और सिपाहियों, — आप लोगों ने जो भारी भारी काम बहादुरी के साथ लड़ भिड़कर सब अवसरों पर किये और इस प्रकार श्रीमती की सेना की युद्धकीर्ति को थामे रहे, उस का श्रीमती अभिमान के साथ स्मरण करती हैं। श्रीमती इस बात पर भरोसा रखकर कि आगे को भी सब अवसरों पर आप लोग उसी तरह मिलजुल कर अपने भारी कर्तव्य को सचाई के साथ पूरा करेंगे, अपने हिंदुस्तानी राज में मेल और अमन चैन बनाए रखने के विश्वास का काम आप लोगों ही को सुपुं दे करती हैं।

हे वालटियर सिपाहियों, — आप लोगों के राजभक्तिपूर्ण और सफल यत्न जो इस विषय में हुए हैं कि

यदि प्रयोजन पड़े तो आप सरकार की नियत सेना के साथ मिलकर सहायता करें इस शुभ अवसर पर हृदय से धन्यवाद पाने के योग्य हैं ।

हे इस देश के सरदार और रहस्य लोग, — जिन की राजभक्ति इस राजा के बल को पुष्ट करने वाली है और जिनकी उन्नति इसके प्रताप का कारण है, श्रीमती महारानी आप को यह विश्वास करके धन्यवाद देती है कि यदि इस राज के लाभों में कोई विघ्न डाले या उन्हें किसी तरह का भय हो तो आप लोग उस की रक्षा के लिये तैयार हो जायेंगे । मैं श्रीमती की ओर से और उन के नाम से दिल्ली आने के लिये आप लोगों का जी से स्वागत करता हूँ और इस बड़े अवसर पर आप लोगों के इकट्ठे होने को इंगलिस्तान के राजसिंहासन की ओर आप लोगों की उस राजभक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण गिनता हूँ जो श्रीमान प्रिंस आफ वेल्स के इस देश में आने के समय आप लोगों ने दृढ़ रीति पर प्रकट की थी । श्रीमती महारानी आप के स्वार्थ को अपना स्वार्थ समझती हैं, और अंगरेजी राज के साथ उसके कर देने वाले और स्नेही राजा लोगों का जो शुभ संयोग से संबंध है उस के विश्वास को दृढ़ करने और उसके मेल जोल को अचल करने ही के अभिप्राय से श्रीमती ने अनुग्रह करके वह राजसी पदवी ली है जिसे आज हम लोग प्रसिद्ध करते हैं ।

हे हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी के देसी प्रजा लोग, — इस राज की वर्तमान दशा और उस के नित्य के लाभ के लिये अवश्य है कि उन के प्रबंध को जाँचने और सुधारने का मुख्य अधिकार ऐसे अंगरेजी अफसरों को सुपुर्द किया जाय जिन्होंने राज काज के उन तत्त्वों को भली भाँति सीखा है जिनका बरताव राजराजेश्वरी के अधिकार स्थिर रहने के लिये अवश्य है । इन्हीं राजनीति जानने वाले लोगों के उत्तम प्रयत्नों से हिंदुस्तान सभ्यता में दिन दिन बढ़ता जाता है और यही उसके राज काज संबंधी महत्व का हेतु और नित्य बढ़ने वाली शक्ति का गुप्त कारण है और इन्हीं लोगों के द्वारा पच्छिम देश का शिल्प, सभ्यता और विज्ञान, (जिन के कारण आज दिन यूरोप लड़ाई और मेल दोनों में सब से चढ़ बढ़ कर है) बहुत दिनों तक पूरब के देशों में वहाँ वालों के उपकार के लिये प्रचलित रहेगा ।

परंतु हे हिंदुस्तानी लोग ! आप चाहे जिस जाति या मत के हों यह निश्चय रखिये कि आप इस देश के प्रबंध में योग्यता के अनुसार अंगरेजों के साथ भली भाँति काम पाने के योग्य हैं, और ऐसा होना पूरा न्याय भी है, और इंगलिस्तान तथा हिंदुस्तान के बड़े राजनीति जानने वाले लोग और महारानी की राजसी पार्लमेंट व्यवस्थापकों ने बार बार इस बात को स्वीकार भी किया है । गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ने भी इस बात को अपने सम्मान और राजनीति के सब अभिप्रायों के लिये अनुकूल होने के कारण माना है । इसलिये गवर्नमेंट ऑफ इंडिया इन बरसों में हिंदुस्तानियों की कारागुजारी के ढंग में, मुख्यकर बड़े बड़े अधिकारियों के काम में पूरी उन्नति देख कर संतोष प्रगट करती है ।

इस बड़े राज्य का प्रबंध जिन लोगों के हाथ में सौंपा गया है उन में केवल बुद्धि ही के प्रबल होने की आवश्यकता नहीं है वरन् उत्तम आचरण और सामाजिक योग्यता की भी वैसी ही आवश्यकता है । इस लिये जो लोग कुल, पद और परंपरा के अधिकार के कारण आप लोगों में स्वाभाविक ही उत्तम हैं उन्हें अपने को और अपने संतान को केवल उस शिक्षा के द्वारा योग्य करना आवश्यक है, जिससे कि वे श्रीमती महारानी अपनी राजराजेश्वरी की गवर्नमेंट की राजनीति के तत्त्वों को समझे और काम में ला सकें और इस रीति से उन पदों के योग्य हो जिन के द्वार उन के लिये खुले हैं ।

राजभक्ति, धर्म, अपक्षपात, सत्य और साहस देश संबंधी मुख्य धर्म हैं उनका सहज रीति पर बरताव करना आप लोगों के लिये बहुत आवश्यक है, और तब श्रीमती की गवर्नमेंट राज के प्रबंध में आप लोगों की सहायता बड़े आनंद से अंगीकार करेगी, क्योंकि पृथ्वी के जिन जिन भागों में सरकार का राज है वहाँ गवर्नमेंट अपनी सेना के बल पर उतना भरोसा नहीं करती जितना कि अपनी संतुष्ट और एकजी प्रजा की सहायता पर जो अपने राजा के वर्तमान रहने ही में अपना नित्य मंगल समझकर सिंहासन के चारों ओर जी से सहायता करने के लिये इकट्ठे हो जाते हैं ।

श्रीमती महारानी निर्बल राज्यों को जीतने या आसपास की रियासतों को मिला लेने से हिंदुस्तान के राज की उन्नति नहीं समझती वरन् इस बात में कि इस कोमल और न्याययुक्त राज्यशासन को निरुपद्रव बराबर चलाने में इस देश की प्रजा क्रम से चतुराई और बुद्धिमानी के साथ भागी हो । जो हों उनका स्नेह और कर्तव्य

केवल अपने ही राज से नहीं है वरन् श्रीमती शुद्ध चित्त से यह भी इच्छा रखती हैं कि जो राजा लोग इस बड़े राज की सीमा पर हैं और महारानी के प्रताप की छाया में रहकर बहुत दिनों से स्वाधीनता का सुख भोगते आते हैं उन से निष्कपट भाव और मित्रता को दृढ़ रखें। परन्तु यदि इस राज के अमन चैन में किसी प्रकार के बाहरी उपद्रव की शंका होगी तो श्रीमती हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी अपने पैत्रिक राज की रक्षा करना खूब जानती हैं। यदि कोई विदेशी शत्रु हिंदुस्तानी के इस महाराज्य पर चढ़ाई करे तो मानो उसने पूरव के सब राजाओं से शत्रुता की, और उस दशा में श्रीमती को अपने राज के अपार बल, अपने स्नेही और कर देने वाले राजाओं की वीरता और राजभक्ति और अपनी प्रजा के स्नेह और शुभचिंतकता के कारण इस बात की भरपूर शक्ति है कि उसे परास्त करके दंड दें।

इस अवसर पर उन पूरव के राजाओं के प्रतिनिधियों का वर्तमान होना जिन्होंने दूर दूर देशों से श्रीमती को इस शुभ समारंभ के लिये बधाई दी है, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया के मेल के अभिप्राय, और आस पास के राजाओं के साथ उसके मित्र का स्पष्ट प्रमाण है। मैं चाहता हूँ कि श्रीमती की हिंदुस्तानी गवर्नमेंट की तरफ से श्रीयुत खानकिलात और उन राजदूतों को जो इस अवसर पर श्रीमती के स्नेही राजाओं के प्रतिनिधि होकर दूर दूर से अंगरेजी राज में आए हैं और अपने प्रतिष्ठित पाहुने पर श्रीयुत गवरनर-जेनरल गोआ और बाहरी कांसलों का स्वागत करें।

हे हिंदुस्तान के रईस और प्रजा लोग, — मैं आनंद के साथ आप लोगों को यह कृपापूर्वक संदेशा जो श्रीमती महारानी और आप लोगों की राजराजेश्वरी ने आज आप लोगों को अपने राजसी और राजेश्वरीय नाम से भेजा है सुनाता हूँ। जो वाक्य श्रीमती के यहाँ से आज सबेरे तार के द्वारा मेरे पास पहुँचे हैं, ये हैं :—

“हम, विक्टोरिया, ईश्वर की कृपा से, संयुक्त राज (ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड) की महारानी, हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी अपने वायसराय के द्वारा अपने सब राजकाज संबंधी और सेना संबंधी अधिकारियों, रईसों, सरदारों और प्रजा को, जो इस समय दिल्ली में इकट्ठे हैं, अपना राजसी और राजराजेश्वरीय आशीर्वाद भेजते हैं और उस भारी कृपा और पूर्ण स्नेह का विश्वास कराते हैं जो हम अपने हिंदुस्तान के महाराज्य की प्रजा की ओर रखते हैं। हम को यह देख कर जी से प्रसन्नता हुई कि हमारे प्यारे पुत्र का इन लोगों ने कैसा कुछ आदर सत्कार किया, और अपने कुल और सिंहासन की ओर उनकी राजभक्ति और स्नेह के इस प्रमाण से हमारे जी पर बहुत असर हुआ। हमें भरोसा है कि इस शुभ अवसर का यह फल होगा कि हमारे और हमारी प्रजा के बीच स्नेह और दृढ़ होगा, और सब छोटे बड़े को इस बात का निश्चय हो जायगा कि हमारे राज में उन लोगों को स्वतंत्रता, धर्म और न्याय प्राप्त हैं और हमारे राज का अभिप्राय और इच्छा सदा यही है कि उन के सुख की वृद्धि, सौभाग्य की अधिकता, और कल्याण की उन्नति होती रहे।”

मुझे विश्वास है कि आप लोग इन कृपामय वाक्यों की गुणग्राहकता करेंगे।

ईश्वर विक्टोरिया संयुक्त राज की महारानी और हिंदुस्तान की राजराजेश्वरी की रक्षा करें।

इस एंड्रेस के समाप्त होते ही नेशनल एन्थेम का बाजा बजने लगा और सेना ने तीन बार ‘हूर्ई’ शब्द की आनंदध्वनि की। दरबार के लोगों ने भी परम उत्साह से खड़े होकर ‘हूर्ई’ शब्द और हथेलियों की आनंदध्वनि करके अपने जी का उमंग प्रगट किया। महाराज सेंधिया, निजाम की ओर से सर सालारजंग, राजपुताना के महाराजों की तरफ से महाराज जयपुर, वेगम भूपाल, महाराज कश्मीर और दूसरे सरदारों ने खड़े होकर एक दूसरे को बधाई दी और अपनी राजभक्ति प्रगट की। इस के अनंतर श्रीयुत वाइसराय ने आज्ञा की कि दरबार हो चुका और अपनी चार घोड़ों की गाड़ी पर चढ़कर अपने खेमे को रवाना हुए।

श्रीमती महारानी के राजराजेश्वरी की पदवी लेने के उत्सव में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ने हिंदुस्तान के रईसों और साधारण लोगों पर जो अनेक अनुग्रह किये हैं उन्हें हम संक्षेप के साथ नीचे लिखते हैं।

सलामी

जंबू, ग्वालियर, इंदौर, उदयपुर और त्रावणकोर के महाराजों की सलामी उनकी जिंदगीभर के लिए १९

के बदले २१ तोप की हो गई और महाराज जयपुर की १७ से बढ़कर २१ ।

जोधपुर और रीवाँ के महाराजों के लिये उनकी ज़िंदगी भर को १७ से बढ़कर १९ तोप की सलामी हो गई ।

किशनगढ़ और उर्छा के महाराजों की सलामी उनके जीवन समय के लिये १५ तोप के बदले १७ हो गई, और नवाब टोंक की ११ से बढ़कर १७ । भूपाल की वेगम के पति और हैदराबाद के शम्सूल उमरा नामी दूसरे मंत्री की सलामी नये सिर से १७ तोप की नियत हुई ।

नवाब रामपुर की सलामी उमर के लिये १३ से १५ तोप हुई, और भाव नगर के ठाकुर, नवानगर के जाम, जूनागढ़ के नवाब और काठियावाड़ के राजा की ११ से बढ़कर १५ । आरकट के शहजादे और वेगम भूपाल की संबंधिनी कुदसिया वेगम को १५ तोप की सलामी नए सिर के मुकर्रर हुई ।

महाराज पन्ना, राजा जींद और राजा नामा की ११ से १३ तोप की सलामी ज़िंदगी भर के लिये हो गई और महारानी तंजौर और महाराज बर्दवान को नए सिर से १३ तोप की सलामी मिली ।

मकला के नकीब और शिवहर के जमादार को १२ तोप की सलामी उमर भर के लिए मिली ।

मल्लेरकोटला के नवाब की सलामी ज़िंदगी भर के लिये ९ से ११ हो गई, और मुरवी के ठाकुर साहिब और टिहरी के राजा के लिये नए सिर से ११ तोप की सलामी कायम हुई ।

नीचे लिखी हुई जगहों के राजाओं, सरदारों या ठाकुरों के जीवन समय के लिये नए सिर से नौ नौ तोप की सलामी मिली ।

धरमपुर, ध्रोल, बलरामपुर, बसडा, बिरोंदा, गोंदाल, जंजीरा, खरींद, किलचीपुर, लिमडी, मैहर, पलिटाना, राजकोट, सुकेतरा (के सुल्तान), सुचीन, बादवान और बंकानेर ।

यहाँ यह भी लिखना आवश्यक है कि १ जनवरी सन् १८७७ से श्रीमती राजराजेश्वरी की आज्ञानुसार उनकी सलामी १०१ तोप की और राजसी भंडे और हिंदुस्तान के गवर्नर-जेनरल की ३१ तोप की नियत हुई ।

नीचे लिखे हुए राजा और अधिकारी लोग "काउंसिलर ऑब दि एम्प्रेस" (राजराजेश्वरी के सलाहकार) नियत हुए :—

जीवन समय तक ।

महाराज कश्मीर, श्रीरणवीरसिंह जी. सी. एस. आई. ।

" बूंदी, श्रीरामसिंह जी. सी. एस. आई. ।

" ग्वालियर, श्रीजयाजीराव सेधिया जी. सी. एस. आई. ।

" इंदौर, श्रीतुकाजीराव हुल्कर जी. सी. एस. आई. ।

" जयपुर, श्रीरामसिंह जी. सी. एस. आई. ।

" त्रावनकोर, श्रीरामवर्मा जी. सी. एस. आई. ।

" जींद, श्रीरघुवीर सिंह जी. सी. एस. आई. ।

" नवाब रामपुर, कलबअलीखाँ जी. सी. एस. आई. ।

पद का अधिकार रहने तक

श्रीयुत रिचार्ड प्लांटजिनेट केम्बेल जी. सी. एस. आई. ड्यूक ऑब वकिंहेम ऐन्ड शान्डोस, मदरास के गवर्नर ।

सर फिलिप उडहाउस जी. सी. एस. आई., के. सी. बी., बम्बई के गवर्नर ।

सर एफ. हेन्स के. सी. बी., हिंदुस्तान के कमांडरिन्चीफ ।

सर रिचर्ड टेम्पल के. सी. एस. आई. बंगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ।

सर जॉर्ज कूपर सी. बी. पश्चिमोत्तर देश के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ।

सर राबर्ट डेवीस के. सी. एस. आई., पंजाब के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ।

सर हेनरी नार्मन के. सी. बी. गवर्नर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर ।

आनरेबल ए. हॉबहाउस क्यू. सी. गवर्नर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर ।

सर ए. क्लार्क के. सी. एम. जी., सी. बी., गवरनर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर ।

आनरेबल आई. बेली सी. एस. आई., गवरनर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर ।

सर ए. आरबुथनाट के. सी. एस. आई., गवरनर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर ।

नीचे लिखे हुए राजाओं को प्रथम श्रेणी के स्टार ऑफ इंडिया (जी. सी. एस. आई.) की पदवी मिली :—
श्रीयुत महाराज रामसिंह, बूंदी ।

“ महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह, बनारस ।

“ महाराज जसवन्त सिंह, भरतपुर ।

“ प्रिंस अजीमजाह बहादुर, आर्कट ।

इन लोगों को दूसरी श्रेणी के स्टार ऑफ इंडिया (के. सी. एस. आई.) की पदवी मिली :—
श्रीशिवाजी छत्रपति, राजा कोल्हापुर ।

राजा आनंदराव पेंवार, धारवाले ।

श्रीमानसिंहजी, राजा भ्रांगभ्रा ।

श्रीविभवजी, जाम नवानगर ।

आर. जे. मैकडोनेल्ड, श्रीमती के ईस्ट इंडीज की जहाजी फौजों के कमांडरिन्चीफ ।

सर जॉर्ज कूपर सी. बी. पश्चिमोत्तर देश के लेफ्टेनेन्ट गवरनर ।

जेम्स स्टीवन साहिब, गवरनर जेनरल की काउंसिल के पहले मेंबर ।

आर्थर हावहाउस साहिब, गवरनर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर ।

ई.सी. बेली साहिब सी. एस. आई. गवरनर-जेनरल की काउंसिल के मेंबर ।

तीसरे दर्जे के स्टार ऑफ इंडिया (सी. एस. आई.) की पदवी २५ आदमियों को मिली, जिन में मथुरा के सेठ गोविंद दास, कश्मीर के दीवान ज्वाला सहाय, और त्रावणकोर के दीवान शशिया शास्त्री को भी गिनना चाहिये । नीचे लिखे हुए राजाओं को उनके नाम के सामने लिखी हुई पदवियाँ मिलीं ।

महाराज गाइकवाड़ बड़ौदा — “फरजदे खास दौलते इंगलिशिया” (अंगरेजी सरकार के मुख्य बेटे)

महाराज ग्वालियर — “हिसारमुस्सलतनत” (राज्य की तलवार) ।

महाराज कश्मीर — “इन्द्रमहेन्द्र बहादुर सिरसेलतनत” (राज्य की छल)

महाराज अजयगढ़ — “सवाई”

महाराज बिजावर — “सवाई”

महाराज चरखारी — “सिपहदारुलमुल्क” (देश के सेनापति)

महाराज दतिया — “लोकेन्द्र”

नीचे लिखे हुए सरदारों और रईसों को “महाराज” की पदवी अपनी जिन्दगी भर के लिए मिली

आनंदराव पेंवार, धार के राजा ।

छत्र सिंह, समथर के राजा बहादुर ।

धनुर्जय नारायणभंज देव, किलाक्खोभार के राजा, उड़ीसा ।

देव्या सिंह देव, पुरी के राजा, उड़ीसा ।

जगेन्द्रनाथ राय, (राजा नाटौर के घराने की बड़ी औलाद)

राजा ज्योतींद्र मोहन ठाकुर ।

कृष्णचंद्र, मोरभंज वाले, उड़ीसा ।

महीपत सिंह, पटना ।

आनरेबल राजा नरेन्द्रकृष्ण, कलकत्ता ।

राजा कृष्ण सिंह, सुसाँग के राजा ।

राजा रामनाथ ठाकुर, कलकत्ता ।

नीचे लिखी हुई रानियों को उनके जीवन समय के लिये “महारानी” की पदवी मिली

रानी हरसुंदरी देव्या, सिरसौल, बर्दवान ।

रानी हींगन कुमारी, पैदारा, मानभूम ।

रानी सुरतसुंदरी देव्या, राजशाही ।

राजा सर दिनकरराव कें.सी.एस.आई. को "राजा मुशीरेखास बहादुर" (राजा मुख्य सलाहकार बहादुर) की पदवी उनकी जिंदगी के लिये मिली ।

नीचे लिखे हुए सरदारों और रईसों को उनकी जिंदगी के लिये "राजा बहादुर" की पदवी मिली

रघुवीरदयाल सिंह, बिरोंदा के राजा ।

खड़गसिंह, सुरीला के राजा ।

उदितप्रतापदेव, खरौंद के राजा ।

राजा विशेशर मालिया, सिरसौल, बर्दवान ।

राजा हरिवल्लभसिंह, बिहार ।

राजा हरनाथ चौधरी, दुबलाहट्टी, राजशाही ।

राजा मंगलसिंह ; भिनाई, अजमेर ।

राजा रामरंजन चक्रवर्ती, बीरभूमि ।

नीचे लिखे हुए मनुष्यों को उनके जीवन समय के लिए "राजा" की पदवी मिली

बाबू अजीत सिंह, तरील, प्रतापगढ़ ।

बाबा बलवंत राव, जबलापुर ।

बलवंत सिंह, गंगवाना ।

इमरू कुमार वैकटिया नयूदु, जमींदार कलाहस्थी, उत्तर आरकट ।

देवा सिंह, राजगढ़ ।

दिगंबर मित्र, कलकत्ता ।

राव गंगाधरराम राव जमींदार पितापुर, गोदावरी प्रांत ।

राव छत्रसिंह, जमींदार, कन्याघना ।

हरिश्चन्द्र चौधरी, मैमनसिंह ।

कमलकृष्ण, कलकत्ता ।

रायबहादुर क्षेत्रमोहनसिंह, दीनाजपुर ।

कुंअर हरनरायण सिंह, हाथरस ।

कुंअर लछमन सिंह, डिप्टी कलेक्टर, बुलंदशहर ।

सर टी. माधवराव के. सी. एस. आई., बड़ोदा के दीवान ।

ठाकुर माधव सिंह, अजमेर ।

प्रताप सिंह, अजमेर ।

रामनारायण सिंह, मुंगेर ।

श्यामनंद दे, बलेसर ।

श्यामशंकर राय, टिउटा ।

सरदार सुरतसिंह मंत्रिठिया सी. एस. आई. ।

राव साहिब त्र्यंबक जी नाना अहीर, नागपुर के राव ।

काँदाकिशोर भूपति जमींदार सुकींदा, उड़ीसा ।

पादोलव राव, जमींदार औल, उड़ीसा ।

३२ आदमियों को "राव बहादुर" की पदवी मिली, जिनमें गोपाल राव हरी देशमुख, अहमदाबाद की स्मालकाउंट के जज और नारायण भाई दंडकर बरार के शिक्षाविभाग के डायरेक्टर भी हैं ।

२९ मनुष्यों को "राय बहादुर" की पदवी मिली जिनमें डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र और बाबू कृष्णोदास पाल के नाम भी गिनने चाहियें।

८ आदमियों को "राव साहिब" की पदवी मिली, ४ को "राव" की और ५ को "राय" की। इन में से अजमेर के पाँच आदमी "रावसाहिब" और तीन "राय" हुए। निस्सन्देह अजमेर के चीफ कमिश्नर सिफारिश करने में बड़े उदार जान पड़ते हैं क्योंकि और भी बहुत सी पदवियाँ उधरवालों के हिस्से में आई हैं हमारे पश्चिमोत्तर देश से तो सिवाय दो एक के कोई पूछा ही नहीं गया है यद्यपि योग्य पुरुषों की यहाँ कमी नहीं है।

राय मुंशी अमीचंद के जुडिसियल असिस्टेंट कमिश्नर को "सरदार बहादुर" की पदवी मिली, रतनसिंह मध्य भरतखंड के पुलिस सुपरिटेण्डेंट को "सरदार" की; देवर परगना के ठाकुर हीरासिंह को "ठाकुर रावत" की; और लछमीनारायण सिंह केरावाले को "ठाकुर" की पदवी दी गई। ४ आदमी "नवाब" हुए। ४० को "खाँ बहादुर" का खिताब मिला, जिन में से एक मौलवी अबदुल्लाह खान कलकत्ते की डिप्टी कलेक्टर भी हैं; और दो को "खाँ" का खिताब मिला।

इन सरदारों को उनके नाम के सामने लिखे हुए खिताब खानदानी मिले —

महाराज सर जयमंगलसिंह बहादुर के.सी.एस.आई. गिदौर, मुंगेर — "महाराज बहादुर"।

धर्मजीत सिंह देव, सरदार उदैपुर, छोटानागपुर महाल — "राजा उदैपुर"।

नवाब खाजा अबदुल्गनी, ढाका — "नवाब"

दीवान गयासुद्दीनअली खाँ सज्जादानशीन, अजमेर, को उनकी ज़िंदगी भर के लिये "शेखुलमशायख" का खिताब मिला और सरदार अतरसिंह बहादुर, भदौर, को "मलाजुल उलमा उलफ़ीजला" का।

इस के सिवाय एक को "दीवान बहादुर" की, एक को "दीवान" की और १३ को "ऑनररी असिस्टेंट सेक्रेटरी का और ऑनररी असिस्टेंट प्राइवेट सेक्रेटरी का पद भी अलग-अलग दिया गया।

सेना के कितने अधिकारों के साथ भी "सरदार बहादुर" और "बहादुर" की पदवियाँ लगा दी गई; और सब छोटे छोटे अधिकारियों, जहाज़ी नौकरों, सेना के सिपाहियों और गोरों को एक एक दिन की तनख्वाह इनाम मिली और दूसरी रियायतें भी इन के साथ की गई। इस के सिवाय नेटिव कमीशंड आफिसर लोगों की तनख्वाह भी कुछ बढ़ा दी गई है।

रहीमखाँ खाँ बहादुर, असिस्टेंट सर्जन लाहौर को "ऑनररी सर्जन" की पदवी मिली।

श्रीयुत रणवीर सिंह जी.सी.एस.आई. महाराज जम्बू और कश्मीर, और श्रीयुत जयाजीराव संधिया जी.सी.एस.आई. महाराज ग्वालियर को सेना के जेनरल (जरनेल) का पद प्रतिष्ठा की रीति पर श्रीमतीराजराजेश्वरी की ओर से दिया गया।

राजालोगों के सलामी की शोधी हुई नई फ़िहरिस्त।

—*—

राज की सलामी

२१

गायकवाड़ बड़ोदा, निजाम हैदराबाद और महाराज मैसूर।

१९

महाराजा मेवाड़, खान क़िलात, बेगम भूपाल, महाराज जम्बू, इंदौर, ग्वालियर, टैवंकोर और कोल्हापुर।

१७

बाहावलपुर के नवाब, बूँदी के महाराज राजा, कोटा के महाराज, कोचीन के राजा, कक्ष के राव और भरतपुर, बीकानेर, जैपुर, करौली, जोधपुर, पटियाला और रीवाँ के महाराजा।

१५

धार, दतिया, ईडर, कृष्णगढ़, शिकम और उर्छा के महाराजा, देवास के छोटे बड़े राजा, प्रतापगढ़ के राजा, अलवर के महाराज राजा, राना धौलपुर, डूंगरपुर और जैसलमेर के महारावल, भालावार के महाराज राना, खैरपुर के खाँ और सिरौही के राव ।

१३

महाराजा बनारस, जावरा और रामपुर के नवाब, कोंच विहार, रतलाम और त्रिपुरा के राजा ।

११

चंबा, छतरपुर, धांगग्रा, फरीदकोट, भुवुआ, जींद, कहलूर, कपूरथला, मंडी, नाभा नरसिंहगढ़, राजपिपला, सीतामऊ, सिलहना, सिरमौर और सुकेत के राजे । बावनी, कम्बे, जूनागढ़, राधनपुर, राजगढ़ और टोंक के नवाब । अजयगढ़, विजावर, चरखारी, पन्ना और समथर के महाराजे, बाँसवारा के महारावल, भावनगर के ठाकुर, नवानगर के जाम, पालनपुर के दीवान और पोरबंदर के राना ।

९

अली राजपुर, बड़वानी और लुनवारा के राना, बैरिया, छोटा उदयपुर, नागोद और सोंठ के राजा ; बालाशिनोर के वावी फुलदी और लहड़ के सुलतान तथा सावंतवाड़ी के देसाई और मालेर कोटला के नवाब ।

शारीरक सलामी ।

२१

महाराज दिलीप सिंह, महाराज जयाजी राव-सेधिया, महाराज तुकोजी राव होल्कर, महाराना सज्जनसिंह जी उदयपुर, महाराज रामसिंह सवाई जयपुर, महाराज रणवीर सिंह कश्मीर, महाराज श्रीराम वर्मा द्रयवेंकोर ।

१९

मुरशिदाबाद के नवाब निजाम, महाराज जसवंत सिंह जोधपुर, महाराज सर जंग बहादुर वजीर नेपाल, महाराज रघुराज सिंह रीवाँ ।

१७

बेगम भूपाल के पति, हैदराबाद के सालारजंग और शमसुलउमा, महाराज पृथ्वी सिंह कृष्णगढ़, महाराज महेंद्रप्रताप सिंह उर्छा और नवाब इब्राहीम खाँ टोंक ।

१५

आर्कट के प्रिंस अजीमज्राह, ठाकुर तख्तसिंह जी भावनगर, कुदसिया बेगम भूपाल, राजा मानसिंह धांगग्रा, नवाब महाबत खाँ जूनागढ़, जाम श्रीविभव जी नवानगर, नवाब कलबअली खाँ रामपुर ।

१३

महाराज महताबचंद बर्दवान, महाराज जींद, महाराज पन्ना, महाराज विजयनगरम, राजा नाभा और रानी विजयमोहिम्नी मुक्ताबाई तंजौर ।

१२

उमर बिन सल्लह बिन मुहम्मद नकीब मकला, औध बिन उमर जमादार शहरा ।

११

नवाब मालेर कोटला, ठाकुर मोरवी और राजा टेहरी ।

९

महारावल बाँसवाड़ा, महाराजा बलरामपुर, महारावल धरमपुर, धोल गोंदन, लिमडी, पालीटाना, राजकोट और बादवान के ठाकुर, जंजीरा के और सुचीन के नवाब, खरोड़ बकनीर बिरोंदा और मैहर के राजे और सुलतान सकोतरा और किलिचौर के राव ।

विदित रहे कि महाराज नेपाल, सुलतान मसकत, सुलतान जंजीवार और अमीर काबुल की सलामी भी २१ है ।

उदयपुरोदय

(अर्थात् मेवाड़ का पुरावृत्त-संग्रह)

यह मेवाड़ का पुरावृत्त संग्रह है। इसका रचनाकाल सन १८७७ है। इसे आप भारतेन्दु के इतिहास लेखन की शैली का उदाहरण मान सकते हैं। इसकी टिप्पणी देखने मात्र से पता चलता है कि इसके लेखन में भारतेन्दु जी को कड़ी मेहनत करनी पड़ी होगी। — सं.

उदयपुरोदय

पहिला अध्याय

मेवाड़ का शुद्ध नाम मेदपाट है और यहाँ के महाराज की संज्ञा सीसौधिया है। कहते हैं कि इन के वंश में कोई राजा बड़े धार्मिक थे। एक समय वैद्यों ने छल से औषध में मद्य मिला कर उन को पिला दिया, क्योंकि जिस रोग में वे ग्रस्त थे उस की औषधि मद्य ही के साथ दी जाती थी। शरीर स्वच्छ होने पर जब उन्होंने जाना कि हम ने मद्य पीया था, तो उसके प्रायश्चित्त के हेतु गलता हुआ सीसा पीकर प्राण त्याग किया। तभी से सीसौधिया इस वंश की संज्ञा हुई। यही वंश भारतखंड में सब से प्राचीन और सब से माननीय है। इसी वंश में महात्मा मांधाता, सगर, दिलीप, भगीरथ, हरिश्चंद्र, रघु आदि बड़े बड़े राजा हुए हैं और इसी वंश में भगवान श्रीरामचंद्र ने अवतार लिया है। इसी वंश के चरित्र में कालिदास, भवभूति, वरंच व्यास, वाल्मीकि ने भी वह ग्रंथ बनाए हैं जो अब तक भारतवर्ष के साहित्य के रत्नमूत हैं। हिंदुस्तान में यही वंश ऐसा बचा है जिस में लोग सत्ययुग से लेकर अब तक बराबर राज्यसिंहासन पर अवल छत्र के नीचे बैठते आए। उदयपुरवाले ही ऐसे हैं जिन्होंने और और विलायत के बादशाहों की बेटी ली, पर अपनी बेटी मुसलमान को न दी। आज हम उसी बड़े पराक्रमशाली प्राचीन वंश का इतिहास लिखने बैठे हैं। इसमें हमारे मुख्य सहायक ग्रंथ टॉड साहिब का राजस्थान, उदयपुर के वंशचरित्र के भाषाग्रंथ और प्राचीन ताम्रपत्र हैं। जैसे संसार के सब राजों के इतिहास प्रारम्भ में अनेक आश्चर्य घटना पूरित होते हैं वैसे ही इस के भी प्रारंभ में अनेक आश्चर्य इतिहास हैं। उन से कोई इस के ऐतिहासिक इतिवृत्ति में संदेह न करे; क्योंकि प्रायः प्राचीन इतिवृत्त अनेक अद्भुत घटना पूर्ण होते हैं और इतिहासवेत्ता लोग उन्हीं चमत्कृत इतिहासों का सारासार निस्सार पूर्वक सारा निर्णय बुद्धि बल से कर लेते हैं।

राजस्थान में मेवाड़ और जैसलमेर का राज्य सब से प्राचीन है। आठ सौ बरस से भारतवर्ष में विदेशियों का राज्य प्रारम्भ हुआ, तब से अनेक राज्य बिगड़े और बने यह ज्यों का त्यों है। गजनी के बादशाह लोग सिंधु नदी का गंभीर जल पार कर के हिंदुस्तान में आए। उस समय जहाँ मेवाड़ के राज्य का सिंहासन था वहीं अब

१. कहते हैं कि जब औरंगज़ेब ने उदयपुर घेर लिया था तब राना साहब शिकार खेलते थे और उन को बादशाह की दो बेगम फौज से बिछड़ी जंगल में भटकती हुई मिलीं, जिन को राना ने अपनी बहिन कह के पुकारा और रक्षापूर्वक लाकर उन को औरंगज़ेब को सौंप दिया। मुसलमान तबारीख लिखनेवालों ने अपनी क्षति इसी बहाने पूरी की और कहा कि उदयपुरवालों ने बेटी नहीं दी, तो क्या हुआ, बादशाह बेगम को अपनी बहिन बनाया तो सही। वरंच इसी हेतु उस दिन से उन बेगमों को उदयपुरी बेगम लिखा गया। भाषाग्रंथों में इन बेगमों के नाम रंगी चंगी बेगम लिखे हैं।

भी है। बहुत से राजा लोग उस राज्य के चारों ओर, बहुत से वहाँ से और कहीं जा बसे, पर इनके महल अब भी वहीं खड़े हैं जहाँ पहले खड़े थे। सतयुग से आज तक इसी वंश के सब पुरुष सिंहासन ही पर मरे।

भगवान रामचंद्र के ज्येष्ठ पुत्र लव ने अपने राज्य-समय में लवपुर अर्थात् लाहौर बसाया था और सुमित्रायु नामक राजा लव से पचपन पीढ़ी पीछे हुआ। पुराणों में लिखा है कि सुमित्र ने कलियुग में राज्य किया और बहुत से प्रमाणों से मालूम होता है कि ये विक्रमादित्य के कुछ पहले वर्तमान थे। इनके पीछे कनकसेन तक राजाओं का ठीक वृत्तान्त नहीं मिलता। जहाँ तक नाम मिले हैं उसमें पहला महारथ, उस का पुत्र अंतरीक्ष, उस का अचलसेन और उस का पुत्र राजा कनकसेन हुआ। राजा कनकसेन ही सौराष्ट्र देश में आये, परंतु इस का नहीं पता लगता कि उन्होंने लाहौर किस हेतु से छोड़ा और किस पथ से सौराष्ट्र पहुँचे। यहाँ आकर इन्होंने किसी पर्वार वंश के राजा का अधिकार जीत कर सन् १४४ में वीर नगर नामक नगर संस्थापन किया। कनकसेन को महामदनसेन, उनको शोणादित्य और उनको विजय भूप हुआ। इस ने जहाँ अब धौल का नगर है वहाँ पर विजयपुर नामक नगर संस्थापन किया और जहाँ अब सिहोर है तहाँ विदर्भ नगर बनाया। और बल्लभीपुर नामक एक बड़ा नागर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। अब धौल नगर से पाँच कोस उत्तर-पश्चिम बालभी नामक जो गाँव है वहीं इस प्रसिद्ध बल्लभीपुर का अवशेष है। शत्रुञ्जय-माहात्म्य नामक जैन ग्रंथ में भी इस नगर की बड़ी शोभा लिखी है। मेवाड़ के राजा लोग बल्लभीपुर से आए हैं यह प्रवाद बहुत दिन से था, पर कोई इस का पक्का प्रमाण नहीं था। अब उदयपुर के राज्य में एक टूटे शिवालय में एक प्राचीन खोदा हुआ पत्थर मिला है, उस से यह संदेह मिट गया, क्योंकि उस में लिखा है कि जिन महात्माओं का ऊपर वर्णन हुआ उस की साक्षी बल्लभीपुर के प्राचीर हैं। राणा राजसिंह के समय के बने हुये एक ग्रंथ में भी लिखा है कि सौराष्ट्र देश पर बरबरो ने चढ़ाई करके बालकानाथ को पराजय किया।

इस बल्लभीपुर के विप्लव में सब लोग नष्ट हो गये और केवल एक प्रह्मर की दुहिता मात्र बची। बल्लभीपुर शिलादित्य के समय में नाश हुआ। विजयभूप के पञ्चादित्य, उन के शिवादित्य, उन के हरादित्य, उन के सुयशादित्य, उन के सोमादित्य, उन के शिलादित्य।

शिलादित्य वा शीलादित्य तक एक प्रकार का क्रम लिख आए हैं। अब आगे नामों में और उन के समय कितना गड़बड़ और उसके ठीक निष्पत्ति में कितनी विपत्ति है यह दिखाते हैं। आर्यमत के अनुसार चार युग में काल बाँटा गया है। इसमें ब्रह्मा की उत्पत्ति से सत्ययुग माना जाता है। अब अनेक पुराणों से और प्रसिद्ध विद्वानों के मत से प्रारंभ से काल लिखते हैं।

पुराण के मत से इक्ष्वाकु को २१८५००० वर्ष हुए। जोन्स के मत से ६८७७ और विलफर्ड के मत से ४५७८, टॉड के मत से ४०७७, वेण्टली के मत से ३४०५।

श्री रामचंद्र का समय पुराण ० ८६८७९७९ वर्ष, जोन्स ० ३९०६, विलफर्ड ० ३२३७, वेण्टली ० २८२७, टॉड ० ४०००।

महाराज युधिष्ठिर का समय पुराण ० ४९७९, वेण्टली २४५३, और जोन्स-टॉड ३३०७ और विलफर्ड के मत से श्री रामचंद्र का और युधिष्ठिर का समय एक है, विल्सन के मत से ३३०७।

सुमित्र का समय पुराण ० ३९७७, जोन्स २९०६, विलफर्ड २५७७, वेण्टली १९९६, विल्सन ० २८०२, ब्रह्मावालों के मत से २४७७।

शिशुनाग का समय पुराण, ३८३६, जोन्स, २७४७, विलफर्ड, २४७७, विल्सन, २६५४, ब्रह्मावाले, २४७७।

नंद का समय पुराण ० ३४७७, जोन्स ० २५७६, विल्सन ० २२९२, ब्रह्मावाले ० २२८१।

चंद्रगुप्त का समय पुराण ० ३३७९, जोन्स ० २४७७, विलफर्ड ० २२२७, विल्सन ० २१९२, टॉड ० २१९७, ब्रह्मावाले ० २२६९।

अशोक का समय पुराण ३३४७, जोन्स, २५१७, विल्सन, २१२७, ब्रह्मावाले, २२०७।

जोन्स प्रिंसिप साहब के मत से परशुराम जी को ३०५३ वर्ष हुए और वेण्टली साहब के मत से बाल्मीकि रामायण बने केवल १५८६ वर्ष हुए।

कलियुग का प्रारंभ पुलोम के समय तक भागवत के मत से ३७३४, ब्रह्माण्डपुराण के मत से ३६५२, वायुपुराण के मत से ३६०६, जैनों के मत से २९५५ और चीन और ब्रह्मा के मत से २५६८ वर्ष से है। आंगरेजी विद्वानों के पुराणों के अनुसार इस समय तक पुलोम का समय जोड़ कर एक सम्मति है कि कलियुग बीते ५००० वर्ष लगभग हुए, परंतु इस मत को वे सत्य नहीं मानते, क्योंकि फिर आप ही लिखते हैं कि स्वायंभु मनु को हुए ५८८३ वर्ष और ववस्वतमनु को ४८२७ वर्ष हुए।

युधिष्ठिर के ३०४४ संवत् बीते विक्रम का संवत् चला और विक्रम के १३५ वर्ष पीछे शालिवाहन का शाका चला।

ऊपर जो कालनिर्णय में विद्वानों के परस्पर विरुद्ध मत वर्णन किए गए इस से यह बात प्रसिद्ध होगी कि प्राचीन समय निर्णय करना कितना दुरुह्य है, इसके आगे जो ब्रह्मा से लेकर सुमित्र पर्यंत नामावली दी जाती है उसके मध्यगत काल का निर्णय न कर के सुमित्र के समय से जो हमारे मत के अनुसार २००० वर्ष बीते हुआ है काल का निर्णय प्रारंभ करेंगे।

ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप, विवस्वान, श्राद्धदेव, इक्ष्वाकु, विकक्षी १ पुरंजय, काकुत्स्थ, २ अनेनास, ३ पुषु, ४ विश्वगश्व, ५ अर्द, भाद्रार्द, युवनाश्व, ६ बृहदश्व, ७ कुवलाश्व, ८ द्व्यश्व, हयश्व, निकुंभ, ८ संकटाश्व, ९ प्रसेनजित युवनाश्व, १० मांधाता, पुरुकुत्स, चित्रिशदश्व, अनारण्य, पृषदश्व, हयश्व, ११ वसुमान, १२ त्रिध्वा, १३ त्रयारण्य, त्रिशंक, हरिश्चंद्र रोहिताश्व, हारीत, १४ चुंचु, विजय, १५ रुरुक, वृक, १६ बाहु, सगर, असमंजस, अंशुमान, दिलीप, भगीरथ, श्रुत, नाभाग, अंबरीष, सिंधुद्वीप, अयुताश्व, १७ ऋतुपर्ण, सर्वकाम, सुदास, कल्माष्याद, १८ असमक, १९ हरिकवच, २० दशरथ, इतिवध, विश्वासह, २१ खट्वांग, दीर्घबाहु, रघु, अज, दशरथ, श्रीराम, २२ कुश, अतिथि, निषध, नल, नाभ, पुंडरीक, क्षेमधन्या, २३ द्वारिक, अधीनज, कुरुपरिपात्र, २५ दल, २६ छल, उक्थ, २७ बज्रनाभि, २८ शंखनाभि, २९ व्युथिताभि, ३० विश्वासह, हिरण्यनाभि, ३१ पुष्य, ३२ ध्रुवसंधि, ३३ अपवर्म, शीघ्र, ३४ मरु, प्रसव श्रुत, ३५ सुसंध, आमर्ष, ३६ महाश्व, बृहद्बाल बृहद्गान, उरुक्षेप, वत्स, वत्सव्यूह प्रतिय्योम, ३७ देवकर, सहदेव, ३८ बृहदश्व, ३९ भानुरत्न, सुप्रतीक, मरुदेव, सुनक्षत्र ४०।

केशीनर, ४१ अंतरीक्ष, ४२ सुवर्ण, अमित्रजित, बृहद्गज, ४३ धर्म ४४ कृतंजय, ४५ रणंजय, संजय, शाक्य, ४६ क्रोधदान, शाक्य सिंह, ४७ अतुल, प्रसेनजित, क्षुद्रक, कुंदक, ४८ सुरथ, सुमित्र।

महाराज त्रैसिंह के ग्रंथ के अनुसार सुमित्र के पीछे महारितु, अंतरित, अचलसेन, कनकसेन, महामदनसेन, सुदंत वा प्रथम सोणादित्य, (विजयसेन वा अजयसेन वा विजयदित्य) पद्मादित्य, शिवादित्य, हरादित्य, सूर्यादित्य, शिलादित्य, प्रहादित्य, नागादित्य, भार्गादित्य, देवादित्य, आशादित्य, कालभोज व भोजादित्य, द्वितीय प्रहादित्य और बापा। सुमित्र से माहऋतु तक चार नाम नहीं मिलते और इस क्रम से श्रीरामचंद्र से बापा अस्सी पीढ़ी में हैं। तक्षक से लेकर के बाहुमान वा भानुमान तक आठ राजाओं के नाम कई वंशावली में नहीं मिलता। अनेक ग्रंथकारों का मत है कि इसी तक्षक के समय से ईरान, तुरान तुरकिस्तान इत्यादि देशों में इसका वंश राज करता था और तुरकिस्तान का प्राचीन नाम तक्षकस्थान बतलाते हैं और यूनान में जो अर्तक्षक नामक राजा हुआ है वह भी इसी तक्षक का नामांतर मानते हैं।

राजा जयसिंह का मत है, कनकसेन के समय में अर्थात् सन् १४४ में सौराष्ट्र देश में इस वंश का राज

१ नामांतर काकुत्स्थ। २-३ ना. अनुपुषु। ४ ना. विश्वगधि। ५ ना. चंद्र। ६ ना. स्वसव या श्रव। ७ ना. धुंधुमार। ८ संकटाश्व के पीछे वरुणश्व और कुशाश्व दो नाम और मिलते हैं। ९ ना. सेनजित। १० ना. सुबंधु इन को चक्रवर्ती लिखा है। ११ ना. महण या अरुण। १२ ना. त्रिविधन १३ ना. सत्यव्रत। १४ ना. चंप, किसी पुस्तक में चंप के पीछे सुवेव तब विजय लिखा है। १५ ना. भरुक। १६ ना. बाहुक। १७ ऋतुपर्ण के पीछे किसी पुस्तक में नल, तब सार्यकाम लिखा है। १८ ना. आमक। १९ ना. मूलक। २० दशरथ, और इतिवध दो के बदले किसी पुस्तक में ऐडाबिड़ एक ही नाम लिखा है। २१ ना. खरभंग। २२ कुश के समय से अनेक ग्रंथकार बापर की प्रवृत्ति मानते हैं (इन्हीं कुश का एक पुत्र कर्म नामक था जिस से कछवाहे लोग अपनी वंशावली मानते हैं)। २३ ना. देवानिक। २४ ना. अधीनग। २६ ना. बल। २५ ना. रणच्छल। २७ बज्रनाभि के पीछे कोई अर्क तब शंखनाभि को लिखता है। २८ ना. सगण। २९ ना. विधुत। ३० ना. विशित्राश्व। ३१ ना. पुष्य। ३२ ध्रुवसंधि और अपवर्म के बीच में कोई सुदर्शन नामक और एक राजा मानता है। ३३ ना. अग्निवर्म। ३४ ना. मनु। ३५ ना.

हुआ और वही लिखते हैं कि विजय वा अजयसेन का नामांतर नौशेरवाँ था। इस ने विजयपुर वा विराटगढ़ बसाया और सन् ३१९ में बल्लभीषक स्थापन किया। उन्हीं का मत है कि शिलादित्य को यवनो ने जीता और सौराष्ट्र से यह राज छिन्न भिन्न हो गया और इसका पुत्र केशव वा गोप वा ग्रहादित्य भांडेर के जंगल में रहा और उस के पुत्र नागादित्य के समय से इस वंश का गोत्र गहलोत कहलाया और फिर आशादित्य ने मेवाड़ में अपने वंश की पहली राजधानी आशापुर और आहार बसाया और इस के पीछे बापा ने सन् ७१४ में चित्तौड़ का राज्य पाया, इसरें ग्रहादित्य का नाम द्वितीय नागादित्य भी लिखा है।

बापा तक नाम का क्रम हम पूर्व में लिख आए हैं, परंतु प्राचीन ताम्रपत्रों से लेकर यदि वंशावली लिखी जाय, तो सेनापति व भट्टारक तथा धरासेन, द्रोणसिंह (प्रथम), ध्रुवसेन, धरापति, गृहसेन, श्रीधरसेन (प्रथम), शिलादित्य (प्रथम), चारुग्रह वा खडग्रह (द्वितीय), श्रीधरसेन (द्वितीय), ध्रुवसेन (तृतीय), श्रीधरसेन (तृतीय), शिलादित्य (इस के पीछे तीन नाम छूट गए हैं), शिलादित्य (तृतीय) और (चतुर्थ) शिलादित्य।

टीह साहब की वंशावली और बल्लभीपुर की वंशावली में कितना अंतर है यह ऊपर के नामों से प्रगट होगा। पादरी अंडरसन साहब ने दो नए ताम्रपत्र पढ़कर इस वंशावली को शोध है और वे कहते हैं कि इस में जहाँ जहाँ श्रीधरसेन लिखा है वह सब नाम धरासेन है और शिलादित्य का नाम क्रमादित्य वा विक्रमादित्य है और इन्हीं को धर्मादित्य भी कहते हैं। और वंशावली के प्रथम पुरुष को सेनापति वा भट्टारक वा धर्मादित्य भी लिखा है। दोनों वंशावली में बल्लभीपुर का अंतिम राजा शिलादित्य है और इन दोनों के संवत् भी पास पास मिलते हैं। पारसी इतिहासवेत्ताओं के मत से इसी शिलादित्य का पुत्र ग्रह वा ग्रहादित्य, जिस ने ग्रहलोत व ममोधिषा गोत्र चलाया, नौशेरवाँ का रक्षित पुत्र था, परंतु महाराज जैसिंह ने राजा अजयसेन का ही नामांतर नौशेरवाँ लिखा है। पारसी इतिहासवेत्ताओं के मत से नौशेरवाँ के पुत्र नौशीजाद (हमारे यहाँ का नागादित्य) और यजदिजिद की बेटी माहबानू, जो इन्हीं राजाओं में से किसी को ब्याही थी, इस वंश के मूल पुरुष हैं। विलार्ड साहब के मत से बल्लभीषक के स्थापनकर्ता अजयसेन वा दूसरी वंशावली के अनुसार धरासेन को ही पुराणों में शुद्रक वा शरक लिखा है, जिस ने ३२९० वर्ष कलियुग बीते सन् १९१ वा २९१ में प्रथम विक्रमादित्य के नाम से राज्य किया था। मेजर वॉटसन के मत से सेनापति भट्टारक के सौराष्ट्र जीतने के दो वर्ष पीछे प्रसिद्ध स्कन्दगुप्त मरा। इस से गुप्त संवत् के आस ही पास बल्लभी संवत् भी है और इस विषय के उन्होंने अनेक प्रमाण भी दिए हैं। इस बल्लभी संवत् के निर्णय में इतिहासवेत्ता विद्वानों के बड़े बड़े भगड़े हैं, जिससे कई दरजन कागज के बड़े ताब रंग गये हैं। लोग सिद्धांत करते हैं कि गुप्तवंश जब प्रबल था तब बल्लभीवंश के लोग उसके वंश के अनुगत थे, यहाँ तक कि भट्टारक सेनापति गुप्त वंश बिगड़ने के पीछे स्वाधीन हुआ और अपने दूसरे बेटे द्रोणसिंह का महाराज किया। पाँच छः ताम्रपत्र इस वंश के जो मिले हैं इन के परस्पर नामों में बड़ा फरक है, जैसा गृहसेन धरासेन शिलादित्य धरासेन शिलादित्य वा गृहसेन के दो पुत्र शिलादित्य और खडग्रह के दो पुत्र धरासेन और ध्रुवसेन वा शिलादित्य के देरभट्ट, उनके शिलादित्य खडग्रह और ध्रुवसेन और शिलादित्य के बाद फिर शिलादित्य।

इन नामों के परस्पर अत्यंत ही विरुद्ध होने से कोई निश्चित वंशावली नहीं बन सकती, अतएव इन भगड़ों को छोड़ कर राजा कनकसेन के समय से हम ने पूर्व वृत्तांत प्रारंभ किया। कारण यह कि जब एक बड़ा

मार्थ : ३६ ना. अश्वत्थान, इसी महाश्व के पीछे विश्वबाहु; प्रसेनजित और तक्षक नामक तीन राजा बृहद्बाल के पहले अनेक ग्रंथकार मानते हैं और कहते हैं, कलियुग का प्रारंभ इसी समय से हुआ। ३७ प्रतिव्योम और देवकर के बीच में कोई भानु को भी जोड़ने है। इसी देवकर का नामांतर दिवाकर है। ३८ सहदेव, तब वीर, तब बृहदश्व, यह किसी का मत है। ३९ ना. भानुमत वा भानुमान, ग्रंथकारों का मत है कि ईरान का जो प्रसिद्ध बहमन नामक राजा हुआ था। वह यही भानुमान है। इस के और सुप्रतीक के बीच में कोई प्रतिशोध नामक राजा मानते हैं। ४० ना. पृथ्वर। ४१ ना. रेख। ४२ ना. सुनुपा। ४३ ना. बाढ़ि। ४४ कोई ग्रंथकार कहते हैं कि यही कृतंजय प्रथम सौराष्ट्र में आया। ४५ ना. जयरान। ४६ ना. शुद्धोधन इसी का पुत्र प्रसिद्ध शाक्यसिंह है, जो भादो सुदी ५ को जन्मा था, और बौद्ध और जैन के नाम से जिस का मन संसार की एक तिहाई में व्याप्त है। ४७ ना. लांगल वा सिंगल वा रातुल। ४८ ना. सुरत वा सुराष्ट्र, कहते हैं कि इसी के नाम से सौराष्ट्र देश बसा है।

1. Bomb. Jour. VLIH P. 216

2. as Ras VL IX pp. 135. 230.

वंश राज्य करता है तो उस की शाखा प्रशाखा आस पास छोटे छोटे राज्य निर्माण कर के राज करती है। इसमें क्या आश्चर्य है कि ताम्रपत्रों में ऐसे ही अनेक श्रेणियों की वंशावली का वर्णन हो जो वास्तव में सब वल्लभी वंश से संबंध रखती हैं। ऐसा ही मान लेने से पूर्वोक्त समय और वंश निर्णय की असमंजसता, जटिलता, घनता, असंबद्धता और विरोधिता दूर होगी।

सुमित्र से लेकर शिलादित्य तक एक प्रकार का निर्णय ऊपर हो चुका और इस से निश्चय हुआ कि महाराज सुमित्र कलियुग के अंत में हुए थे और वल्लभीपुर का नाश भए दो हजार वर्ष के लगभग हुए। कहा है कि वल्लभीपुर में सूर्यकुंड नामक एक तीर्थ था। युद्ध के समय शिलादित्य के आवाहन करने से इस कुंड में से सूर्य के रथ का सात सिर का घोड़ा निकलता था और इस अश्व के रथ पर बैठने से फिर शिलादित्य को कोई जीत नहीं सकता था। और यह भी कथित है कि सूर्य की दी हुई शिलादित्य के पास एक ऐसी शिला थी जिसको दिखा देने से वा स्पर्श करा देने से शत्रुओं का नाश हो जाता था। और इसी वास्ते इनका नाम शिलादित्य था। इन के किसी शत्रु ने इन्हीं के किसी निज भेदिये की सम्मति से उस पवित्र कुंड को गोरक्त द्वारा अशुद्ध कर दिया, जिससे वल्लभीपुर के नाश के समय राजा के बारंबार आवाहन करने से भी वह अश्व नहीं निकला और राजा सपरिवार युद्ध में निहत हुआ और वल्लभीपुर नाश हुआ। जैनग्रंथों के अनुसार संवत् २०५ में वल्लभीपुर नाश हुआ और श्री महाराणा उदयपुर के राज्य कृत संग्रह के अनुसार राजा शिलादित्य का नाम सलादित्य था और वल्लभीपुर का नाम विजयपुर।

अंगरेजी विद्वानों का मत है कि नगरावरोधकारी शत्रुदल ने हिंदुओं को दुःख देने के हेतु गोरक्त से वल्लभीपुर के जल कुंडों को अशुद्ध कर दिया होगा, जिससे हिंदू लोग घबड़ा कर एक साथ लड़ने को निकल खड़े हुए होंगे। अलाउद्दीन बादशाह ने गांगरीन देश के खींची राजाओं से यही छल किया था। वल्लभीपुर के शत्रुओं का यही छल मानों इस कथा का मूल है।

वल्लभीपुर को किस असभ्य जाति ने नाश किया इस का निर्णय भली भाँत नहीं होता। प्राचीन पारस निवासी लोग वृष को पवित्र समझते थे और सूर्य के सामने उसको बलिदान भी करते थे। इस से निश्चय होता है कि ये लोग पारसी तो नहीं थे। प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है कि ख्रिष्टीय दूसरी शताब्दी में सिंधु नदी के किनारे पारद वा पार्थियन लोगों का एक बड़ा राज्य था। विष्णुपुराण में लिखा है कि सूर्यवंशी सगर राजा ने मलेच्छों को चिन्ह विशेष देकर भारतवर्ष से निकाल दिया था, जिस में यवन सर्व शिरोमूढ़ित केश, अर्द्धशिर-मुण्डित, पारद मुक्त केश और पन्हव वा पल्लव श्मश्रुधारी बनाए गए थे। उसी काल में श्वेत वर्ण की एक हूण जाति भी सिंधु के किनारे राज्य करती थी। हूण जाति नामक प्राचीन असभ्य मनुष्यों के लेख पुराणों और यूरोप के इतिवृत्तों में भी पाया जाता है। संभावना होती है कि इन्हीं दो जातियों में से किसी ने वल्लभीपुर नष्ट किया होगा। पारद और हूण दो जातियों का आदिनिवास शाकद्वीप है। महाभारत में शाकद्वीपी और पूर्वोक्त हूणादिकों को इसी प्रकार यवन लिखा है। पुराणों में इन सबों को एक प्रकार का क्षत्री लिखा है। ये सब असभ्य जाति शाकद्वीप से किस काल में यहाँ आए इसका पता नहीं लगता। वेण्टली साहब का मत है कि शाकद्वीप इंग्लैण्ड का नामांतर है। विशेष आश्चर्य का विषय यह है कि ये सब शाकद्वीपी काल पा के आर्य जाति में मिल गए, यहाँ तक कि ब्राह्मण और क्षत्रियों में भी शाकद्वीपी वर्तमान हैं।

यह निश्चय हुआ कि इन्हीं मलेच्छ जाति के लोगों में से किसी जाति ने वल्लभीपुर नाश किया। साँदीराई से जो वंशपरिका मिली है उसमें लिखा है कि वल्लभीपुर नाश होने के पीछे वहाँ के लोग मारवाड़ में आकर साँदीरावालों और नांदौर नगर बसा कर रहने लगे और फिर गाजनी नामक एक नगर का और भी उल्लेख है। एक कवि अपने ग्रंथ में लिखता है "असभ्यों ने गाजनी हस्तगत किया, शिलादित्य का घर जनशून्य हुआ और जो वीर लोग उस की रक्षा को निकले वे मारे गए"।

हिंदू सूर्य के वंश का यहाँ चौथा दिवस अवसान हुआ। प्रथम दिवस इक्ष्वाकु से श्री रामचंद्र तक अयोध्या में बीता, दूसरा दिन लव से सुमित्र तक अन्य राजधानियों में, तीसरा सुमित्र से विजयभूप तक अंधेरे मेघों से छिपा हुआ कहाँ बीता न जान पड़ा और यह चौथा दिन आज वल्लभीपुर में शिलादित्य के अस्त होने से समाप्त हुआ। पाँचवें दिन का इतिहास बहुत स्पष्ट है, जो गुह और बाणा के विचित्र चित्रों से चित्रित होकर दूसरे अध्याय में वर्णन होगा।

इति उदयपुरोदय प्रथम अध्याय

दूसरा अध्याय

वल्लभी वंश की रात्रि का अवसान हुआ। उदयपुर के इतिहास की यहाँसे शृंखला बँधी। पूर्व में लिख आए हैं कि वल्लभीपुर को यवनों ने घेरा और राजा शिलादित्य ने सकुटुंब सपरिवार वीरों की गति पाया। अब और सीमन्तिनीगण राजा की सहगामिनी हुई, किंतु रानी पुष्पवती (वा कमलावती) मात्र जीवित रही।

रानी पुष्पवती चंद्रावती नगर (सांप्रत आबूनगर) के राजा की दुहिता थीं। वल्लभीपुर के आक्रमण के पूर्व ही यह रानी गर्भवती होकर अपने पिता के राज में जगदंबा (आशाम्बिका) के दर्शन को गई थी और वहाँ से लौटती समय मार्ग में अपने प्राणवल्लभ और वल्लभीपुर का विनाश सुना और उसी समय अपना प्राण देना चाहा। परंतु वीरनगर की एक ब्राह्मणी लक्ष्मणावती जो रानी के साथ थी उसके समझाने से प्रसव काल तक प्राण धारण का मनोरथ कर के मालिया प्रदेश के एक पर्वत की गुहा में कालयापन करना निश्चय किया। इसी गुहा में गुहा का जन्म हुआ और रानी ने सद्यः जात संतान उस ब्राह्मणी को देकर आप अग्नि-प्रवेश किया। मरती समय रानी ब्राह्मणी को समझा गई थी कि इस पुत्र को ब्राह्मणोचित शिक्षा देकर क्षत्रिय कन्या से व्याह देना।

लक्ष्मणावती ब्राह्मणी उस बालक का लालन पालन करने लगी और द्वेषियों के भय से भांडेरगढ़ और पराशर वन में क्रम से रही। गुहा में जन्म होने के कारण बालक का नाम भी गुहा (ग्रहादित्य वा केशवादित्य) रक्खा। गुहा की प्रकृति दिन दिन अति उत्कट होने लगी और बहुत से वनवासी बालकों को इन्होंने अपना अनुगामी बना लिया। इसी वृत्तांत पर उस देश में यह कहावत अब भी प्रचलित है कि सूर्य की किरण को कौन छिपा सकता है।

मेवाड़ की दक्षिण सीमा पर ईंदर के राज्य पर उस समय भीलों का अधिकार था और उस समय के भीलों के राजा का नाम मंडलिका था। प्रतिपालक शांतिशील ब्राह्मणों के साथ गुहा का जी नहीं मिलता था। इस से सम स्वभाव उग्र प्रकृति वाले भीलों से अपनी उईंड प्रचंड प्रकृति की एकता देखकर गुहा उन्हीं लोगों के साथ वन वन घूमते थे और काल-क्रम से भीलों के ऐसे स्नेहापात्र हो गए कि सत्रन पर्वत ईंदर प्रदेश भीलों ने इनको समर्पण कर दिया। अबुलफजल और भट्ट गण गुहा के भील-राजप्राप्ति का वर्णन यों करते हैं। एक दिन खेल में भील बालक लोग एक बालक को राजा बनाना चाहते थे और सब ने एक वाक्य होकर गुहा ही को राजा बनाना स्वीकार किया। एक भील के बालक ने चट से अपनी उँगली काट के ताजे लहू से गुहा के सिर में राजतिलक लगाया। यह खेल का व्यापार पीछे कार्यतः सत्य हो गया, क्योंकि भील-राजा मंडलिका ने यह समाचार सुन कर प्रसन्न हो कर ईंदर का राज्य गुहा को दे दिया। कहते हैं कि गुहा ने व्यर्थ भीलराज मंडलिका को पीछे से मार डाला। गुहा के नाम के अनुसार उन के वंश के लोग गहिलोट (गहिलौत वा गिहलौत) कहलाए। टॉड साहब कहते हैं कि गहिलौत ग्राहिलौत का अपभ्रंश है।

गुहा (केशवादित्य) के पुत्र नागादित्य हुए। इन्हीं ने पराशर वन में नागहृद नामक एक बड़ा हृद बनवाया। इन्हीं के नाम के कारण लक्ष्मणावती ब्राह्मणी के संतान वा वह वन और तालाब सब नागदहा के नाम से प्रसिद्ध हैं और सिसौधियों को भी नागदहा कहते हैं। नागादित्य के भोगादित्य। इन्होंने कटिल्ला नदी पर पक्का घाट बनाया और ईंद्र सरोवर नामक तालाब का जीर्णोद्धार किया। पूर्वोक्त तड़ाग इन के नाम से अब तक भाड़ेला कहलाता है। इन के पुत्र देवादित्य, जिन्होंने देलवाड़ा ग्राम निर्माण किया और उन के आशादित्य जिन्होंने अहाड़पुर नगर बसा कर अपनी राजधानी बनाया। यह अहाड़पुर अब राणा लोगों का समाधिस्थल है। कहते हैं कि अहाड़पुर में जो गंगोद्वर तीर्थ है वह इसी राजा का निर्माण किया है और इन्हीं की भक्ति से उस में गंगा जी का आविर्भाव हुआ था। उस प्रांत में इस तीर्थ का बड़ा माहात्म्य है। यह तीर्थ उदयपुर से एक कोस पूर्व की ओर है। आशादित्य के पुत्र कालभोजादित्य और उन के पुत्र ग्रहादित्य (वा द्वितीय नागादित्य)। घासा गाँव इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। गुहा राजा से लेकर नागादित्य पर्यंत छ (टॉड साहब के मत से सात) राजाओं ने इसी पर्वत भूमि का राज्य किया, पर इन में से कोई अत्यन्त प्रसिद्ध न था, किंतु नागादित्य का पुत्र बाप्पा बड़ा प्रसिद्ध और नामी मनुष्य हुआ, वरंच उदयपुर के राजा का इसे मूलस्तंभ कहें तो अयोग्य न होगा। बाप्पा का

वर्णन उदयपुर से जो लिख कर आया है उसे हम यहाँ पर अविकल प्रकाश करते हैं। "ग्रहादित्य के वाष्प-नामक पुत्र हुआ। कहते हैं कि वाष्प नंदी गण के अवतार थे। यह कथा सविस्तर वायु पुराणांतर्गत एकलिंग-माहात्म्य में लिखी है। जब राजा ग्रहादित्य के एक शत्रु जंजावल नाम राजा ने घासा नगर को आन आवर्तन किया वहाँ राजा ग्रहादित्य बड़े प्रारक्रम के साथ मारे गए और घासा में जंजावाल का अधिकार हो गया तब आपत्ति-काल अवलोकन कर प्रमरवंशोद्भव ग्रहादित्य की राज्ञी ने अपने पुत्र वाष्प को शिशुता के भय से निज पुरोहित वशिष्ठ के गृह में गोपान कर पिहित रहना स्वीकार किया। बहुत समय व्यतीत होने पीछे वाष्प ने वशिष्ठ की गो-चारन का नियम लिया। लिखा है कि उस गो निकर में एक कामधेनु नाम धेनु थी, सो जब वाष्प गो-चारन को जाते वहाँ उक्त गाय एक वेणु-चय में प्रवेश करती। वहाँ एक स्फटिक का लिंग था उस पर अपने स्तनों से दुग्ध श्रवती। इस वास्ते गुरुपत्नी ने एक दिन वाष्प को उपालंभ दिया कि इस धेनु के स्तनों में दुग्ध नहीं सो कहाँ जाता है। द्वितीय दिवस वाष्प ने उस गाय को दृष्टि से पिहित न होने दिया। वह सुरभी तो शिव लिंग पर पूर्वोक्त दुग्ध श्रवने लगी अरु वाष्प ने इस चरित्र को देख साक्षी बनाने को हारीत नामा ऋषि, भृंगी गण का अवतार लिखा है वहाँ तपस्या करते हुये, को देख वाष्प ने निमंत्रण कर वह चरित्र दिखाया। जब भृंगी गण ने कहा कि हे वाष्प, इस श्रीमदेकलिंगेश्वर के दर्शनार्थ तो मैं यहाँ ऐसा कठिन तप करता था अरु तू भी इन्हीं का सेवक नंदीगण का अंशावतार है, तब वाष्प को भी स्वरूपज्ञान हुआ। फिर श्रीशंकर की स्तुति कर वर पाय हारीत ऋषि तो कैलास सिंधारे और वाष्प ने राज्य की अपेक्षा करी। इससे उन को शंकर ने वरदान दिया कि तेरा शरीर अभिन्न और महत्तर होगा और तुझे इस भद्रहरि के पर्वत में खनन करने से बहुत द्रव्य मिलेगा, जिससे सेना एकत्र कर अरु चित्तौड़ का राज्य अपने अधिकार में कीजियो और आज से तुम्हारे नाम पर रावल पद प्रख्यात रहेगा। यह लिंग प्रादुर्भाव विक्रमार्क गताब्द २९० वैशाख कृष्ण कृष्ण १ को हुआ था, सो उक्त महीने की इसी तिथि को अब भी प्रादुर्भावोत्सव प्रति वर्ष होता है। फिर रावल वाष्प ने इष्टाज्ञा ले द्रव्य निष्कासन कर महत्तर सेना बनाय चित्तौड़ के राजा मानमोरी को जय किया और उसी दुर्ग को अपनी राजधानी बनाया। इस महिपाल ने समस्त भारतवर्ष को विजय किया।"

बापा के विषय में ऐसे ही अनेक आश्चर्य उपाख्यान मिलते हैं। पृथ्वी पर जितने बड़े बड़े राजवंश हैं उन में ऐसे कोई भी न होंगे जो कवि जनों की विचित्र कल्पना से अलंकृत न हों, क्योंकि उस समय में उन के विषय में विविधि देवी कल्पनाओं का आरोप ही मानों उन के प्राचीनता और गुरुत्व का मूल था। रोम राज्य के स्थापनकर्ता रमूलस देवता के पुत्र थे और बाघिन का दूध पी कर पले थे। ग्रीस राज्य के हर्क्यूलिस और इंग्लैण्ड राज्य के आयर राजाओं के दैत्यों से युद्ध इत्यादि अनेक अमानुष कर्म प्रसिद्ध हैं। जगद्विजयी सिकंदर की दो सौग थीं। औफार के अफरासियाब ने जब देव सद्गुण अनेक कर्म किए, तो हिंदुस्तान के बड़े-बड़े की दो सौग थीं। औफार के अफरासियाब ने जब देव सद्गुण अनेक कर्म किए, तो हिंदुस्तान के बड़े-बड़े उदयपुर, नेपाल, सितारा, कोल्हापुर, इंजानगर, ट्रेंगरपुर, प्रतापगढ़ और अलीराजपुर इत्यादि राजवंशों के मूल पुरुष बापा के विषय में विचित्र बातें लिखी हों तो कौन आश्चर्य की बात है। बापा सैकड़ों राजकुल के आदि पुरुष, लोकांगीत, संप्रभ-भाजन और चिरजीवी, फिर उनके चरित्र अलौकिक घटनाओं से क्यों न संधित हों।

बापा वाल्यकाल से गोचारण करते थे, यह पूर्व में कह आए हैं। कहते हैं कि शरत्काल में गोचारण के हेतु वन में गमन करके बापा ने एक साथ छ सौ कुमारियों का पाणिग्रहण किया। उस देश में शरद ऋतु में बालक और बालिका गन बाहर जा कर भूला भूलते हैं। इसी रीति के अनुसार नागेंद्रनगर के सोलंखी राजा की क्वारी कन्या अपनी अनेक सखियों के साथ भूलने को आई थी, किंतु उन के पास डोरी नहीं थी कि वह भूला बाँधें। बापा को देखकर उन सबों ने इन से डोरी माँगी। इन्होंने कहा पहिले ब्याह खेल खेलो तो डोरी दें। बालिका लोगों के हिसाब समी खेल एक से थे, इस से इन लोगों ने पहिले ब्याह खेल ही खेलना आरंभ किया। राजकुमारी और बापा की गाँठ जोड़ कर गीत गाकर दोनों की सबने सात फेरी किया। कुछ दिन पीछे जब राजकुमारी की ब्याह ठहरा तब एक परपक्ष ज्योतिषी ने हाथ देखकर कहा कि इस का तो ब्याह हो चुका है। कुमारी का पिता यह सुन के बहुत ही घबड़ाया और इसकी खोज करने लगा। बापा के साथ गोपाल गण यह चरित्र जानते थे, परंतु बापा ने इसके प्रगट करने की उन से शपथ ली थी। यह शपथ भी विचित्र प्रकार की थी। एक गड्ढे के निकट बापा ने अपने सब सगियों को बैठाया और हाथ में एक एक छोटा पत्थर देकर कहा कि तुम

लोग शपथ करें कि "तुमारा भला बुरा कोई हाल किसी से न कहेंगे, तुमको छोड़ के न जायेंगे, और जहाँ जो कुछ सुनेंगे सब आ कर तुम से कहेंगे। यदि इस में कोई बात टालें, तो हमारे और पुरुषों के धर्म कर्म इस ढेले की भाँति धोबी के गढ़े में पड़े"। बापा के संगियों ने यही कह कह के ढेला गढ़े में फेंका और उस के अनुसार बापा का विवाह करना उन के संगियों ने प्रकाश न किया। किंतु छ सौ सरला कुमारियों पर जो बात विवृत है, वह कभी छिप सकती है? धीरे-धीरे यह विवाह खेल की कथा राजा के कान तक पहुँची। बापा को तीन वर्ष की अवस्था से भाँडीर दुर्ग^१ से लाकर ब्राह्मणों ने इसी नागेंद्र नगर^२ के समीप निविड़ पराशर कानन में त्रिकूट पर्वत के नीचे अपने घर में रक्खा था, इस से बापा उसी सोलंखी राजा के प्रजा थे। राजा ने यह समाचार सुन लिया, यह जान कर बापा नागेंद्र नगर छोड़ कर पर्वतों में छिप रहे और उसी समय से उन का सौभाग्य संचार होने लगा। किंतु इन छ सौ कुमारियों का फिर पाणिग्रहण न हुआ और बापा ही के गले पड़ीं। इसी कारण सैकड़ों राजा जमींदार सरदार सिपाही क्षत्री अपने को बापा^३ की संतान बतलाते हैं।

नागेंद्र नगर से चलने के समय में दो मील बाप्पा के सहगामी हुए थे। इनमें एक उन्डी प्रदेशवासी और इस का नाम वालव, अपर^४ अगुणापानोर नामक स्थान-निवासी, इस का नाम देव। इन दोनों मीलों का नाम बाप्पा के नाम के साथ चिरस्मरणीय हो रहा है। चित्तौर के सिंहासन पर अभिषिक्त होने के समय वालव ने स्वीय करागुलि कर्तन कर के सथो शोणित से बाप्पा के ललाट में राजतिलक प्रदान किया था। तदनुसार अद्यावधि पर्यंत बाप्पा वंशीय राजगण के सिंहासनारोहण के दिवस इन्हीं दो मीलों के संतान गण आकर अभिषेक-विधि संपादन करते हैं। अगुणा प्रदेश के मील स्वीय शोणित से राजललाट में तिलकार्पण और राजकीय बाहु धारण कर के सिंहासन में अधिष्ठित करते हैं। उन्डी प्रदेश का मील तावत् काल दंडायमान हो कर राजतिलक का उपकरण^५ द्रव्य का पात्र लिये रहता है। जो प्रथा पुरुषानुक्रम से इस प्रकार से प्रतिपालित होती चली आती है, उस का मूल किस प्रकार से उत्पन्न हुआ था यह अनुसंधान कर के ज्ञात होने से अंतःकरण कैसा विपुल आनंद रस से आप्तुत हो जाता है।

मेवार के राज्याभिषेक के समुदय प्राचीन नियम रक्षा करने में विपुल अर्थ का व्यय होता है इसी कारण उसका अनेक अंग परित्यक्त हो गया है। राणा जगतसिंह के पश्चात् और किसी का अभिषेक पूर्ववत् समारोह के साथ संपन्न नहीं हुआ। उन के अभिषेक में नब्बे लक्ष रुपया व्यय हुआ था। मेवार के अति समृद्ध समय में समग्र भारतवर्ष की आय ९० लक्ष रुपया थी।

नागेंद्र नगर से बाप्पा के जाने का कारण पहिले वर्णित हुआ है, वह संपूर्ण संगत है, परंतु भट्ट कविगण के ग्रंथ में उन के प्रस्थान का अन्य प्रकार का विवरण दृष्ट होता है। उन लोगों ने कविजन सुलभ कल्पना-प्रभाव से देव घटना का आरोप कर के उस की विलक्षण शोभा संपादन किया है। काल्पनिक विवरण से

१. बापा भाँडीर दुर्ग में मीलों के हाथ से पले थे। जिस मील ने बापा को पाला वह जदुवंशी था। उस प्रदेश में मीलों की दो जाति हैं। एक उजले अर्थात् शुद्ध मील वंश के दूसरे संकर मील। यह संकर मील राजपूतों से मिल कर उत्पन्न हुए हैं और पैवार, चौहान, रघुवंशी, जदुवंशी इत्यादि राजपूतों की जाति के नाम उन की जाति के भी होते हैं। यह भाँडीर दुर्ग मेवाड़ में जारोल नगर से आठ कोस दक्षिण-पश्चिम है।

२. नागेंद्र नगर का नाम नागदहा प्रसिद्ध है। यह उदयपुर से पाँच कोस उत्तर की ओर है। यहाँ से टॉड साहब ने अनेक प्राचीन लिपि संग्रह किये थे। इन सबों में एक पत्थर ईसवी नवम शतक का है जिस में राजाओं की उपाधि (गोहिलोट) लिखी है।

३. बाप्पा दुलार में लड़के को कहते हैं। एक प्राचीन ग्रंथ में बापा का नाम शिलाधीश लिखा है, किंतु प्रसिद्ध नाम इन का बापा ही है।

४. टॉड साहब कहते हैं, भारतवर्ष के मध्य अगुणापानोर प्रदेश अद्यावधि प्राकृतिक स्वाधीन अवस्था में है। अगुणा एक सहस्र ग्राम में विभक्त। तत्रस्थ मीलगण जातीय जनैक प्रधान के आधीन में निर्विघ्नता से वास करते हैं। इस प्रधान की उपाधि भी राणा है, पर किसी राज के साथ इन लोगों का विशेष कोई संबंध नहीं। विग्रह उपस्थित होने से अगुणा का राणा घनुःशर पाँच सहस्र जन एकत्र कर सकता है। अगुणापानोर मेवार राजा के दक्षिण-पश्चिम प्रांत में अवस्थित है।

५. राजटीका का प्रधान और प्राचीन उपकरण जल संयुक्त तंदुल चूर्ण राजस्थान की चलिता भाषा में उस राजटीका का नाम "शुशकी" काल क्रम से सुगंधि मिला हुआ चर्च तदुपकरण मध्य परिगणित हो गया है।

अलंकृत न हो ऐसा संप्राप्त वंश भारतवर्ष में अतीव दुर्लभ है, सुतरां हम भी भट्टगण वर्णित वाण्या के सौभाग्यसंचार का विवरण निम्न में प्रकटित करते हैं --

पहले कह आये हैं कि वाण्या ब्राह्मणगण का गोचारण करते थे ।^१ उनकी पालित एक गऊ के स्तन में ब्राह्मणगण ने उपर्युक्ति कियेबिना तक दुग्ध नहीं पाया, इस से संदेह किया कि वाण्या इस गऊ को दोहन कर के दुग्ध पान कर लेते हैं । वाण्या इस अपवाद से अति क्रुध हुए, किंतु गऊ के स्तन में स्वरूपतः दुग्ध न देख कर ब्राह्मणगण के संदेह को अमूलक न कह सके । पश्चात् स्वयं अनुसंधान कर के देखा कि यह गऊ प्रत्यह एक पर्वत गुहा में जाया करती थी और वहाँ से प्रत्यागमन करने से उस के स्तन पयः शुन्य हो जाते हैं । वाण्या ने गऊ का अनुसरण कर के एक दिन गुहा में प्रवेश किया और देखा कि उस वेतसवन में एक योगी ध्यानवस्था में उपविष्ट है । उन के सम्मुख में एक शिवलिंग है और उसी शिवलिंग के मस्तक पर पयस्विनी का घवल पयोधर प्रचुर परिमाण से परिवर्षित होता है ।

पूर्वकाल के योगी ऋषिगण भिन्न यह प्राकृतिक और पवित्र देवस्थली इति पूर्व में और किसी को दृष्टिगोचर नहीं हुई थी । वाण्या ने जिन योगी का ध्यान अवस्था में दर्शन किया था उन का नाम हारीत^२ जन समागम से जोगी का ध्यान भंग हुआ, वाण्या का परिचय जिज्ञासा करने से वाण्या ने आत्म वृत्तों तक अवगत थे सब निवेदन किया । योगी के आशीर्वाद ग्रहणांतर उस दिन गृह में प्रत्यागत भए अतः पर वाण्या प्रत्यह एक बार योगी के निकट गमन कर के उन का पादप्रक्षालन, पानार्थ पयः प्रदान और शिवप्रीति काम होकर धत्तुरा, अर्क प्रभृति शिव-प्रिय वन पुष्प समूह चयन किया करते । सेवा से तुष्ट होकर योगीवर ने उन को क्रम क्रम से नीति शास्त्र में शिक्षित और शैव मंत्र से दीक्षित किया और स्वकर से उन के कंठ में पवित्र यज्ञसूत्र समर्पण पूर्वक "एकलिंग को देवान्" यह उपाधि प्रदान किया ।

तत्पश्चात् वाण्या का यह क्रम था कि नित्यप्रति योगी का दर्शन करना और तत्कथित मंत्र का अनुष्ठान करना । काल पाकर भगवती पार्वती ने मंत्र-प्रभाव से वाण्या को दर्शन दिया और राज्यादिक के वरप्रदान पूर्वक दिव्य शस्त्र से वाण्या को सुसज्जित किया ।

कियत् कालानंतर ध्यान से योगी ने अपने परमधाम जाने का समय निकट जान कर वाण्या को तद्वृत्तों विहित कर बोले "कल तुम अति प्रत्यूष में उपस्थित होना ?" वाण्या निद्रा के वशीभूत होकर आदेशानुरूप प्रत्यूष में उपस्थित हो नहीं सके और विलंब कर के जब वहाँ गए तो देखा कि हारीत ने आकाशपथ में कियद दूर तक आरोहण किया है । उन का विद्युत-निभ विमान उज्ज्वलांग अप्सरागण वहन करती है । हारीत ने विमान नीति स्थगित कर के वाण्या को निकटस्थ होने का आदेश किया । उस विमान तक पहुँचने के उद्यम से वाण्या का कलेवर तत्क्षणात् २० हाथ दीर्घ हो गया । किंतु तथापि उन को गुरुदेव का रथ प्राप्त नहीं हुआ । तब योगी ने उन को मुख व्यादान करने को कहा । तदनुसार वाण्या ने वदन व्यादित किया । कथित है योगीश्वर ने उन के मुख विवर में उगाल परित्याग किया था । वाण्या ने उससे वृणा करके इस निष्ठोवन का पदतल में निक्षेप किया और इसी अपराध से उनको अमरत्वलाभ नहीं हुआ । केवल उनका शरीर अस्त्र शस्त्र से अमेध हो गया । हारीत अदृश्य हुए । वाण्या ने इस प्रकार सदेवानुग्रहीत होकर और अपने को चित्तौरे के मौरी राजवंश का दौहित्र जानकर और आलस्य में कालक्षेप करना युक्ति संगत अनुमान नहीं किया । अब गोचारण से उनको अत्यंत वृणा हुई और उन्होंने कतिपय सहचर समभिष्यवहार में लेकर अरण्यवास परित्याग करके लोकालय में गमन किया । मार्ग में नाहर-मगरा^३ नामक पर्वत में विख्यात

१. सूर्यवंशियों में ब्राह्मण की गोचारण करना प्रीचन प्रथा है । रघुवंश में दिलीप का इतिहास देखो ।

२. हारीत के वंशीय ब्राह्मण लोग अद्यावधि एकलिंग के पूजक पद में प्दतिष्ठित हैं । टॉड साहब के समकालीन पुरोहित हारीत से षष्ठीक षष्ठितम पुरुष थे उन के निकट भें राणा के मन्थवर्तिता से शिवपुराण प्राप्त हो कर टॉड साहब ने इंग्लैंड के रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (Royal Asiatic Society) समाज को प्रदान किया था ।

३. कथित है मुसलमानधर्मप्रचारक महम्मद ने स्वीय प्रिय दौहित्र हसन के बदन में ऐसाही निष्ठोवन परित्याग किया था । क्या आश्चर्य है जो मुसलमान लोगों ने यह कथा भारतवर्ष के इसी उपाख्यान से ली है ।

४. मेवार के राजधानी उदयपुर के पूर्व भाग में प्रवेश करने को रास्ते में कोस के अंदर नाहरमगरा पर्वत

‘गोरखनाथ’ ऋषि के साथ उनका साक्षात् हुआ था। गोरक्ष ने उन को और द्विधार तीक्ष्ण करवाले^१ प्रदान किया था। मंत्रपूत करके चलाने से उस तीक्ष्ण कृपाण के आघात से पर्वत भी विदीर्ण हो जाता था। बाप्पा ने उसी के प्रताप से चित्तौर का सिंहासन प्राप्त किया था। भट्ट कविगण के ग्रंथ में बाप्पा के नागेन्द्र नगर से प्रस्थान का यह विवरण प्राप्त होता है और इस विवरण में मेवार निवासी लोगों का प्रगाढ़ विश्वास भी है।

मालव के भूतपूर्व अधिपति प्रमारवंशीय तत्काल में भारत वर्ष के सार्वभौम थे। इस वंश की एक साखा का नाम मोरी। मोरी वंशियों का इस समय में चित्तौर पर अधिकार था, किंतु चित्तौर तत्काल प्रधान राजपाट था या नहीं यह निश्चित नहीं। विविध अट्टालिका और दुर्ग प्रभृति में इस वंश के राजत्व काल की खोज लिपि विद्यमान हैं, उससे ज्ञात होता है कि मोरी राजागण उस समय में विलक्षण पराक्रमशाली थे।

बाप्पा जब चित्तौर में उपस्थित हुए तत्काल में मोरीवंशीय मान राजा सिंहासनाारूढ़ थे। चित्तौर के राजवंश के साथ उन का संबंध था।^२ सुतरां विशेष समादर से राजा ने उन को सामंत पद में अभिषिक्त करके तदुचित भूमि-वृत्ति प्रदान किया। चित्तौर के सरदार गण सैनिक नियम भोग करते थे।^३ वे लोग समुचित सम्मानभाव से इति पूर्व में मान राजा के ऊपर विरक्त हो रहे थे। एक आगतुक बाप्पा के ऊपर उन के समधिक अनुराग संदर्शन से वे लोग और भी सातिशय इष्यान्वित हुए। इसी समय में चित्तौर राज विदेशीय शत्रु-कर्तृक आक्रांत होने से सर्वार लोग युद्धार्थ आहूत हुए, परंतु उन लोगों ने युद्धोद्योग नहीं किया। अधिकतु सैनिक नियमानुसार भुक्त भूमि का पट्टा प्रभृति दूर निक्षेप करके साहंकार वाक्य बोले कि राजा अपने प्रियतर सरदार को युद्धार्थ नियोग करें।

बाप्पा ने यह सुन कर उपस्थित युद्ध का भार ग्रहण करके चित्तौर से यात्रा किया। सरदार गण यद्यपि भूमि-वृत्ति-वंचित हुए थे तथापि लज्जावशतः बाप्पा के अनुगामी हुए। समर में विपक्ष गण ने पराजित होकर पलायन किया। बाप्पा ने सरदार गण के साथ चित्तौर में प्रत्यागत न होकर स्वीय पैत्रिक राजधानी गाजनी नगर में गमन किया। सलीम नामक जनैक असभ्य उस काल में गाजनी के सिंहासन पर था। बाप्पा ने सलीम को दूरीभूत करके वहाँ का सिंहासन जनैक चौर वंशीय राजपूत को दिया और आप पूर्वोक्त असंतुष्ट सरदार गण के साथ चित्तौर प्रत्यागमन किया। कथित है कि बाप्पा ने इस समय सलीम की कन्या का पाणिग्रहण किया था। जातरोष सरदार गण ने चित्तौर राजा के साथ वैरनिर्यातन में कृतसंकल्प होकर सब ने एक वाक्य होकर नगर परित्याग करके अन्यत्र गमन किया। राजा ने उन लोगों के साथ संधि करने के मानस से बारंबार दूत प्रेषण किया, किंतु किसी प्रकार सरदार गण का कोप शांत नहीं हुआ। उन लोगों ने कहा, “हम लोगों ने राजा का नमक खाया है, इस से एक वत्सर काल मात्र प्रतीक्षा करेंगे। अनंतर उनको व्यवहार के विहित प्रतिशोध देने में त्रुटि न करेंगे।” बाप्पा के वीरत्व और उदार प्रकृति के वशवद होकर सरदार गण ने उन को चित्तौर का अधिपति करने का अभिप्राय प्रकाश किया। बाप्पा ने सरदार गण के सहायता से चित्तौर नगर आक्रमण करके अधिकार कर लिया। भट्ट कविगण ने लिखा है “बाप्पा मोर राजा के निकट से चित्तौर ले कर स्वयं उस के ‘मोर’ (अर्थात् मुकुट स्वरूप) हुए।” चित्तौरप्राप्ति के पश्चात् सर्वसम्मति से बाप्पा ने ‘हिंदूसूर्य’ ‘राजगुरु’ और ‘चक्कवै’ यह तीन उपाधि धारण किया था। शेषोक्त उपाधि का अर्थ सार्वभौम।

अवस्थित है। इस पर्वत में राजा और तत्पारिवर्ग मृगया काल में उपवेशन करते थे। उन लोगों के बैठने के स्थान सब अद्यापि असंस्कृत और जीर्ण अवस्था में पतित हैं।

१. कथित है वह करवाल अद्यावधि विद्यमान है। राणा प्रति वत्सर में निरूपित दिवस में उस की पूजा करते हैं।

२. बाप्पा की माता प्रमारवंशीया थी। सुतरां वर्तमान प्रमार के सहित मामा भागिनेय का संबंध था।

३. सैनिक नियम (Feudal System) इस नियमानुसार से भुक्त भूमि के कर के परिवर्तन में प्रत्येक सरदार को अपने अपने वृत्ति भूमि के परिमाणानुरूप नियमित संख्या की सेना ले कर विग्रह समय में विपक्ष के साथ संग्राम करना होता है। प्राचीनकाल में वृहत् वृहत् राज्य भूमि संक्रांत यह नियम प्रचलित था।

वाष्पा के अनेक पुत्र हुए । उन में से किसी किसी ने स्वीय वंश के प्राचीन स्थान सौराष्ट्र राज्य में गमन किया । आईने अकबरी ग्रंथ में लिखा है कि अकबर सम्राट् के समय में इस वंश के पचास सहस्र पराक्रांत सरदार सौराष्ट्र देश में वास करते थे । वाष्पा के अपर पाँच पुत्र ने मारवाड़ देश में गमन किया था । गोहिल-वाल नामक स्थान में गोहिल वंशीय भी वाष्पा की संताने हैं । परंतु वे लोग अपने वंश का मूल विवरण आप भूल गए हैं । इति पूर्व में उन लोगों ने क्षीर प्रदेश में आ कर वास किया था । और अब पूर्व काल के पूर्व पुरुषगण के नाम वा वंश का अन्य कोई विवरण वह लोग नहीं बतला सकते । घटनाक्रम से उन लोगों ने बालमी ग्राम में वास भी किया, किंतु यह नहीं जाना कि यही स्थान उन लोगों की पैत्रिक भूमि है । यह लोग अब अरब गण के सहवास से वाणिज्य कर के जीविका निर्वाह करते हैं ।

वाष्पा के चरम काल का विवरण सविपद्ना आश्चर्य है । कथित है परिणत वयस में उन्होंने स्वरीय राजसंतान गण को परित्याग कर के खुरासान राज्य में गमन किया था और तद्देश अविकार करके म्लेच्छ वंशीय अनेक रमणी का पाणिग्रहण किया था । इन सब रमणी के गर्भ से बहुसंख्यक संतान समुत्पन्न हुए थे ।

सुना जाता है कि एक शत वर्ष की अवस्था में वाष्पा ने शरीर त्याग किया । देलवारा प्रदेश के सर्दार के निकट एक ग्रंथ है, उस में लिखा है कि वाष्पा ने इस्पहान, कंदहार, कश्मीर, ईराक, तूरान और कफरिस्तान प्रभृति देश अधिकार करके तत् समुदाय देशीया कामिनियों का पाणिपीडन किया था । उन म्लेच्छ महिला के गर्भ से उनको १३० पुत्र जन्मे थे । उन लोगों की साधारण उपाधि "नौशीरा पठान है" । उन सब पुत्रों में से प्रत्येक ने अपने अपने मातृनामानुयायी नाम से एक एक वंश विस्तार किया है । वाष्पा के हिंदू संतान की संख्या भी अल्प नहीं । हिंदू महिला गण के गर्भ में उन्होंने ९८ पुत्र उत्पादन किया था । उन लोगों की उपाधि "अग्नि उपासी सूर्यवंशी" है । उक्त ग्रंथ में लिखा है, वाष्पा ने चरम काल में संन्यास आश्रम अवलंब कर के सुमेरु शिखर मूल में अवस्थित किया था । उन का प्राण त्याग नहीं हुआ है, जीवदशा में ही इस स्थान में उन की समाधि क्रिया सम्पन्न हुई थी । अन्यान्य प्रवाद में कथित है कि वाष्पा की अंत्येष्टि क्रिया संबंध में उन के हिंदू और म्लेच्छ प्रजागण के मध्य तुमुल कलह उपस्थित हुआ है । हिंदू लोग उन का शरीर अग्निदग्ध और म्लेच्छ लोग मिट्टी में प्रोत्थित करने की कहते थे । उभय दल ने इस विषय का विवाद करते करते शव का आवरण खोल कर देखा शव नहीं है तत् परिवर्तन में कतिपय प्रफुल्ल शतदल विराजमान है । उन लोगों ने वह सब कमल ले कर हृद में रोपन कर दिया था । पारस्य देश के नैशेरवा की और काशी के प्रसिद्ध भगवद्भक्त कवीर की अंत्येष्टि क्रिया का प्रवाद भी ठीक ऐसा ही है ।

मेवाड़ के राजवंश के प्रधान पुरुष वाष्पा का यह संक्षेपक इतिहास प्रकटित किया । प्राचीन कालीन अन्यान्य राजपुरुष की भांति वाष्पा की कहानी भी सत्यमिथ्या से मिलित है । किंतु इस विचार को छोड़कर चित्तौर के सिंहासन में सूर्यवंशी राजगण ने दीर्घ कालावधि जो आधिपत्य किया था, उस आधिपत्य का वाष्पा से ही प्रारंभ है इस कारण गिहलोत गण का चित्तौर का राजस्व कितने दिन का है यह निर्द्धारण करने को वाष्पा का जन्मकाल का निरूपण करना अत्यंत आवश्यक है । बल्लमीपुर २०५ संवत् शिलादित्य के समय में विनष्ट हुआ था । शिलादित्य से वाष्पा दशम पुरुष, परंतु आश्चर्य का विषय यह है कि उदयपुर के राजभवन की वंशपत्रिका में वाष्पा का जन्म-काल १९१ संवत् में लिखा है ।

१. मारवाड़ प्रदेश के दक्षिण-पश्चिम प्रान्त में लूणी नदी के निकट क्षीर भूमि है ।

२. कोई कोई कहते हैं हिंदू ग्रंथानुसार पृथ्वी के उत्तर केंद्र का नाम सुमेरु । किसी किसी ग्रंथ में सुमेरु तद्गुण अर्थ में व्यवहृत हुआ है, परंतु पुराण केवर्णन से अनुमान होता है कि किसी विशेष पर्वत का नाम सुमेरु है । जम्बू द्वीप के मध्य इलायुत वर्ष में "कनकाचल सुमेरु विराजमान है, इसके दक्षिण में हिमवान, हंसकूट और निषध पर्वत, उत्तर नील और श्वेत पर्वत ।" चंद्रवंश का आदि पुरुष इला स्त्री रूप में जहाँ "आवृति" हुए थे, उस का नाम इलायुत वर्ष । "सुमेरु के दक्षिण प्रथमतः भारतवर्ष" । इस से अनुमान होता है कि मध्य एशिया का नाम इलायुतवर्ष । अनुसंधान करने से सुमेरु आविष्कृत हो कर पौराणिक भूगोल वृत्तांत का अधिकांश परिष्कृत हो सकता है । केवल नाम परिवर्तन होकर इतना गबड़ा हुआ । कोई कोई कहते हैं कि पेशावर और जलालाबाद के मध्यस्थल में प्रायः चौदह सौ हस्त उच्च मारकोह नाम अति अनुवर जो एक पर्वत है वही हिंदू पुराण का सुमेरु है ।

विशेषतः चित्तौर की एक खोदित लिपि से प्रकाश हुआ था कि ७७० संवत् में चित्तौर नगर मोरी वंशीय मान राजा के अधिकार में था। इसी मान राजा के समय में असभ्य गण ने चित्तौर नगर आक्रमण किया था। उन लोगों को पराभव कर के उस के पश्चात् वाप्पा ने पंचदश वर्ष की अवस्था में चित्तौर का सिंहासन प्राप्त किया था। इस कारण ईदुश विवरण से वाप्पा का जन्मकाल १९१ संवत् किसी प्रकार स्वीकृत नहीं हो सकता। परंतु उदयपुर के राजवंश के कुलाचार्य भट्ट गण पूर्वोक्त समुदय घटना स्वीकार कर के भी कहते हैं कि वाप्पा ने १९१ संवत् में जन्म ग्रहण किया था। टॉड साहब ने अनेक अनुसंधान कर के अवशेष में सौराष्ट्र देश में सोमनाथ के मंदिर की एक खोदित लिपि से जाना था कि वल्लभी संवत् नाम का एक और भी संवत् प्रचलित था। वह संवत् विक्रमादित्य के संवत् से ३७५ बरस के पश्चात् प्रारंभ हुआ था, २०५ वल्लभी संवत् में वल्लभी पुर विनष्ट हुआ था, सुतरां विक्रमादित्य के संवतानुसार उस के विनाश का काल ५८० हुआ। जिस प्रणाली से टॉड साहब ने चित्तौर के मान राजा का राजत्व, वल्लभीपुर का विनाश और कुलाचार्य गण लिखित वाप्पा के जन्मसमय का परस्पर समन्वय साधन किया है वह विलाक्षण बुद्धि व्यंजक है, परंतु जटिल और नीरस है इस कारण सविस्तार से इस स्थान में प्रगटित नहीं किया। उसकी मीमांसा का स्थूलतात्पर्य यह है कि वल्लभीपुर विनाश के १९० बरस पश्चात् विक्रमादित्य के ७६९ संवत् में वाप्पा ने जन्म ग्रहण किया था। कुलाचार्य गण ने भ्रमवशतः इस १९० संख्या को विक्रमादित्य का संवत् कर के लिखा है। तत् पश्चात् पंचदश वर्ष की अवस्था में वाप्पा चित्तौर राज्य में अभिषिक्त हुए थे। सुतरां ७८४ संवत् उनका चित्तौर प्राप्तकाल निरूपित हुआ। उस समय से सार्द एकादश वत्सरावधि वाप्पा के वंशीय साठ राजा गण ने क्रमान्वय से चित्तौर के सिंहासन पर उपवेशन किया है।

यद्यपि भट्ट गण के ग्रंथानुवायी वाप्पा के जन्मकाल की प्राचीनत्व रक्षा नहीं हुई, परंतु जो समय टॉड साहब ने निरूपित किया है। वह भी नितांत आधुनिक नहीं है। तदनुसार प्रकाश होता है कि वाप्पा फरासी राजा के करोली मिंजिया वंशीय राज गण के और मुसलमान साम्राज्य के वलीद खलीफा के समकालवर्ती थे। आइतपुर^१ नगर से मेवाड़वंशीय और एक खोदित लिपि संगृहीत हुई थी। वह लिपि १०२४ संवत् समय की है। तत्कालीन चित्तौर के सिंहासन में वाप्पा के वंशीय शक्ति कुमार राजा प्रतिष्ठित थे। उस लिपि में शक्ति कुमार के चतुर्दश पुरुष के मध्य एक जन शील नाम से अभिहित हुए हैं। राजभवन की वंशवली अपेक्षा तल्लिपि में यही एक मात्र अतिरिक्त नाम लक्षित होता है, तदिभन्न विषय में समता है। इंगलैंड के प्रसिद्ध कवि ह्यूम ने कहा है। "यद्यपि कविगण सूक्ष्म सत्य के तादृश अनुरागी नहीं, और यदि वह इतिवृत्त का ह्वांतर कर देते हैं, तो भी उन लोगों की अत्युक्ति के मूल में सत्य की सत्तालक्षित होती है"। हमें वर्णित विषय में ह्यूम की एतदुक्तिका सारत्व प्रतीयमान होता है। जन समागम सूनय स्वापद पूर्ण आइतपुर के कानन में जो सब नाम विलुप्त हो जाते और उन सब नामों के कभी किसी के कर्णगोचर होने की संभावना नहीं थी, किंतु भट्ट कविगण की वर्णना प्रभा में मेवाड़ राजवंश के प्राचीन काल के वह सब नाम चिरस्मरणीय हो रहे हैं।

इस १०२४ संवत् समय में वलीद खलीफा के सेनापति मोहम्मद बिन कासिम ने भारतवर्ष में आकर सिंधु देश जय किया था। इस के पहिले मोरी वंशीय मानराजा के समय जिस असभ्य राजा ने चित्तौर नगर आक्रमण किया था और वाप्पा कर्तृक जो पराजित हुआ था, वह अनुमान होता है कि यही बिन कासिम है।

वाप्पा और शक्ति कुमार के मध्यवर्ती नौ राजा ने चित्तौर में राजत्व किया था। उस समय से दो शत वर्ष के मध्य में नौ जन राजा का राजत्व असंभव नहीं। तदनुसार मेवाड़ के इतिवृत्त का निम्नोक्त चार प्रधान काल निरूपित हुआ। प्रथम, कनकसेन का काल १४४। द्वितीय, शिलादित्य और वल्लभीपुर विनाश का काल ५२४। तृतीय, वाप्पा के चित्तौर प्राप्ति का काल ख्रिष्टाब्द ७२८। चतुर्थ, शक्ति कुमार का राजत्व काल ख्रिष्टाब्द १०६८।

१. आइतपुर —सूर्यपुर। आदित्य शब्द का अपभ्रंश आइत। आइत शब्द का संकीर्ण रूप एत, यथा एतवार आदित्यवार।

तृतीय अध्याय

वाप्पा और समर सिंह के मध्यवर्ती राजगण, वाप्पा का वंश, अरब जाति के भारतवर्ष-आक्रमण का विवरण, मुसलमानगण से जिन सब राजाओं ने चित्तौर नगर रक्षा किया था उन लोगों की तालिका । ७८४ संवत् में वाप्पा को चित्तौर सिंहासन प्राप्त हुआ था । मेवाड़ के इतिवृत्त में तत्परवर्ती प्रधान समय समर सिंह का राजत्व काल — संवत् १२४९ । अतएव वाप्पा के ईरान राज्य-गमन के समय ८२० संवत् से समर सिंह के समय पर्यंत भट्टगण के ग्रंथानुसार मेवाड़ राज्य का वृत्तान्त संप्रति प्रकटित होता है । समर सिंह का राजत्व काल केवल मेवाड़ के इतिवृत्ति का प्रधान काल नहीं, स्वरूपतः समुद्रया हिंदू जाति के पक्ष में एक प्रधान समय है । उनके राजत्व समय में भारतवर्ष का राज-किरीट हिंदू के सिर से अपनीत होकर तातारी मुसलमान के सिर में आरोपित हुआ था । वाप्पा के समर सिंह के मध्य चार शताब्दी काल का व्यवधान है । इस काल के मध्य में चित्तौर के सिंहासन पर अष्टादश राजाओं ने उपवेशन किया था । यदिच उन लोगों का राजत्व का विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता, तो भी नितांत नीरव में तत्तावत् काल उल्लेखन करना उचित नहीं । उन सब राजा की लोहितवर्ण पताका सुवर्णमयी प्रतिभा से शोभमान चित्तौर के सौध शिखर पर उड्डीयमान थी और तन्मध्य में अनेक का नाम उन लोगों के राजस्य शैल शरीर में लोह लेखनी की लिपि योग से अद्यावधि विद्यमान है ।

इस के पहिले आइतपुर की जिस खोदित लिपि का उल्लेख किया है, उस से वाप्पा और समर सिंह के मध्यवर्ती शक्तिकुमार राजा का राजत्व काल संवत् १०२४ निरूपित हुआ । जैन ग्रंथ से ज्ञात होता है कि शक्तिकुमार के चार पुरुष पूर्ववर्ती उल्लत नाम राजा ९२२ संवत् में चित्तौर के सिंहासनाखंड हुए थे । ७६४ ख्रिष्टाब्द में वाप्पा ने ईरान देश में गमन किया । ११९३ ख्रिष्टाब्द में समर सिंह के समय में हिंदू राजत्व का अवसान हुआ । इस उभय घटना के मध्यवर्ती समय में मेवाड़ राज्य और एक बार मुसलमान गण से आक्रांत होने का विवरण राजवंश के ग्रंथ में प्राप्त होता है । तत्काल खुमान नामक एक राजा चित्तौर के सिंहासनस्थ थे । उनके राजत्व-काल में ८१२ से ८३६ ख्रिष्टाब्द के अंतर्गत किसी समय में मुसलमानों ने चित्तौरनगर पर आक्रमण किया था । खुमान रासा नामक ग्रंथ में तत् आक्रमण संक्रांत वृत्तांत सविस्तार निवृत्त हुआ । मेवाड़ राज्य के पथ-विरचित इतिहास ग्रंथ-समूह के मध्य खुमानरासा सवपिक्षा पुरातन है ।

टॉड साहब कहते हैं भारतवर्ष का एतत् समय का इतिवृत्त नितांत तमसाच्छन्न है । इस कारण खुमानरासा प्रभृति हिंदू ग्रंथ से तत् संबंध में जो कुछ आलोक लाभ हो सकता है वह परित्याग करना उचित नहीं । भारतवर्ष में एतत् काल में जो सब ऐतिहासिक विवरण सत्य कह कर प्रसिद्ध हैं सो हिंदू ग्रंथ में लिखित विवरण अपेक्षा अधिक असंगत वा परिच्छन्न नहीं । जो हो, तदुभय एकत्रित रहनों से भाविकालीन इतिवृत्तप्रणेता उस में से अनेक उपकरण लाभ कर सकेंगे । इस कारण (मुसलमान साम्राज्य के आरंभ से गजनगर राज्य संस्थापन पर्यंत) भारतवर्ष में अरब जाति के समागम का संक्षिप्त विवरण इस अध्याय में सन्निविष्ट किया जायगा । परंतु अरब समागम का सविस्थार-विवरण-विशिष्ट कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, यह बड़े सोच की बात है । अलमकीन नामक ग्रंथकार ने खलीफा गण के इतिवृत्त में भारतवर्ष का प्रायः उल्लेख नहीं किया है । अबुलफजल के ग्रंथ में अनेक विषय का सविशेष विवरण प्राप्त होता है और वह ग्रंथ भी विश्वास के योग्य है । फारिश्ता ग्रंथ में इस विषय का एक पृथक् अध्याय है, परंतु उस का अनुवाद यथोचित मत से निष्पन्न नहीं हुआ है^१ । अब पहिले वाप्पा के वंशीय राजगण का वृत्तांत विवरित किया जाता है, पश्चात् यथायोग्य स्थान में सुलमान गण का भारतवर्ष संक्रांत इतिवृत्त प्रकटित होगा ।

१. टॉड साहब ने फारिश्ता के अनुवाद में जो सब विषय परित्याग किया है तन्मध्य में अफगान जाति की उत्पत्ति का विवरण अतीव प्रयोजनीय है । मुसलमान गण के साथ हिजरी ६२ अब्द में जिस काल में अफगान जाति का प्रथम आगमन हुआ तब वे लोग सुलेमान पर्वत के निकटस्थ प्रदेश में बास करते थे । फारिश्ता ने जिस ग्रंथ के ऊपर निर्भर कर के अफगान का विवरण लिखा है वह यह है "अफगान लोग कायर जाति के लोग फिर उस उपाधिकारी राजगण के आधीन बास करते थे । उन लोगों में बहुतों ने मूसा की प्रतिष्ठित नूतन धर्म-व्यवस्था अवलंबन किया था । जिन लोगों ने पूर्व की पौतलिकता त्याग नहीं किया वे लोग हिंदुस्तान से भाग कर कोह सुलेमान के निकटवर्ती देश में बास

गिहलोट वंश की चतुर्विंशति शाखा । तन्मध्य अनेक शाखा वाप्पा से समुत्पन्न । चित्तौर-अधिकार के पश्चात् वाप्पा ने सौराष्ट्र देश में गमन कर बंदर द्वीप के यूसुफगुल^१ नाम राजा की कन्या से विवाह किया । बंदर द्वीप-निवासी व्यानमाता नामक एक देवी की उपासना करते थे । वाप्पा ने इस देवी की प्रतिमा और स्वीय बनिता सह चित्तौर में प्रत्यागमन किया था । गिहलोट वंशीय अद्यावधि व्यानमाता की उपासना करते हैं । वाप्पा ने इस देवी को जिस मंदिर में प्रतिष्ठित किया था, वह आज तक चित्तौर में विद्यमान है, तदिभन्न तत्रत्य अन्यान्य अनेक अष्टालिका वाप्पा कर्तृक विनिर्मित हैं, यह भी प्रवाद प्रचलित है । यूसुफगुल के कन्या के गर्भ में वाप्पा को एक पुत्र जन्मा था, उस का नाम अपराजित । द्वारका नगरी के निकटवर्ती कालवायो नगर के प्रमार वंशीय जनैक राजा की कन्या से भी वाप्पा ने विवाह किया था । उस रमणी के गर्भ में इस के पहिले वाप्पा को और एक आसिल नामक पुत्र जन्मा था, यदिच आसिल ज्येष्ठ तथापि अपराजित चित्तौर में जन्मे थे, इस कारण उन्होंने वहाँ वहाँ विपुल वंश विस्तार हुआ था । इस वंश की उपाधि आसिला गिहलोट है ।



करते थे । सिंधु देश से आगत बिन कासिम के साथ उन लोगों का समागम हुआ था । हिजरी १४३ अब्द में उन लोगों ने किरमान और पेशावर प्रदेश और तत् सीमावर्ती समुदय स्थान अधिकार किया था ।'' कोहस्थान का भूगोल वृत्तांत, रोहिला शब्द की व्युत्पत्ति और अन्यान्य प्रयोजनीय विषय टॉड साहब ने स्वीय अनुवाद में परित्याग किया है ।

१. कथित है, समुद्र में बंदर द्वीप और स्थल में चायाल नामक स्थान यूसुफगुल राजा के अधिकार में था । यूसुफगुल और वंशीय राजपूत, अनल परम का संस्थापनकर्ता रेणु राज अनुमान होता है । इसीयूसुफगुल का वृत्तांत कुमार-पालचरित नामक ग्रंथ में लिखा है । रेणुराज के पूर्व पुरुष बंदर द्वीप के अधिपति थे । बंदर द्वीप आज कल पोर्तुगीस जाति के अधिकार में है । इसका आधुनिक नाम डिओ है । यह नाम पोर्तुगीस जाति प्रदत्त है ।

२. आसिला के नामानुसार एक किला का आसिला नाम रक्खा था, यह वंशपत्रिका से ज्ञात होता है । संग्रामदेव नामक जनैक राजा के निकट से कुंभायत (कावे) नगर अधिकार करने के अभिलाष में आसिल के पुत्र विजयपाल समर में निहत हुए थे । विजय की इसी आकस्मिक मृत्यु घटना के पहिले तदगमस्थ पुत्र अकाल में भूमिष्ठ हुआ था, उस पुत्र का नाम सेतु । टॉड साहब कहते हैं अस्वाभाविक मृत्यु-प्राप्त व्यक्तिगण भूतयोनित प्राप्त होते हैं । हिंदूगण का यह संस्कार है और स्त्री भूत का हिंदुस्तानी नाम चुरइल, सेतु की माता के अस्वाभाविक मृत्यु वशतः सेतु का वंश कोचोराइल नाम से प्रसिद्ध हुआ । आसिल से द्वादशतम अधस्तन पुरुष बीजा गिरनार के राजा श्रृंगार देव के पाजे थे और मातुल के निकट से इन्होंने सालन स्थान प्राप्त किया था । सुराट का राजा जयसिंह देव के साथ समर में बीजा निहत हुए थे । फिरिश्ता ग्रंथ में जो देवी सालिमा वंश का उल्लेख है, अनुमान होता रहा है देवी और चोरइल, इन दो नाम से समता से तन्नाम की उत्पत्ति हुई है ।

खत्रियों की उत्पत्ति

(अनेक शास्त्रों से संगृहीत)

यह सन् १८७३ से १८७८ तक लिखा है, क्योंकि इसका कुछ भाग 'हरिश्चन्द्र सैगजीन' सन् १८७३ में और फिर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' सन् १८७८ की नवम्बर में छपा है। बतौर पुस्तक यह सन् १८८३ में खंग विलास प्रेस बांकीपुर से प्रकाशित हुई।

— सं.

खत्रियों की उत्पत्ति

मेरी बहुत दिन से इच्छा थी कि इस जाति का पुरावृत संग्रह करूँ परन्तु मुझे इस में कोई सहायक न मिला और जिन जिन मित्रों ने मुझ से पुरावृत देने कहा था वे इस विषय में असमर्थ हो गए और इसी से मेरा भी उत्साह बहुत दिनों तक मंद पड़ा रहा। परन्तु मेरे परम मित्र ने इस विषय में मुझे फिर उत्साहित किया और कुछ मुझे ऐसी सहायता भी मिल गई कि मैं फिर इस जाति के समाचार अन्वेषण में उत्सुक हुआ।

लाहौर निवासी श्रीपंडित राधाकृष्णजी ने इस विषय में मुझे बड़ी सहायता दी और वैसी ही कुछ सहायता श्री मुंशी बुधसिंह के मिहिर प्रकार और श्रीयुत शेरिंग साहब के जातिसंग्रह से मिली।

इस समय में प्रायः बहुत जाति के लोग अपनी उत्पत्ति दर्शन में प्रवृत्त हुए हैं जैसा दूसरे (जिन के वैश्यत्व में भी संदेह है क्योंकि उनके यहाँ फिर से कन्या का पति होता है) अपने को कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं, कायस्थ (जो शुद्धधर्म कमलाकर की रीति से संकर शुद्ध है) कहते हैं कि हम क्षत्रिय हैं और जाट लोगों में भी मेरे मित्र बेसवाँ के राजा श्री ठाकुर गिरिप्रसाद सिंह ने निश्चय किया है कि वे क्षत्रिय हैं तो इस दशा में इस आर्य जाति का पुरावृत होना भी अवश्य है, जो मुख्य आर्य जाति के निवास-स्थल पंजाब और पश्चिमोत्तर देश में फैली हुई है और जिस में सर्वदा से अच्छे लोग होते आए हैं। हमारे पूर्वोक्त आर्य शब्द के दो बर प्रयोग से कोई यह शक न करे कि देश के पक्षपात से मैंने यह आग्रह से आदर का शब्द रक्खा है क्योंकि आर्य जाति के निवास का मुख्य यही देश है और यहीं से आर्य जाति के लोग सारे भारतवर्ष में फैले हैं, यह अंगरेजी हिंदुस्तान के इतिहासों के पाठ से स्पष्ट हो जायगा। हमारे एक मित्र से इस बात का मुझ से बड़ा विवाद उपस्थित हुआ था। वह कहते थे कि पंजाब देश अपवित्र है क्योंकि महाभारत में कर्ण पर्व के आरंभ में शल्य राजा से कर्ण ने पंजाब देश की बड़ी निंदा की है और वहाँ के बहुत बुरे आचरण दिखाये हैं परन्तु वह निंदा निंदा की भाँति गृहीत नहीं होती क्योंकि पश्चिम में गुजराती या मध्य देश के वासियों की भाँति सोला पामरा का प्रचार नहीं है और न ऊपर से वे लोग स्वच्छ रहते हैं परन्तु यह मैं निस्संदेह कह सकता हूँ कि यहाँ के काले चित्तवाले मनुष्यों से उनका चित्त कहीं उजला है। इसके अतिरिक्त कर्ण शल्य का शत्रु है इससे शत्रु की हुई निंदा निंदा नहीं कहानी। हाँ, इस बात का हम पूर्ण रूप से प्रमाण देते हैं कि भारतवर्ष में पहिले पहिले आर्य लोग केवल पंजाब से लेकर प्रयाग

तक बसते थे । श्रीमान जॉन म्योर साहब ने लाहौर के चीफ पंडित पंडित राधाकृष्ण को जो पत्र लिखा है उसमें मुक्त कंठ से उन्होंने स्थापन किया है कि जहाँ तक मैंने प्राचीन वेदादिक पुस्तकें पढ़ीं, उनसे मुझे पूरा निश्चय है कि आर्य लोग पहले इन्हीं देशों में बसते थे । ऋग्वेद संहिता, दशम मंडल, ७५ सू. ५ ऋक् 'इमं' में गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोम' सचता परुण्या आसिक्तया मरुद्वृधे वितस्तयाजीकीये शूनुहयासुषोमया ।' ६ मंडल सू. ४५ ऋ. ३१ 'अधिवृषुः पर्णानि वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् उरुकक्षो न गांग्यः ।' १० मंड. सू. ७५ ऋ और ५ में ७२ सू. ऋ. १७ 'सप्तमे सप्तशाकिन एकमेकाशता ददुः यमुनायामश्रुतमुद्राधोगव्य' मृधे निराधो अशव्या मृधेः ।' मंड ३ सू ३३ ऋ. १ 'प्रपवतानामुशर्ता उपस्या दश्ये इव विषिते हासमाने गावेव शुभ्रे मातरारिहाणे विपाटं छुतुद्री पयसा ज्वते ।' ३ मंड २३ सू. ४ ऋ. 'नित्वादधेवरं आपृथिव्या इलायास्पदे सुदिनत्वो अन्हाम् दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्नो दिदीहि ।' ६ मंड ६१ सू. ऋ. २ 'इयंशुष्मेभिविसखाइवाराजत् सानुगिरीणां तविषेभिरुमिभिः पारावतघ्नीमवसे सुवृत्तिभिः सरस्वतीमाविवासेमधीतिभिः' इत्यादि श्रुतियों में गंगा, यमुना, व्यास, सतलज, सरस्वती इत्यादि नदियों की महिमा कही है और ऋग्वेद में पहले और दूसरे मंडल में कई ऋचाओं में सरस्वती की महिमा कही है । यास्क ने अपने निरुक्त में इन ऋचाओं के अर्थ में विश्वामित्र ऋषि के सतलज और व्यास के मुहाने पर यज्ञ करने का और इन नदियों के स्तुति करने का प्रकरण लिखा है । १ । और कीकट देश तथा अन्य प्रदेश और इत्यादि प्रदेश और गोमती इत्यादि नदियों का जो कहीं श्रुतियों में नाम आ गये हैं वे परस्पर विरुद्ध होने के कारण तादृश प्रमाणीमूत नहीं होते । इससे इस बात को हम पूर्ण रूप से प्रमाणित कर चुके कि आर्य लोगों के निवास का स्थान पंजाब से लेकर यमुना के किनारे तक के देश है तो इससे वहाँ के प्राचीन निवासियों को यदि हम परम आर्य कहें तो क्या हानि है ।

अब इस बात का भगड़ा रहा कि ये कौन वर्ण हैं ? तो हम साधारण रूप से कहते हैं कि ये क्षत्री हैं । क्षत्री से खत्री कैसे हुए इस में बड़ा विवाद है । बहुत लोगों का तो यह सिद्धांत है कि पंजाब के लोग क्ष उच्चारण नहीं कर सकते, इससे ये क्षत्री से खत्री कहलाये । कोई कहते हैं कि जब परशुराम जी ने निक्षत्र किया तब पंजाब देश में कई बालक खत्री कहकर बचा लिये गये थे । वे ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रों के घरों में पले थे और अब उन्हीं से खत्री, अरोड़े, माटिये इत्यादि अनेक उपजाति बन गई और उनके आचरण भी अपने अपने पालकों के अनुसार अलग-अलग हो गये । तीसरे कहते हैं कि क्षत्री और खत्री से भेद राजा चंद्रगुप्त के समय से हुआ क्योंकि चंद्रगुप्त शूद्र के पेट से था और जब उसने चाणक्य ब्राह्मण के बल से नंदों को मारा और भारतवर्ष का राजा हुआ तो सब क्षत्रियों से उसने रोटी और बेटी का व्यवहार खोलना चाहा तब से बहुत से क्षत्री अलग होकर हिमालय की नीची श्रेणी में जा छिपे और जब उसने क्षत्रियों का संहार करना आरंभ किया तब से ये सब क्षत्री खत्रियों के नाम से बनिये बच कर बच गये । कोई कहते हैं कि ये लोग हैं तो क्षत्री पर कलजुग के प्रभाव से वैश्य हो गये हैं क्योंकि कलजुग के प्रकरण में लिखा है कि "वैश्य वृत्त्यातु राजानः" । कोई ऐसा भी निश्चय करते हैं कि किसी समय सारे भारतवर्ष में जैनों का मत फैल गया था । तब सब वर्ण के लोग जैन हो गये थे, विशेष करके वैश्य और क्षत्री । उन में से जो क्षत्री आवू के पहाड़ पर ब्राह्मणों ने संस्कार देकर बनाये वे तो क्षत्री हुए और उन लोगों से सैकड़ों वर्ष पीछे जो क्षत्री जैन धर्म छोड़ कर हिंदू हुए वे खत्री कहाये और क्षत्रियों के पंक्ति से न मिले । गुरु गोविंद सिंह ने अपने ग्रंथ नाटक के दूसरे तीसरे चौथे पाँचवें अध्याय में लिखा है कि "सब खत्री मात्र सूर्यवंशी हैं । रामजी के दो पुत्र लव और कुश ने मद्र देश के राजा की कन्या से विवाह किया और उसी प्रांत में दोनों ने दो नगर बसाये । कुश ने कसूर, लव ने लाहौर । उन दोनों के वंश में कई सौ वर्ष लोग राज्य करते चले आये । एक समय में कुशवंश में कालकेतु नामा राजा हुआ और लव वंश में कालराय । इन दो राजाओं के समय में दोनों वंशों से आपुस में बड़ा विरोध उत्पन्न हुआ । कालकेतु राजा बलवान था, उसने सब लववंशी क्षत्रियों को उस प्रांत से निकाल दिया । राजा कालराय भागकर सनौद देश में गया और वहाँ के राजा की बेटी से विवाह किया और उससे जो पुत्र हुआ उस का नाम सोदीराय रखवा । उस सोदीराय के वंश के क्षत्री सोदी कहाये । कुछ काल बीते जब सोदीराय ने कुश वंशवालों को जीता तो कुश वंश के भाग कर काशी में चले आये और वे लोग वहाँ रह कर वेद पढ़ने लगे और

१. मनु ने भी इन्हीं को पुण्य देश कहा है "सरस्वती दृषद्वत्यादेवनद्योर्दन्तर" "कृत्क्षेत्रं च मतस्याश्च पांचालाः शूरसेनकाः" ।

उन में प्रायः बड़े बड़े पंडित हुए । बहुत दिनों पीछे जब सांढियों ने सुना कि हमारे दूसरे भाई लोग काशी में वेद पढ़कर पंडित हुए हैं तो उनको काशी से बुलाया और वेद सुनकर अपना सब राज्य उन लोगों को दे दिया, जिनकी वेद पढ़ने से वेदी संज्ञा हो गई थी । काल के बल से इन दोनों वंश के राज्य नष्ट हो गए और वेदियों के पास केवल बीस गाँव रह गये और उन्हीं वेदियों के वंश में संवत् १५२६ में कालू चोणे के घर बाबा नानक का जन्म हुआ और सांढियों के वंश में गुरु गोविंद सिंह हुए । गुरु नानक साहब अपने ग्रंथ साहब में जहाँ चारों वर्णों का नाम लिखते हैं वहाँ ब्राह्मण, खत्री, वैश्य, शूद्र लिखते हैं ।

कोई कहते हैं कि बाबर के पहिले की किसी पुस्तक में खत्री का शब्द नहीं मिलता । इससे निश्चय होता है कि बाबर ने जिन क्षत्रियों को अपने सेना में नौकर रक्खा था उनका नाम खत्री रक्खा ।

परंतु कोई कहते हैं कि पंजाब में नाग भाषा का बहुत प्रचार था और अब भी पंजाबी भाषा में उनके बहुत शब्द मिलते हैं और क्षत्री खत्री की नाग भाषा है ।

ऊपर के लेख से हम सिद्ध कर चुके कि खत्री क्षत्रिय हैं और उस में लोगों के जो अनेक विकल्प है, वे भी लिखे गए परंतु हम कोई विकल्प नहीं करते क्योंकि नीचे लिखे हुए वाक्य पुराणोपपुराण सारसंग्रह में दशावतार प्रकरण में परशुराम जी के दिग्विजय में मिले हैं : जिन से इनका क्षत्रिय होना स्पष्ट है, यथा —

यदा	श्रीमत्परशुरामो	गतो	दिग्विजयेच्छया ।
सकलाभूस्तदाजाता	पूर्ण	मोदान्विता	यतः ॥१४॥
दुष्टसंहारकृदीमान्	दुष्टभाराकुला	रसा ।	
पर्यटन् सकलां	पृथ्वां	जयन्	बाहुबलेन च ॥२५॥
गतः	पंचनदान्देशान्यद्वाजा	क्रूरसंगरं ।	
कृतं	परशुरामेण	महाविक्रमशालिना	॥२६॥
एकाकिनापि	तद्राजः	सैन्यं	सर्वं विनाशितं ।
कतिचिद्बुधुवीर्या	हतात्तु	बहवो	भवन् ॥२७॥
अमृड मेदवनी	भूमिः	शुशुभे	रणमंडले । ॥
धुनी	लोहितपंकादया	बभूवातिभयंकरा	॥२८॥
धूलिः	सैन्यस्य	यस्यां	सा मग्ना पंकीवभूव ह ।
जन्यभूमिगता	यत्र	वीराणां	मूलमस्तकाः ॥२९॥
कमलाभां	वहन्ती	या	कल्लोलैरावृताप्यभूत् ।
राजानं	सनिहत्यासौ	रामस्तत्र	तरोः पदे ॥३०॥
श्रान्तो तिष्ठत्	क्षणं	यावद्विपुनार्यः	समागताः ।
अन्वेययन्त्यः	संग्रामभूम्यां	स्वीयान्	पतीन् मृतान् ॥३१॥
आक्रोशं त्योभिधेयेन			पुत्रवृत्तगृहादिना ।
विलपन्	योमुहुर्दुःखादातयन्त्य	उरःस्थलं	॥३२॥
लक्ष्मीविलास	नामैको	वैश्यस्तावत्समागतः ।	
करुणापूर्ण	हृदयो	दृष्ट्वा	तासां हि दुर्गतिम् ॥३३॥
पत्न्युर्नाशं	महद्दुःखं	ज्ञात्वा	ताः शीलशालिनीः ।
दानशीलण्डो धनाढ्यश्च	सदबुध्या	ताः	सुदुःखिताः ॥३४॥
बालाननाथान्	मत्वा	ऽसौवनयत्	स्वगृहं प्रति ।
सान्त्वयित्वा	विवेकेन	परेण	परमाः सतीः ॥३५॥
लालानं	पालनं	तेषां	पोषणं तत्स्त्रियामुत् ।
बालानां	क्षत्रवंश्यानामकरात्,	स्नेहभावतः	॥३६॥
एवमेव	ततोरंगभूम्याः	काश्चित्	स्त्रियो हताः ।
दुष्टैः	काश्चिद्विद्विनिमैश्च	दयालुभिरुपाहृताः	॥३७॥
लक्ष्मीविलास	संज्ञेन	विशा	ते बालका यदा ।
व्रतबंधार्हतां	प्राप्ताः	समकार्युपनायनं	॥३८॥

स्वधर्माचरणे	चैवं	विशा	ते	सुनियोषिताः ।
एवमेवापरे	बालाः	स्त्रियो	येन	सुरक्षिताः ॥३९॥
पोषिताः	स्वीयदत्तेन	अन्नेनैव	तथैव	ते ।
मत्वा	तमेव	चाचारं	ववर्तुस्तेन	सन्मुदा ॥४०॥
इमे	लक्ष्मीविलासेन	रक्षिताः	क्षत्रवंशजाः ।	
शुद्धाः	सदाचारयुक्ता	बभूवुः	दुर्मग्यशालिनः ॥४१॥	
येषां	कलियुगेपीमे	चत्वारो	वंशजा	स्मृताः ।
अग्निः	सोमश्च	सूर्यश्च	नाग	एते चतुर्विधाः ॥४२॥
अद्यापि	भूमौ	वर्तते	चतुस्सन्तानवद्वकाः ।	
दानशूराः	सदाचारा	भाग्यवन्तः	सुविक्रमाः ॥४३॥	

अर्थ — जब परशुराम जी दिग्विजय करने निकले तब सब पृथ्वी आनंदपूर्ण हो गई क्योंकि दुष्टों के भार से पृथ्वी व्याकुल हुई थी और इन्होंने दुष्टों का संहार किया । सब पृथ्वी पर घूमते और बाहुबल से जय करते हुए पंचनद देशों में गए और वहाँ के राजा से बड़ा संग्राम किया । यद्यपि भगवान् अकेले थे तथापि वहाँ के राजा की सब सेना मार डाली — इत्यादि ।

उन हत वीरों की स्त्रियाँ और बालकों को लक्ष्मीविलास नामक वैश्व ले गया और धर्मपूर्वक रक्षण किया और उनके पुत्रों का लालन पालन और यज्ञोपवीतादि संस्कार किया । इसी भाँति उन मृत वीरों की स्त्रियाँ और बालक ब्राह्मण वा शूद्रादि जिन वर्णों के घर गए उनके ऐसे ही आचरण हुए और लक्ष्मीविलास का पालित क्षत्रियों का समूह जो अग्नि, सूर्य, चंद्रमा और नागवंश का था, क्षत्रियसंस्कार पाकर भी वैश्यधर्म में निष्ठ हुआ इत्यादि ।

इनका विशेष वर्णन भविष्य पुराण के पूर्वार्द्ध में जो लिखा है उस से और भी निश्चय होता है कि सब क्षत्रिय हैं । इन श्लोकों की संस्कृत ऐसी ही सहज है कि अर्थ लिखने की आवश्यकता नहीं । सिद्धांत यह है कि वैश्यों की वा दूसरी वृत्ति करनेवाले क्षत्रिय जो पंजाब देश में हैं वे क्षत्रिय ही हैं किंतु परशुराम जी के समय से वहाँ के क्षत्रियों का युद्ध संस्कार छूट गया है और ऐसे लोगों की एक पृथक जाति, खत्री, रोड़े, भाटिये इत्यादि हो गई है । इस विषय के दोनों अध्याय यहाँ प्रकाशित किए जाते हैं ।

स्तुतउवाच

एवं	बहुविधे	देशे	स	हत्वा	क्षत्रियर्षभान् ।
गतो	पञ्चनदे	देवो			क्षत्रियान्वयसूदनः ॥१॥
तत्र	प्राप्तान्	महाशूरान्	क्षत्रियान्		रणदुर्मदान् ।
युयुधेऽ	तिबलो	रामः			साक्षान्नारायणांशवः ॥२॥
जनन्या	जनितो	लोके	कः	शूरोयस्तु	पार्थिवान् ।
पाञ्चालान्	जयतो	युद्धे	विना	नारायणं	स्वयं ॥३॥
सर्वान्	हत्वा	महाराजान्	क्षत्रियान्		सिद्धिजोत्तमः ।
रुरुधे	पंकजवने	यथा	मत्त		द्विपाधिपः ॥४॥
एवं	हत्वा	रणे	शूरान्	तरुणान्	रणदुर्मदान् ।
पवृत्तो	वृद्धबालेषु	हन्तुं			क्रोधाकुलेक्षणः ॥५॥
हाहाकारो	महानालीतत्र	क्षत्रिय			पर्यवे ।
नाय्यो	वृद्धाश्च	बालाश्च			मुमुहुर्भयविह्वलाः ॥६॥
हतेषु	तेषु	शूरेषु	बालवृद्धेषु	च	क्रमात् ।
अनाथाश्चाभयन्	सर्वाः	क्षत्रियाण्यो			हतान्वयाः ॥७॥

तत्र कश्चिन् महावैश्यः सुधर्मा नामकः प्रभुः ।
आसीन् नागान्वये जातः क्षत्रियाणां प्रियकरः ॥८॥

हतेषु सर्वबालेषु व्याकुलाश्रुकुलेक्षणः ।
चतुःपञ्चावशेषेषूपायंसमकरोत्तदा ॥९॥
नीत्वा स बालान् तान् सर्वान् स्वप्रियायै प्रदत्तवान् ।
तस्य भार्या महाप्राज्ञी सुशीला नाम नामतः ॥
वात्सल्यमकरोत्तेषु यथा स्वोदरजे भृशं ॥१०॥
यदा निवर्तितो देवो निःक्षत्रीकृत्य पार्थिवान् ।
ऊचुस्तस्मै समागत्य तद्वृत्तं पिशुनास्तदा ॥११॥
अस्ति कश्चिन् महावैश्यो क्षत्रियाणां प्रियकरः ।
रक्षितास्तेन बालास्ते क्षत्रियाणां नरोत्तम ॥१२॥
तच्छ्रुत्वा त्वा स द्विजो धावन्नुश्वसन्नुरगो यथा ।
उद्यम्य परशुं तत्र गतः क्रौधाकुलेन्द्रियः ॥१३॥
तं दृष्ट्वा स महान् वैश्यः प्राप्तं कालानलोपमं ।
तुर्निवारं मनुष्येभ्यो भक्त्या बुध्याप्यपूजयत् ॥१४॥
सारस्वतास्तु ये विप्राः क्षत्रियाणां पुरोहिताः ।
तेपि तत्रागमन् सर्वे यजमानहितेप्सवः ॥१५॥
ऊचुः प्राञ्जलयो विप्राः प्रणामनतकन्धराः ।
वैश्यः सुधर्मा तत्पत्नी भार्गव भर्गविक्रम ॥१६॥

सर्वे ऊचुः

नमो नमस्ते श्रितविग्रहाय । नमो नमस्ते हृत विग्रहाय ।
नमो नमस्ते कृत विग्रहाय । नमो नमस्ते धृत प्रग्रहाय ॥६॥ १६॥
नमस्ते पूर्णकामाय दुष्ट वामाय ते नमः ।
नमो रामाभिरामाय रूपश्यामाय ते नमः ॥१८॥
क्षेत्रद्रुमकुठाराय चाक्रूपाय ते नमः ।
नमस्ते s कृतदाराय चाक्रूपाय ते नमः ॥१९॥
नमो नमस्ते सर्वायार्चितशर्वाय ते नमः ।
हृतराजन्य गर्वाया पूर्वस्त्वर्वाय ते नमः ॥२०॥
मीन कच्छप वाराह नृसिंह वटु रूपिणे ।
कृत लीलावताराय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥२१॥
रेणुका-गर्भरत्नाय व्यवनानन्ददायिने ।
भार्गवान्वय जाताय नमो रामाय विष्णवे ॥२२॥
नमः परशुहस्ताय खड्गिणे चक्रिणे नमः ।
गदिने शार्ङ्गिणे नित्यं शौरिणे ते नमोनमः ॥२३॥
नमस्ते s भुदभुतविप्राय धराभारापहारिणे ।
शरणगतपालाय श्रीरामाय नमोनमः ॥२४॥

इति श्री भविष्यपुराणे पूर्वखण्डे वर्णाचारनिर्णये चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

स्तुतवाच—इत्थं स्तुतः स भगवान् उवाच श्लाक्षणा गिरा ।
वरं व्रणीध्वं भद्रं वो मा भैट विगतज्वराः ॥१॥

सारस्वता- ऊतुः-- नाशिता भवता देव राजन्या भूरिविक्रमाः
सन्ति तेषां न्यासिन्धो बाला दीनास्त्रियस्तथा ॥२॥
तेभ्योऽभयं वयं त्वतो देव वाञ्छामहे सदा ।

सुधम्मविवाच- मया संरक्षिता ये तु मामकीं वृत्तिमाश्रिताः ॥३॥

त्यक्तक्षत्रिय धर्मास्ते सम्भविष्यन्ति बालकाः ।
वैश्यस्तु भवताऽवध्यः सदा त्वत्पादसेवकः ।
अनुकृत्यो दयासिन्धो दीनोऽहं बन्धु वञ्चितः ॥४॥

परशुरामविवाच- अत्राऽगताहं नाशार्थं तेषामेव न संशयः ।

किन्तु तत् स्तवनात्प्रीतो विरक्तोहं वधात्प्रति ॥५॥
मत् प्रसादाभवं विष्यन्ति बाला विटधर्ममाश्रिताः ।
लक्ष्मीवन्तः प्रजावन्तो नानाशास्त्रविचक्षणाः ॥६॥
पण्यवार्थापु चतुरा राजसेवाविधायिनः ।
पुरुषाश्च स्त्रियः सर्व्वे सुभगाः कृत्वा माश्रिताः ॥७॥
यूयं सारस्वता विप्राः प्रतिगृह्णन्तु बालकान् ।
कुर्वन्तु चापि सर्व्वेषां संस्कारं क्षत्रियोचितम् ॥८॥

सूतविवाच- इति संस्थाप्य भगवान् प्रजावीजं प्रजापतिः ।

जगाम तपसे शैलं गीतमाचलमुत्तमं ॥९॥
ततः प्रभृति ते सर्व्वे क्षत्रिया द्विजपालिताः ।
त्यक्तक्षत्रियधर्माणो वणिग्वृत्तं समाश्रिताः ॥१०॥
ते सूर्य्यं शशिं वंशीया अग्निवंशसमुद्भवाः ।
उत्तमाः क्षत्रियाः ख्याताः इतरे मध्यमाः स्मृताः ॥११॥
भोष्ठ भिल्ल निवारादि महिषावत क्रोडकाः ।
दैत्यवंश समुत्पन्नाः क्षत्रियास्तेपि विश्रुताः ॥१२॥
टिकमेला इति ख्याता प्रेतवंशोभद्वाः श्रुताः ।
उन्नाडवंशसंभूतास्तेषु कायस्थ पूर्वजाः ॥१३॥
विसेना वर वाराश्च अवखास्तवखासन्तथा ।
अंगाश्चामरं गौडद्या सूतवंशसमुद्भवाः ॥१४॥
कंकान कनवाराश्च मोरभंजास्तु वैश्यकाः ।
संगराख्या सोनगृहावत्सा ब्राह्मणवंशजाः ॥१५॥
भरां भद्रा भार्गवाश्च मुण्डिता नाकुलन्धराः ।
एवमन्येपि बहुशो क्षत्रियत्वं समाश्रिताः ॥१६॥
नागवंशोभद्वा दिव्याः क्षत्रियास्समुदाहृताः ।
ब्रह्मवंशोभद्वाश्चान्ये तथा रुद्रवंशसम्भवाः ॥१७॥
एतेषु भविता ह्येको महात्मा विगतज्वराः ।
उदासीनः कृत्वा गुरुः कलौ सादे चतुर्गति ॥१८॥
इत्येतत् कथितं तात क्षत्रियाणां विनाशनं ।
पालनं चापि मद्ग्रेषु किमन्यच्छातुमिच्छासि ॥१९॥

इति पूर्व्वभविष्ये एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

श्रीयुत भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र महाशयेषु सविनय निवेदनम्

खत्री के उत्पत्ति विषय में मेरे मित्र पंडित चण्डीप्रसाद जी वर्णन करते हैं कि जब परशुराम श्री वंशधर जी के समय में क्षत्रियों को मारते थे तो वे सब खत्री कहि के बचि गये ! तब से वे खत्री कहलाए अद्यावधि उसी नाम से प्रकट हैं । कोई कहते हैं कि (ख) आकाशनिवासी (त्रि) तीन ऋषियों के सन्तान हैं अतएव खत्री शब्द से

प्रसिद्ध है। और जो परशुराम जी को शिरोनमन पूर्वक प्रणाम करि बड़ाजलि हो गए तब तो परशुराम जी ने प्रसन्न होकर कहा, धन्य हो तुम निर्भय रहो क्योंकि तुम अरुढ़ हो अर्थात् क्रोध बिना हो सोई अब अरोड़ा कहलाते हैं। और मेरे मित्र पंडित गोकुलचंद्र जी के पास एक पुस्तक थी। तिस में लिखा है कि लव जी के वंश में एक राजा थे तिन्ह के दो स्त्री थीं। जो कि छोटी थी वह राजा को परम प्यारी थी जो दूसरी बड़ी थी उस में कुछ रुचि कम थी एक एक पुत्र दोनों में प्रकट भये। छोटी स्त्री ने स्वामी से कहा कि राज्य मेरे पुत्र को देवो। राजा ने न माना। अंत में मंत्री को भी उस राणी ने स्वयंशर्वाति करि के कहवाया कि छोटे को राज्य देना चाहिए। मंत्रियों ने कहा कि राजन् ! एक को समस्त धन दे दो। एक को केवल राज्य दे दो। सुनि के राजा ने बड़े पुत्र को समस्त धन दे दिया। छोटे पुत्र को स्वकीय राज्य दे दिया। छोटे पुत्र ने राज्य पाय के बड़े भ्राता से कहा कि तुम मेरे देश तें निकल जाओ, तब तो वह तिलाचार होकर मूलनाग नगर अर्थात् मुलतान के पास में चला आया। और उस के और और जातियों के मित्र जो थे वे भी चलि आये तब तो उसने कहा कि हम सब एक जाति कहलावें और एक अपने नाम पर ग्राम बसावें जहाँ हमारी जाति सब सुखपूर्वक निवास करें। इस सलाह को सबने माना तब उस राजकुमार ने सब को कहा कि हम सब रुढ़ (कोप) कभी करें नहीं आपस में अतएव अरुढ़ हमारा नाम हुआ। सब ने प्रसन्न होकर माना। परंच जो पुरुष आये थे उनके नाम से अरुढ़ में भी कई जाति हो गईं सो सब इस पंचनद देश में विस्तृत हैं। उसी समय उस राजकुमार ने उक्त नगर के निकट में एक अरुढ़ कोट नाम ग्राम बनवाय कर निवास किया जिस को आज कल आरोड़कोट कहते हैं। वह ग्राम अरोड़ों का पूर्व निवास भूमि है। आज कल भी कई एक पुरुष उसी स्थान में जाय के विवाहादि करि आते हैं। जिन्हों को इस देश में कन्या नहीं मिलती है। अब देश प्रभाव से उस देश के लोक आचार से हीन होते हैं दूसरे गदहा को अनेक ही पुरुष रखते हैं उस पर निःसंक सवार भी हो जाते हैं एतएव नीच गिने जाते हैं नहीं तो जाति में अच्छे हैं। जो लघु राजकुमार क्षत्री या उस को इस पांचाल देश के लोगों ने खत्री शब्द से प्रसिद्ध किया क्योंकि जो श्री गुरु अंगद जी ने गुरुमुखी अक्षर बनाये उसमें केवल मूर्दन्य खकार है और (क्ष) अक्षर नहीं है एतएव देश बोली से सब खत्री कहलाने लगे। सोई रीति अद्यावधि चली आती है। इत्यादि प्रकार से प्रसिद्ध है। जो आकाश निवासी ३ ऋषि हैं उनका नाम १ आकर्ष २ पद्माक्ष्य ३ खर्विश इत्यादि सुदर्शन संहिता में लिखा है। खर्विश की सन्तान खत्री कहलाते हैं। यह आख्यायिका उक्त संहिता के ब्रह्मश्रु अध्याय में विदित है। इत्यलम्बहुना।

(शालिग्रामदास)

आज कल बहुधा लोग श्रेष्ठ वर्ण बनने के अधिकारी हुए हैं उनमें एक खत्री भी है। ये लोग अपने को क्षत्री कहते हैं इस बात का मैं भी मानता हूँ कि इनके आद्य पुरुष क्षत्री थे। क्योंकि जो जो कहानियाँ इस विषय में सुनी गई हैं उन से स्पष्ट मालूम होता है कि ये लोग क्षत्री वंश में हैं।

लोग कहते हैं कि खत्री हयहो वंश के वंश में हैं। सहस्राब्दों से और परशुराम से जब युद्ध ठनी तो परशुराम ने उस वंश के क्षत्रियों को मार डाला और यह प्रतिज्ञा किया कि इस वंश के क्षत्री को निर्वास कर डालेंगे। यह प्रतिज्ञा सुनकर उस वंश के दुष्ण कलकलक कई एक कायर यह कह कर बच गये कि हम बर्नियों के बालक हैं। और जब परशुराम जी चले गये तो ये जाकर हयहोवर्णियों से कहने लगे कि भाई हम लोग विपत्ति में ऐसा कह कर बच गये। यह सुनकर उन सबों ने बहुत प्रकार से धिक्कार दिया और कहा कि रे चांडाल तुम सबों ने यह क्या किया अपनी जननी को कलंक लगाया। हाय ! तुम सब क्षत्री कुल में कलंक पैदा हुए। जाओ यहाँ से भागो दूर हटो न तो अभी शिर काट लेंगे क्या तुम सब हम लोगों के तुल्य हो सकते हो ? अपने वंश के लोगों की रक्षा क्या करोगे अपने बाप के भाये पाप चढ़ाये अब हम लोग तुम लोगों के साथ कोई व्यवहार न रखेंगे तुम लोगों ने अपने माना पिता को कैसा कलंक लगाया। यह सुनकर ये सब अपनी श्री गवांकर वहाँ से आके वैश्यों से कहा कि भाई तुम लोग अपनी जाति अर्थात् वैश्य हम लोगों को बनाओ। कारण हम लोग बर्नियों के बालक कहकर बच गये हैं और अपनी सारी व्यवस्था कह गये। बर्नियाँओं ने भी इस बात को अस्वीकार किया अर्थात् कहा कि आज विपत्ति पड़ने पर तुम लोग बर्नियों के बालक कहकर बच गये कल विपत्ति पड़ने पर शूद्र के बालक कहोगे इस से हम लोग तुम लोग को वैश्य अर्थात् बर्नियाँ न बनावेंगे इस बात

को सुनकर ये लोग बड़े बिपद में पड़े और आपस में सलाह कर के न क्षत्री न वैश्य एक विचित्र जाति खत्री बन गये ।

कोई कोई कहते हैं कि खात नामक राजपूत के वंश में एक वैश्या से इन लोगों की उत्पत्ति है और कोई २ कहते हैं कि नहीं ये लोग बड़ई के वंश में हैं अर्थात् बड़ई को खाति कहते हैं । काल प्रभाव से कुछ द्रव्य पाकर वैश्यों के गिनती में हो गये । जो हो कोई ऐसा भी कहते हैं कि खेचर नामक राजपूत के वंश में खत्री है । कोई कहते हैं कि ये लोग क्षत्री हई नहीं हैं क्यों कि परशुरामजी से जो लोग अभय पाये हैं वे लोग वैश्य क्षत्री है जो वैश्यवारे में रहते हैं । और खत्रियों की दास की पदवी अब तक प्रचलित है इस से ये लोग शूद्र हैं परन्तु बड़े अफसोस की बात है कि जिनका बाप दास उनका बेटा अपने को क्षत्री लिखते हैं । ठीक है "श्वार सुत सेर होत निधन कुबेर होत दीनन के फेर होत मेरु होत माटि को" । कोई कहते हैं कि यदि इन के मूल पुरुष क्षत्री थे तो भी ये अब क्षत्री नहीं हो सकते कारण खानपान बैठब उठब सब क्षत्रियों से न्यारी है और मूल पुरुष तो पैठन के भी क्षत्री हैं क्योंकि प्राथियन से पैठान शब्द बना है और वेणु वंश के कोल भील खेरो आदि हैं तो क्या अब ये क्षत्री हो सकते कदापि नहीं । कोई कहते हैं कि चीनी लवण आदि के व्यापार करने से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है तो क्षत्री होकर लवणादि बेचे तो क्या रहा ! इसी भाँति से लोग अनेक प्रकार से खत्रियों की उत्पत्ति या वर्णनिर्णय बतलाते हैं परन्तु मैं इन बातों को छोड़ कर नृपवंशावली से पता देता हूँ कि ये लोग क्षत्री के वंश में हैं ।

दोहा— एक समय बसुधा भई, कामधेनु को रूप ।
 पुलक गात रोमांच युत, भारि दिया, तन कूप ॥ १॥
 तहि रोमांच के मूल ते, प्रगटेउ छत्री खानि ।
 ताको निज निज नाम सभ, विधिवत कहो बखान ॥ २॥
 ब्रान्व वैश निशेन नृप, खत्री खाति विजवान ।
 अगरवार सुरवार भौ, पंचगोनिया नृप जान ॥ ३॥
 महीदहार कठिहार पुनि, धाकर और सिरमौर ।
 लकरिहार जनवास पुनि, बड़ गुंजर मड़िऔर ॥ ४॥
 भदवारिया प्रगटे बहुरि, काश्यप और सोमवंश ।
 मंडवालिया गाइ सहित, पाछिल भौ अवतंश ॥ ५॥
 कठहारिया उत्पन्न भौ, मलन हांस करिहार ।
 पांड पुंडर बुंदेल पुनि, गौरवार मिलवार ॥ ६॥
 हाडा भण नरवनी, क्षत्री अति रणधीर ।
 षट्ग दान वर्णन करी, विरदावलि अति वीर ॥ ७॥
 सोनकी और जगार भौ, बहुरि तरेढ गरेर ।
 ठक्राई सावन कहौ, खोची और धंधेर ॥ ८॥
 पुवि भौ प्रगटे सिहांगिया, छत्री नृपति कुलीन ।
 किनवार सिंहल नृप, कुलपालक अपहीन ॥ ९॥
 पुनि प्रगटेउ महरोठ नृप, कामधेनु ते जानि ।
 करवालिया क्षत्री भणउ, एहि प्रकार सभ खानि ॥ १०॥
 नागवंशी क्षत्री भण, गडवरिया सकसेल ।
 जाति वंश कुल उत्तम, पुनि प्रगटेउ रकसेल ॥ ११॥
 अनटैया अगरढ नृप, कुश भौ नाम निहार ।
 अपर वंश कहौ लागि कहौ, भण धेनु औतार ॥ १२॥
 (शिवराम सिंह)

बूंदी का राजवंश

दोहा

चार वेद प्रिय चार पद चारहु जुग परमान ।
जयति चतुर्भुज जासु जग बिदित बंस चौहान ॥
बूंदी राज प्रसिद्ध अति राजपुताना देस ।
जहँ के भारत में प्रगट हाड़ा नाम नरेस ॥
यह तिनकी बंसावली क्षत्रिन हित सानंद ।
लिखी अतिहि संक्षेप में ग्रंथन सों हरिचंद ॥

बाबू शिवनन्दन सहाय के मुताबिक इसका रचना काल १८८० है। सन् १८८२ में यह पुस्तक बोधोदय प्रेस, बांकीपुर से पहली बार छपी।

— सं.

बूंदी का राजवंश

बूंदी का राजवंश चौहान क्षत्रियों से है। इस वंश का मूल पुरुष अन्हल चौहान प्रसिद्ध है। भट्ट लोगों के मत से चौहान का शुद्ध नाम चतुर्भुज है। अन्हल अनल शब्द का अपभ्रंश है, क्योंकि अनल अग्नि को कहते हैं और आवू के पहाड़ पर जो चार क्षत्री वंश उत्पन्न किए गए वे अग्नि से उत्पन्न किये गए थे। जेम्स प्रिंसिप साहब को सन्देह है कि पार्थियन^१ (पार्थिव ?) Parthian Dynasty से यह वंश निकला है। उन्हीं के मत के अनुसार ईसामसीह से ७०० वर्ष पूर्व अनल ने गढ़मडला में राज स्थापन किया। अनल के पीछे सुवाच और फिर मल्लान हुआ (जिसने मल्लनी वंश चलाया ?) फिर गलन सूर हुआ। यहाँ तक कि ईस्वी सन् १४५ में (विराट का सं. २०२) अजयपाल ने अजमेर बसा कर राज किया। इसके पूर्व ८०० बरस और पीछे ५०० बरस ठीक ठीक नामावली नहीं मिलती। विल्फर्ड साहब के मत के अनुसार सन् ५०० ई. के अंत तक

१. और पठान शब्द भी इसी से निकला हुआ मालूम होता है, क्योंकि जो हिंदुस्तान के पास के क्षत्रियधर्मा मुसलमान हैं वे ही पठान कहलाते हैं।

सामंतदेव, महादेव, अजयसिंह (अजयपाल ?), वीरसिंह, बिंदुसुर और वैरी बिहंड इन राजाओं के नाम क्रम से मिलते हैं। यदि अजय पाल से मिला कर यह क्रम माना जाय तो वैरिबिहंड तक एक प्रकार का क्रम मिलेगा, किंतु दोलाराय (दुल्लभराय ?) जिस से सन् ६८४ ईस्वी में मुसलमानों ने अजमेर छोड़ा उस के पूर्व दो सौ बरस के लगभग कौन राजे हुए इसका पता नहीं। दोलाराय के पीछे माणिक्य राय (सन् ६९५ ई.) हुआ, जिसने सौमर का शहर बसाया और सौमरी गोत स्थापन किया। फिर महासिंह, चंद्रगुप्त (?), प्रतापसिंह, मोहनसिंह, सेनराय, नागहस्त, लोहधर, वीरसिंह (?), विबुधसिंह और चंद्रराय के नाम क्रम से मिलते हैं। Bombay Government Selection Vol. III, P. 193 टॉड साहब लिखते हैं कि भट्ट लोगों ने दूसरे ग्यारह नाम यहाँ पर लिखे हैं। परंतु प्रिंसिप साहब के क्रम से दोलाराय के पीछे हरिहर राय (टॉड साहब के मत से हर्पराय) सन् ७७४ ई. में हुआ और इसने सुबुक्तर्णी को लड़ाई में हराया, फिर बली अगाराय (बेलानदेव Tod) हुआ जो सुल्तान महमूद के अजमेर के युद्ध में मारा गया। उसके पीछे प्रथमराय और उस को अगाराज (अमिल्लदेव) हुआ। अमिल्लदेव के विशालदेव राजा हुआ। विल्फर्ड १०१६ ई., लिपि १०३१ से १०९५ ई. तक टॉड साहब के मत में चंद के रायसे अनुसार संवत् ९२१ में और फोरजे की एक लिपि से (१२२० संवत्) फिर सिरंगदेव (सारंगदेव वा श्रीरंगदेव), अन्हदेव (जिस ने अजमेर में अन्ह सागर खुदवाया), हिसपाल (हंसपाल), जयसिंह तारीख फिरीश्ता का जयपाल जो प्रिंसिप साहब के मत से सन् ९७७ ईस्वी में हुआ), सोमेश्वर जिसने दिल्ली के राजा अनंगपाल की बेटी से ब्याह किया), पृथीराय (लाहौर का जिसे शहाबुद्दीन ने कत्ल किया ११७६), रायनसी (रायनसिंह जो ११९२ में दिल्ली के युद्ध में मारा गया), विजयराज और उसके पीछे लकुनसी (लक्ष्मण सिंह) हुआ, जिसकी सत्ताईसवीं पीढ़ी में वर्तमान समय के नीमरान के राजा हैं।

अब टॉड साहब का मत है कि हाड़लोगों का वंश माणिक्य देव की शाखा में वा विशाल देव के पुत्र अनुराज से यह वंश चला है। प्रिंसिप साहब अनुराज ही से हाड़ा लोगों की वंशावली लिखते हैं। किंतु वृद्धि के भट्ट संगृहीत ग्रंथों में और तरह से इस वंश की उत्पत्ति लिखी है। ये लिखते हैं "त्रिशिष्ट जी ने आबू पहाड़ पर यज्ञ किया। उस से चार उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए, उन में से चतुर्भुज जी (चौहान वा चहुमान) से १५६ पीढ़ी में भोमचंद्र राजा हुआ। उस का पुत्र भानुराज राक्षसों (यवनों) की लड़ाई में मारा गया। तब आशापुरा देवी ने कृपा कर के भानुराज की अस्थि एकत्र कर के जिला दिया और तब से भानुराज का नाम अस्थिपाल हुआ। अस्थिपाल के पीछे क्रम से पृथ्वीपाल, सेनपाल, शत्रुशाल्य, दामोदर, नृसिंह, हरिवंश, हरियश, सदाशिव, रामदास, रामचंद्र, भागचंद्र, रूपचंद्र, मंडन जी (जिसने दक्षिण में भांडलगढ़ बसाया), आत्माराम, आनंदराम, राव हमीर, राव सुमेर, राव सरदार, राव जोधराज, राव रत्न जी, राव कीलहण जी, राव आशुपाल, राव विजयपाल और राव बंगदेव जी हुए।" राव बंगदेव से भट्टों की और प्रिंसिप साहब की वंशावली एक है। प्रिंसिप साहब के मत से अनुराज से आसी वा हाँसी का राज किया। उसके पीछे इष्टपाल वा इष्टपाल (शायद अस्थिपाल यही है) ने १०२४ ई. में असीरगढ़ में राज किया। उस का चण्डकर्ण वा कर्णचंद्र, उस का लोकपाल

१. अग्नि कुल की उत्पत्ति पुराणों में इस तरह लिखी है। जब परशुराम जी के मारे क्षत्रिय कुल का नाश हो गया तब उन्होंने ने पृथ्वी की रक्षा के हेतु चिन्ता कर के आबू पर्वत पर ऋषियों से इस विषय का परामर्श कर के सब के साथ क्षीरसागर पर जा कर भगवान की स्तुति किया। आज्ञा हुई कि चार कुल उत्पन्न करो। फिर ऋषियों के साथ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इंद्र आबू पहाड़ पर आये और वहाँ यज्ञ किया। इंद्र ने पहले अपनी शक्ति से घास का पुतला बना कर कुंड में डाला जिस से मार मार कहता हुआ भाला लिए हुए एक पुरुष निकला, जिस को ऋषियों ने प्रमार नाम देकर धार और उज्जैन का देश दिया। उसी भाँति ब्रह्मा ने वेद और खड्ग लिए हुए एक पुरुष उत्पन्न किया, एक चुलुक (चुल्लू) जल से जी उठने से इस का नाम चालुक्य हुआ और अन्हलपुर इस की राजधानी हुई। रुद्र ने तीसरा क्षत्री गंगाजल से उत्पन्न किया, यह धनुष लिए काला और कुरूप था, इस से इस का नाम परिहार रख कर पर्वतों और बनों की रक्षा इस को दी। अंत में विष्णु ने चार भुजा का एक मनुष्य चतुर्भुज नामक उत्पन्न किया। इस की राजधानी अकावती (गढ़ मंडल) हुई। इन्हीं चार पुरुषों से क्रम से पँवार, सोलंखी, परिहार और चौहान वंश हुए।

प्राचीन काल में चौहान लोगों का समवेद, पंच प्रवर, मधु (मध्य ?) शाखा वत्सगोत्र, विष्णु (श्रीकृष्ण) वंश होने से सोमवंश, अम्बिका देवी, अर्बुद अचलेश्वर शिव, भगुलक्षण विष्णु और कालभैरव क्षेत्रपाल थे।

और उस का हम्मीर हुआ। इस हम्मीर का पृथ्वीराज रायसे में भी विजय है और पृथ्वीराज ही के युद्ध में यह ११९३ ई. में मारा गया। हम्मीर के पीछे क्रम से कालकर्ण, महामन्द (महामत्), राव वच (राव वन्म) और रामचन्द्र हुए। रावचन्द्र का परिवार शहाबुद्दीन ने सन् १२९८ में मारा। केवल एक पुत्र रायसे वच गया, जो चित्तौर में पाला गया और जिसने भैरव राय में राज स्थापन किया। रायसे के कालन राय हुए जिसने मध्य देश में प्रमारा का राज्य किया और उनके वंशदेव हुए, जो इन के राजा हुए मैनाल लोगों के प्रभुत्व किया। राव वंशदेव से वंश परंपरा में और भव नहीं है, केवल समर सिंह के पुत्र हर राज (हारा राज, जिससे हाड़ा वंश चला) प्रिंसिप साहब वंशावली में विशेष मानन हैं। बूँदवालों के मत से वंशदेव न (सन् १३४१ ई. में) बंबावदा में राज किया और इन के पुत्र राव देव सिंह ने बूँदी में राज स्थापन किया और अपने पुत्र देव सिंह (संवत् १२९८) को बूँदी राज देकर चले गए। यही राव देव लोधी लोगों के दरबार में बुलाए गए, जो प्रिंसिप साहब के मत से अपने पुत्र हरराज को राज दे कर चले गए। बूँदी परंपरा में हरराज का नाम नहीं है, इस से संभव होता है कि हरराज और समरसिंह दोनों राव देव के पुत्र हैं। हरराज ने कुछ दिन राज किया, फिर समरसिंह ने भीलों को जीता था। समरसिंह के पीछे क्रम से ये राजा हुए। राव रनपालसिंह (नापा जी) संवत् १३३२, राव हम्मीर (हामाजी वा हामूजी) सं. १३४३, राव बरसिंह वा वीरसिंह सं. १३९३, राव बैरीशाल्य वा बैरीसाल वा बीरूजी सं. १४५० (P. 4190. A.D.G.), राव सुभांडेव वा बाँदा जी सं. १४९०, इनके समय में बड़ा काल पड़ा (ई. १४८७) और समरकंदी अमरकंदी नामक दो भाइयों ने झुम को राज से उतार कर बारह बरस राज्य किया, राव नारायण दास ने पिता का राज्य अपने चचा लोगों से लिया। राव सूरजमल ने संवत् १५८४ (1533 A.D.) में भट्ट लोगों के मत से महाराना रत्न सिंह जी का बध किया, किंतु जेम्स प्रिंसिप साहब के मत से महाराना ने इन्हें मारा। इससे संभव होता है कि इन दोनों राजाओं में ऐसा घोर वैर हुआ कि दोनों मृत्यु के परस्पर कारण हुए। राव राजा सुरतान जी सं. १५८८ (1537 A.D.), यह पागल थे, इस से पंचों ने इनको राव से अलग कर के नारायणदास के पुत्र अर्जुनराव को राजा किया। इनके बहुत थोड़े ही समय राज के पीछे चित्तौर की लड़ाई में मारे जाने से राजावली में इन की गिनती नहीं हुई। राव राजा सुरजन जी सं. १६११ (1560 A.D.), इन्होंने महाराजाधिराज अकबर से काशी और चुनार पाया और काशी में राजमंदिर बसाया। राव राजा भोज सं. १६८२, इनके समय से कोटा और बूँदी का राज अलग हुआ। राव रतन जी सं. १६६४ (T. 1613 A.D.), इनके पुत्र कुँवर माधवसिंह ने जहांगीर से कोटा पाया और कुँवर गोपीनाथ युवराज हुए। कुँवर गोपीनाथ भी (सं. १६७१) युवराजत्व के समय ही में शांत हुए, इस से उन के पुत्र रावराजा (प्रसिद्ध छत्रसाल) बड़ा वीर हुआ है, जिसने कुलवर्गा जीता और उज्जैन की प्रसिद्ध लड़ाई में १२ राजाओं के साथ मारा गया, राव राजा भावसिंह सं. १७१५ (1658 A.D.) इन्होंने औरंगजेब से औरंगाबाद की सूबेदारी पाया। राव राजा अनरुदसिंह सं. १७३८ (P. 1681 A.D.), ये भावसिंह के छोटे भाई के पौत्र थे। राव राजा बुधसिंह सं. १७५२ P. 1710 A.D.) इन्होंने बहादुरशाह की सहायता की थी, किंतु जयपुरवालों ने इन्हें राज्यच्युत कर दिया। महाराव राजा उमेदसिंह सं. १८०१ (1744 A.D.), होलकर की सहायता से

१. बारासाहि औरंग जुरे हैं दोऊ दिल्ली दल एकै गए भाजि एक रहे लूँथि चाल में।
भयो घोर युद्ध उद्ध माच्यो अति दुंद जहाँ कैसहु प्रकार प्राण बचत न काल में।।
हाथी तैं उतरि हाड़ा कुम्भयो लोह लंगर दै एती लाज का मैं जेती लाज छत्रसाल में।
तन तरवारन में मन परमेश्वर में प्रन स्वामि कारज मैं माथो हर माल में।।

२. शिवसिंहसरोज में लिखा है, बुद्धराव (संवत् १७५५) —

ये महाराज बूँदी के राजा जयसिंह सवाई आमेरवाले के बहनोई थे। बहादुरशाह बादशाह ने इन का बड़ा मान किया। इस बादशाह के यहाँ दूसरे की ऐसी इज्जत न थी। जब सय्यद बारहा ने बादशाह को बेदखल कर आप ही बादशाही नक्कारा बजाते हुए गली कूचों में निकलने लगा तब तो इस शूरवीर से कब रहा जाता था। सय्यदों का मुँह तरवारों की धार से फेर दिया और तमाम उमर बादशाह के यहाँ रहा। कविता इनको बहुत ही अपूर्व है

बूँदी फेर लिया । (1747) और फिर विरक्त होकर राज छोड़ कर चले गए । अजीत सिंह सं. १८२७ (1771), महाराज राजा विष्णुसिंह सं. १८३० । इन्होंने सं. १८७४ में सरकार से अहदनामा किया । महाराज राजा रामसिंह, ये वर्तमान बूँदी के महाराज हैं । संवत् १८७८ में सावन कृष्ण ११ को इन्होंने राज पाया और पूस सुदी ३ सं. १८६६ को इनका जन्म है । ये महाराज बड़े धर्मनिष्ठ और संस्कृत के अनुरागी हैं । सरकार से इस राज्य की सलामी १७ तोप की नियत की गई है और महाराज राजा श्री रामसिंह जी को जी.सी.आई. और "काउन्सेलर आफ् दी इम्प्रेस" (राजराजेश्वरी के सलाहकार) की उपाधि दिल्ली के दरबार में (1877 A.D.) मिली ।

कोटा की शाखा ।

राव माधोसिंह सन् १५७९ ई.
 राव मुकुंद सिंह सन् १६३० ई.
 राव जगतसिंह सन् १६५७ ई.
 राव किशवर (किशोर) सिंह सन् १६६९ ई.
 राव रामसिंह सन् १६८५ ई.
 राव भीमसिंह सन् १७०७ ई.
 महाराज अर्जुनसिंह सन् १७१९ ई.
 महाराज दुर्जनशाल (निस्संतान)
 महाराज अजीतसिंह (विष्णुसिंह के पोते)
 महाराज छत्रशाल
 महाराज गुमानसिंह सन्, १७६५ (अपने भाई छत्रशाल की गद्दी पर बैठे)
 अलिमसिंह इनके फौजदार थे ।
 महाराज उम्मेदसिंह सन् १७७० ई.
 महाराज किशोरसिंह सन् १८१९ ई.
 महाराज उम्मेदसिंह सन् १८८९ ई. (सं.)



और कवि लोगों का बड़ा मान दान देनेवाला था ।

कीनो तुम मान मैं कियो है कब मान अब कीजे सनमान अपमान कीनो कब मैं ।
 प्यारी हँसि बोलु और बोलै कैसे बुद्ध राज हँसि हँसि बोलु हँसि बोलि हों जू अब मैं । ।
 हग करि सौ हैं कोरि सौ हैं करि जानत हैं अब करि सौ हैं अनसौहैं कीने कब मैं ।
 लीजे मरि अंक जहाँ आये मरि अंक हौ न काहु मरि अंक उर अंक देखे अब मैं । ।१।।

ऐसी ना करी है काहु आज लों अनेसी जैसी सेयद करी है ये कलंक काहि चढ़ेगे ।
 दूजे को नगाड़े बाजे दिली में दिलीश आगे हम सुनि भागें तौ कविंद कहाँ पढ़ेगे । ।
 कहे राव बुद्ध हमें करने हैं युद्ध स्वामि धर्म में प्रसुद्ध जेह जान जस मढ़ेगे ।
 हाड़ा कहवाय कहा हारि करि कढ़े ताते भारि शमशेर आहु रारि करि कढ़ेगें । ।२।।

काश्मीर कुसुम

अथवा
राजतरंगिणी-कमल

‘कोऽन्यः कालमतिक्रांतं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः ।
कवीन् प्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः’ ॥
‘भुजतखवन छायां येषां निषेव्य महौजसां ।
जलधिरसनामेदिन्यासीदसाधकुतोभया ॥
स्मृतिमपि न ते यान्ति क्षमापा विना यदनुग्रहं ।
प्रकृतिमहते कुर्मस्तस्मै नमः कविकर्मणे’ ॥

इस ग्रन्थ में काश्मीर का संक्षिप्त इतिहास संकलित है । राज तरंगिणी के बाद की सारी ऐतिहासिक घटनायें भी इसमें वर्णित हैं । सन् १८८४ में पहली बार ‘द मेडिकल हाल’ प्रेस, वाराणसी से मुद्रित और भारतेन्दु बाबू के स्वयं के मल्लिक चन्द्र पण्ड कम्पनी से प्रकाशित । दूसरी बार सन् १८८७ में ‘खगविलास’ प्रेस ने इसे छापा । — सं.

DEDICATION.

हे सौभाग्य काश्मीर,

केवल ग्रंथकर्ता ही से नहीं इस ग्रंथ से भी तुम से अनेक संबंध हैं । तुम कुसुम जाति हो, यह ग्रंथ भी । काश्मीर के क्षेत्र से दर्शकों का मन प्रसन्न होता है, तुम्हारे दर्शन से हमारा । काश्मीर इस पृथ्वी का स्वर्ग है, तुम हमारे हेतु इस पृथ्वी में स्वर्ग हो । यह ग्रंथ राजतरंगिणी कमल है, तुम वर्ण से राज तरंगिणी कमला ही नहीं हमारी आशाराजतरंगिणी में कमल हो । तरंगिणी गण की रानी भोगवती भागीरथी है, तुम हमारी हृदयपातालवाहिनी राजतरंगिणी हो । काश्मीर भू स्वर्णमयी नीलमणि-प्रभवा है, तुम भी इन्हीं अनेक संबंधों से समझो या केवल हमारे हृदय संबंध से यह ग्रंथ तुम को समर्पित है ।

भारतवर्ष के निर्मल आकाश में इतिहास चंद्रमा का दर्शन नहीं होता, क्योंकि भारतवर्ष की प्राचीन विद्याओं के साथ इतिहास का भी लोप हो गया। कुछ तो पूर्व समय में शुंखलावद इतिहास लिखने की चाल ही न थी और जो कुछ बचा बचाया था वह भी कराल काल के गाल में चला गया। जैनों ने वैदिकों के ग्रंथ नाश किये और वैदिकों ने जैनों के। एक राजधानी में एक वंश राज्य करता था। जब दूसरे वंश ने उसको जीता तो पहले वंश की संपूर्ण वंशावली के ग्रंथ जला दिए। कवियों ने अपने अन्नदाता की भूठी प्रशंसा की, कहानी जोड़ लीं और उन के जो शत्रु थे उनकी सब कीर्ति लोप कर दीं। यह सब तो था ही, अंत में मुसलमानों ने आकर जो कुछ बचे बचाये ग्रंथ थे जला दिए। चलिए छुट्टी हुई। ऐसी काली घटा छाई कि भारतवर्ष के कीर्तिचंद्रमा का प्रकाश ही छिप गया। हरिश्चन्द्र, राम, युधिष्ठिर ऐसे महानुभावों की कीर्ति का प्रकाश अति उत्कट था इसी से घनपटल को बेध कर अब तक हम लोगों के अँधेरे दृश्य को आलोक पहुँचाता है। किंतु ब्रह्मा से ले कर आज तक और जितने बड़े बड़े राजा या धीर या पंडित या महानुभाव हुए किसी का समाचार ठीक ठीक नहीं मिलता। पुराणादिकों में नाम मिलता है तो समय नहीं मिलता।

ऐसे अँधेरे में काश्मीर के राजाओं के इतिहास का एक तारा जो हम लोगों को दिखलाइ पड़ता है इसी को हम कई सूर्य से बढ़कर समझते हैं। सिद्धांत यह कि भारतवर्ष में यही एक देश है, जिसका इतिहास शुंखलावद देखने में आता है और यही कारण है कि इस इतिहास पर हमारा ऐसा आदर और आग्रह है।

कश्मीर के इतिहास में कल्हण कवि की राजतरंगिणी ही मुख्य है। यद्यपि कल्हण के पहले सुवत, क्षेमेंद्र, हेलाराज, नीलमुनि, पद्ममिहिर और श्री छविल्लभट्ट आदि ग्रंथकार हुए हैं, किंतु किसी के ग्रंथ अब नहीं मिलते। कल्हण ने लिखा है कि हेलाराज ने बारह हजार ग्रंथ कश्मीर के राजाओं के वर्णन के एकत्र किये थे। नीलमुनि ने इस इतिहास में एक बड़ा सा पुराण ही बनाया था। किंतु हाय ! अब वे ग्रंथ कहीं नहीं मिलते। कश्मीर के बचे बचाये जितने ग्रंथ थे सब दुष्टों ने जला दिए। आर्यों की मंदिर मूर्ति आदि में कारीगरी कीर्तिस्तंभादिकों के लेख और पुस्तकों का इन दुष्टों के हाथ से समूल नाश हो गया। परशुराम जी ने राजाओं का शरीरमात्र नाश किया, किंतु इन्होंने देह, बल, विद्या, धन, प्राण की कौन कहै कीर्ति का भी नाश कर दिया।

कल्हण ने जयसिंह के काल में सन् ११४८ ई. में राजतरंगिणी बनाई। यह कश्मीर के अमात्य चंपक का पुत्र था और इसी कारण से इस को इस ग्रंथ के बनाने में बहुत सा विषय सहज ही में मिला था।

इस के पीछे जोनराज ने १४१२ में राजावली बना कर कल्हण से लेकर अपने काल तक के राजाओं का उस में वर्णन किया। फिर उसके शिष्य श्री वरराज ने १४७७ में एक ग्रंथ और बनाया। अकबर के समय में प्राज्यभट्ट ने इस इतिहास का चतुर्थ खंड लिखा। इस प्रकार चार खंडों में यह कश्मीर का इतिहास संस्कृत में श्लोकवद्ध विद्यमान है।

महाराज रणजीत सिंह के काल में जान मैकफेयर नामक एक यूरोपीय विद्वान ने कश्मीर से पहले पहल इस ग्रंथ का संग्रह किया। विल्सन साहब ने एशियाटिक रिसर्चेंज में इस का प्रथम छ सर्ग का अनुवाद भी किया था।

इसी राजतरंगिणी ही से यह इतिहास मैंने लिखा है। इस में केवल राजाओं के समय और बड़ी बड़ी घटनाओं का वर्णन है। आशा है कि कोई इस को सविस्तार भी निर्माण कर के प्रकाश करेगा।

राजतरंगिणी छोड़कर और और भी कई ग्रंथों और लेखों से इस में संग्रह किया है। यथा आइने अकबरी, का फारसी इतिहास, एशियाटिक सोसाइटी के पत्र, विल्सन, विल्फर्ड, प्रिंसिप, कनिंगहम, टॉड, विलिअन्स, गोशेन और टायर आदि के लेख, बाबू जोगेशचंद्रदत्त की अंगरेजी तवारीख, दीवान कृपाराम जी की फारसी तवारीख आदि।

बहुतों का मत है कि कश्मीर शब्द कश्यपमेरू का अपभ्रंश है। पहले पहल कश्यप मुनि ने अपने

तपोबल से इस प्रदेश का पानी सुखा कर इस को बसाया था। इनके पीछे गोनर्द तक अर्थात् कलियुग के प्रारंभ तक राजाओं का कुछ पता नहीं है। गोनर्द से ही राजाओं का नाम शुंखलाबद्ध मिलता है। मुसलमान लेखकों ने इसके पूर्व के भी कई नाम लिखे हैं, किंतु वे सब ऐसे अशुद्ध और प्रतिशब्द में खाँ उपाधि विशिष्ट हैं कि उन नामों पर श्रद्धा नहीं होती।

गोनर्द से लेकर सहदेव तक पूर्व में सैंतीस सौ बरस के लगभग डेढ़ सौ हिंदू राजाओं ने कश्मीर भोगा, फिर पूरे पाँच सौ बरस मुसलमानों ने इसका उत्पीड़न किया। (बीच में बागी होकर यद्यपि राजा सुखजीवन ने ८ बरस राज्य किया था पर उसकी कोई गिनती नहीं) फिर नाममात्र को कश्मीर क़स्तानी राजाभुक्त होकर आज चौसठ बरस से फिर हिंदुओं के अधिकार में आया है। अब ईश्वर सर्वत्र इस को उपद्रवों से बचावै। एवमस्तु।

कश्मीर की संक्षिप्त वंशपरंपरा

कश्मीर के वर्तमान महाराज की संक्षिप्त वंशपरंपरा यों है। ये लोग कछवाहे क्षत्री हैं। जैपुर प्रांत से सूर्यदेव नामक एक राजकुमार ने आकर जम्बू में राज्य का आरंभ किया। उसके वंश में भुजदेव, अवतारदेव, यशदेव, कृपालुदेव, चक्रदेव, नृसिंहदेव, अजेनदेव और जयदेव ये क्रम से हुए। जयदेव का पुत्र मालदेव बड़ा बली और पराक्रमी हुआ। इस ने हँसी हँसी में पचास मन के जो पत्थर उठाए हैं वह उस की अचल कीर्ति बन कर अब भी जम्बू में पड़े हैं। उस के पीछे हवीरदेव, अत्रेव्यदेव, वीरदेव, घोड़ादेव, कर्पूरदेव और सुमहलदेव क्रम से राजा हुए। सुमहल के पुत्र संग्रामदेव ने फिर बड़ा नाम किया। आलमगौर इनकी वीरता से ऐसा प्रसन्न हुआ कि महाराजगी का पद छत्र चँवर सब कुछ दिया। ये दक्षिण की लड़ाई में मारे गए। इन के पुत्र हरिदेव ने और उनके पुत्र गजसिंह ने राज को बहुत ही बसाया। सब प्रकार के नियम बाँधे और महल बनवाए। गजसिंह के पुत्र भ्रुवदेव ने बहुत दिन तक ऐश्वर्यपूर्वक राज्य किया। भ्रुवदेव के रणजीतदेव और सूरतसिंह पुत्र थे। रणजीतदेव को ब्रजराजदेव और उनको निज परंपरासंपूर्णकारी संपूर्णदेव हुए। संपूर्णदेव को संतति न होने के कारण रणजीतदेव के दूसरे पुत्र दलेलसिंह के पुत्र जैतसिंह ने राज्य पाया। महाराज रणजीतसिंह लाहौरवाले के प्रताप के समय में जैतसिंह को पिनशिन मिली और जंबू का राज्य लाहौर में मिल गया। जैतसिंह के पुत्र रघुवीरदेव के पुत्र पौत्र अब अंबाले में हैं और सर्कार अंगरेज से पिनशिन पाते हैं। भ्रुवदेव के दूसरे पुत्र सूरतसिंह को जोरावर सिंह और मियाँ मोटासिंह दो पुत्र थे। मियाँ मोटा को विभूतिसिंह और उन को एक पुत्र ब्रजदेव है, जिन को वर्तमान महाराज जंबू ने कैद कर रक्खा है। जोरावरसिंह को किशोरसिंह और उन को तीन पुत्र हुए, गुलाबसिंह, सुचेतसिंह और ध्यानसिंह। महाराज गुलाबसिंह ने महाराजाधिराज रणजीतसिंह से जंबू का राज्य फिर पाया। सुचेतसिंह का वंश नहीं रहा। राजा ध्यानसिंह को हीरासिंह, जवाहरसिंह और मोतीसिंह हुए, जिन में राजा मोतीसिंह का वंश है। महाराज गुलाबसिंह के उदयसिंह, रणधीरसिंह और रणवीरसिंह तीन पुत्र हुए। प्रथम दोनों नौनिहालसिंह और राजा हीरासिंह के साथ क्रम से मर गए, इस से महाराज रणवीरसिंह वर्तमान जंबू और कश्मीर के महाराज ने राज्य पाया। इनके एक वैमात्रेय भाई मियाँ हड़सिंह है, जिनको महाराज ने कैद कर रक्खा था, पर सुनते हैं कि आज कल वह कैद से निकल कर नेपाल प्रांत में चले गए हैं। सन् १८६१ में महाराज को जी.सी.एस.आई. का पद सरकार ने दिया और १८६२ में दत्तक लेने का आज्ञापत्र भी दिया। इन को २१ तोप की सलामी है। दिल्ली दरबार में इनको और भी अनेक आदरसूचक पद मिले हैं। ये संस्कृत विद्या और धर्म के अनुरागी हैं। इनको तीन पुत्र हैं यथा युवराज प्रतापसिंह, कुमार रामसिंह और कुमार अमरसिंह^१।

१. वर्तमान महाराज के परिषदवर्ग भी उत्तम हैं। इन के एक बड़े शुभचिंतक पंडित रामकृष्ण जी को कई वर्ष हुए लोगों ने पड़चक्र कर के राज्य से अलग कर दिया था और अब उन के पुत्र पंडित रघुनाथ जी काशी में रहते हैं। महाराज के अमात्य दीवान ज्वाला सहाय के पौत्र दीवान कृपाराम के पुत्र अनंतराम जी हैं, जो अंगरेजी फारसी आदि पढ़े और सुचतुत हैं। बाबू नीलाम्बर मुकुर्जी, पंडित गणेशचौबे प्रभृति और भी कई चतुर लोग राज्यकार्य में दक्ष हैं।

राजतरंगिणी की समालोचना

जिस महाग्रंथ के कारण हम लोग आज दिन कश्मीर का इतिहास प्रत्यक्ष करते हैं उसके विषय में भी कुछ कहना यहाँ बहुत आवश्यक है। इस ग्रंथ को कलहण कवि ने शाके एक हजार सत्तर १०७० में बनाया था। उस समय तीसरे गोनर्द से तेईस सौ तीस बरस बीत चुके थे। इस ग्रंथ की संस्कृत क्लिष्ट और एक विचित्र शैली की है। कवि के स्वभाव का जहाँ तक परिचय मिला है ऐसा जाना जाता है कि वह उदत्त और अभिमानी था, किंतु साथ ही यह भी है कि उसकी गवेषणा अत्यंत गंभीर थी। नीलपुराण छोड़ कर ग्यारह प्राचीन ग्रंथ इसने इतिहास के देखे थे। केवल इन्हीं ग्रंथों के भरोसे इसने यह ग्रंथ नहीं बनाया वरंच आजकल के पुरातत्ववेत्ता (Antiquarian) की भाँति प्राचीन राजाओं के शासनपत्र, दानपत्र तथा शिवालय आदि की लिपि भी इसने देखी थी। (प्रथम तरंग १५ श्लोक देखो) यह मंत्री का पुत्र था, इससे संभव है कि इन वस्तुओं को देखने में इसको इतना परिश्रम न पड़ा होगा जितना यदि कोई साधारण कवि बनाता तो उसको पड़ता। इस ग्रंथ में आठ हजार श्लोक हैं। साढ़े छ सौ बरस कलियुग बीते कौरव-पांडवों का युद्ध हुआ था, यह बात इसी ने प्रचलित की है। जरासंध के युद्ध में कश्मीर का पहला राजा गोनर्द मारा गया। यहाँ से कथा का आरंभ है^१। इसी आदि गोनर्द के पुत्र को श्रीकृष्ण ने गंधार देश के स्वयंवर में मारा और उस की सगर्भा रानी को राज्य पर बैठाया। उस समय श्रीकृष्ण ने कश्मीर की महिमा में एक पुराण का श्लोक कहा। (१ त. ३२ तक) यही प्रकरण इस बात का प्रमाण है कि कश्मीर का राज्य बहुत दिन से प्रतिष्ठित है। इस रानी के पुत्र का नाम द्वितीय गोनर्द हुआ, जो महाभारत के युद्ध में मारा गया। इसी से स्पष्ट है कि पूर्वोक्त तीनों राजा जवानी ही में मरे, क्योंकि एक पांडवों के काल में तीनों का वर्णन आया है। इन लोगों के अनेक काल पीछे अशोक राजा जैनी हुआ। इसी ने श्रीनगर बसाया। इसके पीछे जलौकराजा प्रतापी हुआ, जिसने कान्यकुब्जादि देश जीता। यह शैव था। (भारतवर्ष में मूर्तिपूजा और शैव वैष्णवादि मत बहुत ही थोड़े काल से चले हैं यह कहने वाले महात्मागण इस प्रसंग को आँख खोल कर पढ़ें (१ त. ११३ श्लो.)। फिर हुष्क, जुष्क और कनिष्क ये तीन विदेशी (Bactro-Indian tribe) राजा हुए। इनके समय में शाक्य सिंह को हुए डेढ़ सौ बरस हुए थे। (१ त. १७२ श्लोक) इससे स्पष्ट होता है कि राजतरंगिणी के हिसाब से शाक्यसिंह को हुए पच्चीस सौ बरस हुए। इसी समय में नागार्जुन नामक सिद्ध भी हुआ। इनके पीछे अभिमन्यु के समय में चंद्राचार्य ने व्याकरण के महाभाष्य का प्रचार किया और एक दूसरे चंद्रदेव ने बौद्धों को जीता। कुछ काल पीछे मिहिरकुल नामक एक राजा हुआ। इसके समय की एक घटना विचारने के योग्य है। वह यह कि इसकी रानी सिंहल का बना रेशमी कपड़ा पहने थी। उस पर वहाँ के राजा के पैर की सोनहली छाप थी। इस पर कश्मीर के राजा ने बड़ा क्रोध किया और लंका जीतने चला। तब लंकावालों ने 'यमुषदेव' नामक सूर्य के बिंब के भापे का कपड़ा दे कर उससे मेल किया। (१ त. ३०० श्लोक) इससे स्पष्ट होता है कि चाँदी सोने से कपड़ा छापना लंका में तभी से प्रचलित था। अद्यापि दक्षिण हैदराबाद में (लंका के समीप) छापना अच्छा होता है। उस समय तक मट्टि

१. इस ग्रंथकर्ता के पिता श्रीयुत कविवर गिरिधरदास जी ने अपने जरासंधवध नामक महाकाव्य में जरासंध की सेना में कश्मीर के आदि गोनर्द के वर्णन में कई एक छंद लिखा है वह भी प्रकाश किया जाता है। (३ सर्ग ४० छंद)

चलेउ भूप गोनर्द वदवाहन समान बल,
संग लिये बहु मदं सदै लखि होत अपर दल।
फेँटा सीस लपेटा गल मुकुता की माला,
सिर केसर को पुँड धरे पचरंग दुसाला।
रथ चारु जराऊ सोहती रुप सबन मन मोहतो,
कश्मीर भूप मरि रिसि लसी मधुगपुर दिसि जोहतो।।

(६ सर्ग २५ छंद)

(Bhatti), दारद (Dardareans) और गांधार (Kandharis) ब्राह्मण होते थे ।

फिर तुंगान नामक राजा के समय में चंद्रक कवि ने नाटक बनाया । (२ त. १६ श्लो.) इसके समय में एक बात और आश्चर्य की लिखी है कि एक समय बड़ा काल पड़ा था तो परमेश्वर ने कबूतर बरसाये थे । (२ त. ५१ श्लो.) और हर्ष नामक एक कोई और राजा उस काल में हुआ था । इस राजा के कुछ काल पीछे संधिमान राजा की कथा भी बड़ी आश्चर्य की लिखी है कि वह सूली दिया गया था और फिर जी गया इत्यादि । विक्रमादित्य के मरने के थोड़े ही समय पीछे प्रवरसेन राजा ने नाव का पुल बाँधा और वह ललाट में त्रिशूल की भाँति तिलक देता था (३ त. ३५६ और ३६७ श्लो.) ।

जयापीड़ राजा का समय फिर ध्यान देने के योग्य है, क्योंकि इस के समय में कई पंडित हुए हैं, जिनमें शंकु नामक कवि ने मम्म और उत्पल की लड़ाई में भुवनाभ्युदय नामक काव्य बनाया था । (४ त. २५ श्लो.) इसी समय में वामन नामक वैयाकरण पंडित हुआ है जिस की कारिका प्रसिद्ध है । (४ त. ४८७ से ४९४ श्लो. तक) इसी वामन का बोपदेव ने खंडन किया है । (बोपदेव महाप्राहग्रस्तो वामने कुंजरः) इससे बोपदेव जयापीड़ के समय (७५ ई.) के पीछे हुए हैं यह सिद्ध होता है । जयापीड़ ने द्वारका फिर से बसा कर मंदिर बनवाए । (४ त. ५६० श्लो.) और उस समय नेपाल का राजा अरमुंडि था (४ त. ५२९ श्लो.) ।

राजा शंकरवर्मा का समय भी दृष्टि देने योग्य है । इसके पास ३०० हाथी, लाख घोड़े और नौ लाख प्यादे थे । उस समय गुजरात में 'खानाखान' का जोर था । दरद और तुरष्क देश के राजा भारत में बड़ा उपद्रव मचाए हुए थे । लल्लियशाह खानाखान का सर्वार था (५ त. १५३ से १६० श्लो. तक) । इस ग्रंथ में मुसलमानों का वर्णन पहले यहाँ आया है । इससे स्पष्ट होता है कि ईस्वी नवीं शताब्दी के अंत तक जो मुसलमान चढ़ाई करते थे वे गुजरात की राह से करते थे ; उत्तर पश्चिम की राह नहीं खुली थी । इस तरंग में कायस्थों की बड़ी निंदा की है (४ त. ६२५ श्लो. से और ५ त. १७९ श्लो. आदि) ।

चतुर्थ और पंचम तरंग में कई बातें और दृष्टि देने के योग्य हैं । जैसे तबि की 'दीनार' पर राजाओं का नाम खुदा रहता । (४ त. ६२० श्लो.) जहाँ पंथिक टिके उस स्थान का नाम गंज (४ त. ५९२ श्लो.) । रुपयों की हंडिका (हंडी) का प्रचार । (५ त. १५९ श्लो.) मेप के नाजे चमड़े पर खड़े होकर तलवार टाँग हाथ में लेकर शपथ खाना इत्यादि (५ त. ३३० श्लो.) । इसी तरंग में गानेवालों का नाम डोम लिखा है । (५ त. ३५८ श्लो.) यह दीनार, गंज, हंडी और डोम शब्द अब तक भाषा में प्रचलित हैं, वरंच मोरहसन ने भी 'डोमनपना' लिखा है । जैसा इस काल में रंडी और इन की बुढ़िया तथा भद्रुओं के समझने की और साधारण लोग जिस में न समझें ऐसी एक भाषा प्रचलित है, वैसी ही उस काल में भी थी । गाने वाले को हेलु गाँव दिया गया, इसकी उस काल की भाषा हुई 'रंगस्महल्लुदिराणा' (५ त. ४०२ श्लो.) ।

षष्ठ तरंग में दिद्वाराणा का उपद्रव और बहुत स राजाओं के नाम के पूर्व में शाहि पद ध्यान देने के योग्य है ।

सप्तम तरंग (५३ श्लो.) में हम्मोर नाम का एक राजा तुंग के समय में और (१९० श्लो.) अंत के समय में भोज का राजा होना लिखा है । मान के हेतु लोगों का आकुर का पदवी न जानी थी । (७ त. २९ श्लो.) तुरष्क देश से सोने का मुलुम्मा करने की विद्या हर्ष के समय में आई । (७ त. ५३ श्लो.) इसी काल में खस लोगों ने पहले पहल बंदूक का युद्ध किया । (७ त. ९८४ श्लो.) कर्णिक के राजा, राजा उदय सिंह आदि कई राजाओं के प्रसंग से (१३०० श्लो. के आसपास) नाम आए हैं । युद्ध हारने के समय क्षत्रानिया राजपुतानों की भाँति यहाँ भी जल जानी थी । (७ त. १५०० श्लो.) ।

१. वर्तमान काल में रंडियों की भाषा का कुछ उदाहरण दिखाते हैं । नगर की बारबधूगण की संकेत भाषा यथा — लूरा-पुरुष, लूरी-रंडी, चीसा-अच्छा बीला बुरा, भीमटा रुपया आदि । ग्राम्य रंडियों की भाषा यथा-सेरुआ-पुरुष, सेरुइ-स्त्री, कनेरी-रुपया, सेमिल-अच्छा है और छोलिआयल्यः अर्थात् रुपया सब ठग लो ।

आष्टम तरंग में भी कायस्थों की बहुत निंदा की है । (८ त. ८९ श्लो. आदि) कैदियों को भाँग से रंग कर कपड़ा पहनाते थे । (८ त. ९३ श्लो.) कल्याण के हेतु लोग भीष्मस्तवराज, गजेंद्रमोक्ष, दुर्गापाठ आदि का पाठ करते थे (८ त. १०६ श्लो.) टंकशाला का नाम टंकशाला । (८ त. १५२ श्लो.) उस समय में भी राजाओं को इस बात का आग्रह होता था कि उन्हीं के नाम के सिक्के का प्रचार विशेष हो । इस समय (चारहवीं शताब्दी के मध्य में) कालिंजर का राजा कहल था । (८ त. २०५ श्लो.) हर्ष का सिर काट कर लोगों ने भाले पर चढ़ाया, किंतु इसके पहले किसी राजा के सिर काटने की चाल नहीं थी । हर्ष का व्याख्यान इस तरंग में अवश्य पढ़ने के योग्य है, जिससे शृंगार, वीर आदि रसों का हृदय में उदय हो कर अंत में वैराग्य आता है ।

रात्रतरंगिणी में राम लक्ष्मण की मूर्ति का पृथ्वी के भीतर से निकलना इस बात का प्रमाण है कि मूर्तिपूजा यहाँ बहुत दिन से प्रचलित है ।

इस में देवी, देवता, भूत प्रेत और नागों की अनेक प्रकार की आश्चर्य कथा हैं जिनका ग्रंथ पढ़ने के भय से यहाँ नहीं लिखा । और भी वृक्ष, शस्त्र, औषधि और मणि आदिकों के अनेक प्रकार के वर्णन हैं । कोई महात्मा इस का पूरा अनुवाद करेगा तो साधारण पाठकों को इस का पूर्ण आनंद मिलेगा ।

इस में एक मणि का वर्णन बड़ा आश्चर्यजनक है । एक बेर राजा नदी पार होना चाहता था किंतु कोई सामान उस समय नहीं था । एक सिद्ध मनुष्य ने जल में एक मणि फेंक दी, उस से जल हट गया और सैना पार उतर गई । फिर दूसरी मणि के बल से इस मणि को उठा लिया । एक कहानी ऐसी और भी प्रसिद्ध है कि किसी राजा की अँगूठी पानी में गिर पड़ी । राजा को उस अमूल्य रत्न का बड़ा शोक हुआ । यह देखकर मंत्री ने अपनी अँगूठी डोरे में बाँधकर पानी में डाली । मंत्री के अँगूठी के रत्न में ऐसी शक्ति थी कि अन्य रत्नों को यह खींच लेती थी, इस से राजा की अँगूठी मिल गई ।

हर्षदेव ।

हर्ष देव के विषय में यद्यपि राज तरंगिणी में कुछ विशेष नहीं लिखा है किंतु इस राजा का नाम भारतवर्ष में बहुत प्रसिद्ध है और एक इस बात की प्रसिद्धि पर कि रत्नावली इत्यादि काव्यग्रंथ उसके समय में बने थे । इस राजा पर मेरी विशेष दृष्टि पड़ी । इस का समय विक्रम और कालिदास के समय के बहुत पीछे स्पष्ट होने से इस बात की मुझको बड़ी चिंता हुई कि वह कौन पुण्यात्मा श्री हर्ष का धावक ने जिसकी कीर्ति आर्चंद्रिक स्थिर रखी है । वह श्री हर्ष निश्चय मम्मट, कालिदासादि के पूर्व और वत्सराज के पश्चात् हुआ है । वंशावलियों में खोजने से कई हर्ष मिले । यथा मालवा के राजाओं में एक हर्षमेघ १९१ ई. पू. हुआ है । यह युद्ध में मारा गया और कोई विशेष कथा इसकी नहीं है । छतरपुर में एक लिपि में श्री हर्ष नाम का एक राजा बिहल का पुत्र यशोधर्मदेव का पिता लिखा है । और यह लिपि श्री हर्ष के प्रपौत्र को सं. १०१९ की है । एक श्री हर्ष नेपाल का राजा ३६३१ ई. पू. हुआ है । एक विक्रमादित्य जिस का दूसरा नाम हर्ष था मातृगुप्त के समय में हुआ । शक १००० में एक विक्रम और इस के कुछ ही पूर्व कान्यकुब्ज में एक हर्ष नामक राजा हुआ । कालिदास और श्री हर्ष कवि भी इसी काल में थे । जैन लोगों ने लिखा है कि वाराणसी के जयतीर्चंद नामक राजा के दरबार में श्री हर्ष कवि था । (१०८९ शक) यह जैनों का भ्रम है । और हर्षों को छोड़ कर कान्यकुब्ज के हर्ष को यदि धावक कवि का स्वामी मानें तभी कुछ लड़ सब बातों की मिलेगी । जैसा रत्नावली में जिस वत्सराज का चरित है वह कलियुग के प्रारंभ में उरुक्षेत्र का पुत्र वत्स था । शुनकवंश का प्रथम राजा एक प्रद्योत हुआ है । (३००० ई. पू.) संभव है कि इसी प्रद्योत की बेटी वत्स को व्याही हो । धावक ने एक उदयन का भी वर्णन किया है । यह पांडवों के वंश की अंतावस्था में हुआ था । यह सब अति प्राचीन हैं । इस से ३६३१ ई० पू. के नेपालवाले श्रीहर्ष के हेतु धावक ने काव्य बनाया है, यह नहीं हो सकता । कन्नौज में जो श्री हर्ष नामक राजा था, जिसकी सभा में श्रीहर्ष नामक कवि का पिता रहता था वही श्री हर्ष धावक का स्वामी था ।

छतरपुर की लिपि का काल १०१९ है। चार पुस्त पहले यह काल ८५० संवत् में जा पड़ेगा। यशोविग्रह के पहले कदाचित् राजविष्णव हुआ हो और श्री हर्ष से यशोविग्रह तक दो एक राजे और हो गए हों तो आश्चर्य नहीं। प्रशस्ति के 'क्षमापालमाला सुदिवंगतासु' इस पद से ऐसा भलकता भी है। यशोविग्रह से लेकर जयचंद्र तक नामों में जितनी प्रशस्ति मिली हैं उन में बड़ा ही अंतर है। जो ताम्रपत्र मैंने देखा है उसका क्रम यह है — यशोविग्रह, महीचंद्र, चंद्रदेव, मदनपाल, गोविंदेन्द्र और जयचंद्र। जैनों ने इसी जयचंद्र को जयंतीचंद्र लिखा है और काशी का राजा लिखने का हेतु यह है कि "तीर्थानि काशीकुशिकोत्तरकौशलेन्द्रस्थानीयकानि परिपालयताभिगम्य" इस पद से स्पष्ट है कि काशी भी उस समय कन्नौजवालों के अधिकार में थी, इसी से काशी का राजा लिखा। और जयचंद्र के प्रपितामह या उस के भी पिता के काल में जो श्रीहर्ष कवि था उस को जयचंद्र के काल में लिख दिया। छतरपुर की लिपि में जो श्रीहर्ष राजा का पुत्र यशोधर्म लिखा है, वही यशोविग्रह मान लिया जाय और जयचंद्र उस के बड़े पुत्र का वंश और छतरपुर की लिपि वाले छोटे पुत्र के वंश में हैं, ऐसा मान लीजिए तो विरोध मिट जायगा। चंद्रदेव ने 'श्रीमद्गांधिपुराधिराज्यमखिलां दीर्घिक्रमेनार्जितम्' इस पर से कान्यकुब्ज का राज्य अपने बल से पाया यह भी भलकता है। इससे यह भी संभव है कि श्रीहर्ष का राज्य कन्नौज में शेष न रहा हो और चंद्रदेव ने नए सिरे से राज्य किया हो। यशोविग्रह के वंश की कई शाखा हैं इसका प्रमाण प्रशस्तियों के भिन्न भिन्न नामों ही से है। इस से ऐसा निश्चय होता है कि संवत् ९०० के लगभग जो श्रीहर्ष नामक कान्यकुब्ज का राजा था, उसी के हेतु रत्नावली आदि ग्रंथ बने हैं। कालिदास, विक्रम, भोज सब इस काल के सौ बरस के आस पास पीछे उत्पन्न हुए हैं और इसी से कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में धावक का परिचय दिया है। कल्हण कवि ने जो राजतरंगिणी में कालिदास या इसे श्रीहर्ष का नाम नहीं दिया उसका कारण यही है कल्हण का स्वभाव असहिष्णु था और कालिदास से कश्मीर के राजा भीमगुप्त से (जो ९७५ ई. के काल में राज्य करता था) महा वैर था, इस से उसने कालिदास का या उसके स्वामी विक्रम का नाम नहीं लिखा। कल्हण प्रायः सभी राजाओं की कुछ कुछ निंदा कर देता है, जैसा इसी हर्षदेव की, जिसकी और स्थानों में बड़ी स्तुति है, कल्हण ने निंदा की है। और ग्रंथकारों के मत में श्रीहर्ष बड़ा न्यायपरायण स्वयं महा कवि अति उदार था। पुकार सुनने के हेतु महल की भित्तियों पर घंटियाँ लटकती थीं। रात-दिन गुणियों से घिरा रहता था और अंत में संसार को असार जानकर त्यागी हो गया। कल्हण से हर्षराज से द्वेष का यह कारण है कि इस के स्वामी जयसिंह का बाप सुस्सल हर्ष के पोते भिक्षाचर को मार कर राज्य पर बैठा था।



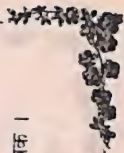
१. पूर्व में तुंगीन के काल में एक हर्ष हुआ है यह लिख भी आए है।



राजसूय के नाम	नाम राजाओं के	मूल की कीमत	द्वारे के मूल से समुद्र	कोनार्क के मूल से समुद्र	विष्णु के मूल से समुद्र	राज्य की कीमत	विशेष वर्णन
१	आदि गोवर्ध	६८८॥	०	०	१४००	ई. ३५।६	२४४८ ईसवी पूर्व, जरासंध के युद्ध में बलदेव जी ने मारा, प्रिसिप के मत से १०४५ ई. पू. नामांतर गोमंद वा अंगद, फारसीवालों के मत से राज्य १७ वरस : मुसलमानों का नाम आदि गंद ।
२	दामोदर	७२४	०	०	०	३०	गंधार देश के स्वयंवर में श्री कृष्ण ने इस को मारा और इस की यशोवती रानी को जो सगर्मा थी राज्य पर बैठाया ।
३	बालगोवर्ध *	७५४	०	०	०		श्री कृष्ण ने आप आकर राज पर बैठाया, महाभारत के युद्ध में विद्यमान था ।
३८	पैतीस राजे	१४६४	०	०	०	७१० *	इनके नाम कर्म कुछ भी विदित नहीं, मुसलमानों के मत से ये पैतीस नहीं सैतीस थे और पांडव वंश में थे ।
३९	लव	१४९९	०	०	५७०	३।८	लोलूर बसाया. नामांतर बाललव. मुसलमानों का लु. लोलूर में बीस लाख अस्सी हजार मनुष्यों की वस्ती थी. १७०९ ई. पू. ।

इस चक्र में राजाओं के नाम पर जहाँ * ऐसा चिन्ह दिया है वहाँ समझना चाहिए कि पूर्व वंश समाप्त होकर आगे से नया वंश चला ।





क्र.सं.	नाम राजा का	प्रा. क्रि. ए.	राज्य के मन से समग्र	कनिष्ठों के मन से समग्र	राज्य के मन से समग्र	राज्य का	विशेष वर्णन
४०	कुशिय	१५०२।८	०	०	०	६०	नामांतर कुश, १६६४ ई. पू. मुसलमानों का किशन ।
४१	सुगद	१५६२।८	०	०	०	३०।६	१६६० ई. पू. मुसलमानों के मत से काकापुर और कय नामक नगर बसाए । मुसलमानों का गुलकन्द ।
४२	सुरेन्द्र *	१५९३।२	०	०	०	३५।७	विल्फर्ड के मत से ३७० ई० पू. । मुसलमानों के मत से पठनपति हकीम को बुलवाया, ईरान के बादशाह बहमन को जीता । निस्सतान मरा । मुसलमानों के मत से इस की बेटी बहमन की ब्याही थी ।
४३	गोघर	१६२८।९	०	०	०	६०	१५७३ ई. पू.
४४	सुवर्ण	१६८८।९	०	०	०	६	स्वर्णनदी नाम की नदी पहाड़ छोड़ कर लाया ।
४५	जनक	१६९४।९	०	०	०	७१	मुसलमानों का बसरन ।
४६	शचीनर	१७६५।९	०	०	०	६२	१४७७ ई. पू. ।
४७	अशोक	१८२७।९	०	०	०	३०	मुसलमानों की सजीनरायन । १४७१ ई. पू. ।
							१३९४ ई. पू. यह शचीनर का भतीजा था । श्रीनगर इसी ने बसाया और जैन मत का प्रचार किया । मुसलमानों ने इस को शुकराज वा शकुनी का बेटा लिखा है । उस काल में श्रीनगर में छः लाख मनुष्य थे ।
४८	जलौक	१८५७।९	०	०	०	२५	जाति विभाग किया, सत्त्व प्रकृति स्थापन किया । नन्दिपुराण सुना । इसी को और ग्रंथकारों ने पटने के अशोक का पोता लिखा है । यवनराजा यूथिदेयुस को हराया । अन्तिओकस के साथ सुलहनामा किया । बड़ा प्रतापी था । १३३२ ई. पूर्व मुसलमानों का चक्रवक ।
४९	दामोदरद्वितीय *	१८८२।९	०	०	०	६०	१३०२ ई. पू. शैवमत का प्रचार हुआ ।

क्र. सं.	व्यक्ति का नाम	जन्म तिथि	मृत्यु तिथि	सं. सं.	सं. सं.	सं. सं.	सं. सं.
५२	हुक्का, बुष्क और कनिष्क *	१९४३/९	०	०	०	३५	३५
५३	अभिमान्यु	१९७७/९	०	०	०	३५	३५
५४	गोमर्द (३)	२०१२/९	११८२ ई. पूर्व	५३/३ ई. सन	११८२ ई. पूर्व	४५/६	४५/६
५५	विभीषण	२०५८/३	११४७	६१/९	११४७	३०/६	३०/६
५६	इन्द्रजित	२०८८/९	१०९३/६	७३/१	१०९६	३०/६	३०/६
५७	रावण	२११९/३	१०५८	७३/१	१०६०/६	३५	३५
५८	विभीषण(२)	२१५४/३	१०२८	८०/८	१०३०/६	३९/९	३९/९
५९	किन्नर	२१९४	९९२/६	८९/२	९९३	६०	६०
६०	सिद्ध	२२५४	९५२/९	९९/२	९५३/३	३०/६	३०/६
६१	उपल	२२८४/६	८९२/९	११४/२	८९३/३	३७/७	३७/७
६२	हिरण्य	२३२२/१	८९२/३	१२१/९	८६२/९	६०	६०

१९७७ ई. पू. ये तीनों तुर्क (किवा ततार) थे किंतु बौद्ध थे । शायसिंह को १५० बरस हुए थे । नागार्जुन सिद्ध इन्हीं के समय में हुआ और बौद्धमत को फैलाया ।

मुसलमानों का अभिमान्यु वा अभिबलन । १२१७ ई. पू. विल्फर्ड के मत से ४२३ ई. पू. बौद्धों को जीता, नीलपुराण सुना, महाभाष्य का प्रचार हुआ ।

प्रिसिप के मत से १०८ ई. पू., मुसलमानों ने इसका नाम कृष्ण लिखा है । विल्फर्ड के मत से ३८८ ई. पू. नागपूजा चलाया । विल्फर्ड के मत से ३७० ई. पू. मुसलमानों के मत से पञ्चनपति नाम राज्यकाल ५३।६।७।

वि. ३५२ । मुसलमान लेखकों ने इन्द्रजित रावण इन दोनों का राज्य ३६ वर्ष लिखा है ।

वि. ३३४. मुसलमानों ने इसके बेटे बरवाल का नाम और लिखा है और उसका राज्य भी ३५ बरस लिखा है ।

वि. ३१६. मुसलमानों ने लिखा है कि यह त्यागी था । इसका नाम पञ्चनपति था । यह आजाद राजा का बेटा और बड़ा कवि था । पहले इसका ज्येष्ठ पुत्र इंद्रायन गद्दी पर बैठा किंतु उसके दुष्कर्मों से दुष्टी होकर लोगों ने उसे मार डाला और इसको गद्दी पर बैठाया । वि. २९८. नामांतर नर, बौद्ध था, मुसलमानों ने इसको बड़ा क्रूर लिखा है और लिखा है कि दो वर्ष मात्र राज्य किया फिर राज्य कुछ दिन शून्य रहा ।

वि. २८०. मुसलमानों ने लिखा है कि धाय इसको छिपाये हुए थी । वि. २६२. आईनेअकबरी में इसका नाम आदित्य वल्लभ लिखा है । नामांतर उत्पलाक्ष, मुसलमानों का गुरुदत्त वा पलाशन, यह आँख का कंजा था ।

वि. २४४. नामांतर हिरण्यक्ष, मुसलमानों का तिरन्य ।

६३ हिरण्यकुल
६४ वसुकुल
६५ मिहिरकुल

२३८२।१	८२४।८	१३१।२	८२५।२	६०
२४४२।१	७६४।८	१४६।२	७६५।२	७०
२५१२।१	७०४।८	१६३।८	७०५।२	३९
२५४८।१	६३४।८	१७४।८	६३५।२	३०
२५७८।१	५७१।८	१८७।८	५७२।२	५२
२६३०।१	५४१।८	१९५।२	५४२।२	६०
२६९०।१	४८४।६	२०८।२	४९०	६०
२७४०।१	४२९।६	२२३।२	४३०	६०
२८१०।१	३६९।६	२३८।२	३७०	५७
२८९७।१	३०९।६	२५३।२	३१०	३६।३
२९०३।४	२५१।७	२६९।११	२५३	३४
२९३७।४	२१५।४	२७९	२१६।९	३२

६६ वक्
६७ क्षितिन्दन
६८ वसुन्द
६९ नर(२)
७० अक्ष
७१ गोगादित्य
७२ गोकर्ण
७३ नरेन्द्रादित्य
७४ अंघ्र्युधिष्ठिर *

वि. २२६, मुसल्मानों का हिरण्यकुल ।
वि. २१८, आईने अकबरी का एबिशाक, बड़ा विषयी था ।
वि. २००, दायर के मतसे नाम मुकुल, लंकार, चढ़ाई की, बड़ाकूर था, दारद, गांधारों और भाटियों का प्राबल्य हुआ, पहाड़ तोड़ कर हाथियों से ठोके हटाकर नदी निकलवाई । लंका में राजा का पैर छपा कपड़ा होता था । यह ऐसा कूर था कि एक बेर हाथी का पहाड़ पर से गिरना उस को अच्छा मालूम हुआ इस से सौ हाथी पहाड़ पर से गिरवा दिए । बहुत सी स्त्रियों को भी इसने मार डाला ।
वि. १८२, मुसल्मानों का जंग । इस को एक स्त्री ने बलि दे दिया ।
वि. १६४, क्षितिन्दन या नन्दन, मुसल्मानों का आनंदकांत, इसका बेटा कतानंद, उस को वसुन्द हुआ ।
वि. १४६, आईने अकबरी का विन्दन कामशास्त्र बनाया ।
वि. १२८, नामानर वर, आईने अकबरी का निर ।
वि. १००, आईने अकबरी का अत्र । मुसल्मान इतिहास-लेखकों ने इसका नाम लिखा ही नहीं है ।
वि. ८२ ई. पू. आईने अकबरी का कुलावती, मुसल्मानों का कोमानंद श्रैद्धिक धर्म की उन्नति की ।
वि. ६४ ई. पू. आ. अ. का करन ।
वि. ४० ई. पू. आ. अ. कर नन्द्रावत, मुसल्मानों का नतानंद, नामांतक लिखिल ।
वि. २८ ई. पू. अंघ्रसंज्ञा कमती सुखने से हुई, विषयी था । अंत में राज्य छोड़ कर भाग गया ।

७५ प्रनागान्त्य	२९६९।४	१६७।३	२८७।६	१६८।९	३२	वि. १० ई. पू. किसी विक्रमान्त्य का नानवार था । मुसलमानों के मत से नाम वरनगत है और मालवा से वहाँ आकर राजा हुआ ।
७६ इलीक (२)	३००१।४	१३५।३	३०३।६	१३६।९	२६	वि. २२ ई. सन आ. अ. का जगह ।
७७ नृवीन *	३०२७।४	१०३।३	३१९।३	१०४।९	८	वि. ४४ ई. मुसलमानों ने इसका नाम शनौचर और इस की रानी का नाम नक्षिणा लिखा है । नामांतर बंशीर । बड़ा भारी काल पड़ा, खजाना सब गरीबों को बाँट दिया । आकाश से लोगों के घर में कवूतर गिरे, बड़ा धर्मान्ना था । चंद्रक कवि ने नाटक काव्य बनाए ।
७८ विजय	३०३५।४	६७।३	३३८।६	६६।९	३७	वि. ९० ई. नामांतर अंबरी, मुसलमानों का विजयमल्ल ।
७९ जयेंद्र	३०७२।४	५९।३	३४१।६	६०।९	४७	वि. ९८ ई. नामांतर चंद्र: मुसलमानों का विजयेंद्र ।
८० सधिमन *	३११९।४	२२।३	३६९	२३।९	३४	नामांतर आर्यगज, जयेंद्र का मंत्री था । इसके विषय में यह विचित्र बात प्रसिद्ध है कि फौसी पट्टकर मर कर फिर जिया था । मुहम्मद अजीम ने अपने फारसी इतिहास में लिखा है कि त्रिस समय सधिमन शूली पर मर गया, उसी काल में राजा भी मर गया । तब प्रजा लोगों ने सधिमन मंत्री के पुत्र अरिराय को राज पर बैठाया और इस भाँति सधिमन के कपाल का लिखा पूरा हुआ । अरिराय विरागी होकर जगल में चला गया । फिर युधिष्ठिर का पोता गोपाल राजा, जो बड़ा ही सुंदर था, राजा हुआ, अपने ससुर खता के बान्शाह की मदद से काशीर का राजा हुआ था और सूरत तक जाता ।
८१ मंगवाहन	३१३।४	२४।९	३८३	२३।३	३०	गांधार (कंदहार) का था, वहाँ के राजा गोपादित्य ने इसे पाला था । चौदों को बसाया ।
८२ अंशुसेन	३१८३।४	ई. सन ५८।९	४००	५७।९	३०।२	मुसलमानों के अनुसार खता के बान्शाह की बेटी इसको व्याही थी । इसने प्रत्यक्ष पशु से घृणा करके पिष्ट की चाल चलाई । रणय को नौनार कहते थे, आईने अकबरी का मंगदहन ।
८३ हिरण्य *(२)	३२१३।६	८८।९	४१५	८७।३	४।९	तोरमान कुमार का प्रतिद्वंदी था । मुसलमानों ने लिखा है कि इसका भाई परवाहन इसका मंत्री था ।

८५ मातृगुप्त	३२१८।३	११७।११	४३०	११८।५	६०	विक्रमादित्य ने उज्जैन से भेजा। जाति का ब्राह्मण था। इस विक्रमादित्य का नाम हर्ष था। उस काल में लोग लगाट में त्रिशूल की मुद्रा देते थे। किंतु कालिदास वाला विक्रम नहीं है। यह प्राचीन वंश का था। शिलादित्य नामक गुजरात के राजा से लड़ा। मुसलमानों के अनुसार पुरवाहन का बेटा था। श्रीनगर फिर से बसाया। मुसलमानों ने शिलादित्य को विक्रमादित्य का बेटा लिखा है।
८५ प्रवरसेन	३२७८।३	१२३।८	४३२।६	१२२।२	३९	मुसलमान लेखकों में यहाँ बड़ा भेद है। वे लिखते हैं प्रवरसेन का बेटा चन्द्रग्री, उसने ७३ वर्ष ३ महीना राज्य किया, उस का बेटा लक्ष्मण, राज्यकाल ३ बरस उस का बेटा उपादित्य।
८६ युचिष्ठिर(२)	३३१७।३	१८३।८	४६४	१८५।२	०।८।१३	इसी का नामांतर कोई लक्ष्मण मानते हैं वा नद्रावत।
८७ नैर्झादित्य	३३१७।११।१३	२०४।११	४८३	२२४।५	३००*	इस का राज्यकाल ग्रंथ में तीन सौ वर्ष लिखने से अनुमान होता है कि इसके पीछे के कुछ राजाओं के नाम छूट गए हैं। चोलराज की बंटी ब्याही। मुसलमानों ने लिखा है कि महात्मा मुहम्मद इसी के समय में उत्पन्न हुए थे और इस को राज्य करते जब २५८ वर्ष बीते थे तब वह मक्के से मदीने गए अर्थात् सन् हिजरी आरंभ हुआ।
८८ रणादित्य	३३१७।११।१३	२१७।११	४९०	२३७।५	४२	गोर्नदवंश का अंतिम राजा, मुसलमानों का उपादान। मुसलमान लेखकों ने लिखा है कि उपलास नामक एक बड़ा पण्डित इसके समय में हुआ। इस के पास पन्थीस हजार खास के घोड़े और तीन लाख सवार और रात को प्रकाश करने वाले लाल थे। मुसलमानों के अनुसार पहले इसका बेटा चंद्रानंद, फिर उसका भाई खात्रीत, फिर उस से छोटा अलतादिन गद्दी पर बैठा।
८९ विक्रमादित्य	३३५९।११।१३	५१७।११	५५६।५	५३७।५	३७	नामांतर प्रजादित्य। ककोटक वंश का। यजोर्जिबर्द (Yezdjerd)
९० बालादित्य*	३३९६।११।१३	५५९।११	५७६।६	५७९।५	३६	का समकालीन।
९१ दुर्लभवर्धन	३७३२।११।१३	५९७।६	५९४।६	६१५।५	५०	

* तथा रणादित्य के बीच के राजाओं के नाम नहीं मिलते हैं सबका सम्मिलित राज्यकाल तीन सौ वर्ष दिया है। (सं.)

१२ प्रतापादित्य
१३ चन्द्रपीड

(२) ३७८२।११।१३ ६३३।३
३७९१।७।१३ ६८३।३

६३०।६
६८०।६

६५१।५
७०१।५

८।८
४।०।२४

१४ तारापीड
१५ ललितादित्य

३७९५।८।७ ६९१।११
३८२२।३।१८ ६९५।११

६८९।२
६९३।२

७१०।१
७१४।१

२६।७।११
१।०।१५

१६ कुबलापीड

३८२३।४।३

७३२।७

७२९।९

७५०।८

७

१७ वज्रादित्य *
१८ पृथिव्यापीड
१९ संग्रामापीड

३८३०।४।३ ७३३।७
३८३४।५।३ ७४०।७
३८३४।५।१० ७४४।८

७३०।९
७३७।११
७४१।११

७५१।८
७५८।८
७६२।१०

४।१
०।०।७
३

नामांतर दुर्लभक ।

नामांतर चंद्रानंद । बहुत धार्मिक था । इसके समय में भी क्षमाविक्रम नाम का कोई राजा था ।

मुसलमानों का रबाजीत ।

चमार की एक झोपड़ी मंदिर में पड़ती थी । वह नहीं देता था । राजा ने स्वयं उसको राजी किया । कन्नौज के यशोवर्म से लड़ा । खता और खतन तथा बुखारा गुजरात, तिब्बत, बंगाल तक जीता । बड़ा प्रतापी था । पृथ्वी में से राम लक्ष्मण की मूर्ति मिली, उनकी प्रतिष्ठा की । सनद और सुलहनामा लिखने की चाल थी । शाहि शब्द सर्वत्राचक था । भवभूति महाकवि इसी के समय में था । इस समय में देवताओं के भीतर द्रव्य भी रहता था । राजा लोग जैन मतवालों का भी आदर करते थे ।

मुसलमानों से गुलाम बेचने की चाल सीखी । मुसलमानों ने ललितादित्य का बेटा रमा वा रणानंद, उस का पुत्र सगरानंद या शकानंद राजा हुआ, यह क्रम लिखा है और इस के पीछे ललितादित्य का छोटा लड़का प्रहस्त गद्दी पर बैठा । ३१ वर्ष इन तीनों ने राज्य किया । इस के पीछे विजयानंद ४ वर्ष राजा रहा, फिर ३ वर्ष सगरानंद का बेटा रतिकाम राजा रहा और फिर २ वर्ष असदानंद राजा हुआ । करकोटक वंश का यह अंतिम राजा था । इस वंश में २००० वर्ष ५ महीना २० दिन राज्य रहा और जब वह वंश समाप्त हुआ तब हिजरी सन २०९ था ।

१०० जञ्ज *	३८३७।५।१०	७५१।८	७४८।११	७६९।१०	३१
१०१ जयापीड	३८६८।५।१०	७५४।८	७५१।११	७७२।१०	१२
१०२ ललितापीड	३८८०।५।१०	७५८।८	७८२।११	८०३।१०	७
१०३ संग्रामपीड	(२) - ३८८७।५।१०	७९७।८	७९४।११	८१५।१०	१२
१०४ बृहस्पति *	३८९९।५।१०	८०४।८	८०१।११	८२२।१०	३६
१०५ अजितापीड	३९३५।५।१०	८१६।८	८१३।११	८३४।१०	३
१०६ अनापीड	३९३८।५।१०	८५२।८	८४९।११	८७०।१०	३१
१०७ उत्सवापीड *	३९६९।५।१०	८५५।८	८५२।११	८७३।१०	२७
१०८ आदित्यवर्मा	३९९६।५।१०	८५७।८	८५४।११	८७५।१०	१८

जञ्ज जयापीड का साला था । जब जयापीड परदेश गया तब वह राज्य पर बैठ गया ।

गोरदेश के जयंत राजा की बेटी ब्याही । गुजरात के राजा भीमसेन को जीता । विद्या का प्रचार किया । ८४१ महाभाष्य की पुस्तक मंगाई । क्षीर और उदमट पंडित तथा मनोरथ, शंखदत्त, चटक, संधिमान और वामन इत्यादि इस के सभा के कवि थे। दारका नगर बसाया और मूर्ति स्थापना की । तबि के दीनार अपने नाम के चलाए । उस समय नेपाल का राजा अरमुंड था । शंभुकि ने मुक्तामयुद्ध नामक काव्य मम्म और उत्पल की लड़ाई का बनाया । इस का नामांतर विजयदित्य था । लोग गंजों में टिकते थे ।

नामांतर पृथिव्यापीड ।

नामांतर चिण्टजय । वैश्यापुत्र था । इसके पांच भाइयों ने इस के नाम से राज चलाया । इन्हीं लोगों ने राज्य पर बैठाया ।

ककोटकवंश का अंतिम राजा ।

नामांतर अर्वावर्तवर्मा । बड़ा काल पड़ा । बहुत से इतिहासवेत्ताओं का निश्चय है कि जालंधर के यादव राजाओं से इस का वंश निकला है । मुसलमानों ने लिखा है कि यह सखतवर्मा (शक्तिवर्मा) — का पुत्र था और अपने रिश्तेदार शिववर्मा मंत्री की सहायता से गद्दी पर बैठा । इस का राज्य अठ्ठाईस बरस तीन महीना तीन दिन ।

१०९ शंकरवर्मा	४०१४।५।१०	८८६।८	८८३।२	९०४।१	२	गुर्जर और भोज से लड़ा। बड़ा उदल था। नामांतर श्रीवमा या शिववर्मा। मु. राज्यकाल १७ बरस ७ महीना १९ दिन।
११० गोपालवर्मा	४०१६।५।१०	९०४।८	९०१।१०	९२२।९	०।१०।२०	जबानी में मारा गया। इस का मंत्री प्रपाकरदेव बड़ा लोभी था। इसने अपने जामाता लकुज को शाहराज की पदवी देकर बड़े पद पर पहुँचाया किन्तु यही पीछे से राजा मंत्री दोनों की मृत्यु का कारण हुआ।
१११ संकटवर्मा *	४०१६।६।१०	९०६।८	९०३।१०	९२४।९	२	वर्मवंश का अंतिम राजा। मुसलमानों के मत के अनुसार यह गोपालवर्मा का वास्तविक भाई नहीं था, मुँहबोला भाई था। पार्य को राज्य पर बैठाया। शंकरवर्मा की स्त्री थी। तलारी और एकांग जाति ने उपद्रव किया। निर्व्रितवर्मा का पुत्र था।
११२ सुगंधारानी	४०१८।६	९०६।९	९०३।१०	९२४।९	१०	पुत्र था।
११३ पार्य	४०२८।६	९०८।८	९०५।१०	९२६।९	८	पुत्र था।
११४ निर्व्रितवर्मा	४०३६।६	९२४।९	९२०।१०	९४१।९	१४	जातिवृद्ध हुआ, राजचक्र में बड़ा गड़बड़ हुआ।
११५ चक्रवर्मा	४०५०।६	९२५।९	९२१।१०	९४२।९	१	मुसलमानों का शिववर्मा।
११६ सूरवर्मा या शूरवर्मा	४०५१।६	९३६।९	९३१।१०	९५२।९	५	फिर से गद्दी पर बैठा।
११७ पार्यवर्मा	४०५६।६	९३७।९	९३२।१०	९५३।९	०	फिर से बैठा।
११८ चक्रवर्मा	४०५६।६	९३८।९	९३३।१०	९५४।३	०	राजतरंगिणी में इस का नाम नहीं है। मुसलमानों ने इस का नाम शंकर दास लिखा है और लिखा है कि यह बड़ा ही क्रूर था।
११९ शंकरवर्धन	४०५६।६	९३९।३	९३३।१०	९५४।८	०	तीसरी बेर गद्दी पर बैठा।
१२० चक्रवर्मा	४०५६।६	९३९।७	९३५।१०	९५६।३	२	अव्रतिवर्मा नामांतर।
१२१ उन्मत्तवर्मा	४०५८।६	९३९।११	९३६।८	९५७।७	१	
१२२ शूरवर्मा (२)	*४०५९।६	९४१।११	९३८।१०	९५९।८	९	
१२३ यज्ञस्करदेव (वर्णद)	४०६८।६	९४२	९३९	९६०	०।६।१०	इसके पीछे वर्णद ने ६ दिन राज्य किया। प्रमाकरदेव का पुत्र था। बड़ा ही उत्तम राजा हुआ है अंत में फकीर हो गया।

कहते हैं कि मम्मट इस समय में था । मुसलमान लेखकों ने लिखा है कि संग्रामदेव का लड़का अग्रान था । इस को इसकी मा ने मार डाला । उस का पुत्र एक बरस राज कर के दादी के दर से फकीर हो गया । फिर तृपुवनगुप्त और बहमन । (मिगुप्त) — गद्दी पर बैठे पर इन की दादी ने इन को मार डाला । फिर विग्रहदेव राजा हुआ । यह विद्या का भतीजा था । इस को भी नृसिंहराय नामक विद्या के साधक वज्रार ने मार डाला ।

पर्वगुप्त ने मार डाला ।
सुरेश्वरी क्षेत्र में मारा गया ।
बौद्धों के बहुत से विहार तोड़ डाले । किसी के मत से आठ बरस ।

इस की दादी दिव्यानी ने इस को मार डाला ।
तथा ।
धृग्यार्च्य और पिप्पल पंडित इस की सजा में थे ।
कालिदास तथा श्रीहर्षादि कवि और एक विद्वान भी इसी के समय में थे । अर्थात् इस समय से हर्ष के राज्यागम तक कवियों के उदय का काल था ।
पूर्वोक्त तीनों को मार कर राज पर बैठी ।
इसके काल में हमीर नामक तुर्क ने चढ़ाई की और हार पाई ।

संग्रामदेव ने वृत्तकथा में अंशतः का पिता संग्रामदेव लिखा ।
हरि ने २२ दिन मात्र राज्य किया था, फिर अंशतः राजा हुआ । अंशत ने फौज के लोगों को एक बर १२ करोड़ काश्मीरी रुपया बाँटा था ।

१२५ संग्रामदेव *

१२६ पर्वगुप्त

१२७ क्षेमगुप्त

१२८ अमिमन्युगुप्त

१२९ नंदिगुप्त

१३० तृपुवनगुप्त

१३२ भीमगुप्त

१३३ दिव्या

१३४ संग्रामदेव

१३५ हरिराज और

अंशतदेव

११३१०

४६

१३११०

११२

४

५

२३

९६९

९६९

९७१

९७९

९९३

९९४

९९६

९४८

९४८

९५०

९५८

९७२

९७३

९७५

०

९५१

९५२

९६१

९७५

९७६

९७८

४०६९

४०७०

४०७४

४०८८

४०८९

४०९४

४०९९

४१२२

४१४६

४१९९

४१२२

४१४६

४१९९

१००१

१०२४

१०३२

१००१

१०२४

१०३२

२४

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

५२४१७

१३६ कलाश	४२०७।२।७	०	१०८०	१०५४	०।०।२३	मुसलमानों का गुलशन । विल्हण ने अपने विक्रमांक चरित में इस की बड़ी स्तुति लिखी है । इसकी माता का नाम सुमटा और मामा का नाम लोहराखण्डल क्षितपति था । ये लोग वैष्णव उदार और पंडित थे ।
१३८ उत्कर्ष और हर्ष *	४२०७।३	०	१०८८	१०६२	१०।४।२	विल्हण ने इन का एक भाई विजयमल्ल नामक और लिखा है । सोमदेव ने वृहत्कथा इसी के समय में बनाई । और लेखकों के मत से इस ने १२ वर्ष राज्य किया था । चालुक्य वंश में एक विक्रम उस समय भी था । और लेखकों का मत है कि यह पिता पुत्र भाई सब एक काल में बुढ़ा बुढ़ा राज्य बाँटकर करते थे । मुसलमानों ने लिखा है कि १२०० मशालें नित्य इस की समा में बलती थीं और बड़ा ही न्यायी था ।
१३९ उदयन विक्रम *	४२१७।७।२	०	११००	१०६२	०	हर्ष से राज्य पाया । नामांतर उद्दाम विक्रम वा उच्चल । मुसलमानों का वाजिल ।
१४० शंखराज	४२१७।७।२	०	११००	१०५२	०।१।२०	उच्चल को मार कर राज पर बैठा । नामांतर रड्ड । इस को उच्चल के भाई सुस्सल ने मार डाला । मुसलमानों ने इसका नाम दैन लिखा है ।
१४१ सल्ह	४२१७।८।२२	०	१११०	१००२।०	१६	इन राजाओं के समय में बड़ी लड़ाई हुई । मुसलमानों ने इस का नाम असस और इसके भाई का नाम पंजिल लिखा है ।
१४२ सुसल्ह	४२३३।८।२२	०	११११	१०७२	०।६।०	मल्लादेव का छोटा बेटा उच्चल का भाई ।
१४३ मिश्राचर *	४२३४।२।२२	०	११२७	१०८८	२२	मुसलमानों का जैनक । मुसलमानों ने इस के राज्य का अंत ५३५ हिजरी में लिखा है । राजतरंगिणी बनी । शक के १०७० में यहाँ तक पूरा हिसाब करने से गत कलि इसकी हिजरी संवत् शाका सब दश पंद्रह बरस के हेरफेर में ठीक हो जाते हैं ।
१४३ जयसिंहदेव	४२५६।२।२२	०	११२७	१०८८	९।६	

१४५ परमान

१४६ बन्दिदेव

१४७ पोयदेव

१४८ जस्सदेव

१४९ जगदेव

१५० राजदेव

१५१ संग्रामदेव

१५२ रामदेव

१५३ लक्ष्मणदेव *

१५४ सिंहदेव *

१५५ सिंहदेव *

१५६ श्रीरिछण *

१५७ कोटारानी

(२)

४२६५।८।२२ ०
४२७२।८।२२ ०
४२८१।८।२२ ०
४३०६।८।२२ ०
४३२०।८।२२ ०
४३४३।८।२२ ०
४३५९।८।२२ ०
४३८०।९।२२ ०
४३८४।३।२४ ०
४३९८।७।२४ ०
४४१७।७।२४ ०
४४२०।९।२४ ०
४४३६।१०।२४ ०

११४९
११५९
११६६
११७५
११९३
१२०८
१२३१
१२४७
१२६८
१२८१
१२९२
१३१८
१३३४

१११०
१११९
११२६
११३५
११७३
११६७
११९०
१२०६
१२२७
१२६१
१२७०
१२९४
२२९४

७
९
२५
१४
२३
१६
२१।१
३।६।२
१४।४
१९
३।२
१६।१
३।५।०

पोयदेव का भाई था, खन्ती था, किसी के मत से १८ बरस ।

टायर के मत से नाम उदयदेव, भोटवंश का ।

रिछण सुलतान के काल में द्वितीय कालस्वरूप दुल्लव नामक मुगल ने (जो न मुसल्मान था न हिंदू) कश्मीर में प्रवेश करके वहाँ के नगर, मंदिर, अट्टालिका, बगीचा सब निर्मूल कर दिया और मनुष्यों को घास की भाँति काट कर देश उजाड़ कर दिया । मानों आर्यों का राज्य नाश होता है यह समझ कर ईश्वर ने कश्मीर की प्राचीन शोभा ही शेष नहीं रखी । फिर कोटारानी के साथ उसके पालित दास शाहमीर ने विश्वासघात और कृतघ्नता करके अपने को राजा बनाया और कोटा से विवाह करने को विचारी को तंग किया । पहले कोटा भागी किन्तु पकड़ आने पर ब्याह करना स्वीकार किया । ब्याह की महफिल सजी गई । जब दुलहिन शृंगार करके निकाह पढ़ाने आई, साथ में कटार छिपाकर लाई । ठीक विवाह के समय कटार पेट में मारकर

मर गई । अंत समय कहा 'ले विश्वासघातक जिस शरा को तू चाहता है यह तेरे सामने है !!! हिन्दुओं का राज्य इसी के साथ समाप्त हुआ । कुछ कम चार हजार बरस आर्य लोगों ने कश्मीर का भोग किया ।
नामांतर शम्भुदीन ।

तैमूर का आना । यह ऐसा कट्टर मुसलमान था कि केवल कश्मीर के प्राचीन मंदिर ही नहीं तोड़े, अपने सारे कश्मीर मंडल में संस्कृत के चितने ग्रंथ मिले सब को दीवार की नेव में डाल दिया !!! हा ! आज वे ग्रंथ होते तो न जाने क्या क्या बात हम लोग जानते ।

फकीर हो कर मक्के चला गया । कोई कहता है कि जैनुलाबदीन की कैद में मरा ।
नामांतर बडुशाह व शाही खाँ । पंचाइन की अदालत (Local Self-Government) जारी किया ।
बड़ा विपयी था । दीवार के नीचे दब कर मर गया ।
बड़ा विपयी था ।

१५८ शाहमीर	४४४१।०।२४	०	१३४।६।१०	०	१।११
१५९ जमशेद	४४४२।११।२४		१३७।५		१२
१६० अलाउद्दीन	४४५४।११।२४		१३९।४		१८
१६१ शहाबुद्दीन	४४७२।११।२४		१३५२।०।२३		१६
१६२ कुतुबुद्दीन	४४८८।११।२४		१३७०।०।२३		२४
१६३ सिकंदर	४५१२।११।२४		१३८६।०।२३		७
१६४ अलीशाह	४५१९।११।२४	०	१४१०।०।२३	०	५०
१६५ जैनुलाबदीन	४५६९।११।२४		१४१७।०।२३		२
१६६ हैदरशाह	४५७१।११।२४		१४६७।०।२३		१२
१६७ हसन	४५८३।११।२४		१४६९।०।२३		२
१६८ मुहम्मद	४५८५।११।२४		१४८१।०।२८		११
१६९ फतहशाह	४५६९।११।२४		१४८३।७।२८		३१
१७० मुहम्मद (२ बेर)	४६२७।११।२४		१४९१।७।२८		२२
१७१ फतह (३ बेर)	४६४९।११।२४		१५१३।५।७		१
१७२ मुहम्मद (३ बेर)	४६५०।११।२४		१५१४।५।७		३
१७३ फतह (२ बेर)	४६५३।११।२४		१५१७।५।७		३

१७४ मुहम्मद (४ बेर)	४६५६।११।२४	१५२०।५।७	७	शम्सुद्दीन, इस्माइलशाह, इबराहीमशाह, हबीबशाह, अलीशाह और गाज़ीशाह इतने बादशाहों के नाम यहाँ भिन्न भिन्न तवारीखों में और मिलते हैं।
१७५ नाबुकशाह	४६६४	१५२७।५।७	३	शीओ को बड़ी हर्दशा से मारा। नाबुकशाह के नाम से राज्य करता रहा।
१७६ मुहम्मद (५ बेर)	४६६७	१५३०।५।७	७	बीच में हमारू के समय से उस के मरने तक कामरों का काश्मीर में आना और उपद्रव करना और अनेक उपद्रवों में २५ या ३० वर्ष काल नष्ट हुआ।
१७७ नाबुकशाह (२ बेर)	४६७४	१५३७।५।७	४	मुसल्मानों के मत से नौ बरस, राजवली में ६ वर्ष। और लोगों का राज्य स्फुट रहा ऐसा लिखा है।
२ बेर				राजवली में लोहर के पुत्र याक़ब का राज्य एक वर्ष लिखा है।
१७८ मिरज़ाहंजर	४६७८	१५४१।५।७	०	राजा भगवान दास से लड़ कर अपने नाम का सिक्का जारी किया।
१७९ हुमायूँ	४६७८	०	११	
१८० गाज़ीशाह	४६८९		६	
१८१ हुसैनशाह	४६९५		९	
१८२ अलीखाँ आदिलशाह	४७०४		१	
१८३ युसुफ़शाह *	४७०५		१	
१८४ सैयदमुबारकखाँ	४७०६		०।२	
१८५ लोहरशाह	४७०६		३	
१८६ युसुफ़शाह (२ बेर)	४७०९		१	
१८७ याक़बशाह	४७१०		०	
१८८ हुसैनशाह *	४७१७		०	
१८९ शमसी चक *	४७११		१९	



१९० अकबर	४७३०	२२	१५८३ में अकबर ने कश्मीर लिया । इस प्रसिद्ध और बुदिमान बादशाह की कहानी संसार में प्रसिद्ध है ।
१९१ जहांगीर	४७५२	२२	सन् १६०५ में तख्त पर बैठे, १६२७ ई. में मरा ।
१९२ शाहजहाँ	४७७४	३१	१६२८ में तख्त पर बैठे, १६५९ में औरंगजेब ने कैद किया । १६६४ में मरा ।
१९३ औरंगजेब	४८०५	४८	१७०७ में मरा ।
१९४ मुअज्जमबहादुर शाह आलम	४८३६	५	औरंगजेब के पीछे मुसल्मानों का राज्य शिथिल हो गया इससे कई बादशाह हुए । सब नाम यथाक्रम लिए जाँय तो पहले आज़िम, फिर मुअज्जम जहांगीरशाह फर्रुख़सियर, रफीउल्लेख, रफीउल्लेख, निकोसियर, मुहम्मदशाह, इब्राहीमशाह, अहमदशाह, आलमगीरसानी, शाहजहाँ, शाहआलम, बेवारबख्त, अकबरसानी और बहादुर शाह ये नाम होंगे ।
१९५ जहांगीरशाह	४८३७	१	१७१९ में तख्त पर बैठे । *
१९६ फर्रुख़सियर	४८४३	६	
१९७ मुहम्मदशाह *	४८६३-	२०	
१९८ नादिरशाह *	४८७८	१५	
१९९ अहमदशाह *	४८७९	१	सन् ११५१ हिजरी में नादिरशाह का खुतबा कश्मीर में पढ़ाया गया किन्तु नादिर के मरने पर कश्मीर फिर कुछ दिन गड़बड़ में रहा । ११६१ हिजरी में अहमद शाह के वजीर अस्मत्तुद्दीन खाँ ने चढ़ाई की थी पर हार गया । ११६६ हिजरी में पूरी तरह कश्मीर अहमद के अधिकार में आया ।
२०० राजसुखजीवन *	४८८७	८	इसने बागों होकर आठ वर्ष चार महीने राज्य किया ।
२०१ अहमदशाह	४८९६	९	११७५ हिजरी में फिर अहमदशाह की सेना ने जीता । महानंद पंडित और कैलाश पंडित नाम इसके दोबानों ने

२०२ तैमूरशाह *	४९२०	२०	प्रबन्ध किया । ११७९ में बड़ी बड़ी लड़ाई हुई । ११८४ में गद्दी पर बैठा । ३ महीने बड़ा भूकंप हुआ । पहले बजीर ने बड़ा उपद्रव किया, बहुत से लोग जल में डूबा दिये । तब पंडित दिलाराम नामक बड़ा बुद्धिमान यहाँ का सूबा हुआ । यह बड़ा बुद्धिमान था । अंत में पहले बजीर के बेटे को फिर सूबेदारी मिली और इसने भी बाप की भाँति महा अनर्घ किया ।
२०३ जमाशाह	४९४६	२६	१२०८ हिजरी में गद्दी पर बैठा । दीवान नवराम कश्मीर का सूबेदार हुआ ।
२०४ सुलतानमहमूद		०	इन दोनों के काल का विशेष वृत्त नहीं ज्ञात हुआ । जमाशाह के २६ वर्ष में इन दोनों का भी समय समझना चाहिये । *
२०५ शाहशुजा *		०	महाराज रणजीतसिंह ने कोहनूर हीरा इसी से लिया था ।
२०६ महाराज रणजीतसिंह	४९४६	२१	१२३४ हिजरी अर्थात् १८१८ ईस्वी १८७५ संवत् में कश्मीर जीता । कश्मीर जीतने की तारीख ।
२०७ महाराज खड्गसिंह	४९४७	१४	बोलो जी वाह गुरूजी का खालसा, बोलो जी वाह गुरूजी की फतेह ।
२०८ कुँवर नौनिहालसिंह	४९४७	०१०।१	१८९६ संवत् में महाराजा रणजीतसिंह मरे और ये राज पर बैठे ।
२०९ महाराज शेरसिंह	४९५०	३	ये अपने पिता की किया करके आये उसी समय पत्थर के नीचे दबकर मर गये । इनको सिंघावलों ने मार डाला ।

*तैमूरशाह (सन् १७७३-९३), जमाशाह (सन् १६९३-१८०० ई.) सन् १८१८ ई. में रणजीतसिंह के कश्मीर विजय करने तक महमूद, दोस्त महम्मद और शुजा का समय है । (सं.)



२१० महाराजदलीपसिंह	४९५२				२
२११ राजराजेश्वरी विकटोरिया *	४९५२				०।०।७
२१२ महाराजगुलाबसिंह	४९६३				११
२१३ महाराजगणबीर सिंह	४९७०				

बालक अवस्था में नाममात्र को राजा थे। अब विलायत में पेशनि पाते हैं।

सन १८४६ ईस्वी संवत् १९०२ में सर्कार ने पंजाब जीता ; सात दिन मात्र कश्मीर सर्कार के अधिकार में रहा। १८४६ ईस्वी के १६ मार्च को सर्कार से कश्मीर इन्होंने पाया। *

संवत् १९१४ में महाराज गुलाबसिंह के मरने पर ये राजा हुए। अब कश्मीर का रकबा २५००० और आमदनी ५०००० समझी जाती है।

* सन १८३९ ई. में रणजीत सिंह की मृत्यु हुई और सात वर्ष बाद गुलाब सिंह राज हुए। (प.)

बादशाहदर्पण

अर्थात्

[हिन्दुस्तान के मुसलमान बादशाहों के समय और जन्म
आदिक मुख्य बातों के वर्णन का चक्र]

इसमें मुसलमान राजाओं का वृत्तान्त है। अनेक ऐसी भी बातें हैं जिनका वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। यह सन् १८८४ में पहली बार छपा है। अकबर ने काश्मीर के एक हिन्दू मन्दिर का जिर्णोद्धार करा उस पर आज्ञा खुदवायी थी वह भी इस ग्रन्थ में प्रकाशित है। — सं.

भूमिका

रामायण में भगवान् वाल्मीकिजी ने कहा है जो वस्तु हुई है नाश होगी, जो खड़ी है गिरैगी, जो मिले है बिछुड़ेगे, और जो जीते हैं अवश्य मरेंगे। सच है इस जगत की गति पहिए की आर की भाँति है। जो आर अमी ऊपर थी नीचे गई और जो नीचे थी ऊपर हो गई। आधीरात को सूर्य का वह प्रचंड तेज कहाँ है जो दोपहर को था ? दिन की ठंडी किरनों से जो हरा करने वाला चंद्रमा कहाँ है ? संसार की यही गति है। जो भारतवर्ष किसी समय में सारी पृथ्वी का मुकुटमणि था, जिसकी आन सारा संसार मानता था और जो विद्या वीरता और लक्ष्मी का एक मात्र विश्राम था वह आज हीन दीन हो रहा है — यह भी काल का एक चरित्र है।

जब से यहाँ का स्वाधीनता सूर्य अस्त हुआ उसके पूर्व समय का उत्तम श्रृंखलाबद्ध कोई इतिहास नहीं है। मुसलमान लेखकों ने जो इतिहास लिखे भी हैं उनमें आर्यकीर्ति का लोप कर दिया है। आशा है कि कोई माई का लाल ऐसा भी होगा जो बहुत सा परिश्रम स्वीकार कर के एक बेर अपने 'बाप दादों' का पूरा इतिहास लिख कर उनकी कीर्ति चिरस्थायी करेगा।

इस ग्रंथ में तो केवल उन्हीं लोगों का चरित्र है जिन्होंने हम लोगों को गुलाम बनाना आरंभ किया। इस में उन मस्त हाथियों के छोटे छोटे चित्र हैं जिन्होंने भारत के लहलहाते हुए कमलवन को उजाड़ कर पैर से कुचल कर छिन्न भिन्न कर दिया। मुहम्मद, महमूद, अलाउद्दीन, अकबर और औरंगजेब आदि इन में मुख्य हैं।

प्यारे भोले भाले हिन्दू भाइयो ! अकबर का नाम सुनकर आप लोग चौंकिए मत । यह ऐसा बुद्धिमान शत्रु था कि उसकी बुद्धि-बल से आज तक आप लोग उस को मित्र समझते हैं । किन्तु ऐसा है नहीं । उस की नीति (Policy) अंगरेजों की भाँति गूढ़ थी । मूख और गजेब उसको समझा नहीं, नहीं तो आज दिन हिन्दुस्तान मुसलमान होता । हिन्दू-मुसलमान में खाना पीना व्याह शादी कभी चल गई होती । अंगरेजों को भी जो बात नहीं सूझी वह इस को सूझी थी ।

यद्यपि उस उर्दू शैर के अनुसार 'बाग़बाँ आया गुलिस्ताँ में कि सैयाद आया । जो कोई आया मेरी जान को जल्लाद आया ।' क्या मुसलमान क्या अंगरेज़ भारतवर्ष को सभी ने जीता, किन्तु इन में उनमें तब भी बड़ा प्रमेद है । मुसलमानों के काल में शत सहस्र बड़े बड़े दोष थे किन्तु दो गुण थे । प्रथम तो यह कि उन सबोंने अपना त्वर यहीं बनाया था इससे यहाँ की लक्ष्मी यहीं रहती थी । दूसरे बीच बीच में जब कोई आप्रही मुसलमान बादशाह उत्पन्न होते थे तो हिन्दुओं का रक्त भी उष्ण हो जाता था इससे वीरता का संस्कार शेष चला आता था । किसी ने सच कहा कि मुसलमानी राज्य हैज़े का रोग है और अंगरेजी क्षयी का । इनकी शासनप्रणाली में हम लोगों का धन और वीरता निःशेष होती जाती है । बीच में जति-पक्षपात, मुसलमानों पर विशेष दृष्टि आदि देख कर लोगों का जी और भी उदास होता है । यद्यपि लिबरल दल से हमलोगों ने बहुत सी आशा बाँध रखी है पर वह आशा ऐसी है जैसे रोग असाध्य हो जाने पर विषवटी की आशा । जो कुछ हो, मुसलमानों की भाँति इन्होंने हमारी आँख के सामने हमारी देवमूर्तियाँ नहीं तोड़ीं और स्त्रियों को बलात्कार से छीन नहीं लिया, न घास की भाँति सिर काटे गए और न जबरदस्ती मुँह में धूक कर मुसलमान किए गये । अभागे भारत को यही बहुत है । विशेषकर अंगरेजों से हम लोगों को जैसी शुभ शिक्षा मिली है उसके हम इनके ऋणी हैं । भारत कृतघ्न नहीं है । यह सदा मुक्तकंठ से स्वीकार करेगा कि अंगरेजों ने मुसलमानों के कठिन दंड से हमको छुड़ाया और यद्यपि अनेक प्रकार से हमारा धन ले गए किन्तु पेट भरने को भीख माँगने की विद्या भी सिखा गए ।

मेरे प्रमातामह राय गिरधरलाल साहब, जो यावनी विद्या के बड़े भारी पंडित और काशीस्थ दिल्ली के शहजादों के मुख्य दीवान थे, उन की इच्छा से दिल्ली के प्रसिद्ध विद्वान सैयद अहमद ने एक ऐसा चक्र बनाया था, जिसमें तैमूर से लेकर शाहआलम तक सब बादशाहों के नाम आदि लिखे थे । उस फारसी ग्रंथ से इस में बहुत सी बातें ली गई हैं, इस कारण तैमूर के पूर्व के बादशाहों का वर्णन इतना पूरा नहीं है जितना तैमूर के पीछे है । फिर मेरे मातामह राय खिरोधरलाल ने बहादुरशाह के काल के आरंभ तक शेष वृत्त संग्रह किया । और और बातें और स्थानों से एकत्र की गई हैं । इसमें परंपरागत बहुत से बादशाहों के नाम हैं जो और इतिहासों में नहीं मिलते ।

यद्यपि इस से कुछ विशेष उपकार नहीं है किन्तु हम लोगों को इस से बहुत सा कौतुहल शांत होगा जब हमलोग इस में बादशाहों की माता आदि के नाम जो अन्य इतिहासों में नहीं हैं, पढ़ेंगे ।

नंबर	नाम बादशाहों का	बाप का नाम	जाति	राज्य पाने का समय	अवस्था	मरने का समय	मृत्यु का कारण	विवरण
१	कुतुबुद्दीन ऐबक	०	गोरी बादशाहों का दास	१२०६	बूढ़ा होकर मरा	१२१०	घोड़े से गिर कर	पहले शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी का गुलाम था। सन् ११९३ में जब पृथ्वीराज से दिल्ली ली तब मुहम्मद इसी को यहाँ का राज दे गया। यहाँ गुलाम हिन्दुओं की गुलामी का मूल है। (सन् १२०६ में मुहम्मद मरा। स.)
२	आरामशाह	कुतुबुद्दीन	०	१२१०	नहीं मालूम	०	०	साल भर तख्त पर नहीं रहा कि शमसुद्दीन अलतिमश ने उतार दिया।
३	शमसुद्दीन अलतिमश	०	०	१२१०	०	१२३६	स्वभाविक	बहुत देश जीते। चंगेजखाँ इसीके काल में आया।
४	रुकनुद्दीन फीरोजशाह	शमसुद्दीन अलतिमश	०	१२३६	०	०	०	सात ही महीने तख्त पर रहा। बड़ा विषयी और निकम्मा था।
५	रजिया बेगम	तथा	०	१२३६	०	१२३९	मारी गई	बड़ी सावधान थी। हबशी गुलाम पर विशेष कृपा करने के कारण लोगों ने मार डाला।
६	मुईजुद्दीन बराम	तथा	०	१२३९	०	१२४१	कैद में मरा	बड़ा मूर्ख था।
७	अलाउद्दीन मसऊद	फीरोजशाह	०	१२४१	०	१२४६	मारा गया	बहुत अच्छे स्वभाव का था।
८	नासिरुद्दीन महमूद	अलतिमश	०	१२४६	बूढ़ा होकर मरा	१२६६	स्वभाविक	महमूद का बहनोई था।
९	गयासुद्दीन बलबन	०	०	१२६६	२० वर्ष	१२८८	०	मूर्ख था।
१०	मुईजुद्दीन कैकुबाद	कुराखाँ (बलबन का बेटा)	०	१२८६	२० वर्ष	१२८८	मारा गया	सीधा था।
११	जलालुद्दीन फीरोजखिलजी	०	खिलजी पठान	१२८८	बूढ़ा	१२९५	तथा	

१२	अलाउद्दीन	जलालुद्दीन का भतीजा	तथा	१२९५	अधेड़	१३१६	स्वामाधिक	बड़ा दुष्ट था । पहले आगे बड़े चाचा को मरवाया फिर अनेक पाप किए । चितौर, रणथम्भौर, प्रथम विश्वनाथ का मन्दिरादि इसी चांडाल ने तोड़ा । बड़ा ही क्रूर और उपद्रवी था ।
१३	कुतुबुद्दीन मुबारकशाह	अलाउद्दीन	तथा	१३१६	०	१३२१	हिन्दू गुलाम के बाप की भाँति गोत्रहंता और क्रूर था । विशेषता हाथ मारा गया यह थी कि आप विषयी और नीच भी थे । इसके पीछे चार महीने इसके गुलाम खुसरो खाँ ने सिकका चलाया ।	
१४	गयासुद्दीन	०	तुगलक	१३२१	०	१३२५	काठ के मकान अच्छा था । के नीचे दब कर मरा	
१५	फखरुद्दीन महम्मद तुगलक (अलगखी)	गयासुद्दीन	तथा	१३२५	०	१३५१	स्वामाधिक	राजा शिवप्रसाद के लिखने के अनुसार बड़ा दाता, बड़ा पंडित, बड़ा बुद्धिमान, बड़ा भाग्य- वान, बड़ा वीर, बड़ा मूर्ख, बड़ा क्रूर, बड़ा भक्तकी और बड़ा पागल था ।
१६	फिरोजशाह	मुहम्मद	तथा	१३५१	९०	१३८८	तथा	अच्छा था । बहुत से धर्मार्थ काम किए ।
१७	गयासुद्दीन	फिरोजशाह	तथा	१३८८	०	१३८९	मारा गया	पाँच महीने राज्य किया । मूर्ख था ।
१८	अबूबकर	तथा (पोता)	तथा	१३८९	०	०	कैद में मरा	एक वर्ष भी पूरा राज्य न किया ।
१९	नासिरुद्दीन	तथा	तथा	१३९०	०	०		
२०	मुहम्मद हुमायूँ सिकंदरशाह	नासिरुद्दीन	तथा	१३९४	०	१३९४	स्वामाधिक	केवल ४५ दिन बादशाह था ।
२१	नासिरुद्दीन महमूद	सिकंदर शाह	तथा	१३९४	०	१४१२	तथा	

नं. बादशाहों के नाम उनके पिता के नाम माता के ज्ञाति जन्म का वर्ष कहां राज्य किस अवस्था किस सन् में फारसी में राज पर बैठने की तारीख

१ अमीर तैमूर
साहब किरान
कुतुबुद्दीन

अमीरबुरगान

नागिना
खानू

चुगताई

सन् ७३६
हिजरी में
शाबान की
२७ को
मंगल की
रात

बलख

३५ वर्ष १५
दिन, परंतु जब
दिल्ली में
राज पर बैठे
तब ६५ वर्ष
४ महीने कुछ
दिन के थे

बुधवार १२
रमजान सन्
७७१ हि. ।
दिल्ली में
राज पर बैठने
का सन् शुक्र-
वार मुहम्म
मास सन् ८०१
हिजरी

सुलतान तैमूर कि मिस्ल ओ शाह नबूद ।
दर हफ्त सद हफ्ताद यके कई जलूस ।।

२ नुसरतशाह

बरोमंदां

लोदी

९ रजब
सन् ७६२
हिजरी

दिल्ली

३८ वर्ष ८
महीना कुछ
दिन के थे

रबीउलऔवल
सन् ८०१
हिजरी

ज़द चू सुसरत शाह बर औरंग सुलतानी कदम ।
बाद अल्को वनिश अफ़भूमी व फहेग दाद ।।
फिक्र तारीखश हमीकदम कि अज़रए जलाल ।
हातिफे गुफ़ता बिगो आराहशे औरंग दाद ।।

इसी क्रम में देखें ७३६

कब तक
राज किया

सिक्का

अवस्था

किस सन्
में मरे

फारसी में मरने की तारीख

मरने के

कहाँ

इसवी

इसवी सन्

विवरण

३५ वर्ष ११ एक और
महीना ५ कलमा एक
बिन दिल्ली और नाम
में १५ दिन

७० वर्ष ११
मास २०
दिन

बुध की रात
१७ श्रावण
सन् ८०८
हिजरी

सुलतान तैमूर कि मिस्ल ओ शाह नबूद ।
दर हफ्त सवो सी व शश आमद वजूद ॥
दर हफ्तसवो हफ्ताद यके कई जलूस ।
दर हशतसवो हफ्त कई आलम पिरूद ॥

उलमी
मकों

समरकंद

१४३४

दिल्ली के मनुष्यों
को साग घास की
मोति काटा ।
भारतवर्ष के
अंतिम बादशाह
इसी के वंश में हुए
हैं, बड़ा ही निर्दय
था । एक पाँव का
लंगड़ा था इसी से
इस को तैमूर लंग
कहते हैं ।

११ मास

इस मय से ४६ वर्ष ४
कि अभीर- महीने १९
तैमूर की ओर दिन
से कुछ

२७ जौकाद
सन् ८०८
हिजरी

नुसरत शह सिपहर मुलायिम बु शुद बखुल्द ।
दर सरेशक ता सरे भिजगों बसिफते अल्क ॥
बूदम बफिक्रे साल वफातश कि नागहाँ ।
साले वफाते कन्न मुकरर बगुफ्त अल्क ॥

०

मेवात
के देश में

१३९८

१३९६

नाम मात्र का राज्य
किया

उपद्रव न हो
अपना सिक्का
नहीं चलाया

३ एकवाल खाँ	जुफरखाँ	०	लोदी	७ सफर सन् ७५९ हिजरी	दिल्ली	४३ वर्ष कुछ दिन के थे	सफर सन् ८०२ हिजरी	शाह अकबालखाँ नुसरतमद । जायश तख्त शुद बअज्म शही । साल तारीख गुप्त हातिफ शुद । महफिले इज़ बज्मे शही ।।
४ दौलतखाँ	महमूदखाँ	०	लोदी	७ सफर सन् ७५९ हिजरी	मुल्तान	४९ वर्ष २ मास कुछ दिन	२९ जमादिउल-औवल सन् ८०८ हिजरी	
५ अखतियार खाँ	०	०	लोदी	आखिर सन् ७६१ हिजरी	०	४७ वर्ष	०	
६ सुल्तान महमूद	०	०	लोदी	८ रजब सन् ७४६ हिजरी	दिल्ली	६१ वर्ष ११ मास १४ दिन के थे	जमादिउस्सानी सन् ८०८ हिजरी	शुद चू वर तख्ते शह गाजी सुल्तान महमूद । दौलतश बेग व गुलामान : अश इकबाल अज़ बस ।। हातिफ अज़ मनजर कुदस आमद : आवाज कुर्गो । कुदरते अदल वूद साल जलूस अकदस ।।
७ दौलतखाँ (दूसरी बेर)	महमूदखाँ	०	लोदी	सफर सन् ७५९ हिजरी	कैथल	५६ वर्ष ८ मास कुछ दिन	१ ज़िलाहिज सन् ८१५ हिजरी	कंद दौलतखाँ बलाई दे खुदाए बुलामन । रूप दौलतरा बहुस्न सई छू रूप अरुस ।। गुप्त हातिफ अज़ सरे इकबाल वा सद खुरमी । रोजगारे ऐश आमद साल तारीखे जलूस ।।
८ खिरखाँ	मलिक सुमान	०	सहयद	१० रबीउल-औवल सन् ७४९ हिजरी	दिल्ली	५८ वर्ष ५ दिन	१५ रबीउल-औवल सन् ८१७ हिजरी	चू खिरखाँ बतख्त कंद जलूस । मरहम सीन : हाए रेश आसद ।। बहर तारीख ओ जलूस सरोश । गुप्त हुस्न फ़ाद पेश आमद ।।

इसी क्रम में देखें ७३८

६ वर्ष २ मास कुछ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	४९ वर्ष २ मास कुछ दिन	२७ जमादि-उल औवल सन् ८०८ हिजरी	चू शहरे हकबालखाँ फर्मान्दहे किश्रवरसिताँ । दावरे इल्कीमीरो परवरिश फर्माए खुल्क ।। यापस्त जा दर सायए तोबा बकमे हूर ऐन । सालाश अजरूप बका शुद आह वावलाए खुल्क । गुपस्त हातिफ साल ओ एक साहबे दौलत बमुर्द ।	०	मुल्तान की ओर	१३९९	१४०५	नाम मात्र को राज्य किया
२३ दिन	०	५३ वर्ष २ मास कुछ दिन	जमादिउल औवल सन् ८१७ हिजरी		०	फीरोजा-बाद के प्रांत में	१४०५	१४०४	तथा
०	०	नहीं मिला	नहीं मिला		०	नहीं मिला	०	०	तथा
७ वर्ष ५ मास ७ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	६९ वर्ष ४ मास २१ दिन	२९ जिकाद सन् ८१५ हिजरी	जुद कोसे फना जे बसकि सुलतान महमूद । आमद गम अर्जी हादस : अज़ गम दिला खून ।। हातिफ बगमो अलम शुद बेह गुपस्त अज़ हेफ । साज़द अलमो दर्द बमन रोज़ अफ़जू ।।	०	कैथल	१४०५	१४१२	तथा
१ वर्ष ५ मास कुछ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	५८ वर्ष २ मास कुछ दिन	जमादिउल औवल सन् ८१७ हिजरी	रह चु दौलत खाँ बसूए विन्तत अलमावा गिरिपपस्त । आलमे अज़ दर्दो गम सद नाल : राबर चर्ख बुर्द ।। सर बजेबे फिक्र बुर्दम ताकि तारीखे बेह नज़म । गुपस्त हातिफ साल ओ एक साहबे दौलत बमुर्द ।।	०	फीरोजा-बाद	१४१२	१४१३	तथा
७ वर्ष २ मास २ दिन	एक ओर कलमा एक ओर नाम	६५ वर्ष २ मास ७ दिन	१७ जमादि-उल औवल सन् ८२४ हिजरी	चूँ रखत अर्जी जहाँ खिज़्माँ बर बस्त । नख्ते तबे जहाँ बयफताद अज़ बेख ।। हातिफ अज़ जेबे फिक्र बरज़द : गुपस्त । दर्द अर्जा रोज़ अफ़जू तारीख ।।	०	दिल्ली	१४१३	१४२१	पंजाब का हाकिम था । स्वयं बादशाह बन बैठा ।

९ मुहबुद्दीन
ऐवानफतह
मुबारकशाह

खिज़िरखाँ

मालिका
जहाँ

सहयद

२० शाबान
सन् ७९५
हिजरी

दिल्ली

२८ वर्ष ८
मास २९ दिन

१९ जमादि-
उलौवल
सन् ८२४
हिजरी

गस्त चूँ बादशाह मुबारक शाह ।
शहीद आमदः गस्त व वरपा जश्न ॥
साल तारीख ई ख़ुबस्तः जलूस ।
शुद निगहवान आलम आरा जश्न ॥

१० मोहम्मदशाह

फरीदखाँ
बेटा खिज़िरखाँ

०

सहयद

२० रबीउलौवल
सन् ८२५
हिजरी

दिल्ली

१२ वर्ष ६
मास कुछ दिन

५ रमज़ान सन्
८३८ हिजरी

शुद मुहम्मदशाह चूँ वर तख्ते दौलत कामयाब ।
ताबअ फर्मान ओ शुद बादशाह रूमो रुस ॥
बदम अंदर फिक्र तारीख़ा कि हातिफ गुफ्त ज़ूद ।
आसफे इनसाफो सिकंदर अइल तारीखे जलूस ॥

११ सुल्तान
अलाउद्दीन

मुहम्मदशाह

जहानआरा सहयद
बेगम

२० मोहरेम
सन् ८४०
हिजरी

दिल्ली

९ वर्ष ९ मास २२ शौबवाल
सन् ८४९
हिजरी

२ दिन

सुलतान अलाउद्दीन चु दर वक़े सईद ।
वर सर बनिहाद ताज अब ज़ोरे हिसाम ॥
गुफ्तम कि ज़े साल बेगोयम हातिफ ।
फर्मुद कि ताज बादशाहे इस्लाम ।

१२ सुल्तान
बहलूल

कालाबहादुर

०

लोदी

३१ वर्ष
कुछ दिन

पंचाब
सन् ८२४ हिजरी
की ओर

सन् ८५५ हि.
दिल्ली में २५
जिलहिज सन्
८५६ हिजरी

शाह बहलूल चूँ बतख्त, नशस्त ।
अदलो साज़ो ज़ेब मुमलकत अस्त ।
गुफ्त दिल साल चीस्त हातिफ गुफ्त ।
कि बहारे जलूस सलतनत अस्त ॥

इसी क्रम में देखें ७४०

१३ वर्ष ३ दिन
मास १६ दिन
कुछ दिन
के नाम से
रक्खा फिर
अपने नाम का
चलाया

४७ वर्ष १५ दिन
सन् ८३७
हिजरी

आमादः चू शुदीये सफर अज् जुनिया ।
मुलतान मुबारक शहे दौलत बदीश ॥
आवाज् आमद वराय तारीख वफात ।
सई सफरे रुहे मुजस्सिम जे सरोश ॥

१४४६ मारा गया

१४२१ दिल्ली

०

१२ वर्ष २ मास ३ दिन
एक और कलामा एक और नाम
२४ वर्ष ७ मास कुछ दिन
३० शौबाल सन् ८४९
हिजरी

चू मुहमदशह यगानद कि बूद ।
दौलत श बंदः चाकर इकबालश ॥
शूद बजिन्नत सरोश गैबी गुप्त ।
नौहः व आह अश दर सालश ॥

१४४६

१४३४ दिल्ली

०

७ वर्ष २ मास ३ दिन
एक और कलामा एक और नाम
४२ वर्ष कुछ मास कुछ दिन
आखिर सन् ८८३
हिजरी

बहलूल लोदी को दिल्ली की सल्तनत देकर आप बदाऊँ चला गया उस समय दिल्ली की बादशाहत केवल छः कोस के घेरे में रह गई थी ।

१४७७

१४४६ बदाऊँ

०

३८ वर्ष ७ मास ७ दिन
एक और कलामा एक और नाम
६९ वर्ष ८ मास कुछ दिन
२ शाबान सन् ८९४
हिजरी

शहनशहे आलम शहे बहलोल कि दीदी ।
उफताद दर एतरफ जनाँ सुल्ले जलालश ॥
दर खुल्द व गुप्त सरोश अज सरें चिन्नत ।
कस्द सफरे आलमे अरवाह रिसालश ॥

१४८८

१४५० दिल्ली

०

अमल्दारी बदाई, प्रबंध भी किया ।

३ मास
दिल्ली में १७ दिन
३७ मास

१४४६

१३ निजामखाँ
उपनाम
अलाउद्दीन
सिकंदर शाह

सुलतान
बहलूल

पन्ना जो लोदी
एक सेनार
की बेटी
थी उपनाम
बीबी
सोनारी

जमादिउल-
औवल सन्
८२५ हिजरी

कसब :
जलाली

६५ वर्ष ३
मास कुछ
दिन

१२ शबान
सन् ८९४
हिजरी

१४ सुलतान इब्राहीम सिकंदरशाह

० लोदी

५ जौकाद
सन् ८५६
हिजरी

दिल्ली

५९ वर्ष
१६ दिन

२१ जिकाद
सन् ९१५
हिजरी

चूँ अफसरे दौलत अज सरे इब्राहीम ।
गर्बद चू चतर ओ सअदत आमोद ॥
साल तारीख है हुमायूँ साअत हातिफ ।
गुफ्ता नह ताज दौलत आसुद ॥

१५ जहीरउद्दीन
मुहम्मद शाह
बाबर

कतलक
निगार
खानम
यूनस
खाँ की
बेटी

६ मुहर्म्म
सन् ८८८ हि.
यही तारीख
पैदाइश की है

११ वर्ष ७
मास २९ दिन
दिल्ली में ४४
वर्ष ६ मास

५ रमजान सन्
८९९ हिजरी
यानीपत में
दिन शुक्रवार ७
रजब सन् ९३२
हिजरी

नसीरुद्दीन मुहम्मद शाह बाबर । कसकंदर दौलतो
बहराम सोलत ॥ बदौलत कंद फत्ते खतए हिंद । कि
तारीख आमदश फत्ते बदौलत । कुशत दर यानीपत
शाह आबिल बाबरे आली लकब ॥
रोज माह साल वकतुल जफर । सुबह बुबो शुम्भ :
व हफ्त रजब ॥

११ वर्ष ३ मास १ दिन एक और कलमा एक और नाम
 ८६ वर्ष ६ मास कुछ दिन
 दिन अतवार १३ जौकाद सन ११५ हिजरी
 चूँ कर्द रुखसते आलम निजामछाँ सुलतान ।
 वे जौ बतग जहाने बा आहोबारी शुद ॥
 जहाँ सियह शुद : दरचश्म हरकस जे हरकस ।
 जे हाल आलम गुप्ता सरोश बारी शुद ॥

१६ वर्ष ७ मास १५ दिन एक और कलमा एक और नाम
 ५ वर्ष ८ मास कुछ दिन
 ७ रज्जब सन १३२ हिजरी
 कर्द चूँ सुलतान इब्राहीम कूच ।
 इफ्तुम शहर रज्जब अज़ई सराय ॥
 हख्ब दिला अज़ हातिफ इलहाम कुन ।
 साल वफात शहे गर्दू गिराय ॥
 गुप्त कि दर जिन्तते बालाए पाक ।
 यापस्त : सुलतान इब्राहीम जाय ॥

दूसरे मुल्क में ३२ वर्ष १० मास २ दिन दिल्ली में ४ वर्ष ९ मास २९ दिन
 ४९ वर्ष ४ मास
 सोमवार ६ जमादि-उल-औवल सन १३७ हिजरी
 बादशाहे दह बाबर बा कमाले अदलो दाद । फिरदौस वाकिफे इसगारे आलम सस्त्रे लुफे अल्ला ॥
 आराम-साल जौ ओ गुज़ीदन जाय फिरदौसश बिगो । गाह जाय फिरदौस तामद : बेगुज़ीद बाबर बादशाह ॥

बड़ा बादशाह हुआ
 किनु हिंदुओं को
 बहुत दुःख दिया,
 गांधी मिर्चा की पूजा
 बंद कर दी ।
 कबीर इसी के
 समय में हुए,
 हिंदुओं को फारसी
 पढ़ाई ।

१५१६ १४८८ दिल्ली १५२६ मारा गया ।

१५३० १५२६ पहिले ६ महीने आगरे के पास राम-बाग में गाड़ा था जाने के समय हुमायूँ मुर्द फिर काबुल ले गया

बड़ा प्रसिद्ध मनुष्य हुआ है, पहले समर्कंद और काबुल का बादशाह था फिर हिंदुस्तान में आया ।

नसीरउद्दीन

मुहम्मद

हुमायूँ

बादशाह पहली

बार

माहम

बेगम

चुगताई

सनीचर की

रात १४

बीकाद सन्

११३ हिजरी

आगरा

२३ वर्ष ५

मास कुछ

दिन

जमादिउल-

औवल सन्

१३७ हिजरी

सोमवार

मुहम्मद हुमायूँ शहे नेक बख्त ।

कि खैरुल मलूक अस्त आंदर सलूक ॥

चू वर मसनदे बादशाही नशस्त ।

शुदश साल तारीख खैरुल मुलूक ॥

१७ शेरशाह

उपनाम

फरीद खाँ

हसन खाँ

०

अफगाँव

रजब सन्

८७१ हिजरी

सुल्तानपुर

बणले

की तरफ

६० वर्ष कुछ

दिन दिल्ली में

६९ वर्ष ४

मास कुछ दिन

सन् १३१

हिजरी दिल्ली

में २७ शौब्याल

सन् १४८

हिजरी

शाहनशाह :

कस हस्त

नशस्त व

व तख्त शाहाने

जहाँ बयाये आली हूद :

शेरशाह भट्टे

नेस्त रफीअ

व बस्त हफ्तुम

गुप्त हातिफ जे गैव ।

सलतनत अफजुद : ॥

रफअत ।

१८ इसलाम शाह

उपनाम

शाहजाद :

जलाल खाँ

नामान्तर सलीम

शाह

शेरशाह

बीबी

गुमानी

अफगाँव

सफर सन्

१०३ हिजरी

कालिंजर

के किले

के नीचे

वर्ष

६ दिन

१७ रबी-उल-

औवल सन्

१५३ हिजरी

मुलतान

सलीम

शाह बाकर

शिकोह ।

कई अदलशबुलम दर अदम महबूस अस्त ॥

वे नशस्त व तख्त अज़ रहे इत्साफश ॥

दर मुल्कश जे आमदन मानूस अस्त ॥

तारीख जलूस सईद ओ अब नयूश ।

सामान जलूस मैमनत पाबोस अस्त ॥

इसी क्रम में देखें ७४४

१ वर्ष ५ मास कुछ दिन
४९ वर्ष ३ मास २६ दिन

११ रबउल-ओबल सन् १६३ हिजरी
हुमायूँ बादशाह आँ शाहे आदिल ।
कि कैबे खास ओबर आम उपत्ताद ॥
बु सुशीद अब जहाँ ताबे बलदी ।
वियाबाँ दर निमाबे शाम उफत्ताद ॥
जहाँ तारीक शुद दर चश्मे मरदुम ।
खलल दर कार खासो आम उफत्ताद ॥
कजा अब बहव तारीखश रकम जद ।
हुमायूँ बादशाह अब नाम उपत्ताद ॥

१४ वर्ष दिल्ली में ४ मास १५ दिन

१२ रबी-उलओबल सन् ९५३ हिजरी
७४ वर्ष ८ मास कुछ दिन

शेरशाहे कि अब महाबत ओ ।
शेरो बज अब रा बहम मीखुद ॥
बूँ बरफ्त अब जहाँ बदारे वका ।
गश्त तारीख ओ बूँ आतिश मुद ॥

दिल्ली १५३० १५५५

शेरखाँ से हारकर लाहौर गया फिर सिध और मारवाड़ में रहा, वही अकबर का जन्म हुआ, फिर डेढ़ बरस अमरकोट के राजा के यहाँ रहा, वहाँ से काबुल चला गया ।

० सहसराम १५४० १५४५

इसका बाप हसनखाँ सहसराम में ५०० घोड़ों का जगीर दार था, जब इसने कालिंजर का किला घेरा तो एक गोले से इसके मेगबीन में आग लग गई जिससे यह भुलसकर मर गया ।

८ वर्ष २ मास ८ दिन ५८ वर्ष ३ मास कुछ दिन
२५ जमादि-उलओबल सन् ६६१ हिजरी
सुलतान सलीमशाह बूँ अब हुस्ने आकबत ।
आराम जेर सायए अर्श खुबई याप्त ॥
बूदम बफिक्रे साल वफातश कि नागहँ ।
हातिफ बज़द नवा कि बजिन्नात जाय याप्त ॥

० सहसराम १५४५ १५५३

नामांतर जलाल खाँ

१९ फीरोज़ खाँ इस्लाम शाह या बी मानी अफगान रबीउस्सानी दिल्ली १२ वर्ष २६ जमादि-उस्सानी सन् १४९९ हिजरी १२ वर्ष २६ जमादि-उस्सानी सन् १४९९ हिजरी कस गुलाम दर बूद इजलाल हा ॥ याफ्त तख्ते सलतनत जाए कंदे जेरे चतर इस्तलाल हा ॥ साल तारीखश चुनौ कर्दम रकम ॥ बादशाही याफ्त जु इकबाल हा ॥

२० मुहम्मद आदिल शाह उपनाम मुबारिज खाँ निजाम खाँ ० अफगान शवान सन् १११ हिजरी दिल्ली ४९ वर्ष १० जमादिउल-मास कुछ दिन १६१ हिजरी ४९ वर्ष १० जमादिउल-मास कुछ दिन १६१ हिजरी तख्त फीरोजखाँ गिरफ्त बजुलम ॥ राजतः जर मुल्क दौलतश मालिक ॥ साल तारीख दौलश गुफ्तम ॥ बादशह शुद मुबारिज मुहलिक ॥

२१ सुल्तान इब्राहीम सूर ० ० अफगान सन् ९०३ हिजरी दिल्ली ५९ वर्ष ६ जमादिउस्सानी गशत चूँ तख्त मुनौवर जे तन इब्राहीम ॥ सन् ९६२ हिजरीरफ्त बर दोस्त दिलासा व बजुलमत तो वेख ॥ साल तारीख जलूसश जे खिरद चूँ जस्तम ॥ रौनके कालबंद सलतनत आमद तारीख ॥

२२ सिकंदर शाह उपनाम अहमद खाँ हुसेन ० अफगान रबी-उल-औवल सन् ९११ हिजरी फरह ५१ वर्ष २ मास दिल्ली में ५१ वर्ष ४ मास पंजाब में जमा-दिउस्सानी सन् ९६२ हिजरी दिल्ली में ९ रज्जब सन् ९६२ हिजरी ५१ वर्ष २ मास दिल्ली में ५१ वर्ष ४ मास पंजाब में जमा-दिउस्सानी सन् ९६२ हिजरी दिल्ली में ९ रज्जब सन् ९६२ हिजरी

२३ दूसरी बार नसीरुद्दीन उपनाम मुहम्मद हमायुं शाह नाबर बादशाह माहरू बेगम किसी-किसी ने इसका नाम 'माहम बेगम' लिखा है चुगताई मंगल की रात १४ जौकाद सन् ९१३ हिजरी मुशिफ खिरद तालए मेयूँ तलबद ॥ इशाए सबुन जे तबज मौयूँ तलबद ॥ तहरीर जु कंद फल्ह हिंदुस्तान रा ॥ तारीख जे शमशेर हमायूँ तलबद ॥ इसी क्रम में देखें ७४६

२५

२५

अपने नाम
का रुपया
पैसा नहीं
बनवाने पाया
था कि मर
गया

२९ जमादि-
उल-औवल
सन् ९६१
हिजरी

१२ वर्ष
कुछ दिन

११ मास
७ दिन

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

०

०

१५५३

१५५३

- २४ अबुल फतह हुमायूँ बादशाह हमीदा बानू चुगताई मंगल की कलांवर १२ वर्ष ८ मास २ रबीउस्सानी अज़ सुतबाए शाह रफअत मुनीर शुद ।
 जलालउद्दीन रात ५ रजब (कलानौर) २७ दिन सन् ९६३ खू ज़र शुद ।
 मुहम्मद ९४९ हिजरी १५४२ ई. वेह नशस्त व तख्त सलतनत अकबर शाह ।
 अकबर बादशाह के बाद मरियम मकानी उपनाम हुआ तारीख जलूस नुसरत अकबर शुद ॥
- २५ अबुल मुजाफ़र अकबर बादशाह राजा चुगताई बुघ १७ रबी-अकबराबाद ३७ वर्ष २ वृहस्पति १४ शाह जहाँगीर चु अज़ मेहरे बख्त ।
 नूरउद्दीन मुहम्मद भारामल की उल-औवल मास २७ दिन ग़स्त शहनशाह दो आलम चु मेहर ॥
 जहाँगीर लइकी सन् ९७७ हिजरी सन् १०१४ गुप्त खिरद साल जलूस सईद ।
 बादशाह हुआ हिजरी १०१४ शाह जहाँगीर नसीबे सिपहर ॥
- २६ सुल्तान दावर शाहज़ादः चु शुद सुल्तान दावरबख़्श अज तख्त ।
 बख़्श उपनाम सुल्तान सुसरो औवल सन् बसौं खोरे बरूप तख्त वाला ॥
 मिर्जा बुलाकी १०३६ हिजरी वगेबे फिक्रै सर बुदम किशानश ।
 खिरद तारीख गुफ़ता बख्त वाला ॥

इसी क्रम में देखें ७४८

बादशाह दर्पण ७४७

२१ वर्ष ८ मास १३ दिन

एक और कलमा एक और नाम आखिर बादशाहों में अरलाह अकबर और सुलूस का सन

१५१ वर्ष २ मास ११ दिन

एक और कलमा एक और नाम आखिर बादशाहों में अरलाह अकबर और सुलूस का सन

२१ वर्ष ८ मास १३ दिन

पहिले कलमा पीछे फारसी का शेर

१५१ वर्ष २ मास ११ दिन

पहिले कलमा पीछे फारसी का शेर

२१ वर्ष ८ मास १३ दिन

पहिले कलमा पीछे फारसी का शेर

१५१ वर्ष २ मास ११ दिन

पहिले कलमा पीछे फारसी का शेर

२१ वर्ष ८ मास १३ दिन

पहिले कलमा पीछे फारसी का शेर

१५१ वर्ष २ मास ११ दिन

पहिले कलमा पीछे फारसी का शेर

२१ वर्ष ८ मास १३ दिन

पहिले कलमा पीछे फारसी का शेर

१५१ वर्ष २ मास ११ दिन

पहिले कलमा पीछे फारसी का शेर

२१ वर्ष ८ मास १३ दिन

पहिले कलमा पीछे फारसी का शेर

१५१ वर्ष २ मास ११ दिन

पहिले कलमा पीछे फारसी का शेर

२१ वर्ष ८ मास १३ दिन

पहिले कलमा पीछे फारसी का शेर

१५१ वर्ष २ मास ११ दिन

पहिले कलमा पीछे फारसी का शेर

२७ शाहाबुद्दीन
मुहम्मद
शाहजहाँ
बादशाह

जहाँगीर
बादशाह

नव्याब
जोधा बाई
बेटी राजा
मगवान
बस राजा
जोधपुर

बृहस्पति की
रात १ रबी-
उस औवाल
सन् १०००
हिजरी

३७ वर्ष ३
मास ७ दिन

८ जमादि-
उस्सानी सन्
१०३७ हिजरी

बादशाहे जमान : शाहजहाँ ।
सूरमो शाद कामरौ बाशद ॥
हुक्म ओ बर खलायके आलम ।
हम चु हुक्मे कजा रवाँ बाशद ॥
बहर साल जुलूस ओ गुप्तम ।
दर जहाँ बाद बाजहाँ बाशद ॥

२८ अबुल

मुजफ्फर
मुहीउद्दीन
औरंगजेब
आलमगीर
बादशाह

शाहजहाँ
बादशाह

अरसुमंद
बानू
उपनाम
बेगम
मुमताज़-
महल

चुगताई
अतवार की
रात ११
जौकाद सन्
१०२८ हिजरी

३९ वर्ष ११
मास २० दिन

शुक्रवार १
जौकाद सन्
१०६८ हिजरी

आफताब आलम तावम ।

२९ मुहम्मद

मुअज्जम
उपनाम शाह
आलम बहादुर
शाह

औरंगजेब
आलमगीर
बादशाह

नव्याब
बाई

चुगताई
रज्जब सन्
१०५३ हिजरी

६५ वर्ष ५
मास

१ जिल्हिज
सन् १११८
हिजरी

नशस्त हूँ बसरीर जहाँ बहादुर शाह ।
रसीद मुज्द : दौलत जे आलमे बाला ॥
जे मंजर फलक आवद सिर सिरुं हातिफ ।
बागुस्त साल जलूसश निबाम मुल्क दिला ॥

इसी क्रम में देखें ७५०

१० वर्ष ४ एक ओर ७६ वर्ष ४ साल तारीख फौत शाहजहाँ ।

११ वर्ष २२ मास २२ एक कलामा एक दिन २६ रजब रज़ी अल्लाह-गुफ्त अशरफ खाँ ।।

१२ वर्ष २२ मास २२ एक कलामा एक दिन २६ रजब सन् १०७६ हिजरी

ताजगाँव १६२८ १६६४

उल्मी मकान मुसताब उलजमानी के कब्र के पास अकबराबाद दुष्ट औरांगेब ने राज्य के लोभ से बीमारी में कष्ट कर लिया । यह भी बड़ा बादशाह था । इसका समय मुसलमानों के राज्य का ठीक मध्याह्न था । दिल्ली का ऐसा ऐश्वर्य ने पहले कभी था न फिर हुआ । ताज-गाँव किला आदि अनेक उत्तम स्थान बनाये ।

५० वर्ष २७ दिन

सिक्क : जद बर जहाँ चू बड़ो मुनीर ।

शाह औरांगेब अलमगीर ।।

शुक्रवार २६ जौकाद सन् १११७ हिजरी

आपताब अलम ताबमन

सुल्त मकौ औरांगबाद १६१९

१७०७ २१ जनवरी

शुद्ध स्वामी महा-दुष्ट किनु उद्योगी था । हिंदुओं के बहुत से मंदिर तोड़े । शिवाजी ने दक्षिण का राज्य तो लिया ।

५ वर्ष १ मास ०

७० वर्ष ६ मास

सनीचर १ ली मुहम्म सन् १०२४ हिजरी

दूर वफावश बे सरो बे पा शुद्ध । फैजो फजलो नेअमते लुतफो जर्म ।। सुल्त मजिल

१७०७ १७१२

गाँव महारौली दिल्ली के पुराने होते में

सिक्खों का उदय । इन लोगों के नाम मात्र की बादशाही किया था ।

३० खुजिस्त : मुहम्मद मुहम्मद ८ सफर सन्
अब्दुल जहान मुअज्जम ११२४ हिजरी
शाह उपनाम बहादुर शाह

३१ रफीउल्लान मुहम्मद मुहम्मद २२ सफर सन्
मुअज्जम मुअज्जम ११२४ हिजरी
उपनाम बहादुर
शाह

३२ मुहम्मद मुरीस- मुहम्मद ५ रबी-उल
दीन जहानर मुअज्जम औवल सन्
शाह उपनाम १०७२ हिजरी
बहादुर शाह

३३ जलालुद्दीन अलीमउल-शान ५ वर्ष ५ २३ जीकाद
मुहम्मद फल बेटा मुहम्मद सन् ११२४
ख-सियर मुअज्जम ५ दिन हिजरी
उपनाम बहादुर
शाह

शाह फरुखसियर कि अफसर ओ ।
आफताब सिपहरे मुमलिक अस्त ॥
गुफ्त हातिफ कि साल सलतनतश ।
आफताब कमाल सलतनत अस्त ॥

४ दिन ० ० २२ सफर सन् ०
१२२४ हिजरी

० दिल्ली १७१२ ०

०

पहले तीनो माई ने
मिलकर इकतीस
दिन राज किया
फिर लड़े अन्त को
पहले दोनों मारे
गए ।

८ दिन

० एक और
कलमा एक
और नाम

सफर सन् ०
११२४ हिजरी

० दिल्ली १७१२ ०

०

१० मास
२३ दिन

बज्रद
सिक्कः बर
मुल्क हूँ
मेहो माइ ।
शहनशाह
गाजी जहाँदार
शाह ॥

फर्रखसियर की
लड़ाई में कैद हो
कर मरा ।

० मकबिरः १७१२
हुमायूँ
दिल्ली में

०

शुक्रवार ८
मुहर्रम
सन् ११२५
हिजरी

१७१३

६ वर्ष ३
मास कुछ दिन

सिक्कः
दिन अब फजले
हकबर सीमो
पुर । बाद-
शाह बहरो
बर
फखसियर ॥

३५ वर्ष ८ मास २० दिन

८ रबीउस्सानी फुगौं गुप्त हातिफ बः लारीख फौत ।
सन् ११३१
हिजरी

० मकबिरः १७१३
हुमायूँ
दिल्ली में

०

१७१५

अब्दुल्लाह खाँ और
हुसेन अली खाँ ने
जहर देकर मार
झला ।

३४	मुहम्मद अबुल बरकात सुल्तान रफीउलदरजात	रफीउलदजात बेटा मुहम्मद मुअज्जम उपनाम बहादुर शाह	नूरुल- निसा बेगम	चुगताई	७ जमादिउल अखिर सन् ११११ हिजरी	दिल्ली	१९ वर्ष १० मास २ दिन	९ रबीउस्सानी सन् ११३१ हिजरी	नशस्त गये बर अर्ण सर कशीद अज़ उफात ।। सर खरोश चु दीद बा फरो शिकोह । तारीख आमद लकब रफीउबजति ।।
३५	शमशुद्दीन रफीउबैला मुहम्मद शाहजहाँ बादशाह गाबी	रफीउल्लशान बेटा मुहम्मद मुअज्जम उपनाम बाहदुर शाह	नूरुलनिसा बेगम	चुगताई	७ जमादिउल अखिर सन् ११११ हिजरी	दिल्ली	१९ वर्ष १० मास २ दिन	९ रबीउस्सानी सन् ११३१ हिजरी	नशस्त वतख्त चूँ रफीउबजति । गये बर अर्ण सर कशीद अज़ उफात ।। सर खरोश चु दीद बा फरो शिकोह । तारीख आमद लकब रफीउबजति ।।

३६	रौशन अख्तर उपनाम मुहम्मद शाह बादशाह (अबुल फतह नासिरुद्दीन) साहब-किरान सानी	सुबिस्त : अख्तर जहान शाह बेटा मुहम्मद मुअज्जम उपनाम बहादुरशाह	०	चुगताई	२६ रबी-उल जौवल सन् १११४ हिजरी	दिल्ली	१२ वर्ष ७ मास २१ दिन	१७ जौकाद सन् ११३१ हिजरी	शाह किशवरसिताने रौशनअख्तर आँकि दर आलम । गवाह आमद फरोगे बख्त रा नामे हुमायूँनश ।। दरी बुदम कि गोयस नज्म तारीखश की अज़ हातिफ । सरीर आगए जहो दोलत आमद साल तारीखश ।।
----	--	---	---	--------	-------------------------------------	--------	-------------------------	-------------------------------	---

मास
१ दिन

मुहम्मद अबुल २० वर्ष १ मंगलवार
बरकात मास १३ रज्जब सन
सुलतान ११३१ हिजरी रिज्जब बर विहिशत इकदाम कुर्नो ।
रफीउद्दज्जलि गुल्पा खुल्द बरी मुकाम व मारा ॥

बादशाह
गाजी

३ मास
२७ दिन

शम्शुद्दीन २८ वर्ष ९ १७ जीकाद
मुहम्मद मास १२ सन ११३१
शाहजहाँ गाजी दिन हिजरी

०
दिल्ली
के हाते
में

१७१९

पोस्त बहुत पीकर
मर गया ।

०

मकाबिर : १७१९
हुमायुं

१७१९

पोस्त पीकर मर
गया तब अब्दुल्लाह
खाँ ने रौशन
अबूतर को कैद से
निकालकर बाद-
शाह बनाया ।

एक वर्ष १
मास ११
दिन

पहिले ४७ वर्ष १ २७ रबी-
चौकोर रुपये मास ११ उस्सानी सन
पर एक और मास ११ ११६१ हिजरी
कलमा एक
और नाम
पीछे गोल
रुपये पर
मुहम्मद शाह
गाजी
साहिबकिर्नो

फिरदौस
आराम-
गाह

दिल्ली
सुल्तान
मशायख
की
दरगाह में

१७१९

१७४८

बड़ा विषयी थी ।
किन्तु औरंगजेब के
पीछे इतने स्निहक
स्थिर होकर इसी
ने दिल्ली मोगी ।
नादिरशाह इसी के
काल में आया ।
कहते हैं कि इसके
पहले मुहम्मद
निकोसियर नामक
शाहजादा दो चार
दिन के हेतु
बादशाह हुआ था ।

३७ सुल्तान
मुहम्मद
इब्राहीम

तीसरा बेटा
रफीउल्लाहा
बेटा मुहम्मद
मुअज्जम
उपनाम बहादुर
शाह

नूरुल्लिसा चुगताई
बेगम

२६ रबी-उल
औवल सन्
१११५ हिजरी

१७ वर्ष ९
मास २ दिन

२६ जिलाहिज
सन् ११३२
हिजरी

३८ रौशन अब्दुल
उपनाम
मुहम्मदशाह
(दूसरी बेर)

सुबिस्त :
अख्तर जहान
शाह बेय
मुहम्मद
मुअज्जम
उपनाम
बहादुर शाह

० चुगताई

२६ रबी-उल
औवल सन्
१११४ हिजरी

१८ वर्ष ९
मास १७ दिन

१३ जौकाद
सन् ११३३
हिजरी

दिल्ली में नादिर शाह के आने की तारीख १६
सन् ११५१ हिजरी

३९ मजाहिदुलदीन
अबुल नसर
मुहम्मद
बादशाह गाबी

मुहम्मद शाह

अहमद
बाई उपनाम
मुस्ताय-
महल

चुगताई
मागलवार
२७ रबी-
उरसानी
सन् ११३८
हिजरी

पानीपत

२३ वर्ष
म मास

२ रबी-उल
औवल सन्
११६१ हिजरी

चूं शाह जवाँवख्त अज़ सरे तख्त ।
चूं सुशीद अज़ फलक बिममूद जिल्व : ॥
खिरद साल जलूसशा वर लव आवुर्द ।
सरीर सलतनत अफजूद जिल्व : ॥

४० अजीजुद्दीन
आलम गीर
सानी बादशाह
गाबी

मुगीसुद्दीन
चहंदारद शाह

अनूप बाई चुगताई
शुक्रवार सन्
११०९ हिजरी

दिल्ली

६८ वर्ष कुछ
मास कुछ दिन

मंगलवार १०
शाबान सन्
११६७ हिजरी ।

शाहवाला निज़ाद आलमगीर ।

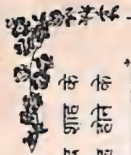
अज़ अज़ल नामवर बफेज़ आमद ॥

गस्त चूं जिल्व : गर बरूये सरीर ।

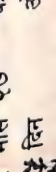
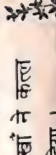
गस्त तारीख मजहरे एज़िद ॥ फख्ते रव्यानी

अहमद शाह
दुरानी के आने
की तारीख ७
जमादि-उल
औवल सन्
११७० हिजरी

इसी क्रम में देखें ७५६



२८ वर्ष ३ मास १४ दिन	सानी कोई रुपया अपने नाम का नहीं चलाया	०	०	०	०	१७०२	१७२०	मुहम्मद शाह के बादशाह होने के पीछे अब्दुल्लाह खाँ ने १५ दिन के हेतु बादशाह बनाया था ।
२८ वर्ष ३ मास १४ दिन	पहिले चौकोर रु. पर एक और कलमा एक ओर नाम पीछे गोल रु. पर मुहम्मद शाह बादशाह गाजी साहिबकिर्गो	४७ वर्ष १ मास १ दिन	२७ रबी-उस्सानी सन् ११६१ हिजरी	शह फलके हश्म रविश अख्तर आँके अजो । फिरदौस चु आपताब जहाँ जुमलगी फरोग गिरफ्त !! आराम-चु शुद बजाद : फिरदौस अजों सराय सिपंद गाह सरोद हातिफे गैबी कि गो बत्रिन्त रफ्त !!	०	१७२०	१७४८	नादिरशाह आया । मृत्यु से मरा ।
६ वर्ष ८ मास ३ दिन	एक और कलमा एक ओर नाम	५० वर्ष ३ मास १३ दिन	मंगलवान १० शाबान सन् ११८८ हिजरी	वर बस्त चू मुजाहिद दीं रफ्त जिंदगी । शुन्द हर कस दर रफके बेहमिजगाने छेश गुफ्त !! आरामगाह हातिफ बराय साल वफातश कि नागहाँ । साले वफात साल वफात हाय हाय गुफ्त !!	दिल्ली	१७४८	१७५४	मृत्यु से मरा ।
१ वर्ष ७ मास २७ दिन	एक और कलमा एक ओर नाम	७३ वर्ष कुछ मास कुछ दिन	बृहस्पतिवार ७ रबी-उस्सानी सन्	शाह आली नसब अजीबुद्दीन । कस वूद दर जबान रहमत जाय !! गुफ्त हातिफ चू रफ्त दर जिन्त ।	अर्श मखिल	१७५४	१७६९	एमादुलमुल्क के कहने से मोहती कुली खाँ ने कल कर दिया ।



दूसरी बेर अहमद शाह आया और मरठों की लड़ाई
सन् ११७३ हिजरी, सर्कार ने दिल्ली लिया १२१९
हिजरी

१४ जमादि-
उल-औवल
सन् ११३७
हिजरी

इलाहाबाद
३२ वर्ष ५
मास १७ दिन

१७ जैकाद
सन् १०४०
हिजरी

की नन्ही
चुगताई

अजीबुद्दीन
आलमगीर
दूसरा

अबुल
मुजफ्फर
जलालुद्दीन
सुल्तान आली
गोहर शाह
आलम बादशाह

सबरे के पहर
बुध के दिन ७
रमजान सन्
१२२१ हिजरी
बबर चु कंद लिवासे खिलाफत अकबर शाह !
बुध के दिन ७ बरफों दौलतो इकवालो इज्जते मानूम ॥
रमजान सन् सरोश मेव जे रूपे बदीद : यक नागाह !
१२२१ हिजरी जहेज़ इशरत बिरवद गुफ्त साल जलूस ॥

४८ वर्ष
१ मास
दिल्ली

बृहस्पति
की रात ७
रमजान
सन् ११७३
हिजरी

चुगताई

मुबारक
महल शाह
आलम के
वक्त तक
और
अकबरशाह
के वक्त में
नवाब
कुदस :

राह आलम
बादशाह

अबुल नसर
नुइबुद्दीन
मुहम्मद अकबर
शाह बादशाह

शुक्रवार की रात चिरागे देहली
२८ जमादि-
उस्सानी सन्
१२५३ हिजरी

६३ वर्ष
१० मास

दिल्ली

मंगलवार
२८ शवान
सन् ११८९
हिजरी सूरज
दूबने के वक्त

चुगताई

लाल बाई

अकबर
जफरमुहम्मद
शाह

अबुल
सिराजुद्दीन
मुहम्मद
बहादुर शाह
बादशाह

इसी क्रम में देखें ७१८

३१ वर्ष ९ मास २१ दिन
 ०८ वर्ष ४ मास ३ दिन
 हाजी दीन-मुहम्मद
 साय : फज्जो अल्लाह !
 सिक्का : उद बर हफ्त
 किश्वर शाह
 आलम
 बादशाह ॥

८० वर्ष
 ९ मास

७ रमजान सन् १२२१
 हिजरी सुबह के वक्त

आह दरंगा या दिल जे हये नाल : गुपत्ता हफ्तुम शहर स्मारहनेवाले

फिरदौस मजिल दिल्ली के

१७५९

अंतिम स्वतन्त्रता
 बादशाह इसी के समय से अंगरेजों का राज्य दिल्ली में हुआ १८०३ ई.

३१ वर्ष ९ मास २१ दिन

७९ वर्ष १० मास २१ दिन

शुक्रवार के दिन २८ जमा-शुद सियह आस्माँ जे हूदे खिर । पाय शादी शिकस्त व अहमद गुरु । साल तारीख ओ गमे अकबर ॥

अर्श आरामगाह

१८०५

१८३७

नाम मात्र ।

२० वर्ष

९०

बुफ्फो हे विराणे देहली या हे हे अबुल मुजफ्फर

एक और रंगून कलमा एक और नाम

१८३७

दिल्ली के बलवे में अंगरेजों ने बिचारे बुढ़े के नाम मात्र होने पर भी कैद करके रंगून भेज दिया । और हब की आँखों के सामने इसके माई मतीबे लड़के पोते

मुसलमान-राज्यत्व का संक्षिप्त इतिहास

सन् ५७० में मुहम्मद का जन्म हुआ । ४० वर्ष की अवस्था में उन्होंने मुसलमान धर्म का प्रचार किया । सन् ६३२ में इनकी मृत्यु हुई । इन के उत्तराधिकारियों में वलाद खलीफा ने अपने भतीजा कासिम को ६००० फौज के साथ सिंधु देश जय करने को भेजा । सिंधु का राजा दहिर युद्ध में मारा गया और इस की दो बेटियों के कौशल से कासिम को भी वलीद ने मार डाला ।

सन् ८१२ में मामूँ ने हिंदुस्तान पर फिर चढ़ाई किया किंतु चित्तौर के राजा खुमान ने २४ बेर युद्ध कर के उस को भगा दिया ।

बुखारा के पाँचवें बादशाह अब्दुलमालिक का अलाप्तगीन नामक एक गुलाम था जो मालिक के मरने पर बादशाह हुआ । सुबुक्तगीन इस का एक दास था । स्वामीपुत्र के मरने पर यही खुरासान का राजा हुआ और गजनी को अपनी राजधानी बनाया । सन् ९७० में इसने हिंदुस्थान पर चढ़ाई किया और लाहौर के राजा जैपाल को जीता । सन् ९९९ में उस के मरने के पीछे अपने भाई को कैद कर के सुलतान महमूद बादशाह हुआ । सन् १००४ में महमूद ने हिंदुस्थान पर चढ़ाई किया और अपने पुराने शत्रु जैपाल को कैद कर लिया । सन् १००४ में भटनेर के राजा को जीतने को महमूद की दूसरी चढ़ाई हुई । मुलतान के गवर्नर अबुलफतह लोदी को जीतने को वह तीसरी बेर हिंदुस्तान में आया (१००५ ई.) । चौथी चढ़ाई उस ने जयपाल के पुत्र आनंदपाल के जीतने को की । आनंदपाल भी असंख्य हिंदू सैन्य ले कर उस से भिड़ा, किंतु ठीक युद्ध के समय उस के हाथी के विचलने से वह लड़ाई भी महमूद जीता और नगरकोट लूट कर भारतवर्ष की अनंत लक्ष्मी ले गया । इसमें २० मन तो केवल जवाहिर था (१००८ ई.) । अबुलफतह के बागी होने से मुलतान पर उस की पाँचवीं चढ़ाई हुई (१०१०) । छठीं बेर उसने थानेश्वर लूटा (सन् १०११) । सातवीं और आठवीं चढ़ाई इसने सन् १०१३ और १०१४ में कश्मीर पर किया, किंतु वहाँ के राजा संग्रामदेव ने इस को हटा दिया । नवीं बार यह सन् १०१७ में बड़ी धूम से कन्नौज पर चढ़ा, किंतु कन्नौज के राजा के दासत्व स्वीकार करने से मथुरा नाश करता हुआ लौट गया । १०वीं चढ़ाई इस की सन् १०२२ में कालिंजर पर हुई और उसी बरस ११वीं चढ़ाई इस की फिर लाहौर पर हुई । १२वीं बेर गुजरात पर चढ़ाई कर के सन् १०२४ में सोमनाथ का प्रसिद्ध मंदिर तोड़ा । इस के पीछे वह हिंदुस्तान में नहीं आया और सन् १०३० में मर गया । इस के वंश वालों का हिंदुस्तान में केवल पंजाब पर कुछ अधिकार रहा ।

गजनी राज्य निर्बल होने पर जगतदाहक अलाउद्दीन गोरी ने गजनी के अंतिम राजा बहराम को मार कर अपने को बादशाह बनाया और कुछ दिन पीछे उस के भतीजे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने बहराम के पोते को मार कर गजनी के राज्य का नाम भी शेष नहीं रक्खा । यही महम्मद हिंदुस्तान में मुसलमानों के राज्य का मूल है । इस ने सन् ११७६ से लेकर १६ बरस तक कई बेर हिंदुस्तान पर चढ़ाई किया किंतु कुछ फल नहीं हुआ । कन्नौज के राजा जयचंद के बहकाने से इसने सन् ११९१ में दिल्ली के चौहान राजा पृथ्वीराज पर बड़ी धूम से चढ़ाई किया था, किंतु तरौरी नामक स्थान में घोर युद्ध के पीछे पृथ्वीराज से हारकर वह अपने देश को लौट गया । सन् ११९३ में यह बड़ी धूम और कौशल से फिर दिल्ली पर चढ़ा । हिंदुओं की सेना भी बड़ी धूम से इस के मुकाबिले को बाहर निकली । चित्तौर के समर सिंह इस सेना के सेनापति थे । युद्ध के डेरे पड़ने पर सुलह की बातचीत होने लगी । शहाबुद्दीन ने कहा हमने अपने भाई को सब वृत्तंत लिखा है, उत्तर आने तक लड़ाई बंद रहे । हिंदू सेना इस बात पर विश्वास करके थिथिल हो गई थी कि धोखा देकर एकाएक शहाबुद्दीन ने लड़ाई आरंभ की । बहुत से हिंदू वीर मारे गए । समरसिंह भी वीर गति को गए । पृथ्वीराज और उन के कवि चंद को कैद कर के गजनी भेज दिया । कहते हैं कि शब्दभेरी बान से अंधे होने की अवस्था में एक दिन पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन के भाई गयासुद्दीन का प्राण विनाश किया और उसी समय पूर्व संकेतानुसार चंद्र कवि ने उनको मारा और उन्होंने चंद * को । भारतवर्ष से हिंदुओं के स्वाधीनता का सूर्य

* चंद की उक्ति 'अब की चढ़ी कमान को जाने फिर कब चढ़े ।

जिनि चुकै चौहान इक्के मारय इक्क सर ॥'

सना के हेतु अस्त हो गया। पीछे शहाबुद्दीन ने कन्नौज का राज भी ले लिया और बनारस को भी ध्वंस किया। भाई के मरने पर शहाबुद्दीन सन् १२०२ में पूरा बादशाह हुआ, किंतु आठ बरस भी राज्य करने नहीं पाया था कि बंदमाशों के हाथ से (१२१०) मारा गया। उस समय हिंदुस्तान उस के दास कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथ में था क्योंकि इसी को वह यहाँ का प्रबंध सौंप गया था। यों भारतवर्ष के राजेश्वरों का राज्य एक दास के अधीन हुआ।

कुतुबुद्दीन ऐबक को शहाबुद्दीन के भतीजे महमूद गोरी ने बादशाह का खिताब भेज दिया और तब से हिंदुस्तान का राज्य निष्फटक इस के अधिकार में आया। चार बरस राज्य कर के वह मर गया। इस का पुत्र आरामशाह साल भर भी राज्य करने न पाया था कि इस के बहनोई शम्सुद्दीन ने जो पहिले एक गुलाम था इस को सिंहासन से उतार मुकुट अपने सिर पर रक्खा। इस के समय में बंगाला, मुलतान, कच्छ, सिंधु, कन्नौज, विहार, मालवा और ग्वालियर तक दिल्ली के राज्य में मिल चुका था। इस के मरने के पीछे इस का बेटा रंकुतुबुद्दीन फीरोज बादशाह हुआ किंतु यह ऐसा नष्ट था कि इस को उतार कर लोगों ने इस की बहिन रजिया बेगम को बादशाह बनाया। साढ़े तीन बरस राज्य कर के बलावाइयों के हाथ से यह मारी गई। इस का भाई मुइयुद्दीन बहराम दो बरस दो महीना बादशाह रहा। फिर लोगों ने इस को कैद कर के इस के भतीजे अलाउद्दीन मसऊद को बादशाह बनाया। किंतु चार बरस बाद यह भी मारा गया और इस का चाचा नसीरुद्दीन महमूद बादशाह हुआ। अल्लिमश का दास और दामाद बलबन इस के समय में मंत्री था और इसने नरवर और चंदेरी का किला तथा गज़नी का राज्य जय किया था। सन् १२६६ में नसीर के मरने पर बलबन बादशाह हुआ और बीस बरस राज्य कर के ८० बरस की अवस्था में मर गया। इसका पोता कैकुबाद राजा हुआ किंतु यह ऐसा विषयी था कि दो बरस भी राज्य न करने पाया कि लोगों ने इसको मार डाला और दिल्ली का राज्य गुलामों के वंश से निकल कर खिलजियों के हाथ में आया।

पंजाब से आकर सत्तर वर्ष की अवस्था में जलालुद्दीन खिलजी तख्त पर बैठा। मालवा और उज्जैन उस के समय में विजय हुए। इस के भतीजे अलाउद्दीन ने सन् १२९४ में देवगढ़ भी जीत लिया। किंतु दुष्ट अलाउद्दीन ने इस विजय के पीछे ही अपने बृद्ध चाचा को प्रयाग में मिलने के समय कटवा दिया और आप बादशाह हुआ। (१२९५) बादशाह होते ही इसने जलालुद्दीन के दो लड़के और उस के पक्षपाती कई सर्दारों को कत्ल किया और फिर बड़ी निर्दयता से गुजराज जीता। अनेक प्रकार के दुखदाई कर प्रचलित किए। १३०० में रणथम्भौर का प्रसिद्ध किला एक बरस की लड़ाई में टूटा और शरणागतवत्सल परम वीर हम्मीर^१ राजा सकुटुम्ब वीरों की गति को गया। १३०३ में इस ने चितौर पर चढ़ाई की। राजा रतन सेन से प्रथम मित्रता दिखला कर फिर विश्वास कर के उन को बंदी किया किंतु रानी पद्मावती अपनी बुद्धि और वीरता से राजा को छुड़ा ले गई। फिर तो क्षत्रियों ने जीवनाश छोड़कर बड़ा युद्ध किया और सब के सब वीरगति को गए। क्षत्रानियाँ सब चिता पर बैठ कर भस्म हो गई। १३०६ में देवगढ़ के राजा के कर न देने से फिर से उस पर चढ़ाई हुई और किला तोड़ा। १३१० में कर्नाटक में द्वारसमुद्र के राजा बल्लालदेव को और तैलंग के राजा लक्षधर को जीता। १३११ में विद्रोह के कारण एक दिन में इस ने अपने पंद्रह हजार मुगल सिपाही कटवा दिए। यह अति उग्र अभिमानी और निष्ठुर था। इस के मृत्यु के वर्ष १३१६ में देवगढ़ के राजा के जामाता राजा हरपाल ने देवगढ़ और गुजराज को जीतकर स्वतंत्र कर दिया। इसके मरने पर मलिक काफूर नामक एक इस के गुलाम ने जिसे इसने सर्दार बनाया था इसके दो बड़े बेटों को अंधा कर दिया और तीसरे मुबारक को अंधा करते समय आप ही मारा गया। कुतुबुद्दीन मुबारक ने बादशाह होकर (१३१७) अपने छोटे भाई को अंधा किया और बहुत से सर्दारों को मार डाला। यह अति विषयी और मूर्ख था। इस के एक हिंदू गुलाम ने, जिस का मुसलमान होने पर खुसरो नाम हुआ था, १३१९ में मलाबार जीता और १३२० में मुबारक को सकुटुम्ब

१. मीर मुहम्मदशाह मंगोल नामक एक सर्दार पर अपनी एक उपपत्नी से व्यभिचार के संदेह से अलाउद्दीन ने क्रोध करके उस के बंध की आजा दी थी। वह हम्मीर की शरण गया। बादशाह ने हम्मीर से मंगोल को माँगा किंतु धीर वीर हम्मीर ने अपने शरणागत को नहीं दिया इसी पर अलाउद्दीन चढ़ दौड़ा। राजा हम्मीर के विषय में यह दोहा उगतप्रसिद्ध है, सिंह सुवन सुपुरुष बयन, कदलि फले इक सार। तिरिया तेल हमीर हठ चढ़े न दूजी बार।

काटकर आप राज पर बैठा। दिल्ली में चार महीने तक इस का सिक्का चलता रहा। इस के समय में हिंदुओं ने मुसलमान सर्दारों की स्त्रियों को दासी और वेश्या बनाया, मसजिदों में मूरतें बिठा दीं और कुरान की चौकी बनाकर उस पर बैठते थे। यह उपद्रव सुनकर पंजाब का सूबेदार गाजीखाँ सेना लेकर दिल्ली में आया और खुसरो को मार कर आप बादशाह बना।

गाजी खाँ ने बादशाह होकर अपना नाम गियासुद्दीन तुगलक रखा (१३२१)। इसका बाप बलबन का गुलाम था। बीडर और वारंगल जीता। तुगलकाबाद का किला बनाया। तिरहुत जीत कर जब लौटा, तो नगर के बाहर इस के बेटे जुना ने एक काठ का नाचघर जो इसके लौटने के आनंद में बनाया था उस के नीचे दब कर मर गया। (१३२५) जुनाखाँ ने गद्दी पर बैठ कर अपना नाम मुहम्मद तुगलक रक्खा। (१३२५) इसका प्रकृत नाम फखरुद्दीन अलगाखाँ था। पहिले यह बड़ा बुद्धिमान और बड़ा दानी था। हजार दर का महल बनाया। मुगलों ने सुलह किया और दक्षिण में अपना अधिकार फैलाया। पर पीछे से ऐसे काम किये कि लोग उसे पागल समझने लगे। हुकुम दिया कि दिल्ली की प्रजा मात्र दिल्ली छोड़ कर देवगढ़ में रहे, जिसको दक्षिण में दौलताबाद नाम से बसाया था। इसका फल यह हुआ कि देवगढ़ तो न बसा किंतु दिल्ली उजड़ गई। अंत में फिर दिल्ली लौट आया। फारस और खुरासान जीतने के लिये तीन लाख सतरह हजार सवार इकट्ठे किए। इन में से एक लाख को चीन लेने के लिए भेजा। ये सब के सब हिमालय में नष्ट हो गये, कोई न बचा। बहुत से कर प्रचलित किए। लोग शहर छोड़ कर जंगलों में भाग गये पर वहाँ भी पीछा न छोड़ा और जानवरों की भाँति उन लोगों का शिकार किया गया। कागज का सिक्का चलाया। बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। लाखों मनुष्य मरे। चारों ओर विद्रोह हो गया। बंगाल और तैलंग स्वाधीन हो गये। मालवा, पंजाब और गुजरातवाले विद्रोही हो गये। कर्नाटक में विजयपुर नाम का एक नया राज्य हो गया। हुसैन बामनी ने मध्यप्रदेश में एक नया राज्य बनाया। अंत में विद्रोह शान्ति के लिए स्वयं सब जगह घूमा किंतु मालवा और पंजाब छोड़कर कहीं शांत न हुआ, रास्ते में सिंधु के पास ठंडा में इसकी मृत्यु हुई (१३५१)। मुहम्मद का भाई फीरोजशाह बादशाह हुआ (१३५१)। इसने स्थान स्थान पर हम्माम, चिकित्सालय, सराय, पुल, तालाब, पाठशाला और सुंदर महल बनवाए थे। कर्नाल से हाँसी हिसार तक जमुनाजी नहर निकाली। इसने अपने को अति वृद्ध समझकर नसीरुद्दीन को राज्य दिया किंतु इस के दो बरस पीछे नसीरुद्दीन के दो भाइयों ने बलवा करके इस को निकाल दिया और फीरोज शाह के पोते गियासुद्दीन को तख्त पर बैठाया। १३८९ में नब्बे बरस की अवस्था में फीरोज मरा और उसके पाँच ही महीने बाद १३८९ में इन्हीं बलवाइयों ने गियासुद्दीन को भी मार डाला और उसके भाई अबूबकर को बादशाह किया। अबूबकर साल भर भी राज्य नहीं करने पाया कि नसीरुद्दीन उस को जीत कर आप बादशाह बन बैठा। चार बरस राज्य कर के यह मर गया और इस का बड़ा बेटा हुमायूँ अपने को सिकंदर शाह प्रसिद्ध करके बादशाह हुआ। यह केवल ४५ दिन जीआ और इसके पीछे का छोटा भाई महमूद तुगलक बादशाह हुआ (१३९४)। इस की अवस्था छोटी होने के कारण राज्य में चारों ओर अप्रबंध हो गया और गुजरात, मालवा और खानदेश के सूबे स्वतंत्र हो गये और वजौर विगड़कर जौनपुर का स्वतंत्र राजा बन बैठा। इसी समय अमीर तैमूरलंग जो कि परमेश्वर की मानो मूर्तिमयी संहार शक्ति थी बहुत से तातारियों को लेकर हिंदुस्तान में आया (१३९८)। यह लंगड़ा था। इस के नाम तैमूर साहाकिराँ और गोरकाँ थे और जगद्वाहक चंगेजखाँ के वंश में था। पंजाब के रास्ते भटनेर इत्यादि जिन नगर या गाँव मिले उनको प्रलय की तरह लूटता और जलाता हुआ दिल्ली को भी खूब लूटा और जलाया। लाख मनुष्य जो रास्ते में पकड़ गये थे कतल किये गये। १५ बरस से छोटे लड़के गुलामी के लिए नहीं मारे गये। महमूद गुजरात में भाग गया और तैमूर के नाम का खुतबा पढ़ा गया। सन् १३९९ में मेरठ लूटता हुआ यह अपने देश चला गया। महमूद फिर आया और छ बरस राज्य करके मर गया। और दौलत खाँ लौदी ने पंद्रह महीने तक राज्य किया। तैमूर से सूबेदार खिज़्र खाँ सैयद ने इस से राज्य छीन लिया। सैयद अहमद ने अपने ज़ामेजम नामक चक्र में नसीरुद्दीन आदि दो तीन बादशाह और लिखे हैं जो और तवारीखों में नहीं हैं। १४१४ से १४२१ तक खिज़्र खाँ बादशाह रहा और उस के मरने पर उस का बेटा मुबारकशाह बादशाह हुआ। १४३६ में उस के मंत्री अब्दुल सैयद और सदानंद खत्री ने उस को मार कर उस के भतीजे मुहम्मद को बादशाह बनाया। १४४४ ई. में इसके मरने पर इस का बेटा अलाउद्दीन बादशाह हुआ। उस समय की बादशाहत नाम मात्र की थी। १४५० ई. में बहलूल लोदी ने पंजाब से आकर तख्त छीन लिया और

अलाउद्दीन वदायूँ चला गया ।

बहलूल के बादशाह होने से पंजाब दिल्ली में मिल गया । जौनपुरवालों से छब्बीस बरस तक लड़कर उसने वह बादशाहत भी दिल्ली में मिला ली । १४८८ में इस के मरने पर इस का बेटा सिकंदर बादशाह हुआ । इसने हिंदुओं को अनेक कष्ट दिए । तीर्थ बंद कर दिए । पोर्तुगीज लोग पहले पहल इसी के काल में यहाँ आए । १५१६ में इस के मरने पर इसका बेटा इबराहीम बादशाह हुआ । यह ऐसा नीच और दुष्ट और अभिमानी था कि सब सूबेदार इस से फिर गए । पंजाब का सूबेदार सिकंदर लोदी जो इसका गोती था इस से ऐसा दुखी हुआ कि इसने काबुल के बादशाह बाबर जो तैमूर से छठी पुस्त में था उस को अपनी सहायता को बुलाया । बाबर ने आते ही पहले सिकंदर ही का राज नाश किया, फिर १५१६ में पानीपत के प्रसिद्ध युद्ध में इबराहीम को जीतकर आप हिंदुस्तान का बादशाह हुआ ।

बाबर ने बड़ी सावधानी से राज्य करना आरंभ किया । दिल्ली के अधीनस्थ जो सूबे फिर गये थे सब जीते गए । १५२७ में मेवाड़ के राजा संग्राम सिंह ने बहुत से देश जीत लिए थे, इस से कई बेर इन से घोर संग्राम हुआ, १४२८ में चंदेरी का किला टूटा । सब राजपूत बड़ी वीरता से खेत रहे । इसी साल राणा संग्राम सिंह ने रतनवर का किला ले लिया । १५२९ में बिहार, लाहौर, बंगाल आदि में अफगानों को बाबर ने पराजित किया । १५३० सन् में २६ दिसम्बर को बाबर की मृत्यु हुई । कहते हैं हुमायूँ बहुत बीमार हो गया था । बाबर ने इस बात का इतना सोच किया कि आप ही बीमार होकर मर गया । बाबर में कई गुण सराहने के योग्य थे । हुमायूँ ने राज्य पर बैठ कर अपने तीनों भाई कामरान्, हिंदाल और अस्करी को यथाक्रम काबुल, संमल और मेवात का देश दिया । पहले जौनपुर का विद्रोह निवारण करके फिर वह गुजरात पर चढ़ा और वहाँ के बादशाह बहादुर शाह को बड़ी बहादुरी से जीत लिया । १५३७ में शेरशाह ने बंगला जीत लिया और जब इधर हुमायूँ शेरशाह से लड़ने को आया तो बहादुर शाह फिर स्वतंत्र हो गया । शेरशाह पहले बाबर का एक सेनाध्यक्ष था । हुमायूँ ने पहले तो चुनार शेरशाह से जीता, किंतु पीछे शेरशाह ने विश्वासघात करके रोहतासगढ़ के राजा को मार कर उसके किले में अपना परिवार रख कर हुमायूँ पर एक बारगी, ऐसा धावा किया कि बनारस और कन्नौज तक जीत लिया । १५३९ में फिर एक बेर शेरशाह ने हुमायूँ का पीछा किया और गंगा में कूद कर हुमायूँ ने अपने को बचाया । सन् चालीस में फिर हुमायूँ शेरशाह से हारा और गंगा में तैर कर किसी तरह फिर बच गया । दिल्ली पहुँच कर अपना परिवार लेकर वह लाहौर गया, किंतु वहाँ भी शेरशाह ने पीछा न छोड़ा, इस से वह सिंध होता हुआ राजपुताने में आया । यहीं इसी आपत्ति के समय अमरकोट में १५४२ में अकबर का जन्म हुआ । डेढ़ बरस अमरकोट के राजा के आश्रय में रह कर हुमायूँ ईरान में चला गया और वहाँ के बादशाह क्री सहायता से वहीं रहने लगा ।

शेरशाह ने (१५४०) हुमायूँ के अधीनस्थ सब राज्य अधिकार करके रायसेन, मारवार और मालवा जीता । (१५४५) चित्तौर जीतने का इद्द संकल्प कर के मार्ग में कालिंजर का किला घेरे हुए पड़ा था कि रात को मेगजीन में आग लगने से झुलस कर प्राण त्याग दिया । यह बड़ा धीर और बुद्धिमान था । घोड़े की डाँक, राजस्वकर, सराय, तहसीलदार आदि कई नियम उस ने उत्तम बाँधे थे । बंगाल से मुलतान तक एक राजमार्ग इस ने बनवाया था । इस के मरने पर इस का छोटा बेटा जलालखाँ सलीमशाह सूर नाम रख कर बादशाह हुआ । १५५३ में इस के मरने पर इस के बेटे फीरोजशाह को मार कर इस का शाला मुहम्मदशाह अदली बादशाह हुआ । राज्य का सब भार हेमू नामक एक वनिये के ऊपर छोड़ कर आप अति विषय में प्रवृत्त हुआ । चारों ओर बलवा हो गया । इसी वंश के इबराहीम सूर ने दिल्ली, आगरा, सिकंदर सूर ने पंजाब और मुहम्मद सूर ने बंगाला जीत लिया । हुमायूँ, जो हिंदुस्तान जीतने का अवसर देख ही रहा था, इस समय को अनुकूल समझ कर पंद्रह हजार सवार ले कर सिंध उतर कर हिंदुस्तान में आया और (१५५५) पंजाब जीतता हुआ दिल्ली में पहुँच कर फिर से भारतवर्ष के सिंहासन पर बैठा । जितने देश अधिकार से निकल गए थे सब जीते गए । किंतु मृत्यु ने उस को राज भोगने न दिया और एक दिन संध्या को महल की सीढ़ी पर से पैर फिसल कर गिरने से (१५५६) परलोक सिधारा ।

इस की मृत्यु पर इस का पुत्र जगदिख्यात अबुलमूजफ्फर जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर शाह साढ़े तेरह बरस की अवस्था में बादशाह हुआ । वैरम खाँ खानखानाँ राज्य का प्रबंध करता था । बदनखाँ के बादशाह

सुलेमान शाह ने काबुल दखल कर लिया है, यह सुन कर बैरम अकबर को ले कर पंजाब के मार्ग से काबुल गया। इधर हेमू बनिया ने तीस हजार सैन्य ले कर दिल्ली और आगरा जीत लिया और पंजाब की ओर अकबर के जीतने को आगे बढ़ा। बैरम खाँ ने यह सुन कर शीघ्र ही दिल्ली को बाग मोड़ी और पानीपत में हेमू से घोर युद्ध हुआ, जिस में हेमू मारा गया और बैरम की जीत हुई। इस जय से बैरम को इतना गर्व हो गया कि वह अकबर को तुच्छ समझने लगा। परिणामदर्शी अकबर उस की यह चाल देखकर बहाने से निकल कर दिल्ली चला आया और वहाँ (१५६०) यह इशतिहार जारी किया की सल्तनत का सब काम उस ने अपने हाथ में ले लिया है। बैरम इस बात से खसिया कर बागी हुआ, किंतु बादशाही फौज से हार कर बादशाह की शरण में आया। अकबर ने उस के सब अपराध क्षमा किए और भारी पिनशन नियत कर दी। किंतु बैरम को उसी वर्ष मक्का जाती समय मार्ग में एक घटान ने व्याह किया। मत का आग्रह छोड़ दिया। यहाँ तक कि कई हिंदुओं के तोड़े हुए मंदिर इसने फिर से बनवा दिए। लखनऊ, जौनपुर, ग्वालियर, अजमेर इत्यादि इस के राज्य के आरंभ ही में इस के आधीन हो गए थे। १५६१ में मालवा भी, जो अब तक राजा बाजबहादुर के अधिकार में था, इस के सेनापति ने जीत लिया। राजा के पहले ही पकड़े जाने पर उसकी रानी दुर्गावती बड़ी शूरता से लड़ी। दो बेर बादशाही फौज का इसने भगा दिया, किंतु तीसरी लड़ाई में जब हार गई तो आत्मघात कर के मर गई। इस पवित्र स्त्री का चरित्र अब नक बुन्देलखंड में गाया जाता है। अकबर ने बाजबहादुर को अपना निज मुसाहिब बना कर अपने पास रक्खा। १५६८ में अकबर ने चित्तौर का किला घेरा। राणा उदयसिंह पहाड़ों में चले गए, किंतु उन के परम प्रसिद्ध वीर जयमल्ल नामक सेनाध्यक्ष ने दुर्ग की बड़ी सावधानी से रक्षा किया। एक रात जयमल्ल किंगे के बुर्जों की मरम्मत करा रहा था कि अकबर ने दूरबीन से देख कर गोली का ऐसा निशाना मारा कि जयमल्ल गिर पड़ा। इस सेनाध्यक्ष के मरने से क्षत्री लोग ऐसे उत्तास हुए कि सब बाहर निकल आए। स्त्रियाँ चिता पर जल गईं और पुरुष मात्र लड़कर वीर गति को गए। उस युद्ध में जितने क्षत्री मारे गए उन सबका जनेऊ अकबर ने तीलवाया तो साढ़े चौहत्तर मन हुआ। इसी से चिट्टियों पर ७४। लिखते हैं, अर्थात् जिसके नाम की चिट्ठी है उस के सिवा और कोई खोले तो चित्तौर तोड़ने का पाप हो। यद्यपि चित्तौर का किला टूटा किंतु वह बहुत दिनों तक बादशाही अधिकार में नहीं रहा। राणा उदय सिंह के पुत्र राणा प्रतापसिंह सदा सर्वदा लड़भिड़ कर बादशाही सेना का नाश किया करते थे। जहाँ बरसात आई और नदी नालों से बाहर आने का मार्ग बंद हुआ कि वह क्षत्रियों को ले कर उतरे और बादशाही फौज को काटा। मानसिंह का तिरस्कार करने से अकबर की आज्ञा से १५७६ में जहाँगीर और महाबतखाँ के साथ बड़ी सैना लेकर मानसिंह ने राणा पर चढ़ाई की। प्रतापसिंह ने हल्लीघाट नामक स्थान पर बड़ा भारी युद्ध किया, जिसमें बाईस हजार राजपूत मारे गए। इस पर भी राणा ने हार नहीं मानी और सदा लड़ते रहे। अपने बाप के नाम से उदयपुर का नगर भी बसाया और बहुत सा देश भी जीत लिया। १५७३ में गुजरात, ७६ में बंगाला और बिहार, ८६ में काश्मीर, ९२ में सिंध और ९५ में दक्खिन के सब राज्य अकबर ने जीत लिए। अहमद नगर के युद्ध में (१६००) चाँद सुल्ताना नामक वहाँ के बादशह की चाची ने बड़ी शूरता प्रकाश की थी। इसी समय युवराज सलीम बागी हो गया और इलाहाबाद आदि अपने अधिकार में कर लिया। किंतु अकबर जब दक्खिन से लौटा तो जहाँगीर इस के पास हाजिर हुआ। अकबर ने अपराध क्षमा करके बंगाला और बिहार इस को दिया। १७८३ में युसुफजाइयों की लड़ाई में अकबर के प्रिय सभासद महाराज वीरबल मारे जा चुके थे और अबुलफजल को जहाँगीर के विद्रोह के समय उरखा के राजा ने मार डाला था, तथा उस का दूसरा लड़का मुराद भी अति मद्यपान करके मर चुका था। अब (१६०५) में अकबर को उस के तीसरे लड़के दानियाल को भी अति मद्यपान से मर जाने का समाचार पहुंचा। इतने प्रियवर्ग के मर जाने से इसका चित्त ऐसा दुखी हुआ कि बीमार हो कर ६३ वर्ष की अवस्था में आगरे में अकबर ने इस असार संसार को त्याग किया।

१. इस का वास्तव में बसन्तराय नाम था। कई तवारीखों में इस की जाति दूसर लिखी है। किंतु अगरवालों के भाट इस को अगरवाला कहते हैं।

अकबर अति बुद्धिमान और परिणामदर्शी था। आलस्य तो इस को छू नहीं गया था। प्रथमावस्था में तो कुछ भोजन पानादि का व्यवसन भी था किन्तु अवस्था बढ़ने पर यह बड़ा ही सावधान हो गया था। बरस में तीन महीना मांस नहीं खाता था। आदित्यवार को मांस की दुकानें बंद रहती थीं। जिजिया नामक कर और प्रत्यक्ष गोहिंसा उसने उठा दिया था। कर का भी बंदोबस्त अच्छा किया था। महाराज टोडर मल्ल (टन्नन खत्री), अबुलफजल, खानखाना, मानसिंह, तानसेन, गंग, जगन्नाथ पंडितराज और महाराज बीरबल आदि सब प्रकार के चुने हुए मनुष्य इस की सभा में थे। कागज, हंडी, बही आदि का नियम इन्हीं टोडर मल्ल का बाँधा हुआ है। विधवाविवाह के प्रचार में भी इस ने उद्योग किया था और तीर्थों का कर भी छूट गया था। भूमि की उत्पत्ति से तृतीयांश लिया था और पंद्रह सूबों में राज बटा हुआ था।

अकबर के मरने पर सलीम नूरुद्दीन जहाँगीर के नाम से सिंहासन पर बैठा। इस ने बहुत से कर जो अकबर के समय भी वच गए थे बंद कर दिये। नाक कान काटने की सजा, बादशाही फौज का जमींदार या प्रजा से रसद लेना और आफीम और मद्य का प्रचार इस ने बंद कर दिया। महल में एक सोने की जंजीर लटकाई थी कि किसी दीन दुखी की पुकार जो कोई राजपुरुष न सुने तो वह जंजीर हिला दे। जंजीर की घंटी के शब्द पर वह आप बाहर निकल आता था और न्याय करता था। किन्तु १६०६ में जब उसका लड़का खुसरो पंजाब में बागी हो गया था तब जहाँगीर ने उसके सात सौ साथियों को बड़ी निर्दयता से उस के आँख के सामने मरवा डाला। १८१० से चार बरस तक मलिक अंबर और अहमद से लड़ाई होती रही। १६१४ में खुर्रम (शाहजहाँ) के साथ एक बड़ी सना इस ने उदयपुर जीतने को भेजी थी, किन्तु राजा ने मेल कर लिया। १६११ में जहाँगीर ने नूरजहाँ से ब्याह किया। नूरजहाँ का पिता गियासबेग ईरान का एक धनी था किन्तु विपत्ति पड़ने से वह व्यापार को हिन्दुस्तान आता था। मार्ग में नूरजहाँ का जन्म हुआ। गियास यहाँ आकर अकबर के दरबार में भरती हो गया था। उसी समय से जहाँगीर की नूरजहाँ पर दृष्टि थी, अकबर के डर के मारे कुछ कर नुसका और शेर अफगन नामक एक पठान अमीर के साथ जिसे अकबर ने बंगाल और बिहार में ज़ागीर दी थी, नूरजहाँ का ब्याह हो गया था। बादशाह होने ही जहाँगीर ने बंगाले के सूबेदार को नूरजहाँ को किसी प्रकार भेज देने को लिखा। शेर अफगन बड़ी बीरता से मारा गया और नूरजहाँ बादशाह के पास भेज दी गई। चार बरस तक जहाँगीर ने इसकी सुश्रूषा करके इसके साथ विवाह किया। फिर तो नूरजहाँ ही सारी बादशाहत करती थी; जहाँगीर नाम मात्र को बादशाह था। यह स्त्री चतुर भी अतिशय थी। १६२१ में जहाँगीर का बड़ा बेटा खुसरो मर गया। परबेज मूर्ख था, इससे जहाँगीर ने खुर्रम शाहजहाँ को ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा। किन्तु नूरजहाँ की बेटी जहाँगीर के चौथे पुत्र शहरार को ब्याही थी, इससे नूरजहाँ ने उसी को बादशाह बनाने की इच्छा से जहाँगीर का मन शाहजहाँ से फेर दिया। पिता का मन फिर देख शाहजहाँ बागी हो गया। दक्षिण में और बंगाले में यह बराबर लड़ता रहा और बादशाही फौज इस का पीछा किए फिरती थी। अंत में एक अजी भेजकर बाप से इसने अपराध की क्षमा चाही और अपने दो लड़कों को दरबार में भेज कर आप दक्षिण की सूबेदारी पर चला गया। नूरजहाँ ने एक बेर बंगाले के सूबेदार प्रसिद बीर महाबतख़ाँ को हिसाब देने को बुला भेजा। महाबतख़ाँ इस आज्ञा से शंकित होकर आया सही, किन्तु पाँच हजार चुने हुए राजपूत अपने साथ लाया। इस समय जहाँगीर काबुल जाता था। ज्योंही झेलम पार इस की सैना उतर चुकी थी कि महाबतख़ाँ ने बादशाह और बेगम को घेर कर अपने अधिकार में कर लिया। किन्तु नूरजहाँ की चालाकी से कुछ दिन पीछे (१६२६) जहाँगीर महाबतख़ाँ के अधिकार से निकल आया। १६२७ में कश्मीर में जहाँगीर ऐसा रोगग्रस्त हुआ कि लाहौर में आकर साठ बरस की अवस्था में मर गया। आसफ़ख़ाँ नामक नूरजहाँ के भाई ने जिसके हाथ में सारा राज्यचक्र था खुसरो के बेटे दावरबख़्श को नाममात्र बादशाह कर के आप काम काज करने लगा और शाहजहाँ को दक्खिन से बुला भेजा। शाहजहाँ के पहुँचने पर आसफ़ख़ाँ ने दावरबख़्श को मार डाला। कहते हैं कि चौदह महीने यह नाम मात्र को बादशाह था। इंग्लिस्तान के बादशाह जेम्स (१) का एलबी सर टामस रो जहाँगीर की सभा में आया था।

शाहजहाँ १६२८ में बड़ी धूम धाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा। डेढ़ करोड़ रुपया उसी दिन व्यय हुआ था। महाबतख़ाँ और आसफ़ख़ाँ इसके मुख्य मंत्री थे। दिल्ली फिर से बसाई गई। सात करोड़ दस लाख रुपया लगाकर तख्तेताऊस (मोर का सिंहासन) बनवाया। आगरे में ताजगंज नामक प्रसिद स्थान इसी

बादशाह का बनवाया है। नूरजहाँ जहाँगीर के पीछे २० बरस जीती रही और शाहजहाँ पच्चीस लाख रुपया साल इसको देता था। शाहजहाँ ने जैसा राज भोगा और सुख किया और हिन्दुस्तान की बादशाहत को चमकाया, पहले कभी ऐसा किसी और ने नहीं किया था। बत्तीस करोड़ साल इस की आमदनी थी। प्रति वर्ष सालगिरह में डेढ़ करोड़ व्यय होता था। मकानों में सोना और हीरा जड़ा जाता था। इस पर भी मरने के समय यह ब्यालीस करोड़ रुपया नकद छोड़ गया था। १६३२ में कंदहार के ईरानी सुवेदार अलीमर्दानखाँ के शाहजहाँ से मिलजाने से कंदहार फिर हिन्दुस्तान के राज्य में मिल गया था, किन्तु इक्कीस बरस पीछे ईरानियों ने फिर जीत लिया। १६४६ में बुखारा भी बादशाह ने जीता। १६४७ में कई बरस की लड़ाई के पीछे दक्षिण में भी शांति स्थापन हुई और अबदुल्ला शाह गोलकुंडे के बादशाह से संधि हो गई। इसी संधि में कोहनूर नामक प्रसिद्ध हीरा बादशाह के हाथ लगा। शाहजहाँ को चार पुत्र थे। दाराशिकोह, शुजा, औरंगजेब और मुराद। दाराशिकोह बड़ा बुद्धिमान, नम्र और उदार था, किन्तु औरंगजेब इस के विरुद्ध दीर्घदर्शी और महादली था। शुजा वीर था, परंतु अव्यवस्थित था और मुराद चित्त का बड़ा दुर्बल था। १६५७ में शाहजहाँ बहुत ही अस्वस्थ हो गया। दारा के हाथ में राज का शासन था। औरंगजेब ने इस अवसर को उत्तम समझ कर मुराद को बहकाया कि बेदीन दारा से बादशाहत तुम ले लो, हम तुम्हारी सहायता करेंगे और तुम को तख्त पर बैठा कर मक्के चले जायेंगे। मुराद दारा से लड़ने चला। औरंगजेब भी आगे बढ़ कर उससे मिल गया। १६६२ में बंगाल से शाहशुजा भी फौज ले कर चढ़ा, किन्तु सुलैमान शिकोह (दाराशिकोह के बेटे) से बनारस के पास लड़ाई में हार कर फिर बंगाले चला गया। मुराद और औरंगजेब इधर यशवंत सिंह को जीतते हुए आगरे से एक मंजिल श्यामगढ़ में आ पहुँचे। दारा एक लाख सवार लेकर इन से युद्ध करने को निकला। राजा रामसिंह, राजा रूपसिंह, छत्रसाल आदि कई क्षत्री राजे उसकी सहायता को आए थे और बड़ी वीरता से मारे गए। परमेश्वर को मुसलमानों का राज्य स्थिर नहीं रखना था इससे हाथी बिचलने से दारा की फौज भाग गई और औरंगजेब ने आगरे में प्रवेश कर के विश्वासघातकता से मुराद को कैद कर के १६५८ में अपने को बादशाह बनाया। अंत में एक दिन मुराद को भी मरवा डाला और सुलैमानशिकोह को भी, जो कश्मीर से पकड़ आया था, मरवा डाला। शुजा लड़ाई हार कर अराकान भागा और वहीं संवश मारा गया। दारा ने सिंध की राह से अजमेर आकर बीस हजार सेना एकत्र कर के औरंगजेब पर चढ़ाई किया, किन्तु युद्ध में हार गया और औरंगजेब ने बड़ी निर्दयता से उसको मरवा डाला। उसके पुत्र सिपहरशिकोह को ग्वालियर के किले में कैद किया और फिर बहुत से शाहजानों को, जिन का बादशाह से दूर का भी संबंध था, कटवा डाला। कहते हैं कि दाराशिकोह बादशाह होता तो लोग अकबर को भी भूल जाते। इस के पीछे शाहजहाँ सात बरस जिया था।

औरंगजेब के राज्य के आरंभ ही से मुसलमानी बादशाहत का वास्तविक ढास समझना चाहिए। जिजिया का कर फिर से जारी हुआ। हिन्दुओं के मेले और त्योहार बंद किए। तीर्थ और देवमंदिर ध्वंस किए गए। इसी से 'तीन पुस्त की कमाई' स्वरूप हिन्दुओं की जो दिल्ली के बादशाहों से प्रीति थी वह नाश हो गई। इधर दक्षिण में महाराष्ट्रों का उदय हुआ। शिवाजी नामक एक वीर पुरुष ने, जो यादवराव का नाती और मालोजी का पुत्र था, दक्षिण में अपनी स्वतंत्रता का डंका बजाया। पहले विजयपुर के राज में लूटपाट कर के अपनी सामर्थ्य बढ़ा कर १६६२ में बादशाही देशों को लूटना आरंभ किया। बादशाही सेनाध्यक्ष शाइस्ताखाँ ने इनके विरुद्ध आ कर पूने में अपना अधिकार कर लिया। किन्तु असम साहसी शिवाजी केवल पच्चीस मनुष्य साथ लेकर एक रात उसके डेरे में घुस गए और शाइस्ता बिचारे प्राण लेकर भागे। शिवाजी ने अबकी पूने से ले कर गुजरात तक अपना प्रताप बढ़ाया और तंजौर और मंदराज जीत कर १६६४ में अपने को राजा प्रसिद्ध किया। औरंगजेब शिवाजी के इस साहस से बहुत ही खिसिया गया और जयसिंह के साथ बहुत सी सेना उसे जीतने को भेजी। राजा जयसिंह और शिवाजी से संधि हो गई और उससे मरहटे दक्षिण में बादशाही मालगुजारी की चौथ लेने लगे। १६६५ में शिवाजी दिल्ली आए और औरंगजेब ने जब उन को नजरबंद कर लिया तो कुछ दिन पीछे बड़ी सावधानी से वह दिल्ली से निकल गए। १६६७ में औरंगजेब ने शिवाजी को राजा की पदवी भेज दी और बीजापुर और गोलकुंडा के बादशाहों से लड़ने को इनको कहला भेजा। शिवाजी इन दोनों बादशाहों से लड़े और अंत में जब संधि हुई तो अपने राज्य का शिवाजी ने सुप्रबंध किया। १६६९ में शिवाजी का प्रभुत्व दक्षिण में स्थिर हो गया था, इससे औरंगजेब ने क्रोध करके महाबत खाँ को बड़ी सेना के साथ उन को दमन करने को भेजा, किन्तु (१६७०) शिवाजी ने उन को परास्त कर दिया। इसी समय सतनामी और सिख नामक दो

दल हिन्दुओं के और औरंगजेब के विरुद्ध खड़े हुए। १२७८ में जोधपुर के राजा यशवंत सिंह के सिन्धुवार मारे जाने पर उन की स्त्री और पुत्र को निरपराध औरंगजेब ने कैद करना चाहा। यद्यपि दुर्गादास नामक सैन्यपति की शूरता से लड़के तो कैद नहीं हुए, किन्तु बादशाह की इस बेईमानी से राजपुताना मात्र विरुद्ध हो गया। उदयपुर के राणा राजसिंह, जयपुर के रामसिंह और सभी राजाओं ने बादशाह के विरुद्ध शस्त्र धारण किया। इधर दुर्गादास ने औरंगजेब के लड़के अकबर को बहाक कर बागी कर दिया और सत्तर हज़ार सैना लेकर अबमेर में बादशाही सेना से बड़ा युद्ध किया। १६८० में बिरार, खानदेश, बिल्लोर, मैसूर आदि देश में अपना अधिकार, यश और प्रताप विस्तार कर के शिवाजी मर गए। शिवाजी का पुत्र शंभुजी राजा हुआ और बादशाह के पुत्र मुअज़्ज़म को जीत कर बहुत देश लूटा, किन्तु एक युद्ध में बादशाही सैना से घिर कर पकड़ा गया और औरंगजेब ने उस को मरवा डाला। इधर बीस बरस के रगड़े झगड़े के पीछे गोलकुंडा और बीजापुर भी औरंगजेब ने जीत लिया। यद्यपि इस जीत से औरंगजेब का गर्व बढ़ गया, किन्तु साथ ही उस का आयुष्य और प्रताप घट गया। दक्षिण की लड़ाई के मारे खज़ाना खाली हो गया। हिन्दुओं का जी अति खट्टा हो गया। अंत में १७०७ में ८९ वर्ष की अवस्था में औरंगजेब मर गया और मुगलों का सौभाग्य भी उसी के साथ कत्र में समाहित हुआ।

औरंगजेब के तीन लड़कों में से आजम और मुअज़्ज़म दोनों ही बादशाह बन बैठे, किन्तु आजम लड़ाई में मारा गया और कामबख्श भी दक्खिन में मारा गया, इस से मुअज़्ज़म ही बहादुर शाह के नाम से बादशाह हुआ। इस ने उदयपुर, महाराष्ट्र आदि प्रबल राजों से संधि की। सिक्खों ने इस के समय में भी बड़ा उपद्रव किया। बहादुर शाह पांच बरस राज कर के मर गया। इस के पीछे सभी बादशाह बनने लगे और बहुत सा रुधिर बहने के पीछे (१७१२) जहाँदार शाह बादशाह हुआ। यह भी साल भर नहीं रहा कि इस का भतीजा फर्रुखसियर इस को सपरिवार मार कर आप बादशाह हो गया (१७१३)। इसके समय में भाई बंदा नामक सिख बड़ी धर्मवीरता से मारा गया। १७१९ में सेयद अब्दुल्ला और सेयद हुसैन, जो इस के मुख्य सहायक थे, इस से बिगड़ गये और फर्रुखसियर मारा गया। सेयदों ने रफीउल्लेख और रफीउल्लेखान को सिंहासन पर बैठाया, किन्तु वे चार चार महीने में मर गये। जहाँदार और फर्रुखसियर ने इतने शाहजादे मार डाले थे कि सेयदों ने बड़ी कठिनाई से रौशनअख्तर नामक एक शाहजादे को खोज कर कैद से निकाला और मुहम्मद शाह के नाम से बादशाह बनाया। (१७१३) विद्रोह चारों ओर फैल गया। १७२० में मालवा और १७२५ में हैदराबाद स्वतंत्र हो गए। सेयद लोग इस के पूर्व ही मारे जा चुके थे। इधर भरतपुर में जाटों ने नया राज्य स्थापन कर के लूटपाट आरंभ कर दी। इधर प्रताप शाली बाजीराव पेशवा ने दिल्ली के द्वार तक जीत कर चंबल के दक्षिण का सब देश अपने अधिकार में मिला लिया। (१७३७) इस के सर्दारों में से हुलकर ने इंदौर, सेन्धिया ने ग्वालियर, गायकवाड़ ने बड़ौदा और भोंसला ने नागपुर राज्य स्थापन किया। इसी समय ईश्वर के क्रोध का एक पंचम अवतार ईरान का बादशाह नादिरशाह हिन्दुस्तान में आया। करनाल में मुहम्मदशाह ने इस से मुकाबला किया, किन्तु जब हार गया तो नादिरशाह के पास हाज़िर हुआ। नादिर ने इस का बड़ा शिष्टाचार किया। दोनों बादशाह साथ ही दिल्ली आए। उस समय दिल्ली ऐसे निकम्मे और लुच्चे लोगों से भरी हुई थी कि दूसरे ही दिन लोगों ने यह गण्य उड़ा दी कि नादिरशाह मारा गया। बदमाशों ने उस के मनुष्यों को काटना आरंभ कर दिया। इस बात पर नादिर ने ऐसा क्रोध किया कि सारी दिल्ली को काट देने का हुकुम दिया। डेढ़ पहर तक शाक की भाँति लाख मनुष्यों के ऊपर काटे गये। अंत को मुहम्मदशाह रोता हुआ उस के सामने गया, तब नादिरशाह ने आज्ञा दिया कि काटना बंद हो जाए। उस की आज्ञा ऐसी मानी जाती थी कि उस के प्रचार होते ही यदि किसी ने किसी के शरीर में आधी तलवार गड़ाई थी तो वहीं से उठा ली — दिल्ली को यों उजाड़ा कर के अठ्ठावन दिन वहाँ रह कर सत्तर करोड़ का माल साथ लेकर नादिर अपने मुल्क को लौट गया (१७३९)। कुछ दिन पीछे उसके देशवालों ने नादिरशाह को मार डाला और अहमदशाह नामक उस का एक सैन्याध्यक्ष कंदहार, बलख, सिंध और कश्मीर का बादशाह बन बैठा। लाहौर लेते हुए (१७४७) हिन्दुस्तान में भी उस ने प्रवेश करना चाहा, किन्तु मुहम्मद शाह का पुत्र अहमद शाह ने सरहिन्द में युद्ध कर के उस को पीछे हटा दिया। इस के पूर्व (१७३०) बाजीराव मर गए थे, किन्तु उन के पुत्र बालाजी राव ने मालवा ले लिया था। १७४८ में मुहम्मद शाह मर गया। वह अति रागरंगप्रिय और विषयी था। इस का पुत्र अहमद शाह बादशाह हुआ। इस के समय में रुहेलों ने बड़ा उपद्रव उठाया था किन्तु मरहट्टों ने इनका दमन किया। १७५४ में

गाज़िउद्दीन ने अहमद शाह को अंधा और कैद कर के जहाँदारशाह के एक लड़के को तख्त पर बैठाया और आलमगीर सानी उसका नाम रक्खा । गाज़िउद्दीन ने अहमदशाह दुर्रानी के पंजाब के सूबेदार की माँ को कैद कर लिया था । इस बात से अहमदशाह ने ऐसा क्रोध किया कि बड़ी भारी सेना लेकर सीधा दिल्ली पर चढ़ दौड़ा । गाज़िउद्दीन बड़ी दौनता से उसके पास हाज़िर हुआ, किन्तु वह बिना कुछ लिए कब जाता था । (१७४५) बल्लभगढ़ और मथुरा लूटी और काटी गई । दिल्ली और लखनऊ के लोगों से भी रुपया वसूल किया गया । अंत में नजीबुद्दौला को दिल्ली का प्रधान मंत्री बना कर अपने देश को लौट गया । गाज़िउद्दीन ने मरहट्टों से सहायता चाही और पेशवा का भाई रघुनाथ राव दिल्ली पर चढ़ आया । नजीबुद्दौला भाग गया और गाज़िउद्दीन फिर वज़ीर हुआ । इधर मरहट्टों ने अहमदशाह दुर्रानी के लड़के नैमूर को पंजाब से निकाल कर वह देश भी अधिकार में कर लिया अर्थात् अब मरहट्टे सारे भारतवर्ष के अधिकारी हो गए । इसी समय में गाज़िउद्दीन ने बादशाह को मार डाला और आप दिल्ली छोड़ कर भाग गया । अहमदशाह दुर्रानी इस बात से ऐसा क्रोधित हुआ कि बहुत बड़ी सेना लेकर फिर हिन्दुस्तान में आया । पेशवा ने यह सुन कर अपने भतीजे सदाशिवराव भाऊ के साथ तीन लाख सेना और अपने पुत्र विश्वास राव को उस से युद्ध करने को भेजा । मरहट्टों ने पहले दिल्ली को लूटा, फिर पानीपत के पास डेरा डाला । पहले कुछ सुलह की बातचीत हुई थी, किन्तु अंत को ६ जनवरी १७६१ को दोनों दल में घोर युद्ध हुआ, जिस में दो लाख से ऊपर मरहट्टे मारे गए और अहमदशाह की जय हुई । इस हार से मरहट्टों का उत्साह, बल, प्रताप, सभी नष्ट हो गए और साथ ही मुगलों का राज्य भी अस्त हो गया । शुजाउद्दौला ने आलमगीर के बेटे अलीगौहर को शाहआलम के नाम से बादशाह बनाया (१७६१) । यह दस बरस तक तो पहले नजीबुद्दौला के डर से इलाहाबाद में पड़ा रहा, फिर उस के मरने पर मरहट्टों की सहायता से दिल्ली में गया । थोड़े ही दिन पीछे गुलामकादिर नामक नजीबुद्दौला के पोते ने दिल्ली लूट कर बादशाह को पृथ्वी पर पटक कर छाती पर चढ़ कर कदार से आँख निकाल ली और हाथ बाँध कर वहीं छोड़ दिया । महादजी सेंधिया यह सुन कर दिल्ली में आया और गुलामकादिर को पकड़ कर बड़ी दुर्दशा से मारा और अंधे शाहआलम को फिर से तख्त पर बैठाया । चारों ओर उपद्रव था । १८०३ में लाई लेक ने अंगरेजी सेना लेकर दिल्ली को मरहट्टों के हाथ से लिया और शाहआलम को पिनशन नियत कर दी । शाहआलम को अकबर सानी और उस को बहादुर शाह हुए । ये लोग साढ़े सोलह लाख की जागीर और पिनशन भोगते रहे । अंत को वह भी न रही । यों मुसलमानों का प्रतापसूर्य आठ सौ बरस तप कर अस्ताचल को गया ।

कनकपात्र रत नगजटित, फेंकत जौन उगार ।
 तिन की आजु समाधि पर, मृतत स्वान सियार । ।
 वे सूरज सों बढ़ि तपे, गरजे सिंह समान ।
 भुज बल बिक्रम पारि निज, जीत्यो सकल जहान । ।
 तिन की आजु समाधि पै, बैठयो पूछत काक ।
 'को' हो तुम अब 'का' भए, 'कहाँ' गए करि साक । ।

। । इति । ।

ग्रंथ का उपष्टम्भक

अकबर ने काश्मीर में हिन्दुओं के हेतु एक मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था, क्योंकि उस का मुसलमान लोग तोड़ डाला करते थे। और उस पर उस की एक आज्ञा भी खुदी हुई है, जो यहाँ प्रकाशित होती है। इस से लोग उसका चित्त देखें।

किताबए अबुलफजल बरलौह संग कलीसाए कश्मीर कि बमूजिब हुकम अकबर तामीर याफ्त : बूद व औरंगजेब आलमगीर गाज़ी मिस्मार साख्त। इलाही बहर कुजा कि मीनिगरम् जूयाये तवानद व बहर जुवान कि मीशनूम गोयाये तवानद। शेर —

कुफ्रो इस्लाम दर रहश पोयाँ। वहद : लाशरीक वलह गोयाँ।

अगर मस्जिदस्त बयाद तो नार : कुदूस मीज़नंद व अगर कलीसास्ता बशौक तो नाकम मीजुबानंद। शेर —

गहे मुहतकिफ़ देरम व गहे साकिने मस्जिद।

यानी कि तुरा मीतलबम् खान : बखान : ।।

गवें खासान तररा बकुफ्रो इस्लाम कारे न पस ई हर दोरा दरपर्दा : इसरार तो बारी न : । शेर —

कुफ़ काफिर रा व दीन दीनदार रा। जर् : ददे दिल अतार रा।।

ई खान : कि बनीयत तालीफ कुलूब मूहिदान हिन्दुस्तान खसूसा माबूद परस्ताँ अर्सए कश्मीर तामीर याफ्त : । शेर —

बफर्माने खदीवे तख्तो अफसर। चिरागे आफरीनश शाह अकबर ।।

हरखान : खराब कि नज़र बर सिद्क न : अंदाख्त : ई खान : रा खराब साज़द बायद कि नखस्त मोविद खुद रा बर अंदाबद गवें नज़र बदिल अस्त बाहम : साख्तनीस्त व अगर वशम बर आबो गिलस्त हम : अंदाख्तनीस्त। शेर —

खुदावंदा चु दारी कार दादी।

मदारे कार बर नीयत निहादी ।।

तुई बर बारगाहे नीयत आगाह।

ब पेशे शाह दादी नीयते शाह ।।

हे परमेश्वर ! जिस स्थान को देखता हूँ वहाँ सब तेरे ही खोज में हैं और जिस से सुनता हूँ तेरी ही बात करते हैं। धर्माधर्म सब तेरे ही मार्ग में चलते हैं और एक ब्रह्मद्वैत ही का भाषण करते हैं। यदि तेरे वंदना के स्थान हैं तो वहाँ तेरे पवित्र नाम की शब्दध्वनि करते हैं और यदि देवस्थान हैं तो वहाँ सब तेरे ही अभिलाषा में शंखनाद करते हैं। कभी मैं मूर्तिमंदिर की परिक्रमा करता हूँ और कभी तेरे वंदनालय में रहता हूँ, अर्थात् तुझी को घर घर द्रष्टा हूँ। यद्यपि जो लोग तुझ में ही लवलीन हो रहे हैं, उन्हें इस द्वैतता से कुछ प्रयोजन नहीं और इन दोनों को तेरे अंतर भेद में गम्य नहीं। मूर्तिपूजकों को मूर्तिपूजा और वंदनावालों को वंदना किसी प्रकार चित्तोरोग की शांति है।

यह मंदिर भारतवर्ष के ब्राह्मद्वैतवादियों के विशेष कर काश्मीर प्रांत के प्रिय मूर्तिपूजकों के चित्त तोषार्थ सिंहासन और मुकुट के स्वामी साम्राज्य के मणिद्वीप महाराजाधिराज अकबर की आज्ञा से बनाया गया। जो सत्यानाशी सत्य पर दृष्टि न रखकर इस घर को गिरावेगा वह मानों अपने इष्ट का मंदिर दहावेगा। यदि ईश्वर से सच्चे चित्त से संबंध है तो सब मत के स्थानों को बनाना चाहिये और मिट्टी पत्थर पर दृष्टि है तो सब को गिराना चाहिये।

हे ईश्वर ! तू सब कर्मों के तत्व का समझनेवाला है और कर्मों की मूल मति है और तू ही हमलोगों की अंतर मति को जानता है और तू ही ने राजा के राजा योग्य मति दी है।

किन्तु इस आज्ञापत्र पर दुष्ट औरंगजेब ने कुछ ध्यान न दिया और अपनी आज्ञा से इसे तोड़वा दिया।

औरंगजेब ने एक आज्ञा सन् १०६९ हिजरी में ऐसी प्रचलित की थी कि बनारस में न कोई मंदिर तोड़े जाएं, न हिन्दुओं को दुख दें। १०६८ में विश्वनाथ का मंदिर उसने तुड़वाया था, उसके साल भर पीछे न जानें क्या दया आपके चित्त में आई कि यह आज्ञा प्रचलित की गई, किन्तु यह आज्ञा उस की किसी विशेष युक्ति से शून्य नहीं थी, और यह आज्ञा कार्य में परिणित भी नहीं हुई, क्योंकि १०७७ में इसी काशी में कृतवासेश्वर का मंदिर इसी की आज्ञा से तोड़ा गया था। वहाँ जो मस्जिद है उस का लेख भी यहाँ प्रकाशित होता है, इसी से उस के चित्त की कूटिलता स्पष्ट होगी। मंदिर न तोड़नेवाला असली आज्ञापत्र काशी में महादेव नामक एक ब्राह्मण के पास अद्यापि विद्यमान है।

बिस्मिल्ला अल्-रहमान अल्-रहीम

दुगरा बादशाह

मुहर बादशाह

सुदा

लायकूल एनायः व अल मरहमः अबुलहसन बइल्लफात शाहानः उम्मीदवार बूदः बिदानद कि चूं बमुक्तजाय मराहिम जाती व मकारिम जबली हमगी हिम्मत वाला नहिम्मत व तमामी नीयत हक़ तबीयत मा-बर-रिफाहियत ज़म्हूर व इंतजाम अहवाल तबकात खवास व अवाम मसरूफस्त व अज़ रूये शरअ शरीफ न मिल्लत मनीफ मुकर्रर चुर्नी अस्त कि देरहाए देरीन वरअंदाख्तः न शवद व वुतकदः हाए ताजः बिना नयाबद व देरीं अय्याम मादलत इंतजाम बगरज अशरफ़ अकदस अर्फा आला रसीद कि बाज़ मर्दुम अज राह अनफ़ व तादी बहनूद सकनः कस्बः बनारस व बख्शे अमकनः दीगर कि बनिवाहे आँ वाकः अस्त व जमाअः बिरहमनान सदनः आँ महाल कि सदानत वुतखानः हाय कदीम आँजा व आँहा ताल्लुक दारद मुजाहिम व मोतरिज़ मोशवद व मोख्वाहंद कि एशार्रा अज़ सदानत आँ कि अज़ मुब्त मदीद व आँहा मुतअल्लिक अस्त बाज दारंद व ई मआनी बाएस परेशानी व तफरकः हाल ई गरोह मी गर्दद लिहाजा हुम्म वाला सादिर मोशवद कि बाद अज़ बरूद ई मनशूर लामअलनूर मुकर्रर कुनद कि मन बाद अहदे बवजूह बेहिसाब तआरुज व तशवीश बअहवाल बिरहमनान व दीगर हनूद मुतवतनः आँ महाल नरसानद ता आँ हा बदस्तूर एय्याम पेशीं बजा व मुकाम खुद बूदः बजमेयत खातिर बहुआए बकाए दौलत दाद अबद मुब्त अज़ल बुनियाद कयाम नुमायंद देरीं बाब ताकीद दानद। बतारीख १५ शहर जमादिउस्सानियः सन् १०६९ हिजरी नविशतः शुदः

शाहजादा सुलतानमुहम्मद

मुहर

सुलतान

बरिसालए नवाब कुदसी अलकाब नौ बादः वर सितान खिलाफत गुजीं समरः शजरः रफअत चिराग़ दूदमान अबहत फरोग खानदान शौकत कुरः नासिरः दौलत व इकबाल तरह नामिया हशमत व इजलाल गिरामी नसब समीउल मकान अल ममदूह बलसानुल बाद वातुहर शाहजादः नामदार कामगार वालातबार मुहम्मद सुलतान बहादुर।

यह आज्ञापत्र शाहजादे मुहम्मद सुलतान बहादुर के नाम है। इस का आशय यह है— 'पुराने में लिखा है कि पुराने मंदिर को नहीं गिराना और नए नहीं बनाने देना। ऐसा सुना गया है कि बनारस के ब्राह्मणों को लोग दुख देते हैं, इस हेतु यह आज्ञा दी जाती है कि आगे से कोई हिन्दुओं के स्थानों को न छेड़े और ब्राह्मणों को निर्विघ्न पाठ पूजा करने दे (इत्यादि) १५ जमादिउस्सानी १०६९।

इस के पीछे का कृतवासेश्वर की मस्जिद पर का लेख।

जे हुकमे शाह सुलताने शरीअत। दलीले ज़हद बुहाने तरीक़त।।
शहाबे आसमाने सरफ़राज़ी। मुहम्मदशाह आलमगीर गाजी।।

सरे अस्नाम वृतखानः शिकस्तः । जहरं मस्जिदे दिलख्वाह गश्तः ।

(१०७७)

व इस्तसवाब नूरुल्लाह मुक्ती । गुलामे दरगहे पीराने चिश्ती । ।

सनाए खानः जीनत अस्त पैदा । जे दौलतखाना तारीखश हुवेदा । ।

(१०७७ हि.)

अर्थ — मुसलमानी धर्म के स्वामी (इत्यादि) औरंगज़ेब बादशाह की आज्ञा से देवमंदिर के देवताओं के सिर तोड़ कर यह मस्जिद बनाई गई (इत्यादि) १०७७ हिजरी ।

कालचक्र

अर्थात्

संसार में जो बड़ी बड़ी घटना हुई हैं उन का समय निर्णय
(श्री हरीशचन्द्र लिखित)

संसार में जो कुछ भी बड़ी घटनायें हुई हैं । सृष्टि के आरम्भ से लेकर भारतेन्दु तक, इस ग्रन्थ में उन सबका समय निर्धारण किया गया है । कालचक्र का रचनाकाल सन् १८८४ है । भारतेन्दु बाबू अपने जीवन काल में इसे पूरा नहीं कर पाये । बाद में श्री राधाकृष्ण दास ने इसे पूरा कर खंग विलास प्रेस से छपवाया । इसकी भूमिका भी राधाकृष्ण दास जी ने ही लिखी है । — सं.

भूमिका

ॐ कालात्मने भगवते श्री कृष्णाय नमः

हाय! इस 'कालचक्र' को पूरा करके छपाने की भी नौबत न पहुँची कि पूज्यपाद भारतेन्दु जी आप ही कालचक्र के कराल गाल में जा फँसे! अस्तु भगवद्विच्छा, अब कोई वश नहीं ।

यह उन का परिश्रम आप लोगों की सेवा में भेंट किया जाता है, यदि इस से आप लोगों को कुछ भी सहायता मिलेगी तो सब परिश्रम सुफल हो जायगा ।

बनारस

वैशाख कृष्ण १ सं. १९४९

सेवक

श्री राधाकृष्ण दास

कालचक्र

(ईसवी के पूर्व का काल)

घटना	समय	विशेष
सृष्टि का प्रारंभ	१९७२९४७१०१	आर्य लोगों के मत से ।
सत्ययुग का प्रारंभ	३८९११०१	
त्रेतायुग का प्रारंभ	२१६३१०१	
द्वपरयुग का प्रारंभ	८६७१०१	
कलियुग का प्रारंभ	३१०१	
..	१८५७	ज्योतिष के मत से
..	१७७५	भागवत ..
..	१७२९	ब्रह्माण्ड पुराण ..
..	१०७८०	वायुपुराण ..
इक्ष्वाकु का जन्म और प्रथम बुद्ध	२२२१८३१०२	बौद्ध लोग ..
..	५०००	पौराणिक मत से
..	२७००	जोस ..
..	१५२८	विल्फर्ड ..
इक्ष्वाकु जन्म, प्रथम बुद्ध	२२००	बेंटली ..
..	३५००	टॉड ..
श्रीराम ...	८६७१०२	जोस ने स्थानांतर में माना है ।
..	२०२९	पौराणिक मत से
..	१३६०	जोस ..
..	९५०	विल्फर्ड ..
..	११००	बेंटली के मत से
युधिष्ठिर ...	३१०२	टॉड ..
..	५७६	पौराणिक मत से
..	१४३०	बेंटली ..
..	१३९१	विल्फर्ड ..
..	११८०	डेविस ..
महाभारत का युद्ध ...	१३६७	जोस और कोलब्रुक के मत से
कश्मीर राज्य-स्थापन	३७१४	विल्सन के मत से
परीक्षित ...	३१०१	
श्री विष्णु स्वामी	३०००	
श्री निबार्क स्वामी	३०००	
जनमेजय	१३००	
सुमित्र और प्रद्योत	२१००	पौराणिक मत से
..	१०२९	जोस ..
..	७००	विल्फर्ड ..

सुमित्र और प्रद्योत	११९
„ ...	९१५
„ ...	६००
स्वयंभुवमनु ...	४००६
जयगुप्त ने नैपाल राज्य की स्थापना की	२५९५
सृष्टि का प्रारंभ	४००४
„	५८७२
„	४७००
„	४७१०
आदम की उत्पत्ति	४००४
कायन की उत्पत्ति	४००३
नूह का प्रलय	२३४९
चीन राज-स्थापन	२२०७
मिश्र राज्य-स्थापन	२१८८
इब्राहीम का जन्म	१९९६
हिन्दुस्तान से एथियोपियन } लोगों का मिश्र में जाना }	१६१५
मूसा की उत्पत्ति	१५७१
यूनान की सभ्यता	१५००
यूरोप में पहले पहल जहाज चलना	१४८५
शाक्य सिंह	१०२७ ई.पू.
„	९६२ ई.पू.
बौद्ध का काल	१०३४
रुस्तम हिन्दुस्तान में आकर } कन्नौज में शिवराजवंश } स्थापन किया }	१०२७ ई.पू.
सुलेमान का उदय	९९२
कीन सेमीरैमिस अर्थात् } शमीरामा देवी }	८१०
शिशु नाग	१९६२
„	८७०
तिब्बत राज्यारंभ	९६२ ई.पू.
विलायत में चाँदी तथा सोने } का सिक्का बनना }	८९४
मालवा का राज्य चला } (धनंजयस) }	८४०
विलायत में चंद्रग्रहण गिना जाना	७२१
शिशुनाग	७७७
वलीद के काल में मुसलमानों ने भारतवर्ष में उपद्रव मचाया	७११
अहल चौहान	७००

बेंटली „
विल्सन „
बर्मावाले „

हिब्रू धर्म पुस्तक के मत से
अन्य विद्वानों के मत से
समारतिन मत से
जूलियन मत से

चीनियों के अनुसार
तिब्बत के अनुसार

फरिश्ता

तृतीय बलबश की स्त्री
कहते हैं कि यह भारतवर्ष
में आई थी ।

पौराणिक मत से
जोन्स „
तिब्बत के अनुसार

किसी के मत से इसी साल गौतम का जन्म

शंकर ने गौड़ (लखनौली नगर) बसाया	७३१ ई.पू.
चौहान (राज्यस्थापन, अन्हल चौहान)	७०० ई.पू.
चीनी और तातारियों में बड़ी लड़ाई ६३६	
नंद	१६००
"	६९९
महावीर स्वामी (जैनों के)	६२९
भारतवर्ष से विजयराज ने लंका में ५४३ ई.पू.	
जाकर जीतकर राज स्थापन किये	
ब्रह्मराज्य स्थापन	६९१ ई.पू.
विलायत में गानविद्या का नियमित रूप से चलना	६००
चंद्रगुप्त ...	१५०२
"	६००
गौतम (बौद्ध मत का प्रचार)	६०८ ई.पू.
रोम नगर में पहिले पहले } मईमशुमारी	५६६
नौशेरवाँ की सेना हिन्दुस्तान में आई ।	५३०
एथीन्सनगर में पहले पहल } दुःखांत नाटक खेला जाना	५३५
पयथागोरस मिश्र में आया	५३४
अशोक	१४७०
"	५४०
अरस्तू का अंत और सुकरात का उदय	४६८
नंद	४१५
दहलू ने दिल्ली बसाई	४७१ ई.पू.
सिकंदर का जन्म	३५६
चंद्रबीज (मगध का अंतिम राजा)	४५२
"	३००
चंद्रगुप्त	३१५ ई. पू.
अशोक	३३० ई.पू.
सिकंदर	३३४
सिकंदर ने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की } दूसरे अरस्तू जुकरात, बुकरात	३३१ ई.पू.
आदि का उदय	३३०
सिकंदर का भारतवर्ष में आगमन	३३७
सिकंदर की मृत्यु	३२३
कहकहा दीवाल का बनना	३००

दिल्ली अजमेर का राज्य इस वंश में अब निमरान के राजा हैं ।

पौराणिक मत से
जोन्स ..

पौराणिक मत से
जोन्स ..
बर्मा वालों के मत से

पौराणिक मत से
जोन्स ..

नवीन विद्वानों के मत से ।

पौराणिक मत से
जोन्स ..

बली	...	९०८ ई.पू.
...	...	१४९
जैसलमेर में यादवों का	}	१५० ई.पू.
राज्य-स्थापन		
विक्रमादित्य		५६ ई.पू.

पौराणिक मत से
जोन्स

ईसवी सन् से पूर्व या ईसवी सन् में ।

विक्रमादित्य गद्दी पर बैठा	५७	
कैसर का उदय	५०	
ईसा मसी फाँसी पड़े	३३ ई.	
रोमवालों ने लंडननगर बनवाया	५० ई.	
सौराष्ट्र में वल्लभी वंश	१ ई.	
मनीपुर राज्याक्रम (पाखंडा)	३५ ई.	
फारस राज्य स्थापन (अर्द शेर)	२२६ ई.	
आमेर राज्य-स्थापन	}	२९४ ई.
(नल-नरवर गढ़)		
कर्णाट राज्यस्थापन		३०० ई.
यूनान और एशिया में	}	३५८
महाभूकंप हुआ १५०		
नगर नष्ट हो गये		
राठौर राज्य कन्नौज में	}	३००
स्थापन (यवनाश्व)		
भोज	...	४८३ ई.
मुहम्मद	...	५९४ ई.
भारतवर्ष से यरप में रेशम गया	५५१ ई.	
एलोमार्चिश	...	६४८
अबूवकर	...	६३२ ई.
उमर	...	६३४
उसमान	...	६४४
अली	...	६५६
हुसेन	...	६६१
करबला का युद्ध	...	६८१
मुहम्मद का मदीने पलायन	}	६२२
हिजरी सन का स्थापन		
मुसलमानों ने इसकंदरिया का	}	६४०
प्रसिद्ध पुस्तकालय जला दिया		
जिसमें केवल पुस्तकों की		
अग्नि से महीनों सब काम		
हुआ. हा !		
गुजरात राज्य-स्थापन (शैलदेव	}	६६९
द्वारा)		
बापारावल	...	७१३
हारूरशीद	...	७८६

जन्म ५६९ ई. मृत्यु ६५३ ई.

Poulomeon of Chinese

ईसामसीह के जन्म से ईस्वी	७४८
संवत् की गणना चली	
वकील विद्या की यूनान और	७८८
रोम में सृष्टि हुई	
मेवाड़ राज्य-स्थापन	७५०
रुरिक ने रूस बसाया	८६१
इंग्लैंड के लोगों ने ईटा और	८८४
मोमवती बनाना सोखा	
चालुक्य वंश राज्य	८१०
सुबुक्तगीन की भारतवर्ष पर चढ़ाई	९७०
जयपाल और सुबुक्तगीन का युद्ध	९७७ ई.
दूसरे आरडोनों ने स्पेन में सत्तर	९१८
हजार मुसलमानों को मारा ।	
इंग्लैंड में फ्रीमैसन चला	९२६
यूरोप में गणित विद्या चली	९४१
तेलंग राज्य-स्थापन (राजधानी	९५१
बारंगगोला)	
महमूद गजनवी की पहली चढ़ाई	१००१
सोमनाथ का दूटना	१०२४
यूरोप में कागज गूदर से बना	१०००
क्रुसेड का प्रसिद्ध धर्मयुद्ध तीन	१०९६
लाख कृस्तीनों ने आरंभ किया	
शरावती (हाड़ा) राज्य-स्थापन	१०२४ ई.
बंगाल राज्य-स्थापन (भूपाल)	१०००
विजय नगर राज्य-स्थापन	१०३४
(नंद) विद्यानगर	
पृथ्वीराज ...	११९२ ई.
मुहम्मद गारा ...	११९३
श्री रामानुज	११३७
श्री शंकराचार्य	११२२
अहाबुद्दीन की पहली चढ़ाई	११९१
पृथ्वीराज की हार, भारत की	११९३
स्वाधीनता का अंत	
युलिकड इंग्लैंड में गई	११३०
पुस्तक बेचने की चाल	११००
इंग्लैंड में चली	
इंग्लैंड में कर में रुपया लेना	११३६
अब तक अन्न आदि लिया जाता था	
वेंकटगिरि राज्यस्थापन	११४०
(पाटलमारि बेताल)	
गया उद्धार के हेतु उदयपुर के नौ	१२०० ई.
राजाओं का वीरगति पाना -	

अब कोटा बूँदी

रणथम्भौर का हम्मीर	१२९९ ई.
चंगेज़ खाँ ...	१२०६
हलाकू ...	१२५९
कुतुबुद्दीन ऐबक	१२०६
चंगेज़ खाँ का भारत में उपद्रव	१२१२
रज़िया बेगम स्त्री-बादशाह हुई	१२३६
दक्षिण पर मुसलमानों की	} १२९४
पहली चढ़ाई	
हलाकू ने तातार राज्य	} १२५९
स्थापन किया	
बंगाले में (लखनौती गौड़)	} १२०३
मुसलमान राज्यारंभ (बख्तियार खिलजी)	
इंगलैंड में जिआग्रफी गई	१२१०
प्रसिद्ध मैगनाचार्टा पर हस्ताक्षर	} १२१५
हुए और पार्लियामेंट इंगलैंड में चली	
कंपनी बनाकर व्यापार करने की चाल चली	} १२३२
इंगलैंड में प्रतिष्ठित लोगों का इस्कायर कहने की चाल चली।	
वहाँ राजकवि का पद	} १२५१
प्रतिष्ठित हुआ	
वहाँ पहले पहल सोने का सिक्का बना	} १२५७
राठौरों का जोधपुर में बसना	
वीरबुक्कराज विजयपुर का राजा	} १३३४ ई.
माधवाचार्य	
तैमूर ...	१३९३
श्रीमध्व ...	१३००
जौनपुर की शाही स्थित हुई	} १३९४
(ख्वाजा जहाँ)	
गुजरात राज-नाश	१३०९
कुलबर्गा की बहमनी बादशाहत का आरंभ	} १३४७
यूरोप में चाँदी के बरतन बिमचे चले और अलाजेबरा आया।	
बही हुंड़ी की चाल चली।	१३०७
गोटा किनारी चला (यूरोप में)	१३२०
छठे चार्ल्स फ्रांसीस के बादशाह के वास्ते नाश का खेल बना	} १३९१
मालवा राज्य-ध्वंस	
	१३३० ई.

इन लोगों ने अकबर के समय तक राज्य किया

२५ जून

सन् १४७६ में यह राज बंगाले के मुसलमानी राज्य में मिल गया।
अलाउद्दीन मुहम्मद शाह ने जीता।

मुसलमानी राज्य में मिल गया।

गुरु नानक	१४१९
गुरु अङ्गद	१४३०
बीजापुर की बादशाहत का आरंभ	१४८९
इंग्लैंड में वारूद बनी	१४१८
काठ के टाइप से यूरोप में पहले	१४३०
पहल छापना चला	
वहाँ शीशा बनाना चला	१४५७
वहाँ तेल नियत हुई	१४५२
वास्कोडिगामा का हिन्दुस्तान } खोजने को चलना	१४९७
कोलम्बस के साथियों द्वारा } अमेरिका का प्रादुर्भाव	१४९९
वीकानेर राज्य-स्थापन (बीका) } आसाम राज्यारंभ	१४५८
मेसूर राज्य-स्थापन (बट्टावाडियार)	१४९०
सांगा राणा का बाबर को जीतना	१५०८
राणा प्रताप सिंह अकबर का } घोर युद्ध ।	१५८३
गुरु अमरदास	१५५२
गुरु रामदास	१५७४
गुरु अर्जुन	१५८१
श्री बल्लभाचार्य	१५३५
श्रीकृष्ण चैतन्य	१५४२
श्री हितहरिवंशजी	१५८२
बाबर का दिल्ली राज्य पर बैठना	१५२६
सक्के ने चमड़े का सिक्का चलाया	१५३९
गोलकुंडा की बादशाही का आरंभ	१५१२
डिफेंडर आफ दी फेथ का पद } हेनरी (७) को दिया गया जो, अब } भी महारानी को है ।	१५२१
प्रोटेस्टेंट मत स्थापन	१५२९
एंग्लैंड में डाकखानों की सृष्टि	१५३१
वहाँ के लोगों ने सूई } बनाना सीखा ।	१५४५
मेरी स्कॉटलैंड की रानी का } सिर काट दिया गया ।	१५८७
इंगलिश मर्क्युरी नामक प्रथम } समाचार पत्र चला	१५८८
कवि शेक्सपीयर का उदय	१५९५
शिवाजी	१६४७ ई.
गुरु हरिगोविंद	१६०६

Defender of the faith

एलिजबेथ ने व्यर्थ यह पाप किया ।
एलिजबेथ बड़ी पापासक्त थी किन्तु प्रकट
में धार्मिक बनी थी ।
English Mercury

गुरु हरिराय	१६६४
गुरु हरिकृष्ण	१६६१
गुरु तेगबहादुर	१६६४
गुरु गोविंदसिंह	१६७५

व्यास जी	१६१२
अकबर का मरना	१६०५
शिवाजी का जन्म	१६२७
ईस्ट इंडिया कंपनी स्थापित हुई	१६००
मदरास में अंगरेज जमे	१६२०
तथा बंबई में	१६६१
बंदा साहब	१७०८

लंका का राज्य अंगरेजों ने लिया	१७९८
हैदराबाद का राज्य आसफजाह ने स्थापन किया	१७१७
बाजीराव का अंत	१७१८ ई.
लखनऊ राज्यारंभ	१७००
पानीपत में भाऊ की हार	१७५९
शाह आलम को गुलाम कादिर ने अधा किया	१७८८
सिंहल (लंका) का अंतिम राजा	१७९८ ई.

अंगरेजों ने लिया

श्री विक्रमराजसिंह	
सर न्यूटन जोत्सी	१७००
इंगलिस्तान में सूत की कल तथा	१७३०
फारस में प्रथम बैल्यून	
कलकत्ता अंगरेजों ने स्थाधीन किया	१७५६
बकसर की सिराजुद्दौला की लड़ाई	१७६४
यह बात जानी गई कि जल दो	१७८१
वायु मिलकर बनता है	
अमेरिका स्वतंत्र हुआ, सवा अरब	१८७२

रानना, पचास हजार प्राणी और कई टापू गवाँ कर अंगरेज शांत हुए	
विद्युत्शक्ति प्रचारक बेनजामिन फैंकलिन मरा	१७९०
नेपोलियन बोनापार्ट	

उदय १७९४ अस्त १८२१

वारन हेस्टिंग्स — जिसने राजा	१७९५
चेतसिंह से महा अन्याय पूर्वक बनारस का राज्य छीना था, सात लाख रुपया पार्लियामेंट में व्यय करके सात बरस में उन लोगों की दृष्टि में दोष मुक्त हुआ ।	

किन्तु न्यायकर्ता परमेश्वर के सामने से दोष मुक्त कब हो सकता है ?

फरासीस में अंगरेजों को अति १७९८
दुःखित जान कर दयालु आर्यों ने
केवल वंगदेश से पंद्रह लाख और
अन्य २ देश में से करोड़ों
रुपया भेजा ।

टोपू हारा, अंगरेजों ने } १७९९
श्रीरंगपट्टन लिया । }

हैदराबाद में निजाम राज्य-स्थापन १७१७
(आसफ़जाह)

बनारस में सरकार का राज्य १७६३
बज़ीर अली का उपद्रव १७९८
मथुरा में कत्लेआम १७५८
नादिरशाही १७३९ ई.

कलकत्ता सरकार ने लिया १७५८

पलासी की लड़ाई १७६३

विजयनगर (विद्यानगर) } १७५६

राज्य-नाश }

पेशवा राज्यारंभ (बाला जी) १७४०

नागपुर राज्यारंभ (रघु जी) १७३४

सैधिया राज्यारंभ (रानू जी) १७२४

हुलकर राज्यारंभ (मल्हार राव) १७२४

गाइकवाड़ राज्यारंभ (बामाजी) १७२०

महाराज रणजीतसिंह १८०५

लखनऊ में बादशाही पद } १८१४

गाजीउद्दीन }

लखनऊ का नाश १८४७

लार्ड लोक ने दिल्ली ली १८०३

तार की खबर का प्रचार १८००

इन्डियन से नाव चलाना चला १८१२

आहशुजा से महाराज रणजीत } १८१४

सिंह ने कोहनूर हीरा लिया । }

महारानी विक्टोरिया का जन्म १८१९ मई २०

लार्ड बेंटिक ने सती होना } १८२९

बंद किया । }

अमेरिका से पहले पहल जहाज } १८३३

में बरफ़ भर के कलकत्ते में आया । }

अंगरेजी राज्य के सब टापू में } १८३४

लौंडी गुलाम स्वतंत्र कर दिए गए । }

महारानी विक्टोरिया राज्य } १८३७ २० जून

पर बैठी }

महारानी विक्टोरिया का विवाह } १८४१ फरवरी १०

दोस्तमहम्मद का पकड़ा जाना । }

इलाबर्टविल विद्वेष्टी इस को पढ़कर भी
हमलों से कृतघ्नता करने में न चूकेंगे ।

राजा चेतसिंह को निकाल दिया १७८१

राजा त्रिमल्ल राव को सुलतान खाँ ने
राज्य से उतारा ।

भोंसले

उस समय अंगरेजी राज्य की आमदनी
साढ़े छियालिस करोड़ थी ।

रेल का नियमित रूप से चलना

प्रिंस आफ वेल्स का जन्म १८४१

प्रिंस आफ वेल्स का जन्म १८४४

हिन्दुस्तान में बलाबा १८५७

महारानी का ईस्ट इंडिया कंपनी १८५८

से राज्य अपने हाथ में लेना

इयूक आफ एडिनबरा का } १८७० ई.

भारतवर्ष में आना

प्रिंस आफ वेल्स का शुभागमन १८७५ ई.

स्वामी दयानंद का उदय १८७०

महारानी का इम्प्रेस आफ इंडिया १८७७

का पद धारण करना

हिन्दी में प्रथम नाटक } १८५९

(नहुष नाटक)

तथा द्वितीय — (शकुंतला) १८६३

तथा तृतीय (विद्यासुंदर) १८७१

हिन्दी नए चाल में ढली १८७३

हिन्दी का प्रथम समाचार पत्र } १८५०

(सुधाकर)

तीर्थों का कर छूटा १८३७

बनारस में पसेरी का उपद्रव १८४२

काशी में दो महीने का महा भूकंप १८३७

पीपे में आग लगी १८५०

लाट मैरो की हिन्दू मुसलमान } १८०९

की लड़ाई

पेशवा राज्यांत बाजीराव १८१८

नागपुरराज्यांत (मूडाजी) १८१८

इलवर्ट विल और आर्यों में ऐक्के } १८८३

का बीज

गवर्नरजेनरल वारेन हेस्टिंग्स १७७४ — १७८५ ई.

मैकफर्सन ब्यारोनेट १७८६ — १७८६ ई.

कॉर्नवालिस ... १७८६ — १७९३ ई.

सर जान शोर ... १७९३ — १७९८ ई.

एलुरेड क्लार्क ... १७९८ — १७९८ ई.

वेल्सली ... १७९८ — १८०५ ई.

माकिविस कॉर्नवालिस १८०५ — १८०५ ई.

बालों ... १८०५ — १८०७ ई.

मिन्टो ... १८०७ — १८१३ ई.

हेस्टिंग्स ... १८१३ — १८२३ ई.

जान एडम ... १८२३ — १८२३ ई.

एमहर्स्ट ... १८२३ — १८२८ ई.

वेली ... १८२८ — १८२८ ई.

वेन्टिक	...	१८२८ — १८३५ ई.
मेटकाफ	...	१८३५ — १८३६ ई.
ऑकलैंड	...	१८३६ — १८४२ ई.
एलेनबरा	...	१८४२ — १८४४ ई.
हार्डिंज	...	१८४४ — १८४८ ई.
डलहौसी	...	१८४८ — १८५६ ई.
कैनिंग	...	१८५६ — १८६२ ई.
एलिंगन	...	१८६२ — १८६३ ई.
राबर्ट नेपियर	...	१८६३ — १८६३ ई.
विलियम डेनिसन	...	१८६३ — १८६४ ई.
लारेन्स	...	१८६४ — १८६९ ई.
मेयो	...	१८६९ — १८७२ ई.
स्ट्राची	...	१८७२ — १८७२ ई.
मार्चिस्टन (लॉर्ड नेपियर ऑव)	...	१८७२ — १८७२ ई.
नॉर्थब्रुक	...	१८७२ — १८७६ ई.
लिटन	...	१८७६ — १८८० ई.
रिपन	...	१८८० — १८८४ ई.

ब्राह्म मत का प्रचार	...	१८२७ ई.
पहिली पुस्तक छपी	...	१४५७ ई.
एशियाटिक सोसाइटी स्थापन	...	१७४८ ई.
काबुल युद्ध	...	१८४२ ई.
भारत में प्रथम ईस्ट इंडियन	...	१८५४ ई.
रेल का खुलना	...	१८७७ ई.
महाराज जंगबहादुर की मृत्यु	...	१८०९ ई.
मिस्टर ग्लेडस्टन का जन्म	...	१८०७ ई.
गारी बाल्डी का जन्म	...	१८८२ ई.
... मृत्यु	...	५५० ई.पू.
बुद्ध का जन्म

इसके अनंतर के बड़े लाटों की सूची इस प्रकार है —

डफरिन	१८८४ — १८८८ ई.
लेन्सडाउन	१८८८ — १८९४ ई.
एलिंगन	१८९४ — १८९९ ई.
कर्जन	१८९९ — १९०४ ई.
गुटहिल	१९०४ — १९०४ ई.
कर्जन	१९०४ — १९०५ ई.
मिन्टो	१९०५ — १९१० ई.
हार्डिंग	१९१० — १९१६ ई.
कैम्सफोर्ड	१९१६ — १९२१ ई.
रॉडिंग	१९२१ — १९२६ ई.
आर्थिन	१९२६ — १९३१ ई.

कुष्ट की बीमारी भारतवर्ष
में देखी गयी

१३०० ई.पू.

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र लिखते हैं कि
कुष्ट की बीमारी ऐत्रे ऋषि के समय में
प्रथम भारतवर्ष में दिखाई दी जिसे आज
३२ सौ वर्ष हुए होंगे ।

जयपुर राजवंश

नाम	राज्यारम्भ सन	मृत्यु सन
पृथ्वी सिंह	१५०३	१५२८ ई.
भारमल्ल	१५२८	१५७४ ई.
भगवानदास	१५७४	१५९० ई.
मानसिंह	१५९०	१६१५ ई.
भावसिंह	१६१५	१६२१ ई.
जयसिंह	१६२२	१६६७ ई.
रामसिंह	१६६७	१६६९ ई.
जयसिंह	१७००	१७४४ ई.
ईश्वरीसिंह	१७४४	१७५१ ई.
माधोसिंह	१७५१	१७७८ ई.
प्रतापसिंह	१७७९	१८०३ ई.
जगतसिंह	१८०३	१८१९ ई.
रामसिंह	१८३५	१८८० ई.
माधोसिंह	१८८०	०

भरतपुर के राजाओं का नाम ।

नंबर	नाम रईस	गद्दी नशीनी का संवत्देहान्त संवत्	भुवत हुकमत
१	बदनसिंह	संवत् १७७९ चैत सुदी १	संवत् १८१२ ज्येष्ठ सुदी १० ३३ बरस, २ माह, १० दिन ।
२	सूरजमल	संवत् १८१२ ज्येष्ठ सुदी १०	संवत् १८२० पौष कृष्ण १२ ८ साल, छः माह, १५ दिन ।
३	जवाहिरसिंह	संवत् १८२० पौष कृष्ण १३	संवत् १८२५ श्रावण सुदी १५ ४ साल, ७ माह, १७ दिन ।
४	रत्नसिंह	संवत् १८२५ भाद्रपद कृष्ण १	संवत् १८२६ चैत्र सुदी ५ ७ माह, २० दिन ।
५	केसरीसिंह	संवत् १८२६ चैत्र सुदी ६	संवत् १८३४ चैत्र कृष्ण १५ ७ साल, ११ माह, २४ दिन ।

विलिंग्डन	१९३१ — १९३६ ई.
लिनलिथगो	१९३६ — १९४३ ई.
वाबेल	१९४३ — १९४६ ई.
माउंटबेटन	१९४६ —

१५ अगस्त सन १९४७ को भारत को स्वतंत्रता अंग-भंग के साथ मिली ।

६	रणजीतसिंह	संवत् १८३४ चैत्र सुदी १	संवत् १८६२ मृगशिर सुदी १५	२७ साल, ८ माह, १५ दिन ।
७	रणधीरसिंह	संवत् १८६२ पौष कृष्ण १	संवत् १८८० आश्विन सुदी ४	१७ साल, ९ माह, १९ दिन ।
८	बलदेवसिंह	संवत् १८८० आश्विन सुदी ५	संवत् १८८१ फागुन सुदी ११	१ साल, ४ माह, १६ दिन ।
९	दुर्जनशाला	संवत् १८८१ चैत्र कृष्ण ९	संवत् १८८२ पौष सुदी १०	९ माह, १७ दिन ।
१०	बलवन्तसिंह	संवत् १८८२ पौष सुदी ११	संवत् १९०९ फाल्गुन सुदी १०	२७ साल, २ माह, २ दिन ।
११	महाराज जसवंतसिंह	संवत् १९१० आषाढ़ कृष्ण २	संवत् १९४२ तक मौजूद	३२ साल जारी ।



रामायण का समय

सन् १८८४ में लिखा गया यह लेख यह सिद्ध करता है कि भारतेन्दु जी अच्छे पुरातत्ववेत्ता भी थे । — सं.

रामायण का समय

(रामायण बनने के समय की कौन कौन बातें विचार करने के योग्य हैं)

पुराने समय की बातों को जब सोचिये और विचार कीजिये तो उनका ठीक ठीक पता एक ही बेर नहीं लगता । जितने नये नये ग्रंथ देखते जाइए उतनी ही नई नई बातें प्रकट होती जाती हैं । इस विद्या के विषय में बुद्धिमानों के आज कल दो मत हैं । एक तो वह जो बिना अच्छी तरह सोचे विचारे, पुराने अंग्रेजी विद्वानों की चाल पर चलते हैं और उसी के अनुसार लिखते पढ़ते भी हैं और दूसरे वे लोग जिनको किसी बात का हठ नहीं है, जो बातें नई जाहिर होती गई उनको मानते गये । दूसरा मत बहुत दुरुस्त और ठीक तो है, पर पहिला मत माननेवालों को ऐंटिक्वेरियन (Antiquarian) बनने का बड़ा सुभीता रहता है । दो चार ऐसी बंधी बातें हैं जिन्हें कहने ही से वे ऐंटिक्वेरियन हो जाते हैं । जो मूर्तियाँ मिलें वह जैनों की हैं, हिन्दू लोग तालार से वा और कहीं पच्छिम से आये होंगे, आगे यहाँ मूर्तिपूजा नहीं होती थी इत्यादि कई बातें बहुत मामूली हैं, जिनके कहने ही से आदमी ऐंटिक्वेरियन हो सकता है । जो कुछ हो इस बात को लेकर हम इस समय हुज्जत नहीं करते, हम सिर्फ यहाँ वाल्मीकीय रामायण में से ऐसी थोड़ी सी बातें चुन कर दिखाते हैं जो बहुत से विद्वानों की जानकारी में आज तक नहीं आई हैं ।

रामायण बनने का समय बहुत पुराना है, यह सब मानते हैं । इससे उसमें जो बातें मिलती हैं वे उस जमाने में हिन्दुस्तान में बरती जाती थीं, यह निश्चय हुआ । इससे यहाँ वे ही बातें दिखाई जाती हैं जो वास्तव में पुरानी हैं पर अब तक नई मानी जाती हैं और विदेशी लोग जिनको अपनी कहकर अभिमान करते हैं ।

रामायण कैसा सुंदर ग्रंथ है और इसकी कविता कैसी सहज और मीठी है, इसे जिन लोगों ने इस की सर की है वे अच्छी तरह जानते हैं, कहने की आवश्यकता नहीं । और इसमें धर्मनीति कैसी चाल पर कही है, इससे हम यहाँ पर और बातों को छोड़ कर केवल वही बातें दिखाना चाहते हैं जो प्राचीन विद्या (ऐंटिक्वेटी) से संबंध रखती हैं ।

बालकांड — अयोध्या के वर्णन में किले की छत पर यंत्र रखना लिखा है । यंत्र का अर्थ कल है ^१ इस से यह स्पष्ट होता है कि उस जमाने में किले की बचावट के हेतु किसी तरह की कल अवश्य काम में लाई

१. यंत्र उस को कहते हैं जिस से कुछ चलाया जाय । श्रीगीता जी में लिखा है "ईश्वर : सर्वभूतानां हृद्देशे ऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूपाणि मायया ।" ईश्वर प्राणियों के हृदय में रहता है और वह भूत मात्र को जो (मानो) कल पर बैठे हैं माया से घुमाता है । तो इस से स्पष्ट होता है कि यंत्र से इस श्लोक में किसी ऐसी चीज से मतलब है जो चरखे की तरह घूमती जाय । कल शब्द भी हिंदी है, "कल गतौ" से बना हो वा "कल परेणे" से निकला होगा (कवि-कल्पद्रुम कोष देखो) दोनों अर्थ से उस चीज को कहेंगे जो आप चले वा दूसरे को चलावे ।

जाती थी, चाहे वे तोप हों या और किसी तरह की चीज़ (या यंत्र से दूरबीन मतलब हो)।

शतघ्नी^१ यह उस चीज़ को कहते हैं जिस से सैकड़ों आदमी एक साथ मारे जा सकें। कोषों में इस शब्द के अर्थ यह दिये हैं कि शतघ्नी उस प्रकार की कल का नाम है जिस से पत्थर और लोहे के टुकड़े छूट कर बहुत से आदमियों के प्राण लेते हैं और इसी का दूसरा नाम वृश्चिकाली है। (सर राजा राधाकान्त देव का शब्दकल्पद्रुम देखो।) इस से मालूम होता है कि उस समय में तोप या ठीक उसी प्रकार का कोई दूसरा शस्त्र अवश्य था।

अयोध्या के वर्णन में उस की गलियों में जैन फकीरों का फिरना लिखा है, इस से प्रकट है कि रामायण के बनने से पहिले जैनियों का मत था।

जिस समय राजा दशरथ ने अश्वमेध यज्ञ किया उस समय का वर्णन है कि रानी कौशल्या ने अपने हाथ से थोड़े को तलवार से काटा। इस बात से प्रगट होता है कि आगे की स्त्रियों को इतनी शिक्षा दी जाती थी कि वह शस्त्रविद्या में भी अति निपुणता रखती थीं।

अभी एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में पंडित प्राणनाथ एम.ए. ने इसका खंडन किया है कि बराहमिहर के काल में श्रीकृष्ण की पूजा ईश्वर समझ के नहीं करते थे और बराहमिहर के श्लोकों ही से श्रीकृष्ण की पूजा और देवतापन का सबूत भी दिया है। और भी बहुत से विद्वान इस बात में झगड़ा करते हैं। और योरोप के विद्वानों में बहुतों का यह मत है कि श्रीकृष्ण की पूजा चले थोड़े ही दिन हुए, पर ४०वें सर्ग के दूसरे श्लोक में नारायण के वास्ते दूसरा शब्द वासुदेव लिखा है और फिर पच्चीसवें श्लोक में कपिलदेव जी को वासुदेव का अवतार लिखा है; इससे स्पष्ट प्रगट है कि उस काल से श्रीकृष्ण को लोग नारायण कर के जानते और मानते हैं।^२

अयोध्याकाण्ड— २०वें सर्ग के २९ श्लोकों में रानी कैकेयी ने राम जी को वन जाते समय आज्ञा दिया कि मुनियों की तरह तुम भी मांस न खाना, केवल कंदमूल पर अपनी गुजरान करना। इससे प्रकट है कि उस समय मुनि लोग मांस नहीं खाते थे।^३

३०वें सर्ग के ३७ श्लोक में गोलोक का वर्णन है। प्रायः नये विद्वानों का मत है कि गोलोक इत्यादि पुराणों के बनने के समय के पीछे निकाले गए हैं और इसी से सब पुराणों में इन का वर्णन नहीं मिलता। किन्तु

१. शतघ्नी को भी यंत्र करके लिखा है। शतघ्नी कौन चीज़ है इसका निश्चय नहीं होता। तीन चीज़ में इस का संदेह हो सकता है, एक तोप, दूसरे मतवाले, तीसरे जम्हीरे में। इस के वर्णन में जो जो लक्षण लिखे हैं उन से तोप का तो ठीक संदेह होता है, पर यह मुझे अब तक कहीं नहीं मिला कि ये शतघ्नियाँ आगे के बल से चलाई जाती थीं, इसीसे उनके तोप होने में कुछ संदेह हो सकता है। मतवाले से शतघ्नी के लक्षण कुछ नहीं मिलते, क्योंकि मतवाले तो पहाड़ों या किलों पर से कोलहू की तरह लुढ़काये जाते हैं और इस के लक्षणों से मालूम होता है कि शतघ्नी यह वस्तु है जिस से पत्थर छूटें। जहमीरा वा जम्हीरा एक चीज़ है, उस से पत्थर छूट छूट कर दुश्मन की जान लेते हैं (हिंदुस्तान की तबारीख में मुहम्मद कासिम की लड़ाई देखो)। इस से शतघ्नी के लक्षण बहुत मिलते हैं। पर रामायण में लिखा है कि लोहे की शतघ्नी होती थीं और फिर सुंदरकांड में टूटे हुए वृक्षों की उपमा शतघ्नी की दी है। इससे फिर संदेह होता है कि हो न हो यह तोप ही हो। रामायण के सिवा और पुराणों में भी किले पर शतघ्नी लिखा है? (मत्स्य-पुराण में राज्यधर्म वर्णन में) दुर्गेयंत्राः प्रकर्तव्याः नाना प्रहरणन्विताः। सहस्रघातिनो राजस्तेस्तुरक्षाधिपते ॥१॥ दुर्गज्व परिस्कोपेत् वप्राज्ञालसंयुतं। शतघ्नी यंत्र मुख्येश्व शतशश्व समावृतं ॥२॥ इस में ऊपर के श्लोकों में शतघ्नी के बदले सहस्रघाती शब्द है (यहाँ शत और सहस्र शब्दों से मुराद अनगिनत से है)। तोप की भाँति सुरंग उड़ाना भी यहाँ के लोग अति प्राचीन काल से जानते हैं। आदि पर्व का ३७८ श्लोक देखो। सुरंग शब्द ही भारत में लिखा है।

२. भारत के भी आदि पर्व का २४७ से २५३ श्लोक तक और २४२७ से २४३२ श्लोक तक देखो, श्रीकृष्ण को परब्रह्म लिखा है। और भी भारत में सभी स्थानों में है, उदाहरण के हेतु एक पर्व मात्र लिखा।

३. यहाँ मांस से बिना यज्ञ के मांस से मुराद होगी।

इस वर्णन से यह बात बहुत स्पष्ट हो गई कि गोलोक का होना हिन्दू लोग उस काल से मानते हैं जब कि रामायण बनी ।^१

३२वें सर्ग में तैत्तिरीय शाखा और कठकलाप शाखा का नाम है । इस से प्रकट होता है कि वेद उस काल तक बहुत से हिस्सों में बँट चुके थे ।

रामजी ने वन जाने की राह इस तरह बयान की गई है । अयोध्या से चल कर तमसा अर्थात् टोंस नदी के पार उतरे । फिर वेदश्रुति,^२ गोमती, स्यंदिका^३ और गंगा पार होते हुए प्रयाग आये और वहाँ से चित्रकूट (जोकि रामायण के अनुसार १० कोस है)^४ गए । यह बिल्कुल सफर उन्होंने पाँच दिन में किया । और सुमंत उनको पहुँचा कर शृंगवेरपुर अर्थात् सिंगरामऊ से दो दिन में अयोध्या पहुँचा । पहली बात से प्रकट हुआ कि पुराने जमाने के कोस बड़े होते थे । और दूसरी बात से विदित हुआ कि सड़क उस समय में भी बनाई जाती थी, नहीं तो इतनी दूर की यात्रा का पाँच दिन में ते करना कठिन था ।

भरत जी जब अपने नाना के पास से जो कि कैकय अर्थात् गवकर देश का राजा था, आने लगे तो उसने कई बहुत बड़े और बलवान कुत्ते दिये और तेज़ दौड़नेवाले गदहों (खच्चर) के रथ पर उन को बिदा किया । वे सिंधु और पंजाब होते हुए इक्षुमती को पार कर अयोध्या आये । इससे दो बात प्रकट हुई ; एक तो यह कि उस काल में कैकय देश के गदहे और कुत्ते अच्छे होते थे, दूसरे यह कि वहाँ की हिन्दुस्तान से राह सिंधु देकर थी ।

७१वें सर्ग में मूर्तियों का वर्णन है, इस से दयानंद सरस्वती इत्यादि का यह कहना कि रामायण में कहीं मूर्तिपूजन का नाम नहीं है अप्रमाण होता है ।

इसी स्थान में निषाद का लड़ाई की नौकाओं के तैयार करने का वर्णन है, जिस से यह बात प्रमाणित होती है कि उस काल के लोग स्थल की भाँति पानी पर भी लड़ सकते थे ।

दक्षिण के लोगों की सिर में फूल गूँघने की बड़ी प्रशंसा लिखी है । इससे यह बात झलकती है कि उत्तर के देश में फूल गूँघने का विशेष रिवाज नहीं था ।

१०८ सर्ग में जाबालि मुनि ने चार्वाक का मत वर्णन किया है । और फिर १०९ सर्ग में बुध का नाम और उन के मत का वर्णन है । इससे प्रगट है कि ये दोनों वेद के विरुद्ध मत उस समय में भी हिन्दुस्तान में फैले हुए थे । अभी हम ऊपर बालकाण्ड में जैनियों के उस काल में रहने का जिक्र कर चुके हैं तो अब ये सब बातें रामायण के बनने के समय, बुध के जन्म का और बौद्ध और जैन मत अलग होने के समय की विवेचना में कितनी हलचल डालेगी प्रगट है ।

आरण्यकांड— चौथे सर्ग के २२३ श्लोक में लिखा है कि असुरों की यह पुरानी चाल है कि वे अपने मुँदे गाड़ते हैं । इस से प्रगट है कि वेद के विरुद्ध मत माननेवालों में यह रीति सदा से चली आती है ।

किष्किंधाकांड— १३वें सर्ग के १६ श्लोक में कलम अर्थात् जोधरी के खेत का बयान है, और कोष में “लेखनी कलमित्यपि” लिखा है । इस वाक्य से प्रगट होता है कि कलम लिखने की चीज़ का नाम संस्कृत में भी है और वह और चीज़ों के साथ जोधरी का भी होता था ; और इसी से यह भी साफ़ हो जाता है कि सिवा ताड़ के पत्र के कागज़ पर भी आगे के लोग लिखते थे, क्योंकि ताड़ पर मिटने के डर से सिर्फ़ लोहे की कलम से लिखा जा सकता है जैसा कि अब तक बंगाले और ओड़ीसे में रिवाज है ।^५

१. वेद में ब्रह्म के धाम के वर्णन में लिखा है कि वहाँ अनेक सींगों की गऊ हैं ।

२. वेदसा नाम की एक छोटी नदी गोमती में मिलती है, शायद उसी का नाम वेदश्रुति लिखा है ।

३. जिस को अब सई कहते हैं ।

४. यह बड़े संदेह की बात है, अब जो चित्रकूट माना जाता है वह प्रयाग से तीन चार मजिल है पर यहाँ दस कोस लिखा है । इस दस कोस से यह आशय है कि वहाँ से उस पर्वत की श्रेणी (लाइन) आरंभ होती है, पर जहाँ डेरा किया था वह स्थान दूर होगा ।

५. इस विषय के लिये 'सज्जनविलास' देखो ।

६२वें सर्ग के ३ श्लोक में पुराणों का वर्णन है, जिससे नई तबीयत और नई तलाश (लाइट) के लोगों का यह कहना कि पुराण सब बहुत नए हैं कहाँ तक ठीक है, आप लोगों पर आप से आप विदित होगा । इस कांड में और बातों की भाँति यह भी ध्यान करने के योग्य है कि रामजी ने बालि से मनु के २ श्लोक कहे हैं और यह भी कहा है कि मनु भी इस को प्रमाण मानते हैं । इस से प्रगट हुआ कि मनु की संहिता उस काल में भी बड़ी प्रामाणिक और प्रतिष्ठित समझी जाती थी ।^१

सुंदरकांड — तीसरे सर्ग के १८ श्लोक में किले के शस्त्रालय (सिलहगाह) के वर्णन में लिखा है कि जिस तरह से स्त्री गहनों से सजी रहती है वैसे ही बुर्ज यंत्रों से सजे हुए थे । इससे स्पष्ट प्रगट होता है कि तोप या और किसी प्रकार का ऐसा हथियार जिससे कि दूर से गोले की भाँति कोई वस्तु छूट कर जान ले उस समय में अवश्य था ।

९ वें सर्ग के १३ श्लोक में लिखा है कि पुष्पक-विमान के चारों ओर सोने के हुंडार बने थे और खाने पीने की सब वस्तु उस में रक्खी रहा करती थी और वह बहुत से लोगों को बिठला कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता था । इस से सोचा जाता है कि यह विमान निस्संदेह कोई बेलून की भाँति की वस्तु होगी और हुंडार उस में पहचान के हेतु लगाये गये होंगे ।

९वें सर्ग के २५ और २६ श्लोकों में वर्णन है कि लंका में जो गलीचे बिछे थे उन में घर, नदी, जंगल इत्यादि बने हुये थे । अब यदि विलायत का कोई गलीचा आता है, जिसमें मकान, उद्यान इत्यादि बने रहते हैं तो देख कर हम लोग कैसा आश्चर्य करते हैं । कैसे सोच की बात है कि हम लोग नहीं जानते कि हमारे हिन्दुस्तान में भी इस प्रकार की चीजें पहिले बनती थीं । यहीं पर जब हनुमान जी ने रावण के मंदिरों को जा कर देखा है तो उस में भोजन के अनेक प्रकार के धातुओं के, मणियों के और काँच के पात्रों को भी देखा है । चिमचा, काँटा आदि भी उस समय होता था और बड़ी शोभा से खाना-चुना जाता था । और भी अंगरेजी चाल के पात्र और गहने भुवनेश्वर के मंदिर में भी बहुत प्राचीन काल के बने हैं । बाबू राजेन्द्र लाल मित्र का उड़ीसा प्रथम भाग देखो ।

इसी स्थान में अशोक-वन में जानकी जी के शिशिपा के दरख्त के नीचे रहने का वर्णन है । हिन्दुस्तान के बहुत से पंडितों का निश्चय है कि शिशिपा शीशम वृक्ष को कहते हैं । किन्तु हमारी बुद्धि में शिशिपा सीताफल अर्थात् शरीफे के वृक्ष को कहते हैं । इस के दो बड़े भारी संबूत हैं । प्रथम तो यह कि यदि जानकी जी से शरीफे से कुछ संबंध नहीं तो सारा हिन्दुस्तान उस को सीताफल क्यों कहता है । दूसरे यह कि महाभारत के आदि पर्व में राजा जन्मेजय की सर्पयज्ञ की कथा में एक श्लोक है जिसका अर्थ है कि आस्तिक की बोह्राई सुन कर जो साँप न जायगा, उस का सिर शिश वृक्ष के फल की तरह सौ टुकड़े हो जायगा^१ । शिश और शिशिपा दोनों एक ही वृक्ष के नाम हैं, यह कोषों से और नामों के संबंध से स्पष्ट है । शीशम के वृक्ष में ऐसा कोई फल नहीं होता जिस में बहुत से टुकड़े हों । और शरीफे का फल ठीक ऐसा ही होता है जैसा श्लोक में लिखा है । इस से लोग निश्चय करें कि सीता जी शरीफे ही के वृक्ष के नीचे थीं ।

१८वें सर्ग के १२ श्लोक में गुलाब पाश का वर्णन है । इसलिए हमारे भाई लोग यह न समझें कि यह निधि हम को मुसलमानों से मिली है, यह हिन्दुस्तान ही की पुरानी वस्तु है ।

३०वें सर्ग के १८-१९ श्लोक में लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य प्रायः संस्कृत बोलते थे, किन्तु जब छोटे लोगों से बात करते थे तो यह संस्कृत से नीच भाषा में बोलते थे । इससे बहुत लोगों का यह कहना कि संस्कृत कभी बोली ही नहीं जाती थी खंडित होता है । हाँ, इस में कोई संदेह नहीं, सब से इस को काम में नहीं लाते थे ।

६४वें सर्ग के २४ श्लोक में लिखा है कि हनुमान जी राक्षसों के सिर इस तरह से तोड़ तोड़ कर फेंकते थे जैसे यंत्र से ढेले छूटें । इस से ऊपर जहाँ हम यंत्रों का वर्णन कर आए हैं उस से लोग समझें कि वह निस्संदेह कोई ऐसी वस्तु थी, जिस से गोली या कंकड़-पत्थर छोड़े जाते थे ।

१. भारत में भी कई स्थान पर मनु का नाम है । उदाहरण के हेतु आदि पर्व का १७२२ श्लोक देखो ।

२. आस्तिक वचन श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते । शताधाभिद्यतेमूर्ध्ना शिशिवृक्ष फलं यथा । ।

लंकाकांड — (३ सर्ग १२ श्लोक) (३ सर्ग १३ श्लोक) (३ सर्ग १६ श्लोक) (३ सर्ग १७ श्लोक) (४ सर्ग २३ श्लोक) (२१ सर्ग श्लोक अंत का) (३९ सर्ग २६ श्लोक) (६० सर्ग ५४ श्लोक) (६१ सर्ग ३२ श्लोक) (७६ सर्ग ६८ श्लोक) (८६ सर्ग २२ श्लोक) । इन श्लोकों में यंत्र और शतघ्नी का वर्णन है ।

यंत्र और शतघ्नी ये रामायण में किस किस प्रकार से वर्णन की गई हैं यह ऊपर के श्लोकों के देखने से प्रगट होगा । इन दोनों के विषय में हमें कुछ विशेष कहना नहीं है, क्योंकि हमारे पाठकों पर आप से आप यह प्रगट होगा कि यंत्र और शतघ्नी का कोई रूप रामायण से हम ठीक नहीं कर सकते ।

पत्थर ढोने की कल किसी चाल की वाल्मीकि जी के समय में अवश्य रही होगी और किवाड़ भी किसी चाल के कल से बंद किये जाते होंगे ।

यंत्र बहुत ऊँचे ऊँचे भी होते थे, जैसा कि कुम्भकर्ण की उपमा में कहा गया है । शतघ्नी फौलाद की बनती थी और वृक्षों की तरह लंबी होती थी और केवल फिले ही पर नहीं रहती थी परंतु लड़ाई में भी लाई जाती थी । इन बातों से हमारा यह कहना तो ठीक ज्ञात होता है कि आगे कल^१ अवश्य थी पर शतघ्नी किस चाल का हथियार था यह हम नहीं कह सकते ।^२

११३ सर्ग ४२ श्लोक में राजा भोज के बेटे के नाम से जो सिंह और रीछ की कहानी प्रसिद्ध है वह ठीक ठीक यहाँ कही गई है ।

(११० सर्ग २७ श्लोक) रामजी से ब्रह्मा ने कहा कि सीता लक्ष्मी हैं और आप कृष्ण हैं । (इस से हमारा वासुदेव शब्द वाला पहिला प्रमाण और भी दृढ़ होता है ।^३

(१२७ सर्ग ३ श्लोक) पुराणों का वर्णन है ।

(१२८ सर्ग) जब राजा लोग राज पर बैठते थे तब नज़र खिलअत इत्यादि आगे भी ली और दी जाती थीं । इसी सर्ग में लिखा है कि रामायण वाल्मीकि जी ने जो पहिले से बनाया है वह जो सुनता है सो सब पापों से छुट जाता है । इस में (पुराकृत) पद से जैसे मनु का शास्त्र भूगु ने एकत्र किया है वैसे ही वाल्मीकिजी की कविता भी किसी ने एकत्र किया है, यह संदेह होता है । इसी सर्ग के १२० श्लोक में लिखा है कि जो रामायण लिखते हैं उनको भी पुण्य होता है । इससे उस काल में पोथियाँ लिखी जाती थीं, यह भी स्पष्ट है ।

उत्तरकांड — उत्तरकांड में बहुत सी बातें अपूर्व और कहने सुनने के योग्य हैं पर अंग्रेज़ विद्वानों ने उस के बनाने का काल रामायण से पीछे माना है, इससे हमारा उन बातों के लिखने का उत्साह जाता रहा तब भी जो बातें विशेष दृष्टि देने के योग्य हैं यहाँ लिखी जाती हैं ।

(३१ सर्ग श्लोक ४२।४३) रावण शिव जी की पूजा करता था,^१ इससे दयानंद स्वामी का यह कहना कि रामायण में मूर्तिपूजा नहीं है, खंडित होता है । हाँ, यदि वे भी कह दें कि यह कांड क्षेपक है या नया बना है तो इस का उत्तर नहीं ।

१. महाभारत की टीका में युद्ध में नीलकण्ठ चतुर्धर ने यंत्र का अर्थ अग्नि यंत्र लिखा है, पर राजा राधाकांत ने अग्नि यंत्र और अग्नयस्त्र इन दोनों शब्दों का अर्थ बंदूक किया है ("कामान बंदूक इति भाषा") और दारुयंत्र का अर्थ कल लिखा है । महाभारत में एक जगह लिखा है "यंत्रस्यगुण दोषो न विचार्यो मधुसूदन । अहं यंत्रो भवान् यंत्री न मे दोषो न मे गुणः ।

२. विजय रक्षित ग्रंथ में लिखा है "अयः कंटक संचिन्ता शतघ्नी महती शिला" अर्थात् लोहे के काँटों से छिपाई हुई शिला का नाम शतघ्नी है । मेदिनीकोष में करंज भी इस का नाम है ।

३. पाणिनि के सूत्रों में वासुदेव आदि शब्द मिले हैं । इस विषय का विस्तार हमारे प्रबंध 'वैष्णवता और भारतवर्ष' में देखो ।

१. यत्रयत्रस्मयातीह रावणोराक्षसेश्वरः । जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्रस्मनीयते ॥४२॥

वालुका बेदि मध्येतुतल्लिङ्गस्थाप्य रावणः । अर्चयामासगन्धैश्चपुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ॥४३॥

(५३ सर्ग श्लोक २०, २१, २२) श्रीकृष्णावतार का वर्णन है ।^१ विदित हो कि तीसरे सर्ग के १२ श्लोक में भी एक जगह विष्णु का नाम गोविंद कहा है “गोविंद कर निस्मृता ” और गोविंद श्रीकृष्ण का नाम तब पड़ा है जब गोवर्द्धन उठाया है, यह विष्णुपुराणादिक से सिद्ध है, यथा “गोविंद इति चाम्यधात् ” तो इस से भी हमारी बालकांड वाली युक्ति सिद्ध हुई ।

(९४ सर्ग श्लोक ८) छन्दोविदः पुराणज्ञान इस वाक्य में पुराणों का वर्णन किया है । पुराणजैश्व महात्मभिः इत्यादि वाक्यों में और भी कई स्थानों पर पुराणों का वर्णन है और पुराणों की अनेक कथा भी इस कांड में मिलती हैं । इस से यह निश्चय होता है कि उत्तरकांड के बनने के पहले पुराण सब बन चुके थे ।

पुराणों के विषय की बहुत सी शंकाएँ काल क्रम से मिट गईं । जिन पुराणों को विलायती विद्वानों ने चार पाँच सौ बरस का बना बतलाया था उन की सात सात सौ बरस की प्राचीन पुस्तकें मिलीं । लोग भागवत ही को वोपदेव का बनाया कहते थे, किन्तु चन्द के रायसे में भागवत का वर्णन मिलने से और प्राचीन पुस्तकों से यह सब बातें खंडित हो गईं ।

उत्तरकांड से मालूम होता है कि अयोध्या, काशी और प्रयाग ये तीनों राज्य उस समय अलग थे और उस समय हिन्दुस्तान में तीन सौ राज्य अलग अलग थे ।

इसी कांड के चौरान्नवे सर्ग में यह लिखा है कि उत्तरकांड भार्गव ऋषि ने बनाया है । यह भी एक आश्चर्य की बात है । इस वाक्य से तो अँगरेज़ी विद्वानों का संदेह सिद्ध होता है ।

॥ इति ॥

एक श्लोकी रामायणम् ।

आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनम्,
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसंभाषणम् ।
बालीनिग्रहणं समुद्रतरणं लंकापुरीदाहनम्,
पश्चाद्वावणकुम्भकर्णहननम् एतद्दि रामायणम् । ।



२. उत्पत्स्यतेऽहिलोकेऽस्मिन् यदूनां कीर्तिवर्द्धनः ।

वासुदेव इति ख्यातो विष्णुः पुरुषविग्रहः ॥२०॥

स ते मोक्षयिता शापात् राजस्तस्माद्विष्यसि ।

कृता च तेन कालेन निष्कृतिस्ते भविष्यति ॥२१॥

भारावतरणार्थं हि नरनारायणायुधौ ! उत्पत्स्येते महावीर्यौ कलौ युगोपस्थिते ॥२२॥

पंच पवित्रात्मा

अर्थात्

मुसलमानी मत के मूलाचार्य महात्मा मुहम्मद, आदरणीय
अली, बीबी फातिमा, इमाम हसन

और

इमाम हुसैन की संक्षिप्त जीवनी

सन् १८८४ में पहली बार 'विक्टोरिया प्रेस बनारस' से छपी। ६ मई १८८४ को अपने किसी मित्र को लिखे पत्र में भारतेन्दु बाबू ने इसके बारे में लिखा है कि "हिन्दी जवान में यह पहिली किताब तसनीफ और शाय्या हुयी है जिस में कि बुजुर्गान अहले इस्लाम का तजकिरा है और जो पढ़ने वालों के दिल पर उन लोगों की सच्ची बुजुर्गी का असर पैदा करने वाली है।"

— सं.

पंच पवित्रात्मा

१— महात्मा मुहम्मद

जिस समय अरब देशवाले बहुदेवोपासना के घोर अंधकार में फँस रहे थे उस समय महात्मा मुहम्मद ने जन्म ले कर उन को एकेश्वरवाद का सदुपदेश दिया। अरब के पश्चिम ईसामसीह का भक्तिपथ प्रकाश पा चुका था, किन्तु वह मत अरब, फारस इत्यादि देशों में प्रबल नहीं था और न अरब ऐसे कट्टर देश में महात्मा मुहम्मद के अतिरिक्त और किसी का काम था कि वहाँ कोई नया मत प्रकाश करता। उस काल के अरब के लोग मूर्ख, स्वार्थतत्पर, निर्दय और वन्यपशुओं की भाँति कट्टर थे। यद्यपि उनमें से अनेक अपने को इब्राहीम के वंश का बतलाते और मूर्ति-पूजा बुरी जानते, किन्तु समाजपरवश होकर सब बहुदेवोपासक बने हुए थे। इसी घोर समय में मक्के से मुहम्मदचंद्र उदय हुआ और एक ईश्वर का पथ परिष्कार रूप से सबको दिखालाई देने लगा।

महात्मा मुहम्मद इब्राहीम के वंश में इस क्रम से हैं ; — इब्राहीम, इसमाईल, कबजार, हमल, सलामा, अलहोसा, अलीसा, ऊद, आद, अदनान, साद, नजार, मजर, अलपास, बदरका, खरीमा, किनाना, नगफर,

मलिक, फहर, गालिव, लबी, काब, मिरह, कलाव, फबी, अबदमनाफ, हाशिम, अब्दुल मतलब, अब्दुल्लाह और इनके अबुल कासिम मुहम्मद ।

अब्दुलमतलब के अनेक पुत्र थे, जैसा हमज़ा, अब्बास, अबूतालिब, अबुलहब, आईदाक । कोई कोई हारिस, हजब, हकूम, जरार जुबैर, कासमे असगर, अब्दुलकाबा और मकूम को भी कुछ विरोध से अब्दुल मतलब का पुत्र मानते हैं । इन में अब्दुल्लाह और अबूतालिब एक माँ से हैं । अबूतालिब के तीन पुत्र अक़ील, जाफर और अली । यह अली महात्मा मुहम्मद के मुसलमानी सत्य मत प्रचार करने के मुख्य सहायक और रात दिन के इनके दुख-सुख के साथी थे और यह अली जब महात्मा मुहम्मद ने इतत्व का दावा किया तो पहिले पहल मुसलमान हुए ।

महात्मा मुहम्मद की माँ का नाम अमिना है, जो अबदमनाफ के दूसरे बेटे वहब की बेंटी हैं और आदरणीय अली की माँ का नाम फात्मा है, जो असद की बेंटी है और यह असद हाशिम के पुत्र हैं । इससे मुहम्मद और अली पितृकुल और मातृकुल दोनों रीति से हाशिमी हैं ।

महात्मा मुहम्मद १२वीं रबीउलऔवल सन् ५६९ ईस्वी को मक्का में पैदा हुए ।

महात्मा मुहम्मद के पिता के इन के जन्म से पूर्व (एक लेखक के मत से इन के जन्म के दो वर्ष पीछे) मर जाने से उनके दादा इन का लालन पालन करते थे । अरब के उस समय की असभ्य रीति के अनुसार कोई दाई अनाथ लड़के को दूध नहीं पिलाती थी और इस में वहाँ की स्त्रियाँ अमंगल समझती थीं, किन्तु अलीमा नामक ^१ एक स्त्री ने इन को दूध पिलाना स्वीकार किया । इस दाई को बालक ऐसा हिए लग गया कि एक दिन अलीमा ने आकर महात्मा मुहम्मद की माता अमीना से कहा कि मक्के में संक्रामक रोग बहुत से होते हैं इस से इस बालक को मैं अपने साथ जंगल में ले जाऊँगी । उन की माँ ने आज्ञा दे दी और साढ़े चार बरस तक महात्मा मुहम्मद अलीमा के साथ वन में रहे । परंतु इनके दैवी चमत्कार से कुछ शंका करके दाई फिर इनको इन की माता के पास छोड़ गई । इन की छः बरस की अवस्था में इन की माता अमीना का भी परलोक हुआ और आठ बरस की अवस्था में इन के दादा अब्दुल मतलब भी मर गए । तब से इन के सहोदर पितृव्य अबूतालिब पर इन के लालन पालन का भार रहा । अबूतालिब महात्मा मुहम्मद के बारह और पितृव्यों में इन के पिता के सहोदर भ्राता थे । हाशिम महात्मा मुहम्मद के परदादा का नाम था और यह मनुष्य ऐसा प्रसिद्ध हुआ कि उस के समय से उस के वंश का नाम हाशिमी पड़ा । यहाँ तक कि मक्का और मदीने का हाकिम अब भी “हाशिमियों के राजा ” के पद से पुकारा जाता है । अब्दुल मतलब महात्मा मुहम्मद को बहुत चाहते थे और नाम भी उन्हीं का रख्खा हुआ था । इस हेतु मरती समय अबूतालिब को बुला कर महात्मा की बाँह पकड़ा कर उन के पालन के विषय में बहुत कुछ कह सुन दिया था । अबूतालिब ने पिता की शिक्षा अनुसार महात्मा मुहम्मद के साथ बहुत अच्छा बरताव किया और इन को देश और समय के अनुसार शिक्षा दिया और व्यापार भी सिखलाया ।

उन्होंने किस रीति-मत से विद्या शिक्षा किया था इस का कोई प्रमाण नहीं मिला । पचीस बरस की अवस्था तक पशु-चारण के कार्य में नियुक्त थे । चालीस बरस की अवस्था में उन का धर्म भाव स्फूर्ति पाया । ईश्वर निराकार है और एक अद्वितीय है ; उनकी उपासना बिना परित्राण नहीं है । यह महासत्य अरब के बहुदेवोपासक आचारभ्रष्ट दुर्बल लोगों में वह प्रचार करने को आदिष्ट हुए । तैंतालिस बरस की अवस्था के समय में अग्निमय उत्साह और अटल विश्वास से प्रचार में प्रवृत्त हुए । “रौजतुः पोहदा ” नामक मुहम्मदीय धर्म ग्रंथ में उन की उक्ति कह कर ऐसा उल्लिखित है । “हमारे प्रति इस समय ईश्वर का यह आदेश है कि निशा जागरण कर के दीन हीन लोगों की अयस्था हमारे निकट निवेदन करो, आलस्य-शय्या में जो लोग निद्रित हैं उन लोगों के बदले तुम जागते रहो, सुख-गृह में आनंद विह्वल लोगों के लिए अश्रुवर्षण करो । ” पैगंबर महम्मद जब ईश्वर का स्पष्ट आदेश लाभ करके ज्वलंत उत्साह के साथ पौलकितता के और पापाचार के विरुद्ध खड़े हुए और “ईश्वर एक मात्र अद्वितीय है ” यह सत्य स्थान स्थान में गंभीरनाद से घोषणा करने लगे, उस समय वह अकेले थे । एक मनुष्य ने भी उन को सम विश्वासी रूप से परिचित होकर उन के उस कार्य में

1. An Ethiopian Female Slave.

सहानुभूति दान नहीं किया। किन्तु उन्होंने ने किसी की मुखापेक्षा नहीं किया, किसी का अणु मात्र भय नहीं किया, बुद्धि-विचार-तर्क की तृसीमा में भी नहीं गये, प्रभु का आदेश पालन करना ही उन का दृढ़ व्रत था। जब वह ईश्वर के आदेश से “ला इलाह इल्लिल्लाह” (ईश्वर एक मात्र अद्वितीय है) इस सत्य प्रचार में प्रवृत्त हुए, तब सब अरबी लोग, उन के कई एक पितृव्य और समस्त ज्ञाति संबंधी निज अवलंबित धर्म के विरुद्ध वाक्य सुन कर भयानक क्रोधांध हुए और उनके स्वदेशीय और आत्मीय गण “महम्मद मिथ्यावादी और ऐंद्रजालिक हैं” इत्यादि उक्ति कहके उनके प्रति और सबों का मन विरक्त और अविश्वस्त करने लगे। स्वजन संबंधियों के द्वारा क्लेश अपमान प्रहार यंत्रणा आदि उन को जितनी सहाय करनी पड़ती थी उतनी दूसरे किसी महापुरुष को नहीं सहनी पड़ी। विपरीत लोगों के प्रस्तराघात से उनका शरीर क्षत विक्षत हुआ था। किसी के प्रातराघात से उनका दो दाँत भग्न और ओठ विदीर्ण तथा ललाट और बाहु आहत हुआ था। किसी शत्रु ने उनको आक्रमण करके उन का मुखमंडल कंकड़मय मृत्तिका में घर्षण किया था, उससे मुँह क्षत विक्षत और शोणिताक्त हुआ था। एक दिन किसी ने उन के गले में फाँसी लगा कर स्वाँसरोध कर के उन को बध करने का उपक्रम किया था। एक दिन किसी ने उन का गला लक्ष्य कर के करवालाघात किया था, तब गहवर में छिपकर उन्होंने अपने प्राण की रक्षा किया था। कई बार उन की जीवनाशा कुछ भी नहीं थी। एक दिन उनके पितृव्य और जातिवर्ग उन को बध करने को कृत संकल्प हुए थे। उन की प्रियतमा दुहिता फातिमा ने जान कर रोते रोते उन से निवेदन किया। उस में धर्मवीर विश्वासी महम्मद अकुतोभय भाव से बोले कि वत्से ! मत रो, हम को कोई बध नहीं कर सकेगा, हम उपासनारूप अस्त्र धारण करेंगे, विश्वास वर्म से आवृत होंगे। जब हजरत महम्मद को प्रहार-क्षत-क्लेश और निःसहाय देख कर उन के पितृव्य हमजा महाक्रोध से अबुलहब और अबूजोहल प्रभृति मुहम्मद के परम शत्रु पितृव्य और दूसरे दूसरे ज्ञाति संबंधियों को प्रहार करने जाते थे, उस समय वह बोले, “जिन ने हम को सत्यधर्म प्रचार के हेतु मनुष्य मंडली में प्रेरणा किया है, उस सत्य परमेश्वर के नाम पर शपथ करके हम कहते हैं, यदि तुम सुतीक्ष्ण करवाल के द्वारा नीच बहुदेवोपासक लोगों को निहत करो और उसी भाव से हमारी सहायता करने को अग्रसर हो तो तुम अपने को शोणित में कलंकित कर के पुण्यमय सत्य परमेश्वर से दूर जा पड़ोगे। ईश्वर के एकत्व में और हम उन के प्रेरित हैं, इस सत्य का विश्वास जब तक न करोगे तब तक तुम को युद्ध-विवाद में कोई फल नहीं होगा। पितृव्य, यदि तुम वात्सल्यरूप औषध हम को प्रदान करना चाहते हो, और हमारे आहत हृदय में आरोग्य का औषध लेपन करना चाहते हो, तो “ला इलाह इल्लिल्लाह महम्मद रसूलुल्लाह” (ईश्वर एकमात्र अद्वितीय और मुहम्मद उस को प्रेरित है) यह वाक्य उच्चारण करो। यह सुन कर हमजा विश्वासी होकर कलमा उच्चारण पूर्वक एक ईश्वर के धर्म में दीक्षित हुए। तीन बरस शत्रु मंडली से अवरुद्ध होकर हजरत महम्मद को महा क्लेश से एक गिरिगुहा में कालयापन करना पड़ा था। इस बीच में बहुत से मनुष्यों ने उन के साथ उस उन्नत विश्वास में योग दिया था और उन के निकट एक ईश्वर के धर्म में दीक्षित हुए थे। ईश्वर की आज्ञापालन के लिए वह दस बरस मक्का नगर में अपरिसीम क्लेश और अत्याचार सहन कर के पीछे मदीना नगर में चले गए। वहीं शत्रुगण से आक्रांत होकर उन लोगों के अनुरोध से और आवाहन से युद्ध करने को वाध्य हुए। वह विपन्न अत्याचारित होकर कभी तनिक भी भाँत और संकृंचित नहीं हुए थे। जितनी बाधा और विघ्न उपस्थित होता था उतनी ही अधिक उत्साहानल से प्रज्वलित हो उठते थे। सब विघ्न अतिक्रम करके अटल विश्वास से वह ईश्वरादेश पालन व्रत में दृढ़ व्रती थे। वह ईश्वर और मनुष्य के प्रभु-भृत्य का संबंध अपने जीवन में विशेष भाँति प्रदर्शन करा गए हैं। वह स्वामी-आदेश शिरोधार्य कर के स्वर्गीय तेज और अलौकिक प्रभाव से कोटि कोटि मनुष्य को अंधेरे से ज्योति में लाए। लक्ष लक्ष जन का सांसारिक बल एक विश्वास के बल से चूर्ण कर के जगत् में अद्वितीय ईश्वर की महिमा को महीयान किया। एकेश्वर की पूजा और सत्य का राज्य प्रतिष्ठित किया। प्रभु का आदेशपालन के हेतु सब प्रकार का वारिद्ध, क्लेश, अपमान और आत्मीय जन का निग्रह अम्लान बदन से सिर नीचा करके सहन किया। धन्य ! ईश्वर के विश्वास किकर महम्मद ! आज मुसलमान धर्म के प्रवर्तक ईश्वर के आज्ञाकारी विश्वस्त भृत्य मुहम्मद के नाम और उनके प्रवर्तित पवित्र एकेश्वर के धर्म में एशिया से योरोप आफ्रिका तक कोटि कोटि मुसलमान एक सूत्र में ग्रथित हैं। वह ऐसा आश्चर्य धर्म का बंधन जगत् में संस्थापन कर गए हैं कि आज दिन उस के खोलने की किसी को सामर्थ्य नहीं है।

२. बीबी फ़ातिमा

अब हम लोग उस का जीवनचरित्र लिखते हैं जिस को करोड़ों मनुष्य सिर झुकाते हैं और जिस के दामन से प्रलय पीछे करोड़ों मनुष्य को ईश्वर के सामने अपने अपराधों की क्षमा मिलाने की आशा है। यह बीबी फ़ातिमा मुसलमान धर्माचार्य महात्मा मुहम्मद की प्यारी कन्या थी। महात्मा मुहम्मद जैसे दुहितृवत्सल थे वैसे ही बीबी फ़ातिमा पितृभक्त थीं। यह वाल्यावस्था ही में मातृहीना हो गई, क्योंकि इन की माता महात्मा मुहम्मद की प्रथमा स्त्री बीबी खदीजा इनको शैशवावस्था ही में छोड़ कर परलोक सिधारीं। यद्यपि महात्मा मुहम्मद को अनेक संतति थीं पर औरों का कोई नाम भी नहीं जानता और इन को आबालवृद्ध वनिता सब जानते हैं। मुहम्मद ने अपने मुख से कहा है कि ईश्वर ने संसार की सब स्त्रियों से फ़ातिमा को श्रेष्ठ किया। इन्होंने आठ बरस तक जिस असाधारण निष्ठा और परम श्रद्धा से पिता की सेवा की पराकाष्ठा की है वैसे संदेह है कि किसी स्त्री ने भी न की होगी और न ऐसी पितृगतप्रणाम नारीरत्न और कहीं उत्पन्न हुई होगी। महात्मा मुहम्मद क्षण भर भी दृष्टि से दूर रखने में कष्ट पाते थे। पिता के अलौकिक दृष्टांत और उपदेशों के प्रभाव से शैशवावस्था ही से इन को अत्यंत धर्मनिष्ठा थी। इन का मुख भोला भाला सहज सौंदर्य से पूर्ण और सतोगुणी तेज से दीक्ष्यमान था। कभी इन्होंने सिंगार न किया। सांसारिक मुख की ओर यौवनावस्था में भी इन्होंने तृणमात्र चित न दिया। मर्म की विमल ज्योति और ईश्वरीय प्रताप इन के चेहरे से प्रगट था। धर्मसाधन और कठिन वैराग्य व्रतपालन ही में इनको आनंद मिलता था और अनशनादिक नियम ही इन का व्यसन था। इन के समस्त चरित्र में से दो एक दृष्टांत रूप यहाँ पर लिखे जाते हैं।

महात्मा मुहम्मद के चचेरे भाई और परम सहायक आदरणीय अली से इन का विवाह हुआ और सुप्रसिद्ध हसन-हुसैन इन के दो पुत्र थे।

एक बेर कुरैशवंशीय अनेक सम्राटजन महात्मा मुहम्मद के पास आए और बोले कि यद्यपि हमारा आप का धर्म संबंध नहीं है पर हम आप एक ही वंश के और एक ही स्थान के हैं, इस से हम लोगों की इच्छा है कि हम लोगों के यहाँ जो अमुक आप के संबंधी का अमुक से विवाह होनेवाला है उस कार्य को आप की पुत्री फ़ातिमा चल कर अपने हाथ से संपादन करें। महात्मा मुहम्मद ने अच्छा कह कर बिदा किया और फ़ातिमा के निकट आ कर कहने लगे — वत्से ! लोगों से सद्भाव तथा शत्रुओं का उत्पीड़न सहन करना और शत्रुतारूपी विष को कृतज्ञता-रूपी सुधा भाव से पान ही हमारा धर्म है। आज अरब के अनेक मान्य लोगों ने अपने विवाह में तुम को बुलाया है। यह हमारी इच्छा है कि तुम वहाँ जाओ, परंतु तुम्हारी क्या अनुमति है हम जानना चाहते हैं। फ़ातिमा ने कहा ईश्वर और ईश्वर के भेजे हुए आचार्य की आज्ञा कौन उल्लंघन कर सकता है ? हम तो आप की आज्ञाधीना दासी हैं, इस से हमारी सामर्थ्य नहीं कि आप की आज्ञा टालें। हम विवाह सभा में जायेंगे, परंतु सोच यह है कि हम कौन सा वस्त्र पहन के जायेंगे। वहाँ और स्त्री लोग महामूल्य वस्त्राभरणादिक धारण कर के आवेंगी और हमारी फटी चद्दर देख कर वे लोग हमारा और आप का उपहास करेंगे। अबूजुहल की बहिन आनवा की स्त्री और शवा की बेटी इत्यादि अनेक अरब की स्त्री कैसी असभ्यचरिणी और मंदप्रकृति हैं यह आप भली भाँति जानते हैं और हमालन की बेटी आप के चलने की राह में काँटा बिछा आती थी तथा अबूसफिनान की स्त्री को आप की निष्ठा के सिवा कोई काम ही नहीं है, यह भी आप को अविदित नहीं। सब उस सभा में उपस्थित रहेंगी और रूम और मिश्र के बहुमूल्य अलंकार धारण कर के मणिपीठ के ऊँचे आसन पर बड़े गर्व से बैठेंगी। उस सभा में आप की कन्या को एक मैली फटी पुरानी चद्दर ओढ़ कर जाना होगा। हम को देख कर वे सब कहेंगी कि इस कन्या को क्या हुआ। इस की माता की अतुल संपत्ति क्या हो गई जो इस वेश से यहाँ आई है। पिता ! इन लोगों को धर्मज्ञान और अंतरचक्षु नहीं है, केवल जगत् के वाहयादेवर में भूली हैं, इस से हम को देख कर वह आप की निंदा करेंगी और केवल हमारे कारण आप का अपमान होगा।

फ़ातिमा पिता से यह कहती थीं और उनके नेत्रों से जल बहता था। महात्मा मुहम्मद ने उत्तर दिया — बेटी ! तुम किंचितमात्र भी सोच मत करो। हमारे पास उत्तम वस्त्राभरण और धन तो निस्संदेह कुछ भी नहीं है, परंतु निश्चय एक्खो कि जो आज लाल पीले वस्त्र पहन कर अलंकार के उद्धान में फूली फूली दिखाई पड़ती हैं वे अपने दुष्कर्मों से कल तृण से भी तुच्छ हो कर नर्क की अग्नि में जलेंगी। हम लोगों का वस्त्र और शोभा वैराग्य है। महात्मा मुहम्मद और भी कुछ कहना चाहते थे कि फ़ातिमा ने कहा — पिता ! क्षमा कीजिए 'अब विलांब करने का कुछ प्रयोजन नहीं, आपकी आज्ञा हम को सर्वथा शिरोधार्य है।

यह कह कर बीबी फातिमा घर से निकली^१ और उस विवाह सभा की ओर अकेली चली परंतु लिखा है कि ईश्वर के अनुग्रह से उनके अंग पर दिव्य अमूल्य वस्त्राभरण सज्जित हो गये। कुरेशवंश में और अरब की स्त्री लोग अभिमान से फातिमा की मार्ग की प्रतीक्षा कर रही थीं और कहती थीं कि आज हम लोगों की सभा में महात्मा महम्मद की बेटी फटा कपड़ा पहन कर आवेगी और हम लोगों के उत्तम वस्त्राभूषण देख के आज वह भली भाँति लज्जित होगी। इतने में विद्युल्लता की भाँति साम्हने से फातिमा की शोभा चमकी और विवाह-मंडप में इन के आते ही एक प्रकाश हो गया। फातिमा ने नम्र भाव से सब स्त्रियों को यथायोग्य अभिवादन किया, परंतु वे सब स्त्रियाँ ऐसी हतबुद्धि और धैर्यरहित हो गईं कि सलाम का उत्तर न दे सकीं। फातिमा का मुखचंद्र देख कर अभिमानिनी स्त्रियों के हृदय-कमल मुरझा गये और आँखों में चकचौंधी छा गई। सब की सब घबड़ा कर उठ खड़ी हुई और आपस में कहने लगीं कि यह किस महाराज की कन्या और किस राजकुमार की स्त्री है। एक ने कहा, यह देवकन्या है। दूसरी बोली नहीं, कोई तारा टूट कर गिरा है। कोई बोली सूर्य की ज्योति है। किसी ने कहा, नहीं नहीं, आकाश से चंद्रमा उतरा है। परंतु जिस के चित्त में धर्मवासना थी उन्होंने ने कहा कि यह ईश्वरीय ज्योति है। यह अनेक अनुमान तो लोगों ने किये, परंतु यह संदेह सब को रहा कि कोई होय पर यह यहाँ क्यों आई है? अंत में जब लोगों ने पहचाना कि यह बीबी फातिमा है तो सब को अत्यंत लज्जा और आश्चर्य हुआ। सबसे ऊँचे आसन पर उनको लोगों ने बैठाया और आप सब सिर झुका कर उनके आस पास बैठ गईं। कई उनमें से हाथ जोड़कर बोलीं — हे महापुरुष महम्मद की कन्या! हम लोगों ने आप को बड़ा कष्ट दिया, हम लोगों के कारण जो आप के नित्य कर्म में व्यवधान पड़ा हो उसे क्षमा कीजिये और हमारे योग्य जो कार्य हो आज्ञा कीजिये। हम लोगों को जैसा आदेश हो वैसा भोजन और शरबत आप के वास्ते सिद्ध करें। बीबी फातिमा ने विनयपूर्वक उत्तर दिया — भोजन और शरबत से हमारा संतोष नहीं, हमारा और हमारे पितृदेव का विषय में विराग सहज स्वभाव है। अनशन व्रत हम लोगों को सुस्वादु भोजन के बदले अत्यंत प्रिय है। हमारा और हमारे पिता का संतोष ईश्वर की प्रसन्नता है। तुम लोग देवी, देवता, भूत, प्रेत इत्यादि की पूजा और पाखंड छोड़ कर सत्य धर्म के प्रकाश में आओ, इस परमेश्वर की भक्ति करो, परस्पर बैर का त्याग और आपस में प्रीति करो। अनेक स्त्रियाँ फातिमा का यह अतुल प्रभाव देख कर उसी समय मुसलमान हुईं और जिन्होंने उनका धर्म नहीं ग्रहण किया उन्होंने भी उनका बड़ा आदर किया।

किसी विशेष रोग के कारण इनकी मृत्यु नहीं हुई। पितृवियोग का शोक ही इनकी मृत्यु का मुख्य कारण है। कहते हैं कि महात्मा महम्मद की मृत्यु के पीछे फातिमा शोक से अत्यंत विह्वल रहीं। किसी भाँति भी इन को बोध नहीं होता था, रात दिन रोती थीं और बारबार मूर्च्छित हो जाती थीं। एक दिन उन्होंने कुछ स्पष्ट देखा और मृत्यु के हेतु प्रस्तुत हो कर अपने प्रिय स्वामी आदरणीय अली को बुला कर कहा “कल पितृदेव को स्वप्न में देखा है जैसे वह चारों ओर नेत्र फैला कर किसी के मार्ग की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम ने कहा, पिता! तुम्हारे विच्छेद से हमारा हृदय विदाग्ध और शरीर अत्यंत जीर्ण हो रहा है। उन्होंने उत्तर दिया, कि पुत्री! हम भी तो मार्ग ही देख रहे हैं। फिर हम ने ऊँचे स्वर से कहा — पिता! आप किस का मार्ग देख रहे हैं? तब उन्होंने कहा — कि तुम्हारा मार्ग देख रहे हैं। पुत्री फातिमा! हमारा तुम्हारा वियोग बहुत दिन रहा, इस से तुम्हारे बिना अब हमारे प्राण व्याकुल हैं। तुम्हारे शरीर त्याग का समय उपस्थित है; अब तुम अपनी आत्मा को शरीर संपर्क शून्य करो। इस निकृष्ट संकीर्ण जगत् का परित्याग कर के उस प्रसारित उन्नत देदीप्यमान आनंदमय जगत् में गृहस्थापन करो। संसाररूपी क्लेश-कारागार से छुट कर नित्य सुखमय परलोक-उद्यान की ओर यात्रा करो। फातिमा! जब तक तुम न आओगी तब तक हम नहीं जायेंगे। हम ने कहा — पिता! हम भी तुम्हारी दर्शनार्थी हैं, तुम्हारी सहवास संपत्ति लाभ करें यही हमारी भी आकांक्षा है। इस पर उन्होंने कहा — तो फिर क्लेश मत करो, कल ही हमारे पास आओ। इस के पीछे हमारी नींद खुली, अब उस उन्नत लोक में जाने के लिये हमारा हृदय व्याकुल है। हम को निश्चय है कि आज साँझ या पहर रात तक हम इस लोक का त्याग करेंगे। हमारे पीछे तुम अत्यंत शोकाकुल रहोगे, इससे जिस में हमारे संतान मूखे

^१ हमारे पुराणों में भी लिखा है कि सती जब उदास हो कर दक्ष के यज्ञ में बिना सिंगार किये ही चलीं तो मार्ग में कुबेर ने उनको उत्तम उत्तम वस्त्राभूषण पहिना दिया। वैसे ही अनुमान होता है कि अपने आचार्य महात्मा मुहम्मद की बेटी को वस्त्रहीन देख कर उन के किसी धनिक सेवक ने अमूल्य वस्त्राभूषण से उनको सजा दिया।

न रहें हम आज रोटी करके रख देते हैं और पुत्र-कन्या का वस्त्र भी धो देते हैं । हमारे पीछे यह कौन करेगा इस हेतु हम आप ही इन कामों से छुट्टी कर रखते हैं । हमारे अभाव में हमारे पुत्रों को कौन प्यार करेगा ? हमारी इच्छा थी कि आज इन का सिर सँवारें, परंतु हम को संदेह है कि कल कोई उनके मुँह की धूल भी न झारेगा ” ।

अली यह सुन अत्यंत शोकाकुल हो कर रोने लगे और कहा कि फातिमा ! तुम्हारे पिता के वियोग से हृदय में जो क्षत है वह अब तक पूरा नहीं हुआ और उन महात्मा के चरणदर्शन बिना जो शोक है वह किसी प्रकार से नहीं जाता । इस पर तुम्हारा वियोग भी उपस्थित हुआ । यह आघात पर आघात और विपत्ति पर विपत्ति पड़ी । फातिमा ने कहा — अली ! उस विपत्ति में धैर्य किया है और इस में भी करो, इस क्षण में मुहूर्त भर भी हमसे अलग मत रहो, हमारे श्वासवायु अवसान का समय निकट है ; नित्याधाम में हम तुम फिर मिलेंगे यह प्रतिज्ञा रही ।

बीबी फातिमा यह कहती थीं और हसन-हुसेन के मुख की ओर देख कर दीर्घश्वास के साथ अश्रुवर्षण करती जाती थीं । माता की यह बात सुन कर हसन-हुसेन भी रोने लगे । फातिमा ने कहा — प्यारे बच्चे ! थोड़ी देर के वास्ते तुम लोग मातामह के समाधि-उद्यान में जाओ और हमारे हेतु प्रार्थना करो । वे लोग माता के आज्ञानुसार चले गये । फातिमा तब विछीने पर लेट गई और अली से कहा, प्रिय तुम पास बैठो । विदा का समय उपस्थित है । अली बैठे और शोक से रोने लगे । तब फातिमा ने आसमा नाम की दासी को बुला कर कहा कि अन्न प्रस्तुत रखो, हमारे प्यारे हसन-हुसेन आकर भोजन करेंगे । जब वे घर आवें तब उन लोगों को अमुक स्थान पर बैठाना और भोजन कराना । उन को हमारे निकट मत आने देना, क्योंकि हमारी अवस्था देख कर वे घबड़ायेंगे । आसमा ने वैसा ही किया । इधर फातिमा ने अली से कहा — हमारा सिर तुम अपनी गोद में ले बैठो, अब जीवन में केवल कुछ ही क्षण बाकी हैं । अली ने कहा — फातिमा ! तुम्हारी ऐसी बातें हम नहीं सुन सकते । फातिमा ने उत्तर दिया । अली ! पय खुला है, हम प्रस्थान करेहोंगे और मन अत्यंत शोकाकुल है और तुम से कुछ कहना भी अवश्य है । हमारी बात सुनो और हमारे वियोग का शर्वत वाध्य होकर पान करो । अली फातिमा का सिर गोद में लेकर बैठे । फातिमा ने नेत्र खोलकर अली की ओर देखा ; उस समय अली के नेत्रों से आँसू के बूँद फातिमा के मुख पर टपकते थे । अली को रोते देखकर फातिमा ने कहा — हे नाथ ! यह रोने का समय नहीं है, अवकाश बहुत थोड़ा है । अंतिम कथा सुन लो । अली ने कहा — कहो क्या कहती हो । फातिमा ने कहा — हमें चार बात कहनी है ; पहली यह कि हम तुम्हारे साथ बहुत दिन तक रहे । यदि हमसे कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करो । अली रोने लगे और बोले — कभी तुम ने आज तक कोई ऐसी बात ही नहीं किया जो हमारे प्रतिकूल हो । प्यारी तुम तो सर्वदा हमारी मनोरंजनी रही, भूल कर भी तुम ने हम को कोई कष्ट नहीं दिया, तुमने सब आपत्ति अपने ऊपर सहन किया, परंतु हम को दुख न दिया, तुम उपकारिणी थीं, अपकारिणी नहीं । तुम को हम ने कोमल पुष्पमाला की भाँति अपने हृदय पर धारण किया कंटक की भाँति नहीं । बोलो, और बोलो और कौन बात है ? फातिमा ने कहा, दूसरे यह कि हमारे प्यारे हसन-हुसेन की रक्षा करना । जिस लाड़ प्यार और राव चाव से हमने उनको पाला है उसमें कुछ न्यूनता न हो ; उनकी सब अभिलाषा पूरी करना । तीसरे यह कि हमारे शव को रात्रि को भूमिशायी करना, क्योंकि जीवन दशा में जैसे पर पुरुष की दृष्टि हमारे शरीर पर नहीं पड़ी है वैसा ही पीछे भी हो । चौथे हमारी समाधि पर कभी कभी आ जाना । इतने में हसन-हुसेन भी आ गए और माता की यह अवस्था देखकर बहुत रोने लगे । फातिमा ने किसी प्रकार समझा कर फिर बाहर भेजा और दासी को बुला कर बीबी फातिमा १ ने स्नान किया और एक धौत वस्त्र परिधान करके एक निर्जन गृह में दक्षिण पार्श्व से शयन करके ईश्वर का स्मरण करने लगीं । इसी अवस्था में उन्होंने परलोक गमन किया ।

१. इफताम अरबी में बच्चे को दूध से छुड़ाने को कहते हैं । इन का फातिमा नाम इसी हेतु पड़ा था कि छोटेपनही में इन की मृत्यु हुई थी ।

आदरणीय अली की मृत्यु का समाचार

परम धार्मिक सुप्रसिद्ध अली मुसलमान धर्म के प्रवर्तक हज़रत महम्मद के जामाता और शीआ संप्रदाय के पहिले इमाम (आचार्य) थे। हज़रत महम्मद के लोकांतर गमन पीछे मुसलमान धर्म की स्थिति और उन्नति अली के ही ऊपर निर्भर थी। जैसे भक्तिभाजन ईसा को उन के शिष्य जुड़ा ने विश्वि मुद्रा के लोभ से शत्रुहस्त में समर्पण कर के वध किया था वैसे ही इनमुलज़म नामक एक व्यक्ति ने एक दुश्चरिणी नारी के प्रलोभन में उसकी कुमंत्रणा से स्वीय धर्माचार्य अली को स्वयं करवालाघात से निहत किया। यह उससे भी भयंकर व्यापार है। इब्नमुलज़म के भाव चरित्र की चंचलता देख कर पहिले ही उस के ऊपर अली का संदेह हुआ था। एक दिन इब्नमुलज़म ने अली को एक उत्कृष्ट सामग्री उपहार दी थी। अली उस उपहार के प्रति अनादर प्रदर्शन कर के बोले कि हम तुम्हारे इस उपदौकन ग्रहण में नहीं प्रस्तुत हैं; तुम परिणाम में हम को जो उपदौकन प्रदान करोगे उस के लिए हम विशेष चिंतित हैं। इस के कुछ दिन पीछे अली शिष्यमंडली के साथ कूफा नगर में उपस्थित हुए। वहाँ इब्नमुलज़म ने कुतामा नाम की एक दुश्चरित्रा विधवा युवती के सौंदर्य से मुग्ध होकर उस से परिणय-अभिलाषा प्रगट की। कुतामा ने उसे प्रलोभन जाल में आवद्ध कर के कहा — हमारे तीन पण हैं सो पूर्ण करने से हम तुम्हारे साथ व्याह में सम्मत हैं। एक सहस्र दिरहम (ताम्रमुद्रा विशेष), एक जन सुगायिका सुंदरी दासी और मुहम्मद के जामाता अली का बधसाधन। यह सुन कर इब्नमुलज़म बोला — पहिले दोनों पण कठिन नहीं हैं वह संसाधन कर सकेंगे, किन्तु तीसरा पण गुरुतर है इस के संसाधन में हम अक्षम हैं। कुतामा बोली — शेषोक्तपण ही सब में प्रधान है, अली हमारे पितृकुल का शत्रु है, उसका प्राणसंहार बिना किए कोई भाँति विवाह नहीं हो सकता है। दुरात्मा इब्नमुलज़म उसका सुदृढ़ पण देखकर उस में भी सम्मत हुआ एवं विषाक्त तीक्ष्ण करवाल के द्वारा गुरु की हत्या करने का सुयाग देखने लगा। एक दिन निशीथ समय में अली कूफा की जामा मस्जिद के दरवाजे पर खड़े होकर नमाज़ में प्रवृत्त हैं, उस समय सुयोग समझ कर अतर्कित भाव से उस ने अली के सिर में एक आघात किया। अली आघात पाकर चिल्लाकर भूतलशायी हुए। शोणित-स्रोत से मस्जिद प्लावित हो गई। उनके आहत मस्तक से मस्तिष्क उडिभन हो कर गिरा। दुरात्मा इब्नमुलज़म उसी क्षण धूत हो कर बंदी हुआ। पीछे उस ने दुष्कर्म का समुचित प्रतिफल भोग किया। अली ने दो दिवस विष की विषम यंत्रणा भोग कर के बंधुवर्ग को शोकसागर में मग्न करके परलोक गमन किया। मृत्युकाल में स्वीय प्रियतम पुत्र हसन को यह अनुमति दिया कि हमारा देह निशीथ समय में किसी निभूत स्थान में निहित करना, वही कार्य में परिणत हुआ। जब हसन पितृदेह भूमि निहित कर के लौटते थे उस समय एक व्यक्ति के रोने का शब्द सुन पड़ा। वह क्रंदन को लक्ष कर के वहाँ उपस्थित हुए, देखा कि एक दरिद्र अंध वृद्ध आकुल हो कर रो रहा है। हसन ने रोने का कारण पूछा, तो वह बोला कि प्रति दिन रात को एक महापुरुष आकर हम को आहार देते थे और सुमिष्ट वचन से परितोष करते थे। आज तीन दिन से वह नहीं आते हैं और वह मधुर वचन नहीं सुनने पाते हैं, हम अनाहार हैं। हसन ने पूछा — उन का नाम क्या है? अंधा बोला — उन्होंने हम को अपना परिचय नहीं दिया। परिचय पूछने से वह कहते थे, हमारे परिचय से तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है, तुम हमारी सेवा ग्रहण करो। उनका कंठस्वर ऐसा था, वह अल्ला अल्ला की सदा ध्वनि करते थे। हसन अंधे की बात से जान गए कि वह महापुरुष उनके पिता थे। तब अश्रुपात कर के बोले कि आज वह महात्मा परलोक सिधारे हैं। अभी उनकी अंत्येष्टि क्रिया समाधान करके हम चले आते हैं। वृद्ध यह सुन कर शोक से मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। पीछे रोते रोते बोला — तुम लोग हम को अनुग्रह कर के उनकी पवित्र समाधि भूमि में ले चलो। हसन हाथ पकड़ कर वृद्ध को वहाँ ले गए। वृद्ध ने वहाँ शोक और अनाहार से प्राण त्याग दिया।

एक दिन किसी विपथगामी ईश्वरविरोधी व्यक्ति ने परम प्रेमिक अली से पूछा था कि हे ज्ञानवान् अली! गृह और उच्च प्रासाद शिखर पर भी ईश्वर तुम्हारे रक्षक हैं, यह तुम स्वीकार करते हो? अली बोले “हां, शैशव में, यौवन में, सर्वक्षण सर्वस्थान में वह हमारे प्राण के रक्षक हैं।” यह बात सुन कर वह बोला, “तुम अपने को, इस अष्टालिका पर से गिरा कर ईश्वर तुम को रक्षा करते हैं, इस विश्वास की पूर्णता प्रदर्शन करो, तब तुम्हारे विश्वास का हम विश्वास करेंगे और तुम्हारी ईश्वरनिष्ठा प्रमाण युक्त होगी।” तब अली बोले

चुप रहो और चले जाओ और स्पर्द्धा करके जीवन को कलंकित मत करो। मनुष्य का क्या साध्य है कि ईश्वर को परीक्षा में बुलावे। केवल उन को परीक्षा करने का अधिकार है। वह प्रति मुहूर्त में मनुष्य के निकट परीक्षा उपस्थित करते हैं। वह हम लोगों के पास हैं। हम लोग क्या हैं वह प्रकाश कर देते हैं। अंतर में हम लोग किस भाँति धर्मभाव रखते हैं, वह दिखला देते हैं। कौन मनुष्य ईश्वर को ऐसी बात कह सकता है कि यह सब पाप अपराध करके हम ने तुम्हारी परीक्षा किया। हे ईश्वर! देखें, तुम्हारी कितनी सहिष्णुता है! हा! ऐसा कहने का किस को अधिकार है? तुम्हारी बुद्धि अत्यंत दुष्ट हुई है। तुम्हारी यह उक्ति सब पापों से बड़ कर है। जो यह सुविशाल नभोमंडल का रचयिता है उस की तुम परीक्षा करने क्या जानो? तुम अपना शुभाशुभ तो जानते ही नहीं हो। पहिले अपनी परीक्षा करो, पीछे दूसरे की परीक्षा करना। पथप्रदर्शक अग्रगामी गुरु की जो शिष्य परीक्षा करता है वह मूर्ख है। जिस को तुम ने परीक्षक किया है, हे अविश्वासी, यदि उन्हीं की धर्ममार्ग में तुम परीक्षा करो, तो तुम्हारी दुःसाहसिकता और मूर्खता प्रकाश होगी। तुम ईश्वर की क्या परीक्षा करोगे? धूलकणिका क्या पर्वत की परीक्षा कर सकती है? मनुष्य अपने बुद्धिगत अनुमान से तुला यंत्र प्रस्तुत करके ईश्वर को उस में स्थापन करने जाता है, किन्तु ईश्वर बुद्धि के अनायत हैं, उन के द्वारा बुद्धि-निर्मित परिमाण यंत्र वर्ण हो जाता है। ईश्वर की परीक्षा करना और उनको आयत्त करना एक ही है। तुम एतादृश महाराज को आयत्त करने की चेष्टा मत करो, चित्रित वस्तु किस प्रकार से चित्रकार की परीक्षा करेगा उनके असीम ज्ञान में जो सब चित्र विद्यमान हैं उनके पास परिदृश्यमान विश्वचित्र क्या पदार्थ है? जब परीक्षा ग्रहण की कुबुद्धि के द्वारा तुम आक्रांत होते हो, तब जानना तुम को संहार करने के लिए दुर्भाग्य उपस्थित हुआ है। अकस्मात् ईश्वर में ऐसी कुबुद्धि उपस्थित हो तो भूमिष्ठ प्रणत होना। भूमि को शोकाश्रुस्रोत से अभिषिक्त करना और कहना, हे ईश्वर! इस कुचिंता से हमारी रक्षा करो। तब परम परीक्षक ईश्वर तुम को रक्षा करेंगे।”

इमाम हसन और इमाम हुसैन

महात्मा मुहम्मद के जन्म का समाचार पूर्व में लिखा जा चुका है। इनको अठारह संतति हुई, किन्तु वंश किसी के आगे नहीं चला, केवल बीबी फातिमा को वंश हुआ। यह बीबी फातिमा आदरणीय अली से व्याही थीं। जब तक यह जीती थीं और विवाह आदरणीय अली ने नहीं किया केवल इन्हीं को अली मान कर इन्हीं के मुखपकज के अली बने रहे। बीबी फातिमा को पाँच संतति हुई, तीन पुत्र हसन, हुसैन और मुहसिन, और ज़ैनब और उम्म कुलसुम यह दो बेटियाँ थीं। इन में मुहसिन छोटेपन ही में मर गए। अली ने बीबी फातिमा के मरने के पीछे उमुलनवीन से विवाह किया। उसके चार पुत्र अब्बास, जाफर, उसमान और अब्दुल्लाह से उत्पन्न हुए, जो चारो अपने भाई इमाम हुसेन के साथ करबला में वीर गति को गए। इनमें से अब्बास की संतति चली। तीसरी स्त्री कैसी, उससे अब्दुल्लाह और अबूबकर, यह दोनों भी करबला में मारे गए। चौथी स्त्री इसमानित से मुहम्मद और यहिया दो पुत्र हुए। इन चारों की संतति नहीं है। पाँचावीं स्त्री सहबाई से उमर और रकिया, जिनमें से उमर की संतति है। छठवीं स्त्री अम्माता। इसको मुहम्मद मध्यम नामक पुत्र हुआ, किन्तु आगे संतति नहीं। सातवीं स्त्री इनकी खूला है, जिनके पुत्र बड़े मुहम्मद हुए, जिनका वंश वर्तमान है। आदरणीय अली को इन बेटों के सिवा चौदह बेटियाँ भी हुई। इन सब से इमाम हसन, इमाम हुसैन, अब्बास, मुहम्मद और उमर का वंश है, जिनमें इमाम हसन और इमाम हुसेन की संतति सैयद कहलाती है और शेष तीनों की साहबजादों के नाम से पुकारी जाती है। किन्तु शीया लोगों में अनेक इमाम हसन के वंश को भी सैयद नहीं कहते हैं और कहते हैं कि ठीक सैयद केवल इमाम जैनुलआबदीन (इमाम हुसेन के मध्यम पुत्र) का वंश है। आदरणीय अली सब के पहिले मुसल्मान हुए और दाहिनी भुजा की भाँति महात्मा मुहम्मद के सदा सहायक रहे। इन्हीं अली के पुत्र इमाम हुसेन थे, जिनका दुष्टों ने करबला में बध किया, जिस का हम क्रम से वर्णन करते हैं।

महात्मा मुहम्मद के (६३२ ई.) मृत्यु के पीछे अबूबकर (६३२ ई.) खलीफा हुए और उन के पीछे उमर (६३४ ई.)। इस में कुछ संदेह नहीं की महात्मा मुहम्मद के पीछे उनके सब शिष्यों को धन और देश और शासन के लोभ ने ऐसा घेर लिया था कि सब धर्म को भूल गए थे। केवल आड़ के वास्ते धर्म था। यद्यपि

उपद्रव तो मुहम्मद महात्मा की मृत्यु के साथ ही हुआ, किंतु तीसरे खलीफा (महन्त) के काल से उपद्रव बढ़ गया। यह हम पक्षपात छोड़ कर कह सकते हैं कि ऐसे घोर समय में आदरणीय अली ने बड़ा संतोष प्रकाश किया था। शाम (Asia minor) के लोग इन सब उपद्रवों की जड़ थे। उन में भी कूफा के सन् ६५६ में इन उपद्रवियों ने उसमान महंत का व्यर्थ बध किया और आदरणीय अली को खलीफा बनाया। यही समय मुहर्रम के अन्याय की जड़ है। उसमान खलीफा के समय में महात्मा मुहम्मद ने निज शिष्यों में एक मनुष्य मुआविया (जो इन का गोत्रज भी था) नामक शाम और मिस्र आदि देशों में गवर्नर था। जब अली खलीफा हुए तो इस मुआविया ने चाहा कि उनको जय करके आप खलीफा हों। यहाँ तक कि अनेक युद्धों में मुसलमानों पर अपना अधिकार जमाता गया। सन् ६६१ में पाँच बरस खलीफा रह कर अली एक दुष्ट के हाथ से मारे गये। इन के पीछे इन के बड़े पुत्र और महात्मा मुहम्मद के नाती इमाम हसन खलीफा हुए, किन्तु मुआविया ने इन को भी अपने राज्य-लोभ से भाँति-२ का कष्ट देना आरंभ किया। उस समय के लोग ऐसे क्रूर, लोभी और दुष्ट थे कि धर्म छोड़ कर लोभ से बहुत मुआविया से मिल गए और अपने परमाचार्य की एक मात्र संतति हसन-हुसैन को दुःख देने लगे। इमाम हसन यहाँ तक दुःखी हुए कि चार लाख साल पिशन पर निराश हो कर खिलाफत से बाज आए। कुछ ऊपर छ महीनेमात्र ये खलीफा थे। किन्तु इस पिशन के देने में भी मुआविया बड़ी देर और हुज्जत करता रहा। यहाँ तक कि सन् ४९ हिजरी (६७० ई.) में मुआविया के पुत्र यज़ीद ने इमाम हसन की एक दुष्ट स्त्री जादू के द्वारा उनको विष दिलवाया। कहते हैं कि दो बेर पहिले भी इस दुष्ट स्त्री ने इस लोभ से कि वह यज़ीद की स्त्री होगी इमाम को विष दिया था, किन्तु तीसरी बार का विष ऐसा था कि उससे प्राण न बच सके और इस असार संसार को छोड़ गए। पंद्रह पुत्र और आठ कन्या इनको हुई थीं। अब लोग इन दुष्टों के धर्म को देखें कि साक्षात् परमाचार्य ईश्वर-प्रिय 'वरंच ईश्वर-तुल्य', अपने गुरु की संतति और गुरु-पुत्र और स्वयं भी गुरु उस का इन लोगों ने कैसे आनंद से बध किया।

इमाम हसन के मरने के पीछे यज़ीद बहुत प्रसन्न हुआ और अपने राज्य को निष्कटक समझने लगा। अब केवल इन लोगों की दृष्टि में इमाम हुसैन बचे जो कि रात-दिन खटकते थे, क्योंकि धर्मी और श्रद्धालु लोग इनके पक्षपाती थे। मुआविया और उसके साथी लोग अब इस सोच में हुए कि किसी प्रकार इनको भी समाप्त करो तो निर्द्वंद्व राज्य हो जाय। सन् ४९ के अंत में मुआविया मर गया और यज़ीद नारकी मुसलमानों का महंत हुआ। यह मद्य परस्त्रीगामी और बेईमान था, इसी हेतु इसके महंत होने से अनेक लोगों ने अप्रसन्नता प्रकट की। मक्के और मदीने में सभ्य और अनेक प्राचीन लोग उसके धर्म शासन से फिर गए और अनेक लोग नगर छोड़ छोड़ कर दूर जा बसे। इमाम हुसैन का तो मानो वह शत्रु ही था। मदीना के हाकिम को लिख भेजा कि या तो इमाम हुसैन हमारा शिष्यत्व स्वीकार करे या उनका सिर काट लो। मदीने के हाकिम ने यह वृत्त इमाम हुसैन से कहा और उन पर अधिकार जमाने को नाना प्रकार की उपाधि करने लगा। यह विचारे दुखी हो कर अपने नाना और माँ की समाधि पर बिदा होने गए और रो रो कर कहने लगे कि नाना तुम्हारे धर्म के लोग निरपराध हुसैन को कष्ट देते हैं, हसन को विष दे कर मार चुके पर अभी इन को संतोष नहीं हुआ। तुम्हारे एक मात्र पुत्र और उत्तराधिकारी दीन हुसैन को महंतों का पद त्याग करने पर भी यह लोग नहीं जीता छोड़ा चाहते। इसी प्रकार अनेक विलाप करके अपनी माँ और भाई की समाधि पर से भी बिदा हुए और अपने सपत्नी नानियों और संबंधियों से बिदा हो कर मक्के की ओर चले। इसी समय कूफा के लोगों ने इमाम को एक पत्र लिखा। उस में उन लोगों ने लिखा कि "हम लोग यज़ीद मद्य के धर्मशासन से निकल चुके हैं, आप यहाँ आइए, आप ही वास्तव में हमारे गुरु हैं, हम लोग आप के चरण में रहेंगे और प्राण पर्यंत आप से अलग न होंगे। इस बात की हम शपथ करते हैं।" इस पत्र पर कूफा के हजारों मनुष्यों के हस्ताक्षर थे। इस पत्र को पाकर इमाम ने कूफा जाना चाहा। उनके बंधुओं ने उन से बहुत कहा कि कूफे के लोग झूठे होते हैं, आप उन का विश्वास न कीजिए। पर उनके ईश्वर की शपथ खाने पर विश्वास करके इमाम ने किसी का कहना न सुना और अपने मक्का की यात्रा की समय अपने चचेरे भाई मुसलिम को कूफियों के पास भेजा कि उनको मक्का से लौटती समय इमाम के कूफा आने का सम्वाद पहिले से दें। इनको इधर भेज कर आप बंदना के हेतु मक्के चले। मुसलिम जब कूफे में पहुँचे तो इनको वहाँ के लोगों ने बड़ा शिष्टाचार किया और इमाम हुसैन के गुरुत्व को सबने स्वीकार किया। यह देख कर इन्होंने इमाम को पत्र लिखा कि आप निश्चय कूफा आइए ;

यहाँ के लोग सब आप के दासानुदास हैं और तीस हजार आदमियों ने आप को गुरु माना है । इस पत्र के विश्वास पर इमाम हुसैन कूफे की ओर और भी निश्चित हो कर चले और बांधवों का वाक्य स्वीकार न किया । किन्तु शोच की बात है कि बिचारे मुसलिम वहाँ मारे जा चुके थे । कारण यह हुआ कि यज़ीद ने जब सुना कि कूफा में मुसलिम इमाम हुसैन का आचार्यत्व चला रहे हैं तो उसने वहाँ के हाकिम को बदल दिया और उबैदुल्लाह ज़ियाद-नंदन को हाकिम बनाया और आज्ञा भेजा कि हुसैन को बकरे की भाँति ज़िबह करो और मुसलिम को तो जाते ही मार डालो । जब ज़ियाद-पुत्र शाम का हाकिम हुआ तो मुसलिम के पकड़ने की फ़िक्र में हुआ । पहिले तो कूफे के लोग मुसलिम के साथ उस के मकान पर चढ़ गए, परंतु जब उसने उन लोगों को धमकाया और लालच दिया तो एक एक कर के सब मुसलिम का साथ छोड़ कर चले गए और मुसलिम बिचारे भाग कर एक घर में जा छिपे । परन्तु लोगों ने उन को वहाँ भी जाने न दिया और पकड़ लाए और इन्हे ज़ियाद की आज्ञा से उनका सिर काटा गया और उनका साथी हानी भी मारा गया, बरंच उनके दो लड़कों को भी मार डाला । महात्मा मुसलिम मरने के समय यही कहते थे कि मुझे अपने मरने का कष्ट नहीं, क्योंकि सत्य मार्ग स्थापन में मेरे प्राण जाते हैं । मुझे शोच यही है कि मेरे पत्र के विश्वास पर इन कृतघ्नी और विश्वासघाती कूफा वालों के विश्वास पर इमाम हुसैन यहाँ चले आवेंगे और उन महापुरुष के साथ भी ये कापुरुष कुपुरुष यही व्यवहार करेंगे और आचार्य मुहम्मद की संतान को निरपराध ये लोग वध कर डालेंगे । हाय ! उनके भाई मुसलिम कूफे में यों अनाथ की भाँति मारे गये, यह हुसैन को नहीं मालूम था और वे मंजिल मंजिल इधर ही बढ़े आते थे यहाँ तक कि जब शाम के हाते के भीतर पहुँच चुके तब उन्होंने मुसलिम का मरना सुना । उस समय आपने अपने साथ के लोगों से कहा कि भाई अब तुम सब लोग अपने देश लौट जाओ, हम तो प्राण देने जाते हैं । उस समय वे सब लोग, जो अरब से साथ आए थे, प्राण के भय से अपने सच्चे स्वामी को छोड़ कर चले गये । यहाँ तक कि हज़ारों की जमात में केवल बहतर मनुष्य साथ रह गए । जब इन लोगों के साथ इमाम सरलफ नामक स्थान पर पहुँचे तो हुर नामी उबैदुल्लाह का सेनापति दो हजार सिपाहियों के साथ मिला और वह इन लोगों को घेर कर शाम की तरफ बढ़ता हुआ ले चला । इस समय इमाम ने फिर सब लोगों को जाने को कहा, परंतु अब तो वे लोग साथ थे जो सच्चे बंधु थे । ऐसे कठिन समय में कौन साथ छोड़ कर जा सकता था । इसी समय शाम से और भी पौजे आने लगीं । इमाम ने उन लोगों को बहुत समझाया और कहा कि हम यज़ीद के राज्य के बाहर चले जायें, किन्तु किसी ने उनकी बात न सुनी । जब इमाम का डेरा करबला नामक स्थान में पड़ा था, उस समय शिमार नामक इन्हे ज़ियाद के सेनापति ने फुरात नहर का पानी भी इन पर बंद कर दिया । एक तो गरमी के दिन, दूसरे सफर की गरमी और उस पर यह आपत्ति कि पानी बंद । शिमार और उमर इस लश्कर में मुख्य थे । यदि इन में से किसी को भी कमी दया और धर्म सूझता भी, लोभ उसे हटा देता । कहते हैं कि यज़ीद हिमदानी ने साद से जाकर इमाम के वास्ते पानी माँगा और कहा कि क्या तुम को ईश्वर को मुँह नहीं दिखलाना है जो अपने गुरुपुत्र को निरपराध बध करते हो ? इस के उत्तर में उस दुष्ट ने कहा कि हम ईश्वर की हाकिमी को धर्म से अच्छी समझते हैं । अंत में उबैदुल्लाह ने सादपुत्र को आज्ञा लिखा कि क्यों इतनी देर करते हो ? या तो हुसैन का सिर लाओ या उनको यज़ीद के मत में लाओ । इस आज्ञा के अनुसार (सन ६१ हिजरी के) ९वीं मुहर्रम की संध्या को अट्ठाईस हजार सैना से उमर ने इमाम का लश्कर घेर लिया । इमाम उस समय संध्या की वंदना में थे । उठ कर सेना से कहा कि रात भर की मुझे और फुरसत दो । उमर ने इस बात को माना । इमाम ने साथ के लोगों से कहा कि अब अच्छा है चले जाओ और मेरे पीछे प्राण मत दो । परंतु किसी ने न माना और सब मरने को उद्यत हुए । रात भर सब लोग ईश्वर की स्तुति करते रहे । सबेरे इमाम ने स्त्रियों को धैर्य और संतोष का उपदेश दिया और आप ईश्वर का स्मरण करते हुए सब हथियार बांध कर अपने साथियों के साथ मरने को निकले । इनके साथ जितने लोग मारे गए उनकी संख्या बहतर है । इनमें बत्तीस सवार और चालीस पैदल थे । सरदारों में मुसलिम बिन उनका जरागा, वहब उन्स, मालिक, हुज्जाज, ज़हीर, असदी, आमिर, उम्मग, उमरान, शईब यमर, शुदब और हबीब इन्हे मज़ाहिर (एक वृद्ध मनुष्य) थे और इमाम के नातेदारों में इनकी बहिन ज़ैनब के दो लड़के मुहम्मद और ऊन, और तीन मुसलिम के भाई, पाँच इमाम हुसैन के विमात्र भाई अब्बास, उसमान, मुहम्मद अब्दुल्लाह और जाफर और तीन पुत्र इमाम हसन के अब्दुल्लाह, जैद और कासिम (किसी के मत से पाँच अबूबकर और उमर भी) और एक पुत्र इमाम हुसैन के अली

अकबर (छठारह बरस के) इतने मनुष्य थे। युद्ध होने के पूर्व इमाम एक जूट पर बैठ कर सैन्य के सामने आए और मुझ और गंभीर स्वर से बोले कि हमने किसी की स्त्री छीनी या किसी का धन हरण किया या कोई और बात धर्म विरुद्ध की? किस बात पर तुम लोग हमको निरपराध बच करते हो? इसका उत्तर किसी ने न दिया, तब इमाम यह कह कर उस जूट पर से उतरे कि हमने संसार में तुमसे हज्जत समाप्त कर ली, अब ईश्वर के यहाँ हमारा तुम्हारा झगड़ा है और घोड़े पर सवार हुए। युद्ध आरंभ हुआ और बड़ी वीरता से इनके साथी सब मारे गए। अंत में इमाम अपने एक छोटे बच्चे को, जो प्यास से व्याकुल हो रहा था, उन लोगों के सामने लाए और कहा कि इस नौ महीने के बच्चे पर दया कर के केवल इस के पीने को तो पानी दो। इस के उत्तर में उन दुष्टों में से एक ने ऐसा तीर मारा कि वह बच्चा वहीं मर गया। और फिर चारों ओर से घेर कर हजारों बार लोगों ने कहा, यहाँ तक कि वे घोड़े पर से गिरे। उस समय किसी ने उन का सिर काटा, किसी ने मरे पर माला मारा, किसी ने हाथ की उँगली नोची। इस पर भी इन लोगों को संतोष न हुआ और उन लोगों के मरे शरीर पर घोड़े दौड़ाए। हाय! इतने बड़े मनुष्य की यह गति! मूख प्यास से दुखी और दीन मनुष्य को निरपराध बाल बच्चे समेत स्त्रियों के सामने मारना इन्हीं लोगों का काम है, उस पर भी गुरु-पुत्र को।

नं.	नाम	बाप का नाम	मा का नाम	जन्म का समय	अवस्था	मृत्यु का समय	सन्तति	गाड़े जाने का स्थान	विशेष विवरण
१	मुहम्मद अब्दुल्लाह		अमीना	१२ रबीउलऔ वल ५२	६३	१२ रबीउलऔ ४ पुत्र, ६३२ ईसवी ११ हिजरी	४ पुत्र, ४ कन्या	मदीना	बहु देववासी भूतपिशचोपासी अरब जाति में इन्हीं ने एकेश्वर वाद स्थापन करके मुसलमानों मत चलाया; ग्यारह विवाह किए बुद्धि आश्चर्य कोशल सम्पन्न थी। किसी के मत में १४ विवाह १८ संतति।
२	फातिमा मुहम्मद		खदीजा	६०४ ईसवी	२८	११ हिजरी	३ पुत्र, २ कन्या	मदीना	महात्मा मुहम्मद की एक मात्र वंश रखने वाली प्यारी कन्या थी। स्वभाव बहुत नम्र और दयालु था।

३ अली	अकालिब	फातिमा (असद ५९९ ईसवी ११ रजब ६२२ की बेटी)	मक्के में	४० हिजरी १९ रमजान	१९ पुत्र याक़फ़, नज़फ़ ठीक नहीँ मालूम कन्या	सुन्नियों के चौथे खलीफ़ा। शीआओं के पहले इमाम। पाँच बरस तीन महीना खिलाफ़त किया। माता और पिता दोनों संबंध में यह म. मुहम्मद के बहुत पास थे अर्थात् चचेरे और मौसरे भाई थे। यह सैयदों के वंशकर्ता और फकीरों के मूल गुरु हैं। नौ विवाह किए थे।
४ हसन	अली	फातिमा	१५ शावान सन् २ हिजरी ६२५ ई.	४५॥ १२बीउलऔवला १९ हिजरी ६७० ईसवी १० मुहर्रम ६९ हिजरी ६८३ ई.	१९ पुत्र, ८ कन्या	मदीना
५ हुसैन	अली	फातिमा	५ शावान सन् ४ हिजरी ५९ वर्ष ६२६ ई.	५ महीना ६८३ ई. १३ हिजरी ६३४ ई.	६ पुत्र, ८ कन्या	करबला
६ अबूबकर	अबूबक्राक़	उमउल खैर	५७१ ईसवी ५ दिन ६३	१३ हिजरी ६३४ ई.	३ पुत्र, २ कन्या	मदीना
७ उमर	ख़िलाब	सुतमा	५८२ ईसवी ६३	२३ हिजरी ४४ ई.	१ पुत्र, ३ कन्या	मदीना
८ उसमान	अफ़ान	अरबी	५७५ ईसवी ८२	३५ या ३४ हिजरी ६५२ ई.	३ पुत्र, ४ कन्या	मदीना
९ इमाम	इमाम हुसैन	शहरवान (नौशेरवां से पार्वी)	३६ हिजरी ५८	१४ हिजरी १४८ वा ११७ हिजरी	१ पुत्र, ८ कन्या	मदीना
१० इमाम बाक़र	हुसैन के पुत्र उसम (अबुललहई इमन की बेटी)	५८ हिजरी ६३	१४८ वा ११७ हिजरी	१४८ वा ११७ हिजरी	११ पुत्र, ४ कन्या	मदीना

सुन्नियों के चौथे खलीफ़ा। शीआओं के पहले इमाम। पाँच बरस तीन महीना खिलाफ़त किया। माता और पिता दोनों संबंध में यह म. मुहम्मद के बहुत पास थे अर्थात् चचेरे और मौसरे भाई थे। यह सैयदों के वंशकर्ता और फकीरों के मूल गुरु हैं। नौ विवाह किए थे।

सुन्नियों के पाँचवें खलीफ़ा तथा शीआओं के दूसरे इमाम थे। छ महीना खिलाफ़त किया। विष से शहीद हुए। पाँच पुत्रों का वंश है।

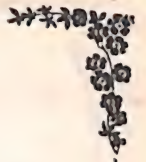
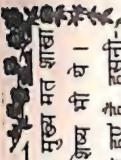
शीआओं के तीसरे इमाम। करबला के प्रसिद्ध युद्ध में शहीद हुए।

सुन्नियों के पहले खलीफ़ा थे। महात्मा मुहम्मद के पीछे दो बरस तीन महीना खलीफ़ा रहे। महात्मा मुहम्मद की छोटी स्त्री आयशा के पिता थे। चार स्त्री थीं और मुसलमानों धर्म फैलाने को इन्होंने बहुत सा द्रव्य व्यय किया था।

दूसरे खलीफ़ा थे, १० बरस आठ महीने खलीफ़ा रहे। शहीद हुए, ६ पत्नी और दो उप-पत्नी थीं। तीसरे खलीफ़ा थे। १२ बरस खलीफ़ा रहे। इन-को महात्मा मुहम्मद की दो बेटियाँ ब्याही थीं किन्तु उनको संतति नहीं थी। आठ स्त्री थीं। पूर्वोक्त तीनों खलीफ़ा की संतति श्रेष्ठ कहालाती है।

शीआ लोग केवल इन्हीं की संतति को सैयद मानते हैं।

१२	इमाम सादिक इमाम मुसा काजिम	बाकर जाफर	उम्मे फरवा (अबूबकर की पोती) हमीरा	२० वा दरे १२८ हिजरी	हिजरी ६७ ४५ या १८३ ५५	१४८ हिजरी २ पुत्र, ३ कन्या २ पुत्र, १ कन्या	मदीना बुगदाद	शीआ कहते हैं कि सुन्नियों के उपद्रव से अरब छोड़ कर चले गये । किन्तु सुन्नी कहते हैं कि उस काल के खलीफा बुगदाद में रहते थे इससे आदर के हेतु इनको भी वहीं बुलाकर बसाया । ये बड़े भारी वंशकर्ता हुए हैं ।
१३	अलीरजा	मुसा काजिम तकीम		१५३ हिजरी	४९	२०३ २ पुत्र, २२ कन्या	बुगदाद	शीआ मत का विशेष प्रचार किया । किन्तु सुन्नी लोग कहते हैं कि ये लोग भी सब सुन्नी थे ।
१४	अबूजाफर नकी अली	रहीना		१९५ हिजरी	२५	५ पुत्र, १ कन्या	बुगदाद	
१५	अबुलहसन नका	समाना		२१४ हिजरी	४०	२ पुत्र, २ कन्या	सरमनराय	
१६	असकरी तकी	सौसन		२३२ हिजरी	२८	२ पुत्र, १ कन्या	सरमनराय	
१७	अबूमुहम्मद अबुलकासिम मिहदी	अबूमुहजकी नरगिस		२५५ हिजरी	०	१ पुत्र	बुगदाद	शीआओं के मत से ९ वर्ष की अवस्था में पर्वतगुहा में चले गए फिर प्रलय के समय निकलेंगे । सुन्नियों के मत से अभी जन्म ही नहीं हुआ, प्रलय में पैदा होंगे ।
१८	इमाम अबूहनीफ साबित	उमउलमुहसिन	२०	७७	१५०	०	मदीना	नं. १८ से २१ तक ये सुन्नी मत के चार इमाम हैं, शीआ इन को नहीं मानते । ये चारों पृथक् मत के प्रवर्तक हैं यथा हानिफी, मालिकी, शाफेई और जम्बूली ।
१९	इमाममालिक उत्स		२५	८४	१७९	०	मिस्र	
२०	इमाम शाफेई इदरीस		१५०	५४	२०४	०	बुगदाद	अकबर के वंश के बादशाह हानिफी थे । दस्तात्रेय की भांति अबूहनीफा ने अनेक गुरु किये थे, जिनमें इमामजाफर भी थे ।



सुन्नियों में इन्हीं चारों की चार मुख्य मत शाखा है। ये क्रम से एक के दूसरे शिष्य भी थे। सुन्नियों में ये एक प्रसिद्ध इमाम हुए हैं, हसनी-हुसेन सैयद थे और बड़े भारी विद्वान और सिद्ध थे। शीआ लोग इनको नहीं मानते हैं वरंच सैयद भी नहीं कहते।

२१	इमाम जुमल	मुहम्मद	फातिमा उमउलखैर (इमाम हसन के वंश में)	१६५	७६	२४२	०	बुगदाद
२२	इनाम गौस आज़म	अबासालिह (इमाम हुसेन के वंश में)		४७०	९१	५६१	०	बुगदाद



कार्तिक नैमित्तिक कृत्य (तत्कर्महरितोषयत्साविद्यातन्मतिर्यया '—

रचनाकाल सन् १८७२। पहली बार सन् १८७२ में ही बनारस लाइट प्रेस में छपी।— सं.

भूमिका

मेरे प्यारे मित्र— यद्यपि तुम्हारे प्रेम मार्ग में यावत् कर्ममात्र निष्फल हैं तथापि तुम्हारे मिलने के साधन रूप कर्म तो कर्तव्य ही हैं, इसी आशय से यह विधि लिखी गई है। इसको देखकर कई पंडित रुष्ट होंगे पर यह तो समझें कि पंडितों के हेतु तो संस्कृत पुस्तकें बनी ही हैं, यह तो केवल उन्हीं के आनंदार्थ है जो श्रद्धावान हैं परंतु संस्कृत ग्रंथों को नहीं देखते। इसमें श्री रामार्चन चंद्रिका, निर्णय सिंधु, धर्म-सिंधु, जयसिंह-कल्पद्रुम, भगवद्भक्तिविलास और कार्तिक-महात्म्यादिक ग्रंथों का सारांश लिखा है। जो हो, तुम इससे प्रसन्न हो, यही इसका फल है। अतएव प्यारे! यह तुम्हारे चरणों में समर्पित है अंगीकार करो।

तुम्हारा रसिक
हरिश्चंद्र

कार्तिक नैमित्तिक कृत्य

* श्री राधादामोदरायनमः*

देहा

जेहि लहि फिर कछु लहन की आस न चित में होय ।
जयति पवित्री जग करन प्रेम-बरन यह नोय ।। १ ।।

छप्पय

जदपि पान करि परम अमृतमय प्रेम भरयो रस ।
जड़ उनमत्त समान होइ विचरत गत कलमस ।।
सकल कर्म को जाल सिथिल किय परम प्रीति सों ।
रहयो न कछु कर्तव्य शेष कुल वेद रीति सों ।।
पै जानि भागवत धर्म एहि सुझत सो पथ जेहि लहत ।

लखि दीन जीव संसार के परम कृपा गहि कछु कहत । ।

कार्तिक-धर्म यहाँ क्यों विधान करते हैं ? इस हेतु से कि सब धर्मों में भगवद्धर्म मुख्य है और यही श्री मुख से भी कहा है —

“मन्मनाभवमद्भक्तो मद्याजीमान्ममस्कुरु मावेवैष्यसिकौन्तेय ”

इत्यादि । ।

विशेषतः कलियुग में भगवद्धर्म ही की नित्यता है, यह भी निश्चय है ।

यथा हेमाद्रौ श्री भार्गवद्वाक्यम्

कलौ सभाजयन्त्याय्याः गुणज्ञास्सारभागिनः ।

यत्र संकीर्तनेनैव सर्वं स्वायौभिलाभ्यते । ।

अनेक निबन्धेषु महाभारते

कलौ कलिमलध्वंसं सर्वपापहरं हरिम् ।

येऽर्चयन्ति नरानित्यं तेषिवंधा यथा हरिः । ।

मदन पारिजाते योगि याज्ञवल्क्यः

विष्णुर्ब्रह्माचरुद्रश्च विष्णुर्देवो जनाईनः ।

तस्मात्पूज्यतमेनान्यमहंमन्ये जनाईनात् । । इत्यादि

और इसमें विशेषता यह है कि एक श्री भगवान के पूजन में सबका पूजन आ जाता है — यथा श्री मद्भागवते —

यथा तरोर्मलनिषेचनेन तृप्यन्ति ततस्कन्दमुजोपशाखाः ।

प्राणोपहाराच्च तथेन्द्रियाणां तथैव सर्वाह्निमच्युतेज्या । ।

और इस भगवद्धर्म के सब अधिकारी हैं ; यह श्री मुख से गाया है — स्त्रियोवैश्यास्तथा शूद्रास्तेपियान्ति परांगतिम् । ऐसा ही परम भक्त श्री प्रह्लाद जी ने भी कहा है —

नाल ऋषित्वं द्विजत्वं देवत्वं वाऽसुरात्मजाः ।

प्रीणनाय मुकुन्दस्य न धनं न बहुजता । । इत्यादि

इससे सर्वसाधारण को और अनेक धर्मों को छोड़कर केवल भगवद्धर्म मुख्य हुआ तो भगवद्धर्मों में परम पुनीत कार्तिक व्रतादि यहाँ दिखाते हैं ।

कार्तिक सब मासों में पवित्र है और उसकी नित्य क्रिया क्या है यह कार्तिक कर्म विधि नामक निबंध में लिख चुके हैं । यहाँ वे धर्म लिखे जाते हैं जो नैमित्तिक हैं और जैसे कार्तिक-स्नान आश्विन शुद्ध ११ से आरंभ होता है, इससे नैमित्तिक कृत्य भी उसी दिन से लिखते हैं ।

अथ आश्विन शुद्ध, ११ — इसी एकादशी से कार्तिक के सब व्रत आरंभ करना । इस एकादशी का नाम पापांकुशा है । इसमें भगवान की पद्मनाभ नाम से पूजा करें ।

अथ आश्विन शुद्ध १५ — यदि एकादशी से कार्तिक-स्नान न आरंभ किया हो तो इस दिन से करना । इस पूर्णिमा में दो कर्म हैं — प्रथम रासोत्सव, द्वितीय कोजागर व्रत ।

रासोत्सव जिस दिन सायंकाल में पूर्ण चन्द्र हो उस दिन करना क्योंकि, “कलाहीने शशांके तु न कुर्याच्छारदोत्सवम् ” इस वाक्य में हीन चंद्र का निषेध है और भगवान को श्वेत वस्त्र, श्वेताभरण, श्वेत नैवेद्य समर्पण करना और चाँदनी में शृंगार सहित बैठकर रासलीला के भजन गाना । इस दिन श्री मद्भागवत की रासपंचाध्यायी का पाठ बहुत पुण्य देने वाला है और किसी ग्रंथकार ने यह भी लिखा है कि रात्रि को चंद्रमा की चाँदनी में सूर्य में डोरा पिरोना और कुछ अक्षर पढ़ना, इससे नेत्र की जोति बढ़ती है ।

कोजागर व्रत जिस दिन आधीरात को पूर्णिमा हो, उस दिन करना । साँझ से लक्ष्मी और इंद्र का स्थापन करके पूजा करना और नारियल का जल लक्ष्मी को भोग लगाकर पीना । आधीरात के समय लक्ष्मी जी यह कहती हुई निकलती हैं कि जो जागता मिलेगा और जूआ खेलता होगा, मैं उसे धन दूँगी । कमल पर बैठी हुई लक्ष्मी का ध्यान करना और ‘ॐ लक्ष्म्यैनमः’ इस मंत्र से सब पूजा करके इस मंत्र से पुष्पांजलि देना ।

नमस्ते सर्व्व देवानां वरदासि हरिप्रिये ।

यागतिस्त्वत्प्रपन्नानां सामेभूयात्त्वदर्चनात् । ।

इंद्र को भी चार दाँत के श्वेत हाथी पर बैठे ध्यान करके 'इन्द्रायनमः' इस मंत्र से पूजा करके पुष्पांजलि इस मंत्र से देना ।

विचित्रैरावतस्थाय भास्वत्कुलिशपाणये ।

पौलोम्यालिङ्गिताङ्गाय सहस्राक्षायतेनमः । ।

इसी पुनवासी को बड़े पुत्र की आरती और तिलक करना और रात को जागरण करना ।

अथ कार्तिक कृष्णा ४ — इस चतुर्थी को कर्क चतुर्थी का व्रत है । इसी चतुर्थी में रानियों सहित राजा दशरथ की पूजा करना ।

अथ कार्तिक कृष्णा ८ — इस अष्टमी का नाम राधाष्टमी है । यह अष्टमी अरुणोदय-व्यापिनी लेना और अरुणोदय की समय न मिले तो सूर्योदय-व्यापिनी मानना । इस अष्टमी को श्री राधा कुंड में स्नान करना और श्री राधिका का पूजन करना । इस दिन श्री राधा-सहस्रनाम पाठ का बड़ा पुण्य लिखा है । इस दिन पुत्रवती स्त्री को गो-पूजन का, दाम्पत्य और शिव पूजन का विधान भी कोई ग्रंथकार लिखते हैं ।

अथ कार्तिक कृष्णा ११ — इस एकादशी का नाम रमा है । इसमें व्रत और जागरण और श्री राधादामोदर का पूजन करना और रात्रि को दीपदान करना ।

कार्तिक कृष्णा १२ — इसको वत्स-द्वादशी कहते हैं । यह द्वादशी सायंकाल-व्यापिनी मानना और इसमें नक्त व्रत करना । ब्रह्मचर्य से रहना और उड़द का भोजन करना, पृथ्वी पर सोना, साँझ की समय गऊ की पूजा करना । वह गऊ सीधी और दूध देने वाली हो और उसका बच्चा भी उसी रंग का हो । सब पूजा करके तामे के अरघे में इस मंत्र से अघ देना ।

क्षीरोदारणवसंभूते सुरासुरनमस्कृते ।

सर्वदेवमयेमातर्गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तुते । ।

फिर इस मंत्र से गोप्रास देना ।

सर्व्वदेवमयेदेवि सर्वदेवैरलंकृते ॥

मातर्ममामिलयितं सफल कुरु नन्दिनि ।

इसी दिन गऊ का घी, दूध, दही और मठा तथा तेल का और कढ़ाई का किया भोजन न करना । इस द्वादशी से पाँच दिन तक साँझ पीछे देवता, ब्राह्मण, गऊ, अपने से बड़े मनुष्य, मातादिक अपने से बड़ी स्त्री, हाथी और घोड़े की आरती करना और साँझ को दीये बालना । उत्तर मुख नव वा विशेष दीए बाल कर शुभाशुभ विचारना । दीया बालने का मंत्र ।

सूर्याशिसम्भवादीपा अघकार विनाशकाः ।

त्रिकाले मां दीपयन्तु दिशन्तुच शुभाशुभम् । ।

अथ कार्तिक कृष्णा १३ — इस दिन साँझ को यम का दीया द्वार के बाहर देना । मंत्र —

मृत्युनापाशदंढाभ्यां कालेनश्यामयासह ।

त्रयोदश्यादीपदानात् सूर्यजः प्रीयतां मम । ।

इसी तेरस के दिन गो-व्रत भी होता है ।

अथ कार्तिक कृष्णा १४ — इस चतुर्दशी में जो मंगलवार पड़े तो श्री महादेव जी का व्रत और पूजा करना । यह चतुर्दशी स्नानवाले चंद्रोदय व्यापिनी मानें और सर्वसाधारण इसमें अवश्य स्नान करें, क्योंकि जो इसमें तेल लगाके सिर मल के नहीं नहाते उनको बड़ा दोष होता है । स्नान की समय खेत की हल से निकाली मिट्टी, चिचिडा, भटकटैया और तुम्बी तीन बेर अपने ऊपर से फिरावै और स्नान करके तिलक करके तब नित्य का कार्तिक स्नान करें । चिचिडा घुमाने का मंत्र —

सीतालोट्ट समायुक्त सकटकदलान्वित ।

हरपापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः । ।

नित्य स्नान करके यम तर्पण करे । यह तर्पण जिसका पिता जीता हो वह भी करे । मंत्र —

यमायनमः, धर्मराजायनमः, मृत्यवेनमः, अंतकायनमः, वैवस्वतायनमः, कालायनमः, सर्वभूतक्षयायनमः, औदुम्बरायनमः, दध्नायनमः, नीलायनमः, परमेष्ठिनेनमः, वृकोदरायनमः, चित्रायनमः, चित्रगुप्तायनमः, ।

इस मंत्र से तीन तीन अंजली जल तिल समेत दे । इस चतुर्दशी से प्रतिपदा तक महाराज बलि का राज रहता है, इससे इन तीनों दिन घर स्वच्छ रखें, दीए बालें, उज्ज्वल वस्त्र पहिने और गीतादिक से चित प्रसन्न रखें । रात को चौमुखा दीया, नर्क के नाम का, इस मंत्र से निकाले ।

दत्तो दीपं चतुर्दश्यां नरकप्रीतये मुदा ।

चतुर्वत्तिसमायुक्त सर्वपापापनुत्तये । ।

पीछे हाथ में जलती लकड़ी व पत्तीता लेकर पित्रों को मार्ग दिखावे । मंत्र —

अग्निदग्धाश्चयेजीवा येप्यदग्धाः कुले मम ।

उज्ज्वलज्योतिषादग्धास्तेर्यातु परमांगतिम् । ।

यमलोकम्परित्यज्य आगता ये महालये ।

उज्ज्वलज्योतिषावर्त्म प्रपश्यन्तु ब्रजन्तु ते । ।

इसी रात्रि को कोई काली-पूजन भी करते हैं और हनुमान जी का जन्मोत्सव भी इसी रात्रि को होता है और इसी रात्रि में वीरों का पूजन, कुमारी-पूजन और तंत्रोक्त मंत्रों की सिद्धि भी होती है पर यह अधिकारी-परत्व है । सतोगुनी भक्तों को तो परम भागवत हनुमान जी का ही पूजन ग्राह्य है । हनुमान जी को तुलसी दल पर श्री राम नाम लिखकर चढ़ाना और लङ्का भोग रखकर रामायण का पाठ व और कुछ रामचरित्र सुनना ।

मंत्र — यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृत मस्तकांजलिम् ।

वाष्पवारि परिपूरित लोचनं मारुतिन्नमतराक्षसान्तकम् । ।

इस चतुर्दशी को नक्तव्रत करना वा उड़द के पत्ते के शाक का फल विशेष है । जो इस चतुर्दशी को मंगलवार पड़े तो चित्राव्रत और शिवपूजन करना ।

अथ कार्तिक कृष्णा ३० — यह दीपावली अमावस्या है, इसमें दिन को व्रत करना । साँझ को भगवान के मंदिर में दीपदान करना और दीए के वृक्ष बनाना और अनेक प्रकार के भोग समर्पण करके हट्टी में बैठाना । साँझ को अपना घर सब स्वच्छ करके यथाशक्ति उसकी शोभा करना । सड़कों को राजा आज्ञा देकर स्वच्छ करावें और तोरणादिक सड़क के बाहर लगाना, दूकान पर वस्तु रखना और घर में सब स्थानों पर दीया बाल के लक्ष्मी और बलि का पूजन करना, लक्ष्मी को खोए का लड्डू भोग लगाना और इस मंत्र से दीपदान करना ।

त्वं ज्योतिः श्री रविश्चन्द्रो विद्युत्सौवर्ण तारकाः ।

सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपज्योतिर्नमोस्तुते । ।

रात को राज मार्ग में, स्मशान में, नदी के वा तड़ाग के तटों पर, मंदिरों में, शिखरों में, गलियों में और दुर्गम स्थानों में राजा दिया बालने की आज्ञा दे । सब लोग शृंगार करके, सुगंध लगा के, पान खाते बाहर निकलें और मित्रों से संबंधियों से मिलें । वारांगना और नटनर्तकादिक नृत्य-गीत करे । राजा (यदि हिन्दू हो) इस बात की डौड़ी पिटवा दे कि आज महाराज बलि का राज्य है, कोई दुखी न हो, सब अपना मनमाना करे । जीवहिंसा, सुरापान, अगम्यागमन, चोरी और विश्वासघात ये पाँच पाप छोड़कर छई छई वस्तु का भोजन, वारांगनासेवन, झूत और सब जाति के संग बैठना यह सब राजा बलि के राज में पाप नहीं हैं ।

गोप लोग गऊ का शृंगार करे और सब लोग गऊ को भोजन दें । मल्ल लोग मल्ल युद्ध करें । घोड़े वाले घोड़ा नचावें । रात को राजा नगर के बाहर निकले और बालकों को एकत्र करके उनका खेल देखें और उनको खिलौना मिठाई दे । सब लोग बाजे बजावें और आनंद की बातें करे । रात को स्त्रियों के वा ब्राह्मणों वा स्नेहियों के संग जूआ खेलें । इसमें पूर्व पूर्व मुख्य है । आधी रात को जब पुरुष सोने लगे तब स्त्रियाँ सूप और डौड़ी पीटती हुई दरिद्रा को घर से बाहर निकालें । इस दिन भी अभ्यंग की विधि है ।

अथ कार्तिक शुद्धा १ — इसमें श्री गोवर्धन-पूजन, बलि-पूजा, दीपोत्सव, गोक्रोड़ा, मार्गपालीबंधन, वृष्टिकाकर्षण, नया वस्त्र पहिरना, उत्सव जूआ खेलना, मंगल मालिका और स्त्रियों की आरती करना ये मुख्य कर्म हैं । उसमें प्रथम श्री गोवर्धन-पूजन है । यह उत्सव अवश्य माननीय है क्योंकि इसके हेतु श्री मुख वाक्य है ।

एतन्मममतन्तात क्रियतां यदि रोचते ।

अयं गोब्राह्मणादीनाम्महयञ्च दयितोमखः । ।

इसमें प्रेम-मार्ग में वा और अन्य मार्ग में जैसी जिसकी रीति हो वह पूजन करे । अब साधारण लोगों के हेतु यह रीति लिखी जाती है । जहाँ साक्षात् श्री गोवर्द्धन पर्वत है वहाँ तो उन्हीं की और जहाँ गोवर्द्धन नहीं है वहाँ गऊ के गोबर का पर्वत बनाना, उत्तर मुख रखना और एक कंदरा बनाना । वहाँ भगवान की मूर्ति रखकर षोडशोपचार पूजन करना और अन्नकूट भोग लगाना । जहाँ गिरिराज की शिला हो वहाँ तो गिरिराज की शिला कंदरा में रखकर पूजन करना । जहाँ शिला न हो वहाँ शालिग्राम व छोटे श्री ठाकुर जी की मूर्त रखकर पूजा करनी और गऊ गोप की भी पूजा करनी । पहिले भगवान की पूजा करनी, उसके मंत्र —

वलिराजो द्वारपाल भवानद्यभवप्रभो ।

निज वाक्यर्थनार्थाय सगोवर्द्धन गोपते । ।

गोपालमूर्ते विश्वेश शक्रोत्सव विभेदक ।

गोवर्द्धनकृतच्छत्र पूजामे हरगोपते ।

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वर्षाश्मपपांनिलैः ।

सीदत्पालपशुस्त्रियात्मशरणं दृष्टानुकम्प्युत्तस्मयन् ।

उत्पादयेक करेणशैकमवलोलौलोच्छलान्नं यथा ।

विभ्रद्गोष्टमपान्महेन्द्रमदमित् प्रोयान्नइन्द्रोगवां । ।

इति भगवत्-प्रार्थना मंत्र ।

गोवर्द्धनधराधार गोकुलत्राणकारक ।

विष्णुबाहुकृतच्छाय गवांकोटि प्रदोभव । ।

एषोऽव जानतेमर्त्यान् कामरूपी बनौकसः ।

हंतहयस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनोगवाम् । ।

हंतायमद्विरवला हरिदासवर्यो ।

यद्गामकृष्णचरणस्पर्श प्रमोदः । ।

मानंतनोति सहगोगणयोस्तयोर्वत् । ।

पानीयसूयवसुकन्दरकन्द मूलैः । ।

इति गिरिराज-प्रार्थना मंत्रः ।

या लक्ष्मीलोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ।

घृतं वहतियज्ञार्थे ममपापं व्यपोहतु । ।

अग्रतस्सन्तुमेगावो गावोमेसन्तु दृष्टतः ।

गावोमेहृदयेसन्तु गवाम्मध्येवसाम्यहम् । ।

इति गो प्रार्थना मंत्रौ ।

अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपं ब्रजौकसाम् ।

यन्मित्रम्परमानन्दं पूर्णब्रह्मसनातनं । ।

आसामहोचरणरेणुजुषामहंस्यां

वृन्दावनेकिमपि गुल्मलतौषधीनां ।

यादुस्त्यजंस्वजन आर्यपथंविहाय

भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृज्ञां । ।

यावैश्रियार्वितमज्रादिभिरासकामैः

योगेश्वरैरपियदात्म निरासगोष्ठ्यां ।

कृष्णस्य तद्भगवत्शरणारविन्दे

न्यस्तं स्तनेपुविजहुः परिरेभ्यतापं । ।

वन्दे नन्दं ब्रजस्त्रीणंपादरेणूमभीक्ष्णशः ।

यासांहरिकयोद्गीतं पुनातिभुवनत्रयम् । ।

इति गोप-गोपी-प्रार्थना मंत्रः

धन्येयमवाधारणी तृणवीरुधस्त्वत्

पादास्पृशो द्रुमलता करजामिमृष्टाः ।

नद्योद्वयः स्वगमृगास्मदयावलोकैः

गांध्योतरेण भुजयोरपियत्स्पृहाश्रीः । ।

इति ब्रजप्रार्थना मंत्रः

इन मंत्रों से गोवर्द्धन-पूजन करके अन्नकूट भोग भगवान को समर्पण करके नमस्कार करना । इति ।

इस प्रकार गोवर्द्धन-पूजा करके महाराज बलि की पूजा करें । घर के एक कोने में महाराज बलि की और रानी विंध्यावलि की मूर्ति पाँच रंग से लिखें । जीम, ओठ, हथेली, तलवा, और आँख के कोने लाल रंग से, बाल काले रंग से और सब अंग पीले रंग से, कपड़े श्वेत रंग से और आयुधादिक नीले रंग से लिखें । दो भुजा बनावे और राजाओं के सब चिन्ह बनाकर अक्षत और षोडशोपचार से पूजा करें । मंत्र —

बलिराजनमस्तुभ्यं विरोचनसुतप्रभो ।

भविष्येन्द्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यतां । ।

बलि राजा की पूजा करके कुवेर और लक्ष्मी की पूजा करनी । पूजा के पीछे स्त्रियाँ आरती करें ।

तीसरे पहर कास और कुस की मार्ग-पाली बनाकर नगर के बाहर वृक्ष में बाँधना और नीचे लिखें हुए मंत्र से उसको नमस्कार करके सब लोग वाहनादि समेत उसके नीचे से निकलें । इससे वर्ष भर कुशल होती है । मंत्र —

मार्गपालिनमस्तेस्तु सर्व लोक सुखप्रदे ।

विधेयैःपुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे । ।

साँझ को कुश काश की मोटी रस्सी बनाना और उसको एक ओर से राजपुत्रादिक एक ओर से नीचे लोग खींचें । जो नीचे लोग खींच ले जायँ तो जानना कि राजा की जय होगी ।

रात को जूआ खेलना । यद्यपि जूआ खेलने का विधान तीनों दिन है परंतु इस दिन मुख्य है । रात को जूआ स्त्रियों से खेलना और दीपदान करना, ब्राह्मणों को और मित्रों को वस्त्र और पान देना । इति ।

अथ कार्तिक शुद्ध २ — इसका नाम यम द्वितीया है । इसमें प्रातः काल श्री यमुना स्नान । जहाँ श्री यमुना जी न हों वहाँ श्री यमुना जलपान वा मार्जन करना । काशी वासियों को यम तीर्थ स्नान और यमेश्वर का दर्शन करना । इस दिन अपने घर नहीं खाना, मुख्य करके छोटी बहिन के घर भोजन करना । छोटी बहिन न हो तो बड़ी के घर भोजन करना । वह भी न हो तो बूआ के घर वा नाते की बहिन के घर खाना । जो नाते की भी कोई बहिन न हो तो मानी हुई बहिन वा मित्र की बहिन के घर खाना और बहन की पूजा करना । अपने घर कभी नहीं खाना । बहिन खिलाती समय इस मंत्र से भाई की प्रार्थना करें ।

भ्रातस्तवानुज्जाताहं भुंक्षभक्तमिदंशुभं ।

प्रीतयेयमराजस्य यमुनाया विशेषतः । ।

इस दिन श्री यमुना जी ने यमराज को भोजन कराया है, इससे यमराज ने बरदान दिया है कि आज के दिन जो यमुना-स्नान करेगा और बहिन का आदर करके बहिन के घर खाया, उसको यम दंड न होगा । तीसरे पहर यमराज, यमी, यमुना, चित्रगुप्त और यमदूतों का पूजन करना । 'यमायनमः' इस मंत्र से षोडशोपचार पूजन करके इन मंत्रों से पुष्पांजलि देना ।

यमायनमः, निहंत्रेनमः, पितृराजायनमः, धर्मराजायनमः, वैवस्वतायनमः, दंडधरायनमः, कालायनमः, भूताधिपायनमः, दत्तानुसारिणेनमः, कृतानुसारिणेनमः ।

इन नाम मंत्रों से पूजा करके अर्घ्य देना, उसका मंत्र —

एह्येहिमार्तंजजपाशहस्त यमांतकालीकधरामरेश ।

भातृद्वितीयाकृतदेवपूजांप्रहाणवाध्व्यंभगवन्नमस्ते । ।

अथ कार्तिक शुद्ध ४ — इस दिन शेषादिक महानागों की पूजा करना ।

अथ कार्तिक शुद्ध ५ — इस दिन जया व्रत करना, विष्णु की जया सहित पूजा करना, श्वेत वर्ण द्विभुज जया का ध्यान करके विष्णु और जया की प्रत्यंग-पूजा करके बाँस के पात्र में सप्तधान दान करना और "येन वदो बली राजा" इस मंत्र से रक्षाबंधन करना ।

अथ कार्तिक शुद्ध ६ — जो मंगलवार हो तो अग्नि का पूजन करके ब्राह्मण भोजन कराना ।

अथ कार्तिक शुद्ध ७ — इस दिन कार्तवीर्य की पूजा करके उनका दीप-दान करना ।

अथ कार्तिक शुद्ध ८ — इस दिन गऊ का पूजन, गोघ्रास दान करना और इसी में शाक व्रत है । नक्तव्रत करना, शाक खाना और शाक ही ब्राह्मण को देना ।

अथ कार्तिक शुद्ध ९ — इस दिन श्री वृंदावन की परिक्रमा करना । यह नवमी द्वार की युगादि भी है । इसमें कुष्मांड दान करना और जगद्धात्री का पूजन करना । तुलसी के विवाह का उत्सव इसी दिन से आरंभ होता है । जो तुलसी विवाह करे वह तीन दिन का व्रत करे । यद्यपि धात्री-पूजन कार्तिक में नित्य ही है तथापि जो और दिन न किया हो तो इस दिन करे । 'ॐ धात्र्यैनमः' इस मंत्र से षोडशोपचार पूजा करे और आठ दीप आठ ओर वाल कर यह मंत्र पढ़े —

इमेदीपा मयादत्ता प्रदीप्ताघृतपूरिता ।

धात्रिदेवि नमस्तुभ्यमतश्शान्तिम्प्रयच्छमे । ।

फिर भोगादिक समर्पण करके इन मंत्रों से पुष्पांजलि चढ़ावे —

धात्रिदेवि नमस्तुभ्यं सर्वपापक्षयंकरि ।

पुत्रान्देहि महाप्राज्ञे यशोदेहिबलज्ज्वमे । ।

प्रज्ञामेधाज्वसौभाग्यं विष्णु भक्तिज्व शाश्वतीम् ।

निरोगकुरुमानित्यं निष्पापंकुरु सर्वदा ।

सर्वज्ञंकुरुमादेवि धनवंतन्तथा कुरु ।

सम्बत्सरकृतं पापं दूरी कुरुममाक्षये । ।

फिर इस मंत्र से सूत्र लपेटकर फेरी करे ।

दामोदरनिवासयै धात्र्यैदेव्यैनमोनमः ।

सूत्रेणानेनबध्नामि सर्वदेवनिवासिनीम् । ।

फिर इन मंत्र से फूल चढ़ावे । धात्र्यैनमः, शान्त्यैनमः, कान्त्यै., मेधायै., प्रकृत्यै., विष्णुपत्न्यै., महालक्ष्म्यै., रमायै., कमलायै., इन्दिरायै., लोकमात्रे., कल्याण्यै., कमनीयायै., सावित्र्यै., जगद्धात्र्यै., गायत्र्यै., सुधृत्यै., अव्यक्तायै., विश्वरूपायै., सुरूपायै., अश्विभवायैनमः इन मंत्रों से फूल चढ़ाना, धात्री के मूल में तर्पण करना ।

पितापितामहाश्चान्ये येऽपुत्रायेष्य गोत्रिणः ।

तेपिवन्तु मयादत्तं धात्रीमूलेऽक्षयम्ययः । ।

आब्रह्मस्तम्ब पर्यन्तमित्यादि से फिर तर्पण करे । यह तर्पण सव्य ही से करे ।

धात्री के नीचे दामोदर भगवान की पूजा करे, चित्रान्न, चित्रवस्त्र समर्पे, ब्राह्मणों का जोड़ा खिलावे, भगवान की षोडशोपचार पूजा करके इस मंत्र से अर्घ्य दे ।

अर्घ्यं गृहाण भगवन् सर्वकामप्रदोभव ।

अक्षय्यासंततिर्मेस्तु दामोदर नमोस्तुते । । इत्यादि

अथ कार्तिक शुद्ध १० — इस दसमी को सार्वभौम व्रत होता है ।

अथ कार्तिक शुद्ध ११ — इस एकादशी का नाम प्रबोधिनी है । इस दिन भगवान सो कर उठते हैं, इससे यह परम मंगल दिन है । इस दिन जिस समय मुहूर्त अच्छा हो उस समय भगवान को जगाना । पहिले नीचे पृथ्वी में अनेक रंगों से मंगल-मंडप, सधिया, चक्र इत्यादिक बना कर उस पर चौसठ ऊँच का चार खंभा बनाकर खड़ा करना, उसके नीचे भगवान को बिठाना और फिर घंटा शंख बजाते हुए इन मंत्रों से जगाना ।

ब्रह्मेन्द्रद्राग्निं कुवेरसूर्यं सोमादिभिर्वन्दित वन्दनीय ।

बुद्धचस्वदेवेश जगन्निवास मंत्रप्रसादेनसुखेनदेव । ।
 इयं च द्वादशी देव प्रबोधार्थतुनिर्मिता ।
 त्वयैवसर्वलोकानां हितार्थं शेषाशायिना । ।
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठगोविन्दत्यजनिद्रामज्जगत्पते ।
 त्वयिसुप्तेजगत्सुप्तमुत्थितेउत्थितं जगत् ।
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठगरुडध्वज ।
 उत्तिष्ठपुण्डरीकाक्ष त्रैलोक्ये मंगलकुरु । ।

तथाच जो निकुंज के परम रस के अधिकारी हों वह इस मंत्र से जगावें ।

विगता रजनी नाथ प्रमदानां सुखप्रदा ।
 उदेत्ययंदिनमणिवियोगी जनवंचकः । ।
 प्राणनाथ जगन्नाथ गोपीनाथ कृपानिधे ।
 चिरसुप्तोसिजागृष्व सुरतश्रम कर्षितः । ।
 ललितावाद्यतेवीणां विशाषा नृत्यतेगणे ।
 गायन्ति गोपिकास्सर्वास्तावकंनिर्मलंयशः । ।
 वयस्या द्वारि सम्प्राप्ताः क्रीडार्थतवमानद । ।
 हय्यंगवीनहस्ता सा त्वां यशोदा मि वाञ्छति ।
 वियुक्ताश्चक्रवाकिन्यः पक्षिणो कुर्वते रवम् ।
 वाति वायुस्सुखस्पर्शो दीपोयं मन्दतांगतः । ।
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ प्राणेश उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वल्लभ ।
 मुखन्दर्शय मे नाथ वियोगं शमयप्रिय ।
 त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तम्भवेदिदम् ।
 उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव । ।

इन मंत्रों से जगा के पंचामृत स्नान कराना और चंदनादिक से उद्घर्तन करके शीत के नए वस्त्र समर्पण करके पुष्पादिकों से पूजन करना । मंत्र —

गतामेवा वियच्चैव निर्मलं निर्मलादिशः ।
 शारवानिच पुष्पाणि गृहाण मम केशव । ।

इस भाँति पुष्प, गंध, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, फलादिक अर्पण करके आरती करके इन मंत्रों से स्तुति करना ।

यो ऽविद्यया !नुपहतोपिदशाद्ब्रुत्या
 निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ।
 अन्तर्जलेहि कशिपुस्पर्शानुकूलाम्
 भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् । ।
 सोसांवदभ्र करुणो भगवान् विवृद्ध
 प्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विवृम्भन् ।
 उत्थाय विश्वविजयायचनोविषादम्
 माध्वयागिरा ऽपनयतात्पुरुषः पुराणम् । ।
 यन्नाभिपद्मभवनादत्र आविरासीत्
 लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।
 तस्मै नमस्त उदरस्थ भवाय योग
 निद्रां वसान विकसन्नलिनेक्षणाय । ।

प्रार्थना करके दंडवत प्रदक्षिणा करके कार्तिक के सब व्रत भगवान के सामने समाप्त करे । इस दिन श्री ठाकुर जी को रथ पर बिठा कर नगर में धुमाने का महापुण्य है । भगवान को रथ पर बैठा कर मंगलपाठ

वेदपाठ बाजा, शंख, घंटा बजाते हुए नगर में घुमावे और जहाँ जहाँ रथ जाय वहाँ वहाँ लोग पूजा करें । मंत्र —

यद्रोषविभ्रम विवृत्तकटाक्षपात
संभ्रान्त नक्र मकरो भयगीर्ण घोषः ।
सिन्धुशिंशरस्यर्हण (परि) गृह्य रूपी
पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ।
नत्वावयं जडधियोरुवि दाम एतत् । ।
कूटस्यमादिपुरुषं जगतामधीशं ।
यत्सत्त्वतस्सुरगणा रजसः प्रजेशा
अन्येय भूतपतय स्समवात् गुणेशः । ।
कामम्प्रायाहिजहि विश्रवसोवमेह
त्रैलोक्य रावणमवाप्नु हि वीर पत्नीम् ।
वध्नीहि सेतुमिहिते यशसो वितत्यै
गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः । ।
स्वस्त्यतु विश्वस्य खलः प्रसीदताम्
ध्यायन्तु भूतानि शिवम्मियोपिवा ।
मनश्चभद्रम्भजता दधोक्षजे
आवेश्य तान्नो मतिरप्य हैतुकी । ।

पुक्तशशीव्यादिवाहैर्मरकतसुरणत्किंकिणीजालामाला
रत्नोद्यैर्मौप्रेक्षणेनामृतौघसक्तिकानामविरलमणिभिस्सम्भूतैश्चैवहारैः । ।
हेमैः कुम्भैः पताका शिवतर रुचिभिर्भूषितः केतु मुख्यैः ।
छत्रैर्ब्रह्मेशवन्धो दुरित हरहरैः पातु जैत्रो रथोव । ।
वक्त्रं नीलांत्यलारुचि लसत् कुण्डलाभ्यां सुमृष्टम् ।
चन्द्राकारं रचित तिलकं चन्दने नाक्षतैश्च । ।
गत्यां लीला जनसुखकारीं प्रेक्षणेनामृतौघम्
पद्मवासं सूततमुरसा धारयन् पातु विष्णुः । ।
मोदन्तां सुजनास्त्वनिन्दन्तधियस्त्यक्ताखिलोपद्रवाः ।
स्वस्थास्सुस्थिरबुद्धयः प्रतिहता मित्रारमन्तां सुखम् । ।
रे देत्यागिरिगहवराणि गहनान्याशु ब्रजध्वं भयात् ।
दैत्यारिर्भगवान यन्नरहरि यनं समारोहति । ।
पलायध्वम्पलायध्वं रे रे दनुज दानवाः ।
सरक्षणाय लोकानां रथारूढो नृकेशरी । ।

इन मंत्रों को पढ़ते और भगवान का चरित्र गाते हुए रथ को घुमावे । रथ के खींचने का, रथ के संग चलने का, रथ पर बैठे भगवान के दर्शन करने का, तथाच पूजा करने का अनन्त माहात्म्य है । विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखा । इसी दिन तुलसी जी का विवाह भी है । तुलसी-विवाह की विधि विशेष और ग्रंथों में लिखी है, देख लो । सैक्षेप से यहाँ लिखते हैं । तुलसी अपने हाथ से घर वा बगीचे में लगाना, जब तीन महीने का वृक्ष हो तब उसका पूजन आरंभ करना और फिर शुभ मुहूर्त देखकर विवाह करना । मंडप, कलश-स्थापन, वेदी इत्यादि सब विवाह की भाँति बनाकर नवग्रह, मख, मातृका-पूजन नाँदी श्राद्ध करके दान करना । जो लगन कोई अच्छी मिले तो उस लगन में, नहीं तो गोधूली में विवाह करना । अंतरपट करके "वासश्रुतः" इस मंत्र से वस्त्र पहिराना । "यदावध्ने" इस मंत्र से कंकण बाँधना और मंगलाष्टक पाठ करके अंतरपट हटाकर "मयासम्बद्धिता यथाशक्त्यलंकृतामिमामनुलसीं देवीं दामोदराय वराय तुभ्यमहं सम्प्रददं" यह संकल्प करके जल भगवान के सामने छोड़ना और तुलसी का भगवान से छुला देना । उस समय यह मंत्र पढ़वाना "कोदात्कस्माअदात्" इत्यादि । फिर होम करना "पंचत्वनो आने इत्यादि" मंत्र से नव आहुति देकर फिर होम

इन मंत्रों से करना । पहिले द्वादशाक्षर से फिर वासुदेवायनमः स्वाहा, नारायणाय.. भाधवाय.. गोविन्दाय.. विष्णवे.. मधुसूदनाय.. त्रिविक्रमाय.. वामनाय.. श्रीधराय.. ऋषीकंषाय.. पञ्चनाभाय.. दामोदराय.. उपेन्द्राय.. वासुदेवाय.. अग्निरुद्राय.. अच्युताय.. अनन्ताय.. गदिने.. चक्रिणे.. विष्णुक्मनाथ.. वैकुण्ठाय.. जनादनाय.. मुकुन्दाय.. अधोक्षत्रायनमः स्वाहा इन मंत्रों से होम करके दक्षिणा, भूयसा-दक्षिणा, आचार्य-दक्षिणा शय्यादानादिक करके इस मंत्र से प्रार्थना करना ।

त्वन्देवि मेघनो भूया तुलसी देवि पार्श्वतः ।

देवित्वं पृच्छतो भूयास्त्वद्भानात् मोक्षमाप्नुयाम् ॥

विवाह के समय स्त्रियाँ गीत गावें ।

इति तुलसी विवाह ।

इस एकादशी को व्रत करके रात को जागरण करना । इस रात को जागरण का दीपदान का बड़ा पुण्य है । जो इस एकादशी को सोमवार और उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र हो तो बड़ा फलवान् होता है । इसी दिन से भाष्य पंचक का व्रत करना । १०८ द्वादशाक्षर मंत्र जप करके भगवान् को पंचामृत स्नान कराके 'ॐ विष्णुवनमः' इस मंत्र से १०८ आहुति देकर व्रत करना, पृथ्वी पर सोना, भीष्म तर्पण करना । पहिले दिन तुलसी से चरण पूजन करके गोबर प्राशन करना, दूसरे दिन विष्णुपत्र से जाँघ की पूजा करके गोमूत्र प्राशन करना, तीसरे दिन भंगरैया से नाभि-पूजन करके दूध प्राशन करना, चौथे दिन कनैल से कंधा पूजन करके दही प्राशन करना, पाँचवें दिन विधि पूर्णमासी की विधि में देखो । इसी दिन मत्स्य भगवान् को चढ़े पर रत्न के स्वर्ण की मूर्ति बनाकर पूजा करना भी किसी का मत है । पूजा करके इस मंत्र से बड़ा दान कर देना ।

जगद्योनिर्जगद्गो जगदादिरनादिमान् ।

जगदाद्यो जगद्धोत्रो प्रायनां मे जनादैन । ।

अथ कार्तिक शुद्ध १२ — यह मन्वंतरादि है । इसमें दीपदान, प्रातः समय तीराजनादिक करना ।

अथ कार्तिक शुद्ध १४ — इसका नाम चतुर्दशी है । यह परम पुण्य दिन है । इसमें स्नान-दानादिक करना । इसी चतुर्दशी में ब्रह्मकुर्वक व्रत और पाषाण होते हैं । इसमें विश्वेश्वर का दर्शन और पूजन होता है । इसमें रात को जागरण करना और कार्तिक का उद्यापन करना ।

अथ कार्तिक शुद्ध १५ — यह बड़ा पवित्र तिथि है । इसमें जो विशाखा के सूर्य और कृत्तिका के चन्द्रमा हों तो पञ्चक, नामक बड़ा पवित्र योग हो । इसमें पुष्कर-स्नान वा श्री यमुना स्नान वा श्रीगंगा-स्नान करके गोदान करना । इसमें जो भरणी, कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र हों तो बड़ा फल है । इसी पूर्णिमा में मत्स्य जयन्ती मत्स्य भगवान् का पूजन करके दानादिक करना । इसी में साँझ को त्रिपुरोत्सव करना । साँझ को इस मंत्र से दीपदान करना — कीटाः पंतगाः मशकाश्च वृक्षाः जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः । दृष्ट्वा प्रदीपं नव जन्म भगिनो भवन्तु नित्यं श्वपचाश्च विप्रा । ।

इस पूर्णिमा को कार्तिकेय का दर्शन करना । यह मन्वादि भी है । इसमें नक्तव्रत वा उपवास करना । साँझ को कृत्तिका का पूजन करना । मंत्र — शिवायैनमः, सम्भृत्यैनमः, प्रीत्यैनमः, संतत्यैनमः, अनुसूयायैनमः, क्षमायैनमः, कर्निकेयायनमः, खगिनैनमः, वरुणायनमः, हताशनायनमः । इन मंत्रों से कृत्तिका और कार्तिकेय का पूजन करना । पूजा करके क्षीरसागर दान करना । चौबीस अंगुल का क्षीरसमुद्र बना कर गऊ का दूध भर कर सोने की मछली और मोती का आँख बनाकर दान करना । जो एकादशी को व्रत न समाप्त किया हो तो कार्तिक व्रत इस मंत्र से समाप्त करना ।

इदं व्रते मयादेव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो ।

न्यूनं सम्पूर्णतां यातु त्वत् प्रसादाज्जनादैन । ।

इसी पूर्णिमा में नील वृषभ दान करना और इसी में संतान व्रत, राशि व्रत और मनोर्थ पूर्णिमा व्रत होता है । इसी पूर्णिमा में चातुर्मास के व्रत समाप्त करना । उस व्रत के दान लिखते हैं । नक्त व्रत में दो वस्त्र दान करना । एकान्तर उपवास में गऊ । भू-शयन में शय्या । एक बेर खाने से गऊ देना । जो अन्न छोड़ा हो तो वह सोने का बनाकर देना । कुछ किया हो तो दो गऊ देना । शाकाहार किया हो वा दूध छोड़ा हो वा दूध पीता हो वा और कोई गोरस छोड़ा हो तो गऊ देना । ब्रह्मचर्य लिया हो तो सोना देना । पान छोड़ा हो तो दो वस्त्र

देना । मौन लिया हो तो घी का घड़ा, दो वस्त्र और घंटा देना । जो नित्य रंग से मंदिर में स्वस्तिकादिक बनाते हो तो गऊ और सोने का कमल देना । दीपदान में दीए और दो वस्त्र देना । गऊग्रास देते हों तो गऊ और बैल देना । पृथ्वी पर भोजन करता हो तो काँसे की थाली और गऊ देना । सौ फेरी देते हों तो वस्त्र । अभ्यंग छोड़ा हो तो तेल का घड़ा । केश न बनवाया हो तो मधु, चीनी, सोना । गुड़ छोड़ा हो तो ताम्र का पात्र और गुड़ और सोना देना । ऐसे ही जिस वस्तु को छोड़ा हो वह स्वर्ण समेत देना । जो लाख तुलसी चढ़ाया हो तो उद्यापन करना । साँझ को इस मंत्र से दीपदान करना ।

नमः पितृभ्यः प्रेतैर्भ्यो नमो धर्माय विष्णवे ।

नमो याम्याय रुद्राय कान्ताय पतयेनमः । ।

इस मंत्र से दीपदान करना । यह पूर्णिमा परम फलदात्री है । इसमें कुछ सुकृत हो सो करना । भीष्म पंचक का व्रत इसी दिन समाप्त करके कालपुरुष का दान करना, होम करना । यह तिथि श्री राधिकाजी को बहुत प्यारी है, इससे वैष्णवों को इस तिथि में श्री राधासहस्रनामपाठ, श्री राधिका-मंत्रजप और श्री राधिका-पूजन करना । इसी पूर्णिमा को गोलोक में श्री ठाकुर जी ने श्री राधिकाजी का पूजन किया था और उस समय श्री महादेव जी ने ऐसा गान किया कि श्रीराधिकाजी सहित भगवान् द्रव हो गए । इससे इसी पौर्णमासी को गंगाजी का जन्म है, अतएव इस दिन गंगा स्नान का बड़ा फल है और तुलसी का भी जन्म दिन यही है, यह देवी पुराण में लिखा है, इससे इस तिथि में तुलसी पूजन और भगवान् को तुलसी समर्पण की मुख्यता है । विशेष कहाँ तक कहें, यह कार्तिक ऐसा पवित्र महीना है, इसमें स्नान, दान, जप, तप व्रत, जागरण, दीपदान इत्यादि सब कर्म अक्षय होते हैं ।

दोहा

प्राणनाथ-पद-रज सुमिरि धारि हृदय आनन्द ।

परम प्रेमनिधि रसिक वर विरची श्री हरिचन्द ।

प्राणपियारे प्रेमनिधि प्रेमिन-जीवन-प्राण ।

तिनके पद अरपन कियो यह कारतीक विधान । ।

इति श्री



कार्तिक - कर्म - विधि

बाबू शिवनन्दन सहाय इसका रचना काल सन् १८६८ मानते हैं। सन् १८७२ में छपी कार्तिक नैमित्तिक कृत्य के पहले पृष्ठ पर इसका उल्लेख है। निश्चय ही यह इसके पहले की रचना होगी।— सं.

श्री राधाकृष्णाय नमः
श्री राधादामोदराय नमः

कार्तिक - कर्म - विधि

जै जै श्री नंदनंद श्रीराधारसबस रसिक ।
दामोदर ब्रजचंद गोपीनाथ अनाथगति ॥ १ ॥
रासरसिक राधारमण मनमोहन घनश्याम ।
कोटि कोटि मनमय मथन सुंदर सब सुखधाम ॥ २ ॥
बदौं कार्तिक मास दामोदर प्रिय पुण्यप्रद ।
नासत यम की त्रास हिय हुलास कर अतिसुखद ॥ ३ ॥

श्लोकः

श्री कृष्ण करुणाकरं कविवरं कान्तापतिं कामदं
गोपीनां नयनोत्सवं गुणनिधिं गो-गोपवृन्दप्रियं ।
राधाराधितविग्रहं रतिरतं रामानुजं रासगं
मानार्थं मधुराधिपं मनहरं मान्यं मनोज्ञं भजे ॥ १ ॥

इस संसार में जन्म लेके मनुष्यों को भगवत्स्मरण और स्नान-दानादिक करना यही मुख्य धर्म है, क्योंकि बड़े बड़े पर्वों में स्नान-पूजा-व्रत-दानादिक करने से पाप नाश होते हैं और मुक्ति मिलती है और पर्व और व्रत इत्यादि तो अनेक हैं और नित्य ही स्नानादिक का बड़ा फल है परंतु मार्गशीर्ष, कार्तिक, माघ, वैशाख सब महीनों में उत्तम गिने जाते हैं, तिसमें भी कार्तिक-स्नान का फल विशेष है। यह बात सब शास्त्र में प्रसिद्ध है कि कार्तिक के महीने में काशी में पंचगंगा-स्नान का बड़ा पुण्य है।

यथा काशीखंडे

कार्तिकेमासि मे यात्रा यैः कृता भक्तितत्परैः ।
बिंदुतीर्थं कृते स्नानं तेषाम्मुक्तिर्न दूरतः ॥ १ ॥
शतं समास्तपस्तप्तवा कृते यत्प्राप्यते फलं ।
तत्कार्तिके. पंचनदे सकृत्स्नानेन लभ्यते ॥ २ ॥
कार्तिके बिंदुतीर्थं यो ब्रह्मचर्य्यपरायणः ।
स्नानमर्घोदिते भानौ भानुजातस्य भी कुतः ॥ ३ ॥

यथा पादमे, भार्गवार्चनचन्द्रिकायां च
आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैकादशी भवेत् ।
कार्तिकस्य व्रतानीह तस्यां वै प्रारभेतुधीः ॥ ४ ॥

यथा विष्णुरहस्ये
प्रारभ्यैकादशीं शुक्लामाश्विनस्य तु मानवः ।
प्रातः स्नानम्प्रकुर्वीत यावत् कार्तिकभास्करः ॥ ५ ॥
यथा मदनपारिजाते विष्णुः, तथा नारदीये च
कार्तिकं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः ।
जपन् हविष्यभुक् शान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६ ॥

इन वाक्यों का सारांश अर्थ यह है कि आश्विन शुक्ल एकादशी से आरंभ करके जो कार्तिक में जितेन्द्रिय होकर और व्रतादिक कर पंचगंगा में प्रातः स्नान करता है वह मुक्तिभागी होता है और उसको यमराज का भय नहीं रहता और भी इसका महाफल लिखते हैं ।

तथा पुराणसारोदारे, नारदीये च
प्रयागे माघमासे तु सम्यक् स्नानस्य यत्फलं ।
तत्फलं कार्तिके काश्यां पंचनद्यां दिनेदिने ॥ ७ ॥
कृते धर्मनदं नाम त्रेतायां धृतपापकं ।
द्वापरे बिन्दुतीर्थं च कलौ पंचनदं स्मृतम् ॥ ८ ॥
अत्रतः कार्तिको येषां गतो मूढधियामिह ।
न तेषामुण्यलेशोपि दुष्टानां शूकरात्मनां ॥ ९ ॥

माघमहीने में प्रयाग नहाने का जो फल है वह कार्तिक में पंचगंगा में एक दिन स्नान से मिलता है । सत्ययुग में धर्मनद, त्रेता में धृतपापा, द्वापर में बिंदुसर, कलियुग में पंचगंगातीर्थ ही मुख्य है । जो लोग कार्तिक में स्नान-व्रतादिक नहीं करते वे मूढ़बुद्धि हैं, उन्हें किसी पुण्य का फल नहीं होता ।

यथा पद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये सत्यभामां प्रति श्री कृष्ण वाक्यम्
कार्तिके मासि ये नित्यं तुलासंस्ये दिवाकरे ।
प्रातः स्नास्यन्ति ते मुक्ताः महापातकिनोपि वा ॥ १० ॥
स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवनपालनं ।
कार्तिके ये प्रकुर्वन्ति ते नरा विष्णुमूर्तयः ॥ ११ ॥
कार्तिकव्रतिनां पुंसां विष्णुवाक्यप्रणोदिताः ।
रक्षां कुर्वन्ति शक्राद्याः राजानं किकरा यथा ॥ १२ ॥
विष्णुप्रियं सकलकल्मषनाशनं यत्
सर्वत्र धर्मधनधान्यविवृद्धिकारि ।
ऊर्जव्रतं सनियमं कुरुते मनुष्यः
किं तस्य तीर्थपरिशीलनसेवया च ॥ १३ ॥
ते धन्यास्ते सदापूज्यास्तेषां च कुलमेव च ।
विष्णुभक्तिपरा ये स्युः कार्तिकव्रतकादिभिः ॥ १४ ॥

तुला के सूर्य में कार्तिक में जो लोग प्रातः स्नान करते हैं वे महापातकी हों तो भी मुक्त होते हैं । स्नान, जागरण, दीपदान, तुलसीपूजन इत्यादिक जो लोग करते हैं वे सब विष्णु के स्वरूप हैं । कार्तिक के व्रती लोगों की इन्द्रादिक देवता ऐसी रक्षा करते हैं जैसे राजा की सेवक रक्षा करें क्योंकि उनको श्री विष्णुभगवान की यही आज्ञा है । विष्णु का प्यारा, कल्मश नाश करने वाला, और सब धर्म धान्य धन का बढ़ाने वाला कार्तिक व्रत जो लोग करते हैं उनको तीर्थों में घूमने से और उसकी सेवा से क्या है अर्थात् वह सब कुछ कर चुके । वह और उनके कुल धन्य हैं और पूज्य हैं जो कार्तिक में व्रतादिक से विष्णु की भक्ति करते हैं ।

तथा सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये

न कार्तिकसमं धर्म्यमय्य नो कार्तिकात्परं ।
 न कार्तिकसमं काम्यं मोक्षदानं च कार्तिकात् ॥ १५ ॥
 तस्मात्सौरेश्च गाणेशैः शाक्तैः शैवैश्च वैष्णवैः ।
 कर्तव्यं कार्तिकस्नानं सर्वपापापनुत्तये ॥ १६ ॥
 न कार्तिकसमो मासो न काशीसदृशी पुरी ।
 न प्रयागसमं तीर्थं न देवः केशवात् पुरः ॥ १७ ॥
 प्रसंगाद्वा बलाद्वापि ज्ञात्वाऽज्ञात्वा कृतंतु यत् ।
 स्नानं कार्तिकमासस्य न पश्येद्यमयातनां ॥ १८ ॥
 तावद्गर्जन्ति पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
 न कृतं कार्तिके स्नानं यावज्जन्तुभिरादरात् ॥ १९ ॥
 तीर्थराजादितीर्थानि प्राप्ते कार्तिकमासके ।
 स्नानार्थं पंचगंगांतु समयाति न संशयः ॥ २० ॥
 दुर्लभो मानुषो देहो दुर्लभा काशिका पुरी ।
 तत्रापि कार्तिके मासि पंचगंगं सुदुर्लभम् ॥ २१ ॥

कार्तिक के समान न कोई धर्म है, न अर्थ है, न काम है, न मोक्ष है न दान है । सब एक ही हैं इससे शैव, वैष्णव, शाक्त और गाणपत्य सब को कार्तिक स्नान करना चाहिए । काशी के समान कोई पुरी नहीं, प्रयाग के समान कोई तीर्थ नहीं, केशव के समान कोई देवता नहीं और कार्तिक के समान कोई महीना नहीं है । संग साय से वा बल से, जाने वा बिना जाने भी जिसने कार्तिकस्नान किया है उसको यम का भय नहीं है । ब्रह्महत्यादिक पाप तभी तक गर्जना करते हैं जब तक जीव ने कार्तिकस्नान नहीं किया । प्रयागादिक सब तीर्थ कार्तिक में पंचगंगा स्नान को आते हैं । एक तो मनुष्य का देह दुर्लभ है दूसरे काशी पुरी दुर्लभ है तिसमें भी कार्तिक महीने में पंचगंगा तीर्थ अति दुर्लभ है ।

और भी इसकी महिमा बहुत लिखा है ।

यथा पद्मपुराणे स्वर्गखंडे तृतीयाध्याये

तथा नारदीये रुक्मांगदोपाख्याने

प्रातः स्नानं नरो यो वै कार्तिके श्रीहरप्रिये ।

करोति सर्व्वतीर्थेषु यत् स्नात्वा तत्फलं लभेत् ॥ २२ ॥

सब तीर्थों में स्नान करने का जो फल है वह कार्तिक में प्रातः स्नान से मिलता है ।

तथा तत्रैव विशतितमेध्याये

श्रष्टं विष्णुव्रतं विप्र तत्तुल्या न शतं मखाः ।

कृत्वा व्रत व्रजेत् स्वर्गं वैकुण्ठं कार्तिकव्रती ॥ २३ ॥

श्रीविष्णु भगवान् का व्रत सब व्रतों में उत्तम है, सौ यज्ञ भी उसके समान नहीं हैं, जो लोग इस कार्तिक का व्रत करते हैं वे व्रती लोग वैकुण्ठ नामक स्वर्ग में जाते हैं ।

तथा वायुपुराणे ।

यदीच्छेद्विपुलान् भोगान् चन्द्रसूर्य्यग्रहोपमान् ।

कार्तिके सकलमप्राप्य प्रातःस्नायी भवेन्नरः ॥

कार्तिक का माहात्म्य सब शास्त्रों में बहुत कहा है, कहाँ तक लिखें । इस कार्तिक में एक व्रत और भी होता है, जिसका नाम मासोपवास है ।

यथा हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये

व्रतमेतत्तु गृहवीयाद्यावत्त्रिशब्दानि तु ।

आश्विनस्यासितेपक्षे एकादश्यामुपोषितः ॥ २४ ॥

वासुदेवं समुद्दिश्य कार्तिके सकले नरः ।

मासं चोपवसेद्यस्तु स मुक्तिफलमाप् भवेत् ॥ २५ ॥

कृत्वा मासोपवासं च विचार्य्य विधिवन्मुने ।

कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥ २६ ॥

यह कार्तिक का मासोपवास व्रत अत्यंत पवित्र है । इस की विशेष विधि व्रतार्क में लिखी है । कार्तिक का माहात्म्य सूचन करके अब कुछ उसके नियम लिखे जाते हैं जिस से विदित हो कि कार्तिक व्रत कब से करना और किस किस वस्तु का त्याग करना इत्यादि । कार्तिक स्नान आश्विन सुदी ११ एकादशी से प्रारंभ करना इसके वाक्य ऊपर लिख आए हैं ।

यथा स्कान्दे तथा ब्रह्मपुराणे च

वैष्णवं वैष्णवानां यद्वर्तविष्णुपदप्रदं ।

आश्विनस्यासितेपक्षे एकदश्यां द्विजोत्तमेः ।

वैष्णवैः कल्पनापूर्वम्प्रारम्भोऽस्य विधीयते ॥ २७ ॥

विष्णुपद का देने वाला यह वैष्णवों का परम वैष्णव व्रत कुँवार सुदी एकादशी से वैष्णव लोगों को कल्पनापूर्वक प्रारंभ करना चाहिए तथा कार्तिक में खाने पीने का संयम और ब्रह्मचर्य तो अवश्य ही करना चाहिए ।

प्रमाणं नारदीये

अब्रतेन क्षतेद्यस्तु मासं दामोदरप्रियं ।

तिर्य्यग्योनिमवाप्नोति नात्र काय्यविचारणा ॥ २८ ॥

तथा काशीखंडे

ऊर्जं यवान्ममशनीयाद् देवान्ममथवा पुनः ।

वृत्ताकं शूरणं चैव शूकशीवीश्व वर्जयेत् ॥ २९ ॥

स्कान्दे

कार्तिके वर्जयेत्तद्विदलं बहुबीजकं ।

माष मुद्गा मसूराश्च चणकाश्च कुलत्थकान् ॥ ३० ॥

कार्तिक का महीना जो लोग बिना व्रत के बिताते हैं वे पशु योनि पाते हैं । कार्तिक में यव और पवित्र हविष्यान्न खाना और भंडा, सूरन और सेम इत्यादि नहीं खाना । कार्तिक में द्विदल, बहुत बीयावाली वस्तु, उड़द, मोट, मसूरी, चना और कुलथी इत्यादि खाना ।

तथा नारदीये स्कान्दे च

कार्तिके वर्जयेत्तलं कार्तिके वर्जयेम्मधु ।

कार्तिके वर्जयेत्कांस्यं कार्तिके शुक्लसन्धिर्त ॥ ३१ ॥

कार्तिक में तेल, मधु, कांस्यपात्र में भोजन, बासी अन्न, और खारे शाक ये सब वर्जित हैं ।

कार्तिक के व्रत में ब्रह्मचर्य और हविष्यभोजन ही मुख्य है जैसा कि ऊपर लिख आए हैं जपन्हविष्यमुक् शान्तः" । अब हविष्य में कौन कौन वस्तु है सो लिखते हैं और कार्तिक में किस किस वस्तु का त्याग है वह भी लिखते हैं ।

तथा सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये

तथा पुराणसारोद्गारे च पुराणसमुच्चयेपि भविष्योक्ते

हैमंतिकं सिता स्विन्नं धान्या मुद्गास्तिला यवा । ।

कलाय कंगु नीबारा वास्तुकं हिलमोचिकां ।

षष्ठिका कालशाकं च मूलकं केमुकोत्तरं ॥ ३२ ॥

कंदं सैधव सामुद्रो लवणो दधि सर्पिषी ।

पयानुद्धृतसारं च पनसाम्नो हरीतकी ॥ ३३ ॥

कदली लवली धात्री फलान्यगुडमेक्षवं ।

पिप्पली जीरकं चैव नागरंगकतित्थणी ।

अतैलपक्कं मुनयो हविष्यान्मम्प्रचक्षते ॥ ३४ ॥

तथा हेमाद्रो छान्दोग्यपरिशिष्टेकात्यायनः

हविष्येषु यवाः मुच्यास्तदनु ब्रीहयः स्मृताः ।

माषकोद्रवगौरादीन् सर्वाभावेऽपि वर्जयेत् ॥ ३५ ॥

तत्रैव अग्निपुराणे

ब्रीहि षष्टिक मुद्गाश्च कलायाः सलिलम्पयः ।

श्यामाकाश्वैव नीवारा गोधूमाद्याव्रते हियाः ॥ ३६ ॥

हविष्य में इतनी वस्तु लेना । जाड़े का सपेद चावल, धान, मूँग, तिल, यव, मटर कँगुनी, तिन्नी का चावल, वधुआ का शाक, हेली का शाक, कालिका का शाक, केमुका का शाक, साठी का चावल, सेंधा नोन और समुद्र का नोन, दही, घी, बिना घी निकला दूध, कटहर, आम, हरै, केला, हारफारेवड़ी, आँवला, चीनी मिश्री (गुड़बिना), पीपल, जीरा, नारंगी, इमली, तेल में न किया होय ऐसे अन्न को मुनि लोग हविष्य कहते हैं । हविष्य में जब मुख्य है वा नहीं तो धान भी ग्राह्य है परंतु उड़द, कोदो, सपेद गेहूँ तो कुछ अन्न न मिलता होय तो भी नहीं लेना । धान, साठी का चावल, मूँग, कलाई, जल, दूध, साँवाँ, तिन्नी, लाल गेहूँ ये व्रत में लेना । भोजन करने की वस्तु लिख के अब न खाने वाली वस्तु लिखते हैं ।

यथा सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये

सर्वयैव न भोक्तव्यमामिषान्नं तु कार्तिके ।

तत्सर्वदा वर्जनीयं कार्तिके तु विशेषतः ॥ ३७ ॥

दग्धमन्नं द्विपक्वं च मसूरान्नं सवलकलं ।

उबालकाः पर्युषितमन्नमामिष उच्यते ॥ ३८ ॥

वृन्ताकानि पटोलानि तुम्बिका च कलिंगकं ।

बिम्बीफलानि त्रपुमं फलशाकेषु चामिषं ॥ ३९ ॥

दोरका तुलसी चिल्ली छत्राकं पोत्र पत्रकं ।

चक्रवर्ती राजगिरिः पत्रशाकेषु चामिषं ॥ ४० ॥

गजरं रक्तमूलं च पलांडुर्लशुनं तथा ।

सर्वदैवामिषाणि स्युः कार्तिके स्मरणं त्यजेत् ॥ ४१ ॥

परमांसैः स्वमांसानि यः पुष्पाति नराधमः ।

परजन्मनि तस्यैव विष्टायां जायते कृमिः ॥ ४२ ॥

बालान्मृगान् पक्षिणोवा तथा बालफलानि च ।

घातयन्ति दुरात्मानो जायन्ते मृतबालकाः ॥ ४३ ॥

सर्वाण्येकत्रदानानि सर्वतीर्थान्यथैकतः ।

सर्वव्रतान्येकतश्च हयहिंसाकलया सभा ॥ ४४ ॥

एवं विचार्य भुंजीत स्वान्नं विष्णुनिवेदितम् ।

कार्तिक में मांस और उस के समान जितनी वस्तु हैं वह सब सर्वथा न खाना । और यह मांस तो सर्वदा वर्जनीय है परंतु कार्तिक में विशेष करके अर्थात् मांस इत्यादिक बुरी वस्तु कभी नहीं खाना ! जल अन्न, दो बेर किया हुआ अन्न, मसूर, कुरथी, बासी अन्न ये सब भी मांस कहलाते हैं । भंटा, परवल, तुम्बी फल, तरबूज, कुंदुरु और ककड़ी, ये सब फल के शाक में मांस के तुल्य हैं । तुलसी, छाता शाक, पोई, चकोई, राजगीरा ये सब पत्ते शाक में आमिष के तुल्य हैं । गाजर, लाल मूली, लहसुन, गोभी, प्याज इत्यादि मांसवत् सर्वदा ही त्याग करना और कार्तिक में तो इन का स्मरण भी नहीं करना । दूसरे जीवों के मांस से जो पापी अपने मांस को पुष्ट करता है अर्थात् जो लोग बल पुष्टता वा स्वाद के लोभ से किसी पशु या पक्षी का मांस खाते हैं वे मनुष्याधम दूसरे जन्म में उसी जीव के (जिसका मांस खाया है) विष्टा के कीड़े होते हैं । छोटे पशुओं को, छोटे पक्षियों को जो मारते हैं, जो कच्चे फलों को तोड़ते हैं, वे लोग दूसरे जन्म में मरे बालक होते हैं । सब व्रत और सब दान और सब तीर्थ का एकत्र फल और अहिंसा का फल बराबर है ऐसा विचार के सुंदर प्रसादी अन्न ही भोजन करना, मांसादिक सर्वथा नहीं खाना ।

तथा पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये

परान्नं परशय्यां च परवादं परांगनां ।

सदा च वर्जयेत्प्राज्ञो कार्तिके तु विशेषतः ॥ ४५ ॥

वेद देव द्विजानां च गुरु गो व्रतिनान्तथा ।

स्वराज्योपहतां निन्द्यां वर्जयेत्कार्तिके व्रती ॥ ४६ ॥

दूसरों का अन्न, दूसरों की सेज, दूसरों की निन्दा, दूसरों की स्त्री इनको सदा बचना चाहिए, कार्तिक में विशेष करके । वेद देव, तीनों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, गुरु, गऊ, व्रत करने वाले जिन का राज्य अर्थात् सम्पदा नाश हो गई है इन लोगों की निन्दा नहीं करना । इस का भावार्थ यह है कि कार्तिक में जहाँ तक बन सके दूसरों का अन्न नहीं खाना और दूसरों की शैया से बचना अर्थात् दूसरों की स्त्री से बचना, दूसरों की निन्दा नहीं करना । अब इस काल में लोग लोगों की निन्दा बहुत करते हैं और दूसरों की निन्दा करना महापाप है क्योंकि जो लोग दूसरों की निन्दा करते हैं वे लोग जिनकी निन्दा करते हैं उनका सब पाप आप ले लेते हैं तथा दूसरों की स्त्री को कुदृष्टि से देखना कार्तिक में विशेष करके वर्जित है और अब कार्तिक में बहुत स्त्रियों के नहाने जाने से कितने ही पुरुष भी सबेरा भया कि कार्तिक नहाने के बहाने उनका दर्शन करने जाया करते हैं उन लोगों को चाहिए कि इस वाक्य को कान खोल कर सुनें ।

कार्तिक के व्रत और उसके नेम लिख के अब कार्तिक स्नान की विधि और मंत्रादिक लिखते हैं जिसका प्रमाण और विशेष विधि पुराणसारोद्धार, पुराणसमुच्चय, निर्णयसिंधु, स्कंदपुराणांतर्गत कार्तिकमाहात्म्य, पद्मपुराणांतर्गत कार्तिकमाहात्म्य, ब्रह्मपुराण आदिक ग्रंथों में लिखा है । विशेष करके इस का विस्तारपूर्वक विधान सनत्कुमारसंहिता के कार्तिक माहात्म्य में है, जिसमें से आवश्यक कर्म यहाँ पर लिखे जाते हैं । प्रातः काल उठ के धर्म चिंतन करके भगवान का ध्यान करना, जैसा सनत्कुमारसंहिता में ध्यान लिखा है ।

प्रातःस्मरामि भवभीतिमहातिशान्त्यै

नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभं ।

ग्राहामिभूतवारवारणमुक्तिहेतुं

चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ॥ ४७ ॥

प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना

पादारविद्युगलं परमस्य पुंसः

नारायणस्य नरकार्णवतारकस्य

पारायणप्रवणविप्रपरायणस्य ॥ ४८ ॥

प्रातर्भजामि भजतामभयंकरं तं

प्राक् सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यौ ।

योग्राहवक्त्रपतितांघ्नि गजेन्द्रधोरं

शोकातिनाशनकरोधृतशंखचक्रः ॥ ४९ ॥

श्लोकत्रयमिदमुपुष्यं प्रातः प्रातः पठेन्नरः ।

लोकत्रयगुरुस्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ॥ ५० ॥

और भी जो कुछ हो सके भगवान का स्मरण करके अपने गुरु का ध्यान करना ।

यथा गाग्यां

ज्ञानमुद्रापरं ध्यायेत् श्रीगुरुं स्वस्तिकामनं ।

ध्यात्वा कृष्णं परं ध्यायेत् भक्त एकाग्रमानसः ॥ ५१ ॥

किशोरं कामलं श्यामं वशीवेत्रविभूषितं ।

एवं कृत्वा हरेर्ध्यानं पुनर्गच्छेदरिस्थलम् ॥ ५२ ॥

पलथी मारे बैठे ज्ञानमुद्रा से उपदेश कर रहे हैं ऐसा अपने श्रीगुरु का ध्यान करके फिर श्रीकृष्णचंद्र का ध्यान करना । कोमल अंग किशोर स्वरूप श्यामसुंदर वंशी छड़ी धारण किए ऐसे श्री भगवान का ध्यान करके सिर महादेव इत्यादिक देवता, गंगादिक नदी, नारदादि ऋषि, पृथ्वी, सप्तसमुद्र, नवग्रह इत्यादिक का ध्यान करके, वैष्णवन का ध्यान करके अपना हाथ देखना व दूब, ऐना, सोना, गऊ इत्यादिक मंगल-वस्तुओं को देख

लेना, जिस में दुष्ट मुख दर्शन का दोष नाश हो जाय । फिर यह मंत्र पढ़ के पृथ्वी पर पैर रखना —
समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमंडिते ।

विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे ॥ ५३ ॥

फिर मंदिर में जाकर के श्रीभगवान् को दंडवत करना । फिर नगर के बाहर शौच करके पवित्र होना ।
रदी के, तालाब के वा कोई जलाशय के किनारे मल त्याग नहीं करना, इसका महादोष है ; और भी अन्न के
खेतखलिहान में, देवालय में, राजमार्ग में मलत्याग नहीं करना, इस का माघ-माहात्म्य में बड़ा पाप लिखा है
और जहाँ मल त्याग करना वहाँ तृण विछाय के और मुख के आगे वस्त्र को आड़ करके सूर्य और चंद्रमा की ओर
मुख फेर करके मल त्याग करना । ऐसे मल त्याग करके फिर मृत्तिकास्पर्श करके पवित्र होना, जिसकी विधि
सब स्मृतियों और पुराणों में लिखी है । "एका लिंगे गुदे पंच इत्यादि ।" यह वाक्य पृथक् पृथक् पुस्तकों में
अनेक चाल से मिलता है और गिनती में परस्पर विरोध पड़ता है, परंतु यहाँ हम वही वाक्य लिखते हैं जो
सनत्कुमारसंहिता के कार्तिक-माहात्म्य में है, क्योंकि यहाँ प्रसंग कार्तिक का है । यथा,

एकालिंगे गुदे सप्त दश वामकरे तथा ।

उभयोः सप्त दातव्याः पादयोर्मृत्तिकाद्वयम् ॥ ५४ ॥

लिंग में एक, गुदा में सात, बायें हाथ में दश, फिर दोनों हाथ में सात, पैर में दो दो बेर मिट्टी लगा के
धोना । ब्रह्मचारी को इसकी दूनी, वानप्रस्थ को तिगुनी और यति को चौगुनी यह क्रम है । फिर
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।

मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ ५५ ॥

इस मंत्र से शुद्ध मृत्तिका से हाथ पैर धो के फिर दत्तुवन करना ।

यथा गार्ग्याम्

कंटकी क्षीर कार्पास निर्गुडीब्रह्मवृक्षिका ।

वटै रंड विगंधाद्वयान् कुर्याद्वन्तधावनम् ॥ ५६ ॥

बबूल, बैर, कपास, निर्गुडी, पलाश, बड़, रेंड, दुर्गंध के वृक्ष इसकी लकड़ी से दत्तुवन नहीं करना तथा
दत्तुवन करने के समय यह मंत्र पढ़ना ।

तत्रैव

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशु वसूनि च ।

ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते ॥ ५७ ॥

फिर कुल्ला करना । उपवास, नवमी, छठ, श्राद्ध के दिन, अमावस, आदित्यवार, इतने दिन दत्तुवन
नहीं करना । मिट्टी वा और किसी वस्तु से मुख शुद्ध कर लेना और बारह कुल्ला करने से मुख की शुद्धि हो जाती
है । फिर श्री गंगा स्नान करने जाना । उस समय वित्त एकाग्र करके जाना, मुख में भगवान् का यश गावते
जाना । लोग श्री गंगा स्नान करने जाते हैं उनको पैर पैर पर अश्वमेध और वाजपेययज्ञ का फल होता है ।

यदुक्तं श्रीमद्भागवते पंचमस्कन्धे

यस्यां स्नानार्थं चागच्छतःपुंसःपदेपदेऽश्वमेधराजसूय

फलदुर्लभमिति ॥ ५८ ॥

ऐसे श्रीगंगा जी के स्नान को मन अति शुद्ध करके जाना, सो जाय के पहले श्री गंगा जी के तट पर दीपदान
करना और भी देवालय तुलसीवृक्ष के निकट दीपदान करना ।

यथा सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये

देवालये नदीतीरे राजमार्गे विशेषतः ।

निर्द्वास्थाने दीपदाता तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ ५९ ॥

फिर श्रीगंगा जी के निकट आय के बाल झाड़ना । प्रमाण स्मृति में —

अशोधितेषु केशेषु स्नानं यः कुरुते नरः ।

सम्यक् पुण्यं न लभते तस्मात्केशांश्च शोधयेत् ॥ ६० ॥

फिर संकल्प करै "कार्तिकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुक वासरे अमुकगोत्रोत्पन्नो अमुकशर्माहं

अचिन्त्यफल प्राप्त्यर्थं श्रीगंगास्नानमहंकरिष्ये ।”

ऐसे संकल्प करके फिर प्रतिज्ञा करना इस मंत्र से —

कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातः स्नानं जनार्दन ।

प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥ ६१ ॥

यह प्रतिज्ञा का मंत्र पढ़ना (यह मंत्र सब कार्तिकमाहात्म्य में लिखा है) फिर इन मंत्रों से दीजिए ।

यथा स्कान्दे पादमे ब्राह्मे सनत्कुमारसंहितायां च

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ।

नमस्तेस्तु हृषीकेश गृहाघर्यं नमोस्तुते । ।

नित्ये नैमित्तिके कृत्ये कार्तिक पापशोधने ।

गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राघया सहितो हरे ॥ ६२ ॥

व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिदन्मम ।

गृहाणार्घ्यं मया दत्तं दनुजेन्द्रनिषूदन ॥ ६३ ॥

दामोदर जगन्नाथ शंखचक्रगदाधर ।

राधाकान्त गृहाणार्घ्यं प्रसीद परमेश्वर ॥ ६४ ॥

द्रवरूपेण देवेश वर्त्तते गांगवारिषु ।

हृदमर्घ्यं गृहाण तत्त्वं स्वीकृत्य करुणां कुरु ॥ ६५ ॥

ऐसे अर्घ्य प्रदान करके फिर बाल में अँवला तिल और तुलसी की मट्टी लगाना और जिस जिस दिन अँवला तिल न लगाना हो उस दिन केवल तुलसी की मट्टी लगाना । फिर श्रीगंगा जी की मृत्तिका का तिलक (अश्वक्रांते रथक्रांते) इस मंत्र से करके हाथ जोड़ के दंडवत् करके प्रार्थना करना ।

किरणा धूतपापा च पुण्यतोया सरस्वती ।

गंगा च यमुना चैव पंचनद्यः पुनन्तु माम् ॥ ६६ ॥

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका ।

पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥ ६७ ॥

विष्णोराज्ञामनुप्राप्य कार्तिकव्रतकारिणः ।

रक्षन्ति देवास्ते सर्व्वे मां पुनन्तु सवासवाः ॥ ६८ ॥

वेदमन्त्राः सबीजाश्च सरहस्यामखान्विताः ।

कश्यपाद्याश्च मुनयो मां पुनन्तु सदैवते ॥ ६९ ॥

नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर ।

देव देहि ममानुज्ञां युष्मत्तार्थनिषेवणे ॥ ७० ॥

नन्दिनीत्येष ते नाम देवेषु नलिनीति च ।

दक्षा पृथ्वी च विहगा विश्वनाथा शिवा सती ॥ ७१ ॥

विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी ।

क्षेमावती जान्हवी च शान्ता शान्तिप्रदायिनी ॥ ७२ ॥

एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत् ।

भवेत्सन्निहिता तत्र गंगा त्रिपथगामिनी ॥ ७३ ॥

फिर हाथ जोड़ के यह मंत्र पढ़िए ।

स्वर्गारोहणसोपानं त्वदीयमुदकं शिवे ।

अतः स्पृशामि पादाम्यामपराधं क्षमस्व मे ॥ ७४ ॥

ऐसे प्रार्थना करके मौन होय के स्नान करना, भगवान का नाम लेना । श्री गंगा जी के निकट कुल्ला नहीं करना । ऐसे स्थान करके सीढ़ी पर एक अर्घ्य देना ।

मंत्र ।

यन्मया दूषितं तोयं शारीरमलसम्भवैः ।

तद्योषपरिहारार्थं यक्ष्माणं तर्पयाम्यहम् ॥ ७५ ॥

फिर शुद्ध हो वस्त्र पहिन के संध्यादिक करना । स्कंद पुराण में लिखा है कि श्रीगंगा जी में ये तेरह कर्म नहीं करना । शौच, कुल्ला, जूठा फेंकना, मल करना, तेल लगाना, निदा, प्रतिग्रह, रति, दूसरे तीर्थ की इच्छा तथा दूसरे तीर्थ की प्रशंसा, वस्त्र धोना, उपद्रव, ये सब कर्म श्रीगंगा जी में नहीं करना । फिर श्री गंगाजल माथे पर छिड़क कर अघमर्षण करना, फिर वस्त्रांग आचमन करके शिखा बाँधना फिर तिलक करना बिना तिलक संध्यादिक नहीं करना ।

यथा पादम्

यज्ञो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणं ।

भस्मीभवति तत्सर्वं ऊर्ध्वपुंड्रं विना कृतम् ॥ ७६ ॥

यज्ञ, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण इत्यादिक सब कर्म ऊर्ध्वपुंड्र किए बिना जो करते हैं उनका निष्फल होता है । ऊर्ध्वपुंड्र ही लगाना और तिलक न लगाना इस का सिद्धांत श्रीश्रीगिरिधरदेव चरण ने ऊर्ध्वपुंड्र मातंड में किया है । ऐसे ही सर्वदा तुलसी की माला धारण करना और जो सब दिन धारण न करते हों तो कार्तिक में अवश्य धारण करना ।

यदुक्तं निर्णयसिन्धौ । अथ मालाधारणम् । तत्र

स्कान्दे द्बरकामाहातुम्ये

निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसंभवां ।

बहते यो नरो भक्त्या तस्य नैवास्ति पातकम् ॥ ७७ ॥

नजहयात्तुलसीमालां धात्रीमालाविशेषतः ।

महापातकं संहन्त्रीं सर्वकामार्थदायिनीम् ॥ ७८ ॥

विष्णुधर्मे

स्पृशेत्तु यानि लोमानि धात्रीमाला कलौ नृणां ।

तावद्वर्षं सहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत् ॥ ७९ ॥

मालायुगलं तु यो नित्यं धात्री तुलसिसम्भवां ।

बहते कंठदेशे तु कल्पकोटिदियं वसेत् ॥ ८० ॥

मंत्र

तुलसी काष्ठसम्भूते माले कृष्णजनप्रिये

विभर्षि त्वामहं कंठे कुरु मां कृष्णवल्लभम् ॥ ८१ ॥

एवं सम्प्रार्थ्य विधिवन्मालां कृष्णगलेऽर्पितां ।

भारयेत् कार्तिकेयो वै सगच्छेत् वैष्णवमदम् ॥ ८२ ॥

निर्णयसिंधु ग्रंथ में माला-धारण लिखते हैं । वहाँ स्कन्द-पुराण का यह वचन है कि तुलसी के काठ की माला भगवान की प्रसादी जो लोग भक्ति से पहनते हैं उनके एक पाप भी नहीं बचते । महापापों के दूर करने वाली सब कामों के देने वाली तुलसी की माला वा आँवले की माला को कभी भी नहीं त्यागना । विष्णुधर्म में । कलियुग में आँवले की माला से जितना रोआँ छू जाता है उतने हज़ार बरस उस मनुष्य को स्वर्गवास मिलता है । ऊपर जो मंत्र लिखा है उस से जो विधिपूर्वक माला सदा धारण करते हैं वा श्री कृष्ण की प्रसादी माला जो लोग कार्तिक में धारण करते हैं उनको वैष्णव पद मिलता है ।

इस रीति से तिलक माला धारण करके क्या करना चाहिये, सो लिखते हैं ।

यथा सनत्कुमारसंहितायाम्

ततः सन्ध्यामुपासीत स्वसूत्रोक्तेन कर्मणा ।

ततः काय्यौजपो देव्या यावत्सूर्य्योदयो भवेत् ॥ ८३ ॥

फिर अपने सूत्र के अनुसार संध्या करना, फिर जब तक सूर्य्योदय न होय तब तक गायत्री देवी का जप करना ।

निर्णयसिंधु बनाने वाले ने यह निर्णय किया है कि कार्तिक के महीने में बिना अरुणोदय भी संध्या करने

का दोष नहीं है ।

मया कृते मूत्रपुरीषशीचं स्नानंच गंडूषणमेहनंच ।

वस्त्रस्यसंक्षालनमेवदोषान् क्षमस्वगगै मम सुप्रसीद ॥ ८४ ॥

श्री गंगा जी की प्रार्थना इस मन्त्र से करना । अब सूर्योदय पीछे जो करना चाहिए वह लिखते हैं ।

तत्रैव

विष्णोः सहस्रनामाद्यं सन्ध्यान्ते च पठेन्नरः ।

देवालये समागत्य पुनः पूजनमारभेत् ॥ ८५ ॥

संध्या करके विष्णुसहस्र नाम इत्यादिक ग्रंथों का पाठ करके फेर भगवान की पूजा को आरंभ करना ।
तहाँ फूल से भगवान की पूजा करना इसका माहात्म्य लिखते हैं ।

यथाभार्गवार्चनदीपिकायां नृसिंहपुराणे

अगस्त्यकुसुमैर्देवं योर्चयेच्च जनार्दनं ।

दर्शनात्तस्य देवर्षे नरकं नाहते नरः ॥ ८६ ॥

विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवं ।

कार्तिके यो ऽर्चयेद्भक्त्या वाजपेयफलं लभेत् ॥ ८७ ॥

स्कान्दे

मालतीमालया विष्णुः केतक्या चैव पूजितः ।

समाः सहस्रं सुग्रीतो भवेत्स मधुसूदनः ॥ ८८ ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये पादुमे

कार्तिके नार्चितो येनतु कमलैः कमलक्षणः ।

जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र न तेषां कमला गृहे ॥ ८९ ॥

कार्तिके केशवो पूजा येषां नाम्ना सुतैः कृता ।

ते निर्भर्त्स्य रवेः पुत्रं वसति त्रिदिवे सदा ॥ ९० ॥

तुलसीदललक्षणे कार्तिके योर्चयेत् हरिं ।

पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम् ॥ ९१ ॥

अगस्त के फूल से जो भगवान की पूजा करते हैं उनके दर्शन से नरक नहीं मिलता । सब फूलों को छोड़ के कार्तिक में जो अगस्त के फूल से भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं उन्हें वाजपेय का फल होता है । कार्तिक में जिसने कमल से श्रीभगवान की पूजा नहीं किया उनके घर कोटि जन्म तक लक्ष्मी नहीं आती । जो कार्तिक में भगवान के नाम से पूजा करते हैं वे लोग यम को अनादर दे के स्वर्ग में रहते हैं । और जो लोग लाख तुलसी दल भगवान को अर्पण करते हैं वे एक एक पत्रे में मोती समर्पण का फल पाते हैं वा एक एक पत्रे में मुक्ति का फल पाते हैं ।

मंत्र

नमस्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।

केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने ॥ ९२ ॥

ऊपर लिखे हुए मंत्र से तुलसी तोड़ कर श्री भगवान की पूजा करने का अकथनीय फल है । अब पूजा करने की विधि लिखते हैं । वह पूजा दो प्रकार की है — जिसमें नियम नहीं और परमभारवात्मिका उसका नाम सेवा और जिसमें नियम हो, चाहे नैमित्तिक होय, उसका नाम पूजा । इसके भेद और प्रकार आदि पुराण और गणसंहिता में और भी संप्रदाय के ग्रंथों में विस्तारपूर्वक लिखे हैं । अब हम इस स्थान पर पूजा करने की विधि लिखते हैं । श्री भगवान की पूजा में चित्त एकाग्र रखना, पहिले मंदिर में जा करके प्रभु को जगाना, फिर षोडशोपचार पूजा की सामग्री ले के पूजा आरंभ करना तहाँ पहिले आवाहन करना ।

मंत्र

गोलोकधामाधिपते रमापते गोविन्ददामोदर दीनवत्सल ।

राधापते माधव सात्वतां पते सिंहासनेस्मिन्मम सम्मुखोभव ॥ ९३ ॥

अथ आसनम्

श्रीपद्मारागस्फुरद्वर्धपूष्ठ महाहर्षवैद्यस्वचित्पद्मजं ।
वैकुण्ठवैकुण्ठपते गृहाण पीतं तडित्श्रावकवस्त्रयुक्तम् ॥ ९४ ॥

अथ पाद्यम्

परिस्थितं निर्मलमेकपात्रे समागतं विष्णुसरोवरदि ।
योगेश देवेश जगन्निवास गृहाण पाद्यं प्रणमामि पादौ ॥ ९५ ॥

अथ अर्घ्यम्

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते धरणीधर ।
नमस्ते कमलाकान्त अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम् ॥ ९६ ॥

अथाचमनम्

कर्पूरवासितं तोयं मन्त्राकिन्याः समाहृतं ।
आचम्यतां जगन्नाथ मया दत्तं हि भक्तिः ॥ ९७ ॥

अथ स्नानम्

काश्मीरपाटीरविमिश्रितेन स्वमक्षिकोशीरवताजलेन ।
स्नानं कुरु त्वं यदुनाथ देव गोविन्दगोपालक तीर्थपाद ॥ ९८ ॥

अथ मधुपर्कः

मध्यान्हचण्डार्कभवश्रमापहे सितांगसम्पक्कमनोहर परं ।
गृहाण विष्णो मधुपर्कं मासनं श्री कृष्णपीताम्बरसात्वतापते ॥ ९९ ॥

अथ वस्त्रम्

विभो सर्वतो प्रस्फुरत् प्रोज्ज्वलतं महत् स्वर्णसूत्रांकितं दुर्लभं च ।
स्वतोनिर्मितं पद्मकिञ्जल्कवर्णं गृहाणाम्बरं देव पीताम्बराख्यम् ॥ १०० ॥

अथ भूषणम्

कनकरत्नमयं मयनिर्मितं मदनरुक्कदने सदनं रुचां ।
उपति सर्वसुवर्णविभूषणं सकललोकविभूषणं गृह्यताम् ॥ १०१ ॥

अथ यज्ञोपवीत्

सुवर्णभ्रमापीतवर्णं सुमंत्रैः वरं प्रोक्षितं वेदवन्निर्मितं च ।
शुभं पञ्चकार्येषु नैमित्तिकेषु प्रभो यज्ञ यज्ञोपवीतं गृहाण ॥ १०२ ॥

अथ गंधम्

संध्येन्दुशोभं बहुमंगलं श्री काश्मीरपाटीरकर्षकपंकं ।
स्वमंडनं गंधचयं गृहाण समस्तभूमंडलभारहानिन् ॥ १०३ ॥

अथ अक्षतम्

ब्रह्मावर्ते ब्रह्मणा पर्वमुक्तं ब्रह्मैस्तोयैः सिंचितं विष्णुना च ।
रुद्रेण राद्राक्षितो राक्षसेभ्यः साक्षाद्भूमावक्षतं त्वं गृहाण ॥ १०४ ॥

पुष्पम्

मंदारसन्तानकपात्रिजातं कल्पद्रुमं श्रीहरिचंदनानां ।
गृहाणपुष्पाणि हरे तुलस्या मिश्राणि साक्षान्नवमंजरीभिः ॥ १०५ ॥

अथ धूपम्

लवंगपाटीरज चूर्णमिश्रं मनुष्य देवासुर सौख्यदं च ।
सद्यः सुगन्धी कृतहर्म्यदेशं द्वारावतीभूप गृहाण धूपम् ॥ १०६ ॥

अथ दीपम्

तमोहारिणं ज्ञानमूर्तिं मनोज्ञं लसद्भार्तिकपूरयुक्तं गवाज्यं ।
जगन्नाथ देवेश ज्योतिस्वरूप स्फुरज्ज्योतिकं दिव्यदीपं गृहाण ॥ १०७ ॥

अथ नैवेद्यम्

सर्व्वं रसैर्व्वेविधिव्यवस्थितं रसे रसान्यं च यशोमतीकृतं ।
गृहाण नैवेद्यमिदं स्वरोचिषं गव्यामृतं सुन्दरनन्दनन्दन ॥ १०८ ॥

अथ जलम्

गंगोत्तरीवेगबलात्समुद्भूतं सुवर्णपात्रेण हिमांशुशीतलं ।
सुनिर्मलाम् हयामृतोपमं जलं गृहाण राधावर दीनवत्सल ॥ १०९ ॥

अथ आचमनम्

कंकोलजातीफलपुष्पवासितं परं गृहाणाचमनं दयानिधे ।
राधापते श्रीगिरिजापते प्रभो श्रियःपते सर्व्वपते च भूपते ॥ ११० ॥

अथ ताम्बूलम्

जातीफलेलासुरपुष्पयुक्तं यावित्रिपूगीफलपत्रवृन्दं ।
मुक्ताफलाखादि ररोचनार्थं गृहाण ताम्बूलमिदंनृपेश ॥ १११ ॥

अथ दक्षिणा

नाकपालवसुपालमौलिभिः वन्दिताग्नियुगल प्रभो हरे ।
दक्षिणां परिगृहाण माधवयज्ञरूपप्रभु दक्षिणापते ॥ ११२ ॥

अथ प्रदक्षिणा

यानिकानिच पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि सर्व्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिण पदेपदे ॥ ११३ ॥

अथ नीराजनम्

प्रस्फुरत्परमदीप्तमंगलं गोधृताक्तनवपंचवर्तिकं ।
आर्तिकं परिगृहाण चार्तिहन्पुण्यकीर्तिविशदीकृता वने ॥ ११४ ॥

अथ प्रार्थना

हरे मत्समः पातकी नास्ति भूमौ
तथा त्वत्समो नास्ति पापापहारी ।।
इति त्वां च मत्वा जगन्नाथ देव
यथेच्छा भवेते तथा मां कुरु त्वम् ॥ ११५ ॥

अथ नमस्कारः

नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।

सहस्रनाम्नेपुरुषायशाश्वतेसहस्रकोट्ययुगधारिणेनमः ॥ ११६ ॥

इस प्रकार से भगवान को पूजा करके तब तुलसी पूजन करें । तुलसी पूजन की विधि लिखते हैं ।

यथा सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये

तुलस्यां सर्व्वतीर्थानि तुलस्यां सर्व्वदेवताः ।

कार्तिकेमासि तिष्ठन्ति नात्र कार्या विचारण ॥ ११७ ॥

कार्तिक के महीने में श्रीतुलसी जी में सब देवता और सब तीर्थ निवास करते हैं ।

तथा पद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये ।

तुलसीकानने राजन् गृहे यस्यावतिष्ठते ।

तद्गृहं तीर्थरूपं तु न यान्ति यमकिंकराः ॥ ११८ ॥

रोपणात्पालनात्स्पर्शान्निष्णाम्पापहरा तथा ।

तुलसी दहने पापं वाइमनःकायसम्भवम् ॥ ११९ ॥

तुलसी का वन जिस घर में रहता है उस तीर्थ रूप घर को यम के दूत नहीं देखते । वृक्ष लगाने से, पालने से, स्पर्श करने से, तुलसी जी कायिक वाचिक मानसिक तीनों पापों को हर करती है ।

तथा काशीखण्डे दूतान् प्रति यमवाक्यम्

तुलस्यलंकृता ये ये तुलसीनामजापकाः ।

तुलसीवनपाला ये ते त्याज्या दूरतो भटाः ॥ १२० ॥

यमराज दूतों से आज्ञा करते हैं कि हे दूत लोग हमारी बात सुनो, जो तुलसी की कंठ पहिनते हैं, जो लोग तुलसी का नाम जपते हैं, जो लोग तुलसी के वन की रक्षा करते हैं उनको तुम लोग दूर ही से छोड़ देना ।

तथा स्कन्दपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये

तुलसीगन्धमादाय यत्र गच्छति मारुतः ।

दिशा दश च ताः पूताः भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥ १२१ ॥

तुलसी जी की सुगंध लेकर जहाँ जहाँ वायु जाता है वहाँ वहाँ की दसो दिशा और वहाँ के चारों प्रकार के जीव पवित्र हो जाते हैं ।

अब तुलसीपूजा के मंत्र लिखते हैं ।

अथ ध्यानम्

ध्यायेच्च तुलसीं देवीं श्यामां कमलाचरणां ।

प्रसन्नामलकलहार वराभय चतुर्भुजाम् ॥ १२२ ॥

किरीटहारकेयूरकुण्डलानिविभूषितां ।

धवलशुकसंयुक्तां पद्मासननिषेविताम् ॥ १२३ ॥

अथ आवाहनम्

देवि त्रैलोक्यजननि सर्वलोकैकपावनि ।

आगच्छ भगवत्यत्र प्रसीद श्रीहरिप्रिये ॥ १२४ ॥

अथासनम्

सर्वलोकमये देवि सर्वदा विष्णुवल्लभे ।

देवि स्वर्णमयं दिव्यं गृहाणासनमत्र्ययम् ॥ १२५ ॥

अथाघर्यम्

सर्वदेवतलाकारे सर्वदेवनमस्कृते ।

दत्तं पादं गृहाणं तुलसि त्वं प्रसीद मे ॥ १२६ ॥

अथाचमनीयम्

सर्वलोकस्य रक्षार्थं सदा कल्याणकारिणी ।

गृहाण तुलसि प्रीत्या इदमाचमनीयकम् ॥ १२७ ॥

अथ स्नानम्

गङ्गादिभ्यो नदीभ्यश्च समानानमिदं जलं ।

स्नानार्थं तुलसीदेवि प्रीत्या तत् प्रतिगृहयताम् ॥ १२८ ॥

अथ वस्त्रम्

क्षीरोदमथनोदभूते लक्ष्मी चंद्रसहोदरे ।

गृहयतां परिधानार्थमिदं क्षौमाम्बरं शुभे ॥ १२९ ॥

अथ गन्धम्

श्रीगन्धकुंकुमं दिव्यं कर्पूरागरुसंयुतं ।

कल्पितं ते महादेवि प्रीत्यर्थं प्रतिगृहयताम् ॥ १३० ॥

अथ पुष्पम्

नीलोत्पलसुकलहारमालत्यादीनि शोभने ।

पद्मादि गन्धवस्त्राणि पुष्पाणि प्रतिगृहयताम् ॥ १३१ ॥

अथ धूपम्

धूपं गृहाण देवेशि मनोहरि सुमेगलं ।

आज्यमिश्रेण तुलसि भक्त्या भीष्टव्यमिति ॥ १३२ ॥

अथ दीपनम्

अज्ञानतिमिराधेभ्यो ज्ञानदीपप्रदायिनि ।

दत्तः तुर्गासि प्रीत्यर्थं दीपोयं प्रतिगृह्यताम् ॥ १३३ ॥

अथ नेत्रद्वयम्

नमस्तु जगन्नाथा प्राणिनां प्रियदर्शने ।

यथार्थाक्तं मया दत्तं नेत्रद्वयं देवि गृह्यताम् ॥ १३४ ॥

अथ जलम्

नमो भगवते श्रेष्ठे नारायणे जगन्मये ।

तुर्गासि त्वरया देवि पानायं प्रतिगृह्यताम् ॥ १३५ ॥

अथ नाम्बूलम्

अमृतं मृतसम्भूतं तुल्यममृतकृपाणि ।

फलाकपूरसंयुक्तं नाम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ १३६ ॥

अथ फलम्

इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरस्तत्तव ।

अनेन सफला वार्तिभविज्जन्मानि जन्मानि ॥ १३७ ॥

अथ प्रदीक्षा

दीक्षणा दीक्षणाकरं त्वदभक्तानाम्प्रयंकरि ।

कर्णमिदं सदाभक्त्या विष्णुकान्तं प्रदीक्षणाम् ॥ १३८ ॥

अथ नमस्कारः पुण्यांत्राणि

नमानमा जगद्वाच्यं जगद्वाच्यं नमानमः ।

नमानमा जगद्भुज्यं नमस्तु परमेश्वरि ॥ १३९ ॥

नमस्तुलांसि कल्याणि नमो विष्णुप्रिये शुभे ।

नमो माक्षप्रदे देवि नमः संपन्नप्रदायिनि ॥ १४० ॥

तुलसो पानु मां नित्यं सर्वपापदध्यापि सर्वदा ।

कोर्तिना वा स्मृता वापि वा पावर्तानि मानुषानि ॥ १४१ ॥

महाप्रसादजनानि सर्वपापप्रणाशिनि ।

आधिष्ठाप्यहं देवि तुलसि त्वां नमाम्यहम् ॥ १४२ ॥

या दुष्टा निस्त्रिणाशमेवशमना मृगता वापुःपावना ।

रगाणामभिवर्तना निरसना सिक्तान्तकत्रासिनी ॥

प्रत्यासर्तितोषधावना भगवतः कृष्णस्य संगीतिना ।

त्वस्ता तत्त्वरणे विमुक्ताकलादा तस्यै तुलस्यै नमः ॥ १४३ ॥

अथ प्रार्थना

प्रसादं मायै श्वांशं कृपया परया सदा ।

आभारकलासदर्थयै कुरु मे माधवप्रिये ॥ १४४ ॥

इस गीत में तत्त्व तुलसा पूजन करना और तुलसी के पत्र में विष्णु का पूजन करना ।

यथा गाण्ड

गयामयुताननं यन्महानमनं खग ।

तुलसापत्रमकलं तत्फलं कार्तिके स्मृतम् ॥ १४५ ॥

अवृत्त गाथन करने का ही फल है वह कार्तिक में एक तुलसी पत्र चंदन में मिलना है, यह आप श्रीमुख में आजा करने हैं गरुड़ना में ।

इस भाँति तुलसा पूजन करके फिर आँखों की पूजा करना तथा कार्तिक में आँखों की माला भी पहनना ।

यथा स्कान्द कार्तिक माहात्म्ये पुगणसागद्वारे च ।

सर्वदेवमयी धात्री वासुदेवमनःप्रिया ।
 आरोपणीया सेव्या च पूजनीया सदा बुधैः ॥ १४६ ॥
 धात्रीफलविलिप्तांगो धात्राफलविभूषितः ।
 धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत् ॥ १४७ ॥
 धात्रीछायां समाश्रित्य कुर्याच्छादन्त्यो मुने ।
 मुक्तिं प्रयान्ति पितरः प्रसादात्तस्य वै हरेः ॥ १४८ ॥
 कार्तिकेमासि विप्रेन्द्र धात्रीवृक्षोपशोभिते ।
 वने दामोदरं विष्णुचित्रान्नैस्तोषयेद्भिभुम् ॥ १४९ ॥

श्रीवासुदेव के मन की प्यारी सब देव मयी धात्री पंडित लोगों को सदा लगाना चाहिये, सेवा करना चाहिये और पूजना चाहिये । आँवला जिसने देह में लगाया है वा उस की माला पहिनते हैं वा जो लोग आँवला का फल खाते हैं वे मनुष्य नारायण होते हैं । आँवले की छाया में जो श्राद्ध करता है भगवान की कृपा से उस के पितर स्वर्ग में जाते हैं । कार्तिक के महीने में आँवले के बगीचे में भगवान दामोदर की चित्रान्न से पूजा करना इत्यादि बहुत माहात्म्य लिखा है । इससे नित्य आँवला का पूजन करना तथा आँवला के नीचे ब्राह्मण भोजन कराना । इस भाँति आँवला की पूजा करके फेर श्री मद्भागवत इत्यादिक भगवान की कथा सुनना और यथार्थात् वान करके ब्राह्मण भोजन कराना ।

यथा सनत्कुमारसेहितायां कार्तिकमाहात्म्ये
 नृत्यगानादिकार्येषु प्रहरं दिवसे नयेत् ।
 ततः पुराणश्रवणं यामादौ सम्पगाचरेत् ॥ १५० ॥
 सम्पूर्णं कार्तिकं यस्तु संपूज्यामलकीशुभां ।
 राधादामोदरप्रीत्यै भोजयेच्चैव दम्पतीन् ॥ १५१ ॥
 पश्चात्स्वयं सुभुञ्जीत न श्रीस्तस्य क्षयं व्रजेत् ।
 कृत्वामाध्याह्निकं कर्म भुञ्जीतद्विदलोद्भितम् ॥ १५२ ॥
 ब्रह्मांशकसमुद्भूते पलाशे यस्तु भोजने ।
 कुर्यात्कार्तिकमासेसौ विष्णुलोकं प्रयास्यति ॥ १५३ ॥

प्रहर दिन चढ़े तक भगवान के मंदिर में नाचना गाना, फिर आधे पहर कथा सुनना, फिर आँवला के नीचे दंपती ब्राह्मण भोजन कराय के मध्याह्न संध्या करके ऊपर जिन वस्तुओं का निषेध लिखा है उन्हें छोड़ के महा प्रसादी अन्न भोजन करना । जो कार्तिक में नित्य ऐसा करते हैं उन्हें लक्ष्मी त्याग नहीं करती । ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न भया है ऐसे पलाश के पत्ते में जो भोजन करते हैं वे लोग विष्णुलोक पाते हैं ।

इस भाँति दिन का कर्म लिख के अब संध्या का कर्म लिखते हैं । रात्रिकर्म में तीन कर्म मुख्य हैं, एक वा आकाश दीपदान, दूसरा भगवन्मन्दिर वा श्री गंगा जी वा तुलसी के निकट दीपदान, तीसरा नामसंकीर्तन । अब तीनों का फल और विधि लिखते हैं ।

यथा ब्रह्मांडे
 विष्णुवृश्मनियोदद्यात्तुलायां नभदीपकं ।
 अग्निष्टोमसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ १५४ ॥
 तथा निर्णयामृतं निर्णयसिन्धौ च पुष्करपुराणे
 तुलायान्तिनलैलेन सायंकाले समागते ।
 आकाशदीपं योदद्यान्मासमेकं हरिं प्रति ॥ १५५ ॥
 महतीं श्रियमाप्नोति रूपसौभाग्यसम्पदाम् ।

जो भगवन्मंदिर में आकाशदीप देते हैं उन्हें हजार अग्निष्टोम (यज्ञ) का फल होता है । कार्तिक के महीने भर जो लोग श्रीकृष्ण के प्रति संध्या को आकाशदीप देते हैं वे लोग बड़ी लक्ष्मी और बहुत संपदा और रूप सौभाग्य पाते हैं ।

तथा हेमाद्रौ आदिपुराणे

दिवाकरे ऽ स्ताचलामौलिभूते गृहाददूरे पुरुषप्रमाण ।

यूपाकृति यज्ञिय वृक्षदारुमारोप्यभूमावयतस्य मूर्ध्नि ॥ १५६ ॥

यवांगुलच्छिद्रयुतास्तु मध्य द्विहस्तदीर्घा अथ पट्टिकास्तु ।

कृत्वा चषोष्टदलाः कृतास्तु यामिर्भवेदष्टदिशानुसरि ॥ १५७ ॥

तत् कर्णिकायान्तु महाप्रकाशो दीपाः प्रदेया दलगास्तथाष्टौ ।

निवेद्य धर्माय हराय भूम्यै दामोदरायायथ धर्मराज्ञे ।

प्रजापतिभ्यस्त्वथमतपितृभ्यः प्रेतेभ्य एवाथतमः स्थितेभ्यः ॥ १५८ ॥

जब संध्या होय तब घर के पास मनुष्य के बराबर पवित्र लकड़ी गाड़ के उसके ऊपर दो हाथ का बाँस लगाना, उस ऊपर चौमुखा वा अठमुखा दीया रख के आठ बत्ती वा आठ पत्ती पर आठ दीया बालना । इन आठों के निमित्त १ धर्म २ महादेव जी ३ पृथ्वी ४ श्री राधादामोदर ५ धर्मराज ६ प्रजापतिगण ७ पितृगण ८ अंधेरे में रहने वाले प्रंत । इन आठों के निमित्त दीपदान करना और वैष्णवों के मंदिर में ऊँचा बाँस गाड़ के उस पर इस मंत्र से दीपदान करना ।

दामोदराय नमसि तुलायां दोलया सह ।

प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोनन्ताय वेधसे ॥ १५९ ॥

कार्तिकमाहान्त्य में २० वा ९ व ५ हाथ का बाँस लिखा है । इस प्रकार आकाश दीपदान करके फिर भगवन्मंदिर में, राजमार्ग में, गंगा जी के तट पर दीपदान करना ।

यथा सनत्कुमारसंहितायाम्

कार्तिकेमासि सम्प्राप्ते गगने स्वच्छतारके ।

रात्रौ लक्ष्मी समायाति द्रष्टुम्भवनकौतुकम् ॥ १६० ॥

यत्रयत्र च दीपान्सा पश्यत्यब्धिसमुद्भवा ।

तत्रतत्र रतिं कुर्यान्नान्धकारे कदाचन ॥ १६१ ॥

देवालये नदीतीरे राजमार्गे विशेषतः ।

निद्रास्थानं दीपदाना तस्य श्री सर्वतोमुखी ॥ १६२ ॥

कोचकंटकसंकीर्णे विषमे दुर्गमस्थले ।

कुर्याद्यो दीपदानानि नरकं स न गच्छति ॥ १६३ ॥

कार्तिक महीने की रात को जब स्वच्छ तारे निकले रहते हैं तब लक्ष्मी जी घर का कौतुक देखने को आती हैं, सो वह जहाँ जहाँ दिये जलते देखती हैं वहाँ प्रसन्न होकर निवास करती हैं और जहाँ अंधकार देखती हैं उस स्थान को त्याग करती हैं । देवता के मंदिर में, नदी के तीर पर, राजमार्ग में विशेष कर के और निद्रा की जगह दीया बालनेवाले लोगों को लक्ष्मी जी सर्वतोमुख रहती हैं । कोच में, कंटि की जगह में, ऊँची, नीची, सकरी दुर्गम जगह में जो लोग दीपदान करते हैं वे नरक में नहीं जाते ।

इस मंत्र से दीपदान करना —

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं जपहीनं जनाईन ।

व्रतसम्पूर्णतां यातु कार्तिके दीपदानतः ॥ १६४ ॥

और जो विद्यार्थी को पढ़ने के वास्ते तेल देने हैं उन्हें भी बड़ा पुण्य होता है ।

तथा तत्रैव

यो वेदाभ्यासिन दद्याद्दीपार्थं तैलमुत्तमं ।

कार्तिकेमासि सम्प्राप्ते समुक्तिफलभागभवेत् ॥ १६५ ॥

जो कार्तिक में पढ़ने वाले विद्यार्थी को दीये का तेल देने हैं वे मुक्तिफल पाते हैं ।

और कार्तिक सुदी साजमी को कामना होय तो कीर्तवीर्य के वास्ते दीपदान करना, यह सब कामना का पूर्ण करने वाला है ।

यथा प्रयोगरत्नाकरे उंडाभरनत्रेच

ऊर्जे मासि सितपक्षे साप्तम्याभानुवासर ।

श्रवणक्षेत्रे व्यतीपाते विष्णोश्चक्रावतारिणः ।

दीपदानं प्रकर्तव्यं सर्व्वसौख्याविवृद्धये ॥ १६६ ॥

कार्तिक सुदी सप्तमी मंगलवार श्रवण नक्षत्र व्यतीपात के दिन विष्णुचक्र के अवतार को दीपदान करना, इससे सब सौख्य बढ़ता है । इस प्रकार से दीपदान करके पहर रात तक भगवान का गुण गान करना । जहाँ भक्त लोग कीर्तन करते हैं वहाँ श्री भगवान आप निवास करते हैं ।

यथा पादमे कार्तिकमाहात्म्ये

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥ १६७ ॥

नारद जी से आप आज्ञा करते हैं कि नारद हम न तो वैकुण्ठ में रहते हैं और न जों, यों के हृदय में रहते हैं, जहाँ हमारे भक्त गाते हैं हम वहाँ बैठते हैं ।

यह जो ऊपर लिख आए हैं ये कार्तिक के नित्य कर्म हैं । और भी कार्तिक की एकादशी से लेकर के पुनवासी तक के पाँच दिन को भीष्मपंचक कहते हैं इस में इस मंत्र से भीष्मतर्पण करना ।

वैवात्रपदगोत्राय जलं वीराय वर्म्मणे ।

सत्यव्रताय शुचये गांगेयाय महात्मने ।

भीष्मायतद्दाम्यघ्दं आवालब्रह्मचारिणे ॥ १६८ ॥

इस प्रकार पाँच दिन भीष्मपंचक में तर्पण और स्नान करना ।

कार्तिक में गर्गसंहिता सुनने का बड़ा माहात्म्य है ।

यथा —

यः कार्तिकेमासि नृपश्रियायुतो शृणोति शश्वन्मुनिगर्गसंहिताम् ।

स चक्रवर्ती भविता न संशयो नरेन्द्रहस्तोद्भूतपादपादुकः ॥ १६९ ॥

मनोजवैः सिन्धुतुरंगमैर्नवैर्द्विपैश्च विन्ध्याचलसम्भवैः परैः ।

वैतालिकोद्गीतयशा महीतले निपेवितो वारवधूजनैस्मह ॥ १७० ॥

हे लक्ष्मीसेयुक्त नृप, जो कार्तिक में गर्गमुनि की संहिता विधिपूर्वक सुने तो वह ऐसा चक्रवर्ती होय कि राजा लोग उसकी खड़ाऊँ उठावें । हवा के वेग ऐसे सिंधी नए घोड़ों से और ऊँचे और विन्ध्याचल की तराई के हाथियों से और पृथ्वी के वैतालिकों के गीत रूपी अपने यश से और वारांगनाओं से सदा सेवित रहे । इस प्रकार कार्तिक का नित्य कर्म करके पूर्णिमा को यह व्रत समाप्त करें, यथाशक्ति दान दे, ब्राह्मणों का जोड़ा भोजन करावें ।

लोकानाम्पापरूपप्रबलतमतमोनाशनायाशु शक्तं ।

हन्तुन्तोक्ष्णन्त्रितापम्पटुतरमनिशं यः परन्दुःखहेतुः । ।

वातुं शक्तं त्रिलोकैरसुलभममृतं कार्तिकं कर्मवैधं ।

राकाज्योत्सनास्वरूपभिलसतु जगति श्रीहरिश्चन्द्रचन्द्रात् ॥

दोहा

जै जै श्रीवल्लभ सदा, श्री विठ्ठल द्विजराज ।

कृपा करत सब भय हरत, तारत पतित-समाज ॥ १ ॥

नमो नमो कविमुकुटमणि, पितृपदकमल पुनीत ।

जाकी कृपा अपार तैं, समुझि परी यह रीत ॥ २ ॥

जानि परम उपकार पुनि, देखि शास्त्र को पंथ ।

जगहित श्रीहरिचंद किय, कार्तिक विधि को ग्रंथ ॥ ३ ॥

॥ इति ॥

मार्गशीर्ष - महिमा

'मासानाम्मार्गशीर्षोहं'

श्रीमद्भगवद्वाक्यं

रचनाकाल सन् १८७३। बाबू बृजरत्न दास के मुताबिक कार्तिक कर्म विधि के बाद की कृति है। कार्तिक कर्म विधि की सफलता को देखते हुए भारतेन्दु ने इसे लिखा होगा। अगहन महीने के स्नानादि की विधि इस ग्रन्थ में है। इस पुस्तक के सन्दर्भ में उन्होंने एक विज्ञापन भी कराया था। जो आगे विज्ञापनों के क्रम में दिया गया है। एक अन्य लेख से पता चलता है कि ऐसी ही उन्होंने श्रावण मास पर भी कोई पुस्तक लिखी थी।— सं.

मार्गशीर्ष महिमा

(श्लोक, प्राचीन)

नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूल चौराय ।
तस्मै कृष्णाय नमः संसार महोरुहस्य बीजाय ।।

(श्लोक, नवीन)

वज्रजन-सुखकारी । गोपिका-वस्त्रहारी ।।
सकल भुवन भारी । नित्यलीलावतारी ।।
व्रजभुवि-परिचारी । गोप-नारी-विहारी ।।
दनुज-तनु-विदारी । पातुनश्चक्रधारी ।।
सोरठा — प्रातः अगहन न्हात, तिन्ह गोपिन को चोर लै ।
तरु कदंब चढ़ि जात, चोरि चरि नित प्रातही ।।
बोह — रासरसिक फल देन हित, बिनको करत विहार ।
ऐसे प्रभु के पद-कमल, बिनवत बारंवार ।।
सोरठा — पुनि बंदौ सुखरास, भुक्ति मुक्ति पद सहजहीं ।
जगहित अगहन मास, कृष्ण रूप गोपिन सुखद ।।

विदित हो कि इस दास ने परोपकारार्थ जो कार्तिक कर्म विधि लिखी थी, उसे हमारे एक मित्र ने बहुत प्रसन्नतापूर्वक अंगीकार किया। इस हेतु ऐसी इच्छा हुई कि इसी भाँति मार्गशीर्ष की भी विधि लिखी जाय तो बहुत लोकोपकार होगा क्योंकि इस परम पवित्र मास का माहात्म्य बहुत लोग जानते हैं और यह अगहन महीना श्री भगवान का स्वरूप है जैसा आपने श्री मत् भगवद्गीता और श्री मत् भागवत में आज्ञा किया है। और ब्रज की कुमारिकागण ने श्री भगवान के प्राप्ति के अर्थ इसी अगहन का स्नान किया था, जिससे उन्हें श्री कृष्ण मिले। इस अगहन का माहात्म्य स्कंदपुराण में लिखा है, जिसमें से नित्य विधि अध्याय क्रम से लिखते हैं। ब्रह्मा भगवान से पूछते हैं कि आपने श्रीमद्गीता या श्रीभागवत में आज्ञा किया है कि अगहन हमारा स्वरूप है, इस हेतु हम उसका माहात्म्य अच्छी भाँति सुना चाहते हैं।

श्री भगवानुवाच ।

अन्यैर्धर्मादिभिः कृत्वा गोपितं मार्गशीर्षकं ।

मत् प्राप्तेः कारणं मत्वा देवैः स्वर्गनिवासिभिः ।।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि सब धर्मों करके मार्गशीर्ष को स्वर्गनिवासी देवताओं ने हमारे प्राप्ति का कारण जान के छिपाय दिया।

येकेचित्पुण्यकर्माणो ममभक्तिपरायणाः ।

तेषामवश्यं कर्तव्यं मार्गशीर्षमग्रापहं ।।

परंतु जो कोई पुण्य कर्मा हमारे भक्त होयें उनको हमारे स्वरूप अगहन मास का व्रत अवश्य करना चाहिए।

उपस्युत्याय योमर्त्यः स्नानं विधिवदाचरेत् ।

तुष्टोहं तस्य यच्छामि आत्मानमपि पुत्रक ॥४॥

हे पुत्र, अगहन में जो चार घड़ी रात रहे उठ के नहाते हैं उनको हम अपनी आत्मा भी दे देते हैं ।।

इत्यादि प्रथमाध्याये ।

●
श्री भगवान आज्ञा करत हैं ।

अब स्नान की विधि लिखते हैं। बड़े सबरे उठ के गुरु को नमस्कार करके हमारा ध्यान करे और सहस्रनाम इत्यादि पढ़ के, गाँव के बाहर मल न्याग करके, शौच से शुद्ध होके, आचमन करके, दंतुवन करके स्नान करे। तुलसी जी के जड़ की मिट्टी और उसका पत्ता लेकर के मूल मंत्र पढ़ के वा गायत्री पढ़ के शरीर में लगाय के स्नान करे। स्नान की समय इन मंत्रों से श्री गंगाजी का आवाहन करे।

मंत्र

विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णु देवता ।

त्राहि पापात्समस्तान्माजन्ममरणांतिकात् ।।

तिस्रः कोट्योर्धं कोटिश्चतीर्थानां वायुरब्रवीत् ।

दिविभुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्तु जान्हवी ।।

नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलनीति च ।

दक्षापृथ्वी च बिहगाविश्वनाथाशिवासती ।।

विद्याधरी सु प्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी ।

क्षेमावती जान्हवी च शान्ताशान्तिप्रदायिनी ।।

एतानि पुण्य नामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत् ।

भवेत्सन्निहितातत्र गंगा त्रिपथगामिनी ।।

इन मंत्रों को पढ़ के फिर श्री गंगा जी की मृत्तिका इस मंत्र से सिर में लगाना ।

मंत्र

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते बसुन्धरे ।

मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतकृतं ।।

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।

नमस्ते सर्व देवानांप्रभवारण सुव्रते । ।

इस मंत्र से मृत्तिका शिर में लगाय के स्नान करे । स्नान करके जल में वस्त्र न निचोड़े । फिर आचमन करके कपड़ा पहन के फिर आचमन करे । फिर संध्या तर्पण आरंभ करे, तिसमें पहले उर्ध्वपुंड्र धारण करके फिर संध्यादिक कर्म करे । इत्यादिक द्वितीयाध्याये ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि तुलसी की मृत्तिका वा गोपीचंदन वा प्रसादी कुंकुम चंदनादि से तिलक लगाने का बड़ा पुण्य है और गोपीचंदन से शंख चक्रादिक चिन्ह हृदय बाहुमूल इत्यादिक अंगों में धारण करना ।
इत्यादि तृतीयाध्याये ।

श्री भगवान कहते हैं कि तुलसी के काठ की माला जो धारण करते हैं वे चाहे भले हों चाहे बुरे हमारे ही होते हैं । तुलसी की काठ की वा आँवले की माला जो लोग पहिनते हैं वे हमारे स्वरूप हैं । इस भाँति तिलक धारण करके, फिर संध्या करके, गुरु को भेंट करके, साष्टांग दंडवत करके, हमारी मानसी पूजा करके फिर विधि पूर्वक षोडशोपचार पूजा करे ।

इत्यादि चतुर्थाध्याये ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि जो लोग हमें अगहन में पंचामृत से स्नान कराते हैं वे लोग कोटिन गोदान का फल पाते हैं । जो लोग शंख से हमें स्नान कराते हैं वे जीवनमुक्त हैं । जिनके घर शंख की पूजा होती है वे धन्य हैं ।

इत्यादि पंचमाध्याये ।

आप कहते हैं कि जो लोग हमारे सामने घंटा बजाते हैं उनकी पूजा का करोड़ गुना फल होता है क्योंकि घंटा पर गरुड़ जी रहते हैं और गरुड़ जी के पक्ष से सामवेद निकलता है, इससे जो पूजा की समय घंटा बजाता है उसको बहुत फल होता है । जो लोग हमारी पूजा में नृत्य गान इत्यादिक करते हैं वे लोग अपने पित्रों के सहित वैकुंठ पाते हैं । जो लोग हमें तुलसी के काठ का चंदन चढ़ाते हैं वे हमारे प्रिय होते हैं ।

तुलसी दमनकं मङ्गयं दत्त्वा यस्सेवते पुनः ।

मार्गशीर्षे सदा भक्त्या सलभेद्भान्छितं फलं । । १ । ।

इत्यादि षष्ठाध्याये ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि जो लोग हमें अगहन में कमल का फूल चढ़ाते हैं वे लोग हमारे बल्लभ होते हैं । हमको बिना सुगंधि के फूल और कीड़े का चाटा फूल नहीं चढ़ाना । सब फूलों में जाती फूल का विशेष माहात्म्य है, इस हेतु आप आज्ञा करते हैं ।

यथा —

सर्वासाम्पुष्पजातीनां जातीपुष्पमिहोत्तमं ।

जातिपुष्पसहस्राणायच्छेन्माला सुशोभनां । ।

मङ्गययोविधिवद्वात्तस्यपुष्पफलशृणु ।

कल्पकोटि सहस्राणी कल्पकोटिशतानि च । ।

मत्पुरेवसते श्रीमान् ममतुल्य पराक्रमः । ।

सर्वेषांपत्र पुष्पाणां तुलसी मम बल्लभा ।

अन्येषामपिदेवानां न निषिद्धाकदाचन । । २ । ।

सब फूलों में जातीफूल की विशेष महिमा है । हजार जाती फूल माला जो हमको समर्पण करता है वह हजार करोड़ कल्प और सौ करोड़ कल्प हमारे लोक में हमारे तुल्य पराक्रम होकर वास करता है । और सब फूलों से तुलसी हमको बहुत प्यारी है दूसरे देवताओं की पूजा में भी तुलसी निषिद्ध नहीं है ।

इत्यादि सप्तमे ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि तुलसी हमको अत्यंत प्रिय है ।

यथा —

श्री मतुलस्यार्चयते सकृद्दिमांपत्रैः सुगन्धैर्विमलैरखंडितैः ।

यत्तस्यपापंवदसंस्थितं तदानीरीक्षयित्वा परिमाजयेद्यमः । ।

तुलसीनयेषां ममपूजनार्थं सम्पादितैकादशपुण्य वासरे ।

धिग्योवनं जीवितमर्थं संतति तेषामुखंनेहचदृश्यते परैः । ।

जो कोई श्री तुलसी से हमारी पूजा करता है और उसके विमल और बिना टूटे दल हमको समर्पण करता है उसके हृदय का पाप यमराज दूर कर देते हैं । जिन लोगों ने एकादशी के दिन हमारी तुलसी से पूजा नहीं किया उनके जीवन और काम और उनके संतान धिक्कार योग्य हैं और मुँह देखने के योग्य नहीं है ।

अगहन के महीने में दीपदान का बहुत फल है । यथा —

यः करोति सहोमासे कपूरैण च दीपकं ।

अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुदरेत । ।

घृतेन चायतैलेन दीपयोग्वालयन्मरः ।

सहोमासे ममाग्रंतु तस्यपुण्यफलं शृणु । ।

विहायसकलपापं सहस्रदित्यसन्निभः ।

ज्योतिष्मता विमानेन ममलोके महायते । ।

जो कोई अगहन में कपूर का दीया बालता है उसको अश्वमेध का फल मिलता है और अपने कुल का उद्धार करता है । घी से अथवा तेल से जो लोग अगहन में हमारे सामने दीया बालते हैं वे लोग सब पापों से छूट के हजार सूर्य समान ज्योति पाते हैं और बड़े ज्योतिमान विमान पर बैठ के हमारे लोक जाते हैं ।

इत्यादि अष्टमे ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि अगहन में जो लोग हमारी प्रदक्षिणा करते हैं और जो हमें अष्टांग दंडवत करते हैं वे लोग स्वर्ग में निवास करते हैं । यथा

प्रदक्षिणां दंडपातं यः करोति सदा मम ।

सहोमासि विशेषेण हयाकलाम्बसतेदिवि । ।

पद्भ्यां कराम्भ्यां जानुभ्यां उरसां शिरसा तथा ।

मनसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टांग उच्यते । ।

जो लोग हमको दंडवत और प्रदक्षिणा कहते हैं वे लोग कल्प भर स्वर्ग में निवास करते हैं । पैर से १ । हाथ से २ । जंघा से ३ । छाती से ४ । शिर से ५ । मन से ६ । वचन से ७ । और दृष्टि से ८ । नमस्कार करने को अष्टांग दंडवत कहते हैं अर्थात् आठों अंग झुकें और आठों अंग से नमस्कार करें उसको साष्टांग दंडवत कहते हैं ।

इत्यादि नवमे ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि एकादशी का व्रत और जागरण जो लोग करते हैं वे हमको अत्यंत प्रिय हैं और जागरण में जो लोग दीपदान इत्यादि करते हैं वे हमारे परम प्यारे हो जाते हैं ।

यथा —

यः पुनः कुरुते नृत्यं दीपं गानं च पूजनं ।

न तत् क्रतुशतैः पुण्यं व्रतैर्दीनशतैरपि । ।

जो भक्त हमारे सामने नाचते हैं, दीपदान करते हैं, हमारा कीर्तन करते हैं, पूजा करते हैं उनके पुण्य के बराबर न सौ यज्ञ का पुण्य है और न सौ व्रत और दान का पुण्य है । इत्यादि द्वादशे ।

अब कौन देवता की पूजा करना चाहिए सो आप आज्ञा करते हैं कि अगहन में कीर्ति और केशव की पूजा करना चाहिए और सपत्नीक ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । यथा —

सहोमासे च वै देवी कीर्तियुक्तो हि केशवः ।

तस्य पूजा प्रकृतव्यायापूर्वप्रभाषिता । ।

ब्राह्मणं केशवं कुर्यात्तत्पत्नीकीर्ति-सन्निकाः ।

दंपती विधिवत्पूज्यौ वस्त्राभरणधेनुभिः । ।

दम्पत्योः पूजने वत्सपूजितो हंसदारकं ।

तस्मादवश्यं सम्पज्यौ दम्पती मम तुष्टये । ।

अगहन के महीने में कीर्ति देवी और केशव देवता की पूजा षोडशोपचार से करना । ब्राह्मण को केशव मानना और ब्राह्मण पत्नी को कीर्ति समक्ष के वस्त्र गहना गऊ से दोनों की पूजा करना । दंपती ब्राह्मण के पूजा से हमारी और लक्ष्मी दोनों की पूजा होती है, इस हेतु हमारे तुष्ट होने के अर्थ दंपती की पूजा अवश्य करना ।

इत्यादि चर्तुदशे ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि अगहन में हमारे प्रिय कंदव वृक्ष की पूजा अवश्य करना । यथा —

मार्ग शुक्ले प्रतिपदिकदम्बपूजयेत्तु यः ।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुमान् प्राप्नोत्यसंशयः । ।

मार्गशीर्षे सिताष्टम्यां भोजनं च कदम्बके ।

सिकथे सिकथे च गोदानं पुमान्प्राप्नोत्यसंशयः । ।

एकादश्यां व्रतंकुर्यात् द्वादश्यामरुणोदये ।

कदम्बम् पजयेद्भक्त्या साक्षाच्छ्रीकृष्णदर्शनं । ।

अखंडं दीपकंकुर्यान्नीपवृक्षे हरिप्रिये ।

सर्वान् कामानवाप्नोति वशीकरणमुत्तमं । ।

मार्गशीर्षेत्रयोदश्यां योनीपम्पयसाऽचर्येत् ।

विन्दुनाविन्दुना चैव अश्वमेध फलं लभेत् । ।

मार्गशीर्षे चतुर्दश्यान्दधिनानीपमर्चयेत् ।

इह सन्तानं वृद्धिश्च परत्र परमंपदं । ।

मार्गशीर्ष्याम्पौर्णमास्यांगुञ्जाहारोऽप्यनीपकं ।

वेपुष्टये दानमालाभिः कृष्णस्वस्य वशो भवेत् । ।

इदं रहस्यं गोपनीयं पुत्रं सर्व्वतिमनामम । ।

अगहन सुदी प्रतिपदा को जो कदम्ब की पूजा करते हैं वे आयुष्य, आरोग्य, ऐश्वर्य पाते हैं । अगहन सुदी अष्टमी को जो कदम्ब के नीचे भोजन करते करते हैं वे एक एक ग्रास में गोदान का फल पाते हैं । एकादशी का व्रत करके द्वादशी को सबेरे जो कदम्ब की पूजा करता है उसको साक्षात् श्रीकृष्ण का दर्शन होता है । जो कदम्ब के सन्मुख अखंड दीपदान करता है उसको सब कामों का फल होता है । यह हमारा वशीकरण है । अगहन की तेरस को जो कदम्ब को दूध चढ़ाते हैं, उनको एक एक बूंद में अश्वमेध का फल होता है । मार्गशीर्ष की चौदस को जो कदम्ब को दही चढ़ाते हैं, उनको इस लोक में सतान और उस लोक में परम पद मिलता है अगहन सुदी पुनवासी को जो लोग कदम्ब को गुंजा की माला और बनमाला समर्पण करते हैं, साक्षात् श्रीकृष्ण उनके वश में हो जाते हैं ।

अब इससे बढ़ के और क्या फल होगा कि थोड़े साधन में और साक्षात् श्रीकृष्ण वश हो जायँ । ऐसा कौन होगा जो इस छोटे साधन को बड़े फल की इच्छा से न करे । यह केवल श्री भगवान की कृपा है कि हम जीवों के हेतु उसने ऐसे छोटे छोटे साधन बनाए हैं । देखो कदम्ब को एक दिन गुंजा की माला चढ़ाने से आप वश में हो जाते हैं, यह केवल उनकी दीन दयालुता है । अहो, ऐसा कौन मूर्ख होगा जो इस बात को जान के भी श्री कृष्ण को वश करने की इच्छा न करेगा ।

श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि हे पुत्र इस रहस्य को आत्मा से अधिक गुप्त रखना ।

इत्यादि षोडशे ।

यह स्कंद पुराण के मार्गशीर्ष माहात्म्य का सारांश यहाँ पर लिखा गया है, जिससे सज्जनों को संतोष होगा ।

अब अगहन में किस दान की विशेष महिमा है सो लिखते हैं ।

यथा —

तिलपात्रं तु यो दद्यान्मार्गशीर्षे सकांचनं ।

कुलानां नरकास्थानां तिलसंख्यासमुदरेत् । ।

मार्गशीर्ष के महीने में सोना समेत जो तिलपात्र दान करते हैं वे लोग जितने तिलदान करते हैं उतने कुलों का उद्धार करते हैं ।

पुनः यथा —

स्वशक्त्याघृतपात्रं तु सहिरण्यं प्रदापयेत् ।

यमलोकस्य पंथानं स्वप्नोऽपि न स पश्यति ॥

जो लोग अपनी शक्ति के अनुसार सोना समेत घी का पात्र दान करते हैं वे लोग सपने में भी नरक का रास्ता नहीं देखते । इत्यादि ।

अगहन के महीने में कपड़ा और जूता दान करने का बड़ा पुण्य है और अगहन महीने में तुलसी के सामने ब्राह्मण को खीर खिलाने का महाफल है ।

यथा —

तुलसीसन्निधौविप्रान् भोजयेद्यस्तुपायसैः ।

एकेतुभोजितेमार्गे कोटिर्भवतिभोजिता । ।

अगहन के महीने में तुलसी के सन्निधान जो लोग एक ब्राह्मण को खीर खिलाते हैं वे लोग कोटि ब्राह्मण भोजन का फल पाते हैं ।

और भी अगहन में पूजा की सामग्री और शालिग्राम दान करने की आज्ञा है ।

यथा —

कुंकुमं हयगंरुचैव चंदनं गुग्गुलं तथा ।

पूजाद्रव्यं तथा चान्यं मार्गशीर्षे प्रयच्छति । ।

विप्राय वेदविदुषे वैष्णवाय विशेषतः ।

सगच्छेन्नामकेलोकं संयुतः कुल कोटिभिः ।

शालिग्रामशिलारम्यां मार्गशीर्षे द्विजातये ।

ददाति हेम सहितादिव्यवस्त्रैश्च वेष्टिता । ।

रत्नपूर्णाम्बुसुमतीं सशैल वन काननां ।

दत्वा यत्फलमाप्नोति तेन तत् फलमाप्नु यात् । ।

शालिग्रामं तथा चक्रं शंखं घंटां तथैव च ।

ददाति तस्य पुण्यस्य संख्याकर्तुं न शक्यते । ।

रोली अगर चंदन गुग्गुल और भी पूजा की सामग्री जो लोग वेदपाठी ब्राह्मणों को और विशेष करके वैष्णव को अगहन में देते हैं, वे लोग अपने करोड़ कुल के सहित हमारे लोक में जाते हैं । जो लोग अगहन में शालिग्राम की रम्य शिला सोना और वस्त्र समेत ब्राह्मण को देता है वह रत्नपूर्ण पृथ्वी पहाड़ वन समेत दान करने का फल पाता है और शालिग्राम, गोमती चक्र, शंख घंटा जो लोग देते हैं उनके पुण्य की संख्या नहीं कर सकते । इत्यादि

अगहन में स्त्रियों को सोहाग पेटारी दान करना चाहिए ।

यथा —

मासिमार्गशिरेतुस्त्री कुंकुमं मौक्तिकानि च ।

सिन्दूर कज्जलं चापि हेमान्याभरणानि च । ।

सुगन्धीन्यपि वस्तूनि ताम्बूलं रंजिताम्बरं ।

प्रयच्छति द्विजातिभ्यो तस्य पुण्यफलं शृणु । ।

पतिव्रता पुत्रिणी च सुभगा जन्मजन्मनि ।

स्वप्नेपि मर्तुदुःखं सानपश्यति कदाचन । ।

अगहन में रौली, मोती, सेंदुर, काजल, सोना गहना, चूड़ी, सुगंध, पान, रंगी साड़ी, और भी ऐना, कंधी, टिकुली इत्यादिक सोहाग की वस्तु जो स्त्रीदान करती हैं वह पतिव्रता होती हैं । उनके पुत्र जीते हैं, जन्म जन्म में भाग्यवान् होती हैं और वह सपने में भी पति का दुःख नहीं देखतीं । अब मार्गशीर्ष में और अन्य

देवताओं के जो व्रत हैं वह लिखते हैं ।

अगहन वदी तीज को स्त्रियों को सौभाग्य सुंदरी का व्रत सौभाग्य का देनेवाला है । इसकी विशेष विधि ब्रतार्क आदि ग्रंथों में लिखी है । इत्यादि ।

मार्गशीर्ष कृष्ण ११ को उत्पन्ना एकादशी का व्रत है । भक्त्युपुराण में इसकी कथा है । अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा है और श्रीकृष्ण ने आज्ञा किया है कि इस एकादशी को एकादशी का जन्म है और यह बड़ी पुनीत एकादशी है ।

इत्यादि मातृस्ये उत्पन्नाव्रतं ।

इसी अगहन वदी ११ को वैतरणी व्रत होता है । इसमें गोपूजन और गोदान करना चाहिए । यह कथा भविष्योत्तर पुराण की हेमाद्रि ग्रंथ में लिखी है । राजा युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा है । उन्होंने उसका विधान और फल कहा है ।

एकादशी तिथिः कृष्णामार्गशीर्षगतानूप ।

तामासाद्यनरः सम्यग्गृहणीयान्नियमं शुचिः । ।

एकादशी तिथिः कृष्णानाम्ना वैतरणी शुभा ।

साव्रतेनसदाकार्या नक्तावाचोपवासिनी । ।

मध्यान्हेतुनरः स्नात्वा नित्यनिर्वर्तित क्रियाः ।

रात्रौ सुरभिमानाय कृष्णमेर्चयथाविधि । ।

इत्यादि भविष्योत्तरे वैतरणीव्रतं

इसी एकादशी को कृष्ण एकादशी का व्रत होता है । यह व्रत वाराह पुराण में पृथ्वी ने श्री वाराह जी से पूछा है सो आपने आज्ञा किया है कि इस कृष्ण एकादशी को व्रत करना तिलापात्र दान करना ।

समस्तपातकहरं स्वर्गदंसर्वकामदं ।

न समं कृष्णद्वादश्या किञ्चिदस्तिपरं भुवि । ।

मार्गशीर्षे कृष्णपक्षे दशम्यामेकभुक्तरः ।

एकादश्यामुपवसेत् कृष्णस्याचा समाचरेत् । ।

स्नात्वाच कृष्णैस्तु तिलैः प्रभाते दद्याच्चसम्यक् तिलयुक्त पात्रं ।

नमोस्तुकृष्णाय पितुश्चमातुः हत्वात्यघं प्रापयतोस्वगत्यै । ।

इत्यादि वाराह पुराणे कृष्णव्रतं ।

अगहन वदी अमावस्या को गौरी तपोव्रत सौभाग्य बढ़ने के हेतु करना चाहिए । यह अंगिरा ने कहा है कि इस व्रत के करने से स्त्री को रूप-सौभाग्य मिलता है । यथा —

आदौमार्गशीरेमासिहयमावस्यादिने शुभे ।

गृहणीयान्नियमं तत्र दन्तधावन पूर्वकं । ।

इस दिन सौभाग्य वस्तु दान करना और सुवासिनी को भोजन कराना चाहिए । इत्यादि अंगिरोक्त गौरीतपोव्रतं ।

इसी अगहन की अमावस्या को स्त्रियों को सौभाग्य वृद्धि के हेतु महाव्रत लिखा है । यह हेमाद्रि ग्रंथ में कालिकापुराण की कथा लिखी है । यथा —

ततोमार्गशीरेमासि प्रतिपद्य परेहनि ।

उपवसेत् स्वगुरुम् पृच्छय महादेवंस्मरेन्मुहुः । ।

एवम्व्रतं महच्चैव ब्रह्मघ्नेप्यघमर्षणं ।

घनमायुप्रदन्नित्यं रूप सौभाग्यदं परं । ।

इत्यादि कालिका पुराणे ।

मार्गशीर्ष सुदी ५ को नाग की पूजा करना, यह बात हेमाद्रि ग्रंथ स्कंद पुराण में लिखी है । यथा —

शुक्लामार्गशीरे या चश्रावणेया च पंचमी ।

स्नानेनैव बहुफला नाग लोकप्रदायिनी । ।

इत्यादि स्कान्दे नागपंचमी ।

अगहन सुदी ६ स्कंद पांठी या चम्पापंठी है। इसमें सूर्य और स्कंद की पूजा करना। इस मंत्र से कार्तिकेय की पूजा करना।

सेनाविदारकस्कंद महासेन महाबल।

रुद्रोमांगत्रयडवक्त्रं गंगागर्भनमोस्तुमे॥

इत्यादि दिवोदासीये चम्पापंठी।

अगहन सुदी ७ सूर्य तीर्थ में नहाना और सूर्य की पूजा करना और श्रीयमुनाजी में वा पंचगंगा में स्नान करना, यह स्कंद पुराण के मार्गशीर्ष माहात्म्य में लिखा है।

यथा —

मार्गशीर्षेतुयाशुक्ला सप्तमी भानुसंयुता।

कतंब्यासा प्रयत्नेन सूर्यपर्व शताधिका॥

तस्यांदत्तहुतं त्रपत्तं तपस्तप्तं कृतंचयत।

अक्षयंतद्विजानीयाद्यमुनायां संशयः॥

इत्यादि स्कंदे सूर्य सप्तमी

अगहन सुदी ११ मोक्षा एकादशी, हेमाद्रि ग्रंथ में भविष्योत्तर का वाक्य लिखा है। इसमें जागरण और दीपदान का फल विशेष है।

इत्यादि मोक्षाव्रतं

अगहन सुदी १२ को मत्स्य पूजा करना। इस दिन मत्स्य भगवान का उत्सव है। यह बात स्कन्दपुराण के एकादशी माहात्म्य में लिखी है।

यथा —

ततः प्रभात समये कार्यं मत्स्योत्सवंबुधैः। इत्यादि।

अगहन सुदी १४ को पिशाच मोचन तीर्थ पर आद करना, यह त्रिस्थलीसेतु में लिखा है। इसमें आद से पित्रों का मोक्ष होता है।

इत्यादि निर्णयसिन्धौ पिशाचमोचने आदः।

अगहन सुदी १५ को दत्तात्रेय जन्म है, यह बात स्कंदपुराण के सहायद्रि माहात्म्य में लिखी है। इससे दत्तात्रेय की पूजा और उनका दर्शन करना।

यथा —

मार्गशीर्षे तथा मासिदशमेहिनमुनिर्मले।

मार्गशीर्षे पूर्णिमास्या मृगशीर्षयुते बुध॥

जनयामास देदीप्यमानं पुत्रं सती शुभं।

तस्मिन्पुण्यमागं दृष्ट्वा अत्रिर्नामाकरोत्सर्व॥

दत्तवान्स्वस्य पुत्रस्यदत्तात्रेयमितीश्वरम्।

इत्यादि स्कंदे दत्तात्रेयजन्मोत्सवः।

इसी अगहन सुदी १५ का जो कुछ दान पुण्य स्नान वन पड़े करना उचित है। इस पूर्णिमा के समान कोई पर्व नहीं है, यह बात स्कंदपुराण के मार्गशीर्ष माहात्म्य में लिखी है।

यथा —

स्नाने दाने तथा पूजा पूर्णायाग्रकरोति यः।

षाष्टि वर्ष सहस्राणि रौरवे परिपच्यते॥१॥

गान्धर्वाभूमिशने च वस्त्रान्नादि च यद्भवति।

मार्गशीर्षे पूर्णिमायादानेस्यादक्षयं फलं॥

अगहन की पुनवासी को जो स्नानदानादिक नहीं करते वह साठ हजार वरस रौरव में बास करते हैं।

अगहन सुदी १५ का जो कुछ दान करना है वह अक्षय होता है।

अगहन में श्रीमद्भागवत मंत्र का बड़ा माहात्म्य है। यथा मार्गशीर्ष माहात्म्ये।

श्रीमद्भागवतं नामपुराणं ब्रह्म सम्मितं ।
 शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो ममसन्तोषकारणं ।।
 यावद्विनानि हे पुत्रशास्त्रं भागवतं कली ।
 तावत्कुर्वन्ति पितरः स्वर्गत्वमृत भोजनं ।।
 यत्र यत्र चतुर्वक्त्र श्री मद् भागवतं भवेत् ।
 गच्छामि तत्रतत्राहं गौर्यथासुतवत्सला ।।
 इत्यादि श्रीमद्भागवत माहात्म्यं ।

मार्गशीर्ष में गोपी गोविंद तीर्थ की यात्रा और गोविन्द नाम स्मरण यही करना चाहिए ।
 यथा वायु पुराणे लक्ष्मीसंहितायां काशी माहात्म्ये ।
 गोपी गोविन्द तीर्थं तु गोपी गोविन्दसंज्ञकं ।
 तत्रमार्गशिरैमासिमहिमाबहु गीयते ।।
 इति मार्गशीर्ष महिमा

मार्गशीर्ष महिमा चतुर्वर्ग, मोक्षादिक पाने का बहुत सहज उपाय ।

हम लोग माघ वैशाख कार्तिकदि नहाने को अति पवित्र जानकर स्नान दानादिक करते हैं परंतु हम लोग नहीं जानते कि एक महीना इन सभों में महा पुनीत और थोड़ेसाधन में बहुत फल का देनेवाला वच गया है और उसमें हम लोग कुछ स्नानदानादिक नहीं करते और जिसके प्रसिद्धि के वास्ते हम बड़े आनंद से यह इशितहार देते हैं ।

वह गोप्यमासा जिसका माहात्म्य सब शास्त्रों में बड़े आदर से कहा है वह मार्गशीर्ष अर्थात् अगहन का महीना है, जिसका गुण गान करने से महात्मा लोग तृप्त नहीं होते और यह महीना सब महीनों का राजा और भगवान का स्वरूप है ।

मासानाम्मार्गशीर्षोऽहं । श्री कुमारिका गनों ने इसी के स्नान से श्रीकृष्ण को पाया था और स्कंद पुराण में इसकी बड़ी स्तुति लिखी है । यथा स्कंदे ब्रह्माप्रति भगवदाक्यम् ।

सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषुयत्फलं ।
 सहस्राप्नोतितत्सर्व्वं मार्गशीर्षं कृते सुत ॥ १ ॥
 यज्ञाध्ययनदानाद्यैस्सर्वतीर्थावगाहनैः ।
 संन्यासेन च योगेन नाहम्बुध्योभवाभिच ॥ २ ॥

यह श्री भगवान ने श्रीमद् भागवत और श्री भगवद् गीता में श्री मुख से आज्ञा किया है कि सब महीने में अगहन हमारा स्वरूप है । और स्कंदपुराण में भी ब्रह्मा से श्री भगवान फिर आज्ञा करते हैं । यथा —

स्नानेन दानेनच पूजनेन होमे विधाने तपआदितश्च ।
 वश्यो यथामार्गशिरैस्वमासि तथा न चान्येषुहिगर्भमुक्त ॥ ३ ॥
 माघाव्द्यतगुणं पुण्यं वैशाखे मासि लभ्यते ।
 तस्मात् सहस्रगुणितं तुलासंस्थे दिवाकरे ॥ ४ ॥
 तस्माच्च कोटि गुणितं वृश्चिकस्थे दिवाकरे ।
 मार्गशीर्षेऽधिकं तस्मात्सर्व्वदा मम बल्लभ ॥ ५ ॥

आप कहते हैं कि हे गर्भमुक्त ब्रह्मा, हम स्नान, दान, पूजन, होम, विधान इत्यादिक से वश नहीं होते, हम मार्गशीर्ष-स्नान से वश होते हैं । माघ में वैशाख का सौ गुना पुण्य है और वैशाख से हजार गुना पुण्य कार्तिक में है और कार्तिक से करोड़ गुना पुण्य वृश्चिक के सूर्य में, और अगहन में इससे भी अधिक पुण्य है ।

इस हेतु आप लोगों को इस अगहन के महीने में जो कुछ बन सके स्नान, दान तुलसी-कदंब-पूजन करना चाहिए ।

स्कंदपुराणे मार्गशीर्ष माहात्म्ये ।

मार्गशीर्षं न कुर्वन्ति ये नरा पाप मोहिताः ।

पाप रूपाहि ते ज्ञेया कलि काले विशेषतः ॥

धन्यास्ते कृतिनो ज्ञेया ये यजन्ति जनार्दनम् ।

कर्मणा मनसा वाचा भक्तितश्च भजन्ति ये ॥ ७ ॥

मार्गशीर्षे महापुण्या मथुरा काशिका यथा ।

मथुरा स्नातु कामस्तु गच्छतस्तु पदे पदे ॥ ८ ॥

निराशानि व्रजंत्येव पातकानि न संशयः ।

गोदादं स्वर्णदानं च वस्त्रान्नादि च यद्भवेत् ॥ ९ ॥

पौर्णमास्यां सहोमासे दाने स्यादक्षयं यफलम् ।

सा पौर्णमासी लभ्येत गंगायां यदि भाग्यतः ॥ १० ॥

स्नानादेव फलं तत्र यज्ञकोटिसमं भवेत् ।

पूजयेत् संस्मरेद्यस्तु कदम्बं सर्वकामदम् ॥ ११ ॥

सर्वान्कामानवाप्नोति इहामुत्र न संशयः ।

कदम्ब मूलसंभूता मृदं देहे विभर्ति यः ॥ १२ ॥

सर्वतीर्थार्थदिकं पुण्यं लभते मानवो भुवि ।

जो पाप मोहित लोग मार्गशीर्ष स्नान नहीं करते उन्हें इस कलियुग में विशेष करके पाप रूप जानना । वे सुकृती लोग धन्य हैं जो तन, मन, धन, वाणी और कर्म से श्री भगवान की सेवा करते हैं । अगहन के महीने में मथुरा और काशी में महाफल होता है । जो लोग मथुरा स्नान करने जाते हैं, उनके पाप भाग जाते हैं । अगहन की पुनवासी को सब दान अक्षय होते हैं । और भाग्य से यह पुनवासी में जो श्री गंगा स्नान बन जाय तो सैकड़ों करोड़ पुनवासी का फल मिले । जो अगहन में कदम्ब की पूजा करते हैं उनके सब काम सिद्ध होते हैं । जो लोग कदंब के जड़ की मिट्टी का तिलक करते हैं, उनको सब तीर्थ स्नान का फल मिलता है ।

सब दिन स्नान न बनै तो पीछे के पाँच दिन हरिपंचक में अवश्य स्नान करे । यथा पाद्ये-स्कंदे च ।

हरिपंचकं विख्यातं सर्वं लोकेषु सिद्धिम् ।

नारीणां च नरादीनां सर्वदुःख निवर्हणम् । ।

इस अगहन के महीने में आप लोगों से जो कुछ बनै स्नान दानादिक कीजिए ।



माघस्नान-विधि

रचनाकाल सन् १८७३। — सं.

माघ स्नान विधि

भरित नेह नव नार नित, बरसन मुरस अथार ।

जयति अपूरच धन कोऊ, वासि नावन मन मार ॥१॥

माघ-स्नान पूस सुदी एकादशी वा पूनम से प्रारंभ करके माघ सुदी द्वादशी वा पूनम का समाप्त करना चाहिए । माघ में भूला नहीं खाना । नहाने की विधि के अनुसार स्नान करना ।

माघ स्नान के मंत्र

सुख नरिद्वय नाशाय श्री विष्णास्नापणाय च ।

प्रातः स्नान करोम्यद्य माघ पाषाविनाशनमे ॥२॥

मकरस्थे रथौ माघ गोविन्दाच्युत माघध ।

स्नानानन म देव यथात्तफलदा भव ॥३॥

सूर्य का अर्ध दिन का मंत्र

सवित्र प्रसवित्रच परन्ध्राम जले मम ।

त्वतेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा ।

माघ स्नान का समय ठीक सूर्य उदय होने के पीछे पड़ने किसी का मन है कि अरुणाक्षय में नहाना । जो साग माघ न नहाया जाय सके तो तीन दिन नहाना । मकर संक्रांति, रथसप्तमी और माघी पूनम ये तीन दिन । या माघ बदे नेरस चौदस, अमावस । या माघ सुदी दसमा, एकादशी, द्वादशी वा संक्रांति के पीछे तीन दिन । पर मुख्य तीन दिन नेरस से अमावस तक हो है । माघ नहाकर उसी समय आग नहीं तापना । तिल में मीठा मिलाकर दान करना और उसी का होम करना, तिल से तर्पण करना, तिल देना और तिल खाना । अमला, नल, लकड़ो, कम्मल, एक रत्ती सोना और कपड़े तथा जुता के जाड़े ब्राह्मणों को देना । जब माघ स्नान समाप्त हो उस दिन धी तिल माछा का होम कर इस मंत्र से सूर्य की प्रार्थना करना ।

दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमाम्भुत ।

परिपूर्ण कृण्विह माघस्नानमपुः पत ॥

माघ में मकर संक्रांति में स्नान करके वस्त्र और तिल धनु दान करना । माघ की अमावस्या का मोन स्नान करना । इस दिन जो सामवार या मंगल हो तो पुण्य विशेष है । अमावस्या यदि रविवार का हो और उस दिन श्रवण वा अश्विनी वा धनिष्ठा वा आर्द्रा वा अजिता वा मूर्गाशिरा नक्षत्र हो तो भी बड़ा फल है । माघ बदे ४ को गणशपूजन । माघ बदे १४ को यम तर्पण करना । माघ सुदी ४ को दुर्दिगाय का व्रत और पूजन करना । माघ सुदी ५ श्री पंचमी है, इस दिन कुंद के फूल से लक्ष्मी की पूजा करना और नाग अंकुर तथा नई घोर से कामदेव की पूजा करना । माघ सुदी ७ रथसप्तमी है । इसमें अरुणाक्षय में स्नान का बड़ा पुण्य है । उससे पत्र त्रिकाकर धनुर के सात पते सिर पर रगकर इन मंत्रों में नहाना ।

यद्यन्त्रन्मकुलं पापं मय तन्मसुसप्तसु ।

तन्मार्गावशाकंच माकरो हन्तु मयमी ॥१॥

एतन्त्रन्मकुलं पापम यद्यन्त्रन्मार्गावशाकंचम ।

मनोवाक्कायज्ञं यच्च ज्ञाताज्ञातेच येपुनः ॥२॥

इतिसप्तविधंपापम् स्नानान्मे सप्त सप्तिके ।

सप्तव्याधि समायुक्तम् हर माकरिसप्तमि ॥३॥

स्नान के समय कुसुम मिलाई बत्ती का दिया सिर पर ऊँचा करके मंत्र से जल में सूर्य को दे ।

नमस्ते रुद्ररूपाय रसानाम्पतये नमः ।

वरुणाय नमस्तेस्तु हरिवास नमोस्तुते ॥४॥

चंदन से अष्टदल लिखकर बीच में प्रणव सहित शिव पार्वती लिखकर क्रम से इन नामों से कमल के पत्तों पर सूरज की पूजा करे । रवयेनमः, भानवेनमः, विवस्वतेनमः, भास्करायनमः, सवित्रेनमः, अक्कायिनमः, सहस्रविद्यायनमः । सोने के सूर्य तिल पात्र में रख कर ब्राह्मण को दे और इस मंत्र से सूर्य अर्घ्य दे ।

सप्त सप्तिवहप्रीत सप्तलोकप्रदीपन ।

सप्तमी सहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥५॥

जननी सर्वलोकानां सप्तमीसप्त सप्तिके ।

सप्तव्याहृतिकेदेवि नमस्ते सूर्यमंडले ॥६॥

सोने का कनफूल वा सोने का दिया और सोने का न हो सके तो तिल के आटे का बनाकर तामे के पात्र में तिल गुड़ थी समेत लाल कपड़े में समेट कर इस मंत्र से दान करे ।

आदित्यस्य प्रसादेन प्रातः स्नान फलेनच ।

दुष्टदौर्भाग्यदुःखघ्नं मयादत्तं तुतालकम् ॥७॥

यही सप्तमी मन्वादि भी है । इसी सप्तमी को रथदान का बड़ा फल है । माघ सुदी अष्टमी का तिल लेकर भीष्म तर्पण करना । मंत्र —

भीष्मः शान्तनवो वीरस्सत्यवादी जितेन्द्रियः ।

आभिरदिभरवाप्तोतु पुत्र पौत्रोचिताक्रियाम् ॥८॥

वैयात्रपद गोत्राय सांकृत्यप्रवराय च ।

अपुत्राय ददाम्येतज्जलम्भीष्मायवर्मणो ॥९॥

वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजायच ।

अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबालब्रह्मचारिणो ॥१०॥

यह तर्पण जिसका पिता जीता हो वह भी अपसव्य से करे । माघ सुदी द्वादशी का नाम भीम द्वादशी है । माघ की पूनम को स्नान का बड़ा पुण्य है । जो मेष के शनैश्चर और गुरु चंद्रमा सिंह के और सूर्य श्रवण नक्षत्र में हो तो महामाघी होती है । इति

प्रानपियारे प्रेमनिधि, प्रेमिन-जीवन-प्रान ।

तिनके पद अरपन कियो, माघ नहान विधान ॥

द्वादश्यां पुराण निषेधः ।

पांचे सप्ताह-माहात्म्ये कुमार-नारद-सम्वादः

नित्यायाञ्च कथायान्तु पुराणानाम्मुनीश्वरं ।

द्वादशीम्वर्जयेत् प्राज्ञस्सूत सूतक संभवात् ॥१॥

श्रीमद्भागवतस्यापि सप्ताहे नैत्यिकेपिच ।

न निषेधोस्ति देवर्षे प्राहुरेवम्पुराविदः ॥२॥

श्री भागवत सप्ताहो महायज्ञः स्मृतोबुधैः ।

आषाढ शुक्लाद्वादश्याम्पारणाहनिपार्षति ॥३॥

पूर्वादि यामवेलायाम्भावित्वात्कृष्णमायया ।

मुग्धोदर्मकरो रामआहङ्गलोमहर्षमिति ॥

पौराणिकैर्ज्ञेयम्

वृहन्नारदीय पुराण से संगृहीत पुरुषोत्तममास-विधान

‘तत्कर्महरितोषं यत् सा विद्या तन्मतिर्यथा’

सन् १८७२ में लिखी गयी है। बतौर पुस्तक सन् १८७३ में छपी। इस किताब में अधिक मास का माहात्म्य है, इसमें कहीं कहीं पुराणों के वाक्य भी उद्धृत हैं। पहले इसी में पुरुषोत्तम पंचक भी था। बाद की प्रंथावली में उसे अलगया गया है।

— सं.

पुरुषोत्तममास विधान

मृगमद मुद्रित चारु कपोलम् । मृग मद मोचन लोचन लोलम् ॥
मृगमद मेचक सुन्दर रूपम् । नोमि हरिं वृन्दावन भूपम् ॥१॥

दोहा ।

श्री पुरुषोत्तम-राधिका चरण-शरण रहू आय ।
कटि जैहै भवभोग भय, रोग कुसोग बलाय ॥१॥
जिन पुरुषोत्तम नाम सुभ, सहस कहे रवि गाय ।
सो पुरुषोत्तम वदन बपु, बल्लभ होहु सहाय ॥२॥
पुरुषोत्तम-पद जुग सुमिरि, धरि हिय परम अनंद ।
पुरुषोत्तम की विधि लिखी, पुरुषाधम हरिचंद ॥३॥

एक समय अनेक देवर्षि, राजर्षि, शिष्य, प्रशिष्य समेत लोकोपकारशील स्वयम् तीर्थरूप तीर्थपाद चरणारविन्द मधुव्रत तीर्थ यात्रा के मिस नैमिषक्षेत्र में एकत्र हुए और वहाँ महाभागवत सूत पौराणिक भी आए । सूतजी से ऋषियों ने इस असार संसार के पार जाने का उपाय और श्री कृष्ण की लीला का प्रश्न किया । सूतजी बोले मैं अनेक तीर्थों में भ्रमण करता हुआ श्रीगंगाजी के किनारे भगवान श्री शुकदेव जी के मुखारविंद से श्री मदभागवत रूपी मधुर सुधारस का पान करके आया हूँ, जो आज्ञा हो वह कथा आप लोगों को सुनाऊँ । ऋषियों ने कहा सहज उपाय से भगवत्-प्राप्ति का जो साधन हो वह कहिए । सूतजी बोले — एक दिन भगवान नारद जी चारों ओर घूमते हुए बद्रीकाश्रम में भगवान नारायण के पास गए और यहीं प्रश्न किया कि भगवन् कलियुग के जीवों को स्वल्प साधन में भगवान की प्राप्ति का उपाय कहिये । यह सुनकर भगवान नारायण ने पुरुषोत्तम मास का माहात्म्य कहा । पांडवों को वन में अत्यंत क्लेशित देखकर उनका दुःख से छूटने हेतु भगवान श्री कृष्णचंद्र ने पुरुषोत्तम माहात्म्य सुनाया । सब मासों के एक एक देवता नियत हैं, इससे जब पहले मलमास पड़ा तब उसका कोई देवता नहीं था और इस कारण लोग उसकी निन्दा करते थे । मलमास इस बात से अत्यंत दुखी होकर भगवान के पास गया और भगवान वैकुण्ठाथ उसको लेकर गोलोक में गए । पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानन्द धन भगवान श्री कृष्णचंद्रमलमास का दुःख सुनकर बोले मैं पुरुषोत्तम मेरा स्वामी हूँ अतएव मेरा नाम आज से पुरुषोत्तम मास होगा और सब मासों में मेरा फल विशेष होगा । जो साधन लोग कानि कानि पुण्य मासों से अनेक वर्ष में भी करके फल न पावेंगे, वह पुरुषोत्तम मास के थोड़े साधन में फल पावेंगे ।

भगवान श्रीकृष्ण धर्मराज जी से कहते हैं कि पूर्व जन्म में जब द्रोपदी मेधावी ऋषि की कन्या थी तब दुर्वासा ऋषि ने इसे पुरुषोत्तम मास का व्रत करने को कहा था परंतु स्त्री-बुद्धि से इसने पुरुषोत्तम मास का अनादर किया और शिवजी का व्रत करके पाँच बार पानि माँगकर तुम पाँचों को पानि पाया, परंतु पुरुषोत्तम के अनादर से बारहवर्ष की विपत्ति भोगनी पड़ी । सो तीन महीने पीछे पुरुषोत्तम मास आनेवाला है, सो इसमें तुम लोग अवश्य व्रत करना ।

भगवान् श्रीकृष्णचंद्र की आज्ञानुसार पांडवों ने पुरुषोत्तम मास का व्रत किया और विपत्ति से झूटकर भगवान् की कृपा से उत्तरोत्तर अनेक शुभफल पाया !

नारद जी से भगवान् नारायण बोले — पूर्व काल में सत्ययुग में हैहय देश का राजा दृढधन्वा था ! पुष्करावर्त नगर उसकी राजधानी थी और विदर्भ नगर के राजा की कन्या गुणसुंदरी उसकी रानी थी ! चारुमती कन्या और चित्रवाक्, चित्रबाहु, मणिमान् और चित्रकुंडल यह चार पुत्र थे । इस राजा का पुण्य प्रताप ऐश्वर्य सब महान् अखंडित था । एक दिन राजा को अकस्मात् चिंता हुई कि किस पुण्य से हमको ऐसा अखंड ऐश्वर्य मिला । इसी चिंता में राजा शिकार खेलता हुआ एक मृग के पीछे गहन वन में धुल गया और एक वृक्ष के नीचे थककर विश्राम करने लगा, तो वहाँ एक सुग्गे को यह पढ़ते हुए सुना —

पाय जगत्तु मे सफल सुखं, करत न तत्त्वं विचार ।

असत्त विषयं भूल्यो फिरत किमि लहिहै भव पार ॥३॥

सुग्गे को मनुष्य की बोली बोलते और परम तत्त्व के पूर्वोक्त वाक्य को पढ़ते सुनकर राजा को अत्यंत आश्चर्य और मोह हुआ । यहाँ तक कि घर आकर काम काज छोड़कर रात दिन उसी सुग्गे का वाक्य सोचने लगा । एक दिन भगवान् वाल्मीकि इस राजा के घर पर आए और राजा ने बड़ी तपस्या से सुग्गे के वाक्य का आशय पूछा । वाल्मीकि जी ध्यान करके बोले — पूर्व जन्म में आप ताम्रपर्णी के निकट सुदेव नामक ब्राह्मण थे । अपनी स्त्री गौतमी सहित पुत्र के हेतु आपने भगवान् की बड़ी तपस्या किया । यद्यपि सुदेव के सात जन्म में भी पुत्र नहीं लिखा था तथापि भगवान् के वाक्य से गरुड़जी ने सुदेव को पुत्र का वरदान दिया । सुदेव ने शुकदेव नामक एक सर्वगुण सम्पन्न पुत्र पाया परंतु देवल ऋषि के कहे हुए फल के अनुसार बारह वर्ष की अवस्था में वह बावली में डूब कर मर गया । सुदेव पुत्र-शोक से अत्यंत व्याकुल होकर रोने लगा और यहाँ तक कि संयोग से उस समय आया हुआ पुरुषोत्तम मास उसने बिना अन्न जल के बिता दिया । इस व्रत से भगवान् प्रसन्न होकर प्रगत हुए और कहा कि तुमने हठ करके पुत्र का वरदान लिया था, इससे धनुर्शर्मा ब्राह्मण की भाँति अंत में दुःख पाया । अब तुम्हारा पुत्र जो जायगा और तुम बारह हजार वर्ष पुत्र सहित इस शरीर में रहकर अंत में सुधन्वा नामक राजा होगे और चार पुत्र, एक कन्या और राज्य का अखंड ऐश्वर्य पाओगे । सो उसी पुण्य से आपने यह राज्य और ऐश्वर्य पाया है ।

वह सुग्गा आपका पूर्व जन्म का शुकदेव नामक पुत्र था, जो आप को राज-काज में मग्न देखकर आपके हित के हेतु सुग्गे के रूप में आपको चितावनी का शुभ वाक्य सुना गया ।

वाल्मीकि जी से आपने पूर्व जन्म का चरित्र और पुरुषोत्तम का विविध माहात्म्य सुनकर सुधन्वा ने उनसे पुरुषोत्तम मास की विधि पूछी । ऋषि बोले — पुरुषोत्तम मास में ब्राह्म मुहूर्त में उठकर शौच करके और व्रत धारण करके तीर्थ में स्नान करे फिर गोपी चंदन का ऊर्ध्व पुंड्र और शैव हो तो त्रिपुंड्र तिलक लगाकर मुखापर शंख चक्र का चिन्ह लगाकर संध्या करे । फिर पवित्र स्थान में चावल का अष्ट दल बनाकर उस पर सोने चाँदी तामे पीतल वा मिट्टी का कलश रखे, कलश में हुन मंत्रों से जल भरे —

कलशस्य मुखे विष्णुः कंठे रुद्रः समास्थितः ।

मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥

कुक्षौ तु सागरः सर्वे सप्तद्वीपा यमुनधरा ।

ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदस्साप्रवेदो ह्यथर्वणः ।

अंगेऽस्तु सहिताः सर्वे कलाशं हि समाश्रिताः ॥

गंगा गोदावरी चैव कावेरी च सरस्वती ॥

आयान्तु तम शान्तिपर्यम दुरितक्षयकारकाः ॥

इस मंत्र से कलश की प्रतिष्ठा करके, कलश का पूजन करके एक तंतुल पूर्णपात्र कलश के ऊपर रखे । उस पर पीला कपड़ा बिछा कर श्री राक्षिका सहित भगवान् की सोने की मूर्ति स्थापन करके पुरुषोत्तम बीज और नीचे लिखे हुए मंत्रों से प्राणप्रतिष्ठा करे ।

ॐ तद्विश्वीः परमम्यदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीत्र चक्षुराततं स्याहा

ॐ अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु अस्यै देवत्वं संख्यायै स्वाहा

जो वेद मंत्र का अधिकार न हो तो श्री राधिका सहित पुरुषोत्तमायनमः स्वाहा --- इस मंत्र से प्राणप्रतिष्ठा करके नीचे लिखी हुई विधि से पूजा करें ।

आगच्छ देवेश श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम ।

राधया सहितश्चात्र गृहाण पूजनं मम ॥२॥

श्रीराधिका सहित पुरुषोत्तमनमः आवाहनं समर्पयामि इत्यावाहनं ।

नाना रत्नसमायुक्तं कार्तस्वरविभूषितं ।

आसनं देव देवेश गृहाण पुरुषोत्तम ॥२॥

श्री राधा, आसनं,

गंगादि सर्व तीर्थभ्यो मया प्रार्थनयाहृतं ।

तोयमेतन्मुखस्पर्शं पादार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥३॥

इति पाद्यं

नंदगोपगृहेजातो गोपिकानन्दहेतवे ।

गृहाणघर्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥४॥

इत्यर्घ्यं

गंगाजलं समानीतं सुवर्णकलाशस्थितं ।

आचम्यतां हृषीकेश पुराणपुरुषोत्तम ॥५॥

इत्याचमनं

कार्यं सिद्धिमायातु पूजिते त्वयिधानरि ।

पञ्चामृतैर्मया नाते राधिकासहितो हरे ॥६॥

इति स्नानं

पयोदधिवृतं गव्यं माक्षिकं शर्करा तथा ।

गृहाणैमानि द्रव्याणि राधिकानन्ददायक ॥७॥

इति पंचामृत स्नानं

योगेश्वराय देवाय गोवर्द्धनधराय च ।

यज्ञानांपतये नाथ गोविन्दाय नमोनमः ॥८॥

गंगाजलः समस्तं शान्तं नन्दितीर्थसमुद्भवम् ।

स्नानं दत्तं मया कृष्ण गृह्यतां नन्दनन्दन ॥९॥

इति पुनः स्नानं

पीतांबरं युगं देवसर्वकामार्थसिद्धये ।

मया निवेदितं भक्त्या गृहाण सुरसत्तम ॥१०॥

इति वस्त्रं आचमनञ्च

दामोदर नमस्तेस्तु त्राहि मां भवसागरतः ।

ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण पुरुषोत्तम ॥११॥

उपवीतं आचमनं

श्रीछण्ड चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरं ।

विलेपनं सुरश्रेष्ठ प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यतां ॥१२॥

चन्दनं

अक्षतास्तु सुरश्रेष्ठ कुंकुमाक्ताः सुशोभिताः ।

मया निवेदिता भक्त्या गृहाण पुरुषोत्तम ॥१३॥

इत्यक्षतान्

माल्यादीनि सुगन्धीनी मालत्वादीनि वै प्रभो ।

मया हृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यतां ॥१४॥

इति पुष्पाणि । ततोऽङ्ग पूजा
 नन्दात्मजो यशोदायास्तनयः केशिसूदनः ।
 भूमारोत्तारकश्चैत्रहयनन्तो विष्णुरूपधृक् ॥१५॥
 प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च श्रीकण्ठः शकलास्त्र दृक् ।
 वाचस्पतिः केशवश्च सर्वात्मेति च नामतः ॥१६॥
 पानो गुल्फौ तथा ज्ञानू जघने च कटी यथा ।
 मेढं नाभिं च हृदयं कंठे बाहुं मुखं तथा ॥१७॥
 नेत्रे शिरश्च सर्वाङ्गं विश्वरूपिणमर्चयेत्
 पुष्पाण्यादायक्रमशश्चतुर्थ्यनैर्जगत्पतिं ॥१८॥
 प्रत्यङ्गं पूजां कृत्यानु पुनश्च केशवादिभिः ।
 चतुर्विंशति मन्त्रैश्च चतुर्थ्यनैश्च नामभिः ॥१९॥
 पुष्पमादाय प्रत्येकं पूजयेत् पुरुषोत्तमं ॥२०॥
 वनस्पति रसो दिव्यो गन्धाद्भवो गन्ध उत्तमः ।
 आत्रेयः सर्वं देवानां धूपो यं प्रतिगृह्यतां ॥२१॥

इति धूपं

त्वं ज्योति सर्वदेवानां तेजसां तेज उत्तमं ।
 आत्म ज्योतिः परं धाम दीपायं प्रतिगृह्यतां ॥२२॥

इति दीपं

नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्ति मे हयचलां कुरु ।
 ईप्सित मे वरं देहि परत्र च पराङ्गति ॥२३॥

इति नैवेद्यं

मध्ये पानीयं उत्तरापोशनं ।

गङ्गाजलं समानीतं सुवर्णकलशस्थितं ।
 आचम्यतां हृषीकेश त्रैलोक्यव्याधिनाशन ॥२४॥

इत्याचमनं

इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव ।
 तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥२४॥

इति श्रीफलं

गन्धं कर्पूरं संयुक्तं कस्तूर्यादि सुवासितं ।
 कसोद्वर्तनकं देव गृहाण परमेश्वर ॥२६॥

इति करोद्वर्तन

पूगीफलं समायुक्तं सकर्पूरं मनोहरं ।
 भक्त्या दत्तं मया देव ताम्बूलं प्रतिगृह्यतां ॥२७॥

इति ताम्बूलं

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।
 अनन्त पुण्यफलदं मतः शांतिं प्रयच्छमे ॥२८॥

इति दक्षिणां

शारदेदीवरश्यामं त्रिभङ्गललिताकृतिं ।
 नीराजयामि देवेशं राधया सहितं हरिं ॥२९॥

इति नीराजनम्

रक्षारक्ष जगन्नाथ रक्ष त्रैलोक्यनायक ।
 भक्तानुग्रहकर्ता त्वं गृहाणस्मत् प्रदक्षिणां ॥३०॥

इति प्रदक्षिणां

यज्ञेश्वराय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च ।
यज्ञानांपतयेनाथ गोविन्दाय नमोनमः ॥३१॥

इति मंत्र पुष्पम्

विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च ।
विश्वस्वपतये तुभ्यं गोविन्दाय नमोनमः ॥३२॥

इति नमस्कारान्

मंत्रहीनेति मन्त्रेण क्षमाप्य पुरुषोत्तमम् ।
स्वाहातैर्नाम मन्त्रैश्च तिल होमो दिनेदिने ॥३३॥

इति

पूजन करके हविष्यान्न भोजन करे । मांस, मद्य और मादक वस्तु, दिवल, तैल पक्व बड़ी, उरद, मसूर इत्यादि वस्तु न खाये । भाव-दुष्ट, क्रिया-दुष्ट और शब्द-दुष्ट वस्तु का वर्जन करे । पराये का द्रोह, अन्न, स्त्री और धन से दूर रहे । बिना तीर्थ परदेश न जाय, निंदा न करे, जमीरी नीबू बासी अन्न, ब्राह्मण का बेचा हुआ रस, भूमि से उत्पन्न लवण, ताम्रपात्र में रक्खा हुआ गव्य, चमड़े के बर्तन का जल, ये सब मांस के तुल्य हैं । राजस्वला, स्तेच्छ, पतित, ग्रात्य और देव-ब्राह्मण-द्रोही से पुरुषोत्तम में संबंध न रखे । इनका और कौबे का, सूतकवाले का छुआ अन्न और दो बर पकाया हुआ तथा जला हुआ अन्न न खाये । प्रतिपदा से पूर्णिमा तक कृषमांड आदिक का वर्जन करे और जो वस्तु छोड़े वह वस्तु ब्राह्मण को दान दे । केवल दूध पीकर वा घी पीकर फलाहार करके वा अयाचित खाकर उपवास, एक नक्त वा नक्त व्रत जो वन पड़े और बिना कष्ट निवहे वह करे । शांतिग्राम का पूजन करे, श्रीमद्भागवत सुने और सायंकाल को दीपदान करे ।

राजा दृढधन्वा ने वाल्मीकि ऋषि से दीपदान का माहात्म्य पूछा, इस पर वाल्मीकि जी ने कहा — प्राचीन काल में सौभाग्य नगर में एक चित्रभानु नाम राजा था और चंद्रकला नामक उसकी रानी थी । यह राजा धन धान्य सब प्रकार से सुखी था । एक दिन इसके यहाँ अगस्त ऋषि आये और राजा ने अपने पूर्व जन्म का वृत्तांत पूछा । मुनि ने कहा — तुम बड़े दुष्ट मणिग्रीव नाम शूद्र थे और यह रानी तुम्हारी पतिव्रत स्त्री थी । कुकर्म में सब धन खोकर शिकार खेलकर अपनी जीविका करते थे । एक दिन घोर वन में मार्ग भूले हुए उग्रदेव नामक थके ब्राह्मण की तुम लोगों ने बड़ी सेवा किया और उनसे अपना दुःख निवेदन किया । इससे प्रसन्न होकर ऋषि ने पुरुषोत्तम मांस में दीपदान करने का उपदेश किया और मणिग्रीव ने वन में इंगुली के तेल से दीपदान किया, जिससे भगवान् ने प्रसन्न होकर तुमको वरदान दिया और इस जन्म में तुमको सब सुख मिले ।

दीपदान का माहात्म्य सुनकर दृढधन्वा ने पुरुषोत्तम के उद्यापन की विधि पूछी । वाल्मीकि जी ने उत्तर दिया कि कृष्णपक्ष की चतुर्दशी वा नौमी वा अष्टमी को उद्यापन करना । तीस सपत्नीक ब्राह्मण को न्यौता देना और पंचधान्य का सर्वतोभद्र बनाकर चारों दिशा में चार कलशों पर वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का स्थापन करना । बीच में नित्य पूजित श्री राधिका सहित श्री पुरुषोत्तम का स्थापन करना । एक वैष्णव ब्राह्मण को आचार्य और चार ब्राह्मणों को उप की वरणी देकर चारों दिशा में दीपदान करके चतुर्व्यूह का जप करना और भगवान् की पूजा करना । पंचरत्न और फल से भगवान् को भक्तिपूर्वक अर्घ्य देना ।

अर्घ्य मंत्र —

देवदेव	नमस्तुभ्यम्पुराणपुरुषोत्तम ।
गूहाण्यर्घ्यमयादत्तं	राधया सहितो हरे ॥
वन्दे नवधानश्यामं	दिभुजं मुरलीधरम् ।
पीताम्बरधरं	देवं सराधं पुरुषोत्तमम् ॥

फिर तिल से श्री राधिका सहित पुरुषोत्तमायनमः स्वाहा इस मंत्र से होम करना और तर्पण मार्जन के पीछे भगवान् का नौराजन करना ।

मंत्र
नोराजयामि देवेशमिन्द्रावरदलच्छविम् ।
राधिकारमणप्रेम्णा कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥

फिर क्षण भर भगवान का ध्यान करना —
अन्तर्ज्योतिरनन्तरन्तरचिते सिंहासने संस्थितम् ।
वंशीनादविमोहितं ब्रजवधू वृंदावने सुन्दरम् ॥
ध्यायेद्वाधिकया सकौस्तुभमणि प्रद्योतितोरस्थलम् ।
राजद्रुमकिरीटकुण्डलधरं प्रत्यग पीताम्बरम् ॥

फिर पुष्पाञ्जलि देना और प्रणाम करना । मंत्र —
नौमि नव्यघनश्यामं पीतवाससमच्युतम् ।
श्रीवत्सभासितोरस्कं राधिकासहितं हरिम् ॥

फिर ब्रह्मा को पूर्णपात्र दान करके गोदान करना और धृतपात्र, तिलपात्र, उमा महेश्वर, सोहागपिटारी, वस्त्र, पद इत्यादि दान करना और जो श्रीमद्भागवत करे तो बड़ा ही पुण्य है । पुरुषोत्तम मास में श्री भागवत दान की समता अन्य दान नहीं कर सकते ।

और तीस कांसे की थाली में तीस तीस पुआ रखकर ब्राह्मणों को दान देना । और भी अन्न दानादि जो बन पड़े वह देना । अमावस्या की रात को जागरण करके सबेरे पूजा पीठ और सोने की मूर्ति दान देना ।
मंत्र —

श्रीकृष्ण जगदाधार जगदानन्ददायक ।
ऐहिकामुष्मिकानुकामान् निखिलान् पूरयाशु मे ॥१॥
मंत्रहीनम् क्रियाहीनम् विधिहीनम् जनाईन ।
व्रतं सम्पूर्णां यातु त्वत्प्रसादाद्वयानिघे ॥२॥

फिर जो वस्तु का त्याग किया हो, उसका यथाक्रम दान करना । यथा — नक्त व्रत में भोजन, अयाचित में स्वर्णदान, धात्री स्नान में दधि, फल न खाया होय तो फल, तेल छोड़ा होय तो घी, घी छोड़ा होय तो दूध, अन्न छोड़ा होय तो अन्न, भूमि-शयन लिया होय तो सेब, पत्र भोजन किया होय तो घी-चीनी, मौन लिया होय तो घण्टा, तिल और सोना । क्षौर न बनवाया हो तो दर्पण, जूता छोड़ा होय तो जूता, नमक छोड़ा होय तो घी, गुड़, तेल और नमक, दीपदान का नेम लिया होय तो ताँबे का दिया और सोने की बत्ती और एकान्तर उपवास किया होय तो वस्त्र सहित आठ कुंभ दान करे । पुरुषोत्तम मास में एक अन्न भोजन करने का बड़ा पुण्य है ।

वाल्मीकि जी से पूर्व जन्म का वृत्तांत और पुरुषोत्तम-माहात्म्य सुनकर राजा स्त्री सहित वन में जाकर तपस्या करके अंत में गोलोक में गया ।

नारायण नारद जी से कहते हैं कि कंदर्प नामक ब्राह्मण बड़ा पापी था, जन्म भर में केवल एक वैश्य को पुरुषोत्तम की पूजा करते दर्शन किया था और कोई पुण्य नहीं किया था । इसी पाप से एक जन्म में प्रेत और दूसरे में वह बंदर हुआ परंतु पुरुषोत्तम के पूजा के पुण्य से इन्द्रनिर्मित मृगतोर्थ पर उसका निवास हुआ और किसी समय पुरुषोत्तम मास में एक बेर उसने दुःखित होकर तीन दिन तक कुछ न खाया, न पीया और उसी तोर्थ पर प्राण त्याग किया और पुरुषोत्तम के प्रभाव से अंत में गोलोक गया ।

नारद जी के प्रश्न पर श्रीनारायण दिनचर्या कहते हैं ।

प्रातःकाल की क्रिया समाप्त करके पंचभूत देव पितृ बलि देकर अतिथि को भोजन कराकर दो वस्त्र से अकेले एक पात्र में पूर्वा पर आचमन संयुक्त भोजन करना । भोजन के पीछे पान खाकर भगवान के ध्यानपूर्वक भक्तिशास्त्र का विचार करना । तीसरे पहर धर्माविरुद्ध व्यवहार करना । सांफ को तोर्थ पर देहशुद्धि पूर्वक संघ्या करके दीपदान करके भगवान का स्मरण करके शयन करना ।

इसके पीछे नारायण ने पतिव्रता के धर्म और पुरुषोत्तम की विशेष महिमा कहा । और विधान किया कि — मंत्र —

गोवर्धनधरम् वन्दे गोपालम् गोपहृषिणम् ।

गोकुलोत्सवमौशानम् गोविन्दम् गोपिकाप्रियम् ॥१॥

इस मंत्र का पुरुषोत्तम मास में बार बार जप करना ।

देहा —

श्री पुरुषोत्तम पद सुमिरि, धारि हृदय आनंद ।

यह पुरुषोत्तम विधि लिखी, कविवर श्री हरिचंद ॥१॥

प्रेम पियारे प्रेमनिधि, प्रेमिन-जीवन-प्राण ।

तिनके पद अरपन कियो, यह मलमास-विधान ॥२॥

इति श्री बृहन्नारदीय पुराण से संगृहीत पुरुषोत्तम
माहात्म्य समाप्त हुआ ।

भक्तिसूत्र वैजयन्ती

अर्थात्

श्रीशांडिल्य ऋषि के भक्ति के सौ सूत्रों पर

भाषा भाष्य

रचना काल सन् १८७३। यह पुस्तक हरिश्चन्द्र मैगजीन जि. १ सं. १ सन् १८७४
में मूल और अर्थसहित छपी है।
— सं.

प्राणप्यारे!

देखो, आज वसंत-पंचमी है, इस से बहुत लोग आम के मौर वा फूलों के गुच्छे ले कर तुमको मिलने आवेंगे तो मैं भी यह एक फूलों की वैजयन्ती माला बनाकर लाया हूँ, अंगीकार करो; वैजयन्ती माला बनाने का यह हेतु है कि वनमाला होगी तो होली के खेल में अरुझैगी और इसके सिवाय इस वैजयन्ती से निश्चय करके ज्ञानादिक को जय करना है; पर प्यारे! बहुत सम्हल कर यह माला पहरना, टूट न जाय, क्योंकि सूत कच्चा है और कलियाँ ताजी और कोमल हैं, इससे कुम्हिलाने का भी भय है; जो हो, इस वसंत पंचमी को त्यौहारी मुझे यही दो कि इस सत्यानाशी 'अहं ब्रह्मवाद' को पूर्णरूप से नाश करके और भी सब बातों में इस नव वसंत में भारतवर्ष की सब आपत्तियों का बस अंत करो और अपने भक्तों के चित्त में प्रेम के नव पल्लव फिर से लहलहे करो, जो सदा एकरस रहे।

माघ शु. ५ सं. १९३०
काशी

तुम्हारा हरिश्चंद्र

भक्तिसूत्र वैजयन्ती

शाण्डिल्य-शतसूत्री भाषाभाष्य-सहित
ॐ नमःशाण्डिल्याय तन्मतप्रवर्तकाचार्यभ्यः

श्रीवल्लभेभ्यश्च नमः

जोह लहि फिर कछु लहन की, आस न चित में होय ।
जयति जगत पावन करन, प्रेम वरन यह दोय ॥

ॐ अथातो भक्तिजिज्ञासा ॥१॥

जीवों को कर्म ज्ञानादिक अनेक साधनों से खिन्न होकर भी शांति न पाते देखकर भगवान् शाण्डिल्य ने भक्तिसास्त्र प्रकट करने की इच्छा से यह भक्ति के सौ सूत्र करते हुए इस प्रेममार्ग को प्रवर्त किया । इस में पहिले पूर्वोक्त सूत्र कहा । अब भक्ति की जिज्ञासा अर्थात् विचार आरंभ करते हैं ॥१॥ यद्यपि ज्ञान-कर्मादिकों की भाँति भक्ति भी स्वसाध्य नहीं है तथापि जो भक्ति मार्ग पर प्रवर्त होते हैं उनको भगवान् भक्ति देता है इस आशा से भक्ति-मीमांसा आरंभ करते हैं ।

सा परानुरक्तिरैश्वरे ॥२॥

सो भक्ति ईश्वर में पूरे अनुराग को कहते हैं ॥२॥ यहाँ परा शब्द कामनाओं की निवृत्ति के हेतु और अनुरक्ति शब्द हृदय के सच्चे प्रेम के अर्थ दिया है और ईश्वर शब्द माहात्म्य ज्ञान के हेतु है, जैसा श्रीगोपीजन को ।

तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात् ॥३॥

क्योंकि उसमें जो चित्त लगता है वह अमृत फल पाता है, यह माहात्माओं ने कहा है ॥३॥

ज्ञानमिति चेन्न द्विषतोऽपि ज्ञानस्य तदसंस्थिते ॥४॥

यह भक्ति ईश्वर विषयक ज्ञान मात्र है यह संदेह मत करो क्योंकि ज्ञान तो द्वेषियों को भी होता है पर उस ज्ञान से प्रीति नहीं होती ॥४॥ जैसे कोई किसी मनुष्य को जानता है कि वह अमुक है और उसको अमुक अधिकार है पर इतना जानने ही से उस मनुष्य की उस में प्रीति हो यह नियम नहीं ।

तयोपक्षयाच्च ॥५॥

क्योंकि पूरी भक्ति से ज्ञान का क्षय होता है ॥५॥ जैसे श्रीगोपीजन को माहात्म्य-ज्ञान पूर्ण था तथापि प्रियतम, कितव इत्यादि नाम से भगवान् को पुकारती थीं । अथवा भक्ति से ज्ञान अर्थात् मुक्ति वासना क्षय हो जाती है । जैसा आपने श्री मुख से कहा है कि यद्यपि मैं चारों प्रकार की मुक्ति देता हूँ तथापि मेरे भक्त मेरी सेवा छोड़ कर नहीं लेते ।

द्वेषप्रतिपक्षभावादसशब्दाच्च रागः ॥६॥

द्वेष से प्रतिकूल होने से और रस शब्द प्रतिपाद्य होने से उस भक्ति का नाम अनुराग है ॥६॥ क्योंकि स्नेह और विरोध दो वस्तु अलग हैं । और भी किसी के द्वेषी से विरोध वही करेगा जिसका उसमें पूर्ण अनुराग होगा और ज्ञान में यह बात नहीं क्योंकि स्वरूप द्वेषियों को भी होता ही है और रस परम आनंद रूप है । वह रस जिसको पाकर मनुष्य आनंदी होता है वह भक्ति स्वरूप ही है (इस कहने से पूजाविडंबन को उपेक्षा

किया)। चकार से अश्रुपात, रोमांच और वाणीस्तेमादिक भक्ति का स्वरूप कहा।

न क्रियाकृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत् ॥ ७ ॥

और वह भक्ति ज्ञान की भाँति कृपा करने वाले के आधीन नहीं है ॥ ७ ॥ अर्थात् भक्ति अपने साधन की नहीं है केवल उसकी कृपा से मिलती है इस से भक्ति की बहुमूल्यता दिखाई।

अतएव फलानन्त्यम् ॥ ८ ॥

इसी से इस के फलों का अंत नहीं है ॥ ८ ॥ क्योंकि मनुष्य के सब साधन क्षीयमाण और ईश्वर की कृपा अक्षया है।

तद्वतः प्रपत्तिश्चब्दश्च न ज्ञानमितरप्रपत्तिवत् ॥ ९ ॥

क्योंकि ज्ञान वालों को शरणागत है और बिना ज्ञान भी इतर प्रपत्ति होती है ॥ ९ ॥ क्योंकि श्रीमुख से कहा है कि बहुत जन्मों के पीछे ज्ञानी मेरे शरण आता है तो इससे ज्ञान का साधन भक्ति फलरूप है यह प्रगत किया और बिना ज्ञान भी भक्ति मिलती है इस से उसकी विशेषता दिखाई।

इति प्रथमाहिनक।

सा मुख्येतरापेक्षितत्वात् ॥ १० ॥

सो भक्ति मुख्य है क्योंकि इतर ज्ञान योगादिकों में भी इसकी अपेक्षा रहती है ॥ १० ॥ तो इस से कोरे ज्ञान से मोक्ष मिलता है इसका खंडन किया, क्योंकि जब भक्ति की उसमें अपेक्षा रही तो वह स्वतः मुक्तिदाता न ठहरा इस से भक्ति ही मुख्य ठहरी।

प्रकरणाच्च ॥ ११ ॥

प्रकरण से भी ॥ ११ ॥ अर्थात् भक्ति अंगी है और ज्ञानादिक अंग हैं तो काम पूरा कोई अंग विशेष नहीं कर सकता और अंग अंगी के आधीन है, इस से भक्ति ही अमृत देनेवाली है। ज्ञान उस का साधन मात्र है।

दर्शनफलमिति चेन्न, तेन व्यवधानात् ॥ १२ ॥

दर्शन मात्र फल रूप है यह नहीं, क्योंकि उस से व्यवधान है ॥ १२ ॥ अर्थात् ज्ञान मात्र ही फल है यह नहीं है क्योंकि छांदोग्य श्रुति में पहिले ज्ञानियों का नाम लेकर फिर कहा है कि यह अर्थात् भक्तिमान् स्वराह होता है तो पहिले ज्ञान को गौण करके भक्ति की मुख्यता वेद ने कही, इस से भक्ति ही परम साधन है।

दृष्टत्वाच्च ॥ १३ ॥

और ऐसा ही देखा भी जाता है ॥ १३ ॥ क्योंकि यदि किसी स्त्री पर कोई मनुष्य रीझकर प्रीत करेगा तो पहिले जब वह जानेगा कि यह स्त्री सुंदर है तब प्रीति करेगा। प्रीति करके न जानेगा अर्थात् जानने का फल प्रीति है, प्रीति का फल जानना नहीं है। इससे अनेक मत जो ईश्वर-विषयक ज्ञान मात्र ही को परम पुरुषार्थ कहते हैं, इसका निराकरण किया।

अतएव तदभावाद्बल्लवीनां ॥ १४ ॥

इसी से ब्रज के श्रीगोपीजनों का विज्ञान के बिना भी मुक्ति पाना प्रत्यक्ष है ॥ १४ ॥ इस सूत्र से भक्ति की परम श्रेष्ठता दिखाई क्योंकि श्रीगोपीजन को यद्यपि ब्रह्मविषयक कुछ भी ज्ञान न था तथापि जो गति केवल प्रेम से श्री गोपीजन को मिली सो किसी को न मिली।

भक्त्या जानातीति चेन्नाभिज्ञप्त्या साहाय्यात् ॥ १५ ॥

जो कहो भक्ति से ज्ञान होता है सो नहीं, क्योंकि ज्ञान तो भक्ति का साहायक है ॥ १५ ॥ क्योंकि जब मनुष्य को ईश्वर-विषयक माहात्म्यज्ञान होगा तभी भक्ति में प्रवृत्ति होगी।

प्रागुक्तंच ॥ १६ ॥

पहिले कहा भी है ॥ १६ ॥ अर्थात् श्री गीताजी में अठारहवें अध्याय के चौथन श्लोक में आप ने श्रीमुख से कहा है कि ब्रह्म भाव पाकर प्रसन्न आत्मा न कुछ सोचता है न कुछ कहता है, सब लोगों को समान दृष्टि से देखता हुआ मेरी भक्ति पाता है।

एतेन विकल्पोऽपि प्रत्युक्तः ॥ १७ ॥

इस से विकल्प भी निरस्त हुआ ॥ १७ ॥ अर्थात् ज्ञान के अर्गत्व निर्णय में जो कुछ संदेह था वह

ऊपर के भगवत् वाक्य से मिट गया और भक्ति का अंगित्व निश्चय हुआ ।

देवभक्तिरितरस्मिन् साहचर्यात् ॥ १८ ॥

ईश्वर के अतिरिक्त देवताओं की भक्ति भी उस परा भक्ति के समान नहीं, क्योंकि जगत में उसके समान और भी भक्तियाँ हैं ॥ १८ ॥ जैसा लिखा है, जैसा देवता में भक्ति करनी वैसी गुरु में करनी तो इस सूत्र से अनन्य भक्ति स्थापन किया ।

योगस्तुभयार्थमपेक्षात् प्रयाजयत् ॥ १९ ॥

और योग तो वाञ्छेय यज्ञ में प्रयाज की भाँति भक्ति और ज्ञान दोनों का अंग है ॥ १९ ॥ इससे योग की अंगांगता दिखलायी ।

गौण्या तु समाधिसिद्धिः ॥ २० ॥

गौणी भक्ति से तो समाधि की सिद्धि होती है ॥ २० ॥ इस से परा भक्ति की अपेक्षा इसकी महागौणता सिद्ध हुई ।

हेयारागत्वादितिवेन्नोत्तमास्पदत्वात् संगवत् ॥ २१ ॥

भक्ति राग है इससे (राग को कोई त्रुटि दुःख-स्वरूप मानते हैं यह समझकर) त्याग करने के योग्य है, यह नहीं क्योंकि इसका आश्रय उत्तम है संग की भाँति ॥ २१ ॥ जैसा साधारण स्त्री-पुरुष के अनुराग में परस्पर वियोग का और संयोग छूट जाने का दुःख होता है वैसा ईश्वर के अनुराग में नहीं होता क्योंकि संग दुःखदाई है यह नियम नहीं है । सत्संग से अनेक सुख होते हैं वैसे ही ईश्वर का अनुराग परम सुख-स्वरूप है ।

तदेव कर्मज्ञानियोगिन्य आधिक्यदात् ॥ २२ ॥

इससे भक्ति ही मुख्य है क्योंकि कर्म, ज्ञानी और योगियों से उसको अधिक कहा है ॥ २२ ॥ श्री गीता जी के छठवे अध्याय के ४६ और ४७ वें श्लोक में आपने श्रीमुख से कहा है कि तपस्वी, ज्ञानी और कर्म से योगी अधिक हैं और योगियों में हमारे भक्त अधिक हैं ।

प्रश्ननिरूपणाभ्यामाधिक्यसिद्धेः ॥ २३ ॥

यह अधिकता प्रश्नोत्तर से सिद्ध है ॥ २३ ॥ श्रीगीता जी में १२ वें अध्याय में अर्जुन ने पूछा है कि जो अक्षर की उपासना करते हैं और जो आप की भक्ति करते हैं उन में मुख्य कौन है । इसके उत्तर में आप ने कहा है कि जो मेरे भक्त हैं वे अधिक हैं । इस के बिना किसी अर्थवाद से भक्ति की परमोत्तमता सिद्ध हुई ।

नैव श्रद्धा तु साधारण्यात् ॥ २४ ॥

श्रद्धा ही भक्ति नहीं है क्योंकि उस को साधारणता है ॥ २४ ॥ क्योंकि श्रद्धा कर्मादिकों में भी होती है ।

तस्यां तत्त्वे चानवस्थानात् ॥ २५ ॥

क्योंकि श्रद्धा से भक्ति तत्त्व की एकता करने से अनवस्था होती है ॥ २५ ॥ अर्थात् श्रद्धायान भजन करता है, ऐसा लोग कहते हैं तो यदि श्रद्धा भक्ति एक ही होती तो अंग भाव से प्रयोग न होता ।

ब्रह्मकांडे तु भक्तौतस्यानुज्ञानाय सामान्यात् ॥ २६ ॥

अतएव भक्ति प्रतिपादन के अर्थ उत्तरकांड की सजा ब्रह्मकांड से ज्ञानकांड की सामान्यता है ॥ २६ ॥ अर्थात् जो ज्ञान की मुख्यता होती तो 'अथातो ब्रह्मविज्ञासा' यह न कहते । इस से कंठरव से ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की उत्तमता सिद्ध किया । इति २ आ. इति १ अध्याय ॥

बुद्धिहेतुप्रवृत्तिराविशुद्धैरवघातवत् ॥ २७ ॥

बुद्धि के हेतुओं की प्रवृत्ति धान कटने की भाँति विशुद्धि तक है ॥ २७ ॥ बुद्धि अर्थात् ब्रह्म-साक्षात्कार यद्यपि कृत्यानिष्ठाच नहीं अर्थात् अपने किए हुए उपायों से बाहर है तो भी उस के हेतु श्रवण-मननादिकों का अनुष्ठान आवश्यक है जैसे जब तक सब छिलके बराबर न निकल जाँय, धान शुद्ध न होगा ।

तदंगानाञ्च ॥ २८ ॥

उस के अंगों को भी ॥ २८ ॥ अर्थात् जैसे श्रवण-मननादिक की आवश्यकता है वैसे ही गुरु की सेवा आदि उस के उपायों को भी है ।

तामैश्वर्य्यपदां काश्यपः परत्वात् ॥ २९ ॥

उस को काश्यपाचार्य ऐश्वर्यपदा कहते हैं अलग होने से ॥ २९ ॥ अर्थात् सर्वैश्वर्यमय ईश्वर को मान कर उस की सेवा करना यही पुरुषार्थ कहते हैं । इनके मत में जीव और ईश्वर का नित्य भेद प्रगट हुआ ।

आत्मैकपरां वादरायणः ॥ ३० ॥

वादरायण आचार्य इस को आत्मपर कहते हैं ॥ ३० ॥ वेदांत सूत्र में व्यास जी का मत है कि आत्मज्ञान ही से सिद्धि मिलती है ।

उभयपरां शांडिल्यः शब्दोपपत्तिभ्यां ॥ ३१ ॥

शांडिल्याचार्य शब्द और उपपत्ति से उभय पर कहते हैं ॥ ३१ ॥ युक्तियों से और वाक्यों से जीव का ईश्वरांश होना सिद्ध है और ईश्वर में सब सामर्थ्य इत्यादि दिव्यगुण उसकी विलक्षणता भी प्रकाश करते हैं, इससे शांडिल्य दोनों मत मानते हैं अर्थात् अपने को ईश्वरांश मान करके भी उसकी उपासना करना ।

वैषम्यादसिद्धिमिति चेन्नाभिज्ञानवदवैशिष्ट्यात् ॥ ३२ ॥

वैषम्य से असिद्धि होगी ऐसा नहीं है क्योंकि ज्ञान की भाँति अवैशिष्ट्य है ॥ ३२ ॥ अर्थात् जिस रीति "यह वह है" यह भूत और वर्तमान काल की प्रतीति एक ही समय होती है क्योंकि दोनों काल का विषय (यह और वह शब्दों से प्रतिपाद्य) एक ही है वैसे ही ईश्वर में वैषम्य दोष नहीं जा सकता ।

न च क्लिष्टः परः स्यादनन्तरं विशेषात् ॥ ३३ ॥

पर (परमात्मा) को कभी इस वैषम्य से क्लेश नहीं होता क्योंकि (ज्ञान के) अनन्तर विशेष होता है ॥ ३३ ॥ अर्थात् जीव और ईश्वर में जो विशेषता है वह ज्ञान से प्रतीत होती है ।

ऐश्वर्यं तथेति चेन्न स्वाभाव्यात् ॥ ३४ ॥

ऐश्वर्य भी क्लिष्ट नहीं हो सकता क्योंकि वह स्वाभाविक है ॥ ३४ ॥ ईश्वर का ऐश्वर्य कुछ उपाधिभूत वा उपाधिजन्य नहीं किन्तु नैसर्गिक है इसी हेतु इसमें भी क्लेश नहीं हो सकता ।

अप्रतिषिद्धं परैश्वर्यं तद्भावाच्च नैवमितरेषाम् ॥ ३५ ॥

(ईश्वर का) परमैश्वर्य कहीं भी प्रतिषिद्ध नहीं होता, वरंच उसका नैसर्गिकपन प्रगट होता है, इतरो का (जीवों का) ऐसा नहीं ॥ ३५ ॥ यह शंका न हो कि ईश्वर का जब ऐश्वर्य ऐसा है तो जीवों का भी ऐसा ही होगा । ईश्वर का यह सर्व स्वाभाविक है और जीवों का नहीं ।

सर्वानुत्तेकिमिति चेन्नैवं बुद्धयानन्त्यात् ॥ ३६ ॥

सब के बिना (उसका) क्या प्रयोजन है ? ऐसा नहीं क्योंकि बुद्धि का आनन्त्य है ॥ ३६ ॥ अर्थात् यदि सब जीव क्रमशः मुक्त होंगे तो ईश्वर का क्या प्रयोजन है तो उसका भी क्यों नहीं लय मानते ; ऐसा कहेंगे तो यह असंभव है क्योंकि बुद्धि का अंत नहीं हो सकता । इस हेतु यह कल्पना मात्र है और ऐसा कालही नहीं कि जिसमें सब जीव एक बार मुक्त हो जाँय और महाप्रलय में जो जीव मुक्त होते हैं वे वासना सहित होते हैं ।

प्रकृत्यन्तरालादवैकार्यं चित्सत्त्वेनानुवर्तमानत्वात् ॥ ३७ ॥

प्रकृत्यन्तराल से और चित्सत्त्व के अनुवर्तमान होने से (ईश्वर को) अविकारिता है ॥ ३७ ॥ यदि ईश्वर में उत्पत्ति कर्तृत्वाद ऐश्वर्य साहजिक है तो यह भी एक प्रकार का विकार हुआ, उसका निवारण करते हैं कि प्रकृति को ईश्वर विकृत करके उत्पत्ति आदि करता है । जैसे मायावी अपनी माया से अन्य वस्तुओं में विकार कर देता है परंतु आप नहीं विकार पाता अर्थात् ईश्वर दुग्ध के कार्य की भाँति विकृत नहीं होता वरंच सुवर्ण के विकार की भाँति । और उसमें जीवसत्त्व जो वर्तमान रहता है वह माया से परे है ।

तत्प्रतिष्ठा गृहपीठवत् ॥ ३८ ॥

उसकी प्रतिष्ठा का व्यवहार घर में पीढ़े पर प्रतिष्ठा की भाँति है ॥ ३८ ॥ अर्थात् प्रकृति के विकार से जगत माया में प्रतिष्ठित है, यह शंका न हो जैसे किसी के घर पीढ़े पर कोई बैठा हो ऐसा कहने में आवेगा कि अमुक पीढ़े पर बैठा है पर वास्तव में वह पीढ़ा और मनुष्य दोनों घर में हैं ; वैसेही माया और संसार दोनों ईश्वर में हैं ।

मिथोपेक्षणादुभयं ॥ ३९ ॥

परस्पर की अपेक्षा से दोनों कारण हैं ॥ ३९ ॥ अर्थात् संसार की उत्पत्ति में माया और ईश्वर दोनों ही

आवश्यक है ।

चेत्याचितानं तृतीयं ॥ ४० ॥

प्रकृति और ब्रह्म में भेद नहीं है ॥ ४० ॥ अर्थात् इन में तृतीय भाव नहीं है दोनों एक हैं । इससे प्रकृति स्वतंत्र कोई अलग है, इसका निषेध किया ।

युक्तौ च संपरायात् ॥ ४१ ॥

वियोग के पूर्व दोनों एक हैं ॥ ४१ ॥ अर्थात् सृष्टि होने के समय ब्रह्म और प्रकृति अलग अलग होते हैं परंतु जड़ाजड़ के भेद से नित्य में इनका अनन्य संबंध है ।

शक्तित्वान्नानृतं वेद्यं ॥ ४२ ॥

शक्ति के कार्य होने से यह जगत् मिथ्या नहीं है ॥ ४२ ॥ अर्थात् जगत् माया का कार्य है तो उसकी शक्ति भी सत्य है । प्रकृति केवल जड़मात्र तो है पर मिथ्या नहीं ।

तत्परिशुद्धिश्च गम्या लोकवल्लोभेभ्यः ॥ ४३ ॥

उस (भक्ति) परिशुद्धि लोक के (प्रेम के) चिन्हों से जानना ॥ ४३ ॥ अर्थात्-अशु, रोमांच, गद्गद इत्यादि स्थायी भावों से किसको कितना प्रेम है यह प्रगट होता है ।

सम्मान बहुमान प्रीति विरहंतरविचिकित्सा महिमख्याति तदर्थप्राणस्थान

तदीयनासर्वतद्भावाप्राप्तिकृत्यादीनि च स्मरणेभ्यो बाहुल्यात् ॥ ४४ ॥

सम्मान, बहुमान, प्रीति, विरह, इतरविचिकित्सा अर्थात् आग्रह पूर्वक दूसरे की अनपेक्षा, महिमा का कथन, प्रियतमहो के हेतु प्राणरक्षण, तदीयता, सब उसके भावों से देखना, अप्राप्तिकृत्य अर्थात् अनुकूलता इत्यादि प्रीति के लक्षण हैं ॥ ४४ ॥

सम्मान जैसा अर्जुन का, बहुमान इक्ष्वाकु का कि भगवान् के नाम वा वर्णों से जिन वस्तुओं में संबंध था उनका भी आदर करता था, प्रीति विदुर की, विरह श्रीगोपाजन का, इतरविचिकित्सा उपमन्यु का और श्वेतद्वीपवासी की तथा चित्रकेतु की, महिमख्याति यम, भीम और व्यास की, तदर्थ प्राणास्थान ब्रज के लोग तथा हनुमान जी की, तदीयता बर्हि की और उपरिचर वसु की, तद्भाव श्री प्रह्लाद जी का, अप्राप्तिकृत्य भीम तथा धर्मराज का, आदि शब्द स नान्य उद्वानि भक्तों की प्रीति की चेष्टा और लक्षण जानना ।

द्रेपादयस्तु नेत्रे ॥ ४५ ॥

द्रेपादिक से ऐसा नहीं होगा ॥ ४५ ॥ शिशुपाल इत्यादि के प्रकरण में भक्ति से उन को मुक्ति नहीं हुई किन्तु भगवान् के मांहमा कल से भक्तों का तो द्रेपादिक होन ही नहीं ।

नद्राक्षयशान्ता प्रादुर्भाविष्यां सा ॥ ४६ ॥

उसके आक्षय शेष से अवतारों में भी वह है ॥ ४६ ॥ मत्स्यादिक अवतारों में, शिवानि गूण स्वरूपों में, संकर्षणादि व्यूहों में तथा आचार्यादि प्रादुर्भावों में भी परा भक्ति योग्य है ।

जन्मकर्माविदश्चाजन्मशक्तान् ॥ ४७ ॥

जन्मकर्मा के ज्ञान का सिद्धि भी आजन्म शब्द से है ॥ ४७ ॥ अर्थात् जो उस के जन्म कर्मा का जानता है वह फिर जन्म नहीं पाता किन्तु उसका पाना है । यह श्रीगोता के ४ अध्याय के ९ श्लोक में कहा है ।

तच्च दिव्यं स्वशक्तिमात्राभवात् ॥ ४८ ॥

उसके जन्म कर्मादिक दिव्य है क्योंकि केवल उसकी शक्तिमात्र से अनेक प्रकार के दिखाई पड़े हैं ॥ ४८ ॥ यह ९ श्लोक और उसी अध्याय के छठे श्लोक में सिद्ध है ।

मुख्यं तस्यहिकारण्यं ॥ ४९ ॥

उसके जन्मादिकों में उसी की करुणा मुख्य है ॥ ४९ ॥ अर्थात् ईश्वर वाधित हो के नहीं जन्म लेता केवल अपनी अपार कृपा से जीवों के उद्धार के हेतु अनेक प्रकार के रूप धारण करता है ।

प्राणित्वान्नविभूतिषु ॥ ५० ॥

प्राणी होने से ब्राह्मण राजादि भगवाद्भिर्भूति में भक्ति सिद्धि देनेवाली नहीं होती ॥ ५० ॥

द्वतराजसेवयोः प्रतिषेधात् ॥ ५१ ॥

द्वत और राजसेवा के निषेध से ॥ ५१ ॥ क्योंकि गीता जी में आपने श्रीमुख से रात्रा और जूए को

विभूति कहा है और शास्त्र में उसका निषेध है। इससे विभूतियों में भक्ति नहीं करनी।

वासुदेवोपीति चेन्न आकारमात्रत्वात् ॥ ५२ ॥

श्रीवासुदेव में भी विभूति की शंका नहीं करनी क्योंकि वहाँ तो चीनी की पुतली की भाँति कर, पाद, मुख, उदर आदि सब आकार आदमय हैं ॥ ५२ ॥

प्रत्यभिज्ञानाच्च ॥ ५३ ॥

(श्रीगोपालतापनी, महाभारत, श्रीभागवत आदि पुराण तथा वैष्णवनिबंधों में) भगवान की परब्रह्मता साधित है ॥ ५३ ॥

वृष्णिपुश्रेष्ठयेनैतत् ॥ ५४ ॥

विभूति में श्रीवासुदेव का कथन केवल यादों में श्रेष्ठता के हेतु है ॥ ५४ ॥

एवं प्रसिद्ध्यु ॥ ५५ ॥

इसी प्रकार श्रीरामादि प्रसिद्ध भगवद्वतारों का भी विभूति में कथन केवल उस प्रकार की विभूति में श्रेष्ठता दिखाने के हेतु है। अर्थात् जो प्रसिद्ध भगवत्स्वरूप हैं उनमें विभूति बुद्धि न करनी ॥ ५५ ॥

इसरे अध्याय का पहिला आह्निक समाप्त हुआ

भक्त्या भजनोपसंहारादगौण्यापरायैतदेतुत्वात् ॥ ५६ ॥

भक्ति से यहाँ गौण भक्ति लेनी क्योंकि उसका अर्थ भजन अर्थात् सेवा है और यह भक्ति परा में हेतु है ॥ ५६ ॥ क्योंकि गौण भक्ति से मुख्य भक्ति के साधन के बाधक दूर होते हैं और परा भक्ति सिद्ध होती है।

रागार्थप्रकीर्तिसाहचर्याच्चेतरेषाम् ॥ ५७ ॥

गीता अ. ९ श्लोक १४ में कीर्तन के साथ कहे हुए नमस्कारादि कर्मों का फल केवल राग अर्थात् परा भक्ति है क्योंकि "स्थाने हृषीकेश" इस श्लोक में कीर्तन का फल अनुराग कहा है और पूर्वोक्त १४ श्लोक में कीर्तन के साथ नमनादिक का कथन है इससे नमनादिक का भी यही फल है ॥ ५७ ॥

अन्तराले तु शेषाः स्युरुपास्यादौ च काण्डत्वात् ॥ ५८ ॥

गीता जी के ९ अध्याय में १३ श्लोक से २९ श्लोक तक और जितनी भक्तियाँ कही हैं वह बीच की हैं क्योंकि उपासनादि परा भक्ति की साधक हैं ॥ ५८ ॥

ताम्यः पावित्र्यमुपकमात् ॥ ५९ ॥

इन गौणी भक्तियों से पवित्रता अर्थात् मन की शुद्धता होती है क्योंकि उसी अध्याय के दूसरे श्लोक में इनको पवित्र कहा है ॥ ५९ ॥

तासु प्रधानयोगात् फलाधिक्यमेकं ॥ ६० ॥

कोई कोई आचार्य कहते हैं कि इन गौण भक्तियों ही में प्रधानता के कारण फल अधिक है ॥ ६० ॥

नाम्नेति जैमिनिः सम्भवात् ॥ ६१ ॥

जैमिनि आचार्य का मत है कि उन को मुख्यता नहीं है, यहाँ उनका नाममात्र कथन है ॥ ६१ ॥ अर्थात् पूर्वोक्त श्रीगीता जी के श्लोकों में उनका मुख्यता करके नहीं कथन है वरंच गिनती मात्र गिनायी है।

अत्रोगप्रयोगानां यथाकालसम्भवो मूढादिवत् ॥ ६२ ॥

यहाँ अंग के प्रयोगों का घर के अंगों की भाँति यथाकाल संभव है ॥ ६२ ॥ अर्थात् जैसे घर में पहिले नव तब द्वार तब छत इत्यादि अंगों का प्रयोग एक के बनने पर यथाकाल होता है वैसे ही परा भक्तियों की साधन अंग भक्ति का यथासमय प्रयोग होता है क्योंकि पहिले गुण श्रवण करेगा तब श्रद्धा होगी तब भजना, सेवना इत्यादि अनेक भक्तियों के पीछे परा भक्ति पायेगा।

ईश्वरानुष्ठेरेकोपि बली ॥ ६३ ॥

ईश्वर की तुष्टि के हेतु एक साधन करने वाला भी बली है ॥ ६३ ॥ अर्थात् भजन वा कीर्तन कोई एक साधन भी दृढ़ करके जो करेगा तो उसकी उस एक साधन पर दृढ़ता ईश्वर के तुष्टि की कारण होगी अर्थात् परा भक्ति की कारण होगी क्योंकि परा भक्ति स्वसाध्या नहीं है केवल ईश्वर के प्रसन्न होने से मिलती है।

अबन्धोऽप्यस्य सुखम् ॥ ६४ ॥

अर्पण का सुख अबंध है ॥ ६४ ॥ भागवत में श्रुताश्रुत कर्मों का अर्पण अबंध का द्वार है। यह

कीर्तनादिक गौणी भक्तियों के अतिरिक्त परा भक्ति सिद्धि का उपायान्तर कहते हैं क्योंकि यज्ञादिक में से बहुत काल में अनेक लोकप्राप्ति द्वारा क्रमशः ईश्वर-लोक-प्राप्ति के कष्ट-निवारण के हेतु सब कर्मों का समर्पण सहज उपाय है ।

ध्यानानियमस्तु दृष्टसौकर्यात् ॥ ६५ ॥

जिस का दर्शन अपने नेत्रों को जैसे उसी भाव से चिंतन करना यही ध्यान का नियम है ॥ ६५ ॥ भक्ति यदि स्वाभाविक होती है तो उत्तमा होती है क्योंकि हठ से की हुई भक्ति चिरकाल में सिद्ध होती है । इसी हेतु कहते हैं कि भगवान् के स्वरूप के ध्यान में हठ करके कोई नियम न मानना, जो स्वरूप अपने नेत्रों को स्वभावतः जैसे उसी का ध्यान करना ।

तद्यजिः पूजयामितरेषानैवम् ॥ ६६ ॥

"यान्तिमयाजिनोपि मां" इस वाक्य में यजन शब्द भगवत्पूजन के अर्थ है, इतर यागादिकों के लिये नहीं ॥ ६६ ॥ अर्थात् यज्ञादिक में कामना और हिसाबि अनेक दोष हैं, इस से भगवान् को यजन किसी और कर्म मार्ग के उपायों से न करना किन्तु केवल भगवत्स्वरूप की सेवा करनी ।

पादोदकं तु पाद्यमव्याप्ते ॥ ६७ ॥

भगवन्मूर्तियों के स्नान का जल ही पादोदक है, अव्याप्ति से ॥ ६७ ॥ अर्थात् साक्षाद्भगवान् वा अन्य किसी अवतार के चरण का जल ही चरणाभूत है, यह हठ न करना क्योंकि इस समय उसकी प्राप्ति कहाँ और पादोदक में चरण ही की मुख्यता न माननी क्योंकि श्रीशालिग्राम का स्नानजल भी पादोदक कहावेगा ।

स्वयमर्पितं ग्राहयन्नाविशेषात् ॥ ६८ ॥

अपनी समर्पण की हुई वस्तु को आप लेना, क्योंकि विशेषता नहीं है ॥ ६८ ॥ अपनी समर्पण की हुई वस्तु है, इस भ्रम से प्रसाद लेने में संकोच न करना क्योंकि वैष्णवों की भगवत्प्रसाद लेने की आज्ञा है और उस समर्पण करने वाले में कोई विशेष नहीं अर्थात् वह भी वैष्णवान्तः पाती है ।

निमित्तगुणान्यदपेक्षणादपराधेषु व्यवस्था ॥ ६९ ॥

निमित्त, गुण और अनपेक्षा से अपराधों की व्यवस्था है ॥ ६९ ॥ भगवत्सेवा में जो बत्तीस अपराध कहे हैं वे तीन भाँति के हैं, एक तो वे कि जैसे किसी कारण से हो जायँ, दूसरे वे जिनके करने का नित्य स्वभाव है और तीसरे वे जो भूले से हों । इन तीनों की व्यवस्था अलग है जैसे अनिच्छापराध से निमित्तापराध और निमित्तापराध से नित्यापराध बढ़कर है ।

पत्रार्दनमन्यथाहि वैशिष्ट्यम् ॥ ७० ॥

पत्रपुष्पादि का दान सर्व स्नान (स्नान फल रूप) है ॥ ७० ॥ क्योंकि भगवान् को पत्र का दान और स्वर्ण कोटि का दान दोनों समान संतोष करने वाला है ।

सुकृतत्वात्परहेतुश्च भावाच्च क्रियासु श्रेयस्यः ॥ ७१ ॥

ये भक्तियाँ पराभक्ति की कारण और पुण्यरूप हैं इससे सब क्रियाओं में श्रेयस्कर हैं ॥ ७१ ॥

गौणं त्रैविध्यमितरेण स्तुत्यर्थत्वात् साहचर्यम् ॥ ७२ ॥

(गीताजी के अ. ७ श्लो. ६ में आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी चारों प्रकार के भक्त कहे हैं, उन चारों की समता नहीं) गौणी भक्ति उसमें तीन ही हैं और स्तुति के अर्थ इनको ज्ञानी की भक्ति के साथ लिखा है ॥ ७२ ॥ क्योंकि आर्त की भक्ति अपनी विपत्ति मिटाने के हेतु है, जिज्ञासु की ज्ञानने के हेतु और अर्थार्थी की भक्ति अपने काम के हेतु है और ज्ञानी की भक्ति केवल प्रेम से है ।

बहिरन्तरस्थमुभयमवेष्यित्सर्वत ॥ ७३ ॥

(यद्यपि कीर्तनादिक भक्तियाँ परा भक्ति की अंग हैं परंतु यदि कीर्तनादि किसी में विशेष रुचि होय तो उस भक्ति में उस भक्ति की मुख्यता होगी क्योंकि) पराभक्ति के भीतर की भक्ति भी कहीं कहीं बाहर अर्थात् स्वतंत्र गिनी जाती है । जैसे यज्ञ की अवेष्टि यज्ञ के अंतर्गत और बहिर्गत भी है जैसे वाइपेय यज्ञ के अंग में वृहस्पतिसव आ जाता है परंतु वृहस्पतिसव की विशेष महिमा वेद में अलग भी लिखी है ॥ ७३ ॥

स्मृतिकीर्त्याः कथादेशवर्ता प्रायश्चित्तभावात् ॥ ७४ ॥

कथादिकों का स्मरण और कीर्तन आर्त भजन में प्रायश्चित्त भाव से है ॥ ७४ ॥ अर्थात् आर्तलोग अपने

पाप वा आपत्ति मिटाने के हेतु कीर्तनादि करने हैं, इससे यहाँ कीर्तनादि में विशेषता नहीं है ।

भूयसामननुष्ठितिरितिवेदाप्रयाणमुपसंहागन्महत्स्वाप ॥ ७५ ॥

जो कहे कि भक्ति करने वाले बहुत कर्मों का अनुष्ठान नहीं करते सो नहीं, क्योंकि बहुत कर्म करने वालों को भी अंत समय इसी का विधान है ॥ ७५ ॥ अर्थात् चाहे कितना ही कर्म करो जब भगवान की भक्ति बिना गति नहीं तो उस भक्ति के बिना बहुत विधिपूर्वक किए हुए भी अनेक कर्म व्यर्थ ही हैं ।

लघुपि भक्ताधिकारे महत्क्षेपक्रमपरसर्वहानान् ॥ ७६ ॥

(क्योंकि) थोड़ा भी भक्ताधिकार बड़े पापों का नाशक होना है क्योंकि भगवान की अपने शरणागतों की वा नामस्मरण करने वालों के सर्व पापहानि की प्रतिज्ञा है ॥ ७६ ॥

नन्थानन्वादनन्धर्मः खले वालोवन ॥ ७७ ॥

(क्योंकि) भगवदाश्रय हान में (छोटे भी) भगवद्धर्म अनन्धर्म ही है (और उन में सब बड़े पापों का क्षय हो जाना है) जैसा आखला में वालों का (अर्थात् आखला में कितना भी वाल पड़े सब कूट पिस जायेंगी वैसे ही भगवद्धर्म में कैसे भी पाप हा सब नाश हो जाते हैं) ।

यानिन्धयान्याशङ्कयन् पारम्पर्यान्सामान्यवत् ॥ ७८ ॥

चांडालयान का भी भगवद्भक्ति का अधिकार है क्योंकि परंपरा में भक्तों का समानता है ॥ ७८ ॥ और गुरु, गुरु, बानर इत्यादि मनुष्य छोड़ कर और यान के जीवों को भी भक्ति से सिद्धि मिली है तथा एक विशेषता यह भी है कि भारतखंड छोड़ कर खंडानर-वासियों को तो केवल भक्ति ही का आश्रय है क्योंकि वे कर्मभूमि नहीं हैं कि वहाँ के लोग कर्म से सिद्ध हों ।

अनाहर्षावैपक्वभावानामपि तल्लोके ॥ ७९ ॥

इसा हेतु परा भक्ति में जो पक्के नहीं हैं वे भी भगवत्लोक में वास करते हैं ॥ ७९ ॥ अर्थात् ब्राह्मण, शूद्र, वैश्य इत्यादि संज्ञा में अपने अपने जाति की पूर्ण क्रिया करो तो भी सिद्धि नहीं, कितना भी पुण्य करो अंत में आप हान पर भूबुलाक में आना पड़ता है और भक्ति करने वालों का नाश नहीं । जो पक्के नहीं हैं वे अनाहर्षा में रह कर भगवद्भक्ति में पक्के होकर अंत में भगवत्पद पाते हैं और भक्तों की कर्मवश से उपजी हुई कामना का भी भक्ति अंत में भस्म कर देती है । इसमें जड़मरत जी का उपाख्यान प्रमाण है ।

क्रमैकगत्युपपत्तेस्तु ॥ ८० ॥

केवल क्रममात्र में गति तो क्रिया की है ॥ ८० ॥ अर्थात् "बहुना जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते", "ननुजन्मनामन्तस्यदमना याति परां गतिं" इत्यादि वाक्यों में क्रम से जो सिद्धि पानी कहा है वह सुकर्म करने वालों का है । भक्तों को तो एक भक्ति ही से सद्यः गति होती है ।

उत्क्रान्तिस्मृतिवाक्यशेषान् ॥ ८१ ॥

क्योंकि भगवद्वाक्य में भक्तों को एक ही सब क्रमों का उल्लंघन करके सिद्धि मिलना कहा है ॥ ८१ ॥ अर्थात् "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज" इस वाक्य से भगवान ने अपने भक्त के अन्य धर्मों को और क्रम प्राप्त उनके गतियों की श्रीमुख से आप ही उपेक्षा की है और ९ अध्याय में अनेक प्रकार के मत्कर्म इत्यादि कह कर भी ३०।३१।३२।३३।३४ श्लोकों में "हमारा भक्त कैसा भी दुराचारी हो उसको साथ ही समझना" कहा है और अनेक जन्म तथा कर्मादिकों को उल्लंघन करके उसकी सद्यःगति की और उस गति के फिर कभी न नाश होने की "क्षिप्र, शश्वत्" इत्यादि शब्द कथनपूर्वक प्रतिज्ञा की है ।

महापातकानां त्वानां ॥ ८२ ॥

(जो कहे कि जो बड़े बड़े पापी लोग हैं वे भी क्रम को उल्लंघन करके परम पद पावेंगे इस पर कहते हैं कि) महापातकियों की भक्ति तो आत्मा की भक्ति में है ॥ ८२ ॥ अर्थात् पापी लोग अपने पाप की निवृत्ति के हेतु भक्ति करने हैं, उन की भक्ति सहज नहीं । जिनकी भक्ति सहज है उन के पापों के हेतु तो "आपचर्यमुदराचारा" इत्यादि वाक्य जागरूक ही हैं ।

सैकान्तभावोगीतार्थप्रत्याभिज्ञानात् ॥ ८३ ॥

परा भक्ति ही का नाम एकांत भाव है क्योंकि गीत में ऐसा ही कहा है ॥ ८३ ॥ यथा "अनन्यास्मिन्मन्यन्तो मां", "यो मां पश्यति सर्वत्र", "मनमना भव मदभक्तो", "मत्कर्मकृन्मत्परमोमदभक्तः", "ये न सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः", "तमेव शरणं गच्छ", "सर्वधर्मान् परित्यज्य" इत्यादि

वाक्यों से और उसके उपक्रमोपसंहार से सिद्ध है ।

परां कृत्वेव सर्वेषां तथाहयाह ॥ ८४ ॥

(जो कहो कि गीता जी के वाक्यों की प्रवृत्ति तो ज्ञान, योग, सत्कर्म कीर्तनादि गौणी भक्ति इत्यादि अनेक विषयों पर है इस पर कहते हैं) कि श्रीमद्भगवद्गीता के वाक्यों की प्रवृत्ति तो परा भक्ति ही को मुख्य कर के है ऐसा ही आप ने कहा भी है ॥ ८४ ॥ क्योंकि जब आप ने "मनमना भव मदभक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥ मामेवैष्यसि कौन्तेय प्रतिजाने प्रियोसि मे ॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ॥ अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः" ये दो वाक्य साधन, सिद्धा परा भक्ति ही के मुख्यता के हेतु कहे तो उस की श्रेष्ठता के हेतु पहिले आप्रहपूर्वक "सर्वगुहमतमं भूयः ऋणु मे परमं वचः" इससे अगले दोनों वाक्यों की महिमा कही और लोक में भी प्रसिद्ध है कि मनुष्य किसी को उपदेश करे परंतु अंत में जो निचोड़ कर कहे वही बात मुख्य होती है । परंच गीता जी के कहने का तो फल परा भक्ति ही है, यह आप ने "यद्वदं परमं गुह्यं मदभक्तोष्पभिश्चास्यति ॥ भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत् असेशयः" इस वाक्य में कहा है । इस से और "अहं" "त्वां" इन दो पदों के अलग होने से श्रीमद्गीता की प्रवृत्ति केवल भक्ति ही के हेतु है न ज्ञानकर्मादिकों के, यही सिद्ध हुआ ।

द्वितीयाध्याय का द्वितीयाहिनक समाप्त हुआ ।

भजनीयनाद्वितीयमिदं कृतस्नस्य तत्स्वरूपत्वात् ॥ ८५ ॥

(भक्ति की उत्कृष्टता और जीवों के साधन कह कर अब सच्चिदानंदमय परमेश्वर और उस के सदेश से जगत और चिदंश से जीव और आनन्दमय श्री विग्रह इनका परस्पर संबंध दिखाते हैं) यह सब ईश्वर स्वरूप ही है इस से भजनीय अर्थात् भगवान् से यह अलग नहीं है ॥ ८५ ॥ इस सूत्र से मिथ्यावाद निरस्त करते हैं क्योंकि मिथ्यावादियों के मन से संसार असत्य है परंतु यहाँ पर सूत्रकार भगवान् शाण्डिल्य मुक्त कंठ से जगत की सत्यता प्रतिपादन करते हैं और इस जगत का विस्तार इस प्रकार से है कि सच्चिदानंदमय ईश्वर को जब संसार की इच्छा हुई तो अपने सदेश से जड़ प्रपंच किया और चिदंश से चैतन्य प्रपंच (जीव सृष्टि) किया । जीव में आनंदांश का निर्गोभाव है क्योंकि बहुत काल से आनंदराशि भगवान् से इन का वियोग है । उस वियोग का न इनको स्मरण है न वियोग जन्य दुःख है, सो भगवान् की कृपा से वा उस के भक्तों की कृपा से उस के वियोग का स्मरण आना ही मानो उस के आनंदांश के आविर्भाव का कारण है और इसी से उसके एक अंश में स्थित यह सब नित्य सत्य है ।

तच्छक्तिर्माया जडसामान्यात् ॥ ८६ ॥

(मिथ्यावादी का निराकरण कर के अब मायावादी का निराकरण करते हैं) कि माया स्वतंत्र कोई वस्त्वंतर नहीं है किन्तु भगवान् के शक्ति ही का नाम माया है और वह भी जड़ अर्थात् अपनी सहज चैतन्यता शून्य अन्य चिदंश के समान है ॥ ८६ ॥ इस से मायावादियों का ईश्वर की माया के फंद में फँसना और शाक्तों का स्वतंत्र शक्तिवाद निरस्त हुआ ।

व्यापकत्वाद्व्याप्यानाम् ॥ ८७ ॥

(सदेश और चिदंश में आनंदांश व्याप्त है इस से परस्पर इन में व्याप्य व्यापक भाव हुए तो अब संसार की व्याप्य और ईश्वर की व्यापक संज्ञा हुई तो फिर से उस की सत्यता और शुद्धाद्वैतता दिखाने के हेतु कहते हैं) कि व्यापक के सत्य होने से उसका व्याप्य भी सत्य ही है ॥ ८७ ॥

न प्राणिवुद्धिभ्यो संभवात् ॥ ८८ ॥

(मायावाद निराकरण करके उस के समान ही नास्तिकवाद का भी निराकरण करते हैं) यह किसी प्राणी की बुद्धि से नहीं बना है, क्योंकि इसकी सूक्ष्मता प्राणियों की बुद्धि के बाहर है इस से यह प्राणियों की बुद्धि से बना है यह बात असेभव है ॥ ८८ ॥

निर्मायोच्चावचं श्रु तीक्ष्ण निर्मिमीते पितृवत् ॥ ८९ ॥

यह सब भूत-समूह बना कर वेदों को बनाता है, पिता की भाँति ॥ ८९ ॥ जैसे पिता पुत्रों को उत्पन्न करके फिर उनको शिक्षा देता है वैसे ही भगवान् अपने एकांश से जीवों को प्रगट करके फिर उनकी शिक्षा के

हेतु वेद कहना है ।

मिश्रोपदेशान्तेति चेन्न स्वल्पतवात् ॥ ९० ॥

जो कहो कि वेद के उपदेश मिश्र हैं अर्थात् अग्निष्टोमादिक यज्ञ में हिंसा का विधान है इस से ये वेद ईश्वर के बनाये नहीं, ऐसा नहीं क्योंकि वह भाग उस में बहुत ही थोड़ा अर्थात् उपेक्षित है ॥ ९० ॥

फलमस्माद्वादरायणो दृष्टत्वात् ॥ ९१ ॥

(अब कर्मवादियों का मत निराकरण करते हैं) कि ये कर्म स्वतः फलदाता नहीं, फल देनेवाला ईश्वर ही है, यह व्यास जी कहते हैं क्योंकि ऐसा ही देखा भी जाता है ॥ ९१ ॥ जैसे राजा के तोप के हेतु अनेक कर्म करो परंतु उसका प्रतिफल देना राजा ही के अधिकार में है वैसे ही ईश्वर का प्रसन्न होना कर्म के अधीन नहीं कर्म केवल साधक है ।

व्युत्क्रमानवययस्तथादृष्टम् ॥ ९२ ॥

लाय उलटी चाल से होता है ऐसा ही देखा गया है ॥ ९२ ॥ जैसे गोरखबंध की डिवियों का फैलाते जाओ तो कई डिवियाँ हो जाती हैं और जब बंद करा तब सब से छोटी अपने से बड़ी डिविया में और वह अपने से बड़ी में इसी प्रकार अंत वाली बड़ी डिविया में सब डिवियाँ छिप जाती हैं वैसे ही जिस क्रम से उत्पत्ति होती है (अर्थात् ब्रह्म से प्रकृति, प्रकृति से महत्तत्त्व इत्यादि एक से एक उत्पन्न होते हैं) वैसे ही लय होने के समय सब भगवान में लय पाते हैं, इस से फिर भी संसार की नित्यता सिद्ध किया ।

तीसरे अध्याय का प्रथमाहिनिक समाप्त हुआ ।

तदेक्यं नानात्वैकत्वमुपाधियोगहानादादित्यवत् ॥ ९३ ॥

उसकी एकता है क्योंकि उपाधि के योगों के मिटने से नानात्व का एकत्व हो जाता है आदित्य की भाँति ॥ ९३ ॥ जैसे "ध्यैयः सदा सवितुर्मंडलमध्यवर्ती" इत्यादि वाक्यों से भगवान् का स्वरूप और आदित्यमंडल यह दो पृथक् प्रतीत होते हैं परंतु वास्तव पृथक् हैं नहीं क्योंकि जब मंडलरूपी उपाधि को भगवान् अपने में लय कर लेता है तब केवल नारायण संज्ञा रह जाती है वैसे ही जब संसार को अपने में कर के उस के संयोग-विधायक "संसार" इन नाम को भी अपने में लय कर लेता है तब केवल आपही रह जाता है ।

पृथर्गान्ति चेन्न परेणासम्बन्धात्प्रकाशानां ॥ ९४ ॥

अलग कहा सा नहीं, ऐसा कहने से पर अर्थात् भगवान् से असंबंध होगा जैसे प्रकाशों का ॥ ९४ ॥ प्रकाशों का अर्थात् सूर्य-मंडल की और नारायण की जैसी एकता है वैसे ही भगवान् से इस से एकता है । इन दोनों का संबंध नहीं हो सकता ।

नविकारिणस्तु करणविकारान् ॥ ९५ ॥

ये आत्मा विकारी नहीं हैं क्योंकि ऐसा मानने से उनके कारण अर्थात् भगवान् को भी विकार मानना पड़ेगा ।

अनन्यभक्त्या तद्वुद्धिर्वृद्धिर्वादन्यन्ते ॥ ९६ ॥

(भजनीय का और भजन करने वाले का स्वरूप दिखा कर उनके वियोग स्मृति का स्मारक फिर से कहते हैं) कि उस परमानंदमय भगवान् में अनन्य भक्ति करते करते भूमी कीट की भाँति तद्वुद्धि हो जाती है और उस बुद्धि के भी लय होने से अर्थात् वियोग जन्य असह्य दुःख से सब सुख बुद्ध छूट जाने से अत्यंत अर्थात् सब वासनाओं के मोक्ष होने से परमानंद अर्थात् आनंद मात्र कर-पाद-मुखोदरादि भगवान् श्रीकृष्णचंद्र से नित्य लीला में संयोग होता है ॥ ९६ ॥

आयुश्चरमितरेषांतुहानिरनास्पदत्वात् ॥ ९७ ॥

(जो कहो कि संचित प्रारब्ध का भोग तो हुआ ही नहीं आनंद प्राप्ति कैसे हुई इस पर कहते हैं) कि साधारण जीवों की आयु ही प्रारब्ध की भोग कराने वाली है परंतु भगवद्भक्तों को तो उन संचित प्रारब्धों की आप ही हानि हो जाती है क्योंकि उसकी आश्रय आयु का भोग नहीं रहता ॥ ९७ ॥ अर्थात् जिनको

भगवद्वियोग स्मरण में एक एक क्षण कोटि कोटि कल्प तुल्य असहय यंत्रणा सड़ते हुए बीतते हैं व संयोगलीला स्मरण से एक एक क्षण लाख लाख बरस तक स्वर्ग के सुख भोग के समान बीतते हैं उनके सब भले बुरे प्रारब्ध इस वियोग संयोग के अनुभव में भस्म हो जाते हैं ।

संसृतिरेषाम भक्तिः स्यान्नाज्ञानात्कारणासिद्धेः ॥ १८ ॥

और जीवों की संसार की कारण अभक्ति है, अज्ञान नहीं, कारण की असिद्धि से ॥ १८ ॥ अर्थात् संसार के कारण भगवान् में अभक्ति ही बंधन की हेतु होती है क्योंकि बंध मोक्ष का दाता ही जिस से रुड़ा रहेगा उसे मोक्ष कहाँ ।

त्रीण्येषां नेत्राणि शब्दलिङ्गाक्षभेदाद्ब्रुवत् ॥ १९ ॥

(जो कहो कि जीव कैसे जाने इस पर कहते हैं) कि इन जीवों को श्रीमहादेव जी की भाँति तीन नेत्र हैं अर्थात् तीन प्रकार से वे जानें । कुछ तो शब्द अर्थात् वेदवदिकों से, कुछ लिङ्ग अर्थात् अनुमान से और कुछ अक्ष अर्थात् प्रत्यक्ष से जानें ॥ १९ ॥

अविस्तरोभावाविकाराः स्युः क्रियाफलसंयोगात् ॥ १०० ॥

लय और उत्पत्ति क्रियाफल के संयोग से विकार हैं ॥ १०० ॥ अर्थात् वास्तविक निर्विकार भावों में क्रिया फल के संयोग से विकार प्रतीत होता है । भगवत्स्वरूप ज्ञानान्तर भक्ति पाने से मनुष्य वास्तविक स्वरूप जानैगा इस से भक्ति ही मुख्य है ॥ इति ॥

व्याकुल लखि सत्र जीवगन, ज्ञान करम बहु मानि ।

कियो सूत्र शांडिल्य ऋषि, परम भक्ति की खनि ॥ २ ॥

सुमिरि राधिका-प्रानपति, ब्रज-जुवती-मन-फन्द ।

यह ताको भाषा तिलक, किय लदीय हरिचंद ॥ ३ ॥

शांडिल्य सूत्र और उस का भाषा भाष्य हुआ ।

अथ पाठांतर

१५ सूत्र, अभिज्ञायाः साहाय्यात् इति श्री उपासना सर्वस्व तथा श्रीकाण्डजिह्वास्वामिकृत पाठ ।

२६ सूत्र, तस्यानुज्ञानाय सामर्थ्यात् इति पूर्वोक्त पाठ ।

३० सूत्र, आत्मैकपरा इति पूर्वोक्त पाठ ।

३१ सूत्र, उभयपरा इति पूर्वोक्त पाठ ।

३२ सूत्र, प्रत्यभिज्ञानवत् इति पूर्वोक्त पाठ ।

३४ सूत्र, यहाँ से स्वप्नेश्वर के पाठ से पूर्वोक्त ग्रंथों के पाठ से बड़ा भेद है । यथा

जन्मकर्मविदश्याजन्मने शब्दात् ३४ तच्च दिव्य स्वशक्ति मात्राद्भावात् ३५ मुख्यं तस्य हि कारुण्यं ३६ प्राणिन्याननविभूतिषु ३७ इतराजसंवेद्योः प्रतिपेक्षाच्च ३८ वासुदेवेपीतिचेन्नाकारमात्रत्वात् ३९ प्रत्यभिज्ञानाच्च

४० वृष्णिषु श्रेष्ठेनतत् ४१ एवं सिद्धेषु च ४२ भक्त्या भजनोपसंहारात् परार्थे हेतुत्वात् ४३ रागार्थम्प्रकीर्तितसाहचर्याच्चेतरेषाम् ४४ अन्तराले चशेषाः स्युरुपास्यादौ च कांडत्वात् ४५ ताम्यः

पावित्र्यमुपक्रमात् ४६ तासुप्रधानयोगात् फलाधिक्यमेकं ४७ नाम्नेति जैमिनिः सम्भवात् ४८ अंगप्रयोगाणां

यथाकालं सम्भवो गृहादिवत् ४९ ईश्वरतुष्टरेकोपिवली ५० अवान्तोऽर्पणास्य सुखम् ५१ ध्याननियमस्तु

दृष्टिसौकार्यात् ५२ उद्यदिभः पूजायामेव प्रयुक्तः ५३ पादोदकं तु पाद्यमव्याप्तं ५४ स्वयमर्पितं

प्राहयमविशेषात् ५५ निमित्तगुणव्यापेक्षणादपरार्थेषु व्यवस्था ५६ पत्रादेर्दानमन्यथाहि वैशिष्ट्यम् ५७

सुकृतजत्वात् परहेतुभावाच्च क्रियासु श्रेयस्यः ५८ गौणत्रैविध्यमितरेण स्तुत्यर्थत्वात् साहचर्यम् ५९ वहिरंतः

स्यमुभयमेविष्टसंबन्धवत् ६० प्रमादसत्त्वास्तत्वाभ्यां विशेषात् ६१ स्मृतिकीर्त्योः कथादेश्चातौ प्रायश्चित्तभावात्

६२ भूयसामननुष्ठितिरिति चेदाप्रायणमुपसंहारान्महत्स्वपि ६३ लज्जपि भक्ताधिकारे महत् क्षेपकमपरसर्वहारात्

६४ तत्स्थानत्वदन्यधर्माः खलो बालीवत् ६५ आनिद्य योनिधिक्रियते पारम्पर्यात् सामान्यवत् ६६

अतोहयविपक्वभावानामपितल्लोकं ६७ क्रमेकगत्युपपत्तेस्तु ६८ उत्क्रान्ति वाक्यशेषात् ६९ महापातकिनां

न्यायों ७० सैकान भावा गीतार्थ प्रत्याभिलानात् ७१ परां कृत्यैव सर्वेषां तथा हयाह ७२ भजनीयमद्वितीयमिदम् । कृत्स्नस्य तत्त्वरूपत्वात् ७३ तच्छक्तिर्मायि तदुसामान्यात् ७४ व्यापकत्वात् व्याप्यानां ७५ नप्राणिबुद्धिभ्यो सम्भ-
वान् ७६ निर्मायोच्चावचं श्रुतांश्वर्तनमिमानेपितृवत् ७७ मिश्रापदेशान्तेति चेन्न स्वल्पत्वात् ७८ फलमस्माद्
वातरायणो दृष्टत्वात् ७९ व्युत्क्रमाश्रयमन्यथा दृष्टं ८० तदैक्यं नानात्वमुपाधितः ८१ पृथगेव चेन्न परेनासंबंधात्
८२ अधिकारिणस्तु कर्णविकागात् ८३ अनन्यमकस्या तद्वुद्धित्वयान्वयन्तं ८४ ग्रामादिवत् विशिष्टतया
पुमर्थत्वात् ८५ आर्युश्वरमित्यपरेषां तु हानिरनाम्यदत्वात् ८६ संभूतिरेषामभवत्तेः स्यान्नाज्ञानात् कारणासिद्धेः
८७ त्रीण्येषां नेत्राणां शब्दालिंगाक्षभेदाद्भवत् ८८ आर्विस्मिरोभावा विकाराः क्रियाफलसंयोगात् क्रियाफल
संयोगात् ८९ इस क्रम सूत्रों के पाठ ग्रन्थसमर्पित तक है । इति ।

अथ उपसंहारः ।

हम लोगों के आर्यशास्त्रों में श्रुतियों के पीछे मूल सूत्रों का बड़ा आदर है । ये सूत्र भिन्न २ ऋषियों ने भिन्न २ शास्त्रों के प्रतिपादन को बनाए हैं और पीछे उन्हीं पर भाष्य व्याख्या टिपनी टीका बना बना कर लोगों ने उन शास्त्रों को चौड़ाया है । यथा जैमिनि ने पूर्वमीमांसा, व्यास ने उत्तरमीमांसा, गौतम ने न्याय, कणाद ने वैशेषिक, कपिल ने सांख्य और पतंजलि ने योगसूत्र बनाए हैं । इन्हीं छः शास्त्रों की संज्ञा षड् दर्शन है । इन में पूर्व मीमांसा सब से प्राचीन बोध होता है । इन सूत्रों को छोड़ कर और भी अनेक सूत्र हैं यथा पार्श्वनि के व्याकरण के सूत्र, वात्स्यायन के कामसूत्र, वामन और भरत के अलंकारशास्त्र पर सूत्र, पिगल के छन्दःशास्त्र पर और दूसरे दूसरे ऋषियों के अन्य अन्य शास्त्रों पर । वैसे भक्तिशास्त्र पर शार्ङ्गिलय ऋषि के और नारद जी के सूत्र हैं । कहते हैं कि संकर्षणसूत्र और उसका प्राचीन भाष्य उपासना पर आगे प्रचलित था किन्तु अब उस की पुस्तक स्मरण शेष रह गई है ।

इस शार्ङ्गिलय सूत्र के भाष्यकारों ने सूत्रों के आरंभ करने के पूर्व उपासना रहस्य नामक अथर्ववेद की श्रुति का एक प्रकरण लिखा है । उस का आशय यह है कि ब्रह्मा ने श्रीशिव जी से भक्ति का भेद पूछा है उस पर थोड़े से में शिव जी ने ब्रह्मा से भक्तिस्वरूप कथन किया है । ब्रह्मा जी ने वह रहस्य नारद, वशिष्ठ, अस्मिन्, देवल और शार्ङ्गिलय से कहा है ।

इस प्रकार हम आर्य लोगों का मूल शास्त्र वेद त्रिकांड कहलाता है अर्थात् कर्म, ज्ञान और उपासना । पहले शास्त्र जीवों को कर्म का उपदेश करना है, उन कर्मों से शुद्ध अधिकारी जीव को ब्रह्मज्ञान कराना है, फिर अब ज्ञान हो लेना है तो उसको उपासना का उपदेश देना हुआ परम सिद्धि को पहुँचाना है ।

आज कल काल के प्रभाव से उपासनाकांड का प्रचार विरल हो गया है इसी हेतु इस सूत्र का भाषा में अर्थ प्रचार किया गया इस से जगत का परमोपास्य तुष्ट हो, इति ।



वैष्णवसर्वस्व

(संप्रदायपरंपरा और स्वल्प पुगावृत्त समेत)

‘चतुर्भुजभुजच्छाया समालंबात्सुनिर्भयाः॥
जयंति संप्रदायास्ते चत्वारो हरिवल्लभाः॥’

इसका रचनाकाल सन् १८७५ से १८७९ की बीच है। ‘हरिश्चन्द्र चन्द्रिका’ सं.
१० सन् १८७९ की अप्रैल के उत्तरार्द्ध अंक में प्रकाशित। सन् १८७६ में प्रकाशित युगल
सर्वस्व की भूमिका में भी इसका उल्लेख है।— सं.

वैष्णवसर्वस्व

(पूर्वार्द्ध)

१ — क्षर से परे अक्षर ब्रह्म स्वरूप नित्य लीला का गोलोक में धाम है जहाँ श्रीवृंदावन में श्रीयमुनाजी के निकट अनेक कुंजलताओं से वेष्टित एक मणिमय महायोगशिलास्तेम्भ है। उस भूमि का नाम विहारभूमि और तीर्थों की नाम-मूल-स्वरूप योगपीठ-शिला से मंडित उस कुट्टिम का नाम खेला तीर्थ है, जहाँ वेद वेदांतादि सर्वशास्त्र वेद्य सच्चिदानंदधन परमात्मा परमानंद-स्वरूप अनेक कोटि नित्यसिद्ध, साधन सिद्ध, भक्त, गोप, गौ और श्री गोपीजनों से वेष्टित उस योगपीठ पर एकाग्र चिंता से ध्यानावस्थित होकर श्रीब्रजेश्वरी की मानावस्था का ध्यान करते हैं।

२ — एक समय सब देवताओं के पूर्वज, सब विद्याके ईशान, सब भूतों के ईश्वर, चराचर के गुरु, मुमुक्षु-शरण, गुण-ब्रह्मस्वरूप श्री शिवजी उस गोकुल मंडप में गये। वहाँ अनेक प्रकार के गान से भगवान को रिझाया और संसार के उद्धार के हेतु प्रेम-मार्ग का सिद्धांत पूछा और भगवान ने प्रेममार्ग का परम गुप्त तत्व और परामाया श्रीपार्वती से ही कहा क्योंकि युगलस्वरूप के परम गुप्त विहार के अनुभव करने वा कहने सुनने का

पुरुष शरीरधारियों में शिव जी को छोड़ कर और कोई अधिकारी नहीं ।

३ — श्री महादेव जी को इस अवस्था में देखकर नारद जी ने अनेक बार तत्व पूछा परंतु श्री महादेवजी ने न बताया पर जब त्रिपुरासुर के युद्ध में भगवान ने त्रिपुर का नाश किया तब नारदजी ने बड़ी स्तुति किया और जब भगवान ने प्रसन्न होकर कहा कि "वर माँगे" तब नारदजी ने यही वर माँगा कि प्रेममार्ग का तत्व हम को बताइये और भगवान ने प्रेममार्ग के अनेक तत्व इन को बताये और सनकादि सिद्धों तथा आदि ऋषियों को भी भक्ति मार्ग का उपदेश किया । इस से ये नारदजी भक्ति मार्ग के तीसरे आचार्य हुए ।

४ — श्री नारदजी ने कृपा कर के उस तत्व को शाण्डिल्य, गर्ग, कौण्डिन्य आदि ऋषियों से कहा और अनेक ऋषियों के वाक्यों तथा शास्त्रों की विचित्र प्रवृत्तियों से व्याकुल श्री व्यासजी को भी अपना तत्वोपदेश किया ।

५ — व्यासजी ने उस तत्व को श्री शुकदेवजी से कहा ।

६ — श्री शुकाचार्य इस परंपरा में तृतीय और सप्तम दोनों हैं । तृतीय तो यों हैं कि नित्यलीला से वियुक्त एक शुक संसार में भ्रममाण होकर कहीं शान्ति न पाता हुआ कैलास में योगवट पर जा बैठा । वहाँ श्री महादेवजी पार्वती जी से परमगुप्त भगवद्ब्रह्मस्य कहते थे और यह लीला शुक उस नित्य लीला से वियुक्त वह सब चरित्र ज्ञान बल से सुनता तथा केवल लीला के अधिकारी होने ही के कारण उस रहस्य स्थान में उस का प्रवेश भी हुआ । श्री महादेवजी श्री पार्वती जी से अंबिकावन में गुगल स्वरूप का विहार तत्व कह रहे थे क्योंकि उस अंबिकावन में पुरुष भी जाय तो स्त्री हो जाय क्योंकि पुरुष शरीर उस गुप्त रहस्य सुनने का अधिकारी नहीं । उस लीलास्थ शुक ने वे रहस्य चरित्र सुने, उस के नेत्र से प्रेमाश्रु के बिन्दु गिरे और श्री महादेव जी के जंघा पर पड़े । महादेव जी ने यह जान कर कि इस शुक ने हमारा रहस्य सुना, बड़ा क्रोध किया और उस के मारने को अपना त्रिशूल चलाया और वह शुक वहाँ से भागा और व्यास जी की स्त्री के गर्भ में छिपा, इससे ब्राह्मणी और स्त्री को अवध्य जान कर शिवजी का त्रिशूल फिर आया और शुकदेव जी ने व्यासजी के घर में जन्म लिया । तो जो रहस्य शुकदेवजी ने साक्षात् शिवजी से सुने थे वे अपने शिष्य श्री विष्णु स्वामी से कहे, इससे तो ये (शुक) तृतीय हुए । और घर से निकल जाने के पीछे नारदजी से "अहो वकीयं स्तनकालकृत" यह श्लोक गाते हुए सुन के भगवान के चरित्र पूछे तबानारदजी ने कहा कि तुम्हारे पिता ये सब चरित्र भली भाँति जानते हैं उन से जाकर पूछो । यह नारदजी का वाक्य सुन शुकदेवजी घर आए और अपने पिता व्यासजी से सब रहस्यतत्व सीखे, इस रीति से ये षष्ठ हुए ।

७ — श्री विष्णुस्वामी — महाराज गुधिष्ठिर के राज्य समय से किंचित कलियुग बीते द्रविड़ देश में एक राजा हुआ । उस का मंत्री सर्वगुण संपन्न एक ब्राह्मण हुआ, जिस का नाम नारायण भट्ट था । उन के घर में भद्रपद कृष्ण भौमवार रोहिणी नक्षत्र दो पहर की समय में श्रीविष्णु स्वामी का जन्म हुआ । इनका बालपन का नाम माधव भट्ट था । सातवें बरस में इनके पिता परलोक सिंधारे और माता पति के साथ सती हो गई तब श्री विष्णु स्वामी अपने मामा रंगनाथ के साथ विद्याभ्यास के हेतु श्री काशी क्षेत्र में चले । मार्ग में पंढरपुर के राजा मंगलसेन की भेंट कर के काशी में आए और सदाशिव नामक ब्राह्मण से विद्याध्ययन किया और जब गुरुदक्षिणा में गुरु ने यह माँगा कि हम को व्यास सूत्र में कुछ संदेह है सो व्यास जी के मुख से वह अर्थ सुनाय दीजिये । तब योगबल से श्री विष्णु स्वामी ने एक दिव्यरथ मंगाया । उस पर आप आरूढ़ होकर अपने गुरु और उन के अनुज हरिहर भट्ट और पुत्र रंगनाथ भट्ट को साथ लेकर व्यासजी के आश्रम में जाकर व्यासजी के मुख से शुद्धाद्वैत मत के अनुसार मायावाद का खंडन कर के गुरु को सुनवाया और फिर पृथ्वीपर आकर हरिहर भट्ट रंगनाथ को शिष्य किया और सात सौ बरस भगवान की आशा से अपना शरीर रक्खा । परंतु यह काशी की यात्रावाला प्रसंग सब चरित्र के ग्रंथों में नहीं मिलता, केवल श्री विष्णुस्वामी चरितामृत नामक ग्रंथ ही में मिलता है । सब चरित्र सम्मत मत यह है कि श्री विष्णुस्वामी ने घर में सब विद्या पढ़ी और उनको इस बात का सोच राजा नहीं और हमारे पिता से बढ़ कर राजा के घर में और कोई मानपात्र नहीं तब कुबेर की सेवा करें, तो कुबेर भी इंद्र का अनुयायी है और इंद्रादिक देवता रुद्र के हैं और रुद्र तो ब्रह्मा का पुत्र है, ब्रह्मा भी नारायण के नाभि में से निकला है और नारायण भी अनेक मत्स्यादि अवतार बारंबार लिया करते हैं, इस से परतंत्र ज्ञात होते हैं

इस से उपनिषदों में सर्वेश्वर जिसको कहा है हम उस की उपासना करेंगे और जो सर्वेश्वर है उसकी सेवा महाराजोपचार से करने योग्य है ऐसा विचार कर के छत्र, चमर, सिंहासन, शय्या, धूप, दीप, भोग, इत्यादि राज सेवा-सामग्री सिद्ध कर के और भगवान का नाम रूपादि न जान कर के सर्वस्वामी के भाव से सेवा करने लगे। ऐसे ही नित्य सेवा करें पर उसको कोई अंगीकार न करे। जब ऐसे ही बहुत दिन बीते और उन की सेवा अंगीकृत न हुई तब उन्होंने ने तो यह प्रण किया कि यदि आज से सर्वेश्वर मेरी सेवा न ग्रहण करेंगे तो मैं भी अन्न ग्रहण न करूँगा और ऐसे ही बिना अन्न जलादि से छः दिन बीत गये तब सातवें दिन नित्य की भाँति भोग धर के प्रतिज्ञा की कि यदि आज भी सेवा का अंगीकार न होगा तो हम अग्नि प्रवेश करेंगे। ऐसी इन की बुद्धि की दृढ़ता देख कर श्री मच्छद्गुणैश्वर्य भगवान आविर्भूत हुए और सब सेवा का अंगीकार किया। जब स्वामी भीतर गए और वहाँ सच्चिदानंद रूप धन साक्षात् परब्रह्म दिभुज मुरली-भूषित दक्षिण और वाम दोनों भागों में स्वामिनी समेत को देख कर बोले कि आप यहाँ क्यों आए हैं, आप तो पुराण और तंत्रों के प्रतिपाद्य साकार देवता हैं और हम ने तो श्रुतिशिरः प्रतिपाद्य निर्गुण सर्व स्रष्टा सर्वस्वामी की उपासना और सेवा की। यह श्री विष्णु स्वामी का वाक्य सुन भगवान बोले — 'यदि हम से बढ़कर कोई ईश्वर है तो उसने तुम्हारी सेवा क्यों नहीं लिया? और मैंने यदि चार भाव से लिया तो उस ने दंड क्यों नहीं दिया?' तब विष्णुस्वामी ने कहा — 'तुम साक्षात् ईश्वर हो, हम तुम्हारे शरणार्थी हैं, अपना माहात्म्य आप स्थापन कर के हमारा संशय दूर करो'। इस पर भगवान ने अनेक युक्ति और प्रमाणों से अपना स्वरूप प्रतिपादन किया तब विष्णुस्वामी ने कहा कि आप सपरिवार यहाँ विराजो और मेरी सेवा का अंगीकार नित्य करो। तब आप ने आज्ञा किया कि हमारी मूर्ति को प्रेम से सेवा करो हम सब स्वीकार करेंगे और भगवान ने पंचाक्षर मंत्र का उपदेश कर के गीता और श्री भागवत परम शास्त्र है, हमारी सेवा ही मुख्य धर्म है और प्रेम मात्र साधन है यह उपदेश किया और आप अंतर्हित हुए। भगवान के कहे हुए प्रकार से और जैसी मूर्ति का स्वामी ने दर्शन किया था वैसी मूर्ति निर्मित करा के स्वामी सेवा करने लगे और लोकोपकार के हेतु आपने शिष्य संग्रह भी किया और किसी लेख के मत से आपने विवाह सेवा करने लगे और लोकोपकार के हेतु आपने शिष्य संग्रह भी किया और किसी लेख के मत से आपने विवाह कर प्रतिरोध किया। किसी के मत से आपने विवाह नहीं किया केवल त्रिदंडी सन्यास कर के सतत श्री हरि सेवन किया। जिस का मत "विवाह किया" यह है उसी का यह भी लेख है कि आपने शरीर सात सौ बरस रक्खा और आप को जो पुत्र हुआ उन का नाम श्रीगोपीनाथ था जिनका उसी लेख के मतानुसार चैत्र कृष्ण १३ घनिष्ठा नक्षत्र प्रथम प्रहर में जन्म हुआ था और २१ पीढ़ी तक वंश भी रहा और हरिहर, रंगनाथ, जयगोविंद, भट्टाचार्य, मोहनलाल, व्यक्तेश, नरहरि, चिंतामणि, सोमगिरि, पद्मावती, कुलशेखर, चंद्रसेन, हरिजीवी, शंकर, गोविंददास, देवजीव, यज्ञनारायण, नरसिंह, लक्ष्मणगिरि, हरिदास, गोविंददास, दयाराम, जीवनराम, मनसाराम, कृष्णदत्त, बोपदेव, केशव, जयदेव, रत्नपाल, दुर्गावती, नामदेव, विल्वमंगल इत्यादि शिष्यवर्ग स्वामी ही के काल में हुए हैं। वरं भी महाप्रभु जी को भी स्वामी ने आप ही उपदेश कर आचार्य पदवी दे भाष्य करने की आज्ञा दी परंतु यह अप्रमाण है। वास्तव में श्रीगोपीनाथ से ले कर श्री विल्वमंगल तक सात सौ परंपरा-प्राप्त शिष्य हुए और यहाँ जिनका नाम लिखा है वे उन में प्रसिद्ध थे और बहुतों के नाम काल बल से लुप्त हो गए। इसी से यहाँ पहिले और वर्णन छोड़ के उस घोर काल का वर्णन किया जाता है, जिस में वैदिक धर्म प्रायः उच्छिन्न सा हो गया था। भगवान ने बुद्धावतार ले कर बहुत से उपधर्मों का उपदेश करके सारे भारतवर्ष को उस धर्म से परिपूर्ण कर दिया। उस के कुछ काल पीछे एक दिन कैलास के शिखर पर सिद्ध वट के नीचे रत्नवेदि पर व्याघ्रचर्म के आसन पर बैठ के श्री पुरुषोत्तम का ध्यान करते रहे। कुछ काल के बाद भगवान उनकी समाधि से प्रगट हो कर कहने लगे कि "तुम द्वापरदि युगों में मनुष्यादि में अंश से अवतीर्ण हो कर अपने बनाये हुए शास्त्रों में लोगों को मुझ से विमुख करो और अपना प्रभाव प्रगट करो"। यह सुन शिवजी ने स्वीकारा। अनन्तर अपने को प्रगट करने की संधि देख रहे थे। उसी समय दक्षिण में द्रविड़ देश में एक महा शिव-भक्त वृद्ध ब्राह्मण था उस को कोई संतति नहीं थी, इसलिए वह ब्राह्मण कुछ अनुष्ठान करता था। सो एक दिन आप प्रसन्न हो कर "वरं ब्रूहि" यह बोले। यह शिव जी की वाणी सुनते ही ब्राह्मण ने कहा "महाराज ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे पुत्र मिले"। इस पर शिव बोले "निर्गुण मूर्ख पुत्र चाहोगे तो एक सौ पाँच बरस का मिले गा और दूसरा सर्वगुण-सम्पन्न बारह वर्ष का मिलेगा।" इस पर ब्राह्मण बोला 'महाराज ! तब तक आप ठहरिये जब तक मैं अपनी स्त्री से इसकी सलाह पूछूँ'। महादेव जी का ठहरने का विचार जान

क स्त्री से पूछने गया और स्त्री की संमति से शंकर जी से कहा महाराज ! सर्वगुणसंपन्न पुत्र मुझे दीजिए शिवजी ने बहुत अच्छा कह कर अन्य सर्वगुणसंपन्न कोई पुत्र न देखकर स्वयं उसका पुत्र होना स्वीकार किया और गर्भ-काल समाप्त होने पर उस ब्राह्मण के स्त्री से अवतीर्ण हुए । ब्राह्मण ने शिव का प्रसाद जान कर उस पुत्र का नाम शंकर रक्खा और क्रम से उपनयन तक संस्कार किये और साम वेद पढ़ाया । यह जनम से ही महाकवि हुआ, कभी शक्ति, कभी शिव और कभी विष्णु का स्तव करता था, जिस से वे देवता प्रत्यक्ष होकर वर देते थे । अणिमादि सिद्धि तो इस के वश में थीं । कुछ काल के अनंतर किसी ब्राह्मण के घर में अवतीर्ण गौरी से यथाविधि विवाह हुआ । गृहस्थाश्रमी होकर त्रैवर्णिक धर्मका अजन किया और लक्ष्मी ऐश्वर्य संतति की इच्छा करने वाले लोगों के लिये उपासना कांड प्रसिद्ध किया । सर्वजन में इसकी कीर्ति होने के कारण सब इसके वाक्य पर विश्वास करने लगे । ऐसे एकादश वर्ष व्यतीत हुए तब शंकराचार्य ने अपने तात से कहा कि पिता अब कुछ अनिष्ट होगा ऐसा ज्ञात होता है इसलिए मेरी मनीषा काशी में जाने की है सो आप की आज्ञा चाहता हूँ । यह सुन पिता ने कहा बहुत अच्छा है परंतु हमको भी काशी को ले चलो । तब शंकराचार्य ने अपने मा बाप को शिविका में बैठाकर स्त्री समेत काशी में आगमन किया । काशी में आते ही शंकराचार्य को कालज्वर आया और अपनी अंत की बेला जान मणिकर्णिका में स्नान किया और "निमज्जता नाथ भगवान्नाश्विराम्नया पोतइवामि लब्धः" इस श्लोकार्थ से स्तवन करते करते प्राण त्याग किया ।

यह पुत्र का अंत देख कर माता पिता ने बहुत विलाप किया । अंतर गौर्यश्रुत शंकराचार्य की स्त्री ने अग्रिम आधा श्लोक पढ़ा यथा "त्वयापि लब्धं भगवन्निदानीमनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः" । यह श्लोकार्थ सुनते ही शंकराचार्य जीवित होकर स्त्री से बोले कि यद्यपि तुमने हमको जीवित किया तथापि हम सन्यास करेंगे । ऐसा कहकर चतुर्विध कुटीचर, बह्मदक, हंस और परमहंसात्मक सन्यास किया । यद्यपि शास्त्र की आज्ञा, यावत् मदिरामत्त के समान ज्ञान से मत्त हुए बिना शिक्षा सूत्र का त्याग करने के विषय नहीं तथापि इन्होंने अपना पूर्व श्री विष्णु का "जमान्मद्भिमुखान्कुरु" यह वाक्य स्मरण करके शिक्षा सूत्र का त्याग किया और काषाय वस्त्र और दंड ग्रहण किया । अनंतर इनके बहुत से शिष्य भी हुए क्योंकि "यद्यदा चरति श्रेष्ठस्तत् देवतरोजनः । सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते" । अनंतर शंकराचार्य ने वही भगवान का वाक्य पूर्ण मनोगत कर के व्याससूत्र का भाष्य मायावाद अर्थात् दैत्य मत के अनुसार किया । कुछ दिन के अनंतर प्रायः इन का मत इस देश में फैल गया ।

उसी समय गुजरात देश में एक राजा था । उसका पुत्र कुमारपाल नामक था । यह हेम सूरि नाम किसी श्वेताम्बर जैन से पढ़ाया गया था । किसी समय कुमारपाल ने स्वप्न में राहु से प्रसा हुआ पूर्ण चंद्र देखा और हेमसूरि से इस का फल पूछने को तत्काल आया । स्वप्न का वृत्त सुनते ही हेमसूरि ने उस की बहुत निंदा की । राजपुत्र हेमसूरि के दुष्ट भाषण सुन घर आया और हेसूरि को मारने का विचार करते करते शेष रात्रि तक जागा । प्रभात होते ही हेमसूरि ने शिष्य द्वारा राजपुत्र को कहला भेजा कि यह 'स्वप्न बहुत लाभदायक है, आज से सातवें दिन राज्य सर्व तुम्हारे हस्तगत होगा । यदि यह असत्य हो तो हमें दंड देना नहीं हमारी आज्ञा मानना' । राजपुत्र ने हाँ कहा और ऐसा ही हुआ । तब राजपुत्र से कहकर हेमसूरि ने वैष्णव-शैव-मीमांसक सब को नगर से निकलवा दिया ।

उसी काल में सूर्याश देवप्रबोध नामा और जैमिनी के अंश भट्टाचार्य नामा पूर्व में दो पंडित हुए । वे लोग जब काशी में आये तब सुना कि गुजरात में जैनों ने वेदमार्ग का नाश किया । ये सुन के वे लोग गुजरात गये और काल पाकर हेमसूर्य के विश्वासपात्र शिष्य हुए । एक दिन पद्मावती की अंतरंग आराधना में हेमसूर्य ने इन दोनों को मद्य पीने को दिया । देवप्रबोध ने तो मारे डर के पी लिया । भट्टाचार्य ने कहा कि थोड़ी देर ठहर के पीयेगे । अनंतर हेमसूर्य ने वेद धर्म की निंदा करना शुरू किया । यह सुन कर भट्टाचार्य की आँखों से आँसू गिरने लगा और हेमसूर्य ने जाना कि यह कोई छिपा हुआ ब्राह्मण है । हेमसूर्य ने उसे अपने ऊपर के कमरे में कैद किया । वहाँ जैनमार्ग की बहुत सी पुस्तकें रक्खीं जिनको पढ़ कर भट्टाचार्य ने वही वशीकरण सिद्ध कर लिया जिससे हेमसूर्य ने राजा को वश कर लिया था । उस राजा की एक रानी वैद्यक थी और नित्य शालिग्राम का पूजन करके जल पीती थी । उसका महल भट्टाचार्य के बंगले से बहुत निकट था । एक दिन उस रानी ने लंबी साँस लेकर यह आधा श्लोक पढ़ा "किं करोमि क्व । गच्छामि को वेदानुदरिष्यति" । यह सुनते ही भट्टाचार्य ने उत्तर दिया "माविशीद वरारोहे ! भट्टाचार्य स्तिभूतले" और यह कहके कूद पड़े कि जो वेद प्रमाण

हा तो हम न मरें । कहते हैं कि इतने ऊँचे से गिरने से वेद की सत्यता से उनके प्राण तो नहीं गये पर 'जो वेद सत्य हो' इस संदेह के वाक्य कहने से उनकी आँख में चोट आई और वहाँ से निकल कर उस नगर में एकांत में वे छिपे छिपे रहने लगे । एक दिन एक बगीचे में एकांत में एक तुलसी का पेड़ देखा और वहीं बैठे रहे । जब साँझ हुई तब एक माली आया और तुलसी की पुड़िया फूल में छिपाकर ले चला । भट्टाचार्य ने माली से बहुत हठ पूर्वक रानी का सब वृत्तांत जाना और 'कि करोमि क्व गच्छामि' यह पूरा श्लोक लिखकर माली को दिया कि वह रानी को देवे । रानी ने एकांत में भट्टाचार्य को बुलाया और यह जैन बनकर उसके महल में गए और फिर ब्राह्मण होकर रानी का दर्शन दिया । रानी ने इसकी बड़ी पूजा किया और दोनों ने मिल कर वेद धर्म के लिए बड़ा विलाप किया। रानी ने उनको अपने महल में छिपा कर रक्खा । फिर जैसा वशीकरण का बाजू हेमसूर्य ने राजा के हाथ में पहिनाया था वैसा ही दूसरा बाजू भट्टाचार्य ने बनाकर रानी से राजा के हाथ में बंधवा दिया और वह बाजू अपने पास मँगवा लिया इस अभिचार से राजा को बड़ा ज्वर आया । राजा ने हेमसूर्य से ज्वर की निवृत्ति का उपाय पूछा । उसने कहा कि ब्राह्मण को काल-पुरुष दान देने से ज्वर छूटेगा । राजा ने एक ब्राह्मण का लड़का खोज कर जनेऊ पहना कर काल-पुरुष को दान दिया और उससे राजा का ज्वर छूट गया । राजा के चित्त में उसी दिन से ब्राह्मणों का महत्व बढ़ा और ब्राह्मणों को राज्य में रहने की आज्ञा मिली । उसी समय देवप्रबोधाचार्य भी प्रायश्चित्त करके नरसिंह जी सेवर पाकर सिद्ध होकर पालकी पर चढ़ कर बहुत से शिष्यों के साथ उस नगर में आये । भट्टाचार्य इनसे आकर मिले । एक दिन जब ये श्राद्ध करते थे तब हेमसूर्य ने अपने मंत्र से इनका श्राद्ध नाश करना चाहा और जहाँ पाक होता था वहाँ मद्य बरसाना चाहा । भट्टाचार्य ने भी मंत्र से नारियल उड़ाये, जो जैन सिद्धों के सिर पर गिरने लगे, जिससे वे वहाँ से भाग गए । दूसरे दिन सब ब्राह्मण मिल कर राजसभा में गये । राजा ने प्रणामादि से इनका बड़ा सत्कार किया । ज्योतिषी ने पंचांग सुनाया । स्मार्त ने कहा आज अमावस्या है, श्राद्ध करना चाहिये । सुनते ही हेमसूर्य ने कुढ़ कर कहा कि आज अमावस्या नहीं पूर्णमासी है । अंत में यह ठहरी जिसकी बात छूट हो वह अपने मत की पुस्तक समेत पृथ्वी में गाड़ा जाय । साँझ को हेमसूर्य ने अपनी इष्ट देवता पद्मावती से प्रार्थना करके उसका कुंडल चंद्रमा के स्थान पर उदय कराया । देवप्रबोध ने नृसिंह जी के प्रसाद से यह बात जानकर राजा से कहा कि यह कुंडल है और इसका प्रकाश केवल बारह कोस तक है । राजा ने उसी समय सवार भेजकर जब वृत्त जाना तब दूसरे दिन हेमसूर्य को पुस्तकों समेत पृथ्वी में गाड़ दिया । जिस समय हेमसूर्य गाड़ा जाता था उस समय बड़ी भीड़ हुई और सब लोगों ने मिलकर हेमसूर्य से पूछा कि 'अब तुम धर्म का सच सच तत्व बताओ' तब यह श्लोक पढ़कर उसने प्राण त्याग किया — 'हरिर्भागीरथी विप्राः विप्राः भागीरथी हरिः । भागीरथी हरिर्विप्राः सारमेकं जगत्त्रये' । । जैनों का बल टूटने से वेद फिर प्रवर्त हुये और वैष्णव-शैवमत प्रचार हुआ । भट्टाचार्य ने अपना वेदांत मत चलाया और पद्मावती को श्राप दिया कि तू मनुष्य हो । वही सरस्वती नाम से भट्टाचार्य ही के कन्या हुई और भट्टाचार्य ने उसका विवाह ब्रह्मा के अंश सुरेश्वराचार्य नामक अपने शिष्य से कर दिया । सुरेश्वर अपनी स्त्री को लेकर काशी में रहने लगे । जिस समय भट्टाचार्य शतायु होकर जैन ग्रंथ पढ़ने के प्रायश्चित्त में तृषानल करके जलने लगे, उस समय शंकराचार्य ने आकर इनका हाथ पकड़ा और कहा कि हम से वाद करो । भट्ट ने कहा तुम काशी जाव वहाँ हमारे जामाता से वाद करना, हम तो अब देह त्याग करते हैं । शंकराचार्य काशी में आये और सुरेश्वर की स्त्री को मध्यस्थ कर के वाद आरंभ किया । पद्मावती ने पूर्व वैर स्मरण कर के शंकराचार्य का पक्ष किया । सातवें दिन सुरेश्वरचार्य हारे और शंकराचार्य ने उन्हें सन्यासी किया । शंकर दक्षिण में गोकर्ण शिवक्षेत्र में आये और चार शिष्यों को आज्ञा दिया कि चार दिशा में जाकर तुम लोग शिखा सूत्र परित्याग पूर्वक सन्यास मत का प्रचार करो । उन शिष्यों में मध्य नामक एक ब्राह्मण को भगवान श्री रामचंद्रजी ने रात्रि को स्वप्न में आज्ञा दिया कि तुम तो हनुमान के अंश हो और वैष्णव मत फैलाने का तुम्हारा अवतार है, सो उठो और शंकराचार्य का मत खंडन करके हमारे तत्व वाद के अनुसार व्यास सूत्र की व्याख्या कर के वैष्णव मत फैलाओ । मध्वाचार्य ने भगवदाज्ञानुसार दूसरे दिन से शंकराचार्य का मत कंठरव से खंडन करके वैष्णव मत का प्रचार किया ।

विल्वमंगल के पीछे और मध्वाचार्य के पहले द्रविड़ देश में रामानुज नाम एक ब्राह्मण हुये । लक्ष्मी को तप से प्रसन्न करके उनसे वर माँगा कि हमसे भवगत सिद्धांत कहो । लक्ष्मी जी ने गरुड़ जी को आज्ञा दिया और गरुड़ जी ने नारायणीय सिद्धांत रामानुज से कहा, जिसके अनुसार श्रीरामानुजाचार्य ने गीता और सूत्र

पर भाष्य करके विशिष्टाद्वैत वैष्णव संप्रदाय संसार में फैलाया। इसी संप्रदाय में अगस्त्य और परशुराम के बनाये हरिहरोपासक और लक्ष्मी के उपासक वैष्णव शाखांतर में हुए हैं।

इस काल से बहुत पूर्व ही पंढरपुर में व्यास और सूर्य के अंश से निबादित्य ब्राह्मण हुये, जिनको श्री विठ्ठलनाथ जी ने अपना सिद्धांत कहा और उसके अनुसार उन्होंने द्वैताद्वैत मत प्रवर्त किया। जैनों के बल से लुप्त संप्रदाय को श्रीनिवासाचार्य ने सूत्र और गीता पर भाष्य करके फिर से प्रवर्त किया।

यह चारो संप्रदाय अर्थात् विष्णुस्वामी, मध्व, रामानुज और निबादित्य की पूर्वी व्यवस्था हुई। ये संप्रदाय रुद्र, ब्रह्म, लक्ष्मी और सनकादि के क्रम से प्रवर्त किये हुये वास्तव में एक प्रगट अलग अलग संसार में प्रसिद्ध हैं।

मध्वाचार्य से श्री जगन्नाथ जी ने आज्ञा किया था कि 'जो इन चारो संप्रदाय के बाहर है वह हमारा प्यारा नहीं है।'।

इन्हीं संप्रदायों के चार उपसंप्रदाय हैं — विष्णुस्वामी का उपसंप्रदाय चैतन्य, रामानुज का नंद, मध्वाचार्य का प्रकाश और निबादित्य का स्वरूप। इनमें स्वरूप और प्रकाश की संप्रदाय कालबल से विचिछन्न हो गई। ये चारो उपसंप्रदाय मूल संप्रदाय से अतिरुद्ध हैं, केवल आचार्यों के रुचिभेद से नामांतर से प्रसिद्ध हैं।

चतुर्भुजभुजच्छाया व्यवसायात्सुनिर्मयाः।

जयन्ति स सम्प्रदायाश्चत्वारो हरिवल्लभाः ॥ १ ॥

(उत्तरार्द्ध)

अथ श्रीविष्णु स्वामी संप्रदाय-परंपरा

श्री पुरुषोत्तम, शिव जी, श्री नारद जी, श्री व्यास जी। व्यासजी को दो शिष्य शुकदेव जी और शांडिल्य। शांडिल्य के शिष्य गर्ग और कौण्डिन्य। शुकदेवजी के शिष्य विष्णुस्वामी। विष्णुस्वामी से क्रम से परमानंद मुनि, आनंद मुनि, प्रकाश मुनि, श्रीकृष्णमुनि, नारायण मुनि, जै मुनि, श्रीमुनि, शंकरभट्ट, पद्मभट्ट, गोपाल भट्ट, श्रीधर भट्ट, श्याम भट्ट, राम भट्ट, सेतु भट्ट, कृष्ण भट्ट, दिवाकर भट्ट, कृपाल भट्ट, विद्याधर भट्ट, दिनकर भट्ट, मधुनिधान भट्ट, ज्ञान देव भट्ट, शुकदेव भट्ट, शिवदेव, शांतिदेव, दयालदेव, क्षमादेव, सन्तोषदेव, धीरजदेव, ध्यानदेव, विज्ञानदेव, महाचार्य, तत्वाचार्य, नृसिंहाचार्य, सूवाचार्य, सुबुद्धाचार्य, प्रबुद्धाचार्य, प्रबोधाचार्य, असुवाचार्य, रुद्राचार्य, भगवन्ताचार्य, रामेश्वराचार्य, ब्रह्मविधिचर्याचार्य, सुदयाचार्य, लक्ष्मनारायणाचार्य, ज्ञानदेव, नाम देव, विलोचनदेव इत्यादि विल्वमंगल जी तक सात से आचार्य हुए हैं, इसी से श्री महाप्रभु जी पहले से गिनने से सात से सातवें आचार्य हैं।

कहते हैं कि विष्णुस्वामी ने फिर से जन्म लिया था और व्यास अवतार कहलाते थे।

श्री बल्लभा मत के अतिरिक्त श्री विष्णुस्वामी के संप्रदाय के लोग और कहीं कहीं भी मिलते हैं जैसा कि श्री प्रेमाकर गुसाई के शिष्य नारायण दास जी सारस्वत, जिनको श्री शुकदेव जी ने दर्शन दिया था। उन के पीछे पुरुषोत्तम जी और वंशीधर जी इस वंश में प्रसिद्ध हुए हैं। नाभा जी ने इन्हीं नारायण दास का भक्तमाल में वर्णन किया है। यह गद्दी नवल गोस्वामी के नाम से अब तक प्रसिद्ध है। ऐसे ही ब्रज में और भी कुछ लोग इस संप्रदाय के हैं।

अथ श्री मध्व संप्रदाय परंपरा

देवता	अंशावतार	पृथ्वीस्थित्यंका	पुण्यतिथि	स्थल
१ वायुदेव	श्री आनंद तीर्थस्वामी	६८ माघ शुक्ल	९	१ स्थलदक्षिणस्थवृन्दावने
२ रुद्रदेव	पद्मनाभतीर्थस्वामी	७ कार्तिक कृष्ण	१४	२ बद्रिकाश्रम
३ मन्मथदेव	नरहर तीर्थस्वामी	८ पौष कृष्ण	७	३ अनीगोदी
४ गरुडदेव	माधव तीर्थस्वामी	१७ भाद्रपद कृष्ण	१५	४ हंवरूपाक्षी
५ रुद्रदेव	अक्षोभ तीर्थस्वामी	मार्गशीर्ष कृष्ण	१५	५ मेणुर भीमा तीर
६ हंसदेव	जय तीर्थस्वामी	९ आषाढ़ कृष्ण	८	६ मलखेड़ा

७	सूर्यदेव	विद्यानिधि राजतीर्थ	६४	वैशाख शुक्ल	३	७	जगन्नाथ
८	चंद्रदेव	कवींद्र तीर्थस्वामी	७	चैत्र शुक्ल	९	८	पंपा सरोवर
९	यमदेव	वागीश तीर्थस्वामी	४	चैत्र शुक्ल	२	९	आनिगोदी
१०	अग्निदेव	रामचंद्र तीर्थस्वामी	३३	वैशाख शुक्ल	८	१०	मलछेड़ा
११	वरुणदेव	विद्या तीर्थस्वामी	८	कार्तिक कृष्ण	४	११	आनिगोदी
१२	कुबेरदेव	रघुनाथ तीर्थस्वामी	३६	मार्गशीर्ष कृष्ण	२	१२	कोलुर
१३	प्रवाहदेव	रघुवर्य तीर्थस्वामी	८	ज्येष्ठ कृष्ण	३	१३	पेनगोडी
१४	नैऋतिदेव	रघुत्तम तीर्थस्वामी	३८	पौष शुक्ल	११	१४	ये चक्रमगर
१५	तुवुरुदेव	वेदव्यास विधि तीर्थ	२४	चैत्र शुक्ल	२	१५	पण्डरपुर भीमा तीर
१६	हाहागंधर्व	विद्याधीश तीर्थ	१८	पौष कृष्ण	१४	१६	सांगलि कृष्ण तीर
१७	हू हू गंधर्व	वेदनिधि तीर्थस्वामी	१७	कार्तिक शुक्ल	१२	१७	निवृत्ति संगम तीर
१८	लोमस ऋषि	सत्यवर्य तीर्थस्वामी	८	फाल्गुण शुक्ल	६	१८	विलोब नगर
१९	जाबालि ऋषि	सत्यनिधि तीर्थस्वामी	२२	मार्गशीर्ष शुक्ल	४	१९	माचारगुडी काबेरी ती
२०	विश्वामित्र	सत्यनाथ तीर्थस्वामी	३९	मार्गशीर्ष शुक्ल	११	२०	कोलुर
२१	मेघातिथि	सत्याभिमान तीर्थ	६९	ज्येष्ठ कृष्ण	१४	२१	आरपी
२२	पराशर ऋषि	सत्यपूर्ण स्वामी	२२	ज्येष्ठ कृष्ण	२	२२	माना मदरी
२३	जामदग्नि ऋषि	सत्य विजय स्वामी	१३	ज्येष्ठ कृष्ण	१२	२३	साबपुर सावपूर
२४	कश्यप ऋषि	सत्यप्रिय स्वामी	९	चैत्र शुक्ल	१३	२४	तुंगभद्रा तीर
२५	मण्डव ऋषि	सत्यबोध तीर्थस्वामी	३०	फाल्गुण कृष्ण	१	२५	सांतविचतुर
२६	—	सत्यसंघ तीर्थस्वामी	११	ज्येष्ठ शुक्ल	२	२६	—
२७	—	सत्यवर तीर्थस्वामी	२	श्रावण शुक्ल	७	२७	—
२८	—	सत्य धर्म तीर्थस्वामी	—	—	—	२८	—
२९	—	सत्य संकल्प तीर्थस्वामी	—	—	—	२९	—

अथ श्री चैतन्य संप्रदाय परंपरा

श्री कृष्ण, ब्रह्मा, नारद, व्यास, मध्व, पद्मानाभ, नृहरि, माधव, अक्षोभ्य, जयतीर्थ, ज्ञानसिंधु, दयानिधि, विद्यानिधि, राजेंद्र, जयधर्मा, पुरुषोत्तम, ब्रह्मण्य, व्यासतीर्थ, लक्ष्मीपति, माधवेन्द्र । उन के तीन शिष्य १ ईश्वर १ अद्वैत २ और नित्यानंद २ । ईश्वर के श्रीकृष्ण-चैतन्य, उनके गोपालभट्ट, उनके गोस्वामी गोपीनाथ जिनका वंश अब प्रसिद्ध है । श्री कृष्ण-चैतन्य के मुख्य चौदह पाण्ड और चौसठ महंतों के नाम नीचे लिखे के अनुसार जानो । और श्रीकृष्ण-चैतन्य विद्या में केशवपुरी के शिष्य थे ।

अद्वैत १ अभिराम २ नित्यानन्द ३ सुंदर ठक्कुर ४ धनंजय पंडित ५ कमलाकर ६ साहस पंडित ७ पुरुषोत्तम ८ श्रीधर ९ हलायुध १० गौरीदास ११ उद्धारण १२ परमेश्वर १३ कृष्ण १४ ।

नीलांबर चक्रवर्ती १ गदाधर पंडित २ गदाधर ठक्कुर ३ नरहरी ४ मुकुंद ५ सदाशिव कविराज ६ जगदानंद पंडित ७ दामोदर ८ बनमाली ९ रघुनाथ भट्ट १० गदाधर भट्ट ११ प्रबोधनंद १२ राघो गोस्वामी १३ भूगर्भ गोस्वामी १४ काशीमिश्र १५ रूप गोस्वामी १६ सनातन गोस्वामी १७ रघुनाथ दास १८ रघुनाथ भट्ट १९ गोपाल भट्ट २० लोकनाथ २१ इसरे गदाधर भट्ट २२ जीव गोस्वामी २३ गोविंद २४ माधव २५ बासू घोष २६ सिवानंद की स्त्री २७ परमानंद पुरी २८ राघोदास २९ शुक्लांबर ब्रह्मचारी ३० जगदीश पंडित ३१ श्रीलाचार्य ३२ गरुड़ ३३ गोपीनाथ सिंह ३४ शंकर ३५ गुणसागर राय ३६ माधव ३७ भास्कर ३८ बनमाली ३९ सार्वभौम ४० सिहानंद ४१ लोकनाथ कविचंद्र ४२ श्रीनाथ ४३ रामनाथ ४४ काशीमिश्र ४५ रामानंद ४६ प्रतापरुद्र ४७ कालीदास ठक्कुर ४८ माकी स्त्री ४९ गोपीनाथाचार्य ५० शारंगदास ५१ विश्वेश्वर ५२ सत्यराज ५३ रामानंद ५४ गोविंद ५५ गरुड़ ५६ आचार्यरत्न ५७ श्री वल्लभ ५८ वृंदावन ५९ शिवानंद ६० जगन्नाथ पंडित ६१ अनल ६२ हरिदास ६३ हृदयानंद ६४ ।

अथ श्रीरामानुज संप्रदाय परंपरा

पुरुषोत्तम, लक्ष्मी, विश्वक्सेन, शठकोप, श्रीनाथ, पुंडरीकाक्ष, रामामिश्र, यामुनाचार्य, पूर्णाचार्य, रामानुज, गोविदाचार्य, पराशर, वेदांताचार्य, कलिवैरिदास, श्रीकृष्णप्रसाद, लोकाचार्य, श्रीशैलनाथ, वरवर मुनि, वरदनारायण, श्रीनिवासदास, प्रणतार्तिहराचार्य, वरदाचार्य, वेंकटेश, वरदाय्य, प्रणतार्तिहर, वेंकटार्य, वेंकटेश, वरदाचार्य, प्रणतार्तिहर, श्रीनिवास, वेंकटाचार्य, कृष्णाचार्य, शेषाचार्य, श्रीनिवासरंगाचार्य। यह तो वर्तमान वृंदावनस्थ स्वामी रंगाचार्य तक परंपरा लिखी है परंतु रामानुज संप्रदाय में चौहत्तर गद्दी हैं। और देवाचार्य से प्रबोधानंद, राघवानंद, रामानंद यह रामानंदी शाखा है। रामानंद से अनंतानंद, कृष्णदास, कालीदास, अग्रदास, नारायणदास, गोविंददास, कान्हरदास तक अग्रदासी शाखा है। और निंबादित्य और रामानुज संप्रदाय से मिलकर श्रीजानकी घाट की और मिथिलापुर की संप्रदाय स्वतंत्र बन गई है। कितने साधु अग्रस्वामी के संप्रदाय के पौहारी बाबा को रामानुज के अंतर्गत मानते हैं पर महाराज विश्वनाथ सिंह ने अपनी गुरु परंपरा में इन लोगों को निंबादित्य के अंतः पाती हितहरिवंश जी के संप्रदाय में माना है।

अथ श्री निंबादित्य संप्रदाय परंपरा

हंस, सनकादिक, नारद, निंबादित्य। निंबादित्य का नाम निंबार्क और नियमानंद भी है। इनकी माता जयंती और पिता अरुण द्रविड़ ब्राह्मण। इसी से इनको आरुणी भी कहते हैं। अंतरंग रूप इनका श्रीललिताजी और रंगदेवी का है। मर्यादा में ये सुदर्शन चक्र का अवतार हैं। शिष्य परंपरा श्रीनिवासाचार्य, विश्वाचार्य, पुरुषोत्तमाचार्य, विलासाचार्य, स्वरूपाचार्य, माधवाचार्य, बलभद्राचार्य, पद्माचार्य, श्यामाचार्य, गोपालाचार्य, कृपाचार्य, देवाचार्य, सुंदर भट्ट, पद्मनाभ, उपेन्द्र भट्ट, रामचंद्रभट्ट, वामनभट्ट, कृष्णभट्ट, पद्माकरभट्ट, भूरिभट्ट, माधवभट्ट, श्यामभट्ट, गोपालभट्ट, बलभद्रभट्ट, गोपीनाथभट्ट, केशवभट्ट, गंगलभट्ट, केशव काश्मीरिभट्ट, श्रीभट्ट, हरिव्यासदेव। हरिव्यासदेवजी के पाँच शाखा नीचे लिखे हुए के अनुसार यथा।

शोभूराम, कर्णहरदेव, मधुरेश नरहरिदास, प्रह्लाददास इत्यादि।

दूसरी शाखा

कर्णहरि, परमानंददेव, नागजी, मोहनदेव, आत्माराम, नारायण दास, भगवानदास, गिरधारीदास, गोपालदास।

तीसरी शाखा

शोभूराम, मधुरेशदेव, बदरीशदेव, जयरामदेव, कृष्णदेव, धर्म दास जी।

चौथी शाखा

व्यासदेव, परशुराम, हितहरिवंश, नारायणहित, वृंदावनहित, श्री गोविंदहित।

पाँचवीं शाखा

व्यास जी के पहले किसी महात्मा से है यथा श्री आशाधीर जी, श्रीहरिदास स्वामी, विट्ठलविपुलविनोदविहारण, विहारणदास जी, नरहरदेव जी, रसिकदेव जी, पीतांबरदेव, गोवर्द्धनदेव, नरोत्तमदेव। रसिकदेव जी के दूसरे शिष्य ललितकिशोरी उनके मौनीदास जी जिनकी श्रीवन में टट्टी है।

शोभूराम जी के भाई आत्माराम उन की दो शिष्य-परंपरा, एक संतदास की, एक माधव दास की।

इस संप्रदाय में सुमुखन भक्त के पुत्र व्यासजी बड़े प्रसिद्ध हुए हैं, संवत् १६१२ में जन्म, पैंतालीस वर्ष की अवस्था में श्रीवन आए और बारह संप्रदाय चलाई।

श्रीहित हरिवंश जी का निवास देवनगर, गौड़ ब्राह्मण काश्यप गोत्र यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा, पिता व्यास मिश्र माता तारावती, वंशी का अवतार, संवत् १५५९ वैशाख सुदी ११ को जन्म। इनके ताऊ नृसिंहाश्रम प्रसिद्ध भक्त थे। इन को बारह भाई और स्त्री का नाम रुक्मिणी, मोहन जी इत्यादि तीन पुत्र और एक कन्या। श्रीस्वामिनी जी से अश्वत्थ वृक्ष पर मंत्र पाया। कृष्णदासी और मनोहरी दो स्त्री और व्याही। संवत् १५८२ कार्तिक सुदी १३ को श्रीराधावल्लभ जी को पाट बैठाया, पाँच भोग सात आरती का नेम रक्खा। इनका संस्कृत ग्रंथ श्रीराधासुधानिधि श्लोक २७० भाषा ग्रंथ पद चौरासी। मुख्य शिष्य नरवाहन, नाहरमल्ल, विट्ठलदास, मोहनदास, छबीलदास, नवलदास, वलीदास, परमानंद रसिक, हठी, हरिदास, खड्गसेन और गंगा, यमुना।

इति श्री वैष्णव सर्वस्व परंपरावर्णि — उत्तरार्द्ध समाप्ताः।

श्रीवल्लभीय - सर्वस्व

श्रीश्रीवल्लभाचार्यचरणकमलमिलिंदमरंद

चिंतासंतानहंतारो यत्पादांबुजरेणवः।

स्वीयानां तान् निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

रचना काल सन् १८७५। 'युगल सर्वस्व' के भादों शुक्ल ८ संवत् १९३३ के उपसंहार में तथा 'चन्द्रावली नाटिका' के प्रथम संस्करण सन्वत् १९३४ के मुख्य पृष्ठ पर इसका उल्लेख मिलता है। सन् १८८८ में खंडूंग विलास प्रेस बांकीपुर ने भी इसे मुद्रित किया था। फिर १८९२ में भी इसका संस्करण खंडूंग विलास प्रेस का ही मिलता है।— सं.

श्री वल्लभीय सर्वस्व

दक्षिण में तैलंग देश में आंध्र प्रांत में आकवीडु जिला में, खम्मम काँकरिविल्ला ग्राम में यजुर्वेद तैत्तिरीय शाखा भारद्वाज गोत्र में महादेव पात्र के वंश के ब्राह्मण रहते थे। इसी वंश में रामनारायणभट्ट के पुत्र यज्ञनारायण सोमयागी हुए। वे वेद के अवतार थे। इन पर वेद पुरुष अत्यंत ही प्रसन्न रहते थे। जब इनको वेद में कोई संदेह होता तब स्नान करके वेद पुरुष का ध्यान करते और वेद पुरुष प्रत्यक्ष होकर संदेश-नाश कर देते।

एक बेर मायावादियों ने हँसी से इनसे कहा कि आप वेद के अवतार हो तो बकरे से वेद पढ़वाओ। तब यज्ञनारायण जी ने बकरे की ओर देखकर कहा "मोलुलायत्वं वेदानुच्चारय"। इतना सुनते ही बकरा वह पाठ करने लगा। ऐसे ही दक्षिण में उन्होंने अनेक चमत्कार दिखाए। ये श्री रामानुजाचार्य मत के बड़े पंडित थे।

जब यज्ञनारायण जी ने पहिला सोमयाग किया तब अग्निकुंड में से यह शब्द सुन पड़ा कि ऐसे सौ सोमयाग के पीछे भगवान का अवतार होता है। बत्तीस सोमयाग करके ये देवलोक पधारे।

इनके पुत्र गंगाधरभट्ट सोमयागी साक्षात् शिवजी के अवतार थे, जिन्होंने अवभृत् स्नान करती समय लोगों को प्रत्यक्ष अपने केश में से जलधारा निकलती दिखाई। अष्टादस सोमयाग करके ये देवलोक गए।

इनके पुत्र गणपति सोमयागी थे। काशी में पंडितों की सभा में इन्होंने गणेश की भाँति दर्शन दिया और इसी से सभा में इनका प्रथम पूजन होता था। एक बेर सब प्रसिद्ध नगरों में जाकर शास्त्र का दिग्विजय किया था। तीस यज्ञ करके ये देवलोक सिधारे।

इनको तीन स्त्री थीं। इनमें ज्येष्ठ स्त्री के ज्येष्ठ पुत्र बल्लभ भट्ट सायंकाल की समय प्रहर दिन चढ़े के सूर्य की भाँति दर्शन दिया था। पाँच यज्ञ करके ये भी देवलोक गए।

इनके पुत्र लक्ष्मणभट्ट जी बड़े विद्वान साक्षात् अक्षर ब्रह्म शेष जी के अवतार हुए। इनकी छोटी ही अवस्था में इनके पिता का परलोक हुआ था, इससे इनके मातामह ने लालन पालन करके इनको विद्या पढ़ाया था। इनकी स्त्री देवकीजी का अवतार श्रीइल्लमगारु जी थीं। इनके तीन पुत्र हुए। बड़े भाई का नाम नारायणभट्ट उपनाम रामकृष्ण भट्ट। ये कुछ दिन पीछे सन्यासी हो गये, तब केशवपुरी नाम पड़ा। यह ऐसे सिद्ध थे कि खड़ाऊँ पहिने गंगा पर स्थल की भाँति चलते थे। मँझले श्री महाप्रभुजी और छोटे रामचंद्र भट्ट जी। ये महा भारी पंडित थे, वेदांत, मीमांसा, व्याकरण, काव्य और साहित्य बहुत अच्छा जानते थे। लक्ष्मणभट्ट जी के मानुल वशिष्ठ गोत्र के ब्राह्मण अपुत्र होने के कारण इन्हें अपने घर ले गए थे। कृष्ण कुतूहल, गोपाल लीला महाकाव्य इत्यादि कई ग्रंथ इन्होंने बनाए हैं। ये श्री महाप्रभु जी के विद्या में शिष्य थे और प्रायः अयोध्या में रहते थे। वादी ऐसे भारी थे कि प्रायः उस काल के सब पंडितों को जीता था। यहाँ तक कि इसी बाद के लगभग पर इनको विष दे दिया।

लक्ष्मणभट्ट जी के पूर्व पुरुषों ने पंचानवे सोमयाग किये थे, सो इन्होंने पाँच और करके सो पूरे किए । अंत के सोमयाग का आरंभ चैत सुदा ९ सोमवार पुष्य नक्षत्र अभिजित योग में सं. १५३२ में किया । जब यज्ञ समाप्त हुआ तो कुंड से यह अलौकिक वाणी सुन पड़ी कि तुम्हारे कुल में पूर्ण पुरुषोत्तम का प्रागट्य होगा । यह श्राणी सुनते ही यज्ञ में सबको बड़ा आनंद हुआ और लक्ष्मणभट्ट जी ने उसी समय काशी में सवालक्ष ब्राह्मण-भोजन का संकल्प किया । उसी समय में संयोग से दक्षिण में कुछ यवनों का उपद्रव भी हुआ । इससे लक्ष्मणभट्टजी कुटुंब को लेकर और बहुत सा द्रव्य साथ लेकर काशी की ओर चले ।

विदित हो कि श्री लक्ष्मणभट्ट जी सं. १५३२ के चैत्र के अंत में बहुत से विद्यार्थी और ब्राह्मण-भोजन के हेतु बहुत सा द्रव्य लेकर काशी चले और काँकरबल्लि से सात मंजिला पर भूंग-सारथक तीर्थ में, जहाँ सर्वतोमद्रकुंड में राजा वरुण ने अपने यज्ञ का अवभूत स्नान किया है, तीन दिन तक रहे । वहाँ वैशाख वदी ११ की अद्वैतरात्रि को श्री ठाकुर जी ने श्री स्वामिनी जी सहित दर्शन दिया और आज्ञा किया कि जब तुम काशी से लौटकर चंपारण्य आओगे तब तुम्हारे यहाँ हमारा प्रागट्य होगा । यह आज्ञा करके एक उपरना, एक तुलसी की माला, एक कंठी देकर श्री मुख से कहा कि जब बालक हो तब उसको यह उपरना उद्धा देना । इतना सुनते ही जब लक्ष्मणभट्ट जी नींद से चौक पड़े तो इन वस्तुओं के सिवा और वहाँ कुछ न देखा ।

लक्ष्मणभट्टजी भीमरथी, उज्जैन, पुष्कर इत्यादि तीर्थ होते हुए प्रयाग आये । वहाँ भरद्वाज ऋषि के आश्रम में आकाशवाणी हुई कि तुम हमारे गोत्र में धन्य हो, जिसके घर साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम का प्रागट्य होगा ।

प्रयाग से भट्ट जी काशी आये । वहाँ गंगास्नान काशी-विश्वेश्वर का दर्शन करके एक स्थान लेकर उतरे और वेद का पारायण, अग्नि होत्र और ब्राह्मण-भोजन प्रारंभ किया और थोड़े दिनों में सवा लाख ब्राह्मण का भोजन समाप्त किया । इसी समय में दिल्ली के यवन राज्य में मुगलों और पठानों के विरोध के कारण बड़ा उपद्रव उठा और भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर प्रांत में चारों ओर हलचल पड़ गई । लोग नगर छोड़कर गाँव में बसने लगे । लक्ष्मण भट्ट जी के जाति के लोग भी काशी छोड़ कर इधर उधर चले गए और लक्ष्मणभट्ट जी भी कुटुंब लेकर दक्षिण की ओर चले, सो जब चम्पारण्य पहुँचे तब शके १४०० सं. १५३५ वैशाख सुदी ११ रविवार को श्री इल्लमगारू जी का सात महीने का गर्भश्राव हुआ, सो माता जी ने केले के पत्ते में वह गर्भ लपेटकर शमी के खोंडरे में रख दिया । यहाँ से ये लोग चौड़ा नगर में गए और वहाँ सुना कि देशोपद्रव सब शांत हो गया । यहाँ एक रात्रि निवास करके जब लक्ष्मणभट्ट जी फिर काशी की ओर फिर तो उसी शमी के वृक्ष के नीचे वालीस हाथ के लंबे चौड़े अग्निकुंड में बालक को खेलता देखा । श्री इल्लमगारू जी के स्तन से दूध की धारा उस समय निकली सो महाप्रभू जी के मुखारविंद में पड़ी ! तब श्री लक्ष्मणभट्ट जी ने वेदमंत्र से और माता जी ने अपनी भाषा में अग्नि और वरुण की स्तुति किया और अग्नि ने इल्लमगारू जी को मार्ग दिया । माता जी ने बड़े आनंद और वात्सल्य से पुत्र को गोद में उठा लिया । उस समय आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और देवताओं ने प्रत्यक्ष होकर जे जे कार किया । सबके चित्त में अकस्मात् नंद महोत्सव के आनंद का आविर्भाव हुआ ।

श्री लक्ष्मणभट्ट जी बालक को लेकर काशी फिर आए और श्री ठाकुर जी की आज्ञा प्रमाण कंठी, माला, उपरना और बीड़ा श्री महाप्रभु जी को दिया । तैत्तिरीय शाखा के अनुसार नाम करणादिक सब संस्कार बड़े आनंद से हुए और जब श्री इल्लमगारू जी गंगा पूजने को गई तब श्री गंगा जी ने माता की गोद ही में महाप्रभू जी का चरण स्पर्श किया और स्त्रियों सहित माता जी के वरदान मार्गने पर जल में से शब्द सुन पड़ा कि तुम्हारा पुत्र सब वादियों को जीतेगा ।

अथ जन्मपत्र

स्वस्ति श्रीमन्महोदय विष्णुमार्क राज्याब्दे १५३५ शके १४०० वैशाख मासे कृष्णपक्षे त्रिथी १० रविवारसे च. १६ प. १४ परत्र ११ तिथी घनष्टि नक्षत्रे घ. ३८ प. ४६ शुभयोगे घ. ३८ प. २ अवकर्णे श्री सूर्योदयात् इष्ट घ. ३७ प. ४२ वृश्चिक लग्नोदये श्री लक्ष्मणभट्ट पत्नीपुत्ररत्नमजीजनत् ।



सूर्य ०१२।२२।११ लग्न ७।१०।१९।३१ दिन मान ३०।२८ रात्रिमान २९।३२

एक बेर श्री इल्लमगारु जी को ब्रजयात्रा की इच्छा हुई और आपने अपने पति से निवेदन किया कि कृपापूर्वक ब्रज चलिए परंतु भट्ट जी ने कहा कि पुत्र का यज्ञोपवीत करके चलेगे। यद्यपि इल्लमगारु जी ने पति की आज्ञा का कुछ उत्तर नहीं दिया तथापि ब्रजयात्रा की आपकी बड़ी ही इच्छा थी। यहाँ तक कि एक बेर श्री महाप्रभु जी को गोद में लिए आप बैठी थीं सो ब्रज का स्मरण करके उनके नेत्रों में जल भर आया। सर्वान्तरायामी श्री महाप्रभु जी ने माता की इच्छा पूर्ण करने को जम्हाई लिया और मुखारविंद में चौरासी कोस ब्रज का दर्शन कराया। श्री इल्लमगारु जी को यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ और आपने लक्ष्मणभट्ट जी से सब वृत्तान्त कहा। भट्ट जी ने कहा कि एक बेर हम अग्निशाला में भूमि पर शयन करते थे तब अग्नि ने स्वप्न में हमसे आज्ञा किया कि तुम इस बालक के विषय में संदेह मत करना सो यह बालक अलौकिक साक्षात् नारायण का स्वरूप है।

एक बेर श्री विश्वनाथ जी ने यह विचार किया कि श्री ठाकुर जी ने हमको तो माया मत फैलाने की आज्ञा दिया है और आप अपने संप्रदाय फैलाने को क्यों प्रगट हुए हैं, इससे एक बेर तो दर्शन करना चाहिए कि आपने कैसा वेष लिया है और क्या इच्छा है। यह विचार कर योगी बनकर एक सोने का बघनहा हाथ में लेकर श्री लक्ष्मणभट्ट जी के द्वार पर आये। श्री महाप्रभु जी उस समय अत्यंत रुदन करने लगे और कोई प्रकार से चुप न हों। तब लक्ष्मणभट्ट जी ने अपने पास बैठे हुए ज्योतिषियों से पूछा कि आज कल बालक के ग्रह कैसे हैं। ब्राह्मणों ने उत्तर दिया कि ग्रह तो अच्छे हैं परंतु एक बघनहा इसके गले में पड़ा रहे तो अच्छा है। श्री लक्ष्मणभट्ट जी ने अपने शिष्यों को आज्ञा दिया कि अभी बघनहा मोल लेकर सोने से मढ़कर पोहवा लाओ। शिष्य लोग जैसे ही बाहर निकले वैसे ही देखा कि एक योगी बघनहा लिए खड़ा है। बड़े हर्ष से शिष्य लोग योगी को भीतर ले गए। श्री महादेव जी ने श्री महाप्रभु जी को कठूला पहना कर पूछा "भगवान् कौन वेषः"। श्री महाप्रभु जी ने उसी क्षण उत्तर दिया "सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति" यह सुनकर सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने छोटे बालक के मुख से शब्द स्पष्ट और फिर संस्कृत कैसे निकला। किसी ने कहा योगी बड़े सिद्ध हैं, किसी ने कहा नहीं बालक ही बड़ा प्रतापी है। उस पीछे श्री महादेव जी कई बेर योगी के वेष में खिलौना लेकर प्रायः मिलने को आते थे।

सं. १५४० चैत्रवदी ९ अर्थात् श्री रामनवमी रविवार को लक्ष्मण भट्ट जी ने जेदविधि से आप का यज्ञोपवीत किया। सोरों जी नामक प्रसिद्ध वाराहक्षेत्र में केशवनंद नाम के एक बड़े सिद्धयोगी वैष्णव संप्रदाय के थे। सो जब श्री महाप्रभु जी का चंपारण्य में प्रगट्य हुआ, उसी समय उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि इस

समय पृथ्वी पर कहीं पुरुषोत्तम का अवतार हुआ है। उनके सेवकों में से कृष्णदास मेघन नामक एक सेवक थे, सो वह गुरु का वचन सुनते ही यह विचार करके घूमने निकले कि जो पुरुषोत्तम का प्रागट्य कहीं हुआ होगा, दर्शन होहींगे और जो हमको नाम लेकर पुकारेगा उसी को हम पुरुषोत्तम जानेगें। यह कृष्णदास मेघन फिरते फिरते श्री महाप्रभुजी के उपवीत-समय काशी में आये और भीड़ देखकर जो श्री लक्ष्मण भट्ट जी के घर में गए तो उनको देखते ही श्री महाप्रभुजी ने आज्ञा किया "कृष्णदास तू आये"। इन्होंने दंडधत करके उत्तर दिया "जै, मैं आये" और एक अंगूठी श्री महाप्रभु जी के यज्ञोपवीत भिक्षा में दी और तब ये आजन्म श्री प्रभु जी के साथ ही रहे।

उपवीत धारण करने के पहले और पीछे जब आप खेलते तो ब्राह्मण के लड़कों को शिष्य बनाते और आप गुरु बनकर उपदेश करते।

लक्ष्मण भट्ट जी के घर के पास सगुन दास नामक ढाढ़ी रहते थे। उनको श्री महाप्रभु जी के दर्शन साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम के होय, इससे उनका नेम था कि नित्य आपका दर्शन करके तब जल पीते। तो जब श्री महाप्रभु जी चरणारविंद से चलने लगे तब आप उनके घर पधार कर दर्शन देते। सो एक दिन श्री लक्ष्मण भट्ट जी ने आप से आज्ञा किया, कि शूद्र के घर आप मत पधारा करो। इस पर श्री महाप्रभु जी ने यह वाक्य पढ़ा "स्त्रियो वैश्या तथा शूद्रा तेपियान्ति परांगति"। यह सुनकर लक्ष्मण भट्ट जी ने श्री महाप्रभु जी को सगुन दास जी के यहाँ जाने की आज्ञा दिया।

यज्ञोपवीत के पीछे श्री महाप्रभु जी को लक्ष्मण भट्ट जी घर ही में वेद पढ़ाते थे परंतु आप की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी, इस हेतु असाढ़ सुदी २ पुष्यार्क योग में माध्वानंद स्वामी के यहाँ लक्ष्मण भट्ट जी ने आपको पढ़ने को बैठाया। सो चार ही महीने में चारो वेद, छठो शास्त्र पढ़कर सब को बड़ा आश्चर्य उत्पन्न किया। गुरु दक्षिणा में माध्वानंद स्वामी ने श्री ठाकुर जी की सेवा माँगी तब आपने आज्ञा किया कि जब श्रीनाथ जी को प्रगट करेंगे तब आप को सेवा देंगे। इन्हीं को और ग्रंथों में माध्वेन्द्रपुरी करके लिखा है और ये माध्व संप्रदाय के आचार्य थे। और विद्याविलास भट्टाचार्य से आपने न्याय, पातंजल और काव्य पढ़ा। श्री महाप्रभु जी की विद्या देख करके लक्ष्मणभट्टजी को फिर संदेह हुआ परंतु ठाकुर जी ने स्वप्न में पुनर्दर्शन देकर वह संदेह निवृत्त कर दिया। यह माध्वेन्द्रपुरी श्री कृष्ण चैतन्य के मंत्र गुरु हैं और इसी कारण श्री महाप्रभु जी और श्री कृष्ण चैतन्य से मित्रभाव था और आपने उनको श्री गोवर्द्धन की कंदरा से लाकर कृष्ण प्रेमातृत ग्रंथ दिया था और ऐसे ही निम्बार्क संप्रदाय के आचार्य केशव काश्मीरी जी से भी आप का बड़ा संग रहता था। विदित हो कि चैतन्य संप्रदाय के ग्रंथ वृहद्गौरगणोद्देशदीपिका ने श्री महाप्रभुजी को चौंसठ महानुभावों की गिनती में अनन्त संहिता के ७५ वें अध्याय के प्रमाण से श्री शुक्रदेवजी का अवतार लिखा है।

एक समय श्री लक्ष्मण भट्ट जी ने मायावादी सन्यासियों को अपने घर भोजन को बुलाया था सो श्री महाप्रभु जी ने ऐसा शास्त्रार्थ उठाया, जिससे मायावाद का खंडन होय। तब लक्ष्मण भट्ट जी ने कहा जो अपने घर आये उसका अपमान नहीं करना, इससे आपने उनसे शास्त्रार्थ नहीं किया। पर वैष्णव धर्म-प्रचार की आप को ऐसी उत्कंठा थी कि काशी में जहाँ शास्त्रार्थ होता वहाँ आप जाते और वैष्णव मत का मंडन और अन्य मत का खंडन करते। यहाँ तक कि लक्ष्मण भट्ट जी के पास लोग उरहना देने आते कि आप के पुत्र ने भरी सभा में हमारा अपमान किया। तब लक्ष्मण भट्ट जी आप को निषेध करते। तब जिन पंडितों से आप निषेध करते उन पंडितों से शास्त्रार्थ न करते। उस काल में विश्वनाथ के सभामंडप में पंडितों की सभा नित्य होती थी और वे लोग एक बात पर निर्णय करके तब उठते थे। सो श्री महाप्रभुजी उस सभा-स्थान की भीति पर श्लोक नित्य लिख आते और जब पंडित लोग उसका एक दिन में निर्णय करते तो दूसरे दिन दूसरे श्लोक से उनका सब निर्णय खंडित हो जाता। ऐसे ही तीस दिन तक आपने यह खेल खेला और उसी से पत्रावलंबन ग्रंथ बन गया। एक प्रसंग यह भी है कि आप से बहुत से पंडित शास्त्रार्थ करने को आते थे और समय बहुत थोड़ा था, इस लिए आपने पत्रावलम्बन ग्रंथ करके विश्वेश्वर के द्वार पर भी ढुगढुगी फेर दी थी कि जिसको हमसे शास्त्रार्थ करना हो पहले जाकर वह पत्र देख ले। यह सुनकर जो पंडित वह पत्र देखने जाते वह सब अपने प्रश्न का उत्तर पाकर लौट आते और इसी में पत्रावलंबन ग्रंथ बना।

श्री लक्ष्मण भट्ट जी को श्री महाप्रभुजी के इस पोर शास्त्रार्थ करने से बड़ा क्षोभ हुआ और आपने वात्सल्य

भाव से यह सोचा कि ऐसा न हो कि द्वेष करके जादू से कोई पंडित हमारे पुत्र को मार डाले। यह विचार कर आपने देश जाने का मनोरथ किया क्योंकि बारह वर्ष की काशी में रहने की आप की प्रतिज्ञा भी पूरी हो गई थी। यह सब बात विचार कर आप सकुटुम्ब काशी से दक्षिण चले।

वहाँ से सात मंजिल पर यह सुनकर कि विष्णु स्वामी संप्रदाय के कोई पंडित लक्ष्मण भट्ट जी अपने पुत्र सहित काशी में अनेक पंडितों को जीत कर यहाँ आते हैं, बहुत से पंडित मिलकर एक साथ लक्ष्मण भट्ट जी के द्वेरे पर शास्त्रार्थ करने गए और जब श्री महाप्रभुजी ने उनको शास्त्रार्थ में जीता तब लक्ष्मण भट्ट जी ने प्रसन्न हो कर कहा कि वरदान माँगो। तब आपने दो वरदान माँगे — प्रथम तो यह कि आप हमको शास्त्रार्थ करने जाने से कहीं रोको मत और दूसरे यह कि शास्त्रार्थ में कोई हमारा तेज पराभव न कर सके। लक्ष्मण भट्ट जी ने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक दोनों वरदान दिए।

लक्ष्मण भट्ट जी साक्षात् पूर्ण पुण्योत्तम के धाम अक्षर ब्रह्म शेष जी के स्वरूप हैं, इससे आप को त्रिकाल का ज्ञान है। सो जब आपने अपना प्रयाण समय निकट जाना तब कौगरवार से बड़े पुत्र रामकृष्ण भट्टजी को वाला जी में बुलाया और वहीं आपने डेरा किया। पुत्रों को अनेक शिक्षा देकर रामकृष्णभट्ट जी को श्री यज्ञनारायण के समय के श्री रामचंद्र जी पथराय दिए और कहा कि देश में जाकर सब गाँव और घर आदि पर अधिकार और त्रिल्लिनाटि तैलंग जाति की प्रथा और अपने कुल अनुसार सब धर्मपालन करो। ऐसे ही श्री यज्ञनारायणभट्ट के समय के एक शालिग्राम जी और मदनमोहन जी श्री महाप्रभुजी को देकर कहा कि आप आचार्य होकर पृथ्वी में दिग्विजय करके वैष्णव मत प्रचार करो और छोटे पुत्र रामचंद्र जी को, जिनका काशी में जन्म हुआ था, अपने मातामह की सब स्थावर जंगम संपत्ति दिया^१। और श्री महाप्रभुजी के ग्यारह वर्ष की अवस्था में लक्ष्मणवाला जी का शूंगार करने करते शरीर समेत उनके स्वरूप में लय हो गए। उनके पुत्रों ने लक्ष्मण भट्ट जी के वस्त्र का लौकिक संस्कार बड़ी धूमधाम से किया और महाप्रभुजी ने एक वर्ष तक यथाशास्त्र विहित सब रीति का वर्ताव किया।

काशी में वैष्णव तंत्र, शैव तंत्र, कौमारिल प्रभाकर, मौद्गल इत्यादि मत से ग्रंथ और शैव, पाशपत, कालामुख, अंधोर ये चार शव संप्रदाय और विष्णु स्वामी इत्यादिक चार वैष्णव संप्रदाय के ग्रंथ नहीं मिलते थे। इस हेतु सरस्वती भंडार में जाकर इन ग्रंथों को आपने अवलोकन किया और वेद की ३६ शाखा की संहिता ब्राह्मण इत्यादिक कंठाग्र किया। फिर जब इल्लमगारु जी पति के हेतु विलाप करतीं तब आप को बड़ा दुःख होता, इससे श्री वाला जी ने स्वप्न में इल्लमगारु जी को विलाप करने का निषेध किया।

जब आपको पृथ्वी परिक्रमा की इच्छा हुई तब मातृचरण को मामा के पास पहुँचाने को आप विद्यानगर पधारे और मार्ग में अपने अंतरंग दामोदर दास जी को सेवक किया।

विद्यानगर में राजा कृष्णदेव^२ के यहाँ आचार्य के मामा रंगनाथ विद्याभूषण दानाध्यक्ष थे। श्री महाप्रभुजी अपने मामा के घर उतरे और वहीं यह सुना कि राजा कृष्णदेव की सभा में आजकल नित्त मतमतांतर का वाद होता है। यह सुन के आपने इच्छा किया कि हम भी चलेगें। दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान संध्या होम कर ब्रह्मचारी का भेष कर आप राजा की सभा में पधारे। इनका दर्शन पाते ही सब सभा तेजाहत हो गई और राजा कृष्ण देव राय ने बड़े आदर से इनको बैठाया। तब आपने राजा से सभा का वृत्तान्त पूछा। राजा ने हाथ जोड़कर

१. ये रामचंद्रभट्ट बड़े पंडित थे। गोपाललीलामहाकाव्य, कृष्ण कुतूब महाकाव्य और शूंगार-वेरांत ये तीन ग्रंथ इनके मिलते हैं। अयोध्या में ये रहते थे और श्री महाप्रभु जी को विद्यागुरु करके मानते थे। वैष्णव दीक्षा श्री महाप्रभु जी से इन्होंने पाई थी कि नहीं, इसमें संदेह है और रामकृष्णभट्ट जी कुछ दिन पोछे संन्यासी होकर केशवपुरी नाम से छड़ाऊँ पहनकर बल पर चलने वाले बड़े सिद्ध विख्यात हुए। इन लोगों के समकाल के प्रसिद्ध पंडित ये थे, मध्यमत में व्यासतीर्थ, निबार्क मत में केशवभट्ट, रामानुज मत में तानाचार्य और व्यंगकटाध्वरि, शंकर मत में आनंदगिरि, स्मार्तों में डा अन्य मत में मुकुंदनंद, केवलानंद, माधवानंद, बदरदास के महंत हस्तशूंगार और रंगनाथजी के महंत आनंदराम।

२. राजा कृष्णदेव की वंश परंपरा यों है। पांडु वंश में चंद्रबीज राजा के दो पुत्र थे — बड़ा मेरु छोटा नन्दि। नन्दि को भूतनन्दि, उसको नन्दिल के दो पुत्र — शेषनंद और यशोनंद। इन दोनों को चौदह पुत्र थे, जिनको अमित्र और दुर्मित्र नामक दो भाई राजाओं ने जीत लिया। इनमें से सात भाई दक्षिण गए जिनमें से नंदिराज ने नंदपुर या रंगोला बसाया (१०३० ई.)। उनके वंश में फिर चालुक्य राज (१०७६ ई.), विजयराज जिन्होंने विजयनगर बसाया (१११८), विमलराज (११५८), नरसिंहदेव, जो बड़ा प्रसिद्ध हुआ (११८०), रामदेव (१२४९) और भूपराज (१२७८)। भूपराज अजुत था, इससे इसने अपने निकटस्थ गोत्रज

श्रीनाथ जी गिरिराज ऊपर आए । वहाँ भी आप उनके पीछे पीछे गए, इसी से श्री भगवान ने प्रसन्न हो यह वरदान दिया कि "यावत् यमुना जी में गंगा जल रहेगा तावत् तुम्हारी संप्रदाय अचल रहेगी" । ऐसा कह कर श्री नाथ जी अंतर्ध्यान हो गए । तब आप जिस मार्ग से पूर्व में गए थे, पूर्व गत मार्ग से आ अपने व्याकुल शिष्यों से मिलकर आसन पर आए । तदनंतर श्री आचार्य जी महाप्रभु जी ब्रज की यात्रा करने चले और उसका निर्णय करके अनुक्रम से वर्णन किया है । और जिस जिस स्थल में आपने श्री मद्भागवत का पारायण कर बैठकें नियत की हैं, जो अद्य पर्यंत प्रसिद्ध हैं, उस जगह ऐसा * चिन्ह किया है ।

तदीयसर्वस्व

अर्थात्

श्री नारदकृत भक्तिसूत्र का बृहत् भाष्य

प्रेमी जनों के दासानुदास प्रेमपथ के भिक्षुक

तदीय नामांकित अनन्य वीर वैष्णव

श्रीहरिश्चन्द्र

द्वारा

'केनापि देवेन हृदि स्थिकेन'

लिखित

भक्त्य त्वनन्यया लभ्यो हरिरन्यत् विडम्बनम्

यह पुस्तक सन् १८७४ में लिखी गयी । तदीय सर्वस्व 'नारद भक्ति सूत्र' का हिन्दी भाष्य है । हरिश्चन्द्र मैगजीन जि. १ नं. ५, १५ फरवरी सन् १८७४ में नारद सूत्र अर्थ सहित छपा था । बाद में इसकी व्याख्या भी की गयी ।— सं.

उपक्रम

हम आर्य लोगों में धर्मतत्व के मूलग्रंथों का भाषा में प्रचार नहीं । यही कारण है कि भिन्नता स्थान स्थान फैली हुई है । अनेक कोटि देवी देवताओं का माहात्म्य, छोटी छोटी बातों में ब्रह्महत्या का पाप और तुच्छ तुच्छ बातों में बड़े बड़े यज्ञों का पुण्य, अहं ब्रह्म का ज्ञान और मूलधर्म छोड़ कर उपधर्मों में आग्रह ने भारतवर्ष से वास्तविक धर्मों का लोप कर दिया । जिस जगत्कर्ता ने हम लोगों को उत्पन्न किया, संसार के सुख दिए, बुरे भले का ज्ञान दिया और अपना सत् मार्ग दिखलाया उससे यहाँ की प्रजा विमुख हो कर धर्मांतर में फँस गई । यदि प्रथम कर्त्तव्य उसकी भक्ति के अनंतर कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त होते तो कुछ बाधा नहीं थी । वह न हो कर गौण कर्म तो मुख्य हो गए और मुख्य वस्तु गौण हो गई । इसीसे सारा भारतवर्ष भगवद्विमुख होकर छिन्न भिन्न हो गया जो कि इसकी अवनति का मूल कारण हुआ । कभी भगवद्विमुख कोई देश या जाति उन्नत हो सकती है ? धर्म हमरा ऐसा निर्बल और पतला हो गया है कि केवल स्पर्श से वा एक चुल्लू पानी से मर जाता

है। कच्चे गले सड़े सूत वा चिट्ठी की दशा हमारे धर्म की हो गई है। हाय!!!

इसी धर्मपथ को समुन्नत करने को एक ईश्वरवादी अनेक आचार्यों ने परिष्कृत और सहज धर्म प्रचलित किए हैं और अनेक लोग इन मार्गों में दीक्षित हैं। किन्तु उन लोगों में भी बाह्यवेष बाह्याङ्कुर आचार विचार वा परनिर्वादि आग्रह ऐसे समा गये हैं कि उनका धर्म किसी काम नहीं आता। या तो ईश्वरवादी हिन्दुसमाज से संपूर्ण बहिष्कृत हो जायेंगे या कर्ममार्ग से ऐसे दब जायेंगे कि नाममात्र के भक्त रहेंगे।

इसी विषमता को दूर करने को इस ग्रंथ का आविर्भाव है। इस में मुक्तकंठ से कहा गया है कि केवल प्रेम परमेश्वर का दिव्य मार्ग है। यद्यपि यह ग्रंथ वैष्णवों की शैली पर लिखा गया है, किन्तु परमेश्वर के भक्तमात्र के हेतु यह उद्योग है। क्रिस्तान आदि विदेशी धर्मप्रेमी जन समझें कि कृष्ण उनके निर्गुण परमेश्वर का नाम है, वैष्णवों की तो कुछ बात ही नहीं है, शैव कहें कि विष्णु शिव ही का नामांतर है, ब्राह्म समझें कि हरि ब्रह्म ही को कहते हैं, उपासना और आर्यसमाज इसे अपना ही तत्त्व मानें, सिक्ख इस में गुरु का पथ देखें और ऐसे ही भक्तिमार्ग वाले मात्र सब लोग इस को अपनी निज संपत्ति समझें। इस में कोई कर्ममार्ग वा बहु-भक्त वा स्वयं-ब्रह्म लोग यदि मुझ को गाली भी देंगे तो मैं अपने को कृतार्थ समझूंगा।

लोगों को उचित है कि इस ग्रंथ को देखें। निश्चय रखें कि परमेश्वर को पाने का पथ केवल प्रेम है। और वानें चाहे धर्म की हां या लोक की, दोनों बड़ी ही हैं। बिना शुद्ध प्रेम न लोक है न परलोक। जिस संसार में परमेश्वर ने उत्पन्न किया है, जिस जाति वा कुटुंब से तुम्हारा संबंध है और जिस देश में तुम हो उस से सहज सरल प्रेम करो और अपने परम पिता परम गुरु परम पूज्य परमात्मा प्रियतम को केवल प्रेम से ढूंढो। वस और कोई साधन नहीं है।

हरिश्चंद्र

समर्पण

नाथ!

आज बहुत दिन पर कुछ कहने चले हैं। कुछ कहते कहाँ से, वैसा चित्त रहता तब न कहते? क्या आप से कुछ छिपी है? भला आप से क्या, आप तो ००००० हैं, आपके लोगों ही से न छिपेगी। बोल चालही से मालूम पड़ेगी। प्यारे! ऐसा क्यों? हम हजार बुरे बुरे बुरे लाख दफे बुरे पर आप तो भले हैं न? फिर क्यों? क्या हमारी करनी पर गए? तब तो हो चुकी। भला ध्यान तो कीजिए हमसे वा किसी से भी आप से तुलना क्या? हाय! तुलना क्या कुछ बात ही नहीं। हरे! हरे! जो आप अपनी बड़ाई देखिए तो हम क्या बड़े बड़े क्या हैं। पर ऐसी तो नाथ ने आज तक कभी की नहीं यह नई क्यों होती है? नाथ! अपनाए की लाज तो हम पामरों को होती है तो बड़ों को क्यों न हो, और फिर आप की कृपा का क्या पूछना है। पर हाय! क्या हमारे अपराध उस दया से भी बड़े निकले। प्यारे! क्या इसी दशा में रहें? नाथ! क्या वे दिन अब दुर्लभ हो जायेंगे? हाय! उन पवित्र आँसुओं से क्या अब हृदय नहीं सिंचित होगा? क्या वे सर्वचिंताविस्मारक प्रियालाप अब कर्णभ्रों को फिर न पूर्ण करेंगे? क्या वे दिन अब इस जीवन में निस्संदेह दुर्लभ हो गए? केवल जनम भर पाप कमाने और आपको और अपने को छूट बदनाम कहने को? धिक्! ऐसे जीवन पर। हम तो इसकी आशा इसी से करते थे कि दिन दिन हमारी चित्तवृत्ति उज्ज्वल होगी और दिन दिन प्रेमानंद बढ़ेगा। इस हेतु नहीं कि प्रवाहरज्जु में हम दिन दिन और जकड़ते जायेंगे और केवल जीवनभर ढोकर संसार में लिप्त होकर अंत में आपके कहलाकर भी वैसे ही डूबेंगे जैसे तुम्हारे बिना संसार डूबता है। जीवन का परम फल तुम्हारा अमृतमय प्रेम है यदि वही नहीं तो फिर यह क्यों? क्या संसार में कोई ऐसा है जिससे प्रेम करे। जो फूल आज सुंदर कोमल हैं और जो फल आज सुस्वादु हैं पर कल न इनमें रंग है न रूप न स्वाद, सूखे गले मारें फिरते हैं, भला उनसे अनुराग ही क्या? प्रेम की तो हम चिरस्थायी किया चाहें यहाँ प्रेमपात्रही स्थाई नहीं। तो चलो वस हो चुकी फिर इनसे प्रीति का फल ही क्या? फल शब्द से आप कोई बांछा मत समझिएगा। प्रेम का यह सहज स्वभाव है कि वह प्रत्युत्तर चाहता है सो यहाँ दुर्लभ है। हमने माना कि 'ऐसे भी सन लोग हैं जो प्रे

का प्रत्युत्तर दें' पर वह भी तो परिणाम दुःख स्वरूप ही हैं । "संयोगा विप्रयोगान्ताः" कहा ही है । तो जिसके परिणाम में दुःख है वह वस्तु किस काम की । फिर उस दुःख में जीवन की कैसी बुरी दशा होगी ? तो ऐसे प्रेम ही से क्या और जीवन ही से क्या ? इसी से न कहा है "जैसे उड़ि जहाज को पच्छी फिर जहाज पर आवे ।" और जाय कहाँ । देखो संसार में वह कितना उदासीन है जिसको तुम्हारे प्रेम का क्लेश भी है । तो नाथ ! जो फिर उस उत्तम जीव को इस संसार के पंक में फँसाओ तो कैसे बने । हमने माना कि हमारी करनी वैसी नहीं । हाय ! भला यह मुँह से और कौन कह सकता है कि हम इसके योग्य हैं पर अपनी ओर देखो । नाथ ! अब नहीं सही जाती । कृत्रिमप्रेमपरायण और स्वार्थपर संसार से जो अब बहुत घबड़ाता है । सब तुम्हारे स्नेह के बाधक है साधक कोई नहीं, और जो स्वार्थपर नहीं हैं वे बेचारे भी क्या हैं कि कुछ संतोष देंगे । हाय ! क्या करें । हार करके स्नेह करके जैसे हो वैसे तुम्हारे ही शरण जाते हैं और वहाँ से भी दुरदराएँ जायें तो फिर क्या करें । अत्त हो गई, नाकों में दम आ गई, अब नहीं सही जाती । इस चर्चितचर्वण को कब तक चबायें । सच कहते हैं अब किसी की बात भी नहीं सुहाती । यद्यपि चिं. परवश होकर दिन दिन उलटा फँसता जाता है और संसार का और अपने जीवन का मोह बढ़ता ही जाता है पर साथ ही जो भी ऐसा मिचता जाता है जिसका कुछ कहना नहीं । धन के विषय में भी वैसा ही कीजिए । सारे संसार को दिखाइए कि हमारे यों डंका देकर इस संसाररूपी शत्रु-दुर्ग से निकलते हैं और मेरा भी मान रख लीजिए । हे नित्यनूतन धन नित्य नव प्रेम बरसाइए ।

हाय ! आज हमने आप को कितना कष्ट दिया और कितना बके । जमा भी तो कितने दिन से हो रहा था । और फिर बकें तो किस के आगे । बकने ही से तो कुछ संतोष होता है जाने दीजिए । देखिए यह आप के लोगों का सर्वस्व है इसे अंगीकार कीजिए । भला कहाँ परम पवित्र अमृतमय प्रेममार्ग, कहाँ हमारी पामर बुद्धि । पर क्या हुआ । ऐसी उत्तम बातें जो मुँह से निकली हैं यह हमारी करतूत नहीं है, तुमने कही हैं । शिवा वा नारद कौन हैं ? आपही । यद्यपि जब बुझ जाय तब काठ का काठ है पर जब तक अग्नि के संग से दहकता रहे काठ भी आग ही कहलाता है । शराबी की कोई जाति नहीं होती है । थोड़ी शराब पिये तो शराबी, बहुत पिये तो शराबी । इसी नाते इतना बके हैं । इसे सुन कर प्रसन्न होना, सुधारना, इसका प्रचार करना यह सब तुम्हारा और तुम्हारे जनों का काम है, हमारी तो कर्तव्यता इतनी ही थी कि निवेदन कर दिया ।

चैत्रशुद्ध ५
सं. १९३३

आपका
हरिश्चंद्र

श्री तदीयसर्वस्व

नारदीय

भक्तिसूत्र का बृहत् भाष्य

देहा

भरित नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर ।
जयति अपूरव धन कोऊ लखि नाचत मन मोर । ।
करि करुना लखि जग बिमुख कियो प्रेमपथ चारु ।
जय बल्लभ ब्रजगोपिका प्रीति कृष्ण अवतारु । ।
जिहि लहि फिर कछु लहनकी आस न चित में होय ।
जयति जगत पावन करन कृष्ण बरन यह दोय । ।

अब हम यहाँ से भक्ति की व्याख्या करते हैं । १ ।

अथ शब्द मंगलवाचक है । अतः शब्द से नारद जी अपनी कही हुई पूर्वोक्त वार्ता का व्यावर्तन करते हैं और इन सूत्रों के द्वारा प्रतिज्ञापूर्वक भक्तिशास्त्र का व्याख्यान आरंभ करते हैं ।

२ ॐ सा कस्मै परमप्रेमरूपा ।

वह ईश्वर में परमप्रेमरूपा है । २ ।

सा नाम पूर्वोक्त भक्ति कस्मै नाम सदा प्रश्नाह ईश्वर में परमप्रेमरूपा अर्थात् साधनांतरशून्या है । किं शब्द से ईश्वर का ही बोध होता है क्योंकि ईश्वर में सदा प्रश्न बना ही रहता है । "नैकः सर्वः स वः कः किं" विष्णुसहस्रनाम में भगवान् के नाम हैं क्योंकि वेद ईश्वर के विषय में 'नेतिनेति' बोलते हैं ।

३ ॐ अमृतस्वरूपा च ।

और अमृतस्वरूप है । ३ ।

अमृत नाम मधुर है और मोक्षस्वरूप है क्योंकि जो भक्तिरत हैं उनको मोक्षांतर की अपेक्षा नहीं होती ।

४ ॐ यत्तद्व्या पुमान् सिद्धो भवत्यमृतीभवति तृप्तोभवति ।

जिसको पाकर मनुष्य सिद्ध होता है, अमृत होता है और तृप्त होता है । ४ ।

यत् अर्थात् भक्तिस्वरूप अमृत को पाकर सिद्ध नाम साधनांतर निरपेक्ष और अमृती भवति नाम स्वयमानन्दरूप होता है, मृत्यु से निडर हो जाता है, तृप्त अर्थात् एतद् व्यतिरिक्त इस या परलोकगत सुखविषयक निरिच्छ होता है ।

५ ॐ यत्प्राप्य न किंचिद्वांछति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साहीभवति ।

जिसको पाकर फिर न कुछ चाहता है न सोचता है, न किसी से द्वेष करता है न कहीं रमता है और न किसी विषय का उत्साह करता है । ५ ।

क्योंकि पूर्वोक्त वार्ता का मुख्य कारण मन है, परंतु जब वह इसने भक्ति से किसी (परमेश्वर) को अर्पण किया है तो उसके अभाव से ये बातें आप न होंगी क्योंकि कार्य कारण के बिना नहीं हो सकता ।

६ ॐ यदज्ञानानमत्तोभवति स्तब्धोभवत्यात्मरामो भवति ।

जिसको जानकर पागल, स्तब्ध और आत्माराम हो जाता है । ६ ।

भक्ति का स्वरूप कह कर सूत्र में फल कहते हैं कि उस भक्ति का स्वरूप जान करके मनुष्य मत अर्थात् पागल हो जाता है 'जडोन्मत्तपिशाचयत्' । "निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान् वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि । तदतिहर्षोत्पुलकाश्रुगदगदं प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥ यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिदसत्याक्रंदते ध्यायति वंदते जनं । मुहुश्चसन्वर्तते हरे जगत् पते नारायणेत्यात्मगततिर्गतत्रपः ॥ तदा पुमानमुक्तसमस्तबंधनस्तद्भाव-भावानुकृताशयाकृतिः । निदगवधवीजानुशयो महीयसा भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥" श्रीमद्भागवत में परम भागवत श्रीप्रलहाद जी ने दैत्यपुत्रों को उपदेश करती समय भक्तों के वर्णन में ये तीन श्लोक कहे हैं । (यहाँ यह भी बात समझनी चाहिए कि ये असुरबालक उपदेशपात्र नहीं थे, तथापि भक्तजनों के चित्त में जो प्रेम की उमंग आती है तो पात्रपात्र का विचार नहीं करते) भक्त जन भगवान् के अनेक लीलार्थ धारण किए गए स्वरूपों के कर्म और अतुल्य गुण और वीर्यों को सुनकर जब अत्यंत हर्ष से रोमांचित अश्रु से गद्गद कंठ हो जाते हैं तब बड़े ऊँचे स्वर से गाते रोते नाचते हैं, कभी भूत लगे हुए मनुष्यों के समान हँसते हैं और चिल्लाते हैं, कभी बारंबार लंबी साँस लेते हैं, कभी तादात्म्य गति से 'हे हरे, नारायण, जगत्पते' आदि नाम कीर्तन लज्जा छोड़ के करते हैं । जब ऐसी गति हो जाती है तब मनुष्य सब बंधनों से छूट कर भगवद्भाव हीके भाव, वही अनुकरण, वही चेष्टा, वही आशय, वैसी ही आकृत्यादि करने लगता है और अपने प्रेम से सुकर्म दुष्कर्मों के बीजों को जला कर अपनी परम भक्ति से भगवान् को प्राप्त होता है ।

तो परम भक्ति प्राप्त होने का यही लक्षण है कि मनुष्य पागल हो जाता है और स्तब्ध हो जाता है अर्थात् फिर उसको लोक और वेद भूत प्रेम देवता इत्यादि किसी की मानना या किसी को नमस्कार वा किसी का किसी गति आदर करने की आवश्यकता नहीं रहती और आत्माराम हो जाता है अर्थात् संसार के विषयों में प्रीति छोड़

आत्मा राग अर्थात् ईश्वर ही में सदा रमण करता है ।

पहिला अनुवाक समाप्त हुआ

७ ॐ सा न कामयमाना निरोधरूपात् ।

वह भक्ति कामना के अर्थ नहीं होती, क्योंकि वह निरोधरूपा है ॥७॥

जो कामना के लिए की जाती है वह भक्ति नहीं वह लोकव्यापार है । जब श्री नृसिंह जी ने प्रह्लाद जी को वर माँगने के हेतु कहा तब उन्होंने भी यह उत्तर दिया कि 'हमने आपसे व्यापार नहीं किया, भक्ति किया । जो सेवक होकर सेवा के बदले सेव्य से कुछ चाहे वह सेवक नहीं किन्तु व्यापारकारी बनिया है, और यदि आप वर देना चाहें तो यही वीजिए कि हमारे मन में किसी वर वा राज्यभोगादि बांछा की उत्पत्ति ही न हो' । भगवान ने श्रीमुख से भी यही आज्ञा की है "नमय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते । भर्जिता क्वथिन् धाना भूयो वीज्याय नेत्यते" ॥ जिन लोगों का चित्त मुख में शुद्ध रीति से प्रतिष्ठित है उनके काम कामना के अर्थ नहीं होते, क्योंकि भूने और कूटे धान फिर नहीं उगत ।

इस सूत्र से विषयजन्य प्रेम का भी निवारण किया, इससे लोग संसार के विषयियों के इन्द्रियजन्य सुख वा और किसी इच्छा से की हुई प्रीति को हम किसी पर प्रेम करते हैं यह कह कर इस प्रेमशब्द को लज्जित न करें, क्योंकि प्रेम तो सर्वदा कामनाशून्य है ॥

कामना ही की निवृत्ति के अर्थ कहते हैं कि वह भक्ति निरोधस्वरूपा है, तो जब चित्त निरुद्ध होगा तो उसमें कोई कामना आप ही न होगी ।

भक्तिमार्गीय परमाचार्य श्रीश्रीबल्लभाचार्य महाप्रभु ने अपने ग्रंथ निरोधलक्षण में लिखा है, "अहंनिरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः । निरुद्धानां तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते ॥ हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भवसागरे । ये निरुद्धास्तएवात्र मोदमायांत्यहर्निशं" ॥ आप आज्ञा करते हैं — मैं रोध में निरुद्ध हूँ और निरोध की पदवी को प्राप्त हो चुका हूँ तथापि निरोधाधिकारियों के निरोध के अर्थ निरोध का वर्णन करता हूँ । फिर आप आज्ञा करते हैं कि जिन को भगवान ने छोड़ दिया है वे संसारसागर में डूबे हुए हैं और जिनको उसने निरुद्ध किया है वही अहर्निश परमानंद प्राप्त करते हैं । इस वाक्य से यह दिखाया कि निरुद्ध होना स्वसाध्य नहीं है, जिनको वह (ईश्वर) चाहता है, निरुद्ध करता है, नहीं तो उसे छोड़ देता है । मनुष्य का बल केवल उस मार्ग पर प्रवृत्त होना है, परंतु इससे निराश न होना चाहिए कि जब अंगीकार करना वा न करना उसी के आधीन है तो हम क्यों प्रयत्न करें । हमारे क्लेश करने पर भी वह अंगीकार करे वा न करे ऐसी शंका कदापि न करना । क्योंकि आचार्य कहते हैं कि "क्लिश्यमानान्जानान्द्रष्टा कृपायुक्तो यद भवेत् । तदा सर्वं सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ॥ सर्वानन्दमयस्यापि कृपानन्दः सुदुर्लभः । हृद्गतः स्वगुणानुसृतत्वा पूर्णः प्लावयते जनान् ॥ तस्मात्सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः । सदानन्दपरैर्गेयाः सच्चिदानन्दता स्वतः ।" जनों को क्लेशित देख कर के जब वह कृपायुक्त होता है तब सर्व सदानंद रूप बाहर और अंतः प्रगट कर देता है । सर्वानंदमय को भी उसके कृपा का आनंद दुर्लभ है परंतु हृदय में बैठा हुआ जब अपने गुणों को सुनता है तो अपने कृपानंद से लोगों को भिजो देता है । इस हेतु और सब बखेड़ा छोड़ कर सदानंद पर निरुद्ध लोगों को उसका गुण सदा गाना चाहिए । उससे सच्चिदानंद का आप से आप प्रागट्य होता है । अर्थात् नियम है कि जो सब परित्याग करके उसका भजन करेंगे उसको यह निरुद्ध करके परमानंद दान करेहीगा । यही उस की प्रतिज्ञा भी है "कौतये प्रतिजानीहि न में भक्तः प्रणश्यति । तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ॥ इस से उसके वाक्य पर विश्वास रख कर निरुद्ध होना चाहिए ।

निरोध छः प्रकार का है अर्थात् छः प्रकार की भावना ईश्वर में करने से मनुष्य निरुद्ध होता है ; यथा प्रथम 'भीतिभाव निरोध' अर्थात् संसार के दुःखों से भयभीत होकर ईश्वर में अवलंब करना, दूसरा "स्वामिभावनिरोध" अर्थात् ईश्वर को संसार का स्वामी मान कर दासभाव से निरुद्ध होना, तीसरा "सर्वभावनिरोध" अर्थात् ईश्वर को "वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः" इस वाक्य के अनुसार छोटे बड़े चेतन सब को ईश्वर मान कर नमस्कार करना और सब स्थान पर उसी को देखना वा स्वामी माता पिता मित्र सब भाव से ईश्वर ही का भजन, चौथा "सख्यभाव निरोध" अर्थात् ईश्वर ही को सखा मान कर निरुद्ध होना, पाँचवाँ "वात्सल्यभावनिरोध" अर्थात् श्री नन्दयशोदादिक ब्रज के बड़े गोपियों के वा इनके सद्गुरु और किसी के

भाव के समान ईश्वर में पुत्रवत् स्नेह करना, छठा "कान्तभावनिरुद्ध" होना । इन छ निरोधों में पूर्व पूर्व से उत्तर उत्तर अधिक हैं ।

८ ॐ निरोधस्तु लोकवेदव्यापारसंन्यासः ।

निरोध तो लोक वेद व्यापार का त्याग करना है ॥८॥

इस सूत्र में निरुद्ध होने का स्वरूप कहते हैं । लोक और वेद के व्यापार को छोड़ देना ही निरोध है ।

९ ॐ तस्मै अनन्यता तद्विरोधिपूदासीनता च ।

और उसमें अनन्यता और उसके विरोधियों पर उदासीनता भी निरोध है अर्थात् बिना अनन्यता हुए निरोध की सिद्धि नहीं होती ॥९॥

१० ॐ अन्याश्रयणांत्यागो नन्यता ।

अन्य आश्रयों का त्याग करना अनन्यता है ।

लोक में यह प्रत्यक्ष है कि स्वामी का सेवक, मित्र को मित्र, पुरुष को स्त्री वही प्रिय होगी । जो अनन्य हो 'अनन्याश्चिन्तयन्तो मामित्यादि श्री महावाक्य भी है, व्याससूत्र में भी 'अनन्याधिपतिः' ईश्वर का गुण लिखा है ।

११ ॐ लोकवेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिपूदासीनता ।

लोक और वेद में केवल उन्हीं (प्रेमपात्र) के अनुकूल आचरण करने से उस अनन्यता के विरोधी कर्म में उदासीनता आप से आप होती है ॥११॥

लोक और वेद में श्रीमद्भगवदनुकूलाचरण करना यही 'तद्विरोधिपूदासीनता' है अर्थात् जब हमने उनके अनुकूल हो सब आचरण किए तो तद्विरोधियों में उदासीनता आपही आ गई क्योंकि तदीय होने ही से जिनके सब पुरुषार्थ पूर्ण हो गए हैं और सब मंगलामंगल नष्ट हो गए हैं उनको कार्यांतर करने की आवश्यकता ही नहीं तो उनके वैदिक वा लौकिक कार्य आपही निवृत्त हो गए ॥११॥

१२ ॐ भवतु निश्चयदादयद्दं शास्त्ररक्षणः ।

निश्चय के दृढ़ होने के पहिले शास्त्र रक्षण होय ॥१२॥

क्योंकि श्रीमुख से आप ने आज्ञा की है "त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन । निर्द्वैतानित्यसत्त्वस्थानिर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ यावानर्थ उदपाने सर्वतस्सम्प्लुतादके । तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥" हे अर्जुन वेद त्रिगुण विषय है तू तो तीनों गुणों की प्रवृत्ति से अलग होकर निर्द्वैत और अपने स्वरूप में स्थित हो और अपने योगक्षेम की चिन्ता मत कर । परंतु जब तक तेरे हृदय में अर्थों की तरंगें उठती हैं तब तक तेरा सब वेदों में ब्राह्मण के कहे अनुसार कर्म में अधिकार है वहाँ भी कर्म के फल में तेरा अधिकार नहीं, इससे न तो तू फलों की इच्छा कर और न अकर्मो हो । तो जब तक कामना की तरंगें चित्त में उठती हैं और जब तक अनन्या भक्ति दृढ़ नहीं हुई है तब तक वेद मानै, फिर छोड़ दे ।

१३ ॐ अन्यथा पातित्याशंका ।

अन्यथा पतित होने की शंका है ॥१३॥

अर्थात् जो सिद्ध होने के पहिले कर्मों को छोड़ दे और न यह सिद्ध हो न वह तो व्यर्थ पतित हो जाता है, परंतु भगवत्कर्म करता हुआ अन्य कर्मों से च्युत जो सिद्ध न होगा तो भी उस जीव का नाश नहीं है और जीव का कल्याण है । जड़भरत जी का उदाहरण इसमें प्रमाण है, क्योंकि उन्होंने अपने मुख से कहा है, "अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसंगबंधः । आराधने भगवत ईहमानो मृगोभवं मृगसंगाद्वतार्थः ॥ सा मां स्मृतिर्मृगदेहेषि वीर कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति । अतो ह्यहं जनसंगादसंगो विशंकमानो विवृतश्चरामि" । श्री मुख से भी आप ने आज्ञा की है "पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते । नहि कल्याणकृतकश्चिदुर्गतिं तात गच्छति" इत्यादि ।

१४ ॐ लोकोपि तावदेव किंतु भोजनादिव्यापारस्तृवाशरीधारणावधि ।

लोक भी तभी तक है किन्तु भोजनादि व्यापार तो जब तक शरीर है तब तक है ॥१४॥

इस में कितने लोक शंका करते हैं वरंच हैंसते हैं कि जब खाना पीना आदि व्यवहार छूटता ही नहीं तो

कर्म छोड़ देना यह अयुक्त है । परन्तु इसी शंका के निवारणार्थ यह सूत्र है, भोजनादि व्यापार शरीररक्षार्थ है और जब तक शरीर है तब तक अवश्य कर्तव्य है । इनको जो छोड़ना हो तो विष खाके एक साथ ही न मर जाना । हाँ तदीयों को उन भोजनादि व्यापार की चिन्ता करनी अवश्यही नहीं चाहिए और जो कर्मों का कहे तो कर्मों का त्याग अनन्यता की पुष्टि के हेतु है क्योंकि बिना निःसाधन हुए मनुष्य अनन्य नहीं होता । इस से यह सिद्ध हुआ कि जब तक निश्चय न हो तब तक लोक और वेद दोनों मानना परन्तु जब निश्चय दृढ़ हो जाय और कामनाओं की निवृत्ति हो जाय तब लोक और वेद दोनों छोड़ कर केवल "कृष्ण एवं गतिर्मम" यह उच्चारण करना । श्री विष्णुस्वामी-मता के बीजधारक श्री विल्वमंगलाचार्य ने भी यही कहा है ।

"संध्याबंदन भद्रमस्तु भवते भोस्तान तुभ्यं नमः

भोदेवाः पितरश्च तर्पणविधो नाहं क्षमः क्षम्यतां ।

यत्र क्वापि निषद्य यादवकुलोत्तंसस्य कंसद्विषः

स्मारंस्मारमद्य हरामि तदलं मन्ये किमन्येन मे" ।

दूसरा अनुवाक सम्पन्न हुआ ।

१५ ॐ तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात् ।

उस (भक्ति) के लक्षण विविध मतभेद से वर्णन किए जाते हैं ।

इस सूत्र में एक शंका है कि सूत्र का लक्षण 'स्वल्पाक्षरमसंदिग्धम्' ऐसा है । सूत्रों में कोई बात व्यर्थ नहीं होनी चाहिए । यहाँ लक्षण तो आपही कहेंगे तो इस सूत्र की क्या आवश्यकता थी । ऐसा नहीं, यह सूत्र इस अर्थ का प्रतिपादक नहीं है कि हम आगे उस के लक्षण कहेंगे, वरन् ऐसी प्रतिज्ञा है कि संसार में इस प्रेम को लोग अनेक मत से मानते हैं परन्तु वास्तव में वह प्रेम नहीं है । प्रेम वही है जो शास्त्र में कहा जायगा, जैसा स्त्री पुरुष का कामनार्थ प्रेम वा अन्य किसी प्रकार की त्रिगुणात्मिका देवभक्ति प्रेम नहीं है, यद्यपि संसार में वह प्रेम कही जाती है और उनके अनेक प्रकार लोग लक्षण कहते हैं । यही बात अग्रिम सूत्रों में सिद्ध करेंगे ।

१६ ॐ पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः ।

भगवत्पूजादिक में अनुराग रूप भक्ति यह श्री व्यासदेव का मत है ।

क्योंकि अनेक पुराणों में तथा जैमिनिसूत्र के भाष्य में बहुत कर्मविधान की प्रशंसा की है और पूजनादि केवल प्रेम के साधनस्वरूप हैं फलरूप नहीं । श्री महाप्रभु जी ने भी सेवानिर्णय में आज्ञा की है "कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता" इत्यादि । जीवों के आसुरावेशनिवृत्त्यर्थ और मानसी-सेवा-सिद्ध्यर्थ वाह्य सेवा (पूजादि) हैं, परन्तु जब परम प्रेमावेश होता है तब मानसी सेवा भी छूट जाती है ।

१७ ॐ कथादिष्विति गर्गः ।

कथादि में अनुराग गर्गाचार्य का मत है ।

अर्थात् भगवत्कथाश्रवण को मुख्य मान कर कथा में अनुराग करना यह नारद जी का मत नहीं है, प्रेम की उत्कंठा में जो भगवत्कथा से अनुराग हो वह ठीक है ।

१८ ॐ आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः ।

आत्मरति के अविरोध से अनुराग शाण्डिल्य का मत है ।

शाण्डिल्य भक्तिसूत्र के तृतीयाहिनक के तृतीय सूत्र में मत दिखाते हैं 'तामैश्वर्यपदां काश्यपः परत्वात्', 'आत्मैकपदां वादरायणः', 'उभयपदां शाण्डिल्यः शब्दोपपत्तिभ्यां' । काश्यप का द्वैत और वादरायण का अद्वैत दिखाकर आप द्वैताद्वैत अवलंबन करते हैं परन्तु द्वैत वा अद्वैत वा द्वैताद्वैत मत का अवलंबन करके भक्ति को अपने पूर्वमत के आग्रह से अपनी दीक्षा वा संप्रदाय के अनुसार बलत्कार से भक्ति चलाना नारद का मत नहीं । जब मतमतांतर के बाद में बुद्धि अभिनिविष्ट हो जायगी तो तीव्र प्रेमलक्षणभक्ति में अन्यमनस्क होने से भेद पड़ जायगा । इससे जिस भाव से निरोध हुआ हो उसी भाव से प्रेम में प्रवृत्त होना ही नारद का मत है । यदि हमारा यह भाव है कि ईश्वर एक है, आनंदमय है, हम उसके दासानुदास हैं, हमसे उससे कोई संबंध नहीं तो उसी भाव से भक्ति करनी और जो सर्वभाव हो तो सर्व भाव से भक्ति करनी, द्वैताद्वैत भाव पर चित्त आरुढ़ हो तो उसी भाव से उपासना करनी । अर्थात् जीव ईश्वर के भेदा-भेद के भाड़े में बुद्धि फँसा कर प्रेम में बाधा नहीं डालनी ।

वही बात अगले सूत्र से सिद्ध करते हैं ।

१९ ॐ नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ॥

नारद जी तो सर्व कर्म श्री हरि में अर्पण करना और श्री हरि की विस्मृति होने में परम व्याकुल होना यही भक्ति का लक्षण कहते हैं ।

कर्म दो प्रकार के हैं, लौकिक और पारलौकिक । प्रेमियों के दोनों कर्म यहाँ लिखते हैं । पारलौकिक में भक्तों को एतावन्मात्र कर्तव्य है कि अपने सब आचरणों को भगवान में अर्पण करना और लौकिक में इतना कर्तव्य है कि जब भगवद्वियोग-जनित परमानन्द का हृदय से तनिक भी विस्मरण हो तब परमव्याकुलता होनी । तो अलौकिक कर्म तो तत्समर्पण से निवृत्त हुए ; लौकिक में जब व्याकुलता का उदय होगा तो आपही सब काम छुट जायेंगे । इस से लौकिक और पारलौकिक दोनों कर्मों की प्रवृत्ति से अलग होकर अनवच्छिन्न तैलधारावत् सर्वक्षण भगद्वृत्ति में मग्न रहना, सर्वदा लीलाका अनुभव करना, सर्वदा वियोग का अनुभव करना, किसी काम में लगे हों परन्तु चित्त उधर ही रखना, जो वह ध्यान तनिक भी भूलें तो एक संग व्याकुल हो जाना यही भक्ति का लक्षण है ।

२० ॐ अस्त्येवमेवं ।

ठीक ऐसा ही है ।

पूर्वकथित भक्तिलक्षण को इस सूत्र से अन्यस्थान में स्वकथित वा परकथित अनेक विधियों के निरासपूर्वक मुक्त कंठ से प्रतिज्ञा स्वरूप स्थापन करते हैं । लोक में भी चालू है कि जो बात दो बेर कहते हैं उस पर अपनी पूर्ण दृढ़ता दिखाते हैं इस भाव से यहाँ भी यह सूत्र कहा है अर्थात् अब इसमें किसी शंका का अवकाश नहीं ।

२१ ॐ यथा ब्रजगोपिकानां ।

जैसा ब्रज की गोपियों का (प्रेम है) ।

लक्षण कहके उदाहरण में सब प्रेमियों की शिरोमणि-स्वरूप श्री गोपीजन का नाम लेते हैं अर्थात् प्रेम का उदाहरण जैसा श्री गोपीजन ने दिखाया वैसा और कौन दिखावेगा ? हई है, लोक वेद की कठिन लौहशृंखला को कच्चे सूतसी कौन तोड़ सकता है ? जिनके भगवान श्री सर्वदा ऋणी हैं उनकी महिमा कौन कह सकता है ? श्री मुख से कहा है 'न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधासुपायि वः । या मां भजन्तुर्जगद्दशशृंखलां सर्वश्वस्य तदः प्रतियातु साधुना' । भगवान् श्री गोपीजन से गले में पीतांबर डाल कर और हाथ जोड़ कर निवेदन करते हैं हे श्री ब्रजदेवियो ! मैं जो देवताओं की आयुष्य धारण करूँ और उस अनेक कल्प की आयुष्य से आप लोगों में ये एक का भी प्रत्युपकार किया चाहूँ तो न कर सकूँगा । क्योंकि महादुर्जर घर की शृंखला आप लोगों के सिवाय और कौन तोड़ सकता है ? अतएव मैं आप लोगों का सदा ऋणी हूँ । तो भगवान का यह श्री मुख वाक्य उन श्री गोपीजन के प्रति जिनने भगवान के श्री मुख से कहे हुए रासप्रसंग के दश श्लोकात्मक मर्यादास्थापन के वाक्यों को तूण सा भी नहीं माना, कुछ आश्चर्य नहीं है । एक तो साधारण शास्त्र के वाक्य माननीय हैं, दूसरे उस में भी भगवाक्य, तीसरे जब भगवान प्रत्यक्ष अपने मुखारविंद से आज्ञा करें तो ऐसा कौन होगा जो न मानेगा । पर ऐसे श्री गोपीजन ही हैं कि प्रेममार्ग के विरुद्ध भगवद्वाक्य को भी न माना ।

भगवान ने जब परमभागवत उदवजी को भक्ति का उपदेश किया है वहाँ कहा है "रामेण सार्धं मधुरां प्रणीते श्वाफलिकना मय्यनुरक्तचित्ताः । विगाढभावेन न मे वियोगतीव्राधयोन्यं ददृशुः सुखाय ॥ तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव बृन्दावनगोचरेण । क्षणाद्वृत्ताः पुनरंग तासां हीना मया कल्पसमा वभूवुः ॥ ता नाविनम्यन्मुखाङ्गदधधियः स्वमात्मानमदस्तयेदं यथा समाधौ मुनयोऽभितोये न च प्रविष्टा इव नामरूपे ॥ ब्रह्मा ने भी कहा है "वष्टिर्वर्षसहस्राणि तपस्तप्यं मया पुरा । नन्दगोपब्रजस्त्रीणां पादरेणुपलब्धये ॥ अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दगोप ब्रजौकसां । यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनं" । जब उदव जी को भगवान ब्रज विदा करने लगे हैं तब वहाँ भी श्री गोपीजन का स्वरूप अपने श्रीमुख से उदव जी को समझाया है । "ता मन्मनस्का मत्प्राणाः मदर्थं त्यक्तवैहिकाः । ये त्यक्तं लोकधर्माश्च मदर्थं तान्विमर्ष्यहं ॥ मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे इरथ्ये गोकुलस्त्रियः । स्मरंत्यो न विमुहयन्ति विरहोत्कण्ठयविह्वलाः ॥ प्रधारयति कृच्छ्रेण प्रायः प्राणान्कर्ष्यचन । प्रत्यागमनसं देर्षीर्बल्लामो मे मदात्मिकाः" । है उदव उन गोपीजन ने मुख में मन लगाया है, मैं

ही उनका प्राण है, मेरे हेतु उनने सब देह के व्यवहार छोड़ दिये हैं और जो लोग मेरे अर्थ लोक और धर्म को छोड़ देते हैं उनको मैं धारण करता हूँ । वे गोपियाँ उन के परम प्यारों से प्यारे मेरे इर रहने से जब मेरा स्मरण करती हैं तो विरह की उत्कंठा से व्याकुल होकर अपने शरीर की सुध भी भूल जाती हैं । बड़ी कठिनाता से और बड़े दुःख से मेरे बिना किसी रीति प्राण धारण करती हैं मेरे आने के संदेसे सुन कर जीती हैं, उन गोपियों की आत्मा मैं हूँ और वे मेरी हैं, इत्यादि । जिन श्री गोपीजन से परम भागवत उदब जी ने भी कहा — "अहोयूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः । वासुदेवे भगवति यासामत्यर्पिते मनः ॥ दानव्रततपोयोगजपस्वाध्यायसंयमैः । श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णं भक्तिर्हि साध्यते ॥ भगवत्युत्तमश्लोकं भवतीभिरनुत्तमा । भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥ दिष्ट्या पुत्रान्पतीन्देहान् स्वजनान् भवनानि च । हित्वा वृणीयूयं यत् कृष्णाख्यं परमपदम् ॥ सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनाम श्रोक्षजे । विरहेण महाभागा महान्मेनुग्रहः कृतः ॥" इत्यादि । और जब श्री उदब जी ने अपने ज्ञान कथनांतर श्री गोपीजन का स्वरूप जाना है तब यही माँगा है कि हम श्री वृन्दावन में गुलमलता हों, यथा "नायं श्रियोगंजनितांतरतेः प्रसादः स्वयोंपितां नलिनगंधरुचां कुतोऽन्यः । रासो त्वमे स्यभुजदंडगृहीतकण्ठलब्धाशिषां य उदगाद्ब्रजवल्लवीनाम् ॥ आसामहो चरणरेणुषुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुलमलतोपधीनां । या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्यां ॥ या वै श्रियाचित्तमजादिभिराप्तकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्तमनिरासगोष्ठ्या ॥ कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणरविदं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापं ॥" श्री महाप्रभु जी ने संन्यासनिर्णय ग्रंथ में आज्ञा की है कि श्री गोपीजन प्रेममार्ग की गुरु हैं तथाच निरोधलक्षण ग्रंथ में आप ने श्रीगोपीजन तथा ब्रज के गोपों का विरहानुभव प्राप्त होने की उत्कंठा दिखायी है । "यच्च दुःखं यशोदाया नन्दानीनां च गोकुले । गोपिकानां तु यदुदुखंतदुदुखं स्यान्मम क्वचित् ॥ गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां ब्रजवासिनाम् । यत्सुखं समभूतन्मे भगवान् किं विधास्यति ॥ उदवागमने जाता उत्सवः सुमहान्यथा । वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित् ॥ इत्यादि । और "गोपी प्रेम की ध्वजा । जिन घनस्याम किए अपने बस उर धरि स्यामभुजा" "गोपीपदपंकजपराग कीजै महाराज रज कीजै आपुनेई गोकुलानगर को ।" "ये हरिरसओपी गोपी सब तियतें न्यारी । कमलनयन गोविन्दचंद की प्राणपियारी ॥ निर्मत्सर जे सन्त तिनकी नृडामनि गोपी जे ऐसे मर्याद मेति मोहनगुन गावैं । क्यों नहि परमानन्द प्रेमभक्ति सुखापवै ॥" "अहो विधिना तोपै अँचरा पसारि माँगो जनम जनम दीजो याही ब्रज बसिओ । अहीर की जाति समीप नंदघर घरी घरी घनश्याम हेरिहेरि हँसिओ ॥" "बलि गुरु तज्यौ कंत ब्रजवनितन भइ जगमंगलकारी ॥" इत्यादि श्री सूरदासादिक परम अनुरागियों ने भाषा में भी श्री गोपीजन का पवित्र यश वर्णन किया है । परम अंतरंग श्री नागरीदास जी भी गाते हैं ॥ जयति ललितविदेवीय ब्रज श्रुति ऋचा कृष्णपियकेलिआधीरअंगी । युगलरसमत आनन्दमय रूपनिधि सकलासुखसमयकी छाँहसंगी ॥ गौरमुखहिमकिरणकी जु किरणावली श्रवत मधुगान हिय पियतरंगी । नागरीसकलसंकेतआकारिणी गनत गुनगननि मति होति पगी ॥ भवतु ! इन श्री गोपीजन के अगणनीय गुण कहाँ तक लिखें । रसिक लोग स्वतः अनुभव करेंगे ।

२२ ॐ न तत्रापि माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवादः ।

यहाँ भी माहात्म्यज्ञानविस्मृति का अपवाद नहीं ।

जहाँ प्रेम है वहाँ माहात्म्यज्ञान नहीं, जहाँ माहात्म्यज्ञान है वहाँ प्रेम नहीं ; परंतु श्री गोपीजन में दोनों बातें थीं, क्योंकि उनको भगवत स्वरूप का ज्ञान नहीं था, यह शंका नहीं हो सकती । "अस्त्वमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भयान्स्तनुभूतां किल बंधुरात्मा" ॥ "व्यक्तंभवान् ब्रजभयातिहरोभिजातो" 'न खलु गोपिकांदनो भवानखिलदेहिनामंतरात्मदृक् ॥ इत्यादि श्री गोपीजन के वाक्यों से उनका माहात्म्यज्ञान सिद्ध है ।

२३ ॐ तद्विहीनं जाराणामिव ।

उसके बिना जारों के समान है ।

अर्थात् जहाँ माहात्म्यज्ञान नहीं है वहाँ की प्रीति जारों की सी होती है । यद्यपि भगवान् में ज्ञान वा अज्ञान से की हुई प्रीति निष्फल नहीं जाती तथापि यह लीला जहाँ पूर्ण प्रादुर्भाव है वहीं है परंतु माहात्म्य ज्ञानपूर्वक भक्ति में यह विशेषता है कि एक प्रस्तर में भी ईश्वर बुद्धयया सत्य प्रेम करने से फलदायिनी होती है ।

२४ ॐ नास्त्येव तस्मिस्तत्सुखसुखित्वं ।

उस से प्यारे के सुख से सुखी होना नहीं ही है ।

क्योंकि जारों की प्रीति अपनी कामना के अर्थ है तो उस में तत्सुखसुखित्व कहाँ से आवेगा ।

तीसरा अनुवाक समाप्त हुआ ।

२५ ॐ सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्यामप्यधिकतरा ।

वह (भक्ति) तो कर्म, ज्ञान और योग से भी अधिक है ।

“तपस्विभ्यो ऽधिका योगी ज्ञानिभ्यो ऽपि मतो ऽधिकः ॥ कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ योगिनामपि सर्वेषां मद्गतोनांतरात्मना । श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः” ॥ इन वाक्यों से भगवान् श्रीमुख से ज्ञान और कर्म से योग को अधिक कह कर अपने भक्त को उससे भी अधिक कहते हैं और भक्ति ऐसी है कि भगवान् मुक्ति देते हैं परंतु भक्ति नहीं । तथाहि “मुक्तिं ददाति किं चित्स्म न भक्तियोगं ।” तथा “न साधयति मां योगी न सांख्यं धर्म उद्व । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यश्चा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्माप्रियः सताम् । भक्तिः पुनाति मन्त्रिणा श्वपाकोनपि संभवात् ॥” और भक्ति में यह विशेष है कि कर्म, ज्ञान और योग इनमें अधिकारी अनधिकारी का बड़ा विचार रहता है परंतु इसमें किसी अधिकार का काम नहीं । श्रीमुखवाक्य प्रमाण है “केवलेन हि भावेन गोप्यो गावः खगा मृगाः । ये न्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरंजसा ॥”

२६ ॐ फलरूपत्वात् ।

क्योंकि फलरूपा है ।

ज्ञानाभिमानी लोग कहते हैं कि भक्ति का फल ज्ञान है, ऐसा नहीं । क्योंकि श्री भगवद्गीता में कहा है “अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहं । विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति । समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परा” ॥ हई है, संसार के सब प्रकारके साधन का फल केवल भगवत्कृपा है और वह बिना भक्ति सिद्ध न होगी तो दोनों प्रकार से भक्ति के बिना अन्य साधन व्यर्थ ही हुए ।

२७ ॐ ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वादैन्यप्रियत्वाच्च ॥

ईश्वर को भी अभिमान से द्वेषित्व है और दैन्य से प्रियत्व है ।

अर्थात् कर्म ज्ञान और योग उनके साधकों को अपने अपने साधन का अभिमान होता है तो उनसे भगवान् प्रसन्न नहीं रहता । हई है, वह तो निराश्रयों का आश्रय, निःसाधनों का साधन, दीनों का बंधु, पतितों का प्यारा और सर्व प्रकार से हीनों का सर्वस्व है । जिन लोगों को अपने साधनों का बल है उनको क्यों वह पूछेगा । सच है, जो स्त्री अपने सौंदर्य के और जारों के बल से धन कमा लेती है उसे पति क्यों पूछेगा, जो बालक आप धनोपार्जन में समर्थ है उसे माता पिता क्यों भोजन देंगे, जो सेवक अपने गुण से अपना योग क्षेम चला लेता है उसके स्वामी को क्या शोक है, विशेष कर ईश्वर से स्वामी को, जिसको सर्वदा दीन प्यारा है । उसके सामने तो जब अनन्य होकर सब साधन छोड़कर उससे कहोगे “सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वथा ! पापापीनस्य दीनस्य कृष्णएव गतिर्मम” ॥ हे नाथ ! मैं सब साधन से हीन हूँ और संसार के पचड़े में मग्न हूँ पापों से लदा हुआ हूँ और परम दीन हूँ अतएव हे नाथ ! हमारी तो तुमही गति हो ।” क्योंकि और किसी के सामने मुँह दिखाने के योग्य नहीं रहा, वेद को कैसे मुँह दिखाऊँ, उनके वाक्यानुसार सर्वकर्मानह और पतित हो रहा हूँ, लोक को भी नहीं मुँह दिखा सकता क्योंकि लोक में सब से मुख्य रक्षणीय लज्जा का त्याग कर चुका हूँ और लोक के साधनों से विहीन हूँ हमारी तो और कोई शरण नहीं, महा निरवलम्ब हूँ, कोई हाथ पकड़ने वाला नहीं, अथाह समुद्र में डूबता हूँ अब इस समय तुम्हारे सिवाय और कोई गति नहीं, मेरी तो तुमही गति हो इत्यादि । तभी वह तुम्हारी ओर ध्यान करेगा, ऐसा श्रीमुख से भी कहा है “सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः” ॥ सब धर्मों को छोड़ कर एक मेरी शरण आ, मैं तुझे सब पातकों से दूर करूँगा, शोक मत कर और यह वाक्य भी कब कहा है जब गीता का उपदेश कर चुके हैं तब ; इसको ठीक देने की भांति कहा है ।

और आप अपने मुख से इस वाक्य का आग्रह दिखाते हैं “सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु से परमं वचः । इष्टो मे मद्भक्तिस्ततो वक्ष्यामि ते हितम्” । और भी उद्व जी प्रति श्री भगवद्वाक्य है “अकिंचनस्य दान्तस्य

शांतस्य समचेतसः । मया संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ अज्ञावैव गुणान् दोषान् मयादिष्टानपि स्वकान् । धर्मान् सत्यज्यं यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः ॥ तस्मात् त्वमुद्वेगोत्सृज्य चोदना प्रतिचोदनां । प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रु तमेव च ॥ मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनां । याहि सर्वात्मभावेन मया स्याः ह्यकुतोभयः (?) । न साधयति मां योगो न साख्यं धर्म उद्वह । न स्वाध्यायष्यतपस्त्यागे यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् । भक्तिः पुनाति मन्त्रिष्ठा श्वपाकमपि संभवात् ॥ धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता । मद्भक्त्या येतमात्मानः (?) न सम्यक्प्रपुनाति हि ॥ कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना । विनानन्दाश्रुकलया शुष्येद्भक्त्या विनाशयः ॥ वाग्गद्गदा द्वते यस्य चित्तं रुदत्यभीर्दणं हसति क्वचिद्वा ॥ विलज्ज उदगायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति" ।

तथा — "नाहं वेदैर्न तपसान् दानेन न चेज्यया । शक्य एवैविधो दृष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ भक्त्याहमेकया ग्राह्यः अहमेवैविधोर्जुन । ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वो न प्रवेष्टुं च परंतप ।" इत्यादि ॥ इन वाक्यों को छोड़ कर भक्तों के दोनों लोक साधन के लिए उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा है "कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति" "नरकादुद्धराम्यहं", "तान्विभर्म्यहं", "सोयं मे व्रत आहितः" "योगक्षेमं वहाम्यहं", "तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्" इत्यादि ।

२८ ॐ तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येकं ।

उस (भक्ति) का साधन ज्ञानही है यह किसी का मत है ।

यह नहीं हो सकता । गृध्र, अजामिल, गर्जेंद्र इत्यादि को किसने ज्ञान दिया है "केवलेनहिभावेन गोण्यो गावः खगा मृगाः । येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरब्जसा" ॥ भक्ति का साधन तो अपने चित्त का अंकुर और उनकी कृपा ही है, ज्ञान वैचारा क्या साधेगा ?

२९ ॐ अन्योन्याश्रयत्वमित्यने ।

दूसरों का मत है कि भक्ति और ज्ञान से परस्पर आश्रयत्व है ।

यह भी नहीं हो सकता, जब मनुष्य किसी की भक्ति वा प्रीति कर लेगा तब उसके ज्ञान में क्या प्रवृत्त होगा ? पानी पी के जात नहीं पृथ्वी जाती ।

३० ॐ स्वयंफलरूपतेति ब्रह्मकुमाराः ।

सन्तकुमारादिक और नारद जी का मत है कि भक्ति स्वयं फलरूपा है ।

हुई है, पहले भी कह आए हैं ।

३१ ॐ राजगृहभोजनादिषु दृष्टत्वात् ।

राजा का घर और भोजनादि के केवल देखने में ऐसा ही देखा गया है ।

पूर्वकथित फलरूपता का उदाहरण दिखाते हैं ।

३२ ॐ न तेन राजपरितोषो क्षुधाशान्तिर्वा ।

न उससे राजा का परितोष होगा, न क्षुधा मिटेगी ।

ज्ञान के फलरूप होने में दोष दिखाते हैं कि एक मनुष्य को किसी राजा का स्वरूपज्ञान बहुत अच्छा है पर इससे क्या ? क्या वह राजा बिना अपनी भक्ति किए ही उसे कुछ देगा वा कुछ भोजन रक्खा है ? हमको उसके स्वरूप का पूर्ण ज्ञान है कि इसमें पूरी है और वह आटा, घी, जल और अग्नि के संयोग से बनी है पर क्या इस ज्ञान ही से भूख मिट जायगी ? कदापि नहीं । वैसा ही भगवान का केवल जानकर कभी सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि वह अपने स्वरूपों पर किस नाते दत्तचित्त होगा ? अतएव अगले सूत्र में फिर से अग्रह दिखाते हैं ।

३३ ॐ तस्मात्सैव ग्राहया मुमुक्षुभिः ।

इस कारण मोक्ष की इच्छा करने वाले उसी (भक्ति) का ग्रहण करें ।

जो अपना कल्याण चाहे तो इस सूत्र को कान खोलकर सुने और विश्वास करे ।

चौथा अनुवाक समाप्त हुआ ।

३४ ॐ तस्यास्साधनानि गायन्त्याचार्याः ।

उस (भक्ति) के साधन आचार्य कहते हैं ।

पूर्वोक्त सूत्रों में भक्ति ही मुख्य है ऐसा कह अब उसके साधन दिखाते हैं ।

३५ ॐ तनु विषयत्यागात्संगत्यागाच्च ।

वह (भक्तिसाधन) तो विषयत्याग और संगत्याग से होता है ।

जो कहो कि हम विषय और संग में लगे हुए भी सिद्ध हो जायेंगे तो यह नहीं हो सकता, क्योंकि श्री महाप्रभु जी ने अपने ग्रंथ बालबोध में "जीवाः स्वभावतो दुष्टाः" इस वाक्य से जीव को स्वभावतः दुष्ट कहा है, तो जीव को आसुरावेश होने में कुछ विलंब नहीं लगता । श्रीहरिराय जी ने अपने ग्रंथ कामदोषनिरूपण में इस विषय की कैसी निंदा की है, आप लिखते हैं "दोषेषु प्रथमः कामो विविच्य विनिरूप्यते यस्मिन्नुत्पद्यते तस्य नाशकः सर्वथा मतः ॥ विषयावेशहेतुत्वाद्भिक्षोत्पत्तिकारण । रजोगुणसमुत्पन्नो रजः प्रक्षेपको मुखे ॥ ब्रह्मावेशविरोधी च सद्वुद्देशधको मतः । सत्कर्मनाशक सर्वप्राकृतासक्ति साधकः ॥ चित्ताशुद्धि निदानत्वाच्च-दुष्टतौ च बाधकः । भक्तिमार्गमहाद्वेष्टा वैराग्याभावसाधनात् ॥ सर्वत्रापिरतोपशचानेन लोभसमुद्भवात् । यथाकर्तृचित्सांमुख्येन्द्रियवैमुख्यकारकः ॥ कामलोभौ हरिप्राप्तिप्रतिबंधकपर्वतौ । तावुल्लङ्घ्य न शक्नोति गन्तुं कृणांतिकं जनः ॥ संसारमोहहेतुत्वान्नोद्दूषणसाधनम् । अतः सेवाविरोधी च यतः सा मानसी मतां ॥ निरोधस्य महान्छबुरन्यत्स्फूर्तिकरोयतः । गुणगानसपत्नोपि न रोचंते गुणा यतः । वैराग्यबाधकाः सर्वे कामिनस्ते कथं प्रियाः । अतएव हि दुश्यन्ते गुणश्रवणवैरिणः ॥ क्रोधः स्वकार्यकरणाल्लोभः प्रप्यापि शाम्यति । घृतहोमे वन्हिरिव कामो भोगेन वर्द्धते ॥ कामेन नाशितमतिः प्रतिपिदे प्रवर्तते । अगम्यागमने चौर्यं तथैवामक्ष्यमक्षणे ॥ यतउत्पद्यते क्रोधो महबोहसमुद्भवः । लोभोपि जायते तस्मात्सर्चाविषये भवेत् ॥ सौर्यः पञ्चदशानर्धमूलं तत्र प्रवर्तते । कामेनैव हि कार्यण्यं कामिनीषु सतां मतः । प्रर्थयन्ति यतस्तुच्छां प्रवेश्य वदने कर" इत्यादि कामदोष पर आपने एक ग्रंथ ही बनाया है तो काम मुख्य दोष है इसमें कोई संदेह नहीं, वरंच श्री गीता जी में काम ही के छुड़ाने के आग्रह से सुखपूर्वक भोजनादि का भी निषेध किया है । श्रीमुखवाक्य 'इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति निराहारस्य देहिनः । रसवर्जं रसोप्यस्य परं दुष्ट्वानिवर्तते' । इससे भक्ति के सब साधनों में मुख्य विषयों का त्याग है । संगत्याग के दोष ४३।४४।४५ सूत्रों में दिखावेगे ।

३६ ॐ अव्यावृत्तभजनात् ।

सतत भजन से ।

निरंतर शब्द यहाँ इस हेतु दिया है कि क्षण क्षण में जीव को आसुरावेश होता है और रजोगुण सतोगुण की तरंगें उठा करती हैं तो उसकी निवृत्ति के हेतु निरंतर भजन करे । जिस क्षण में नामोच्चारण का व्यवधान होगा उसी क्षण में आसुरावेश होगा अतएव भगवान् श्री श्रीबल्लभाचार्य ने आज्ञा की है "तस्मात्सर्वतन्मा नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम । वदद्भिरैव सततं स्यात्तव्यमिति मे मतिः" ॥ अपने भक्तिवर्द्धिनी ग्रंथ में भी श्रीआचार्य जी ने "अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः" इत्यादि लिखा है, भोजनादिक व्यवहार की रीति कुछ नित्य भजन भी कर लेना वा जहाँ सब काम करते हैं वहाँ एक घंटा भर यह भी सही इत्यादि । उपेक्षा वा साधारण व्यवहार पूर्वक भजन का निषेध इस सूत्र से किया । जो कहो कि संसार के और कोई काम न करें सो यह नहीं कहते वरंच जब तुम आवश्यक कार्यों से छूटो तब और कोई व्यर्थ काम करने के बदले निरंतर भजन करो, जैसा जितने क्षण छाते हो उतनी देर तो निःसंदेह तुम कुछ नहीं कह सकते पर जैसे ही मुँह धो चुको भगवन्नामोच्चारण प्रारंभ करो ।

३७ ॐ लोकपि भगवत्गुणश्रवणकीर्तनात् ।

लोक में भी भगवान् के गुणों के श्रवण और कीर्तन से । "लोकपि" अर्थात् जब तक अव्यावृत्त भजन की सिद्धि न हो और लोक के व्यवहार में चित्त निरा मग्न हो तब तक भगवान् के गुण कीर्तन करके और श्रवण करके निरंतर भजन का अभ्यास करे क्योंकि कोरे नामोच्चारण से वा ध्यान करने से भजन सुनने या गाने में सर्वसाधारण का चित्त विशेष लग सकता है । श्रीमहाप्रभुजी लिखते हैं "यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात्तपोपायो निरूप्यते । बीजभावे दृढेत् स्यात्त्यागाच्छवर्णकीर्तनात् ॥ बीजद्वयप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः । अव्यवृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः ॥ व्यावृत्तोपि हरो चित्तं श्रवणादौ यतेत्सदा । ततः प्रेम तथासक्तिर्व्यसनं यदा भवेत्" अर्थात् जो चित्त भक्ति में न रँगा हो तो श्रवणादिक में लगावे और जब उसमें कुछ प्रेम और आसक्ति होगी और श्रवणादिक का व्यसन हो जायगा तब आपही भक्ति का बीज दृढ़ हो जायगा । यद्यपि भक्ति के

अधिकारी सब लोग नहीं हैं पर श्रवणकीर्तनादिक के अभ्यास से सब हो जाते हैं, क्योंकि श्रवणकीर्तन के अधिकारी मुक्त, मुमुक्षु और विषयी तीनों हैं। यही श्रीपरमभागवत श्रवणाधिकारी राजा परीक्षित ने कहा है "निवृत्तपैरुपगोयमानादभयौषधाच्छात्रमनोभिरामात् । क उतमश्लोकगुणानुवादात् पुमान्विरज्येत विना पशुघनात् ॥"

३८ ॐ मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद् ।

(उस भक्ति का) मुख्य साधन तो महानुभावों की कृपा है वा भगवान की कृपा का लेश ।

ऐसा ही है, परम भागवत जड़भरतजी ने रहगण को उपदेश किया है "रहगणैतत्पसा न याति न चेज्यया निर्वपणादगृहाद् । न छन्दसा नव जलाग्नि सूर्यैर्विना महत्पादरजोभिषेकात् ॥" हे रहगण, यह (सिद्धि) तप से नहीं होती और न यागादि कर्मों से, न घर छोड़ के योगी बनने से, न वेवों से, न जल से अर्थात् स्नान संख्या तर्पणादि से, न अग्नि से अर्थात् पञ्चाग्नि साधन वा अग्निहोत्र से, न सूर्य से अर्थात् सूर्योपस्थान वा ग्रीष्मताप सेवनादि से । विना महानुभावों के पदरज में नहाये और किसी से यह नहीं हो सकता । यही श्रीमुख से भी कहा है "नहयम्मयानि तीर्थाणि न देवा मृच्छिलामयाः । ते पुनत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥" हे अक्रूर ! जिस को जलमय तीर्थ (गंगादि) और मृण्मय और शिलामय देव पवित्र नहीं करते वा बहुत काल से करते हैं उसको साधु लोग दर्शनही से तत्काल पुनीत करते हैं ।

वरंच श्रीमद्भागवत पंचमस्कंध में श्रीमत्परम भागवत प्रह्लादजी ने कहा है "मागारदारात्मजवित्तबंधुषु संगो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः । यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान् सिद्ध्यत्यद्वयान्न तथेन्द्रियप्रियः ॥ यत्संगलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुःसंस्पृशतां हि मानसं । हरत्यजोतःश्रुतिभिर्गतिगर्जं को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमं" ॥१

देवीपुराण नवमस्कंध के षष्ठाध्याय में गंगा जी से भगवान् का वाक्य है "मन्मत्रोगासकानां च सतां स्नानावगाहनात् । शुष्माकं मोक्षणं पापात् दर्शनात् स्पृशनात्तथा ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि सत्यसंख्यानि सुन्दरि । भविष्यन्ति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ मन्मत्रोपासका भक्ता विश्रमन्ति च भारते । पूतां कर्तुं तारितुञ्च सुपवित्रां वसुन्धरां ॥ मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च । तत्स्थानन्तु महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्भूवं ॥ स्त्रीघनो गोघनः कृतघ्नश्च ब्रह्मघनो गुरुतल्पगः । जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ एकादशीविहीनश्च संख्याहीनोतिनास्तिकः । नरघातो भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ असिजीवी मसीजीवी पाचकोग्रामयाचकः । वृषवाहो भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ विश्वासघाती मित्रघनो मिथ्यासाक्ष्यस्य वायकः । स्याप्यहारी भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ अत्युग्रवाग्दूषकश्च जारकः पुंश्चलीपतिः । पूतश्च पुंश्चलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ शूद्राणां सुपकारश्च देवलो ग्रामयाचकः । अदीक्षितोभवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ पितरं मातरम्भार्या भ्रातरं तरयं सुतां । गुरोः कुलञ्च भगिनीं चक्षुर्हीनञ्च बाधकं ॥ श्वस्नश्च श्वसुरञ्चापि यो न पुष्पाति सुन्दरि । स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ अश्वत्थनाशकश्चैव मद्भक्तनिन्दकस्तथा । शूद्रान्नभोजी विप्रश्च पूतो मद्भक्तदर्शनात् ॥ देवद्रव्यापहारी च विप्रद्रव्यापहारकः । लाक्षालोहरसानां च विक्रेता दुहितुस्तथा ॥ महापातकिनश्चैव शूद्राणां शवदाहकः । भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥" तथा देवी का वाक्य "पुनन्ति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात् । येषां च पादरजसा पूतो पादोदकान्मही ॥ येषां संदर्शनं स्पर्शं ये वा वाञ्छन्ति भारते । सर्वेशां परमो लाभो वैष्णवानां समागमः ॥ नहयम्मयानि तीर्थाणि न देवा मृच्छिलामयाः । ते पुनत्युरुकालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो" । फिर भगवद्वाक्य "पुरुषाणां शतं पूर्वं तथा तज्जन्ममात्रतः । स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिमाप्नोति तत्क्षणात् ॥ यःकैश्चिद्यत्र वा जन्म लब्धयेषु च जन्तुषु । जीवन्मुक्तरतु ते पूता यान्ति काले हरः पदं ॥ मद्भक्तियुक्तो मर्त्यश्च स मुक्तो मद्गुणान्वितः । मद्गुणाधीनवृत्तिर्यः कथाविष्टश्च सन्ततं ॥ मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः । सगद्गदः साश्रु नेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च ॥ न वादछन्ति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयं । ब्रह्मत्वममरत्वञ्च तद्वाञ्छा मम सेवने ॥ इन्द्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभं । स्वर्गाराज्यादिभोगाश्च स्वप्ने ऽपि न वाञ्छन्ति ॥

१ देवीपुराणही को देवीभागवत कहते हैं क्योंकि पुराणों में जहाँ कहीं उपपुराणों को गिना है वहाँ "देवी भागवत" वा "देवीपुराण" ऐसा शब्द है ।

भ्रमन्ति भारतं भक्तास्तादृगं जन्म सुदुर्लभं । मदगुणश्रवणश्राव्यगानैर्नित्यं मुदाचिताः ॥ ते यांति च महीं पूत्वा
नराः शीघ्रं ममालयं । इत्येवं कथितं सर्वं पदमे कुरु यथाचितं ॥ तवाज्ञयां तास्तच्चक्रुर्हरिस्तस्थौ सुखासने ॥
तथाच सरासं ग्रहं मे पराशरस्मृति "सहस्रवार्षिकी पूजा विष्णोर्भगवतो हरेः । सकृद्भागवताचार्याः कलां नाहति
षोडशीं ॥" इत्यादि । बृहन्नारदीयपुराण में "पूजनाद्विष्णुभक्तानां पुरुषार्थोऽस्ति नेतरः । तेषु तदद्वेषतः
किंचिन्नास्ति नाशनमात्मनः ॥" पद्मपुराण में श्री महादेव जी का वाक्य "आराधनानां सर्वेषां विष्णोराधने
परं । तस्मात्परतरं देवि तदीयानां च पूजनं ॥" श्री मदभागवत में श्री महादेव जी का वाक्य "न मे भागवतानां
च प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित्" इत्यादि । पूर्वोक्तश्लोकों में तदीय जनों का माहात्म्य सिद्ध हुआ तो ऐसे तदीयों की
कृपा से भक्ति मिले इसमें क्या आश्चर्य है वा भगवान् ही की कृपा से होय । क्योंकि आप कभी-कभी भक्तिदान
देते हैं "ददामि बुद्धियोगं ते येन मामुपयांति ते" । परन्तु भगवान् की कृपा से भक्तों की कृपा सुलभ है क्योंकि
भगवान् भक्तिदान विशेष नहीं करते "मुक्तिं ददामि कर्हिचित् स्म न भक्तियोगं ॥" इत्यादि अतएव इस सूत्र
में महत्कृपा का मुख्य करके भगवत्कृपा को गौण किया है ।

३९ ॐ महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ।

और महत्संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ (सफल) है ।

ऐसा ही है, "क्षणादैनानि तुल्ये न स्वर्गं नापुनर्भवं । भगवत्संगसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः"
इत्यादि । श्रीमद्भागवत में श्री महादेव जी का वाक्य है । "अमोघं सिद्धदर्शनं" इत्यादि स्मृति तथा
श्रीमुखवाक्य 'न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एवच । न स्वाध्यायस्तपस्त्वागो नेष्टापूतं न दक्षिणा ॥ व्रतानि
यज्ञच्छन्दसि तीर्थानि नियमा यमाः । यथावरुध्येत्सत्संगः सर्वसंगापहोहि मां ॥" और लोक में भी प्रसिद्ध है
"सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसं" इत्यादि ।

४० ॐ लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ।

महत्संग उसकी कृपा से ही मिलता है ।

"यस्य भागवताः प्रीतास्तस्य प्रीतो हरिः स्वयं ।" इत्यादि वाक्यों से सिद्ध है । तथा श्री महादेव जी ने
भी कहा है "अथानयांस्तेस्तव कीर्तितीर्थे योन्तर्वनिः स्नाति विधूतपाप्मना । भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां
स्यात्संगमोऽनुग्रह एवमस्तु च" ॥

४१ ॐ तिस्मिन्मज्जने भेदाभावात् ।

उसके और उसके जन में भेद के अभाव से ।

श्रुति भी है । "यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरावित्यादि" । "न मे भागवतानां च भुक्तिभेदोऽस्त
कर्हिचित्" इत्यादि श्री मुख से कहा है । तथाच श्री गोपीजन को "ता मन्मनस्का मन्प्राणा बल्लाब्धो मे
मन्नात्मिकाः" इत्यादि । श्री महादेव जी को "यस्त्वां द्रष्टुं स मां द्रष्टुं यस्त्वामनु स मामनु । त्वदुपासा
जगन्नाथ सैवास्तु मम गोपते" तथा उद्योगपर्व में दुर्योधन से पांडवों के हेतु भी कहा है "यस्तान् द्रष्टुं स मां
द्रष्टुं यस्ताननु स मामनु । एकात्म्यं मां गते विद्धि पांडवै धर्मचारिभिः ॥" इत्यादि । तथा श्री प्रह्लादादिक
भक्तों से भगवान् ने वही कहा है "जिसने तुमसे द्वेष किया उसने मुझ से द्वेष किया" । इसका उदाहरण
अवरीष का प्रकरण प्रत्यक्ष है और वहाँ भी श्रीमुख से कहा है "अहंभक्तपराधीनो ह्यस्वत्वेन इव द्विजं ।
साधुभिर्ग्रस्तदृढदयो भक्तैर्मत्तजनप्रियः ॥" महाभारत में भी कहा है "तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुल्लुकेन च ।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तैर्म्यो भक्तवत्सलः ॥" उदय जी से भी ऐसीही कहा है । १ 'न तथा मे प्रियतम
आत्मयोनिरं शंकरः । न च संकर्षणो न श्रीनैवात्मा च यथा भवान् (?) । निरपेक्षं मुनि शान्तं निर्वैरं समदर्शिनं ।
अनुब्रज्याम्यहं नित्यं पूजयेदधिरेणुभिः (?) ॥ इत्यादि श्रीमुख से अपने भक्तों से अपनी एकता स्वाधीनता इत्यादि
वर्णन किया, तो इस से भगवान् और उनके भक्तों की एकात्मता ही सिद्ध हुई । "त्रिधाप्येकं सदागम्यं गम्यं
भेदप्रभेदकेः । प्रेम प्रेमी प्रेमपात्रत्रितयं प्रणतोऽस्म्यहं" ॥

१ चारो नाम चार संप्रदाय के आचार्यों ही के लिये ब्रह्मा माधव, महादेव विष्णुस्वामी, संकर्षण निम्बार्क और श्री
रामानुज इन मर्यादापथ के भक्तों की उत्कर्षता के हेतु उदय को सबसे बड़ा कहा ।

४२ ॐ तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम् ।

उसी का साधन करो, उसी का साधन करो । हम लोग भी मुक्त कंठ से यही कहते हैं ।
पंचम अनुवाक समाप्त ।

४३ ॐ दुःसंगस्सर्वथैव त्याज्यः ।

दुःसंग का सब रीति से त्याग करना । उसके त्याग में कारण कहते हैं —

४४ ॐ कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंशबुद्धिनाशसर्वनाशकारणत्वात् ।

(क्योंकि वह) काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश तथा सर्वनाश का कारण है ।

ऐसाही श्रीमुख से भी कहा है "ध्यायतो विषयानुपुन्सःसंगस्तेषूमजायते । संग्तात्संजायते कामः कामात् क्रोधोभिजायते ।। क्रोधाद्भवति संमोहं संमोहात् स्मृतिविभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणाशयति ।।" विषयों के सुख सोचते सोचते विषयसंग होता है और विषयसंग से अनेक प्रकार की कामना उत्पन्न होती है, और जब उस कामना के पूर्ण होने में कोई बाधक होता है तब क्रोध उत्पन्न होता है और जब उस क्रोध से अनिवार्य बाधकों का प्रत्यय नहीं कर सकता तब मोह हो जाता है और निराश हो के रोने लगता है । फिर इस दुःख से सब स्मृति भूल जाती है और जब स्मृति भूल जाती है तब इस की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती और अन्यथा करने पर प्रवृत्त हुआ तहाँ उस का लोक परलोक सब नाश होता है" । इस से यह दिखाया कि सब बिगाड़ का कारण विषय और उसका संग ही है ।

४५ ॐ तरंगायितापीमे संग्तात्समुद्भयन्ति ।

ये (काम क्रोधादिक) तरंगों की भाँति होकर भी संग से समुद्र से हो जाते हैं ।

दुःसंग में और भी दोष दिखाते हैं । यद्यपि जो लोग सन्मार्ग पर प्रवृत्त हैं उनको अहर्निश भगवदाराधन करते-करते काम क्रोधादिक की केवल तरंग आती है, जैसे नित्य विशयियों को सुरतान्त, तीर्थगमन, कथाश्रवण वा स्मशानदर्शन से ज्ञान की तरंग आती है । जितनी देर स्मशान पर बैठते हैं संसार नश्वर है, पुत्रादिकों में मोह अच्छा नहीं इत्यादि ज्ञान छाँटते हैं पर जहाँ घर आये तहाँ फिर संसारी काम में मग्न हो गये । वैसे ही अच्छे लोगों को प्रारब्धवशात् संग में जो कुछ कामक्रोधादिक की तरंगें आती भी हैं तो वे उतने ही काल रहती हैं जब तक कि वे अपना स्वरूप भूले रहते हैं तथापि यदि वेही सज्जन दुःसंग में पड़ जायें तो ये ही काम क्रोध उनको डूबा दें ।

४६ ॐ कस्तरति कस्तरति मायां ? यः संग्तास्त्यजति यो महानुभावं सेवते यो निर्ममो भवति ।

कौन तरता है ? माया को कौन तरता है ? जो संगों को छोड़ता है, जो महानुभाव की सेवा करता है, जो निर्मोह होता है ।

यद्यपि महात्माओं की कृपा और संगत्याग मुख्य साधन हैं तथापि कुटुंबादिक का मोह भी एक बड़ी भारी बेड़ी है इससे इस का त्याग भी मुख्य ही है ।

४७ ॐ यो विविक्तस्थानं सेवते यो लोकबंधमुन्मूलयति निस्त्रैगुण्यो भवति योगक्षेमं त्यजति ।

जो एकांत स्थान सेवन करता है, जो लोकबंध की जड़ निकाल देता है, निस्त्रैगुण्य होता है और योग क्षेम छोड़ देता है ।

क्रमशः उसके साधन कहते हैं । यदि जन समाज में रहेगा तो पहले तो उसके अनवच्छिन्न भगवच्चिंतन में कोलाहलादि से अनेक बाधा पड़ेगी, दूसरे अनेक प्रकार के लोगों से मिलने से उनके व्यवहार में व्यापृत होने और उनके संग में पड़ जाने का डर है अतएव श्रीमुख से कहा है "विविक्तजनसेवित्वमरतिर्जनसंसदि" । और महात्माओं की भी आज्ञा है "विमुक्तबन्धा विचरेदसंगः ।" इत्यादि तथा लोक का बंधन छोड़ना भी एक बड़ा कठिन साधन है । कोई हँसे न, कोई नाम न धरे, 'धोती इतनी नीचे पहिने कि एड़ी न दिखाय', नहीं निर्लज्ज कहावेंगे, मार्ग में जिस चाल से निकलते हैं वैसे ही निकलना चाहिए, इत्यादि लोककल्पित व्यवहार और भी महाबंधन के कारण होते हैं । इस हेतु सब लोकबंधन की मूल लज्जा को चौपट कर डालना "एकां लज्जां परित्यज्य त्रैलोक्यविजयी भवेत्" । क्योंकि भक्ति के साधन में श्री मुख से आप ने आज्ञा की है "विलज्ज उद्गायति रौति नृत्यति मदभक्तियुक्तो भुवनं पुनाति", तो सबके सामने कौन गावेगा कौन रोवेगा कौन

मावेगा ? जो मेरा सा निपट बेहया होगा तथा जब लोक छोड़ा तब उससे भी बड़ा बंधन वेद बचा, उसके मिटाने के हेतु कहते हैं "निस्त्रैगुण्यो भवति" अर्थात् सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों की प्रवृत्ति से अलग हो जाता है । श्री मुख से भी कहा है "त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ॥"

परंतु जो कहो कि लोक वेद छोड़ के केवल अपना भला करना तो चार्वाक का मत है तो इसका खंडन करते हुए कहते हैं "योगक्षेमं त्यजति" अर्थात् केवल लोक वेद नहीं छोड़ता वरंच अपने भी खाने पीने पहिरने रहने ओढ़ने विछाने सोने इत्यादि का शोक छोड़ देता है "भोजनाच्छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः । विश्वम्भरो गुरुर्येषां किं दासान् समुपेक्षते" और उसकी प्रतिज्ञा भी है "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पयुपासते । तेषां नित्याभियुक्तानं योगक्षेमं वहाम्यहं" इत्यादि । क्योंकि जब सब छोड़ा फिर अपनी हाय हाय न छूटी तो उस छोड़ने पर धिक्कार है ।

४८ ॐ यः कर्मफलं त्यजते कर्माणि संन्यसति ततो निर्द्वन्द्वो भवति ॥

जो कर्मफल छोड़ता है, कर्मों का त्याग कर के निर्द्वन्द्व होता है ।

निस्त्रैगुण्य होने का क्रमशः साधन कहते हैं, जब तक चित्त में अर्थों की तरंगे उठें तब तक कर्मों को नहीं छोड़ना, उसका फल छोड़ना और जब कामनाओं की निवृत्ति हो जाय तब उन कर्मों को भी छोड़ के निर्द्वन्द्व हो जाना, क्योंकि श्रीमुख से भी कहा है "निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो नियोगक्षेम आत्मवान् ।" "यावानर्थ उदपाने" इत्यादि ऊपर लिख आए हैं ।

४९ ॐ वेदानपि संन्यसति केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते ।

वेदों को भी छोड़ देता है और केवल अविच्छिन्न अनुराग (प्रीति) को पाता है ।

अब साधन दिखा कर उसकी सिद्ध दशा लिखते हैं । जब सिद्ध हो जाता है तब वेदों का त्याग कर देता है और केवल अविच्छिन्न प्रेम पाता है ।

५० ॐ स तरति स तरति स लोकान्तरयतीति ।

वह तरता है, वह तरता है, वह लोकों को तारता है ।

नारद जी अपनी प्रतिज्ञा दृढ़ करने के हेतु दो बार कहते हैं और निश्चय कराते हैं । वरंच यह कहते हैं कि वह आपही नहीं तरता किन्तु संसार को तारता है, "पुनाति भुवनत्रयं", "तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थाणि स्वान्तस्थेन गदाभूता", "ते पुनत्युरुकालेन", "मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति", "स्वयं समुतीर्य सुदुस्तरं" इत्यादि वाक्यों से उनका संसार में पवित्र कर के तारना सिद्ध है ।

षष्ठ अनुवाक समाप्त ।

५१ ॐ अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपं ।

प्रेम का स्वरूप कहा जा नहीं सकता ।

तो हम लोग क्या कहें ।

५२ ॐ मूकास्वादनवत् ।

गूँ के स्वाद की भाँति ।

अर्थात् केवल अनुभव सिद्ध है क्योंकि मीठे और सलौने में जो भेद वा स्वाद है वह कहा नहीं जा सकता । इतना ही कह सकते हैं कि खाके अनुभव कर लो । उसमें भी गूँ के स्वाद का क्या पूछना है । यहाँ वही कहावत है "बिना अपने मरे स्वर्ग नहीं सूझता ।"

५३ ॐ प्रकाश्यते क्वापि पात्रे । १

(तथापि) कभी किसी पात्र (अधिकारी) से प्रकाश किया जाता है ।

"ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत" इत्यादि वाक्य से सिद्ध है । तो इस में यह शंका हुई कि श्री नारद जी ने संसार में कोई पात्र पाए बिनाही इन सूत्रों का प्रकाश क्यों किया ? इसके उत्तर में हम इतना ही कहा चाहते हैं कि यह किसी पात्र को उद्देश्य करके नहीं कहा वरंच स्वतः मुँह से प्रेम के आवेश से निकल गया

१ जिस पुस्तक में "प्रकाशते" ऐसा पाठ है वहाँ अर्थ है कि प्रेम स्वरूप कभी किसी पात्र (अधिकारी) में स्वयं प्रकाश पाता है ।

क्योंकि पात्र भर जाता है तब आप से आप ऊपर वह निकलता है। उस समय यह विचार नहीं रहता कि नीचे पात्रान्तर आधारभूत है या नहीं, वही दशा इस की भी है। जब उस परमानंद का उच्छ्वास होता है तब यहाँ भी पात्रापात्र — विचार नहीं होता, पागल की भाँति गूढ़ तत्व भी अपने आप बकने लगता है।

५४ ॐ गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्द्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्।

(प्रेमस्वरूप) गुणों से रहित, कामनाओं से रहित, प्रतिक्षण में वृद्धिगत, अविच्छिन्न, सूक्ष्मतर केवल अनुभवरूप है।

कामनारहित, क्योंकि कामना से यह भक्ति व्यवहार हो जायगी, इससे स्वर्गादि कामना के अर्थ योजनस्वरूपा भक्ति वा कामपूरणार्थ दंपति के प्रेम का नाम प्रेम है, इस का निराकरण किया। श्रीमुख से भी कहा है, "न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते। भर्जिता क्वचिन्ना धाना भूयो बीजय नेष्यते" इत्यादि और सांसारिक प्रेम से इस शुद्ध प्रेम में आधिक्य दिखाने के हेतु "प्रतिक्षण-वर्द्धमान" यह कहाँ, क्योंकि संसार में प्रेम पहले तो बड़े चाव से होता है फिर प्रतिदिन अवस्था बल वा रूप गुण धन के घटने से वह प्रेम दिन दिन घटता जाता है और उस अशेषगुणसम्पन्न नित्यनव किशोर असीमगुणमंडित अतुलबलसीम परमानन्दमय में जो प्रेम होगा वह प्रतिक्षण बढ़ता जायगा क्योंकि उत्तम सौंदर्य और गुण का धर्म है कि जितना उसको देखते वा विचारते जाओगे उतनी ही उत्तम सूक्ष्मता प्रगट होती जायगी और जैसा इस प्रेम को संसार के दुःखादि बाधा कर देते हैं वैसी उसमें कोई बाधा नहीं होती क्योंकि भगद्वियोग के महादुःखसागर में ये सब संसार क्षुद्र दुःख डूब जाते हैं। "सर्वपदं हस्तिपदे निमग्नं" और सूक्ष्म इतना है कि उसका उदाहरण नहीं दिया जा सकता, इसी हेतु अनुभवरूप कहा है। पुराणांतर में कहा है कि सती ने किसी कल्प में श्रीजानकी जी का वेष धर के भगवान् की परीक्षा की थी इससे हम सब प्रेमियों के शिरोरत्न श्री महादेव जी ने फिर सती के उस देह को स्पर्श न किया। बोधा ने भाषा कवित्त में कहा है "अति छीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दे आवनो है। सुचिबेध ते नाको सकीन तहाँ परतीत को टाँड़ो लदावनो है ॥ कवि बोधा अनी घनी नेजहु ते चढ़ि तापे न चित डगावनो है। यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवार की धार पे धावनो है ॥"

५५ ॐ तंप्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति।

उसको पाकर उसी को देखता है, उसी को सुनता है, उसी को बोलता है और उसी का चिन्तन करता है।

क्योंकि फिर इसको कहने, सुनने और देखने को अवशिष्ट नहीं रहता और जहाँ "तं प्राप्य तमेव अवलोकयति" इत्यादि पाठ है वहाँ यह अर्थ है कि उसको अर्थात् भगवान् को प्रेम द्वारा पाकर उसी को देखता है क्योंकि उस अनिर्वचनीय रूप को देख कर और देखने की इच्छा नहीं होती।

५६ ॐ गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादिभेदाद्वा।

गौणी (भक्ति) तीन प्रकार की, गुणभेद वा आर्तादि भेद से।

मुख्याभक्ति का स्वरूप दिखाकर गौणी का स्वरूप कहते हैं — सत्व, रज, तम गुणों के भेद से सात्विकी, राजसी, तामसी तीन प्रकार की भक्ति वा श्रद्धा होती है। गुणत्रयविभाग वर्णन में श्रीभगवान् ने इसका विस्तार कहा है वा आत, जिज्ञासु और अर्थार्थी इन तीनों के भजन के भेद से भी गौणी भक्ति तीन प्रकार की हो जाती है ॥

५७ ॐ उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूर्वपूर्वो श्रेयाय भवति।

पिछले पिछले (भेद) से प्रहला कल्याण हेतु होता है। अर्थात् तमोगुण से रजोगुणी और रजोगुणी से सत्वगुणी अच्छी होती है, वैसे ही अर्थार्थी से जिज्ञासु और जिज्ञासु से आर्त अच्छा होता है क्योंकि सतोगुणी भक्ति से वा आर्त के भजन से शुद्ध भक्ति मिलने की संभावना है। सप्तम अनुवाक समाप्त।

५८ ॐ अन्यस्मात्सौलभ्यं भवती।

अन्य से भक्ति में सुलभता है।

पूर्व में भक्ति का अनिर्वचनीय स्वरूप कहा है तो इस से जीवों को शंका हो कि ऐसी सूक्ष्म वस्तु के

अधिकारी हम कैसे होंगे तो उस शंका से मिटाने के हेतु और जीवों को उस मार्ग पर आरुढ़ करने के हेतु कहते हैं कि और जितने साधन हैं सब से भक्ति (साधन) सुलभ है क्योंकि न इसमें विद्या का काम है न धन का, न वेद का, न आचार का, न उत्तमता का, न वर्ण का, क्योंकि गणिका को क्या विद्या थी, श्वरी को क्या धन था, श्री गोपीजन ने कौन वेद पढ़ा था, गृध्र का कौन आचार था, गज की क्या उत्तमता थी और केवट का कौन वर्ण था। और सबसे बड़ी सुलभता यह है कि इस में कोई वाद विवाद नहीं रहता, क्योंकि —

५९ ॐ प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात् स्वयंप्रमाणत्वात् ।

(यहाँ) अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं, स्वयमेव प्रमाण है ।

क्योंकि वाद की और प्रमाण की इस में आवश्यकता नहीं, जब अपने चित्त में प्रेम का उदय हुआ तब उससे बढ़ कर और प्रमाण क्या चाहिए । प्रमाणान्तर को अनपेक्षता दिखाकर भक्ति में और भी उत्तमता दिखाते हैं —

६० ॐ शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च ।

शान्ति रूप और परमानन्द रूप है ।

अर्थात् इस के शान्ति रूप होने से रजोमय तमोमय नानाप्रकार के वाद और विकल्प चित्त में आप ही नहीं होते और परम शान्तिरूप है इसी से परमानन्द रूप है क्योंकि परमानन्द वहाँ ही है जहाँ वादादि से प्रतिबंध नहीं और "परमानन्द" शब्द कहने से भगवान की और भक्ति की एकता दिखाई क्योंकि ईश्वर का भी परमानन्द स्वरूप है — "आनन्दमयोऽस्यात्", "आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि", "आनन्दं ब्रह्म", "आनन्दं ब्राह्मण विद्वान्" इत्यादि श्रुति से भगवान् का आनन्द स्वरूप सिद्ध है और जीव में आनन्द का तिरोभाव है तो पुनः आनन्द उद्दीपन के साधन ज्ञानादि कर के परमानन्दमयी भक्ति के आविर्भाव बिना जीव के ताप की निवृत्ति नहीं होती । और वेदांतियों ने ज्ञान का फल आनन्द कहा है, ज्ञान को स्वतः आनन्दस्वरूप नहीं कहा है । और भक्ति का स्वरूप आनन्द तो सूत्र में कहते ही हैं ।

अब जो जीव को शंका हो कि हम ने तुम्हारे कहने अनुसार योगक्षेमादिक सब छोड़ा परंतु उस लोक की गति क्या होगी इस शंका के मिटाने के हेतु कहते हैं ।

६१ ॐ लोकहानौ चिन्ता न कार्य्या निवेदितात्मलोकवेदशीलत्वात् ।

लोक हानि में चिन्ता नहीं करना, क्योंकि (भक्तों ने) आत्मा, लोक वेद, शील सब ईश्वर में अर्पण किया है ।

अर्थात् जो वस्तु कोई किसी को दे देता है फिर उसकी हानि का सोच देने वाले को नहीं होता, जिसको देता है उसी को होता है । हम लोगों को लोकादि हानि का सोच क्यों करना चाहिए, उसका सोच वह (भगवान्) आप करेगा अतएव श्री महाप्रभु जी ने आज्ञा की है "चिन्ता कापि न कार्य्या निवेदितात्मभिः कदापि भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिं । निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वदा तादृशैर्जनैः ॥ सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति । सर्वेषां प्रभु सम्बन्धो न प्रत्येकमिति स्थितिः ॥ अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिन्ता का स्वत्य सोऽपि चेत् । अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमात्मनिवेदनं ॥ यैः कृष्णस्तत्कृतप्राणैस्तेषां का परिवेदना" इत्यादि अथवा चतुः श्लोकी में फिर आप आज्ञा करते हैं कि १ "एवं सदा स्व कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति । प्रभुः सर्वसमर्थोऽहं ततोनिश्चिन्ततां ब्रजेत् ॥ यदि श्री गोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि । ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ॥"

अब जो वसा दुढ़ नियम न सिद्ध हुआ तो क्या करना इसका साधन लिखते हैं —

६२ ॐ न तदसिद्धौ लोकव्यवहारो हेयः किन्तु फलत्यागस्तत्साधनं च कार्यमेव ।

उस (निश्चय) की असिद्धि में लोकव्यवहार को नहीं छोड़ना, किन्तु फल छोड़ना, वरंच उस (फल) का साध अवश्य ही करना ।

क्योंकि विश्वास दुढ़ भए बिना लोक-व्यवहार छोड़ने में वही कहावत होगी "न घर के हुए न घाट के" परंतु उसका फल छोड़ देना अर्थात् लोकव्यवहार को असार समझना और विश्वास की सिद्धि के साधन में प्रवृत्त होना । उसके कौन कौन साधन हैं सो आगे दिखाते हैं —

६३ ॐ स्त्रीधननास्तिकवैरिचरित्रं न श्रवणीयम् ।

१. एवं सवे; स्म कर्तव्यमिति पाठ भेद ।

स्त्री, धन, नास्तिक और वैरी का चरित्र नहीं सुनना ।

स्त्रियों के चरित्र सुनने से विषयों में वासना होती है, धन का चरित्र सुनने से लोभ की वृद्धि होती है, नास्तिकों का चरित्र सुनने से विश्वास में हानि होती है तथा वैरियों का चरित्र सुनने से उन पर क्रोध की वृद्धि होती है तो ये सब तमोगुणादिक के कारण हैं इस से इनको सुनना ही नहीं ।

६४ ॐ अभिमानदंभादिकं त्याज्यम् ।

अभिमान, दम्भ आदि को छोड़ना ।

भक्तिमार्ग के मुख्य विरोधी ये ही दो हैं, क्योंकि भक्ति सिद्ध हो जाने पर भी इनके फिर उदय होने का भय रहता है, हम बड़े भक्त हैं, हम लोगों के उपदेष्टा हैं इत्यादिक अभिमान और बाह्याचरण में व पूजा के आडंबर में भेद न पड़े यह दंभ और आदि शब्द से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इत्यादि लिये जाते हैं । जो कहे कि दुस्त्यज हैं तो कहते हैं —

६५ ॐ तदर्पिताखिलाचारस्सन् कामक्रोधाभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम् ।

सब आचार उसी (भगवान) को अर्पण कर उस क्रोध अभिमान आदि सब उसी पर करना ।

अर्थात् काम करना तो यही कि वह परमश्रेष्ठ हमें मिले, क्रोध करना तो उसी पर कि क्यों नहीं मिलता ? अभिमान भी उसी का कि हमारा स्वामी सर्वेश्वर है हमारा प्यारा सब से सुंदर है इत्यादि ।

६६ ॐ त्रिरूपभंगपूर्वकं नित्यदासनित्यकान्ता भजनात्मकं वा प्रेम एव कार्य्यं प्रेम एवं कार्य्यमिति ।

तीनों रूपभंग पूर्वक (भगवान का) नित्य दास्य और नित्यकान्ता की भाँति भजन रूपी प्रेम ही करना, प्रेम ही करना ।

त्रिरूप शब्द का क्या अभिप्राय है यह कौन जाने । यदि हम स्मार्त होते तो ब्रह्मा विष्णु शिव को एक करते वा वेदान्ती होते तो त्रिपुटीभंग वा जीव, ईश्वर और ब्रह्म की एकता करते परंतु यह भक्तिशास्त्र है यहाँ इनका प्रयोजन नहीं । यहाँ तीनों गुणों को मिटा कर वा भक्तिस्वरूप आनंदांश के आविर्भाव से तीनों (सत्, चित और आनंद) का परस्पर पृथक्त्व भंग करना वा गुरु ईश्वर और उसके भक्तों के भेद का भंग इत्यादि । अब हम अपना सिद्धांत दिखाते हैं । युगल स्वरूप में और उनको पृथक् मानना अर्थात् यह वह और यह दोनों अलग हैं यह जो तीन प्रकार की भावना है इसका भंग वा प्रेमी, प्रेम और प्रेमपात्र इनके भेद के भंग पूर्वक दासभाव से वा कांताभाव से प्रेम ही करना, प्रेम ही करना । इति शब्द से इन साधनों के कहने के पीछे और कुछ शेष वक्तव्य नहीं यह बोधन किया ।

अष्टम अनुवाक समाप्त ।

६७ ॐ भक्ता एकांतिनो मुख्याः ।

भक्त एकांती (अभ्यंतरचारी) (और सब से) मुख्य होते हैं ।

पहिले सूत्रों में साधारण भक्तों की महिमा दिखाकर अब एकांती भक्तों की महिमा दिखाते हैं । भक्तों में भी अनन्य और एकांती (अपनी भक्ति को गूढ़ रखने वाले) मुख्य हैं । इस एकांती शब्द से भक्ति भी सब संसार के दिखावे की भाँति एक संसारी आचरण है, इस का निषेध किया ।

६८ ॐ कण्ठावरोधरोमांचाश्रुभिः परस्परं लपमानाः पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च ।

(ज भक्त लोग) कंठ का अवरोध, रोमांच और अश्रु आदि से युक्त होकर परस्पर भाषण करते हुए कुल और पृथिवी को पवित्र करते हैं ।

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोघोषहरं हरि । भक्त्या संजातया भक्ता विभ्रत्युत्पुलकां तनुं ॥
क्वचिद्बुद्धय्युतचिन्तया क्वचित् हसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः । नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं भवन्ति तूष्णीम्परमेत्य निर्वृताः ॥ इत्यादि प्रबुद्ध का वाक्य है ॥

परम भागवत प्रल्हाद जी ने कहा है "निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्वार्याणि लीलातनुभिः कृतानि । यदातिहर्षोत्पुलकाश्रु गद्गदं प्रात्कण्ठ उद्गायति रीति नृत्यति ॥ यदा ग्रहग्रहस्त इव क्वचिद्भसित्याक्रदन्ते ध्यायति वन्दते जने । मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते नारायणेत्यात्मगतिर्गंतव्यः ॥" श्रीमुखवाक्य भी है "एवं हरौभागवति प्रति लब्धभावो भक्त्या द्रवद्दय उत्पुलकः प्रमोदात् । औत्कण्ठ्यवाष्पकलया मुहुर्द्वि-

मानस्तच्चापि चित्तवडिशं शनकैर्वियुक्ते ।।" एकादश में भी "शृण्वन् सुभद्रागिरयागपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके । गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसंगः ।। एवंव्रतःस्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः । हसत्यथो रोदिति रीति गायत्युन्मादवनन्त्यति लोकवाहयः" ।। तृतीय में "देहञ्च तत्त्वपरमः स्थितमुत्थितं वा सिद्धो विपश्यति यतो ध्यगमत्स्वरूपं । दैवादुपेतमय दैववशादुपेत वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ।।" इत्यादि और सब भक्तों का आचरण ऐसा ही सुनने में आया है, यथा श्री गोपीजन का "विचिक्युर्न्मत्तकवद्वनाद्वनं" "रुरुदुः सुस्वरं राजन्" "कृष्णो हं पश्य त गति" "ललितामिति तन्मनाः" "विक्षिप्तमनसो नृप" इत्यादि और श्री महादेव जी की जड़ोन्मत्तपिशाचचर्या लोक में प्रसिद्ध ही है "स्मशानेष्वार्क्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचराः । चिताभस्मालेपः स्त्रगपि नृकिरोटीपरिकरः अमंगल्यं शीलं भवतु तव नामैवमखिलं । तथापि स्मूर्तूणां वरद परमं मंगलमसि ।।" श्मशानचकानिलधूलिधूम्रो विकीर्णविद्योत-जटाकलापः । भस्मावगुण्ठामलरुक्मदेहो देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते ।। नयस्यलोके स्वजनः परोवा नात्यादृतो नोतकश्चिद्विगहयः । वयं व्रतैर्यच्चारणापविद्वामाशास्महे जात्रत भुक्तभोगां ।। यस्यानवद्याचरितं मनोषिणो गूणन्त्यविद्यापटलं विभत्सवः । निरस्तसाम्यातिशयोपि यत्स्वयं पिशाच चर्यामचरद्गतस्सतां ।। हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगासस्वात्मनरतस्याविदुषस्समाहितं । यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलोपनैः श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितं ।। ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला यत्कारणं विश्वमिदं च माया । आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहोविभूम्नश्चरितं विडम्बनम्" ।।

अहा जब भगवान् शिवजी ने जोकि इस मार्ग के परम गुरु और परम रहस्यवेत्ता "ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिना" ।। ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिः" "अहं कलानां ऋषभो" "विद्याकामस्तु गिरिश" "यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विद्याधिपो रुद्रोमहर्षिः" "हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं सनो देवः शुभया स्मृता संयुनक्तु" "कस्तञ्ज्वराचरगुरुनिर्वैरं शान्तविग्रह । आत्मारामं कथं द्रष्टुं जगतो देवतं महत् ।।" "त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्द्धनं । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षाय मा भूतात् ।।" "तस्मिन्महायोगमये मुमुक्षुशरणं सुराः । ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवातकं" ।। "विद्यातपोयोगपथमास्थितं जगदीश्वरं । चरतं विश्वसुहृदं

वात्सल्याल्लोकमंगलं ।। उपविष्टं दर्भमय्यां वृष्यां ब्रह्म सनातनं । नारदाय प्रवोचतं पृच्छते शृण्वतां सतां ।। कृत्वोरी दक्षिणे सव्ये पादपञ्चज जानुनी । बाहुप्रकोष्ठेऽक्षं माला मासीनं योगमुद्रया ।। तं ब्रह्मनिर्दाण-समाधिमास्थितं व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षां । सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्यं मनुं प्रांजलयः प्रणेषुः ।।" इत्यादि श्रुतिपुराणादि वाक्यों से प्रतिपाद्य श्रीमहादेव जी ने यह मत्तचर्या अवलम्बन किया तब और भक्तों का क्या पूछना है । ऐसे ही ऋषभदेव जी की भी चर्या है यथा "जडान्धमूकवधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेधोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीबभूव ।।" तथा जड़भरत जी की भी चर्या है "तथैत्यमविरतपुरुषपरिचर्या भगवते प्रवर्द्धमानानुरागभरद्भुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्यवधीयमानरोमपुलककुलक औत्कण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयवाष्प-निरुद्धावलोकनयन एवंनिजरमणारुणचरण रविदानुध्यानपरिचिभक्तियोगेन परिप्लुतः परमाल्हादगम्भीरहृदय-हृन्दावगदधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ।।" उद्वज जी ने भी ऐसाही किया है "मुक्तकण्ठो रुरोद ह" । श्रुतदेवजी ने भी ऐसाही किया "धुन्वन्वासो ननतं ह" । राजा चित्रकेतु की भी यही दशा है "स उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरं प्रेमाश्रुवर्षैरुपमेहयन्मुहुः ।। प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमो नैवाशक्तं प्रसमीक्षितुं चिरम् । (श्रीमद्भगवत्) ध्रुवजी का भी ऐसाही चरित्र है । यत्तद्विष्णुपदमाहुः यत्र ह बाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभगवतो अस्मत्कुलदेवताचरणारविदोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढं क्लिष्टमाना-तद्द्वय औत्कण्ठ्यविषयाभीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलवाष्पकलयाभिव्यज्यमानरोमपुलको धुनापि परमादरेण शिरसा विभर्त्ति, इत्यादि । श्रीअक्रूर की भी ऐसी दशा हुई "तद्वर्शनाह्वादविवृद्धसंभ्रमप्रेम्णोर्द्वर्धरोमाश्रु कलाकुलेक्षणः । रयादवस्कंधं स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यंश्रिरजांस्यहो इति ।।" इत्यादि कहाँ तक कहे सब भक्तों के ऐसे ही चरित्र हैं क्योंकि प्रेम भी एक मदिरा है, जो पीएगा आप ही नाचेगा, रोएगा, हँसेगा, बकेगा । श्रीमहाप्रभु जी का भी "तत्कथाक्षिप्तचित्तस्तत् विस्मृतान्यो ब्रजप्रियः" नाम है ।।

“तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि” “तीर्थं पुनाना मुनयोभिवन्ति” “स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति संतः” इत्यादि वाक्यों से तथा श्रीगंगा जी के प्रति भगवान् के वाक्यों से सिद्ध है और संत का कर्मों को सुकर्म करना राजा युधिष्ठिर के यज्ञ के प्रसंग से और व्यास जी के संवाद से सिद्ध है। संतों की महिमा विशेष कर के ३६।३९।४०।४१। सूत्रों में लिख आए हैं।

७० ॐ तन्मयाः ।

(क्योंकि वे) तन्मय हैं।

तीर्थानि के पवित्र करने में कारण देते हैं कि “पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानां च मंगल” इत्यादि वाक्य से संसार में जो कुछ पवित्रता है भगवान् की है तो तन्मय जो भक्त हैं उनके दर्शन-स्पर्श से क्यों न पवित्र होंगे। “तीर्थपाद” भगवान् का नाम है और उनके भक्त उनका चरित्र सर्वदा गान करते हैं और भगवान् के चरित्र ही से तीर्थ, कर्म और शास्त्र इन सब को सतीर्थता, सत्कर्मता और सच्छास्त्रता होती है, यह क्रम से दिखाते हैं। “तत्रैव गंगा यमुना च तत्र गोदावरी सिन्धुसरस्वती च । सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्राच्युतोद्धारकथाप्रसंगः” इत्यादि वाक्यों से तीर्थों का “तत्कर्म हरितोषं यत् सा विद्या तन्मतिर्यया ।” “धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः । नोत्पादयेद्यदिरति श्रम एव हि केवलम्” ॥ “दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः । श्रेयोभिर्विधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते” ॥ “धिग्जन्मनस्त्रिवादिद्यां धिग्व्रतं धिग्वहुज्ञतां ॥ धिक्कुलं धिक्क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वद्योक्षजे” ॥ “देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रत्विजोऽग्नयः । देवता यजमानश्च क्रतुधर्मश्च यन्मयः ॥” “नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरंजनं । कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चापितं कर्म यदप्यकारम् ॥” इत्यादि से भगवान् का कर्म को भी पवित्र करना और एकादश स्कंध के ५ अध्याय में “कर्मण्यकोविदाः स्तब्धा” इत्यादि परम भागवत् चमस जी के वाक्य में भगवत्पथ विना कर्मतर को प्रवृत्ति की निंदा में कर्मों का सुकर्म होना तथा “न यद्वचश्चित्प्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीय कर्हिचित् । तद्वासं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा विरमन्त्युशिक्षयाः ॥ तद्वाग्विस्मर्गोजनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमवद्ववत्यपि । नामान्यन्तस्य यशोकितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥” इत्यादि से शास्त्रों का सच्छास्त्र करना सिद्ध है तो तन्मय, तत्स्वरूप, तत्समानादरणीय परमभक्त जन तीर्थानिदिकों को तीर्थ बनावेंगे इसमें कौन आश्चर्य है।

७१ ॐ मोदन्ति पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति ।

(जिनके चरित्र देख) पितर आनन्दयुक्त होते हैं, देवता लोग नाचते हैं और यह पृथ्वी सनाथ होती है।

“कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा भागवती च धन्या । स्वर्गोपि तेषां पितरश्च धन्या येषां कुले वैष्णवनामधेयम्” ॥ “स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते ॥” “संकीर्तनध्वनिं श्रुत्वा ये च नृत्यन्ति वैष्णवाः । तेषां पादरजःस्पर्शात्सद्यः पूता वसुन्धरा ॥ तद्दिने सफलं धन्यं यशस्यं सर्वमंगलं । श्रीकृष्णकीर्तनं यत्र यत्र नैवायुषो व्ययः ॥ तत्कीर्तनं भवेद्यत्र कृष्णस्य परमात्मनः । स्थानं तच्च भवेतीर्थं मूलानां तत्र मुक्तिदम् ॥ नात्र पापानि तिष्ठन्ति पुण्यानि सुस्थिराणि च । तपस्विनाञ्च व्रतिनां व्रतानां तपसां फलम् ॥” इत्यादि शास्त्र में महिमा कही है तथा श्रीमुख से भी आज्ञा करते हैं (वाराहपुराण) “जान्हव्यादीनि तीर्थानि पापनिष्कृतिहेतवे । कांक्षांति हरिदासानां दर्शनं हरिदासवत् ॥ मद्भक्तजनसम्मर्दपादपांसुविसर्जनात् । चतुःसागरपर्यन्तं पावनं स्यादसुन्दरे ॥” तथा प्रह्लाद जी से भी भगवान् ने कहा है “त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽग्नयः यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः । यत्र यत्र च मद्भक्ताः प्रशांताः समदर्शिनः । साधवः समुदाचारास्ते पूयत्यपि कीकटाः ॥” इत्यादि ।

७२ ॐ नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेदः ।

उन (भक्तों) में जाति, विद्या, रूप, कुल, धन और क्रिया आदि का भेद नहीं।

“नालं द्विजत्वं ऋषित्वं वा सुरात्मजाः । प्रीणनाय मुकुन्दस्य न दत्तं न बहुज्ञता ॥” “विप्राद्विषदगुणयुतादरविदनामपादारविदविमुखाच्छवपचं वरिष्ठम् । मन्ये” “अहोबत श्वपचोतो गरीयान्यज्जिहवाग्रे वर्तते नाम तुभ्यं ॥” “ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः । विष्णुभक्तिसमायुक्तो क्षेयः सर्वोत्तमोत्तमः ॥” “दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा ब्रजौकसः ॥” “विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोन्त्यजाः । सर्वधिकारिणोऽहयत्र विष्णुभक्तो यथा नृप ॥” “किरातहृणांभ्रपुलिंदपुष्पसाआभरकंका यवनाः

खसादयः । येन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ।" पञ्चम स्कन्ध में श्रीहनुमद्वाक्य "न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ् न बुदिनाकृतिस्तोषहेतुः । तैर्यद्विशिष्टानपि नो वनौकसां चकार सख्ये वत लक्ष्मणाग्रजः" "इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधीरध्वम्बरीषसगरा गयनाहुपाद्याः । मांघात्रलकंशतधन्वनुरतिदेव-देवव्रतो बलिरमूर्तरयो दिलीपः ॥ सौभर्युतंकशिविवेदलपिप्पलादसारस्वतोद्वयपराशरभूरिषेणाः । येन्ये विभीषण हनूमदुपेन्द्रदत्तपार्थाष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥ ते वै विदेत्यतिरंति च देवमायां स्त्रीशुद्रहूणश्वरा अपि पापजीवाः यद्यद्गुणक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥" इत्यादि वाक्यों से तदीयों की समता स्पष्ट है और वैष्णव जातिबुद्धि अर्थात् वैष्णव में जातिभेद करना यह ६४/महा अपराधों * में से एक गिना है और भागवतों के लक्षण में भी कहा है "न यस्य जन्मकर्माभ्यां न वर्णभ्रमजातिभिः । सज्जतेस्मिन्महंभावो देहे वै स हरेः प्रियः" । और श्री हरिराय जी ने अपने ग्रंथ शिक्षापत्र में भी ऐसा ही लिखा है । इसी से वैष्णवों को परस्पर जाति, विद्या रूप, कुल धन और क्रिया आदि का भेद कदापि नहीं करना क्योंकि जिस समय वह तदीय हुआ उसी समय सब गुण पूर्ण हो गया । "यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः" इत्यादि वाक्यों से सिद्ध है ।

७३ ॐ यतस्तदीयाः ।

क्योंकि (ये) उसके हैं ।

पूर्वोक्त अभेद मानने का हेतु देते हैं कि जब तुम तदीय हो और वे भी तदीय हैं तब परस्पर न्यूनाधिक भेद कहाँ रहा, सब एक से भाई हुए और जब सब विद्या, जाति, क्रिया इत्यादिकों का मूल पवित्र करने वाला भगवान् इन के हृदय में बैठा है तो वे आप ही सर्वोत्तमोत्तम हो गए ।

नवम अनुवाक समाप्त ।

❁ (१) भगवान् में देवविशेष या तत्त्वविशेषबुद्धि (२) शास्त्रों में ग्रंथ अर्थात् पौरुषेय-बुद्धि (३) वैष्णव में जाति-बुद्धि (४) गुरु में साधारण मनुष्य-बुद्धि (५) प्रतिमा में शिलाबुद्धि (६) प्रसाद में ज्ञातबुद्धि (७) चरणोदक में जलबुद्धि (८) तुलसी में वृक्षसाधारण बुद्धि (९) गऊ में पशुसाधारण बुद्धि (१०) भागवत और गीता में ग्रंथसाधारण बुद्धि (११) भगवल्लीला में मनुष्यकृत्य बुद्धि (१२) सांसारिक प्रेम वा स्त्रीसुख में लीला गान वा स्मरण (१३) श्रीगोपीजन में परकीया-भावना (१४) रासलीला में कामबुद्धि (१५) महोत्सव में स्पर्शास्पर्शबुद्धि (१६) नास्तिक-वादावलंबन (१७) सदैवपूर्वक धर्माचरण (१८) अश्रद्धापूर्वक धर्माचरण वा धर्म में आलस्य करना (१९) वैष्णव का वाहय चरित्र देखना (२०) महात्माओं के चरित्र पर गुण दोष विचारना (२१) अपने को उत्तम समझना (२२) किसी देवता या शास्त्र की निंदा (२३) भगवद् विग्रह के सामने पीठ लगाकर बैठना (२४) जूता पहने, (२५) माला पहने, (२६) छड़ी लिए, (२७) नील वस्त्र पहने (रेशम में नील शुद्ध है) (२८) बिना दंतधावन किए, (२९) मलत्याग मैथुनादि के पीछे बिना वस्त्र बदले मंदिर में जाना, (३०) भगवद्विग्रह के सामने हाथ पैर हिलाना (३१) ताम्बूलादि खाना, (३२) ऊँचे हैंसना, (३३) कुचेष्टा करना, (३४) स्त्री को घूरना, (३५) क्रोध करना (३६) दूसरे को आदर के हेतु अभिवादन करना, (३७) दुर्गंध वस्तु खाकर तथा पहनकर, बिना गंध दूर भए वा अजीर्ण भए पर जाना, (३८) मत्त होना अर्थात् नशा सेवन करके जाना, (३९) किसी का अपमान करना वा मारना, (४०) काम क्रोधादि चेष्टा करना (४१) घर आए मनुष्य को विशेष करके संत की अम्प्यर्चना न करना (४२) सेवा वा धर्म वा पांडित्य अपने में मानना वा सुकृत को अपना किया समझना (४३) नास्तिकों का, लंपटों का, हिंसकों का, लोभियों का, मिथ्याचारियों का संग करना (४४) विपत्ति परमेश्वर ने दिया यह बुद्धि करना (४५) धर्म के बल पाप करना (४६) किसी को तृण मात्र भी कष्ट देकर अपने को धार्मिक समझना (४७) स्त्री पुत्र भृत्य परिवार आश्रित दीन संत की उपेक्षा (४८) वस्तु को अपने उपयोगी समझकर सेवा में देना वा असमर्पित वस्तु ग्रहण करना (४९) इष्टदेव की शपथ खाना (५०) भगवान्, धर्म वा नाम बेंचकर द्रव्य कमाना (३१) अन्य देवता से आशा करना (५२) धर्मशास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन (५३) वह दशा भए बिना ज्ञान हाँकना वा वैसा आचरण करना (५४) देवचरित्र की भाँति आचरण करना (५५) संप्रदायभेद से वैष्णवों को ऊँचा नीचा समझना (५६) अवतार की तारतम्यबुद्धि से निंदा करना (५७) हैंसी में भी किसी को तुम परमेश्वर हो यह कहना (५८) परमेश्वर को कदापि किसी कारण से भी अनुमात्रभी परतंत्र समझना (५९) लोभ से किसी को चरणाभूत वा प्रसाद देना (६०) भगवान् के चित्र मूर्ति नाम आदि की अवज्ञा करना या कहना (६१) किसी जीव को किसी प्रकार

श्रीमुख से निषेध किया है "वादवादास्त्यजेत्तर्कान् पक्षं कञ्चन नाश्रयेत् । वेदवादरतो न स्यान्प्राखण्डी न हेतुकः ॥" इत्यादि क्योंकि वाद से मनुष्य के चित्त में आग्रह की गाँठ पड़ जाती है और जहाँ आग्रह होता है वहाँ तत्व नहीं प्रगट होता और बहुत वाद करने से तमोगुण उदय होने की भी संभावना है । अब उसमें हेतु देते हैं —

७५ ॐ बाहुल्यावकाशवत्त्वादनियतत्वात् ।

(क्योंकि वाद में) बहुत अवकाश है और अनियत है ।

व्यास जी ने कहा है "तर्काप्रतिष्ठानात्" तथा श्रुति भी है "नैषामतिरापनेया दुष्प्रतर्क्यैः" । क्योंकि जितने वाद हैं वे भगवान् का तत्व जानने के हेतु हैं सो वादों से कभी नहीं जाना जायगा, क्योंकि वहाँ तक बुद्धि जाती नहीं "यतो वाचो निवर्तते अप्राप्य मनसा सह" "यद्वाचा नाम्युदितं" । सन्तसुजात में भी "न तं विदुर्वेदविदो न वेदाः", "नेदं यदिदमुपासते", "वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहं", "शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयं । अनन्तपारगम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत्", "नैतन्नमो विशति वागपि चक्षुरात्मा प्राणेन्द्रियाणि च ।" इत्यादि से ईश्वर की वादों से दूरता स्पष्ट है और वेद भी उसके विषय में नेति नेति कहते हैं तब व्यर्थ वाद क्यों करना क्योंकि उस की प्रतिज्ञा है "भक्त्याहमेकया ग्राह्यः" । इससे वादों को छोड़ कर केवल उस पर विश्वास करना ।

७६ ॐ भक्तिशास्त्राणि मननीयानि तदुद्बोधककर्म्मण्यपि करणीयानि ।

भक्ति शास्त्रों को मनन करना और उस (भक्ति) को बढ़ाने वाले कर्मों को करना ।

वाद छोड़कर केवल सिद्धान्त स्वरूप भक्तिशास्त्रों को देखना और उनका चिन्तन करना आचार्यों और भगवज्जनों और सिद्धान्तों के रहस्य को जानना और भक्ति बढ़ाने वाले उत्सव, सत्संग, तीर्थटन, कथाश्रवण, तदीयों से आलाप, भगवत्सेवा और गुरु-शुश्रूषा इत्यादि कर्म करना इससे भक्ति प्रतिक्षण वर्द्धमान रहेगी ।

७७ ॐ सुखदःखेच्छालाभादित्यक्ते काले प्रतीक्ष्यमाणे क्षणार्द्धमापि व्यर्थ न नेयं ।

सुख, दुःख, इच्छा, लाभादि (का अभिमान) छोड़ कर काल की प्रतीक्षा करते हुए भी आधा क्षण भी व्यर्थ न बिताता ।

यद्यपि इच्छादि के परित्याग से पूर्ण काम हो गए हैं और कुछ कर्तव्य है नहीं तथापि भगवद्भजन बिना क्षण भर भी नहीं बिताता क्योंकि यह तो नित्य कार्य है । देखो मरने के समय करोड़ उपाय करो क्षण भर भी विशेष मनुष्य नहीं रह सकता ऐसे अनमोल क्षण को व्यर्थ बिताना मूर्खता की बात है ।

७८ ॐ अहिंसासत्यशौचदयाऽस्तिव्यतादिचारित्र्याणि पालनीयानि ॥

अहिंसा, सचाई, शुद्धि, दया, आस्तिकता आदि सब चारित्र्यों का पालन करना ।

क्योंकि सत्व गुण के ये सब कृत्य हैं । इनके न करने से वा विरुद्ध करने से तमोगुण की प्रवृत्ति होती है और भक्ति में बाधा होती है ।

७९ ॐ सर्वदा सर्वभावेन निश्चितैर्भगवानेन भजनीयः ।

सर्वदा सब प्रकार से निश्चित होकर भगवान् ही का भजन करना ।

साधारण शिक्षा देकर सिद्धांत की शिक्षा देते हैं कि सर्वदा सब काल में दुःख में सुख में अनेक कर्मों में प्रवृत्त रहने के समय भी सर्व भाव से अर्थात् उसको अपना सर्वस्व मान कर केवल उसी का भजन करना और भजन भी निश्चित होकर करना, क्योंकि जो किसी प्रकार खटका रहता है तब भजन भली भाँति नहीं होता ।

८० ॐ स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवस्यनुभावयति भक्त्या ।

वह गाए जाने से शीघ्र ही प्रगट होता है और अपने भक्तों को अनुभव कराता है ।

सो तो उसकी प्रतिज्ञा ही है "नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च । मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।" और नारद जी ने भी कहा है "प्रगायतस्ववीर्यापि तीर्थपादः प्रियश्रवाः । आहूत इव मे शीघ्र दर्शनं याति चेतसि ॥" श्रीमहाप्रभु जी ने भी कहा है "क्लिश्यमानान्जानान्दृष्ट्वा कृपायुक्तो वदामवेत् । तदा सर्वं

भी ताप देना वा उद्बेजन करना (६२) तर्कवितर्क से आस्तिकता से मान डिगाना (६३) भगवदवतार में जन्म कर्म मानना (६४) जुगल स्वरूप में मेदबुद्धि ।

सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ॥ सदानन्दमयस्यापि कृपानन्दः सुदुर्लभः । हृद्गतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्लावयते जनान् ॥" और श्री महाप्रभु जी का "स्वयशोगानसंहृष्टहृदयाम्भोजविष्टः । वशःपीयूषलहरीप्लावितोन्वरसः परः ॥"

८१ ॐ त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी भक्तिरेव गरीयसी ।

त्रि (कालमें) सत्य (भगवान्) की भक्ति ही सब में (साधनों में) बड़ी है, भक्ति ही बड़ी है ।
 "भक्त्यैव तुष्टिमभ्येति विष्णुर्नान्येन केनचित् । प्रीयतेभलया भक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनं ॥" "भक्त्या तुतोप भगवान् गजयूथपाय", "भक्त्याहमेकया ग्राह्यः" "भक्तिः पुनाति मन्त्रिष्ठा", "भक्त्या मामभिजानाति", "भक्त्यैकलभ्यो पुरुषोत्तमोहि", "भक्तिमान् यः स मे प्रियः", "भक्तियोगेन सेवते", "भक्त्यैकलभ्ये पुरुषे पुराणे मुक्त्यै, किमर्थं क्रियते प्रयत्नः", "धर्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता । समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा करे ॥" "ब्रह्मसंस्थोमृतत्वमेति", "मयि भक्तिर्हि भूतानाम-मृतत्वाय कल्पते", "तन्निष्ठस्य मोक्षापदेशात्", "तत्संस्थस्यामृतोपदेशात्", "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति प्रयाचते । अमयंसर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्ब्रतं मम ॥" "भक्त्या त्वनन्याया शक्यः", "भक्त्यालभ्यस्तन्मन्यया", "श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः", "भक्तिप्रियोमाधवः", "मयि संजायते भक्तिः कोन्योस्याथौव-शिष्यते", "योमे भक्त्या प्रयच्छति ॥ तदहंभक्त्युपहृतं", "अण्वप्युपहृतं भक्त्यैः प्रेम्णा भूयैव मे भवेत्", "श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते", "अपि यः सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्", "अहं भक्तपराधीनो" इत्यादि वेद, उपनिषत्, श्रीमुखवाक्य, रामायण, भारत, स्मृति, व्याससूत्र, शांडिलयसूत्र, पुराण और तन्त्रों से सिद्ध है कि सब साधनों में मुख्य साधन केवल भक्ति ही है । विस्तरभयात् विशेष प्रमाण नहीं दिया ।

८२ ॐ गुणमहात्म्यासक्ति १ रूपासक्ति २ पूजासक्ति ३ स्मरणासक्ति ४ दास्यासक्ति ५ सख्यासक्ति ६ कान्तासक्ति ७ वात्सल्यासक्ति ८ आत्मनिवेदनासक्ति ९ तन्मयतासक्ति १० परमविरहासक्ति ११ रूपा एकधाप्येकादशधा भवति ।

(यह भक्ति) एक रूप ही होकर गुणमहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति रूप से एकादश प्रकार की होती है ।

इससे श्रवणादिक नवधा भक्ति गौण हैं, इसका निषेध किया क्योंकि नारद जी का मत है कि भक्तिबीज के हृदय में उत्पन्न होने के पूर्व जो श्रवणादिक हैं उनको श्रवणभक्ति नहीं कह सकते और यह पूर्वोक्त जो श्रवणादिक हैं वे शुद्ध भक्ति से भिन्न नहीं हैं अतएव प्रति शब्द के साथ आसक्ति का शब्द दिया है । जो यह शंका करो कि जिनको प्रेम सिद्ध है उनको तो पूर्वोक्त आसक्तियाँ होंगी सो, नहीं यह विशेष आसक्ति परत्व है । जैसे प्रेमियों को अपने प्रेम पात्र का सबही अंग सुन्दर लगता है तथापि प्रति प्रेमी को अपने प्रेमपात्रों में कोई अंग वा चेष्टा विशेष मोह के विषय होते हैं, वैसे ही पूर्ण प्रेमियों को यद्यपि सबही आसक्तियाँ सिद्ध हैं तथापि किसी को किसी में विशेष रुचि है किसी को किसी में है । श्रवणादिकों को गौणी भक्ति मानने में एक बड़ा दोष यह है कि जैसे अर्जुन सख्य के वा श्री हनुमान जी दास्य के अधिकारी हैं तो जिसके मत में यह भक्तियाँ गौणी हैं उन के मत से ये भक्त भी गौण हुए । तो इस सूत्र से शुक, प्रह्लाद, हनुमान, अर्जुन, बलि, विभीषण आदि एक एक भक्ति के विशेष अधिकारी महानुभावों को गौण भक्त कहने वालों का मत परास्त हुआ और सिद्ध हुआ कि प्रेम एक ही वस्तु है जो केवल रुचि की विचित्रता से अलग अलग छलावे दिखाता है । इनमें तन्मयतासक्ति तथा परम विरहासक्ति वियोगी भक्तों को सिद्ध है, शेष आसक्तियाँ संयोगी और वियोगी दोनों को सिद्ध हैं । और किसी किसी भक्त को एक एक आसक्ति सिद्ध है, परंतु किसी को दो तीन भी सिद्ध हैं और श्री गोपीजन को तो सभी सिद्ध हैं ।

१ "गुणमहात्म्यासक्ति" — जैसा परिक्षित को, नारद को तथा हनुमान जी को और श्रीपृथुराजा को, जिसने केवल हरिगुण-श्रवण के अर्थ दस हजार कान माँगे थे । परिक्षित ने कहा है "नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते । पिवंतं त्वन्मुखांभोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥" नारद जी का वाक्य "देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषितां । मूर्धयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम्", "प्रगायतः स्वीवीयाणि तीर्थपादः पृथुश्रवाः ।

आहत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि" ॥ हनुमान जी का तो ध्यान ही है "यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकांजलिं । बाष्पवारिपपरिपूर्णलोचनं मारुति नमत राक्षसांतकं ।" तथा अपने मुँह से (रामायण उत्तरकाण्ड १०७ सर्ग ३१ श्लोक) "यावत्तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी । तावत् स्यास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्" । तथा (श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध १९ अध्याय ८ श्लोक) सुरोऽसुरो वाप्यथवा नरोऽनरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमं । भजेत रामं मनुजाकृति हरिं य उत्तरामनयत् कोशलान्दिवं" ।

२ रूपासक्ति दो प्रकार की होती है — एक किशोररूप में एक बाल रूप में । बाल रूप से श्री मातृचरण श्री नन्दोपनन्दादिक बृद्ध ब्रजवासियों को तथा किशोर रूप में ब्रज की स्त्री पुरुष पशु पक्षिमात्र को । जैसा "अहो अमी देववरामरार्चितं" इत्यादि श्लोकों में श्रीमुख से भी कहा है और "अक्षणवतां फलमिदं न परं विदामः" इत्यादि वेणुगीत के श्लोकों में तथा "वामबाहुकृतवामकपोलो" इत्यादि युगलगीत के श्लोकों से सिद्ध है ।

३ "पूजासक्ति" महाराज पृथु को, जैसा उन्होंने कहा है "यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपपितं मलं धियः । सद्यःक्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदांगुष्ठविनिःसृता सरित् ॥" इत्यादि ।

४ "स्मरणासक्ति" परम भागवत प्रह्लाद को, जैसा "सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया लीलाकायस्तवनसिंहविरच्यगीताः । अञ्जस्तिर्तर्भ्यनुगूणान् गुणविप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससंगः ॥" इत्यादि ।

५ "दास्यासक्ति" परमभागवत प्रह्लाद और हनुमान आदि को जैसा प्रह्लाद जी का वाक्य "आयुः श्रियं विभवमैद्रियमाविरिच्यात् नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण । कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्व ॥" तथा हनुमानजी का वाक्य "दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याविलष्टकर्मणः ॥" इत्यादि और यथा अक्रूर जी का वाक्य "अहं हि नारायणदासदासो दासानुदासस्य च दासदासः" ॥ विदुर जी का वाक्य "वासुदेवस्य ये भक्ताश्शान्तास्तद्गतमानसाः । तेषां दासस्य दासोऽहं भवेयं जन्मजन्मनि ॥" इत्यादि । तथा उद्व जी और युधिष्ठिर को तो हरिदास नाम ही मिला है ।

६ "सख्यासक्ति" जैसा अर्जुन, सुग्रीव, उद्व, कुबेर, सुदामा, देव, सुबल, श्रीदामादि, गरुड़ इत्यादि और कभी कभी हनुमान जी को भी हो सकती है । अर्जुन को श्रीमुख से कहा है "भक्तोसि मे सखा चेति" तथा अर्जुन का वाक्य "सखेति मत्वाप्रसभं यदुक्तं हेकृष्ण हेयादव हेसखेति" तथा श्रीमद्भागवत "नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि हेपार्थ हेर्जुन सखे कुरुनन्दनेति । संजल्पितानि नरदेवहृदिस्पृशानि स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयमम माधवस्य ॥ शय्यासनान्तनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य कृतवानिति विप्रलब्धः । सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सखी सोहेमहान्महितयान्कुमतेरप मे ॥"

तथा "या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी । त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥ उद्व जी की "वैष्णीनां प्रवरो मंत्री कृष्णस्य दायेतः सखा ॥" "श्रीमुखवाक्य भी "नोदवोष्वपि मन्तूयूतो यद्गुणौर्नादितः प्रभुः" "न तथा मे प्रियतमो आत्मयोनिर्न शंकरः । न च संकर्षणो न श्रीनवात्मा च यथा भवान्" । उद्वजी का वाक्य "शय्यासनान्तनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु । कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥" तथा "मंत्रेषु मां वा उपहृत्य यत्त्वमकुण्ठिताखण्डसदात्मबोधः । पृच्छेः प्रमो मुग्ध इवाप्रमत्तस्तन्नो मनो मोहयतीव देव" ॥ कुबेर की श्रीशिवजी में यथा मनुजी का वाक्य "हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतं" तथा श्रीशुकदेव जी का वाक्य "उपास्यमानं सख्याच भर्ता गुह्यकरक्षसां ॥" कोश में भी "कुबेरः त्र्यम्बकसखा" इत्यादि । सुबलश्रीदामादि की यथा "श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा । सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णोदमब्रुवन् । एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया" इत्यादि । दशम के १८ अध्याय में सब इन्हीं लोगों के सख्यत्व की सीमा लिखी है । श्रीसुदामा जी की यथा "कृष्णस्यासीत्सखा कश्चिद् ब्राह्मणो यो ब्रह्मवित्तमः । ननु ब्रह्मन् भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियःपतेः" ॥ जिसका भगवान ने ऐसा आदर किया "तं विलोक्याच्युतां द्राष्ट्रिप्रयापयंकमास्थितः । सहसोत्थाय रभ्येत्य दोभ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥ सख्युः प्रियस्य विप्रैर् रंगसंगातिनिर्वृतः । प्रीतो व्यमुचदब्धिदन्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥ अयोपवेश्य पर्यं स्वयं सख्युः समहर्णं । उपहृत्यावनिज्यास्य पादोपादावनेजनीः ॥ अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवाँल्लोकपावनः । कुचैर्न मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसततं ॥ देवी पर्यचरच्छैव्या चामरव्यजनेन वै ॥ योसौ त्रिलोकगुरुण श्रीनिवासेन संभूतः । पर्यकस्यां श्रियं हित्वा

परिप्लवतोऽग्रजो यथा ।।" जिसके चावल भगवान ने आप ही छीन कर खाए और "सख्युः प्रियचिकीर्षया", "परमप्रीणनं सखेः", "पर्यंके भ्रातरो यथा", वार्धकाणांमृगमः सखा मे", "सुहृत्कृतं फलवपि भूरिकारि", "तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री", "एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तवा" इत्यादि । गरुड़ की जैसी "भगवान् भगवत्प्रियः", "विनतासुतांसैविन्यस्तहस्तमपरेण धुनानमब्जं ।।" तथा हनुमान जी की "न जन्म नूनं महतो न सौभगं नवाग् न बुद्धिनाकृतिस्तोषहेतुः । तैर्यद्विसृष्टानपि नोवनौकसश्चकार सख्ये वत लक्ष्मणाग्रजः ।।" तथा सुग्रीव की (बाल्मीकि रा. किष्किन्धा षष्ठ सर्ग श्लोक १२) "तमब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनं । आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे ।।" तथा सुग्रीव का वाक्य (७ सर्ग श्लोक १३) "हितं वयस्यभावेन ब्रू वे नोपदिशामि ते । वयस्यतां पूजयन्मे न त्वं शोचितुमर्हसि" तथा श्रीरामजी का वाक्य (७ सर्ग श्लोक १६) "कर्तव्यं यद्वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च । अनुरूपं च युक्तञ्च कृतं सुग्रीव तत्त्वया ।। एष च प्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्तया सखे । दुर्लभोऽहोदृशो बंधु रस्मिन् काले विशेषतः ।।" इत्यादि ।

७ "कान्तासक्ति" — यथा श्री गोपीजन को । यद्यपि श्री गोपीजन को सभी आसक्तियाँ सिद्ध हैं यह पहले लिख आए हैं और विरहासक्ति में निरूपण भी करेंगे तथापि श्री गोपीजन की आसक्तियों में कान्तासक्ति अंगीभाव से है जो "कृष्णं विदुः परं कान्तं" इत्यादि वाक्यों से सर्वत्र सिद्ध है ।

८ "वात्सल्यासक्ति" — श्रीनन्द, यशोदा, कौशल्या, दशरथ, सुमित्रा, कश्यप, अदिति, धनिष्ठा, श्री वृषभानु, कीर्तिदा, पूर्णमासी इत्यादि को ।

९ "आत्मनिवेदनासक्ति" — यथा बलि को "सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् ।।"

१० "तन्मयासक्ति" — यथा श्री शिव जी को, जिनका अभेद पुराणों से सिद्ध है ।

११ "परमविरहासक्ति" — यथा श्री उदवादि को "योगेन कस्तद्विरहं सहेत" इत्यादि ।

तथा श्रीगोपीजन को

अथ श्रीगोपीजन में सभी आसक्तियाँ सिद्ध हैं यह दिखाते हैं ।

१ "गुणमाहात्म्यासक्ति" श्री गोपीगीत, वेणुगीत, युगलगीत, भ्रमरगीत आदि से सिद्ध है ।। २ "रूपासक्ति" गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने । क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ।। अपरानिमिषतद्गुण्यां जुषाणा तन्मुखांबुजं । आपीतमपि नातृप्यत्सन्तस्तत्त्वरणं यथा ।।" इत्यादि से । ३ "पूजासक्ति" फल फूलादि दान से ४ "स्मरणासक्ति" "स्मरंत्यः कृष्णचेष्टितं" इत्यादि से । ५ "दासासक्ति" "भवाम दास्यः श्यामसुन्दर ते दास्यः" "शिरस्तु च किंकरीणां" इत्यादि से । ६ "सख्यासक्ति" "सखउदेयिवान्, भजसखेभवत् कितवयोपितः" इत्यादि से । ७ "कान्तासक्ति" "कान्तकामदं", "प्रप्रेक्षोभवान्", "दयितदृश्यतां", "सुरतनाथते" इत्यादि वाक्यों से । ८ "वात्सल्यासक्ति" "गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डल" से, दामोदरलीला आदि में स्पष्ट । ९ "आत्मनिवेदनासक्ति" "यः पत्यपत्य" इत्यादि श्लोकों से । १० "तन्मयतासक्ति" "कृष्णोऽहं" इत्यादि वाक्यों में । ११ "परमविरहासक्ति" "क्षणं युगशतमिव" इत्यादि से । और इन श्री गोपीजन को नित्य लीला में श्री मुख का दर्शन होते भी केवल पलक की ओट में जिनका परमवियोग होता है और कहती हैं कि हे निर्दई विधना इस मुखचन्द्र देखने के हेतु तुझको रोम रोम में आँखें बनानी थीं उसके बदले यह उलटा अँधेर किया कि बिना बात के पलक बना दी । तो जिनका प्रेम और विरह इतना सीमा के बाहर है उनकी ये सब आसक्तियाँ सिद्ध हों इसमें क्या आश्चर्य है । जिनकी चरणारविन्द के रेणु के प्रसाद से लोग प्रेम पथ के अधिकारी हो सकते हैं उनके प्रेम का क्या पूछना है । भक्तिमार्ग के उद्धारकर्ता श्री आचार्य जी ने जिनकी स्पृहा की है यथा 'गोपिकानां च यदुःखं तदुःखं स्यान्मम क्वचित्' ।। और जिनको अपने मार्ग का गुरु लिखा है यथा 'गोपिका प्रोक्ता गुरवः साधने मता' तो अब इससे बढ़ कर उनके आदर के हेतु वा प्रमाण के हेतु हम क्या लिखें वा क्या कहें ।

ये प्रेम के ग्यारह अलग अलग भेद नहीं हैं किन्तु स्वरूप हैं क्योंकि जो अलग होती तो जिसको एक सिद्ध हो उसको दूसरी न होती और यदि दो सिद्ध होंगी तो एक से जिस को दो सिद्ध हो उस की विशेषता होगी और प्रेमियों में कोई छोटा बड़ा नहीं इससे भक्ति एक ही है केवल प्रेमियों की रुचि भेद से अलग दिखाती है ।

८३ औ इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्मया एकमताः कुमारव्यासशुकशाण्डिल्यगर्गविष्णुकोण्डिन्यशेषोद-
वारुणबलिहनुमद्विभीषणादयो भक्त्याचार्याः ।

कुमार (सनकादिक), व्यासजी, शुकदेवजी, शाण्डिल्य, गर्गाचार्य, विष्णु, कौण्डिन्य, शेष, उदवजी, आरुणि, बलि, हनुमानजी, विभीषण आदि भक्ति के आचार्य लोक के उपहास से निर्भय होकर पूर्वोक्त मार्ग कहते हैं ।।

कुमार — सनकादिक, इनका प्रेममार्ग निम्बार्कमत के नाम से प्रसिद्ध है । भगवान ने इन लोगों से अपना तत्व हंस का स्वरूप लेकर कहा है और इनकी वंशपरंपरा मन्वन्तर वर्णन में श्री मद्भागवत में लिखी है "महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा । मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः" ।। और प्रामाणिक स्मार्तो के निबंधों में भी एकादशी के प्रसंग में ४५ दंड का वेध मानने वालों का इनका मत "कपालवेधमित्याहुराचार्या ये हरिप्रियः" "निम्बार्को भगवान्येषामित्याहुः सनकादयः ।।" इत्यादि वाक्यों से प्रमाण करके लिखते हैं और निम्बार्कचार्य ने अपना परमाचार्य इन्हीं लोगों को माना भी है जैसा उन्होंने दशश्लोकी में कहा है "उपासनीयं नितरां जनैः सह प्रहाणये ज्ञानतमोनिवृत्तये । सनंदनाद्यैर्मुनिभिर्भयोक्तं श्रीनारदायांखिलतत्त्वसाक्षिणे ।।" इत्यादि । और लोग तो भक्तिसाधनार्थ ही प्रगट हुए हैं क्योंकि यद्यपि उन्होंने अपना शिष्यरूपी वंश तो स्थापन किया, पर पिता की आज्ञा भी न मानकर मोह करने वाली और सृष्टि न की, यथा "ते नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणः" इत्यादि । वरंच भक्तिस्थापनार्थ यह भगवान् ही का अवतार है "तत्पुन्यतो विविधलोकसिद्धांतं बानौसनात् स्वतपसः स चतुःस्रो भूत् । प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं सम्यग् जगद मुनयो यदचक्षतातमन् ।।" इति ।

व्यास — व्यासजी ने तो मुक्तकंठ होकर कहा ही है कि "आलोडय सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः । इदमेकं सुनिस्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ।।" इत्यादि । जो कहो कि अनेक पुराणों में व्यास जी ने अनेक मत और उपासना कहा है तो उसमें भक्ति की विशेषता कहाँ आई तो यह शंका मत करना क्योंकि व्यास जी की तो दृढ़ प्रतिज्ञा है "वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा । आवावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ।।" इत्यादि इन को भक्ति मिलने का विशेष वर्णन भक्तवंशपरंपरा में मिलेगा ।

शुकदेवजी — शुकदेवजी ने राजा से पहिले ही सिद्धांत स्वरूप कहा है "देहापत्यकलत्रादिपवात्ममैत्र्येष्वस्तस्वापि । तेषां प्रमत्तो निधने पश्यन्नापि न पश्यति ।। तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः । श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयं ।। एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया । जन्मलाभः परः पुंसांमते नारायणस्मृतिः ।। प्रायेण मुनयो राजान् निवृत्ता विधिनिषेधतः । नैगुण्यस्था रमन्तेऽस्मि गुणनुकथने हरिः ।। इत्यादि" ।। क्यों न कहें ? वेद जिनको मुक्त लिखता है "शुको मुक्तो वामदेवो वा" और भगवान की माया जिनको कभी व्यापी ही नहीं, जिनको देख कर स्त्रियों ने भी लज्जा न की, जिन्होंने पिता को वृक्षों में से उत्तर दिया और प्रेम मार्ग का सिद्धांत स्वरूप श्रीमद्भागवत प्रगट करके राजा परीक्षित को मोक्ष दिया तथा सप्ताह में भी बीच बीच में जब लीला स्मरण आती थी तब बेसुध हो जाते थे, उन के प्रेम का निरूपण यहाँ क्या हो सकता है ।

शाण्डिल्य — शाण्डिल्य जी ने तो स्वतंत्र भक्तिशास्त्र ही रचा है, जिसमें ज्ञान, योगादि से भक्तिसाधन ही उत्तम कहा है ।

गर्ग — गर्गाचार्य अपनी गर्गसंहिता में अनेक प्रकार के भक्ति के रहस्य तथा यादव आदि के नष्ट होने पर जब भगवत्तत्त्व का ज्ञानने वाला कोई नहीं रहा तब यज्ञनाभ ने अनेक प्रकार का रहस्य, जो ब्रज में तथा उदव नारदादिकों के मुख से सुना था, कहकर फिर से भक्तिमार्ग का स्थापन किया । इनको वात्सल्य और दास्य दोनों भक्ति सिद्ध थी ।

विष्णु — लोक में जिनका नाम विष्णुस्वामी प्रसिद्ध है । विशेष वर्णन परंपरा में देखो ।

कौण्डिन्य — कौण्डिन्य के विषय में हम इतना ही जानते हैं कि हमारे आचार्य ने अपनी गुरुपरंपरा में श्री गोपीजन के समान इनको भी माना है यथा "कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ता गुरुवः" इति और जिनको तन्मयतासक्ति थी । जिनको इस आसक्ति से वृक्षों में भी सर्वत्र श्री अनंत का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ था ।

शेष — शेषजी ने केवल दास्य भक्ति की शिक्षा के हेतु श्री लक्ष्मण जी का स्वरूप लेकर संसार को दिखाया कि दास्य इसका नाम है और इस रीति करना होता है और आप ने भी पंचवटी में अपने सब गुप्त सिद्धांत उपदेश किए तथा श्री लक्ष्मी जी और गरुड़ जी से नारायणीय सिद्धांत पाकर उन्होंने चित्रकेतु इत्यादि को

उपदेश किया, जो मत अब तक रामानुजीय नाम से प्रसिद्ध है और जिसमें यामुन, शठकोप इत्यादि महात्मा और अग्रस्वामी इत्यादि प्रेमी हुए ।

उद्व — उद्व जी का क्या पूछना है जिनको प्रेमपात्र और प्रेमी अर्थात् श्रीभगवान तथा श्री गोपीजन ने आप अपने मुख से प्रेममार्ग का उपदेश किया है, उनकी क्या बात है । ये वही उद्व जी हैं जिनको छोटेपन से खेल ही में भगवत्पूजा का व्यसन था और जिनको भगवान ने अपना तत्व संसार में स्थापन करने के हेतु ब्रह्मशाप उल्लंघन करके पृथ्वी में छोड़ा, उन का क्या पूछना है ।

आरुणि — इनही का नामांतर निम्बार्क है और ये सनकादिकों के मत के प्रवर्तक हैं और इन के दश श्लोक जो मिलते हैं उनमें युगल स्वरूप की भक्ति का सिद्धांत किया है ।

‘व्यूहांगिने ब्रह्मपरं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिं’ । अंगेतु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगां ।। सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् । ये बड़े प्राचीन हैं क्योंकि श्रीमद्भागवत में वेदस्तुति में इनका मत कहा है और जहाँ परीक्षित राजा से मिलने के हेतु ऋषिगण आये हैं वहाँ भी इनका नाम है यथा ‘‘राजर्षिवर्या अरुणादयश्च’’ । ये श्री स्वामिनी जी के कंकण के पूर्णावतार हैं अतएव इनको लोग सुदर्शनतत्व कहते हैं । किसी समय इन्होंने यतियों का निमंत्रण किया था । उनके आने में विलंब हुआ और जब भोजन करने बैठे तब साँझ हो गई, इस से उन यतियों ने कहा कि अब हम नहीं खायेंगे ; तब इन्होंने कहा कि आप लोग खाइये अभी सूर्य है और आप नीम पर चढ़कर सूर्य वन के दर्शन दिया, अतएव निम्बार्क नाम पड़ा । इन के सेव्य श्री स्वरूप श्रीगोपीजनवल्लभजी और शालग्राम सर्वेश्वर जी अभी विद्यमान हैं तथा श्रीनिवासाचार्य, पुरुषोत्तमाचार्य इत्यादि धुरंधर पंडित और हरिवंश जी, व्यासजी, स्वामी हरिदास जी इत्यादि प्रेमी इन्हीं के संप्रदाय में हुए हैं ।

बलि — इनको सर्वस्वात्मनिवेदन भक्ति सिद्ध थी । अपने पितामह साक्षात् प्रह्लाद जी से उपदेष्टा और भगवान से पात्र पावें तो फिर इनका क्या पूछना है । कहते हैं कि यतीन्द्र, बलि, अंबरीष और विश्वक्सेन नाम के किसी काल में प्राचीन चार वैष्णव संप्रदाय थे, परंतु अब सब लुप्त हुए ।

हनुमान — श्री हनुमान जी की दास्यभक्ति का वर्णन ऊपर दास्यभक्तिनिरूपण में कह आये हैं और क्या कहें, केवल भगवान की कथा-श्रवण के हेतु जिनका जीवधारण है, उनके प्रेम का माहात्म्य कौन कह सकता है ? क्योंकि उन्होंने भगवान से यही वर माँगा है कि ‘‘यावत्तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी । तावत्स्यास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन् ।’’ और जिनका मत अद्यापि श्रीभगवान के मुखारविंद से सुने हुए विष्णुतत्व के अनुसार ‘‘मध्यमत’’ नाम से प्रसिद्ध है ।

विभीषण — इन्होंने कुसंगति में रह कर भी भगवद्भक्ति लोगों को सिखाई, वरज्व ‘‘सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्भ्रतं मम ।।’’ यह जगदुपकारिणी प्रतिज्ञा इन्हीं के हेतु हुई है ।

८४ ॐ य इदं नारदप्रोक्तं शिवानुशासनं विश्वसति श्रद्धधत्ते स भक्तिमान् भवति स प्रेष्ठं लभते स प्रेष्ठं लभते इति ।

इस नारद जी के कहे हुए शिवानुशासन पर जो विश्वास और श्रद्धा करता है वह भक्तिमान् होता है, वह प्यारे को पाता है, वह प्यारे को पाता है ।। ८४ ।।

उपदेश करके उसका फल कहते हैं । विशेष करके प्रेष्ठ शब्द से यह दिखाया कि भगवान इत्यादि को ब्रह्म, विष्णु, नारायण, भगवान इत्यादि भावों से तो और लोग भी पावेंगे परंतु प्रियतम भाव से वही पावेगा जो इस प्रेमसूत्र पर विश्वास करेगा और प्रेममार्ग पर चलेगा ।

इति नारदीये भक्तिशास्त्रे दशमोऽनुवाकः ।।

यह श्रीनारद जी का कहा हुआ भक्तिशास्त्र दश अनुवाक में ‘‘तदीयसर्वस्व’’ नामक तदीयनामांकित अनन्यवीर वैष्णव हरिश्चन्द्र कृत भाषाभाष्यसहित समाप्त हुआ ।।

॥ इति ॥

श्री युगुलसर्वस्व

सन् १८७६ में लिखा गया है। भादो शुक्ल ८ सं. १९३३ में छपा भी।— सं.

श्रीयुगुलसर्वस्व

(श्री नित्यलीला के निकुंज सखा सखी सहचरी सेवक परिवार
आदि का नाम रूप वर्ण स्वभावादि वर्णन)

श्री भागवत, उसकी टीका, पद्मपुराण, नारदपुराण, कृष्ण जन्मखंड, बाराहपुराण,
आदिपुराण, रहस्यपुराण, ब्रह्मांडपुराण, नारदपंचरात्र, गौतमीतंत्र, रास
उल्लासतंत्र, बृंदावनपटल, लघुराधा-वृहदराधातंत्र, हयग्रीव-पंचरात्र
तथा श्रीहरिरायजी, श्रीगोकुलनाथ जी की भावना, श्रीद्वारकेशजी,
श्रीब्रजाधीशजी, श्री गोपिकेशजी की रहस्य भावना और
उज्ज्वलनीलमणि तथा गणोद्देशदीपिका आदिक
ग्रंथों से संग्रह किया।

समर्पण

हे अंतरंगी जन!

आज तक जो पुस्तकें प्रकाशित हुईं वह दूसरे को समर्पित हुई थीं परंतु यह युगुलसर्वस्व तुम को समर्पित
है, माथे चढ़ा कर अंगीकार करो। इस को अनधिकारी के हाथ खबरदार खबरदार मत देना और इस से
परमानंद लाभ कर के मेरा परिश्रम सफल करना।

भाद्रपद कृष्ण ९ सं. १९३३
श्रीनंदमहोत्सव

आप लोगों के चरणरज का बाँछक
हरिश्चंद्र

युगल - सर्वस्व

देहा

भरित नेह नव नीर नित, वरसत सुरस अथोर ।
जयति अपूरव घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ॥ १ ॥
तन्नमामि निज परम गुरु, श्रीवल्लभ द्विज - भूप ।
जाकी कृपा अपार लहि, उवर्यौ हौं भवकूप ॥ २ ॥
श्री बृंदावन राज है, जुगल केलि रस धाम ।
तहैं के परिकर आदि को, वरनत या थल नाम ॥ ३ ॥
वंस, सखी, परिचारिका, पशु पच्छी नर वृंद ।
इन सब को वरनन करत, निज अनुभव हरिचंद ॥ ४ ॥
प्रेमवारि परजन्य जो, जिन सम धन्य न अन्य ।
सोइ श्याम परजन्य के, दादा श्री परजन्य ॥ ५ ॥
दादी नाम बरीयसी, नाना सुमुख बखान ।
नानी देवी पाटला, जासी और न आन ॥ ६ ॥
बड़ी मात श्री रोहनी, पिता नंद सरदार ।
माता जसुदाजू अहैं, जा हित यह अवतार ॥ ७ ॥
बड़ काका उपनंदजू, अरु अभिनंद प्रनाम ।
नंदन अरु संनंद ये, काका छोटे जान ॥ ८ ॥
तुंगा, अतुला, पीवरी कुवला पुनि रसधाम ।
उलटे क्रम सों जानिये, काकिन के ये नाम ॥ ९ ॥
मामा जसवरधन, जसोधर जसदेव सुदेव ।
मौसी विदित जसस्विनी, मौसा मल्ल सुदेव ॥ १० ॥
तड़डुल पुरट कुवेर ये, सगरे ददा समान ।
गोष्ठ कलोल करुण्ड ये, मातामह सम जान ॥ ११ ॥
शीला भेरी अरु शिखा, पितामही सी होय ।
कुम्मासी भगवती, सिद्ध बिधाइनि सोय ॥ १२ ॥
जटिला भेला धरधरा, सुखरा भोरा जान ।
करवालिका करालिका, मातामही समान ॥ १३ ॥
मंगल पिगल रंगपिठ, पट्टस माटर पिग ।
नेह करत पितु से सवै, संगर संकर भृंग ॥ १४ ॥
तरलाछिनी तरालिका, शुभदा कुशला नारि ।
मालिकांगदा बत्सला, ताली आदि विचारि ॥ १५ ॥
और हु बृद्धा मेदुरा, भरी नेह चित चाय ।
हरि पै बत्सलता करत, जैसे जसुमति माय ॥ १६ ॥
परम नेहवारी अहै, नाम धनिष्ठा धाय ।
तथा तिलिम्बा अम्बिका, ताको जुगल सहाय ॥ १७ ॥
वेदगर्भ भागुरि महायज्ञा, द्विज निरधारि ।
सुलभा गौतमि, भारगी, चंडिलादि द्विज नारि ॥ १८ ॥

भाई श्री बलदेव से, भक्तन के अवलंब ।
 छनमहैं जिन हति लंब किय, खल कुल लंब प्रलंब ॥ १९ ॥
 भावो श्रीमति रेवती, जाको हरि पै चाव ।
 सख्य तथा वात्सल्य मिलि, जाको अनुपम भाव ॥ २० ॥
 मंडल दंडी कुंडली, भद्रकृष्ण से भ्रात ।
 बहिन नंदिरा मंदिरा, नंदी नंदा सात ॥ २१ ॥
 धाय अंबिका को सुअन, विजय नाम को जौन ।
 हरि तन रच्छत सर्वदा असि लै संग रहि तौन ॥ २२ ॥
 दिव्य सक्ति कुलवीर पुनि, महाभीम रनभीम ।
 रणधिर रणधिर सरप्रभ, सुर सभा बलसीम ॥ २३ ॥
 इन आदिक हरि जेठ जे, गोप - बाल - सरदार ।
 पितु आयसु नित संग एहि, रच्छत सदा कुमार ॥ २४ ॥
 वीरभद्र भद्रांग भट, गोमट यक्ष सुरेस ।
 भद्रमंडली भद्रबर धन से सुहृद हमेस ॥ २५ ॥

गद्य

विशाल, वृषभ, ओजस्वी, देवप्रस्थ, बरूयप, मिलिंद, कुसुमापीड, मणिबंध, करंधम, मरंद, चंदन,
 कुंद, कलिंद और कुलिक इत्यादि कनिष्ठ सखा हैं, ये सेवा करे हैं ॥ २६ ॥
 दामा, सुदामा, किंकिणी, तोककृष्ण, अंश, भद्रसेन, तिलासी, पुंडरीक, विटकाक्ष, कलंबिका, प्रियंकर
 और श्रीदाम आदि समान सखा हैं; तिनमें श्रीदाम मुख्य है, पीठमंद है बड़ो धृष्ट है ॥ २७ ॥
 सब सखा की सेना को भद्रसेन सेनापति है, अरु तोककृष्ण तो श्रीकृष्ण की दूसरी प्रतिमूर्ति है, और यह
 श्रीकृष्ण को बहुत ही प्यारे है ॥ २८ ॥
 सुबल, अर्जुन, गंधर्व, वसंत, उज्ज्वल, कोकिल, सनंदन और विदग्ध आदि प्रिय नर्मसखा हैं; इन सों
 कोई रहस्य छिप्यौ नहीं है ॥ २९ ॥
 मधुमंगल, पुष्पांक और हंस आदि विद्वधक हैं और कडार, भारती, गंधबंध और वेध आदि श्रीकृष्ण के
 विट हैं ॥ ३० ॥
 भृंगुर, भृंगार, संधिक और ग्रहल आदि चेटक हैं, तथा रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकंठ मधुव्रत, सालिक,
 तांडिक, मालो, मालू और मालाघर आदि दास हैं ॥ ३१ ॥
 पल्लव, मंगल और फुल्ल कोमल और कपिल आदि छोटे बालक नाचि नाचिके विचित्र चेष्टा करिके प्रभु
 को हँसावें हैं ॥ ३२ ॥
 सुविलास, विशालाक्ष, रसांक, रसशाली और जंबुक इत्यादि पान खावाइवेवारे हैं ॥ ३३ ॥
 पयोद और बारिद नाम के पानी पियावे को काम करै, तथा सारंग बकुल आदि वस्त्र धरावें
 हैं ॥ ३४ ॥
 प्रेमकंद नाम को अतर लगावै और मधुकंदला सेरंभी केसादिक सँवारे हैं ॥ ३५ ॥
 मकरंददिक सदा शृंगार करै हैं, तथा सुमना, कुसुमोल्लास, पुष्पहासहर इत्यादि चंदन और मालादिक
 को काम करै हैं ॥ ३६ ॥
 दक्ष, सुबंध, कर्पूर और सुगंधकुसुम आदि नाई हैं; केश को काम करै, तेल लगावैं, पाँव दाबैं और दर्पण
 दिखावैं हैं ॥ ३७ ॥
 स्वच्छ, शीतल और प्रगुण आदि धन संबंधी काम करै हैं, अरु कमल, विमल आदि पीढ़, खड़ाऊँ,
 छाता लिये साथ चलैं हैं ॥ ३८ ॥
 धनिष्ठा, चंदनकला, गुणमाला, तडित्प्रभा, भरणी, इंदुप्रभा, शोभा और रभा इत्यादि दासी हैं, और
 तिनमें धनिष्ठा मुख्य धाय मातुलया है ॥ ३९ ॥

कुरंगी, भूंगारी, सुलंबा और लंबिका इत्यादि दासी दधिमंथन, मार्जन तथा और घर के काम करे हैं ॥ ४० ॥

विशारद, तुंग, नीतिसार, मनोरम और बावद्क इत्यादि दूत निकुंज विहार के उपयोगी हैं ॥ ४१ ॥

दोहा

वृंदा, मेला, मुरलिका, वृंदारिका सुजान ।
 द्वीती सबै निकुंज की, वृंदा तासु प्रधान ॥ ४२ ॥
 द्वीजी बीरा नाम की, द्वीती परम प्रसिद्ध ।
 जासों नहि कोऊ बची, करत सबै जो सिद्ध ॥ ४३ ॥
 सोभन दीपक नाम के, द्वै मसालची खास ।
 मधुरराव सुविचित्ररव, ये जुग बंदी पास ॥ ४४ ॥
 चंद्रहास, सिव, चंद्रमुख, नचबैया ये तीन ।
 सुखद, सुधाकर बहुरि, सारंग मृदंग प्रवीन ॥ ४५ ॥
 सुधाकंठ, कलकंठ इन, आदि गान रस लीन ।
 सबै कलारत आति सुघर, गाय बजावैं बीन ॥ ४६ ॥
 सारंग, रसद, विलास ये, नाटक नट अभिराम ।
 सब अभिनय जानहि निपुन, करहि सदा नट काम ॥ ४७ ॥
 दरजी रौचिक नाम को, गणअंगण सुसुनार ।
 चित्र विचित्र चितेर दोउ, कर्मठ पवन कुहार ॥ ४८ ॥
 वर्दमान अरु वर्दको, द्वै वर्दई सुखरास ।
 पोटी, मन्थन, दाम, अरु, कंठार आदि फर्रास ॥ ४९ ॥
 कुमुल, कुंड, कंडोल अरु, कारंड करंड अनेक ।
 सेवक सेना में रहत, धरे दासपन टेक ॥ ५० ॥
 हंसी, बंसी, पिगला, गंगा, रंगा नाम ।
 प्रिया, पिशंगी, धूमला, मणि, सारनी ललाम ॥ ५१ ॥
 इन आदिक जे नैचिकी, तिन सों हरि को हेत ।
 तिन में धवली मुख्य अति, निज कर जेहि तून देत ॥ ५२ ॥
 वलीवर्द हैं अति भले, उत्पलगंध, पिशंग ।
 कपि सुन्दर दधिलोल है, नाम सुरंग कुरंग ॥ ५३ ॥
 स्वान व्याघ्र भ्रमरक दोऊ, विदित कलस्वन हंस ।
 शिखी तांडविक शुक जुगल, बोलत परम ग्रंथस ॥ ५४ ॥
 नित्य बाग वृंदाविपिन, जहाँ जुगल रस केलि ।
 करहि नित्य, को लखि सकै, बाहु बाहु पर मेलि ॥ ५५ ॥
 क्रीडा गिरि गिरिराज है, नीलमंडपक घाट ।
 गुफा बनी मणिकन्दली, केलिकुंज रस ठाट ॥ ५६ ॥

गद्य

केलिसरोवर को नाम मानसी गंगा है और वाके मुख्य घाट को नाम पारंग है और वामें सुबिलास नाम की नाव है ॥ ५७ ॥

नंदीश्वर नामा पर्वत पै इंद्रालय नामा सुंदर मंदिर है, जहाँ अनेक प्रकार की संगमरमर पत्थर की आमोदवर्दन नाम्नी सुगंध सों भरी बैठक है । जाके आगे पावन नामक सुंदर कुंड है, जापे मंदार नामक मणि को

फरस है और कुंज और अकामनामक महातीर्थ है ; जिनके चित्त में काम की वासना को लेश है वे या तीर्थ को दर्शन नहीं पावें हैं । और वहाँ की पृथ्वी को नाम अनंगरंग है और श्रीजमुना जी के घाट को नाम खेलातीर्थ है और पुलिन को नाम लीलापुलिन है जहाँ कदंबराज नामक बड़े कदंब को वृक्ष और भांडीरवट नामक बड़ को वृक्ष है, जहाँ नित्य जुगल स्वरूप को बिहार है ॥ ५८ ॥

आपके दर्पन को नाम शरदिन्दु है और पंखा को नाम मधुमारुत है और स्मेर नाम को नित्य लीलाकमल श्री हस्त में धारन करै हैं और गेंदा को नाम चित्रकोरक है ॥ ५९ ॥

उज्ज्वल नाम आप को बाण है, बिलासकामुक नाम धनुष और मणिबद्ध नाम वाकी डोरी है और अनेक रत्न सों जड़ी बड़े सुंदर मूठ की तुष्टिदा नाम की छुरी है ॥ ६० ॥

शृंग को नाम मंजुघोष और श्रीराधाचित्तहारिणी, महानंद तथा भुवनमोहिनी ये तीन बंसी हैं, और मुरली को नाम सरला है, और मदनहुंकृत, बंधुर और षड्भ्र ये तीन बेणु हैं, और काकली को नम्र मूकितपिका है, जाको श्रवन करि कै कोइल मूक होइ जाय हैं, और गौरी और गूजरी टोडी ये दोऊ राग अत्यंत प्यारे हैं । और बीणा को नाम नादवरागिणी है ॥ ६१ ॥

वेत्र को नाम मंडल है और लड्डु को नाम पशुवशीकर है और दोहिनी को नाम अमृतदोहिनी है ॥ ६२ ॥

श्री मातृचरण ने नवरत्न की भुजा पै रक्षा बाँधी है और रंगद नाम के बाजू और चंकन नाम के कंकण और रत्नमुखी नाम की अंगूठी है और निगमशोभन नाम को पीतांबर है, और कलझंकार नाम की किकिनी है और नूपुरन को नाम हंसगंजन है, जाके शब्द सुनतही श्री ब्रजदेविन के चित्त चलायमान होत हैं ॥ ६३ ॥

हार को नाम तारमणि है और माला को नाम तडित्प्रभा है और कंठा को नाम कौस्तुभ है, जाके नीचे भुजंगमणि को पदक है । रति और राग के अधिदेवता मंकराकृत कुंडल हैं और रत्नपार नाम को मुकुट है और अमरडामर नाम की सीसफूल है और मोर के चंद्रक को नवरत्नविडंबक नाम है और गुंजा को माला को नाम रागवल्ली और तिलक को नाम द्रुष्टिमोहन है और पल्लव, पत्र पुष्प और मोर के पच्छ तथा कमल इत्यादि सों गुथी श्री चरणारविंद तक बनमाला शोभित है और जो पंचरंगे फूलन सों गुथी कटि के नीचे तक सुंदर माला है जाको नाम बैजयंती है ॥ ६४ ॥

श्री युगलसर्वस्व को प्रथम प्रकरण समाप्त भयो ।

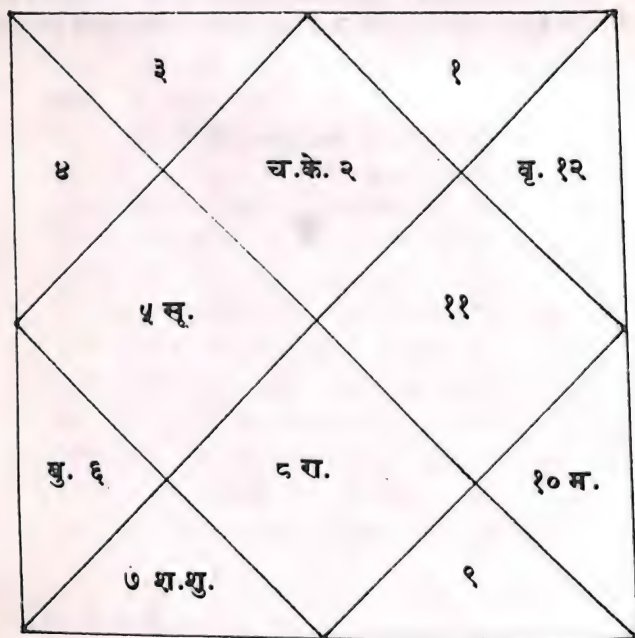
अथ युगल सर्वस्व को दूसरी प्रकरण लिखियत है ।

सोरठा—

मंगल माधव नाम, मंगल ब्रज वृंदा विपिन ।

मंगल राधा वाम, मंगल सब ब्रज गोपिका ॥

अथ श्री पूर्ण पुरुषोत्तम को मंगल समय कहत हैं । श्रीशुभ सम्बति ईश्वरे नाम्नि द्वापरादे ८६३८७४
शेष १२५ श्रीसूर्ये दक्षिणायने वर्षात्रितौ भाद्रपदे मासि कृष्ण पक्षे अष्टम्यां घटी ५६ पल ४५ बुधवासरे
कृत्तिकानक्षत्रे घटी २८ पल, हर्षणयोगे घटी ४१ पल ३७ कौलव करणे इष्टं ४६ घटी १४ पल एतत्समये
चन्द्रवशांतःपाति वैश्यवशावतंस गुरुगोब्राह्मणसेवापरायण श्री मत्पर्वन्यात्मजश्रीमन्नन्दाजगृहे श्रीयशोदाकुक्षौ
पुत्ररत्नमजीजनत ।



१९५५ ८७७ ८७५ सृष्टिमारमतो गताब्दाः ।

१९७२ ९४३ ८७५ वाराहकल्पप्रवेशप्रारंभगताब्दाः ॥

वंशवृक्ष

महाबाहु

पद्मनाभ

चित्र

देवमोह

सुजन्य

पर्जन्य

अर्जन्य

राजन्य

नन्दिनी

उपनन्द

अभिनन्द

नन्द

सुनन्द

नन्दन

सुनन्दा

सुबाहु

श्रीकृष्ण

सुवेल

तोककृष्ण

श्यामादेवी

श्रीकृष्ण

अथ उपनन्द जी को वर्णन । उपनन्द जी श्री नंदराय जी के सब भाइन में बड़े हैं । गाँव में इन को बड़ो मान है । गाँव में जो कुछ काहू को धर्म वा साइत वा औषधी पूछनी होय तो इन सों आय के पूछें । इन्हें भगवद्वात्सल्य सिद्ध है और ब्रज के सब गाँव की देव पितर की रीति जो कोई करै सो इन सों पूछि कै करै । केशी वैत्य के भय सों वृन्दावन छोड़ि कै ये महा वन में सब भाइन के साथ बास करै हैं । इनकी स्त्री को नाम तुंगी है । इन को वर्ण गौर, दाढ़ी श्वेत और नाभि तक लंबी है और हरे रंग को वस्त्र पहिने हैं और नव लाख गऊ और लाखन हाथी घोड़े इन के पास हैं ।

अथ अभिनन्द जी को वर्णन । इन को वर्ण गौर है, शरीर पुष्ट और बलवान, केश सत्र श्वेत हो गये हैं, पर दाँत नहीं टूटे, गालन पै सुंदर गलमुच्छा है और आठ लाख गऊ हैं और लाल वस्त्र पहिने हैं ।

अथ नन्द जी को वर्णन । श्री नंदराय को वर्ण गौर है ; केश कछु श्याम और श्वेत मिलुवा हैं । तोंद बड़ी है, छाती ऊँची है, वस्त्र नीलो पहिरे हैं, इनकी स्त्री को नाम श्री यशोदा है, जिन को अंग कछु स्थूल है और रंग साँवरो है । फूलनसों वेनी सदा गुँथी रहै और वस्त्र पीरो पहिने । और इन को नैहर को नाम देवकी है । श्री नंदराय जी के ७२००००००० बहतर करोड़ गऊ हैं और भैंस बकरी बहुत हैं । भाइन के हिस्सा में

श्रीनंदराय जी को नव लाख गऊ मिली हैं सो अब वे गऊ मोहना नामक ग्वारिआन के सरदार के पास हैं । उपनंद जी और अभिनंद जी ने आप राज्य नहीं लियो तासों नंदराय जी ब्रज के राजा भये । इनके कुलदेवता नारायण हैं, इनके कुल को वेद साम और शाखा कौथुमी है ; पर जब सों ब्रज के राजा भये तब सों यजुर्वेद और माध्यदिनी शाखा भई । इनके कुलपुरोहित शाण्डिल्य हैं । इनके राज्य में तीन प्रकार के गोप बसे हैं, प्रथम वे जो व्यापार और गोरक्षण करें हैं, दूसरे वे जो गाय भैंस रखें और खेती करें हैं, और तीसरे वे जो बकरी इत्यादि छोटे जीव पालें । श्री नंद रायजी को मुख्य मंदिर उत्तराभिमुख है और दरवाजे के बाहर दोऊ ओर बड़े सिंह बने हैं, भीतर बड़ी चौक है वहाँ एक ऊँचो चौतरा है जा पे साँझ को सब ब्रज के लोग आयके बैठें हैं, ताके पीछे जो दरवज्जा है वाके दोऊ ओर बड़े बड़े हाथी बने हैं और बाहू के भीतर दरवज्जा जो है वाके दोऊ ओर चंद्रमा और सूर्य बने हैं । वाके भीतरी अनेक चौक हैं, जिन में सर्वतोभद्र, कमलचोक और मणिचोक ये तीन मुख्य चौक हैं, ताके आगे श्री ब्रजरानी को मंदिर है और भीतर बाहर ताई अनेक दर बालान और मंदिर हैं और इनके बीच में कहूँ कहूँ बड़े बड़े वृक्ष लगे हैं और कहीं तुलसी को थावरो है । इनकी या पार की राजधानी को नाम गोकुल और वा पार की राजधानी को नाम नंदीश्वर है । गोकुल के देवता चिंतामणि माधव और मथुरानाथ जी हैं और नंदगाँव के ग्रामदेवता नंदीश्वर शिव हैं, और शैलासन और पाँडु नाम की दो अयाई हैं ।

अथ सुनंद जी को वर्णन । सुनंद जी को शरीर बड़ो ही पुष्ट है और अवस्थाहू वृद्ध नहीं भई है, केश सब श्याम हैं और ब्रज की सेना को सब प्रबंध करें हैं और संग और तरवार सदा हाथ में लिये रहें, वस्त्र पीरे पहिरे हैं । इनकी स्त्री को नाम कुबला और गऊ नौ लाख हैं ।

अथ नंदन को वर्णन । ये सबसों छोटे हैं, रंग गेहुआँ और केश बड़े लंबे लंबे हैं । वस्त्र सफेद पहिनें और स्त्री को नाम अलता है, जाको रंग गौर और श्याम रंग को वस्त्र पहिरे । इनकी निज की गऊ सात लाख हैं ।

श्री नंद जी की माता को नाम बरीयसी है । इनको अंग नाटो और केश सब श्वेत होय गये और वस्त्र हरे हैं ।

अर्जुन्य की स्त्री को नाम नटी और राजन्यकी स्त्री को सूर्रा है । नंदराय जी के फूफा को नाम गुरुवीर है और ये वृषमानु जी के मामा लगे हैं । और नंद राय जी के दोऊ बहिन के पतिन को नाम लीन और काम है ।

उपनंद जी के पुत्र को नाम कृष्ण (कोऊ कोऊ को मत है कि उपनंद जी को पुत्र नहीं भयो सो जब नंद राय जी को पुत्र भयो तब उपनंद जी के गोद में दै दियो, तासों भगवान को नाम नंद जी उपनंद जी दोउन को वंशपरंपरा में आवै है) और इनकी एक बेटी या को नाम कामा और प्रसिद्ध नाम श्यामदेवी है । जाको रंग साँवरो है और रूप में सब कृष्ण की उन्धार है ।

अभिनंद जी के पुत्र को नाम सुबाहु है ; या को रंग गोरो और वस्त्र हरो है । यह श्रीकृष्ण के साथ रक्षा के हेतु सदा लकुट लिये रहै, क्योंकि श्रीकृष्ण को बड़ो भाई है तासों वाके संख्य में वात्सल्य मिली है ।

सुनंद जी के पुत्र को नाम सुबल है, याको रंग लाल और वस्त्र कारो है और श्रीकृष्ण को बड़ो प्यारो मित्र है, क्योंकि याकी और भगवान की अवस्था एक ही है ।

नंदन जू के पुत्र को नाम तोक कृष्ण है । कोऊ को मत है कि या को रंग श्याम और वस्त्र पीत है । वाके पुकारवे को नाम तोक है और या को चलन बोलन सब श्रीकृष्ण की सी है और यह श्रीकृष्ण को अत्यंत प्यारो है क्योंकि आप को नेम है कि जो थोड़ी हू वस्तु अरोगें तो अपने हाथ सों पहिले कवर या के मुख में देत हैं ।

अब जन्म समय को भाव लिखत हैं । तहाँ श्री पूर्ण पुरुषोत्तम ने विश्वावसु नाम संवत् में जन्म लियो है ताको भाव यह है — जो विश्वावसु गंधर्वन का राजा है ताके संवत् में आपने जन्म लियो तासों यह जतायो कि हम गानविद्या की प्रवृत्ति करेंगे । और दक्षिणायन में जन्म लियो ताको भाव यह है कि आप अनेक नायकागण को दक्षिण होयेंगे और भक्तजन सों हू दक्षिण रहेंगे, और यज्ञवतार में स्त्री को नाम हू दक्षिणा है तासों दक्षिणायन में जन्म लियो । और वर्षा ऋतु में जन्म लियो ताको भाव यह है कि वर्षा ऋतु सब जगत को जीवन है और सब ऋतुन की अपेक्षा आनंददायक है याही सों सब अन्न आदि उत्पन्न होय है तासों यह जनायो कि हम जगत के हेतु हैं और सब को आनंद देंगे । अरु सब महीना छोड़िके भाद्रपद में जन्म लियो ताको यह हेतु है कि भद्र अर्थात् कल्याण वही भाद्र वाको पद नाम घर अर्थात् कल्याण को घर तासों आप ने सब मास

छोड़िके भाद्रपद ही में जन्म लियो । अब वर्षा ऋतु के २० दिन को एक ऐसे तीन पाद हैं तामें मध्य पाद में जन्म लिया । ताको भाव यह कि प्रथम पाद में उष्णता विशेष है और तृतीय में शीतता तासों मध्य के पाद में जन्म लियो, और ब्रह्मा विष्णु महेश्वर तीन देवता हैं तामें मध्य में विष्णु है ताको हेत यह जो प्रधान मध्य में हैं तासों मध्य पाद में जन्म लियो सो जाननो । अब कृष्ण पक्ष में जन्म लियो ताको कारण यह है कि आपको अपने नाम को पक्ष है तासों यह जनायो कि हम अपनो पक्ष बापेंगे और अष्टमी तिथि को कारण यह है कि अष्टमी शिवतिथि है, कल्याण रूप है, यद्वा श्रीमहादेव जी परम वैष्णव हैं तिनकी तिथि है, यद्वा पंद्रहो तिथि के मध्य में अष्टमी है, सो प्रधान मध्य में रहे है तासों, यद्वा अष्टमी जयतिथि है सो हम असुरन को जय करेंगे यह जनायो । वा यह श्री वसुदेव जी की जन्मतिथि है । और रात को जन्म लियो ताको हेत यह है कि हम चंद्रवंशी हैं सो चन्द्रमा रात्रि को राजा है तासों हम को दिन सों प्रयोजन नहीं । और अर्द्धरात्र को जन्म लियो ताको हेत यह है कि वा-समय में कोई कार्य नहीं कियो जाय है, स्वस्थ बेला है, तासों जा समय मेरे भक्त स्वस्थ रहें वा समय जन्म लियो चाहिए । और चंद्रमा के उदय होत जन्म लियो ताको हेत यह है कि जैसे चंद्रमा जगत को आह्लाद करे है तैसी आह्लाद हम करेंगे यह जनायो, यद्वा हम चंद्रवंशी हैं सो अपने वंशस्थ के उदय संग अपनो उदय कियो । और भगवान के जन्म समय आकाश में मेघ छाये याको हेत यह है जैसो मेघ सबको आनंद देत है तैसो हम आनंद देंगे, यद्वा मेघ प्रसन्न भये कि हमारा नाम घनश्याम श्रीठाकुर जी को होयगो, हमारी उपमा ब्रह्म को दी जायगी तासों प्रसन्न भये, यद्वा जल को नाम जीवन है सो जीवन जगत को हम करेंगे यह जनायो । और रोहिणी नक्षत्र पर जन्म लियो ताको भाव यह है कि जैसे चंद्रमा को अनेक नक्षत्र हैं तैसेही यद्यपि आप को अनेक सखी सेवन करै तथापि मुख्य श्री प्रियाजी ही हैं । और रोहिणी में जन्म ग्रहण करके आपने श्री बलदेव जी से सहोदरता सूचन कराई । बुधवार में आपने जन्म लियो ताको हेत यह है कि सब ग्रहन में बुध अत्यंत सुंदर है तासों आप अलौकिक सौंदर्य प्रगट करेंगे और बुध आप के वंश को पूज्य हू है तासों वंश को पक्षपात जनायो । वा "विष्णु चंद्रसुते" यासों बुध के दिन आप अवतीर्ण भए । काहु पुराण को मत सोमवार के हैं जन्मदिन मनावे को है सो बाहु में पूर्वोक्त भाव जानने । इत्यादि अनेक भाव हैं कहाँ ताई लिखिये ।

अथ चरण चिन्ह वर्णन

छापे

स्वस्तिक स्यंदन संच सक्ति सिंहासन सुंदर ।
 अंकुस ऊरधरेख अब्ज अठकोन अमलतर ॥
 बाजी वारन बेनु बारिचर बज्र बिमलवर ।
 कुंत कुमुद कलधौत कुंभ कोदंड कलाधर ॥
 असि गदा छत्र नवकोन जव तिल त्रिकोन तरु तारग्रह ।
 हरिचरन चिन्ह बत्तिस * लखे अग्निकुंड अहि सैल सह ॥११॥
 छत्र चक्र ध्वज लता पुष्प कंकन अबुज पुनि ।
 अंकुस ऊरधरेख अर्धससि जव बाएँ गुनि ॥
 पास गदा रथ जग्यवेदि अरु कुंडल जानो ।
 बहुरि मत्स्य गिरिराज संच दहिने पुनि मानो ॥
 श्रीकृष्ण प्रानप्रिय राधिका चरन-चिन्ह उन्नीस वर ।
 'हरिचंद' सीस राजत सदा कलिमलहर कल्यानकर ॥१२॥

अन्य मत सों

केतु छत्र स्यंदन कमल ऊरध रेखा चक्र ।
 अर्ध चंद्र कुस बिंदु गिरि संच सक्ति अति वक्र ॥

* श्री चरण चिन्ह के विशेष भाव भक्ति सर्वस्व नाम ग्रंथ में लिखे हैं, वहाँ देखो ।

लोनी लता लवंग की गदा बिंदु द्वे जान ।
 सिंहासन पाठीन पुनि सोहत चरन बिमान ॥
 अष्टादश श्री चिन्ह श्री राधापद मैं जान ।
 जा कहैं गावत रैन दिन अष्टादसो पुरान ॥
 जग्य सूवा को चिन्ह है काहू के पद सोइ ।
 पुनि लक्ष्मी को चिन्ह हू मानत हरि पद कोइ ॥
 श्री राधा पद मोर को चिन्ह कहत कोउ संत ।
 द्वे फल की बरछी कोऊ मानत कुस के अंत ॥

अथ हस्त चिन्ह वर्णन

जब खुर तोरन कमल लता वंसी त्रिकोन ध्वज ।
 वृक्ष शंख घट अग्निकुण्ड अंकुश गृह रथ गज ।
 सफरी ऊरधरेख कलस फल सब मन भाये ।
 छत्र गदा धनु सर सुचक्र अरु बिजन सुहाये ।
 वर पानपात्र गो सौंप तिल स्वस्तिक श्रीश्रीकृष्णकर ।

'हरिचंद्र' चिन्ह बत्तीस ये सोहत नित जन-सीस पर ॥२॥

इति श्रीयुगलसर्वस्व के पूर्वार्द्ध को दूसरो प्रकरण ।

अथ अष्ट सखिन के नाम ।

अपने मत सो — श्रीचंद्रवली जी, श्रीललिता जी, श्री विशाखा जी, श्रीचंपकलता जी, श्रीचंद्रभागा जी, श्रीराधासहचरी, श्रीश्यामा जी और श्रीभामा जी । इनमें श्रीचंद्रवली जी को स्वामिनीत्व है और सबन को सखित्व है याही सों पंचाध्याई में अंतर्ध्यान और आविर्भाव और महारास तीनहुँ समै में काचित् काचित् करिके सात ही गिनाई हैं । और सप्तावरणात्मक, श्रीस्वामिनीजी तथा श्रीठाकुरजी को स्वरूपहु है । यथा चक्रव्यूहात्मक, कालात्मक, संयोगात्मक और वियोगात्मक श्रीठाकुरजी को स्वरूप है । वियोगात्मक स्वरूप बृज में प्रगटे हैं और बृज ही में विराजत हैं, मथुरा द्वारका नाहीं जात । तथा श्री स्वामिनीजी शक्तित्रयात्मक-स्वामिन्यात्मक, संयोगात्मक, वियोगात्मक हैं, तिन में वियोगात्मक स्वरूप द्वै वर्ष पहले सेवाकुंज में प्रादुर्भाव भये हैं और संयोगात्मक स्वरूप पूर्णपुरुषोत्तम के साथ श्री यसोदा जी के यहाँ प्रगटे हैं और पंचावरणात्मक स्वरूप पंद्रह दिन पछे श्री बृषभानजू के घर प्रगट होत हैं । याही सों एक एक आवरण की सेवा के हेत एक एक सखी को प्रादुर्भाव है । और श्री चंद्रवलीजी युगल स्वरूप के प्रेम की मूर्ति हैं, रासलीला में विशेष रसपोषकता अर्थात् परकीया विभाग सुख प्राप्ति की कारण है और स्वामिनीजी के मान के कारण इनको प्रागट्य है याही सों एकादश सखा की भाँति सात सखी मुख्य हैं और याही सों वेणु में सप्तरश्मि तथा गुसाई जी के घरहु सात बालकन को प्रादुर्भाव है । शोक महात्मा को मत है कि श्री स्वामिनीजी और श्री चंद्रवलीजी को स्वामिन्यात्मक स्वरूप के अतिरिक्त एक एक संध्यात्मक स्वरूपहु है । यथा श्री स्वामिनीजी को राधा सहचरी वा रंगदेवात्मक और चंद्रवली जी को इंदुमुख्यात्मक ।

अथ अन्य मत सों अष्ट सखिन के नाम

ललिता, विशाखा, तुंगविद्या, रंगदेवी, इंदुरेखा, चंद्रभागा, और चंपकलता । एक के मत सों ललिता, विशाखा, चंद्रभागा, संध्यावली, तुंगभद्रा, श्यामा, भामा और तुलसा । एक के मत सों श्री चंद्रवली, ललिता, विशाखा, पद्मा, भद्रा, धन्या, रंगदेवी और श्यामा हैं ।

एक के मत सों ललिता, विशाखा, चंद्रभागा, श्यामा, भामा, कुसुमा, तुलसी और माधवी ।

एक मत में ललिता, विशाखा, चंद्रभागा, चंपकलता, चित्रा, स्वर्णलेखा, इंदुमती और संध्यावली ।

इति श्री युगलसर्वस्व उत्तरार्द्ध को प्रथम अध्याय संपूर्ण ।

अथ स्फुट वर्णन । श्री गोपीजन के यथ अनगिनत हैं, इन की कोऊ संख्या नाही करि सकत ।

इन की वृथनि में एक पुराण के मत सों ये मुख्य यूथाधिकारिणी हैं और इनके यूथ में इतनी सखी हैं । यथा चंद्रावली १६०००, सुशीला १६०००, शशिकला १४०००, चंद्रमुखी १३०००, माधवी ११०००, कदंबमाला १३०००, कुंती १००००, जमुना १४०००, जन्हवी ९०००, सावित्री १५०००, सुधामुखी १४०००, शुभा १४०००, पद्मा १४०००, गौरी १४०००, सर्वमंगला १६०००, सरस्वती १३०००, भारती १००००, अपर्णा १४०००, रति १००००, गंगा १४०००, अंबिका १६०००, सती १३०००, नंदिनी १००००, सुंदरी १३०००, कृष्णप्रिया १६०००, मधुमती १४०००, चम्पा १३०००, और चंदना १४००० ।

काहु मत सों श्रीनंदराय जी की परंपरा यह है ।

आभीरमानु के चंद्रसुरभि, तिन के मीलुक, मीलुक कों महाबाह, तिन के कंजनाम, तिन के बीरमानु, तिन के धर्मधीर, तिन के धर्मश्रया, तिन के काननेंदु, तिन के जयबल, तिन के जयकीर्ति, तिन के यशोधन, तिन के कंठमानु, तिन के महाबुद्धि, तिन के मानमेरु, तिन के मनोरथ, तिन के वरांगद, तिन के चित्रसेन, तिन के सुनंद, तिन के उपनंद, तिन के महानंद, तिन के नंदन, तिन के कुलनंद, तिन के बंधुनंद, तिन के केलिनंद, तिन के प्राणनंद, तिन के नंद हैं ।

एक मत सों चित्रा जी को वर्णन । श्रीकुंड के पूर्व आनंद सुखद नाम इन को निकुंज है, इन की वय तेरह वर्ष आठ महीना की, वर्ण गौर, वस्त्र जाती पुष्प तुल्य और सेवा चित्र की है ।

श्यामली जी दोऊ स्वरूप की संबन्धिनी हैं, श्री ठाकुर जी के काका की बेटी हैं, साँवलो रंग है । श्रीठाकुर जी की उनहार बहुत मिलत है । कोऊ को मत है कि श्री ठाकुर जी के काके की बेटी को नाम श्याम देवी है, श्यामली जी श्री ठाकुरजी की के काका की बेटी हैं परंतु श्री ठाकुर जी की पक्षपातिनी हैं ।

अथ अष्ट सखिन के राग तथा बाजन को वर्णन.

तहाँ श्री स्वामिनी जी संयोग में बिपंची जाति की बीन और वियोग में वंशी बजावत हैं । राग केदार और कान्हरो रात में तथा दिन में सारंग और मालकोस, वर्षा में मेघ और मल्लार ।

श्री चंद्रावली जी । बाजा अमृत कुंडली, राग सोरठ और जलतरंग ।

श्री विशाखा जी । बाजा मृदंग, राग सारंग ।

श्री चंद्रभागा जी । बाजा स्वरोदय, राग केदार ।

श्री चंपकलता जी । बाजा रबा, राग कान्हरा ।

श्री भामा जी । बाजा जंग, राग कल्यान ।

श्री संध्यावली जी । बाजा सारंगी, राग सोरठ ।

श्री हनुलेखा जी । बाजा ताल, राग बिष्णुग ।

श्री चित्रा जी । बाजा सितार, राग संकरा ।

अन्य मत सों बाजन के वर्णन

श्री ललिता जी मृदंग । श्री जमुना जी सहनाई । श्री विशाखा जी सुरमंडल । श्री श्यामला जी दुधारा । श्री चंपकलता जी सारंगी । श्री भामा जी करताल । श्री कामा जी तुरही अरु सहचरी किन्नरी ।

अथ अन्य मत सों प्रियाजी के हस्त को चिह्न

जय, माला, कमल, बाटिका, भ्रमर, व्यजन, छत्र, अर्द्धचंद्र, कर्णफूल, मड़वा अरु जलपान ।

अथ वामहस्त के चिह्न

लक्ष्मी, सीप, वृक्ष, वेदी, आसन, कुसुमलता अरु चामर ।

अथ श्री ठाकुर जी के दक्षिण हस्त के चिह्न ।

हाथी, अंकुश, घोड़ा, वृक्ष, बाण, गऊ, पंखा, मँडवा, बंशी, चक्र, माला और कमल ।

अथ श्री ठाकुरजी के वाम हस्त के चिह्न

मँडवा, कमल, तरवार, थापा, धनु, परिच, बिल्ववृक्ष, मीन, बाण अरु नंदावर्त ।

अथ श्री ठाकुरजी के उत्सव । माघ सुदी २ को दसूठन, माघ सुदी ५ को श्री चंद्रावलीपू को जन्म, क्वारबदी ८ को महीना को चौक, पौष सुदी ८ को अन्नप्राशन, माघ बदी ६ को नामकरण, वैशाख सुदी ९ को व्याह और असाढ़ सुदी ३ को गौना । पूस सुदी ८ को श्री नंदजू को जन्म, माघ सुदी ६ को यशोदापू को जन्म और सावन बदी ५ को अठवासा तथा अगहन सुदी २ को श्री ठाकुरजी कूख में पधारे हैं । कार्तिक सुदी १५ को यज्ञपत्री को अंगीकार ।

आधिदैविक उद्भव, आधिदैविकी सुभद्रा, आधिदैविक अर्जुन, आधिदैविकी रुक्मिणी और आधिदैविकी सत्यभामा को ब्रज की लीला में अंगीकार हैं तैसे ही आधिदैविक बलदेवजी और रेवतीजी सदा ब्रज में विराजत हैं और मर्यादा श्रुतिरूपा गोपी इन को यूथ है ।

श्री ठाकुरजी के बूआ को नाम मैना है और घरानंद अर्थात् सुनंदजी की बेटी सुभद्रा श्री ठाकुरजी की प्यारी बहन है । श्रीवृषभानुजी विवेक और श्री कीर्ति जी भक्ति को स्वरूप हैं तथा देवतान की आदिजननी महामाया देवकी जी को स्वरूप है और धर्म को स्वरूप बसुदेवजी को है । इन दोउन कों ब्रज में कबहुँ कबहुँ बाललीला के दर्शन होत हैं ।

गोलोक में श्री गोवर्द्धन को विस्तार बारह हजार कोस है और भगवान के आनंद सों उन की उत्पत्ति है । श्री स्वामिनीजी के सात्विक भाव सों रास की उत्पत्ति है । तिरानवे कोटि रासलीला और उतने ही कुंज है, विनहुँ में चौरासी मुख्य हैं । निज निकुंज में श्रीठाकुर जी कबहुँ गौर विराजत हैं कबहुँ श्याम । सात्विक कुंज फूलन के हैं, राजस मणि काँच इत्यादि के और तामस धातु पाषाणादि के हैं । निर्गुण कुंज इच्छामय षट ऋतु संपन्न हैं । कुंज मंडल में पहलो निकुंज श्री यमुनाजी को, दूसरो अग्निकुमारिका को, तीसरो श्रुतिरूपा की मुखिया श्री चंद्रावली जी को और चौथो निज निकुंज है । ऐसे ही अंतरंग कुंज में इन स्वरूपन के आधिदैविक स्वरूप क्रम सों श्री यमुनाजी, श्री राधा सहचरी, श्री चंद्रावलीजी और जुगल स्वरूप विराजत हैं और वे स्वरूप अलौकिक मनुष्य के ज्ञान के बाहर के हैं । जिन स्वामिनी और सखिन को जगत भजन करत है वे गुणमई हैं ।

श्री चंद्रावलीजी को गाँव बूज में रिठौरा है । नवधा भक्ति वात्सल्य में तो श्री नवनंद के स्वरूप में और शृंगार में सखी स्वरूप में रहत हैं । बूज में अनेक अवतारन के बरदान सों श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, यज्ञसीता, रमासहचरी, लोकालोकबारी, रजोगुण की, तमोगुण की, सतोगुण की, कोशलपुरी, पुलिंदी, श्वेतद्वीप की, मिथिला की, ऊर्ध्वबैकुंठ की, भूमिगोलोक की, अजितपद की, दिव्या, विष्णुलोक की, अदिव्या, समुद्रकन्या, अप्सरा, पुरंश्री, लता, गोपी, बहिष्मती, नागकन्या, सुतलनिवासिनी और श्रीरामावतार की मानवी इतनी जूयन को मनोरथ पूर्ण पुरुषोत्तम ने पूर्ण कीनो है ।

इन में जालंधरी तो रंगजीत नामक गोप की कन्या भई हैं और मत्स्य अवतार के बरदान की बहिर्मती अप्सरा नागकन्या और सुतलवासिनी ने बूज के पास बहिष्पल नगर में जन्म लीने हैं । रिषीरूपा बंग देश में मंगल गोप के घर पाँच हजार उत्पन्न भई हैं । और श्री नंदरायजी ने इन को बंगाले सो लाय के महल में रक्खी हैं । कोशल की स्त्री नव उपनंद की पत्नी हैं । मालव को राजा दिवस्पति गोप ब्रज में बसत है सो देवतान की स्त्री वा की कन्या गोपी भई हैं । सिंधु देश को राजा बिमल वाके यहाँ अवध और मिथिलापुर की स्त्री एक करोड़ प्रगटी हैं । ये पहले कामवन में रही, फेर द्वारका गई, जासों इनको राज्यलीला प्रिय है । दक्षिण में उशीर नगर

क गोप पानी न बरिसबे सों ब्रज में आय बसे हैं विन की बेटी यज्ञज्ञानकी और पुलिंदी भई है । दिव्य बाह, गोपेष्ट, पतंग, भार्गव, शुक्ल और नीतिविद ये छः लघु वृषमान हैं । इनके घर ऊँह विष्णुपदवासिनी, रमासखी, जलकन्या, श्वेत द्वीप की स्त्री लोकाचलवासिनी और अजितपद की स्त्री प्रगटी हैं । वीतिहोत्र, श्रुत, अग्निभुक्, गोपति, श्रीकर, शांत, पावन, शाम और ब्रजेश ये नवलघु उपनंद हैं । त्रिगुणा और दिव्या ऽदिव्या के यूथ को इनके घर प्रागट्य हैं ।

और अवतारन में स्वकीया छोड़ के और स्त्री सों रमण करै तो धर्म की मर्यादा जाय वाही सों जब पूर्ण पुरुषोत्तम प्रगटे हैं तब इन सबन को मनोरथ पूर्ण भयो है ।

विशेष कर के श्री रामावतार की स्त्रीन को ब्रज में प्रागट्य है जासों श्रीरामजू साक्षात् वासुदेव स्वरूप और मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और अत्यंत ही सुंदर हैं, देखतमात्र स्त्रीजन को चित हरन करते हैं सो मर्यादा पुरुषोत्तम में आसक्त होइ के पुष्टि पुरुषोत्तम सों रमण की आधिकारिणी होत हैं । ताहू में अग्निकुमार दंडकारण्य के पाँच हजार ऋषी को मुख्य नित्य लीला में अंगीकार है क्योंकि पुरुष होइ के प्रभु में इन के स्त्रीभाव कीन्हो है, सो कुमारिकान को यूथ जा की मुखिया श्री राधा सहचरी बू हैं, इन्हीं छंडकारण्य के ऋषिन को है ।

सुजस गोप की स्त्री जसा सों कीर्ति जी को प्रागट्य है । सुनैनाजी इन की अंश है । चंद्र वंश में कुरंग नामक राजा और वा की स्त्री विशालाक्षी सों सुनैना बू की उत्पत्ति है ।

श्री जानकी बू इनहीं के गृह प्रगटी हैं और मंदोदरी, पृथ्वी, पार्वती और सुनयना इन सबन सों आप सों मातृ संबंध है । जब ऋषिन को ब्रह्मतेज एक घड़ा में बंद होय के रावन के पास आयो तब मंदोदरी ने वाको अपने गर्भ में धारण कियो सो नारद जी के कहिबे सों रावण ने वा गर्भ को पीड़ित करि वा घड़ा में भरि के जनकपुर के पास गड़वाय दियो । ताही सों श्री जानकी जी प्रगटी हैं । और श्री लक्ष्मन जी सब ब्रह्मान के, भरथ जी सब विष्णुन के और शत्रुघ्न जी सब शिवन के आधेदेविक स्वरूप हैं ।

आलहादिनी, चारुशीला, अतिशीला, सुशीला, हेमा, लक्ष्मना ये श्री जानकी जी की कुंजन की, शोभना, सुभद्रा, शांता, संतोषा, शुभदा, सत्यवती, सुस्मिता, चार्वंगी, लोचना, हेमांगी, क्षेमा, क्षेमदात्री, सुधात्री, धीरा, धरा और चारुरूपा, ये सोरह सिंगार की, माधवी, मनोजवा, हरिप्रिया, वागीशा, विद्या, सुविद्या, नित्या और वैसा ये आठ अंग की मुख्य सखी है ।

इति श्रीयुगलसर्वस्व के उत्तरार्द्ध को द्वितीय अध्याय स्फुट प्रकरण समाप्त भयो ।

३ अध्याय

अब प्रसंगवशात् अन्य अन्य रहस्य निरूपण करत हैं । १ । रसिक जन और महात्मान के निकुंजादि वर्णन में अनेक मत हैं, तिन को परस्पर विरुद्ध देखि के शंका न करनी काहे सों कि यह तो निकुंजलीला भाव सिद्ध है जैसो जाको भाव को अधिकार है वैसो वाहि दर्शन होत है । २ । रहस्य पुराण में तिरानबे कोटि रासलीला लिखी हैं । ३ । तिरानबे कोटि कुंजहू हैं । ४ । धाम एक भूमंडल पर श्रीवृंदावन, एक गोलोक को नित्य वृंदावन । ५ । सब कुंजन में ८४ कुंज मुख्य हैं । याही सों ८४ सेवक हू श्री महाप्रभु जी ने अंगीकार किए हैं । ६ । श्रीठाकुरजी के गुणमय नौ स्वरूप उन की भार्य्या १ अवा २ अरूपा ३ निर्गुणा ४ निराकारा ५ सनातनी ६ निरीहा ७ परब्रह्मभूता ८ अविनाशिनी और ९ निरंजना । सो इन नओं स्त्रीन सों श्रवणादिक प्रेम भक्ति उत्पन्न होत भई । ७ । और निर्गुण स्वरूप श्री ठाकुरजी को एक सच्चिदानंदवन, ताकी स्त्री अलौकिकी, तासों प्रेम लक्षणा उत्पन्न भई, ताके सहज, सुहित और सुहित तीन पुत्र भए । ८ । श्रवणादिक प्रेमन को एक एक कों नौ नौ पुत्र भए तेही ८१ और तीन प्रेमलक्षण के पुत्रन के पुत्र सब मिलि कै चौरासी प्रकार प्रेम तेई निकुंज होत भए । ९ । श्रवण की भार्य्या श्रुति ताके नौ पुत्र सूक्ष्मकुंज, उनकी संज्ञा, उनके नाम यथा प्रीतिकुंज, प्रेमकुंज, कंदर्पकुंज, लीलाकुंज, मज्जनकुंज, विहारकुंज, उत्कंठकुंज, मोहनकुंज, युगलकुंज । १० । कीर्तन की स्त्री नर्तकी ताके नौ देहकुंज पुत्र भए यथा हावकुंज, भावकुंज, कटाक्षकुंज, अलककुंज, मुक्ताकुंज, भूकुंज, धेनीकुंज, रोमराजीकुंज, नीवीकुंज । ११ । अर्चन की भार्य्या पूजा ताके नौ पुत्र विहारकुंज, यथा कटिक्षीणकुंज, मानकुंज, भ्रमनकुंज, तिष्ठनकुंज, संगीतकुंज, आलस्यकुंज, कलकूजितकुंज, विविधाकारकुंज, दुकूलकुंज, कुचकुंज । १२ । पाद सेवन की स्त्री पादोदका ताके नौ श्रृंगारकुंज यथा नेत्रकुंज, कुंडलकुंज, हारकुंज,

लावूलकुंज, आइकुंज, लावन्यकुंज, हास्यकुंज, उत्साहकुंज, उग्रताकुंज । १३ । स्मरण की स्त्री स्मृति ताके न महाकेलिकुंज यथा कोकिलालापकुंज, ग्रीवकुंज, आलिंगनकुंज, चुंबनकुंज, अघरपानकुंज, दर्शनकुंज, दर्पनकुंज, प्रलापकुंज, उन्मादकुंज । १४ । वंदन की स्त्री नति वाके नौ एकांतकुंज यथा दर्पकुंज, उत्सादनकुंज, उत्कर्षकुंज, दीनकुंज, अधीनकुंज, सुरतकुंज, आकर्षणकुंज, उच्चाटनकुंज, मूर्छाकुंज । १५ । वास्य की स्त्री विनया वाके नौ गोप्यकुंज यथा वशकरणकुंज, स्तंभनकुंज, प्रियस्कंधारोहणकुंज, आवेशकुंज, व्यातालापकुंज, पर्यकश्यनकुंज, प्रियाचरणताड़नकुंज, नखक्षतकुंज, दंतक्षतकुंज । १६ । सख्य की स्त्री मैत्री तासों नौ भावकुंज यथा क्षपितरंगकुंज, विगताभरणकुंज, भूषणकुंज, कंपकुंज, रतिप्रलापकुंज, तृतुलगिरिकुंज, प्रियावासभवनकुंज, मदनगुह्यकुंज, आसक्तकुंजकुंज, । १७ । निवेदन की स्त्री आत्मसमर्पिणी ताके नौ परमरसकुंज यथा पीड़ावादीकुंज, सुरतश्रमनिषेधकुंज, ठुनुककुंज, वाग्विभ्रमकुंज, व्यस्तभावकुंज, कामटंककुंज, किंकिनिरवकुंज, वीरविपरीतकुंज, सुरतांतकुंज । १८ । सुहृत् की स्त्री सुहृदा तासों कलिकाकौतुककुंज और सुहित की स्त्री हितकारिणी तासों सुरतकुंज तथा सहज की स्त्री सहजा तासों सहज प्रेमकुंज येई चौरासी कुंज भए । १९ । इन कुंज न में एक एक में सब कुंज अंतरभाव सों रहत हैं कहूँ प्रच्छन्नरहत हैं और कहूँ प्रकाशित होत हैं । २० ।

अब और स्फुट रहस्य वर्णन करत हैं । ब्रज में सप्तावरण स्वरूप श्रीठाकुर जी को तथा श्रीस्वामिनीजी को विराजत है । २ ॥ वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, कालेश्वर, संयोगरसात्मक और वियोगरसात्मक यह सात स्वरूप मिलि कै पूर्ण होत हैं सो इन में अन्य कल्पन में कहूँ एक कहूँ दोय ऐसे स्वरूप प्रकट होत हैं । ३ ॥ जब पूर्ण प्राकट्य भयो तब छ स्वरूप मथुराजी में प्रगटे, वियोगात्मक स्वरूप वृज ही में प्रगटे । ४ ॥ श्रीशक्ति, भूशक्ति, लीलाशक्ति, मनोरथात्मक, स्वामिन्यात्मक, वियोगात्मक, संयोगरसात्मक यह सात स्वरूप श्री स्वामिनी जी के हैं तिन में अन्य युगन में कोउ एक स्वरूप प्रकटत हैं । जब पूर्ण प्रागट्य भयो तब पाँच स्वरूप कीर्ति जी के यहाँ प्रगटे और जब श्री.ठाकुर जी प्रकटे तिन के साथ मायावृत संयोग-वियोग रसात्मक दोय स्वरूप यहाँ प्रकटे । सो जब कीरतिजी अपुने घर सों श्री स्वामिनी जी को लाई तब श्री ठाकुर जी माता की गोद सों किलके और हँसे वाही समै इन दोऊ रसात्मक स्वरूपन को उन पंचावरणात्मक स्वरूप में स्थापन कीनो । ५ ॥ जब कछु आवरण सों मथुरा पधारे तब वियोगरसात्मक मुख्य स्वरूप श्रीस्वामिनीजी के हृदय में बिराजे । ६ ॥ श्रीस्वामिनीजी को मनोरथात्मक जो स्वरूप हैं ताही में अन्य के प्रभु सों रमण करिबे के मनोरथ तथा वरदान आदि सों जे स्वामिनी प्रकटत हैं ते मिलि रहत हैं और स्वामिन्यात्मक स्वरूप में प्रति कुंज प्रति मंडल प्रति जूय में जो स्वामिनी जी के अंश स्वरूप रहत हैं तिनकी एकता है । ७ ॥

अथ श्रीस्वामिनी - जन्म - समय

अथ ब्रह्मणो द्वितीयप्रद्वारधे श्वेत वाराह कल्पे द्वापरान्ते विश्वावसु संवत्सरे भारद्वाजशुक्लाष्टम्या गुरु वासरे अरुणोदये विशाखायां सिंहलग्नोदये प्रादुर्मुहूर्तद्वयान्विते श्री श्रीस्वामिन्या जन्म । ८ ॥



नव वृषभानों का चक्र

नाम	स्त्री नाम	संतति	वर्ण	चाल वस्त्र	गुण	वय	गऊ
सत्यभानु	सत्यकला	श्रीललिताजी	गौर मूँछ श्वेत	शरीर ठिगना चित गभीर वस्त्र काले	औदार्य	७५	२२०००००
गुणभानु	गुणकला	श्रीविशाखाजी	गुलाबी, केश श्वेत	रंग शहाना	विद्या	६७	२१०००००
धर्मभानु	धर्मकला	श्रीरगदेवी	साँवला, केश श्वेत	वस्त्र लाल शरीर लंबा	धर्म	६४	२००००००
रुचिभानु	रुचिरकला	श्रीचित्राजी	पीन शरीर लंबा चौड़ा केश, अधकचरे	लीला	ज्योतिष	६०	१९०००००
सुभानु	सुष्ठुकला	श्रीतुंगविद्याजी	साँवला, केश अधकचरे	डाढ़ी पीत प्रसन्न वदन	रोचकता	५७	१८०००००

नव वृषभानों का चक्र

नाम	स्त्री नाम	सेतति	वर्ण	चाल वस्त्र	गुण	वय	गऊ
चंद्रमानु	चंद्रकला	श्रीचंद्रवलीजी श्रीचंपकलताजी	गौर केश कृष्ण किंचित्श्वेत	हरित	कला	५४	१७०००००
वरमानु	वरकला	श्रीहंजुलेखाजी	लाल, केश काले	पहलवानी घानी	गानविद्या	५२	१६०००००
उदधिमानु	कमला	श्रीसुदेवीजी	पक्का	केश काले श्वेत	व्यायाम पशुपरीक्षण	५०	१५०००००
श्रीवृषभानुजी	कार्तिजी	श्री दामा श्रीराधिकजी	लाल	केश काले	राजविद्या	४५	१०००००००

युगलसर्वस्व के उत्तरार्द्ध को तीसरो प्रकरण समाप्त मयो ।

अथ चतुर्थ अध्याय

६४ गुण श्रीभगवान् के

सुरम्यांग १ सर्वसल्लक्षणान्वित २ रुचिर ३ तेजोयुक्त ४ बली ५ वयोयुक्त ६ विविधाद्भु तभाषावित ७ सत्यवाक्य ८ प्रियंवद ९ वाक्द्रुक १० पंडित ११ बुद्धिमान् १२ प्रतिमान्वित १३ विदग्ध १४ चतुर १५ दक्ष १६ कृतज्ञ १७ दृढव्रत १८ देशकालपात्रज्ञ १९ शास्त्रचक्षु २० पवित्र २१ वशी २२ स्थिर २३ दांत २४ क्षमाशील २५ गंभीर २६ धृतिमान् २७ सम २८ वदान्य २९ धार्मिक ३० शूर ३१ करुण ३२ मानदायक ३३ दक्षिण ३४ विनयी ३५ लज्जावान् ३६ शरणागतपालक ३७ सुखी ३८ भक्तसुहृत् ३९ प्रेमवश्य ४० सर्वशुभकर ४१ प्रतापी ४२ कीर्तिमान् ४३ लोकप्रिय ४४ साधुसमाश्रय ४५ नारीमनोहर ४६ सर्वाराध्य ४७ समृद्धिमान् ४८ श्रेष्ठ ४९ ईश्वर ५० नित्य सुंदर ५१ सर्वज्ञ ५२ सच्चिदानंदघन ५३ सर्वसिद्धिसंयुक्त ५४ अविविक्त ५५ महाशक्ति ५६ अनेककोटि ब्रह्माण्डविग्रह ५७ अवतारावलीबीज ५८ हतारिगतिदायक ५९ आत्माराम गुणाकर्षी ६० अत्यंत अद्भुत और चमत्कार लीला कल्लोल के समुद्र ६१ अतुल्य मधुर प्रेमप्रिय मंडल सों मंडित ६२ मुरली वादन सों सर्वमानसाकर्षी ६३ अत्यंत अलौकिक उज्ज्वल अद्भुत तथा उदत रूपश्री सों चराचर को मोहन ॥ ६४ ॥

प्रथम पचास सहज गुण । ६० तक १० अद्भुत । और चार असाधारण गुण ।

२४ नित्य प्रिया सहचरी

चंद्रावली १ विशाखा २ ललिता ३ श्यामा ४ पद्मा ५ शैव्या ६ भद्रिका ७ तारा ८ विचित्रा ९ गोपाली १० धनिष्ठा ११ पालिका १२ खंजनाक्षी १३ मनोरमा १४ मंगला १५ विमला १६ शीला १७ कृष्णा १८ सारिका १९ विशारदा २० तारावली २१ चकोराक्षी २२ शंकरा २३ कुंकुमा २४ ।

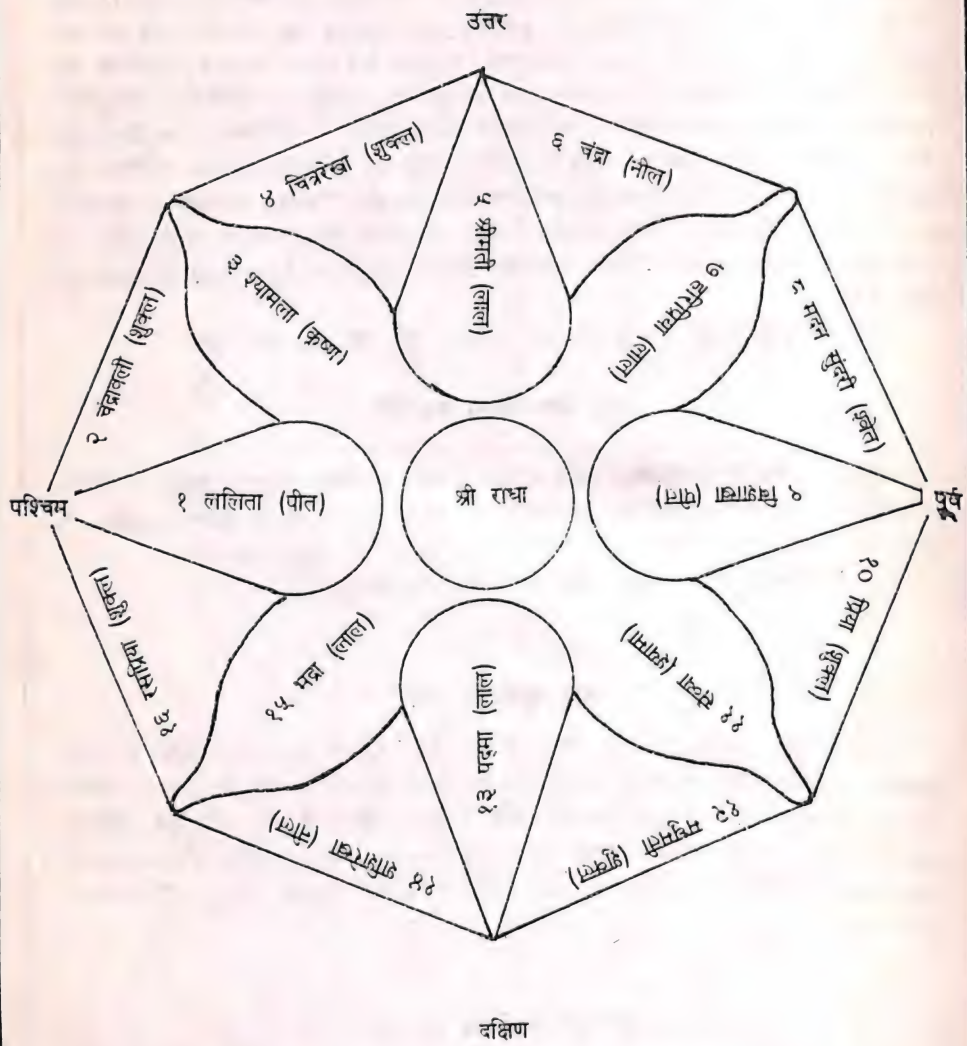
इन में विशाखा, ललिता, श्यामा, पद्मा सखी और शेष यूथपति हैं ।

अथ यूथपति अपर

चंद्रावली और सुशीला १६०००, शशिकला १४०००, चंद्रमुखी १३०००, माधवी ११०००, कदंबमाला १३०००, कुंती १००००, यमुना १४०००, जाह्नवी ९०००, पद्ममुखी ९०००, सावित्री १५०००, सुधामुखी १४०००, शुभा १४०००, पद्मा १४०००, गौरी १४०००, सर्वमंगली १६०००, सरस्वती १३०००, भारती १००००, अपर्णा १४०००, रति १००००, गंगा १४०००, अंबिका १६०००, सती १३०००, निदिनी १००००, सुंदरी ११०००, कृष्णप्रिया १६०००, मधुमती १४०००, चंपा १३००० चंदना १४००० ।

श्रीस्वामिनीजी के १६ नाम

राधा १ राशेश्वरी २ रासवासिनी ३ रसिकेश्वरी ४ कृष्णप्राणाधिका ५ कृष्णप्रिया ६ कृष्णस्वरूपिणी ७ कृष्णवामांगसंभूता ८ परमानंदरूपिणी ९ कृष्णा १० वृंदावनी ११ वृंदा १२ वृंदावनविनोदिनी १३ चंद्रावली १४ चंद्रकांता १५ शतचंद्रनिभानना १६ ॥



अथ उत्सवन पर रागन को अंगीकार

जन्मोत्सव	सारंग
दान	टोड़ी
साँझी	गौरी
विजयदशमी	मारू
रास	केदार, कान्हारा तथा सर्व
कार्तिक	भैरो, ईमन कल्यान
मार्गशीर्ष	पंचम
पूस	आसावरी
माघ	मालकोस, वसंत
फागुन	धनाश्री, विहाग आदि सब राग
दोल	हम्मीर सारंग
चैत	पूर्वी
वैशाख	मधु सारंग, केदार
ज्येष्ठ	सारंग शुद्ध
आषाढ़	सामंतसारंग, गौड़ सोरठ
श्रावण	मलार
जागने को समय	भैरव पंचम
शृंगार करती समय	रामकली
अरोगती समय	यथाश्रुतु
दिन	टोड़ी, आसावरी, सारंग, धनाश्री
तीसरे पहर	गौरी, पूर्वी, धनाश्री
जन्मोत्सव	सारंग
सेन आरती वा कुंजविहार	केदार, कान्हारा, ईमन
एकांत विहार	विहार, सोरठ, परज, कलिंगड़ा

अथ तंत्र मत सौ सखीन को वर्णन

	स्वर्णवर्ण	रत्नाभरण	पीतांबर
१ ललिता	..	श्वेत वस्त्र	मंजीर की सेवा
२ चंद्रावती	..	श्याम वस्त्र	मृदंगसेवा
३ श्यामला	..	शुक्लांबर	डफ की सेवा
४ चित्ररेखा	..	रक्त वर्ण	दासी की सेवा
५ श्रीमती	..	नील वस्त्र	रबाब
६ चंद्रा	..	लाल वस्त्र	उपंग
७ हरिप्रिया	..	श्वेत वस्त्र	रबाब और गाना
८ मदनसुंदरी	..	पीत वस्त्र	वंशी
९ विशाखा	..	श्वेत वस्त्र	वंशी
१० प्रिया	..	श्याम वस्त्र	गाना
११ शैव्या	..	शुद्ध वस्त्र	चरन सेवा
१२ मधुमती	..		

३	पद्मा	..	लाल वस्त्र	सारंगी
१४	शशिरेखा	..	नील वस्त्र	यंत्र
१५	भद्रा	..	रेशमी लाल वस्त्र	सुरमंडल
१६	रसप्रिया	..	चान शुष्ण वस्त्र	तुमरी

एक एक की सात सखी

- १ ललिता की हेतुमुखी १ रसज्ञा २ शुभदा ३ सुमुखी ४ वल्लभी ५ चंद्रिका ६ चतुरा ७ ।
- २ चंद्रावती की चंचला १ मधुरा २ हस्तकमला ३ मधुरभाविनी ४ विलासिनी ५ रसवती ६ खंजनलोचना ७ ।
- ३ श्यामला की सुखदा १ चंपकालिका २ रसदा ३ रसमंजरी ४ सुमंजरी ५ शोभा ६ चारुमती ७ ।
- ४ चित्ररेखा की चंद्रप्रभावती १ वासिनी २ मालती ३ ज्ञानी ४ चंद्रकान्ती ५ सुकुंतला ६ रंभा ७ ।
- ५ श्रामनी की भ्रमरगंधारी १ सुशोभा २ सुवर्णिनी ३ आमलिका ४ सुधाकंठा ५ श्रेया ६ रतिप्रिया ७ ।
- ६ चंद्रा की शुकप्रिया १ मधुकरी २ सुवंशा ३ अमृतोद्भव्या ४ मुरली ५ वल्लभी ६ वृंदा ७ ।
- ७ हरिप्रिया की पारिजातप्रिया १ शुभा २ पंचस्वरा ३ रत्नमाला ४ मंदिरा ५ रासवल्लवी ६ मातंगमती ७ ।
- ८ मदनसुंदरी की तारावती १ कुंडलधारिणी २ केशरी ३ मित्रवृंदा ४ लक्ष्मणा ५ अच्युतमालिका ६ चंद्रा ७ ।
- ९ विशाखा की मायावती १ कौशिकी २ कामलांगी ३ सुचंदना ४ पौष्पभाषिणी ५ सत्यवती ६ कुंजवासिनी ७ ।
- १० प्रिया की कपोतमालिका १ लोपामुद्रा २ किंशुकाप्रिया ३ इलावती ४ कुंकुमा ५ कमला ६ मन्मथसा ७ ।
- ११ शैव्या की सावित्री १ वह्नी २ प्रियवादिनी ३ मुक्तावली ४ चित्ररेखा ५ सुमित्रा ६ लोलकुंडला ७ ।
- १२ मधुमती की अरुंधती १ चित्रवती २ श्रारक्ता ३ पद्मगंधिनी ४ मेनका ५ कलिका ६ रंगकंठी ७ ।
- १३ पद्मा की काममूर्च्छिनी १ कुमुदप्रिया २ तानप्रिया ३ नित्य विलासिनी ४ हीरावती ५ हारकंठा ६ सिंहमध्या ७ ।
- १४ शशिरेखा की सुलोचना १ नंदव्या २ आनंदकालिका ३ सुनंदा ४ आनंददायिनी ५ कुरंगाक्षी ६ सुश्रोणी ७ ।
- १५ भद्रा की कैवलीला १ प्रियंवदा २ श्यामराधा ३ श्यामासेव्या ४ कस्तूरी ५ मानभंजनी ६ विचित्रवासना ७ ।
- १६ रसप्रिया की मेजुर्किकिनी १ पिकस्वरा २ भृंगगाना ३ रसविहारिणी ४ रसमंजरी ५ तिलोत्तमा ६ चारुमती ७ ।

श्री चित्रा	श्री सुदेवी	श्री रंगदेवी	नान्दीमुखी	श्री तुंगविद्या	श्री चम्पकलता	श्री श्री विशाखा	श्री अनुराधा	श्री श्री ललिता	श्री श्री
शुचिभानु	उदधिभानु	धर्मभानु	सुभानु	वरभानु	चन्द्रभानु	गुणभानु	सत्यभानु	पित्तभानु	
रुचिरकला	कमला	धर्मकला	सुष्ठुकला	वरकला	चन्द्रकला	गुणकला	सत्यकला	मातृभानु	
कुङ्कुमप्रभा	सलोना	कमलकेसर प्रभा	गौर	हरतालप्रभा	चंपकप्रभा	दामिनीप्रभा	गोरोचनप्रभा	रंग	
सुनहला	सूहा	उड़हुल के फूल	पोला	अनार के फूल	नील	चाँदतारा	मयूरपिच्छ	वस्त्र रंग	
जलादि पान की	केशपाशरचनादि आरसी	आभरण	गान	शय्या कहानी	व्यंजनादि	वत्सादि	पानकोबीड़ी	मुखासेवा	
रुचि अवलोकन	शुकपाठ तिलक आदि शृंगार माल्यनिर्माण	वाद्यादि कला	कोक	यथालाच सिद्ध करना	सदा साथ रहना	मध्या मुख्य स्नेहवर्द्धन	उन की सखियों के नाम		
रसालिका, तिलकिनी, सुगंधिका, सौरसेनी, नागरी, रामलिका, नागवेनिका, अरुना	कावेरी, मनोहरा, मंजुक्ली, कोशिका, हीरा, चारुकुमारी, हीरकज, महाहौरा	कलकंठी, शशिकला, कमला, सुंदरी, कंदर्पा, प्रेममंजरी, कामलता, मधुविद्या	मंजुमेधा, सुमेधिका, गुणवृद्धा, मधुरा, मधुर्यदा, मधुरक्षणा, तनुमध्या, वारुणी	चित्रलेखा, मेदिनी, मंजुलसा, रसतुंगा, भद्रतुंगा, गानकला, सुमंगला, चित्रांगी	कुरंगक्षी, निहिर कुंडला, चंद्रिका, सुचरित्रा, मंडिनी, चंद्रलता, रसप्रेमी, सुमंदिरा	माधवी, मालती, कुजरी, हरिनी, चपला, गंध रेखा, शुभानना, सौरभी	रत्नप्रभा, रतिकला, निपुणा, कलहंसी, कलापिनी, सुमुखी, मन्मथमोदा, सो रभा	उन की सखियों के नाम	
मंजुसाख्य	मुसाहिब	सेवासख्य	मुसाहिब	परमांतरंग	इन पर श्री प्रिया सख्य	सख्य	भाव		

अथ अन्य मत सौ अष्ट सखीन को वर्णन

नाम	रंग	वस्त्र	माता	पिता	पति	चातुर्य	सेवा
ललिता सुंदरी	गोरोचन	मयूरपिच्छ	शारदा	विशोक	बालीक	मध्या वाक्य	तोबूल
विशाखा	बिजली	चंदितारा	सुदक्षिणा	पावन	बल्लभ	सामाधि भेद-काव्य	वस्त्र
चंपकलता	चंपा	नीला	वाटिका	राम	चंडाक्ष	दौत्य	पाक वस्तु
चित्रा	कुंकुम	काला	चर्विका	चतुर	पिठर	आगमज्योतिष,	संवारना जल केश
तुंगविद्या	केसर	पीले	मेघा	पौष्कर	बालिस	पशुविद्या, जलपान	झीणा
इंदु लोखा	हरिताल	लाल	सागर	वेला	दुर्बल	संगीत साहित्य मेलन	चंदन
रंगदेवी	पद्म किजलक	सफेद	करुणा	रंगसार	चक्रशेण	कोक वशीकरणदिन्य	—
सहचरी	गौर	नील	सुंदरी	देवबंधु	कोपन खलंडु	शृंगार	—

अथ अन्य मत सौ सखीन को वर्णन चक्र

नाम	रंग	कौन सी सखी	वस्त्र	वाद्य	सेवा	दल	स्थान
श्रीललिता	चंद्रमा	श्री स्वामिनी जी की	पीला	—	—	पीला	पश्चिम
चंद्रावती (ली)	सोना	श्री ललिता जी की	श्वेत	—	—	सफेद	उसके बाएँ
श्यामला	सोना	श्री स्वामिनी जी की	काला	मृदंग	—	काला	बायव्य
चित्रलेखा	तपाया	श्री ठाकुर जी की	श्वेत	ठण्ड	गाना	सफेद	उसके बाएँ
श्री मती	सोना	श्री ठाकुर जी की	लाल	—	दास	लाल	उत्तर
चंद्रा	सोना	श्री ठाकुर जी की	नीला	रबाव	गाना	नीला	उसके बाएँ
हरिप्रिया	सोना	—	पीला	उपराग	—	लाल	ईशान
मदनसुंदरी	चंद्र	—	सफेद	रबाव	गाना	धूम्र	उसके बाएँ
विशाखा	गौर	श्री स्वामिनि जी की	पीत	वंशी	—	पीत	पूर्व
श्री प्रिया	सोना	विशाखा जी की	सफेद	वंशी	—	शुक्ल	उसके बाएँ
शैव्या	सोना	श्रीकृष्ण की	काला	मंसुखयंत्र	—	श्याम	अग्नि कोण
मधुमती	सोना	युगल स्वरूप की	सफेद	—	गाना	शुक्ल	उसके बाएँ

अन्य मत साँ अष्ट सखीन को चक्र

नाम	रंग	किसकी सखी	वस्त्र	वाद्य	सेवा	दल	स्थान
पद्मा	फूल	—	लाल	सारंग	—	लाल	दक्षिण
इंदुलेखा वा शशिरेखा	चंद्रमा	श्री ठाकुर जी की	पट्ट	मृदंग	गाना	पील	उसके बाएँ
भद्रा	सोना	श्री युगल	लाल	स्वर्मंडल	—	लाल	नैर्ऋत
रसप्रिया	सोना	युगल	लाल	—	—	शुक्ल	उसके बाएँ
वृन्दा (विनप्रिया)	हरनी	—	सफेद	तंबूर	—	—	—
श्री चंद्रावती	लाल	सोना	चुनरी	—	बूझी के फूल की माला	—	—

श्री रामचन्द्र के दक्षिण चरण के २४ चिन्ह क्रम सों

एड़ी में स्वस्ति चिन्ह । १ पीतरंग मध्य तरवा में ऊई रेखा । २ लाल रंग । ऊई रेखा के बायें तरफ अष्टकोण ३ श्वेत अरुण । श्री । ४ । बालार्क सन्निभ । हल । ५ मुसल । ६ (स्वत धूम्र) सर्प । ७ । सित । बाण । ८ । स्वत । पीत अरुण हरित । आकाश । ९ । नील । अष्टदल कमल । १० । अरुण स्वदन । ११ । विचित्र वर्ण जिसमें चारि घोंड़े स्वत । वज्र । १२ । बिजुरी वर्ण । अँगूठे में जव । १३ । स्वत रक्त । ऊई रेखा के दक्षिण ओर कल्प वृक्ष । १४ । हरिद्वर्ण । अंकुश । १५ । श्याम । ध्वज । १६ । लोहित चित्रित । मुकुट । १७ । तप्त कांचन वर्ण । चक्र । १८ । सिंहासन । १९ । रत्नमय । कालदंड । २० । कंसावत । चामर । २१ । अत्यंत धवल । छत्र । २२ । सित लाल । नृ । २३ । जपमाला (२४ चिन्ह) स्वत, पीत, अरुण, हरित अरु वज्रवत ।

श्री राघव के बायें पदाब्ज के २४ चिन्ह क्रम सों

पद मध्य में दक्षिण पद लौं ऊई रेख की जगह पै सरयू । १ । सित । एड़ी में गो पद । २ । सित रक्त । सरयू के दक्षिण ओर भूमि । ३ । पीतरक्त सित । कुंभ । ४ । स्वर्ण वर्ण कुछ स्वत । पताका । ५ । चित्रवर्ण । जंबू फल । ६ । श्याम । अर्द्धचंद्र । ७ । धवल । दर । ८ । सित कछु लाल । षट्कोण । ९ । महास्वत । त्रिकोण । १० । अरुण । गदा । ११ । श्यामल । जीवात्मा । १२ । दीप्तिरूप । अंगुष्ठ में बिंदु । १३ । पीत । गोपद की बाईं ओर । शक्ति । १४ । रक्त श्याम सित । सुधाकुंड । १५ । सित रक्त । त्रिवली । १६ । त्रिवेणीवत् । मछरी । १७ । रुपवत । पूर्णसिंधु । १८ । धवल । वीणा । १९ । पीत रक्त सित । वंशी । २० । चित्र विचित्र । धनु । २१ । हरित पीत अरुण । त्रोण । २२ । चित्र विचित्र । मराल । २३ । चरण चंचु लाल । सित । चंद्रिका । २४ । सित पीत अरुण विचित्र रंग ।

जो चिन्ह श्री रामजी के दक्षिण पद में हैं सोई चिन्ह श्री जानकी जी के ८ पद में हैं और जो श्री राघव के वाम पद में सोई श्री लाडिली जी के दक्षिण पद में ।

उपसंहार

यह पूर्वोक्त श्री युगलसर्वस्व अनेक प्रामाणिक ग्रंथों से संग्रह करके छापा गया । इसके छपने से अनन्य लोग रुष्ट न हों क्योंकि यह बजार बजार बेचने और घर घर बाँटने को नहीं छापा गया है केवल अनन्य अधिकारी लोगों के हेतु थोड़ी सी पुस्तकें गुप्त रीति से छाप ली गई है ।

यह भी विदित रहे कि एकट २५ सन् १८६७ ई. की रीति के अनुसार रजिस्ट्री किया है और छापे के अन्य अन्य एकट के अनुसार इसका सब स्वत्व हमने केवल अपने हस्तगत रखा है इससे भूल कर भी कोई इसी भाषा और इसी लिपि में वा किसी अन्य भाषा और अन्य लिपि में वा कुछ घटा बढ़ाकर वा कुछ हेर फेर कर भी छापने का उद्योग न करे नहीं तो वह कानून के अनुसार दंडनीय होगा ।

विदित हो कि सर्वसदायश्रीरिधायचरण आचार्यवर्य श्री महाप्रभु जी ने युगल स्वरूप की सेवा और भावना ही अपने संप्रदाय में मुख्य मानी है तथापि प्रचार बालसेवा और बालभाव का किया है । इस का कारण यही है कि संसार के स्वभावदुष्ट जीव इस उत्तम रस के अधिकारी नहीं हैं । उन की प्रवृत्ति सहज ही नीच है और चित सांसारिक विषयों से कलुषित है तो वे लोग यदि यह रहस्य कहें सुनै तो उलटे अपराधी हों । यह तो जलकमल की भाँति जो भक्त संसार में रहते हैं उन्हीं के कहने सुनने के योग्य हैं, क्योंकि सिंगार भावना सिंहनी का दूध है, जो या तो सिंह के बच्चे के मुँह में ठहरे या स्वर्ण के पात्र में । और पात्र में रक्खो तो फट जाय वैसे ही यह उत्तम रस पात्र बिना नहीं ठहरता । और बाल भाव तो गऊ का दूध है अनेक प्रकार के सत् पात्र में ठहर सकता है यद्यपि नास्तिक इत्यादि खटाई और वहिमुख से पीतल के पात्र में इस को भी विकार होता है तथापि सर्व

साधारण में इसके कहने सुनने वालों का सुनना तो मानों अपने माना पिना का रहस्य उद्घाटन करना है। इस के तो जो अधिकारी हों उन्होंने से कहना सुनना योग्य है। इस मरे लिखन का नान्वय यह कि जिन के पास यह ग्रंथ रहे वह इस को किसी साधारण स्थान में वा साधारण लोगों के हाथ में न फेंक दें वरंच इस का बहुत यत्नपूर्वक रखें।

ऐसे ही युगल स्वरूप के चरणचिन्ह वर्णन में भक्त सर्वस्व, श्री महाप्रभु जो के वर्णन में श्री यल्लामीयसर्वस्व, चारो संप्रदाय के सविस्तार वर्णन में वैष्णवसर्वस्व और भगवद्भक्ति निरूपण में तदीय सर्वस्व, भक्ति सूत्र का भाष्य, चंद्रावली नाटिका और अनेक लोला तथा रहस्य के गद्य पद्य मय ग्रंथ मरे पास प्रस्तुत हैं। जिन भवदीय लोगों को देखने की इच्छा हो अनुग्रह करके मूझम मंगवा ल।

भाद्रपद शुक्ल ८
सं. १९३३

हरिश्चंद्र

मूर्तिपूजन का निषेध करनेवाले दयानंद प्रभृत लोगों के गले की

दूषणमालिका

रचनाकाल सन् १८७०।— सं.

श्री श्रीवल्गुभावित्रयत।

भूमिका

अथ दयानंदनामी क्या जानै कौन जाति वा किस आश्रम के कोई नग्न पुरुष सब देशों में भ्रमण करत हुए सनातन सधर्म रूपी सूर्य को राह की भाँति ग्रास करते हुए मूर्खों और आलस्य से भरे हुए जात्रों के हृदय-वस्त्र को अपने रंग में रंगते हुए इसी बहाने अपना नाम लोगों में विदित करते हुए और अपने वाक्य बना के आडम्बर से साधु लोगों का हृदय दहन करते हुए काशी में आये और दुर्गाकुण्ड निवासियों के सहवासो हुए और उनमें जो व्यर्थ उपद्रव किये वह सब पर विदित हैं अब उनमें एक छोटी सी पुस्तक छपवाकर लोगों पर यह विदित करना चाहा है कि मैं हारा नहीं इस से मैंने ऐसा विचार किया कि ऐसे मनुष्य से सम्भाषण करना उचित नहीं और पत्रद्वारा शास्त्रार्थ करना जिसमें सब लोगों पर सदसत्ता का प्रकाश और हारने जीतने का निश्चय हो जाय इस हेतु यह दूषणमालिका उनके गले में पहिनाई जाती है। उनको उचित है कि इन सब प्रश्नों का प्रति पद उत्तर दें और इसी प्रकार से बराबर पत्रद्वारा शास्त्रार्थ होय और इतने प्रश्नों का एक जीतने के इशतिहार की भाँति उत्तर न दिया जाय क्योंकि इन शब्दों के प्रति शब्द का उत्तर न देने से परास्त समझें जायेंगे और प्रश्नोत्तर करने करते जो थक जाय और जिसकी बुद्धि में उत्तर की युक्ति न आवै वह हारा समझा जायगा।

१८७० ई.
काशी

हरिश्चंद्र

दूषणमालिका

१. आपने जो पुस्तक छपवाई है उसमें वेद के मंत्र हैं सो वेद के मंत्र शूद्रों तथा मलेच्छादिकों के हाथ में देने से आप को दोष हुआ कि नहीं ।
२. आप कौन आश्रम और किस जाति के हैं और किस धर्म को मानते हैं जो कहिये कि हम वेदधर्म को मानते हैं तो वेदधर्म को मानना इस में क्या प्रमाण और स्त्रीष्ट और मुहम्मदी मत को न मानना इसमें क्या प्रमाण । जो कहिये कि हम उसी कुल में उत्पन्न हैं इससे यही धर्म मानना योग्य है तो आप मूर्ति पूजक के वंश में हो कि नहीं ।
३. जो आप कहें कि हम अमुक जाति के थे अब योगी हुए हैं तो आप के पिता पुरुषा सब उसी जाति में उत्पन्न हुए इसको किसने देखा है और उस में क्या प्रमाण है ।
४. जो कहिये कि शिष्टाचार प्रमाण है और हम सुनते आते हैं कि हम अमुक वंशीय हैं तो इसी भाँति मूर्ति पूजनादि शिष्टाचार क्यों नहीं मानते ।
५. जो कहो कि वेद नहीं हैं तो दयानंद स्वामी अमुक वंश में भये यह वेद में कहाँ है ।
६. आपने सम्पूर्ण वेद देखा है ।
७. जो कहिये कि वेद बहुत है और लुप्त प्राय है इस से सब नहीं देखा है तो वेद में अमुक वस्तु नहीं यह कहना व्यर्थ हो जाता है ।
८. जो आप वेद जानते हैं तो उन के भेद कहिये ।
९. बारहो उपनिषत् किन किन ब्राह्मणों वा संहिता के अंत भाग है ।
१०. जो कहिये कि अमुक के हैं तो वे सब वेद के भीतर हैं या बाहर । जो भीतर हैं तो अश्वमेध प्रकरण में जब एक वर सब वेदों को गिनाय गये तो फिर वेद के बाहरवाली कौन ब्रह्मविद्या थी जिसे पुराण के नाम से चर्चित चव्वर्ण किया ।
११. अश्वमेध प्रकरण में पुराण शब्द का अर्थ ब्रह्मविद्या है इस में कौन सा प्रमाण है और वसुरुद्रादि शब्द का अर्थ परमेश्वर ही है लिंगधारी देवता नहीं इस में क्या प्रमाण और वेद में जहाँ सहस्रनयन वज्रपाणि इत्यादि विशेषण दिये वहाँ क्या व्यवस्था और जो व्यवस्था आप करें वही ठीक इस में क्या प्रमाण ।
१२. और भी कई स्थान पर पुराण का अर्थ प्राचीन और इतिहास ही है इस का प्रमाण ।
१३. ऋग्वेद के के विभाग हैं और इसमें कितनी शाखा और कितनी संहिता और कितने उपनिषत् और कितने ब्राह्मण इत्यादि हैं कहिये ।
१४. और इन सब के आदि अंत के मंत्र सूचना के हेतु कहिये और इन की पुस्तकें उपलब्ध होंगी और आपने इन सबों को किससे अधीत किया है ।
१५. इसी भाँति यजुर्वेद का सब वृत्तांत कहिये ।
१६. ऐसे ही सामवेद का कहिये ।
१७. इसी प्रकार व्यौरेवार अथर्ववेद का संपूर्ण वृत्तांत कहिये ।
१८. जो कहियेगा कि एक मनुष्य सब नहीं जान सकता इससे हम सब नहीं जानते तो ७ वें प्रश्न का दोष आप के माथे पड़ेगा ।
१९. इन चारों वेदों को कौन स्वर से पढ़ना चाहिये और उनके स्वर की रीति वेद में किस स्थान पर लिखी है ।
२०. वे सब स्वर जो आर्ष रीति के हैं सोई हैं या कुछ पलट गये । जो कुछ पलट गये तो इन के पलट जाने में क्या प्रमाण और जो वे ही हैं तो उन के वे ही होने में और न पलट जाने में क्या प्रमाण ।
२१. वेदों के या मंत्रों के आप जो अर्थ करें सोई अर्थ है दूसरा अर्थ नहीं इस में क्या प्रमाण ।
२२. आप ने ११ ग्रंथ आर्ष माने उनके अतिरिक्त ग्रंथ अप्रमाण हैं इसमें क्या प्रमाण ।
२३. ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है इसमें क्या प्रमाण और जो आयुर्वेद प्रचलित है वही प्राचीन है इसमें निश्चायक क्या ।

२४. जो कहिये कि उसका प्रमाण उसी में है तो सब पुराणों में भी पुराणों की प्रशंसा है इस हेतु इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

२५. चरक आर्ष है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

२६. सुश्रुत आर्ष है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

२७. धनुर्वेद ही यजुर्वेद का उपवेद है इस में प्रमाण ।

२८. धनुर्वेद का अब कौन ग्रंथ मिलता है बताइये और जो मिलता है तो वही आर्ष है इसमें प्रमाण दिखलाइये ।

२९. जो कहिये कि धनुर्वेद के ग्रंथ लुप्त हो गये तो आप इस विषय के अज्ञ ठहरे तो फिर ७ प्रश्न का दोष पड़ा ।

३०. सामवेद का उपवेद गान है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

३१. गान विद्या के कौन ग्रंथ आर्ष इस में भी श्रुति पूर्वक कहो ।

३२. अथर्ववेद का उपवेद शिल्प है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

३३. शिल्प विद्या में कौन-कौन ग्रंथ मिलते हैं और वे श्रुति संमत भी हैं इस में प्रमाण कहिये ।

३४. चारो उपवेद जो आप न जानते होंगे तो उस विषय के अज्ञ होने से ७ प्रश्न का दोष पड़ेगा ।

३५. शिक्षा का कौन ग्रंथ है और उसके आर्ष होने में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

३६. कल्प जो प्रचलित है सोई आर्ष है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये और कल्प के कौन ग्रंथ मिलते हैं कहिये !

३७. अष्टाध्याई आर्ष है इस में श्रुति प्रमाण कहिये ।

३८. महाभाष्य प्रमाण है इस में श्रुति प्रमाण कहिये ।

३९. निरुक्त कौन ग्रंथ प्रचलित है और वही आर्ष भी इसमें युक्ति और प्रमाण दीजिये ।

४०. छंद के कौन ग्रंथ आर्ष हैं और उनके आर्ष होने में क्या प्रमाण और उनके स्वस्व बदले नहीं इसमें श्रुति प्रमाण दीजिये ।

४१. भृगुसंहिता आर्ष है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये और प्रचलित भृगुसंहिता वही प्राचीन भृगुसंहिता है इस में युक्ति कहिये ।

४२. ये बारह उपनिषत् वेदांत शास्त्र हैं यह बात कहाँ लिखी है इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

४३. शरीरिक सूत्र आर्ष हैं इसमें प्रमाण दीजिये और यह वही सूत्र है जो व्यास ने कहा इस में युक्ति कहिये ।

४४. कात्यायन आदि सूत्र आर्ष हैं इन में प्रमाण कहिये और आदिपद से आप और किसे लेते हैं ।

४५. योगभाष्य आर्ष है इसमें श्रुति प्रमाण दीजिये ।

४६. मनुस्मृति यह वही है जो मनुने कहा है कालबल से बदली नहीं इस में युक्ति और श्रुति प्रमाण दीजिये ।

४७. मनुस्मृति में जिन वाक्यों को आप नहीं मानते वे कल्पित हैं इस में प्रबल युक्ति और श्रुति प्रमाण दीजिये ।

४८. यही महाभारत महाभारत है इसमें क्या प्रमाण और कौन सी युक्ति है ।

४९. महाभारत में जिन श्लोकों को आप कल्पित मानते हैं उनके कल्पित और बाकी आर्ष होने में कौन प्रमाण और कौन सी युक्ति है ।

५०. श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीभगवान ने जो "मे" मत "मां" इन शब्दों से अपनी भक्ति यही परम धर्म है यह कहा है यह प्रमाण है या नहीं ।

५१. जो कहो कि "मे" इत्यादि शब्दों का अर्थ आत्मा है तो और सौ स्थान पर जहाँ ये शब्द आये हैं वहाँ इनका आत्मा अर्थ क्यों नहीं होता और दूसरे स्थान पर इन शब्दों का अर्थ अपना मुझे होय श्रीमद्भगवद्गीता ही में आत्मा अर्थ होय इसमें प्रमाण और प्रबल युक्ति दीजिये ।

५२. इन ऊपर के लिखे हुए प्रश्नों को आप सब भाँति से जानते हैं कि नहीं । जो सब को न जानियेगा

तो सर्वज्ञ न ठहरियेगा और जो सर्वज्ञता बिना कोई बात कहियेगा तो ७ प्रश्न का तोप पड़ेगा ।
(इन ऊपर लिखे ग्रंथों को दयानन्द प्रमाण मानते हैं)

५३. शिष्टाचार प्रमाण है कि नहीं ।

५४. जो कहिये कि जो अविरोध अर्थात् वेद में लिखा है वह प्रमाण बाकी अप्रमाण तो आप नित्य उठ के सब वेद में लिखी हुई बातें करते हैं तो इन सब बातों को वेद से सिद्ध कीजिये कि आप मट्टी लगाते हैं सो वेद में कहाँ लिखा है, आप कौपीन धारण करते हैं यह कहाँ लिखा है, मैं एक दिन आप के दर्शन को गया था उस दिन आप बाजार के लड़इ और गुलाबजामुन खाते थे यह कहाँ लिखा है और उस दिन आप पीतल की लोटिया में जल पीते थे यह वेद में कहाँ लिखा है, आप मूर्ति पूजन और पुराणों का निषेध करते हैं यह कहाँ लिखा है ।

५५. जो कहिये यह तो मनुष्य की परंपरा प्राप्त ही है तो मूर्तिपूजन भी परंपरा प्राप्त है और शिष्टाचार अवश्य माननीय है और भी इसमें यह बात है कि मूर्ति पूजन का यद्यपि इस लोक में कुछ फल न हो तथापि यदि परलोक में इसका फल सत्य हुआ तो आप फिर महापाप के भागी हुए और जो न सत्य हुआ तो हम लोगों की कुछ हानि नहीं बल्कि शिष्टाचार मानने से हमारी प्रशंसा ही होगी ।

५६. ये यथा मामप्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहं । इस भगवत् प्रतिज्ञा का क्या आशय है और यथा शब्द के अंतर देवतादिक और मूर्ति आदिक नहीं है इसमें प्रमाण पूर्वक नियम कहिये ।

५७. कालाग्निरुद्रोपनिषत् और तापनीयादिक श्रुति को आप क्यों नहीं मानते इस में श्रुति प्रमाण दीजिये ।

५८. सब त्रैवर्ण के वंश वे ही हैं इस में क्या प्रमाण युक्ति पूर्वक कहिये ।

५९. सब वेद की पुस्तकें और उनके सब मन्त्र वे ही हैं जो ईश्वर से निकले और इतने काल तक उनका स्वरूप कुछ नहीं बदला और ये सब वे ही आर्ष अक्षर हैं इस में किसी ने कपोल कल्पित मन्त्र नहीं मिलाये इस में क्या प्रमाण और क्या युक्ति है कहिये ।

६०. जो कहिये कि परंपरा प्राप्त है तो परंपरा प्राप्तता से वेद का तो निश्चय होय और परंपरा प्राप्त मूर्तिपूजन न माना जाय इसमें क्या प्रमाण और जो आप कहिए कि हम अपनी बुद्धि से समझते हैं कि ये वेद वे ही हैं तो आप की बुद्धि ठीक है इसमें क्या प्रमाण और कौन सी युक्ति है ।

६१. बात सौ पण्डित लोगों की मानें कि एक आप की ।

६२. जो कहिये कि ऐसा लिखा है कि एक पंडित सौ मूर्ख इतना होता है तो यह सब अज्ञ हैं हम पंडित हैं हमारी बात मानो तो इस में क्या प्रमाण है और क्या युक्ति है कि आप ही पंडित हैं और ये सब अज्ञ हैं ।

६३. वेद की पुस्तक पर जो कोई लात रखदे तो आप उसको दोष भागी कहेंगे तो वह दोष भागी कैसे होगा क्योंकि मूर्तियों में तो आप कहते हैं वहाँ क्या है पत्थर है तो उस वेद की पुस्तक में क्या है कागज और सियाही है जो हमारे हाथ की बनाई है और हमारे हाथ का लिखा है और अक्षर है सो एक प्रकार का संकेत है तो ऐसी जड़ वस्तु के अनादर से क्या दोष है । जो कहिए उन से वेही मन्त्र समझे जाते हैं जो हमारे धर्म स्वरूप हैं इस से आदर के योग्य हैं तो वे मूर्तियाँ जिन से हमारे पूज्य देवता के आकार का स्मरण होता है क्यों नहीं मानने के योग्य हैं ।

६४. आप के पिता या किसी पुरुषा का मृत देह या उनके चित्र जिससे उनके स्वरूप का ज्ञान हो या कागज पर उनका नाम लिख के इन सब का अनादर करै और इन पर बुरी वस्तु डालें तो आप को बुरा लगैगा कि नहीं क्योंकि ये सब तो पृथ्वी तत्व के अंश और जड़ वस्तु हैं ।

दयानन्द जी ने ४ प्रश्न किए थे इस हेतु उन के चार को चार बेर चौगुन करके चौंसठ प्रश्न किए हैं इन का उत्तर उन के अक्षरशः देना उचित है ।

तहकीकात - पुरी की तहकीकात

रचना काल सन् १८७०। 'बनारस लाइट प्रेस' से सन् १८७१ में प्रकाशित। इस सिलसिले में एक घटना का उल्लेख कर देना ठीक होगा। ग्यारह वर्ष की उम्र में भारतेन्दु बाबू जगन्नाथ पुरी गये। वहाँ जगन्नाथ जी की मूर्ति के साथ भैरव जी की मूर्ति बैठाने की प्रथा थी। बालक हरिश्चन्द्र को यह प्रथा बुरी लगी। इस सन्दर्भ में उन्होंने नामी गिरामी लोगों के पास पत्र लिख इस विषय पर उनकी सम्मति माँगी। इसीके बाद सन् १८७१ में किसी पण्डित महाशय ने 'तहकीकात पुरी' नामक एक किताब लिखी। उस किताब के खण्डन में भारतेन्दु बाबू ने तहकीकात पुरी की तहकीकात ग्रन्थ लिख यह सिद्ध किया कि श्री जगदीश पूर्ण पुरुषोत्तम पीठ वैष्णव स्थान है। यहाँ भैरव की प्रतिमा नहीं हो सकती।— सं.

तहकीकात पुरी की तहकीकात

इसके पूर्व में कि मैं 'तहकीकात पुरी' पर कुछ अपनी अनुमति प्रकट करूँ, मैं उसी तहकीकात पर कुछ विचार करता हूँ जिसे देख के लोग उसका संपूर्ण वृत्तांत जान जायँ और धोखा न खायँ।

अब पहिले ही से विचार कीजिए इसका नाम 'तहकीकात पुरी' है धर्म विचार की जो पुस्तक और सबके पहिले फारसी शब्द 'विस्मिल्ला गलत'। इसको जाने दीजिए पुस्तक से आरंभ कीजिए।

इस पुस्तक में पहिले ही लिखा है 'काशी धर्म सभा निर्णयः' अब कहिये किस मिती की धर्म सभा में निर्णय हुआ है कुछ दिन मिती भी है कि यों ही धर्म सभा का ध्यान करके निर्णय किया गया है। जो हो। आगे उसमें लिखा है, यथा नियमित भोगराग वितरण संरभ्रणाय श्री जगन्नाथ मंदिर श्री जगन्नाथ समकाल स्थापित भैरवोत्पाटनकैश्चिद्विद्वेषिभिः कृतान्तस्थापनाय यत्र श्री मोहनलाल शर्मा पुरीगत्वा इत्यादि। वाह वाह क्या सुंदर संस्कृत वैयाकरण लोगों के देखने योग्य है क्या कहूँ स्थान थोड़ा है नहीं तो प्रति पद उद्धृत करके दिखा देता। इसका अर्थ यह है कि भैरव की मूर्ति श्री जगन्नाथ जी के समकाल से स्थापित थी सो अब उच्छिन्न हो गई। पंडित जी ने बिना जगन्नाथ महात्म देखे इतना परिश्रम क्यों व्यर्थ किया भला प्रत्यक्ष नहीं तो सपने में तो देख लेते। हाय मुझे इनके इस व्यर्थ परिश्रम का सोच होता है और सुनिये इस व्यवस्था के नीचे लिखा है कि 'गवर्नमेंट को इसमें सहायता देनी उचित है, छिः छिः गवर्नमेंट को क्या पड़ी है कि इसके बीच में कूदेगी। यह दशा तो जितने पृथ्वी पर मंदिर हैं सब में है। जब गवर्नमेंट सब पर हाथ लगावैगी तब इधर भी देखेगी, यह भी हुआ। इसके नीचे श्री काशी धर्म सभासद पं. बस्ती राम जी की सम्मति है। अब मैं फिर पंडित जी से पूछता हूँ कि संसार में जितनी सभा हैं उनकी यह रीति है कि लेखाध्यक्ष वा सभापति का अंत में हस्ताक्षर होता है सो यह धर्म सभा के किस नियम में लिखा है कि एक सभासद भी सम्मति कर सकता है और किस सभा में आपने इस व्यवस्था पर सभासदों से सम्मति ली थी। जो कहिए कि मैंने आप ही लिखा है तो बताइए कि धर्म सभा के प्रत्येक सभासद को कितनी व्यवस्था देने का अधिकार है और आप की धर्म सभा के कितने सभासद हैं। वाह वाह के धर्म सभा जिसके ऐसे मनमाने नियम, इसको भी जाने दीजिये। इसके आगे एक दूसरी संस्कृत व्यवस्था

हैं जिसमें दो प्रश्नों के उत्तर हैं — पहिला जो कोई औदत्य से किसी देव मूर्ति को उखाड़ दे तो उसको क्या दोष है । इसका उत्तर देने के पहिले मैं पूछता हूँ कि वह देव मूर्ति स्थापित थी इसमें कौन प्रमाण या बिना बात ही कहना कि विश्वनाथ जी के सिर पर गरुड़ की मूर्ति थी । उसको शैवों ने तोड़ के फेंक दिया हम फिर बैठेंगे । जो कहो कि प्राचीन काल से न थी तो किसी को उसका उखाड़ना भी तो अयोग्य है । मैं कहता हूँ कि पहिले तो किसी की स्थापना ही में प्रमाण नहीं और जो किसी ने स्थापना किया तो वह योग्य है वा अयोग्य । जैसा किसी शिव जी से बड़े देवता के ऊपर किसी क्षुद्र देवता या किसी विष्णु गण की मूर्ति बल से बैठा दे तो वह योग्य होगी वा अयोग्य । मैं कहता हूँ अयोग्य ही होगी । इसमें प्रमाण यही है कि किसी बड़े देवता के सिर पर या परम निकट किसी क्षुद्र देवता की मूर्ति अंगी भाव से देखने में नहीं आती । जाने दीजिये इस संस्कृत व्यवस्था का विचार मत कीजिये क्योंकि इस पर बड़े बड़े लोगों के हस्ताक्षर हैं और आगे विचार कीजिये । इस तहकीकात की हिंदी के पूर्व दो श्लोक लिखे हैं जिनमें पहिले का यह अर्थ है । हम लोग अद्वैतवादी विष्णु, शिव के ईश्वरता का विचार नहीं करते पर जो लोग शिव जी से द्वेष करते हैं उसकी हम दुरुक्ति काटते हैं । इसमें कोई विष्णुद्वेष की शंका न करे । महाराज अद्वैतवादी जो आप पक्के नहीं हैं अभी कच्चे अद्वैतवादी हैं क्योंकि आप अभी साहेब लोगों के संग नहीं खाते । हाँ और यह तो कहिये कि जब आप अद्वैतवादी हैं तब आप को दुरुक्ति और उसका काटना और विष्णु द्वेष की शंका की डर कहाँ से आई क्योंकि-का विधि: को निषेध: । स्मरण कीजिये आप जैसे हों उससे मुझे कुछ काम नहीं परंतु पंडितों की तो समान दृष्टि चाहिए । शुनिचैवश्व पाके च पण्डितास्समदर्शन: आप तो समान दृष्टि वाले हैं आप से और दुरुक्ति छेदन से क्या काम और फेर यह तो कहिये कि आप श्री जगन्नाथ जी के भोग का प्रबंध करते हैं कि शिव विष्णु का भेदाभेद करते हैं । यहाँ शिव का द्वेषी कौन है जिसकी दुरुक्ति काटने को आप प्रवर्त भए हैं । जो कहिये कि महंत और पंडे तो आप उनकी दुरुक्ति काटते हैं कि उनकी जीविका काटते हैं, यह केवल उन की मनोवृत्ति इसी बहाने प्रकट हो गई ।

जो हो अब मैं आगे इस पुस्तक की भाषा पर विचार करता हूँ । पर इससे कोई यह न समझे कि मैं केवल द्वेषी बुद्धि से लेखनी लिए हूँ । ऐसा कदापि नहीं क्योंकि जो विषय कि मैं इस स्थान पर नहीं खंडन करता उनसे समझिये कि मेरी संमति है मुझे केवल इस पुस्तक के सब दफों में से केवल २, ३, और ९ दफे में कुछ कहना है । और शेष पर मैं पूर्ण रीति से संमति करता हूँ क्योंकि पुरी के और सब अन्याय उसमें ठीक ठीक लिखे हैं । जैसा दूसरे दफे में लिखते हैं कि 'श्री जगन्नाथ जी के मंदिर में रत्न सिंहासन और प्राचीन काल से ५ मूर्ति स्थापित थीं जैसा श्री जगन्नाथ १ बलभद्र २ सुभद्रा ३ सुदर्शन ४ भैरव ५ । और उस मूर्ति को वैष्णवों ने बंगला सन् १२०८ में उखाड़ के फेंक दिया ।'

तीसरे दफा में फिर लिखते हैं कि पं. बस्तीराम जी के बयान से जाना गया कि मूर्ति पहिले से थी पर किसी भाँति उसका अंग भंग हो गया तब महाराज मानसिंह ने जीर्णोद्धार किया । उसी को आचारियों ने तोड़ा । इस दफे में सांप्रत काल के श्री महाराज सवाई रामसिंह की स्तुति भी है ।

अब मैं इसका विचार करता हूँ, सुनिये । पहिले तो विष्णु के समान कोई देवता बैठ ही नहीं सकता । क्योंकि विष्णु के समान अन्य देव तुलना करने से बड़ा दोष होता है जैसा वशिष्ठ — श्री महाविष्णुमन्येन हीनदेवनदुर्मतिः । साधारण सकृद्वृत्ते मौल्यजोनांत्यजोत्यजः । और भी वासुदेवे परित्यज्य योन्यदेवमुपासते । तृपितो जान्धवीतीरे कूपेननति दुर्मतिः ।

दूसरे कहीं भैरव और विष्णु को एक संग बिठाने की विधि नहीं है । तीसरे शैव पुराणों से ज्ञात हुआ कि भैरव विष्णु का अवतार है इससे जब साक्षात् विष्णु विराजते हैं तब भैरव का क्या काम है । चौथे जगन्नाथ माहात्म्य के देखने से जाना गया कि जगन्नाथ जी नृसिंह के स्वरूप हैं और नृसिंह से भैरवादिक डरते हैं जैसा इस वाक्य से स्पष्ट है । डाकिनी शाकिनीभूत प्रेतविघ्नपभैरवा । नृहरेर्गज्जनंशुक्ला पलायन्तेपरांमुखाः ।

पाँचवे तामस देवताओं की पूजा का निषेध है इससे भैरव सात्विकों के पूजने योग्य नहीं जैसा श्री मद्भागवत में लिखते हैं । मुमुक्षुबोधोरूपान् हित्वाभूतपतीनथ । नारायण कलाशशान्ता भजन्तिहयनुसूयवः ।

छठे पंचायतन बिना केवल दो देवता की विधि किसी शास्त्र में देखने में नहीं आती ।

सातवें विष्णु के आचरण में जहाँ भैरव की पूजा का विधान है वहाँ भैरव को बराबर बिठाना नहीं लिखा है । दुर्गा और भैरव की पूजा नीचे करनी लिखी है ।

आठवें जो आवरण पूजा में भैरव कहाँ है तो दुर्गा गरुड़ विष्वक्सेन नारदादिक क्यों नहा है । नवें बहुभक्त होना यह बड़ा दोष है । एकोदेवः केशवावा शिवावा । अत्रिस्मृति श्लोक ३३८ । बहुभक्तो दोनमुखो मत्सरीकर बुद्धिमान् । एतेपानैवदातव्यः कदाचिच्च परिग्रहः ।

दसवें एक भगवान् सर्व व्यापी है उसी की पूजा में सबकी पूजा हो जाती है जैसा — श्रुति । एकोदेवस्सर्वभूतेषु गूढः सर्व व्यापी भूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षस्सर्वभूताधिवासस्साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च । अनेक नाम उसी के हैं जैसा श्रुति । सुपर्ण विप्राः कवयो वचो भिरंके संतं बहुधा कल्पयति । जैसा दूसरी श्रुति में । इंद्र मित्रम्बरुणमग्निमाहुरया दिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान् । और यह एक देव भगवान् नारायण ही हैं जैसा श्रुति स्मृति कहती हैं । एको हवै नारायणो आस । सर्वे वेदायत्पद मा मनन्ति । वैदेश्च सर्वैरहमेव वेद्यः । मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनेजय इत्यादि वाक्यों से स्पष्ट है तो अलग भैरव की पूजा अप्रयोजन है । उसी की पूजा में सबकी पूजा आ गई । जैसा पुराण में लिखते हैं — यथाहि स्कन्द शास्त्रान्तरौ मूलावसेचनं । विष्णोराधने तद्वत्सर्वेषामात्मनश्चाह । इत्यादि ।

ग्यारहवें भैरव शिव के स्वरूप हैं इनकी पूजा बिना भस्म त्रिपुंड के नहीं जैसा बिना भस्म त्रिपुंडेण बिना रुद्राक्ष मालया । पूजितोपि महादेवो नस्यात् पुन्य फल प्रदः इत्यादि और विष्णु पूजन में त्रिपुंड का निषेध है जैसा आचार माधव के दूसरे अध्याय में बौधायन । ब्राह्मणानामयन्धर्मो यद्विष्णोर्लिङ्ग धारणं । मदन पारिजात में ब्रह्मपुराण का वाक्य है उर्द्वपुण्ड्रिन्द्रजः कुर्यात् । ब्रह्मरात्र का वाक्य — धारयेत्तद्वित्रियाद्योपिविष्णुभक्तो भवेद्यदि । निर्णय सिंधु मदन पारिजात । पृथ्वी चंद्रद्वय में भी — उर्ध्व्यज्वलितलंककुर्यान्नकुर्याद्वै त्रिपुंडकं ! आचारार्क कमलाकरान्हिक में भी उर्ध्व्यपुंड्रविहीनस्य स्मशान सद्दृशम्मुखं । सार संग्रह में । ब्रह्मरात्र में भगवान् का वाक्य योनधारयते मर्त्यो मामकं चिन्हमीदृशं । तंत्यजामि दुरात्मानं मदीयाज्ञाऽतिलंघिनं । तो इन वाक्यों से वैष्णवों को और विष्णुपूजन में ऊर्ध्वपुंड्र अवश्य आया 'भस्मी भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुंड्रे विनाकृते' और भैरव के पूजन में त्रिपुंड की नित्यता तो अब कहिये एक कालावच्छिन्न पूजा कैसे कीजियेगा और एक स्थान पर भैरव विष्णु की मूर्ति कैसे बैठाते हो ।

बारहवें भैरवादिक उग्र देवता की पूजा तो सब लोगों को करनी ही अयोग्य है फिर उनको रत्न सिंहासन पर बिठाना और जगन्नाथ जी के संग पूजा करना कहाँ हो सकता है जैसा श्रीमद्भागवत में । मुमुक्षुवो घोररूपान् हिता भूतपतीनथ । नारायण कलाशशान्ता भजन्ति ह्यनुसूयवः ॥ २५ ॥ रजस्तमः प्रकृतयस्समशीला भजन्ति वै । पितृभूतप्रजेशादन् त्रयैश्वर्यं प्रजेस्सवः ॥ २६ ॥ तथा सार संग्रह में वशिष्टस्मृति । रजस्वलांसूतिकाञ्च श्वानकाकञ्चगर्धभं । कुक्कुटम्विडबराहञ्च पूषपाखंडिनन्तथा । वहिर्दवालकं स्पृष्ट्वा सबासाजलमाविशत् । गणेशं भैरवं दुर्गां रुद्रादीनुग्रहदेवतान् । योर्चयेद्भक्तिमान् विप्रो सवैदेवालकस्मृतः । और भैरवादिकों के पूजन से वैसी ही गति मिलती है परम पद नहीं मिलता है जैसा श्रीमुख से आज्ञा करते हैं ७ अध्याय में । कामैस्तेस्तेर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्य देवता । तंतनियममास्थाय प्रकृत्यानियताः स्वया ॥ २० ॥ योयो यातातनुभक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति । तस्य तस्याचलीं श्रद्धां तामेव विदधामहं ॥ २१ ॥ सतयाश्रद्धया युक्तस्तस्या- राधनमीहते । लभते च ततः कामान् मयैव, विहितान् हितान् ॥ २२ ॥ अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमधसः । देवान् देवयज्ञोयान्ति मद्भक्तयान्ति मामपि ॥ २३ ॥ इससे मोक्ष की कामनावालो को दूसरे देवता की पूजा सर्वथा अयोग्य ही है और मोक्ष दान शक्ति केवल भगवान् ही को है जैसा आचार प्रकाश से मत्स्यपुराण का वचन । आराग्यं भास्करादिच्छेत् धनमिच्छेत् हुताशनात् । ज्ञानममहेश्वरादिच्छेन्नोक्ष मिच्छेज्जनाईनात् ॥ दक्ष स्मृति में भी अंत दशा में । योगमभ्यसमानस्य ध्रुवं कश्चिद्दुपद्रवः । विद्यावायविवाविद्या शरणन्तु जनाईनं । श्रुति भी कहती है यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै तद्देवमात्म बुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहम्प्रपद्ये । इससे एकांत चित्त होकर भगवत्सेवा ही मुख्य है । बिना अनन्यता के फल नहीं होता जैसा श्री मुख से गाते हैं । ९ वें अध्याय में । महात्मनस्तु माम्पार्थ दैवी प्रकृतिमाश्रिताः । भजन्त्यनन्य मनसो ज्ञान्तामूतादिगव्यं ॥ १३ ॥ अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते । तेषान्तित्यामि युक्तानां योगक्षेम- वहामहं ॥ २ ॥ अपि चेत्सु दुराचारे भजते मामनन्यभाक् । साधुरेव समन्तव्यस्सम्यग्व्यवहितो हि सः ॥ ३० ॥ क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिनिगच्छति । को न्येति प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१ ॥ तो इन बातों से यह निश्चय है कि जो लोग मोक्ष चाहने वाले हैं सर्व देव मय सर्वाराध्य मुमुक्षु शरण श्रीकृष्णचंद्र की पूजा उपासना करें और आग्रह कलुष से कलंकित चित्त को इन वाक्यों से स्वच्छ करें और जो किसी प्रकार

कामनादिक हो तो अपने घर में चाहें जिसकी पूजा करें। श्री जगन्नाथ जी के रत्न सिंहासन पर तो भैरव बैठाने का मनोरथ चित से दूर करें क्योंकि उपास्य एक भगवान् कृष्ण चंद्र ही हैं दूसरा सर्वथा नहीं है जो इतने पर भी मेरी बात न मानें तो इन वाक्यों के समूह को कान खोल के सुनें। सार संप्रह में प्रजापति स्मृति। नारायण परित्यज्य हृदिस्थं प्रमुमीश्वरं। योन्यमर्च्यतेदेवः परबुध्यासपापभाक् ॥ वशिष्ठ भी। नारायणः परं ब्रह्म ब्राह्मणानां हि वैवत। भारत में भी। ब्रह्मणं शितिकण्ठं च याश्चान्याः देवतास्मृताः। प्रतिबुद्धान् सेवन्ते यस्मात्परिमितमफलं। पञ्चपुराण में भी नारायणः परं ब्रह्म विप्राणां देवतं हरिः। स एव पूज्यो विप्राणां पुरुषर्षभनेतरः। नान्यं देवं निरीक्षेत नान्यं देवं पूजयेत्। न चान्यं प्रणमेद्विप्रो नान्यदायतनम्विशेत्। वाराह पुराण में — यत्सत्त्वं सहरिदेवी हरिस्तत्परमं पदं। सत्त्वं रजस्तमज्जेति तृयंचैतदुच्यते। और कहाँ तक लिंगपुराण में भी प्रसिद्ध वाक्य देख लीजिये। उसका प्रसाद कौन लेगा क्योंकि वह तो रुद्रांश है और रण्यगर्भारसजा तमसा शंकर स्वयं। सत्त्वेन सर्वगोविष्णुस्सर्व्वत्मा सदसन्मयः। सात्त्विकैस्सेव्यते विष्णुस्तामसैरेव शंकरः। राजसैस्सेव्यते ब्रह्मा संकीर्णैश्च सरस्वती। इस वाक्य को दोनों कानों से सुनिए। नौद्वोरुद्रस्तथा वायुर्दुर्गागणपभैरवाः। यमस्कन्दनैऋतश्च तामसा देवता स्मृताः। फिर पञ्च पुराण में। यक्षराक्षसभूताद्या कृष्माण्डागणभैरवाः। आर्चनोपासनादेव। विष्णु लोकमभीष्टमभिः। रजस्तमोभिभूतानामर्चनं प्रतिविध्यते। रौरवन्नरकैरान्त्यश्रभूतगणान् र्वनात्। और भैरव तो कापालिकों के देवता हैं उसका पूजन तो वैष्णव स्मार्त सब को निषिद्ध है जैसा महाभरत में संप्रदाय देवता प्रसंग में। कुलाचार्य स्तुवामानां सिद्धानाम्मुण्ड स मालिनी। तथा कापालिकानाञ्च देवता भैरव स्वयं। और कापालिकों के देवता भैरव हैं यह प्राचीन काव्यों में भी प्रसिद्ध है जैसा प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में तीसरे अंक में कापालिक का वाक्य। मस्तिष्काक्तवसाभिधारित महामांसाहुतिर्बुहवतां। बन्धौ ब्रह्म कपाल कल्पित सुराणामनेनः पारणा। सद्यः कृत कठोर कण्ठ विगलत्कीलालाधरोज्वलै। रच्योऽनः पुरुषोपहार बलिभिर्देवो महाभैरवः ॥ १ ॥ इस हेतु सतोमय श्रीकृष्ण की उपासना करो और वह आग्रह छोड़ो।

तेरहवें जो भैरव रत्नसिंहासन पर बैठेगा तो फिर श्रीकृष्णातिरिक्त और देवता का विशेष करके रुद्र का प्रसाद निर्मात्य ग्रहण का निषेध है। जैसा नारायण भट्ट कृत धर्म प्रवृत्ति में। पवित्रम्विष्णुनैवेद्यं सुरसिद्धिभिस्मृतं। अन्यदेवस्य नैवेद्यमभुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्। तथा स्कंदपुराण के मार्गशीर्ष माहात्म्य में भगवद् वाक्य। अन्येषामन्वेव तानाञ्च न गृहवीयाच्च भक्षितं। अभक्तानां च पक्वन्नं भुक्त्वा वैनरकं ब्रजेत्। फिर स्मृत्यर्थ सार में और धर्मसिंधु के तीसरे परिच्छेद में। शैव सौर निर्मात्य भक्षणमेचान्द्रायणी। प्रायश्चित्तेन्दु शेषपर आद्व हेमादि में स्कंदपुराण का वाक्य। स्मृद्वावरुद्रस्य निर्मात्यं वाससा आप्लुतश्शुचिः। प्रायश्चित्त मयूष में भी कालिका पुराण का यही वाक्य यों है। स्मृद्वावरुद्रस्य निर्मात्यं सवासा आप्लुतश्शुचिः। शिवपुराण में भी शिव जी का वाक्य। अनर्हममनैवेद्यमत्रमपुण्यमफलज्जलं। इत्यादि वाक्यों से स्पष्ट है कि जो भैरव रत्न सिंहासन पर बैठेगा ना फिर महा प्रसाद कोई न लेगा और फिर भैरव की तृप्ति भी इन अन्नो से नहीं होनी है उसकी तो वहाँ न रहेंगे। देखो भैरव का मांस प्रिय होना कुल धर्म सार भूतमहाभरत में तत्र के वाक्य से स्पष्ट है। किं वेदेः रुद्रोभूतगणेश्वरः। न प्रीयते महादेवो भैरवः कुल कैरवः। शोणशोणितधारेण विमलेनपलेन च। प्रस्वदमेदपंकेन चटाचटैति शब्देन अंगानां कुंडकेन च। मदिराया प्रवाहेन मधुकुंडेन वै तथा। वाल्मीसरितया चैव भासवेनाधरस्य च। श्यामानां दंशनिदैव विलोमभगवुञ्जने। मेथुनेमानिनीनां च कन्यानां कुचमर्द्धने। मुद्गानां भक्षणेष्वेव मत्स्यानां भक्षणेन हि। गायकान्तागुगानेन नर्तकीनर्तनेन च। मृदंगेषु षण्डकानां वाधेन तु मुलेन च। त्रय भैरव चोषेण प्रीतस्याच्चण्डिकापतिः। विनापञ्चमकारेण कुलस्य विधिनाविना। सर्व्वतः पूजितश्चापि न स्यात्तस्य फलप्रदः। तस्मात्सर्व्वं प्रयत्नेन मांसमुद्रादिभिश्शिवं। नित्यं मां पूजयेद्देव भैरवं भय नाशनं। इति।

अब हम इन बातों को छोड़ के शुद्ध जगन्नाथमाहात्म्य से इस व्याख्या का विचार करते हैं। श्री जगन्नाथ माहात्म्य दो प्रचलित हैं एक तो छोटा लीलानि महोदय धृत सूत संहिता का दूसरा स्कंदपुराण के उत्कल खंड का। अब इन दोनों में तो कहीं रत्न सिंहासन पर भैरव का नाम नहीं है। इसके अतिरिक्त मनोरथ ग्रंथ धृत

मिथ्या पुराण के आग्रह खंड के भैरव माहात्म्य में कहीं लिखा हो तो लिखा हो । अब इस स्थान पर मैं उन वाक्यों को लिखता हूँ सुनिये । सूत संहिता के माहात्म्य में तो रत्न सिंहासन पर सात मूर्ति लिखी हैं जैसा बलभद्र १ सुभद्रा २ श्री जगन्नाथ ३ चक्र ४ माधव ५ लक्ष्मी ६ सत्यभामा ७ 'एवं सप्तविधामूर्तिं ब्रह्मणः करयोगतः' 'अयंसप्तविधामूर्तिविधायभगवान् प्रभुः । अवतीर्णसस्वयंवेद वेद्यश्चचतुर्भुजः' । इत्यादि वाक्य प्रसिद्ध हैं और उसके पाँचवें अध्याय के अंत भाग में और छठे अध्याय के पूर्व में लिखे हैं पुस्तक लेके देख लीजिए । अब उत्कल खंड के माहात्म्य का वाक्य सुनिये । ५ अध्याय । एकवारसमुत्पन्नावतुर्दासम्भविष्यति । फिर उसी अध्याय में । नीलाचलगुहासंस्थे विभ्रवारुमयम्बपुः । आस्तलोकोपकाराय यत्नेन च सुभद्रया । सुदर्शनेन चक्रेण वारुनानिर्मितेन च । फिर सातवें अध्याय में । तदादेशादारुमयं प्रभोलिंगचतुष्टयं । फिर अठारहवें अध्याय में । चतुर्मूर्तिस्सुभगवान् यथापूर्वमयोदितः । फिर भी । ऋकवेदरूपीहलधृक् सामरूपीनृ-केशरी । यनुसृष्टिस्त्वयम्मन्त्रचक्रमाथर्व्यनस्मृतं । भेदेचतुर्दां भेषो यमेकराशिरभेदतः । इत्यादि इस इतने बड़े माहात्म्य में पुस्तक भर में भैरव का नाम कहीं नहीं है केवल एक स्थान पर पूजग में क्षेत्रपालादि को बलिदान लिखा है दूसरे तीसवें अध्याय में मार्कण्डेय की यात्रा में मार्कण्डेय के मंत्र में भैरव शब्द पड़ा है और कहीं नहीं है फिर रत्नसिंहासन पर भैरव बैठना कहाँ रहा ।

और जो आप कहते हैं कि पूजा शाक्त मत से होनी चाहिए यह तो केवल आप की तोतली बोली है नहीं तो विष्णु पूजा शाक्त रीति से आप न कहते और जगन्नाथ जी में वैष्णवी विधि तो उक्त माहात्म्य के इस वाक्य से सिद्ध है । यत्सर्व्वम्वैष्णवंकर्म प्रतिमारीक कल्पनं । फिर । तत्तुवैष्णवमार्गात्ताः महाभोगोपृथग्विधा इत्यादि और भैरवी विधि और भैरव देवता तो चांडालों के अंत्यजों के हैं इस बात को सुन के क्रोध मत कीजिए । ये कृत्य कल्पतरु नामक प्रसिद्ध स्मार्त ग्रंथ के भरे हुए देवी पुराण के वाक्य को सुनिए । वर्णाश्रसविभेदेन देवास्थाप्य तु नान्यथा । ब्रह्मातुर्ब्राह्मणस्थाप्यो गायत्री सहितः प्रभुः । चतुर्वर्णस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यस्सुखाधिभिः । भैरवोपि यथावर्णैरन्त्यजानांस्तथामतं ।। इत्यादि ।

महाप्रसाद को सब लोग छूते हैं कुछ विचार नहीं करते यह सोचना तो केवल कूपमंझकता है क्योंकि दक्षिण में वरदराज शेषशायी इत्यादि जितने वैष्णव तीर्थ हैं सबमें क्षेत्र के भीतर स्पर्शास्पर्श नहीं मानते तो कहिये अब कहाँ आप भैरवी क्षेत्र बनाइएगा । थोड़ा सा द्रव्य व्यय करके दक्षिण की यात्रा कीजिए तो महाप्रसाद की महिमा प्रगट हो और प्रसाद की ऐसी महिमा तो श्राद्ध सिद्ध ही है इसमें कौन सा संदेह हो सकता है जैसा सार संग्रह में पद्मपुराण का वाक्य । विष्णोर्निर्वेदितान् यो नशनातिपशंशकया । वायसोविद्वाराहश्च विष्टायांजायतेकृमिः ।। तथा नारायणभट्टकृत धर्मब्रवृत्ति में — पवित्रांविष्णुनैवेद्यंसु रिदधिभिः कृतं । नैवेद्य भक्षण विचार ग्रंथ में पद्मपुराण का वाक्य । रमाब्रह्मादयो देवास्सनकाद्याशुकादयः । श्री नृसिंह प्रसादोयं सर्व्वेर्गुहान्तु देवता ।। उत्कल खंड के माहात्म्य के ३८ वें अध्याय में । पाकसंस्कारकर्तृणां संपर्काचनदुष्यति । पद्मायास्सन्निधानेन सर्व्वतेधुचयस्मृताः ।। सार संग्रह में वाराह पुराण । नैवेद्यं जगदीशस्य चान्नपानादिकंतुयत् । भक्ष्याभक्ष्यविचारस्तु नास्ति तद्भोजनेन्द्रिजाः । ब्रह्मर्षेन्निर्विकारं हि यथाविष्णुस्तथैवतः । विचार येप्रकुर्वन्ति तेनश्यन्तिनराधमाः । उत्कल खंड के माहात्म्य के ३१ अध्याय में । चिरस्थमपिसंशुद्धं नीतंचदूर देशतः । नीलाद्रिमहोदय के माहात्म्य के अध्याय में । किमुक्तेनाचवह्नुनाचाण्डालसमुष्टमेवहि । कुक्कुरस्यमुखाद्भ्रष्ट तग्राह्यन्दैवतैरपि । तस्मात्तदन्तंसहसा प्राप्तमात्रतदग्निनात् । विचारस्यनकर्तव्यान कर्तव्याकथञ्चन । जगन्नाथानमेतद्वैश्वं कृत्वाथभक्तिः । देशान्तरे जनोयस्तु भक्षेतप्रतिदिन्द्विजा । सर्वपापविनिर्मुक्तस्सगच्छेत्परमंपदं ।। इत्यादि अनेक प्रज्वलित वाक्यों से आग्रहियों का हृदयान्धकार नाश होय और साधु लोगों को आनंद होय और सर्व्वात्मा भगवान् संसार की रक्षा करें ।

सज्जन लोग इसमें की दुरुक्तियों को क्षमा करें क्योंकि यह तो प्रति उत्तर है स्वयं कथन नहीं है ।

हरि ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

अष्टादश पुराण की उपक्रमणिका

यह पुस्तक सन् १८७५ में लिखी गयी है। पहली बार यह हरिश्चन्द्र चन्द्रिका सं.
८ - १२ सन् १८७६ में प्रकाशित हुई। — सं.

भूमिका

व्यास जी के बनाए अठारह पुराण लोक में प्रसिद्ध हैं। काव्य वाल्मीकीय रामायण, इतिहास महाभारत, अठारह पुराण, अठारह उप पुराण, पाँच पंचरात्र और पाँच संहिता इनकी समष्टि की संज्ञा पुराण है। अठारह उप पुराण, यथा १. आदि पुराण (सनत्कुमारोक्त) २. नरसिंह पुराण ३. स्कंदपुराण ४. शिव धर्म (नंदीश-प्रोक्त) ५. आश्चर्य पुराण (दुर्वासा का कहा) ६. नारदपुराण ७. कपिल पुराण ८. वामन पुराण ९. वरुण पुराण १०. शाम्ब पुराण ११. सौर पुराण १२. पराशर पुराण १३. भार्गव पुराण १४. मारीच पुराण १५. कालिका पुराण १६. देवी पुराण १७. माहेश्वर पुराण १८. पद्मपुराण। भास्कर, नंदिकेश्वर, रहस्य, उशना और ब्रह्मांड ये पाँच नाम उप पुराणों के और भी मिलते हैं।

१. वशिष्ट पंचरात्र २. नारदीय पंचरात्र ३. कपिल पंचरात्र ४. गौतमीय पंचरात्र और ५. सनत्कुमारीय पंचरात्र और ब्रह्म, शिव गौतम, प्रह्लाद और सनत्कुमार ये पाँच संहिता हैं। हमारे ग्राहकों में बहुत से लोगों की इच्छा होगी कि परिश्रम भी न करें और जान भी लें कि अठारह पुराणों में क्या है। हम उनकी इच्छा पूर्ण करने को पुराणों की यह उपक्रमणिका प्रकाश करते हैं, जिससे बहुत सहज में लोग जान जायेंगे कि चार लाख श्लोक समूह के अठारह टुकड़ों में क्या क्या विषय सन्निवेशित है।

हरिश्चंद्र

अष्टादशपुराणोपक्रमणिका

प्रथम ब्रह्मपुराण

यह पुराण पूर्व एवं उत्तर दो भाग में विभक्त है। अत्रस्य श्लोक संख्या १०००० दस सहस्र। सूत-शौनक संवाद में नाना प्रसंग एवं विविध इतिहास वर्णित हैं।

पूर्व भाग — १. देवता एवं असुर गणों की उत्पत्ति वर्णन २. दक्षादि प्रजापति की उत्पत्ति वर्णन ३. सूर्यवंश वर्णन एवं तन्मध्य में श्रीराम का चतुर्व्यूह कथन ४. सोमवंश वर्णन तत् प्रसंग से श्रीकृष्ण चरित्र कथन

४. द्वीप कथन ६. वर्ष कथन ७. पाताल कथन ८. स्वर्ग कथन ९. नरक कथन १०. सूर्य स्तुति ११. पार्वती जन्म एवं विवाह कथन १२. दक्ष आख्यान १३. एकाग्र क्षेत्र कथन ।

उत्तर भाग — १. पुरुषोत्तम वर्णन २. तीर्थयात्रा विस्तार कथन ३. यमलोक कथन ४. पितृश्राद्ध विधि ५. वर्णाश्रमाचार धर्मनिरूपण ६. विष्णु धर्म कथन ७. युगाख्यान ८. प्रलय कथन ९. योग कथन १०. सांख्य कथन ११. ब्रह्मवाद कथन १२. पुराणांश कथन ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखाकर वैशाख मास में स्वर्णयुक्त जल धेनु सहित पौराणिक ब्राह्मण को अर्चना पूर्वक दान करने एवं ब्राह्मण भोजन कराने से चंद्र सूर्य स्थिति काल पर्यंत ब्रह्मलोक में स्थिति होती है एवं संयत होकर यह पुराण श्रवण वा पाठ करने से सकल धर्मफल लभ्य होता है ।

द्वितीय पद्मपुराण

पाँच खंड में ५५००० पंचपन सहस्र श्लोक । पंच खंड, यथा १. सृष्टि खंड २. भूमि खंड ३. स्वर्ग खंड ४. पाताल खंड ५. उत्तर खंड ।

प्रथम सृष्टिखंड — पुलस्त्य-भीष्म संवाद से सृष्ट्यादि का उपक्रम एवं नाना धर्म आख्यान और इतिहास कथन । इस खंड में १. पुष्कर माहात्म्य विस्तार २. ब्रह्मयज्ञ विधि ३. वेदपाठादि लक्षण ४. दान विवरण ५. पृथक् पृथक् व्रत कथन ६. शैल जाया विवरण ७. तारकाख्यान ८. गोमाहात्म्य ९. कालकेयादि दैत्य वध १०. ग्रहों की पूजा एवं दान विवरण है ।

द्वितीय भूमि खंड — सूत-शौनकसंवाद । १. पितृमातृ पूजा कथन २. शिवशर्मा कथा ३. सुव्रत चरित्र ४. वृत्रासुर वध ५. पृथक् वर्ण आख्यान ६. धर्म कथा ७. पितृशुश्रूषण कथन ८. नहुष कथा ९. ययाति चरित्र १०. गुरुतीर्थ निरूपण ११. राजा के सहित जैमिनि के संवाद में बहुत सी आश्चर्य कथा १२. अशोक सुंदरी की कथा १३. हुण्डदैत्य वध १४. कामदाख्यान १५. विहुण्ड वध १६. च्यवन-कुंजल का संवाद १७. सिद्धाख्यान १८. ग्रंथ की फल श्रुति ।

तृतीय स्वर्ग खंड — ऋषि लोगों से सौति का कथा-प्रसंग १. ब्रह्मांडोत्पत्ति कथन २. भूमिलोक संस्थान ३. तीर्थ आख्यान ४. नर्मदा की उत्पत्ति ५. नर्मदास्य तीर्थ उपाख्यान ६. कुरुक्षेत्रादि तीर्थ कथन ७. कालिंदी की पुण्य कथा ८. काशी माहात्म्य ९. गया माहात्म्य १०. प्रयाग माहात्म्य ११. वर्णाश्रम धर्म एवं योग निरूपण १२. व्यासजैमिनि संवाद की पुण्य कथा १३. समुद्र मंथन १४. व्रत कथन १५. श्रेष्ठ माहात्म्य स्तोत्र ।

चतुर्थ पातालखंड — १. श्रीराम का अश्वमेध एवं राज्याभिषेक कथन २. अगस्त्यादि का आगमन ३. पौलस्तिक का उपाख्यान ४. अश्वमेध करणाः देश ५. अश्वमेधीय घोटकगमन ६. नाना राज कथन ७. जगन्नाथ देव का वृत्तांत ८. वृंदावन का माहात्म्य ९. लीलावतारी की नित्य लीलानुक्तकथन १०. वैशाख स्नान दान एवं अर्चन ११. धरा-वराह संवाद १२. यम एवं ब्राह्मण की कथा १३. राजा का आचरण १४. श्रीकृष्ण का स्तोत्र १५. शिवशंभु मिलन १६. दधीचि का आख्यान १७. भस्मधारण माहात्म्य १८. शिव माहात्म्य १९. इंद्रपुत्र का आख्यान २०. पुराणवित्तजन की प्रशंसा २१. गौतम का आख्यान २२. गीता २३. भारद्वाज के आश्रम में श्रीरामचंद्र का कल्पांतरीय इतिहास कथन ।

पंचम उत्तर खंड — शिव-पार्वती संवाद । १. पर्वत का आख्यान २. जालंधर की कथा ३. श्री शैलादि का विवरण ४. सगर का उपाख्यान ५. गंगा, प्रयाग, काशी एवं गया की पुण्यकथा ६. आग्रादि दानमाहात्म्य ७. महा द्वादशी व्रत कथन ८. चतुर्विंशति एकादशी माहात्म्य ९. विष्णुधर्म कथन १०. विष्णु सहस्रनाम ११. कार्तिक व्रत फल १२. माघस्नान फल १३. जंबूद्वीप के तीर्थ सकल का माहात्म्य १४. साध्वीमती महिमा १५. नृसिंहोत्पत्ति कथन १६. देवशर्मा का आख्यान १७. गीता माहात्म्य १८. भक्ति का माहात्म्य १९. श्री भागवत माहात्म्य २०. इंद्रप्रस्थ की महिमा २१. नाना तीर्थ कथा २२. मंत्ररत्न की कथा २३. त्रिपाद विभूति का कथन २४. मत्स्यादि अवतार कथन २५. श्रीराम का शतनाम एवं तन्माहात्म्य २६. भृगु की विष्णु विभव परीक्षा ।

फलश्रुति — यह पुराण लिखाकर स्वर्णयुक्त पुराणवित् ब्राह्मण को दान करने से अथवा श्रवण करने से वैष्णवधाम की प्राप्ति होती है एवं इसकी अनुक्रमणिका श्रवण करने से समुदाय पुराण-श्रवण का फल लाभ होता है ।

तृतीय विष्णु पुराण १

आदि एवं अंत दो भाग में २३००० तैईस सहस्र श्लोक, उसमें आदि भाग ६ अंश में विभक्त । मैत्रेय-पराशर संवाद वराह कल्पोपाख्यान प्रथमभाग प्रथम अंश १. सृष्टि का आदि कारण एवं सृष्टि वर्णन २. देवादिन की उत्पत्ति ३. समुद्र मंथन ४. दक्षादि वर्णन ५. ध्रुव चरित्र ६. पृथु चरित्र ७. प्रचेता आख्यान ८. प्रह्लाद उपाख्यान ९. प्रह्लाद राज्य का पृथक् आख्यान ।

प्रथम भाग द्वितीय अंश — १. प्रियव्रत उपाख्यान २. द्रौप और वर्ष निरूपण ३. पाताल कथन ४. नरक कथन ५. सप्तस्वर्ग निरूपण ६. सूर्यादि संचार ७. भरत चरित्र ८. मुक्तिमार्ग निरूपण ९. निदाघादि ऋतु संवाद ।

१. विष्णु पुराण में २३ हजार श्लोक हैं परंतु भूलकर सुखसागर के बारहवें स्कंध में तीस हजार लिख दिया । यही नहीं वरंच चंद कवि ने भी रायसा में २३ हजार चार सौ लिख दिया । परंतु रायसा के कई एक पुस्तकों में ३३४०० और रामरत्न गीता में अस्सी हजार लिख दिया परंतु तुलसी सदाय में तैईस हजार लिखा । मेरी राय से, जिन जिन पुस्तकों में अंतर है उन सबको यहाँ लिख देता हूँ पाठकगण स्वयं विचार कर लें ।

सुखसागर में मखनलाल ने लिखा है । ब्रह्मपुराण दश हजार वो पद्म पुराण पचपन हजार वो विष्णु पुराण तीस हजार वो शिवपुराण चौबीस हजार वो श्रीमद्भागवत पुराण अठारह हजार वो नारद पुराण पच्चीस हजार वो मार्कण्डेय पुराण नौ हजार वो अग्नि पुराण पंद्रह हजार चार सौ वो लिंग पुराण ग्यारह हजार वो वाराह पुराण चौबीस हजार वो स्कंद पुराण इक्यासी हजार एक सौ वो वामन पुराण दश हजार वो कूर्म पुराण सत्रह हजार वो मत्स्य पुराण चौदह हजार वो गरुड़ पुराण उन्नीस हजार वो ब्रह्माण्ड पुराण बारह हजार श्लोक हैं ।

पृथ्वीराज रासो में लिखा है —

पदरी-ब्रह्ममन्यदेव सम वासुदेव । अष्टादस पुराण तिन कहै समेव ॥
तिन कहों नाम परिमान ब्रह्मनि । जिन सुनत सुद मव हो तन्ननि ॥
ब्रह्म पुराण दस सहस्र जुटि । जिहि पढत सुनत तन तप्य छुटि ॥
पंचास पंचह हज्जार गनि । पद्म पुराण तिन कहयौ ब्रह्मनि ॥
तैईस सहस्र से चारि जानि । विष्णु पुराण विष्णू समानि ॥
चौबीस सहस्र कहि शिवपुराण । तिहि पढत सुनत सम अमियपान ॥
अठार सहस्र भागवत मेव । करि पार परिष्यत सुकदेव ॥
नारद पुराण कहि पाव लाख । तहाँ मुक्ति मोद आनंद भाख ॥
मार्कंड नाम तेइस हजार । पौराण पवित्र सो दुख हजार ॥
पंद्रह हजार संख्या सपूर । अग्नि पुराण पढ़ि पाप पूर ॥
चवदे हजार से पाँच पडिह । भवषित पुराण सो पाप जडिह ॥
ब्रह्मवैव्रत सहस्र अठार । केवल गिनान कथि भक्ति सार ॥
रुद्रह हजार लिंगह पुराण । आनन्द अर्थ आगम गुराण ॥
चौबीस सहस्र वाराह भक्ति । पौरख पुराण तिन अमित सक्ति ॥
हजार इक्यासी कहि विवेक । स्कंद पुराण मव भक्ति एक ॥
इग्यारह सहस्र बावन सु अछ । पौराण सुनत सुधि अग पछ ॥
सत्रह हजार कूर्म पुराण । भाषा विनोद प्राक्रम गुराण ॥
विद्या हजार मित मछ देव । विधि संख उदरे सेव मेव ॥
उनईस सहस्र गरुडह पुराण । श्रोतान वक्त भक्ति डरान ॥
ब्रह्माण्ड पुराण बारह सहस्र । करि व्यास भक्ति प्रभु कंस नंस ॥
पंद्रह हजार अरु च्यारि लाख । सम ब्रह्म व्यास कहि चंद भाख ॥

प्रथम भाग तृतीय अंश — १. मन्वन्तर कथा २. वेदव्यास अवतार ३. नरक उद्धार और कर्म ४. सगर एवं औष सेवाद में सर्व धर्म निरूपण ५. वर्णाश्रम निरूपण ६. श्राद्ध कल्प ७. सदाचार कथन ८. मायामोह की कथा ।

प्रथम भाग चतुर्थ अंश — १. सूर्यवंश कथा २. सोमवंश कथा ।

प्रथम भाग पंचम अंश — १. नाना राजा लोगों की कथा २. श्री कृष्णावतार प्रश्न ३. गोकुल कथा ४. श्रीकृष्ण वाल्य लीला पूतनादि वध ५. कौमार अधासुरादि वध ६. कैशोर कंस वधादि मथुरा लीला ७. यौवन द्वारावती लीला दैत्य वध एवं विवाह ८. भूभार हरण ९. अष्टावक्र उपाख्यान ।

तुलसी शब्दार्थ में लिखा है । अष्टादश पुराण —

ब्रह्म ब्रह्मांड बावन सरस, ब्रह्मवैवर्त सुजान ।
मार्कण्ड अस भविष्य ये, राजस कहै पुरान ॥१॥
नारद विष्णु बराह अरु, गरुड़ पद्म सुखसार ।
भगवत रूपी भागवत, ये सात्विक निधार ॥२॥
मीन कूर्म अरु लिंग शिव, स्कंधरु अग्नि विचार ।
तामस सिव के अंग ए, सुनतहि मिटै छमार ॥३॥
बावन ब्रह्म दस दस सहस, द्वादस है ब्रह्मांड ।
ब्रह्म वैवर्त दस सहस पुनि, पंचपन पद्म अखण्ड ॥४॥
पन्द्रह सहस सुचारि सत, मार्कण्डे सु पुरान ।
साढ़े चौदह भविष्य है, तेइस विष्णु बखान ॥५॥
पंचविंस नारद कहत, सूकर चौबिस ज्ञान ।
उनइस गरुड़ बखानिय, अठारह भगवत मान ॥६॥
मत्स्य सु चौदह सहस है, कूर्म सत्रह होइ ।
लिंग इकादस कहत है, चौबिस रुद्र जु सोइ ॥७॥
पावक पंद्रह सहस पुनि, चारि सैकर आन ।
स्कन्ध इक्यासी सहस अरु, इकसत करत बखान ॥८॥
तीन लाख अष्टानवे, सहस वेद सत आद ।
सब पुरान श्लोक की, कही व्यास मर्याद ॥९॥
उपपुराण नाम — सनतकुमारहि जान पुनि, नरसिंह अस्कन्ध ।
दुर्वासा आश्चर्य गनि, नारद कपिल प्रबन्ध ॥१०॥
मानव अरु ब्रह्मण्ड कहि, भार्गव गरुड़ बखान ।
माहेस्वर पुनि कालिका, सांवरु सूर्य पुनार ॥११॥
विष्णुपुराण परासरी पुनि, संचय सर्वार्थ ।
देवि भागवत मिलि भये, अष्टादस सब सार्थ ॥१२॥
श्री भागवत के १२वें स्कंध के १३वें अध्याय में लिखा है ।

ब्राह्मं दशसहस्राणिपादमपंचोनषष्टि च श्रीवैष्णवंत्रयोविंशच्चतुर्विंशति सेवकम् ॥
दशाष्टौ श्री भागवतं नारदपंचविंशति मारकण्डेयनववाहनंतुदशपंच चतुः शतम् ॥५॥
चतुर्दशभविष्यस्यातथापंचशतानि च दशाष्टौब्रह्मवैवर्तलिंगमेकादशैवतु ॥६॥
चतुर्विंशतिवाराहमेकाशीति सहस्रकम् स्कादंशतंतथाचैकवार्मनदश कीर्तितम् ॥७॥
कौर्मसप्तदशाख्यातमात्स्यंतुचतुर्दश एकोनविंशत्सौवर्णे ब्रह्माडद्वादशैवतु ॥८॥
एवंपुराणसंदेहश्चतुर्लक्षउदाहृतः तत्राष्टदशसाहस्रं श्री भागवतमिष्टते ॥९॥

पुराणों के नामों में भी कई एक लोगों ने पृथक् पृथक् लिखा है । यथा शब्द कोष में लिखा है — पुराण ।
(पुरा पुराना; पुर आगे जाना — अर्थात् जिसमें पुराने समय की बातें हों, अथवा जो पुराने समय में बने हों)
पुराण वे ग्रंथ जिनमें से बहुतों को व्यास जी ने बनाए अथवा इकट्ठे किये । पुराण सब पद्य में लिखे गए हैं और

प्रथम भाग पष्ट अंश — १. कलिजान चरित्र २. चतुर्विध लय कथा ३. ब्रह्मज्ञान कथा ४. कैशिध्वज कर्तृक खाण्डिक्य निरूपण ।

द्वितीय भाग — सूत्र-शौनक संवाद — १. विष्णु धर्म कथन २. नाना धर्म कथन ३. पुण्य व्रत नियम एवं यम कथन ४. धर्म शास्त्र ५. अर्थ शास्त्र ६. वेदांत शास्त्र ७. ज्योतिः शास्त्र ८. वंश आख्यान ९. स्तव कथन १०. मनु सकल की कथा ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर आषाढ़ मास में धृत धेनु के साथ पौराणिक ब्राह्मण को दान करने से सूर्य के रथ पर आरोहण करके विष्णु धाम में गमन एवं भक्ति युक्त पाठ किंवा श्रवण करने से विष्णु लोक में वास औ दिव्य भोग प्राप्ति होती है इसकी अनुक्रमणिका पाठ वा श्रवण करने से समुदाय पुराण श्रवण फल होता है ।

चतुर्थ वायुपुराण

पूर्व और उत्तर दोखंड २४००० चौबीस सहस्र श्लोक वायुने श्वेत कल्प प्रसंग से सकल धर्म कहा है ।

पूर्व भाग — १. स्वर्गादि लक्षण विस्तार कथन २. सकल मन्वन्तर के राजगण का वंश कथन ३. गयासुर वध ४. मास गणों की महिमा एवं माघ मास की विशेष महिमा ५. दान धर्म एवं राज धर्म विस्तार कथन ६. भूचर, पातालचर, दिक्चर एवं आकाशचर विवरण ७. व्रत विवरण ।

उत्तर भाग १. नर्मदा तीर्थ कथन २. शिव संहिता कथन ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर गुड़ धेनु के साथ गृहस्थ ब्राह्मण को श्रावण मास में दान करने से चतुर्विंश इंद्र परिमित काल रुद्रलोक में वास नियम एवं हविष्य से पुराण श्रवण करने से वा श्रवण कराने से रुद्र तुल्यता प्राप्ति । पुराण की अनुक्रमणिका सुनने से समुदाय पुराण श्रवण फल प्राप्त होता है ।

पंचम श्रीभागवत

द्वादशस्कंध १८००० अठारह सहस्र श्लोक सारस्वत कल्पीय कथा ।

प्रथमस्कंध — १. सूत और ऋषियों का मिलन २. व्यासदेव का पुण्य चरित्र ३. पांडव का चरित्र ४. परीक्षित का उपाख्यान ।

द्वितीयस्कंध — १. परीक्षित शुक संवाद से सृष्टिद्वयनिरूपण २. ब्रह्मा नारद संवाद से अवतार कथन ३. पुराण लक्षण ४. सृष्टि प्रकरण कथन ।

तृतीय स्कंध — १. विदुर चरित्र एवं मैत्रेय मिलन २. ब्रह्मा सृष्टि प्रकरण ३. कपिल सांख्य कथन ।

चतुर्थ स्कंध — १. सती चरित्र २. भ्रुव चरित्र ३. पृथुचरित्र ४. प्राचीनवर्हि आख्यान ।

पंचम स्कंध — १. प्रियव्रतचरित्र एवं उनका वंश कथन २. ब्रह्मांडान्तर्गत लोक सकल का वृत्तांत ३.

उनको हिंदू पवित्र मानते हैं । हर एक पुराण में विशेष करके इन पाँच बातों का वर्णन है । जैसे — सर्गश्च प्रति सर्गश्च वंशोमनवन्तराणि च । वंशानु चरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम् ॥

अर्थात् १ संसार की उत्पत्ति; २ प्रलय और प्रलय के पीछे फिर संसार की उत्पत्ति; ३ देवता और शूरवीरों की वंशावली ४ मनुष्यों का राज और ५ उनके वंश के लोगों का व्यवहार और चलन । पुराण अठारह हैं १ ब्रह्मा पुराण २ पद्म पुराण ३ ब्रह्मांड पुराण ४ अग्नि पुराण ५ विष्णु पुराण ६ गरुड़ पुराण ७ ब्रह्मवैवर्त पुराण ८ शिव पुराण ९ लिंग पुराण १० नारद पुराण ११ स्कंद पुराण १२ मार्कंडेय पुराण १३ भविष्यत् पुराण १४ मत्स्य पुराण १५ वाराह पुराण १६ कूर्म पुराण १७ वामन पुराण, श्रीमद्भागवत पुराण । इन सब पुराणों में चार लाख श्लोक गिने गए हैं और अठारह उपपुराण भी हैं । पुराणों पुराना; पहले का; सबसे पहला ।

संस्कृत कोष में लिखा है — पुराण पुं० पण अर्थात् व्यवहार दांव मुख्य धन द्यूतव्यवहार अर्थात् जुए का खेल विष्णु चिरंजीवी दीर्घायुः प्राण जीव के बनाए हुए अठारह पुराण तथा च प्रमाणम् । श्लोकमद्वयं द्वयं चैव त्रयं च वचतुष्टयम् । अनापलिङ्गकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक् ।। मार्कंडेय पुराण १ मत्स्य पुराण २ भविष्योत्तर पुराण ३ भागवत पुराण ४ ब्रह्मांड पुराण ५ ब्रह्मवैवर्त पुराण ६ ब्रह्मोत्तर पुराण ७ वाराह पुराण ८ वामन पुराण ९ वायुपुराण १० विष्णु पुराण ११ अग्नि पुराण १२ नारद पुराण १३ पद्मपुराण १४ लिंग पुराण १५ गरुड़ पुराण १६ कूर्मपुराण १७ स्कंद पुराण १८

नरक स्थिति कथन ।

षष्ठ स्कंध — १. अजामिल चरित्र २. दक्ष सृष्टि निरूपण ३. वृत्रासुर आख्यान ४. मरुत जन्म कथन ।

सप्तम स्कंध — १. प्रह्लाद चरित्र २. वर्णाश्रम निरूपण ३. वासना कर्म इत्यादि कीर्तन ।

अष्टम स्कंध — १. गजेन्द्र गोक्षण २. मन्वन्तर निरूपण ३. समुद्रमंथन ४. बलि वैभव एवं बधन ५. मत्स्यावतार चरित्र ।

नवम स्कंध — १. सूर्यवंश कथन २. रामायण ३. सोमवंश निरूपण ।

दशमस्कंध — १. श्री कृष्ण बाल चरित्र २. कौमार चरित्र ३. ब्रज स्थिति ४. कैशोर लीला ५. मथुरावास ६. यौवन ७ द्वारकास्थिति ८. भूभार-हरण ।

एकादश स्कंध — १. वसुदेव-नारद संवाद २. यदु-दत्तात्रेय संवाद ३. श्रीकृष्ण-उद्वय संवाद ४. यादव मुक्ति कथन ।

द्वादश स्कंध — १. भविष्य एवं कलि कथा २. परीक्षित मोक्ष ३. वेदशाखा कथन ४. मार्कण्डेय तपस्या ५. सौरी विभूति कथन ६. पुराण संख्या कथन ।

फलश्रुति — यह पुराण हेम सिंहासनस्थ करके भादो पूर्णिमा को प्रीति पूर्वक ब्राह्मण को वस्त्र एवं स्वर्ण सहित दान करने से भगवद्भक्ति लाभ होता है और श्रवण करने से अथवा श्रवण कराने से भक्ति और मुक्ति लाभ होता है और इसकी अनुक्रमणिका श्रवण करने किंवा कराने से संपूर्ण भागवत श्रवण फल लभ्य होता है ।

षष्ठ नारद पुराण

पूर्व एवं उत्तर दो भाग में २५००० पञ्चीस सहस्र श्लोक । पूर्व भाग चार पद में विभक्त पूर्व भाग का प्रथम पाद — सूत-शौनक संवाद — १. सृष्टि संक्षेप वर्णन एवं नाना धर्म कथा ।

पूर्व भाग द्वितीय पाद — १. मोक्ष धर्म कथन मोक्षोपाय निरूपण २. वेदांग कथन ३. सनन्दन कर्तृक नारद प्रति शुकोत्पत्ति कथन ४. महातंत्र से पशुपाश विमोचन ५. मंत्रशोधन ६. दीक्षा ७. मंत्रोद्धार पूजा प्रयोग कवच विष्णु सहस्रनाम एवं स्तोत्र ८. गणेश सूर्य विष्णु शिव एवं शक्ति का क्रम से उपाख्यान कथन ।

पूर्व भाग तृतीय पाद — १. नारद और सनत्कुमार संवाद २. पुराण लक्षण प्रमाण एवं दान काल कथन ३. चैत्रादि मास की प्रतिपदादि तिथि व्रत विस्तार कथन ।

पूर्वभाग चतुर्थ पाद — १. सनातन कर्तृक नारद प्रति बृहदाख्यान कथन ।

उत्तर भाग — १. एकादशी व्रत विषयक प्रश्न २. वशिष्ठ एवं मांधाता का संवाद ३. रुक्मांगद की कथा ४. मोहिनी की उत्पत्ति एवं संवाद ५. मोहिनी प्रति वसु का शाप एवं उद्धार ६. गंगा की पुण्य कथा ७. गया यात्रा ८. काशी माहात्म्य ९. पुरुषोत्तम वर्णन १०. क्षेत्र यात्रा एवं अन्यान्य बहु कथा ११. प्रयाग माहात्म्य १२. कुरुक्षेत्र माहात्म्य १३. हरिद्वार माहात्म्य १४. कामोदा आख्यान १५. बदरी तीर्थ माहात्म्य १६. कामाख्या माहात्म्य १७. प्रभास माहात्म्य १८. पुराण आख्यान १९. गौतमाख्यान २०. वेदपादस्तव २१. गोकर्ण क्षेत्र माहात्म्य २२. लक्षण आख्यान २३. सेतु माहात्म्य २४. नर्मदा माहात्म्य २५. अवंती माहात्म्य २६. मथुरा माहात्म्य २७. बृन्दावन माहात्म्य २८. ब्रह्मा के निकट वसु का गमन २९. मोहिनी चरित्र कथन ।

फल श्रुति — यह पुराण श्रवण करने किंवा श्रवण कराने से ब्रह्म धाम प्राप्ति होती है और अनुक्रमणिका श्रवण करने किंवा श्रवण कराने से स्वर्ग लाभ होता है और यह पुराण आश्विनी पूर्णिमा को सप्त धेनु युक्त उत्तम ब्राह्मण को दान करने से मोक्ष प्राप्ति होती है ।

सप्तम मार्कण्डेय पुराण

१००० नौ सहस्र श्लोक

१. मार्कण्डेय कर्तृक जैमिनि का पक्षियों के निकट प्रेरण २. धर्म पक्षि सकल का जन्म निरूपण ३. इनकी पूर्व जन्म कथा ४. सूर्य क्रिया कथन ५. बलदेव तीर्थ यात्रा ६. द्रौपदेय कथा ७. हरिश्चन्द्रपुण्य कथा ८. आदीष्ण

नामक युद्ध कथा ९. पिता पुत्र कथा १०. दत्तात्रेय कथा ११. हैहय चरित्र एवं माहात्म्य १२. मदालसा कथा १३. अलर्क चरित्र १४. षष्ठी संकीर्तन १५. नवप्रकार पुण्य कथा १६. कतिपय अंतकाल निर्देश १७. पक्षिसृष्टि निरूपण १८. रुद्रादि सृष्टि १९. द्वीप एवं वर्ष कथा २०. मनु कथा और अष्टम मन्वन्तर में देवी माहात्म्य कथा २१. प्रणदोत्पत्ति कथा वेद एवं तेज जन्म २२. मार्कण्डेय जन्म और माहात्म्य २३. वैवस्वत चरित्र सहित वत्समीर चरित्र २४. खनित्र पुण्य कथा २५. अवक्षत चरित्र २६. किमिच्छन्नत २७. अविनाश चरित्र २८. इक्ष्वाकु चरित्र २९. तुलसी चरित्र ३०. रामचंद्र कथा ३१. कुशवंश आख्यान ३२. सोमवंश की कथा ३३. नहुष की अद्भुत कथा ३४. ययाति चरित्र ३५. यदुवंश कीर्तन ३६. श्रीकृष्ण बाल चरित्र ३७. मथुरा में श्रीकृष्ण चरित्र ३८. द्वारका चरित्र ३९. सकल अवतार कथा ४०. सांख्ययोग उद्देश ४१. प्रपंच एवं असत्य कीर्तन ४२. मार्कण्डेय चरित्र ४३. पुराण श्रवण फल ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर सुवर्ण संयुक्त ब्राह्मण को दान करने से ब्रह्मपद मिलता है एवं भक्ति पूर्वक श्रवण करने किंवा श्रवण कराने से मार्कण्डेयतुल्य गति प्राप्ति और वाञ्छित फल लाभ होता है ।

अष्टम अग्निपुराण

१५००० पंद्रह सहस्र श्लोक ईशानकल्प कथा वशिष्ठ नल उपाख्यान ।

१. पुराण प्रश्न २. सर्व अवतार कथा ३. सृष्टि प्रकरण कथन ४. विष्णु पूजादि विधि ५. अग्नि पूजा मंत्र और मुद्रादि लक्षण ६. दीक्षा विधान ७. अभिषेक कथन ८. मंडल करण लक्षण ९. कुशमार्जन १०. पावित्र्यारोपण विधि ११. देवालयकरण विधि १२. शालग्राम पूजा एवं लक्षण कथन १३. प्रतिष्ठा प्रकरण १४. न्यासान्ति विधि १५. विनायक दीक्षा विधि १६. अन्यान्य कथन १७. देवप्रतिष्ठा विधि १८. ब्रह्मांड निरूपण १९. गंगादि तीर्थ माहात्म्य २०. द्वीप वर्णन २१. उर्ध्व एवं अधोलोक रचना २२. ज्योतिषचक्र निरूपण २३. ज्योतिष शास्त्र वर्णन २४. युद्ध जयकरण शास्त्र २५. षट्कर्म कथा २६. मंत्रयंत्र औषध प्रकरण २७. कुम्भिकादि कथन २८. छः प्रकार के न्यास की विधि २९. कोटि होम विधान एवं विस्तार निरूपण ३०. ब्रह्मचर्य धर्म ३१. आदिकल्प विधि ३२. ग्रहयज्ञ ३३. वेदोक्त एवं स्मृत्युक्त कर्म ३४. प्रायश्चित्त कथन ३५. तिथि व्रतादि कथन ३६. बार व्रत ३७. नक्षत्र व्रत ३८. मास व्रत ३९. दीपदान विधि ४०. नूतन व्यूहाचन प्रकरण ४१. नरक निरूपण ४२. व्रत एवं दान निरूपण ४३. नाडी चक्रवर्णन ४४. संध्या विधि ४५. गायत्री अर्थ ४६. शिवलिंग स्तोत्र ४७. शकुन्यादि शुभाशुभ दृष्टि निरूपण ४८. मंडलादि निर्देश ४९. रणदीक्षा विधि ५०. श्री रामोक्तनीति ५१. रत्नलक्षण ५२. धनुर्विद्या ५३. व्यवहार निरूपण ५४. देवासुर विवर्धन आख्यान ५५. आयुर्वेद निरूपण ५६. गजादि की रोग चिकित्सा एवं आरोग्य कथन ५७. गो अश्व्यादि की चिकित्सा ५८. नाना पूजा प्रकरण ५९. विविध शांति ६०. छंद शास्त्र ६१. साहित्य शास्त्र ६२. एकार्णवादि शास्त्र समाख्यान ६३. प्रसिद्ध शिष्टानुशासन ६४. धनागार एवं सृष्ट्यादि वर्ग ६५. प्रलय लक्षण ६६. शारीरिक निरूपण ६७. नरक वर्णन ६८. योग शास्त्र ६९. ब्रह्मज्ञान ७०. पुराण श्रवण माहात्म्य ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर अग्रहायण मांस में सुवर्ण कमल सहित अथवा तिल धेनु सहित पुराणवित्त ब्राह्मण को दान करने से स्वर्ग लाभ होता है एवं यह पुराण श्रद्धा करके श्रवण करने किंवा श्रवण कराने से सकल पाप क्षय होता है । और भक्ति युक्त होकर इस पुराण अनुक्रमणिका का पाठ करने से सकल पुराण का फल लभ्य होता है ।

नवम भविष्य पुराण

पंच पर्व १४००० चौदह सहस्र श्लोक । अघोरकल्प वृत्तान्त । नाना आश्चर्य कथा । प्रथम पर्व ब्राह्मण पर्व और द्वितीय तृतीय चतुर्थ एवं पंचम पर्व एकत्र हैं ।

प्रथम पर्व सूत शौनक संवाद — १. पुराण प्रश्न २. नाना आख्यान युक्त सूर्य चरित्र वर्णन ३. सृष्ट्यादि लक्षण ४. पुस्तक लेखक एवं लिखने का लक्षण ५. सकल प्रकार संस्थान लक्षण ६. प्रतिपदादि तिथि एवं सप्त ७. विष्णु विषय अष्टम्यादि शेष कथा ८. शैव विषय इच्छाधीन भिन्न भिन्न कल्प कथन ९

सौर विषय शेष कथा १०. नाना आख्यान युक्त प्रतिसृष्टि नाम वर्णन ११. पुराण उपसंहार एवं पंच पर्व कथन । इस पर्व में धर्म विषय में ब्रह्मा की महिमा का आधिक्य कथन है ।

द्वितीय पर्व — भोग विषय में शिवमाहात्म्य कथन ।

तृतीय पर्व — मोक्ष विषय में विष्णु का माहात्म्य कथन ।

चतुर्थ विषय — चतुर्वर्ग विषय में सूर्य माहात्म्य कथन ।

पंचम पर्व — सर्व कथा युक्त प्रति सर्ग वर्णन । इस पुराण में अद्वितीय ब्रह्म का गुण तारतम्य रूप भेद से सकल देव की समता वर्णित है ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर पोषी पौर्णिमा को गुड़ धेनु स्वर्ण वस्त्र सहित पुराण पाठक ब्राह्मण को दान करने से एवं श्रवण किंवा पाठ करने से सकल घोर पाप से विमुक्ति एवं ब्रह्मपद प्राप्ति होती है और पुराण की अनुक्रमणिका पाठ किंवा श्रवण करने से भक्ति मुक्ति मिलती है ।

दशम ब्रह्मवैवर्तपुराण

चार खंड १८००० अठारह सहस्र श्लोक । १. ब्रह्म खंड २. प्रकृति खंड ३. गणेश खंड ४. श्रीकृष्णजन्म खंड ।

सूत-ऋषि संवाद प्रथम ब्रह्मखंड — १. सृष्टि प्रकरण २. नारद और ब्रह्मा विवाद एवं शापान्त ३. नारद का शिवलोक गमन एवं गान शिक्षा ४. शिवादेश से मारीचि के सहित नारद का सावर्णि प्रबोधार्थ सिद्धाश्रम में गमन ।

द्वितीय प्रकृति खंड — १. सावर्णि-नारद संवाद २. श्रीकृष्ण माहात्म्य युक्त नानाख्यान ३. प्रकृति की अंश और कलाओं का माहात्म्य वर्णन ४. उनका गंगादि विस्तार और माहात्म्य वर्णन ।

तृतीय गणेशखंड — १. गणेशजन्म प्रश्न २. पुण्यव्रत कथन ३. पार्वती कार्तिक एवं गणेश जन्म ४. कार्तवीर्य चरित्र ५. परशुराम विवरण ६. जमदग्नि एवं गणेश का आश्चर्य विवाद ।

चतुर्थ श्रीकृष्ण जन्म खंड — १. श्रीकृष्ण जन्म प्रश्न एवं जन्मकथा २. गोकुल गमन ३. पूतनादि वध ४. बाल्य-कौमार विविध लीला वर्णन ५. शरत्काल में गोपी सहित रास क्रीड़ा ६. श्री राधिका सहित निर्जन क्रीड़ा विस्तार वर्णन ७. अक्रूर सहित हरि मथुरा गमन ८. कंस वध ९. द्विज संस्कार १०. सांदिपनी गुरु निकट विद्योपार्जन ११. कालयवन वध १२. द्वारिका गमन १३. नरकादि वध वर्णन ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर माघ मास में धेनु सहित ब्राह्मण को दान करने से ब्रह्मलोक प्राप्ति होती है एवं अज्ञान बंधन से मुक्ति होती है और पाठ किंवा श्रवण करने से संसार बंधन क्षय होता है तथा इसी पुराण की अनुक्रमणिका पाठ करने से श्रीकृष्ण के प्रसाद से वांछित फल लाभ होता है ।

एकादश लिंग पुराण

पूर्व एवं उत्तर दो भाग ११००० ग्यारह सहस्र श्लोक । शिव माहात्म्य प्रकाशक अग्नि कल्प कथा ।

पूर्व भाग — १. पुराणांत में सृष्टि विषयक संक्षेप प्रश्न २. योगाख्यान ३. कल्पाख्यान ४. लिंगउद्भव एवं पूजा ५. सनत्कुमार और शैलादि का संवाद ६. दधीचि चरित्र ७. युग धर्म निरूपण ८. कोष कथन ९. सूर्य वंश एवं सोम वंश वर्णन १०. सृष्टि वर्णन एवं त्रिपुर आख्यान ११. लिंग प्रतिष्ठा कथन १२. पशुपाश विमोक्षण १३. शिव व्रत १४. सदाचार निरूपण १५. प्रायश्चित्त कथन १६. श्रीशैल वर्णन १७. अंधक आख्यान १८. वाराह चरित्र १९. नृसिंह चरित्र २०. जलधरवध २१. शिव सहस्रनाम २२. दक्षयज्ञ विनाश २३. कामदेव दहन २४. गिरिजा सह शिव विवाह २५. विनायक आख्यान २६. शिवनृत्य २७. उपमन्यु कथा ।

उत्तर भाग — १. विष्णु माहात्म्य २. अंबरीष कथा ३. सनत्कुमारनन्दि संवाद ४. शिव माहात्म्य ५. स्नान योगादिक वर्णन ६. सूर्य पूजा विधि ७. शिव पूजा ८. बहुविध दानादि विधि ९. श्राद्धप्रकरण १०. मूर्ति प्रतिष्ठा प्रकरण ११. घोरतम कथा १२. ब्रजेश्वरी महाविद्या गायत्री महिमा वर्णन १३. त्र्यम्बक माहात्म्य १४. पुराण श्रवण माहात्म्य ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखाकर फाल्गुनी पूर्णिमा को तिल धेनु सहित भक्ति पूर्वक ब्राह्मण को दान करने से जरा मुरण वर्जित हो कर शिव सायुज्य प्राप्ति होती है और पुराण पाठ वा श्रवण करने से नाना भोग करके अंत में शिव लोक में गमन होता है और अनुक्रमणिका श्रवण किंवा पाठ करने से श्रोता एवं पाठक उभय शिवभक्त होते हैं एवं बहुकाल स्वर्ग भोग करते हैं ।

द्वादश वाराह पुराण

पूर्व एवं उत्तर भाग २४००० चौबीस सहस्र श्लोक विष्णु माहात्म्य वर्णन भूमि-वराह संवाद मानवकल्प प्रसंग ।

पूर्व भाग — १. आदिकृत वृत्तांत रंभा चरित्र कथन २. दुर्जय प्रति श्राद्ध कल्प कथा ३. महातपस्या आख्यान ४. गौरी उत्पत्ति कथन ५. विनायक कथा ६. नाग कथा ७. सेनानी एवं आदित्य कथा ८. देवगण कथा ९. कुबेरगण सकल कथा १०. वृष कथा ११. सत्यतप कथा १२. व्रत आख्यान १३. अगस्त्य गीता १४. रुद्रगीता १५. महिषासुर वध में ब्रह्मा विष्णु एवं शिव की शक्ति एवं माहात्म्य कथन १६. पर्वाध्याय १७. श्वेत उपाख्यान १८. गोदान कथा १९. भगवद्धर्म २०. व्रत एवं तीर्थ कथा २१. अत्रि अपराध कथा २२. शारीरिक प्रयश्चित २३. सकल तीर्थ महिमा २४. मथुरा माहात्म्य विशेष वर्णन २५. ऋषि पुत्र प्रसंगाधीन यमलोक वर्णन २६. कर्मविपाक २७. विष्णुव्रत निरूपण २८. गोकर्ण माहात्म्य ।

उत्तर भाग — १. पुलस्त्य कुरुराज संवाद सकल तीर्थ माहात्म्य पृथक् पृथक् विस्तारित रूप वर्णन २. अशेष धर्माख्यान ३. पौष्कर पुण्य कथा ।

फल श्रुति — यह पुस्तक लिख कर चैत्री पूर्णिमा को कांचन गरुड़ एवं तिल धेनु समन्वित भक्ति पूर्वक ब्राह्मण को दान करने से वैष्णव धाम प्राप्ति एवं देवता और ऋषि गण द्वारा धंदित होता है और पुराण पाठ करने किंवा श्रवण करने से संस्कार नाशिनी विष्णु भक्ति लाभ्य होती है ।

त्रयोदश स्कंदपुराण

सप्त खंड ८१००० इक्यासी सहस्र श्लोक । १. माहेश्वर खंड २. वैष्णव खंड ३. ब्रह्म खंड ४. काशी खंड ५. अवंती खंड ६. नागर खंड ७. प्रभास खंड । इस पुराण में कार्तिकेय ने माहेश्वर धर्म कहा है ।

प्रथम माहेश्वर खंड, प्रायः १२००० वाराह सहस्र श्लोक — १. केदार माहात्म्य २. दक्ष यज्ञ कथा ३. शिवलिंग अर्चन फल ४. समुद्र मंथन ५. देवेंद्र चरित्र ६. पार्वती उपाख्यान एवं विवाह ७. कार्तिकेय उत्पत्ति ८. तारकासुर युद्ध ९. पाशुपत आख्यान १०. चंडाख्यान ११. दूत प्रवर्तन १२. नारद समागम १३. कुमार माहात्म्य १४. पंचतीर्थ कथा १५. धर्म नृपाख्यान १६. नदी एवं सागर कीर्तन १७. इंद्रद्युम्न कथा १८. नाड़ी बंध कथा १९. पृथ्वी प्रादुर्भाव २०. दमनक कथा २१. महीसागर संयोग २२. कुमार कथा २३. नाना आख्यान युक्त तारक युद्ध २४. तारकवध २५. पंचलिंग निवेश २६. द्वीपाख्यान २७. उर्दलोक स्थिति २८. ब्रह्मांड स्थिति एवं परिणाम २९. वक्रशेष कथा ३०. महाकाल समुद्रभव एवं अद्भुत कथा ३१. वासुदेव माहात्म्य ३२. करितीर्थ वर्णन ३३. नाना तीर्थ कथा ३४. गुप्तक्षेत्र कथा ३५. पांडवों की पुण्य कथा ३६. महाविद्या प्रसाधन ३७. तीर्थयात्रा समाप्ति ३८. अरुणाचल माहात्म्य ३९. सनक एवं ब्रह्मा की कथा ४०. गौरी तपस्या एवं तीर्थ निरूपण ४१. महिषासुर के पुत्र का आख्यान एवं उसका अद्भुत वध ४२. शोनाचल में भगवती का नित्य अवस्थान कथन ।

द्वितीय वैष्णव खंड — १. भूमि वराह आख्यान रोचक क्रुद्ध माहात्म्य २. कमला कथा ३. श्री निवास स्थिति ४. कुलाल आख्यान ५. सुवर्ण मुख कथा ६. नानाख्यान युक्त भारद्वाज कथा १०. अंबरीष कथा ११. इंद्रद्युम्न आख्यान १२. विद्युनति कथा १३. जैमिनी कथा १४. नारद कथा १५. नीलकंठ आख्यान १६. नृसिंह वर्णन १७. राजा की अश्वमेध कथा एवं ब्रह्मलोक गति १८. रथयात्रा विधि एवं जन्म और स्नान यात्रा विधि १९. दक्षिणामूर्ति आख्यान २०. गुंडिका आख्यान २१. रथ रक्षा विधान २२. शयनोत्सव वर्णन २३. मंत्रोक्त श्वेतोपाख्यान २४. शक्रोत्सव २५. दोलोत्सव २६. भगवान का सांवत्सरिक व्रत कथन २७. विष्णु पूजा २८. मोक्ष साधन मंत्रोक्त नाना योग निरूपण २९. दशावतार कथा ३०. स्नानादि कीर्तन ३१. बदरिका माहात्म्य

३२. वैनतेय शिला जात अग्न्यादि तीर्थ माहात्म्य ३३. भगवान के वास का कारण कपालमोचन तीर्थ कथा ३४. पंचधारा तीर्थ कथा ३५. मेरु संस्थापन ३६. कार्तिक माहात्म्य में मंगलसा माहात्म्य ३७. धूम्रकोश आख्यान ३८. कार्तिक मास का दिन कृत्य ३९. भीष्म पंचक व्रत आख्यान ४०. तीर्थ माहात्म्य प्रसंग से स्नान विधान ४१. पुत्रादि कीर्तन एवं मालाधार कथा और पंचामृत स्नान एवं घंटा वादनादि फल ४२. नाना पुण्य द्वारा अर्चन फल ४३. तुलसीदल से अर्चन फल ४४. नैवेद्य माहात्म्य ४५. हरिवास वर्णन ४६. एकादशी एवं जागरण माहात्म्य ४७. मत्स्योत्सव विधान ४८. नाम माहात्म्य ४९. ध्यानादिपुण्य कथा ५०. मथुरा तीर्थ माहात्म्य ५१. द्वादश वन माहात्म्य ५२. श्री मद्भागवत माहात्म्य ५३. वज्र शांडिल्य संवाद ५४. अंतर्लीला कथन और श्रीनाथ केशवदेवादि विग्रह स्थापन ५५. माघ में स्नान दान जप माहात्म्य और नानाख्यान ५६. वैशाख माहात्म्य ५७. श्रय्या दान फल ५८. जल दान फल ५९. कामाख्या वर्णन ६०. श्रुतदेव चरित्र ६१. व्याघ्र उपाख्यान ६२. अक्षय तृतीयादि विशेष पुण्य कीर्तन ६३. अयोध्या माहात्म्य चक्र ब्रह्मतीर्थ प्रसंग ऋषि प्रति विमोक्ष कथा आधार सहस्र एवं स्वर्ग द्वार चंद्र हरि और धर्म हरि वर्णन ६४. स्वर्णवृष्टि आख्यान ६५. तिलद्वार सहित सरयू मिलन कथा ६६. सीताकुंड कथा ६७. गुप्त हरि कथा ६८. सरयू और घर्घरा आख्यान ६९. गो प्रभाव ७०. दुग्धोदकथा ७१. गुरु कुंडादि पंचतीर्थ कथा ७२. घोषकादि त्रयोदश तीर्थ वर्णन ७३. गया कूप माहात्म्य ७४. मांडव्य आश्रम और पूर्व तीर्थ वर्णन ७५. अजितादि मानसादि असंख्य तीर्थ वर्णन ।

तृतीय ब्रह्मखंड — १. सेतु माहात्म्य प्रसंग से स्नान एवं दर्शनजन्य फलकथन २. गालव तपस्या ३. राक्षसाख्यान ४. चक्रतीर्थ माहात्म्य ५. देवी पतन कथा ६. वेतालतीर्थ माहात्म्य ७. पाप नाशादि तीर्थ कथन ८. मंगलादि तीर्थ माहात्म्य ९. ब्रह्मकुंड वर्णन १०. हनुमत कुंड महिमा ११. अगस्त्य तीर्थ फल १२. रामतीर्थ कथन १३. लक्ष्मीतीर्थ निरूपण १४. शंखादि तीर्थ महिमा १५. साध्यमृत तीर्थ महिमा १६. धनुष्कोट्यादि तीर्थ महिमा १७. क्षीर कुंडादि माहात्म्य १८. गायत्र्यादि तीर्थ माहात्म्य १९. रामनाम महिमा एवं तत्त्वज्ञानोपदेश २०. सेतु यात्राभिधान २१. धर्मारण्य माहात्म्य एवं ततस्थान संभूति और पुण्य कथा २२. कर्म सिद्धि आख्यान २३. ऋषिवंश २४. अप्सरा तीर्थ माहात्म्य २५. वर्ण एवं आश्रम धर्म और तत्त्व निरूपण २६. देवस्थान विभाग २७. वकुलार्क कथा २८. छत्रानंदा शांता श्री माता एवं मत्तंगिनी देवी की अवस्थिति २९. इंद्रेश्वरादि माहात्म्य ३०. द्वारकादि निरूपण ३१. लोहासुर आख्यान ३२. गंगाकूप निरूपण ३३. श्रीराम चरित्र ३४. सत्यमंदिर वर्णन ३५. जीर्णमंदिरादि उद्धार कथा ३६. शासन प्रतिपादन ३७. जाति भेद कथन ३८. स्मृति धर्म निरूपण ३९. नानाख्यान से वैष्णव धर्म निरूपण ४०. चातुर्मास्य सकल धर्म निरूपण ४१. दानव्रत महिमा ४२. तपस्या पूजा एवं सच्छत्र कथन ४३. प्रकृति आख्यान ४४. शालिग्राम निरूपण ४५. तारकासुर वध उपाय ४५. लक्ष्मी अर्चन एवं महिमा ४७. विष्णु की शाप से वृक्षत्व प्राप्ति एवं पार्वती का अनुनय ४८. महादेव का ताडवन्तुय रामनाम निरूपण ४९. हरलिंग पतन ५०. जवन कथा ५१. पार्वती जन्म और चरित्र ५२. तारक वध ५३. प्रणव ऐश्वर्य कथन ५४. तारक चरित्र ५५. दक्ष यज्ञ समाप्ति ५६. द्वादश अक्षर निरूपण ५७. ज्ञान योग आख्यान ५८. द्वादश आदित्य महिमा ५९. श्रावणादि पुण्य कथा ।

तृतीय ब्रह्म खंड उत्तर भाग — १. शिव का अद्भुत माहात्म्य २. पंचाक्षर महिमा ३. गोकर्ण महिमा ४. शिवरात्रि महिमा ५. प्रदोष व्रत कीर्तन ६. सोमवार व्रत ७. सीमंतिनी कथा ८. भद्रायु उत्पत्ति कथन ९. सदाचार १०. शिव धर्म कथा ११. भद्रायु विवाह एवं महिमा १२. भस्म माहात्म्य १३. शवराख्यान १४. उमा माहेश्वर व्रत १५. रुद्राक्ष माहात्म्य १६. रुद्राध्याय माहात्म्य श्रवणादि पुण्य कथन ।

चतुर्थ काशी खंड विध्य नारद संवाद — १. सत्य लोक प्रभाव २. अगस्त्याश्रम में देवता सकल का आगमन ३. पतिव्रता चरित्र ४. तीर्थ यात्रा प्रशंसा ५. सप्तपुरी आख्यान ६. यमपुरी निरूपण ७. शिव शर्मा की ध्रुवलोक इंद्रलोक अग्नि लोक प्राप्ति ८. अग्नि उद्भव ९. क्रव्याद वरुण संभव १०. गंधवती अलका पुरी एवं ईश्वरी का उद्भव और चंद्र मंगल बुध एवं रवि आदि लोक का उद्भव ११. सप्त ऋषि एवं ध्रुव लोक का वर्णन १२. ध्रुवलोक की पुण्य कथा १३. सत्य लोक निरूपण १४. स्कंध और अगस्त्य का अलाप १५. मणिकर्णिका का उद्भव १६. गंगा का प्रभाव एवं सहस्र नाम १७. वारानसी प्रशंसा १८. भैरव आविर्भाव १९. दंडपाणि एवं ज्ञान रवि का उद्भव २०. कलावती आख्यान २१. सदाचार निरूपण २२. ब्रह्मचारि कथा २३. स्त्री लक्षण कथन २४. कृत्याकृत्य निदेश २५. अविमुक्तेश्वर वर्णन २६. गृहस्थ एवं योगि धर्म २७. काल ज्ञान

२८. दिवोदास कथा २९. काशी वर्णन ३०. योगिचर्या लोकार्क ३१. शाष्वाक कथा ३२. चुपदार्क एवं तार्क्षी तीर्थकथा ३३. अरुणार्क का उदय ३४. दशाश्वमेध आख्यान ३५. मंदराचल से गणपति की माया प्रकाश ३६. पिशाचमोचन आख्यान ३७. गणेश प्रेषण ३८. गणपति का आगमन और माया प्रकाश ३९. पृथ्वी से माया का प्रादुर्भाव ४०. विष्णु माया का विस्तार ४१. दिवोदास विमोचन ४२. पंच नंदात्पत्ति ४३. विंदुमाधव संभव ४४. वैष्णव तीर्थ आख्यान ४५. महादेव का काशी में आगमन ४६. जैगायत्र्य के सहित महेश का आख्यान ४७. शिवक्षेत्र आख्यान ४८. कंदुकेश्वर एवं व्याघ्रेश्वर का उद्भव ४९. शैलेश्वर एवं कूर्तिवास का उद्भव ५०. देवता सकल का अधिष्ठान ५१. दुर्गासुर का पराक्रम ५२. दुर्गाविजय ५३. ओंकारेश्वर वर्णन ५४. ओंकार माहात्म्य ५५. त्रिलोचन समुद्भव ५६. केदार आख्यान ५७. धर्मेश्वर कथा ५८. वीरेश्वर आख्यान ५९. गंगा माहात्म्य कीर्तन ६०. विश्वकर्मेश्वर महिमा ६१. दक्ष यज्ञोद्भव ६२. सतीश्वर एवं अमृतेश्वर उपाख्यान ६३. पराशर भुजस्तम्भ ६४. क्षेत्र तीर्थ समूह वर्णन ६५. मुक्ति मंडप कथा ६६. विश्वेश्वर विभव ६७. यात्रा परिक्रम ।

पंचम अवंती खंड — १. महकाल यवन का आख्यान २. ब्रह्मशीर्षच्छेद ३. प्रायश्चित्त विधि ४. अग्नि उत्पत्ति एवं आगमन ५. देवदक्ष ६. नाना पाप नाशन शिव स्तोत्र ७. कपाल मोचन आख्यान एवं महाकाल वनस्थिति ८. कर्णखलेश तीर्थ आख्यान ९. अप्सरा कुंड कथा १०. स्वर्ग में रुद्रकुंड उपाख्यान ११. कुंडलवेश एवं मर्कटेश्वर तीर्थ वर्णन १२. स्वर्गद्वार चतुःसिंधु शंकरांक गंधवती एवं दशाश्वमेध कालांश तीर्थ वर्णन १३. पिशाचकादि यात्रा १४. हनुमान एवं यमेश्वर वर्णन १५. महाकालेश्वर यात्रा १६. वाल्मीकेश्वर तीर्थ १७. मेघजाख्य शुक्र तीर्थ कुशस्थली प्रदक्षिणा १८. अक्रूर मंदाकिनी कपाल चंद्रार्क वैभव करमेश लड्डुकेशादि तीर्थ वर्णन १९. मार्कंडेश्वर २०. यज्ञवापी २१. सोमेश २२. नरकांतक २३. केदारेश्वर २४. रामेश्वर २५. सौभाग्येश्वर २६. नरार्क २७. केशार्क २८. शक्ति भेद २९. स्वर्णाक्षर मुख ३०. ओंकारेश्वरादि तीर्थ वर्णन ३१. अंधक स्तुति कीर्तन ३२. कालारण्य लिंग संख्या ३३. स्वर्ण, शृंग ३४. कुशस्थली ३५. अवंत्याश्व ३६. उज्जयिनी ३७. पद्मावती ३८. कूर्मद्वती ३९. रमावती नामक तीर्थ उपाख्यान ४०. विशाला एवं प्रतिकल्प ४१. ज्वर शांतिक तीर्थ कथन ४२. शिप्रास्नानादि फल ४३. नाग कृत शिव स्तुति ४४. हिरण्याक्ष वधाख्यान ४५. सुंदरकुंड ४६. नील गंगा ४७. पुष्कर ४८. विद्यवासनी ४९. पुरुषोत्तम ५०. अविनाश ५१. अघ नाशन ५२. गोमती ५३. वामन एवं कुंड तीर्थ वर्णन ५४. विष्णु सहस्र नाम ५५. काल भैरव तीर्थ वीरेश्वर सरोवर आख्यान ५६. नाग पंचमी में नृसिंह महिमा वर्णन ५७. जयंतिका कुठारेश्वर यात्रा ५८. देवसाधक ५९. कर्कराज ६०. विघ्नेशादि सुरोहण तीर्थ विवरण ६१. रुद्रकुंडादि बहुतीर्थ निरूपण ६२. अष्टतीर्थ निरूपण ६३. रेवा माहात्म्य ६४. धर्म पुत्र का वैराग्य वशतः मार्कंडेय संगम ६५. प्रागल्य उपाख्यान ६६. अमृता कीर्तन ६७. प्रति कल्प में नर्मदा वर्णन ६८. आर्यस्तव ६९. नर्मदास्तव ७०. कालरात्रि कथा ७१. महादेव स्तुति ७२. पृथक् पृथक् कल्प की अद्भुत कथा ७३. विशल्याख्यान ७४. जालेश्वर कथा ७५. गौरीव्रत ७६. विपुल दहन कथा ७७. देहपात विधान ७८. कावेरी संगम ७९. दारुतीर्थ ब्रह्माभिन्नईश्वर कथा ८०. अग्नि ८१. रवि ८२. मेघनाद ८३. द्विदारुक ८४. देव ८५. नर्मदेश्वर ८६. कपिलाख्य ८७. करंजक ८८. कुंडलेश्वर ८९. पिप्यलाद ९०. विमलेश्वरादि तीर्थ कथन ९१. शचीहरण आख्यान ९२. मंदक वध ९३. शूलभेद उद्भव ९४. पृथक् दान धर्म कथन ९५. दीर्घ तापस आख्यान ९६. ऋष्य शृंग कथा ९७. चित्रसेन कथा ९८. काशीराज मोक्षण ९९. देवशिला आख्यान १००. शवरी चरित्र १०१. व्याधाख्यान १०२. पुष्करिण्यक १०३. तापितेश्वर १०४. शक्र १०५. करोटीक १०६. कुमारेश १०७. अगस्त्येश १०८. मातृज १०९. लोकेश ११०. धनदेश १११. मंगलेश ११२. कामज ११३. नागेश ११४. गोपार ११५. गौतम ११६. शंखचूडज ११७. नारदेश ११८. नंदिकेश ११९. वरुणेश्वर १२०. दधि स्कंद १२१. हनुमंतेश्वर १२२. रामेश्वर १२३. सोमेश १२४. पिंगलेश्वर १२५. ऋणमोक्ष १२६. कपिलेश्वर १२७. पुतिकेश्वर १२८. जलेश्वर १२९. चंडार्क १३०. यम १३१. कलहडीश १३२. नादिक १३३. नारायण १३४. कोटीश्वर १३५. व्यास १३६. प्रमासिका १३७. नागेश्वर १३८. संकर्षण १३९. मन्मथेश्वर १४०. एरंडी संगम १४१. सुवर्णशील १४२. करंज १४३. कामह १४४. मांडीर १४५. वाहिनीभव १४६. चक्र १४७. घौतपाप १४८. स्कान्द १४९. आगिरस १५०. कोटि १५१. अयोनि १५२. अंगार १५३. त्रिलोचन १५४. इंद्रेश १५५. जंबुकेश १५६. सोमेश १५७. कोहनांशक

१५८. नार्मद १५९. आर्क १६०. आग्नेय १६१. भागविश्वर १६२. ब्राह्म १६३. देव १६४. भागेश १६५. आदि वाराह १६६. रामेश १६७. सिद्धेश १६८. आहल्य १६९. कंटकेश्वर १७०. शाक्र १७१. सौम्य १७२. नान्देश १७३. तापेश १७४. रुक्मिणीभव १७५. योजनेश १७६. वराहेश १७७. द्वादशी तीर्थ १७८. शिव १७९. सिद्धेश १८०. मंगलेश्वर १८१. लिंग वराह १८२. कुंडेश १८३. श्वेतवाराह १८४. भागविश्व १८५. रवीश्वर १८६. शुक्लादि १८७. हुंकारस्वामि १८८. संगमेश १८९. नरकेश १९०. मोक्ष १९१. सार्प १९२. गोपक १९३. नाग १९४. शाव १९५. सिद्धेश १९६. मार्कंड १९७. अक्रूर १९८. कामोद १९९. शूलारोप २००. मांडव्य २०१. गोपकेश्वर २०२. कपिलेश २०३. पिंगलेश २०४. मृतेश २०५. गांग २०६. गौतम २०७. अश्वमेघ २०८. मृदुकच्छ २०९. केदारेश्वर २१०. कणखलेश २११. जालेश्वर २१२. शालग्राम २१३. वराह २१४. चंद्रप्रभास २१५. आदित्य २१६. श्रीपति २१७. हंसक २१८. मूल स्थान २१९. शूलेश २२०. आग्नेय एवं चित्रदैवक २२१. शिखीश्वर २२२. कोटि २२३. दशकन्य २२४. सुवर्णक २२५. ऋणमोक्ष २२६. भारभूति २२७. पुंख २२८. मुंडिम २२९. आमलेश्वर २३०. कपालेश्वर २३१. शृंगेरणीभव २३२. कोटी २३३. लोटनेश्वर तीर्थ विवरण २३४. फलश्रुति कथन २३५. दुमिजंगल माहात्म्य रोहिताश्व कथा २३६. धुन्धुमान उपाख्यान २३७. धुंधुमार वधोपाय २३८. धुंधुमार वध कथन २३९. चित्रवह उद्भव एवं २४०. महिमा कथन २४१. चंडीश प्रभाव २४२. रतीश्वर वर्णन और केदारेश्वर वर्णन २४३. लक्ष तीर्थ कथन २४४. विष्णुपदी उद्भव २४५. सुखार २४६. च्यवनान्ध २४७. ब्रह्म सरोवर २४८. चक्र २४९. ललिता २५०. बहुगोमख २५१. रुद्रावत २५२. मार्कंड २५३. रावणेश्वर २५४. शूद्रपट २५५. देवान्यु २५६. प्रेत २५७. जिहवोद २५८. सम्मृति २५९. शिवोद भेद तीर्थ वर्णन २६०. फलश्रुति ।

षष्ठ नागर खंड — १. लिंगोत्पत्ति आख्यान २. हरिश्चन्द्र कथा ३. विश्वामित्र माहात्म्य ४. त्रिशंकु स्वर्ग गति ५. हाटकेश्वर माहात्म्य ६. वृत्रासुर वध ७. नागविल्व ८. शंखतीर्थ कथा ९. अचलेश्वर वर्णन १०. चमत्कार पुराख्यान ११. गयशीर्ष १२. बालसख्य १३. बालमंड १४. मुगाहवय १५. विष्णुपाद १६. गोकर्ण १७. युगरूप १८. समाश्रय १९. सिद्धेश्वर २०. नागसरोवर २१. सप्ताथेय २२. अगस्त्य २३. भ्रगणतनेश २४. भैष्म और इन्दुवर और अर्क २५. सार्मिष्ट २६. शोभनार्थ २७. दौर्गमान सजकेश्वर तीर्थ वर्णन २८. जमदग्नि उपाख्यान २९. नैः क्षत्रिय कथा ३०. रामहृद ३१. नागपुर ३२. पडलिंग ३३. यज्ञभू ३४. मुंडिरादि ३५. त्रिकार्क ३६. सती परियोगेश ३७. योगेश वालिखिल्य ३८. गाडुर तीर्थ कथन ३९. लक्ष्मी सप्तविंशति शाप कथन ४०. सोमप्रसाद कथन ४१. अम्बावृद्ध ४२. पादुकाख्य ४३. आग्नेय ४४. ब्रह्मकुंड ४५. गोमुख ४६. लोह षट्पाख्य ४७. अजाबालेश्वरी ४८. शालेश्वर ४९. राजवापी ५०. रामेश्वर ५१. लक्ष्मणेश्वर ५२. कुशेश्वर ५३. लवेश्वर तीर्थ वर्णन ५४. लिंग उपाख्यान ५५. अष्टषष्टि समाख्यान ५६. दमयंती एवं त्रिजालक उपाख्यान ५७. रैवती ५८. भट्टिका तीर्थ ५९. क्षेमकरी ६०. केदार ६१. शुक्ल ६२. सुखारक ६३. सत्य संवेश्वर तीर्थ आख्यान ६४. कर्णोत्पला नदी कथा ६५. अटेश्वर ६६. याज्ञवल्क्य ६७. गौरी ६८. गणेश तीर्थ कथा ६९. वास्तुपदा आख्यान ७०. अजाग्रह कथा ७१. सौभाग्यादि कथा ७२. शूलेश्वर कथा ७३. धर्मराज कथा ७४. मिष्टाम्भदेश्वर आख्यान ७५. गाणपत्य त्रय कथा ७६. जाबालि चरित्र ७७. मकरेश्वर कथा ७८. कालेश्वरी ७९. अधकोपाख्यान ८०. अप्सरा कुंड उपाख्यान ८१. पुष्पादित्य उपाख्यान ८२. रोहिताश्व उपाख्यान ८३. नागरोत्पत्ति कीर्तन ८४. भार्गव चरित्र ८५. विश्वामित्र ८६. सारस्वत चरित्र ८७. पैपलाद ८८. कंसारीश एवं ८९. पौण्ड तीर्थ वर्णन ९०. सावित्र्याख्यान सहित ब्रह्मा यज्ञ चरित्र एवं रैवत भर्तृ यज्ञाख्यान कथा ९१. मुख्य तीर्थ निरीक्षण ९२. कौरव क्षेत्र ९३. हाटकेश क्षेत्र ९४. प्रभास क्षेत्र उपाख्यान ९५. पौष्कर क्षेत्र ९६. नैमिष क्षेत्र ९७. धर्म अरण्य क्षेत्र ९८. वारानसी ९९. द्वारका १००. अवंती पुरी कथन १०१. वृंदावन १०२. खाण्डवारण्य १०३. अद्वैताख्य पुरी कथन १०४. कल्प १०५. शालग्राम एवं १०६. नन्दग्राम का उपाख्यान १०७. असि १०८. शुक्ल १०९. पितृसंज्ञ तीन तीर्थ का वर्णन ११०. श्वयंबुद १११. रैवत ११२. शैव इन तीन पर्वतों का उपाख्यान ११३. गंगा ११४. नर्मदा ११५. सरस्वती इन तीन नदियों का उपाख्यान ११६. कुपिका और शंख ११७. अमरक एवं बालमंडन इन चार तीर्थ का हाटकेश्वर तीर्थ क्षेत्र के समान फल कथन ११८. सांबादित्य ११९. श्राद्धकल्प १२०. युधिष्ठिर १२१. आंधक १२२. जलशायि १२३. चातुर्मास्य १२४. अशून्य शयन व्रत कथन १२५. मंगलेश १२६. शिवरात्रि १२७. तुला पुरुष दान

१२८. पृथ्वी दान कथन १२९. बालकेश्वर १३०. कपालमोचनेश्वर १३१. पाप पीड १३२. सप्तलिंग वर्णन १३३. युगपरिमाणादि कथन १३४. निवेशशाक १३५. भार्याख्या कथन १३६. एकादश रुद्र कथन १३७. दान माहात्म्य १३८. द्वादश आदित्य उपाख्यान ।

सप्तम प्रमास खंड — १ सोमेश वर्णन २. विश्वेश वर्णन ३. अर्कस्थल वर्णन ४. सिद्धेश्वरादि का पृथक् उपाख्यान ५. अग्नितीर्थ ६. कपर्दीश तीर्थ वर्णन ७. भीम ८. भैरव ९. चंडीश १०. भास्कर ११. अंगारकेश्वर १२. बुध बृहस्पति मंगल चंद्र शनि १३. राहु केतु १४. शिव स्वरूप मूर्ति वर्णन १५. सिद्धेश्वरादि पंचरुद्र अवस्थिति वर्णन १६. वरारोहा १७. अजापाला १८. मंगला १९. ललिता एवं ईश्वरी २०. लक्ष्मीश २१. वाडवेश २२. अर्घ्येश २३. कामेश्वर २४. गौरीश्वर २५. वरुणेश्वर २६. उशीष २७. गणेश्वर २८. कुमारेश २९. शाकल्य ३०. शकल एवं उत्तक ३१. गौतम ३२. दैत्यघ्नेश ३३. चक्रतीर्थ सनिहितार्थ कथन ३४. भूतेशादि लिंग कथन ३५. आदि नारायण कथन ३६. चक्र घराख्यान ३७. सांबादित्य कथा ३८. कंटक शोधिनी कथा ३९. महिषघ्नी कथा ४०. कपालीश्वर कथा ४१. कोटीश कथा ४२. बालब्रह्म कथा ४३. नरकेश ४४. सम्वर्तेश ४५. निधीश्वर कथा ४६. बलभद्र कथा ४७. गंगा कथा एवं गणेश्वर कथा ४८. जांबवती कथा ४९. पांडुकूप सत्कथा ५०. शतमेघ लक्ष्मेश एवं कोटिमेघकथा ५१. दुर्वासार्क ५२. यदुस्थान ५३. हिरण्यारंगम कथा ५४. नगरार्क ५५. श्रीकृष्ण ५६. संकर्षण एवं समुद्र कथा ५७. कुमारी क्षेत्रपाल ५८. ब्रह्मेश की पृथक् कथा ५९. पिगल ६०. संगमेश्वर ६१. शंकरार्क ६२. घटेश की कथा ६३. ऋषितीर्थ ६४. नंदार्क तीर्थ ६५. त्रितयकूप कीर्तन ६६. शशपाल ६७. पर्णार्क ६८. अंशुमती की अद्भुत कथा ६९. वाराह ७०. स्वामि वृत्तांत ७१. छाया लिंगाख्य ७२. गुल्फ कथा ७३. कनक नन्दा ७४. कुंती एवं ७५. गंगेश कथा ७६. चमसोदमेद ७७. विदुर ७८. त्रिलोकेश कथा ७९. मंचनेश ८०. त्रैपुरेश ८१. षण्ण्ड तीर्थ कथा ८२. सूर्याप्राची ८३. व्यक्ष्ण ८४. उमानाथ कथा ८५. भृंगार ८६. मूल स्थल ८७. च्यवनाकेश कथा ८८. अजपालेश ८९. बालार्क ९०. कुबेर स्थल कथा ९१. ऋषितोषा कथा ९२. संगालेश्वर कीर्तन ९३. नारदादित्य कथन ९४. नारायणनिरूपण ९५. तप्तकुंड माहात्म्य ९६. मूलचंडीश वर्णन ९७. चतुर्वक्त्र गणाध्यक्ष ९८. कलान्वेश्वर कथा ९९. गोपाल स्वामि १००. बकुल स्वामि १०१. मारुती कथा १०२. क्षेमार्क १०३. उन्नत १०४. विघ्नेश १०५. जलस्वामि कथा १०६. कालमेघ १०७. रुक्मिणी १०८. उज्ज्वलीश्वर १०९. भद्रा कथा ११०. शंखावर्त १११. इक्षुतीर्थ ११२. गोप्यद एवं अच्युत गृह कथा ११३. जालेश्वर ११४. हुंकार कूप ११५. चंडीश कथा ११६. आशापुर विघ्नेश एवं ११७. कलाकुंड कथा ११८. कपिलेश्वर कथा ११९. जरदगव शिव कथा १२०. नल १२१. कर्कोट १२२. हाटकेश्वर कथा १२३. नारदेश १२४. यंत्रभूषा एवं दुर्गाकूट एवं गणेश कथा १२५. सुपर्णलाख्य १२६. भैरवी १२७. भल्लतीर्थ कथा १२८. कईमाल कीर्तन १२९. गुप्त सोमेश्वर कीर्तन १३०. बहु स्वर्णेश १३१. शृंगेश १३२. कोटीश्वर कथा १३३. मार्कंडेश्वर १३४. कोटीश्वर एवं १३५. दामोदर गृह कथा १३६. स्वर्ण रेखा १३७. ब्रह्मकुंड १३८. कुंभीश्वर १३९. भीमेश्वर १४०. ब्रह्मायर्थ क्षेत्र मृगाकुंड १४१. सर्वस्व कथा १४२. विघ्नेश १४३. गंगेश १४४. रैवत कथा १४५. अर्बुदेश्वर कथा १४६. अचलेश्वर १४७. नागतीर्थ कथा १४८. वशिष्ठाश्रम वर्ण १४९. भद्र वर्ष माहात्म्य १५०. त्रिनेत्र माहात्म्य १५१. केदार माहात्म्य १५२. तीर्थगमन कीर्तन १५३. कोटीश्वर १५४. रूप तीर्थ १५५. हृषीकेश कथा १५६. सिद्धेश १५७. शुक्रेश्वर १५८. मणिकर्णिकेश कीर्तन १५९. पंगु १६०. यम एवं १६१. वराह तीर्थ वर्णन १६२. चंद्र प्रमास १६३. पिंडोद १६४. श्रीमाता १६५. शुक्ल १६६. कात्यायनी तीर्थ माहात्म्य १६७. पिंडारक माहात्म्य १६८. कनखल १६९. चक्र एवं १७० मानुष तीर्थ माहात्म्य १७१. कपिलाग्नि १७२. रक्तानुबंध तीर्थ कथा १७३. गणेश १७४. पार्येश्वरयात्रा १७५. मुद्गल यात्रा कथन १७६. चंडीस्थान १७७. नागोद्भव शिव कुंड १७८. महेश कथा १७९. कामेश्वर १८०. मार्कंडेय उत्पत्ति कथा १८१. उद्बालकेश १८२. सिद्धेश गत तीर्थ कथा १८३. श्री देवमाता उत्पत्ति १८४. व्यास १८५. गौतम तीर्थ कथा १८६. कुलसान्ता माहात्म्य १८७. राम एवं कोटि तीर्थ कथा १८८. चंद्रोद्भव १८९. ईशानशृंग १९०. ब्रह्मस्थानोद्भव १९१. त्रिपुष्कर १९२. रुद्र हृद १९३. गुहेश्वर कथा १९४. अविमुक्त माहात्म्य १९५. उमा माहेश्वर माहात्म्य १९६. महौजस प्रभाव १९७. जंबुतीर्थ वर्णन १९८. गंगाधर एवं मिश्र कथा १९९. फलश्रुति २००. द्वारका माहात्म्य प्रसंग चंद्र शर्म कथा २०१. एकादशी जागरणादि व्रत २०२. महा द्वादशीकथा २०३. प्रह्लाद एवं ऋषि समागम २०४. दुर्वास

उपाख्यान २०५. यात्रा उपक्रम कीर्तन २०६. गोमती उत्पत्ति कथन २०७. गोमती स्नानादि फल २०८. चक्रतीर्थ माहात्म्य २०९. गोमती समुद्र संगम २१०. दुःसनकादि हृदाख्यान २११. नृगतीर्थ कथा २१२. गोप्रचार कथा २१३. गोपी द्वारका गमन २१४. गोपीसरोवर आख्यान २१५. ब्रह्मतीर्थीदि कीर्तन २१६. नानाख्यान युक्त पंचनदी आख्यान २१७. शिवलिंग २१८. महातीर्थ २१९. कृष्णपूजादि कीर्तन २२०. त्रिविक्रममूर्ति २२१. दुर्वासा एवं श्रीकृष्णकथन २२२. कुशदैत्य वधोपाख्यान २२३. प्रतिमा आख्यान २२४. विशेष पूजाफल २२५. गोमती एवं द्वारिका में तीर्थ आगमन कीर्तन २२६. कृष्ण मंदिर दर्शन फल २२७. बारावती अभिषेक २२८. द्वारका तीर्थ वास कथा २२९. द्वारकापुर कीर्तन ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर हेमशूल युक्त ब्राह्मण को दान करने से शिवलोक प्राप्ति होती है ।

चतुर्दश वामनपुराण

पूर्व, उत्तर दो भाग १०००० दस सहस्र श्लोक । उत्तर भाग वृहत् वामन संज्ञक इस पुराण में त्रिविक्रम चरित्र बहुविध वर्णित है कूर्म कल्प का आख्यान ।

प्रथम पूर्व भाग — १. पुराण प्रश्न २. ब्रह्मा शिरच्छेद कथा ३. कपाल मोचन आख्यान ४. दक्ष यज्ञ विनाश ५. महादेव का कालरूप धारण ६. कामदेव दहन ७. प्रह्लाद नारायण का युद्ध एवं देवता असुर का युद्ध एवं सूर्य की कथा ९. भुवनकोश वर्णन १०. काम्यव्रत आख्यान ११. दुर्गा चरित्र १२. तपती चरित्र १३. कुरुक्षेत्र वर्णन १४. सरोवर माहात्म्य १५. पार्वती जन्म तपस्या एवं विवाह कथन १६. गौरी उपाख्यान १७. कौशिकी उपाख्यान १८. कुमार चरित्र १९. अंधक वध उपाख्यान २०. साध्य उपाख्यान २१. जावालि चरित्र २२. अरजा कथा २३. अंधक युद्ध एवं गण कथन २४. मरुत जन्म कथा २५. बलि चरित्र २६. लक्ष्मी चरित्र २७. त्रिविक्रम चरित्र २८. प्रह्लाद की पूर्व में तीर्थ यात्रा २९. धुन्धु चरित्र ३०. प्रेतउपाख्यान ३१. नक्षत्र पुरुष आख्यान ३२. श्रीदाम चरित्र ३३. त्रिविक्रम चरित्र ३४. ब्रह्मउक्तस्तव ३५. प्रह्लाद एवं बलि संवाद ३६. सुतल में हरि प्रशंसा कथन ।

द्वितीय उत्तर भाग — १. माहेश्वरी संहिता श्री कृष्ण के भक्ति का कीर्तन २. भागवती संहिता अवतार कथा ३. सौरी संहिता सूर्य महिमा कथन ४. गाणेश्वरी संहिता गणेश महिमादि कथन । यह संहिता चतुष्टय के प्रत्येक संहिता में एक सहस्र श्लोक ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर कार्तिकी संक्रांति को घृत धेनु के साथ वेदज्ञ ब्राह्मण को दान करने से नरक भोग से मुक्ति और स्वर्ग लाभ होता है एवं भोगादिक और देहांत में विष्णु के परम पद की प्राप्ति होती है । यह पुराण पाठ किंवा श्रवण करने से परमगति प्राप्त होती है ।

पंचदश कर्मपुराण

पूर्व एवं उत्तर दो भाग १७००० सत्रह सहस्र श्लोक । उत्तर भाग पंचपाद में विभक्त । लक्ष्मी कल्पचरित्र । इसी कल्प में हरि ने कूर्म रूप धारण किया है एवं इंद्रद्युम्न प्रसंग से धर्मार्थ काम मोक्ष का माहात्म्य कहा है ।

प्रथम पूर्व भाग — १. पुराण उपक्रम कथन २. लक्ष्मी इंद्रद्युम्न संवाद ३. कूर्म ऋषिगण कथा ४. वर्णाश्रमाचार कथा ५. जगदुत्पत्ति कथा ६. काल संख्या एवं लयान्त में विमुक्तव ७. सर्गसंक्षेप कथा ८. शंकर चरित्र ९. पार्वती सहस्रनाम १०. योग निरूपण ११. भृगुवंश आख्यान १२. स्वयम्भुवकथा १३. देवतादि उत्पत्ति १४. दक्ष यज्ञ नाश १५. वृक्ष सृष्टि कथा १६. कश्यप वंश कथन १७. आत्रेय वंश कथन १८. कृष्ण चरित्र १९. मार्कंडेय कृष्ण संवाद २०. व्यास पांडव की कथा २१. युगधर्म कथा २२. व्यास जैमिनि की कथा २३. वाराणसी माहात्म्य २४. प्रयाग माहात्म्य २५. त्रिलोक वर्णन २६. वेदशास्त्रा निरूपण ।

द्वितीय उत्तर भाग — १. ऐश्वरी गीता २. नानाधर्म प्रकाशिका व्यास गीता ३. नानाविध तीर्थ का पृथक् माहात्म्य ४. ब्राह्मी संहिता ५. भागवती संहिता । इसमें सकल वर्णन से पृथक् वृत्ति निरूपण है ।

उत्तर भाग में प्रथम पाद में ब्राह्मण की सदाचारात्मिका व्यवस्थिति कथन । द्वितीय पाद में क्षत्रिय की वृत्ति निरूपण । तृतीय पाद में वैश्य जाति की चार प्रकार की वृत्ति निरूपण । चतुर्थ पाद में शूद्र की वृत्ति

कथन । पंचम पाद में वर्ण शंकर की वृत्ति कथन ।

फल श्रुति — यह पुराण लिखकर भक्ति पूर्वक हेम कर्म युक्त ब्राह्मण को दान करने से परम गति होती है और श्रवण किंवा पाठ करने से सर्वोत्कृष्ट गति मिलती है ।

षोडश मत्स्य पुराण

१४००० चौदह सहस्र श्लोक सत्य कल्प कथा । १. व्यास कर्तृक नरसिंह वर्णन २. मनु एवं मत्स्य संवाद ३. ब्रह्मांड वर्णन ४. ब्रह्मदेव एवं असुर उत्पत्ति कथन ५. मारुत उत्पत्ति ६. मदन द्वादशी कथा ७. लोकपाल पूजा ८. मन्वन्तर कथन ९. वैश्य राज्याभि वर्णन १०. सूर्य एवं वैवस्वत की उत्पत्ति ११. बुध का संगम १२. पितृवंशानु कथन १३. श्राद्ध काल निरूपण १४. पितृतीर्थ प्रचार १५. सोमोत्पत्ति १६. सोम वंश कीर्तन १७. ययाति चरित्र १८. कार्तवीर्य चरित्र १९. सृष्ट वंश कीर्तन २०. भृगुशाप २१. विष्णु का दश मूर्ति धारण २२. पुरुवंश कथा २३. हुताशनवंश कथन २४. क्रिया योग कथन २५. पुराण कीर्तन २६. नक्षत्र पुरुष कथन एवं व्रत २७. मार्कण्डेय शयन २८. कृष्णाष्टमी व्रत २९. तडाग विधि माहात्म्य ३०. पादुकोत्सर्ग ३१. सोभाग्य शयन वर्णन ३२. अगस्त्य व्रत कथन ३३. अनंत तृतीया ३४. रस कल्याणी व्रत कथा ३५. आनंद कर व्रत ३६. सारस्वत व्रत ३७. उपराग अभिषेक ३८. सप्तमास स्वपन व्रत कथा ३९. भीम द्वादशी व्रत ४०. अनंग शयन व्रत ४१. अशून्य शयन व्रत ४२. अंगारक व्रत ४३. सप्तमी सप्तक व्रत ४४. विशोक द्वादशी व्रत ४५. दशधा मेरुप्रदान व्रत ४६. ग्रहशान्ति ४७. ग्रह स्वरूप कथन ४८. शिव चतुर्दशी व्रत ४९. सर्व फल त्याग व्रत ५०. सूर्यवार व्रत ५१. संक्रांति स्नान ५२. विभूति द्वादशी व्रत ५३. षष्टि व्रत माहात्म्य ५४. स्नान विधि क्रम ५५. प्रयाग माहात्म्य ५६. द्वीप एवं लोकानुवर्णन ५७. अंतरिक्ष और दिशा कथन ५८. ध्रुव माहात्म्य ५९. इंद्रमवन वर्णन ६०. त्रिपुर घातन ६१. पितृ प्रवर माहात्म्य ६२. मन्वन्तर निर्णय ६३. चतुर्युग संप्रभूति युगधर्म निरूपण ६४. बजांग-संप्रभूति ६५. तारकासुरोत्पत्ति एवं माहात्म्य ६६. ब्रह्मदेव अनुकीर्तन ६७. पार्वती संभव ६८. शिव तपोवन वर्णन ६९. अर्नगदेह बाह ७०. रति विलाप ७१. गौरी तपोवन ७२. शिव प्रसादन ७३. पार्वती ऋषि संवाद एवं विवाह ७४. कार्तिकेय जन्म और विजय ७५. तारकवध ७६. नरसिंह वर्णन ७७. पद्म कल्प कथा ७८. अघकासुर घातन ७९. वारानसी माहात्म्य ८०. नर्मदा माहात्म्य ८१. प्रवरानुक्रम ८२. पितृगाथा कीर्तन ८३. उभयमुखीदान ८४. कृष्णाग्नि दान ८५. सावित्र्युपाख्यान ८६. राजधर्म ८७. विविधोत्पात कथन ८८. ग्रह शान्ति कथन ८९. यात्रा निमित्त कथन ९०. स्वप्न मंगल कीर्तन ९१. वामन माहात्म्य ९२. वराह माहात्म्य ९३. समुद्र मंथन ९४. कालकूट अभिशान्तन ९५. देवासुर विमर्दन ९६. वास्तुविद्या ९७. प्रतिभा लक्षण ९८. देवता स्थापन ९९. प्रासाद लक्षण १००. देव मंडप लक्षण १०१. भविष्य राजा का उद्देश कथन १०२. महादान कथन १०३. कल्प कथा ।

फलश्रुति — यह पुराण लिख कर भक्ति पूर्वक विषुव संक्रांति को ब्राह्मण को दान करने से परम पद मिलता है और इस पुराण के पाठ किया श्रवण करने से आयु कीर्ति कल्याण की वृद्धि एवं हरि भवन प्राप्ति होती है ।

सप्तदश गरुडपुराण

पूर्व एवं उत्तर दो खंड में १९००० उन्नीस सहस्र श्लोक गरुड प्रति भगवान ने कहा है । इस पुराण में तार्क्ष कल्प की कथा है ।

प्रथम पूर्व खंड — १. पुराण उपक्रम वर्णन २. संक्षेप स्वर्ग वर्णन ३. सूर्यादि पूजा विधि ४. दीक्षा विधि ५. लक्ष्मी पूजा प्रकरण ६. नवव्यूह अर्चन ७. विष्णु पूजा विधान ८. वैष्णव पंजर ९. योगाध्याय १०. विष्णु सहस्रनाम ११. सूर्य पूजा १३. मृत्युंजयार्चन १४. नानामंत्र १५. शिव पूजा १६. गण पूजा १७. गोपालपूजा १८. त्रैलोक्य मोहन श्री रामार्चन १९. विष्णु पूजा एवं पंचतत्व पूजा २०. चक्रार्चन २१. देवपूजा २२. न्यासादि कथन २३. संध्यादि उपासना २४. दुर्गार्चन २५. सुरार्चन २६. माहेश्वर पूजा २७. पवित्रा रोपणार्चन २८. मूर्तिध्यान २९. वास्तु प्रमाण ३०. प्रासाद लक्षण ३१. सकल देवता पृथक पूजा ३३. अष्टांग योग ३४. दान धर्म ३५. प्रायश्चित्त विधि क्रम ३६. द्वीप ईश्वर और नरक वर्णन ३७. सूर्य व्यूह कथन ३८. ज्योतिष श्राद्ध

वर्णन ३९. सामुद्रिक स्वर ज्ञान ४०. नवरत्न परीक्षा ४१. तीर्थ माहात्म्य ४२. गया माहात्म्य ४३. मनवन्तर पृथक् पृथक् आख्यान ४४. पित्राख्यान ४५. वर्णधर्म ४६. द्रव्यशुद्धि ४७. द्रव्य समर्पण ४८. श्राद्धकथा ४९. विनायक पूजा ५०. ग्रहयज्ञ ५१. आश्रम कथा ५२. मननाख्यान एवं प्रशौच ५३. नीतिसार ५४. व्रतोक्ति ५५. सूर्य वंश ५६. सोमवंश ५७. हरि अवतार कथन ५८. रामायण ५९. हरिवंश ६०. भारताख्यान ६१. आयुर्वेद ६२. निदान ६३. चिकित्सा ६४. द्रव्यगुण ६५. रोगघ्न विष्णु कवच ६६. गरुड कवच ६७. त्रिपुर आख्यान ६८. प्रश्न चूडामणि ६९. अश्वयुर्वेद ७०. ओषधीनाम कथन ७१. व्याकरण शास्त्र ७२. छंदशास्त्र ७३. सदाचार ७४. स्नान विधि ७५. वैश्वदेव तर्पण ७६. संध्या ७७. पार्वण कर्म ७८. नित्य श्राद्ध ७९. सपिंड श्राद्ध ८०. धर्मसार निष्कृति ८१. प्रतिसंक्रम ८२. युगधर्म कृत फल ८३. योगशास्त्र ८४. विष्णु भक्ति ८५. भगवत्प्रणाम फल ८६. वैष्णव माहात्म्य ८७. नरसिंह स्तव ८८. ज्ञानामृत ८९. गुह्याष्टक स्तव ९०. विष्णु अर्चना ९१. वेदांत सार सांख्य और सिद्धांत शास्त्र ९२. ब्रह्मज्ञान ९३. आत्म ज्ञान ९४. गीता सार एवं फल कथन ।

द्वितीय उत्तर खंड प्रेत कल्प कथा — १. धर्म प्रकटित करण २. पूर्व योनि गति कारण ३. दानादिफल ४. और्द्ध देहिक क्रिया ५. यमलोक मार्ग वर्णन ६. षोडश श्राद्ध फल ७. यममार्ग से निष्कृति कथन ८. धर्मराज वैभव ९. प्रेत पीड़ा निर्णय १०. प्रेत चिन्ह निरूपण ११. प्रेत चरित्र १२. प्रेत कारण १३. प्रेत कृत्य विचार १४. सपिंडीकरण १५. प्रेतत्व मोक्षण आख्यान १६. विमुक्ति कारण दान १७. प्रेत आवश्यक दान १८. शारीरिक विनिर्देश १९. यमलोक वर्णन २०. प्रेतत्व उद्धार कथन २१. कर्म कर्ता निर्णय २२. मृत्यु की पूर्व क्रिया कथन एवं पश्चात् कर्म निरूपण २३. षोडश श्राद्ध कथन २४. स्वर्ग प्राप्ति क्रिया २५. सूतक संख्या २६. नारायण बलि कर्म २७. वृषोत्सर्ग माहात्म्य २८. निषिद्ध त्याग २९. अपमृत्यु क्रिया ३०. मनुष्य कर्म विपाक ३१. कृत्याकृत्य विचार ३२. मुक्ति कारण विष्णु ध्यान ३३. स्वर्ग गमन विहित आख्यान ३४. स्वर्ग सुख निरूपण ३५. भूलोक वर्णन ३६. सप्तलोक वर्णन ३७. पंच उर्दल्लोक कथन ३८. ब्रह्मांड स्थिति कीर्तन ३९. ब्रह्मांड अनेक चरित्र कथन ४०. ब्रह्मजीव निरूपण ४१. आत्यन्तिक लय कथन ४२. फल श्रुति निरूपण ।

फल श्रुति — यह पुराण पाठ करने किंवा श्रवण करने से पाप शमन होता है और लिखकर विष्णु संक्रांति को सुवर्ण हंस द्वय युक्त ब्राह्मण को दान करने से स्वर्ग लाभ होता है ।

अष्टादश ब्रह्मांड पुराण

४ पाद तीन भाग १२००० बारह सहस्र श्लोक । प्रथम भाग में — १. प्रक्रिया पाद २. अनुषंग पाद ३. उपोद्घात पाद मध्य भाग ४. उप संहार पाद शेष भाग । इस पुराण में भविष्य कल्प की कथा है ।

प्रथम भाग प्रक्रिया पाद आरंभ — १. कृत्य समुद्देश २. नैमिषाख्यान ३. हिरण्य गर्भोत्पत्ति ४. लोक कल्पना कथा ।

द्वितीय अनुषंग पाद — १. कल्पमन्वंतराख्यान कथा २. लोक ज्ञान कथन ३. मानसिक सृष्टि विवरण ४. रुद्र प्रभाव विवरण ५. महादेव विभूति वर्णन ६. ऋषि सर्ग वर्णन ७. अग्नि उत्पत्ति विवरण ८. काल सद्भाव वर्णन ९. प्रियव्रत समूह उद्देश १०. पृथिवी आयाम एवं विस्तार वर्णन ११. भारतवर्ष वर्णन १२. अन्य वर्ष वर्णन १३. जंबूादि सप्तद्वीप वर्णन १४. अधः एवं उर्द्ध लोक विवरण १५. ग्रहाचार १६. आदित्य व्यूह विवरण १७. देवग्रह वर्णन १८. नीलकंठाख्यान १९. महादेव वैभव २०. अमावस्या कथा २१. युग तत्त्व निरूपण २२. यज्ञ प्रवर्तन २३. मध्य एवं अन्त्य युग की क्रिया एवं सत्ययुग की प्रजा का लक्षण २४. ऋषि प्रवर वर्णन २५. वेद आख्यान २६. स्वायम्भुव निरूपण २७. शेष मन्वन्तराख्यान २८. पृथिवी दोहन ।

मध्यभाग उपोद्घात पाद — १. सप्तऋषि कथा २. प्रजापति उपाख्यान ३. देवादि उद्भव ४. जय एवं क्रीड़ा ५. मरुत उत्पत्ति कीर्तन ६. काश्यप विवरण ७. ऋषि वंश निरूपण ८. पितृकल्प कथा ९. श्राद्ध कल्प कथा १०. वैवस्वतोत्पत्ति ११. वैवस्वत सृष्टि विवरण १२. मनुपुत्र निर्णय १३. गंधर्व निरूपण १४. इक्ष्वाकुवंश विवरण १५. अत्रिवंश विवरण १६. अमावसु अर्चन १७. रजि चरित्र १८. ययाति चरित्र १९. यदुवंश निरूपण २०. कार्तवीर्य चरित्र २१. जमदग्नि विवरण २२. वृष्णिवंश विषय २३. सागर उपाख्यान २४. भार्गव चरित्र २५. गय वध २६. समर विवरण २७. पुनर्वार भार्गव विषय २८. देवासुर युद्ध में कृष्ण का आविर्भाव वर्णन २९. शुक्र कर्तृक इलस्तव ३०. विष्णु माहात्म्य विवरण ३१. हलिवंश निरूपण ३२. कलियुग

के भविष्य राजा गण का चरित्र ।

अंतभाग उपसंहार पाद — १. वैवस्वत मन्वन्तर का संक्षेप विवरण २. भविष्य मनु का कर्म चरित्र ३. कल्प प्रलय निर्देश ४. काल परिमाण विवरण ५. परिमाण और लक्षण सहित चतुर्दश लोक विवरण ६. नरक एवं विकर्म वर्णन ७. मनोमयपुर आख्यान ८. प्राकृतिक लय विवरण ९. शैवपुर वर्णन १०. सत्त्वादि गुण संबंध से जीव की गति विवरण ११. अनिर्देश्य ब्रह्म वर्णन ।

फल श्रुति — यह पुराण श्रवण किंवा पाठ करे उसका पाप मोचन होय एवं देवलोक में गति होय । यह पुराण लिख कर^१ स्वर्णसिंहासनस्थ करके ब्राह्मण को दान करने से ब्रह्म लोक प्राप्ति होती है ।

छोड़ि अनेकन साधन को मन मान कह्यौ न करै चित चाही ।

नंद के लाल सों नेह करै किन भूलत दौरै वृथा जिय दाही ॥

आजु लौं नीचन सों हरिचन्द से कौन ने बोलि तौ प्रीत निवाही ।

हैं गनिका सबरी गज गीघ अजामिल आदिक याकी गवाही ॥

१ इतिहास तिमिर नाशक तीसरा खंड में यह सिद्ध किया गया है कि पहले आर्य लोग लिखना न जानते थे किंतु यह भ्रम है । पुराणों में प्रायः लिखने का अनेक स्थानों में वर्णन आया है जो इस अनुक्रमणिका से मालूम हुआ होगा और इसका अनेक मैने कई एक स्थलों में संग्रह किया है । इतिहास तिमिरनाशक का भ्रम मूल लेख नीचे लिखा है । अब हम लोग मेक्समूलर साहब के लेखों को मानें या पुराण को । यथार्थ में मेक्समूलर को भ्रम हुआ है और उसी को मूल मान कर राजा जी चले हैं तब वह क्यों न भूलें ।

"इसका कुछ प्रमाण नहीं मिलता कि इनको लिखना भी आता हो वेद श्रुति स्मृति शास्त्रदर्शन सूक्त ऋच साम वर्ग अध्याय अध्यापक उपाध्याय ग्रंथ पाठ पाठक पठन मनन घोषण इत्यादि सब शब्द जब उनके अर्थ पर ध्यान करो यही गवाही देते हैं कि वेदों के जमाने में लिखना किसी को नहीं आता था । वेद वा ब्राह्मण वा सूत्रों में इसका कहीं कुछ जिक्र नहीं है । कोई शब्द ऐसा नहीं कि जिससे इसका इशारा पाया जाय । उण्णदि सूत्र में जो अति प्राचीन व्याकरण है और जिसका जिक्र पाणिनी ने किया है यदि कोई शब्द ऐसा मिल भी जाता है तो वह पीछे से मिलाया हुआ मालूम होता है (इसी तरह उणादि सूत्र में दीनारः जिनः तिरीटम् स्तूमः इत्यादि शब्द पीछे से लिख दिये गए हैं । दीनारः (Denarius) रुमी शब्द है और जि घातु को जिससे जिन निकला है । सायन ने जहाँ उणादि से लिखा छोड़ दिया है नुसिंह ने भी अपनी स्वर मंजरी में जि घातु को छोड़ दिया है । यह घातु किसी प्रामाणिक ग्रंथ में नहीं मिलता) जैसा अरबी शब्द किताब (पुस्तक) जिसका अर्थ ही लिखना है अथवा यूनानी शब्द पेपर (कागज) जिसका अर्थ ही पेपरिस वृक्ष की छाल से बनाया हुआ है कोई भी हाथ नहीं लगता । संस्कृत में सूत्रों की रचना ऐसी है कि जुबानी याद रखे जायँ । सूत्रकारों ने उन्हें लिखने के लिए कदापि नहीं रचा । मनुजी ने जहाँ पढ़ाने का बहुत विस्तारपूर्वक नियम बाँधा है (ब्रह्मारम्भेवसाने च पादौग्राह्यौ गुरोस्सदा । संहत्यहस्तावध्यै सह ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥ अध्वेयमणन्तु गुरुनित्यं कालमतन्द्रितः । अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोसित्वति चारमेत् ॥) पुस्तक कलम दवात कागज का नाम भी नहीं लिखा, लिखने का कहीं किसी प्रकार से कुछ चर्चा ही नहीं किया और देखो अब तो लिखना पढ़ना ये दोनों ऐसे दंढ हो गए हैं कि पर्यायी से जान पड़ते हैं । एक के स्मरण के साथ ही दूसरे का स्मरण भी हो आता है । निदान लिखने की विद्या इस देश में पीछे से फैली (यदि पहले होती तो महामारत में जहाँ कौरव पांडव के दूतों का हाल लिखा है उनके साथ पत्र जाने का भी हाल लिखा होता ॥ पत्र लेखनी मसी ये सब शब्द पीछे से काम में आये । उत्तर में पहले भोजपत्र और दक्षिण में पहले तालपत्र पर लिखा होगा इसी से जिस पर लिखें उसका नाम पत्र रह गया और तालपत्र पर लीकों के खींचने अर्थात् खोदने से यह काम ही लिखना ठहरा । लिप लीपना है जब पत्रों पर सियाही लगाई होगी यह शब्द काम में आया । यदि पाणिनी के समय में भी लिखना किसी को मालूम होता वह अवश्य इसके लिए कोई शब्द बनाता । इसने जो वर्ण अक्षर और विराम लिखा है वर्ण का अर्थ आवाज का रंग है, अक्षर का अर्थ अविनाशी है, विराम का अर्थ आवाज का बंद होना है । यदि वह लिखना जानता होता अनुस्वार विसर्ग जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का नाम बोपदेव की तरह बिंदु द्विबिंदु बज्राकृति और गजकुंभाकृति रखता ।"

श्रीहरि

उत्सवावली

(वर्ष भर के उत्सवों की तालिका और संक्षेप सेवा शृंगार वर्णन)

“तत्कर्म हरितोषं यत्”
“कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा”
“कृष्ण सेवा सदा कार्या”

रचनाकाल सन् १८७६। इसमें साल भर के उत्सवों की तालिका, व्रत, सेवा, शृंगार आदि का वर्णन है।— सं.

उत्सवावली

चैत्र शुक्ल पक्ष

प्रतिपदा — नवरात्रारंभ, अभ्यंग, शृंगार भारी, हो सके तो गुलाब की फूल मंडली।

पंचमी — श्री रामानुजस्वामी का जन्मोत्सव।

षष्ठी — श्री यदुनाथ जी का जन्मोत्सव।

नवमी — श्री रामनवमी, केसरिया वस्त्र, उत्सव का शृंगार, पंचामृत (दोपहर को)।

एकादशी — मुकुट का शृंगार।

द्वादशी — दमनक (दौना) समर्पण करना।

पूर्णिमा — महारास की समाप्ति का उत्सव, मुकुट का शृंगार।

किसी के मत से चैत्र शुक्ल द्वितीया को श्री जानकी-जन्म। जिस दिन मेष संक्रांति पड़े उस दिन सत्तू के लड्डू भोग धरना।

वैशाख कृष्ण पक्ष

एकादशी — श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु का जन्म, केसरिया वागा।

वैशाख शुक्ल पक्ष

तृतीया — अक्षयतृतीया। निकुंज में प्रथम स्नेह का उत्सव। केसरी किनारा रंगा हलका वस्त्र, मोती पोत के आभरण। गर्मी की सेवा आज से चली। खसखाना, पंखा, मट्टी की धारी, छिरकाव, फुहारा, जो बन जाय। परशुराम-अवतार।

सप्तमी — श्री रामराज्य।

नवमी — श्री जानकी-जन्म-दिन, श्री स्वामिनी जी से विवाहोत्सव, सेहरे का शृंगार ।

एकादशी — श्री हरिवंश जी का जन्म ।

चतुर्दशी — नृसिंह जयंती, गर्मी की जो सेवा बाकी हो सो सब और भी इस दिन से चलै, केसरिया वस्त्र, संध्या को पंचामृत-स्नान ।

पूर्णिमा — श्री राधारमण जी का प्राकट्य ।

ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष

पंचमी — कूर्मावतार ।

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष

दशमी — दशहरा, जमुनाजी-गंगाजी का पूजन ।

एकादशी — जल विहार, पानी भरकर उसमें सिंहासन रखकर श्री ठाकुरजी को पधरावना ।

चतुर्दशी — स्नान यात्रा के हेतु जल ले आना । जल में फूल की कली, चंदन, कपूर इत्यादि ठंडी वस्तु मिलाकर ओस में ढँककर रखना वा विधिपूर्वक मंत्र से अधिवासन करना ।

पूर्णिमा — स्नान यात्रा, ज्येष्ठा नक्षत्र में पहले दिन के लाये पानी से सबेरे श्री ठाकुरजी को स्नान कराना । मूंग भीगी, फल इत्यादि ठंडी वस्तु भोग लगाना ।

आषाढ़ शुक्ल पक्ष

द्वितीया — पुष्य नक्षत्र में रथ यात्रा । सफेद गोटे का बागा । जड़ाऊ आभरण, कुलह, चंद्रिका ।

तृतीया — श्री ठाकुरजी का गौना ।

षष्ठी — पांडुरंग षष्ठी, श्री विठ्ठलनाथजी (वक्षिणवाले) का पाटोत्सव है और इसी दिन से रंगीन वस्त्र धारण कराना आरंभ होता है ।

एकादशी — हरिशयनी ।

पूर्णिमा — असाढ़ी जोग, चुनरी का बागा, मुकुट, मोर की पिछवाई ।

श्रावण कृष्ण पक्ष

प्रतिपदा वा द्वितीया — जिस दिन चंद्रमा अच्छा हो हिडोला आरंभ, लाल बागा, पाग, मोरशिखा ।

पंचमी — अठवाँसा का उत्सव ।

श्रावण शुक्ल पक्ष

तृतीया — श्री ठाकुरानी तीज, चुनरी का बागा, श्री स्वामिनी जी का शृंगार भारी । हिडोले का मुख्य उत्सव ।

पंचमी — श्याम बागा, मुकुट का शृंगार ।

अष्टमी — लाल बागा, मुकुट का शृंगार, बगीचे में हिडोला ।

एकादशी — पवित्रा, श्री ठाकुरजी को पवित्रा यथाशक्ति समर्पण करना ।

द्वादशी — गुरु को और श्री ठाकुरजी को पवित्रा समर्पण करना ।

त्रयोदशी — चतुरा नागा का उत्सव ।

पूर्णिमा — रक्षाबंधन ।

पूर्णिमा पीछे हिडोला विसर्जन अच्छे मुहूर्त में करना ।

भाद्रपद कृष्ण पक्ष

सप्तमी — श्री विष्णु स्वामी का जन्मोत्सव, किसी किसी मत से पूतना-वध के कारण छठे दिन छठी नहीं हुई थी, इसी कारण इस सप्तमी को हुई ।

अष्टमी — महामहोत्सव जन्माष्टमी पहिले दिन से सब तैयारी कर रखना । उत्सव के दिन बड़े सबेरे केसरिया वस्त्र शृंगार भारी कुलह चंद्रिका आदिक जहाँ तक हो सके भारी तैयारी करना । शृंगार करके तिलक करना, भेंट धरना । बंदनवार थापा केले का खंभा लगाना । अष्टमी के दिन को श्री ठाकुर जी के जन्म गाँठ के उत्सव की भावना करना और रात को जन्मोत्सव की भावना । संध्या से रोशनी करना । अर्द्धरात्रि को एक छोटे

स्वरूप को पंचामृत स्नान कराना । घंटा शंख नौवतखाना बजाना । ब्रज भयो महर के पूत, यह पद गाना । जन्म पीछे श्री ठाकुरजी को नई फूल की माला तिलक पीतांबर समर्पण करना । फिर यथाशक्ति महाभोग धरना । पंजीरी भोग । सवेरे नवमी को श्रीठाकुरजी को पालने पर झुलाना । दही से नंद महोत्सव करना, पालना के भोग में मेवा मिठाई मक्खन रखना, भेंट आरती करना ।

भाद्रपद शुक्ल पक्ष

द्वितीया — दसूतन का उत्सव ।

पंचमी — श्रीबलदेव जी का जन्म, श्रीचंद्रावली जी का जन्म । जहाँ दो स्वामिनी जी विराजती हों वहाँ दक्षिण भाग की स्वामिनी जी को दूध का स्नान, तिलक ।

अष्टमी — श्री राधाष्टमी, शृंगार जन्माष्टमी का, श्री स्वामिनी जी को दूध से स्नान कराना, तिलक भोग आरती तोरण आदि जन्माष्टमी की भाँति सब करना ।

एकादशी — दान एकादशी, मुकुट काछनी का शृंगार वस्त्र लाल, दही दूध छोटी छोटी कुल्हिया में भोग रखना, ब्रज भक्त (सखी) हों तो उनके सिर पर दही दूध रखकर सामने खड़ी करना ।

द्वादशी — वामनजयंती, केसरिया वस्त्र, धोती उपरना, कुलह, दोपहर को पंचामृत ।

पूर्णिमा — साँझी के उत्सव का आरंभ, साँझ को ठाकुर जी के सामने फूल की वा रंग की साँझी बनाना ।

आश्विन कृष्ण पक्ष

अष्टमी — महीना का चौक ।

द्वादशी — श्री गो. गोपीनाथ जी का उत्सव ।

त्रयोदशी — श्री बाल कृष्ण जी का उत्सव ।

चतुर्दशी — कोट की आरती ।

पूर्णिमा — साँझी की समाप्ति ।

आश्विन शुक्ल पक्ष

प्रतिपदा — नवरात्रारंभ, कुलह चंद्रिका ।

नवमी — नवरात्र की समाप्ति, कुलह चंद्रिका, सफेद छापे का बागा, सामग्री ।

दशमी — विजयदशमी, सफेद जरी का बागा, पाग चंद्रिका, संध्या को जवार की कलागी धराना, तिलक, खंजर कमर में धराना, रावण बध के कीर्तन गाना ।

एकादशी — मुकुट ।

पूर्णिमा — महारास, सफेद ताश का बागा, मुकुट, आभरण सफेद रात को चाँदनी में श्री ठाकुर जी विराजें, सफेद वस्तु भोग लगाना, रास के कीर्तन गाना ।

कार्तिक कृष्ण पक्ष

दशमी वा एकादशी से हटरी दीपमालिका आरंभ ।

त्रयोदशी — धन तेरस, हरी जरी का बागा ।

चतुर्दशी — रूप चतुर्दशी, बागा लाल जरी का ।

अमावस्या — दीपावली, सफेद ताश का बागा, कुलह चंद्रिका, रात को हटरी में बैठाना, सामने दीपावली, चौपड़, भँड़ेहर, खिलौना आदि रखना ।

कार्तिक शुक्ल पक्ष

प्रतिपदा — अन्नकूट, शृंगार दीवाली का रहेगा । गोवर्धन की पूजा करके अन्नकूट का भोग रखना, जहाँ तक बन पड़े सामग्री समर्पण करना ।

द्वितीया — भाई दूइज, तिलक ।

अष्टमी — गोपाष्टमी ।

नवमी — अक्षयनवमी, गोविदाभिषेकोत्सव, परिक्रमा करना ।

एकादशी — प्रबोधिनी, अच्छे समय में ऊख के मंडप में पधराय कर जगाना, नया जाड़े का कपड़ा

समर्पण करना, अंगीठी आदि जाड़े का उपचार रखना ।

द्वादशी — श्री गिरिधर जी का और श्री रघुनाथ जी का उत्सव ।

त्रयोदशी — श्री राधावल्लभ जी का पाटोत्सव ।

पूर्णिमा — यज्ञपत्री अंगीकार ।

कार्तिक में अगस्त के फूल की माला, दीप दान, रंग से स्वस्तिकादि लिखना, तुलसी समर्पण और सामग्री भोग रखना ।

मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष

तृतीया — बुध अवतार ।

पष्ठी — श्री गोविंदराय जी का उत्सव ।

त्रयोदशी — श्री घनश्याम जी का उत्सव ।

मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष

द्वितीया — कृष्ण में पधारे ।

पंचमी — श्री रुक्मिणी जी तथा श्री सीता जी का विवाहोत्सव ।

सप्तमी — श्री गोकुलनाथ जी का उत्सव ।

पौष कृष्ण पक्ष

नवमी — प्रभु श्री गो. विठ्ठलनाथ जी का उत्सव ।

पौष शुक्ल पक्ष

अष्टमी — अन्नप्राशन, इसी दिन श्री नंदराय जी का जन्म ।

माघ कृष्ण पक्ष

पष्ठी — श्री ठाकुर जी का नामकरण ।

मकर संक्रांति जिस दिन हो उस दिन छींट के नए रुई के बागा धराना और तिल का लड्डू भोग धरना ।

माघ शुक्ल पक्ष

पंचमी — वसंतोत्सव, खेल आरंभ, सफेद बागा, इसी दिन से अबीर बुक्का केसर चोआ से नित्य खिलाना, सामने वसंत रखना, वसंत राग माघ की पूर्णिमा तक गाना । श्री अद्वैत प्रभु का उत्सव ।

पष्ठी — श्री यशोदा जी का जन्म ।

अष्टमी — श्री मध्वाचार्योत्सव ।

त्रयोदशी — श्री नित्यानंद प्रभु का उत्सव ।

पूर्णिमा — होली डाँड़ा ।

फाल्गुण कृष्ण पक्ष

सप्तमी — श्रीनाथ जी का पाटोत्सव ।

फाल्गुण शुक्ल पक्ष

एकादशी — कुंज एकादशी, फूल का मुकुट धरावना, कुंज में खिलाना ।

पूर्णिमा — होलिकोत्सव, सफेद बागा, पाग, मोर चंद्रिका, खेल । श्री चैतन्य प्रभु का उत्सव ।

चैत्र कृष्ण पक्ष

प्रतिपदा — दोलोत्सव, सफेद बागा, पाग मोर चंद्रिका, आम के मोर की डोल बाँध कर ठाकुर जी को झुलाना, चार भोग चार खेल होय ।

पंचमी — मत्स्यावतार ।

त्रयोदशी — बाराहावतार ।

संक्षिप्त नित्य सेवा पद्धति

सेवा का मूल यह है कि स्नेह पूर्वक जैसे निज देह वा बालक वा स्वामी की गर्मी सर्दी आदि ऋतु के

अनुसार भोजन वस्त्र से रक्षा की जाती है वैसे ही सर्व स्वामी परिपूर्ण परमेश्वर की मूर्ति की भी सेवा करना । नित्य सबेरे प्रातः कृत्य से निवृत्त होकर तिलक संध्या करके मंदिर में जाकर पहिले दंडवत करके मार्जनी करना, रात के बरतन धोकर वस्त्रादि जो बदलना हो सब ठीक करके घंटानाद पूर्वक ठाकुर जी को जगाना और मंगल भोग रखकर मंगला आरती करना, फिर स्नान कराकर यथा शक्ति शृंगार करना, फूल की माला पहराना, चरण पर तुलसी समर्पण करके खड़ी मूर्ति हो तो वेणु धराकर दर्पण दिखलाना, श्रद्धा सौकर्य हो तो शृंगार भोग रखकर फिर दूध भोग लगाकर तब राजभोग धरना । न सौकर्य हो तो शृंगार पीछे एक ही भोग रखना । आचमन मुख वस्त्र करके बीड़ी समर्पण करके चौपड़ खिलौना आदि सामने घर के आरती करना । फिर सज्जा साज करके किवाड़ बंद कर देना । संध्या को फिर घंटानाद करके जगा कर दिन का पानी आदि बदल कर यथा शक्ति फल भोग रखना सौकर्य हो तो साँझ को भी दो भोग और रखना नहीं तो एक ही बेर सही । फल भोग के पीछे शृंगार उतार कर शयन भोग रखना और दूध रखना । फिर आरती करके शयन कराना । गर्मी हो तो पतली चद्दर, जाड़ा हो तो रजाई उढ़ाना । स्वामिनी जी को साड़ी और खड़े सरूप हों तो तनियां रात को भी रहें । बालसरूप हो तो नंगे ही पौढ़ें । मणि विग्रह हों तो नित्य स्नान नहीं कराना । व्रत के दिन भी ठाकुर जी को नित्य की भाँति अन्न आदि समर्पण करना । गर्मी सर्दी का सेवा में बहुत ध्यान रखना ।

अथ संक्षिप्त निर्णय

एकादशी के व्रत का मोटा निर्णय यह है कि पहले दिन पचपन घड़ी से पल भर भी दशमी विशेष हो तो व्रत नहीं करना, द्वादशी को व्रत करना । किंतु निर्वार्क संप्रदाय वाले ४५ घड़ी से अधिक दशमी हो तो व्रत नहीं करते । द्वादशी दो हों तो पहिली द्वादशी को व्रत करना । दो एकादशी हों तो दूसरी एकादशी को व्रत करना । पत्रा न मिले और दशमी के समय में कुछ भी संदेह हो तो द्वादशी को व्रत करना । जन्माष्टमी, रामनवमी और नृसिंह जयंती उदयात् लेना और वामन द्वादशी मध्यान्हव्यापिनी, विजय दशमी सायंकाल व्यापिनी । और उत्सव सब संसार में जिस दिन तिथि मानी जाय उस दिन । रास पूर्णिमा जिस दिन चंद्रमा की कला विशेष मिले उस दिन करना ।



हिंदी कुरानशरीफ

रचनाकाल सन् १८७५। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका जि. २ सं. ८ - १२ सन् १८७५ में पहली बार अपूर्ण प्रकाशित।— सं.

हिंदी कुरानशरीफ

मुहम्मदीय मत प्रयुक्त ईश्वर के पवित्र और आदरणीय वाक्य आरंभ करता हूँ क्षमा करने वाले और दयालु ईश्वर के नाम के साथ।

सब स्तुति उसी की है जो लोकों का भर्ता है। हम तेरी ही वंदना करते और तुझी से सहायता चाहते हैं। मुझको सीधा मार्ग दिखा। जो मार्ग उनका है जिन पर तूने कृपा की है न कि उनका जिन पर तूने क्रोध किया है और जो भूले हैं।

१ म. खण्ड समाप्त हुआ।

आरंभ करता हूँ क्षमा करनेवाले और दयालु ईश्वर के नाम के साथ।

निस्संदेह यह पुस्तक धर्मियों को उसका मार्ग दिखाती है। जो बिन देखे विश्वास करते हैं और वंदना का नियम रखते हैं और उस पर संतोष रखते हैं जो मैंने उन्हें दिया है। और जो लोग कि उस पर विश्वास लाते हैं जो तुम्हारे लिए उतारा गया और जो तुम्हारे पूर्व उतारा गया और जो अंत के दिन का स्मरण रखते हैं।

यही लोग अपने परमेश्वर की शिक्षा पर चलने वाले और यही लोग मुक्ति पाने वाले हैं। और निश्चय जो लोग बहिर्मुख हैं उन्हें चाहे तू कितना भी डरावे या न डरावे वे विश्वास न करेंगे। कृपा की ईश्वर ने इनके चित्त कान और आँखों पर और उन पर परदा है और उनको बड़ा पाप है। मनुष्यों में कोई कहते हैं कि ईश्वर पर विश्वास लाए हम और पिछले दिनों पर निश्चय किया और कोई विश्वास नहीं लाते। वे ईश्वर से और उसके विश्वासियों से छल करते हैं पर यह नहीं समझते कि उन्होंने अपनी आत्मा से छल किया। इनके चित्त में व्याधि है और ईश्वर ने बढ़ाई है इनकी व्याधि, और वे पाप के और दुःख के भागी हैं क्योंकि वे झूठ बोलनेवाले थे, जब उनसे कहा जाता है कि पृथ्वी पर उपद्रव मत करो वे कहते हैं कि हम योग्य करते हैं, निश्चय रखो कि वे पाखंडी हैं और अज्ञानी हैं, जब उनसे कहा जाता है कि तुम भी विश्वास करो जैसे औरों का विश्वास है तो वे कहते हैं, कि विश्वास हम कैसे करें विश्वास करनेवाले तो मूर्ख हैं पर निश्चय रखो कि वे ही मूर्ख हैं पर वे अपने को जानते नहीं। वे जब धर्मियों से मिलते हैं तब कहते हैं कि हम भी उस पर विश्वास रखते हैं पर जब अपने (पाखंडी) वर्ग के मुखियों से मिलते हैं तो कहते हैं कि हम निस्संदेह तुम्हारे साथ हैं हँसी नहीं करते, (परंतु) ईश्वर उनसे हँसी करता है और उनको अपने विपद प्रेरणा करता है, यही लोग हैं जिन्होंने शिक्षा के बदले कुमार्ग मोल लिया इससे इनके व्योपार में न तो कुछ लाभ हुआ और न इनको मार्ग मिला, इन लोगों की उपमा उस मनुष्य की है जिसने आप आग लगाई और अपने पास की वस्तु जला दी इसी से ईश्वर ने

उनका प्रकाश हरण कर लिया और उनको अंधकार में डाल दिया इसी से वे नहीं देखते । वे बहिरे अंधे और गूँगे हैं क्योंकि उनकी गति नहीं । वा मेघ की आकाश में अंधेरी और गरज और चमक से वे कानों में उगली करते हैं पर मृत्यु की कड़क (बिजली) से डरो और (निश्चय रखते कि) भगवान् दुष्टों को आच्छादन करने वाला है । निकट है कि वह बिजली उनकी दृष्टि हरण कर ले जाय क्योंकि वह जब उनको प्रकाश देती है तब वे उस मार्गपर चलते हैं और वह जब अंधकार करती है तब वे खड़े रह जाते हैं और यदि ईश्वर चाहे तो उनका कान और आँख हरण कर ले क्योंकि निश्चय ईश्वर वस्तु मात्र का प्रभु है । हे लोगो ! अपने परमेश्वर की बंदना करो जिसने तुमको और तुम्हारे पूर्वजों को उत्पन्न किया तो बचोगे । जिसने तुम्हारे हेतु पृथ्वी का बिछोना बनाया और आकाश की छत और आकाश से पानी उतार कर फल उत्पन्न करके तुम्हारा भोज्य बनाया इससे उसकी किसी की समता मत दो यह तुम जानते हो । यदि तुमको इस विषय में संदेह हो तो जो वस्तु हमने अपने दासों के हेतु बनाई हैं इसमें से (एक भी) वस्तु वैसी ही लाओ और अपने साक्षियों से पूछो कि ईश्वर को छोड़ कर तुम (कैसे) सच्चे हो तुम वैसा नहीं कर सकते निश्चय तुम वैसा नहीं कर सकते इससे अग्नि से डरो जिसका मनुष्य ईधन है और पत्थर (भी उन) पाखंडियों के हेतु बनाये गए हैं, और लोगों को यह समाचार शुभ है जिन्होंने उस पर विश्वास किया है और अच्छी करनी की है क्योंकि उनके लिए वे स्वर्ग बने हैं जिनके नीचे नहरें बहती हैं और उनको (उत्तम) फलों का भोजन मिलेगा तब वे कहेंगे कि यह वह वस्तु है जो हमें पहिले ही से मिली है जो एक दूसरे के समान हैं और ये अवर्णनीय और पवित्र हैं और वे उसमें सर्वदा रहने वाले हैं ।

निश्चय भगवान् को इसमें लज्जा नहीं है कि कोई मच्छड़ की उपमा दे या कोई और उपमा दे जो लोग विश्वास रखते हैं वे भली भाँति जानते हैं कि निश्चय यह उनके ईश्वर का कहा है पर जो अविश्वासी हैं वे कहते हैं कि ईश्वर को ऐसी उपमा देने की क्या आवश्यकता थी । इसी से वह बहुतों को सन्मार्ग दिखाता है और बहुतों को वह भुलाता है क्योंकि वे उसकी आज्ञा उल्लंघन करते हैं । जो दुष्ट लोग शपथ किये पीछे ईश्वर के साथ के नियमों को तोड़ते हैं और जिन बातों को उसने जोड़ने की आज्ञा दी है उनको भी तोड़ते हैं और सारे देश में उपद्रव उठाते हैं वे निश्चय हानि वाले हैं । जिसने मृत से तुमको जीवनदान दिया और जीवित से मृत करेगा और फिर जिलावेगा और अपने पास बुलावेगा उस ईश्वर पर तुम क्यों नहीं विश्वास करते । उसी ने पृथ्वी पर की सब वस्तु तुम्हारे हेतु उत्पन्न की और सातो आकाश की ओर दृष्टि फेर कर पृथ्वी से उसका (गुणद) संबंध स्थिर किया और वही सर्वज्ञ है । जब उसने देवताओं से कहा कि मुझको पृथ्वी पर एक आश्चर्य (ईश्वर का दूत और स्थानापन्न) रखना है तो देवताओं ने कहा कि क्या आप ऐसा मनुष्य भेजा चाहते हैं जो उपद्रव करे और पृथ्वी पर बहुत जीवों का बंध करे । हम लोग सदा आप का गुणगान करते हैं और आप की पवित्र मूर्ति का ध्यान करते हैं (अर्थात् हम पृथ्वी पर भेजे जाने के योग्य हैं) ईश्वर ने कहा तुम सब अल्पज्ञ हो सर्वज्ञ केवल मैं हूँ फिर आदिम को उसने अपनी सृष्टि के स्थावर जंगमों के नाम बताए और उन वस्तुओं को देवताओं को दिखाकर उनका नाम पूछा । उन लोगों ने कहा प्रभु तू सबसे निराला है हम सब केवल उतना ही जानते हैं जितना ज्ञान तूने हमें दिया है और निस्संदेह सर्वज्ञ केवल तू है । तब ईश्वर ने आदिम से कहा कि तू इनके नाम बता तब उसने सब नाम बतलाए तब ईश्वर ने कहा कि देखो पृथ्वी और स्वर्ग का त्रिकाल ज्ञान हमको है और हम तुम्हारे प्रगट और प्रच्छन्न कर्मों को जानते हैं, आज्ञा दिया कि सब देवता इसकी वंदना करो और सबने वंदना की परंतु अवलीश (इबलीस) ने वंदना न की आज्ञा से फिर गया क्योंकि वह दुष्ट था । मैंने आज्ञा दी कि ए आदिम तुम और तुम्हारी स्त्री वैकुंठ में रहो और सावधानी से इन अमृत फलों को खाओ और चाहो जहाँ फिरो परंतु इस वृक्ष के पास मत जाना नहीं तो पापी होंगे परंतु उनको स्तेन (शैतान) ने बहकाया और उनको उस परम सुख से च्युत किया । तब मैंने कहा कि तुम नीचे उतरो, तुम्हारे में परस्पर बैर है और बहुत काल तक तुमको पृथ्वी पर रहना है और बड़े काम करने हैं फिर आदिम ने अपने ईश्वर से बहुत से धर्म सीखे और ईश्वर उनपर दयालु हुआ क्योंकि वह सच्चा दयालु और क्षमावान है । फिर मैंने कहा कि तुम सब नीचे उतरो और जब कभी कोई हमारा अनुशासन मिले तो उसको मानो क्योंकि जो हमारी आज्ञा मानते हैं उनको न मय है न शोक पर जो उस आज्ञा का उल्लंघन करते हैं और हमारे अनुभवों को झूठा करते हैं वे नारकी है

और सदा नर्क में रहेंगे। हे इसराईल (ईश्वरायिल) की संतान हमारे अनुग्रहों को स्मरण करो जो हमने तुम्हारे ऊपर किए और तुम अपने वचनों को पूरा करो तो मैं भी अपने वचनों को पूरा करूँगा और केवल मेरा ही भय रखो। और मानो जो कुछ हमने तुम्हारे हेतु उतारा क्योंकि सच माननेवाला तुम्हारे पास है और मेरी आज्ञाओं को बहुमूल्य समझो और मुझसे भय करो। सत्य में असत्य मत मिलाओ और सब को जान बूझकर मत छिपाओ और वंदना करो (नमाज खड़ी करो) और दान (जकात) दो और वंदना में झुकनेवालों के साथ झुको।

लोगों को सन्मार्ग पर चलने का उपदेश करते हैं पर तुम आप वैसा आचरण नहीं करते। धर्म पुस्तकों को पढ़ते हैं पर समझते नहीं। धैर्य से प्रार्थना करो और निश्चय रखकर वंदना करो यद्यपि यह कठिन है परंतु दीन भक्तों को सदा लाभ्य है क्योंकि उनको अपने सृष्टिकर्ता परमेश्वर से मिलने और अंत में उसके पास जाने का निश्चय है। हे इसराईल की संतान हमारे उन अनुग्रहों को जो हमने तुम पर किए हैं स्मरण रखो। हमने तुमको संसार के जीवमात्र से श्रेष्ठ किया है। और उस दिन का भय रखो जिस दिन कोई किसी के कुछ भी काम नहीं आता और न किसी की सिफारिश सुनी जाती है न कोई कुछ बदला देकर बच सकता है और न किसी की कोई सहायता कर सकता है। उसको स्मरण करो जो हमने तुमको फरऊन के गणों से बचाया जो तुमको बड़ा दुःख देते और तुम्हारे संतान का वध करते तथा तुम्हारी स्त्रियों को (दासी बनाने को) जीती रखते। ईश्वर ने इस कार्य में तुम्हारी बड़ी सहायता की है। तुम देखते थे कि (नील) नदी को दो भाग करके हमने तुम्हें बचा लिया और फरऊन के गण को डुबा कर नाश कर दिया। मूसा से हमने चालीस रात्रि में सब आपत्तियों से छुड़ाने का प्रण किया था पर फिर तुम सब मुझसे फिर गए और बछड़े की पूजा की अतएव तुम बहिर्मुख हो। तब भी हमने तुमको क्षमा किया कि तुम अब भी हमारे गुण मानों और इसी हेतु मूसा को हमने धर्म पुस्तक और उपदेश दिए कि तुम उनके द्वारा सत्यमार्ग पहिचानो। और जब मूसा ने अपनी जाति से कहा कि तुम लोगों ने इस बछड़े की पूजा करके अपनी बड़ी हानि किया इससे अब तुम इसकी घृणा करो और इसके प्रायश्चित्त में अपने जीव की बलि दो क्योंकि इसी में तुम्हारे परमेश्वर की प्रसन्नता है। यों उसने तुम्हारी ओर फिर दृष्टि फेरी क्योंकि वह क्षमावान और दयावान है परंतु तुमने फिर यही कहा ए मूसा जब तक हम लोग परमेश्वर को अपने सामने न देखेंगे कभी विश्वास न करेंगे। इस बात पर तुम्हारे सामने बिजली ने फिर तुमको घात किया परंतु हमने मरने पीछे फिर तुमको इस वास्ते जिलाया कि तुम अब भी विश्वास लाओ। और हमने दिन भर तुम पर मेघ की छाया की और मन^१ और सलवी^२ उतार कर कहा कि उत्तम वस्तुओं को मैंने तुम्हें दिया तुम इन्हें खाओ। तुमने मुझसे विमुख होकर अपनी ही हानि की कुछ मेरी हानि नहीं की है। फिर मैंने तुमसे कहा कि इस नगर में बसो और यथा सुख निर्भय इन उत्तम खाद्य वस्तुओं को खाते फिरो और मेरा धन्यवाद करके द्वार में प्रवेश करो और कहो कि हमें क्षमा कर तो मैं तुम्हारे अपराधों को क्षमा करूँ। विशेष कर मैं उनकी क्षमा करूँगा जो विश्वासी हैं। परंतु दुष्टात्मा लोगों ने फिर मुझसे मुख फेर लिया इस हेतु मैंने आकाश से फिर उन अन्यायियों पर क्रोध उतारा। फिर जब मूसा ने अपने शिष्यों के हेतु पानी माँगा मैंने कहा तुम अपनी छड़ी पत्थर पर मारो। फिर उससे बारह सोते बह निकले और सब ने अपनी अपनी जीविका पहिचान ली। फिर मैंने आज्ञा दी कि ईश्वरदत्त जीविका से निर्बाह करो और देश में उपद्रव उठाते मत फिरो। फिर तुमने कहा कि ए मूसा हम एक प्रकार के भोजन पर संतोष न करेंगे इससे तू पुकार अपने ईश्वर को कि हमारे हेतु पृथ्वी से साग, लकड़ी, गेहूँ, मसूर और प्याज उत्पन्न करें। उसने कहा तुम एक उत्तम वस्तु के बदले बुरी वस्तु चाहते हो।

१. मन एक मीठा दाना घनिया का सा था जो ईश्वर ने जीवों पर क्षमा करके बरसाया था।

२. सलवी बटेर की सी एक चिड़िया थी जिन्हें परमेश्वर ने उनके लिए भेजा था।

किसी नगर में उतरो तो जो तुम मांगते हों तुमको मिले। तब उन पर विपत्ति और दैन्य पड़ा और ईश्वर का कोप हुआ क्योंकि वह ईश्वर की आज्ञा नहीं मानते थे और आचार्यों को व्यर्थ मार डालते थे और वह आज्ञा के विरुद्ध थे और उन्होंने सीमा उल्लंघन की थी। जो लोग मुसलमान^१ या यहूदी^२ या क्रिस्तान^३ या साबईन^४ जो कोई ईश्वर पर और प्रलयकाल पर विश्वास करता है और अच्छा काम करता है, तो वह ईश्वर से अपनी कमाई पाता है और न उसको डर है, और न वह दुःख भोगता है। जब हमने पर्वत^५ ऊँचा किया और तुमसे वाक्य लिया और कहा कि जो हमने तुमको दिया उसको बल से पकड़ो जिसमें तुमको भय हो फिर इसके पीछे तुम फिर गए सो इस अवसर पर जो ईश्वर की उदारता और दया तुमपर न होती तो तुम नाश हो जाते और तुम जानते हो कि तुम लोगों में से जिसने अतवार के दिन उपद्रव किया उनको हमने शाप दिया कि बंदर हो जाओ और इस कथा को जो उस जात के लोग हैं वा होंगे उनके हेतु हमने विभीषिका रखा कि इससे उनको भय और उपदेश हो। और जब मूसा ने अपनी जाति को कहा कि एक बछड़ी बलि दो तो उन्होंने कहा कि तुम हँसी करते हो। मूसा ने कहा कि मैं इन मूखों की मंडली में ईश्वर से शरण माँगता हूँ तब वह बोले कि अपने ईश्वर को पुकार कि वह हमसे वर्णन करे कि वह गाय कैसी है। उसने कहा वह न बूढ़ी है न बिन ब्याई और इन सभी में डील की छोटी है लो अब जो ईश्वर ने आज्ञा किया है करो। फिर उन्होंने कहा अपने ईश्वर को पुकार कि वह उसका रंग बतलावे। मूसा ने कहा कि वह एक गहिरा पीले रंग की गाय है जिसके देखने से नेत्रों को आनंद होता है। वे बोले हमारे वास्ते अपने ईश्वर को पुकार कि वह वर्णन करे कि वह किस जात की गाय है क्योंकि हमको गायों में संदेह हो गया है और ईश्वर ने चाहा तो हम सन्मार्ग पर आवेंगे। उसने कहा कि ईश्वर कहता है कि वह पशुम करनेवाली गाय नहीं है जो पृथ्वी जोते खेत सींचे^६, न उसके शरीर पर रोम है तब उन लोगों ने कहा कि अब तुमने सच्ची बात कही और फिर उसका बलि दिया परंतु उससे दूर रहे। फिर तुमने एक मनुष्य को मार डाला पर उसका कलंक एक दूसरे को देते थे और ईश्वर की इच्छा थी कि जो तुम छिपाते हो वह प्रगट हो, फिर हमने कहा कि इस मुरदे पर बलि दो हुई गाय के शरीर का टुकड़ा मारो जिससे परमेश्वर उस मृतक को जिलावेगा और तब तुमको उस पर विश्वास आवेगा। फिर भी तुम लोगों के चित्त पत्थर की भाँति बरज्ज उससे भी कठोर हो गए और पत्थर में तो ऐसे भी होते हैं जिनसे नहरें निकलती हैं और ऐसे भी होते हैं जो फट जाते हैं और उनके नीचे से पानी निकलता है और ऐसे भी होते हैं जो ईश्वर के भय से गिर पड़ते हैं, और ईश्वर तुम्हारे सब कर्मों का ज्ञाता है। तो हे विश्वासी गण क्या तुम को आशा है कि यहूदी लोग तुम्हारी बात सुनेंगे? इन्हीं लोगों ने ईश्वर के वाक्य^७ पहिले सुने और उससे फिर गए, ये लोग जब विश्वासियों से मिलते हैं कहते हैं कि हम भी विश्वास लाए पर जब एकांत में एक दूसरे से मिलते हैं तो कहते हैं कि तुम पर जो परमेश्वर ने प्रगट किया है वह उनसे (अर्थात् मुसलमानों से) क्यों कहते हो^८ क्योंकि इससे वे ईश्वर के सामने तुम्हीं को झूठा बनावेंगे, परंतु यह नहीं जानते और इतनी बुद्धि तुमको नहीं है कि ईश्वर जो तुम छिपाया चाहते हो और जो प्रगट किया चाहते हो सब जानता है और कितने उनमें ऐसे हैं जो धर्म पुस्तक पढ़ते हैं परंतु उनको ज्ञान नहीं है और व्यर्थ के मनोरथ किया करते हैं इससे उनके पास सेवाय तर्क वितर्कों के और कुछ नहीं है। और वे लोग अपराधी हैं जो पुस्तक अपने हाथ से लिखते हैं और कहते हैं कि यह ईश्वर के यहाँ से आई है

१. म. मुहम्मद का मत मानने वाले।
२. म. मूसा का मत मानने वाल।
३. म. ईसा का मत मानने वाले।
४. म. इब्राहीम का मत माननेवाले। इस मत के लोग अब नहीं देख पड़ते।
५. तूर पर्वत० जब तौरैत उतरी तब लोगों ने कहा कि यह सब आज्ञा हमसे न मानी जायगी इस हेतु उनको भय दिखलाने को ईश्वर ने तूर पर्वत ऊँचा किया कि उनके ऊपर गिर पड़े।
६. इससे यह ध्वनि निकली कि जो पशु खेती बारी के काम आवें और दूध दें उनकी बलि नहीं देना।
७. तौरैत।
८. उस समय में यहूदी लोग मुसलमानों के सामने जो तौरैत में से अंतिम ईश्वर दूत (म. मुहम्मद) की महिमा सुनावें तो पीछे विरोधी लोग उनसे रुष्ट होते थे क्यों ऐसा करते हो।

और उससे लाभ उठाते हैं सो उनके इस हाथ के लिखने और लाभ उठाने पर धिक्कार है । कितने कहते हैं कि हमको नर्क का भय नहीं केवल कुछ दिन नर्क भोगना होगा । तो कहो कि क्या ईश्वर से उन लोगों ने ऐसा वचन ले लिया है यदि ऐसा वचन ले लिया है तो अवश्य ईश्वर उसके विरुद्ध न करेगा परंतु उसके विषय में व्यर्थ झूठ क्यों कहते हैं । जिन लोगों ने पाप कमाया है उनको पाप ने आच्छादन कर लिया है और वे नर्क के भागी हैं और सदा नर्क ही में रहेंगे । और जिन लोगों ने धर्म विश्वास किया और पुण्य कर्म किए वे स्वर्ग के भागी हैं और सदा स्वर्ग में रहेंगे । हमने इसराईल की संतान से शपथ लिया था कि ईश्वर को छोड़ और किसी की पूजा मत करो, माता, पिता, संबंधी, अनाथ और दीनों का उपकार करो, लोगों से अच्छे वचन बोलो, वंदना नित्य करो और दान दो किन्तु तुम लोगों में से कुछ लोग फिर गए । फिर तुम लोगों से हमने शपथ लिया कि आपस में मार काट न करो और न अपने जातिवालों को देश से निकालो और तुमने भी यह प्रतिज्ञा की और उस पर आरुढ़ रहे । परंतु फिर तुम वैसे ही मार काट करते हो, अपने जाति के लोगों को देश से निकाल देते हो, उन पर पाप और अन्याय से चढ़ाई करते हो, और वही लोग जब तुम्हारे सामने बंधुए होकर आते हैं तो उनको छुड़ाने को भी प्रस्तुत होते हो, यद्यपि उनका निकाल देना ही पाप है, तो क्यों धर्म पुस्तक का एक वाक्य मानते हो एक नहीं मानते, तो ऐसे लोगों को क्या दंड है, यही कि संसार जीवन में तो निन्दा और प्रलय के दिन कठिन से कठिन नर्क दंड, क्योंकि ईश्वर तुम्हारे सब कर्मों का ज्ञाता है । ऐसे ही लोगों ने तुच्छ संसार के बदले (चिरसुख) स्वर्ग छोड़ा है सो ऐसे लोगों का पाप न हलका होगा न उन पर दया होगी । और हमने मूसा (मोक्ष) को धर्म पुस्तक दी और उसके पीछे बराबर धर्मदूत भेजे और मरियम के पुत्र ईसा (ईश) को अनेक चमत्कार शक्ति दी और पवित्रात्मा (जिबरील-गरुड)^१ के द्वारा अनेक बल दिए किन्तु किसी धर्मदूत ने तुम लोगों से कोई बात ऐसी कही जो तुम्हारी रुचि के अनुसार नहीं थी तो तुम अभिमान करते थे और कुछ लोगों को बहकाया और अनेकों को मार डाला । और कहते कि हमारे चित्त पर आवरण^२ पड़ा है इससे ईश्वर ने उनको (धर्मदूतों से) विमुख होने पर धिक्कृत किया । और जब उनको धर्म पुस्तक ईश्वर की ओर से मिली तो अपने पास वाली (धर्म पुस्तक) को सच्ची बतलाने लगे, सो यद्यपि पहिले ये अधर्मी लोगों को जीतने चाहते थे परंतु जब उनको वह वस्तु भेजी गई जिसका उनको ज्ञान था और उससे भी फिर गए तो विमुख होनेवालों को ईश्वर ने धिक्कार किया । ऐसे लोगों ने प्राण के बदले बुरी वस्तु मोल ली कि उन वाक्यों से जो ईश्वर ने उनके हेतु उतारा फिर गए सो भी केवल ईर्ष्या से और अपनी दया से वह अपने दासों में से चाहे जिसके द्वारा अपने वाक्य उतारे अतएव (विरोधी) उन पर कोप पर कोप हुआ और ऐसे फिर जानेवालों को पाप और दुर्दशा है । और जो उनसे कहो कि जो वाक्य ईश्वर ने उतारा है उसको मानो तो वे कहते हैं कि हम पर जो पूर्व में उतरा है वही मानते हैं जो अब उतरा है उसको नहीं मानते और यद्यपि यह सत्य है पर उन से पूछो कि जो तुम धार्मिक हो तो ईश्वर के दूतों को क्यों दुःख देते हो । यद्यपि मूसा प्रत्यक्ष में आश्चर्य सिद्धि लेकर तुम्हारे पास आया परंतु उसके पीछे तुमने फिर बछड़ा बना लिया और तुम उपद्रवी हो ।

१. यहूदियों के एक संप्रदाय का विश्वास था कि केवल थोड़ी सी पाप की यातना भोगने के बाद यहूदी मात्र स्वर्ग जायेंगे । जैसा कि काशी वासियों का मेरवी यातना के विषय में विश्वास है ।

२. कहते हैं कि जिबरील (गरुड) सदा ईसा के साथ रहते हैं ।

३. यहूदियों का विश्वास है कि उनके चित्त पर ईश्वर ने एक आवरण बनाया है जिससे दूर धर्म का उनको व्यर्थ संस्कार न हो ।

४. अर्थात् जब यहूदियों पर अधर्मी लोग उपद्रव करते तब वे (म. मुहम्मद) अंतिम धर्म दूत के उत्पन्न होने की प्रार्थना करते पर जब वह उत्पन्न हुए तो यहूदी लोग उनसे फिर गए ।

श्री बल्लभाचार्य कृत चतुश्लोकी

श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका जिल्द १ संख्या ३-१ सितम्बर सन् १८८३ में प्रकाशित श्री बल्लभाचार्यकृत चतुश्लोकी का अनुवाद यह है ।— सं.

नमः प्रेमपथप्रवर्तकेभ्यः

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधिपः ।

स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कथं च न ॥ १ ॥

संसार के जीवों को कर्मजाल में बंधे देखकर आप परम कारुणिक श्री महाप्रभुजी अन्य साधनों की निवृत्ति के हेतु परम अमृत स्वरूप वाक्य श्रीमुख से आज्ञा करते हैं, सर्वदेति । सब समय में दुःख सुख में खाते पीते उठते बैठते सब क्षण में सर्व भाव से ब्रजाधिप श्रीराधारमण ही का भजन करना क्योंकि भजनीय वही है, और कोई प्रेम का बदला नहीं दे सकता और भजन भी सर्व भाव से करना अर्थात् संसार में जितने भाव हैं ईश्वर भाव, गुरु भाव, मित्र भाव, पतिभाव इत्यादि पूयक भाव जिसमें जिससे हो सब को समेटकर सब भाव से उन्हीं का भजन करना, रीझना भी उन्हीं पर खीझना तो उन्हीं पर, माँगना तो उन्हीं से, लड़ना तो उन्हीं से, जिसमें फिर कहीं और कोई भाव न रह जाय केवल एक अवलंब श्रीकृष्ण ही हों इस पर आप आज्ञा करते हैं कि जो लोग हमारे हैं उनका निश्चय एक यही धर्म है दूसरा कोई धर्म कदापि किसी माँति से नहीं है अर्थात् कर्ममार्ग प्रवर्तकः इस नाम से कोई यज्ञादिकों को ही मुख्य धर्म मान कर इसे छोड़ उसमें प्रवृत्त होकर भ्रांत न हो जायें इस हेतु आप मुक्त कंठ से कहते हैं कि हमारे लोगों का तो मुख्य धर्म यही है कि सर्वदा सर्व भाव से केवल श्रीकृष्ण ही का भजन करना ।

एवं सर्वैस्त्वकर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति ।

प्रभुस्सर्वसमर्थोहि ततो निश्चिततं ब्रजेत् ॥ २ ॥

अब जो कोई शंका करे कि हम सब छोड़ कर एक श्रीकृष्ण ही को भजें तो हमारा योग-क्षेम पितृ देव कर्मादिक सब कैसे सिद्ध होगा, इस शंका के निवारण के हेतु आप आज्ञा करते हैं कि इन सब बातों की चिंता छोड़ कर जैसा पूर्व में कहा है वैसा ही करो फिर तुम्हारा जो कुछ कर्तव्य है वह सब आप कर लेगा करने न करने अन्यथा करने में और भी सब में वह निश्चय करके समर्थ है इससे आप निश्चित हो जाना, जब हमने उसके भरोसे सब छोड़ा है तो वह अंतर्दामी है आप जानता है सब कर लेगा । गीता में उसकी प्रतिज्ञा है कि जो लोग अनन्य होकर मुझे भजते हैं उनका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ इससे लोक वेद दोनों से निश्चित होकर केवल भजन ही करना ।

यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतस्सर्वात्मना हृदि ।

ततः किमपर ब्रहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ॥ ३ ॥

जो यह शंका करो कि हम लौकिक वैदिक कर्म छोड़ दें तो पतित न हो जायेंगे उस पर आप आज्ञा करते हैं कि जो श्रीगोकुलाधीश्वर सर्वभाव से एकचित्तता से हृदय में धारण किए गए हैं तो बताओ फिर और किसी लौकिक और वैदिक कर्मों से क्या ? क्योंकि ये तो दोनों रीति से व्यर्थ पड़ते हैं जो श्रीकृष्ण की भक्ति नहीं है तो ये कर्म किस काम के क्योंकि ये परमानन्दमय श्रीकृष्ण वियोगदान में समर्थ नहीं हैं और जो श्रीकृष्ण की भक्ति है तब ये किस काम के क्योंकि उसको फिर और कोई कर्म अवशिष्ट नहीं है इससे सर्व प्रकार से अनन्य होकर सर्वांतर्यामी एक श्रीकृष्ण ही का भजन करना ।

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं गोकुलेश्वर पादयोः ।

स्मरणं कीर्तनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः ॥ ४ ॥

इससे सर्व भाव से आत्मा मन बुद्धि प्राण देह और इंद्रिय सब से नित्य प्रतिक्षण श्रीगोकुलेश्वर जुगल चरणारविंद का स्मरण और कीर्तन कभी नहीं छोड़ना यह श्री महाप्रभु जी आज्ञा करते हैं कि हमारी मति है अर्थात् जो श्रीमहाप्रभु जी के मतावलंबिगन हैं उनको तो सब साधन छोड़ कर एक श्रीकृष्ण ही भजनीय है । यह आपने अपना मत दिखाया ।

श्रीवल्लभाचार्य विरचिता चतुश्लोकी समाप्ता ।

श्रुति रहस्य

यह लेख श्री हरिश्चन्द्र मैगजीन जिल्द १, संख्या ६, मार्च १५ सन् १८७४ में प्रकाशित है।— सं.

(नमः श्रीवल्लभाय श्रुतिवाक्यैस्तत्स्वरूपप्रदर्शकाय श्रीगिरिधराय च)

वेद के अक्षर कामधेनु हैं और इसी कारण सब मतों के आचार्य लोग उनके जितने अर्थ करते हैं सब मान्य होते हैं । यदि उनमें एक भी न माना जाय तो पूर्वाचार्यों पर आक्षेप होने से न माननेवाले नास्तिक गिने जाते हैं । जैसे 'चत्वारिंशंगा' इस श्रुति का निरुक्तकार, महाभाष्यकार, रामानुजाचार्य, विद्यारण्य इत्यादि ने अनेक प्रकार का अर्थ किया है और ये सब अर्थकार ऐसे हैं कि उनमें से एक के भी मानने बिना काम नहीं चलता तो सिद्धांत यह हुआ कि श्रुति से जितने अर्थ निकलेंगे वे कोई अप्रमाण न होंगे । जैसा चत्वारिंशंगा के यहाँ सब अर्थ दिखाते हैं ।

चत्वारिंशंगान्नयो अस्य पादा द्वेऽपि सप्तहस्तासा अस्य ।

त्रिधा बद्धा वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्या आविवेश ॥

१. अक्षरार्थ

उसको चार सींग हैं, तीन पैर हैं, दो सिर हैं, सात हाथ हैं, तीन प्रकार से बँधा हुआ बैल चिल्लाता है, तेज देवता मरनेवालों में घुसा है ।

अब यह केवल रूपक की भाँति कूट हुआ इसको स्पष्ट करने को

२. निरुक्तकार का अर्थ

यह श्रुति यज्ञ का प्रतिपादन करती है ; चार वेद इसके चार सींग हैं ; तीन अवन अर्थात् नीच, मध्य और

उच्च स्वर ये तीन पैर हैं ; प्रायणीय और उदयनीय ये दो सिर हैं ; सात गयत्र्यादि छंद इसके हाथ हैं ; मंत्र, ब्राह्मण और कल्प तीनों से बँधा हुआ यज्ञ वृषभ शब्द करता है, तेज का देवता मनुष्यों में इनके कल्याण के हेतु प्रवेश करता है ।

३. महाभाष्यकार का अर्थ

यह श्रुति शब्दरूपी वृषभ के वर्णन में है यथा संज्ञा, क्रिया, उपसर्ग और निपात ये चार इसके सींग हैं ; और भूत भविष्यत् और वर्तमान ये काल तीन पैर हैं ; नित्य और कार्य ये दो सिर हैं ; सात विभक्तियाँ हाथ हैं, हृदय, कंठ और सिर तीन स्थानों में बँधा है, वर्षण में इसकी वृषभ संज्ञा है, शब्द करनेवाला महान् देव (शब्द स्वरूप) मरण धर्मवाले मनुष्यों में प्रविष्ट होता है ।

४. श्रीरामानुज का अर्थ

यह श्रुति ईश्वर के वर्णन में है, चारों वेद चार सींग हैं ; नित्य, बद और मुक्त तीनों प्रकार के जीव तीन पाद हैं ; शुद्ध सत्त्व और गुणात्मक सत्त्व इसके दो सिर हैं अर्थात् शिरःस्थान में हैं, महत्तत्वादि, सात प्रकृति और विकृति इसके सात हाथ हैं, ऐसा महादेव श्रेष्ठ वृषभ वासुदेव अपने संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध इन तीनों रूपों से मनुष्यों में बँधता नाम प्रकट होता हुआ सब वस्तुओं को रोरवीति अर्थात् नामरूपवत् करता है और मर्त्य नाम चेतनाचेतन पदार्थों को अंतरात्मा होकर प्रवेश करता है ।

५. श्री विद्यारण्य का अर्थ

यह श्रुति प्रणव पर है, अकार, उकार, मकार और नाद ये इसके चार सींग हैं, अध्यात्म, विश्व और तैजस ये तीन पाद हैं, चित् और अचित् ये दो शक्तियाँ शिरस्थान में हैं, भूरादि सात लोक सात हाथ हैं, विराट्, हिरण्यगर्भ और व्याकृत इन तीन प्रकारों से बँधा हुआ वृषभ प्रणव ब्रह्म तेजोमयत्व का प्रतिपादन करता है ।

६. श्री वल्लभाचार्य जी के मतानुयायी का अर्थ

यह श्रुति श्री पुष्टि लीलास्थ पूर्ण पुरुषोत्तम ही का प्रतिपादन करती है, उन श्री पुरुषोत्तम के चार नित्य सिद्धादि यूथ शृंग अर्थात् उत्तम स्थान में हैं और उनके तीन पाद अर्थात् प्राप्ति होने के साधन तनुजा, चित्तजा और मानसी यह तीन प्रकार की सेवा है ; सख्य और आत्मनिवेदन ये दो भक्तियाँ शिर अर्थात् सिद्ध स्थान में हैं ; श्रवणादिक सात भक्तियाँ हाथ अर्थात् साधन स्थान में हैं ; श्रीपुरुषोत्तम की पूर्वोक्त नौ प्रकार के भक्ति से युक्त जीव अलौकिक सामर्थ्य, सायुज्य और सेवा में उपयोगी देह धारण, इन तीन प्रकार से बँधा है ; और उनकी लीला के प्रवेश के अर्थ धर्म-स्वरूप वर्षा करनेवाले और शोभा करने वाले वृषभ अर्थात् श्रीआचार्य रोरवीति नाम भक्तों को मंत्र और ग्रंथ द्वारा उपदेश करते हैं जिससे वर्ण धर्मा जीव अर्थात् सेवामार्गी जीव जब अधिकारी होते हैं तब महोदेव लीलास्थ पूर्ण पुरुषोत्तम उनमें आवेश करके लीला का अनुभव कराते हैं ।

७. श्रीवेणु पर अर्थ

यह श्रुति श्रीवेणु का प्रतिपादन करती है ; गान में चार रीति की बानी चार सींग हैं ; कोमलादि तीन स्वर पाद हैं ; मुख्य छिद्र वा लय और स्वर दो सिर हैं ; सात रंघ सात हाथ हैं ; अधर दो हस्तों से बँधा है ; ऐसा 'रुद्रो वै वेणुः' इस श्रुति से साक्षाद्ब्रह्मस्वरूप वेणु 'श्रीगोपालमुपास्महे श्रुतिशिरोवशीरवैर्दर्शित', इससे वेणु रूप ही धर्म मनुष्यों में प्रवेश करता है ।

८. श्री संगीत पर अर्थ

यह श्रुति संगीत का भी प्रतिपादन करती है, इसके तत, वितत, घन और धमन चार सींग हैं, तीन ग्राम तीन पाद हैं, लय और स्वर दो सिर हैं ; सात स्वर वा त्रिमूर्छना सप्तक सात हाथ हैं ; कंठ, नाभि और मुख इन तीन स्थलों से बँधा हुआ संगीत रूपी वृषभ अर्थात्गान ब्रह्म मनुष्यों को तन्मय कर देता है ।

९. साहित्य पर अर्थ

यह श्रुति साहित्य का भी प्रतिपादन करती है ; इसके आरभट्यादि कथन चार सींग हैं ; लक्षणा, व्यंजना और ध्वनि तीन पाद हैं ; दृश्य और श्रव्य दो सिर हैं ; चित्रादि सात हाथ हैं ; गद्य, पद्य, और गीत तीन रीति से बँधा है, ऐसा साहित्य रूपी वृषभ मनुष्यों को चित्त में उल्लास कर आनंद देता है । यथा —

सुभाषितरसास्वाद बदरोमांचकंचुकाः ।

विनापि कामिनीसंगं कवयः सुखमासते ।।
सुभाषितेन गीतेन युवतीनां च लीलया ।
यस्य न द्रवते चित्तं सवै भुक्तौऽथवा पशुः ।।

इशुखृष्ट और ईशकृष्ण

यह लेख श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खण्ड ६, संख्या ७, जनवरी सन् १८७९ में प्रकाशित है। हालाँकि लेख के अन्त में क्रमशः छपा है पर बाकी अंश मिलता नहीं है। इस लेख में भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की चेष्टा है।— सं.

पाठक गण को स्मरण होगा कि भारत भिक्षा में " भारत भुज बल लहि जग रच्छित, भारत सिच्छा लहि जग सिच्छित" लिखा है, आज उसी का हम प्रमाण देना चाहते हैं। न्यायप्रियगण देखें कि जैसा भारत भिक्षा में कहा गया वह उचित है कि नहीं।

समाज की उन्नति का मूल धर्म है। जहाँ का धर्म परिष्कृत नहीं वहाँ कभी समाज उन्नत नहीं। धर्म पर सब लोगों को ऐसा आग्रह रहता है, कि उसको साक्षात् परमेश्वर से उत्पन्न मानते हैं अतएव अन्य विषयों को छोड़ कर केवल धर्म पर हम विचार किया चाहते हैं और मुक्त कंठ होकर कहते हैं कि संसार के धर्माचार्य मात्र ने भारतवर्ष की छाया से अपने अपने ईश्वर, देवता, धर्म पुस्तक, धर्मनीति और निज चरित्र निर्माण किया है। जितने धर्म प्रचलित हैं या प्रचलित थे वह सब या तो वैदिकों का अनुगमन हैं या बौद्धों का। यहाँ तक कि प्रसिद्ध ईश्वरवाची शब्द भी इसी से निकले हैं। अंगरेजों में परमेश्वर को गाड (God) कहते हैं। यह गौतम का नामांतर है। उत्तर के देशों में गौतम को गोडमा कहते हैं, इसी से यह गाड शब्द बना। फारसी में मूर्तियों को बुत कहते हैं यह शब्द बुद्ध से निकला। हरम हर्म्य से, सनम शंभु से, दैर देवल से, देव देवता से और ऐसे ही देवतावाचक अनेक शब्द दूसरे दूसरों से।

यह सब जाने दीजिये सृष्टि के आरंभ से चलिये। भगवान् मनु लिखते हैं कि प्रथम सब जगत् सुषुप्त

था। फिर सर्वनियंता जगदीश्वर ने स्वशक्ति से प्रवेश पूर्वक उसको चैतन्य किया। यही यूनानियों के ऋषि केयस ने भी लिखा है। फिर परमात्मा ने अपनी प्रकृति रूपी परिणत शरीर से प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से चिंता किया कि 'कैसे सब होगा' और यह चिंता करके पहिले जल होय यह कह कर आकाशादि क्रम से जल सृष्टि किया। ओल्ड सिस्टम (बाइबिल) के जिनिंसिस के प्रथम अध्याय को इस से, वहाँ भी यही है। फिर परमात्मा ने जल से ब्रह्मा उत्पन्न किया उसने आकाश पृथ्वी स्वर्गादि निर्माण किया और महत्त्व अहंकार गुण आदि की क्रम से सृष्टि हुई और उससे मनुष्य पशु पक्षी स्थावरादि उत्पन्न हुए। फिर प्राणविशिष्ट इंद्रादि देवगण और कम हेतुक प्राणमय देवगण और साध्य नामक सूक्ष्म देवगण अग्निष्टोमादि यज्ञ बनाये गए।

अंगरोजी और यूनानी फिलासिफी में इस बात की छाया देख लीजिये। फिर वेद क्रिया काल ग्रह उन्नत अवनत स्थान तप संतोष इच्छा आदि की सृष्टि हुई फिर कर्तव्य अकर्तव्य कर्म के विभाग के हेतु धर्म अधर्म की सृष्टि हुई। धर्म का फल सुख और अधर्म का दुःख (अब महाभारत के आदि पर्व में धर्म अधर्म की सृष्टि वर्णन इस मनु कथित सृष्टि की तुलना करके उससे मिलटन के मृत्यु विषयक प्रस्ताव मिला कर पढ़े।) फिर पंच महाभूतों के सूक्ष्म अंश और स्थूल अंश से जगत की सृष्टि हुई। (मिलटन की ५ वीं पुस्तक में स्वर्गच्युति के गल्प से इसे मिलाओ।) फिर मानव सृष्टि हुई और आत्मा को उसके देहों में प्रवेश का अधिकार दिया गया और एक को छोड़ कर दूसरे में गमन का भी (इससे सिद्ध होता है कि Transmigration of soul के प्रगट कर्ता भी मनु ही हैं।)

ऐसे ही संसार के सब देवता भी भारतवर्ष ही के देवगण की छाया हैं। मिनर्वा नाम्ना यूरोप की प्राचीन देवी हम लोगों की भगवती दुर्गा हैं। मिनर्वा इंद्र के कंधों से प्रगटी है यहाँ भी दुर्गा देवताओं के अंश (अंश कंधे को भी कहते हैं) से प्रादुर्भूत हुई हैं। मिनर्वा भी सब शस्त्रों को लिए जन्मी हैं और दुर्गा भी, मिनर्वा युद्ध की देवी है दुर्गा भी। मिनर्वा शनिश्चर से लड़ी है दुर्गा महिषासुर से (महिषासुर और शनेश्वर में सादृश्य यह है कि शनेश्वर महिषवाहन है और महिषासुर महिष रूप) मिनर्वा और दुर्गा दोनों सिंहवाहिनी हैं मिनर्वा के एक हाथ में भाला और दूसरे में मदुस का सिर है (यह मदुस शब्द मधु वा महिष से निकला होगा) और दुर्गा का भी यही ध्यान है। मिनर्वा का दूसरा ध्यान कटे सिर का मुकुट पहिने और सर्प लपेटे है और दुर्गा का भी। मिनर्वा को मुँगे प्यारे हैं यहाँ देवी को भी कुक्कुट बलि दिया जाता है।

अब अपेल्लो को लीजिए। यह हिंदुओं के श्री कृष्ण का चित्र है। इसका सूर्य में निवास है और यहाँ भी नारायण का सूर्य में निवास है। इस नाम के चार देवता थे और यहाँ भी श्रीकृष्ण के चार व्यूह हैं। उसने पाइथन नामक सर्प को मारा और यहाँ भी कालिया दमन हुआ। वहाँ वह शिल्प, औषध, गान, काव्य, और रस का देवता है और यहाँ भी। उसका ध्यान सुंदर युवा, लंबे केश और हाथ में कभी धनुष कभी वंशी लिये है और यहाँ भी। वह पर्वत पर नव मित्रों के साथ विहार करता था यहाँ गिरिराज पर नव गोपियों के साथ विहार है।

वैसे ही जुपिटर^२ इंद्र है। और इन दोनों को देवराजत्व प्राप्त है। यहाँ इस को अपने भाई टिटन्स का डर था वहाँ हिरण्य कशिपु का। इंद्र भी बड़ा लंपट है और जुपिटर भी। जुपिटर का ध्यान सोने के सिंहासन पर विजली हाथ में लिये हुये मेघों में शासन करते हुए है, और यहाँ भी वज्रहस्त है। किंतु जुपिटर के चरित्र में श्रीकृष्ण के बहुत से चरित्र मिला दिये हैं।^३

केवल यूरोप के मूर्तिपूजकों पर ही नहीं नये संप्रदाय वालों की भी यही दशा है। गेब्रिल (जिबरईल) गरुड़ का अपभ्रंश है और गरुड़ जैसे परमेश्वर के सबसे उत्तम पार्षदों में है वैसे ही जिबरईल उत्तम फरिश्तों

२. यद्यपि यूरोप वालों ने हमारे देवताओं के चरित्र का बहुत अनुकरण किया है तथापि उसके देवताओं के वेश में बड़ा गड़बड़ है इससे वंश परंपरा को मिलान न कर के केवल चरित्र मात्र का यहाँ उदाहरण दिया है।

३. दिव धातु से देववाची शब्द संसार में प्रसिद्ध है। भारत के इंद्र देव व देवेन्द्र और यूनान में दिवस वा जियस। दोनों वज्रपाणि वारिदाता बामिक पर्वत वासी और विलाससुखभोगी और एक वृत्रदानवहन्ता दूसरे टाइटस-दानव हन्ता।

में । वरंच फरिश्ता शब्द ही पार्षद का अपभ्रंश है । जिवरईल का ईश्वर की आज्ञा ला कर मत-प्रवर्तक होने का उदाहरण भी रामानुज संप्रदाय में देख लीजिये । क्रिस्तानों में एक आचार्य जोसफेट करनेल हैं और यह महात्मा शाक्यसिंह की प्रतिमूर्ति हैं । दोनों के पिता राजा, दोनों के जन्म के पूर्व ज्योतिषियों ने कहा था कि यह या तो बड़ा प्रतापी राजा होगा या धार्मिक । दोनों के पिता ने चेष्टा किया कि जिसमें पुत्र संन्यासी न हो और इनको रम्य उद्यान में रखा किंतु संसार की असारता जान कर दोनों ही संन्यासी हो गये और दोनों ने अपने पिता को नये धर्म से दीक्षित किया । सबसे ऊपर आनंद की बात यह है जान, जो मनुष्य जोसफेट का माहात्म्य प्रचारक है, लिखता है कि जोसफेट भारतवर्ष में हुआ और हिंदुस्थान से आये विश्वस्त लोगों से हमने उसका चरित्र सुना । अब बतलाइये जोसफेट शाक्यसिंह ही का नामान्तर है कि नहीं ।^१ ।

धर्म ही पर नहीं नीति संबंधी भी यावत् गल्प मात्र इसी भारत वर्ष से फैलकर और स्थानों में गई हैं । विलसन साहब लिखते हैं — कैपस नगर के घोड़ा का उपाख्यान भारतवर्ष में भी प्रचलित है किन्तु भेद इतना है कि भारतवर्ष में घोड़ा हाथी के स्वरूप में है । उर्दू किताबों का यह किस्सा अत्यंत प्रसिद्ध है कि टके की मुर्गी लेंगे, तब उसको अंडे बच्चे होंगे तो उनको बेंच कर बकरी लेंगे, उसको बच्चे होंगे तो उनको बेचकर घोड़ी लेंगे, उसको बच्चे होंगे तो उससे रोजगार करेंगे, रुपया पैदा होगा तब बादशाह की बेटी से शादी करेंगे जब वह शर्वत पिलाने आवेगी और खड़ी होकर विनती करके कहेगी कि मेरे प्यारे दूध पीओ तो हम एक लात मारेंगे, यह कह कर लात जो चलाया तो बरतन फूट गए । इसी से मसल निकली है कि तुम्हारा तो बर्तन फूटा हमारी गृहस्थी ही खराब हो गई । अंग्रेजी में इस गल्प को और तरह से कहते हैं । फरासीस में लाफेण्टन कवि ने इसको पैरट गोपिनी के नाम से लिखा है जिसने पूर्व की भाँति सोचते सोचते अपना दधिभाजन फोड़ डाला । संसार की और भाषाओं में भी रूपांतर से यह गल्प प्रसिद्ध है ।

परंतु इसका मूल कहाँ है ? भारतवर्ष में । पंचतंत्र देखिये उसमें यह किस्सा स्वभाव कृपण नामक ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध है, और हितोपदेश में देवशर्मा के नाम से । एक विद्वान ने लिखा है कि ब्राह्मण से एक साधारण चर्म विक्रेता वा कुंभकार इत्यादि नाम हुआ । अंत में जयसुरसिक लाफेण्टन ने इस गल्प को लिखा तो इस शुष्क ब्राह्मण के स्थान पर नवयौवना ग्वालिन को पुस्तक में स्थान दिया । अब कहिये कि कैसे संस्कृत वेश त्याग कर यह सब किस्से और भाषा में हुए और इतनी दूर पहुँचे । इस छोटे छोटे किस्सों में एक ऐसी संजीवनी शक्ति है कि राज्य और धर्म का हेर फेर हो जाय और भाषा का परिवर्तन हो जाय परंतु यह सब छोटी छोटी गल्प बालकों और मुग्ध स्त्रियों के मुख द्वारा एक ही रूप से अनेक 'सहस्र' कोस तक प्रचलित रहेंगे । महात्मा मोक्षमूलर लिखते हैं 'उन्नीसवीं शताब्दी में इस स्त्रीष्ट धम प्रधान देश में हम लोग अपने बालकों को जो ऐहिक और पारलौकिक ज्ञान की गल्पों में शिक्षा देते हैं वह धर्म विरोधी ब्राह्मणों और बौद्धों की पौतलिक धर्म की पुस्तकों से संप्रहीत हैं । अब इस बात को कोई न मानेगा किंतु हजार दो हजार बरस पहले भारतवर्ष के किसी निर्जन वन और क्षुद्र पल्लियों में भ्रमण करने ही से यह सत्य बीज प्राप्त होता, जो अब समस्त पृथ्वी में विस्तृत है और सरस बालकों के हृत् क्षेत्र में सदा लहलहाता रहेगा । बड़े बड़े विद्वान भी किसी अपनी नीति को इस सुरीति पर सर्व हृदयग्राही और चिरस्थायी नहीं कर सके हैं जैसा कि इन गल्प रचयिताओं ने सहज हृदयग्राही रचना की है । किंतु ये बुद्धिमान लोग कौन थे यह ज्ञात नहीं और संसार के और और मानवोपकारियों की भाँति विस्मृति देवी के अपार उदर में यह भी शयन करते हैं । यदि दो सहस्र वर्ष पूर्व कोई भारत वर्ष में जाता तो ये महात्मा लोग मिलते । अब केवल हम यही कह सकते हैं कि यह अति चातुर्य उन्हीं लोगों का है जिनको अब कोई कोई निगरो पुकारते हैं ।''

१. See Plato's Theology Concerning spiritual nature.

१. See Professor Max Muller's Sanskrit Literature

वैष्णवता और भारतवर्ष

इस लेख का उल्लेख 'रामायण का समय' नामक लेख में पहले ही आ चुका है जो सन् १८८४ की रचना है। अतः यह उसके पहले की ही रचना होनी चाहिये। — सं.

यदि विचार करके देखा जायगा तो स्पष्ट प्रकट होगा कि भारतवर्ष का सबसे प्राचीन मत वैष्णव है। हमारे आर्य लोगों ने सबसे प्राचीनकाल में सभ्यता का अवलंबन किया और इसी हेतु क्या धर्म क्या नीति सब विषय के संसार मात्र के ये दीक्षागुरु हैं। आर्यों ने आदिकाल से सूर्य ही को अपने जगत् का सब से उपकारी और प्राणदाता समझ कर ब्रह्म माना और इन का मूल मंत्र गायत्री इसी से इन्हीं सूर्य नारायण की उपासना में कहा गया है। सूर्य की किरणें 'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः' जलों में और मनुष्यों में व्याप्त रहती हैं और इस द्वारा ही जीवन प्राप्त होता है इसी से सूर्य का नाम नारायण है। हम लोगों के जगत् के ग्रह मात्र, जो सब प्रत्येक ब्रह्माण्ड है, इन्हीं की आकर्षण शक्ति से स्थिर हैं, इसी से नारायण का नाम अनंत कोटिब्रह्माण्डनायक है। इसी सूर्य का वेद में नाम विष्णु है, क्योंकि इन्हीं की व्यापकता से जगत् स्थित है। इसी से आर्यों में सबसे प्राचीन एक ही देवता थे और इसी से उस काल के भी आर्य वैष्णव थे। कालांतर में सूर्य में चतुर्भुज देव की कल्पना हुई। 'ध्येयः सदा सवितु मंडल मध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसंनिविष्ट', 'तद्विष्णोः परमं पदम्', 'विष्णोः कर्माणि पश्यत', 'यत्र गावो भूरिशूगाः', 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' इत्यादि श्रुति जो सूर्यनारायण के आधिभौतिक ऐश्वर्य की प्रतिपादक थीं, आधिदैविक सूर्य की विष्णुमूर्ति के वर्णन में व्याख्यात हुई। चाहे जिस रूप से हो वेदों ने प्राचीनकाल से विष्णुमहिमा गाई। उस के पीछे उस सूर्य की एक प्रतिमूर्ति पृथ्वी पर मानी गई, अर्थात् अग्नि। आर्यों का दूसरा देवता अग्नि है। अग्नि यज्ञ है और 'यज्ञो वै विष्णुः' यज्ञ ही से रुद्र देवता माने गये। आर्यों के एक छोड़ कर दो देवता हुए। फिर तीन और तीन से ग्यारह को त्रिविध करने से तैंतीस और इसी तैंतीस से तैंतीस करोड़ देवता हुए। इस विषय का विशेष वर्णन अन्य प्रसंग में करेंगे। यहाँ केवल इस बात को दिखलाते हैं कि वर्तमान समय में भी भारतवर्ष से और वैष्णवता से कितना घनिष्ठ संबंध है। किन्तु योरप के पूर्वाविद्या जानेवाले विद्वानों का मत है कि रुद्र आदि आर्यों के देवता नहीं हैं वह अनार्यों (Non-Aryan or Tamalian) के देवता हैं। इस के वे लोग आठ कारण देते हैं। प्रथम वेदों में लिंगपूजा का निषेध है। यथा वशिष्ठ इंद्र से विनती करते हैं कि हमारी वस्तुओं को 'शिशनदेवा' (लिंगपूजक) से बचाओ इत्यादि^१। ऋग्वेद और अन्यान्य ऋचाओं में भी शिशनदेवालों को असुर, दस्यु इत्यादि कहा है और रुद्री में भी रुद्र की स्तुति भयंकर भाव से की है। दूसरी युक्ति यह है कि स्मृतियों में लिंगपूजा का निषेध है।^२ प्रोफेसर मैक्समूलर ने वशिष्ठस्मृति के अनुवाद के स्थल में यह विषय बहुत स्पष्ट लिखा है। तीसरी युक्ति वे यह कहते हैं कि लिंगपूजक और दुर्गाभैरवादिकों के पूजक ब्राह्मण को पंक्ति से बाहर करना लिखा है। (मिताक्षरावृत्त ब्रह्माण्डपुराण के वाक्य, चतुर्विंशतिमत् पराशर व्याख्या में माधव श्लोक २९, आपस्तम्ब, भागवत चतुर्थस्कंध द्वितीयाध्याय २८ श्लोक और धर्मश्रिंसार के तीसरे परिच्छेद का पूर्वार्ध देखो।) चौथी युक्ति यह कहते हैं कि लिंग का तथा दुर्गा भैरवादि का निर्मल्य खाने में पाप लिखा है।

१. ऐतिहिकटीज अव उड़ीसा १ जिल्द १३६ पेज देखो।

२. Rigveda, IV., P. 6 and Dr. Wilson's Vedic Comments

३. Professor Max Muller's Ancient Sanskrit Literature, P. 55

कमलाकरान्दिक, निर्णयसिंधु (आचार्यमाधवादि ग्रंथों में सैकड़ों वाक्य हैं, देख लो)। पाँचवें शास्त्रों में शिवमंदिर और भैरवादिकों के मंदिर को नगर के बाहर बनाना लिखा है।^१ छठवें वे लोग कहते हैं कि शिवबीजमंत्र से दीक्षित और शिव को छोड़ कर और देवता को न माननेवाले ऐसे शुद्ध शैव भारतवर्ष में बहुत ही थोड़े हैं। या तो शिवोपासक स्मार्त हैं या शाक्त हैं। शाक्त भी शिव को पार्वती के पति समझकर विशेष आदर देते हैं, कुछ सर्वेश्वर समझ कर नहीं। जंगमादिक दक्षिण में जो दीक्षित शैव हैं वे बहुत ही थोड़े हैं। शाक्त तो जो दीक्षित होते हैं वे प्रायः कौलही हो जाते हैं। सौर गाणपत्य की तो कुछ गिनती ही नहीं। किन्तु वैष्णवों में मध्य और रामानुज को छोड़कर और इन में भी जो निरे आग्रही हैं वे ही तो साधारण स्मार्तों से कुछ भिन्न हैं, नहीं तो दीक्षित वैष्णव भी साधारण जनसमाज से कुछ भिन्न नहीं और एक प्रकार के अदीक्षित वैष्णव तो सभी हैं। सातवीं युक्ति इन लोगों की यह है कि जो अनार्यलोग प्राचीन काल में भारतवर्ष में रहते थे और जिन को आर्यलोगों ने जीता था वही शिल्पविद्या नहीं जानते थे और इसी हेतु लिंग, ढोंका सिद्धपीठ इत्यादि पूजा उन्हीं लोगों की है जो अनार्य हैं। आठवें शिव, काली, भैरव इत्यादि के वस्त्र, निवास, आभूषण आदिक सभी आर्यों से भिन्न हैं। स्मशान में वास, अस्थि की माला आदि जैसी इन लोगों की वेषभूषा शास्त्रों में लिखी है वह आर्योचित नहीं है। इसी कारण शास्त्रों में शिव का, भृगु और दक्ष आदि का विवाद कई स्थल पर लिखा है और रुद्रभाग इसी हेतु यज्ञ के बाहर है। यद्यपि ये पूर्वोक्त युक्तियाँ योरोपीय विद्वानों की हैं, हमलोगों से कोई संबंध नहीं किन्तु इस विषय में बाहरवाले क्या कहते हैं, केवल यह दिखलाने को यहाँ लिखी गई है।

पाश्चिमात्य विद्वानों का मत है कि आर्य लोग (Aryans) जब मध्य एशिया (Central Asia) में थे तभी से लोग विष्णु का नाम जानते हैं। ज़ोरोस्ट्रियन (Zoroastrian) ग्रंथ जो ईरानी और आर्य शाखाओं के भिन्न होने के पूर्व के लिखे हैं उन में भी विष्णु का वर्णन है। वेदों के आरंभकाल से पुराणों के समय तक तो विष्णुमहिमा आर्यग्रंथों में पूर्ण है। वरंच तंत्र और आधुनिक भाषा ग्रंथों में उसी भाँति एकछत्र विष्णुमहिमा का राज्य है।

पंडितवर बाबू राजेन्द्रलाल मित्र ने वैष्णवता के काल को पाँच भाग में विभक्त किया है। यथा १ वेदों के आदि समय की वैष्णवता, २ ब्राह्मण के समय की वैष्णवता, ३ पाणिनि के और इतिहासों के समय की वैष्णवता, ४ पुराणों के समय की वैष्णवता, ५ आधुनिक समय की वैष्णवता।

वेदों के आदि समय से विष्णु की ईश्वरता कही गई है। ऋग्वेद संहिता में विष्णु की बहुत सी स्तुति है। विष्णु को किसी विशेष स्थान का नायक या किसी विशेष तत्व वा कर्म का स्वामी नहीं कहा है, वरंच सर्वेश्वर की भाँति स्तुति किया है। यथा विष्णु पृथ्वी के सातों तहों पर फैला है। विष्णु ने जगत् को अपने तीन पर के भीतर किया। जगत् उसी के रज में लिपटा है। विष्णु के कर्माँ को देखो जो कि इंद्र का सखा है। ऋषिये ! विष्णु के ऊँचे पद को देखो, जो एक आँख की भाँति आकाश में स्थिर है। पंडितों ! स्तुति गाकर विष्णु के ऊँचे पद को खोजो। इत्यादि। ब्राह्मणों ने इन्हीं मंत्रों का बड़ा विस्तार किया है और अब तक यज्ञ, होम, श्राद्ध आदि सभी कर्मों में ये मंत्र पढ़े जाते हैं। ऐसे ही और स्थानों में विष्णु को जगत् का रक्षक, स्वर्ग और पृथ्वी का बनानेवाला, सूर्य और अंधेरे का उत्पन्न करनेवाला इत्यादि लिखा है। इन मंत्रों में विष्णु के विषय में रूप का परिचय इतना ही मिलता है कि उस ने अपने तीन पदों से जगत् को व्याप्त कर रखा है। यास्क ने निरुक्त में अपने से पूर्व के दो ऋषियों का मत इस के अर्थ में लिखा है। यथा शाक्यमुनि लिखते हैं कि ईश्वर का पृथ्वी पर रूप अग्नि है, घन में विद्युत् है और आकाश में सूर्य है। सूर्य की पूजा किसी समय समस्त पृथ्वी में होती थी यह अनुमान होता है। सब भाषाओं में अद्यापि यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'उठते हुए सूर्य को सब पूजता है।' (अरुणभाव सूर्य के उदय, मध्य और अस्त की अवस्था को तीन पद मानते हैं।) दुर्गाचार्य अपनी टीका में उसी मत को पुष्ट करते हैं। सायणाचार्य विष्णु के बावन-अवतार पर इस मंत्र को लगाते हैं। किन्तु यज्ञ और आदित्य ही विष्णु हैं, इस बात को बहुत लोगों ने एक मत होकर माना है। अस्तु, विष्णु उस समय आदित्य ही को नामांतर से पुकारा है कि स्वयं विष्णु देवता आदित्य से भिन्न थे, इस का झगड़ा हम यहाँ नहीं करते। यहाँ यह सब लिखने से हमारा केवल यह आशय है कि अति प्राचीनकाल से विष्णु हमारे देवता हैं। अग्नि, वायु और सूर्य यह तीनों रूप विष्णु के हैं; इन्हीं से ब्रह्मा, शिव और विष्णु यह तीन मूर्तिमान् देव हुए हैं।

ब्राह्मणों के समय में विष्णु की महिमा सूर्य से भिन्न कह कर विस्तर रूप से वर्णित है और शतपथ, ऐतरेय और तैत्तिरीय ब्राह्मण में देवताओं का द्वारपाल, देवताओं के हेतु जगत् का राज्य बचानेवाला इत्यादि कह कर लिखा है।

इतिहासों में रामायण और भारत में विष्णु की महिमा स्पष्ट है, वरंच इतिहासों के समय में विष्णु के अवतारों का पृथ्वी पर माना जाना भी प्रकट है। पाणिनि के समय के बहुत पूर्व कृष्णावतार, कृष्ण पूजा और कृष्णभक्ति प्रचलित थी, यह उन के सूत्र ही से स्पष्ट है। यथा, जीविकार्ये चापण्ये वासुदेवेः ॥५॥३॥१९॥१० कृष्णं नमस्ते सुखं यायात् ॥३॥३॥१५॥ इ. वासुदेवं भक्तिरस्य वासुदेवकः ॥४॥ ॥३॥१९॥१० और प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सुभद्रा नाम इत्यादि के पाणिनि के लिखने ही से सिद्ध है कि उस समय के अति पूर्व कृष्णावतार की कथा भारतवर्ष में फैल गई थी। यूनानियों के उदय के पूर्व पाणिनि का समय सभी मानते हैं। विद्वानों का मत है कि क्रम से पूजा के नियम भी बदले यथा पूर्व में यज्ञाहुति, फिर वलि और अष्टांग पूजा आदि हुई और देवविषयक ज्ञान की वृद्धि के अंत में सब पूजन आदि से उस की भक्ति श्रेष्ठ मानी गई।

पुराणों के समय में तो विधिपूर्वक वैष्णव मत फैला हुआ था, यह सब पर विदित ही है। वैष्णव पुराणों की कौन कहे, शाक्त और शैव पुराणों में भी उन देवताओं की स्तुति उन को विष्णु से संपूर्ण भिन्न कर के नहीं कर सके हैं। अब जैसा वैष्णव मत माना जाता है उस के बहुत से नियम पुराणों के समय से और फिर तंत्रों के समय से चले हैं। दो हजार वर्ष की पुरानी मूर्तियाँ वाराह, राम, लक्ष्मण और वासुदेव की मिली हैं और उन पर भी खुदा हुआ है कि उन मूर्तियों की स्थापना करनेवालों का वंश भागवत अर्थात् वैष्णव था राजतरंगिणी के ही देखने से राम, केशव आदि मूर्तियों की पूजा यहाँ बहुत दिन से प्रचलित है, यह स्पष्ट हो जाता है। इस से इस की नवीनता या प्राचीनता का झगड़ा न करके यहाँ थोड़ा सा इस अदल बदल का कारण निरूपण करते हैं।

मनुष्य के स्वभाव ही में यह बात है कि जब वह किसी बात पर प्रवृत्त होता है तो क्रमशः उस की उन्नति करता जाता है और उस विषय को जब तक वह एक अंत तक नहीं पहुँचा लेता संतुष्ट नहीं होता। सूर्य के मानने की ओर जब मनुष्यों की प्रवृत्ति हुई तो इस विषय को भी वे लोग ऐसी ही सूक्ष्म दृष्टि से देखते गये।

प्रथमतः कर्म मार्ग में फँसकर लोग अनेक देवी देवों को पूजते हैं, किन्तु बुद्धि का यह प्रकृत धर्म है कि यह ज्यों ज्यों समुज्ज्वल होती है अपने विषय मात्र को उज्ज्वल करती जाती है। थोड़ी बुद्धि बढ़ने ही से यह विचार चित्त में उत्पन्न होता है कि इतने देवी देव इस अनंत सृष्टि के नियामक नहीं हो सकते, इन का कर्ता स्वतंत्र कोई विशेष शक्तिसंपन्न ईश्वर है। तब उस का स्वरूप जानने की इच्छा होती है, अर्थात् मनुष्य कर्मकांड से ज्ञानकांड में आता है। ज्ञानकांड में सोचते सोचते संगति और रुचि के अनुसार या तो मनुष्य फिर निरीश्वरवादी हो जाता है या उपासना में प्रवृत्त होता है। उस उपासना की भी विचित्र गति है। यद्यपि करते करते जहाँ भक्ति का प्राबल्य हुआ वहीं अपने उस निराकार उपास्य को भक्त फिर साकार कहने लगता है। बड़े बड़े निराकारवादियों ने भी "प्रभो दर्श दो ! अपने चरणकमलों को हमारे सिर पर स्थान दो, अपनी आश्चर्य और गुणकारी वस्तु बोध हुई, उस से फिर उन में देवबुद्धि हुई। देवबुद्धि होने ही से आधिभौतिक सूर्य मंडल के भीतर एक आधिदेविक नारायण माने गये। फिर अंत में यह कहा गया कि नारायण एक सूर्य ही में नहीं, सर्वत्र है, और अनंत कोटि सूर्य, चंद्र, तारा उन्हीं के प्रकाश से प्रकाशित हैं। अर्थात् आध्यात्मिक नारायण ही उपासना में लोगों की प्रवृत्ति हुई।

इन्हीं कारणों से वैष्णवमत की प्रवृत्ति भारतवर्ष में स्वाभाविकी है। जगत् में उपासनामार्ग ही मुख्य धर्ममार्ग समझा जाता है। कृस्तान, मुसलमान, ब्राह्म, बौद्ध उपासना सब के यहाँ मुख्य है। किन्तु बौद्धों में अनेक सिद्धों की उपासना और तप आदि शुभ कर्मों के प्राधान्य से वह मत हम लोगों के स्मार्त मत के सदृश है और कृस्तान, ब्राह्म, मुसलमान आदि के धर्म में भक्ति की प्रधानता से ये सब वैष्णवों के सदृश हैं। इंजील में वैष्णवों के ग्रंथों से बहुत सा विषय लिया है और ईसा के चरित्र में श्री कृष्ण के चरित्र का सादृश्य बहुत है, यह विषय सविस्तर भिन्न प्रबंध में लिखा गया है। तो जब ईसाइयों के मत को ही हम वैष्णवों का अनुगामी सिद्ध

कर सके हैं, फिर मुसलमान जो कृस्तानों के अनुगामी हैं वे हमारे अन्वनुगामी हो चुके ।

यद्यपि यह निर्णय करना अब अति कठिन है कि अतिप्राचीन के ध्रुव, प्रह्लाद आदि, मध्यावस्था के ऊदव, आरुणि, परीक्षितादिक और नवीन काल के वैष्णवाचार्यों के खान-पान, रहन-सहन, उपासनारीति, वाहय चिन्ह आदि में कितना अंतर पड़ा है, किन्तु इतना ही कहा जा सकता है कि विष्णु-उपासना का मूल सूत्र अति प्राचीनकाल से अनवच्छिन्न चला आता है । ध्रुव, प्रह्लादादि वैष्णव तो थे, किन्तु अब के वैष्णवों की भाँति कठी, तिलक, मुद्रा लगाते थे और मांस आदि नहीं खाते थे, इन बातों का विश्वस्त प्रमाण नहीं मिलता । ऐसे ही भारतवर्ष में जैसी धर्मरुचि अब है उस से स्पष्ट होता है कि आगे चलकर वैष्णवमत में खाने पीने का विचार छूट कर बहुत सा अदल बदल अवश्य होगा । यद्यपि अनेक आचार्यों ने इसी आशा से मत प्रवृत्त किया कि इसमें सब मनुष्य समानता लाभ कर और परस्पर खानपानादि से लोगों में ऐक्य बढ़े और किसी जाति, वर्ण, देश का मनुष्य क्यों न हो वैष्णवपंक्ति में आ सके, किन्तु उन लोगों की यह उदार इच्छा भली भाँति पूरी नहीं हुई, क्योंकि स्मार्त मत की और ब्राह्मणों की विशेष हानि के कारण इस मत के लोगों ने उस समुन्नत भाव से उन्नति को रोक दिया, जिस से अब वैष्णवों में छूआछूत सब से बढ़ गया । बहुदेवोपासकों की घृणा देने के अर्थ वैष्णवातिरिक्त और किसी का स्पर्श बचाते वहाँ तक एक बात थी, किन्तु अब तो वैष्णवों ही में ऐसा उपद्रव फैला है कि एक संप्रदाय के वैष्णव दूसरे संप्रदाय वाले को अपने मंदिर में और अपने खान पान में नहीं लेते और 'सात कनौजिया नौ चूल्हे' वाली मसल हो गई है । किन्तु काल की वर्तमान गति के अनुसार यह लक्षण उनकी अवन्ति के हैं । इस काल में तो इस की तभी उन्नति होगी जब इस के वाहयव्यवहार और आडंबर में न्यूनता होगी और एकता बढ़ाई जायगी और आंतरिक उपासना की उन्नति की जायगी । यह काल ऐसा है कि लोग उसी मत को विशेष मानेंगे जिस में वाहय देह-कष्ट न्यून हो । यद्यपि वैष्णवधर्म भारतवर्ष का प्रकृत धर्म है इस हेतु उस की ओर लोगों की रुचि होगी, किन्तु उसमें अनेक संस्कारों की अतिशय आवश्यकता है । प्रथम तो गोस्वामीगण अपना रजोगुणी-तमोगुणी स्वभाव छोड़ेंगे तब काम चलेगा । गुरु लोगों में एक तो विद्या ही नहीं होती, जिसके न होने से शील, नम्रता आदि उनमें कुछ नहीं होते । दूसरे या तो वे अति रूखे क्रोधी होते हैं या अति बिलासलालस होकर स्त्रियों की भाँति सदा दर्पण ही देखा करते हैं । अब वह सब स्वभाव उनको छोड़ देना चाहिए, क्योंकि इस उन्नीसवीं शताब्दी में वह श्रद्धाजाड्य अब नहीं बाकी है । अब कुकर्मी गुरु का भी चरणामृत लिया जाय वह दिन छप्पर पर गए । जितने बूढ़े लोग अभी तक जीते हैं उन्हीं के शील संकोच से प्राचीनधर्म इतना भी चल रहा है, बीस पचीस बरस पीछे फिर कुछ नहीं है । अब तो गुरु गोसाईं का चरित्र ऐसा होना चाहिए कि जिस को देख सुन कर लोगों में श्रद्धा से स्वयं चित्त आकृष्ट हों । स्त्रीजनों का मंदिरों से सहवास निवृत्त किया जाय । केवल इतना ही नहीं, भगवान श्री कृष्णचन्द्र की केलिकथा जो अतिरहस्य होने पर भी बहुत परिमाण से जगत् में प्रचलित है वह केवल अंतरंग उपासकों पर छोड़ दी जाय, उनके माहात्म्य मत विशद चरित्र का महत्व यथार्थ रूप से व्याख्या कर के सब को समझाया जाय । रास क्या है, गोपी कौन हैं, यह सब रूपक अलंकार स्पष्ट कर के श्रुतिसम्मत उनका ज्ञान वैराग्य भक्तिबोधक अर्थ किया जाय । यह भी दबी जीभ से हम डरते डरते कहते हैं कि व्रत, स्नान आदि भी वहीं तक रहें जहाँ तक शरीर को अति कष्ट न हो । जिस उत्तम उदाहरण के द्वारा स्थापक आचार्यगण ने आत्मसुख विसर्जन कर के भक्ति सुधा से लोगों को प्लावित कर दिया था उसी उदाहरण से अब भी गुरु लोग धर्म प्रचार करें । वाहय आग्रहों को छोड़ कर केवल आंतरिक उन्नत प्रेममय भक्ति का प्रचार करें, देखें कि दिगिदगत् से हरिनाम की कैसी ध्वनि उठती है और विधर्मिगण भी इसको सिर झुकाते हैं कि नहीं और सिक्ख, कबीरपंथी आदि अनेक दल के हिन्दूगण भी सब आप से आप बैर छोड़ कर इस उन्नतसमाज में मिल जाते हैं कि नहीं ।

जो कोई कहे कि यह तुम कैसे कहते हो कि वैष्णवमत ही भारतवर्ष का प्रकृत मत है तो उस के उत्तर में हम स्पष्ट कहेंगे कि वैष्णव मत ही भारतवर्ष का मत है और वह भारतवर्ष कह हड्डी लहू में मिल गया है । इस के अनेक प्रमाण हैं, क्रम से सुनिए (१) पहले तो कबीर, दादू, सिक्ख, बाउल आदि जितने पंथ हैं सब वैष्णवों की शाखा प्रशाखायें हैं और सारा भारतवर्ष इन पंथों से छाया हुआ है । (२) अवतार और किसी देव का नहीं, क्योंकि इतना उपकार ही [इस्यु दलन आदि] और किसी से नहीं साधित हुआ है । (३) नामों को लीजिए तो क्या स्त्री, क्या पुरुष, आधे नाम भारतवर्ष के विष्णुसंबंधी हैं और आधे में जगत् है । कृष्णभट्ट, रामसिंह,

गोपालदास, हरिदास, रामगोपाल, राधा, लक्ष्मी, रुक्मिन, गोपी, जानकी आदि । विश्वास न हो कलेक्टरी के दफ्तर से मर्दुमशुमारी के कागज़ निकाल कर देख लीजिए वा एक दिन डाँकघर में बैठकर चिट्ठियों के लिफाफों की सैर कीजिए । (४) ग्रंथ, काव्य, नाटक आदि के, संस्कृत या भाषा के, जो प्रचलित हैं उन को देखिए । रघुवंश, माघ, रामायण आदि ग्रंथ विष्णुचरित्र के ही बहुत हैं । (५) पुराण में भारत, भागवत, वाल्मीकि-रामायण यही बहुत प्रसिद्ध हैं और यह तीनों वैष्णवग्रंथ हैं । (६) व्रतों में सब से मुख्य एकादशी है वह वैष्णव व्रत है और भी जितने व्रत हैं उन में आधे वैष्णव हैं । (७) भारतवर्ष में जितने मेले हैं उन में आधे से विशेष विष्णुलीला, विष्णुपर्व या विष्णुतीर्थों के कारण हैं । (८) तिहवारों की भी यही दशा है । वरच होली आदि साधारण तिहवारों में भी विष्णुचरित्र ही गाया जाता है । (९) गीत, छंद चौदह आना विष्णुपरत्व हैं, दो आना और देवताओं के । किसी का व्याह हो, रामजानकी के व्याह के गीत सुन लीजिए । किसी के बेटा हो नंद बघाई गई जायगी । (१०) तीर्थों में भी विष्णुसंबंधी ही बहुत हैं । अयोध्या, हरिद्वार मथुरा, वृंदावन, जगन्नाथ, रामनाथ, रंगनाथ, द्वारका, बदरीनाथ आदि भली भाँति याद कर के देख लीजिए । (११) नदियों में गंगा, यमुना मुख्य हैं, सो इन का माहात्म्य केवल विष्णुसंबंध से है । (१२) गया में हिंदू मात्र को पिंडदान करना होता है, वहाँ भी विष्णुपद है । (१३) मरने के पीछे 'रामामसत्य है' इसी की पुकार होती है और अंत में शुद्ध श्राद्ध तक 'प्रेतमुक्ति प्रदोभव' आदि वाक्य से केवल जनार्दन ही पूजे जाते हैं । यहाँ तक कि पितृरूपी जनार्दन ही कहलाते हैं । (१४) नाटकों और तमाशों में रामलीला, रास ही अति प्रचलित हैं । (१५) सब वेद पुस्तकों के आदि और अंत में लिखा रहता है 'हरिः ॐ' । (१६) संकल्प कीजिए तो विष्णुः विष्णुः । (१७) आचमन में विष्णु विष्णु । (१८) शुद्ध होना हो तो यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं । (१९) सुगो को भी राम ही राम पढ़ते हैं । (२०) जो कोई वृत्त कहें तो उसको राम कहानी कहते हैं । (२१) लड़कों को बाल गोपाल कहते हैं । (२२) छपने में जितने भागवत, रामायण, प्रेमसागर, ब्रजविलास छपी जाती है और देवताओं के चरित्र उतने नहीं छपते । (२३) आर्यलोगों के शिष्टाचार में रामराम, जयश्रीकृष्ण, जयगोपाल ही प्रचलित हैं । (२४) ब्राह्मणों के पीछे वैरागी ही को हाथ जोड़ते हैं और भोजन कराते हैं । (२५) विष्णु के साला होने के कारण चंद्रमा को सभी चंदामामा कहते हैं । (२६) गृहस्थ के घर घर तुलसी का थाला, ठाकुर की मूर्ति, रसोई भोग लगाने को रहती है । (२७) कथा घाट बाट में भागवत ही रामायण की होती है । (२८) नगरों के नाम में भी रामपुर, * गोविंदगढ़, रघुनाथपुर, गोपालपुर* आदि ही विशेष हैं । (२९) मिठाई में गोविंदबड़ी, मोहनभोग आदि नाम

* विष्णु संबंधी अनेक गाँव हैं, कई एक यहाँ पर लिखे जाते हैं । जिला गया के जहानाबाद थाना के इलाके में बिसुनगंज गाँव है । जिला गया के नबीनगर थाना के इलाके में बिसुनपुर बटाने के किनारे पर है, यहाँ मेला लगता है । जिला गया के बाऊदनगर थाना के इलाके में गोपालपुर गाँव है । जिला गया के शहरघाटी थाना के इलाके में नारायणपुर गाँव है ।

बरैच से तीन कोस पूरब सकरी नदी के बायें किनारे गोविंदपुर बैजनाथ जी की कच्ची सड़क पर भारी बाजार है । यहाँ लकड़ी और बहुत सी जंगली चीज बिकती हैं । यहाँ से दो कोस नैऋत्यकोन में एक तारा गाँव से आध कोस दक्खिन महभर पहाड़ में ककीलत बड़ा भारी और प्रसिद्ध झरना है, इस में सदा पानी मोटी धार से गिरा करता है । पानी गिरते नीचे एक अथाह कुंड बन गया है । पानी इस झरने का बहुत निर्मल और ठंडा रहता है । यह स्थान परम रम्य और मनोहर लगता है । मेष की संक्रांति में (बिसुआ) बड़ा मेला लगता है । गोविंदपुर के आस पास बिसुनपुर, सुंघड़ी और पहाड़ के पार सिकुर रपऊ आदि बड़े बड़े गाँव हैं । सिकुर में दो बड़े तालाब हैं और एक पुराने राजगृह का चिन्ह देख पड़ता है ।

सीतापुर के बायु कोन । सदर मुकाम दरयाबाद लखनऊ से ४५ मील बायुकोन उत्तर को फुकाता हुआ है ।

२. एक गाँव असनीगोपालपुर है । वहाँ के नरहरि कवि ने अपने परिचय में कहा है :

कवित ! नाम नरहरि है प्रशंसा सब लोग करै हंसहू से उज्ज्वल जगु व्यापे हैं । गंगा के तीर ग्राम असनीगोपालपुर मंदिरगोपाल जी को करत मंत्र जापे हैं । कबि बान्शाही मौज पावे बादशाही वो जगावे बादशाही जाते अरिगन कापे हैं । जब्बर गनीमन के तोरिबे को जब्बर हुमायूँ के बब्बर अकब्बर के थापे हैं ॥१॥

है, अन्य देवताओं का कहीं कुछ नाम नहीं है । (३०) सूर्यचंद्रवंशी क्षत्री लोग श्री राम कृष्ण के वंश में होने का अब तक अभिमान करते हैं । (३१) ब्राह्मणगण ब्रह्मण्य देव कह कर अब तक कहते हैं 'ब्राह्मणो मामकीतनुः' । (३२) औषधियों में भी रामबाण, नारायणचूर्ण आदि नाम मिलते हैं । (३३) कार्तिकस्नान, राधा दामोदर की पूजा, देखिए, भारतवर्ष में कैसी है । (३४) तारकमंत्र लोग श्रीरामनाम ही को कहते हैं । (३५) किसी हौस में चले जाइए तूल के थान निकलवा कर देखिए उस पर जितने चित्र विष्णुलीला संबंधी मिलेंगे अन्य नहीं । (३६) बारहो महीने के देवता विष्णु हैं । ऐसी ही अनेक अनेक बातें हैं । विष्णुसंबंधी नाम बहुत वस्तुओं के हैं, कहाँ तक लिखे जायँ । विष्णुपद (आकाश), विष्णुरात (परीक्षित), रामदाना, रामधेनु, रामजी की गैया, रामधनु (आकाश धनु), रामफल, सीताफल, रामतरोई, श्रीफल, हरिगीती, रामकली, रामकपूर, रामगिरी, रामचंदन, रामगंगा, हरिचंदन, हरिसिंघार, हरिकेला, हरिनेत्र (कमल), हरिकेली (बंगल देश), हरिप्रिय (सफेदचंदन), हरिवासर (एकादशी), हरिबीज (बगनीबू), हरिवर्षखंड, कृष्णकली, कृष्णकंद कृष्णकांता, विष्णुक्रांता (फूल), सीतामऊ, सीतावलदी, सीताकुण्ड, सीतामट्टी, सीता की रसोई, हरिपर्वत, हरि का पत्तन, रामगढ़, रामबाग, रामशिला, रामजी की घोड़ी, हरिपदा (आकाशगंगा), नारायणी, कन्हैया आदि नगर नद नदी पर्वत फलफूल के सैकड़ों नाम हैं । (जले विष्णुः स्थले विष्णुः) सब स्थान पर विष्णु के नाम ही का संबंध विशेष है । आग्रह छोड़ कर तनिक ध्यान देकर देखिए कि विष्णु से भारतवर्ष से क्या संबंध है, फिर हमारी बात स्वयं प्रमाणित होती है कि नहीं कि भारतवर्ष का प्रकृत मत वैष्णव ही है ।

अब वैष्णवों से यह निवेदन है कि आप लोगों का मत कैसी दृढ़ भित्ति पर स्थापित है और कैसे सार्वजनीन उदारभाव से परिपूर्ण है, यह कुछ कुछ हम आपलोगों को समझा चुके । उसी भाव से आपलोग भी उस में स्थिर रहिये, यही कहना है । जिस भाव से हिंदूमत अब चलता है उस भाव से आगे नहीं चलेगा । अब हमलोगों के शरीर का बल न्यून हो गया, विदेशी शिक्षाओं से मनोवृत्ति बदल गई, जीविका और धन उपार्जन के हेतु अब हमलोगों को पाँच पाँच छ छ पहर पसीना चुआना पड़ेगा, रेल पर इधर से उधर कलकत्ते से लाहौर और बंबई से शिमला दौड़ना पड़ेगा, सिविल सर्विस का, बैरिस्टरी का, इंजिनियरी का इम्तिहान देने को विलायत जाना होगा, बिना यह सब किए काम नहीं चलेगा, क्योंकि देखिए, कुस्तान, मुसलमान, पारसी यही हाकिम हुए जाते हैं, हमलोगों की दशा दिन दिन हीन हुई जाती है । जब पेट भर खाने ही को न मिलेगा तो धर्म कहाँ वाकी रहेगा, इस से जीवमात्र के सहज धर्म उदरपूरण पर अब ध्यान दीजिए । परस्पर का बैर छोड़िए । शैव, शाक्त, सिक्ख जो हो, सब से मिलो । उपासना एक हृदय की रत्न वस्तु है उस को आर्यक्षेत्र में फैलाने की कोई आवश्यकता नहीं । वैष्णव, शैव, ब्राह्म, आर्यसमाजी सब अलग अलग पतली पतली डोरी हो रहे हैं, इसी से ऐश्वर्य रूपी मस्तहाथी उन से नहीं बँधता । इन सब डोरी को एक में बाँध कर मोटा रस्सा बनाओ, तब यह हाथी दिगदिगंत भागने से रुकेगा । अर्थात् अब वह काल नहीं है कि हम लोग भिन्न भिन्न अपनी अपनी खिचड़ी अलग पकाया करें । अब महाघोर काल उपस्थित है । चारो ओर आग लगी हुई है । दरिद्रता के मारे देश जला जाता है । अँगरेजों से जो नौकरी बच जाती है उन पर मुसलमान आदि विधर्मी भरती होते जाते हैं । आमदनी वाणिज्य की थी ही नहीं, केवल नौकरी की थी सो भी धीरे धीरे खसकी । तो अब कैसे काम चलेगा । कदाचित् ब्राह्मण और गोसाई लोग कहें कि हमको तो मुफ्त का मिलता है, हम को क्या ? इस पर हम कहते हैं कि विशेष उन्हीं को रोना है । जो करालकाल चला आता है उस को आँख खोल कर देखो । कुछ दिन पीछे आप लोगों के माननेवाले बहुत ही थोड़े रहेंगे, अब सब लोग एकत्र हो । हिंदूनामधारी वेद से ले कर तंत्र, वरंच भाषाग्रंथ माननेवाले तक सब एक होकर अब अपना परमधर्म यह रक्खो कि आर्यजाति में एका हो । इसी में धर्म की रक्षा है । भीतर तुम्हारे चाहे जो भाव और जैसी उपासना हो ऊपर से सब आर्यमात्र एक रहो । धर्म संबंधी उपाधियों को छोड़ कर प्रकृत धर्म की उन्नति करो ।

मदालसोपाख्यान
(मार्कंडेय पुराण से संगृहीत)

जिसे

बाबू हरिश्चंद्र ने

अपनी पत्रिका बालाबोधिनी से लेकर

युवराज

श्रीयुत प्रिंस आर्वे वेल्स बहादुर

के
शुभागमन के आनंद के अवसर में

बालिकाओं को

वितरण के अर्थ अलग छपवाया

जिस लड़की को यह पुस्तक दी जाय उससे अध्यापक लोग
५ बेर कहला ले "राजपुत्र चिरंजीव" ।

Benares Light Press

बनारस लाइट छापाखाना मे मुद्रित हुआ ।

रचना काल सन् १८७४ । यह उपाख्यान पहले बालाबोधिनी में प्रकाशित हुआ था । सन् १८७५ में यह अलग पुस्तककार महिलाओं के लिए छापकर निःशुल्क बांटा गया ।— सं.

मदालसा

(उपाख्यान मार्कण्डेयपुराण से)

पुराने जमाने में शत्रुजित नाम का एक राजा था और उसको अरिबिदारण कृतध्वज नाम का एक लड़का था। अश्वतर नाग के दो लड़के ब्राह्मण बनकर उसके साथ खेलने आते थे। राजकुमार से उनसे ऐसी प्रीति हो गई थी कि वे रात दिन नाग लोक छोड़कर यहीं भूले रहते थे। एक दिन नागों के राजा अश्वतर ने अपने लड़कों से पूछा 'प्यारे लड़को, आज कल तुम लोग नाग लोक छोड़कर मृत्यु लोक ही में क्यों रहे रहते हो?' वे बोले 'पिता, शत्रुजित राजा के कुमार कृतध्वज ने शिष्टाचार और प्रीति से हमारा मन ऐसा मोहा है कि पाताल उसके बिना गर्म और उसके मिलने से सूर्य ठंडा मालूम पड़ता है।' पिता ने कहा 'निस्संदेह वह पुरुष धन्य है जिसको ऐसा मित्रों को सुखदाई पुत्र हुआ है, भला ऐसे सच्चे सुहृत् का तुम लोगों ने उपकार भी किया?' लड़के कहने लगे 'भला हम लोग उसका क्या उपकार करेंगे, धन, जन, विद्या सबमें वह हमसे बढ़ चढ़ के है और जो उसका एक काम है उसको ब्रह्मादिक ईश्वर के सिवा कोई कर नहीं सकता।' नागराज ने कहा 'भला हम सुन तो सही, ऐसा कौन काम है जो आदमी न कर सके। किसी प्रकार भी तुम लोग मित्र का प्रति उपकार कर सको तो मैं अपने को ऋण से छूटा समझूँ।' नाग पुत्र बोले 'उस मित्र के पिता के पास उसकी जवानी में गालव नाम का ब्राह्मण एक बहुत बढ़िया घोड़ा लेकर आया और बोला कि महाराज एक राक्षस हम लोगों को बहुत दुःख देता है, नित्य तप में विघ्न कर करके उसने हमारी नाकों में दम कर रक्खा है और हम लोगों ने बड़े कष्ट से तप किया है इससे उसको शाप देकर तप नहीं न्यून किया चाहते। एक दिन बड़े दुःखी हो कर जो मैंने एक लम्बी ठंडी साँस भरी तो देखता हूँ कि यह घोड़ा आसमान से उतरा चला आता है, साथ ही आकाश वाणी भी सुना कि इस घोड़े की गति पृथ्वी और आकाश पाताल सब जगह है। और ऐसा घोड़ा पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। चाल में हवा को भी यह पीछे छोड़ता हुआ संसारियों के मन की भाँति उड़ा चलता है। इसका नाम कुवलय है, इसे राजा शत्रुजित को दो और उसका पुत्र इस घोड़े पर सवार हो कर उस राक्षस को मारे। इससे उस राजा की बड़ी कीर्ति होगी। सो अब मैं आप के पास आया हूँ। राजा ने कुमार को उसी समय सज सजा कर असीस दी और ब्राह्मण के साथ विदा किया। राज कुमार गालव के आश्रम में रहने लगा। एक दिन वह राक्षस जंगली सुअर बन कर आया और जब कुँअर ने उसके पीछे धनुष तान कर घोड़ा बौड़ाया तो वह एक घने जंगल में भागा। भागते भागते वह बहुत दूर जाकर एक गड़हे में गिर पड़ा तो कुँअर भी साथ ही कूदा। अँधेरे में कुँअर को कुछ भी नहीं देखा था पर घोड़ा फेंके चला जाता था। जब उँजैला आया तो वह सुअर न दिखाई पड़ा, सिर्फ एक बड़ा रत्नों से जड़ा घर सामने खड़ा था। उसके दरवाजे की सीढ़ी पर एक जवान सुंदर स्त्री चढ़ी जाती थी। कुँअर भी दरवाजे पर घोड़ा बाँध बेधड़क उस मकान में घुसा और एक बड़ी सजी सजाई जड़ाऊ दालान में हिडोला खाट पर उसे एक कन्या दिखाई पड़ी और जो स्त्री उसे सीढ़ी पर चढ़ती मिली थी, वह भी उसके पास बैठी थी। कुँअर को देखते ही वह कन्या बेहोश हो गई। उस स्त्री और कुँअर ने किसी तरह उसको सावधान किया। तब कुँअर उस सखी से उन लोगों का नाँव गाँव और बेहोशी का कारण पूछने लगा। स्त्री बोली यह गंधर्वों के राजा विश्वावसु की कन्या है। इसको पातालकेतु नाम का दैत्य माया से उठा लाया है। अगली तेरस को वह दुष्ट इससे व्याह करने को था और जब इस दुख से यह प्राण देने लगी तो आकाशवाणी हुई कि प्राण मत दे। गालव के आश्रम में जिस राज कुँअर से यह मारा जायगा वही तेरा हाथ पीला करेगा। मैं इसकी सखी विध्यवान की पुत्री कुंडला हूँ। मेरे पति पुष्कर माली को जब शम्भू दैत्य ने वध कर डाला तब से धर्म में लगी हूँ। इसके मूर्च्छा का कारन यह है कि आज मैं खबर ले आई हूँ कि गालव के आश्रम में किसी ने उस सुअर बने हुए दैत्य को बान से मारा है। अब वही इसका पति होगा पर यह तुम्हारे रूप से मोह गई है और यह सोचती है कि हाथ जिसको मैं चाहती हूँ उससे न ब्याही जाऊँगी। अब आप कौन हैं, कहिए? राजकुमार ने सब हाल कहा और अपना राक्षस का मारना वर्णन किया। सुनते ही उस कन्या ने घूँघट कर लिया और बहुत गंधर्व का ध्यान किया। उसने आते ही प्रसन्नता से अग्नि को सारी देकर दोनों का हाथ दोनों को पकड़ा दिया

और आप तप करने चला गया । कुंडला भी अपनी सखी को गले लगाकर दुलहा दुलहिन दोनों को कुछ हित की बातें सिखाकर तप करने गई । कुँअर उस कन्या (मदालसा) को घोड़े पर बिठाकर उस पाताल की गुफा से बाहर निकलने लगा पर उसी क्षण राक्षसों की फौज ने चोर चोर कह कर आन घेरा और मदालसा को उससे छुड़ाना चाहा । कुँअर ने बहादुरी से उन सबों को बात की बात में मार गिराया और आप राजा खुशी अपने घर आया । पिता के पैरों पर पड़कर सब हाल कह सुनाया । राजा-रानी बहू-बेटा पाकर बड़े प्रसन्न हुए और सब लोग सुख से रहने लगे । राजा ने कुँअर को आज्ञा दे दी थी कि तुम नित्य घोड़े पर चढ़कर मुनियों की रखवाली लोग सुख से रहने लगे । राजा ने कुँअर को आज्ञा दे दी थी कि तुम नित्य घोड़े पर चढ़कर मुनियों की रखवाली किया करो । कुँअर घोड़े पर चढ़ा एक दिन यमुना किनारे के मुनियों की रखवाली कर रहा था कि एक आश्रम देखा । इस आश्रम में उस पातालकेतु राक्षस का भाई तालकेतु कपटी मुनि बन कर बैठा था । कुँअर को देखते ही पुराना बैर याद करके वह बोला कि कुँअर तुम अपने गहने हमको दो और जब तक हम पानी में जाकर वरुण की पूजा करके न फिरें तब तक तुम हमारे आश्रम की चौकी दो । राजपुत्र ने सब गहना उतार दिया और उस कुटीचर की कुटी का पहरा देने लगा । वह डुब्ट गहना लेकर जल में डूबकर माया से कुँअर के महलों में गया और मदालसा से बोला कि हमारे आश्रम में कृतध्वज को एक राक्षस ने मार डाला और हिनहिनाते हुए उस बिचारे घोड़े को भी घसीट ले गया । शूद्र तपसियों से क्रिया कराके उसका गहना लेकर मैं तुम को देने आया हूँ, यह लो । इतना कहकर आभूषण सब फेंक दिये और आप चलता हुआ । मदालसा ने उसी समय पति के दुःख से प्राण त्याग किये । महल में हाहाकार मच गया, जिधर देखो उधर कुहराम पड़ा हुआ था और दर दीवार से हाय कुँअर हाय बहू की आवाज आती थी । राजा शत्रुजित धीरज रखकर बोला कि इतना क्यों रोते हो ? मुनियों की रक्षा में हमारा पुत्र यश कमाकर मारा गया, इसका क्या सोच है । उसकी माँ भी बोली कि बड़ों का यश बड़ा कर जो क्षत्री युद्ध में मरे उसका क्या रोना और ऐसी बहू का भी क्या सोच जो पति के सब सुख भोगकर अन्त में पति लोक उसके साथ ही गई, उठो क्रिया करो और सोच दूर करो । राजा ने नगर के बाहर सब लोक रीति किया और बेटे बहू को पानी देकर घर फिरा । इधर कपटी मुनि भी कुँअर से आकर बोला कि मेरा काम हो गया, आपका कल्याण हो, अब घर सिचारिये । कुँअर जब नगर में आया तो सबको उदास पाया । कुँअर को देखते ही बघाई बघाई का चारों ओर से शोर मच गया । कुँअर बहुत चकपकाया कि यह मामला क्या है ? अन्त में घर पर गया और सब हाल सुनकर बहुत ही घबड़ाया । माँ बाप के डर से रो तो न सका पर अपनी पतिव्रता प्राण ज्यारी के निरुद्धने से बहुत ही उदास हो गया और यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं प्राण तो नहीं देता पर अब किसी दूसरी स्त्री से जन्म भर न मिलूँगा । तब से इस सुख से वंचित है और यदि संसार में उसका कोई हित है तो इतना ही है कि मदालसा उसको फिर मिले पर यह सिखा ईश्वर के कौन कर सकता है ? नागराज ने कहा 'पुत्र ईश्वर की दया और मनुष्य के परिश्रम के आगे कोई बात कठिन नहीं' ।

ने राजकुँअर का सिर सूँचा और गोद में बैठाकर बोले 'पुत्र, तুম धन्य हो, आज तक तुम्हारे गुणों को अपने पुत्रों के मुख से सर्वदा सुनने से तुम्हें देखने की जो मेरी लालसा थी वह पूरी हुई, कहीं हम भी तुम्हारा उपकार कर सकते हैं।' कुँअर ने हाथ जोड़ कर कहा 'आप की कृपा से मेरे सब काम पूर्ण हैं, यदि वर दिया ही चाहते हैं तो इतना ही दीजिए कि मेरी मति सदा सुपथ पर चले। नागराज ने कहा 'तुम्हारी मति तो आप ही सुपथ पर है, कोई दूसरा वर माँगो।' कुँअर नहीं माँगता था। गरज इसी संवाद में अवसर पाकर नाग नंदन बोले 'पितः इनको तो केवल एक मात्र दुःख है, जो मैंने आप से पूर्व कहा था'। कंवलानुज उसी समय महल में से मदालसा को ले आये और कुमार का हाथ पकड़ा दिया। उस समय कुमार को जो अलौकिक आनंद हुआ वह कौन वर्णन कर सकता है। यदि ऐसे ही मरा हुआ कोई प्राणप्रिय मित्र मिले तो उसका अनुभव किया जाय। पन्नगाधिपति ने पाताल में बड़ा उत्सव करके उन दोनों का फिर से पाणिग्रहण कराया। नाग नंदनों ने भी बड़ा आनंद किया और बड़े धूम धाम से कुँवर की दावतें हुईं। सारा नाग लोक उमड़ पड़ा था और कुँवर को सब बधाई देते थे। कुंडला जो तप के बल से अब विद्याधरी हो गई थी, मदालसा के गले से लगी और बधाई देकर बोली 'बहिन, मेरे धन्य भाग है कि तुझे जीती जागती भली चंगी अपने पति के साथ देखती हूँ भगवान करे तू सीली सपूती ठंडी सुहागिन हो और धन जन पूत लक्ष्मी से सदा से सदा सुखी रहे'। अश्वतर का भाई कंबल और और भी बड़े बड़े नाग लोग इस उत्सव में आये थे और कुँवर से मिलकर सब प्रसन्न हुए।

मणिघर मुकुट मणि अश्वतर ने कुवलायश्व को बहुत से मणि दिव्य वस्त्र चंदन इत्यादि देकर बड़ी प्रीति से धूम धाम से विदा किया और एक सज्जन मित्र का उपकार करके अपने को कृतकृत्य समझा और कुँअर से बहुत तरह से विनती करके कहा कि सदा आना जाना बनाए रहना और पिता से हमारा बहुत प्रणाम कहना — तुम्हारे स्नेह ने हमें बिना सैन्य जीत लिया है। नाग पत्नी नाग कन्याओं ने बहुत गहना कपड़ा दे उसका सिंगार किया और असीस देकर आँखों में आँसू भर के अपनी निज बेटी की भाँति विदा किया। कुँअर हँसी खुशी गाजे बाजे से उसी धूम धाम के साथ घर पहुँचा। माँ बाप का बहू बेटे को देख कर ऐसा कलेजा ठंडा हुआ जैसे किसी को खोई हुई संपत्ति मिले। राजा के सारे राज्य में आनंद फैल गया और घर घर बधाइयाँ होने लगीं। कुँअर को राज का बोझ सुपुर्द करके राजा भी सुचित हुआ और कुँअर भी मदालसा के साथ सुख से काल बिताने लगा। काल पाकर राजा रानी परलोक को सिधारे और कुवलायश्व राजा और मदालसा रानी हुई। राज का प्रबंध कुवलायश्व ने बहुत अच्छा किया। प्रजा सब सुखी और चोर और शत्रु दुखी। कुवलायश्व मदालसा के साथ महल-बगीचे वन पहाड़ों और नदियों सुंदर स्थानों में सुख से काल बिताता था। समय से मदालसा को एक पुत्र हुआ। नाम करण के दिन राजा ने उसका सुबाहु नाम रक्खा तो मदालसा हँसी। राजा ने पूछा 'ऐसे अवसर में तूम हँसती क्यों हो?' मदालसा ने कहा 'सुबाहु किसकी संज्ञा है इस जीव की कि इस देह की? देह की कहां तो हो नहीं सकती क्योंकि यह मेरा हाथ, यह मेरा देह, यह सब लोग कहते हैं इससे देह का कोई दूसरा अभिमानी अलग मालूम होता है और जो कहां जीव की है तो जीव को तो बाहु हुई नहीं, वह तो निर्लेप है। फिर इसकी सुबाहु संज्ञा क्यों? मेरे जान यह नामकरण इसका व्यर्थ है।' राजा को ऐसे नामकरण के आनंद के अवसर में उसका यह ज्ञान छाँटना जरा बुरा मालूम हुआ पर चुप कर रहा। मदालसा जब बालक को खिलाने लगती तो यह कह कर खिलाती —

वैत — अरे जीव तू आत्मा शुद्ध है। निरंजन है तू और तू बुद्ध है ॥
फँसा है तू आकर के भौजाल में। निराला है तू इनसे पर चाल में ॥
न माया में इनके अरे कुछ भी भूल। न सपने की संपत पै इतना तू फूल ॥
तेरा कोई दुनिया में साथी नहीं। तेरा राज घोड़ा व हाथी नहीं ॥
चौपाई — पुत्र भूल तू जग में आया। माया ने तुझको भरमाया ॥
तू है अलख निरंजन बेटा। जग माया ने तुझे लपेटा ॥
हे तू इस शरीर से न्यारा। परमात्मा शुद्ध अविकारा ॥
वही जतन तू कर सुत मेरे। जिस्से छूटै बन्धन तेरे ॥

छोटेपन ही से ज्ञान के संस्कार से बड़ा होते ही वह लड़का संसार को छोड़कर वन में चला गया। और

उसके पीछे दो लड़के और भी हुए और वे भी बालकपन ही से ज्ञान का उपदेश सुनते सुनते जब बड़े हुए तो संसार से उदास होकर घर छोड़ गए । क्योंकि कच्चे कलेजे में जो बात सिखाई जाती है बड़े होने पर उसका असर चित्त पर बहुत रहता है । राजा मदालसा के इस कृत्य से बहुत उदास रहता था । जब चौथा लड़का हुआ और उसका नामकरण करने लगा तो मदालसा से बोला कि देवी, अब की तुम्हीं इसका नाम रक्खो क्योंकि उन तीनों के हमारे नाम रखने से तुम हँसती थीं । मदालसा ने उस लड़के का नाम अलर्क रक्खा । राजा ने पूछा 'अलर्क शब्द का तो कुछ अर्थ ही नहीं ऐसा नाम क्यों ?' मदालसा ने कहा 'पुकारने के वास्ते कोई संज्ञा रखनी चाहिए, इसमें सार्थक और निरर्थक क्या ?' एक दिन राजा ने देखा कि उसको भी वही सब कह कह कर खिला रही है, तो राजा को बड़ा ही क्षोभ हुआ । हाथ जोड़कर बोला 'चंडिके, यह बालक हमें दान कर दो, तीन को तुम मिट्टी में मिला चुकीं यही एक बाकी रहा है ।' पति की इच्छानुसार मदालसा ने उसे ज्ञानोपदेश न करके उसके बदले अनेक प्रकार की नीति और धर्म पढ़ाया, जिसके प्रताप से किसी समय अलर्क बड़ा प्रतापी हुआ क्योंकि माता की शिक्षा सब शिक्षा से बढ़ कर है । राजा रानी ने अलर्क को समर्थ देखकर राज का बोझ सौंप दिया और आप तप करने वन में चले गए । यही अलर्क जब राज काज में भूल कर संसार में फँस गया था तो मदालसा के दिए हुए यंत्र को (जिस पर लिखा था "संपत्ति में औदार्य, विपत्ति में धैर्य, संग्राम में शौर्य और सब समय में जिसे ज्ञान नहीं, उसका संसार में जन्म व्यर्थ है । संग, काम, क्रोध, लोभ, मोह ये पाँचों दुस्त्यज्य हैं, इससे इनको १ सत् २ स्वकीया ३ अपनी अकृतज्ञता ४ सिद्धांत ५ भगवान की ओर प्रयुक्त करे) पढ़कर और अपने बड़े भाई सुबाहु की कृपा और दत्तात्रेय जी के उपदेश से बड़ा ज्ञानी गुणी प्रतापी और प्रसिद्ध राजा हुआ है ।

एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती

यह अंश 'कविवचन सुधा' भाग ८ सं. २२ वैशाख कृष्ण ४ सन् १८७६ में प्रकाशित हुआ । यह भारतेन्दु का आत्मचरित्र है । निश्चित रूप से यह भारतेन्दु की पहली औपन्यासिक कृति होती यदि यह पूरी हुई होती । आत्मकथात्मक शैली में लिखे इस लेख के केवल दो ही पन्ने मिलते हैं । इस अधूरे लेख की शैली भारतेन्दु के व्यक्तित्व के बहुत करीब है ।— सं.

प्रथम खेल

जमीने चमन गुल खिलाती है क्या क्या ?

बदलता है रंग आसमाँ कैसे कैसे ॥

हम कौन हैं और किस कुल में उत्पन्न हैं आप लोग पीछे जानेंगे । आप लोगों को क्या, किसी का रोना हो पड़े चलिए, जी बहलाने से काम है । अभी मैं इतना ही कहता हूँ कि मेरा जन्म जिस तिथि को हुआ वह जैन और वैदिक दोनों में बड़ा पवित्र दिन है । सं. १९३० में मैं जब तेईस बरस का था, एक दिन खिड़की पर बैठा था, बसन्त ऋतु, हवा ठंडी चलती थी ? साँझ फूली हुई, आकाश में एक ओर चन्द्रमा दूसरी ओर सूर्य पर दोनों लाल लाल, अजब समा बाँधा हुआ कसेरू, गंडेरी और फूल बेचनेवाले सड़क पर पुकार रहे थे । मैं भी जवानी की उमंगों में चूर, जमाने के ऊँच नीच से बेखबर, अपनी रसिकाई के नशे में मस्त, दुनिया के मुफ्तखोरे सिफारिशियों से घिरा हुआ अपनी तारीफ सुन रहा था, पर इस छोटी अवस्था में भी प्रेम को भली भाँति पहचानता था ।

कोई कहता था आप से सुंदर संसार में नहीं, कोई कसमें खाता था, आपसा पंडित मैंने नहीं देखा, कोई पैगाम देता था चमेली जान आप पर मरती हैं, आपके देखे बिना तड़प रही हैं, कोई बोला हाय ! आपका फलाना कवित्त पढ़कर रात भर रोते रहे, दूसरे ने कहा आपकी फलानी गजल लाला रामदास की सैर में जिस वक्त प्यारी ने गाई सारी मजलिस लोट-पोट हो गयी, तीसरा ठंडी साँस भरकर बोला धन्य है आप भी गनीमत हैं बस क्या कहें कोई जी से पूछे, चौथा बोला आपकी अंगूठी का पन्ना क्या है काँचका टुकड़ा है या कोई ताजी तोड़ी हुई पत्ती है, एक मीर साहब चिड़िया वाले ने चाँच खोली, बेपर की उड़ायी बोले कि आपके कबूतर किससे कम हैं बल्लाह कबूतर नहीं परीजाद है, खिलौने हैं, तसवीर हैं । हुमा पर साया पड़े तो उसे शहबाज बना दें, ऐसे ही खूबसूरत जानवरों में ईसाई लोग खुदा का नूर उतरना मानते हैं, इनको उड़ते देखकर किसके होश नहीं उड़ते, कसम कलामुल्लाह शरीफ की मटियाबुर्जवालों ने ऐसे जानवर छाया में नहीं देखे । एक दलाल घोड़े की तारीफ कर उठा, जौहरी ने खच्चरों की तरफ बाग मोड़ी, बजाज बाग की स्तुति में फूल बूटे कतरने लगा, सिद्धान्त यह कि मैं बिचारा अकेला और वाह वाहें इतनी कि चारों ओर से मुझे दबाए लेती थीं और मेरे ऊपर गिरी क्या फिसली पड़ती थीं ।

यह तो दीवानखाने का हाल हुआ अब सीढ़ी का तमाशा देखिये । चार पाँच हिंदू, चार पाँच मुसलमान सिपाही, एक जमादार, दो तीन उम्मेदवार और दस बीस उठल्लू के चूल्हे, कोई खड़ा है, कोई बैठा है, हाथ रुपया सबके जवान पर, पर इसमें सब ऐसे ही नहीं कोई-कोई सच्चा स्वामिभक्त भी है । कोई रंडी के भडुए से लड़ता है, रुपये में दो आना न दोगे तो सरकार से ऐसी बुराई करेंगे कि फिर बीबी का इस दरबार में दर्शन भी दुर्लभ हो जायगा, कोई बजाज से कहता है कि वह काली बनात हमें न ओढ़ाओगे तो वरसों पड़े झूलोगे रुपये के नाम खाक भी न मिलेगी, कोई दलाल से अलग सट्टा बट्टा लगा रहा है, कोई इस बात पर चूर है कि मालिक का हमसे बढ़कर कोई भेदी नहीं जो रुपया कर्ज आता है हमारी मारफत आता है, दूसरा कहता है बचा हमारे आगे तुम क्या पूचल चर हो औरतों का भुगतान सब मैं ही करता हूँ ।

इन सबों में से एक मनुष्य को आपलोग पहचान रखिए, इससे बहुत काम पड़ेगा । यह नाटा खोटा अच्छे हाथ पैर का साँवले रंग का आदमी है, बड़ी मोँछ, छोटी आँखें, कछाड़ा कसे, लाल पगड़ी बाँधे, हरा दुपट्टा कमर में लपेटे, सफेद दुपट्टा ओढ़े, जात का कुनबी है । इसका नाम होली है । होली आजकल मेरे बहुत मुँह लग रहा है, इसीसे जो बात किसी को मुझ तक पहुँचानी होती है वह लोग उससे कहते हैं । रेवड़ी के वास्ते मसजिद गिरानी इसी का काम है ।



स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन

स्वामी दयानंद सरस्वती और बाबू केशवचंद्रसेन के स्वर्ग में जाने से यहाँ एक बेर बड़ा आंदोलन हो गया। स्वर्गवासी लोगों में बहुतेरे तो इनसे घृणा करके धिक्कार करने लगे और बहुतेरे इनको अच्छा कहने लगे। स्वर्ग में भी 'कंसरवेटिव' और 'लिबरल' दो दल हैं। जो पुराने जमाने के ऋषिमुनि यज्ञ कर करके या तपस्या करके अपने अपने शरीर को सुखा सुखा कर और पच पच कर मरके स्वर्ग गए हैं उनके आत्मा का दल 'कंसरवेटिव' है, और जो अपनी आत्माही की उन्नति से वा और किसी अन्य सार्वजनिक उच्च भाव संपादन करने से या परमेश्वर की भक्ति से स्वर्ग में गए हैं वे 'लिबरल' दलभक्त हैं। वैष्णव दोनों दल के क्या दोनों से खारिज थे, क्योंकि इनके स्थापकगण तो लिबरल दल के थे किंतु अब ये लोग 'रेडिकल्स' क्या महा महा रेडिकल्स को गए हैं। विचारे बूढ़े व्यासदेव को दोनों दल के लोग पकड़ पकड़ कर ले जाते और अपनी अपनी सभा का 'चेयरमैन' बनाते थे, और बेचारे व्यासजी भी अपने प्राचीन अव्यवस्थित स्वभाव और शील के कारण जिस की सभा में जाते थे वैसे ही वक्तृता कर देते थे। कंसरवेटिवों का दल प्रबल था; इसका मुख्य कारण यह था कि स्वर्ग के जमींदार इन्द्र, गणेश प्रभृति भी उनके साथ योग देते थे, क्योंकि बंगाल के जमींदार इन्द्र गणेश प्रभृति भी उनके साथ योग देते थे, क्योंकि बंगाल के जमींदारों की भाँति उदार लोगों की बढ़ती से उन बेचारों को विविध सर्वोपरि बलि और भान न मिलने का डर था।

कई स्थानों पर प्रकाश सभा हुई। दोनों दल के लोगों के बड़े आतंक से वक्तृता दी। 'कंसरवेटिव' लोगों का पक्ष समर्थन करने को देवता भी आ बैठे और अपने अपने लोकों में भी उस सभा की शाखा स्थापन करने लगे। इधर 'लिबरल' लोगों की सूचना प्रचलित होने पर मुसलमानी-स्वर्ग और जैन स्वर्ग तथा क्रिस्तानी-स्वर्ग से पैगंबर, सिद्ध, मसीह प्रभृति हिंदू-स्वर्ग में उपस्थित हुए और 'लिबरल' सभा में योग देने लगे। बैकुंठ में चारों ओर इसी की धूम फैल गई। 'कंसरवेटिव' लोग कहते, "छिः दयानंद कभी स्वर्ग में आने के योग्य नहीं"; इसने १ पुराणों का खंडन किया, २ मूर्ति पूजा की निंदा किया, ३ वेदों का अर्थ उलटा पुलटा कर डाला, ४ दश नियोग करने की विधि निकाली, ५ देवताओं का अस्तित्व मिटाना चाहा, ६ और अंत में संन्यासी होकर अपने को जलवा दिया। नारायण! नारायण! ऐसे मनुष्य की आत्मा को कभी स्वर्ग में स्थान मिल सकता है, जिसने ऐसा धर्म विप्लव कर दिया और आर्यावर्त को धर्म बहिर्मुख किया।"

एक सभा में काशी के विश्वनाथ जी ने उदयपुर के एकलिंग जी से पूछा "भाई! तुम्हारी क्या मत मारी गई जो तुमने ऐसे पतित को अपने मुँह लगाया और अब उसके दल के सभापति बने हो, ऐसाही करना है तो जाओ लिबरल लोगों से योग दो।" एकलिंग जी ने कहा "भाई, हमारा मतलाब तुम लोग नहीं समझे। हम उसकी बुरी बातों को न मानते न उसका प्रचार करते, केवल अपने यहाँ के जंगल की सफाई का कुछ दिन उसके ठेका दिया, बीच में वह मर गया अब उसका माल मत्ता ठिकाने रखवा दिया तो उसका बुरा किया।"

कोई कहता 'केशवचंद्रसेन! छि छि! इसने सारे भारतवर्ष का सत्यानाश कर डाला। १ वेद पुराण सब को मिटाया, २ क्रिस्तान मुसलमान सब को हिंदू बनाया। ३ खाने पीने का विचार कुछ न बाकी रक्खा। ४ मद्य की तो नदी बहा दी। हाय हाय ऐसी आत्मा क्या कभी बैकुंठ में आ सकती है।"

ऐसे ही दोनों के जीवन की समालोचना चारों ओर होने लगी।

लिबरल लोगों की सभा भी बड़ी धूमधाम से जमती थी। किंतु इस सभा में दो दल हो गए थे, एक जो केशव की विशेष स्तुति करते, दूसरे वे जो दयानंद को विशेष आदर देते थे। कोई कहता, अहा धन्य दयानंद

जिसने आर्यावर्त के निन्दित आलसी मूर्खों की मोह निद्रा भंग कर दी। हजारों मूर्खों को ब्राह्मणों के (जो कंसरवेटिवों के पादरी और व्यर्थ प्रज्ञा का द्रव्य खाने वाले हैं) फंदे से छुड़ाया। बहुतों को उद्योगी और उत्साही कर दिया। वेद में रेल, तार, कमेटी, कचहरी दिखाकर आर्यों की कटती हुई नाक बचा ली। कोई कहता धन्य केशव ! तुम साक्षात् दूसरे केशव हो। तुमने बंग देश की मनुष्यनदी के उस वेग को, जो कुश्चन समुद्र में मिल जाने को उच्छलित हो रहा था, रोक दिया। ज्ञानकर्म का निरादर कर के परमेश्वर का निर्मल भक्ति मार्ग तुमने प्रचलित किया।

कंसरवेटिव पार्टी में देवताओं के अतिरिक्त बहुत लोग थे जिन में, याज्ञवल्क्य प्रभृति कुछ तो पुराने ऋषि थे और कृष्ण नारायणभट्ट, रघुनन्दनभट्टाचार्य, मंडनमिश्र, प्रभृति, स्मृति ग्रंथकार थे। सुना है कि विदेशी स्वर्ग के कुछ 'शीआ' लोगों ने भी इनके साथ योग दिया है।

लिबरल दल में चैतन्य प्रभृति आचार्य, बाबू, नानक, कबीर प्रभृति भक्त और ज्ञानी लोग थे। अद्वैतवादी माण्यकार आचार्य पंचदशीकार प्रभृति पहले दलमुक्त नहीं होने पाए। मिस्टर ब्रैडला की भाँति इन लोगों पर कंसरवेटिवों ने बड़ा आक्षेप किया किंतु अंत में लिबरलों की उदारता से उन के समाज में इनको स्थान मिला था।

दोनों दलों के मेमोरियल तयार कर स्वाक्षरित होकर परमेश्वर के पास भेजे गए। — एक में इस बात पर युक्ति और आप्रह प्रगट किया था कि केशव और दयानंद कभी स्वर्ग में स्थान न पावें और दूसरे में इसका वर्णन था कि स्वर्ग में इनको सर्वोत्तम स्थान दिया जाय।

ईश्वर ने दोनों दलों के डेप्यूटेशन को बुलाकर कहा "बाबा अब तो तुम लोगों की 'सैल्फगवर्नमेंट' है। अब कौन हम को पूछता है, जो जिसके जी में आता है करता है। अब चाहे वेद क्या संस्कृत का अक्षर भी स्वप्न में भी न देखा हो पर धर्म विषय पर वाद करने लगते हैं। हम तो केवल अदालत या व्यवहार या स्त्रियों के शपथ खाने को ही मिलाए जाते हैं। किसी को हमारी डर है? कोई भी हमारा सच्चा 'लायक' है? भूतप्रेत ताजिया के इतना भी तो हमारा दरजा नहीं बचा। हम को क्या काम चाहे 'वैकुण्ठ' में कोई आवे। हम जानते हैं चारों लड़कों (सनक आदि) ने पहले ही से चाल बिगाड़ दी है। क्या हम अपने विचारे जयविजय को फिर राक्षस बनवावें कि किसी का रोकटोक करें। चाहें सगुन मानो चाहे निर्गुन, चाहे द्वैत मानों चाहे अद्वैत, हम अब न बोलेंगे। तुम जानो स्वर्ग जाने।"

डेप्यूटेशन वाले परमेश्वर की ऐसी कुछ खिजलाई हुई बात सुनकर कुछ डर गए। बड़ा निवेदन सिवेदन किया। कोई प्रकार से परमेश्वर का रोश शांत हुआ। अंत में परमेश्वर ने इस विषय के विचार के हेतु एक 'सिलेक्टकमेटी' स्थापन की। इसमें राजा राम मोहन राय, व्यासदेव, टोडरमल, कबीर प्रभृति भिन्न भिन्न मत के लोग चुने गए। मुसलमानी-स्वर्ग से एक 'इमाम', क्रिस्तानी से 'लूपर', जैनी से पारसनाथ, बौद्धों से नागार्जुन और अफ्रीका से सिटोबायो के बाप को इस कमेटी का 'एक्स अफीशियो मेंबर' किया। रोम के पुराने 'हरकुलिस' प्रभृति देवता तो अब गृह सन्यास लेकर स्वर्गही में रहते हैं और पृथ्वी से अपना संबंध मात्र छोड़ बैठे हैं, तथा पारसियों के 'जरदुश्तजी' को 'कारेस्पांडिंग आनररी मेंबर' नियत किया और आज्ञा दिया कि तुम लोग इस सब कागज पत्र देखकर हम को रिपोर्ट करो। उनकी ऐसी भी गुप्त आज्ञा थी कि एडिटर्स की आत्मागण को तुम्हारी किसी 'काररवाई' का समाचार तब तक न मिले जब तक कि रिपोर्ट हम न पढ़ लें नहीं ये व्यर्थ चाहे कोई सुनै चाहे न सुनै अपनी टाँग टाँग मचा ही देंगे।

सिलेक्ट कमेटी का कोई अधिवेशन हुआ। सब कागज पत्र देखे गए। दयानन्दी और केशवी ग्रंथ तथा उनके अनेक प्रत्युत्तर और बहुत से समाचार पत्रों का मुलाहिजा हुआ। बालशास्त्री प्रभृति कई कंसरवेटिव और ब्रारकानाथ प्रभृति लिबरल नव्य आत्मागणों की इस में साक्षी ली गई। अंत में कमेटी या कमीशन ने जो रिपोर्ट किया उसकी मर्म बात यह थी कि: —

"हम लोगों की इच्छा न रहने पर भी प्रभु की आज्ञानुसार हम लोगों ने इस मुकदमे के सब कागज पत्र देखे। हम लोगों ने इन दोनों मनुष्यों के विषय में जहाँ तक समझा और सोचा है निवेदन करते हैं। हम लोगों की सम्मति में इन दोनों पुरुषों ने प्रभु की मंगलमयी सृष्टि का कुछ विघ्न नहीं किया वरंच उस में सुख और संतति अधिक हो इसी में परिश्रम किया। जिस चंडाल रूपी आप्रह और कुरीति के कारण मनमाना पुरुष

धर्मपूर्वक न पाकर लाखों स्त्री कुमार्ग गामिनी हो जाती हैं, लाखों विवाह होने पर भी जन्म भर सुख नहीं भोगने पातीं, लाखों गर्भ नाश होते और लाखों ही बाल हत्या होती हैं, उस पापमयी परम नृशंस रीति को इन लोगों ने उठा देने में अपने शक्यभर परिश्रम किया। जन्मपत्री की विधि के अनुग्रह से जब तक स्त्री पुरुष जीएँ एक तीर घाट एक मीर घाट रहैं, बीच में इस वैमनस्य और असंतोष के कारण स्त्री व्यभिचारिणी पुरुष विषयी हो जायें, घाट एक मीर घाट रहैं, बीच में इस वैमनस्य और असंतोष के कारण स्त्री व्यभिचारिणी पुरुष विषयी हो जायें, परस्पर नित्य कलह हो, शांति स्वप्न में भी न मिले, वंश न चले, यह उपद्रव इन लोगों से नहीं सहे गये। विधवा गर्भ गिरावै, पंडित जी या बाबू साहब यह सह लेंगे, वरंच चुपचाप उपाय भी करा देंगे, पाप को नित्य छिपावेंगे, अंततोगत्वा निकलही जायें तो संतोष करेंगे, इस दोष को इन दोनों ने निःसंदेह दूर करना चाहा। सवर्ण पात्र न मिलने से कन्या को वर मूर्ख अंधा वरंच नपुंसक मिले तथा वर को काली कर्कशा कन्या मिले जिसके आगे बहुत बुरे परिणाम हों, इस दुराग्रह को इन लोगों ने दूर किया। चाहे पढ़े हों चाहे मूर्ख, सुपात्र हो कि कुपात्र, चाहे प्रत्यक्ष व्यभिचार करें या कोई भी बुरा कर्म करें, पर गुरु जी हैं, पंडित जी हैं, इनका दोष मत कहो, कहोगे तो पलित होगे, इनको दो, इनको राजी रखो; इन सत्यानाश संस्कार को इन्होंने दूर किया। आर्य जाति दिन दिन हास हो, लोग स्त्री के कारण, धन के वा नौकरी व्यापार आदि के लोभ से, मद्यपान के चसके से, बाद में हार कर राजकीय विद्या का अभ्यास करके मुसलमान वा क्रिस्तान हो जायें, आमदनी एक मनुष्य की भी बाहर से न हो केवल नित्य व्यय हो, अंत में आयों का धर्म और जाति कयाशेष रह जाय, किंतु जो बिगड़ा सो बिगड़ा फिर जाति में कैसे आवेगा, कोई भी दुष्कर्म किया तो छिपके क्यों नहीं किया, इसी अपराध पर हजारों मनुष्य आर्य पंक्ति से हर साल छूटते थे, उसको इन्होंने रोका। सब से बढ़ कर इन्होंने यह कार्य किया, सारा आर्यावर्त जो प्रभु से विमुख हो रहा था, देवता विचारे तो दूर रहे, भूत प्रेत पिशाच मुरदे, साँप के काटे, बाघ के मारे, आत्म हत्या करके मरे, जल, दब या डूब कर मरे लोग, यही नहीं गुसलमानी पीर पैगंबर औलिया शहीद वीर ताजिया गाजीमियाँ, जिन्होंने बड़ी मूर्ति तोड़ कर और तीर्थ पाट कर आर्य धर्म विध्वंस किया, उन को मानने और पूजने लग गए थे, विश्वास तो मानों छिनाल का अंग हो रहा था, देखते सुनते लज्जा आती थी कि हाय ये कैसे आर्य हैं, किससे उत्पन्न हैं, इस दुराचार की ओर से लोगों का अपनी वक्तृताओं के धपेड़े के बल से मुँह फेर कर सारे आर्यावर्त को शुद्ध 'लायल' कर दिया।

'भीतरी चरित्र में इन दोनों के जो अंतर हैं वह भी निवेदन कर देना उचित है। दयानंद की दृष्टि हम लोगों की बुद्धि में अपनी प्रसिद्धि पर विशेष रही। रंग रूप भी इन्होंने कई बदले। पहले केवल भागवत का खंडन किया। फिर सब पुराणों का। फिर कई ग्रंथ माने कई छोड़े। अपने काम के प्रकरण माने अपने विरुद्ध को क्षेपक कहा। पहले दिगंबर मिश्री पोते महात्यागी थे। फिर संग्रह करते करते सभी वस्त्र धारण किये। भाष्य में भी रेल तार आदि कई अर्थ जबरदस्ती किए। इसी से संस्कृत विद्या को भली भाँति न जानने वाले ही प्रायः इनके अनुयायी हुए। जाल को छुरी से न काट कर दूसरे जाल ही से जिस को काटना चाहा इसी से दोनों आपस में उलझ गए और इसका परिणाम गृह विच्छेद उत्पन्न हुआ।

'केशव ने इनके विरुद्ध जाल काट कर परिष्कृत पथ प्रकट किया। परमेश्वर से मिलने मिलाने की आड़ या बहाना नहीं रखा। अपनी भक्ति की उच्छलित लहरों में लोगों का चित्त आर्द्र कर दिया। यद्यपि ब्राह्मण लोगों में सुरा मांसादि का प्रचार विशेष है किंतु इसमें केशव का दोष नहीं। केशव अपने अटल विश्वास पर खड़ा रहा। यद्यपि कूचबिहार के संबंध करने से और यह कहने से कि ईशामसीह आदि उससे मिलते हैं, अंतावस्था के कुछ पूर्व उन के चित्त की दुर्बलता प्रकट हुई थी, किंतु वह एक प्रकार का उन्माद होगा वा जैसे बहुतेरे धर्म प्रचारकों ने बहुत बड़ी बातें ईश्वर की आज्ञा बतला दीं वैसे ही यदि इन बेचारे ने एक दो बात कही तो क्या पाप किया। पूर्वोक्त कारणों ही से केशव का मरने पर जैसा सारे संसार में आदर हुआ वैसा दयानंद का नहीं हुआ। इस के अतिरिक्त इन लोगों के हृदय के भीतर छिपा कोई पुन्य पाप रहा हो तो उस को हम लोग नहीं जानते इस का जानने वाला केवल तू ही है।

भीतर छिपा कोई पुन्य पाप रहा हो तो उस को हम लोग नहीं जानते इस का जानने वाला केवल तू ही है ।''

इस रिपोर्ट पर विदेशी मेंबरों ने कुछ क्रुद्ध होकर हस्ताक्षर नहीं किया ।

रिपोर्ट परमेश्वर के पास भेजी गयी । इस को देखकर इस पर क्या आज्ञा हुई और वे लोग कहाँ भेजे गए यह जब हम भी वहाँ जायेंगे और फिर लौट कर आ सकेंगे तो पाठक लोगों को बतलावेंगे । या आप लोग कुछ दिन पीछे आपही जानोगे ।^१

स्तोत्र-पंचरत्न

रचना काल सन् १८७४ से १८७८ के बीच । स्तोत्र पंचरत्न के नाम से श्री वेश्यास्तवराज, स्त्रीसेवापद्धती, मदिरास्तवराज, कंकड़ स्तोत्र और अंग्रेज स्तोत्र का संग्रह खंगविलास प्रेस बांकीपुर से छपा । जिसकी भूमिका भारतेन्दु जी ने सन् १८८२ में लिखी थी, जो दूसरी बार १८८६ में छपी । इस बार इसमें एक और लेख 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है' जुड़ गया ।

यह बनारस की म्यूनिस्पैलिटी पर व्यंग्य है । बरसात में कंकड़ों की कणमात पर लिखा गया यह लेख भारतेन्दु के उत्कृष्ट हास्य का नमूना है । — सं.

भूमिका

प्रिय पाठकगण ! यद्यपि ये स्तोत्र हास्यजनक हैं तथापि विज्ञ लोग इनसे अनेकहों उपदेश निकाल सकते हैं । शोच का विषय है कि इन दिनों हम आर्य लोगों का दीन भारतवर्ष मांस मदिरा वेश्यादि दोषों से ग्रस्त हो रहा है । यदि इसके बचाव का कोई उपाय शीघ्र न किया जायगा तो हम लोगों को बड़ी भारी क्षति सहनी पड़ेगी अतएव शीघ्र ही इन आपत्तियों से भारतवासियों को बचना उचित है ।

बकरी विलाप को इसमें सम्मिलित करने में केवल यही प्रयोजन है कि इस दीन दुखिया के विलाप को सुनकर मांसलोलुप महाशय बकरोँ पर दया करें और वृथा ही अपनी जिह्वा के स्वादार्थ इन सहायहीन विचारों के प्राण न लें । संसार में सहस्रों ही एक से एक उत्तम स्वादिष्ट खाद्य-वस्तु ईश्वर ने उत्पन्न की है कुछ मांस के सिर में सुरखाब का पर लगा ही नहीं है अतएव आशा है कि पाठकगण इस घृणित और जघन्य कार्य से अपना अपना हाथ खींच लेंगे ।

हरिश्चंद्र

१. मित्र विलास खण्ड ८ सं. ४०, १९ जून सन् १८८५ में तथा कविवचन सुधा १ जून अंक ८ सन् १८७५ में प्रकाशित यह लेख स्वामी दयानन्द और केशव चन्द्र सेन के परलोक गमन पर लिखा गया था । बाद में 'क्रानिकल' में उसका अंग्रेजी अनुवाद भी छपा ।

— सं.

स्तोत्र पंचरत्न

श्री वेश्यास्तवराज

(महा संस्कृत)

ओं अस्य श्री वेश्यास्तवराज महामाला मंत्रस्य भण्डाचार्यः । श्री हरिश्चन्द्रो ऋषिः । द्रव्योवीजं मुख कीलकं वारवधू महादेवता सर्वस्वाहार्यं जपे विनियोगः । अथ अंगन्यासः । द्रव्य हारिण्यै हृदयाय नमः । जेरपायी धारिण्यै शिरसे स्वाहा चोटी काटिन्यै शिखायै वषट् प्रत्यंगालिङ्गन्यै कवचाय हुकामान्ध कारिण्यै नेत्राभ्यां वीषट् विषयार्थिन्यै अस्त्र त्रयाय फट् ।

अथ करन्यासः

सर्वं शून्यं कर्त्रे अंगुष्ठाभ्यान्ममः लोकवेदनियेधिन्यै तर्जनीभ्यान्ममः मध्यम विधायिन्यै मध्यमाभ्यान्ममः दुर्नैमदायिन्यै अनामिकाभ्यान्ममः कनिष्ठकारिण्यै कनिष्ठिकाभ्यान्ममः आसमुद्रान्तं करं ग्राहिण्यै करतलं करं पुष्पाभ्यान्ममः ॥

अथ ध्यानम्

पद्माकारामुखां कपोल ललितां माधुर्यं पूर्णाधरां । अत्युच्चस्तनमण्डलां विषजलैः पूर्णां घटकांचनौ । मिथ्याप्रेममयीं तनुं विदधतीं सर्वस्य संहारणीं । ध्यायेद्भारं बधू सदैव हृदये धमार्थं विच्छिद्यते ॥

अथ स्तोत्र प्रारम्भः ।

नौमि	नौमि	नौमि	देवि	रण्डिके ।
लोक	वेद	सिद्ध	पंथ	खण्डिके ॥
कोटि	यक्षराज		कोप	नासिनी ।
स्वार्थ	सिद्धि	हेतही		विलासिनी ॥
दृष्टि	मात्र	मन्द	मन्द	हासिनी ।
कामि	वृन्द	काम	दुःख	नासिनी ॥
जातरूप	जात		रूप	शालिनी ।
नव्य	न्यून	वृन्द	मुण्ड	मालिनी ।
क्षेत्रपाल		वाहनादि		पालिनी ॥
काशिका	प्रवास	मोक्ष		दायिनी ।
पोर्ट	ब्राह्मिकादि			मद्यपायिनी ॥
केश	पाश	स्वच्छ	गुच्छ	शोभिनी ।
द्रव्य	दर्श	भव्य	भाव	लोभिनी ॥
काम	अग्नि	ज्वाल	माल	कुण्डिनी ॥
कामि	चित्त	पक्षिका		भुसुण्डिनी ॥
पुन्य	तीर्थ	यात्रि	वृन्द	पावनी ।
दैव	युक्त	काम	सैन्य	छावनी ॥
मद्यप	प्रमोद		पुष्ट	पीडिका ।
एनलाइटेंड		पंथ		सीदिका ॥
पेशवाज		अंग		शोभितानना ।
गिलटभूषणा		प्रमोद		कानना ॥
मातृ	पितृ	बन्धु	शील	भक्षिका ।
लोक	लाज	नाश	हेतु	तक्षिका ॥
गुप्त	द्रव्य	पुञ्ज	गेह	रक्षिका ।
यौवनासवार्थ		पुष्प		भक्षिका ॥

धर्म	कर्म	शर्म	चर्म	हारिणी ।
गर्म	धर्म	नर्म	मर्म	कारिणी ।।
प्रेजुडीस	लेश	मात्र	भञ्जिका ।	
मध्यपान	घोर	रंग	रञ्जिका ।।	
दायिनी	क्षणिक	मात्र	संग	की ।
आतशक	सुजाक	और	फिरंग	की ।।
पितृ	नाम	हीन	मातृ	नासिका ।
सब	जाति	पाति	मध्य	गामिका ।।
मिष्ट	जिह्वा	कपाल	मूङ्नी	।
मित्र	वर्ग	युक्त	नर्क	बूङ्नी ।।
लोक	वेद	लाज	पत्र	फाङ्नी ।
जीवितैव	कन्न	मध्य	गाङ्नी ।।	
द्रव्य	लाभ	धावमान	साङ्नी ।	
सद्गृहस्थ	गेह	की	उजाङ्नी ।।	
सम्प्रदायि	वृन्द	जीविका	प्रदा ।	
टाल	हेतु	माल	पूरनी	सदा ।
नायकावलम्बिनी			सुखास्पदा ।	
त्वानमामि	रणिङ्	देवते	सदा ।।	
इदं	वार	बधू	स्तोत्रं	दिव्यादिव्यतरमहत ।
गुप्तं	गुप्तवती	तन्त्रे	देवैरपि	सुदुर्लभम् ।।
य :	पठेव्यात्कल्याय	सायवासुसमाहित :		।।
मुक्तो	भवतिसदैव	देवगेहादि	बन्धनात्	।।
जप्त्वा	जप्त्वा	पुनर्जप्त्वा	पतित्वा	चमहीतले ।
उत्थाप्यचपुनर्जप्त्वा			नरोमुक्तिमवाप्नुयात् ।।	

इति

स्त्री सेवा पद्धति

इस पूजा में अश्रु जल ही पाद्य है, दीर्घश्वास ही अर्घ्य है, आश्वासन ही आचमन है, मधुर भाषण ही मधुपर्क है, सुवर्णालंकार ही पुष्प हैं, धैर्य ही धूप है, दीपक है, चुप रहना ही चंदन है और बनारसी साड़ी ही विल्पपत्र हैं, आयु रूपी आँगन में सौंदर्य तृष्णा रूपी खुटा है, उपासक का प्राण पुंज छाग उसमें बँध रहा है, देवी के सुहाग का खप्पर और प्रीति की तरवार है, प्रत्येक शनिवार की रात्रि इसमें महाष्टमी है, और पुरोहित यौवन है ।

पदादि उपचार करके होम के समय यौवन पुरोहित उपासक के प्राण समिधों में मोहाग्नि लगाकर सर्वनाश तंत्र से मंत्रों से आहुति दे "मानखण्ड के लिए निद्रा स्वाहा" "वात मानने के लिए माँ बाप का बंधन स्वाहा" "वस्त्रालंकारादि के लिए यथा सर्वस्व स्वाहा" "मन प्रसन्न करने के लिए यह लोक परलोक स्वाहा" इत्यादि, होम के अनन्तर हाथ जोड़कर स्तुति करे ।

हे स्त्री देवी ! संसार रूपी आकाश में गुब्बारा (बेलून) हो, क्योंकि बात बात में आकाश में चढ़ा देती हो, पर जब धक्का दे देती हो तब समुद्र में डूबना पड़ता है अथवा पर्वत के शिखरों पर हाड़ चूर्ण हो जाते हैं, जीवन के मार्ग में तुम रेलगाड़ी हो, जिस समय रसना रूपी एंजिन तेज करती हो एक घड़ी भर में चौदहों भुवन दिखला देती हो, कार्यक्षेत्र में तुम इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ हो, बात पड़ने पर एक निमेष में उसे देशदेशांतर में पहुँचा देती हो तुम भवसागर में जहाज हो, बस अधम को पर करो ।

तुम इंद्र हो श्वसुर कुल के दोष देखने के लिए तुम्हारे सहस्र नेत्र हैं स्वामी के शासन करने में तुम वज्रपाणि हो। रहने का स्थान अमरावती है क्योंकि जहाँ तुम हो वहीं स्वर्ग है।

तुम चन्द्रमा हो तुम्हारा हास्य कीमुदी है उससे मन का अंधकार दूर होता है तुम्हारा प्रेम अमृत है जिसकी प्रारब्ध में होता है वह इसी शरीर से स्वर्ग सुख अनुभव करता है और लोक में जो तुम व्यर्थ परार्थीन कहलाते हो यही तुम्हारा कलंक है।

तुम वरुण हो क्योंकि इच्छा करते ही अश्रु जल से पृथ्वी आद्र कर सकती हो तुम्हारे नेत्र जल की देखा देखी हम भी गल जाते हैं।

तुम सूर्य हो तुम्हारे ऊपर आलोक का आवरण है पर भीतर अंधकार का वास है, हमें तुम्हारे एक घड़ी भर भी आँखों के आगे न रहने से दसों दिशा अंधकारमय मालूम होता है पर जब माथे पर चढ़ जाती हो तब तो हम लोग उत्ताप के मारे मर जाते हैं किम्बहुना देश छोड़कर भाग जाने की इच्छा होती है।

तुम वायु हो क्योंकि जगत की प्राण हो तुम्हें छोड़कर किननी देर जी सकते हैं ? एक घड़ी भर तुम्ह बिना देखे प्राण तड़फड़ाने लगते हैं, जल में डूब जाने की इच्छा होती है पर जब तुम प्रखर बहती हो किस व बाप की सामर्थ्य है कि तुम्हारे सामने खड़ा रहे।

तुम यम हो यदि रात्रि को बाहर से आने में विलम्ब हो, तो तुम्हारी वक्तृता नरक है। वह यातना जिस न सहनी पड़े वही पुण्यवान है उसी की अनंत तपस्या है।

तुम अग्नि हो क्योंकि दिन रात्रि हमारी हड्डी हड्डी जलाया करती हो।

तुम विष्णु हो तुम्हारी नथ तुम्हारा सुदर्शन चक्र है उसके भय से पुरुष असुर माथा मुड़ाकर तटस्थ हा जाते हैं एक मन से तुम्हारी सेवा करे तो सशरीर वैकुण्ठ को प्राप्त कर सकता है।

तुम हमा हो तुम्हारे मुख से जो कुछ बाहर निकलता है वही हम लोगों का वेद है और किसी वेद को हम नहीं मानते तुमको चार मुख है क्योंकि तुम बहुत बोलती हो सृष्टिकर्ता प्रत्यक्ष हो हो पुरुष के मनहंस पर चढ़ती हो चारो वेद तुम्हारे हाथ में है इससे तुमको प्रणाम है।

तुम शिव हो सारे घर का कल्याण तुम्हारे आधीन है। भुजंग बेनी धारिणी है (३) त्रिशूल तुम्हारे हाथ में है क्रोध में और कंठ में विष है तो भी आशुतोष हो।

इस दिव्य स्तोत्र पाठ से तुम हम पर प्रसन्न हो। समय पर भोजनादि दो। बालकों की रक्षा करो। भूकूटी धनु के सन्धान से हमारा बध मत करो। और हमारे जीवन को अपने कोप से कंटकमय मत बनाओ।

अथ मदिरास्तवराज

मदिरामादकमद्यं सुराहाला हरिप्रिया ।

गन्धोत्तमाप्रसन्नोरा परिश्रुत वरुणात्मजा ॥

कश्यं कादम्बरी गन्धमादिनी च परिश्रुता ।

मानिकाकपिशीमत्ता माधवीकापिशायनम् ॥

कतोयंकामिनीसीता॥ मदगन्धा मद प्रिया ।

माध्वीकंभुसन्धानमासवोमदनाऽमृता ॥

वीरामनोज्ञा मेधावी विधातामदनीहली ।

श्रीमेदिनी सुप्रतिभा महानन्दामधूलिका ॥

मदोत्कंठागुणारिष्टं मैरेयंमदवल्लभा ॥

कारणं सरकः सीधुर्मदिष्टाव परिप्लुता ॥

तत्त्वं कल्पंस्वादुरसा शुण्डाकपिशमब्धिजा ।

हराहरं देवसृष्टा मारिचीं दुष्टमेव च ॥

खर्जूरपानसंद्राक्षं माक्षिकं तालमैक्षरणम् ।

टाकमन्नो विकारोत्थं मधुकनारिकेलजं ॥

गौडीमाध्वीतथापैन्दी माद्याचाद्यास्वरूपिणी ।
 कुलीन कुल सर्वस्वा तन्त्र सारामनोहरा ॥
 मकार वमध्यस्था देवीप्रीतिकरी शिवा ।
 वीरपेयानत्यसिद्धा भैरवी भैरवप्रिया ॥
 कायस्थकुल संपूज्या SSभौराभिल्लजर्नाप्रिया ॥
 शुद्धसेव्याराजपेया घृणाघृणित कारिणी ॥
 चन्द्रानुवादेवपीता दैत्यालक्ष्मीसहोदरा ।
 म्लेच्छप्रियादानवेज्या यादवान्वयनाशिनी ॥
 गौरण्डगौरसंसेव्या फ्रान्सदेशसमुद्रमवा ।
 शरावमयदुखतरिरजवतगुलगुं आफतावशर ।
 ब्राण्डी शाम्पिन्पोर्टवाइन क्लारेट एकश्वास्तु हाक्गिन् ।
 मुजेलट्विस्कीमार्टल औलडटाम हेनिसी शेरी ।
 बिहाइव वैडेलिसमेनी रम्बीयर वरमौयुज ॥
 क्यूरैसिया कागनक्लअण्टिलोपिका ।
 वाइनमगैलिसाइवान मरु वरमुपेक्वावाइटा ॥
 दुधिया दुधवा दुदी दारु मद दुलारिया ।
 कलवार-प्रिया काली कलवरियानिवासिनी ।
 होटलीलोटलीलोट नाशिनी चोटलीचला ।
 धनमानादि संहर्त्री ग्रैण्डटोटल कारिणी ॥
 पंचापंच परित्यक्ता पंच पंचप्रपंचिता ।
 इमानिश्रीमहामद्य नामानिवदनेसदा ।
 तिष्ठन्तु सेविनासंख्या क्रमात्सार्द्ध शतानिच ॥
 यः पठेत्प्रातरुत्थाय नामसार्द्धशतम्मुदा ।
 धनमानं परित्यज्य ज्ञातिपंक्याचुतोभवेत् ॥
 निन्दितो बहुभिर्लोकैर्मुखस्वासपरांगमुखैः ।
 बलहजीनोक्रियाहीनो मूत्रकृतलुण्ठतेक्षितौ ॥
 पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावल्लुठतिभूतले ।
 उत्थाय च पुनः पीत्वा नरोमुक्तिमवाप्नुयात् ॥

इति श्री पञ्चमहातंत्रे प्रपंचपटले पंचमकारवर्णनमिदिरास्तवाराजे सार्द्धशतनाम संपूर्णम् ।

अथ स्तवराज—

हे मादरे तुम साक्षात् भगवती का स्वरूप हो, जगत तुमसे व्याप्त है, तुम्हारी स्तुति करने को कौन समर्थ है अतएव तुम्हें प्रणाम ही करना योग्य है । हे मद्य तुम्हें सौत्रामणि यज्ञ में तो वेद ने प्रत्यक्ष आदर दिया है परंतु तुम अपने सोमरूप प्रच्छन्न अमृत प्रवाह से संपूर्ण वैदिक यज्ञ वितान को प्लावित करती हो अतएव हे श्रुतिश्रुते तुम्हें प्रणाम है ।

हे वारिणि ! स्मृतिकारों ने भी तुम्हारी प्रवृत्ति नित्य मानी है, निवृत्ति केवल अपने पदति पने के रक्षण के हेतु लिखी है अतएव हे स्मृतिस्मृते तुम्हें प्रणाम है ।

हे गौड़ि ! पुराणों में तो तुम्हारी सुधासारिणि कथा चारों ओर अति वाहित है, निषेध के बहाने भी तुम्हारी विधि ही विधि है, इससे हे पुराण प्रतिपादिते ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे सोम सन्तते ! चंद्रमा में तुम्हारा निवास, समुद्र तुम्हारी उत्पत्ति का स्थान और सकल देव, ऋष्य,

असुर तुम्हारे पति हैं, अतएव हे त्रिलोकगामिनि ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे बोलत वासिनि ! देवी ने तुम्हारे बल से शुभादि को मारा । यादव लोग तुम्हें पी के कट मरे । बलदेव जी ने तुम्हारे प्रताप से सूत का सिर काटा, अतएव हे शक्ति ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे सकल मादक सामग्री शिरो रत्ने ! तंत्र केवल तुम्हारे प्रचार ही को बनाए हैं, और इनका कोई प्रयोजन नहीं था केवल तुम मय जगत् करने को इनका अवतार है, अतएव हे स्वतंत्र ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे ब्राह्मि ! बौद्ध और जैन धर्म की तुम सारभूत हो । मुसलमानी में मुफ्त के मिस हलाल हो ! क्रिस्तानों में भी साक्षात् प्रभु की रुधिर रूप हो और ब्राह्मोन्धर्म की तुम एक मात्र आड़ हो, अतएव हे सर्व धर्म मर्म स्वरूपे ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे शाम्पिन ! आगे के लोग सब तुम्हारे सेवक थे, यह श्लोकों के प्रमाण सहित बाबू राजेन्द्रलाल के लेखक से सिद्ध है तो अब तुम्हारा कैसे त्याग हो सकता है, अतएव हे सिद्धे ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे ओलडटाम ! तुम्हें भारतवर्षियों ने उत्पन्न किया, रुम, चीन इत्यादि देश के लोगों ने कुछ परिष्कृत किया, अब अंग्रेजों और फरासीसियों ने तुम्हें फिर से नए भूषण पहिराए, अतएव हे सर्वविलायत भूषिते ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे कुलमर्यादासंहारकारिणि ! तुमसे बढ़कर न किसी का बल है, न आग्रह, न मान, तुम्हारे हेतु तुम्हारे प्रेमी कुल, धन, नाम, मान, बल, मेल, रूप वरज्व प्राण का भी परित्याग करते हैं, अतएव हे प्रणयैक पात्रे ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे प्रेजुडिस-विश्वसिनी ! तुम्हारे प्रताप से लोग अनेक प्रकार की शंका परित्याग करके स्वच्छंद विहार करते हैं, जिनके बाप-बादे हुक्काभाँग-सुरती से भी परहेज करते थे वे अब सभ्यों की मजलिस में तुम्हारा सेवन करके जाना ऐब नहीं समझते, अतएव हे बोलइलेस जननि ! तुम्हें प्रणाम है ।

हे सर्वानंद सार भूते ! तुम्हारे बिना किसी बात में मजा नहीं मिलता, रामलीला तुम्हारे बिना निरी सुपनछा की नाक मालूम पड़ती है, नाच निरे फूटे काँच और नाटक निरे उच्चाटक बेवकूफी के फाटक दिखाई पड़ते हैं, अतएव हे मजे की मोटरी, तुम्हें प्रणाम है ।

हे मुख-कज्जलावलेपके ! होटल नाच जाति पाँति घाट बाट मेला तमाशा दरबार घोड़ दौड़ इत्यादि स्थान में तुम्हें लेकर जाने से लोग देखो कैसी स्तुति करते हैं । अतएव हे पूर्व पुरुष संचित विद्या धन राज संपत्कादि अन्य कठिन प्राप्य प्रतिष्ठा समूह सत्यानाशनि ! तुम्हें बारंबार प्रणाम करना योग्य है ।

कंकर स्तोत्र

कंकड़ देव को प्रणाम है । देव नहीं महादेव क्योंकि काशी के कंकड़ शिव शंकर समान हैं ।

हे कंकड़ समूह ! आज कल आप नई सड़क से दुर्गा जी तक बराबर छाये हो इससे काशी खण्ड "तिलेतिले" सच हो गया अतएव तुम्हें प्रणाम है ।

हे लीला कारिन् ! आप केशी शंकट वृषभ खरादि के नाशक हो इससे मानो पूर्वादि की कथा हो अतएव व्यासों की जीविका हो ।

आप सिर समूह भञ्जन हो क्योंकि कीचड़ में लोग आप पर मुँह के बल गिरते हैं ।

आप पिष्ट पशु की व्यवस्था हो क्योंकि लोग आप की कढ़ी बना कर आप को चूसते हैं ।

आप पृथ्वी के अंतरगर्भ से उत्पन्न हो । संसार के गृह निर्माण मात्र के कारण भूत हो । जल कर भी सफेद होते हो । दुष्टों के तिलक हो । ऐसे अनेक कारण हैं जिनसे आप कमस्कारणीय हो ।

हे प्रबल वेग अवरोधक ! गरुड़ की गति भी आप रोक सकते हो और की कौन कहे इससे आप को प्रणाम है ।

हे सुंदरी सिंगार ! आप बड़ी के बड़े हो क्योंकि चूना पान की लाली का कारण है और पान रमणी गण मुख शोभा का हेतु है इससे आप को प्रणाम है ।

हे चुगी नंदन ! ऐन सावन में आप को हरियाली सूखी है क्योंकि दुर्गा जी पर इसी महीने में भीड़ विशेष होती है तो हे हठ मूर्ते ! तुम को दंडवत है ।

हे प्रबुद्ध ! आप शुद्ध हिंदू हो क्योंकि शरह विरुद्ध हो आव आया और आप न बर्खास्त हुए इससे आप को मंगल है ।

हे स्वेच्छाचरिन ! इधर उधर जहाँ आप ने चाहा अपने को फैलाया है । कहीं पट्टरी के पास हो कहीं बीच में अड़े हो अतएव हे स्वतंत्र आप को नमस्कार है ।

हे ऊमड़ खाभड़ शब्द सार्थ कर्ता ! आप कोणमिति के नाशकारी हो क्योंकि आप अनेक विचित्र कोण मन्वलित हो अतएव हे ज्योतिषारि आप को नमस्कार है ।

हे शस्त्र समष्टि ! आप गोली गोला के चचा, छरों के परदादा, तीन के फल तलवार की धार और गदा के गाला हो इससे आप को प्रणाम है ।

आहा ! जब पानी बरसता है तब सड़क रूपी नदी में आप द्वीप से दर्शन देते हो इससे आप के नमस्कार में सब भूमि को नमस्कार हो जाता है ।

आप अनेकों के बृद्धतर प्रपितामह हो क्योंकि ब्रह्मा का नाम पितामह है उनका पिता पंकज है उसका पिता पंक है और आप उसके भी जनक है इससे आप पूजनीयों में एल एल डी हो ।

हे जोगा जिवलाल रामलालादि मिश्री समूह जीविका दायक ! आप कामिनी-भंजक धुरीश विनाशक वारनिस चूर्णक हो । केवल गाड़ी ही नहीं घोड़े की नाल सुम बैल के खुर और कंटक चूर्ण को भी आप चूर्ण करनेवाले हो इससे आप को नमस्कार है ।

आप में सब जातियों और आश्रमों का निवास है । आप बाणप्रस्थ हो क्योंकि जंगलों में लुङकते हो । ब्रह्मचारी हो क्योंकि बटु हो । गृहस्थ हो चूना रूप से, सन्यासी हो क्योंकि घुट्टमघुट्ट हो । ब्राह्मण हो क्योंकि प्रथम वर्ण हो करभी गली गली मारे मारे फिरते हो । क्षत्री हो क्योंकि खत्रियों की एक जाति हो । वैश्य हो क्योंकि कांट वांट दोनों तुम में है । शूद्र हो क्योंकि चरण सेवा करते हो । कायस्थ हो क्योंकि एक तो ककार का मेल दूसरे कचहरी पथावरोधक तीसरे क्षत्रियत्व हम आप का सिद्ध कर ही चुके हैं । इससे हे सर्ववर्ण स्वरूप तुमको नमस्कार है ।

आप ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, अग्नि, जम, काल, दक्ष और वायु के कर्ता हो, मन्मथ की ध्वजा हो, राजा पद दायक हो, तन मन धन के कारण हो, प्रकाश के मूल शब्द की जड़ और जल के जनक हो वरञ्च भोजन के भी स्वादु कारण हो, क्योंकि आदि व्यंजन के भी बाबा जान हो इसी से हे कंकड़ तुमको प्रणाम है ।

आप अंगरेजी राज्य में श्रीमती महाराणी विक्टोरिया और पार्लामेंट महासभा के आछत प्रबल प्रताप श्रीयुत गवर्नर जनरल और लेफ्टेण्ट गवर्नर के वर्तमान होते, साहिब कमिश्नर साहिब मजिस्ट्रेट और साहिब सुपररिन्टेण्डेंट के इसी नगर में रहते और साढ़ेतीन तीन हाथ के पुलिस इंस्पेक्टरों और कांसिटेबुलों के जीते भी गणेश चतुर्थी की रात को स्वच्छंद रूप से नगर में भड़ामड़ लोगों के सिर पांव पड़कर रुधिर धारा से नियम और शांति का अस्तित्व बहा देते है अतएव हे अंगरेजी राज्य में नवाबी स्थापक, तुमको नमस्कार है ।

यहा लंबा चौड़ा स्तोत्र पढ़कर हम बिनती करते हैं कि अब आप सबे सिकंदरी बाना छोड़ो या हटो या पिटो ।

हे मानव हमको टाइटल दो, खिताब दो, खिलअत दो, हमको अपना प्रसाद दो हम तुमको प्रणाम करते है ।

हे भक्तवत्सल ! हम तुम्हारा पात्रावशेष भोजन करने की इच्छा करते हैं तुम्हारे कर स्पर्श से लोक मण्डल में महामानास्पद होने की इच्छा करते हैं, तुम्हारे स्वहस्तलिखित दो एक पत्र बक्स में रखने की स्पर्धा करते हैं, हे अंग्रेज ! हम पर प्रसन्न हो हम तुम को नमस्कार करते हैं ।

हे अंतरयामिन् ! हम जो कुछ करते हैं केवल तुम को धोखा देने को, तुम जाना कहो इस हेतु हम दान करते हैं, तुम परोपकारी कहो इस हेतु हम परोपकार करते हैं तुम विद्यमान कहो इस हेतु हम विद्या पढ़ते हैं अतएव हे अंग्रेज ! तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुमको नमस्कार करते हैं ।

हम तुम्हारी इच्छानुसार डिस्पेंसरी करेंगे, तुम्हारे प्रीत्यर्थ स्कूल करेंगे तुम्हारी आज्ञा प्रमाण चंदा देंगे, तुम हम पर प्रसन्न हो, हम तुम को नमस्कार करते हैं ।

हे सौम्य ! हम वही करेंगे जो तुमको अभिमत है, हम बूट पतलून पहिरेंगे, नाक पर चश्मा देंगे, कांटा और चिमटे से टिबिल पर खायेंगे, तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुम को प्रणाम करते हैं ।

हे मिष्टभाषिण ! हम मातृभाषा त्याग करके तुम्हारी भाषा बोलेंगे, पैतृक धर्म छोड़ के ब्राह्म धर्मावलंब करेंगे, बाबू नाम छोड़ कर मिष्टर नाम लिखवावेंगे, तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुम को प्रणाम करते हैं ।

हे सुभोजक ! हम चावल छोड़ के पावरोटी खायेंगे, निषिद्धमांस बिना हमारा भोजन ही नहीं बनता, कुक्कर हमारा जलपान है, अतएव हे अंग्रेज ! तुम हम को चरण में रक्खो हम तुम को प्रणाम करते हैं ।

हम विधवा विवाह करेंगे, कुलीनों की जाति मारेंगे, जाति भेद उठा देंगे — क्योंकि ऐसा करने से तुम हमारी सुख्याति करोगे, अतएव हे अंग्रेज ! तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुम को नमस्कार करते हैं ।

हे सर्वद ! हम को धन दो, यश दो, हमारी सब वासना सिद्ध करो, हमको चाकरी दो, राजा करो, रायबहादुर करो, कौंसिल का मिम्बर करो हम तुमको प्रणाम करते हैं ।

यदि गड़ न हो तो हम को डिनर होम में निमंत्रण करो, बड़ी बड़ी कमेटियों का मिम्बर करो, सीनट का मिम्बर करो, जसटिस करो, आनरेरी मजिस्ट्रेट करो, हम तुमको प्रणाम करते हैं ।

हमारी स्पीच सुनो, हमारा एसे पढ़ो हम को वाह वाही दो, इतना ही होने से हम हिंदू समाज का अनेक निन्दा पर भी ध्यान न करेंगे, अतएव हम तुम्हीं को नमस्कार करते हैं ।

हे भगवान् — हम अकिञ्चन हैं और तुम्हारे द्वार पर खड़े रहेंगे, तुम हमको अपने चित्त में रक्खो हम तुमको डाली भेजेंगे, तुम अपने मन में थोड़ा सा स्थान मेरी ओर से भी दो, हे अंग्रेज ! हम तुमको कोटि कोटि श्लाघा प्रणाम करते हैं ।

तुम दशावतार धारी हो, तुम मत्स्य हो क्योंकि समुद्रचारी हो और पुस्तक छाप छाप के वेद का उद्धार करते हो, तुम कच्छ हो — क्योंकि मदिरा, हलाहल, वारांगना, धन्वन्तर और लक्ष्मी इत्यादि रत्न तुमने निकाले हैं पर वहां भी विष्णुत्व नहीं त्याग किया है अर्थात् लक्ष्मी उन रत्नों में से तुमने आप लिया है, तुम श्वेत वाराह हो क्योंकि गौर हो और पृथ्वी के पति हो, अतएव हे अवतारिन् ! हम तुमको नमस्कार करते हैं ।

तुम नृसिंह हो क्योंकि मनुष्य और सिंह दोनों पन तुम में है टैक्स तुम्हारा क्रोध है और परम विचित्र हो, तुम वामन हो क्योंकि तुम वामन कर्म में चतुर हो, तुम परशुराम हो क्योंकि पृथ्वी निक्षत्री कर दो है, अतएव हे लीलाकारिन् ! हम तुमको नमस्कार करते हैं ।

तुम राम हो क्योंकि अनेक सेतु बांधे हैं, तुम बलराम हो क्योंकि मद्यप्रिय और हलधारी हो, तुम बुद्ध हो क्योंकि वेद के विरुद्ध हो, और तुम कलिक हो क्योंकि शत्रु संहारकारी हो, अतएव हे दश विधि रूप धारिन् ! हम तुमको नमस्कार करते हैं ।

तुम मूर्तिमान् हो ! राज्यप्रबंध तुम्हारा अंग है, न्याय तुम्हारा शिर है, दूरदर्शिता तुम्हारा नेत्र है और कानून तुम्हारे केश हैं अतएव हे अंग्रेज ! हम तुमको नमस्कार करते हैं ।

कौंसिल तुम्हारा मुख है, मान तुम्हारी नाक है, देश पक्षपात तुम्हारी मोक्ष है और टैक्स तुम्हारे कराल दंष्ट्रा हैं अतएव हे अंगरेज ! हम तुमको प्रणाम करते हैं हमारी रक्षा करो ।

चुंगी और पुलिस तुम्हारी दोनों भुजा हैं, अमले तुम्हारे नख हैं, अन्धेर तुम्हारा पृष्ठ है और आमदनी तुम्हारा हृदय है अतएव हे अंग्रेज ! हम तुमको प्रणाम करते हैं ।

खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है, सेना तुम्हारा चरण है, खिताब तुम्हारा प्रसाद है, अतएव हे विरारूप अंग्रेज ! हम तुमको प्रणाम करते हैं ।

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानयागादिकाः क्रियाः ।

अंग्रेज स्तवपाठस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥१॥

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
 स्तारार्थी लभते स्तारम् मोक्षार्थी लभते गतिं ॥२॥
 एक कालं द्विकालं च त्रिकालं नित्यमुत्पठेत् ।
 भव पाशं विनिर्मुक्तः अंग्रेज लोकं संगच्छति ॥३॥

ईश्वर बड़ा विलक्षण है

भला इस संसार बनाने का क्या काम था ? व्यर्थ इतने उल्लू एक संग पिंजड़े में बन्द कर दिए किसी को दुःखी बनाया किसी को सुखी, किसी को राजा बनाया किसी को फकीर, इसी से मैं कहता हूँ कि ईश्वर बड़ा विलक्षण है ।

सब उसमें लय रहता, किसी को कुछ दुःख सुख का अनुभव न होता, वह केवल परम आनन्दमय अपने में रहता इसी से —

कोई इसको हाँ कहता है कोई नहीं, कोई मिला कोई अलग, कोई एक कोई अनेक तो उसको अपने माहात्म्य की दुर्दशा क्यों करानी थी इसी से —

सब सामर्थ्य मान उसको सुनकर भी लोग सर्वदा उसको नहीं मानते पर हाँ जब कुछ दुःख पड़ता है तब स्मरण करते हैं । जब लोगों का कुछ बनता है तो उसको धन्यवाद तो थोड़े लोग देते हैं पर जो कुछ काम बिगड़ता है तो गाली सभी देते हैं, पानी न बरसे तो, घर का कोई मर जाय तो, रोग फैले तो, हार जाय तो सब प्रकार से वह गाली सुनता है इसी से —

अनेक प्रकार के जीव, विचित्र स्वभाव, अलग अलग धर्म और रुचि, विचित्र-विचित्र रंग काम क्रोध, मद, ईर्ष्या, अभिमान दम्भ, पैशुन्य आमृत्य इत्यादि अनेक प्रकार के स्वभाव बनाकर लंबा चौड़ा गोरख धंधा का जाल फैला कर इस धनचक्कर में सब को घुमा दिया है इसी से —

एक विचारा सुख से अपना काल क्षेप करता है कुछ उसके काम में विघ्न डालकर व्यर्थ बिना बात बैठे बिठाये उसको रूला दिया, कोई दुःख में है उसको एक संग सुख दे दिया इसी से —

एक को घटाया एक को बढ़ाया, एक को बनाया एक को बिगाड़ा, राई को पर्वत किया पर्वत को राई, राजा को रंक किया रंक को राजा, भरी ढलकाया खाली भरा इसी से —

उदार और पंडित दरिद्र मूर्ख धनवान, और सुंदर रसिक को कुरूप कूढ़ स्त्री, कुरसिक को सुंदर वा रसिक स्त्री, सुस्वामी को कुसेवक कुसेवक को कुस्वामी इत्यादि संसार में कई बातें बे जोड़ हैं इसी से —

प्रत्यक्षलोग देखते हैं कि हमारे बाप दादा इत्यादि मर गए और नित्य लोग मरते जाते हैं तब भी लोग जीते हैं जानते हैं कि संसार का पट्टा मैंने लिखवा लिया है पहिले तो मैं मरूँगी नहीं और मरा भी तो सब मेरे साथ जायगा इसी से —

सच है मनुष्य यह कैसे सोचे, जो हम बैठे हैं, खाते पीते हैं, चैन करते हैं कभी सोचते नहीं, कि हमारी दशांतर भी होगी वही हम कैसे मरेंगे कदापि नहीं आता इसी से —

मजा है तमाशा है खेल है धूम है, दिल्लागी है मसखरापन है, लुचापन है, हंसी है, मूर्खता है, खिलौने हैं, बालक हैं, पट्टे हैं, नासमझ हैं, जड़ हैं, जीव हैं मोहित हैं, उल्लू के पट्टे हैं, सब परंतु उसके समझ में और उसके लोगों के समझ में भेद है इसी से —

उसके नाते परस्पर सब केवल सगे भाई बहन हैं पर लोग जाति कुजाति वर्ण आश्रम नीच ऊँच राजा प्रजा स्त्री पुत्र इत्यादि अनेक भेद समझते हैं इसी से —

यह उसी की विलक्षणपना है कि हिंदुओं को सब के पहिले उसने लक्ष्मी और सरस्वती दी और चिर काल तक उनको इस देश में स्थित किया परंतु अब वह हिंदू दास धर्म शिक्षित हो रहे हैं इसी से —

यह उसी का विलक्षणपन है जिस भूमि में उदयन, शूद्रक, विक्रम, भोज ऐसे राजा कालीदास, वाण से पंडित दे उसी भूमि में हमारे तुम्हारे से लोग हैं, यह उसी का विलक्षणपन है कि मुसलमानों ने हिंदुस्तान को बहुत दिन तक भोगा अब अंग्रेज भोगते हैं, मुसलमानों को अपने पक्षपात हैं अंग्रेजों को अपनी का, हिंदू दोनों की।

समझ में मूर्ख है इसी से —

यह उसी का विलक्षणपन है कि हिंदू निर्लज्ज हो गए हैं, ऐसे समय में जब कि सब आगे बढ़ा चाहते हैं ये चूकते हैं और पीछे ही रहे जाते हैं, विशेष सब संसार का आलस्य पश्चिमोत्तर देशवासियों में घुसा है और अपने को भूल रहे हैं क्षुद्रपना नहीं छूटता इसी से —

यह उसी का विलक्षणपन है कि हम लोग समाचार पत्र लिखते हैं और यह अभिमान करते हैं कि हमारे इन लेखों से हमारे भाइयों का कुछ उपकार हो, भला नक्कारखाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है, सब अपने रंग में उसकी माया से मस्त हैं उनको क्यों नहीं छोड़ते हैं क्यों नहीं विराग करते, संसार मिटै हमको क्या हम कौन जो कहें, पर यह नहीं समझते, हम अपने ही अभियान में चूर हैं यह भी सब उसी की माया है इसी से हम कहते हैं ईश्वर बड़ा विलक्षण है ।

मुशायरा १.

इसका काल अब तक अज्ञात है । इ ।

— सं.

चिड़ीमार का टेला । भाँत भाँत का जानवर बोला ॥

लखनऊ दिल्ली बनारस पूरब और दखिन के कई मुफ्तखोरे शायर एक जगह जमा हुए और लगे रंग विरंगी बोलियाँ बोलने मैने भी वहीं मैक्राफ़ोन^३ की कल लगा दी । जो कुछ उसमें आवाज बन्द हो गई आप लोग भी सुन लीजिए ।

सबके पहिले लाला साहब उठे और बन्दगी करके यों चोंच खोली ।

“गल्ला कटै लगा है कि भैया जो है सो है ॥

बनियन काँ ग़म भवा है कि भैया जो है सो है ॥

लाला की भैसी शीर निचोवत माँ शाशी जब ।

दूध ओहमाँ मिल गवा है कि भैया जो है सो है ॥

इक तो कहत^३ माँ मर मिटी खिलकत^४ जो हैगा सब ।

तेहपर टिकस बँधा है कि भैया जो है सो है ॥

अँगरेज से अफगान से वह जंग होत है ।

अखबार माँ लिखा है कि मेया जो है सो है ॥

कुप्पा भए हैं फूल के बनियाँ ब फर्ते माल^५ ।

पेट उनका दमकला है कि भैया जो है सो है ॥

अखबार नाही पंच से बढ़ कर भवा कोऊ ॥

सिक्का य जम गवा है कि भैया जो है सो है ॥”

इसके बाद लाला साहब ने रें रें कर के एक होली भी गाही दी ॥

कैसी होरी खिलाई । आग तन मन में लगाई ॥

पानी की बूंदी से पिंड प्रगट कियो सुंदर रूप बनाई ।

पेट अधम के कारन मोहन घर घर नाच नचाई ॥

१. कवि सम्मेलन २. एक यंत्र ३. अकाल ४. प्रजा ५. धन कमाकर ।

तबो नहीं हवस बुम्माई ।
 भूँजी माँग नहीं घर भीतर का पहिनी का खाई ।
 टिकस पिया मोरी लाज का रखल्यो ऐसे बनो न कसाई ।।
 तुम्हें कैसर की दोहाई ।
 कर जोरत हौं बिनती करत हँ छाँड़ौ टिकस कन्हाई ।
 आग लगी ऐसो फाग के ऊपर भूखन जान गँवाई ।।
 तुम्है कुछ लाज न आई ।'

लाला साहब के गाने के बाद ही ललाइन साहब से भी न रहा गया । कुछ जो मेम साहब की तालीम ने
 जुन्दी किया सो चट से कूद परदे के बाहर बेतकल्लुफ^१ तश्कीफ लाई और मटक मटक कर कहने लगीं ।

''लिखाय नाहीं देत्यो पढ़ाय नाहीं देत्यो ।
 सेयाँ फिरगिन बनाय नाहीं देत्यो ।।
 लहंगा दुपट्टा नीक न लागे ।
 मेमन का गौन मंगाय नाहीं देत्यो ।।
 वै गोरिन हम रंग सँवलिया ।
 रंग में रंग मिलाय नाहीं देत्यो ।।
 हम ना सोइवे कोठा अटरिया ।
 नदिया प बाँगला छवाय नाहीं देत्यो ।।
 सरसों का उबटन हम ना लगेवे ।
 साबुन से देहियाँ मलाय नाहीं देत्यो ।।
 डोली मियाना प कब लग डोलों ।
 घोड़वा प काठी कसाय नाहीं देत्यो ।।
 कब लग बैठीं काढ़े घुँघटा ।
 मेला तमासा जाये नहीं देत्यो ।।
 लीक पुरानी कब लग पीटों ।
 नई रीत रसम चलाय नाहीं देत्यो ।।
 गोबर से ना लीपव पोतव ।
 चूना से भितिया पोताय नाहीं देत्यो ।।
 खुसलिया छदम्मी ननकू हन काँ ।
 विलायत का काहें पठाय नाहीं देत्यो ।।
 धन दौलत के कारन बलमा ।
 समुंदर में बजरा छोड़ाय नाहीं देत्यो ।।
 बहुत दीनाँ लग छटिया तोड़िन ।
 हिंदून का काहें जगाय नाहीं देत्यो ।।
 दरस बिना जिय तरसत हमरा ।
 कैसर का काहें देखाय नाहीं देत्यो ।।
 हिज्रपिया तोरे पय्याँ पड़त हैं ।
 पंचा माँ एहकाँ छपाय नाहीं देत्यो ।।

ललाइन साहब की आजादी देखते ही साहो जी साहब मुतहय्यर^२ हो घबड़ा कर यों रेंके
 का भवा आवा है ए राम जमाना कैसा ।
 कैसी मेहरारू है ई हाय जनाना कैसा ।।

लोग क्रिस्तान भए जायैं बनयैं साहेब ।
 कैसा अब पुन धरम गंगा नहाना कैसा ॥
 हाल रोजगार गवा धूल में बेवहार मिला ।
 का सराफी रही हुँडी का चलना कैसा ॥
 धोय के लाज सरम पी गए सब लरकन लोग ।
 काहे के बाप मतारी रहे नाना कैसा ॥
 आँखी के आगे लगे पीये सभै मिल के शराब ॥
 हाय अब जात कहाँ पंच में जाना कैसा ।
 पगड़ी जामा गवा अब कोट औ पतलून रही ।
 जब चुराट है तो इलइची का है खाना कैसा ॥
 सब के उपर लगा टिकसकि उड़ा होस मोरा ।
 रौब के चहिए हँसी ठीठी ठठाना कैसा ॥

साहो जी की बनारसी सुनते ही लखनऊ के एक शोहदे साहब चार अंगुल की टोपी दिए एक कोने में अँकड़े हुए डेंटे थे बहुत ही परीशान हुए क्योंकि उनके समझ में यह कुछ भी न आया तो चिटख कर बोले "बनिए क्या जो है सो नाहक की बक बक लगाई है एक कनगुज्भा^१ ईधे^२ और एक नागइभिन्नी^३ ऊँधे^४ और चपतगाह^५ प एक गुदकी जमाऊंगा जो है सो कि बताना निकल पड़ेगा" और कहने लगे ।

क्यों वे सुनता नहीं शोहदे की बी तकरीर को आँ ।

कहीं नकभिन्नी की आऊँ न तेरे पीर को आँ ॥

लोगों ने बढ़ावा दिया कि हाँ साहब यह भी तो बड़े शायर हैं कुछ फर्माएँ । इतना इशारा पाना था कि लगे शोहदे जी गाने ।

सान सौकत तेरे आसिक की मेरी जान जे है ।
 होंगे सुलफा^६ इसी दरवाजे प अरमान जे है ॥
 कहीं सुहदे भी पिचकते हैं भला भाँपो के^७ ।
 आ तो डेंट जा अभी खम ठोंक के मैदान जे है ।
 गैर के कहने पै हजरत को न मुतलक हो खेयाल ।
 बज्जो एक एक को बहकाता है सैतान जे है ॥
 आके हम लोगों से माँगें न टिकस मोटे मल ।
 रख दूँ धुन के उन्हें बनियों प फकत सान जे है ॥
 आज मामूर है आलम के नमूदारों^८ में ।
 लुत्फ अल्लाह का सर पर तेरे ख़ाकान^९ जे है ॥

शुहदे की बातचीत सुन कर हमारे बनारस के भैया लोगों से कब रहा जाता है यह भी अपनी चर्ची बूकने ही लगे ।

चाँई चकार चोर और नटखट तोरे बदे ।
 होय गैल सारे रामधै चौपट तोरे बदे ॥
 घर से नगर से जात कुदुम^{१०} संगी भाई से ।
 कैसे भयल बिगार न खटपट तोरे बदे ॥

१. चपेटा, थप्पड़, २. इस और ३. नाक भन्ना देनेवाला थप्पड़ ४. उस और ५. चपत मारने का स्थान ६. जला देना ७. एक गाली ८. प्रकट लोगों ९. राजा ।

रोअल करीला पाटी प माथा पटक पटक ।
 लेईला जब कि रात के करवट तोरे बदे ॥
 राजा नवाब बाबू के ताड़ीला ए रजा ।
 होय जाई राज रामधै कोरट तोरे बदे ॥
 देके सारन के बहाली तू घरे चल आवः ।
 आज न आय सकः कौनो बखत कल आवः ॥
 आज खरचा भी दुकनदार से पौले बाड़ी ।
 चल के बैठक में बचा चाभ के मगदल आवः ॥
 नरक चिरकित और पनाह से कहः घुरपतरी ।
 नल के बंगले में तो हीऐं सभे बैठल आवः ॥
 उहे चल जाला सरवा देखः बतौले भाँई ।
 देख के कैसनै हमन के हौ खड़कल आवः ॥
 चाभ के पान महावीरी के टीका देके ।
 मल के देही में अतर साँझी बेरा चल आवः ॥
 सारे चल आवै ले सब खोज में हमरे तोहरे ।
 मोड़ वा गल्ली के आगे तनी भड़कल आवः ॥
 कौनो सरवा नहीं समभाय के कहतैं राजा ।
 तेग^१ से कौने बदे बाड़ः तूँ खड़कल आवः ॥
 भौ चूम लेइला केहू सुन्दर जे पाईला ।
 हम ऊ हई की होठे प तरवार खाईला ॥
 इन कै के अपने रोज तो रहिला चबाइला ।
 राजा के अपने खुरमा औ बुँदिया चभाइला ॥
 सौ सौ तरे कै मूड़े प जोखिम उठाईला ।
 पै राजा तोहें एक बेरी देख जाईला ॥
 पुतरी मतिन रखब तोहें पलकन के आड़ में ।
 तोहरे बदे हम आँखी में बैठक बनाईला ॥
 कहली कि काहे आँखी में सुरमा लगावलः ।
 हँस के कहे लै छूरी के पत्थर चटाईला ॥
 हम भारे वाला बाड़ी हजारन में रामधै ।
 पै राजा तोसे बेंत मतिन थरथराईला ॥
 राजा बाबू तोरें चेहरा प लुभायल बाड़ै ।
 सैकड़न सरवा तेरे आँखी क घायल बाड़ै ॥
 रात भर कँहरीला खटिया प परल हम संगो ।
 केहू राजा सौ कहे काहे कोहायल बाड़ै ॥
 बाघ की नाई महल्ला में त डौडत होइहै ।
 सब केहू कहला टहलू त परायल बाड़ै ॥
 आँख की पुतरी मतिन सामने नाचत होइहै ॥
 नींद जब आवैले तब देखीला आयल बाड़ै ॥

१. तेग अली, जिसकी यह रचना है ।

पाँचों पकवान नहीं नीक लागत वा रमचे ।

तिल के चेहरा क तोरे 'तेग' भुखायल बाड़ै ॥

बनारस के गुंडों की बोली सुनते ही बैसवारे के तिलंगा भाई को भी फुरफुरी आई और ढोलक बजाकर गाने ही लगे कि —

फुरै कहत हौं महिते जो जइहौं रिसाय के ।
भरुका म बिख भरा है मै मर जैहौं खाय के ॥
सारन क आज सार म भवैरी बताय के ।
लैहौं करेजा दूध बकेना पियाय के ॥
खरिहान माँ जो रात के रइहौ तुम आय के ।
देहां उकाँव गोहूँ क तुम कै उठाय के ॥
सूरज के कुछ न लीन न तुम हन गुनहगार ।
काहे क हम कै मारथौ घामे डहाय के ॥
बौरान रोज फिर्त हौं बारी बगैचा में ।
टोला म हमरें आएव न एक दिन भुलाय के ॥
धरहू प आय तेग क दरसन नहीं हौ द्यात ।
औरन तैं तो मिलत हौ रजा धाय धाय के ।

इन सब की रें रें के पीछे एक नये ढंग के शायर कब्रिस्तान के फकीर मरघट के बाम्हन एक नई अनोखी चाल की शायरी ले उठे । यह ढंगही सबसे निराला । रेखती फेखती सबसे अलग मरसिये का भी चचा । माथूक ही को कोसना ।

फिर उन्हें हैजा हुआ फिर सब बदन नीला हुआ ।
फिर न आने का मेरे घर में नया हीला हुआ ॥
कहरे हक? नाज़िल? हुआ पत्थर पड़े वह मर गए ।
अन्न का टुकड़ा उनहें तबस्म अबाबीला हुआ ॥
फिर उन्हें आया पसाना सब बदन ठंडा हुआ ।
मुफलिसी में फिलमसल आँटा अजी गीला हुआ ॥
नाम सुनते ही टिकस का आह करके मर गए ।
जानली कानून ने बस मौत का हीला हुआ ॥
आप शेखी पर चढ़े थे मसले अफगानाने बद ।
खूब शुद गदकों के मारे सब बदन ढीला हुआ ॥
कैसे हिन्दोस्ताँ अब जान इनकी वख़्श दो ।
देख लो रजि़श से सब इनका बदन पीला हुआ ॥

अफ़सोस कि अ. फालेन^३ इस मौके पर नहीं थे नहीं तो कई नए मोहावरे उनके हाथ लगते ।



पाँचवें (चूसा) पैगम्बर

यह 'पेनी रीडिंग क्लब' में पढ़ा गया लेख है, जो बाद में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' १५ दिसम्बर सन् १८७३ के अंक में छपा भी। — सं.

लोगो दोड़ो, मैं पाँचवाँ पैगम्बर हूँ, दाऊद, ईसा, मूसा, मुहम्मद ये चार हो चुके। मेरा नाम चूसा पैगम्बर है, मैं विधवा के गर्भ से जनमा हूँ और ईश्वर अर्थात् खुदा की ओर से तुम्हारे पास आया हूँ इससे मुझ पर ईमान लाओ नहीं तो ईश्वर के कोप में पड़ोगे।

मुझ को पृथ्वी पर आए बहुत दिन हुए पर अब तक भगवान का हुक्म नहीं था इससे मैं कुछ नहीं बोला, बोलना क्या बलिक जानवर बना घात लगाए फिरता था और मेरा नाम लोगों ने दूश, बंदर, लंका की सेना और म्लेच्छ रक्खा था पर अब मैं उन्हीं लोगों का गुरु हूँ क्योंकि ईश्वर की आज्ञा ऐसी है इससे लोगो ईमान लाओ।

जैसे मुहम्मदादि के अनेक नाम थे वैसे ही मेरे तीन नाम हैं, मुख्य चूसा पैगम्बर, दूसरा डबल^१ और तीसरा सुफैद और पूरा नाम मेरा श्रीमान् आनरेबल हज़रत डबल सफैद चूसा अलैहुस्सलाम^२ पैगम्बर आखिर कुन जमा^३ है।

मुझको कोहेचूर पर खुदा ने जलवा दिखाया और हुकुम दिया कि मैं पैगम्बर किया तुझ को तू लोगों को ईमान में ला, दाऊद ने बेला बजा के मुझे पाया तू हारमोनियम बजावैगा, मूसा ने मेरी खुदाई रौशनी से कोहेचूर जलाया तू आप अपनी रौशनी से जमाने को जला कर काला करैगा, ईसा मर के जिया था तू मरा हुआ जीता रहेगा, मुहम्मद ने चाँद को बीच में से काटा तू चाँद का कलंक मिटा अपना टीका बनावैगा।

(खुदा कहता है) देख मूर्तिपूजन अर्थात् बुतपरस्ती को जमाने से उठा देना क्योंकि मैंने हाफ़ सिविलाइज्ड किया दुनिया को पूरा तुझको; जो शराब सब पैगम्बरों पर हराम थी मैंने हलाल किया तेरे पर, बलिक तेरे मजहब की निशानी है जो तेरे आसमान पर आने के बाद रूप जमीन पर कायम रहैगी क्योंकि "यद्यपि तेरा राज्य सर्वदा न रहैगा पर यह मत यहाँ सर्वदा दृढ़ रहैगा"।

(खुदा कहता है) मैंने हलाल किया तुझपर गऊ, सूअर, मेंढ़क कुत्ता वगैरह सब जानवर जो कि हराम है; मैंने हलाल किया तुझपर, अपने मजहब के वास्ते भूठ बोलना और हुकुम दिया तुझ को औरतों की इज्जत करने और उनको अपने बराबर हिस्सा देने की बलिक यारों के संग जाने की; और सिवाय पब्लिक प्लेसों^४ के कोहेचूर पर जहाँ मैंने जलवा दिखाया तुझको तीन आरामगाह^५ फरिश्तों से बनवाकर तुझे बख्शी और तुझपर हलाल की जिन तीनों का नाम कुर्सी, भुर्सी, और दगली है।

(खुदा कहता है) देख, खबरदार, मुँह वगैरह किसी बदन को साफ न रखना नहीं तो तुझे शैतान बहका देंगे, लिबास सियाह हमेशा पहिरना और मेरी याद में सिर खुला रखना।

मैं खुदा के इन हुक्मों को मानकर तुम्हारे पास आया हूँ, मेरा कहा मानो और ईमान लाओ मैं खुदा का प्यारा पुत्र, माशूक, जोरू, नायब नहीं हूँ बलिक खुदा का दूसरा हूँ? वह इज्जत किसी पैगम्बर को नहीं मिली थी।

लोगो! मेरा कहा मानो खुदा मुझसे डरता है क्योंकि मैं प्रच्छन्न नास्तिक हूँ पर पैगम्बरिन के डर से आस्तिक हो गया हूँ इससे खुदा को हमेशा हमारी दलीलों से अपने उड़ जाने का डर रहता है तो जब खुदा मुझ

१. डूना २. प्रणाम है जिसको ३. संसार का अंत करनेवाला ४. उन साधारण के स्थानों
५. सुखस्थान

से डरता है तब उस के बन्दो तुम मुझ से बहुत ही डरो ।

मेरे प्यारे अंगरेजो ! तुम खोफ मत करो मैं तुम को सब गुनाहों से बरी कराऊंगा क्योंकि नाशनेलिटो बड़ी चीज है । पैगम्बरिन तुम्हारा रंग एक है इससे मैं तुम्हारे पापों को छिपा दूंगा ।

प्यारे मुसलमानो ! मैं कुछ तुमसे डरता हूँ क्योंकि तुम को मार डालने में देर नहीं लगती इससे मैं तुम्हारी बेहतरीके वास्ते अपनी धर्मपुस्तक में लिख जाऊंगा कि हमारे सक्सेसर^१ लोग तुम्हारी खातिर करें तुम्हारे न पढ़ने पर अफसोस करें और तुम्हारे वास्ते स्कूल और कालिज बनावें ।

मगर मेरे मेमने हिंदुओ ! तुमको मैं सब प्रकार नीच समझूँगा क्योंकि यह वह देश है जो ईश्वर के क्रोध रूपी अग्नि से जल रहा है और जलैगा और ईश्वर के कोप से तुम्हारा नाम जीते हुए, हाफसिबिलाइज्ड^२, रुड^३, काफिर, बुतपरस्त, अंधेरे में पड़े हुए, बारबर्स^४, बाजिबुल कल्ल^५ होगा ।

देखो हम भविष्य बानी कहते हैं तुम रोते और सिर टकराते भागते भागते फिरोगे, बुद्धि सीखते ही नहीं, बल नाश हो चुका है एक केवल धन बचा है सो भी सब निकल जायगा, यहाँ मंहंगी पड़ैगी, पानी न बरसेगा, हैजा, डैंगू वगैरह नए नए रोग फैलेंगे, परस्पर का द्वेष और निन्दा करना तुम्हारा स्वभाव हो जायगा, आलस छा जायगी, तब तुम उस के कोप अग्नि से जल के खाक के सिवा कुछ न बचोगे ।

पर प्यारो ! जो मुझ सच्चे पैगम्बर पर ईमान लावेगा वह छुड़ाया जायगा क्योंकि मैं खुशामद पसंद और बूस लेने वाला जाहिरा^६ नहीं हूँ मैं ईश्वर का सच्चा पैगम्बर और दुनिया का सच्चा बादशाह हूँ क्योंकि सूरज को खुदा ने रोशनी मेरे लिए इनायत की, चाँद में ठंडक सिर्फ मेरे लिए बख्शी गई और जमीन आसमान मेरे लिए पैदा किया बल्कि फरिश्ते भी मेरे ही लिए बनाए गए ।

ईमान लाओ मुझ पर, डाली चढ़ाओ मुझ को, जूता उतार के आओ मेरी मज्जर पाक^७ पर, पगड़ी पहन कर आओ मेरे मकबरे में, इनाम दो इन को और धक्का खाओ उन का जो मेरे मुजाविर^८ हैं क्योंकि वे मूजिब होंगे तुम्हारी नजात के, और जो कुछ मैं कहूँ उसे सुन कर हजूर, साहब बहुत ठीक फरमाते हैं, बजा इरशाद, वेशक ठीक है, सत्त बचन, जा आज्ञा जो आज्ञा, इस में क्या शक, ऐसा ही है, मेरे मालिक, मेरे बाबाजान, सब सच्च फरमाते हैं — कहो क्योंकि जो मैं कहता हूँ वह ईश्वर कहता है ; और मेरे अनादरो को सहो अगर मेरी दरगाह में तुम्हें गरदनियाँ दी जाय तो उस की कुछ लाज मत करो फिर धुसो क्योंकि मेरी दरगाह से निकलना दुनिया से निकल जाना है ।

देखो शराब पियो, विधवा विवाह करो, बालापाठशाला करो, आगे से लेने जाओ, बाल्यविवाह उठाओ, जाति भेद मिटाओ, कुलीन का कुल सत्यानाश में मिलाओ, होटल में खाओ, लव^९ करना सीखो, स्पीच दो, क्रिकेट खेलो, शादी में खर्च कम करो, मेम्बर बनो, मेम्बर बनो, दरबारदारी करो, पूजा पत्री करो, चुस्त चालाक बनो, हम नहीं जानते को हम नहीं जानता कहो, चक्करदार टोपी पहिनो वा सिर खुला रखो पर पौशाक सब तग रखो, नाच, बाल^{१०}, थियेटर अंटा गुड़गुड़ बंग प्रिवी सिवी घरों में जाओ क्योंकि ये काम मूजिब होंगे खुदा और मेरी खुशी के ।

शराब पियो, कुछ शंका मत करो, देखो मैं पीता हूँ क्योंकि यह खुदा का खून है जो उस ने मुझे पिलाया और मैंने दुनिया को और यह उसके दोनों बादशाहत की निशानी है जो बाद में मेरे बहुत दिनों तक कायम रहेगी क्योंकि उसने हुक्म दिया है कि औरों की तरह तू मकान बहुत पक्का न बनवा क्योंकि दुनिया खुद नापायदार^{११} है मगर मेरे खून के बोललों के टुकड़े जो कि (खुदा कहता है) मेरी हड्डियाँ हैं बहुत दिनों तक न गलेंगी और मेरे सच्चे राज की निशानी कायम रहेगी ।

देखो मेरा नाम चूसा है क्योंकि मैं सब का पाप रूपी पैसा चूस लेता हूँ क्योंकि खुदा ने फरमाया है कि मेरे बन्दे पैसों के बहकाने से गुनाह करते हैं अगर उन के पास पैसा न रहे तो खुद गुनाह न करें इस से तू सब से पहिले इन का पैसा चूस ले ।

मेरा दूसरा नाम डबल है क्योंकि डबल हिंदी में पैसे को कहते हैं और अंगरेजी में दूने को और पच्छिम

१. उत्तराधिकारी २. अर्द्ध सभ्य ३. उदंड ४. जंगली ५. मार डालने के योग्य ६. प्रकट में

७. पवित्र कब्र ८. पंडा ९. प्रेम १०. नाचघर ११. आधारहीन

में उस बरतन को जिस्से घी वा अनाज निकाला जाता है और मेरा तीसरा नाम सुफेद है क्योंकि मैं रौशनी बखशने वाला हूँ और दिल मेरा साफ चिट्ठा चमकीला चीनी की जात है और चमड़ा मेरा गौरा है और भी मैं सफेद करूंगा लोगों को अपने दीन की चाँदनी से इनलाइटेंड^१ करके ।

मेरे पहाड़ का नाम कोहचूर है क्योंकि मैं सब के पापी दिलों को और पापों को तथा प्रैजुडिसों^२ को लोगों के बल और धन को चूर करूँगा, और मेरी पहली आरामगाह कुर्सी है क्योंकि अब वहाँ की आबहवा साफ होकर बेवकूफी की शिकायत रफा हो गई और दूसरी भुरसी है जहा जलती आग पर मेरे से पैगम्बर के सिवा दूसरा नहीं बैठ सकता और तीसरी दगली है उस में चारों दगल^३ भरा है और बीच में मेरा सिंहासन है ।

जहाँ पर खुदा ने हलाल किया है शराब, बीफ, मटन, बग्गी, दगल, फसल, नैशानालिटी,^४ लालटैन, कोट, बूट, छड़ी, जेबीघड़ी, रेल, धुआकश, बिधवा, कुमारी, परकीया, चाबुक, चुरट, सड़ी मछली, सड़ी पनीर, सड़े अँचार, मुँह की बू, अधो भाग के केश, बिना पानी के मल धोना, रुमाल, मौसी, मामी, वूआ, चाची में अपनी बेटी पोतियों के, कज़िन फ़्रेड,^५ लेपालट की बहू, खानसामा खानसामिन, हुक्का, थुक्का, लुक्का, बुक्का और आजादी को और हराम किया बुतपरस्ती, बेईमानी, सच बोलना, इनसाफ करना, धोती पहरना, तिलक लगाना, कंठी पहरना, नहाना, दतुअन करना, स्वच्छन्द होना, उदार होना, निर्भय होना, कथा, पुरान जातिभेद, बाल्यविवाह, भाई वा मा वा पिता के साथ रहना, मूर्तिपूजन तथा आर्थोडाक्स^६ की सुहवत, सच्ची प्रीत, परस्पर उपकार, आपस का मेल बुरी बातें घातें लातें फातें छातें और प्रैजुडिस को ।

लोगो ! दौड़ो दौड़ो ईमान लाओ मुझ पर, देखो पीछे पछताओगे और हाथ मलते रह जाओगे मैं ईश्वर का प्यारा दूसरा और पाँचवाँ पैगम्बर केवल तुम्हारे उद्धार के वास्ते पृथ्वी पर आया हूँ ईमान लाओ मुझपर हुकुम मानो मेरा, दाहिना हाथ जो तुम लोगों के सामने उठा है खुदा का हाथ है इस को सिजदा करो, झुको, अदब करो, ईमान लाओ और इस शराब को खुदा का खून समझ कर पिओ पिओ पिओ ।



१. प्रकाशित २. अधविश्वासों ३. कपट ४. जातीयता ५. चचेरे भाई बहन मित्र ६. कट्टर

कानून ताज़ीरात शौहर

रचना काल सन् १८८३। नाट्य शैली में लिखा गया लेख।

— सं.

कानून ताज़ीरात शौहर

पहिला बाब^१

तमहीद^२

चूँकि मुनासिब मालूम हुआ कि एक कानून ऐसा इजरा किया जावे जिस से बाद शादी के जोड़^३: अपने शौहरों पर बखुबी हुकूमत कर सके और इस सबब से उन दोनों में निफ़ाक^४ न पैदा हो लेहज़ा कानून हस्बज़ैल^५ मुरौविज^६ किया गया।

दफ़ा^७: (१) इस कानून का नाम ताज़ीरात शौहर होगा, हिंदुस्तान में कोई औरत या मर्द जो शाली कर लेगा वह कानूनन इस का पाबन्द^८ समझा जायगा।

मुस्तसना^९

जो अह्ल^{११} यूरोप हिंदुस्तान में आकर शादी करेंगे वह इस कानून से मुस्तसना समझे जायेंगे।

दूसरा बाब

बयान असर^{१२} अलफाज^{१३}

दफ़ा: (२) किसी औरत के तहत हुकूमत^{१४} में कोई शै^{१५} जो कि जाहिरा^{१६} मनकूल: ^{१७} मगर बगैर हुकम औरत के गैरमनकूल: ^{१८} है उस से मुराद शौहर है।

१. पति दंड विधान २. प्रकरण ३. भूमिका ४. पत्नी ५. भगड़ा ६. निम्न के अनुसार ७. प्रचलित ८. धारा ९. आवद १०. मुक्त ११. निवासी १२. परिभाषा १३. शब्दों १४. शासन के अधीन १५. वस्तु १६. प्रकट में १७. चल १८. अचल

तमसीलात^१

अलिफ — सन्दूक वगैरह को शौहर नहीं कह सकते क्योंकि वह जयदाद^२ मनकूल : से है मगर अपने को खुद बखुद नहीं चला सकते हैं ।

बे-गाय, भैल, कुत्ता, गदहा वगैरह अगरचे खुद बखुद चल सकते हैं मगर वह अपने औरतों की हुकूमत से जायदाद गैरमनकूल : नहीं हो जाते, इस वास्ते लफज 'शौहर' उन पर असर^३ पड़ीर^३ न होगा ।

जीम — चूँकि ऐसी जायदाद जो कि ज़ाहिरा मनकूल : हो मगर औरत के हुकम से फौरन गैर मनकूल : हो जाय सिर्फ शादीकरदः^४ मर्द है, लेहाज़ा लफज शौहर से मुराद उन्हीं लोगों से होगी ।

दफः (३) शौहर की जायदार है, इस वास्ते उस पर उस को हर किस्म^५ का अख्तियार हासिल^६ है ।

तमसील

अपनी जायदाद को लोग जिस तरह बना बिगाड़ सकते हैं, उसी तरह जोरुओं को अपने शौहर पर ज़द व कोब^७ करना वा खाना न देना वगैरह का अख्तियार हासिल है ।

तीसरा बाब

सज़ा

दफः (४) इस कानून में 'मुजरिमो'^८ को हसबजैल सज़ा दी जायगी ।

अलिफ — कैद यानी शौहर को मकान की चार दीवारी से बाहर न जाने देना, यह कैद दोनों तरह की होगी, वा^९ मेहनत व विला^{१०} मेहनत — लफज मेहनत से यह मुराद है कि शौहर कैद भी रहे और गालियों की बौछार भी बरदाश्त करता रहे — लफज बिना मेहनत से मुराद है कि सिर्फ बाहर न जाने पाये ।

बे — अलग बिस्तर या दूसरे मकान में सोलाना ।

जीम — हमेशा के वास्ते गुलामी^{११} करानी ।

दाल — जुर्माना : यानी किसी किस्म का नक़द या ज़ेवर लेकर कसूर मुआफ़ करना ।

दफः (५) इस कानून में भी सज़ाय मौत सब से बड़ी सज़ा है मगर आदमी के जान को उन की बदन से अलग कर देना यहाँ सज़ाय मौत नहीं, यहाँ लफज सज़ाय मौत से यह मुराद है कि औरत रूठ कर अपने बाप या भाई के घर चली जाय और फिर न आये ।

दफः (६) सज़ाय हबसदवाम^{१२} बअबूर^{१३} दरियाशोर^{१४} से इस कानून में यह मुराद है कि औरत चंद अरसः के वास्ते शौहर को अपने घर में न आने दे या चंद अरसः के वास्ते खफा हो कर अपने बाप के घर में चली जावे ।

दफः (७) मुकद्दमात सर्सरी^{१५} के वास्ते हसबजैल छोटी छोटी सज़ायें मुकर्रर हैं —

अलिफ — न बोलना । बे — भौं चढ़ाना । जीम — रोना । दाल — बकना ।

चौथा बाब

मुस्तसनियात^{१६}

दफः (८) हर बशर^{१७} जो खुदा के यहा से जामय^{१८} औरत पहिना से उतारा गया है वह इस कानून से मुस्तसना है ।

दफः (९) कोई जुर्म मुन्दर्जे कानून हाजा अगर बहुकम औरत किया जाय तो इस कानून से मुस्तसना है ।

दफः (१०) कोई शख्स जो कि दरहकीकत फकीरी अख्तियार करे और दुनिया छोड़ दे वह बाद उस

१. उदाहरण २. संपत्ति ३. प्रभावान्वित ४. विवाहित ५. प्रकार ६. प्राप्त ७. मार-पीट ८. दोषियों

९. सहित १०. बिना ११. दासता १२. सदा का कारावास १३. पार कर १४. समुद्र १५. साधारण

१६. मुक्तगण १७. मनुष्य १८. वस्त्र

७. साधारण ८. मुक्तगण ९. मनुष्य १०. वस्त्र

लमहः^१ के जिसमें कि दुनिया छोड़ी है इस कानून से मुस्तसना है ।

दफः (११) कोई शख्स जो अपने जोरू को तिलाक दे, वह बाद उस लमहः के जब कि उसन अपना औरत को तिलाक दिया है उस लहजः^२ के पेशतर तक जबकि वह दूसरी औरत से सरोकार कायम करे इस कानून से मुस्तसना है ।

पाँचवाँ बाब

इमदाद^३ जुर्म

दफः (१२) कोई शौहर जो कि दूसरे शौहर को किसी औरत के बरखिलाफ बरगलाएगा^४ तो यह समझा जायगा कि उसने जुर्म करने में इमदाद की ।

दफः (१३) जिस वक्त कोई शौहर किसी दूसरे शौहर के जुर्म करने के वक्त मौजूद रहे और उसको उस जुर्म से न बाज रक्खे^५ तो वह भी जुर्म की इमदाद करनेवाला समझा जायगा ।

मुस्तसनियात

अलिफ — कोई औरत व मर्द जिन की शादी नहीं हुई है इमदाद करने के जुर्म से मुस्तसना हैं ।

बे — कोई शख्स जो बजोर बदमाशी या दौलत या और किसी सबब से जुर्म करदः शौहर की औरत के अखतियार के बाहर है वह इस कानून से मुस्तसना है ।

जीम — मगर बगैर शादी किए हुए भी वह लोग जो किसी औरत के तहत हकूमत में हैं मुस्तसना न समझे जायेंगे ।

तमसीलात

अलिफ — जैद का बकर नाम का एक भतीजा है जिस की शादी नहीं हुई है, जैद बकर के बहकाने से किसी मेलः में गया और वहाँ रात को देर तक रहा पस जैद मुजरिम हुआ, मगर बकर जो कि दूसरे घर में रहता है और औरत की हकूमत से बाहर है इमदाद जुर्मकी तुहमत उस पर नहीं हो सकती ।

बे — खालिद एक नब्बाब है जिस के सबब से अमरू की गुजर औकात^६ होती है, खालिद ने किसी शब मुहफिल में अमरू को अपने साथ रहने पर मजबूर किया मगर चूँकि वह दौलतमन्द है इस वास्ते इमदाद जुर्म के इत्तिहाम^७ से मुस्तसना है ।

जीम — जैद बकर का छोटा भाई है और अपने भावज की पकाई हुई रोटी खाता है । अगर जैद व बकर दोनों किसी शब को देर तक बाहर रहे तो जैद इमदाद जुर्म करने से सजायाब^८ हो सकता है ।

दफः (१४) इमदाद जुर्म करने वाले मुजरिमों की सजा उन की अदालत में होगी अगर वे असल मुजरिम की अदालत के हद अखतियार^९ के बाहर हैं ।

तमसील

अलिफ — जैद असल मुजरिम है और बकर उसका मददगार है मगर दोनों की शादी हो चुकी है तो जैद की सजा उसकी जोरू करेगी और बकर की सजा जैद की जोरू के बहकाने से बकर की जोरू करेगी ।

दफः (१५) जुर्म के इमदाद करने वालों की सजा ब नजर तम्बीह^{१०} सिर्फ ससरी तौर से काफी होगी

१. क्षण २. समय ३. सहायता ४. बहकावेगा ५. रोके ६. कालयापन ७. दोष ८. दंडित ९. अधिकार की सीमा १०. शासन की दृष्टि से

छटा बाब

जुर्म खिलाफ अदब अदालत

दफ : (१६) लफज़ अदालत से मुराद यहाँ सिर्फ शादी की हुई जोरु समझना चाहिए ।

दफ : (१७) जो शौहर अपनी जोरु से लड़ना चाहे या लड़े या गैर शख्स जो उससे लड़ता हो उसकी इमदाद करे तो उस को किसी किस्म की कैद की सजा दी जायगी लेकिन अगर अदालत की राय में यह जुर्म संगीन^१ मालूम हो तो हक्सदवाम वअवूर दरयायशोर की सज़ा देने का भी अदालत को अख्तियार है ।

दफ : (१८) जो शख्स अपने किसी बुजुर्ग या रिश्तदार या दोस्त या लड़कों को अपने तरफ करके जोरु पर हावी^२ होने का इराद : करे उस की कैद की सजा या अलग सोने की सजा या सिर्फ गाली वगैरह दी जायगी ।

दफ : (१९) जो शख्स सिवा अपनी औरत के और किसी औरत पर इश्क^३ जाहिर करेगा, तो वह अदालत का दुश्मन समझा जायगा ।

खुलास :

अपनी जोरु के सिवा किसी औरत पर मेहरबानी की नज़र करना ही जुर्म है, चाहे वह किसी सबब से क्यों न हों ।

तमसीलात

सुगरा जैद की जोरु है और कुबरा जैद की परोसिन है मगर कुबरा गरीब है इस वास्ते जैद कभी-२ कुबरा की कुछ मदद करता है पस जैद मुजरिम जुर्म मुन्दरज दफ : हाजा^४ का हुआ ।

अलिफ — अदालत को अख्तियार हासिल है कि वगैर कसूर किये हुए भी शौहर को इस जुर्म का मुजरिम करार दे, मुजरिम का यह सबूत देना कि वह मुर्तकिब^५ इस जुर्म का नहीं हुआ काबिल समाअत^६ न होगा ।

वे — अदालत के खौफ से झूठ मूठ भी एक मर्तब : जुर्म का इकरार कर लेना किसी शौहर को मुजरिम बनाने के वास्ते काफी होगा ।

जीम — वगैर जुर्म के इस कसूर में मुजरिम बनानेवाली अदालत यानी औरत सिनरसीद : या बदसूरत होनी चाहिये या जिसका शौहर सिनरसीद : या मकरुहसूरत^७ हो उस औरत को भी इस किस्म का जुर्म कायम^८ करने का अख्तियार हासिल है ।

दाल — अगर नौजवान या खूबसूरत औरत अख्तियारात मुन्दर्जे वाला हासिल करना चाहे तो उस को अपनी बदमिज़ाजी^९ कबूल करनी पड़ेगी ।

दफ : (२०) इस कानून में जितनी किस्म की सजायें लिखी हैं वह सब या उन में से चंद दफ : १९ के मुजरिम को दी जा सकती हैं ।

सातवाँ बाब

जुर्म खिलाफ फौज सर्कारी

दफ : (२१) घर के लड़के बरी^{११} फौज और मजदूरनियाँ बहरी^{१२} फौज समझी जायँगी ।

दफ : (२२) जो शख्स अपने किसी लड़की या अपने किसी लड़के को उन के माँ के बरखिलाफ^{१३} बोलने या मजदूरनियों को वगैर हुक्म बीबी के काम करने को कहैगा तो वह फौज के बरखिलाफ बलव : करने का मुजरिम करार दिया जायगा ।

दफ : (२३) जो मुजरिम जुर्म- मुन्दर्जे दफ : २२ का होगा उस को गाली बकने या फिड़की देने या रोने की सजा दी जायगी ।

१. भारी २. प्रभाव डालने ३. आसक्ति ४. पूर्वोक्त ५. करनेवाला ६. सुनने के योग्य । ७. प्रौढ़ या वृद्ध ८. घृणित रूपवाली ९. स्थापित १०. कर्कशापन ११. स्थल की १२. समुद्री १३. विरुद्ध ।

आठवाँ बाब

जुर्म बरखिलाफ अमन^१ शहर

दफ : (२४) जो शख्स अपने दोस्तों या रिश्त :दारों को जो जोरू की राय के बरखिलाफ हैं अकसर अपने मकान में जमा करेगा या ज्यादा :तर उनकी दावत करेगा वह इस बात का मुजरिम समझा जायगा कि उसने शहर के अमन में फरक^२ डाला ।

दफ : (२५) जो शख्स किसी रिश्त :दार या बुजुर्ग को घर में अपने जोरू के समझाने के वास्ते बुलावेगा वह भी शहर के अमन में फरक डालने का मुजरिम करार दिया जायगा ।

दफ : (२६) दफ : २४ वो २५ के मुजरिमों की सजा गाली वगैर : या जुर्म संगीन हो तो हब्सदवाम बअवूर दरियायशोर हो सकती है ।

नवाँ बाब

अदूलहुक्मी^३

दफ : (२७) जो अपनी जोरू का हुक्म न मानेगा वह अदूलहुक्मी का मुजरिम करार दिया जायगा ।

तमसीलात

अलिफ — जोरू ने हुक्म दिया कि कल शाम तक फलाना ज़ेवर या कपड़ा बन कर आवै मगर शौहर तंगदस्ती^४ के सबब से नहीं ला सकता इस वास्ते मुजरिम हुआ ।

वे — जोरू से एक दूसरी औरत से लड़ाई है और वह लड़ाई भी महज^५ वे बुनियाद^६ है । दोनों के शौहर आपस में करीबी^७ रिश्त :दार हैं, एक शौहर के यहाँ कोई शादी या गमी^८ का ज़रूरी काम पेश आया और दूसरे शौहर को लड़ाई के सबब से उसकी जोरू ने पहिले के यहाँ जाने से बाज रखना चाहा मगर शौहर शर्त खदमियत से बाज न रहा इस वास्ते वह मुजरिम जुर्म दफ : हाजा का हुआ ।

जीम — जोरू को शैतानपरस्ती^९ पर एतकाद^{१०} है मगर शौहर एक पढ़ा लिखा आदमी है । लड़कों की खेरियत के वास्ते जोरू ने शौहर को किसी पीर की नेयाज^{११} करने को कहा मगर शौहर ने ईमार को पाबन्दी से उसको नहीं माना लेहाज़ा वह मुजरिम दफ : हाजा का हुआ ।

दफ : (२८) मुजरिम अदूलहुक्मी को जुर्माना : या कैद या दोनों किस्म की सजायें दी जायेंगी ।

दसवाँ बाब

जुर्म दिलशिकनी^{१२}

दफ : (२९) जो शौहर अपनी जोरू की दिलशिकनी करेगा वह दिलशिकनी के जुर्म का मुजरिम समझा जायगा ।

तमसीलात

अलिफ — शौहर ने हीलतन^{१३} या सरीहतन^{१४} कोई हरकत^{१५} ऐसी नहीं की कि उस की जोरू की दिलशिनी हो मगर जोरू ने किसी हरकत से किसी दिलशिकनी मान ली तो वह भी दिलशिकनी होगी और उस में शौहर को कोई उज़्र^{१६} न होगा ।

१. शांति, २. भंग करना, ३. आज्ञा को अवहेलना, ४. घनाभाव, ५. केवल, ६. बेजड़ ७. पास की, ८. शोक, ९. भूत पूजना, १०. विश्वास, ११. मिन्नत या चढ़ावा, १२. हृदय पर चोट, १३. कपट से, १४. प्रकट में, १५. कार्य, १६. आपत्ति ।

बे — शौहर किसी मोहफिल में गया और वहाँ ब मजबूरी उस को रँडियों का तमाशा देखना पड़ा तो वह भी दिलशिकनी हुई ।

जीम — शौहर किसी ऐसी मजहबी जमायात^१ में शरीक^२ हुआ जिस में बहुत सी औरतें मौजूद थीं अगरचे^३ मजहब के पाबंद हो कर उस का उस जमायत में शरीक होना फर्ज^४ था मगर उस से दिलशिकनी हुई ।

दाल — अगर शौहर किसी ऐसी राहा से गुजरा कि जिसमें किसी सबब से कुछ औरतें जमा थीं तो वह मुर्तकिब जुर्म दिलशिकनी हुआ ।

हे — किसी रिश्त :दार के सबब से या किसी मुआमिल : के सबब से किसी शौहर ने दूसरे औरत से जहूरी गुफ्तगू^५ की तो मुजरिम दिलशिकनी हुआ ।

बाव — लड़कों को पढ़ने की ज्यादा ताकीद करना भी जुम दिलाशिकनी है ।

जे — रँगरेज पर कपड़ा जल्द न रंगलाने की, दरजी पर कुरती जल्द न सीने की ताकीद नहीं करना या उन कामों का जल्द अंजाम पाना^६ उसके अखतियार के बाहर है, तो वह शख्स मुजरिम दिल शिकनी का हुआ ।

हे — मेले या तमाशे वगैर : के ऐसे मौकों से जिस में इज्जत जाने का खौफ है, जोरू को बमिन्नत बाज रखना भी जुर्म दिलशिकनी है ।

दफ : (३०) मुजरिम दिलशिकनी को सर्सरी की कुल सजायें दी जा सकती हैं ।

ग्यारहवाँ बाब

हंगाम : ७

दफ : (३१) जोरू की किसी बात का जवाब देना जुर्म हंगाम : है ।

दफ : (३२) हंगाम : करनेवाले मुजरिम को रोने या बकने की सजा दी जायगी ।

कित : ८ ताराख तसनीफ^९ दर सन् १८८३ ई. ।

चोगरदीद ई जेराफतनाम : तसनीफ़ ।
के बाशद हर्फ हरफ़श दुर ओ गौहर ।।
जे १० हूये आबरू शुद ईसवी साल ।
निको कानून ताजीरात शौहर ।।



१. सभा, २. सम्मिलित, ३. यद्यपि, ४. कर्तव्य, ५. वार्तालाप ६. पूरा होना, ७. विद्रोह,
८. एक छंद, ९. रचना, १०. जब यह बुद्धिमानी की रचना प्रणीत हुई, जिसके हर एक अक्षर मोती से हैं ।
तब प्रतिष्ठा के रूप में इसवी साल हुआ 'निको कानून ताजीरात शौहर' । (१८८३)

(बलिया में व्याख्यान)

भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ? बलिया वाला भाषण

यह नवम्बर सन् १८८४ में बलिया के ददरी मेले में आर्य देशोपकारिणी सभा में दिया गया भाषण है। बाद में नवोदिता हरिश्चन्द्र चन्द्रिका जि. ११ नं. ३, ३ दिसम्बर सन् १८८४ में छपा।
— सं.

इस साल बलिया में ददरी का मेला बड़ी धूम-धाम से हुआ। श्री मुंशी बिहारीलाल, मुंशी गणपति राय, मुंशी चतुर्भुज सहाय सरीखे उद्योगी और उत्साही अफसरों के प्रबंध से इस वर्ष मेले में कई नई बातें ऐसी हुईं, जिनसे मेले की बड़ी शोभा हो गई। एक तो पहलवानों का दंगल हुआ, जिसमें देश देश के पहलवान आए थे और कुश्ती का करतब दिखाकर पारितोषिक पाया। दूसरे मेले के थोड़े दिन पूर्व ही से एक नाट्य समाज नियत हुआ था, जिसने मेले में कई उत्तम नाटकों का अभिनय किया। श्री भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र जी नाट्य समाज के प्रबंध-कर्ताओं के आग्रह और अनुराग से यहाँ विराजमान थे। उक्त बाबू साहेब कृत प्रसिद्ध नाटक "सत्यहरिश्चंद्र" और "नीलदेवी" बड़ी सुधराई से खेले गए। संपूर्ण दर्शक-मंडली मोहित हो गई और इन नाटकों के कवि बाबू हरिश्चंद्र जी की, जो संयोग से नाट्यशाला में इस समय विद्यमान थे बार बार सराहना करने लगी। बाबू साहेब का नाम सुनकर इस जिले के मैजिस्ट्रेट आदिक अनेक साहिबान और मेम लोग भी थियेटर में उपस्थित थे और "सत्य हरिश्चंद्र" "नीलदेवी" का अभिनय देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। वरंच रॉबर्ट्स साहेब मैजिस्ट्रेट ने कहा कि इनके नाटक कवि शिरोमणि शैक्सपियर से भी उत्तम हैं। बलिया की सज्जन-मंडली ने बाबू हरिश्चंद्र जी का योग्य आदर संमान किया। श्री बाबू जी साहेब के स्वागत समानार्थ यहाँ "बलिया इंस्टिट्यूट" की एक सभा की गई जिसमें इस नगर के सब प्रतिष्ठित अफसर और रईस एकत्र थे। इस जिले के मान्यवर, सर्व प्रिय कलेक्टर मि. डी. टी., रॉबर्ट्स साहेब बहादुर सभाध्यक्ष के उच्चासन में इस अवसर पर सुशोभित थे। श्री मुंशी बिहारीलाल जी सेक्रेटरी बलिया इंस्टिट्यूट ने संक्षिप्त आदर सूचक वाक्य द्वारा बाबू साहेब का सभा से परिचय कराया। यद्यपि इसकी कुछ ऐसी आवश्यकता न थी क्योंकि कौन ऐसा देश और नगर है जहाँ भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र जी का नाम नहीं प्रसिद्ध है? यहाँ एक पृथक् सभा "आर्यदेशोपकारिणी सभा" के नाम से स्थापित है। उसके सेक्रेटरी पं. इंदिरादत्त उपाध्याय जी बी. ए. ने एक छोटा ऐंड्रेस बाबू साहेब की प्रशंसा में किया। तदुपरांत बाबू हरिश्चंद्र जी ने एक बड़ा ललित, गंभीर और समयोपयोगी व्याख्यान इस विषय पर दिया कि "भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?" सभासदगण बाबू साहेब का लोकचर सुनकर गद्गद हो गये। व्याख्यान समाप्त होने पर श्रीमान् सभापति साहेब ने बाबू साहेब को धन्यवाद दिया और गुणानुवाद किया और सभा विसर्जित हुई। लोकचर तथा ऐंड्रेस पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे प्रकाशित होता है।

रविदत्त शुक्ल

सभासद महाशय,

आज का दिन धन्य है कि हम लोग इस बलिया में भारतभूषण भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र जी के स्वागत के निमित्त एकत्र हुए हैं। बलिया ऐसे सामान्य स्थान में एक ऐसे बड़े विद्वान और देश-शुभचिंतक का आगमन एक बड़े सौभाग्य और धन्यवाद का विषय है। ऐसे अवसर का उपस्थित होना बड़ा ही दुर्लभ है। मैं आर्य देशोपकारिणी सभा के ओर से, जो यहाँ बलिया इन्स्टिट्यूट से एक पृथक् ही सभा है, श्रीमान् बाबू साहब को अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने बलिया में इस अवसर पर विराजमान होकर हम लोग का मनोरथ सिद्ध किया और अपने मुख-चंद्र से अमृत की वर्षा करके हम बलिया-निवासी अनुरागियों का उत्साह बढ़ाया। श्रीकृपासागर जगदीश्वर से हम सब भारतवासियों की यही प्रार्थना है कि श्री बाबू साहेब सरीखे उत्साही गुणग्राही स्वदेशानुरागी उदार चरित सर्व प्रिय पुरुष को दीर्घायु करें और सदा इस दीन भारतवर्ष के हितसाधन में तत्पर रखें। आज हम श्रीमान् डी.टी. रॉबर्ट्स साहेब बहादुर को भी कोटि कोटि धन्यवाद देते हैं कि श्रीमान् ने इस कृपानुरागपूर्वक सभा में सुशोभित होकर हम लोगों को आदर दिया।

भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ?

आज बड़े ही आनंद का दिन है कि इस छोटे से नगर बलिया में हम इतने मनुष्यों को बड़े उत्साह से एक स्थान पर देखते हैं। इस अभाग आलसी देश में जो कुछ हो जाय वही बहुत कुछ है। बनारस ऐसे ऐसे बड़े नगरों में जब कुछ नहीं होता तो यह हम क्यों न कहेंगे कि बलिया में जो कुछ हमने देखा वह बहुत ही प्रशंसा के योग्य है। इस उत्साह का मूल कारण जो हमने खोजा तो प्रगट हो गया कि इस देश के भाग्य से आजकल यहाँ सारा समाज ही ऐसा एकत्र है। जहाँ राबर्ट्स साहब बहादुर ऐसे कलेक्टर हों वहाँ क्यों न ऐसा समाज हो। जिस देश और काल में ईश्वर ने अकबर को उत्पन्न किया था उसी में अबुलफजल, बीरबल, टोडरमल को भी उत्पन्न किया। यहाँ राबर्ट्स साहब अकबर हैं तो मुंशी चतुर्भुज सहाय, मुंशी बिहारीलाल साहब आदि अबुलफजल और टोडरमल हैं। हमारे हिंदुस्तानी लोग तो रेल की गाड़ी हैं। यद्यपि फर्स्ट क्लास, सेकेंड क्लास आदि गाड़ी बहुत अच्छी-अच्छी और बड़े बड़े महसूल की इस देन में लगी हैं पर बिना इंजिन ये सब नहीं चल सकतीं, वैसे ही हिंदुस्तानी लोगों को कोई चलानेवाला हो तो ये क्या नहीं कर सकते। इनसे इतना कह दीजिए "का चुप साधि रहा बलवाना", फिर देखिए हनुमानजी को अपना बल कैसा याद आ जाता है। सो बल कौन दिलावे। या हिंदुस्तानी राजे महाराजे नवाब रईस या हाकिम। राजे-महाराजों को अपनी पूजा भोजन भूठी गप से छुट्टी नहीं। हाकिमों को कूछ तो सर्कारी काम घेरे रहता है, कुछ बॉल, घुड़दौड़, थिएटर, अखबार में समय गया। कुछ बचा भी तो उनको क्या गरज है कि हम गरीब गंदे काले आदमियों से मिलकर अपना अनमोल समय खोवें। बस वही मसल हुई — 'तुमें गैरों से कब फुरसत हम अपने गम से कब खाली। चलो बस हो चुका मिलना न हम खाली न तुम खाली।' तीन मेंदक एक के ऊपर एक बैठे थे। ऊपरवाले ने कहा 'जौक शौक', बीचवाला बोला 'गुम सुम', सब के नीचे वाला पुकारा 'गए हम'। सो हिंदुस्तान की साधारण प्रजा की दशा यही है, गए हम।

पहले भी जब आर्य लोग हिंदुस्तान में आकर बसे थे, राजा और ब्राह्मणों ही के जिम्मे यह काम था कि देश में नाना प्रकार की विद्या और नीति फैलावें और अब भी ये लोग चाहें तो हिंदुस्तान प्रतिदिन कौन कहे प्रतिष्ठित बड़े। पर इन्हीं लोगों को सारे संसार के निकम्मेपन ने घेर रखा है। 'बोद्धो मत्सरग्रस्ता प्रभवः स्मरदूषिताः।' हम नहीं समझते कि इनको लाज भी क्यों नहीं आती कि उस समय में जब इनके पुरुषों के पास कोई भी सामान नहीं था तब उन लोगों ने जंगल में पत्ते और मिट्टी की कुटियों में बैठ करके बाँस की नलियों से जो तारा ग्रह आदि वेध करके उनकी गति लिखी है वह ऐसी ठीक है कि सोलह लाख रुपए के लागत

की विलायत में जो दूरबीनें बनी हैं उनसे उन ग्रहों को बेध करने में भी वही गति ठीक आती है और जब आज इस काल में हम लोगों को अंगरेजी विद्या की और जगत् की उन्नति की कृपा से लाखों पुस्तकें और हजारों यंत्र तैयार हैं तब हम लोग निरी चुंगी की कतवार फेंकने की गाड़ी बन रहे हैं। यह समय ऐसा है कि आदि तुरकी ताजी सब सरपट दौड़े जाते हैं। सबके जी में यही है पाला हमीं पहले छू लें। उस समय हिंदू काठियावाड़ी खाली खड़े खड़े टाप से मिट्टी खोदते हैं। इनको औरों को जाने दीजिए, जापानी टट्टुओं को हाँफते हुए दौड़ते देखकर भी लाज नहीं आती। यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जायगा फिर कोटि उपाय किए भी आगे न बढ़ सकेगा। इस लूट में, इस बरसात में भी जिसके सिर पर कमबख्ती का छाता और आँखों में मूखर्ता की पट्टी बंधे रहे उन पर ईश्वर का कोप ही कहना चाहिए।

मुझको मेरे मित्रों ने कहा था कि तुम इस विषय पर आज कुछ कहो कि हिन्दुस्तान की कैसे उन्नति हो सकती है। भला इस विषय पर मैं और क्या कहूँ। भागवत में एक श्लोक है "नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारं। मयाऽनुकूलेन नमः स्वतेरितुं पुमान् भवायि न तरेत् स आत्महा।" भगवान् कहते हैं कि पहले तो मनुष्य जनन ही बड़ा दुर्लभ है, सो मिला और उसपर गुरु की कृपा और मेरी अनुकूलता। इतना सामान पाकर भी जो मनुष्य इस संसार-सागर के पार न जाय उसको आत्म हत्यारा कहना चाहिए। वही दशा इस समय हिन्दुस्तान की है। अंगरेजों के राज्य में सब प्रकार का सामान पाकर अवसर पाकर भी हम लोग जो इस समय पर उन्नति न करें तो हमारा केवल अभाग्य और परमेश्वर का कोप ही है। सास के अनुमोदन से एकांत रात में सुने रंगमहल में जाकर भी बहुत दिन से जिस प्रान से प्यार परदेसी पति से मिलकर छाती ठंडी करने की इच्छा थी, उसका लाज से मुँह भी न देखे और बोले भी न, तो उसका अभाग्य ही है। वह तो कल फिर परदेश चला जायगा। वैसे ही अंगरेजों के राज्य में भी हम कूँए के मेंढक, काठ के उल्लू, पिंजड़े के गंगाराम ही रहें तो हमारी कमबख्त कमबख्ती फिर कमबख्ती है।

बहुत लोग यह कहेंगे कि हमको पेट के धंधे के मारे छुट्टी ही नहीं रहती बाबा, हम क्या उन्नति करें ? तुम्हारा पेट भरा है तुमको दून की सुफुत्ती है। यह कहना उनकी बहुत भूल है। इंग्लैंड का पेट भी कभी यों ही खाली था। उसने एक हाथ से अपना पेट भरा, दूसरे हाथ से उन्नति की राह के काँटों को साफ किया। क्या इंग्लैंड में किसान, खेतवाले, गाड़ीवान, मजदूर, कोचवान आदि नहीं हैं ? किसी देश में भी सभी पेट भरे हुए नहीं होते। किंतु वे लोग जहाँ खेत जोतते बोते हैं वहीं उसके साथ यह भी सोचते हैं कि ऐसी और कौन नई कल या मसाला बनावें जिसमें इस खेती में आगे से दूना अन्न उपजे। विलायत में गाड़ी के कोचवान भी अखबार पढ़ते हैं। जब मालिक उतरकर किसी दोस्त के यहाँ गया उसी समय कोचवान ने गद्दी के नीचे से अखबार निकाला। यहाँ उतनी देर कोचवान हुक्का पीएगा या गप्प करेगा। सो गप्प भी निकम्मी। वहाँ के लोग गप्प ही में देश के प्रबंध छौंटते हैं। सिद्धांत यह कि वहाँ के लोगों का यह सिद्धांत है कि एक छिन भी व्यर्थ न जाय। उसके बदले यहाँ के लोगों को निकम्मापन ही उतना ही बड़ा अमीर समझा जाता है। आलस यहाँ इतनी बढ़ गई कि मलूकावास ने दोहा ही बना डाला "अजगर करे न चाकरी, पंखी करे न काम। दास मलूका कहि गए, सबके दाता राम।" चारों ओर आँख उठाकर देखिए तो बिना काम करनेवालों की ही चारों ओर बढ़ती है। रोजगार कहीं कुछ भी नहीं है। अमीरों की मुसाहबी, दलाली या अमीरों के नौजवान लड़कों को खराब करना या किसी की जमा मार लेना, इनके सिवा बतलाइए और कौन रोजगार है जिससे कुछ रुपया मिले। चारों ओर दरिद्रता की आग लगी हुई है। किसी ने बहुत ठीक कहा है कि दरिद्र कुटुंब इसी तरह अपनी इज्जत को बचाता फिरता है जैसे लाजवती कुल की बहू फटे कपड़ों में अपने अंग को छिपाए जाती है। वही दशा हिन्दुस्तान की है।

मदुमशुमारी का रिपोर्ट देखने से स्पष्ट होता है कि मनुष्य दिन दिन यहाँ बढ़त जाते हैं और रुपया दिन दिन कमती होता जाता है। तो अब बिना ऐसा उपाय किए काम नहीं चलेगा कि रुपया भी बढ़े, और वह रुपया बिना बुद्धि न बढ़ेगा। भाइयों, राजा महाराजों का मुँह मत देखो, मत यह आशा रखो कि पंडितजी कथा में कोई ऐसा उपाय भी बतलावेंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े। तुम आप ही कमर कसो, आलस छोड़ो। कबतक अपने को जंगली हूस मूख बोदे डरपोकने पुकरवाओगे। दौड़ो इस चोड़बौड़ में जो पीछे पड़े तो फिर कहीं ठिकाना नहीं है। "फिर कब राम जनकपुर ऐहें"। अबकी जो पीछे पड़े तो फिर रसातल ही पहुँचेंगे।

जब पृथ्वीराज को कैद करके गोर ले गए तो शहाबुद्दीन के भाई गियासुद्दीन से किसी ने कहा कि वह शब्दमेदी बाण बहुत अच्छा मारता है। एक दिन समा नियत हुई और सात लोहे के तावे बाण से फोड़ने को रखे गए। पृथ्वीराज को लोगों ने पहले ही से अंधा कर दिया था। संकेत यह हुआ कि जब गियासुद्दीन हूँ करे तब वह तावों पर बाण मारे, चंद कवि भी उसके साथ कैदी था। यह सामान देखकर उसने यह दोहा पढ़ा। "अबकी चढ़ी कमान, को जानै फिर कब चढ़े। जिनि चुक्के चौहान, इक्के मारय इक्क सर।।" उसका संकेत समझकर जब गियासुद्दीन ने हूँ किया तो पृथ्वीराज ने उसी को बाण से मार दिया। वहीं बात अब है। अबकी चढ़ी इस समय में सरकार का राज्य पाकर और उन्नति का इतना समय भी तुम लोग अपने को न सुधारो तो तुम्हीं रहो। और वह सुधारना भी ऐसा होना चाहिए कि सब बात में उन्नति हो। धर्म में, घर के काम में, बाहर के काम में, रोजगार में, शिष्टाचार में, चाल चलन में, शरीर के बल में, मन के बल में, समाज में, बालक में, युवा में, वृद्ध में, स्त्री में, पुरुष में, अमीर में, गरीब में, भारतवर्ष की सब अवस्था, सब जाति सब देश में उन्नति करो। सब ऐसी बातों को छोड़ो तो तुम्हारे इस पथ के कंटक हों, चाहे तुम्हें लोग निकम्मा कहें या नंगा कहें, कृस्तान कहें या भ्रष्ट कहें। तुम केवल अपने देश की दीनदशा को देखो और उनकी बात मत सुनो।

अपमान पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः।

स्वकार्यं साधयेत् धीमान् कार्यध्वंसो हि मूर्खता॥

जो लोग अपने को देशहिंसे लगाते हों वह अपने सुख को होम करके, अपने धन और मान का बलिदान करके कमर कस के उठो। देखादेखी थोड़े दिन में सब हो जायगा। अपनी खराबियों के मूल कारणों को खोजो। कोई धर्म की आड़ में, कोई देश की चाल की आड़ में, कोई सुख की आड़ में छिपे हैं। उन चारों को वहाँ वहाँ से पकड़ पकड़ कर लाओ। उनको बाँध बाँध कर कैद करो। हम इससे बढ़कर क्या कहें कि जैसे तुम्हारे घर में कोई पुरुष व्यभिचार करने आवे तो जिस क्रोध से उसको पकड़कर मारोगे और जहाँ तक तुम्हारे में शक्ति होगी उसका सत्यानाश करोगे। उसी तरह इस समय जो जो बातें तुम्हारे उन्नति पथ में काँटा हों उनकी जड़ खोद कर फेंक दो। कुछ मत डरो। जब तक सौ दो सौ मनुष्य बदनाम न होंगे, जात से बाहर न निकाले जायेंगे, दरिद्र न हो जायेंगे, कैद न होंगे वरंच जान से न मारे जायेंगे तब तक कोई देश भी न सुधरेगा।

अब यह प्रश्न होगा कि भाई हम तो जानते ही नहीं कि उन्नति और सुधारना किस चिड़िया का नाम है। किसको अच्छा समझें? क्या लें, क्या छोड़ें? तो कुछ बातें जो इस शीघ्रता में मेरे ध्यान में आती हैं उनको मैं कहता हूँ, सुनो—

सब उन्नतियों का मूल धर्म है। इससे सबके पहले धर्म की ही उन्नति करनी उचित है। देखो, अंगरेजों की धर्मनीति और राजनीति परस्पर मिली है, इससे उनकी दिन दिन कैसी उन्नति है। उनको जाने दो, अपने ही यहाँ देखो! तुम्हारे यहाँ धर्म की आड़ में नाना प्रकार की नीति, समाज-गठन, वैद्यक आदि भरे हुए हैं। दो एक मिसाल सुनो। यही तुम्हारा बलिया का मेला और यहाँ स्नान क्यों बनाया गया है? जिसमें जो लोग कमी आपस में नहीं मिलते, दस दस पाँच-पाँच कोस से वे लोग साल में एक जगह एकत्र होकर आपस में मिलें। एक दूसरे का दुःख सुख जानें। गृहस्थी के काम की वह चीजें जो गाँव में नहीं मिलती, यहाँ से ले जायें। एकादशी का व्रत क्यों रखा है? जिसमें महीने में दो एक उपवास से शरीर शुद्ध हो जाय। गंगा जी नहाने जाते हो तो पहिले पानी सिर पर चढ़ा कर तब पैर डालने का विधान क्यों है? जिसमें तलुए से गर्मी सिर में चढ़कर विकार न उत्पन्न करे। दीवाली इसी हेतु है कि इसी बहाने साल भर में एक बेर तो सफाई हो जाय। यही तिहवार ही तुम्हारी मानो म्युनिसिपालिटी हैं। ऐसे ही सब पर्व सब तीर्थ व्रत आदि में कोई हिकमत है। उन लोगों ने धर्मनीति और समाजनीति को दूध पानी की भाँति मिला दिया है। खराबी जो बीच में भई है वह यह है कि उन लोगों ने ये धर्म क्यों मानन लिखे थे, इसका लोगों ने मतलब नहीं समझा और इन बातों को वास्तविक धर्म मान लिया। भाइयो, वास्तविक धर्म तो केवल परमेश्वर के चरणकमल का भजन है। ये सब तो समाजधर्म हैं जो देशकाल के अनुसार शोषे और बदले जा सकते हैं। दूसरी खराबी यह हुई कि उन्हीं महात्मा बुद्धिमान ऋषियों के वंश के लोगों ने अपने बाप दाबों का मतलब न समझकर बहुत से नए नए धर्म

बनाकर शास्त्र में धर दिए । बस सभी तिथि ब्रत और सभी स्थान तीर्थ हो गए । सो इन बातों को अब एक बेर आँख खोलकर देख और समझ लीजिए कि फलानी बात उन बुद्धिमान ऋषियों ने क्यों बनाई और उनमें देश और काल के जो अनुकूल और उपकारी हो उसको ग्रहण कीजिए बहुत सी बातें जो समाज-विरुद्ध मानी हैं किंतु धर्मशास्त्रों में जिनका विधान है उनको चलाइए । जैसे जहाज का सफर, विधवा विवाह आदि । लड़कों को छोटेपन ही में ब्याह करके उनका बल, वीर्य, आयुष्य सब मत घटाइए । आप उनके माँ बाप हैं या उनके शत्रु हैं । वीर्य उनके शरीर में पुष्ट होने दीजिए, विद्या कुछ पढ़ लेने दीजिए, नोन, तेल, लकड़ी की फिक्र करने की बुद्धि सीख लेने दीजिए, तब उनका पैर काठ में डालिए । कुलीन प्रथा, बहुविवाह को दूर कीजिए । लड़कियों को भी पढ़ाइए, किंतु उस चाल से नहीं जैसे आजकल पढ़ाई जाती है जिससे उपकार के बदले बुराई होती है । ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुलधर्म सीखें, पति की भक्ति करें, और लड़कों को सहज में शिक्षा दें । वैष्णव शक्ति इत्यादि नाना प्रकार के मत के लोग आपस का वैर छोड़ दें । यह समय इन फगड़ों का नहीं । हिंदू, जैन, मुसलमान सब आपस में मिलिए । जाति में कोई चाहे ऊँच हो चाहे नीचा हो सबका आदर कीजिए, जो जिस योग्य हो उसको वैसा मानिए । छोटी जाति के लोगों को तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए । सब लोग आपस में मिलिए ।

मुसलमान भाइयों को भी उचित है कि इस हिंदूस्तान में बस कर वे लोग हिंदुओं को नीचा समझना छोड़ दें । ठीक भाइयों की भाँति हिंदुओं से बरताव करें । ऐसी बात, जो हिंदुओं का जी दुखाने वाला हो, न करो । घर में आग लगे तब जिठानी-चौरानी को आपस का डाह छोड़कर एक साथ वह आग बुझानी चाहिए । जो बात हिंदुओं को नहीं मयस्सर है वह धर्म के प्रभाव से मुसलमानों को सहज प्राप्त है । उनमें जाति नहीं, खाने पीने में चौका चूल्हा नहीं, विलायत जाने में रोक टोक नहीं । फिर भी बड़े ही सोच की बात है, मुसलमानों ने अभी तक अपनी दशा कुछ नहीं सुधारी । अभी तक बहुतों को यही ज्ञान है कि दिल्ली लखनऊ की बादशाहत कायम है । यारो ! वे दिन गए । अब आलस हठधर्मी यह सब छोड़ो । चलो, हिंदुओं के साथ तुम भी दौड़ो, एकाएक दो होंगे । पुरानी बातें दूर करो । मीरहसन की मसनवी और इंदरसभा पढ़कर छोटेपन ही से लड़कों को सत्यानाश मत करो । होश सम्हाला नहीं कि पट्टी पार ली, चुस्त कपड़ा पहना और गजल गुनगुनाए । "शौक तिफली से मुझे गुल की जो दीवार का था । न किया हमने गुलिस्ताँ का सबक याद कभी" । भला सोचो कि इस हालत में बड़े होने पर वे लड़के क्यों न बिगड़ेंगे । अपने लड़कों को ऐसी किताबें छूने भी मत दो । अच्छी से अच्छी उनको तालीम दो । पिनशिन और वजीफा या नौकरी का भरोसा छोड़ो । लड़कों को रोजगार सिखलाओ । विलायत भेजो । छोटेपन से मिहनत करने की आदत दिलाओ । सौ सौ महलों के लाड़ प्यार दुनिया से बेखबर रहने की राह मत दिखलाओ ।

भाई हिंदुओं ! तुम भी मतमातर का आग्रह छोड़ो । आपस में प्रेम बढ़ाओ । इस महामंत्र का जप करो । जो हिंदुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग किसी जाति का क्यों न हो, वह हिंदू । हिंदू की सहायता करो । बंगाली, मरठ, पंजाबी, मदरासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मो, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ो । कारीगरी जिसमें तुम्हारे यहाँ बढ़े, तुम्हारा रुपया तुम्हारे ही देश में रहे वह करो । देखो, जैसे हजार धारा होकर गंगा समुद्र में मिली हैं, वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इंग्लैंड फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका को जाती है । दीआसलाई ऐसे तुच्छ वस्तु भी वहीं से आती हैं । जरा अपने ही कों देखें । तुम जिस मारकीन की धोती पहने हो वह अमेरिका की बनी है । जिस लकिलाट का तुम्हारा अंगा है वह इंग्लैंड का है । फ्रांसीस की बनी कंधा से तुम सिर भारते हो और वह जर्मनी की बनी चरबी की बत्ती तुम्हारे सामने बल रही है । यह तो वही मसल हुई कि एक बेफिकरे मैंगनी का कपड़ा पहिनकर किसी महफिल में गए । कपड़े की पहिचान कर एक ने कहा, 'अजी यह अंगा फलाने का है' । दूसरा बोला, 'अजी टोपी भी फलाने की है ।' तो उन्होंने हँसकर जवाब दिया कि, 'घर की तो मूँछें ही मूँछें हैं ।' हाय अफसोस, तुम ऐसे हो गए कि अपने निज के काम की वस्तु भी नहीं बना सकते । भाइयो, अब तो नींद से चौंको, अपने देश की सब प्रकार उन्नति करो । जिसमें तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताब पढ़ें, वैसे ही खेल खेलो, वैसी ही बातचीत करो । परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो । अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो ।

संगीत सार

हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खण्ड-२ संख्या ८-११ सितम्बर सन् १८७५ में छपा । बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित । — सं.

भारतवर्ष की सब विद्याओं के साथ यथाक्रम संगीत का भी लोप हो गया । यह गानशास्त्र हमारे यहाँ इतना आदरणीय है कि सामवेद के मंत्र मात्र गाए जाते हैं । हमारे यहाँ वरंच यह कहावत प्रसिद्ध है 'प्रथम नाद तब वेद' । अब भारतवर्ष का संपूर्ण संगीत केवल कजली ठुमरी पर आ रहा है । तथापि प्राचीन काल में यह शास्त्र कितना गंभीर था यह हम इस लेख में दिखलावेंगे ।

गाना, बजाना, बताना और नाचना इस के समुच्चय को संगीत कहते हैं । प्राचीन काल में भरत, हनुमत्, कलनाथ और सोमेश्वर यह चार मत संगीत के थे । कोई कोई शारदा, शिव, हनुमत् और भरत यह चार मत कहते हैं । सात अध्यायों में यह शास्त्र बँटा है । जैसे स्वर, राग, ताल, नृत्य, भाव, कोक और हस्त । सम्यक् प्रकार से जो गाया जाय उसे संगीत कहते हैं, धातु और मातु संयुक्त सब गीत होते हैं । नादात्मक धातु और अक्षरात्मक मातु कहलाते हैं । वह गीत यंत्र और गात्र विभाग से दो तरह के हैं । वीना बेनु इत्यादि से जो गाया जाय वह यंत्र और कंठ से जो गाया जाय वह गात्र गीत है । गीत निबद्ध और अनिबद्ध दो प्रकार के होते हैं, अक्षरों के नियम और गमक के नियम बिना अनिबद्ध और ताल मान गमक अक्षर रसादि के नियम सहित निबद्ध । शुद्ध, शालंग और संकीर्ण के भेद से यह गीत तीन प्रकार के हैं परंतु यह भेद प्रबंध हीके होते हैं । शुद्ध के एलादिक बीस भेद हैं, यथा एला, सोध्यभवा, पाट करण, पंच, तालेश्वर, कैरात, स्मर, चक्रपाल, विजया, गद्य, त्रिमगी, टेंकौ, वर्णपुट, सर्गपुट, द्विपदिका, मुक्तावली, माहका, लंब, दंडक और वर्त्तनी । इन गीतों के छ अंग हैं यथा पद, तान, बिरूद, ताल, पाट और स्वर । ध्रुवक, मंडक प्रतिमंडक, निःसारक, वासक, प्रतिलाम, एकतालिका, यति और भूमरी ये शालंग के भेद हैं । चैत्र, मंगलक, नगनिका, चर्च्चा, अतिनाट, उन्नवी, दोहा, बहुला, गुरुबला, गीता, गोवि, हेम्ना, कोपी, कारिका, त्रिपदिका और अथा ये संकीर्ण के भेद हैं । गीत प्रबंध में अक्षरों के मात्राशुद्धि पुनरुक्ति इत्यादि दोष नहीं होते । गाना बजाना सब दो प्रकार का होता है, एक ध्वन्यात्मक दूसरा रागात्मक । रागात्मक चार प्रकार के होते हैं, यथा स्वर प्रधान अर्थात् स्वर के आग्रह से जिसमें ताल की मुख्यता न रहे, दूसरा उभय प्रधान जिसमें ताल बराबर रहे और स्वर भी सुंदर हों, तीसरा शुद्धता प्रधान जिस में राग के शुद्ध रूप रहने का आग्रह हो चाहे माधुर्य हो चाहे न हो, चौथा माधुर्य प्रधान जिस में राग का शुद्ध रूप कुछ बिगड़े पर माधुर्य रहे ।

स्वर — षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद ये सात हैं । मयूर, गऊ, बकरी, कौंच, कोकिल, अश्व और हाथी इनके शब्द में क्रम से पूर्वोक्त स्वर निकलते हैं । नासा, कंठ, उर, तालु, जिह्वा और दंत छ स्थान से जो उत्पन्न हो वह षड्ज, (ऋषीशगती) स्वर को गति नाभि से सिर तक पहुँचे इससे ऋषभ, गंधवाही वायु की नलिकाओं में वह स्वर पूर्ण हो इस से गांधार, फिर वह स्वर मध्य अर्थात् नाभि तक प्राप्त हो इस से मध्यम, (धयतिस्वरान् इति धैवत) मध्यम के आगे भी जो स्वरों को खींचे वह धैवत, पूर्वोक्त पाँचों सुरों को पूर्ण करे वा पंचम स्थान मूर्धा तक पहुँचे वह पंचम और (निषीदन्तिस्वरा अस्मिन् इति निषादः) स्वरों का जिस में विराम हो अर्थात् जिस से ऊँचा और कोई स्वर न हो वह निषाद । इन्हीं सातों सुरों

के प्रथमाक्षर^१ से सरि ग म प ध नि ये सात स्वर वर्ण नियत हुए । षड्ज, पंचम और मध्यम में चार, ऋषभ-धैवत में तीन और गांधारनिषाद में दो श्रुति हैं । संपूर्ण स्वर सरिगमपधनि । खाड़व निषाद बिना अर्थात् सरिगमपध और उड़व ऋषभ और पंचम बिना अर्थात् सगमधनि । नाटवसंतादि संपूर्ण राग सातो सुर से, खाड़व राग छः सुर से और उड़व पाँच सुर से गाए जाते हैं । नाम के क्रम से रखने से इनका प्रस्तार होता है और नष्ट, उद्धिष्ट, मेरू, मर्कटी, पताका, सूची, सप्तसागर इत्यादि में इसका विस्तार होता है ।

राग — जैसे रास में वंशी के सात रंगों से सात सुरों की उत्पत्ति मानते हैं वैसे ही रास में १६०८ गोपियों के गाने से सोलह सौ आठ तरह के राग हैं, जो एक एक मुख्य से दो सौ अष्टाईस तरह के होकर बने हैं । भरत और हनुमत् मत से छ राग भैरव, कौशिक (मालकोस), हिंदोल, दीपक, श्री और सोमेश्वर, और कलानाथ के मत से छ राग श्री, बसंत, पंचम, भैरव, मेघ और नटनारायण । पूर्वमत में प्रत्येक राग को पाँच रागिनी, पर मत में छ रागिनी आठ पुत्र और एक एक पुत्र-भार्या । अन्य मत से मालव, मल्लार, श्री, बसंत, हिल्लाल और कर्णाट ये छ राग हैं । मालव की रागिनी धानसी, मालसी, रामकीरी, सिंधुड़ा, भैरवी और आसावरी । मल्लार की बेलावली, पूर्वा, कानड़ा, माधवी, कोड़ा और केदारिका । श्री की गांधारी, शुभगा, गौरी, कौमारिका, बेलावरी, और बैरागी । बसंत की टोड़ी, पंचमी, ललिता, पटमञ्जरी, गुज्जरी और बिभाषा । हिल्लोल की मायूरी, दीपिका, देशकारी, पाहिड़ा, बराडी और मोरहारी । कर्णाट की नाटिका, भूपाली, रामकली, गडा, कामादा और कल्यानी । इन में बराडी, मायूरी, कोड़ा, बैरागी, धानुषी, बेलावली और मोरहारी मध्यान्ह को, गांधारी, दीपिका, कल्यानी, पूरबी, कान्हड़ा, शाखी, गौरी, केदारा, पाहड़ी, मालसी, नाटी, मायूरी, भूपाली और सिंधुड़ा साँफ को और बाकी सबेरे गाना । राग छओ तीसरे पहर से आधीरात तक । वर्षा में मल्लार और बसंतपंचमी से रामनवमी तक बसंत और वामन द्वादशी से विजयदशमी तक मालसी यह समय नियत है । बेलावली, गांधारी, ललिता, पटमञ्जरी, बैरागा, मोरहाटी और पाहिड़ी (पहाड़ी) यह करुणा में, पूरबी, कान्हड़ा, गौरी, रामकीरी, दीपिका, आसावरी, बिभाषा, बडारी और गडा यह वीर में, शेष शृंगाररस में गाना । वैसेही, मालव, श्री, हिल्लोल और मल्लार शृंगार में और बसंत और कर्णाट वीररस में गाना । वह पूर्वोक्त अन्य मत दक्षिण में प्रचलित है इधर नहीं । कहते हैं कि शिव, शारद, नारद और गंधर्व यह चार मत पृथक् हैं । इधर हनुमत् और भरत मत मिल के प्रचलित हैं । हनुमत् मत से प्रथम राग भैरव, उसका ध्यान महादेवजी की भाँति, उत्पत्ति शिवजी के मुख से, जाति उड़व अर्थात् धनिसगम, यह पंचस्वर, गूढधैवत्, गाने का समय शरत्ऋतु में प्रातः काल, भैरवी, बंगाली, बगरी, मधुमाधवी और सिंधवी यह पाँच रागिनी, हर्ष, तिलक, सूहा, पूरिया, माधव, बलनेह, मधु और पंचम ये आठ पुत्र । कलानाथ-मत से यह चतुर्थराग, इनकी भैरवी, गुजरी, भासा, विलावली, कर्णाटी और बड़हंसा यह छ रागिनी, देवशाख, ललित, मालकोस, विलावल, हर्ष, माधव, बलनेह, और मधु ये आठ पुत्र । सोमेश्वर-मत से भैरवी, गुनकली, देवा, गूजड़ि, बंगाली और बहुली ये छ रागिनी और गाने का समय ग्रीष्म । भरत-मत से ललिता, मधुमाधवी, बरारी, बाहाकली और भैरवी यह पाँच रागिनी, देवशाख, ललित, विलावल, हर्ष, माधव, बंगाल, बिभास और पंचम ये आठ पुत्र, सूहा, विलावली, सोराठी, कुंभारी, अंदाही, बहुलगुजरी, पटमञ्जरी, मिरवी यह आठ पुत्र-भार्या, मतांतर से भैरवी, बंगाली, बैरागी मध्यमा, अष्टी, रेवा, बहुला, साहिनी, रामेली और सूहा यह छ पुत्रवधू । सब मतों से रागों का परस्पर भेद दिखाकर विष्णु के कंठ से निकला है, संपूर्ण जाति, स्वर सातो सरिगमपधनि, गूढ षड्ज स्वर, शरदऋतु में पिछली रात को गाने का समय, ध्यान युवा गौर पुरुष, इसकी रागिनी हनुत मत से यथा — टोड़ी, गुनकली, गौरी, खभावती और ककुम, आठ पुत्र यथा मारू, मेवाड़, बड़हंस, प्रवल, चंद्रक, नंद, भ्रमर और खुखर । भरत मत से गौरी, दयावती, देवदाली, खभावती और ककुम रागिनी, और गांधार, शुद्ध, मकर, त्रिछन, महाना, शक्रवल्लभ, माली और कामोद पुत्र, घनाश्री, मालश्री, जयश्री, सुधवारी, दुर्गा, गांधारी, भीमपलासी और कामोद, आठ पुत्र आर्या । हिंदोल भरत मत से द्वितीय और हनुमत से तृतीय राग है, उत्पत्ति ब्रह्मा के शरीर से, जाति उड़व, स्वर

१. 'ष' 'ऋ' के उच्चारण की सुगमता के हेतु 'स' 'रि' माना है ।

सगमपध पाँच, गूढ षड्ज, गान समय बसंत ऋतु दिन का प्रथम भाग, ध्यान स्वर्ण वर्ण हिंडोले पर झूलता हुआ । हनुमत् मत से रागिनी रामकली, देखाखी, ललिता, विलावली और पटमंजरी, पुत्र चंद्रविंब, मंडल, शम, आनंद, विनोद, गौर प्रधान और विभास । भरत मत से रागिनी रामकली, मालवती, आशावरी, देवारी और गुनकली, पुत्र बसंत, मालव, मोरु, कुशल, लंकादहन, बखार बंध, नागधुन और धवल, पुत्रबधू लीलावती, कैरवी, चैती, पारावती, पूरबी, तिरवरी, देवगिरि और सूरमती । दीपक हनुमत् मत से दूसरा और भरत मत से चतुर्थराग, सूर्य के नेत्र से उत्पन्न, जाति संपूर्ण, स्वर सरिगमपधनि सात, गूढ षड्ज, गाने का समय ग्रीष्म का मध्याह्न, हाथी पर सवार वीरवेष । हनुमत् मत से रागिनी इसकी देसी, कामोद, केदार, कान्हारा और कर्नाटी, पुत्र कुंतल, कमल, कलिंग, चंपक, कुसुम ; राम, लहिल और हिमाल । श्री राग दोनों मतों से पाँचवाँ राग, जाति संपूर्ण, सात स्वर सरिगमपधनि, गूढ षड्ज, समय हेमंत की संध्या, ध्यान सुंदर सिंहासनारूढ़ पुरुष । हनुमत् मत से रागिनी मालाश्री, मारवा, धनाश्री, बसंत और आशावरी, पुत्र सिंधु, मालव, गौड़, गुनसागर, कुंभ, गंभीर संकर और विहाग, भरत मत से रागिनी सिंधवी, काफी, देसी, विचित्रा और सोरठी, पुत्र श्री रमण, कोलाहल, सामंत, संकर, राकेश्वर, खट, बड़हंस और देशकार (मतांतर से हम्मीर और कल्याण भी), पुत्र भार्या कुंभा, सोहनी, शारदा, ध्याया, शशिरैखा, सरस्वती, क्षमा और बैया । मेघ दोनों मत से छठा राग, ध्यान श्यामरंग, शोणित-खड्ग-हस्त, जाति उड़व, पंचस्वर यथा ध नि स रि ग, गूढ धैवत, गान-समय वर्षा की रात्रि, रागिनी टंक, मदपारी, गूजरी, भूपाली और देशी, पुत्र जालंधर, सार, नटनारायन, शंकरामरण, कल्याण, गजधर, गांधार और सहान, भरत मत से पाँच रागिनी मलारी, मुलतानी, देशी, रतिवल्लभा और कावेरी, पुत्र यथा कलायर, वागेश्वरी, सहाना, पूरिया, तिलक, कान्हारा, स्तंभ, शंकरामरण, पुत्रबधू, यथा कर्नाटी, कादवी, ककल्लनाट, पहाड़ी, माँझ, परज, नटभंजी, शुद्ध नट । यह छ रागों का वर्णन हुआ । अब और बातों का भी वर्णन करते हैं ।

मूर्च्छना वह वस्तु है जो खरज से ऋषभ तक पहुँचने में जहाँ स्वर बदलेगा वहाँ लगे । यह तो हनुमत् मत से है । भरत मत से स्वरों के गान में गले का काँपना मूर्च्छना है । और मतों से ग्राम का सातवे भाग का नाम मूर्च्छना है । षड्ज ग्राम की मूर्च्छना, यथा ललिता, मध्यमा, चित्रा, रोहिणी, मतंगजा, सौवीरा । मध्यम ग्राम की मूर्च्छना, यथा पंचमी, मत्सरी, मधु, मध्या, शुद्धा, अन्ता, कलावती और तीव्र । गांधार ग्राम की मूर्च्छना ७ यथा रौद्री, ब्राह्मी, वैष्णवी, खेदरी, सुरा, नादावती और विशाला । इन्हीं मूर्च्छनाओं का जहाँ शेष में विस्तार होता है उन को तान कहते हैं । वे ४९ हैं । इन्हीं में स्वरों के मेल से कूटतान होती हैं । इन मूर्च्छनाओं के जनक तीन ग्राम हैं — षड्ज, मध्यम, गांधार । इन तीन ग्रामों में पूर्व दो पृथ्वी पर और अंत का स्वर्ग में गाया जाता है ।

श्रुति वह वस्तु है जो स्वरों का आरंभ करती है और सूक्ष्मरूप से स्वरों में व्याप्त रहती है । ये ४ षड्ज में, ३ ऋषभ में, २ गांधार में, ४ मध्यम में, ४ पंचम में, ३ धैवत में, २ निषाद में, यही २२ श्रुति हैं । कोमल, अति कोमल, समान, तीव्र, तीव्रतर से रीति रागों में यथा रीति सुर बरते जाते हैं और जहाँ सूक्ष्म और स्फुट स्वर लगते हैं वहाँ कालकी कहलाती हैं । लोगों का चित्त रंजन करते हैं इससे इन की राग संज्ञा है और जहाँ राग रागिनियों के ध्यान रूप क्रिया आदि लिखे हैं, उनका आशय यह है कि वैसे अवसर पर वे राग योग्य होते हैं । जैसे भैरवी का ध्यान है कि स्वेत वस्त्रा सवरे शिव पूजन करती है, तो जानो कि ऐसे ही सवरे शिव-पूजन के अवसर में इसका गाना उत्तम है ।

हमारे प्रबंध के पढ़नेवालों को एक ही रागिनी का नाम बारंबार कई रागों में देखकर आश्चर्य होगा । इसमें हमारा दोष नहीं, यह संगीत शास्त्र के प्रचार की न्यूनता से ग्रंथों में गड़बड़ हो गई है । कोई अन्वेषण करने वाला हुआ नहीं, जो ग्रंथकारों को मिला वा उन्होंने सुना लिख दिया । यह तो जब अपने गले वा हाथ से करता हो और ग्रंथों को भी जानता हो वह एक बेर निर्णय कर के लिखे तब यह सब ठीक हो जाय ।

ताल । समय का सूक्ष्म से सूक्ष्म और बड़ा से बड़ा समान विभाग ताल है । विचार करके देखो तो छंदों की प्रवृत्ति भी ताल ही से होगी । एक गिरह की लकीर खींचो तो इस बिंदु से लकीर के उस बिंदु तक उंगली ले जाने में जो काल लगेगा वह ताल ठहरा और उसी गिरह भर के बराबर मोटे जितने सूक्ष्म भाग हैं उनके प्रति भाग पर जो काल लगा वह भी ताल है । पर ऐसे सूक्ष्म और ऐसे गुरु जिन के बरताव में काल का स्मरण न रहे वह कुछ काम नहीं आते । सिद्धांत यह कि गाने के अनुकूल समय का विभाग ही ताल है । नृत्य, गान वा

वाद्य को नियमित काल से उठाना, नियमित काल पर समाप्त करना । उसी नियमित काल को अनेक समान भागों पर बाँट देने की जो क्रिया है वह ताल है । महादेव जी के नृत्य तांडव और पार्वती जी के नृत्य लास्य का प्रथमाक्षर लेकर ताल शब्द बना है, वा तल नाम हाथ की हथेली वा पद-तल इस का भाव ताल है ; क्योंकि प्रायः ताल विन्यास हाथ वा पैर ही से होता है । तालों के बनाने को चार मात्रा की कल्पना है, एक नियमित काल ही मात्रा होती है । अर्द्ध मात्रा की द्रुत, एक मात्रा की लघु, दो मात्रा की गुरु और और तीन मात्रा की लुप्त संज्ञा है । चंचत्पुट, चारुपुट इत्यादि साठ ताल के मुख्य और एकसौ एक गौण भेद संगीतदामोदर वाले शुभंकर ने किये हैं । इन चार मात्राओं पर अंगुल्यादि से संकेत करके ये ताल बनते हैं और इन्हीं मात्राओं को जहाँ बीच बीच में छोड़ देते हैं और काल के समाप्त का चिन्ह बीच में नहीं करते फिर दूसरे तीसरे इत्यादि पर चिन्ह करते हैं तो उस बीच में छूटे हुए काल में जहाँ नियमित मात्रा समाप्त होती है पर प्रगट नहीं की जातीं उसे ख वा खाली कहते हैं । एक नियम काल कल्पित मात्रा के ताल समाप्त होने पर फिर से वही ताल आरंभ करने को इन दोनों की मिश्रतासूचक जो बीच का एक नियमित समान काल है वह भी ख अर्थात् खाली कहलाता है । चंचत्पुट ताल में दो गुरु एक लघु और एक प्लुत हैं, एक एक गुरु लघु और प्लुत चारुपुट में हैं, ऐसे ही सब तालों का प्रस्तार है । जहाँ मात्रा के काल अनुसार तान की समाप्ति होती है उसको सम कहते हैं । इन चौसठ तालों के अतिरिक्त आठ अष्टताल, ग्यारह रुद्रताल, चार ब्रह्मताल और चौदह इंद्रताल हैं । रुद्रताल का प्रथम भेद वीरविक्रम यथा एक मात्रा एक शून्य ऐसी तीन आवृत्ति फिर दोताल यह वीरविक्रम हुआ । ऐसे ही सब ताल यथा मात्रानुसार जानो । आज कल प्रसिद्धताल चौताला, तिताला, एकताला, आड़ा, रूपक, भूपताल इत्यादि हैं ।

(भाँफ) मुख्य है । तत यथा अलावुनी, ब्रह्मवीना, किन्नरी, लघुकिन्नरी, विपंची, वल्लकी, ज्येष्ठा, चित्रा, ज्योतिष्मती, जया, हस्तिका, कुब्जिका, कूर्मी, शारंगी, परिवादिनी, त्रिशरी, शतचंद्री, नकुलोष्ठी, टंसरी, उडम्बरी, पिनाकी, निबंध, तानपुर, स्वरोद, स्वरमंडल, स्वरसमुद्र, शुष्कल, रुद्र, गदावरण, हस्तक, विलास्य, मधुस्पन्दी और घोण इत्यादि । वीणा के तीन भेद हैं यथा वल्लकी, पंचतंत्री (विपंची) और परिवादिनी । धनिमाला, रंगमल्ली, घोषवती, कंठकूजिका और विद्युत ये वीणा ही के नामांतर हैं । वीणा के सात भेद और हैं यथा नारद की महती, दीव की लम्बी, सरस्वती की कच्छपी, तुंबरु की कलावती, विश्वावसु की बृहती और चांडालों की कंडील बीना अथवा चांडाली । (इसका प्रयोजन शव क्रिया के समय पड़ता था) । वीणा के अंग को कोलविक, बंधन को उपनाह, दंड को प्रवाल, बगल के काठ को ककुभ और प्रसेवक और वंशशाला, काकलिका, कूनिका, मेरु इत्यादि और वस्तुओं को कहते हैं । सुशिर यथा वंशी, मुरली, वेणु (तीनों वंशी के भेद), पारी, मधुरी, तित्तरी, शंख, काहला, तोंमड़ी, निषंग, बुक्का, शृंगिका, मुखचंग, स्वरनाभि, आवर्त्ती, शृंग, कापालिका, चर्मवंश, स्वरनादी (सेनाई), वक्रगला, चर्मदेहा और गलस्वरा इत्यादि । वेणु रक्तचंदन, खैर, चंदन, स्वर्ण, चाँदी, तामा, लोहा और कठिन पाषाण का होता है परंतु बाँस का सब से उत्तम है । मतंग मुनि के मत से बाँसही का वेणु होता है । दस अंगुल का वेणु महानंद, इसके ब्रह्मा देवता, ग्यारह अंगुल का नंद इसके रुद्र देवता, बारह अंगुल का विजय इसके सूर्य देवता और चौदह अंगुल का जय इसके विष्णु देवता । वंशी की फूँक में निविड़ता, प्रौढ़ता, सुस्वरता, शीघ्रता और मधुरता ये पाँच गुण हैं और सीत्कार-बाहुल्य, स्तब्ध, विस्वर, खंडित, लघु और अमधुर ये छ दोष हैं । तेरह और सत्रह अंगुल की वंशी नहीं बनाना इसमें आचार्यों ने दोष माना है । कानी उँगली जा सके इतना बीच का छेद (पोलापन) रहे, यह छेद आरपार रहे स्वर का छेद करना, फिर पाँच अंगुल छोड़कर सात सूर के सात छेद आधे आधे अंगुल पर बैर के बीच बराबर करें, दोनों ओर तार वा चर्मतार से वंशी को बाँधे और बीच में सिक्कक (छींके) स्वर की मधुर और श्रुति

संगीत के पूर्वोक्त तीन भेद अर्थात् स्वर, राग और ताल गले के अतिरिक्त वाद्यों से भी संपादित होते हैं, अतएव अब वाद्यों का वर्णन करते हैं । बाजों के चार भेद हैं, यथा तत, सुशिर, आनद और धन । नए मत से अर्थात् कालानुसार दो भेद और कर सकते हैं, यथा समष्टि और स्वयं वह । तार से जो बजें वह तत यथा वीणादिक । फूँकने से बजें वह सुशिर यथा वंशी इत्यादि । चमड़े से मढ़े हों वह आनद यथा मृदंगादिक । काँसादिक से जो ताल सूचक हों वह धन यथा भाँफ आदि । ये चारों वा तीन वा दो जिस में मिले हों वह

समष्टि यथा हारमोनियम आदि और जो ताली इत्यादि से बजे वह स्वयंवह यथा अरगन आदि । ये सब वाद्य तीन भेद में विभक्त हैं यथा स्वर वाही, ताल वाही और अभय वाही । तम्बूरादिक स्वर वाही, भाँफ इत्यादि ताल वाही, वीणादिक अभय वाही । इन चारों में तत में वीणा शृशिर में वंशी, आनद में मृदंग और घन में ताल उत्पन्न करने को लगावें । अयुक्ति वदयुक्त और युक्ति (अर्थात् छिद्रों का बंद करना खोलना और उससे श्रुति लय तान इत्यादि किंचित् बंद करके निकालना) ये तीन अंगुलिक्रिया हैं और अकम्पत्व और सुस्वरत्व ये दो अंगुली के गुण हैं । गाने वालों को सहायता देना, स्थान देना, उन के दोष छिपाना और जिन स्वरों पर गला न पहुँचै वे स्वर निकालने ये चार इस में लाभ हैं । भगवान को तीन वंशी हैं यथा घर में बजाने की १२ अंगुल की मुरली संज्ञक, श्री गोपीजन को बुलाने की १८ अंगुल की वंशी संज्ञक और गऊ बुलाने की एक हाथ की वेणु संज्ञक । इससे ज्ञात होता है, वेणु का प्रमाण एक हाथ तक है । आनद में मर्दल, अर्द्ध मर्दल, मर्दल खंड, ढलक, मुरज, ढक्का, पटह, बिबक, दर्पवाद्य, पवन, घन, रुज्ज, कलास, विकलास, टाकली, अर्द्धटाकली, भल्लू, दुकुल्ली, दौडिशान, डमरू, तुंबुर, टमुकिड्डु, कुंडली, स्तंक, अभिघट, रज, दुंदुमी, टुटुकी, ददुर, उपांग, खंजरीट और करचंग ये सब हैं । इनमें मर्दल (मृदंग श्रेष्ठ है । मर्दल खैर के काठ का अच्छा होता है । चमड़े की डारी से मेरू संयुक्त कर के दोनों मुँह मढ़ कर कसना । मढ़ने के पीछे छ महीने तक न बजाना । काठ का दल आध अंगुल मोटा हो और बाई पूरी दस या बारह अंगुल चौड़ी हो तथा दहिनी उस के एक वा आधी अंगुल छोटी हो । बाई ओर तो पिसान की पूरी चिपकाना और दहिनी ओर खरली (खली) की पूरी लगा के सुखा देना । वह खरली — राख, गेरू, भात और केंदुक (गालव, शायद भाषा में केंदुआ कहते हैं) की हो वा चिपीटक (चूड़ा ?) में जीवनीसत्व (?) मिला कर लगाना । मट्टी का हो तो मृदंग कहलाता है । इसमें घाट, विधि पाट, कूटपाट और खंड पाट ये चार प्रकार के वर्ण हैं और यदि, उड़व अवच्छेद, गजर, रूपक, ध्रुव, गलप, सारिगोनी, नाद, कथित, प्रहरन और वृंदन ये बारह प्रबंध हैं । घन में करताल, कांस्यताल, कम्बिका, जयघंटा, श्रुक्तिका, पटवाद्य, पट्टातोष, घर्घर, दंदा, भंभा, मज्जीर, कर्तरी, अंकुर, काफ़ताल, प्रस्तरताल, दंतताल, जलतरंग, तालतरंग, पात्रतरंग, त्रिकोणघंटा, डोलक इत्यादि हैं । घन के दो भेद हैं । अनुरक्त वह जिन में गीतों का अनुगमन हो और विरक्त वह जो केवल ताल दें । लड़ाई में वीरों का गर्जन और ये चार वाद्य बजते हैं, इससे लड़ाई की पंच वाद्य संज्ञा है । यह वाद्यों का साधारण वर्णन हुआ । ऐसे ही अनगिनती वाद्य हैं, जो अब नाम मात्रावशेष हैं । उनके रंग रूप की किसी को खबर नहीं ।

संगीत का चौथा अंग नृत्य है । ताल, मान, रस, भाव, हास, बिलास, वाद्यादि संयुक्त अंग विक्षेप का नाम नृत्य, इसके दो भेद तालाश्रित नृत्य और भावाश्रित नृत्य । नृत्य मधुर हो तो लास्य और उत्कट हो तो तांडव कहलाता है । तांडव के पेरली और बहुरूप ये दो भेद हैं । जिनमें अंग बहुत चलें और अभिनय थोड़ा हो वह पेरली, इसी की देशी भी संज्ञा है । जहाँ अभिनय बहुत हो और रूपांतर धारण इत्यादि किया हो वह बहुरूप । लास्य के छुरित और यौवत दो भेद हैं । जहाँ नायिका-नायक रसपूर्वक भाव परस्पर दिखाते, चुंबन इत्यादि करते नृत्य करें वह छुरित और जहाँ नटी वा नटी-वेषधारी सुंदर पुरुष नाचें वह यौवत । हाथ-पैर-सिर-नेत्र का चलाना, मुड़ना, फिरना, भाव, कमर लचकाना, घुंघरु बजाना, गाना, वस्त्र उठाना और घूमना इन सब नृत्य के अंगों में जिसको अभ्यास न हो और जो सुंदर न हो वह न नाचै । अलागलाग, उरपतिरप लगडाँट, लहाछेह, घट-बढ़ और संकोचन-प्रसारन ये नृत्य के काम हैं और शिव-नृत्य, मयूरनृत्य, रास नृत्य, कुक्कुटनृत्य, मण्डूकनृत्य, बलाकानृत्य, हंसनृत्य, कर्त्तकनृत्य, मण्डल-नृत्य, युगल-नृत्य, एकहास-नृत्य, आलातचक्र, कलानृत्य इत्यादि नृत्य के और अनेक भेद हैं ।

संगीत का पाँचवा अंग भाव है । निर्विकार चित्त में प्रीतम वा प्रिया के संयोग वा वियोग के सुख वा दुःख के अनुभाव से जो प्रथम विकार हो वह भाव है । उसी का अनुकरण नृत्य में करना भावक्रिया है । हँसना, रोना, उदास होना, प्रसन्न होना, व्याकुल होना, छकना, मत्त होना, बुलाना, प्रणाम करना इत्यादि क्रिया को गीत अर्थ के अनुसार प्रत्यक्ष दिखाना भाव है । भाव के चार भेद हैं, यथा स्वर, नेत्र, मुखाकृत और अंग । स्वर से दुःख, सुख इत्यादि का बोध कराना स्वर भाव है । यह बहुत कठिन है क्योंकि गाने के स्वरों का व्यत्यय न होकर भाव प्रगट हें यह कठिन बात है । नेत्र ही से सब बातों का बोध हो और अंग न चलै, वह नेत्र भाव है । यह भी कठिन है पर तादृश नहीं परंतु इस में नेत्र ही से हँसी प्रगट करना वा अनायास आँसू बहाना कठिन काम

भाव बनाना अंग भाव है। यह शीरों की अपेक्षा सहज है। नृत्य वा गीत में इनमें से एक वा दो वा तीन वा चारों साथ ही किए जाते हैं। भाव रसजना जितनी विशेष होगी उतने ही अच्छे होंगे क्योंकि अनुभवगम्य है।

संगीत का छठा भेद कोक अर्थात् नायिका, नायक, रस, रसभास, आलंबन, उद्दीपन, आलंकार, समय, समाज इत्यादि का ज्ञान कोक है। यह साहित्य ग्रंथों में सविस्तार वर्णित है इससे यहाँ नहीं लिखते। इसका जानना संगीत वाले को अवश्य क्योंकि भाव और नृत्य में इस के बिना काम नहीं चलता।

हे। मुख की चेष्टा ही से भाव प्रगट करना मुखाकृत भाव है, अर्थात् कोई अंग न हिले, भौ-नेत्र इत्यादि यथा स्थान स्थित रहें और भाव चेष्टा से प्रगट हो, यह भी बहुत कठिन है। अंग अर्थात् नेत्र हाथ इत्यादि अंगों से

सातवाँ भेद हस्त है। नाचने गाने वा बताने में हाथ चलाना हस्त है। इसके दो भेद हैं, एक लयाश्रित दूसरा भवाश्रित। प्रायः यह नृत्य और भाव के अंतर्गत ही सा है, इस से कोई विशेषना नहीं।

पूर्वोक्त सातों अंग की समष्टि का नाम आदि संगीत-दामोदर, संगीत-कल्पतरु, संगीतसार इत्यादि ग्रंथों से चुनकर और अपनी जानकारी के अनुसार भी वे बातें यहाँ लिखी गई हैं। इसको लिखकर प्रकाश करने में हमारा कुछ प्रयोजन है। शास्त्र दो प्रकार के होते हैं — एक अदृष्टवाद दूसरे दृष्टवाद। अदृष्टवाद परलोक इत्यादि के मत में मनुष्य को तर्क छोड़ कर केवल शास्त्र अवलंबन करना चाहिए। दृष्टवाद में शास्त्रों के और बुद्धि के तथा अपने और दूसरों के अनुभव के अविरुद्ध जो बात हो वह माननी चाहिए। संगीत शास्त्र के और अपने मत के अविरुद्ध मनुष्य को बरतना उचित है। अब देखिए कि संगीत की क्या दशा हो रही है। कितनी रागिनियों का गाना कौन कहै किसी ने नाम भी नहीं सुना है। कितनी मत भेद से दो दो चार चार रागों की रागिनी हैं, यह क्या? केवल अंध परंपरा। हम यह पूछने हैं कि प्रथम गाने में चार मत होने ही का क्या प्रयोजन है? एक भैरव राग सारा संसार एक स्वर-क्रम और रीति से गावें, यदि कहीं मतों के भेद से चारों भैरव में भेद है तो उस में एक को भैरव सिद्ध रखो बाकी या तो किसी दूसरे राग में आप ही मिले निकलेंगे, यदि न मिले निकलें, उन का दूसरा नाम रखो। ऐसे ही हजारों बातें हैं, कोई बंधा हुआ नियम नहीं। जितने इस विद्या के जानने वाले हैं, अपने अभिमान में मस्त हैं। कोई ऐसा नियम नहीं कि जिसके अनुसार सब चलें। यही कारण है कि रागों के पत्थर पिघलने इत्यादि प्रभाव लोप हो गए। हा! किसी काल में इस शास्त्र का ऐसा कठिन नियम था कि पुराणों में बराबर लिखा है कि ब्रह्मा ने अमुक गंधर्व को ताल से वा स्वर से चूकने से यह शाप दिया, शिवजी ने यह शाप दिया, इंद्र ने यह शाप दिया, वही संगीत शास्त्र अब है कि कोई नियम नहीं। शास्त्र असिल सब टूट गए। कुछ जैनों ने नाश किये, कुछ मुसलमानों ने। मुसलमानों में अकबर और मुहम्मदशाह को इसका ध्यान भी हुआ तो बड़े बड़े गवैये मुसलमान बनाए गए, जिससे हिंदुओं का जी और भी रहा सदा टूट गया। चलिये सब विद्या मिट्टी में मिली। इसमें मुख्य कारण यही हुआ कि केवल गुरुमुख-श्रुति पर यह विद्या रही। किसी ने कभी इस को ऐसी सुगम रीति पर न लिखा कि उसे देखकर वही काम दूसरे कर सकें। धन्य! राजा यतींद्रमोहन ठाकुर और शीरींद्रमोहन ठाकुर, जिन्होंने इस काल में इस विद्या को बड़ी ही बुद्धि की। श्रीक्षेत्रमोहन गोस्वामी ने इस विषय में नियम भी बनाए हैं और बाबू कृष्णचन बानुजी ने एक सितार-शिक्षा भी छपवाई है। उधर के लोगों ने इस विषय में बहुत कुछ किया है पर इधर अभी कुछ नहीं हुआ। हमारे काशी के बाबू महेशचंद्र देव ने सितार, वीन और तानपूरा बनाने में जैसे परिश्रम करके खूँटी, तूमा, इत्यादि में नई उपयोगी बात निकाली हैं वैसे ही और सब जानकार लोग मिलकर एक बेर इस लुप्त हुए शास्त्र का भली भाँति मंथन करके इसकी एक सनियम उज्ज्वल परिपाटी बना डालें। नहीं तो यह शास्त्र कुछ दिन में लोप हो जायगा। और हमारे हिंदुस्तानी अमीरों को चाहिए कि वारवधू के मुखचंद्र के सुंदरताही पर इस विद्या की इति श्री न करै, कुछ अभाग्य भी बढ़ें। हमने इसमें जो बातें लिखी हैं उनको सबके खंडन मंडन पूर्वक निर्णय करने के वास्ते यहाँ प्रकाश करते हैं। जो लोग जानकार हैं वे आनंद से जो इसमें आयोग्य हो उसका खंडन करै, जो बात हमारे समझ में न आई हो उसे समझावें और जो योग्य हो उसका अनुमोदन करै। इस विषय में जो कोई पत्र भेजैगा उसे हम बड़े आनंदपूर्वक प्रकाश करेंगे। आशा है कि हमारा परिश्रम व्यर्थ न जायगा और इस विद्या के रसिक लोग हमारी बिनती के अनुसार इसके उद्धार का उपाय शीघ्र ही करेंगे।

खुशी

यह सहज और शुद्ध ऊर्ध्व भाषा में लेकिन नागरी लिपि में लिखा लेख है। बाद में 'खुशी' खंग विलास प्रेस बांकीपुर पटना से भी छपी।

— सं.

हस्वदिल खाह आसुदगी को खुशी कहते हैं याने जो हमारे दिल की खाहिश हो वह कोशिश करने से या इतिफाकिय : बगैर कोशिश किये बर आवे तो हम को खुशी हासिल होती है। खुशी जिंदगी के फल को कहते हैं, अगर खुशी नहीं है तो जिन्दगी हराम है क्यों कि जहाँ तक ख्याल किया जाता है मालूम होता है कि इस दुनिया में भी तमाम जिंदगी का नतीजा खुशी है।

इसी खुशी के हम तीन दर्जे कायम कर सकते हैं याने आराम, खुशी और लुत्फ — आराम वह हालत है हिस्सा तकलीफ के मेकदार से ज्यादा हो जाय। और लुत्फ वह हालत है जिसमें तकलीफ का नाम भी न बाकी रहे।

खुशी तीन किस्मों में बँटी है याने दीनी खुशी, दुनियावी खुशी और गलत खुशी।

दीनी खुशी अपने अपने मजहब के उकदे के मुताबिक कुछ कुछ अलग है मगर नतीजा सबका एक ही है याने इतात दुनियावी से छुट कर हमेशा : के वास्ते परमेश्वर की कुर्बत मयत्सार होनी हो असली खुशी है। हम लोगों में परमेश्वर का नाम सत् चित आनंद है और हम लोगों के नेक अकीदे के मुताबिक परमेश्वर का नाम रूप सब बिल्कुल लतीफ है इसी से उस की याद में लुत्फ हासिल होता है। उपनिषद् में एक जगह सब की खुशी को मुकाबिला किया है। वह लिखते हैं कि खुशी जिन्दगी का एक जुजे आजम है और दुनिया में जितने मखलूकत हैं सब खुशी ही के वास्ते मखलूक हैं। इसी सब खिलकत में जानदारों की बनावट और लिप्ताकत के मुताबिक खुशी बँटी हुई है कीड़ा सिर्फ इस बात में खुश होता है कि एक पत्ते पर से दूसरे पत्ते पर जाय, चिड़ियों की खुशी का दर्जा इस से कुछ बढ़ा है याने इधर उधर परबाव करना बोलना बगैर :। इसी तरह अखीर में आदमी की खुशी बनिस्बत और जानवरों के बहुत बढ़ी चढ़ी है। आदमियों में भी बनिस्बत बेवकूफों के समझदारों की खुशी का दर्ज : ऊँचा है। आदमियों की खुशी से देवताओं की खुशी बहुत ज्यादा : है। इस लंबी चौड़ी तकरीर का खुलासा उन्होंने यह निकाला है कि सबसे ज्यादा : और लतीफ परमेश्वर है। उस में कितना लुत्फ और खुशी है जो हम लोग नहीं जान सकते। इसी से अगर हम लोगों को खुशी और लुत्फ की तलाश है तो हम लोगों को उसी का भजन करना चाहिए।

इस के पहिले दुनियावी खुशी का बयान किया जाय उस खुशी का बयान आप लोग सुन लीजिए जो अब हम हिंदुओं को खास कर साकिनाने बनारस के मयत्सर हैं। सबसे बड़ी खुशी बेफिकरी है।

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।

बास मलूका यों कहें, कि सबके दाता राम" ।।

ऐसे ही खूब भांग पीना, फन्नाटे इक्के पर सवार होकर बहरी और जाना, कभी-२ कुछ गाना सुन लेना, बरसात के दिनों में अगर फोलनी दाना मयत्सर हो तो क्या बात है। अगर इस खुशी का दर्जा बहुत बढ़ गया

तो एक आध सैल हो गई कुछ खाना कुछ पीना कुछ नाच कुछ तमाशा हो गया और अगर यही खुशी 'सिविलाइज्ड' की गई तो उसकी छोटी छोटी कुमेदियों या बर्फ की दावत से बदल दिया।

इस से मेरा यह मतलब नहीं है कि इन बातों में बिल्कुल खुशी नहीं है। बेशक तफरीह में खुशी है मगर उन्होंने लोगों को जो हमेशा बड़ी खुशी की तलाश में रहते हैं और जो दुनियावी खुशी के बयान में हम दिखायेंगे।

जिनकी तबीयत तहकीकात की तरफ रुजू है और जो लोग हर शय और हर फेल का सबब और नतीजा दर्याफ्त करने की खादिश रखते हैं और यह भी जानना चाहते हैं कि इस दुनिया में जिन्दगी की हालत में इंसान को किस चीज की ज्यादा जरूरत है उन पर यह बात बखूबी रौशन होगी कि इस किस्म के ख्यालों को तहजीब के कायदों के पैरों रह कर दलीलों से सुलझाने में और बसवत कामिल इस अम्र का तस्फियः करने में कैसे वक़्त दरपेश होते हैं। चुनावें जब हम खयाल करते हैं कि दुनिया में हम को किस खास चीज की जरूरत और वह जरूरत लावुदी क्यों है तो दिल में मुख्तलिफ वजूहात के साथ कई किस्म के खयाल पैदा होते हैं और मुख्तलिफ हाजतों के रफअ करने की मुख्तलिफ सूरतें दरपेश आती हैं मगर इस मौकअ पर हम रुह की उस खास हाजत का जिक्र करेंगे जिससे जिन्दगी का वसूल और अकल का नतीजा कहना चाहिये याने खुशी। यह वह चीज है जिसके हासिल करने की कोशिश हम पर उतनी ही लाजिम है जितना उस के तहसील के तरीकों के मालूम करने की भी जरूरत है। इसी से इस लाजिम मलजूम जरूरत की कैफियत को हम खुशी के नाम से पुकारते हैं। अब यह सवाल पैदा हुआ कि हमारी जिंदगी के वसूल का यह लतीफ हिस्सा याने खुशी क्या चीज है और क्यों कर हासिल हो सकती है। इस सवाल का जबाब अकसर बड़े बड़े आलिमों ने अपने अपने तौर पर दिया है जिन सभी को इख्तिसार से पहिले बयान कर के तब जो कुछ होगा हम अपनी राय जाहिर करेंगे। मशहूर फिलासफर पेली का कौल है कि खुशी दिल की वह हालत है कि जिसमें तअदाद राहत की रंज से ज्यादा बढ़ जाय। खुशी का शुुरुअ हालत खादिश के मुताबिक काम शुुरुअ करना, बाद अजआ और कामियाब होता है वह काम चाहे किसी किस्म का क्यों न हो मसलन इल्म व हुनर सीखना, मुल्क फतह करना, बाग लगाना, गाना, खाना बगैरः बगैरः इसी खुशी के हासिल करने के वास्ते पहिले हम लोगों को चन्द दर चंद तकलीफें इन कामों में कामयाब होने को उठानी पड़ती हैं। मुमकिन है कि बगैर खुशी हासिल होने तकलीफ रफअ हो जाय अगर जब तकलीफ होगी तब खुशी खाह न खाह जायः हो जायगी। हाँ बिल्कुल तकलीफ के दूर हो जाने को हम बेशक खुशी कह सकते हैं और इसी सबब से खुशी हासिल करने का गोया यह वसूल है कि पहिले की तकलीफ को कोशिश की तकलीफ से बदलना और कामयाबी की खुशी से उसी कोशिश की तकलीफ को कामयाबी की खुशी से जायः कर देना। इसी से अगर खुशी की बतौर सरसरी के तहकीकात की जाय तो यह बात साबित होगी कि खुशी उस हालत का नाम है जिस में रंज का हिस्सा राहत से दब गया है। कंट साहब का कौल है कि खुशी हमेशाः तकलीफ का नतीजा है और इस की मिसाल मकान बनाने से साफ जाहिर है। यह बात हम लोगों की आदत में दाखिल है कि अपनी मौजूदः हालत को कभी नहीं पसंद करते और हमेशाः अपनी हालत असली से बढ़ने की कोशिश करते हैं। तकलीफ मौजूदः को दबा कर खुशी के हिस्से को बढ़ाया चाहते हैं। अगर हमारी खुशी हमेशाः कयाम पजीर होती तो हम हालत मौजूदः से कहीं घटे हुए होते क्योंकि हमलोग किसी किस्म की कोशिश न करते और जिस का नतीजा यह होता कि कोई नई बात न जाहिर होती इसी से गोया उसी कारसाज हकीकी ने दुनिया की तरक्की के वास्ते यह कायदा मुकर्रर किया है कि आदमी पहिले जैसी तकलीफ उठावे पीछे से आराम हो और इसी बुनयाद पर आदमी को खासियत भी ऐसी ही बनाई है। हाँ यह बात बेशक है कि किसी को कम तकलीफ है और किसी को ज्यादाः और कोई उसे थोड़ी कोशिश में हासिल करता है और किसी को अपनी उम्र का एक हिस्सा उसके हासिल करने में सफ करना होता है। इसी को तफरीह हम लोग कहते हैं कि यह आदमी खुश है और यह ज्यादाः खुश है। इसी सबूतों से कहा जाता है कि खुशी खुद कोई चीज नहीं बल्कि तकलीफ के उलटे अक्स का नाम खुशी और यही सबब है कि रंज और राहत लाजिम मलजूम हैं। बल्कि इसी से हमेशाः यह एक मुअइअन कायदा है कि कोई काम बगैर तकलीफ के शुुरुअ नहीं होता।

सर विलियम हमिल्टन खुशी की तारीफ में फरमाते हैं कि खुशी खुद कोई चीज़ नहीं है बल्कि आदम की खासियत या आदत को जब कोई रुकावट नहीं होती तो यही हालत खुशी की कहलाती है ।

इन आलमों की राय पर बहस न कर के अब हम खुशी के लफ्ज को भी कुछ बयान किया चाहते हैं । खुशी एक नाम है जो आराम को याने खादियों के पूरे होने की और तकलीफों की हालत को कहते हैं और इस ऊपर के लफ्ज बयान से भी साबित हुआ कि खुशी एक ऐसा लफ्ज है जो हमेशा तकलीफ के मुकाबले में मुस्तअमल होता है ।

बहुत लोगों का ख्याल है कि खुशी से इलम से कुछ इलाका नहीं है बल्कि वह एक खसलत जवली है जो इनसान और हैवान दोनों में बराबर होती है । मगर यह बात नहीं है क्योंकि इस किस्म की हैवानी खुशी के आलम लोगों की खुशी से क्या फर्क है यह जिनको कुछ भी शऊर है बखूबी जान सकते हैं और इसीसे कहा जा सकता है कि मिस्ल हैवानों के जो खुशी है वह भूटी खुशी है और जो खुशी के दर्ज : से बढ़ी हुई है वह बड़ी बल्कि खुदापरस्त लोग इसी वास्ते इन दोनों खुशियों से बढ़कर के एक खुशी ऐसी मांगते हैं जिसकी कोशिश में दुनियवी खुशियों को भी तर्क कर देना होता है ।

यह हर शख्स जानता है कि बार बार इस्तअमाल करने से कैसी भी खुशी क्यों न हो जाय : हो जायगी बल्कि ऐसी हालत में उसी खुशी का नाम बदल कर आदत है । यही सबब है कि अय्याश लोग अकसर गमगीन देखे गये हैं क्योंकि पहिले जिस खुशी को उन्होंने बड़ी कोशिश से हासिल किया था अब वह उनका रोजमर्रा : हो गया और हबस कम न हुई पस जब वह रोज अपनी औकात, ताकत, इज्जत और रुपया सर्फ करते हैं मगर हज नहीं हासिल होता तो गमगीन होते हैं । इसी किस्म से खाना, पीना, नाच, रंग वगैरह की खुशी भी जल्द जाय : हो जाती है मगर हाँ शिकार वगैर : की खुशी का दर्ज : कुछ इस से बड़ा है और इसी तरह वह खुशी जो सनअत सीखने से हासिल होती है मसलन रंगराजी, इलम मुसीकी, कारीगरी वगैरह : ऊपर बयान की हुई खुशियों से ज्यादा : देरपा है क्योंकि गुंजाइश के सबब से यह खुशी जल्दी जाय : नहीं होती और इसी से जल्द जाय : होने वाली खुशी के तलवगारों को अखीर में इसी खुशी से उकता कर के गोश : नशीनी की तलाश होती है ।

यही हम कह सकते हैं कि हर शख्स को अपने-२ हौसल : और हिम्मत के मुआफिक ज्यादा : ज्यादा खुशी मिलती है इस बयान से मेरा यह मतलब नहीं है कि बड़े मर्तब : के लोगों को गरीबों से ज्यादा : खुशी होती है बल्कि उन गरीबों को जो कि अपनी हालत में तो गरीब हैं मगर उन के हौसले बहुत बड़े हैं, वनिसबत अमीरों के हमेशा : ज्यादा : खुशी हासिल होती है ।

तबारीख से यह बात बखूबी साबित होती है कि बड़े बड़े फतह करने वाले पादशाह या शाहजाद वनिसबत अवाम के हमेशा : ज्यादा : तर मुशीबते भेलते रहे हैं और खुशी से यहाँ तक महरूम रहे हैं कि उनमें से अक्सरों ने खुदकुशी की है और बहुतेरे घर बार छोड़कर फकीर हो गये हैं । फौजमानन शहंशाह रूस पर इसको मिसाल बहुत ठीक घटती है । वेशक दुनिया में वह सब से बड़ा और सबसे ज्यादा : खुशी से महरूम है । गरीब की एक जान हजार दुश्मन । बल्कि हमारे जनाब हाजिरीन में ज्यादा : लोग ऐसे होंगे जो दर हकीकत इस वक्त हमारे जनाब मुअल्ला अल्काब गर्द रकाब शहनशाह रूस दाम सलतनतहू से बहुत ज्यादा : खुशी होंगे ।

इसी से हम कहते हैं कि खुशी से मर्तब : से कुछ वास्ता नहीं खुशी एक नेअमते उजमा है जिसे हर शख्स नहीं पाता । फारसी किताबों में मशहूर किस्सा है कि एक खुदापरस्त हमेशा : परमेश्वर से अपने रंजों की शिकायत किया करता था । अल्लाह तअलाने उस की यह शिकायत रफअ करने को एक आईन : दिया और फरमाया कि इस आईन : में तू सब का दिल देख और जो इन्सान तुम्हको तेरी हालत से ज्यादा : खुश मालूम हो उसका नाम बतला कि तेरी हालत वैसी ही कर दी जावे । इस शख्स ने एक एक के दिल का इम्तिहान किया और ज्यों ज्यों ज्यादा : रुतवे के आदमियों का दिल देखा गया त्यों त्यों ज्यादा : तर तकलीफों से घेरा हुआ पाया । यहाँ तक कि जब बादशाह के दिल के देखने की नौबत आई तब उस आईन : में सिधाय काले दागों के कुछ न बचा और उसने घबरा कर आईने को दरिया में फेंक दिया और अपनी असली हालत पर खुदा का शुक्र किया । इस कहने से मेरा यह मतलब नहीं है कि आदमी अपने हौसलों को पस्त करदे और कहे पादशाह होना न चाहिए बल्कि हमेशा : अपने हौसले को बढ़ा कर कामयाब होता रहे मगर बाद कामयाबी के अपनी हालत ऐसी न

परेशान रखे जिससे अपनी कोशिशों का शुद्ध भोगने के बदले उसे रात दिन दुख उठाना पड़े हमेशा : हुकुमा जब अमीरों से उन के तरद्दुदात की शिजायन करते हैं तो उनको रहम की नज़र से देखने हैं मगर वे उमरा अपने से छोटे दर्जे वालों को कभी रहम की नज़र से नहीं देखते बल्कि हिकारत की । इसका यही सबब है कि उलमा अपनी कोशिश से कामयाब होकर खुशी के दर्जे को पहुँच गये हैं और किसी किस्म के तरद्दुद बाकी न रहने से वह दूसरों की मदद में अपने औकात सर्फ कर सकते हैं । बरखिलाफ इसको उमरा अपनी कोशिशों की नाकामयाबी से दूसरों पर हमेशा हसद किया करते हैं । मतवे का खासफायदा ऊँचा होसला और बड़ी बड़ी खुशियों में शामिल रहने का खयाल है और यह वह खुशियाँ हैं जो हर हालत में एक सूँ रहती हैं । और इन खुशियों का नतीजा यह होता है कि आसूदः लोग अपने क़ौम बतन और दुनिया की तरक्की की तदबीर के होसले का मोक़ा पाते हैं । बरखिलाफ इस के हेवानी खुशी के जोर्वा उमरा आपस में दुश्मनी बढ़ाये, हसद फैलाये वगैर हज़ ज़िंदगी उठाये अपनी ज़िंदगी मुफ्त बरबाद करते हैं ।

मेरे ऊपर के बयान से आप लोगों पर जाहिर हो गया होगा कि खुशी इमारत पर मुस्तसना नहीं बल्कि एक खुदावाद चीज़ है । अब मैं बयान करता हूँ कि खुशी किस चीज़ में है । अब उनकी हासिल करने की और बादह उसके कायम रखने की तदबीर सोचनी ज़रूर हुई । खुशी हासिल करने का तरीका जानने के लिये सबके पहिले लियाक़त की ज़रूरत है ! बहुत सी ऐसी हालतें हैं जिनमें खुशी हासिल करने की कोशिश की जाती है मगर उसका नतीजा उलटा होता है और अकसर रंज के मौकों में यकायक खुशी हासिल हो जाती है इसी से खुशी हासिल करने की खास तदबीरों का बयान करना मुश्किल है । सिर्फ अपनी हाज़तों को पूरा करना खुशी नहीं कही जा सकती क्योंकि बहुत सी हाज़तें ऐसी होती हैं जो महज ग़लत बसूलों पर कायम होते हैं । अकसर उलमा का कौल है कि खुशी मुहब्बत में है । दुनिया में खुदा ने मुहब्बत के सजावार भाई, जोरू, लड़के, रिश्तःदार और दोस्त वगैरह : बहुतेरे बनाए हैं । अकसर इन लोगों की अदममौजूदगी में खुशी न हासिल होने से लोग फकीर हो जाते हैं या दुनिया में रहते हैं तो परेशान रहते हैं । चंद लोग दूसरों की हाज़त रफ़ा करने को खुशी कहते हैं क्योंकि दूसरे लोग खुशी हासिल करने को जो कोशिश करते हैं उन को अपनी कोशिश में कामयाब बनाकर खुश कर देना गोया उनकी खुशी में शरीक होना है

बाज़ उलमा खुशी हासिल करने की कोशिश ही को खुशी कहते हैं मगर इस में मुश्किल यह है कि पहिले से उस कोशिश के अखीर नतीजे की कामयाबी को बखूबी जाँच कर लेना चाहिए । दूसरे जब तक कि उस काम का अंज़ाम बखूबी न हो जाय बराबर मुस्तअदी की भी ज़रूरत है । पैली का कौल है कि खुशी जितनी अपने इरादों की मजबूती में है उतनी सिर्फ खयालाल और कोशिश में नहीं ! इस कौल की तसदीक बहुत साफ है ! जो अपने इरादों पर मजबूत है वह हमेशा : अपनी कामयाबी को अपनी आँखों के सामने देखता है और अगर ऐसा शख्स अपना काम पूरा किये हुए भी मर जाय तो उसको वही खुशी हासिल रहेगी जो कि कामयाबी पर हो सकती थी । वही मजबूत की खुशी हासिल करने के वास्ते काम के पीछे लगे रहना निहायत ज़रूर है ख्वाह वह अपने फायदे के वास्ते हों या आम फायदे के वास्ते हों । अक्लामंद लोग इसी काम में लगे रहने को दिल्लगी कहते हैं और यह वह दिल्लगी है जो आदमियों को अपने इरादों पर कामयाब करके खुशी ही नहीं बख़्शाती है बल्कि रूहानी व जिस्मानी सिहत को भी कायम रखती है ।

इन में खुशी के चंद वसीलों ऐसे हैं जिन का असर आदमी अपनी मौत के बाद भी छोड़ जा सकता है मसलान् मुल्की . . . की जमाअतो का कायम करना, स्कूल और शफाखानों की बुनियाद डालना वगैर : वगैर : ।

जाती फायदों की खुशी भी बाज़ हालत में आदमी के मरने के बाद भी कायम रह सकती है मसलान् अपने खान्दान के खुद व नोश की सूरत बेखलिश कायम कर जाना । किसी काम की तरफ मजबूती से दिल लगाने में एक फायदा यह भी है कि बीच में छोटी छोटी तकलीफें जो इत्तिफाक से सरजद होती हैं उन को आदमी अपनी होनहार खुशी की धुन में बिल्कुल खयाल में नहीं लाता ।

खुशी की एक उमदः हालत यह भी है कि अपनी बुरी आदत को बदल देना । वह आदमी कैसा खुश होगा जब वह अपने को बुरी आदत से छूटा हुआ देखेगा ।

बहुत से लोग गैर मामूली स्वादिशों के पूरे होने को खुशी कहते हैं जैसा कि जो शख्स हमेशा : तनहाई में रहता है उसे अगर दोस्तों की सुहवत नसीब होती है तो उसको गनीमत जानता है । मगर कोशिश कुनिन्द : को ऐसे मौकअ में वनिस्वत सुस्त लोगों के ऐसे हालत में भी ज्यादा : खुशी हासिल होती है । मसलान् जो फिलासफी की बड़ी बड़ी किताबों के पढ़ने में हमेशा : अपना वक्त सर्फ करता है उसे अगर छोटी मोटी कोई किस्से की किताब मिल जाय तो वह बड़ी खुशी से पढ़ेगा बरखिलाफ इस के जो हमेशा : किस्से कहानियों से जी वहलता है उर को अगर फिलासफी की किताब दे दी जाय तो उसका जी उलभेगा और वह उसे फेंक देगा ।

गैर मामूली खुशी अमीरों पर भी असर करती है । मसलान् किसी अमीर की सालाना आमदनी हजार रुपया है मगर किसी साल इत्तिफाक से दस या बारह आ जावें तो, उस को खुशी हासिल होगी । यही मिशाल इस बात की दलील है कि अगरचे दौलतमंदी खुशी की मूजिब है मगर उस में भी तरक्की ज्यादा : खुशी देती है ।

खुशी का एक बड़ा भारी सबब तंदुरुस्ती भी है और यह तंदुरुस्ती तब ही दुरुस्त रह सकती है जब आदमी रुहानी या जिस्मानी तकलीफ से बच सकता है । खुशी है वह जिस का बदन बलगम या रीह या चरबी से नहीं तैयार है । बल्कि किसी किस्म की तकलीफ न होने की आसुदगी से तैयार है । मगर यह खयाल जुहर है कि यह तंदुरुस्ती उस किस्म की बेफिक्री से न पैदा हो जिससे कि तमाम कोशिश और हौसले पस्त हो जाय जैसा कि हमारे हज़रत बनारस की खुशी है ।

हम पहिले कह चुके हैं कि सच्ची खुशी के लिये लियाकत की जुहूरत है मगर इस लियाकत के साथ दुनियवी तहजीब और दीनी ईमानदारी की भी निहायत जुहूरत है । अक्सर लोगों को बहुत सी ऐसी बातों में खुशी हासिल होती है जो दर हकीकत ईमान, तहजीब, आकबत, आबरू, बल्कि जान, माल और जिस्मी आराम को भी गारत करनेवाले होते हैं । तो क्या हम ऐसी खुशी को भी अस्ली खुशी कहेंगे ? मसलान् मूजी को ईजारसानी में बदकार को बदी में, किमार बाज़ को जुए में और ऐसे ही बहुत सी बातों में खुशी मान ली जाती है जो हिकमतन्, शरहन् और यकीनन, हर सूरत से सिवाय जरर के फायदा नहीं पहुँचाती । इस सूरत में तो बल्कि यह सोचना लाजिम आता है कि ऐसी खुशियों के नजदेक भी न जाय क्योंकि जब कोई शय तुम्हारी अल्क पर गालिब आ जाय तो तुम नशे के आलम की तरह, अपने हवास पर काबू न रख कर भूठी खुशी की तलाश में जाहिरी लज्जत के धोखे से जहर का प्याला पी जाओगे । हकीकी खुशी वही है जिसका अंजाम व आगाज दोनों खुश हैं । अस्ली खुशी सुफहए दिल से रंज का नाम यककलम हटा देती है और तमाम जिस्म को, हवा से खम्स : को और जान को ऐसी राहत देती है कि उस हालत महवीयत में उसी सामाने खुशी की निस्वत हर लहज : में दिल की नई नई उलाफतें और नए नए शौक पैदा करता है । इस कैफियत का ठीक ठीक जाहिर करना जवान की कृष्यत से बाहर है इससे तजरिब : कार लोगों के कयास ही पर छोड़ दिया जाता है ।

पेली ने लिखा है कि खुशी तहजीब वाकिय : जमाअतों की मुतफरिफ लोगों में करीब करीब बराबर हिस्सों में बाँटी है और इसी से बुराई करने वाला हमेशा : बमुकाबल : ईमानदार दुनियवी खुशी से भी महरूम रहता है, खुशी से गम को अलाहिद : करने के लिए एक खास किस्म की लियाकत की जुहूरत होती है जो हर शख्स में नहीं पाई जाती इसी से खालिस खुशी का लुत्फ हर शख्स को नसीब नहीं होता । दुनिया में तकलीफ भी जब अपनी हद को पहुँचती है खुशी का मजा चखाती है । जब आदमी पर हद से ज्यादा : जुलम होता है या हालत सकरात पहुँचती है तब नई खुशी से बदल जाता है और यही सबब है कि आदमी जितना छोटी छोटी तकलीफों से तंग आता है उतना बड़ी तकलीफ से नहीं घबराता । सच्चे आशिकों की हिजरत की तकलीफ जब हद से ज्यादा : बढ़ जाती है तब फिराक में वस्ल से ज्यादा : मजा मिलता है । सुई गड़ने में जो तकलीफ होती है वह बल्कि नहीं बरदाश्त होती मगर जंग में मुतवातिर चोटों को आदमी बेतकलीफ बरदाश्त कर सकता है । अफरीक : के मशहूर सेयाह डाक्टर ल्यूगंशटन (लिविंग्स्टोन) ने लिखा है जब वह बेर के जंगल में फँस गए थे तो उनको मायूसी के साथ एक किस्म की खुशी हुई थी । इसी तरह अक्सर मौत शदीद के वक्त लोग खुश पाये गये हैं । इसका सबब यह है कि जब आदमी की हालत बिल्कुल ना उमैदी को पहुँचाती है तो उस तकलीफ का खौफ का बाकी नहीं रहता मसलान् जब तक आदमी को जीस्त की उम्मेद है, उसका मौत का खौफ रहेगा मगर जिस वक्त कि जीस्त की उम्मेद बिल्कुल मुनकतअ हो गई फिर उसको किस बात का खौफ रहा । यही सबब

हे कि हिंदू शास्त्रकारों ने खोफ और रंज की असली हालत को भी एक रस माना है और जाहिर है कि ट्राजिडी यानी ऐसे तमाशे जिन का आखिर हिस्सा बिल्कुल रंज भरा हो देखने में एक अजीब किस्म का लुत्फ देती है बल्कि ट्राजिडी में जैसी उम्मा कितानें लिखी गई हैं वैसी कामेडी में नहीं। जिस तरह रंज की आखिरी हालत खुशी से बदल जाती है उसी तरह खुशी की भी आखिरी हालत रंज से बदल जाती है और इसी से ज्यादा : खुशी के वक्त लोग शिद्वत से रोने हुए पाये गये हैं। खुलासा कलाम यह कि इस किस्म की बहुत सी खुशियाँ दुनिया में हैं जिनको हम खालिस खुशी नहीं कह सकते।

अब हम इस बात पर गौर किया चाहते हैं कि वह असली खुशी हिंदुओं को क्यों नहीं हासिल होती क्योंकि जब हम इसी खुशी को अपनी पूरी बलादी की हद पर हर सूरत से कामिल देखना चाहते हैं तो हमेशा : गैर कौमों में पाते हैं। इसकी जाहिर वजूहात जो मालूम होती हैं उनमें सब से पहिला सबब हिंदुओं के दीनी व दुनियावी तरीकों का आपस में मिला जाना और तनज्जुली के जमाने के कम बेश फाजिलों का इहकाम शरओ में दखल दर माकूलात करना है जिन के कलाम पर अपने अपनी नातजरिबकारी से पूरा अमल कर दिया है। इन फुजला ने अपनी कम हिम्मत की वजह से ऐसे कायदे जारी किये जिनसे आखिरकार हम लोगों की यह तर्स के लायक हालत पहुँची कि हम लोग उस खुशी को जो फी जमाना गैर कौमों को हासिल है कभी ख्वाबोखयाल में भी नहीं ला सकते। इन फिलासफ़ों के फिलासफी का इत्र निकाल कर जिन बातों को हमारे आराम के लिये जरूरी बल्कि हमारी नजात का मूजिब ठहराया है वे अगर इस नजर से देखे जावें जिससे हम खुशी को अब असली हालत पर गैर कौमों में बतलाते हैं तो साफ जाहिर होगा कि इन्हीं की तअलीम का यह फल है कि परमेश्वर ने इन बेचारे हिंदुओं को इस सच्ची खुशी से महरूम रख कर इसके हिस्से से अपनी एक दूसरी प्यारी खिलकत की गोद भर दी है जहाँ कि हर एक की उम्र का जाम खुशी से लबालब नजर आता है, इन कदीम जमाने के फिलासफ़ों के असूल की बहस बहुत तूल है और इसी तरह उस्को सिलसिलेवार दलीलों से रद करने के लिये भी बड़ी गुंजाइश चाहिये इस लिये यहाँ सिर्फ उन पुराने खयालों का खुलासा दिखलाया जाता है कि किस तरीके पर उन्होंने अपनी उस अनोखी खुशी की बुनियाद कायम की है और वह इस तरक्कीयाफ्त : जमाने के आकिलों के कौलों फेअल के नजदीक कितनी हेच है।

इन उलमा की खुशी का पहिला तरीका सन्तोष यानी कनाअत है। उन्होंने अपनी पेचीद : इबारत के बेमानी मजमून में जिसका हर फिकरा अब हदीस गिना जाता है आखिर को यह साबित किया है कि खुशी व रंज दोनों गलत और बहम हैं यानी रंज और राहत से अलहद : वह हालत जिस में अक्ल, ख्याल, हवास और इरकत (शायद सकते की बीमारी की हालत) जब सलफ हों जावें वही परमानंद है और वही खुशी का असलुलवसूल और लुब्बे लबाब है। आदमी को इस हालत तक पहुँचने के लिये उन लोगों ने चंद कायदे भी इजाद फरमाये हैं जिन में अब्बल उनके कलाम पर बिला हुज्जत यकीन लाना हरिंज हरिंज दलील और अक्ल को दखल न देना। दूसरे उसी गारतगर सन्तोष को इख्त्यार करना और ख्वाहिश व हाजतों को दिल में पैदा न होने देना। तीसरे सब कुछ बरदाश्त कर लेना और रंज और राहत को एक अम्रे तकदीरी समझ कर दमबखुद रहना। चौथे नेक और बंद में तमीज न करना और भला बुरा सबको एक सा समझना। पाँचवे (मुआज अल्लाह) खालिक और मखलूक न समझना।

जाहिर है कि पहिले कायदे पर अमल करने ही से अक्ल पर जवाल आया और फायद : व नुकसान का खयाल जाता रहा। उन्हीं आँखों को अपने हाथ से फोड़कर बहकते बहकते उस अधे कुएँ में जा पड़े जिस में परमेश्वर ही हाथ पकड़ कर निकाले तो निकलना मुमकिन है। दूसरे कायदे की इख्तियार करते ही नामर्दों छा गई काहिली बढ़ने से हिम्मत बहादुरी और हौसले का नाम ही न बाकी रहा फौरन बेबस हो कर जमाने के हेरेफेर के मुताबिक हमेशा : के वास्ते अपने मुल्क को गैर कौम की नज़र कर आप परमानन्द की मूरत बन बैठे। गौर का मुकाम है कि जब ख्वाहिश और हाजत न होगी तब आदमी को किसी शय से तअल्लुक बाकी न रहेगा जिसके हासिल होने या कायम रहने को हम तअल्लुक बाकी न रहेगा जिस के हासिल होने या कायम रहने को हम खुशीका मूजिब कहें। आसूदगी को एक मौकअ तक कौन न पसंद करेगा क्योंकि बकदर ख्वाहिश उस के हासिल होने पर जब तक हम ऐसी नई ख्वाहिश न पैदा करें जिस के पूरे करने का जरिय : पहिले से सोच लिया हो यह जरूर है कि हम पहिली ख्वाहिश पर कामयाब होने का मजा हासिल करने के लिये आसूदगी इख्तियार

करें। सिवाय इसके आसूदगी से यह मुराद नहीं है कि हमारी भूख जाती रहे और हमको हर रोज ताजा खाना खाने की ज़रूरत न बाकी रहे। जब हम खाना खा चुकते हैं वेशक आसूदगी हासिल करते हैं मगर फिर मेहनत वगैरः से भूख बढ़ा कर खाने का नया शौक पैदा करते हैं। उसी तरह जितना हमारा इल्म बढ़ता जाता है और खुशी के नये नये सामान नज़र आते हैं उतना ही हमारी आदमीयत पर फर्क होता है कि अगर हम अपनी हालत का बेहतर होना न पसन्द करें तो भी अपनी जमाअत की हाज़त रफ़ा करने के खयाल से उस सामान के मुहैया करने की तदवीर से बाज़ न आवें। बल्कि जिस हालत में किसी ऐसी आफ़त नागहानी से हम पर कोई सदमा ऐसा सख्त हाथल होता है कि जिससे दिल पस्त और वे हौसल : हो जाता है और हरगिज़ किसी ख्वादिश के पैदा करने या उसके बढ़ाने में खुशी नहीं दिखलाती उस वक़्त भी अगर इस कंबख़्त संतोष का गुज़र न हुआ होय तो दूसरों को खुशी पहुँचाने से इंसान खुशी हासिल कर सकता है। क्योंकि हिकमत से यह साबित है कि खुशी का बदला खुशी और रंज का बदला रंज मिलता है। यह बात ज़ाहिर है कि तरक्की और कनाअत से ज़िद है और जब तरक्की मौकूफ हुई तो ज़माना ज़ुरूर तनज़ुली पहुँचाएगा।

जब हम देखते हैं कि हमारे हर चहार तरफ़ हर कौम के लोग बाजी लगा लगा कर और ज़ान लड़ा कर दौड़ रहे हैं और अपनी-२ मुस्तअदी और क़वत के ज़ोर से तरक्की के चुकचे लूट कर मालामाल हुए जाते हैं तब किस तरह दिल कुबूल कर सकता है कि हम कनाअत के टुकड़े तोड़ कर पेट भरें और मुहताज़ी के जहन्नुम को खुशी से कुबूल करें। अलवत्तः ज़ावारी की हालत में सब उस वक़्त तक काम दे सकता है कि जब तक हम अपनी हालत बदलने की दूसरी सूरत न पैदा कर सकें। तीसरे कायदे की निसबत यह कहना है कि सख्ती के बरदास्त करने की आदत उसी कनाअत से दिल बुझे जाने और पित्ता मर जाने के बाद ख़ुद बख़ुद पैदा होती है, उस वक़्त गैरत जो इंसान को हैवान से अलहद : करनेवाली चीज़ है गुम हो जाती है और जब यह इंसान का उमद : ज़ेवर खो गया तो खुशी का सिर्फ़ नाम याद रह सकता है। बरदाश्त सिर्फ़ दुश्मन की ताकत घटा कर हिकमतें अमली से उस पर ग़ालिब आने का मौक़ह पाने के लिये है न कि हमेशः के लिए गुलामी इस्तियार करने के। चौथे कायदे की तअलीम में खुशी और रंज का फ़र्क ही न बाकी रक्खा कि एक के हासिल करने और दूसरे के रफ़ा करने की ज़रूरत होती। उस अनूठे कारीगर ने अपने कारीगरी की बारीकी जानने के लिये जो कुछ हमें तमीज़ बख़्शा है उससे हम दम पर दम नए तिलस्मात का भेद जानते जाते हैं जिस से हमारे दिल का अँधेरा ख़ुद बख़ुद दूर होता है और हमारी आँखों के सामने वह बातें दिखलाई पड़ती हैं जिस के वगैर हम किसी चीज़ की पूरी पूरी कद्र नहीं कर सकते, ज़ाहिर है कि जब हम कद्र ही नहीं कर सकते तो हम न उसके हासिल होने की ख्वादिश होगी न हासिल होने पर खुशी होगी। हर शख्स इसकी वजह ख़ुद दरयाफ़्त कर सकता है कि तमीज़ के साथ खुशी की तअदाद बढ़ती है बल्कि मुख्तलिफ़ हुक़मा इस बात पर बहस करते हैं और खुशो ज़ानकारी है या अनज़ानपन। एक का कौल है कि इल्म ही खुशी का मूजिब है क्योंकि अपनी ख्वादिश और उस के पूरे होने की कद्र आदमी इल्म से करता है बरखिलाफ़ इसके दूसरा आलिम कहता है कि ज़ानकारी ही से ख्वादिश बढ़ती है और आदमी अपनी हशमत् मौजूद : को कम समझता है। खैर इस बहस का ज़वाब और मौक़ा पर मौजूद है। इस वक़्त इस कहने से मतलब यही है कि हर हालत में वे तमीज़ को खुशी की कद्र नहीं मालूम हो सकती क्योंकि वह अपनी ग़लती नहीं पहचान सकता और इसी से वाकिफ़कारी के फायदों को नहीं उठाता जिस पर कि खुशी का घटना बढ़ना मौजूद है।

पाँचवें कायदे की निसबत हम इतना ही कह सकते हैं कि इस शैतानी खयाल से सख्त मुसीबत, इतिहा की आज़िजी और मायूसी की हालत में जब कि किसी सूरत में तस्कीन नहीं होती और खुशी का नाम भी ज़बान से नहीं निकल सकता उस वक़्त बंदों के वास्ते एक आखिरी दरवाज़ा फ़र्याद का जो खुला था वह भी बन्द कर दिया गया। तमाम उम्र देखा कि ये कि कमी दो मुख्तलिफ़ जुज़ एक नहीं हुए मगर इन विल्लीगीबाजों ने यकीन करा ही दिया कि कोहार और खिलौना एक ही चीज़ है पर और के तज़रिब : और आदमी की बनावट की ख़ासियत को बख़ूबी मालूम करने से मालूम होता है कि हमारी ज़िन्दगी का कड़ुआ प्याला उसकी याद के आबहयात के दो चार कतरे शामिल किए वगैर किसी ख़ालिश खुशी से शीरी किया नहीं जा सकता मगर जब याद और यादकुनिदा ही बाकी न रहा तो फकत इस ज़िन्दगी के नतीजे ही रह गए। खैर इस तूल कलामी से कुछ हासिल नहीं अब सिर्फ़ इतना दिखलाना और बाकी है कि उन कौमों में जिनको परमेश्वर ने अस्ली खुशी

हासिल करने का शऊर और मनसब बख्श है हिंदुओं के बरखिलाफ जाहिरा क्या फर्क है । कौमियत का गम, अपने तरक्की की कोशिश, बेतकलुफी आवादी, इल्म और हुनर सीखने का खान्दानी रिवाज, बे हुनरी और काहिली और एहसान उठाने की शर्म, मुस्तअदी, दिलैरी, सिपडगिरी का शौक, फनूने की चाह, बे गरज बेस्ती और उसकी शर्तों की पाबन्दी, महजीब की कैद, सफाई, कद्रबानी, खुदा का खौफ और मजहब का रस्म और दूरदेशी के सिवाय खुशी को बुनयाद, औरतों की लियाकत और इरादे, ऐसी ही बहुत सी बातें हैं जो उन कौमों को खुदा ने बख्शीं और हम उन से महरूम हैं । खुशी तो इन सिल्लों की गुलाम है मुमुकिन है कि जहाँ यह सिल्लें मौजूद हों खुशी खुद बखुद बस्त : न हाजिर हो । मगर बरखिलाफ इस के हमारे पास जो सामान है रोज के हैं यानी बे इस्तिवारी, दीनी और दुनियावी कायदे का एक होना, ना तजरिब : कार बुजुर्गों की बात पर अमल करना, मजहब के उन फुजूल उकायद की पाबन्दी जिन से दर हकीकत मजहब से कोई इलाका नहीं है, अपने इसब व नसब का भूल जाना, हमदर्दी का दिल से गुम होने तरीक : तालीम के थसूलों का पस्त होना, अपनी पाबन्दीयों से मुल्क की आबोहवा को बिगाड़ कर तंदरुस्ता में फर्क डालना, तकलीफ ही को सवाब और आराम का पूजित समझना, दीनत का हमेशा : बाहर जाना और कार के उम्द : वसीलों का जाय : होना, मुख्तलिफ मजहब की पाबंदी से दिलों का न होना । एक और सबसे बड़ी बात उस परमेश्वर का हम लोगों से नाराज रहना । ऐसी ही बहुत सी बातें हैं जिन से हम हिंदुओं को अब ख्वाब में भी खुशी नसीब नहीं है कि जिन में से एक एक तहकीकात और बयान के वास्ते अलग अलग किताबें लिखी जायें तो भी काफी न हो ।



जातीय-संगीत

मई, सन् १८७९ में “कविवचन सुधा” में इस लेख का विज्ञापन छपा था। इससे भारतेन्दु बाबू की लोक व्यापी दृष्टि और सामान्य जन से उनका लगाव सहज ही मालूम पड़ता है। इस लेख से लगता है कि सबसे पहले ग्राम गीतों का महत्व भारतेन्दु जी ने ही समझा था और वे लोक गीतों को समाज सुधार का अच्छा माध्यम समझते थे।

— सं.

भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किंतु वे जनसाधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके हेतु मैंने यह सोचा कि जातीय संगीत की छोटी छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश गाँव गाँव, मे साधारण लोगों में प्रचार की जायें। यह सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना ग्रामगीत शीघ्र फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता। इससे साधारण लोगों के चित्त पर भी इन बातों का अंकुर जमाने को इस प्रकार से जो संगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ संस्कार बदल जाने की आशा है। इसी हेतु मेरी इच्छा है कि मैं ऐसे ऐसे गीतों को संग्रह करूँ और उनको छोटी छोटी पुस्तकों में मुद्रित करूँ। इस विषय में मैं, जिनको जिनको कुछ भी रचनाशक्ति है, उनसे सहायता चाहता हूँ कि वे लोग भी इस विषय पर गीत वा छंद बनाकर स्वतंत्र प्रकाश करें या मेरे पास भेज दें, मैं उनको प्रकाश करूँगा और सब लोग अपनी मंडली में गानेवालों को वह पुस्तक दें। जो लोग धनिक हैं वह नियम करें कि जो गुणी इन गीतों को गावेगा उसी का वे लोग गाना सुनैंगे। स्त्रियों की भी ऐसे ही गीतों पर रुचि बढ़ाई जाय और उनको ऐसे गीतों के गाने का अभिनंदन किया जाय। ऐसी पुस्तकें या बिना मूल्य वितरण की जायें या इनका मूल्य अति स्वल्प रखवा जाय। जिन लोगों को ग्रामीणों से संबंध है वे गाँव में ऐसी पुस्तकें भेज दें। जहाँ कहीं ऐसे गीत सुनै उसका अभिनंदन करै इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे छोटे छंदों में और साधारण भाषा में बनें वरंच गवारी भाषाओं में और स्त्रियों की भाषा में विशेष हों। कजली, ठुमरी, खेमटा, कंहरवा, अद्दा, चैती, होली, साँझी, लंजे, लावनी, जाँत के गीत, बिरहा, चनेनी, गजल इत्यादि ग्रामगीतों में इनका प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो, अर्थात् पंजाब में पंजाबी, बुंदेलखंड में बुंदेलखंडी, बिहार में बिहारी, ऐसे जिन देशों में जिन भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बनें। उत्साही लोग इसमें जो बनाने की शक्ति रखते हैं वे बनावें, जो छापने की शक्ति रखते हैं वे छपवा दें और जो प्रचार की शक्ति रखते हैं वे प्रचार करें। मुझसे जहाँ तक हो सकेगा मैं भी करूँगा। जो गीत मेरे पास आवेंगे उनको मैं यथाशक्ति प्रचार करूँगा। इससे सब लोगों के निवेदन है कि गीतादिक भेजकर मेरी इस विषय में सहायता करै और यह विषय प्रचार के योग्य है कि नहीं और इसका प्रचार सुलभ रीति से कैसे हो सकता है इस विषय में प्रकाश करके अनुगृहीत करेंगे। मैंने ऐसी पुस्तकों के हेतु नीचे लिखे हुए विषय चुने हैं। इनमें और भी जिन विषयों की आवश्यकता हो लिखें। ऐसे गीतों में रोचक बातें जो स्त्रियों और गंधारों को अच्छी लगे होना चाहिए और

शृंगार, हास्य आदि रस इसमें मिले रहें जिसमें इनका प्रचार सहज में हो जाय ।

बाल्य विवाह — इसमें स्त्री का बालक पति होने का दुःख, फिर परस्पर मन न मिलने का वर्णन, उससे अनेक भावी अमंगल और अप्रीतिजनक परिणाम ।

जन्मपत्री की विधि — इससे बिना मन मिले स्त्री-पुरुष का विवाह और इसकी अशास्त्रता ।

बालकों की शिक्षा — इसकी आवश्यकता, प्रणाली, शिष्टाचारशिक्षा, व्यवहार-शिक्षा आदि ।

बालकों से बर्ताव — इसमें बालकों के योग्य रीति पर बर्ताव न करने में उनका नाश होना ।

अंगरेजी फैशन — इससे बिगड़कर बालकों का मद्यादि सेवन और स्वधर्म विस्मरण ।

स्वधर्मचिन्ता — इसकी आवश्यकता ।

भ्रूणहत्या और शिशुहत्या — इसके प्रचार के कारण, उसके मिटाने के उपाय ।

फूट और वैर — इसके दुर्गुण, इसके कारण भारत की क्या-क्या हानि हुई इसका वर्णन ।

मैत्री और ऐक्य — इसके बढ़ने के उपाय, इसके शुभ फल ।

बहुजातित्व और बहुभक्तित्व — के दोष, इससे परस्पर चित्त का न मिलना, इसी से एक का दूसरे के सहाय में असमर्थ होना ।

योग्यता — अर्थात् केवल वाणी का विस्तार न करके सब कामों के करने की योग्यता पहुँचाना और उदाहरण दिखलाने का विषय ।

पूर्वज आर्यों की स्तुति — इसमें उनके शौर्य, औदार्य, सत्य, चानुर्य, विद्यादि गुणों का वर्णन ।

जन्मभूमि — इससे स्नेह और इसके सुधारने की आवश्यकता का वर्णन ।

आलस्य और संतोष — इनकी संसार के विषय में निंदा और इससे हानि ।

व्यापार की उन्नति — इसकी आवश्यकता और उपाय ।

नशा — इसकी निंदा इत्यादि ।

अदालत — इसमें रुपया व्यय करके नाश होना और आपस में न समझने का परिणाम ।

हिंदुस्तान की वस्तु हिंदुस्तानियों को व्यवहार करना — इसकी आवश्यकता, इसके गुण, इसके न होने से हानि का वर्णन ।

भारतवर्ष के दुर्भाग्य का वर्णन — करुणा रस संबलित ।

ऐसे ही और विषय जिनमें देश की उन्नति की संभावना हो लिए जायें । यद्यपि यह एक एक विषय एक एक नाटक, उपन्यास वा काव्य आदि के ग्रंथ बनाने के योग्य हैं और इनपर अलग ग्रंथ बनें तो बड़ी ही उत्तम बात है, पर यहाँ तो इन विषयों के छोटे छोटे सरल देशभाषा में गीत और छंदों की आवश्यकता है जो पृथक पुस्तकाकार मुद्रित होकर साधारण जनों में फैलाए जायेंगे । मैं आशा करता हूँ कि इस विषय की समालोचना करके और पत्रों के संपादक महोदयगण मेरी अवश्य सहायता करेंगे और उत्साही जन ऐसी पुस्तकों का प्रचार करेंगे ।



लेवी प्राण लेवी

कविचचन सुधा सं. २ नं. ५ कार्तिक शुक्ल १५ सवत् १९२७ (१८७०) में प्रकाशित । १८७० में श्रीयुत लार्ड म्यो साहब जब काशी पधारे तब वहाँ पर एक लेवी दरबार हुआ था । उसी समय "कविचचन सुधा" में उस दरबार के संबंध में यह लेख छपा । इसी लेख के कारण भारतेन्दु की सरकार का कोपभाजन भी बनना पड़ा ।

—सं.

श्री युत लार्ड म्यो साहब बहादुर गवर्नर जनरल हिंद ने काशी में १ नवम्बर को एक "लेवी" का दरबार किया था । यद्यपि 'दरबार' और 'लेवी' में बहुत भेद है पर यह 'लेवी' और 'दरबार' दोनों के बीच की अपूर्व वस्तु थी । श्री मन्महाराजधिराज काशिराज को कोठी में इस 'लेवी' के हेतु एक डेरा दल बादल खड़ा किया गया था । जो सूर्य नारायण और श्रीयुत लार्ड साहब के तेज और प्रताप परम सुशीतल खसखाने की भाँति हो गया था और गरमी भी मारे गरमी के इसी खसखाने में आ छिपी थी, डेरे के बीच में बँदवा के नीचे एक सोने की कुरसी घरी थी । नाम लिखने वाले मुंशी बट्टीनाथ फूले फाले अब पहिने पगड़ी सजे पुराने बादुर की भाँति इधर उधर उछलते और शब्द करते फिरते थे और बाबू भी जैसे ही छोटे तेंतुए बनने गरज रहे थे । पहिले लोगोंने यह प्रगट किया कि जूता पहिन कर जाने की आज्ञा नहीं है । फिर कोलाहल हुआ कि चाहो जैसे आओ तिस पर भी शाहजादों के अतिरिक्त केवल चार रईस जूता पहिरे हुए थे । इतने में बंगाली बाबू सबका नंबर लगाने लगे और पंडितों को दक्षिणा बटने वाली सभा की एक एक का नाम लेकर पुकार के बल्लमटेर की पल्टन की चाल से सबको खड़ा कर दिया । बनारस के रईस भी कठपुतली बने हुए उसी गत नाचते रहे । जब खड़े खड़े बड़ी देर हुई और पैर टूटने लगे और इस तपस्या पर भी श्रीयुत लार्ड साहब के दर्शन न हुए तब राय नारायण दास आनरेरी मजिस्ट्रेट डौलदार की भाँति बोल उठे "सिट डौन" (बैठ जाओ) । सब लोग खड़े खड़े थक तो गए ही थे मुँह के बूझ बैठ गये परंतु राय साहब को यह 'कवायद' कराना तभी अच्छा लगता जब उनके हाथ में एक लकड़ी भी होती । लार्ड साहब की 'लेवी' समझ कर कपड़े भी सब लोग अच्छे अच्छे पहिन कर आए थे पर वे सब उस गरमी में बड़े दुखदाई हो गए । जामे वाले गरमी के मारे जामे के बाहर हुए जाते थे, पगड़ीवालों को पगड़ी सिर का बोझ सी हो रही थी और दुशाले और कमखाब की चपकन वालों को गरमी ने अच्छी भाँति जीत रक्खा था । सबके अंगों से पसीने की नदी बहती थी मानों श्रीयुत को सब लोग आदर से "अर्घ्य पाद्य" देते थे । कोई खड़ा हो जाता था तो कोई बैठा ही रह जाता था कोई घबड़ा कर डेरे के बाहर घूमने चला जाता था कि इतने में कोलाहल हुआ "लार्ड साहब आते हैं" । रायनारायण दास साहब ने फिर अपने मुख को खोला 'स्टैंड अप' (खड़े हो जाव) । सब के सब एक साथ खड़े हो गए । राय साहब का 'सिट डौन कहना' तो सबको अच्छा लगा पर "स्टैंड-अप" कहना तो सबको बुरा लगा मानों मले बुरे का फल देने वाले राय साहब ही थे । इतने में फिर कुछ आने में देर हुई और फिर सब लोग बैठ गये । वाह वाह दरबार क्या था "कठपुतली का तमाशा" था या बल्लमटेरों की 'कवायद' थी या बंदरों का नाच था या किसी पाप का फल भुगतना था या 'फौजदारी की सजा थी' । बैठने देर न हुई थी कि श्रीयुत लार्ड साहब आये फिर सबके सब उठ खड़े हुए । श्रीमान् के संग श्री काशीराज और उनके चिरजीव बीच में खड़े हो गये । उनकी दाहिनी ओर श्री काशीराज और उनके राजकुमार शोभित हुए । पहिले तैमूर के वंशवालों की मुलाकात हुई फिर महाराज विजयानगरम् और उनके कुँआर की । इसी भाँति सब लोगों का नाम बोलते गए और सलाम होती गई । श्री महाराज विजयानगर भी बाई ओर खड़े हो गए थे । जब सब लोगों की हाजिरी हो चुकी श्रीयुत लार्ड साहब कोठी पधारे और सब लोग इस बंदीगृह से छूट छूटकर अपने अपने घर आए । रईसों के नंबर की यही दशा थी कि आगे के पीछे और पीछे के आगे अंधेरनगरी हो रही थी । बनारस वालों को न इस बात का ध्यान कभी रहा है और न रहेगा । ये विचारे तो मोम की नाक हैं चाहे जिधर फेर दो, हाथ — पश्चिमोत्तर देश वासी कब कायरपन छोड़ेंगे और कब इनकी उन्नति होगी और कब इनका परमेश्वर वह सभ्यता देगा जो हिंदुस्तान के और खंड वासियों ने पाई है ।

कविचयन सुभा खण्ड ३ अंक १, ३० अप्रैल सन् १८७१ के अंक में छपा, सम्पादक के नाम एत्र ।

— सं. —

श्रीमान् क. व. सु. संपादक महोदयेषु !

श्री हरिद्वार को रुड़की के मार्ग से जाना होता है । रुड़की शहर अंगरेजों का बसाया हुआ है । इसमें दो तीन वस्तु देखने योग्य हैं एक तो (कारीगरी) शिल्प विद्या का बड़ा कारखाना है जिसमें जल चक्की पवन चक्की और भी कई बड़े बड़े चक्र अनवर्त खचक्र में सूर्य, चंद्र, पृथ्वी मंगल आदि ग्रहों की भाँति फिरा करते हैं और बड़ी बड़ी धरन ऐसी सहज में चिर जाती हैं कि देखकर आश्चर्य होता है । बड़े बड़े लोहे के खंभे एक क्षण में ढल जाते हैं और सैकड़ों मन आटा घड़ी भर में पिस जाता है । जो बाल है आश्चर्य की है । इस कारखाने के सिवा यहाँ सबसे आश्चर्य श्री गंगाजी की नहर है, पुल के ऊपर से तो नहर बहती है और नीचे से नदी बहती है । यह एक बड़े आश्चर्य का स्थान है । इसके देखने से शिल्प-विद्या का बल और अंगरेजों का चातुर्य और द्रव्य का व्यय प्रगट होता है । न जाने वह पुल कितना दृढ़ बना है कि उस पर से अनवर्त कई लाख मन वजन करोड़ मन जल बहा करता है और वह तनिक नहीं हिलता । स्थल में जल कर रक्खा है । और स्थानों में पुल के नीचे से नाव चलती है यहाँ पुल के ऊपर नाव चलती है और उसके दोनों ओर गाड़ी जाने का मार्ग है और उसके परले सिरे पर चूने के सिंह बहुत ही बड़े बड़े बने हैं । हरिद्वार का एक मार्ग इसी नहर की पटरी पर से है और मैं इसी मार्ग से गया था ।

विदित हो कि यह श्री गंगाजी की नहर हरिद्वार से आई है और इसके लाने में यह चातुर्य किया है कि इसके जल का वेग रोकने के हेतु इसको सीढ़ी की भाँति लाए हैं । कोस कोस डेढ़ डेढ़ कोस पर बड़े बड़े पुल बनाये हैं वही मानो सीढ़ियाँ हैं और प्रत्येक पुल के ताखों से जल को नीचे उतारा है । जहाँ जहाँ जल को नीचे उतारा है वहाँ बड़े बड़े सीकड़ों में कसे हुए दृढ़ तखते पुल के ताखों के मुँह पर लगा दिये हैं और उनके खींचने के हेतु ऊपर दबकर रखे हैं । उन तखतों से ठोकर खाकर पानी नीचे गिरता है वह शोभा देखने योग्य है । एक तो उसका महान शब्द दूसरे उसमें से फुहारे की भाँति जल का उबलना और छींटों का उडना मन को बहुत लुभाता है और जब कभी जल विशेष लेना होता है तो तखतों को उठा लेते हैं फिर तो इस वेग से जल गिरता है जिसका वर्णन नहीं हो सकता और ये मल्लाह दुष्ट वहाँ भी आश्चर्य करते हैं कि उस जल पर से नाव को उतारते हैं या चढ़ाते हैं । जो नाव उतरती है तो यह ज्ञात होता है कि नाव पाताल को गई पर वे बड़ी सावधानी से उसे बचा लेते हैं और क्षण मात्र में बहुत दूर निकल जाती हैं पर चढ़ाने में बड़ा परिश्रम होता है । यह नाव का उतरना चढ़ना भी एक कौतुक ही समझना चाहिए ।

इसके आगे और भी आश्चर्य है कि दो स्थान नीचे तो नहर है और ऊपर से नदी बहती है । वर्षा के कारण वे नदियाँ क्षण में तो बड़े वेग से बढ़ती थीं और क्षण भर में सूख जाती हैं । और भी मार्ग में जो नदी मिली उनकी यही दशा थी । उनके करारें गिरते थे तो बड़ा भयंकर शब्द होता था और वृक्षों को जड़ समेत उखाड़

उखाड़ के बहाये लाती थी । वेग ऐसा कि हाथी न सम्भल सके पर आश्चर्य यह कि जहाँ अभी डुबाव था वहाँ थोड़ी देर पीछे सूखी रेत पड़ी है और आगे एक स्थान पर नदी और नहर को एक में मिला के निकाला है । यह भी देखने योग्य है । सीधी रेखा की चाल से नहर आई है औ रबेंड़ी रेखा की चाल से नदी गई है । जिस स्थान पर दोनों का संगम है वहाँ नहर के दोनों ओर पुल बने हैं और नदी जिधर गिरती है उधर कई द्वार बनाकर उसमें काठ के तखते लगाये हैं जिससे जितना पानी नदी में जाने देना चाहें उतना नदी में और जितना नहर में छोड़ना चाहें उतना नहर में छोड़ें !

जहाँ से नहर श्री गंगाजी में से निकला है वहाँ भी ऐसा ही प्रबंध है और गंगाजी नहर में पानी निकल जाने से दुबली और छिछली हो गई हैं परंतु जहाँ नील धारा आ मिली है वहाँ फिर ज्यों की त्यों हो गई हैं ।

हरिद्वार के मार्ग में अनेक प्रकार के वृक्ष और पक्षी देखने में आए । एक पीले रंग का पक्षी छोटा बहुत मनोहर देखा गया । बया एक छोटी चिड़िया है उसके घोंसले बहुत मिले । ये घोंसले सूखे बबूल काँटे के वृक्ष में हैं और एक एक डाल में लड़ी की भाँति बीस बीस तीस तीस लटकते हैं । इन पक्षियों की शिल्पविद्या तो प्रसिद्ध ही है लिखने का कुछ काम नहीं है इसी से इनका सब चातुर्य प्रगट है कि सब वृक्ष छोड़ के काँटे के वृक्ष में घर बनाया है । इसके आगे ज्वालापुर और कनखल और हरिद्वार है जिसका वृत्तांत अगले नंबरों में लिखूँगा ।

आपका मित्र
यात्री

पुरुषोत्तम शुल्क १०



कविचन सुधा १४ अक्टूबर सन् १८७१ में ही यह दूसरा पत्र संपादक के नाम छपा । — सं.

श्रीमान् कविचन सुधा संपादक महामहिम मित्रवर्ये !

मुझे हरिद्वार का शेष समाचार लिखने में बड़ा आनन्द होता है कि मैं उस पुण्य भूमि का वर्णन करता हूँ जहाँ प्रवेश करने ही से मन शुद्ध हो जाता है । यह भूमि तीन और सुन्दर हरे हरे पर्वतों से घिरी है जिन पर्वतों पर अनेक प्रकार की बल्लही हरी भरी सज्जनों के शुभ मनोरथों की भाँति फैल कर लहलहा रही है और बड़े बड़े वृक्ष भी ऐसे खड़े हैं मानों एक पैर से खड़े तपस्या करते हैं और साधुओं की भाँति धाम ओस और वर्षा अपने ऊपर सहते हैं । अहाँ ! इनके जन्म भी धन्य हैं जिन से अर्थी विमुक्त होते ही नहीं । फल, फूल, गंध, छाया, पत्ते, छाल, बीज, लकड़ी और जड़ यहाँ तक कि जल पर भी कोयले और राख से लोगों का मनोर्थ पूर्ण करते हैं । सज्जन ऐसे कि पत्थर मारने से फल देते हैं । इन वृक्षों पर अनेक रंग के पक्षी चहचहाते हैं और नगर के दुष्ट वधियों से निडर होकर कल्लोल करते हैं । वर्षा के कारण सब ओर हरियाली ही दृष्टि पड़ती थी मानो हरे गलीचा की जात्रियों के विश्राम के हेतु विछायात बिछी थी । एक ओर त्रिभुवन पावनी श्री गंगाजी की पवित्र धारा बहती है जो राजा भगीरथ के उज्ज्वल कीर्ति की लता सी दिखाई देती है । जल यहाँ का अत्यंत शीतल है और मिष्ट भी वैसा ही है मानो चीनी के पने बरफ में जमाया है, रंग जल का स्वच्छ और श्वेत है और अनेक प्रकार के जल जंतु कल्लोल करते हुए । यहाँ श्री गंगा जी अपना नाम नदी सत्य करती हैं अर्थात् जल के वेग का शब्द बहुत होता है और शीतल वायु नदी के उन पवित्र छोटे छोटे कनोंको लेकर स्पर्श ही से पावन करता हुआ संचार करता है । यहाँ पर श्री गंगा जी दो धारा हो गई हैं एक का नाम नील धारा दूसरी श्री गंगा जी ही के नाम से, इन दोनों धारों के बीच में एक सुन्दर नीचा पर्वत है और नील धारा के तट पर एक छोटा सा सुन्दर चुटीला पर्वत है और उसके शिपर पर चण्डिका देवी की मूर्ति है । यहाँ हरि की पैरी नामक एक पक्का घाट है और यहीं स्नान भी होता है । विशेष आश्चर्य का विषय यह है कि यहाँ केवल गंगाजी ही देवता हैं दूसरा देवता नहीं यों तो वैरागियों ने मठ मंदिर कई बना लिये हैं । श्री गंगा जी का पाट भी बहुत छोटा है पर वेग बड़ा है, तट पर राजाओं की धर्मशाला यात्रियों के उतरने के हेतु बनी हैं और दुकानें भी बनी हैं पर रात को बंद रहती हैं । यह ऐसा निर्मल तीर्थ है कि काम क्रोध की खानि जो मनुष्य हैं सो वहाँ रहते ही नहीं । पड़े दुकानदार इत्यादि कनखल या ज्वालापुर से आते हैं । पड़े भी यहाँ बड़े बिलक्षण संतोपी हैं । ब्राह्मण होकर लोभ नहीं यह बात इन्हीं में देखने में आई । एक पैसे को लाख करके मान लेते हैं । इस क्षेत्र में पाँच तीर्थ मुख्य हैं हरिद्वार, कुशावर्त, नीलधारा, विल्वपर्वत और कनखल । हरिद्वार तो हरि की पैड़ी पर नहाते हैं, कुशावर्त भी उसी के पास है, नीलधारा वही दूसरी धारा, विल्व पर्वत भी पास ही एक सुहाना पर्वत है जिसपर विल्वेश्वर महादेव की मूर्ति है और कनखल तीर्थ इधर ही है, यह कनखल तीर्थ बड़ा उत्तम है । किसी काल में दक्ष ने यहीं यज्ञ किया था और यहीं सती ने शिव जी का अपमान न सहकर अपना शरीर भस्म कर दिया, यहाँ कुछ छोटे छोटे घर भी बने हैं । और भारामल जैकृष्णदास खत्री यहाँ के प्रसिद्ध धनिक हैं । हरिद्वार में यह बखेड़ा कुछ नहीं है और शुद्ध निर्मल साधुओं के सेवन योग्य तीर्थ है । मेरा तो चित्त यहाँ जाते ही ऐसा प्रसन्न और निर्मल हुआ कि वर्णन के बाहर है । मैं दीवान कृपा राम के घर के ऊपर के बंगले पर टिका था । यह स्थान भी उस क्षेत्र में टिकने योग्य ही है चारों ओर से शीतल पवन आती थी । यहाँ रात्रि को ग्रहण हुआ और हम लोगों ने ग्रहण में बड़े आनंद पूर्वक स्नान किया और दिन में श्री भागवत का पारायण भी किया । वैसे ही मेरे संग कल्लू जी मित्र भी

परमानंदी थे । निदान इस उत्तम क्षेत्र में जितना समय बीता वह अनंद से बाता । एक दिन मैंने श्री गंगा जी के तट पर रसोई करके पत्थर ही पर जल के अत्यंत निकट परोस कर भोजन किया । जल के छलके पास ही ठंडे ठंडे आते थे । उस समय के पत्थर पर भोजन का सुख सोने की थाल के भोजन से कहीं बढ़ के था । चित्त में बारंवार ज्ञान वैराग्य और भक्ति का उदय होता था । भगड़े लड़ाई का कहीं नाम भी नहीं सुनाता था । यहाँ और भी कई वस्तु अच्छी बनती हैं, जनेऊ यहाँ का अच्छा महीन और उज्ज्वल बनता है । यहाँ की कुशा सबसे विलक्षण होती है जिसमें से बालचीनी जावित्री इत्यादि को अच्छी सुगंध आती है । मानो यह प्रत्यक्ष प्रगट होता है कि यह ऐसी पुण्यभूमि है कि यहाँ की वास भी ऐसी सुगंधमय है । निदान यहाँ जो कुछ है अपूर्व है और यह भूमि साक्षात् विरागमय साधुओं और विरक्तों के सेवन योग्य है । और संपादक महाशय मैं चित्त से तो अब तक वहाँ निवास करता हूँ और अपने वर्णन द्वारा आपके पाठकों को इस पुण्यभूमि का वृत्तांत विदित करके मौनावलंबन करता हूँ । निश्चय है कि आप इस पत्र को स्थानदान दीजिएगा ।

आपका मित्र
यात्री

लखनऊ

कविवचन सुधा खण्ड-२, अंक २२, श्रावण कृष्ण ३० सम्बत् १९२२ में संपादक को लिखा गया पत्र जिसमें भेजने वाले का नाम एक यात्री लिखा है । भारतेन्दु का एक उपनाम यह भी था । — सं.

श्रीमान् क. व. सुधा संपादक महोदयेषु !

मेरे लखनऊ गमन का वृत्तांत निश्चय आपके पाठकगणों को मनोरंजक होगा ।

कानपुर से लखनऊ आने के हेतु एक कंपनी अलग है । इसका नाम अ. रु. रे. कंपनी है । इसका काम अभी नया है और इसके गाई इत्यादिक सब काम चलानेवाले हिंदुस्तानी हैं । स्टेशन कान्हापुर का तो दरिद्र सा है पर लखनऊ का अच्छा है । लखनऊ के पास पहुँचते ही मसजिदों के ऊँचे कंगूर दूर ही से दिखाते हैं, परंतु नगर में प्रवेश करते ही एक बड़ी विपत्त आ पड़ती है । वह यह है कि चुंगी के राक्षसों का मुख देखना होता है । हम लोग ज्यों ही नगर में प्रवेश करने लगे जमहूतों ने रोका । सब गठरियों को खोल खोल के देखा जब कोई वस्तु न निकसी तब अँगूठियों पर (जो हम लोगों के पास थीं) आ भुके बोले इसका महसूल दे जाओ । हम लोग उतर के चौकी पर गए । वहाँ एक ठिगना सा काला रुखा मनुष्य बैठा था । नटखटपन उसके मुखरे से बरसता था । मैंने पूछा क्यों साहब बिना बिकरी की वस्तुओं पर भी महसूल लगता है । बोले हाँ, कागज देख लीजिए छपा हुआ है मैंने कागज देखा उसमें भी यही छपा था । मुझे पद के यहाँ की गवर्नमेंट के इस अन्याय पर बड़ा

दुःख हुआ। मैंने उनसे पूछा कि कहिये कितना महसूल है। आप नाक गाल फुला के बोले कि मैं कुछ जयहिरी नहीं हूँ कि इन अंगूठियों का दाम जानू मोहर करके गोदाम को भेजूंगा वहाँ सुपरिटेण्डेंट साहब साँफ़ को आकर दाम लगावेंगे। मैंने कहा कि साँफ़ तक भूखों कौन मरेगा। बोले इससे मुझे क्या? कहाँ तक लिखूँ इस दुष्ट ने हम लोगों को बहुत छकाया। अंत में मुझे क्रोध आया तब मैंने उसको नृसिंह रूप दिखाया और कहा कि मैं तेरी रिपोर्ट करूँगा। पहिले तो आप भी बिगड़े पीछे ढीले हुए, बोले अच्छा जो आपके घर में आवे दे दीजिए। तीन रुपये देकर प्राण बचे तब उनके सिपाहियों ने इनाम माँगा। मैंने पूछा क्या इसी घंटों दुख देने का इनाम चाहिये। किसी प्रकार इस बिपत से छूटकर नगर में आए। नगर पुराना तो नष्ट हो गया है जो बचा है वह नई सड़क से इतना नीचा है कि पाताल लोक का नमूना सा जान पड़ता है। मसजिद बहुत सी हैं, गलियाँ सकरी और कीचड़ से भरी हुई बुरी गंदी दुर्गन्धमय। सड़क के घर सुथरे बने हुए हैं। नई सड़क बहुत चौड़ी और अच्छी है। जहाँ पहिले जौहरी बाजार और मोनाबाजार था वहाँ गदहें चरते हैं और सब इमामबाड़ों में किसी में डाकघर कहीं अस्पताल कहीं छापा खाना हो रहा है। रूमी दर्वाजा नवाब आसिफुद्दौला की मसजिद और मच्छीमवन का सकारी किल बना है। बेदमुश्क के हौजों में गोरे मूतते हैं। केवल दो स्थान देखने योग्य बचे हैं। पहिला हुसैनाबाद और दूसरा कैसर बाग। हुसैनाबाद के फाटक के बाहर एक षट्कोण तालाब सुंदर है और एक बारहदरी भी उसके ऊपर है और हुसैनाबाद के फाटक के भीतर एक नहर बनी है और बाई और ताजगंज का सा एक कमरा बना हुआ है। वह मकान जिसमें बादशाह गड़े हैं देखने योग्य है। बड़े बड़े कई सुंदर भाड़ रक्खे हुए हैं और इस हुसैनाबाद के दीवारों में लोहे के गिलास लगाने के इतने अंकुड़े लगे हैं कि दीवार काली हो रही है। कैसरबाग भी देखने योग्य है। सुनहरे शिखर धूप में चमकते हैं। बीच में एक बारादरी रमणीय बनी है और चारों ओर अनेक सुंदर सुंदर बंगले बने हैं। जिसका नाम लंका है उसमें कचहरी होती है। और ओध के ताल्लुक के दारों को मिले हैं। जहाँ मोती लुटते थे वहाँ धूल उड़ती है। यहाँ एक पीपल का पेड़ श्वेत रंग का देखने योग्य है।

यहाँ के हिंदू रईस धनिक लोग असभ्य हैं और पुरानी बातें उनके सिर में भरी हैं। मुझसे जो मिला उसने मेरी आमदनी गाँव रुपया पहिले पूछा और नाम पीछे। वरन् बहुत से आदमी संग में न लाने की निंदा सबने किया पर जो लोग शिक्षित हैं वे सभ्य हैं। परंतु रईयाँ प्रायः सबके पास नौकर हैं। और मुसलमान सब बाइय सभ्य हैं, बोलने में बड़े चतुर हैं। यदि कोई भी माँगता है या फल बेचता है तो वह भी एक अच्छी चाल से। थोड़ी अवस्था के पुरुषों में भी स्त्रीपन फलकता है। बातें यहाँ की बड़ी लंबी चौड़ी बाहर से स्वच्छ पर भीतर से मलीन। स्त्रियाँ सुंदर तो ऐसी नहीं पर आँख लड़ाने में बड़ी चतुर। यहाँ भंगेड़िने रईयों के भी कान काटती हैं। हुक्के की भंग की दूकानों पर सज सज के बैठती हैं और नीचे चाहनेवालों की भीड़ खड़ी रहती है पर सुंदर कोई नहीं।

और भी यहाँ अमीनाबाद, हजरतगंज, सौदागरों की दूकानें, चौक, मुनशी नवलकिशोर का छापाखाना और नवाब मशकूरुद्दौला की चित्र की दूकान इत्यादि स्थान देखने योग्य हैं।

जैसा कुछ है फिर भी अच्छा है।

ईश्वर यहाँ के लोगों को विद्या का प्रकाश दें और पुरानी बातें ध्यान से निकालें।

**आपका चिरानुगत
यात्री**



जबलपुर

कविवचन सुधा २० जुलाई सन् १८७२ के अंक में यात्रा वृत्तान्तों की कड़ी में छपा सम्पादक के नाम पत्र । — सं.

श्रीयुन कवि वचन सुधा संपादक समीपे

महाशय

मेरी इच्छा है कि मैं अपनी मध्य देशीय और बंबई की यात्रा का सविस्तार समाचार लिखकर आपके पत्र द्वारा अपने देशवालों पर विदित करूँ जिसमें वे लोग इसे पढ़कर सज्ज हो जायँ और आशा रखता हूँ कि आप को स्थान देने में कुछ असमंजस न होगा ।

मैंने आप की पवित्र नगरी से दूसरी तारीख को संध्या समय दस बजे प्रस्थान किया और जिस समय राबवाट पहुँचा गाड़ी छूटने को केवल पाँच मिनट का विलंब था । भट टिकट लेकर आरोहण किया और थोड़े समय में मोगलसराय में पहुँचा । वहाँ पर एक दूसरे गाड़ी में चढ़ा और निरंतर चला तो सूर्योदय होते होते नैनी के स्टेशन पर पहुँचा और वहाँ उतर पड़ा क्योंकि वह गाड़ी इलाहाबाद जाती थी और मुझे आना था जबलपुर । वहाँ हम लोगों ने (क्योंकि एक मित्र भी मेरे साथ थे) नित्य शीघ्र किया और चाहा कि कुछ छाँय पर वहाँ काहे का कुछ मिलता है । दूध के लिए एक मनुष्य को पैसा दिया तो वह मुँह बनाये हुए आया और बोला कि अभी दूध नहीं आया । फिर हम लोगों ने पूछा कि भला यहाँ जिलेबी मिलेगी उसने कहा हाँ । पैसा देकर भेजा तो वह तेल की त्रिलेबी उठा लाया परन्तु वैसी तेल की न समझिए जैसी बनारस में बनती है और टकें का पाव भर विक्रती है । यह उससे तो बढ़कर थी । हम लोगों ने अपना अपना माथा ठोका और इस द्रव्य को उसी मनुष्य के अर्पण किया । इतने में नौ बज्रा और गाड़ी आई । फिर हम लोग चढ़े और जसरा, शिवराजपुर, बरगढ़, दबोरा, मार्णिक्यपुर, मरकण्डी, मन्नगाँवा, जेतवार, सतना, उचारा, मैहरी, अधरा, जोखई, कतनी, स्लीमानाबाद रोड, सिंहोरा रोड, देवरी नाम स्टेशनों को पार करते हुए सवा आठ बजे रात को जबलपुर पहुँचे । मार्ग में जो क्लेश हुआ वह अत्यन्त ही है । एक तो मार्गण्ड की प्रचण्ड किरण से गाड़ी ऐसी उत्तप्त हो रही थी । यदि शरीर स्पर्श हो जाय तो यह भ्रम होता था कि फफोला तो नहीं पड़ गया, किसी प्रकार से चैन नहीं मिलता था । यदि एकाद वार खिड़की खुल जाती तो मुँह मानो प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला से भौंस जाता । प्यास के मारे कंठ सूखा जाता था और मुख से आँखर नहीं निकलते थे । जो कहीं पानी मिले भी तो अदहन के सहस । उधर क्षुधा अलग सता रही थी । आते आते जब सतना में पहुँचे तो थोड़ी सी जिलेबी लेकर खाया तब कुछ आँखें खुली फिर मैहर में पक्का आम विक्रय होता था वह लिया । इसी भाँति ज्यों त्यों कर करके जबलपुर में आकर उतरे । अब यहाँ कहीं टिकने का ठिकाना न मिला । थोड़ी दूर पर तुना कि एक सराय है । वहाँ गए तो देखा कि एक बड़ा भारी

मेदान है और उसके किनारे किनारे छावनी सी बनी है पर वह क्या था मालूम नहीं क्योंकि यात्री सब उसी मेदान में विस्तार लगाए पड़े थे। चौधरी के पास गए। (यहाँ भठियारे नहीं हैं) तो वह मारे मिजाज के किसी की कुछ सुनता ही न था। खैर बड़ी देर के अनंतर जब हम लोगों ने पूछा कि यहाँ चारपाई इत्यादि मिलेगी कि नहीं, उसने कहा जाकर बनिए से पूछो और बनिए की यहाँ कहीं सूरत भी नहीं दिखाती थी। अंत को असक्त होकर वहाँ एक हलवाई था उससे कुछ लेकर हम लोगों ने क्षुधा शांत किया और एक एक्केवाले को बुलाकर पुल पर पंडित गोपालराय, एक्सट्रा असिस्टेंट नरसिंहपुर के घर पर गए। परंतु इसके पूर्व यह प्रकाश करना उचित कि यहाँ पैसा साढ़े पंद्रह आने तो बिकतई है दो अन्नी और चरअन्नी भुजाने में भी एक एक पैसा भुजाना लगता है। ऐसा अंधेर हमने और किसी स्थान में नहीं देखा था। एक्केवाले को चरअन्नी दिया तो वह कहता है कि यह तो पंद्रही पैसे हुए एक पैसा और चाहिए। एक और लड़के को सात पैसे के पलटे दो अन्नी दिया। हम नहीं जानते कि सरकार इन बातों को जानती है या नहीं जानकर कान में तेल डाले बैठी है। अभी तक जबलपुर में भली भाँति देखा नहीं पर दो तीन बात यहाँ नई देखने में आई। एक प्रत्येक चौराहे पर यहाँ लालटेन एक एक भाड़ टंगे हैं। जै सड़क उस स्थान पर मिलती है उतना ही लालटेन एक खम्भे में लगी है। दूसरे यह कि सड़क बहुत परिष्कृत और प्रशस्त हैं। फिरती बार ईश्वर चाहेगा तो नगर को भली भाँति देखकर आप के पास लिखूँगा। रात भर तो उन महाराज जी (उक्त महाशय के शाले) के यहाँ रहे दूसरे दिन उन्होंने बड़े आतिथ्य से भोजन कराया और आदरपूर्वक विदा किया। जबलपुर से फिर हम लोगों ने ३/-)। दे दे कर इटारसी का टिकट लिया और ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवे कंपनी की गाड़ी पर सवार हुए। यह गाड़ी एक विचित्र प्रकार की होती है। इस्ट इंडियन रेलवे की गाड़ी में कई विभाग रहते हैं परंतु यहाँ सरासर एकी रहती है और उसमें छः बेंच लगे रहते हैं — तीन द्वार के एक और तीन दूसरी ओर। इन गाड़ियों के एक कोने में एक शौच गृह (पायखाना) भी बना रहता है और गाड़ी की सूरत भी बहुत भरी होती है। यह तो तीसरी क्लास की गाड़ी है। यहाँ एक लोकल गाड़ी होती है जिसमें कुली आदि नीच लोग मेंड़ की भाँति भर दिए जाते हैं। उसमें बैठने के लिए कुछ भी स्थान नहीं बने रहते। किराया उसमें एक पैसे कोस है। यह तो गाड़ी की प्रशंसा है। स्टेशन का प्रबंध ऐसा है कि खाने की वस्तु का तो नाम न लेना, लोग पानी पुकारा करते हैं कोई सुनता नहीं। एक बेर दो तीन मनुष्य मेरी गाड़ी में बहुत चिल्ला रहे थे कि एक गाई आया तो एक पारसी ने कहा Sir They (are) Complaining very much for water" (साहेब लोग पानी पानी बहुत चिल्लाते हैं) तो गाई ने उत्तर दिया Can't help मैं कुछ नहीं कर सकता) अब कहिये ज्येष्ठ की दुपहरी में यदि कोई पानी बिना मर जाय तो क्या कंपनी पकड़ी न जायगी? इस उत्तर से तो यही प्रगट होता है। जबलपुर और इटारसी के बीच में ७ स्टेशन (चिदवारा, नृसिंहपुर, गदावराए बाकेड़ी, सोहागपुर, बाग्रा और इटारसी) पड़ते हैं। परंतु रेल पथ के दोनों ओर जंगल और पहाड़ों के कुछ दृष्टि नहीं पड़ता। कोसों पर्यन्त कोई गाँव नहीं दिखाई देता। इससे आप समझ लीजिये कि यह कैसा देश है। इटारसी और बाग्रा के बीच यहाँ भी एक सुरंग है जिसके भीतर से गाड़ी जाती है परंतु यह सुरंग जमालपुर के सुरंग से बड़ा है क्योंकि इसमें जिस समय गाड़ी जाती है तो किंचित अंधकार हो जाती है तो किंचित अंधकार हो जाता है पर उसमें इधर से उधर तक बराबर प्रकाश रहता है। परंतु अनेक लोग कहते हैं कि वही बड़ा है। इटारसी के स्टेशन से जो बाहर आकर मैंने एक बेर दृष्टि फेरी तो ज्ञात हुआ कि कैसे देश में आया हूँ क्योंकि चतुर्दिक् जंगल और मैदान देखने लगा। इसके आगे मार्ग ऐसा है कि केवल सगड़ और घोड़े के कुछ नहीं जा सकती। हम लोगों ने भी एक गाड़ी पाँच रुपये पर भाड़े की ओर चढ़ कर चले। आगे का समाचार दूसरे पत्र में लिखूँगा।

एक मध्यदेश
यात्री



सरजू पार की यात्रा

‘हरिश्चन्द्र चन्द्रिका’ खं ६ सं. ८, फरवरी सन् १८७९ में छपा यह यात्रा वृत्तांत बड़ा विस्तृत है। इस लेख में भारतेन्दु बाबू के सूक्ष्म निरीक्षण की प्रवृत्ति के साथ साथ सैलानी प्रवृत्ति का भी पता चलता है।
— सं.

अयोध्या

कल साँझ को बेगान जले रेल पर सवार हुए, यह गए, वह गए। राह में स्टेशनों पर बड़ी भीड़ न जाने क्यों ? और मजा यह कि पानी कहीं नहीं मिलता था। यह कंपनी यजीद के खानदान की मालूम होती है कि इमानदारों को पानी तक नहीं देती। या सिप्रस का टापू सरकार के हाथ आने से और शाम में सरकार का बंदोबस्त होने से यह भी शामत का मारा शामी तरीका अच्छतियार किया गया है कि शाम तक किसी को पानी न मिले। स्टेशन के नौकरों से फर्याद करो तो कहते हैं कि डॉक पहुँचावें, रोशनी दिखलावें कि पानी दें। खैर, ज्यों त्यों कर अयोध्या पहुँचे। इतना ही धन्य माना कि श्रीराम नवमी की रात अयोध्या में कटी। भीड़ बहुत ही है, मेला दरिद्र और मेले लोगों का। यहाँ के लोग बड़े ही कंगल टिरे हैं। इस वक्त दोपहर को अब उस पार जाते हैं। ऊँट गाड़ी यहाँ से पाँच कोस पर मिलती है।

कैम्प हरैया बाजार

अब तक तीन पहर का सफर हो चुका है और सफर भी कई तरह का और तकलीफ देने वाला। पहिले सरा से गाड़ी पर चले। मेला देखते हुए रामघाट की सड़क पर गाड़ी से उतरे। वहाँ से पैदल धूप में गर्म रेती में सरजू किनारे गुवारा घाट पर पहुँचे। वहाँ से मुश्किल से नाव पर सवार होकर सरजू पार हुए। वहाँ से बेलवाँ, जहाँ कि डॉक मिलती है और शायद जिसका शुद्ध नाम बिल्व ग्राम है, दो कोस है। सवारी कोई नहीं न राह में छाया के पेड़, न कुँआ न सड़क। हवा खूब चलती थी इससे पगडंडी भी नहीं नजर पड़ती, बड़ी मुश्किल से चले और बड़ी ही तकलीफ हुई। खैर बेलवाँ तक रो रो कर पहुँचे। वहाँ से बेल की डॉक पर नौ बजे रात को वहाँ पहुँचे। यहाँ पहुँचते ही हरैया बाजार के नाम से यह गीत याद आया ‘हरैया लागल भबिआ के रे लैहै ना’। शायद किसी जमाने में यहाँ हरैया बहुत बिकती होगी। इसके पास ही मनोरमा नदी है। मिठाई हरैया की तारीफ के लायक है। बालूसाही बिल्कुल बालूसाही भीतर काठ के टुकड़े भरे हुए। लड़कू ‘भूरके’। बरफी हा हा हा ! गुण से भी बुरी। खैर, लाचार होकर चने पर गुजर की। गुजर गई गुजरान — क्या भोपड़ी क्या मैदान, बाकी हाल कल के खत में।

परसों पहिली एप्रिल थी इससे सफर करके रेली में बेवकूफ बनने का और तकलीफ में सफर करने का हाल लिख चुके हैं। अब आज आठ बजे सुबह रें रें करके बस्ती पहुँचे। वाह रे बस्ती, भख मारने को बस्ती है अगर बस्ती इसी को कहते हैं तो उजाड़ किसको कहेंगे। सारी बस्ती में कोई भी पंडित बस्तीराम जी ऐसा पंडित नहीं। खैर अब तो एक दिन यहीं बस्ती होगी। राह में मेला खूब था, जगह जगह पर शहाबे का शहाबा। चूल्हे जल रहे हैं। सैकड़ों अहरे लगे हुए हैं। कोई गाता है, कोई बजाता है, कोई गप हाँकता है। रामलीला के मेले में अवध प्रांत के लोगों का स्वभाव रेल अयोध्या और इधर राह में मिलने से खूब मालूम हुआ। बैसवारे के पुरुष अभिमानों, रुखे और रसिकमन्य होते हैं, रसिकमन्य ही नहीं वीरमन्य भी। पुरुष सब पुरुष और सभी भीम, सभी अर्जुन, सभी सुल पौराणिक और सभी वाजिद अली शाह। मोटी मोटी बातों को बड़े आप्रह से कहते सुनते हैं। नई सम्यता अब तक इधर नहीं आई है। रूप कुछ ऐसा नहीं पर स्त्रियाँ नेत्र नचाने में बड़ी चतुर। यहाँ के पुरुषों की रसिकता मोटी चाल सुरती और खड़ी मोँछ में छिपी है और स्त्रियों कि रसिकता मैले वस्त्र और सुप ऐसी नथ में। अयोध्या में प्रायः सभी ग्रामीण स्त्रियों के गोल आते हुए मिले। उनका गाना भी मोटी रसिकता का। मुझे तो उनकी सब गीतों में "बोलो प्यारी सखियाँ सीताराम राम राम" यही अच्छा मालूम हुआ। राह में मेला जहाँ पड़ा मिलता था वहाँ बारात का आनंद दिखलाई पड़ता था। खैर मैं डाँक पर बैठा बैठा सोचता था कि काशी में रहते तो बहुत दिन हुए परंतु शिव आज ही हुए क्योंकि वृषभवाहन हुए। फिर अयोध्या याद आई कि हा! यह वही अयोध्या है जो भारतवर्ष में सबसे पहले राजधानी बनाई गई। इसी में महात्मा इक्ष्वाकु, मांधाता, हरिश्चन्द्र, दिलीप, अज, रघु, श्री रामचन्द्र हुए हैं और इसी के राजवंश के चरित्र में बड़े बड़े कवियों ने अपनी बुद्धिशक्ति की परिचालना की है। संसार में इसी अयोध्या का प्रताप किसी दिन व्याप्त था और सारे संसार के राजा लोग इसी अयोध्या की कृपाण से किसी दिन दबते थे वही अयोध्या अब देखी नहीं जाती। जहाँ देखिए मुसलमानों की कब्रें दिखाई पड़ती हैं। और कभी डाँक पर बैठे रेल का दुःख याद आ जाता कि रेलवे कंपनी क्यों ऐसा प्रबंध किया है कि पानी तक न मिले। एक स्टेशन पर एक औरत पानी का डोल लिए आई भी तो गुपला गुपला पुकारती रह गई, जब हम लोगों ने पानी माँगा तो लगी कहने कि 'रह : हो पानियें पानी पड़ल हो' फिर कुछ जियादा जिद में लोगों ने माँगा तो बोली 'अब हम गारी देब'। वाह! क्या इंतजाम था। मालूम होता था रेलवे कंपनी स्वभाव (Nature) की बड़ी शत्रु है क्योंकि जितनी बातें स्वभाव से संबंध रखती हैं अर्थात् खाना, पीना, सोना, मलमूत्र त्याग करना इन्हीं का इसमें कष्ट है। शायद : इसी से अब हिंदुस्तान में रोग बहुत हैं। कभी सराय की खाट के छटमल और भटियारियों का लड़ना याद आया। यही सब याद करते कुछ सोते जागते हिलते हिलते आज बस्ती पहुँच गए। बाकी फिर। यहाँ एक नदी है उसका नाम कुआनय। डेढ़ रुपया पुल का गाड़ी का महसूल लगा।

बस्ती के जिले की उत्तर सीमा नेपाल, पश्चिमोत्तर की गोंडा, पश्चिम-दक्षिण अयोध्या और पूरब गोरखपुर है। नदियाँ बड़ी इसमें सरयू और इरावती। सरयू के इस पार बस्ती उस पार फैजाबाद। छोटी नदियों में कुनेय, मनोरमा, कठनेय, आमी, बानगंगा और जमवर है। बरकरा ताल और जिरजिरवा दो बड़ी झील भी हैं। बाँसी, बस्ती और मकहर तीन राजा भी हैं। बस्ती सिर्फ चार पाँच हजार की बस्ती है पर जिला बड़ा है क्योंकि जिले की आमदनी चौदह लाख है। साहब लोग यहाँ कुल दस बारह हैं, उतनेही बंगाली हैं। अगरवाला मैंने खोजा एक भी न मिला, सिर्फ एक है वह भी गोरखपुरी। पुरानी बस्ती खाँई के बीच में बसी है। राजा के महल बनारस के अर्दली बजार के किसी मकान से उमदा नहीं। महल के सामने मैदान, पिछवाड़े जंगल और चारों ओर खाँई है। पाँच सौ छटियों के घर महल के पास हैं जो आगे किसी जमाने में राजा के लूटमार के मुख्य सहायक थे। अब राजा के स्टेट के मैनेजर कूक साहब हैं।

यहाँ के बाजार का हम बनारस के किसी भी बाजार से मुकाबिला नहीं कर सकते। महज बेहिसियत। महाजन एक यहाँ है वह टूटे खपड़े में बैठे थे। तारीफ यह सुना कि साल भर में दो बेर कैद होते हैं क्योंकि महाजन पर जाल करना फर्ज है और उसको भी छिपाने का शकूर नहीं। यहाँ का मुख्य ठाकुरद्वारा दो तीन हाथ चौड़ा और उतना ही लंबा और उतना ही ऊँचा बस। पत्थर का कहीं दर्शन भी नहीं। यह हाल बस्ती का है।

कल डाँक ही नहीं मिली कि जायँ । मेंहदावल की कच्ची सड़क है इससे कोई सवारी नहीं मिलती आज कँहार ठीक हुए हैं । भगवान ने चाहा तो शाम को रवाना होंगे । कल तो कुछ तबीअत भी गबड़ा गई थी इससे आज खिचड़ी खाई । पानी यहाँ का बड़ा वातुल है । अकसर लोगों का गला फूल जाता है, आदमी का ही नहीं कुत्ते और सुग्गे का भी । शायद गला फूल कबूतर यहीं से निकले हैं । बस अब कल मेंहदावल से खत लिखेंगे ।

मेंहदावल

आज सुबह सात बजे मेंहदावल पहुँचे । सड़क कच्ची है, राह में एक नदी उतरनी पड़ती है उसका नाम आमी है । छः आना पुराना महसूल लगा । रात को ग्यारह बजे पालकी पर सवार हुए । बदन खूब हिला । अन्न भी नहीं पचा । इस वक्त यहाँ पड़े हैं । यहाँ मक्खी बहुत हैं और आबादी बहुत है । दो लड़कों के स्कूल हैं और एक लड़कियों का स्कूल है और एक डाक्टरखाना है । बस्ती शहर है मगर उससे यह मेंहदावल गाँव बहुत आबाद है । फैजाबाद में ५।।) बस्ती तक डाँक का लगा और बस्ती से मेंहदावल तक ३।।) पालकी का । अभी एक गँवार भाट आया था बेतरह बका । फूहर औरतों की तारीफ में एक बड़ी भारी पचड़ा पड़ा । यहाँ गरमी बहुत है और मक्खियाँ लखनऊ से भी ज़ियादा । दिन को बड़ी बेचैनी है ।

यहाँ की औरतों का नाम श्यामतोला, रामतोला, मनतोरा इत्यादि विचित्र विचित्र होता है और नारंगी को भी यही श्यामतोला कहते हैं जो संगतरा का अपभ्रंश मालूम होता है क्योंकि यहीं के गँवार संतोला कहते हैं । यहाँ एक नाऊ बड़े पंडित थे । उनसे किसी पंडित ने प्रश्न किया 'कि दूध' (तुम कौन जात हो) तब नाई ने जवाब दिया 'चटपटाक चटपटाक' (नाई) तब ब्राह्मण ने कहा 'तं दूर' (तुम दूर जाओ), तब नाई ने जवाब दिया 'कि छौर' (तब मूड़ कौन मूड़ेगा) । एक का बाप डूबकर मर गया उसके बाप का पिंडा इस मंत्र से कराया गया 'आर गंगा पार गंगा बीच में पड़ गई रेत । तहाँ मर गए नायका चले बुज बुजा देत, घर दे पिंडवा ।'

कुछ फुटकर हाल भी यहाँ का सुन लीजिए । कल मजहब का हाल हमने नीचे लिखा था । उसका अच्छी तरह से हाल दर्याप्त किया तो मालूम हुआ कि हमारे ही मजहब की शाखा है । इनके ग्रंथों में हमने एक श्लोक श्री महाप्रभु जी की सुबोधिनी की कारिका का देखा, इसी से हमको संदेह हुआ । फिर हमने बहुत खोद खाद कर पूछा तो वह साफ मालूम हुआ कि इसी मत से यह मत निकला है क्योंकि एक बात वह और बोले कि हमारा मत श्री बल्लभाचारज की टीका में लिखा है । इन लोगों के उपास्य श्री कृष्ण हैं और एकादशी, शालग्राम, मूर्तिपूजा, तीर्थ किसी को नहीं मानते । इनके पहिले आचार्य देवचन्द जी थे, जो जात के कायथ थे और दूसरे प्राणनाथ जी जो कच्छ के क्षत्री (भाटिया) थे । हमारे ही मत की शाखा सही पर विचित्र Reformed मत है । वैष्णव होकर मूर्तिपूजा का खंडन करने वाले यही लोग सुने ।

यहाँ बूढ़े को खबीस, ब्रत को बेनी राम, भोजन को बुलनी, जात को दूध, ऐसे ही अनेक विचित्र-विचित्र बोली है ।

गाँव गन्दा बड़ा है और लोग परले सिर के बेवकूफ । यहाँ से चार मील पर एक मोती भील या बखरा ताल नामक भील है । दर हकीकत देखने के लायक है । कई कोस लम्बी भील है और जानवर तरह तरह के देखने में आते हैं । पहाड़ से चिड़ियाँ हजारों ही तरह की आती हैं और मछली भी इफरात । पेड़ों पर बंदर भी । मेंदावल में कोई चीज भी देखने लायक नहीं । जहाँ देखो वहाँ गन्दगी । लोग बज्र मुख, क्षत्री ब्राह्मण ज़ियादा । एक यहाँ प्राण नाथ का मजहब है और दस बीस लोग उसके मानने वाले हैं । ये लोग एकादशी तीर्थ वगैरह को नहीं मानते और सुने सुनाए दो तीन श्लोक जो याद कर लिये हैं बस उसी पर चुर हैं । 'मदीनास्थ्या शरदं शत' और 'गोविंदं गोकुलानन्दं मक्केश्वरं' यह श्लोक पढ़ के कहते हैं कि वेद में मक्का मदीने का वर्णन है । ऐसे ही बहुत वाहियात बात कहते हैं और कोई कितना भी कहै कुछ सुनते नहीं । कहते हैं कि गोलोक का नाश है और गोलोक ऊपर एक 'अखंड मण्डलाकार' लोक है, उसमें मेरे कृष्ण हैं । इनका मजहब एक प्राणनाथ नामक एक क्षत्री ने पन्ना में करीब तीन सौ बरस हुए चलाया था । यहाँ चैत सुदी भर रात को औरतें जमा होकर माता का गीत गाती हैं और बड़ा शोर करती हैं । असम्यक् बकती हैं । व्यभिचार यहाँ बेतकल्लुफ है । सरयू पार के ब्राह्मण बड़े विचित्र हैं । मांस मछली सब खाते हैं । कुँए के जगत पर एक आदमी जो पानी भरता हो दूसरा

आदमी चला आवे तो अपना बड़ा फोड़ डाले और उसमें घड़े का दाम ले। बड़ा कोई कहे तो बड़ा छू जाय क्योंकि बड़ा मुसलमानी लफ्ज़ है, दाल कहे तो छू जाय क्योंकि दाल मुसलमानी है। सूरज वंशी छत्री राजा बाबू को छाता नहीं लगता है क्योंकि वे तो सूरज वंशी हैं। सूरज से क्या छाता लगावे। नेम बड़ा धरम बिलकुल नहीं। एक ब्राह्मण ने कोहार से नई सनहकी मोल लेकर उसमें पूरी बनाकर खाया, इससे वह जात से निकाल दिया गया क्योंकि जैसे वर्तन में मुसलमान खाना बनावे उस आकार के वर्तन में इसने हिंदू होकर खाना बनाया। ह हा हा ! और मजा यह कि तांत्रिकों को सब मानते हैं। मेंहदावल में एक थाना है। थानेदार यहाँ के बादशाह हैं। एक डाक्टर खाना भी है। वह बड़ा सर्कार का पुन्य है। बस हमको तो सर्कार के पुन्य में कसर यहीं मालूम होती है कि पुलों पर महसूल लिया जाता है क्योंकि भला नाव या ऐसे पुल पर महसूल लगे तो ठीक है, जिसकी हर साल मरम्मत हो, पक्के पर भी महसूल। बस्ती में अगरवाला नहीं, एक है सो जूता उतार कर लायची खाते हैं। मेंहदावल में एक अगरवाले हैं। मुसलमान फर्श पर यहाँ नहीं बैठते। पिण्डारे जिनको इस जिले में जमीन मिली है अब नवाब हो गए हैं और उनकी मुस्तैदी आराम से बदल गई है। यहाँ कहीं कहीं धारु लोगों का रक्खा सोना खोदने से ऊँच तक मिलता है यहाँ के बाबू ऐसी हठी कि बंगला गिर पड़ा पर जूता उलटा था, खिदमतगार को पुकारा वह न आया, इससे आप वहाँ से न चले और दबकर मर गए।

गोरखपुर

अहो वरनि नहिं जात है आज लख्यो जो खेद ।
 आतप उष्मा वायु सों चलयो नखन सों स्वेद ॥१॥
 प्रिय दुरगा परसाद गृह ठहरे हैं इत आय ।
 बाट बिलोकत दुष्ट की रहे उतहिं बिलगाय ॥२॥
 आवत ह्वैहे दुष्ट सो लीने नग निज साध ।
 पै निकस्यो जो खोट तो रहिहैं हम धुनि माय ॥३॥
 करम लिखी सो होय है यामैं कछु न सँदेह ।
 बृथा लोभ बस लोग सब छाँड़त सुख मैं गेह ॥४॥
 "करम कर्मडल कर गहे तुलसी जहैं जहैं जाय ।
 सरिता सागर कृप जल बूँद न अधिक सम्प ॥५॥"
 तऊ सोच नहिं कछु करिय मम प्रभु मंगल "गम ।
 करिहैं सब कल्याण ही यामैं कदु न कलाम ॥६॥
 रजिस्टरी को पत्र इक गयो होइहैं तत्र ।
 ताहि जतन करि राखियो गिरि नहिं आवै अत्र ॥७॥
 जेहि छन सो खल आइहै ताही छन दिखराइ ।
 ताहि तुरंतहिं लौटिहैं तितहिं पहुँचिहैं आइ ॥८॥
 तित प्रबन्ध सब राखिहौ रहिहौ ह्वै हुसियार ।
 कीजौ रच्छा अंग की करि उपाय हर बार ॥९॥
 आवत हैं हम बेग ही यामैं संसय नाहिं ।
 अति व्याकुलता तित बिना मेरेहू जिय माहिं ॥१०॥
 प्रति पद माधव की प्रथम रस शिव दृग ग्रह चन्द ।
 संवत मंगल के दिवस लिख्यो पत्र हरिचन्द ॥११॥

वैद्यनाथ की यात्रा

यह यात्रा विवरण हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका खं ७, संख्या ४, आषाढ शुक्ल १ सम्बत् १९३७ (सन् १८८०) में प्रकाशित है। — सं.

श्री मन्महाराज काशीनरेश के साथ वैद्यनाथ की यात्रा को चले। दो बजे दिन के पैसंजर ट्रेन में सवार हुए। चारों ओर हरी हरी घास का फर्श, ऊपर रंग रंग के बादल, गड़हों में पानी भरा हुआ, सब कुछ सुंदर। मार्ग में श्री महाराज के मुख से अनेक प्रकार के अमृतमय उपदेश सुनते हुए चले जाते थे। साँझ को बक्सर के आगे बड़ा भारी मैदान, पर सब्ज काशानी मछमल से मढ़ा हुआ। साँझ होने से बादल छोटे छोटे लाल पीले नीले बड़ेही सुहाने मालूम पड़ते थे। बनारस कालिज की रंगीन शीशे की खिड़कियों का सा सामान था। क्रम से अंधकार होने लगा, ठंडी ठंडी हवा से निद्रा देवी अलग नेत्रों से लिपटी जाती थी। मैं महाराज के पास से उठकर सोने के वास्ते दूसरी गाड़ी में चला गया। भूपकी का आना था कि बौछारों ने छेड़छाड़ करनी शुरू की, पटने पहुँचते पहुँचते तो घेर घार कर चारों ओर से पानी बरसने ही लगा। बस पृथ्वी आकाश सब नीरव्रतमय हो गया। इस धूमधाम में भी रेल, कृष्णाभिसारिका सी अपनी धुन में चली ही जाती थी। सब है सावन की नदी और दृढ़प्रतिज्ञ उद्योगी और जिनके मन पीतम के पास हैं वे कहीं रुकते हैं ? राह में बाज पेड़ों में इतने जुगनु लिपटे हुए थे कि पेड़ सचमुच 'सर्वे चिरागाँ बन रहे थे। जहाँ रेल ठहरती थी, स्टेशन मास्टर और सिपाही बिचारे टुटरू टूट छाता, लालटेन लिए रोजी जगाते भीगते हुए इधर उधर फिरते दिखलाई पड़ते थे। गाई अलग 'मैकिंटाश का कवच पहिने' अप्रतिहत गति से घूमते थे। आगे चलकर एक बड़ा भारी विघ्न हुआ, खास जिस गाड़ी पर श्री महाराज सवार थे, उसके धुरे धिसने से गर्म होकर शिथिल हो गए। वह गाड़ी छोड़ देनी पड़ी। जैसे धूम धाम की अंधेरी, वैसी ही जोर शोर का पानी। इधर तो यह आफत, उधर फरऊन क्या फरऊन के भी बाबाबान रेलवालों की जल्दी, गाड़ी कभी आगे हटै कभी पीछे। खैर, किसी तरह सब ठीक हुआ। इसपर भी बहुतसा असबाब और कुछ लोग पीछे छूट गए। अब आगे बढ़ते बढ़ते तो सबेरा ही होने लगा। निद्रा वधू का संयोग भाग्य में न लिखा था, न हुआ। एक तो सेकेंड क्लास की एक ही गाड़ी, उसमें भी लेडीज कंपार्टमेंट निकल गया, बाकी जो कुछ बचा उसमें बारह आदमी। गाड़ी भी ऐसी टूटी फूटी, जैसी

हिंदुओं की किस्मत और हिम्मत । इस कम्बख्त गाड़ी से और तीसरे दर्जे की गाड़ी से कोई फर्क नहीं, सिर्फ एक एक धोके की टट्टी का शीशा खिड़कियों में लगा था । न चौड़े बेंच न गद्दा, न बापरूम । जो लोग मामूली से तिगुना रुपया दें उनको ऐसी मनहूस गाड़ी पर बिठलाना, जिसमें कोई बात भी आराम की न हो, रेलवे कंपनी को सिर्फ बेइस्साफी ही नहीं बरनू धोखा देना है क्यों नहीं ऐसी गाड़ियों को आग लगाकर जला देती । कलकत्ते में नीलाम कर देती । अगर मारे मोह के न छोड़ी जाय तो उसमें तीसरे दर्जे का काम ले । नाहक अपने गाहकों को बेवकूफ बनाने से क्या हासिल । लेडीज कंपार्टमेंट खाली था, मैंने गाड़ से कितना कहा कि इसमें सोने दो, न माना । और दानापुर से दो चार नीम अंगरेज (लेडी नहीं सिर्फ लैड) मिले उनको बेतकल्लुफ उसमें बैठा दिया । फर्स्ट क्लास की सिर्फ दो गाड़ी — एक में महाराज, दूसरी में आधी लेडीज, आधी में अंगरेज । अब कहाँ सोवें कि नींद आवे । सचमुच अब तो तपस्या करके गोरी गोरी कोख से जन्म लें तब संसार में सुख मिले । मैं तो ज्यों ही फर्स्ट क्लास में अंगरेज कम हुए कि सोने की लालच से उसमें घुसा । हाथ फैलाना था कि गाड़ी टूटनेवाला बिघ्न हुआ । महाराज के इस गाड़ी में आने से मैं फिर वहाँ का वहीं । खैर इसी सात पाँच में रात कट गई । बादल के परदों को फाड़ फाड़कर ऊषा देवी ने ताकभाक आरंभ कर दी । परलोकगत सज्जनों की कीर्ति की भाँति सूर्य नारायण का प्रकाश पिशुन मेघों के बागाडंबर से घिरा हुआ दिखलाई पड़ने लगा । प्रकृति का नाम काली से सरस्वती हुआ, ठंडी-ठंडी हवा मन की कली खिलाती हुई बहने लगी । दूर से धानी और काही रंग के पर्वतों पर सुनहरापन आ चला । कहीं आधे पर्वत बादलों से घिरे हुए, कहीं एक साथ वाष्प निकलने से उनकी चोटियाँ छिपी हुई, और कहीं चारों ओर से उनपर जलधारा-पात से बुक्के की होली खेलते हुए बड़े ही सुहाने मालूम पड़ते थे । पास से देखने से भी पहाड़ बहुत ही भले दिखलाई पड़ते थे । काले पत्थरों पर हरी हरी घास और जहाँ तहाँ छोटे बड़े पेड़, बीच बीच में मोटे पतले भरने ; नदियों की लकीरें, कहीं चारों ओर से सघन हरियाली, कहीं चट्टानों पर ऊँच नीचे अनगढ़ ढोंके और कहीं जलपूर्ण हरित तराई विचित्र शोभा देती थी । अच्छी तरह प्रकाश होते होते तो वैद्यनाथ के स्टेशन पर पहुँच गए । स्टेशन से वैद्यनाथ जी कोई तीन कोस हैं । बीच में एक नदी उतरनी पड़ती है जो आजकल बरसात में कभी घटती और कभी बड़ती है । रास्ता पहाड़ के ऊपर ही ऊपर बरसात से बहुत सुहावना हो रहा है । पालकी पर हिलते हिलते चले । श्रीमहाराज के सोचने के अनुसार कहारों की गतिध्वनि में भी परदेश ही की चर्चा है । पहले 'कोह कोह' की ध्वनि सुनाई पड़ती है फिर 'सोह सोह' की एकाकार पुकार मार्ग में भी उससे तन्मय किए देती थी । मुसाफिरों को अनुभव होगा कि रेल पर सोने से नाक धरती है और वही दशा कभी कभी सवारियों पर होती है इससे मुझे पालकी पर भी नींद नहीं आई और जैसे तैसे वैद्यनाथ जी पहुँच ही गए ।

वैद्यनाथ जी एक गाँव है, जो अच्छी तरह आबाद है । मजिस्ट्रेट, मुनिसिफ वगैरह डाक़िम और जरूरी सब आफिस हैं । नीचा और तर होने से देश बालुल गंदा और 'गंधद्रारा' है । लोग काले काले और हतोत्साह मूर्ख और गरीब हैं । यहाँ सौथाल एक जंगली जाति होती है । ये लोग अब तक निरे वहशी हैं । खाने पीने की जरूरी चीजें यहाँ मिल जाती हैं । सर्प विशेष हैं । राम जी की घोड़ी जिनको कुछ लोग ग्यालिन भी कहते हैं एक बालिष्ठ लंबी और दो दो उँगल मोटी देखने में आई ।

मंदिर वैद्यनाथ जी का टोप की तरह बहुत ऊँचा शिखरदार है । चारों ओर और देवताओं के मंदिर और बीच में फर्श है । मंदिर भीतर से अंधेरा है क्योंकि सिर्फ एक दरवाजा है । वैद्यनाथ जी की पिंडी जलधरी से तीन चार अंगल ऊँची बीच में से चिपटी है । कहते हैं कि रावण ने मूका मारा है इससे यह गड़हा पड़ गया है । वैद्यनाथ वैद्यनाथ और रावणेश्वर यह तीन नाम महादेव जी के हैं । यह सिद्धपीठ और 'तेलिंग' स्थान है । हरिद्रा पीठ इसका नाम है और सती का हृदयदेश यहाँ गिरा है । जो पार्वती अरोगा और दुर्गा नाम की सामने एक देवी हैं वही यहाँ की मुख्य शक्ति हैं । इनके मंदिर और महादेव जी के मन्दिर से गाँठ जोड़ी रहती है रात को महादेव जी के ऊपर बेलपत्र का बहुत लंबा चौड़ा एक ढेर करके ऊपर से कम खाब या ताश का खोल चढ़ाकर शृंगार करते हैं या बेलपत्र के ऊपर से बहुत सी माला पहना देते हैं सिर के गड़हे में भी रात को चंदन भर देते हैं ।

वैद्यनाथ की कथा यह है कि एक बेर पार्वती जी ने मान किया था, और रावण के शोर करने से वह मान छूट गया, इसपर महादेव जी ने प्रसन्न होकर वर दिया कि हम लंका चलेंगे और लिंग रूप से उसके साथ चले । राह में जब वैद्यनाथ जी पहुँचे तब ब्राह्मण-रूपी विष्णु के हाथ में वह लिंग देकर पेशाब करने लगा ।

कई घड़ी तक माया-मोहित होकर वह मृतता ही रह गया और घबड़ा कर विष्णु ने उस लिंग को वहीं रख दिया । रावण से महादेव जी से यह करार था कि जहाँ रख दोगे वहाँ से आगे न चलेगें इससे महादेव जी वहीं रह गए, वरंच इसी पर खफा होकर रावण ने उनको मूका भी मार दिया ।

वैद्यनाथ जी का मंदिर राजा पूरणमल्ल का बनाया हुआ है । लोग कहते हैं कि रघुनाथ ओम्भा नामक एक तपस्वी इसी वन में रहते थे । उनको स्वप्न हुआ कि हमारी एक छोटी सी मढ़ी भाड़ियों में छिपी है तुम उसका एक बड़ा मंदिर बनाओ । उसी स्वप्न के अनुसार किसी वृक्ष के नीचे उनको तीन लाख रुपया मिला । उन्होंने राजा पूरणमल्ल को वह रुपया दिया कि वे अपने प्रबंध में मंदिर बनवा दें । वे बादशाह के काम से कड़ी चले गए और कई धरस तक न लौटे, तब रघुनाथ ओम्भा ने दुःखित होकर अपने व्यय से मंदिर बनवाया । जब पूरणमल्ल लौटकर आए और मंदिर बना देखा तो सभामंडप बनवाकर मंदिर के द्वार पर अपनी प्रशस्ति लिखकर चले गए । यह देखकर रघुनाथ ओम्भा ने दुःखित होकर कि रुपया भी गया कीर्ति भी गई, एक नई प्रशस्ति बनाई और बाहर के दरवाजे पर खुदवा कर लगा दी । वैद्यनाथ महात्म्य भी मालूम होता है कि इन्हीं महात्मा का बनाया हुआ है : क्योंकि उसमें छिपाकर रघुनाथ ओम्भा को श्रीरामचन्द्र जी का अवतार लिखा है । प्रशस्ति का काव्य भी उत्तम नहीं है, जिससे बोध होता है कि ओम्भा जी श्रद्धालु थे किंतु उदित पंडित नहीं थे । गिदौर के महाराज सर जयमंगलसिंह के.सी.एस.आई. कहते हैं कि पूरणमल्ल उनके पुरखा थे । एक विचित्र बात यहाँ और भी लिखने के योग है । गोवर्धन पर श्रीनाथ जी का मंदिर स. १५५६ में एक राजा पूरणमल्ल ने बनाया और यहाँ संवत् १६५२ सन् १५९५ ई. में एक पूरणमल्ल ने वैद्यनाथ जी का मंदिर बनाया । क्या यह मंदिरों का काम पूरणमल्ल ही को परमेश्वर ने सौंपा है ?

निज मंदिर का लेख

अवल शशिशायके लसित भूमि शकाब्दके ।

वलति रघुनाथके वहल पूजक श्रद्धया ॥

विमल गुण चेतसा नृपति पूरणेनाचितं ।

त्रिपुरहरमंदिरं व्यरचि सर्वकामप्रदम् ॥

नृपतिकृत पद्यमिदम् ।

सभामंडप का लेख

चंद्र बिंब प्रतीकाश, प्रासादं चातिशोभनम् ।

हरिद्रा पीठके कर्तुं कान्येस्मिन्नभवन्मुनिः ॥१॥

न चेदं मानुषं कर्म चोलराज महामते ।

भविष्यति न संदेहः कदाचिच्च कलौ युगे ॥२॥

मुनेः कल्याणमित्रस्य पार्श्वस्य च महात्मनः ।

संवादं शृणु राजेंद्र चेतिहासं पुरातनम् ॥३॥

यदा कदाचिच्च कलौ रामांशेन द्विजन्मना ।

कारयेत् वै मठजरो रावणेश्वर कानने ॥४॥

स्वयं दाता समागत्य प्रोद्भिद्य मठकूरम् ।

स करिष्यति यत्नेन प्रच्छन्नो नरविग्रहः ॥५॥

आर्जवं शतसाहस्रस्मिन् लिंगे प्रतिष्ठितम् ।

वस्वंगुलं हि तल्लिंगं त्रैलोक्योपरिचोत्थितम् ॥६॥

अधोर्द्ध शिखराकारं योजनादे च विस्तृतम् ।

लक्ष लिंगोद्भवं पुण्यं पूजनात्तस्य जायते ॥७॥

छद्माना पद्मानामेन वंचितस्तु दशाननात् ।

रक्षणाय च देवानां दैत्यानां वै वधाय च ॥८॥

कैलाशशिखरे देवी यदा मानवती सती ।
 तस्मिन् काले दसग्रीवद्वारस्थोनं निवारयन् ॥९॥
 दोर्भिजग्राह शैलेंद्र सिंहनादं चकार सः ।
 तेन संत्रासिता देवी मानं तत्याज भामिनी ॥१०॥
 तस्मिन्नुपरते शब्दे जहास परमेश्वरः ।
 श्रीङ्गामवाप महतीं दशग्रीवं चुकोप सा ॥११॥
 शश्वत् प्रीतिमना भूत्वा दैत्यराजाय वै पूरा ।
 एवं वरं ददौ शंभुर्लङ्कागमनकारणम् ॥१२॥
 तिस्रः कोट्योर्द्वे कोटिश्च देवाः सत्रासमाययुः ।
 स्मरन्ति देवीं संस्तुय कालरात्रिस्वरूपिणीम् ॥१३॥
 कामरूपं परित्यज्य सा संध्या तमुपागता ।
 हरिद्रापीठमासाद्य वासंश्चक्रे दशाननः ॥१४॥
 एतस्मिन्तनंतरे राजन् द्विजरूपधरौ हरिः ।
 हस्ते कृत्वा तु तल्लिंगं क्षणमात्रं स्थितस्तदा ॥१५॥
 प्रसावं कर्तुमारंभे यावद्ब्रूयं दशाननः ।
 तावत्स विप्रस्त्वरितो लिंगं तत्याज भूतले ॥१६॥

करततिभिरकर्षन्चैकवारं द्विवारं तृतयमपि गृहीत्वा कुठिता तत्र शक्तिः ।
 करकलित शिरोग्रं जीवतांते तुरीयं दशवदन भुजानां जातु मन्युर्बभूव ॥१७॥
 मुषित इव तटस्थः सौर्यसिद्धेर्निस्तः स्मरजिह्मनिखंडं सप्तपातालविद्धः ।
 त्रिदिश-युवतिमालो दत्तमंदारमालो दशवदनविदारीप्रादुरासीदयोध्याम् ॥१८॥

गते किमपि काले तु रावणं भक्षितुं नृप ।
 निमित्तं राममासाद्य जहास परमेश्वरी ॥१९॥
 नातः परतरं स्थानं गृह्यमुक्तं तु शंभुना ।
 चतुरस्रं क्रोशमिदं चतुः किष्कुसमुच्छ्रितम् ॥२०॥
 यदा यदा भवेद् ग्लानिः स्थानेस्मिन् मनुजाधिप ।
 तदा तदावतरते रामः कमललोचनः ॥२१॥
 यस्यैषा मानिनी देवी मातेव हितकारिणी ।
 स एव रामो विज्ञेयो मठं कारयिता चतो ॥२२॥

श्रीवैद्यनाथ चरणाब्ज मधुव्रतेन विप्रावतं स रघुनाथ गुणार्णवेन ।
 प्राप्य प्रसादमजसीसमिदं विधायि प्रसादं सेतुं बनवारि मठादि सर्वम् ॥२३॥

मंदिर के चारों ओर देवताओं के मंदिर हैं । कहीं प्राचीन जैन मूर्तियाँ हिंदू मूर्ति बनकर पूजती हैं । एक पद्मावती देवी की मूर्ति बड़ी सुंदर है जो सूर्यनारायण के नाम से पूजती है । यह मूर्ति पद्म पर बैठी है और दे बड़ी सुंदर कमल की लता दोनों ओर बनी हैं । इस पर अत्यंत प्राचीन पाली अक्षर में कुछ लिखा है जो मैंने श्री बाबू राजेंद्रलाल के पास पढ़ने को भेजा है । दो भैरव की मूर्ति, जिससे एक तो किसी जैन सिद्ध की और एक जैन क्षेत्रपाल की है, बड़ी ही सुंदर हैं । लोग कहते हैं कि भागलपुर जिले में किसी तालाब में से निकली थी ।



यह यात्रा विवरण 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका और' मोहन चन्द्रिका खं. ७ सं. ४ आषाढ शुक्ल १ सं. १९३७ (सन् १८८०) में छपा है।

— सं.

आज देपहर को पहुँचे। राह में रेल में कुछ कष्ट हुआ। क्योंकि सेकण्ड क्लास में तीन चार अंग्रेज थे। बस उनमें मैं अकेला "जिमि दसनन महँ जीम बिचारी" कष्ट हुआ ही चाहे 'नर बानरहि संग कहूँ कैसे'। इसके वास्ते यह इतिजाम होना जरूर है कि हर ट्रेन में एक गाड़ी जिसमें फर्स्ट और सेकण्ड दोनों ही हिंदुस्तानियों ही के वास्ते रहे। इस विषय में मैंने रेलवे कंपनी की कनफरेंस के सेक्रेटरी को लिखा तो है पर 'तूती की आवाज' अगर सुनी जाय। जैसी ही उनको पान सुरता की पचापच से नफरत है वैसी इधर चुरोट के धूम से। ऐसी ही अनेक प्रकृति विरुद्ध बातें हैं जो केवल कष्टदायक हैं। एक बात और बहुत जरूरी है। ऐसे स्टेशनों पर जहाँ गाड़ी देर तक ठहरे फर्स्ट और सेकण्ड क्लास के हिंदुस्तानियों की पाखाना बगैरह की कोठरी अलग बननी चाहिए क्योंकि नकमोड का इनको अभ्यास न स्वतंत्र जलादिक बिना इनको सुभीता। मगर गौर सभ्य बाजे तो बड़े सभ्य और दिल्लगीबाज मिलते हैं। अब की बरसात में सेकंड क्लास में एक साहब सोये थे मैं भी उसी में था। पानी की कुछ बौछार भीतर आई। साहब ने जागकर पूछा Have you made water? मैंने कहा Not I but God इस पर बहुत ही प्रसन्न हुआ। वैसे ही अब की भी एक दिल्लगीबाज थे। मेरे पास एक हिन्दोस्तानी रहस्य था। उनको उन्होंने पूछा यह कौन है? मैंने उत्तर दिया He is a rich man. His fore-fathers were very rich bankers of my city. इस पर उसने हँसकर कहा all of those fours? इस फिकरे पर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ। मेरे वालों पर विंग विंग की और दो और सोए हुए थे उन पर स्त्री पर की फवती भी अच्छी हुई। तो बाजे तो भाग्य से ऐसे मिल जाते हैं मगर बाजे बड़े ही कष्टदायक मिलते हैं और हिंदोस्तानियों से ऐसी घृणा करते हैं कि जी दुःखी हो जाता है। रें रें करके रात को बारह बजे बाढ़ पहुँचे। चार बजे तक सरदी में वहीं टपे। पाँच बजे रेल फिर चली। घाट पर पहुँचे। वहाँ एक स्टीमर था। दरिद्र स्टीमर। जिसके सेकण्ड क्लास में सिवाँ इस नाम के गुण कोई नहीं। बल्कि वहाँ बैठना भले आदमी के वास्ते एक शर्म की बात है। खैर वहीं बैठ कर पार लगे। वहाँ से तिरहुत की रेल वाह रे रेल। एक गाड़ी बालू में गड़ी थी उसी में तार घर और टिकट आफिस। तार दो दो कैन्डीदार बाँसों पर। सड़क आधे आधे औंधे गोलों पर बालू में राम भरोसे। गाड़ी ऊँचे नीचे पर छकड़ों की तरह लुड़कती पुड़कती चलती थी। छोटी इतनी कि जी चाहा कि सरस्वती की गुड़िया को दे दूँ। सेकण्ड क्लास महज बाहियात। भन्ना रंग भन्ने काठ भन्ने लोहे। जगह सोने को कौन कहे बैठने को नहीं। रेल की तारीफ। कहूँ कि तार की कि स्टेशनों की कि मास्टर की। भण्डौ मालूम होती थी कि कोई खेत वाला स्त्री की मैली फटी साड़ी का पल्ला फाड़कर लकड़ी में लगाकर कौआ हाँकता है। खैर दरभगे पहुँचे। कल जनकपुर जाँयगे। बाकी कल के खत में।

कविवचन सुधा के सम्पादक के नाम पत्र

शृंगार रत्नाकर नाम का एक ग्रन्थ तत्कालीन काशिराज ने सं० १९१९ में प्रकाशित कराया। लेखक थे प्रसिद्ध विद्वान पं० ताराचरण तर्करत्न। तर्करत्न जी ने इस ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखा है:

हरिश्चन्द्रास्तु वात्सल्य सख्य भक्त्यानन्दाख्ययधिकं रस चतुष्टयं मन्यते।

जब यह ग्रन्थ छपा उस समय भारतेन्दु बाबू की उम्र १२ वर्ष थी। निश्चित ही उसके कई वर्ष बाद अपने अकाट्य तर्कों से भारतेन्दु जी ने तर्करत्न जी को प्रभावित किया होगा।

कविवचन सुधा जि० ३ नं० २२ शुक्रवार ५ जुलाई १८७२ के अंक में सम्पादक के नाम लिखे इस पत्र से भारतेन्दु बाबू का आचार्यत्व प्रकट होता है।

—सं०

श्री क० व० सु० सम्पादकेषु

शृंगार रत्नाकर नामक श्रीताराचरण तर्करत्न ने जो नया प्रबंध बनाया है उसमें मेरा मत लिखा है कि "हरिश्चंद भक्ति, सख्य, वात्सल्य और आनंद यह चार रस और भी मानते हैं" इस पर काशी विद्यासुधानिधि नामक मासिक पत्र के सम्पादक (पूर्व के किसी पत्र में) ने बड़े चढ़ाव से आनंद रस की हंसी किया है और उनके लिखने से ऐसा जाना जाता है कि आनंद रस हास्य के अन्तर्गत है और मानने के योग्य नहीं है तथा श्रीगृसिंह शास्त्री ने काव्यात्मसंशोधन नामक जो ग्रंथ निर्माण कर के बहुत सा कागज का व्यय किया है उसमें भी इन चारों रस को व्यर्थ और शृंगारादि रसों के अन्तर्गत किया है तथा हन्दुप्रकाश समाचार पत्र में भी आनंद रस को तुच्छ लिखा है और ये महात्मा लोग इसमें कारण यह लिखते हैं कि प्राचीन लोग नहीं मानते।

वाह वाह ! रसों का मानना भी मानो वेद के धर्म का मानना है कि जो लिखी है वहीं माना जाय और उसके अतिरिक्त करे तो पतित होय रस ऐसी वस्तु है जो अनुभव सिद्ध है इसके मानने में प्राचीनों की कोई आवश्यकता नहीं यदि अनुभव में आवे मानिये न आवे न मानिये। आज इस स्थान पर चारों रसों को पृथक् पृथक् स्थापन करते हैं।

भक्ति—कहिए इस रस को आप किसके अन्तर्गत करते हैं क्योंकि इस रस की स्थाई श्रद्धा है और इसके आलम्बन भक्त और इष्ट देवता हैं और उद्दीपन पुराणादिक भक्तों के प्रसंग और सत्संग है अब तो जो इसे शांत के अन्तर्गत कीजियेगा तो शांत की स्थाई वैराग्य है और इसकी भक्ति है आसक्ति से और वैराग्य से जो अंतर है सो प्रसिद्ध है वैराग्य उसे कहते हैं जो संसार से विरक्तता होय और सब सुखों को त्याग करे और भक्ति उसे कहते हैं जो गृहस्थ लोग भी कर सकते हैं और भक्ति देवता के सिवा माता पिता गुरु राजा और स्वामि की भी मनुष्य कर सकता है तो जहाँ ऐसे प्रसंग जिसमें शुद्ध भक्ति का वर्णन है और हनुमान जी इत्यादि भक्तों के प्रसंग में यह कौन कह सकता है कि यह शांत रस है क्योंकि इन वर्णनों में स्थाई रूप वैराग्य नहीं है स्थाई रूप भक्ति है और वास्तव्य की मुख्यता है फिर कौन कह सकता है कि शांत और भक्ति एक है।

सख्य—इस रस को लोग शृंगार के अन्तर्गत करते हैं हम उन लोगों से पूछते हैं कि जहां श्रीकृष्ण और अर्जुन का प्रसंग और इसी भांति अनेक मित्रों के विपत्ति में मित्रों के संग देने के प्रसंग में शृंगार रस किस भांति आवैगा क्योंकि शृंगार की स्थाई रति है और यहां मित्रता में रति का क्या कार्य है।।

वात्सल्य—इस रस को लोग शृंगार के अन्तर्गत करते हैं अब हम उनसे पूछते हैं कि आप जिस समय अपने पुत्र को या कन्या को देखियेगा या उनका वर्णन पढ़ियेगा तो आप को कौन रस उदय होगा यदि उस समय अर्थात् पुत्र को कन्या को देखके शृंगार रस उदय होय तो आप धन्य हैं और जो कहें सो मानने योग्य है ।।

आनन्द—लोग कहते हैं कि इस रस के मानने से कोई लाभ नहीं है । मैंने माना कि लाभ नहीं पर मैं यह पूछता हूँ कि जहाँ कवि की दृष्टि शुद्ध शब्दालंकार आनन्द होता है वहाँ तुम कौन रस मानोगे वा जहाँ कोई नीति की बात वा किसी वस्तु की शोभा वर्णन की जायेगी वहाँ कौन सा रस होगा निस्सन्देह सब काव्य में रस होता है क्योंकि बिना रस के काव्य व्यर्थ है "सौ वै सः यल्लब्ध्वानन्दी भवतीति" तो इससे कृपा कर के आग्रह छोड़िये और काव्य विषय में जो कुछ अनुभव में आता जाता उसको मानते जाइये इसमें शब्द प्रमाण का कोई काम नहीं है ।

कृपा कर के इस पत्र को छाप दीजिए ।

रामकटोरा
ज्येष्ठ शु० ॥

आपका मित्र
हरिश्चन्द्र

(हिन्दी भाषा)

यह खंग विलास प्रेस से सन् १८९० में छपा है । बृजरत्न दास का मानना है कि इसका पहला संस्करण भी यहीं से सन् १८८३ में निकला था । इस लेख में भारतेन्दु बाबू ने अपने युग के भाषा विवाद पर प्रकाश डाला है । — सं०

भाषाओं के तीन विभाग होते हैं यथा घर में बोलने की भाषा कविता की भाषा और लिखने की भाषा । अब पश्चिमोत्तर देश में घर में बोलने की भाषा कौन है यह निश्चय नहीं होता क्योंकि दिल्ली प्रांत के वा अन्य नगरों में भी खत्रियों वा पछाहीं अगरवालों वा और पछाहीं जातियों के अतिरिक्त घर में हिंदी बनारस में जो बनारस के पुराने रहवासी हैं उनके घर में विचित्र विचित्र बोलियां पुराने कसेरे लोग "बाटः" शब्द का बहुत प्रयोग करते हैं जैसा "आवत हई" के स्थान पर "आवट बाटी" "का करत होवः" "वा" का करल" के स्थान पर "का करत वाटय वा बाटो वा बाटः" । इस दशा में बनारस की मुख्य बोली यह और वह बोली है जिसका उदाहरण में न० ७ कलकत्ते की शोभा में मिलेगा अर्थात् वह पुरबिये बनियों की बोली है, वरंच यह बोली यहां के प्रसिद्ध धनिकों के घर में बोली जाती है परन्तु इस दोनों बोलियों को छोड़कर बनारस में बदमाशों की भाषा अलग ही है जिसमें कितने ऐसे व्यर्थ शब्द हैं जिनका न सिर है न पैर है जैसा झांझा, गोजर इत्यादि, वरन वे जिस ईकारान्त (वा कभी कभी ओकारान्त वा कदाचित् आकारान्त) शब्द के पीछे क लगा देंगे उसका अर्थ गाली होगा । इसका विशेष वर्णन हम काशी की दशा के वर्णन में लिखेंगे पर यहां इतना ही समझ लेना चाहिए कि इन की भाषा भी अब काशी की भाषा में स्वतंत्र हो गई है ।

कोई कहते हैं कि काशी की सबसे प्राचीन भाषा वह है जो डोम लोग बोलते हैं क्योंकि वे ही यहां के प्राचीन वासी हैं और उनकी भाषा में प्रायः दीर्घ मात्रा होती है । जो हो यह तो सिद्धांत है कि जो यहां के शिष्ट लोग बोलते हैं वह परदेशी भाषा है और यहां पश्चिम से आई है । काशी के उस पास ही रामनगर में यहां की बोली से कुछ विलक्षण बोली बोली जाती है और वह मीरपुर की भाषा से बहुत मिलती है । ऐसे ही पश्चिमोत्तर देश में अनेक भाषा हैं पर उनमें ऐसे नगर थोड़े हैं जिनमें आबाल वृद्ध वनिता सब खड़ी भाषा बोलते हों अतएव यद्यपि काशी ऐसे पूर्व प्रदेशों की मातृभाषा व घर में बोलचाल की भाषा हिन्दी हैं यह तो हम नहीं कह सकते पर हां यह कह सकते हैं कि इसी पश्चिमोत्तर देश में कई नगर ऐसे हैं जहाँ यही खड़ी

बोली मातृभाषा है ।

पश्चिमोत्तर देश की कविता की भाषा ब्रजभाषा है यह निर्णीत हो चुकी है और प्राचीन काल से लोग इसी भाषा में कविता करते आये हैं परन्तु यह कह सकते हैं कि यह नियम अकबर के समय के पूर्व नहीं था क्योंकि मोहम्मद मलिक जाइसी और चंद की कविता विलक्षण ही है और वैसे ही तुलसीदास जी ने भी ब्रजभाषा का नियम भंग कर दिया । जो हो मैंने आप कई बेरे परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊ पर वह मेरे नितानुसार नहीं बनी इससे यह निश्चय होता है कि ब्रजभाषा ही में कविता करना उत्तम होता है और इसी से सब कविता ब्रजभाषा में ही उत्तम होती है । जैसे ब्रजभाषा में कविता होती है वैसे ही बुंदेलखंड की बोली में भी कविता बनती आती है और अब कविता में यह दोनों बोली मिल गई हैं । परन्तु पूरब में कवियों की वृद्धि होने से उन लोगों ने उस कविता की भाषा अपने चाल पर एक नई भाषा बना ली है यहाँ यह भी कहना आवश्यक है कि कविता ने पंजाबी और माड़वारी बोली भी ग्रहण किया है और इस भाषा में भी कविता बनाई है । इन सब के उदाहरण नीचे नहीं और पुरानी कविता में दिखाई जाते हैं जिन से पूर्वोक्त वर्णन स्पष्ट हो जायेगा ।

ब्रजभाषा, बुंदेलखंड की बोली के उदाहरण—नागभाषा की कविता—“चंद की भाषा में ऐसे शब्द बहुत हैं, अब तक जोधपुर उदयपुर के कवि “नच्चिम”, “बड़ड़िया” इत्यादि शब्द का बहुत प्रयोग करते हैं और इसी में बड़ा पांडित्य मानते हैं ।”

कजली की कविता—कजली की कविता बड़ी विचित्र होती है इसके उदाहरण के पूर्व हम इस नष्ट की कुछ उत्पत्ति भी लिखते हैं । कन्तिर देश में गहरवार क्षत्री दादुराय नामक राजा हुए और मांडा विजैपुर इत्यादि देश में उनका राज था । बिन्ध्याचल देवी के मंदिर के नाले के पास उनके टूटे गढ़ का चिन्ह अब तक मिलता है उन्हीं ने चार भैरवों के बीच में अपना गढ़ बनाया था और वह अपने राज में मुसलमानों को गंगाजी नहीं छूने देते थे । उसके देश में अनावृष्टि हुई और उसने उसके निवारणार्थ बड़ा धर्म किया और फिर वृद्धि हुई इसी में उसकी कीर्ति को जो कन्तिर की स्त्रियों ने उसके करने और उसकी रानी नागमती के सती होने पर एक मनमाने नाग और धुन में बांध कर गाया इसी से उसका नाम कजली हुआ । कजली नाम के दो कारण हैं एक तो उस राजा का एक बान था उसका नाम कजली बान था दूसरे उस तृतीय का नाम पूराणों में कजली तीज लिखा है जिस में यह कजली बहुत गाई जाती है ।

उसकी कीर्ति में ग्रामीणों ने उसी काल में ये छंद बनाये थे । “कहां गये दादुरैया बिन जग सून । तुरकन गांग जुठारा बिन अरजून ।” . . . इस नष्ट कजली को प्रायः स्त्रियाँ आप ही बान लेती हैं परन्तु पुरुषों में भी इसके कवि होते हैं सांप्रत एक पंखा वाला है उसने अनेक कजली बनाई परन्तु इस सबों में पंडित वैष्णोराम नामक एक ब्राह्मण थे उनने कजली बनाई है ।

बंग भाषा की कविता—बंग भाषा अब हिंदी से बिल्कुल विलक्षण है यह प्रत्यक्ष है । पूर्व काल के बंग भाषा के कविगण की जो भाषा है वह बिल्कुल ब्रजभाषा ही है । बंगाली विद्वानों में इस विषय में अनेक बादानुवाद है किंतु हम को ऐसा निश्चय होता है कि उन कवियों ने ब्रजभाषा ही में कविता करने की चेष्टा की हो तो क्या आश्चर्य है । कवि ककण, चण्डी, विद्यापति, गोविंद दास इत्यादि इनके प्राचीन के ऊपर की नहीं किन्तु धन्य काल जिसने भाषा का अब इतना रूपांतर कर दिया । इन्हीं प्राचीन कवियों में से गोविंददास की कविता कौतुकार्य यहाँ प्रकाश की जाती है । इस कविता में एक अपूर्व और सहज माधुर्य ऐसा है कि अनुभव में बड़ा आनंद होता है ।

नई भाषा की कविता—

“भजन करो श्रीकृष्ण का, मिलकर के सब लोग ।

सिद्ध होगी काम और छूटेगा सब सोग ॥”

अब देखिये यह कैसी भोड़ी कविता है मैंने इस का कारण सोचा कि खड़ी बोली में कविता मीठी नहीं बनती तो तुझ को सबसे बड़ा कारण यह जान पड़ा कि इसमें क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घ मात्रा होती है इससे कविता अच्छी नहीं बनती ।

आप लोगों को ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा कि कविता की भाषा निस्संदेह ब्रजभाषा ही है और दूसरे भाषाओं की कविता इतना चित्त को नहीं पकड़ती । यदि हमारे पाठक लोग इच्छा करेंगे तो कविता में नायिका भेद, अलंकार और कवियों के स्वतंत्र प्रयोग कैसे-कैसे बदल गये इनका वर्णन फिर कभी करूँगा ।

हिन्दी कविता—संस्कृत यद्यपि परम मधुर है तथापि भाषा की मधुरई में किसी प्रकार से घट के नहीं है—इसके उदाहरण में हम एक श्रीजयदेव जी की अष्टपदी और एक उसका अनुवाद देते हैं अब हमारे पाठक लोग दोनों भाषा की माधुरी का प्रमाण जान लें ।

अथ लिखने की भाषा के उदाहरण—भाषा का तीसरा अंग लिखने की भाषा है और इसमें बड़ा झगड़ा है कोई कहता है कि उरदू शब्द मिलने चाहिए कोई कहता है कि संस्कृत शब्द होने चाहिए और अपनी अपनी रुचि के अनुसार सब लिखते हैं और इसके हेतु कोई भाषा अभी निश्चित नहीं हो सकती ।”

इन सब भाषाओं के नीचे उदाहरण दिखाते हैं ।

वर्षावर्णन ।

नं० १—जिसमें संस्कृत के शब्द बहुत हैं

अहा पर कैसी अपूर्व और विचित्र वर्षा ऋतु साम्प्रत प्राप्त हुई है अनवत्ते आकाश मेघाच्छन्न रहता है और चतुर्दिक् कुसुमटिका पात से नेत्र की गति स्तम्भित हो गई है प्रतिक्षण अन्न में चंचला पुंश्चली स्त्री की भांति नर्तन करती है और वैसे ही बकावली उडडोयमाना होकर इतस्ततः भ्रमण कर रही है मयूरादि अनेक पक्षिगण प्रफुल्लित चित से रव कर रहे हैं और वैसे ही दर्दगण भी पंकामिषेक करके कुकवियों की भांति कर्णविधक टक्का झंकार सा भयानक शब्द करते हैं ।

नं० २—जिसमें संस्कृत के शब्द थोड़े हैं ।

सब विदेशी लोग घर फिर आये और व्यापारियों ने नौका लादना छोड़ दिया पुल टूट गये बांध खुल गये पंक से पृथ्वी भर गई । पहाड़ी नदियों ने अपने बल दिखाये बूझ कूल समेत तोड़ गिराए सर्प बिलों से बाहर निकले महानदियों ने मर्यादा भंग कर दी और स्वतंत्रता स्त्रियों की भांति उमड़ चली ।

नं० ३—जो शुद्ध हिन्दी है ।

पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आए क्या उस देश में बरसात नहीं होती या किसी सौत के फेर में पड़ गये कि इधर की सुघर ही भूल गये । कहाँ तो वह प्यार की बातें कहाँ एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना । हा ! मैं कहाँ जाऊँ कैसी करूँ मेरी तो ऐसी कोई मुंहबोली सहेली नहीं कि उससे दुखड़ा रो सुनाऊँ कुछ इधर उधर की बातों ही से जी बहलाऊँ ।

नं० ४—जिसमें किसी भाषा के शब्द मिलने का नेम नहीं है ।

ऐसी तो अंधेरी रात उसमें अकेली रहना कोई हाल पूछने वाला भी पास नहीं रह रह कर जी चबड़ाता है कोई खबर लेने भी नहीं आता और न कोई इस विपत्ति में सहाय होकर जान बचाता ।

नं० ५—जिसमें फ़ारसी शब्द विशेष हैं ।

खुदा इस आफत से जी बचाये प्यारे का मुंह जल्द दिखाए कि जान में जान आए । फिर वहीं ऐश की वड़ियाँ आए शबरोज दिलवर की मुहबत रहे । रंजोगम दूर हो दिल मसरूर हो ।

कलकत्ते की शोभा

नं० ६—जिसमें अंगरेजी शब्द हिन्दी के ही मिल गये हैं ।

वहाँ हाँसों में हजारों बक्स माल रखे हैं—कम्पनियों के सैकड़ों बक्स इधर से उधर कुली लोग

लिए फिरते हैं लालटेन में गिलास चारों तरफ बल रहे हैं सड़क की लैन सीधी और चौड़ी है पालकी गाड़ी बगी चिरिट फिटिन दौड़ रही है रेलवे के स्टेशनों पर टिकट बंट रहा है कोई फर्स्ट क्लास में बैठता है कोई सेकेण्ड में कोई थर्ड में बैठता है ट्रेन को इंजिन इधर से उधर खींच कर ले जाती है बड़े-छोटे तक उहदेदार जज मजिस्टर कलकटर पोस्ट मास्टर पिटी साहब स्टेशन मास्टर करनैल जनरैल कमनियर किरानी और कांस्टेबल बगैरह चारों ओर घूम रहे हैं कोई कोट पहिने है कोई बूट पहिने है कोई पाकेट में लोट भरे हैं लाट साहिब भी इधर उधर आते जाते हैं डाक दौड़ती है बोट तिरते हैं पादरी लोग गिरजों में किसानों को बैविल सुनाते हैं पंप में पानी दौड़ता है कप में लंप रौशन हो रही है ।

नं० ७- जिसमें पुरवियों की बोली वा काशी की देशभाषा है ।

क साहेब आप कन्वों कलकत्ता गये हो कि नाही ? जो न गये हो तो एक बेर हमरें कहे से आप ऊ शहर को जरूर देखों देख ही के लायक है आपसे हम ओकी तारीफ का करी आपनी आंखो से देखे बिना ओका मजै नहीं मिलता आप तो बहुत परदेस जाथी एक बेर ओहरो झुक पड़ो ।

नं० ८- जो काशी के अर्धशिक्षित बोलते हैं ।

महाराज मैं सच कहता हों कलकत्ता देखने ही के योग्य है आप देखियेगा तो खुस हो जायेगा हम एक दफे गये रहे से ऐसा जी प्रसन्न हो गया कि क्या पूछना है ।

नं० ९- दक्षिण के लोगों की हिन्दी ।

सो तो ठीक है कलकत्ते तो आपके एक बेर अवश्य जाना हमारे कूँ तो ऐसा जान पड़ता है कि जावत पृथ्वी तल में दूसरा ऐसा कोई नगर ही नहीं है ।

नं० १०- बंगालियों की हिन्दी ।

सच है उधर राजा बाजार का बड़ा बड़ा दोकान है इधर मछुआ बाजार में बहुत अच्छा अच्छा सामान है कहीं गाड़ी खड़ा है कहीं केली फला है कहीं गोरा की समाज की समाज आती है कहीं अमारा देश का बंगाली बाबू लोगों का पल्टन जाती है के कोम्पानी लोग दीवालिया होया जाता है कहीं मारवाड़ी माल लेकर घर पराता है ।

नं० ११- अंग्रेजी की हिन्दी ।

बेशक इसमें कोई शक नहीं है कैलकटा देखने का जगह है हम वहाँ अकसर रहता आप एक बार जाने मांगो वहाँ जाकर थोड़ा सबुर करो देखो बहुत लोग जाता तो आप घर में पड़ा-पड़ा ज्यों सड़ता जाओ हमारा कहने से जाओ ।

नं० १२- रेलवे की भाषा । ईस्टइंडिया रेलवे । इस्तहार — (इसमें दो इस्तहार दिये हैं जिनमें से एक उद्धृत किया जाता है)

कजरा स्टेशन में एक मिसत्री जिसका नाम बसी था एक चारपाई नेआ सिलिपर के चोरा कर के बनवाने के वास्ते अगस्त सन् १८८३ ई० साल में गिरफ्तार कीया गया था और मजिस्ट्रेट साहब ने उसको मोजरिम ठहरा कर एक बरस के वास्ते सख्त मेइनत के साथ कैद किया ।

हम इस स्थान पर वाद नहीं किया चाहते कि कौन भाषा उत्तम है और वहाँ लिखनी चाहिए पर हाँ मुझे से कोई अनुमति पूछे तो मैं यह कहूंगा कि नम्बर २ और तीन लिखने योग्य है ।

यदि इसका विचार कीजिए कि यह देशभाषा कहाँ से आई है तो यह निश्चय होता है कि पश्चिम से आई है और पंजाबी ब्रजभाषा इत्यादि भाषाओं से बिगड़ कर बनी है पर उनका आदि किसी समय में नागभाषा रही हो तो आश्चर्य नहीं ।



ग्रीष्म ऋतु

हरिश्चन्द्र मैगजीन में १५ मई सन् १८७४ में छपा । मैगजीन की यह प्रति अधूरी है । अतः लेख अधूरा मिला है । यह लेख भारतेन्दु जी के प्रकृति वर्णन का उदाहरण है । सं०

"अहा हा यह भी कैसा भयंकर ऋतु है 'ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नतिप्रियाच्छरणा'" इसमें प्रबन्ध मार्तण्ड अपनी घोर किरणों से स्थावर जंगम और जल सब का रसखींच लेता है, जिते ही जीते सब जीव निर्जीव हो जाते हैं । सावन केवल जीवन में आ अटकता है और वह जल भी इस उग्र सूर्य से इस ऋतु में इतना डरता है कि प्रायः छोटी नदी और छोटे सरोवर तो शुष्क ही हो जाते हैं, कूपों में यद्यपि जल इतना नीचे छिपा रहता है कि सूर्य के दुखलाई किरण बाण वहां न पहुंचे तो भी मारे डर के थर थर कांपता है । पर देखों शत्रु के घर में कैसा भी बलिष्ठ पशु आता है तो शत्रु निर्बल होने पर भी अपना दाव लिये बिना नहीं छोड़ते, इन्हीं सूर्य की खरतर किरणों को जब अपने तरंग भुजाओं से पकड़ लेता है तो टुकड़े टुकड़े कर इधर-उधर बहा देता है और जब अपनी किरणों का अपने सामने हजारों टुकड़े होना देखता है तो सूर्य भी जल में थर पर कांपता है, मत्स्य, कच्छ इत्यादि जीव गरमी के मारे भीतर से उबल-उबल कर ऊपर उछले पड़ते हैं और ऊब भंस सूकर इत्यादि स्थल के पशु भी जल में जा बैठते हैं, हंस, बगले, बतक, जलकुक्कुट, पनडुब्बे और चकई चकवे पक्षी हो कर भी इस ऋतु में शुद्ध जलचर जान पड़ते हैं, अन्न का आदर घट जाता है शांति केवल जल में होती है, स्त्रियों को यद्यपि सहज की वस्त्राभूषण से प्रीति है परन्तु इस ऋतु में वे भी उन्हें उतार उतार कर फेंक देती हैं और बन की मीलिनों की भांति फूल पत्तों से ही अपने को सज बज कर प्रीतम की बड़ी प्यारी भुजा को भी धर्म भय से बारंवार कंठ पर धरती और उतारती रहती हैं काशी से प्रस्तरमय नगर का तो कुछ पूछना ही नहीं घर सब तनदूर हो जाते हैं छत के पत्थरों को चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से प्रातःकाल की वायु से भी सहायता लेकर नहीं ठंडा कर सकता यदि किसी छोटी खिड़की के पास मुंह ले जाओ तो अजगरों की श्वास और लोहारों की धौकनी के सामने बैठने का आनंद मिलता है, यद्यपि नीची गलियों में सूर्य की उल्लेख किरणें नहीं पहुँचती तो भी वे उन संतप्त गृहों के संताप में ऐसी संतप्त हो जाती है और उमस जाती है कि संकेत बदे हुए नायिका नायक के अतिरिक्त जिनको ऐसे प्राणों का शत्रु सूर्य भी शरहतु के चन्द्रमा सा आनंददायक होता है, एक "चिड़िया का पूत" भी नहीं रहता, पृथ्वी तवा सी संतप्त हो जाती है लोग तहखानों में वृक्षों की छाया में, टटिद्यों की आड़ में पौसरों में जलाशयों के निकट और छाया के स्थानों में दिन भर अधमरे से पड़े रहते हैं, और अपने इस दिन पर वियोगिनियों की रातों निश्चावर किया करते हैं । गाऊ, घोड़े इत्यादि घरेले पशु और सुग्गा, कौआ इत्यादि पक्षी भी व्याकुल होकर हांफा करते हैं और बिन कुत्ते तो साहिब मजिस्ट्रेट की आज्ञा से भी विशेष त्रस्त हो कर जीभ निकाले डुम दबाये इधर उधर आकुल हो दौड़ा करते हैं कहीं शरण नहीं मिलती, जहां कहीं पौसरों का पानी गिरा रहता है या पनघट होता है वहां घड़ी दो घड़ी पड़े रहकर कुछ विश्रामामास कर लिया करते हैं वायु का प्राण नामकरण इसी ऋतु में हुआ पंखे लोगों के ऐसे मित्र हो रहे हैं कि क्षण पर भी नहीं छूटते धनवान लोग खसखानों में थर्मन्टीडोट के सामने बर्फ का पानी पिया करते हैं परन्तु धनहीन लोगों को तो किसीप्रकार से भी इस ऋतु में सुख नहीं मिलता कबूतर के दरबे की भांति किराये के घरों में कलौजी से कसे सड़ा करते हैं और वायु के स्वच्छ न रहने से अनेक रोगों से भी पीड़ित रहते हैं । रेल पर जाने वाले पथिक कपड़ा पहिने बोझ से लदे सिपाहियों का धक्का खाए रुपया गवाये मूखे प्यासे बिना नहाये धोये गाड़ी की कोठड़ियों में अचार के मटके में पसीने नमकीन नीबू से ठसे जी से छटटे होने को धूप में तपाये जाते हैं और उसमें भी में अचार के मटके में पसीने से पसीने नमकीन नीबू से ठसे जी से छटटे होने को धूप में तपाये जाते हैं और उसमें भी जब गाड़ी स्टेशनों पर पानी लेने को खड़ी हो जाती है तब तो सयमनी से यमराज आकर अपने क्षतावधि नरको को एक एक कोठरियों पर न्योछावर करके फेंक देते हैं क्योंकि चलने में तो कुछ हवा

लगती भी है पर रुक जाने से तो ट्रेन की ट्रेन कलकत्ते की बलैक होल हो जाती है पहिले तो पथिक प्रायः बेसुध पड़े रहते हैं और यदि कभी चौक उठते हैं तो केवल पानी-पानी का शब्द उनके मुख से सुन पड़ता है। जैसे बहेलिये की पिटारियों में बारे फेरे की सिरोंहियां कसी रहती हैं वहीं दशा इन जात्रियों की भी होती है। यद्यपि यमलोक और रेल लोक की यात्रा का साथ ही प्रस्थान करते हैं पर न जाने कि पुन्यों से भी वे बच कर घर पहुंचते हैं।

बन और पहाड़ों की भी यही दशा है। हरने चौकड़ी भूले मृगतृष्णा के पीछे दौड़ते फिरते हैं मोर मुह खोले इधर से उधर दौड़ते हैं छोटी-छोटी चिड़ियां तो भुन भुन के डाल पर से नीचे गिर गिर पड़ती हैं, सिंह तराइयों में से सिकार देख कर भी नहीं उठते, पर्वत अंवा से हो जाते हैं वृक्ष सब मुरझाये हुए दूब सूखी हुई कहीं कोकिल और कठफोड़वा के शब्द कान में पड़ते हैं कहीं पनडुब्बी बोलती है जहां कहीं सोते वा झरने वा कुंड वा झील होती है वहां चारों ओर जीवों का झुण्ड घिरा रहता है ऐसे कठिन और भीषण ग्रीष्म ऋतु में भी जो श्री वृंदावन की लीला में भीगे रहते हैं और प्रेम में जिनके नेत्र से फुहारे चलते हैं वे शीतल चित्त रहते हैं क्योंकि सच "वृन्दावन गुणैर्वसंत इव लक्ष्यते" "यह लिखा है वहीं ग्रीष्म ऋतु श्री वृंदावन में वसंत सा ज्ञात होता है जिसका पाक जनों को इस पत्र के सम्पादक के पिता के इस ग्रीष्म वर्णन से स्पष्ट अनुभव होगा।

EDUCATION COMMISSION EVIDENCE OF BABU HARISHCHANDRA

सन् १८८२ में एक शिक्षा कमीशन बैठा था। भारतेन्दु बाबू उसके प्रधान साक्षी चुने गये थे। पर वे बिमारी के कारण स्वयं उपस्थित हो कमीशन के सामने बयान न दे सके। लिहाजा आयोग द्वारा प्रेषित बहत्तर सवालों का उत्तर उन्होंने लिखकर भेजा।

शिक्षा कमीशन के प्रश्नों का जो लेखबद्ध उत्तर भारतेन्दु बाबू ने भेजा उस संबंध में तत्कालीन अंग्रेजी पत्र 'रईस और रैयत' के सम्पादक श्री शम्भूचरण मुखर्जी अपने ७ जुलाई सन् १८८३ के अंक में लिखते हैं—

'यह रोचक बातों से भरी हुई है और इससे सिद्ध होता है कि जिन विषयों पर इन्होंने लिखा है उन्हें यह पूर्ण रूप से समझे हुए हैं। पश्चिमोत्तर देश में शिक्षा की उन्नति की चाल को यह अवश्य ही बड़ी सावधानी से देखते गये हैं और इस विषय में इनकी जो जानकारी देखी जाती है वह वर्षों के मनन, विचार, अनुसंधान तथा निज अनुभव का परिणाम है। इन्होंने अपनी सम्मतियां बहुत स्पष्ट करके लिखी हैं और जो बातें साधारण प्रवादों के विरुद्ध हैं उनको यह प्रमाणों तथा तर्कों से पुष्ट करते गये हैं। जिस स्वतंत्रता से इन्होंने इस विषय का प्रतिपादन तथा समर्थन किया है वह इन्हीं के उपयुक्त है।' उसी साक्षी का यह मुख्य अंश है। — सं०

EDUCATION COMMISSION



EXTRACTS FROM EVIDENCE, BABU HARISCHANDRA

I have always taken an interest in education. I am a Sanskrit, Hindi and Urdu poet, and have composed many works in verse and prose. I started a Hindi journal, the Kavivachana Sudha, which still exists. My aim has always been to better the educational status of my countrymen, to improve the vernacular language of these provinces, and to add to the stock of the vernacular literature. I have always taken pleasure in the enlightenment of my fellow countrymen. I have established a school for elementary education in the City of Benares. I was a member of the Benares Educational Committee, and have had considerable opportunity of coming into contact with those connected with the Educational Department and other men of learning. I have given prizes to students and scholars of Government schools and colleges to encourage the advancement of learning.

I belong to the North Western Provinces, and my experience is confined to them.

It is true that the officers of the Education Department are not sufficiently respected by the ignorant public. It is not the fault of the department. It is owing to the quiet nature of the work which the department has to do, viz., supervision and examination of schools. In India hukumat (authority) commands respect. An education officer cannot consign a man to custody, cannot fine him, cannot squeeze his purse. They are much like missionaries, in pursuit of a good cause, unmindful of the scorn of the ignorant, whereas the functions of the Revenue and Police Departments inspire awe in the minds of the people, affecting as they do matters in which they have a nearer interest than they have in the education of their little ones To remove this evil, the best remedy would be to make primary education compulsory in India as it is in England and other European countries, to make the language of the court the language used by the people, and to introduce into the court papers the character which the majority of the public can read. The character in use in primary schools of these provinces is, with slight exceptions, entirely Hindi, and the character used in the courts and offices is Persian, and therefore the primary Hindi education which a rustic lad gains at his village has no value, reward or attraction attached

to it. The son of a zamindar, after he has been for years mastering the curriculum of village schools, on going to court finds himself out of his element, he sees that all his labour has been wasted, he finds himself as ignorant as his forefathers were, and cannot understand the hieroglyphics used in amladom. If the son of a poor man wishes to secure a livelihood by his knowledge, he must knock at the door of the Education Department. The other department will send him away as ignorant.

There are instances of the big landholders or zamindars of the Khastriya or Brahmin caste not wishing to educate the sons of their ryots of the lower orders, with a view to profit by ignorance. But such cases are very rare.

The time has not yet arrived when the Government should depend on private exertions for the diffusion of elementary education in rural districts. The withdrawal of Government, even if it be in an indirect manner, would certainly be a death-blow to the cause of education. The natives of this country have for a long, long period been under the despotic rule of Hindu Rajas or Musalman Emperors, and have acquired a habit of dependence and slavery which is engendered in their very nature, and it will take a very long time before the benign rule of the English Government can inspire their nature with free thoughts of independence. India, wherein it is but the dawn of civilization such a step would be too early and premature, especially when we see that in England and other European countries, which are far ahead of us in all that appertains to civilization, elementary education is compulsory. If we turn to the returns of the Education Department we shall be able to see what progress has been made by this country in education by direct Government interference. People of this country, although they pay for primary education in the shape of local rates, care little whether a school situated in their village is opened or abolished. They pay education cess because they consider it a tax imposed on them by Government and not with any regard to their own good. It is by direct Government interference alone that this country can prosper.

It is rather difficult to answer the question, what is our vernacular language ? In India it is a saying-nay, an established fact-that language varies every yojana (eight miles). In the North Western Provinces alone there are several dialects. The vernacular of these provinces, though it can be divided, owing to its various intricate and manifold forms, into a hundred sub-heads, has four main features—(1) Purbi, as spoken in Benares and its bordering districts ; (2) Kannauji, the dialect spoken at Cawnpore and the adjoining districts ; (3) Brajbhasha, as spoken in Agra and its neighbourhood ; (4) Kaiyan or Khariboli, as spoken at Saharanpur, Meerut, and the neighbouring districts.

In the city of Benares alone, if you have to ask any man "how he is

doing"—you will use the following different expressions :—

"Apka sarir kusal hai ? kshem hai ? swasth hai ? Mizaji mubarak, Mizaji mukaddas, Mizaji sharif ? Apka mizaj kaisa hai ? Tohar jiu kaisan batai ? hau kaisan baya ? kaisan hoe, &c. &c.,"

according as you are a pandit, a munshi, a citizen or a villager. When you observe such vast variety in one and the same common dialect used in one and the same place, what can you say of the language used throughout the entire province ? The vernacular of this province therefore varies according to the caste, birthplace, and attainments of the speaker, I would therefore call the vernacular of the province the dialect spoken by the classes of people in public places and on public occasions : for instance at royal Durbars, Courts, public meetings, &c., &c., or the dialect in which books are written.

Thus it will be seen that out of features of the vernacular of this province as noted above, only two, viz., Brajbhasha and Khariboli, attract attention. Brajbhasha is used in Hindi poetical composition, and Khariboli under two different disguises is spoken all over the province. The latter consequently, when spoken with abundant use of Persian words and written in Persian character, is styled "Urdu", and when free from such foreign mixture and written in Nagri character, is termed Hindi. Thus we come to the conclusion that there is no real difference between Urdu and Hindi.

But in these days the two forms of our vernacular occupy the thoughts of the people and afford to them an attractive topic of discussion and a theme for long debates and harangues. The Muhammadans and their fellow companions, such as the Kayasths of Benares and Allahabad, the Agarwalas and Khattris of the more western portion of the provinces, call this dialect Urdu, and there are several reasons for their doing so. The Muhammadans for a long time were the ruling power in India, and consequently the dialect spoken by them was considered in these provinces as most respectable. Those who wished to be looked upon as fashionable or polite to public meetings or other assemblages spoke Urdu, and many have recourse to the same practice up to the present day. Excellence in Urdu is imagined to be contained in the use of big and high sounding Persian words to such a degree of profusion as to leave only the verb of the sentence Hindi.

The respect that Urdu commands in the British rule is owing to its being the court language of the province. The Musalmans not only have a sharp and oily tongue, but are also very forward and headstrong, and this is the cause why they over-power other people. By the time the Hindus think to convene a meeting to address the Government and ask it to introduce Hindi, the Musalmans will have protested the Government to

the contrary. If Urdu cease to be the court language, the Musalmans will not easily secure the numerous offices of Government, such as peshkarships, serishtadarships, muharrirships, &c., of which at present they have a sort of monopoly. By the introduction of the Nagri character they would loose entirely the opportunity of plundering the world by reading one word for another and thereby misconstruing the real sense of the contents. The Persian Character particularly Shikast, in which at present the court business is carried on, is an unfailing source of income to mukhtars, pleaders and cheats.

May god save us from such letters !!! What wonders cannot be performed through their medium ? Black can be changed into white and white into black. Writing, which is present a perpetual source of income to hangers-on of the court, will cease to fill their coffers if Hindi is introduced. Bombast and high-sounding Persina words which have never been heard of by landholders, cultivators and traders, are forced into composition purely with a view to yield a harvest to interbreeters. If Hindi is introduced who will pay to four annas to learn the contents of a summons, or eight annas to one rupee for writing out a small petition ? How can, then, a summons to give evidence be interpreted as a warrant of arrest ? The use of Persian letters in office is not only an injustice to Hindus, but it is a cause of annoyance and inconvenience to the majority of the loyal subject of Her Imperial Majesty. Because Urdu is the language of the court, a few people are favourably impressed towards it.

In all civilized countries the language spoken by the people and the character written by them are also used in the courts. This is the only country where the court language is a language which is neither the mother tongue of the ruler nor of the subject. If you send out two public notices, one written in Urdu and the other in Hindi the proportion of the people deciphering each can be easily known. Both rayats and zamindars have been heartily gratified at the introduction of Hindi letters in summonses issued by Collectors. The Bankers keep their account-books in Hindi. The private correspondence of the Hindi is carried on in the same letters. The Hindus speak Hindi in their families, and their women use Hindi characters. The patwari keeps his village papers in Hindi and the majority of the village schools teach Hindi.

I am sorry to learn that the Honourable Sayyid Ahmad Khan, Bahadur, C.S.I. in his evidence before the Education Commission, says that Urdu is the language of the gentry and Hindi that of the vulgar. The statement is not only incorrect but unjust to the Hindus. With the exception of a few Kayasths, the remaining Hindus, e.g., Kshatriyas, mahajans, zamindars—nay, the revered Brahmins, who speak Hindi, are supposed to be vulgar. In spite of this though the Lala Sahib (Kayasth)

will correspond with the Sayyid Sahib Bahadur in Urdu yet when writing to his wife he must use the Hindi character.

The days are gone by when Brahmins and Pandits learn their Gaitris (the most holy verses) through the medium of Persian. These are the letters which teach us Gul bulbul sharab, piyala, ishk, ashik, mashuk, and ruin us. In early age love occupies our thoughts. Karima, and Mamukima, and Mahmudnama, are the books for beginners. The Karima is a small good book, but the two latter contain only love odes. Further on, the Gulistan and Bostan, are not quite free from occasional mention of love stories. The immoral not quite free from occasional mention of love stories. The immoral composition of Zulekha and Bahardanish scarcely fail to deprave the mind of the reader. There is a secret motive which induces the worshippers of Urdu to devote themselves to its cause. It is the language of dancing girls and prostitutes. The depraved sons of wealthy Hindus and youths of substance and loose character, when in the society of harlots, concubines and pimps speak Urdu, as it is the language of their mistress and beloved ones. The correct pronunciation of Urdu, with its shin, ghain, and guttural kaf, is indispensable in such a company, and one unable to twist his tongue into unnatural and unpleasant distortions is not a welcome or an agreeable companion.

As I have mentioned above, the 2nd branch of Khariboli is Hindi, which is also called Aryabhasha or Sadhubhasha. Hindi is made to appear hard and different by our Pandits on account of profuse use of Sanskrit words which are far beyond the average understanding of the ignorant public. For example, 'mar sah kar wuh bhag gaya' : this is a pure Hindi sentence. The Maulvis would translate it 'wuh zad uardasht kar apne maskan ko farar ho gaya'. The Pandit would say 'wuh mar sahan kar swagriha ko palait ho gaya'. This interposition of foreign words have spoiled true Hindi. Hindi by itself without much foreign aid can easily answer our purpose. Look at the language of the "Rani Ketaki ki Kahani" (Story of Queen Ketaki) compiled by Insha Alla Khan. The constant war in which Maulvis and Pandits have engaged themselves has ruined the cause of true Hindi. Our vernacular is neither the language of the Maulvis or that of the Pandits. It is something between ; it is the "the Golden mean."

The natives of this country, at least of these provinces, have been under a strict impression for the last eight or nine years, that the Government wishes to shut up the doors of education against them ; that it thinks Education Department the most superfluous of all the departments of the state ; that this is the only department which shows all expenditure and no income; that Indian youths aspire to Government posts, and upon failure turn round and abuse the very Government that educated them.

I cannot but express my deep regret to answer this question in the negative. The Government has hitherto turned a deaf ear to our prayers in this matter. After repeated representations of the complaint by the Education Department in the year 1877 the local Government passed an order ruling that no Government appointment to which a salary of Rs. 10 or upward was attached should be given to a person who had not passed a certain public examination. The rule was heartily welcomed by the educated, who thought that the golden age had again returned, and that none but the really deserving would have the monopoly of government posts. Alas ! to their mortification and surprise, the Government order was consigned to the waste basket by Anglo-Indian officials. It is no more than a dead letter now. If a report be called for from all the departments of Government administration, as to how far effect has been given to this order of Government my statement will be borne out.

A large majority of the Anglo-Indian officials have a deep-rooted prejudice against the graduates and undergraduates, and systematically shut to them the doors of responsible Government posts. They prefer employing men of the old school, who are neither well educated nor possess any high moral sense, but are ready to bear patiently the abusive language and offensive manners of their superiors. On the contrary, the Anglo-Indian functionaries hate the University educated men, who seldom refrain from criticizing the conduct of the authorities when they pass the bounds of propriety or give way to their whims. The amla try their utmost not to let University men pollute the atmosphere of their jurisdiction or trespass on the limits of the cutcherry, into which they think that they themselves and their belongings only have a writ to enter. The officials always accept the nominations of their serishtadars and head-clerks. The claims of the educated are persistently ignored : they are deliberately kept down and all the avenues to distinction are shut to them. The Government of these provinces has done but little to help such men, and this is the reason that such men go round from door to door of all the departments begging for employment. If the commission were to take up the list of Sub-Judges, Munsiffs, Deputy Collectors, Tahsildars, Peshkars, Munsarims, Serishtadars, Head-clerks and subordinate amla, it will readily find whether what I have stated is a fact. The only department wherein such people can find employment is the Education Department.

No instruction in duty and principles of moral conduct occupy any place in Government colleges or schools. It is a want extremely felt, and such study ought certainly to have a place in the school and college curriculum. Books may be selected hereafter, but in no way should they be such as to interfere with the religious views of any sect of people.

There are very few public schools for indigenous instruction of girls. I know one or two of the kind. There is a large school of this class at Benaras supported by His Highness the Maharaja of Vizianagram, attended by about 500 girls under the supervision of European ladies. But it must be remembered that almost all the girls are paid for attendance and the majority of them come from the low classes.

There is little inclination on the part of the natives of this country to send their girls to public schools, they are generally opposed to such a scheme. But we have something like "home" education. Respectable people do not wish to send their girls of whatever age they be, to a public school, whether under the management of Government or private individuals ; and therefore they generally employ a tutor of their own to educate their girls. The home education is often of a religious character and has little to do with western enlightenment. Religious books containing lessons on principles of morality and household duty are generally read. The Muhammadans teach the Koran to their girls.

European ladies of the civil, military, or Education Departments have shown little interest in female education. Should these ladies do so, the cause of female education in India might prosper and good results might be achieved. The mission ladies have evinced some interest, but their visits to the zanana have been seldom reckoned as beneficial. They are naturally inclined to inculcate religious principles and free thoughts which instead of creating in the minds of native women a desire for education, generally make them averse to it. They are led to consider that the sole aim of such ladies is to convert them, and therefore they scrupulously avoid mixing with the supposed enemies of their religions.

लेखक और नागरी-लेखक

लेखक की महत्ता पर प्रकाश डालने वाला भारतेन्दु का यह विचार प्रधान निबन्ध जिसका पुनर्मुद्रण नागरी प्रचारिणी सभा के पण्डित केदार नाथ पाठक द्वारा किया गया ।

— सं०

हे — प्रत्येक जाति को अपने लेखकों ही के गौरव और उच्चाशय द्वारा सर्वोच्च यश की प्राप्ति हुई (या होती)

* Every nation arrived their highest reputation from the splendour and dignity of their writers.

Dr. Johnson.

आज तक हम महापुरुषों को साक्षात् ब्रह्म अवतार कवि, आचार्य और राजास्वरूप में सुनते और मानते

आये हैं परन्तु आज कल हम यह क्या सुनते हैं — "वह लेखक है, वह महापुरुष है ।" पहिले चार के विषय में तो हमने अपने नागरी जगत में अतीत कहानी मात्र सुना है और अन्तिम पञ्चन के विषयमें हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जानते हैं कि जो ३६ कोटि मनुष्यों के एक मात्र कुर्ता, धर्ता और विधाता हैं वह अवश्य एक महापुरुष हैं, इसमें सन्देह ही क्या !— इसलिये वर्तमान समय में किसी राजपुरुष को "महापुरुष न मानते हुए भी हम अपने सम्राट् महाराज एडवर्ड को एक महापुरुष समझते हैं । परन्तु — "वह लेखक है, वह महापुरुष है ।" यह ध्वनि कान में पड़ते ही बड़ा आश्चर्य होता है कि एक साधारणस्थिति के मनुष्य को जगत महापुरुष कैसे कहता है । न्यायालयों और कार्यालयों में जिसका पद सब से छोटा है यहाँ तक कि जिले न्यायाध्यक्ष (हाकिम) और कार्याध्यक्ष (आफिसर) ही की नहीं, बरन कभी कभी उसके अर्दली और चपरासी तक की फटकार सहनी पड़ती है उसी नकल नवीस, मोहिरिर और आज कल के क्लर्क के पर्यायवाची शब्द के "लेखक" नामधारी मनुष्य को जगत महापुरुष क्यों कर मानता है ? किन्तु जब हम वर्तमान समयकी ओर देखते हैं और यह समझते हैं कि "लेखक" सामयिकसृष्टि का यथार्थ में महापुरुष है तो हमारा आश्चर्य नहीं रहता, क्योंकि रात दिन देखते हैं कि वर्तमान समय में अनेकानेक असम्भव बातें सम्भव हो रही हैं । यदि वर्तमान सृष्टि की विचित्र गति को देखकर हम यह समझ लें कि हिन्दुओं को पवित्र पुस्तकों के लेखानुसार कलिकाल में जो भगवान का कल्कि अवतार होना माना जाता है तो वह स्यात् इन्हीं महापुरुषों के वेश में हो, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं माना जा सकता क्योंकि इस समय विलासप्रियजगत में इन महापुरुषों के अतिरिक्त और कोई ऐसा हमारी दृष्टि में नहीं आता है जो चना के पौधेके तले बैठने की नाई, रूखा सूखा, मोटा फटा पहिन, सर्दी गर्मी सह कर "परोपकाराय सतां विभूतयः" के उपदेश में लगा रहे । आ हम आप से पूछते हैं कि आप क्या ऐसे महापुरुष की कथा नहीं सुनना चाहते हैं ?

"यथा नाम तथा गुणः" की जैसी विलक्षण सिद्धि "लेखक" के जीवन वृत्तान्त में देख पड़ती है वैसी स्यात् ही कहीं देख पड़ेगी । भविष्यत् में कुछ हो परन्तु अभी तक लिखने की सिद्धि प्राप्त किये बिना कोई लेखक नहीं कहल सका है । ब्रह्मज्ञान के बिना शासन ब्रह्मस्वरूप दैहिक वासनाओं के रखते हुये अवतार रूप कल्पक भाँड़ों और वेश्याओं के लिये, अनर्थ में फंसानेवाले विषय वासना की चाण्डालिनी मूर्ति के प्रति लक्ष्य कर के दो चार पद निर्माण करने वाले कवि, धर्म के ज्ञान से शून्य केवल नाना आडम्बर द्वारा अपने पेट की पूजा कराने वाले आचार्य और प्रजा के संरक्षण एवं राजनीति के मर्म से शून्य राजा, भले ही मनुष्य बन जायें, परन्तु जब तक हमारे लेखक महापुरुष का अवतार हुआ है । यों तो इस परिवर्तनशील जगत में अनेक वस्तुएँ अनेक बार बनती और अनेक बार लुप्त होती हैं जिस से यह निर्णय नहीं हो सकता कि इस काल चक्र में कहाँ पर क्या क्या देखा । गाड़ी के पहिये को देखो ज्यों ही यह एक बार घूम जाता है और दूसरी फेरी में पड़ता है त्योंही हमें उसकी पहली बार की गति और उसपर जीती हुई बातें भूल जाती हैं । इस से हम लेखक की आयु का निर्णय नहीं कर सकते । परन्तु जो कि हमें केवल "नागरी-लेखक से ही सम्बन्ध है इस से हम लेखक की आयु का निर्णय नहीं कर सकते । परन्तु जो कि हमें केवल "नागरी-लेखक से ही सम्बन्ध है इस लिये हम कह सकते हैं कि गत शताब्दि के आरम्भ से प्रथम कोई "नागरी-लेखक" अपना वर्तमान गौरव-सूचक "लेखक" नाम सार्थक नहीं सका है । कहना नहीं होगा, मुद्रण यन्त्र के प्रचार के साथ ही साथ महायुक्त "लेखक" की उन्नति हुई जैसे विष्णु चक्र और महादेव त्रिशूल के सहारे संसार पर विजय पाते हैं वैसे ही "लेखक" मानों अपने मुद्रणयन्त्र से ही जगत में अपनी हुन्दुभी बजाते हैं । जब तक संसार में मुद्रण यन्त्र रूपी उनका अस्त्र रक्षित रहेगा, तब तक वह जगत में महापुरुष कहला कर ही पुजते रहेंगे ।

हमें तो स्मरण नहीं होता कि किसी नागरी लेखक ने १९ वीं शताब्दि के पहिले अपने उच्च विचारों को लिखकर और छापेखाने में छपवा कर सर्व साधारण के सामने धरा हो । यद्यपि हमारे पास कोई ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है जिस से हम यह सिद्ध कर सकेंगे कि जितने लेखक इस समय प्रसिद्ध हो रहे हैं उन के

अतिरिक्त भी कुछ और जन्मे और कुछ थोड़ा बहुत अपना कार्य कर के स्वर्ग को पधार गये । तथापि हमारा मन साक्षी देता है कि साधारणतः केवल कृतकार्य मनुष्यों का ही नाम हमें सुनाई पड़ता है, परन्तु देखते हैं कि सहस्रों के उद्योग करने पर केवल कुछ इने गिने ही अपने कार्य में सफल होते हैं तो अवश्य सम्भव है कि अनेकों ने इस कार्य में अपने प्राण खोये होंगे, जिन का नाम भी आज संसार में नहीं है । परन्तु सब से बड़ कर धन्यवाद के पात्र वही है जो इस कार्य में बिना धन और बिना यश कमाये, प्रसन्नता पूर्वक अपना कर्तव्य पालन करते हुए काल की गोद में चले गये । इस में कुछ सन्देह नहीं कि वर्तमान राजनियम के अनुसार वह अपनी पुस्तकों पर स्वत्व न रख सके और जहाँ तहाँ राजाओं से थोड़ा बहुत पुरस्कार पाते हुए ही वे अपने जीवन के दिन भयंकर दारिद्र्य दुख में व्यतीत करते रहे परन्तु अब वे ही अपनी विना की भस्म में से निकल कर मनुष्यों के हृदय पर राज करने लगे हैं । हा शोक ! इस के विचारमात्र से ही हमारे हृदय पर कितना बड़ा आघात लगता है कि जो आज हमारे हृदय के अधीश्वर हैं वे पेट भर अन्न और शरीर ढकने योग्य वस्त्र भी बिना पाये अपनी जीवन लीला सम्वरण कर गये । इस से बड़ कर दुःखदाई और लज्जा जनक बात मनुष्यमात्र के लिये क्या हो सकती है ?

शोक का विषय है कि हमारे स्वर्गीय लेखकगण ही ऐसी दशा में आविर्भूत नहीं हुए कि जिस में हम यह नहीं जान सकते थे कि इन निकम्मों से भी हमारा कुछ काम निकल सकता है, वरन आज तक भी हमारे नागरी जगत में लेखक कोरा उठल्लू समझा जाता है । हम लोग स्वर्ग में गद्दी पाने की इच्छा से निरक्षरभट्टाचार्य कितने साधू, सन्यासी, ढण्डी उदासी पुरोहित और गंगा यमुना के पुत्रों की सेवा सुश्रूपा में कितने ही का गांजा चरस और चण्डू क्यों न फूक दें और जन्म भर उन की टहल किया करें, परन्तु जो स्वर्ग के सच्चे प्रथम दर्शक हैं उन विद्वान् लेखकों की ओर से हम अपना मुंह फेर लें और उन के लिये कभी एक फूटी कौड़ी भी न खर्चें । इसी का फल है कि आज हमारी यह दुर्दशा हो रही है और हम अपने लेखकों के कष्ट को स्मरण कर २ के आह २ आंसू रो रहे हैं । जब हमें यह दीख पड़ रहा है कि विद्या ही हमारे परित्राण के लिये चक्र है तब तो लेखक भी हमारे लिये चक्रधारी भगवान् वसुदेव के समान परित्राणदाता अवश्य होंगे । पाठकगण ! समझे, लेखक हमारा पूजनीय और आराधनीय देव है । शत पथ ब्राह्मण का वचन है कि "विद्या सो हि देवाः" अर्थात् जो विद्वान् ही वही देव हैं । विद्या के बिना लेखनशक्ति प्राप्त नहीं हो सकती और लिखने से विद्या के ऊपर शान चढ़ती है, इस से लेखक विद्वान् की भी अपेक्षा श्रेष्ठतर निर्भ्रम पूजनीय देव है । लेखक मनुष्य समाज का प्राण है । लेखक मनुष्य के हृदय पर अपना अधिकार जमाये बिना कदापि नहीं रह सकता है । लेखक से संसार का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि संसार की गति की परीक्षा हम लेखकों की गति से कर सकते हैं ।

जैसे संसार की अन्य सब बातों में सब और भूठ का भेद माना जाता है वैसे ही लेखकों के भी दो भेद हैं । एक योग्य और दूसरे अयोग्य । योग्य लेखक वे हैं जिन के लेख जगत में माननीय और आदरणीय माने जाते हैं और सर्वदा वैसे ही माने जाते रहेंगे । जिन्होंने जिस विषय का विवरण किया वह विषय उस समय जगत में सर्वोच्च समझा जाता था जिन की जिह्वा और लेखनी से सर्वदा ऐश्वरीय विचारों का प्रवाह प्रसूयित होता है । जो इस क्षणभंगुर असार और मायालिप्त बाह्यजगत् में रहते हुए भी अनादि अनन्त सारभूत पवित्र आन्तरिकतत्त्व के साथ सदा विचरण करते हैं । जो इस जगत के आन्तरिक दृश्य को देखते हुए इतर मनुष्यों को जो अधिकांश उस स्वर्गीयसुख से वञ्चित होते हैं और जिह्वा और लेखनी से उस दृश्य के दिखाने की यथासाध्य चेष्टा करते हैं । जिस की पवित्र आत्मा ऐश्वरीयज्ञान के निर्मल प्रकाश में सांसारिक क्षणस्थायी सुखों को तुच्छ देखती हुई अक्षयमोक्ष सुख की खोज में लगी रहती है । "लेखक के स्वभावः" पर व्याख्यान देते हुए जर्मनी के प्रसिद्ध तत्त्व वेता फिची (Fichte) ने कहा था, — "हम और हमारे समस्त मनुष्य भाइयों के सहित इस पृथ्वी पर के समस्तपदार्थ इस दृश्यमान जगत् के सम्भोग पदार्थ हैं, इन पदार्थों के स्वरूप के भीतर उनका सारा भाग जिसे हम लोग "जगत का ऐश्वरीय विचार" कहते हैं, रहता है और यह विचार "जगत की मान्यता है जो प्रति मूर्ति के हृदय में विद्यमान है" जगत में यह ऐश्वरीय विचार सर्वसाधारण के लक्ष में नहीं आ सकते हैं साधारण मनुष्य जगत की बाहरी दिखावटों और बनावटों में ही उलझे रहते हैं और उन का यह स्वप्न में भी विचार नहीं होता कि संसार की इन बाहरी दिखावटों और बनावटों में भी कुछ ऐश्वरीयभाव विद्यमान है । परन्तु लेखक का जगत में अवतार इसी लिये होता है कि वह इस असार जगत् के सार को स्वयं देखे और दूसरों को दिखलावे; और भाष का जब जब परिवर्तन हो तो उसी परिवर्तित भाषा में उस समय के मनुष्यों की रुचि के अनुकूल उस "सार" को

वर्णित करें। फिची के कथन का सार मर्म यही है कि वह सर्वव्यापी परमात्मा अपनी ब्रह्मा विष्णु और महेश आदि अनेक ज्योतियों में से किसी न किसी थोड़ी या बहुत ज्योति से प्रत्येक पदार्थ के सारभाग को उद्भासित कर रहा है। ब्रह्मवादी इसी से जगत को केवल ब्रह्मय मानते हैं। प्रकृतिवादी सत रज और तम भेद से उस का जगत में व्याप्य होना कहते हैं। "ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत्" ।। यह ईशोपनिषद का वाक्य है, जिसका अर्थ यह है। जो कुछ सृष्टि में भंगुर पदार्थ है वह सब परमेश्वर से बसा है। इसी के व्याख्या स्वरूप उसी उपनिषद के पाँचवें श्लोक में कहा है ? 'तदन्तरस्य सर्वस्य तद सर्व स्यास्य बाह्यतः' अर्थात् वही इस सब के भीतर है वही इस सब के बाहर है। इसी से स्वामी शंकराचार्य ने ज्ञान रूप परमात्मा का जगत में व्याप्य होने की शिक्षा देने की अपेक्षा उस का साक्षात् रूप जगत होना कहा और संसार में अद्वैतवाद का भण्डा खड़ा किया। इसी, क्या अन्तर क्या बाह्य, सर्वव्यापी ईश्वरीयज्ञान प्रभा के प्रकाश से चौंधिया कर भगवान बुध ने निर्वाण पद पाकर जीव का साक्षात् परमेश्वर होना माना है। कहाँ तक कहें यह वह विषय है कि जिस को सारा चराचर जगत अपनी आत्मा से भली भाँति मान रहा है।

फिची [Fichte] ने इसी लिये लेखक को धर्मोपदेशक भी कहा है क्योंकि वह नाना प्रकार से मनुष्यों को ऐश्वरीयभाव दर्शनी की चेष्टा करता है। मानों या न मानों परन्तु इस में कुछ भी सन्देह नहीं कि सच्चे लेखक की आत्मा आवश्य पवित्र होती है उस के विचार ऐश्वरीयज्ञान से परिपूर्ण होते हैं। लेखक जगत का प्रकाश है, लेखक जगत का गुरु है, उसी के प्रकाश के सहारे हम पायपूरित अधियारी रजनी में अपनी संसार यात्रा को समाप्त करते हैं और उसी के उपदेश में हम इन्द्रिय लालसाओं के और लुटेरों के पञ्जों से बचते हैं।

अयोग्य अथवा भूठे लेखक वे हैं जो ऐश्वरीयज्ञान से वञ्चित रहते और सांसारिक विषयों की इच्छा रखते हुए जगत को भूलावे में डाल का अपना अर्थसाधन करते हैं। जिन्हें दैहिक सुख की कामना है वे आत्मिक सुख का कभी अनुभव नहीं कर सकते हैं। जो लेखक ऐसे हैं उनसे उन्हें, स्वार्थी और मिथ्या वादी कहना पाप न होगा। परमात्मा करें, विद्या के पवित्र क्षेत्र में ऐसे नराधमों का कमी पैर न पड़ने पावे।

हमारे पूजनीय पूर्वपुरुषों ने देवालयों में भगवत पूजन करने और देवदियों में निर्धारित तिथियों को स्नान करने और विद्वानों के समागम पर एक स्थान पर एकत्रित होने की प्रथा इसी लिये प्रचलित की थी कि ऐसे समयों पर तो भी सर्वसाधारणजन योग्यपुरुषों की विद्याबुद्धि और वाक् शक्ति का परिचय पा सकें। उन को मालूम था वाक्शक्ति के समान जाति की उन्नति के लिये और कोई शक्ति लाभदायक नहीं है और यदि यह न हुई तो जातीय जीवन किसी काम का नहीं है। उन का यह कार्य कैसा उच्च, पवित्र, सुन्दर, लाभकारी और महान था। परन्तु यह देखो लेखनप्रणाली और मुद्रणयंत्र के सहारे अब जगत के इन कार्यों का कैसा उलट फेर हो गया है। लेखक (ग्रंथकार) धर्मोपदेशक की नाई इधर उधर यहाँ वहाँ नगर धर्मोपदेश नहीं देता फिरता है, परन्तु वह एक ही समय में एक दूसरे से बहुत दूर बसे हुए अनेक स्थानों पर अपनी शिक्षाओं को सुनाता है। परन्तु शोक है कि इन बेचारे लेखकों की सुनते बहुत कम हैं। नाना प्रकार के मनोहर पदार्थों से सुसज्जित कमरों में बैठे हुए और धनवान शिष्य दल से घिरे हुए आचार्यवर की नवरमपूरित कथाओं को छोड़ कर कौन ऐसा मन्दमति होगा जो कुछ पैसे खर्च कर एकग्रचित हो कर लेखक के कोरे कागज में अपना सिर खपावेगा। पञ्चभूतनिर्मित इस शरीरराज्य के राजा मन का कष्ट छोड़ शारीरकसुख भोगने का स्वाभाविकगुण है। इसी से मनुष्य विवेचनारहित हो कर सुख दुःख की सीमा का विना मिलान किये हुए कष्ट साध्य कामों से दूर भागता है परिमाण में दुःख की अपेक्षा सुख कितना ही गुना क्यों न हों। इसी से वर्तमान दैहिक सुख को सुख समझने वाले जगत में ऐसी किस की भी गती है जो लेखक के भविष्यत् सुख पर विश्वास करें। ऐसी दशा में लेखक के लिये कौन पृच्छता कि कहा से आया कहाँ जायगा कैसे आया और कैसे जायगा ? वह जगत में एक अपरिचित मनुष्य की नाई मारा २ फिरता है। गृहहीन, आश्रमहीन और सहायहीन वन वासी मनुष्य की नाई वह उसी जगत में जिस का वह स्वयं अज्ञानान्धकारनाशी निर्मल प्रकाश है घूमता फिरता है।

संसार में मनुष्य ने अपनी बुद्धि से जितने अद्भुत आविष्कार किये हैं उन में सब से बड़ कर लिपि निर्माण है। पुराणों में महादेव के गणों के कैसे २ चमत्कारिक कार्य लिखे हैं परन्तु हम कहते हैं कि पुस्तकों

ने उन से भी बढ़ कर आश्चर्य जनक कार्य किये हैं। पुस्तकों में सारा भूत बंधा पड़ा है, उस काल की भाषा और शब्दावली इन में मौजूद है। जिस समय के अधिकांश पञ्चभूत निर्मित पदार्थ अपने स्थूल शरीर को त्याग कर के निज २ तत्व में जा मिले हैं जहाँ से उनका लौटना सर्वथा असम्भव है, उस समय के उनहीं पदार्थों का सारा विवरण यदि अब इस समय जानना चाहो तो शिलाखण्ड, ताम्रपत्र, भोजपत्र और आज कल के घास फूस और चिथड़ों से बने हुए कोरे कागज पर के खुदे, लिखे और छपे चिन्हों को देखो इन चिन्हों को देखते ही आप की आँखों के सामने नाना प्रकार के अद्भुत दृश्य आने लगेंगे मानों किसी ने तुम्हारी आत्मा को अपनी आत्मा से आच्छादित कर लिया है और वह तुम्हें नाना रूप रंग तमाशे दिखाते हुए तुम्हें कठपुतली की नाई नचाता है। समझे पाठक। यह क्या है? मेस्मेरिज्म जानने वाला जैसे कांच और जल को विश्वव्यापिनी विद्युत की आकर्षण शक्ति से आमन्त्रित कर के उस के द्वारा धारक को अपने वश में करता है लेखक वैसे ही इन अक्षर रूपी चीन्हों में अपनी आत्मा को प्रविष्ट कर के उन के समझने वालों के हृदय को अपना बनाता है। जलादिक पार्थिवपदार्थों द्वारा आत्मा का विनियोग क्षण स्थायी परन्तु इन अक्षरों का प्रभाव अवल, अमिट और अनन्त है। इस प्रचलित मेस्मेरिज्म में कारक धारक से बलवान होना चाहिये परन्तु इस लेखन रूपी मेस्मेरिज्म में लेखक मृत्यु शय्या पर पड़े हुए भी महाबलवानों के हृदय पर अधिकार करता है। मेस्मेरिज्म में कारक धारक को न बलवान और न निर्बल बना सकता है परन्तु लेखन में लेखक पाठक और श्रोता दोनों को बात की बात में सबल को निर्बल और बलवान को निर्बल बना सकता है। इस लिये, प्रिय पाठक। इस शरीर के साथ नाश होने वाली विद्या और मरणोपरान्त अपने साथ न जाने वाले कर्मों को न सीखो। इस समय देखो इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, रूस, और जापान की जल, थल सैन्यायें अपनी शक्ति में मत्त, समुद्रकी उताल तरंगों पर नृत्य कर रही हैं, गिरिराज के अभ्रभेदी शिखरों पर विहार कर रही हैं; उन के अस्त्र, शस्त्र और यंत्रागार पृथ्वी पर अपना पूर्ण प्रभाव दिखा कर समुद्र को जलाने, पहाड़ों को उड़ाने और आकाश को भेदने के लिये कमर कसे बैठे हैं; उनकी राजधानियाँ संसार वैभव में मदमाती इठलाती हुई अलकापुरी का उपहास कर रही हैं, उन के धनागार (बैंक) अपार धनराशि की ओर निहारते हुए कुवेर के कोषागार को तुच्छ समझने लगे हैं। यह सब कुछ है परन्तु, स्मरण रखिये जो था वह अब नहीं है और जो अब है वह आगे न रहेगा, इस प्राकृत नियम के अनुसार यह जगत का वर्तमान ऐश्वर्य्य एक दिन अवश्य भूत काल के ऐश्वर्य्य में जा मिलेगा। भविष्यत् में १९वीं शताब्दि के अन्त और २० के वर्तमान प्रारम्भ के ऐश्वर्य्य को हमारे आगे की सन्तान कौन बतलावेगा, ऐश्वर्य्य के जितने साधन हमारे पास हैं वह सब मिल कर भी हमारे इस गौरव को नष्ट होने से न बचा सकेंगे। समयान्तर में हमारा यह ऐश्वर्य्य किसी प्रकार रक्षित न रह सकेगा। उस समय हमारे वर्तमान, धर्म, कर्म, राज्य, बल, गौरव और धन का हाल कैसे मालूम हो सकेगा? वर्तमान दशा के विपर्य्य होने पर इन शताब्दियों का दृश्य हमारी भविष्यत सन्तान को कौन दिखलावेगा, उस समय, स्मरण रखिये, अन्न वस्त्र हीन, अर्द्धविक्षिप्त, निरुद्यमी, बकवादी और बखेड़िया लेखक के परिश्रम से ही हमारा यह वर्तमान जगत कालका कौर बन जाने पर जीवित बना रहेगा। पाण्डवों और कौरवों की वह अजित सेना अब कहाँ है। गाँडीव धनुष ऐसे अस्त्र अब कहाँ है? समुद्रिशालिनी हस्तिनापुरी अब कहाँ है? धर्म राज का वह मय निर्मित सभा भवन कहाँ है? और उस समय के उस विचित्र नाटक के सूत्र धार साक्षात् ब्रह्मस्वरूप भगवान् कृष्णचन्द्र कहाँ हैं? हम क्या बतावें कहाँ है। अब जगन्नाटक में अपना २ खेल कर अपने आप उसे देख और दूसरों को दिखा कर रंग शाला में चले गये हैं। परन्तु महर्षि वैशम्पायन की कृपा से आज ५००० वर्ष के बीत जाने पर भी इस कौरव पाण्डवों का महायुद्ध देखते हैं, गाण्डीव के भयंकर प्रपात को सुनते हैं, हस्तिनापुरी की शोभा निरखते हैं, पाण्डवों के राजभवन में विचरते हैं और बनविहारी बनवारी के उपदेशामृत को पान करते हैं। उन "कालहु जीति सकल त्रिपुरारी" शिव की सांसारिक लीला कभी की समाप्त हो जाती यदि भोजपत्रादि पर बने हुये अक्षर उन्हें जीवित न रखते। देखो पाठक गण, पुस्तक कैसी अद्भुत विचित्रशाला (Museum) (अजायबघर) है संसार में अनेक विचित्र शालायें नष्ट हो गई परन्तु यह शाला पृथ्वी के आदि दिन से आज दिन तक ज्यों की त्यों बनी है। मनुष्य जाति का यही सर्वोत्तम नाम है।

क्या पुस्तकों में अब महा कार्य और अद्भुत व्यापार करने की शक्ति नहीं रही ? हम तो जानते हैं कि उन में जैसी सर्वदा थी वैसी ही अब भी बनी है । आज कल हमारे शिक्षित समाज में चाक चक्य चिकनाहट की जो चाल है: पश्चिमीय सभ्यता की गन्धि जो उस में फैली है, प्रेमाराधन का सोता जो उस में झड़झड़हट से बह रहा है, यह किसका फल है ? यह केवल उन विषयों की पुस्तकों के अधिक प्रचार का फल है । पुस्तकों के पाठ से विचार उत्पन्न होते हैं, विचार होने से अभिलषित पदार्थ के प्राप्त करने की इच्छा होती है, इच्छा होने से मनुष्य कार्य करता है और कार्य करने से फल प्राप्त होता है । वट सरीखे महावृक्ष का मूल कारण जैसे उस का छोटा सा बीज मात्र है संसार के वर्तमान महाकार्यों का सूत्रपात वैसे ही मनुष्य के लिखे हुये चिन्ह मात्र अक्षरों से हुआ है । विचार कर देखो पौराणिक लोग कौन सा ऐसा गण कार्य अपनी कथा में वर्णित करते हैं जो वर्तमान में पृथ्वी पर पुस्तकों के कार्य से बढ़ कर हो । देवादेव भगवान महादेव के कैलाश का दर्शन होना हमारे लिये दुस्तर है, वीरभद्र का वह प्रचण्ड कोप संसार में नाना प्रकार के दुष्कर्म होते हुए देख कर के भी शान्त हो गया है, भक्तों को संकट से परित्राण न होते देख कर भगवान के भक्तरक्षक नाम में भी हमें सन्देह होने लगा है, परन्तु जब तक पुराण हैं, अवतारों में हमारी श्रद्धा बनी रहेगी, सब चला गया है परन्तु हम उस का पुस्तक में विवरण रहते होना मानेंगे । पापनाशिनी काश वे में पवित्र विश्वेश्वर का जगत प्रसिद्ध मन्दिर कैसे प्रतिष्ठित हुआ है ? केवल पुराण पुस्तक द्वारा पुण्य धाम अयोध्या के पाप तापनाशी राम मन्दिर के सुवर्ण कलश को ऊँचे आकाश में किसने स्थापित किया है, संस्कृत और भाषा रामायण के प्रणेता वाल्मीकि और तुलसीदास ने । इन दोनों महापुरुषों के पास क्या था ? संसार में धन नहीं, बल नहीं, कुछ भी सहाय नहीं, दोनों एकाकी संसार में भ्रमण करते हुये रामचरित को मधुर और अनुपम स्वर में गाते फिरते थे । वही उन का स्वर आकाश को उठा और उंचे उठकर संसार में फैल गया । जहाँ तक रामायण का स्वर पहुँचा वहाँ तक वाल्मीकि और तुलसीदास ने मनुष्य के हृदय पर अधिकार किया है । इसी भाँति भारतवर्ष भर में फैले हुए एक से एक बढ़ कर उन मन्दिरों को किस ने बनाया है, जिन में योगीन्द्र भगवान कृष्ण चन्द्र की मूर्तियाँ विराजमान हैं ? केवल भागवतादि श्री कृष्ण चन्द्र के गुण वर्णन करने वाले ग्रंथों ने । यह हमारी बात आप को आश्चर्य जनक बोध हो, परन्तु हम कहते हैं कि इस में अणुमात्र भी झूठ नहीं है । लेखन कार्य जिस का मुद्रण एक सरल स्वरूप मात्र है, मनुष्यमात्र के लिये एक चमत्कारिक सृष्टि उत्पन्न कर रहा है, यह लेखन कार्य भूत काल और दूर देश की घटनाओं को एक अद्भुत जीवन रूप से वर्तमान समय में हमारे सामने ला धरता है, तीनों काल और पृथ्वी पर के समस्त स्थानों के साथ इस हमारे वर्तमान समय और इस हमारे स्थान का जहाँ हम हैं अनन्त काल के लिये विचित्र सम्मेलन कर देता है । मनुष्य के जितनी वस्तुएँ हैं उन सब का इस ने रूपान्तर कर दिया है, मनुष्य के समस्त बड़े २ कार्य इसने पलट दिये हैं, क्या शिक्षा क्या दीक्षा, क्या राज्य और क्या अन्य कार्य ।

प्रथम शिक्षा को ही लीजिये । विद्यालयों का स्थापन करना वर्तमान समय का एक अति उत्तम और पूजनीय कार्य है । परन्तु पुस्तकों से इन विद्यालयों के भी रूप में, मूल कारण में, अन्तर पड़ गया है । विद्यालयों की भर भराहट उस समय अधिक थी जिस समय पुस्तकों का प्राप्त होना कठिन था । उस समय एक एक पुस्तक के लिये ५०० अथवा १००० मुद्रा पुस्तक के स्वामी को भेंट करना कुछ अधिक नहीं समझा जाता था । उस समय जब किसी मनुष्य को किसी विषय में जनना होता था तो उसे उस विषय के ज्ञाता पण्डितों को इकट्ठा करना होता था । पहिले जब किसी को, मान लो, शंकर स्वामी का वेदान्त पर भाष्य सुनना होता था तो उस को स्वयं शंकर स्वामी से भेंट करना होता था । सहस्रों मनुष्य विद्वानों के द्वार पर पड़े हुए उन की कृपा सम्पादन करना चाहते थे । बिना नाक रगड़े उस समय विद्या प्राप्त होना कठिन था । विद्वानों के भ्रुकुटी पात से बड़े २ भूपति धर्रा उठते थे । राजाओं ने इसी लिये कि एक स्थान पर सब विद्याओं के जानने वाले मिल सकें विश्वविद्यालय स्थापित किये । इन में प्रति शास्त्र का एक २ महाविद्वान नियत होता था जो वहाँ उस विषय का मुख्य आचार्य समझा जाता था । पुराने समय से लेकर आज तक पुण्य धाम काशी की इसी लिये विद्यापीठ में गणना है कि भारत वर्ष में इस स्थान पर छः

शास्त्रों की शिक्षा समान भाव से मिलती है। यद्यपि पश्चिम में रोम और पैरिस के प्राचीन विश्वविद्यालय वर्तमान विश्वविद्यालयों के आदि गुरु समझे जाते हैं परन्तु केवल छ शताब्दियों से पहिले उनका सूत्र पात होना सुनकर हमें तो ऐसा ही विश्वास होता है कि भारतवर्ष के विद्यालयों ही का उदाहरण लेकर जगत में वर्तमान विश्वविद्यालयों की नींव पड़ी है।

परिहासिनी ।

अर्थात्

हिन्दी-पत्रों से हास्य रस के विषयों का संग्रह ।

अपने मित्रों के लिए " हँसी " " दिल्ली " " चीज की बातें " और चुटकुले भारतेन्दु ने लिखे थे, बाद में जिसका संग्रह " परिहासिनी " उन्होंने स्वयं प्रकाशित कराया था । इसका रचना काल १८७५ से सन् १८८० के बीच है । — सं०

निज मित्र गण ठाकुर कविराज श्यामल दासजी,
राजा गिरि प्रसाद सिंह, बाबू बदरी नारायण चौधरी,
बाबू बालेश्वर प्रसाद, और बाबू दुर्गा प्रसाद के
चित्त विनोद के अर्थ
हरिश्चन्द्र ने संगृहीत किया ।
बनारस हरिप्रकाश यन्त्रालय में जगन्नाथ प्रसाद ने
मुद्रित किया

परिहासिनी

अर्थात्

हँसी, दिल्ली, पंच, चीज की बातें
और चुटकिले

चीज की बातें ।

भेद ।

कृष्ण प्रसाद नो दामोदर से कहा "तुमने हमारा भेद क्यों खोल दिया ।" "ह हा !! इस को तुम भेद खोलना कहते हो ? जब हमने जाना कि हम उसको नहीं छिपा सकते तो हमने क्या बुरा किया कि उस भेद को ऐसे आदमी में कह दिया जो उसे छिपा सकता था" ।।

जादूगरनी ।

दो कुमारियों को एक जादूगरनी ने खूब ठगा, उससे कहा कि हम एक रुपये में तुम दोनों को तुम्हारे पति का मुख दिखा देंगे और रुपया जट कर उन दोनों को एक आईना दिखा दिया, विचारियों ने पूछा "यह क्या" तो वह डोकरी बोली "बलैया ल्यों जब ब्याह होगा तब यही मुंह दूल्हे का हो जायगा" ।।

खुशामद ।

एक ना मुराद आशिक ने किसी ने पूछा "कहो जी तुम्हारी माझक: तुम्हें क्यों नहीं मिली" विचारा उदास होकर बोला "यार कुछ न पूछो मैंने इतनी खुशामद की कि उसने अपने को सचमुच परी समझ लिया और हम आदमियों से बोलने में भी परहेज किया" ।।

मुंहतोड़ जबाब ।

एक ने कहा "न जाने इस लड़की में इतनी बुरी आदतें कहाँ से आई ? हमें यकीन है कि हमसे इसने कोई बुरी बात नहीं सीखी" लड़का चट से बोल उठा "बहुत ठीक है क्योंकि हमने आपमें बुरी आदतें पाई होतीं तो आप में बहुत सी कम हो जातीं" ।।

लाला साहब का राम चेर ।

लाला रामसरन लाल ने दर होने पर रामचेरवा से खफा होकर कहा "क्यों बे नामाकूल आज तू इतनी देर कर आया कि और नौकरों जो काम शुरू किये एक घंटे से ज़ियाद: गुज़र गया" यह नटखट भट पट बोला "तब लाला साहब ओमें बात को हौ सांभ के आज हम और लोगन से एक घंटा अगौएँ चल जाब बराबर होय जाइव" ।।

अंगहीन धनी ।।

एक धनिक के घर उसके बहुत से प्रतिष्ठित मित्र बैठे थे, नौकर बुलाने को घंटी बजी, मोहना भीतर दौड़ा, पर हँसता हुआ लौटा, और नौकरों ने पूछा "क्यों बे हँसता क्यों है ?" तो उसने जबाब दिया, "भाई, सोलह हट्टे कट्टे जवान थे उन सभी से एक बत्ती न बुझें, जब हम गये तब बुझें"

अद्भुत संवाद ।।

"ए ज़रा हमारा घोड़ा तो पकड़े रहो" "यह कूदेगा तो नहीं" "कूदेगा ! भला कूदेगा क्यों ? लो संभालो" "यह काटता है ?" "नहीं काटेगा, लगाम पकड़े रहो" "क्या इसे दो आदमी पकड़ते हैं तब सम्हलता है" "नहीं" "फिर हमें क्यों तकलीफ देते हैं ? आप तो हई है" ।।

पंच का प्रपंच ।।

अरी कलारिन दौर तू चोखो प्यालो लाव । भयो जात बेहोस में दे एक और चिताव ।। देखु न इतने दिवस लों हम मुरक्षित हे जान । मानहुं तन मैं नहीं रहयो मो गरीब के प्रान ।। तेरे पायल की भनक सुनत ठठे अकुलाय । गए प्रान बहुरे बहुरि अमृत दियो छिरकाय ।। अमृत सों का काम नहीं इधर सुध की आस । मेरी तो प्यारी बुभे मदिराही ते प्यास ।। दे प्यालो इक और तू करि मति कछू बिचार । दाम न मारी जायगो तेरो री सुकुमार ।। जोखिम कछु यामें नहीं दिये जाइये आप । दाम दाम चुक जायगो मरिहै जब मम बाप ।। देखति नहीं मोहि गांव है कोठी बंगला बीस । बगो घोड़ा भाड़ में फानूसन को ईस ।। दाम दाम सब देइहौ तेरी रकम चुकाय । नहीं वसूल करि लीप्रियो सब नीलाम कराय ।। पै इन बातन सों कहा तू तो परम उदार । दे प्यालो बिन दाम को करिहैं जे जे कार ।। जब लौ सूरज चंद हैं जब लौ सागर भूमि । जब लौ कमलन को भ्रमर रहत मत्त मुख चूमि ।। तब लौ तुव जीवन बढ़ै मैखानो थिर गोयं । अघट होहि घट मद्य के पूरन प्यालो होय ।। होली बीती

देखि तू आयो प्रगत बसन्त । दै प्यालो हमको नतरु होत हमारी अन्त ॥ हमें जगत को गम नहीं जो तू मद नहि देत । मंगल में जानी हमहि क्यो नहि जम करि लेत । देखत नहि इहि ओर तू कैसो बढ़यो अनन्द । मंगल मंगल कहत सब मतवारे नर वृन्द ॥ गंगा में चहुं ओर सौं दोपहि दीप दिखात । नावन सौं सुरसरि छिपी जल नहि नेक लखात ॥ आनि परत धुनि कान में मधुर सुरन के संग । तैसेही कहूँ बजि उठत सारंगी मिरदंगा ॥ तैसी घूमत नाव सब जल में भोका खाइ । मनु हम सो मतवार कोउ भूमत रंग जमाइ ॥ कबहु बीच में बजि उठत नरसिंहा धुनि घोर । कबहुं नाव है परस पर लड़त मचावत सोर ॥ कबहुं जुगौड़ा नाचि कै लेत बेसुरी तान । आपु हिलत बाजी हिलत और हिलत जल जान ॥ कबहुं पार जल के छुटत दारु जंत्र अपार । कबहुं गुबारे उड़त हैं नभ में बाधि कतार ॥ कबहुं श्रवन पुट में परत मैना की बह तान । जाहि सुनत मुनि जनन के छूटन तुरतहि ध्यान ॥ कहूँ तौकी के सुरन की सुभग सुनात अलाप । मधुर सरंगी कहूँ बजत कहूँ तबलन की थाप ॥ कोऊ मारे भौह के कोउ नैनन के तीर । कोऊ बेधे तान के व्याकुल कामी भीर ॥ कोऊ के जिय धसि रही नाचन में मुरिजान । कोऊ के उर में बसी सो उरबसी समान ॥ हंसत कोऊ धावत कोऊ मगन कोऊ कोउ धीर । कोउ नाव बंधावहीं जहं नावन की भीर ॥ मनु बिमान सब देव के सुरसरि में दरसात । कै तारन की मंडली घूमत है या रात ॥ देखि न तू ऐसी समय क्यो नहि उस करि लेत । हमसे मद मतवार को क्यो न सुरा भरि देत ॥ दै इक प्यालो औरहु छकि कै रंग जमाव । जात अबै हम देखिबे दक्षिणपति की नाव ॥ हाय हाय तहं कछु नहीं सूनी नाव लखात । गम छायो चहुं ओर सौं तासों काछु न दिखात ॥ करत गवैया बैठि के चें चें तहं द्वै तीन । नहि प्यालो नहि रंग कछु हाय कहा विधि कौन ॥ हवै निरास तहं सो फिरयो उतरि गयो सब रंग । दै प्याले द्वै तीन फिर जमै हमारो दंग ॥ ढाल ढाल मदिरा अरी खरी कहा पछितात । काशिराज के दरस हित राम नगर हम जात ॥ काशिराजहु हवां नहीं यह भाखत सब कोय । मुख सो मुख लै भागि कै फिरि आए हम रोय । गिरत परत भागे हमहुं आए तेरे पास । दै इक प्यालो औरहु मिटे सकल जग त्रास ॥ देखु देखु बीती निसा दिसा वारुनी लाल । दै हमकोहूँ वारुनी मधिवारुनी रसाल । सीतल पौन चले लगी उडुगन जोति मलीन । चकई सों चकवा मिले दीपक दुति भई छीन ॥ श्रवन परत धुनि भैरवी मंद मंद नव तान । देखु न उठि उठि द्विजगनन लायो निज निज ध्यान ॥ देर होत है और भरु इक प्यालो मतवारि । उतरत है निसि को नसा यह जियमांभ विचारि ॥ बंधी खुमारी रैन को टूटे सो न खिलार । दै इक प्यालो औरहु मदिरा चोंछो द्वार ॥ मंदिर में सब कोड कहत लाग्यो छप्पन भोग । महा महा उच्छव भयो जुरे बहुत से लोग ॥ प्यालो छप्पन तू हमें मेरी जान पियाव । तौ हम सांचो मानहीं छप्पन भोग उछाव ॥ मुनशी प्यारेलाल ने ब्याह खरच किय बंद । कछु मदिरा रोकी नहीं जो तू सकुचत मंद ॥ इसिदादे दुखतरकुशी करत अहैं प्रभु लाट । पै कोउ नहिं दरकावहीं तेरो मदिरा माट । ब्राह्मी मैरिज बिल भयो पास गजट के मांहि । अब तो प्यालो दै अरी क्यो भाषत है नाहि ॥ इन्तिजाम सब कोउ करत सब बातन को जान । तेरी पूछ कहूँ नहीं यह तू निश्चय मान ॥ सरकारहि मंजूर जो तेरो होत उपाय । तो क्यो नहि मदिरान पै देती टिकस बढ़ाय ॥ तू तो है या राज की परम निशानी आप । सब जेहे पै तू सदा रहिहै विनहीं पाप । राज चिन्ह जब एकहु नहि मिलि हैं सुन प्रान । बहु बोतल के टूक को मिलिहै तबहु निसान ॥ यह तो परम अभीष्ट है तेरी बढ़ती होय । नाहीं तो क्यो मोन घरि बैठे हैं सब कोय ॥ डगर डगर में हवै गई तेरी प्रगत दुकान । कोउ बरजन हारो नहीं जो कछु करै वखान ॥ इत मंदिर है देव को इत मदिरा की हाट । इत मसजिद गिरिजा उतै इत शराब के ठाट ॥ बोरडिग इक ओर है नारसमल इक ओर । एक ओर इंद्यूट है मधि मदिरा घर जोर ॥ इत भैरव गनपति उतै इत देवी उत देव । तिनके मधि मदिरा भरी यह विचित्र अति मेव ॥ मंदिर सों मंसजिदन सों गिरजनहुं सो जान । स्कूलन सों हूँहवां लखो बढ़तौ मद्य दुकान । लाज संक सब छोडि कै धरम भीति विसराइ । पान करत हैं मद्य सब मंगल महा मनाइ । एक्ट पांच पुनि आठ अरु पैतालिस पच्चीस । कोऊ कछु मानत नहीं तनिक न नावत सीस ॥ पहिरि पहिरि पतलून अरु टोपी चक्कर दार । कोट बूट जेबो घड़ी छड़ी सूहाय सवार ॥ कोऊ कहत मद नहिं पियैं तौ कछु लिख्यो न जाय । कोऊ कहत हम मद्य बल करत वकीली आय ॥ मरहि के परभाव सों रचत अनेकन ग्रन्थ । मद्यहि के परकास सों लखत धरम को पन्थ ॥ मदिराही को पान करि करत ईस को ध्यान । सबै काज मद सों सरत यह निश्चय जिय आन ॥ मदिराही के पान हित हिंदू धरमहि छोड़ि । बहुत लोग कृश्चन बनत निज कुल सों मुख मोड़ि ॥

देदे प्यालो प्रान इक भरिके गद छलकाय । क्यों इतनो संकोच तू करत सुमोहि बताय ॥ मृगनेनो गजगामिनी चन्द्राननि सुकुवारि । दै प्यालो भरि भरि पियहिं रो मिठ बोलिन नारि ॥ कहा मौन धरि कै रही अरी बोल तू बोल । क्यों तरसावति हाय मोहि प्यारी महा ठठोल ॥ ज्यों बालक के खेल में मरन चिरी को होय । त्योंही या तेरी हंसी प्रान जात है रोय ॥ देखत तू क्यों नहिं इतै आई सुखद बसन्त । पथिक वधू विरही जनहिं जो नित परम दुरन्त ॥ कोकिल कल कुहकत तरुन भंवर करत गुञ्जार । फूले फूल अनेक विधि अमवा बोरें डार ॥ बोरें जब जड़ आम तरु या मधु रितु के माहिं । तब तू मद दै कै हमें क्यों बौरावत नाहिं ॥ मधु रितु याको नाम है माधव को है मास । हमको क्यों मधु देत नहिं करिके दया प्रकास ॥ देखि देखि हरि करि कृपा प्रिसहि कियो अराम । धन्यवाद सब करत हैं मंगल धामहिं धाम ॥ हम कोहूँ अनंद मैं प्यालो भरि दै एक । भले बुरे मैं नहिं रहै जासों कछू विवेक ॥ मद्यपान करि मत्त हवै हमहूँ देहिं असीस । हे मेरे युवराज तुम जीओ कोटि बरीस ॥ चित सब मे चिन्ता रहित जुरे अनंद समाज । रंक लही निधि तिमि प्रजहि बढ्यो सकल सुख साज ॥ जीओ जुग जुग निरुज हवै राजकुंवर सुखकन्द । बढ़ो राज करि नासि अरि जननी सह सानन्द ॥

दिल्लगी की बातें

किसी अमीर ने ज़रा सी शिकायत के लिये हकीम को बुलाया । हकीम ने आकर नब्ज देखी और पूछा — "आपको भूख अच्छी तरह लगी है" — अमीर ने कहा "हां" । हकीम ने फिर सवाल किया — "आपको नींद भरपूर आती है" — अमीर ने जवाब दिया "हां" । हकीम बोला "तो मैं कोई दवा ऐसी तजबीज़ करता हूँ जिससे यह सब बाते जाते रहें" ॥ का० प०

अमेरिक के एक जज ने किसी गवाह की हाज़िरी और हलफ लेने के लिये हुक्म दिया । वकीलों ने इत्तिला दी कि वह शख्स बहरा और गूंगा है । जज ने कहा "मुझे इससे कुछ ग़रज़ नहीं कि वह बोल सकता है या नहीं" । यूनाइटेड स्टेट्स का कानून यह मेरे सामने मौजूद है । इसके मोताबिक हर आदमी को अदालत में बोल सकने का हक हासिल है और जब तक कि मैं इस अदालत में हूँ हर्गिज कानून के बखिलाफ तामील होने की इजाज़त न दूंगा जिसमें किसी की हकतलफी हो । जो कानून का मनशा है उस पर उसको ज़रूर अगल नज़र न पड़ेगा" ॥ का० प०

कहते हैं कि मिल्टन की बीबी निहायत बद्मिजाज थी मगर खूबसूरत भी हद से ज़ियादा थी । लार्ड बर्किंगहेम ने एक रोज़ मिल्टन के सामने उसकी नज़ाकत को तारीफ करके गुलाब के फूल के साथ उसकी तज़बीहे (उपमा) दी । मिल्टन ने कहा कि गोकि में अंधा हूँ और नज़ाकत को नहीं देख सकता तो भी आप के बात की सचाई पर गवाही देता हूँ । हकीकत में वह गुलाब का फूल है क्योंकि कांटे अक्सर मेरे भी लगते रहते हैं ।

नै० मू

एक डाक्टर साहिब कहीं बयान कर रहे थे कि दिल और जिगर की बामारियाँ औरतों से मर्दों को ज़ियादा होती हैं । एक जवान खूबसूरत औरत बोल उठी "तभी मर्दुए औरों को दिल देते फिरते हैं" ॥ नै० म०

एक शख्स ने किसी से कहा कि अगर मैं भूठ बोलता हूँ तो मेरा भूठ कोई पकड़ क्यों नहीं लेता । उसने जवाब दिया कि आप के मुँह से भूठ इस कदर जल्द निकलता है कि कोई उसे पकड़ नहीं सकता । नै० म०

एक बेवकूफ इस खयाल से अपने सामने आईना रख कर सो रहा कि देखूँ सोते वक़्त मेरी सूरत कैसी मालूम होती है ॥ नै० म०

एक शख्स वकालत के इम्तिहान के लिये तैयारी कर रहे थे इसलिये उन्होंने ने एक उस्ताद से मन्तिका पढ़ना शुरू किया और पाँच सौ रुपया उस्ताद को देने का करार किया जिसमें से आधे रुपये पेशगी दे दिये और बाकी को निस्सबत यह शर्त की कि वकालत की सनद पाकर जिस वक़्त औबल मुकद्दमा जीतूंगा उस वक़्त अदा करूंगा । इस शर्त पर मन्तिका पढ़कर हज़रत वकालत के इम्तिहान में कामयाब हो गये मगर मुब्त तक न तो अदालत को गये और न उस्ताद के सामने आये । जब उस्ताद ने देखा कि इन हज़रत की नीयत बाकी रुपया देने की नहीं है तो नालिश कर दी । जब अदालत में इज़हार देने के वक़्त मुकाबला हुआ तो उस्ताद बोले कि बच्चा रुपया तो तुममें मैं हर सूरत में ले लूंगा — अगर मैं जीता तो अदालत दिलवा देगी — और अगर तुम जीते तो

तुम्हें शर्त के मुवाफिक देना पड़ेगा, क्योंकि औबल मुकद्दमा जीतने पर रुपया अदा करने का तुम ने वादा किया है। शागिर्द ने (जिस पर यह मिसरा सादिक आता है "उस्ताद जो आफत है तो शगिर्द ग़ज़ब है") जवाब दिया उस्ताद मैं आपको एक कौड़ी दिवाल नहीं हर सूरत में मेरी ही जीत है — अगर मैं जीता तो आपको अदालत न दिलवायेगी — और अगर हारा तो शर्त के मुताबिक न दूंगा, क्योंकि शर्त तो यह है कि जीतूँ तो दूँ न कि हारूँ तो दूँ ।।

एक दिल्लगीबाज़ आदमी में कोई बेवकूफ़ ज़रा सी हंसी की बात पर ख़फ़ा होकर कहने लगा "तुम अशराफ़ नहीं हो" । इस हंसोड़ ने पूछा कि "आप अशराफ़ हैं ?" वह बेवकूफ़ बड़ी तेज़ी से बोला "बेशक" । इस शख्स ने जवाब दिया "तो हम खुदा का शुक्र करते हैं कि हम अशराफ़ नहीं हैं ।"

एक जज किसी गवाह का इज़हार ले रहे थे । गवाह शरारत से अकसर हिकलाता था । जज ने ख़फ़ा होकर कहा "मैं समझता हूँ कि तुम बड़े पाजी हो" । गवाह ने जवाब दिया 'उतना पाजी हर्गिज नहीं हूँ जितना कि हुज़ूर — मु-मु-मुझे खयाल करते हैं' ।।

एक वकील ने बीमारी की हालत में अपना सब माल और असबाब पागल दीवाने और सिद्धियों के नाम लिख दिया । लोगों ने पूछा यह क्या तो उसने जवाब दिया कि यह माल ऐसेही आदमियों से मुझे मिला था और अब ऐसे ही लोगों को दिये जाता हूँ । आर्य्यमित्र

एक काने ने किसी आदमी से यह शर्त वादी कि जो मैं तुमसे ज़ियादा देखता हूँ तो पचास रुपय जीतूँ और जब शर्त पक्की हो चुकी तो काना बोला कि लो मैं जीता, दूसरे ने पूछा क्यों ? इसने जवाब दिया कि मैं तुम्हारी दोनों आँखें देखता हूँ और तुम मेरी एकही ।। आ० मि०

एक अन्धा वैरागी काशी के बीच मनिर्कनिका घाट पर बैठा गहन में दही पेड़े खा रहा था, कि देख कर किसी पण्डित ने पूछा, सूरदास जी ! यह क्या करते हो ? बोला, महाराज दही पेड़े खाता हूँ । कहा गहन में ? उत्तर दिया, बाबा ! मेरे गुरु को दया से सदाही गहन है । यह सुन पण्डित हंसकर चुप हो रहा ।

कोई राजपूत बहुत अफीम खाता था, देवी उसे विदेश जाना पड़ा, और किसी अड़्डे में जाकर उतरा, वहाँ के लोगों ने आकर इस से कहा, कि ठाकुर साहिब ! यहाँ चोरी बहुत होती है आप चौकसी से रहियेगा । यह बात सुन कर रात तो उसने जाग कर काटी, पर यह बात ज़ी में रखी, कि चोरी बहुत होती है । भोर होतेही घोड़े की पीठ लगा एक नगर के बीच चला जाता था, कि एका एकी पीनक से चौंक कर पुकारा, ऊरे रमचेश ! अरे रमचेरा ! घोड़ा कहाँ ? वह बोला महाराज ! घोड़े पै तो बैठेही जाते हो, और घोड़ा कैसा ? कहा बेटा ! इस बात की कुछ चिन्ता नहीं पर सावधान रहना अच्छा है ।।

दो कलावत दक्षिण से कमाई किये दिल्ली को चले आते थे, कि वाट में दौड़ों ने आय लिया, और लगे बरछियाँ भाले उठाय उठाय मार मार डाल डाल पुकारने । उस काल ये दोनों भी भट गाड़ी से उतर, चट परतल के टट्ट पर जा बैठे, और लगे उनसे पूछने, कि वलैया लों, मार मार डार डार ही कर जान्यो है, कै कभू चौपड़हू खेले हो । उनमें से एक बोला, कि क्यों ? इन्हों ने कहा कि कहू जुगहू मारयो जातु है ? इस रहस से बहुत मगन हुए और इन्हें न लूट हंस कर चले गये ।।

मथुरा क चौबे बड़े ठठोल होते हैं एक दिन कोई चौबे हाट बें मारू बैगन मोल लाया, देख कर उसकी जीरू ने पूछा, कहा भरता करू ? यह बोला मोतें कहा चूक परी ? उसने उत्तर दिया, लोग तुम्हें जोय सी कहत हैं, यह सुन चौबे निरुत्तर हुआ ।

एक कायय अनपढ़ घोड़े पर बैठा हाट में चला जाता था, किसी घुड़चढ़े ने उसे मेंड़की से भी पीछे हटा बैठा देख के कहा मैया जी ! कुछ आगे हट बैठो, क्यों ? कहा, आसन खाली है । उसने उत्तर दिया, क्या तुम्हारे कहे से हट बैठेंगे ? जैसे साईस ने बैठा दिया है, तेसे बैठे चले जाते हैं ।।

किसी बड़े आदमी के पास एक ठठोल आ बैठा था, और इनके यहाँ कहीं से गुड़ आया, उसने ठठठे में कहा, कि महाराज ! मैंने जनम भर में तीन बिरिया गुड़ खाया है । बोला, बखान कर, कहा । एक तो छठो के दिन जनमघुंटी में खाया था ; और एक कान छिदाये थे तब ; और एक आज खाऊंगा । उन्ने कहा, जो मैं न दूँ ? बोला, दोही बार खाया सही ।।

दिल्ली की बातें ।

एक सौदागर किसी रईस के पास एक घोड़ा बेचने को लाया और बार बार उस की तारीफ में कहता "हज़ूर यह जानवर गज़ब का सच्चा है" रईस साहिब ने घोड़े को खरीद कर सौदागर से पूछा कि घोड़े के सच्चे होने से तुम्हारा क्या मतलब है । सौदागर ने जवाब दिया "हज़ूर जब कभी मैं इस घोड़े पर सवार हुआ इसने हमेशा गिराने का खौफ दिलाया और सचमुच इस ने आज तक कभी भूठी घमकी न दी" ।।

एक दिल्लीवाज़ शख्स एक वकील से जिसने किसी मजमून पर एक वाहियात सा रिसाला लिखा था राह में मिला और बेतकल्लुफी से कहा "वाह जी तुम भी अब आदमी हो कि मुझसे अब तक अपने रिसाले का जिक्र भी न किया — अभी कुछ वरक जो मेरी नज़र से गुज़रे उनमें मैंने ऐसी उमदा चीज़ें पाई जो आज तक किसी रिसाले में देखने में न आई थीं" । यह शख्स एक लाइक आदमी की ऐसी राय सुन कर खुशी के मारे फूल उठा और बोला "मैं आप की कदरदानी का निहायत ही शुक्रगुज़ार हुआ — मिहरबानी करके बतलाइये कि वह कौन कौन सी चीज़ें हैं जो आपने उस रिसाले में इस कदर पसंद कीं" । उसने जवाब दिया आज सुबह को मैं एक हलवाई की दुकान की तरफ से गुज़रा तो क्या देखा कि एक लड़की आप के रिसाले के वरकों में गर्मागर्म सभोसे लपेटे लिये जाती थी" ।।

बात की धुन ।

हाईकोर्ट के एक वकील साहब अपने स्पीच के जोर में ऐसे बढ़ चढ़ चले कि ज़मीन को छोड़ कर आसमान की बातें करने लगे । जज ने घबड़ा कर अपना रूल टेबल पर पटका और बोले बस साहब बस अब आप हमारी हुकूमत के बाहर हो गए । मला सरकार का राज छोड़कर किसी दूसरे राज में चले जाते तब तो हमको सुनने का अखतियार ही न था कहाँ अब तो आप इस दुनिया के ही बाहर पहुँचे ।।

न्याय शास्त्र ।

मोहिनी ने कहा "न जानें हमारे पति से जब हम दोनों की एकही राय है तब फिर क्यों लड़ाई होती है । क्योंकि वह चाहते हैं कि मैं उनमें दबूँ और यही मैं भी ।।

मिहमान

रामेश्वरदत्त के घर एक दिन जगदेव सिंह गए, बैठने के वास्ते चटाई वटाई कुछ नहीं थी बिचारे छड़े रहे । पंडित जी बड़े चाव में बोले "ठाकुर साहब देखिए आप कैसे भाग्यवान हैं कि जहाँ जाते हैं वहाँ बैठने को जगह नहीं मिलती" ।।

मुफ़्तखोर ।

एक मुसलमान अमीर के दीवानखाने में एक मुफ़्तखोरे खाने की ताक में टहल रहे थे । जब देर हुई तो आप खिदमतगार मे पूछने लगे "बेगू दस्तरखान कब बिछेगा?" नौकर ने जवाब दिया 'ज्योंही तुम जाओगे' ।

गुरु के गुरु ।

बाबू प्रहलाददास से बाबू राधाकृष्ण ने स्कूल जाने के वक्त कहा "क्यों जनाब मेरा दुशाला अपनी गाड़ी पर लिये जाइयेगा" उन्होंने जवाब दिया "बड़ी खुशी में" मगर फिर आप दुशाला मुझमें किस तरह पाइएगा । राधाकृष्ण जी बोले "बड़ी आसानी से क्योंकि मैं भी तो उसे अगोरने सायही चलता हूँ" ।।

अचूक जवाब ।

एक अमीर से किसी फकीर ने पैसा मांगा उस अमीर ने फकीर से कहा "तुम पैसों के बदले लोगों से लियाकत चाहते तो अब तक कैसे लायक आदमी हो गए होते" फकीर चट पट बोला "मैं जिसके पास जो देखता हूँ वही उससे मांगता हूँ ।।

संप्राप्तेषोऽश्वेष्वर्धे गर्दभीचाप्सरायते ॥

एक औरत ने जिसकी जवानी ढल चली थी खूबसूरती के गहर में अपनी एक नौ जवान लौंडी से पूछा "तू मे हुस्न की कितनी कदर करती है" लौंडी बोली "करीब करीब अपनी जवानी के" ।

ज्ञान चरचा ॥

किसी दिन तुलसीदास गुसाईं कितने एक आदमियों के बीच कहीं बैठे ज्ञान चरचा करते थे इसमें उस राह से किसी की बरात आ निकली उसके बाजे की आवाज सुन सब के मन दुचिते हुए तब तुलसीदास हंसे उनको हंस्ता देख उनमें से किसी ने पूछा महाराज आप क्या देख कर हंसे जवाब दिया दुनिया की भूल देख के बोला सो क्या उत्तर दिया ।

फूले फूले फिरत हैं होत हमारो ब्याव ।

तुलसी गाय बजाय के देत कल में पाव ॥

एक बड़ा सौदागर किसी साहिब कमान्त फकीर के यहां जाकर मुरीद हुआ और पीर की खिदमत में आठो पहर हाजिर रहने लगा । खुदा का चाहा छः महीने के अरसे में उसका ऐसा काम बिगड़ा कि खाने पीने को भी कुछ पास न रहा । एक रोज पीर ने इसे उदास देख कहा कि बाबा क्या तूने यह मसल कभी नहीं सुनी जो इतनी फिक्र करता है ।

अहलाद करता की बातें क्या करता क्या न करे हाथी मार गर्द में डाले अदना के सिर छत्र धरे । रीती भरे भरी दुलकावे मिहर करे तो फेर भरे ।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।

शैटीनाफ सातवें लूइस का मुसाहिब बड़ाही बुद्धिमान था । जब वह आठ नौ बरस का था एक पादरी ने उससे पूछा "लड़के जो तुम बतला दो कि खुदा कहाँ रहता है तो मैं तुमको एक नारंगी दूँ" लड़का चट से बोला "साहिब अगर आप बतला दें कि खुदा नहीं कहाँ है तो मैं आप को दो नारंगी दूँ ॥

दुआ मांगना ।

एक मौलवी साहब अपने एक चेले के यहां खाने गये । जब मेज पर खाना चुना जा चुका चले ने मौलाना साहब से दुआ मांगने कहा । एक लड़के ने जो वहां हाजिर था घबड़ा कर अपने बाप से पूछा "बाबा जब यह कहीं खाने आते हैं तब हमेशा हाथ उठा कर यह बड़ी मिन्नत करते हैं । क्या जो इतनी आरजू न करें तो लोग बुला कर की भी इन्हें भूखा फेर दें" ॥

लार्ड केम्स अक्सर अपने दोस्तों से एक शख्स का किस्सा बयान किया करते थे जिस ने उनके मुलाकाती होने का बड़ा पक्का पता बतलाया था । लार्ड साहिब जिन दिनों जज थे एक बार कहीं सफर में राह भूल गये और एक आदमी से जो सामने नज़र पड़ा दर्खास्त को की भाई जरा हमें रास्ता बता देना । उसने बड़ी मुहब्बत से जवाब दिया "हज़ूर मैं निहायत खुशी से आपकी खिदमत के लिये हाजिर हूँ, क्या हुज़ूर ने मुझे नहीं पहचान ? मेरा नाम जान" है और मैं एक बार बकरी चुराने की इल्लत में हुज़ूर के सामने

पेश

होने

सामने पेश होने की इज्जत हासिल कर चुका हूँ ।" "अहा जान मुझे खूब याद है, और तुम्हारी जोरू किस तरह है । उसने भी तो मेरे सामने पेश होने की इज्जत हासिल की थी क्योंकि उसने चोरी की बकरियों को जान बूझ कर घर में रख छोड़ा था" । — "हुज़ूर के इकबाल से बहुत खुश है, हम लोग उस बार काफी सबूत न पहुंचने से छूट गये थे अब तक हुज़ूर की बदौलत वही पेशा किये जाते हैं ।" — लार्ड केम्स बोले "तब तो हम लोगों को एक दूसरे की मुलाकात की फिर भी कभी इज्जत हासिल होगी" ॥

सिकी लाइक मौलवी ने एक बार निहायत उमदा और दिलचस्प तौर पर तकरीर की खैरात के बराबर दुनिया में कोई अच्छा काम नहीं है । एक मशहूर कपूस जो वहां मौजूद था बोला "इस तकरीर में यह अच्छी तरह साबित हो जाता है कि खैरात करना फर्ज है इस लिए मेरा भी जी चाहता है कि फकीर हो जाऊँ ॥

एक निर्लज्ज की पगड़ी पर धील बैठो तो बोला कि बरताने तक पहुंची ॥

चुटकिले ।

एक ने एक से कहा कि एकदाशी का व्रत करके द्वादशी को पारण करना उसने व्रत तो नहीं किया पर पारण किया जब उसने पूछा कि कहां व्रत किया था तब वह बोला कि भाई व्रत तो नहीं हो सका पर तुम्हारे डर के मारे पारण कर लिया कि जो बने सोई सही ॥

॥ इति ॥

पत्र साहित्य

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पत्र

सन् १८६६ में कुचेसर यात्रा के दौरान भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा अपने भतीजे कृष्णचन्द्र जी को लिखा गया पत्र । — सं०

चिरंजीव,

श्रीकृष्ण, प्यारेकृष्ण, राजाकृष्ण, बाबूकृष्ण, आँखों की पुतली । तुम्हारा जी कैसा है ? सर्वों मत खाना, रसोई रोज खाते रहना । तुम को छोड़कर हमारा अखतियार होता तो क्षण भर भी बाहर नहीं आते । क्या करें लाचारी से झक मारते हैं । कृष्ण, तुम्हारा अभी कोमल स्वच्छचित है । तुम हमारे चित्त को ध्यान से जान सकते किन्तु बुद्धि और वाणी अभी स्फुरित नहीं है । इससे तुम और किसी पर उसे प्रगट नहीं कर सकते हो । परमेश्वर के अनुग्रह से उसको उस स्वभाविक कृपा से जो आज तक इस वंश पर है, तुम चिरंजीव हो, तुम्हारे में उत्तम गुण हो । हम इस समय बुलन्दशहर में हैं । आज कुचेसर जायेंगे ।"

— हरिश्चन्द्र

सन् १८७१ की हरिद्वार यात्रा के बाद इन्होंने हरिद्वार के एक पण्डे को पत्र लिखा— — सं०

सम्बत बसु युग ग्रहससो, पूनो शह अषाढ़ ।
रविवासर हरिद्वार में, लिख्यो पंच अति गाढ़ ।
मित्र मिलन मधुवन गमन के हित कियो पयान ।
मधे श्रीगंगाहार में, हरखि कियो अस्तान ।
संग कन्हैयालाल जू और किशन इकदास ।
रैन युगल बसि के कियो, न्हान चन्द्र के ग्रास ।
हिजबर नागर मल्ल पुनि, श्रीगोविन्दा राम ।
पोखरिया उपनाम है, तीरथहिज गुन धाम ।
दून को पंडा मानि के पूजन बहुविधि कीन्ह ।
पाठ कियो शुकसहित, यथाशक्ति धन दीन्ह ।
यातें जो आवै दूते, मेरे कुल के माहि ।
सो इनडी को पूजिहैं, और हिजन को नाहि ।
विमल वैश्यकुल कुमुद ससि, सेवत श्रीनन्दनंद ।
निजकर कमलन सौ लिख्यो, यह कबिबर हरिश्चंद्र ।

मेवाड़ यात्रा के समय इन्होंने अपने भाई को मल्लिका की चिन्ता करते हुए यह पत्र लिखा था। पत्र में तारीख नहीं है। इसका बहुत सा अंश पेन्सिल से लिखे जाने की वजह से अस्पष्ट है।

— सं.

प्रिय,

"विदेश से हम लौट कर न आवें तो इस बात का जो हम यहां लिखते हैं ध्यान रखना। ध्यान क्या अपने पर फर्ज समझना। किन्तु हम जल्दी जीते जागते फिरेगे। कोई चिन्ता नहीं है। सिर्फ संयोग के वश हो कर लिखा है। यदि ऐसा हो तो दो चार बातों का अवश्य ध्यान रखना। यह तुम जानते हो कि तुम्हारी मामी की हमको कुछ चिन्ता नहीं क्योंकि तुम्हारे ऐसा देवर जिनका वर्तमान है उसको और क्या चाहिये। दो बात की हमको चिन्ता है। प्रथम कर्जें, दूसरी मल्लिका की रक्षा। थोड़ी सी डिगरी जो बच गई है उसको चुका देना। और जीवन भर दीन हीन मल्लिका की जिसको हमने धर्मपूर्वक अपनाया है रक्षा करनी। कृष्ण को ऊँची शिक्षा संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला की हो। जो ग्रन्थ हमारे या बाबू जी के बे छपे रह जाय वे छपें। इस पत्र को हमने कलेजा फाड़ फाड़ कर चार दिन में अर्थात् अछनेरा से शुरु करके मिलाड़े में खतम किया है। इसपर हँसना मत दुःखी होना, क्योंकि अभी तो अणु मात्र भी मरने की सम्भावना नहीं है। शारीरिक कुशल है तनिक भी चिन्ता न करना।"

— हरिश्चन्द्र

जून १८८२ ई० में भोपाल की बेगमसाहिबा ने अपनी कुछ कवितायें भारतेन्दु जी के पास भेजी थीं उनको इन्होंने निम्नलिखित पत्र के साथ "भारतमित्र" के संपादक के पास भेज कर प्रकाशित कराया था।

— सं.

"प्रिय सम्पादक! भूपाल की रहस और स्वामिनी वर्तमान श्रीमती बेगम साहिबा उर्दूभाषा में बहुत अच्छी कवि हैं। इन की गजल में "चमनिस्तानपुर बहार" और "गुलशारेपुर बहार" इत्यादि में प्रकाशित प्रकाश करने को भेजता हूँ। इस को देख कर क्या साधारण आर्य धर्माभिमान ललनागण लज्जित न होंगी कि एक मुसलमान और अत्यन्त राज भारव्यग्र स्त्री ने ऐसी सुन्दर कविता की है। क्या वह भी दिन देखने में आवेगा कि हमारी गृहिलक्ष्मी गण भी कुछ बनावेंगी? इन का काव्य में "रूपरतन" नाम है।

— हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु ने अपनी शुरुआती कवितायें प्रायः ब्रज भाषा में लिखी हैं। कुछ उर्दू कविता लिखनी शुरु की और लोगों से लिखवाया भी। इस सन्दर्भ में १ सितम्बर १८८१ को 'भारत मित्र' के संपादक को लिखा गया पत्र द्रष्टव्य है।

— सं०

"प्रचलित साधुभाषा में कुछ कविता भेजी है। देखिएगा कि इसमें क्या कसर है। और किस उपाय के अवलम्बन करने से इस भाषा में काव्य सुन्दर बन सकता है। इस विषय में सर्वसाधारण की अनुमति ज्ञात होने में इस भाषा का काव्य अच्छा होगा, कविता लिखी है।

मेरा चित्त इससे सन्तुष्ट न हुआ और न जाने क्यों ब्रजभाषा से मुझे इसके लिखने में दूना परिश्रम हुआ। इस भाषा की क्रियाओं में दीर्घ मात्रा विशेष होने के कारण बहुत असुविधा होती है। मैंने कहीं कहीं सौकर्य के हेतु दीर्घ मात्राओं को भी लघु करके पढ़ने की चाल रखी है। लोग विशेष इच्छा करेंगे और स्पष्ट अनुमति प्रकाश करेंगे तो मैं और भी लिखने का यत्न करूंगा।"

—हरिश्चन्द्र

ब्रिटिश नेशनल पंथम (राष्ट्रगीत) का अंग्रेजी साम्राज्य की सभी भाषाओं में अनुवाद के लिए सन् १८८२-८३ में इंग्लैण्ड में एक कमेटी बनी। इस कमेटी में अपने समय के लगभग सभी प्रभावशाली लोग थे। भारत की बीस भाषाओं में भी इस अंग्रेजी राष्ट्रीय गीत का अनुवाद होना था। जिन लोगों ने इस गीत का अनुवाद किया उनमें प्रो० मैक्समूलर (संस्कृत), यतीन्द्र नाथ ठाकुर (बंगला) आदि भी थे। हिन्दी अनुवाद के लिए भारतेन्दु बाबू से निवेदन किया गया। उन्होंने यह अनुवाद किस परिस्थिति में किया, यह उनके इस पत्र से पता चलता है। यह पत्र उन्होंने फेडरिक के० हेनफोर्ड को लिखा था। पत्र के कुछ ही अंश प्राप्त हैं। मूल पत्र अंग्रेजी में था जो अप्राप्य है।

—सं०

"आपका . . . तारीख १८८३ का पत्र मिला। जवाब देने में देर हुई। कारण मेरी पाँच महीने से चल रही बीमारी, पहले बुखार और कुछ सप्ताह से हैजा। मैं आशा करता हूँ कि आप मेरे इस विलम्ब के कारण को मेरी बेपरवाही नहीं समझेंगे।

कुछ दिन पहले मैंने आपको (राष्ट्रीय गीत) जातीय संगीत को संस्कृत में गाने के विषय पर ब्राह्मणों की सम्मति भेजी थी। उस सम्मति पत्र पर बनारस के संस्कृत के सर्वोत्तम पण्डितों के हस्ताक्षर हैं। उसी के साथ मैंने आपको जातीय संगीत का संस्कृत अनुवाद भी भेजा है जिसे पं० गंगाधर शास्त्री ने किया है।

अब इस पत्र के साथ मैं आपके जातीय संगीत का हिन्दी अनुवाद भेजता हूँ जिसे मैंने आपके आदेशानुसार स्वयं किया है। मेरी बीमारी के कारण यह इतना उत्तम नहीं हो सका जितना मैं चाहता था। परन्तु दूसरे अनुवादों के अपेक्षा यह अच्छा है, विशेषतया इसलिए कि यह मूल जातीय संगीत के नजदीक है। इसमें मैंने हर लाइन में मूल के भाव के विचारों का ध्यान रखा है।

ऐसे काम में जो एक विशेष कठिनाई उपस्थित होती है वह यह है कि अंग्रेजी की भाँति हिन्दी में वैसे तुलनात्मक 'मीटर' नहीं है। इसलिए मैंने ऐसे पदों की व्यवस्था की है जो छोटे हों और जो मूल अंग्रेजी की तरह हों।

भारत की एक प्रथा के अनुसार हर राग के गायन का एक समय निश्चित होता है। इसके अनुसार सायंकाल का राग प्रातःकाल नहीं गाया जाता। यह प्रतिकूल ही नहीं, वरन् पाप समझा जाता है। इसलिए जहाँ अंग्रेजी के पद्य तो किसी भी समय गाये जा सकते हैं, हिन्दी के पद्य नहीं गाये जा सकते। मैंने ऐसी पद्य प्रणाली चुनी है कि वह किसी भी समय गाये जा सकते हैं।

इंग्लैण्ड में तो आपने इस विषय पर अब विचार किया है। मैंने कई वर्ष हुए सोचा था कि जातीय संगीत, या साम्राज्य के लिए शुभकामनाओं की कविता हमारे देश की सभाओं में भी गाई जानी चाहिये। मेरी मनोकामना अभी तक पूरी नहीं हो पाई। मेरी अपनी इच्छापूर्ति के लिए मैंने अपनी कृतियों के अन्त में एक पद्य दे दिया है। जब कवीन विक्टोरिया ने १८७७ में "भारत साम्राज्य" की पदवी ग्रहण की थी तब मैंने उर्दू में एक गज़ल लिखी थी। यह एक सार्वजनिक सभा में गाई भी गई थी। और . . . पेरिस . . . के अखबारों में इसकी समालोचना भी छपी थी।

यदि आपको मेरे अनुवाद में कोई भी त्रुटि दिखाई दे, या आपके विचार में किसी पद में परिवर्तन आवश्यक हो, तो कृपा करके निस्संकोच मुझे लिख दीजिये।

मैं आपकी सुविधा के लिए इस गीत की कुछ छपी हुई प्रतियाँ भेज रहा हूँ, ताकि आप इन्हें उन विशेषज्ञों में तुरत बाँट सकें, जिनकी सम्मति आप आवश्यक समझें।

मुझे यह पढ़कर बड़ी खुशी हुई कि यदि संभव हुआ तो मेरी कविता सम्राज्ञी को भी भेंट की जायेगी। यह तो आप जानते ही हैं कि भारतीय जनता के हृदय में सम्राज्ञी के लिए अथाह राजभक्ति है। ईश्वर भक्ति को छोड़कर यह भक्ति सब से अधिक है। और केवल अपनी सम्राज्ञी के लिए ही है। इसीलिए मेरे जैसा तुच्छ सेवक क्यों नहीं फूला समाए कि उसे ऐसा अवसर मिला है कि वह सम्राज्ञी के प्रति अपनी राजभक्ति का प्रदर्शन कर सके।

— हरिश्चन्द्र

कलकत्ता निवासी अपने किसी मित्र को भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अपने नये मित्र (बाबू रामदीन सिंह जी) के बारे में लिखा। — सं०

"इतने दिनों के अनन्तर मुझे एक हिन्दी के सच्चे प्रेमी मिले हैं, जो अपने वचन के सच्चे और कार्य में पक्के हैं इन्होंने मेरी पुस्तकों के छापने का प्रण किया है और मेरी अर्थ सहायता भी यथेष्ट कर रहे हैं जिससे मैं अब निश्चिन्त होकर कुछ लिखने में प्रवृत्त हूँ। परन्तु खेद है कि उक्त मित्र कुछ काल पूर्व न मिले, नहीं तो मैं बहुत कुछ कर सकता, क्योंकि मेरा शरीर स्वस्थ रहता था। अब मेरा स्वास्थ्य भंग हो गया है। इससे मैं यथायोग्य श्रम नहीं कर सकता। यों तो मेरे मित्र बहुत हैं, परन्तु प्रायः सब सम्पत् के साथी ही निकले, अधिकांश स्वार्थी निकले। किसी से कुछ आशा नहीं, हाँ इनमें से अधिकांश मित्र वे हैं जो मेरे ग्रन्थों को छापकर निज उदरपूर्ण करने ही को मित्रता का निदर्शन समझते हैं। परन्तु ईश्वर का धन्यवाद है कि उसने इतने दिनों बाद एक सच्चा प्रेमी मिला दिया जो कि हिन्दी के लिए बड़े व्यग्र हैं और हिन्दी की उन्नति के लिए ठीक मेरी तरह तन-मन-धन श्री कृष्णार्पण करने को कटिबद्ध हैं। आप इस समाचार से प्रसन्न होंगे कि ये बीच-बीच में मेरी अर्थ सहायता तो करते ही आते हैं। परन्तु सम्प्रति इन्होंने एक साथ ४०००) देकर मुझे ऋण से उन्मूण किया है। क्या आप ऐसे महात्मा का नाम भी सुनना चाहते हैं? लीजिए सुनिए — इनका नाम महाराज कुमार श्री रामदीन सिंह, क्षत्रिय पत्रिका सम्पादक, है। मैं अब किसी को पुस्तकें छापने न दूंगा, प्रकाशित अप्रकाशित समस्त पुस्तकों का स्वत्व भी इन्हीं को दिए देता हूँ। . . ."

— हरिश्चन्द्र

बंगला में उपन्यास साहित्य की प्रगति देख भारतेन्दु का ध्यान इस ओर भी गया। भारतेन्दु स्वयं भी उपन्यास लिखना चाहते थे। किन्हीं संतोष सिंह को लिखे एक पत्र में वे कहते हैं। — सं०

"जैसे भाषा में अब कुछ नाटक बन गये हैं अब तक उपन्यास नहीं बने हैं। आप या हमारे पत्र के योग्य सहकारी सम्पादक जैसे बाबू काशीनाथ गोस्वामी राधाचरण जी कोई उपन्यास लिखें तो उत्तम है। यदि ऐसी इच्छा हो तो दीप निर्वाह नामक उपन्यास का अनुवाद हो। यह उपन्यास केवल उपन्यास ही नहीं भारतवर्ष का इससे बड़ा सम्बन्ध है।

— हरिश्चन्द्र

इस प्रोत्साहन के बाद कई उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद हुआ। — सं०

पं० विष्णुलाल मोहनलाल पंडया जी को यह पत्र उदयपुर पहुंचने के पहिले लिखा गया था।

श्रीचरण युगल सरसीरुहेषु निवेदनम्,
 कह्यो बूत सब आबु को, पंडया जू समझाय ।
 जल प्रयान सह श्री चरन, दरसन हेतु उपाय ॥
 कवि स्यामल स्यामल करत, कच स्यामल उधान,
 मोहन राजसभा रहे, काज करन के ध्यान ॥२॥
 मैं बिनु सिक्के श्रीसभा, है इकलो इत ज्ञात ।
 संकित ही रहियो सतत, सब बिधि इतहि अजान ॥३॥
 तासो उचित विचरि जौ आयसु दीजै जेहि ।
 मोहन मोहि न छोड़हीं, पद जोहन जौ मोह ॥४॥

श्रीराधा कृष्णदास जी उर्फ बच्चा बाबू को लिखा गया पत्र ।

"अजीब अज ज्ञान मन बच्चा बहादुर । मेरे दिल के सदफ्र के बेबहा दुर ॥
 बहुत ही जल्द मेजो नीलदेवी । इसी दम चाहिए हक उसकी कापी ॥
 वहाँ पर कृष्ण खैरियत से पहुँचा । तुम इसका हाल भी चट हमको लिखना ॥
 कोई था माधवी के याँ से आया । य भी दर्याफत चन्द्रावली कल ।

बिरज, बी. दास के यहाँ से मुवहल ॥

—हरिश्चन्द्र

न० कु० श्री बाबू रामदीन सिंह जी को लिखे गये कुछ पत्र ।

प्रियवरेषु,

अब की बकरीद में भारतवर्ष के प्रायः अनेक नगरों में मुसलमानों ने प्रकाश रूप से जो गोबध किया है इससे हिंदुओं की सब प्रकार से जो मान हानि हुई है वह अकथनीय है । पालिसी परतन्त्र गवर्नमेंट पर हिन्दुओं की अकिंचितकरता और मुसलमानों की उग्रता भलीभाँति विदित है यही कारण है कि जानबूझ कर भी वह कुछ नहीं बोलती, किन्तु हम लोगों की जो भारत वर्ष में हिन्दुओं के ही बीर्य से उत्पन्न हैं ऐसे अवसर पर गवर्नमेंट के कान खोलने का उपाय अवश्य करणीय है । इस हेतु आपसे इस पत्र द्वारा निवेदन है कि जहाँ तक हो सके इस विषय में प्रयत्न कीजिए । भागलपुर, मिरजापुर, काशी इत्यादि कई स्थानों में प्रकाशरूप से केवल हमारा जी दुखाने को हाँकाठोकी यह अत्याचार हुआ है जो किसी किसी समाचारपत्र में प्रकाश भी हुआ है । आप भी अपने पत्र में इस विषय का भलीभाँति आन्दोलन कीजिए । सब पत्र एक साथ कोलाहल करेंगे तब काम चलेगा । हिन्दी, उर्दू, बंगाली, मराठी, अंग्रेजी सब भाषा के पत्रों में जिनके संपादक हिन्दू हों एक बैर बड़े धूम से इसका आंदोलन होना अवश्य है, आशा है कि अपने शंका भर आप इस विषय में कोई बात उठा न रखेंगे ।

भवदीय

—हरिश्चन्द्र

प्रियवरेषु,

कल पुस्तकें ठीक समय पर मिल गई । उसमें कई ऐसे हैं जो मेरे यहाँ हैं । सिंहपत्रावली बहुत बिकने की वस्तु है अर्थात् हजारों की नहीं काल पाकर लाखों की ही बिकेगी । एक तो इस को छाप कीजिए और एक मुहनाद अर्थात् बीबीफातिमा और हसन हुसैन का जीवनदसिंह की मुसलमान मात्र लगे । मुझ को बड़ी लज्जा है कि ऐसी कोई वस्तु आप में नहीं छापी जो बहुत बिके । पत्रों का संग्रह भी न छापने को थे ? और जो इच्छा हो । मैं आपके अनुग्रहों का ऋणी हूँ ।

—हरिश्चन्द्र

बाबू रामदीन सिंह को भारतेन्दु बाबू द्वारा दिया गया अपनी पुस्तकों को छापने का अधिकार पत्र ।

बाबू रामदीनसिंह साहब, मालिक व मुहर्तायन क्षत्रियपत्रिका, खंगविलास प्रेस बांकीपुर ।

आपको में इजाजत देता हूँ कि आप मेरे किताबों में से जिनको आप चाहें छापें और इस वास्ते कि जो किताब आप छापें उनमें आपको नुकसान न हो । यह भी आपको लिखा जाता है कि जो चीज आप छाप लेंगे, उसको और कोई नहीं छाप सकेगा, और अगर कोई छापे तो कानून हक तसनीफ के (कापी राइट) मुताबिक आप उस पर नुकसानी का दावा करने को मजबूत होंगे और मेरे किताब के सबब से आपको जो कुछ इनतिफाअ हो उससे मुझको कोई वास्ता नहीं है । वह कुल मुनाफा क्षत्रिय पत्रिका के पर्चे में लगाया जायगा जिसके की आप मालिक हैं ।

फकत मरकूम, २३ सितम्बर, १८८२ ई.

मुक़ाम बनारस

(हस्ताक्षर अंग्रेजी में)

हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु बाबू के पत्र रामदीन सिंह जी के नाम

२३, सितम्बर

१८८२

प्रिय,

आपका पत्र और तार मिला । आपने जैसा अनुग्रह इस समय किया वह कहने के योग्य नहीं चित्त ही साक्षी है । आज शनिवार की दोपहर है अब तक बाबू सहिब प्रसादसिंह नहीं आये । सांय तक या रात तक शायद आतें यद्यपि इस अवसर पर फिर कुछ आपको लिखना निराभक मारना है । किन्तु अत्यन्त कष्ट के कारण लिखता हूँ । हो सके एक सौ और भेज दीजिए । जो काम कमबख्त दरपेश है नहीं निकलता और मैं यहाँ किसी से उसका जिक्र तक नहीं किया चाहता इसी से फिर निर्लज्ज होकर लिखा है । किन्तु जाने दीजिए बहुत कष्ट हो तो नहीं । क्षमा इसके पीछे जो नोटिस है मेरे अनुरोध से क्षत्रिय पत्रिका में छाप दीजिएगा ।

भवदीय

हरिश्चन्द्र

सूचना

मेरी बनाई वा अनुवादित वा संग्रह की हुई पुस्तकों को श्री बाबू रामदीन सिंह खंग विलास के स्वामी छाप सकते हैं जब तक जिन पुस्तकों को ये छापते रहें और किसी को अधिकार नहीं कि छापें ।

२३.१०.१८८२

— हरिश्चन्द्र

(२)

प्रिय बाबू साहबसिंह का शिष्टाचार मुझे कुछ भी नहीं बन पड़ी मेरा स्वभाव आपने देखा होगा कि बिल्कुल बाहुयाडम्बर शून्य है इसी से मुझको जाहिरा कुछ नहीं आता । वह सब पत्र यहीं छापूंगा । यह फिर मैं किस मुँह से कहूँ कि हो सके तो शीघ्र एक और भेज दीजिए ।

भवदीय

हरिश्चन्द्र

प्रिय वरेणु !

आपका पत्र आया व्याकरण और "विहारदर्पण" आने पर मैं अपनी राय लिख भेजूंगा। काशीनाथ के मुकद्दिम में विलम्ब मेरे विन्ध्याचल चले जाने से हुआ था। वह सब कुछ तै हो गया आप खातिर जमा रखिए।

भक्तिसूत्र विना ॐ के छापिये।

मेरे एक मित्र ने मुझसे बड़ा विश्वासघात किया। मेरा कुछ रुपया किसी कारण से उसके नाम रहता था। वह वेईमान होकर मिर्जापुर चला गया। वरंच मैं इसी वास्ते विन्ध्याचल गया था। अब वह साफ इनकार कर गया खैर दिवानी फौजदारी जो कुछ होगी देखी जायगी। अब एक गुप्त बात आपको लिखता हूँ कि रु० सब एक साथ हाथ से निकल जाने से मैं बहुत ही तंग हो गया हूँ वालिश दीवानी फौजदारी सभी करनी है। महाराज से मांगा तो कहा कि दूसरे महिने में देंगे। यदि हो सके तो शीघ्र सहायता कीजिए। वह यों कि मैं अपनी पुस्तकों में से जिसका आप चाहें स्तव हकतसनीफ मैं आपके हाथ बेच डालू। वा और जैसे उचित समझिए। ४०० रु. कि मुझको जरूरत है इसमें आपका किया जितना हो सके जो कुछ हो तार द्वारा समाचार दीजिएगा। आदित्यवार तक रु. हमको यहाँ पहुँच जाना चाहिए। यहाँ अन्धेर नगरी विद्या सुन्दर इत्यादि का लोगों ने ५५ रु. प्रति पुस्तक लगाया किन्तु लज्जा के कारण मैंने नहीं बेचा। वहाँ होगा तो जो वस्तु १ की बिकेगी वह आप नोटिस में ४ की लिखिएगा। तब हमारी आपकी और पुस्तक की प्रतिष्ठा रहेगी। वा यह जो आप न चाहें तो जो कुछ हो लिखिएगा। सिद्धान्त यह समझिए कि इस विषय को मैं विशेष नहीं लिख सकता इस समय सहायता कीजिएगा। तो अगले जनम भर एहसान मानूंगा। और किसी बात से आपसे बाहर नहीं हूंगा। जो कुछ हो नहीं थोड़ा बहुत मंजूर हो शीघ्र तार दीजिए। मैं किसी विशेष कारण से यहाँ कुछ उपाय न करने के हेतु ये भुगतान चाहता हूँ। बड़ी धबड़ाहट में हूँ उत्तर शीघ्र। यह पत्र आपको गुरुवार को मिलेगा उसी क्षण तार में जबाब दीजिएगा हो सके तो उस दिन डाक द्वाग पत्र भेजिएगा। ४०० रु. हो सके अत्युत्तम नहीं जितना भेज सकिए। फेर भेजने लिखिएगा तो दो एक सप्ताह में फेर भेजूंगा। इति

भवदीय
हरीश्चन्द्र

प्रियवर,

आपका पत्र आया, पुस्तकें भी पहुँची, दीपनारायण सिंह ने अपने ताश के खेल में मेरा नाम नहीं दिया है यह अनुचित किया है जब कि उन्होंने स्वयं एक वस्तु को उलट पुलट कर छपा है तो फिर रजिस्ट्री कराके दूसरों को क्यों निषेध करते हैं? आप जानते हैं कि मेरी पुस्तकें लाभ के लिए नहीं छपतीं, मुझे इस में कुछ ख्याल नहीं है परन्तु कृतज्ञता मनुष्य के शरीर का रत्न है। भला और कुछ नहीं तो कृतज्ञता तो स्वीकार करना था।

उदैपुर की बंशावली मेरे पास बिल्कुल नहीं लिखी है। टाड का राजस्थान अंग्रेजी में और उर्दू में छप गया है और थोड़ासा बंगले में भी छपा है। वह बहुत अच्छा है उसमें और भी कई जगह से उसने मिलान कर के लिखा है कुछ कागजात उदैपुर के मेरे पास है और एक उदैपुर को तवारीख खास दर्बार में को लिखी हुई है कुछ मेरर लिखी हुई है। यदि आप उन सबों को इकट्ठा करके आप लिखना चाहें तो मैं भेज दूंगा। आपको राजस्थान लेना होगा क्योंकि यह मेरे पास नहीं है। इस विषय में आपकी क्या सम्मति है?

पुरानी पुस्तकों के विषय में जो आपने लिखा है पहिले यह लिखिए कि किस शास्त्र की पुस्तकें आपके पास पहिले भेजी जाये?

आपको जो कुछ पूछना हो लिखिए उत्तर बराबर जायेगा।

"अंधेर नगरी चौपट राजा" जाता है इसे शीघ्र ही छाप दीजिए, इस की आवश्यकता है।

"भक्तलाल" आप अवश्य छाप दीजिए परन्तु आपके पास जो भक्तलाल है वह भी मुझे देखने को भेज दीजिए।

हिन्दी प्रदीप का लोकचर आप अवश्य छाप सकते हैं ।

"अंधेर नगरी" यदि आप मेरे तरफ से छापना चाहिए तो ५०० कापी मैं लूंगा परन्तु छपाई इत्यादि अवश्य दूंगा । यदि आप स्वयं छापना चाहे तो मैं १० कापी लूंगा बाकी आप बेच लें ।

कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि यह वही विक्रम हो । यह बंगला के जयदेव जी के जीवनचरित्र में लिखा है कि "हरिदास हीराचंद्र बंबई वाले ने लिखा है कि "ये विक्रम के दबार में थे" मेरी भी यही सम्मति कि यह वही विक्रम है क्योंकि यह वह विक्रम नहीं हो सकते जिनका संवत् चलता है । जयदेव जी के सन के कई सौ बाद हुए है ।

**राजा शिवप्रसाद ने भारतेन्दु बाबू को अपना फोटोग्राफ देने को कहा था ।
फोटोग्राफ मांगने के लिए लिखा गया रुक्का ।** — सं०

महाराज कुमार लाल खंग बहादुर मल्ल की विद्योसाहिता, शील देख कर मैं बड़ा प्रसन्न हूँ । उनका एक पत्र और एक नाटक मेरे पास भी आया है हमारी उनसे मिलने की बड़ी इच्छा है ईश्वर करे वे शीघ्र ही आवें ।

बूंदी की बंशावली जाती है ।

इस समय मित्र लिखित पुस्तकों के छपने की बहुत आवश्यकता है । लोग बहुत दूढ़ते हैं ।

१. सत्य हरिश्चंद्र एक बेर मुद्रित इसकी बहुत मांग आती है ।
२. विद्यासुन्दर एक बेर मुद्रित इसकी ५० कापी गर्वनमेंट लेगी ।
३. कपूररमंजरी एक बेर मुद्रित ।
४. प्रेम फुलवारी एक बेर मुद्रित इसकी बहुत ही मांग आती है ।
५. भारत दुर्दशा (क० व० सु०) में मुद्रित ।

भवदीय
— हरिश्चंद्र

श्री बाबू साहिबप्रसाद सिंह

प्रियवर

आपका छपापत्र आया था परन्तु मेरी माता का देहांत हो गया इससे पत्रोत्तर में विलंब हुआ क्षमा कीजिएगा ।

बूंदी की राज बंशावली का "नोट" और दोहे भेजे जाते हैं । यह इतनी ही है । इसमें एक गलती है उसे बना लीजियेगा । वह यह है कि "टाड साहब के मत से हर्षिराय" इसके आगे जीसन लिखा है उसको ७५५ बना दीजिये ।

"अंधेर नगरी का एक दृश्य यहीं रह गया था वह जाता है । इसे शीघ्रता से मुद्रित कीजिए क्योंकि ७ फरवरी को यह नाटक महाराज दुमराव के यहां खेला जायेगा उस अवसर पर बांटने के लिए इसकी आवश्यकता है, अतएव इसका प्रूफ बहुत ही शीघ्र भेजिए ।

५— हरिश्चंद्र

परिश्रम देना क्षमा कीजिएगा । और भक्तमाल भी भेजिएगा । भारतमित्र के सम्पादक भी टाड साहिब का राजस्थान छापना चाहते हैं दोनों जगह छपना अच्छा न होगा आप उनको पत्र लिख तै कर लें ।

"इसी शेर के मुताबिक जबाब दीजिएगा ।

कमाल शौके मुलाकात उसने लिखा है ।

चलू मैं आप ही कासिद जबाब के बदले ॥

उन्होंने लिफाफे में अपना फोटोग्राफ रख दिया और मेरे रुक्के को काट दिया ।

"इसी शेर के मुताबिक जबाब दीजिएगा, दिया है,

कमाल शौके मुलाकात उसने लिखा है

चला मैं आप ही कासिद जबाब के बदले ॥"

भारतेन्दु बाबू के पत्र गोस्वामी श्रीराधाचरण जी को

(१)

श्रीकृष्ण

प्रियवरें

बहुत दिनों से आप का कोई पत्र नहीं आया, चित्त चिंतित है, सर्वदा कुशल पत्र से चित्त आनन्दित किया कीजिए, यहाँ योग्य कार्य हो वह भी असंकुचित होकर लिखिए ।

भवदीय स्नेहाभिलाषी

हरिश्चंद्र

(२)

महोदयेषु

मैं तीन चार दिन में शायद श्रीवन आऊँ, कृपापूर्वक एक स्थान अपने अति निकट रखिए, दो बात, मुख्य आराम देख लीजिएगा एक तो पाखाना स्वच्छ हो और दूसरे दिन का गर्म न हो चाहे अति छोटा हो ।

हरिश्चंद्र

(३)

शत कोटि प्रणामानंतरं प्रेम्णा विज्ञापयति — श्री हरिदास, श्री हरि वंश जी, श्री नागरीदास जी, श्री आनन्दधन जी, और श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के चित्र हैं अनुग्रह पूर्वक लिखिए कि और किन किन महात्माओं के चित्र आपको मिले हैं —

दासानुदास

६ शमी

हरिश्चंद्र

(४)

प्रणति पूर्विका विज्ञप्ति :

श्री अद्वैत महाप्रभु का उत्सव बंगला पत्रों में उत्सवों की तालिका में वैसा ही है जैसा उत्सवावली में लिखा है, क्या वह दिन नहीं है जो भारतेन्दु में ७ लिखी है ? इसको जरा निश्चय कर लीजिए, मैंने बंगला कई पत्र देखे सब में ५ ही मिली ।

दासानुदास

हरिश्चन्द्र

(५)

मित्रेषु,

दूसरी आवृत्ति में उत्सवावली में उत्सव का दिन शुद्ध कर दिया जायगा ।

तुम्हारा

हरिश्चन्द्र

(६)

अनेक कोटि साष्टांग प्रणाम

आप का कृपा पत्र मिला चंद्रिका सेवा में भेजी है स्वीकृत हो । आप अनेक ग्रंथों का अनुवाद करते हैं तो चैतन्य चंद्रोदय का अनुवाद क्यों नहीं करते ? बड़ा ही प्रेममय नाटक है, इसके छंद मात्र मैं दत्तचित्त होकर बना

इगा, उत्साह कीजिए । जातीय गीत भी कुछ बनें और छपें, मैं बहुत उद्योग करता हूँ किन्तु किसी ने न बनाकर भेजे ।
गुरु

आपका हरिश्चन्द्र

(७)

अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत्

३-५-८३

प्रणामान्तरं निवेदयति

लघु र. क. मिली, धन्यवाद, नाटकादि जाते हैं, भारतेंदु बहुत अच्छी चाल से चला है किन्तु तनिक कड़ाई विशेष है । लेख परिपाटी उत्तम है, क्या यह वही लाहौर वाला है ? मैं अब तक नहीं अच्छा हुआ, बड़ी ही सुस्ती है, प्राण बचें तो कुशल हैं, हमारी सर्वस्य निधि जो आप संग्रह कर रहे हैं शीघ्र भेजिए, इस दुख में श्री चरण सेवक सर्व प्रकार सहायक होगी ।

हरिश्चन्द्र ।

(८)

श्रीकृष्ण

हम लोगों का बड़ा दिन ।

अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणामान्तरं निवेदयति —

महात्माओं ने जो पद बनाए हैं उनमें प्रिया पीतम का जो संवाद है वा अन्य सखियों की उक्ति हैं उन्हीं सबों के यथास्थान नियोजन से एक रूपक बनें तो बहुत ही चमत्कार हो अर्थात् नाटक की और जितनी बातें हैं अमुक आया गया इत्यादि अंक दृश्य इत्यादि मात्र तो अपनी सृष्टि रहै किन्तु संवाद मात्र उन्हीं प्रवीनों के पदों की योजना से हों । जहाँ कहीं पूरा पद रहे वहाँ पूरा कहीं आधा चौथाई एक टुकड़ा जितना आवश्यक हो उतना मात्र उनमें से ले लिया जाय । यह भी यों ही कि एक बेर पदों में से चुन चुन कर अत्यंत चोखे चोखे जो हों वा जिनमें कोई एक टुकड़ा भी अपूर्व हो वह चिन्हित रहै फिर यथा स्थान उनकी नियोजना हो, ऐसा ही गीत गोविंद से एक संस्कृत में हो, बहुत ही उत्तम ग्रंथ होगा । आप परिश्रम करें तो हो मैं तो ऐसा निर्बल हो गया हूँ कि बरसों में सुधरूँगा ।

दासानुदास

हरिश्चन्द्र

(९)

श्रीहरि :

अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणामान्तरं निवेदनम् —

आज के भारतेंदु में प्रथम पत्र आर्य समाजियों के विषय में जो है उसमें मेरी बुद्धि में यह बात आती है कि ब्राह्मणों को एक ही बेर छोड़ देने की अपेक्षा उनको सुधारना उत्तम है —

भारतेंदु टाइप में छपे तो बड़ी उत्तम बात है । २४ पेज में टाइपल पेज के २५० कापी छपाई कागज समेत २५) में उत्तम छप सकता है, यहाँ छपे तो मैं प्रूफ आदि भी शीघ्र दिया करूँ ।

मैं इन दिनों महात्माओं के चित्रों की फोटोग्राफ में कापी करके संग्रह कर रहा हूँ, नागरीदास श्री महाप्रभु आदि कई चित्र तो हैं, कुछ यहाँ भी मिलेंगे ?

आगरे के उपद्रव का वृत्तांत मैंने विलायत कई मित्रों को लिखा है उसके प्रमाण के हेतु कई समाचार पत्र भी भेजे हैं । इस मास का भेजूँगा इससे इसकी एक कापी और दीजिए ।

अबकी इसमें समालोचना छोटी २ बहुत सुंदर हैं । शृंगारलतिका पर नकछेदी जी ने रजिस्ट्री भी करा ली । यह मजा देखिए, राजा मानसिंह के मानों आप पोष्यपुत्र हैं । ललिता ना. चन्द्रवली की छाया पर बनी है, अस्तु, विचारे वैष्णव मत का न भेद जानें न आप वैष्णव, वैष्णव पत्रिका के संपादक तो हैं —

नाटकों में गँवारी वैसवारे की मेरी बुद्धि में उत्तम होगी क्योंकि इस प्रदेश में दूर तक बोली जाती है ।

प्रतिपदा

दासानुदास

हरिश्चन्द्र ।

अनेक कोटि साष्टांग दंडवत् प्रणामानन्तरं निवेदयति —

आप का कृपापात्र पाया, बृहद्गौर गणोद्देश दीपिका वा बृहद्गणोद्देश दीपिका जो जो जितनी मिलें भेजिएगा । जो पुस्तकें वहाँ मिलती हैं, यदि आप कृपापूर्वक उनका एक सूचीपत्र भेज दें तो बड़ा उपकार हो । कीर्तन की पुस्तक आप दो भेज दें एक नित्य पद की दूसरी उत्सव की पद । मुक्तावली लोग क्यों नहीं देते ? कदम्ब की लकड़ी श्री जी के वेणु निर्माण के हेतु चाहिए मयूरपिच्छ चन्द्रिका मात्र ही भेजिएगा हम आपसे किसी बात से बाहर नहीं जिस प्रकार आप भेजिएगा हम को शिरसाधार्य्य है । रासोत्सव व्यवस्था जो कल के पत्र में छपेगी वह श्रीवन के पंडितों को दिखाइएगा देखिए लोग क्या कहते हैं और सब कुशल है ।

भवदीय

रविवासरे

हरिश्चंद्र

आज

आज सवेरे से यहाँ घनघोर वृष्टि हो रही है ।

(११)

अनेक कोटि साष्टांग दंडवत् प्रणामानन्तरं निवेदयति —

निस्संदेह आप मुझसे व्यर्थ रुष्ट हुए, इस वर्ष के पहिले ही नम्बर में आपका प्रतिवाद छपा है, भला इसमें मेरा क्या दोष है, जिसने आपकी निंदा किया है उसको दो हजार आप गाली दीजिए देखिए छपता है कि नहीं । चंद्रिका के भेजने का प्रबन्ध आदि सब अब पं. गोपीनाथ जी के जिम्मे है । मैं उनसे पूछूँगा कि क्यों नहीं गई और भिजवा दूँगा । संसार में भले बुरे सब प्रकार के लोग हैं कोई किसी की निंदा, कोई स्तुति करता है । हम तो केवल तटस्थ हैं, कोई हमारे चित्त में कल्मष तो तब आप को प्रतीत करना था जब आप का प्रतिवाद न छपता ।

श्रीवन से हमें कई पुस्तकें मँगाना है आप कृपापूर्वक उसका प्रबन्ध कर दें तो हम नामादिक लिख भेजें । और सर्व्व कुशल है ।

आपका दासानुदास

शनि

हरिश्चंद्र

(१२)

श्रीहरिः ।

प्रिय पूज्य चरणेषु !

होली मंगल

क्या आप चित्रों का विषय भूल गए ? क्या अभी तक एक भी नहीं बने ? तनिक ध्यान रहै । मेरे योग्य सेवा हो सो लिखिएगा ।

दासानुदास

हरिश्चंद्र

(१३)

श्रीकृष्णायनमः ।

अनेक कोटि दंडवत् प्रणामानन्तरं निवेदयति —

पूर्व में एक पत्र आपको लिखा था, उसमें चित्रों के विषय में आप को जो लिखा था उसका कुछ आपको पता लगा ? व्यास जी, श्री अद्वैत प्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु, श्री गोपालभट्ट जी या और किसी महात्मा की भी तस्वीरें मिलें और दस दिन के वास्ते भी मँगनी मिल सकें तो मैं कपी करा लूँ । कष्ट क्षमा —

दासानुदास

हरिश्चंद्र

(१४)

शतशः प्रणति के पश्चात् निवेदन !

क्या चित्रों की याद एक बारगी भुला दी ? इतने चित्र हैं, श्री श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु, स्वामी हरिदास जी, हरिवंश जी, नागरीदास जी, आनन्दधन जी और हमारे आचार्य और उनके द्वितीय पुत्र गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी इनके अतिरिक्त और जिन महात्माओं के मिले दीजिए । कष्ट देने को बारंबार क्षमा कीजिए ।

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(१५)

“भक्त्यात्वनन्ययालभ्यो हरिरन्यद्विडम्बनम्”

“Heaven is love, and love is heaven”

अनेक शतकोटि प्रणामानंतरं निवेदयति,

कृपा पत्र मिला, बच्चा को पत्र में लिख दिया है कि आप की सेवा में यात्रा से लौटकर आवे, मथुरा एजेंसी वालों को कह दीजिए कि उनके पास जिन २ महात्माओं की कापी बिकाऊ हों उनका एक सूची पत्र मेरे पास भेज दें ।

पुस्तकों का सूचीपत्र छापा तो है ।

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(१६)

पूज्य चरणेषु,

श्री रूपसनातन गोस्वामि की जाति क्या थी ? श्री महाप्रभु का जीवन चरित्र एक बंगला से हिन्दी किया है उसमें यवन लिखा है । मैंने कायस्थ सुना है । हमारे निज संप्रदाय के ग्रंथों में भी कायस्थ लिखा है । इसका उत्तर अति शीघ्र दीजिए ।

श्री शचीदेवी और श्री विष्णु प्रिया कब तक जीवित रहें यह भी लिखिएगा । अपने परम पूज्य पिता जी से मेरा साष्टांग प्रणाम कहिएगा ।

द्वितीया

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(१७)

अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणामानंतरं निवेदयति —

आपका कृपा पत्र मिला, आपने ऐसा क्यों लिखा है । अलौकिक और लौकिक दोनों संबंध से हमारे आप पूज्य हैं ।

चित्र जो मिले अति शीघ्र यत्नपूर्वक भेजें । जितने चित्र जितने दिन के हेतु मँगनी आवें उनका वृत्त लिखिएगा कि उतने ही दिन में वे फेर दिए जायें । जो मूल्य पर मिलें उनका मूल्य लिखिएगा । आप अलौकिक चित्र पुस्तकादि मुझको भेजते हैं इसका मैं जन्मजन्म ऋणी रहूँगा ।

२४ डिसेम्बर १८८३
काशी

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(१८)

शतकोटि दण्डवत् प्रणामानंतरं निवेदयति —

बाबू राजेन्द्रलाल मित्र ने एक प्रबंध में इस बात का खंडन किया है कि महाप्रभुजी मध्यमतावलंबी थे इसमें प्रमाण, उन्होंने यह आज्ञा किया कि “यत् श्रीधरविरुद्धं तन्नामात्माकमादरणीयम् !” वह कहते हैं कि

ध्व मत के ग्रंथ मात्र ही श्रीधर के विरुद्ध हैं। इसका क्या उत्तर है? वैष्णवदीक्षा आपने कब और किससे लिया था?

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

मैं इन दिनों महाप्रभुजी के चरित्र का नाटक लिखता हूँ उसी के हेतु इन बातों के जानने की जल्दी है।
हरिश्चन्द्र

(१९)

अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणामान्तरं निवेदयति —

बच्चा और उसकी माँ ब्रजयात्रा करने जाती हैं और जो चित्र हों सो बच्चा को दीजिएगा।

दासानुदास
हरिश्चन्द्र

(२०)

शतकोटि दण्डवत् प्रणामान्तरं निवेदयति —

काशिराज ने आपसे यह प्रश्न किया है कि श्री राधारमण, श्री राधावल्लभ आदि विग्रहों के साथ श्री राधिका जी की मूर्ति क्यों नहीं है? श्री मद्भागवत में उनका वर्णन कहाँ है? विशेष कृपा, कष्ट क्षमा।

चिरबाधित
हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु जी की एक रखैल थी माधवी। माधवी उसका असली नाम नहीं था। वह किन्हीं किशन सिंह की पुत्री थी। कहते हैं जब हरिश्चन्द्र से इसका सम्पर्क हुआ तब यह मुसलमान वेश्या थी और इसका नाम था आलीजान। हरिश्चन्द्र ने इसकी शुद्धि की और उसका नाम रखा, माधवी। इसी माधवी के संबंध में भारतेन्दु ने यह पत्र बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन को लिखा है। — सं.

श्री बद्रीनारायण जी उपाध्याय 'प्रेमघन' को

प्रिय,

एक बड़ी गुप्त बात है, इसमें बड़ी सावधानी से सहायता दीजिएगा, गोवर्धनदास रोड़ा उर्फ खरदूखनदास से इन दिनों माधवी से बिगाड़ हो गया। वह चित्त का ऐसा कुनही है कि उस बिगाड़ का बदला यों लेना चाहता है कि माधवी की एक किता हुंडी २३००) रु. की जो वास्तव में माधवी के रुपये की है मगर उसके नाम की है उसको हजम किया चाहता है। अभी पूरी हजम नहीं किया इरादा है। इसी इरादे से यह हुंडी हमसे लेकर विंध्याचल चला गया। एक मकान माधवी के वास्ते लिया जाता है। उसका बयाना देने १००) रुपया हमने उससे मांगा हुंडी उसको दे दिया कि १००) आज दे बाकी रजिस्ट्री के दिन दे। आज रजिस्ट्री होने वाली थी। आज रु. मेजते हैं यह कहके भी विंध्याचल चला गया। हम स्टेशन पर गए मुलाकात हुई। एक पुरजा गहू मित्र के नाम लिख दिया और कहा कि हम कह आए हैं गहू मित्र रुपया दे देंगे। गहू मित्र कहते हैं कि हम कुछ

नहीं जानते । कैसी हुंड़ी कैसा रुपया ? यहाँ मकान की रजिस्टरी की हर्ज होती है । न जाने उनको क्या मंजूर है । जो हो कानूनन तो उनपर खयानत और जालसाजी का दावा अच्छा खासा होगा । मगर वह हमारे निज का आदमी है वह कभी ऐसी बेईमानी न करेगा खाली माधवी से बुरा मानकर तंग करता है । आप फौरन खत पाते ही उसको बुलाकर या जाकर मिलिए और एक तार हमने आपके नाम दिया है, उसके मुताबिक अनजान बनकर पूछिए कि कौन से हुंड़ी के रुपए के बिना बाबू साहब का हर्ज है वह भुगतान जल्दी कर दो । या तो अभी तार दो कि उनको रुपया मिल जाय या तुम कल बनारस चले जाओ । इस बखत तार उससे भिजवाइए, और एक तार हमारे नाम भी भिजवाइए । बल्कि तार की खबर का खर्च भी आप दे दीजिएगा । हम आपके हिसाब में पाठक जी को दे देंगे । हमारा खत उसको मत दिखलाइएगा न कुछ हाल कहिएगा कि मैंने उसकी बुराई की है । अपना काम देखिएगा । जिसमें तार के खबर से चिट्ठी से गवाही से आपके सामने बयान से हर तरह से उसको पाबंद कर लीजिएगा । रुपए बिना बड़ा हर्ज है । कह दीजिए कि आज शाम तक तार का इन्तिजार देखकर वह खुद चले आवेंगे । बाहर ही से इस आदमी को रवाने किया है इसे खर्च नहीं दिया है दे दीजिएगा । व्यय मात्र कहिएगा । आपके यहाँ के नौकरों को या पाठक जी को दे दूँगा । बड़ी सावधानी से चटपट काम हो । शाम के भीतर हमको खबर दीजिएगा तार पर कि क्या जवाब दिया । खर्च सब मेरे जिम्मे ।

भवदीय
हरिश्चन्द्र

प्रियवरेषु —

आपका कृपा-पत्र आया । यह संसार दुःख का सागर है और अपनी अपनी विपत्ति में सब फँसे हैं पर मैं सोचता हूँ कि जितना मैं चारों तरफ से दुःख में जकड़ा हूँ इतना और कोई कम जकड़ा होगा पर क्या कहूँ खैर चला ही जाता है बाबू जी का यह तुक बहुत ही ठीक है — "हे संसार का यह मजा, धन सरिस दुख तड़ित सम सुख मोह छाजन छजा ।" इन्हीं भक्तियों से आजकल पत्र नहीं लिखा । क्षमा कीजिएगा । चित्त वैसा ही है । इसमें संदेह न कीजिएगा । "सौ युग पानी में रहै मिटै न चक्रमक आग ।" और सब कुशल है — आपका भी पचड़े में फँसना सुनकर बड़ा दुख होता है । ठीक है — खैर न वह रही न यह रहेगी ।

भवदीय
हरिश्चन्द्र



पत्रकार कर्म

सम्पादकीय टिप्पणी, विज्ञापन/ सूचनाएँ और अन्य

सम्पादकीय

१० जनवरी सन् १८७२ के साप्ताहिक 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित हिन्दी कविता पर लम्बा सम्पादकीय लेख ।
— सं०

(हिन्दी कविता)

ऐसा निश्चय है कि हिन्दी भाषा प्राकृत भाषा से बिगड़ती हुई बनी होगी परन्तु इसमें कोई पुष्ट प्रमाण नहीं केवल हिन्दी कविता में बहुत से प्राकृत शब्द मिलते हैं इससे निश्चय हो सकता है जैसा किति कान्ह गव्य इत्यादि । सबसे पुरानी हिन्दी की कविता चन्द कवि की है जो महाराज पृथ्वीराज का कवि था । इसकी कविता के पहिले की कोई कविता नहीं मिलती । एक कोई बैताल कवि हुआ है और उसने बहुत सी छप्पय बनाई । और उसकी भाषा भी पुरानी है पर यह निश्चय नहीं होता कि वह ठीक किस समय में हुआ था । चन्द की कविता प्राकृत भाषा की सी है । जैसा "गज खम्म छुटत उभदद मद । मनो गाजत गज्ज अषाढ़ भद इत्यादि" यह कविता बहुत मधुर नहीं है इसके पीछे फिर कौन कौन कवि हुए यह निश्चय नहीं परन्तु महम्मद मालिक जाहसी ने जो पदमावत बनाई है वह कविता उस काल के पीछे थी कविता कहीं जा सकती है । यह कविता मीठी और सीधी बनी है और इसके पीछे कबीर और नान्हक की कविता है । इस काल तक कविता की कोई बंधी भाषा नहीं थी अब लोग सीधी बोली में कविता करते थे । राजाधिराज अकबर का समय हिन्दी कविता की ठीकवृद्धि का समय था और नरहरि इत्यादि कवि उसी समय में हुए । नरहारि कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और उनके बंश के लोग अब तक कवि हैं । अकबर ने नरहरि को महापात्र का पद दिया था और उस समय में हिन्दी कविता में ब्रजभाषा मिल गयी थी परन्तु ब्रजभाषा में कविता करने का नियम सूरदास जी ने बांधा है जो इसी अकबर के समय हुए थे । सूरदास जी का जीवन वृत्त हम लोग विगत वर्ष के किसी विन्दु में लिख चुके हैं । ये भाषा के कवियों के मुकुट मणि और महाराज थे प्रायशः नये कवियों की कविता में वही उपमा और मिलते हैं जो सूरदास गान कर गये हैं । हिन्दी की बोलचाल और प्रबन्ध के पहिले लिखने वाले यही थे । यों तो इनके कुछ पूर्व से भी वृन्दावन में ब्रजभाषा में कविता बनती थी पर प्रसिद्ध इन्हीं के समय में हुए और इनके समकालीन बहुत से कवि हुए । सूरदास जी ने तो सवाभावोक्ति बहुत कहीं हैं पर और भाषा के कवियों का ध्यान इधर न रहा और मुसलमानी राज्य के ठीक समय में होने के कारण उन लोगों ने बड़ी लम्बी लम्बी उपमा और अक्षर मैत्री और बड़े-बड़े शब्द कविता में भर दिये और हिन्दी कविता के तादृश आदर न पाने का यही कारण हुआ । अकबर के समय से और जेब के समय तक बहुत से कवि हुए और वैष्णवों में कविता की चरचा की विशेषता से ब्रजभाषा ही कविता की मुख्य भाषा रही और काव्यादर्श इत्यादि ग्रंथों का मत लेकर हिन्दी कविता के शास्त्र भी बने परन्तु जैसा कवियों ने अलंकार और नायका भेद में जी लगाया वैसा व्याकरण की ओर न झुके और यही कारण है कि मनमानी भाषा और मनमाने शब्द कविता में मिल गये । इसी समय के अन्त भाग में तुलसीदास जी हुए पर इनने ब्रजभाषा का नियम अपनी भाषा में न रक्खा । उस काल के राजा लोगों का भी हिन्दी कविता का व्यसन बढ़ा और कवियों को नौकर रखने लगे और जयपुर और बुंदेलखंड में बहुत से कवि रहने लगे और

यही कारण हुआ कि पीछे हिन्दी कविता में ब्रजभाषा और बुंदेलखंडी बोली समभाव से मिल गई। इस समय के प्रसिद्ध कवियों में देव बड़ा कवि हुआ जिसके बाबन ग्रंथ अथर्वदि मिलते हैं और इसने अपनी भाषा में कठोर शब्द भी नहीं भरे। इस काल में कविता का चरचा ऐसा था कि मुसलमान लोग भी हिन्दी कविता करने लगे नेवाज नवी सेख आलम जहान पीतम रहीम जैनददी महम्मद, लालखा और ताज इत्यादि अनेक उत्तम कवि मुसलमानों में हुए और इन लोगों ने कई ग्रंथ भी बनाये। कहते हैं कि सेख और ताज ये दो स्त्रियों के उपनाम हैं वह कविता स्त्रियों की है। उस समय में अनेक हिन्दू स्त्री भी कवि हुए जैसा गंगावाई, मीरावाई, चतुरकुंअर, सोनादासी, और रामदासी इत्यादि। मुसलमानों में गाने के प्रबन्ध बनाने वाले भी उस समय से बहुत लोग हुए जैसा मिया तानसेन इत्यादि पर उस काल में क्या हिन्दू क्या मुसलमान किसी कवि ने कविता की रीति सुधारने और शब्दों के नियम बनाने में चिन्त न दिया। नाटक का तो ये नाम भी जानते थे वो नाटक उस समय के बने हैं पर वे दोनों कथा की भांति हैं नाटकपन उसमें नहीं है। उनमें एक तो प्रबोध चन्दोदय भाषा में है और दूसरे में बाज कवि या शकुन्तला है। इस समय के कवियों का चित्त स्वामोवोक्ति पर तनिक नहीं जाता था। केवल बड़े-बड़े शब्दाडम्बर करते थे और इन शब्दाडम्बरों का पदमाकर राजा है और इसने वैन मैची के हुते अनेक व्यर्थ शब्द अपनी काव्य में भर दिये हैं और फारसी के भी बहुत शब्द मिला दिये और इसकी देखा देखी और कवि भी ऐसा करने लगे। केशवदास ने तब भी कवि की मर्याद बांधी और उसकी मर्याद को बहुत लोग अब तक मानते हैं। उस समय में श्रीवृदाबन में अनेक कवि अच्छे हुए और उनकी कविता सीधी स्वामोवोक्ति लिए और रसमरी होती थी। जिनमें नागरीदास जी इत्यादि कई लोग बहुत अच्छे हुए जिनकी कविता बहुत उत्तम है परन्तु नाटक बनाने में किसी ने जोर न लगाया। इस काल में नाटक एक दो बने जिनमें एक हास्यार्णव था यद्यपि यह शुद्ध नाटक की चाल से नहीं है तथापि कुछ नाटक की चाल छूकर बना है पर बहुत असम्य शब्द से भरा है इसी से कवि ने उसमें अपना नाम नहीं रक्खा पर अनुमान होता है कि रघुनाथ कवि का है नाटक सब के पहिले जो हिन्दी भाषा में पुरानी ठीक नाटक की रीति से बना वह नहुष नाटक श्री गिरिधरदास कवि का है और इसके पीछे आजकल तो अनेक नाटक बने और अब तो भाषा के अनेक व्याकरण और प्रबन्ध की पुस्तक बन गई। साम्प्रत काल के कवियों में श्री गिरिधरदास महान कवि हुए क्योंकि व्याकरण और कोष और नाटक हिन्दी में पहिले इन्हीं ने बनाये और इस काल पजनेस ठाकुर रघुनाथ इत्यादि अनेक कवि कुछ पहिले हुए पर किसी ने नई बात नहीं की वही लोक पीटते चले गये। अब भी बहुत कवि हैं और इस भाषा की अच्छी वृद्धि है पर अब हिन्दी खड़ी बोली में पद्य कविता नहीं वर्ना पर जो ऐसी वृद्धि है तो आशा है कि यह भाषा सुधर जायेगी।

हिन्दी भाषा

" कविवचन सुधा कार्तिक कृष्ण ३० सं. १९२७ वाराणसी नं. ४ में प्रकाशित सम्पादकीय लेख ।
— सं०

प्राय लोग कहते हैं कि हिन्दी कोई भाषा ही नहीं है। हमको इस बात को सुनकर बड़ा शोच होता है यदि कोई अंग्रेज ऐसा कहता तो हम जानते कि वह अज्ञान है इस देश का समाचार भली भांति नहीं जानता। पर अपने स्वदेशियों को हम क्या कहें। हम नहीं जानते कि उनकी ऐसी हत बुद्धि क्यों हो गई कि वे अपने प्रीचन भाषा का तिरस्कार करते हैं। क्या भारतखंड निवासी महाराज विक्रमादित्य और भोज के समय में भी लखनऊ की सी बोली बोलते थे। एक महाशय लिखते हैं कि "यवन लोगों के आगमन के पूर्व इस देश में प्राकृत भाषा प्रचलित थी परन्तु उसके अनन्तर उस भाषा में विशेष करके अरबी और फारसी शब्द मिश्रित हो गये। अब उस नवीन भाषा को चाहे हिन्दी कहो, हिन्दुस्तानी कहो, वृजभाषा कहो, खड़ी बोली कहो, चाहे उर्दू कहो।" परन्तु वही यह भी कहते हैं कि "मुसलमान लोगों ने अपने

आगमनान्तर अपनी फारसी अर्थात् फारस देश की भाषा के सन्मुख प्राकृत का नाम हिन्दी अर्थात् हिन्द की भाषा रक्खा ।" "प्राचीन रीत्यानुसार चलने वाले इसी को हिंदी भाषा कहते हैं और इसी की वृद्धि चाहते हैं । परन्तु वे महाशय एक और स्थान में कहते हैं कि "भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसको सम्पूर्ण लोग वे प्रयास समझ जायें" और आप ही ऐसे ऐसे क्लिष्ट शब्द लिखते हैं कि फारसी खाओं के अतिरिक्त और लोगों को यूनानी भाषा जान पड़े हम नहीं जानते कि वे यहाँ की भाषा किस को ठहराते हैं । कितने लोग कहते हैं हिन्दी उस भाषा का नाम है जिसमें संस्कृत शब्द विशेष हैं वह भाषा है जिसमें फारसी और अरबी शब्दों की अधिकता हो हम लोग भी इसी वर्ग के हैं और सदा अपने हिंदी ही की उन्नति चाहते हैं — आप लोग जानते होंगे कि प्रयाग में एक यूनीवर्सिटी अर्थात् प्रधान शिक्षालय नियत कराने के हेतु लोग बड़ा श्रम कर रहे हैं । बहुतेरों ने इस विषय में अपनी सम्मति प्रकट की है ।

परन्तु प्रोग्रेस के सम्पादक को यह बात पसन्द नहीं है । इस विषय पर हम लोग अवकाश के समय अधिक ध्यान देंगे ।

सम्पादकीय नोट

"कविवचन सुधा" के किसी न किसी अंक में प्रकाशित महत्त्व के कुछ सम्पादकीय नोट दिये जा रहे हैं इनमें भारतेन्दु की देश भक्ति, भाषा भक्ति तथा तात्कालिक भारत की आर्थिक दशा के सन्दर्भ में उनकी चिन्ता पर प्रकाश पड़ता है । साथ ही राजभक्ति से देश भक्ति की ओर अग्रसर उनकी मानसिकता का अन्दाज मिलता है ।

"भुतही इमली का कनकौआ" नामक लेख पर राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने आपत्ति की कि इस लेख में परोक्ष रूप से उनका मजाक उड़ाया गया है । गवर्नर से भी शिकायत की गयी । इसी प्रकार "मर्सिया" के छपने पर भी अंग्रेज नाराज हुए । उन्होंने कविवचन सुधा की सौ प्रतियों की सरकारी खरीद को बन्द करने की धमकी दी ।

भारतेन्दु को कविवचन सुधा के २० अप्रैल १८७४ के अंक में एक स्पष्टीकरण छापना पड़ा ।

— सं०

शंका शोधन

"मर्सिया में हमारे अनेक ग्राहकों को शंका होगी कि वह राजा कौन था । इस्से अब हम उस राजा का अर्थ स्पष्ट करके सुनाते हैं । वह राजा अंग्रेजी फैशन था जो इस अपूर्ण शिक्षित मंडली रूप अंधेर नगरी का राज करता था जब से बम्बई और काशी इत्यादि स्थानों में अच्छे अच्छे लोगों ने प्रतिज्ञा करके अंग्रेजी कपड़ा पहिरना छोड़ देने की सौगंद खाई तब से मानो वह मर गया था ।"

'कविवचन सुधा' (८ जून १८७४) में छपा
फिर भी कविवचन सुधा की सरकारी खरीद बन्द हो गयी । अंत में भारतेन्दु को अपने पाठकों से ही आग्रह करना पड़ा ।

"अप्रसन्नता"

"आजकल हमारे पत्र के अष्टमंगल आये हैं बहुत से लोग हम लोगों से अप्रसन्न हो रहे हैं श्रीयुत डायरेक्टर साहब ने पत्र के सम्पादक को लिख भेजा कि मर्सिया ऐसे बुरे आर्टिकल लिखने से तुम्हारे पत्र का गवर्नमेंट एड बन्द किया गया ।"

'कविवचन सुधा' के २२ दिसम्बर के अंक में लिखा देश की आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में—

"चाहे कैसे भी द्रव्य एकत्र किया हो अन्त में सब जायेगा विलायत में, क्योंकि हमारी शोभा की सब वस्तुएं वहां से आवेंगी, कपड़ा, झाड़ू फानूस, खिलौने, कागज और पुस्तक इत्यादि सब वस्तु विलायत से आवेंगी उसके बदले यहां से द्रव्य जायेगा तो परिणाम यह होगा कि चाहे किसी उपाय से द्रव्य लो अन्त में तुम्हारे देश से निकल जायेगा ।"

डेढ़ दो महीने बाद १.२.१८७४ 'कविवचन सुधा' में लिखा — स्वदेशी का नारा—

"अब भी हम लोगों को कला कौशल्य की ओर ध्यान देना चाहिए । लोगों को तो अंगरेजी वस्तुओं की रुचि लगी है तो अंगरेजों के समान सब पदार्थों के कारखाने यहां नियत किये जाये पर अभी यहां के व्यापारियों में इतना सामर्थ्य नहीं है कि अंगरेजों के समान लोहा पीतल इत्यादि मौल्यवान पदार्थ लेकर मट्टी के वस्तु तक बनावें जैसे कि अंगरेजी व्यापारी माल मेजने लगे देखो बढ़ई आदि छोटे छोटे व्यापारियों को काम मिलना कठिन हो गया है यहां तक कि घर की खिड़कियां दरवाजे आदि सब विलायत से बन कर आते हैं । इस धोके का मुख्य कारण यही है जो अंगरेजों ने सबों के चित्त को अंग्रेजी भाषा की तरफ खींचा जो यथार्थ है कि हम लोगों ने कला कौशल्य की ओर ध्यान नहीं दिया और उन्होंने तो इसी मिस से हम लोगों को "बहाली दी" और द्रव्य सब विदेश के ले गये । अब हम लोग इस बात की ओर कुछ चित्त लगाकर अपने लाम के विषय में विचार करने लगे हैं और उसका कुछ फल भी दृष्टिगोचर होने लगा है परन्तु यथार्थ में यहां का माल तैयार करने के निमित्त जो लोग एकत्र हुए हैं वे कुछ भी नहीं हैं क्योंकि जब तक देश भर के व्यापारी इस विषय में उद्योग न करेंगे तब तक कार्य सिद्ध भली भांति नहीं हो सकता । जिस लिए केवल इतने ही से एतददेशीय वस्त्र आदि की वृद्धि होनी कठिन है और अंग्रेजों के समान वस्तु तैयार करना बिना सबों की सहायता के नहीं हो सकता ।"

"जानि सकें सब कछू सबहि विविध कला के भेद
बने वस्तु कल की इतै मिटे दीनता खेद"

और

"अंगरेजी पहिले पड़े पुनि विलायतहि जाय
या विद्या को भेद सब तो कछू ताहि लखाय"

१६.२.१८७४ 'कविवचन सुधा':

"जाने को तो यहां से तत्व खिंचकर जाता है और आने के शीशा खिलौना और कलम पिन्सिल आती है । बड़े बड़े एम. ए. और बी. ए. अब इस दुर्मिश में किस काम आवेंगे, एक राजा अच्छा पढ़ा लिखा और एक बंसफोड़ कभी दोनों एक जंगली टापू में छोड़ दिये गये थे वहां के लोग उनकी बोली नहीं समझते थे और क्रूर थे राजा का सौन्दर्य बुद्धि विद्या वहां कुछ काम न आई और उस बंसफोड़ ने बांस और लकड़ी लेकर माला बनाई उसे देख कर जंगली लोग बड़े प्रसन्न हुए और उसी लकड़ी के माला की कृपा से उन दोनों को भोजन मिला । तो है देशवासियों तुम भी इस निद्रा से चौको इनके न्याय के भरोसे मत फूले रहो । ये विद्या कुछ काम न आवेंगी यदि तुम हाथ के व्यापार सीखोगे तो तुम्हें कभी दैन्य न होगा नहीं तो अन्त में यहां का सब धन विलायत चला जायेगा तुम मुंह बाये रह जाओगे ।"

हरिश्चंद्र की जागरूकता का प्रमाण यह भी है कि वह विज्ञान की उन्नति चाहते थे । "कविवचन सुधा" में इस विषय पर लेख भी निकले । १ मार्च १८७४ के अंक में लिखा—

— सं०

"(विलायत में) एक लक्ष बहलर है, भाप के यंत्र हैं और एक एक की शक्ति ४० घोड़ों की है । एक घोड़े की शक्ति आठ मनुष्यों के बराबर है तो इस हिसाब से चलीस लाख घोड़े अर्थात् तीन करोड़ बीस

लाख मनुष्यों का काम इन यंत्रों के द्वारा होता है ५ मनुष्य तो काम करते करते थक जाते हैं पर ये यंत्र कभी नहीं थकते और मनुष्यों के समान चार आना आठ आना रोज नहीं देना पड़ता केवल इनमें अग्नि प्रदीप करने से चलने लगते हैं . . . परदेश के कला कौशल्य ने इस देश पर चढ़ाई किया ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था ।"

एक अत्यंत महत्वपूर्ण बात यह भी है कि आगे चलकर हरिश्चंद्र ने स्वदेशी का नारा लगाया । नारा ही नहीं, स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार की शपथ लेने के लिए 'कविवचन सुधा' २३.३.१८७४ के अंक में छपा । — सं०

"हम लोग सर्वान्तर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे और जो कपड़ा कि पहले से मोल ले चुके हैं और आज की मिली तक हमारे पास है उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे । हिन्दुस्तान ही का बना कपड़ा स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देशी हितेषी इस उपाय के वृद्धि में अवश्य उद्योग करेंगे ।"

'कविवचन सुधा' (८.२.१८७४)

"कुछ काल पहले अंग्रेज लोग जब हिन्दुस्तान के विषय में व्याख्यान देते थे तब यही प्रकट करते थे कि हम केवल इस देश के लाम अर्थ राज्य करते हैं यही चिल्ला चिल्ला कर सर्वदा कहा करते कि हम सदैव हिन्दुस्तान की वृद्धि के निमित्त विचार करते हैं कि हम लोग इस देश की वृद्धि करेंगे और यहां के निवासियों को विद्यामृत पिलावेंगे और राज्य का प्रबन्ध किस भाति करना यह ज्ञान जब प्रजा को स्वतः हो जायेगा तब हम लोग हिन्दुस्तान का सब राज्य प्रबन्ध यहां के निवासियों को स्वाधीन कर देंगे और अंत को सब राम राम कह कर जहाज पर पैर रख स्वदेश गमन करेंगे । यह वार्ता हम लोग अपनी गड़ी हुई नहीं कहते । पर इन्हीं अंग्रेजों की और मुख्य करके पाद्रीयों के जो व्याख्यान प्रसिद्ध हुए हैं उनसे स्पष्ट प्रगट होता है यह प्रकार पाठकजनों के देखने में निस्संदेह आया ही होगा इसमें संदेह नहीं ।"

(२)

अंग्रेजों ने हम लोगों को विद्यामृत पिलाया और उससे हमारे देश बान्धवों को बहुत लाम हुए इसे हम लोग अमान्य नहीं करते परन्तु उन्हीं के कहने के अनुसार हिन्दुस्तान की वृद्धि का समय आने वाला हो सो तो एक तरफ रहा पर प्रतिदिन मूर्खता, दुर्भिक्षता और दैन्य प्राप्त होता जाता है । अंग्रेजों ने उनको अपने विद्या की रुचि लगा कर राजनीति में उनके चित्त को आकर्षण किया और सच्ची विद्या उन्हें न दिया और यही कारण है कि हम लोग इनकी माया से मोहित हो गये और हम लोगों को अपनी हानि दृष्ट न पड़ी ।"

१६ फरवरी १८७४ के 'कविवचन सुधा' में:

"बंगाल में दुर्भिक्ष क्या है केवल अनीति के बीज का फल है क्या कारण है कि दिन दिन महंगाई बढ़ती जाती है और अन्न गत वर्ष में १२ सेर का बिकता था सो इस वर्ष में ८ सेर बिकने लगा विचार करें कि बीस वर्ष बाद के पूर्व अन्न ४० सेर का बिकता था अब उसका पंचमांश क्यों हो गया ?"

७ मार्च १८७४ 'कविवचन सुधा'—

"सरकारी पक्ष का कहना है कि हिन्दुस्तान में पहले सब लोग लड़ते मिड़ते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था । यह सब सरकार की कृपा से हुआ । हिन्दुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी नहीं । रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है । रेलवे कंपनी वाले जो द्रव्य व्यय किया है उसका व्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग हैं । कुल मिलाकर २६ करोड़ रुपया बाहर जाता है ।

१८ मई सन् १८७४ 'कविवचन सुधा'

"अब तो प्रति वर्ष में कहीं न कहीं दुष्काल पड़ा ही रहता है मुख्य करके अंगरेजी राज में इसका घर है और बहुधा ऐसा सुनने में आया है कि विसूचिका का रोग जो अब सम्पूर्ण भारत खंड में छा रहा है अंगरेजों के राज में इसका घर है और बहुधा ऐसा सुनने में आया है कि विसूचिका का रोग जो अब सम्पूर्ण भारत खंड में छा रहा है अंगरेजों के राज के आरंभ से इसका प्रारम्भ हुआ है।

"... जब अंगरेज विलायत से आते हैं प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिन्दुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं तब कुबेर बन कर जाते हैं... इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंग्रेज ही हैं।"

'कवि वचन सुधा' २० जुलाई १८७४

बंगाल में अकाल पड़ा है इससे इसके समाप्त होने पर किताब का भाव निस्संदेह बहुत सस्ता हो जायेगा जहां तक कि टके सेर तक विकै तो आश्चर्य नहीं, हम ग्राहकों को समाचार देते हैं कि वे प्रस्तुत हो रहे हैं केवल थोड़ा सा कागज रंगने झूठी मीठी रिपोर्ट कर देने पर खिताब मिल जायेगा पर ढंगबाजी शर्त है राय बहादुर राजा रौव्याब स्टार सब बाजार में आवेंगे ग्राहक लोग मियानी खोल रक्खें।"

'कवि वचन सुधा' ३१.८.७४

'सच मत बोल'

"अखबार वाले इतना भूकते हैं कोई नहीं सुनता अंधेर नगरी है व्यर्थ न्याय और आजादी देने का दावा है सब स्वार्थ साधते साधते हौ कहोगे गर्वमेंट के लोग तुमसे भला न मानेंगे सारांश यह कि सच्ची बातें जिनसे कहोगे व तुम्हें शत्रु जानेंगे।

"मुसलमान लोग अंग्रेजों की अपेक्षा सौगुन अपव्ययी थे, परन्तु वे लोग इस देश के निवासी थे इससे उनका अर्थ समुदाय इसी देश में व्यय होता था... जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेशित होकर स्वाधीन हुई वैसे ही भारतवर्ष में भी स्वाधीनता लाभ कर सकता है परन्तु भारत वर्ष उपनिवेशित होने से इसके विपक्ष भी बहुत आपत्ति है।

भी बहुत आपत्ति है। बीस करोड़ भारतवर्ष को पचास हजार अंग्रेज शासन करते हैं ये लोग प्रायः शिक्षित और सम्य हैं परन्तु इन्हीं लोगों के अत्याचार से सब भारतवर्षीयण दुखी रहे हैं।"

'हरिश्चंद्र मैगजीन' के पहले ही अंक में

— सं०

अंग्रेजों को घूस, सलाम बड़ेगी ऐंड्रेसी सी कुछ मिलता है। धन विद्या कौशल सब उनके पास है। उन्हीं के आवभगत के लिए समाएँ होती हैं। एका और बल उनके पास है। हिन्दुस्तानियों के हिस्से में मूर्खता है कायरता धक्के खाना पड़ा है। जो भाग्यशाली है वे दरवार में कुर्सी पाते हैं कौंसिल मेंबरी और सितारे हिन्द का खिताब पाते हैं।"

सम्पादकीय नोट

खबरें

अकसर "कविवचन सुधा" में बनारस आदि के बारे में खबरें भी छपती थी, सम्पादकीय टिप्पणी के साथ ऐसी ही दो तीन खबरें कवि वचन सुधा से दी जा रही है। इससे भारतेन्दु जी के समाचार संकलन और सम्पादकीय रुचि का पता चलता है।

— सं०

बनारस

(१)

अब की यहाँ दिवाली भी अच्छी नहीं भयी । शुक्रवार को पानी बरसने लगा तो दूसरे शनिवार तक सूर्य दृष्ट नहीं पड़े । सोमवार वाले दिन वायु का वेग इतना प्रचण्ड था कि खिड़कियों पर भी दीये न ठहर सकें ।

मधुराम या माधोराम नामें एक कोई ब्राह्मण दशाश्वमेध घाट पर रहता है उस का आगमन किसी प्रकार से एक पंजाबी के घर हो गया और वहाँ उसको किसी भूगनेनी के हाव भाव ने आसक्त कर लिया और यह बराबर वहाँ आने जाने लगा । जब इस बात का समाचार उस घर के मालिक को हुआ उसने इसका आना बंद कर दिया । फिर उसको कैसी व्याकुलता हुई होगी प्रेमी लोग भली भाँति जानते हैं । देवयोग से उस मालिक का एक पुत्र बीमार पड़ा । लोगों ने कहा अमुक जन भूत विद्या जानता है । तुमारा पुत्र उसी के कारण बीमार हुआ है । उन्होंने उसको बुलाने का उपयोग किया पर उसने उत्तर दिया कि जब तक वे आप मेरे घर पर न आवें मैं न आऊँगा यह उसके पास गये और वह आया और किसी प्रकार से दवा दारू करके लड़के को अच्छा किया, तब ७०० रु. और दुशाले की इच्छा प्रकट की और कहा कि यदि तुम न दोगे तो अबकी तुम्हारे पुत्र को मार ही डालेंगे । ये कुछ पढ़े लिखे भी हैं इससे यह जानते हैं कि यह सब झूठ है । पर इनके घर वाले मानते नहीं । अतः वह १०० लेने पर प्रस्तुत हुआ है पर वह बड़े विकल है कि क्या करे ।

हम लोगों ने सुना है उसका यहीं व्यापार है कि लोगों को धमका धमका कर रुपया पुजावे । क्या ऐसे आदमियों को सकार नहीं पकड़ती । इनका तो भलीभाँति दण्ड करना चाहिए ।

(२)

पहली नवम्बर का प्रातःकाल साढ़े सात बजे गवर्नर जनरल बहादुर काशी में आये । महाराज विजयानगरम और महाराज बनारस और अन्य रईस आगे से मिलने के लिए स्टेशन पर ठहरे थे । स्टेशन की सजावट न्यूनाधि उसी प्रकार की थी जैसी ड्यूक साहब के समय हुई थी । इस पार आकर श्रीयुत लार्ड साहिब और काशीराज एक ही गाड़ी पर और सब लोग अपनी अपनी गाड़ियों पर आरोहण करके महाराज की नदेसर वाले कोठी में गये । दोपहर के अनन्तर दर्बार हुआ था । रात्रिकाल में रोशनी प्रसन्नता योग्य हुई थी और आतिशवाजी का वृतांत लिखा नहीं जाता जिन्होंने देखा वही लोग जानते हैं । तीसरी को प्रातःकाल गाजीपुर पधारे ।

कविवचन सुधा जिल्द दो नं० सन० १८७०

"कविवचन सुधा" और "हरिश्चन्द्र मैगजीन" में प्रकाशित कुछ विज्ञापन और सूचनाएँ द्रष्टव्य हैं । इनसे भारतेन्दु के अध्येताओं को उनकी रुचि, धर्म और समाज के प्रति उनका लगाव तथा ज्ञान विस्तार की उनकी ललक का पता चलता है । भारतेन्दु व्यक्तित्व की समग्रता को यह सामग्रियाँ समेटें हैं । — सं०

शिवाला हटाकर सड़क बनाने पर ।

— सं०

" शिवाला "

काशी में चौक से गुनेलिया तक जो नई सड़क निकली है उसके बीच में एक शिवाला है ईश्वर उसको खुदने से बचावे नहीं तो हिन्दुओं के चित्त में इसका बड़ा खेद होगा निश्चय है कि सरकार इस पर ध्यान देगी और अवश्य ध्यान देना चाहिए । यह भी सुना गया है कि किसी पंडित ने यह कह दिया है कि यह शिवलिंग तो वेश्या द्वारा स्थापित है इससे खोदने में दोष नहीं ; धिक धिक उसकी बुद्धि ऐसा जो सोचा

जायगा तो बड़े बड़े स्थानों में यह पोल निकलेगी ऐसा कदापि न होना चाहिए और हिन्दुओं का कल्याण भी इसी में है कि वह शिवाला यथा स्थित रहे ।

— सम्पादकीय टिप्पड़ी

कविवचन सुधा जिल्द २ नं० १९ सं० १९२८

एक बार हिजड़ों पर भी आपत्ति आयी थी

हिजड़ों के लिए सूचना:

हिजड़ों के लिए एक नयी नीति प्रस्तुत की गयी है । उसके एक विभाग में लिखा है कि यदि कोई हिजड़ा स्त्री का वस्त्र धारण कर गली या सड़क में नाचैगा वा गावैगा और कोई इसी प्रकार का कर्म करेगा तो उसको दो वर्ष कारावद होना पड़ेगा ।

कविवचन सुधा ११ नवम्बर १८७१ जि. ३ नं. ६

भारतेन्दु की पुस्तक प्रेम और ज्ञान की पिपासा

— सं०

विज्ञापन:—

सन् १८७१ की पहली जनवरी से ३१ दिसम्बर तक हिन्दी वा संस्कृत में जितनी पुस्तकें छपें में सब में की एक एक प्रति मोल लेता हूँ । सब छापने वाले को उचित है कि जो पुस्तक नई छापें एक प्रति भेज दें और मूल्य मंगवा लें ।

२६ दिसम्बर, १८७१

हरिश्चंद्र

कविवचन सुधा जि. ३, २६ दिसम्बर, १८७१

आश्वासन के बाद भी चंदा नहीं मिलता था ।

— सं.

विज्ञापन:

श्री रामनारायण दास आनरेरी मजिस्ट्रेट आपने मेरे स्कूल में ५ रुपये मासिक देने को कहा था उसको १४ महीने हुए परन्तु अनुग्रह नहीं किया इन दिनों स्कूल में रुपयों की आवश्यकता है इससे आशा करता हूँ कि आप शीघ्र भेज देंगे ।

१ नवम्बर १८७०

हरिश्चंद्र

मालिक-चौखम्बा स्कूल

कविवचन सुधा जिल्द दो नम्बर ५ सं० १९२७

नकली अशर्फियों के सन्दर्भ में

— सं०

सूचना

आजकल किसी ने बहुत से झूठी अशरफिया बनाकर चलाई है । यद्यपि हम लोगों ने चाहा सविस्तार वृत्तांत लिखें परन्तु हमको अभी ठीक समाचार नहीं मिला, आशा है कि भविष्य नम्बर में कुछ लिखें ।

कविवचन सुधा जि. २ नं. ८ सप्लीमेंट पौष कृष्ण ३० सं० १९२७

हैजे से कैसे बचे—सं०

सूचना

इन हैजे का उपद्रव बहुतायत से फैल जाता है इस हेतु लोगों को उचित है कि नीचे लिखा हुआ उपाय करें। निश्चय है कि इस उपाय से बड़ा बचाव होगा।

सब लोग छोटे या बड़े एक एक ताम्बे का पैसा या अधेला या तावे का जन्तर या तावे का कोई टुकड़ा डोरे में पिरोकर गले में इस चाल से पहिरे कि वह छाती के नीचे लटकता रहे और धूप में बहुत न फिरें और भोजन दस बजे तक कर लें और घर में मैलापन न रखें और हैजे की चर्चा बहुत न करें।

निश्चय ही जो लोग यह उपाय करेंगे उनको ईश्वर उसे बुरे रोग से बचावेगा।

—हरिश्चंद्र

कविवचन सुधा चैत्र १५, १९२७ जि० २ नं० १५ सप्लीमेन्ट

असमर्थता और अस्वस्थता की विज्ञापित होती थी — सं०

विशेष विज्ञापन

सम्पादक के अस्वस्थ होने से यह अंक विशेष मनोरंजक नहीं हुआ। परन्तु हम अपने ग्राहकों को समाचार देते हैं कि अगला नम्बर बहुत ही मनोरंजक होगा।

हरिश्चंद्र मैगजीन १५ फरवरी १८७४

इस पत्र के सम्पादक का जी अच्छा नहीं है। और वह व्याधि ऐसी है कि पढ़ने लिखने से और भी बढ़ती है। इस्से ग्राहकों से निवेदन है कि जब तक ईश्वर उसे फि ज्यों का त्यों भली भांति चंगा न कर दे तब तक इस अप्रबन्ध मात्र को आप लोग क्षमा करेंगे।

हरिश्चंद्र मैगजीन मार्च १५, १८७४

इशतिहार

कवितावर्द्धिनी की दूसरी सभा अगहन कृष्ण को होगी

समस्या:—बीस रवि दस ससि संगही उदै भये वर्णन संध्या का: चाहे जिस छंद में हो।

सूडिया नई धर्मशाला कार्तिक कृष्ण ५

—हरिश्चंद्र

क. ब० सभा का लेखाध्यक्ष

कविवचन सुधा-कार्तिककृष्ण ३० सं. १९२७ जिल्द दो नं० ४

कवितावर्द्धिनी सभा:

कवितावर्द्धिनी सभा की तीसरी सभा पूस बदी एक को सूडिया पर नई धर्मशाला में होगी।

१. समस्या — खेलत आंगन नन्द को लाला।

२. वर्णन — पुरुष के वा स्त्री के खुले हुए बालों की शोभा का वर्णन।

मार्गशीर्ष कृष्ण ३०

क. ब. सभा कार्यालय

हरिश्चंद्र

लेखाध्यक्ष, क. ब. सभा

कविवचन सुधा— जि० २ सं० ६ सम्वत् १९२७

प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन पर प्रकाशित विज्ञापन — सं०

"श्री महाराजाधिराजजी के ज्येष्ठ पुत्र युवराज श्रीयुत महाराजकुमार आगत नवम्बर में हिन्दुस्तान में आवेंगे । इस के वर्णन में सब भाषा के कवियों श्री कविता एकत्र संग्रह कर के पुस्तकाकार छापी जायेगी । यह सब कविता श्री महाराणी वा कुमार वा उन के वंश की कीर्ति वर्णन में वा उन के आशीर्वाद में होगी । संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी, बंगला, गुजराती, महाराष्ट्री, तमिल, तेलंग इत्यादि सब भाषा की कविता इसमें सन्निवशित हो सकेगी । कविता में अत्युक्ति और निरा भाटपन न हो । यों तो बिना कुछ नमक मिर्च मिलाए कविता होती हो नहीं" ।

चौखम्बा, बनारस

हरिश्चन्द्र

प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन संबंधी कविता के लिए कविवचन सुधा में भारतेन्दु बाबू द्वारा छपाया गया विज्ञापन । — सं०

"श्री महाराजाधिराजजी के ज्येष्ठ पुत्र युवराज श्रीयुत महाराजकुमार प्रिन्स आफ वेल्स आगत नवम्बर में हिन्दुस्तान में आवेंगे, इसके वर्णन में सब भाषा के कवियों की कविता एकत्र संग्रह करके पुस्तकाकार छापी जाएगी । यह सब कविता श्री महाराणी के वा कुमार के वा उनके वंश की कीर्ति में वा उनके आशीर्वाद में होगी । संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी, बंगला, गुजराती, तमिल, तेलगु इत्यादि सब भाषा की कविता इसमें सन्निवेशित हो सकेगी । कविता में अत्युक्ति और निरा भाटपन न हो, यों तो बिना कुछ नमक मिर्च लगाए कविता होती ही नहीं । इसमें जिनकी कविता छपेगी एक-एक प्रति इस पुस्तक की मिलेगी और जो लोग सहायतापूर्वक वित्त भिजवावेंगे वे भी पुस्तक पावेंगे । जो कोई कविता भेजे, वह स्पष्ट अक्षरों में भेजे । ३० अक्टोबर के बाद कोई कविता आवेगी तो वह न छापी जायगी । यदि पत्र बेरिंग भेजे तो लिफाफे पर "राजकुमार संबंधी कविता" इतना लिख दें और कविता बहुत लम्बी चौड़ी भी न हो । कविता चुनने का अधिकार हमने अपने हाथ में रखा है ।

हरिश्चन्द्र

काशी पश्चिमोत्तरदेशी

"मार्गशीर्ष महिमा" पुस्तक के विषय में किया गया विज्ञापन — सं०

चतुर्वर्ग को मोक्षादिक पाने का बहुत सहज उपाय:— हम लोग माघ, वैशाख, कार्तिकादि महीने को अति पवित्र जानकर स्नानादि करते हैं परन्तु हम लोग नहीं जानते कि एक महीना जो इन सबों से महापुनीत और थोड़े साधन में बहुत फल का देनेवाला है, बच गया है और उसमें हम लोग कुछ स्नानादि नहीं करते जिसकी प्रसिद्धि के वास्ते हम बड़े आनंद से यह इशतहार देते हैं ।

"वह गोप्य मास जिसका महात्म्य सब शास्त्रों में बड़े आदर से कहा गया है मार्गशीर्ष अर्थात् अगहन का महीना है, जिस के गुण गान करने से महात्मा लोग तृप्त नहीं होते और यह महीना सब महीनों का राजा और भगवान का स्वरूप है जैसा कि आपने श्रीमद्भगवत गीता में और श्री भागवत एकादश स्कंध में आज्ञा की है । और श्री कुमारिकाणीं ने इसी के स्थान से श्रीकृष्ण को पाया था और स्कन्दपुराण में इस की बड़ी स्तुति लिखी है यथा "सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं, सर्वतीर्थेषु यत्फलं" ।। सहस्राप सहस्राप्रीति तत्सर्व्वमार्गशीर्षे कृते सुन ।।१।। यथाध्ययनदानाद्यैस्सर्व्वतीर्थाविगाहनैः । सन्यासेन च योगेन नाहम्बुधयो भवामि च ।।२।। स्नानेन दानेन च पूजनेन होमे विधाने तप आदितश्च । वश्यो यथा मार्गशिरे स्वमासि तथा न चान्येषुहि गर्गमुक्ता ।।३।। मार्गशीर्षेण कुर्वन्ति ये नराः पापामोहिताः । पापरूपा हि ते ज्ञेयाः कलिकाले

विशेषतः ॥४॥ माचाच्छनगुणमुण्यम्बे शाखे मासि लम्बते । तम्मात्सहस्रगुणितन्तुलासंस्थे दिवाकरे ॥५॥ कोटिगुणितं वृश्चिकस्थे दिवाकरे । मार्गशीर्षे धिकस्तस्प्रात्सर्व्वदा मम ॥६॥ और भी बहुत सा माहात्म्य है कहा तक लिखें अर्थात् इस महीने में प्रातः स्नान तुलसी और कदम्बपूजन से बढ़ कर मोक्ष का दूसरा उपाय नहीं है और कदम्बपूजन इस में मुख्यता विशेष है । यथा । पूजवेत्संस्मरेद्यस्तु कदम्बसर्व्वकामदं । सर्व्वान् कामानवापीति इहामुत्र न संशयः ॥ इस वास्ते आप लोग इस में जहाँ तक बन पड़े स्नान दानादि कीजिए और दूसरे लोगों को भी इस का उपदेश कीजिए किमधिकम्, इति ।

चौखम्भा बनारस

हरिश्चन्द्र

यह विज्ञापन "कविवचन सुधा" में छपा था । — सं०

सब पर विदित हो कि फ्रांसीस में जो युद्ध हुआ है और हो रहा है उस का वर्णन जो कोई नाटक की रीति से करेगा तो उस को मेरी ओर से ४००) पारितोषिक मिलेगा, परन्तु उस के ये नियम हैं:-

- (१) पुस्तक बीररस अंगी होता और करुणा और रौद्र उसके अंग होंगे ।
- (२) इस के पढ़ने से युद्ध का आद्योपान्त सब वृत्तान्त जाना जाय कि युद्ध कब और क्यों आरम्भ हुआ और कब तक रहा और इस में क्या-क्या हुआ ।
- (३) इस का फल यह हो कि पुस्तक के पढ़ने से मनुष्य सन्धि और विग्रह इत्यादि नीति में और युद्धकर्म में चतुर हो जाय और २०० पृष्ठ से न्यून न हो ।
- (३) नीचे लिखे हुए लोग इस की परीक्षा करेंगे कि पुस्तक यथोचित बनी है कि नहीं तब पारितोषिक मिलेगा । बाबू राजेन्द्र लाल मित्र, कुंआर लक्षण सिंह ।

२४.२.७८

हरिश्चन्द्र

१६ सितम्बर १८७२ के अंक में एक विज्ञापन द्वारा यह ज्ञात होता है कि भारतेन्दु जी उर्दू में कासिद नाम का एक पत्र भी निकालना चाहते थे । — सं०

"कासिद ।

सातएँ दिन आवेगा ॥"

नये हितकारी और विचित्र समाचार कहैगा ॥"

यह एक साप्ताहिक उर्दू पत्र निकलैगा इसमें अनेक हित की नये उदगार की साम्प्रत समयानुसार लोक वृद्धि की और अनेक शुभ समाचार की बातें रहैगी यह पत्र बहुत उत्तम बड़े बड़े पृष्ठों में स्वच्छ अक्षरों में छपेगा ।

मूल्य-१० रु. वार्षिक

हरिश्चन्द्र उद्यमकर्ता

"भारत मित्र के १८८१ के कई अंकों में" हरिश्चन्द्र के नाम से गोवध निवारण सम्बन्धी साहित्य रचना के लिए एक विज्ञापन छपा है । — सं०

सूचना

गोवध निवारण विषयक भाषा काव्य जो रचना करेगा उसको ५ रु०, १५ रु०, २५ रु०, जिस योग्य होगा पुरस्कार दिया जायेगा । कोई नाटक या उपारूपान (नावेल) इत्यादि बहुत अच्छा किसी विषय

प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन पर प्रकाशित विज्ञापन — सं०

"श्री महाराजाधिराजजी के ज्येष्ठ पुत्र युवराज श्रीयुत महाराजकुमार आगत नवम्बर में हिन्दुस्तान में आवेंगे। इस के वर्णन में सब भाषा के कवियों श्री कविता एकत्र संग्रह कर के पुस्तकाकार छापी जायेगी। यह सब कविता श्री महाराणी वा कुमार वा उन के वंश की कीर्ति वर्णन में वा उन के आशीर्वाद में होगी। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी, बंगला, गुजराती, महाराष्ट्री, तमिल, तेलंग इत्यादि सब भाषा की कविता इसमें सन्निवेशित हो सकेगी। कविता में अत्युक्ति और निरा भाटपन न हो। यों तो बिना कुछ नमक मिर्च मिलाए कविता होती हो नहीं।"

चौखम्बा, बनारस

हरिश्चन्द्र

प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन संबंधी कविता के लिए कविवचन सुधा में भारतेन्दु बाबू द्वारा छपवाया गया विज्ञापन। — सं०

"श्री महाराजाधिराजजी के ज्येष्ठ पुत्र युवराज श्रीयुत महाराजकुमार प्रिंस आफ वेल्स आगत नवम्बर में हिन्दुस्तान में आवेंगे, इसके वर्णन में सब भाषा के कवियों की कविता एकत्र संग्रह करके पुस्तकाकार छापी जाएगी। यह सब कविता श्री महाराणी के वा कुमार के वा उनके वंश की कीर्ति में वा उनके आशीर्वाद में होगी। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी, बंगला, गुजराती, तमिल, तेलंग इत्यादि सब भाषा की कविता इसमें सन्निवेशित हो सकेगी। कविता में अत्युक्ति और निरा भाटपन न हो, यों तो बिना कुछ नमक मिर्च लगाए कविता होती ही नहीं। इसमें जिनकी कविता छपेगी एक-एक प्रति इस पुस्तक की मिलेगी और जो लोग सहायतापूर्वक वित्त भिजवावेंगे वे भी पुस्तक पावेंगे। जो कोई कविता भेजे, वह स्पष्ट अक्षरों में भेजे। ३० अक्टोबर के बाद कोई कविता आवेगी तो वह न छापी जायगी। यदि पत्र बेरिंग भेजे तो लिफाफे पर "राजकुमार संबंधी कविता" इतना लिख दें और कविता बहुत लम्बी चौड़ी भी न हो। कविता चुनने का अधिकार हमने अपने हाथ में रखा है।

हरिश्चन्द्र

काशी पश्चिमोत्तरदेशी

"मार्गशीर्ष महिमा" पुस्तक के विषय में किया गया विज्ञापन — सं०

चतुर्वर्ग को मोखादिक पाने का बहुत सहज उपाय:— हम लोग माघ, वैशाख, कार्तिकादि महीने को अति पवित्र जानकर स्नानादि करते हैं परन्तु हम लोग नहीं जानते कि एक महीना जो इन सबों से महापुनीत और थोड़े साधन में बहुत फल का देनेवाला है, बच गया है और उसमें हम लोग कुछ स्नानादि नहीं करते जिसकी प्रसिद्धि के वास्ते हम बड़े आनंद से यह इश्तहार देते हैं।

"वह गोप्य मास जिसका महात्म्य सब शास्त्रों में बड़े आदर से कहा गया है मार्गशीर्ष अर्थात् अगहन का महीना है, जिस के गुण गान करने से महात्मा लोग तृप्त नहीं होते और यह महीना सब महीनों का राजा और भगवान का स्वरूप है जैसा कि आपने श्रीमद्भगवत गीता में और श्री भागवत एकादश स्कंध में आज्ञा की है। और श्री कुमारिकागणों ने इसी के स्थान से श्रीकृष्ण को पाया था और स्कन्दपुराण में इस की बड़ी स्तुति लिखी है यथा "सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं, सर्वतीर्थेषु यत्फलं" ॥ सहसाप सहसाप्रीति तत्सर्व्वमार्गशीर्षे कृते सुन ॥१॥ यथाध्ययनदानाद्यैस्सर्व्वतीर्थाविगाहनैः। सन्यासेन च योगेन नाहम्बुध्यो भवामि च ॥२॥ स्नानेन दानेन च पूजनेन होमे विधाने तप आदितश्च। वश्यो यथा मार्गशिरे स्वमासि तथा न चान्येषु हि गर्भमुक्ता ॥३॥ मार्गशीर्षे कुर्वन्ति ये नराः पापामोहिताः। पापरूपा हि ते ज्ञेयाः कलिकाले

विशेषतः ॥४॥ माघाच्छनगुणमुप्यम्बे शास्त्रे मासि लम्बते । तस्मात्सहस्रगुणितन्तुलासंस्थे दिवाकरे ॥५॥ कोटिगुणितं वृश्चिकस्ये दिवाकरे । मार्गशीर्षे धिकस्तस्मात्सर्वदा मम ॥६॥ और भी बहुत सा माहात्म्य है कहाँ तक लिखें अर्थात् इस महीने में प्रातः स्नान तुलसी और कदम्बपूजन से बढ़ कर मोक्ष का दूसरा उपाय नहीं है और कदम्बपूजन इस में मुख्यता विशेष है । यथा । पूजवेत्संस्मरेद्यस्तु कदम्बसर्वकामदं । सर्वान् कामानवाप्नोति इहामुत्र न संशयः ॥ इस वास्ते आप लोग इस में जहाँ तक वन पड़े स्नान दानादि कीजिए और दूसरे लोगों को भी इस का उपदेश कीजिए किमधिकम्, इति ।

चौखम्भा बनारस

हरिश्चन्द्र

यह विज्ञापन 'कविवचन सुधा' में छपा था । — सं०

सब पर विदित हो कि फ्रांसीस में जो युद्ध हुआ है और हो रहा है उस का वर्णन जो कोई नाटक की रीति से करेगा तो उस को मेरी ओर से ४००) पारितोषिक मिलेगा, परन्तु उस के ये नियम हैं:-

- (१) पुस्तक बीररस अंगी होता और करुणा और रौद्र उसके अंग होंगे ।
- (२) इस के पढ़ने से युद्ध का आद्योपान्त सब वृत्तान्त जाना जाय कि युद्ध कब और क्यों आरम्भ हुआ और कब तक रहा और इस में क्या-क्या हुआ ।
- (३) इस का फल यह हो कि पुस्तक के पढ़ने से मनुष्य सन्धि और विग्रह इत्यादि नीति में और युद्धकर्म में चतुर हो जाय और २०० पृष्ठ से न्यून न हो ।
- (३) नीचे लिखे हुए लोग इस की परीक्षा करेंगे कि पुस्तक यथोचित बनी है कि नहीं तब पारितोषिक मिलेगा । बाबू रावेन्द्र लाल मित्र, कुंआर लक्षण सिंह ।

२४.२.७८

हरिश्चन्द्र

१६ सितम्बर १८७२ के अंक में एक विज्ञापन द्वारा यह ज्ञात होता है कि भारतेन्दु जी उर्दू में कासिद नाम का एक पत्र भी निकालना चाहते थे । — सं०

''कासिद ।

सातएँ दिन आवेगा ॥''

नये हितकारी और विचित्र समाचार कहैगा ॥''

यह एक साप्ताहिक उर्दू पत्र निकलैगा इसमें अनेक हित की नये उदगार की साम्प्रत समयानुसार लोक वृद्धि की और अनेक शुभ समाचार की बातें रहैगी यह पत्र बहुत उत्तम बड़े बड़े पृष्ठों में स्वच्छ अक्षरों में छपेगा ।

मूल्य-१० रु. वार्षिक

हरिश्चन्द्र उद्यमकर्ता

''भारत मित्र के १८८१ के कई अंकों में' हरिश्चन्द्र के नाम से गोवध निवारण सम्बन्धी साहित्य रचना के लिए एक विज्ञापन छपा है । — सं०

सूचना

गोवध निवारण विषयक भाषा काव्य जो रचना करेगा उसको ५ रु०, १५ रु०, २५ रु०, जिस योग्य होगा पुरस्कार दिया जायेगा । कोई नाटक या उपाख्यान (नाबेल दुखान्त बहुत अच्छा किसी विषय

विविध हो कि यह लीविंग साहब डाक्टर ने निर्माण किया है और हम लोगों ने इन्द्रप्रकाश आफिस से अभी इसके केवल थोड़े से बाटल परीक्षा के हेतु मंगवाए हैं । निश्चय यह बड़ी अपूर्व वस्तु है क्योंकि निर्बल या अन्न से चिढ़ने वाले या मातृहीन बालकों का तो यह जीवा है और निर्बल मनुष्यों का भी यह भक्ष्य के समान है जिनको मंगाना हो मंगा लें ।

मूल्य-२ रु.

हरिश्चंद्र

कविवचन सुधा २० जुलाई सन् १८७२

" बनारसी माल "

विदेशी लोगों पर विदित हो कि हम लोगों के यहां बनारसी दुपट्टे साड़ी रुमाल मन्नील कमखाव के थान, चोलखण्ड चिनियापोत और छोटे रुमाल की टोपी इत्यादि अनेक वस्तु बहुत उत्तम और सस्ती बनती है । जिन सौदागर या रसिकों को मंगाना हो वो हम लोगों को पत्र व्यवहार करे निश्चय है कि वे इसमें लाभ भी उठावेंगे और अच्छी वस्तु पाकर प्रसन्न भी होंगे ।

हरिश्चंद्र

चौखम्बा, बनारस

कविवचन सुधा जिल्द ३ नं. १९

इश्तिहार

मुद्रिका ।

छल्ले ॥

अगूठियों ॥

हम लोगों ने नई चाल के छल्ले सोच कर निकाले हैं और उनमें नगों के नाम पर और रंग के मत सम्बन्धी वा प्रीति सम्बन्धी शब्द निकालते हैं अंग्रेजी फारसी और हिन्दी के वर्णों में लोगों के नाम के मुख्यत्वे अक्षर भी निकल सकते हैं जिन लोगों को ऐसी अपूर्व मुद्रिका बनवानी हो वह अपना नाम और आशय लिखे तो वैसी ही बन जायेगी उसका उदाहरण हम लोग खलों के भय से स्पष्ट रीति से नहीं लिख सकते क्योंकि यदि लोग इस विषय को जान जायेंगे तो हम लोगों के परम श्रम से फलस्वी अगूठियों को सहज में बना लेंगे इससे जिनको जो आर्य देनी हो उसका आशय हम लोगों को लिखे ।

हरिश्चंद्र

(बनारस)

कविवचन सुधा जि० ३ अंक १९, ७ मई १८७२

पुराने सिक्के

हम लोगों ने पुराने सिक्के एकत्र किये हैं जिनको भरपूर मूल्य देकर लेना हो लिखें ।

कविवचन सुधा जिल्द ३ नं० १९ सन् १८७२

हरिश्चंद्र

पर कोई लिखे जिसकी कथा मनोहर और करुणापूर्व तथा आदर्शजन के चित्त में धूना लज्जा और उत्साह बढ़ाने वाली हो तो ५० रु० से १०० रु० तक पारितोषिक दिया जायेगा ग्रंथ उत्तम विचित्र कथापूर्ण और छोटा न हो।

हरिश्चंद्र

इसी आशय का हरिश्चंद्र ने बाबू रामदीन सिंह जी को एक पत्र भी लिखा था। — सं०

पुस्तकालय

किन्ही शीतलप्रसाद के पुस्तकालय के सन्दर्भ में प्रकाशित इस विज्ञापन से भारतेन्दु के पुस्तक एवं पुस्तकालय प्रेम पर प्रकाश पड़ता है। — सं०

आपका पुस्तकालय सहायहीन हो जर्जर हो गया हम आप लोगों से प्रार्थना करते हैं कि आप लोग कृपा कर थोड़ी थोड़ी सहायता करें। पुही पुही तालाब भरता है। इस लोकोक्ति के अनुसार यह शुभ कार्य भलीभांति सम्पन्न हो जायेगा।

गत मुनशी जी के बाबू रामदास उस पुस्तकालय को सहायता करने को सब भांति उद्यत है और श्री बाबू गुरुदास मित्र ने घर भी बहुत उत्तम दिया है और उसमें पुस्तकें भी बहुत भाषा की रक्खी है पर केवल परों की सहायता के बिना वह नष्ट प्राय हो रहा है आशा इस पत्र को देखने वाले कुछ सहायता अवश्य करेंगे। वरन मेरी यह विनती है कि सहायता थोड़ी ही की जाय जिसमें उसका निर्वाह निष्कटक होता रहे।

कविवचन सुधा १७ अगस्त सन् १८७२

आपलोगों का दास. हरिश्चंद्र

कुछ व्यापारिक विज्ञापन

लवेन्डर का सपटन
ल्फोरिडा वारद सुगन्ध का जल

यह सुगन्धी और सब सुगन्धियों से अच्छी है सिर में लगाने कपड़े में लगाने और रुमाल में छिड़कने योग्य है और सिर की व्यथा घूमटा, जी मचलना और गरमी को इसकी सुगन्ध दूर करती है और इसे मुंह धोने से मुंह के मुहासे और किसी प्रकार के मुंह के दाग हो तो दूर जाते हैं और दांत में पीड़ा हो तो पानी मिला कुल्ली करने से दांत भी शुद्ध हो जाते हैं। अमी हम लोगो ने इसको इन्द्र प्रकाश आफिस से थोड़ा सा नमूने के हेतु मंगाया है जिसको मंगाना हो लिखें।

हरिश्चंद्र

मूल्य ३) रु

कविवचन सुधा २० जुलाई सन् १८७२

"शुद्ध माता का दूध"

बालक का अशक्त को
केवल यही योग्य भक्ष्य है।

फोटोग्राफ

फोटोग्राफ का हम लोगों ने नया प्रबन्ध किया है और अनेक चित्र राजाओं के बनारस के रईसों और प्रसिद्ध स्थानों के छापे हैं। जिनको लेने की इच्छा हो मुझे लिखे।

हरिश्चंद्र

कविवचन सुधा जिल्द ३ नं० १९ सन् १८७१

इस विज्ञापन से भारतेन्दु की काष्ट औषधियों के प्रति आस्था झलकती है। — सं०

नये सूचना पत्र

सब रोगों का मूल रक्त बिगड़ना

परम उपचार रक्त शुद्ध करना।

स्वल्प है शीघ्रता करी ।।।

हम लोगों के पास विष्टलस सारमा परीक्षा के कुछ बाटल आ गये हैं और विकने के हेतु रक्खे हैं जिनको मंगवाना हो शीघ्र मंगवा लें क्योंकि वस्तु थोड़ी है ग्राहक बहुत ।।।

इसके पीने का उपय उसी में कागज पर चिपकाया है। विदित हो कि यह शुद्ध काष्ट औषध है और रक्त के यावत् विकार जैसा घबड़ाहट, गजकर्ण, दाद, फोड़े, ब्रण, रक्तवित्त, गंडमाला, अंग से चिनगारी सा निकलना, गरमी का कोई रोग, अंग पर लाल या काले चकोटें पड़ना वा किसी रस के खाने से रक्त का बिगाड़ होना इन सब रोगों को यह गुण करता है।

यह निर्बल वा बालकों को भी दिया जा सकता है।

मूल्य-बड़ा बाटल-६।।)

हरिश्चंद्र

कविवचन सुधा ५ जुलाई १८७२

कुरान शरीफ

अर्थात् मुसलमानों के मन की पवित्र धर्म पुस्तक हिन्दी भाषा में। इस बड़े ग्रंथ को मैंने बड़े परिश्रम से हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है और अब इसको छापने का भी विचार है परन्तु बड़ा ग्रंथ है और व्यय विशेष है इससे यह इच्छा की है कि पहिले १०० ग्राहक ठहरा कर तब छापना आरम्भ करूं इससे विद्वानुसरागी और मर्तों के जानकारों से निवेदन है कि वे लोग उसके छापने का उत्साह अपने आज्ञापत्र से शीघ्र बढ़ावे और मूल्य इसका छपने के पीछे व्यय के अनुसार रखा जायेगा परन्तु किसी भी दशा में १० रु. से वह विशेष न होगा।

१२ जनवरी

कविवचन सुधा में प्रकाशित

हरिश्चंद्र

— सं०

अप्रैल १८८४ में महारानी के चतुर्थ पुत्र इयूक आफ अल्बनी के अकाल मृत्यु पर के शोक सभा करने की सोची और हिन्दी अंग्रेजी तथा उर्दू में आशय की नोटिस छपावा बांटी ।

— सं०

“हम लोगों की राजराजेश्वरी के चतुर्थ पुत्र के अकालमृत्यु पर शोक प्रकाश करने की १२ अप्रैल शनिवार की सन्ध्या को ६ बजे टाउन हाल में सर्वसाधारण की सभा होगी । श्री राजराजेश्वरी की सब प्रजा की वहां आना उचित है ।”

हरिश्चंद्र

मार्च १८०८ ई० के चन्द्रग्रहण के अवसर पर सूतक के विषय में भारतेन्दु के विचार ।

— सं०

“इस वर्ष में जो चन्द्रमा का ग्रस्तोदय ग्रहण हुआ था उस में ज्योतिष के अनुसार तीसरे पहर से लोगों ने सूतक माना और हम लोगों के श्री श्री बल्लभमीय सम्प्रदाय की रीति के अनुसार श्री ठाकुर जी भी उसी समय से अलग विराजे, किन्तु ऐसा निश्चय होता है कि शास्त्रमान से सूतक मानने की आवश्यकता नहीं । व्यर्थ ठाकुर जी को इतने पहिले कष्ट दिया क्योंकि ग्रहण का सूतक ग्रहण के देने बिना नहीं होता यथा ‘सर्व्वेवामेव वर्णानां सूतकं राहु दर्शनं’, ‘स्नानं दानं तपः श्राद्ध मनन्तं राहुदर्शनं’, ‘दत्तं जप्तं हुतं स्नातभनन्तं राहुदर्शनं’ इत्यादि वाक्यों में जो दर्शन शब्द है और ‘देखे गहन सुने सूतक’ इस लोक कहावत से गहन जब तक लोक के दृष्टिगोचर न हो तब तक उस के सूतक का आरम्भ नहीं होता । अतएव ‘सूयग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा । तब स्नानं न कर्तव्यं दद्याद्दानं च न कञ्चित्’ विधान किया है । जो कहे ग्रस्तास्तु में शस्त्रीरीति से जब तक उग्रह न हो तब तक सूतक क्यों मानते हैं ? तो इस से उस से भेद है । उस में दर्शन को कर सूतक लग चुका है, उस की निवृत्ति शास्त्र रीति में हगहमान कर करना और यहां सूतक का प्रारम्भ ही नहीं हुआ है । जो कहे कि ऐसा मान कर फिर पहर दिन चढ़ने के भीतर भोजन करना क्योंकि चन्द्रग्रहण के पहिले केवल तीन पहर निषेध है सो नहीं । इस भोजन के हेतु एक विशेष वाक्य है यथा ‘सन्ध्याकाले यदा राहुग्रसते शशिभास्करो । दिवा तब न भोक्तव्य रात्रौ नैव कदाचन ।”

भारतेन्दु को ऋण का चस्का कब लगा यह उनकी इस याददाश्त से पता चलता है ।

— सं०

“एक बेर कोई कलकत्ते से लालरंग की चन्द्रजीति पहले पहल मंगल के मेले में लाया था । घर की नाव तमाशा देखने की हुई थी । हम ने वाल स्वभाव से चार रुपये की पावभर बुकनी मंगाकर उस पर छोड़ दी । पीछे उसका रुपया मुनीबजी ने नहीं दिया । जनाने में इत्तिला हुई । मायजी ने भी नहीं दिया । बड़ा पचड़ा हुआ । एक दिन भोजन नहीं किया । अंत में तंग होकर छगनलाल नामक एक मनुष्य से पुरजा लिख कर चार रुपया मंगाया तो उन्होंने उसी समय भेज दिया । वही मानो चसका लगा । बालको के सुधारने की इच्छा करने वाले माता पिता इस किस्से को कान लगाकर सुनें । उस समय वह चार न देना कैसा विष हुआ । अंत में चार लाख ले गया । बारुद तो चल ही गई थी बिना दिये कैसे काम चलता । गौवनारम्भ में बालक की इतनी कैद वा निगरानी खराब करती है ।”

भारतेन्दु द्वारा अनेक उपमानों से सूर्योदय वर्णन ।

— सं.

"देखो सूर्य का उदय हो गया । अहा । इस की शोभा इस समय ऐसी दिखाई पड़ती है मानों अन्धकार को जोतने को दिन ने यह गोला मारा है . . . वा आकाश का यह कोई बड़ा लाल कमल खिला है . . . वा काल के निर्लेप होने की सौगन्ध खाने को यह तपाया हुआ लोहे का गोला है, वा उस बड़े आतिशबाज का जिस ने रात को अद्भुत गंज सितारा छोड़ा था यह दिन का गुवार है . . . वा रात को सुख पाने वाली दिन को वियोगिनी होने वाली स्त्रियों की वियोगाग्नि का कुंड है, . . . वा काल खिलाड़ी का यह लाल पतंग है, वा समय रेल की आगमनसूचक यह आगे की लाल लालटेन है . . . वा समयरूपी चालान को पेटो पर यह लाह की मोहर है, वा आकाशरूपी दिगम्बर का भीख मांगने का यह ताबे का कटोरा है . . . वा अंधेरे से लड़ने वाले चन्द्रमावीर की यह खून लगी ढाल है, वा दिशकामिनी का यह सोने का कर्णफूल है, . . . वा उस हठीले बालक के खेल की यह चकटू है जो उस की आज्ञारूप डोर पर ऊँची नीची हुआ करती है . . . वा सूर्यवंशियों के अभिमान की गठरी है 'गजर देने का यह घंटा है . . . वा सूर्यवंशियों के अभिमान की गठरी है' इत्यादि । जिस को इस उपमावली को बहार देखनी हो वह स्वयं इस प्रबन्ध का पाठ करें ।

गुरुसारणी

"बालाबोधिनी" भारतेन्दु हरिश्चंद्र द्वारा स्त्रियों के लिए ही प्रकाशित की जाती थी । इसमें गुरुसारणी नाम का एक कालम होता था, जिसमें घर के हिसाब किताब के कविता में सूत्र प्रकाशित किये जाते थे । जिसे भारतेन्दु के ही समकालीन कवि हनुमान किशोर ने बनाये थे । बाद में यह पुस्तकाकार छपा जिसकी भूमिका भारतेन्दु बाबू ने लिखी थी ।

— सं.

(भूमिका)

विदित हो कि अपनी छोटी बुद्धि के अनुसार छोटा सा ग्रंथ प्रथम गुरुसारणी लोगों के उपकार के लिए बनाया, जो इससे बहुत मनुष्यों का उपकार होगा और रुचि होगी! तो इससे अच्छे अच्छे ग्रंथ और भी तैयार हुआ करेंगे । प्रथम इस ग्रंथ के बनाने से अभित्त हमारा यह है कि बहुधा लोग अपने पुत्रों को कड़के सबब से पढ़ाने लिखाने में सुसती कर जाते हैं और कहते हैं कि "लड़का जब सयाना होगा और जीता रहेगा पढ़ लेगा" तो हुशियार होने पर मनुष्य को अपने कमाने खाने को फिकर हो जाती है और विद्या पढ़ने में मन नहीं लगता । कारण इसका यह है कि एक मन दो जगह कैसे कम से तो वही मनुष्य उस अवस्था में व्यवहारिक कर्म में बहुत कठिनता से हिसाब जान सकते हैं । ऐसे मनुष्यों के हेतु यह ग्रंथ जनाब मुहल्ला अलकाव मिस्टर "सादरस" साहेब बहादुर के आज्ञानुसार बनारस के रहने वाले पण्डित हनुमान किशोर ने बनाया । और जो हिसाब हरवक्त के लेन देन में काम पड़ता है । छंद प्रबन्ध करके लिखा इस कारण से कि वार्तिक विशेष करके लोगों को स्मरण नहीं रहता और इसके यह कि युवा अवस्था में छंद प्रबन्ध से लोगों की रुचि भी विशेष होती है, इसे मन लगा के याद कर लेंगे और निश्चय है कि ऐसे उपकारी ग्रंथ का बहुत लोग चाह करेंगे ।

अगस्त १८७५

जिल्द दो नं. ८ 'बालाबोधिनी'

हरिश्चंद्र

विविध

सन् १८७३ में इन्होंने काशी में ही पैनीरीडिंग क्लब स्थापित किया इसके लेखकगण अपने लेख पढ़ते थे । जिसे बाद में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' में छापा जाता था । भारतेन्दु ने उसकी नियमावली जो बनाई थी वह यह है — सं.

- (१) पढ़नेवालों को अपने विषय का नाम तीन दिन पहिले लेखाध्यक्ष के पास भेज देना होगा ।
- (२) अपशब्द और अश्लील और विभत्स शब्द कोई न प्रयोग करे, और ईश्वर के विषय में कोई निंदा का शब्द वा किसी सम्पत् के विषय में मर्मवाक्य कोई न बोले ।
- (३) बिना पास के कोई न आने पावेगा और पास सब सम्भावित लोग लेखाध्यक्ष से मंगवा लेंगे ।
- (४) जो पास पाने का अधिकारी नहीं है उसको पांच रुपये देने से सीजन पास मिलेगा ।
- (५) जहां तक हो सकेगा पढ़ना शीघ्र ही आरम्भ और शीघ्र ही समाप्त होगा ।
- (६) कोई देखने वाला कोलाहल करके विघ्न करेगा तो निकाल दिया जायेगा ।
- (७) कोई रंग मन्दिर में न आये, यदि जायेगा तो निकाल दिया जायेगा ।

— हरिश्चंद्र

सन् १८८३ में ब्रिटेन के किसी उपनिवेश के गर्वनर पोपहैन्सी ने "इल्वर्टविल" के सन्दर्भ में भारतेन्दु बाबू को एक पत्र लिखा "लार्ड रिपन की सुनीत समर्थन में क्या आप अपनी लेखनी नहीं उठायेगा" ?

भारतेन्दु बाबू ने इस विषय पर कोई गलतफेहमी न पैदा हो इसलिए हिन्दी और अंग्रेजी के समाचार पत्रों में यह विज्ञप्ति प्रकाशित की । — सं०

'एक हाल की सभा में कर्नल मलेसन साहिब ने मेरा नाम लिया है कि मैं "जुरिजडिकशनविल" का विरोधी हूँ । कर्नल साहिब के ऐसा कहने से सम्भव है कि मेरे देशीयजन मेरे विषय में कुछ और ही अनुमान करें । यदि मैं कर्नल साहिब की बातों का खंडन न करूँ तो मैं देश का अशुभचिन्तक समझा जाऊँगा यथार्थ बात यह है कि लेखन में मेरे एक मित्र फ्रेडरिक पिनकाट साहिब हैं । मैंने उनके पास दो तीन पत्र भेजा था जिसमें इल्वर्टविल के सम्बन्ध में भी कुछ लिखा था । मेरे लेखों का सारांश यह था कि "जुरिजडिकशनविल" के सम्बन्ध में हिन्दू और अंगरेज में बड़ा हलचल और झगड़ा उठ खड़ा हुआ है । यदि विल पास हो तो हिन्दुओं का बहुत लाभ न होगा और जो न पास हो तो अंगरेजों को भी बहुत लाभ न होगा । प्रत्येक अंगरेज तथा हिन्दू को जो देश की भलाई की मनोकामना रखते हैं यही इच्छा करनी उचित है कि यह विरोध और यह जातीय झगड़ा निवृत्त हो जाय । अवश्य मैंने अपने पत्र में बंगालियों का नाम नहीं लिया था ।

कविता वर्धनी सभा द्वारा कवियों को दिया जाने वाला प्रशंसा-
— सं०

पत्र ।

प्रशंसापत्र

यह प्रशंसापत्र

को कवि सभा

की ओर से इस हेतु दिया जाता है कि आज की समस्या को (जो पूर्ण करने के हेतु दी गई थी) इन्होंने ने उत्तमता से पूर्ण किया और दत्त विषय की कविता इन ने प्रशंसा के योग्य की है इस हेतु मिली

की काव्य वर्दिनी सभा के सभापति, सभाभूषण, सभासद और लेखाध्यक्षों ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक आदर से इन को यह पत्र दिया है ।

मि.

संवत् १९२७

ह.

ह.

सभापति

लेखाध्यक्ष

धर्म के प्रसार और ईश्वर प्रेम के लिए भारतेन्दु बाबू ने सन् १८७३ में 'तदीय समाज' की स्थापना की । इस संस्था द्वारा मादक द्रव्यों, मांस आदि पर प्रतिबन्ध के लिए सबसे पहले आवाज उठायी गयी । संस्था के नियम भारतेन्दु ने ही बनाये थे ।

— सं०

समाज को मि० श्रावण शुक्ल १३ बुधवार सं० १९३० को आरम्भ किया था । इसके नियम ये —

१. श्री तदीय समाज इसका नाम होगा ।
२. यह प्रति बुधवार को होगा ।
३. कृष्ण पक्ष की अष्टमी को भी होगा ।
४. प्रत्येक वैष्णव इस समाज में आ सकते हैं प.न्तु जिनका शुद्ध प्रेम होगा वे इसमें रहेंगे ।
५. कोई आस्तिक इस माज में आ सकता है पर जब एक सभासद उसे विषय में भली भाँति कहेगा ।
६. जो कुछ द्रव्य समाज में एकत्रित होगा धन्यवाद पूर्वक स्वीकार किया जायगा ।
७. समाज क्या करेगा —

(क) समाज का आरम्भ किसी प्रेमी के द्वारा ईश्वर के गुणानुवाद से होगा ।

(ख) गुरुओं के नामों का संकीर्तन होगा ।

(ग) एक वक्ता कोई सभासद गत समाज के चुने हुए विषय पर कहेगा ।

(घ) एक अध्याय श्री गीताजी का और श्रीमद्भागवत दशम का एक अध्याय, पढ़े जायेंगे ।

(ङ) समाज के समाप्ति में नाम संकीर्तन होगा और दूसरे समाज के हेतु विषय नियत किया जायगा और अंत में प्रसाद बँटैगा ।

८. इसके और भी क्रम सामाजिकों की आज्ञा से बढ़ सकते हैं ।

९. यद्यपि इस समाज से जगत और मनुष्यों से कुछ सम्बन्ध नहीं तथापि जहाँ तक हो सकेगा शुद्ध प्रेम की वृद्धि करेगा और हिंसा के नाश करने में प्रवृत्त होगा ।

इसके ये महाशय सभासद थे, १ श्री हरिश्चन्द्र २ राजा भरत पूर (राय श्री कृष्णदेव शरण सिंह — अच्छे कवि और विद्वान थे) ३ श्री गोकुलचन्द्र ४ दामोदर शास्त्री (संस्कृत हिन्दी के प्रसिद्ध कवि) ५ तिलवर्ण कर (?) ६ तारकाश्रम (अच्छे विरक्त थे) ७ प्रयागदत्त (सच्चररित्र ब्राह्मण थे) ८ शुकदेव मिश्र (श्री गोपाललाल जी के मन्दिर के कीर्तनिया) ९ हरिराम (प्रसिद्ध वीणकार बाजपेई जी) १० व्यास गणेशराम जी (श्री मद्भागवत के अच्छे वक्ता थे, बड़े उत्साही थे, भागवत सभा, कान्यकुब्ज पाठशाला के संस्थापक थे) ११ कन्हैयालाल जी (बाबू गोपालचन्द्र जी के सभासद) १२ शाह कन्दनलाल जी (श्री वृन्दावन के प्रसिद्ध कवि

और महानुभाव) १३ मिश्र रामदास (?) १४ बाबा जी (?) १५ बिठ्ठल मट्टजी (बड़े विद्वान और भावुक वक्ता थे) १६ गोरजी (प्रसिद्ध तीर्थदात्रक गोरजी दीक्षित) १७ रामचन्द्र पंत (?) १८ रघुनाथ जी (जम्बू राजगुरु बड़े विद्वान और गुणी थे) १९ शीतल जी (काशी गवर्नमेंट कालिज के सुप्रसिद्ध अध्यापक, पण्डित मण्डली में मुख्य और संस्कृत हिन्दी के कवि) २० बेचनजी (गवर्नमेंट कालिज के प्रधानाध्यापक, पण्डित मात्र इन्हें गुरुवत् मानते थे और अग्रपूजा इनकी होती थी, महानु विद्वान और कवि थे) २१ वीसूजी (काशी के प्रसिद्ध रईस, परम वैष्णव और सत्संगी) २२ चिन्तामणि (कवि-वचन-सुधा के सम्पादक) २३ राघवाचार्य (बड़े गुणी थे) २४ ब्रह्मदत्त (परम विरक्त ब्राह्मण थे) २५ माणिक्यलाल (अब डिप्टी कलक्टर हैं) २६ रामायण शरण जी (बड़े महानुभाव थे, समग्र तुलसीकृत रामायण कंठ थी, पचासों चले लिए रामायण गाते फिरते थे, बड़े सुकंठ थे, काशिराज बड़ा आदर करते थे, काशी के प्रसिद्ध माहत्माओं में थे) २७ गोपालदास २८ वृन्दावन जी २९ बिहारी लाल जी ३० शाह फुन्दन लाल जी (शाह कुन्दन लाल जी के भाई, बड़े महानुभाव थे) ३१ पण्डित राधाकृष्ण लाहौर (पञ्जाब केशरी महाराज रज्जीत सिंह के गुरु पण्डित मधुसूदन के पौत्र, लाहौर कालिज के चीफ पण्डित) ३२ ठाकुर गिरिप्रसाद सिंह (बेसवाँ के राजा, बड़े विद्वान और वैष्णव थे) ३३ श्री शालिग्रामदास जी लाहौर (पञ्जाब में प्रसिद्ध माहत्मा हुए हैं, सुकवि थे) ३४ श्री श्रीनिवासदास लाहौर ३५ परमेश्वरी दत्त जी (श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध वक्ता थे) ३६ बाबू हरिकृष्णदास (श्री गिरिधर चरितामृत आदि ग्रन्थों के कर्ता) ३७ श्री मोहन जी नागर ३८ श्री बलवन्त राव जोशी ३९ ब्रजचन्द्र (सुकवि हैं) ४० छोटू लाल (हेड मास्टर हरिश्चन्द्र स्कूल) ४१ रामजी ।

“तदीय समाज ने भारतेन्दु को तदीयनामांकित” “अनन्य वीर वैष्णव” की पदवी दी थी जिसके लिन्हेंउन्हें नीचे लिखा प्रतिज्ञा पत्र भी लिखना पड़ा था ।

— सं०

“हम हरिश्चन्द्र अगरवाले श्री गोपालचन्द्र के पुत्र काशी चौखम्मा महल्ले के निवासी तदीय समाज के सामने परम सत्य ईश्वर को मध्यस्थ मानकर तदीय नामांकित अनन्य वीर वैष्णव का पद स्वीकार करते हैं और नीचे लिखे हुए नियमों का आजन्म मानना स्वीकार करते हैं ।

१. हम केवल परम प्रेम मय भगवान श्री राधिका रमण का भी भजन करेंगे ।
२. बड़ी से बड़ी आपत्ति में भी अन्याश्रय न करेंगे
३. हम भगवान से किसी कामना के हेतु प्रार्थना न करेंगे और न किसी और देवता से कोई कामना चाहेंगे
४. बुगल स्वरूप में हम भेद दृष्टि न देखेंगे
५. वैष्णव में हम जाति बुद्धि न करेंगे
६. वैष्णव के सब आचार्यों में से एक पर पूर्ण विश्वास रखेंगे परन्तु दूसरे आचार्य के मत विषय में कभी निन्दा वा खण्डन न करेंगे
७. किसी प्रकार की हिंसा वा मांस भक्षण कभी न करेंगे
८. किसी प्रकार की मादक वस्तु कभी न खायेंगे न पीयेंगे
९. श्री मदभगवद्गीता और श्री भागवत को सत्य शास्त्र मानकर नित्य मनन शीलन करेंगे ।
१०. महाप्रसाद में अन्न बुद्धि न करेंगे ।
११. हम आमरणान्त अपने प्रभु और आचार्य पर दृढ़ विश्वास रखकर शुद्ध भक्ति के फैलाने का उपाय करेंगे ।
१२. वैष्णव मार्ग के अविरोध सब कर्म करेंगे और इस मार्ग के विरुद्ध श्रोत स्मार्त वा लौकिक कोई कर्म न करेंगे ।
१३. यथा शक्ति सत्य शौच दयादिक का सर्वदा पालन करेंगे ।

१४. कमी कोई बाद जिससे रहस्य उद्घाटन होता हो अनधिकारी के सामने न कहेंगे । और न कमी ऐसा बाद अवलम्बन करेंगे जिसे आस्तिकता की हानि हो ।
१५. चिन्ह की माँति तुलसी की माला और कोई पीत वस्त्र धारण करेंगे ।
१६. यदि ऊपर लिखे नियमों को हम भंग करेंगे तो जो अपराध बन पड़ेगा हम समाज के सामने कहेंगे और उसकी क्षमा चाहेंगे और उसकी धृणा करेंगे ।

साक्षी

पं. वेचन राम तिवारी

पं. ब्रह्मदत्त

चिन्तामणि

दामोदर शर्मा

शुकदेव

नारायण राव

माणिक्यलाल जोशी शर्मा

मिती भाद्रपद शुक्ल ११ संवत् १९३०

हरिश्चन्द्र

हस्ताक्षर तदीय नामांकित अनन्य

वीर वैष्णव

यद्यपि मैने लिख दिया है तथापि

इसकी लाज तुम्हीं को है

(निज कल्पित अक्षर में)

मुहर तदसीय

समाज

बाबू हरिश्चंद्र ने वैष्णव समाज के लिए एक परीक्षा करने की भी सोची थी । लेकिन यह चल न पायी । उसकी प्रकाशित नियमावली यह है । — सं.

श्रीमद्वैष्णवग्रंथों में

परीक्षा

वैष्णवों के समाज ने निम्न लिखित पुस्तकों में तीन श्रेणियों में परीक्षा नियत की है और १५०) प्रथम के हेतु और १५०) द्वितीय के हेतु और ५०) तृतीय के हेतु पारितोषिक नियत है जिन लोगों को परीक्षा देनी हो काशी में श्रीहरिश्चन्द्र गोकुलचन्द्र को लिखें नियत परीक्षा तो स. १९३२ के वैशाख शुद्ध ३ से होगी पर बीच में जब जो परीक्षा देना चाहे दे सकता है ।

श्रेणी	श्रीनिम्बार्क	श्रीरामानुज	श्रीमध्व	श्रीविष्णुस्वामि
प्रविष्ट	वेदान्त रत्न मंजूषा, वेदान्त रत्नमाला, सुरद्रुम मंजरी	यतीन्द्रमत दीपिका, शतद्रुषणी	वेदान्त रत्न- माला, तत्त्व प्रकाशिका	षोडश ग्रन्थ, षोडशबाद, संप्रदाय प्रदीप
प्रवीण	वेदान्त कौस्तुभ और प्रभा, षोडशी रहस्य,	श्रुति सूत्र तात्पर्य्य निर्णय, प्रस्थान त्रय	भाष्य सुधा, न्यायामृत	विद्वन्मंडल स्वर्ण सूत्र, निबन्ध आवर्ण भंग

	पंच कालानुष्ठान	का भाष्य		वाग्रहस्त, पंडित करमिदिपाल, वहिर्मुख मुख मईन
पारंगत	अध्याय गिरि वज्र सेतुका, जान्हवी मुक्ता- वली	वेदान्ताचार्य का लघु भाष्य, वृहच्छतदूषणी	सहस्र दूषिणी	अणु भाष्य, भाष्य प्रदीप, भाष्य प्रकाश, प्रमेय रत्नार्णव

भारतेन्दु जी छोटी-छोटी नोटबुक छपवाकर उन्हें मित्रों में वितरित करते थे जिनमें 'हरिश्चंद्र जी को न भूलिए' आदि वाक्य छपे रहते थे। काशी के एक कमिश्नर कारमाइकेल ने ऐसी ही एक नोट बुक की प्रशंसा की थी।

इनकी विशेषता भारतेन्दु बाबू के शब्दों में ही हमने अपने पत्रों को लिखने के हेतु सात वारों के भिन्न-भिन्न रंग के कागज और उनके ऊपर के दोहे आदि बनाये थे। इनमें लाघव यह है कि बिना वार का नाम लिखे ही पढ़ने वाला जान जाएगा कि अमुक वार को पत्र लिखा है। जैसा शनेश्चर के पत्र के ऊपर लिखा हुआ था 'श्री श्यामा श्यामाभ्यां नमः'।

उनके लिखे पत्रों के नीचे यह दोहा लिखा रहता था।

बंधुन के पत्राहि कहत, अर्ध मिलन सब कोय।

आपहु उत्तर देहु तौ, पूरो मिलनो होय।

इनका मुख्य सिद्धांत वाक्य "यतो धर्मस्ततो कृष्णः यतो कृष्णस्ततो जयः" था।

रविवार को गुलाबी कागज पर—

"भक्त कमल दियाकराय नमः"

"मित्र पत्र बिनु हिय लहत छिनहूँ नहिँ विश्राम।
प्रफुलित होत न कमल जमि बिनु रवि उदय ललाम ॥"

सोमवार को श्वेत कागज पर —

"श्रीकृष्णचन्द्राय नमः"

"बन्धुन के पत्रहिँ कहत अर्ध मिलन सब कोय।
आपहु उत्तर देहु तौ पूरो मिलनो होय ॥"

सोमवार का यह दोहा भी छपवाया था —

"ससिकुल कैरव सोम जय, कलानाथ द्विजराज।
श्री मुखचन्द्र चकोर श्री, कृष्णचन्द्र महाराज ॥"

मंगल को लाल कागज पर —

"श्रीवृन्दाबन सार्वभौमाय नमः"

"मंगल भगवान विष्णु मंगल गरुडध्वजम्।
मंगल पुण्डरीकाक्ष मंगलायतनु हरि ॥"

बुध को हरे कागज पर —

“श्रीगुरु गोविन्दायनमः”

“बुध जन दर्पण में लखत दृष्ट वस्तु को चित्र ।
मन अनदेखी वस्तु को यह प्रतिबिम्ब विचित्र ॥”

गुरुवार को पीले कागज पर —

“श्रीगुरु गोविन्दायनमः”

“आशा अमृत पात्र प्रिय विरहातप हित छत्र ।
वचन चित्र, अवलम्बप्रद कारज साधक पत्र ॥”

शुक्रवार को सफेद कागज पर —

“कविकीर्ति यशसे नमः”

“दूर रखत करलेत आवरन हरत रखि पास ।
जानत अन्तर भेद जिय पत्र पथिक रसरास ॥”

शनिवार को नीले कागज पर —

“श्रीकृष्णायनमः”

“और काज सनि लिखन में होइ न लेखनि मन्द ।
मिले पत्र उत्तर अवसि यह बिनयत हरिचन्द ॥”

परिशिष्ट

भारतेन्दु जी के निधन पर उनके निकटतम मित्र व्यास राम शंकर शर्मा जी ने “चन्द्रास्त” नामक पुस्तक छपवा कर बँटवायी थी। व्यास जी भारतेन्दु जी की टूटती साँस के चश्मदीद गवाह थे। “चन्द्रास्त” में ही उन्होंने भारतेन्दु जी की पहली जीवनी भी प्रकाशित की थी जो यहाँ दी जा रही है। व्यास जी कुछ दिनों तक “कविवचन सुधा” के सम्पादक भी थे। — सं०

चन्द्रास्त

अर्थात्

श्रीमान कविशिरोमणि भारतभूषण भारतेन्दु
श्री हरिश्चन्द्र का सत्यलोक गमन

अद्य निराधाराऽमूढिदवंगते श्री हरिश्चन्द्रे ।

भारतधरा विशेषादभाग्यरूपा महोदयाग्नेन्द्रे ॥

अतिशय दुःखित

व्यास रामाशंकर शर्मा लिखित

अमीरसिंह द्वारा बनारस हरिप्रकाश यंत्रालय में मुद्रित हुआ

१८८५

बिना मूल्य बँटता है

अनर्थ! अनर्थ!! अनर्थ!!!

सबसे अधिक अनर्थ

“दीन जानि सब दीन्ह एक दुगयो दुसह दुख ।
सो दुख हम कहँ दीन्ह कछुह न राख्यो बीरबर ॥”

आज हमको इसके प्रकाशित करने में अत्यन्त शोक होता है और कलेजा मुँह को आता है कि हम लोगों के प्रेमास्पद भारत के सच्चे हितैषी, और आर्यों के शुभचिन्तक श्रीमान् भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी कल मह.गल की अमह.गल रात्रि में ९ बज के ४५ मिनट पर इस अनित्य संसार से विरक्त हो और हम लोगों को छोड़ कर परम पद को प्राप्त हुए । उनकी इस अकाल मृत्यु से जो असीम दुःख हुआ उसे हम किसी भाँति से प्रकट नहीं कर सकते क्योंकि यह वह दुसह दुःख है कि जिनके वर्णन करने से हमारी छाती तो फटती ही है वरन्व लेखनी का हृदय भी विदीर्ण होता जाता है और वह सहस्रधारा से अश्रुपात करती है ।

हा ! जिस प्राण प्यारे हरिश्चन्द्र के साथ सदा विहार करते थे और जिसके चन्द्रमुख दर्शन मात्र से हृदय कुमुद विकशित होता था उसे आज हम लोग देखने के लिये भी तरसते हैं । जिसके भरोसे पर हम लोग निश्चिन्त बैठे रहते थे और पूरा विश्वास रखते थे वही आज हमको धोखा दे गया । हा ! जिस हरिश्चन्द्र को हम अपना समझते थे उसको हमारी सुघ तक न रही । हरिश्चन्द्र तुम तो बड़े कोमल स्वभाव के थे परन्तु इस समय तुम इतने कठोर क्यों हो गये ? तुमको तो राह चलते भी किसी का रोना अच्छा नहीं लगता था सो अब सारे भारतवर्ष का रोना कैसे सह सकोगे । प्यारे ! कहो तो सही, दया जो सदा छाया सी तुम्हारे साथ रही सो इस समय कहाँ गई । प्रेम जो तुम्हारा एक मात्र व्रत था उसे इस बेला कहाँ रख छोड़ा है जो तुम्हारे सच्चे प्रेमी बिलला रहे हैं हे देशभिमानी हरिश्चन्द्र ! तुम्हारा देशभिमान किधर गया जो तुम अपने देश की पूरी उन्नति किये बिना इसे अनाथ छोड़ कर चल दिये । तुम्हारा हिन्दी का आग्रह क्या हुआ, अभी तो वह दिन भी नहीं आये थे जो हिन्दी का भली भाँति प्रचार हो गया होता, फिर आप को इतनी जल्दी क्या थी जो इसका हाथ ऐसी अचूरी अवस्था में छोड़ा हे परमेश्वर, तूने आज क्या किया, तेरे यहाँ कमी क्या थी जो तूने हमारी महानिधि छीन ली । जो कहो कि वह तुम्हारे भक्त थे तो क्या न्याय यही है कि अपने सुख के लिये भक्त के भक्तों को दुःख दे । अरे मौत निगोड़ी, तुम्हें मौत भी न आई जो मेरे प्यारे का प्राण छोड़ती । अरे दुर्दैव क्या तेरा पराक्रम यही था जो हतभाग्य भारत को यह दिन दिखलाया । हाय ! आज हमारे भारतवर्ष का सौभाग्यसूर्य अस्त हो गया, काशी का मानस्तम्भ टूट गया और हिन्दुओं का बन जाता रहा । यह एक ऐसा आकस्मिक वज्रपात हुआ कि जिस के आघात से सब का हृदय चूर्ण हो गया । हा ! अब ऐसा कौन है जो अपने बन्धुओं को अपने देश की भलाई करने की राह बतलावेगा और तन मन धन से उनमें सुमति और अच्छे उपदेशों के फैलाने का यत्न करेगा । अभागिनी हिन्दी के भण्डार को अपने उत्तमोत्तम लेख द्वारा कौन पुष्ट करेगा और साधारण लोगों में विद्या की रुचि बढ़ाने के लिये नाना प्रकार के सामयिक लेख लिख कर सब का उत्साह कौन बढ़ावेगा । अपनी सुधामयी वाणी से हम लोगों की आवेलि कौन बढ़ावेगा और हा ! काव्यामृत पान करा के हमारी आत्मा को कौन तुष्ट करेगा । मेरे प्राणप्यारे ! अबसर पड़ने पर हमारे आर्यधर्म की रक्षा करने के लिये कौन आगे होगा और दीनोद्धार की श्रद्धा किसको होगी । यों तो आर्य जाति को अब कोई संकष्ट उपस्थित होता था तो वे तुम्हारे समीप दौड़े जाते थे पर अब किसकी शरण जायेंगे । शोक का विषय है कि तुमने इनमें से एक पर भी ध्यान न दिया और हम लोगों को निरवलम्ब छोड़ गये । प्रियतम हरिश्चन्द्र ! आज तुम्हारे न रहने ही से काशी में उदासी छा रही है और सब लोगों का अन्तःकरण परम दुःखित हो रहा है । तुम को वह मोहन मंत्र याद था कि जिस से सारे संसार को अपने वश में कर लिया था । पर हा ! आज एक तुम्हारे चले जाने से सारा भारतवर्ष ही नहीं, किन्तु यूरोप अमेरिका इत्यादि के लोग भी शोकग्रस्त होंगे यद्यपि तुम कहने को इस संसार में नहीं हो, परन्तु

तुम्हारी वह अक्षय कीर्ति है कि जो इस संसार में उस समय तक बनी रहेगी कि जबलों हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों का लोप होगा । प्यारे ! तुम तो वहाँ भी ऐसे ही आदर को प्राप्त होगे पर बिला मौत हम लोग मारे गये । अस्तु परमेश्वर की जो इच्छा आप की आत्मा को सुख तथा अखण्ड स्वर्गनाम हो, पर देखना अपने दीन मित्र तथा गरीब भारतवर्ष को भूलना मत । अब सिवा इसके रह क्या गया है कि हम लोग उनके उपकारों को याद करके आँसू बहावें, इसलिये यहाँ पर आज थोड़ा सा उनका चरित प्रकाशित करता हूँ, चित्त स्वस्थ होने पर पूरा जीवनचरित छापूँगा क्योंकि यह स्वयं भविष्यवाणी कर गये हैं कि कहेंगे सबही नैन नीर भरि २ पाछें

प्यारे हरिचन्द की कहानी रह जायंगी ।

मानमन्दिर,
७.१.८५

प्यारे के वियोग से नितान्त दुःखी
व्यास रामशंकर शर्मा

माघ पूर्णिमा सं. १९४१ क्रो भारतेन्दु के निधन पर हुई शोक सभा का निमंत्रण पत्र । — सं.

कला लयो विष्णुपदाश्रयश्च
सुधासगाप्लावितदिग्धिभागः
श्रीमान् 'हरिश्चन्द्र' इति प्रसिद्धि,
यो भारते भूत्किल भारतेन्दुः ॥१॥
तद्वेयसख्येन महानुभावाः,
यशः प्रकाशैः परिपूरिताशाः ।
दयादुशा सूरिवरा भवन्तः
पुनन्तु दत्त्वा ननु दर्शन नः ॥२॥

आपका सेवक,
गोकुलचन्द

संक्षिप्त जीवनी

श्रीमान कविचूड़ामणि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने सन् १८५० ई० के सितम्बर मास की ९वीं तारीख को जन्मग्रहण किया था । जब वह ५ वर्ष के थे तो उनकी पूज्य माता जी वने ९ वर्ष के हुए तो महामान्य पिता जी का स्वर्गवास हुआ, जिससे उनको माता पिता का सुख बहुत ही कम देखने में आया, उनकी शिक्षा बालकपन से दी गई थी और उन्होंने कई वर्ष तो कालेज में अंग्रेजी तथा हिन्दी पढ़ी थी संस्कृत, फारसी, बंगला, महाराष्ट्री इत्यादि अनेक भाषाओं में बाबू साहिब ने घरपर निज परिश्रम किया था । इस समय बाबू साहिब तैलङ्ग तथा तामील भाषा को छोड़ कर भारत की सब देश भाषा के पण्डित थे । बाबू साहिब की विद्वत्ता, बहुज्ञता, मीतिव्रता, पाण्डित्य, तथा चमत्कारिणी बुद्धि का हाल सब पर विदित है कहने की कोई आवश्यकता नहीं । इनकी बुद्धि का चमत्कार देख कर लोगों को आश्चर्य होता था कि इतनी अल्प अवस्था में यह सर्वज्ञता । कविता की रुचि बाबू साहिब को बाल्यावस्था ही से थी, उनकी उस समय की कविता पढ़ने से कि जब वह बहुत छोटे थे बड़ा आश्चर्य होता है और इस समय की तो कहना ही क्या है मूर्तिमान् आशुकवि कालिदास थे जैसी कविता इनकी सरस और प्रिय होती थी वैसी आज दिन किसी की नहीं होती । कविता सब भाषा की करते थे, पर भाषा की कविता में अद्वितीय थे । उनके जीवन का बहुमूल्य समय सदा लिखने पढ़ने में जाता था । कोई काल ऐसा नहीं था कि उनके पास कलम, दावात और कागज न रहता रहा हो । १६ वर्ष की अवस्था में कविवचन सुधा पत्र निकाला था जो आज तक चला जाता है । इसके उपरान्त तो क्रमशः अनेक पत्र पत्रिकाएँ और सैकड़ों पुस्तक लिख डाले जो युग युगान्तर तक संसार में उनका नाम

जैसा का तैसा बनाये रखेंगे । २० वर्ष की अवस्था अर्थात् सन् ७० में बाबू साहिब आनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुए और सन् ७४ तक रहे वो उसी के लगभग ६ वर्ष लों म्युनिस्पल कमिश्नर भी थे । साधारण लोगों में विद्या फैलाने के लिये सन् १८६७ ई० में जब कि बाबू साहिब की अवस्था केवल १७ वर्ष की थी चौखम्मा स्कूल जो अबतक उनकी कीर्ति की ध्वजा है, स्थापित किया, जिनके छात्र आज दिन एम. ए. बी. ए. तथा बड़ी बड़ी तनखाह के नौकर हैं । लोगों के संस्कार सुधारने तथा हिन्दी की उन्नति के लिये हिन्दी डिबेटिंग क्लब, अनायरक्षिणी तदीय समाज, काव्य समाज इत्यादि सभाएँ संस्थापित की और उनके सभापति रहे, भारतवर्षके प्रायः सब प्रतिष्ठित समाज तथा सभाओं में से किसी के प्रेसीडेन्ट, सेक्रेटरी और किसी के मेम्बर रहे लोगों के उपकारार्थ अनेक बार देश देशान्तरों में व्याख्यान दिये । उनकी वक्तृता सरस और सारग्राहिणी होती थी । उनके लेख तथा वक्तृत्व में देशा गौरव भलकता था । विद्या का सम्मान जैसा साहिब करते थे वैसा करना आजकल कठिन है, ऐसा कोई भी विद्वान् न होगा जिसने इनसे आदर सत्कार न पाया हो । यहां के पण्डितों ने जो अपना अपना हस्ताक्षर करके बाबू साहिब को प्रशंसापत्र दिया था उसमें उन लोगों ने स्पष्ट लिखा है कि —

जोिम सुभाष दिन रैन के कारन नित हरिचन्द ।।

सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचन्द ।।

जिमि सुभाष दिन रैन के कारन नित हरिचन्द ।।

बाबू साहिब दानियों में कर्ण थे, इतना ही कहना बहुत है । उनसे हजारों मनुष्य का कल्याण होता रहा । विद्योन्नति के लिये भी उन्होंने बहुत व्यय किया । ५०० रु० तो उन्होंने ५० परमानन्द जी की ज्ञतसई की संस्कृत टीका का दिया था और इसी प्रकार से कालिज, वो स्कूलों में उचित पारितोषिक बांटे हैं । जब जब बंगाल, बम्बई, वो मदरास में स्त्रियां परिक्षोत्तीर्ण हुई हैं तब तब बाबू साहिब ने उनके उत्साह बढ़ाने के लिए बनारसी साड़ियां भेजी थीं । जिनमें से कई एक की श्रीमती लेडी रिपन ने प्रसन्नता पूर्वक अपने हाथ से बांटा था । बाबू साहिब ने देशोपकार के लिये नेशनल फंड होमियोपैथिक डिस्पेंसरी, गुजरात वो जौनपुर रिलीफ फण्ड, सेलजे होम, प्रिंस आफ वेल्स हास्पिटल और लैब्रेरी इत्यादि की सहायता में समय समय पर चन्दा दिये हैं । गरीब दुखियों की बराबर सहायता करते रहे ।

गुणग्राहक भी एक ही थे, गुणियों के गुण से प्रसन्न होकर उनको यथेष्ट द्रव्य देते थे, तात्पर्य यह कि जहां तक बना दिया देने से हाथ नहीं रोका ।

देशहितैषियों में पहिले इन्हीं के नाम पर अंगुली पड़ती है क्योंकि यह वह हितैषी थे कि जिन्होंने अपने देशगौरव के स्थापित रखने के लिये अपना धन, मान, प्रतिष्ठा एक ओर रख दी थी और सब उसके सुधारने का उपाय सोचते रहे । उनको अपने देशवासियों पर कितनी प्रीति थी यह बात उनके भारतजननी, वो भारतदुर्दशा इत्यादि ग्रन्थों के पढ़ने ही से विदित हो सकती है । उनके लेखों से उनकी हितैषिता और देश का सच्चा प्रेम भलकता था ।

यद्यपि बहूत लोगों ने उनको गवर्मेन्ट का डिसेलायल (अशुभचिन्तक) मान रक्खा था, पर यह उनका भ्रम था, हम मुक्तकण्ठ से कह सकते हैं कि वह परम राजभक्त थे । यदि ऐसा न होता तो उन्हें क्या पड़ा था कि जब प्रिंस आफ वेल्स आये थे तो वह बड़ा उत्सव और अनेक भाषा के छन्दों में बना कर स्वागत ग्रन्थ (मानसोपायन) उनके अर्पण करते । ड्यूक ऑफ एडिन्बरा जिस समय यहां पधारे थे बाबू साहिब ने उनके साथ उस समय वह राजभक्ति प्रकट की जिससे ड्यूक उन पर ऐसे प्रसन्न हुए कि जब तक काशी में रहे उन पर विशेष स्नेह रक्खा । सुमनोज्जलि उनके अर्पण किया था जिसके प्रति अक्षर से अनुराग टपकता है । महाराणी की प्रशंसा में मनोनुकूल माला बनाई । मिस्र युद्ध के विजय पर प्रकाश्य सभा की वो विजयिनीविजय वैजयंती बनाकर पूर्ण अनुराग सहित भक्ति प्रकाशित की । महाराणी के बचने पर सन् ८२ में चौकाघाट के बगीचे में भारी उत्सव किया था और महाराणी के जन्म दिवस तथा राजराजेश्वरी की उपाधि लेने के दिन प्रायः बाबू साहिब उत्सव करते रहे । ड्यूक ऑफ अलबनी की अकाल मृत्यु पर सभा कर के महाशोक किया था । जब जब देशहितैषी लार्ड रिपन आये उन को स्वागत कविता देकर आनन्दित हुए । सन् ७२ में म्यो मेमोरियल सिरीज में १५०० रु. दिये । यह सब लायल्टी नहीं तो क्या है ?

बाबू साहिब भारतवर्ष के एड्यूकेशन कमीशन (विद्या सभा) के सम्य तो हुए ही थे वे परन्तु इन का गुण यह था कि विलायत में जो नेशनल एंथम (जातीय गीत) के भारत की सब भाषाओं में अनुवाद करने के लिए महारानी की ओर से एक कमेटी हुई थी उसके मेम्बर भी थे, और उनके सेक्रेटरी ने जो पत्र लिखा था उसमें उसने बाबू साहिब की प्रशंसा लिख कर स्पष्ट लिखा था कि मुझको विश्वास है कि आप की कविता सबसे उत्तम होगी और अन्त में ऐसा ही हुआ क्यों नहीं जब की भारती जिह्वा पर थी। सच पूछिए तो कविता का महत्व उन्हीं के साथ था। बाबू साहिब की विद्वता और बहुज्ञता की प्रशंसा केवल भारतीय पत्रों ने नहीं की वरन्च विलायत के प्रसिद्ध पत्र ओवरलेण्ड, इण्डियन और होम मेल्स इत्यादिक अनेक पत्रों ने की है। उनकी बहुदर्शिता के विषय में एशियाटिक सोसाइटी के प्रधान डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, एम०. ए०. शेरिंग, श्रीमान् पण्डितवर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रभृति महाशयों ने अपने अपने ग्रंथों में बड़ी प्रशंसा की है। श्रीयुत विद्यासागर जी ने अपने अभिज्ञान शाकुन्तल की भूमिका में बाबू साहिब को परम अमायिक, देशबन्धु धार्मिक, और सुहृद इत्यादि कर के बहुत कुछ लिखा है। बाबू साहिब अज्ञातशत्रु थे इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं और इनका शील ऐसा अपूर्व था कि साधारणों की क्या कथा भारतवर्ष के प्रधान २ राजे, महाराजे, नवाब और शहजादे इन से मित्रता का बर्ताव बरतते थे और अमेरिका व यूरोप के सहृदय प्रधान लोग भी इन पर पूरा स्नेह रखते थे। हा ! जिस समय ये लोग यह अनर्थकारी घोर सम्वाद सुनेंगे उनको कितना कष्ट होगा।

बाबू साहिब को अपने देश के कल्याण का सदा ध्यान रहता था। उन्होंने गोवध उठा देने के लिए दिल्ली दरबार के समय ६०००० हस्ताक्षर करा के लार्ड लिटन के पास भेजा था। हिन्दी के लिये सदा जोर देते गये और अपनी एड्यूकेशन कमीशन की साक्षी में यहाँ तक जोर दिया कि लोग फड़क उठते हैं। अपने लेख तथा काव्य से लोगों की उन्नति के अखाड़े में आने के लिये सदा यत्नवान रहे। साधारण की ममता इनमें इतनी थी कि माधोराव के घरहरे पर लोहे के छड़ लगवा दिये कि जिससे गिरने का भय छूट गया। इनकमटैक्स के समय जब लाट साहिब यहाँ आये थे तो दीपदान की बेला दो नावों पर एक पर और दूसरी पर स्वागत स्वागत धन्य प्रभु श्री सर विलियम म्योर। टेक्स छुड़ावहु सबन को विनय करत कर जोर। लिखा था इसके उपरान्त टिकस उठ गया लोग कहते हैं कि इसी से उठा। चाहे जो हो इसमें सन्देह नहीं कि वह अन्त तक देश के लिये हाय हाय करते रहे।

सन् १८८० ई०. के २० सितम्बर के सारसुधानिधि पत्र में हमने बाबू साहिब को भारतेन्दु की पदवी देने के लिये एक प्रस्ताव छपवाया था और उसके छप जाने पर भारतवर्ष के हिन्दी समाचारपत्रों ने उसपर अपनी सम्मति प्रकट की और सब पत्र के सम्पादक तथा गुणग्राही विद्वान् लोगों ने मिल कर उनकी भारतेन्दु की पदवी दी, तबसे वह भारतेन्दु लिखे जाते थे।

बाबू साहिब का धर्म वैष्णव था। श्रीवल्लभीय वह धर्म के बड़े पक्के थे, पर आडम्बर से दूर रहते थे। उनके सिद्धान्त में परम धर्म भगवत्प्रेम था। मत वा धर्म विश्वासमूलक मानते थे प्रमाण भूलक नहीं। सत्य, अहिंसा, दया, शील, नम्रता आदि चरित्र को भी धर्म मानते थे, वह सब जगत को ब्रह्ममय और सत्य मानते थे।

बाबू साहिब ने बहुत सा द्रव्य व्यय किया, परन्तु कुछ शोच न था। कदाचित् शोच होता भी था तो दो अवसर पर, एक जब किसी निज आश्रित को या किसी शुद्ध सज्जन को बिना द्रव्य कष्ट पाते देखते थे, दूसरे जब कोई छोटे मोटे काम देशोपकारी द्रव्याभाव से रुक जाते थे।

हां। जिस समय हमको बाबू साहिब की यह करुणा की बात याद आ जाती है तो प्राण कंठ में आता है। वह प्रायः कहते थे कि अभी तक मेरे पास पूर्ववत् बहुत धन होता तो मैं चार काम करता। (१) श्रीठाकुर जी को बगीचे में पधराकर धूम धाम से षट्श्रुत का मनोरथ करता (२) विलायत, फरासीस और अमेरिका जाता (३) अपने उद्योग से एक शुद्ध हिन्दी की यूनिवर्सिटी स्थापन करता (हाय रे ! हतभागिनी हिन्दी, अब तेरा इतना ध्यान किसको रहेगा) (४) एक शिल्प कला का पश्चिमोत्तर देश में कालिख करता।

हाय ! क्या आज दिन उन के बड़े बड़े धनिक मित्रों में से कोई भी मित्र का दम भरने वाला ऐसा सच्चा मित्र है जो उनके इन मनोरथों में से एक को भी उनके नाम पर पूरा करके उनकी आत्मा को सुखी करे ! हायरे ! हतभाग्य पश्चिमोत्तर देश, तेरा इतना भारी सहायक उठ गया, अब भी तुमसे उनके लिये कुछ बन पड़ेगा या नहीं ? जब कि बंगाल और बम्बई प्रदेश में साधारण हितैषियों के स्मारक चिह्न के लिये लाखों बात की बात में इकट्ठे हो जाते हैं ।

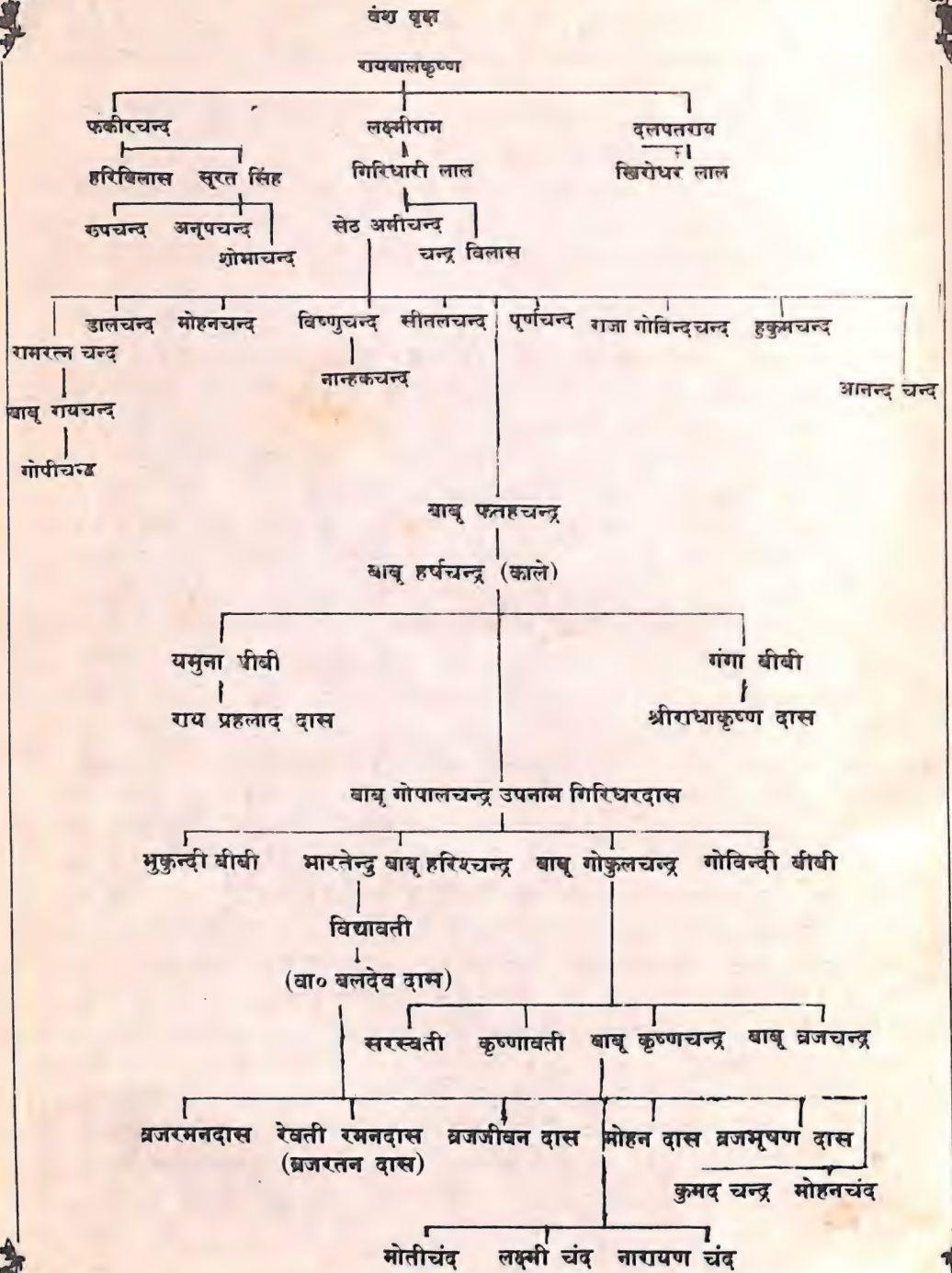
बाबू साहिब के खास पसन्द की चीजें राग, वाद्य, रसिक समागम, चित्र, देश-देश और काल-काल की विचित्र वस्तु और भाति-भाति की पुस्तक थीं ।

काव्य उनको जयदेव जी, देव कवि, श्री नागरीदास जी, श्री सूरदास जी, और आनन्दधन जी का अति प्रिय था । उर्दू में नजीर और अनीस का । अनीस को अच्छा कवि समझते थे ।

संतति बाबू साहिब को तीन हुई । दो पुत्र एक कन्या पुत्र दोनों जाते रहे, कन्या है, विवाह हो गया ।

बाबू साहिब कई बार बीमार हुए थे, पर भाग्य अच्छे थे इसलिये अच्छे होते गये । सन् १८८२ ई. में जब श्रीमन्महाराणा साहिब उदयपुर से मिलकर जाड़े के दिनों में लौटे तो आते समय रास्ते ही में बीमार पड़े । बनारस पहुँचने के साथ ही श्वास रोग से पीड़ित हुए । रोग दिन-दिन अधिक होता गया महीनों में शरीर अच्छा हुआ । लोगों ने ईश्वर को धन्यवाद दिया । यद्यपि देखने में कुछ रोज तक रोग मालूम न पड़ा पर भीतर रोग बना रहा और जड़ से नहीं गया । बीच में दो एक बार उभड़ आया, पर शान्त हो गया था, इधर दो महीने से फिर श्वास चलता था, कभी-कभी ज्वर का आवेश भी हो जाता था । औषधि होती रही शरीर कृशित तो हो चला था पर ऐसा न ही था कि जिससे किसी काम में हानि होती, श्वास अधिक हो चला क्षयी के चिह्न पैदा हुए । एका एक दूसरी जनवरी से बीमारी बढ़ने लगी, दवा, इलाज सब कुछ होता था पर रोग बढ़ता ही जाता था धीरे-धीरे तारीख को प्रातःकाल के समय जब ऊपर से हाल पूछने के लिये मजदूरिन आई तो आप ने कहा कि जाकर कह दो कि हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित्य नया नया छप रहा है, पहिले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खाँसी की सीन हो चुकी, देखें लास्ट नाइट कब होती है । उसी दिन दोपहर से श्वास वेग से आने लगा कफ में रुधिर आ गया, डाक्टर वैद्य अनेक मौजूद थे और औषधि भी परामर्श के साथ करते थे परन्तु मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की । प्रतिक्षण में बाबू साहिब डाक्टर और वैद्यों से नींद आने और कफ के दूर होने की प्रार्थना करते थे, पर करें क्या काल दुष्ट तो सिर पर खड़ा था, कोई जाने क्या, अन्ततोगत्वा बात करते ही करते पावे १ बजे रात को भयंकर दृश्य आ उपस्थित हुआ । अन्त तक श्रीकृष्ण ध्यान बना रहा । देहावसान समय में श्रीकृष्ण । श्रीराधाकृष्ण । हे राम । आते हैं सुख देख लाओ कहा और कोई दोहा पढ़ा जिसमें से श्रीकृष्ण सहित स्वामिनी इतना धीरे स्वर से स्पष्ट सुनाई दिया । देखते ही देखते प्यारे हरिश्चन्द्र जी हम लोगों की आँखों से दूर हुए । चन्द्रमुख कुम्हिला कर चारों ओर अन्धकार हो गया । सारे घर में मातम छा गया, गली-गली में हाहाकार मचा, और सब काशीवासियों का कलेजा फटने लगा । लेखनी अब आगे नहीं बढ़ती बाबू साहिब चरणपादुका पर . . .

हा ! काल की गति भी क्या ही कुटिल होती है, अचानक कालनिद्रा ने भारतेन्दु को अपने वश में कर लिया कि जिससे सब जहाँ के तहाँ पाहन से खड़े रह गये । वाह रे छुष्ट काल ! तूने इतना समय भी न दिया जो बाबू साहिब अपने परम प्रिय अनुज बाबू गोकुलचन्द्र जी को बाबू राधाकृष्णदास तथा अन्य आत्मीयों से एक बार अपने मन की बात भी कहने पाते और हमको, जिसे उस समय यह भयंकर दृश्य देखना पड़ा था, इतना अवसर भी न मिला कि अन्तिम सम्भाषण भी कर लेते हा ! हम अपने इस कलंक को कैसे दूर करें । वह मोहनी मूर्ति भुलाये नहीं भूलती पर करें क्या । बाबू साहिब की अवस्था कुल ३४ वर्ष ३ महीने २७ दिन १७ घं. ७ मि. और ४८ से. की थी । पर निर्दयी काल से कुछ वश नहीं ।





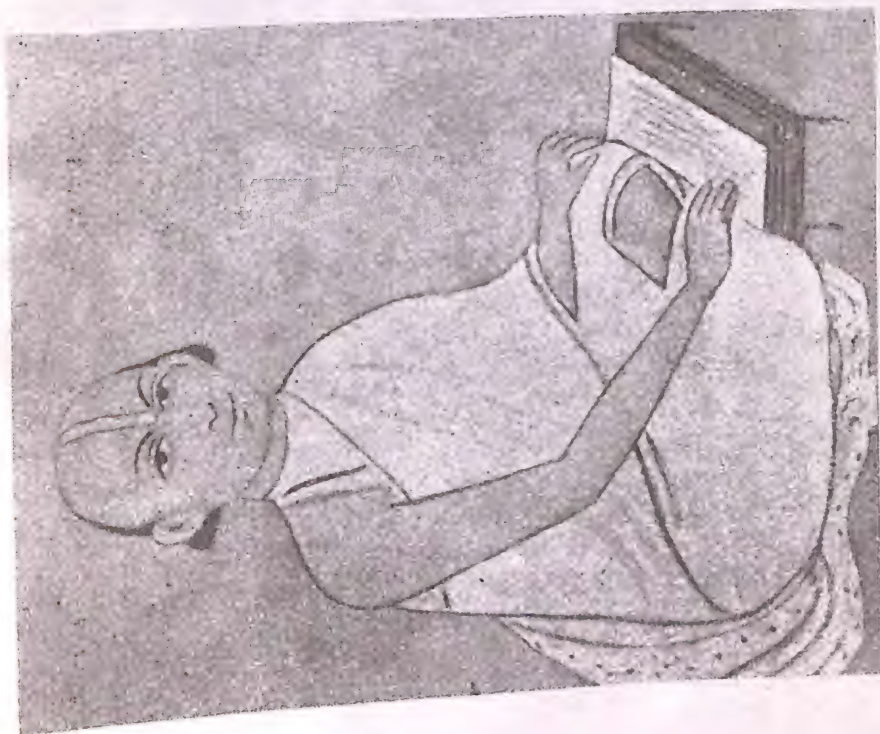
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र



भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र



युवक हरिश्चन्द्र



पिता बाबू गोपाल चन्द्र



भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनकी प्रेयसी मल्लिका

EDUCATION COMMISSION.

— 000 —

EVIDENCE OF BABU HARIS CHANDRA.

Question 1.—Please state what opportunities you have had of forming an opinion on the subject of education in India, and in what province your experience has been gained.

Answer 1.—I have always taken an interest in education. I am a Sanskrit, Hindi and Urdu poet, and have composed many works in verse and prose. I started a Hindi journal, the *Kavirachana Sudha*, which still exists. My aim has always been to better the educational status of my countrymen, to improve the vernacular language of these provinces, and to add to the stock of the vernacular literature. I have always taken pleasure in the enlightenment of my fellow countrymen. I have established a school for elementary education in the City of Benares. I was a member of the Benares Educational Committee, and have had considerable opportunity of coming into contact with those connected with the Educational Department and other men of learning. I have given prizes to students and scholars of Government schools and colleges to encourage the advancement of learning.

I belong to the North Western Provinces, and my experience is confined to them.

Question 2.—Do you think that in your province the system of primary education has been placed on a sound basis, and is capable of development up to the requirements of the community? Can you suggest any improvements in the system of administration or in the course of instruction?

Answer 2.—As far as my knowledge and experience go, I am of opinion that the system of primary education has been placed on a sound footing, and is quite capable of development up to the requirements of the community with but a few slight amendments and improvements.

I consider the present system of managing schools by educational committees objectionable. The official members can hardly spare time to look after the schools which are situated far from them in the district. The majority of non-official members attend the meetings not because they have any love or even the smallest desire on their part for the education of their country, but only because they consider it an honor to be a member of such local boards, and because they would be entitled to a seat in the presence of the Collector. I have known many members of educational committees who hardly themselves know even the vernacular of the province, and they are enrolled as members because they are desired among the gentry, and some of them are such as cannot even claim that distinction. I seldom know a non-official member of the committee visit a district school or take any active interest in the cause of education, purely with a view to benefit his country.

शिक्षा आयोग के समक्ष ले गयी भारतेन्दु बाबू की गवाही ।

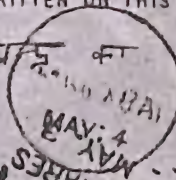
३.५.८३.

अनेक कोटि साक्षात् एतन् प्रणमानन्तरं निवेदयति
 लघु. २. ५. मिली. धनबाद. नाट्यदिनांक है.
 भारतेन्दु बहुत अच्छी आल से भला है जिन तनिक
 काई दिवस है. लोग कीगरी उन्नत है. का महमूदी
 लखी भाला है. मैं अब तक नहीं खर्रा हुआ. भरी ही सुली
 है. ज्ञाना केने ने कुशल है. हमारी सबेले निदि जो प्रायः लग
 ५८ २८ है शीघ्र भेजिए. इस पत्र में सब प्रकार सहामक होगी
 श्री यशदा तैवक
 कृष्ण

EAST INDIA POST CARD

THE ADDRESS ONLY TO BE WRITTEN ON THIS SIDE

भारतेन्दु बाबू हरिचन्द्र का पत्र



Sri Radha Churnaji Goswami
 Sri Radha Ramanji Kashner
 Benares Sri Vrindoban

भारतेन्दु बाबू का गोस्वामी राधाचरण जी को लिखा गया एक पत्र ।

१. १९५५-५६ में जल नुकसान
 २. १९५६-५७ में जल नुकसान
 ३. १९५७-५८ में जल नुकसान
 ४. १९५८-५९ में जल नुकसान
 ५. १९५९-६० में जल नुकसान

[illegible][illegible]

॥ गणेशाय नमः ॥
 श्रीगणेशाय नमः ॥
 श्रीगणेशाय नमः ॥
 श्रीगणेशाय नमः ॥

[illegible]

ॐ नमः शिवाय ॥
 श्रीगणेशाय नमः ॥
 श्रीगणेशाय नमः ॥
 श्रीगणेशाय नमः ॥

[illegible][illegible]

काव्यविवेचना

॥ श्री गणेशाय नमः ॥
 ॥ श्री गणेशाय नमः ॥

10. The sum of the first 10 terms of an arithmetic progression is 100. The sum of the first 20 terms is 400. Find the sum of the first 30 terms.

॥ वाचं धेनुमुपासीत ॥

[illegible][illegible]

॥ ३१॥

our 2002 study, 4.04 years.

• **पुनः प्रवेश** - यदि कोई व्यक्ति अपने देश से बाहर जाकर वापस आना चाहता है, तो उसे अपने देश के विदेशीय मामलों के विभाग से संपर्क करना होगा।

पहले 'कविवचन सुधा' की 'टाइटिल हिन्दी' में छपती थी

[illegible]

REGISTERED No. 1

THE
KAVIVACHANSUDHA
कविवचनसुधा ।

[illegible]

A 12 Monthly Journal of Literature, News and Progress.

निवेदन : १. आचार्य १

જાન્યવારી ૧૯૭૬

महाराष्ट्र के राजधानी मुंबई में १९६० के दशक में
मुंबई के राजधानी मुंबई में १९६० के दशक में

किस प्रकार ?

[illegible]

समाधानावल्या ।

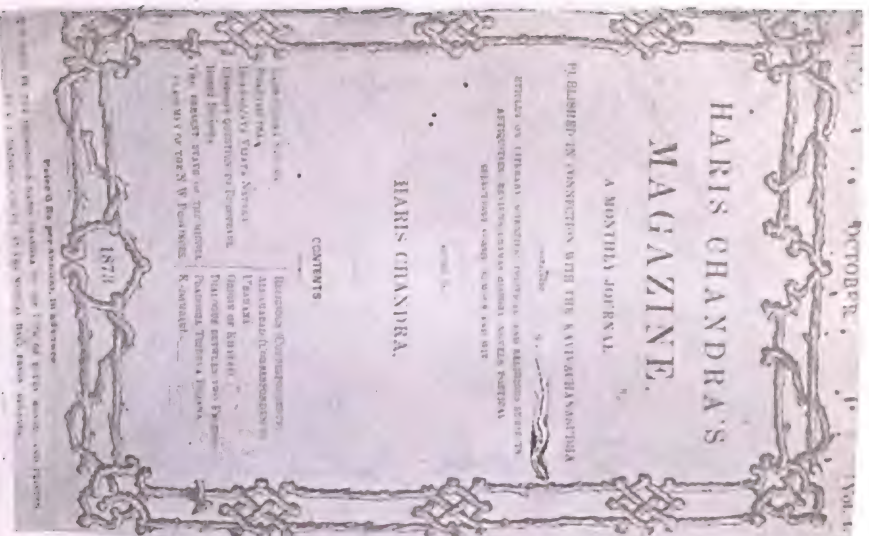
[illegible]

कमाल आगगा के देखने से मेरा मन भी
आगे की दुनियाँ तक पहुँचने में रुका नहीं था।

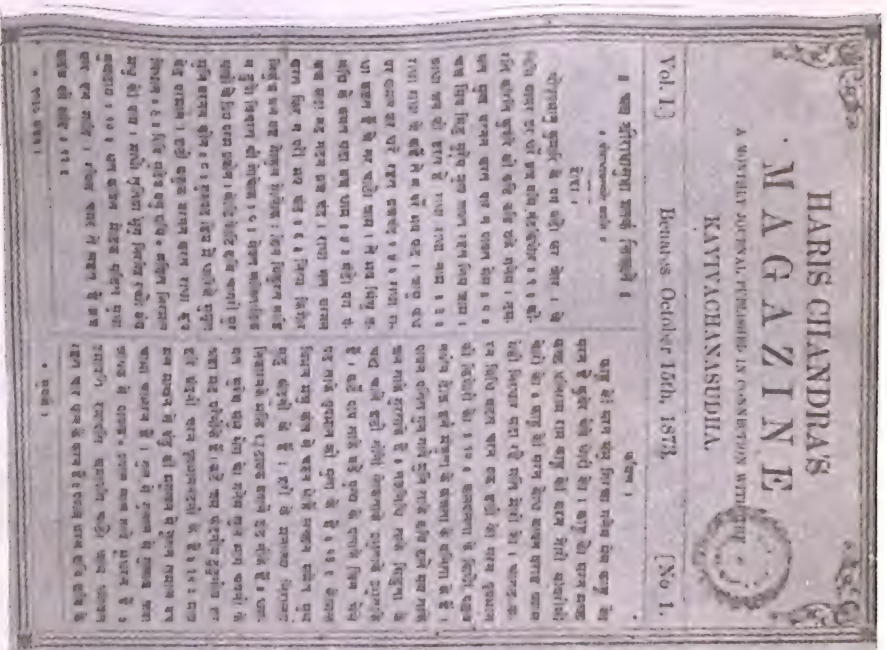
[illegible]

સુવર્ણચંદ્રિકા ના સ્થાપક શ્રી રામચંદ્ર શાસ્ત્રી
જન્મ ૧૯૦૭-૧૯૮૭

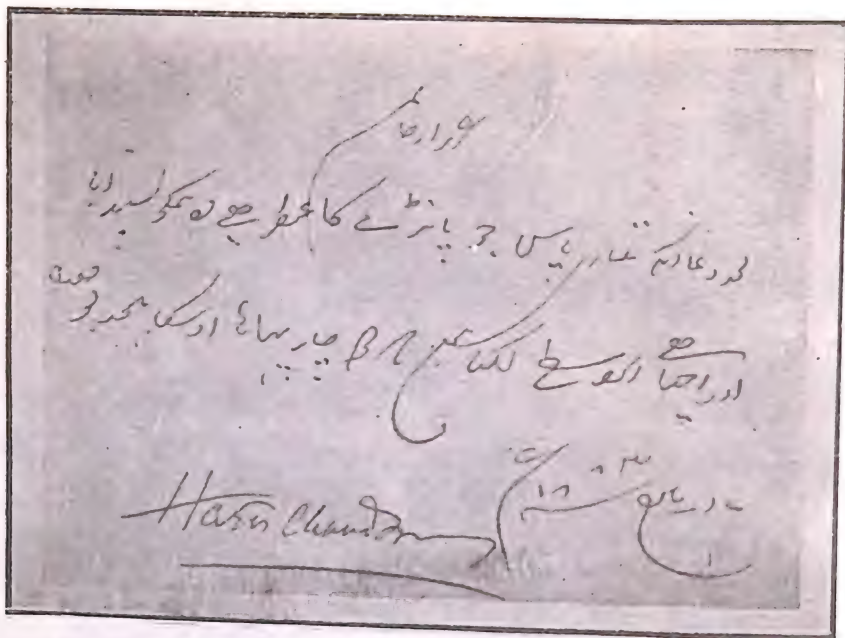
बाद में अंग्रेजी में भी छपने लगी



‘हरिश्चन्द्र मैगजीन’ का कवर पृष्ठ



‘हरिश्चन्द्र मैगजीन’ का पहला अंक



भारतेन्दु बाबू के ऊर्दू और अंग्रेजी हस्ताक्षरों के नमूने ।



भारतेन्दु बाबू का डब्रदान

चित्र: डा. गिरीश चन्द्र चौधरी के सौजन्य से



बाबा सुमेर सिंह से उन्हे मिली पोथी और लेखन सामग्री की मंजूपा ।

चित्र. डा. अगराश चन्द्र चौधरी के सौजन्य से



भारतेन्दु बाबू द्वारा प्रयोग में लायी गयी कलामें और कलमदान

चित्र. डा. गिरीश चन्द्र चौधरी के सौजन्य से

